ॐ

* श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः *

श्रीमद्भागवत.

मूल और भाषाटीका सहित

मुरादाबाद निवासी सारस्वतबंशोद्भव
पण्डित जगन्नाथात्मज

पण्डित-कन्हैयालालउपाध्याय.

द्वाराअनुवादित.

और भागवत प्रकाश कार्यालयद्वारा प्रकाशित ।

तथा

पं० बलदेवप्रसादमिश्र

मेनेजर "तन्त्रप्रभाकर" प्रेस द्वारा मुद्रित ।

मुरादाबाद.

संवत् १९५८ सन् १९०१ ई०

भूमिका.

आजकल इस पुण्यस्थान भारत वर्षमें श्रीमद्भागवत ग्रंथका जितना प्रचार है, उतना प्रचार और किसी ग्रंथका नहीं है। अठारह पुराणोंमें श्रीमद्भागवत पुराणही प्रधान समझाजाता है। श्रीवेदव्यासजी नें महाभारतादि अनेक ग्रंथ बनाये परन्तु उनको प्रसन्नता नहीं हुई न चित्तको तृप्तिहुई। वह इसही चिन्ता में बैठेहुए थे कि इतने में वहां नारदजी आये और कहने लगे कि आप आज किस प्रकारकी चिन्ता में व्यस्तहैं; यदि कुछ हानि नहीं तो मुझसे कहिये। व्यासजी महाराज नें उत्तर दिया कि अबतक मैंनें अनेक ग्रंथ बनाये परन्तु उनमें से किसी के बनानें से भी चित्तको संतोष नहीं हुआ। श्रीनारदजी बोले कि अबतक आपने केवल ऐसेही पुराण और वेदान्तमय ग्रंथ निर्माण किये हैं कि जिनमें प्राकृत जनोंका गुणगण अधिकाई से वर्णन किया गया है या जो केवल वेदान्तकेही आधारहैं; परन्तु ऐसाकोई ग्रंथ नहीं निर्माण किया जिसमें भगवद्भक्तिके साथ २ ही सम्पूर्ण वेदान्त, दर्शन, योग, मीमांसा, शिक्षा, कल्प,व्याकरण, छंद, ज्योतिषादि महाशास्त्रोंका सार वर्णन किया गयाहो तथा श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद श्रीव्रजचंद्र की बांकी मधुर मुसकान का ऐसा सुन्दर वर्णनहो कि जिसके पठन पाठन से स्वर्ग, अपवर्ग, अर्थ, धर्म, काम, मोक्षका फल गृहस्थाश्रममें अवस्थान करतेही करते प्राप्त होजाय। यह श्रवणकर भगवान् वेदव्यासजी नें चित्तको एकाग्रकर सर्वान्तरयामी भगवान् व्रजविहारीजीका ध्यान किया। ध्यान करतेही उस मोहिनी मूर्त्तिका हृदय में विकाश होगया। विकाश होतेही नारायणजी की समस्त लीला चित्तमें उदय होगई। तदोपरान्त श्रीवेद व्यासजी नें इस पतितपावन ग्रंथको निर्माण किया। यह वह ग्रंथ है कि जिसका श्रवण मनन करनें से पुत्र कामना करनेंवाले को पुत्र प्राप्त होता है, धन चाहने वालेको धन मिलता है, मोक्षार्थी मोक्ष प्राप्त करताहै, विपत्ति ग्रस्तका संकट से उद्धार होजाता है, वेदान्त के तत्व और ज्ञानकांड के रहस्योंका इस ग्रंथमें ऐसा वर्णन है कि ऐसा कहीं भी नहीं है! इसही कारण से प्रत्येक गृहस्थ, प्रत्येक सन्यासी, प्रत्येक भक्तको यह अनमोल रत्न ऐसा प्यारा हुआ कि सहस्रशः प्रतियां हाथों हाथ लिखकरही प्रचारित होतीगईं और इसी कारणसे संसार में सब अन्यपुराणों से अधिक इस ग्रंथका प्रचार है।

जहां कहीं इस ग्रंथमें योगविज्ञान की बातकही है, जहां वेद वेदान्तका वर्णन कियाहै, जहां उद्धवको समझाया है वहां बड़े २ पंडितों की बुद्धिभी चक्कर में उड़जाती है, इसही कारण से श्रीधरस्वामी प्रभृति बड़े२ महात्माओं नें संस्कृत टीका कर २ के इस ग्रंथके पठन पाठन करने वालोंको अत्यन्त सुगम मार्ग दिखा दिया।

इधर जब महामान्य अंग्रेज सरकार का राज्य भारतवर्ष में स्थापित हुआ उसही के साथ साथही कला कौशल और विज्ञान आदि की अभावनीय उन्नति होतीगई। जिस मार्गको मनुष्य वर्षोंमें व्यतीत करते थे वह कई दिनोंमेंही व्यतीत होनेंलगा। उसही समय में मुद्रणकलाका विकाश हुआ यद्यपि अंगरेजों से पहिले भी भारतवर्ष में मुद्रण कलाके प्रचारका कहीं २ उल्लेख पायाजाताहै; परन्तु इतनी उन्नति उससमयमें इस विद्याकी नहीं हुई थी। जोकुछहो, इसही प्रकार से भारत वासियों की दृष्टि ग्रंथ प्रकाश करनें की ओर झुकी। जिस्से स्थान स्थान पर यंत्रालय

स्थापित हुए। आजतक संस्कृत भाषाके जितने ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं उनमें से अधिकांश कलकत्ता और बंबई से प्रकाशितहुए हैं। सुप्रसिद्ध गणपत कृष्णाजी, सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास, सेठ गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, निर्णयसागराधिपति, तथा श्रीधर शिवलाल इत्यादि बंबईके यंत्राधीशों में इसके अतिरिक्त पूना आनंदाश्रम और कलकत्ते के श्रीजीवानंद विद्यासागर बी. ए. इत्यादि महाशयों नें संस्कृत ग्रंथोंका प्रचार करनें में सबसे अधिक भागलिया। उपरोक्त बंबई वालोंके यंत्रालयों में सबसे अधिक यह श्रीमद्भागवतही छापकर प्रकाशित कीगई। परन्तु संस्कृत विद्याके जाननें वाले अब इसपुण्य भूमिमे अधिकाई से नहीं रहे इस कारण सर्वसाधारण सनातन धर्म प्रेमी इस महान् ग्रंथ के गुणों से व स्वाद से और भक्तिरस से अनभिज्ञ थे यही विचारकर यंत्राधीशों ने श्रीमद्भागवत का भाषाटीका बड़े २ पंडितों से कराकर अपने २ कार्यालयों से प्रकाशित किया परंतु अधिकांश भाषानुवाद ऐसे मुद्रितहुए कि जो मूलकी अपेक्षा भी कठिन थे। इसही समयमें श्रीकृष्णदासात्मज गंगाविष्णुखेमराजजीनें पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र मुरादाबाद निवासी से इस ग्रंथ के अनुवाद करने का अनुरोध किया उक्त पंडितजीनें अत्यंत अदध्यवसाय चेष्टा व अनन्त परिश्रम से कुछ दिनो में ही श्रीमद्भागवत की सम्पूर्ण सर्वांग सुन्दर भाषाटीका तइयार करली जो इस समय बड़ी धूमधाम से सर्वत्र फैलरही है और अनेकों पण्डित जिसकी रचनासे मुग्ध होकर मिश्रजीको धन्यवाद करते हैं परंतु यह ग्रंथ भी स्थूलाक्षर होने के कारण अधिक मूल्य होनेसे सर्वसाधारणके उपयोग में नहीं आया और इसके पाठकी सबहीको इच्छा लगीरहती है हमनेयही विचारकर कि श्रीमद्भागवत ग्रंथ भारतवर्ष में घरघर बिराजै इसको भाषानुवाद सहित प्रकाशित कर अतिअल्प मूल्य में भक्तजनों के पास घरबैठे पहुँचानेकी इच्छा की है अधिक क्याकहैं महसूल सहित ३) रुपये में घरबैठे भाषानुवाद सहित श्रीमद्भागवत ग्रंथ पाना क्या अपूर्वबात नहीं है? ऐसा अमूल्य रत्न इतने स्वल्प मूल्यमें कभी किसीको देते सुनाहै? टीका करनेमें भी बड़ी सावधानी की गई है मूलका यथा संभव कोई शब्द नहीं छोड़ा है अनेपेक्षित को लियानहीं केवल इस का यथार्थ अनुवाद करतेहुए यह दिखा दियाहै कि भागवत में यथार्थ क्या लिखा है और इस ग्रंथ का यथार्थ अभिप्राय क्या है?

यद्यपि हमने यह ग्रंथ सर्वसाधारण के उपकार के निमित्तही प्रकाश किया है और सर्वसाधारण का संतोष होनाही इसका उद्देश्य है कारण कि इस से कोई बड़ालाभनहीं है परंतु जिन के स्वभावमें दोषभरेहुए हैं वे छिद्रान्वेषी इसमें छिद्रही टटोलैंगे (जे परदोष लखहिं सहसाखी, पर हित घृत उनके मन माखी) या (परअकाजलगि तनुपरिहरहीं)कारण कि उनके हृदयमें हरि भक्ति वा शास्त्र विचार का तो लेशभी नहीं है पर जैसे स्वच्छ भवनमेंभी वायसादि मलही का खोज किया करते हैं इसीप्रकार छिद्रान्वेषी कलि के प्रभाव से इस आर्ष ग्रंथमें भी छिद्रही देखेंगे यदि कोई सुज्ञ सहृदयसे किसी ग्रंथकी समालोचना करै तो उसपर हमारा वक्तव्य नहीं है कारण कि ऐसा होनेसे ग्रंथकी उत्तमता होजाती है पर अबतो (अफरानो मारनचहत एराकी के लात) निरक्षर भट्टाचार्य भी बिना समझे बड़े लोगों के अनुकरणमें अपनी टांग अड़ाकर उत्तम पुरुषाओं के लेखोंको प्रमाण शून्यबताते हैं ऐसे उदाहरण बहुत हैं एक लिखतेभी हैं भारतमित्र में पटपरसराय निवासी का एक लेख पढ़कर हमको बड़ा आश्चर्य हुआ कि उक्त पुरुषने संस्कृत सोपान के रचयिता और संजीवनीकार के ऊपर बाल्मीकि की कथा और एक चौपाई के अर्थ में सन्देह किया है सन्देहही नहीं २५) रुपये का पुरस्कारभी बोलाहै और कहाहै कि ऐसे लेख और अर्थोंको मतपढ़ो धन्यहै इसलेख से उनकी विज्ञताकी पूरीपरीक्षा होती है। जो व्यक्ति रामायणकी चौपाई तक का अर्थ न करसके और पंडित कहावै, वा जो स्वयं असत्प्रतिग्रह से निर्वाह करताहो वह दाता बने, वा जो हिसाबका

दशमलव भी न समझताहो वह गणितज्ञबने,जिसने कभी माघमाहात्म्यभी न बांचाहो वह पुराणोंका वक्ताबने,तो हास्यको प्राप्तहोगा।भला अल्पज्ञ और अज्ञानी पुराणोंकी कथाको क्या जानसक्ताहै?हम पटपरसराय निवासीजी को सावधान करते हैं कि यदि आप तुलसीकृत रामायणकी चौपाईकाभी अर्थ करजांय तौ हमभी आपकी भेंटपूजा करें और यदि आपपर सत्यही द्रव्य होगयाहै तो चार भद्रपुरुषों के सामने रुपया लेकर बैठिये कि हम आप के लिखे सन्देह दूर करतेजांय और आपका पुरस्कार लेतेजांय बाहरी लेख से क्या होता है? सन्मुख बैठकर बात करनी अच्छी होती है और भी ऐसे उदाहरण बहुत हैं पर वे लिखकर हमको ग्रंथ बढ़ानेकी आवश्यकता नहीं पर इतना कह ते हैं ऐसी दृष्टिसे ग्रंथों का रहस्य प्राप्त नहीं होता न आत्मा को संतोष होता है पर हमारा यह उपदेश ऐसे पुरुषों को भला न लगेगा यही बिचारकर तुलसीदासजी ने ऐसे पुरुषों कोभी प्रणाम किया है हमारे इस अनुवाद में ऐसे पुरुषों को क्या लाभ होगा कुछ नहीं; पर जो भगवद्भक्तहैं उन को अवश्य भगवद्भक्तिरूप चिन्तामणि प्राप्त होगी ।

एक दूसरी भांति के महात्माभी आजकल पंख फटफटाने लगे हैं वह ऐसे हैं कि दूसरों की उन्नति उनसे किसी प्रकार नहीं देखी जासकती । बहुधा देखाजाता है किजहां किसी ने किसी नई वस्तुका आविष्कार किया या कोई नई पुस्तक छपवाई कि चटसे यार लोगों ने भी नकलेंकरनी आरम्भ करदीं । यदि किसी ने कोई औषधि प्रकाशकी तो चट उसकी नकल दूसरी भी बनकर बिकने लगी । कोई २ तो ऐसी तान उड़ाते हैं कि बम्बई की किताब छपीहुई नहीं है तौभी ग्राहकों को ठगने और धोका देने के लिये टाइटिल पेज (ऊपर के पत्रे) पर मोटे अक्षरों में मुम्बई या बम्बई टाइप लिखते हैं कि जिससे ग्राहकों को ज्ञात होजाय कि उनकी पुस्तक भी बम्बई के सेठों से उत्पन्नहुई है, कोई अन्वय न होने परभी पुकारते हैं कि हमारी पुस्तक में अन्वयभी हैं परन्तु जब ग्राहक पुस्तक मँगाकर देखता है तो उसको अन्वयके स्थान में श्लोकों के अंकही केवल दिखाई देते हैं और अन्वय का पताभी नहीं लगता और किसी २ ने तो यहां तक अपना स्वार्थ किया है कि विज्ञापन देकर ग्राहकों से दश २ पांच २ रुपये लेलिये और पुस्तक का एकाधखण्ड छापकर चुपहो बैठे । ऐसेही ऐसे महात्माओं की कृपासे सच्चेव्यौपारियों का भी विश्वास प्रजा के चित्त से उठताजाता है ।

ऐसा होने पर भी आजकल शास्त्रप्रचार की परमावश्यकता देखकर यह विचार कियागया कि बड़े २ ग्रन्थ स्वल्प मूल्यपर ग्राहकों को दिये जांय । अतएव इसही कारणसे सबसे प्रथम यह श्रीमद्भागवतरूपी कल्पवृक्ष पाठकगणों के लाभार्थ प्रकाशित कियागया । क्रमशः और भी बड़े २ ग्रंथ मुद्रित करके अत्यन्त अल्पमूल्य पर प्रकाशित कियेजांयगे ।

जिससमिति नें धर्मप्रचार के हेतु इस श्रीमद्भागवत ग्रंथ को प्रकाशित किया और भविष्यत में नाममात्र मूल्य लेकर शास्त्र ग्रंथों के प्रचार करने का विचार किया है । उसमें निम्न लिखित महाशय सभ्यहुए हैं;——

१ श्रीमान् पण्डित वैद्यनाथजी शास्त्री ।

२ श्रीमान् पण्डित लालमणिजी शास्त्री ।

३ श्रीमान् पण्डित जयन्तीप्रसादजी उपाध्याय ।

४ श्रीमान् पण्डित मदनमोहनजी ज्योतिषी । इत्यादि २

आशा है कि इस समिति के हेतु से समस्त सनातन धर्मावलम्बी सहमत होकर सदा इस की सहायता करते रहेंगे। जिन महाशयों ने प्रथमसेही श्रीमद्भागवत की ग्राहकश्रेणी में नाम लिखाकर उत्साह बढ़ाया है उनको यह समिति बारम्बार धन्यवाद देती है।

यदि कहीं श्रीमद्भागवत के भाषानुवाद में किसी प्रकार का भ्रम या प्रमाद रहगयाहो तो पाठकगण सूचनादें दूसरी बार छपने के समय शुद्ध करदिया जायगा। अलमिति विस्तरेण।

पण्डित जगन्नाथोपाध्यायात्मज कन्हैयालाल तंत्रवैद्य

भागवतप्रकाश कार्यालय.

मुरादाबाद.

महाविद्या.

इस पुस्तक में निम्न लिखित विषय हैं,—

प्रथम प्रकरण.

थिआसोफी क्याहै, थिआसोफीकी ओर उपेक्षाहोनेका कारण; थिआसोफी की सच्चाई और उपयोगीपनका प्रमाण, थिआसोफीकिल सुसाइटीके तीन हेतु। थियासोफी और ईश्वरका अस्तित्व। परब्रह्म और सृष्टिका सम्बन्ध। ईश्वर, मन्वंतर और प्रलय, मांस और शराब आदि वस्तुओंका व्यवहार; शरीरकी पवित्राई, थिआसोफी और विवाह। थिआसोफीका फैलाव होनेकी आवश्यकता, आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुख, समस्तजगतके दुखों से छुटनेका उपाय ॥ प्रकरण—२ ॥ सृष्टिके सात भुवन अथवा तत्व पदार्थोंकी मुख्य सात अवस्था। सात भुवनोंके नाम, स्थूल भुवन और उनके सात विभाग। जिन वस्तुओं का अस्तित्व है उनके न जान पड़ने के आठ कारण, भुवन-अस्तित्व में है ऐसा मानने का कारण, मेस्मिरेजम और प्रेता वाहन; 'प्रीसम' नामके कांचमें से निकलती हुई दुसरी अदृश्य किरणें, चैतन्य और अचेतन पदार्थ; स्वर्ग अथवा बिहिश्त, स्थूल भुवन के सात विभागों का स्पष्टीकरण, कीमियां प्रयोग, सृष्टि में शून्य स्थान है या नहीं? समस्त प्रकरण का कुछेक सार; प्रकरण—३ ॥ मनुष्य का गठन मनुष्य के सात तत्व, तत्वोंकी बनावट में आने वाले पदार्थ; दुसरे वैज्ञानिक प्रमाणोंसे मनुष्यका गठन, नाश वंत शरीर की अवस्था; शरीर में रहे हुए दो प्रकार के जीव; मांस शराब आदि के छो

डूने में कठिनता पड़नेका कारण, सृष्टि में विनाजीव का कोई पदार्थ नहीं है; छाया शरीर, स्थूल और छाया शरीरका सम्बंध, शवके जलानेकी रीति, प्राण तत्व, कामरूप, मनुष्य और जानवरके जीव में अंतर क्या है? भान क्या है? स्वभान क्या है? शरीर में से जीव के बाहर आने के तीन कारण; मरने के पीछे कामरूपकी अवस्था या हालत, निचले और उपरी मनके बीचका अंतर, आशा तृष्णा और इच्छा शक्ति, बलवान और निर्बल, इच्छा शक्तिका लक्षण, काम मन और बुद्धि मनके बीचका सम्बन्ध, चीन वद् पुल, आत्मा बुद्धि, ओरा अथवा; ओरा; या किरण, ॥ प्रकरण——४ ॥ पुनर्जन्म अथवा अवतार ॥ अवतार क्या है? पिछले जन्मकी बातों के न याद रहने का कारण, औरा औरा लड़कों के बीच में अंतरका पड़ना, वंश परंपराके चले आते हुए नियम, जन्मके नियम प्रमाणित करनेवाले चौदहकारण, मा बाप के रोग बच्चों में आजाने का कारण, प्रत्येक मनुष्य का जन्म होते समय नयेर जीव उत्पन्न होते हैं या नहीं? सदैव स्वर्ग या नर्क होसकताहै या नहीं, सातततयों में जन्म लेनेवाले, तत्व, जन्म लेनेकी आवश्यकता, मनुष्यके जीवका जानवरकी देहमें प्रवेशहोताहै या नहीं, मन में रहीहुई आकार उत्पन्न करनेवाली शक्ति, भलेबुरे या सुखी दुःखी माँबाप के यहां जन्म लेनेकी रीति। जन्म मरणके चक्र से बचनेंका उपाय, पुरुष अथवा स्त्रीकी समान होतेहुए जन्म, संसारमें मनुष्यसंख्या घटनें बढ़नें का कारण।

प्रकरण ५—मरण और उसके पीछेकी अवस्था मरण और उससे उत्पन्न होताहुआ शव विना जीव का पदार्थ नहीं है, मरनेंसे पहिले शरीरसे बाहर निकलनें का लाभ शरीर जीव का बंदीखाना है। मरने के समय जीवकी अवस्था मरने के पीछे छाया शरीर की अवस्था, मरने के पीछे प्राणकी अवस्था, कामलोक में जीवकी अवस्था, पापी मनुष्यों के जीव का मरण, पृथक २ भांति के भूत, मरने के पीछे रोने पीटने से हानि, अपघात और अकस्मात् से मरने वालों की अवस्था, जिन्न, परी, राक्षस आदि जीव, शल अथवा विना जीव के खोखले, शेड अथवा मन के साथी भूत, 'अलीमेंटी' क्या है? 'अलीमेंटल, क्या है? 'मिडियम क्या है? अपघात और अकस्मात् से मरने वालों के बीच का अंतर, देवखन अथवा स्वर्ग में होतीहुई जीवकी अवस्था।

प्रकरण—६ कामलोक अथवा असलप्रेन, कामलोकका दृश्य, कामलोक के सात विभाग, आकाशिक चित्र, कामलोक में बसतेहुए जीव, मायावीरूपमें फिरनेवाले महात्मा और उनके चेले, गुरुकी सहायता बिना कामलोकमें आनेवाले मनुष्य, भलीप्रकारसे निद्रामें पड़ जानेके पीछे कामलोकमें आनेवाले साधारण मनुष्य, वाममार्गी जादूगर और उनके चेले, निर्माण काया महात्मा, जन्मके निमित्त तइयार हुए चेले, मरनेके पीछे आनेवाले साधारण मनुष्य, प्रेताबाहनसे होती हुई हानियें, कामरूपके शेड, कामरूपके शल अथवा खोखले॥ अपघात और अकस्मात्से मरण पानेवाले मनुष्य, रुधिर चूसनेवाले मनुष्य, वायुके आकारमें फिरनेवाले भूत, मरनेके पीछे आनेवाले वाममार्गी जादूगर और उनके चेले, प्रकटीकरण होनेका कारण, 'अलीमंटल एसन्स नामकी सूक्ष्म प्रकृति, जानवरों का कामरूप, जिन्न, परी, आदि भूत, मदारीका खेल, गांवके या जंगली देवी देवता; देव अथवा फरिश्ते, कामदेव, रूपदेव और अरूपदेव।

चार महाराजा, विचारसे उत्पन्न होतेहुए मुश्किल, महात्मा, तैसेही वाममार्गियोंसे उत्पन्नहुए देवता, महाकाली, भवानीआदि का प्रभाव, प्रेतावाहनका आरम्भ, मन्दिर और क़बरस्तानमें जानपड़तेहुए भूत , मरनेके समय जाग पड़नेवाले भूत, भूत पिशाचवाले स्थान और घर, कुटुम्बसे सम्बन्धरखनेवाले भूत। घंटा बजाना वा पत्थर फेंकने का बनाव, परियाँ, स्थूल भुवनके साथ सम्बन्ध रखनेवाले भूत, विश्वदृष्टि, देवचक्षु अथवा ,शिवकी तीसरी आंख , ईथरकी लहरें और ईथरका दबाव, लहरियों के सम्बन्धसे उत्पन्न होतेहुए परिणाम॥ मंत्र; वस्तुका परमाणु के रूपसे फैलादेनेका प्रयोग, ईथरको दृढ़ वस्तु के रूप में लानेका प्रयोग, भूतों के चित्र, एकवस्तु के समानही दूसरीवस्तु के बनाने का प्रयोग, सादे काग़ज़ के ऊपर लिखना अथवा चित्र उत्पन्न करनेका प्रयोग। मनुष्य अथवाकिसी वस्तुको हवाके बीचोंबीचमें रखनेका प्रयोग,हवामें प्रकाश बतानेका प्रयोग,हाथमें आग पकड़ने का प्रयोग,कीमियां, रीपर्केशननामकाप्रयोग।

प्रकरण७वां-कर्म,प्रारब्धहै कि नहीं?विचारसे होतेहुएप्रभाव,विचार से उत्पन्न होतेहुए तीन मुख्य परिणाम, मानसिकचित्र,मानसिक एलीमेंटल, आकाशिक चित्र, लीपिकाओं की पुस्तक, विचारोंसे क्या २ होता है उसका आवश्यकीय सार, मानसिक चित्रों के पृथक परिणाम, अन्तःकरण का शब्द, लिपिका और महाराजा, छाया शरीरके गठनपरही प्रारब्ध का आधार है, संचित और प्रारब्ध कर्म, एकही कर्म के पृथक २ फल, मा बाप के बुरे रोग बच्चों में क्यों उतर आते हैं प्रारब्ध कर्म का गठन, क्रीयमाणकर्म, प्रारब्ध और पुरुषार्थ, संचित प्रारब्ध और क्रीयमाण, पुरुषार्थ के काम में लाने की स्वतंत्रता, प्रारब्ध कर्म के तीनभाग, प्रारब्ध में कियेजाते हुए फेर, दुःखी की सहायता करनेसे कर्म में विघ्न नहीं होता,कर्म के नियम और महात्मा,कर्म के चक्करसेछूटनेकामार्ग जीवन मुक्ति,जीवनमुक्ति की अवस्था का स्पष्टीकरण,महात्माऔर उनके चेले॥

प्रकरणआठवां—गुरू के मिलनेका मार्ग, कर्म योग का अर्थ, प्रकृतिके तीन गुण, प्रगटी करण में तमोगुण की आवश्यकता, रजोगुणको वश में रखने की रीति, पांच यज्ञ, शरीर और मनकी पवित्रताई, ब्रह्मचर्य व्रत, तमोगुणी आवेश तमोगुणी प्यार,रजोगुणीप्यार. सतोगुणी प्यार, मुक्ति मिलने और चेले होने का प्रयोग, मन्वन्तर मनुका गठन, गुरू बिना ज्ञान न.प्राप्त होने का कारण,गुप्त ज्ञान और गुप्त शक्तियोंमें भरीहुई हानि, मनको वश में रखनेकी आवश्यकता, मनमें विचारोंके प्रवेश का कारण, मनको वशमें रखनेका उपाय, ध्यान क्या है प्रत्येक दिन ध्यान करने की आवश्यकता, अमुक समय मेंही ध्यान करने की आवश्यकता, भक्तिभावसे होताहुआ ध्यान, मानसिक ध्यान, पवित्रताई, सत्य दया, स्थिरता। सीखेहुए चेले का जीवन, विवेक की आवश्यकता, भला और बुरा वैराग्य, सत् सम्पत्ति, मुक्ति की इच्छा, महात्मा गुरू का मिलाप, सिद्धि, पुस्तक में ३५० पृष्ठ हैं। ऐसी पुस्तक आजतक नहीं छपी। एकबार मँगाकर देखही लीजिये। मूल्य १॥)रु०

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीमद्भागवत भाषाटीका सहित.

* मङ्गलाचरण *

प्रणम्य मूर्द्ध्नाच हरिं हरं गुरुं तथेश्वरीं विघ्नहरं दिवाकरम् ।
विद्वज्जनानामुपकारकारणात्करोमिटीकां सरलां मनोरमाम् ॥ १ ॥
यदत्रकिंचिद् भ्रमतोमया क्वचिद्विलेख्यशुद्धं रचनापदादिकम् ।
तदेवदोषज्ञगण ? क्षमस्वभोः पिताच माता शिशुजल्पितं यथा ॥ २ ॥

युगल चरण कोमल अमल कमल लजावन हार
वार बार वन्दन करत, हरत कलेश विकार १
करों भागवतको तिलक कछु निजमति अनुरूप
सरला नाम अनूपशुभ भाषा भाव सरूप २
जाकी किंचित कृपा तें भक्त लहैं मनकाम
हमकों तुमकों जगतकों देहिं सो प्रभु विशराम ३
जा विधि दोऊ दुहुन सों रहे प्रेम रस पाग
छाइ रह्यो रसिकन हियें तिनहीं को अनुराग ४
तिनकी शुभग शिरोमणी नख शिख सुखमामूल
दीन कन्हैयालाल पें सदा रहो अनुकूल ५

प्रथम स्कन्ध.

जन्माद्यस्ययतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञःस्वराट् तेनेब्रह्महृदायआदिकवये मुह्यन्तियत्सूरयः ॥ तेजोवारिमृदांयथाविनिमयोयत्रत्रिसर्गोऽमृषा धाम्नास्वेनसदा

नाना पुराण और शास्त्रों के करनेसे चित्तमें शांति व प्रसन्नता न हुई तब वेदव्यास जीने नारद जी के उपदेश से मुख्य शास्त्र भागवत का प्रारम्भ किया श्री भागवत का प्रतिपादन करके श्री व्यास जी ईश्वर का स्मरणरूप मंगलाचरण करते हैं ॥

जिस सर्वशक्तिमान परमात्माका भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीनो कालोंमें भी नाशनहीं उस परमेश्वरका हमध्यान करतेहैं। कैसाहै वह कि जैसे सूर्यकी किरणोंमें मृगतृष्णाका जल मालूमहोता है जिसप्रकार स्थिरवारिमें भ्रमसे यहकाचहै ऐसा प्रतीत होता है, औरवह सत्यनहीं, तथापि जल

निरस्तकुहकंसत्यंपरंधीमहि ॥ १ ॥ धर्म्मःप्रोज्झितकैतवोऽत्रपरमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यंवास्तवमत्रवस्तुशिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ॥ श्रीमद्भागवतेमहामुनिकृते किंवापरैरीश्वरः सद्योहृद्यवरुद्ध्यतेऽत्रकृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥ २ ॥ निगम कल्पतरोर्गलितंफलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ॥ पिबतभागवतंरसमालयं मुहुरहो रसिकाभुविभावुकाः ॥ ३ ॥ नैमिशेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयःशौनकाद्यः ॥ सत्रं स्वर्गायलोकाय सहस्रसममासत ॥ ४ ॥ तएकदातुमुनयः प्रातर्हुतहुताग्नयः ॥

की सत्यतासे वह सत्यही जानाजाताहै, जिसप्रकार काचमें भ्रांतिसे यहजलहै ऐसा प्रतीत होताहै, वह सत्यनहीं तथापि काचकी सत्तासे सत्यसा भासताहै, वैसेही आधिष्ठानरूप परमेश्वरमें तमोगुणके कार्य्यरूप पंचमहा भूतोंकी सृष्टि, रजोगुणके कार्य्यरूप इन्द्रियोंकी सृष्टिमें अहंता ममतारूप संसार कल्पितहै और असत्यरूपहै तथापि जिसपरमात्माकी सत्तासे सत्यसा प्रतीतहोताहै ! और जिसपरमेश्वरने अपनेज्ञानरूप प्रकाशसे मायारूप कपटको दूरकरदियाहै, जिससे इससंसारका जन्म और स्थिती नष्टहोतीहै जोकार्य्यरूपमें कारणरूपसे, घड़ेमें मृत्तिकाकी भांति, कुंडलादिकोंमे सुवर्णकीसदृश व्याप्तहै तथा जिसभगवानके अंगसे सम्पूर्ण विश्वादिकके जन्म होतेहैं और जिसकी कृपासे प्राणी मात्र जीते हैं और जो ईश्वर इस सृष्टिमे अलगहै जो ईश्वर ज्ञानरूप तथा स्वयं प्रकाशहै, एवंबड़े बुद्धिमान पुरुषभी जिस वेदका अर्थ जाननेमें चकित होजाते हैं ऐसावेद जिसने आदि कवि ब्रह्माजी के हृदय में अंतर्यामी रूपसे प्रकाशित किया उस परमेश्वर का अंतःकरणसे हम ध्यान करते हैं ॥१॥ इसभांति मङ्गलाचरणकरके श्रोताओंको श्रीमद्भागवतमें प्रवृत्तकरनेके लिये कर्मकांडादिकों के प्रतिपादक संपूर्णशास्त्रोंसे श्रीमद्भागवतकी श्रेष्ठताका निरूपण करते हैं। यह श्रीमद्भागवत पहिले संक्षेपसे श्रीनारायणजीने कही, तदुपरांत श्रीवेदव्यास जीने उसको विस्तारित किया श्रीमद्भागवत में सबजीवों पर अत्यन्त कृपालु और ईर्षारहित सत्पुरुषों का, तथा परमात्मा के आराधन रूप श्रेष्ठ धर्म का निरूपण कियागया है। इस कारण कर्मकांडी शास्त्रों मे श्रीमद्भागवत की श्रेष्ठता है। इस श्रीमद्भागवत मे जीव, माया और संसार यह भेद रहित तीनों वस्तुएं जानने योग्य है -परमार्थ रूप और अतिसुख के देनेवाले ईश्वर के रूपमे पृथक नहीं हैं। ऐसा विना उपायही ज्ञान होजाता है और तीनो ताप दैहिक, दैविक, भौतिक का नाश होता है इस निमित्त ज्ञान काडके शास्त्रों से उत्तमता कही, केवल कर्म्म और उपासना के प्रतिपादक दूसरे शास्त्रों से अथवा उनके साधनों से क्या ईश्वर तत्काल हृदय में प्राप्त होसकता है! नहीं—किंतु इस श्रीमद्भागवत के श्रवण मात्र से श्रीपरमेश्वर तत्काल हृदय मे उत्पन्न होसकते हैं—परन्त विनादान पुण्यके श्रीमद्भागवत का श्रवण करना नहीं बनता इससे देवता कांड विषयक शास्त्रो से श्रेष्ठता कही प्रयोजन यह हुआ कि यह श्रीमद्भागवत सब शास्त्रों (कर्मकांड, ज्ञानकांड, देवकांड) मे श्रेष्ट है इससे यह श्रवण करने योग्य है ॥ २ ॥ कल्पवृक्षरूपी वेदका यह भागवत नामफल वैकुंठसे नारद जीने लाकर मुझको दिया मैने अपने पुत्र शुकदेवजीको दिया शुकदेव जी के मुखमें लगने से यह अमृत की सदृश मीठा होगया—"लोकमें यह बात प्रसिद्ध है कि जिसफलमें तोतेकी चोंच लगती है वह मीठा होता है यहां शुकरूप शुकदेव जी की चोंच लगने से उनके शिष्यरूप पत्तोपर लुढ़कता हुआ क्रमशः पृथ्वीमें उतरा आशय यह है कि इतने ऊंचेसे गिरा परन्तु फूटा नही। यह श्रीमद्भागवत नाम फल अखंड परमानंदरूप रस से भराहुआ है। इस कारण हे रसज्ञ ? हे भावुक पुरुषो ? मोक्ष होनेपर भी इस भागवतरूप रसमय फलका बारंबार पानकरो ॥ ३ ॥ इनतीन श्लोकों से श्रीमद्भागवत की श्रेष्ठता और गौरवता दिखा सब शास्त्र शिरोमणि मंगलाचरण रूप भगवानका स्मरणकर ग्रंथका आरंभ करताहूं। श्रीभगवानके

सत्कृतंसूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥ ५ ॥ ऋषयऊचुः ॥ त्वयाखलुपुराणानि सेतिहासानिचानघ ॥ आख्यातान्यप्यधीतानि धर्मशास्त्राणियान्युत ॥ ६ ॥ यानिवेदविदांश्रेष्ठो भगवान्बादरायणः॥ अन्येचमुनयःसूत परावरविदोविदुः॥ ७॥ वेत्थत्वंसौम्यतत्सर्वं तत्वतस्तदनुग्रहात्॥ ब्रूयुःस्निग्धस्यशिष्यस्य गुरवोगुह्यमप्युत ॥ ८ ॥ तत्रतत्राञ्जसायुष्मन्भवतायद्विनिश्चितम् ॥ पुंसामेकान्ततःश्रेयस्तन्नःशंसितुमर्हसि ॥ ९ ॥ प्रायेणाल्पायुषःसभ्य? कलावस्मिन्युगेजनाः ॥ मन्दाःसुमन्दमतयो मन्दभाग्याह्युपद्रुताः ॥ १० ॥ भूरीणिभूरिकर्माणि श्रोतव्यानिविभागशः ॥ अतःसाधोऽत्रयत्सारं समुद्धृत्यमनीषया ॥ ब्रूहिनःश्रद्दधानानां येनात्मासंप्रसीदति ॥ ११ ॥ सूतजानासिभद्रंते भगवान्सात्वतांपतिः ॥ देवक्यांवसुदेवस्य जातोयस्यचिकीर्षया ॥ १२ ॥ तन्नःशुश्रूषमाणानामर्हस्यङ्गानुवर्णितुम् ॥ यस्यावतारोभूतानां क्षेमायचभवायच ॥ १३ ॥ आपन्नःसंसृतिंघोरां यन्नामविवशोगृणन् ॥ ततःसद्योविमुच्येत यद्बिभेतिस्वयंभयम् ॥ १४ ॥

नैमिषारण्य * क्षेत्रमें श्रीविष्णुजीके यज्ञका गानकरतेहुये शौनकादिक मुनियोंने हजारवर्षके यज्ञका अनुष्ठान करके यज्ञका उद्योग किया ॥ ४ ॥ एकसमय शौनकादिक मुनियों ने प्रातःकालमें अपने नित्य नैमितिक होन से निश्चिन्तहो सूतजी को आया देख उनका सत्कारकर आदर पूर्वक यह पूंछा ॥ ५ ॥ वे शौनकादि ऋषि पूछते हैं कि हे सूत! तुमने पुराण, इतिहासपढ़े और कहे तथा धर्म शास्त्रभी कहे है ॥ ६ ॥ जिन शास्त्रोंको वेद वेताओं में श्रेष्ठ श्री वेदव्यासजी जानते हैं और सम्पूर्ण भूत भविष्य के जाननेवाले मुनीश्वरभी जानते हैं ॥ ७ ॥ हे सौम्य उन सबको तुमभी वेदव्यासकी कृपासे जानते हो और जो कुछ गुप्तभी बात होती है उसको गुरुश्रद्धालु शिष्यसे अवश्य कहदेते हैं ॥८॥ हे आयुष्मन्! सम्पूर्ण ग्रन्थों में सरलरीतिसे जो तुमने निश्चय कियाहै वही सब पुरुषों के हितकारक उपदेशको हमसे कहो ॥९॥ हे साधो! कलियुगमें प्रथम तो मनुष्योंकी आयुही अल्प है, दूसरे आलसी, तीसरे मन्द बुद्धि और मन्दभागी, चौथे विघ्नोंसे व्याकुल, पांचमें रोग ग्रसितहैं १० बहुत से शास्त्र हैं उनके श्रवण करने से उनके फल की सिद्धि नहीं होती और वह बड़े व उनके कर्म भी बड़े हैं और न्यारे २ श्रवण करने योग्य हैं हे साधो! इसीकारण जो शास्त्रों का सार है उसको कहो। हमने श्रद्धा धारण की है इससे हमारी आत्माके शीघ्र ही प्रसन्नार्थ हे सूत! कहो तुम्हारा कल्याण हो ॥ ११ ॥ तुम सब जानते हो—कि वसुदेव की इच्छासे देवताओं के पति श्रीकृष्ण भगवान देवकीके उदरमे किस कार्य के निमित्त जन्म लेतेहुये॥१२॥ हे सूत हमने सुश्रुषा करी है हमारे अर्थ व प्राणियों के कल्याण व पालन के अर्थ श्रीभगवान के अवतार का वर्णन करनेके योग्य हो ॥ १३ ॥ जिसके नामके उच्चारण से संसार का आवागमन शीघ्र ही छूटजाता

* नैमिषारण्य करनेका हेतु वायु पुराण में ऐसा लिखा है कि एक काल बहुत से ऋषियों ने ब्रह्माजी के पास जाकर तपके योग्य उत्तम स्थान पूछा, तब ब्रह्माजी ने कहा कि मैं मनोमय चक्र बना कर छोड़ता हूं जहां इसकी धार कुंठित होकर गिरे वही स्थान तपके योग्य जान लेना यह कह ब्रह्माजी ने उस चक्रको छोड़ा वह सूर्यके सदृश प्रकाशवाला चक्र सम्पूर्ण ब्रह्मांड में फैल गया। वह चक्र जिस स्थान पर गिरा उस का नाम नैमिषारण्य हुआ ॥

वाराह पुराण में लिखा है कि—एक काल भगवान ने गौरवमुख ऋषि से कहा कि हे गौरवमुख! मैने इस वन में एक निमिष मात्र में अनेक बलवान दानवों का संहार कियाथा इस से इसका नाम नैमिषारण्य हुआ यह भूमि ब्राह्मणों के तपके हेतु अत्यंत श्रेष्ठ है ॥

यत्पादसंश्रयाःसूत मुनयःप्रशमायनाः ॥ सद्यःपुनन्त्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोनुसेवया ॥ १५ ॥ कोवाभगवतस्तस्य पुण्यश्लोकेड्यकर्मणः ॥ शुद्धिकामोनशृणुयाद्यशः कलिमलापहम् ॥ १६ ॥ तस्यकर्माण्युदाराणि परिगीतानिसूरिभिः ॥ ब्रूहिनः श्रद्दधानानां लीलयादधतःकलाः ॥ १७ ॥ अथाख्याहिहरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः ॥ लीलाविदधतःस्वैर मीश्वरस्यात्ममायया ॥ १८ ॥ वयंतुनवितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे ॥ यच्छृण्वतांरसज्ञानां स्वादुस्वादुपदेपदे ॥ १९ ॥ कृतवान्किलवीर्याणि सहरामेणकेशवः ॥ अतिमर्त्यानिभगवान्गूढःकपटमानुषः ॥२०॥ कलिमागतमाज्ञायक्षेत्रे ऽस्मिन्वैष्णवेवयम् ॥ आसीनादीर्घसत्रेण कथायांसक्षणा हरेः ॥ २१ ॥ त्वंनःसंदर्शितोधात्रादुस्तरंनिस्तितीर्षताम् ॥ कलिंसत्त्वहरंपुंसां कर्णधारइवार्णवम् ॥ २२ ॥ ब्रूहियोगेश्वरेकृष्णे ब्रह्मण्येधर्मवर्मणि ॥ स्वांकाष्ठा मधुनोपेते धर्मःकंशरणंगतः ॥ २३ ॥ इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे नैमिषेयोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

व्यास उवाच ॥ इति संप्रश्नसंहृष्टो विप्राणांरौमहर्षणिः ॥ प्रतिपूज्यवचस्तेषांप्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ यंप्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ॥ पुत्रेतितन्मयतयातरवोऽभिनेदुस्तंसर्वभूतहृदयं मुनि·

है और भयकोभी भय प्राप्तहोताहै ॥१४॥ हे सूत गंगाका जल तो बहुत समयतक सेवन करनेसे पवित्र करता है, परन्तु जिन के केवल शान्ति आश्रय है ऐसे जिन भगवान के चरण कमलों के आश्रयी भूत मुनीजनहैं वे केवल समीप आनेसेही तत्काल पवित्र करदेते हैं ॥१५॥ उन भगवान की पवित्र स्तुति, व शुद्ध कामना से किये हुए कर्म, जो कलियुग के पाप के नाश करने वाले हैं और जिन का बड़ा भारी यश है, उन को कौन श्रवण न करे ॥ १६ ॥ जिन कृष्ण के बड़े २ उदार कर्म्मों का बड़े २ विवेकी देवताओं ने गान किया है और जिन की कला ब्रह्मा तथा रुद्रादिक ने धारण की है उनकी लीला सुनने की हमारी श्रद्धा है सो हमसे वर्णनकरो ॥ १७ ॥ हे धीमन् ! अपनी आत्म माया करके यथेच्छित लीला, उनके अवतार की शुभ कथा, का वर्णन करो ॥ १८ ॥ अति उत्कंठा युक्त उनके चरित्रों की चाहना करते हुए और उत्तम यशको सुनते हुए भी हम तृप्त न हुए जिसके रसके जाननेवाले को पदर में स्वाद है ॥ १९ ॥ मायासे मनुष्य रूप धारण करनेवाले श्रीकृष्ण भगवानने बलराम जी के साथ मनुष्यों से न करने योग्य ऐसे जो चरित्र किये हैं वे हम से कहो ॥ २० ॥ हम शौनकादिक ऋषि इस विष्णु क्षेत्र (नैमिषारण्य) में कलियुगको आया जानकर दीर्घसत्र युक्त हरी भगवानकी कथा सुननेके लिये बैठे हैं२१जैसे दुस्तर समुद्र को तरना चाहनेवाले पुरुषों को कर्णधार(मल्लाह) मिलजाय वैसे मनुष्योंके सत्वगुणके हरनेवाले दुस्तर कलियुगको पारउतरना चाहतेहुए हमको विधाताने आपकोदिखलाया है ॥ २२ ॥ धर्म के कवचवत् रक्षक ब्रह्मण्य योगेश्वरों के ईश्वर श्री कृष्ण भगवान जब अपने— परमधाम को सिधारे तब धर्म किस की शरण में गया ॥ २३ ॥ इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेप्रथमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायां नैमिषारण्योपाख्यान वर्णनंनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

व्यास जी बोले कि—रोमहर्षण जी के पुत्र सूत जी ने ब्राह्मणों का यह प्रश्न सुन अत्यंत आनंदित हो उनका आदर करके कहा ॥ १ ॥ सूत जी ने कहा कि—अकेले— कृत्य रहित सन्यास के हेतु बनको जाते हुये शुकदेव जी को, विरह से कातर हो व्यास जी ने हे पुत्र ! हे पुत्र ! इस भांति बुलाया तो शुकदेव जी के रूपसे वृक्षोंने उन्हे उत्तर दिया । ऐसे योग बलसे सम्पूर्ण प्राणियों

मानतोऽस्मि ॥ २ ॥ यःस्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेक मध्यात्मदीपमतितितीर्षतांतमोन्धम् ॥ संसारिणांकरुणयाहपुराणगुह्यं तंव्याससूनुमुपयामिगुरुंमुनीनाम् ॥ ३ ॥ नारायणंनमस्कृत्य नरंचैवनरोत्तमम् ॥ देवींसरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ ४ ॥ मुनयःसाधुपृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमङ्गलम् ॥ यत्कृतः कृष्णसंप्रश्नो येनात्मासुप्रसीदति ॥ ५ ॥ सवैपुसांपरोधर्मो यतोभक्तिरधोक्षजे अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ॥ ६ ॥ वासुदेवेभगवति भक्तियोगःप्रयोजितः ॥ जनयत्याशुवैराग्यं ज्ञानंयत्तदहैतुकम् ॥ ७ ॥ धर्मःस्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासुयः ॥ नोत्पादयेद्यदिरतिं श्रमएवहिकेवलम् ॥ ८ ॥ धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ॥ नार्थस्यधर्मैकान्तस्य कामोलाभायहिस्मृतः ॥ ९ ॥ कामस्यनेन्द्रियप्रीतिर्लाभोजीवेतयावता ॥ जीवस्यतत्त्वजिज्ञासा नार्थोय श्चेहकर्मभिः ॥ १० ॥ वदन्तितत्तत्त्वविदस्तत्त्वंयज्ज्ञानमद्वयम् । ब्रह्मेतिपरमात्मेतिभगवानितिशब्द्यते ॥ ११ ॥ तच्छ्रद्दधानामुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया ॥ पश्यन्त्यात्मनिचात्मानं भक्त्याश्रुतगृहीतया ॥ १२ ॥ अतःपुम्भिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः ॥ स्वनुष्ठितस्यधर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ॥ १३ ॥ तस्मादेकेनमनसा भगवान्सात्वतांपतिः ॥ श्रोतव्यःकीर्तितव्यश्च ध्येयःपूज्यश्चनित्यदा ॥ १४ ॥ यदनुध्यासिनायुक्ताः कर्मग्रन्थिनिबन्धनम् ॥ छिन्दन्तिकोविदास्तस्य कोनकुर्या

के हृदय में प्रवेश करने वाले शुकमुनिको मैं नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥ घोर अंधकार से पारहोने वाले संसारी प्राणियों पर कृपा करके जिन्हों ने सम्पूर्ण श्रुतियों का सारभूत, तथा अध्यात्म ज्ञानके प्रकाश करने वाले पुराणों में परमगुप्त, अद्वितीय और अनुपम पुराण कहा—उन—मुनियों के श्रेष्ठ गुरुव्यास जीके पुत्र शुकदेवजी की मैं शरण में आयाहूं ॥ ३ ॥ नारायण, नरों में श्रेष्ठ नर, और सरस्वती जी को नमस्कार करके कथा का प्रारम्भ करता हूं ॥ ४ ॥ हे मुनियों ! आपने सृष्टिका मंगल कारक यह मुझसे श्रीकृष्ण भगवान संबंधी प्रश्न किया कि जिससे आत्माको संतोष प्राप्त होना है ॥ ५ ॥ मनुष्यों का यही मुख्यधर्म है कि जिससे श्रीकृष्ण भगवान में निष्काम तथा विघ्नरहित भक्ति उत्पन्न हो, जिस भक्तिसे आत्माभली प्रकार संतुष्ट होजाता है ॥ ६ ॥ श्रीवासुदेव भगवान की भक्तिसे वैराग्य तथा शुष्क तर्कादिकों के अगोचर ज्ञान तत्काल ही प्राप्त होना है ॥ ७ ॥ यदि मनुष्यों के भली भांति अनुष्ठान किये हुये धर्ममें भक्ति प्राप्त न हो तो उस धर्मको केवल श्रमरूप ही जानना चाहिये ॥ ८ ॥ कोई २ कहते हैं कि धर्म का फल धन तथा धन का फल काम है सो उसको क्यों नहीं सेवते—यह कहना सत्य नहीं है कारण कि मोक्ष सम्बंधी धर्मका फल धन नहीं किंतु मोक्ष ही है तथा धर्मैकांत धनका फल काम नहीं वरन धर्म है ॥ ९ ॥ कामका फल इन्द्रिय प्रीति नहीं वरन जीवन मात्र फल है और जीने का फल कर्म कर द्रव्य उत्पन्न करना नहीं किन्तु तत्व जिज्ञासा ही फल है ॥ १० ॥ तत्व वेत्ता लोग अद्वय ज्ञान को तत्व कहते हैं कि जो ब्रह्म, परमेश्वर, भगवान, परमात्मा, ऐसे शब्दोंमें कहा जाता है ॥ ११ ॥ उस परब्रह्मरूप तत्व को वेदांतादि श्रवण से उत्पन्न ज्ञान, तथा वैराग्य युक्त भक्तिसे सावधान होकर मुनिलोग आत्मा में साक्षात् देखते हैं ॥ १२ ॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! इसी कारण से मनुष्यों के वर्ण तथा आश्रमके पृथक् २ आचरण किये हुये धर्मका फल यही है कि श्रीपरमेश्वर प्रसन्न होजावें ॥ १३ ॥ इसी हेतु एकाग्र चित्त हो श्री परब्रह्म परमात्मा का श्रवण, कीर्तन, पूजन तथा मनन सदैव ही करना चाहिये ॥ १४ ॥ जिन परमेश्वर का ध्यान रूप खड्ग कर्म ग्रंथि काटने के योग्य है

त्कथारतिम् ॥ १५ ॥ शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः ॥ स्यान्महत्सेव-
याविप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् ॥ १६ ॥शृण्वतांस्वकथांकृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः।
हृद्यन्तःस्थोह्यभद्राणि विधुनोतिसुहृत्सताम् ॥ १७ ॥ नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यंभाग
वतसेवया ॥ भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवतिनैष्ठिकी ॥ १८ ॥ तदारजस्तमोभा
वाः कामलोभादयश्चये ॥ चेतएतैरनाविद्धं स्थितंसत्त्वेप्रसीदति ॥ १९ ॥ एवं
प्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः ॥ भगवत्तत्त्वविज्ञानं मुक्तसंगस्यजायते ॥ २० ॥
भिद्यतेहृदयग्रन्थिश्छिद्यन्तेसर्वसंशयाः ॥ क्षीयन्तेचास्यकर्माणिदृष्टएवात्मनीश्व-
रे ॥ २१ ॥ अतोवैकवयोनित्यं भक्तिंपरमयामुदा ॥ वासुदेवेभगवतिकुर्वन्त्यात्म
प्रसादनीम् ॥ २२ ॥ सत्त्वंरजस्तमइतिप्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्तःपरःपुरुषएकइहास्य
धत्ते ॥ स्थित्यादयेहरिविरिंचिहरेतिसंज्ञाः श्रेयांसितत्रखलुसत्वतनोर्नृणांस्युः २३
पार्थिवाद्दारुणोधूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः ॥ तमसस्तुरजस्तस्मात्सत्त्वंयद्ब्रह्मदर्श-
नम् ॥ २४ ॥ भेजिरेमुनयोऽथाग्रे भगवन्तमधोक्षजम् ॥ सत्त्वंविशुद्धंक्षेमाय क-
ल्पन्तेयेऽनुतानिह ॥२५॥ मुमुक्षवोघोररूपान्हित्वाभूतपतीनथ ॥ नारायणकलाः
शान्ताभजन्तिह्यनसूयवः ॥ २६ ॥ रजस्तमःप्रकृतयःसमशीलाभजन्तिवै ॥ पितृ
भूतप्रजेशादीन्श्रियैश्वर्यप्रजेप्सवः ॥ २७ ॥ वासुदेवपरावेदावासुदेवपरामखाः ।

उन परमेश्वर का ध्यान तथा उन के चरित्रों में कौन पंडित प्रीति न करे ॥ १५ ॥ हे द्विजो ! पवित्र तीर्थों के सेवनसे मनुष्य निष्पाप होताहै तथा निष्पाप होने से सत्पुरुषों की सेवा बनती है उससे धर्म में श्रद्धाहोतीहै तथा उसके प्रभावसे श्रवणकी कांक्षा उत्पन्न होवे और श्रवण करनेवाले का श्र भगवानके चरित्रोंमें स्नेह होताहै ॥१६॥ श्रीकृष्णजीकी जो पुण्य पवित्र कथाहै उसका जो श्रवण व कीर्तनकरताहै उसके हृदयमे जोअकल्याण व कामादिककी वासनाहै उनकानाश श्रीकृष्ण जी करते हैं ॥१७॥ जब भगवनके भक्तोंकी सेवा करके तथा भागवत शास्त्रके श्रवणसे अकल्याण नाशको प्राप्त होजाय और भगवद्भक्तोंकी सेवा और भागवतके उत्तमश्लोकोंमें नैष्ठिकी भक्ति उत्पन्न हो ॥१८॥ तो उससमय रजोगुण और तमोगुणके भाव व काम क्रोध लोभ मोहसे जो विधाहुआ चितहै वह सतोगुणमें स्थिरहोकर प्रसन्न होताहै ॥१९॥इसप्रकार भगवानके भक्ति योग से जिस का मन प्रसन्न होजाता है उसको भगवानके तत्वों का ज्ञान होजाता है ॥ २० ॥ जब प्राणी को विशेष ज्ञान प्राप्त होता है तो अहंकार रूप से छिदी हुई हृदय की गांठि और सम्पूर्ण प्रकार के संशय निवृत होजाते हैं और सर्व कर्म व पाप क्षीणता को प्राप्त होजाते हैं ॥ २१ ॥ इसी कारण से बुद्धि मान लोग बड़े हर्ष युक्त श्रीभगवान की आत्माको प्रसन्न करनेवाली भक्ति को करते हैं ॥ २२ ॥ सत, रज, तम यह तीन माया के गुण हैं–उन गुणों से युक्त होकर परम पुरुष परमेश्वर इससंसारकी उत्पति, स्थिति, प्रलयके निमित्त, हरि, ब्रह्मा, हरनाम धारण करते हैं–उनमें कल्याण तो निश्चय करके सत्वमूर्ति श्रीकृष्ण जी सेही प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ पृथ्वी का विकार जो काष्ठ है तिस से धुंआ होता है– ऐसे ही वेदत्रयी मय जो अग्नि है उस अग्नि से तमोगुण रूप हुआ उस तमोगुण से रजोगुण और रजोगुण से सतोगुण हुआ वह सतोगुण साक्षात परब्रह्म का दर्शन है ॥ २४ ॥ इसलिये ही मुनिलोगोने अधोक्षज सतरूप भगवान काही भजन प्रथम कीर्तन किया है और उन्हीं से उनको कल्याण प्राप्त हुआ ॥ २५ ॥ चेष्टा युक्त मुमुक्षु लोगतो घोररूप भूत पतियों (भैरवादिक) को छोड़कर शांतस्वरूप परमेश्वर की कलाओंका भजन करते हैं ॥ २६ ॥ रजोगुणी और तमोगुणी प्रकृतिवाले पुरुष ऐश्वर्य्य और पुत्रादिकों की चाहना

वासुदेवपरायोगावासुदेवपराःक्रियाः ॥ २८ ॥ वासुदेवपरंज्ञानंवासुदेवपरंतपः॥ वासुदेवपरोधर्मो वासुदेवपरागतिः ॥ २९ ॥ सएवेदंससर्जाग्रेभगवानात्ममायया। सदसद्रूपयाचासौगुणमय्याऽगुणोविभुः ॥ ३० ॥ तयाविलसितेष्वेषुगुणेषुगुणवानिव ॥ अन्तःप्रविष्टआभाति विज्ञानेनविजृम्भितः ॥ ३१ ॥ यथाह्यवहितोवह्निर्दारुष्वेकःस्वयोनिषु ॥ नानेवभातिविश्वात्माभूतेषुचतथापुमान् ॥ ३२ ॥ असौगुणमयैर्भावैर्भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मभिः ॥ स्वनिर्मितेषुनिर्विष्टोभुंक्तेभूतेषुतद्गुणान् ॥ ३३ ॥ भावयत्येषसत्त्वेनलोकान्वैलोकभावनः ॥ लीलावतारानुरतोदेवतिर्यङ्नरादिषु ॥ ३४ ॥ इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेप्रथमस्कन्धेद्वितीयोऽध्यायः२

सूतउवाच ॥ जगृहेपौरुषंरूपंभगवान्महदादिभिः ॥ संभूतंषोडशकलमादौलोकसिसृक्षया ॥ १ ॥ यस्याम्भसिशयानस्ययोगनिद्रांवितन्वतः ॥ नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्माविश्वसृजांपतिः ॥ २ ॥ यस्यावयवसंस्थानैःकल्पितोलोकविस्तरः ॥ तद्वैभगवतोरूपंविशुद्धंसत्त्वमूर्जितम् ॥ ३ ॥ पश्यन्त्यदोरूपमदभ्रचक्षुषासहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ॥ सहस्रमूर्द्धश्रवणाक्षिनासिकंसहस्रमौल्यम्बरकुण्डलोल्लसत् ॥ ४ ॥ एतन्नानावताराणांनिधानंबीजमव्ययम् ॥ यस्यांशांशेनसृज्यन्तेदेवतिर्यङ्नरादयः ॥ ५ ॥ सएवप्रथमंदेवःकौमारंसर्गमास्थितः ॥

से पितृभूत प्रजेश आदि का भजन करते हैं ॥ २७ ॥ परन्तु मोक्षके दाता श्रीवासुदेव भगवान ही है वही भजन करने योग्य है ऐसा सब शास्त्रों का तात्पर्य्य है—देखो वेद वासुदेव के परायण हैं वासुदेव ही परायण योग, यज्ञ और समस्त क्रिया हैं इससे जो कुछकरे सब भगवान कोही अर्पण करे ॥ २८ ॥ वासुदेव परायणही ज्ञान तप, धर्म, और गतिहैं ॥२९॥ उन्हीं निर्गुण भगवानने कार्य कारण रूप अपनी गुणमयी माया से इस सृष्टिको उत्पन्न किया ॥ ३० ॥ उस माया में प्रकाशित गुणोंके भीतर प्रविष्टहुए भगवान मानो गुणवालेहैं ऐसाज्ञान होताहै पर वास्तवमें नहीं क्योंकि वह चैतन्यशक्तिसे बहुत बढ़ेहुए हैं ॥ ३१ ॥ जैसे अपने कारणभूत काष्ठमें रहाहुआ अग्नि एक रहते भी अनेक रूपसे ज्ञात होता है ऐसे ही विश्वात्मा भगवान हरि भी सब जीवों में नाना रूपसे प्रकाश करतेहैं ॥ ३२ ॥ यह ईश्वर गुणमय अपने भावोंसे अपने रचेहुए भूतोंमें प्रवेश करके विषय, इन्द्रियों और मनद्वारा भोग करते हैं ॥ ३३ ॥ लोकभावन श्रीभगवान सतोगुण से देव, पशु, पक्षी, मनुष्यादिकों में लीला से अवतार धारणकर लोकोंका पालन पोषण करते हैं ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवतेमहापुराणे प्रथमस्कंधे सरलाभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सूतजी शौनकादिक ऋषियों से बोले कि श्री भगवान ने सृष्टि रचने की इच्छासे महत्तत्व व अहंकार और पंचतन्मात्रा से युक्त १६ कला वाला मनुष्य रूप धारण किया ॥ १ ॥ जल में शयन करते हुए और अपनी योग निद्रा को विस्तार करते हुए भगवान के नाभि रूप सरोवर से कमल उत्पन्न हुआ उस कमल से विश्वको रचनें वाले—ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ उनका रूप कैसा है—कि जिस के अंगों से लोकों का विस्तार कल्पना किया गया है । वह भगवान का रूप विशुद्ध व सतोगुणी है ॥ ३ ॥ योगीराजइस स्वरूप कोज्ञानरूप नेत्रो से हजारों पांव व जंघा, भुजा, मुख और मस्तक का देखते हैं तथा हजारों ही जिस के नाक, कान, आंखहैं और हजारों मुकट व कुंडल से शोभायमान हैं ॥ ४ ॥ यह अवतार नाना प्रकार के अवतारों का कारण है इसी के अंश से देवता, जीव, जन्तु, पशु, मनुष्यादि उत्पन्न होते हैं ॥ ५ ॥ उन्हीं भगवान ने

चचारदुश्चरंब्रह्माब्रह्मचर्यमखण्डितम् ॥ ६ ॥ द्वितीयंतुभवायास्यरसातलगतां महीम् ॥ उद्धरिष्यन्नुपादत्तयज्ञेशःसौकरंवपुः ॥ ७ ॥ तृतीयमृषिसर्गंवैदेवर्षित्व मुपेत्यसः ॥ तन्त्रंसात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यंकर्मणांयतः ॥ ८ ॥ तुर्येधर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी ॥ भूत्वात्मोपशमोपेत मकरोद्दुश्चरंतपः ॥ ९ ॥ पञ्चमःकपिलो नाम सिद्धेशःकालविप्लुतम् ॥ प्रोवाचासुरयेसांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥ १० ॥ षष्ठमत्रेरपत्यत्वं वृतःप्राप्तोऽनसूयया ॥ आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्यऊचि- वान् ॥ ११ ॥ ततःसप्तमआकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत ॥ सयामाद्यैः सुरगणैर पात्स्वायंभुवान्तरम् ॥ १२ ॥ अष्टमेमेरुदेव्यांतु नाभेर्जातउरुक्रमः ॥ दर्शयन्वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥ १३ ॥ ऋषिभिर्याचितोभेजे नवमंपार्थिवंवपुः ॥ दुग्धेमामौषधीर्विप्रास्तेनायं स उशत्तमः ॥ १४ ॥ रूपंसजगृहेमात्स्यं चाक्षुषो दधिसंप्लवे ॥ नाव्यारोप्यमहीमय्यामपाद्वैवस्वतंमनुम् ॥ १५ ॥ सुरासुराणामुदधिं मथ्नतांमन्दराचलम् ॥ दध्रेकमठरूपेण पृष्ठएकादशोविभुः ॥ १६ ॥ धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेवच ॥ अपाययत्सुरानन्यान्मोहिन्यामोहयन्स्त्रिया ॥ १७ ॥ चतुर्दशंनारसिंहं बिभ्रद्दैत्येन्द्रमूर्जितम् ॥ ददारकरजैर्वक्षस्येरकां कटकृद्यथा ॥ १८ ॥ पंचदशंवामनकं कृत्वाऽगादध्वरंबलेः ॥ पदत्रयंयाचमानः प्रत्यादित्सु

पहिले कौमार नाम सर्ग धारणकरके फिर सनत्कुमाररूप धारण किया वह ब्राह्मणरूपहो ब्रह्मचर्य्य तप करते हुए ॥ ६ ॥ फिर दूसरे अवतार में विश्व के पालन के अर्थ रसातल में गई हुई पृथ्वी को उद्धार करने के हेतु बराहरूप धारण किया, ॥ ७ ॥ तीसरे अवतार में देवर्षि नारद रूपहो कर्मों का काटने वाला नारद पंचरात्री तंत्र प्रगट किया ॥ ८ ॥ चौथे अवतार में धर्म की स्त्री कला के गर्भ से नर नारायण नाम से ऋषि रूप धर चित्त को शांति करने वाला कठिन तप किया ॥ ९ ॥ पांच में अवतार में कपिल नाम सिद्धेश हो काल के ऐश्वर्य्य से नष्ट हुए तत्व समूहों का निर्णय कर देवताओं को सांख्य शास्त्र का उपदेश किया ॥ १० ॥ छठा दत्तात्रेय अवतार ले अत्री मुनि के पुत्र हुए और अनसूया को प्रसन्न किया और राजा अलर्क तथा प्रह्लादादि भक्तों को आत्म विद्या का उपदेश दिया ॥ ११ ॥ सातमें अवतार में रुचि की आकूति नाम स्त्री के सकास से यज्ञरूप धारण करके अपने पुत्र यमादिक सुर गणों को साथ ले स्वायंभू मनु की रक्षाकी ॥ १२ ॥ आठमें अवतार में नाभिराजा की मेरूनाम देवी रानी के पेट से ऋषभ देव अवतार लेकर धीरवान पुरुषों को सम्पूर्ण आश्रमों के बंदनीय परमहंस आश्रम को दिखाया ॥ १३ ॥ ऋषियों की याचना से नौमां पृथु का अवतार हुआ हे विप्र ! यह औषधियों का दुहन करते हुए इससे यह अवतार अति उत्तम कहा गया है ॥ १४ ॥ चाक्षुष मन्वन्तर में समुद्र बढ़े (अर्थात् प्रलय हुई) उस समय मत्स्य अवतार धारण कर पृथ्वी रूपी नावपर वैवस्वत मनुकी रक्षा की ॥ १५ ॥ ग्यारह में अवतार में सुर और असुर समुद्र को मथने लगे तब कच्छप रूप धारण कर मंद्राचल को पीठ पर धारण किया ॥ १६ ॥ वारह वाँ धन्वन्तरि अवतार धारण करके अमृत ले आये । तेरह माँ मोहनी अवतार धारण करके असुरों को मोहित कर देवताओं को अमृत पिलाया ॥ १७ ॥ चौदहमां नृसिंह रूप धारण कर बढ़ेहुए दैत्येन्द्र हिरण्यकश्यप के उदर को अपने नखों से, चटाई बनाने वाले की समान जैसे वह तृण को चीर डालताहै फाड़ डाला ॥ १८ ॥ पन्द्रहमें अवतार में वामन रूप धारण करके तीनों लोक लेने के प्रयोजन से

त्रिविष्टपम् ॥ १९ ॥ अवतारेषोडशमे पश्यन्ब्रह्मद्रुहोनृपान् ॥ त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥ २० ॥ ततःसप्तदशेजातः सत्यवत्यांपराशरात् चक्रेवेदतरोःशाखा दृष्ट्वापुंसोऽल्पमेधसः ॥ २१ ॥ नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्य चिकीर्षया ॥ समुद्रनिग्रहादीनि चक्रेवीर्याण्यतःपरम् ॥ २२॥ एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषुप्राप्यजन्मनी ॥ रामकृष्णावितिभुवो भगवानहरद्भरम् ॥ २३ ॥ ततःकलौसंप्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषाम् ॥ बुद्धोनाम्नाजिनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥ २४ ॥ अथासौयुगसंध्यायां दस्युप्रायेषुराजसु ॥ जनिताविष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ॥ २५ ॥ अवताराह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः ॥ यथाऽविदासिनःकुल्याः सरसःस्युःसहस्रशः ॥ २६ ॥ ऋषयोमनवोदेवा मनुपुत्रामहौजसः ॥ कलाःसर्वेहरेरेव सप्रजापतयस्तथा ॥ २७ ॥ एतेचांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम् ॥ इन्द्रारिव्याकुलंलोकं मृडयन्तियुगेयुगे ॥ २८ ॥ जन्मगुह्यंभगवतो य एतत्प्रयतोनरः ॥ सायंप्रातर्गृणन्भक्त्या दुःखग्रामाद्विमुच्यते ॥ २९ ॥ एतद्रूपंभगवतो ह्यरूपस्यचिदात्मनः ॥ मायागुणैर्विरचितं महदादिभिरात्मनि ॥ ३० ॥ यथानभसिमेघौघो रेणुर्वापार्थिवोऽनिले ॥ एवंद्रष्टरिदृश्यत्व मारोपितमबुद्धिभिः ॥ ३१ ॥ अतःपरंयदव्यक्तमव्यूढगुणव्यूहितम् ॥ अदृष्टा

बलि के यज्ञ में जाकर तीन पग पृथ्वी मांगकर इन्द्रको स्वर्ग का राज्य दिया और बलिको पाताल का ॥ १९ ॥ सोलहवें अवतार में परशुराम अवतार धारण कर ब्रह्म द्रोही राजाओं को देख कुपित हो (२१) वेर पृथ्वी को क्षत्री रहित किया ॥ २० ॥ सत्रहवें अवतार में सत्यवती के उदर से व्यास रूप प्रगट हो मनुष्यों को अल्पज्ञानी देख कर वेदरूपी वृक्ष की शाखाओं को विभक्त किया ॥ २१ ॥ अठारहवें अवतार में देवताओं के कार्य्य करनें की इच्छा से रामचन्द्र हो समुद्र का सेतु बांधा और बड़े २ पराक्रम किये ॥ २२ ॥ उन्नीसवें और बीसवें अवतार में यादवों में राम कृष्ण नाम से अवतार ले पृथ्वी का भार उतारा ॥ २३ ॥ इक्कीस वें अवतार में कलियुग के प्रवृत्त होते ही देवताओं के द्वेषियों के मोह के हेतु गया प्रदेश में जिन का पुत्रबुद्ध नाम अवतार होगा ॥ २४ ॥ बाईसवां अवतार कलियुग के अंत में जब राजा चांडाल रूपहोंगे तब विष्णुयश नाम ब्राह्मणके घर कल्कि अवतार होगा ॥ २५ ॥ हे शौनक सतोगुण के निधि श्री भगवान के असंख्यों अवतार हैं जैसे गम्भीर सरोवर से सहस्रों क्षुद्र झरने निकलते हैं ऐसे ही भगवान के सहस्रों अवतार होतेहैं ॥ २६ ॥ ऋषि, मनु, मनुके पुत्र, बड़े प्रभावी व पराक्रमी प्रजापति यह सम्पूर्ण भगवत कला हैं ॥ २७ ॥ यह पूर्वोक्त अवतार तो श्री भगवान की कला हैं परन्तु श्रीकृष्ण भगवान तो षोड़श कला युक्त हैं और यह सब अवतार दैत्यों से व्याकुल मनुष्यों को युगान युग प्रसन्न करते हैं ॥ २८ ॥ जो मनुष्य भगवान के गुह्य जन्म को सायं काल व प्रातः काल में भक्ति पूर्वक पढ़ेगा वह दुःखों से छूटजायगा ॥ २९ ॥ रूप रहित और एक चैतन्य स्वरूप जीव का यह शरीर परमात्मा की प्रकृति के महत्तत्व आदि गुणोंसे आत्माके विषे कल्पितहै अर्थात् यह शरीर ही आत्मा है ऐसा कहा है ॥ ३० ॥ जैसे अज्ञानी लोग आकाश में नीले पीले बादल का आरोप करते हैं और वायु में पृथ्वी के विकार (रेणुका) का आरोपण करते हैं वैसे ही देहादिक का द्रष्टा जो आत्मा उसमें के दृश्य धर्म वाले देहादिक का आरोपण किया करते हैं ॥ ३१ ॥ जैसे मोटा शरीर आत्मा में आरोपित है उसी भांति इस बड़े शरीर से भिन्न जो सूक्ष्म शरीर है वह भी आत्मा से आरोपित है उस सूक्ष्म शरीर में स्थूल

श्रुतवस्तुत्वात्सजीवोयत्पुनर्भवः ॥ ३२ ॥ यत्रेमेसदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा ॥ अविद्ययात्मनिकृते इतितद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ ३३ ॥ यद्येषोपरतादेवी मायावैशारदी मतिः ॥ संपन्नएवेति विदुर्महिम्निस्वेमहीयते ॥ ३४ ॥ एवंजन्मानिकर्माणि ह्यकर्तुरजनस्यच ॥ वर्णयन्तिस्मकवयो वेदगुह्यानिहृत्पतेः ॥ ३५ ॥ सवाइदंविश्व ममोघलीलः सृजत्यवत्यत्तिनसज्जतेऽस्मिन् ॥ भूतेषुचान्तर्हितआत्मतन्त्रःषाड्वर्गिकंजिघ्रति षड्गुणेशः ॥ ३६ ॥ नचास्यकश्चिन्निपुणेनधातुरवैतिजन्तुःकुमनीषऊतीः ॥ नामानिरूपाणिमनोवचोभिः संतन्वतोनटचर्यामिवाज्ञः ॥ ३७ ॥ स वेदधातुःपदवींपरस्यदुरन्तवीर्यस्यरथांगपाणेः ॥ योऽमाययासंततयाऽनुवृत्त्या भजेततत्पादसरोजगन्धम् ॥ ३८ ॥ अथेहधन्याभगवन्तइत्थंयद्वासुदेवेऽखिल लोकनाथे ॥ कुर्वन्तिसर्वात्मकमात्मभावंनयत्रभूयःपरिवर्तउग्रः ॥ ३९ ॥ इदं भागवतंनामपुराणंब्रह्मसंमितम् ॥ उत्तमश्लोकचरितंचकारभगवानृषिः ॥ ४० ॥ निःश्रेयसायलोकस्यधन्यंस्वस्त्ययनंमहत् ॥ तदिदंग्राहयामाससुतमात्मवतांवरम् ॥ ४१ ॥ सर्ववेदेतिहासानांसारंसारंसमुद्धृतम् ॥ सतुसंश्रावयामासमहाराजं परीक्षितम् ॥ ४२ ॥ प्रायोपविष्टंगंगायांपरीतंपरमर्षिभिः ॥ कृष्णेस्वधामोपगतेधर्मज्ञानादिभिःसह ॥ ४३ ॥ कलौनष्टदृशामेषपुराणार्कोऽधुनोदितः ॥ तत्र

शरीर की भांति हाथ पैर आदि नहीं हैं और न वह दृष्टिमें आता है न सुनने में किंतु वह सूक्ष्म शरीर आत्मा का उपाधि होने से जीवकहलाता है कि जिस लिंग शरीर से जन्म मरण आदि होते हैं ॥ ३२ ॥ यह वर्णन कियेहुए दोनो स्थूल व सूक्ष्म शरीर अज्ञानतासे आत्मा में कल्पित हैं जब यह अपने आत्मा के यथार्थ ज्ञान से दूर होजाते हैं, तब जीव ज्ञानैक स्वरूप ब्रह्मरूप होजाता है ३३ यह माया जो विशारदी बुद्धिहै जब ब्रह्मविद्याके प्रभावसे निवृत्तहोजाती है तब जीव ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त हो जाता है और अति आनन्दयुक्त अपनी महिमा में विराजताहै ऐसा तत्त्व ज्ञानी लोग कहते हैं ॥ ३४ ॥ ऐसे अकर्ता, अजन्मा जो वेद में गुह्य हैं उन अतर्यामी का वर्णन विवेकीपुरुष करते हैं ॥ ३५ ॥ अमोघ लीला वाले श्रीभगवान इस विश्वको सृजते, पालन करते और संहारते हैं किन्तु उसमें लिप्त नहीं होते आप स्वतंत्र और छः हों गुणोंके प्रेरक वे परमात्मा सब प्राणियों में प्रवेश करके अंतर्हित हो छः ही विषयों को दूरहीसे गंधकी समान ग्रहण करते हैं परन्तु आसक्त नहीं होते ॥ ३६ ॥ जैसे मूर्ख मनुष्य नटके इन्द्र जालको नहीं जानता वैसे ही भगवान की लीला को कुबुद्धि पुरुष चाहें कैसा ही न्याय में निपुण क्यों न हो नहीं जानसकता ॥ ३७ ॥ हे महाराज जो मनुष्य अतिपराक्रमी, चक्रधर, परब्रह्म रूप भगवान के चरण कमल की सुगंधिको कुटिल भाव तजकर सेवन करता है वह उसके पदको प्राप्तहोता है ॥ ३८ ॥ इस लोकमें वह प्राणी धन्य हैं जो सर्व सृष्टिके नाथ श्रीवासुदेव भगवान में एकांत भावसे चित्तकी वृत्तिको लगारहे हैं इससेइस महाभयंकर जन्म मरण का भ्रमण निवृत्त होता है ॥ ३९ ॥ श्रेष्ठश्लोक तथा भगवान की लीला वर्णन वाला सर्व वेद की समान यह श्रीमद्भागवत महापुराण भगवान वेद व्यास ऋषिने बनाया ॥ ४० ॥ और इस पुराणको लोकों के कल्याण के लिये प्राणियों में श्रेष्ठ अपने पुत्र शुकदेव जी को सर्व वेद व इतिहास का सार २ लेकर पढ़ाया ॥ ४१ ॥ फिर उन शुकदेव जी ने महाराज परीक्षित को कि जिनकी मृत्यु निकटआई है और गंगाजीके किनारे बैठेहुए तथापरम ऋषियों युक्तको सुनाया ॥ ४२ ॥ हेमुनि वहां गंगाके तटपर भागवत की कथा, अति तेजस्वी श्रीशुकदेव जी की कृपासे मैंने भी सुनी उसीको मैं अपनी बुद्धि अनुसार आपको श्रवण कराऊंगा ॥ ४३ ॥ श्रीकृष्ण भगवान के बैकुंठ

कीर्तयतोविप्राविप्रर्षेर्भूरितेजसः ॥ ४४ ॥ अहंचाध्यगमंतत्रनिविष्टस्तदनुग्रहात् ॥ सोऽहंवःश्रावयिष्यामियथाऽधीतंयथामति ॥ ४५ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेप्रथमस्कन्धेतृतीयोध्यायः ॥ ३ ॥

व्यास उवाच ॥ इतिब्रुवाणंसंस्तूय मुनीनांदीर्घसत्रिणाम् ॥ वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचःशौनकोऽब्रवीत् ॥ १ ॥ शौनकउवाच ॥ सूतसूतमहाभाग वदनो वदतांवर ॥ कथां भागवतींपुण्यां यदाहभगवान् शुकः ॥ २ ॥ कस्मिन्युगेप्रवृत्तेयं स्थाने वांकेनहेतुना ॥ कुतःसंचोदितःकृष्णः कृतवान्संहितांमुनिः ॥ ३ ॥ तस्य पुत्रोमहायोगी समदृङ्निर्विकल्पकः ॥ एकान्तमतिरुन्निद्रोगूढोमूढइवेयते ॥ ४ ॥ दृष्ट्वाऽनुयान्तमृषिमात्मजमप्यनग्नं देव्योह्रियापरिदधुर्नसुतस्यचित्रम् ॥ तद्वीक्ष्य पृच्छतिमुनौजगदुस्तवास्ति स्त्रीपुम्भिदानतुसुतस्यविविक्तदृष्टेः ॥ ५ ॥ कथमालक्षितःपौरैः संप्राप्तःकुरुजांगलान् ॥ उन्मत्तमूकजडवद्विचरन्गजसाह्वये ॥ ६ ॥ कथंवापाण्डवेयस्य राजर्षेर्मुनिनासह ॥ संवादःसमभूत्तात यत्रैषा सात्वतीश्रुतिः ॥ ७ ॥ सगोदोहनमात्रंहि गृहेषुगृहमेधिनाम् ॥ अवेक्षतेमहाभागस्तीर्थीकुर्वंस्तदाश्रमम् ॥ ८ ॥ अभिमन्युसुतंसूत प्राहुर्भागवतोत्तमम ॥ तस्य जन्ममहाश्चर्यं कर्माणिचगृणीहिनः ॥ ९ ॥ सम्राट्कस्यवाहेतोः पाण्डूनांमानवर्द्धनः ॥ प्रायोपविष्टोगङ्गायामनादृत्याधिराट्श्रियम् ॥ १० ॥ नमन्तियत्पादनि-

पधारने पर धर्म और ज्ञानादिकों के साथ कलियुग मे नष्ट दृष्टि पुरुषो के हेतु यह पुराणरूप सूर्य्य अभी उदय हुआ है॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे सरला भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

व्यासजी बोले कि—बड़ा यज्ञ करने वाले मुनि लोगो मे सब से बड़े ऋग्वेदी शौनकने इस भांति कहते हुए सूतजी की बंदना करके यह बचन कहा ॥ १ ॥ हे सूत ! हे महाभाग ! हे बक्ताओं में श्रेष्ठ ! जो भगवान की पवित्र कथा श्रीशुकदेवजी ने कही है वह हम से कहो ॥२ कौन से युग व कौन से स्थान मे किस के हेतु यह संहिता प्रवृत्त हुई इसके बननेका क्या कारण है और श्री वेदव्यासजी ने किस की प्रेरणा से यह संहिता बनाई ॥ ३ ॥ उन व्यासजी के पुत्र महायोगी, समदृष्टि, निर्विकल्प, एकांत बुद्धि मायारूप शयन से जागते थे किन्तु अप्रगट होने से मूढकी भांति ज्ञात होते थे ॥ ४ ॥ श्री व्यासजी को अपने पुत्र शुकदेवजी के पीछे वस्त्र सहित जाते देख कर जल में क्रीड़ा करती हुई देवाङ्गनाओं ने लाज से वस्त्र धारण कर लिये, और श्रीशुकदेवजी को नग्न देख करभी उन्होंने वस्त्र न धारण किये—तब व्यासजी ने पूछा कि हे सुर सुन्दरीओं यह क्या कारण है, तब उन्हों ने उत्तर दिया कि आप के तो स्त्री पुरुष का भेद भाव है और एकांत दृष्टि वाले श्री शुकदेवजी में यह भेद भाव नहीं है ॥ ५ ॥ उन्मत्त की भांति शुकदेवजी को विचरते हुए हस्तिनापुर के लोगों ने किस भांति पहिचाना और उन का कुरु जांगल देश में आना किस भांति हुआ ॥ ६ ॥ पांडव राजा परीक्षित और श्रीशुकदेव मुनि में कैसे सम्बाद हुआ जहां यह भगवत्सम्बन्धी संहिता कही गई ॥ ७ ॥ हे तात ! वह महाभाग शुकदेवजी गृहस्त के घर में गोदोहन काल तक स्थित रह कर पवित्र करते हैं ॥ ८ ॥ हे तात ! अभिमन्युके पुत्र परीक्षित जीको भगवद्भक्तोंमे उत्तम कहा है सो उनके महाश्चर्य्य रूप जन्म व कर्म्मों का वर्णन हम से करो ॥ ९ ॥ चक्रवर्त्ती राजा परीक्षित पांडवों के मान बढ़ानेवाले राज्य का अनादर करके उपवास सहित गंगा जी के तीर क्यों जा बैठे ॥ १० ॥ जिस राजा परीक्षित

निकेतमात्मनः शिवायहानीयधनानिशत्रवः ॥ कथंसवीरःश्रियमङ्गदुस्त्यजांयुवैष तोत्स्रष्टुमहोसहासुभिः ॥ ११ ॥ शिवायलोकस्यभवायभूतये य उत्तमश्लोकप रायणाजनाः ॥ जीवन्तिनात्मार्थमसौपराश्रयं मुमोचनिर्विद्यकुतःकलेवरम् ॥१२॥ तत्सर्वंनःसमाचक्ष्व पृष्टोयदिहकिंचन ॥ मन्येत्वांविषयेवाचां स्नातमन्यत्रछान्द सात् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ द्वापरेसमनुप्राप्ते तृतीयेयुगपर्यये ॥ जातःपराश राद्योगी वासव्यांकलयाहरेः ॥ १४ ॥ सकदाचित्सरस्वत्या उपस्पृश्यजलंशुचिः॥ विविक्तएकआसीन उदितेरविमण्डले ॥ १५ ॥ परावरज्ञःसऋषिःकालेनाव्यक्त रंहसा ॥ युगधर्मव्यतिकरं प्राप्तंभुवियुगेयुगे ॥ १६ ॥ भौतिकानांचभावानां श क्तिह्रासंचतत्कृतम् ॥ अश्रद्दधानान्निःसत्वान्दुर्मेधान्ह्रसितायुषः ॥ १७ ॥ दुर्भगांश्च जनान्वीक्ष्य मुनिर्दिव्येनचक्षुषा ॥ सर्ववर्णाश्रमाणां यद्दध्यौहितममोघदृक् ॥१८॥ चातुर्होत्रंकर्मशुद्धं प्रजानां वीक्ष्यवैदिकम् ॥ व्यदधाद्यज्ञसंतत्यै वेदमेकंचतुर्विध म् ॥ १९ ॥ ऋग्यजुःसामाऽथर्वाख्या वेदाश्चत्वारउद्धृताः ॥ इतिहासपुराणंच पंचमोवेदउच्यते ॥ २० ॥ तत्रर्ग्वेदधरःपैलः सामगोजैमिनिःकविः ॥ वैशम्पा यनएवैकोनिष्णातोयजुषामुत ॥ २१ ॥ अथर्वाङ्गिरसामासीत्सुमन्तुर्दारुणोमुनिः॥ इतिहासपुराणानां पितामेरोमहर्षणः ॥ २२ ॥ तएतऋषयोवेदं स्वंस्वंव्यस्यन्नने कधा ॥ शिष्यैःप्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदास्तेशाखिनोऽभवन् ॥ २३ ॥ तएववेदा दुर्मेधैर्धार्यन्तेपुरुषैर्यथा ॥ एवंचकारभगवान्व्यासः कृपणवत्सलः ॥ २४ ॥ स्त्री

के चरण कमल को कल्याण के हेतु शत्रु नमते है और आदर पूर्व्वक द्रव्य लाकर देते हैं उस राजा ने युवावस्था मे दुस्त्यज राज लक्ष्मी को प्राणो के साथ क्यों त्यागना चाहा ॥ ११ ॥ जो उत्तम श्लोक परमेश्वर के भक्त हैं वे लोग सृष्टि के कल्याण, समृद्धि, और ऐश्वर्य के हित जीते हैं अपने स्वार्थ के लिये नही तो दूसरो को आश्रय देनेवाले इस राजाने जानते बूझते विरक्त होकर अपने शरीर को क्यों त्याग दिया ॥ १२ ॥ इस लोक के हेतु जो हम ने आप से बूझा है उस को कहो । क्योकि एक वेदके अतिरिक्त शेष सब वाणियों में पार को पहुंचे हो ॥ १३ ॥ सूतजी ने कहा—कि जब तीसरा द्वापर युग आया तो पराशर जी से सत्यवती में भगवान की कला से व्यासजी ने जन्म लिया ॥ १४ ॥ एकदिन वह सरस्वती के पवित्र जलमें मज्जन आदि करके सूर्य्योदय के समय एकांत स्थल में बैठे ॥ १५ ॥ भूत भविष्य के ज्ञाता वेद व्यास जी ने कालके प्रभावसे युग२ में धर्मका नाश देखकर ॥ १६ ॥ व उसी प्राणिआदि पार्थिव वस्तुओं की कालकृत शक्तिकी न्यूनताको तथा श्रद्धा रहित, अधीरतायुक्त न्यून बुद्धि, अल्पायु ॥ १७ ॥ और मंदभागी मनुष्योंको अमोघ दृष्टिवाले श्रीव्यासजीने दिव्य नेत्रोंसे देखकर सर्व वर्णाश्रमोंका भलाहो ऐसा विचार किया ॥ १८ ॥ प्रजाओंको पवित्र करने योग्य वैदिक कर्मको चारहोताओंके करने वाला जानकर यज्ञका विस्तार फैलाने के अर्थ एक वेदके चार भागकिये ॥१९॥ ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम वेद, अथर्व वेद यह चारों वेद पृथक् २ किये और इतिहास पुराण पांचवा वेद कहलाता है ॥२०॥ वहां पैल जी ने ऋग्वेद में और जैमिनि मुनिने सामवेद में पारंगता प्राप्त की और यजुर्वेद में एक वैशंपायन जी ही चतुर हुये ॥ २१ ॥ और अंगिराओं में से सुमंत तथा दारुण मुनि अथर्व वेद के वक्ताहुए और इतिहास व पुराणों के मेरेपिता रोमहर्षण ही वक्ताहुए ॥ २२ ॥ इन ऋषियों ने अपने २ वेदका अनेक प्रकार से विभाग किया फिर शिष्यों प्रशिष्यों और उनके शिष्यों द्वारावेद की अनेक शाखायें हुई ॥ २३ ॥ वहा वेद जिन्हे मंदबुद्धि पुरुष धारण करसकै—इसकारण दीनबंधु

शूद्रद्विजबन्धूनां त्रयीनश्रुतिगोचरा ॥ कर्मश्रेयसिमूढानां श्रेयएवंभवेदिह ॥ २५ ॥ इतिभारतमाख्यानं कृपयामुनिनाकृतम् ॥ वेदार्थंचसमुद्धृत्य भारतेप्रोक्तवान्मुनिः॥ ॥ २६ ॥ एवंप्रवृत्तस्यसदाभूतानां श्रेयसिद्विजाः ॥ सर्वात्मकेनापियदा नाऽतुष्य द्धृदयंततः ॥ २७ ॥ नातिप्रसीदद्धृदयः सरस्वत्यास्तटेशुचौ ॥ वितर्कयन्विविक्तस्थ इदंप्रोवाचधर्मवित् ॥ २८ ॥ धृतव्रतेनाहिमया छन्दांसिगुरवोऽग्नयः ॥ मानितानिर्व्यलीकेन गृहीतंचानुशासनम् ॥ २९ ॥ भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्चदर्शितः ॥ दृश्यतेयत्रधर्मादि स्त्रीशूद्रादिभिरप्युत ॥ ३० ॥ अथापिबतमे दैह्यो ह्यात्माचैवात्मनाविभुः ॥ असंपन्नइवाभाति ब्रह्मवर्चस्यसत्तमः ॥ ३१ ॥ किंवाभागवताधर्मा न प्रायेणनिरूपिताः ॥ प्रियाःपरमहंसानां तएवह्यच्युतप्रियाः ॥ ३२ ॥ तस्यैवंखिलमात्मानं मन्यमानस्यखिद्यतः ॥ कृष्णस्यनारदोऽभ्यागादाश्रमंप्रागुदाहृतम् ॥ ३३ ॥ तमभिज्ञायसहसा प्रत्युत्थायागतंमुनिः ॥ पूजयामासविधिवन्नारदंसुरपूजितम् ॥ ३४ ॥ इतिश्रीमद्भा०म०प्रथ०चतुर्थोऽध्यायः ४॥

सूत उवाच ॥ अथतंसुखमासीन उपासीनंबृहच्छ्रवाः ॥ देवर्षिःप्राहविप्रर्षि वीणापाणिःस्मयन्निव ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ पाराशर्यमहाभाग भवतःकच्चिदात्मना ॥ परितुष्यतिशारीर आत्मामानसएववा ॥ २ ॥ जिज्ञासितंसुसंपन्न मपितेमहदद्भुतम् ॥ कृतवान्भारतंयस्त्वं सर्वार्थपरिबृंहितम् ॥ ३ ॥ जिज्ञासित मधीतंच यत्तद्ब्रह्मसनातनम् ॥ अथापिशोचस्यात्मानमकृतार्थइवप्रभो ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ अस्त्येवमेसर्वमिदंत्वयोक्तंतथापिनात्मापरितुष्यतेमे ॥ तन्मूल

श्रीभगवान वेद व्यास जीने किये ॥ २४ ॥ स्त्री, शूद्र, व पतित द्विजों को वेदत्रयी का अधिकार नहीं है इस लिये इनके कर्मरूप कल्याण के हेतु यह भारत नाम ग्रंथ बनाया ॥ २५ ॥ प्राणियों के कल्याण के हेतु इसप्रकार सदा प्रवृत्त होरहेथे परन्तु जब आपके मनको संतोष नहीं हुआ॥२६॥ तो सरस्ती के पवित्र तटपर एकांत स्थलमें बैठकर धर्म वेत्ता वेदव्यास जी मनमें भांति २ की तर्कना करके बोले ॥ २७ ॥ कि मैंने व्रतधारण किये हैं, छंद, वेद, गुरू, अग्नि इनका मैंने निष्कपट होकर सन्मान किया है और इनकी आज्ञा ग्रहण की है ॥ २८ स्त्री, शूद्रादिकों के धर्म बोधके लिये भारत के मिषसे वेदका अर्थ भी दिखलाया है ॥ २९ ॥ मैं ब्रह्मतेज वालों में श्रेष्ठ भी हूं तिसपर भी मेरे शरीर में स्थित जो आत्मा परिपूर्ण है सो प्रसन्न नहीं दीखती, यह बड़ा आश्चर्य है ॥३०॥ क्या मैंने विस्तार पूर्वक भगवद् धर्मोका निरूपण नहीं किया जो परमहंस लोगों को व श्रीभगवान को अति प्रिय हैं ॥ ३१ ॥ इसप्रकार वेद व्यास जी अपनी आत्माको तुच्छमान खेदको प्राप्तहुए उसी समय सरस्वती के तटपर श्रीनारद जी आये ॥ ३२ ॥ देवताओं से पूजित नारद जी को आता देखकर श्रीव्यास जी शीघ्र उठखड़े हुए और उनकी विधिपूर्वक पूजा की ॥ ३३ ॥

इतिश्रीभागवते महापुराणेप्रथमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सूतजी ने कहा—कि इसके अनन्तर देवर्षि नारदजी वीणा हाथ में लिये मंद मुसकान पूर्वक, सुख से बैठे हुए विप्रर्षि यशस्वी व्यासजी से बोले— ॥ १ ॥ हे महाभाग, पराशरजी के पुत्र आप का आत्मा शरीर और मनके साथ प्रसन्न तो है ॥ २ ॥ आप ने धर्मादि कों को अच्छी भांति जाना है व अनुष्ठान किया है क्यों कि धर्मादिक से परिपूर्ण भारत ग्रंथ आप ने बनाया है ॥ ३ ॥ हे प्रभो सनातन ब्रह्मको आप जानते हो और प्राप्तहुए हो फिर कायर की भांति आप अपनी आत्मा का सोच क्यों करते हो ॥ ४ ॥ श्री व्यास जी बोले हे नारद ! जो

मव्यक्तमगाधबोधं पृच्छामहे त्वाऽऽत्मभवात्मभूतम् ॥ ५ ॥ सर्वंभवान्वेद्समस्त गुह्यमुपासितोयत्पुरुषःपुराणः ॥ परावरेशोमनसैव विश्वंसृजत्यवत्यत्तिगुणैरसंगः ॥ ६ ॥ त्वंपर्यटन्नर्कइव त्रिलोकीमन्तश्चरो वायुरिवात्मसाक्षी ॥ परावरेब्रह्मणिधर्मतोव्रतैः स्नातस्यमेन्यूनमलम्विचक्ष्व ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ भवतानुदितप्रायं यशोभगवतोमलम् ॥ येनैवासौनतुष्येत मन्येतद्दर्शनंखिलम् ॥ ८ ॥ यथा धर्मादयश्चार्थो मुनिवर्यानुकीर्तिताः ॥ नतथावासुदेवस्य महिमाह्यनुवर्णितः ९॥ नयद्वचश्चित्रपदंहरेर्यशो जगत्पवित्रंप्रगृणीतकर्हिचित् ॥ तद्वायसंतीर्थमुशन्ति मानसानयत्रहंसानिरमन्त्युशिक्क्षयाः ॥ १० ॥ तद्वाग्विसर्गोजनताऽघविप्लवोयस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि । नामान्यनन्तस्ययशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्तिगायन्तिगृणन्तिसाधवः ॥ ११ ॥ नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं नशोभतेज्ञानमलंनिरंजनम् । कुतःपुनःशश्वदभद्रमीश्वरेनचार्पितंकर्मयदप्यकारणम् ॥ १२ ॥ अथोमहाभागभवानमोघदृक्छुचिश्रवाःसत्यरतोधृतव्रतः।उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये समाधिनानुस्मरतद्विचेष्टितम् ॥ १३ ॥ ततोऽन्यथाकिंचनयद्विवक्षतः पृथग्दृशस्तत्कृतरूपनामभिः । नकुत्रचित्क्वापिचदुःस्थिता मतिर्लभेतवाताहतनौरिवास्पदम् ॥ १४ ॥

आपने कहा वह सब सत्य है परन्तु मेरा आत्मा प्रसन्न नहीं हुआ है अगाध ज्ञान वाले ब्रह्माजी से उत्पन्न आप से मैं इस गुप्त कारण को पूछता हूं ॥ ५ ॥ क्यों कि आप उन सम्पूर्ण गुप्तवस्तुओं को जानते हो—आपने उन पुराण पुरुष भगवान की उपासना भली प्रकार से की है कि जो संकल्प ही मात्रसे विश्व को सृजते पालन करते और संहारते हैं और उन गुणों से पृथक् हैं ॥ ६ ॥ आप सूर्य्य की भांति त्रिलोकी की पर्यटन करते हो और वायु की समान सम्पूर्ण चित्त वृत्तियों को जानने वाले व आत्मा के साक्षी हो इस से योग व व्रतके प्रभाव से परब्रह्म व वेद में पारंगत मुझ में जो कुछ न्यूनता रही हो वह आप सोच कर कहो॥ ७ ॥ श्री नारदजी बोले कि तुमने भगवान के निर्मल यश का कभी भी वर्णन नहीं किया इसी से तुम्हारी आत्मा प्रसन्न नहीं हुई श्री भगवान धर्म्म के वर्णन से प्रसन्न नहीं होते—इसी ज्ञान की आप में न्यूनता मानता हूं ॥ ८ ॥ हे श्रेष्ठमुनि जैसा तुमने धर्मादिक के अर्थको वारंवार कहा है वैसा भगवान श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन नहीं किया ॥ ९ ॥ जो वासुदेव भगवान के पवित्र गुणोंका गान नहीं करता वह कामी पुरुषोंका रतिस्थान माना जाता है, कि जिसप्रकार मानसरोवर में रहने वालेहंस, जैसे सुंदर कमल वनमें रहकर कौओंके जूंठनआदि डालने के स्थानमें नहीं रमते वैसेही सतोगुण प्रधान सुंदर ब्रह्ममें निवास करनेवाले और मनमें वर्तनेवाले परमहस लोग कभी नहीं रमते ॥ १० ॥ जिसवाणी में भगवान का यश नहीं है वह पवित्र नहीं है, पापनाश करनेवाली वही वाणी है जिसमें भगवान का यशहै चाहे उसके श्लोक२ अपशब्दादिसे दूषित हों तौभी उसको साधूलोग सुनते और गाते हैं।११। निषकर्म ज्ञानवाला कि जिसमें ईश्वर की भक्तिका भाव नहीं है (ऐसा ज्ञान) शोभा नहीं देताफिर निरंतर अकल्याण कारक काम्य और अकाम्य कर्म ईश्वर के अर्पण न किया जाय तो किसप्रकार शोभाय मान होसकता है ? ॥ १२ ॥ हे महाभाग तुम अमोघ दृष्टि, पवित्र यश सत्यमें प्रीति, व्रतधारण करने वालेहो इसलिये आप समाधि लगाकर उरुक्रम भगवान के चरित्रोंका स्मर्ण करके वर्णनकरो जिससे सम्पूर्ण बंधन कटजांय ॥ १३ ॥ उन श्रीभगवान के गुणोंमें जिनकी दृष्टि नहीं है और उससे विरूद्ध विषय के वर्णन की इच्छा करता है–उसमनुष्य की उसवर्णन करने की इच्छा से निकले हुए नामों से विचली हुई बुद्धि एक ठिकाने नहीं बैठ सकती जैसे वायुके वेगसे नौका

जुगुप्सितंधर्मकृतेऽनुशासतः स्वभावरक्तस्यमहान्व्यतिक्रमः। यद्वाक्यतोधर्मइतीतरःस्थितो नमन्यतेतस्यनिवारणंजनः॥ १५॥ विचक्षणोऽस्यार्हतिवेदितुं विभोरनन्तपारस्य निवृत्तितःसुखम्। प्रवर्तमानस्यगुणैरनात्मनस्ततो भवान्दर्शयचेष्टितं विभोः॥ १६॥ त्यक्त्वास्वधर्मंचरणाम्बुजं हरेर्भजन्नपक्वोऽथपतेत्ततोयदि। यत्र क्ववाभद्रमभूदमुष्यकिंकोवाऽर्थआप्तोऽभजतांस्वधर्मतः॥१७॥ तस्यैवहेतोःप्रयतेतकोविदो नलभ्यतेयद्भ्रमतामुपर्यधः। तल्लभ्यतेदुःखवदन्यतःसुखं कालेनसर्वत्रगभीररंहसा॥ १८॥ नवैजनोजातुकथंचमाव्रजेन्मुकुन्दसेव्यन्यवदंगसंसृतिम्। स्मरन्मुकुन्दांघ्र्युपगूहनं पुनर्विहातुमिच्छेन्नरसग्रहोयतः॥ १९॥ इदंहिविश्वंभगवानिवेतरो यतोजगत्स्थाननिरोधसंभवाः। तद्धिस्वयंवेदभवांस्तथापिवै प्रादेशमात्रंभवतःप्रदर्शितम्॥ २०॥ त्वमात्मनात्मानमवेह्यमोघदृक्परस्यपुंसः परमात्मनःकलाम्। अजंप्रजातंजगतःशिवाय तन्महानुभावाभ्युदयोऽधिगण्यताम्॥ २१॥ इदंहिपुंसस्तपसःश्रुतस्य वास्विष्टस्यसूक्तस्यचबुद्धिदत्तयोः। अविच्युतोऽर्थःकविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम्॥ २२॥ अहंपुरातीतभवेऽभवंमुने दास्यास्तुकस्याश्चन वेदवादिनाम्। निरूपितोबालकएवयोगिनां शुश्रूषणेप्रावृषिनिर्विविक्षताम्॥ २३॥ तेमय्यपेताखिलचापलेऽर्भके दान्तेऽधृतक्रीडनकेऽनुवर्तिनि। चक्रुःकृ

इधर उधर डोलती है॥ १४॥ धर्मार्थ शिक्षा करने वाले, तुम्हारी नैष्कर्म की आज्ञाको देख दुष्ट पुरुषमहा अन्याय करैंगे और तुम्हारे वाक्यों से संसार के तुच्छ जीवयही मानेंगे कि, यह भी एक प्रकार का धर्म है, यह नहीं जानेंगे कि, इसका व्यास जी ने निवारण किया है॥ १५॥ कोई एक विरला ही सामर्थ्य वान पुरुष सबकर्मों को निवृत्त करके इस परमेश्वर के सुखरूप स्वरूप को जान सकता है इसलिये हे विभो! जीवों से भिन्न समर्थ श्रीभगवान की लीलाओंका बर्णनकरो॥ १६॥ अपने नित्य नैमित्तिक स्वधर्म नेष्ठा का अनादर करके केवल हरिकी भक्तिका उपदेश करते २ जो अधर्वाचमें मरजाय तो अपने धर्मके त्यागनेका दोष होता है परन्तु स्वधर्मसे भजनवाले इस जीवका जहां कहीं दुष्ट योनिमेंभी जन्म होय तौभी भक्तही होताहै॥ १७॥ बुद्धिमान पुरुष को उसी सुखके लिये श्रम करना चाहिये जोब्रह्मासले स्थावर प्राणियो तकको नहीं मिलता और विषय सुखतो दुःखकी समान पहिले कर्म्मोंके अनुसार बड़े वेगवाले कालके प्रभावसे आपसे आप उत्पन्न होजातेहै॥ १८॥ हेव्यास—श्रीभगवान का सेवन करनेवाला पुरुष कभी कर्मासक्त पुरुष की भांति संसारको प्राप्त नहींहोता क्योंकि वह श्रीभगवानके चरण कमलोंके स्पर्शका वारवार स्मर्ण करताहै और त्यागने की इच्छानहीं करता जैसे रस ग्राही रस त्यागनेकी इच्छानहीं करता॥ १९॥ यह संसार ईश्वर मयहै और ईश्वर इससे न्यारा नहीं है जिस परमेश्वरसे इस सृष्टिका पालन व उत्पत्ति व संहार होताहै उसे आप जानतेहो तौभी मैने आपको केवल एकदेश अंशमात्र दिखायाहै॥ २०॥ आप अमोघ दृष्टिहो, आत्माको जानतेहो, परमात्माकी कलारूपहो आपने संसारके कल्याणके अर्थ जन्म लिया है इससे आप परमेश्वरके पराक्रमका वर्णन करो॥ २१॥ जिन श्रीभगवानके श्रेष्ठगुणोंका बर्णन करनाही ममुष्यकेलिये तप, शास्त्र, यज्ञ, मनोहरवचन बुद्धि और दानका अखंडफल कवियोंने कहाहै॥ २२॥ हेमुने! हेव्यासजी पहिलेमैंनें एक वेदवादीकी दासीके यहां जन्मलिया वहां कुछसाधू वर्षाऋतु भररहे मै बालक तो था परन्तु उनकी बड़ी सेवाकी॥ २३॥ उनसाधू महात्माओंके संग मैंने सम्पूर्ण चपलता त्यागदी और जितेन्द्रियहो खेलकूद को त्यागकर उनकी समान वर्तनेलगा—यद्यपि वहमुनि समदर्शीथे परन्तु तौभी सेवाकरतेहुए मुझ

पांयथपितुल्यदर्शनाः शुश्रूषमाणेमुनयोऽल्पभाषिणि ॥ २४ ॥ उच्छिष्टलेपाननुमो-
दितो द्विजैःसकृत्स्मभुंजेतदपास्तकिल्बिषः । एवंप्रवृत्तस्यविशुद्धचेतसस्तद्धर्म ए-
वात्मरुचिः प्रजायते ॥ २५ ॥ तत्रान्वहंकृष्णकथाःप्रगायतामनुग्रहेणाशृणवंमनोह-
राः । ताःश्रद्धयामेऽनुपदंविशृण्वतः प्रियश्रवस्यङ्गममाभवद्रुचिः ॥ २६ ॥ तस्मिं
स्तदालब्धरुचेर्महामुने प्रियश्रवस्यस्खलितामतिर्मम । ययाहमेतत्सदसत्स्वमायया
पश्येमयि ब्रह्मणिकल्पितंपरे ॥ २७ ॥ इत्थंशरत्प्रावृषिकावृतू हरेर्विशृण्वतोमेऽनुस
वंयशोमलम् । संकीर्त्यमानेमुनिभिर्महात्मभिर्भक्तिः प्रवृत्ताऽऽत्मरजस्तमोपहा२८
तस्यैवंमेनुरक्तस्य प्रश्रितस्यहतैनसः । श्रद्दधानस्यबालस्य दान्तस्यानुचरस्यच
॥ २९ ॥ ज्ञानंगुह्यतमंयत्तत्साक्षाद्भगवतोदितम् । अन्ववोचन्गमिष्यन्तः कृपयादीन
वत्सलाः ॥ ३० ॥ येनैवाहंभगवतो वासुदेवस्यवेधसः । मायानुभावमविदंयेन ग-
च्छन्तितत्पदम् ॥ ३१ ॥ एतत्संसूचितंब्रह्मं तापत्रयचिकित्सितम् । यदीश्वरेभगव
तिकर्मब्रह्मणिभावितम् ॥ ३२ ॥ आमयोयश्चभूतानां जायतेयेनसुव्रतः । तदेवह्याम
यंद्रव्यं नपुनातिचिकित्सितम् ॥ ३३ ॥ एवंनृणांक्रियायोगाः सर्वेसंसृतिहेतवः । त
एवात्मविनाशाय कल्पन्तेकल्पिताःपरं ॥ ३४ ॥ यदत्रक्रियतेकर्म भगवत्परितोषण
म् । ज्ञानंयत्तदधीनंहिभक्तियोगसमन्वितम् ॥ ३५ ॥ कुर्वाणायत्रकर्माणि भगव-
च्छिक्षयाऽसकृत् । गृणन्तिगुणनामानि कृष्णस्यानुस्मरन्तिच ॥ ३६ ॥ नमोभगव-
तेतुभ्यं वासुदेवायधीमहि ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमःसंकर्षणायच ॥ ३७ ॥ इति

अल्पबुद्धि बालकपर उनलोगोंने दयाकी ॥ २४ ॥ उन साधुओंकी आज्ञानुसार उनका जूठाभोजन मैंएकही समय खाताथा इसकारण मेरे सम्पूर्ण पापदूर होगये इसभांति लवलीन होनेसे मेराचित्त निर्मलहुआ और परमेश्वरक भजनमें मेरी रुचिहुई ॥ २५ ॥ उनकी कृपासे नित्यप्रति वहां भग- वतकथा कहतेहुए सुंदर चरित्रोंको सुनाकरता हेमुनि! पदपदमें श्रद्धासहित कथाओंके सुननेसे भगवानकी सुन्दरकथामें मेरी रुचिहुई ॥ २६ ॥ श्रीभगवानमें जब मेरीरुचि हुईतो उसके संगही श्रीभगवानमें मेरीदृढ़ बुद्धिभी हुई जिसकी शक्ति से मैं इस स्थूल और सूक्ष्म शरीरको सृष्टिसेपरे परब्रह्म रूपमें अविद्यासे कल्पित माननेलगा ॥ २७ ॥ इस भांति वर्षा और शरद ऋतु व्यतीतहुई इनचार मासतक मुनियों ने श्रीभगवानके निर्मल यशका भलीभांति कीर्तन किया उसको मैं तीनो कॉल सुनतारहा कि जिसके प्रभावसे तमोगुण, रजोगुण दूरहोकर श्रीभगवानकी भक्तिका उदय हुआ ॥ २८ ॥ इस प्रकार पापरहित, विनययुक्त, श्रद्धावाले, अनुरक्त, जितेन्द्रिय, और दास ऐसे मुझ बालक को ॥ २९ ॥ दीनोंपर दया करनेवाले उन मुनिलोगोंने जाते२ कृपा करके श्रीभगवन केकहेहुए गुप्तज्ञानका उपदेश किया ॥ ३० ॥ उसी ज्ञानसे मैंने भगवान वासुदेवकी मायाकेप्रभाव को जानलिया जिस ज्ञानसे मनुष्य ब्रह्मपदको प्राप्तहोताहै ॥ ३१ ॥ हेब्रह्मन् तीनोंतापोंके दूरकरने केहेतु भगवान परब्रह्ममें सब कर्म अर्पण करना ॥ ३२ ॥ हेसुब्रत प्राणियों को जोरोग जिसवस्तु से उत्पन्न होताहै वहीवस्तु उसरोगको शांत नहींकरती किन्तु दूसरी वस्तुओंके मेलसे रोगकोशांत करतीहै ॥ ३३ ॥ इसीभांति मनुष्योंके सबकर्म्मोंका मिलापसृष्टिका हेतुहै परन्तु यदिवही परमेश्वर के अर्पण कियेजांयतो कर्मके निवारणके लिये समर्थ होजातेहैं ॥ ३४ ॥ इसलिये इस लोकमें भग वानके प्रसन्न होनेवाले जो कर्म्मकरैतो उसके भक्तियोग युक्तजो ज्ञानहै वहभी आधीनहोवे ॥ ३५ ॥ भगवानकी आज्ञाहै कि, सम्पूर्ण शुभ कर्मकरो, ऐसा जानकरजो कर्म करैहैं, उनकी मोक्ष होतीहै जोमनुष्य श्रीकृष्णके गुण अपने मुखसे उच्चारण करैहै, वह निश्चय मोक्षका भागी है ॥ ३६ ॥

सूर्त्यभिधानेन मन्त्रमूर्तिममूर्तिकम् । यजतेयज्ञपुरुषं ससम्यग्दर्शनःपुमान् ॥ ३८ ॥ इ-
मंस्वनिगमंब्रह्मन्नवेत्यमदनुष्ठितम् । अदान्मेज्ञानमैश्वर्यं स्वस्मिन्भावंचकेशवः ३९।
त्वमप्यदभ्रश्रुतविश्रुतंविभोः समाप्यतेयेनविदांबुभुत्सितम् । आख्याहिदुःखैर्मुहुर
र्दितात्मनां यत्क्लेशनिर्वाणमुशन्तिनान्यथा ॥ ४० ॥ इतिश्रीभा०प्रथ०व्यासनारद
सं० पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

सूत उवाच ॥ एवंनिशम्यभगवान्देवर्षेर्जन्मकर्मच । भूयःपप्रच्छतंब्रह्मन्व्या-
सःसत्यवतीसुतः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृ
भिस्तव ॥ वर्तमानोवयस्याऽऽद्येततःकिमकरोद्भवान् ॥ २ ॥ स्वायंभुवकयावृ
त्यावर्तितंतेपरं वयः ॥ कथंचेदमुदस्राक्षीः कालेप्राप्तेकलेवरम् ॥ ३ ॥
प्राक्कल्पविषयामेतां स्मृतिंतेसुरसत्तम । नह्येषव्यवधात्काल एषसर्वं निरा-
कृतिः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिर्मम । वर्तमा
नोवयस्याऽऽद्येततएतदकारषम् ॥ ५ ॥ एकात्मजामेजननी योषिन्मूढाचकिंकरी।
मय्यात्मजेऽनन्यगतौ चक्रेस्नेहानुबन्धनम् ॥ ६ ॥ साऽस्वतन्त्रानकल्पाऽऽसीद्योग
क्षेमंममेच्छती । ईशस्यहिवशेलोको योषादारुमयीयथा ॥ ७ ॥ अहंचतद्ब्रह्मकुल
ऊषिवांस्तदपेक्षया । दिग्देशकालाव्युत्पन्नो बालकःपंचहायनः ॥ ८ ॥ एकदानि
र्गतांगेहाद्दुहन्तींनिशिगांपथि । सर्पोऽदशत्पदास्पृष्टः कृपणांकालचोदितः ॥ ९ ॥
तदातदहमीशस्य भक्तानांशमभीप्सतः। अनुग्रहंमन्यमानःप्रातिष्ठंदिशमुत्तराम् १०

ऐसे भगवान वासुदेव को हम प्रणाम करते हैं—प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षण आपको भी मेरा प्रणाम है ॥ ३७ ॥ ऐसी चतुर्व्यूह रूपी अलौकिक मन्त्र मूर्त्ति तथा यज्ञ पुरुषका जो पूजन करता है उस को श्रीभगवान के दर्शन होते हैं ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस अपनी शिक्षा को मुझ से अनुष्ठान किया जान कर उन मुनियों ने ज्ञान, ऐश्वर्य्य और श्रीभगवान की भक्ति दी ॥ ३९ ॥ हे बहुश्रुत आप भी श्री परमेश्वर के यश का कीर्त्तन करो जिस से विद्वानों के जानने की इच्छा पूर्णहो क्योंकि दुःखोंसे अत्यंत पीड़ित प्राणियोंके क्लेशकी शांति और प्रकार नहीं होसकती ॥ ४० ॥

इतिश्री भागवते महापुराणेप्रथमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांव्यासनारदसंवादे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

सूतजीबोले—हे ब्रह्मन् ! सत्यवती के पुत्र भगवान व्यासजी देवर्षि नारदजी के इस भांति जन्म, कर्म सुनकर फिर उनसे पूछते हुए ॥ १ ॥ व्यासजी बोले—कि आप को ज्ञान देने वाले मुनि जब चले गये तो फिर आपने अपनी वर्तमान अवस्था में क्या किया ॥ २ ॥ हे ब्रह्मपुत्र ! तुम्हारी शेष अवस्था कैसे व्यतीतहुई और फिर काल प्राप्त होनेपर आपने शरीरको कैसे त्यागन किया ॥ ३ ॥ हे श्रेष्ठदेव ! सब के स्मरण को नाश करनेवाले कालने आपकी पूर्वस्मर्ण शक्तिको क्यों नाश न किया ॥ ४ ॥ नारदजी नें कहा—कि मुझे ज्ञान देने वाले साधू जब चले गये तब वर्तमान अवस्था में मैंने यह किया ॥ ५ ॥ मेरी मा मूढ़ बुद्धि व दासीथी उस के मैं अकेला ही पुत्रथा इस लिये मुझ अनन्यगति के साथ वह बडा स्नेह करतीथी ॥ ६ ॥ वह मेरेयोग और क्षेम को चाहती थी परन्तु पराधीन होने से असमर्थ थी—क्योंकि जैसे काठकी पुतली नटके आधीन है वैसे ही यह सृष्टि ईश्वर के वश में है ॥ ७ ॥ मैं पांच वर्ष का बालक देश, काल न जाननेवाली माताकी इच्छासे उस ब्राह्मण के कुल में रहने लगा ॥ ८ ॥ एक दिन मेरी माता रात्री के समय गाय दुहाने को निकली तो राह में काल की प्रेरणा किये हुए सर्प ने डस लिया ॥ ९ ॥ उसी कारण से मेरी मा मर गई तब मैं भगवान का अनुग्रह मानता हुआ उत्तर दिशा को गया १०

स्फीतांजनपदांस्तत्रपुरग्रामव्रजाकरान् ॥ खेटखर्वटवाटीश्चवनान्युपवनानिच ११॥
चित्रधातुविचित्राद्रीनिभभग्नभुजद्रुमान् । जलाशयाञ्छिवजलान्नलिनीःसुरसेवि-
ताः ॥ १२ ॥ चित्रस्वनैःपत्ररथैर्विभ्रमद्भ्रमरश्रियः । नलवेणुशरस्तम्बकुशकीचकग
ह्वरम् ॥ १३ ॥ एकएवातियातोऽहमद्राक्षंविपिनंमहत् । घोरंप्रतिभयाकारंव्यालो
लूकशिवाऽजिरम् ॥ १४ ॥ परिश्रांतेन्द्रियात्माऽहंतृट्परीतोबुभुक्षितः । स्नात्वा
पीत्वाह्रदेनद्याउपस्पृष्टोगतश्रमः ॥ १५ ॥ तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्येपिप्पलोपस्थआस्थि
तः । आत्मनात्मानमात्मस्थंयथाश्रुतमचिन्तयम् ॥ १६ ॥ ध्यायतश्चरणाम्भोजंभा-
वनिर्जितचेतसा । औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्यहृद्याऽऽसीन्मेशनैर्हरिः ॥१७॥ प्रेमा-
तिभरनिर्भिन्नपुलकांगोऽतिनिर्वृतः । आनन्दसंप्लवेलीनोनापश्यमुभयंमुने ॥ १८ ॥
रूपंभगवतोयत्तन्मनःकान्तंशुचाऽपहम् । अपश्यन्सहसोत्तस्थेवैक्लव्याद्दुर्मनाइव
॥ १९ ॥ दिदृक्षुस्तदहंभूयःप्रणिधायमनोहृदि । वीक्षमाणोऽपिनापश्यमवितृप्त
इवातुरः ॥ २० ॥ एवंयतन्तंविजनेमामाहाऽगोचरोगिराम् । गम्भीरश्लक्ष्णयावाचा
शुचःप्रशमयन्निव ॥ २१ हन्ताऽस्मिञ्जन्मनिभवान्नमांद्रष्टुमिहार्हति । अविपक्वक
षायाणांदुर्दर्शोऽहंकुयोगिनाम् ॥ २२ ॥ सकृद्यद्दर्शितंरूपमेतत्कामायतेऽनघ ॥
मत्कामःशनकैःसाधुःसर्वान्मुंचतिहृच्छयान् ॥ २३ ॥सत्सेवयादीर्घयातेजातामयि
दृढामतिः । हित्वाऽवद्यमिमंलोकंगन्तामज्जनतामसि ॥ २४ ॥ मतिर्मयिनिबद्धेयंन

वहां देश, प्रदेश, पुर, ग्राम, व्रज, खान, उपवन, किसानों के गांव पहाड़ी गांव, वन, वाड़ी ॥ ११
धातुओं से चित्रित पर्वत, वृक्ष जिनकी शाखाएं हाथियों ने तोड़ डाली हैं, जल वाले जलाशय,
पक्षियों के मीठे स्वर से पूर्ण देवताओं से सेवित सरोवरों को देखा ॥ १२ ॥ तथा नल, बांस,
सरकंडे से अति गह्वर वनको लांघकर ॥ १३ ॥ मैं आगे बढ़ा तो घोर और भयानकवन जिस
में सांप, उल्लू, श्रगालनियां खेल रही हैं देखा ॥ १४ ॥ जब चलते २ मेरी इंद्रियां व शरीरथक
गया भूख और प्यास से व्यथित हुआ तब एक सरोवर में स्नान करके जलपान कर श्रम रहित
हुआ ॥ १५ ॥ फिर उस निर्जन वन में एक पीपल के वृक्षके नीचे बैठकर बुद्धि से हृदयमें रहने
वाले भगवान का व उनके यशका चिंतवन करनेलगा ॥ १६ ॥ भक्तिपूर्वक श्रीभगवानके चरण
कमलों का ध्यान करनेलगा तो उत्कण्ठासे मेरे अश्रुधारा बह निकली और धीरे २ मेरे हृदय में
ईश्वर की कला का विकाश हुआ ॥ १७ ॥ हे मुनि ! प्रेमके अति बोझ से मेरे शरीर में रोमांच
हो आया और ऐसे परमानंद को प्राप्त होकर उस में लीन हुआ कि मुझे अपने और विराने का
विचार न रहा ॥ १८ ॥ फिर शोच को दूर करने वाले भगवान के रूप का दर्शन हुआ थोड़ी
देर के उपरांत उसे न देख कर व्याकुल हो कायर की भांति फिर उठ खड़ा हुआ ॥ १९ ॥
फिर मैंने उस रूपके देखने की लालसासे मनको हृदयमें स्थिर कर दर्शन करनाचाहा किंतु दर्शन
नहीं हुआ तबतो मैं व्याकुल होगया ॥ २० ॥ उस निर्जन बन में इस भांति का यत्न कररहाथा
कि मन का शोच दूर करने वाली गंभीर, स्पष्ट अक्षरोंमें आकाश वाणी हुई ॥ २१ ॥ हे नारद!
इस जन्म तुम मेरे दर्शन के योग्य नहीहो क्योंकि जिनके काम, क्रोधादिक दग्ध नहीं हुएहैं ऐसे
कुयोगियोंको मेरा दर्शनहोना दुर्लभहै॥२२॥हे अनघ हे निष्पाप मैंने तेरीकामनाके अर्थ एकबेरयह
रूप दिखाया क्योंकि जो साधू हैं वह धीरे २ सब पापों को त्याग करते हैं और उन की सब
कामना धीरे २ निवृत्त होजाती हैं ॥ २३ तूने जो बहुत काल तक अच्छे पुरुषों की सेवा की है
इससे मुझ में तेरी दृढ भक्ति होगई अब इस लोक को छोड़कर तू मेरा पार्षद होगा ॥ २४ ॥

विपद्येतकर्हिचित् । प्रजासर्गनिरोधेऽपिस्मृतिश्चमदनुग्रहात् ॥ २५ ॥ एतावदुक्त्वो
पररामतन्महद्भूतंनभोलिंगमलिंगमीश्वरम् । अहंचतस्मैमहतांमहीयसेशीर्ष्णाऽवना
मविदधेऽनुकम्पितः ॥ २६ ॥ नामान्यनन्तस्यहतत्रपःपठन्गुह्यानिभद्राणिकृतानिच
स्मरन् । गांपर्यटंस्तुष्टमनागतस्पृहःकालंप्रतीक्षन्विमदोविमत्सरः ॥ २७ ॥ एवं
कृष्णमतेर्ब्रह्मन्नसक्तस्यामलात्मनः । कालःप्रादुरभूत्कालेतडित्सौदामनीयथा ॥२८
प्रयुज्यमानेमयितांशुद्धांभगवतींतनुम् । आरब्धकर्मनिर्वाणोन्यपतत्पांचभौतिकः
॥ २९ ॥ कल्पान्तइदमादायशयानेऽम्भस्युदन्वतः । शिशयिषोरनुप्राणंविविशेऽ
न्तरहंविभोः ॥ ३० ॥ सहस्रयुगपर्यन्तउत्थायेदंसिसृक्षतः । मरीचिमिश्राऋषयः
प्राणेभ्योऽहंचजज्ञिरे ॥ ३१ ॥ अन्तर्बहिश्चलोकांस्त्रीन्पर्येम्यस्कन्दितव्रतः । अनुग्र
हान्महाविष्णोरविघातगतिःक्वचित् ॥ ३२ ॥ देवदत्तामिमांवीणांस्वरब्रह्मविभूषि
ताम् ॥ मूर्च्छयित्वाहरिकथांगायमानश्चराम्यहम् ॥ ३३ ॥ प्रगायतःस्ववीर्याणि
तीर्थपादःप्रियश्रवाः । आहूतइवमेशीघ्रंदर्शनंयातिचेतसि ॥ ३४ ॥ एतद्ध्यातुरचि
त्तानांमात्रास्पर्शेच्छयामुहुः । भवसिन्धुप्लवोदृष्टोहरिचर्यानुवर्णनम् ॥ ३५ ॥ यमा-
दिभिर्योगपथैःकामलोभहतोमुहुः । मुकुन्दसेवयायद्वत्तथात्माऽद्धानशाम्यति ३६॥
सर्वंतदिदमाख्यातंयत्पृष्टोऽहंत्वयाऽनघ । जन्मकर्मरहस्यंमेभवतश्चात्मतोषणम् ३७
सूतउवाच ॥ एवंसंभाष्यभगवान्नारदोवासवीसुतम् । आमन्त्र्यवीणांरणयन्ययौ

मेरी ओर जो तेरी भक्ति है उस का कभी नाश होगा नाश काल में भी मेरी कृपासे तेरी स्मृति शक्ति बनी रहेगी ॥ २५ इतना कहकर आकाश में स्थित अरूप, महद्भूतरूप, ईश्वर का स्वरूप लुप होगया—मुझ भगवान की दया के पात्र ने भी उस स्वरूप को शिरसे प्रणाम किया ॥ २६ फिर मै तवसे अनन्त भगवान के नाम व लीलाओं का गान व स्मर्ण करता हुआ सन्तुष्ट चित्त हो मदको छोड़ निर्लज्ज हो मृत्यु की राह देखता हुआ पृथ्वी पर फिरने लगा ॥ २७ ॥ हे हेब्रह्मन् ! इसभांति निर्मल आत्मा, आशक्ति रहित, भगवानकी भक्तियुक्त, मेरीसमय परमृत्यु प्राप्त हुई, जैसे अकस्मात बिजली प्रगट होती है ॥ २८ ॥ जबमें शुद्ध सत्वमय भगवत पार्षदके शरीर को प्राप्त होनेलगा तो प्रारब्ध के कर्मों के नाशसे पंचतत्व से बनाहुआ मेराशरीर गिरपड़ा ॥ २९॥ फिर कल्पके अंतमें जब श्रीनारायण जी ने त्रिलोकी को संहार करके जलमें शयन किया तो ब्रह्मा जी के प्राण के साथ उनके भीतर प्रवेश किया ॥ ३० ॥ हजार युगोंके उपरांत इस सृष्टिके रचने की इच्छा करके जब भगवान उठेतब मरीचिआदि ऋषि उत्पन्न हुए और मैं प्राणसे उत्पन्न हुआ ॥ ३१॥ श्रीमहाविष्णु जी की कृपासे अखंडित व्रतधारण कर सृष्टिके भीतर और बाहर सब स्थानों पर विचरा करता हूं मेरीगति कहीं नहीं रुकती ॥ ३२ ॥ श्रीभगवान की दीहुई सप्तस्वर वाली वीणा को बजाकर श्रीभगवान की लीलाका गान करता हुआ विचरा करता हूं ॥ ३३ ॥ और भगवान के चरित्र जबमैं गान करता हूं, तब ऐसा मग्न होजाताहूं कि मानो श्रीकृष्ण चन्द्र आनंद कन्द शीघ्र चित्तमें आनकर दर्शनदेते है और मुझको बुलाते हैं॥३४॥ विषय भोगों की कांक्षासे व्याकुल चित्त मनुष्यों के लिये सदैव भगवत चरित्रों का वर्णन करना यही संसार रूपी समुद्र में नौकारूप मानागया है ॥ ३५ ॥ जैसे श्रीकृष्ण जी की सेवा से आत्मा समता को प्राप्त होती है वैसी काम और लोभ से हतहुए की आत्मा यमादिक योगमार्ग से शान्ति को नहीं प्राप्त होती ॥ ३६ ॥ हेअनघ! जो तुमने मेरे जन्म, कर्म, मेरेरहस्य का वृत्तांत पूछावह तुम्हारी आत्माके प्रसन्नार्थ मैंने कहा ॥३७॥ सूतजीने कहा कि दैवी इच्छासे विचरने वाले श्रीनारद जी व्यास जी से इसप्रकार की वार्त्ता करके

याद्दच्छिकोमुनिः ॥ ३८ ॥ अहोदेवर्षिर्धन्योयंयत्कीर्तिंशार्ङ्गधन्वनः । गायन्माद्यन्निदंतन्त्र्यारमयत्यातुरंजगत् ॥ ३९ ॥ इतिश्रीभागवतपुराणेप्रथमस्कंधेव्यासनारदसंवादेषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

शौनकउवाच ॥ निर्गतेनारदेसूतभगवान्बादरायणः । श्रुतवांस्तदभिप्रेतमितः किमकरोद्विभुः ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ ब्रह्मनद्यांसरस्वत्यामाश्रमःपश्चिमेतटे ॥ शम्याप्रासइतिप्रोक्तऋषीणां सत्रवर्द्धनः ॥ २ ॥ तस्मिन्स्वआश्रमेव्यासोबदरीषण्डमण्डिते । आसीनोऽपउपस्पृश्यप्रणिदध्यौमनःस्वयम् ॥ ३ ॥ भक्तियोगेनमनसि सम्यक्प्रणिहितेऽमले । अपश्यत्पुरुषंपूर्वंमायांचतदुपाश्रयाम् ॥ ४ ॥ ययासंमोहितोजीवआत्मानंत्रिगुणात्मकम् । परोऽपिमनुतेऽनर्थंतत्कृतंचाभिपद्यते ॥ ५ ॥ अनर्थोपशमंसाक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे । लोकस्याजानतोविद्वांश्चक्रेसात्वतसंहिताम् ६ यस्यांवैश्रूयमाणायांकृष्णेपरमपूरुषे । भक्तिरुत्पद्यतेपुंसःशोकमोहभयापहा ॥ ७ ॥ ससंहितांभागवतींकृत्वाऽनुक्रम्यचात्मजम् ।शुकमध्यापयामासनिवृत्तिनिरतंमुनिः ॥ ८ ॥ शौनकउवाच ॥ सवैनिवृत्तिनिरतः सर्वत्रोपेक्षकोमुनिः । कस्यवाबृहतीमेतामात्मारामःसमभ्यसत् ॥ ९ ॥ सूतउवाच ॥ आत्मारामाश्चमुनयोनिर्ग्रन्थाअप्युरुक्रमे ॥ कुर्वन्त्यहैतुकींभक्तिमित्थंभूतगुणोहरिः ॥ १० ॥ हरेर्गुणाऽक्षिप्तमतिर्भगवान्बादरायणिः । अध्यगान्महदाख्यानंनित्यंविष्णुजनप्रियः ॥ ११ ॥परीक्षितोऽथ राजर्षेर्जन्मकर्मविलायनम् । संस्थांचपाण्डुपुत्राणांवक्ष्येकृष्णकथोदयम् ॥ १२ ॥

उनसे आज्ञाले वीणा वजाते हरिगुण गातेचले गये ॥ ३८ ॥ यह देवर्षि नारद वड़े धन्य हैं जो श्रीपरमेश्वर के यशका गानकर. वीणा से इस संसार को प्रफुल्लित करते हुए व्याकुल संसार का उद्धार करते हैं ॥ ३९ ॥ इतिश्रीभागवतेमहापुराणेप्रथस्कंधसरलाभाषाटीकायांव्यासनारदसंवादेषष्ठोध्यायः ॥ ६ ॥

शौनकने कहा कि हेसूत ! श्रीव्यासजीने नारद जीका प्रयोजन सुनकर फिर क्या किया ॥१॥ सूतजी ने कहा कि सरस्वती के पश्चिम तटपर ऋषियों के यज्ञका वढ़ाने वाला सम्याप्रास नाम एक आश्रम था ॥ २ ॥ फिर व्यास जी उस आश्रम में कि जहां वेरियों के झाड़ थे वैठजल स्पर्शकर श्रीनारद जी के उपदेश का ध्यान करनेलगे ॥ ३ ॥ भक्तियोग से निर्मल व भली प्रकार निश्चल चित्तमें पहिले तो परमेश्वर को देखा इसके उपरांत ईश्वरके वशीभूत मायादेखी ॥ ४ ॥ जिसमाया से मोहित यह जीव आत्मा को त्रिगुणात्मक (सत, रज, तम) मानता है और आप तीनों गुणों से अन्य है तौभी गुणके कियेहुए अनर्थ को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ इस अनर्थ को शमन करने वाला भगवान का साक्षात भक्तियोग देखा यह देखकर जगद्विख्यात, व्यास जी ने मूर्ख लोगों के निमित्त श्रीमद्भागवत कोरचा ॥ ६ ॥ जिसके सुनतेही विषई पुरुष के भी जरा, मोह, शोकनाश करने वाली श्रीकृष्ण भगवान की भक्ति उत्पन्न होती है ॥ ७ ॥ उनवेद व्यासजी ने भागवती संहिता बनाकर निवृत्तिमार्ग में लगेहुए अपने पुत्र श्रीशुकदेवजी को पढ़ाई ॥ ८ ॥ शौनकजी बोले कि सवओरसे निवृत्तिमार्ग मेंलगेहुए आतमाराम उन शुकदेव मुनिनें इतनी वड़ी संहिता किस कारणसे पढ़ी ॥९॥ सूतजीवोले कि आत्माराम, तथा जिनके हृदयमें किसी प्रकारकी गांठ नहींहै ऐसेमुनिभी भगवानमें अहैतुकी भक्ति करतेहैं, क्योंकि श्रीभगवानके ऐसेही गुणहैं ॥ १० ॥ श्रीपरमेश्वरके गुणोंसें बुद्धि खिंच जानेके कारण सदा भक्तोंके प्यारे श्रीशुकदेवजीने इतनी वड़ीसंहिता पढ़ी ॥ ११ ॥ अबमैं राजर्षि परीक्षितका जन्म, कर्म्म तथा नाश व पांडु पुत्रोंका नाश यहसब, श्रीकृष्ण भगवानकीकथा

यदामृधेकौरवसंजयानांवीरेष्वथोवीरगतिंगतेषु । वृकोदराविद्धगदाभिमर्शभग्नो-
रुदण्डेधृतराष्ट्रपुत्रे ॥ १३ ॥ भर्तुःप्रियंद्रौणिरितिस्मपश्यन्कृष्णासुतानांस्वपतांशिरां
सि । उपाहरद्विप्रियमेवतस्यतज्जुगुप्सितंकर्मविगर्हयन्ति ॥ १४ ॥ माताशिशूनां
निधनंसुतानांनिशम्यघोरंपरितप्यमाना ॥ तदाऽरुदद्बाष्पकलाकुलाक्षीतांसान्त्वय
न्नाहकिरीटमाली ॥ १५ ॥ तदाशुचस्तेप्रमृजामिभद्रेयद्ब्रह्मबन्धोःशिरआततायि
नः । गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैरुपाहरेत्वाक्रम्ययत्स्नास्यसिदग्धपुत्रा ॥ १६ ॥ इतिप्रि-
यांवल्गुविचित्रजल्पैःससान्त्वयित्वाऽच्युतमित्रसूतः । अन्वाद्रवद्दंशितउग्रधन्वा
कपिध्वजोगुरुपुत्रंरथेन ॥ १७ ॥ तमापतन्तंसविलक्ष्यदूरात्कुमारहोद्विग्नमनारथेन
पराद्रवत्प्राणपरीप्सुरुर्व्यांयावद्गमंरुद्रभयाद्यथाकः ॥ १८ ॥ यदाऽशरणमात्मानमै
क्षतश्रान्तवाजिनम् । अस्त्रंब्रह्मशिरोमेनआत्मत्राणंद्विजात्मजः ॥ १९ ॥ अथोपस्पृ-
श्यसलिलंसंदधेतत्समाहितः । अजानन्नुपसंहारंप्राणकृच्छ्रउपस्थिते ॥ २० ॥ ततः
प्रादुष्कृतंतेजःप्रचण्डंसर्वतोदिशम् । प्राणापदमभिप्रेक्ष्यविष्णुंजिष्णुरुवाचह॥२१॥
अर्जुनउवाच । कृष्णकृष्णमहाभागभक्तानामभयंकर । त्वमेकोदह्यमानानामपवर्गो
ऽसिसंसृतेः ॥ २२ ॥ त्वमाद्यःपुरुषःसाक्षादीश्वरःप्रकृतेःपरः । मायांव्युदस्यचि-
च्छक्त्याकैवल्येस्थितआत्मनि ॥ २३ ॥ सएवजीवलोकस्यमायामोहितचेतसः ।
विधत्सेस्वेनवीर्येणश्रेयोधर्मादिलक्षणम् ॥ २४ ॥ तथाऽयंचावतारस्तेभुवोभारजि
हीर्षया । स्वानांचानन्यभावानामनुध्यानायचासकृत् ॥ २५ ॥ किमिदंस्वित्कुतो-

का उदय जैसेहो वैसे करूंगा ॥ १२ ॥ जब युद्धमें कौरव पाण्डवोंके सबवीर गतिको प्राप्तहुए और भीमसेनकी चलाई हुई गदासे दुर्योधनकी जांघे खंडित होगई ॥ १३ ॥ तब अश्वत्थामा स्वामीके प्रसन्नार्थ सोतेहुए द्रौपदीके बालकोंके सिर काटलायातो यहबात उसकोभी अप्रियलगी कारण कि निंदित कर्म्मकी सब निंदाही करतेहैं ॥ १४ ॥ द्रौपदी बालकोंका नाश देखकरबड़े तापको प्राप्तहुई और नेत्रोंमें जलभर विसूर २ कर रोनेलगी तबअर्जुनने शांति करके कहा॥१५॥ हेभद्रे ! जब आततायी ब्रह्मबन्धुका मस्तक गांडीव धनुषके छूटेहुए बाणोंसे काटकर लाऊंगा और तूउसके सिरको दबाकरके स्नान करेगी तबमैं तेरेआंसू पोछूंगा और तेरेशोचको दूर करूंगा।१६। अच्छी २ बातों से प्रियाको शांति करके अच्युत भगवान जिसके मित्र और सारथी हैं और जिसके रथकी ध्वजामें हनूमान विराजमानहैं ऐसा वह उग्रधन्वा अर्जुन कवच पहिन गुरुपुत्रके पीछे चढ़दौड़ा ॥ १७ ॥ वहबालकोंका मारनेवाला, कंपित अश्वत्थामा अर्जुनको दूरसे आतादेख कर प्राणोंके रक्षार्थ रथमें बैठकर पृथ्वीमें जहांतक जासका वहांतक भागा जैसे महादेव जीके भय से सूर्यजी भागेथे ॥ १८ ॥ जब उसके घोड़े थकगये और उसने अपनी आत्माको असरण देखा तो ब्रह्मास्त्रको रक्षा करनेवाला माना ॥ १९ ॥ प्राणदण्ड उपस्थित होनेपर उसने सावधानहो जल से आचमनकर ब्रह्मास्त्रका संधान किया यद्यपि वह ब्रह्मास्त्रका लौटाना नहीं जानताथा ॥ २० ॥ उस ब्रह्मास्त्रसे कि जिसके कोपसे सम्पूर्ण दिशाएं भस्म होजांय तेज उत्पन्न हुआ तब प्राण संकट देखकर अर्जुन श्रीकृष्णभगवानसे बोले ॥ २१ ॥ हेकृष्ण ! तुम भक्तोंको अभय करनेवाले संसार से जलतेहुए प्राणियोंकोमोक्ष देनेवालेहो ॥२२॥ आप साक्षात् आदि पुरुष मायासे परेहो आप माया का चैतन्य शक्तिसे पराभवकर, कैवल्य आत्मामें स्थितहो ॥ २३ ॥ वही आप अपनेऐश्वर्य्य से, मायासे मोहित प्राणियोंका धर्मादि लक्षणयुक्त कल्याणकरतेहो ॥२४॥ जैसेयह आपका अव-तार पृथ्वीके बोझको दूर करनेकी इच्छासे हुआहै ऐसेही अनन्य भाववाले भक्तोंके ध्यानके हित

वेत्तिदेवदेवनवेदयतइदम् । सर्वतोमुखमायातितेजःपरमदारुणम् ॥ २६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वेत्थेदंद्रोणपुत्रस्यब्राह्ममस्त्रंप्रदर्शितम् । नैवासौवेदसंहारंप्राणबाधउपस्थिते ॥ २७ ॥ नह्यस्यान्यतमंकिंचिदस्त्रंप्रत्यवकर्शनम् । जह्यस्त्रतेजउन्नद्धमस्त्रज्ञोह्यस्त्रतेजसा ॥ २८ ॥ सूतउवाच ॥ श्रुत्वाभगवताप्रोक्तंफाल्गुनःपरवीरहा । स्पृष्ट्वाऽपस्तंपरिक्रम्यब्राह्मंब्राह्मायसंदधे ॥ २९ ॥ संहत्याऽन्योऽन्यमुभयोस्तेजसीशरसंवृते आवृत्यरोदसीखंचववृधातेऽर्कवन्हिवत् ॥ ३० ॥ दृष्ट्वाऽस्त्रतेजस्तुतयोस्त्रींल्लोकान्प्रदहन्महत् । दह्यमानाःप्रजाःसर्वाः सांवर्तकममंसत ॥ ३१ ॥ प्रजोपप्लवमालक्ष्य लोकव्यतिकरंचतम् । मतंचवासुदेवस्य संजहाराऽर्जुनोद्वयम् ॥ ३२ ॥ ततआसाद्यतरसा दारुणंगौतमीसुतम् । बबन्धाऽमर्षताम्राक्षः पशुंरशनयायथा ॥ ३३ ॥ शिबिरायनिनीषन्तं दाम्नाबद्धारिपुंबलात् । प्राहार्जुनंप्रकुपितो भगवानम्बुजेक्षणः ॥ ॥ ३४ ॥ मैनंपार्थार्हसित्रातुं ब्रह्मबन्धुमिमंजहि । योऽसावनागसः सुप्तानवधीन्निशि बालकान् ॥ ३५ ॥ मत्तंप्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तंबालंस्त्रियंजडम् । प्रपन्नंविरथंभीतं नरिपुंहन्तिधर्मवित् ॥ ३६ ॥ स्वप्राणान्यःपरप्राणैः प्रपुष्णात्यघृणःखलः । तद्वधस्तस्यहिश्रेयो यद्दोषाद्यात्यधःपुमान् ॥ ३७ ॥ प्रतिश्रुतंचभवता पांचाल्यैशृण्वतोमम आहरिष्येशिरस्तस्य यस्तेमानिनिपुत्रहा ॥ ३८ ॥ तदसौवध्यतांपाप आततायात्मबन्धुहा । भर्तुश्चविप्रियंवीर कृतवान्कुलपांसनः ॥ ३९ ॥ एवंपरीक्षताधर्मं पार्थः कृष्णेनचोदितः । नैच्छद्धन्तुंगुरुसुतं यद्यप्यात्महनंमहान् ॥ ४० ॥ अथोपेत्यस्वशि-

---

आपका जन्महै ॥ २५ ॥ हेदेव देव ! यह परमदारुण तेज चारों ओरसे जलाता चला आताहै यह क्याहै और कहांसे आताहै मैं नहींजानता ॥ २६ ॥ श्रीभगवान बोले कि यहद्रोणपुत्र अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र है यद्यपि वह इस अस्त्रका पलटाना नहीं जानता तथापि प्राण संकट उपस्थित देखकर उसने चलादियाहै ॥ २७ ॥ इसका और कोई उपाय नहींहै इस बढ़े हुए ब्रह्मास्त्रके तेजको ब्रह्मास्त्रहीके तेजसे शांति कर ॥ २८ ॥ सूतजीबोले कि वीरोंका मारनेवाला अर्जुन श्रीभगवानके वाक्य सुनकर जलसे आचमन कर और श्रीकृष्णजीकी परिक्रमा कर ब्रह्मास्त्रके नाशके हेतु ब्रह्मास्त्रको धारण किया ॥ २९ ॥ वहदोनों परस्पर मिलकर वृद्धिको प्राप्तहुए और सूर्य्य व अग्निकीभांतिस्वर्ग पृथ्वी तथा आकाशको घेरकर बढ़नेलगे ॥ ३० ॥ उन दोनों सस्त्रोंका तेजमानो त्रिलोकीको भस्म किये डालताहै, ऐसे तेजको देखकर प्रजाको प्रलयाग्निका भ्रमहुआ ॥ ३१ ॥ प्रजा तथा सम्पूर्ण लोकका नाश और श्रीकृष्ण जीके मतको जानकर अर्जुनने दोनों अस्त्र उतारलिये ॥ ३२ ॥ इसके उपरांत निर्दयी द्रोणीके निकट जा क्रोध युक्त अर्जुनने पशुकी समान उसको रस्सीसे बांधलिया ॥ ३३ ॥ उसको बांधकर बल पूर्व्वक जब अपने डेरेकी ओर लेचले, तब कमलनेत्रवाले श्रीकृष्ण भगवानने अर्जुनसे कहा ॥ ३४ ॥ हेअर्जुन यह ब्राह्मणोंमें अधमहै इसने सोतेहुए बालकोंकोरात्रि में वध कियाहै इसकी रक्षा करनी अयोग्यहै ॥ ३५ ॥ कहाहै कि उन्मत्त, मत्त, सोतेहुए बालक स्त्री, जड़, शरणागत, विरथ, भयभीत रिपुको धर्मवेत्ता पुरुषनहींमारता ॥ ३६ ॥ जो निर्दयी दुष्ट पुरुषदूसरेके प्राणोंसे अपने प्राणोंका पोषण करताहै उसका बध उसीके कल्याणरूपहै क्योंकि वह मनुष्य उस अपराधसे नर्कमें नहीं पड़ता ॥ ३७ ॥ और तूने मेरे सामने द्रोपदीसे प्रतिज्ञाकीथी कि तेरे बालकोंके मारनेवाले शत्रुका सिर काटलाऊंगा ॥ ३८ ॥ इसी कारणसे इस पापी, आततायी बन्धुपुत्रके मारनेवाले, स्वामी के अप्रियको अवश्य मारना चाहिये ॥ ३९ ॥ इसभांति धर्म की परीक्षा करते हुए श्रीकृष्ण भगवानने अर्जुनसे बहुत प्रेरणाकी परन्तुपुत्रोंके मारनेवाले गुरुपुत्र

विरं गोविन्दप्रियसारथिः। न्यवेदयत्तंप्रियायै शोचन्त्याआत्मजान्हतान् ॥ ४१ ॥ तथाहृतंपशुवत्पाशबद्धमवाङ्मुखं कर्मजुगुप्सितेन। निरीक्ष्य कृष्णाऽपकृतंगुरोः सुतंवामस्वभावाकृपयाननामच ॥ ४२ ॥ उवाचचाऽसहन्त्यस्य बन्धनानयनंसती। मुच्यतांमुच्यतामेष ब्राह्मणोनितरांगुरुः ॥ ४३ ॥ सरहस्योधनुर्वेदःसविसर्गोपसंयमः। अस्त्रग्रामश्चभवता शिक्षितोयदनुग्रहात् ॥ ४४ ॥ सएवभगवान्द्रोणः प्रजारूपेणवर्तते। तस्याऽऽत्मनोऽर्धं पत्न्याऽऽस्ते नान्वगाद्वीरसूःकृपी ॥ ४५ ॥ तद्धर्मज्ञ महाभाग भवद्भिर्गौरवंकुलम्। वृजिनंनार्हतिप्राप्तुं पूज्यंवन्द्यमभीक्ष्णशः ॥ ४६ ॥ मारोदीदस्यजननी गौतमीपतिदेवता। यथाऽहंमृतवत्साऽऽर्तारोदिम्यश्रुमुखीमुहु ॥ ४७ ॥ यैःकोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैरकृतात्मभिः। तत्कुलंप्रदहत्याशु सानुबन्धं शुचाऽर्पितम ॥ ४८ ॥ सूत उवाच ॥ धर्म्यंन्याय्यंसकरुणं निर्व्यलीकंसमंमहत्। राजाधर्मसुतोराज्ञ्याः प्रत्यनन्दद्वचोद्विजाः ॥ ४९ ॥ नकुलःसहदेवश्च युयुधानोधनंजयः। भगवान्देवकी पुत्रो येचान्येयाश्चयोषितः ॥ ५० ॥ तत्राहाऽमर्षितोभीमस्तस्यश्रेयान्वधःस्मृतः। नभर्तुर्नात्मनश्चार्थे योऽहन्सुप्तांछिशून्वृथा ॥ ५१ ॥ निशम्यभीमगदितं द्रौपद्याश्चचतुर्भुजः। आलोक्यवदनं सख्युरिदमाहहसन्निव ॥५२॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मबन्धुर्नहन्तव्य आततायीवधार्हणः ॥ मयैवोभयमाम्नातं परिपाह्यनुशासनम ॥५३॥ कुरुप्रतिश्रुतंसत्यं यत्तत्सान्त्वयताप्रियाम्। प्रियंच भीमसेनस्य पांचाल्यामह्यमेवच ॥ ५४ ॥ सूत उवाच ॥ अर्जुनःसहसाऽज्ञाय हरेर्हार्द

अश्वत्थामाके मारनेकी इच्छा अर्जुनने न की—बड़े बड़प्पनही विचारतेहैं ॥ ४० ॥ श्रीगोविन्द भगवान जिसके प्रिय सारथीहैं ऐसे अर्जुनने डेरमें आकर द्रोपदीको अश्वत्थामा देदिया ॥ ४१ ॥ अपमान पूर्वक लाये हुए, पशुकी भांति रस्सीसे बंधे हुए, निंदित कर्मसे नीचा मुख किये अश्वत्थामाको देखकर स्त्री स्वभावसे दयापूर्वक मस्तकको नीचेकर द्रौपदीने प्रणाम किया ॥४२॥ सती ने कहा कि यह अपनेबन्धनका महननहीं करसकता छोंडदोछोड़दो यह ब्राह्मणहै और हमारेपूज्य गुरूका पुत्रहै ॥ ४२ ॥ जिसकी कृपासे रहस्यवाला धनुर्वेद और अस्त्रोंका प्रयोग तथा उपसंहार सीखाहै ॥ ४४ ॥ यह भगवान द्रोणाचार्यही साक्षात् पुत्ररूप करिके स्थितहै—इसकी आत्माके लिये द्रोणाचार्यकी अर्द्धांगा स्त्री कृपी सतीनहीहुई ॥ ४५ ॥ इसी कारणसे हेधर्मज्ञ हेमहाभाग ! गुरुवंश को दुखदेना योग्य नहीं है किन्तु यह कुल निरंतर ही पूजने और दंडवत करने योग्य है ॥ ४६ ॥ इसकी माता पतिव्रता गौतमी जैसे मैंने पुत्रशोक से अश्रुपात किये है न करे ॥ ४७ ॥ जो अजितेन्द्रिय राजालोग ब्रह्मकुल को कुपित करते है वह शीघ्र सपरिवार भस्महोजाते है ॥ ४८ ॥ सूतजी ने कहा कि द्रौपदीके धर्म्म युक्त "छोड़ो छोडो" न्याययुक्त,, रहस्य सहित धनुर्वेद सीखा,, करुणा युक्त,, द्रोणाचार्य की पत्नी अर्द्धांगी सती न हुई,, निर्व्यलीक, निष्कपट वाक्यकहे—हेब्राह्मणो ! धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने उसकी बड़ी बड़ाईकी ॥४९॥ नकुल, हसदेव, युयुधान, धनजय, श्रीकृष्ण तथा और सब स्त्रियाने द्रौपदी की बड़ाई की ॥ ५० ॥ उस समय भीमसेन ने कुपित होकर कहा कि इसका तो मारना ही योग्य है क्योंकि इसने न अपने स्वार्थ के अर्थ न स्वामी के अर्थ वृथाही सोते हुये बालकों का वधकिया ॥ ५१ ॥ श्रीकृष्ण भगवान द्रौपदी और भीमसेन का कहना सुन अर्जुन के मुख की ओर देख हंसते हंसते यह बोले ॥ ५२ ॥ श्रीभगवान बोले—कि—यह ब्राह्मण है इससे मारने योग्य नही है और यह आततायी बालकोंका मारने वाला है इससे मारने योग्य है यह मेरी दोनो आज्ञाएं हैं इनका पालन करो ॥ ५३ ॥ और हे अर्जुन जो तूने द्रौपदी की शांति के लिये

मथासिना । मणिजहारमूर्धन्यं द्विजस्य सहमूर्द्धजम् ॥ ५५ ॥ विमुच्यरसनाबद्धं बालहत्याहतप्रभम् । तेजसामणिनाहीनं शिबिरान्निरयापयत् ॥५६ ॥ वपनंद्रविणादानंस्थानान्निर्यापणं तथा । एषहिब्रह्मबन्धूनां वधोनान्योऽस्तिदैहिकः ॥ ५७ ॥ पुत्रशोकातुराः सर्वे पाण्डवाः सहकृष्णया । स्वानांमृतानां यत्कृत्यं चक्रुर्निर्हरणादिकम् ॥ ५८ ॥

इतिश्रीमद्भा०प्रथम०द्रौणिनिग्रहोनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सूत उवाच ॥ अथतेसंपरेतानां स्वानामुदकमिच्छताम् । दातुंसकृष्णागङ्गायां पुरस्कृत्यययुःस्त्रियः ॥ १ ॥ तेनिनीयोदकंसर्वे विलप्यचभृशंपुनः । आप्लुताहरिपादाब्जरजःपूतसरिज्जले ॥ २ ॥ तत्रासीनं कुरुपतिं धृतराष्ट्रंसहानुजम् । गान्धारींपुत्रशोकार्तां पृथांकृष्णांचमाधवः ॥ ३ ॥ सान्त्वयामास मुनिभिर्हतबन्धूञ्छुचार्पितान् । भूतेषुकालस्यगतिं दर्शयन्नप्रतिक्रियाम् ॥ ४ ॥ साधयित्वाऽजातशत्रोः स्वंराज्यं कितवैर्हृतम् । घातयित्वाऽसतोराज्ञः कचस्पर्शक्षतायुषः ॥ ५ ॥ याजयित्वाश्वमेधैस्तं त्रिभिरुत्तमकल्पकैः । तद्यशःपावनंदिक्षु शतमन्योरिवातनोत् ॥ ६ ॥ आमन्त्र्यपाण्डुपुत्रांश्च शैनेयोद्धवसंयुतः । द्वैपायनादिभिर्विप्रैःपूजितैःप्रतिपूजितः ॥ ७ ॥ गन्तुंकृतमतिर्ब्रह्मन्द्वारकां रथमास्थितः । उपलेभेऽभिधावन्तीमुत्तरां भयविह्वलाम् ॥ ८ ॥ पाहिपाहिमहायोगिन्देवदेव जगत्पते । नान्यंत्वदभयंपश्ये यत्रमृत्युः परस्परम् ॥ ९ ॥ अभिद्रवतिमामीश शरस्तप्तायसोविभो । कामंदहतुमांनाथ मा

प्रतिज्ञा की है उसे सत्य कर तथा भीमसेन, द्रोपदी और मेराभी कहना कर ॥ ५४ ॥ सूत जीने कहा कि अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी का अभिप्राय समझकर खड्ग हाथमें ले अश्वत्थामा के सिरकी मणि को केशों सहित हरण किया ॥ ५५ ॥ बाल हत्यासे कांति हीन, तेज व मणिसे हीन डोरीसे बंधे हुए अश्वत्थामा को डेरेसे बाहर निकाल दिया ॥ ५६ ॥ ब्राह्मणों के हेतु, वधके पलटे यहीदंड शिर मुड़ादेना, धनलेकेना, तथा स्थान से निकालदेना है किंतुदेह सम्बंधी और कोई दंड नहीं है ॥ ५७ ॥ पुत्रोंके शोकसे कातर पांडवों ने द्रोपदीको साथले अपने मरेहुए बंधुओंका दाहआदि कर्म किया ॥५८॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेप्रथमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सूतजी बोले । इसके अनंतर मरेहुए बंधुओं को जलदेनेके हेतु पांडव,कृष्ण,द्रोपदी तथा सब स्त्रियों सहित गंगा जी के तटपर गये ॥ १ ॥ वह सब जल देकर बड़ा विलाप करने लगे फिर गंगा जी में स्नानकिया ॥२॥वहां युधिष्ठिर भीमादि भाइयों सहित कुरूपति धृतराष्ट्र पुत्रशोकसे आर्त गांधारी, कुंती, द्रोपदी तथा श्रीकृष्ण जी ॥३॥ व जिनके कुटुम्बी मरगये हैं ऐसे शोकार्त सब मनुष्यों को श्री भगवान ने काल की गति प्राणियों के भीतर दिखाकर समाधान किया ॥ ४॥ जिन दुर्योधनादिक धूर्त्त लोगोंने महाराज युधिष्ठिर का राज्य हरलिया था तथा उनदुष्ट राजाओं को कि जिनकी आयु द्रोपदीके केश छूनेसे क्षीण होगई थी वध कराकर पीछे युधिष्ठिर का राज्य स्थापित किया ॥ ५ ॥ फिर उनसे तीन अश्वमेध यज्ञ कराकर इन्द्रकी कीर्ति के समान दिशाओं में उनके यशका विस्तार कराया ॥ ६ ॥ श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिरादि से आज्ञा मांग सात्यकी और ऊधोको साथले व्यास जी आदि ऋषियों की आपने पूजाकी और भीष्मादिक ने भी पूजाकी ॥७॥ हेब्रह्मन् ! जिससमय श्रीभगवान द्वारिका जानेका विचार कर रथमें बैठे उसी समय भयसे विह्वल उतरा रथके सन्मुख खड़ी होकर यह बोली ॥८॥ हे महायोगी ! हे देव देव ! हे जगत्पते मेरी रक्षाकरो इस मृत्युलोकमें आप विनाकोई अभय दान नहीं देसकता ॥ ९ ॥ हेईश ! तपाहुआ बाण मेरे सन्मुख दौड़ा चलाआता है

मेगर्भोविपात्यताम् ॥ १० ॥ सूतउवाच ।। उपधार्यवचस्तस्या भगवान्भक्तवत्सलः । अपाण्डवमिदंकर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ॥ ११ ॥ तर्ह्येवाथऽमुनिश्रेष्ठ पाण्डवाःपंचसायकान् । आत्मनोऽभिमुखान्दीप्तानालक्ष्यास्त्राण्युपाददुः ॥ १२ ॥ व्यसनंवीक्ष्य तत्तेषामनन्यविषयात्मनाम् । सुदर्शनेनस्वास्त्रेण स्वानांरक्षांव्यधाद्विभुः ॥ १३ ॥ अन्तःस्थःसर्वभूतानामात्मा योगेश्वरोहरिः । स्वमाययाऽवृणोद्गर्भं वैराट्याःकुरुतन्तवे ॥ १४ ॥ यद्यप्यस्त्रंब्रह्मशिरस्त्वमोघं चाप्रतिक्रियम् । वैष्णवंतेजआसाद्य समशाम्यद्भृगूद्वह ॥१५ ॥ मामंस्थाह्येतदाश्चर्यं सर्वाश्चर्यमयेऽच्युते । यइदंमाययादेव्या सृजत्यवतिहन्त्यजः ॥ १६ ॥ ब्रह्मतेजोविनिर्मुक्तैरात्मजैःसहकृष्णया । प्रयाणाभिमुखंकृष्ण मिदमाहपृथासती ॥ १७ ॥ कुन्त्युवाच ॥ नमस्येपुरुषं त्वाऽऽद्यमीश्वरं प्रकृतेःपरम् । अलक्ष्यंसर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम् ॥ १८ ॥ मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाधोक्षजमव्ययम् । नलक्ष्यसेमूढदृशा नटोनाट्यधरोयथा ॥ १९ ॥ तथापरमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् । भक्तियोगविधानार्थं कथंपश्येमहिस्त्रियः ॥ २० ॥ कृष्णायवासुदेवाय देवकीनन्दनायच । नन्दगोपकुमाराय गोविन्दायनमोनमः ॥ २१ नमःपंकजनाभाय नमःपंकजमालिने । नमःपंकजनेत्राय नमस्तेपंकजांघ्रये ॥ २२ ॥ यथाहृषीकेशखलेन देवकीकंसेनरुद्धाऽतिचिरंशुचार्पिता । विमोचिताऽहंच सहात्मजाविभोत्वयैव नाथेनमुहुर्विपद्गणात् ॥२३ ॥ विषान्महाग्नेःपुरुषाददर्शनादसत्सभायावनवासकृच्छ्रतः । मृधेमृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चास्मिहरेऽभिर-

---

हे नाथ ! चाहे मुझे भस्मकर देवे परन्तु मेरागर्भ नष्ट न हो ॥१०॥ सूत जी कहने लगे—किभक्त वत्सल भगवान उत्तरा के यह वाक्य सुनकर पांडवोका विनाश करनेके लिये अश्वत्थामा के अस्त्रको जानलिया ॥११॥ इसके उपरांत हे मुनिश्रेष्ठ ! पांडवों ने अपने सन्मुख पांच ब्रह्मास्त्रों को आतेदेख अपने २ अस्त्र ग्रहण किये ॥ १२ ॥ कृष्ण ही जिनके आत्मा है ऐसे पांडवो का दुःख देखकर श्री भगवान ने अपने सुदर्शन चक्रसे भक्तोंकी रक्षाकी ॥ १३ ॥ सबके अंतर्यामी श्रीयोगेश्वर भगवान ने अपनी माया से उत्तरा के भीतर प्रवेश कर कुरुवंश की रक्षाकी ॥ १४॥ हे शौनक वह ब्रह्मास्त्र तो अमोघथा परन्तु श्रीकृष्ण भगवानके चक्रका तेज देखकर शांतहोगया॥ १५॥ जोसम्पूर्ण संसार को अपनी मायाके बलसे सृजता, पालन करता तथा संहारता है ऐसे आश्चर्य मय श्रीकृष्ण की लीलामें यह आश्चर्य्य मत मानो ॥ १६ ॥ ब्रह्मास्त्र से छूटेहुए पुत्र, तथा द्रौपदी सहित कुंतीने श्रीकृष्ण जी से कहा ॥ १७ ॥ कुंतीबोली॥ पुरुष परमात्मा, ईश्वर, मायासे परे, अलक्ष्य, सम्पूर्ण प्राणियों के भीतर और बाहर परिपूर्ण व्याप्त आपको मैं प्रणाम करती हूं ॥ १८॥ मायारूपी परदे से ढकेहुए, जिन से इन्द्रिय उत्पत्ति ज्ञान नीचा है ऐसे, नाश राहित, आपको मैं प्रणाम करती हूं जैसे स्वांगधारी नट नहीं पहिचाना जाता वैसे ही मूढ़ दृष्टि पुरुष आपको नहीं पहिचान सकते ॥ १९ ॥इतना ही नहीं किंतु परमहंस, निर्मलात्मा, मननशील पुरुष भी आपकी महिमाको नहीं जानसकते फिरहम स्त्रियां कैसे जानसकें ॥ २० ॥ हे कृष्ण, वासुदेव, देवकी नंदन, नदगोप कुमार, गोविंद आपको प्रणाम है ॥ २१ ॥ कमल नाभ, कमल की माला धारण करने वाले कमल से नेत्र तथा कमल से चरण वाले आपको वारंवार नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे हृषीकेश ! जैसे देवकी को कंसने कैद किया तो बहुत काल से शोकातुर देवकी की आपने एक ही वाररक्षा की परतु मेरीतो हे नाथ ! विपत्तियों से पुत्रों सहित कईवार रक्षाकी है ॥ २३ ॥ भीमसेन के विषदेने, लाक्षा भवन में आग लगाने, हिडंब राक्षस, दुश्शासनादिक की सभा, वनवासके दुःख संग्राम मे अनेक महारथियों के अस्त्रों, और अश्वत्थामा

क्षिताः ॥ २४ ॥ विपदःसन्तुनःशश्वत्तत्रतत्रजगद्गुरो । भवतोदर्शनंयत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥ २५ जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदःपुमान् । नैवार्हत्यभिधातुंवै त्वामकिंचनगोचरम् ॥ २६ ॥ नमोऽकिंचनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये । आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतयेनमः ॥२७॥ मन्येत्वांकालमीशानमनादिनिधनंविभुम् ॥ समंचरन्तंसर्वत्र भूतानांयन्मिथःकलिः ॥२८॥नवेदकश्चिद्भगवंश्चिकीर्षितं तवेहमानस्य नृणांविडम्बनम् । नयस्यकश्चिद्दयितोऽस्तिकर्हिचिद् द्वेष्यश्चयस्मिन्विषमामतिर्नृणाम्॥२९॥जन्मकर्मचविश्वात्मन्नजस्याकर्तुरात्मनः॥ तिर्यङ्नृषिषु यादःसुतदत्यन्तविडम्बनम्॥ ३० ॥ गोप्याऽऽददेत्वयिकृतागसिदामतावद्यातेदशाऽश्रुकलिलांजनसंभ्रमाक्षम् । वक्त्रंनिनीयभयभावनया स्थितस्यसामांविमोहयतिभीरपियद्बिभेति केचिदाहुरजंजातं पुण्यश्लोकस्यकीर्तये । यदोःप्रियस्याऽन्ववायेमलयस्येवचंदनम् ॥ ३२ ॥ अपरेवसुदेवस्य देवक्यांयाचितोऽभ्यगात् । अजस्त्वमस्यक्षेमाय वधाय चसुरद्विषाम् ॥ ३३ ॥भारावतरणायाऽन्येभुवोनावइवोदधौ । सीदन्त्याभूरिभारेण जातोह्यात्मभुवाऽर्थितः ॥ ३४ ॥भवेस्मिन्क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः। श्रवणस्मरणार्हाणिकरिष्यन्नितिकेचन ॥ ३५ ॥शृण्वन्तिगायन्तिगृणन्त्यभीक्ष्णशःस्मरंति

के ब्रह्मास्त्र से आपने रक्षाकी है ॥ २४ ॥ हे स्वामी हमको समय २ पर विपत्ति हुआकरैं क्योंकि मोक्षका देने वाला आपका दर्शन उसी हेतु होता है ॥ २५ ॥ श्रेष्ठ कुलमें जन्म, ऐश्वर्य्य, लक्ष्मी से जिसका मद बढ़रहा है और इनमें जो पुरुष व्याप्त है वह आपका नाम लेनेमें भी समर्थ नहीं होता ॥ २६ ॥ अकिंचन भक्त ही तुम्हारेद्रव्य हैं तुमको नमस्कार है धर्म, अर्थ, कामरूपविषय जिनमें नहीं हैं ऐसे आत्मा राम, मोक्षपति आपको प्रणाम है ॥२७॥ आपको मैं आदि अंतरहित, काल, परमेश्वर, सर्व ठौरमें एक भावसे विचरने वाले मानती हूं, प्राणियोंमें जो आपस में दुःख होता है उसमें आपही कारण हो ॥२८॥ हे भगवान ! तुम्हारे कर्तव्य को कोई नहीं जानता आप किसी के न तो प्रिय है न अप्रिय, तोभी मनुष्य को यह बुद्धिहोती है कि आपदंड देने वाले और दया करने वाले हैं ॥ २९ ॥ हे विश्वात्मन् ! आप अजन्मा हैं परन्तु पशुआदि, मनुष्य, ऋषियों, जल चरोंमें आप जन्म लेतेहो और अकर्त्ता होकर कर्म करते हो यह बड़ा आश्चर्य है ॥३०॥ आपने दहीका वर्तन फोड़डाला यह अपराध किया इससे यसोदा जीने हाथमें वेत व रस्सी लीनी जिससे अंजन वाले और भयसे व्याकुल नेत्रवाले मुखको नीचाकर अश्रुपात करते हुएभयसे जो आपकी दशाहुई वह दशा मुझको मोह उत्पादन करती है–कारण कि आपसे तो काल भी भयभीत रहता है ॥ ३१ ॥ कितने एक कहते हैं कि राजायुधिष्ठिर की कीर्ति के लिये अथवा यदुराजा की कीर्तिके लिये यदुवंश में जैसे मलयाचल की कीर्ति के लिये चन्दन उत्पन्न होता है अजन्मा होकर भी आपने जन्मलिया ॥ ३२ ॥ कितने एक कहते हैं कि वसुदेवजी की स्त्री देवकी के पूर्व जन्म के तपसे और राक्षसों के वधके लिये इस सृष्टिके कल्याण के अर्थ अजन्मा होकर भी आपने जन्म लिया ॥ ३३ ॥ कोई कहते है कि समुद्र में जहाज की भांति, अति बोझसे दुःखित भूमिका भार उतारने के लिये ब्रह्मा जी के विनय करने से आपका जन्म हुआ ॥ ३४ ॥ कोई कहते हैं कि इस सृष्टिमें अज्ञानरूप अविद्या से प्राप्तहुई कामना और कामना से प्राप्तहुए कर्म उनसे दुःख पातेहुए मनुष्यों के अज्ञान को दूर करने के हेतु श्रुतिस्मृति के योग्य कर्म करने को प्रगट हुएहो ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य आप की लीलाको बारंबार सुनेंगे, स्मरणकरेंगे, और कीर्तन करेंगे, तथा दूसरे जो मनुष्य गानबड़ाई आदि करते हैं उनकी प्रशंसा करेगे वह थोड़े ही कालमें भवसागर से पार होकर आपके कमल स्वरूपी

नेदं तिनथोहितंजनाः । तवपदयम्यचिरेणतावकं भवप्रवाहोपरमंपदांबुजम् ॥३६॥ अप्यद्यनस्त्वंस्वकृतेहितप्रभोजिहाससिस्वित्सुहृदोऽनुजीविनः । येषांनचान्यद्भव तःपदाम्बुजात्परायणं राजसुयोजितांहसाम् ॥ ३७ ॥ केवयंनामरूपाभ्यांयदुभिः सहपाण्डवाः। भवतोऽदर्शनंयर्हिहृषीकाणामिवेशितुः ॥ ३८ ॥ नेयंशोभिष्यतेतत्र यथेदानींगदाधर । त्वत्पदैरंकितामाति स्वलक्षणविलक्षितैः ॥ ३९ ॥ इमेजनपदाः स्वृद्धाः सुपक्वौषधिवीरुधः । वनाद्रिनद्युदन्वन्तो ह्येधन्तेतववीक्षितैः ॥४०॥ अथ विश्वेशविश्वात्मन्विश्वमूर्तेस्वकेषुमे। स्नेहपाशमिमंछिन्धि दृढंपाण्डुषुवृष्णिषु४१ त्वयिमेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् । रतिमुद्वहतादद्धा गंगेवौघमुदन्वति४२ श्रीकृष्णकृष्णसखवृष्ण्यृषभाऽवनिध्रुग्राजन्यवंशदहनाऽनपवर्गवीर्य । गोविन्दगो- द्विजसुरार्तिहरावतार योगेश्वराऽखिलगुरोभगवन्नमस्ते ॥ ४३ ॥ सूतउवाच ॥ पृथयेत्थंकलपदैः परिणूताखिलोदयः । मन्दंजहासवैकुण्ठो मोहयन्निवमायया ४४ तांबाढमित्युपामन्त्र्य प्रविश्यगजसाह्वयम् । स्त्रियश्चस्वपुरंयास्यन्प्रेम्णाराज्ञानिवा रितः ॥ ४५ ॥ व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञैः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा । प्रबोधितोऽपीतिहासैर्ना- ऽबुध्यतशुचार्पितः ॥ ४६ ॥ आहराजाधर्मसुताश्चिन्तयन्सुहृदांवधम् ।प्राकृतेनात्मना विप्राः स्नेहमोहवशंगतः ॥ ४७ ॥ अहोमेपश्यताज्ञानं हृदिरूढंदुरात्मनः । पारक्य- स्यैवदेहस्य बह्व्योमेऽक्षौहिणीर्हताः ॥४८॥ बालद्विजसुहृन्मित्रपितृभ्रातृगुरुद्रुहः ।

चरण देखेंगे ॥ ३६ ॥ हेप्रभु भक्तो को वांछित फल देनेवाले जिनको, आपके चरणों के अतिरिक्त दूसरा कुछभी आश्रय नहीं है और राजाओं को क्लेश पंहुचाने के कारण उनसे शत्रुता होगई है, ऐसे हम अनुजीविसुहृदों को आप त्यागना चाहते हैं ॥ ३७ ॥ जैसे जीवके चलेजाने से नामरूप आदि सब तुच्छ हैं, वैसेहीं आपके दर्शन न होने से यादव सहित पांडव कोई वस्तु नहीं हैं ॥ ३८ ॥ हे गदाधर ! आपके वज्रध्वज आदि लक्षणों युक्त चरणों से अंकित यह पृथ्वी जैसी अभी शोभादेती है वैसी आपके जाने के उपरात शोभा न देगी ॥३९॥ अच्छी प्रकार से पकेहुए अन्न, लताएं, देश, पहाड़, वन, नदियां और समुद्र यह सब आपकी दृष्टि से बढरहे हैं ॥४०॥ हे विश्वेश! हे विश्वात्मान! हे विश्वमूर्ति पांडवों और यादवों में जो स्नेहका बड़ादृढ़ वन्धन पड़ाहुआ है उसे काटो ॥ ४१ ॥ हे मधुपति ! मेरीबुद्धि विघ्नोंको न गिनकर आपके विषे ऐसी अखंडित प्रीतिकरे जैसे गंगा बांधको न गिनकर समुद्र में जामिलती है ॥ ४२ ॥ हे श्रीकृष्ण ! हे अर्जुन के सखा ! हे यादवों में श्रेष्ठ ! हेभूमि द्रोही राजवंश के अग्नि ! हेमोक्ष देनेवाले ! हे गोविंद ! हे गौ ब्रह्मणों तथा देवताओं के क्लेश दूर करने के लिये अवतार धारण करनें वाले । हे योगेश्वर! हे अखिलगुरु ! हे भगवन् ! तुमको नमस्कार है ॥४३॥ सूतजी कहने लगे कि कुंतीने जब श्रेष्ठ पदोसे भगवान की सम्पूर्ण महिमा का वर्णन किया, तब श्रीभगवान निजमाया से मोहित हो मंद २ मुसकान से हंसे ॥ ४४ ॥ ऐसाही करेंगे इस प्रकार कुंती से कह उसका कहना स्वीकार कर जहांरथ खड़ा था वहांसे हस्तिनापुर में पधार सूभद्राआदिक स्त्रियों से आज्ञाले द्वारिकाको जामेलगे इतनेमें राजा युधिष्ठिरने प्रेमके वशीभूत होकर कहा कि अभीकुछ काल और ठहरिये ऐसा कहकर उन्हे जाने से रोक लिया ॥४५॥ ईश्वर की चेष्टा के जानने वाले श्रीव्यास जी आदि ऋषियों ने तथा अद्भुत कर्म करने वाले श्रीकृष्ण भगवान ने भी इतिहास कह २ कर राजाको बहुत समझाया परन्तु उनको वोध न हुआ ॥ ४६ ॥ हे ब्रह्मन् ! राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों के बधका ध्यान करता, और स्नेह व मोहके वशही व्याकुल चित्तसे कहने लगा ॥ ४७ ॥ कि अहोमुझ दुरात्मा के भीतर घुसेहुये अज्ञान को देखो कि अन्य

नमेस्यान्निरयान्मोक्षोह्यपिवर्षायुतायुतैः ॥ ४९ ॥ नैनोराज्ञःप्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धेवधो द्विषाम्। इतिमेनतुबोधाय कल्पतेशासनंवचः ॥ ५० ॥ स्त्रीणांमद्धतबन्धूनांद्रोहो योऽसाविहोत्थितः। कर्मभिर्गृहमेधीयैर्नाहंकल्पोव्यपोहितुम् ॥ ५१ ॥ यथा पंकेनपंकाम्भःसुरयावासुराकृतम्। भूतहत्यांतथैवैकांनयज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ॥ ५२ ॥

इतिश्रीमद्भा० म० प्र० अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

सूतउवाच ॥ इतिभीतःप्रजाद्रोहात्सर्वधर्मविविस्तया। ततोविनशनंप्रागाद्यत्रदेवव्रतोऽपतत् ॥ १ ॥ तदातेभ्रातरःसर्वे सदश्वैःस्वर्णभूषितैः। अन्वगच्छन्रथैर्विप्राव्यासधौम्यादयस्तथा ॥ २ ॥ भगवानापिविप्रर्षे रथेनसधनंजयः ॥ सतैर्व्यरोचत नृपः कुबेरइवगुह्यकैः ॥ ३ ॥ दृष्ट्वानिपतितंभूमौ दिवश्च्युतमिवामरम्। प्रणेमुः पाण्डवाभीष्मं सानुगाःसहचक्रिणा ॥ ४ ॥ तत्रब्रह्मर्षयःसर्वे देवर्षयश्चसत्तम। राजर्षयश्चतत्रासन्द्रष्टुंभरतपुङ्गवम् ॥ ५ ॥ पर्वतोनारदोधौम्यो भगवान्बादरायणः। बृहदश्वोभरद्वाजः सशिष्योरेणुकासुतः ॥ ६ ॥ वसिष्ठइन्द्रप्रमदस्त्रितोगृत्समदोऽसितः। कक्षीवान्गौतमोऽत्रिश्च कौशिकोऽथसुदर्शनः ॥ ७ ॥ अन्येचबहवोब्रह्मन्ब्रह्मरातादयोऽमलाः। शिष्यैरुपेताआजग्मुः कश्यपाङ्गिरसादयः ॥ ८ ॥ तान्समेतान्महाभागानुपलभ्यवसूत्तमः। पूजयामासधर्मज्ञो देशकालविभागवित् ॥९॥ कृष्णंचतत्प्रभावज्ञ आसीनंजगदीश्वरम्। हृदिस्थंपूजयामासमाययोपात्तविग्रहम् १०

शरीर के हेतु मैंने बहुतसी अक्षौहिणियों का नाश किया ॥ ४८ ॥ बालक, ब्राह्मण, सुहृद, कुटुंबके, मित्र, काका, भ्राता, गुरू इनसे मैंने द्रोह किया—मैं लक्षों वर्षोंतक भी नरकसे छुटकारा न पाऊंगा ॥ ४९ ॥ अपनी प्रजाका दूसरे से पराभव होता हो तब उसका वध करना चाहिये किंतु दुर्योधन तो प्रजाकी रक्षा करताथा सो मैंने लोभके वशहोकर उसे मारा इससे यह पापरूप है ॥ ५० ॥ ऐसी स्त्रियों का द्रोह जिनके पतियों का मैंने वध किया है उसे मैं ग्रहस्थाश्रम संबंधी कार्य्यों से नहीं मिटासक्ता ॥ ५१ ॥ जैसे कीचसे सनावस्त्र कीचसे स्वच्छ नहीं होता और मद्यसे अपवित्र वस्तु मद्यसे शुद्ध नहीं होती ऐसेही जान बूझकर की हुई हिंसा यज्ञों से नहीं मिटसकती ॥ ५२ ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेसरलाभाषाटीकायांप्रथमस्कंधेऽष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥

सूतजी बोले। कि इसप्रकार प्रजाके द्रोहसे डरकर सब धर्मजाननेकी इच्छासे राजा युधिष्ठिर कुरुक्षेत्र में जहां भीष्मजी पड़ेथे वहां गये ॥ १ ॥ उसीसमय और सबभ्राता व्यास और धौम्य आदिको लेकर सोनेसेजड़ेहुये उत्तमघोड़ोंवाले रथमेंबैठकर उनके पीछे २ चले ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन्। भगवान् श्रीकृष्णजीभी अर्जुनको साथलेकर उनके पीछे होलिये उससमय जैसे कुबेर यक्षोंकेसंग शोभादेता है वैसेहीं राजाभी शोभाको प्राप्तहुये ॥ ३ ॥ पृथ्वीपर पड़ेहुए भीष्मजीको मानो स्वर्ग से देवता च्युतहुआ हो देख अनुचर तथा श्रीकृष्ण भगवानने पांडवों समेत प्रणाम किया ॥ ४ ॥ उससमय भारत वंशियों में श्रेष्ठ श्रीभीष्मजीको देखने के लिये ब्रह्मर्षि, देवर्षि, तथा राजर्षि आये ॥ ५ ॥ पर्वतमुनि, नारदजी, धौम्य, श्रीव्यासजी, बृहदश्व, भरद्वाज, शिष्यों सहित श्रीपरशुराम जी आये ॥ ६ ॥ तथा वशिष्ठ, त्रित, इन्द्रप्रमद, असित कक्षीवान, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, और सुदर्शन आये ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् और भी मुनि शुकदेव, कश्यप, अंगिरा, आदिऋषि शिष्योंसमेत आये ॥ ८ ॥ धर्म वेत्ता, देशकाल के बिभाग को जाननेवाले श्रीभीष्मजी ने उन महाभाग ऋषियों तथा महात्माओं का सत्कार किया ॥ ९ ॥ माया करके जिन्होंने विग्रह स्वरूप धारण किया है तथा सबके प्रभावको जानने वाले श्री कृष्ण भगवान का ध्यान करके सबकी पूजा की ॥ १० ॥

पाण्डुपुत्रानुपासीनान् प्रश्रयप्रेमसंगतान् । अभ्याचष्टाऽनुरागास्रै रन्धीभूतेन चक्षुषा ॥ ११ ॥ अहोकष्टमहोऽन्याय्यं यद्यूयंधर्मनन्दनाः । जीवितुंनार्हथक्लिष्टं विप्रधर्माच्युताश्रयाः ॥१२॥ संस्थितेऽतिरथेपाण्डौ पृथाबालप्रजावधूः। युष्मत्कृते बहून्क्लेशान्प्राप्तातोकवतीमुहुः॥१३॥सर्वकालकृतंमन्ये भवतांचयदप्रियम् । सकालो यद्वशेलोको वायोरिवघनावलिः ॥ १४ ॥ यत्रधर्मसुतोराजा गदापाणिर्वृकोदरः । कृष्णोऽस्त्रीगाण्डिवंचापं सुहृत्कृष्णस्ततोविपत् ॥ १५ ॥ नह्यस्यकर्हिचिद्राजन्पुमान्वेदविधित्सितम् । यद्विजिज्ञासयायुक्ता मुह्यन्तिकवयोऽपिहि ॥ १६ ॥ तस्मादिदंदैवतन्त्रं व्यवस्यभरतर्षभ। तस्यानुविहितोऽनाथा नाथपाहिप्रजाःप्रभो॥१७॥ एषवैभगवान्साक्षादाद्योनारायणःपुमान् । मोहयन्मायया लोकं गूढश्चरतिवृष्णिषु ॥ १८ ॥ अस्यानुभावंभगवान्वेदगुह्यतमंशिवः । देवर्षिर्नारदःसाक्षाद्भगवान्कपिलोनृप ॥ १९ ॥ यंमन्यसेमातुलेयं प्रियंमित्रंसुहृत्तमम् । अकरोःसचिवंदूतं सौहृदादथसारथिम् ॥ २० ॥ सर्वात्मनःसमदृशो ह्यद्वयस्यानहंकृतेः । तत्कृतंमतिवैषम्यं निरवद्यस्यनक्वचित् ॥ २१ ॥ तथाप्येकान्तभक्तेषु पश्यभूपानुकम्पितम् । यन्मेऽसूंस्त्यजतःसाक्षात्कृष्णोदर्शनमागतः ॥ २२ ॥ भक्त्याऽऽवेश्यमनोयस्मिन्वाचा यन्नामकीर्तयन् । त्यजन्कलेवरंयोगीमुच्यतेकामकर्मभिः॥ २३॥ सदेवदेवोभगवान्प्रतीक्षतां कलेवरंयावदिदंहिनोम्यहम् । प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लसन्मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः ॥ २४ ॥ सूतउवाच ॥ युधिष्ठिरस्तदाकर्ण्यशयानंशरपञ्जरे ।

विनय तथा प्रेमसे परिपूर्ण निकट बैठेहुए पांडवों को प्रेमाश्रु के कारण अंधे होतेहुए देखकर पूछा कि ॥ ११ हे पांडवो ! तुमपर कि जिनके ब्राह्मण और धर्म तथा परमेश्वर का आश्रय है यह बड़ा अन्याय है हे धर्मनंदन तुमक्लेश पाकर जीनेके योग्य नहीं हो ॥ १२ ॥ महारथी राजा पाण्डुके मर जानेसे छोटेबच्चों वाली बिचारी कुंतीने तुम्हारे लियेबड़े क्लेश पाये हैं ॥१३॥ जैसे मेघ हवा के वशीभूत हैं ऐसेही सबलोक पाल कालके वशीभूत हैं यह उसीकाल का कृत्य है कि मैं तुम से अप्रिय हुआ और तुमको दुःखहुआ ॥ १४ ॥ यदिऐसा न होतो जहांधर्म सुतराजा युधिष्ठिर, गदाधारी भीम गांडीव धनुष के धारण करने वाले अर्जुन और श्रीकृष्ण से सखावहां दुःख क्यों हो ॥१५॥ हेराजा! श्रीकृष्ण भगवान के कर्म्मों को कोई नहीं जानता उसके कर्म्मों के जानने की इच्छा कविलोग भी करते हैं परन्तु वह भी मोह को प्राप्त होजाते हैं ॥ १६ ॥ हे भरत वंशियों में श्रेष्ठ इस संसार को ईश्वर के आधीन जानकर ईश्वर हीका अनुसरण करो हेनाथ ! हे श्रीकृष्ण जी ! इस अनाथ प्रजा की रक्षाकरो ॥ १७ ॥ यह श्रीकृष्ण आदि पुरुष साक्षात् नारायण हैं अपनी माया से सृष्टिको मोहित करते और यादवों में गुप्तभाव से विचरते हैं ॥१८॥ हे राजा इनके कर्म्मोंको भगवान शिव, देवर्षि नारद, साक्षात् भगवान कपिल जी जानते हैं ॥ १९ ॥ जिसेतुम मामाका पुत्र, प्रिय मित्र, सुहृद मानते हो और अपना मंत्री, सारथी तथा सखा भी मानते हो ॥ २० ॥ उस, सर्वात्मा, समदर्शी, अद्वय, अहंकार रहित, समभाव, रागद्वेषादिकों से शून्य ईश्वर के ऊंचे नीचे कर्मके कियेहुए बुद्धिका विषमभाव कहीं भी नहीं है ॥ २१ ॥ तौ भी हे राजा ! भक्त वत्सल श्रीभगवान की कृपादेखो कि मेरे प्राणत्यागने के समय श्रीकृष्ण भगवान ने साक्षात् आकार मुझे दर्शन दिया है ॥ २२ ॥ जिस परमेश्वर में भक्ति से चित्तलगा कर वाणीसे उसके नाम का उच्चारण करता कलेवर का त्याग करेतो काम्य कर्म्मोंसे मुक्त होजाताहै ॥२३॥ कमल नयन प्रसन्न मुख तथा लालनेत्र वाले ध्यान गम्य श्रीचतुर्भुज भगवान जबतक मैं इस शरीर का त्याग करूं तबतक यहीं स्थित रहो ॥ २४ ॥

अपृच्छद्विविधान्धर्मानृषीणामनुशृण्वताम् ॥ २५ ॥ पुरुषस्वभावविहितान्यथाव-
र्णयथाऽऽश्रमम् । वैराग्यरागोपाधिभ्यामाम्नातोभयलक्षणान् ॥२६॥ दानधर्मान्रा-
जधर्मान्मोक्षधर्मान्विभागशः । स्त्रीधर्मान्भगवद्धर्मान्समासव्यासयोगतः ॥ २७ ॥
धर्मार्थकाममोक्षांश्च सहोपायान्यथामुने । नानाख्यानेतिहासेषु वर्णयामासतत्त्व-
वित् ॥ २८ ॥ धर्मंप्रवदतस्तस्यसकालःप्रत्युपस्थितः । योयोगिनश्छन्दमृत्योर्वा-
ञ्छितस्तूत्तरायणः ॥ २९ ॥ तदोपसंहृत्यगिरःसहस्रणीर्विमुक्तसङ्गंमनआदिपूरुषे ।
कृष्णेलसत्पीतपटेचतुर्भुजेपुरःस्थितेमीलितदृग्व्यधारयत् ॥ ३० ॥ विशुद्धयाधार-
णयाहताशुभस्तदीक्षयैवाऽऽशुगतायुधव्यथः । निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रमस्तुष्टा
वजन्यंविसृजञ्जनार्दनम् ॥ ३१ ॥ भीष्मउवाच ॥ इतिमतिरुपकल्पितावितृष्णा
भगवतिसात्वतपुङ्गवेविभूम्नि । स्वसुखमुपगतेक्वचिद्विहर्तुंप्रकृतिमुपेयुषियद्भव-
प्रवाहः ॥ ३२ ॥ त्रिभुवनकमनंतमालवर्णं रविकरगौरवराम्वरंदधाने । वपुरलक
कुलावृताननाब्जं विजयसखेरतिरस्तुमेऽनवद्या ॥ ३३ ॥ युधितुरगरजोविधूम्रवि-
ष्वक्कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये । मम निशितशरैर्विभिद्यमानत्वचि विलसत्कव-
चेऽस्तुकृष्णआत्मा ॥ ३४ ॥ सपदिसखिवचो निशम्यमध्ये निजपरयोर्बलयोरथं
निवेश्य । स्थितवतिपरसैनिकायुरक्ष्णा हृतवतिपार्थसखेरतिर्ममास्तु ॥ ३५ ॥ व्य
वहितपृतनामुखंनिरीक्ष्य स्वजनवधाद्विमुखस्यदोषबुद्ध्या । कुमतिमहरदात्मवि-

सूतजी बोले किबाणों की सेजमें सोते हुए भीष्म जी से युधिष्ठिर ने यह बात सुनकर मुनिलोगों के सुनते अनेक भांतिके धर्म पूंछे ॥ २५ ॥ वर्णधर्म, आश्रम धर्म, वैराग्य तथा रागरूप उपाधियों से निवृत्ति और प्रवृत्ति के लक्षण पुरुष के साधारण कर्म ॥ २६ ॥ इनमें विशेष करके दान धर्म, राज धर्म, स्त्री धर्म संक्षेप से कहे ॥ २८ ॥ और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनका उपाय तत्व वेत्ता श्री भीष्म जीने कहा ॥ २८ ॥ जिस कालको योगीजन चाहते हैं, वह उत्तरायण काल स्वच्छन्द मृत्यु श्रीभीष्म जी के धर्म कहते २ आप्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ संग्राम मे सहस्रों रथियोंकी रक्षाकरने वाले भीष्म जी ने वाणी एकाग्रकर विनाआंख बंदकिये, संग रहित अपने चित्तको पीत पटसे शोभित, चतुर्भुज, आदि पुरुष, सन्मुख स्थित श्रीकृष्ण भगवान में लगाया ॥ ३० ॥ शुद्ध धारणा से पाप दूरहोगये और परमेश्वर के दर्शन मात्र से सब शस्त्रों की पीड़ा निवृत्त होगई तथा इन्द्रियों की वृत्ति और भ्रम जातारहा भीष्म जी ने शरीर त्यागने के समय श्रीजनार्दन भगवान की स्तुति की ॥ ३१ ॥ भीष्म जी ने कहाकि—जो अपने पारमानंद रूपको सदैव प्राप्त है तौभी किसी काल क्रीड़ा करने के हेतु जिसयोग मायासे सृष्टिका प्रवाह होता है उस मायाको स्वीकार करते हैं उन यादवों में शिरोमणि श्रीभगवान में अपनी तृष्णा रहित बुद्धि अर्पण की है ॥ ३२ ॥ त्रिलोकी में सुंदर स्वरूप जिनका तमाल पत्रकी समान श्याम बरण, सूर्य्य की किरण के समान श्रेष्ठ पीतपट पहिने, अलकावली से शोभितमुख, ऐसा शरीर धारण किये ऐसे अर्जुन के सखा में मेरी निष्काम प्रितिहो होवे ॥३३॥ युद्धमें घोड़ों की धूलसे धूसर और इधर उधर विचलित केश तिनसे विखरते हुए पसीने की बुंदों से जिनका कमल स्वरूपी मुख शोभित है और मेरे तीक्ष्ण शरोंसे जिन की त्वचा बिदीर्ण होरही है और शरोंहीसे जिनका कवच बिखर रहा था ऐसे श्रीकृष्ण परमेश्वर में मेरा चित्त लगा रहे ॥ ३४ ॥ मित्रके वाक्य सुनकर तुरंत दोनों कटकों के मध्य रथको खड़ाकरके और शत्रुके कटक के वीरों की आयुको काल दृष्टिसे हरण करते अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण में मेरीप्रीति होवे ॥ ३५ ॥ शत्रु सेना में अपने कुटुंवियो को देखकर अज्ञानता से कुटुंवियों के न मारने से विमुख ऐसे अर्जुन

यया यश्चरणरतिः परमस्त्वतस्यमेऽस्तु ॥३६॥ स्वनिगममपहायमत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतोरथस्थः। धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गुर्हरिरिवहन्तुमिभंगतोत्तरीयः ॥ ३७ ॥ शितविशिखहतोविशीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुतआततायिनोमे। प्रसभमभिससारमद्वधार्थं सभवतुमेभगवान्गतिर्मुकुन्दः ॥३८॥ विजयरथकुटुम्बआत्ततोत्रे धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये। भगवतिरतिरस्तुमेमुमूर्षोर्यमिह निरीक्ष्य हतागताःस्वरूपम् ॥ ३९ ॥ ललितगतिविलासवल्गुहासप्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः। कृतमनुकृतवत्यउन्मदान्धाः प्रकृतिमगन्किलयस्यगोपवध्वः ॥ ४० ॥ मुनिगणनृपवर्यसंकुलेऽन्तःसदसि युधिष्ठिरराजसूयएषाम्। अर्हणमुपपेदईक्षणीयो ममदृशिगोचर एषआविरात्मा ॥ ४१ ॥ तमिममहमजंशरीरभाजांहृदिहृदिधिष्ठितमात्मकल्पितानाम्। प्रतिदृशमिवनैकधाऽर्कमेकं समधिगतोऽस्मिविधूतभेदमोहः ॥ ४२ ॥ सूत उवाच॥ कृष्णएवंभगवति मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः। आत्मन्यात्मानमावेश्य सोन्तःश्वासउपारमत् ॥ ४३ ॥ संपद्यमानमाज्ञाय भीष्मंब्रह्मणिनिष्कले। सर्वेबभूवुस्तेतूष्णीं वयांसीवदिनात्यये ॥ ४४ ॥ तत्रदुन्दुभयोनेदुर्देवमानववादिताः। शशंसुःसाधवोराज्ञां खात्पेतुःपुष्पवृष्टयः ॥ ४५ ॥ तस्यनिर्हरणादीनि संपरेतस्य

की मूर्खता जिन्हों ने आत्मविद्या की शिक्षासे दूरकी उन ईश्वर के चरणों में मेरी रतिहोवे ॥ ३६ ॥ अपनी प्रतिज्ञा को कि म शस्त्र नहीं धारण करूंगा छोड़ मेरीप्रतिज्ञा को कि मैं श्रीकृष्ण को शस्त्र धारण कराऊंगा सत्य करने के लिये रथमें बैठेहुये श्रीभगवान उससे उतरकर रथका पहिया हाथमें ले पृथ्वीको विचलित करतेहुए, जैसे सिंह हाथीको मारने दौड़े ऐसेदौड़करआये, उसी क्रोधसे उनका दुपट्टा भूमिपर गिरगया था हे मुकुंद मेरी गतिकरो ॥ ३७ ॥ उस काल हाथमें धनुषबाण लियेमेरे तीक्ष्ण शरोंसे प्रहार कियेहुए और उसी कारण से जिनका कवच टूटगया है और रक्तसे व्याप्त हरिभगवान रोकतेहुए अर्जुन को बल पूर्वक छुटाकर मेरे मारने को दौड़े हे भगवान मेरीगति होवे ॥३८॥ अर्जुनको रथकी रक्षाकरनेहारे, चाबुक हाथमेंलिये, घोड़ोंकी बागडोर पकड़े, सारथी पनेकी शोभासे शोभित जो देखने योग्य श्री भगवान के विषे मेरी प्रीति होवेकि जिनके दर्शन मात्रसे युद्ध में मरेहुए सबवीर इन्हीं स्वरूपमें प्राप्त हुए हैं ॥ ३९ ॥ जिसकी सुंदर चाल, मन्द हंसन, प्रेम सहित देखना, जिनके द्वारा बहुत मान पायी हुई, और उसीके कारण काममदसे अधगोप वधूएं, गोवर्धन धारण करने आदि की लीला करने वाले ऐसे भगवान स्वरूपमें मेरी प्रीति होवे ॥ ४० ॥ श्रेष्ठ राजाओं और मुनिगणों युक्तराजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञमें भी जो भगवान प्रथम पूजाको प्राप्तहुए वेही प्रगट रीतिसे मेरे दृष्टिगोचर हुए आजमेरा अहोभाग्यहै ॥ ४१ ॥ जैसे सब प्राणियों की दृष्टिमें सूर्य एक होनेपर भी अनेक रूपसे ज्ञात होता है वैसे ही प्रत्येक प्राणियों के हृदय में एक अधिष्ठान रूपसे रहने पर भी आप अनेक रूपसे ज्ञातहोते हैं उन अजन्मा भगवान के मैं भेद व मोहसे छूटकर प्राप्तहुआ हूं ॥ ४२ ॥ सूतजीबोले- कि इस भांति भीष्म जी मन, वाणी और दृष्टि की वृत्तिद्वारा परमात्मा श्रीकृष्ण भगवान में चित्त लगाकर श्वासको भीतर लीन करके उपरामको प्राप्त हुये ॥ ४३ ॥ भीष्म जी को परमात्मा में लीनहुआ जानकर संध्या समय के पक्षियों की समान सब मौन होगये ॥ ४४ ॥ उसी समय सब देवता और मनुष्य नगाड़े बजाने लगे साधूजनों ने राजा युधिष्ठिर की प्रशंसा की और उसी कालमें आकाश से फूलोंकी वर्षा भी हुई ॥ ४५ ॥ हे शौनक मृत्युको प्राप्तहुए भीष्म की राजा युधिष्ठिर ने पार लौकिक क्रियाकी और एक मुहूर्तको बड़े दुखी

भार्गव । युधिष्ठिरःकारयित्वा मुहूर्तंदुःखितोऽभवत् ॥ ४६ ॥ तुष्टुवुर्मुनयोहृष्टाःकृष्णं तद्गुह्यनामभिः।ततस्तेकृष्णहृदयाःस्वाश्रमान्प्रययुःपुनः॥४७॥ ततोयुधिष्ठिरो गत्वा सहकृष्णोगजाह्वयम्। पितरंसान्त्वयामास गान्धारींचतपस्विनीम् ॥ ४८ ॥ पित्राचानुमतोराजा वासुदेवानुमोदितः।चकारराज्यंधर्मेण पितृपैतामहंविभुः॥४९॥

इतिश्रीमद्भा०प्रथ०युधिष्ठिरराज्यप्रलम्भनोनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

शौनक उवाच ॥ हत्वास्वरिक्थस्पृधआततायिनो युधिष्ठिरोधर्मभृतांवरिष्ठः । सहानुजैःप्रत्यवरुद्धभोजनः कथंप्रवृत्तः किमकारषीत्ततः ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ वंशं कुरोर्वंशदवाग्निनिर्हृतं संरोहयित्वाभवभावनोहरिः।निवेशयित्वा निजराज्य ईश्वरोयुधिष्ठिरंप्रीतमनावभूवह ॥ २ ॥ निशम्यभीष्मोक्तमथाच्युतोक्तं प्रवृत्तविज्ञानविधूतविभ्रमः । शशासगामिन्द्रइवाऽजिताश्रयः परिध्युपान्तामनुजानुवर्तितः ॥ ॥ ३ ॥ कामंववर्षपर्जन्यः सर्वकामदुघामही । सिषिचुःस्मव्रजान्गावः पयसोधस्वतीर्मुदा ॥ ४ ॥ नद्यःसमुद्रागिरयः सवनस्पतिवीरुधः । फलन्त्योषधःसर्वाः काममन्वृतुतस्यवै ॥ ५ ॥ नाधयोव्याधयःक्लेशाः दैवभूतात्महेतवः। अजातशत्रावभवजन्तूनांराज्ञिकर्हिचित् ॥ ६ ॥ उषित्वाहास्तिनपुरेमासान्कतिपयान्हरिः । सुहृदांचविशोकाय स्वसुश्चप्रियकाम्यया ॥ ७ ॥ आमन्त्र्यचाभ्यनुज्ञातः परिष्वज्याऽभिवाद्यतम् । आरुरोहरथंकैश्चित्परिष्वक्तोऽभिवादितः ॥ ८ ॥ सुभद्राद्रौपदीकुन्तीविराटतनयातथा । गान्धारीधृतराष्ट्रश्चयुयुत्सुर्गौतमोयमौ ॥ ९ ॥ वृकोदरश्चधौम्यश्च

हुए ॥ ४६ ॥ मुनिलोग प्रसन्न होकर कृष्ण जी के गुह्यनामों से उनकी स्तुतिकर उनको हृदय में धारण कर अपने २ स्थानों को गये ॥ ४७ ॥ इसके अनंतर राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण जी सहित हस्तिना पुरमें जाकर पितर धृतराष्ट और माता गांधारी को शांत किया ॥ ४८ ॥ राजा धृतराष्ट और बासुदेव भगवान की आज्ञा से राजा युधिष्ठिर ने अपने बाप दादों से प्राप्त धर्म राज्य किया ॥ ४९ ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेप्रथमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

शौनकजी बोले—कि अपने धन की तथा राज्य की चाहना करने वाले आततायी, धर्म धुरीण राजा युधिष्ठिरने अपने शत्रु भाइयोंको मारकर तथा राज्य लेकर किस भांति अपनेअनुजों सहित राज्य किया ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि—जो कौरवों का बंश भगवान की क्रोधाग्नि से नाश को प्राप्त हुआ था उस को परीक्षित की रक्षाके द्वारा अंकुरित कर अपनें राज्य में युधिष्ठिर को स्थापित कर श्री भगवान प्रसन्न हुए ॥ २ ॥ उस राजा युधिष्ठिर को श्रीकृष्णजी तथा भीष्मजीके धर्म वाक्य सुनकर ज्ञान उत्पन्न हुआ और सब भ्रम दूर हुए, फिर भगवानकेआश्रित अपने अनुजों समेत राजा युधिष्ठिर समुद्र पर्यंत पृथ्वी का राज्य करने लगे ॥ ३ ॥ युधिष्ठिर के सुराज्य में मेघ इच्छानुसार वर्षने लगा, पृथ्वी सम्पूर्ण इच्छाएं पूर्ण करने लगी गायें बहुत दूध देने लगी ॥ ४ ॥ लता, औषधियों सहित तथा नदियां, पर्वत, वनस्पति ऋतु २ में यथेष्ट २ फल देने लगे ॥ ५ ॥ युधिष्ठिर के राज्य में प्राणियों को दैविक, भौतिक, और आध्यात्मिक क्लेशतथा मन की व शरीरकी पीडा न रही ॥ ६ ॥ श्रीभगवान अपने सुहृदोंका शोक दूरकरने तथाअपनी बहिन सुभद्रा को प्रसन्न करने के लिये कुछ काल हास्तिनापुर में रहे ॥ ७ ॥ फिर युधिष्ठिर से आज्ञाले, उनसे मिल, प्रणाम कर तथा और भी बडों को प्रणाम करके और कितनों से मिलकर रथपर चढ़े ॥ ८ ॥ सुभद्रा, द्रौपदी कुंती, उत्तरा, गांधारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, कृपाचार्य, नकुल, सहदेव ॥ ९ ॥ भीम, धौम्य, सत्यवती आदि स्त्रियां श्री परमेश्वर का बिरह न सहसके—और

स्त्रियोमत्स्यसुतादयः । नसेहिरेविमुह्यन्तो विरहंशार्ङ्गधन्वनः ॥ १० ॥ सत्सङ्ग
न्मुक्तदुःसङ्गो हातुंनोत्सहतेबुधः । कीर्त्यमानंयशोयस्य सकृदाकर्ण्यरोचनम्॥११॥
तस्मिन्न्यस्तधियःपार्थाः सहेरन्विरहंकथम् । दर्शनस्पर्शसंलापशयनासनभोजनैः
॥ १२ ॥ सर्वेतेऽनिमिषैरक्षैस्तमनुद्रुतचेतसः । वीक्षन्तःस्नेहसंबद्धा विचेलुस्तत्र
तत्रह ॥ १३ ॥ न्यरुन्धन्नुद्गलद्बाष्पमौत्कण्ठ्याद्देवकीसुते । निर्यात्यगाराज्जोऽभ
द्रमिति स्याद्बान्धवस्त्रियः ॥ १४ ॥ मृदङ्गशंखभेर्यश्च वीणापणवगोमुखाः । धुन्धु
र्यानकघण्टाद्या नेदुर्दुन्दुभयस्तथा ॥ १५ ॥ प्रासादशिखरारूढाः कुरुनार्योदिदृ-
क्षया । ववृषुःकुसुमैःकृष्णं प्रेमव्रीडास्मितेक्षणाः ॥ १६ ॥ सितातपत्रंजग्राह मुक्ता
दामविभूषितम् । रत्नदण्डंगुडाकेशः प्रियःप्रियतमस्यह ॥ १७ ॥ उद्धवःसात्यकि-
श्चैव व्यजनेपरमाद्भुते । विकीर्यमाणःकुसुमै रेजेमधुपतिःपथि ॥ १८ ॥ अश्रूयन्ता-
ऽऽशिषःसत्यास्तत्रतत्रद्विजेरिताः । नानुरूपानुरूपाश्च निर्गुणस्यगुणात्मनः ॥१९॥
अन्योन्यमासीत्संजल्प उत्तमश्लोकचेतसाम् । कौरवेन्द्रपुरस्त्रीणां सर्वश्रुतिमनो-
हरः ॥ २० ॥ स्त्रियऊचुः ॥ सवैकिलायंपुरुषःपुरातनोयएकआसीदविशेषआत्मनि।
अग्रेगुणेभ्योजगदात्मनीश्वरे निमीलितात्मन्निशिसुप्तशक्तिषु ॥ २१ ॥ सएवभूयो
निजवीर्यचोदितां स्वजीवमायांप्रकृतिंसिसृक्षतीम् । अनामरूपात्मनिरूपनाममीवि-
धित्समानोऽनुससारशास्त्रकृत् ॥ २२ ॥ सवाअयंयत्पदमत्रसूरयो जितेन्द्रियानि-

मोहित होगये ॥ १० ॥ सत्संग से जिस का विषय रूपी कुसंग नष्ट होगया है वह बुद्धिवानपुरुष यदि भगवान के रुचिकर यश को एक बार भी सुन लेता है तो फिर उसे नहीं छोड़सकता ११ उन परमात्मा श्रीभगवान के दर्शन, स्पर्श, वार्ता, शयन, आसन तथा भोजन आदि से जिन को ज्ञान प्राप्त होगया है ऐसे पांडव उनश्री कृष्ण भगवान का विरह कैसे सहन कर सकें ॥ १२ ॥ जिन के मन भगवान के पीछे चले गये हैं वे सब पलक रहित चक्षुओं से उन्हीं का दर्शन करते, प्रेम से बंधकर. भेंट आदि की वस्तुएं लेने को इधर उधर फिरने लगे ॥ १३ ॥ घर से परमेश्वर के जाते समय जो बंधुओं की स्त्रियों के नेत्रों से अश्रु निकलने लगे उनको उन्हों ने रोक लिया कि जिस से जाते समय श्रीभगवान को अमंगल न होवे ॥ १४ ॥ श्रीकृष्ण भगवान के जाते समय अनेकों मृदंग, शंख, भेरि, ढोल, सहनाई, दुंदुभी, घंटे, नगाडे आदि बाजे बजनेलगे १५॥ श्रीभगवान के देखने की इच्छा करके महलके ऊपर चढ़कर प्रेम, लज्जा, मंद मुसकान श्रेष्ठ चित वनसे प्रेम सहित श्रीकृष्ण भगवान के ऊपर पुष्प वर्षा करने लगीं ॥ १६ ॥ उस काल मोतियों की झालर तथा रत्न की डंडी वाला श्रीकृष्णजीके सुफेद छत्रको उनके प्यारे अर्जुन१७॥ तथा ऊधो और सात्यकी ने चमर ग्रहण किया ऐसे श्रीकृष्ण भगवान पुष्पों की वर्षा होते हुए बड़ी शोभा को प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ तहांपर ब्राह्मणों ने निर्गुण के अयोग्य और सगुण के योग्य सत्य आशीर्वाद कहे ॥ १९ ॥ जिन का श्रीकृष्णजी में चित्त लगा हुआ है ऐसी हस्तिनापुर की स्त्रियां परस्पर संवाद करने लगीं ॥ २० गुणोंके क्षोभ से प्रथम प्रलय कालमें जब जीव परमेश्वर में व्याप्त होगये और जीव की सब शक्तियांभी लीन होगई उस काल निष्प्रपंच निज स्वरूप में जो एक आदि पुरुष शेष रहाथा वह यही श्रीकृष्ण है ॥ २१ ॥ रूप रहित जीव में नामरूपकरने की इच्छा वाले, जिन वेद शास्त्र के कर्त्ता भगवान ने, अपनी काल शक्ति से प्रेरीहुई, सृष्टि रचने की इच्छा वाली, अपने अंश से जीवों को मोहित करने वाली, प्रकृति को फिर स्वीकार किया, वह यही हैं ॥ २२ ॥ जो विद्वान लोग, इंद्रियों को जीतकर, प्राणों को वशकर, भक्ति से उत्कं

र्जितमातरिश्वनः । पश्यन्तिभक्त्युत्कलितामलात्मना नन्वेषसत्त्वंपरिमार्ष्टुमर्हति
॥ २३ ॥ सवीअयंसख्यनुगीतसत्कथो वेदेषुगुह्येषुचगुह्यवादिभिः। यएकईशोज-
गदात्मलीलया सृजत्यवत्यत्तिनतत्रसज्जते ॥ २४ ॥ यदाह्यधर्मेणतमोधियोनृपाजी
वन्तितत्रैषहिसत्त्वतःकिल । धत्तेभगंसत्यमृतंदयांयशोभवायरूपाणिदधद्युगेयुगे
॥ २५ ॥ अहोअलंश्लाघ्यतमंयदोःकुलमहोअलंपुण्यतमंमधोर्वनम् ॥ यदेषपुंसा.
मृषभःश्रियःपतिःस्वजन्मनाचङ्क्रमणेनचांचति ॥ २६ ॥ अहोबतस्वर्यशसस्ति-
रस्करीकुशस्थलीपुण्ययशस्करीभुवः । पश्यन्तिनित्यंयदनुग्रहेषितंस्मितावलोकं
स्वपतिंस्मयत्प्रजाः ॥ २७ ॥ नूनंव्रतस्नानहुतादिनेश्वरः समर्चितोह्यस्यगृहीतपा-
णिभिः । पिबन्तियाःसख्यधरामृतं मुहुर्व्रजस्त्रियःसंमुमुहुर्यदाशयाः ॥ २८ ॥ या
वीर्यशुल्केनहृताःस्वयंवरेप्रमथ्यचैद्यप्रमुखान्हिशुष्मिणः । प्रद्युम्नसाम्बाम्बसुताद-
योऽपराश्चाहृताभौमवधेसहस्रशः॥२९॥एताःपरंस्त्रीत्वमपास्तपेशलंनिरस्तशौचं
बतसाधुकुर्वते । यासांगृहात्पुष्करलोचनःपति र्नजात्वपैत्याहृतिभिर्हृदिस्पृशन्
॥ ३० ॥ एवंविधागवन्तीनांसगिरःपुरयोषिताम् । निरीक्षणेनाभिनन्दन्सस्मितेन
ययौहरिः ॥ ३१ ॥ अजातशत्रुःपृतनांगोपीथायमधुद्विषः । परेभ्यःशङ्कितःस्नेहा-
त्प्रायुंक्तचतुरङ्गिणीम् ॥ ३२ ॥ अथदूरागतान्शौरिः कौरवान्विरहातुरान् । सन्नि
वर्त्यदृढंस्निग्धान्प्रायात्स्वनगरींप्रियैः ॥ ३३ ॥ कुरुजांगलपाञ्चालाञ्छूरसेनान्स-
यामुनान् । ब्रह्मावर्तंकुरुक्षेत्रं मत्स्यान्सारस्वतानथ ॥ ३४ ॥ मरुधन्वमतिक्रम्य सौ-

ठित, निर्मल बुद्धि से परमात्मा का भजन करते हैं वह यही श्रीकृष्ण हमारी बुद्धि को शुद्ध करें ॥ २३ ॥ हे सखी ! वेदों में जिन गुह्य वक्ताओं ने कथा कही है और जो अपनी लीला से संसार को सृजता पालन करता तथा संहारता है परन्तु उस में आसक्त नहीं है वही यह श्रीकृष्णहैं २४ जब तमोगुणी राजा लोग अधर्म से जीते हैं तब यही भगवान सत्व गुण द्वारा रक्षा के हेतु युग२ में अवतार धारण कर ऐश्वर्य्य, सत्य, और यशको विस्तारित करते हैं ॥ २५ ॥ हे सखी ! यदु का कुल अतिशय बडाई के योग्य है और मथुरा भी अतिशय बडाई के योग्य है क्योंकि इनश्री लक्ष्मी पति भगवान के यदुकुल में जन्म लेने से और मथुरा में विचरनेसे वह सत्कार युक्त हैं ॥ २६ ॥ हे सखी ! यह द्वारिका पृथ्वीके पुण्य बढ़ानेवाली स्वर्ग का भीतिरस्कार करती है यहांकी प्रजा अनुग्रह के हेतु मंद हास्य से अपने स्वामी श्रीकृष्ण का सदा अवलोकन करती है २७ ॥ हे सखी ! इनका पाणिग्रहण करने वाली स्त्रियों ने अवश्य ही व्रत, स्नान होमआदि से ईश्वर का पूजन किया होगा कारण कि जिस अधरामृत से व्रज स्त्रियें मोहको प्राप्तहुई उस अधरा मृतको वह वारंबार पान करती होंगी ॥ २८ ॥ प्रद्युम्न, शांबआदि की माता रुक्मिणी जाम्बवंती आदि स्त्रियें जो स्वयम्बर में शिशुपाल आदि से प्रभावरूप मूल्य से हरण करलाई गईं और भी दूसरी भौमासुर का वधकर के सोलह सहस्र स्त्रियां लाई गई ॥ २९ ॥ वे सब स्वतंत्रता शून्य तथा पवित्रता हीन स्त्रीपनको भी शोभित करती हैं क्योंकि कमलदललोचन श्रीकृष्ण जी अनेक वचनों से उनके हृदयको आनंद देते हैं और कभी घरसे बाहर नहीं जाते ॥ ३० ॥ इस प्रकार अनेक भांति के वचनों को कहती हुई नगर की स्त्रियों की ओर श्रीकृष्ण जी मृदु मुसकान से सब की ओर देखकर वहां से पधारे ॥ ३१ ॥ शत्रुओं से शंकित युधिष्ठिर ने डरकर भगवान की रक्षाके हेतु चतुरंगिणी सेना साथ करदी ॥ ३२ ॥ विरहसे आतुर, स्नेह युक्त आयेहुए पांडवों को पीछे लौटाकर श्रीकृष्ण भगवान उद्धव आदिक के साथ द्वारिका पुरीकोगये॥३३॥ कुरु,जांगल, पांचाल,

वीराभीरयोःपरान् । आनर्तान्भार्गवोपागाच्छ्रान्तवाहोमनाग्विभुः ॥ ३५ ॥ तत्रतत्र हतत्रत्यैर्हरिःप्रत्युद्यतार्हणः । सायंभेजेदिशंपश्चाद्गविष्ठोगांगतस्तदा ॥ ३६ ॥

इतिश्रीमद्भा०प्र० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ सूतउवाच ॥ आनर्तान्सउपव्रज्य स्वृद्धाञ्जनपदान्स्वकान् । दध्मौदरवरंतेषां विषादंशमयन्निव ॥ १ ॥ सउच्चकाशेधवलोदरोदरोऽप्युरुक्रमस्याऽऽधरशोणशोणिमा । दाध्मायमानःकरकञ्जसंपुटे यथाब्जखण्डेकलहंसउत्स्वनः ॥ २ ॥ तमुपश्रुत्यनिनदं जगद्भयभयावहम् । प्रत्युद्ययुःप्रजाःसर्वा भर्तृदर्शनलालसाः ।३। तत्रोपनीतबलयो रवेर्दीपमिवाऽऽदृताः । आत्मारामंपूर्णकामं निजलाभेननित्यदा ॥ ४ ॥ प्रीत्युत्फुल्लमुखाःप्रोचुर्हर्षगद्गदयागिरा । पितरंसर्वसुहृदमवितारमिवार्भकाः ॥ ५ ॥ नताःस्मतेनाथसदांघ्रिपङ्कजं विरिञ्चवैरिञ्चसुरेन्द्रवन्दितम् । परायणंक्षेममिहेच्छतां परंनयत्रकालःप्रभवेत्परःप्रभुः ॥ ६ ॥ भवायनस्त्वंभवविश्वभावनत्वमेवमाताऽथसुहृत्पतिःपिता । त्वंसद्गुरुर्नः परमंचदैवतंयस्यानुवृत्त्याकृतिनोबभूविम ॥ ७ ॥ अहोसनाथाभवतास्मयद्वयंत्रैविष्टपानामपिदूरदर्शनम् । प्रेमस्मितस्निग्धनिरीक्षणाननं पश्येमरूपंतवसर्वसौभगम् ॥ ८ ॥ यर्ह्यम्बुजाक्षाऽपससारभो भवान्कुरून्मधून्वाऽथसुहृद्दिदृक्षया । तत्राब्दकोटिप्रतिमःक्षणोभवेद्रविंविना‍ऽक्ष्णोरिवनस्तवाच्युत ॥ ९ ॥ इतिचोदीरितावाचः प्रजानांभक्तवत्सलः । शृ-

शूरसेन के देश, ब्रह्मावर्त्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, सारस्वत देश ॥ ३४ ॥ मरुदेश, धन्व और शौवीर देशको उलंघन कर—प्रभु आनर्त देशमे पहुंचे उस समय घोड़े कुछ थकगये ॥ ३५ ॥ श्रीभगवान जिस २ देश से पधारे वहां २के मनुष्योंने भेटे ला २ कर अर्पण कीं उन्हे स्वीकार करते श्रीभगवान संध्या के समय पश्चिम दिशामें पहुंचे तबसूर्य भी अस्तहुए ॥ ३६ ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेसरलाभाषाटीकायांप्रथमस्कन्धे,दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

सूतजी बोलेकि—समृद्धि युक्त अपने आनर्त देशमें जाकर भगवान ने श्रेष्ठ शंखको बजाया—मानों वहांके लोगोंका दुःख मिटाया ॥ १ ॥ श्वेत है मध्यभाग जिसका ऐसाशंख श्रीभगवान के ओठों की ललाई में लगकर कमल स्वरूपी हाथोंके सम्पुट मे ऐसा शोभाय मान है मानो कमलों के वनमें राजहंस ऊंचे स्वरसे बोलता हो ॥ २ ॥ जगत के भयका नाश करने वाले श्रीकृष्ण जी के शंखका नाद सुनकर सम्पूर्ण प्रजा उनके देखने की लालसा से आई ॥ ३ ॥ आदर पाई हुई प्रजाने स्वरुप लाभ से सदैव पूर्णकाम और आत्माराम भगवान को भेटेंदीं ॥ ४ ॥ जैसे बालक अपने पितासे कहते हैं वैसेही प्रीतिसे प्रफुल्लित होकर प्रजाने सबके सुहृद, रक्षाकरने वाले श्री भगवान से गदगद वाणीसे कहा ॥ ५ ॥ हेनाथ ! ब्रह्मा, तथा ब्रह्माके पुत्र देवता, देवताओंके पति इन्द्र से वंदना कियेहुए तुम्हारे कमल रूपीचरण संसार में कल्याण पानेवाले पुरुषों केलिये परम शरण रूप हैं ऐसे चरणों को कि जिनका ब्रह्मादिकोंका प्रभु काल भीकुछनहीं करसकता हम प्रणाम करते हैं ॥ ६ ॥ हेविश्व पालक ! तुमहमारे कल्याण कारक हो तुम्हीं हमारे माता, पिता, सुहृद, गुरू, देवता हो जिन की टहल करके हम कृतार्थ हुये हैं ॥ ७ ॥ आजहम आपसे सनाथ हुए क्योंकि देवताओं कोभी जो स्वरूप दुर्लभ है उसको तथा प्रेमयुक्त मंद मुसकान, स्नेहभरी दृष्टि वाले मुखका व सुंदर अंगका हम दर्शन करते हैं ॥ ८ ॥ हे कमल नयन ! जब आप अपने सुहृदो को देखने के हेतु कुरू या मधुदेश को पधारे तो आप विना हमको एक २ क्षण एक २ कोटि वर्षकी समान बीतताथा जैसे सूर्यविना नेत्रोंको होताहै ॥९॥ इस भांति प्रजाके प्रियवाक्य सुनकर

यानोऽनुग्रहंदृष्ट्या वितन्वन्प्राविशत्पुरीम् ॥ १० ॥ मधुभोजदशार्हार्हकुकुरान्धक वृष्णिभिः ।आत्मतुल्यबलैर्गुप्तां नागैर्भोगवतीमिव ॥ ११ ॥ सर्वर्तुसर्वविभवपुण्य वृक्षलताश्रमैः । उद्यानोपवनारामैर्वृतपद्माकरश्रियम् ॥ १२ ॥ गोपुरद्वारमार्गेषु कृत कौतुकतोरणाम् । चित्रध्वजपताकाग्रैरन्तःप्रतिहतातपाम् ॥ १३ ॥ संमार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वराम् । सिक्तांगन्धजलैरुप्तां फलपुष्पाक्षतांकुरैः ।' १४ ॥ द्वारि द्वारिगृहाणांच दध्यक्षतफलेक्षुभिः । अलंकृतांपूर्णकुम्भैर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥ १५ ॥ निशम्यप्रेष्ठमायान्तं वसुदेवोमहामनाः । अक्रूरश्चोग्रसेनश्चरामश्चाद्भुतविक्रमः । ॥ १६ ॥प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च साम्बोजाम्बवतीसुतः । प्रहर्षवेगोच्छ्वसितशयनासन भोजनाः ॥ १७ ॥ वारणेन्द्रंपुरस्कृत्य ब्राह्मणैस्ससुमङ्गलैः । शंखतूर्यनिनादेन ब्रह्म घोषेणचादृताः प्रत्युज्जग्मूरथैर्हृष्टाः प्रणयागतसाध्वसाः ॥ १८ ॥ वारमुख्याश्चश तशो यानैस्तद्दर्शनोत्सुकाः । लसत्कुण्डलनिर्भात कपोलवदनश्रियः ॥ १९ ॥ नट नर्तकगन्धर्वाः सूतमागधवन्दिनः । गायन्तिचोत्तमश्लोक चरितान्यद्भुतानि च ॥ २० ॥ भगवांस्तत्रबन्धूनां पौराणामनुवर्तिनाम् । यथाविध्युपसंगम्य सर्वेषांमानमादधे ॥ २१ ॥ प्रह्वाभिवादनाश्लेष करस्पर्शस्मितेक्षणैः । आश्वास्यचाऽश्व पाकेभ्योवरैश्चाभिमतैर्विभुः ॥ २२ ॥ स्वयंचगुरुभिर्विप्रैः सदारैःस्थविरैरपि । आशीर्भिर्युज्यमानोऽन्यैर्वन्दिभिश्चाऽविशत्पुरम् ॥ २३ ॥ राजमार्गंगतेकृष्णे द्वारकायाः कुलस्त्रियः । हर्म्याण्याऽऽरुरुहुर्विप्र तदीक्षणमहोत्सवाः ॥ २४ ॥ नित्यंनिरीक्ष

भक्त वत्सल श्रीभगवान कृपा दृष्टि करते हुये पुरीमें पधारे ॥ १० ॥ उस द्वारका की रक्षा श्रीभगवान की समान बलवाले मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, कुकुर अंधक, और वृष्णि जातिके क्षत्री कर रहे हैं जैसे नाग भोगपुरी की रक्षा करते हैं ॥ ११ ॥ जिसमें सब ऋतुओं के फल फूल आदि पुण्य वृक्ष, लता मंडप वाले उपवन व सुंदर घिरेहुए कमलों से तालावों की शोभा होरही है ॥१२॥ नगर के घरों व द्वारों पर तथा मार्ग में उत्सव के हेतु वंदनवारबंधे है चित्र विचित्र ध्वजा, पताका के अग्रभाग से नगर का ताप दूरहोता है ॥ १३ ॥ राजमार्ग में धूल नहीं है तथा गली, चौहटे, बाजार, चौक आदि सुंगध के जलसे छिड़के हैं और वहां फूलफल, अंकुर, बिखर रहे हैं ॥ १४ ॥ घरोंके द्वारमें दही, अक्षत, फल, फूल, जलसे भरेहुये घड़े, भेंटें, धूप व दीपों की शोभा होरहीहै ॥ १५ ॥ प्यारे श्रीकृष्ण का आना सुनकर बड़े मनवाले बसुदेव, उग्रसेन, अक्रूर और महा पराक्रमी बलदेव जी ॥ १६ ॥ प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, जाम्बवंती का बेटा शांब यह सब हर्ष से शयन, आसन, भोजन इनको त्यागकर ॥ १७ ॥ हाथी को आगेकर मंगल कारी वस्तुओं को हाथमें ले शंख, तुरही आदि बाजे बजाते हुए और वेदपाठ करते हुए ब्राह्मण रथोंपर बैठकर श्रीकृष्ण जी के सामने गये ॥ १८ ॥ आनंदके वेग से जिन्होंने शयन, आसन, भोजन आदि त्यागे हैं और स्नेह से जिनको संभ्रम होगया है ऐसी वेश्यायें श्रीकृष्ण जी के दर्शनों की उत्कंठा करके रथपर बैठकर दर्शनों को गई ॥ १९ ॥ कि जिनके कपोल देदीप्य मान कुंडलों से शोभित हैं—नट, नर्तक, गंधर्व, भाट यह स्तुति कर रहे हैं ॥ २० ॥ उस काल श्रीकृष्णजीने भी सबबंधु वर्गों और गायक लोगों को यथोचित प्रणाम किया ॥ २१ किसी को शिरसे किसी को बचन से नमस्कार कर किसी को स्पर्शकर, किसी से हाथ मिलाकर, किसी से हंसकर, सबसे यथा योग्य मिले और चांडालादिकों कोभी दान दे विदाकिया ॥ २२ ॥ आपने भी ब्राह्मणों, वृद्ध पुरुषों गुरू स्त्रियों, तथा बंदी जनों के आशीर्वाद लेतेहुए नगर में प्रवेश किया ॥ २३ ॥ श्रीभगवान जिस समय राज मार्गमे गए उस

माणानां यद्यपिद्वारकौकसाम् । न वितृप्यन्तिहिदृशः श्रियोधामांगमच्युतम् ॥२५॥ श्रियोनिवासोयस्योरः पानपात्रंमुखंदृशाम् । बाहवोलोकपालानां सारंगाणांपदाम्बुजम् ॥ २६ ॥ सितातपत्रव्यजनैरुपस्कृतः प्रसूनवर्षैरभिवर्षितःपथि । पिशंगवासा बनमालयाबभौ घनोयथार्कोडुपचापवैद्युतैः ॥ २७ ॥ प्रविष्टस्तुगृहंपित्रोः परिष्वक्तःस्वमातृभिः । ववन्देशिरसासप्त देवकीप्रमुखामुदा ॥ २८ ॥ ताःपुत्रमङ्कमारोप्य स्नेहस्नुतपयोधराः । हर्षविह्वलितात्मानःसिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः ॥ २९ ॥ अथाविशत्स्वभवनं सर्वकाममनुत्तमम् । प्रासादायत्रपत्नीनां सहस्राणिचषोडश ॥ ॥ ३० ॥ पत्न्यःपतिंप्रोष्यगृहानुपागतं विलोक्यसंजातमनोमहोत्सवाः । उत्तस्थुरारात्सहसाऽऽसनाशयात्साकं व्रतैर्व्रीडितलोचनाननाः ॥ ३१ ॥ तमात्मजैर्दृष्टिभिरन्तरात्मना दुरन्तभावाः परिरेभिरेपतिम् । निरुद्धमप्यास्रवदम्बुनेत्रयोर्विलज्जतीनां भृगुवर्यवैक्लवात् ॥ ३२ ॥ यद्यप्यसौपार्श्वगतोरहोगतस्तथापि तस्यांघ्रियुगंनवंनवम् । पदेपदेकाविरमेततत्पदाच्चलापियच्छ्रीर्नजहातिकर्हिचित् ॥३३॥ एवंनृपाणां क्षितिभारजन्मनामक्षौहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम् । विधायवैरंश्वसनोयथानलं मिथोवधेनोपरतो निरायुधः ॥ ३४ ॥ सएषनरलोकेऽस्मिन्नवतीर्णःस्वमायया । रेमेस्त्रीरत्नकूटस्थो भगवान्प्राकृतोयथा ॥ ३५ ॥ उद्दामभावपिशुनामलवल्गुहासव्रीडावलोकनिहतो मदनोपियासाम् ।संमुह्यचापमजहात्प्रमदोत्तमास्तायस्येन्द्रियं

काल हे शौनक ! ईश्वर के दर्शन से उत्साहित स्त्रियां अटारियों पर चढ़ीं ॥ २४ ॥ यद्यपि द्वारका निवासी श्रीभगवान का नित्य ही दर्शन करते हैं परन्तु तौभी उनके नेत्र अच्युत भगवान के दर्शन से तृप्त नहीं होते ॥ २५ ॥ जिनकी छाती लक्ष्मी, भुजा लोक पालों और चरणकमल भक्तों के निवास स्थान हैं और मुख दृष्टियोंका पान पात्र है उन भगवानके दर्शनसे नेत्रतृप्त नहीं होते॥२६॥ श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्द श्वेतछत्र शिरपर धारण किये चमरहिलते फूलोंकी वृष्टिहोती पीताम्बर और बनमाला से ऐसे शोभायमानथे जैसेमेघ, सूर्य, चन्द्र, इन्द्रधनुष और बिजली के तेजसे शोभित होताहै ॥ २७ ॥ श्रीकृष्णजीने मातापिताके घरजा देवकी आदिक सात माताओंको प्रीति पूर्वक प्रणामकिया ॥ २७ ॥ प्रेमसे जिनका दूधस्रवीभूत होताहै ऐसी माताएं हर्षसे विह्वलहो गोदीमें श्रीकृष्णजीको बैठा नेत्रोंके जलसे उन्हें सींचनेलगीं ॥ २९ ॥ फिर सम्पूर्ण कामनाओं से परिपूर्ण उत्तम घरमें प्रवेश किया जहां १६१०८ रानियोंके महलथे ॥ ३० ॥ वह स्त्रियें देशाटन करके आये पतिको दूरही से देख अति उत्सव को प्राप्त हो लज्जा से मुख नीचा किये जैसे नियम से व्रती बैठींथीं वैसेही सोलहों श्रंगारकर उठधाईं ॥ ३१ ॥ हे शौनक! वह गंभीर भाव वाली स्त्रियां अपनेपति श्रीकृष्ण भगवानसे पहिले बुद्धिद्वारा फिर बालकोंद्वारा तदनंतर दृष्टिद्वारा मिलीं लज्जायुक्त स्त्रियों के नेत्रों का जल विवश होकर निकल आया ॥ ३२ ॥ यद्यपि श्रीकृष्ण भगवान सदा ही उनके पास रहते थे और एकांत में भी मिलते थे परन्तु उनके चरण क्षण २ में नवीन ही नवीन ज्ञात होते थे-चंचल लक्ष्मी भी जिन चरणोंको कभी नहीं त्यागतीं उन्हें फिर कौन त्यागकरसकता है ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्ण भगवान ने पृथ्वी का भार दूर करने के हेतु जन्म लिया था इससे आपने विना शस्त्र धारण किये ही प्रभावशाली राजाओं में परस्पर शत्रुता उत्पन्न कराके एक दूसरे का नाशकरा उपराम को प्राप्त हुए जैसे वायु बांसको परस्पर घिसकर अग्नि उत्पन्नकर एक दूसरेका नाशकर शांत होजाताहै ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्ण भगवान इसनर लोकमें अपनी मायासे अवतारले मनुष्यों की भांति स्त्रियोंके मध्यमें रमण करनेलगे ॥ ३५ ॥ जिन स्त्रियों के गंभीर प्रयोजन को बताने वाले

विमथितुंकुहकैर्नेशेकुः ॥ ३६ ॥ तमयंमन्यतेलोको ह्यसंगमपिसंगिनम् । आत्मौपम्येनमनुजं व्यापृण्वानंयतोऽबुधः ॥ ३७ ॥ एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपितद्गुणैः । नयुज्यतेसदात्मस्थैर्यथाबुद्धिस्तदाश्रया ॥ ३८ ॥ तंमेनिरेऽबलामूढाः स्त्रैणंचाऽनुव्रतंरहः । अप्रमाणविदो भर्तुरीश्वरंमतयोयथा ॥ ३९ ॥

इतिश्रीभा०महा०प्र०एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

शौनक उवाच ॥ अश्वत्थाम्नोपसृष्टेन ब्रह्मशीर्ष्णोरुतेजसा । उत्तरायाहतोगर्भ ईशेनाऽऽजीवितःपुनः ॥ १ ॥ तस्यजन्ममहाबुद्धेः कर्माणिचमहात्मनः । निधनंच यथैवासीत्सप्रेत्यगतवान्यथा ॥ २ ॥ तदिदंश्रोतुमिच्छामि गदितुंयदिमन्यसे । ब्रूहिनःश्रद्दधानानां यस्यज्ञानमदाच्छुकः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ अपीपलद्धर्मराजः पितृवद्रंजयन्प्रजाः । निःस्पृहःसर्वकामेभ्यः कृष्णपादानुसेवया ॥ ४ ॥ संपदः क्रतवोविप्रा महिषीभ्रातरोमही । जम्बूद्वीपाधिपत्यंच यशश्चत्रिदिवंगतम् ॥ ५ ॥ किंतेकामाः सुरस्पार्हा मुकुन्दमनसोद्विजाः । अधिजह्रुर्मुदंराज्ञः क्षुधितस्ययथेतरे ॥ ६ ॥ मातुर्गर्भगतोवीरः सतदाभृगुनन्दन । ददर्शपुरुषंकंचिद्दह्यमानोऽस्त्रतेजसा ॥ ७ ॥ अगुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमालिनम् । अपीच्यदर्शनंश्यामं तडिद्वाससमच्युतम् ॥ ८ ॥ श्रीमद्दीर्घचतुर्बाहुं तप्तकांचनकुण्डलम् । क्षतजाक्षंगदापाणिमात्मनःसर्वतोदिशम् ॥ ९ ॥ परिभ्रमन्तमुल्काभां भ्रामयन्तंगदांमुहुः । कौमोदकीमतिश्रेष्ठां भक्त

निर्मल तथा सुंदर हास्य, और लज्जायुक्त चितवनसे मोहित श्रीमहादेव जीने भी मोहितहोकर अपने धनुषको त्यागदिया वे श्रेष्ठ स्त्रियां हाव भाव से भगवान के चित्तको लोभित न करसकी ॥ ३६ ॥ वे परमेश्वर असंग हैं तौभी मनुष्य अज्ञान के वश होकर उनको अपने समान मानते हैं ॥ ३७ ॥ परमेश्वर की यहीतो परमेश्वरता है कि जैसे आत्माके आश्रय बुद्धि आत्मा ही मे रहकर आनदादिक धर्म्मों से युक्त नहीं होती वैसेही परमेश्वर प्रकृति में रहने पर भी उसके सुख दुःख आदिक गुणो से कभी युक्त नहीं होते ॥ ३८ ॥ जैसे अहंकार की वृत्तियां क्षेत्रज्ञ को अपने आधीन मानती है वैसे ही स्वामी के प्रभाव को न जानने वाली मूर्ख स्त्रियें उनको अपने आधीन मानने लगी ॥ ३९ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणे०प्रथमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

शौनक ने कहा–कि अश्वत्थामाके चलायेहुये प्रवल तेजवाले ब्रह्मास्त्र से उत्तरा का गर्भ नष्ट हुआ और उसे श्रीकृष्ण भगवान ने फिर से जीवित किया ॥ १ ॥ बडे बुद्धिमान, महात्मा राजा परीक्षित के जन्म और कर्म हमसे कहो और जैसे उनकी मृत्युहुई और वह परलोक में गये वह सबकथा कहो ॥ २ ॥ मैं यह सम्पूर्ण सुननेकी इच्छा करताहूं मुझ श्रद्धायुक्त श्रोताके सुनने योग्यहो तो कहो ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि–धर्मराज श्री युधिष्ठिरजी ने श्रीकृष्णजी के चरणों की सेवा करतेहुए सब कामनाओं से निस्पृह हो पिताकी भांति प्रजा का पालन किया ॥ ४ ॥ संपत्ति, यज्ञ, मनुष्य, प्राणी भैय्या, पृथ्वी, जम्बूद्वीप का राज्य तथा स्वर्ग तक गईहुई कीर्त्ति ॥ ५ ॥ यह सब पदार्थ कि देवता भी जिनकी वाञ्छा करें उस राजा को प्राप्त थे परन्तु उसका चित्त श्रीकृष्ण भगवान में लगे रहनेसे उसकी किसी गणना में नहीं थे हे ब्रह्मन् ! जैसे क्षुधार्त मनुष्यको फूल आदि की माला प्रसन्न नहीं करती वैसेही वे ऐश्वर्य्यभी उसको मोह नहीं प्राप्त करासके ॥ ६ ॥ हे शौनक ! माताके गर्भ में प्राप्ति और ब्रह्मास्त्र के तेज से जलतेहुए उस बीरबालक ने एक पुरुष देखा ॥ ७ ॥ वह पुरुष कैसा है कि अंगूठेकी समान उसका आकार, निर्मल, सुन्दर, सोनेका मुकुट धारण कियेहुए, बिजलीसा पीताम्बर पहिनेहुये, निर्विकार ॥ ८ ॥ जिसकी चार शोभायमान भुजा हैं वे सुवर्णके कुंडल धारण

रक्षणतत्पराम् ॥ १० ॥ अस्त्रतेजःस्वगदया नीहारमिवगोपतिः । विधमन्तंसंनिक र्षेपर्यैक्षतकइत्यसौ ॥ ११ ॥ विधूयतदमेयात्मा भगवान्धर्मगुब्विभुः । मिषतोदशमास्यस्य तत्रैवान्तर्दधेहरिः ॥ १२ ॥ ततःसर्वगुणोदर्के सानुकूलग्रहोदये । जज्ञेवंशधरःपाण्डोर्भूयःपाण्डुरिवौजसा ॥ १३ ॥ तस्यप्रीतमनाराजा विप्रैर्धौम्यकृपादिभिः । जातकंकारयामास वाचयित्वाचमङ्गलम् १४ हिरण्यंगांमहींग्रामान्हस्त्यश्वान्नृपतिर्वरान् । प्रादात्स्वन्नंचविप्रेभ्यः प्रजातीर्थेसतीर्थवित् ॥ १५ ॥ तमूचुर्ब्राह्मणास्तुष्टा राजानंप्रश्रयानतम् । एषह्यस्मिन्प्रजातन्तौ कुरूणांपौरवर्षभ ॥ १६ ॥ दैवेनाप्रतिघातेन शुक्ले संस्थामुपेयुषि । रातोवोऽनुग्रहार्थाय विष्णुनाप्रभविष्णुना १७ तस्मान्नाम्नाविष्णुरात इतिलोकबृहच्छ्रवाः । भविष्यतिनसंदेहो महाभागवतोमहान् ॥ १८ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अप्येषवंश्यान्राजर्षीन्पुण्यश्लोकान्महात्मनः ॥ अनुवर्तिता स्विद्यशसासाधुवादेनसत्तमाः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ पार्थप्रजाऽविताःसाक्षादिक्ष्वाकुरिवमानवः । ब्रह्मण्यः सत्यसंधश्च रामोदाशरथिर्यथा ॥ २० ॥ एषदाताशरण्यश्च यथाह्यौशीनरःशिबिः । यशोवितानितास्वानां दौष्यन्तिरिवयज्वनाम् ॥ २१ ॥ धन्विनामग्रणीरेष तुल्यश्चाऽर्जुनयोर्द्वयोः । हुताशइवदुर्धर्षः समुद्रइवदुस्तरः ॥ २२ ॥ मृगेन्द्रइवविक्रान्तो निषेव्योहिमवानिव । तितिक्षुर्वसुधेवाऽसौ सहिष्णुःपितराविव ॥ २३ ॥ पितामहसमःसाम्ये प्रसादेगिरिशोपमः । आश्रयःस

किये कालनेत्र तथा उल्कासी प्रकाशमान गदा हाथ में लिये चारोंओर घुमाता है ॥९॥ जैसे सूर्य को कुहर नाश करता है वैसेही अपनी गदासे अस्त्रके तेजका नाश करता, ऐसा पुरुष अपनें निकट देखकर विचारनेलगा कि यह कौन है ॥१०॥ जिनकी आत्मा अप्रमेय हैं, धर्म की रक्षा करनेवाले विभु भगवान उस अस्त्र का संहारकर दश महीने के गर्भ के देखते २ वहीं अंतर्हित होगये ॥ ११ ॥ इसके अनंतर दूसरे ग्रहों के साथ शुभ ग्रहो के उदयकाल में पांडु के समान पांडु वंश का धारण करनेवाला बालक उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥ प्रसन्न चित होकर राजा युधिष्ठिर ने धौम्य और कृप आदि ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन करवा उसका जाति कर्म करवाया ॥ १३ ॥ पुण्यकाल के जाननेवाले राजा युधिष्ठिर ने उस समय सुवर्ण, गौ, पृथ्वी, ग्राम, हाथी, घोड़े, और सुन्दर अन्न पुत्र जन्म के समय दान किये ॥ १४ ॥ सन्तुष्ट हुए ब्राह्मण प्रसन्न होकर बिनययुक्त युधिष्टिर से कहनेलगे कि हे पुरवंशियों में श्रेष्ठ!यह बालक तुम्हारी संतान।।१५॥ऐसे दैवसे नाशकोप्राप्त होगयाथा वहां तुमपर कृपा करके त्रिभुवनशील श्रीविष्णुजी ने यह पुत्र आपको दिया है ॥ १६ ॥ इस लिये इस लोक में इसकानाम विष्णुरात होगा और यह बड़ा यशस्वी व भगवद्भक्त होगा इसमें संशय कुछभी नहीं है ॥ १७ ॥ राजा युधिष्ठिर ने कहा कि हे ब्राह्मणों ! उदार चित्त और सुदर यश से जिस भांति हमारे वंश के महात्मा राजर्षि बरतते आये हैं वैसेही बरतनेवाला यह पुत्र होगा ? ॥१८॥ ब्राह्मणों ने कहा कि हे राजा युधिष्ठिर ! प्रजा रक्षण में तो मनुके पुत्र इक्ष्वाकु की समान और विप्रभक्त व सत्य प्रतिज्ञ राजा दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्रजी की समान होगा ॥१९॥ पुण्यात्मा और शरणागत वत्सल राजा उशीनर के पुत्र राजा शिबि की समान और अपनी ज्ञाति तथा यज्ञ करताओं के यश विस्तार करनें में दुष्यंत के पुत्र भरतकी समान होगा ॥ २० ॥ धनुष धारियों में सहस्राजुंन तथा अर्जुनकी समान अग्नि की समान दुर्धर्ष और समुद्र की समान दुस्तर होगा ॥ २१ ॥ सिंह की समान पराक्रमी हिमालय की समान सबके सेवनेयोग्य, पृथ्वी की समान क्षमावान और माता पिता की समान शीलवानहोगा ॥२२॥समतामें ब्रह्माकी समान प्रसन्न होनेमें महादेवजी की समान, तथा विष्णु

वेभूतानां यथादेवोरमाश्रयः ॥ २४ ॥ सर्वसद्गुणमाहात्म्य एषकृष्णमनुव्रतः । रन्तिदेवइवोदारो ययातिरिवधार्मिकः ॥ २५ ॥ धृत्याबलिसमःकृष्णे प्रह्लाद इव सद्ग्रहः । आहर्तैषोऽश्वमेधानां वृद्धानांपर्युपासकः ॥ २६ ॥ राजर्षीणांजनयिता शास्ताचोत्पथगामिनाम् । निग्रहीताकलेरेष भुवोधर्मस्यकारणात् ॥ २७ ॥ तक्षकादात्मनोमृत्युं द्विजपुत्रोपसर्जितात् । प्रपत्स्यतउपश्रुत्य मुक्तसंगःपदंहरेः ॥२८॥ जिज्ञासितात्मयाथात्म्यो मुनेर्व्याससुतादसौ । हित्वेदंनृपगङ्गायां यास्यत्यद्धाऽकुतोभयम् ॥ २९ ॥ इतिराज्ञउपादिश्य विप्राजातककोविदः । लब्धापचितयःसर्वे प्रतिजग्मुः स्वकान्गृहान् ॥ ३० ॥ सएषलोकविख्यातः परीक्षिदितियत्प्रभुः । पूर्वं दृष्टमनुध्यायन्परीक्षेतनरेष्विह ॥ ३१ ॥ सराजपुत्रोववृध आशुशुक्लइवोडुपः । आपूर्यमाणःपितृभिः काष्ठाभिरिवसोऽन्वहम् ॥ ३२ ॥ यक्ष्यमाणोऽश्वमेधेन ज्ञातिद्रोहजिहासया । राजाऽलब्धधनोदध्यौ वन्यत्रकरदण्डयोः ॥ ३३ ॥ तदभिप्रेतमालक्ष्य भ्रातरोऽच्युतचोदिताः । धनंप्रहीणमाजह्रुरुदीच्यांदिशिभूरिशः ॥ ३४ ॥ तेनसंभृतसंभारो लब्धकामोयुधिष्ठिरः । वाजिमेधैस्त्रिभिर्भीतो यज्ञैःसमयजद्धरिम् ॥ ३५ ॥ आहूतोभगवान्राज्ञा याजयित्वाद्विजैर्नृपम् । उवासकतिचिन्मासान्सुहृदांप्रियकाम्यया ॥ ३६ ॥ ततोराज्ञाऽभ्यनुज्ञातः कृष्णयासहबन्धुभिः । ययौ द्वारवतींब्रह्मन्सानुगैर्यदुभिर्वृतः ॥ ३७ ॥

इतिश्रीमद्भा०प्रथम०परीक्षिज्जन्माद्युत्कर्षोनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

की समान सब प्राणियों का आश्रयभूत होगा ॥ २३ ॥ सब सद्गुणों और महिमा में श्रीकृष्णचंद्र की समान उदारता में रंतिदेव की समान और ययाति राजा के समान धर्मात्मा होगा ॥ २४ ॥ धीरज में राजाबलि की समान कृष्ण विषेमें प्रह्लाद की भांति आग्रह करेगा अश्वमेध यज्ञोंका करने वाला तथा वृद्ध मनुष्योंकी उपासना करनेवाला होगा ॥ २५ ॥ राजर्षियों को उत्पन्न करेगा उत्पथ गामियों को शिक्षा देवेगा पृथ्वी और धर्म के कारण यह कलियुग का निग्रह करेगा ॥ २६ ॥ ब्राह्मण के पुत्र द्वारा भेजेहुए तक्षक से अपनी मृत्यु सुनकर हरिभगवान के पद को प्राप्त होगा ॥ २७ ॥ हे राजा ! व्यासजीके पुत्र शुकदेवजीसे आत्म स्वरूपको जानकर गंगा तट पर इस शरीरको छोड़ मोक्षपद को प्राप्त होगा ॥ २८ ॥ ज्योतिष, जात में निपुण ब्राह्मण राजा को इस भांति से उपदेश कर पूजा पा अपने २ घर को गये ॥ २९ ॥ जिस पुरुष को गर्भ में देखाथा उसकोमनुष्यों में भी आकर देखातो ध्यान करते २ परीक्षा की कि वह पुरुष है कि नहीं—इससे राजपुत्र परीक्षित इस नाम से जगत में प्रसिद्ध हुआ ॥ ३० ॥ वह राज पुत्र शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भांति दिन २ बढ़ने लगा और युधिष्ठिर आदि नित्य उस का पालन करने लगे ॥ ३१ ॥ जाति द्रोहता नाश करने की इच्छा से युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ करने की कांक्षा हुई परन्तु कर और दंड इन के अतिरिक्त धनको न देखकर विचारने लगे ॥ ३२ ॥ राजाके इस प्रयोजन को जान कर श्रीभगवान ने युधिष्ठिर के भाइयों को उत्तर दिशा में भेजा वे वहां से मरुत राजाके यज्ञके त्याग किये हुये बहुत से धनको ले आये ॥ ३३ ॥ उस धनसे धर्म पुत्र युधिष्ठिरने यज्ञकीसामग्री की और जाति द्रोह से डरकर तीन अश्वमेध यज्ञों से भगवानकी पूजाकी ॥ ३४ ॥ राजायुधिष्ठिर के बुलाये हुए श्रीकृष्णभगवान आकर ब्राह्मणों से यज्ञ करा सुहृदों के प्रिय के हेतु कुछ महीने वहां बास किया ॥ ३५ ॥ इसके उपरांत राजा युधिष्ठिर व द्रौपदीसे आज्ञा ले यादवों व अर्जुन को साथ ले श्रीकृष्णभगवान द्वारका को आये ॥ ३६ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणे०प्रथम०परीक्षितजन्मद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सूतउवाच ॥ विदुरस्तीर्थयात्रायां मैत्रेयादात्मनोगतिम् । ज्ञात्वाऽगाद्धास्तिन पुरं तयाऽवाप्तविवित्सितः ॥ १ ॥ यावतःकृतवान्प्रश्नान्क्षत्ताकौषारवाग्रतः । जातैक भक्तिर्गोविन्दे तेभ्यश्चोपरराम ह ॥ २ ॥ तंबंधुमागतंदृष्ट्वा धर्मपुत्रःसहानुजः । धृतराष्ट्रोयुयुत्सुश्च सूतःशारद्वतःपृथा ॥ ३ ॥ गांधारीद्रौपदीब्रह्मन्सुभद्राचोत्तराकृपी अन्याश्चजामयःपाण्डोर्ज्ञातयःससुताःस्त्रियः ॥४॥प्रत्युज्जग्मुःप्रहर्षेण प्राणंतन्वइवागतम् । अभिसंगम्यविधिवत्परिष्वङ्गाभिवादनैः ॥ ५ ॥ मुमुचुःप्रेमबाष्पौघंविरहौत्कण्ठ्यकातराः । राजातमर्हयांचक्रे कृतासनपरिग्रहम् ॥ ६ ॥ तंभुक्तवंतमासीनं विश्रांतंसुखमासने । प्रश्रयावनतोराजा प्राहतेषांचशृण्वताम् ॥ ७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अपिस्मरथनोयुष्मत्पक्षच्छायासमेधितान् । विपद्गणाद्विषाग्न्यादेर्मोचिता यत्समातृकाः ॥ ८ ॥ कयावृत्त्यावर्तितंवश्चरद्भिःक्षितिमंडलम् । तीर्थानिक्षेत्रमुख्यानि सेवितानीहभूतले ॥ ९ ॥ भवद्विधाभागवतास्तीर्थभूताःस्वयंविभो । तीर्थीकुर्वन्तितीर्थानि स्वांतःस्थेनगदाभृता ॥ १० ॥ अपिनःसुहृदस्तात बांधवाःकृष्ण देवताः । दृष्टाःश्रुतावायदवःस्वपुर्यांसुखमासते ॥ ११ ॥ इत्युक्तोधर्मराजेन सर्वं तत्समवर्णयत् । यथानुभूतंक्रमशो विनायदुकुलक्षयम् ॥१२॥नन्वप्रियंदुर्विषहंनृणां स्वयमुपस्थितम् । नावेदयत्सकरुणो दुःखितांद्रष्टुमक्षमः ॥ १३ ॥ कंचित्कालम थावात्सीत्सत्कृतो देववत्सुखम् । भ्रातुर्ज्येष्ठस्य श्रेयस्कृत्सर्वेषांप्रीतिमावहन् १४॥

सूतजी बोले कि विदुरजी तीर्थ में मैत्रेयजी से आत्माकी गति से श्रीकृष्णको जान उससे सब इष्ट जानकर हस्तिनापुर को गये ॥१॥ विदुरजी ने मैत्रेयजी से जितने प्रश्न किये, उनसे श्रीकृष्ण भगवान में एक भक्ति प्राप्त हुई और विदुरजी उन प्रश्नों से उपराम को प्राप्त हुए ॥ २ ॥ अपने भाई विदुरजी को आया जानकर धृतराष्ट्र, राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों समेत, युयुत्सु, संजय, कृपाचार्य, कुंती ॥ ३ ॥ गांधारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी और भी पांडु जाति की स्त्रीयां, जातिवाले, और दूसरी भी कितनी एक पुत्रवती स्त्रियां ॥ ४ ॥ ये सब जैसे जीव के आनेपर सब इन्द्रियां उसके सन्मुख जांय वैसेही प्रेम पूर्व्वक उनके सन्मुख गए ॥ ५ ॥ स्पर्श और वंदवन द्वारा विधिवत सबसे मिल विरह से व्याकुल हो प्रेमाश्रु बहाने लगे ॥ ६ ॥ राजा युधिष्ठिर ने विदुरजी को पूज, आसन दे भोजन कराया तत्पश्चात् जहांपर वह सुख पूर्व्वक बैठेथे वहांपर युधिष्ठिरजी ने नम्रता से कहा ॥ ७ ॥ युधिष्ठिरजी बोले । आपके पक्ष की छाया से हमको वृद्धि प्राप्त हुई है आप कभी हमारा स्मरण करते हो ? आपने विष, अग्नि, आपत्तिओं से माता सहित हमको छुड़ाया है ॥ ८ ॥ पृथ्वी में विचरकर आपने किस भांति से निर्वाह किया और पृथ्वी में कौन २ से मुख्य २ तीर्थ व क्षेत्रों का सेवन किया है ॥ ९ ॥ हे विभो आप सरीखे भगवद्भक्त तो आपही तीर्थ रूप हैं आप का तीर्थ जानातो उलटा उनका पवित्र करना है क्योंकि हृदय में परमेश्वर का अंश होनेसे आप लोग तीर्थों को पवित्र करते हैं ॥ १० ॥ हे तात ? हमारे सुहृद श्रीकृष्णजी और बांधव, यादव अपनी पुरी में कुशल पूर्व्वक तो हैं आपने उनका वृत्तांत सुना है या उनको देखा है ! ॥११॥ ऐसे धर्म राजके पूछनेपर विदुरजी ने क्रमानुसार सब वृत्तांत कहे परन्तु यदुकुल के नाश के समाचार न कहे ॥ १२ ॥ दैवयोग से प्राप्तहुआ दुःख मनुष्य से नहीं सहाजाता और आप पांडवों का दुःख नहीं देखसकते इस कारण विदुरजी ने यादवों के क्षय का वृत्तांत नहीं कहा ॥ १३ ॥ देवताओं की भांति सत्कार कियेजाते विदुरजी जेठे भाई के कल्याण के अर्थ सबको प्रसन्न करते कुछकाल घरमें रहे ॥१४॥ (विदुरजी शूद्रथे सो वे धृतराष्ट्र

अबिभ्रदर्यमादण्डं यथावदघकारिषु । यावद्दधारशूद्रत्वं शापाद्वर्षशतंयमः ।१५।
युधिष्ठिरोलब्धराज्योदृष्ट्वापौत्रंकुलंधरम् । भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्मुमुदेपरयाश्रिया
॥ १६ ॥ एवंगृहेषुसक्तानां प्रमत्तानांतदीहया । अत्यक्रामदविज्ञातः कालःपरमदु·
स्तरः ॥ १७ ॥ विदुरस्तदभिप्रेत्य धृतराष्ट्रमभाषत । राजन्निर्गम्यतांशीघ्रं पश्येदं
भयमागतम् ॥ १८ ॥ प्रतिक्रियानयस्येह कुतश्चित्कर्हिचित्प्रभो । सएषभगवान्
कालः सर्वेषांनःसमागतः ॥ १९ ॥ येनचैवाऽभिपन्नोऽयं प्राणैःप्रियतमैरपि । जनः
सद्योवियुज्येत किमुतान्यैर्धनादिभिः २० ॥ पितृभ्रातृसुहृत्पुत्रा हतास्तेविगतंवयः
आत्माचजरयाग्रस्तः परगेहमुपाससे ॥ २१ ॥ अहोमहीयसीजन्तोर्जीविताशा
यथाभवान् । भीमेनावर्जितंपिण्ड मादत्तेगृहपालवत् २२अग्निर्निसृष्टोदत्तश्च गरो
दाराश्चदूषिताः । हृतंक्षेत्रंधनंयेषां तद्दत्तैरसुभिःकियत् ॥२३॥ तस्यापितवदेहोऽयं
कृपणस्यजिजीविषोः । परैत्यनिच्छतोजीर्णो जरयावाससीइव ॥ २४ ॥ गतस्वा
र्थमिमंदेहं विरक्तोमुक्तबन्धनः । अविज्ञातगतिर्जह्यात्सवैधीरउदाहृतः ॥ २५ ॥ यःस्व

को किस भांति उपदेश करते हैं कदाचित ऐसी शंका हो तो कहते हैं कि यह आपही यमराज थे परन्तु मांडव्य ऋषि के श्राप से शूद्र हुए) यमराज ने मांडव्य (१) ऋषिके श्राप से १००वर्षतक शूद्रपन धारण किया तबतक पापी लोगों को अर्यमा पितर यथोचित दण्डदेते रहे ॥ १५ ॥ राज्य को प्राप्त हुए राजा युधिष्ठिर कुल का धारण करने वाला पौत्र देखकर ऐश्वर्य्य से लोकपालों की समान कांति वाले अनुजों समेत बडे आनंद को प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ ऐसे घरों में आसक्त और घर के कामों से प्रमत्त उन पांडवों का परम दुस्तर काल व्यतीत होगया ॥ १७ ॥ विदुरजी उस समय निकलकर धृतराष्ट्रसे कहने लगे कि हे राजा धृतराष्ट्र शीघ्रही घरसे निकलो और इस आये हुए भयको देखो ॥ १८ ॥ हे प्रभु यहां जिसका यत्न किसी से कहीं नहीं हो सकता वही काल अब हम सबको आ प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥ जिस काल से ग्रसाहुआ यह मनुष्य अति प्रिय अपने प्राणों से भी हीन हो जाता है फिर दूसरे धन आदिकी कौनबात है ॥ २० ॥ तुम्हारे पिता, भैया सुहृद, पुत्र सब मरगए तुम्हारी अवस्था भी व्यतीत होगई परन्तु तो भी दूसरे के घरका सेवन करते हो ॥ २१ ॥ अहो ! प्राणी के जीने की आशा बहुतबड़ी है, जिस आशा से तुम भीमसेनका दियाहुआ टुकडा जिसने तुम्हारे पुत्रों को मारा खातेहो ॥ २२ ॥ देखो जिन पाण्डवों को तुमने आग में जलाया, विष के लड्डू खिलाये, जिनकी स्त्रियों को दुख दिया और धन व घर का भी हरण करलिया उन पांडवों के दियेहुए जीव से कितना काम चलेगा ॥ २३ ॥ चाहे आप इस दीनता का भले अनुभव करलौ तोभी जीनेकी आशावाले और कृपण, आपका यह शरीर बुढ़ापा के कारण जीर्ण वस्त्र की भांति आपसे आप विनाही इच्छा क्षीण होताजाता है, इस लिये अब आप धैर्य्य धारण करो ॥ २४ ॥ जो पुरुष वैराग्य को धारण कर आवागमन से छूट, ऐसे स्थान में जाकर बसे जहां किसी को ज्ञात नहोवे तो उसे धीर कहते हैं ॥ २५ ॥ जो अपने ज्ञान से तथा

१—किसी काल में एक राजा के सिपाहीयो ने मांडव्य ऋषि को तप करते हुए चोरोंके साथ राजाके पास लेगए तब राजाकी आज्ञासे चोर और ऋषिको भी सिपाहीयों नें सूली पर चढादिया पीछे ऋषि जान शूलीसे उतार राजाने ऋषिको प्रसन्नकिया तदनंतर ऋषि यमराजके निकट जाकर बोले कि मैं किस कारण से सूलीपर चढाया गया तब यमराज ने कहा कि आपने बालकपन में एक कुशा की नोंक से कीडोंको छेदकर खेल किया था इस पाप से आपको सूली हुई यह सुन ऋषि ने यमराज से कहा कि लड़कपन के अज्ञानता के पाप में इतना बड़ा दंड दिया जा तू १०० वर्षतक शूद्र हो ।

कालपरनोवेह जातनिर्वेदआत्मवान् । हृदिकृत्वाहरिंगेहात्प्रव्रजेत्सनरोत्तमः ॥ २६ ॥ अथोदीर्चीदिशंयातु स्वैरज्ञातगतिर्भवान् । इतोऽर्वाक्प्रायशःकालः पुंसांगुणविकर्षणः ॥ २७ ॥ एवंराजाविदुरेणानुजेन प्रज्ञाचक्षुर्बोधितोह्याजमीढः । छित्वास्वेषु स्नेहपाशान्द्रढिम्नो निश्चक्रामभ्रातृसंदर्शिताध्वा ॥ २८ ॥ पतिंप्रयान्तंसुबलस्य पुत्री पतिव्रताचानुजगामसाध्वी । हिमालयंन्यस्तदण्डप्रहर्षं मनस्विनामिवसत्संप्रहारः ॥ २९ ॥ अजातशत्रुःकृतमैत्रोहुताग्निर्विप्रान्नत्वा तिलगोभूमिरुक्मैः । गृहंप्रविष्टोगुरुवन्दनाय नचापश्यत्पितरौसौबलींच ॥ ३० ॥ तत्रसंजयमासीनं पप्रच्छोद्विग्नमानसः । गावल्गणेक्वनस्तातो वृद्धोहीनश्चनेत्रयोः ॥ ३१ ॥ अम्बाचहतपुत्राऽऽर्तापितृव्यःक्वगतःसुहृत् । अपिमय्यकृतप्रज्ञे हतबन्धुःसभार्यया । आशंसमानःशमलं गंगायांदुःखितोपतत् ॥ ३२ ॥ पितर्युपरतेपाण्डौ सर्वान्नःसुहृदःशिशून् । अरक्षतांव्यसनतः पितृव्यौक्वगतावितः ॥ ३३ ॥ सूतउवाच ॥ कृपयास्नेहवैक्लव्यात्सूतोविरहकर्शितः । आत्मेश्वरमचक्षाणो नप्रत्याहातिपीडितः ॥ ३४ ॥ विमृज्याऽश्रूणिपाणिभ्यां विष्टभ्यात्मानमात्मना ॥ अजातशत्रुंप्रत्यूचे प्रभोःपादावनुस्मरन् ॥ ३५ ॥ संजयउवाच ॥ नाहंवेदव्यवसितं पित्रोर्वःकुलनन्दन । गांधार्यावामहाबाहो मुषितोऽस्मिमहात्मभिः ॥ ३६ ॥ अथाजगामभगवान्नारदःसहतुम्बरुः । प्रत्युत्थायाभिवाद्याऽऽहसानुजोऽभ्यर्चयन्निव ॥ ३७ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ नाहंवेदग

दूसरे के उपदेश से वैराग्य धारण कर हरिभगवान को हृदय में धार घर से निकलजाय तो उस पुरुष को प्राणियों में श्रेष्ठ समझना चाहिये ॥ २६ ॥ अब आप अपने आत्मीय जनों को तो ज्ञात न्होने दो और आप उत्तर दिशाको चलेजाओ क्योंकि अब मनुष्यों के धर्मादिक गुणोंका नाशकरने वाला काल आवेगा ॥ २७ ॥ इस प्रकार छोटे भाई विदुर ने अंध राजा धृतराष्ट्र को शिक्षा दी तो बांधवों के स्नेह रूप पाशको काट कर भाई के दिखायेहुए बंध मोक्ष के रास्ते को जान बाहर निकल पड़े ॥ २८ ॥ सुबल की बेटी साध्वी सुशीला गांधारी पति धृतराष्ट्र को जाता देखकर उनके पीछे२ आनंददायक हिमालय को चलपड़ी जैसे युद्ध में शूर वीरों को शर लगने से आनंद होता है वैसेही आनंदित गंधारी भी गई ॥ २९ ॥ राजा युधिष्ठिर संध्या वंदन कर होम के पश्चात् तिल, गौ, भूमि और सुवर्ण सेब्राह्मणों की पूजाकर गुरूको प्रणाम करने के लिये घरमें गये तो वहां विदुर, धृतराष्ट्र तथा गांधारी को न देखा ॥ ३० ॥ तब व्याकुल चित्तहो वहां बैठेहुए संजय से पूछा कि हे गवलगण के पुत्र संजय ! नेत्रों से हीन और वृद्ध हमारे ताऊ कहां गये ॥ ३१ ॥ पुत्रों के मरने से दुःखित हमारी माता गांधारी कहां गई और हमारे सुहृद विदुर कहां गये जिन के बंधु मर गये हैं ऐसे पिता धृतराष्ट्र मुझ मंद मतिपर शंका लाकर गांधारी समेत दुःखी होकर गंगा में तो न गिरपड़े ॥ ३२ ॥ पांडु पिता के मरजाने से जिन्होंने कष्ट से बचाकर हमारी रक्षा की वे दोनो कहां गए ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले कि-कृपा और स्नेह से उत्पन्न हुई बिकलता से अति दुःखित और बिरह से कर्षित संजय अपने स्वामी धृतराष्ट्रको न देखकर कुछ न बोला ॥ ३४ ॥ फिर हाथों से आंसू पोंछकर, बुद्धि से चित्तमें धैर्य्य धारण कर, अपने स्वामी के चरणोंका स्मरण करता हुआ संजय राजा युधिष्ठिर से कहनेलगा ॥ ३५ ॥ हे कुलनंदन ! आपके पिता महात्मा धृतराष्ट्र तथा बिदुर व गंधारीकी मुझेकुछ खबर नहीं है हे महाबाहु ! मैं तो उन महात्माओं से ठगागया ॥ ३६ ॥ इसके अनंतर तुंबरु गंधर्वको लियेहुए श्रीभगवान नारद जी आये, राजा युधिष्ठिर ने उठकर इनको दंडवतकर भाइयों समेत पूजाकी और यह पूछा ॥ ३७ ॥ हे भगवन् !

तिपित्रोर्भगवन्क्वगताश्चितः । अम्बावाहतपुत्राऽऽर्ताक्वगतावतपस्विनी ॥ कर्णे धारइवापारे भगवान्पारदर्शकः ॥ ३८ ॥ अथाबभाषेभगवान्नारदो मुनिसत्तमः । माकंचनशुचोराजन्यदीश्वरवशंजगत् ॥ ३९ ॥ लोकाःसपालायस्येमे वहन्तिबलिमीशितुः । ससंयुनक्तिभूतानि सएववियुनक्तिच ॥ ४० ॥ यथागावो नसिप्रोतास्तन्त्यां बद्धाःस्वदामभिः । वाक्तन्त्यांनामभिर्बद्धा वहन्तिबलिमीशितुः ॥ ४१ ॥ यथाक्रीडोपस्कराणां संयोगविगमाविह । इच्छयाक्रीडितुःस्यातां तथैवेशेच्छयानृणाम् ॥ ४२ ॥ यन्मन्यसेध्रुवंलोकमध्रुवं वानचोभयम् । सर्वथाहिनशोच्यास्ते स्नेहादन्यत्रमोहजात् ॥ ४३ ॥ तस्माज्जह्यङ्गवैक्लव्यमज्ञानकृतमात्मनः ।कथं त्वनाथाःकृपणा वर्तेरंस्त्वनमाश्रिताः ॥ ४४ ॥ कालकर्मगुणाधीनो देहोऽयंपाञ्चभौतिकः । कथमन्यांस्तुगोपायेत्सर्पग्रस्तोयथापरम् ॥ ४५ ॥ अहस्तानिसहस्तानाम पदानिचतुष्पदाम् ॥ फल्गूनितत्रमहतां जीवोजीवस्यजीवनम् ॥ ४६ ॥ तदिदंभगवान्राजन्नेकमात्माऽऽत्मनांस्वदृक् । अन्तरोऽनन्तरोभाति पश्यतंमाययोरुधा॥४७॥ सोयमद्यमहाराजभगवान्भूतभावनः। कालरूपोऽवतीर्णोऽस्यामभावायसुरद्विषाम् ॥ ४८ ॥ निष्पादितंदेवकृत्यमवशेषंप्रतीक्षते । तावद्यूयमवेक्षध्वं भवेद्यावदिहेश्वरः ॥ ४९ ॥ धृतराष्ट्रःसहभ्रात्रा गांधार्याचस्वभार्यया । दक्षिणेनहिमवत ऋषीणामा-

मै अपने पिता धृतराष्ट्र, गंधारी तथा विदुर जी की गति नहीं जानता कि वे इस स्थान से कहां चले गये और पुत्रों के मरण से गांधारी कहां गई । हे मुनिसत्तम ! इस अपार दुःखरूपी समुद्र में पार दिखाने वाले खेवटिया आपही हो ॥ ३८ ॥ यह सुन नारद जी ने कहा—कि हे राजन् ! आप किसी का शोच न करें क्योंकि यह सब जगत् ईश्वर के वश है ॥ ३९ ॥ यह सब लोक लोकपालों समेत जिन भगवान परमात्मा को बलिदेते हैं वेही परमात्मा प्राणियों को मिलाते और बिछुड़ाते हैं ॥ ४० ॥ जैसे नाक में नाथ डालकर रस्सी में बंधेहुए बैल अपने स्वामी की आज्ञा मानते हैं वैसेही वाणी रूप डोरी में परमेश्वर की आज्ञा रूप नथनियों से बंधे हुए मनुष्य ईश्वर की आज्ञा को मानते हैं ॥ ४१ ॥ जैसे खिलौनों का संयोग वियोग खेलने वाले की इच्छा से होता है वैसेही मनुष्यों का संयोग वियोग ईश्वर की इच्छा से होता है ॥ ४२ ॥ यदि तुम इस सृष्टि को जीव रूप से सचा और देह रूप से झूठा मानते हो और शुद्ध ब्रह्म करके सचा और झूठा भी नहीं मानते तो माता पिता का शोच करना योग्य नहीं है मोह से उत्पन्न हुआ स्नेहही शोक का कारण है ॥ ४३ ॥ हे राजा ! इस अज्ञानता को जिस से चित्त व्याकुल है त्याग करो और मेरे बिना अनाथ गरीब, बनमें रहे धृतराष्ट्र कैसे गुजर करैंगे इस व्याकुलता को त्याग करो ॥ ४४ ॥ सांप का डसाहुआ मनुष्य दूसरों की रक्षा नहीं करसकता वैसेही काल, कर्म, गुणों के आधीन इन पंच महाभूतों का शरीर भी दूसरों की रक्षा नहीं करसकता॥ ४५ ॥ देखो हाथवालों के बिना हाथ वाले, (चौपाये) चौपायों के बिना पांव वाले (तृण) उन में भी बड़ों के छोटे— इस भांति सब प्राणियों की जीविका प्राणियों ही से है ॥ ४६ ॥ हे राजा युधिष्ठिर ! आत्माओं का आत्मा यह जगत् है आपही भगवत रूप हैं वे परमात्मा सब भोग्य भोक्ताओं के आत्म रूप एकही हैं इस लिये उनमें सजातीय भेद नहीं है और बाहर, भीतर भोक्ता और भोग्यरूप प्रतीत होते हैं इस से विजातीय भेद नहीं है तोभी माया से अनेक रूप ज्ञात होते हैं उन्हैं तुम देखो ॥ ४७ ॥ हे महाराज ! उन्हीं भगवान प्राणियों के रक्षक ने राक्षसों का नाश करने के लिये पृथ्वी में अवतार लिया है ॥ ४८ ॥ देवताओं का कार्य तो करचुके हैं अब शेष कामकी प्रतीक्षा करते हैं जब तक

श्रमंगतः ॥ ५० ॥ स्रोतोभिःसप्तभिर्यावै स्वर्धुनीसप्तधाव्यधात्। सप्तानांप्रीततनाम्नो सप्तस्रोतःप्रचक्षते ॥ ५१ ॥ स्नात्वाऽनुसवनंतस्मिन्हुत्वाचाग्नीन्यथाविधि । अब्भक्षउपशांतात्मासआस्तेविगतैषणः ॥ ५२ ॥ जितासनोजितश्वासः प्रत्याहृतषडिन्द्रियः । हरिभावनयाध्वस्तरजःसत्त्वतमोमलः ॥ ५३ ॥ विज्ञानात्मनिसंयोज्य क्षेत्रज्ञेप्रविलाप्यतम्। ब्रह्मण्यात्मानमाधारे घटाम्बरमिवाम्बरे ॥ ५४ ॥ ध्वस्तमायागुणोदर्कोनिरुद्धकरणाशयः । निवर्तिताखिलाहार आस्तेस्थाणुरिवाधुना ॥ ५५ ॥ तस्यान्तरायोमैवाभूःसंन्यस्ताखिलकर्मणः । सवाअद्यतनाद्राजन्परतःपंचमेऽहनि। कलेवरंहास्यतिस्वंतच्च भस्मीभविष्यति ॥ ५६ ॥ दह्यमानेऽग्निभिर्देहे पत्युःपत्नी सहोटजे । बहिःस्थितापतिंसाध्वी तमग्निमनुवेक्ष्यति ॥ ५७ ॥ विदुरस्तुतदाश्चर्यं निशाम्यकुरुनन्दन । हर्षशोकयुतस्तस्माद्गन्ता तीर्थनिषेवकः ॥ ५८ ॥ इत्युक्त्वाऽथारुहत्स्वर्गंनारदःसहतुम्बरुः। युधिष्ठिरोवचस्तस्य हृदिकृत्वाऽजहाच्छुचः॥५९॥

इतिश्री०म०प्र०विदुरोक्त्याधृतराष्ट्रमोक्षवर्णननामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

सूतउवाच ॥ संप्रस्थितेद्वारकायां जिष्णौवन्धुदिदृक्षया। ज्ञातुंचपुण्यश्लोकस्य कृष्णस्यचविचेष्टितम् ॥१॥ व्यतीताः कतिचिन्मासास्तदा नाऽयात्ततोऽर्जुनः । ददर्शघोररूपाणि निमित्तानिकुरूद्वह ॥ २॥ कालस्यचगतिंरौद्रां विपर्यस्तर्तुधर्मिणः पापीयसींनृणांवार्तां क्रोधलोभानृतात्मनाम् ॥ ३ ॥ जिह्मप्रायंव्यवहृतं शाठ्यमिश्रं-

---

ईश्वर यहां रहें तबतक आपभी रहो ॥ ४९ ॥ धृतराष्ट्र अपनेभाई विदुर और गांधारी समेत हिमालय के दक्षिण ओर जहां ऋषियों का आश्रम है तहां गये हैं ॥ ५० ॥ जिस आश्रम में सप्त ऋषियों के प्रीति के हेतु गंगाजी सात धारा होकर वही हैं और जिसे सप्तस्रोत करते हैं ॥ ५१ ॥ उस स्थान में धृतराष्ट्र त्रिकाल स्नान करके विधिपूर्वक, शांत चित्त व अनिच्छित होकर जलका भोजनकर अग्नि में होम कर रहे हैं ॥ ५२ ॥ आसन को जीतकर छहों इन्द्रियों को वश में कर श्वास रोककर, परमात्मा की भावना से रज, सत्व, तम गुणों के मलको त्याग कर ॥ ५३ ॥ विज्ञान को आत्मा में योजनाकर और आत्मा को क्षेत्रज्ञ में और क्षेत्रज्ञको साक्षात् श्री भगवान् से मिलाकर के–जैसे घटाकाश को घटोपाधि से योजना करके महाकाश में लीन किया करते हैं ॥ ५४ ॥ माया सम्बन्धी वासनाओंका त्याग कर इन्द्रियों और मनको रोक, सब भोग्य पदार्थों को छोड़ काठ के ठूंठ की भांति अचल बैठे हैं उन्होंने सम्पूर्ण कर्मों को त्यागदिया है इस लिये हे राजा ! तू विघ्न मतकरे ॥ ५५ ॥ वह आज पांचवें दिन अपने शरीर को छोड़कर भस्म होजायगें ॥ ५६ ॥ पर्णशाला में योगकी अग्नि से पति को जलता देखकर बाहर बैठीहुई पतिव्रता गांधारीभी उस अग्नि में प्रवेश करजांयगी ॥ ५७ ॥ हे युधिष्ठिर ! उस आश्चर्य को देखकर बिदुरजी हर्ष व शोक युक्तहो वहांसे तीर्थ सेवन को निकल जांयगे ॥ ५८ ॥ नारदजी इस भांति कहकर तुंबुरु गंधर्व को संगले स्वर्गको गए और युधिष्ठिरजीने उनके बचनों को हृदय में धारण कर शोक का त्याग किया ॥५९॥

इति श्री भागवते महापुराणे प्रथमस्कंधेसरलाभाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

सूतजी बोले कि–बंधुओंके देखनेकी इच्छा तथा श्रीकृष्णके चरित्र जाननेको द्वारकागये अर्जुन को ॥१॥ कई महीने होगये परन्तु अर्जुन वहां से न आये इससे प्रथम युधिष्ठिरने घोररूप उत्पात देखे ॥ २ ॥ कालकी विपरीत गति, ऋतुओं के बिपरीत धर्म, मनुष्योको पापरूप, मनुष्योंको क्रोध

चसौहृदम् । पितृमातृसुहृद्भ्रातृदम्पतीनां च कल्कनम् ॥४॥निमित्तान्यत्यरिष्टानि कालेत्वनुगतेंनृणां। लोभाद्यधर्मप्रकृतिं दृष्ट्वोवाचानुजंनृपः ॥५॥ युधिष्ठिरउवाच। संप्रेषितोद्वारकायां जिष्णुर्बन्धुदिदृक्षया।ज्ञातुंचपुण्यश्लोकस्य कृष्णस्यचविचेष्टितम् ॥ ६॥ गताःसप्ताऽधुनामासा भीमसेनतवानुजः । नायातिकस्यवाहेतो र्नाहंवेदेद मंजसा ॥ ७ ॥ अपिदेवर्षिणाऽऽदिष्टःसकालोयमुपस्थितः । यदात्मनोऽङ्गमाक्रीडं भगवानुत्सिसृक्षति ॥ ८ ॥ यस्मान्नःसंपदोराज्यं दाराःप्राणाःकुलंप्रजाः । आसन्सपत्नविजयो लोकाश्चयदनुग्रहात् ॥ ९ ॥ पश्योत्पातान्नरव्याघ्रदिव्यान्भौमान्स दैहिकान् । दारुणाञ्छंसतो दूरान्द्भयंनोबुद्धिमोहनम् ॥ १० ॥ ऊर्वक्षिबाहवोमह्यं स्फुरन्त्यङ्गपुनःपुनः । वेपथुश्चापिहृदय आराद्दास्यन्तिविप्रियम् ॥ ११ ॥ शिवैषो-द्यन्तमादित्यमभिरौत्यनलानना । मामंगसारमेयोऽयमभिरौतिह्यभीरुवत् ॥ १२ ॥ शस्ताःकुर्वन्तिमांसव्यं दक्षिणंपशवोऽपरे । वाहांश्चपुरुषव्याघ्रलक्षयेरुदतोमम१३ मृत्युदूतःकपोतोऽयमुलूकःकम्पयन्मनः।प्रत्युलूकश्च कुह्वानैरानिद्रौशून्यमिच्छतः१४ धूम्रादिशःपरिधयःकम्पते भूःसहाद्रिभिः । निर्घातश्चमहानासीत्साकंचस्तनयित्नुभिः ॥ १५ ॥ वायुर्वातिखरस्पर्शो रजसाविसृजंस्तमः । असृग्वर्षन्तिजलदा बीभत्समिवसर्वतः ॥ १६ ॥ सूर्यंहतप्रभंपश्य ग्रहमर्दंमिथोदिवि । ससंकुलैर्भूतगणैर्ज्वलितेइवरोदसी ॥ १७ ॥ नद्योनदाश्चक्षुभिताः सरांसिचमनांसिच । नज्वलत्यग्निराज्यन कलोऽयंकिंविधास्यति ॥ १८ ॥ नपिबन्तिस्तनंवत्सानदुह्यन्तिचमातरः ।

लोभ, झूठ में लीन देखा ॥ ३ ॥ कपट व्यवहार, ठगने की मित्राई, सुहृद, मात, पिता में लडाई देखा ॥ ४ ॥ घोर अरिष्ट देख और मनुष्यों की प्रकृति लोभ आदि में देखकर छोटे भाई भीमसेन से राजाने यों कहा ॥ ५ ॥ कि बांधवों तथा श्रीकृष्ण की चेष्टा जानने के हेतु अर्जुन को द्वारका भेजाथा ॥ ६ ॥ हे भीमसेन तेरे छोटे भाई अर्जुन को गये सात मास बीतगये क्या कारण है कि वह अबतक नहीं आया यह मैं नहीं जानता ॥ ७ ॥ नारदजी ने जो समय कहाथा क्या वह आगया कि जिस में श्रीभगवान कृष्णजी क्रीड़ा करने साधन रूप अन्तर्ध्यान होंगे ॥ ८ ॥ जिन श्रीकृष्ण के अनुग्रह से वैरियों से विजय प्राप्तिहुई जिनसे संपत्ति राज्य, स्त्री, प्राण, कुलप्रजा प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ हे भीमसेन ! आकाश, भूमि, में जो उत्पात हुए उन्हें तू देख कि समीप वर्तीभय को सूचन करते हैं यह मेरी बुद्धि को मोहित करते हैं ॥ १० ॥ मेरी बाँई जंघा, बांयानेत्र बाँई भुजा वारम्बार फरकती है और मेरे हृदय में कंप होता है यह उत्पात दुख देनेवाले हैं ॥ ११ ॥ यह सियारिनी उदय होतेहुए सूर्य के सन्मुख रोती हैं और मुख से अग्नि डालती है, हे प्यारे भीमसेन ! यह कुत्ता मेरे सन्मुख निडर होकर ऊपर को मुंह करके रोता है ॥ १२ ॥ गौ, हिरण आदिक श्रेष्ठ पशु मेरेदांई औरसे बांई ओरको और नीच पशु गधे आदि बांईओरसे दांई ओर को जाते हैं हे पुरुषों में श्रेष्ठ भीमसेन मेरे वाहन घोड़े आदि रोते हैं ॥ १३ ॥ यह कपोत मृत्यु का दूत बुरे शब्दों से विश्वको सूना करना चाहता है और यह जो उल्लू बोलते हैं वह मेरे चित्त को कँपाते हैं ॥ १४ ॥ सम्पूर्ण दिशाएं धूमरी होगई अग्नि की समान लाल मंडल है, भूमि पहाड़ों सहित कांपती है विना बादल के वज्रपात होता है ॥ १५ ॥ धूलसे अंधकार को फैलाती बड़े शब्द वाला वेगसे वायु चलरहा है बादल रुधिर की बर्षा करते हैं और चारो ओर भयंकरता दिखाई देती है ॥ १६ ॥ सूर्यको तेज नष्टदेखो, आकाश में ग्रहोंका परस्पर संग्राम देखो तथाप्राणी सहित भूतगणों से मानोंभूमी जलती है इसे देखो ॥ १७ ॥ नदी, नद, सरोबर, औरमनुष्योंके मन क्षोभयुक्त हो

रुदन्त्यश्रुमुखागावो नहृष्यन्त्यृषभाव्रजे ॥ १९. ॥ दैवतानिरुदन्तीव स्विद्यन्तिह्यु
च्चलन्तिच। इमेजनपदाग्रामाः पुरोद्यानाकराश्रमाः ॥ भ्रष्टश्रियोनिरानन्दाः कि-
मघंदर्शयन्तिनः ॥ २० ॥ मन्यएतैर्महोत्पातैर्नूनंभगवतःपदैः । अनन्यपुरुषश्रीभिर्ही
ना भूर्हतसौभगा ॥ २१ ॥ इतिचिन्तयतस्तस्य दृष्टारिष्टेनचेतसा । राज्ञःप्रत्यागमद्
ब्रह्मन्यदुपुर्याःकपिध्वजः ॥ २२ ॥ तंपादयोर्निपतितमयथापूर्वमातुरम् । अधोवदं
नमव्बिन्दून्सृजन्तंनयनाब्जयोः॥ २३ ॥ विलोक्योद्विग्नहृदयो विच्छायमनुजंनृपः
पृच्छतिस्मसुहृन्मध्ये संस्मरन्नारदेरितम् ॥ २४ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कच्चिदान
र्तपुर्यांनः स्वजनाःसुखमासते । मधुभोजदशार्हार्हसात्वतान्धकवृष्णयः ॥ २५ ॥
शूरोमातामहःकच्चित्स्वस्त्यास्तेवाऽथमारिषः । मातुलःसानुजःकच्चित्कुशल्यान
कदुन्दुभिः ॥ २६ सप्तस्वसारस्तत्पत्न्यो मातुलान्यःसहात्मजाः । आसतेसस्नु-
षाः क्षेमं देवकीप्रमुखाःस्वयम् ॥ २७ ॥ कच्चिद्राजाऽऽहुको जीवत्यसत्पुत्रोऽ
स्यचानुजः । हृदीकःससुतोऽक्रूरो जयन्तगदसारणः ॥ २८ ॥ आसतेकुशलंकच्चि
द्येच शत्रुजिदादयः । कच्चिदास्तेसुखरामो भगवान्सात्वतांप्रभुः ॥ २९ ॥ प्रद्युम्नः
सर्ववृष्णीनां सुखमास्तेमहारथः । गम्भीररयोऽनिरुद्धो वर्धतेभगवानुत ॥ ३० ॥
सुषेणश्चारुदेष्णश्च साम्बोजाम्बवतीसुतः । अन्येचकार्ष्णिप्रवरा सपुत्राऋषभादयः
॥ ३१ ॥ तथैवानुचराः शौरेः श्रुतदेवोद्धवादयः । सुनन्दनन्दशीर्षण्या येचान्येसा-
त्वतर्षभाः ॥ ३२ ॥ अपिस्वस्त्यासतेसर्वे रामकृष्णभुजाश्रयाः । अपिस्मरन्ति कु-
शलमस्माकं बद्धसौहृदाः ॥ ३३ ॥ भगवानपिगोविन्दो ब्रह्मणाभक्तवत्सलः । क-

रहे हैं, घीसे आगनहींजलती. यहकाल क्या करेगा ॥१८॥ बछड़े माताकेस्तन नहीं पीते तथा माता बेटों को स्तन नहीं पिलाती, गौ मुख में आंसू डालकर रोरही हैं बैल. ब्रजमें आनंद नहीं पाते ॥ ॥ १९ ॥ देवताओं की मूर्ति रोतीसी ज्ञात होती है उनमें पसीना आता है, वे उछलती हैं यहदेश गांव, नगर, बाग आश्रम शोभा और आनंद हीनहोगये सो यह हमें क्या दुःख दिखावेंगे ॥ २० ॥ यह बड़े उत्पात हैं उनसे मैं जानताहूं कि पृथ्वी श्रीभगवान के चरणों से शोभाहीन होगई ॥ २१ ॥ सूतजी कहते हैं कि राजा युधिष्ठिर इस भांति अशकुन देखकर चिंतितथे तहां द्वारका से अर्जुन भी आ पहुंचे ॥ २२ ॥ वह आकर चरणों में गिरे जिनका नीचा मुख है, चेष्टा नष्ट होरही है, ऐसेकभी आतुर नहींहुए कमलरूपी नेत्रों से आंसू गिररहे हैं उद्विग्न हृदय कांतिहीन ऐसे अर्जुन को युधिष्ठिर नें देखकर हृदय में नारद का वाक्य स्मरण करके सुहृदों के मध्य यह पूछतेहुए॥ २३ । २४ ॥ युधिष्ठिर ने कहा द्वारकापुरी में हमारे स्वजनमधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, सात्वत, अंधक, और वृष्णि वंशी यादवगण तो सुख पूर्वक हैं ॥ २५ ॥ हमारे परमपूज्य नाना श्रीशूरसेनजी प्रसन्न तो हैं छोटे भाइयों समेत मामा वसुदेवजी तो अच्छे हैं ॥ २६ ॥ वसुदेवजी की सातो स्त्रियां हमारी मामी अपनें पुत्र और बहुओं समेत कुशल से तो हैं ॥ २७ ॥ दुष्ट पुत्र कंस के पिता राजा उग्रसेनजी अपने छोटे भाई देवक सहित सुखी तो हैं तथा हार्दिक, कृतवर्मा, अक्रूर, जयंत, गद, सारण्य तो अच्छे हैं ॥ २८ ॥ शत्रुजित आदि सब यादव तथा यादवों के प्रभु श्रीभगवान बलदेवजी तो कुशल पूर्वक हैं ॥ २९ ॥ सब यादवों से महारथी प्रद्युम्न तो अच्छे हैं गंभीर वेगवाला अनिरुद्ध आनंद से है ॥ ३० ॥ सुषेण, चारुदेष्ण, जांबवती सुत सांब और भी श्रीकृष्ण भगवान के पुत्रों में श्रेष्ठ ऋषभाआदिक पुत्र अच्छे हैं ॥ ३१ ॥ सुसैन्य आदि श्रीकृष्णजी के अनुचर तथा सुनन्द, नंद, श्रुतदेव, उधौ तथा और भी श्रेष्ठ यदुवंशी अच्छे तो हैं ॥ ३२ ॥ राम, कृष्ण की भुजा के

ष्ठितपुरे सुधर्मायां सुखमास्तेसुहृद्वृतः ॥ ३४ ॥ मंगलायचलोकानां क्षेमायचभवायच आस्ते यदुकुलाम्भोधावाद्योऽनन्तसखः पुमान् ॥ ३५ ॥ यद्बाहुदण्डगुप्तायां स्वपुर्यायदवोऽर्चिताः । क्रीडन्तिपरमानन्दं महापौरुषिकाइव ॥ ३६ ॥ यत्पादशुश्रूषण-मुख्यकर्मणा सत्यादयो द्व्यष्टसहस्रयोषितः । निर्जित्य संख्ये त्रिदशांस्तदाशिषो हरन्ति वज्रायुधवल्लभोचिताः ३७ यद्बाहुदण्डाभ्युदयाऽनुजीविनो यदुप्रवीरा ह्यकुतो भयामुहुः । अधिक्रमन्त्यंघ्रिभिराहृतां बलात्सभां सुधर्मां सुरसत्तमोचिताम् ॥ ३८॥ कच्चित्तेऽनामयं तात भ्रष्टतेजाविभासिमे । अलब्धमानोऽवज्ञातः किंवातातचिरो-षितः ॥ ३९ ॥ कच्चिन्नाभिहतोभावैः शब्दादिभिरमंगलैः ॥ नदत्तमुक्तमर्थिभ्य आशयायत्प्रतिश्रुतम् ॥ ४० ॥ कच्चित्त्वंब्राह्मणंबालं गांवृद्धंरोगिणंस्त्रियम् । शरणो पसृतंसत्त्वं नात्याक्षीःशरणप्रदः ॥४१॥ कच्चित्त्वं नागमोऽगम्यां गम्यां वाऽसत्कृतां स्त्रियम् । पराजितोवाऽथ भवान्नोत्तमैर्नाऽसमैःपथि ॥ ४२ ॥ अपिस्वित्पर्यभुङ्क्था स्त्वं संभोज्यान्वृद्धबालकान् । जुगुप्सितं कर्म किंचित्कृतवान्न यदक्षमम् ॥ ४३ ॥ कच्चित्प्रेष्ठतमेनाऽथ हृदयेनात्मबन्धुना । शून्योऽस्मिरहितोनित्यं मन्यसेतेन्यथान रुक् ॥ ४४ ॥ इति श्रीभा० महा० प्र० युधिष्ठिरवितर्के द्वारकाया अर्जुनस्यागमन-वर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

आश्रय से सब प्रसन्न तो हैं सुहृद भाव रखनेवाले वह लोग आनंद से हैं । और कभी स्मरण भी करते हैं ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणों के भक्तवत्सल, भगवान् गोविंद सुहृदों सहित द्वारका में सुधर्मा सभा के मध्य सुखसे तो हैं ॥ ३४ ॥ जिस आदि पुरुष परमेश्वर ने श्रीबलरामजी की सहायसे सृष्टि के मंगल व पालन के लिये यदुकुल रूप सागर में अवतार लिया है ॥ ३५ ॥ जिन श्रीकृष्ण के भुजदंड से रक्षित द्वारकापुरी में यादव ऐश्वर्य्य पाकर वैकुंठनाथ के अनुचरों की समान परमानंद से क्रीडा करते हैं ॥ ३६ ॥ जिन के चरणारविंदों की टहल से सत्यभामा आदि १६१०८ रानियां युद्ध में देवताओं को जीतकर कल्पवृक्षादिक का जो इन्द्राणी के भोगने योग्य है हरण करती हैं ॥ ३७ ॥ जिन श्रीकृष्ण के भुजदंडोंके प्रभाव से यादवों ने देवताओं की सुधर्मा सभा का हरण किया और उसी देवताओं के योग्य सभा में पैरों से बारंबार फिरते हैं वह परमेश्वर तो अच्छे हैं ॥ ३८ ॥ हे भैया तुमतौ आनंदसे हो हे तात ! तुम मुझे तेजहीन ज्ञातहोते हो, तुम्हारा तिरस्कारतो नहीं हुआ हेतात ! तुम वहां बहुत काल रहे इससे अपमानतो हुआ ? ॥ ३९ ॥ अथवा प्रेमशून्य अमंगल आदि शब्दों से किसी ने निरादर तो नहीं किया या भिखारी लोगों को आशा बंधा कर प्रणकिया पदार्थ नहीं दिया ॥ ४० ॥ क्याशरण देने वाले तुमने शरण आये हुए ब्राह्मण, बालक, गौ, वृद्ध, रोगी, स्त्री और किसी प्राणी का त्याग तो नहीं किया ॥ ४१ ॥ या किसी अगम्यास्त्री से गमन तो नहीं किया अथवा मैले वस्त्र पहिने उत्तम स्त्री के पास तू नहीं गया अथवा मार्ग में किसी प्राणी ने तो तुझे जीत नहीं लिया ॥ ४२ ॥ वृद्ध और बालकों को जो भोजन कराने योग्य है उनको बिना भोजन कराये तो तुमने भोजन नहीं किया अथवा कोई निंदित कार्य तो नहीं किया ॥ ४३ ॥ या प्यारे से प्यारे अपने भाई श्रीकृष्ण बिना मैं अकेला होगया, मुझमें कुछभी नहीं है ऐसा तो तुम नहीं मानते, यदि ऐसा न हो तो तुमको किसी दूसरी भांति का दुःख होनाही संभव है ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सरलाभाषाटीकायां प्रथमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

सूतउवाच ॥ एवंकृष्णसखःकृष्णो भ्रात्राराज्ञाविकल्पितः । नानाशंकाऽऽस्पदं रूपं कृष्णविश्लेषकर्शितः ॥ १ ॥ शोकेनशुष्यद्वदनहृत्सरोजोहतप्रभः । विभुंतमेवाऽनुध्यायन्नाऽशक्नोत्प्रतिभाषितुम् ॥ २ ॥ कृच्छ्रेणसंस्तभ्यशुचः पाणिनाऽऽमृज्यनेत्रयोः । परोक्षेणसमुन्नद्धप्रणयौत्कण्ठ्यकातरः ॥ ३ ॥ सख्यंमैत्रींसौहृदं च सारथ्यादिषुसंस्मरन् । नृपमग्रजमित्याहबाष्पगद्गदयागिरा ॥ ४ ॥ अर्जुनउवाच वंचितोऽहंमहाराज हरिणाबन्धुरूपिणा । येनमेऽपहृतंतेजो देवविस्मापनंमहत् ५ यस्यक्षणवियोगेन लोकोह्यप्रियदर्शनः । उक्थेनरहितोह्येष मृतकःप्रोच्यतेयथा ॥ ६ ॥ यत्संश्रयाद्द्रुपदगेहमुपागतानां राज्ञांस्वयंवरमुखेस्मरदुर्मदानाम् । तेजो हृतंखलुमयाऽभिहतश्च मत्स्यःसज्जीकृतेनधनुषाऽधिगताचकृष्णा ॥ ७ ॥ यत्संनिधावहमुखाण्डवमग्नयेऽदामिन्द्रं चसाऽमरगणंतरसाविजित्य । लब्धासभामयकृताद्भुतशिल्पमाया दिग्भ्योऽहरन्नृपतयोबलिमध्वरेते ॥ ८ ॥ यत्तेजसानृपशिरोंघ्रिमहन्मखार्थे आर्योनुजस्तवगजायुतसत्त्ववीर्यः । तेनाहृताःप्रमथनाथमखाय भूपा यन्मोचितास्तदनयन्बलिमध्वरेते ॥ ९ ॥ पत्न्यास्तवाधिमखक्लृप्तमहाभिषेकश्लाघिष्ठचारुकबरं कितवैःसभायाम् । स्पृष्टंविकीर्यपदयोःपतिताश्रुमुख्या यैस्तत्स्त्रियोऽकृतहतेशाविमुक्तकेशाः ॥ १० ॥ योनोजुगोपवनमेत्यदुरन्तकृच्छ्राद्दुर्वाससोऽरिविहितादयुताग्रभुग्यः । शाकान्नशिष्टमुपभुज्ययतस्त्रिलोकींतृप्ताममंस्त सलिलेविनिमग्नसंघः ॥ ११ ॥ यत्तेजसाऽथभगवान्युधिशूलपाणिर्विस्मापितः स

सूतजी बोले कि इस भांति, युधिष्ठिरने अर्जुनका रूप देखकर अनेक शंकायेंकर अनेक प्रकार से भेदों से पूछा ॥ १ ॥ श्री कृष्ण जी के वियोग व शोक से जिसका मुंह सूखगया है ऐसा तेजहत अर्जुन श्री कृष्णजी का ध्यान करता २ कुछभी न बोलसका ॥ २ ॥ कष्टसे आंसुओं कोथाम और हाथों से आंसुओं को पोंछ श्री कृष्णजी के बढ़े हुये प्रेमकी उत्कंठा से व्याकुल हो ॥ ३ ॥ सारथीपन आदि भगवान के कार्य सखापन, मैत्री, सुहृदता का स्मरण कर गद्गद वाणी से युधिष्ठिर जी से इसभांति कहने लगा ॥ ४ ॥ अर्जुन ने कहा कि—हे महाराज बंधुरूपी हरिने मुझे ठगलिया जिस मेरे तेजने देवताओं को विस्मित करदिया उसी तेजको हरिने हरलिया ॥ ५ ॥ जैसेजीव बिन यह देह मृतक होजाती है वैसेही श्री कृष्णजी के एक मुहूर्त्त के वियोग से भी सम्पूर्ण लोक अप्रिय दृष्टि पड़ते हैं ॥ ६ ॥ जिन कृष्णजी के आश्रय से द्रुपद राजाके घरआये स्वयम्वर में काम से दुर्मद राजाओं का मैंने तेज हरलिया और धनुष चढ़ाकर मत्स्यको वेधद्रोपदी को प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ जिन कृष्णजी के बल से उनके निकट रह कर मैंने खांडव वनका दाह कराया और देवता ओं समेत इन्द्र को जीता, मय दैत्य की अद्भुत कारीगरी वाली सभा मुझे मिली और आप के यज्ञमें राजा लोगो ने आकर भेंटें दीं ॥ ८ ॥ जिन श्री कृष्णजी के तेजसे दश हजार हाथियों के पराक्रम वाले भीमसेन ने यज्ञ के हेतु राजाओं के शिर पर पांव रखने वाले जरासंध से उस के एकत्रित किये हुए राजा ओं को छुड़ाया कि जो आपके यज्ञ में भेंटें ले ले कर आये ॥ ९ ॥ राज सूय यज्ञमें रचे हुए बड़े अभिषेक से प्रशंशा करने योग्य, सुंदर द्रौपदी की चोटी को सभा में धूर्त दुःशासन आदि ने खोलकर खींचा उस समय द्रौपदी के स्मरण करते ही आप पधारे और रोती हुई द्रौपदी ने उनके चरणों को प्रणाम किया इसी कारण से उन कृष्णजीने उन दुष्टों की स्त्रियों के पतियों को मार कर उन को विधवा किया ॥ १० ॥ दुर्योधनके भेजे हुये दश सहस्र शिष्यों समेत दुर्वासा आदि मुनियों के भोजन देनेके अपार दुःखसे हम लोग दुःखी थे उसकाल

गिरिशोऽस्त्रमदान्निजंमे । अन्येऽपिचाहममुनैवकलेवरेण प्राप्तोमहेन्द्रभवनेमहदा सनार्धम् ॥ १२ ॥ तत्रैवमेविहरतोभुजदण्डयुग्मंगाण्डीवलक्षणमरातिवधायदेवाः सेन्द्राःश्रितायदनुभावितमाजमीढ तेनाहमद्यमुषितःपुरुषेणभूम्ना ॥ १३ ॥ यद्बान्धवः कुरुबलाब्धिमनन्तपारमेको रथेनततरेऽहमतीर्यसत्त्वम् । प्रत्याहृतंबहुधनंच मयापरेषांतेजास्पदंमणिमयंचहृतंशिरोभ्यः ॥ १४ ॥ योभीष्मकर्णगुरुशल्यचमूष्व दभ्रराजन्यवर्यरथमण्डलमण्डितासु। अग्रेचरोममविभोरथयूथपानामायुर्मनांसिच दृशासहओजआच्छेत्॥१५॥ यद्दोःषुमाप्रणिहितंगुरुभीष्मकर्णद्रौणित्रिगर्तशल्यसैन्धवबाह्लिकाद्यैः । अस्त्राण्यमोघमहिमानिनिरूपितानि नोपस्पृशुर्नृहरिदासमिवाऽऽसुराणि ॥ १६ ॥ सौत्येवृतःकुमतिनाऽऽत्मदईश्वरोमेयत्पादपद्ममभवायभजन्तिभव्याः । मांश्रान्तवाहमरयोरथिनोभुविष्ठं नप्राहरन्यदनुभावनिरस्तचित्ताः ॥ १७ नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानिहेपार्थहेऽर्जुनसखेकुरुनन्दनेति । संजल्पितानि नरदेवहृदिस्पृशानिस्मर्तुर्लुठन्तिहृदयंममाधवस्य ॥ १८ ॥ शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादिष्वैक्याद्वयस्य ऋतवानितिविप्रलब्धः । सख्युःसखेवपितृवत्तनयस्यसर्वंसेहेमहान्महितयाकुमतेरघंमे ॥ १९ ॥ सोऽहंनृपेन्द्ररहितःपुरुषोत्तमेनसख्या

जो कृष्ण वन में शीघ्रही आकर और शेष शाकका पत्र खाकर उन सबके स्नानकरतेहुए पेटभर दिये ॥ ११ ॥ जिन कृष्ण के तेज से पार्वती सहित महादेवजी युद्ध मे बिस्मित होकर अपने पाशुपत नाम अस्त्र को देतहुये और दूसरे लोकपालों नभी अस्त्र दिये और देवताओं के लोक में इसा शरीर से आधा इन्द्रासन पाया ॥ १२ ॥ उस स्वर्ग में मैं बिहार करता हुआ मेरे गांडीव धनुष के चिन्ह वाले भुजदण्ड युगल से शत्रु बधके लिये इन्द्र सहित सब देवतों ने शरणली हे युधिष्ठिर ! उन अन्तर्यामी श्रीकृष्ण से मैं ठगागया ॥ १३ ॥ बड़े भारी कुरुकुलके सेनारूप समुद्र को भीष्म आदि बड़े २ मगरमच्छ होनेके कारण पार नजासक्ते थे उसको मै श्रीकृष्णजी के प्रभाव से अकेला पार हुआ तथा गोधन को कि जिस को शत्रु लिए जातेथे उसे लेआया और उनके मस्तकों की पागें और मुकुटमणि रूप बहुत धन लाया ॥ १४ ॥ हे राजा ! बड़े २ श्रेष्ठ राजाओं क रथों से शोभित, भीष्म, कर्ण, द्रोणाचार्य, और शल्य आदि की सेनाओं में जिन श्रीकृष्णजी नें सारथी रूप होकर केवल दृष्टि से महारथी शत्रुओं का आयु, शक्ति, बल तथा शस्त्रादिकों के प्रभाव का हरण किया ॥ १५ ॥ जिन श्रीकृष्णजी की भुजाओं में वैठे मुझपर द्रोण, भीष्म, कर्ण, अश्वत्थामा, त्रिगर्त्त देश के राजा सुशर्म्मा, शल्य, सिंधु देश के राजा जयद्रथ और बाल्हिक आदि राजाओंनें अनेक अमोघ अस्त्रोंका प्रहार किया परन्तु जैसे असुर के अस्त्र प्रह्लाद के न लगे वैसे मेरे भी न लगे ॥ १६ ॥ जिनके कमल स्वरूपी चरणों को मुक्ति के लिये भक्त लोग भजते हैं उन्हीं श्रीकृष्णजी को मैने अज्ञानता से सारथी बनाया जिस समय मैं थकगया और रथसे उतर पड़ा उस समय रथपर वैठे हुए भी शत्रु ने उनके प्रभाव से मूढ़ बुद्धि होकर मुझपर प्रहार न किया॥१७॥हे महाराज! गम्भीर, सुंदर मुसकान से शोभायमान भगवान के परिहास के वाक्यों का तथा वार्त्ता मे हे पार्थ ! हे अर्जुन ! हे सखा ! हे कुरुनन्दन ! इन सुंदर मधुराक्षर वाक्यों का मैं जब स्मरण करताहूं तो हृदय लोटपोट होजाता है ॥ १८ ॥ शय्या,आसन भोजन, चलने आदि कार्यों में हे वयस्य ! तुम बड सच्चेहो ऐसे कहकर मैं तिरस्कार भी करता परन्तु जैसे मित्रका मित्र, पुत्र का पिता अपराध सहनकरताहै वैसेही मुझ अज्ञानीके सब अपराधों का सहनकर लेतेथे ॥ १९ ॥ हे नृपेन्द्र ! मनुष्यों में श्रेष्ठ ! उन प्यारे सुहृद के वियोग से मेरा

त्रियेणसुहृद्यंनशून्यः अध्वन्युरुक्रमपरिग्रहमङ्गरक्षन्गोपैरसद्भिरबलेवविनिर्जितोऽस्मि ॥ २० ॥ तद्वैधनुस्तइषवःसरथोहयास्तेसोहंरथी नृपतयोयतआनमन्ति। सर्वंक्षणेनतदभूदसदीशरिक्तं भस्मन्हुतंकुहकराद्धमिवोप्तमुप्त्याम् ॥ २१ ॥ राजंस्त्वयाऽनुपृष्टानांसुहृदांनःसुहृत्पुरे। विप्रशापविमूढानांनिघ्नतांमुष्टिभिर्मिथः ॥ २२ ॥ वारुणींमदिरांपीत्वामदोन्मथितचेतसाम्। अजानतामिवान्योन्यंचतुःपञ्चावशेषिताः ॥ २३ ॥ प्रायेणैतद्भगवत ईश्वरस्यविचेष्टितम्। मिथोनिघ्नन्तिभूतानि भावयन्तिचयन्मिथः ॥ २४ ॥ जलौकसांजलेयद्वन्महान्तोऽदन्त्यणीयसः। दुर्बलान्बलिनोराजन्महान्तोबलिनोमिथः ॥ २५ ॥ एवंबलिष्ठैर्यदुभिर्महद्भिरितरान्विभुः। यदून्यदुभिरन्योन्यं भूभारान्संजहारह ॥ २६ ॥ देशकालार्थयुक्तानि हृत्तापोपशमानिच। हरन्तिस्मरतश्चित्तंगोविन्दाभिहितानिमे ॥ २७ ॥ एवंचिन्तयतोजिष्णोःकृष्णपादसरोरुहम्। सौहार्देनातिगाढेन शान्ताऽऽसीद्विमलामतिः ॥ २८ ॥ वासुदेवाङ्घ्र्यनुध्यानपरिबृंहितरंहसा। भक्त्यानिर्मथिताशेषकषायधिषणोऽर्जुनः २९ गीतंभगवताज्ञानं यत्तत्संग्राममूर्द्धनि। कालकर्मतमोरुद्धं पुनरध्यगमद्विभुः ॥ ३० ॥ विशोकोब्रह्मसंपत्त्यासंछिन्नद्वैतसंशयः। लीनप्रकृतिनैर्गुण्यादलिङ्गत्वादसंभवः ३१ निशम्यभगवन्मार्गसंस्थांयदुकुलस्यच। स्वःपथायमतिंचक्रेनिभृतात्मायुधिष्ठिरः ॥ ३२ ॥ पृथाप्यनुश्रुत्यधनंजयोदितंनाशं यदूनांभगवद्गतिंचताम्। एकान्तभ-

हृदय शून्य होगया है हे भाई ! श्रीकृष्णजी के परिवार की मार्ग में मैं रक्षा करता आताथा वहां नीच भीलों ने मुझे स्त्रियों की भांति जीत लिया ॥ २० ॥ वही धनुष, वही बाण, वही घोड़ा, वही मैं रथी हूं जिसको राजा लोग नमते हैं परन्तु यह सब श्रीकृष्णजी के बिछुरतही निकम्मे, असमर्थ होगये जैसे भस्म हुआ द्रव्य, छलछिद्र से पाई हुई वस्तु और ऊसर में बोयाहुआ बीज निष्फल जाता है ॥ २१ ॥ हे राजन् ! आपने जिनको द्वारिका में पूछा वह हमारे सुहृद ब्राह्मणों के शाप से मोहित हुए ॥ २२ ॥ और वारुणी मदिरा पीकर मदसे व्याकुल हो मानो आपसमें एक दूसरे को नहीं पहिचानते यह विचार परस्पर घटेरास एक दूसरे को मारने लगे अब उनमें चार ५ मनुष्य शेषहैं यह सबलीला ईश्वरकी है क्योंकि वहीसब का पोषण करता और संहारकरता है ॥२४॥ हेराजा ! जैसे बड़े जलजंतु छोटे जंतुओं को जलके भीतर खाजाते हैं वैसेही बड़े और बलवान एक दूसरे को खाजाते है ॥ २५ ॥ वैसेही श्री कृष्ण भगवान ने बड़े और बलवान पांडवों से दुर्योधन व जरासंध आदिकको मरवाकर तथा यादवों को यादवोंसे मरवाकरके पृथ्वी बोझरूपी राजाओंका नाश किया ॥ २६ ॥ हृदयके दुखको दूरकरने वाले, देश, व कालके उचित, अर्थयुक्त श्री भगवान के वाक्यों का स्मर्ण करते ही मेरामन खिंचजाता है ॥ २७ ॥ श्री कृष्णजी के कमल स्वरूपी चर्णों का ध्यान करते २ अर्जुन की बुद्धि अतिगाढ़ी शांत और बैराग्य युक्तहोगई ॥ २८ ॥ श्री कृष्णचन्द्रके चरण कमल के भजन से जो अतिवेग वालीभक्ति उत्पन्न हुई उसी समय काम, क्रोधादिक कषाय जड़से नष्ट होगये ॥ २९ ॥ भगवान ने युद्धमें जो गीताका उपदेश किया था वह काल, कर्म तथा भोगों में फंसजाने के कारण विस्मृत होगया था वह फिरस्मरण होआया ॥३०॥ ज्ञानके प्राप्त होने से दुःख और द्वैतकी शंकादूर होगई, द्वैतबुद्धि के नाश होनेपर तथा शरीर को मिथ्या भिमानी जानकर अर्जुन का अज्ञान दूरहुआ और निर्गुण ज्ञान प्राप्त हुआ उस निर्गुण से लिंग देहका नाश हुआ और लिंगदेह के नाशसे वह मुक्तिको प्राप्त हुआ ॥ ३१ ॥ भगवान का वैकुंठ जाना सुनकर तथा यदुकुल का नाश सुनकर निश्चल मन युधिष्ठिर ने वैकुंठ मार्गके हेतु निश्चय किया ॥ ३२ ॥

: कत्याभगवत्यधोक्षजेनिवेशितात्मोपरराम संसृतेः ॥ ३३ ॥ ययाऽहरद्भुवोभारं तांतनुं
विजहावजः । कण्टकंकण्टकेनेव द्वयंचापीशितुःसमम् ॥ ३४ ॥ यथामत्स्यादि-
रूपाणि धत्तेजह्याद्यथानटः । भूभारःक्षपितोयेन जहौतच्चकलेवरम् ॥ ३५ ॥ यदा
मुकुन्दोभगवानिमांमहीं जहौस्वतन्वाश्रवणीयसत्कथः । तदाहरेवाऽप्रतिबुद्धचेत
सामभद्रहेतुःकलिरन्ववर्तत ॥ ३६ ॥ युधिष्ठिरस्तत्परिसर्पणंबुधः पुरेचराष्ट्रेचगृहे
तथात्मनि । विभाव्यलोभानृतजिह्महिंस नाद्यधर्मचक्रंगमनायपर्यधात् ॥ ३७ ॥
स्वराट्पौत्रंविनयिन मात्मनःसुसमंगुणैः । तोयनीव्याःपतिंभूमे रभ्यषिंचद्गजा
ह्वये ॥ ३८ ॥ मथुरायांतथावज्रं शूरसेनपतिंततः । प्राजापत्यांनिरूप्येष्टि मग्नीन
पिबदीश्वरः ॥ ३९ ॥ विसृज्यतत्रतत्सर्वं दुकूलवलयादिकम् । निर्ममोनिरहंकारः
संछिन्नाशेषबन्धनः ॥ ४० ॥ वाचंजुहावमनसि तत्प्राणइतरेचतम् । मृत्यावपानंसो
त्सर्गं तंपंचत्वेह्यजोहवीत् ॥ ४१ ॥ त्रित्वेहुत्वाऽथपंचत्वं तच्चैकत्वेऽजुहोन्मुनिः ।
सर्वमात्मन्यजुहवीद् ब्रह्मण्यात्मानमव्यये ॥ ४२ ॥ चीरवासानिराहारो बद्धवाङ्
मुक्तमूर्धजः । दर्शयन्नात्मनोरूपं जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ ४३ ॥ अनवेक्षमाणोनिर
गाद शृण्वन्बधिरोयथा । उदीचींप्रविवेशाऽऽशां गतपूर्वांमहात्मभिः ॥ हृदि
ब्रह्मपरंध्यायन्नाऽऽवर्तेतयतोगतः । ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति ब्रह्मलोकंसगच्छति ॥४४॥
सर्वेतमनुनिर्जग्मुर्भ्रातरःकृतनिश्चयाः । कलिनाऽधर्ममित्रेण दृष्ट्वास्पृष्टाःप्रजाभुवि
॥ ४५ ॥ तेसाधुकृतसर्वार्था ज्ञात्वाऽऽत्यन्तिकमात्मनः । मनसाधारयामासुर्वैकुण्ठ

कुंती भी अर्जुन के मुखसे यदुवंशियों का नाश सुनकर तथा श्री कृष्णका वैकुंठ जाना समझकर वह भी एकांत भक्ति से श्री परमात्मा में मन लगाकर ससार से मोक्षपागई ॥ ३३ ॥ जैसे मनुष्य कांटा निकालने के समय दूसरे कांटेको लेते हैं और उसके निकलने पर उसेभी फेंक देते हैं ऐसे ही परमेश्वर ने जिस शरीर से भूमिका भार उतारा उसे भी त्यागदिया क्योंकि यादव तन और भूभार तन यह दोनो ही समान हैं ॥ ३४ ॥ जैसे नट मत्स्य आदिका स्वांग धारण कर उन्हें छोड़ देता है वैसेही श्री भगवान ने मनुष्य शरीर भूभार उतारने को धारणकर उसेभी त्यागदिया ॥ ३५ ॥ जिन भगवान की श्रेष्ठकथा श्रवण करने योग्य है उन भगवान ने जिसदिन इस पृथ्वीको त्याग किया उसी दिनसे कलियुग अज्ञानी लोगोंके चित्तमें प्रवर्त्त होनेलगा ॥ ३६ ॥ बुद्धिमान युधिष्ठिर ने देश, नगर, घर, और अंतः करण में लोभ, झूठ, कुटिलता, हिंसा इत्यादि अधर्मों के झुंड समेत कलि कालका बिस्तार देख वैकुंठ मार्ग जानेका स्वरुप धारण किया ॥ ३७ ॥ अपने गुणोंकी समान पौत्र परीक्षित को चक्रवर्ती राजा युधिष्ठिरने समुद्रतक भूपति करने का, हस्तिनापुरमें राज्याभिषेक किया ॥ ३८ ॥ ऐसेहीं मथुरामे अनिरुद्ध के पुत्रवज्र नामको राजाकिया फिरराजा युधिष्ठिर ने प्राजापत्य इष्टि करके आत्मामें अग्निका आरोपण किया ॥ ३९ ॥ रेशमीवस्त्र तथा आभूषणों को वहींछोड़ अहंकार और मोहको त्यागकर सब बंधनो से मुक्त हो ॥ ४० ॥ इन्द्रियों को मनमें लीनकिया और मनको प्राणमें तथा प्राणका अपान में लयकिया अपानको मृत्युमे और मृत्युको पंचभूतों में लीनाकिया ॥ ४१ ॥ पंचमहा भूतोंको सत्व, रज, तम मे लीन करके इन तीनगुणों को अविद्यामें लयकिया फिर अविद्या को जीवमें और जीवको ब्रह्म में लीनकिया ॥ ४२ ॥ फिरचीर, वस्त्र पहिन भोजनों को त्यागकर, मौन हो शिरके बालखुले छोड़ अपने रूपको जड़, पागल, और पिशाच की भांति दिखाते हुए ॥ ४३ ॥ भैयोंकी प्रतीक्षा न करके किसी की बातभी न सुनी वह राजा जहां प्रथम महात्मा लोग गयेथे ऐसी उत्तर दिशा में गया ॥ ४४ ॥ जिस दिशा में गया हुआ मनुष्य फिर इस लोक में

चरणाम्बुजम् ॥ ४६ ॥ तद्ध्यानोद्रिक्तयाभक्त्या विशुद्धधिषणाःपरे । तस्मिन्नारा
यणपदे एकान्तमतयोगतिम् ॥ ४७ ॥ अवापुर्दुरवापांते असद्भिर्विषयात्मभिः ।
विधूतकल्मषास्थानं विरजेनात्मनैवहि ॥ ४८ ॥ विदुरोऽपिपरित्यज्य प्रभासेदेह
मात्मवान् । कृष्णावेशेनतच्चित्तः पितृभिःस्वक्षयंययौ ॥ ४९ ॥ द्रौपदीचतदाऽऽ
ज्ञाय पतीनामनपेक्षताम् । वासुदेवेभगवति ह्येकान्तमतिरापतम् ॥ ५० ॥ यःश्रद्ध
यैतद्भगवत्प्रियाणां पाण्डोःसुतानामितिसंप्रयाणम् । शृणोत्यऽलंस्वस्त्ययनंपवित्रं
लब्ध्वाहरौभक्तिमुपैतिसिद्धिम् ॥ ५१ ॥

इतिश्री भा० म० प्रथ० पाण्डवस्वर्गारोहणं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सूत उवाच॥ ततःपरीक्षिद्द्विजवर्यशिक्षया महींमहाभागवतःशशासह।यथा
हिसूत्यामभिजातकोविदाः समादिशन्विप्रमहद्गुणस्तथा ॥१॥ सउत्तरस्यतनया-
मुपयेमइरावतीम् । जनमेजयादींश्चतुरस्तस्यामुत्पादयत्सुतान् ॥ २ ॥ आजहाराश्व
मेधांस्त्रीन् गङ्गायांभूरिदक्षिणान् । शारद्वतंगुरुंकृत्वा देवायत्राक्षिगोचराः ॥ ३ ॥
निजग्राहौजसावीरः कलिंदिग्विजयेक्वचित् । नृपालिङ्गधरंशूद्रं घ्नन्तंगोमिथुनंपदा ४
शौनकउवाच ॥ कस्यहेतोर्निजग्राह कलिंदिग्विजयेनृपः । नृदेवचिह्नधृक्छूद्रः
कोसौगांयःपदाऽहनत् ॥५॥तत्कथ्यतांमहाभाग यदिकृष्णकथाश्रयम् । अथवास्य-
पदाम्भोज मकरन्दलिहांसताम् ॥६ ॥ किमन्यैरसदालापै रायुषोयदसद्व्ययः ।

नहीं आता एसी दिशामें युधिष्ठिर के पीछे उनके सम्पूर्ण भाई भी गये ॥ ४५ ॥ क्योंकि कलियुग
से छुई हुई पृथ्वीपर प्रजाको देखा ॥ ४६ ॥ अच्छी भांति जिन्हो ने अर्थ धर्म आदिक पुरुषार्थों
को सेवन कियाहै एसे पांडव श्रीकृष्णजीहाके चरण कमलोंको एकांत शरण जानकर चित्तसे उन्हीं
का ध्यान करनेलगे ॥ ४७ ॥ वह पांडव जिनकी भक्ति ध्यान से बढ़ीहुई है और उससे शुद्धहुई
बुद्धिवाले मोह रहित मनुष्यों के निवास स्थान, सबसे एकांत उन परमात्माके चरणों में एक चित्त
होकर, साधुओं कोभी दुर्लभ पदको प्राप्त हुए ॥ ४८ ॥ ज्ञानवान विदुरजी भी परमात्मा में चित्त
लगाकर प्रभास क्षेत्रमें शरीरको छोड़ निज धामको पितृगणों के संगगये ॥ ४९ ॥ अपनी चाहना
पतियों को न करते हुये देखकर द्रौपदीनभी श्रीकृष्ण भगवानमें चित्त लगाकर भगवत स्वरूपको
प्राप्तकिया ॥ ५० ॥ परमेश्वरके प्यारेपांडवों के अति मंगलमय और पवित्रइसमहाप्रस्थानको जो
मनुष्य भक्ति पूर्वक सुनताहै वह ईश्वरही की भक्तिको प्राप्त होकर सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेप्रथमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांपंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सूतजी ने कहा कि इसके उपरांत भगवत भक्त राजा परीक्षित श्रेष्ठ ब्राह्मणों की शिक्षा से
पृथ्वीका पालन करने लगा । हेशौनक जन्म के समय जो २ गुण ज्योतिषियों ने बताये थे वही २
गुण परीक्षित में हुए ॥ १ ॥ वह परीक्षित उत्तर की बेटी इरावती से व्याहागया उसके जनमेजय
आदि चारपुत्र उत्पन्न हुये ॥ २ ॥ गंगाके तीर कृपाचार्य को गुरूकर तीन अश्वमेध यज्ञकिये और
ब्राह्मणों को बहुतसा दानदिया उनयज्ञों में देवता प्रत्यक्ष आये ॥ ३ ॥ दिग्विजय में इसराजाने
कलियुग को जो गऊको पैरोंसे मारता था.और शूद्र राजाका वेषधारण कियेथा दंडदिया ॥ ४ ॥
शौनक ने कहाकि–राजा परीक्षित ने दिग्विजय में कलियुग को दंडही क्योंदिया मारा क्यों नहीं
और वह शूद्र कौनथा जो राजाका रूप धारणकर गौको पैरसे माररहा था ॥ ५ ॥ हेमहाभाग !
यदि इसमें श्री कृष्ण की कथा का आश्रय हो अथवा उनके चरणारविंद के मकरंद के स्वादलेने

अल्पायुषां नृणामत्र मर्त्यानामृतमिच्छताम् ॥७॥ इहोपहूतो भगवान्मृत्युः शामित्रकर्मणि । नकश्चिन्म्रियते ताव द्यावदास्त इहाऽन्तकः ॥ ८ ॥ एतदर्थं हि भगवानाहूतः परमर्षिभिः । अहो नृलोके पीयेत हरिलीलामृतं वचः ॥९॥ मन्दस्य मन्दप्रज्ञस्य वयो मन्दायुषश्च वै निद्रया ह्रियते नक्तं दिवा च व्यर्थकर्मभिः ॥१०॥ सूत उवाच ॥ यदा परीक्षित्कुरुजाङ्गले वसन्कलिं प्रविष्टं निजचक्रवर्तिते । निशम्य वार्तामनतिप्रियां ततः शरासनं संयुगशौण्डिरादिदे ॥११॥ स्वलंकृतं श्यामतुरङ्गयोजितं रथं मृगेन्द्रध्वजमास्थितः पुरात् । वृतो रथाश्वद्विपपत्तियुक्तया स्वसेनया दिग्विजयाय निर्गतः १२ भद्राश्वं केतुमालं च भारतं चोत्तरान्कुरून् । किंपुरुषादीनि वर्षाणि विजित्य जगृहे बलिम् ॥१३॥ तत्र तत्रोपशृण्वानः स्वपूर्वेषां महात्मनाम् । प्रगीयमानं च यशः कृष्णमहात्म्यसूचकम् ॥१४॥ आत्मानं च परित्रातमश्वत्थाम्नोऽस्त्रतेजसः । स्नेहं च वृष्णिपार्थानां तेषां भक्तिं च केशवे ॥ १५ ॥ तेभ्यः परमसन्तुष्टः प्रीत्युज्जृम्भितलोचनः ॥ महाधनानि वासांसि ददौ हारान्महामनाः ॥ १६ ॥ सारथ्यपारषदसेवनसख्यदौत्य वीरासनानुगमनस्तवनप्रणामम् । स्निग्धेषु पाण्डुषु जगत्प्रणतिं च विष्णोर्भक्तिं करोति नृपतिश्चरणारविन्दे ॥ १७ ॥ तस्यैवं वर्तमानस्य पूर्वेषां वृत्तिमन्वहम् । नातिदूरे किलाश्चर्यं यदासीत्तन्निबोध मे ॥ १८ ॥ धर्मः पदैकेन चरन्विच्छायामुपलभ्य गाम् । पृच्छति स्माऽश्रुवदनां विवत्सामिव मातरम् ॥१९॥ धर्म उवाच ॥ कच्चिद्भद्रे

वाले महात्मा साधुओं की कथा का आश्रय हो तो यह कथा कहो ॥ ६ ॥ क्योंकि जिससे आयुर्व्यर्थ बीतजाय ऐसा बातों से क्या ? हेसूत जो तुच्छ आयुवाले मरण धर्मा पुरुष मुक्ति चाहते हैं ॥ ७ ॥ उन पुरुषों की मृत्यु यहां (यज्ञ) पशुमारने के कामको बुलालीया है इससे जबतक वह यहां बैठे हैं तबतक किसी की मृत्यु न होगी ॥ ८ ॥ इसी लिये भगवान ने मृत्युको यहां बुलालिया है इस सृष्टि में परमेश्वर का लीलारुप वचनामृत पिया जाता है अर्थात् जीवित रहैं तो फिर परमेश्वर की लीला सुन सकते हैं ॥ ९ ॥ आलस्य युक्त, मंदभाग, अल्पायु, मनुष्य की अवस्था रात्रिमें तो निद्रा से चली जाती है और दिनमें वृथाकर्मों से चलीजाती है ॥ १० ॥ सूतजी ने कहा कि जिस समय राजा परीक्षित ने अपनी सेना से रक्षित कुरू जांगल देशमें कलियुग का वास हुआ यह अप्रिय बात सुनी उसी समय राजा ने धनुष उठाया ॥ ११ ॥ भले प्रकार सजे हुए, श्याम घोड़े जुते, सिंह की ध्वजा वाले रथमें बैठ रथ, घोंड़, हाथी और पैदल चतुरांगिणी सेनाल नगर से विजय के हेतु निकले ॥ १२ ॥ भद्राश्व, केतुमाल, भारत, उत्तर कुरु, तथा किंपुरुष आदि भागों को जीतकर अपनी भेंट (कर) ली ॥ १३ ॥ जहां तहां श्री भगवान की महिमा को जताने वाले अपने पूर्व महात्माओं के यशका श्रवण करताहुआ ॥ १४ ॥ अश्वत्थामा के अस्त्रके तेजसे रक्षाकी हुई अपनी आत्मा, तथा यादवों और पांडवो के स्नेह और श्री कृष्ण की भक्तिको सुनता हुआ ॥ १५ ॥ उदार चित्त तथा प्रीतिसे प्रफुल्लित नेत्रवाले परम ऐश्वर्य्य वानराजा परीक्षितने यशके गाने वालों को बहुत से वस्त्र व धनदिये ॥ १६ ॥ अपने पूर्व्वज पांडवोंके स्नेही श्रीविष्णु भगवान सारथीपन, पार्षद पन, टहल, दर्वानी पन (रक्षक) पीछे चलना स्तुति, प्रणाम करना, आदि बहुत से काम किये यह बातसुनी और सुना कि श्री कृष्ण भगवान सबको दंडवत करते थे इस बातको सुनराजा परीक्षित को भगवान के चरणों में और भी प्रीति उत्पन्न हुई ॥ १७ ॥ राजा परीक्षित नित्य ऐसेंही अपने बड़ोंके वृत्तान्त को सुनता था उसको एक दिनबड़ा आश्चर्य्य हुआ वह तुम मुझसे सुनो ॥ १८ ॥ तेजहीन एक पांवसे चलतेहुए वृषका रूपधारण किये हुए धर्मने क्षेरहित

ऽनामयमात्मनस्ते विच्छायाऽसिम्लायतेषन्मुखेन । आलक्षयेभवतीमन्तराधिं दूरे बन्धुंशोचसिकंचनाम्ब ॥ २० ॥ पादैर्न्यूनंशोचसिमैकपादमात्मानं वावृषलैर्भोक्ष्यमाणम् । अथोऽसुरादीन्हृतयज्ञभागान्प्रजाउतस्विन्मघवत्यवर्षति ॥ २१ ॥ अरक्ष्यमाणाःस्त्रियउर्विबालान्शोचस्यथोपुरुषादैरिवार्तान् । वाचंदेवींब्रह्मकुलेकुकर्मण्यब्रह्मण्येराजकुलेकुलाग्र्यान् ॥२२॥ किंक्षत्रबन्धून्कलिनोपसृष्टान्राष्ट्राणिवातैरवरोपितानि । इतस्ततोवाऽशनपानवासःस्नानव्यवायोन्मुखजीवलोकम् ॥ २३ ॥ यद्वाऽम्बतेभूरिभरावतार कृतावतारस्यहरेर्धरित्रि । अन्तर्हितस्यस्मरतीविसृष्टा कर्माणिनिर्वाणविलम्बितानि ॥ २४ ॥ इदंममाऽऽचक्ष्वतवाऽऽधिमूलं वसुंधरेयेन विकर्शितासि । कालेनवातेबलिनांबलीयसा सुरार्चितंकिंहृतमम्बसौभगम् २५ ॥ ॥ धरण्युवाच ॥ भवान्हिवेदतत्सर्वं यन्मांधर्मानुपृच्छसि । चतुर्भिर्वर्तसेयेन पादैर्लोकसुखावहैः ॥ २६ ॥ सत्यंशौचंदयाक्षान्तिस्त्यागःसन्तोषआर्जवम् । शमोदमस्तपःसाम्यं तितिक्षोपरतिःश्रुतम् ॥ २७ ॥ ज्ञानं विरक्तिरैश्वर्यं शौर्यंतेजोबलंस्मृतिः । स्वातन्त्र्यंकौशलंकान्तिर्धैर्यमार्दवमेवच ॥ २८ ॥ प्रागल्भ्यंप्रश्रयःशीलं सह ओजोबलंभगः । गाम्भीर्यंस्थैर्यमास्तिक्यं कीर्तिर्मानोऽनहंकृतिः ॥ २९ ॥ एतेचान्येचभगवन्नित्या यत्रमहागुणाः । प्रार्थ्यामहत्त्वमिच्छद्भिर्नवियन्तिस्मकर्हिचित् ३० तेनाहंगुणपात्रेण श्रीनिवासेनसाम्प्रतम् । शोचामिरहितंलोकं पाप्मनाकलिनेक्षि

माताकीभांति आंखोंसे आंसूबहतेहुए गौरूप पृथ्वीसे पूंछा ॥१९॥ हे, मंगलरूपा तेराशरीर आरोग्य है ! मुझे तेरे कोई आन्तरिय पिडा ज्ञात होती है क्योंकि तेरा तेजनाश होगया है और मुख मलीन होरहा है, अथवा दूरगए बंधु का शोच करती है ॥ २० ॥ तीन पावों से रहित तेरे एक पांव रह गया है इससे शोच करती है या इन्द्र नहीं वर्षते, या शूद्र तेरा भोग करते हैं इससे अपनी आत्मा का तो शोच नहीं करती, वा देवतों के यज्ञके भाग बंद होगए इससे तू शोच करती है ॥ २१ ॥ हे भूमि ! पति स्त्रियों की रक्षा नहीं करते या पितामाता राक्षसों की समान बालकों को कष्ट देते हैं या राजा लोग ब्राह्मणों के अभक्त होगए या ब्राह्मण नौकरी करनेलगे इन बातोंमेंसे किसी बात का शोच करती है अथवा दुराचारी ब्राह्मणोंमेंसे सरस्वती चलीगई इससे शोच करती है ॥ २२ ॥ क्या तू कलियुगी क्षत्रियों का शोच करती है या उनसे उजडहुए नगरोंका शोच करती है अथवा खानापीना, स्नान, स्त्री प्रसंग में निषेध न करने से तथा इनमें प्राणियों को प्रवृत्त देखकर शोच करती है ॥२३॥ अथवा भूभारहारी अवतारधारी श्रीकृष्णजी तुझे छोडकर अन्तर्ध्यान होगए तथा मोक्ष सेभी अधिक सुखदाई चरित्रों का स्मरण करके तो शोच नहीं करती ॥२४॥ हे वसुंधरे अपने दुःखका कारण मेरे सामने कह कि जिससे तू क्लेशित होरही है हे माता अतिबलवान काल नें देवताओं से पूजाहुआ तेरा सौभाग्य आज क्यों हरलिया ! ॥ २५ ॥ भूमि ने कहा कि हे धर्म तुम जो मुझ से पूँछते हो वह सब जानतेही हो क्यों कि सृष्टिको सुख देनेवाले चार पैरों से आप बर्तते हो ॥ २६ ॥ जिन ईश्वर में सत्य, शौच, दया, क्षमा, त्याग, संतोष, आर्जव, सम, दम, तप, समता, तितिक्षा, परापराधसहन, उपराम, शास्त्र विचार ॥ २७ ॥ ज्ञान, वैराग्य, प्रभाव, शौर्य ऐश्वर्य, बल, स्मृति, स्वतन्त्रता, कुशलता, कांति, धैर्य, कोमलता, ॥ २८ ॥ प्रतिभा शक्ति, नम्रता सुशीलता, मनोबल, कर्मेन्द्रियबल भोग के लिये योग्यता, गम्भीरता, स्थिरता, श्रद्धा, कीर्ति, मान गर्वका न होना लक्षणथे ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! इनके अतिरिक्त औरभी दूसरे बडे२ गुण कि जिनके लिये महत्तत्व की इच्छा वाले मनुष्य आधारस्तत हैं वे कभी भी विपत्ति को प्राप्त नहीं होते ॥ ३०

तम् ३१आत्मानंचानुशोचामि भवन्तंचाऽमरोत्तमम्। देवान्पितॄनृषीन्साधून्सर्वा-
न्वर्णांस्तथाऽऽश्रमान् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मादयोबहुतिथंयदपाङ्गमोक्ष कामास्तपःसमचर
न्भगवत्प्रपन्नाः। साश्रीःस्ववासमरविन्दवनंविहाय यत्पादसौभगमलंभजतेऽनुर
क्ता ॥ ३३ ॥ तस्याहमब्जकुलिशांकुशकेतुकेतैः श्रीमत्पदैर्भगवतःसमलंकृतां
गी। त्रीनत्यरोचउपलभ्यततोविभूतिं लोकान्समांव्यसृजदुत्स्मयतींतदन्ते ॥३४॥
योवैममातिभरमासुरवंशराज्ञा मक्षौहिणीशतमपानुदवात्मतन्त्रः। त्वांदुःस्थमून
पदमात्मनिपौरुषेण संपादयन्यदुषुरम्यमबिभ्रदङ्गम् ॥ ३५ ॥ कावासहेतविरहंपुरु
षोत्तमस्य प्रेमावलोकरुचिरस्मितवल्गुजल्पैः। स्थैर्यंसमानमहरन्मधुमानिनीनां
रोमोत्सवोममयदंघ्रिविटंकितायाः ॥ ३६ ॥ तयोरेवंकथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा।
परीक्षिन्नामराजर्षिः प्राप्तःप्राचींसरस्वतीम् ॥ ३७ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०प्रथम०पृथिवीधर्मसंवादोनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सूतउवाच॥तत्रगोमिथुनंराजा हन्यमानमनाथवत्। दण्डहस्तंचवृषलं ददृशे-
नृपलाञ्छनम्॥१॥वृषंमृणालधवलं मेहन्तमिवबिभ्यतम्। वेपमानंपदैकेन सीदंतंशू-
द्रताडितम्॥२॥गांचधर्मदुघांदीनां भृशंशूद्रपदाहताम्। विवत्सांसाश्रुवदनांक्षामां
यवसमिच्छतीम् ॥३॥ पप्रच्छरथमारूढः कार्तस्वरपरिच्छदम्। मेघगम्भीरयावा-
चा समारोपितकार्मुकः ॥४॥ कस्त्वंमच्छरणेलोके बलाद्धंस्यबलान्बली। नरदेवो-

गुणों के पास और लक्ष्मी के निवास उन परमात्मा से रहित और अधर्मी कलिकाल की जिसपर दृष्टि पड़ी है ऐसी, इस सृष्टिका में सोच करती हूं ॥ ३१ ॥ अपना तथा देवताओंमें उत्तम तेरा देवता, पितर, साधु, संपूर्ण वर्ण, व आश्रम वालों का शोच करती हूं ॥ ३२ ॥ जिन लक्ष्मी के कृपाकटाक्ष के लिये ब्रह्मादिकों ने अत्यंत तप किया वह लक्ष्मी अपना उत्तम आश्रम, कमल बन छोड़ जिनके चरणारविंद की लावण्यता में अनुरक्त होकर उनका सेवन करती है ॥ ३३ ॥ उन परमेश्वर के चरण कमल, वज्र, अंकुश और ध्वजा के चिन्ह वाले लक्षणों से अलंकृत हैं और इन चरणों की सेवासे मैं भलीभांति शोभित अङ्गोंमें ईश्वरसे ऐश्वर्य्य पाकर त्रिलोकीको अति क्रमणकर के शोभायमान हुई—जब ऐश्वर्य्य का नाशकाल आया तो मुझ गर्व करती हुई को छोड़कर चलेगए ॥ ३४ ॥ जिस परमेश्वर ने राक्षस वंश में उत्पन्न हुए राजाओं की सैकड़ों अक्षौहिणियों रूप मेरे बोझ को दूर किया और पांव टूटने कारण दुःखसे दुःखित होकर अपने यश क्रमसे तुम्हारी आयु पूर्ण करने के लिये सुंदर यदुवन्श में अवतार धारण किया ॥ ३५ ॥ उन पुरुषोत्तम भगवान के बिरह को कौन सहे कि जिन्होंनें प्रेम पूर्वक चितवन तथा रुचिर मुसकान व सुंदर बचन से सत्य-भामा आदि स्त्रियों की गर्व समेत स्थिरता का हरण किया और जिनके चरण चिन्ह से अलंकृत मेरे रोम खड़े होतेथे ॥ ३६ ॥ पृथ्वी और धर्म इस भांति बातें करतेथे कि राजा परीक्षित सरस्वती के पूर्व तटपर आया ॥ ३७ ॥ इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कंधे सरला भाषा टीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सूत जी बोले कि—वहां राजा परीक्षित ने अनाथ की भांति गौका जोड़ा देखा और दंड हाथमें लिये राजा के चिह्न वाले एक शूद्र को उसे मारते देखा ॥ १ ॥ कमल कंद की भांति श्वेत बैल मानो डरके मारे मूतताहो वैसेही एकपांवसे कांपता दुःख पारहाथा, तौभी एक शूद्र उसे ताड़ना देरहाथा ॥ २ ॥ धर्म को पूर्ण करने वाली, अति दीन गौको शूद्र लातें मार रहाथा और बिनबछड़े की दुर्बल गाय नेत्रों में आंसू भरे चरने की इच्छा करती थी ॥ ३ ॥ सोने के साज वाले रथपर

ऽलिवेषेण नटवत्कर्मणाऽद्विजः ॥५॥ कस्त्वंकृष्णेगतेदूरं सहगाण्डीवधन्वना। शो॰च्योऽस्यऽशोच्यान्रहसि प्रहरन्वधमर्हसि ॥६॥ त्वंवामृणालधवलैः पादैर्न्यूनःपदाचरन्। वृषरूपेणकिं कश्चिद्देवोनः परिखेदयन् ॥७॥ नजातुकौरवेन्द्राणां दोर्दण्डपरिरम्भिते। भूतलेऽनुपतन्त्यस्मिन्विनाते प्राणिनांशुचः ॥८॥ माऽसौरभेयाऽनुशुचो व्येतुते वृषलाद्भयम्। मारोदीरम्बभद्रंते खलानांमयिशास्तरि ॥९॥ यस्यराष्ट्रेप्रजाःसर्वास्त्रस्यन्ते साध्व्यसाधुभिः। तस्यमत्तस्यनश्यन्ति कीर्तिरायुर्भगोगतिः ॥१०॥एषराज्ञांपरोधर्मोह्यार्तानामार्तिनिग्रहः। अतएनंवधिष्यामि भूतद्रुहमसत्तमम् ॥११॥ कोऽवृश्चत्तव पादांस्त्रीन्सौरभेय चतुष्पद। माभूवंस्त्वादृशाराष्ट्रे राज्ञांकृष्णानुवर्तिनाम् ॥१२॥ आख्याहिवृषभद्रंवः साधूनामकृतागसाम्। आत्मवैरूप्यकर्तारं पार्थानांकीर्तिदूषणम् ॥१३॥ जनेऽनागस्यघं युञ्जन्सर्वतोऽस्यच मद्भयम्। साधूनांभद्रमेवस्या दसाधुदमनेकृते ॥ १४ ॥ अनागःस्विहभूतेषु यआगस्कृन्निरंकुशः। आहर्तास्मिभुजं साक्षादमर्त्यस्यापिसांगदम् ॥ १५ ॥ राज्ञांहिपरमोधर्मः स्वधर्मस्थानुपालनम्। शासतोऽन्यान्यथाशास्त्रमनापद्युत्पथानिह ॥ १६ ॥ धर्म उवाच ॥ एतद्वःपाण्डवेयानां युक्तमार्ताभयंवचः। येषांगुणगणैःकृष्णो दौत्यादौ भगवान्कृतः ॥ १७ ॥ नवयंक्लेशबीजानि यतःस्युःपुरुषर्षभ। पुरुषंतंविजानीमो वाक्यभेदविमोहिताः ॥ १८ ॥ केचिद्विकल्पवसना आहुरात्मानमात्मनः। दैवमन्येप

बैठेहुए राजा नें धनुष चढ़ाकर मेघकी समान गंभीर वाणी से पूंछा ॥ ४ ॥ मेरे शरणागत इस राज्यमें स्त्रीको बल पूर्वक मारने वाला ऐसा बली तू कौन है नटकी भांति स्वांगतो तेरा राजाकासा है और कर्म शूद्र के समानहैं ॥ ५ ॥ अर्जुनके संग श्रीकृष्ण भगवान को क्या दूरगया जानता है जिस से बिचारे निरपराधियों को इस लोक में तू मारता है इस लिये तू अपराधी है और वध के योग्यहै परन्तु एकबार तू कह कि तू कौनहै ॥६॥ कमलकंदकी समान श्वेतचरण हीन तू एकपांव से चलताहै सो तू कह कि तू कौनहै बैलक रूपसे तू कोई देवताहै कि जो हमको सोचमेंडालताहै ७ कौरवेंद्र (मुझ)के भुजदण्ड से रक्षा कियेहुए सम्पूर्ण भूतल में तेरे बिना और किसी प्राणी के आंसू नहीं गिरते ॥ ८ ॥ हे सुरभीसुत ! शोच मतकर तुझे जो शूद्र का भयहै वह जातारहेगा और हे माता ! दुष्टों के दण्डका देने वाला जबतक मैं हूं तबतक तू मतरो और तुझे शोच करना उचित नहीं ॥ ९ ॥ हे साध्वी ! जिसके देश की सम्पूर्ण प्रजाको दुष्टों से दुःख होता है उस राजा के ऐश्वर्य्य, कीर्ति आयु, यह सब नष्ट होजाते हैं ॥ १० ॥ दुःखी प्राणियों का दुःख दूर करना यही राजा का परम धर्म है इससे प्राणियों के द्रोही इस दुष्टको आज मारूंगा ॥ ११ ॥ हे सुरभीसुत! यह तुम्हारे तीन पांव किसने काटडाले श्रीकृष्णके आज्ञावर्ती राजाओं के देश में तुमको दुःख नहीं होना चाहिये ॥ १२ ॥ हे वृषभ ! तुम्हारा भलाहोगा निरपराधी और साधू तुम लोगोंको जिसने बिरूप किया है उसे कहो, क्योंकि इससे पांडु वंश की कीर्ति में दूषण लगता है ॥ १३ ॥ निरपराधी मनुष्यों को जो क्लेश देवे उस को सब स्थानों में मेरा भय है असाधुओं को दंड देनेसे साधुओं का भला होता है ॥ १४ ॥ निरपराधी प्राणियों को जो दंड देवे तो उसकी भुजा बाजूबंद समेत काट डालूं चाहे देवताही क्यों नहो ॥ १५ ॥ अपने सुधर्ममें स्थित होकर प्रजापालन करना और कुमार्गियों को शिक्षा देना यही राजा का परम धर्म है ॥ १६ ॥ धर्मने कहा कि— हे पांडव! तुम अभय बचन कहनेही के योग्य हो कि जिनके गुणों से बशभूत होकर श्रीभगवान ने सारथी व दूत आदि के कार्य किये ॥ १७ ॥ हे पुरुषों म उत्तम ! जिस पुरुष से प्राणियों को क्लेश होता है उस को तो हम जानते हैं। क्यों कि वादियों के वाक्यों से हम मोहित होरहे

केचित्कर्म स्वभावमपरेप्रभुम् ॥१९॥ अप्रतर्क्यादनिर्देश्यादिति केष्वपिनिश्चयः। अत्रा नुरूपंराजर्षे विमृशस्वमनीषया ॥ २० ॥ एवंधर्मेप्रवदति ससम्राड्द्विजसत्तम। समाहितेनमनसा विखेदःपर्यचष्टतम् ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ धर्मंब्रवीषिधर्मज्ञ धर्मोऽसिवृषरूपधृक्। यदधर्मकृतःस्थानं सूचकस्यापितद्भवेत् ॥ २२ ॥ अथवादेवमायाया नूनंगातिरगोचरा। चेतसोवचसश्चापि भूतानामितिनिश्चयः ॥ २३ ॥ तपः शौचंदयासत्यमितिपादाःप्रकीर्तिताः।अधर्मांशैस्त्रयोभग्नाः स्मयसंगमदैस्तव २४ इदानींधर्मपादस्ते सत्यंनिर्वर्तयेद्यतः तंजिघृक्षत्यधर्मोयमनृतेनैधितःकलिः ॥ २५॥ इयंचभूर्भगवता न्यासितोरुभरासती ॥ श्रीमद्भिस्तत्पदन्यासैः सर्वतःकृतकौतुका ॥ २६ ॥ शोचत्यश्रुकलासाध्वी दुर्भगेवोज्झिताधुना। अब्रह्मण्यानृपव्याजाःशूद्रा भोक्ष्यन्तिमामिति ॥ २७ ॥ इतिधर्मंमहींचैव सान्त्वयित्वामहारथः। निशातमाददे खड्गंकलयेऽधर्महेतवे ॥ २८ ॥ तंजिघांसुमभिप्रेत्य विहायनृपलांछनम्। तत्पाद मूलं शिरसा समगाद्भयविह्वलः ॥२९॥ पतितंपादयोर्वीक्ष्य कृपयादीनवत्सलः। शरण्योनाऽवधीच्छ्लोक्य आहचेदंहसन्निव ॥ ३० ॥ राजोवाच ॥ नतेगुडाकेशय शोधराणां बद्धांजलेर्वैभयमस्तिकिंचित्। नवर्तितव्यंभवता कथंचनक्षेत्रेमदीयेत्व मधर्मबन्धुः ॥ ३१ ॥ त्वांवर्तमानंनरदेवदेहेष्वनुप्रवृत्तोऽयमधर्मपूगः। लोभोऽनृतं चौर्यमनार्यमंहो ज्येष्ठाचमायाकलहश्चदम्भः ॥ ३२ ॥ नवर्तितव्यंतदधर्मबन्धो धर्मेणसत्येनचवर्तितव्ये। ब्रह्मावर्तेयत्रयजन्ति यज्ञैर्यज्ञेश्वरंयज्ञवितानविज्ञाः ॥ ३३ ॥

हैं ॥ १८ ॥ हे राजा! कोई भेद का वस्त्र की नांई धारण करता है ॥ जैसे योगिराज कहते हैं कि आत्माही आत्मा का सुख दुःख दाता है। कोई कर्मों से तथा कोई स्वभावसे सुख दुःखका कारण कहते हैं ॥ १९ ॥ कितनों ही का निश्चय है कि मन, वाणीसे अगोचर परमेश्वर है वही सुख दुःख का हेतु है हे राजर्षि! इस में जो सत्य हो वह आप ही अपनी बुद्धि से विचारलो ॥ २० ॥ धर्म के ऐसे वचन सुनकर चक्रवर्ती राजा मोह रहित होकर सावधान मन करके कहने लगा ॥ २१ ॥ हे धर्मज्ञ! तुम धर्म ही कहते हो, इससे बैल का वेष बनाये तुम धर्महो हो क्यों कि अधर्मी को जो नरकादि स्थान की प्राप्ति होती है तो सूचित करने वालाभी उस पद का प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ अथवा परमात्माकी मायाकी गति प्राणियों के मन वचनसे अगोचरहै यह निश्चय है ॥ २३ ॥ तप, शौच, दया और सत्य यह तुम्हारे चार पांव हैं अधर्म के अंश विस्मय संग और मदसे तुम्हारे तीन पांव टूट गये ॥ २४ ॥ हे धर्म! इस कलियुग में तुम्हारे एक पांव सत्य ही रह गया है जिस से तुम अपना निर्वाह करते हो सो यह अधर्म से बढ़ा हुआ पापी कलिकाल इसे भी लेना चाहता है ॥ २५ ॥ परमात्मा ने बड़ा भारी भार उतार कर अपने शोभाय मान चर्णों से जिस का मंगल किया है ॥ २६ ॥ ऐसी यह पृथ्वी भगवान के किये अपने त्याग के निमित्त एक दुर्भगा स्त्रीकी समान " कि अब ब्राह्मणोंके अभक्त राजाओंका वेष धारण करने वाले शूद्र मेरा भोग करेंगे यह विचार नेत्रों में जल भर शोक करती है ॥ २७ ॥ महारथी राजा परीक्षित ने धर्म और पृथ्वी को समझा कर अधर्म के कारण कलियुग के मारने के लिये तीक्ष्ण तलवार उठाई ॥ २८ ॥ कलियुग राजा की मारने की इच्छा जान भयके मारे कांप गया और शिर के बल राजा के चरणों में गिर गया ॥ २९ ॥ दीन वत्सल शरण को देने वाले, राजा परीक्षित ने कलियुग को चरणों में गिरा देख कर उसको न मारा और हंस कर कहने लगे ॥ ३० ॥ राजा कहने लगा कि—अर्जुन के यश को धारण करने वाले मेरे सन्मुख तूने हाथ जोड़ लिये इस लिये अब तुझे कुछ की भय नहीं है परन्तु तू हमारे देश में मत रहे क्योंकि तू अधर्म का भाई है ॥ ३१ ॥ तू जहां रहता है वहां राजाओं के शरीर में अधर्म का समूह लोभ

तस्मिन्हरिर्भगवानिज्यमान इज्यामूर्तिर्यजतांशंतनोति । कामानमोघान्स्थिरजंगमा-
नामन्तर्बहिर्वायुरिवैषआत्मा ॥ ३४ ॥ सूतउवाच ॥ परीक्षितैवमादिष्टः सकलिर्जा
तवेपथुः । तमुद्यतासिमाहेदं दण्डपाणिमिवोद्यतम् ॥ ३५ ॥ यत्रक्वचनवत्स्यामि
सार्वभौमतवाज्ञया । लक्षयेतत्रतत्रापि त्वामात्तेषुशरासनम् ॥ ३६ ॥ तन्मेधर्मभृतां
श्रेष्ठस्थानंनिर्देष्टुमर्हसि । यत्रैवनियतोवत्स्य आतिष्ठंस्तेनुशासनम् ॥ ३७ ॥ सूत
उवाच ॥ अभ्यर्थितस्तदातस्मै स्थनानिकलयेददौ । द्यूतंपानंस्त्रियस्सूना यत्राधर्म
श्चतुर्विधः ॥ ३८ ॥ पुनश्चयाचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः । ततोऽनृतंमदंकामं
रजोवैरंचपंचमम् ॥ ३९ ॥ अमूनिपंचस्थानानि ह्यधर्मप्रभवःकलिः । औत्तरेयेणद-
त्तानि न्यवसत्तन्निदेशकृत् ॥४०॥ अथैतानिनसेवेत बुभूषुःपुरुषःक्वचित् । विशेष
तोधर्मशीलो राजालोकपतिर्गुरुः ॥ ४१ ॥ वृषस्य नष्टांस्त्रीन्पादांस्तपः शौचंदया-
मिति । प्रतिसंदधआश्वास्य महींचसमवर्धयत् ॥ ४२ ॥ सएषएतर्ह्यध्यास्त आस
नंपार्थिवोचितम् । पितामहेनोपन्यस्तं राज्ञाऽरण्यंविविक्षता ॥ ४३ ॥ आस्तेऽधुना
सराजर्षिः कौरवेन्द्रश्रियोल्लसन् । गजाह्वये महाभागश्चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः ॥४४॥
इत्थंभूतानुभावोऽयमभिमन्युसुतोनृपः । यस्यपालयतःक्षोणीं यूयंसत्रायदीक्षिताः ।
॥४५॥ इति श्रीमद्भ० महा० प्रथमस्कंधे कलिनिग्रहोनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

झूठ बोलना, चोरी करना, दुष्टपना, धर्म छोड़ना, लूट, कपट, पाखंड यह सब होजाते हैं ॥ ३२॥
हे अधर्म बंधु ! धर्म और सत्य के वर्तने योग्य इसब्रह्मावर्त देशमें तू मत रहे क्योंकि इस देश में
यज्ञ के विस्तार को जानने वाले मुनि लोग यज्ञों द्वारा भगवान यज्ञेश्वर की पूजा करते हैं ॥ ३३॥
जो भगवान पवन की भांति भीतर वाहर, स्थावर, जंगम की आत्मा हैं वही यज्ञ मूर्ति भगवान
हरि यहां अपने भक्तों की मनोकामना पूर्ण करते तथा उन को सुख देते हैं ॥ ३४ ॥ सूतजी
बोले कि- राजा परीक्षित ने जब इस भांति आज्ञा दी तब वह कलि कांपता हुआ दंड उठाये
यमराज के समान, खड्ग उठाये उस राजा से कहने लगा ॥ ३५ ॥ कि हे चक्रवर्ती राजा !
जहां आज्ञा दोगे वहीं बास करूंगा और वहां भी धनुषबाण लिये आपको देखता रहूंगा ॥ ३६॥
हे धर्म धारियों में श्रेष्ठ ! आप मेरे योग्य कोई स्थान बतलादीजिये जहां में आप की आज्ञा से
निश्चल होकर बसूं ॥ ३७ ॥ सूतजी बोले कि कलियुग ने इस भांति प्रार्थनाकी तब उस कलि-
युग को राजा ने द्यूत, मदिरा पान, व्यभिचारिणी स्त्री, और हिंसा में स्थान दिया ॥ ३८ ॥
कलियुग ने जब फिर प्रार्थनाकी तब राजा ने उसे सुवर्ण दिया जिस सुवर्ण के दान से झूठ, मद,
काम, रजोगुण और पांचवा बैर भी दिया ॥ ३९ ॥ अधर्म उपजाने वाला कलियुग राजा परी-
क्षित के दिये हुए स्थानों मे उनकी आज्ञानुसार रहने लगा ॥ ४० ॥ अपने भले की इच्छा
चाहने वाले मनुष्य इन स्थानों का (पदार्थों का) कभी सेवन न करे और धर्म शील मनुष्य,
लोक पति राजा, और धर्मोपदेश करने वाले गुरू को तो अवश्यही इन का सेवन नहीं करना
चाहिये ॥ ४१ ॥ बैल के रूप धरे हुए धर्म के जो तीन पांव तप, शौच, दया नष्ट होगयेथे उन
को फिर प्रवृत्त किया और पृथ्वी का भली प्रकार पालन करने लगा ॥ ४२ ॥ वन में प्रवेश क-
रने की इच्छा करते राजा युधिष्ठिर के दिये हुये राज्यासन पर अभी राजा परीक्षित विराजे हैं
॥ ४३ ॥ कौरवेन्द्र की संपत्ति से शोभायमान बड़भागी, महा यशस्वी चक्रवर्ती राजर्षि अभी ह-
स्तिनापुर में विराजे हैं ॥ ४४ ॥ अभिमन्युका पुत्र राजा परीक्षित ऐसा प्रभावशाली है कि जिस
के पृथ्वीपालन करते हुए तुमने यज्ञके लिये दीक्षा धारणकी है ॥ ४५ ॥

इतिश्री भागवतेमहापुराणे प्रथमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

॥ सूतउवाच ॥ योवैद्रौण्यस्त्रविप्लुष्टो नमातुरुदरेमृतः । अनुग्रहाद्भगवतः कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥ १ ॥ ब्रह्मकोपोत्थिताद्यस्तुतक्षकात्प्राणविप्लवात् । न संमुमोहोरुभयाद्भगवत्यर्पिताशयः ॥ २ ॥ उत्सृज्यसर्वतःसङ्गं विज्ञाताजितसंस्थितिः ॥ वैयासकेर्जहौशिष्यो गंगायांस्वंकलेवरम् ॥ ३ ॥ नोत्तमश्लोकवार्तानां जुषतां तत्कथामृतम् । स्यात्संभ्रमोऽन्तकालेऽपि स्मरतांतत्पदाम्बुजम् ॥ ४ ॥ तावत्कलिर्नैप्रभवेत्प्रविष्टोपीह सर्वतः । यावदीशो महानुर्व्यामाभिमन्यव एकराट् ॥ ५ ॥ यस्मिन्नहनि यर्ह्येवभगवानुत्ससर्ज गाम् । तदैवहानुवृत्तोऽसावधर्मप्रभवः कलिः ॥ ॥ ६ ॥ नानुद्वेष्टिकलिंसम्राट् सारंगइवसारभुक् । कुशलान्याशुसिध्यन्ति नेतराणि कृतानियत् ॥ ७ ॥ किंनुवालेषुशूरेण कलिनाधीरभीरुणा । अप्रमत्तःप्रमत्तेषु योवृकोनृषुवर्तते ॥ ८ ॥ उपवर्णितमेतद्वः पुण्यंपारीक्षितंमया । वासुदेवकथोपेतमाख्यानं यदपृच्छत ॥ ९ ॥ यायाःकथाभगवतः कथनीयोरुकर्मणः । गुणकर्माश्रयाःपुंभिः संसेव्यास्तानुभूषुभिः ॥ १० ॥ ऋषयऊचु । सूतजीवसमाःसौम्य शाश्वतीर्विशदं यशः । यस्त्वंशंससिकृष्णस्य मर्त्यानाममृतंहिनः ॥ ११ ॥ कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूमधूम्रात्मनांभवान् । आपाययति गोविन्दपादपद्मासवंमधु ॥ १२ ॥ तुलयामलवेनापिनस्वर्गं नापुनर्भवम् । भगवत्सङ्गिसंगस्य मर्त्यानांकिमुताशिषः ॥ १३ ॥ को

सूतजी ने कहा कि—जो अश्वत्थामा के अस्त्र से न जला और अद्भुत कर्मा श्रीकृष्णचंद्रजी के अनुग्रह से माता के उदर में भी न मरा ॥ १ ॥ और जो परमात्मा में अपना चित्त अर्पण करने के कारण ब्राह्मण के क्रोधमें प्रगट हुए जीवोंके नाश करनेवाले तक्षकरूप महाभयसे मोह को प्राप्त न हुआ ॥ २ ॥ सब ओर से संग छोड भगवान को तत्व जान राजा श्रीशुकदेव जी का शिष्य हो गंगा में शरीर त्यागन किया ॥ ३ ॥ सत्य है जो मनुष्य भगवान के उत्तम यशकी वार्ता तथा उनकी कथामृत का सेवन करते और उनके चरणार विंदो को ध्याते हैं उनको मृत्यु काल में भी संभ्रम नहीं होता ॥ ४ ॥ जब तक महा प्रभावशाली राजा परीक्षित अभिमन्यु के बेटे ने पृथ्वी का पालन किया तब तक कलियुग सर्वत्र फैल कर भी कुछ न करसका ॥ ५ ॥ जिस दिनसे भगवान ने पृथ्वी का त्याग किया उसी दिनसे अधर्म के उपजाने वाले कलियुग का इस देश में प्रवेश हुआ ॥ ६ ॥ चक्रवर्ती राजा भ्रमर की समान सारग्राही था इस लिये उसने कलियुगसे द्वेष नहीं किया कारण कि पुण्य का फल तो इस कलिकालमें संकल्प मात्र से मिलता है और पाप का फल करने ही से मिलता है ॥ ७ ॥ यह कलियुग अधैर्य्य पुरुषों में शूर है और धैर्य्य पुरुषों से डरता है जो असावधान मनुष्य भेडिया की भांति सावधान रहता है वह धैर्य्यवान पुरुषों का क्या कर सकता है ॥ ८ ॥ मैंने परीक्षित का चारित्र जो भगवान की कथा से मिला हुआ और पवित्र तथा जो आपने पूछा उस का वर्णन किया ॥ ९ ॥ जिन परमेश्वर की अनेक कथायें तथा उन के गुण और कर्म विषयक कथायें वर्णन करने योग्य हैं उन्हीं कथाओं का श्रेष्टताकी इच्छा रखने वाले पुरुषों को सेवन करना योग्य है ॥ १० ॥ शौनकादिकऋषि कहने लगे कि—हे सूत ! हे सौम्य तुम अनेक वर्षों जीवित रहो क्योंकि तुम श्रीकृष्णभगवान के निर्मल यश का श्रवण कराते हो जो यश मरण धर्मा पुरुषों के मरण को निवारण करताहै॥११ जिस में फल के हेतु संशय है ऐसे इस यज्ञ कर्म्म में धूंए से धूसर वर्ण शरीर वाले हम को आप श्रीभगवान के कमल स्वरूपी चरणों का मकरंद पिलाते हो ॥ १२ ॥ परमेश्वर के भक्त के सत्सगत की समान हम न स्वर्ग को मानते हैं न मुक्ति को गिनते हैं फिर मनुष्यों की तुच्छ का-

नाम तृप्येद्रसवित्कथायां महत्तमैकान्तपरायणस्य । नाऽन्तंगुणानामगुणस्य जग्मु
र्योगेश्वरा येभवपाद्ममुख्याः ॥ १४ ॥ तन्नोभवान्वैभगवत्प्रधानो महत्तमैकान्तपराय-
णस्य । हरेरुदारंचरितं विशुद्धं शुश्रूषतांनावितनोतुविद्वन् ॥ १५ ॥ सवैमहाभाग-
वतः परीक्षिद्येनाऽपवर्गाख्यमदभ्रबुद्धिः । ज्ञानेनवैयासकिशब्दितेन भेजेखगेन्द्र
ध्वजपादमूलम् ॥ १६ ॥ तन्नः परं पुण्यमसंवृतार्थमाख्यानमत्यद्भुतयोगनिष्ठम् ॥
आख्याह्यनन्ताचरितोपपन्नं पारीक्षितंभागवताभिरामम ॥ १७ ॥ सूतउवाच । अहो
वयंजन्मभृतोऽद्यहास्मवृद्धानुवृत्त्याऽपिविलोमजाताः । दौष्कुल्यमाधिंविधुनोतिशी-
घ्रं महत्तमानामभिधानयोगः ॥१८॥ कुतःपुनर्गृणतोनाम तस्यमहत्तमैकान्तपरायण-
स्य । योऽनन्तशक्तिर्भगवाननन्तो महद्गुणत्वाद्यमनन्तमाहुः ॥ १९ ॥ एतावताऽ
लंननुसूचितेन गुणैरसाम्यानतिशायनस्य । हित्वेतरान्प्रार्थयतोविभूतिर्यस्यांघ्रिरे-
णुंजुषतेऽनभीप्सोः ॥ २० ॥ अथापियत्पादनखावसृष्टं जगद्विरिंचोपहृतार्हणाम्भः ।
सेशंपुनात्यन्यतमोमुकुन्दात्को नामलोकेभगवत्पदार्थः ॥ २१ ॥ यत्रानुरक्ताःसहसै
वधीरा व्यपोह्यदेहादिषुसंगमूढम् ॥ व्रजन्तियत्पारमहंस्यमन्त्यं यस्मिन्नहिंसोपश
मःस्वधर्मः ॥ २२ ॥ अहंहिपृष्टोऽर्यमणोभवद्भिराचक्ष आत्मावगमोऽत्रयावान् ।
नभःपतन्त्यात्मसमंपतत्त्रिणस्तथा समंविष्णुगतिंविपश्चितः ॥ २३ ॥ एकदाधनुरु-
द्यम्यविचरन्मृगयांवने । मृगाननुगतःश्रान्तः क्षुधितस्तृषितोभृशम् ॥ २४ ॥ जला
शयमचक्षाणः प्रविवेशयमाश्रमम् । ददर्शमुनिमासीनं शान्तंमीलितलोचनम्॥२५॥

मना राज्यादिक की तो बात ही क्या है ॥ १३ ॥ अलौकिक पारब्रह्म परमात्मा के गुणोंका बड़े २ योगेश्वर, महादेव, ब्रह्माने भी पार नहीं पाया, उन महात्मा पुरुषों के परम आश्चर्य हरिभगवानके पवित्र और उदार चरित्र हमसे विस्तार पूर्वक कहो ॥१४॥ हे विद्वन्! हरिके उदार विशुद्ध चरित्र सुननेवाले लोगोंसे भगवत प्रधान आप विस्तार पूर्वक वर्णनकरो ॥१५॥ शुकदेवजीके जिन कहेहुए ज्ञान से भगवान के भक्त राजा परीक्षित गरुडध्वज भगवान के चरण कमलों को प्राप्त हुए १६ वह परम पवित्र, अद्भुत, योगनिष्ठा युक्त अनंत भगवान की लीलाओं से शोभित, भगवद्भक्तों के प्रिय, राजा परीक्षितकी कथा हम से सविस्तार कहो ॥ १७ ॥ सूतजी बोले कि—हम शुद्धकुल न होने परभी वृद्ध पुरुषों की सेवासे आज सफल जन्म हुएहैं क्योंकि साधु पुरुषोंके संग वार्त्ताकरने का प्रसंग नीचकुल संबधी मनोव्यथा को शीघ्र निवृत्त करता है ॥ १८ ॥ जबभक्तों के संग वार्त्ता करने का प्रसंग भी ऐसा है तो बड़े गुणवाले, अनंतशक्ति, अविनाशी, आश्रय रूप भगवान के नाम लेने वाले पुरुषों की मनोव्यथा क्यों न दूर होवे ॥ १९ ॥ गुणों मे जिन की समान कोई भी नहीं ऐसे भगवान का महात्म्य प्रगट करने के लिये इतनाही अधिक है कि विनती करते हुये दूसरे ब्रह्मादिक देवतों को छोड़कर इच्छा रहित जिन परमेश्वर के चरणों के धूलकी श्री लक्ष्मीजी सेवा करती हैं ॥ २० ॥ जो ब्रह्माका अर्पण कियाहुआ जल—भगवान के चर्णों से निकल कर महादेव सहित सम्पूर्ण जगत को पवित्र करता है ऐसे भगवान से श्रेष्ठ और कोई नहीं है ॥ २१ ॥ जिन परमेश्वर में प्रीति करने वाले धैर्य्यवान पुरुष देहादिकों में बढ़ेहुए संगको तुर्त छोड़कर उत्तम परम हंस पदको प्राप्त होते हैं जिस पदमें अहिंसा और उपशमयही स्वधर्म है ॥२२॥ हे सूर्यरूप! आपने मुझसे पूछा उसको मैं बुद्धिके अनुसार कहूंगा—जैसे पक्षी अपने बलके समान आकाश में उड़ते हैं ऐसेही पंडित जन विष्णु भगवान की गति देखते हैं ॥२३॥ एक दिनराजा परीक्षित धनुष लेकर शिकार खेलने को वनमें हिरण के पीछेदूर चलागया वहां वह अत्यंत भूख प्यास से पीड़ित हुआ

प्रतिरुद्धेन्द्रियप्राणमनोबुद्धिमुपारतम् ॥ स्थानत्रयात्परंप्राप्तं ब्रह्मभूतमविक्रियम् २६
विप्रकीर्णजटाच्छन्नंरौरवेणाजिनेनच विशुष्यत्तालुरुदकं तथाभूतमयाचत ॥२७॥
अलब्धतृणभूम्यादिरसंप्राप्तार्घ्यसूनृतः।अवज्ञातमिवात्मानं मन्यमानश्चुकोपह २८
अभूतपूर्वःसहसाक्षुत्तृड्भ्यामर्दितात्मनः । ब्राह्मणंप्रत्यभूद्ब्रह्मन्मत्सरोमन्युरेवच
॥ २९ ॥ सतुब्रह्मऋषेरंसे गतासुमुरगंरुषा । विनिर्गच्छन्धनुष्कोट्या निधायपुरमा
गमत् ॥ ३० ॥ एषकिंनिभृताशेषकरणो मीलितेक्षणः । मृषासमाधिराहोस्वित्किं
नुस्यात्क्षत्रबन्धुभिः ॥ ३१ ॥ तस्यपुत्रोऽतितेजस्वी विहरन्बालकोऽर्भकैः । राज्ञाघं
प्रापितंतातंश्रुत्वातत्रेदमब्रवीत् ॥ ३२ ॥ अहोअधर्मःपालानां पीव्नांबलिभुजामिव ।
स्वामिन्यघंयद्दासानां द्वारपानांशुनामिव ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणैःक्षत्रबन्धुर्हिद्वारपालो
निरूपितः । सकथंतद्गृहेद्वाःस्थः सभाण्डंभोक्तुमर्हति ॥ ३४ ॥ कृष्णेगतेभगवति
शास्तर्युत्पथगामिनाम् । तद्भिन्नसेतूनद्याहं शास्मिपश्यतमेबलम् ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वा
रोषताम्राक्षो वयस्यानृषिबालकान् ॥ कौशिक्याऽपउपस्पृश्य वाग्वज्रंविससर्जह
॥ ३६ ॥ इतिलंघितमर्यादं तक्षकःसप्तमेऽहनि । दङ्क्ष्यतिस्मकुलांगारं चोदितो
मेततद्रुहम् ॥३७॥ ततोऽभ्येत्याऽऽश्रमंबालो गलेसर्पकलेवरम् । पितरंवीक्ष्यदुःखा
र्तो मुक्तकण्ठोरुरोदह ॥ ३८ ॥ सवाआङ्गिरसोब्रह्मन्श्रुत्वासुतविलापनम् । उन्मी-
ल्यशनकैर्नेत्रे दृष्ट्वास्वांसेमृतोरगम्॥३९॥विसृज्यपुत्रंपप्रच्छ वत्सकस्माद्धिरोदिषि।

॥ २४ ॥ जलाशय के स्थानको ढूंढतेहुए राजाने एकआश्रममें प्रवेशकिया वहां नेत्रमूंदे एक शांत मुनिको बैठे देखा ॥ २५ ॥ इन्द्रियां, प्राण, मन, बुद्धि, को रोककर जाग्रदादि तीन अवस्थाओं से परे तुरीयाअवस्थाको प्राप्त हो ॥ २६ ॥ ब्रह्मभूत और निर्विकार होकर उपरामको प्राप्त हुये बिखरी हुई जटा व मृगछाला से ढके हुए मुनिसे राजाने जलके हेतु विनती की ॥२७॥ परन्तु वहां राजा को आसन, अर्घ आदर आदि कुछभी न मिला तब राजाने अपनी अवज्ञा जानकर क्रोधकिया ॥ २८॥ भूख, प्यास से व्याकुल राजा परीक्षित पहले कभी ऐसा नहीं हुआ, इससे राजाको ब्राह्मणके ऊपर मत्सर और क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ २९ ॥ वह राजा क्रोध के वशीभूत हो धनुषके अग्रभाग से मरे हुए सांपको उठाकर ब्राह्मणके कंठमें डाल अपने नगरको आया ॥ ३० ॥ सब इंद्रियों को रोके नेत्र मूंदे झूंठी समाधि लगाये. इसने अपने मनमें यह समझा होगा कि, क्षत्रिय लोग हमारा क्या करैंगे ॥ ३१ ॥ उस ब्राह्मण का बड़ा तेजस्वी बेटा जो बालकों के साथ खेलता था उसने सुना कि राजाने मेरेपिताके ऊपर सांपडाला है यह सुनकर वह कहनेलगा ॥ ३२ ॥ अरे बड़ा अधर्म है कि खा खा कर मोटेहुये राजाओं का यह अधर्म-दास जो अपने स्वामीका बुराकरे वह द्वारपाल कुत्तेकी समान गिना जाता है ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंको द्वारपाल बनाया है सो द्वारमें रहने वाला वह उनके घरमें घुसकर पात्रमें रखे अन्नको किसभांति खाने योग्य होसकता है ॥ ३४ ॥ दुष्कर्मी मनुष्यों को शिक्षा देनेवाले श्री कृष्ण जी चलेगये तो क्या हुआ इन मर्यादा भंगी मनुष्यों को आज मैं दंडदूंगा मेरा बलदेखो ॥ ३५ ॥ इस प्रकार क्रोधसे लाल नेत्रकर अपने सखाओंसे कह कौशिकी नदी का जलले आचमनकर श्राप दिया ॥ ३६ ॥ इस प्रकार मर्यादाको तोड़ने वाले कुलमें अंगार तुल्य मेरे पिताके द्रोही राजाको आज से सातवें दिन तक्षक डसेगा ॥ ३७ ॥ इस के उपरांत वह बालक अपने आश्रम में आ पिताके गलेमें सांप देख दुःख के मारे कंठ खोल रोनेलगा ॥ ३८ ॥ उस अंगिरा गोत्री ब्राह्मण ने पुत्रका विलाप सुन धीरे धीरे आंख खोली और अपने कंधे में सांप को देखा ॥ ३९ ॥ उस मृतक सांपको फेक पुत्रसे पूछने लगा ।कि हेपुत्र!क्यों

केनवातेप्रतिकृतमित्युक्तःसन्यवेदयत् ॥ ४० ॥ निशम्यशप्तमतदर्हंनरेन्द्रं सब्राह्मणोनाऽऽत्मजमभ्यनन्दत् । अहोबतांहोमहदद्यतेकृतं स्वल्पीयसिद्रोहउरुर्दमोधृतः ॥ ४१ ॥ नवैनृभिर्नरदेवंपराख्यं संमातुमर्हस्यविपक्वबुद्धे । यत्तेजसादुर्विषहेण गुप्ताविन्दन्तिभद्राण्यकुतोभयाःप्रजाः ॥ ४२ ॥ अलक्ष्यमाणेनरदेवनाम्नि रथांगपाणावयमंगलोकः । तदाहिचोरप्रचुरोविनङ्क्ष्यत्यरक्ष्यमाणोऽविवरूथवत्क्षणात् ॥ ४३ ॥ तदद्यनःपापमुपैत्यनन्वयं यन्नष्टनाथस्यवसोर्विलुम्पकात् ॥ परस्परंघ्नन्तिशपन्तिवृञ्जतेपशून्स्त्रियोऽर्थान्पुरुदस्यवोजनाः ॥ ४४ ॥ तदार्यधर्मश्चावलीयतेनृणां वर्णाश्रमाचारयुतस्त्रयीमयः । ततोर्थकामाभिनिवेशितात्मनां शुनांकपीनामिववर्णसंकरः ॥४५॥ धर्मपालोनरपतिःसतुसम्राड्बृहच्छ्रवाः । साक्षान्महाभागवतोराजर्षिर्हयमेधयाट् क्षुत्तृट्श्रमयुतोदीनोनैवाऽस्मच्छापमर्हति ॥ ४६ ॥ अपापेषुस्वभृत्येषु बालेनाऽपक्वबुद्धिना ॥ पापंकृतंतद्भगवान्सर्वात्माक्षन्तुमर्हति ॥ ४७ ॥ तिरस्कृताविप्रलब्धाः शप्ताःक्षिप्ताहताअपि । नास्यतत्प्रतिकुर्वन्तितद्भक्ताःप्रभवोऽपिहि ॥ ४८ ॥ इतिपुत्रकृताघेन सोऽनुतप्तोमहामुनिः ॥ स्वयंविप्रकृतोराज्ञा नैवाऽघंतदचिन्तयत् ॥ ४९ ॥ प्रायशःसाधवोलोके परैर्द्वन्द्वेषुयोजिताः । नव्यथन्तिनहृष्यन्ति यतआत्माऽगुणाश्रयः ॥ ५० ॥

इतिश्रीमद्भा०महापु०प्रथमस्कन्धेविप्रशापोपलम्भनंनामाऽष्टादशोऽध्यायः १८॥

रोता है किसने तेरा अपराध किया है तब उस बालक ने श्राप आदि का सब वृत्तांत वर्णन किया ॥ ४० ॥ श्रापदेने के अयोग्य राजाको श्राप दिया सुन उस ब्राह्मण ने अपने पुत्र का निरादर किया और कहा कि अरेमूर्ख तूने बहुत बुराकिया थोड़े से अपराध पर इतना भारी दंडदिया ॥ ४१ ॥ हेदुर्बुद्धी ! राजा परमेश्वर की समान है वह समान लोगों के गिनने योग्य नहीं है जिस राजाके बड़े तेज से रक्षित प्रजा निर्भय हो सुख प्राप्त करता है ॥ ४२ ॥ विष्णु की समान राजा जोक्षण मात्र भी देखने में न आवे तो यह सबलोग चोर की भांति होकर नाश होजांय जैसे बिना रक्षाक भेड़ों को भेड़िया नाश करजाते हैं ॥ ४३ ॥ बिनास्वामी के धनको लूटने वाले चोर जो पाप करेंगे वह पाप अपने किये बिनाभी अपने को लगेगा जिनमें चोर का भाग बहुत है ऐसे लोग आपस में मारत और गाली देते, पशु, स्त्रियां औरधन हरलेते हैं ॥ ४४ ॥ जब ऐसें होता है तब मनुष्यों का वर्णाश्रम सहित सदाचार नष्ट होजाता है अर्थ और काम में आसक्त मनुष्य कुत्ते और बंदरा की भांति वर्णसंकर होजाते हैं ॥ ४५ ॥ धर्म पालक, यशस्वी, चक्रवर्ती, साक्षात महा भागवत, राजर्षि, अश्वमेध का करने वाला और भूख, प्यास से दीन ऐसा राजा हमारे श्रापके योग्य नहीं था ॥ ४६ ॥ निरपराधी अपने सेवकों का इस लड़के ने अपराध किया है सो सबके अन्तर्यामी श्री भगवान क्षमाकरने योग्य हैं ॥ ४७ ॥ श्री भगवान के भक्त समर्थ होने परभी चाहे कोई उन की अवज्ञाकरे, निरादरकरे, ताड़ना आदि देवै तोभी अपने अपराध करने वाले के ऊपर वह क्रोध नहीं करते ॥ ४८ ॥ इस भांति पुत्रके किये हुये अपराध का शमीक मुनिने बड़ा पश्चात्ताप किया, राजाने मुनिका अपराध किया था परन्तु मुनिने उस पर कुछभी ध्यान न दिया ॥ ४९ ॥ सृष्टिमें चाहे दूसरे लोग साधुओं को सुख दुःखदेवैं परन्तु वह उसका हर्ष, शोक नहीं मानते क्योंकि जीव सुख दुःखादि द्वंद्व धर्म रहित है ॥ ५० ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणे•प्रथमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांअष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

॥ सूतउवाच ॥ महीपतिस्त्वथतत्कर्मगर्ह्यं विचिन्तयन्नात्मकृतंसुदुर्मनाः। अहो मया नीचमनार्यवत्कृतं निरागसिब्रह्मणिगूढतेजसि ॥१॥ ध्रुवंततोमकृतदेवहेलना द्दुरत्ययंव्यसनंनातिदीर्घात् । तदस्तुकामंत्वघनिष्कृतायमेयथानकुर्यांपुनरेवमद्धा ॥ २ ॥ अद्यैवराज्यंबलमृद्धकोशंप्रकोपितब्रह्मकुलानलोमे । दहत्वभद्रस्यपुनर्नमेऽभूत्पापीयसीधीर्द्विजदेवगोभ्यः ॥ ३ ॥ सचिन्तयन्नित्थमथाशृणोद्यथामुनेःसुतोक्तोनिर्ऋतिस्तक्षकाख्यः । ससाधुमेनेनचिरेणतक्षकानलंप्रसक्तस्यविरक्तिकारणम् ॥ ४ ॥ अथोविहायेममसुंचलोकं विमर्शितौहेयतयापुरस्तात् । कृष्णांघ्रिसेवामधिमन्यमान उपाविशत्प्रायममर्त्यनद्याम् ॥ ५ ॥ यावैलसच्छ्रीतुलसीविमिश्रकृष्णांघ्रिरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री । पुनातिलोकानुभयत्र सेशान्कस्तांनसेवेतमरिष्यमाणः ६ इतिव्यवच्छिद्यसपाण्डवेयःप्रायोपवेशंप्रतिविष्णुपद्याम् । दध्यौमुकुन्दांघ्रिमनन्यभावा मुनिव्रतोमुक्तसमस्तसंगः ॥ ७ ॥ तत्रोपजग्मुर्भुवनंपुनाना महानुभावामुनयः सशिष्याः।प्रायेणतीर्थाभिगमापदेशैः स्वयंहितीर्थानिपुनन्तिसन्तः॥८॥ अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनःशरद्वानरिष्टनेमिर्भृगुरंगिराश्च । पराशरोगाधिसुतोऽथराम उतथ्यइंद्रप्रमदेध्मवाहौ ॥ ९ ॥ मेधातिथिर्देवलआर्ष्टिषेणो भारद्वाजोगौतमःपिप्पलादः । मैत्रेयऔर्वःकवषःकुम्भयोनिर्द्वैपायनोभगवान्नारदश्च ॥ १० ॥ अन्येचदेवर्षिब्रह्मर्षिवर्या राजर्षिवर्याअरुणादयश्च । नानार्षेयप्रवरान्समेतानभ्यर्च्यराजाशिरसाववन्दे॥११॥

सूतजी बोलेकि–वह राजा अपने निंदित कर्मोंका विचार कर उदासचित्त हो घर आ सोचने लगा कि मैंने नीच की भांति बड़ाबुरा कार्य्य किया कि उस तेजस्वी ब्राह्मणका मैंने अपराध किया ॥ १ ॥ यह मैंने भगवानका अवज्ञा का इस का फल अत्यन्त कठिन क्लेश मुझे मिलना चाहिये वह भी पुत्रादि द्वारा नहीं वरन साक्षात मुझ मिलना चाहिये जिस से मेरे पाप का प्रायश्चित हो जाय जिससे फिर ऐसा अपराध न करूं ॥ २ ॥ कुपित ब्राह्मण कुलरूप अग्नि मुझ पापीका राज 'सोना' भरपूर कोश इन सब को शीघ्र भस्म करदे जिसमें ब्राह्मण, देवता और गौओं पर फिर ऐसी पाप बुद्धि नहो ॥ ३ ॥ राजा इस भांति बिचार कररहाथा कि शमीक के भेजे हुये शिष्यों से मुनि के पुत्र के श्राप का वृतांत सुना कि तक्षक सर्प से मृत्यु होगी इस तक्षक के विषरूप अग्नि को राजा ने अत्युत्तम माना, क्योंकि विषयों मे आसक्त राजाको यह वैराग्यका शीघ्रही कारणहुआ ॥ ४ ॥ जिस का पहिलेही से छोड़ने का बिचार था ऐसे इस लोकको छोड़कर श्रीकृष्ण भगवानके चरणों की सेवा को बहुत अधिक मानता गंगाजीके तट पर अनशन व्रत लेके जा बैठा ॥ ५ ॥ जो गंगा तुलसी से मिली श्री कृष्ण भगवानके चरण रज संवर्धा सब से पावन व श्रेष्ठ जल से बहती तथा बाहर और भीतर लोकपालों सहित लोकोंको पवित्र करती है उसगंगाको मरतीसमय कौन मनुष्य सेवन न करे ॥ ६ ॥ इस भांति वह परीक्षित गंगा जी के तटपर अनशन व्रतलेने का निश्चयकर सबका साथछोड़ शान्तहो श्री मुकुंद के चरणों का ध्यानकरने लगा ॥ ७ ॥ संसार को पावन करने श्रेष्ठमुनि राजा के देखने को शिष्यों समेत वहां आये बहुधा सत्पुरुष लोग तीर्थ यात्रा के मिससे तीर्थों हीको पवित्र करते हैं ॥ ८ ॥ अत्रि, वशिष्ठ, च्यवन, शरद्वान्, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इंद्रप्रमद, इध्मवाहु ॥ ९ ॥ मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण, भारद्वाज, गौतम, पिप्पलाद मैत्रेय, और्व, कवष, अगस्त, भगवान वेद व्यासजी, नारद ॥ १० ॥ और देवर्षि, ब्रह्मर्षि, और राजर्षियों में उत्तम अरुणादिक ऋषिआये अनेक उत्तम २ ऋषि जो वहां आये थे उन सबकी राजाने पूजा करके शिर से

सुखोपविष्टेष्वथतेषुभूयः कृतप्रणामःस्वचिकीर्षितंयत्। विज्ञापयामासविविक्तचे-
ता उपस्थितोऽग्रेऽभिगृहीतपाणिः ॥ १२ ॥ परीक्षिदुवाच ॥ अहोवयंधन्यतमा
नृपाणां महत्तमानुग्रहणीयशीलाः। राज्ञांकुलंब्राह्मणपादशौचाद्दूराद्विसृष्टंबतग-
र्ह्यकर्म ॥ १३ ॥ तस्यैवमेऽघस्यपरावरेशो व्यासक्तचित्तस्यगृहेष्वभीक्ष्णम्। नि-
र्वेदमूलोद्विजशापरूपोयत्रप्रसक्तोभयमाशुधत्ते ॥ १४ ॥ तंमोपयातंप्रतियन्तुविप्रा
गङ्गाचदेवीधृतचित्तमीशे । द्विजोपसृष्टःकुहकस्तक्षकोवा दशत्वलंगायतविष्णु-
गाथाः ॥ १५ ॥ पुनश्चभूयाद्भगवत्यनन्ते रतिःप्रसङ्गश्चतदाश्रयेषु। महत्सुयांयामु-
पयामिसृष्टिं मैत्र्यस्तुसर्वत्रनमोद्विजेभ्यः ॥ १६ ॥ इतिस्मराजाध्यवसाययुक्तः प्रा-
चीनमूलेषुकुशेषुधीरः। उदङ्मुखोदक्षिणकूलआस्ते समुद्रपत्न्याःस्वसुतन्यस्त-
भारः ॥ १७ ॥ एवंचतस्मिन्नरदेवदेवेप्रायोपविष्टेदिविदेवसंघाः। प्रशस्यभूमौव्य-
किरन्प्रसूनैर्मुदामुहुर्दुन्दुभयश्चनेदुः ॥ १८ ॥ महर्षयोवैसमुपागताये प्रशस्यसा-
ध्वित्यनुमोदमानाः। ऊचुःप्रजानुग्रहशीलसारा यदुत्तमश्लोकगुणाभिरूपम् १९॥
नचाद्भुतंत्वयिराजर्षिवर्यचित्रं भवत्सुकृष्णंसमनुव्रतेषु। येऽध्यासनंराजकिरीटजुष्टंसद्यो
जहुर्भगवत्पार्श्वकामाः ॥ २० ॥ सर्वेवयंतावदिहास्महेऽथकलेवरंयावदसौविहाय
लोकंपरंविरजस्कंविशोकं यास्यत्ययंभागवतप्रधानः ॥ २१ ॥ आश्रुत्यतदृषिगण-
वचःपरीक्षित्समंमधुच्युद्गुरुचाव्यलीकम्। अभाषतैनानभिवन्द्ययुक्तं शुश्रूषमा-
णश्चरितानिविष्णोः ॥ २२ ॥ समागताःसर्वतएवसर्वेवेदायथामूर्तिधरास्त्रिपृष्ठे।

प्रणाम किया, ॥ ११ ॥ वेसब जब आनंद चित्त होकर बैठगये तब राजा उन्हे प्रणाम कर शुद्ध चित्तहो उनके आगे हाथ जोड़ अपने कर्म्मों का वर्णन करने लगा ॥ १२ ॥ राजा ने कहा कि मैं राजाओं मे बड़ा धन्य हूं कि जिसपर आपके समान महात्माओ ने कृपाकी, क्योंकि विहित कर्म करने वाला यह राजाओं का वंश ब्राह्मणो के पैर धोने के जल डालने के स्थान से भी दूर रहने के योग्य है ॥ १३ ॥ निंदित कर्म करने वाले पाप रूप घरों में सदैव आसक्तचित्त मुझको कार्य कारण के नियामक परमेश्वर ही वैराग्य के कारण ब्राह्मण के शाप रूपसे हुए हैं कि जिस शापसे घरोंमें आसक्त मनुष्य तुरत ही डरजाता है ॥ १४ ॥ हेविप्रों वह मै परमात्मा में मन लगाके देवी गंगा तथा आपकी शरण आया हूं, ब्राह्मग का भेजा हुआ कपटी तक्षक चाहेमुझे भलेकाटे परन्तु अब आप हरिकी कथा का गानकरो ॥ १५ ॥ मेरी भगवान में रतिहोवे, साधुओं का सदासंग रहे, और जिस योनिमें जाऊं वहीं साधन, मैत्रता तथा ब्राह्मणो को प्रणाम करता रहूं ॥ १६ ॥ वह धैर्य्य वान राजा ऐसा निश्चय कर पुत्रको राज्यका भारदे गंगाके दक्षिण किनारे पर पूर्वाभिमुख अग्रभाग वाले कुशाको बिछा उस आसन पर उत्तर मुख होकर बैठा ॥ १७ ॥ जब राजा ऐसा अनशन व्रतलेकर बैठा तब देवताओं ने बड़ाई करके फूलोंकी वर्षाकी तथा बारंबार नगाड़े बजाये ॥ १८ ॥ ऐसे जो वड़े २ ऋषि जिनका स्वभाव और वल प्रजाके कल्याण की ओर है आये थे उन्हो ने बड़ाई करके अनुमोदन किया उत्तम श्लोक भगवान के गुणों से सदृश यह कहने लगे कि ॥ १९ ॥ हे राजर्षियों मे श्रेष्ठ कृष्ण भक्त! जो तुम ने ऐसे वचन कहे यह आश्चर्य नहीं है क्योंकि जिनने राजाओं के छत्रसे सेवित श्रेष्ठ राज सिंहासन कोभी भगवत प्रीतिके हेतु शीघ्रही त्यागादिया ॥२०॥ जबतक श्रेष्ठ भगवद्भक्त राजापरीक्षित अपनी देहछोड़, रजोगुण तथा शोकहीन श्रेष्ठ लोकको प्राप्त होगा तबतक हम सबलोग यहां बैठे रहेंगे ॥२१॥ जिसमें अमृत बहरहाहै ऐसे गंभीर सार्थ, सत्य, पक्षपात रहित मुनिलोगों के वाक्य सुनकर, उन्हें दंडवत कर भगवत चरित्र

नेहाथवाऽमुत्रचकश्चनाऽर्थं मृतेपरानुग्रमात्मशीलम् ॥ २३ ॥ ततश्चवःपृच्छयमि-
मंविपृच्छेविश्रभ्यविप्राइतिकृत्यतायाम् । सर्वात्मनाम्रियमाणैश्च कृत्यंशुद्धंचतत्रा
मृशताभियुक्ताः ॥ २४ ॥ तत्राभवद्भगवान्व्यासपुत्रो यदृच्छयागामटमानोऽनपक्षः
। अलक्ष्यलिंगोनिजलाभतुष्टो वृतःस्त्रिबालैरवधूतवेषः ॥ २५ ॥ तंव्यष्टवर्षंसुकुमा-
रपादकरोरुबाह्वंसकपोलगात्रम् । चार्वायताक्षोन्नसतुल्यकर्णसुभ्र्वाननंकम्बुसुजा
तकण्ठम् ॥ २६ ॥ निगूढजत्रुंपृथुतुङ्गवक्षसमावर्तनाभिंवलिवल्गूदरंच । दिगम्बरं
वक्त्रविकीर्णकेशंप्रलम्बबाहुंस्वमरोत्तमाभम् ॥ २७ ॥ श्यामंसदाऽपीव्यवयोऽङ्ग-
लक्ष्म्यास्त्रीणांमनोज्ञंरुचिरस्मितेन । प्रत्युत्थितास्तेमुनयःस्वासनेभ्यस्तल्लक्षणज्ञा
अपिगूढवर्चसम् ॥ २८ ॥ सविष्णुरातोऽतिथयआगताय तस्मैसपर्यांशिरसाऽज-
हार । ततोनिवृत्ताह्यबुधाःस्त्रियोऽर्भकामहासनेसोपविवेशपूजितः ॥ २९ ॥ ससं-
वृतस्तत्रमहान्महीयसां ब्रह्मर्षिराजर्षिदेवर्षिसंघैः। व्यरोचताऽलंभगवान्यथेन्दुर्ग्रहर्-
क्षतारानिकरैःपरीतः ॥ ३० ॥ प्रशान्तमासीनमकुण्ठमेधसंमुनिंनृपोभागवतोऽभ्यु-
पेत्य । प्रणम्यमूर्ध्नाऽवहितःकृतांजलिर्नत्वागिरासूनृतयाऽन्वपृच्छत् ॥ ३१ ॥ अहो
अद्यवयंब्रह्मन्सत्सेव्याःक्षत्रबन्धवः । कृपयाऽतिथिरूपेण भवद्भिस्तीर्थकाःकृताः

सुनने की कामना से, राजा परीक्षित ने कहा ॥ २२ ॥ जिस भांति सत्यलोक में मूर्तिमान वेद विराजमान हैं, उसीभांति वेद रूप आप सब दिशाओं से आ यहां एकत्रित हुये हो, दूसरों पर कृपा करना यह तो आपलोगों की टेव ही है आप लोग परलोक में अनुग्रह करते हो ॥ २३ ॥ हे ब्राह्मणों ! इस लिये मैं आप से विश्वास युक्त होकर यह पूछता हूं कि जब मृत्यु मनुष्य की निकट आजाय उस समय क्या करना चाहिये इस लिये आप सब एकमत होकर सर्व अवस्था मे करनें योग्य पाप से रहित कर्तव्य कर्म का विचार करो ॥ २४ ॥ राजाकी यह बात सुन सब परस्पर में कहने लगे कि यज्ञ कराओ योग कराओ तप और दान कराओ ऐसे विवाद करनें लगे इतनें में अकस्मात पृथ्वी में घूमते हुए, अपनें लाभ से संतुष्ट, अपेक्षा रहित, व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी उसी समय आगए, उन शुकदेवजी के आश्रम आदि का चिन्ह प्रगट नहीं होता अवधून वेष धरे, जिन्हें स्त्रियें तथा बालक घेर रहे हैं ॥ २५ ॥ सुंदर जिनकी १६ वर्ष की अवस्था है और चरण, हाथ, उरु, भुजा, कंधा, कपोल गात्र यह सुंदर हैं और विशाल नेत्र तथा ऊंची नासिका है बराबर जिन के कान तथा सुन्दर भौंह युक्त जिनका श्रेष्ठ मुख है शंख कीसी तीन रेखा वाला जिनका सुंदर गला है ॥ २६ ॥ जिनके छाती के हाड़ मांस से ढके हुए और ऊंचा वक्षस्थल है भौंरिसी जिनकी गहरी नाभि है तीन रेखा युक्त जिनका उदर है दिगंबर (नंग) हैं जिनके बाल टेढ़े हैं लम्बी जिनकी भुजा हैं देवताओं में श्रेष्ठ हरि कीसी कांति है ॥ २७ ॥ जिनका सांमला रंग है सदैव उत्तम योवन से अंग शोभावमान है सुंदर मुसकान से स्त्रियों के मनको हरते हैं ऐसे गुप्त तेज वाले शुकदेवजी के लक्षणों को जाननें वाले मुनिलोग उन्हें देखकर अपनें अपनें आसनों से उठखड़े हुए ॥ २८ ॥ राजा परीक्षित नें आयेहुए उन अतिथि रूप श्री शुकदेवजी को नमस्कार कर पूजन किया उस समय अज्ञानी स्त्री बालक लौटगये और श्री शुकदेवजी स्वेच्छा पूर्वक श्रेष्ठ सिंहासन पर विराजे ॥ २९ ॥ महंतों मे श्रेष्ठ राजर्षि, देवर्षि इन के समूह में श्रीशुक-देवजी ऐसे शोभायमान हुए जैसे ग्रह, नक्षत्र, और तारागणों के समूह में चन्द्रमा शोभायमान होता है॥ ३० ॥ अकुंठित बुद्धि, प्रशांत रूप सिंहासनपर बैठे हुए श्री शुकदेवजी के निकट राजा परीक्षित जाकर मस्तक से दंडवत कर सुंदर वाणी से पूछनें लगे ॥ ३१ ॥ राजा परीक्षित नें

॥ ३२ ॥ येषांसंस्मरणात्पुंसां सद्यःशुध्यंतिवैगृहाः । किंपुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचा सनादिभिः ॥ ३३ ॥ सान्निध्यात्तेमहायोगिन्पातकानिमहान्त्यपि । सद्योनश्यंति वैपुंसांविष्णोरिवसुरेतराः ॥ ३४ ॥ अपिमेभगवान्प्रीतः कृष्णःपांडुसुतप्रियः । पैतृ- ष्वसेयप्रीत्यर्थंतद्गोत्रस्यात्तबान्धवः ॥ ३५ ॥ अन्यथातेऽव्यक्तगतेर्दर्शनंनःकथं नृणाम् । नितरांम्रियमाणानां संसिद्धस्यवनीयसः ॥ ३६ ॥ अतःपृच्छामिसंसिद्धिं योगिनांपरमंगुरुम् । पुरुषस्यहयत्कार्यं म्रियमाणस्यसर्वथा ॥ ३७ ॥ यच्छ्रोतव्य- मथोजाप्यंयत्कर्तव्यंनृभिःप्रभो । स्मर्तव्यंभजनीयंवाब्रुहिदवाविपर्ययम् ॥ ३८ ॥ नूनंभगवतोब्रह्मन्गृहेषुगृहमेधिनाम् । नलक्ष्यतेह्यवस्थानमपिगोदोहनंक्वचित् ॥ ३९ ॥ सूतउवाच ॥ एवमाभाषितःपृष्टः सराज्ञाश्लक्ष्णयागिरा । प्रत्यभाषतधर्मज्ञो भगवान्बादरायणिः ॥ ४० ॥

इतिश्री भागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांपारमहंस्यांसंहितायांप्रथमस्कन्धे शुकागमनंनामएकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

॥ समाप्तोऽयं प्रथमस्कन्धः ॥ १ ॥

प्रसन्न चित्त होकर कहा कि हे ब्रह्मन्! मैं क्षत्री जाति हूं तौभी महात्माओं के सेवनीय आपने जो कृपाकी उसके प्रभावसे आज मैं पवित्रहुआ ॥ ३२ ॥ जिनके केवल स्मर्ण करनेंसे घरपवित्र होजाता है तो फिर साक्षात् उनके दर्शन, स्पर्शन, चरण धोनेका जल और आसनादि से पवित्र होवे तो इसमें क्या कहना है ॥ ३३ ॥ हे महायोगीन्! आपके निकट से मनुष्यों के बड़े २ पाप तत्काल नष्ट होजाते हैं जैसे बिष्णुजी के निकट से असुरों का नाश होजाता है ॥ ३४ ॥ क्या अपनी फूफी के पुत्र पांडवों के पुत्रों को प्रसन्न रखनें के हेतु उनके वंश वाले मुझपर श्रीकृष्ण भगवान ने कृपा की है ॥ ३५ ॥ बिना श्रीकृष्णजी की कृपा के भली भांति से सिद्ध, अत्यन्त उदार चित्त, मन वांछित फल देनेवाले, अव्यक्तगति आपका दर्शन हम मनुष्यों को कहां! तिसपर भी जिनकी मृत्यु निकट आई है उनको आपका दर्शन दुर्लभ है ॥ ३६ ॥ हे योगी जनोंके श्रेष्ठ गुरु! इसी लिये मैं आपसे पूछता हूं कि जिसकी मृत्यु निकट आगईहो उसे मोक्ष के हेतु कौनसा कृत्य करना चाहिये ॥ ३७ ॥ हे प्रभु! पुरुषों को क्या जपना, क्या सुनना, किसका स्मर्ण, किसका भजन और क्या करना चाहिये, सो मुझ से आप कहो ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन्! गृहस्थीयों के घर ठहरना आपका तो गोदोहन मात्र होनाही नहीं ॥ ३९ ॥ सूतजी ने कहा कि जब राजा ने श्री शुकदेवजी से मधुर वाणी में यह प्रश्न किया तब श्री शुकदेवजी ने उत्तर दिया ॥ ४० ॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे० प्रथमस्कन्धे सारस्वत जगन्नाथात्मज कन्हैयालाल उपाध्याय बिरचितायां सरला भाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीमद्भागवत भाषाटीका सहित.

द्वितीयस्कन्ध

ओं नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीशुकउवाच ॥ वरीयानेषतेप्रश्नः कृतोलोकहितंनृप । आत्मवित्संमतःपुंसां श्रोतव्यादिषुयःपरः ॥ १ ॥ श्रोतव्यादीनिराजेन्द्र नृणांसन्तिसहस्रशः । अपश्यतामात्मतत्त्वं गृहेषुगृहमेधिनाम् ॥ २ ॥ निद्रयाह्रियतेनक्तं व्यवायेनचवावयः । दिवाचार्थेहया राजन्कुटुम्बभरणेनवा ॥ ३ ॥ देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि । तेषांप्रमत्तोनिधनं पश्यन्नपिनपश्यति ॥ ४ ॥ तस्माद्भारतसर्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः । श्रोतव्यःकीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताऽभयम् ॥ ५ ॥ एतावान्सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया । जन्मलाभःपरःपुंसामन्तेनारायणस्मृतिः ॥ ६ ॥ प्रायेणमुनयोराजन्निवृत्ताविधिषेधतः । नैर्गुण्यस्थारमन्तेस्म गुणानुकथनेहरेः ॥ ७ ॥ इदंभागवतंनाम पुराणंब्रह्मसंमितम् । अधीतवान्द्वापरादौ पितुर्द्वैपायनादहम् ॥ ८ ॥ परिनिष्ठितोऽपिनैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया । गृहीतचेताराजर्षे आख्यानंयदधीतवान् ॥ ९ ॥ तदहंतेऽभिधास्यामि महापौरुषिकोभवान् । यस्यश्रद्दधतामाशु स्यान्मुकुन्देमतिःसती ॥ १० ॥ एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् । योगिनांनृपनिर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥ ११ ॥ किंप्रमत्तस्य

श्रीशुकदेव जी बोले कि—महाराज आत्मवेत्ता मनुष्यों के पूजने तथा सुनने योग्य विषयों में आपने यह परम श्रेष्ठ प्रश्नकिया क्योंकि इससे संसार का भलाहोगा ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र आत्म तत्व को न जानने वाले गृहमें आसक्त गृहस्थी पुरुषों के सुनने योग्य हजारों विषय हैं ॥ २ ॥ पुरुषों की आधी अवस्था तो सोने या मैथुन से व्यतीत होजाती है हेराजा ! आधी दिनमें गृह कार्य्य, धन, उद्यम या कुटुम्ब पोषण से व्यय होजाती है ॥ ३ ॥ देखो स्त्री, पुत्र, शरीर आदि यह सब अपना परिवार स्थिर नहीं है तोभी यह मनुष्य अचेत होकर पिताआदिको मरते देखकर भी नहीं समझता ॥ ४ ॥ हेराजा ! इस लिये जो मुक्ति की कांक्षा करे वह सर्वात्मापरमेश्वर के गुणानुवाद का श्रवण तथा कीर्तन करे ॥ ५ ॥ सांख्य योग और धर्मके आचरण से यही पुरुषों के जन्म का फल है कि अंत कालमें श्री परमेश्वर का स्मर्ण बनारहे ॥ ६ ॥ महाराज ! बहुत से विधि निषेध से निवृत्त मुनिलोग निर्गुण ब्रह्ममें स्थित होकर परमेश्वर के गुणों का कीर्तन करते हैं ॥ ७ ॥ यह वेदों की समान श्री मद्भागवत पुराण मैंने अपने पितासे द्वापर युगकी आदिमें पढाथा ॥ ८ ॥ यद्यपि मैं निर्गुण, ब्रह्ममें निष्ठावान हूं हेराजर्षि ! तौभी उत्तम श्लोक भगवान के चरित्रों से चित्त खिंच जाने के कारण मैंने यह भागवत पढ़ी ॥ ९ ॥ तू भगवान का परम भक्त है इससे यह भागवत मैं तुझसे कहूंगा जो मनुष्य इस श्री मद्भागवत में श्रद्धा रक्खेंगे उनकी बुद्धि शीघ्रही परमेश्वर में निश्चलहोजायगी ॥ १० ॥ हे महाराज ! श्री भगवान के गुणानुवादही सकाम पुरुषों को मनवांछित

बहुभिः परोक्षैर्हायनैरिह । वरंमुहूर्तंविदितं घटेतश्रेयसेयतः ॥ १२ ॥ खट्वाङ्गो
नामराजर्षिर्ज्ञात्वेयत्तामिहायुषः । मुहूर्तात्सर्वमुत्सृज्य गतवानभयंहरिम् ॥ १३ ॥
तवाप्येतर्हिकौरव्य सप्ताहंजीवितावधिः । उपकल्पयतत्सर्वं तावद्यत्सांपरायिकम्
॥ १४ ॥ अन्तकालेतुपुरुष आगतेगतसाध्वसः । छिन्द्यादसङ्गशस्त्रेण स्पृहांदेहेऽनु
येचतम् ॥ १५ ॥ गृहात्प्रव्राजितोधीरःपुण्यतीर्थजलप्लुतः । शुचौविविक्तआसीनो
विधिवत्कल्पितासने ॥ १६ ॥ अभ्यसेन्मनसाशुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरंपरम् । मनो
यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन् ॥ १७ ॥ नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान्मनसा
बुद्धिसारथिः । मनःकर्मभिराक्षिप्तंशुभार्थेधारयेद्धिया ॥ १८ ॥ तत्रैकावयवंध्याये-
दव्युच्छिन्नेनचेतसा । मनोनिर्विषयंयुक्त्वा ततःकिंचननस्मरेत् ॥१९॥ पदंतत्परमं
विष्णोर्मनोयत्रप्रसीदति । रजस्तमोभ्यामाक्षिप्तं विमूढंमनआत्मनः ॥ यच्छेद्धारण-
याधीरोहन्तियातत्कृतंमलम् ॥ २० ॥ यतःसंधार्यमाणायां योगिनोभक्तिलक्षणः ।
आशुसंपद्यतेयोग आश्रयंभद्रमीक्षतः ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ यथासंधार्यतेब्रह्मन्धा-
रणायत्रसंमता । यादृशीवाहरेदाशुपुरुषस्यमनोमलम् ॥ २२ ॥ श्रीशुकउवाच ॥

फलदेने वाले हैं, मुमुक्षुको मोक्षफल, योगी को योग और ज्ञानी को ज्ञानका फल देनेवाला यही है ॥ ११ ॥ जो यहां अचेत मनुष्यों की अचेतता में बहुत से वर्ष व्यतीत होगये तो क्या ! और चैतन्यता अर्थात् जाना हुआ समय दो घड़ी भी अच्छा, कि जिससे सुखके हेतु उपाय करे ॥ १२ ॥ खट्वांग नाम राजर्षि * ऐसा जानकर कि मेरीआयुकी दोघड़ी शेषरही है एकही मुहूर्तमें यहांके सब संगका त्याग करके मुक्ति रूप भगवान में जामिला ॥ १३ ॥ फिर हेराजा परीक्षित ! तुम्हारे जीने के तो अभी सात दिवस शेषहैं इस कालमें तुम परलोक सुधारने के सब साधन करलो ॥१४॥ हेराजन् ! जब मनुष्य का अंत काल आवे तब मरनेका डरछाड़ वैराग्य रूपी खड्ग से देह तथा देह सम्बन्धी वांछा पुत्र, स्त्री.आदि का लालसा को काटडाले ॥१५॥ घरसे वाहर निकल, धीरज धर, तीर्थ जल में स्नान कर पवित्र एकांत भूमि में विधिवत कुशासन पर आसन जमाकर उस पर बैठे ॥ १६ ॥ अ, उ, म, इन तीन वर्णो से बने हुए ओंकार का चित्तसे भजन करना और प्रणव का विस्मरण किये विना प्राणायाम से चित्तका निरोध करना ॥ १७ ॥ बुद्धि जिसकी सार थी है ऐसे मनुष्य को उचित है कि पहिले तो इन्द्रियों को विषयोंसे मन द्वारा पाछे फेरे फिर कर्मों की बासनाओं से भकटते हुए चित्त को बुद्धि द्वारा परमात्मा के स्वरूपमें लगावे ॥ १८ ॥ फिर परमेश्वर का ध्यान करे—वहां सम्पूर्ण स्वरूप से चित्त को अलग न करके एक २ अंगका ध्यान करे फिर समाधि लगाकर निर्विषय चित्त को एकाग्र करके परमात्मा का स्मर्ण करे जिसस्वरूप में चित्त प्रसन्न होजाय वही विष्णु भगवान का परमपद है ॥ १९.॥ धनवान मनुष्य को चाहिये कि रजोगुण और तमो गुण से विक्षिप्त तथा महामूढ मन को धारणा द्वारा रोक रक्खे जो धारणा रजो गुण तथा तमो गुण के मल को दूर करती है ॥ २०.॥ जिस धारणाके धारण करने से सुख रूप विषय को देखने वाले योगी का भक्ति लक्षण योग तत्काल सिद्ध होता है ॥ २१ ॥ राजा परीक्षित ने कहा कि हे ब्रह्मन् ! आपने जो चित्त की धारणाकही कि जो मनुष्यके मनके मैल को

* इस राजा ने देवताओं की ओरसे संग्राम करके असुरों को जीत लिया इससे देवताओं ने प्रसन्न होकर वर मांगने को कहा तब राजा ने कहा कि हे महाराज प्रथम मेरी आयु बताओ तब उन्होंने कहा कि एक मुहूर्त रहगया है तब वह राजा विमान पर सवार हो अति शीघ्र कर्म भूमि भारत खंडमें आप मोक्षरूप हरिको प्राप्त हुआ ।

जितासनोजितश्वासोजितसङ्गोजितेन्द्रियः । स्थूलेभगवतोरूपेमनःसंधारयेद्धिया ॥ २३ ॥ विशेषस्तस्यदेहोऽयं स्थविष्ठश्चस्थवीयसाम् । यत्रेदंदृश्यतेविश्वं भूतं भव्यंभवच्चसत् ॥ २४ ॥ आण्डकोशेशरीरेऽस्मिन् सप्तावरणसंयुते । वैराजः पुरुषोयोऽसौ भगवान्धारणाश्रयः ॥ २५ ॥ पातालमेतस्यहिपादमूलं पठन्तिपार्ष्णि प्रपदेरसातलम् ॥ महातलंविश्वसृजोऽथगुल्फौ तलातलंवैपुरुषस्यजंघे ॥ २६ ॥ द्वे जानुनीसुतलंविश्वमूर्तें रुद्वयंवितलंचातलंच। महीतलंतज्जघनंमहीपतेनभस्तलं नाभिसरोगृणन्ति ॥ २७ ॥ उरःस्थलंज्योतिरनीकमस्यग्रीवा महर्वदनंवैजनोऽस्य तपोरराटींविदुरादिपुंसः सत्यंतुशीर्षाणिसहस्रशीर्ष्णः ॥ २८ ॥ इन्द्रादयोबाहव आहुरुस्राःकर्णौदिशःश्रोत्रममुष्यशब्दः । नासत्यदस्रौपरमस्यनासे घ्राणोऽस्यगंधो मुखमग्निरिद्धः ॥ २९ ॥ द्यौरक्षिणीचक्षुरभूत्पतङ्गः पक्ष्माणिविष्णोरहनीउभेच । तद्भ्रूविजृम्भःपरमेष्ठिधिष्ण्यमापोऽस्यतालूरसएवजिह्वा ॥३०॥ छन्दांस्यनन्तस्य शिरोगृणन्तिदंष्ट्रा यमःस्नेहकलाद्विजानि । हासोजनोन्मादकरीच मायादुरन्तसर्गो यदपांगमोक्षः ॥ ३१ ॥ व्रीडोत्तरोष्ठोऽधरएवं लोभोधर्म-स्तनोऽधर्मपथोऽस्य पृष्ठः । कस्तस्यमेढ्रं वृषणौचमित्रोकुक्षिःसमुद्रागिरयोऽस्थिसंघाः ॥ ३२ ॥ नद्यो-ऽस्यनाड्योऽथतनूरुहाणि महीरुहाविश्वतनोर्नृपेन्द्र।अनन्तवीर्यःश्वसितंमातरिश्वा गतिर्वयःकर्मगुणप्रवाहः ॥ ३३ ॥ ईशस्यकेशान्विदुरम्बुवाहान्वासस्तुसंध्यांकुरु-वर्यभूम्नः । अव्यक्तमाहुर्हृदयंमनश्च सचन्द्रमाःसर्वविकारकोशः ॥ ३४ ॥ विज्ञान-

नष्ट करती हैं कहो वह किस के विषय, कैसे और किस प्रकार करनी चाहिये ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजा आसन को जीत, प्राणको वशीभूत कर, संगको तज, जितेन्द्रिय हो, परमेश्वर के विराटस्वरूप में बुद्धि द्वारा चित्तको लगावे ॥ २३ ॥ यह विराट देह परमेश्वर के स्थूलरूपों में सबसे स्थूल है जिस रूप में यह भूत, भविष्यत और वर्तमान कार्यरूप सब संसार दीखताहै ॥२४॥ सात आवरण अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार और महतत्व वाले इस ब्रह्माण्ड रूप विराट शरीर का ध्यानजो मनुष्य करताहै, वही परमात्मा सम्पूर्ण धारणाके आश्रय हैं ॥ २५ ॥ इस विराट रूपका पादमूल पाताल, पैरोंके अगाड़ीका भाग रसातल,टखना (गुल्फ) महातल, और पिंडली तलातल ॥ २६ ॥ जंघा सुतल, दोनो उरू वितल और ऊपरके भाग अतल, जघन महीतल और नाभि रूप सरोवर नभस्तल कहलाता है ॥ २७ ॥ इस विराट का उरः स्थल ज्योतिश्चक्र, ग्रीवा महर्लोक, मुख जनलोक, ललाट तपलोक, और सहस्रों सिखा वाले परमात्मा के शिरको सत्य लोक कहते है ॥ २८ ॥ इन्द्रादिक देवता भुजा, दिशायें कर्ण, शब्द श्रोत्रेन्द्रिय, अश्विनीकुमार नाशिका, गंध घ्राणेन्द्रिय, और अग्नि, इन भगवान का मुख है ॥ २९ ॥ स्वर्ग लोक नेत्र, सूर्य चक्षु, विष्णुभगवानकी पलकें लगना रात दिन और ब्रह्मपद परमेश्वर का भ्रूविलास, जल तालु, और रस जीभ कहलाती है ॥ ३० ॥ वेद अनंत भगवान का ब्रह्मरन्ध्र, यमराज डाढ, पुत्रादिकों के स्नेह का लेश दांत, मनुष्यों को उन्मत्त करनेवाली माया भगवानका हास्य, अपार सर्ग भगवान का कटाक्ष कहलाता है ॥ ३१ ॥ लाज ऊपर का ओष्ठ, लोभ नीचे का ओष्ठ, धर्म स्तन, अधर्म पीठ, प्रजापति लिंग, मित्रावरुण वृषण, समुद्र कुक्षि, और पर्वत हाड़ कहाते हैं ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! नदियां भगवान की नाड़ियां, वृक्ष रोम, अनन्त पराक्रम वाली वायु श्वास, वय भगवान की चाल, गुणों का प्रवाह भगवान का कर्म कहलाता है ॥ ३३ ॥ मेघ श्रीभगवान के केश कहलाते हैं, हे कुरुवर्य्य ! सन्ध्या में उसके वस्त्र, प्र-

वर्षिर्महिमाममग्नेः सर्वात्मनोऽन्तःकरणंगिरित्रम् । अश्वाश्वतर्युष्ट्रगजानखा
निसर्वेमृगाः पशवःश्रोणिदेशे ॥ ३५ ॥ वयांसितद्व्याकरणंविचित्रं मनुर्मनीषा
मनुजोनिवासः । गन्धर्वविद्याधरचारणाप्सरः स्वरस्मृतीरसुरानीकवीर्यः ॥३६॥
ब्रह्माऽऽननंक्षत्रभुजोमहात्माविडूरुरंघ्रिश्रितकृष्णवर्णः। नानाभिधाभीज्यगणोपपन्नो
द्रव्यात्मकःकर्मवितानयोगः ॥ ३७ ॥ इयानसावीश्वरविग्रहस्य यःसन्निवेशःकथि
तोमयाते । संधार्यतेऽस्मिन्वपुषिस्थविष्ठे मनःस्वबुद्ध्यानयतोऽस्तिकिंचित् ॥३८॥
ससर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्वआत्मा यथास्वप्नजनेक्षितैकः । तंसत्यमानन्दनिधिंभजेत
नान्यत्रसज्जेद्यतआत्मपातः ॥ ३९ ॥इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेद्वितीयस्कन्धेमहा
पुरुषसंस्थानुवर्णनेविराट्रूपकथनंनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १॥

॥ श्रीशुकउवाच ॥ एवंपुराधारणयाऽऽत्मयोनिर्नष्टांस्मृतिंप्रत्यवरुध्यतुष्टात् ।
तथाससर्जेदममोघदृष्टिर्यथाप्ययात्प्राग्व्यवसायबुद्धिः ॥१॥ शाब्दस्यहिब्रह्मणएष
पन्था यन्नामभिर्ध्यायतिधीरपार्थैः । परिभ्रमंस्तत्रनविन्दतेऽर्थान्मायामयेवासनया
शयानः ॥ २ ॥ अतःकविर्नाममुयावदर्थः स्यादप्रमत्तोव्यवसायबुद्धिः । सिद्धेऽन्य
थाऽर्थेनयतेततत्र परिश्रमंतत्रसमीक्षमाणः ॥ ३ ॥ सत्यांक्षितौकिंकशिपोःप्रयासै-
र्बाहौस्वसिद्धेह्युपबर्हणैःकिम् । सत्यंजलौकिंपुरुधाऽन्नपात्र्या दिग्वल्कलादौसति
किंदुकूलैः ॥४॥ चीराणिकिंपथिनसन्तिदिशन्तिभिक्षां नैवांघ्रिपाःपरभृतःसरितो

धान उस का हृदय, सब विकारों का आश्रय भूत चंद्रमा उस का मन कहलाता है ॥ ३४ ॥ प्राणियों की आत्मा—विज्ञान शक्ति भगवान की महिमा, शिव अतः करण, घोडे खच्चर, ऊंट, हाथी, यह नख हैं सम्पूर्ण मृग पशु भगवान के नितब के पिछले भाग में माने जाते हैं ॥ ३५ ॥ सम्पूर्ण पक्षी भगवान की विचित्र वाणी, स्वायम्भू मुनि बुद्धि, मनुष्य निवास स्थान, गंधर्व, विद्याधर चारण और अप्सरा यह भगवान के स्वर की स्मृति है असुरो की सेना भगवानका पराक्रम है ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण मुख क्षत्रिय भुजा, वैश्य जंघा, शूद्र भगवान के चरण हैं ऐसे ही नानाप्रकार के पूजनीय देवताओं के गुंणों सहित द्रव्यात्मक यज्ञ क्रिया भगवान का कर्म कहलाता है॥३७॥ मैंने ईश्वर के शरीर के अवयवों का वर्णन जो तुमसे किया वह इतना ही है भगवान के इसीस्थूल बिराट स्वरूप में मुमुक्षु लोग अपनी बुद्धि से मनकी धारणा करते हैं इससे आगे और कुछ किंचित मात्रभी नहीं है ॥ ३८ ॥ जैसे मनुष्य स्वप्न में वृत्ति को जान लेता है वैसे ही प्राणी को उचित है कि आत्मा को जानकर सत्यानंद निधि भगवान का भजन करे जिस से जन्म मरण से छूटै ॥ ३९ ॥ इतिश्रीभद्भागवतमहापुराणे०द्वितीयस्कंधेसरलभाषाटीकायांप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—ब्रह्माजी ने पहिले इस भांति धारणा की थी इससे परमेश्वर ने प्रसन्न होकर उनको प्रलय समय मे नाश हुई सृष्टि की स्मृतिदी, जिसे पाकर अमोघ दृष्टि व बडी बुद्धिवाले ब्रह्माजी ने पूर्वकाल की समान फिर संसार को रचा ॥१॥ वेदका मार्ग यही है कि जिस से मनुष्य अर्थ शून्य स्वर्गादि नाम सुन कर अपनी बुद्धि से उनके साधनों की इच्छाकरता है परन्तु माया मय मार्ग में सोता हुआ जीव ऊपर नीचेके लोकों मे भ्रमता हुआ पुरुषार्थ को नहीं प्राप्त होता ॥ २ ॥ इसी लिये चतुर मनुष्य को चाहिये कि शरीर निर्वाह के निमित्त ससार के पदार्थों में जिस २ वस्तु की आवश्यकता हो उसी २ का यत्न करे परन्तु उन में आनद नही है यह बिश्वास कर उन में लिप्त नहो, अपनी देह का निर्वाह सहज में होजाय तो उनके लिये यत्न न करे ॥ ३ ॥ पृथ्वी ही शय्या और भुजा तकिया अंजुली ही भोजन के पात्र और दिशा ही

प्यशुष्यन् । रुद्धागुहाःकिमजितोऽवतिनोपपन्नान्कस्माद्भजन्ति कवयोधनदुर्मदा न्धान् ॥ ५ ॥ एवंस्वचित्तेस्वतएवसिद्ध आत्माप्रियोर्थोभगवाननन्तः तंनिर्वृतो नियतार्थोभजेत संसारहेतूपरमश्चयत्र ॥ ६ ॥ कस्तांत्वनादृत्यपरानुचिन्तामृते पशू नसतींनामयुञ्ज्यात् । पश्यंजनंपतितंवैतरण्यां स्वकर्मजान्परितापांजुषाणम् ॥७॥ केचित्स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रंपुरुषवसन्तम् । चतुर्भुजंकंजरथांगशं खगदाधरं धारणयास्मरन्ति ॥८॥ प्रसन्नवक्त्रंनलिनायतेक्षणं कदम्बकिंजल्कपिशं गवाससम् । लसन्महारत्नहिरण्मयांगदं स्फुरन्महारत्नकिरीटकुण्डलम्॥९॥उन्निद्र हृत्पंकजकर्णिकालयं योगेश्वरास्थापितपादपल्लवम् । श्रीलक्ष्मणंकौस्तुभरत्नकन्ध रमम्लानलक्ष्म्यावनमालयाऽऽचितम् ॥ १० ॥ विभूषितंमेखलयांगुलीयकैर्महाधनै र्नूपुरकंकणादिभिः । स्निग्धामलाकुंचितनीलकुन्तलैर्विरोचमाननहासपेशलम् ॥ ११ ॥ अदीनलीलाहसितेक्षणोल्लसद्भ्रूभंगसंसूचितभूर्यनुग्रहम् । ईक्षेतचिन्ता मयमेनमीश्वरं यावन्मनोधारणयाऽवतिष्ठते ॥ १२ ॥ एकैकशोऽङ्गानिधियाऽनुभा वयेत्पादादियावद्धसितंगदाभृतः जितंजितंस्थानमपोह्य धारयेत्परंपरंशुध्यतिधी र्यथायथा ॥ १३ ॥ यावन्नजायतपरावरेऽस्मिन्विश्वेश्वरेद्रष्टरिभक्तियोगः । ताव त्स्थवीयःपुरुषस्यरूपं क्रियावसानेप्रयतःस्मरेत ॥ १४ ॥ स्थिरंसुखंचासनमाश्रि

वल्कल रूप वस्त्र वर्तमान है तो वृथा श्रम क्यों करे ॥ ४ ॥ हे राजा क्या मार्गमें चीर नहीपडे ! क्या दूसरों का पोषण करने वाले वृक्ष भिक्षा नहीं देते ! क्या नदियां सूख गई [या गुफाए ढकगई ! क्या परमात्मा शरणागतोंकी रक्षा नहीं करते ! फिर धनके मदमें अंधे रजोगुणीकासेवा क्यों करे ! और वैराग्यको क्या न लेवे ॥५॥ ऐसे समझकर मनुष्य को अपने हृदयमें स्वयं सिद्ध सत्य स्वरूप आत्मा अनन्त भगवान् का उस के अनुभव से आनंदित होकर भजन करना चाहिये जिससे आवागवन से छूटे ॥ ६ ॥ संसारके जन्म, मरण रूप वैतरणामें पड़े हुए अपने कर्म के हेतु त्रिविध ताप का सेवन करने वाले मनुष्य को देखता हुआ कौन पुरुष कर्म जड़ मनुष्य बिना इस भागवत भक्ति को तर्क करके अन्य विषयों का ध्यान करे ॥ ७ ॥ कितने एक पुरुष अपनी देह के भीतर प्रादेश प्रमाण में विराजमान चतुर्भुज तथा शंख, चक्र, गदा, पद्म, धारण करने वाले भगवान् का भक्ति से स्मरण करते हैं ॥ ८ ॥ कैसे हैं भगवान कि जिनका मुख प्रसन्न है, कमल के समान जिनके नेत्र हैं कदंब के केशर सदृश पीताम्बर को ओढ़े, प्रकाशित अमूल्य रत्नों से जड़े हुए भुजबन्ध पहिने, जगमगाते हुए महारत्नों के किरीट और कुंडल जिन के शोभायमान होरहे हैं ॥ ९ ॥ हृदय कमल का प्रकाशित कर्णिका रूप स्थल में योगेश्वर जिनके चरण कमल का स्मरण करते हैं जिनके लक्ष्मी का चिन्ह है जिनकी ग्रीवामे कौस्तुभमणि शोभायमान है, न कुम्हलाने वाली सुंदर वन माला पहिने ॥ १० ॥ अमूल्य मेखला, क्षुद्र घंटिका, अंगूठी नूपुर, कंकण, इत्यादिक आभूषणों से विभूषित, चिकने, निर्मल, और घूघर वाले नीले बालों से शोभित मुख व मन्द मुसकान ॥ ११ ॥ उदार लीला पूर्वक चितवनसे भ्रूभंग शोभायमान । भक्तों पर अत्यंत कृपा करनेहारे, चिंताहीन से भक्तोंके हृदयमे प्रगट होतेहैं इन भगवान का ध्यान जब तक मन स्थिर रहे करना चाहिये ॥ १२ ॥ गदाधर भगवान हाथ से पावतक जुदे २ अंगों बुद्धि द्वारा ध्यान करना चाहिये, जैसे २ बुद्धि शुद्ध होती जाय वैसे वैसे उन अंगों का ध्यान छोड़कर दूसरे अंगोंका ध्यान करना चाहिये॥ १३ ॥ हे राजन ! जबतक सगुण रूप भगवान में भक्ति न होवे तबतक नित्य कर्मादिक के अंतमें सावधान होकर भगवानके स्थूल स्वरूप का स्मरण करे

तो यतिर्यदा जिहासुरिमं गलोकम् कालेचदेशेचमनोनसज्जयेत्प्राणं नियच्छेन्मनः सोजितासुः ॥ १५ ॥ मनःस्वबुद्ध्याऽमलयानियम्य क्षेत्रज्ञएतांनिनयेत्समात्मनि । आत्मानमात्मन्यवरुध्यधीरो लब्धोपशांतिर्विरमेतकृत्यात् ॥ १६ ॥ नयत्रकालोऽनिमिषांपरः प्रभुःकुतोनु देवाजगतांयईशिरे । नयत्रसत्वनरजस्तमश्च नवैविकारोन महान्प्रधानम् ॥ १७ ॥ परंपदंवैष्णवमामनन्ति तद्यन्नेतिनेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः । विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्यार्हपदंपदेपदे ॥ १८ ॥ इत्थंमुनिस्तूपरमेद्व्यवस्थितो विज्ञानदृग्वीर्यसुरन्धिताशयः । स्वपार्ष्णिनापीड्यगुदं ततोऽनिलंस्थानेषुषट्सून्नमयज्जितक्लमः ॥ १९ ॥ नाभ्यांस्थितंहृद्यधिरोप्य तस्मादुदानगत्योरसि तंनयेन्मुनिः । ततोऽनुसंधाय धियामनस्वी स्वतालुमूलंशनकैर्नयेत ॥ २० ॥ तस्माद्भ्रुवोरन्तरमुन्नयेत निरुद्धसप्तायतनोऽनपेक्षः । स्थित्वामुहूर्तार्धमकुण्ठदृष्टिर्निर्भिद्य मूर्धन्विसृजेत्परंगतः ॥ २१ ॥ यदिप्रयास्यन्नृप पारमेष्ठ्यं वैहायसानामुतयद्विहारम् । अष्टाधिपत्यंगुणसन्निवाय सहैवगच्छेन्मनसेन्द्रियैश्च ॥ २२ ॥ योगेश्वराणां गतिमाहुरन्तर्बहिस्त्रिलोक्याः पवनान्तरात्मनाम् । नकर्मभिस्तांगतिमाप्नुवन्ति विद्यातपोयोगसमाधिभाजाम् ॥ २३ ॥ वैश्वानरंयातिविहायसा गतः सुषुम्नयाब्रह्मपथेनशोचिषा । विधूतकल्कोऽथहरेरुदस्तात्प्रयाति चक्रंनृपशैशुमारम् ॥ २४ ॥

१४॥ जब यह संन्यासी वैराग्य युक्त इस देहको छोड़ना चाहै तब स्थिर होकर सुख पूर्वक आसन पर बैठ देशकाल में मन न लगावे और प्राणायाम करिके मन सहित प्राणों को जीते ॥ १५ ॥ अपनी शुद्ध बुद्धिसे विनको रोककर उस बुद्धिको बुद्ध्यादिकके द्रष्टा क्षेत्रज्ञमें लीनकरे और क्षेत्रज्ञको आत्मा व आत्माको परब्रह्म में लीन करके धैर्यवान पुरुषको चाहिये कि शान्ति चित्त होकर सम्पूर्णकर्मो से विरक्त होजावे ॥ १६ ॥ जिस ब्रह्म स्वरूपमें देवताओं के स्वामी कालकीभी कुछ सामर्थ्य नहीं है तो फिर संसारके गुरु देवताओं का क्या सामर्थ्य है । जिस स्वरूपमें न तो रज, सत्व, तम समर्थ होतेहैं न अहंकार महतत्त्व, और प्रधान समर्थ होते है ॥ १७ ॥ जो कोई आत्मके व्यतिरिक्त पदार्थों को नेति २ कहके छोड़ना चाहते हैं वह देहादिकों में आत्मतत्त्व छोड़कर श्री विष्णु केही परम पद को श्रेष्ठ मानते हैं ॥ १८ ॥ ऐसे ब्रह्मतत्त्वमें स्थित विज्ञान बलसे जिसकी विषय वासना नाश होगई हो उस ब्रह्मनिष्ठ मुनिको उपराम पाना चाहिये-उसे जैसे देह त्यागकरना चाहिये वह कहते हैं— अपनी एंडीसे गुदाको दाब प्राणवायुको ऊपरले कहे ठिकानों मे चढ़ावे ॥ १९ ॥ नाभिमें स्थित पवन को हृदय अर्थात् अनाहत चक्रमें लेजावे फिर वहांसे उदान वायुके द्वारा कण्ठसे नीचेके भाग विशुद्धि चक्रमें लेजावे फिर वहांसे सावधानी से बुद्धि द्वारा धीरे २ श्वासको तालु मूलमें चढ़ावे ॥ २० ॥ फिर वहांसे उस वायुको दोनो भौंहों के मध्य आज्ञाचक्र में लेजावे इसकाल में दो कानो के छिद्र दो नाकके छिद्र दो नेत्र तथा एकमुख इन सातों द्वारोंको बन्दरक्खे किसी बातकी अपेक्षा न करनेवाले योगी, आधे मुहूर्त्त आज्ञा चक्रमे ठहर, ब्रह्मरूपको प्राप्तहो ब्रह्मरंध्रको भेदकर, देह और इन्द्रियों का त्यागकरे ॥ २१ ॥ महाराज ! सर्व सम्पन्न गुण इस ब्रह्माण्ड में या योगियों के ब्रह्मलोक में या अष्ट सिद्धिवाले सिद्धलोकोंमें जानकी कांक्षाहोवे तो चित्त और इन्द्रियों को अपने संग लेजावे ॥ २२ ॥ पवनके अन्तरात्मा जिनका रूपहै ऐसे योगेश्वरोंकी गति त्रिलोकी के भीतर और बाहर दोनों स्थानों में है यह संसारी मनुष्य विद्या, तप, अष्टांग योग, चित्तकी एकाग्रता, समाधि के सेवनकरनेवाले मनुष्योंकी गतिको कर्मोसे नहीं प्राप्त करसक्ते ॥ २३ ॥ आकाशमें ब्रह्मलोकके मार्गसे तेजोमय सुषुम्ना नाड़ीद्वारा गति प्राप्तहुए जीव प्रथम अग्नि अभिमानी देवता

तद्विश्वनाभिंत्वतिवर्त्य विष्णोरणीयसा विरजेनात्मनैकः। नमस्कृतंब्रह्मविदामुपैति कल्पायुषोयद्विबुधारमन्ते ॥ २५॥ अथोअनन्तस्यमुखानलेनदन्दह्यमानंसनिरीक्ष्य विश्वम्। निर्यातिसिद्धेश्वरजुष्टधिष्ण्यंयद्द्वैपरार्ध्यंततुपारमेष्ठ्यम् ॥ २६ ॥ नयत्र शोकोनजरानमृत्युर्नार्तिर्नचोद्वेगऋतेकुतश्चित्।यच्चित्ततोदःकृपयाऽनिदंविदांदुरन्त दुःखप्रभवानुदर्शनात् ॥ २७ ॥ ततोविशेषंप्रतिपद्यनिर्भयस्तेनात्मनाऽपोनलमूर्ति रत्वरन्। ज्योतिर्मयोवायुमुपेत्यकालेवाय्वात्मनाखंबृहदात्मलिङ्गम् ॥ २८॥ घ्राणेन-गन्धंरसनेनवैरसंरूपंतुदृष्ट्याश्वसनंत्वचैव। श्रोत्रेणचोपेत्यनभोगुणत्वंप्राणेनचाकूतिमुपैतियोगी ॥२९॥ सभूतसूक्ष्मेन्द्रियसन्निकर्षंमनोमयंदेवमयंविकार्यम्। संसाद्य गत्यासहतेनयातिविज्ञानतत्वंगुणसंनिरोधम्॥ ३० ॥ तेनाऽऽत्मनात्मानमुपैतिशान्त मानन्दमानन्दमयोऽवसाने।एतांगतिंभागवतींगतोयःसवैपुनर्नेहविषज्जतेऽङ्ग॥३१॥ एतेसृतीतेनृपवेदगीतेत्वयाऽभिपृष्टेहसनातनेच । यतंपुराब्रह्मणआहपृष्टआराधितो भगवान्वासुदेवः ॥ ३२ ॥ नह्यतोऽन्यःशिवःपन्थाविशतःसंसृताविह । वासुदेवे भगवतिभक्तियोगोयतोभवेत् ॥ ३३ ॥ भगवान्ब्रह्मकार्त्स्न्येनत्रिरन्वीक्ष्यमनीषया । तदध्यवस्यत्कूटस्थोरतिरात्मन्यतोभवेत् ॥३४॥ भगवान्सर्वभूतेषुलक्ष्यतस्वात्मना

को प्राप्त होते हैं हे राजा! फिर वह ऊपरको वर्त्तमान हरिके शिशुमार चक्रको प्राप्त होते हैं ॥२४॥ सूर्य्यादिको का आश्रय वह विष्णु के शिशुमार चक्रको उलंघकर ब्रह्मवेत्तासे पूजित सूक्ष्म निर्मल स्वरूप महर्लोकमें जाता है जहां कल्प २ भर आयुवाले भृगुआदिक देवता रमण करतेहैं ॥ २५ ॥ फिर वह इस सन्सारको शेषजीके मुखकी अग्निसे जलतेहुये देखकर जहां सिद्धेश्वर बिमानों में बैठे फिररहेहैं ऐसे दो परार्द्ध पर्यन्त रहनेवाले श्रेष्ठ ब्रह्मलोकमें चलाजाता है ॥ २६ ॥ जहां शोक, जरा, पीड़ा, मृत्यु, उद्वेग कुछभी नहीं है हां उसको अज्ञानी लोगोंके जन्म मरणादिकके दुःखके अति रिक्त और कोई दुःख नहीं है ॥ २७॥ फिर ब्रह्मलोकमें वह प्राणी पृथ्वी आदि आवरणोंके भेदकी शंकाकोछोड़ प्रथम लिंग देहसे पृथ्वीरूप होजाताहै फिर पृथ्वीरूपसे जलरूप फिर जलरूपमे यथेष्ट भोग भोगकर क्रमशः अग्निरूप होजाता है फिर तेज, वायु आदि रूपके उपरांत व्यापकता धर्म से आकाशके रूपको प्राप्त होजाताहै॥२८॥ फिर वह प्राणी नासिकाद्वारागंध, जिह्वाद्वारा रस, दृष्टिद्वारा रूप, त्वचा द्वारा स्पर्श को प्राप्त होता है कर्णों द्वारा शब्द और २ कर्मेन्द्रियों द्वारा उनकी क्रियाओं को प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ फिर वह प्राणी शब्दादिक तन्मात्राओं के लीन स्थान तामस अहंकार को तथा दशों इन्द्रियों के लीन स्थान राजस अहंकार को और मन व इन्द्रियादिकों के लय स्थान सात्विक अहंकार को प्राप्त होकर उपरांत में इन तीनों प्रकारों के अहंकारों के संग वह प्राणी महत्तत्व को प्राप्त होता है इन सबके उपरांत सर्व कार्यों के लयहोने के प्रधान को प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ इसके उपरांत वह प्राणी प्रधान रूप आनंद रूपहो अंतमें निर्विकार परमात्मा को प्राप्त होता है हे महाराज! जो मनुष्य इस परमेश्वर की भक्ति को प्राप्त होता है वह जगत में कभी लीन नहीं होता ॥ ३१ ॥ हे राजन्! आपने जो वेदोक्त धर्म मार्ग पूछे वेदोनो मार्ग मैंने आप से कहे प्रथम ब्रह्माजी ने श्री भगवान से पूछे थे तब भगवान ने ब्रह्माजी से यह मार्ग कहे थे ॥ ३२॥ सृष्टि के प्राणियों की मुक्ति के हेतु इन दो मार्गोंस उत्तम और कोईभी सुख देनेवाला मार्ग नहीं है कारण कि इनमार्गों में चलने से श्री भगवान में भक्ति योग प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ भगवान ब्रह्माजी ने एकाग्र चित्तसे तीनवार समस्त वेदको विचार करके निश्चय किया कि जिससे परमेश्वरकी भक्ति होवे वही श्रेष्ठ मार्ग है ॥ ३४ ॥ भगवान सब प्राणियों में अपने आत्मा अंतर्यामी रूप से देखने

हरिः ।दृश्यैर्बुध्यादिभिर्द्रष्टालक्षणैरनुमापकैः ॥ ३५ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्रसर्वदा । श्रोतव्यःकीर्तितव्यश्चस्मर्तव्योभगवान्नृणाम् ॥ ३६॥ पिबंतियेभगवतआत्मनःसतांकथामृतंश्रवणपुटेषुसंभृतम् ।पुनन्तितेविषयाविदूषिताशयंव्रजन्तितच्चरणसरोरुहान्तिकम् ॥ ३७॥ इतिश्रीमद्भा०म०द्वितीयस्कन्धेपुरुषसंस्थानुवर्णनंनामाद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ श्रीशुकउवाच ॥ एवमेतन्निगदितंपृष्टवान्यद्भवान्मम। नृणांयन्म्रियमाणानां मनुष्येषुमनीषिणाम् ॥ १ ॥ ब्रह्मवर्चसकामस्तुयजेतब्रह्मणस्पतिम् । इन्द्रमिन्द्रियकामस्तुप्रजाकाम प्रजापतीन् ॥ २ ॥ देवींमायांतुश्रीकामस्तेजस्कामोविभावसुम्। वसुकामोवसून्रुद्रान्वीर्यकामोऽथवीर्यवान् ॥ ३ ॥ अन्नाद्यकामस्त्वदितिंस्वर्गकामोऽदितेःसुतान् । विश्वान्देवान्राज्यकामःसाध्यान्संसाधकोविशाम ॥ ४॥ आयुःकामोऽश्विनौदेवौपुष्टिकामइलांयजेत् ।प्रतिष्ठाकामःपुरुषोरोदसीलोकमातरौ ॥५॥ रूपाभिकामोगन्धर्वान्स्त्रीकामोऽप्सरउर्वशीम् । आधिपत्यकामःसर्वेषांयजेतपरमेष्ठिनम् ॥ ६ ॥ यज्ञंयजेद्यशःकामःकोशकामःप्रचेतसम्। विद्याकामस्तुगिरिशंदाम्पत्यार्थउमांसतीम् ॥ ७ ॥ धर्मार्थउत्तमश्लोकंतन्तुंतन्वान्पितृन्यजेत् । रक्षाकामःपुण्यजनानोजस्कामोमरुद्गणान् ॥ ८ ॥ राज्यकामोमनून्देवान्निर्ऋतिंत्वभिचरन्यजेत् । कामकामोयजेत्सोममकामःपुरुषंपरम् ॥ ९ ॥ अकामःसर्वकामोवा मोक्षकाम

में आते हैं वह अनुस्मरण करने वाली बुद्धि के लक्षणोंसे देखने योग्य हैं ॥ ३५ ॥ हे महाराज! इस ही हेतुसे सम्पूर्ण प्रकार के मनुष्यों को परमेश्वर का ही यश, गान, स्मरणकरना चाहिये ॥ ३६ ॥ अच्छे मनुष्यों की आत्मा के हेतु यह श्री भगवान की कथा अमृत रूप है सो जो मनुष्य कान रूप दोने में इसे भरकर पीते हैं अर्थात् श्रवण करते हैं वह विषयो से बिगड़े हुये अंतः करण को पवित्र करते हैं, ओर उन परमेश्वर के कमल स्वरूपी चरणों के निकट वास करते हैं ॥ ३७ ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेद्वितीयस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

श्री शुकदेवजी बोले—कि हे राजा परीक्षित ! जो २ आपने पूछा वह २ मैंने कहा जिन मनुष्यों की मृत्यु निकट आगई है और बुद्धिमान हैं उनके लिये यही आनंद दायक है ॥ १ ॥ ब्रह्म तेज की कामना करने वाला ब्रह्मा का, इन्द्रियों की चतुराई की कामना होतो इन्द्र की, संतान की कामना हो तो प्रजापति की उपासना करे ॥ २ ॥ लक्ष्मी की कामना हो तो दुर्गा का, तेज की कामना हो तो अग्निका, धनकी कामना हो तो वसु का, वीर्य की कामना हो तो रुद्र गणो का पूजन करे ॥ ३ ॥ भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोस्य, इन चार प्रकार की कामना हो तो अदिति (सूर्य) का और स्वर्ग की कामना हो तो देवताओं का, राज्य वृद्धि की कामना हो तो विश्वेदेवो का, देश की प्रजा को अपने आधीन करना चाहे तो साध्य गणो का पूजन करे ॥ ४ ॥ बड़ी आयु चाहे तो अश्विनी कुमारों का, मोटा होना चाहे तो पृथ्वी का, प्रतिष्ठा चाहे तो लोक की माता भूमिका पूजन करे ॥ ५ ॥ सुंदर रूप की कामना हो तो गन्धर्वोंको, सुंदर स्त्री की कामना हो तो अप्सराओं को भजे और जो सबका आधिपत्य चाहे तो ब्रह्माका पूजन करे ॥ ६ ॥ यशकी कामना हो तो नारायण भगवान का भजन करे, कोष की चाहना होवेतो कुबेर को, विद्या की कामना होतो शिवको, स्त्री पुरुषों में परस्पर प्रीति चाहे तो पार्वती को, स्मरण करे ॥ ७ ॥ धर्म की वृद्धि चाहेतो उत्तम श्लोक भगवानकी, संतान चाहेतो पित्रोंकी, अपनी रक्षा चाहेतो यक्षोंकी, बल चाहेतो मरुद्गणों की पूजा करे ॥ ८ ॥ राज्य की कामना होतो मनुदेवता की, शत्रुवध की कामना होतो निर्ऋति की, बहुत भोग की इच्छाहोतो चन्द्रमाकी और जो वैराग्य,

उदारधीः । तीव्रेणभक्तियोगेनयजेतपुरुषंपरम् ॥ १० ॥ एतावानेवयजतामिहनिः
श्रेयसोदयः । भगवत्यचलोभावोयद्भागवतसंगतः ॥ ११॥ ज्ञानंयदाप्रतिनिवृत्तगुणो
र्मिचक्रमात्मप्रसादउतयत्रगुणेष्वसङ्गः । कैवल्यसंमतपथस्त्वथभक्तियोगःकोनिर्वृ-
तोहरिकथासुरतिंनकुर्यात् ॥ १२ ॥ शौनकउवाच ॥ इत्यभिव्याहृतंराजानिशम्य
भरतर्षभः । किमन्यत्पृष्टवान्भूयोवैयासकिमृषिंकविम् ॥ १३ ॥ एतच्छुश्रूषतांविद्व
न्सूतनोऽर्हसिभाषितुम् । कथाहरिकथोदर्काःसतांस्युःसदसिध्रुवम् ॥ १४ ॥ सवै-
भागवतोराजापाण्डवेयोमहारथः । बालक्रीडनकैःक्रीडन्कृष्णक्रीडांयआददे ॥१५॥
वैयासकिश्चभगवान्वासुदेवपरायणः । उरुगायगुणोदाराः सतांस्युर्हिसमागमे ॥
॥ १६ ॥ आयुर्हरतिवैपुंसामुद्यन्नस्तंचयन्नसौ । तस्यर्तेयत्क्षणोनीत उत्तमश्लोकवा
र्तया ॥ १७ ॥ तरवःकिंनजीवन्ति भस्त्राःकिंनश्वसन्त्युत । नखादन्तिनमेहन्ति किं
ग्रामपशवोऽपरे ॥ १८ ॥ श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतःपुरुषःपशुः । नयत्कर्णपथो
पेतो जातुनामगदाग्रजः ॥ १९ ॥ बिलेबतोरुक्रमविक्रमान्ये नशृण्वतःकर्णपुटेनर-
स्य । जिह्वासतीदार्दुरिकेवसूत नचोपगायत्युरुगायगाथाः ॥ २० ॥ भारःपरंप-
ट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमाङ्गं ननमेन्मुकुन्दम् । शावौकरौनोकुरुतःसपर्यां हरेर्लसत्कांच
नकङ्कणौवा ॥ २१ ॥ बर्हायितेतेनयनेनराणां लिङ्गानिविष्णोर्ननिरीक्षतोये । पादौनृ-
णांतौद्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणिनानुव्रजतोहरेर्यौ ॥ २२ ॥ जीवञ्छवोभागवतांघ्रिरेणुन-

की कामना होतो श्री भगवान की उपासना करे ॥ ९ ॥ यदि मोक्ष की कामना होतो तीव्र भक्ति
योग से परमात्मा का पूजन करे, देवता तो एकही कामना के देनेवाले हैं परन्तु श्रीकृष्ण भगवान
भक्तों का सम्पूर्ण कामनायें पूर्णकरते है ॥ १० ॥ पूजन करने वाले मनुष्यों को केवल इतना ही
लाभ है कि भगवद्भक्तों के साथ श्री परमेश्वर में अचल भावहोवे ॥ ११ ॥ जिन कथाओं
के सुनने मे रागद्वेषादि रहित ज्ञान हो लोक परलोक के विषय मे वैराग्य हो और मोक्षके हेतु
सब मनुष्यों के समान मार्ग प्राप्त हो । उन भगवान की कथाओं में कौन मनुष्य स्नेह न करै ॥ १२ ॥
शौनक ने कहा कि राजा परीक्षित ने यह कथा सुनकर फिर शुकदेव जी से और क्या प्रश्न किया
॥ १३ ॥ हे विद्वन् ! यह हम सुना चाहते है हमारे सन्मुख आप कहने के योग्य हो हे श्री सूतजी
सत्पुरुषों की सभामें हरिकथा अवश्य ही होती है ॥ १४ ॥ वह राजा परीक्षित पांडवों का नाती
भगवानका परम भक्त था क्योंकि बाल्यावस्थामें खिलौनोंमे खेलता था भी श्रीकृष्ण भगवान की
पूजा करना इत्यादि खेल खेलता था ॥ १५ ॥ व्यासजी के पुत्र श्री शुकदेव जीभी भगवत परायण
थे यह निश्चय ही है कि सत्पुरुषों के समागम मे भगवान के उदार गुणों की कथा हुआ करती है
॥ १६ ॥ श्री परमेश्वर की लीला मे जिनका समय व्यतीत होता है उनकी आयु सफल है और
जिनका समय हरिकथा बिन व्यतीत होता है उन मनुष्यों की आयु सूर्य उदय और अस्त होकर
वृथाही हरलेता है ॥ १७ ॥ क्या पेड़ नहीं जीते, धौंकनी श्वास नहीं लेती इनके अतिरिक्त क्या
गांवके पशु आहार विहार नहीं करते ॥ १८ ॥ जिनके कर्ण मार्गमे गदाग्रज भगवान के गुणानु-
वाद नहीं गाये वे मनुष्य कुत्ता, सुअर, ऊंट, गधाके तुल्य हैं ॥ १९ ॥ जिनकर्ण पुटोंने हरिके
गुणानुवाद नहीं सुने वह सांप की बांबीके समान हैं और जिन्होने श्री भगवानके चरित्र नहीं गाये
उनकी जिह्वा मेंडकके समान है ॥ २० ॥ सुंदर जरकसी, चीरा काट, मुकुट से शोभित जो शिर
श्री हरि भगवान कोनत मै वह केवल बोझही है और हाथों मे सुंदर सोने के कड़ा हैं परन्तु वह
हाथ हरिकी सेवा न करे तो मृतक की समान हाथ हैं ॥ २१ ॥ जिन नेत्रोंने विष्णु भगवान की

जातुमर्त्योऽभिलभेतयस्तु ॥ श्रीविष्णुपद्यामनुजस्तुलस्याः श्वसञ्छवोयस्तुनवेद गन्धम् ॥ २३ ॥ तदश्मसारंहृदयंबतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः। नविक्रियेताऽथ यदाविकारोनेत्रेजलं गात्ररुहेषुहर्षः ॥ २४ ॥ अथाभिधेह्यङ्गमनोनुकूलं प्रभाषसेभागवतप्रधानः। यदाहवैयासकिरात्मविद्याविशारदो नृपतिंसाधुपृष्टः ॥ २५ ॥

इति श्री मद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ सूतउवाच। वैयासकेरिति वचस्तत्त्वनिश्चयमात्मनः। उपधार्यमतिं कृष्णे औत्तरेयःसतींव्यधात् ॥ १ ॥ आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु। राज्येचाविकलेनित्यं निरूढांममतांजहौ ॥ २ ॥ पप्रच्छचेममेवार्थं यन्मांपृच्छथसत्तमाः। कृष्णानुभावश्रवणे श्रद्दधानोमहामनाः ॥ ३ ॥ संस्थांविज्ञायसंन्यस्य कर्मत्रैवर्गिकंचयत्। वासुदेवेभगवति आत्मभावंदृढंगतः ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ समीचीनंवचो ब्रह्मन्सर्वज्ञस्यतवाऽनघ। तमोविशीर्यतेमह्यं हरेःकथयतःकथाम् ॥ ५॥ भूयएववििवत्सामि भगवानात्ममायया। यथेदंसृजतेविश्वं दुर्विभाव्यमनीश्वरैः ॥ ६ ॥ यथागोपायति विश्वं यथासंयच्छतेपुनः। यांयांशक्तिमुपाश्रित्य पुरुशक्तिःपरःपुमान्। (आत्मानं क्रीडयन्क्रीडन्करोतिविकरोतिच) ॥ ७ ॥ नूनंभगवतो ब्रह्मन्हरेरद्भुतकर्मणः। दुर्विभाव्यमिवाभाति कविभिश्चापिचेष्टितम् ॥ ८॥ यथागुणांस्तु प्रकृतेर्युगपत्क्रमशोऽपिवा ॥ बिभर्ति भूरिशस्त्वेकः कुर्वन्कर्माणिजन्मभिः ॥ ९ ॥ विचिकित्सितमे-

---

मूर्ति नहीं देखी वह नेत्र नहीं है मोर पंखके चंदोवा हैं और जो हरिक्षेत्र में जिनमें भगवान के मंदिर हैं वहां न गये तो वह पांव नहीं हैं केवल दारुवृक्षों ने जन्म लिया है ॥ २२ ॥ जिस मनुष्यने भगवत भक्तोंकी चरणरजका स्पर्श नहीं किया वह जीवित होनेपरभी मुर्देकी समान है श्री भगवान के चरणों में अर्पण की हुई तुलसीकी गन्ध जिसने नहीं ली वह जीवित ही मृतकके समानसे ॥ २३ ॥ वह हृदय पत्थरसे भी कठोर है कि जोनाम सुनकर विकार को न प्राप्त हो जब विकार प्राप्त होजाता है तब नेत्रों में जल आजाता है और रोमांच होआते हैं ॥ २४ ॥ हे सूतजी! भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ आप हमारे चित्तके ही अनुकूल कहतेहो इसमें आत्म विद्यामें निपुण शुकदेव जीने राजा परीक्षित के प्रश्न का जो उत्तर दियाहै वह आप हमसे कहो ॥ २५ ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणे० द्वितीयस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

सूतजी ने कहा! कि हे मुनियो उस राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी के आत्मतत्त्व का निश्चय करनेवाले बचन सुनकर श्रीकृष्ण भगवान में दृढ़ बुद्धि लगाई ॥ १ ॥ और आत्मा, देह स्त्री, पुत्र, घर, पशु, बन्धु, द्रव्य भाई इत्यादिकोंकी ममता को त्यागन किया ॥ २ ॥ हे शौनक श्रीकृष्ण भगवान का प्रभाव सुननेमें श्रद्धावान, उदार चित्त राजा परीक्षितने भी श्रीशुकदेवजीसे यही पूछाथा कि जो आप हमसे पूछतेहैं॥३॥अपनीमृत्यु जानकर—धर्म अर्थ काम इत्यादिक विषयों को त्याग वासुदेव भगवानमें दृढ़ आत्म भावको प्राप्तहो यह पूंछा॥४॥हे ब्रह्मन्! आप सर्वज्ञहो और आपके बचन भले है इससे आप हरिकी जो लीला कहतेहो उसमें मेरेहृदयका अन्धकार दूर होता जाताहै ॥ ५ मैं यह जानना चाहताहूं कि भगवान ब्रह्मादिकोंके भी तर्कना करनेमें न आवे ऐसे इस सृष्टिको अपनी मायासे किसभांति सृजतेहै ॥ ६ ॥ अनन्त शक्तिवाले भगवान जिस २ शक्ति को अंगीकार करके विश्वका पालन तथा संहार करते हैं वह सब मुझसे कहो ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन्! अद्भुत आश्चर्य रूप श्री भगवान के कर्मज्ञानी लोगों को भी अतर्कसेही भासते हैं ॥ ८ ॥ तथा वह परमेश्वर अकेलेही जन्म लेकर अनेक कर्म करतेहुये बहुत से मायाके गुणोंको क्रमानुसार अथवा एक साथही धारण करते है ॥ ९ ॥ यह जो मेरा सन्देहहै उसे आप भलीभांतिकहो

तन्मे प्रब्रूहि भगवान्यथा । शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परस्मिन्भगवान्खलु ॥ १० ॥ सूतउवाच । इत्युपामंत्रितो राज्ञा गुणानुकथने हरेः । हृषीकेशमनुस्मृत्य प्रतिवक्तुं प्रचक्रमे ॥ ११ ॥ श्रीशुकउवाच । नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया । गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ॥ १२ ॥ भूयो नमः सद्वृजिनच्छिदेऽसतामसंभवायाऽखिलसत्त्वमूर्तये ॥ पुंसां पुनः पारमहंस्य आश्रमे व्यवस्थितानामनुमृग्यदाशुषे ॥ १३ ॥ नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम् । निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥ १४ ॥ यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् । लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १५ ॥ विचक्षणा यच्चरणोपसादनात्संगं व्युदस्योभयतोऽन्तरात्मनः । विन्दन्ति हि ब्रह्मगतिं गतक्लमास्तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १६ ॥ तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमंगलाः ॥ क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १७ ॥ किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकंका यवनाः खसादयः । येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥ १८ ॥ स एष आत्मात्मवतामधीश्वरस्त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः । गतव्यलीकैरजशंकरादिभिर्वितर्क्यलिंगो भगवान्प्रसीदताम् ॥ १९ ॥ श्रियः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिर्धियां पतिर्लोकपतिर्धरापतिः । पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्वतां प्रसीदतां मे भगवान्सतांपतिः ॥ २० ॥ यदंघ्र्यनुध्यानसमाधिधौतयाऽधि

आप शब्द ब्रह्म तथा परब्रह्म मेंभी निपुण हो ॥ १० ॥ सूतजी बोले कि जब राजा परीक्षित नें इस भांति श्रीशुकदेवजी से हरिके गुणानुवाद कहनके लिये प्रार्थना की तो श्रीशुकदेवजी श्री भगवान् का ध्यान करके कहने लगे, ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—सृष्टि की उत्पत्ति, पालन, संहार की लीला के हेतु रजो गुण आदि तीनो शक्तियें धारण कर, अलक्ष्यमार्ग मे बिराजमान, अंतर्यामी अपरिमित महिमा वाले श्रीकृष्ण भगवान को प्रणाम करता हूं ॥ १२ ॥ भक्तों के दुःख नाश करनें वाले परमहंस आश्रम में रहने वाले, मनुष्यों को आत्मतत्त्व के देने वाले श्रीभगवान को बारम्बार प्रणाम करता हूं ॥ १३ ॥ भक्तों के पालक, अभक्तों से दूर, जिनके ऐश्वर्य्य की समान किसी का ऐश्वर्य्य नहीं जो अपनेही ऐश्वर्य से अपनेही ब्रह्म रूप में रमण करते हैं उन आपको मैं बारबार प्रणाम करता हूं ॥ १४ ॥ जिन भगवान के श्रवण, कीर्तन, स्मरण दर्शन, प्रणाम और पूजन से सांसारिक पाप और विषय तत्काल नष्ट होजाते हैं ऐसे उज्ज्वल यशवाले भगवान को बारंबार प्रणाम करता हूं ॥ १५ ॥ विवेकी मनुष्य जिनके चरणों का भजन करके इस लोक और परलोक की आशक्ति छोड़ दुःख रहित हो ब्रह्म गति को प्राप्त होते हैं एसे उज्वल यशवाले भगवान को प्रणाम है ॥ १६ ॥ बड़े २ तपस्वी, दाता, यशस्वी, मंत्रवेत्ता योगी तथा मंगल कार्य के करनेवाले मनुष्य जिनके अर्पण किये विना कल्याण को प्राप्त नहीं होते उन उज्वल यशवाले हरि भगवान को बारंबार प्रणाम करता हूं ॥ १७ ॥ किरात, भील, हूण, अंध्र, पुलिंद, पुल्कस, आभीर, अहीर, कंक यवन, तथा खसिया और इन म्लेक्षों के अतिरिक्त और भी जो पाप रूप हैं वेसब जिनके भक्तों का आश्रय लेकर पवित्र होजाते हैं उन श्रीभगवान को बारम्बार प्रणाम है ॥ १८ ॥ ऐश्वर्यवान मनुष्यों के आत्मभाव करके उपासनीय, वेदत्रयीमय, धर्ममय, तपोमय, सबके स्वामी हरि, जिनके रूप का ब्रह्मा तथा शिवादिक देवता निष्कपट होकर तर्क करते हैं वह भगवान हमपर कृपा करें ॥ १९ ॥ जो भगवान लक्ष्मी पति, यज्ञ पति, प्रजा पति, बुद्धि पति, लोक पति, भूमि पति, अंधक

या नुपश्यन्तिहितत्त्वमात्मनः । वदंतिचैतत्कवयोयथारुचं समेमुकुन्दोभगवान्प्रसीदताम् ॥ २१ ॥ प्रचोदितायेनपुरासरस्वती वितन्वताऽजस्यसतींस्मृतींहृदि । स्वलक्षणाप्रादुरभूत्किलाऽऽस्यतः समेऋषीणामृषभःप्रसीदताम् ॥ २२॥ भूतैर्महद्भिर्यइमाःपुरोविभुर्निर्माय शेतेयदमूषुपूरुषः । भुंक्तेगुणान्षोडश षोडशात्मकः सोऽलंकृषीष्टभगवान्वचांसिमे ॥ २३ ॥ नमस्तस्मैभगवते व्यासायामिततेजसे । पपुर्ज्ञानमयंसौम्या यन्मुखाम्बुरुहासवम् ॥ २४ ॥ एतदेवात्मभू राजन्नारदाय विपृच्छते । वेदगर्भोऽभ्यधात्साक्षाद्यदाहहरिरात्मनः ॥ २५ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेद्वितीयस्कन्धेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ नारदउवाच ॥ देवदेवनमस्तुभ्यं भूतभावनपूर्वज । तद्विजानीहियज्ज्ञानमात्मतत्त्वनिदर्शनम् ॥ १ ॥ यद्रूपंयदधिष्ठानं यतःसृष्टमिदंप्रभो । यत्संस्थंयत्परंयच्च तत्तत्त्वंवदतत्त्वतः ॥२॥ सर्वंह्येतद्भवान्वेद भूतभव्यभवत्प्रभुः । करामलकवद्विश्वं विज्ञानावसितंतव ॥ ३ ॥ यद्विज्ञानोयदाधारो यत्परस्त्वंयदात्मकः । एकःसृजसि भूतानि भूतैरेवात्ममायया ॥ ४ ॥ आत्मन्भावयसेतानि नपराभावयन्स्वयम् आत्मशक्तिमवष्टभ्य ऊर्णनाभिरिवाक्लमः ॥ ५ ॥ नाहंवेदपरंह्यस्मिन्नापरंनसमंविभो । नामरूपगुणैर्भाव्यं सदसत्किंचिदन्यतः ॥६ ॥ सभवानचरद्घोरंयत्तपःसुसमाहितः तेनखेदयसेनस्त्वं पराशङ्कांप्रयच्छसि ॥ ७ ॥ एतन्मेपृच्छतःसर्वं सर्वज्ञसकलेश्वर।

वृष्णि यादवों के पति, और गति साधन के पति, तथा सद्भक्तों के पति हैं वह हमपर प्रसन्न होवें ॥ २० ॥ जिनके चरणारविंद के ध्यान रूप समाधि से निर्मल बुद्धि द्वारा बुद्धिमान पुरुष आत्मतत्व को देखते हैं और यथा रुचि कहते भी हैं वह भगवान मुकुन्द हमपर कृपा करें ॥ २१ ॥ सृष्टि के आदि में ब्रह्माजी के हृदय में श्रेष्ठ स्मृति के विस्तार करने वाले, भगवान की प्रेरित की हुई सरस्वती से उन ब्रह्माजी के मुख से वेदवाणी प्रगट हुई वे ज्ञान देन वालों मे उत्तम भगवान हमपर प्रसन्न होवें ॥ २२ ॥ जो भगवान पंच महाभूतोंसे अनेक शरीर रचकर उनमें जीवरूपसे प्रवेशकरते हैं और अंतःकरण समेत एकादश इन्द्रियें और पंच महाभूत इनसोलह कलाओं को अंतर्यामी रूपसे प्रकट करते हैं वह भगवान मेरी वाणी को शोभायमान करें ॥ २३ ॥ जिनके मुख रूपी कमलसे उत्पन्न हुये ज्ञान रूपी मकरंद का सज्जन लोग पान करते हैं उन वासुदेव मूर्ति श्रीव्यासजी को मै प्रणाम करता हूं ॥ २४ ॥ हे महाराज ! यही बात नारदजी ने ब्रह्माजी से पूछी थी तब वेदमूर्ति ब्रह्माजीने भगवान से जो सुनाथा वह नारदजी से कहा ॥ २५ ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेद्वितीयस्कंधेसरलाभाषाटीकायांचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

नारदजी ने कहा—कि हे देवोंके देव ! भूत भावन ! जगत पालक ! हे पूर्वज ! हमको वह साधन बताओ कि जिस से आत्म तत्व का बोध होजाय—॥ १ ॥ हे प्रभो ! इस विश्व का प्रकाशक कौन हैं ? तथा यह किस के आश्रय है ? किसने सृजा ? किस में लीन होता है ? किसके वशीभूत है यह सब आप मुझसे कहो ॥ २ क्योंकि आप भूत, भविष्य और वर्तमान सब जानते हो और यह संसार कर स्थित आमले की समान आप का जानाहुआ है ॥ ३ ॥ आप को विज्ञान देने वाला कौन है ? आश्रय कौन है ? किसके अधीन हो आप अपनी मायासे पंच भूतों के द्वारा जैसे प्राणियों को सृजते हो सो कहो ॥ ४ ॥ पराभव रहित आपही इस विश्वका पालन करते हो अपनी ही शक्ति को धारण कर मकरी के जाले की भांति सृष्टि को सृजते हो ॥ ५ ॥ हे विभो ! इस विश्व में उत्तम, मध्यम, अधम और जो वस्तु नाम, रूप, गुण द्वारा जानी जा सकती हैं वह सब आपही से उत्पन्न हुई हैं ऐसा मैं जानता हूं ॥ ६ ॥ परन्तु

विजानीहि यथैवेदमहं बुध्येनुशासितः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सम्यक्कारुणिकस्येदं तवव्वत्सविचिकित्सितम् । यदहंचोदितःसौम्य भगवद्वीर्यदर्शने ॥ ९ ॥ नानृतंतव तच्चापि यथामांप्रब्रवीषिभोः । अविज्ञायपरंमत्त एतावत्त्वंयतोहिमे ॥ १० ॥ येन स्वरोचिषाविश्वं रोचितंरोचयाम्यहम् । यथाऽर्कोऽग्निर्यथासोमो यथर्क्षग्रहतारकाः ॥ ११ ॥ तस्मैनमोभगवते वासुदेवायधीमहि । यन्माययादुर्जयया मांब्रुवन्ति जगद्गुरुम् ॥ १२ ॥ विलज्जमानयायस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया । विमोहिताविकत्थन्ते ममाहमितिदुर्धियः ॥ १३ ॥ द्रव्यंकर्मचकालश्च स्वभावोजीवएवच । वासुदेवात्परोब्रह्मन्न चान्योऽर्थोऽस्तितत्त्वतः ॥ १४ ॥ नारायणपरावेदा देवानारायणाङ्गजाः । नारायणपरालोका नारायणपरामखाः ॥ १५ ॥ नारायणपरोयोगो नारायणपरंतपः । नारायणपरंज्ञानंनारायणपरागतिः ॥ १६ ॥ तस्यापिद्रष्टुरीशस्य कूटस्थस्याखिलात्मनः । सृज्यंसृजामिसृष्टोऽहमीक्षयैवाभिचोदितः ॥ १७ ॥ सत्त्वं रजस्तमइति निर्गुणस्यगुणास्त्रयः ॥ स्थितिसर्गनिरोधेषु गृहीतामाययाविभोः १८ ॥ कार्यकारणकर्तृत्वे द्रव्यज्ञानक्रियाश्रयाः ॥ बध्नन्तिनित्यदामुक्तं मायिनंपुरुषंगुणाः । ॥ १९ ॥ स एव भगवाँल्लिङ्गैस्त्रिभिरेभिरधोक्षजः । स्वलक्षितगतिर्ब्रह्मन्सर्वेषांममचेश्वरः ॥ २० ॥ कालंकर्मस्वभावंच मायेशोमाययास्वया । आत्मन्यद

आपने भी इतने बड़े होकर एकाग्रचित्त से इतना कठोर तप किया इस से मुझे शंका होती है कि आप से परे भी कोई दूसरा है ॥ ७ ॥ हे सर्वज्ञ ? हे सर्वेश्वर ! यह जो मैं पूछता हूं इसे आप मेरे सन्मुख शिक्षा पूर्वक कहो जिस से मैं अच्छी भांति जानूं ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी कहने लगे कि हे पुत्र ! तेरा यह संदेह बहुत श्रेष्ठ है, कि जो तूने भगवत चरित्र के कहने में मुझ को प्रेरित किया ॥ ९ ॥ हे नारद ! तू मुझे ईश्वर कहता है यह भी तेरा वाक्य सत्य ही है, क्योंकि जिस के प्रभाव से मेरा ऐश्वर्य इतना बढ़ रहा है उस ईश्वर को तू नहीं जानता ॥ १० ॥ जैसे सूर्य्य अग्नि, चन्द्रमा, ग्रह नक्षत्र और चैतन्य से प्रकाशित किये हुए पदार्थ को प्रकाशित करते हैं वैसे ही मैं भी उन परमेश्वर के प्रकाशित किये हुए संसार को प्रकाशित करता हूं ॥ ११ ॥ उस परमात्मा परब्रह्म को प्रणाम है कि जिस की माया से मुझे जगद्गुरु कहते हैं परन्तु वही सबका गुरु है ॥ १२ ॥ जो माया अपने छल को जानने वाले श्रीभगवानकी दृष्टि पड़ते ही लज्जित हो जाती है उसी मायामें मोहित होकर दुष्ट बुद्धि लोग 'मैं' मेरा, इस भांति बका करते हैं ॥१३॥ हे नारद द्रव्य, पंच महाभूत, कर्म, काल, स्वभाव, जीव, यह वास्तव में देखो तो श्रीभगवान से भिन्न नहीं है ॥ १४ ॥ वेदों का कारण नारायणही है, देवताभी नारायण के अंग से हुए है, सम्पूर्ण लोक नारायणके अंशभूतहै लोक भी नारायण परायण है और यज्ञ उनकी प्राप्तिके साधन हैं ॥ १५ ॥ उन द्रष्टा, नियंता, कूटस्थ और सब के अंतर्यामी भगवान के बनाये हुए इससंसार को केवल उनकी दृष्टि की प्रेरणा द्वारा मैं रचता हूं ॥ १७ ॥ प्रजाकी उत्पत्ति, पालन, संहारके हेतु मायासे अंगीकार किये हुए निर्गुण, विभु भगवान के सत्व, रज, तम, यह तीन गुणहैं १८ यह पंच महाभूत, देवता और इंद्रियों के कारण रूप गुण, अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैवतपन में घमण्ड उत्पन्न कराके वास्तव में नित्य मुक्त आत्मा को मायाका विषय जीव बनाकर जन्ममरण रूप बंधन में फसाते हैं ॥ १९ ॥ हे नारद ! प्राणियों के आवरण करने वाले इन तीन गुणों से जिन की गति किसी प्रकार देखी नहीं जाती ऐसे परमेश्वर सबके और मेरेभी स्वामी है ॥२०॥ मायाके नियंता परमेश्वर ने आपके विषे अनायास प्राप्त हुए काल, कर्म, स्वभाव को अनेक

च्छयाप्राप्तं विभुर्भूषुरुपाददे॥ २१ ॥ कालाद्गुणव्यतिकरःपरिणामःस्वभावतः। कर्मणोजन्ममहतः पुरुषाधिष्ठितादभूत् ॥ २२ ॥ महतस्तुविकुर्वाणाद्रजःसत्वोपबृंहितात्। तमःप्रधानस्त्वभवद्द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥ २३ ॥ सोऽहंकार इतिप्रोक्तो विकुर्वन्समभूत्त्रिधा। वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेतियद्भिदा। द्रव्यशक्तिःक्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिरितिप्रभो ॥ २४ ॥ तामसादपिभूतादेर्विकुर्वाणादभून्नभः। तस्यमात्रागुणःशब्दो लिङ्गंयद्द्रष्टृदृश्ययोः ॥ २५ ॥ नभसोऽथ विकुर्वाणादभूत्स्पर्शगुणोऽनिलः ॥ परान्वयाच्छब्दवांश्च प्राणओजःसहोबलम् ॥ २६ ॥ वायोरपिविकुर्वाणात्कालकर्मस्वभावतः ॥ उदपद्यततेजोवैरूपवत्स्पर्शशब्दवत् ॥ २७ ॥ तैजसस्तुविकुर्वाणादासीदम्भोरसात्मकम्। रूपवत्स्पर्शवच्चाम्भो घोषवच्चपरान्वयात् २८ ॥ विशेषस्तुविकुर्वाणादम्भसोगन्धवानभूत्। परान्वयाद्रसस्पर्शशब्दरूपगुणान्वितः ॥२९॥ वैकारिकान्मनोजज्ञे देवावैकारिकादश। दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ॥ ३० ॥ तैजसात्तुविकुर्वाणादिन्द्रियाणिदशाभवन्। ज्ञानशक्तिःक्रियाशक्तिर्बुद्धिः प्राणस्तुतैजसौ। श्रोत्रंत्वग्घ्राणदृग्जिह्वावाग्दोर्मेढ्रांघ्रिपायवः ॥ ३१ ॥ यदैतेऽसंगताभावा भूतेन्द्रियमनोगुणाः। यदायतननिर्माणे नशेकुर्ब्रह्मवित्तम ॥ ॥ ३२ ॥ तदासंहत्यचान्योन्यं भगवच्छक्तिचोदिताः। सदसत्त्वमुपादायचोभयंससृजुर्ह्यदः ॥ ३३ ॥ वर्षपूगसहस्रान्ते तदण्डमुदकेशयम् ॥ कालकर्मस्वभावस्थो

होने की इच्छा करके अपनी मायासे स्वीकार किया ॥ २१ ॥ काल से गुणो में क्षोभ हुआ, स्वभाव मे रूपांतर, और जीवों के अदृष्ट मे महत्तत्व का जन्म हुआ ॥ २२ ॥ रजो गुण और सत्वगुण से वृद्धिगत महत्तत्व जो विकारको प्राप्त हुआ तो उस में से पंच महाभूत, देवता और इंद्रियात्मक तमोगुणप्रधान अहंकार उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥ वह अहंकार जब विकार को प्राप्त हुआ तो सात्विक, राजस, तामस इन भेदो करके तीन प्रकार का हुआ सात्विक तो ज्ञान शक्ति राजस क्रिया शक्ति और तामस [illegible] ॥२४॥ [illegible] अहंकार जब विकारको प्राप्त हुआ तो उस मे से आकाश उत्पन्न हुआ उस का सूक्ष्म रूप और असाधारण गुण शब्द है जो शब्द द्रष्टा दृश्य का बोधक है ॥ २५ ॥ आकाश जब विकार को प्राप्त हुआ तो उसमेस्पर्श गुण वाला पवन उत्पन्न हुआ कारणका गुण कार्य मे आताहै, ऐसा होनेमे आकाशका गुण शब्द भी उसमे आया, वायु देहको धारण करताहै इस लिये वह इंद्रिय बल, मनोबल और शरीर बलका कारण है ॥२६॥ काल, कर्म, स्वभावसे जब पवनभी विकारको प्राप्तहुआ तो शब्द,स्पर्श,रूप गुणों से युक्त तेज प्रगट हुआ ॥ २७ ॥ काल, कर्म, स्वभाव से जब तेज विकार को प्राप्त हुआ तो उस से रसात्मकजल, रूप, स्पर्श और शब्द गुणों वाला उत्पन्न हुआ ॥ २८ ॥ जब जल विकार को प्राप्त हुआ तो उस मे रस, रूप, स्पर्श, शब्द, और गंध गुणवाली पृथ्वी उत्पन्न हुई ॥ २९ ॥ सात्विक अहंकार से मन और इंद्रियो के दश देवता दिशा, पवन, सूर्य, वरुण, अश्विनी कुमार, अग्नि, इंद्र, उपेन्द्र, मित्र और प्रजापति उत्पन्नहुए ॥३०॥ राजसअहंकारसे श्रोत्र, त्वचा, घ्राण, चक्षु, और जीभ यह पांच ज्ञानेन्द्रिय और बाणी, हाथ, मेढ, पांव, और गुदा यह पांच कर्मेन्द्रिय और ज्ञान, शक्ति, बुद्धि, क्रियाशक्ति और प्राण यह प्रगट हुये ॥ ३१ ॥ हेब्रह्म वेत्ताओं में उत्तम नारद जब यह पंचमहा भूत, इन्द्रियां और मनरूप गुणोंका कार्य सम्मिलित न होने से ब्रह्मांड रचने मे समर्थ न हुये ॥ ३२ ॥ तब भगवान की शक्तिकी प्रेरणा से परस्पर मिलकर प्रधान गुणभाव को अंगीकार कर सम दृष्टि रूप शरीर को सृजा ॥ ३३ ॥ सहस्र वर्ष

जीवोजीवमजीवयत् ॥ ३४ ॥ स एषपूरुषस्तस्मादण्डं निर्भिद्यनिर्गतः। सहस्रोर्वंघ्रि बाहृवक्षः सहस्राननशीर्षवान् ॥ ३५ ॥ यस्येहावयवैर्लोकान्कल्पयन्ति मनीषिणः । कट्यादिभिरधः सप्तसप्तोर्ध्वंजघनादिभिः ॥ ३६ ॥ पुरुषस्यमुखंब्रह्म क्षत्रमेतेऽस्य बाहवः । ऊर्वोर्वैश्योभगवतः पद्भ्यांशूद्रोऽभ्यजायत ॥ ३७ ॥ भूर्लोकःकल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्यनाभितः । हृदास्वर्लोकउरसा महर्लोकोमहात्मनः ॥ ३८ ॥ ग्रीवायांजनलोकश्च तपोलोकः स्तनद्वयात् ॥ मूर्धभिःसत्यलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातनः ॥ ३९ ॥ तत्कट्यांचातलं क्लृप्तमूरुभ्यांवितलंविभोः । जानुभ्यांसुत लंशुद्धं जंघाभ्यांतुतलातलम् ॥ ४० ॥ महातलंतुगुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यांरसातलम् पातालंपादतलत इतिलोकमयःपुमान् ॥ ४१ ॥ भूर्लोकःकल्पितःपद्भ्यां भुवर्लोको ऽस्यनाभितः । स्वर्लोकः कल्पितोमूर्ध्नाइतिवालोककल्पना ॥ ४२ ॥

इतिश्रीमद्भा०म०द्वि० पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥ वाचांवन्हेर्मुखंक्षेत्रं छन्दसांसप्तधातवः । हव्यकव्यामृतान्ना नां जिह्वासर्वरसस्यच ॥ १ ॥ सर्वासूनांचवायोश्च तन्नासेपरमायने । अश्विनो रौषधीनांचघ्राणोमोदप्रमोदयोः ॥ २ ॥ रूपाणांतेजसांचक्षुर्दिवःसूर्यस्यचाक्षिणी । कर्णौदिशांचतीर्थानां श्रोत्रमाकाशशब्दयोः ॥ ३ ॥ तद्गात्रंवस्तुसाराणां सौभग स्यचभाजनम् । त्वगस्यस्पर्शवायोश्चसर्वमेधस्यचैवहि ॥ ४ ॥ रोमाण्युद्भिज्जजा

व्यतीत होने के उपरांत काल, कर्म, स्वभाव में स्थित परमात्मा ने जलमें पड़ेहुये उस अचेतन ब्रह्माण्ड रूप स्थूल शरीर को सचेतन किया ॥ ३४ ॥ वह पुरुष जिसके सहस्रों जघा, चरण, भुजा, नेत्र, मुख और शिर हैं अंडको भेदिकर निकला ॥ ३५ ॥ विवेकी लोग जिस शरीर के अवयवों से कटिके नीचे भागमें अतल आदि सातलोकों की और कटिसे ऊपर के भागमें भूलोक आदिक ऊपर के लोकों की कल्पना करते हैं ॥ ३६ ॥ उस व्यापक पुरुष के मुखसे ब्राह्मण, भुजासे क्षत्री, और जंघा से वैश्य तथा पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए ॥ ३७ ॥ विराट के चरणों से भूर्लोक, नाभिसे भुवर्लोक, हृदय से स्वर्लोक, वक्षस्थल से महर्लोक ॥ ३८ ॥ गले से जनलोक, दोनो स्तनों से तपलोक, और मस्तक से सत्यलोक को मानते हैं और ब्रह्मलोक सृष्टिके अन्तर्गत नहीं है ॥ ३९ ॥ विराट की कटिसे अतल, घुटनों से सुतल, उरू से वितल और घोटुओंके नीचे तलातल है ॥ ४० ॥ टखनो से महातल, पैरो से रसातल और चरणतल से पाताल लोक की कल्पना है ऐसे भगवान सम्पूर्ण लोकमय हैं ॥ ४१ ॥ कोई त्रिलोकीही करके चरण से भूलोक नाभिसे भुवर्लोक और माथे से स्वर्गलोक की कल्पना करते हैं ॥ ४२ ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेद्वितीयस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ब्रह्माजी बोले कि—हे नारद! विराट का मुख, वाणी और अग्निका उत्पत्ति स्थान है, सातोधातु, गायत्रीआदि छंदोके उत्पत्ति स्थानहैं, देवान्न,पितृ अन्न,मनुष्यान्न और मधुरआदि सबरसोंकी उत्पत्ति स्थान जिह्वा है ॥ १ ॥ सम्पूर्ण प्राणियों और वायु की नासिका उत्पत्ति स्थान है अश्विनी कुमार, औषधि, और मोद प्रमोद की घ्राणेन्द्रिय उत्पत्ति स्थान है ॥ २ ॥ रूप और तेजका चक्षुरिन्द्रिय आश्रय है। स्वर्ग और सूर्य की उत्पत्ति विराट के नेत्रों से है दिशा और तीर्थ हरिके कर्ण, आकाश और शब्द श्रवणेन्द्रियसे उत्पन्नहुये हैं, ॥ ३ ॥ पदार्थोंकेसारांश और सौभाग्य उसके शरीरसे उत्पन्न हुये हैं, स्पर्श, वायु, और यज्ञका स्थान इनकी त्वचा है, ॥ ४ ॥ विराट के रोमवृक्षों की उत्पत्ति स्थान हैं, कि जिन वृक्षों से यज्ञसिद्ध हुआ करता है विराट के कश मेघ के, डाढ़ी मूछ

तीनां यैर्वायवस्तुसंभृतः । केशश्मश्रुनखान्यस्य शिलालौहाभ्रविद्युताम् ॥ ५ ॥ बा
हवोलोकपालानां प्रायशःक्षेमकर्मणाम् । विक्रमोभूर्भुवःस्वश्च क्षेमस्यशरणस्यच
॥ ६ ॥ सर्वकामवरस्यापि हरेश्चरणआस्पदम् । अपांवीर्यस्यसर्गस्य पर्जन्यस्यप्र
जापतेः ॥ ७ ॥ पुंसःशिश्नउपस्थस्तु प्रजात्यानन्दनिर्वृतः ॥ पायुर्यमस्यमित्रस्यप
रिमोक्षस्यनारद ॥८॥ हिंसायानिर्ऋतेर्मृत्योर्निरयस्यगुदःस्मृतः ॥ पराभूतेरधर्मस्य
तपसश्चापिपश्चिमः ॥ ९ ॥ नाड्योनदनदीनांतु गोत्राणामस्थिसंहतिः ॥ अव्यक्त
रससिन्धूनां भूतानांनिधनस्यच ॥ १० ॥ उदरंविदितंपुंसो हृदयंमनसःपदम् । ध
र्मस्यममतुभ्यंच कुमाराणांभवस्यच ॥ ११ ॥ विज्ञानस्यचसत्वस्य परस्यात्मापरा
यणम् । अहंभवान्भवश्चैव त इमेमुनयोऽग्रजाः ॥१२॥ सुरासुरनरानागाःखगामृग
सरीसृपाः । गन्धर्वाप्सरसोयक्षा रक्षांभूतगणोरगाः ॥ १३ ॥ पशवःपितरःसिद्धाः
विद्याध्राश्चारणाद्रुमाः । अन्येचविविधाजीवा जलस्थलनभौकसः ॥ १४ ॥ ग्रह
र्क्षकेतवस्तारास्तडितः स्तनयित्नवः । सर्वंपुरुषएवेदं भूतंभव्यंभवच्चयत् ॥९१॥
॥ १५ ॥ तेनेदमावृतंविश्वं वितस्तिमधितिष्ठति । स्वधिष्ण्यंप्रतपन्प्राणो बहिश्चप्रत
पत्यसौ ॥ १६ ॥ एवंविराजंप्रतपंस्तपत्यन्तर्बहिःपुमान् । सोऽमृतस्याभयस्येशो
मर्त्यमन्नंयदत्यगात् ॥ १७ ॥ महिमैष ततोब्रह्मन्पुरुषस्यदुरत्ययः । पादेषुसर्वभूता
नि पुंसः स्थितिपदोविदुः ॥ १८ ॥ अमृतंक्षेममभयं त्रिमूर्ध्नोऽधायिमूर्धसु । पादा

बिजली के, हाथ और पांव नख पत्थर और लोहे के उत्पात्ति स्थान हैं ॥५॥ पालन करने वाले लोक पालो की भुजा आश्रय हैं भगवान के पांवका रखना, भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक का आश्रय है—रक्षा, शरण, ॥ ६॥ सम्पूर्ण कामनायें और वरदान यह भगवान के चरण के आश्रित है जल, वीर्य, सृष्टि, मेघ प्रजापति इनका उत्पात्ति स्थान ॥७॥ विराटका लिंग है, प्रजाके आनंद का सुख स्थान विराट की उपस्थेन्द्रिय है हे नारद ! यमराज, मित्र, और परिमोक्ष मलके त्यागका स्थान विराट की पायुइन्द्री है ॥ ८ ॥ हिंसा, निर्ऋति, मृत्यु और नरक का उत्पात्ति स्थान विराटकी गुदा है, विराट की पीठ पराभव, अधर्म, और अज्ञान की उत्पत्ति क्षेत्र है ॥ ९ ॥ नाड़ियां, नद, और नदियों के उत्पन्न होने के क्षेत्र हैं अस्थियों का समूह पर्व्वतों का उत्पात्ति स्थान है विराट का उदर प्रधान, अन्नादिकों के सार, समुद्र और प्राणियोंके लयका उत्पात्ति स्थानहै ॥१०॥ हृदय, लिंग शरीर का उत्पात्ति स्थान है धर्मका, मेरा, तेरा, सनकादिकका, महादेव का, ॥ ११ ॥ विज्ञान का, सत्व पराक्रम का विराट का चित्त परम स्थान है मैं, तू, महादेव, और तेरे बड़े भाई मुनि, ॥ १२ ॥ सुर, असुर, मनुष्य, नाग, पक्षी, चौपाये, सांप, बिच्छू गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, भूतगण, ॥ १३ ॥ पशु, पितर, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष औरभी नाना प्रकारके जल, थल वासी जीव, आकाशवासी, ॥ १४ ॥ ग्रह, नक्षत्र, धूमकेतु, तारागण, बिजली (कड़ कड़ाहट, गर्जना) और भी जोभूत, भविष्यत वर्तमान हैं वह सबही विराट रूपके अन्तर्गत हैं ॥ १५ ॥ जैसे सूर्य्य सम्पूर्ण सृष्टि के पदार्थो को प्रकाशित करता है इसी भांति विराट का देह सम्पूर्ण ब्रह्माड को भितर बाहर प्रकाश करता है उनके कर्म फलका लेप नहीं है इससे वेमुक्ति और निजानंद के भी स्वामी हैं ॥ १६ ॥ हे नारद ! जिनके अंशरूप भूलोक और स्वर्लोक हैं उन भगवान के अंशरूप सृष्टिमें सब जीव हैं इससे उस पुरुष परमेश्वर की अनंत महिमा है ॥ १७ ॥ भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक व महर्लोक के भी ऊपर जो जन, तप, और सत्य लोक है, उनमें अमृत, क्षेम, और मोक्ष यह क्रम से रहते हैं ॥ १८ ॥ नैष्ठिक ब्रह्मचारी जन लोक में, वानप्रस्थ तपलोक

त्रयोबहिश्चाखन्नाप्रजानां यआश्रमाः अन्तस्त्रिलोक्यास्त्वपरो गृहमेधोवृहद्व्रतः ।
॥ १९ ॥ सृती विचक्रमे विष्वक् साशनानशनेउभे । यदविद्या च विद्या च पुरुषस्तू
भयाश्रयः ॥ २० ॥ यस्मादण्डंविराड्जज्ञे भूतेन्द्रियगुणात्मकः । तद्द्रव्यमत्यगाद्वि
श्वं गोभिः सूर्यइवातपन् ॥ २१ ॥ यदाऽस्यनाभ्यां नलिनादहमासंमहात्मनः । ना
विदंयज्ञसम्भारान्पुरुषावयवादृते ॥ २२ ॥ तेषुयज्ञस्यपशवः सवनस्पतयःकुशाः ।
इदंचदेवयजनं कालश्चोरुगुणान्वितः ॥ २३ ॥ वस्तून्योषधयस्नेहा रसलोहमृदो
जलम् । ऋचोयजूंषिसामानिचातुर्होत्रंचसत्तम ॥ २४ ॥ नामधेयानिमन्त्राश्चदक्षि
णाश्चव्रतानिच । देवतानुक्रमःकल्पः संकल्पस्तन्त्रमेवच ॥ २५ ॥ गतयोमतय
श्चैवप्रायश्चित्तंसमर्पणम् । पुरुषावयवैरेते सम्भारासम्भृतामया ॥ २६ ॥ इतिसम्भृत
सभारः पुरुषावयवैरहम् । तमेवपुरुषंयज्ञंतेनैवायजमीश्वरम् ॥ २७ ॥ ततस्तेभ्रातर
इमेप्रजानांपतयोनव अयजन्व्यक्तमव्यक्तं पुरुषंसुसमाहिताः ॥ २८ ॥ ततश्चमनवः
काले ईजिरेऋषयोऽपरे। पितरोविबुधादैत्या मनुष्याःक्रतुभिर्विभुम् ॥२९॥नाराय
णेभगवति तदिदंविश्वमाहितम् । गृहीतमायोरुगुणः सर्गादावगुणःस्वतः ॥ ३० ॥
सृजामितन्नियुक्तोऽहं हरोहरतितद्वशः । विश्वंपुरुषरूपेण परिपातित्रिशक्तिधृक ॥
॥ ३१ ॥ इतितेऽभिहितंतातयथेदमनुपृच्छसि । नान्यद्भगवतःकिंचिद्भाव्यंसदसदा
त्मकम् ॥ ३२ ॥ न भारतीमेऽङ्गमृषोपलक्ष्यते नवैक्वचिन्मेमनसोमृषागतिः । नमेहृ

में सन्यासी सत्यलोक में और ब्रह्मचर्य व्रतरहित गृहस्थ तो त्रिलोक के भीतर ही रहते हैं ॥ १९ ॥ भोग और मोक्ष साधन के कर्म और उपासना यह दोनो दक्षिणायन और उत्तरायण मार्ग हैं सो क्षेत्रज्ञ इन दोनो रस्ते से चलता है ॥ २० ॥ जिस परमेश्वर से ब्रह्मांड पंच महा भूत, इन्द्रियां, और उनके गुण, रूप आदि विराट रूप प्रगट हुआ है, उस परमेश्वर से जैसे सूर्य अपनी किरणों से बाहर प्रकाश करता है वैसे ही विराट देह तथा ब्रह्मांड बाहर भी प्रकाशित हो रहा है ॥ २१ ॥ जब मैं भगवान की नाभी के कमल से उत्पन्न हुआ तब विराट पुरुष के अवयवो के अतिरिक्त और मुझे कुछ यज्ञ की सामग्री न मिली ॥ २२ ॥ तो हे नारद ! यज्ञ की सामग्र के प्रस्तुत करने के हेतु विराट पुरुष के अवयवों सेही यज्ञ के पशु, वनस्पति, कुश, यज्ञ भूमि, वसंत आदि काल ॥ २३ ॥ चमस आदि पात्र, ब्रीहि आदि औषधि, घृत आदि स्नेह, मधुर आदि रस, लोह आदि धातु, मिट्टी, जल, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, चार होताओंका कर्म ॥ २४ ॥ ज्योतिष्टोमादिक, स्वाहा कारादि मंत्र, दक्षिणा, व्रत देवताओं का अनुक्रम, बौधायन आदि कर्म पद्धति ग्रंथ, संकल्प, अनुष्ठान का प्रकार ॥ २५ ॥ विष्णु क्रमादिक गति, देवताओं के ध्यान, प्रायश्चित्त और समर्पण यह सब सामग्रीये मैंने एकत्रित की ॥ २६ ॥ इस प्रकार विराट पुरुष के अवयवों से यज्ञ की सामग्री एकत्रित कर यज्ञ द्वारा उस यज्ञ पुरुष परमेश्वर का पूजन किया ॥ २७ ॥ इसके उपरांत इन नवों प्रजा पति तेरे भइयों ने सावधान चित्त हो कर इन्द्रादि रूपसे प्रगट और स्वस्वरूप से अप्रगट परमेश्वर की पूजा की ॥ २८ ॥ इस के अनंतर, मनु, और २ ऋषि, पितृगण, देवता, दैत्य और मनुष्यो ने यज्ञों द्वारा श्री भगवानका पूजन किया ॥ २९ ॥ नारायण के विषे—यह विश्व विराज मान है. यद्यपि स्वयं निर्गुण हैं तो भी सृष्टि आदि के हेतु माया के अनेक गुण धारण करते हैं ॥ ३० ॥ उन परमात्मा की प्रेरणा से मैं सृष्टि को रचता हूं, महादेव उनके वशहो कर संहार करते हैं और शक्तिके धारण करने वाले भगवान विष्णु रूप से सृष्टि का पालन करते हैं ॥ ३१ ॥ हे तात ! जैसा तुम

षीकाणिपतन्त्यसत्पथे यन्मेहृदौत्कण्ठ्यवताधृतोहरिः ॥ ३३ ॥ सोऽहंसमाम्नायम
यस्तपोमयः प्रजापतीनामाभिवन्दितःपतिः । आस्थाययोगंनिपुणंसमाहितस्तन्ना
ध्यगच्छं यतआत्मसंभवः॥ ३४ ॥ नतोऽस्म्यहंतच्चरणं समीयुषांभवच्छिदंस्वस्त्य
यनंसुमङ्गलम्। योह्यात्ममायाविभवंस्मपर्यगाद्यथानभः स्वान्तमथापरेकुतः ३५ ॥
नाहंनयूयंयदृतांगतिं विदुर्नवामदेवः किमुताऽपरेसुराः । तन्मायया मोहितबुद्धय
स्त्विदं विनिर्मितंचात्मसमंविचक्ष्महे ॥ ३६ ॥ यस्यावतारकर्माणि गायन्तिह्यस्म
दादयः । नयंविदन्तितत्त्वेन तस्मैभगवतेनमः ॥ ३७ ॥ सएषआद्यः पुरुषःकल्पे
कल्पेसृजत्यजः । आत्माऽऽत्मन्यात्मनाऽत्मानं संयच्छतिचपातिच ॥ ३८॥ विशुद्धं
केवलंज्ञानं प्रत्यक्सम्यगवस्थितम् । सत्यंपूर्णमनाद्यन्तं निर्गुणंनित्यमद्वयम् ३९ ॥
ऋषेविदन्तिमुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः। यदातदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लु
तम् ॥४०॥ आद्योऽवतारःपुरुषःपरस्यकालः स्वभावः सदसन्मनश्च । द्रव्यंविकारो
गुणइंद्रियाणिविराट् स्वराट् स्थास्नुचरिष्णुभूम्नः ॥४१॥ अहंभवोयज्ञइमेप्रजेशाः
दक्षादयोयेभवदादयश्च । स्वर्लोकपालाः खगलोकपाला नृलोकपालास्तललोकपा
लाः ॥ ४२ ॥ गन्धर्वविद्याधरचारणेशा येयक्षरक्षोरगनागनाथाः । येवाऋषीणामृ
षभाः पितॄणांदैत्येन्द्रसिद्धेश्वरदानवेन्द्राः अन्येचयेप्रेतपिशाचभूतकूष्मांडयादो

नें पूछा वैसाही मैंने कहा, कार्य कारणात्मक कुछभी सृष्टि के पदार्थ ईश्वर से प्रथक नहीं हैं ॥ ॥ ३२ ॥ हे नारद ! मेरी वाणी मिथ्या नहीं होती, न मेरी गतिही मिथ्या होवे और मेरा मन मिथ्या वस्तुमे गमन नहीं करता और मेरी इन्द्रियां उलटे मार्ग में गमन नहीं करतीं क्योंकि मे हृदय की उत्कंठासहित श्री भगवान का स्मरण किया करताहूं ॥३३॥ वेदमय प्रजापतियों के पति मैंने निपुण योग धारण कर सावधान मन से उनका ध्यान किया परन्तु जिसमे मैं उत्पन्न हुआ हूं उसको न पासका ॥ ३४ ॥ जैसे आकाश अपना अंत नहीं पाता, वैसे जो आपही अपनी माया के ऐश्वर्य का पार नहीं पासक्ते, तो दूसरों की क्या गिनती, उन परमेश्वरके शरणागत भक्तों के दुःखो को छेदने वाले और मंगल रूप, कल्याण देनेवाले श्री भगवानके चरणों को प्रणाम करताहूं ॥ ३५ ॥ जिन परमात्मा के परमार्थ स्वरूप को न मैं जानता हूं न तुम जानते हो न महादेव जानते हैं फिर मायासे मोहित दूसरे देवता कहां से जानें । मैं अपने ज्ञानानुसार केवल इतना जानता हूँ कि यह सब प्रपंच भगवान की माया की रचना है ॥ ३६ ॥ जिन के अवतारों का हमलोग गानकिया करते हैं परन्तु उसेयथार्थ रीतिसे नहीजान सकते, ऐसे परमेश्वरको हमप्रणामकरते हैं ॥ ३७ ॥ यह आदिपुरुष भगवान अजन्मा कल्प २ के विषे सृष्टि को रचते है और आप २ के विषे, आप के द्वारा आप को रचता है पालता और संहारता है, सारांश यह है कि कर्ता अधिकरण साधन कर्म आपही है ॥ ३८ ॥ केवल, ज्ञान मय, तत्वस्वरूप, विषयाकार शून्य, सर्वांतर्यामी, संदेह रहित, स्थिर, निर्गुण, जन्म मरण रहित, पूर्ण, नित्य, और अद्वितीय, आत्मस्वरूपको, ॥ ३९ ॥ हे नारद ! जब मुनि लोगोंकी इन्द्रियां और चित्त शांत होजाते हैं तभी जानसकते हैं वही आत्म स्वरूप जब दुष्टमनुष्यों के कुतर्कों से पराभवको प्राप्त होता है तब तिरोधान होजाता है ॥ ४० ॥ उस परमेश्वर का यह विराट पुरुष आदि अवतार है काल, कर्म, स्वभाव मे प्रकृति, मनपञ्चमहाभूत, अहंकार, सत, रज, तम, इन्द्रियां, पुरुष, स्थावर, जंगमात्मक शरीर ॥ ४१ ॥ मैं, महादेव, यज्ञ, दक्ष आदि प्रजापति, तुम, और २ मुनि वैकुंठ के पालक, अंतरिक्ष, मनुष्यलोक, पाताल के, पालक ॥ ४२ ॥ गंधर्व, विद्याधर, चारणों के ईश, और यक्ष, राक्षस, सांप, नागपति, श्रेष्ठ ऋषि

मृगपक्ष्यधीशाः ॥ ४३ ॥ यत्किंचलोकेभगवन्महस्वदोजः सहस्वद्बलवत्क्षमावत् श्रीह्रीविभूत्यात्मवदद्भुतार्णं तत्त्वंपररूपवदस्वरूपम् ॥ ४४ ॥ प्राधान्यतोयानृषआमनन्ति लीलावतारान्पुरुषस्यभूम्नः । आपीयतां कर्णकषायशोषाननुक्रमिष्येत इमान् सुपेशान् ॥ ४५ ॥

इतिश्रीमद्भा०द्वि०विराडंविभूतिपुरुषसूक्तार्थवर्णनंनामषष्ठमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥ यत्रोद्यतःक्षितितलोद्धरणायबिभ्रत्क्रौडींतनुंसकलयज्ञमयीमनंतः अन्तर्महार्णवउपागतमादिदैत्यं तंदंष्ट्रयाऽद्रिमिववज्रधरोददार ॥ १ ॥ जातोरुचेरजनयत्सुयमान्सुयज्ञ आकूतिसूनुरमरानथदक्षिणायाम् । लोकत्रयस्यमहतीमहरद्यदार्तिं स्वायंभुवेनमनुनाहरिरित्यनूक्तः ॥ २ ॥ जज्ञेचकर्दमगृहेद्विजदेवहूत्यां स्त्रीभिःसमंनवभिरात्मगतिंस्वमात्रे ऊचेययाऽऽत्मसमलंगुणसङ्गपङ्कमस्मिन्विधूयकपिलस्यगतिंप्रपेदे ॥ ३ ॥ अत्रेरपत्यमभिकांक्षतआहतुष्टो दत्तोमयाहमितियद्भगवान्स दत्तः यत्पादपङ्कजपरागपवित्रदेहा योगर्द्धिमापुरुभयींयदुहैहयाद्याः ॥ ४ ॥ तप्तं तपोविविधलोकसिसृक्षयामे आदौसनात्स्वतपसःसचतुःसनोऽभूत् । प्राक्कल्पसंप्लवविनष्टमिहात्मतत्त्वंसम्यग्जगादमुनयोयदचक्षतात्मन् ॥ ५ ॥ धर्मस्यदक्षदुहितर्यजनिष्टमूर्त्यां नारायणोनरइतिस्वतपःप्रभावः । दृष्ट्वात्मनोभगवतोनियमावलोपं देव्यस्त्वनंगपृतनाघटितुंनशेकुः ॥६॥ कामंदहन्तिकृतिनोननुरोषदृष्ट्यारोषं दहन्तमुत

श्रेष्ठ पितृगण, असुर पति, सिद्धेश्वर, दानवाधिपति, प्रेत, पिशाच, भूत, कछुवे आदि जल जंतु, चौपाये, और गरुड़ ॥ ४३ ॥ और भी लोकोंमें जो कुछ प्रभाव, तेज, ओज, मनका वेग, क्षमा, श्री, लज्जा, वैभव, और विज्ञान, रूपवान, तथा अरूपी यह सब परमेश्वर की विभूति है ॥ ४४ ॥ हे नारद ! नारायण के जो मुख्य २ लीलावतार हैं उन श्रेष्ठ अवतारों का मैं तुमसे वर्णन करता हूं उन को सुनो कि जिस के सुनने से कानों के मल सूख जाते हैं ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे० द्वितीयस्कन्धे सरला भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ब्रह्माजी ने कहा कि जब परमेश्वर ने पृथ्वीको पाताल में से निकालना चाहा तो सर्वयज्ञमय वाराह मूर्ति धारण कर समुद्रके भीतर आयेहुये हिरण्याक्ष को दांतो से ऐसे विदीर्ण किया जैसे वज्रधारी इन्द्र पर्वतों को विदीर्ण करताहै ॥१॥ (यज्ञावतार कहतेहैं) रुचि ऋषिके घर आकूति के पुत्रहुए उन्होंने अपनी भार्या दक्षिणा में सुयज्ञ नाम देवताओं की रचना की और जब आपने तीनोंलोकोंका दुःख दूरकिया तो स्वायंभुव मनुने हरिनाम रक्खा ॥ २ ॥ (कपिल अवतार) हे नारद ! कर्दमजी के यहां देवहूती नाम स्त्रीमें कपिल भगवान नौ भगनियोंके सँग उत्पन्न हुए और अपनीमाता को ब्रह्मविद्याकी शिक्षादी जिससे वह इसी जन्ममें कपिलदेवजीकी गतिको प्राप्तहुई ॥ ३ ॥ (दत्तात्रेय अवतार) पुत्रकी आकांक्षा रखनेवाले अत्रि ऋषि से श्री परमेश्वर ने प्रसन्न होकर कहा कि मैंने तुमको अपना शरीर दिया इसहेतु उनके घरमें अवतार लियेहुये परमेश्वरका नाम दत्तात्रेय हुआ, जिनके कमलरूपी चरणोंके पराग से शुद्ध देहवाले यदु और सहस्रार्जुन आदि भोग और मोक्षको प्राप्तहुये ॥ ४ ॥ (सनतकुमार अवतार) नानाप्रकार के लोकों के रचनेकी इच्छासे मैंने सृष्टिके प्रारम्भ में जो बड़ीभारी तपस्याकी तो उस तपस्या की शक्तिसे सनतकुमार, सनक, सनन्दन, और सनातन यह चारकुमार हुये जिन्होंने प्रथम कल्पके प्रलयमें नाशहुये आत्म तत्त्वकी इस कल्पमें भलीभांति शिक्षाकी जिससे मुनियों के हृदय में आत्मा का आविष्कार हुआ ॥ ५ ॥ (नरनारायण अवतार) धर्मकी भार्या (दक्षकी पुत्री) मूर्तिमें कठोर तप के ऐश्वर्यवाला नरनारायण अवतार हुआ जिनकी तपस्या

तेनक्षहन्यसह्यम् । सोऽयंयदन्तरमलंप्रविशन्बिभेतिकामः कथंतुपुनरस्यमनःश्रयेत
७ ॥ विद्धिःसपत्न्युदितपत्रिभिरन्तिराज्ञो बालोपिसन्नपगतस्तपसेवनानि । तस्मा
अदाद्ध्रुवगतिंगृणतेप्रसन्नो दिव्याःस्तुवन्तिमुनयोयदुपर्यधस्तात् ॥ ८ ॥ यद्वेनमुत्प-
थगतंद्विजवाक्यवज्रविप्लुष्टपौरुषभगं निरयेपतन्तम् । त्रात्वार्थितोजगतिपुत्रपदंच-
लेभेदुग्धावसूनिवसुधा सकलानियेन ॥ ९ ॥ नाभेरसावृषभआससुदेविसूनुर्यो वै
चचारसमदृग्जडयोगचर्याम् । यत्पारमहंस्यमृषयःपदमामनन्तिस्वस्थः प्रशान्त-
करणःपरिमुक्तसङ्गः ॥ १० ॥ सत्रेममासभगवान्हयशीरषाऽथो साक्षात्सयज्ञपुरुष-
स्तपनीयवर्णः । छन्दोमयोमखमयोऽखिलदेवतात्मावाचो बभूवुरुशतीःश्वसतोऽ-
स्यनस्तः ॥ ११ ॥ मत्स्योयुगान्तसमयेमनुनोपलब्धः क्षोणीमयोनिखिलजीवनिका
यकेतः । विस्रंसितानुरुभये सलिलेमुखान्मे आदायतत्रविजहारहवेदमार्गान् ॥ १२ ॥
क्षीरोदधावमरदानवयूथपानामुन्मथ्नताममृतलब्धय आदिदेवः । पृष्ठेनकच्छपव-
पुर्विदधारगोत्रं निद्राक्षणाऽद्रिपरिवर्तकषाणकण्डूः ॥ १३ ॥ त्रैविष्टपोरुभयहासनृ-
सिंहरूपंकृत्वा भ्रमद्भ्रुकुटिदंष्ट्रकरालवक्त्रम् । दैत्येन्द्रमाशुगदयाऽभिपतन्तमारा-
दूरौ निपात्यविददारनखैःस्फुरन्तम ॥ १४ ॥ अन्तःसरस्युरुबलेनपदेगृहीतो ग्राहेण
यूथपतिरम्बुजहस्तआर्तः । आहेदमादिपुरुषाखिललोकनाथ तीर्थश्रवःश्रवणमंग-

भंग, करनेको कामदेवकी सेना रूप अप्सरायें आई परन्तु भगवान का व्रतभंग न करसकी ॥६॥ श्रीमहादेव ने क्रोध दृष्टि से कामदेवको जलाडाला परन्तु उस जलतेहुये क्रोधको न जलासके वह क्रोध भी जिनके भीतर व्याप्त होने में डरता है फिर कामदेव विचारा उनके मनमें कैसे प्रवेश करे ॥ ७ ॥ (ध्रुवअवतार) राजा के निकट दूसरी माता सुरुचि ने अहितकारी बाण रूपी बचन कहे उन से विदीर्ण हुए ध्रुवजी पांच वर्ष की अवस्था होने परभी तपस्या करनेको बन में चले गये ध्रुवजी ने वहां भगवान से प्रार्थनाकी भगवानने प्रसन्न होकर उसे ध्रुवपद दिया जिस ध्रुवका मुनि स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥ (पृथुअवतार) जब राजा वेणु कुमार्ग गामी होने के कारण ब्राह्मणों के वाक्यरूपी वज्रसे पौरुष और पुरुषार्थ के नाश को प्राप्त हुआ और नरक में गिरनेलगा तब ऋषियों ने भगवान से प्रार्थनाकी तो वेणुके पुत्रहो, उसको नर्क से रक्षाकी तथा सम्पूर्ण पृथ्वी का दोहन किया और अन्नादिक द्रव्य उत्पन्न किये ॥ ९ ॥ (ऋषभ अवतार) नाभिराजा के घर सुदेवी के ऋषभ पुत्र हुआ जिन्होंने समदर्शी शांतेंद्रिय सबसे विरक्त हो जड़ योग (जड़का भांत समाधि लगाना) समाधि का आचरण किया जिस आचरण को मुनि लोग परमहंस दशा कहते हैं ॥ १० (हयग्रीव अवतार) मेरे यज्ञमें सुवर्ण केसे रंगवाले, छन्दमय, यज्ञमय वेदमय वहां श्री भगवान ने हयग्रीव अवतार धारण किया कि जिनकी नासिका से सुन्दर वेदवाणी उत्पन्नहुई है ॥ ११ ॥ (मत्स्य अवतार) प्रलय समय में वैवस्वत मनुको जिसका दर्शन प्राप्त हुआ ऐसा पृथ्वी के सम्पूर्ण प्राणियों का आश्रयी मत्स्यरूप धारणकर अति गहिरे समुद्र के जलमें से मेरे मुखसे गिरेहुये वेदोंको लेकर प्रलयकाल में बिहार किया ॥ १२ ॥ (कच्छपअवतार का वर्णन) अमृत के हेतु सुर तथा असुरों ने जब समुद्रका मंथन किया तो मन्दराचल तले चलागया तब परमेश्वर ने कच्छप मूर्ति धारणकर पीठपर पर्वत को उठालिया जिसकी रगड़से भगवानको खुजली हुई और निद्रावश होगये ॥ १३ ॥ (नृसिंह अवतार) भक्तों के भयको दूर करनेवाले श्रीविष्णु जी ने चंचल भौंहें और डाढ़ों से भयानक मुखवाला नृसिंहअवतार धारणकर गदालिये समीप फिरतेहुए हिरण्यकश्यप को जंघाओंमें पटक नखोंसे चीरडाला ॥ १४ ॥ (हरिअवतार) सरोवर

लनामधेय ॥ १५ ॥ श्रुत्वाहरिस्तमरणार्थिनमप्रमेयश्चक्रायुधः पतगराजभुजाधिरूढः चक्रेणनक्रवदनंविनिपाट्यतस्माद्धस्ते प्रगृह्यभगवान्कृपयोज्जहार ॥ १६ ॥ ज्यायान्गुणैरवरजोऽप्यदितेःसुतानां लोकान्विचक्रम इमान्यदथाधियज्ञः । क्ष्मांवामनेनजगृहेत्रिपदच्छलेन याञ्चामृतेपथिचरन्प्रभुभिर्नचाल्यः ॥ १७ ॥ नार्थोबलेरयमुरुक्रमपादशौचमापः शिखाधृतवतोविबुधाधिपत्यम । योवैप्रतिश्रुतमृतेन चिकीर्षदन्यदात्मानमंग शिरसाहरयेऽभिमेने ॥ १८ ॥ तुभ्यंचनारदभृशंभगवान्विवृद्धभावेन साधुपरितुष्टउवाचयोगम् । ज्ञानंच भागवतमात्मसतत्त्वदीपंयद्वासुदेवशरणा विदुरंजसैव ॥ १९ ॥ चक्रंचदिक्ष्वविहतंदशसुस्वतेजो मन्वन्तरेषुमनुवंशधरो बिभर्ति । दुष्टेषुराजसुदमंव्यदधात्स्वकीर्तिं सत्येत्रिपृष्ठउशतींप्रथयंश्चरित्रैः ॥ २० ॥ धन्वन्तरिश्चभगवान्स्वयमेवकीर्तिनाम्ना नृणांपुरुरुजांरुजआशुहन्ति । यज्ञेचभागममृतायुरवावरुन्धआयुष्यवेदमनुशास्त्यवतीर्यलोके ॥ २१ ॥ क्षत्रंक्षयायविधिनोपभृतंमहात्मा ब्रह्मध्रुगुज्झितपथंनरकार्तिलिप्सु । उद्धन्त्यसाववनिकण्टकमुग्रवीर्यस्त्रिःसप्तकृत्व उरुधारपरश्वधेन ॥ २२ ॥ अस्मत्प्रसादसुमुखःकलयाकलेश इक्ष्वाकुवंशअवतीर्यगुरोर्निदेशे । तिष्ठन्वनंसदयितानुजआविवेश यस्मिन्विरुध्यदशक-

के भीतर अति बलवान ग्राहने जब गजराजका पांव पकड़लिया तब क्लेशित गजराजने सूंड़में कमल लेकर प्रार्थनाकी कि हे आदि पुरुष ! हे अखिल लोकोंके नाथ! हेतीर्थश्रवण! केवल श्रवण मात्रसे मंगल नाम ! ॥ १५ ॥ मैं आप की शरणागतहूं- भगवान ने ऐसे दुखित वचन गजराज के सुन गरुड़ पर चढ़ चक्रले वहांगये और चक्रसे ग्राहके मुखको चिरडारकर गजराज की सूंड़ हाथमें पकड़ उसको ग्राह के मुख से बचाया ॥ १६ ॥ (वामनअवतार) अदिति के पुत्रों में सब से छोटे यज्ञो के स्वामी, गुणों में सबसे अधिक इन वामन मूर्ति भगवान ने सम्पूर्ण पृथ्वी को नाप लिया । राजा बलिसे तीनपग पृथ्वी मांगने के छलसे समग्र पृथ्वी का हरणकिया धर्म मार्ग मे चलतेहुये मनुष्य को सामर्थ वान पुरुष बिना मांगे पद भ्रष्ट नहीं करसक्ता ॥ १७ ॥ बलि ने भगवान के चरणों का जल शिरमें चढ़ाया और अपना प्रण पालने के अतिरिक्त कुछभी करना न चाहा और जिसने परमेश्वर को तीसरा चरण रखनेके लिये अपनी देह अर्पण करदी हे नारद ! उन बलिराजा की कामना का विषय इन्द्रपद कभी नहीं होसक्ता ॥ १८ ॥ (हंसावतार वर्णन) हे नारद ! तुम्हारी भक्ति से भगवान ने संतुष्ट होकर हंस भगवान ने तुमको योग ज्ञान का तथा आत्म तत्त्व प्रकाशक भगवत् सम्बन्धी ज्ञानका उपदेश किया जिस ज्ञानको भगवद्भक्त विना श्रम के नहीं जानसक्ते ॥ १९ ॥ (मन्वन्तर अवतार) मनु वंशके पालनेवाले जो परमेश्वर अपने सुदर्शन चक्रकी समान अविहित ऐश्वर्य को दशो दिशाओं में धारण करतेहैं दुष्ट राजाओंको दण्ड देतेहुये उस ऐश्वर्यका सप्तलोक पर्यन्त विस्तार किया ॥ २० ॥ (धन्वंतरि अवतार) जो बड़े उग्र रोगियों के रोगोंको केवल अपने नामकेही लेनेसे क्षणमें नष्ट करदेते हैं उन्होंने अवतार धारणकर यज्ञके रुकेहुये भागको प्राप्तहो आयुर्वेदकी प्रवृत्ति की ॥ २१ ॥ (परशुराम अवतार) पृथ्वी के कांटेके समान, नरक की पीड़ा भोगनेवाले ब्रह्मद्वेषी, वेद मार्गसे प्रथक, संसार के नाश क हेतु देवन जिनको बढ़ाया ऐसे क्षत्रियों का श्री भगवान ने अवतार धारणकर २१ बेर अपने बड़े और तीव्रधारवाले फरसेसे समूल नाशकिया ॥२२॥ (रामचन्द्र अवतार) हमपरदयालु मायापति श्री भगवान रामचन्द्रजीने अपने अंशरूप भरतादि भाइयों के संग राजा इक्ष्वाकुके वंशमें जन्मले पिताकी आज्ञा मान अपनी पत्नी श्री सीताजी, तथा भ्राता लक्ष्मण के संग बनको गये जिनसे

न्धरआर्तिमार्च्छत् ॥ २३ ॥ यस्माअदादुदधिरूढभयांगवेपो मार्गंसपद्यरिपुरंहरव-द्दिधक्षोः । दूरेसुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या तातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः ॥ २४ ॥ वक्षःस्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाहदन्तैर्विडम्बितककुब्जुष ऊढहासम्। सद्योऽसुभिः सहविनेष्यति दारहर्तुर्विस्फूर्जितैर्धनुष उच्चरतोऽधिसैन्ये ॥ २५ ॥ भूमेःसुरेतरवरूथविमर्दितायाःक्लेशव्ययायकलयासितकृष्णकेशः। जातःकरिष्यतिजनानुपलक्ष्यमार्गः कर्माणिचात्ममहिमोपनिबन्धनानि ॥ २६ ॥ तोकेनजीवहरणं यदुलूकिकायास्त्रैमासिकस्यच पदाशकटोऽपवृत्तः । यद्रिंगतान्तरगतेनदिविस्पृशोर्वा उन्मूलनंत्वितरथाऽर्जुनयोर्नभाव्यम् ॥ २७॥ यद्वैव्रजेव्रजपशून्विषतोयपीथान्पालांस्त्वजीवयदनुग्रहदृष्टिवृष्ट्या । तच्छुद्धयेऽतिविषवीर्यविलोलजिह्वमुच्चाटयिष्यदुरगंविहरन्ह्रदिन्याम् ॥ २८ ॥ तत्कर्मदिव्यमिव यन्निशिनिःशयानंदावाग्निना शुचिवने परिदह्यमाने। उन्नेष्यतिव्रजमतोऽवसितान्तकालं नेत्रेपिधाप्यसबलोऽनधिगम्यवीर्यः ॥२९॥ गृह्णीतयद्यदुपबन्धममुष्यमाता शुल्वंसुतस्यनतुतत्तदमुष्यमाति य-ज्जृम्भतोऽस्यवदनेभुवनानिगोपी संवीक्ष्यशंकितमनाः प्रतिबोधितासीत् ॥ ३० ॥ नन्दंचमोक्ष्यतिभयाद्वरुणस्य पाशाद्गोपान्बिलेषु पिहितान्मयसूनुनाच । अह्न्यापृतं निशिशयानमतिश्रमेण लोकंविकुण्ठउपनेष्यतिगोकुलंस्म ॥ ३१ ॥ गोपैर्मखेप्रतिहते व्रजविप्लवाय देवेऽभिवर्षतिपशून्कृपयारिरक्षुः । धर्तोच्छिलींध्रमिवसप्त

शत्रुता करके रावण मारागया ॥ २३ ॥ जिसभांति श्री शिवजी त्रिपुरको भस्म किया चाहतेथे वैसे ही श्रीरामचन्द्र जी लंकाको जलाया चाहतेथे उन्हीं रामचन्द्रजीके डरसे कांपतेहुये तथा सीताजीके वियोग से बढ़ेहुये क्रोधके कारण रक्तदृष्टि के पड़ने से जिसके जलजन्तु तपायमान होरहे थे ऐसे समुद्रने शीघ्रही मार्गदिया ॥ २४ ॥ वक्षःस्थलके स्पर्शसे टूटेहुये ऐरावत हाथीके दांतोसे प्रकाशित दिग्पाल और सभा के मध्य धनुष का शब्द करते घूमतेहुये अपनीपत्नी सीता का हरण करनेवाले रावण के प्राणों का शीघ्र नाश करेंगे ॥ २५ ॥ (राम कृष्ण अवतार) सुर और असुरों के अंश मे उत्पन्न हुये राजाओंकी सेनाके भारसे दुःखित पृथ्वीके दुःख नाशके हेतु अपनी कलाओं युक्त कि जिनके श्वेत और कृष्ण केशहै और जिनकी ईश्वरता मनुष्य नहीं जानसक्ता वही भगवान कृष्णरूप से बलदेवजी के साथ अवतार ले यशको विस्तारित करनेवाला कर्म करेंगे २६ ॥ श्री कृष्ण भगवान बालकपन में पूतना का प्राण नाश, तीनमास की अवस्थामें गाड़ी को उलटावेंगे और यमलार्जुन के वृक्षों के मध्यमे घुसकर उन्हे मूलसे उखाडे गे ॥ २७ ॥ ब्रजके भीतर वहां के पशु तथा उनके रक्षक कालीदह का जलपान करके मरजांयगे तब आप अमृत रूपीदृष्टि से देखकर सबको जीवित करेंगे और उस जलको शुद्ध करने के हेतु तीव्रविष तथा चंचल जिह्वा वाले काली सर्पको यमुनाजीमेंस निकालदेंगे ॥ २८ ॥ यह भी दिव्यही कर्म है कि रात्रि मे शयन करते हुये ब्रजवासियोंका अतिम काल जान आंखे बंद करवा अतिशय पराक्रमवाले श्री कृष्ण भगवान श्री बलदेव जी सहित सबको दावानल से बचावेंगे ॥ २९ ॥ माता श्री यशोदा जी उनके बांधने को रस्सीलेंगी परन्तु वह बांधने को पूर्ण न होगी, और श्री कृष्ण जी जब जंभाई लेवेंगे तब इनके मुहमें तीनों लोकों को देख यशोदा जी को शंका उत्पन्नहोगी और श्री कृष्ण भगवान की महिमा को जान जांयगी ॥ ३० ॥ नंदरायजी को वरुण की फांसी के भय से छुडावे गे गुफा मे बंद किये हुए ग्वाल बालों को व्योमासुर से छुड़ावें गे, दिन के कामकाज से आकुल ग्वालवालों को और सोते हुए ब्रजवासियों को वैकुंठ लेजावें गे ॥ ३१ ॥ जब ब्रजबासी ग्वाल इन्द्र पूजा का नाश करेंगे तो इन्द्र ब्रज बहा देने की कांक्षा से अति वर्षा करेगा उस समय पशुओं की रक्षा के हेतु श्रीभगवान

दिनानि सप्तवर्षोमहीध्रमनघैककरेसलीलम् ॥ ३२ ॥ क्रीडन्वनेनिशिनिशाकररश्मि
गौर्यां रासोन्मुखःकलपदायतमूर्च्छितेन उद्दीपितस्मररुजां व्रजभृद्वधूनांहर्तुर्हरिष्य
तिशिरोधनदानुगस्य ॥ ३३ ॥ येचप्रलम्बखरदर्दुरकेश्यरिष्टमल्लेभकंसयवनाःकुज
पौंड्रकाद्याः। अन्येचशाल्वकपिबल्वलदन्तवक्रसप्तोक्षशम्बरविदूरथरुक्मिमुख्याः
॥३४॥येवामृधेसमितिशालिनआत्तचापाः काम्बोजमत्स्यकुरुकैकयसृञ्जयाद्याः ॥
यास्यन्त्यदर्शनमलं बलभीमपार्थ व्याजाह्वयेनहरिणानिलयं तदीयम् ॥ ३५ ॥
कालेनमीलितधियामवमृश्यनृणां स्तोकायुषांस्वनिगमोबतदूरपारः आविर्हित-
स्त्वनुयुगंसहिसत्यवत्यां वेदद्रुमंविटपशोविभजिष्यतिस्म ॥ ३६ ॥ देवद्विषांनिग-
मवर्त्मनिनिष्ठितानां पूर्भिर्मयेनविहिताभिरदृश्यतूर्भिः । लोकान्घ्नतांमतिविमोहम-
तिप्रलोभं वेषंविधायबहुभाष्यतऔपधर्म्यम् ॥ ३७ ॥ यर्ह्यालयेष्वपिसतांनहरेःक-
थाःस्युः पाखण्डिनोद्विजजनावृषलानृदेवाः । स्वाहास्वधावषडितिस्मगिरोनयत्र
शास्ताभविष्यतिकलेर्भगवान्युगान्ते ॥ ३८ ॥ सर्गेतपोऽहमृषयोनवयेप्रजेशाः
स्थानेचधर्ममखमन्वमराऽवनीशाः । अन्तेत्वधर्महरमन्युवशासुराद्या मायाविभू-
तयइमाःपुरुशक्तिभाजः ॥ ३९ ॥ विष्णोर्नुवीर्यगणनांकतमोऽर्हतीहयः पार्थिवान्य-
पिकविर्विममेरजांसि । चस्कम्भयःस्वरंहसाऽस्खलतात्रिपृष्ठं यस्मात्त्रिसाम्यस-
दनादुरुकम्पयानम् ॥ ४० ॥ नान्तंविदाम्यहममीमुनयोऽग्रजास्ते मायाबलस्यपु-

७ वर्ष की आयु में छतरी की भांति सात दिवस पर्य्यंत अपनें हाथों पर गोवर्धन धारण करें गे ॥ ३२ ॥ रात्रि में चन्द्रमा की किरणों से शोभित, बन में रास क्रीडा करतें हुए, श्रीकृष्णजी की बंशी की मधुर तान से ब्रजांगनायें कामदेव से पीड़ित होंगी फिर उनके हरनें वाले कुबेर के सेवक शंकचूड़ का सिर काटा जायगा ॥ ३३ ॥ इसी भांति प्रलंबासुर, धेनुकासुर, बकासुर, केशी,आरिष्ट, बक, मल्ल, मुष्टिक, शलादिक असुर तथा कुवलयापीड़हाथी, कंस, कालयवन, भौमासुर, पौंड्रक, शाल्व राजा, द्विविद, बल्वलदशवासी, दंतवक्र, सांतलेल, शंबरासुर, बिदूरथ, और रुक्म इत्यादिक ॥ ३४ ॥ तथा संग्राम में अपनी प्रशंसा करनें वाले, युद्ध में धनुष लेनें वाले, कांबोज, मत्स्य, बिराट, कुरु, कैकय, और संजय, आदि देशों के राजा, इन सबको श्रीकृष्णचन्द्रजी बलदेव, अर्जुन व भीमसेन के निश्चय से मारेंगे इस लिये वह सब वैकुंठ जांयगे, ॥ ३५ ॥ (व्यासावतार) अपनें बनाये हुए वेद का पार होना अल्पायु और अल्पज्ञानी पुरुषों को अति दुस्तर है ऐसा बिचार कर भगवान सत्यवती स्त्री मे वेदव्यास अवतार धारणकर वेदरूप वृक्ष को शाखा रूप से बिभाग करेंगे ॥ ३६ ॥ (बुद्धावतार) अलक्ष्य योग बाले मय दैत्य के बनाये पुर में बैठकर देवताओं के द्रोही और वेद मार्ग मे लगेहुए दैत्यों की बुद्धि को भ्रमाने बाला अति मनोंहर वेष बनाकर लोगों का नाश करते हुए, पाखण्ड धर्मका उपदेश करेंगे ॥ ३७ ॥ (कल्किअवतार) जिस काल सज्जनों के भी घर में भगवत कथा न होगी और ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, पाखण्डी होजांयगे, तथा शूद्र, राजा होंगे, और जब कहीं स्वाहा, स्वधा, वषट् ऐसी वाणी न होगी तब कलियुग के अंत में श्रीभगवान कल्कि अवतार धारण कर सृष्टि का पालन करेंगे ॥ ३८ ॥ सृष्टि रचनाके हेतु तो मैं और ऋषि, तथा प्रजापति हैं और पालन के हेतु धर्म, यज्ञ मनु, देवता और पृथ्वी के राजा है और संहारने के हेतु अधर्म, महादेव क्रोध, तथा दैत्य हैं परंतु यह सब भगवानकीही बिभूति हैं ॥ ३९ ॥ यह संक्षेप से कहा विस्तारसे कहनेकी किसीकी सामर्थ्य नहीं है, जिन विष्णु भगवान के चरण के प्रहार से अत्यंत कंपायमान सत्यलोक समेत सम्पूर्ण सृष्टिको जिन त्रिविक्रम भगवान ने धारण किया उनके पराक्रमोंकी गणना ऐसा जगत में कौन है जो करे, जो कवि, पंडित पृथ्वी के रज कण की गणना कर सकें वेभी तो उनके पराक्रमों की गणना नहीं कर सकते ॥ ४० ॥

रुपस्यकुतोऽपरेय । गायन्गुणान्दशशताननआदिदेवः शेषोऽधुनापिसमवस्यति-
नास्यपारम् ॥४१॥ येषांसएवभगवान्दययेदनन्तः सर्वात्मनाश्रितपदोयदिनिर्व्य-
लीकम् । तेदुस्तरामतितरन्त्यथदेवमायां नैषांममाहमितिधीःश्वसृगालभक्ष्ये
४२॥ वेदाऽहमङ्गपरमस्यहियोगमायां यूयंभवश्चभगवानथदैत्यवर्यः । पत्नीमनोः
सच मनुश्चतदात्मजाश्च प्राचीनबर्हिऋभुरङ्गउतध्रुवश्च ॥ ४३ ॥ इक्ष्वाकुरैल-
मुचुकुन्दविदेहगाधिरघ्वम्बरीषसगरागयनाहुषाद्याः । मान्धात्रलर्कशतधन्वनुरन्ति
देवा देवव्रतोबलिरमूर्तरयोदिलीपः ॥ ४४ ॥ सौभर्युतंकशिबिदेवलपिप्पलादसा
रस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः । येऽन्येविभीषणहनूमदुपेन्द्रदत्तपार्थार्ष्टिषेणविदुर
श्रुतदेववर्याः ॥ ४५॥ तेवैविदन्त्यतितरन्तिचदेवमायां स्त्रीशूद्रहूणशबराअपिपाप
जीवाः । यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षास्तिर्यग्जना अपिकिमुश्रुतधारणाये ४६
शश्वत्प्रशान्तमभयं प्रतिबोधमात्रं शुद्धंसमंसदसतः परमात्मतत्त्वम् । शब्दोनयत्र
पुरकारकवान्क्रियार्थो मायापरैत्यभिमुखे चविलज्जमाना ॥ ४७ ॥ तद्वैपदंभगव
तःपरमस्यपुंसो ब्रह्मेतियद्विदुरजस्रसुखंविशोकम् । सध्र्यंनियम्ययतयोयमकर्तहे
तिं जहयुस्वराडिवनिपानखनित्रमिन्द्रः ॥ ४८ ॥ सश्रेयसामपिविभुर्भगवान्यतोऽ
स्य भावस्वभावविहितस्यसतःप्रसिद्धिः । देहस्वधातुविगमेऽनुविशीर्यमाणे व्यो
मेव तत्रपुरुषोनविशीर्यतेऽजः ॥ ४९ ॥ सोऽयंतेभिहितस्तात भगवान्विश्वभावनः।

हे नारद ! जिन भगवान की योगमाया का अंत न मैंने पाया न तेरे बड़े भाइयों ने पाया तो और मनुष्य क्या पावेंगे, सहस्र मुख वाले आदि देव श्री शेषजी ने गान करते हुये अब तक उनके गुणों का पार नहीं पाया ॥ ४१ ॥ जिस पर श्री कृष्ण भगवान दया करते हैं वे आत्म भावसे श्री भगवान के चरणों का आश्रय करते हैं और वे परमेश्वरकी अपार माया से पार होते हैं क्योंकि कुत्ता, स्यारके भक्ष्य इस शरीरमें "मेरा है" यह बुद्धि उनको नहीं होती ॥ ४२ ॥ हे अंग ! हे नारद ! नारायणकी योग मायाको मैं जानता हूं तुम जानते हो, भगवान महादेव, प्रह्लाद मनु, मनुकीस्त्री शांतरूपा, मनुके पुत्र प्रियव्रतादिक, प्राचीन बर्हि, ऋभु, अंगराज, ध्रुव, ॥ ४३ ॥ इक्ष्वाकु राजा, पुरूरवा, मुचकुंद, विदेह गाधि, रघु, अंबरीष, सगर, गय, नहुष, मांधाता, अलर्क शतधनु, अनु, रन्ति देव, भीष्म, बलि, अमूर्तरय, दिलीप ॥ ४४ ॥ सौभरि, उतंक, शिवी, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत, उद्धव, पराशर, भूरिषेण, विभीषण, हनुमान, शुकदेव, अर्जुन, आर्ष्टिषेण, विदुर. श्रुतदेव आदि यह सब भगवान की माया को जानते हैं ॥ ४५ ॥ यदि स्त्री, शूद्र, हूण, शबर और भी पापी जीव तथा पशुपक्षी भी भगवद्भक्तों के उपदेशको धारणकरें तो वह परमेश्वर की माया को जान उससे पार होसकते हैं फिर जो परमेश्वर के स्वरूपमें चित्त लगाते हैं उनका क्या कहना है ॥ ४६ ॥ उन परमेश्वर स्वरूप सदैव शांत, अभय, प्रतिबोधमात्र ज्ञान स्वरूप, सुखरूप, शुद्ध रूप, समज्ञानघन, भेदशून्य, सद सत् कार्य्य कारण से परे है तथा ज्ञाताका स्वरूप भूत ही है जिस में वाणी का व्यापार कुछ काम नहीं देता और जिसमें नाना भांतिके साधनों से फली भूत होने वालीं क्रियाका चतुर्विध फल नहीं है जिसके सामनेसे माया लजाकर दूरभागजाती है ॥ ४७ ॥ जैसे कंगाल मनुष्य धनी होने पर मजूरी के साधन पदार्थों को त्याग देता है वैसेही जो यती लोग सदैव संग रहने वाले मनके जिस परमेश्वर के रूप में स्थिर करके अभेद ज्ञानके साधन छोड़ देते हैं वही परम पुरुष परमात्माका साक्षात् रूप है जिसे ब्रह्म भी कहते हैं ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणादिकों के शम दम आदि स्वभावों के द्वारा जिन शुभकर्मों की प्रसिद्धि है और छूटने के उपरांत भूतों के वियोग होनेपर भी आकाश की भांति जिन अजन्मा पुरुषका वियोग नहीं होता,

समासेनहरेर्नान्यदन्यस्मात्सदसच्चयत् ॥ ५० ॥ इदंभागवतंनाम यन्मेभगवतोदितम् । संग्रहोऽयं विभूतीनांत्वमेतद्विपुलीकुरु ॥ ५१ ॥ यथाहरौभगवतिनृणां भक्तिर्भविष्यति । सर्वात्मन्यखिलाधार इतिसंकल्प्यवर्णय ॥ ५२ ॥ मायांवर्णयतोऽमुष्य ईश्वरस्यानुमोदतः । शृण्वतःश्रद्धयानित्यं माययाऽऽत्मानमुह्यति ॥ ५३ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेद्वितीयस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मणाचोदितोब्रह्मन्गुणाख्यानेऽगुणस्यच । यस्मैयस्मैयथा प्राह नारदोदेवदर्शनः ॥ १ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामि तत्त्वंवेदविदांवर । हरेरद्भुतवीर्यस्य कथालोकसुमङ्गलाः ॥ २ ॥ कथयस्वमहाभाग यथाहमखिलात्मनि । कृष्णे निवेश्यनिःसंगमनस्त्यक्ष्येकलेवरम् ॥ ३ ॥ शृण्वतःश्रद्धयानित्यंगृणतश्चस्वचेष्टितम् । कालेननातिदीर्घेण भगवान्विशतेहृदि ॥ ४ ॥ प्रविष्टःकर्णरन्ध्रेण स्वानांभावसरोरुहम् । धुनोतिशमलंकृष्णः सलिलस्ययथाशरत् ॥ ५ ॥ धौतात्मापुरुषः कृष्णपादमूलंनमुंचति । मुक्तसर्वपरिक्लेशः पान्थःस्वशरणंयथा ॥ ६ ॥ यदधातुमतो ब्रह्मन् देहारम्भोऽस्यधातुभिः । यदृच्छयाहेतुनावा भवन्तोजानतेयथा ॥ ७ ॥ आसीद्यदुदरात्पद्मं लोकसंस्थानलक्षणम् । यावानयंवैपुरुषइयत्ताऽवयवैःपृथक् । तावानसावितिप्रोक्तः संस्थाऽवयववानिव ॥ ८ ॥ अजःसृजतिभूतानि भूतात्मा यदनुग्रहात् । ददृशेयेनतद्रूपं नाभिपद्मसमुद्भवः ॥ ९ ॥ सचापियत्रपुरुषोविश्वस्थि

वह परमेश्वर सम्पूर्ण फलों के देने वाले हैं ॥ ४९ ॥ हे नारद ! सृष्टिके उत्पन्न करने वाले परमेश्वर की यह कथा मैंने संक्षेप से कही, कारण और कार्यरूप संसार हरिसे पृथक् नहीं है परन्तु भगवान सब से भिन्न हैं ॥ ५० ॥ यह भागवत नाम पुराण जो परमेश्वर ने मुझसे कहाथा और विभूति जो इन्द्रादिक देवता हैं उसका तू विस्तार कर ॥ ५१ ॥ जैसे मनुष्यों की भक्ति अंतर्यामी भगवान में होजाय वैसेही तुम कल्पना करके वर्णन करो ॥ ५२ ॥ जो मनुष्य भक्ति पूर्वक भगवान की माया का वर्णन, अनुमोदन तथा श्रवण करते हैं उनकी आत्मा माया से मोहको नहीं प्राप्त होती ॥ ५३ ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणे०सरलाभाषाटीकायांद्वितीयस्कन्धेसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

परीक्षितने कहा हे ब्रह्मन् ! जब निर्गुण भगवानके गुणोंका वर्णन करनेके हेतु ब्रह्माने प्रेरणाकी तब नारद जीने जैसे२ कहा वह सब आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥ हे तत्व वेताओंमें श्रेष्ठ ! उसको मैं तत्व से जानना चाहता हूं इस से आप अद्भुत पराक्रम वाले श्री भगवानकी मंगल कारी कथा कहो ॥ २ ॥ जिस भांति मैं अन्तर्यामी श्री कृष्ण भगवान में निः संग चित को लगाकर देह का त्याग करूं ॥ ३ ॥ जो भगवान के चरित्रों को श्रद्धा पूर्वक पढ़ना अथवा श्रवण करता है उस के हृदय में श्री भगवान थोड़े ही काल में प्रवेश करते हैं ॥ ४ ॥ कर्णों के छिद्र द्वारा श्री कृष्ण भगवान आप ने भक्तों के हृदय कमल में प्रवेश करके सब मलों को दूर कर देते हैं जैसे शरद ऋतु जल के मल को दूर करदेता है ॥ ५ ॥ पाप रहित मनुष्य श्री कृष्ण जीके चरणों को ऐसे नहीं त्यागता जैस बटोही अपनी राह को नहीं त्यागता ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! पंच महा भूतों के सम्बधसे रहित इस सांसारिक आत्माके जो पंच महाभूतों से शरीर का आरम्भ है वह विना हेतु है अथवा कारण करके है यह आप भली प्रकार जानते हैं इस लिये जैसा हो वैसा कहिये ॥ ७ ॥ जिन के उदर से कमल उत्पन्न हुआ और वह कमल सृष्टि रचना का स्वरुप है उस पुरुष के अवयव उतने ही हैं जितने कि सांसारिक मनुष्यों के हैं फिर इस सांसारिक मनुष्य और विराट् पुरुष में क्या अन्तर है ॥ ८ ॥ जिन की कृपा से, नाभि कमल से उत्पन्न हुये ब्रह्मा जी प्राणियों का रचते हैं और जिन के अनुग्रह से परमेश्वर के रूप को जानते हैं ॥ ९ ॥ वह सृष्टि

त्युद्भवाप्ययः । मुक्त्वात्ममायांमायेशः शेतेसर्वगुहाशयः ॥ १० ॥ पुरुषावयवैर्लोकाः सपालाःपूर्वकल्पिताः । लोकैरमुष्यावयवाःसपालैरितिशुश्रुम ॥ ११ ॥ यावान्कल्पोविकल्पोवा यथाकालोऽनुमीयते । भूतभव्यभवच्छब्द आयुर्मानंचयत्सतः ॥ १२ ॥ कालस्यानुगतिर्यातु लक्ष्यतेऽण्वीबृहत्यपि । यावत्यःकर्मगतयो यादृशीर्द्विजसत्तम ॥ १३ ॥ यस्मिन्कर्मसमावायो यथायेनोपगृह्यते। गुणानांगुणिनांचैव परिणाममभीप्सताम् ॥ १४ ॥ भूपातालककुब्व्योमग्रहनक्षत्रभूभृताम् । सरित्समुद्रद्वीपानां संभवश्चैतदोकसाम् ॥ १५ ॥ प्रमाणमण्डकोशस्यबाह्याभ्यन्तरभेदतः महतांचानुचरितं वर्णाश्रमविनिश्चयः ॥ १६ ॥ अवतारानुचरितं यदाश्चर्यतमंहरेः युगानियुगमानंच धर्मोयश्चयुगेयुगे ॥ १७ ॥ नृणांसाधारणोधर्मः सविशेषश्चयादृशः । श्रेणीनांराजर्षीणांच धर्मःकृच्छ्रेषुजीवताम् ॥ १८ ॥ तत्त्वानांपरिसंख्यानं लक्षणंहेतुलक्षणम् । पुरुषाराधनविधिर्योगस्याऽऽध्यात्मिकस्यच ॥ १९ ॥ योगेश्वरैश्वर्यगतिर्लिङ्गभङ्गस्तुयोगिनाम् । वेदोपवेदधर्माणामितिहासपुराणयोः ॥ २० ॥ संप्लवःसर्वभूतानां विक्रमःप्रतिसंक्रमः । इष्टापूर्तस्यकाम्यानांत्रिवर्गस्यचयोविधिः ॥२१॥ यश्चानुशायिनांसर्गः पाखण्डस्यचसंभवः । आत्मनोबन्धमोक्षौचव्यवस्थानंस्वरूपतः ॥ २२ ॥ यथात्मतन्त्रोभगवान्विक्रीडत्यात्ममायया विसृज्यवायथामायामुदास्तेसाक्षिवद्विभुः ॥२३॥ सर्वमेतच्चभगवन्पृच्छतेमऽनुपूर्वशः । तत्त्वतोऽर्ह-

के स्थिति, पालन, उत्पत्ति,जन्म और संहार के हेतु भूत, सर्वान्तर्यामी, भगवान अपनी माया को छोड़कर जिसरूप से विराजते हैं वह कहो ॥ १० ॥ हमने तो आप ही से सुना है कि परमेश्वर के अवयवों से सृष्टि की कल्पना लोक पालो सहित हुई है, और लोक पालों समेत सृष्टि से इन के अवयवों की कल्पना हुई है ॥ ११ ॥ महाकल्प और अवांतर कल्प का कितना प्रमाण है ! भूत, भविष्यत,वर्तमान का वाचक काल किस भांति से अनुमान किया जाता है, मनुष्य, देवता, और पितृ आदि की आयु का कितना प्रमाण है ॥ १२ ॥ हे उत्तम ब्राह्मण ! काल की स्थूल और सूक्ष्म गति किस भांति से जानी जाती है ! कर्मों मे प्राप्त होने वाले स्थान कितने और कैसे हैं ॥१३ ॥ सत्व, रज, और तमोगुण के परिणाम देवादिक रूप उस की इच्छा करने वाले प्राणियों में से कौन प्राणी कैसे २ कर्मों से किन २ देहों को प्राप्त होते हैं ॥१४ ॥ पृथ्वी, पाताल, दिशा, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पहाड़, नदियां, समुद्र और टापू इन की और इन मे रहने वाले प्राणियों की उत्पत्ति किस भांति से होती है ॥ १५ ॥ ब्रह्माण्ड का भीतर बाहर से कितना विस्तार है, बड़े मनुष्यों के चरित्र तथा वर्ण (ब्राह्मण आदि) और आश्रम (ब्रह्मचर्य) के धर्म्म ॥ १६ ॥ श्री परमेश्वर के आश्चर्य्य रूप अवतार, लीला, युग युगों का प्रमाण, प्रत्येक युग में जो धर्म होते हैं वह सब कहिये ॥ १७ ॥ मनुष्यो के साधारण धर्म और विशेष धर्म कैसे हैं नीच तथा राजा ओं का धर्म कैसा है और जोकष्ट के विषे जीने वाले हैं तिनके धर्म कहो ॥ १८ ॥ प्राकृत आदि तत्वों की गणना, लक्षण,स्वरूप, हेतु और परमेश्वर के पूजन की विधि तथा देवताओं की पूजा, अध्यात्मिक व अष्टांग योग की विधि कहो ॥ १९ ॥ योगेश्वरों का अणिमादिक सिद्धि द्वारा ऐश्वर्य्य, उन से अचिरादि गति जो हो कहिये, योगियों के लिंग देह का भंग, वेद उपवेद, धर्मशास्त्र, इतिहास और पुराणों के रूप ॥ २० ॥ सब प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति, पालन, प्रलय, महाप्रलय, वेद, स्मृति के कर्म्म विधि तथा धर्म, अर्थ, काम का अविरोध प्रकार यह सब कहो ॥ २१ ॥ परमात्मामें लीन होनेवाले प्राणियों की उत्पत्ति पाखंडकी उत्पत्ति, आत्माका बन्धन व मुक्ति, तथा आत्माका निज स्वरूपमें स्थिति कहो ॥ २२ ॥ स्वाधीन परमात्मा अपनी

स्युदाहर्तुंप्रपन्नायमहामुने ॥ २४ ॥ अत्रप्रमाणंहि भवान्परमेष्ठीयथात्मभूः। परेचेहानुतिष्ठान्ति पूर्वेषांपूर्वजैःकृतम् ॥ २५ ॥ नमेऽसवःपरायंति ब्रह्मन्नशनादमी। पिबताऽच्युतपीयूषमन्यत्र कुपितान्द्विजात् ॥ २६ ॥ सूतउवाच ॥ सउपामंत्रितो राजा कथायामितिसत्पतेः। ब्रह्मरातोभृशंप्रीतो विष्णुरातेनसंसदि ॥ २७ ॥ प्राह भागवतंनाम पुराणंब्रह्मसंमितम् ॥ब्रह्मणेभगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्पउपागते ॥२८॥ यद्यत्परीक्षिदृषभः पांडूनामनुपृच्छति। आनुपूर्व्येणतत्सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ २९ ॥

इतिम०भ०द्वि०राजकृतप्रश्नविधिर्नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ आत्ममायामृते राजन्परस्यानुभवात्मनः। नघटेतार्थसंबन्धःस्वप्नद्रष्टुरिवाञ्जसा ॥ १ ॥ बहुरूपइवाभाति माययाबहुरूपया। रममाणोगुणेष्वस्या ममाहमितिमन्यते ॥ २॥ यर्हिवावमहिम्निस्वे परस्मिन्कालमाययोः। रमेतगत संमोहस्त्यक्त्वोदास्ते तदोभयम् ॥ ३॥ आत्मतत्त्वविशुद्ध्यर्थं यदाहभगवानृतम्। ब्रह्मणेदर्शयन्रूपमव्यलीकव्रतादृतः ॥ ४ ॥ सआदिदेवोजगतांपरोगुरुः स्वधिष्ण्यमास्थायसिसृक्षयैक्षत।तांनाध्यगच्छद्दृशमत्रसंमतां प्रपञ्चनिर्माणविधिर्ययाभवेत् ॥ ५ ॥ सचिन्तयन्द्व्यक्षरमेकदाऽम्भस्युपाशृणोद्विर्गदितं वचो विभुः। स्पर्शेषुयत्षोडशमेकविंशं निष्किंचनानांनृपयद्धनंविदुः ॥ ६॥ निशम्यतद्वक्तृदिदृ-

माया में विहार करते हैं अथवा माया को छोड़ कर साक्षी की भांति स्थित हैं ॥ २३ ॥ हे महा मुनि! जो मुझ शरणा गत ने आपसे पूछा वह सब यथार्थ रूप से क्रमपूर्वक कहो ॥ २४ ॥ इस विषय में जिस भांति नारद जी को ब्रह्माजी का कहना प्रमाण है, वैसे ही मुझे आपका कहना प्रमाण है क्यों कि अग्रजों के भी अग्रजों के लिये कर्म का सम्पादन किया है प्रयोजन यह है कि हम लोग परम्परा से गति के ऊपर के चलने वाले नहीं हैं ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन् क्रोधित ब्राह्मण के शाप के अतिरिक्त अन्न, जल के छोड़ने से मेरा यह जीव नहीं घबड़ाता क्योंकि श्री कृष्ण भगवान की अमृत रूप कथा मैं पान कर रहा हूं ॥२६ ॥ सूतजीने कहा—कि राजा परीक्षितके भगवत सम्बंधी प्रश्न करने पर शुकदेव जीने प्रसन्न हो कर वेद की समान भागवत पुराण का आरम्भ किया कि जो ब्रह्म कल्प में परमेश्वर ने ब्रह्मा जी से कहा था ॥ २७ ॥ । ॥ २८ ॥ पांडव शिरोमणि राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी से जिस २ भांति के प्रश्न किये उन सब का उत्तर वह क्रमानुसार देने लगे ॥ २९ ॥

इतिश्री भागवते महापुराणे द्वितीयस्कंध सरलाभाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

श्री शुकदेवजी बोले कि महाराज! जैसे स्वप्नावस्था में जीवका सम्बन्ध देह से नहीं घटता वैसेही परम श्रेष्ठ अनुभव स्वरूप देह के संग ईश्वर की माया का सम्बन्ध नहीं घटता ॥ १ ॥ नाना रूप वाली माया से आत्मा नाना प्रकार से प्रकाशमान है तथा इस माया के गुणों में रमण करता अहंता ममता बांधे है यही संसार है ॥ २ ॥ जब अज्ञान नष्ट होजावे काल और माया से परे निज आनन्द में रमण करै और अहंता तथा ममता को त्याग कर पूर्ण रूप से स्थित हो, यही मोक्ष का रूप है ॥ ३ ॥ आत्म तत्व की विशुद्धि के हेतु ब्रह्माजी ने निष्कपट तप करके श्री परमेश्वर की सेवा की तब उन्होंने ब्रह्माजी को दर्शन दे आत्मा का रूप कहा ॥४॥ जगद्गुरु आदि देव ब्रह्माजी सृष्टि सृजने की इच्छा से अपनें स्थान (कमल) में बैठकर सोचनें लगे किंतु सृष्टि रचनाका बनाव बनानें की कुछभी विधि न समझ पड़ी ॥ ५ ॥ एक समय जलमें बैठे सोचते हुए ब्रह्माजी नें "स्पर्श" अर्थात् ककार से मकार तक २५वर्णोंमे १६ वां "त" और २१ वां "प" अर्थात् तप ये दो अक्षर दो बार कहे हुए निकटही सुने महाराज! यह तप त्यागी

क्षयादिशो विलोक्यतत्राऽन्यदृपश्यमानः । स्वधिष्ण्यमास्थायविमृश्यतद्धितं तपस्युपादिष्ठइवाऽऽदधेमनः ॥ ७ ॥ दिव्यंसहस्राब्दममोघदर्शनो जितानिलात्माविजितोभयेन्द्रियः । अतप्यतस्माऽखिललोकतापनं तपस्तपीयांस्तपतांसमाहितः ॥ ८ ॥ तस्मैस्वलोकंभगवान्सभाजितः संदर्शयामासपरंनयत्परम् । व्यपेतसंक्लेशविमोहसाध्वसं स्वदृष्टवद्भिर्विबुधैरभिष्टुतम् ॥ ९ ॥ प्रवर्ततेयत्ररजस्तमस्तयोः सत्वंचमिश्रंनचकालविक्रमः । नयत्रमाया किमुतापरेहरेरनुव्रता यत्रसुरासुरार्चिताः ॥ १० ॥ श्यामावदाताः शतपत्रलोचनाःपिशंगवस्त्राःसुरुचःसुपेशसः सर्वेचतुर्बाहव उन्मिषन्मणिप्रवेकनिष्काभरणाः सुवर्चसः । प्रवालवैडूर्यमृणालवर्चसः परिस्फुरत्कुण्डलमौलिमालिनः ॥ ११ ॥ भ्राजिष्णुभिर्यः परितोविराजते लसद्विमानावलिभिर्महात्मनाम् । विद्योतमानःप्रमदोत्तमाद्युभिः सविद्युदभ्रावलिभिर्यथा नभः १२श्रीर्यत्ररूपिण्युरुगायपादयोः करोतिमानं बहुधाविभूतिभिः । प्रेंखंश्रितायाकुसुमाकरानुगैर्विगीयमाना प्रियकर्मगायती ॥ १३ ॥ ददर्शतत्राखिलसात्वतांपतिं श्रियःपतिंयज्ञपतिं जगत्पतिम् । सुनन्दनन्दप्रबलार्हणादिभिः स्वपार्षदमुख्यैःपरिसेवितंविभुम् ॥ १४ ॥ भृत्यप्रसादाभिमुखं दृगासवं प्रसन्नहासारुणलोचनाननम् । किरीटिनंकुण्डलिनंचतुर्भुजं पीताम्बरंवक्षसिलक्षितंश्रिया ॥ १५ ॥ अध्यर्हणीयासनमास्थितंपरंवृतं चतुःषोडशपंचशक्तिभिः । युक्तंभगैःस्वैरितरत्रचाध्रुवैःस्वएव

मनुष्यों का धन कहाता है ॥ ६ ॥ तप २ यह कहने वाला कौन है इस के ढूंढने के लिये ब्रह्माजी ने चारों दिशा ओं में देखा किंतु कोई दूसरा देखने में न आया तब अपने स्थान कमल मे बैठ सोचकर तप को अपना हित समझ तप करने में चित्त लगाया ॥ ७ ॥ जिसका ज्ञान सुफल है और जिस ने वायु, मन, आत्मा, ज्ञानेन्द्री और कर्मेन्द्रियों को जीत लिया है ऐसे अमोघ दर्शन ब्रह्माजी ने देवताओं के सहस्र बर्ष पर्य्यन्त तप किया ॥ ८ ॥ भगवान ने उस तप से ब्रह्मा जी पर प्रसन्न हो कर अपना वैकुंठ लोक दिखाया, उस लोक से श्रेष्ठ कोई दूसरा लोक नहीं है कि जहां पर किसी भांत का दुःख, मोह और डर नहीं है, जिसकी स्तुति पुण्यात्मा मनुष्य और देवता करते हैं ॥ ९ ॥ वहापर रज, सत, और तम इन गुणों का प्रवेश नहीं है परन्तु शुद्ध सत्व की प्रवृति है, जहां पर काल का पराक्रम और माया नहीं है फिर और कहां से हो वहा देवता तथा दैत्योंसे पूजित श्री भगवानके पार्षद हैं ॥ १० ॥ कमलसे नेत्र तथा पीत वस्त्र पहिने कांतिवान, सुंदर, तेजवान और चतुर्भुज रूप धारण किये उत्तम मणियों के आभूषण पहिने और कमल नाल की समान रंग वाले पार्षद, वहां निवास कर ते हैं ॥ ११ ॥ जहां महात्मा ओं के प्रकाशमान सुंदर२ विमानों की पंक्तियां चारों ओर जगमगा रही हैं जैसे बादल के भीतर मेघमाला में बिजली चमकती है वैसे ही बिमानों में बैठी हुई सुंदर स्त्रियें शोभायमान है ॥१२॥ जहां लक्ष्मी जी हिंडोले में बैठी हुई नानाभांति की विभूतियों से श्री परमेश्वर के चरणों की सेवा करती हैं तथा बसंत के सेवक भौंरे जो आप की कीर्ति गाते हैं उसे सुन ऐसा ज्ञान होता है कि लक्ष्मी जी अपने प्यारे भगवान का यश गाती हैं ॥ १३ ॥ उस स्वर्ग लोक मे भक्तों के पति, लक्ष्मी पति, यज्ञ पति, जगत पति, श्री भगवान कि जिन की सेवा सुनन्द, नंद, प्रबल, अर्हण आदि मुख्य २ पार्षद कर रहे हैं उन का दर्शन किया ॥ १४ ॥ वे भगवान अपने भक्तों पर सदैव कृपा दृष्टि रखते हैं,जिनकी दृष्टि आनंद देने वाली है जिनकामुख सदैव प्रसन्न रहताहै तथा अरुण नेत्र हैं पीताम्बर पहिनें कुंडल झलकाये क्रीट धारण किये तथा चतुर्भुज रूप है और वक्षस्थल में श्री लक्ष्मीजी का चिन्हहै ॥ १५ ॥ श्रेष्ट सिंहासनपर बैठे हुए हैं और चारों ओर से पच्चीस तत्व

धामन्रममाणमीश्वरम् ॥ १६ ॥ तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुतांतरो हृष्यत्तनुःप्रेमभराश्रुलोचनः । ननामपादाम्बुजमस्य विश्वसृग्यत्पारमहंस्येन पथाऽधिगम्यते ॥ १७ ॥ तंप्रीयमाणंसमुपस्थितंतदा प्रजाविसर्गे निजशासनार्हणम् । बभाषईषत्स्मितशोचिषागिरा प्रियःप्रियंप्रीतमनाःकरेस्पृशन् ॥ १८श्रीभगवानुवाच॥त्वयाऽहंतोषितः सम्यग्वेदगर्भ सिसृक्षया । चिरंभृतेनतपसादुस्तोषः कूटयोगिनाम् ॥ १९ ॥ वरंवरयभद्रंतेवरेशं माऽभिवाञ्छितम् । ब्रह्मञ्छ्रेयः परिश्रामः पुंसोमद्दर्शनावधिः ॥ ॥ २० ॥ मनीषितानुभावोऽयं ममलोकावलोकनम् ॥ यदुपश्रुत्य रहसिचकर्थपरमंतपः ॥ २१ ॥ प्रत्यादिष्टंमयातत्र त्वयिकर्मविमोहिते । तपोमेहृदयंसाक्षादात्माऽहंतपसोनघ ॥२२॥ सृजामितपसैवेदंग्रसामितपसापुनः । बिभर्मितपसाविश्वं वीर्यंमेदुश्चरंतपः ॥ २३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भगवन्सर्वभूतानामध्यक्षोऽवस्थितो गुहाम् । वेदह्यप्रतिरुद्धेन प्रज्ञानेनचिकीर्षितम् ॥ २४ ॥ तथापिनाथमानस्य नाथनाथयनाथितम् । परावरेयथारूपे जानीयां तत्वरूपिणः ॥ २५ ॥ यथाऽऽत्ममायायोगेन नानाशक्त्युपबृंहितम् । विलुम्पन्विसृजन्गृह्णन्बिभ्रदात्मानमात्मना ॥ २६ ॥ क्रीडस्यमोघसंकल्प ऊर्णनाभिर्यथोर्णुते । तथा तद्विषयांधेहि मनीषांमयिमाधव ॥ २७ ॥ भगवच्छिक्षितमहं करवाणिह्यतन्द्रितः । नेहमानःप्रजासर्गं बध्येयंत्वदनुग्रहात् ॥ २८ ॥ यावत्सखासख्युरिवेशतेकृतः प्रजाविसर्गे विभजामिभोजनम् । अविक्लवस्तेपरि

रूप अपनी शक्तियों युक्त हैं अणिमादिक सिद्धियां जो स्वभावसे ही दूसरों में स्थिर नहीं उनके निकट खड़ी हैं, जो सर्वदा अपनेही रूप में रमण कररहे हैं ॥ १६ ॥ ऐसे परमेश्वर को देख ब्रह्माजी का अंतःकरण हर्ष को प्राप्त हुआ और प्रेम के कारण नेत्रों से आंसू निकल पड़े । ऐसे सृष्टि के रचनें वाले ब्रह्माजी नें श्रीभगवान के चरणकमलों को कि जो परमहंस के मार्ग से प्राप्त होते हैं नमस्कार किया ॥ १७ ॥ प्रेम के वशहो सृष्टि रचनें के हेतु अपने सामनें खड़ेहुए,आज्ञा करनें योग्य ब्रह्माजी को श्रीभगवान नें देखकर, मुसक्याकर शोभायमान वाणी से. प्रसन्न हो हाथ पकड़ कर कहा ॥ १८ ॥ कि हे ब्रह्मन् तुमनें सृष्टि रचनें के हेतु बहुतकालतक तप किया इससे मैं बड़ा प्रसन्न हूं जे छल युक्त मेरा भजन करते हैं उनपर मैं कभी प्रसन्न नहीं होता ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे भद्र ! तुह्मारा कल्याण हो, तुममनवांछित वर मांगो क्यों कि संसार में वर देनेवाला एक मैंही हूं, और मनुष्य के हेतु तो मेरे दर्शनों से बढ़कर दूसरा कल्याणही नहीं है ॥ २० ॥ यह मेरीही इच्छा का प्रभाव है कि तुमने मेरा लोक देखा क्योंकि एकांतमें जो तुमने "तप तप" सुनकर तप किया ॥ २१ ॥ सृष्टि रचना के कार्य्यमें तुमको मोहित देखकर मैंनही उपदेश किया था, हे अनघ ! यह तपही मेरा साक्षात् हृदय है और मैंतप की आत्मा हूं ॥ २२ ॥ मैं इससृष्टि को तपही द्वारा रचता हूं फिर प्रलय करके इससंसार को ग्रसता हूं और तपही से विश्व का पालन करता हूं यही मेरा ऐश्वर्य्य और पराक्रम है ॥ २३ ॥ ब्रह्माजी बोले—कि हे भगवन् आप सब प्राणियों के स्वामीहो तथा सब के हृदयों में स्थितहो इससे आप अप्रतिहत ज्ञान से सब का कर्म जानते हो ॥ २४ ॥ तौभी हे स्वामी ! मैं जो आपसे विनती करता हूं वह आप पूरी करैं प्रथम तो मैं आपके अरूपी, स्थूल, तथा सूक्ष्म स्वरूपको जान जाऊं ॥ २५ ॥ तथा जैसे अपनी मायासे नाना शक्तियों करके इस बड़े हुये संसारको रचते पालते और संहार करते हो ॥ २६ ॥ आपका संकल्प सत्य है और आपही ब्रह्माआदि स्वरूप धारणकर मकरीकी भांति जैसे वह अपने जाले के भीतर खेलती है वैसे ही आप क्रीड़ा करते हो इन सब विषयों के जानने के हेतु आप बुद्धि देवें ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! आपकी आज्ञानुसार आलस्य रहित हो सृष्टि को अवश्य रचूंगा

कर्मणिस्थितो मामेसमुन्नद्धमदोऽजमानिन ॥ २९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञानंपरम गुह्यंमेयद्विज्ञानसमन्वितम् । सरहस्यंतदंगंच गृहाणगदितंमया ॥ ३० ॥ यावानहं यथाभवो यद्रूपगुणकर्मकः ॥ तथैवतत्त्वविज्ञानमस्तुते मदनुग्रहात् ॥ ३१ ॥ अहमेवा ऽऽसमेवाऽग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् । पश्चादहंयदेतच्च योऽवशिष्येतसोऽस्म्यहम् ॥ ३२ ॥ ऋतेऽर्थंयत्प्रतीयेत न प्रतीयेतचात्मनि । तद्विद्यादात्मनोमायां यथाभासो यथातमः ॥ ३३ ॥ यथामहान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु । प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथातेषु न तेष्वहम् ॥ ३४ ॥ एतावदेवजिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः ॥ अन्वयव्य तिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्रसर्वदा ॥ ३५ ॥ एतन्मतंसमातिष्ठ परमेनसमाधिना । भ वान्कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥ ३६ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ सम्प्रदिश्यैवम जनो जनानांपरमेष्ठिनम् । पश्यतस्तस्यतद्रूपमात्मनोन्यरुणद्धरिः ॥ ३७ अन्तर्हितेन्द्रिया र्थाय हरयेविहितांजलिः । सर्वभूतमयोविश्वं ससर्जेदंसपूर्ववत् ॥ ३८ ॥ प्रजाप तिर्धर्मपतिरेकदा नियमान्यमान् । भद्रंप्रजानामन्विच्छन्नातिष्ठत्स्वार्थकाम्यया ३९. तंनारदः प्रियतमो रिक्थादानामनुव्रतः । शुश्रूषमाणःशीलेन प्रश्रयेणदमेनच ॥ ४० ॥ मायांविविदिषन्विष्णोर्मायेशस्यमहामुनिः । महाभागवतोराजन्पितरंपर्यतोषयत् ॥ ४१ ॥ तुष्टंनिशाम्यपितरं लोकानांप्रपितामहम् । देवर्षि परिपप्रच्छ भवान्यन्माऽ

परंतु सृष्टि रचना करते समय मैं बंधनमें न आऊं ऐसी दयाकरो ॥ २८ ॥ हे ईश ! मित्रकी भांति आपने हाथ पकड़कर मेरा सत्कार किया है, इसहेतु आपकी सेवा में एकाग्र चित्त होकर जबतक उत्तम, मध्यम कनिष्ठ भेद से सृष्टि रचूं तब तक अपने "स्वतंत्र सृष्टि कर्ता हूं" का मुझे अहंकार न होवे ॥ २९ ॥ श्री भगवान ने ब्रह्मा जीकी प्रार्थना सुनकर कहा कि परम गुह्य शास्त्रमें उत्पन्न हुआ, अनुभव किया हुआ ज्ञान, जो मैं कहता हूं वह ज्ञानरहस्य भक्ति सहित धारणकरो ॥ ॥ ३० ॥ जैसा मेरा रूप, गुण, कर्म, और मेरी सत्ता है, उन सबका यथार्थज्ञान तुम्हें मेरी दया से होजावे ॥ ३१ ॥ सृष्टि से पहिलेमैंहीथा और स्थूल, सूक्ष्म उनका परम कारण प्रधान यहकुछ भी नहीं थे, सृष्टि के अनंतर मैंहीहूं, जो कुछ यह माया है वह सब मैंहीं हूं और जो अंतमें शेष रहेगा वह भी मैंही हूं ॥ ३२ ॥ असत्य होने पर जो सत्य और सत्य होने पर असत्य ज्ञात होता है वहभी मेरीही मायाका स्वरूप है, जैसे चन्द्रादिक आभास और राहुग्रह तम है ॥ ३३ ॥ जैसे पंचमहाभूत पृथ्वी, तेज, आप, वायु, आकाश, उत्तम, मध्यम, अधम प्राणियों में प्रवेश कर रहे हैं और नहीं भी हैं वैसेही उनमें मैं हूं और नहीं भी हूं ॥ ३४ ॥ तत्वेत्ता मनुष्यको इतना ही जानना चाहिये, आत्मा, अन्वय और व्यतिरेक इनसे सम्पूर्ण विपयका प्रतिकार होताहै, वैसही जाग्रदादिक अवस्था में साक्षिता करके अन्वय व्यतिरेक साधन करके जो जिज्ञास्यहै वही आत्मा है ॥ ३५ ॥ सावधान होकर इस मत को धारण करो इससे कल्प सम्बन्धी सृष्टि रचना में तुम को कदापि मोह नहोगा ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि अजन्मा भगवान सृष्टि के स्वामी ब्रह्मा जी को इस भांति शिक्षा दे उनके देखते २ अन्तर्धान होगए ॥ ३७ ॥ सर्व आत्मा ब्रह्माजी ने सन्मुख से अन्तर्धान हुए हरि भगवानको हाथ जोड़कर पूर्व कल्प की अनुसार इस सृष्टि की रचना की ॥ ३८ ॥ एक काल धर्म के स्वामी प्रजापति ब्रह्माजी ने स्वार्थ की कामना करके प्रजाके कल्याण के हेतु यम नियम धारण किये ॥ ३९ ॥ पुत्रों के मध्य में अत्यन्त प्यारे, ईश्वर के परम भक्त अपने पिता के सेवक तथा आज्ञावर्ती नारदजी नें शील, नम्रता, और इन्द्रिय दमन करके ॥ ४० ॥ मायाके स्वामी विष्णु भगवान की माया को जानने की इच्छासे पिता को प्रसन्न किया

तुपृच्छति ॥ ४२ ॥ तस्माइदंभागवतं पुराणंदशलक्षणम् । प्रोक्तंभगवताप्राह प्रीतः पुत्रायभूतकृत् ॥ ४३ ॥ नारदःप्राहमुनये सरस्वत्यास्तटेनृप । ध्यायतेब्रह्मपरमं व्यासायाऽमिततेजसे ॥ ४४ ॥ यदुताऽहंत्वयापृष्टो वैराजात्पुरुषादिदम् । यथाऽऽसीत्तदुपाख्यास्ये प्रश्नानन्यांश्च कृत्स्नशः ॥ ४५ ॥

इतिश्री मद्भा० म० द्विती० नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

॥ श्रीशुकउवाच ॥ अत्रसर्गोविसर्गश्च स्थानंपोषणमूतयः । मन्वतरेशानुकथा निरोधोमुक्तिराश्रयः ॥ १ ॥ दशमस्यविशुद्ध्यर्थं नवानामिहलक्षणम् । वर्णयंतिमहात्मानः श्रुतेनाऽर्थेनचांजसा ॥ २ ॥ भूतमात्रेन्द्रियधियांजन्मसर्गउदाहृतः । ब्रह्मणोगुणवैषम्याद्विसर्गःपौरुषःस्मृतः ॥ ३ ॥ स्थितिर्वैकुण्ठविजयः पोषणंतदनुग्रहः । मन्वन्तराणिसद्धर्म ऊतयःकर्मवासनाः ॥ ४ ॥ अवतारानुचरितं हरेश्चास्यानुवर्तिनाम् । पुंसामीशकथाःप्रोक्ता नानाख्यानोपबृंहिताः ॥ ५ ॥ निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनःसहशक्तिभिः । मुक्तिर्हित्वाऽन्यथारूपं स्वरूपेणव्यवस्थितिः । ॥ ६ ॥ आभासश्चनिरोधश्च यतश्चाऽध्यवसीयते । सआश्रयःपरंब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते ॥ ७ ॥ योऽध्यात्मिकोऽयंपुरुषः सोऽसावेवाधिदैविकः । यस्तत्रोभयवि

॥ ४१ ॥ सृष्टि के प्रपितामह अपने पिता ब्रह्माजी को प्रसन्न देखकर नारदजीने वह प्रश्न किया जो तुमने मुझसे किया है ॥ ४२ ॥ तब सृष्टि के उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर दश लक्षण वाला भागवत नाम पुराण जो भगवान से सुनाथा वही उन्होंने नारदजी से कहा ॥ ४३ ॥ हे महाराज ! नारदजी ने सरस्वती के तट पर परमात्मा का ध्यान करते हुए बड़े प्रभावशाली व्यास जी से कहा ॥ ४४ ॥ यह संसार बिराट् पुरुष से किस भांति उत्पन्न हुआ यह तुमने पूछा तथा और भी प्रश्न किये उन सबका मैं तुम्हे उत्तर देताहूं सो सुनो ॥ ४५ ॥

इति श्री भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे सरला भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्री शुकदेजी बोले कि–इस भागवत में सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशान कथा, निरोधमुक्ति और आश्रय इन दश विषयों का वर्णन है ॥ १ ॥ दशवें विषय परमात्मा के स्वरूप ज्ञान के हेतु साधूलोग स्तुति आदि स्थल में तो साक्षात् श्रुतिद्वारा और आख्यान भाग में तात्पर्य द्वारा नवों विषयों का यहां वर्णन करते हैं ॥ २ ॥ पंचभूत, पृथ्वी, अप् , तेज, वायु, आकाश, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, इन्द्रीयें, अहंकार, और महत्तत्व इन का गुणोंके परिणाम द्वारा जो परमेश्वर से उत्पन्न होताहै उसको सर्ग (१) कहते हैं विराट पुरुषकी रचीहुई सृष्टिको विसर्ग(२) कहते हैं ॥ ३ ॥ रचीहुई वस्तुओं की मर्यादा पालनमें जो वैकुंठ भगवान की महिमाहै उसे स्थिति कहते हैं (३) अपने भक्तों पर जो कृपा करते हैं उसे पोषण (४) कहते हैं, परमेश्वरके कृपा पात्र श्रेष्ठ मन्वंतरों के अधिपतियों के धर्म को मन्वंतर (५) कहते हैं, कर्मों की वासनाओं को ऊति (६) कहते हैं ॥ ४ ॥ भगवान के अवतार तथा भगवद्भक्तों के चरित्रों से बढ़ी हुई श्रेष्ठ कथा को ईशान कथा (७) कहते हैं ॥ ५ ॥ हरि भगवान में योग निद्रा के अनंतर जो जीवात्मा का शक्तियों के संग लयहोता है उसे निरोध (८) कहते हैं–अन्यथा रूप अर्थात् जीवरूप को त्याग कर ब्रह्म रूपमें स्थित हो उसे मुक्ति (९) कहते हैं ॥ ६ ॥ उस परब्रह्म परमात्मा को जिससे आविर्भाव और तिरोभाव प्रकाशित होता है उसे आश्रय (१०) कहते हैं ॥ ७ ॥ इनचक्षु आदि इन्द्रियोंका अभिमानी, और द्रष्टा जीव आध्यात्मिक कहलाताहै, इन्ही चक्षु आदिके अधिष्ठाता सूर्य आदि देवता कहलाते हैं, इसी एक स्वरूप में अध्यात्म और अधिदैव इन दोनो भेदों

च्छेदः पुरुषोह्याधिभौतिकः ॥ ८ ॥ एकमेकतराभावे यदानोपलभामहे । त्रितयं तत्रयोवेदसआत्मास्वाश्रयाश्रयः ॥ ९ ॥ पुरुषोऽण्डंविनिर्भिद्ययदासौसविनिर्गतः आत्मनोऽयनमन्विच्छन्नपोऽस्राक्षीच्छुचिःशुचीः ॥ १० ॥ तास्ववात्सीत्स्वसृष्टासु सहस्रपरिवत्सरान् । तेननारायणोनाम यदापःपुरुषोद्भवाः ॥ ११ ॥ द्रव्यंकर्मचका लश्च स्वभावोजीवएवच । यदनुग्रहतःसंति नसन्तियदुपेक्षया ॥ १२ ॥ एको नानात्वमन्विच्छन्योगतल्पात्समुत्थितः । वीर्यंहिरण्मयंदेवो माययाव्यसृजत्त्रिधा ॥ १३ ॥ अधिदैवमथाऽध्यात्ममधिभूतमितिप्रभुः । अथैकंपौरुषंवीर्यं त्रिधाऽभिद्यत तच्छृणु ॥ १४ ॥ अन्तःशरीरआकाशात्पुरुषस्यविचेष्टतः । ओजःसहोबलंजज्ञेततः प्राणोमहानसुः ॥ १५ ॥ अनुप्राणन्तियंप्राणः प्राणन्तंसर्वजन्तुषु । अपानन्तमपानन्ति नरदेवमिवानुगाः ॥ १६ ॥ प्राणेनाक्षिपताक्षुत्तृडन्तराजायतेप्रभोः । पिपासतो जक्षतश्च प्राङ्मुखंनिरभिद्यत ॥ १७ ॥ मुखतस्तालुनिर्भिन्नं जिह्वातत्रोपजायते । ततोनानारसोजज्ञे जिह्वयायोऽधिगम्यते ॥१८॥ विवक्षोर्मुखतोभूम्नोवह्निर्वाग्व्या हृतंतयोः । जलेवैतस्यसुचिरं निरोधःसमजायत ॥ १९ ॥ नासिकेनिरभिद्येतां दोधूयतिनभस्वति । तत्रवायुर्गंधवहो घ्राणोनसिजिघृक्षतः ॥ २० ॥ यदात्मनिनिरा-

---

को अलग २ प्रगट करने वाला चक्षु आदि इन्द्रियों के गोलकादिकों से उपलक्षित यह देह आधिभौतिक कहलाता है ॥ ८ ॥ इन तीनों की परस्पर सापेक्षसिद्धि है इससे इन तीनो में एक के न होने से दूसरा नहीं प्रगट होता, इन तीनो पदार्थों को जो साक्षीपन से देखता है वही आश्रय रूप परमात्मा है, उसको किसी दूसरे का आश्रय नहीं है ॥ ९ ॥ अध्यात्म आदि पदार्थों को फैलाकर उनके वर्णनकरनेको सृष्टि प्रकार कहते हैं, सृष्टि रचनाके आदि समयमें जब विराट् पुरुष अण्डको फोड़कर बाहर निकला और अपने निवास के लिये जब स्थान की इच्छा हुई तब पवित्र परमेश्वर ने आपही पवित्र जल उत्पन्न किया ॥ १० ॥ निज रचित जल में सहस्रों वर्ष रहने के कारण आपका नारायण नाम हुआ--नारायण शब्द का यह अर्थ है कि नरनाम भगवान का है उससे उत्पन्न हुआ नार अर्थात् जल--जो जल में वासकरे उसका नाम नारायण है॥ ११ ॥ जिन की कृपासे द्रव्य,काल,कर्म,स्वभाव और प्राण यह सब कार्य करते हैं और उनकी इच्छा न होनेपर कार्य नहीं होसकते ॥१२॥ योगशय्या से उठे हुये प्रभुने नानाप्रकारके होने की इच्छा करके हिरण्यमय, तेजमय वीर्य्य को माया से तीन प्रकार का रचा ॥ १३ ॥ अधिदैव, अध्यात्म, और अधिभूत रूपसे उसके तीन विभाग किये वह एक शरीर जैसे तीन शरीरों में भिन्न २ विभक्त हुआ मैं कहता हूं तुम सुनो ॥ १४ ॥ पुरुष भगवान के शरीर के भीतर रहे हुये आकाश से क्रिया शक्ति द्वारा अनेकों भांति की चेष्टा करते, ओज, सहबल (अर्थात् इन्द्री, मन, देहकी शक्तियें) उत्पन्न हुए इसके उपरांत सूत्रात्मा नामक मुख्यप्राण शक्तिमय सूक्ष्म स्वरूपसे उत्पन्नहुआ जो सबका प्राण है ॥ १५ ॥ सम्पूर्ण प्राणियों में प्राण की चेष्टा से सब इन्द्रियें चेष्टा करती हैं, जैसे राजाके अनुचरों का व्यवहार राजाके वशीभूत है ॥ १६ ॥ विराट् पुरुष की देह में सबको चलाने वाले इस प्राणके कारण, भूंख और प्यास उत्पन्न हुई इसके उपरांत भूंखे प्यासे विराट् का प्रथम मुख उत्पन्न हुआ ॥ १७ ॥ मुख से तालू, जिह्वा, इन्द्री, उत्पन्न हुई फिर अनेकों भांति के रस उत्पन्न हुये जो जीभसे ज्ञात होते हैं, फिर वरुण देवता प्रगट हुए ॥ १८ ॥ विराटको सम्भाषण करने की इच्छा हुईतो उसके मुखसे अग्नि देवता और वाक्इन्द्री और वार्त्ता का विषय उत्पन्न हुआ वाणी और अग्नि सम्बंधी वार्त्ता विषय का बहुत समय तक जलमें निरोधहुआ ॥ १९ ॥ भीतर

लोकमात्मानंचदिदृक्षतः । निर्भिन्नेह्यक्षिणीतस्य ज्योतिश्चक्षुर्गुणग्रहः ॥ २१ ॥ बो ध्यमानस्यऋषिभिरात्मनस्तज्जिघृक्षतः । कर्णौचानिरभिद्येतां दिशःश्रोत्रंगुणग्रहः ॥ २२ ॥ वस्तुनोमृदुकाठिन्यलघुगुर्वोष्णशीतताम् जिघृक्षतस्त्वङ्निर्भिन्ना तस्यां रोममहीरुहाः तत्रचान्तर्बहिर्वातस्त्वचा लब्धगुणोवृतः ॥२३॥ हस्तौरुरुहतुस्तस्य नानाकर्मचिकीर्षया । तयोस्तुबलमिन्द्रश्च आदानमुभयाश्रयम् ॥२४॥ गतिंजिगीषतःपादौ रुरुहातेऽभिकामिकाम् । पद्भ्यांयज्ञःस्वयंहव्यं कर्मभिःक्रियतेनृभिः २५ निरभिद्यतशिश्नोवै प्रजानंदामृतार्थिनः उपस्थआसीत्कामानां प्रियंतदुभयाश्रयम् ॥ २६ ॥ उत्सिसृक्षोर्धातुमलं निरभिद्यतवैगुदम् । ततःपायुस्ततोमित्र उत्सर्गउभयाश्रयः ॥ २७ ॥ आसिसृप्सोःपुरःपुर्या नाभिद्वारमपानतः । तत्रापानस्ततोमृत्युःपृथक्त्वमुभयाश्रयम् ॥२८॥ आदित्सोरन्नपानानामासन्कुक्ष्यन्त्रनाडयः । नद्यःसमुद्राश्चतयोस्तुष्टिःपुष्टिस्तदाश्रये ॥ २९ ॥ निदिध्यासोरात्ममायां हृदयंनिरभिद्यत । ततोमनस्ततश्चन्द्रः संकल्पःकामएवच ॥ ३० ॥ त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जास्थिधातवः । भूम्यप्तेजोमयाःसप्त प्राणोव्योमाऽम्बुवायुभिः ॥ ३१ ॥ गुणात्मकानींद्रियाणिभूतादिप्रभवागुणाः । मनःसर्वविकारात्मा बुद्धिर्विज्ञानरूपिणी ॥ ३२ ॥

बहुत प्राण वायु भरकर धुकधुकाने लगा उस काल नासिका उत्पन्न हुई, सूंघने की इच्छाहुई तो नासिका में गंधको लेजाने वाला पवनदेवता घ्राणइन्द्री और गंधविषय प्रगट हुआ ॥ २० ॥ जब अपनी आत्मा में कुछभी दृष्टि न आया तब अपने शरीर तथा दूसरी वस्तुओं के देखने की कामना होने से विराट् के नेत्र उत्पन्न हुये उनमें चक्षु इन्द्री, सूर्य्य देवता और रूप विषय प्रगटहुआ ॥ २१ ॥ वेद वाक्य सुनने की इच्छा से विराट् के कान उत्पन्न हुये उनमें श्रोत्रइन्द्री दिशा देवता और शब्द विषय उत्पन्न हुआ ॥ २२ ॥ वस्तुओं की लघुता और कठिनता, कोमलता तथा गुरुता, ऊष्णता, शीतलता, इनके ग्रहण करने की इच्छा हुई तो विराट् के त्वचा उत्पन्न हुई जिसमें रोमइन्द्री, वृक्ष देवता और स्पर्श विषय उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥ त्वचा के बाहर भीतर वायु है इससे इसका स्पर्श गुणजाना जाता है—नाना भांतिके कर्म करने की इच्छा से विराट् के हाथ उत्पन्न हुये, इसमें बल इन्द्री, इन्द्र देवता और ग्रहण करना विषय प्रगट हुआ ॥ २४ ॥ गमन करने की इच्छा से विराट् के चरण उत्पन्न हुये चरणों के संग उनके अधिष्ठाता विष्णु हैं और उनसे चलन शक्ति रूप चरण इन्द्री उत्पन्न हुई, और जो पदार्थ मनुष्यों के चलने से मिलसक्ते हैं वह पदार्थ रूप विषय प्रगट हुआ ॥ २५ ॥ संतान, रतिसुख, और स्वर्गादिलोकों की कामनावाले विराट् के शिश्न उत्पन्न हुआ उसमें उपस्थ इन्द्री, प्रजापति देवता और काम संबंधी विषय उत्पन्न हुआ ॥ २६ ॥ भक्ष्य पदार्थों के मलके त्यागकी इच्छा करते विराट्के गुदा उत्पन्न हुई, उसमें पायुइन्द्री, मित्र देवता और उत्सर्ग विषय उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ जब उसको एक शरीर त्यागकर दूसरे शरीर के ग्रहणकी कांक्षा हुई तो नाभिद्वार प्रगट हुआ उसमें अपान वायु इन्द्री, मृत्यु देवता तथा मरण विषय उत्पन्न हुआ ॥ २८ ॥ विराट् को अन्न जल ग्रहण करने की इच्छा हुई तब कुक्षि, उदर, आंत और नाड़ी उत्पन्न हुई उनमें नदी तथा समुद्र देवता, कुक्षिगोलक, नाड़ी इन्द्री और पुष्टि विषय प्रगट हुआ ॥ २९ ॥ जब विराट् पुरुष ने अपनी माया का सदैव चिंतवन करना चाहा तो हृदय उत्पन्न हुआ उसमे मन इन्द्री, चन्द्रमा देवता, और संकल्प तथा मनोर्थ विषय उत्पन्न हुये ॥ ३० ॥ त्वक्, चर्म, मांस, रुधिर, मेद, मज्जा, हड्डी यह सात धातुयें पृथ्वी, जल और तेज से उत्पन्न होती हैं। प्राण, आकाश जल और वायु से उत्पन्न होते हैं ॥ ३१ ॥ इन्द्रियां विषयोंके अभिमुख स्वभाव वाली हैं, विषय अच्छे स्वभाव वाले नहीं हैं इनकी सुंदरता अहंकार से कल्पित है। मन सम्पूर्ण विकारों का

एतद्भगवतोरूपं स्थूलंतेव्याहृतंमया । मह्यादिभिश्चावरणैरष्टभिर्बहिरावृतम् ॥३३॥ अतःपरंसूक्ष्मतममव्यक्तं निर्विशेषणम् । अनादिमध्यनिधनं नित्यंवाङ्मनसःपरम् ॥३४॥ अमुनीभगवद्रूपे मयातेअनुवर्णिते । उभेअपिनगृह्णन्ति मायासृष्टेविपश्चितः ॥३५॥ सवाच्यवाचकतया भगवान्ब्रह्मरूपधृक् । नामरूपक्रियाधत्ते सकर्माऽकर्मकःपरः ॥३६॥ प्रजापतीन्मनून्देवानृषीन्पितृगणान्पृथक् । सिद्धचारणगन्धर्वान्विद्याध्रासुरगुह्यकान् ॥ ३७ ॥ किन्नराप्सरसोनागान्सर्पान्किंपुरुषोरगान् ॥ मातृरक्षःपिशाचांश्च प्रेतभूतविनायकान् ॥३८॥ कूष्माण्डोन्मादवेतालान्यातुधानान्ग्रहानपि। खगान्मृगान्पशून्वृक्षान्गिरीन्नृपसरीसृपान् ॥ ३९. ॥ द्विविधाश्चतुर्विधायेऽन्ये जलस्थलनभौकसः । कुशलाकुशलामिश्राः कर्मणांगतयस्त्विमाः ॥ ४० ॥ सत्त्वंरजस्तमइतितिस्रःसुरनृनारकाः । तत्राप्येकैकशोराजन्भिद्यंतेगतयस्त्रिधा ॥ यदैकैकतराऽन्याभ्यां स्वभावउपहन्यते ॥ ४१ ॥ सएवेदंजगद्धाता भगवान्धर्मरूपधृक् । पुष्णातिस्थापयन्विश्वं तिर्यङ्नरसुरात्मभिः ॥४२ ॥ ततःकालाग्निरुद्रात्मा यत्सृष्टमिदमात्मनः । संनियच्छतिकालेन घनानीकमिवाऽनिलः ॥ ४३ ॥इत्थंभावेनकाथितो भगवान्भगवत्तमः । नेत्थंभावेनहि परंद्रष्टुमर्हन्तिसूरयः ॥ ४४ ॥ नास्यकर्मणि जन्मादौ परस्यानुविधीयते । कर्तृत्वप्रतिषेधार्थं माययाऽऽरोपितंहितत् ॥ ४५ ॥

स्वरूप भूत है, परन्तु बुद्धि विज्ञान रूपिणी है ॥ ३२ ॥ बाहिर से आठ पृथ्वी आदि आठ आवरणोंसे युक्त यह ब्रह्मा रूप भगवानका स्थूल रूप कहा ॥ ३३ ॥ इस स्थूल रूप से परे अत्यंत सूक्ष्म रूप अप्रगट, निर्विशेषण, आदि मध्य अंतरहित तथा वाणी और मन से परे है ऐसा दूसरा सूक्ष्मस्वरूप है ॥ ३४ ॥ श्रीभगवान के इन दोनों स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंका वर्णन किया परन्तु पण्डित लोग माया के रचे जाने के कारण इन दोनों स्वरूपों को परमेश्वर का सच्चा स्वरूप नहीं मानते ॥ ३५ ॥ माया करके सक्रिय ऐसे परमात्मा वाचक रूपसे वास्तवमे निष्क्रिय होनेपरभी शब्द जाल तथा रूप और क्रियाको रचते हैं ॥ ३६ ॥ प्रजापति, मनु, देवता, ऋषि, पितृगण, सिद्ध, चारण, विद्याधर, गन्धर्व, दैत्य, यक्ष ॥ ३७ ॥ किन्नर, अप्सरा, नाग, सर्प, किंपुरुष, उरग, मातृका, पिशाच, राक्षस, भूत, प्रेत, विनायक ॥३८॥ कछुवे, उन्माद, वेताल, यातुधान, ग्रह, पक्षी, मृग, पशु, पेड़, पहाड़, पेट से चलने वाले जीव ॥ ३९ ॥ और भी जलचर, थलचर, नभचर, जीव कि जो स्थावर, जंगम भेद से दोभांति के और जरायुज, अण्डज, उद्भिज, और स्वेदज भेद से चार भांति के है। हे राजा! इन सब प्राणियों को परमेश्वर रचते हैं और सब योनियोंमें देव आदि श्रेष्ठ योनि केवल पुण्य कर्मके फलरूप हैं। मनुष्य आदि मध्यम योनि पाप पुण्य के फल हैं और अधम योनि पाप का ही फल है ॥ ४० ॥ देव, ऋषि आदि सात्विक योनि हैं, मनुष्य राजस योनि, और शेष (नारकी) शरीर तामस योनि हैं। महाराज! इन तीनगुणों में जब एक एक गुणके साथ दूसरे दो २ गुण मिलजाते हैं तो प्रत्येक कर्म फल की गतिके तीन २ भेद होते हैं ॥ ४१ ॥ वही सृष्टि के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर पशु, मनुष्य, देवता आदि के रूप से अवतार ले सृष्टि पालन के हेतु धर्म का रूप धारण कर उसका पोषण भी करते हैं ॥ ४२ ॥ फिर जैसे पवन मेघोंका संहार करता है वैसे ही काल, अग्नि, रुद्र रूपहो निजरचित इस संसारका संहार करते हैं ॥४३॥ इसभांति मैंने अत्यंत ऐश्वर्य्य वाले श्री भगवान का संसार के उत्पत्ति, पालन, संहार करने वाले रूपोंका वर्णन किया परन्तु पण्डित लोगों को शुद्ध परमेश्वर का रूप केवल इसी भांति से न देखना चाहिये ॥ ४४ ॥ इस सृष्टिके उत्पन्न आदिक कर्मके हेतु जो इसभांति से कथन किया गयाहै वह भगवानके करतृत्वके प्रतिषेध के हेतु नहीं है क्योंकि वह परमात्मा की ही माया शक्ति से आरोपित है यह ब्रह्मा जी का

अर्यंतुब्रह्मणःकल्पः साविकल्पउदाहृतः । विधिःसाधारणोयत्र सर्गाःप्राकृतवैकृताः ॥ ४६ ॥ परिमाणंचकालस्य कल्पलक्षणविग्रहम् । यथापुरस्ताद्व्याख्यास्ये पाद्मं कल्पमथोशृणु ॥ ४७ ॥ शौनकउवाच ॥ यदाहनोभवान्सूत क्षत्ताभागवतोत्तमः । चचारतीर्थानि भुवस्त्यक्त्वाबन्धून्सुदुस्त्यजान् ॥ ४८॥ कुत्रकौषारवेस्तस्य संवादो ऽध्यात्मसंश्रितः । यत्रासभगवांस्तस्मै पृष्टस्तत्त्वमुवाचह ॥ ४९ ॥ ब्रूहिनस्तदिदं सौम्य विदुरस्यविचेष्टितम् ॥ बन्धुत्यागनिमित्तंच तथैवागतवान्पुनः ॥ ५० ॥ सूतउवाच ॥ राज्ञापरीक्षितापृष्टो यदवोचन्महामुनिः । तत्रोऽभिधास्येशृणुत राज्ञः प्रश्नानुसारतः ॥ ५१ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणे अष्टादशसाहस्र्यांवैयासिक्यां द्वितीयस्कंधे पुरुषसंस्थानुवर्णनंनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ समाप्तोऽयं द्वितीयस्कन्धः ॥ २ ॥

महाकल्प मैंने अवांतर कल्प समेत कहा । अवांतर कल्प में स्थावर जंगम सृष्टिका प्रकार तथा महाकल्प में महतत्व आदि सृष्टिका प्रकार समान है ॥ ४६ ॥ काल का स्थूल, सूक्ष्म परिमाण और कल्प का लक्षण तथा मन्वंतरादि व अवांतर कल्पका विभाग यह सम्पूर्ण आगे विस्तार पूर्वक कहूंगा । अब पाद्म कल्प कहताहूं उसे सुनिये ॥ ४७ ॥ शौनक जीने कहा कि हेसूत ! आपने जो हमसे कहाथा कि भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ विदुरजी अपने न छोड़ने योग्य भाइयोंको छोड़कर तीर्थ पर्य्यटन को निकल गये ॥ ४८ ॥ उन विदुर जी तथा मैत्रेय जी की अध्यात्म ज्ञान सम्बंधी वार्ता कहां हुई और विदुर जी के पूछने पर श्री मैत्रेय जी ने उन्हें किस तत्वका उपदेश किया ॥ ४९ ॥ और विदुर जी अपने भाइयों को छोड़कर फिर पीछे क्यों आये—हे सौम्य ! विदुर जी सब के चरित्र हमसे कहो ॥ ५० ॥ सूतजी ने कहा कि—राजा परीक्षित् के प्रश्न करने पर श्री शुकदेवजी ने जो कहा वह उसी के अनुसार आप से वर्णन करूंगा ॥ ५१ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणे द्वितीयस्कन्धे सारस्वतजगन्नाथात्मजकन्हैयालालउपाध्यायविरचितायां सरलाभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

द्वितीयस्कन्धः समाप्तः ॥

श्रीमद्भागवत भाषाटीका सहित.

तृतीयस्कन्ध.

ॐनमोभगवतेवासुदेवाय ॥ श्रीशुकउवाच ॥एवमेतत्पुरापृष्टो मैत्रेयोभगवान् किल । क्षत्रावनंप्रविष्टेन त्यक्त्वास्वगृहमृद्धिमत् ॥ १ ॥ यद्वाअयंमन्त्रकृद्वो भगवानखिलेश्वरः ।पौरवेन्द्रगृहंहित्वा प्रविवेशात्मसात्कृतम् ॥२॥ राजोवाच ॥ कुत्रक्षत्तुर्भगवता मैत्रेयेणाऽऽससंगमः ।कदावासह संवाद एतद्वर्णयनः प्रभो॥३॥नह्यल्पार्थोदयस्तस्य विदुरस्याऽमलात्मनः । तस्मिन्वरीयसिप्रश्नः साधुवादोपबृंहितः ॥४॥ सूतउवाच । सएवमृषिवर्योऽयं पृष्टोराज्ञापरीक्षिता । प्रत्याहतंसुबहुवित् प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ५ ॥ श्रीशुकउवाच ॥यदातुराजा स्वसुतानसाधून्पुष्णन्नधर्मेण विनष्टदृष्टिः । भ्रातुर्यविष्ठस्यसुतान् विबन्धून् प्रवेश्यलाक्षाभवनेददाह ॥ ६ ॥ यदा सभायांकुरुदेवदेव्याः केशाभिमर्शंसुतकर्मगर्ह्यम् । नवारयामासनृपः स्नुषायाः स्वास्रैर्हरन्त्याःकुचकुंकुमानि ॥ ७ ॥ द्यूतेत्वधर्मेणजितस्यसाधोः सत्यावलम्बस्य वनागतस्य । नयाचतोऽदात्समयेनदायं तमोजुषाणोयदजातशत्रोः ॥ ८ ॥ यदा च पार्थप्रहितःसभायां जगद्गुरुर्यानिजगादकृष्णः । नतानिपुंसाममृतायनानि राजोरुमेनेक्षतपुण्यलेशः ॥ ९ ॥ यदोपहूतोभवनंप्रविष्टो मन्त्रायपृष्टःकिलपूर्वजेन ॥

श्रीशुकदेव जी बोले कि–विदुर जीने अपने सम्पत्ति युक्त घरको छोड़कर वनमें जाय भगवान मैत्रेय जी से प्रथम इसी भांति यही प्रश्न किया था ॥ १ ॥ जो विदुर जी पांडवों को सलाह देनेवाले थे, जगद्पति श्रीकृष्ण भगवान दुर्योधन के घरको छोड़ विदुरको अपना जान उनके घर पर गये ॥ २ ॥ राजा परीक्षित ने कहा कि हे श्री शुकदेव जी भगवान मैत्रेय जी तथा विदुर जी का संगम कहांपर और किस समय में हुआ यह मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ निर्मल आत्मा वाले उन विदुर जी ने श्री मैत्रेय जी से जो प्रश्न किये थे वह अल्प अर्थ के प्रकाशक न होंगे वरन अधिकही अर्थके प्रकाशकहोंगे क्योंकि जिनके प्रश्नकी सराहना महात्मा पुरुष करते हैं ॥ ४ ॥ सूतजी बोले कि–हे शौनक राजा परीक्षित ने जब ऋषिवर्य्य श्री शुकदेव जी से यह प्रश्नकिया तब शास्त्र वेत्ता श्री शुकदेव जी ने प्रसन्न होकर उनसे कहा ॥ ५ ॥ श्री शुकदेव जी बोले कि–जिनकी दृष्टि अधर्म करके नष्ट होगई है ऐसे महाराज धृतराष्ट्र ने जब दुष्ट बेटोंके पालन के हेतु अपने छोटेभाई पांडुके बेटे, पिताहीन, युधिष्ठिर आदिक पांडवों को लाक्षा भवन में रखकर अग्नि से जलाया ॥ ६ ॥ सभामध्य में युधिष्ठिर की रानी द्रौपदी के किजोरोती हुई अपने आंसुओं से कुचों के कुंकुम को बहारही थी, केश पकड़ने पर अपने पुत्रके इस निंदनीय कर्म को समझ करभी राजा ने जब निवारण नहीं किया ॥ ७ ॥ अन्याय से जुए में जीतेहुये सत्यावलंबी राजा युधिष्ठिर ने जब वनसे आकर प्रतिज्ञा अनुसार अपना राज्य मांगा, तो तमोगुणी, मोहके सेवन करने वाले पुत्र दुर्योधनके स्नेह वश होकर राज्य न बांटा ॥ ८ ॥ जब युधिष्ठिर ने श्री कृष्ण भगवान को राज्यके हेतु भेजा तो

अथाहूतन्मन्त्रदर्शांवरीयान् यन्मन्त्रिणोवैदुरिकंवदन्ति ॥ १० ॥ अजातशत्रोःप्रति
यच्छदायं तितिक्षतोदुर्विषहंतवाऽऽगः। सहानुजोयत्रवृकोदराहिः श्वसन्रुषायत्
त्वमलंबिभेषि ॥ ११ ॥ पार्थास्तुदेवोभगवान् मुकुन्दोगृहीतवान् सक्षितिदेवदेवः।
आस्तेस्वपुर्यांयदुदेवदेवो विनिर्जिताशेषनृदेवदेवः ॥ १२ ॥ सएषदोषःपुरुषद्वि-
डास्तेगृहान् प्रविष्टोऽयमपत्यमत्या। पुष्णासिकृष्णाद्विमुखो गतश्रीस्त्यजाश्वशैवं
कुलकौशलाय॥१३॥इत्यूचिवांस्तत्रसुयोधनेन प्रवृद्धकोपस्फुरिताधरेण। असत्कृत
सत्स्पृहणीयशीलः क्षत्तासकर्णानुजसौबलेन ॥ १४ ॥ कएनमत्रोपजुहावजिह्मं
दास्याःसुतंयद्बलिनैवपुष्टः। तस्मिन्प्रतीपःपरकृत्यआस्ते निर्वास्यतामाशुपुराच्छ्वस-
सानः ॥ १५ ॥ सइत्थमत्युल्बणकर्णबाणैर्भ्रातुः पुरोमर्मसुताडितोऽपि। स्वयंधनु-
र्द्वारिनिधायमायां गतव्यथोऽयादुरुमानयानः ॥ १६ ॥ सनिर्गतःकौरवपुण्यलब्धो
गजाह्वयात्तीर्थपदःपदानि। अन्वाक्रमत् पुण्यचिकीर्षयोर्व्यांस्वधिष्ठितो यानि
सहस्रमूर्तिः ॥ १७ ॥ पुरेषुपुण्योपवनाद्रिकुंजेष्वपंकतोयेषु सरित्सरस्सु। अनन्त-
लिंगैःसमलंकृतेषु चचारतीर्थायतनेष्वनन्यः ॥ १८ ॥ गांपर्यटन्मेध्यविविक्तवृत्तिः
सदाऽऽप्लुतोऽधःशयनोऽवधूतः। अलक्षितःस्वैरवधूतवेषो व्रतानिचेरेहरितोषणानि

उन्हों ने जाकर सभामें अमृत की समान बचन कहे परन्तु राजा के ध्यान में कुछ न आया कारण कि उनके पुण्यका लेशतो बिल्कुल नहीं रहा था ॥ ९ ॥ सलाह जानने वालों में उत्तम श्री विदुर जी, को कि जिनकी सलाह को नीतिवेत्ता लोग "विदुर नीति,, कहकर बड़ाई करते हैं, जब सलाह के हेतु बड़े भाई धृतराष्ट्र ने बुलाया तो वह धृतराष्ट्र के घर आये ॥ १० ॥ विदुर जी ने धृतराष्ट्र से कहा-कि अजातशत्रुराजा युधिष्ठिरका भाग आप देदें,इन्होंने आपके बहुतसे असहन अपराध सहे हैं, जिसके निकट भीमसेन रूपी सांप लघु भ्राताओंसयुक्त क्रोध से श्वासलेता अभी वर्तमानहै और जिससे तुमको बड़ाभय रहता है ॥ ११ ॥ महाराज! युधिष्ठिर आदिकों ने मुकुंद देव भगवान की आत्मता ग्रहण की है कि जो भगवान सम्पूर्ण राजाओं को जीतकर अपनी पुरी द्वारिकामें विराजते हैं सो यह श्रीकृष्ण भगवानका बैरी तुम्हारे घरमें वर्त्तमान है जिसको तुम पुत्रभाव से पुष्ट करतेहो। कुल कुशलता चाहो तो इस अमंगलरूप को आप त्याग दें ॥ १३ ॥ दुष्ट दुर्योधन ने कि जिस के होंठ बढ़हुये कोप से फड़क रहे हैं कर्ण दुःशासन और शकुनि की सम्मति से सत्पुरुषों से सत्कार पायेहुये शीलवान विदुर जी का तिरस्कार करके यह कहा ॥ १४ ॥ कि इस दासी के पुत्र बिदुरको किसने सलाह के हेतु बुलाया है—वह बड़ा कपटी है हमारा तो अन्न खाकर पुष्ट हुआ है और बैरी के अनुकूल कार्य करने में तत्पर है श्मशान की भांति अमंगल इस बिदुर को शीघ्रही पुरसे बाहर निकालदो ॥१५॥ अपनेभाई के सन्मुख उसदुष्ट दुर्योधन के बाणरूपी कठोर बचनोंसे मर्मस्थलमें विद्धहो कहा कि "परमेश्वरकी मायाका माहात्म्य देखो,,यहकहकर व्यथारहितहो अपना धनुष द्वारपर डाल तीर्थयात्राको चलदिये वह बिदुरजी कौरवोंका पुण्य लेकर हस्तिनापुर से निकल पुण्य के हेतु श्री भगवान के क्षेत्रों में जहां ब्रह्मा रुद्रादि नानाभांति के रूप धारणकर हरि भगवान विराजते हैं विचरनेलगे ॥ १७ ॥ पुण्य पवित्र नगर, दण्डकारण्यादिक बन, गोवर्द्धनादिक पर्वत, निर्मलजलवाली नदी तथा तीर्थरूप तालाबोंमें जहां अनन्त भगवान की मूर्त्तियें शोभायमान हैं, ऐसे स्थानोंमें अकेलेही विचरनेलगे ॥१८॥ ऐसे एकांत वृत्तिवाले श्री बिदुरजी, भूमि में विचरते, सदैव तीर्थ स्नान करते पृथ्वी में सोतेहुये श्री परमेश्वरके प्रसन्नार्थ व्रतों का आचरण करनेलगे, अवधूत वेष किये तथा बल्कलवसन धारणकिये रहते—इसकारण उन्हें उनके भाई

॥ १९ ॥ इत्थंव्रजन्भारतमेववर्षं कालेनयावद् गतवान्प्रभासम् । तावच्छशास क्षितिमेकचक्रामेकातपत्रामजितेनपार्थः ॥ २० ॥ तत्राथशुश्राव सुहृद्विनष्टिं वनंयथा वेणुजवह्निसंश्रयम् । संस्पर्धयादग्धमथानुशोचन्सरस्वतींप्रत्यागियायतूष्णीम् ॥ २१॥ तस्यांत्रितस्योशनसो मनोश्चपृथोरथाग्नेरसितस्यवायोः । तीर्थंसुदासस्य गवांगुहस्य यच्छ्राद्धदेवस्य स आसिषेवे ॥ २२ ॥ अन्यानिचेहद्विजदेवदेवैः कृतानिनानायतनानिविष्णोः । प्रत्यंगमुख्यांकितमन्दिराणि यद्दर्शनात् कृष्णमनुस्मरन्ति ॥ २३ ॥ ततस्त्वतिव्रज्य सुराष्ट्रमृद्धंसौवीरमत्स्यान्कुरुजांगलांश्च । कालेन तावद्यमुनामुपेत्य तत्रोद्धवंभागवतंददर्श ॥ २४ ॥ सवासुदेवानुचरंप्रशान्तं बृहस्पतेःप्राक्तनयंप्रतीतम् । आलिङ्ग्यगाढं प्रणयेनभद्रं स्वानामपृच्छद्भगवत्प्रजानाम् ॥ २५ ॥ कच्चित्पुराणौपुरुषौस्वनाभ्य पाद्मानुवृत्त्येहकिलाऽवतीर्णौ । आसात उर्व्याःकुशलंविधाय कृतक्षणौकुशलंशूरगेहे ॥ २६ ॥ कच्चित्कुरूणांपरमःसुहृन्नो भामःसआस्तेसुखमङ्गशौरिः । योवैस्वसॄणां पितृवद्ददातिवरान्वदान्योवरतर्पणेन ॥ २७ ॥ कच्चिद्वरूथाधिपतिर्यदूनां प्रद्युम्नआस्तेसुखमङ्गवीरः । यंरुक्मिणी भगवतोऽभिलेभे आराध्यविप्रान् स्मरमादिसर्गे ॥ २८ ॥ कच्चित्सुखंसात्वत वृष्णिभोजदाशार्हकाणामधिपः सआस्ते । यमभ्यषिंचच्छतपत्रनेत्रो नृपासनाशां परिहृत्यदूरात् ॥ २९ ॥ कच्चिद्धरेःसौम्यसुतःसदृक्षआस्तेऽग्रणी रथिनांसाधुसाम्बः असूतयंजाम्बवती व्रताढ्या देवंगुहंयोऽम्बिकया धृतोऽग्रे ॥ ३० ॥ क्षेमंसक

भी न पहिचान सकतेथे ॥ १९ ॥ इसभांति भारतखण्ड में ही गवन करते २ आप जितने काल में अपने क्षेत्र (हस्तिनापुर) में पहुँचे उतनेही काल में श्रीकृष्णचन्द्र जी की सहायता से राजा युधिष्ठिर का पृथ्वी में एकचक्र राज्यहोगया था ॥ २० ॥ वहां आपने सुना कि जैसे बांस परस्पर घिसकर अग्नि प्रज्वलित कर एक दूसरे को जलादेते हैं वैसेही कौरव भी विद्रोह वश हो परस्पर में कटमरे इस बातका शोक करते हुए बिदुर जी पूर्व्व बाहिनी सरस्वती की ओर चले ॥ २१ ॥ उस सरस्वती के तटपर त्रित, उशना, मनु, पृथु, अग्नि, असित, वायु, सुदास, गौ, गुह, और श्राद्धदेव इन तीर्थोंका सेवन किया ॥ २२ ॥ और भी यहांपर ऋषियोंके, देवताओं के बनाये हुए अनेक मंदिर तथा क्षेत्र हैं कि जिनकी चोटियों के सोने के कलशों में सुदर्शन चक्रका चिह्न शोभायमान है यहां श्री कृष्ण भगवान का स्मर्ण करने लगे ॥ २३ ॥ फिर वहां से सौराष्ट्र, सौवीर, मत्स्य, कुरु, और जांगल आदि देशों में होकर कालान्तरमें यमुनाजी पर आये वहां परम भक्त श्रीउद्धव जीसे साक्षात हुआ ॥ २४ ॥ श्रीकुञ्जवीहारी जीके सेवक, शांतमूर्ति, बृहस्पति के पूर्व शिष्य, उधोजी से दृढ़स्नेह करके मिले और अपने भाइयों तथा भगवान की कुशल पूंछी ॥ २५ ॥ बिदुर जी बोले कि- जिन भगवान ने श्री ब्रह्मा जी की प्रार्थना से अवतार धारण किया है ऐसे श्री परमेश्वर भूमिका भार उतार शूरसेन जी के घरमें कुशलता पूर्व्वक विराज मानतो हैं ॥ २६ ॥ हे उधोजी हमारे सुहृद, पूज्य श्री वसुदेवजी तो प्रसन्न हैं जो अत्यंत उदार वसुदेवजी पिताकी भांति अपनी बहिनों को पतियों की पहिरावनी के संग अतुल द्रव्य देते हैं ॥ २७ ॥ रुक्मिणी ब्राह्मणों का पूजनकर जिन परमेश्वरको प्राप्तहुई उनके पुत्र जो प्रथम जन्ममें कामदेवका अवतारथे वह यादवोंके सेनापति वीर प्रद्युम्नतो आनन्दपूर्वकहैं ॥ २८ ॥ जिनको राज्यासनकी कुछभी आशा न थी उनउग्रसेनका कि जिनका श्रीकृष्ण भगवान ने राज्याभिषेक किया तथा सात्वत, वृष्णि, भोज और दाशार्हवंशी क्षत्रियों के राजा तो कुशलपूर्व्वक हैं ॥ २९ ॥ हेसौम्य! जिन स्वामिकार्तिक को पार्वतीजीने प्रथम जन्ममें गर्भ में धारण कियाथा वह रथियोंमें श्रेष्ठ जांबवतीका पुत्रशाम्बतो प्रसन्नहै ॥ ३० ॥ सात्यकी यादव तो

च्छियुयुधानआस्ते यःफाल्गुनाल्लब्धधनूरहस्यः लेभेऽञ्जसाधोक्षजसेवयैव गतिं तदीयां यतिभिर्दुरापाम् ॥ ३१ ॥ कच्चिद्बुधःस्वस्त्यनमीवआस्ते श्वफल्कपुत्रो भगवत्प्रपन्नः। यःकृष्णपादांकितमार्गपांसुष्वचेष्टत प्रेमविभिन्नधैर्यः ॥ ३२॥ कच्चिच्छिवंदेवकभोजपुत्र्या विष्णुप्रजायाइवदेवमातुः। यावैस्वगर्भेणदधारदेवं त्रयी यथायज्ञवितानमर्थम् ॥ ३३ ॥ अपिस्विदास्तेभगवान्सुखंवोयःसात्वतांकामदुघोऽनिरुद्धः। यमामनन्तिस्मह्शब्दयोनिं मनोमयंसत्वतुरीयतत्त्वम् ॥ ३४ ॥ अपिस्विदन्ये च निजात्मदैव मनन्यवृत्यासमनुव्रताये। हृदीकसत्यात्मजचारुदेष्ण गदादयःस्वस्ति चरन्तिसौम्य ॥ ३५ ॥ अपिस्वदोर्भ्यांविजयाच्युताभ्यां धर्मेण धर्मःपरिपातिसेतुम्। दुर्योधनोऽतप्यतयत्सभायां साम्राज्यलक्ष्म्याविजयानुवृत्त्या ॥ ३६ ॥ किंवाकृताघेष्वघमत्यमर्षी भीमोऽहिवद्दीर्घतमंव्यमुंचत्। यस्यांघ्रिपातं रणभूर्नसेहे मार्गंगदायश्चरतोविचित्रम् ॥ ३७ ॥ कच्चिद्यशोधारथयूथपानां गाण्डीवधन्वोपरतारिरास्ते। अलक्षितोयच्छरकूटगूढो मायाकिरातोगिरिशस्तुतोष ॥ ३८ ॥ यमावुतस्वित्तनयौपृथायाः पार्थैर्वृतौपक्ष्मभिरक्षिणीव। रेमातउद्दाय मृधेस्वरिक्थंपरात्सुपर्णाविव वज्रिवक्त्रात् ॥ ३९॥ अहोपृथाऽपिध्रियतेऽर्भकार्थे राजर्षिवर्येणविनाऽपितेन। यस्त्वेकवीरोऽधिरथोविजिग्ये धनुर्द्वितीयःककुभश्चतस्रः ॥ ४० ॥ सौम्यानुशोचे तमधःपतन्तं भ्रात्रेपरेतायविदुद्रुहेयः निर्यापितोयेन सुहृत्स्वपुर्या अहंस्वपुत्रान्समनुव्रतेन ॥ ४१ ॥ सोऽहंहरेर्मर्त्यविडम्बनेन दृशोनृणां

प्रसन्न है कि जिसने अर्जुन से धनुषविद्या सीखी और परमेश्वरकी सेवा से यतियों को प्राप्त होनेवाली दुर्लभ गति को सहजही में प्राप्तहुआ ॥ ३१ ॥ जो श्वफल्क के पुत्र अक्रूर परमेश्वर के चरण चिन्हवाली राह की धूलि में प्रेम से अधैर्य्य होकर लोटने लगेथे वह भगवान के शरणागत अक्रूर तो प्रसन्न चित हैं ॥ ३२ ॥ वह दिति की भांति, देवककी कन्या देवकी कि जिसके भगवान पुत्रहुए, प्रसन्न तो हैं जैसे वेदत्रयी यज्ञके विस्ताररूप अर्थ को धारण करती है वैसेही उस ने अपने गर्भ में श्री परमेश्वर को धारण किया ॥ ३३ ॥ जो भक्तों की इच्छापूर्ण करते हैं जो वेदके कारणरूपहैं और मनके प्रवर्तक,और अंतःकरणके चौथे रूपहैं वे अनिरुद्ध भगवान तो प्रसन्न हैं ॥ ३४ ॥ हे ऊधौ ! अपने आत्मदेव श्री परमेश्वर की अनन्य वृत्ति से जो और भगवत परायण हैं, वह सुखी हैं ? और हृदीक, सत्यभामा के पुत्र, चारुदेष्ण,और गद तथा दूसरे यादव प्रसन्नतो हैं ॥ ३५ ॥ महाराज युधिष्ठिर धर्मपूर्वक धर्मसम्बन्धी मर्यादा की रक्षा, अपने भुजारूप श्रीकृष्ण तथा अर्जुन समेत करते हैं कि जिनकी सभा में अटलराज्य लक्ष्मी तथा विजय को देखकर दुर्योधन जलगयाथा ॥ ३६॥ ॥ कुरुओं में क्रोधी, अपराध कारी, जिसके चरण की धमक पृथ्वी नहीं सहन करसकती, जो सर्पकी समान महाघोर श्वासलेता हुआ गदा लेकर विचित्रमार्गों में विचरे- सो पवनपुत्र भीमसेन तो प्रसन्नहै ॥ ३७॥ जिसके बाणोंसे आच्छन्नहोकर किरातरूपी गुप्तवेषधरेमहादेव जी भी मुग्ध होगये थे ऐसा रथियों के बीच में यशस्वी, गांडीव धनुषका धारण करनेवाला अर्जुन अपने शत्रुओं को मारकर आनन्द में तो है ॥ ३८ ॥ कुन्ती के पुत्र युधिष्ठिर आदिकों से नेत्रों की समान नकुल और सहदेव, जैसे गरुड़ इन्द्र के मुंह में से अमृत ले आये, वैसेही अपने शत्रु दुर्योधन से राज्य छीनकर आनन्द पूर्वक तो हैं ॥ ३९ ॥ जिस इकले महारथी वीर ने केवल दूसरा धनुष लेकर चारों दिशाओं का विजय किया था ऐसे श्रेष्ठ राजर्षि पांडु बिना कुन्ती केवल बालकों के हेतु जीवित रही—उसकी कुशल क्या पूंछूं ॥ ४० ॥ हे सौम्य ! मैंतो केवल धृतराष्ट्र का शोचकरहूं कि जो मृतक बंधु से शत्रुता करके नर्कगामी होरहा है और जिसने कुपुत्र पुत्रों

चालयतोविधातुः । नान्योपलक्ष्यःपदवींप्रसादाच्चरामि पश्यन्गतविस्मयोत्र
॥ ४२ ॥ नूनंनृपाणांत्रिमदोत्पथानां महींमुहुश्चालयतांचमूभिः वधात्प्रपन्नार्त्तिजि
हीर्षयेशो प्युपैक्षताघंभगवान्कुरूणाम् ॥ ४३ ॥ अजस्यजन्मोत्पथनाशनाय कार्मे
ण्यकर्त्तुर्ग्रहणायपुंसाम् । नन्वन्यथाकोऽर्हतिदेहयोगं परोगुणानामुतकर्मतन्त्रम् ॥
॥ ४४ ॥ तस्यप्रपन्नाखिललोकपानामवस्थितानामनुशासनेस्वे । अर्थायजातस्य
यदुष्वजस्य वार्तांसखे कीर्तयतीर्थकीर्तेः ॥ ४५ ॥
इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणेतृतीयस्कन्धेविदुरोद्धवसम्वादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
श्रीशुकउवाच ॥ इतिभागवतःपृष्टः क्षत्त्रावार्त्तांप्रियाश्रयाम्। प्रतिवक्तुं न चोत्से
ह औत्कण्ठ्यात्स्मारितेश्वरः ॥ १ ॥ यःपंचहायनोमात्रा प्रातराशाययाचितः ।
तन्नैच्छद्रचयन्यस्य सपर्यांबाललीलया ॥ २ ॥ सकथंसेवयातस्य कालेनजरसं
गतः । पृष्टोवार्त्तांप्रतिब्रूयात् भर्तुःपादावनुस्मरन् ॥ ३ ॥ समुहूर्तमभूत्तूष्णीं कृष्णां
घ्रिसुधयाभृशम् । तीव्रेणभक्तियोगेन निमग्नःसाधुनिर्वृतः ॥४॥ पुलकोद्भिन्नसर्वां
गो मुंचन्मीलद्दृशाशुचः । पूर्णार्थोलक्षितस्तेन स्नेहप्रसरसंप्लुतः ॥ ५ ॥ शनकैर्भ
गवल्लोकान्नृलोकंपुनरागतः । विमृज्यनेत्रेविदुरं प्रत्याहोद्धवउत्स्मयन् ॥ ६ ॥
उद्धवउवाच ॥ कृष्णद्युमणिनिम्लोचे गीर्णेष्वजगरेणह । किन्नुनःकुशलंब्रूयांगतश्री

के वश होकर मुझसे सुहृद को भी नगर से निकलवा दियाथा ॥४१॥ मैंभी मनुष्यनाटकसे पुरुष की बुद्धिको भ्रमानेवाले श्री भगवानकी कृपासे उनकी महिमाको देखताहुआ विस्मयरहित होकर उसभांति से घूमताहूं कि जिससे मुझे कोई नहीं पहिंचाने ॥४२॥ विद्या, धन और कुलके घमंड से विपरीत मार्गमें चलने वाले तथा सैन्यभारसे भूमिको बारम्बार कंपानेवाले राजाओंके नाशके लिये श्रीकृष्ण परमेश्वर ने शरण में आये हुए मनुष्यों का दुःख नाशकरने की इच्छा से अपराध करते समय दंड देने को सामर्थ्यवानहोने पर भी आजतक दुर्योधनादिकों के अपराध सहे ॥ ४३॥ अजन्मा परमेश्वर का जन्मउत्पथ गामियोंके नाशके हेतु है, अकर्ता भगवानके कर्म मनुष्योंको सुमार्ग में चलाने के निमित्त हैं, इस के अतिरिक्त परमेश्वर के जन्मादिक का होना सम्भव नहीं है ॥४४॥ शरण में आये हुए लोकपालों के, भक्तों के तथा अपनी आज्ञा माननेवाले मनुष्यों के हेतु यादवों में उत्पन्नहुए, अजन्मा, पवित्रयशवाले श्री भगवान की वार्ता जो हो वह हे सखे! ऊधौ हम से कहो ॥ ४५ ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेतृतीयस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्री शुकदेव जी बोले कि-भगवद्भक्त ऊधौजी से जब विदुर जीने अपने प्रिय वृन्दावन विहारी की वार्ता पूछी तो ऊधौजी भगवान का स्मर्णहो आने से उत्कंठा के हेतु कुछबोल न सके ॥ १ ॥ जिस समय इनकी पांच वर्ष की अवस्था थी, तबभी यह दशाथी, कि माता जब इनसे कलेउ के लिये कहती तो बाल अवस्था के खिलोना से भगवान की पूजा करते रहते, भोजनों की कुछ भी इच्छा न करते ॥ २ ॥ जो परमेश्वरकी सेवा करतेर कालपाकर बूढ़ेहोगये वे अपने प्रभुके चरणों का स्मर्ण करतेहुये बात पूछने पर कैसे उत्तर देसकें ॥ ३ ॥ वह ऊधौजी दोघड़ी तक चुपरहे और श्री कृष्ण जी के चरण रूप अमृत से तृप्त होकर तीव्रभक्ति योग में मग्न होगये ॥ ४ ॥ सब शरीर में रोमांच होआया बंद नेत्रों से आंसू गिरने लगे, तब स्नेह सागर में मग्नहोने से विदुर जी जानगये कि ऊधौ जी भगवद्धाम को प्राप्त हुये हैं ॥ ५ ॥ धीरे धीरे वैकुंठ लोक से मनुष्य लोक में आकर देहका अनुसंधान हुआ फिर नेत्रों को पोछकर, भगवान का स्मर्ण करते हुये विदुर जी से बोले ॥ ६ ॥ ऊधौजी बोले-कि श्री कृष्ण रूपी सूर्यका अस्त होगया, और हमारे तेजहीन

सुगृहेष्वहम् ॥ ७ ॥ दुर्भगोबतलोकोऽयं यदवोनितरामपि। येसंवसन्तो न विदुर्ह
रिं मीनाइवोडुपम् ॥ ८ ॥ इंगितज्ञाःपुरुप्रौढा एकारामाश्चसात्वताः सात्वतामृष
भंसर्वे भूतावासममंसत ॥ ९ ॥ देवस्यमाययास्पृष्टा येचान्यदसदाश्रिताः। भ्रा
म्यतेधीर्नतद्वाक्यैरात्मन्युप्तात्मनोहरौ ॥ १० ॥ प्रदर्श्यातप्ततपसामवितृप्तदृशांनृणा
म्। आदायान्तरधाद्यस्तु स्वबिम्बंलोकलोचनम् ॥ ११ ॥ यन्मर्त्यलीलौपयिकंस्व
योगमायाबलं दर्शयतागृहीतम्। विस्मापनंस्वस्यचसौभगर्द्धेः परंपदंभूषणभूषणां
गम् ॥ १२ ॥ यद्धर्मसूनोर्बतराजसूये निरीक्ष्यदृक्स्वस्त्ययनंत्रिलोकः। कार्त्स्न्येन
चाद्येह गतं विधातुरर्वाक्सृतौ कौशलमित्यमन्यत ॥ १३ ॥ यस्यानुरागप्लुतहा
सरासलीलावलोकप्रतिलब्धमानाः। व्रजस्त्रियोदृग्भिरनुप्रवृत्तधियोऽवतस्थुःकिल
कृत्यशेषाः ॥ १४ ॥ स्वशांतरूपेष्वितरैःस्वरूपैरभ्यर्द्यमानेष्वनुकम्पितात्मा। पराव
रेशोमहदंशयुक्तो ह्यजोऽपिजातोभगवान्यथाग्निः ॥ १५ ॥ मांखेदयत्येतदजस्य
जन्म विडम्बनंयद्वसुदेवगेहे। व्रजेचवासोऽरिभयादिवस्वयं पुराद्व्यवात्सीद्यदन
न्तवीर्यः ॥ १६ ॥ दुनोतिचेतःस्मरतो ममैतद्यदाह पादावभिवन्द्य पित्रोः। ताता
म्बकंसादुरुशंकितानां प्रसीदतन्नोऽकृतनिष्कृतीनाम् ॥ १७ ॥ कोवाअमुष्यांघ्रिस
रोजरेणुं विस्मर्तुमीशीत पुमान्विजिघ्रन् ॥ योविस्फुरद्भ्रूविटपेन भूमेर्भारंकृतान्ते

घरोंका महाकाल रूपी अजगर निगलगया, अब मैं किसकी कुशल और प्रसन्नता कहूं ॥७॥ यह लोक बड़ा अभागी है और इसमें यादव तो अत्यंत ही अभागे हैं क्योंकि जैसे समुद्रमें रहकर चन्द्रमा को मछलियां नहीं जानसकीं ऐसे हीं घरमें रहेहुये श्रीकृष्ण भगवान को यादवों ने नहीं पहिचाना, ॥ ८ ॥ अभाग्यता की विभूति तो देखो, कि अंतर्यामी परमेश्वर को एक स्थानपर रहनेके कारण यादवों ने एक अच्छा मनुष्य समझा ॥ ९ ॥ जो यादव परमेश्वर की माया में व्याप्त हैं वह अपने भाईबंधु समझते हैं और जो शिशुपाल आदि शत्रु हैं वे सदैव निंदा करते रहते हैं परन्तु जिनका चित्त श्री परमेश्वर में लगगया है उनका मन किसी प्रकार से चंचल नहीं होता ॥ १० ॥ जिन्हो ने तप नहीं किया और जिनके नेत्र अतृप्त हैं, ऐसे मनुष्यों को अपने स्वरूप का दर्शन दे आप अंतर्ध्यान होगये ॥ ११ ॥ वह स्वरूप अपनी योग माया का प्रभाव दिखाने के हेतु मनुष्य लीला के योग्य है, जो सौभाग्य संपदा के होने से अपने कोभी विस्मित करता है और जिसके अंग गहनों के भी गहने रूप हैं ॥ १२ ॥ राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञमें जिस रूपका दर्शन करके मनुष्यों ने यह समझाया कि सृष्टिमें ब्रह्माकी जो कुछ चातुरी हैं सो सब इसीमें आचुकी इससे बढ़कर और ब्रह्मा में चतुराई नहीं है ॥ १३ ॥ जिनकी सुखदायक प्रेमयुक्त अनुराग रसभरी मुसकान तिरछी चितवन देख, सुधासम मधुर बाणीसुन, सुन्दर रास देख, दृष्टिसे व बुद्धी से न जानेजांय, अपूर्ण मनोरथसी मानवती, ब्रजबालाऐसी होगईं कि ब्रजविहारी को जाता देख उनके संग अपने नेत्रोंको भी भेजदिया कि हमारे प्यारे अकेले जाते हैं और अपनी सुधिबुधि विसार ठगीसी रहगईं ॥१४॥ जैसे काष्ठसे अग्नि उत्पन्नहोता है वैसेही परमेश्वर अजन्माहोनेपरभी अपने भक्तों को दैत्योंसे पीड़ित देख उनपर दयाकर प्रगट हुये ॥ १५ ॥ मुझको खेदहोता है कि अजन्मा भी वसुदेव जी के घरमें जन्मले और व्रजमे घर २ घूमे और अत्यंत पराक्रम होने परभी जरासन्धादि शत्रुओं के भयसे मथुरा का निवास छोड़ द्वारिकामे रहे ॥ १६ ॥ मुझको इस बातके स्मर्ण से दुःख भी होता है और हँसी भी आती है कि परमेश्वर ने अपने माता पिताके चरणों में दंडवत करके कहा कि हे तात ! हे जननी हम कंससे बहुत भय करते रहे इसी कारण हमसे आपकी सेवा नहीं बनी सो हमारा अपराध क्षमा करिये ॥ १७ ॥ जिन्होंने प्रकाशित भ्रकुटी को चलाकर एक क्षणमात्र में भूमिका

न तिरश्चकार ॥ १८ ॥ दृष्टाभवद्भिर्ननुराजसूये चैद्यस्यकृष्णंद्विषतोपिसिद्धिः । यां योगिनःसंस्पृहयन्तिसम्यग् योगेनकस्तद्विरहंसहेत १९॥तथैवचान्येनरलोकवीरा यआहवेकृष्णमुखारविन्दम् । नेत्रैःपिबन्तोनयनाभिरामं पार्थास्त्रपूताःपदमापुरस्य ॥ २० ॥ स्वयंत्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः । बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः किरीटकोट्येडितपादपीठः ॥ २१ ॥ तत्तस्यकैङ्कर्यमलंभृतान्नोविग्लापयत्यङ्गयदुग्रसेनम् । तिष्ठन्निषण्णंपरमेष्ठिधिष्ण्ये न्यबोधयद्देवनिधार-येति ॥ २२ ॥ अहोबकीयंस्तनकालकूटं जिघांसयाऽपाययदप्यसाध्वी । लेभेगतिं धात्र्युचितांततोन्यं कंवादयालुंशरणंव्रजेम ॥ २३ ॥ मन्येऽसुरान्भागवतांस्त्र्यधीशे संरम्भमार्गाभिनिविष्टचित्तान् ॥ येसंयुगेऽचक्षतताक्ष्र्यपुत्रमंसे सुनाभायुधमापतन्तम् ॥२४॥ वसुदेवस्यदेवक्यां जातोभोजेन्द्रबन्धने । चिकीर्षुर्भगवानस्याः शमजेनाभियाचितः ॥ २५ ॥ ततोनन्दव्रजमितःपित्राकंसाद्विबिभ्यता । एकादश समास्तत्र गूढार्चिःसबलोऽवसत् ॥२६ ॥ परीतोवत्सपैर्वत्सांश्चारयन्व्यहरद्विभुः यमुनोपवनेकूजद्द्विजसंकुलिताङ्घ्रिपे ॥ २७ ॥ कौमारींदर्शयंश्चेष्टां प्रेक्षणीयांव्रजौकसाम् । रुदन्निवहसन्मुग्धबालसिंहावलोकनः ॥ २८ ॥ सएवगोधनंलक्ष्म्या निकेतंसितगोवृषम् । चारयन्ननुगान्गोपान् रणद्वेणुररीरमत् ॥ २९ ॥ प्रयुक्तान्भोजराजेन मायिनःकामरूपिणः लीलयाव्यनुदत्तांस्तान् बालःक्रीडनकानिव ॥ ३० ॥

भार उत्तारा है। उन परमेश्वर के चरणारविंद की रजको कौन ऐसा पुरुष है जो भूलजाय ॥ १८ ॥ श्रीकृष्ण चन्द्र जी से शत्रुता करके धर्मराज के राजसूय यज्ञमें जो शिशुपाल की सिद्धि हुई वह आपने देखी कि जिस सिद्धि का मनोर्थ योगीलोग भली प्रकार से योगसाधकर करते हैं, ऐसे भगवान के विरहको कौनसहन करसकताहै ॥१९॥इसीभांति दूसरे राजा लोग भी जिन्हों ने कल्याण कारी श्रीकृष्ण जी के मुखारविंदका सादर दर्शन किया था वे अर्जुन के बाणों से पवित्र होकर परम पदको प्राप्त हुये ॥ २० ॥ जिन की समान कोई नहीं, जो तीनो लोकों के राजा हैं, जो अपनी राज्य लक्ष्मी से परिपूर्ण हैं, और जिनको बड़े २ राजा भेंट देते हैं, तथा लोकपाल जिनके पादपीठकी अपने किरीटके आगेके भागसे स्तुति करते हैं, ऐसे प्रभु॥२१॥ राज्य सिंहासनपर बैठे और उग्रसेन जी से कहते रहते थे कि–हे देव ! "हमको आज्ञा दो" यह सुनकर हे विदुर!हम दासोंको अत्यंत विस्मय होता है ॥ २२ ॥ हे विदुर जी! देखो कि जिस असाध्वी, दुष्टिनी पूतना ने मारने के अभिप्राय से स्तन पिलाये थे उसको माता की गतिदी, ऐसे श्रीकृष्ण जी दयाल हैं, उनके बिना और किसकी शरण में जाय ॥ २३ ॥ हे विदुर! मैंतो असुरों कोभी भगवद्भक्त मानता हूं, क्योंकि वेलोग त्रिलोकी नाथ परमेश्वर में क्रोधके वशीभूत होकर चित्त लगाते हैंऔर युद्ध में वेलोग श्री भगवान को चक्रलिये गरुड़पर चढ़े अपने सन्मुखआते देखते हैं ॥ २४ ॥ जब ब्रह्मा जीने भूमिका भार उत्तार ने के हेतु परमात्मा से प्रार्थना की तोआप वसुदेव जी की देवकी नाम स्त्री में कंसके बंदीग्रह में उत्पन्न हुये ॥ २५ ॥ फिर वसुदेव जी ने कंसका भय करके श्री भगवान को व्रजमें नंदजी के यहां पहुंचाया, वहां एकादश वर्ष पर्यन्त अपने तेजको छिपाये हुये व्रजमें रहे और बलदेव जीकेसंग अनेक प्रकार के चरित्र दिखलाये ॥ २६ ॥ बछड़े पालने वाले ग्वालों को साथले भगवान ने बछड़ों को चराते हुये यमुना जी के उपवन में जहां पेड़ोंपर पक्षी क्रीड़ाकर रहे थे वहां क्रीड़ा की ॥ २७ ॥ श्री हरि सिंह के बच्चेकी भांति व्रज वासियों को अपनी बाल लीला दिखलाते, रुदन करते और हंसते थे ॥ २८ ॥ अनुचर गोपों के संग श्वेतबैल वाले सम्पत्ति के धाम गोधन को चराते तथा बंशी बजाते बिचरा करते थे ॥ २९ ॥ कंसके भेजे हुये

विपिन्नान्विषपानेन निगृह्य भुजगाधिपम् । उत्थाप्यापाययद्गावस्तत्तोयंप्रकृतिस्थितम् ॥३१॥ अयाजयद्गोसवेन गोपराजंद्विजोत्तमैः । वित्तस्यचोरुभारस्य चिकीर्षन्सद्व्ययंविभुः ॥ ३२ ॥ वर्षतीन्द्रे व्रजःकोपात् भग्नमानेऽतिविह्वलः । गोत्रलीलातपत्रेण त्रातोभद्रानुगृह्णता ॥ ३३ ॥ शरच्छशिकरैर्मृष्टं मानयन्रजनीमुखम् । गायन्कलपदंरेमे स्त्रीणांमण्डलमण्डनः ॥ ३४ ॥

इतिश्रीमद्भा० तृ०स्कन्धेश्रीकृष्णचरितवर्णनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

उद्धवउवाच ॥ ततःसआगत्यपुरं स्वपित्रोश्चिकीर्षयाशंबलदेवसंयुतः । निपात्यतुङ्गाद्रिपुयूथनाथं हतंव्यकर्षद्व्यसुमोजसोर्व्याम् ॥ १॥ सान्दीपनेःसकृत्प्रोक्तं ब्रह्माधीत्यसविस्तरम् । तस्मैप्रादाद् वरंपुत्रंमृतं पंचजनोदरात् ॥ २ ॥ समाहूताभीष्मककन्ययाये श्रियःसवर्णेनबुभूषयैषां । गान्धर्ववृत्त्यामिषतां स्वभागंजह्रेपदंमूर्ध्निदधत्सुपर्णः ॥ ३ ॥ ककुद्मतोऽविद्धनसोदमित्वा स्वयंवरेनाग्नजितीमुवाह । तद्भग्नमानानपिगृध्यतोऽज्ञान्जघ्नेऽक्षतःशस्त्रभृतःस्वशस्त्रैः ॥४ ॥ प्रियंप्रभुर्ग्राम्यइवप्रियायाविधित्सुरार्च्छत्द्युतरुंयदर्थे । वज्र्याद्रवत्तंसगणोरुषाऽन्धः क्रीडामृगोनूनमयंवधूनाम् ॥ ५ ॥ सुतंमृधेखंवपुषाग्रसन्तं दृष्ट्वासुनाभोन्माथितंधरित्र्या । आमन्त्रितस्तत्तनयायशेषं दत्त्वातदन्तःपुरमाविवेश ॥ ६ ॥ तत्राहृतास्तानरदेव

मायावी दैत्यों का ऐसे नाश किया कि जैसे बालक खिलौना तोड़ डालता है ॥ ३० ॥ विषैला जल पियेहुये मृतक ग्वाल बालोंको जीवित कर काली नागको नाथ यमुना जी का विषरहित जल गायों को पिलाया ॥ ३१ अतुल धनको सद्व्यय कराने के निमित्त भगवान ने नंद जी से ब्राह्मणों द्वारा इन्द्र की पूजाभंग करवाय गौओं की पूजाके अर्थ यज्ञ कराया ॥ ३२ ॥ अपनी मान हानि से क्रोधित हो इन्द्र ने इतनी वर्षाकी कि सब ब्रजवासी अधीर होगये। हे विदुर जी ! उस काल कृपा पूर्वक भगवान ने पर्वत को छत्रकी भांति धारण कर ब्रजवासियों की रक्षाकी ॥ ३३ ॥ शरद ऋतुके चन्द्रमा की उज्वल किरणों से प्रकाशित रात्रिके मुखको मान श्री भगवान ने मन मोहिनी मुरली में मनोहर गीतगाय ब्रज वनिताओंको बुलाय उनके संग विहार किया ॥ ३४ ॥

इतिश्रीभागवतेतृतीयस्कंधेसरलाभाषाटीकायांद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ऊधोजी ने कहा कि—फिर श्रीभगवान ने अपने मातापिता के सुख देनेके हेतु बलदेवजी के के संग ब्रज से मथुरा में आकर असुरनाथ कंसको ऊंचे मचान से पटककर मरेहुये कंस को बल पूर्वक पृथ्वी पर घसीटा ॥ १ ॥ सांदीपन नाम गुरु के एकहीबार कहने से सांगोपांग सम्पूर्णवेद पढ़कर मृतक गुरुपुत्रको पंचजन असुर का पेटफाड़ उसमें से निकालकर गुरु को पुत्ररूपी गुरु दक्षिणादी ॥ २ ॥ फिर लक्ष्मीजी के रूप की समान रुक्मिणी के विवाहकी कामनाकर अनेक राजाओं को संगले शिशुपाल व्याहने आया, किन्तुभगवान कृष्णचन्द्र सबके देखते देखते नरेशोंके मध्य से उन लोगोंके सिरपर पांवधर भीष्मककी कन्या को इसप्रकार ले आये कि जिसप्रकार गरुड़ जी अमृत ले आये थे ॥ ३ श्रीभगवान ने स्वयम्वर में बिन नथेहुए बैलों को नाथकर नाग्नजित की पुत्री से बिवाहकिया और जिनराजाओंका बैलों के नाथने से मानभंग हुआथा उनमूर्ख शस्त्रधारी राजाओं का अपने शस्त्र से बधकिया ॥ ४ ॥ अपनी प्रिया सत्यभामा के प्रसन्न करने के हेतु श्रीभगवान स्वर्ग से कल्पवृक्ष ले आये जिसके लिये स्त्रियोंका क्रीड़ामृगइन्द्र क्रोधांध होकर उन के पीछे युद्ध के हेतु कटक ले दौड़ा तो भगवान ने उसका गर्व दूर किया ॥ ५ ॥ पृथ्वी ने संग्राम में चक्र से मरेहुए अपने पुत्रभौमासुर को देखकर श्रीभगवान से आज्ञा मांग उसके पुत्र भगदत्तको राज्य दिया और आपने उसके महलों में प्रवेश किया ॥ ६ ॥ उस महल हवामें

कन्याःकुजेनहृत्वाहरिमार्तबन्धुम् ।उत्थायलब्धोजगृहुःप्रहर्षव्रीडाऽनुरागप्रहिताव
लोकैः ॥ ७ ॥ आसांमुहूर्तएकस्मिन् नानागारेषुयोषिताम् । सविधंजगृहे पाणीन-
नुरूपःस्वमायया ॥ ८ ॥ तास्वपत्यान्यजनयदात्मतुल्यानिसर्वतः । एकैकस्यांदश
दशप्रकृतेर्विबुभूषया ॥ ९ ॥ कालमागधशाल्वादीननीकैरुन्धतःपुरम् । अजीघन-
त्स्वयंदिव्यं स्वपुंसांतेजआदिशत् ॥ १० ॥ शम्बरंद्विविदंबाणं मुरंबल्वलमेवच
अन्यांश्चदन्तवक्रादीनवधीत्कश्चांघातयत् ॥ ११ ॥ अथतेभ्रातृपुत्राणां पक्षयोः
पतितान्नृपान् । चचालभूःकुरुक्षेत्रे येषामापततांबलैः ॥ १२ ॥ सकर्णदुः-
शासनसौबलानां कुमन्त्रपाकेनहतश्रियायुषम् । सुयोधनंसानुचरंशयानं भग्नोरु
मुर्व्यांननन्दपश्यन् ॥ १३ ॥ कियान्भुवोऽयंक्षपितोरुभारो यद्द्रोणभीष्मार्जुन
भीममूलैः । अष्टादशाक्षौहिणिको मदंशैरास्तेबलंदुर्विषहंयदूनाम् ॥ १४ ॥ मिथो
यदैषांभवितािववादो मध्वामदाताम्रविलोचनानाम् ।नैषांवधोपायइयानतोऽन्यो
मय्युद्यतेऽन्तर्दधतेस्वयंस्म ॥ १५ ॥ एवंसंचिन्त्यभगवान्स्वराज्येस्थाप्यधर्मजम्
। नन्दयामाससुहृदः साधूनांवर्त्मदर्शयन् ॥ १६ ॥ उत्तरायांधृतःपूरोर्वंशःसाध्व
भिमन्युना । सवैद्रौण्यस्त्रसंछिन्नः पुनर्भगवताधृतः ॥ १७ ॥ अयाजयद्धर्मसुतम
श्वमेधैस्त्रिभिर्विभुः । सोऽपिक्ष्मामनुजैरक्षन् रेमेकृष्णमनुव्रतः ॥ १८ ॥ भगवानपि
विश्वात्मा लोकवेदपथानुगः । कामान्सिषेवेद्वार्वत्यामसक्तः सांख्यमास्थितः १९

राजपुत्रियां कि जिनकाहरण भौमासुर करलायाथा दुःख विनाशन भगवानको देखकर एकसंग तत्काल खड़ीहोगईं और उन्हों ने अत्यन्त प्रसन्नता, लज्जा और प्रेम की दृष्टियों से श्रीभगवान को स्वीकार किया ॥ ७ ॥ श्रीभगवान ने एकहीकाल अलग २ घरों में उनके योग्य रूपधारणकर विधिवत उनसे ब्याह किया ॥ ८ ॥ और अपनी माया के फैलाने के हेतु सब भांति से अपनी समान उनमें दश २ पुत्र उत्पन्न किये ॥ ९ जो कालयवन, जरासन्ध व शाल्व आदि राजा सेनाओं से नगर को घेर रहेथे, उनका बध किया और अपने पूर्वजों के दिव्य तेज को जागरितकिया ॥ १० ॥ शंबर, द्विविद वानर, बाणासुर, मुर, बल्वल, तथादंतवक्र आदि जो दैत्यगणथे उनमेंसेबहुतों कोअपने हाथ से तथा बहुतों को दूसरों के हाथ से मरवाया ॥ ११ ॥ इसके उपरांत तुम्हारे भाई के पुत्रों के पक्ष में आई हुई राजाओं की सेना कि जिस से पृथ्वी कम्पायमान होरहीथी ॥ १२ ॥ कर्ण, दुःशासन, और सौबलके कुमंत्रसे तेजहत तथाहतायु व भग्नोरु दुर्योधनको अनुचरोंसमेतरणभूमि में पड़ाहुआ देखकरभी भगवान को आनन्द न हुआ ॥ १३ ॥ और यह सोचा किइनअठारह अक्षौहिणीरूप भूमिका भार मैंने द्रोण, भीष्म, अर्जुन और भीमकेही निमित्त उतारा. है यह कितना ? अभी मेरे अंश अति दुस्सह यादवों का कटक भूमि में वर्तमान है ॥ १४ ॥ इन के मरने की विधि इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है कि यह जब वारुणीके नशेमें परस्पर मदोन्मत्त होकर विवाद करेंगे तो आपही कट मरेंगे ॥ १५ ॥ इस भांति विचारकर भगवान ने धर्मराज युधिष्ठिर को राज्य सिंहासन पर बिठा साधुओं के मार्ग को दिखा सब अपने सुहृदों को प्रसन्न किया ॥ १६ ॥ जिस पुरुवंश को उत्तरा के गर्भ में अभिमन्यु ने अच्छी प्रकार स्थापित कियाथा, वह यद्यपि अश्वत्थामा के अस्त्र से छिन्न भिन्न होगयाथा तौभी अंत में परमेश्वर ने उसे बचालिया ॥ १७ ॥ श्रीकृष्ण भगवान ने धर्मराज राजा युधिष्ठिर को तीन अश्वमेध यज्ञ करवाये फिर वह श्रीकृष्ण जी के आज्ञानुवर्त्ती अपने अनुजों समेत भूमि की रक्षा करते हुये विचरने लगे ॥ १८ ॥ लौकिक तथा वैदिक रीति के अनुसार चलनेवाले श्री भगवान भी प्रकृति पुरुष के बिचार रूपी सांख्य शास्त्र के बिचार से द्वारका पुरी में भोगों का सेवन करने लगे ॥ १९ ॥

स्निग्धस्मितावलोकेन वाचापीयूषकल्पया । चरित्रेणाऽनवद्येनश्रीनिकेतेनचात्मना ॥ २० ॥ इमंलोकममुंचैवरमयन्सुतरांयदून् । रेमेक्षणदयादत्तक्षणस्त्रीक्षणसौहृदः ॥ २१ ॥ तस्यैवंरममाणस्य संवत्सरगणान्बहून् । गृहमेधेषुयोगेषु विरागःसमजायत ॥ २२ ॥ दैवाधीनेषुकामेषु दैवाधीनःस्वयंपुमान् । कोविश्रम्भेतयोगेन योगेश्वरमनुव्रतः ॥ २३ ॥ पुर्यांकदाचित् क्रीडद्भिर्यदुभोजकुमारकैः । कोपिताःमुनयः शेपुर्भगवन्मतकोविदाः ॥ २४ ॥ ततःकतिपयैर्मासैर्वृष्णिभोजान्धकादयः । ययुः प्रभासंसंहृष्टारथैर्देवविमोहिताः ॥ २५ ॥ तत्रस्नात्वापितॄन्देवानृषींश्चैवतदम्भसा तर्पयित्वाऽथविप्रेभ्यो गावोबहुगुणाददुः ॥ २६ ॥ हिरण्यंरजतंशय्यां वासांस्यऽजिनकम्बलान् । यानंरथानिभान्कन्या धरांवृत्तिकरीमपि ॥ २७ ॥ अन्नंचोरुरसं तेभ्यो दत्त्वाभगवदर्पणम् । गोविप्रार्थासवःशूराः प्रणेमुर्भुविमूर्धभिः ॥ २८ ॥

इतिश्रीमद्भा०म०तृ०प्रभासक्षेत्रगमनंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

उद्धववाच ॥ अथतेतदनुज्ञाता भुक्त्वापीत्वाचवारुणीम् । तयाविभ्रंशितज्ञाना दुरुक्तैर्मर्मपस्पृशुः ॥ १ ॥ तेषांमैरेयदोषेण विषमीकृतचेतसाम् । निम्लोचतिरवावासीद्वेणूनामिवमर्दनम् ॥ २ ॥ भगवान्स्वात्ममायाया गतिंतामवलोक्यसः । सरस्वतीमुपस्पृश्य वृक्षमूलमुपाविशत् ॥ ३ ॥ अहंप्रोक्तोभगवता प्रपन्नार्तिहरेणह । बदरींत्वंप्रयाहीति स्वकुलंसंजिहीर्षुणा ॥ ४ ॥ अथाऽपितदभिप्रेतं जानन्नहमरिन्द

स्नेह पूर्वक मंद मुसकान से देखना और अमृत वाणी से बोलना तथा लक्ष्मी निवास । भूत शरीर से इस जगत् में यादवों में तथा उन स्त्रियों में कि जिनको रात्रि ने उत्सव दिया है क्षण मात्र प्रीति करनेवाले भगवान रमण करनेलगे ॥ २० ॥ २१ ॥ इसभांति श्रीकृष्ण भगवान्को रमण करते अनेक वर्ष बीतगए तो गृहस्थ सम्बन्धी काम, भोग आदि को में बिराम उत्पन्न हुआ ॥२२॥ जब परमेश्वर को स्वाधीन भोगों में भी स्वयं विराम उत्पन्न हुआ तब भक्तियोग से परमेश्वर का आज्ञानुवर्ती होकर कौन पुरुष दैवाधीन योगों का विश्वास करे ॥ २३ ॥ एक समय द्वारका पुरीमें खेलते हुये यदुवंशियों के बालकों द्वारा खेलमें मुनिकी हंसी कराई, तब क्रोधित मुनिने परमेश्वरके प्रयोजन को जान उनको महाघोर शापदिया ॥ २४ ॥ फिर कितने ही दिनों के उपरांत वृष्णि, भोज, अंधक वंशी इत्यादिक सब प्रसन्न हो रथोंपर बैठकर प्रभास क्षेत्रमें गये ॥ २५ ॥ वहां स्नानकर पितृ देवता तथा ऋषियों का तर्पण कर ब्राह्मणों को दूध देनेवाली अनेक गौयेंदीं ॥ २६ ॥ और सोना, चांदी, शय्या, मृगछाला, कम्मल, वाहन, रथ, हाथी, कन्या तथा जीविका निर्वाह के हेतु पृथ्वी भी दी ॥ २७ ॥ और सुन्दर सुस्वादु अन्न भगवत अर्पण करके ब्राह्मणों को दिया तथा उन शूरवीरों ने जिनके प्राण गौ, व ब्राह्मणों के हेतुहैं शिरों से भूमिपर प्रणाम किया ॥ २८ ॥

इतिश्रीभागवतमहापुराणे० तृतीयस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ऊधौजी बोले कि-इस के उपरांत सम्पूर्ण यादवों ने ब्राह्मणों से आज्ञा पाय भोजन करा फिर वारुणीका पान किया जिससे ज्ञान शून्य होकर खोटे वाक्यों से एक दूसरेके मर्मस्थल को बेधने लगा ॥ १ ॥ वारुणी के प्रभाव से उनके चित्त खोटे होगये उसी से सूर्यास्त होते समय वह परस्पर नष्ट होन लगे कि जैसे बांसों का परस्पर नाश होता है ॥ २ ॥ श्री कृष्ण भगवान अपनी आत्म माया की गति देख सरस्वती नदीमें आचमन कर वृक्ष के नीचे जाबैठे ॥ ३ ॥ शरणागतके दुःख हरने वाले भगवान ने अपने कुल के संहार की इच्छा से मुझसे कहा कि हे ऊधौ ! तुम बद्रिकाश्रम को जाओ ॥ ४ ॥ हे विदुरजी ! भगवानने मुझसे जानको कहा परंतु मैं उनके पीछे

म । पृष्ठतोन्वगमंभर्तुः पादविश्लेषणाक्षमः ॥ ५ ॥ अद्राक्षमेकमासीनं विचिन्वन् दयितंपातिम् । श्रीनिकेतंसरस्वत्यां कृतकेतमकेतनम् ॥ ६ ॥ श्यामावदातंविरजंप्र शान्तारुणलोचनम् । दोर्भिश्चतुर्भिर्विदितं पीतकौशाम्बरेणच ॥ ७ ॥ वामऊरावधि श्रित्य दक्षिणांघ्रिसरोरुहम् । अपाश्रितार्भकाश्वत्थमकृशंत्यक्तपिप्पलम् ॥ ८ ॥ त- स्मिन्महाभागवतो द्वैपायनसुहृत्सखः लोकाननुचरन्सिद्ध आससादयदृच्छया ९ तस्यानुरक्तस्यमुनेर्मुकुन्दः प्रमोदभावानतकन्धरस्य । आशृण्वतोमामनुरागहास समीक्षया विश्रमयन्नुवाच ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वेदाहमन्तर्मनसीप्सितंते ददामियत्तद्दुरवापमन्यैः । सत्रपुराविश्वसृजांवसूनां मत्सिद्धिकामेनवसोत्वये ष्टः ॥ ११ स एषसाधो चरमोभवानामासादितस्तेयदनुग्रहोयत् । यन्मांनृलोकान् रहउत्सृजन्तं दिष्ट्या ददृश्वान् विशदानुवृत्त्या ॥ १२ ॥ पुरामयाप्रोक्तमजायनाभ्ये पद्मेनिषण्णायममादिसर्गे । ज्ञानंपरंमन्महिमावभासं यत्सूरयोभागवतंवदंति १३ इत्यादृतोक्तः परमस्यपुंसः प्रतीक्षणानुग्रहभाजनोऽहम् । स्नेहोत्थरोमास्खलिताक्ष रस्तं मुंचञ्शुचःप्रांजलिराबभाषे ॥ १४ ॥ कोन्वीशतेपादसरोजभाजां सुदुर्लभो ऽर्थेषुचतुर्ष्वपीह । तथापिनाहंप्रवृणोमिभूमन् भवत्पदाम्भोजनिषेवणोत्सुकः १५ ॥ कर्माण्यनीहस्यभवोऽभवस्यते दुर्गाश्रयोऽथारिभयात् पलायनम् । कालात्मनोयत् प्रमदायुताश्रयः स्वात्मन्रतेःखिद्यतिधीर्विदामिह ॥ १६ ॥ मन्त्रेषुमांवा उपहूय यत्त्व

ही पीछे चला कारण कि मैं उनका अभिप्राय समझ गया दूसरे उनके चरण कमलों का वियोग न सह सका ॥ ५ ॥ तब मैंने अपने प्यारे श्रीकृष्ण को ढूंढते २ जाकर देखा कि वह लक्ष्मी निकेतन भगवान सरस्वतीके तटपर अपना निवास स्थान बनाय अकेले बैठे हुये हैं ॥ ६ ॥ जिनका श्याम व उज्वल स्वरूप है शांतरूप व अरुण नेत्र हैं चतुर भुज रूप धारे और पीताम्बर धारण किये हैं ॥ ७ ॥ बाईं जंघापर दायें चरण को रख पीठ से छोटे पीपल का सहारा ले विष- यों को त्याग आनंद पूर्वक विराज रहे हैं, ॥ ८ ॥ उसकाल में वेदव्यास जीके सुहृद सखा, सिद्ध दशा को प्राप्त अपनी इच्छा से संसार में घूमते २ आनिकले ॥ ९ ॥ आनंद से नीची गर्दन कि- ये हुये परमभक्त उन उन महा मुनि मैत्रय जी के सुनते श्री कृष्ण भगवान प्रेम तथा हास्य यु- क्त दृष्टि से मुझे श्रम शून्य करके बोले ॥ १० ॥ हे ऊधो ! मैं तेरे चित्त के अभिप्राय को भली भांति जानता हूं, तुमने मेरी प्राप्तिके हेतु प्रजापति तथा वसुओंके यज्ञ में बड़ी सेवा की है, इस लिये जो गति दूसरों को मिलनी अलभ्य है वह तुझे दूंगा ॥ ११ ॥ और जो मेरी कृपा तुमपर हुई है उस से तुमजानो कि नाना जन्म पाते २ तुमको यह अंतिम शरीर प्राप्तहुआ है यह उसी का फल है कि जो तुमने निष्कपट सेवाकी है और एकान्त मे संसार छोड़ते समय तुमको मेरा दर्शन हुआ ॥ १२ ॥ प्रथम पाद्म कल्प की आदि सृष्टि में कमलासन ब्रह्मा जी को मैंने जिसज्ञान की शिक्षा कीथी और जिसमें मेरे महत्व का प्रकाश है जिसको विद्वान लोग भागवत कहते हैं उसी श्रेष्ठ ज्ञानका उपदेश देताहूं उसे स्वीकार करो ॥ १३ ॥ इस भांति कृष्ण भगवान ने जब सत्कारपूर्वक कहा तब श्रीकृष्ण भगवानका मैं कृपापात्र हाथ जोड़कर आंसू बहाते २ बोला उस काल प्रेमसे मुझे रोमांच होआया और मुहँ से टूट फूट अक्षर निकलने लगे ॥ १४॥ मैंने श्रीकृष्ण भगवान से प्रार्थना की कि हे महाराज ? जो आप की भक्ति करते हैं उन्हें चारों पदार्थों में कोई पदार्थ भी दुर्लभ नहीं है हे स्वामी ! मैं उनमें से कुछ नहीं चाहता क्योंकि आपके चरणों के ही सेवामें मैं कृतार्थ हूं ॥१५॥ इस विषय में कि अकर्त्ता होकर भी कर्म करना अजन्मा होकरभी जन्म लेना शत्रु के डरसे गढ़में छिपना, कालात्मा आपका सहस्रों स्त्रियों से गृहस्थाश्रम निभाना

मकुण्ठिताखण्डसदात्मबोधः । पृच्छेः प्रभोर्मुग्ध इवाऽप्रमत्तस्तन्नोमनोमोहयतीव देव॥ १७ ॥ ज्ञानंपरंस्वात्मरहःप्रकाशं प्रोवाचकस्मैभगवान्समग्रम् । अपिक्षमंनो ग्रहणायभर्तर्वदांऽञ्जसायद्वृजिनंतरेम ॥ १८ ॥ इत्यावेदितहार्दाय मह्यंसभगवा न्परः आदिदेशाऽरविन्दाक्ष आत्मनःपरमांस्थितिम् ॥ १९॥ सएवमाराधितपादतीर्थादधीततत्त्वात्मविबोधमार्गः।प्रणम्यपादौपरिवृत्त्यदेवमिहागतोऽहंविरहातुरात्मा ॥ २० ॥ सोऽहंतद्दर्शनाह्लादवियोगार्तियुतःप्रभो । गमिष्येदयितंतस्य बदर्याश्रममण्डलम् ॥ २१ ॥ यत्रनारायणोदेवो नरश्चभगवानृषिः । मृदुतीव्रंतपोदीर्घं तेपा तेलोकभावनौ ॥ २२ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ इत्युद्धवादुपाकर्ण्य सुहृदांदुःसहंवधम् । ज्ञानेनाशमयत्क्षत्ता शोकमुत्पतितंबुधः॥२३॥सतंमहाभागवतंव्रजन्तं कौरवर्षभः । विश्रम्भादभ्यधत्तेदं मुख्यंकृष्णपरिग्रहे२४विदुरउवाच॥ ज्ञानंपरंस्वात्मरहःप्रकाशं यदाहयोगेश्वरईश्वरस्ते । वक्तुंभवान्नोर्हतियद्धिविष्णोर्भृत्याः स्वभृत्यार्थकृतश्चरन्ति॥२५॥उद्धवउवाच॥ननुतेतत्त्वसंराध्य ऋषिःकौषारवोऽन्तिमे॥साक्षात्भगवताऽऽदिष्टो मर्त्यलोकंजिहासता ॥ २६ ॥ श्रीशुकउवाच॥ इतिसह विदुरेणविश्वमूर्तेर्गुणकथया सुधयाप्लावितोरुतापः॥क्षणमिवपुलिने यमस्वसुस्तांसमुषित औपगविर्निशांततोऽगात् ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ निधनमुपगतेषु वृष्णिभोजेष्वधिरथयूथपयूथपेषुमुख्यः । सनुकथमवशिष्टउद्धवो यद्धरिरपितत्यजआकृतिंत्र्यधीशः २८ ॥

आदिकर्मे विवेकियों की भी बुद्धि खेदको प्राप्त होती है॥ १६ ॥ हे देव ! जिनकी बुद्धि अखंडित तथा संशय आदि से रहित है वह भगवान अज्ञानकी नाई मुझ से सलाह पूंछे यह बात मेरे मन को मोह उत्पादन करती है ॥ १७ ॥ हे प्रभु ! आपने जिस अपने आत्मतत्व प्रकाशक ज्ञान की शिक्षा ब्रह्मा जी को कीथी वही यदि मेरे योग्य हो तो आप मुझसे कहो कि जिससे बिनाश्रम भव-सागर पार होजाऊँ ॥१८॥ इसभांति मेरे हृदयस्थ प्रयोजनको जानकर कमल नयन श्रीभगवानने आत्माकी परम स्थितिका उपदेशकिया ॥ १९॥ मैंने श्रीकृष्ण भगवानसे आत्मतत्व ज्ञानकोपाकर उनको प्रणामकर तथा उनकी परिक्रमाकरके उनके वियोग से अधीर चित्तहोकर यहांआयाहूं २० उन कृष्णजी के दर्शन से मैं आह्लादित तथा उनके वियोगसे दुःखीहूं, अब श्री भगवान केप्यारे बद्रिकाश्रम को जाऊँगा ॥ २१ ॥ जहांपर बहुत काल से सृष्टिपर कृपा करनेवाले, शांति स्वभाव श्रीनरनारायण ऋषि तीव्र तपस्या कररहे हैं ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेव जी बोले कि बिदुरजी को उधौ जीके मुखसे इसभांति भाइयोंका मरना सुनकर बड़ा खेद उत्पन्न हुआ परन्तु उन ज्ञानी बिदुरजीने उसे ज्ञानसे शांतकिया ॥२३॥ महा भागवत कृष्णजीके कुटुम्ब में मुख्य उधौजी जब जानेलगे तब विदुरजी ने विश्वास रखकर इसभांति कहा ॥ २४ ॥ विदुरजी ने कहा कि—योगेश्वर परमेश्वर ने जिसभांति आत्मतत्व का ज्ञान आपसेकहा उसको आपमुझ से कहिये कारण किईश्वर के भक्त अपने दासों की अर्थ सिद्धि के हेतु विचराकरतेहैं॥२५॥तब उधौजीने कहा कि—आप आत्मतत्व के हेतु श्री मैत्रेयजीके पास जाइये, क्यों श्रीभगवान मनुष्यलोक त्यागने के समय आपका स्मरण करके आप के हेतु श्री मैत्रेयजी को आज्ञा करगये हैं॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि इसभांति उद्धवजी का भारी संताप, श्रीविदुरजी से परमेश्वर का अमृत मय गुण कहने से, शांत होगया और उस रात्रि को वह वहीं यमुना के तटपर सोरहे उनकी वह रात्रि एक क्षणके समान व्यतीत होगई फिर वह वहां से बद्रिकाश्रम को गये ॥ २७ ॥ राजा परीक्षित ने कहा कि—जब वृष्णि भोजवंशी, महारथी तथा सेनापतियों के प्रधान यह सब मरगये और त्रिधीश भगवाननेभी अपना

श्रीशुकउवाच ॥ ब्रह्मशापापदेशेनकालेनाऽऽमोघवांछितः । संहृत्यस्वकुलंनूनं त्यक्ष्यन्देहमचिन्तयत् ॥ २९ ॥ अस्माल्लोकादुपरते मयिज्ञानंमदाश्रयम् । अर्हत्युद्धव एवाऽद्धा संप्रत्यात्मवतांवरः ॥३०॥ नोद्धवोऽण्वपिमन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितःप्रभुः । अतोमद्वयुनंलोकं ग्राहयन्निहतिष्ठतु ॥ ३१ ॥ एवंत्रिलोकगुरुणा संदिष्टःशब्दयोनिना । बदर्याश्रममासाद्य हरिमीजेसमाधिना ॥ ३२ ॥ विदुरोऽप्युद्धवाच्छ्रुत्वा कृष्णस्यपरमात्मनः । क्रीडयोपात्तदेहस्य कर्माणिश्लाघितानिच ॥ ३३ ॥ देहन्यासं चतस्यैवं धीराणांधैर्यवर्धनम् । अन्येषांदुष्करतरं पशूनांविक्लवात्मनाम् ॥ ३४ ॥ आत्मानंचकुरुश्रेष्ठ कृष्णेनमनसेक्षितम् । ध्यायन्गतेभागवते रुरोदप्रेमविह्वलः ३५॥ कालिन्द्याःकतिभिःसिद्ध अहोभिर्भरतर्षभः । प्रापद्यतस्वःसरितंयत्रमित्रासुतोमुनिः ॥ ३६ ॥ इतिश्रीमद्भा०तृ०विदुरोद्धवसंवादेनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ द्वारिद्युनद्याऋषभःकुरूणां मैत्रेयमासीनमगाधबोधम् । क्षत्तोपसृत्याऽच्युतभावशुद्धः पप्रच्छसौशील्यगुणाभितृप्तः ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ सुखायकर्माणिकरोतिलोको नतैःसुखंवाऽऽन्यदुपारमंवा । विन्देतभूयस्ततएवदुःखं यदत्रयुक्तंभगवान्वदेन्नः ॥ २ ॥ जनस्यकृष्णाद्विमुखस्य दैवादधर्मशीलस्यसुदुःखितस्य । अनुग्रहायेहचरन्तिनूनं भूतानिभव्यानिजनार्दनस्य ॥ ३ ॥ तत्साधुवर्याऽऽदिशवर्त्मशंनः संराधितोभगवान्येनपुंसाम् । हृदिस्थितोयच्छतिभक्तिपूते ज्ञानंसतत्त्वाधिगमंपुराणम् ॥ ४ ॥ करोतिकर्माणिकृतावतारो यान्यात्मतन्त्रो

शरीर त्याग दिया तो फिर उद्धव जी कैसे शेष रहे ॥ २८ ॥ यह सुन श्रीशुकदेवजी ने कहा कि ब्राह्मण के शाप के मिषसे अमोघवांछा वाले श्रीकृष्ण भगवान अपने कुल को संहार अपना शरीर छोड़ते समय यह चिन्ता करनेलगे कि ॥ २९ ॥ मेरे इसलोक से जाने के उपरान्त, आत्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ उद्धव मेरे सम्बन्धी ज्ञान का अधिकार अभी तो वर्त्तमान है ॥ ३० ॥ उद्धव मुझसे न्यून नहीं है यह मेरे गुणों करके प्राप्त हुआ है, इसलिये इस समर्थ उद्धवको मेरे विषयका ज्ञान उपदेश करते हुये यहीं रहना चाहिये ॥ ३१ ॥ इसभांति त्रिलोकी केगुरू भगवान वेदके कर्त्ताने सोचकर उद्धवको आज्ञादी तब वह बद्रिकाश्रम में पहुंचकर समाधि लगाकर भगवान का पूजन करने लगे ॥ ३२ ॥ विदुर जीने भी श्रीकृष्ण भगवान के प्रशस्त चरित्र, कि जिनने क्रीड़ा के लिये शरीर धारण किया है उद्धव जी से सुने ॥ ३३ ॥ और धैर्य्य पुरुषों के धीर्य बढ़ाने वाले, अधीर लोगों के हेतु अत्यंत दुष्कर ऐसे परमेश्वर के शरीर त्यागने का समाचार सुना ॥ ३४ ॥ हे कौरव बंश में श्रेष्ठ ! भगवद्भक्त उधौ कृष्ण जी का मनमें चिंतवन करते हुये चलेगये तब विदुर जी अति अधीर होकर रोनेलगे ॥ ३५ ॥ इसके उपरांत सिद्ध विदुर जी कितने दिनों में यमुना के तटसे चलकर गंगा जी के तटपर जहां मैत्रेय मुनिथे पहुंचे ॥ ३६ ॥

इतिश्रीभागवते०महापुराणेतृतीयस्कंधेसरलाभाषाटीकायांचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—बड़े विद्वान तथा ज्ञानी श्री मैत्रेयजी हरिद्वार में थे, उनके समीप, शुद्ध शीलवान, गुणवान, कौरववंशियों में श्रेष्ठ, भगवद्भक्त श्री विदुरजी ने जाकर प्रश्न किया ॥ १ ॥ विदुरजी बोले—किहेमहामुनि ! सबमनुष्य सुख के हेतु कर्म करते हैं, परन्तु उन से सुखनहीं प्राप्तहोता किन्तु अधिकतर दुःखहीं होता है, इस हेतु इस संसार में जो करने योग्यहो वह मुझ से आप वर्णन करियेगा ॥ २ ॥ आप सरीखे भगवद्भक्तों का भ्रमण करना केवल प्राचीन कर्म के हेतु भगवान से विमुख तथा अधर्मी, दुःखी जीवोंपर कृपा के हेतु है ॥ ३ ॥ इस लिये हे साधुओं में उत्तम ! आप हमको वह सुमार्ग बतलावें कि जिस के अनुसार करने से भगवान पवित्र भक्तियुक्त

भगवांस्त्र्यधीशः । यथाससर्जाऽग्रइदंनिरीहः संस्थाप्यवृत्तिं जगतोविधत्ते ॥ ५ ॥
यथापुनःस्वेखइदंनिवेश्य शेतेगुहायांसनिवृत्तवृत्तिः । योगेश्वराधीश्वरएकएतद
नुप्रविष्टोबहुधायथासीत् ॥ ६ ॥ क्रीडन्विधत्तेद्विजगोसुराणां क्षेमायकर्माण्यवता
रभेदैः । मनोनतृप्यत्यपिशृण्वतां नःसुश्लोकमौलेश्चरितामृतानि ॥ ७ ॥ यैस्तत्त्व
भेदैरधिलोकनाथो लोकानलोकान्सहलोकपालान् । अचीक्लृपद्यत्रहिसर्वस-
त्वनिकायभेदोऽधिकृतःप्रतीतः ॥ ८ ॥ येनप्रजानामुतआत्मकर्मरूपाभिधानांच
भिदांव्यधत्त । नारायणोविश्वसृडात्मयोनिरेतच्च नोवर्णयविप्रवर्य ॥ ९ ॥ पराव-
रेषांभगवन्व्रतानिश्रुतानिमेव्यासमुखादभीक्ष्णम् । अतृप्नुमःक्षुल्लसुखावहानां
तेषामृतेकृष्णकथाऽमृतौघात् ॥१०॥ कस्तृप्नुयात्तीर्थपदोऽभिधानात्सत्रेषुवःसूरि
भिरीड्यमानात् । यःकर्णनाडींपुरुषस्ययातो भवप्रदांगेहरतिंछिनत्ति ॥ ११ ॥ मुनि
र्विवक्षुर्भगवद्गुणानांसखाऽपितेभारतमाहकृष्णः । यस्मिन्नृणांग्राम्यसुखानुवादैर्म-
तिर्गृहीतानुहरेःकथायाम् ॥ १२ ॥ साश्रद्दधानस्यविवर्धमाना विरक्तिमन्यत्रकरो-
तिपुंसः । हरेःपदानुस्मृतिनिर्वृतस्य समस्तदुःखात्ययमाशुधत्ते ॥ १३ ॥ तान्शो-
च्यशोच्यानविदोऽनुशोचे हरेःकथायांविमुखानघेन । क्षिणोतिदेवोऽनिमिषस्तु
येषामायुर्वृथावादगतिस्मृतीनाम् ॥ १४ ॥ तदस्यकौषारवशर्मदातुर्हरेः कथामेव

हृदय में स्थितहोकर अनादि वैदिक ज्ञान देवें ॥ ४ ॥ श्रीभगवान, तीनों गुणोंके प्रेरणाकरनेवाले आपही अवतार धारण कर जो लीला करते हैं वह हम से कहिये, तथा चेष्टारहित परमेश्वर ने सृष्टि के प्रारम्भ में किसभांति इस प्रपंच का निर्माण किया ? और कैसे इस सृष्टि को भलीभांति स्थापितकर जीविकाका प्रबंध करते हैं ॥ ५ ॥ फिर वृत्तियों रहित वह भगवान अपने आकाश रूपी हृदय में संसार को स्थापनकरके योगमाया में किसभांति से सोते हैं तथा वह योगियों के स्वामिभगवान एक हैं परन्तु सृष्टि में पीछे से प्रवेश करके अनेक भांति के कैसे हुये ॥ ६ ॥ श्री भगवान ने देवता, गौ, ब्राह्मणों के सुख के हेतु जोमत्स्य आदि अवतार धरे तथा जो लीलायेंकी उनका वर्णन करिये , श्रेष्ठयशवाले भगवान के अमृतरूपी चरित्रों को हम सुनते हैं परंतु तौभी हमारामन तृप्तनहीं होता ॥ ७ ॥ लोकपालोंके स्वामी श्रीभगवान ने जिन २ तत्वों से लोक तथा दूसरेलोक, पहाड़ आदिक सम्पूर्ण सृष्टि कि जिन में प्राणी रहते हैं उनका जिसप्रकार निर्माणकिया है वह वर्णन करो ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मन् ! सृष्टिके रचनेवाले श्रीनारायण ने जिसभांति से प्राणियों के स्वभाव, कर्म, रूप तथा नामका भेद किया है वह आप मुझ से कहें ॥ ९ ॥ हे भगवन ! मैंने महाभारत में व्यासजी के मुखसे चारों आश्रमों के धर्म बारम्बार सुने और उन से तृप्तभी होगया कारण कि वह किंचित्आनंद के देनेवाले हैं परन्तु भारत में जो श्रीभगवानकी कथा है उस से मैं तृप्त नहींहोता ॥ १० ॥ जिसभगवान की अमृतरूपी कथाका वर्णन नारदादि करतेहैं उसकेसुनने परभी कौनमनुष्य तृप्त होसक्ता है वह अमृतरूपी कथा मनुष्यों के कान में जातेही जन्मदेनेवाले घर बिषयक प्रेम को काट देती है ॥ ११ ॥ आप के मित्र तथा भगवान रूप वेदव्यास मुनि ने परमेश्वरके चरित्रों के वर्णन करने की कामना से महाभारत बनाया कि जिसके सुनने से ग्राम्य सुखों द्वारा हरिकी कथामें चित्त प्रवृत्तहोताहै ॥१२॥ श्रद्धावान भक्तपुरुषको श्रीपरमेश्वर की कथा में प्रवृत्त हुई बुद्धि वैराग्य उत्पन्न करती है इस के उपरान्त परमेश्वरके चरणों का अभेदस्मरण कर सब दुःखों से शीघ्रही छुटाकर मोक्ष देती है ॥ १३ ॥ शोचने योग्य तथा पापीमनुष्यों का मैं बारम्बार शोचकरताहूं, किजो अपने पाप के प्रभाव से परमेश्वर के भजन से बिमुख हैं उनकी मन, वचन और कायाकृत क्रियायें सबवृथा हैं ऐसे मनुष्यों की अवस्थाको किजिसकी गति नहीं

कथासुसारम् । उद्धृत्यपुष्पेभ्यइवाऽऽर्तबन्धोशिवायनःकीर्तयतीर्थकीर्तेः ॥ १५ ॥ सविश्वजन्मस्थितिसंयमार्थेकृतावतारःप्रगृहीतशक्तिः ।चकारकर्माण्यतिपूरुषाणि यानीश्वरःकीर्तयतानिमह्यम् ॥ १६ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ सएवंभगवान्पृष्टःक्षत्रा कौषारविर्मुनिः । पुंसांनिःश्रेयसार्थेन तमाहबहुमानयन् ॥ १७ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ साधुपृष्टंत्वयासाधो लोकान्साध्वनुगृह्णता । कीर्तिवितन्वतालोके आत्मनोऽधोक्षजात्मनः ॥ १८ ॥ नैतच्चित्रंत्वयिक्षत्तर्बादरायणवीर्यजे । गृहीतोऽनन्यभावेनयत्त्वताहरिरीश्वरः ॥ १९ ॥ माण्डव्यशापाद्भगवान्प्रजासंयमनोयमः । भ्रातुःक्षेत्रे भुजिष्यायांजातः सत्यवतीसुतात् ॥ २० ॥ भवान्भगवतोनित्यंसंमतःसानुगस्यच। यस्यज्ञानोपदेशायमाऽऽदिशद्भगवान्व्रजन् ॥ २१ ॥ अथतेभगवल्लीला योगमायोपबृंहिताः । विश्वस्थित्युद्भवान्तार्थावर्णयाम्यनुपूर्वशः ॥ २२ ॥ भगवानेकआसेदमग्रआत्माऽऽत्मनांविभुः । आत्मेच्छानुगतावाऽऽत्मानानामत्युपलक्षणः ॥ २३ ॥ सवाएषतदाद्रष्टा नापश्यद्दृश्यमेकराट् । मेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥ २४ ॥ सावाएतस्यसंद्रष्टुःशक्तिःसदसदात्मिका । मायानाममहाभाग ययेदं निर्ममेविभुः ॥ २५ ॥ कालवृत्त्यातुमायायां गुणमय्यामधोक्षजः पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्तवीर्यवान् ॥ २६ ॥ ततोऽभवन्महत्तत्त्वमव्यक्तात्कालचोदितात् । विज्ञानात्माऽऽत्मदेहस्थं विश्वंव्यंजँस्तमोनुदः ॥ २७ ॥ सोऽप्यंशगुणकालात्माभगवद्

सकती, काल वृथाही नाशकरता है ॥ १४ हे मैत्रेयजी ! हे दीनबन्धु ! जैसे भौंरा फूलों में से उस का सारखींचलेता है वैसेही आप मेरेकल्याण के हेतु सम्पूर्ण कथाओं का सार कहिये ॥ १५ ॥ जिन्होंने सृष्टि के उत्पत्ति, पालन, संहार के हेतु प्रथम शक्तियां धारणकीथीं उन्हीं परमेश्वर ने मनुष्यअवतार लेकर जो चरित्र कियेहों उनका वर्णन कीजिये ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि जब बिदुरजी ने आनन्द देनेवाले श्रीमैत्रेयजी से इस भांति के प्रश्न किये तो मैत्रेयजी ने उनका बहुतआदर किया और कहा कि- ॥ १७ ॥ हे साधो सबसृष्टिके जीवों पर कृपाकर भगवान में मन लगानेवाला तथा सृष्टि में यश बढ़ानेवाला तुम ने अत्यन्त सुन्दर प्रश्न किया॥ १८ ॥ हेबिदुर हेव्याससुत!जो तू ने अनन्यभाव से श्रीभगवान का ग्रहण किया है यह कुछ अचम्भा नहीं है १९ मांडव्य ऋषि ने यमराजको शाप दिया उसीकारण विचित्रवीर्य के घर में स्थितदासी भुजिष्याके गर्भ तथा व्यासजी के वीर्य से तुम उत्पन्नहुएहो ॥ २० ॥ आप श्रीकृष्णजीको बड़ेही प्यारेहो श्री परमेश्वर बैकुंठलोक जाते २ मुझ को तुम से ज्ञानका उपदेश करने को कहगये हैं ॥ २१ ॥ इस कारण योगमाया से बढ़हुए परमेश्वर के चरित्रों का कि जिसमें सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन, तथा संहारका बर्णन है क्रमानुसार आप से बर्णन करूंगा ॥ २२ ॥ इस विश्व रचना के प्रथम केवल एक ईश्वरही था और प्राण ईश्वरके आत्माथे तथा आत्मा और नाना बाह्यर्योसे उपलक्षितद्रष्टादृश्य आदिकाभी भेदनथा ॥ २३ ॥ उनप्रकाशित द्रष्टा तथा भगवान ने जब कुछभी न देखा तबअपनी आत्माको असतरूप सा माना । कारण कि उनभगवान की मायारूपी शक्ति में लीनहोगईथीं परन्तु चैतन्यशक्ति प्रकाशमानथीं ॥ २४ ॥ हे बिदुर ! उस द्रष्टा के कार्य, कारणकरनेवाली शक्ति ही को मायाकहतेहैं किजिस से भगवान ने इस सृष्टि को उत्पन्न किया ॥ २५ ॥ अधोक्षजचैतन्य शक्तिवाले भगवान ने अपने अंश भूतपुरुष रूप से कालशक्ति गुणमयी माया में चैतन्यवीर्य को स्थापित किया ॥ २६ ॥ तब माया से अज्ञान नाशक महत्तत्व विज्ञानरूप तथा शरीर स्थितको सृष्टि उत्पन्नकरताहुआ प्रगटहुआ ॥ २७ ॥ चिदाभास, गुण और कालके बशीभूत महत्तत्वने

दृष्टिगोचरः ।आत्मानंव्यकरोदात्माविश्वस्यास्यसिसृक्षया ॥ २८ ॥ महत्तत्त्वाद्वि-
कुर्वाणादहंतत्त्वंव्यजायत । कार्यकारणकर्तात्मा भूतेन्द्रियमनोमयः ॥ २९ ॥ वै-
कारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहंत्रिधा । अहंतत्त्वाद्विकुर्वाणान्मनोवैकारिकादभूत्
वैकारिकाश्चयेदेवा अर्थाभिव्यंजनंयतः ॥ ३० ॥ तैजसानीन्द्रियाण्येव ज्ञानकर्मम-
यानिच । तामसोभूतसूक्ष्मादिर्यतःखंलिंगमात्मनः ॥ ३१ ॥ कालमायांशयोगेन
भगवद्वीक्षितंनभः । नभसोऽनुसृतंस्पर्शंविकुर्वन्निर्ममेऽनिलम् ॥ ३२ ॥ अनिलोऽपि
विकुर्वाणो नभसोरुबलान्वितः । ससर्जरूपतन्मात्रं ज्योतिर्लोकस्यलोचनम् ॥३३॥
अनिलेनान्वितंज्योतिर्विकुर्वत्परवीक्षितम् । आधत्ताम्भोरसमयं कालमायांऽशयो
गतः ॥ ३४ ॥ ज्योतिषाम्भोऽनुसंसृष्टं विकुर्वद्ब्रह्मवीक्षितम् । महींगन्धगुणामा-
धात् कालमायांऽशयोगतः ॥ ३५ ॥ भूतानांनभआदीनां यद्यद्भव्यावरावरम् । तेषां
परानुसंसर्गाद्यथासंख्यंगुणान्विदुः ॥ ३६ ॥ एतेदेवाःकलाविष्णोः कालमायांऽश
लिंगिनः नानात्वात्स्वक्रियानीशाः प्रोचुःप्रांजलयोविभुम् ॥ ३७ ॥ देवाऊचुः ॥
नमामतेदेवपदारविन्दं प्रपन्नतापोपशमातपत्रम् । यन्मूलकेतायतयोऽञ्जसोरु सं
सारदुःखंबहिरुत्क्षिपन्ति ॥ ३८ ॥ धातर्यदस्मिन्भवईश जीवास्तापत्रयेणोपहताान

श्री परमेश्वर के सन्मुखहोकर, इस सृष्टि के सृजने की कामना से अपने आत्मा विकारयुक्त किया २८ ॥ जबमहत्तत्त्व विकारको प्राप्तहुआ तब उसे उहंकारहुआ वह अहंकार कार्य (अधिभूत) कारण (अध्यात्म) और कर्ता (अधिदैव) के आश्रय और पंचभूत, इन्द्रियमय हुआ ॥ २९ ॥ विकारको प्राप्तहुएअहंकारसे मनउत्पन्नहुआ तथा वहीअहंकार,सात्विक,राजस,तामस तीनप्रकारका हुआ ॥ ३० ॥ उन इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता कि जिनसे शब्द आदि विषय जाने जाते हैं उसी विकार वान अहंकार से उत्पन्न हुए और राजस अहंकार से ज्ञानेन्द्री व कर्मेन्द्री उत्पन्न हुई तमास अहंकार शब्दका कारण है कि जिस शब्द से उसीका प्रकाशक उत्पन्न हुआ ॥ ३१ ॥ जब भगवान ने आकाश की ओर काल, माया तथा चिदा मायाके योगसे दृष्टिदी तो आकाश से स्पर्श तथा स्पर्श के विकार वान होने से वायु उत्पन्न हुई ॥ ३२ ॥ अत्यंत बलवान वायु भी आकाश समेत विकार का प्रगट हुआतो उससे रूप तन्मात्रा उत्पन्न हुआ और उससे सृष्टिकी प्रकाशित करने वाला तेज प्राप्त हुआ ॥ ३३ परमात्मा की दृष्टि गोचर होकर, काल, माया, चिदाभास के योग से तेज भी वायु समेत विकार को प्राप्त हुआ तो उससे रूप तन्मात्रा वाला जल उत्पन्न हुआ ॥ ३४ ॥ फिर परमेश्वर की दृष्टि गोचर होकर काल, माया, चिदाभास के योग से जल भी तेज समेत विकार को प्राप्तहुआ तब उससे गंध गुणवाली पृथ्वी उत्पन्न हुई ॥ ३५ ॥ हे विदुर! पंच महाभूत जैसे एक के अनंतर एक उत्पन्न होते गये तैसही अपने से प्रथम उत्पन्न हुये महाभूतों की कारणता का अन्वय होने से एक के पीछे एक २ भूत में एक २ गुण बढ़ता गया कि जिसभांति आकाश में और किसी की कारणता का अन्वयन होने से केवल शब्दही गुण है तथा वायुमें आकाश का अन्वय होने से वायुका गुण स्पर्श और आकाशका गुण शब्द भी बर्तमान है इसी भांति तेजमें शब्द स्पर्श तथा रूप है और जलमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस है और इसी भांति पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह पांचों गुण हैं ॥ ३६ ॥ यह सम्पूर्ण इन्द्रियों के देवता विष्णु की कला हैं काल माया अंश इनका स्वरूप है जब इनको अपनी क्रिया करने की अर्थात् सृष्टि रचने की सामर्थ्य न हुईतो भगवान की प्रार्थना करने लगे ॥ ३७ ॥ हे देव! तुम्हारे चरण कमलों को कि जो तुम्हारे शरणागतों के दुःख नाश करने के हेतु छत्ररूपहैं प्रणाम करते हैं इन चरण कमलों के आश्रयी बड़े२ यतीलोग अनायासही संसार रूपी दुःखों को त्याग देते हैं

शर्म। आत्मँल्लभन्तेभगवंस्तवांघ्रिच्छायां सविद्यामतआश्रयेम ॥ ३९ ॥ मार्गंति यत्तेमुखपद्मनीडैश्छन्दः सुपर्णैर्ऋषयोविविक्ते। यस्याऽघमर्षोदसरिद्वरायाः पदं पदंतीर्थपदः प्रपन्नाः ॥ ४० ॥ यच्छ्रद्धयाश्रुतवत्याचभक्त्या संमृज्यमानेहृदयेऽवधाय। ज्ञानेनवैराग्यबलेनधीरा व्रजेमतत्तेऽघ्रिसरोजपीठम् ॥ ४१ ॥ विश्वस्यजन्म स्थितिसंयमार्थे कृ ावतारस्यपदाम्बुजंते। व्रजेमसर्वेशरणंयदीश स्मृतंप्रयच्छत्यऽभयंस्वपुंसाम् ॥ ४२ ॥ यत्सानुबन्धेऽसतिदेहगेहे ममाहमित्यूढदुराग्रहाणाम्। पुंसांसुदूरंवसतोऽपिपुर्यां भजेमतत्तेभगवन्पदाब्जम् ॥ ४३ ॥ तान्वाअसद्वृत्तिभिरक्षिभिर्ये पराहृतान्तर्मनसः परेश। अथोनपश्यन्त्युरुगायनूनं यतपदन्यासविलासलक्ष्म्याः ॥ ४४ ॥ पानेन ते देव कथासुधायाः प्रवृद्धभक्त्या विशदाशयाय। वैराग्यसारं प्रतिलभ्यबोधं यथाऽञ्जसाऽन्वीयुरकुण्ठधिष्णम् ॥ ४५ ॥ तथाऽपरेचात्म समाधियोगबलेनजित्वा प्रकृतिंबलिष्ठाम्। त्वामेवधीराः पुरुषंविशन्ति तेषांश्रमः स्यान्नतुसेवयाते ॥ ४६ ॥ तत्तेवयंलोकसिसृक्षयाऽऽद्य त्वयाऽनुसृष्टास्त्रिभिरात्म भिःस्म। सर्वेवियुक्ताःस्वविहारतन्त्रं न शक्नुमस्तत्प्रतिहर्तवेते ॥ ४७ ॥ यावद्बलिं तेऽजहरामकाले यथावयंचान्नमदामयत्र। यथोभयेषांत इमेहलोका बलिंहरन्तोऽन्नमदन्त्यनूहाः ॥ ४८ त्वंनःसुराणामसिसान्वयानां कूटस्थआद्यः पुरुषःपुराणः।

॥ ३८ ॥ हे पिता ! इस संसार में मनुष्य जबतक आपके चरणों की छाया का आश्रय नहीं लेता तबतक उसको आनंद नहीं प्राप्त होता ॥ ३९ ॥ ऋषिलोग आपको, घोंसले रूपी मुखसे पक्षी रूपी वेदों के आश्रय से ढूंढते हैं। आपके चरण तीर्थ रूप हैं इस हेतु जिसका जल सब पापोंको नष्टकर देता है, ऐसी गंगाकी उत्पत्ति के स्थान रूप चरण कमलों की हम शरण आये हैं ॥ ४० ॥ भलीभांति श्रद्धा व श्रवण की हुई भक्तिसे शुद्ध हृदय में जिसका बल वैराग्यही है इस ज्ञानसे पुरुष जिन चरणों का ध्यान करके धीरवान बनजाते हैं उन्हीं चरण कमलों की हम शरण हैं ॥ ४१ ॥ हे भगवान ! आपने इस सृष्टिके जन्म, स्थिति, तथा संहार के हेतु अवतार धारण किया है उन तुम्हारे चरण कमलों की हम सब शरण हैं । हे स्वामी ! आप अपने भक्तों को अभय गति देते हो ॥ ४२ ॥ हे भगवान ! जिनके अहं तथा ममता रूपी दुराग्रह उपकरण समेत इस तुच्छ देह में बढ़रहा है। ऐसे मनुष्यों को अलभ्य आपके चरणों को हम प्रणाम करते हैं ॥ ४३ ॥ हे मायाके स्वामी ! जिन मनुष्यों का चित्त इन्द्रियों के मार्ग से खोटे विषया दिकों में घिराकरता है वह मनुष्य, आपके चरण कमलों के मार्ग में चलने वाले भक्तों को नहीं दीखते ॥ ४४ ॥ हे स्वामी ! जो मनुष्य आपके कथा रूपी अमृत के पान से बढी हुई भक्ति से स्वच्छ अंतःकरण वाले हैं वह मनुष्य वैराग्य के ज्ञानको प्राप्त होकर बिनाही परिश्रम वैकुंठ को जाते हैं ॥ ४५ ॥ इसीभांति कितने एक दूसरे मनुष्य आत्माकी समाधि के योगबलसे बलिष्ट मायाको जीतकर आपके रूपको प्राप्तहोते हैं उनको बिनाही परिश्रम मुक्तिप्राप्तहोती है ॥४६॥ इस सृष्टि सृजने की कामनासे आपने हमें सत्वगुण आदिक तीन गुणोंसे उत्पन्न किया इसीलिये हमारा स्वभाव एक दूसरे से बिरुद्ध रहने के कारण हम परस्पर जुदे रहते हैं इसी से हम सृष्टि को नहीं रचसकते ॥ ४७ ॥ हे प्रभु ! हम समयानुसार तुमको समस्त भोग समर्पण करसकें और जिस प्रकार हम अन्न के भोजन में सामर्थ्य हो सकें तथा जिसस्थानपर रहकर समस्तजीव हमको और तुमको भोग दें वहस्थान हमको बतलाये ॥ ४८ ॥ हे देव आप हम देवताओं के आदि कारण हैं आप निर्विकार, अधिष्ठाता, तथापुराणपुरुष हो। हे स्वामी ! हे अजन्मा ! सब वस्तुओं का भंग

त्वंदेवशक्त्यां गुणकर्मयोनौ रेतस्त्वजायां कविमादधेऽजः ॥४९॥ ततोवयंसत्प्रमुखायदर्थे बभूविमाऽऽत्मन्करवामकिंते । त्वंनःस्वचक्षुःपरिदेहिशक्त्या देवक्रियार्थे यदनुग्रहाणाम् ॥ ५० ॥

इतिश्रीमद्भा०म० तृतीयस्कन्धेमहदादिसर्गे सर्वदेवकृतस्तोत्रवर्णनंनामपंचमो० ५

ऋषिरुवाच ॥ इतितासांस्वशक्तीनां सतीनामसमेत्यसः । प्रसुप्तलोकतन्त्राणां निशाम्यगतिमीश्वरः ॥ १ ॥ कालसंज्ञांतथादेवीं बिभ्रच्छक्तिमुरुक्रमः । त्रयोविंशतितत्त्वानां गणंयुगपदाविशत् ॥ २ ॥ सोऽनुप्रविष्टो भगवांश्चेष्टारूपेणतंगणम् । भिन्नंसंयोजयामास सुप्तंकर्मप्रबोधयन् ॥ ३ ॥ प्रबुद्धकर्मादैवेन त्रयोविंशतिकोगणः प्रेरितोऽजनयत्स्वाभिर्मात्राभिरधिपूरुषम् ॥४॥ परेणविशतास्वास्मिन् मात्रयाविश्वसृग्गणः । चुक्षोभान्योन्यमासाद्य यस्मिंल्लोकाश्चराचराः ॥ ५॥ हिरण्मयःसपुरुषः सहस्रपरिवत्सरान् । आण्डकोशउवासाऽप्सु सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥ ६॥ सवैविश्वसृजांगर्भो देवकर्मात्मशक्तिमान् । विबभाजात्मनात्मानमेकधादशधात्रिधा ॥ ७ ॥ एषह्यशेषसत्त्वानामात्मांशः परमात्मनः । आद्योऽवतारोयत्रासौ भूतग्रामोविभाव्यते ॥ ८ ॥ साध्यात्मः साधिदैवश्च साधिभूत इतित्रिधा । विराट्प्राणोदशविधएकधाहृदयेनच ॥ ९ ॥ स्मरन्विश्वसृजामीशो विज्ञापितमधोक्षजः । विराजमतपत्स्वेन तेजसैषांविवृत्तये ॥ १० ॥ अथ तस्याभितप्तस्यकति चायतनानिह । निरभि

करने वाला महतत्त्वरूप वीर्य को आपने सत्वादिगुण तथा कर्म की कारण रूप अनादि मायाशक्ति में स्थापित किया है ॥ ४९ ॥ इस लिये हे देव ! हमसब महतत्व आदि जिसकाम के हेतु प्राप्तहुए हैं उस काम के लिये आप हम से आज्ञा करें जो हमारा कर्त्तव्य कर्महो वही हम करैं यदि कहो कितुम्हाराकर्म सृष्टि है तो शक्ति समेत आप बुद्धि देवो, कि जिस से हम आपके कृपापात्रहोकर सृष्टि रचने में प्रवृत्त होवैं ॥ ५० ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणे सरलाभाषाटीकायांतृतीयस्कन्धे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

मैत्रेयजीने कहा—कि महत्तत्व आदि शक्तियों की स्थिति देखकर कि जिन में जीवोंके भाग के साधन सूक्ष्म रूपसे रहे हैं ॥ १ ॥ अद्भुत पराक्रम वाले श्री परमेश्वर ने माया का आश्रय ग्रहण करके महत्तत्व आदि तेईस तत्वों के एक समूह में अन्तर्यामी रूप से प्रवेश किया ॥ २ ॥ वह जुदा २ तत्व समूह, क्रिया शक्ति से परमेश्वर के प्रवेश करते इकट्ठा होगया, और मायामें व्याप्त हुये प्राणियों के कर्म अंत को जाग्रत् होगये ॥ ३ ॥ इस भांति उन २३ तत्त्वों के गुणों ने अपने अंशों से विराट शरीर को उत्पन्न किया कि जिन की क्रिया शक्ति परमेश्वर की प्रेरणा से जाग्रत हुई है ॥ ४ ॥ भगवान ने जब उन तत्वों में प्रवेश किया तब वह परस्पर मिलकर अंशों से विकार को प्राप्त हुआ वही विकार पाया हुआ पुरुष विराट् देह है कि जिससे यह सम्पूर्ण चर अचर प्राणी हुये ॥ ५ ॥ वह ब्रह्माण्डरूपी पुरुष सहस्रों वर्ष तक जल के भीतर के अंडकोश में रहा वह अण्डकोश सम्पूर्ण प्राणियों का उत्पत्ति स्थान है ॥ ६ ॥ विश्वस्रष्टाका गर्भ देव, कर्म और आत्मशक्ति है उसी आत्मा से एक प्रकार, दश प्रकार और तीन प्रकारके विभाग किये ॥ ७ ॥ यही ब्रह्माण्ड प्राणियोंका आत्मांश है आत्मा का अंश प्राणहै वही यह आदि अवतार है जिस में सम्पूर्ण प्राणी प्रतीत होते हैं ॥ ८ ॥ यह विराट् अध्यात्म रूपसे तीन प्रकार का, अधिदैव प्राण रूप से दश प्रकार का, अधिभूत हृदय रूप से एक प्रकार का है ॥ ९ ॥ सब तत्वोंके स्वामी देवताओं की विश्वस्रष्टा भगवान प्रार्थना का स्मरण कर इन की नाना भांति की वृत्तियों के लाभ के हेतु अपने विराट् रूपसे विचार करने लगे ॥ १० ॥ जब परमेश्वर ने

घन्तदेवानां तानिमंगदतःशृणु ॥ ११ ॥ तस्याग्निरास्यंनिर्भिन्नं लोकपालोऽविशत्प दम्। वाचास्वांशेनवक्तव्यं ययाऽसौप्रतिपद्यते ॥ १२ ॥ निर्भिन्नंतालुवरुणो लोक पालोऽविशद्धरेः। जिह्वयांऽशेनचरसं ययाऽसौप्रतिपद्यते ॥ १३ ॥ निर्भिन्ने अ-श्विनौनासे विष्णोराविशतांपदम्। घ्राणेनांऽशेनगन्धस्य प्रतिपत्तिर्यतोभवेत् १४॥ निर्भिन्नेअक्षिणीत्वष्टा लोकपालोऽविशद्विभो। चक्षुषांशेनरूपाणां प्रतिपत्तिर्यतो भवेत्॥ १५ ॥ निर्भिन्नान्यस्यचर्माणि लोकपालोऽनिलोऽविशत्। प्राणेनांऽशेनसं स्पर्शं येनाऽसौप्रतिपद्यते ॥ १६ ॥ कर्णावस्यविनिर्भिन्नौ धिष्ण्यंस्वंविविशुर्दिशः श्रोत्रेणांशेनशब्दस्य सिद्धिंयेनप्रपद्यते ॥१७॥ त्वचमस्यविनिर्भिन्नां विविशुर्धिष्ण्य मोषधीः अंशेनरोमभिःकण्डूं यैरसौप्रतिपद्यते ॥ १८ ॥ मेढ्रंतस्यविनिर्भिन्नं स्वधि ष्ण्यंक उपाविशत्। रेतसांऽशेनयेनासावानन्दं प्रतिपद्यते ॥ १९ ॥ गुदंपुंसोविनि र्भिन्नं मित्रोलोकेशआविशत्। पायुनांशेनयेनाऽसौ विसर्गंप्रतिपद्यते ॥ २० ॥ हस्ता वस्यविनिर्भिन्नाविन्द्रःस्वर्पतिराविशत्। वार्तयांशेनपुरुषो ययावृत्तिंप्रपद्यते ॥ ॥ २१ ॥ पादावस्यविनिर्भिन्नौ लोकेशोविष्णुराविशत्। गत्यास्वांशेनपुरुषो यया प्राप्यंप्रपद्यते ॥ २२ ॥ बुद्धिंचास्यविनिर्भिन्नां वागीशोधिष्ण्यमाविशत्। बोधेनांशे न बोधव्यं प्रतिपत्तिर्यतोभवेत् ॥ २३ ॥ हृदयंचास्यनिर्भिन्नं चन्द्रमाधिष्ण्यमावि-शत् मनसांशेनयेनासौ विक्रियांप्रतिपद्यते ॥ २४ ॥ आत्मानंचास्यनिर्भिन्नमभिमा

विचार किया तो देवताओं के स्थान उत्पन्न हुये ॥ ११ ॥ उस ब्रह्माण्ड का मुख विकार को प्राप्त हुआ तो उस लोक पाल अग्नि ने अपनी शक्ति रूप वाणी इंद्री के साथ प्रवेश किया जिससे यह प्राणात्मा शब्द का उच्चारण करता है ॥ १२ ॥ फिर इस ब्रह्माण्ड के तालुओं का भेदप्राप्त हुआ तब लोकपाल वरुण इसके देवता ने, इसमें प्रवेश किया उस तालुमें जिह्वा, २ से रस और रससे खट्टे, मीठे स्वाद का ज्ञान प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ फिर इस ब्रह्माण्ड के नासिका हुई इसका अश्विनी कुमार देवता हुआ अब इसकी प्राण इंद्री हुई तब यह गंध को प्राप्त हुई ॥ १४ ॥ इसके अनंतर नेत्र उत्पन्न हुये तो इसके देवता सूर्य्य ने उस में प्रवेश किया जिन नेत्रों से रूप का ज्ञान होता है ॥ १५ ॥ इसके उपरांत खाल भेद को प्राप्ति हुई उस में प्राण इंद्री के साथ लोकपाल वायु ने प्रवेश किया उसी खालसे यह प्राणात्मा स्पर्श का ज्ञान करता है ॥ १६ ॥ फिर जब कान भेद को प्राप्त हुये तब आकाश ने प्रवेश किया दिशा देवता और श्रोत्र इसकी इंद्री हुई जिससे शब्द का ज्ञान होता है ॥ १७ ॥ फिर जब इसके त्वचा उत्पन्न हुई तब उस से औषधि देवता और रोम इंद्री हुई कि जिस से प्राणी खुजली का अनुभव करता है ॥ १८ ॥ फिर उसके लिंगेंद्रिय उत्पन्न हुई उसमें रेत के संग ब्रह्मा ने प्रवेश किया जिसके वीर्य से प्राणीको आनन्द प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ फिर विराटके गुदा उत्पन्न हुई उसमें लोकपाल मित्र ने वायु इंद्रीके संग प्रवेश किया जिस से यह प्राणी मल त्याग करता है ॥ २० ॥ फिर उसके हाथ प्रगट हुये तब इसके लोकपाल इन्द्र देवताहुए और क्रय विक्रय आदि शक्ति इंद्रीने उस में प्रवेश किया ॥ २१ ॥ फिर विराट के पैर उत्पन्न हुए तब इसके लोकेश विष्णु देवताहुए उन्हों ने गति के अंशसे इसमें प्रवेश किया, जहांतहां जानाही इसका धर्म है ॥ २२ ॥ जब इसके बुद्धि उत्पन्न हुई तब वागीश वाणी की देवता सरस्वती ने इसमें प्रवेश किया, ज्ञान इसका अंश है और ज्ञानही इसका धर्म है ॥ २३ ॥ फिर विराट के हृदय उत्पन्न हुआ जिस का देवता चन्द्रमा हुआ उसने इसमें प्रवेश किया मन इसका अंश हुआ जिससे यह दुःख सुख आदिकोंको प्राप्त होता है यही इसका धर्म है ॥ २३ ॥ जब यह आत्मा भेद को प्राप्त हुआ तब अभिमान हुआ

नोऽविशत्पदम्। कर्मणांशेनयेनासौ कर्तव्यंप्रतिपद्यते ॥ २५॥ सत्त्वंचास्यविनिर्भिन्नं महान्धिष्ण्यमुपाविशत्। चित्तेनांऽशेन येनासौ विज्ञानंप्रतिपद्यते ॥ २६॥ शीर्ष्णोऽस्य द्यौर्धरापद्भ्यां खंनाभेरुदपद्यत। गुणानांवृत्तयोयेषु प्रतीयन्तेसुरादयः ॥ ॥ २७ ॥ आत्यन्तिकेनसत्त्वेन दिवंदेवाःप्रपेदिरे। धरांरजःस्वभावेन पणयोयेचताननु ॥ २८ ॥ तार्तीयेनस्वभावेन भगवन्नाभिमाश्रिताः। उभयोरन्तरंव्योम येरुद्रपार्षदांगणाः ॥ २९ ॥ मुखतोऽवर्ततब्रह्म पुरुषस्यकुरूद्वह। यस्तून्मुखत्वाद्वर्णानां मुख्योऽभूद्ब्राह्मणोगुरुः ॥ ३० ॥ बाहुभ्योऽवर्ततक्षत्रं क्षत्रियस्तदनुव्रतः। योजातस्त्रायतेवर्णान्पौरुषःकण्टकक्षतात् ॥३१॥ विशोऽवर्तन्त तस्योर्वोर्लोकवृत्तिकरीर्विभोः। वैश्यस्तदुद्भवोवार्तां नृणांयःसमवर्तयत् ॥ ३२ ॥ पद्भ्यांभगवतोजज्ञे शुश्रूषाधर्मसिद्धये। तस्यांजातःपुराशूद्रो यद्वृत्त्यातुष्यतेहरिः ॥ ३३ ॥ एतेवर्णाःस्वधर्मेण यजंति स्वगुरुंहरिम्। श्रद्धयाऽऽत्मविशुद्ध्यर्थं यज्जाताःसहवृत्तिभिः ॥३४ ॥ एतत्क्षत्तर्भगवतोदैवकर्मात्मरूपिणः। कःश्रद्दध्यादुपाकर्तुं योगमायाबलोदयम् ॥ ३५ ॥ अथाऽपिकीर्तयाम्यङ्ग यथामतियथाश्रुतम्। कीर्तिंहरेःस्वांसत्कर्तुंगिरमन्याभिधासतीम् ॥ ३६ ॥ एकान्तलाभंवचसोऽनु पुंसांसुश्लोकमौलेर्गुणवादमाहुः। श्रुतेश्चविद्वद्भिरुपाकृतायां कथासुधायामुपसंप्रयोगम् ॥ ३७ ॥ आत्मनोऽवसितोवत्स महिमा कविनाऽऽदिना। संवत्सरसहस्रान्ते धियायोगविपक्वया ॥ ३८ ॥ अतो भगवतो

इसके देवता शिवने इसमें प्रवेश किया जिस का कर्म अंशहै यह जीवात्मा जो कर्तव्य कर्म करता है वही इसका धर्म है ॥२५॥ फिर विराट के बुद्धि और चित्त उत्पन्न हुआ उसमें चेतना इंद्रीके साथ ब्रह्मा ने प्रवेश किया कि जिस से जीवात्मा ज्ञान को प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ भगवान के शिरसे स्वर्ग पैरों से पृथ्वी और नाभि से आकाश उत्पन्न हुआ जिन लोकों में गुणोंके परिणाम भूत देवता आदि सम्पूर्ण प्राणियों का निश्चय होता है ॥ २७ ॥ सतोगुण की विशेषता से देवता वैकुंठ को प्राप्त हुए तथा रजोगुण की विशेषतासे मनुष्य तथा गौ इत्यादिक पशु पृथ्वी को प्राप्त हुये ॥ २८ ॥ तमोगुणकी विशेषतासे रुद्रके पार्षद गण परमेश्वर के नाभि स्थानापन्न स्वर्गतथा पृथ्वी के मध्य में प्राप्त हुये ॥ २९ ॥ हे विदुर ! परमेश्वर के मुंहसे बेद उत्पन्न हुआ और सम्पूर्ण वर्णों में उत्तम वर्ण ब्राह्मण भी उन्हीं के मुंह से उत्पन्न हुये और यही चारों वर्णके कुल गुरू हुये ॥ ३० ॥ भगवान की भुजाओं से क्षत्री उत्पन्न हुये वह ब्राह्मणों के आज्ञानुवर्ती हुये उन भगवानके अंश भूत क्षत्रियों ने तीनों वर्णोंकी चोर आदिकोंसे रक्षाकी॥३१॥उस परमेश्वरकी जंघाओंसे सृष्टिकी जीविकाके हेतु वैश्य तथा उनकी खेती आदि वृत्ति उत्पन्नहुई उन्हीं वैश्योंने अपनी खेती आदि से सृष्टि की जीविका की विधि चलाई॥३२॥तीनों वर्णोंकी सेवाके हेतु भगवानकेचरणों से शूद्रउत्पन्नहुए जिन के सेवा करने से श्रीभगवान प्रसन्न होजाते हैं ॥ ३३ ॥ इन वर्णों को अपनी २ वृत्तियों के संग जिसभगवान से उत्पन्न हुए हैं उसी की आराधना अपनी आत्मक शुद्धि के हेतु करना चाहिये यही उनका परमधर्म है ॥ ३४ ॥ हे विदुर ! भगवानका दैवकर्मही आत्मरूप है आत्मारूपी भगवान की योगमाता के बलके उदयका वर्णन करने की कौन इच्छा करसक्ता है ॥ ३५ ॥ तौभी हे अंग ! परमेश्वर के गुणों के बिरुद्ध वर्णन करने से अपवित्र जिह्वा पवित्र करने के हेतु जैसा मैंने सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है उस के अनुसार उनका यश मैं आप से वर्णन करूंगा ॥ ३६ ॥ जो एकांतीपुरुष हैं उनकी वाणी का एकांत लाभ इतनाही है कि परमेश्वर के गुणों का वर्णन करना तथा कानों का एकांत लाभ यह है किपरमेश्वरकी कथामृतका श्रवण करना ॥ ३७ ॥ हे वत्स ! आदिकवि ब्रह्माजी ने भी सहस्रों वर्ष की तपस्या से दृढ़ बुद्धि

माया मायिनामपिमोहिनी । यत्स्वयंचात्मवर्त्मात्मा न वेदकिमुतापरे ॥ ३९ ॥ यतोऽप्राप्यन्यवर्तन्त वाचश्चमनसासह । अहंचान्य इमेदेवास्तस्मैभगवतेनमः ४० ॥

इतिश्रीमद्भा०तृतीय०विराड्देहे ईश्वरप्रवेशवर्णननामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ श्री शुक उवाच ॥ एवंब्रुवाणंमैत्रेयं द्वैपायनसुतोबुधः । प्रीणयन्निवभारत्या विदुरःप्रत्यभाषत ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ ब्रह्मन्कथं भगवतश्चिन्मात्रस्याऽविकारिणः । लीलयाचापियुज्येरन्निर्गुणस्यगुणाःक्रियाः ॥ २ ॥ क्रीडायामुद्यमोऽर्भस्य कामश्चिक्रीडिताऽन्यतः स्वतस्तृप्तस्यचकथं निवृत्तस्यसदाऽन्यतः ॥ ३ ॥ असृाक्षीद्भगवान्विश्वं गुणमय्याऽऽत्ममायया । तयासंस्थापयत्येतद्भूयःप्रत्यपिधास्यति ॥ ४ ॥ देशतःकालतो योऽसाववस्थातः स्वतो ऽन्यतः । अविलुप्तावबोधात्मा सयुज्येताऽजयाकथम् ॥ ५ ॥ भगवानेकएवैष सर्वक्षेत्रेष्ववस्थितः । अमुष्यदुर्भगत्वंवा क्लेशोवाकर्मभिःकुतः ॥ ६ ॥ एतस्मिन्मेमनो विद्वन्खिद्यते ज्ञानसंकटे । तन्नःपराणुदविभो कश्मलंमानसंमहत् ॥ ७ श्री शुक उवाच । सइत्थंचोदितःक्षत्त्रा तत्त्वजिज्ञासुनामुनिः । प्रत्याहभगवच्चित्तः स्मयन्निवगतस्मयः ॥ ८ ॥ । मैत्रेय उवाच । सेयंभगवतोमाया यन्नयेनविरुध्यते । ईश्वरस्याविमुक्तस्य कार्पण्यमुतबन्धनम् ॥ ९ ॥ यदर्थेनविनाऽमुष्य पुंसआत्माविपर्ययः । प्रतीयतउपद्रष्टुः स्वशिरश्छेदनादिकः ॥ १० ॥ यथाजलेचन्द्रमसः कम्पादिस्तत्कृतोगुणः । दृश्यतेऽसन्नपिद्रष्टुरात्मनो नात्मनोगुणः॥११॥ सवैनिवृत्तिधर्मेण वासुदेवाऽनुकम्पया ।

द्वारा श्री भगवान की महिमा नहीं जानी ॥ ३८ ॥ इसी हेतु मैं कहताहूं कि परमेश्वर की माया से बड़े २ मनुष्यभी मोहित होजाते हैं । जब श्रीभगवानही अपनी माया को नहीं जानते तोदूसरे किस भांति जानसक्ते हैं ॥ ३९ ॥ जहांमन,वाणी नहीं पहुँचते किन्तु रुद्र तथा दूसरे देवताभी नहीं पहुँचसकते उन परमेश्वर को मैं प्रणाम करताहूं ॥ ४० ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणे०तृतीयस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेव जी बोले कि—जब मैत्रेय जीने इस भांति प्रश्नकिये तो श्री वेदव्यास जी के पुत्र बड़े ज्ञानी विदुर जीने प्रसन्न होकर कहा ॥ १ ॥ विदुर जी बोले कि—हे ब्रह्मन्! चैतन्य मात्र, अविकारी भगवान जो चरित्र करते हैं वह निर्गुण होनेपर कैसे करते हैं यह कैसे कहाजाय ॥ २ ॥ परमेश्वर का बालक की भांति खेलना संभव नहीं, क्योंकि बालक आपही खेलको बनाने और प्रसन्न होते और फिरपीछे आपही बिगाड़ डालते हैं ॥ ३ ॥ भगवान ने जिस मोहित करने वाली माया से सृष्टि को रचा है उसीसे पालन करके उसीसे फिर संहार करा ॥ ४ ॥ जो प्राणात्मा देश, काल, अवस्था तथा अपने स्वरूप से कभी लुप्तज्ञान नहीं है उस भगवान को माया का संबंध कैसे होसकता है दूसरे सम्पूर्ण देहों में रहने वाला आनंद भोगने वाला भी एक ही परमेश्वर है वह जुदा नहीं, फिर इसके कर्मों से आनंद आदिका नाश और क्लेश कैसे होसकता है ॥ ६ ॥ हे विद्वन् ! इस अज्ञान विषय में मेराचित्त बहुत खेदको प्राप्त होताहै हे विभो ! इस मेरे दुःखको आप दूरकरो ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—जब तत्ववेत्ता विदुरजी ने मैत्रेय जीसे इस भांति प्रश्नकिया तब भगवद्भक्त मैत्रेय जी हंसते २ विदुर जी से कहने लगे ॥ ८ ॥ मैत्रेय जी ने कहा कि—यही भगवान की माया है किजो तर्कसे प्रवृत्त होती है ईश्वर कीजो कृपणता और बंधन है वह तर्कसे होती है ॥ ९ ॥ जैसे स्वप्न देखने वालेको विना शिरकटे भी यह भ्रमहोता है कि यह मेराशिर कटगया ॥ १० ॥ और जलमें पड़ेहुये चन्द्रमा की छाया में जलका कंप आदि गुण असत्य ज्ञातहोता है ऐसे ही देहादिकों के विषे जीवका भेद है ॥ ११ ॥ वह आत्मा में स्थिति अनात्म बुद्धि तथा माया, भगवान की कृपा

भगवद्भक्तियोगेन तिरोधत्ते शनैरिह ॥१२॥ यदेन्द्रियोपरामोऽथ द्रष्ट्रात्मनि परे हरौ विलीयन्ते तदा क्लेशाः संसुप्तस्येव कृत्स्नशः ॥ १३ ॥ अशेषसंक्लेशशमं विधत्ते गुणानुवादश्रवणं मुरारेः । कुतः पुनस्तच्चरणारविन्दपरागसेवारतिरात्मलब्धा ॥ १४॥ विदुर उवाच ॥ संछिन्नःसंशयोमह्यं तवसूक्तासिनाविभो । उभयत्रापि भगवन्मनोमे संप्रधावति ॥ १५ ॥ साध्वेतद्व्याहृतं विद्वन्नात्ममायाऽयनं हरेः । आभात्यपार्थं निर्मूलं विश्वमूलं नयद्बहिः ॥ १६ ॥ यश्चमूढतमोलोके यश्चबुद्धेःपरंगतः । तावुभौसुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितोजनः ॥ १७॥ अर्थाऽभावंविनिश्चित्य प्रतीतस्यापिनात्मनः । तांचापियुष्मच्चरणसेवयाऽहंपराणुदे ॥ १८ ॥ यत्सेवयाभगवतःकूटस्थस्यमधुद्विषः । रतिरासोभवेत्तीव्रः पादयोर्व्यसनार्दनः ॥ १९ ॥ दुरापाह्यल्पतपसः सेवावैकुण्ठवर्त्मसु । यत्रोपगीयतेनित्यं देवदेवोजनार्दनः ॥ २० ॥ सृष्ट्वाऽग्रेमहदादीनि सविकाराण्यनुक्रमात् । तेभ्योविराजमुद्धृत्यतमनुप्राविशद्विभुः २१ यमाहुराद्यंपुरुषं सहस्रांघ्र्यूरुबाहुकम् । यत्रविश्वइमेलोकाःसविकाशंसमासते २२ यस्मिन्दशविधःप्राणः सेन्द्रियार्थेन्द्रियस्त्रिवृत् । त्वयेरितोयतोवर्णास्तद्विभूतीर्वदस्वनः ॥ २३ ॥ यत्रपुत्रैश्चपौत्रैश्च नप्तृभिःसहगोत्रजैः । प्रजाविचित्राकृतयआसन्याभिरिदंततम् ॥ २४ ॥ प्रजापतीनांसपतिश्चक्लृपे कान्प्रजापतीन् । सर्गांश्चैवानुसर्गांश्चमनून्मन्वन्तराधिपान् ॥ २५ ॥ एतेषामपिवंशांश्च वंश्यानुचरितानिच । उ-

और उसकी भक्ति से क्रमशः नाशको प्राप्त होती है ॥ १२ ॥ जब अंतर्यामी भगवान में सम्पूर्ण इन्द्रियां निश्चल होती हैं तब उसके सम्पूर्ण क्लेश नाश होजाते हैं जैसे सोते समय में मनुष्य के सब दुःख दूर होजाते हैं ॥ १३ ॥ जब श्रीकृष्ण भगवान के गुणों को सुननेसे सम्पूर्ण दुःख दूर होते हैं तो फिर परमेश्वर के चरणों की सेवा मनसे कीजावे तो दुःखों का नाश अवश्य ही होजावे ॥ १४ ॥ विदुर जी कहने लगे कि हे विभु ! जोमुझे संदेह था वह आपके श्रेष्ठ वचनों की तलवार से कटगया हे भगवान ! मेराचित्त अबतो बंध और मोक्ष दोनों में भली भांतिजाता है ॥ १५ ॥ हे विद्वन् ! हे मैत्रेय जी ! जो आपने कहा कि-सम्पूर्ण सृष्टिका मूल निमित्त माया, मिथ्या भूतका प्रकाश करती है वही आत्म माया परमेश्वर का स्थान है, यह बहुतहीसत्य आपने कहा ॥ ॥ १६ ॥ जो अत्यंत मूर्ख तथा बुद्धिवान है वह दोनों सुखी हैं, और मध्यस्थ अर्थात् क्लेशादिको व सुखों के कारण संसार को छोड़नाचाहते हैं परन्तु स्वरूप आनन्द के अभाव से त्याग नहीं सके वह दुःख पाते हैं ॥ १७ ॥ आपने मेरा संदेह निवृत्त कर दिया इस लिये मैं कृतार्थहूं । जो संसार देखपड़ता है वह केवल दिखाई देता है कुछ वस्तु नहीं है यह निश्चयकर इस विचार को भी आप के चरणों की सेवा करके निवृत्ति करदूंगा ॥ १८ ॥ आप ऐसे साधुओं की सेवा से भगवान अन्तर्यामी के चरणों में संसारी बंधन के छुटानेवाली भक्ति का संचार होता है ॥ १९ ॥ भगवद्भक्तों की सेवा पुण्यक्षीण पुरुष को मिलना अतिदुर्लभ है, जिन भगवद्भक्तों में नित्यही परमेश्वर के गुण गायेजाते हैं ॥ २० ॥ परमेश्वर ने प्रथम इन्द्रियों समेत महतत्व आदिक को क्रमानुसार सृजकर उस में प्रवेश किया ॥ २१ ॥ जिसको सहस्र पैर, जंघा, और भुजावाला प्रथम पुरुष कहा करते हैं जिस में सम्पूर्ण सृष्टि बिना किसी दुःख के निवासकरती है ॥ २२ ॥ हे भगवन् ! जिस में इंद्रियां इंद्रियों के विषय उन के देवता, तीनों प्रकार के रूप और आप के कहेहुए दशप्राण रहते हैं और जिस से ब्राह्मणादिक चारो वर्ण उत्पन्न हुये उस विराटपुरुष की विभूतियां हम से कहो ॥२३॥ कि जिससे पुत्र, पौत्र, नाती, गोत्र, प्रजा, नानाभांति की आकृति तथा सम्पूर्ण विश्व व्याप्तहो रहा है ॥ २४ ॥ प्रजापतियों के पिता ब्रह्माजी ने किन २ प्रजापतियों को उत्पन्न किया और

पर्यधश्चयेलोका भूमेर्मित्रात्मजासते ॥ २६ ॥ तेषांसंस्थांप्रमाणंच भूर्लोकस्यचवर्णय.तिर्यङ्मानुषदेवानां सरीसृपपतत्त्रिणाम् । वद नःसर्गसंव्यूहं गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् ॥ २७ ॥ गुणावतारैर्विश्वस्य सर्गस्थित्यप्ययाश्रयम् । सृजतःश्रीनिवासस्य व्याचक्ष्वोदारविक्रमम् ॥ २८ ॥ वर्णाश्रमविभागांश्च रूपशीलस्वभावतः । ऋषीणांजन्मकर्मादि वेदस्यचविकर्षणम् ॥ २९ ॥ यज्ञस्यचवितानानि योगस्यचपथःप्रभो । नैष्कर्म्यस्यचसांख्यस्य तन्त्रंवाभगवत्स्मृतम् ॥ ३० ॥ पाखण्डपथवैषम्यं प्रतिलोमनिवेशनम् । जीवस्यगतयोयाश्च यावतीर्गुणकर्मजाः ॥ ३१ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां निमित्तान्यविरोधतः । वार्तायादण्डनीतेश्च श्रुतस्यचविधिपृथक् ॥ ३२ ॥ श्राद्धस्यचविधिंब्रह्मन्पितृणांसर्गमेवच । ग्रहनक्षत्रताराणां कालावयवसंस्थितिम् ॥ ३३ ॥ दानस्यतपसोवाऽपि यच्चेष्टापूर्तयोःफलम् । प्रवासस्थस्ययोधर्मो यश्चपुंसउतापदि ॥ ३४ ॥ येनवाभगवांस्तुष्येद्धर्मयोनिर्जनार्दनः । संप्रसीदतिवायेषामेतदाख्याहिचाऽनघ ॥ ३५ ॥ अनुव्रतानांशिष्याणां पुत्राणांचद्विजोत्तम । अनापृष्टमपिब्रूयुर्गुरवोदीनवत्सलाः ॥ ३६ ॥ तत्त्वानांभगवंस्तेषां कतिधाप्रतिसंक्रमः । तत्रेमंकउपासीरन्क उस्विदनुशेरते ॥ ३७ ॥ पुरुषस्यचसंस्थानं स्वरूपंवापरस्यच । ज्ञानंचनैगमं यत्तद्गुरुशिष्यप्रयोजनम् ॥ ३८ ॥ निमित्तानिचतस्येह प्रोक्तान्यनघसूरिभिः । स्वतोज्ञानंकुतःपुंसां भक्तिर्वैराग्यमेववा ॥ ३९ ॥ एता

सर्ग अपसर्ग रचना तथा कौन २ मन्वन्तरों के स्वामी मनु को उत्पन्न किया ॥ २५ ॥ हे मैत्रेयजी इन के वंश तथा वंशों के चरित्र, सर्ग रचना तथा ऊपरनीचे के लोकोंका वर्णन कीजिये ॥ २६ ॥ वहां के निवासियों तथा भूमिरचना और प्रमाण(विस्तार) हमसे कहो,तथा पशुपक्षी मनुष्य,देवता सांप, बिच्छू पक्षी तथा स्वेदज, अण्डज, उद्भिद जरायुज चारभाग के जीवों का सृष्टि विभाग हम से कहो ॥ २७ ॥ जो माया से अवतार धारणकरते हैं तथा सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति,प्रलय जिस के आश्रय हैं उन्हीं लक्ष्मीनिवास श्रीकृष्णभगवान के विक्रमका आप वर्णनकरिये ॥ २८ ॥ रूप, शील, और स्वभाव से वर्ण और आश्रम का विभाग, ऋषियों के जन्म कर्म आदिक और वेदका विभाग कहिये ॥ २९ ॥ हे प्रभु यज्ञका विस्तार; योग, ज्ञानतथा सांख्यका मार्ग और परमेश्वर के कहेहुये तंत्रों का आप वर्णन करें ॥ ३० ॥ और पाखण्डियों का मार्ग और इनके विषय इन की प्रवृत्तिकी विषमता जीवके गुण तथा कर्मों से उत्पन्न होनेवाली गति ॥ ३१ ॥ तथा धर्म अर्थ काम मोक्ष इन के हेतु उपाय और दण्डनीति, वेद की न्यारी २ विधि इन सबका वर्णन करिये ॥ ३२ ॥ हे ब्राह्मण ! श्राद्ध की विधि, पितृरचना, ग्रह, नक्षत्र, तारा गण, काल की स्थिति ॥ ३३ ॥ दान, तप इष्टा (अग्निहोत्र ,तप, सत्यबोलना, वेदों का पालन, अतिथिसत्कार वैश्वदेव) पूर्ति (बावड़ी, तालाव कुआं, मंदिर बनाना , अन्नदान, बागलगाना) इन के फल वर्णन करो, बनवास के विषे स्थितधर्म, तथा पुरुष के आत्मतत्व के धर्म आप वर्णन करें ॥३४॥ हे मैत्रेयजी ! जिस धर्म से श्रीकृष्ण भगवान प्रसन्नहों वही आप हम से वर्णन करें ॥ ३५ ॥ हे अनघ ! अपने आज्ञानुवर्ती, शिष्य और पुत्र की वात्सल्यता से गुरु लोग कहने योग्य विषय बिना पूंछेही कहा करते हैं ॥ ३६ ॥ हे भगवन् ! इन तत्वों से प्रलय कैसे होती है । इनके विषे कौन उपासना करता है तथा कौन शयन करते हैं ॥ ३७ ॥ हे मैत्रेयजी ! पुरुष की स्थिति परमात्मा के स्वरूप, वेदका ज्ञान गुरू शिष्यका प्रयोजन तथा विवेकियों के कहेहुये ज्ञान को यह सब आप हमसे वर्णन करें ॥ ३८ ॥ बिना गुरू मनुष्यों को ज्ञान भक्ति वैराग्य आपही कब मिलसकता है ? भगवान के कर्म जानने की इच्छा से मैंने आप से प्रश्ण कियेहैं उनका आप वर्णन

न्मेपृच्छतः प्रश्नान्हरेःकर्मविवित्सया । ब्रूहिमेऽज्ञस्यमित्रत्वादजयानष्टचक्षुषः ॥
॥ ४० ॥ सर्वेवेदाश्चयज्ञाश्च तपोदानानिचानघ । जीवाभयप्रदानस्य नकुर्वीरन्कला
मपि ॥ ४१ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ सइत्थमापृष्टपुराणकल्पः कुरुप्रधानेनमुनिप्रधानः ।
प्रवृद्धहर्षोभगवत्कथायां संचोदितस्तंप्रहसन्निवाऽह ॥ ४२ ॥

इतिश्रीमद्भा०तृती०विदुरोक्तप्रश्नविधिवर्णननामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मैत्रेयउवाच ॥ सत्सेवनीयो बतपूरुवंशो यल्लोकपालोभगवत्प्रधानः। बभूविथे
हाजितकीर्तिमालां पदेपदेनूतनयस्यऽभीक्ष्णम् ॥ १ ॥ सोऽहंनृणांक्षुल्लसुखायदुःखं
महद्गतानांविरमायतस्य । प्रवर्तयेभागवतंपुराणं यदाहसाक्षाद्भगवानृषिभ्यः २॥
आसीनमुर्व्यांभगवन्तमाद्यं संकर्षणंदेवमकुण्ठसत्त्वम् । विवित्सवस्तत्त्वमतःपरस्य
कुमारमुख्यामुनयोऽन्वपृच्छन् ॥ ३ ॥ स्वमेवधिष्ण्यंबहुमानयन्तं यंवासुदेवाभिध
मामनन्ति । प्रत्यग्धृताक्षाम्बुजकोशमीषदुन्मीलयन्तंविबुधोदयाय ॥ ४॥ स्वर्धुन्यु
दार्द्रैः स्वजटाकलापैरुपस्पृशन्तश्चरणोपधानम् । पद्मंयदर्चन्त्यहिराजकन्याः सप्रे
मनानाबलिभिर्वरार्थाः ॥ ५ ॥ मुहुर्गृणन्तो वचसाऽनुरागस्खलत्पदेनाऽस्यकृतानि
तज्ज्ञाः । किरीटसाहस्रमणिप्रवेकप्रद्योतितोद्दामफणासहस्रम् ॥ ६ ॥ प्रोक्तंकिलैतद्भ
गवत्तमेन निवृत्तिधर्माभिरतायतेन । सनत्कुमारायसचाहपृष्टः सांख्यायनायाऽङ्ग
धृतव्रताय ॥ ७ ॥ सांख्यायनः पारमहंस्यमुख्यो विवक्षमाणोभगवद्विभूतीःजगाद

करें ॥ ३९ ॥ मुझ अज्ञानीसे जिसके नेत्र माया से नष्ट होगये हैं आप स्नेह पूर्वक कहिये हेअनघ! बेद, यज्ञ, तप, और यह सब प्राणियों के अभयदान की एक कला को भी नहीं पहुँचते ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि ! कुरुवंश में श्रेष्ठ विदुरजी ने जब मैत्रेयजी से इसप्रकार पौराणिक विषय पूंछा तो भगवान के चरित्रों के हेतु श्री मैत्रेयजी ने आनन्द में मग्न होकर विदुरजी से हँसते २ कहा ॥ ४१ । ४२ ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणे तृतीयऽस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मैत्रेयजीने कहा कि—पुरु राजा का बंश संत मनुष्यों को भी सेवनीय है कि आप से लोकपाल धर्मराज उन के बंश में कि जिनके श्रीकृष्ण भगवानही प्रधान हैं उत्पन्न हुयेहो, आप श्री कृष्ण भगवान की कीर्तिरूप माला को क्षण क्षण में नवीन करतेहो ॥ १ ॥ अल्प सुखके हेतु जिनको बड़ा दुःख प्राप्त हुआ है उन मनुष्योंके दुःख मिटानेके लिये अब मैं उस भागवत शास्त्र को कहूँगा कि जो शेषजीने सनत्कुमारों से कहाथा ॥ २ ॥ सनत्कुमारों ने बासुदेव भगवान के तत्वको जानने की इच्छा से पाताल तल में स्थित बड़े ज्ञानवाले आदि पुरुष शेषजी के समीप आ कर प्रश्न किया ॥ ३ ॥ वह शेषजी अपने आश्रयी बासुदेव के परमानन्द स्वरूप को ध्यान में लाकर सम्पूर्ण उत्कर्ष करके पूजा करते हैं तथा भीतर की ओर झुकाहुई नेत्र कमल की कली को सनत्कुमारोंके उदयके हेतु कुछ२ खोलरहे हैं ॥ ४ ॥ उन शेषजी के पांव रखने का कमल कि जिसे नागराजाओंकी कन्यायें प्रतिप्राप्त के हेतु स्नेह पूर्वक नानाभांति की भेंटे चढ़ाकर पूजती हैं उसे गङ्गाजलसे भीगीहुई अपनी जटाओंसे छूते ॥५॥ और प्रेमके बशमें होकर लड़खड़ाती हुई टूटे पदों की बाणी से बार बार शेषजी की लीलाओं की स्तुति करते अत्यंत ज्ञानवान सनत्कुमारों ने शेष जी से कि जिनके उत्कृष्ट सहस्रफण सहस्रकिरीटों की मणियों से प्रकाशित हैं पूंछा ॥ ६ ॥ तब अत्यंत ऐश्वर्य वाले श्री शेषजीने निवृत्ति धर्म के अनुरागी सनत्कुमारों से यह श्रीमद्भागवत कही इसके उपरान्त हे बिदुरजी! सांख्यायन जी के कहने पर सनत्कुमार ने उनसे कही ॥ ७ ॥ परमहंसोंमें उत्तम संख्यायन जीको जब भागवत बिभूति कहने व करनेकी इच्छाहुई तब उन्होंने हमारे

सोऽहमहुगुरवेऽन्विताय पराशरायाऽथ बृहस्पतेश्च ॥ ८ ॥ प्रोवाचमह्यं सदयालुरुक्तो मुनिःपुलस्त्येनपुराणमाद्यम्। सोहंतवैतत्कथयामिवत्स श्रद्धालवेनित्यमनुव्रताय ॥ ९ ॥ उदाप्लुतंविश्वमिदंतदाऽऽसीद्यन्निद्रयाऽमीलितदृग्न्यमीलयत् । अहीन्द्रतल्पेऽधिशयानएकः कृतक्षणःस्वात्मरतौनिरीहः ॥ १० ॥ सोऽन्तःशरीरेऽर्पितभूतसूक्ष्मः कालात्मिकांशक्तिमुदीरयाणः । उवासतस्मिन्सलिलेपदेस्वे यथाऽनलोदारुणिरुद्धवीर्यः ॥ ११ ॥ चतुर्युगानांचसहस्रमप्सु स्वपन्स्वयोदीरितयास्वशक्त्या । कालाख्ययाऽऽसादितकर्मतंत्रो लोकानपीतान्ददृशेस्वदेहे ॥ १२ ॥ तस्यार्थ सूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टे रन्तर्गतोऽर्थो रजसातनीयान् । गुणेनकालानुगतेनविद्धः सूष्यंस्तदाभिद्यतनाभिदेशात् ॥ १३ ॥ सपद्मकोशः सहसोदतिष्ठत्कालेन कर्मप्रतिबोधनेन । स्वरोचिषातत्सलिलंविशालं विद्योतयन्नर्कइवात्मयोनिः ॥ १४ ॥ तल्लोकपद्मंसउपवविष्णुः प्रावीविशत्सर्वगुणावभासम् । तस्मिन्स्वयंवेदमयोविधाता स्वयंभुवंयंस्मवदन्तिसोऽभूत् ॥ १५ ॥ तस्यां सचाम्भोरुहकर्णिकायामवस्थितोलोकमपश्यमानः । परिक्रमन्व्योम्निविवृत्तनेत्रश्चत्वारिलेभेऽनुदिशंमुखानि ॥ १६ ॥ तस्माद्युगांतश्वसनावघूर्णजलोर्मिचक्रात्सलिलाद्विरूढम् । उपाश्रितःकंजमुलोकतत्त्वं नात्मानमद्धाऽविदद्रादिदेवः ॥ १७ ॥ कएषयोऽसावहमब्जपृष्ठ एतत्कुतोवाब्जमनन्वदप्सु। अस्तिह्यधस्तादिहकिंचनैतदधिष्ठितं यत्रसतानुभाव्यम् ॥ १८ ॥ सइत्थमुद्वीक्ष्यतदब्जनालनाडीभिरन्तर्जल-

गुरू पराशरजी तथा बृहस्पतिजी से कही ॥ ८ ॥ सो यह श्री दयालु पराशर जी ने श्रीपुलस्त्यजी के कहनेसे मुझसे कहा, हेवत्स ! अति श्रद्धावान और आज्ञानुवर्ती मैं तुझसे यह कहताहूं ॥ ९ ॥ यह सृष्टि जब प्रलयकाल के जल में डूबगई तब आत्मारत निरीह भगवान चेष्टा रहित होकर शेष शय्या में सोये ॥ १० ॥ वे श्री भगवान अपने शरीरके भीतर शब्द तथा पंचतन्मात्रा को धारण करनेवाले और कालरूप शक्तिके प्रेरक अपने स्थानीय समुद्र के जलमें ऐसे निवास करके रहे कि जैसे काठ के भीतर अग्नि गुप्त रहताहै ॥ ११ ॥ ऐसे वह भगवान चारों युगों के सहस्र युगतक अपनी योग निद्रामें सोतेरहे । फिर अपनी कालशक्तिको कि जो यह सम्पूर्ण कर्म करता है उत्पन्न किया और अपने शरीर में सम्पूर्ण लोकों को लीन हुआ देख ॥ १२ ॥ सृष्टि रचना के हेतु जिसकी दृष्टि का सूक्ष्म पदार्थों में प्रवेश हुआ है ऐसे श्री परमात्माके भीतरजो अत्यंत सूक्ष्म वस्तुथी वह काल के पश्चात् रजोगुण से विस्तार को प्राप्तहुई तो नाभिदेश से एक कमल उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ वह कमल सूर्य के सदृश अपने तेजसे विशाल जल को प्रकाशित करता हुआ और परमेश्वर से उत्पन्न हुये अदृष्ट सूक्ष्म पदार्थों को जाग्रत करताहुआ शीघ्रही उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ उस परमेश्वर ने कि जो सम्पूर्ण वस्तुओं का प्रकाश करनेवाला है जिसकी नाभि से सृष्टिरूप कमल उत्पन्न हुआहै अपने अन्तर्यामी भाव से उस कमल में प्रवेश किया और आपही स्वयं ब्रह्मारूप उत्पन्न हुये जिसे स्वयम्भू कहते हैं ॥ १५ ॥ उन भगवान के अंश श्रीब्रह्मा जीने कमल की कली पर बैठे हुये चारोंओर लोक को देखा पर देखने में न आया उन के चारों ओर देखने से चारमुख उत्पन्न हुए उस प्रलयकाल के जल से कि जिसमें वायु के वेगसेही बड़ी २ तरंगें उठ रही हैं प्रगट हुए कमलपर स्थित ब्रह्माजी ने सृष्टि रूप कमल तथा अपने स्वरूप को भलीभांति न जाना ॥ १७ ॥ यह कौन है ? मैं इस कमल की पीठ में कहां से आया ? और इस जल से कमल कैसे उत्पन्नहुआ ? इस के नीचे कुछ अवश्य है ऐसा विचारकिया ॥ १८ ॥ यह विचार करके श्री ब्रह्माजी ने उस कमल की नालमें प्रवेश

माविवेश।नार्वाग्गतस्तत्खरनालनाल नाभिं विचिन्वंस्तदविन्दताऽजः ॥ १९॥तम
स्यपारेविदुरात्मसर्गं विचिन्वतोऽभूत्सुमहांस्त्रिणेमिः । योदेहभाजांभयमीरयाणः
परिक्षिणोत्यायुरजस्यहेतिः ॥ २० ॥ ततोनिवृत्तोऽप्रतिलब्धकामःस्वधिष्ण्यमासा-
द्यपुनःसदेवः । शनैर्जितश्वासनिवृत्तचित्तो न्यषीददारूढसमाधियोगः ॥ २१ ॥
कालेनसोजः पुरुषायुषाऽभिप्रवृत्तयोगेनविरूढबोधः । स्वयंतदन्तर्हृदयेऽवभातम.
पश्यताऽपश्यतयन्नपूर्वम् ॥ २२ ॥ मृणालगौरायतशेषभोगपर्यङ्कएकंपुरुषंशयानम्
फणातपत्रायुतमूर्धरत्नद्युभिर्हतध्वान्तयुगान्ततोये ॥ २३ ॥ प्रेक्षांक्षिपन्तंहरितोप-
लाद्रेः सन्ध्याभ्रनीवेरुरुरुक्ममूर्ध्नः । रत्नोदधारौषधिसौमनस्य वनस्रजोवेणुभु
जांघ्रिपांघ्रेः ॥ २४ ॥ आयामतोविस्तरतःस्वमानदेहेन लोकत्रयसंग्रहेण । विचित्र
दिव्याभरणांशुकानां कृतश्रियाऽपाश्रितवेषदेहम् ॥ २५ ॥ पुंसांस्वकामायविवि
क्तमार्गैरभ्यर्चतां कामदुघांघ्रिपद्मम् । प्रदर्शयन्तंकृपया नखेन्दुमयूखभिन्नांगुलि-
चारुपत्रम् ॥ २६ ॥ मुखेनलोकार्तिहरस्मितेन परिस्फुरत्कुण्डलमण्डितेन । शोणा-
यितेनाधरविम्बभासाप्रत्यर्हयन्तं सुनसेनसुभ्र्वा ॥ २७ ॥ कदम्बकिंजल्कपिशङ्ग
वाससा स्वलंकृतंमेखलयानितम्बे । हारेणचानन्तधनेनवत्स श्रीवत्सवक्षःस्थलव-
ल्लभेन ॥ २८ ॥ परार्ध्यकेयूरमणिप्रवेकपर्यस्तदोर्दण्डसहस्रशाखम् । अव्यक्तमूलं
भुवनांघ्रिपेन्द्रमहीन्द्रभोगैरधिवीतवल्शम् ॥ २९ ॥ चराचरौकोभगवन् महीध्रम-

किया ब्रह्माजी बहुत दूरतक चले गये परन्तु उसका अंत उन्हें न मिला ॥ १९ ॥ हे विदुर! उस घोर अंधकार में ढूंढते २ ब्रह्माजी को भगवान का सुदर्शनचक्ररूप मनुष्यों की आयुका नाश करनेवाला ऐसा सौ वर्ष का काल व्यतीत होगया ॥ २० ॥ उन ब्रह्माजी ने, जब उनकी कामना पूर्ण न हुई तो लौटकर अपने उसी स्थान में आ आसन पर बैठ श्वासरोक चित्त को निवृत्तकर समाधि योग का धारण किया ॥ २१ ॥ जब ब्रह्माजी ने सौ वर्ष पर्यंत तप किया तो उनका योग सिद्ध होगया और ज्ञान प्राप्त हुआ तो आपही अपने हृदय में उस प्रकाशमान स्वरूप का दर्शन हुआ ॥ २२ ॥ कि फणरूपी छत्रों से संयुक्त उनके मस्तक किरीट सम्बन्धी रत्नों से प्रकाशित प्रलयकाल के जल में कमलतंतु की समान गोरे और विशाल शेषजी के शरीररूप पलंगपर अकेले भगवान लेटे हुए ॥ २३ ॥ सायंकाल के मेघरूपी वस्त्र पहिने तथा अनेक सुवर्ण की शिखरको तिरस्कार करनेवाला मुकुट रत्न, जलधारा, औषधि, फूल और बनमाला से शोभायमान तथा बांस की समान भुजा वृक्ष की समान पांव, हरित मणिके पर्वत को अपनी कांति की शोभा से लजाते हैं ॥ २४ ॥ लम्बाई तथा चौडाई में उपमा रहित, त्रिलोकी के निवासभूत, विचित्र तथा सुन्दर आभूषण और वस्त्रों की सजावट से शोभायमान, शरीर से देह के अलंकार को स्वीकार किये हुये ॥ २५ ॥ वेदोक्त मार्गों से चलनेवाले मनुष्यों को मनोकामनापूर्ण करनेवाले और अपने चन्द्रमा रूपी स्वरूप की किरणों से न्यारी २ हुई कली, कमल चरणों का कृपापूर्वक दर्शन दिया ॥ २६ ॥ सृष्टि का दुःख दूर करनेवाली जिन में मन्दमुसकान है, तथा प्रकाशितकुंडलों से शोभायमान और कुँदुरू फल की समान लाल ओष्ठ सुन्दरनाक तथा सुन्दर भौंहवाले मुखसे भक्तों का सनमान करतेहुए ॥ २७ ॥ केसर के समान पीताम्बर वस्त्र पहिने कमर में सुन्दरकरधनी धारण किये हुये शोभायमान तथा वक्षस्थल में लक्ष्मी जी का चिह्न तथा सुन्दरहार धारण किये हैं ॥ २८ ॥ जिनकी भुजाही सहस्रों शाखारूपी हैं उन में बाजू पहिनेहुये तथा श्रेष्ठ मणियों को धारण किये हुये हैं जिसकामूल ब्रह्मा, और ब्रह्माण्ड वृक्षरूप है और शेषजी के फणही जिसकी अनेक शाखा हैं ॥ २९ ॥ चराचर के निवास रूप शेषजी उन के भाई, जल से घिरेहुये सहस्रों

महींध्रमंधुंसलिलोपगूढम् । किरीटसाहस्रहिरण्यशृङ्गमाविर्भवत्कौस्तुभरत्नगर्भम् ॥३०॥निवीतमाम्नायमधुव्रतश्रिया स्वकीर्तिमय्यावनमालयाहरिम् । सूर्येन्दुवाय्वग्न्यगमंत्रिधामभिः परिक्रमत्प्राधानिकैर्दुरासदम् ॥ ३१ ॥ तर्ह्येवतन्नाभिसरःसरोजमात्मानमम्भः श्वसनंवियच्च । ददर्शदेवोजगतोविधाता नातःपरंलोकविसर्गदृष्टिः ॥ ३२ ॥ सकर्मबीजंरजसोपरक्तः प्रजाःसिसृक्षन्नियदेवदृष्ट्वा । अस्तौद्विसर्गाभिमुखस्तमीड्यमव्यक्तवर्त्मन्यभिवेशितात्मा ॥ ३३ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०तृतीय० अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥ ज्ञातोऽसिमेद्यसुचिरान्ननुदेहभाजां नज्ञायतेभगवतोगतिरित्यवद्यम् । नान्यत्त्वदस्तिभगवन्नपितन्नशुद्धं मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥ १ ॥ रूपंयदेतदवबोधरसोदयेन शश्वन्निवृत्ततमसःसदनुग्रहाय । आदौगृहीतमवतारशतैकबीजं यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम् ॥ २ ॥ नातःपरंपरमयद्भवतः स्वरूपमानन्दमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः । पश्यामिविश्वसृजमेकमविश्वमात्मन् भूतेन्द्रियात्मकमदस्तउपाश्रितोऽस्मि ॥३॥ तद्वाइदंभुवनमङ्गलमङ्गलायध्यानेस्मनोदर्शितंतउपासकानाम् । तस्मैनमोभगवतेऽनुविधेमतुभ्यंयोनादृतोनरकभाग्भिरसत्प्रसङ्गैः ॥ ४ ॥ येतुत्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं जिघ्रन्तिकर्णविवरैःश्रुतिवातनीतम् । भक्त्यागृहीतचरणःपरयाचतेषां नापैषिनाथहृदयाम्बुरुहात्स्वपुंसाम् ॥ ५ ॥ तावद्भयं

किरिट रूप शृंगवाले, तथा जिनके स्वरूप में कौस्तुभरत्न स्पष्ट प्रतीत होरहा है ऐसी पर्वतकी सी शोभा धारण करनेवाले ईश्वर शोभायमान हैं ॥ ३० ॥ वेदरूपी भौंरों से शोभित, अपनी यश रूपी माला को कन्ठके मध्य में पहिने तथा जहां सूर्य,चन्द्रमा, अग्नि नहीं पहुँच सक्ते और जिस की मूर्ति तीनों लोक में वर्तमान है और जिसके चारोंओर चक्रादिक दौड़ फिरते हैं ऐसे दुष्प्राप्य परमेश्वर के दर्शन हुए ॥ ३१ ॥ श्री भगवान के दर्शन होनेही उनकी नाभि से उत्पन्नहुएकमल पवन, आकाश और आत्मा ब्रह्माजी को दिखने लगा परन्तु इस के सिवाय और कुछ न देखपड़ा ॥ ३२ ॥ रजो गुणयुक्त ब्रह्माजी कि जिनको प्रजा के रचने की इच्छा है सृष्टिरचना की ओर ध्यान दे उनभगवानकी स्तुति मनलगाकर करनेलगे ॥ ३३ ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणे तृतीयस्कन्धे सरलाभाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ब्रह्माजीने कहा कि—बहुत काल की उपासना से अब मैंने आपको जाना, देहधारी आपके भगवत रूप तत्वको नहीं जानते । हे भगवत आपके अतिरिक्त और सब पदार्थ असत्य हैं यह माया ही का गुण है कि आप अनेक रूप से दिखाई देतेहो ॥ १ ॥ यह आपका सहस्रों अवतारों का बीज रूप स्वरूप कि जिसमें चैतन्य शक्ति के आविर्भाव से तमोगुण का लेश मात्र भी नहीं है भगवद्भक्तों के ही कृपा के हेतु आपने धारण किया है कि जिस रूप के नाभि कमल से पहिले मैं उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥ हे श्रेष्ट ! इससे परे जो तुम्हारा स्वरूप है वह केवल आनंद मय, निर्विकार तथा प्रकाशित है उसे मैं इससे भिन्न नहीं देखता, इस लिये उपासना करने वाले स्वरूपों में श्रेष्टइस रूपको, किजो विश्वको सृजने वाला, विश्वरूप, पंचमहाभूत तथा इन्द्रियों का कारण रूप है शरण हूं ॥ ३ ॥ हे भुवन मंगल ! मेरे आनंद के हेतु आपने जो मुझे ध्यान के भीतर इसी रूप से दर्शन दिया वह योग्य है, नर्क में जाने वाले खोटे प्रसंग वाले जिन का अनादर करते हैं ऐसे परमात्मा आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ४ ॥ जोभक्त लोग वेदरूपी पवन द्वारा आपके कमल स्वरूपी चरणों की सुगंधि का कानों के छिद्रों से ज्ञान करते हैं और सत्कार पूर्वक आप की कथा सुनते हैं हे स्वमी ! उनभक्तों के हृदय कमल को छोड़कर आप दूर नहीं जासकते, क्योंकि परम

प्रविणगेहसुहृन्निमित्तंशोकः स्पृहापरिभवोविपुलश्चलोभः । तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलंयावन्नतेंघ्रिमभयंप्रवृणीतलोकः ॥ ६ ॥ दैवेनतेहताधियोभवतः प्रसङ्गात्सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेन्द्रियाये । कुर्वन्तिकामसुखलेशलवायदीना लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानिशश्वत् ॥ ७॥ क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमामुहुरर्द्यमानाः शीतोष्णवातवर्षैरितरेतराच्च । कामाग्निनाऽच्युतरुषाच्च सुदुर्भरेणसंपश्यतोमनउरुक्रम सीदतेमे ॥ ८ ॥ यावत्पृथक्त्वमिदमात्मनइन्द्रियार्थमायाबलं भगवतोजनईशपश्येत् तावन्नसंसृतिरसौप्रतिसंक्रमेतव्यर्थाऽपि दुःखमिवहंबहातिक्रियार्था ॥९॥ अह्न्यापृतार्तकरणानिशिनिःशयाना नानामनोरथधियाक्षणभग्ननिद्राः । दैवाहतार्थरचना ऋषयोऽपिदेवयुष्मत्प्रसङ्गविमुखाइहसंसरन्ति ॥ १० ॥ त्वंभावयोगपरिभावितहृत्सरोजआस्सेश्रुतेक्षितपथोननुनाथपुंसाम् । यद्यद्धियातउरुगायविभावयन्तित त्तद्वपुः प्रणयसेसदनुग्रहाय ॥ ११ ॥ नातिप्रसीदतितथोपचितोपचारैराराधितः सुरगणैर्हृदिबद्धकामैः । यत्सर्वभूतदययाऽसदलभ्ययैको नानाजनेष्ववहितःसुहृदन्तरात्मा ॥ १२ ॥ पुंसामतोविविधकर्मभिरध्वराद्यैर्दानेनचोग्रतपसाव्रतचर्यया च । आराधनंभगवतस्तवसत्क्रियाऽर्थो धर्मोऽर्पितःकर्हिचिद्ध्रियतेनयत्र ॥ १३ ॥ शश्वत्स्वरूपमहसैवनिपीतभेदमोहाय बोधधिषणायनमःपरस्मै । विश्वोद्भवस्थितिलयेषुनिमित्तलीलारासायतेनमइदंचकृमेश्वराय ॥ १४ ॥ यस्यावतारगुणकर्मवि

भक्ति से वह आपके चरणों को दृढ़ता पूर्वक पकड़ लिया करते हैं ॥५॥ भय विनाश करनेवाले आपके चरणों की शरण जबतक मनुष्य नहीं लेते तबतक दुःख का मूल दुराग्रह धन, घर, मित्रके हेतु दुःख, डर, शोच, विचार, चाह, लालच यह सब बनेहीं रहते हैं परन्तु आप की शरण लेने के उपरांत यह कुछ दुःख नहीं रहते ॥ ६ ॥ जिन की इन्द्रियां, सम्पूर्ण अनर्थों के दूर करने वाले आपके गुणों के श्रवण कीर्तन आदि से विमुख हैं उन्हें जानना कि दैव ने इनकी बुद्धिको नष्ट कर दिया, कारण कि वे लोग लोभ से नष्ट बुद्धिको प्राप्त हो निरंतर कामादिक अल्प सुखों के हेतु नाना प्रकार के अकल्याण कारी कार्य करते हैं ॥ ७ ॥ हे प्रभु ! मेरामन खेद को प्राप्त होता है कि मैं इन मनुष्यों को जब भूख,प्यास,शीत,बर्षा, और पवन इन नानाभांति के दुःख से दुःखित देखता हूं ॥ ८ ॥ हे स्वामीन् ! जबतक मनुष्य इन्द्री और विषय रूप माया से बढ़ेहुये इस देहादिक भेद भावको देखता है तबतक इस दुःख रूपी जन्म मरण से नहीं छूटता ॥ ९ ॥ हे देव ! दिनतो मिथ्या कर्म कर २ के व्यतीत होते हैं और रात्रिमें सोते समय नाना प्रकार के मनोरथों की ओर ध्यान जाने से स्वप्न देख २ कर क्षण २ में निद्रा भंग होती है । तथा मनोरथ प्रकर्भापूर्ण नहीं होते हे देवर्षि! जो तुम्हारे गुणोंके प्रसंग से विमुख हैं उन्हीं को यह जन्म मरण प्राप्त होता रहता है ॥ १० ॥ हे नाथ ! आप भक्तों के हृदय में कि जो भक्ति योग से शुद्ध हो रहे हैं सदैव स्थित रहते हो और जिस २ रूप का वह ध्यान करते हैं हे प्रभु ! वही आप धारण करते हो ॥ ११ ॥ आप, मनमें अनेक कामना भरे हुये देवताओं के चन्दन, पुष्प आदि षोड़शोपचार से ऐसे प्रसन्न नहीं होते जैसे जीव पर दया करने से कि जो असंतों को प्राप्त नहीं होता प्रसन्न होते हो क्योंकि आप उनमें अंतर्यामी भाव से विराजमान रहते हो ॥ १२ ॥ हे स्वामी ! आप मनुष्यों के नाना भांति के यज्ञादिक कर्म, उग्रतप और दानसे उतने प्रसन्न नहीं होते जितने श्रेष्ठ क्रिया युक्त धर्मानुसार आराधन से प्रसन्न होते हो, क्योंकि आपको अर्पण किया हुआ धर्म कदापि नाश नहीं होता ॥ १३ ॥ जिसने भेद से उत्पन्न मोहको अपने चैतन्य प्रकाश से ही दूर करदियाहै और जो ज्ञान स्वरूपहै तथा सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और, संहार के हेतु मायासे

जन्मनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति । तेऽनैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥ १५ ॥ यो वा अहं च गिरिशश्च विभुः स्वयं च स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलम् । भित्त्वा त्रिपाद्ववृध एक उरुप्ररोहस्तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय ॥ १६ ॥ लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे। यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥१७॥ यस्माद्बिभेम्यहमपि द्विपरार्द्धधिष्ण्यमध्यासितः सकललोकनमस्कृतं यत् । तेपे तपो बहुसवोऽवरुरुत्समानस्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥ १८ ॥ तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनिष्वात्मेच्छयात्मकृतसेतुपरीप्सयाय । रेमे निरस्तरतिरप्यवरुद्धदेहस्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥ १९ ॥ योऽविद्ययानुपहतोऽपि दशार्धवृत्त्या निद्रामुवाह जठरीकृतलोकयात्रः । अन्तर्जलेऽहिकशिपुस्पर्शानुकूलां भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं विवृण्वन् ॥ २० ॥ यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्य लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण । तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योगनिद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय ॥ २१ ॥ सोऽयं समस्तजगतां सुहृदेक आत्मा सत्त्वेन यन्मृडयते भगवान्भगेन । तेनैव मे दृशमनुस्पृशताद्यथाहं स्रक्ष्यामि पूर्ववदिदं प्रणतप्रियोऽसौ ॥ २२ ॥ एष प्रपन्नवरदो रमयात्मशक्त्या यद्यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः । तस्मिन्स्वविक्रममिदं सृजतोऽपि चेतो युञ्जीत कर्मशमलं च यथा विजह्याम् ॥ २३ ॥ नाभिह्रदादिह सतोऽम्भसि यस्य

क्रीड़ा करते हैं ऐसे परमात्मा को मैं बारंबार प्रणाम करता हूं ॥ १४ ॥ जो मनुष्य परमेश्वर के अवतारों तथा कर्मों के अनुसार हे गोवर्धनधारी ! हे कंसविमर्दन ! हे भक्तवत्सल ! आदिकनाम अन्त समय में परवश होकर भी लेते हैं वह नानाजन्मों के पापों से छूटकर ब्रह्मपद को प्राप्त होते हैं ऐसे उन परमेश्वर के मैं शरण हूं ॥ १५ ॥ इस भांति जिसने उत्पत्ति, पालन, और संहार के हेतु स्वयंही तीनरूप ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र धारण किये, जिसकी आत्मारूपी जड़की तीनशाखा हैं उसी से संसार उत्पन्न हुआ उस भुवनरूपी वृक्ष को नमस्कार है ॥ १६ ॥ खोटे कर्मों में जिसकी मति है और आप के दर्शन अर्चन में जिसकी प्रमत्तता है उस के जीनेकी आशा को बलवान काल शीघ्रही काट देता है ऐसे कालमूर्ति आपको नमस्कार है ॥ १७ ॥ सम्पूर्णलोकपालों से नमस्कृत तथा दो परार्ध पर्यंत अविचल स्थानपर स्थितरहनेवाले और बहुत काल तक तप कियेहुए मैंभी जिससे डराकरताहूं उन परमेश्वर को बारम्बार नमस्कारकरता हूं ॥ १८ ॥ जो अपनी धर्म मर्यादा की रक्षाकरने के हेतु पशु, पक्षी, मनुष्य देवता आदि नाना भांतिकी योनियों में अवतार धारण करता है और जो अपने स्वरूपानन्द के अनुभव से सदैव विषयसुख से विरक्त रहता है उस परमेश्वर को मैं बारम्बार नमस्कार करताहूं ॥ १९ ॥ उस समुद्रके जल के भीतर कि जिसमें बड़ी २ भारी तरंगें उठरही हैं मनुष्यों को नींद के सुख का ज्ञानकराते हैं । जो भगवान अपने उदर में लोकों को धारण करके, अविद्या रहित होने पर भी शेषजी रूपी पलंगपर शयन करते हैं ॥ २० ॥ जिनपरमात्मा की कृपा से नाभि कमल से, त्रिलोकी का करने वाला मैं उत्पन्न हुआ, जिसके पेट में सम्पूर्ण सृष्टि निवास करती है, जो योग निद्राके अंतमें अपने कमल स्वरूपी नेत्रोंको खोला करते हैं उन परमेश्वरको मैं बारंबार नमस्कार करता हूं ॥ २१ ॥ जिस ज्ञान व शक्ति से सम्पूर्ण सृष्टि के प्यारे, तथा अद्वितीय, व अंतर्यामी भगवान सृष्टिको सुखी करते हैं, उसी ज्ञान तथा शक्ति द्वारा मुझे भी ज्ञानहो, जिसके बल से मैं पहलेकी समान सृष्टि सृजने में प्रवृत्त हूं ॥ २२ ॥ हे शरणागत लोगों को वर देनेवाले भगवान ! अपनी शक्ति से तथा मायाके गुणोंसे युक्त अवतार लेकर जिस सृष्टि में लीला करतेहो है

पुंसांविज्ञानशक्तिरहमासमनन्तशक्तेः। रूपंविचित्रमिदमस्यविवृण्वतोमे मारीरि-
षोष्टनिगमस्यगिरांविसर्गः॥ २४॥ सोऽसावदभ्रकरुणोभगवान्विवृद्धप्रेमस्मितेन
नयनाम्बुरुहंविजृम्भन्। उत्थायविश्वविजयायचनोविषादं माध्व्यागिराऽपनयता-
त्पुरुषःपुराणः॥ २५॥ मैत्रेयउवाच। स्वसंभवंनिशाम्यैवं तपोविद्यासमाधिभिः।
यावन्मनोवचःस्तुत्वाविररामसखिन्नवत्॥ २६ ॥ अथाऽभिप्रेतमन्वीक्ष्यब्रह्मणो
मधुसूदनः। विषण्णचेतसंतेन कल्पव्यतिकराम्भसा॥ २७॥ लोकसंस्थानवि-
ज्ञान आत्मनःपरिखिद्यतः तमाहागाधयावाचा कश्मलंशमयन्निव॥ २८॥ श्रीभग
वानुवाच॥ मावेदगर्भगास्तन्द्रीं सर्गउद्यममावह। तन्मयाऽऽपादितंह्यग्रेयन्मां
प्रार्थयतेभवान्॥२९॥ भूयस्त्वंतपआतिष्ठविद्यांचैवमदाश्रयाम्। ताभ्यामन्तर्हृदि
ब्रह्मन्लोकान्द्रक्ष्यस्यपावृतान्॥ ३०॥ ततआत्मनिलोकेच भक्तियुक्तःसमाहितः।
द्रष्टासिमांततंब्रह्मन्मयि लोकांस्त्वमात्मनः॥ ३१ ॥ यदातुसर्वभूतेषु दारुष्वग्निं-
मिवस्थितम्। प्रतिचक्षीतमांलोको जह्यात्तर्ह्येवकश्मलम्॥३२॥ यदारहितमात्मानं
भूतेन्द्रियगुणाशयैः। स्वरूपेणमयोपेतं पश्यन्स्वाराज्यमृच्छति॥ ३३ ॥ नानाकर्म
वितानेन प्रजाबह्वीःसिसृक्षतः। नात्माऽवसीदत्यस्मिंस्ते वर्षीयान्मदनुग्रहः॥३४॥
ऋषिमाद्यंनबध्नाति पापीयांस्त्वांरजोगुणः। यन्मनोमयिनिर्बद्धं प्रजाःसंसृजतोऽ-
पिते॥ ३५ ज्ञातोऽहंभवता त्वद्यदुर्विज्ञेयोऽपिदेहिनाम्। यान्मांत्वंमन्यसेऽयुक्तं भूत
न्द्रियगुणात्मभिः॥ ३६ ॥ तुभ्यंमद्विचिकित्सायामात्मा मेदर्शितोऽबहिः नालेन

नाथ! उस सृष्टिके रचनेमें मेरे चित्तको लगाओ, कि जिससे मुझे कर्मासक्ति न हो और मेरे सम्पूर्ण पापों का नाश हो॥ २३॥ जिन अनंत शक्ति तथा प्रलय कालके जल में स्थित भगवान के नाभि कमल से मैं उत्पन्न होकर विज्ञान शक्तिको प्राप्त हुआ और मैंने अपने चतुर्मुख रूप से वेदोंका बिस्तार किया, हे भगवान! उस वाणीका लोप न हो॥ २४॥ हे पुराण पुरुष! हे कृपालु! बढ़े हुये प्रेम तथा मंद मुसकान से कमल स्वरूपी नेत्रों को खोल कर सृष्टि रचना के हेतु मेरे संशय को दूर करो॥ २५॥ मैत्रेय जी ने कहा कि स्वयम्भू ब्रह्मा जी तप, विद्या, समाधि, मन, और वाणीसे श्रीभगवान की स्तुति करके मौन होरहे॥ २६॥ इसके उपरांत भगवानने ब्रह्माजी की इच्छा जान, तथा प्रलय काल के जल से दुःखित चित्त देख और सृष्टि रचना के ज्ञानके हेतु शंकित जान उनके खेदको दूर करते हुये गंभीर स्वरसे कहा॥ २७। २८॥ हे वेदगर्भ! विषाद कृत आलस्य को मत करो सृष्टि रचना का उद्यम करो और जो तुमने मुझ से प्रार्थना की उसका मैंने प्रथम ही प्रबंध कर दिया है॥ २९॥ हे ब्रह्मन्! तुम तपकरो और मेरी आश्रयी विद्याको ग्रहण करो, विद्या और तपके प्रभाव से रुके हुये लोकों को तुम देखोगे॥ ३०॥ इसके उपरांत हे ब्रह्मन्! सावधान हो करके भक्तियुक्त आत्मा और लोकमें व्याप्त होकर मुझे और मुझमें सब लोक तथा जीवों को स्थित देखोगे॥३१॥ काठमें जैसे अग्नि रहता है वैसेही सब जीवों में स्थित मुझे, जब यह लोक देखता है, उसी क्षण दुःखों से छूटजाता है॥ ३२॥ जब जीवात्मा भूत, पंचभूत, इन्द्री, सात्वस, राजस, और तमास इनसे आत्मा को न्यारा देखता है और आत्मा के आत्मभूत मुझे एक रूप से देखता है तब मोक्षको प्राप्त होता है॥ ३३॥ तुम नाना भांति की प्रजा नाना कर्मों को फैलाकर रचो उस में आपका मन खेदको न प्राप्त होगा यह मेरी कृपा जानो॥ ३४॥ आपने सृष्टि रचते समय भी मुझमें चित्त लगाया है इस हेतु हे आदि ऋषि! यह पापी रजोगुण तेरा बंधन नहीं करेगा॥ ३५॥ मेरा स्वरूप देह धारियों के जानने में नहीं आता परन्तु तुमने मेरा स्वरूप जानलिया, कारण कि तुम मुझे भूत, इन्द्री, गुण, और आत्मा इन से युक्त

सलिलेमूलं पुष्करस्यविचिन्वतः ॥ ३७ ॥ यच्चकर्थाऽङ्गमत्स्तोत्रं मत्कथाऽभ्युद-यांकितम् । यद्वातपसितेनिष्ठा सएषमदनुग्रहः ॥ ३८ ॥ प्रीतोऽहमस्तुभद्रं तेलो-कानांविजयेच्छया । यदस्तौषीर्गुणमयं निर्गुणमाऽनुवर्णयन् ॥ ३९ ॥ यएतेनपुमा न्नित्यंस्तुत्वा स्तोत्रेणमांभजेत् । तस्याऽशुसंप्रसीदेयं सर्वकामवरेश्वरः ॥ ४० ॥ पूर्तेनतपसायज्ञैर्दानैर्योगसमाधिना। राद्धंनिःश्रेयसंपुंसां मत्प्रीतिस्तत्त्वविन्मतम् ४१ अहमात्मात्मनांधातः प्रेष्ठःसन्प्रेयसामपि। अतोमयिरतिं कुर्याद्देहादिर्यत्कृतेप्रियः ४२ सर्ववेदमयेनेदमात्मनाऽऽत्मात्मयोनिना।प्रजाःसृजयथापूर्वं याश्चमय्यनुशेरते ॥४३॥ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ तस्माएवंजगत्स्रष्ट्रे प्रधानपुरुषेश्वरः । व्यज्येदंस्वेनरूपेण कंजना-भस्तिरोदधे ॥ ४४ ॥

इतिश्रीमद्भागवते महा०तृतीय० नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

विदुरउवाच ॥ अन्तर्हितेभगवति ब्रह्मालोकपितामहः । प्रजाःससर्जकतिधा दैहिकीर्मानसीर्विभुः ॥१॥ येचमेभगवन्पृष्टास्त्वय्यर्था बहुवित्तम । तान्वदस्वाऽऽ नुपूर्व्येण छिन्धिनःसर्वसंशयान् ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ एवंसंचोदितस्तेन क्षत्त्रा कौषारवोमुनिः । प्रीतःप्रत्याहतान्प्रश्नान् हृदिस्थानथभार्गव ॥ ३ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ विरिंचोऽपितथाचक्रे दिव्यंवर्षशतंतपः । आत्मन्यात्मानमावेश्य यदाहभगवानजः ॥ ४ ॥ तद्विलोक्याऽब्जसंभूतो वायुनायदधिष्ठितः ।पद्ममम्भश्चतत्कालकृतवीर्येण

मानते हो ॥ ३६ ॥ जब आप जलके भीतर के कमल की जड़को उसकी नालके द्वारा ढूंढने को चले, उसकाल तुमको भ्रमहुआ तो मैंने तुम्हारे हृदयके भीतर अपने रूपका दर्शनदिया॥३७॥ हे ब्रह्मा ! तुमने जो मेरे चरित्रों का वर्णन तथा स्तुति की और जो तुम्हारी इच्छा तप करने की हुई यह सब मेरी ही कृपा है ॥ ३८ ॥ सृष्टिको जीतने के हेतु जो मैं सगुण रूप धारण करता हूं उस की निर्गुण रूप से तुमने स्तुति की इससे मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूं हे भद्र ! तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३९ ॥ जो पुरुष तुम्हारी की हुई स्तुति से मेरा भजन करेगा उसके ऊपर मैं शीघ्र ही प्रसन्न हूंगा, और उस की सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण होंगी ॥ ४० ॥ यह विवेकी जनों की सम्मति है कि कुआ, बावड़ी, और तालाब बनाना, तथा तप, यज्ञ, दान, योग और समाधि का करना यही मेरी प्रीति का फलहै ॥४१॥ हे ब्रह्मा ! अहंकार से उत्पन्न प्राणियों का मैं आत्मा हूं इसी हेतु शरीर तथा अन्य प्रिय पदार्थों से भी मैं अत्यंत प्यारा हूं और मुझपर प्रीति रखनी योग्य है कारण कि देह आदिक प्रिय पदार्थ सब मेरे ही हेतु हैं ॥ ४२ ॥ मैं जिनका कारण हूं, ऐसे सम्पूर्ण वेद, तीनो लोक, और प्रजा इन सबको प्रथम की समान सृजो ॥ ४३ ॥ मैत्रेय जी ने कहा कि—वे माया पुरुष ईश्वर, जगत स्रष्टा ब्रह्माजी से ऐसे कह और विश्वको प्रकाशित कर अपने रूप से अंतर्ध्यान होगये ॥ ४४ ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणे तृतीयस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

विदुर जीने कहा कि भगवान के अन्तर्ध्यान होने के पश्चात् ब्रह्माजी ने प्रजा तथा मानसी सृष्टि की रचना कैसे की ॥ १ ॥ हे भगवन् ! और भी जो मैंने आप से प्रश्न किये हैं वह सब आप मुझ से क्रमानुसार कहकर मेरे संदेह को दूर करो ॥ २ ॥ सूतजी ने कहा कि हे शौनक उन विदुरजीने जब महा मुनि मैत्रेय जी से इस भांति पूछा तब मैत्रेय जी प्रसन्न होकर सब प्रसं-गों को कहने लगे ॥ ३ ॥ मैत्रेय जीने कहा कि ब्रह्माजीने भगवान का ध्यान करके उन के हेतु दिव्य सौ बर्ष पर्य्यन्त तप किया, ॥ ४॥ जिस कमल में ब्रह्मा जी बैठे थे वह कमल तथा जल,

कम्पितम् ॥ ५ ॥ तपसाह्येधमानेनविद्ययाचात्मसंस्थया । विवृद्धविज्ञानबलो न्यपाद्वायुंसहाम्भसा ॥ ६ ॥ तद्विलोक्यवियद्व्यापि पुष्करंयदधिष्ठितम् । अनेनलोकान्प्राग्लीनान्कल्पिताऽस्मीत्यचिन्तयत् ॥ ७ ॥ पद्मकोशंतदाऽऽविश्य भगवत्कर्मचोदितः । एकंव्यभांक्षीदुरुधा त्रिधाभाव्यंद्विसप्तधा ॥ ८ ॥ एतावांजीवलोकस्य संस्थाभेदःसमाहृतः । धर्मस्यह्यनिमित्तस्य विपाकःपरमेष्ठ्यसौ ॥ ९ ॥ विदुरउवाच ॥ यदात्थबहुरूपस्य हरेरद्भुतकर्मणः । कालाख्यंलक्षणं ब्रह्मन्यथावर्णयनःप्रभो ॥ १० ॥ मैत्रेयउवाच ॥ गुणव्यतिकराकारो निर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः । पुरुषस्तदुपादानमात्मानंलीलयाऽसृजत् ॥ ११ ॥ विश्वंवैब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया । ईश्वरेणपरिच्छिन्नं कालेनाऽव्यक्तमूर्तिना ॥ १२ ॥ यथेदानींतथाऽग्रेच पश्चादप्येतदीदृशम् । सर्गोनवविधस्तस्य प्राकृतो वैकृतस्तुयः ॥ १३ ॥ कालद्रव्यगुणैरस्य त्रिविधःप्रतिसंक्रमः । आद्यस्तुमहतःसर्गो गुणवैषम्यमात्मनः ॥ १४ ॥ द्वितीयस्त्वहमोयत्र द्रव्यज्ञानक्रियोदयः । भूतसर्गस्तृतीयस्तु तन्मात्रोद्रव्यशक्तिमान् ॥ १५ ॥ चतुर्थऐन्द्रियःसर्गो यस्तुज्ञानक्रियात्मकः । वैकारिकोदेवसर्गः पंचमोयन्मयंमनः ॥ १६ ॥ षष्ठस्तुतमसःसर्गोयस्त्वबुद्धिकृतःप्रभो। षडिमे प्राकृताःसर्गा वैकृतानपिमेशृणु ॥ १७ ॥ रजोभाजोभगवतो लीलेयंहरिमेधसः । सप्तमोमुख्यसर्गस्तु षड्विधस्तस्थुषांचयः ॥ १८ ॥ वनस्पत्योषधिलतात्वक्सारा

प्रलय काल के वायु के वेगसे कंपाय मान होरहा था ॥ ५ ॥ यह देख कर ब्रह्मा जी तप से बढ़ी हुई आत्मा स्थित विद्या तथा बढ़े हुये ज्ञान के बल से जल समेत वायु को पी गये ॥ ६ ॥ आकाश में व्यापक कमल में स्थित ब्रह्माजी ने यह विचार किया कि लीन हुये लोकों की इस से कल्पना करू ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी ने कमल कोश में प्रवेश करके भगवान के कर्म की प्रेरणा से उस कमल को तीन प्रकार से विभाग कर १४ लोकों की रचना की ॥ ८ ॥ इस जीव लोक में जो कर्म फल की भोग, भूमि की रचना कही गई है उस में प्रति दिन सृष्टि उत्पन्न और नष्ट होती है परंतु जन लोक, तप लोक, और सत्य लोक में प्रति दिन उत्पत्ति और नाश नहीं होता उन की प्रायः मोक्ष ही होती है ॥ ९ ॥ विदुर जीने कहा कि हे मैत्रेय जी ! अद्भुत कर्म तथा बहु रूप वाले भगवान के कालनामक रूप को यथा योग्य सम्पूर्ण कहिये ॥ १० ॥ मैत्रेयजीने कहा कि—यह काल गुणों के समुद्र को क्षोभित करने वाला महत्तत्वादि परिणाम रूप है तथा पुरुष भगवान ने आत्मलीला करके विश्वकी रचना की है ॥ ११ ॥ यह विश्व ब्रह्म से अलग नहीं है परंतु परमेश्वरने काल के द्वारा इस विश्वको ऐसा बनाया है कि यह ब्रह्म से प्रथक है ॥ १२ ॥ यह संसार जैसा अभी है वैसा ही प्रथम था और अंतमें भी ऐसा ही रहेगा। इस संसार का सर्ग ९भांतिका है और एक वैकृत है॥१३॥ काल, द्रव्य, गुण इन से तीन प्रकार का संक्रम (प्रलय) है पहले महत्तत्व का सर्ग है जिससे आत्माके गुणों की विषमता होती है ॥ १४ ॥ दूसरा अहंकार का सर्ग है जिस से द्रव्य, ज्ञान, क्रिया इनका उदय होता है तीसरा पंच महाभूत का सर्ग है जिससे पंच तन्मात्रा तथा पंच महाभूत उत्पन्न होता है ॥ १५ ॥ चौथा इन्द्रियों का सर्ग है जो ज्ञान तथा क्रियारूपहै पांचवां विकारवान देह सर्ग है जिसमें मनहै ॥ १६ ॥ छठा तमोगुणका सर्ग है जो जीवोंका आवरण तथा विक्षेप कर्त्ता है यह ६प्राकृत सर्ग हैं अब वैकृत सर्ग कहता हूं उसे सुनो ॥ १७ ॥ उस रजोगुण मूर्ति भगवान की यह सब लीला है कि जिस के धारणावाली बुद्धि आवागवन को टालदेती है । छह प्रकारके स्थावरों का सर्ग यह सातवां सर्ग है ॥ १८ ॥

वीरुधोद्रुमाः। उत्स्रोतसस्तमःप्राया अन्तःस्पर्शाविशेषिणः ॥ १९ ॥ तिरश्चामष्टमः सर्गः सोऽष्टाविंशद्विधोमतः। अविदोभूरितमसो घ्राणज्ञाहृद्यवेदिनः ॥ २० ॥ गौरजोमहिषःकृष्णः सूकरोगवयोरुरुः। द्विशफाःपशवश्चेमे अविरुष्ट्रश्चसत्तम॥२१॥ खरोऽश्वोऽश्वतरोगौरः शरभश्चमरीतथा। एतेचैकशफाःक्षत्तःशृणुपंचनखान्पशून् ॥ २२ ॥ श्वासृगालोवृकोव्याघ्रो मार्जारःशशशल्लकौ। सिंहःकपिर्गजःकूर्मो गोधाचमकरादयः ॥ २३ ॥ कंकगृध्रवटश्येनभासभल्लूकबर्हिणः। हंससारसचक्राह्वकाकोलूकादयःखगाः ॥ २४ ॥ अर्वाक्स्रोतस्तुनवमः क्षत्तरेकविधोनृणाम्। रजोऽधिकाःकर्मपरा दुःखेचसुखमानिनः ॥ २५ ॥ वैकृतास्त्रयएवैते देवसर्गश्चसत्तम। वैकारिकस्तुयःप्रोक्तः कौमारस्तूभयात्मकः ॥ २६ ॥ देवसर्गश्चाष्टविधो विबुधाःपितरोऽसुराः। गन्धर्वाप्सरसःसिद्धा यक्षरक्षांसिचरणाः ॥ २७ ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च विद्याध्राःकिन्नरादयः। दशैतेविदुराऽऽख्याताः सर्गास्तेविश्वसृक्कृताः ॥ २८ ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामि वंशान्मन्वन्तराणिच। एवंरजःप्लुतःस्रष्टा कल्पादिष्वात्मभूर्हरिः ॥ सृजत्यमोघ [illegible] आत्मैवात्मानमात्मना ॥ २९ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०तृ०दशविधसर्गवर्णनंनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

जैसे बनस्पति फूल विना फलते हैं, औषधियें-फल आया और अंत होगया, लता-जो ऊपर को चलती हैं, त्वचाही जिनका सार है जैसे बांस आदि, जो फूलों करके फलते हैं जैसे बीरुध जिनके साधारण लक्षल हैं जैसे द्रुम, इन सबके आहार की गति ऊंची है और इनकी चैतन्यता अप्रकट है, तौभी इनको केवल स्पर्श का ज्ञान है ॥ १९ ॥ पशु पक्षियों का अठवां सर्ग अठाईस भांति का है इनको भी ज्ञान नहीं है केवल अपने आहार आदि का ज्ञान है और वह सूंघकरही अपने इष्ट पदार्थ को जानते हैं और उनके हृदय में दुःखभी उत्पन्न होता है ॥ २० ॥ हे विदुर ! उन अठाईस भेदों को सुनो, गौ १, बकरा २, भैंसा ३, सूकर ४, नीलगाय ५, रूरू ६, भेड़ ७, ऊंट ८, यह फटेखुर वाले हैं ॥ २१ ॥ गधा १, घोड़ा २, खच्चर ३, गैंडा ४, सुरागौ ५, गौरमृग ६, यह छै विना फटेखुरवाले हैं। अब पञ्चनख वालोंके नामसुनो ॥२२॥ कुत्ता १, सियार २, भेड़िया ३, व्याघ्र ४, बिलाव ५, खरगोश ६, सैला ७, सिंह ८, बंदर ९, हाथी १०, कछुवा ११, छपकली १२, मकरा १३, आदि ॥ २३ ॥ और कंक, वट, श्येन, भल्लूक, मयूर, हंस, सारस, चकवा, कौवा, और उल्लू यह पक्षियों का २८ वां सर्ग है ॥ २४ ॥ हे विदुर ! जिन का किया हुआ भोजन नीचे जाता है वह नौवां सर्ग मनुर्ष्यों का कहलाता है वह एकही भांतिका है इनमे रजोगुण अधिक है इस लिये यह कर्म परायणहैं और सुख दुःख को मानने वालेहैं ॥ २५ ॥ जो देव सर्ग वैकारक हैं वेभी नौप्रकारके हैं और प्राकृत मनुष्य तथा वैकृत देवताके मध्य में जो सनत्कुमार हैं वह भी उभयात्मक हैं ॥ २६ ॥ वैकृत देव सर्ग आठ प्रकार का ह देवता १ पितर २ असुर ३ गन्धर्व ४ अप्सरा ५ सिद्ध ६ यक्षराक्षस ७ चारण ८ ॥ २७ ॥ हे विदुर ! ब्रह्मा जी ने इसभांति भूत प्रेत समेत के यह १० सर्ग किये सो मैंने आपसे कहे ॥ २८ ॥ इसभांति रजोगुण से संयुक्त अमोघ संकल्प वाले आत्म भू ब्रह्मा ने कल्प की आदि में सृष्टि रचना की इसके अनंतर मन्वन्तर के वंश की कथा कहता हूं ॥ २९ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणे०तृतीयस्कंधे सरलाभाषाटीकायांदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

मैत्रेयउवाच ॥ चरमःसद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतःसदा । परमाणुःसविज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमोयतः ॥ १ ॥ सतएवपदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्ययत्। कैवल्यंपरममहानविशेषोनिरन्तरः ॥ २ ॥ एवंकालोऽप्यनुमितः सौक्ष्म्येस्थौल्येचसत्तम। संस्थानभुक्त्याभगवानव्यक्तो व्यक्तभुग्विभुः ॥ ३ ॥ सकालःपरमाणुर्वैयोभुंक्ते परमाणुताम्। ततोऽविशेषभुग्यस्तु सकालःपरमोमहान् ॥ ४ ॥ अणुर्द्वौपरमाणू स्यात्त्रसरेणुस्त्रयःस्मृतः। जालार्करश्म्यवगतः खमेवानुपतन्नगात् ॥ ५ ॥ त्रसरेणुत्रिकंभुंक्ते यःकालःसत्रुटिःस्मृतः । शतभागस्तुवेधःस्यात्तैस्त्रिभिस्तुलवः स्मृतः ॥ ६ ॥ निमेषस्त्रिलवोज्ञेय आम्नातस्तेत्रयःक्षणः। क्षणान्पंचविदुःकाष्ठांलघुतादशपंचच ॥७॥ लघूनिवैसमाम्नाता दशपंचचनाडिका । तेद्वेमुहूर्तःप्रहरःषड्यामःसप्तवानृणाम् ॥ ८ ॥ द्वादशाऽर्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरंगुलैः। स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम् ॥ ९ ॥ यामाश्चत्वारश्चत्वारो मर्त्यानामहनीउभे पक्षःपंचदशाहानिशुक्लःकृष्णश्चमानद ॥ १० ॥ तयोःसमुच्चयोमासःपितॄणांतदहर्निशम्। द्वौतावृतुःषडयनं दक्षिणंचोत्तरंदिवि ॥ ११ ॥ अयनेचाहनीप्राहुर्वत्सरो द्वादशस्मृतः। संवत्सरशतंनॄणां परमायुर्निरूपितम् ॥ १२ ॥ ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः परमण्वादिनाजगत्। संवत्सरावसानेन पर्येत्यनिमिषोविभुः ॥ १३ ॥ संवत्सरः परिवत्सर इडावत्सरएवच। अनुवत्सरोवत्सरश्च विदुरैवंप्रभाष्यते ॥१४॥ यःस-

---

मैत्रेय जी बोलेकि–हे विदुर ! अब कालके विशेष लक्षण कहता हूं। सुनो, जिसका विभाग न होसके जो सबे विशेषणों का अन्त है और जो किसी में न मिलेसदा रहे, जिससे और कोई वस्तुसूक्ष्म न हो, उसको परमाणु जानो जिन परमाणुओं से मनुष्य को ऐसा भ्रम होय है कि एक है ॥ १ ॥ जिसका सत्यही पदार्थ है और जिस को अपने स्वरूपही में स्थिति है उस महान कालको सकल प्रपंच महान कहते हैं ॥ २ ॥ हे विदुर ! स्थूल और सूक्ष्म यह काल का अनुमान किया है अव्यक्त भगवान स्थिति संस्था का भोग करतेहैं ॥ ३ ॥ जो काल परमाणु अवस्था को भोगता है उसको परमाणु कहते है और उसी कालको जो उसकी सम्पूर्ण अवस्था को भोगे उस को परममहान कहते हैं ॥ ४ ॥ दो परमाणु को एक अणु कहते हैं तीनअणु का एक त्रसरेणु होता है जो झरोखे में होकर सूर्य की किरणों के साथ ऊपर जाता है ॥ ५ ॥ तीन त्रसरेणु की एक त्रुटि, सौ त्रुटि का एक वेध, तीन वेध का एक लव ॥ ६ ॥ तीन लवका एक निमेष, तीन निमेष का एक क्षण, ५ क्षण की एक काष्ठा, १५ काष्ठा की एक लघुता ॥ ७ ॥ पन्द्रह लघुताकी एक घड़ी, दोघड़ी का एक मुहूर्त, ६ या सात घड़ी का मनुष्यों का एक पहर होता है ॥ ८ ॥ घड़ी बनाने की विधिकहते हैं, ६ पल तांबे की कटोरी कि जिसमें १६ पल जल भरजावे बनावे, और उस में इतना महीन छेद करे, कि जिस में ४ माशे सोनेकी ४ अंगुल लम्बी कील चलीजाय ॥ ९ हे विदुर ! मनुष्योंके चार पहरका दिनतथा चारपहर की रात होती है १५ दिनका एक पक्ष और वह पक्ष शुक्ल तथा कृष्ण दो भेद से होता है ॥ १० ॥ दो पक्षों का एक महीना होता है किजो पित्रों का रात्रि दिन कहलाता है दो महीनों की एक ऋतु और ६ ऋतु का अयन होता है वह अयन भी दो प्रकार का दक्षिणायन और उत्तरायण भेद है ॥ ११ ॥ दो अयन अर्थात् १२ महीने का १ वर्ष कहलाता है और सौ वर्ष की मनुष्यों की परमायु कहलाती है ॥ १२ ॥ ग्रह, नक्षत्र, तारामण्डल, यह सम्पूर्ण काल चक्र में लगे हैं वह कालात्मा भगवान सूर्य के आसपास १२ राशियों करके सम्वत्सर, पर्यंत घूमते हैं ॥ १३ ॥ हे विदुर ! वर्ष भी सम्वत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर इन भेदों से ५प्रकार

ज्यशक्तिमुरुधोच्छ्वसयन्स्वशक्तया पुंसोऽभ्रमायदिविधावतिभूतभेदः॥ कालाख्य यागुणमयंक्रतुभिर्वितन्वंस्तस्मै बलिंहरतवत्सरपंचकाय ॥ १५ ॥ विदुरउवाच ॥ पितृदेवमनुष्याणामायुः परमिदंस्मृतम् । परेषांगतिमाचक्ष्वयेस्युः कल्पाद्बहिर्विदः ॥ १६ भगवान्वेदकालस्य गतिंभगवतोननु । विश्वंविचक्षतधीरा योगराद्धेनचक्षुषा ॥ १७ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ कृतंत्रेताद्वापरंच कलिश्चेतिचतुर्युगम् । दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैःसावधानंनिरूपितम् ॥ १८ ॥ चत्वारित्रीणिद्वेचैकं कृतादिषुयथाक्रमम् । संख्यातानिसहस्राणि द्विगुणानिशतानिच॥ १९॥ संध्यांशयोरन्तरेण यःकालःशत संख्ययोः । तमेवाहुर्युगंतज्ज्ञा यत्रधर्मोविधीयते ॥ २० ॥ धर्मश्चतुष्पान्मनुजान् कृते समनुवर्तते । सएवान्येष्वधर्मेण व्येतिपादेनवर्धता ॥ २१ ॥ त्रिलोक्यायुगसाहस्रं बहिराब्रह्मणोदिनम् । तावत्येवनिशातात यन्निमीलतिविश्वसृक् ॥ २२ ॥ निशावसानआरब्धो लोककल्पोनुवर्तते । यावद्दिनंभगवतो मनून्भुंजंश्चतुर्दश ॥ २३ ॥ स्वंस्वंकालंमनुर्भुंक्ते साधिकांह्येकसप्ततिम् । मन्वन्तरेषुमनवस्तद्वंश्या ऋषयः सुराः भवन्तिचैवयुगपत्सुरेशाश्चानुयेचतान् ॥ २४ ॥ एषदैनंदिनःसर्गो ब्राह्मस्त्रैलोक्यवर्तनः तिर्यङ्नृपितृदेवानां सम्भवोयत्रकर्मभिः ॥ २५ ॥ मन्वन्तरेषुभगवान् बिभ्रत्सत्त्वंस्वमूर्तिभिः मन्वादिभिरिदं विश्वमवत्युदितपौरुषः ॥ २६ ॥ तमोमात्रामुपादाय प्रतिसंरुद्धविक्रमः । कालेनाऽनुगताऽशेष आस्तेतूष्णींदिनात्यये॥२७॥

का होता है ॥ १४ ॥ बीजादिकों की शक्ति को कालस्वरूप अपनी शक्ति से नाना भांतिके कार्यों के सन्मुख करते और पुरुषों की अवस्था क्षीण करने से विषया शक्ति को निवृत्तकरते तथागुणमय स्वर्गादिकों के फलकोयज्ञआदिसे विस्तारते व आकाशमें शीघ्रगति से चलते हैं उन महाभूत पांच सम्वत्सर रूप भगवान सूर्य की पूजाकरो ॥ १५ ॥ बिदुरजी ने कहा–किआपने तो पितर देवता तथा मनुष्यों की आयुका बर्णन किया परन्तु अब आप कल्प से बाहर रहनेवाले ज्ञानियों की गति कहिये ॥ १६ ॥ हे भगवान ! आप काल की गति को भली प्रकार जानतेहो क्योंकि महात्मा लोग योग दृष्टि से सम्पूर्ण संसारको देखाकरते हैं ॥ १७ ॥ श्री मैत्रेयजी ने कहा कि देवताओं के १२ सहस्र वर्षों से सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग युगों की कल्पना की गई है ॥१८॥ इस में सतयुग चार सहस्र ८०० त्रेता युग ३६०० द्वापर युग २४०० और कलियुग १२०० बर्ष का होता है ॥ १९ ॥ संध्या सन्ध्यांश के अन्तर में जो काल शतसंख्या है उसको विवेकी लोग युग कहते हैं जिस में धर्म और धर्म का विधान होता है ॥ २० ॥ सतयुग में धर्म चारो पावों से वर्तता है और त्रेता में अधर्म का पांव बढ़ना तथा धर्म का घटता है इसीभांति युग२ में धर्म न्यून और अधर्म अधिकहोताजाताहै ॥ २१ ॥ त्रिलोकी के बाहर महर्लोक औरब्रह्मलोक में चारों युगों की हजार चौकड़ी का इतना ब्रह्मा का एक दिन और इतनीही रात्रि होती है हे विदुर ! जिस में विश्वस्रष्टा ब्रह्मा सोता है ॥ २२ ॥ जब रात्रि का अंत आता है तब फिर ब्रह्मा सृष्टि की रचना करते हैं ब्रह्माके दिन में १४ मन्वन्तर होते हैं ॥ २३ ॥ प्रत्येक मन्वन्तर और एक इन्द्र ७१ चौकड़ी से कुछ अधिक भोग करता है और इन के वंश के ऋषि, असुर, देवता, गंधर्वादिक यह सब एक साथही उत्पन्न और एकही साथ नाशहोते हैं ॥ २४॥ यह ईश्वर का एक दिन है जिस में ब्रह्मा उत्पन्नहोते हैं और अपने२ कर्मोंसे पशु,मनुष्य, पितृ, देवताप्रगट हुआ करते हैं ॥ २५ ॥ मन्वन्तरों में श्री भगवान सतोगुण से अवतार धारण करते हैं और मनु आदिक द्वारा अपना पौरुष प्रगट करके सम्पूर्ण विश्व के पालन की इच्छा करते हैं ॥ २६॥ काल के पीछे भगवान तमोगुणही जिनका पराक्रम है उस को ग्रहण करके दिन के अंत में चुप

तमेवान्वपिधीयन्ते लोकाभूरादयस्त्रयः। निशायामनुवृत्तायां निर्मुक्तशशिभास्क
रम्॥ २८ ॥ त्रिलोक्यांदह्यमानायां शक्त्यासंकर्षणाग्निना ।यान्त्यूष्मणामहर्लोका
ज्जनंभृग्वादयोऽर्दिताः ॥२९॥ तावत्त्रिभुवनंसद्यः कल्पान्तैधितासिन्धवःप्लावयंत्यु
त्कटाटोपचण्डवातेरितोर्मयः ॥ ३० ॥ अन्तःसतस्मिन्सलिल आस्तेऽनन्तासनो
हरिः। योगनिद्रानिमीलाक्षः स्तूयमानोजनालयैः ॥ ३१ ॥ एवंविधैरहोरात्रैःकाल
गत्योपलक्षितैः। अपक्षितमिवास्याऽपि परमायुर्वयःशतम्॥ ३२ ॥ यदर्धमायुष-
स्तस्य परार्धमभिधीयते। पूर्वःपरार्धोऽपक्रांतो ह्यपरोऽद्यप्रवर्तते ॥ ३३ ॥ पूर्वस्या
दौपरार्धस्य ब्राह्मोनाममहानभूत्। कल्पोयत्राऽभवद्ब्रह्मा शब्दब्रह्मेतियंविदुः३४
तस्यैवचान्तेकल्पोऽभूद्यं पाद्ममभिचक्षते। यद्धरेर्नाभिसरसआसील्लोकसरोरुहम्
॥ ३५ ॥ अयंतुकथितःकल्पो द्वितीयस्यापिभारत। वाराहइतिविख्यातो यत्रासीत्
सूकरोहरिः ॥ ३६ ॥ कालोऽयंद्विपरार्धाख्यो निमेषउपचर्यते। अव्याकृतस्याऽनन्त
स्य अनादेर्जगदात्मनः ॥ ३७ ॥ कालोऽयंपरमाण्वादिर्द्विपरार्धान्तईश्वरः। नैवे
शितुंप्रभुर्भूम्न ईश्वरोधाममानिनाम् ॥ ३८ ॥ विकारैःसहितोयुक्तैर्विशेषादिभिरा
वृतः। आंडकोशोबहिरयं पञ्चाशत्कोटिविस्तृतः ॥३९॥ दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रवि
ष्टः परमाणुवत्। लक्ष्यतेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशोह्यंडराशयः ॥ ४० ॥ तदाहुरक्षरं
ब्रह्म सर्वकारणकारणम्। विष्णोर्धामपरंसाक्षात् पुरुषस्यमहात्मनः ॥ ४१ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणे तृतीयस्कन्धेएकादशोऽध्याय ॥ ११ ॥

चाप होकर सोते हैं ॥ २७ ॥ इसके उपरांत यह सम्पूर्ण लोक भगवान में लीन होजाते हैं और रात्रि के प्रवृत्त होने पर सूर्य, चन्द्रमा भी नहीं रहते ॥ २८ ॥ फिर शेषकी शक्ति से त्रिलोकी भस्म होने लगती है तब भृगु आदि सम्पूर्ण ऋषी जो उस गर्मी से जल जाते हैं वह जनलोक को चले जाते हैं ॥ २९ ॥ फिर कल्पांत समय के बड़े बेग वाले पवन से बढ़ेहुएसमुद्र कि जिन में बड़ी २ लहरें उठरही हैं त्रिलोकी को डुबा देते हैं ॥ ३० ॥ फिर उस प्रलयकालकेजल के भीतर श्री भगवान योगनिद्रासे शयन करते हैं तब जनलोकवासी उनकी स्तुति करते हैं ३१॥ इस प्रकार कालकी गति से रात दिनोंद्वारा बड़ी कड़ी १०० वर्ष की आयु पूरी होती है ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजी की अवस्था के आधे भाग को पूर्वार्ध कहते हैं तहां पहिला तो होचुका अब दूसरापरार्ध चलता है ॥ ३३ ॥ प्रथम पूर्वार्ध के प्रारम्भ में ब्राह्म नाम कमल हुआथा जिस में शब्द ब्रह्म उत्पन्न हुआथा ॥ ३४ ॥ उस के अंत में पाद्मकल्प हुआ जिसमेंभगवान के नाभिसरोवर से कमलहुआ ३५ हे विदुर ! यहतो कल्पहुआ अब दूसरा कल्प जिसमें विख्यात वाराह अवतार हुआ सुनो ॥ ३६ ॥ यह द्विपरार्ध नामका काल अनादि, अव्याकृत, अनन्त, जगदात्मा भगवान का निमेष कहाजाता है ॥ ३७ ॥ परमाणु के आदि से लेकर द्विपरार्ध के अन्ततक पुरुष भगवान की महिमा को कोई नहींकहसक्ता ॥ ३८ ॥ यह अण्डकोष १६ प्रकार के विकारपृथ्वी आदिक समेत उन में व्याप्त बाहर से ५० करोड़ के विस्तारका है ॥ ३९ ॥ यह एक २ से दश- गुणे आवरणों से घिराहुआ एक परमाणु सा ज्ञातहोताहै ऐसे औरभी करोड़ों ब्रह्मांड पड़े हैं ४० उन सबकारणों के कारण को अक्षर ब्रह्म कहते हैं जो साक्षात् पुरुष परमात्मा का सर्वोत्तम रूप है ॥ ४१ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणे०तृतीयस्कंधे सरलभाषाटीकायांएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

मैत्रेयउवाच ॥ इतितेवर्णतःक्षत्तः कालाख्यःपरमात्मनः । महिमा वेदगर्भोऽथ यथास्राक्षीन्निबोधमे १ ससर्जाग्रेऽन्धतामिस्रमथतामिस्रमादिकृत् । महामोहंचमोहंचतमश्चाऽज्ञानवृत्तयः ॥२॥ दृष्ट्वापापीयसींसृष्टिं नात्मानंबह्वमन्यत । भगवद्ध्यानपूतेन मनसाऽन्यांततोऽसृजत् ॥३॥ सनकंचसनन्दंच सनातनमथात्मभूः । सनत्कुमारंचमुनीन् निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः ॥ ४ ॥ तान्बभाषेस्वभूःपुत्रान् प्रजाःसृजत पुत्रकाः । तन्नैच्छन्मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणाः ॥ ५ ॥ सोऽवध्यातःसुतैरेवं प्रत्याख्यातानुशासनैः । क्रोधंदुर्विषहंजातं नियन्तुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥ धियानिगृह्यमाणोपि भ्रुवोर्मध्यात्प्रजापतेः । सद्योऽजायततन्मन्युः कुमारोनीललोहितः ॥ ७ ॥ सवै रुरोददेवानां पूर्वजोभगवान्भवः । नामानिकुरुमेधातःस्थानानिचजगद्गुरो ८ ॥ इतितस्यवचःपाद्मो भगवान्परिपालयन् । अभ्यधाद्भद्रयावाचा मारोदीस्तत्करोमिते ॥ ९॥ यदरोदीःसुरश्रेष्ठ सोद्वेगइवबालकः ततस्त्वामभिधास्यन्ति नाम्नारुद्र इतिप्रजाः ॥ १० ॥ हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योम वायुरग्निर्जलंमही । सूर्यश्चन्द्रस्तपश्चैव स्थानान्यग्रेकृतानिमे ॥ ११ ॥ मन्युर्मनुर्महिनसो महांछिवऋतुध्वज । उग्ररेता भवःकालो वामदेवोधृतव्रतः ॥ १२ ॥ धीर्वृत्तिरुशनोमाच नियुत्सर्पिरिलाम्बिका इरावतीसुधादीक्षा रुद्राण्योरुद्रतेस्त्रियः ॥ १३ ॥ गृहाणैतानिनामानिस्थानानिच सयोषणः । एभिःसृजप्रजाबह्वीः प्रजानामसियत्पतिः ॥ १४ ॥ इत्यादिष्टःसगुरुणा भगवान्नीललोहितः । सत्त्वाकृतिस्वभावेन ससर्जात्मसमाः प्रजाः ॥ १५ ॥ रुद्राणां रुद्रसृष्टानां समन्ताद्ग्रसतांजगत् । निशाम्य ऽसंख्यशोयूथान्प्रजापतिरशङ्कत ॥ १६ ॥ अलंप्रजाभिः सृष्टाभिरीदृशीभिसुरोत्तम । मयासहदहन्तीभिर्दिशश्चक्षुर्भि

मैत्रेय जीने कहा कि—हे विदुर ! मैंने इस भांति कालाख्य भगवान का वर्णन किया अब वेद गर्भ ब्रह्मा ने जिस भांति सृष्टि रची वह सुनो ॥ १ ॥ आदि कृत ब्रह्मा ने प्रथम अज्ञान वृत्ति वाले तमोगुण को रचा उस की पांच वृत्तियें अंधतामिश्र तामिश्र, महा मोह, मोह और अविद्या उत्पन्न हुई ॥ २ ॥ ब्रह्माजी ने पापिष्ठी योनि देख कर—आत्मा को श्रेष्ठ न मान, परमात्मा के ध्यानसे पवित्र हुये मन से दूसरी सृष्टि सृजना की ॥ ३ ॥ प्रथम ऊर्द्ध रेता सनक, सनंदन, सनातन, सनत्कुमार को उत्पन्न किया ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी ने उन से कहा कि हे पुत्रो सृष्टि रचना करो परंतु उन मोक्ष धर्म परायण मुनियों ने सृष्टि रचने की इच्छा न की ॥ ५ ॥ उन पुत्रों की इस अज्ञानता को देखकर ब्रह्मा जी को क्रोध उत्पन्न हुआ उस क्रोध को ब्रह्मा जी ने रोकना भी चाहा ॥ ६ ॥ परन्तु बुद्धि से भी वह क्रोध न रुका, तो भोहों के मध्य से नील लोहित बालक उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥ उन देवताओं के पूर्वज भगवान महादेव ने रोकर ब्रह्मा से कहा कि मेरा नाम और स्थान बताओ ॥ ८ ॥ उनके ऐसे बचन सुन पालन कर्त्ता ब्रह्मा ने कल्याण रूपी वाणी से कहा कि तू रोवेमत, जो कहेगा, वह करूंगा ॥ ९ ॥ हे देवताओं में श्रेष्ट ! तू बालक की भांति उद्वेग से रोया इसी कारण सम्पूर्ण प्रजा तुझे रुद्र कहेंगे ॥ १० ॥ तेरेहेतु में प्रथम ही हृदय, इन्द्री आकाश, पवन, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य्य, चन्द्रमा, तप, स्थनोंको वनारक्खा है ॥ ११ ॥ और मन्यु, मनु, महाईशान, महान, शिव, ऋतध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव, और धृत वृत यह तेरे नाम हैं ॥ १२ ॥ हे रुद्र ! धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत, इला, अंबिका, इरावती, सुधा, दीक्षा और रुद्राणी यह तेरी स्त्री होंगी ॥ १३ ॥ इन नामों को ग्रहण कर स्त्रियों सहित इन स्थानों में बहुत सी प्रजाको सृज ॥ १४ ॥ इस भांति ब्रह्मा जी ने भगवान नील लोहित शिवजी को आज्ञादी तव उन्हों ने अपने स्वभावानुसार अपनी समान प्रजाकी रचना की ॥ १५ ॥ भगवान रुद्रके रचेहुये

रुल्वणैः ॥१७॥ तपआतिष्ठभद्रंते सर्वभूतसुखावहम् । तपसैवयथापूर्वं स्रष्टाविश्व मिदंभवान् ॥ १८ ॥ तपसैवपरंज्योतिर्भगवन्तमधोक्षजम् । सर्वभूतगुहावासमञ्ज विदन्तेपुमान् ॥ १९ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ एवमात्मभुवाऽऽदिष्टः परिक्रम्यागिरांपतिम् बाढमित्यमुमामन्त्र्य विवेशतपसेवनम् ॥ २० ॥ अथाभिध्यायतःसर्गं दशपुत्राःप्रज ज्ञिरे । भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः ॥२१ ॥ मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहःक्रतुःभृगुर्वसिष्ठोदक्षश्च दशमस्तत्रनारदः ॥ २२ ॥ उत्सङ्गान्नारदोजज्ञे दक्षो ऽङ्गुष्ठात्स्वयंभुवः । प्राणाद्वसिष्ठःसंजातो भृगुस्त्वचःकरात्क्रतुः ॥ २३ ॥ पुलहो नाभितोजज्ञे पुलस्त्यःकर्णयोर्ऋषिः । अङ्गिरामुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत् ॥ २४ ॥ धर्मःस्तनाद्दक्षिणतोयत्र नारायणःस्वयम् । अधर्मःपृष्ठतोयस्मान्मृत्युर्लोक भयंकरः ॥ २५ ॥ हृदिकामोभ्रुवःक्रोधो लोभश्चाधरदच्छदात् । आस्याद्वाक्सिंध वोमेढ्रान्निर्ऋतिःपायोरघाश्रयः ॥ २६ ॥ छायायाःकर्दमोजज्ञे देवहूत्याःपतिःप्रभुः। मनसोदेहतश्चेदं जज्ञेविश्वकृतोजगत् ॥ २७॥ वाचंदुहितरंतन्वीं स्वयंभूर्हरतींमनः अकामांचकमेक्षत्तः सकामइतिनःश्रुतम् ॥ २८ ॥ तमधर्मेकृतमतिं विलोक्यपित रंसुताः । मरीचिमुख्यामुनयोविश्रम्भात्प्रत्यबोधयन् ॥ २९ ॥ नैतत्पूर्वैःकृतंत्वद्येन करिष्यन्तिचापरे । यत्त्वंदुहितरंगच्छेरनिगृह्यांगजंप्रभुः ॥ ३० ॥ तेजीयसामपि ह्येतन्न सुश्लोक्यंजगद्गुरो । यद्वृत्तमनुतिष्ठन्वै लोकःक्षेमायकल्पते ॥ ३१ ॥ तस्मै नमोभगवते यइदंस्वेनरोचिषा । आत्मस्थंव्यंजयामास सधर्मंपातुमर्हति ॥ ३२ ॥

असंख्यों झुंडोंको जगत् को ग्रसता हुआ देख ब्रह्मा बड़े त्रासको प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥ हे सुरोत्तम! तेरी रचीहुई प्रजासे मैं परिपूर्ण हुआ वह अपने उल्वण नेत्रों से मुझ समेत दिशाओं को भस्म करती है ॥ १७ ॥ तेरा कल्याण होवे ! अब तुमस्थित होकर सम्पूर्ण प्राणीयों के सुख बढ़ाने वाले तपको करो क्यों तपके ही प्रभाव से पहिले की समान सृष्टिको रच सकोगे ॥ १८ ॥ तपही के प्रभाव से परम ज्योति भगवान कि जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदय में व्याप्त हैं तुमको प्राप्त होंगी ॥ १९ ॥ मैत्रेय जी ने कहा कि–ऐसे जब वाणीके पति, आत्म भू ब्रह्मा ने आज्ञा दी तो परिक्रमा कर बहुत अच्छा कह वह तपके हेतु आज्ञा मांग बाहर गये ॥ २० ॥ ब्रह्माजी ने संतान के हेतु श्री भगवान की स्तुति की तो उनके दश पुत्र उत्पन्न हुये ॥ २१ ॥ मरीचि, अत्रि अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष, और नारद ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी की गोदी से नारद, अंगूठे से दक्ष, प्राण से वसिष्ठ, त्वचा से भृगु, और हाथों से क्रतु हुये ॥ २३ ॥ टूंडी से पुलह, कानों से पुलस्त्य मुख से अंगिरा, नेत्रों से अत्रि और मन से मरीचि हुये ॥ २४ ॥ दाहिने स्तन से धर्म हुआ जहां नारायण स्वयं विराज मान हैं और ब्रह्मा की पीठ से अधर्म उत्पन्न हुआ कि जिससे सम्पूर्ण लोकों को डराने वाली मृत्यु होती है ॥ २५ ॥ हृदय से काम, भृकुटियों से क्रोध, नीचे के होठ से लोभ, मुख से वाणी, इन्द्री से समुद्र और गुदा इन्द्री से पाप का आश्रय निर्ऋति प्रगट हुआ ॥ २६ ॥ छाया से देव भूतिके पति कर्दम और मन तथा देह से सम्पूर्ण जगत हुआ ॥ २७ ॥ हे विदुर ! वाणी से श्रेष्ठ देह वाली सरस्वती हुई कि जिसे देखकर ब्रह्मा जी ने काम के वशीभूत हो उसके साथ काम की इच्छा की ऐसा ही मैंने सुना है ॥ २८ ॥ सम्पूर्ण पुत्र मरीचि आदि ऋषियों ने अपने पिता की खोटी बुद्धि देखकर समझाया ॥ २९ ॥ कि ऐसा पहिले किसी ने नहीं किया और न कोई करेगा कि जोतुम अपने अंगसे उत्पन्न हुई पुत्रीको ग्रहण करते हो यह ग्रहण करने योग्य नहीं है ॥ ३० ॥ हे जगतगुरू ! तेजस्वियोंको यह योग्य नहीं है कि जिस वृत्तिमें तुम स्थित होते हो, इससे लोक कल्याण को न प्राप्त होंगे ॥ ३१ ॥ उन बानको हमारा नमस्कार है कि जिन्हों

सइत्थंगृणतःपुत्रान् पुरोदृष्ट्वाप्रजापतीन्। प्रजापतिपतिस्तन्वं तत्याजव्रीडितस्त दा ॥३३॥ तांदिशोजगृहुर्घोरां नीहारंयद्विदुस्तमः। इदानीमपिसंसारे कुहरोदृश्य तेनरैः ॥ ३४ ॥ कदाचिद्ध्यायतःस्रष्टुर्वेदाआसंश्चतुर्मुखात्। कथंस्रक्ष्याम्यहंलोका न् समवेतान्यथापुरा ॥३५॥ चातुर्होत्रकर्मतन्त्रमुपवेदनयैः सह। धर्मस्यपादाश्च- त्वारस्तथैवाश्रमवृत्तयः ॥ ३६ ॥ विदुरउवाच ॥ सवैविश्वसृजामीशो वेदादीन्मु खतोऽसृजत्। यद्यद्येनासृजद्देवस्तन्मेब्रूहितपोधन ॥ ३७ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ ऋग्य जुःसामाथर्वाख्यान् वेदान्पूर्वादिभिर्मुखैः। शस्त्रमिज्यांस्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात्क्रमात् ॥ ३८ ॥ आयुर्वेदंधनुर्वेदं गान्धर्ववेदमात्मनः। स्थापत्यंचासृजद्वेदं क्रमात्पूर्वादिभिर्मुखैः ॥ ३९ ॥ इतिहासपुराणानि पंचमंवेदमीश्वरः। सर्वेभ्यएव वक्त्रेभ्यःससृजेसर्वदर्शनः ॥ ४० ॥ षोडश्युक्थौपूर्ववक्त्रात्पुरीष्यग्निष्टुतावथ। आ प्तोर्यामातिरात्रौच वाजपेयंसगोसवम् ॥ ४१ ॥ विद्यादानंतपःसत्यं धर्मस्येतिपदा निच। आश्रमांश्चयथासंख्यमसृजत्सहवृत्तिभिः ॥ ४२ ॥ सावित्रंप्राजापत्यंचब्राह्मं चाथबृहत्तथा। वार्ता-संचय—शालीन-शिलोञ्छइतिवैगृहे ॥४३॥ वैखानसावा लखिल्यौदुम्बराःफेनपावने। न्यासेकुटीचकःपूर्वं बह्वोदोहंसनिष्क्रियौ ॥ ४४ ॥ आन्वीक्षिकीत्रयीवार्ता दंडिनीतिस्तथैवच। एवंव्याहृतयश्चासन् प्रणवोह्यस्यदह्

ने अपनी कांति से आत्मा में स्थित होकर इस जगतको उत्पन्न किया वही धर्मकी रक्षाकरें ॥३२॥ जब पुत्रों ने इस प्रकार कहातो ब्रह्मा ने अपने अग्रभाग को देख देहको निंदित जान लज्जित हो कर उस देहको त्याग दिया ॥ ३३ ॥ उस देहको दिशाओं ने ग्रहण किया जिससे कुहरा और अंधेरा उत्पन्नहुआ। एक समय सृष्टि रचने का ब्रह्मा ध्यान करते थे तो उनके मुख से चारवेद उत्पन्न हुये ॥३४।३५॥ मैं पहिले की समान सृष्टिरचना करूंगा इससे चारों होताओं का कर्म, यज्ञ का विस्तार, उपवेद, न्याय, धर्मके चारोचरण, तथा उनके आश्रम और वृत्तियां यह सब उनके मुंह से उत्पन्न हुई ॥ ३६ ॥ विदुर जी ने मैत्रेय जी से पूछा कि विश्वस्रष्टा ब्रह्माजी के मुखसे कौन २ धर्म किस २ मुख से उत्पन्न हुये। वह मुझसे कहिये ॥ ३७ ॥ मैत्रेय जी ने कहा कि पूर्वके मुख से ऋग्वेद, दक्षिण से यजुर्वेद पश्चिम से सामवेद, और उत्तर से अथर्व वेद उत्पन्न हुआ और इसी क्रमानुसार शस्त्र, इज्या, स्तुति स्तोम और प्रायश्चित्त कर्म भी उत्पन्न हुये ॥ ३८ ॥ ब्रह्माजी के चारो मुखों से चार उपवेद आयुर्वेद(वैदिक विद्या)धनुर्वेद (शस्त्र विद्या) गन्धर्व वेद(गानविद्या) और स्थापित्य वेद अर्थात् विश्वकर्मा की विद्या भी उत्पन्न हुई ॥ ३९ ॥ सर्व दर्शन ब्रह्मा जी के चारो मुखों से पांचवा वेद अर्थात्-इतिहास, पुराण उत्पन्न हुये ॥ ४० ॥ षोड़शोक्थि पूर्व मुखसे पुरीषग्निकर्म दक्षिण मुखसे, आत्मयामकर्म पश्चिम मुख से, और अतिरात्र वाजपेय और गोसव यह कर्म उत्तर मुखसे, उत्पन्नहुये ॥ ४१ ॥ उन्होंने विद्या, दान, तप, सत्य, धर्म तथा आश्रमों को जीविका सहित क्रमानुसार उत्पन्न किया ॥ ४२ ॥ नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन, वार्त्ता अर्थात् कृषि आदि वृत्ति, यजनादि अर्थात् -संचय वृत्ति, शालिगवृत्ति अर्थात् भिक्षावृत्ति, शिलोंछ वृत्ति अर्थात् पड़े हुए अन्न के दानों को बीनना यह गृहस्थ के धर्म हैं ॥ ४३ ॥ वैखानसा अर्थात् बिना खेती कालक्षेपकरना, बालखिल्या नवीन अन्न हण करना और पहिले का त्यागकरना, औदम्बर वृत्ति अर्थात् प्रातःकाल उठकर जिस ओर को मुंहहो उसी ओर को जाकर वहां से फलादि का लाना, फेनयावृत्ति अर्थात् आपही से टूटे हुए फलों को ग्रहणकरना, कुटीचक वृत्ति अर्थात् अपने आश्रम में बैठे रहना भजन करना और जो कुछमिलै उसीकोखाना बह्वोद वृत्ति कुछ काम न करना ज्ञान में तत्पर रहना यह वनस्थितमनुष्यों की वृत्तिके धर्म हैं ॥ ४४ ॥ मोक्ष

तः ॥ ४५ ॥ तस्योष्णिगासीद्रोमभ्योगायत्रीचत्वचोविभोः । त्रिष्टुब्मांसात्स्नुतोऽ
नुष्टुप् जगत्यस्थ्नःप्रजापतेः ॥ ४६ ॥ मज्जायाःपंक्तिरुत्पन्ना बृहतीप्राणतोऽभवत्
स्पर्शस्तस्याऽभवज्जीवः स्वरोदेहउदाहृतः ॥ ४७ ॥ ऊष्माणमिन्द्रियाण्याहुरन्तः
स्थाबलमात्मनः । स्वराःसप्तविहारेण भवन्तिस्मप्रजापतेः ॥ ४८ ॥ शब्दब्रह्मात्म
नस्तस्य व्यक्ताव्यक्तात्मनःपरः । ब्रह्माऽवभातिविततो नानाशक्त्युपबृंहितः । ततो
ऽपरामुपादाय ससर्गायमनोदधे ॥ ४९ ॥ ऋषीणांभूरिवीर्याणामपि सर्गमविस्तृ
तम् । ज्ञात्वातद्धृदयेभूयश्चिन्तयामासकौरव ॥ ५० ॥ अहोअद्भुतमेतन्मे व्यापृतस्या
पिनित्यदा । नह्येधन्तेप्रजानूनं दैवमत्रविघातकम् ॥ ५१ ॥ एवंयुक्तकृतस्तस्य दैवं
चावेक्षतस्तदा । कस्यरूपमभूद्द्वेधा यत्कायमभिचक्षते ॥ ५२ ॥ ताभ्यांरूपविभा
गाभ्यां मिथुनंसमपद्यत । यस्तुतत्रपुमान्सोऽभून्मनुः स्वायंभुवःस्वराट् ॥ ५३ ॥
स्त्रीयाऽऽसीच्छतरूपाख्या महिष्यस्यमहात्मनः । तदामिथुनधर्मेणप्रजाह्येधाम्बभू
विरे ॥ ५४ ॥ सचापिशतरूपायां पंचापत्यान्यजीजनत् । प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्रः
कन्याश्चभारत ॥ ॥ ५५ ॥ आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरितिसत्तम । आकूतिंरुचयेप्रा
दात्कर्दमायतुमध्यमाम् । दक्षायाऽदात्प्रसूतिंचयतआपूरितंजगत् ॥ ५६ ॥

इतिश्रीमद्भा० तृती० मनुसर्गवर्णनंनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ निशम्यवाचंवदतो मुनेःपुण्यतमांनृप । भूयःपप्रच्छकौरव्यो
वासुदेवकथादृतः ॥ १ ॥ विदुरउवाच ॥ सवैस्वायंभुवःसम्राट् प्रियःपुत्रःस्वयं-
भुवः । प्रतिलभ्याप्रियांपत्नीं किंचकारततोमुने ॥२॥ चरितंतस्यराजर्षेरादिराजस्य

विद्या, धर्म विद्या, कामसम्बन्धी विद्या; और अर्थ सम्बन्धी विद्या और चार व्याहृति यह मुखों
से और प्रणव अर्थात् ओंकार हृदय से उत्पन्न हुआ ॥ ४५ उष्णिकछन्द रोम से गायत्री छंद
त्वचा से त्रिष्टुपछन्द मास से अनुष्टुपछन्द स्नायु से और जगतीछन्द अस्थि से उत्पन्नहुए ४६॥
मज्जा से पंक्तिछंद प्राणों से बृहती, स्पर्श से जीव (क से म तक २५ वर्ण) और देह से स्वर
उत्पन्न हुए ॥ ४७ ॥ ऊष्मा अर्थात् श ष स ह वर्णेंद्रिय और अन्तस्थ अर्थात् य र ल व यह
ब्रह्माकेबलरूप हैं और सातो स्वर ब्रह्मा के विहार से उत्पन्नहुए ॥ ४८ ॥ हे तात विदुर ! शब्द
ब्रह्म ब्रह्मा की आत्मासे ओंकार स्वर परमात्मा से उत्पन्न हुआ नानाप्रकार की शक्तियों से ब्रह्मा
ने बड़े प्रकाश को प्राप्तहो इन सम्पूर्ण को ग्रहणकर सृष्टि रचने की इच्छाकी ॥ ४९ ॥ हेकौरव !
पराक्रमी ऋषियों से भी जब सृष्टि उत्पन्न न होसकी तो ब्रह्माजी फिर चिंता करने लगे
॥ ५० ॥ अहो ! देखो तो यह बड़ाही आश्चर्य है किरचना का विस्तार न हुआ इस में दैव अव-
श्यही प्रतिबन्धक है ॥ ५१ ॥ ऐसे मनमें बिचारकर ब्रह्मा जी दैव के रूप देखने को मन में कहतेथे
कि इतने में ब्रह्माजी के शरीर के दो भागहुए ॥ ५२ ॥ उन रूपों के बिभाग से एक जोड़ा
हुआ उस में जो पुरुषथा वही स्वायम्भुव नाम मनु हुआ ॥ ५३ ॥ और स्त्री शतरूपा महात्मा
मनु की रानी हुई वह मैथुन धर्म करके प्रजा को उत्पन्न करने लगे ॥ ५४ ॥ उस शतरूपा से
स्वायम्भूक पांच संतान उत्पन्न हुई प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र और तीन कन्या हुई५५॥
आकूति, देवहूती औरप्रसूतीइनतीन कन्याओं में आकूतिरुचिऋषि को देवहूती कर्दमजी को औरप्रसूती
दक्ष को दी कि उन्हीं कन्याओं से सम्पूर्ण संसार उत्पन्नहुआ ॥ ५६ ॥

इयिश्रीभागवतेमहापुराणे०तृतीयस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले किमैत्रेयजी के अति पवित्र वाक्य सुनकर बिदुर ने फिरपूछा— ॥ १ ॥
बिदुरजी कहते हैं—किहेमैत्रेयजी! ब्रह्माजी के प्रियपुत्र स्वायंभू मनु ने अपनी प्यारी स्त्री को पाकर

सत्तम । ब्रूहिमेश्रद्दधानाय विष्वक्सेनाश्रयोह्यसौ ॥ ३ ॥ श्रुतस्यपुंसांसुचिर श्र-
मस्यनन्वंजसासूरिभिरीडितोऽर्थः। यत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुन्दपादारविन्दंहृदयेषुये-
षाम् ॥ ४ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ इतिब्रुवाणंविदुरंविनीतं सहस्रशीर्ष्णश्चरणोपधानम्।
प्रहृष्टरोमाभगवत्कथायां प्रणीयमानोमुनिरभ्यचष्ट ॥ ५ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ यदा
स्वभार्ययासाकं जातःस्वायंभुवोमनुः। प्रांजलिःप्रणतश्चेदं वेदगर्भमभाषत ॥ ६॥
त्वमेकःसर्वभूतानां जन्मकृद्वृत्तिदःपिता । अथाऽपिनःप्रजानांते शुश्रूषाकेनवा
भवेत् ॥ ७ ॥ तद्विधेहिनमस्तुभ्यं कर्मस्वीड्यात्मशक्तिषु। यत्कृत्वेहयशो विष्व-
गमुत्रचभवेद्गतिः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रीतस्तुभ्यमहंतात स्वस्तिस्तात्वांक्षिती-
श्वर। यन्निर्व्यलीकेनहृदाशाधि मेत्यात्मनार्पितम् ॥ ९ ॥ एतावत्यात्मजैर्वीरकार्या
ह्यपचितिर्गुरौ। शक्त्याऽप्रमत्तैर्गृह्येत सादरंगतमत्सरैः ॥ १० ॥ सत्वमस्यामप-
त्यानि सदृशान्यात्मनोगुणैः। उत्पाद्यशासधर्मेण गांयज्ञैःपुरुषंयज ॥ ११ ॥ परं
शुश्रूषणंमह्यं स्यात्प्रजारक्षयानृप। भगवांस्तेप्रजाभर्तुर्हृषीकेशोऽनुतुष्यति ॥१२॥
येषांनतुष्टोभगवान् यज्ञलिंगोजनार्दनः। तेषांश्रमोह्यपार्थाय यदात्मानादृतःस्वयम्
॥ १३ ॥ मनुरुवाच ॥ आदेशेऽहंभगवतोवर्तेयाऽमीवसूदन । स्थानंत्विहानुजानी
हि प्रजानांममचप्रभो ॥ १४ ॥ यदोकःसर्वसत्वानां महीमग्नामहाम्भसि । अस्या
उद्धरणेयत्नो देवदेव्याविधीयताम् ॥ १५ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ परमेष्ठीत्वपांमध्येतथा
ऽऽसन्नामवेक्ष्यगाम्। कथमेनांसमुन्नेष्यइति दध्यौधियाचिरम् ॥ १६ ॥ सृजतोमे

क्या किया वह वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ हे मुने ! आप उस राजर्षि के चरित्रों का वर्णन कीजिये क्योंकि वह विश्वक्सेन भगवान का भक्तथा ॥ ३ ॥ पण्डितों ने बहुत श्रम से पढ़ेहुए शास्त्रका यही प्रयोजन बताया है कि जिसके मन में श्री भगवान के चरण विराजमान हैं उसको उन की स्तुतिकरना—तथा गुणों का श्रवणकरना ॥ ४॥ श्री शुकदेवजी कहते हैं किभगवद्भक्त एवं विदुर भगवान ने जब नम्रभूत होकर पूछा तो प्रफुल्लित होकर महामुनि मैत्रेयजी ने कहा ॥ ५ ॥ कि जब स्वायंभुव मनु अपनीस्त्री समेतउत्पन्नहुओं तो हाथ जोड़कर ब्रह्माजी से कहनेलगा ॥ ६ ॥ आप सम्पूर्ण भूतप्राणियों के पिताहो और हम आपकी प्रजा हैं हम आप की शुश्रूषा किसप्रकार करें वह कहिये ॥ ७ ॥ हे पितर ! तुम को नमस्कार है—हे ईश ! मेरी शक्त्यनुसार आप मुझे उन कर्मों के करने की आज्ञा करो कि जिस से लोक में यश और परलोक में गति प्राप्तहो ॥८॥ ब्रह्माजी कहते हैं किहे पुत्र ! मैं तेरे ऊपर बहुतप्रसन्नहूं तेरा कल्याणहो हे क्षितीश्वर ! तू ने निष्कपट होकर हमारी प्रार्थना की तुम दोनों का भलाहो ॥९ ॥ हे वीर ! माता पिताकेवचनों का पालनकरना पुत्र को योग्य है अपनी शक्ति से अप्रमत्त होकरबड़ों के बचनों का माननाही उचित है ॥१०॥ सो अब तू अपनी स्त्री से अपनी सदृश पुत्रउत्पन्न कर फिर धर्म पूर्वकशासन करतेहुए पृथ्वी में यज्ञों से श्री भगवान की पूजाकरो ॥ ११ ॥ हे नृप ! प्रजा की रक्षाकरनीही मेरी शुश्रुषा है प्रजाओं का राजा जो श्री भगवान हैं वह तेरे ऊपर प्रसन्न होंगे ॥ १२ ॥ जिनके ऊपर श्रीभगवान्‌ प्रसन्न होते हैं उनका श्रम वृथा नहीं होता क्योंकि उन्होंने भली प्रकार अपनी आत्माही का आदर किया है ॥ १३ ॥ स्वायंभुव मनु ने पूछा कि हे पापनाशन मैं तुम्हारीआज्ञा का प्रतिपालनकरूंगा परन्तु आप प्रजाकेरचने का स्थान तो बताओ ॥ १४ ॥ हे देव ! सम्पूर्ण प्राणियों के रहनेकास्थान पृथ्वी जो प्रलयकालके जल में डूबगई है उसके उद्धार का यत्नकरो जिस में सृष्टि स्थितहोवे ॥ १५ ॥ मैत्रेयजी ने कहाकि परमेष्ठी ब्रह्माजी जल में डूबी हुई पृथ्वीदेख कर उस के उद्धार के हेतु चिन्ता करनेलगे ॥ १६ इधर मैंने प्रजा की रचना की उधर पृथ्वी

क्षितिर्वार्भिः प्लाव्यमाना रसां गता । अथाऽत्र किमनुष्ठेयमस्माभिः सर्गयोजितैः ॥ यस्याहं हृदयादासं स ईशो विदधातु मे ॥ १७ ॥ इत्यभिध्यायतो नासाविवरात्सहसाऽनघ । वराहतोको निरगादङ्गुष्ठपरिमाणकः ॥ १८ ॥ तस्याभिपश्यतः खस्थः क्षणेन किल भारत । गजमात्रः प्रववृधे तदद्भुतमभून्महत् ॥ १९ ॥ मरीचिप्रमुखैर्विप्रैः कुमारैर्मनुना सह । दृष्ट्वा तत्सौकरं रूपं तर्कयामास चित्रधा ॥ २० ॥ किमेतत्सौकरव्याजं सत्त्वं दिव्यमवस्थितम् । अहो बताश्चर्यमिदं नासाया मे विनिःसृतम् ॥२१॥ दृष्टोऽङ्गुष्ठशिरोमात्रः क्षणाद्गण्डशिलासमः। अपि स्विद्भगवानेष यज्ञो मे खेदयन्मनः ॥ २२ ॥ इति मीमांसतस्तस्य ब्रह्मणः सह सूनुभिः । भगवान्यज्ञपुरुषो जगर्जागेन्द्रसन्निभः ॥ २३ ॥ ब्रह्माणं हर्षयामास हरिस्तांश्च द्विजोत्तमान् । स्वगर्जितेन ककुभः प्रतिस्वनयता विभुः ॥ २४ ॥ निशम्य ते घर्घरितं स्वखेदक्षयिष्णु मायामयसूकरस्य । जनस्तपःसत्यनिवासिनस्ते त्रिभिः पवित्रैर्मुनयोऽगृणन्स्म ॥ २५ ॥ तेषां सतां वेदवितानमूर्तिर्ब्रह्मावधार्याऽऽत्मगुणानुवादम् ।विनद्य भूयो विबुधोदयाय गजेन्द्रलीलो जलमाविवेश २६ उत्क्षिप्तवालः खचरः कठोरः सटा विधुन्वन्खररोमशत्वक् । खुराहताभ्रः सितदंष्ट्र ईक्षाज्योतिर्बभासे भगवान्महीध्रः २७ घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन्क्रोडापदेशः स्वयमध्वराङ्गः। करालदंष्ट्रोऽप्यकरालदृग्भ्यामुद्वीक्ष्य विप्रान्गृणतोऽविशत्कम् २८ स वज्रकूटाङ्गनिपातवेगविशीर्णकुक्षिः स्तनयन्नुदन्वान् ।उत्सृष्टदीर्घोर्मिभुजैरिवार्तश्चुक्रोश यज्ञेश्वर पाहि मेति २९ खुरैः क्षुरप्रैर्दरयंस्तदाऽप उत्पारपारं त्रिपरू

रसातल को चली गई अब मैं क्याकरूं सृष्टि रचना कैसे होवे, ऐसे मन में विचारकरने लगे जिस के हृदय में से मैं हुआ वही ईश भगवान मेरा कल्याण करो ऐसे ध्यान करतेही उन की नाशाके छिद्र से शीघ्रही अँगूठे की समान एक बराह का बच्चा निकला ॥ १८ ॥ वह ब्रह्मा के देखतेही देखते हे बिदुर! क्षणमात्र में आकाश में स्थित हाथी की बराबर होगया यह बड़ीअद्भुत बात हुई ॥ १९ ॥ मुख्य ब्राह्मण मरीचि, सनत्कुमार तथा स्वायंभुव मनुनेउस शूकर को देखकर अनेक तर्कनाकरने लगे ॥ २० ॥ यह शूकरके मिष से कौनदिव्यजानवर आकाश में स्थित मेरी नाशिका से निकला यह बड़ा आश्चर्य है ॥ २१ ॥ पहले कहांतो अंगूठे के अग्रभाग की बराबर देखा और एकही क्षणमें पर्वत के शिखर के समान होगया क्या मेरे मनको खेदित करते यज्ञ भगवान हीतो नहीं प्रगट हुये ॥ २२ ॥ ऐसे वह ब्रह्मा अपने पुत्रों समेत निश्चय कर रहे थे कि इतने में पर्वत की समान उसनेगर्जना की ॥ २३ ॥ हरि भगवान ने ऐसे गर्जना करी कि जिससे सम्पूर्ण दिशायें शब्दायमान होगई ब्रह्माको ब्राह्मणों समेत प्रसन्न किया ॥ २४ ॥ उस मायावी शूकर की घुर्घुराहट का शब्द सुनकर जनलोक, तपलोक, सत्यलोक के निवासी वेदोंसे स्तुतिकरने लगे॥२५॥वह वराह भगवान कि जिनकी मूर्तिकी स्तुति वेद करते हैं उन देवताओंके गुणानुवाद सुन उनके उदयके हेतु फिर गर्जनाकरके हाथीकी समान लीला करतेहुये जलमें प्रवेशकरगये२६॥ जिसके वाल ऊंचे, कठोर तथा छूटे हुये केश हैं सफेद डाढ़ें सूर्य की समान प्रकाशित नेत्र खुरों से बादल बिखराते हुये श्री बराह भगवान ने पृथ्वी के धारण करने के हेतु जल में प्रवेश किया ॥ २७ ॥ वह यज्ञ रूप भगवान बराह का रूप धारण कर पृथ्वी को सूंघते हुये कराल डाढ़ तथा कराल नेत्र वाले श्री भगवान ने ब्राह्मणों की ओर देख कर जल में प्रवेश किया ॥ २८ ॥ वज्रवत पर्वत की सदृश परमेश्वर के कठिन अंगसे भीतर राह हो जाने के हेतु मानो पेट फटने से समुद्र पिडितहोकर गर्जनाकरता हुआ अपनी लहररूपी भुजाओंको फैलाकर ऐसे चिल्लाते दिखाई दिया कि हे यज्ञेश्वर! हमारी रक्षाकरो ॥ २९ ॥ अपने तीक्ष्ण खुरों से ऐसे जलको विदीर्ण करते

रसायाम् । ददर्शगांतत्रसुषुप्सुरग्रे यांजीवधानींस्वयमभ्यधत्त ॥३०॥ स्वदंष्ट्रयोद्धृत्यमहीनिमग्नां सउत्थितःसंरुरुचेरसायाः तत्रापिदैत्यंगदयाऽऽपतन्तं सुनाभसंदीपिततीव्रमन्युः ३१ जघानरुन्धानमसह्यविक्रमं सलीलयेभंमृगराडिवाम्भसि ।तद्रक्तपङ्काङ्कितगण्डतुण्डो यथागजेन्द्रो जगतींविभन्दन् ॥ ३२ ॥ तमालनीलंसितदंदकोट्या क्ष्मामुत्क्षिपन्तं गजलीलयांऽग । प्राज्ञायबद्धांजलयोऽनुवाकैर्विरिंचमुख्या उपतस्थुरीशम् ॥ ३३ ॥ ऋषयऊचुः ॥ जितंजितंतेऽजितयज्ञभावनंत्रयींतनुस्वांपरिधुन्वतेनमः । यद्रोमगर्तेषुनिलिल्युरध्वरास्तस्मै नमःकारणसूकरायते ॥ ३४ ॥ रूपंतवैतन्ननुदुष्कृतात्मनां दुर्दर्शनंदेवयदध्वरात्मकम् ।छंदांसियस्यत्वचिबर्हिरोमस्वाज्यं दृशित्वंघ्रिपुचातुर्होत्रम् ॥ ३५ ॥ स्रुक्तुण्डआसीत्स्रुवईश नासयोरिडोदरे चमसाः कर्णरन्ध्रे । प्राशित्रमास्ये ग्रसनेग्रहास्तुते यच्चर्वणंतेभगवन्नग्निहोत्रम् ॥ ॥ ३६ ॥ दीक्षाऽनुजन्मोपसदःशिरोधरंत्वंप्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः । जिह्वाप्रवर्ग्यस्तवशीर्षकंक्रतोः सभ्यावसथ्यं चितयोऽसवोहिते ॥ ३७ ॥ सोमस्तुरेतःसवनान्यवस्थितिः संस्थाविभेदास्तवदेवधातवः । सत्राणिसर्वाणिशरीरसंन्धिस्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबन्धनः ॥ ३८ ॥ नमोनमस्तेऽखिलमन्त्रदेवता द्रव्यायसर्वक्रतवे क्रियात्मने । वैराग्यभक्त्यात्मजयाऽनुभावित ज्ञानायविद्यागुरवेनमोनमः ॥ ३९ ॥ दंष्ट्राग्रकोट्याभगवंस्त्वयाधृता विराजतेभूधरभूःसभूधरा। यथावनान्निःसरतोदता

हुये कि जिस जल का पार नहीं है पृथ्वी के धारण करने वाले श्री भगवान ने उस कोधारण किया ॥ ३० ॥ उस रसातल में डूबी हुई पृथ्वी को डाढ़ पर धारण कर के वह बड़ी शोभा को प्राप्त हुये उस समय क्रोध भर दैत्य ने गदा लेकर अति क्रोधित तीव्र सुदर्शन चक्र लिये हुये भगवान का सामना किया ॥ ३१ ॥ अति पराक्रमी श्री भगवान ने रोष कर के जैसे मृगराज हाथी को मारे ऐसे गदा मारी, उस समय उनके गंडलस्थ उसके रक्त से लाल होरहे थे और वह ऐसी शोभाको प्राप्त होरहे थे कि जैसे गजेन्द्र पृथ्वीका भेदन करे ॥ ३२ ॥ तमाल की समान नीलवर्ण वाले भगवान को श्वेत डाढ़के अग्रभागमें पृथ्वी को ऐसे धारण किये हुये कि जैसे हाथी फूलको धारण करे देख देवता और ऋषिलोग वैदिक स्तुति करने लगे॥ ३३ ॥ देवता बोले कि—हे अजित ! आपने जय किया आपने जय किया, आप वेदत्रयी रूपके धारण करने वाले हो ऐसे आपको नमस्कार है आपके रोम कूपों में सम्पूर्ण यज्ञलीन होरहे हैं इस कारण हम आपके शूकर रूपको प्रणाम करते हैं ॥ ३४ ॥ यह आपका रूप खोटी आत्मा वालों के देखने योग्य नहीं है, हे देव ! तुम्हारा देह यज्ञरूप है आप की त्वचा में गायत्री आदि छंद, रोमो में कुशा, नेत्रों में घृत और तुम्हारे कमल स्वरूपी चरणों में यज्ञके चारों कर्म हैं ॥ ३५ ॥ तुंड में स्रुक, नासिका में स्रुव, पेटमें भक्ष्य पात्र, कर्णरन्ध्र में चमस, मुख में ब्रह्म भाग पात्र, मुख के भीतर के छिद्रमें सोमपात्र, और आपके चर्वण में अग्निहोत्र है ॥३६॥ बारंबार आपका जन्म दीक्षाइष्टि है, उपशधतिसइष्टि, ग्रीवा दीक्षानंतर इष्टि, प्रायणीया समाप्ति इष्टि, तुम्हारी दंष्ट्रा होमरहित अग्नि, जिह्वा मोक्षमार्गइष्ट, मस्तक क्रतुयज्ञ रूप, सभ्य और असभ्य यह उपासन अग्नि हैं ॥ ३७ ॥ सोम आप का वीर्य, सवन स्थिति, हे देव ! संस्था के भेद सातो धातुएं हैं, अत्यग्निष्टोम अग्निष्टोम उक्थ षोड़शी वाजपेय अतिरात्र आप्तोर्याम यह यज्ञके कर्म तुम्हारे शरीर की संधियें हैं आप यज्ञके अनुष्ठान रूपहो आपही का यह बंधन है ॥ ३८ ॥ सर्वमंत्र, देवता, द्रव्य रूप आपको प्रणाम है, वैराग्य भक्ति के ज्ञान से आत्मा रूप आपको नमस्कार है, सम्पूर्ण विद्याओं के गुरू आपको प्रणाम है ॥ ३९ ॥ हे भगवान! आपने अपनी डाढ़के अग्रभागमें पर्वतोंसहित पृथ्वीको धारण किया.तो ऐसीशोभा को

घृतामतङ्गजेन्द्रस्यसपत्रपद्मिनी ॥४०॥त्रयीमयंरूपमिदंचसौकरं भूमण्डलेनाथदता धृतेनते । चकास्तिशृङ्गोढघनेनभूयसा कुलाचलेन्द्रस्ययथैवविभ्रमः ॥ ४१ ॥ संस्थापयैनांजगतांसतस्थुषां लोकायपत्नीमसिमातरंपिता । विधेमचास्यैनमसासह त्वया यस्यांस्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥ ४२ ॥ कः श्रद्दधीतान्यतमस्तवप्रभो रसांगतायाभुवउद्विबर्हणम् । नविस्मयोऽसौ त्वयिविश्वविस्मये योमाययेदंससृजेऽतिविस्मयम् ॥ ४३ ॥ विधुन्वतावेदमयंनिजंवपुर्जनस्तपःसत्यनिवासिनोवयम् । सटाशिखोद्धूताशिवाम्बुबिन्दुभिर्विमृज्यमानाभृशमीशपाविताः॥ ४४ ॥ सवैबतभ्रष्टमतिस्तवैषते यःकर्मणांपारमपारकर्मणः । यद्योगमाया गुणयोगमोहितं विश्वं समस्तंभगवन्विधेहिशम् ॥ ४५ मैत्रेयउवाच ॥ इत्युपस्थीयमानस्तैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ सलिलेस्वखुराक्रांत उपाधत्ताऽविताऽवनिम् ॥ ४६ ॥ सइत्थंभगवानुर्वी विष्वक्सेनःप्रजापतिः । रसायालीलयोन्नीतामप्सुन्यस्ययथौहरिः ॥ ४७ ॥ यएवमेतांहरिमेधसोहरेः कथांसुभद्रांकथनीयमायिनः । शृण्वीतभक्त्याश्रवयेतवोशतीं जनार्दनोस्याशुहृदिप्रसीदति ॥ ४८ ॥ तस्मिन्प्रसन्नेसकलाशिषांप्रभौ किं दुर्लभंताभिरलंलवात्मभिः । अनन्यदृष्ट्याभजतांगुहाशयः स्वयंविधत्तेस्वगतिंपरः पराम् ॥ ४९ ॥ कोनामलोकेपुरुषार्थसारवित्पुराकथानांभगवत्कथासुधाम् ! अपीयकर्णाञ्जलिभिर्भवापहामहोविरज्येताविनानरेतरम् ॥ ५० ॥

इतिश्रीमद्भागवते तृतीयऽस्कन्धेश्रीवराहप्रादु० व०त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

प्राप्त हुई कि जैसे हाथी के दांत पर धरीहुई कमलिनी पत्तों समेत शोभा पाती है ॥ ४० ॥ यह आपका वेदत्रयी रूप पृथ्वी के धारण करने से ऐसी शोभा देता है जैसे कि बड़े बादलों से कोलाचल पर्वत शोभा को प्राप्त होताहै ॥ ४१ ॥ आप स्थावर जंगम जीवोंके हेतु इसको स्थापन करिये, आप की स्त्री रूप और संसार की माता रूप इस पृथ्वी समेत हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ४२ ॥ हे प्रभो ! रसातल गई हुई पृथ्वी के उद्धार करने को आपबिना कोई समर्थ नहीं होसक्ता परन्तु आप में इस बात का कुछ आश्चर्यहीनहीं है क्योंकिआप माया से बिश्वकी रचना करतेहो ॥ ४३ ॥ इस वेदमय शरीर को जो आपने धारण किया, इस के छूटेहुए केशो के जल बिंदु उड़ने से हम जन, तप, सत्यलोकबासी पवित्र होगये ॥ ४४ ॥ वह मनुष्य भ्रष्ट बुद्धिहै कि जो आप के अपार चरित्रों का पार लेना चाहताहै हम आपके चरित्रों का बर्णन नहीं कर सक्ते, आप योगमाया के गुणों के योग से मोहित, इस सृष्टि का कल्याण करो ॥ ४५ ॥ मैत्रेयजी ने कहा कि-हे विदुर ! ऐसे ब्रह्मवादी मुनियों ने भगवान की स्तुति की तब रक्षाकरनेवालेपरमेश्वर ने अपने खुरों से दबाये हुए जल के निकट पृथ्वी को रखदिया ॥ ४६ ॥ इस प्रकार भगवान ने रसातल में गई हुई पृथ्वी को वहांसे ला जल के निकट रखकर चलेगये ॥ ४७ ॥ उनश्रीकृष्ण भगवान की अत्यन्त पवित्रकथा कि जिनकीमाया वर्णन करने योग्य है जो भक्तसुनते अथवा सुनाते हैं । उनके ऊपर भगवान जनार्दन प्रसन्न होते हैं ॥ ४८ ॥ सम्पूर्ण मनोरथों के पूर्ण करनेवाले श्रीकृष्णभगवान जब प्रसन्न होजांय तो फिर उस को कोई बात दुर्लभ नहीं रहती जोअभेद दृष्टि से परमेश्वर की भक्ति करते हैं उन को भगवान स्वयं परमगति देते हैं ॥ ४९ ॥ भगवत्सम्बन्धी प्राचीन कथारूपअमृतको किजो संसारके दुःख दूरकरनेवाली है कानरूप अंजुलियों से पीकर पशुओं के बिना पुरुषार्थ वेत्ता पुरुष उस से विरक्त नहीं होते ॥ ५० ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणे तृतीयस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ निशम्यकौषाराविणोपवर्णितां हरेःकथांकारणसूकरात्मनः। पुनःसपप्रच्छतमुद्यतांजालिर्नचातितृप्तोविदुरोधृतव्रतः ॥ १ ॥ विदुरउवाच ॥ तेनैवतुमुनिश्रेष्ठ हरिणायज्ञमूर्तिना। आदिदैत्योहिरण्याक्षो हतइत्यनुशुश्रुम ॥ २ ॥ तस्यचोद्धरतःक्षोणीं स्वदंष्ट्राग्रेणलीलया। दैत्यराजस्यचब्रह्मकस्माद्धेतोरभून्मृधः ॥ ३ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ साधुवीरत्वयापृष्ट मवतारकथांहरेः। यत्त्वंपृच्छसिमर्त्यानां मृत्युपाशविशातनीम् ॥ ४ ॥ ययोत्तानपदःपुत्रो मुनिनागीतयाऽर्भकः। मृत्योःकृत्वैवमूर्ध्न्यंघ्रिमारुरोहहरेःपदम् ॥ ५ ॥ अथात्रापीतिहासोऽयं श्रुतोमेवर्णितःपुरा। ब्रह्मणादेवदेवेन देवानामनुपृच्छताम् ॥ ६ ॥ दितिर्दाक्षायणी क्षत्तर्मारीचंकश्यपं पतिम्। अपत्यकामाचकमे सन्ध्यायांहृच्छयार्दिता ॥ ७ ॥ इष्ट्वाऽग्निजिह्वंपयसा पुरुषंयजुषांपतिम्। निम्लोचत्यर्क आसीनमग्न्यगारे समाहितम् ॥ ८ ॥ दितिरुवाच एषमांत्वत्कृतेविद्वन्काम आत्तशरासनः। दुनोतिदीनांविक्रम्य रम्भामिवमतङ्गजः ॥ ९ ॥ तद्भवान्दह्यमानायां सपत्नीनांसमृद्धिभिः। प्रजावतीनांभद्रंते मय्यायुङ्क्तामनुग्रहम् ॥ १० ॥ भर्तर्याप्तोरुमानानां लोकानाविशतेयशः। पतिर्भवद्विधो यासां प्रजयाननुजायते ॥ ११ ॥ पुरापितानोभगवान्दक्षो दुहितृवत्सलः। कंवृणीतवरंवत्सा इत्यपृच्छतनःपृथक् ॥ १२ ॥ सविदित्वाऽऽत्मजानांनो भावंसन्तानभावनः। त्रयोदशाऽऽददात्तासां यास्तेशीलमनुव्रताः ॥ १३ ॥ अथमेकुरुकल्याण कामंकंजविलोचन। आर्तोपसर्पणंभूमन्नमोघं हिमहीयसि ॥ १४ ॥ इतितांवीर

श्री शुकदेव जी बोले—कि मैत्रेय जीने जो भगवत् कथा जिस कारण भगवान ने शूकर रूप धारण किया, विदुर जीसे कही उसको सुन कर विदुरजी तृप्त न हुये तो फिर हाथ जोड़ कर पूछने लगे ॥ १ ॥ बिदुरजी ने कहा कि—हे मुनियों में श्रेष्ठ ! यज्ञ मूर्ति हरिनें आदि दैत्य हिरण्याक्ष को मारा यह मैंने सुना ॥ २ ॥ जो भगवान लीला पूर्वकही पृथ्वी को उठा लाये, हे ब्रह्मन् उन से और दैत्यराज से कैसे संग्राम हुआ ॥ ३ ॥ मैत्रेय जीने कहा कि हे वीर ! तुम ने बहुत सुंदर भगवान के अवतार की कथापूंछी कि जो मनुष्यों की मृत्यु रूपी पाश को काटने वाली है ॥ ४ ॥ जिन भगवान की कथा नारद जीसे सुनकर उत्तान पाद के पुत्र ध्रुव जी मृत्यु के माथे पर पांव धरके श्रेष्ठ पद को प्राप्त हुए ॥ ५ ॥ इस के विषय में एक इति हास मैंने प्रथम श्रवण कियाथा जिसको देवता ओं के पूंछने पर ब्रह्मा जीने कहाथा ॥ ६ ॥ दाक्षायणी देवी दिति ने सन्ध्या समय कामातुर हो कर अपने पति कश्यप जी से संतान की कामना कर संभोग की इच्छा की ॥ ७ ॥ उस काल वह उन भगवान का कि जो यज्ञ पति तथा जिनकी जिह्वा अग्निरूप है दूधसे यजन करके सूर्यास्त समय अग्न्यागारमें सावधान होकर बैठेथे ॥ ८ ॥ दितिने कहा कि हे विद्वान् ! मेरे चित्त को धनुष बाण धारण किये हुये कामदेव तुम्हारे बिषे ऐसे उत्पादन करता है जैसे मतबाला हाथी केला को मर्दन करता है ॥ ९ ॥ पुत्रवती सौतिनों की समृद्धि से मैं जली जाती हूं आप का कल्याण हो आप मेरे ऊपर कृपा करो ॥ १० ॥ जिन स्त्रियों को स्वामी से मान प्राप्त हुआ है वह लोकों में बिख्यात होती हैं, जिनके आपकी समान पति हैं उनके संतान क्यों न उत्पन्नहोवे ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! पुत्रियोंपर वात्सल्यता रखनेवाले हमारे पिता राजादक्ष ने अपनी पुत्रियों से उनके बर के सम्बन्ध में पृथक २ पूछा ॥ १२ ॥ पुत्रियों के भावकोजान कर संतान बढ़ानेवाले हमारे पिता ने वह कन्याय तुम्हेंदी किजो तुम्हारीआज्ञानुवर्तिनी हैं ॥ १३ ॥ हे कल्याणके करनेवाले ! हे कमलदलनेत्र!आप मेरी कामना पूर्ण करो, दुःखियोंकादुःख मिटानाही

मारीचः कृपणांबहुभाषिणीम् । प्रत्याहाऽनुनयन्वाचा प्रवृद्धानङ्गकश्मलाम्॥ १५॥
एषतेऽहंविधास्यामि प्रियंभीरुयदिच्छसि । तस्याःकामंनकः कुर्यात्सिद्धिस्त्रैवर्गि
कीयतः ॥ १६ ॥ सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेणकलत्रवान् । व्यसनार्णवमत्येति
जलयानैर्यथार्णवम् ॥ १७ ॥ यामाहुरात्मनोह्यर्धं श्रेयस्कामस्यमानिनि । यस्यां
स्वधुरमध्यस्य पुमांश्चरतिविज्वरः ॥ १८ ॥ यामाश्रित्येन्द्रियारातीन्दुर्जयानितरा-
श्रमैः वयंजयेमहेलाभिर्दस्यून् दुर्गपतिर्यथा ॥ १९ ॥ नवयंप्रभवस्तां त्वामनुकर्तुं
गृहेश्वरि । अप्यायुषावाकात्स्न्येंन येचान्येगुणगृध्नवः ॥ २० ॥ अथापिकाममेतं
ते प्रजात्यैकरवाण्यलम् । यथामांनातिवोचान्तिमुहूर्तंप्रतिपालय ॥ २१ ॥ एषाघोर
तमावेला घोराणांघोरदर्शना । चरन्तियस्यांभूतानि भूतेशानुचराणिह ॥ २२ ॥
एतस्यांसाध्विसन्ध्यायांभगवान्भूतभावनः । परितोभूतपर्षद्भिर्वृषेणाऽटतिभूतराट्
॥२३॥श्मशानचक्रानिलधूलिधूम्रविकीर्णविद्योतजटाकलापः। भस्मावगुण्ठामलरु
क्मदेहो देवस्त्रिभिःपश्यतिदेवरस्ते ॥ २४॥ नयस्यलोकेस्वजनःपरोवा नात्याद्तो
नोतकश्चिद्विगर्ह्यः।वयंव्रतैर्यच्चरणापविद्धामाशास्महेऽजां वतभुक्तभोगाम् ॥२५॥
यस्यानवद्याचरितंमनीषिणो गृणन्त्यविद्यापटलंविभित्सवः । निरस्तसाम्याति·
शयोऽपियत्स्वयं पिशाचचर्यामचरद्गतिःसताम् ॥ २६ ॥ हसन्तियस्याचरितंहि
दुर्भगाःस्वत्मन्रतस्याऽविदुषःसमीहितम् । यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनैःश्वभोजनं
स्वात्मतयोपलालितम् ॥ २७ ॥ ब्रह्मादयोयत्कृतसेतुपाला यत्कारणंविश्वमिदं

आप सरीखे महात्माओं का काम है ॥ १४०॥ इस भांति दीन की समान पुकारती हुई, कामातुर अपनी स्त्री से कश्यपजी बोले॥ १५॥कि हे भीरु ! मैं तुम्हारे प्रियपदार्थ का विधानकरूंगा जो तुम इच्छा करोगी ! जिस से धर्म, अर्थ, काम यह तीनों पदार्थ सिद्ध होते हैं उस की इच्छा कौन पूर्ण न करे? ॥१६ ॥ सम्पूर्ण आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम मुख्य है गृहस्थ अन्नादि पदार्थ देकर सबआ. श्रमों को आश्रय देताहुआ व्यसनरूपी सागरसे ऐसे पार होजाताहै किजैसे नाव पारहोजाती १७ है। हे मानिनि ! कल्याण की इच्छा करनेवाले पुरुष स्त्री को अपना अर्द्धाङ्ग कहते हैं । और घरका भार जिसको सौंपकर आप बेखटके फिराकरते हैं ॥ १८ ॥ उन इन्द्रीरूप शत्रुओं को जिन आश्रमों से जीतना कठिन है उन को हम लोग इस आश्रम का आश्रयलेकर सहजही में ऐसे जीतते हैं जैसे राजा चोरों को जीतता है ॥॥ १९ हे गृहेश्वरी ! तू जो अनेकों उपायोंकी करनेवाली है उस के हम तथा अन्य गुणों के ग्रहणकरनेवाले, सम्पूर्ण आयुभरभीप्रत्युपकार करके बराबरनहीं होसक्के ॥ २० ॥ तुझे पुत्रोत्पत्ति की जोकामना है उस को मैं पूर्णकरूंगा मेरोजगत् में निन्दानहो इस हेतु एक मुहूर्त ठहरजा ॥ २१ ॥ यह समय बड़ा घोर है इस समय में भूतेश (महादेव)के गण विचारा करते हैं ॥ २२ हे साध्वी ! संध्याकाल में भूतभावन शिवजी अपने भूत पार्षदों को साथ लेकर बैलपर चढ़ घूमाकरते हैं ॥ २३ ॥ श्मशान की उड़ी हुई धूरि से जिनके जटाधूस रहैं और जिनकी देह निर्मल, रूपवान है वे उस भस्म को लगाये तीन नेत्रों से (श्रीमहादेव जी) अभी देखते हैं ॥ २४ ॥ जिसका इस लोक में न कोई प्यारा है न कोई बैरी न कोई आदरणीय है न निन्दनीय तथा हम लोग व्रतधारणकरके निर्माल्य की भांति चरणों से दूर फेंकीहुई जिनकी भक्त भोग विभूति को महाप्रसाद समझते हैं ॥ २५ ॥ और जिनके नवीन २ चरित्रों को बड़े २ विद्वान उच्चारण करते हैं तथा जो संतों के गति रूप हैं जिनकी समता और अतिशयता नहीं है सो महादेव पिशाचचर्य्या का आचरण करते हैं ॥ २६ ॥ उन स्वात्मरत महादेव के सृष्टि शिक्षा चरित्रों को देखकर वे अज्ञानी लोग हँसते हैं किजो कुत्ता, स्यार की भक्ष्य देह को

चमाया। आज्ञाकरीतस्थपिशाचचर्या अहोविभूम्नश्चरितंविडम्बनम् ॥ २८ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ सैवंसंविदितेभर्त्रा मन्मथोन्माथितेन्द्रिया। जग्राहवासोब्रह्मर्षेर्वृषलीवगतत्रपा ॥२९॥सविदित्वाथभार्यायास्तंनिर्बन्धंविकर्मणि नत्वादिष्टायरहसितयाऽथोपविवेशह॥३०॥अथोपस्पृश्यसलिलं प्राणानायम्यवाग्यतः।ध्यायंजजापविरजं ब्रह्मज्योतिःसनातनम् ॥३१॥ दितिस्तुव्रीडितातेन कर्मावद्येनभारत।उपसंगम्यविप्रर्षिमधोमुख्यभ्यभाषत ॥ ३२ ॥ दितिरुवाच॥मामेगर्भमिमंब्रह्मन्भूतानामृषभोऽवधीत्। रुद्रःपतिर्हिभूतानां यस्याकरवमंहसम् ॥३३॥ नमोरुद्रायमहते देवायोग्राय मीढुषे।शिवायन्यस्तदण्डाय धृतदण्डायमन्यवे ॥३४॥सनःप्रसीदतांभामोभगवानुर्वनुग्रहः। व्याधस्याप्यनुकंप्यानां स्त्रीणांदेवःसतीपतिः ॥ ३५ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ स्वसर्गस्याशिषंलोक्या माशासानांप्रवेपतीम्। निवृत्तसंध्यानियमो भार्यामाहप्रजापतिः ॥ ३६ ॥ कश्यपउवाच ॥ अप्रायत्यादात्मनस्ते दोषान्मौहूर्तिकादुत। मन्निदेशातिचारेण देवानांचातिहेलनात् ॥ ३७ ॥ भविष्यतस्तवाभद्राचभद्रेजाठराधमौ। लोकान्सपालांस्त्रींश्चण्डि मुहुराक्रन्दयिष्यतः ॥ ३८ ॥ प्राणिनांहन्यमानानां दीनानामकृतागसाम्। स्त्रीणांनिगृह्यमाणानां कोपितेषुमहात्मसु॥ ३९ ॥ तदा विश्वेश्वरःकुद्धोभगवानलोकभावनः। हनिष्यत्यवतीर्याऽसौ यथाऽद्रींछतपर्वधृक् ॥ ॥ ४० ॥ दितिरुवाच ॥ वधंभगवता साक्षात्सुनाभोदारबाहुना। आशासेपुत्रयोर्मह्यं माकुद्धाद्ब्राह्मणाद्विभो ॥ ४१ ॥ नब्रह्मदण्डदग्धस्य नभूतभयदस्यच। नारका

आत्मामानकर वस्त्र, माला गहने, चन्दनादिकका व्यौहार करते हैं ॥ २७ ॥ जिसका कियाहुआ यह सम्पूर्ण संसार है और जिसकी की हुई माया है जिसकी मर्यादा का पालन ब्रह्मा भी करते हैं ऐसे, समर्थ श्री शिवजी पिशाचों के साथ फिरैं ? उन के चरित्र बिडंबना मात्र हैं ॥ २८ ॥ मैत्रेय जी नें कहा कि हे विदुर ! जब इस प्रकार कश्यप जी नें कहातो उस कामातुरा स्त्रीने ब्रह्मर्षि कश्यप जी का वस्त्र इसभांति पकड़ा, जैसे लज्जाहीन वेश्या पकड़ती है॥ २९ ॥ उन ऋषिनें खोटे कर्म्म में अपनी स्त्री का हठ देखकर देव रूप ईश्वर को नमस्कार कर एकांत में मैथुन के हेतु प्रवेश किया ॥ ३० ॥ इसके उपरांत जलको स्पर्शकर आचमन के पश्चात् वाणी रोक प्राणायामकर निर्मल सनातन भगवान का ध्यान किया ॥ ३१ ॥ हे विदुर ! निंदित कर्म से लज्जित हुई दिति विप्रर्षि कश्यप के निकट बैठकर नीचेको मुखकरके बोली॥ ३२ ॥ दितिने कहा—कि हे ब्रह्मन् ! मैंने भगवान शिवजी का अपराध किया है परन्तु मेरे इस गर्भको भूतों में श्रेष्ठ श्री भूतपति शिवजी से नाश मतकराओ ॥ ३३ ॥ हे रुद्र ! हे उग्र ! हे मीढु ! हे शिव ! हे निरस्तदंडाय ! हेधृतदंडाय ! हे ब्रह्मण्य आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ हे हमारे भगिनिभर्त्ता हमारे ऊपर प्रसन्न हो और हमारे ऊपर कृपाकरो हे सतीपति ! स्त्रियों पर दया करनें वाले सदैव कृपाकरे रहिये ॥ ३५ ॥ मैत्रेय जी ने कहा कि—अपनी स्त्री के शुभ मनोरथ को जान करके अपनी कांपती हुई स्त्री को देख, कश्यपजी कि जोसंध्या से निवृत्त होगये थे उससे बोले ॥ ३६ ॥ कश्यप जी बोले कि—पाहिले तो तू अपवित्र थी, दूसर संध्यारूपी माया का दोष तीसरे मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया चौथे तूने देवताओं का अपराध किया ॥ ३७ ॥ हे अभद्रे ! तेरे गर्भमें अकल्याणकारक पुत्र होंगे, हे चंडी, जो लोक और लोकपालों को बड़ा दुःख देंगे ॥ ३८ ॥ जब निरपराध प्राणियों का वह नाश करेंगे, स्त्रियों को पकड़ लेजायगे, ऋषियों का अपराध करेंगे ॥ ३९ ॥ तब विश्वेश्वर भगवान, लोक भावन क्रोधकर अवतार धारणकरके उनको ऐसे मारेंगे जैसे इन्द्रवज्र धारणकरके पर्वतोंके पक्षोंको काटताहै ४०॥ दितिने कहा—कि हे प्रभो ! चक्र धारण किये हुये चतुर्भुज भगवान से मेरे पुत्रोंका बधचाहैं भलेही

आनुगृह्णन्ति यां यां योनिमसौगतः ॥ ४२ ॥ कश्यपउवाच ॥ कृतशोकानुतापेन सद्यःप्रत्यवमर्शनात्। भगवत्युरुमानाच्च भवेमय्यपिचादरात् ॥ ४३॥ पुत्रस्यैवतु पुत्राणां भवितैकःसतांमतः। गास्यन्तियद्यशःशुद्धं भगवद्यशसासमम् ॥ ४४ ॥ योगैर्हेमेवदुर्वर्णं भावयिष्यन्तिसाधवः।निर्वैरादिभिरात्मानं यच्छीलमनुवर्तितुम्४५ यत्प्रसादादिदंविश्वं प्रसीदतियदात्मकम्।सस्वदृक्भगवान्यस्यतोष्यतेऽनान्यया दृशा ॥ ४६ ॥ सवैमहाभागवतो महात्मामहानुभावो महतांमहिष्ठः। प्रवृद्धभक्त्या ह्यनुभावताशये निवेश्यवैकुण्ठमिमंविहास्यति४७ अलंपटःशीलधरोगुणाकरो हृष्टः परर्द्ध्या व्यथितोदुःखितेषु। अभूतशत्रुर्जगतःशोकहर्ता नैदाघिकंतापमिवोडुराजः ४८अन्तर्बहिश्चामलमब्जनेत्रं स्वपूरुषेच्छाऽनुगृहीतरूपम्।पौत्रस्तवश्रीललनाललामं द्रष्टास्फुरत्कुण्डलमण्डिताननम् ॥ ४९ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ श्रुत्वाभागवतंपौत्रममोदत दितिर्भृशम्। पुत्रयोश्चवधंकृष्णा द्विदित्वाऽऽसीन्महामना ॥ ५० ॥

इतिश्रीमद्भा० महा०तृती०दितिकश्यपसंवादवर्णनंनामचतुर्दशोऽध्यायः १४ ॥

मैत्रेयउवाच ॥ प्राजापत्यंतुतत्तेजः परतेजोहनंदितिः। दधारवर्षाणिशतंशंक मानासुरार्दनात् ॥ १ ॥ लोकेतेनहतालोके लोकपालाहतौजसः। न्यवेदयन्विश्व सृजेध्वान्तव्यतिकरंदिशाम् ॥ २ ॥ देवाऊचुः ॥ तमएतद्विभोवेत्थ संविग्नायद्वयं भृशम्। नह्यव्यक्तंभगवतःकालेनास्पृष्टवर्त्मनः ॥ ३ ॥ देवदेवजगद्धातर्लोकनाथशि

हो परन्तु ब्राह्मण के कोप से न मरैं॥ ४१ ॥ जोप्राणी ब्राह्मण के दंडसे दग्ध होता है उसको नरक में रहने वाले भी ग्रहण नहीं करते और वह जिस योनि में जाता है वह योनि भी ग्रहण नहीं करती ॥ ४२ ॥ कश्यपजी ने कहा—कितूने अपराध करके उसका बहुत शोक किया दूसरे तूने शीघ्रही योग्य अयोग्य का विचार किया तीसरे तू ने भगवान का आदर किया—इस से जो तेरे दुष्टपुत्र होंगे ॥ ४३ ॥ उन में जो उन के पुत्र होंगे उन में एक पुरुष भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ होगा जिसकी पवित्र कीर्ति को भगवान की कीर्ति के संग मनुष्य गाया करैंगे ॥ ४४ ॥ जैसे अग्नि से सुवर्ण के खोटे वर्ण को दूर करते हैं ऐसे साधु जो किसी से बैरभाव नहीं करते उससे शुद्ध होंगे ॥ ४५ ॥ जिनकी कृपा से यह संसार प्रसन्न होता है, वेही हरि भगवान उस परप्रसन्न होंगे ॥ ४६ ॥ वह महा भागवत महात्मा महानुभाव मनुष्यों में श्रेष्ठ होगा और वह वृद्धिको प्राप्तहुई भक्ति तथा शुद्ध अंतःकरण से देहादिकों के अभिमान को त्यागकर भगवान में लीन होगा ॥ ४७ ॥ निष्कपट, शीलवान, गुणोंकी खान, पराई बढ़ती को देखकर प्रसन्न और दुःख को देखकर दुःखित होनेवाला, सम्पूर्ण जगत के शोक को ऐसे हर लेनेवाला होगा कि जैसे सूर्य के ताप को चन्द्रमा हरता है ॥ ४८ ॥ जो अपने भक्तों की इच्छानुसार रूप ग्रहण करते हैं उन लक्ष्मीनिवास अन्तर्यामी परमात्माको सर्वत्र देखा करेगा ॥ ४९ ॥ मैत्रेयजी ने कहा किहे विदुर! दिति अपने पौत्रको भगवद्भक्त तथा भगवान के हाथ अपने पुत्रों की मृत्यु सुनकर बड़े आनंद को प्राप्त हुई ॥ ५० ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणे०तृतीयस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

मैत्रेयजीने कहा—कि वह कश्यप जी का गर्भ रूप तेज दूसरे तेजों का नाश करने वाला, दितिने देवताओं को दुःख पहुंचने के भयसे १०० वर्षतक धारण कियी ॥ १ ॥ उस गर्भ के कारण इस लोक और परलोक का पराक्रम नष्ट हुआ और सम्पूर्ण दिशायें अंधकार के कारण नाशको प्राप्त हुईं तब देवताओं नें अपना दुःख ब्रह्मा जी से कहा ॥ २ ॥ देवता बोले कि हे विभो! इस बड़े अंधकार को आप जानते हो इससे हम अत्यंत उद्विग्न है दुर्भेद्य भगवान को

खामणे । परेषामपरेषांत्वं भूतानामसिभाववित् ॥ ४ ॥ नमोविज्ञानवीर्यायमाययेद मुपेयुषे । गृहीतगुणभेदाय नमस्तेऽव्यक्तयोनये ॥ ५ ॥ येत्वाऽनन्येनभावेन भावयन्त्यात्मभावनम् । आत्मनिप्रोतभुवनंपरं सदसदात्मकम् ॥ ६ ॥ तेषांसुपक्वयोगानां जितश्वासेन्द्रियात्मननाम् । लब्धयुष्मत्प्रसादानां न कुतश्चित्पराभवः ॥ ७ ॥ यस्यवाचाप्रजाःसर्वा गावस्तन्त्येवयन्त्रिताः । हरन्तिबलिमायत्तास्तस्मैमुख्यायते नमः ॥ ८ ॥ सत्वंविधत्स्वशंभूमंस्तमसा लुप्तकर्मणाम् ॥ अदभ्रदययादृष्ट्याआपन्नानर्हसीक्षितुम् ॥ ९ ॥ एषदेवादितेर्गर्भ ओजःकाश्यपमर्पितम् ॥ दिशस्तिमिरयन्सर्वा वर्धतेऽग्निरिवैधसि ॥ १० ॥ मैत्रेउवाच ॥ सप्रहस्यमहाबाहो भगवाञ्छब्दगोचरः ॥ प्रत्याचष्टाऽऽत्मभूर्देवान्प्रीणन्रुचिरयागिरा ॥ ११ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मानसामेसुता युष्मत्पूर्वजाःसनकादयः ॥ चेरुर्विहायसा लोकाँल्लोकेषुविगतस्पृहाः ॥ १२ ॥ तएकदाभगवतो वैकुण्ठस्यामलात्मनः। ययुर्वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ १३ ॥ वसन्तियत्रपुरुषाः सर्वेवैकुण्ठमूर्तयः ॥ येऽनिमित्तनिमित्तेन धर्मेणाराधयन्हरिम् ॥ १४ ॥ यत्रचाऽऽद्यःपुमानास्ते भगवाञ्छब्दगोचरः ॥ सत्त्वं विष्टभ्यविरजं स्वानांनो मृणयन्वृषः ॥ १५ ॥ यत्रनैःश्रेयसंनाम वनंकामदुघैर्द्रुमैः ॥ सर्वर्तुश्रीभिर्विभ्राजत्कैवल्यमिवमूर्तिमत् ॥ १६ ॥ वैमानिकाःसललनाश्चरितानियत्र गायन्तिलोकशमलक्षपणानिभर्तुः ॥ अन्तर्जलेऽनुविकसन्मधुमाधवीनांगन्धेन खण्डितधियोऽप्यनिलंक्षिपन्तः ॥ १७ ॥ पारावताऽन्यभृतसारसचक्र

काल करके हम नहीं जान सकते ॥ ३ ॥ हे देव देव ! हे जगत पालक! हे लोक नाथ ! हे शिखामणे! दूसरे प्राणियों को आप जानने वाले हो ॥४॥ आप विज्ञान वीर्यहो आपको नमस्कार है आपनें माया से यह ब्रह्म देह धारण की है आप अव्यक्त योनिहो आपने रजोगुण को स्वीकार किया है आपको नमस्कार है ॥ ५ ॥ आप प्राणियों के पालन करने वाले और कार्य कारण रूप हो सम्पूर्ण आत्मा में आप दीखते हो ऐसे आपका हम अन्यन भाव से ध्यान करते हैं ॥ ६ ॥ उन पुरुषों का तथा जिनका योग परिपक्व हुआ है और जिन्होंने श्वास, मन, और इन्द्रियों को जीता है उन आपके कृपापात्र पुरुषों का कहीं भी पराभव नहीं होता ॥ ७ ॥ आप की वाणीरूप रस्सी से बंधीहुई सम्पूर्ण प्रजा आपको भेंट अर्पण करती है ऐसे सब देवताओं में मुख्य आपको हम प्रणाम करते हैं॥ ८ ॥ हे भूमन्! इस अंधकार से हमारे सम्पूर्ण कर्मलुप्त होगये हम शरणागतों को आप कृपादृष्टि से सुखीकरो ॥९ ॥ हे देव! दितिके गर्भमें जो कश्यप जी नें अपना वीर्य अर्पण किया है वहबढकर सम्पूर्ण दिशाओं में अंधकार फैलता हुआ काष्ठ से उत्पन्न अग्निकी समान बढ़ रहा है ॥ १० ॥ मैत्रेय जी नें कहा कि हे विदुर ! सब भेदोंके जानने वाले ब्रह्मा जी देवतों पर प्रसन्न हो हंसकर सुंदर बाणी से बोले ॥ ११ ॥ ब्रह्मा जी ने कहा कि मेरे मनसे उत्पन्न हुये तुम्हारे अग्रज सनकादिक सम्पूर्ण लोको में आकाश मार्ग से निस्पृह होकर विचरते हैं ॥ १२ ॥ सनकादिक एक समय स्वर्गनाथ श्री भगवान के दर्शनों को बैकुंठ में गये, जो बैकुंठ सम्पूर्ण लोकों को माननीय है ॥ १३ ॥ जो नित्त, नैमित्तिक धर्म से भगवान का आराधन करते हैं वे बैकुंठ मूर्ति भगवान के बास बसते हैं ॥ १४ ॥ आदि पुरुष भगवान जहां भक्तों के हेतु सतोगुण मूर्ति को स्थित करके सम्पूर्ण निर्मल धर्मोंको स्थापित करते हैं ॥ १५ ॥ जहां का बन सम्पूर्ण कामनाओं का पूर्ण करने वाला है जिसके बृक्ष सम्पूर्ण ऋतुओं को शोभा देने वाले मानों मूर्तिमान मोक्षही हैं ॥ १६ ॥ सरोवर के जलमें फूलेहुये कमल की सुगंधि से जिन की बुद्धि खण्डित हुई है वह स्त्री पुरुष भगवत यश का गान करके उसका तिरस्कार करते हुई विमान में बैठ जगत का पापदूर

वाकदास्यात्मूहंहसशुकतित्तिरिबर्हिणांयः॥कोलाहलो विरमतेऽचिरमात्रमुच्चैर्भृंगा धिपे हरिकथामिवगायमाने ॥ १८ ॥ मन्दारकुन्दकुरवोत्पलचम्पकार्णपुन्नागनाग बकुलाम्बुजपारिजाताः ॥ गन्धेऽर्चिते तुलसिकाभरणेनतस्या यस्मिन्स्तपःसुमन सो बहुमानयन्ति ॥ १९ ॥ यत्संकुलं हरिपदानतिमात्रदृष्टैर्वैदूर्यमारकतहेममयै र्विमानैः॥येषांवृहत्कटितटाः स्मितशोभिमुख्यःकृष्णाऽऽत्मनां नरजआदधुरुत्स्मया द्यैः ॥ २० ॥ श्रीरूपिणीक्वणयती चरणारविंदंलीलाम्बुजेन हरिसद्मनि मुक्तदोषा संलक्ष्यते स्फटिककुड्य उपेतहेम्नि संमार्जतीव यदनुग्रहणेऽन्ययत्नः ॥ २१ ॥ वा पीषु विद्रुमतटास्वमलामृताप्सु प्रेष्यान्वितानिजवने तुलसीभिरीशम् ॥ अभ्यर्चती स्वलकमुन्नसमीक्ष्यवक्त्रमुच्छेषितंभगवतेत्यमतांगयच्छ्रीः॥२२॥यन्नव्रजन्त्यघभि दो रचनाऽनुवादाच्छृण्वन्तियेऽन्यबिषयाःकुकथामतिघ्नीः॥ यास्तुश्रुता हतभगै र्नृभिरात्तसारास्तांस्तान्क्षिपन्त्यशरणेषुतमस्सुहन्त ॥२३॥ येऽभ्यर्थितामपि चनो नृगतिंप्रपन्नाज्ञानंच तत्वविषयंसहधर्मयत्र। नाराधनंभगवतो वितरन्त्यमुष्यसंमो हितावितततया बतमाययाते ॥ २४ ॥ यच्चव्रजन्त्यनिमिषामृषभानुवृत्त्या दूरेयमा ह्युपरिनःस्पृहणीयशीलाः। भर्तुर्मिथःसुयशःकथनानुरागवैक्लव्यबाष्पकलया पु- लकीकृतांगाः ॥ २५ ॥ तद्विश्वगुर्वधिकृतं भुवनैकवन्द्यं दिव्यंविचित्रविबुधाग्र्यवि मानशोचिः। आपुःपरांमुदमपूर्वमुपेत्ययोगमायाबलेन मुनयस्तदथोविकुण्ठम्२६॥

करनेवाली परमेश्वर की लीला को गाया करते हैं ॥ १७ ॥ जिस काल भौंरा भगवत कथारूपी शब्दका गान करता है उस काल पारावत, कोकिल, सारस, चकवा, चकवी, पपैया, हंस, सुआ, तीतर इनका शब्द बहुतकाल को बंद होजाता है ॥ १८ ॥ मंदार, पारिजात, तिलकवृक्ष, नागके शर, बघौला, कमल, मौलश्री यह सब तुलसी की गंध के पोषण से अपने तप को बहुतबड़ा मानते हैं कि हम यहां पर आये ॥ १९ ॥ जहांपरमेश्वर के चरणों में प्रणाममात्र करनेसे मणि तथा सोने से जड़े हुए विमान देखने में आते हैं और जिन में बड़े कटि तटवाली स्त्रियां बैठीहुई मंदमुसकान से भगवद्भक्तों के हृदय में हास्य आदि से कामदेव नहीं उत्पन्न करासकीं ॥ २० ॥ जिस बैकुण्ठ में रूपवानलक्ष्मी अपने चरणों के नूपुरों को बजाती हुई चंचलता के दोष को छोड़ लीला करने के लिये कमल धारण किये हुये हाथ से घुमारही है तो ऐसा जानपड़ता है किमानो बिल्लौरी पत्थर की दीवारों वाले परमेश्वर के महल को झाड़ती हैं ॥ २१ ॥ हे देवताओं जहां अपनी सखियों के संग लक्ष्मी जी बन में तुलसी से श्रीभगवान का पूजन करती हैं तथा अमृत की सदृश जलवाली बावड़ियों में कि जिनके किनारे मूगों के हैं सुन्दर केशों से घिरेहुए ऊंची नाकवाले अपने मुंह की परिछाईं देखकर ऐसामानती हैं किइस मेरे मुंह का भगवानने चुम्बन किया है ॥ २२ ॥ जो भगवत्सम्बन्धी कथा को किजो पापों का नाश करनेवाली है तजकर और बिषयवासना आदिक की कथाओं को धारण करते हैं वे अभागे नरक में जाते हैं वे उस वैकुण्ठ को नहीं देखसक्के ॥ २३ ॥ उस मनुष्य योनि का कि जिस में धर्म और तत्वज्ञानकीप्राप्ति होना सहज है और जिस की हम (देवता) भी इच्छा रखते हैं उसे पाकर भी जो मनुष्य भग- वद्भक्त की सेवा नहीं करते वह परमेश्वर की मायाके बश हो बैकुण्ठको नहीं जासक्के ॥ २४ ॥ जिन परमेश्वर की क्षणमात्र भी सेवाकरने से यमराज दूर रहते हैं उन की जो निष्कामसेवा करते हैं उनके शीलस्वभाव सराहने योग्य हैं और परमेश्वर के चरित्र कहते २ जिनके नेत्रों से प्रेमाश्रु निकलपड़ते हैं और शरीर पुलकायमान होजाता है वही श्रेष्ठभक्त बैकुण्ठ को जाते हैं ॥ २५ ॥ जहांपर जगद्गुरु श्री भगवान विराजमान हैं तथा जो सृष्टि के बन्दना योग्य और देवताओं के

तस्मिन्नतीत्यमुनयःषडसज्जमानाः कक्षाःसमानवयसावथसप्तमायाम्। देवाव चक्षतं गृहीतगदौपरार्घ्यं केयूरकुण्डलकिरीटविटंकवेषौ ॥ २७ ॥ मत्तद्विरेफ वनमालिकयानिवीतौ विन्यस्तयासितचतुष्टयबाहुमध्ये। वक्त्रंभ्रुवाकुटिलया स्फुटनिर्गमाभ्यां रक्तेक्षणेनचमनाग्रभसंदधानौ ॥ २८ ॥ द्वार्येतयोर्निविविशु र्मिषतोरपृष्ट्वा पूर्वायथा पुरटवज्रकपाटिकायाः। सर्वत्रतेऽविषमया मुनयःस्वदृष्ट्या विश्वंचरन्त्यविहता विगताभिशंकाः ॥ २९ ॥ तान्वीक्ष्यवातरशनांश्चतुरः कुमा रान्वृद्धान्दशार्धवयसो विदितात्मतत्त्वान्। वेत्रेणचास्खलयतामतदर्हणांस्तौ तेजो विहस्यभगवत्प्रतिकूलशीलौ ॥ ३० ॥ ताभ्यांमिषत्स्वनिमिषेषु निषिध्यमानाःस्वर्हे त्तमाह्यपिहरेः प्रतिहारपाभ्याम्। ऊचुःसुहृत्तमदिदृक्षितभंगईषत्कामानुजेन सहसा तउपप्लुताक्षाः ३१ ॥ मुनयऊचुः ॥ कोवामिहैत्यभगवत्परिचर्ययोच्चैस्तद्धर्मिणां निवसतांविषमःस्वभावः। तस्मिन्प्रशान्तपुरुषे गतविग्रहेवां कोवात्मवत्कुहकयोः परिशंकनीयः ॥ ३२ ॥ नह्यन्तरंभगवतीह समस्तकुक्षावात्मानमात्मनि नभोनभसी वधीराः पश्यन्तियत्रयुवयोः सुरलिंगिनोः किंव्युत्पादितं ह्युदरभेदिभयंयतोस्य ॥ ॥ ३३ ॥ तद्वाममुष्यपरमस्यविकुण्ठभर्तुः कर्तुंप्रकृष्टमिहधीमहि मन्दधीभ्याम्। लो कानितोव्रजतमन्तरभावदृष्ट्या पापीयसस्त्रयइमेरिपवोऽस्ययत्र ॥ ३४ ॥ तेषामिती रितमुभाववधार्यघोरं तंब्रह्मदण्डमनिवारणमस्त्रपूगैः। सद्योहरेरनुचरावुरु बिभ्य तस्तत्पादग्रहावपततामतिकातरेण ॥ ३५ ॥ भूयादघोनिभगवद्भिरकारिदण्डो। यो

विचित्र बिमानों से प्रकाशित है तथा जिसको प्रथम नहीं देखाथा उस अलौकिक बैकुण्ठ में वह मुनियोगमायाके बलसे गये ॥ २६ ॥ सनकादिक मुनि उस बैकुण्ठ में पहुँचकर छः ड्योढियों का उल्लंघन कर जब सातवीं ड्योढ़ी आई तो पौर में समानअवस्थावाले गदा हाथ में लिये बहु मूल्य के बाजू, मुकुट, और कुण्डल धारण किये सुन्दर वेषवाले दो देवता देखपड़े ॥ २७ ॥ऐसी वनमाला कि जिन में मतवारे भौंरे गूंज रहे हैं चार भुजाओंके मध्य में शोभायमानहै उनपार्षदोंने टेढ़ा मुख टेढ़ी भृकुटी कुछेकलाल नेत्र और कुछ क्रोध करके ॥ २८ ॥ उन मुनियों की ओर देखा मुनियों ने जैसे पहिले कुछ नहीं पूछाथा वैसेही बिना पूछे वज्रमय किवाड़वाले सातवें द्वार में भी प्रवेशकिया क्योंकियहमुनिसमदृष्टि होनेके कारण बेधड़क बिना रोक टोक सृष्टि में घूमा करते हैं २९ उन दोनों द्वार पालों ने, आत्म तत्व वेत्ता सनत्कुमारों को किजो रोकने अयोग्य तथा बूढ़े होने परभी पांच वर्ष के प्रतीत होते हैं, नग्न देख उनके तेज की ओर हंसकर बेतसे रोका ॥ ३० ॥ उन भगवान के पार्षदों के रोकने पर सनत्कुमारों ने श्रीकृष्ण भगवान के दर्शन करने की इच्छा में विघ्न होने के कारण कुछेक क्रोध से नेत्रों को लाल करकेकहा ॥ ३१ ॥ सनत्कुमारों ने कहा कि—अरे तुम कौन हो—इस वैकुंठ लोक में परमेश्वर की सेवा से आकर निवास करने वालों के विषय तुम विषम स्वभाव वाले कौन हो जैसे तुच्छ मनुष्य शांत पुरुष भगवान के विषे कपट धारण करे वैसे तुम कपटी कहां से आये यह हमको बड़ी शंका है ॥ ३२ ॥ धैर्यवान पुरुष जब उन परमेश्वर को कि सम्पूर्ण सृष्टि जिनके पेटमें है, अपनी आत्मा से पृथक नहीं देखते, जैसे आकाश आकाश से भिन्न नहीं दीखता, तब हे देव वेषधारी! तुमने उदरके विषे भेद भाव कैसे उत्पादन किया ॥ ३३ ॥ तुमने परमेश्वर के विषे भेद भाव की दृष्टि की, इस हेतु अब तुम यहां से उस सृष्टि में जाओ कि जहां पाप बुद्धि करने वालों के वैरी काम, क्रोध तथा लोभ आदिक हैं ॥ ३४ ॥ वह दोनों जय, विजय ब्राह्मणों के घोर वाक्य कि जो शस्त्रों के समूह से भी नहीं निवृत्त होसकते सुनकर बड़े भयको प्राप्त हुये और करुणा करके मुनियों के चरणों में गिरपड़े ॥ ३५ ॥ पार्षदों

नौहरेतसुरहेलनमप्यशेषम् । मावोऽनुतापकलयाभगवत्स्मृतिघ्नो मोहोभवेदिहतु
नौव्रजतोरधोऽधः ॥ ३६ ॥ एवंतदैवभगवानरविन्दनाभः स्वानांविबुध्य सदतिक्र
ममार्यहृद्यः। तस्मिन्ययौपरमहंसमहामुनीनामन्वेषणीयचरणौ चलयन्सहश्रीः ३७
तंत्वागतंप्रतिहृतौपयिकस्वपुंभिस्तेऽचक्षताऽक्षविषयं स्वसमाधिभाग्यम्। हंसश्रि
योर्व्यजनयोः शिववायुलोलच्छुभ्रातपत्रशशिकेसरशीकराम्बुम् ॥ ३८ ॥ कृत्स्न
प्रसादसुमुखंस्पृहणीयधाम स्नेहावलोककलया हृदिसंस्पृशन्तम् ॥ श्यामेपृथावुर
सि शोभितयाश्रियास्वश्चूडामणिंसुभगयन्तमिवात्मधिष्ण्यम् ॥ ३९ ॥ पीतांशुके
पृथुनितम्बिनिविस्फुरन्त्या कांच्यालिभिर्विरुतयावनमालयाच । वल्गुप्रकोष्ठव
लयंविनतासुतांसे विन्यस्तहस्तमितरेणधुनानमब्जम् ॥ ४० ॥ विद्युत्क्षिपन्मकर
कुंडलमंडनार्ह गंडस्थलोन्नसमुखंमणिमत्किरीटम् । दोर्दंडखण्डविवरे हरतापरा
र्ध्यं हारेणकन्धरगतेनचकौस्तुभेन॥४१॥अत्रोपसृष्टमितिचोत्स्मितमिन्दिरायाःस्वानां
धियाविरचितं बहुसौष्ठवाढ्यम् । मह्यंभवस्यभवतांचभजन्तमंगं नेमुर्निरीक्ष्यनावि
तृप्तदृशोमुदाकैः ॥ ४२ ॥ तस्यारविन्दनयनस्यपदारविन्द किंजल्कमिश्रतुलसीम
करन्दवायुः। अन्तर्गतःस्वविवरेणचकारतेषां संक्षोभमक्षरजुषामपिचित्ततन्वोः ॥
॥ ४३ ॥ तेवाअमुष्यवदनासितपद्मकोश मुद्वीक्ष्यसुन्दरतराधरकुन्दहासम् । ल
ब्धाशिषःपुनरवेक्ष्य तदीयमंघ्रिद्वन्द्वंनखारुणमणिश्रयणंनिदध्युः ॥ ४४ ॥ पुंसांग
तिंमृगयतामिहयोगमार्गैर्ध्यानास्पदं बहुमतंनयनाभिरामम् । पौंस्नंवपुर्दर्शयानमन

ने कहा कि हेमहराज! जो हम अपराधियोंपर आपने दंडकिया वह भलेही होजावे, हमचाहें नीची योनि में भलेही जांय किन्तु परमेश्वरकी स्मृति का नाश कदापि न होवे ॥ ३६ ॥ आर्य लोगों के प्यारे भगवान, कि जिनके चरणों को महामुनि, परम हंस ढूंढ़ा करते हैं तथा जिनके नाभिकमल से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुये, उनका स्मरण बनारहे। भगवान ऐसा जानकर कि मेरे दासों ने महात्माओं का अपराध कियाहै, लक्ष्मीजीको संगले वहां आये ॥ ३७ ॥ हंस की सदृश सफेद पंखों की सुखदेने वाली वायु के वेग से हिलते हुये, सफेद छत्ररूप चन्द्रमा सम्बंधी, मोती रूप किरणों में पानी की बूंदेंपड़ रहीं हैं ॥ ३८ ॥ वह भगवान द्वार पालक, और सनकादिक के ऊपर कृपालु हैं, चाहनाके धाम स्वरूप, और जो स्नेह की दृष्टि से भक्तोंको सुखदेते हैं तथा अपने श्यामसुंदररूपसे वक्षस्थल के मध्य में शोभाय मान श्री लक्ष्मी जी संयुक्त सत्यलोक, स्वर्गलोक के चूड़ामणि रूप वैकुंठको शोभित करते हैं ॥ ३९ ॥ सुंदर कटि प्रदेश में पीताम्बर कि जिसमें क्षुद्र घंटिका शोभित होरही है पहिने, वनमाला तथा कंकण को धारण कियेहुये एक हाथ गरुड़ के कंधेपर धरे दूसरे से कमल घुमाते ॥ ४० ॥ बिजली के तिरस्कार करने वाले मकरा कृत कुंडल सुंदर मुख के कपोलों में शोभाय मान, तथा कीट मुकुट में मणिजड़े हुये, हृदय के मध्य अमूल्य हार शोभित तथा सुंदर कौस्तुभ मणि धारण किये हैं ॥ ४१ ॥ परमेश्वर के रूपके सामने लक्ष्मी का अहंकार नाश होगया ऐसा भक्तलोग विचारकरतेहैं, भक्तों के ऊपर कृपा करने वाके हैं, तथा शिवजी, देवता और भक्तों के हेतु स्वरूप धारण करते हैं ऐसे भगवान को मुनिलोगों ने देखकर प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ कमल दल स्वरूपी नेत्र वाले भगवान के चरण कमल सम्बंधी पराग से मिली हुई तुलसी के गंध की वायुने मुनियों की नासिका के भीतर जाकर उनको बड़े आनंद का अनुभव कराया ॥ ४३ ॥ वह सनत्कुमारादिक मुनि भगवानके अत्यंत सुंदर ओष्ठ तथा कुंदवत् हास्ययुक्त मुखको और कमल स्वरूपी चरणों तथा नखो को जो अरुण मणिके सदृश हैं देखकर मनोर्थ पूर्ण करने वाले भगवान का फिर ध्यान करनेलगे ॥४४॥ योगमार्ग से परमेश्वरके रूपको खोजने वाले

भ्यसिद्धैरौत्पत्तिकैः समगृणन्युतमष्टभोगैः ॥ ४५ ॥ कुमाराऊचुः ॥ योऽन्तर्हितोहृदिगतोऽपिदुरात्मनांत्वंसोऽद्यैवनो नयनमूलमनन्तराद्धः । यर्ह्येवकर्णविवरेणगुहांगतोनः पित्राऽनुवर्णितरहाभवदुद्भवेन ॥ ४६ ॥ तंत्वाविदामभगवन् परमात्मतत्त्वं सत्त्वेनसंप्रतिरतिंरचयन्तमेषाम् । यत्तेऽनुतापविदितैर्दृढभक्तियोगैरुद्ग्रन्थयो हृदिविदुर्मुनयोविरागाः ॥४७॥ नात्यन्तिकंविगणयन्त्यपितेप्रसादं किंत्वन्यदर्पितभयंभ्रुवउन्नयैस्ते । येऽङ्गत्वदंघ्रिशरणा भवतःकथायाः कीर्तन्यतीर्थयशसःकुशलारसज्ञाः ॥ ४८ ॥ कामंभवःस्ववृजिनैर्निरयेषुनः स्तात्चेतोऽलिवद्यदिनुतेपदयोरमेत । वाचश्चनस्तुलसिवद्यदितेंघ्रिशोभाः पूर्येततेगुणगणैर्यदिकर्णरन्ध्रः ॥ ४९ ॥ प्रादुश्चकर्थयदिदंपुरुहूतरूपं तेनेशनिर्वृतिमवापुरलंदृशोनः तस्माइदंभगवते नमइद्विधेमयोऽनात्मनांदुरुदयो भगवान्प्रतीतः ॥ ५० ॥

इतिश्रीमद्भा० तृतीय०श्रीवैकुण्ठविप्रशापयोर्वर्णनंनामपंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ इतितद्गृणतांतेषां मुनीनांयोगधर्मिणाम् । प्रतिनन्द्यजगादेदं विकुण्ठनिलयोविभुः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एतौतौपार्षदौमह्यं जयोविजयएवच । कदर्थीकृत्यमांयद्वो बह्वक्रातामतिक्रमम् ॥२॥ यस्त्वेतयोर्धृतोदण्डो भवद्भिर्मामनुव्रतैः । सएवानुमतोऽस्माभिर्मुनयो देवहेलनात् ॥ ३ ॥ तद्वःप्रसादयाम्यद्य ब्रह्मदैवंपरंहिमे । तद्धीत्यात्मकृतंमन्ये यत्स्वपुम्भिरसत्कृताः ॥ ४ ॥ यन्नामानिच

पुरुषों के ध्यान के निवास भूत नेत्रों को आनंद देनेवाले, स्वाभाविक अणिमादिक अष्ट ऐश्वर्य्य युक्त पुरुषरूपसे दर्शन देते उन परमेश्वरकी मुनिलोग स्तुति करनेलगे ॥ ४५ ॥ सनत्कुमारों ने कहा कि जो आप सम्पूर्ण प्राणीयों के हृदय में विराजते हो परन्तु खोटी आत्मा वाले मनुष्यों को नहीं देख पड़ते, वह आप नेत्रों के सामने प्राप्त हुये, यद्यपि आप से उत्पन्न हुये हमारे पिता ब्रह्माजी ने हमसे आपका वर्णन कियाथा, वह वचन कर्ण द्वारा हृदय में प्राप्त हो चुके थे परन्तु आपको देखा न था ॥ ४६ ॥ हे भगवान ! आप परम आत्म तत्व रूपहो हम आपको जानते हैं, आप सत्व करिके अपने भक्तों की प्रीतिको रचते हो और दृढ भक्ति योग से अनुताप को दूर करते हो, मुनिलोग आपका ध्यान करके हृदय की गांठको छेद वैराग्य के आनंदको प्राप्त होते हैं ॥४७॥ आप की कृपा से वह आत्यंतिकी मोक्षको नहीं ग्रहण करते तोफिर दूसरी इन्द्रियादिकों के पदों की क्या इच्छा करेंगे, क्योकि यह तो तुच्छ सुख हैं, हे भगवान ! तुम्हारे चरण के शरणागत भक्त तुम्हारी कथा रूपी रसके जानने वाले हैं ॥ ४८ ॥ यदि मेराचित्त भौंरे की नाईं आपके चरणों में रमाकरे और मेरी वाणी तुलसी की भांति आपके चरणों में शोभायमान रहे तथा कानों के छिद्र, आपके गुणों से पूर्णहोवें तो चाहे मैं पापों से भलेही नरक को जाऊं और नीच योनि में चाहे भलेही जन्म लूं ॥ ४९ ॥ हे परमात्मा ! आपने अपने रूपका दर्शन दिया इससे मेरे नेत्र अति आनंद को प्राप्त हुये, जिनके रूपका दर्शन बड़े २ जितेन्द्रियों को नहीं होता वह आपने आयकर दर्शन दिया ऐसे भगवान आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ ५० ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणे०तृतीयस्कंधे सरलाभाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

ब्रह्माजीनें कहा—कि इसभांति उन मुनीश्वरोंकी की हुई स्तुतिसुन श्रीभगवाननें कहा॥१॥ कि यह मेरे जय, विजय दोनों पार्षद हैं इन्हों नें मुझे निंदित करके तुम्हारा अपराध कियाहै॥२॥ इन मेरे पार्षदों को जो आपनें दंड दिया, वह अच्छा किया, उसको मैं अंगीकार करता हूं, अब यह किसी मुनि का अपराध नकरेंगे ॥ ३ ॥ ब्राह्मण मेरे परम दैव हैं जो कोई उनका तिरस्कार करता है उसे मैं अपनाही तिरस्कार मानता हूं इसी हेतु मैं आपको प्रसन्न करता हूं ॥ ४ ॥ चाहें

गृह्णातिलोको भृत्येकृतागसि। सोऽसाधुवादस्तत्कीर्तिं हंतित्वचमिवामयः॥५॥ यस्यामृतामलयशःश्रवणावगाहः सद्यःपुनातिजगदाश्वपचाद्विकुण्ठः। सोऽहंभवद्भ्यउपलब्धसुतीर्थकीर्तिश्छिन्द्यां स्वबाहुमपिवःप्रतिकूलवृत्तिम्॥ ६ ॥ यत्सेवयाचरणपद्मपवित्ररेणुं सद्यःक्षताखिलमलंप्रतिलब्धशीलम्। नश्रीर्विरक्तमपिमां विजहातियस्याः प्रेक्षालवार्थइतरेनियमान्वहन्ति॥ ७ ॥ नाहंतथाऽद्मियजमानहविर्वितानेश्च्योतघृतप्लुतमदन्हुतभुङ्मुखेन। यद्ब्राह्मणस्यमुखतश्चरतोऽनुघासं तुष्टस्यमय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः॥८॥येषांबिभर्म्यहमखण्डविकुंठयोग मायाविभूतिरमलांघ्रिरजःकिरीटैः॥विप्रांस्तुकोनाविषहेतयदर्हणाम्भः सद्यःपुनातिसहचन्द्रललामलोकान्॥ ९ ॥ येमेतनूर्द्विजवरानदुहतीर्मदीया भूतान्यलब्धशरणानिचभेदबुद्ध्या। द्रक्ष्यन्त्यघक्षतदृशोह्यहिमन्यवस्तान् गृध्रारुषाममकुपन्त्यधिदण्डनेतुः १०॥ येब्राह्मणान्मयिधियाक्षिपतोऽर्चयन्तस्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः। वाण्याऽनुरागकलयाऽऽत्मजवद्गृणन्तः संबोधयन्त्यहमिवाहमुपाहृतस्तैः॥ ११ ॥ तन्मेस्वभर्तुरवसायमलक्षमाणौ युष्मद्व्यतिक्रमगतिंप्रतिपद्यसद्यः भूयोममान्तिकमितां तदनुग्रहोमेयत्कल्पतामचिरतो भृतयोर्विवासः॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच॥ अथतस्योशतींदेवीमृषिकुल्यां सरस्वतीम्। नास्वाद्यमन्युदष्टानां तेषामात्माऽप्यतृप्यत १३ सतींव्यादायशृण्वन्तो लंघ्वींगुर्वर्थगह्वराम्। विगाह्याऽगाधगम्भीरां नविदुस्तच्चिकीर्षितम्॥ १४ ॥ तेयोगमत्ययारब्धपारमेष्ठ्यमहोदयम्। प्रोचुःप्रांजलयोवि-

किसी के दासही नें अपराध किया हो परन्तु मनुष्य उसके स्वामीही का अपराध कहते हैं, जैसे त्वचामें कुष्ठ उत्पन्न होते हैं परन्तु वह देहको निंदित करते हैं॥५॥जिस के निर्मल यश के श्रवण से चांडाल पर्यंत पवित्र होता है वही आपसे प्राप्त हुई मेरी कीर्ति है, यदि मेरी भुजा भी आप के प्रतिकूल चले तो उसे भी काट गिराऊं॥ ६ ॥ आपकी सेवा से मेरे चरणों की रेणु पवित्र मानी जाती है और मैं सम्पूर्ण संसार के पापों को तत्काल दूर कर सकता हूं और शीलयुक्त हूं तथा आप के चरण कमल की कृपा से लक्ष्मी जो सब से विरक्त है क्षण मात्र कोभी मुझे नहीं त्याग ती कि जिस लक्ष्मी के देखनेको ब्रह्मादिकभी नियम धारण करते हैं॥ ७ ॥ मैं सम्पूर्ण प्रकारकी रचना किए हुए यज्ञके घृतसे अग्नि मुखद्वारा खाकर उतना प्रसन्न नहीं होता कि जितना मैं निज ब्राह्मण के मुख द्वारा खाकर प्रसन्न होता हूं॥ ८ ॥ जिन ब्राह्मणों के चरणकमल की निर्मल रेणु का को अपनें कीट मुकुट में धारण करता हूं जिससे मेरी अखंड माया है और मेरे चरणारबिंद का जल शिव समेत सृष्टि को पवित्र करता है ऐसे ब्राह्मणों का अपराध कौन कर सकता है॥९॥ जो मेरे तनुरूप ब्राह्मण गौ और भक्तों को दुख देताहै अथवा उन्हें दृष्टि भेद करके मुझसे पृथक् देखता है उसका मांस यमराजकी आज्ञा से सर्प केसे क्रोधवाले गिद्धसे दूत अपनी तीखी चोंचों से खींचते हैं॥ १० ॥ जो पुरुष कठोर वाक्य कहते हुए ब्राह्मणों को मेरे समान जान कर उन को शांत करने के हेतु प्रसन्न मन से सुंदर मंद मुसकान समेत उनकी पूजा करते हैं तथा जैसे सुपुत्र अपनें पिता की स्तुति करे वैसे स्नेह भरे मीठे वचनों से उनकी स्तुति करते हैं उन पुरुषों के मैं वशीभूत होता हूं॥ ११ ॥ यह जय विजय,अपनें स्वामी के प्रयोजन के नजानने वाले,आप के अपराध का फल भोग कर कुछ दिवस के उपरांत मुझको प्राप्त होजावें, यह मेरी कृपा है कि थोड़ही काल में इन दोनों दासों का मेरे वियोग का अंत अल्प काल में आजावेगा॥ १२ ॥ ब्रह्माजी कहनें लगे कि ऋषियों के योग्य भगवान के सुंदर गंभीर वाक्य सुनकर क्रोधित मुनियों की आत्मा तृप्त हुई॥ १३ ॥ श्रेष्ठ गंभीर वाणी कहनें में थोड़ी और जिसका अर्थ बहुत है सुन

प्राःप्रहृष्टाःक्षुभितत्वचः१५॥ऋषयऊचुः॥ नवयंभगवन्विद्मस्तव देवचिकीर्षितम्। कृतोमेऽनुग्रहश्चेति यदध्यक्षःप्रभाषसे ॥ १६ ॥ ब्रह्मण्यस्यपरंदैवं ब्राह्मणाःकिलते प्रभो। विप्राणांदेवदेवानां भगवानात्मदैवतम् ॥ १७॥ त्वत्तःसनातनोधर्मो रक्ष्यते तनुभिस्तव। धर्मस्यपरमोगुह्यो निर्विकारोभवान्मतः ॥ १८ ॥ तरन्तिह्यंजसा मृत्युं निवृत्तायदनुग्रहात्। योगिनःसभान्किंस्वि दनुगृह्येतयत्परैः ॥ १९॥ यंवैविभूतिरुपयात्यनुवेलमन्यैरर्थार्थिभिः स्वशिरसाधृतपादरेणुः। धन्यार्पितांघ्रितुलसीनवदामधाम्नो लोकंमधुव्रतपतेरिवकामयाना ॥ २० ॥ यस्तांविविक्तचरितैरनुवर्तमानां नात्याद्रियत्परमभागवतप्रसङ्गः। सत्वंद्विजानुपथपुण्यरजःपुनीतःश्रीवत्सलक्ष्म किमगाभगभाजनस्त्वम् ॥ २१ ॥ धर्मस्यतेभगवतस्त्रियुगत्रिभिःस्वैः पद्भिश्चराचरमिदंद्विजदेवतार्थम्। नूनंभृतंतदभिघातिरजस्तमश्च सत्त्वेननोवरदयातनुवानिरस्य ॥ २२ ॥ नत्वंद्विजोत्तमकुलंयदिहात्मगोपंगोप्ता वृषःस्वर्हणेनससूनृतेन। तर्ह्येवनंक्ष्यतिशिवस्तवदेवपन्था लोकोऽग्रहीष्यदृषभस्यहितत्प्रमाणम् ॥ २३ ॥ तत्तेऽनभीष्टमिवसत्त्वनिधेर्विधित्सोः क्षेमंजनायनिजशक्तिभिरुद्धृतारेः। नैतावतात्र्यधिपतेर्बत विश्वभर्तुस्तेजः क्षतंत्ववनतस्यसतेविनोदः॥२४॥यंवाऽनयोर्दममधीशभवान्विधत्ते वृत्तिंनुवातदनुमन्महिनिर्व्यलीकाम्। अस्मासुवायउचितोध्रियतांसदण्डो येऽनाग

कर मुनियों को निश्चय न हुआ कि क्या कहते हैं ॥ १४ ॥ सनकादिक मुनि अपनी योगमाया से भगवान के ऐश्वर्य्य को जान हाथ जोड़, बड़े हर्षित तथा पुलकायमान हो क्रोध निवृत्त करके बोले ॥ १५ ॥ सनकादिक मुनि कहनें लगे कि हे भगवन् ! आपनें हमारे ऊपर बड़ी कृपा की किजो यह वाक्य कहे भगवान इन आपके वचनों को हम नहीं समझे ॥ १६ ॥ हे परमेश्वर ! ब्राह्मण जिनके अत्यन्त प्यारे हैं ऐसे आपके ब्राह्मण परम देव हैं और देवताओं के परम पूज्य, ब्राह्मणों के आप आत्मा तथा परम देव हो ॥ १७ ॥ आपही नाना अवतार धारण करके सनातन धर्म की रक्षा करते हो, निष्कपट हो कर परमगुह्य धर्म आपही से होता है ॥ १८ ॥ जिनकी कृपा से योगी लोग बिराग को प्राप्त होकर मृत्युसे सहजही में मुक्ति पाजाते हैं वह आप, भक्ति परायण मनुष्यों पर कृपा करते ही हो ॥ १९ ॥ वह साक्षात् लक्ष्मी जी कि जिन के पैरों की धूलि को द्रव्य की कामनावाले मनुष्य क्षण२में अपनें शिरपर रखते हैं तथा भक्तोंकी अर्पण की हुई चरण सम्बन्धी तुलसी की नवीन माला जिनका निवास स्थान है आपकी सेवा करती हैं जिनकी भगवद्भक्तों में अति श्रेष्ठ पूर्ण आसक्ति है ऐसे आपनें उन लक्ष्मी जी का भी अति आदर नहीं किया वह गुणों के आश्रय रूप आप क्या ब्राह्मणों के पैरों की धूल से अथवा श्रीवत्स चिह्न से पवित्र होते हो इन दोनों पदार्थोंका धारण करना केवल आपकी शोभाके हेतुही है॥ २०।२१ ॥ हे युग युग में प्रकट होने वाले भगवान ! आप धर्म मूर्ति हो आप तप, शौच और दया इन तीन चरणों से सम्पूर्ण चर, अचर, ब्राह्मण, तथा देवताओं की रक्षा करतेहो, और जब रजोगुण, तथा तमोगुण से धर्म के पैर नाश होजाते हैं तब आप सगुणरूप से हमारे ऊपर कृपा करके धर्म की मर्यादाका पालन करतेहो ॥ २२ ॥ हे देव ! आप अपनी श्रेष्ठबाणी से ब्राह्मणों के कुल की रक्षा नकरते तो यह वेदमार्ग नाश को प्राप्त होजाता, क्योंकियह सम्पूर्ण जगत् श्रेष्ठपुरुष के प्रमाण को ग्रहण करता है ॥ २३॥ हे सत्वनिधे ! भक्तों के कल्याण के हेतु आप अपनी शक्तियों से अवतारधारण करके उनके मनोवांछित पदार्थों का बिधानकरतेहो हेविश्वपालक ! आप धर्मकी रक्षाके हेतुही ब्राह्मणों की ओर नम्रता दिखलातेहो ॥ २४ ॥ हे प्रभु ! इन दोनों पार्षदों को आप दूसरा दण्ड

सौवयमयुङ्क्ष्माहिकिल्विषेण॥२५॥श्रीभगवानुवाच॥एतौसुरेतरगतिंप्रतिपद्यसद्यः संरम्भसंभृतसमाध्यनुबद्धयोगौ । भूयःसकाशमुपयास्यतआशु योवःशापोमयैव निमितस्तदवैतविप्राः ॥ २६ ॥ब्रह्मोवाच ॥ अथतेमुनयोदृष्ट्वा नयनानन्दभाजनम् वैकुण्ठंतदधिष्ठानं विकुण्ठंचस्वयंप्रभम् ॥ २७ ॥ भगवन्तंपरिक्रम्य प्रणिपत्यानुमान्यच । प्रतिजग्मुःप्रमुदिता :शंसन्तोवैष्णवींश्रियम् ॥ २८ ॥ भगवाननुगावाह यातं माभैष्टमस्तुशम् । ब्रह्मतेजःसमर्थोऽपिहन्तुं नेच्छेमतंतुमे ॥ २९ ॥ एतत्पुरैव निर्दिष्टं रमयाक्रुद्धयायदा । पुराऽपवारिताद्वारि विशन्तीमय्युपारते ॥ ३० ॥ मयिसंरम्भयोगेन निस्तीर्यब्रह्महेलनम् । प्रत्येष्यतंनिकाशंमे कालेनाल्पीयसापुनः ॥ ३१ ॥ द्वास्थावादिश्यभगवान् विमानश्रेणिभूषणम् । सर्वातिशययालक्ष्म्या जुष्टंस्वंधिष्ण्यमाविशत् ॥ ३२ ॥ तौतुगीर्वाणऋषभौ दुस्तराद्धरिलोकतः । हतश्रियौब्रह्मशापादभूतां विगतस्मयौ ॥ ३३ ॥तदाविकुण्ठधिषणात्तयोर्निपतमानयोः हाहाकारोमहानासीद्विमानाग्र्येषुपुत्रकाः ॥ ३४ ॥ तावेवह्यधुनाप्राप्तौ पार्षदप्रवरौ हरेः । दितेर्जठरनिर्विष्टं काश्यपंतेजउल्वणम् ॥ ३५ ॥ तयोरसुरयोरद्य तेजसायमयोर्हिवः । आक्षिप्तंतेजएतर्हि भगवांस्तद्विधित्सति ॥ ३६ ॥ विश्वस्ययःस्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो योगेश्वरैरपिदुरत्यययोगमायः । क्षेमंविधास्यतिसनो भगवांस्त्र्यधीशस्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः ॥ ३७ ॥

इतिश्रीमद्भा०तृ०वैकुण्ठेषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

देनाचाहतेहो या इन की कुछ अधिक जीविका करदेना चाहतेहो तो हम उस को निश्छलहोकर मानेंगे इन निरपराधियों को जो हमने दण्ड दिया है इस हेतु आप भी हमें योग्यदण्ड दो ॥२५॥ श्रीभगवान ने सनकादिकों से कहा कि—ये मेरे दोनों पार्षद कि जिन्होंने बढ़ेहुए क्रोधसे चित्तको एकाग्रकर योग को पुष्ट किया है दैत्य योनि में प्रगट होकर शीघ्रही मेरे निकट आजायँगे, हे ब्राह्मणो ! यह आप का दियाहुआ शाप मेराही दियाहुआ समझो ॥ २६ ॥ ब्रह्माजी ने कहा कि वे सनकादिकमुनि नेत्रों को आनन्द देनेवाले भगवान वैकुण्ठनाथ को वैकुण्ठ में देखकर ॥ २७ ॥ उन की परिक्रमा तथा दण्डवतकर—उन की प्रशंसाकरतेहुए प्रसन्न होकर चलेगये ॥ २८ ॥ भगवान ने अपने दासों से कहा कितुम डरो मत तुम्हारा कल्याण होगा ब्राह्मणों के तेज दूरकरने की मुझ में सामर्थ है परन्तु अभी मेरी यही इच्छा है ॥ २९ ॥ मुझमें वैरभाव रखकर ब्राह्मणों के शाप को भुगत थोड़ेही काल में मेरे निकट आजाओगे ॥ ३० वे भगवान अपने द्वारपालों को ऐसी आज्ञा देकर अनेकों विमानों से शोभायमान श्री लक्ष्मी समेत अपने मंदिर में गये ॥३१ ॥ वह दोनों पार्षद ब्राह्मणों के शापसे तेजहतहो हरि भगवान के लोक से नीचे गिरे उस समय उन का सब गर्व जाता रहा ॥ ३२ ॥ जिस काल वह वैकुण्ठसे गिरने लगे उस समय बड़ा हाहाकार शब्द विमानों के भीतरहुआ ॥ ३३ ॥ वे दोनों पार्षद कश्यप जी के उल्वण वीर्य में प्रविष्ट होकर दिति के गर्भ में आये हैं ॥ ३४ ॥ उन दोनों असुरों के तेज से तुम्हारा तेज नाश को प्राप्त हुआ है उस का भगवान आपही विधानकरेंगे ॥३५॥जो इस विश्व के स्थिति पालन और संहार के कारण है तथा जिन की योग माया को योगेश्वर भी नहीं जान सक्ते और जो तीनों लोकों के स्वामी हैं वहीभगवान तुम्हारा कल्याण करेंगे हमारे विचारसे क्याकाम होगा ॥ ३६ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणे तृतीयस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांषोड़शोऽध्यायः ॥ १६ ॥

मैत्रेयउवाच ॥ निशम्यात्मभुवागीतं कारणंशंकयोज्झिताः । ततःसर्वेन्यवर्तंत त्रिदिवायदिवौकसः ॥ १ ॥ दितिस्तुभर्तुरादेशादपत्यपरिशंकिनी । पूर्णेवर्षशते साध्वी पुत्रौप्रसुषुवेयमौ ॥ २ ॥ उत्पातावहवस्तत्र निपेतुर्जायमानयोः दिविभुव्यन्तरिक्षेच लोकस्योरुभयावहाः ॥ ३ ॥ सहाचलाभुवश्चेलुर्दिशःसर्वाःप्रजज्वलुः । सोल्काश्चाशयनयः पेतुःकेतवश्चार्तिहेतवः ॥ ४ ॥ ववौवायुःसुदुःस्पर्शः फूत्कारानीरयन्मुहुः । उन्मूलयन्नगपतीन्वात्याऽनीको रजोध्वजः ॥ ५ ॥ उद्धसत्तडिदम्भोदघटयानष्टभागणे । व्योम्निप्रविष्टतमसा नस्मव्याहश्यतेपदम् ॥ ६ ॥ चुक्रोशविमानावार्धिरुदूर्मिःक्षुभितोदरः । सोदपानाश्चसरितश्चुक्षुभुः शुष्कपंकजाः ॥ ७ ॥ मुहुःपरिधयोऽभूवन्सराह्वोःशशिसूर्ययोः । निर्घातारथनिर्ह्रादा विवरेभ्यःप्रजज्ञिरे ॥८॥ अन्तर्ग्रामेषुमुखतो वमन्त्योवह्निमुल्बणम् । सृगालोलूकटंकारैः प्रणेदुरशिवंशिवाः ॥ ९ ॥ संगीतवद्रोदनवदुन्नमय्य शिरोधराम् । व्यमुंचन्विविधावाचो ग्रामसिंहास्ततस्ततः ॥ १० ॥ खराश्चकर्कशैःक्षत्तः खुरैर्घ्नन्तोधरातलम् । खार्काररभसामत्ताः पर्यधावन्वरूथशः ॥ ११ ॥ रुदन्तोरासभत्रस्ता नीडादुदपतन्खगाः घोषेऽरण्येचपशवः शकृन्मूत्रमकुर्वत ॥ १२ ॥ गावोऽत्रसन्नसृग्दोहास्तोयदाः पूयवर्षिणः । व्यरुदन्देवलिंगानि द्रुमाःपेतुर्विनाऽनिलम् ॥ १३ ॥ ग्रहान्पुण्यतमानन्ये भगणांश्चापिदीपिताः अतिचेरुर्वक्रगत्या युयुधुश्चपरस्परम् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वाऽन्यांश्च महोत्पातानतत्त्वविदःप्रजाः । ब्रह्मपुत्रानृतेभीता मेनिरेविश्वसंप्लवम्

मैत्रयजी ने कहा कि—देवता, आत्मा भूत ब्रह्मा से ऐसा कारण सुनकर शंका को छोड ब्रह्म लोक से स्वर्ग में गये ॥ १ ॥ दिति ने भर्ता की आज्ञा पाय पुत्र के जन्म से लोक तथा लोकपालों के दुःख के कारण डरते हुए १०० वर्ष तक गर्भधारण किया जब १०० वर्ष पूर्ण हुए तब पतिव्रता दिति के दोपुत्र उत्पन्नहुए ॥ २॥ जिस काल वह उत्पन्न हुए उस काल आकाश पृथ्वी और अंतरिक्ष में लोकों के भय देनेवाले बहुत से उत्पात हुए ॥ ३ ॥ पर्वतों समेत पृथ्वी में भूडोल आने लगे, सम्पूर्ण दिशाये जलनें लगी, बज्रपात होनें लगे और अतिदुःख के देनेवाले पुच्छलतारे उदय होनेलगे ॥४॥ बड़ीकठोर बायु बड़े बड़े शब्द करती धूल उड़ाती और बडे २ वृक्षों को उखाड़ती हुई चलने लगी ॥ ५ ॥ बादलों में बड़ी २ बिजलीचमकने तथा गर्जना होनें लगी और तारागण अस्त होगये जिस से सम्पूर्ण आकाश में अँधेरा छागया ॥ ६ ॥ समुद्र मकर आदि जन्तुओं समेत क्षोभ को प्राप्त हुए और बड़ी २ नदियें जलाशयोसमेत कि जिनके कमल सूख रहे हैं वह बहकर समुद्रको चलीं॥७॥चन्द्र सूर्य को राहु ग्रसने लगा और मंडल होने लगे बादलोंमें गर्जना होने लगी और बड़ी२ गुफाओं में भी गर्जना होने लगी ॥८॥ ग्राम के भीतर सियरियां अपने मुख से बड़ी २ ज्वाला निकालने लगीं, सियार गांव के भीतर घुसकर रोने और उल्लू बड़े २ शब्द करने लगे ॥ ९ ॥ इधर उधर घूमकर कुत्ते गाते तथा रोते हुए गर्दनउठाये नाना भांति से जहांतहां भूंकने लगे ॥ १० ॥ गधे बड़े शब्द करते तथा खुरों से धरती खोदते यूथ के यूथ मिलकर रेंकते हुए भागने लगे ॥ ११ ॥ गधों के रोने के कारण पक्षी भय खाकर घोंसलों में घुसनें तथा जंगल में पशु बारम्बार मल मूत्र करने लगे ॥ १२ ॥ गायें बड़े भय को प्राप्त हुईं तथा उनके थनों से दूध के बदले रुधिर निकलने लगा, मेघ राध की बर्षा करने लगे देवताओं की प्रतिमारोतीसी दिखाई देनेलगीं, बिना बायु के वृक्ष उखड़ २ कर गिरने लगे ॥ १३ ॥ वृहस्पति आदिक मुख्य २ ग्रह तथा तारागण उलटे चलने और परस्पर युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ इन उत्पातों को देखकर सनकादिकों को

॥ १५ ॥ तावादिदैत्यौसहसा व्यज्यमानात्मपौरुषौ । ववृधातेऽश्मसारेण कायेनाद्रिपतीइव ॥ १६ ॥ दिविस्पृशौहेमकिरीटकोटिभिर्निरुद्धकाष्ठौ स्फुरदंगदाभुजौ । गांकम्पयन्तौचरणैः पदेपदेकट्या सुकांच्याऽर्कमतीत्यतस्थतुः ॥ १७ ॥ प्रजापतिर्नामतयोरकार्षीद्यः प्राक्स्वदेहाद्यमयोरजायत । तंवैहिरण्यकशिपुंविदुः प्रजा यं तंहिरण्याक्षमसूतसाग्रतः ॥ १८ ॥ चक्रेहिरण्यकशिपुर्दोर्भ्यांब्रह्मवरेणच । वशेसपालांल्लोकांस्त्रीनकुतोमृत्युरुद्धतः ॥ १९ ॥ हिरण्याक्षोऽनुजस्तस्य प्रियःप्रीतिकृदन्वहम् । गदापाणिर्दिवंयातो युयुत्सुर्मृगयन्रणम् ॥ २० ॥ तंवीक्ष्यदुःसहजवं रणत्कांचननूपुरम् । वैजयन्त्यास्रजाजुष्टमंसन्यस्तमहागदम् ॥ २१ ॥ मनोवीर्यवरोत्सिक्तमसृण्यमकुतोभयम् । भीतानिलिल्यिरेदेवास्ताक्ष्यत्रस्ताइवाहयः ॥ २२ ॥ सवै तिरोहितान्दृष्ट्वा महसास्वेनदैत्यराट् । सेन्द्रान्देवगणान्क्षीबानपश्यन्व्यनदद्भृशम् ॥ २३ ॥ ततोनिवृत्तः क्रीडिष्यन्गम्भीरंभीमनिःस्वनम् । विजगाहेमहासत्त्वो वार्धिमत्तइवद्विपः ॥ २४ ॥ तस्मिन्प्रविष्टेवरुणस्यसैनिका यादोगणाः सन्नधियः ससाध्वसाः । अहन्यमानाअपितस्यवर्चसा प्रधर्षितादूरतरंप्रदुद्रुवुः ॥ २५ ॥ सवर्षपूगानुदधौमहाबलश्चरन्महोर्मीञ्छ्वसनेरितान्मुहुः । मौर्व्याऽभिजघ्नेगदया विभावरीमाससादिवांस्तात पुरींप्रचेतसः ॥ २६ ॥ तत्रोपलभ्यासुरलोकपालकं यादोगणानामृषभंप्रचेतसम् । स्मयन्प्रलब्धुंप्रणिपत्यनीचवज्जगाद मेदेह्यधिराजसंयुगम् २७ त्वंलोकपालोऽधिपतिर्बृहच्छ्रवा वीर्यापहोदुर्मदवीरमानिनाम् । विजित्यलोकेऽखिलदैत्यदानवान्यद्राजसूयेन पुराऽयजत्प्रभो ॥ २८ ॥ सएवमुत्सिक्तमदेनविद्विषा

छोड़ सम्पूर्ण प्रजा ने इस तत्व को न जानकर सृष्टि का नाश होना समझा ॥ १५ ॥ वह दोनों आदि दैत्य, अपने पराक्रम से प्रकाशित पत्थरकीसमानशरीरवाले, पर्वत की समान वृद्धिको प्राप्तहोने लगे ॥ १६ ॥ अपनें सुवर्ण के कीट मुकुट के अग्रभाग से स्वर्ग का स्पर्श करते हैं तथा भुजाओं देदीप्यमान बजुल्ला से शोभित हैं वह उन भुजाओं से दिशाओं को रोके हुए और पावों से पग२में पृथ्वी को कपाते हैं उनकी कटिकी मेखला सूर्य के भी प्रकास को उलंघ गई ॥ १७ ॥ प्रजापति ब्रह्माजी ने उन दोनों के नाम जो पहिले उत्पन्न हुआ था हिरण्यकशिपु और छोटे का हिरण्याक्ष रक्खा ॥ १८ ॥ हिरण्यकशिपु ने ब्रह्माजी के बरदान से लोक तथा लोकपालों को बश में करलिया, और मृत्यु को रोक कर किसी को उसका भय न रक्खा ॥ १९ ॥ तथा छोटा भाई हिरण्याक्ष गदा हाथ में लेकर स्वर्ग में संग्राम की इच्छा से गया ॥ २० ॥ सुवर्ण के नूपुर पहिनें वैजयंती माला धारण किये कंधे में गदा धरे हुए, अति पराक्रमी दुःसह वेगवाला ॥ २१ ॥ तथा मन, पराक्रम और वरदान से गर्वयुक्त निरंकुश, जिसको किसी का भय नहीं है ऐसे दैत्य को आते देखकर देवता ऐसे जाछिपे कि जैसे गरुड़ को देखकर सांप बिलोंमें घुसजाते हैं ॥ २२ ॥ उस हिरण्याक्ष दैत्य ने इस भांति देवताओं को छिपा हुआ देख इन्द्रादिक देवताओं को नपुंसक जान अति गर्जना की ॥ २३ ॥ फिर वहां से क्रीड़ा करने के हेतु लौटा और आकर अति गम्भीर समुद्र में मत्त हाथी की समान घुसा ॥ २४ ॥ समुद्र में प्रवेश करते ही वरुण की सेना तथा जीवजंतु सबही अधीर होगये और उसके ऐश्वर्य्य से बहुत दूर भाग गये ॥ २५ ॥ वह अत्यंत बलवान दैत्य पवन से उठीहुई समुद्र की लहरों को अपनी गदा से कूटताहुआ वहां विहार कर फिर बिभावरी पुरीमें पहुंचा ॥ २६ ॥ हे विदुर ! वह पाताल के पालक वरुणके समीपजा हंसते २ मुसकायकर नीच की नाईं प्रणाम करके बोला कि हे अधिराज! मुझे संग्राम दो ॥ २७ ॥ आप लोक पालोंके अधिपतिहैं और बड़े मतवारे वीरोंका पराक्रम दूर करनेवाले तथा बड़े यशस्वी हो,

हंप्रलम्भोभगवानपाम्पतिः। रोषंसमुत्थंशमयन्स्वयाधियाव्यवोचदंगोपशमंगता वयम् ॥ २९ ॥ पश्यामिनान्यंपुरुषात्पुरातनाद्यःसंयुगेत्वांरणमार्गकोविदम् । आराधयिष्यस्यसुरर्षभेहितं मनस्विनोयंगृणतेभवादृशाः ॥३०॥ तंवीरमाराद्भिपद्यविस्मयः शयिष्यसे वीरशयेश्वभिर्वृतः । यस्त्वाद्विधानामसतांप्रशान्तये रूपाणिधत्ते सदनुग्रहेच्छया ॥ ३१ ॥

इतिश्रीमद्भा०तृ०हिरण्याक्षदिग्विजयेसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

मैत्रेयउवाच ॥ तदेवमाकर्ण्यजलेशभाषितं महामनास्तद्विगणय्यदुर्मदः । हरेर्विदित्वा गतिमङ्गनारदाद्रसातलं निर्विविशेत्वरान्वितः ॥ १ ॥ ददर्शतत्राभिजितं धराधरं प्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया । मुष्णन्तमक्ष्णा स्वरुचोऽरुणश्रिया जहास चाहो वनगोचरोमृगः ॥ २ ॥ आहैनमेह्यज्ञमहीं विमुंचनो रसौकसांविश्वसृजेयमर्पिता । नस्वस्तियास्यस्यनयाममेक्षतः सुराधमासादितसूकराकृते ॥ ३ ॥ त्वंनःसपत्नैरभवायकिंभृतो योमायया हन्त्यसुरान्परोक्षजित् । त्वांयोगमायाबलमल्पपौरुषं संस्थाप्यमूढप्रमृजेसुहृच्छुचः ४॥ त्वयिसंस्थितेगदया शीर्णशीर्षण्यस्मद्भुजच्युतया येचतुभ्यम् । बलिंहरन्त्यृषयोयेचदेवाः स्वयंसर्वे नभविष्यन्त्यमूलाः ॥५ ॥ सतुद्यमानोरिदुरुक्ततोमरैर्दंष्ट्राग्रगांगामुपलक्ष्यभीताम् । तोदंमृषन्निरगादंबुमध्याद्ग्राहाहतः सकरेणुर्यथेभः ६ ॥ तंनिःसरन्तंसलिलादनुद्रुतो हिरण्यकेशोद्विरदंयथाझषः

प्रभो आपने सम्पूर्ण दैत्य दानव तथा लोकों को जीतकर राजसूय यज्ञ किया है ॥ २८ ॥ उस द्वेषी महा मदवाले हिरण्याक्ष ने जब इस भांति कहा तो वरुण को बड़ा क्रोध हुआ, परन्तु उसे शांत करके बोले कि हे हिरण्याक्ष ! हमने युद्ध करना छोड़ दिया है ॥ २९ ॥ हे दैत्य राज ! तू रणमार्ग में बड़ा विवेकी है, तुझको प्रसन्न करने वाला भगवान के अतिरिक्त और मुझे कोई दूसरा नहीं देख पड़ता, वही भगवान कि जिनकी तुझ सरीखे स्तुति करते हैं तेरी इच्छा पूर्ण करेंगे ॥३०॥ तथा जो तेरी सदृश दुष्ट मनुष्यों के नाश के हेतु और भक्तोंपर दयाकी कामना से अवतार धारण करते हैं उन्हीं परमेश्वर के सामने तेरा अहंकार दूरहोगा और तू कुत्तों से घिरकर रणक्षेत्र में सोवेगा ॥ ३१ ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेतृतीयस्कंधेसरलाभाषाटीकांसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

मैत्रेय जी ने कहा कि हे विदुर ! हिरण्याक्ष ने ऐसे २ खोटे वचन कहे परन्तु उदार चित्तवाले वरुण भगवान ने कुछ भी ध्यान न किया और नारद जी से उस अहंकारी ने यह सुनकर कि विष्णु भगवान रसातलको गयेहैं बड़ी ही शीघ्र वहां से रसातल में पहुंचा ॥ १ ॥ वहां परमेश्वर को बाराह रूप धारण किये और डाढ़के अग्रभाग में पृथ्वी को धरेहुये तथा अरुण नेत्रों से अपने तेजका तिरस्कार करते देख वह हिरण्याक्ष दैत्य हंसकर बोला कि हे वनचर बाराह ॥ २ ॥ यह पृथ्वी विश्वस्रष्टा ब्रह्मा ने हम रसातल वासियों के अर्पण की है इसे तू छोड़दे हे देव ! शूकर रूप धारण करने वाले मेरे देखते तू कुशल पूर्वक नहीं जायगा ॥ ३ ॥ अरेतूने हमारे वैरियों को उत्पन्न किया है, तूमाया ही से असुरों को मारता है, तू नेत्रों ही के पीछे जीतता है सामने नहीं जीतता, तुझको योग माया का बल है । हे मूर्ख ! तुझ अल्प पुरुषार्थी को मार पृथ्वी को स्थापन कर मैं अपने सुहृदों के शोच को दूर करूंगा ॥ ४ ॥ जब मेरे हाथ से छूटी हुई गदाके प्रहारसे तेरा मस्तक फूटेगा और पृथ्वी पर सोवेगा तो ऋषि और देवता कि जिन की तू जड़ है और जो तुझे बलि देते हैं वे सम्पूर्ण निर्मूलहोजांयगे ॥ ५ ॥ इस भांति खोटे बचनोंको सुनकर बाराह भगवान डाढ़के अग्र भागमें धरीहुई पृथ्वी को भयातुर देख उसके दुर्वचनों को सहकर जल के मध्यसे

करालदंष्ट्रोऽशनिनिःस्वनोऽब्रवीद्गतह्रियां किंत्वसतांविगर्हितम् ॥ ७ ॥ सगामुदस्तात्सलिलस्यगोचरे विन्यस्यतस्यामदधात्स्वसत्त्वम् । अभिष्टुतोविश्वसृजाप्रसूनैरापूर्यमाणो विबुधैःपश्यतोऽरेः ॥८॥ परानुषक्तंतपनीयोपकल्पं महागदंकाञ्चनचित्रदंशम् । मर्माण्यभीक्ष्णं प्रतुदन्तंदुरुक्तैःप्रचंडमन्युःप्रहसंस्तंबभाषे ॥९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सत्यंवयंभो वनगोचरामृगा युष्मद्विधान्मृगये ग्रामसिंहान् । नमृत्युपाशैःप्रतिमुक्तस्यवीरा विकत्थनंतवगृह्णन्त्यभद्र ॥ १० ॥ एतेवयंन्यासहरा रसौकसांगतह्रियो गदयाद्रावितास्ते । तिष्ठामहेऽथापिकथंचिदाजौ स्थेयंक्वयामो बलिनोत्पाद्यवैरम् ॥११॥ त्वंपद्रथानांकिलयूथपाधिपो घटस्वनोऽस्वस्तयआश्वनूहः संस्थाप्यचास्मान् प्रमृजाऽश्रुस्वकानां यःस्वांप्रतिज्ञां नातिपिपर्त्यसभ्यः ॥ १२ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ सोऽधिक्षिप्तोभगवता प्रलब्धश्चरुषाभृशम् । आजहारोल्बणंक्रोधं क्रीड्यमानोऽहिराडिव ॥ १३ ॥सृजन्नमर्षितःश्वासान्मन्युप्रचलितेन्द्रियः । आसाद्यतरसा दैत्योगदयाऽभ्यहनद्धरिम् ॥ १४ ॥भगवांस्तुगदावेगं विसृष्टंरिपुणोरसि । अवंचयत्तिरश्चीनो योगारूढइवान्तकम् १५ ॥पुनर्गदांस्वामादाय भ्रामयन्तमभीक्ष्णशः । अभ्यधावद्धरिःक्रुद्धः संरम्भाद्दष्टदच्छदम् ॥ १६॥ ततश्चगदयारातिं दक्षिणस्यांभ्रुविप्रभुः । आजघ्नेसतुतांसौम्य गदयाकोविदोऽहनत् ॥ १७ ॥ एवंगदाभ्यांगुर्वीभ्यां हर्यक्षोहरिरेवच । जिगीषयासुसंरब्धावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ १८ ॥

ऐसे निकले जैसें ग्राह का पकड़ा हुआ हाथी जल से निकलता है ॥ ६ ॥ जिस भांति हाथी के पीछे मगर दौड़ता है उसी भांति करालदंष्ट्र हिरण्याक्ष दैत्य भगवान के पीछे दौड़ा, और वज्रवत घोरशब्द करके वह दैत्य बोला कि—रेनिर्लज्ज! नीच मनुष्यों के हेतु कौनसी बात निंदनीय है ॥ ७ ॥ हिरण्याक्ष ऐसे कठोर वाक्य कह रहाथा, परन्तु परमेश्वर सृष्टिपालक ने अपना सत्व स्थापित कर वैरीके देखते जल में पृथ्वीको रखदिया उस समय ब्रह्मादिक स्तुति करने तथा देवता फूल बरसाने लगे ॥ ८ ॥ ऐसे दैत्य से किजो सुवर्ण के आभूषण पहिने हुये, विचित्र कवच धारण किये तथा गदालिये वारंवार दुर्वचनों से मर्म स्थल को भेदता था, तब भगवान ने प्रचंड क्रोध करके कहा ॥ ९ ॥ अरेदैत्य! जो तूने कहा वह सत्य है हम वनचारी वाराह तेरें समान कुत्तों को ढूंढ़ते फिरतेहैं अरे तुच्छ! तेरी बकवादपर कि जिसके गलेमें कालकी फांसी पड़ी है, हम ध्यान नहीं देते ॥ १० ॥ हम रसातल के रहने वालों की धरोहर के हरने वाले हैं तेरीगदा के डरसे निर्लज्ज होकर भगेजाते हैं, परन्तु बलीके सामने से कहां भगकर जांयगे इस हेतु जैसे होगा वैसे हम खड़े रहेंगे ॥ ११ ॥ तू पदचारियों के यूथका राजा है, अब तू युद्ध में हमें मार अपनी प्रतिज्ञा पूर्णकर अपने सुहृदों के आंसू पोंछ, क्योंकि जो अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण नहीं करता वह सभ्य मनुष्यों में अयोग्य गिनाजाता है ॥ १२ ॥मैत्रेयजी नेकहा कि—इस प्रकार भगवान ने बड़े रोष से उस का तिरस्कार किया तो वह दैत्य खिलाये जाते सांप की भांति अत्यंत क्रोधित हुआ ॥ १३ ॥ वह दैत्य कि जिस की क्रोध के मारे इन्द्रियां चलायमान होरही थीं क्रोधवश श्वांस लेता हुआ बड़े वेग से परमेश्वर के निकट पहुंचा, और जातेही उन पर गदाका प्रहार किया ॥ १४ ॥ भगवान ने उस वैरी की गदाको कि जिसने हृदय में ताक कर मारी थी ऐसें तिरछे होकर बचाया कि जैसें योगी पुरुष कालको बचाते हैं ॥ १५ ॥ फिर अपनी गदाको ग्रहण कर श्री भगवान ने क्रोधित हो रोषसे गदाको घुमाकर ॥ १६ ॥ उस शत्रु की दाहिनी भ्रुकुटी पर मरा किंतु हे विदुर! उस ने अपनी गदा से उस गदाको रोकलिया ॥ १७ ॥ इस प्रकार श्री वाराह जी और वह दैत्य परस्पर क्रोध के वशीभूतहो जयकी कामनासे एक दूसरे के ऊपर गदाप्रहार करनेंलगे ॥ १८ ॥

तयोःस्पृधोस्तिग्मगदाहतांगयोः क्षतास्रवघ्राणविवृद्धमन्य्वोः विचित्रमार्गांश्चरतो जिगीषया व्यभादिलायामिवशुष्मिणोर्मृधः ॥ १९ ॥ दैत्यस्ययज्ञावयवस्यमाया गृहीतवाराहतनोर्महात्मनः । कौरव्यमह्यांद्विषतोर्विमर्दनं दिदृक्षुरागादृषिभिर्वृतः स्वराट् ॥ २० ॥ आसन्नशौण्डीरमपेतसाध्वसं कृतप्रतीकारमहार्यविक्रमम् । विलक्ष्यदैत्यं भगवान्सहस्रणीर्जगादनारायणमादिसूकरम् ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एषते देवदेवानामंघ्रिमूलमुपेयुषाम् । विप्राणांसौरभेयीणां भूतानामप्यनागसाम् २२ ॥ आगस्कृद्भयकृद्दुष्कृदस्मद्राद्धवरोऽसुरः । अन्वेषन्नप्रतिरथो लोकानटतिकंटकः ॥ २३ ॥ मैनंमायाविनंदृप्तं निरंकुशमसत्तमम् । आक्रीडबालवद्देव यथाऽऽशीविष मुत्थितम् ॥ २४ ॥ नयावदेषवर्धेत स्वांवेलांप्राप्यदारुणः स्वांदेवमायमास्थाय तावज्जह्यघमच्युत ॥ २५ एषाघोरतमासंध्या लोकच्छम्बट्करीप्रभो । उपसर्पति सर्वात्मन्सुराणांजयमावह ॥ २६ ॥ अधुनैषोऽभिजिन्नाम योगोमौहूर्तिकोह्यगात् । शिवायनस्त्वंसुहृदामाशु निस्तरदुस्तरम् ॥ २७ ॥ दिष्ट्यात्वांविहितं मृत्युमयमासादितःस्वयम् । विक्रम्यैनंमृधेहत्वा लोकानाधेहिशर्मणि ॥ २८ ॥

इतिश्रीमद्भा० तृतीय० हिरण्याक्षश्रीवराहयुद्धवर्णननामाऽष्टादशोऽध्यायः १८ ॥

मैत्रेयउवाच॥अवधार्यविरिंचस्य निर्व्यलीकामृतंवचः । प्रहस्यप्रेमगर्भेण तदपाङ्गेनसोऽग्रहीत् ॥ १ ॥ ततःसपत्नंमुखतश्चरन्तमकुतोभयम् । जघानोत्पत्यगदया हनावसुरमक्षजः ॥ २ ॥ साहतातेनगदया विहताभगवत्करात् । विघूर्णिताऽपतद्रेजे तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ३ ॥ सतदालब्धतीर्थोपि नबबाधेनिरायुधम् । मानयन्

तीक्ष्ण गदाके प्रहारसे घाव होकर उन दोनो के जो रुधिर निकलता था उस कीगंध से और भी क्रोध बढ़ता था पृथ्वी के हेतु वह दोनों ऐसें लड़ते थे कि जैसे गऊ के हेतु परस्पर बैल लड़ते है ॥ १९ ॥ मायाँसे वाराह रूप धारी भगवानमें और हिरण्याक्ष दैत्य मे जो पृथ्वीके हेतु युद्ध होरहा था उसे देखने के निमित्त ब्रह्मा जी ऋषियों को संग लेकर आये ॥ २० ॥ मद सेमतवाला, निडर, समयुद्ध करने वला जिसका पराक्रम न्यून न हो ऐसे असुर को देख ब्रह्मा जी ने बाराह रूप नारायण से कहा ॥ २१ ॥ हे प्रभु! आपके चरणो के शरणागत निरपराधी जीवो, ब्राह्मण, गौ और देवताओं का ॥ २२ ॥ अपराध करने वाला, भयकारी दुष्टकर्मी यह दैत्य मुझसे वरदान पाकर, सृष्टि में अपनी बराबर के युद्ध वाले को ढूढता हुआ कंटक रूप विचरता है ॥ २३ ॥ यह बड़ा मायावी गर्वित, और अशंकित है जैसे विषैले सांप से क्रीडा नहीं की जाती उसी प्रकार इससे भी आप क्रीड़ा मतकरो ॥ २४ ॥ हे देव ! यह अपने दारुण सायकालको पाकर न बढ़जाय इस हेतु आप अपनी योग माया मे स्थित होकर इस पापी को सायकाल से प्रथम ही मारिये ॥ २५ ॥ हे स्वामी! अत्यत घोर और सृष्टिनाशक सायकाल चला आता है हे सर्वात्मन् ! यह असुरो को जय देने वाला है ॥ २६ ॥ मुहूर्तो मे यह अभिजित नामका योग आगया है इसमे आप सुहृदों के कल्याण के हेतु इस दुष्टको शीघ्रही मारो ॥ २७ ॥ यह मगल हुआ कि यह पापी आपसे आप मृत्यु मुख में आफसा है, आप अपने ऐश्वर्य्य से इसे संग्राम मे मार शीघ्रही हमलोगो को सुखीकरो ॥२८॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणे०तृतीयस्कंधे सरलाभाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

मैत्रेयजी ने कहा कि—परमेश्वर ने निश्छल और अमृत की समान ब्रह्माजी के बचन सुन हंस स्नेह युक्त दृष्टि से उनकी प्रार्थना स्वीकार की ॥ १ ॥ फिर निडर होकर अपने सन्मुख बैरी को घूमता देख बाराह भगवान नें कूद कर उस असुर की ठोडी मे गदा मारी ॥ २ ॥ तब उस असुर ने अपनी गदा ऐसी मारी कि बाराहजी की गदा हाथ से गिरपड़ी यह बड़ा अद्भुत चरित्र

सम्पृधेधर्मंधिष्णवक्सेनंप्रकोपयन् ॥ ४ ॥ गदायामपविद्धायां हाहाकारेविनिर्गते । मा
नयामासतद्धर्मं सुनाभंचास्मरद्विभुः ॥ ५ ॥ तंव्यग्रचक्रंदितिपुत्राधमेन स्वपार्षद
मुख्येनाविषज्जमानम् । चित्राघाचोऽतद्विदांखेचराणां तत्रास्मासन्स्वस्तितेऽमुंज
हीति ॥ ६ ॥ सतंनिशाम्यात्तरथाङ्गमग्रतो व्यवस्थितंपद्मपलाशलोचनम् । विलो
क्यचामर्षपरिप्लुतेन्द्रियो रुषास्वदन्तच्छदमादशच्छ्वसन् ॥ ७॥ करालदंष्ट्रश्चक्षु
र्भ्यांसंचक्षाणोदहन्निव । अभिप्लुत्यस्वगदया हतोऽसीत्याहनद्धरिम् ॥ ८ ॥
पदा सव्येनतांसाधो भगवान्यज्ञसूकरः । लीलयामिषतःशत्रोः प्राहरद्वातरं
हसम् ॥ ९ ॥ आहचायुधमाधत्स्व घटस्वत्वंजिगीषसि । इत्युक्तःसतदाभूयस्ताड
यन्व्यनदद्भृशम् ॥ १० ॥ तांसआपततींवीक्ष्य भगवान्समवस्थितः । जग्राहलील
याप्राप्तां गरुत्मानिवपन्नगीम् ॥ ११ ॥ स्वपौरुषेप्रतिहते हतमानोमहासुरः । नैच्छ
द्गदांदीयमानां हरिणाविगतप्रभः ॥ १२ ॥ जग्राहत्रिशिखंशूलं ज्वलज्ज्वलनलो
लुपम् । यज्ञायधृतरूपाय विप्रायाभिचरन्यथा ॥ १३ ॥ तदोजसादैत्यमहाभटार्पि
तं चकासदन्तःखउदीर्णदीधिति । चक्रेणचिच्छेदनिशातनेमिना हरिर्यथाताक्ष्यं
पतत्रमुज्झितम् ॥ १४ ॥ वृक्णेस्वशूलेबहुधाऽरिणाहरेः प्रत्येत्यविस्तीर्णमुरोविभूति
मत् । प्रवृद्धरोषःसकठोरमुष्टिना नदन्प्रहृत्यान्तरधीयतासुरः ॥ १५ ॥ तेनेत्थमाहतः
क्षत्तर्भगवानादिसूकरः । नाकम्पतमनाक्क्वापि स्रजाहतइवद्विपः ॥ १६ ॥ अथोरु
धासृजन्मायां योगमायेश्वरेहरौ । यांविलोक्यप्रजास्त्रस्ता मेनिरेऽस्योपसंयमम् ॥

हुआ ॥ ३ ॥ उस समय दैत्य को अवसर तो मिला परन्तु उसनें धर्म युद्ध जान शस्त्र नहीं च-
लाया, ॥ ४ ॥ गदा के गिरनें से बड़ा हाहाकार शब्द हुआ तब भगवान नें युद्ध धर्म को मान
चक्र का स्मरण किया ॥ ५ अधम अदिति के पुत्र, हिरण्याक्ष से परमेश्वर को चक्र लिये भिड़ा
देख, उनकी माया के नजाननेवाले देवता नाना भांति के बचन कहने लगे, कि हे प्रभु! आपका
कल्याण हो आप इसे शीघ्र मारो ॥ ६ ॥ उस असुर की इन्द्रियां, कमलदल नेत्र वाले भगवान
को चक्र धारण किये हुए देख, क्रोध से परिपूर्ण होगई, उसी रोष बश अपने ओंठ को काटता
श्वांस लेता, और ॥ ७ कराल डाढ़ों वाला, वह असुर प्रभु की ओर इस प्रकार देखने लगा मानों
भस्म करदेगा, फिर उस असुर नें "मार लियाहै" ऐसा कहकर बाराहजी के ऊपर गदा का प्रहार
किया ॥ ८ ॥ हे बिदुर ! फिर भगवान नें वैरी के देखते २ वायु के समान बेगवाली गदा को
बाएं पांव से बचालिया ॥ ९ ॥ तब दैत्य नें कहा कि तू आयुध लेकर फिर जीतना चाहता है यह
कह ताड़ना कर बड़ी गर्जना की ॥ १० ॥ भगवान ने उसकी फेंकी हुई गदा को आते देख लीला
पूर्वक ऐसे पकड़ लिया जैसे गरुड़ सर्पिणी को पकड़ लेता है ॥ ११ ॥ अपने पुरुषार्थ के नाश
होनेपर तेजहत दैत्य ने परमेश्वर के हाथ से देनेपर भी गदा नली, ॥ १२ ॥ जैसें ब्राह्मण के हेतु
दृष्टि मुष्ट धारण कीजाती है वैसेही यज्ञ भगवान के हेतु उस दैत्य नें तीन शिखा वाले त्रिशूलको
कि जिसमें बड़ी२ ज्वाला निकलरही हैं धारणकिया २३ इसके उपरांत उसमहायोद्धा हिरण्याक्ष नें
उसे बलपूर्वक चलाया, वह अति तेजवाला त्रिशूल आकाशके भीतर चमकने लगा किन्तु बाराहजी
ने अपने तीक्ष्ण धार वाले चक्रसे उस ऐसे काट गिराया जैसे इन्द्रनें गरुड़के त्यागेहुए पक्षको अप
ने वज्र से काट गिरायाथा ॥ १४ ॥ जब भगवान ने इस भांति त्रिशूल के टुकड़े २ कर दिये तब
वह असुर उनके सामनें आ अति रोषकर लक्ष्मी स्थित हृदयमें कठोर मुष्टिका घात कर अंतर्ध्यान
होगया ॥ १५ ॥ हे विदुर ! उसने बाराह अवतारी परमेश्वर पर इस भांति प्रहार किया किन्तु
माला से मारे हुए हाथी के सदृस वे तनिक भी नहीं बिचलित हुए ॥ १६ ॥ योगमाया के ईश्वर

॥ १७ ॥ प्रववुर्वायवश्चण्डास्तमः पांसवमैरयन् ।दिग्भ्योनिपेतुर्ग्रावाणःक्षेपणैःप्रहिता इव ॥ १८ ॥ द्यौर्नष्टभगणाभ्रौघैःसविद्युत्स्तनयित्नुभिः । वर्षद्भिःपूयकेशासृग्विण्मूत्रास्थीनिचासकृत् ॥ १९ ॥ गिरयः प्रत्यदृश्यन्तनानायुधमुचोऽनघ । दिग्वाससो यातुधान्यःशूलिन्योमुक्तमूर्धजाः ॥ २० ॥ बहुभिर्यक्षरक्षोभिः पत्त्यश्वरथकुंजरैः । आततायिभिरुत्सृष्टा हिंस्रावाचोऽतिवैशसाः ॥२१ ॥ प्रादुष्कृतानां मायानामासुरीणांविनाशयत् ॥ सुदर्शनास्त्रंभगवान् प्रायुंक्तदयितंत्रिपात् ॥ २२ ॥ तदादितेःसमभवत्सहसाहृदिवेपथुः । स्मरन्त्याभर्तुरादेशं स्तनाच्चासृक्प्रसुस्रुवे ॥ २३ ॥ विनष्टासुस्वमायासुभूयश्चाव्रज्यकेशवम् । रुषोपगूहमानोमुं ददृशेऽवस्थितंबहिः ॥ २४॥ तंमुष्टिभिर्विनिघ्नन्तं वज्रसारैरधोऽक्षजः । करेणकर्णमूलेऽहन्यथात्वाष्ट्रंमरुत्पतिः । ॥ २५ ॥ सआहतोविश्वजिताह्यवज्ञया परिभ्रमद्गात्र उदस्तलोचनः । विशीर्णबाहुंघ्रिशिरोरुहोऽपतद्यथा नगेन्द्रोलुलितोनभस्वता ॥२६॥क्षितौशयनंतमकुण्ठवर्चसं करालदंष्ट्रंपरिदष्टदच्छदम् । अजादयोवीक्ष्यशशंसुरागता अहोइमांकोनुलभेतसंस्थितिम् ॥ २७ ॥ यंयोगिनोयोगसमाधिनारहो ध्यायन्तिलिंगादसतोमुमुक्षया तस्यैषदैत्याऋषभःपदाहतो मुखंप्रपश्यंस्तनुमुत्ससर्जह ॥ २८ ॥ एतौतौपार्षदावस्य शापाद्यातावसद्गतिम् । पुनःकतिपयैःस्थानं प्रपत्स्येतेहजन्मभिः ॥ २९ ॥ देवाऊचुः ॥ नमोनमस्तेऽखिलयज्ञतन्तवे स्थितौगृहीतामलसत्त्वमूर्तये। दिष्ट्याहतो

पर उस दैत्य ने नाना भाँति की माया की, जिसको देखकर सम्पूर्ण प्रजा त्रसित होगई और जानने लगी।कि सृष्टि का अब अंतहोगा॥१७॥प्रचण्ड वायुके वेगसे उडी हुई धूलसे सर्वत्र अंधकार फैलगया और सब ओरसे बड़े २ पत्थर गिरने लगे मानो वह गोफन से चलाये गये हो ॥ १८ ॥ बादलों के समूह में तारागण दबगए, और बिजली चमकनेलगी घोर गर्जन होनेंलगा और राध, केश, रुधिर, मल, मूत्रकी बर्षा होनेलगी ॥१९॥ हे बिदुर ! अनेक शस्त्र आते हुए पहाड तथा त्रिशूल लिये हुए राक्षसियां देख पडने लगीं ॥ २० ॥ बहुत से यक्ष, राक्षस, घोड़े रथ, हाथी लिये हुए और शस्त्र ग्रहण किये "मारो, काटो" ऐसी कठोर वाणी बोलते हुए देखपड़े ॥ २१ ॥ जब यह आसुरी माया प्रगट हुई, तब उसके नाश करनें वाले सुदर्शन चक्र को भगवान ने अज्ञा दी ॥ २२ ॥ उस समय दिति के हृदय में बड़ी कपकपी हुई और कश्यपजी की आज्ञा का स्मरण करतेही उसके स्तनों से रुधिर बहनेलगा ॥२३॥ फिर वह असुर अपनी मायाका नाश देखकर, नारायणके समीप आ,रोषकरके उनको भुजाओंसे दबानेलगा किन्तु वाराहजी उसको बाहर दीखनें लगे ॥ २४ ॥ वह बज्रवत कठोर मुष्टियों से माररहाथा ऐसे दैत्यके भगवान ने कनपटी में ऐसा थप्पडमारा जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर के बज्रमाराथा ॥ २५ ॥ विश्वस्रष्टा भगवान के अनादर करने वाले दैत्य के थप्पड़ लगतेही उस का शरीर घूमगया, आंखें बाहर निकल आईं, भुजा, पांव तथा केश फैल गये वह असुर बड़े भारी वायु से गिरेहुए वृक्ष की सदृश पृथ्वी में गिरपड़ा २६ अकुण्ठित कांति भयंकर डाढ़ों वाले,तथा जिसने होठ चाबे हैं ऐसे दैत्य को पड़ा देखकर ब्रह्मादिक देवता उस की बड़ी प्रसंसा करने लगे, किऐसी गति को कौन प्राप्त होसक्ता है ॥ २७ ॥ बड़े २ योगी राज मोक्ष की इच्छा करके समाधि से ध्यान लगाय जिन भगवान के स्वरूप को देखतेहैं, उन्हीं भगवान के मुख को देखकर इसने अपनी देहछोड़ी ॥ २८ ॥ यह भी भगवानके पार्षद हैं शापके कारण नीच गति को प्राप्त हुए हैं, सोयह यहां कुछ जन्म पाकर फिर पीछे बैकुण्ठ को जायँगे ॥ २९ ॥ देवता बोले कि सम्पूर्ण यज्ञों के कारण और पोषण के हेतु शुद्ध सत्वगुण मूर्ति के धारण करनेवाले आप को प्रणामहै यह बड़ाही मंगल हुआ किआपने हिरण्याक्ष

ऽयंजगतामरुन्तुदस्त्वत्पादभक्त्या वयमीशनिर्वृताः ॥३०॥ मैत्रेयउवाच॥ एवंहिरण्याक्षमसह्यविक्रमंससादयित्वाहरिरादिसूकरः । जगामलोकंस्वमखण्डितोत्सवंसमीडितः पुष्करविष्टरादिभिः ॥ ३१ ॥ मयायथाऽनूक्तमवादितेहरेः कृतावतारस्यसुमित्रचेष्टितम् । यथाहिरण्याक्षउदारविक्रमो महामृधेक्रीडनवन्निराकृतः३२॥ सूतउवाच ॥ इतिकौषारवाख्यातामाश्रुत्यभगवत्कथाम् । क्षत्तानन्दंपरंलेभे महाभागवतोद्विज ॥ ३३ ॥ अन्येषां पुण्यश्लोकानामुद्दामयशसांसताम् । उपश्रुत्यभवेन्मोदः श्रीवत्साङ्कस्यकिंपुनः ॥३४॥ योगजेन्द्रंझषग्रस्तं ध्यायान्तंचरणाम्बुजम् । क्रोशन्तीनांकरेणूनां कृच्छ्रतोऽमोचयद्द्रुतम् ॥ ३५ ॥ तंसुखाराध्यमृजुभिरनन्यशरणैर्नृभिः । कृतज्ञः कोनसेवेत दुराराध्यमसाधुभिः ॥ ३६ ॥ योवैहिरण्याक्षवधंमहाऽद्भुतं विक्रीडितंकारणसूकरात्मनः ।शृणोतिगायत्यनुमोदतेंजसा विमुच्यतेब्रह्मवधादपिद्विजाः ॥३७॥ एतन्महापुण्यमलंपवित्रं धन्यंयशस्यं पदमायुराशिषाम् । प्राणेन्द्रियाणां युधिशौर्यवर्धनं नारायणोन्ते गतिरंगशृण्वताम् ॥ ३८ ॥

इतिश्रीमद्भा० तृतीय०हिरण्यक्षवधवर्णनंनामएकोनविंशोऽध्यायः १९ ॥

शौनकउवाच ॥ महींप्रतिष्ठामध्यस्य सौतेस्वायम्भुवोमनुः : कान्यऽन्वतिष्ठद्द्वाराणि मार्गायावरजन्मनाम् ॥१॥ क्षत्तामहाभागवतः कृष्णस्यैकान्तिकःसुहृत्। यस्तत्याजाग्रजंकृष्णे सापत्यमघवानिति ॥ २ ॥ द्वैपायनादनवरो महित्वेतस्यदेहजः । सर्वात्मनाश्रितःकृष्णं तत्परांश्चाप्यनुव्रतः ॥ ३ ॥ किमन्वपृच्छन्मैत्रेयं विरजा

को मारा, हे ईश ! आप की कृपासे हम बड़े आनन्दितहुए ॥ ३० ॥ मैत्रेयजी ने कहा कि- उस असह्यपराक्रमवाले दैत्य को वाराह रूप धारी श्रीभगवान ने इस भांति मारा तब ब्रह्मादिकों ने उन की स्तुति की तदनन्तर अखण्डित उत्सववाले भगवान अपने वैकुण्ठ लोक को गये ३१॥ हे विदुर ! मैंने वाराह अवतारधारी परमेश्वर के चरित्र तथा उदार पराक्रमवाले हिरण्याक्षका युद्ध में माराजाना जैसा अपने गुरू के मुंह से सुनाथा वैसाही आप को सुनाया ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले-किहे शौनक !इस भांति मैत्रेयजी की कही हुई भगवत्सम्बन्धी कथासुनकर विदुरजीको बड़ा आनंदउत्पन्नहुआ॥३३॥ जब कि यशस्वी भक्त तथा उदारचित्त मनुष्योंकी कथासुनकर आनंद उत्पन्न होताहै तो फिर श्री भगवानके चरित्र सुनकर क्यों न आनन्द उत्पन्नहो॥३४॥ जिससमय मगर ने हाथी का पांव पकड लिया तब उस ने परमेश्वर के चरणों का ध्यान किया और हथनियां चिल्लाने लगी तब जिसने शीघ्रही उसे दुःख से छुड़ादिया ॥ ३५ ॥ उन शरणागत तथा भक्तों के आराधना करने योग्य, तथा जिनका असाधु आराधन नहीं करसक्के उन भगवान का कौन पुरुष सेवन न करै ॥ ३६ ॥ हे ब्राह्मणो ! जो पुरुष हिरण्याक्ष के बधके कारण सेवाराह मूर्ति भगवान की अद्भुत लीला गावेंगे अथवा सुनेंगे तो वह ब्रह्महत्या से भी सहज में छूटजायँगे ॥ ३७ ॥ हे विदुर!जो वैकुण्ठ आदिक फलके देने वाले, अति पवित्र द्रव्य, यश देनेवाले तथा आयु बढ़ाने व मनोवांछित फल देनेवाले, जीव और इन्द्रियों के रक्षक तथा संग्राममें शूरता बढ़ाने वाले इस चरित्र को सुनने हैं वह अन्तकाल में भगवान को प्राप्त होते हैं ॥ ३८ ॥

इतिश्रीभागवते महापुराणेतृतीयऽस्कंधेसरलाभषाटीकायांएकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

शौनकजीने कहा कि---हे सूतजी ! जब पृथ्वी प्रतिष्ठा को प्राप्तहुई तो मनुजीने उसेपाकर ईश्वर में व्याप्त जीवों की सृष्टि के हेतु कौन २ से यत्न किये ? ॥ १ ॥ परमेश्वर के श्रेष्ठ भक्त और श्रीकृष्णजीके एकांतिकमित्र तथा जिन्होंने अपने ज्येष्ठ भ्राता के पुत्रों को परमेश्वर का अपराधी जान त्याग दिया ॥ २ ॥ और जो श्री वेदव्यास जी से उत्पन्न होने के कारण महिमामें उनसे कुछभी न्यून नहींहै तथा जो सर्वात्मा कृष्ण भगवान के आश्रित व उनके भक्तोंके आज्ञा

स्तीर्थसेवया । उपगम्यकुशावर्त आसीनंतत्त्वविचमम् ॥ ४ ॥ तयोःसंवदतोःसूत प्रवृत्ताह्यमलाःकथाः । आपोगांगाइवाघघ्नीर्हरेः पादाम्बुजाश्रयाः ॥ ५ ॥ तानःकीर्तयभद्रंते कीर्तन्योदारकर्मणः । रसज्ञःकोनुतृप्येत हरिलीलामृतंपिबन् ॥ ६ ॥ एव मुग्रश्रवाःपृष्ट ऋषिभिर्नैमिषायनैः । भगवत्यर्पिताध्यात्मस्तानाह श्रूयतामिति ॥ ७॥ सूतउवाच ॥ हरेर्धृतक्रोडतनोःस्वमायया निशम्यगोरुद्धरणंरसातलात् । लीलां हिरण्याक्षमवज्ञयाहतं संजातहर्षोमुनिमाहभारतः ॥ ८ ॥ विदुरउवाच ॥ प्रजापतिपतिःसृष्ट्वा प्रजासर्गेप्रजापतीन् । किमारभतमेब्रह्मन्प्रब्रूह्यव्यक्तमार्गवित् ॥ ९ ॥ येमरीच्यादयोविप्रा यस्तुस्वायम्भुवोमनुः । तेवैब्रह्मणआदेशात्कथमेतदभावयन् ॥ १० ॥ सद्वितीयाःकिमसृजन्स्वतन्त्रा उतकर्मसु । आहोस्वित्संहताःसर्व इदंस्म समकल्पयन् ॥ ११ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ दैवेनदुर्वितर्क्येण परेणानिमिषेणच । जातक्षोभाद्भगवतो महानासीद्गुणत्रयात् ॥१२॥ रजःप्रधानान्महतस्त्रिलिंगो दैवचोदितात् । जातःससर्जभूतादिर्वियदादीनिपंचशः ॥ १३ ॥ तानिचैकैकशः स्रष्टुमसमर्थानिभौतिकम् । संहत्यदैवयोगेन हैममण्डमवासृजन् ॥ १४॥ सोऽशयिष्टाब्धिसलिले आण्डकोशोनिरात्मकः । साग्रंवैवर्षसाहस्रमन्ववात्सीत्तमीश्वरः ॥ १५ ॥ तस्यनाभेरभूत्पद्मं सहस्रार्कोरुदीधिति । सर्वजीवनिकायौको यत्रस्वयमभूत्स्वराट् ॥ १६ ॥ सोऽनुविष्टोभगवता यःशेतेसलिलाशये । लोकसंस्थांयथापूर्वं निर्ममेसंस्थयास्त्रया ॥ १७ ॥ ससर्जच्छाययाऽविद्यां पंचपर्वाणमग्रतः । तामिस्रमन्धतामि

नुवर्त्ती हैं ॥ ३ ॥ उन तत्त्व वेत्ता तथा तीर्थोंकी सेवासे पवित्रहुये विदुरजीने हरिद्वार में श्रीमैत्रेयजी से क्या क्या पूछा ? ॥ ४ ॥ हेसूत । उनमें भगवत्सम्बन्धी गंगाजल की समान पाप दूर करनेंवाली जो कथायें हुईहैं ॥ ५ ॥ जिनके उदारकर्म कहने योग्य हैं ऐसे भगवान के चरित्र आप हमसे कहो हे भद्र । आपका कल्याण होगा, हे सूत ! परमेश्वरके चरितामृत स्वादको जो मनुष्य जानता है वह उसे पीता २ कैसे तृप्त होसक्ता है ॥ ६ ॥ जब नैमिषाराय वासी ऋषियों ने इसभांति सूतजी से पूछा तब परमेश्वर का ध्यानकर सूतजी ने उनसे कहा ॥ ७ ॥ सूतजीने कहा कि---भगवान ने वाराहरूप धारणकर पृथ्वी को रसातल से लाय हिरण्याक्ष को सहजही में मारा यह सुन विदुरजी प्रसन्न होकर मैत्रेयजी से बोले ॥ ८ ॥ विदुरजी ने कहा कि हे ब्रह्मन् ! प्रजापतियों के पति ब्रह्माजीने प्रजापतियोंको रचकर क्या किया वह आप मुझसे कहिये क्योंकि आप गुप्त मार्गों के जाननेवालेहो ॥ ९ ॥ मरीचि आदिक ऋषि तथा स्वायंभुवमनुजो उत्पन्न हुयेथे उन्होंने भगवान ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर सृष्टिको किसभांति बढ़ाया ॥ १० ॥ क्या उन्होंने स्त्रियों समेत प्रजाकी रचना की अथवा विना स्त्रियोंके--अथवा सम्पूर्णोंने इकट्ठे होकर इस जगतको उत्पन्न किया ॥ ११ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि---प्राणियोंके अदृष्ट प्रकृति के अधिष्ठाता कालरूप परमात्मा से प्रथम महत्तत्व उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥ रजोगुण श्रेष्ठ दैव प्रेरित महत्तत्व से त्रिगुण अहंकार प्रगट हुआ और अहंकारसे पंचमहाभूत पंचतन्मात्रा, पांच ज्ञानेंद्री तथा पांच कर्मेंद्री उत्पन्न हुई ॥ १३ ॥ जबतक यह एकांत में रहे तबतक ब्रह्माण्ड को न उत्पन्न करसके फिर इकठौर होकर इन्होंने अण्डकोश की रचनाकी ॥ १४ ॥ वह सहस्रोंवर्ष पर्य्यंत प्रलयकाल के जलमें पड़ारहा फिर परमेश्वर ने उसमें निवास किया ॥ १५ ॥ तदनन्तर उनकी नाभिसे सहस्रों सूर्य की समान तेजवाला कमल उत्पन्न हुआ, जो सम्पूर्ण प्राणियों का स्थान था उसीसे ब्रह्माजी उत्पन्नहुये ॥ १६ ॥ जलके भीतर शयन करतेहुये श्रीभगवानकी सत्ता से ब्रह्माजी ने प्रथम की समान सृष्टि रचना की ॥ १७ ॥ भगवान की छायारूपी विद्या से प्रथम

स्रं तमोमोहोमहातमः ॥ १८ ॥ विससर्जात्मनःकायं नाभिनन्दंस्तमोमयम् । जगृहु
र्यक्षरक्षांसिरात्रिं क्षुत्तृट्समुद्भवाम् ॥ १९ ॥ क्षुत्तृड्भ्यामुपसृष्टास्ते तंजग्धुमभिदु-
द्रुवुः । मारक्षतैनंजक्षध्वमित्यूचुः क्षुत्तृडार्दिताः ॥ २० ॥ देवस्तानाहसंविग्नो मामा
जक्षतरक्षत । अहोमेयक्षरक्षांसि प्रजायूयंवभूविथ ॥ २१ ॥ देवताःप्रभयायायादी
व्यन्प्रमुखतोऽसृजत् । तेअहार्षुर्देवयन्तो विसृष्टांतांप्रभामहः ॥ २२ ॥ देवोऽदेवांज
घनतः सृजतिस्मातिलोलुपान् । तएनंलोलुपतया मैथुनायाभिपेदिरे ॥ २३ ॥ त-
तोहसन्स भगवानसुरैर्निरपत्रपैः । अन्वीयमानस्तरसा क्रुद्धोभीतःपरापतत् ॥२४॥
सउपव्रज्यवरदं प्रपन्नार्तिहरंहरिम् । अनुग्रहायभक्तानामनुरूपात्मदर्शनम् ॥ २५ ॥
पाहिमांपरमात्मंस्ते प्रेषणेनाऽसृजंप्रजाः । ताइमायभितुंपापा उपाक्रामन्तिमांप्रभो
२६॥ त्वमेकःकिललोकानां क्लिष्टानांक्लेशनाशनः त्वमेकःक्लेशदस्तेषामनासन्नपदांतव
॥२७॥ सोऽवधार्यास्यकार्पण्यं विविक्ताध्यात्मदर्शनः । विमुंचात्मतनुं घोरामित्यु
क्तोविमुमोचह ॥ २८॥ तांक्वणच्चरणांभोजां मदविह्वललोचनाम् काञ्चीकलापविल
सद्दुकूलच्छन्नरोधसम् ॥२९॥अन्योऽन्यश्लेषयोत्तुङ्गनिरन्तरपयोधराम्।सुनासांसुद्वि
जां स्निग्धहासलीलाऽवलोकनाम् ॥३०॥ गूहन्तींव्रीडयात्मानं नीलालकवरूथिनीम्
उपलभ्यासुराधर्म सर्वेसंमुमुहुःस्त्रियम् ॥३१॥अहोधैर्यमहोरूपमहोअस्यानवंवयः।

तो पंचपर्वा की रचना की जैसे तामिश्र, अन्धतामिश्र तम, मोह, महातम ॥ १८ ॥ उस तममय आत्मा की देहको जब ब्रह्माजीनें त्यागन किया तो उससे रात्रि प्रगटहुई जिसमें, भूख और प्यास की उत्पत्ति है और जिसको तमोगुणी यक्ष तथा राक्षसों ने ग्रहण किया ॥ १९ ॥ वह यक्ष और राक्षस भूख प्यास से आतुर होकर ब्रह्माजी के खाने के हेतु दौड़े उसमें से कितने एकने कहा कि इसकी रक्षा मतकरो और कितनोहीं नें कहा कि इसे खाजावो ॥ २० ॥ तब व्याकुल होकर ब्रह्माजीने उनसे कहा कि तुम दोनों जिन्होंने रक्षा मतकरो कहा वह राक्षस और जिन्होने कहा कि खाजावो' वह यक्ष नामक मेरी प्रजा हुये, ॥ २१ ॥ कांति से प्रकाशमान जिन २ देवताओं को ब्रह्माजी नें उत्पन्न किया, उन २ देवताओं नें ब्रह्माजी के छोड़े हुये प्रकाश दिन रूप देह को धारण किया ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी नें अति लोलुप, चंचल असुरों को जंघा से प्रगट किया' वह स्त्री लंपट होनें के कारण उन्हीं से मैथुन करने को दौड़े ॥ २३ ॥ इसके उपरांत भगवान ब्रह्माजी हंसते हुए, निर्लज्ज असुरों को पीछे लगा देख शीघ्रता पूर्वक आतेहुए जान क्रोध युक्त हो वहां से भय खाकर भागचले ॥२४॥ उन ब्रह्माजी नें, भक्तों के दुःख दूर करनेंवाले शरणागतों के रक्षक अवतारधारी परमेश्वरकी शरणली॥२५॥और कहा कि हे भगवान! आपकी आज्ञानुसार मैंने सृष्टिकी रचना की है अब यह सम्पूर्ण प्रजा मेरे संग मैथुन करने को उद्यत हुई है ॥ २६ ॥ आपही दुःखियों के दुःख दूर करनेवाले तथा उत्पथ मार्ग के ग्रहण करनेवालों को क्लेश देने वाले हो ॥ २७ ॥ वे अंतर्यामी भगवान, ब्रह्मा जी के आतुरवाक्य सुन उन की ओर देखकर बोले कि हे ब्रह्मन्! इस अपनी घोर देह को शीघ्रही त्यागन करो इस बात के सुनतेही ब्रह्मा जीने उस देह को त्याग दिया ॥ २८ ॥ जिस के नूपुर शब्दायमान हैं तथा मद से नेत्र विह्वल होरहे हैं और कटिप्रदेश में क्षुद्र घंटिका प्रकाशित होरही है ॥ २९ ॥ जिस के कुच दोनों आपसमें ऊंचे हैं, सुन्दर नाक, सुंदर दांत, प्रेम युक्त हास्य और लीला पूर्वक जिसका देखना है ॥ ३० ॥ हे विदुर! जो लाज से अपनी देह को ढांकती है तथा नील अलकावली से शोभित है ऐसी उस स्त्री को देख कर सम्पूर्ण दैत्य मोह को प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ और कहने लगे कि इस का रूप, इसकी धैर्यता, इस

मध्येकामयमानानामकामेव विसर्पति ३२ वितर्कयन्तोबहुधातां संध्यांप्रमदाकृतिम्। अभिसंभाव्यविश्रम्भात्पर्यपृच्छन्कुमेधसः ॥३३॥ कासिकस्यासिरम्भोरु कोवाऽर्थस्तेऽत्रभामिनि। रूपद्रविणपण्येन दुर्भगान्नोविबाधसे ॥ ३४ ॥ यावाकाचित्त्वमबले दिष्ट्यासंदर्शनंतव। उत्सुनोषीक्षमाणानां कन्दुकक्रीडयामनः ॥३५॥ नैकत्रतेजयति शालिनीपादपद्मंघ्नन्त्यामुहुः करतलेनपतत्पतंगम्। मध्यंविषीदतिबृहत्स्तनभारभीतं शान्तेवदृष्टिरमलासुशिखासमूहः ॥ ३६ ॥ इतिसायंतनीसंध्यामसुराःप्रमदायतीम् प्रलोभयन्तींजगृहुर्मत्वामूढधियःस्त्रियम् ॥३७॥ प्रहस्यभावगम्भीरं जिघ्रन्त्यात्मानमात्मना कान्त्याससर्जभगवान् गन्धर्वाप्सरसांगणान् ॥ ३८ ॥ विससर्जतनुंतांवैज्योत्स्नांकान्तिमतींप्रियाम् । तएवचाददुःप्रीत्या विश्वावसुपुरोगमाः ॥३९ ॥ सृष्ट्वाभूतपिशाचांश्चभगवानात्मतन्द्रिणा । दिग्वाससोमुक्तकेशान्वीक्ष्यचामीलयद्दृशौ ॥४०॥ जगृहुस्तद्विसृष्टां तांजृम्भणाख्यांतनुंप्रभोः । निद्रामिन्द्रियविक्लेदो यथाभूतेषुदृश्यते ॥ ४१ ॥ येनोच्छिष्टान्धर्षयन्ति तमुन्मादंप्रचक्षते । ऊर्जस्वन्तंमन्यमान आत्मानंभगवानजः । साध्यान्गणान्पितृगणान्परोक्षेणासृजत्प्रभुः ४२॥ तआत्मसर्गंतंकायं पितरःप्रतिपेदिरे। साध्येभ्यश्चपितृभ्यश्च कवयोयद्वितन्वते ॥ ॥ ४३ ॥ सिद्धान्विद्याधरांश्चैव तिरोधानेनसोऽसृजत्। तेभ्योऽददात्तमात्मानमन्तर्धानाख्यमद्भुतम् ॥ ४४ ॥ सकिन्नरांकिंपुरुषांप्रत्यात्म्येनासृजत्प्रभुः । मानयन्नात्मनाऽऽत्मानमात्माभासंविलोकयन् ॥ ४५ ॥ तेतुतज्जगृहूरूपं त्यक्तंयत्परमेष्ठिना । मि

की नवीन अवस्था को देखो, हम इसकी कामना करते हैं परन्तु यह अकाम की समान चली जाती है ॥ ३२ ॥ अनेक प्रकार की तर्कना करते हुए संध्या काल में उस स्त्री का सुंदर स्वरूप देख उन कुबुद्धियों नें आदर पूर्वक उससे पूछा ॥ ३३ ॥ कि हे केलाकी सदृश जंघा वाली तू कौन है हे भामनि ! यहां तेरा क्या प्रयोजन है, तू रूप के द्रव्य के व्यवहारसे हम दुर्भागियों को क्यों दुःख देती है ॥ ३४ ॥ हे अबला ! तू चाहे कोई क्योंनहो हमको क्या प्रयोजन परन्तु यह अत्युत्तम हुआ कि जो तेरे दर्शन हमको हुए, हमको अत्यन्त उत्कंठा होती है कि जब हम तेरे गेंद के खेलको देखते हैं ॥ ३५ ॥ हे जयति शालिनि ! बारम्वार हाथों से गेंद उछालनें के कारण तेरे कमल स्वरूपी चरण एकत्र नहीं रहते, बडे स्तनों के बोझसे तेरा मध्य भाग भ्रमित होरहाहै तेरी निर्मल शांत दृष्टि तथा सुंदर चोटी है ॥३६॥ सायंकाल की संध्यामें जो स्त्री रूपहै उनके लोभको उत्पादन किया उन मूढ़ों नें उसको स्त्री रूप से ग्रहण किया ॥ ३७ ॥ तदनंतर ब्रह्माजी नें गंभीरतापूर्वक हँसकर अपनी आत्मा से गंधर्व, अप्सराओंके समूह उत्पन्न किये ॥ ३८ ॥ अतिप्यारी कांतिवाली उस देह के त्यागकरने पर उसे गन्धर्वों ने ग्रहण किया ॥ ३९ ॥ फिर ब्रह्माजी ने अपनीतन्द्रासे भूत, पिशाच आदिकों को उत्पन्न किया, उन्हें नग्न तथा छुटे केशवाले देख ब्रह्माजीने आंखें बंदकरलीं और उस देह का भी त्याग किया ॥ ४० ॥ ब्रह्माजी के त्यागेहुए उस जृंभारूप को भूतादिकों ने ग्रहण किया, उस से उत्पन्नहुई निद्रा इन्द्रियों को वशमें करनेवाली है किजो सब जीवों में व्याप्त है । जिस से उच्छिष्ट को घिसते हैं उस को उन्माद कहते हैं, उन्माद से सब जीवों को महा क्लेश होता है ॥ ४१ ॥ फिर ब्रह्माजीने अपनीआत्मा को बड़ा पराक्रमी मान साध्यगण तथा पितृगणों को उत्पन्न किया ॥ ४२ ॥ आत्मा से उत्पन्न उस देहको साध्य और पितृगण प्राप्त हुए कि जिस देह को बिवेकी लोग हव्य देते हैं ॥ ४३ ॥ सिद्ध और विद्याधरों को गुप्त होकर रचा और उनको अन्तर्ध्यान नाम अद्भुत देहदी ॥ ४४ ॥ फिर अपने मनसे ब्रह्माजीने अपने आत्मा को मानंदकर अपने प्रतिबिम्बसे किन्नर और किंपुरुषों को उत्पन्न

थुनीभूयगायन्तस्तमेवोषसिकर्मभिः ॥ ४६ ॥ देहेनवैभोगवता शयानोबहुचिन्तया । सर्गेऽनुपचितेक्रोधा दुत्ससर्जहतद्वपुः ॥ ४७ ॥ येऽहीयन्ताऽमुतःकेशा अहयस्तेङ्गजज्ञिरे । सर्पाःप्रसर्पतःक्रूरानागाभोगोरुकन्धराः ॥ ४८ ॥ सआत्मानंमन्यमानः कृतकृत्यमिवात्मभूः । तदामनून्ससर्जांते मनसालोकभावनान् ॥४९॥ तेभ्यःसोऽत्यसृजत्स्वीयं पुरंपुरुषमात्मवान् । तान्दृष्ट्वायेपुरासृष्टा प्रशशंसुः प्रजापतिम् ॥ ५० ॥ अहोएतज्जगत्स्रष्टः सुकृतंबततेकृतम् । प्रतिष्ठिताक्रियायस्मिन्साकमन्नमदामहे ॥५१॥ तपसाविद्ययायुक्तो योगेनसुसमाधिना । ऋषीनृषिर्हृषीकेशः ससर्जाभिमताःप्रजाः ॥ ५२ ॥ तेभ्यश्चैकैकशःस्वस्य देहस्यांशमदादजः । यत्तत्समाधियोगर्द्धितपोविद्याविरक्तिमत् ॥ ५३ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेतृतीयस्कन्धेसर्गवर्णनंनामाविंशतितमोऽध्यायः २० ॥

विदुरउवाच ॥ स्वायम्भुवस्यच मनोर्वंशःपरमसंमतः । कथ्यतांभगवन्यत्र मैथुनेनैधिरेप्रजाः ॥१ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौसुतौ स्वायंभुवस्यवै । यथाधर्मंजुगुपतुः सप्तद्वीपवतींमहीम् ॥ २ ॥ तस्यवैदुहिताब्रह्मन्देवहूतीतिविश्रुता । पत्नीप्रजापतेरुक्ता कर्दमस्यत्वयानघ ॥ ३ ॥ तस्यांसवैमहायोगी युक्तायांयोगलक्षणैः । ससर्ज कतिधावीर्यं तन्मेशुश्रूषवेवद ॥ ४ ॥ रुचिर्योभगवान्ब्रह्मन् दक्षोवाब्रह्मणःसुतः । यथाससर्जभूतानि लब्ध्वाभार्यांचमानवीम् ॥ ५ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ प्रजाःसृजेति भगवान्कर्दमो ब्रह्मणोदितः । सरस्वत्यांतपस्तेपे सहस्राणांसमादश ॥ ६ ॥ ततः समाधियुक्तेन क्रियायोगेनकर्दमः । संप्रपेदेहरिंभक्त्या प्रपन्नवरदाशुषम् ॥ ७ ॥

किया ॥ ४५ ॥ जिस देह का ब्रह्मा जीने त्यागन कियाथा उसी को उन्होंने ग्रहण किया वह परस्पर मिलकर श्रेष्ठ कर्म करने लगे ॥ ४६ ॥ जब सर्गरचना न हुई तो ब्रह्माजीने बड़ी चिन्ता कर हाथ पांव फैला क्रोधकर उस देह को त्याग दिया ॥४७॥ उस देह के केशों से अहि (सांप) और कंधे से बड़े मोटे फनवाले नाग उत्पन्न हुए ॥ ४८ ॥ फिर ब्रह्माजी ने अपने आत्माको कृतकृत्यमाना और अन्त में मनसे लोकभावन मनुको उत्पन्न किया ॥ ४९ ॥ उन के निमित्त ब्रह्माजीने उन को अपनी पुरुषाकार देहदी । जो पहिले उत्पन्न हुएथे उन्होंने मनुके उत्पन्नहोनेसे ब्रह्माजी की बड़ी प्रशंसा की ॥ ५० ॥ हे जगत्स्रष्टा ! आपने अत्युत्तम किया आपने बड़ाही सुकृत किया, अब हम सबको अन्न भक्षण करने को मिलेगा ॥ ५१॥ फिर ब्रह्माजी ने तप विद्या तथासमाधि से योग्य ऋषियों को उत्पन्न किया ॥ ५२ ॥ और उन एक २ को अपनी देहका अंश दिया कि जिस से समाधियोग में ऋद्धि और तप, विद्या तथा वैराग्य युक्तहुए ॥ ५३ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणे तृतीयस्कन्धेसरलभाषाटीकायांविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

विदुरजीने कहा कि—स्वायंभूमनुका वंश जो परम माननीय है हे भगवन्! जिसमें मैथुन धर्म से प्रजाकी वृद्धि हुई उसका मुझसे वर्णनकरिये॥१॥प्रियव्रत औरउत्तानपाद इनदोनों स्वायंभुवमनु के पुत्रोंने जिसप्रकारसे सातों द्वीप में धर्मपूर्वक राज्य किया ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! उन की देवहूती नामकन्या कि जिसको आपने प्रजापति कर्दमजीकी स्त्री कहा है ॥ ३ ॥ उस योग्य लक्षणोंवाली देवहूती कन्यासे महायोगी कर्दमजी के कितनी संतानें उत्पन्न हुई वह मैं सुनाचाहताहूं ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! रुचिभगवान ने आकूति और दक्ष प्रजापति ने प्रसूति को पाकर किस भांति सृष्टि रचनाकी ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी ने कहा कि–हे विदुर ! ब्रह्माजी ने कर्दमजी को आज्ञादी कि हे बेटा ! तुम सृष्टिरचनाकरो, यह सुन ब्रह्माजी के प्रेरेहुए कर्दमजी ने सरस्वती तटपर दससहस्र वर्ष तप किया ॥ ६ ॥ इस के अनन्तर कर्दमजी समाधियुक्त, भक्तियोग से परमेश्वरको प्राप्त हुए॥ ७॥

तावत्प्रसन्नोभगवान्पुष्कराक्षः कृतेयुगे । दर्शयामासतंक्षत्तः शाब्दंब्रह्मदधद्वपुः
॥ ८॥ सतंविरजमर्काभं सितपद्मोत्पलस्रजम् । स्निग्धनीलालकव्रातवक्त्राब्जं वि-
रजोम्बरम् ॥ ९ ॥ किरीटिनंकुंडलिनं शंखचक्रगदाधरम् । श्वेतोत्पलक्रीडनकंमनः
स्पर्शस्मितेक्षणम् ॥ १० ॥ विन्यस्तचरणाम्भोजमंसदेशे गरुत्मतः । दृष्ट्वाखेऽव-
स्थितंवक्षः श्रियंकौस्तुभकन्धरम् ॥ ११ ॥ जातहर्षोऽपतन्मूर्ध्नाक्षितौलब्धमनोरथः
गीर्भिस्त्वभ्यगृणात्प्रीतिस्वभात्मा कृतांजलिः ॥ १२ ॥ ऋषिरुवाच ॥ जुष्टंबताऽ-
द्याऽखिलसत्त्वराशेः सांसिद्ध्यमक्ष्णोस्तवदर्शनान्नः । यद्दर्शनंजन्मभिरीड्य सद्भि-
राशासतेयोगिनोरूढयोगाः ॥ १३ ॥ येमाययातेहतमेधसस्त्वत्पादारविंदं भवसिं-
धुपोतम् । उपासतेकामलवायतेषां रासीशकामान्निरयेऽपियेस्युः ॥ १४ ॥ तथास
चाहंपरिवोढुकामः समानशीलांगृहमेधधेनुम् । उपेयिवान्मूलमशेषमूलं दुराशयः
कामदुघांघ्रिपस्य ॥ १५ ॥ प्रजापतेस्तेवचसाधीशतन्त्या लोकःकिलायंकामहतोऽ-
नुबद्धः । अहंचलोकानुगतोवहामि बलिंचशुक्लानिमिषायतुभ्यम् ॥१६॥ लोकांश्चलो
कानुगतान्पशूंश्च हित्वाश्रितास्तेचरणातपत्रम् । परस्परंत्वद्गुणवादसीधुपीयूषनिर्या
पितदेहधर्माः ॥ १७ ॥ नतेजराक्षभ्रमिरायुरेषां त्रयोदशारंत्रिशतंषष्टिपर्व । षण्ने-
म्यनंतच्छदियत्त्रिणाभिकरालस्रोतो जगदाच्छिद्यधावत् ॥ १८ ॥ एकःस्वयंसंज-
गतःसिसृक्षयाद्वितीययात्मन्नधियोगमायया । सृजस्यदःपासिपुनर्ग्रसिष्यसे यथो-

हे विदुर ! कमलदल नेत्र भगवान ने प्रसन्नहो शब्द ब्रह्म का रूप धर कर्दमजी को दर्शन दिया ॥ ८ ॥ उस स्वरूप की निर्मल स्वर्गवत् कांति है तथा सफेदकमल की मालापहिने और नील केशों से उनका मुख शोभित है तथा निर्मलवस्त्र पहिने ॥ ९ ॥ कोट, कुण्डल धारण किये हैं और मन्दमुसकान से देखते हैं ॥ १० ॥ गरुड़ के कन्धे पर चरण कमल तथा वक्षस्थल में लक्ष्मीजी को धारण किये और कौस्तुभ मणि पहिने उस रूपको आकाशमें आया देखकर ११ ॥ कर्दमजी अपनी इच्छाके प्राप्त होने से अत्यन्त प्रसन्न हुए और पृथ्वी पर माथाधर दण्डवतकर हाथ जोड़ स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥ कर्दमजी बोले कि हे ईश ! जिन के दर्शनों की अभिलाषा श्रेष्ठ योगी जन जो अनेक जन्मों मे योग साधन करते हैं रखते हैं उन्हीं अखिल सत्व आप के दर्शनों से मेरे नेत्र सफल हुये ॥ १३ ॥ हे ईश ! जोमनुष्य विषय सम्बन्धी तुच्छ सुखों के हेतु आप के कमल चरणों का किजो समुद्रतरने के हेतु नौकारूपी हैं भजन करते हैं उनको आपनरक में मिलनेवाले विषय सुख देते तो हो परन्तु उन की बुद्धि माया से नाश हुई जाननी चाहिये १४ वैसाही मैंभीहूं, क्योंकि मैं शीलस्वभाव स्त्रीके संग व्याह करने की इच्छा से आप के कमलरूपी चरणोंकी शरणमें किजो कल्पवृक्षकी भांति सबपुरुषार्थोंके देनेवाले हैं आयाहूं ॥१५॥ हे अधीश ! जैसे प्रजापति ब्रह्माकी वाणीरूप डोर से यह सम्पूर्ण जगत बँधाहुआ है,वैसेही मैंभी काल के भयसे आप शुक्ल और धर्ममूर्ति अनिमिष कालरूप आप को आपकी आज्ञापालन के हेतु प्रणाम करताहूं ॥ १६ ॥ लोकमें प्राप्तहुए पशुरूप पुरुषों का निरादरकरके जो मनुष्य आपके चरणरूपी छत्रके आश्रितहैं और आपके कथारूपअमृत से जिनकीभूखप्यासआदिक देहिकधर्म निवृत्तहोगये हैं ॥ १७॥ हे भगवान ! ऐसे भक्तों की आयुको आपका कालरूपी चक्र जिसके १३ महीन रूप आरा, ३६० दिन उसके पर्व (पुरजे) ६ ऋतु उसकी नेमी, क्षण, लवादिक जिसकी धारा, चातुर्मासादिक जिस की नाभि अर्थात् आधार भूत चक्र है तथा जिसका कराल प्रभावहै ऐसा सम्वत् सरात्मक काल चक्र कुछ नहीं करसकता ॥ १८ ॥ आप अकेले ही प्रथम उत्पन्न हुए फिर सृष्टि सृजने की इच्छा से दूसरी योग मायाको उत्पन्न किया जिससे इस विश्वको मकड़ी के जाले की भांति रचते

णैनाभिर्भगवद्स्वशक्तिभिः ॥ १९ ॥ नैतद्बताऽधीशपदंतवेप्सितं यन्मायथानस्तनु
षेभूतसूक्ष्मम् । अनुग्रहायास्त्वपियर्हिमायया लसत्तुलस्यातनुवाविलक्षितः ॥२०॥
तंत्वाऽनुभूत्योपरतक्रियार्थं स्वमाययावर्तितलोकतन्त्रम् । नमाम्यभीक्ष्णंनमनीय
पादसरोजमल्पीयसिकामवर्षम् ॥ २१ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ इत्यव्यलीकंप्रणतोऽब्ज-
नाभस्तमावभाषे वचसाऽमृतेन । सुपर्णपक्षोपरिरोचमानः प्रेमस्मितोद्वीक्षणाविभ्र-
मद्भ्रूः ॥ २२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ विदित्वातवचैत्यंमेपुरैवसमयोजितत् । यद
र्थमात्मनियमैस्त्वयैवाहंसमर्चितः ॥ २३ ॥ नवैजातुमृषैवस्यात्प्रजाध्यक्षमदर्हण-
म् । भवद्विधेष्वातितरांमयि संगृभितात्मनाम् ॥ २४ ॥ प्रजापतिसुतःसम्राड् मनु
र्विख्यातमङ्गलः । ब्रह्मावर्तंयोऽधिवसञ्छास्ति सप्तार्णवांमहीम् ॥ २५ ॥ सचेहवि
प्रराजर्षिर्महिष्याशतरूपया । आयास्यतिदिदृक्षुस्त्वां परश्वोधर्मकोविदः ॥ २६ ॥
आत्मजामसितापांगीं वयःशीलगुणान्विताम् । मृगयन्तींपतिं दास्यत्यनुरूपायतेप्र
भो ॥ २७ ॥ समाहितंतेहृदयं यत्रेमान्परिवत्सरान् । सात्वांब्रह्मन्नृपवधूः काममा-
शुभजिष्यति ॥ २८ ॥ यातआत्मभृतंवीर्यं नवधाप्रसविष्यति । वीर्येत्वदीयेऋषय
आधास्यन्त्यञ्जसात्मनः ॥ २९ ॥ त्वंचसम्यगनुष्ठाय निदेशंमउशत्तमः । मयितीं
र्थीकृताशेषक्रियाऽर्थो मांप्रपत्स्यसे ॥ ३० ॥ कृत्वादयांचजीवेषु दत्त्वाचाभयमात्म
वान् । मय्यात्मानंसहजगत्द्रक्ष्यस्यात्मनिचापिमाम् ॥ ३१ ॥ सहाहंस्वांशकलया
त्वद्वीर्येणमहामुने । तवक्षेत्रेदेवहूत्यां प्रणेष्येतत्त्वसंहिताम् ॥ ३२ ॥ मैत्रेयउवाच ॥

पालते तथा संहार करते हो ॥ १९ ॥ हे अधीश ! आप अपनी माया से भक्तों को मनोवांछित फल देते हो यह आपका अनुग्रह है । आपका तुलसी की माला से शोभित स्वरूप दर्शन करने वालोंको भुक्ति, मुक्तिका दाता है ॥ २० ॥ आप अपनी माया से सृष्टिको सृजते हो और सकाम पुरुषों को विषय सुख देते हो, हे भगवान ! ज्ञानके प्रभाव से जिनमें से कर्म फलका भोग उपराम होगया है तथा जिनके कमल स्वरूपी चरण वारंवार नमस्कार के योग्य हैं उन आपको, मैं बारंबार नमस्कार करता हूं ॥ २१ ॥ मैत्रेय जी ने कहा कि—जब कर्दम जी ने इस भांति निश्छल भाव से गरुड़ के ऊपर विराजमान भगवान की स्तुति की तो भगवान स्नेह सहित मंद मुसकान से उन की ओर देख भृकुटी को घुमा, अमृत रूपी वाणीबोले ॥ २२ ॥ हे ऋषे ! जिस हेतु तुमने नियम धारण कर मेरी अर्चना की है उसको मैंने जानकर पहिले ही से प्रबंध करादिया है ॥२३॥ हे प्रजाओं मे श्रेष्ठ ! जो मेरा पूजन करते हैं उनकी पूजा कभी निष्फल नहीं होती फिर इसमें तुम्हारी समान महात्माओं की पूजाके सफल होने में क्या संदेह है ॥ २४ ॥ प्रजापति के पुत्र चक्रवर्ती विख्यात राजामनु किजो ब्रह्मावर्त (विठूर) देश में वैठे हुये सातद्वीप नौखंड पृथ्वी की रक्षा करते हैं ॥ २५ ॥ वह धर्म वेत्ताओं में श्रेष्ठ राजर्षि अपनी स्त्री के संग परसों आपके दर्शनों को यहां आवेंगे ॥ २६ ॥ सो आपको अपनी पुत्रीके योग्य देखकर हे प्रभो ! सुंदर कटाक्ष वाली अवस्था शीलगुणयुक्त कन्या को देजायगे ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! वह राज कन्या बहुत बर्षोंतक आप की इच्छित सेवा करेगी ॥ २८ ॥ इस भांति उसमें से आपके वीर्य्य से ९ कन्या उत्पन्न होंगी, और उन पुत्रियों को ऋषिधारण करेंगे ॥ २१ ॥ और आपभी भली प्रकार मेरा अनुष्ठान कर मेरी आज्ञा का पालन कर सब कर्म फल मुझको समर्पण कर मुझे प्राप्त होगे ॥ ३० ॥ सब जीवोंपर दयाकर आत्म ज्ञानीहो सबको अभय दानदे आत्मा रूप मुझको सम्पूर्ण जगत में देखोगे और अपने आपमेंभी मुझे देखोगे ॥ ३१ ॥ हे महामुने ! मैं भी अपनी अंश, कला से तुम्हारे वीर्य से तुम्हारी देवहूती स्त्री मे अवतार ले तत्व संहिता कहूंगा ॥ ३२ ॥ मैत्रेय जी ने कहा कि

पर्वतमनुभाष्याथ भगवान्प्रत्यगक्षजः । जगामबिन्दुसरसःसरस्वत्यापरिश्रितात् ॥ ३३ ॥ निरीक्षतस्तस्ययथावशेषसिद्धेश्वराभिष्टुतसिद्धमार्गः आकर्णयन्पत्ररथेंद्रपक्षैरुच्चारितं स्तोममुदीर्णसाम ॥ ३४ ॥ अथसंप्रस्थितेशुक्ले कर्दमोभगवानृषिः । आस्तेस्मबिंदुसरसि तंकालंप्रतिपालयन् ॥ ३५ ॥ मनुःस्यन्दनमास्थाय शातकौम्भपरिच्छदम्। आरोप्यस्वांदुहितरं सभार्यःपर्यटन्महीम् ॥ ३६ ॥ तस्मिन्सुधुन्वन्नहनि भगवान्यत्समादिशत् । उपायादाश्रमपदंमुनेः शान्तव्रतस्यतत् । ॥ ३७ ॥ यस्मिन्भगवतो नेत्रान्न्यपतन्नश्रुबिन्दवः । कृपयासंपरीतस्य प्रपन्नेऽर्पितयाभृशम् ॥ ३८ ॥ तद्वैबिन्दुसरोनाम सरस्वत्यापरिप्लुतम् । पुण्यंशिवामृतजलं महर्षिगणसेवितम् ॥ ३९ ॥ पुण्यद्रुमलताजालैःकूजत्पुण्यमृगद्विजैः । सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं वनराजिश्रियाऽन्वितम् ॥ ४० ॥ मत्तद्विजगणैर्घुष्टं मत्तभ्रमरविभ्रमम् । मत्तबर्हिनटाटोपमाह्वयन्मत्तकोकिलम् ॥ ४१ ॥कदम्बचम्पकाशोककरञ्जबकुलाशनैः । कुन्दमन्दारकुटजैश्चूतपोतैरलंकृतम् ॥ ४२ ॥ कारण्डवैःप्लवैर्हंसैःकुररैर्जलकुक्कुटैः । सारसैश्चक्रवाकैश्च चकोरैर्वल्गुकूजितम् ॥ ४३ ॥ तथैवहरिणैःक्रोडैः श्वाविद्गवयकुंजरैः।गोपुच्छैर्हरिभिर्मर्कैर्नकुलैर्नाभिभिर्वृतम् ॥४४॥ प्रविश्यतत्तीर्थवरमादिराजःसहात्मजः । ददर्शमुनिमासीनं तस्मिन्हुतहुताशनम्। विद्योतमानं वपुषातपस्युग्रयुजाचिरम्।नातिक्षामंभगवतःस्निग्धापांगावलोकनात् तद्व्याहृतामृतकलापीयूषश्रवणेनच ॥ ४६ ॥ प्रांशुंपद्मपलाशाक्षं जटिलंचीरवाससम् उपसं

हे विदुर ! भगवान ऐसे प्रगट हो कर्दम जी से इस भांति कह विंदुसर सरस्वती के तट से परम धामको चलेगये ॥ ३३ ॥ जिस वैकुंठ मार्गकी सम्पूर्ण सिद्धेश्वर स्तुति करते हैं ऐसे तथा गरुड़ के पंखों से उच्चारण हुई साम वेद की ऋचायें सुनते ॥ ३४ ॥ भगवान जब चलेगये तब कर्दम जी सरस्वती के तटपर विराज मनुके आनेकी वाट जोहने लगे ॥ ३५ ॥ स्वायंभूमनु सोने की सामग्री वाले रथमें बैठकर, अपनी कन्या तथा शतरूपा स्त्री को संगले पृथ्वी पर्यटन करने को चलदिये ॥ ३६ ॥ हे विदुर! राजा विचरते२ उसी दिन जिस दिन भगवान ने कहाथा शांतव्रत मुनिके आश्रम में आये, जहां कर्दम ऋषिने विवाह के हेतु तप कियाथा ॥ ३७ ॥ जिस सरोवर में भगवान के अश्रु शरणागत कर्दम जी पर कृपाके कारण गिरेथे ॥ ३७ ॥ इसी से उसको विंदुसर कहते हैं, जहांपर सरस्वती नदी बह रही है और जिस में पुण्य पवित्र अमृत रूपी जल, ऋषिगणों का सेवनीय भराहै और जो सदैव पुण्यकारी है ॥३९॥ जिसके किनारे पर पवित्र वृक्ष तथा लता समूह शोभायमान हैं और जिनपर सुंदर पक्षी शब्द कररहे हैं तथा सब ऋतुओं में फल फूलों से पूर्ण हैं वन पंक्तियों से शोभायमान है ॥४० ॥जहां मतवारे पक्षी बास करते तथा मतवारे भौंरेगुंज रहे हैं और मतवारे मोर तथा मतवारी कोकिला बोलरही हैं॥ ४१ ॥ जहां कदंब, चम्पा, अशोक, करौंदा, जामुन, मौलसिरी,कटहर, बडहर,कुंद, मंदार, कुडा और आमादिक वृक्ष शोभायमान हैं ॥ ४२ ॥ जहां कुरंव, हंस, टिटिहरी, सारस, चकवा, चकई, और चकोर सुंदर शब्द कररहे हैं ॥ ४३ ॥ वैसेही वहां हरिण, वाराह, रोम, हाथी, सुरागऊ, वंदर, न्यौला, मृग फिर रहे हैं ॥ ४४ ॥ ऐसे आश्रम में विराजे हुये कर्दम जी को किजो हवन करके बैठेही थे, आदि राजा स्वायंभुवमनुने अपनी दुहिता समेत देखा ॥ ४५ ॥ जिनकी देह उग्रतप से प्रकाशित होरही थी, तपसे कृश होनेपर भी भगवान के स्नेह युक्त देखने के कारण अतिकृश नहीं थे ॥ ४६ ॥ परमेश्वर के भाषण रूप अमृत की सदृश, कला सम्बन्धी, अमृत का सेवन करते हुए, कमल

सत्यमलिनं यथार्हणमसंस्कृतम् ॥ ४७ ॥ अथोटजमुपायातं नृदेवंप्रणतंपुरः सपर्यया पर्यगृह्णात्प्रतिनन्द्यानुरूपया ॥ ४८ ॥ गृहीतार्हणमासीनं संयतंप्रीणयन्मुनिः। स्मरन्भगवदादेशमित्याह श्लक्ष्णयागिरा ॥ ४९ ॥ नूनंचंक्रमणंदेव सतांसंरक्षणाय ते। वधायचासतांयस्त्वंहरेःशक्तिर्हिपालिनी ॥ ५० ॥ योऽर्केन्द्वग्नीन्द्रवायूनांयमधर्मप्रचेतसाम्। रूपाणिस्थानआधत्सेतस्मैशुक्लायतेनमः ॥ ५१ ॥ नयदारथमास्थाय जैत्रंमणिगणार्पितम्। विस्फूर्जयच्चण्डकोदण्डो रथेनत्रासयन्नघान् ॥ ५२ ॥ स्वसैन्यचरणक्षुण्णं वेपयन्मण्डलंभुवः। विकर्षन्बृहतींसेनां पर्यटस्यंशुमानिव ॥ ५३ ॥ तदैव सेतवःसर्वे वर्णाश्रमनिबन्धनाः। भगवद्रचिताराजन् भिद्येरन्बतदस्युभिः अधर्मश्चसमेधेत लोलुपैर्व्यंकुशैर्नृभिः। शयानेत्वयिलोकोऽयंदस्युग्रस्तोविनंक्ष्यति ५५ ॥ अथापिपृच्छेत्वां वीरयदर्थंत्वमिहागतः। तद्वयंनिर्व्यलीकेनप्रतिपद्यामहेहृदा ५६ ॥

इतिश्रीमद्भा० तृतीय० एकविंशतिमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

मैत्रेयउवाच ॥ एवमाविष्कृताशेषगुणकर्मोदयोमुनिम्। सव्रीडइवतंसम्राडुपारतमुवाचह ॥ १ ॥ मनुरुवाच ॥ ब्रह्माऽसृजत्स्वमुखतो युष्मानात्मपरीप्सया। छन्दोमयस्तपोविद्यायोगयुक्तानलम्पटान् ॥ २ ॥ तत्त्राणायासृजच्चास्मान् दोःसहस्रात्सहस्रपात्। हृदयंतस्यहिब्रह्म क्षत्रमंगंप्रचक्षते ॥ ३ ॥ अतोह्यन्योन्यमात्मानं ब्रह्मक्षत्रंचरक्षतः। रक्षतिस्माव्ययोदेवः सयःसदसदात्मकः ॥ ४ ॥ तवसंदर्श

दल नेत्र तथा जटाओं को धारण किये हुए और वल्कल वस्त्र पहिरे ॥ ४७ ॥ कर्दम मुनि को कि जो मलिन तथा पूजा के योग्य हैं जिनके देह का संस्कार नहीं है ऐसा देख उनके निकट जाय पर्णशाला के समीप पहुंच उनको प्रणाम किया फिर मुनिने आशीर्वाद दे पूजा कर राजाको ग्रहण किया ॥ ४८ ॥ कर्दमजी मनुजी को नियम सहित बैठा देख उनको प्रसन्न करते हुए परमेश्वर के वचनों का स्मरण कर मीठी वाणी से बोले ॥ ४९ ॥ हे राजा ! आप लोगों का विचरना केवल महात्माओं की रक्षा और दुष्टों के संहार केही हेतु होता है क्योंकि आप परमेश्वर की पालन शक्ति हो ॥ ५० ॥ जो सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, इन्द्र, पवन, यम, धर्म, और प्रचेता इनका रूप धारणकर स्थान२ में सबकार्य करते हुए उन शुक्ल रूप आपको मेरा नमस्कार है ॥ ५१ ॥ जो आप मणि जटित बिजयी रथपर सवार हो प्रचंड धनुष की टंकार से पापियों को त्रास देते ॥ ५२ ॥ और अपनी सेना के चरणों से पृथ्वी मण्डल को कंपाते हुए तथा सेना को खींचते हुए सूर्य की भांति नहीं घूमो तो ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! परमेश्वर की बांधी हुई वर्णाश्रम के बंधन की मर्यादा तत्काल दुष्टों के द्वारा भेदको प्राप्त होजावे ॥ ५४ ॥ और निरंकुश तथा खोटे मनुष्यों से अधर्म बढ़जाय यदि आप निश्चित हो जावें तो यह संसार चोरों से नाशको प्राप्त होजाय ५५ ॥ हे बीर ! मैं तुम से पूछता हूं कि आप यहां किस हेतु आयेहो आप निष्कपट हृदय होकर मुझसे कहिये वह आपकी आज्ञा मैं पूर्ण करूं ॥ ५६ ॥

इतिश्रीभागवते महापुराणे० तृतियस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

मैत्रेयजी बोले कि—जिनके गुण कर्म का प्रकाश संसार में होरहा है, सो मनु लज्जा वालोंकी नाईं लज्जा करके अत्यन्त हर्षित हो ॥ १ ॥ मनुजी बोले हे मुनिराज ! ब्रह्माजी नें आत्मा के जाननें की इच्छा से वेद विद्या, तथा योगयुक्त आप लोगों को अपनें मुंह से प्रगट कियाहै ॥ २ ॥ और उन्हीं ब्रह्माजी नें आप लोगों की रक्षा के हेतु अपनें हजार हाथों से हम (क्षत्रियों) को प्रगट किया है कारण कि ब्राह्मण उनका हृदय और क्षत्री उनकी भुजा हैं ॥ ३ ॥ इसी हेतु यह दोनों ब्राह्मण और क्षत्री आपस में अपनें आत्मा की रक्षा करते हैं और इन दोनों वर्णों की अ-

नादेव च्छिन्नामेसर्वसंशयाः । यत्स्वयंभगवान्प्रीत्या धर्ममाहरिरक्षिषोः॥५॥दिष्टया मेभगवान्दृष्टो दुर्दर्शोयोऽकृतात्मनाम् । दिष्ट्यापादरजःस्पृष्टं शीर्ष्णामेभवतःशिवम् ॥ ६ ॥ दिष्ट्यात्वयानुशिष्टोऽहं कृतश्चानुग्रहोमहान् । अपावृतैःकर्णरन्ध्रैर्जुष्टा दिष्ट्योशतीर्गिरः ॥ ७ ॥ सभवांदुहितृस्नेहपरिक्लिष्टात्मनोमम । श्रोतुमर्हसिदीनस्यश्रावितंकृपयामुने ॥ ८ ॥ प्रियव्रतोत्तानपदोः स्वसेयंदुहितामम । अन्विच्छति पतिंयुक्तंवयः शीलगुणादिभिः ॥९ ॥ यदातुभवतःशीलश्रुतरूपवयोगुणान् । अशृणोन्नारदादेषा त्वय्यासीत्कृतनिश्चया ॥ १० ॥ तत्प्रतीच्छद्विजाग्र्येमां श्रद्धयोपहृतांमया । सर्वात्मनानुरूपांते गृहमेधिषुकर्मसु ॥ ११ ॥ उद्यतस्यहिकामस्य प्रतिवादोनशस्यते । अपिनिर्मुक्तसङ्गस्य कामरक्तस्यकिंपुनः ॥ १२ ॥ यउद्यतमनादृत्य कीनाशमभियाचते । क्षीयतेतद्यशःस्फीतं मानश्चावज्ञयाहतः ॥ १३ ॥ अहंत्वाशृणवं विद्वन्विवाहार्थंसमुद्यतम् । अतस्त्वमुपकुर्वाणः प्रत्तांप्रतिगृहाणमे ॥१४॥ऋषिरुवाच ॥ बाढमुद्वोढुकामोऽहमप्रत्ता चतवात्मजा । आवयोरनुरूपोऽसावाद्यो वैवाहिकोविधिः ॥ १५ ॥ कामःसभूयान्नरदेवतेऽस्याः पुत्र्याःसमाम्नायविधौप्रतीतः । कएवतेतनयांनाद्रियेतस्वयैव कान्त्याक्षिपतीमिवश्रियम् ॥ १६ ॥ यांहर्म्यपृष्ठेक्वणदंघ्रिशोभां विक्रीडतींकन्दुकविह्वलाक्षीम् । विश्वावसुर्न्यपतत्स्वाद्विमानाद्विलोक्य संमोहविमूढचेताः ॥ १७ ॥ तांप्रार्थयन्तीं ललनाललाममसेवितश्रीचर

तर्यामी, अविनाशी परमेश्वर रक्षा करते हैं ॥ ४ ॥ हे देव ! आपके दर्शनों से मेरे सम्पूर्ण संदेह दूर होगये क्यों कि आपनें स्वयंही स्नेह से राजधर्म का बरणन किया ॥ ५ ॥ उन प्रभु का दर्शन कि जिनका दर्शन बिषयी पुरुषों को अति दुस्तर है मुझे हुआ यह अत्यन्त मंगलहुआ, और आपके कमल स्वरूपी चरणों की धूल मेरे शिरमें लगी यह अत्यंत ही उत्तम हुआ ॥ ६ ॥ यह आपकी बड़ी ही कृपा है कि-आपने मुझे शिक्षा दी और मेरे रुके हुये कानों के छिद्रों में आप की सुन्दर बाणी सुनने में आई ॥ ७ ॥ हे मुने ! दुहिता के स्नेह से मेरामन अत्यंत दुःखित है और मैं दीन होरहा हूं आप मेरी बिनती को कृपा पूर्वक सुनिये ॥ ८ ॥ यह प्रियव्रत तथा उत्तानपादकी भगनी, मेरी बेटी अपने योग्य अवस्था, तथा शीलवान पति की इच्छा करती है ॥ ९ ॥ हे मुने ! जबसे इसने आपके शील, शास्त्र, रूप, वय, और गुणों को नारद जी के मुख से सुना है तब से इसने आपको बरने का निश्चय करलिया है ॥ १० ॥ हे द्विजाग्र ! इसी हेतु मैं श्रद्धा पूर्वक इस अपनी दुहिता को देता हूं आप इसे स्वीकार करें आपके गृहस्थ कार्य्य करने को यह सब प्रकार योग्य है ॥ ११ ॥ जोवस्तु आप घरबैठे मिलजाय उसका त्यागना उचित नहीं जो सब सङ्गसे निर्मुक्त है, उसकी तो बातही क्या है ॥ १२ ॥ जो घरआई वस्तुका निरादर करते हैं और फिर कृपण के निकट जाकर याचना करै हैं उन पुरुषों का उज्वल यश नाशको प्राप्त हो जाता है और अवज्ञा से उनका मान भंग होजाता है ॥ १३ ॥ हे विद्वन् ! मैंने सुनाथा कि आप विवाह करने पर उद्यत हैं इसी से मैं इस कन्या को देता हूं आप स्वीकार करो ॥ १४ ॥ कर्दम ऋषिने कहा—कि बहुत अच्छा मुझे भी विवाह की कामना है यह आप की कन्या बड़ी गुणवान तथा शीलवान है हम दोनो का आद्य विवाह सब भांति से योग्य है ॥ १५ ॥ हे नरदेव ! वेद की बिधिसे आप की कन्याको ब्याहकर ग्रहण करूंगा यह अपनी कांति सेही लक्ष्मी का तिरस्कार करती है फिर इस कन्या का आदर कौन न करेगा ! ॥ १६ ॥ जो महलकी अटारी पर चढ़कर अपने पैरों के नूपुरके शब्द से शोभा प्रगट करती तथा गेंद के खेल से व्याकुल नेत्र होरही थी, विश्वावसु गंधर्व यह देखकर मोहित हो मूढ़की भांति अपने विमान से गिरगया था ॥ १७ ॥ जिन्हों

गैरदृष्टाम् । यत्स्वांमनोरुषपदःस्वसारं कोमानुमन्येतबुधोऽभियाताम् ॥ १८ ॥अतो भजिष्येसमयेनसाध्वीं यावत्तेजोविभृयादात्मनोमे । अतोधर्मान्पारमहंस्यमुख्यान् शुक्लप्रोक्तान्बहु मन्येऽविहिंस्रान् ॥ १९ ॥ यतोऽभवद्विश्वमिदंविचित्रं संस्थास्यते यत्रचवाऽवतिष्ठते । प्रजापतीनांपतिरेषमह्यं परंप्रमाणंभगवाननन्तः ॥ २० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सउग्रधन्वन्नियदेवावभाष आसीच्चतूष्णीमरविन्दनाभम् । धियोपगृह्णन्स्मितशोभितेन मुखेनचेतोलुलुभेदेवहूत्याः ॥२१॥ सोऽनुज्ञात्वाव्यवसितं महिष्यादुहितुःस्फुटम् । तस्मैगुणगणाढ्याय ददौतुल्यांप्रहर्षितः ॥ २२ ॥ शतरूपा महाराज्ञी पारिबर्हान्महाधनान् । दम्पत्योःपर्यदात्प्रीत्या भूषावासःपरिच्छदान्२३ प्रत्तांदुहितरंसम्राट् सदृक्षायगतव्यथः । उपगुह्यचबाहुभ्यामौत्कण्ठ्योन्मथिताशयः ॥ २४ ॥ अशक्नुवंस्तद्विरहं मुंचन्बाष्पकलांमुहुः । आसिंचदेववत्सेति नेत्रोदैर्दुहितुःशिखाः ॥ २५ ॥ आमन्त्र्यतंमुनिवरमनुज्ञातःसहानुगः । प्रतस्थेरथमारुह्य सभार्यःस्वपुरंनृपः ॥ २६ ॥ उभयोर्ऋषिकुल्यायाः सरस्वत्याःसुरोधसोः । ऋषीणामुपशान्तानां पश्यन्नाश्रमसंपदः ॥ २७ ॥ तमायान्तमभिप्रेत्य ब्रह्मावर्तात्प्रजापतिम् । गीतसंस्तुतिवादित्रैः प्रत्युदीयुःप्रहर्षिताः ॥ २८ ॥ बर्हिष्मतीनामपुरी सर्वसंपत्समन्विता । न्यपतन्यत्ररोमाणि यस्यांगंविधुन्वतः ॥ २९ ॥ कुशाःकाशास्तएवासन् शश्वद्धरितवर्चसः । ऋषयोयैःपराभाव्य यज्ञघ्नान्यज्ञमीजिरे ॥ ३० ॥

ने लक्ष्मी तक की सेवा नहीं की, ऐसे पुरुषों को भी जिनके दर्शन असम्भव हैं, ऐसी स्त्रियों में श्रेष्ठ उत्तान पादकी भगनी को जोस्वयं आकांक्षा करती है कौन बुद्धिमान पुरुष ग्रहण न करेगा ॥ १८ ॥ इस हेतु जबतक यह मेरे तेजको ग्रहणकर संतानोत्पत्ति करेगी तबतकमैं इसको ग्रहण करूंगा अनंतर भगवान के कहे हुये ज्ञान योग में प्रधान परम हंस आश्रम का अनुष्ठान करना चाहता हूं वह करूंगा ॥ १९ ॥ यह अद्भुत सृष्टि जिससे उत्पन्न हुई है तथा जिस में लयहोगी और जिस में यह सृष्टि रहती है वही प्रजा पतियों के पति परमेश्वर मेरे प्रमाण हैं ॥ २० ॥ मैत्रेय जी ने कहा कि हे विदुर जी ! कर्दम जी इस भांति कहकर परमेश्वर का ध्यान करते हुय चुप होगये तब उन की मंद मुसकान से शोभित मुखको देखकर देवहूती को लोभप्राप्त हुआ॥२१॥ मनुने अपनी रानी तथा बेटी का प्रयोजन जान प्रसन्न होकर शीलवान तथा गुणवान कर्दम जी को उनके गुणों के तुल्य अपनी कन्या दी ॥ २२ ॥ महाराणी शतरूपा ने स्नेह पूर्वक इन स्त्री, पुरुष को बहुत से गहने, वस्त्र आदिक बहुमूल्य दहेज दिया ॥ २३ ॥ अपनी कन्या के तुल्य गुणवाले कर्दम ऋषिको राजामनु अपनी कन्या देवहूती देकर निश्चित हुए और चलते समय अपनी कन्या से दोनो भुजाओं से मिले और उत्कंठा से उनका हृदय भरआया ॥ २४ ॥ उस का वियोग राजा रानी सहनसके नेत्रों से वारंवार आंसू गिरने गले, फिर शतरूपा अपनी कन्या को गोदमें बैठाय, हे दुहिता ! हे वत्से ! कह नेत्रों के नीरसे पुत्री की शिखाको गीला करने लगी ॥ २५ ॥ फिर उन श्रेष्ठ मुनि कर्दम जी से आज्ञाले, रथपर बैठ, रानीको संगले नगरको चलदिये ॥ २६ ॥ ऋषिकुल के योग्य सरस्वती के सुंदर तटोंपर शांतिस्वरूप मुनिलोगों के आश्रमों की सम्पदा देखते हुए चलने लगे ॥ २७ ॥ जब स्वायंभुव मनु ब्रह्मावर्त्तदेश में आये, तो प्रजागण गीतगाय बाजे बजाय अत्यन्त हर्ष से सब सन्मुख खड़ेहो स्तुतिकर ॥ २८ ॥ सब सम्पति सहाय बर्हिष्मती नाम पुरीमें गये जहांपर भगवान श्री वराह जी के अंगके बाल उनके फड़ फड़ाने से गिरे थे ॥ २९ ॥ वही रोम, कुश तथा काशरूप से उत्पन्न हुये कि जो सदैव हरे रहते हैं, जिन

कुशकाशमयंबर्हिरास्तीर्य भगवान्मनुः । अयजद्यज्ञपुरुषंलब्धा स्थानंयतोभुवम्
॥ ३१ ॥ बर्हिष्मतींनामविभुर्यांनिर्विश्यसमावसत् । तस्यांप्रविष्टोभवनं तापत्रय-
निनाशनम् ॥ ३२ ॥ सभार्यःसप्रजःकामान् बुभुजेऽन्याविरोधतः । संगीयमानस-
त्कीर्तिः सस्त्रीभिःसुरगायकैः प्रत्युषेष्वनुबद्धेन हृदाशृण्वन्हरेःकथाः ॥ ३३ ॥ नि-
ष्णातंयोगमायासु मुनिंस्वायंभुवंमनुम् ।यदाभ्रंशयितुंभोगा नशेकुर्भगवत्परम् ३४
अयातयामास्तस्यासन् यामाःस्वान्तरयापनाः । शृण्वतोध्यायतोविष्णोः कुर्वतो
ब्रुवतःकथाः ॥ ३५ ॥ सएवंस्वान्तरंनिन्ये युगानामेकसप्ततिम् । वासुदेवप्रसङ्गेन
परिभूतगतित्रयः ॥ ३६ ॥ शारीरामानसादिव्या वैयासेयेचमानुषाः । भौतिकाश्च
कथंक्लेशा बाधन्तेहरिसंश्रयम् ॥ ३७ ॥ यःपृष्टोमुनिभिःप्राह धर्मान्नानाविधान्
शुभान् । नृणांवर्णाश्रमाणांच सर्वभूतहितःसदा ॥३८॥एतत्तआदिराजस्य मनोश्च
रितमद्भुतम् । वर्णितंवर्णनीयस्य तदपत्योदयंशृणु ॥ ३९ ॥

इतिश्रीमद्भा०तृती०द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२॥

मैत्रेयउवाच ॥ पितृभ्यांप्रस्थितेसाध्वी पतिमिंगितकोविदा । नित्यंपर्यचरत्
प्रीत्याभवानीवभवंप्रभुम् ॥ १ ॥ विश्रम्भेणात्मशौचेन गौरवेणदमेनच । शुश्रूषया
सौहृदेनवाचामधुरयाचभो ॥ २ ॥ विसृज्यकामंदम्भंचद्वेषंलोभमघंमदम् । अप्रम
त्तोद्यतानित्यंतेजीयांसमतोषयत् ॥ ३ ॥ सवैदेवर्षिवर्यस्तां मानवींसमनुव्रताम् ।

से ऋषिलोग यज्ञ विघ्न कर्त्ताओं का नाशकर यज्ञ करने लगे ॥ ३० ॥ भगवान मनु कांस कुशका आसन बिछा यज्ञ पुरुष भगवान का यजन कर घरको आये ॥ ३१ ॥ फिर अपनी बर्हिष्मती पुरीमें आत्रिताप नाशक, अपने गृह में रहकर रानी और अपने सन्तानों के संग सृष्टि के आनंदों का भोग इस भांति करने लगे कि जिससे धर्म, अर्थ और मोक्ष में विरोध न हो ॥ ३२ ॥ प्रातः काल में गन्धर्व अपनी स्त्रियों समेत आकर मनुके यशका बखान करते थे परन्तु वह एकाग्र चित्त से परमेश्वर ही के चरित्रों को सुना करते थे ॥ ३३ ॥ उस स्वायंभुव मनुके बशीभूत सम्पूर्ण सिद्धियां थीं परन्तु परमेश्वर के चरित्रों के प्रभाव से कोई विषय सुख मनुको अपने आधीन करने में समर्थ न हुये ॥ ३४ ॥ वे सदैव परमेश्वर के चारित्र सुनते उनका ध्यान करते और उनके चरित्रों का स्वयं बखान करते इस भांति उनका एक क्षण भी व्यर्थ नहीं व्यतति होता था ॥ ३५ ॥ इस प्रकार भगवान के चारित्रों का वर्णन उन्हों ने जाग्रत आदि तीनो अवस्थाओं में करते हुये ७१ युगों तक काल व्यतीत किया ॥ ३६ ॥ हे विदुर ! परमेश्वर के भक्तों को शारीरिक, मानसिक, दैहिक, दैविक, भौतिक, आदि दुःख कभी बाधा नहीं देते ॥ ३७ ॥ स्वायंभूव मनुने मुनियों के पूछने पर नाना भांति के मनुष्यों के साधारण तथा वर्णाश्रम सम्बंधीधर्म सम्पूर्ण प्राणियों के हितार्थ कहे ॥ ३८ ॥ वर्णन के योग्य मनुजी के इस अद्भुत चरित्र का वर्णन मैंने तुमसे किया अब इन की संतान का वर्णन करता हूं ॥ ३९ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणे०तृतीयस्कंधेसरलाभाषाटीकायांद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

मैत्रेयजी ने कहा—कि मा, बाप, के जाने के पश्चात्, स्वामी की मनोकामना जानने वाली पतिव्रता देवहूती प्रति दिन अपने स्वामी की इस प्रकार सेवा करने लगी जैसे पार्वतीजी महादेवजी की सेवा करती हैं ॥ १ ॥ हे विदुर ! विश्वास, शौच और अपनी गौरवतासे सुहृदता व मधुरबाणी से सेवा करैं ॥ २ ॥ कपट, दंभ, द्वेष, लोभ, पाप और मद इन सबको त्याग तेज स्वी मुनि को संतुष्ट करती रहैं, इस प्रकार अपने शरीर की सब सुभ बिसार पति की सेवा करते करते सब शरीर शिथिल होगया, किंतु पति की सेवाकरने से मन न थका ॥ ३ ॥ निश्चयकरके

देवाद्गरीयसः पत्युराशासानां महाशिषः ॥४॥ कालेनभूयसाक्षामां कर्शितांव्रत चर्यया । प्रेमगद्गदयावाचा पीडितःकृपयाऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ कर्दमउवाच ॥ तुष्टोऽहमद्यतवमानविमानदायाः शुश्रूषयापरमयापरयाचभक्त्या । योदेहिनामयमतीव सुहृत्स्वदेहो नावेक्षितःसमुचितःक्षपितुंमदर्थे ॥ ६ ॥ येमेस्वधर्मनिरतस्य तपःसमाधिविद्यात्मयोगविजिताभगवत्प्रसादाः । तानेवतेमदनुसेवनयावरुद्धान् दृष्टिंप्रपश्य वितराम्यभयानशोकान् ॥ ७ ॥ अन्येपुनर्भगवतोभ्रुवउद्विजृम्भविभ्रंशितार्थरचनाःकिमुरुक्रमस्य । सिद्धाऽसिभुंक्ष्व विभवान्निजधर्मदोहान् दिव्यान्नरैर्दुरधिगान्नृपविक्रियाभिः ॥ ८ ॥ एवंब्रुवाणमबलाऽखिलयोगमाया विद्याविचक्षणमवेक्ष्य गताधिरासीत् ।संप्रश्रयप्रणयविह्वलया गिरेषद्व्रीडावलोकविलसद्धसिताननाह ॥ ९ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ राद्धंबतद्विजवृषैतदमोघयोगमायाऽधिपे त्वयिविभोतदवैमिभर्तः । यस्तेऽभ्यधायिसमयः सकृदङ्गसङ्गो भूयाद्गरीयसिगुणःप्रसवःसतीनाम् ॥ १० ॥ तत्रेतिकृत्यमुपशिक्षयथोपदेशं येनैषमेकर्शितोऽतिरिरंसयात्मा । सिध्येततेकृतमनोभवधर्षिताया दीनस्तदीशभवनं सदृशंविचक्ष्व ॥ ११ ॥ मैत्रेयउवाच प्रियायाःप्रियमन्विच्छन्कर्दमोयोगमास्थितः । विमानंकामगंक्षत्तस्तर्ह्येवाविरचीकरत् ॥ १२ सर्वकामदुघंदिव्यं सर्वरत्नसमन्वितम् । सर्वर्द्ध्युपचयोदर्कं मणिस्तम्भैरुपस्कृतम् ॥ १३ ॥ दिव्योपकरणोपेतं सर्वकालसुखावहम् । पट्टिकाभिःपताकाभिर्विचित्राभिरलंकृतम् ॥१४॥ स्रग्भिर्विचित्रमाल्याभिर्मञ्जुशिञ्जत्षडङ्घ्रिभिः दुकूलक्षौमकौशेयैर्नानावस्त्रैर्विराजितम् ॥ १५ ॥ उपर्युपरिविन्यस्तनिलयेषुपृथक्पृथक् । क्षि

सो देवर्षियों में श्रेष्ठ कर्दमजी सदा सेवा करनेवाली, सबसे बड़े भाग्यवाली, पति से बड़ेरआशीर्वादों की इच्छा करनेवाली ॥ ४ ॥ बहुत कालतक व्रताचरण करने से जीर्ण, तिसपरभी सेवा में तत्पर देख कर्दमजी प्रेम से गद्गदकण्ठ हो मीठे स्वरों से बोले ॥ ५ ॥ हे मनुपुत्रि ! आज मैं तुझ पर अत्यन्त प्रसन्नहूं तू ने मेरी बड़ी शुश्रूषा की है देहधारियों को अपना देह बहुत प्यारा लगता है परन्तु तूने मेरे पीछे अपने देहका तिरस्कार दियाहै ॥ ६ ॥ जो मेरे निर्भय,शोकरहित दिव्य ऐश्वर्य, धर्म, तप, समाधि और उपासना से वशीभूत हुए हैं उन को तू देख,मैं तुझे दिव्य दृष्टि देताहूं ॥ ७ ॥ परमेश्वर की भौंह चढ़ानेसे जिनकी रचना का नाश होजाता है, ऐसे दूसरे वैभव तो कौन पदार्थ हैं, तू सिद्ध होगई है इस हेतु अपने धर्म से मिलेहुए उन वैभवों का कि जो राजाओं को भी दुर्लभ हैं भोगकर ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि–इसभांति सम्पूर्ण सिद्धियों तथा योगमाया के बलको अपने पति में देखकर देवहूती लजाती हुई हँसकर गदगदहो मीठी वाणीसे बोली कि– ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ! हे भर्ता ! आप अमोघ योगमाया के अधिपतिहो, मैं आप के सम्पूर्ण विभवोंको प्रथमही से जानती हूं । हे स्वामी ! एक बेर अंगका संग होनाचाहिए क्योंकि सती स्त्रियों को श्रेष्ठों से संतान प्राप्त होना बड़ाही लाभदायक है ॥ १० ॥ इस हेतु काम शास्त्र के अनुसार साधन प्रस्तुत करिये कि जिससे मेरा आत्मा जो रमण की कामना से कर्षित होरहा है वह कामदेव से हर्षितहो इस लिये अब भोगभवन की रचना करिये ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी ने कहा–कि हे विदुरजी! कर्दमजी ने प्यारी के प्रियकी इच्छा से योग धारण कर तत्कालइच्छाचारी बिमान को प्रगट किया ॥ १२ किजो विमान सम्पूर्ण रत्नों से युक्त तथा सामग्रीयों से परिपूर्ण है और मणिजटित खम्भों से शोभायमान है ॥ १३ ॥ दिव्य सामग्रियोंयुक्त सम्पूर्ण काल में सुख को देनेवाला तथा ध्वजा पताकाओं से शोभायमान ॥ १४ ॥ फूलों की तथा मोतियों की माला कि जिन में भौंरे गूंज रहे हैं रेशम जरी के बस्त्र तथा और भी नानाभांति के वस्त्रों से अलंकृत

तैःकशिपुभिःकान्तं पर्यंकव्यजनासनैः ॥ १६ ॥ तत्रतत्रविनिक्षिप्तनानाशिल्पोपशो
भितम् । महामरकतस्थल्या जुष्टंविद्रुमवेदिभिः ॥ १७ ॥ द्वास्सुविद्रुमदेहल्याभातं
वज्रकपाटवत् । शिखरेष्विन्द्रनीलेषु हेमकुम्भैरधिश्रितम् ॥ १८ ॥ चक्षुष्मत्पद्मराग
ग्र्यैर्वज्राभित्तिषुनिर्मितैः जुष्टंविचित्रवैतानैर्महार्हैर्हेमतोरणैः ॥ १९ ॥ हंसपारावतव्रा
तैस्तत्र तत्रनिकूजितम् । कृत्रिमान्मन्यमानैःस्वा नधिरुह्याधिरुह्य च ॥ २० ॥ विहार
स्थानविश्रामसंवेशप्रांगणाजिरैः । यथोपजोषंरचितैर्विस्मापनमिवात्मनः ॥ २१ ॥
ईदृग्गृहंतत्पश्यन्तीं नातिप्रीतेनचेतसा । सर्वभूताशयाभिज्ञः प्रावोचत्कर्दमःस्वय
म् ॥ २२ ॥ निमज्ज्यास्मिन्ह्रदेभीरु विमानमिदमारुह । इदंशुक्लकृतंतीर्थमाशिषां
यापकंनृणाम् ॥ २३ ॥ सातद्भर्तुःसमादाय वचःकुवलयेक्षणा । सरजंबिभ्रतीवासो
वेणीभूतांश्चमूर्द्धजान् ॥ २४ ॥ अङ्गंचमलपंकेनसंछन्नं शबलस्तनम् । आविवेशसर
स्वत्याः सरःशिवजलाशयम् ॥ २५ ॥ साऽन्तःसरसिवेश्मस्थाःशतानिदशकन्य
काः सर्वाकिशोरवयसो ददर्शोत्पलगन्धयः २६ ॥ तांदृष्ट्वासहसोत्थाय प्रोचुःप्रांज
लयःस्त्रियः । वयंकर्मकरीस्तुभ्यं शाधिनःकरवामकिम् ॥ २७ ॥ स्नानेनतांमहार्हेण
स्नापयित्वा मनस्विनीम् । दुकूलेनिर्मलेनूत्ने ददुरस्यैचमानदाः ॥ २८ ॥ भूषणानिप
रार्ध्यानिवरीयांसिद्युमन्तिच । अन्नंसर्वगुणोपेतं पानंचैवामृतासवम् ॥ २९ ॥ अथा
दर्शेस्वमात्मनं स्रग्वर्णविराजम्बरम् । विरजंकृतस्वस्त्ययनं कन्याभिर्बहुमानितम् ।
३० ॥स्नातंकृतशिरस्नानं सर्वाभरणभूषितम् ।निष्कग्रीवंवलयिनं कूजत्कांचननूपुरम्

है ॥ १५ ॥ ऊपर रचेहुए स्थान में प्यारी २ शय्या हैं कि जिनपर सुन्दर पंखा तथा चमर धरे हुए हैं ॥ १६ ॥ जो नानाप्रकार की कारीगरी से शोभित है और मणिजटित भूमि तथा मूंगाकी वेदी है ॥ १७ ॥ और द्वारों में मूंगों की देहरी हैं,हीरों से खचित कपाट, इन्द्र नीलमणि के शिखरों पर सोने के कलश शोभायमान हैं ॥ १८ ॥ पद्मराग से जटित भीतों में नानाप्रकार के चांदनी तथा चँदोवा शोभायमान हैं और जिन में बहुमूल्य के रत्नलगे हुए हैं ॥ १९ ॥ जहांपर हंस, पारावत, परेवा यह अनेकप्रकारसे ऊपर नीचे शब्द कररहे हैं ॥ २० ॥ उस में विहारस्थान, विश्रामस्थान, शयनागार, पाकशाला, तथा आंगन यह अतियोग्य रचेहुए हैं कि जिने देखकर कर्दमजी को भी विस्मयहोताथा ॥ २१ ॥ ऐसा गृह देखकर भी देवहूती का चित्त प्रसन्न नहीं हुआ, तब सबके अन्तःकरण के जाननेवाले कर्दमजी देवहूती से बोले ॥ २२ ॥ हे सुमुखि ! इस सरोवर में स्नानकर विमान में आरूढ़हो यह विष्णु भगवान का कियाहुआ तीर्थ सबकामनाओं का पूर्णकरनेवाला है ॥ २३ ॥ अपने पति के वचन सुनकर कमोदनी से नेत्रवाली देवहूती ने कि जो मलीनवस्त्र धारण किये हुए तथा जिसके केश उलझ रहे हैं, ॥ २४ ॥ और जिसका अंग मैलकीचसे ढकरहा है, सरस्वती के निर्मलजल में प्रवेशकिया ॥ २५ ॥ वहां सरोवर के भीतर सहस्र कन्यायें किशोर अवस्था वाली तथा जिनमें कमल कीसी सुगन्धि आरही है देखीं ॥ २६ ॥ वे देवहूती को देख तत्काल उठखड़ी हुई और कहा कि हमतुम्हारी दासी हैं हमको आज्ञा दो सो हमकरें ॥ २७ ॥ फिर बहुमूल्य का उवटन करके उनकन्याओं ने देवहूती को स्नान कराय और बहुमूल्य के सुंदर २ वस्त्र दिये ॥ २८ ॥ तथाबहुमूल्य के प्रकाशितआभूषणोंको पहिनाया फिर सर्वगुणों युक्त अन्न के पदार्थ तथा अमृतके समानमीठे पदार्थ पीने को दिये २९ ॥ देवहूती ने अपना स्वरूप दर्पण: में देखा तो निर्मल माला तथा निर्मल वस्त्र पहिने हुए सौभाग्य की वस्तुयें जो मंगलकारी हैं उनको धारण किये और कन्याओं से मानपायेहुए ॥ ३० ॥

॥ ३१ ॥ श्रोण्योरध्यस्तया कांच्याकांचन्याबहुलया । हारेणचमहार्हेण रुचकेनच भूषितम ॥ ३२ ॥ सुदतासुभ्रुवाश्लक्ष्णस्निग्धापांगेनचक्षुषा । पद्मकोशस्पृधानीलै रलकैश्चलसन्मुखम् ॥ ३३ ॥ यदासस्मारऋषभमृषीणांदयितंपतिम् । तत्रचास्ते सहस्त्रीभिर्यत्रास्तेसप्रजापतिः ॥ ३४ ॥ भर्तुःपुरस्तादात्मानं स्त्रीसहस्रवृतं तदा । निशाम्यतद्योगगतिं संशयंप्रत्यपद्यत ॥ ३५ ॥ सतांकृतमलस्नानां विभ्राजन्तीमपूर्ववत् । आत्मनोबिभ्रतीरूपंसंवीतरुचिरस्तनीम् ॥३६॥ विद्याधरीसहस्रेण सेव्यमानांसुवाससम् । जातभावोविमानं तदारोहयदमित्रहन् ॥ ३७ ॥ तस्मिन्नलुप्तमहिमा प्रियया ऽनुरक्तोविद्याधरीभिरुपचीर्णवपुर्विमाने। बभ्राजउत्कचकुमुद्गण वानपीच्यस्ताराभिरावृत इवोडुपतिर्नभस्थः ॥ ३८ ॥ तेनाष्टलोकपविहारकुलाचलेंद्रद्रोणीष्वनङ्गसखमारुतसौभगासु । सिद्धैर्नुतोद्युधुनिपातशिवस्वनासु रेमेचिरंधनदवल्ललनावरूथी ॥३९॥ वैश्रम्भकेसुरसने नन्दनेपुष्पभद्रके। मानसेचैत्ररथ्येचसरेमे रामयारतः ॥ ४० ॥ भ्राजिष्णुनाविमानेन कामगेनमहीयसा। वैमानिकानत्यशेत चरल्लोकान्यथानिलः ॥ ४१ ॥ किंदुरापादनं तेषांपुंसामुद्दामचेतसाम् । यैराश्रितस्तीर्थपदश्चरणोव्यसनात्ययः ॥ ४२ ॥ प्रेक्षयित्वाभुवोगोलं पत्न्यैयावान्स्वसंस्थया। बह्वाश्चर्यंमहायोगी स्वाश्रमायन्यवर्तत ॥ ४३ ॥ विभज्यनवधाऽऽत्मानं मानवींसुरतोत्सु

शिरसे स्नान किये सम्पूर्ण गहने पहिने, कंठ में धुक धुकी और हाथों में बाजू धारण किये और शब्दायमान सोने के नूपुर पहिने हुए ॥ ३१ ॥ बहुत से रत्नों युक्त क्षुद्र घंटिका कटि में बांधे और अमूल्य हारसे कंठ शोभायमान ॥३२॥ जिसके सुंदर दांत और सुंदर भ्रुकुटी है और स्नेह युक्त पद्मकोश की निन्दा करनें वाले जिसके नेत्र तथा नील मेघ निभअलकों से शोभित जिसका मुखारविंद है ॥ ३३ ॥ ऐसी देवहूती नें उसी काल अपनें प्यारे पति का स्मरण किया तब वह जहां कर्दम मुनि बैठेथे वहां स्त्रियों सहित गई ॥ ३४ ॥ स्वामी के सन्मुख एक सहस्र स्त्रियों के संगगई और उनकी योग गतिको देख बडे आश्चर्यको प्राप्त हुई ॥३५॥ उन दासियों द्वारा स्नान कर ऐसी शोभाको प्राप्त हुई कि ऐसी सोभा कभी नहीं हुई थी, वह बिबाह के प्रथमका रूप धारण किये है तथा जिसके सुंदर स्तन हैं ॥ ३६ ॥ सहस्र बिद्या धरियों से सेवित सुंदर वस्त्र पहिने देवहूती को देख कर्दमजी ने प्रीति पूर्वक उस विमान में प्रवेश कराया ॥ ३७ ॥ जिनकी महिमा नाश नहीं हुई, वह कर्दमजी, प्यारी के प्रेम में आसक्त, बिद्या धरियों से सेवित बिमान में ऐसे शोभाको प्राप्त हुये कि जैसे तारों से घिरे हुए और खिले हुये कुमुद गण वाले आकाश में चंद्रमा शोभाको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ उस बिमान में बैठकर आठोलोकपालों के बिहार का स्थान कामदेव के सखा शीतल मंद सुगन्ध बयार चलरही, गंगा के गिरनेंका कल्याण दायक शब्द होरहा ऐसे सुमेरु पर्वत की कन्दराजाओं में कुवेर सम कर्दमजी स्त्रियों को सङ्ग लिये सिद्ध जनों के स्तुति करते बिहार करने लगे ॥३९॥ फिर कर्दममुनि प्रसन्नता पूर्वक नंदन, पुष्पभद्र, मानस, और चैत्र रथ आदिक बनों में अपनी स्त्री के साथ रमण करने लगे ॥ ४० ॥ वह शोभायमान, इच्छाचारी विमान, सम्पूर्ण विमानों को उल्लंघनकर पवनकी भांति सबसे आगे बिचरताहै ॥ ४१ ॥ जिन्होंनें दुःख बिनाशन परमेश्वर के चरणोंका ध्यान किया है और उन्हींका आश्रय लिया है उनको कोई बात दुस्तर नहीं है ॥४२॥ फिर अनेक आश्चर्ययुक्त सम्पूर्ण भूमण्डल को कर्दमजी अपनी स्त्री को दिखाकर अपनेही स्थानको फिर लौटआये ॥ ४३ ॥ कामदेवसे उत्कंठित अपनी स्त्रासे रमण करते हुए भगवान कर्दमजी के ९ कन्या उत्पन्न हुईं और रमण करते २ युग मुहूर्त के समान बीत

काम । रामांनिरमयनरेमे वर्षपूगानमुहूर्तवत् ॥ ४४ ॥ तस्मिन्विमानउत्कृष्टांशय्यां रतिकरींश्रिता । नचाबुध्यततंकालंपत्यापश्चियेनसंगता ॥ ४५ ॥ एवंयोगानुभावेनद म्पत्योरममाणयोः। शतंव्यतीयुःशरदः कामलालसयोर्मनाक् ॥ ४६ ॥ तस्यामाध सरेतस्तां भावयन्नात्मनाऽऽत्मवित् नोधाविधायरूपंस्वंसर्वसंकल्पविद्विभुः ४७॥ अतःसासुषुवेसद्योदेवहूतिःस्त्रियःप्रजाः।सर्वास्ताश्चारुसर्वांग्योलोहितोत्पलगंधयः ४८पतिंसाप्रव्रजिष्यन्तं तदालक्ष्योशतीसती। स्मयमानाविक्लवेनहृदयेनाविदूयता ४९॥लिखन्त्यधोमुखीभूमिंपदा नखमणिश्रिया उवाचललितांवाचं निरुध्याश्रुकलां शनैः ॥ ५० ॥ देवहूतिरुवाच ॥ सर्वंतद्भगवान्मह्यमुपोवाहप्रतिश्रुतम् । अथापिमे प्रपन्नाया अभयंदातुमर्हसि ॥५१॥ ब्रह्मन् दुहितृभिस्तुभ्यं विमृग्याःपतयःसमाः । कश्चित्स्यान्मेविशोकाय त्वयिप्रव्रजितेवनम् ॥५२॥ एतावताऽलंकालेनव्यतिक्रांते नमेप्रभो। इंद्रियार्थप्रसंगेनपरित्यक्तपरात्मनः ॥५३॥ इंद्रियार्थेषुसज्जन्त्याप्रसंगस्त्व यिमेकृतः । अजान्त्यापरंभावंतथाऽप्यस्त्वभयायमे ॥५४॥ संगोयःसंसृतेर्हेतुरसत्सु विहितोऽधिया । सएवसाधुषुकृतो निःसंगत्वायकल्पते ॥५५ ॥ नेहयत्कर्मधर्माय नविरागायकल्पते । न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपिमृतोहिसः ॥ ५६ ॥ साहंभग वतोनूनंवंचितामाययाहृहम् । यत्त्वांविमुक्तिदंप्राप्य नमुमुक्षेयबन्धनात् ॥ ५७ ॥

इतिश्रीमद्भा०तृती०त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

गये ॥ ४४ ॥ तब उस विमान पर स्थित होकर देवहूती अपने पति के साथ ऐसी मोहित हुई कि समयकी कुछभी सुधि न रही ॥ ४५ ॥ इस प्रकार योग के प्रभाव से स्त्री पुरुष को रमण करते हुए १००वर्ष व्यतीत होगए। काम की लालसा से यह समय ऐसा प्रतीतहुआ कि मानों थोड़ाही काल व्यतीत हुआ है ॥ ४६ ॥ उस देवहूती में आत्म वेत्ता कर्दमजी नें बहुत संतान होना जान कर अपने रूप के नौ भागकर उसमें वीर्य स्थापित किया ॥ ४७ ॥ इसके अनंतर देवहूतीनें स्त्री रूप प्रजाको उत्पन्न किया कि जिनके सम्पूर्ण अंग श्रेष्ठ तथा कमल कीसी सुगंधि से सुवासित थे ॥ ४८ ॥ फिर जिस समय करदमजी ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार संन्यास ले बनके जानें की इच्छाकी उससमय पतिको देख देवहूती मोह से विवश हृदय हो मुसकाई ॥४९॥ नीचे को मुख किये मणि के सदृश चरण के नखों से भूमि खोदती हुई पतिव्रता देवहूती नें अश्रुधारा क्रमशः रोककर मधुर वाक्योंसे कहा ॥ ५० ॥ देवहूती ने कहा कि हे भगवान ! आपने अपनी सम्पूर्ण प्रतिज्ञायें पूर्ण कीं तौभी मुझ शरणागत को आप अभयदानदें ॥५१॥ हे ब्रह्मन् ! इनकन्याओंके योग्य इनके पति ढूंढों, दूसरे आपके जानेके पश्चात् जिससे मेराशोक दूर हो ऐसा यत्नकरो॥५२॥ हे प्रभु ! इन्द्रियों के हेतु मैंने श्रेष्ठ आत्माको छोड़कर आप के साथ इतना काल व्यतीत किया, इससे मैं परिपूर्ण हुई ॥ ५३ ॥ मैंने आपके परम भावको नजानकर इन्द्रिय विषयोंमें आसक्त रह आपका प्रसंग किया, तौभी मुझे अभयदान मिलना चाहिये ॥ ५४ ॥ अज्ञानता वश जो असाधु ओं का संग किया जायतो वह सांसारिक बंधनों का कारण होता है परन्तु यदि वही सत्संग सज्जनों का कियाजाय तो वैराग्य का हेतु होता है ॥ ५५ ॥ जिसनें इस सृष्टि में नतो धर्म के हेतु कुछ काम किया न वैराग्य के हेतु और न परमेश्वर के चरणों की सेवा की, तो उस जीते हुए पुरुष को मृतकही जानना चाहिये ॥ ५६ ॥ निश्चय है कि मैं भगवान की माया में फसगई जो आप सरीखे मुक्तिदाता को प्राप्त होकर भी मैंने संसाररूपी बन्धन से छूटनें की इच्छा नकी ५७॥

इति श्री भागवते० महापुराणे सरलाभाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

मैत्रेयउवाच ॥ निर्वेदवादिनीमेवं मनोर्दुहितरंमुनिः । दयालुःशालिनीमाह शुक्लाभिव्याहृतस्मरन् ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ माखिदोराजपुत्रीत्थमात्मानं प्रत्यनिन्दिते । भगवांस्तेऽक्षरो गर्भमदूरात् संप्रपत्स्यते ॥ २ ॥ धृतव्रतासिभद्रंते दमेननियमेनच । तपोद्रविणदानैश्च श्रद्धयाचेश्वरंभज ॥ ३ ॥ सत्वयाऽऽराधितःशुक्लो वितन्वन्मामकंयशः । छेत्ताते हृदयग्रन्थिमौदर्यो ब्रह्मभावनः ॥ ४ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ देवहूत्यापिसंदेशं गौरवेणप्रजापतेः । सम्यक्श्रद्धायपुरुषं कूटस्थमभजद् गुरुम् ॥ ५ ॥ तस्यांबहुतिथेकाले भगवान्मधुसूदनः । कार्दमंवीर्यमापन्नोजज्ञेऽग्निरिवदारुणि ॥ ६ ॥ अवादयंस्तदाव्योम्नि वादित्राणिघनाघनाः । गायन्तितंस्मगंधर्वा नृत्यान्त्यप्सरसोमुदा ॥ ७ ॥ पेतुःसुमनसोदिव्याः खेचरैरपवर्जिताः।प्रसेदुश्च दिशःसर्वाअम्भांसि चमनांसिच ॥ ८ ॥ तत्कर्दमाश्रमपदं सरस्वत्यापरिश्रितम् । स्वयंभूःसाकमृषिभिर्मरीच्यादिभिरभ्ययात् ॥ ९ ॥ भगवन्तंपरंब्रह्म सत्त्वेनांशेन शत्रुहन् । तत्त्वसंख्यानविज्ञप्त्यै जातंविद्वानजःस्वराट् ॥ १० ॥ सभाजयन्विशुद्धेन चेतसातच्चिकीर्षितम् । प्रहृष्यमाणैरसुभिः कर्दमंचेदमभ्यधात् ॥ ११ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्वयामेऽपचितिस्तात कल्पितानिर्व्यलीकतः । यन्मेसंजगृहेवाक्यं भगवान्मानदमानयन् ॥१२॥ एतावत्येवशुश्रूषा कार्यापितरिपुत्रकैः । बाढमित्यनुमन्येत गौरवेणगुरोर्वचः ॥ १३ ॥ इमादुहितरःसभ्यतववत्ससुमध्यमाः । सर्गमेतंप्रभावैःस्वैर्बृंहयिष्यन्त्यनेकधा ॥ १४ ॥ अतस्त्वमृषिमुख्येभ्यो यथाशीलंयथारुचि । आत्मजाःपरिदेह्यद्य विस्तृणीहियशोभुवि ॥ १५ ॥ वेदाहमाद्यंपुरुषमवतीर्णं स्वमायया।

मैत्रेयजी नें कहा कि हे विदुर ! मनुकी पुत्री देवहूती के वैराग्य युक्त वाक्य सुनकर दयाके धाम मुनिनें कृष्ण भगवान के बचन स्मरण करके ॥ १ ॥ ऋषिनें कहा कि हे राजपुत्री तू खेद मत करे आत्मा की निंदा मत करे भगवान तेरे गर्भ में प्राप्त होंगे ॥ २ ॥ तेरा कल्याण होगा, क्यों कि तूनें ब्रत धारण किया है तू इन्द्रियों का दमनकर नेम, तप, और दान से श्रद्धा पूर्वक भगवान का स्मरण कर ॥ ३ ॥ तू परमेश्वर की पूजा करेगा तो मेरे यश का विस्तार करते हुए, तेरे हृदय की गांठ को छेदनेंवाले ब्रह्मभावन हरि तेरे उदर से प्रगट होंगें ॥ ४ ॥ मैत्रेयजी नें कहा कि हे विदुरजी ! देवहूती का संदेह कर्दमजी के कहनेंपर दूरहुआ और अंतर्यामी भगवान का भजन करनें लगी ॥ ५ ॥ बहुत काल के उपरांत मधुसूदन भगवान कर्दमजी के वीर्य्य को प्राप्तहोकर जैसे काठ से अग्नि उत्पन्न होता है तैसे देवहूति के उदर से उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ उस काल आकाश में बाजे बजन लगे, गन्धर्व गान करनें तथा अप्सरायें नृत्य करनेंलगीं ॥ ७ ॥ आकाश से दिव्य फूलों की वर्षा होनेंलगी, सम्पूर्ण दिशायें, जल और भक्तों के मन प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ उन कर्दमजी के श्रेष्ठ आश्रम में सरस्वती के तटपर मरीच्यादिक ऋषियों समेत ब्रह्माजी आये ॥ ९ ॥ यह बात ब्रह्माजी नें जानकर कि शत्रुओं के मारनें वाले, तत्व शास्त्र के प्रगट करनें के हेतु सतोगुण से परब्रह्म परमात्मा प्रगट हुए हैं ॥ १० ॥ शुद्ध चित्त से परमेश्वर के कर्तव्य कर्म का सनमान कर, हर्षित हो, कर्दमजी से बोले ॥ ११ ॥ हे पुत्र ! मान के बढानें वाले ! सनमान के करनें वाले तुमनें निष्कपट होकर मेरी पूजाकी और मेरे बाक्योंको ग्रहण किया ॥ १२ ॥ पुत्रों को इतनी ही शुश्रुषा पिता की करनी योग्य है कि वह गौरवता पूर्वक पिता के बचनों को स्वीकार करें ॥ १३ ॥ हे पुत्र ! यह तेरी श्रेष्ठ पुत्रियें अनेक भांति से सृष्टि की वंश परम्परा को बढ़ावेंगी ॥ १४ ॥ इसीहेतु इन कन्याओं की इच्छा तथा शील के अनुसार मरीचि आदि ऋषियों को देकर पृथ्वी पर यशका विस्तार कर ॥ १५ ॥ मैं इस बातको जानता हूं कि पुरुष परमात्मा ने प्राणियों

भूतानांशवर्धिदेहं विप्राणंकपिलंमुने ॥ १६ ॥ ज्ञानविज्ञानयोगेन कर्मणामुद्धरन्
जटाः । हिरण्यकेशःपद्माक्षः पद्ममुद्रापदाम्बुजः ॥ १७ ॥ एषमानवितेगर्भं प्रविष्टः
कैटभार्दनः । अविद्यासंशयग्रन्थिंछित्त्वा गांविचरिष्यति ॥ १८ ॥ अयंसिद्धगणा
धीशः सांख्याचार्यैःसुसंमतः । लोकेकपिलइत्याख्यां गन्तातेकीर्तिवर्धनः ॥१९॥
मैत्रेयउवाच ॥ तावाश्वास्यजगत्स्रष्टा कुमारैःसहनारदः । हंसोहंसेनयानेन त्रिधा
मपरमंययौ ॥ २० ॥ गतेशतधृतौक्षत्तः कर्दमस्तेनचोदितः । यथोदितंस्वदुहितॄः
प्रादाद्विश्वसृजांततः ॥ २१ ॥ मरीचयेकलां प्रादादनसूयामथात्रये । श्रद्धामाङ्गिर-
सेऽयच्छत् पुलस्त्यायहविर्भुवम् ॥ २२ ॥ पुलहायगतिंयुक्तां क्रतवेचक्रियांस-
तीम् । ख्यातिंचभृगवेऽयच्छद्वसिष्ठायाप्यरुन्धतीम् ॥ २३ ॥ अथर्वणेऽददाच्छांतिं
ययायज्ञोवितन्यते । विप्रर्षभान्कृतोद्वाहन् सदारान्समलालयत् ॥ २४ ॥ ततस्त
ऋषयःक्षत्तः कृतदारानिमन्त्र्यतम् । प्रातिष्ठन्नंदिमापन्नाः स्वंस्वमाश्रममण्डलम्
॥ २५ ॥ सचावतीर्णंत्रियुगमाज्ञाय विबुधर्षभम् । विविक्तउपसंगम्यप्रणम्यसमभा
षत ॥ २६ ॥ अहोपापच्यमानानां निरयेस्वैरमङ्गलैः । कालेनभूयसानूनं प्रसीदन्ती
हदेवताः ॥ २७ ॥ बहुजन्मविपक्वेन सम्यग्योगसमाधिना । द्रष्टुंयतन्तेयतयः शू-
न्यागारेषुयत्पदम् ॥ २८ ॥ सएवभगवानद्य हेलनंनगणय्यनः । गृहेषुजातोग्राम्या
णां यःस्वानांपक्षपोषणः ॥ २९ ॥ स्वीयंवाक्यमृतं कर्तुमवतीर्णोऽसिमगृहे । चि-
कीर्षुर्भगवान्ज्ञानं भक्तानांमानवर्धनः ॥ ३० ॥ तान्येवतेऽभिरूपाणि रूपाणिभगवं-
स्तव । यानियानिचरोचन्ते स्वजनानामरूपिणः ॥ ३१ ॥ त्वांसूरिभिस्तत्त्वबुभु-

का मनोरथ पूर्णकरने के लिये अपनी मायासे कपिल के नाम से अवतार लिया है ॥ १६ ॥ यह ज्ञान, विज्ञान के योग से कर्मों की वासनाओं का उद्धार करेंगे वह भगवान सुवर्णवत केश, कमल वत् नेत्र, पद्ममुद्रा संयुक्त चरण वाले ॥ १७ ॥ हे मानवि ! वही कैटभार्दन भगवान तेरे गर्भ में प्रवेश कर उत्पन्न हो, अविद्या रूपी संशय की गांठका छेदन कर पृथ्वी पर विचरेंगे ॥ १८ ॥ सांख्य शास्त्र के आचार्यों में योग्य, संसारमें कपिल नाम से तेरे यशको बढ़ावेंगे ॥ १९ ॥ मैत्रेय जी ने कहा कि हे विदुर जी ! जगत स्रष्टा ब्रह्माजी इन दोनों का इस भांति सनमान कर नारदादि सहित अपने हंसपर आरूढ़ हो ब्रह्म लोक को गये ॥ २० ॥ हे विदुर ! ब्रह्माजी के जानेपर कर्दम ऋषिने ब्रह्माजी के कथना नुसार अपनी कन्या ये उन ऋषियों को दीं ॥ २१ ॥ मरीचि को कला, अत्रिको अनुसूया, अंगिरा को श्रद्धा पुलस्त्य को हविर्भूवा, ॥ २२ ॥ पुलहको गति, क्रतुको क्रिया, भृगुको ख्याती, वशिष्ठ को अरूंधती ॥ २३ ॥ और अथर्वण को शांति नामक कन्यायेंदीं जिस शान्ति से यज्ञका विस्तार होता है इस प्रकार उन ब्राह्मणों के साथ विवाह करके स्त्रियों समत उन्हें प्रसन्न किया ॥ २४ ॥ हे विदुर ! फिर सम्पूर्ण ऋषि स्त्रियों समेत आज्ञा मांग आनंदित होकर अपने २ आश्रमों को चलेगये ॥ २५ ॥ वह कर्दम मुनि अपनी स्त्री में भगवान का अवतार हुआ जान एकांत में आ दंडवत कर कहने लगे ॥ २६ ॥ कि यह प्राणी सृष्टि के भीतर अपने अमंगल कार्यों से नर्कों में पड़े रहते हैं उनपर देवता लोग बहुत काल में प्रसन्न होते हैं ॥२७॥ तथा सन्यासी लोग एकांत में बैठकर नाना जन्मों से सिद्ध हुए भक्ति योगद्वारा चित्त की अनन्यता से जिन चरणों के दर्शनों का अभिलाषा करते हैं ॥ २८ ॥ हे भगवन् ! पक्षका पालन करने वाले ! आपने मुझ ग्रामीण के घरमे जन्म लिया है आप मेरे अपराधों की गणना न करिये ॥ २९ ॥ भक्तों के भगवत ध्यान करने के हेतु, अपना वाक्य सत्यकर आपने मेरे घरमें अवतार लिया है ॥ ३० ॥ हे भगवान ! आप अरूपहो, इस से यह चतुर्भुज आदि रूप आपही के योग्य हैं,

स्वयाऽद्धा सदाऽभिवादार्हणपादपीठम् । ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोधवीर्यश्रियां
पूर्त्तमहंप्रपद्ये ॥ ३२ ॥ परंप्रधानंपुरुषं महांतंकालंकविंत्रिवृतंलोकपालम् । आत्मा-
नुभूत्याऽनुगतप्रपंचं स्वच्छन्दशक्तिंकपिलंप्रपद्ये ॥ ३३ ॥ आस्माभिपृच्छेऽद्यपतिं
प्रजानां त्वयाऽवतीर्णर्णउताप्तकामः । परिव्रजत्पदवीमास्थितोऽहं चरिष्येत्वांहृ-
दियुंजन्विशोकः ३४ श्रीभगवानुवाच ॥ मयाप्रोक्तंहिलोकस्यप्रमाणसत्यलौकिके ।
अथाजनिमयातुभ्यं यदवोचमृतंमुने ॥ ३५ ॥ एतन्मेजन्मलोकेऽस्मिन् मुमुक्षुणांदु
राशयात् । प्रसंख्यानायतत्त्वानां संमतायात्मदर्शने ॥ ३६ ॥ एषआत्मपथोऽव्य-
क्तो नष्टःकालेनभूयसा । तंप्रवर्तयितुंदेहमिमं विद्धिमयाभृतम् ॥ ३७ ॥ गच्छका-
मंमयाऽऽपृष्टो मयिसंन्यस्तकर्मणा । जित्वासुदुर्जयं मृत्युममृतत्वायमांभज ॥ ३८ ॥
मामात्मानंस्वयंज्योतिः सर्वभूतगुहाशयम् । आत्मन्येवात्मनावीक्ष्य विशोकोऽभ-
यमृच्छसि ॥ ३९ ॥ मात्रेआध्यात्मिकींविद्यां शमनींसर्वकर्मणाम् । वितरिष्येययया
चासौ भयंचातितरिष्यति ॥ ४० ॥ मैत्रेयउवाच ॥ एवंसमुदितस्तेन कपिलेनंप्र-
जापतिः । दक्षिणीकृत्यतंप्रीतो वनमेवजगामह ॥ ४१ ॥ व्रतंसआस्थितो मौनमा-
त्मैकशरणोमुनिः । निःसङ्गोव्यचरत्क्षोणीमनग्निरनिकेतनः ॥ ४२ ॥ मनोब्रह्मणि
युंजानो यत्तत्सदसतःपरम् । गुणावभासेविगुण एकभक्त्याऽनुभाविते ॥ ४३ ॥
निरहंकृतिर्निर्ममश्चनिर्द्वन्द्वः समदृक्स्वदृक् । प्रत्यक्प्रशान्तधीर्धीरः प्रशान्तोर्मि

हे भगवान ! आप अपने भक्तों की इच्छा नुसार रूप धारण करते हो ॥ ३१ ॥ तत्व जानने की इच्छा से देवता जिनके चरणों को प्रणाम करते हैं उन ऐश्वर्य्य, वैराग्य, यश, ज्ञान, और वीर्यसे पूर्ण मैं आप की शरण आया हूं ॥ ३२ ॥ आप परम प्रधान पुरुष हो, महत्तत्व, काल, कवि, वेदत्रया, और लोक पाल रूपहो तथा आत्मा की आदि भूतमाया हो, आपके स्वरूप में सम्पूर्ण प्रपंच लीन होते हैं ऐसे कपिल देव परमेश्वर आपको मै प्रणाम करता हूं ॥ ३३ ॥ हे प्रजापतियों के पति मैं आप से आदेश मागता हूं, कि अब मैं वन में जाकर आप का स्मर्ण करता हुआ आप के मार्ग में स्थित होकर विचरूं, क्योंकि आपके अवतार लेने से मै तीनोंऋणों से छूटगया तथा मेरी सम्पर्ण कामनायें पूर्ण होगई ॥ ३४ ॥ श्री भगवान ने कहा कि—हे मुने ! सत्यलोक पर्यंत के सम्पूर्ण कार्यों में मेरा कहना सबको प्रमाण है, इसी हेतु अपने कहेहुये वाकय के सत्य करने को यह मैंने अवतार लिया है ॥ ३५ ॥ उस तत्व संख्या के करने के हेतु, कि जिसका उप योग मुमुक्षु मुनिलोगों के आत्म विचार में आवश्यक है इस सृष्टिमें मैंने आकर अवतार लिया है ॥ ३६ ॥ यह आत्म मार्ग बहुत काल से नाश होगया था उसी के प्रवृत्त करने के हेतु मैंने जन्म धारण किया है ॥ ३७ ॥ मैं आपको आज्ञा देता हूं आप जाइये और मैं यहांपर रहने की आज्ञा मांगता हूं, तथा जो कर्म करो वह मेरे समर्पण कर अजय मृत्युको जीत मोक्षके हेतु मेराध्यान करो ॥ ३८ ॥ मैं आत्म रूप तथा स्वयंभू ज्योतिरूप हूं और सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में मेरा वास है उसे आप अपनेही आत्मा में शोक रहित हो अभयगति को प्राप्त होंगे ॥ ३९ ॥ मैं माता से सम्पूर्ण कर्मोंका नाश करने वाली आध्यात्मिकी विद्या कहूंगा जिससे वह संसार के भयों से छूटजायगी ॥ ४० ॥ मैत्रेय जी ने कहा कि—कि जब कपिल देव जी ने प्रजापति कर्दम जी से इस भांति कहातो वे प्रसन्न हो भगवान की परिक्रमा कर वनको चलेगये ॥ ४१ ॥ मौन व्रतको धारण कर, आत्मा में निष्ठारख, सबका साथ छोड़ निःसंगहो, घरको छोड़ पृथ्वी पर विचरने लगे ॥ ४२ ॥ औरसत, असत से परे, जिस में गुणोंका प्रकाश अगुण सा देखने में आता है, तथा जो एक भक्ति से सेवित हैं उन परमात्मा में चित्त लगाया ॥ ४३ ॥ कर्दम जी अहंकार, ममता, तथा दुःख, सुख रहित, सम

रिवोदधिः ॥ ४४ ॥ वासुदेवेभगवति सर्वज्ञेप्रत्यगात्मनि । परेणभक्तिभावेन छ
ब्धात्मामुक्तबन्धनः ॥ ४५ ॥ आत्मानंसर्वभूतेषु भगवन्तमवस्थितम् । अपश्यत्सर्व
भूतानि भगवत्यपिचात्मनि ॥ ४६ ॥ इच्छाद्वेषविहीनेन सर्वत्रसमचेतसा । भगव
द्भक्तियुक्तेन प्राप्ताभागवतीगतिः ॥ ४७ ॥

इतिश्रीमद्भा०तृती०चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

शौनकउवाच॥कपिलस्तत्त्वसंख्याता भगवानात्ममायया। जातःस्वयमजःसाक्षा
दात्मप्रज्ञप्तयेनृणाम् ॥१॥ नह्यस्यवर्ष्मणःपुंसां वरिम्णःसर्वयोगिनाम् । विश्रुतौश्रुत
देवस्य भूरितृप्यन्तिमेऽसवः ॥२॥यद्यद्विधत्तेभगवान् स्वच्छन्दात्माऽऽत्ममायया।
तानिमेश्रद्दधानस्य कीर्तन्यान्यनुकीर्तय ॥ ३ ॥ सूतउवाच ॥ द्वैपायनसखस्त्वेवं
मैत्रेयोभगवांस्तथा । प्राहेदंविदुरंप्रीत आन्वीक्षिक्यांप्रचोदितः ॥ ४ ॥ मैत्रेयउ-
वाच ॥ पितरिप्रस्थितेऽरण्यं मातुःप्रियचिकीर्षया । तस्मिन्बिन्दुसरेऽवात्सीद्भग-
वान्कपिलःकिल ॥ ५ ॥ तमासीनमकर्माणं तत्त्वमार्गाग्रदर्शनम् । स्वसुतंदेवहूत्या
ह धातुःसंस्मरतीवचः ॥ ६ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ निर्विण्णानितरांभूमन्नसदिन्द्रि-
यतर्षणात् । येनसंभाव्यमानेन प्रपन्नाऽन्धंतमःप्रभो ॥ ७ ॥ तस्यत्वंतमसोऽन्ध-
स्य दुष्पारस्याद्यपारगम् । सच्चक्षुर्जन्मनामन्ते लब्धंमेत्वदनुग्रहात् ॥ ८ ॥ यआ-
द्योभगवान् पुंसामीश्वरोवैभवान्किल । लोकस्यतमसाऽन्धस्य चक्षुःसूर्यइवोदितः
॥ ९ ॥ अथमेदेवसंमोहमपाक्रष्टुं त्वमर्हसि । योऽवग्रहोऽहंममेतीत्येतस्मिन्योजि

दृष्टी और शांत बुद्धिके इस भांति होगये कि जैसे समुद्र की लहरें शांत होजाती हैं ॥ ४४ ॥ उसी से परम धैर्य्यवान कर्दम जी का मन सम्पूर्ण प्राणियों के आत्मा, सर्व शक्तिमान, अंतर्यामी परमेश्वर में दृढ़भाव से लीन होगया और वे सम्पूर्ण बंधनों से छूटगये ॥ ४५ ॥ सम्पूर्ण प्राणियों में परब्रह्म परमेश्वर वर्तमान हैं और परमात्मा में सम्पूर्ण प्राणी हैं तथा वही परब्रह्म रूप मैं हूं ऐसा देखने लगे ॥ ४६ ॥ इच्छा तथा द्वेष रहित और परमेश्वर की भक्ति सहित समदृष्टि रखने से मुनि मोक्ष को प्राप्त हुये ॥ ४७ ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेतृतीयस्कंधेसरलाभाषाटीकायांचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

शौनक ने कहा—कि. तत्वशास्त्र के फैलाने के हेतु अजन्मा होकरभी कपिलदेव भगवान ने जन्म लिया ॥ १ ॥ सम्पूर्ण पुरुषों में शिरोमणि तथा योगियों में श्रेष्ठ भगवान के यश वारम्वार सुनने से भी मेरे प्राणों को तृप्ति नहीं होती ॥ २ ॥ श्री परमेश्वर ने अपने भक्तों की इच्छासे अवतार धारणकर जो २ कर्म अपनी मायासे किये उन सुनने योग्य चरित्रों को मैं श्रद्धापूर्वक सुनाचाहताहूं सो आप कहिये ॥ ३ ॥ सूतजी ने कहा कि—वेदव्यासजी के मित्र मैत्रेयजी से जब विदुर ने इस भांति प्रश्न किया तव आत्मविद्या में प्रेरित मैत्रेयजी ने प्रसन्न होकर इस भांति कहा ॥ ४ ॥ किजब कर्दम ऋषि बनको चलेगये तब माता को प्रसन्न रखने के हेतु भगवान कपिलदेवजी उसी विंदुसरोवर में वास करनेलगे॥५॥देवहूतीने अपनेपुत्र कपिलदेवजीको,जो तत्व मार्ग के दिखानेवाले तथा कर्म बंधन रहित हैं,बैठे देख ब्रह्मा के वचनों का ध्यानकर के बोली ६॥ हे भूमन् ! खोटी इंद्रियों की लालसा से मैं बहुत थक गई हूं हे प्रभो जिस से मैं अंधकार में पड़ीहुईहूं ॥ ७ ॥ उस अपार गढ़े से तरने के हेतु आप का श्रेष्ठरूप आपकी कृपासे अनेक जन्मों के पश्चात् आज मुझे मिला है ॥ ८ ॥ हे आदिपुरुष ! भगवान. आप अंधकारमें अंधि हुई सृष्टि के सूर्य की सदृश नेत्ररूप उत्पन्नहुएहो ॥९॥ हे देव ! देह आदि पदार्थों में जोअहंता

तस्त्वया ॥ १० ॥ तंत्वागताऽहंशरणंशरण्यं स्वभृत्यसंसारतरोःकुठारम् । जिज्ञासयाऽहंप्रकृतेःपूरुषस्य नमामिसद्धर्मविदांवरिष्ठम् ॥११ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ इतिस्वमातुर्निरवद्यमीप्सितं निशम्यपुंसामपवर्गवर्धनम् । धियाऽभिनंद्यात्मवतांसतांगतिर्बभाषईषत्स्मितशोभिताननः ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ योगआध्यात्मिकःपुंसामतोनिःश्रेयसायमे । अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्यचसुखस्यच ॥ १३ ॥ तमिमंतेप्रवक्ष्यामि यमवोचंपुराऽनघे । ऋषीणांश्रोतुकामानां योगंसर्वाङ्गनैपुणम् ॥१४॥ चेतःखल्वस्यबन्धाय मुक्तयेचात्मनोमतम् । गुणेषुसक्तंबन्धाय रतंवापुंसिमुक्तये ॥ १५ ॥ अहंममाभिमानोत्थैः कामलोभादिभिर्मलैः । वीतंयदामनः शुद्धमदुःखमसुखंसमम् ॥ १६ ॥ तदापुरुषआत्मानं केवलंप्रकृतेःपरम् । निरन्तरंस्वयंज्योतिरणिमानमखण्डितम् ॥ १७ ॥ ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियुक्तेनचात्मना । परिपश्यत्युदासीनंप्रकृतिंचहतौजसम् ॥ १८ ॥ नयुज्यमानयाभक्त्या भगवत्यखिलात्मनि सदृशोऽस्तिशिवःपन्था योगिनांब्रह्मसिद्धये ॥ १९ ॥ प्रसंगमजरंपाशमात्मनःकवयोविदुः । सएवसाधुषुकृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥ २० ॥ तितिक्षवःकारुणिकाःसुहृदःसर्वदेहिनाम् । अजातशत्रवःशांताः साधवःसाधुभूषणाः ॥ २१ ॥ मय्यनन्येनभावेन भक्तिंकुर्वंतियेदृढाम् । मत्कृतेत्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनबान्धवाः ॥ २२ ॥ मदाश्रयाःकथामृष्टाः शृण्वन्तिकथयंतिच । तपन्तिविविधास्तापानैतान्मद्गतचेतसः ॥ २३ ॥ तएतेसाधवःसाध्वि सर्वसङ्गविवर्जिताः । संगस्तेष्वथतेप्रार्थ्यःसंग

उत्पन्न करदी है ऐसे आप मेरे मोह को दूर करें ॥ १० ॥ मैं आपकी शरण में आईहूं हेभगवान आप अपने भक्तों के संसाररूपी वृक्ष काटने के हेतु कुल्हाड़ारूपहो, मैं आप के प्रकृति और पुरुष के स्वरूप के जानने की इच्छा रखतीहूं । आप को प्रणाम है ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी ने कहा कि—मोक्ष में प्रीति उत्पन्न करनेवाली अपनी माता की निर्दोष इच्छासुनकर उस की बुद्धि की बड़ाई करतेहुए आत्मवेत्ता संतों के गति रूप भगवान कुछ हँसकर बोले ॥ १२ ॥ कपिलदेवजी ने कहा कि—यह आध्यात्मिक योगही मनुष्यों के सुख का मुख्य हेतु है किजिससे सुख और दुःख का नाश होजाता है और यही मेरामत है ॥ १३ ॥ हे अनघे ! सम्पूर्ण अंगों में निपुण योग जो मैंने प्रथम ऋषियों से कहाथा उसी को अब फिर कहूंगा उस को तुमसुनो ॥ १४ ॥ आत्मा का मनसेही बंधनहोता है तथा मनसेही मोक्ष होती है मनही विषयों में आसक्त होने से बंधन का तथा परमेश्वर में रति होने से मोक्ष का कारण है ॥ १५ ॥ "यह मैं हूं" "यह मेरा है" इस भांति अभिमान से उठेहुए काम लोभादिकों से जबमनुष्य रहित होजाता है तब उस का मन शुद्ध होकर दुःख सुख में समानहो समदृष्टि होजाता है ॥ १६ ॥ उसी काल वैराग्य, ज्ञान, और भक्तिवाले चित्त से अपना आत्मरूप कि जो माया से न्यारा निरंतर स्वयं जोति, सूक्ष्म और अखण्डरूप है ॥ १७॥ उसे उदासीन होकर देखता है और अपने बलको नाशवानसमझता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ भगवान अखिलात्मा में लगेहुए के समान, योगियों को ब्रह्म प्राप्ति के हेतु इस से अतिरिक्त और दूसरा कोई सुखदाई मार्ग नहीं है ॥ १९ ॥ इस जीवको जगत् में आसक्त होजाना अजर अमर फांसी है, यही आसक्ति साधु संतों में करे तो उस के लिये मोक्षकाद्वार खुला है ॥ २० ॥ सहनशील, करुणावान, सम्पूर्ण देहधारियों को प्यारे, जिनका कोई शत्रु नहीं है उन्हीं को साधू कहते हैं और साधुओं के यही गहने हैं ॥ २१ ॥ जो अनन्य भाव से मेरी भक्ति में दृढ़ हैं जिन्हों ने मेरे हेतु अपने कर्मों तथा स्वजनों और बांधवोंका त्याग करदिया है ॥ २२ ॥ और मेरे आश्रय की जो निर्मलकथा श्रवणकरते हैं अथवा आप बांचते हैं और अपना

दोषहराहित ॥ २४ ॥ सतांप्रसंगान्ममवीर्यसंविदोभवन्ति हृत्कर्णरसायनाःकथाः तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनिश्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥ २५ ॥ भक्त्यापुमांजात विरागऐंद्रियाद्दृष्टश्रुतान्मद्रचनाऽनुचिन्तया । चित्तस्ययत्तोग्रहणेयोगयुक्तोयाति ष्यतं ऋजुभिर्योगमार्गैः ॥ २६ ॥ असेवयाऽयंप्रकृतेर्गुणानां ज्ञानेनवैराग्यविजृम्भि तेन । योगेनमय्यर्पितयाचभक्त्या मांप्रत्यगात्मानमिहावरुन्धे ॥ २७ ॥ देवहूतिरु वाच ॥ काचित्वय्युचिताभक्तिः कीदृशीममगोचरा । ययापदंतेनिर्वाणमंजसाऽ न्वाश्नवाअहम् ॥ २८ ॥ योयोगोभगवद्बाणो निर्वाणात्मंस्त्वयोदितः । कीदृशःक तिचांगानि यतस्तत्त्वावबोधनम् ॥ २९ ॥ तदेतन्मेविजानीहि यथाऽहंमन्दधीर्हरे । सुखंबुद्ध्येयदुर्बोधंयोषाभवदनुग्रहात् ॥३०॥ मैत्रेयउवाच ॥ विदित्वाऽर्थंकपिलो मातुरित्थंजातस्नेहो यत्रतन्वाभिजातः । तत्वाम्नायंयत्प्रवदन्तिसांख्यं प्रोवाचवै भक्तिवितानयोगम् ॥३१॥ श्रीभगवानुवाच ॥ देवानांगुणलिंगानामानुश्रविककर्म णाम् । सत्वएवैकमनसोवृत्तिःस्वाभाविकीतुया ॥३२॥ अनिमित्ताभागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी । जरयत्याशुयाकोशं निगीर्णमनलोयथा ॥ ३३ ॥ नैकात्मतांमेस्पृह यन्ति केचिन्मत्पादसेवाऽभिरतामदीहाः । येऽन्योन्यतोभागवताःप्रसज्य सभाज यन्तेममपौरुषाणि ॥ ३४॥ पश्यन्तितेमेरुचिराण्यम्ब सन्तःप्रसन्नवक्त्रारुणलोचना

चित्त मुझ में लगाते हैं उनको किसी प्रकार की बाधा नहीं होती ॥ २३ ॥ हे साध्वी ! सम्पूर्ण संगी से वर्जित साधुओं की संगति करना योग्य है क्योंकि दोषों के दूरकरनेवाले वही हैं ॥ २४॥ साधुओंकी ही संगति से मेरे ऐश्वर्य का ज्ञान करानेवाली तथा कानों और हृदय को सुख देने वाली कथाका श्रवण होसक्ता है, कि जिस से मोक्ष के मार्गरूप परमेश्वर में भक्ति उत्पन्न होती है ।। २५ ॥ मेरी कथाश्रवण करने से प्रथमं मनुष्य के हृदय मे भक्ति उत्पन्न होती है, भक्ति से वैराग्य प्रगट होताहै उस बैराग्य में मेरी अलौकिकरचना के विचार करने से योगयुक्त होकर चित्तके ग्रहणार्थ कोमल योग के मार्गों में यत्न करे ॥ २६ और प्रकृति के गुणों की सेवा न करने से ज्ञान वैराग्य अधिक बढ़ाने का चिंतवन करे, योग का साधन करे, सब कर्म मेरे समर्पण करे, और एकाग्र चितहो मेरी दृढ़भक्ति करने से प्राणी सर्व अंतर्यामी मुझ को प्राप्त होताहै ॥ २७॥ देवहूती बोली कि-ऐसी कौनसी भक्ति है जो मैं करसकूं ! क्योंकि मैं स्त्रीहूं मुझ को किसप्रकार की भक्ति करनी चाहिए ? जिस के प्रभाव से विनाप्रयास, तुम्हारा मोक्षपद प्राप्त होता है ऐसा मैने सुना है ॥ २८ ॥ भगवान का उपलक्ष करनेवाला योग तुमने कहा है सोकैसा है ? औरउस के कितने अंग हैं ! जिससे तत्वज्ञान होता है ॥ २९ ॥ हे हरे! ऐसी सुगम रीति से कोई शिक्षा मुझ को करो कि जिस केप्रभाव से मैं मंदमति स्त्री भी तुम्हारे अनुग्रह से कठिनबात को सहज में समझलूं ।। ३० ।। मैत्रेयजी बोले कि कपिलदेवजी ने अपनी माता के मनोरथ को जानकरअधिक स्नेह किया जहांशरीरधारी होकर जन्मे उस माता को तत्वों की संख्यावाले शांख्यशास्त्र कीशिक्षा भक्ति विस्तृत योगकी रीति से, कपिलदेवजी कहने को उद्यत हुए ।। ३१ ।। श्रीभगवान जी बोले, कि गुणों के जिनके शरीर, बेद विहित कर्म करें, ऐसे देवताओं का सत्वगुण एक मन है उस की जो स्वाभाविकी वृत्ति है वही भक्ति है ।। ३२ ॥ निष्काम भागवती भक्ति सिद्धिसे भी बड़ीहै जैसे जठरानल भोजन किये हुए अन्न को भस्म करदेती है वैसेही भक्तिभी बासना को जलादेती है ॥ ३३ ॥ मेरे चरणों की सेवा में जिन पुरुषों की चेष्टा रहती है औरकेवल मेरेही लिये सब कर्म करते हैं वह लोग सायुज्य मोक्ष की इच्छा नहीं रखते; वह सज्जन पुरुष इकट्ठे होकर मेरे चरित्रों की प्रशंसा करते हैं ॥ ३४ ॥ हे अम्ब वह महात्मा लोग मेरा कोटि शशिसम प्रसन्नबदन

नि । रूपाणिदिव्यानिवरप्रदानि साकंवाचंस्पृहणीयांवदन्ति ॥३५॥ तैर्दर्शनीयाव यवैरुदार विलासहासेक्षितवामसूक्तैः हृतात्मनोहृतप्राणांश्च भक्तिरनिच्छतोमेगति मण्वींप्रयुंक्ते ॥ ३६ ॥ अथोविभूतिंममायाविनस्तामैश्वर्यमष्टांगमनुप्रवृत्तम् । श्रियंभागवतींवास्पृहयन्तिभद्रां परस्यमेतेऽश्नुवतेतुलोके ॥ ३७ ॥ नकर्हिचिन्मत्पराःशांतरूपेनंक्ष्यन्तिनामेनिमिषोलेढिहेतिः । येषामहंप्रियआत्मासुतश्च सखागुरुः सुहृदोदैवमिष्टम् ३८ इमंलोकंतथैवामुमात्मानमुभयायिनम् । आत्मानमनुयेचेहयेरायःपशवोगृहाः ॥ ३९ ॥ विसृज्यसर्वानन्यांश्च मामेवंविश्वतोमुखम् । भजन्त्यनन्ययाभक्त्यातान्मृत्योरतिपारये ॥ ४० ॥ नान्यत्रमद्भगवतः प्रधानपुरुषेश्वरात् । आत्मनःसर्वभूतानांभयंतीव्रंनिवर्तते ॥ ४१ ॥ मद्भयाद्वातिवातोऽयंसूर्यस्तपतिमद्भयात् । वर्षतींद्रोदहत्यग्निर्मृत्युश्चरतिमद्भयात् ॥ ४२ ॥ ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियोगेनयोगिनः । क्षेमायपादमूलंमे प्रविशन्त्यकुतोभयम् ॥ ४३ ॥ एतावानेवलोकेऽस्मिन्पुंसांनिःश्रेयसोदयः तीव्रेणभक्तियोगेनमनोमय्यर्पितंस्थिरम् ॥ ४४ ॥

इतिश्रीमद्भा० तृती० भक्तिलक्षणवर्णनंनामपंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ अथतेसंप्रवक्ष्यामि तत्त्वानांलक्षणंपृथक् । यद्विदित्वाविमुच्येत पुरुषःप्राकृतैर्गुणैः ॥ १ ॥ ज्ञानंनिःश्रेयसार्थाय पुरुषस्यात्मदर्शनम् । यदाहुर्वर्णयेतत्ते हृदयग्रन्थिभेदनम् ॥ २ ॥ अनादिरात्मापुरुषो निर्गुणःप्रकृतेःपरः । प्रत्यग्धामास्वयंज्योतिर्विश्वंयेनसमन्वितम् ॥ ३ ॥ सएषप्रकृतिंसूक्ष्मां दैवींगुणमयींविभुः

अरुणनयन, दिव्यवरप्रदरूपों को वाणी से बारम्बार कहते हैं और आनन्दितहो२ कर निहारते हैं ॥ ३५ ॥ दर्शन योग्य रूप, उदारबिलासहास, अवलोकन, संभाषण, अत्यन्त मनोहर सूक्तों से जिनके प्राण और मन और इन्द्रियों को बशमें कर लिया है उनको बिना इच्छा के भी सूक्ष्म गति देता है ॥३६॥ इस लिये बिभूति ऐश्वर्य, अष्टांग योग से भागवती श्री कल्याण दायनी भक्ति के पश्चात् आपही प्राप्त होते हैं जो सत्पुरुष मुझमें परायण हैं वह शांत रूप कभी नहीं नाश होते और मेरा कालचक्र उनको नहीं मार सकता क्यो कि जिनका मैं प्रिय आत्माहूं, पुत्रके तुल्य प्रतिपालक, मित्र के समान विश्वासी, गुरु के सदृश उपदेशक, भ्राता समान हितकारी, और देवतावत् पूज्यवर हूं ॥३७॥३८॥ इस लोकपरलोक और दोनों लोक में जानें वाले आत्मा को, और आत्मा के पीछे जो यहां धन, पशु, गृह इत्यादिक और वस्तु हैं ॥ ३९ ॥ उन सबको त्यागकर और बिश्वमुख मुझको जो अनन्य भाव से भजते हैं उनको मैं संसार सागर से पार उतार देता हूं ॥ ४० ॥ भगवान प्रधान पुरुषेश्वर और सब पदार्थों का आत्मा व अधिष्ठाता जो मैं हूं, मेरी शरणागत बिना आत्मा को सब जियों का तीव्र भय कभी निवृत्त नहीं होसकता ॥ ४१ ॥ मेरे भय से पवन चलती है, सूर्य तपता है, इन्द्र जल वर्षाता है, अग्नि दाह करता है और मृत्यु संसार में घूमता फिरता है ॥ ४२ ॥ ज्ञान वैराग्य युक्त भक्ति योग से योगीजन अपनी कुशल के लिये निर्भय हो मेरे चरणारबिंद का आश्रय लेते हैं ॥ ४३ ॥ पुरुषों को आनंद का हेतु इस लोकमें इतनाही है कि तीव्र भक्ति योग से स्थिर मन मुझमें अर्पित करें ॥ ४४ ॥

इतिश्री मद्भा० महा० पु० तृतीयस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

श्री भगवान बोले कि—अब मैं तुमको तत्वों के लक्षण पृथक २ सुनाता हूं जिनके जाननें से पुरुष प्रकृति के गुणों से युक्त हो जाता है ॥ १ ॥ पुरुष के आत्मा का दर्शन जो ज्ञान मोक्ष के लिये है सो तुमसे वर्णन करता हूं वही ज्ञान हृदय की ग्रंथि का भेदन करने वाला है ॥ २ ॥ अनादि, आत्मा पुरुष, निर्गुण प्रकृति से परे, पूजनीय, तेजका आप ज्योति स्वरूप है जिससे यह

यदृच्छयैवोपगतामभ्यपद्यतलीलया ॥ ४ ॥ गुणैर्विचित्राः सृजतींसरूपाः प्रकृतिं प्रजाः। विलोक्यमुमुहेसद्यःसइहज्ञानगूहया ॥ ५ ॥ एवंपराभिध्यानेन कर्तृत्वंप्रकृतेःपुमान्। कर्मसुक्रियमाणेषु गुणैरात्मनिमन्यते ॥ ६ ॥ तदस्यसंसृतिर्बन्धःपारतंत्र्यंचतत्कृतम्। भवत्यकर्तुरीशस्य साक्षिणोनिर्वृतात्मनः ॥ ७ ॥ कार्यकारणकर्तृत्वे कारणंप्रकृतिंविदुः।भोक्तृत्वेसुखदुःखानां पुरुषंप्रकृतेःपरम् ॥८॥ देवहूतिरुवाच ॥ प्रकृतेःपुरुषस्यापिलक्षणंपुरुषोत्तम। ब्रूहिकारणयोरस्य सदसच्चयदात्मकम् ॥९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यंसदसदात्मकम्। प्रधानंप्रकृतिंप्राहुरविशेषंविशेषवत् ॥ १० ॥ पंचभिःपंचभिर्ब्रह्म चतुर्भिर्दशभिस्तथा। एतच्चतुर्विंशतिकंगणंप्राधानिकंविदुः ॥ ११ ॥ महाभूतानिपंचैव भूरापोग्निर्मरुन्नभः तन्मात्राणि चतावन्ति गन्धादीनिमतानिमे ॥ १२ ॥ इन्द्रियाणिदशश्रोत्रं त्वग्दृग्रसननासिकाः वाक्करौचरणौमेढ्रं पायुर्दशमउच्यते ॥ १३ ॥ मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तमित्यन्तरात्मकम्। चतुर्धालक्ष्यतेभेदो वृत्त्यालक्षणरूपया ॥ १४ ॥ एतावानेवसंख्यातो ब्रह्मणःसगुणस्यह। सन्निवेशोमयाप्रोक्तो यःकालःपंचविंशकः ॥ १५ ॥ प्रभावंपौरुषंप्राहुः

विश्व प्रकाशित है ॥ ३ ॥ सो यह प्रभु सूक्ष्म, दैवी गुण मयी यदृच्छा से प्राप्त प्रकृति को लीला करके प्राप्त हुए, यहां यह सिद्धांत है "आवरण शक्ति और विक्षेप शक्ति भेद से प्रकृति दो प्रकार की है आवरण शक्ति जो है वही जीवों की उपाधि अविद्या है, और विक्षेपशक्ति जो है वह परमात्मा की माया है और पुरुष भी जीव ईश्वर दो प्रकार का है जो प्रकृति अज्ञान से सन्सार में आता है वहतो जीव है और जो प्रकृति को वश में करके विश्व की सृष्टि आदि करता है वह ईश्वर है ॥ ४ ॥ ज्ञान के ढकने वाली माया को विचित्र अपने समान प्रजाको गुणों से रचती देखसो जीव ज्ञान चेष्टा से मोहित हो अपने स्वरूप को भूल गया अर्थात् मैं देह हूं यह समझने लगा ॥ ॥ ५ ॥ इस प्रकार परमेश्वर के ध्यान से और प्रकृति के करे हुए गुणों से कर्म करनें परभी यह जीव कहता है कि मैं कर्म करता हूं कर्ता भावको आत्मा में मानता है ॥ ६ ॥ यद्यपि यह पुरुष साक्षीमात्र है, इस कारण अकर्ता है तौभी इस अकर्ता को ही अपनें मे कर्मत्व धर्म को माननें से ही कर्मों का वन्धन होता है और जो किसी के आधीन नहीं है उसी को भोगों में पराधीनता होती है और जो सुखात्मक है उसको जन्म अर्थात् मृत्यु प्रवाह होता है॥ ७ ॥ कार्य कारण कर्तृत्व में कारण प्रकृति को जानो सुख दुःख के भोक्ता प्रकृति से परे पुरुष हैं ॥ ८ ॥ देवहूती बोली कि हे पुरुषोत्तम ! प्रकृति पुरुष का लक्षण कहो और इनका सत असत स्थूल सूक्ष्म है यदात्मक कारण है सो कहो ॥ ९ ॥ श्री भगवान बोले कि स्वतः विशेष अर्थात भेद रहित होने परभी जो सर्व विशेषों का आश्रय और प्रधान तत्वहै उसे प्रकृति कहते हैं, क्या ब्रह्मको प्रकृति कहते हो? नहीं वह त्रिगुणहै और ब्रह्म गुण रहितहै,तव क्या महतत्त्वादिहै? नहीं वोह कार्य नहीं है क्या काल आदि है?नही वह कार्य कारण रूप है, काल कार्य कारण रूप नहीं है तव क्या जीव प्रकृति है ? नहीवह नित्यहै॥१०॥पांच२ चार और दश यह चौवीस तत्वोंका समूह प्रकृति की वनावट होनेंसे प्राकृतिक कहलाता, है ॥ ११ ॥ पृथ्वी, जल, पवन, अग्नि, आकाश यह पांच महाभूत होते हैं और गंध, रूप, रस, स्पर्श और शब्द यह पांच तन्मात्रा हैं ॥ १२ ॥ कर्ण, त्वचा, दृष्टि, जिव्हा, श्रोत्र यह पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं । वाक्, कर, चरण, शिश्न गुदा यह पांच कर्मेन्द्रिय हैं, नासिका इत्यादि मिल कर दश इन्द्रियें हुई ॥ १३ ॥ मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त ये आत्मा के भीतर हैं, लक्षण रूप वृत्तियों से चार प्रकार का भेद लक्षित होता है ॥ १४ ॥ सगुण रूप का इतनाही व्याख्यान है यह संक्षेप मात्र मैंने तुमसे कहा, जो काल है वह भी मायाही की एक अवस्था पचीस तत्वहो

कालमंकेयतोभयम् । अहंकारविमूढस्य कर्तुःप्रकृतिमीयुषः ॥ १६॥ प्रकृतेर्गुणसा म्यस्य निर्विशेषस्यमानवि । चेष्टायतःसभगवान्कालइत्युपलक्षितः ॥ १७ ॥ अंतः पुरुषरूपेण कालरूपेणयोबहिः । समन्वेत्येषसत्त्वानां भगवानात्ममायया ॥ १८ ॥ दैवात्क्षुभितधर्मिण्यांस्वस्यांयोनौपरःपुमान् । आधत्तवीर्यंसासूत महत्तत्त्वंहिरण्मयम् ॥ १९ ॥ विश्वमात्मगतं व्यंजन्कूटस्थोजगदंकुरः । स्वतेजसाऽपिबत्तीव्रमात्मप्रस्वापनंतमः ॥ २० ॥ यत्तत्सत्त्वगुणंस्वच्छं शान्तंभगवतःपदम् । यदाहुर्वासुदेवाख्यं चित्तंतन्महदात्मकम् ॥ २१ ॥ स्वच्छत्वमविकारित्वं शांतत्वमितिचेतसः । वृत्तिभिर्लक्षणंप्रोक्तं यथाऽपांप्रकृतिःपरा ॥ २२ ॥ महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यसंभवात् । क्रियाशक्तिरहंकारस्त्रिविधःसमपद्यत ॥ २३ ॥ वैकारिकस्तैजसश्चतामसश्चयतोभवः । मनसश्चेंद्रियाणांचभूतानांमहतामपि ॥ २४ ॥ सहस्रशिरसंसाक्षाद्यमनन्तंप्रचक्षते । संकर्षणाख्यंपुरुषं भूतेंद्रियमनोमयम् ॥ २५ ॥ कर्तृत्वंकरणत्वंच कार्यत्वंचेतिलक्षणम् । शांतघोरविमूढत्वमितिवास्यादहंकृतेः ॥ २६ ॥ वैकारिकाद्विकुर्वाणान्मनस्तत्त्वमजायत । यत्संकल्पविकल्पाभ्यां वर्ततेकामसंभवः ॥ २७ ॥ यद्विदुर्ह्यनिरुद्धाख्यं हृषीकाणामधीश्वरम् । शारदेन्दीवरश्यामं संराध्यंयोगिभिःशनैः ॥ २८ ॥ तैजसात्तुविकुर्वाणाद्बुद्धितत्त्वमभूत्सति । द्रव्यस्फुरणविज्ञान

कर रहती है ॥ १५ ॥ जो पुरुष अहंकार वशही मूढता से कहते हैं कि यह काल परमेश्वर का प्रभाव है, और देह हम हैं, इस प्रकार अज्ञानता से देहाभिमानी पुरुष को जगत का भय बना-रहता है ॥ १६ ॥ हे माता ! जिसको कोई विशेष नहीं त्रिगुण साम्यभावही जिसका स्वरूप है, प्रकृति की चेष्टा काल है जिससे भगवान का अनुमान होता है ॥ १७ ॥ जो भगवान अपनी माया से सब जीवमात्र के भीतर प्राप्त होरहे हैं, भीतर पुरुष से और बाहर कालरूपसे रहते हैं ॥ १८ ॥ दैव से क्षोभ को जिसके धर्म प्राप्त हुये, ऐसी अपनी योगमाया में पर पुरुष ने हिरण्य मय महत्तत्व को रचा ॥ १९ ॥ अपने भीतर विश्वको जो धारण कियाथा उसको प्रगट किया और सर्वान्तः स्थिर जगत का अंकुर महत्तत्व को अपने आप सुलाने वाले तमको अपने तेजसे पीलिया ॥ २० ॥ जो सत्वगुण स्वच्छ, शांत, रागद्वेष रहित, भगवत् का उत्तम स्थान है, जिस को वासुदेव कहते हैं, महत्तत्व रूप चित है पंडितलोग इसमें यह सिद्धांत करते कि उपास्य वासुदेव हैं, क्षेत्रज्ञ अधिष्ठाता हैं, इसी प्रकार उपास्य व अहंकार में संकर्षण उपास्य हैं, रुद्र अधिष्ठाता हैं, मनमें अनिरुद्ध उपास्य हैं, चन्द्रमा अधिष्ठाता है, बुद्धिमें प्रद्युम्न उपास्य हैं ब्रह्म अधिष्ठाता है ॥ २१ ॥ पृथ्वी का संसर्ग होने से प्रथम जैसे जल की स्थिति स्वच्छ और शांत होती है तैसे ही दूसरे विकार के प्राप्त होने से प्रथम स्वच्छता, अर्थात् भगवान के बिभवका ग्रहण करना लय विक्षेप शून्य होना शांत होना इन वृत्तियों द्वारा महत्तत्व का लक्षण कहाजाता है ॥ २२ ॥ भगवत के वीर्यसे जिस की उत्पत्ति ऐसा महत्तत्व विकार को प्राप्त हुआ, तब क्रियाशक्ति अहङ्कार त्रिविध उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥ वैकारिक, तैजस, तामस जिससे होय वह मन इन्द्रियें पंचभूत, महत्तत्व इन से प्रगट होते हैं ॥ २४ ॥ अहंकार के उपास्य देवता भगवान शेषजी हैं, जिनके सहस्र शीर्ष हैं उनको साक्षात अनंत कहते हैं, वह संकर्षण पुरुष हैं, भूत इन्द्रिय मनोमय हैं ॥ २५ ॥ कर्तृत्व, करणत्व, कार्यत्व, शान्तत्व, घोरत्व, विमूढत्व, यह अहंकार का लक्षण है ॥ २६ ॥ जब सात्विक अहंकार विकार को प्राप्त होता है तब मनस्तत्त्व प्रगट होता है और संकल्प विकल्प से जो कामना उत्पन्न होती है वह मन का लक्षण है ॥ २७ ॥ सब इन्द्रियों के अधीश्वर, शरत्काल के कमल समान श्याम स्वरूप, योगियों से सुन्दर आराधना करने के योग्य, उनको अनिरुद्ध कहते हैं ॥२८॥

मिंद्रियाणामनुग्रहः ॥ २९ ॥ संशयोऽथविपर्यासो निश्चयःस्मृतिरेवच । स्वाप इत्युच्यतेबुद्धेर्लक्षणं वृत्तितःपृथक् ॥३०॥ तैजसानीन्द्रियाण्येव क्रियाज्ञानविभागशः । प्राणस्यहिक्रियाशक्तिर्बुद्धेर्विज्ञानशक्तिता ॥३१॥ तामसाच्चविकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यचोदितात् । शब्दमात्रमभूत्तस्मान्नभःश्रोत्रंतुशब्दगम् ॥ ३२ ॥ अर्थाश्रयत्वंशब्दस्य द्रष्टुर्लिङ्गत्वमेवच । तन्मात्रत्वंचनभसो लक्षणंकवयोविदुः ॥ ३३ ॥ भूतानांछिद्रदातृत्वं बहिरन्तरमेवच । प्राणेंद्रियात्मधिष्ण्यत्वं नभसोवृत्तिलक्षणम् ॥ ३४ ॥ नभसःशब्दतन्मात्रात्कालगत्या विकुर्वतः । स्पर्शोऽभवत्ततोवायुस्त्वक् स्पर्शस्यचसंग्रहः ॥ ३५ ॥ मृदुत्वंकठिनत्वंच शैत्यमुष्णत्वमेवच । एतत्स्पर्शस्य स्पर्शत्वं तन्मात्रत्वंनभस्वतः ॥ ३६ ॥ चालनंव्यूहनंप्राप्तिर्नेतृत्वं द्रव्यशब्दयोः । सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वंवायोः कर्माभिलक्षणम् ॥ ३७ ॥ वायोश्चस्पर्शतन्मात्राद्रूपं दैवेरिताद्भूत् । समुत्थितंततस्तेजश्चक्षू रूपोपलम्भनम् ॥ ३८ ॥ द्रव्याकृतित्वं गुणता व्यक्तिसंस्थात्वमेवच । तेजस्त्वंतेजसःसाध्वि रूपमात्रस्यवृत्तयः ॥ ३९ ॥ द्योतनंपचनंपानमदनं हिममर्दनम् । तैजसोवृत्तयस्त्वेताः शोषणंक्षुत्तृडेवच ॥४० रूपमात्राद्विकुर्वाणात्तेजसो दैवचोदितात् । रसमात्रमभूत्तस्मादम्भो जिह्वारसग्र-

हे जननि ! तेजस अहङ्कार तत्व जब विकार को प्राप्त हुआ तब वुद्धि तत्व उत्पन्न हुआ; इस में द्रव्य का स्फुरण ज्ञान इन्द्रियों का अनुग्रह होता है ॥ २९ ॥ संशय, मिथ्याज्ञान, निश्चय, स्मृति, निद्रा यह वुद्धिके लक्षण हैं सब वृतियों से पृथक ॥ ३० ॥ ज्ञानेन्द्रिय, और कर्मेन्द्रिय यह दशों राजस अहङ्कार से उत्पन्न हुई कहते है; क्रिया शक्ति प्राण की है और विज्ञान शक्ति वुद्धि की है, यह दोनो राजस और अहंकार से उत्पन्न हुई हैं, इस लिये ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय भी इसी से उत्पन्न हुई है ॥ ३१ ॥ भगवत् के वीर्य से प्रेरित तामस अहङ्कार जब विकार को प्राप्त हुआ उस से शब्द मात्र प्रगट हुआ और शब्द से नभ उत्पन्न हुआ और शब्द की उपलब्ध करने वाली श्रोत्र इन्द्रिय राजस और अहङ्कार से उत्पन्न हुई है ॥ ३२ ॥ शब्द से सब पदार्थों के नाम होते हैं जो मनुष्य दृष्टि में नहीं आता तौभी वह किसी पदार्थ को देखकर उसके चिह्नमात्र का ज्ञान होना उसकी मात्रा जाननी यह कविओं ने आकाश का लक्षण कहा है शब्द के अर्थ को अर्थात जिस से सब पदार्थों के नाम रक्खेजाते हैं, जानना और देखने वाले के चिह्नमात्र का ज्ञान न होना और उस की मात्राको पहिचानना यह वुद्धिमानों ने आकाश का लक्षण कहा है ॥ ३३ ॥ सब प्राणी मात्रों में अवकाश छिद्र रखना और बाहर भीतर व्यवहार को आश्रय देना, प्राण इन्द्रिय आत्मा में स्थान रखना आकाशकी वृत्ति का लक्षण है ॥३४॥ शब्द मात्रा वाला आकाश जब काल की गतिसे क्षुभित हुआ तब उससे स्पर्श तन्मात्रा प्रगटहुई, उससे वायु उत्पन्नहुआ, त्वचा इन्द्रिय से स्पर्श का ज्ञानहोता है ॥ ३५ ॥ कोमलता, कठिनता, शीतलता, उष्णता यह स्पर्श रूप वाले पवन की तन्मात्रा हैं यही स्पर्श का लक्षण है ॥ ३६ ॥ वृक्षादिकों के पत्तों को चलाय मान करना, शब्द का लेजाना, तृणादिकों को मिलाना, प्राप्त करना, सब इन्द्रियों को बलदेना यह कर्म द्वारा वायु का लक्षण कहा है ॥ ३७ ॥ जब स्पर्श वाली वायु दैव से प्रेरित हुई तब उस से रूप प्रगट हुआ, उस से ग्रहण करने वाली चक्षु इन्द्रिय हुई ॥ ३८ ॥ हे साध्वी ! रूप पदार्थों को आकार देता है पदार्थ का स्वरूप तथा उसके आकार का भलीभांति निश्चय होना यही रूप का लक्षण है और तेजकागुण है इस की रूप का तन्मात्रा है ॥ ३९ ॥ प्रकाश करना, पचाना भक्षणकरना, मर्दनकरना क्षुधा, प्यास, सोखना यह तेज की वृत्ति हैं ॥ ४० ॥ रूप तन्मात्रावाला तेज जब दैव प्रेरित विकारको प्राप्तहुआ तो उस से रस तन्मात्रावाला जल

हः ॥ ४१ ॥ कषायोमधुरास्तिक्तः कट्वम्लइतिनैकधा । भौतिकानांविकारेण रस एकोविभिद्यते ॥ ४२ ॥ क्लेदनंपिण्डनंतृप्तिः प्राणनाप्यायनोदनम् । तापापनोदो भूयस्त्वमम्भसो वृत्तयस्त्विमाः ॥ ४३ ॥ रसमात्राद्विकुर्वाणादम्भसो दैवचोदितात् । गन्धमात्रमभूत्तस्मात्पृथ्वी घ्राणस्तुगन्धगः ॥ ४४ ॥ करम्भपूतिसौरभ्यशान्तोग्राम्लादिभिःपृथक् । द्रव्यावयववैषम्याद्गन्ध एकोविभिद्यते ॥ ४५ ॥ भावनंब्रह्मणःस्थानं धारणंसद्विशेषणम् । सर्वसत्त्वगुणोद्भेदः पृथिवीवृत्तिलक्षणम् ४६ नभोगुणविशेषोऽर्थो यस्यतच्छ्रोत्रमुच्यते । वायोर्गुणविशेषोऽर्थो यस्यतत्स्पर्शनंविदुः ॥ ४७ ॥ तेजोगुणविशेषोर्थो यस्यतच्चक्षुरुच्यते । अम्भोगुणविशेषोऽर्थो यस्यतद्रसनंविदुः ॥ भूमेर्गुणविशेषोऽर्थो यस्यसघ्राणउच्यते ॥ ४८ ॥ परस्य दृश्यतेधर्मो ह्यपरस्मिन्समन्वयात् । अतोविशेषोभावानां भूमावेवोपलक्ष्यते ॥४९ एतान्यसंहत्य यदामहदादीनिसप्तवै । कालकर्मगुणोपेतो जगदादिरुपाविशत् ॥ ५० ॥ ततस्तेनानुविद्धेभ्यो युक्तेभ्योऽण्डमचेतनम् । उत्थितंपुरुषो यस्मादुदतिष्ठदसौविराट् ॥ ५१ ॥ एतदण्डंविशेषाख्यं क्रमवृद्धैर्दशोत्तरैः । तोयादिभिःपरिवृतं प्रधानेनावृतैर्बहिः ॥ यत्रलोकवितानोऽयं रूपंभगवतोहरेः ॥ ५२ ॥ हिरणमयादण्डकोशादुत्थाय सलिलेशयात् । तमाविश्यमहादेवो बहुधानिर्बिभेदखम् ॥५३॥ निरभिद्यतास्यप्रथमं मुखंवाणीततोऽभवत् । वाण्यावह्निरथोनासे प्राणोऽतोघ्राणएतयोः ॥ ५४ ॥ घ्राणाद्वायुरभिद्येतामक्षिणी चक्षुरेतयोः । तस्मात्सूर्यो

उत्पन्नहुआ जो रस जिह्वा से जानाजाता है ॥ ४१ ॥ यह एकही रस पंच महाभूत के विकारसे छहप्रकार का कडुवा, मीठा, चरपरा, कसैला, खट्टा और तीखा हुआ ॥ ४२ ॥ भिगोना मिट्टी आदि का पिंडबांधना, तृप्तकरना, जिलाना प्यास को निवृत्तकरना, नर्मकरना, ताप मिटाना, कूप आदि से जल निकालने पर भी अधिक होना, यह जल की वृत्तियें हैं ॥४३॥ रस तन्मात्रावाला जल जब दैव प्रेरित विकार को प्राप्तहुआ तो गन्धतन्मात्रा वाली पृथ्वी उत्पन्न हुई किजो गंध नासिका से जानी जाती है ॥ ४४ ॥ पृथक २ वस्तुओं की विषमतासे यह गंध कई प्रकार के करम्भ, पूति, सौरभ्य, शांत, उग्र आदि के भेदको प्राप्तहुई ॥४५॥ परब्रह्म के स्थानकी भावना करना जलादिकका धारण करना जिस में सम्पूर्ण जीव तथा उनके भेद उन के गुणोंका प्रगट होना यह पृथ्वी की वृत्ति का लक्षण है ॥४६॥ आकाशका गुण (शब्द) जिसका विषय है, उस को श्रोत्र कहते हैं, बायु का गुण (स्पर्श) जिसका विषय है उस को त्वचा कहते हैं ॥ ४७ ॥ तेज का जो विशेष गुण (रूप) जिसका विषय है उस को चक्षु कहते हैं, जलका जो बिशेष गुण (रस) जिसको विषय है उस को जिह्वा कहते हैं, भूमि का विशेष गुण (गंध) जिसका विषय है उस को घ्राण कहते हैं ॥ ४८ ॥ पहिले पदार्थों का पिछले पदार्थों से सम्बध होने से पूर्व पदार्थ का धर्म दूसरे के धर्म से मिलाहुआ दीखपड़ता है इसी हेतु पृथ्वी में चारों कारणोंके धर्म शब्दस्पर्श, रूप, रस और अपना धर्म गंध यह पांचों देखने में आते हैं ॥ ४९ ॥ फिर इन महतत्व आदिक सातों तत्वों में काल, कर्म, गुण संयुक्त परमेश्वर का प्रवेशहुआ ॥ ५० ॥ परमेश्वर का प्रवेश होने से यह तत्व विकार को प्राप्त होकर इकट्ठे हुए, तब इन से अचेतनअण्ड प्रगट हुआ उस से विराट् पुरुष हुआ ॥ ५१ ॥ हरि भगवान के स्वरूप भूतब्रह्मांडमें जल आदिक सात आवरण जो क्रम से एक दूसरे से दसगुणा बड़े हैं घिरहुए हैं और बाहरमाया लिपटी हुई है ॥ ५२ ॥ परमेश्वर ने जल में पड़ेहुए उदासीनता को छोड़ उस हिरण्यमय अण्डकोष में अनेक छिद्र किये ॥ ५३ ॥ प्रथम मुखहुआ उस से वाणी हुई उस के देवता वह्नि हुए फिर

व्यभिद्येतां कर्णौश्रोत्रंततोदिशः ॥ ५५ ॥ निर्बिभेदविराजस्त्वग्रोमश्मश्रवादयस्ततः ततओषधयश्चासञ्छिश्नं निर्बिभिदेततः५६॥ रेतस्तस्मादापआसन्निरभिद्यतवैगुदम् गुदादपानोऽपानाच्च मृत्युर्लोकभयंकरः ॥ ६७ ॥ हस्तौचनिरभिद्येतांबलंताभ्यां ततःस्वराट्। पादौचनिरभिद्येतां गतिस्तभ्यांततोहरिः ॥ ५८ ॥ नाड्योऽस्यनिरभिद्यन्तताभ्योलोहितमाभृतम्। नद्यस्ततःसमभवन्नुदरंनिरभिद्यत ५९ ॥ क्षुत्पिपासे ततःस्यातां समुद्रस्त्वेतयोरभूत। अथास्यहृदयंभिन्नं हृदयान्मनउत्थितम् ॥ ६० ॥ मनसश्चन्द्रमाजातो बुद्धिर्बुद्धेर्गिरांपतिः अहंकारस्ततोरुद्रश्चित्तं चैत्यस्ततोभवत् ॥ ६१ ॥ एतेह्यभ्युत्थितादेवा नैवास्योत्थापनेऽशकन्। पुनराविविशुःखानि तमुत्थापयितुंक्रमात् ॥ ६२ ॥ वह्निर्वाचामुखंभेजेनोदतिष्ठत्तदाविराट् । घ्राणेननासिके वायुर्नोदतिष्ठत्तदाविराट् ॥ अक्षिणीचक्षुषादित्यो नोदतिष्ठत्तदाविराट्। श्रोत्रेण कर्णौचदिशो नोदतिष्ठत्तदाविराट् ॥ ६४ ॥ त्वचंरोमभिरोषध्यो नोदतिष्ठत्तदाविराट्। रेतसाशिश्नमापस्तु नोदतिष्ठत्तदाविराट् ॥ ६५ ॥ गुदंमृत्युरपानेन नोदतिष्ठत्तदाविराट्। हस्ताविंद्रोबलेनैव नोदतिष्ठत्तदाविराट् ॥ ६६ ॥ विष्णुर्गत्यैवचरणौ नोदतिष्ठत्तदाविराट्। नाडीर्नद्योलोहितेन नोदतिष्ठत्तदाविराट्६७क्षुत्तृड्भ्यामुदरं सिंधुर्नोदतिष्ठत्तदाविराट्। हृदयंमनसाचन्द्रो नोदतिष्ठत्तदाविराट् ॥ ६८ बुद्ध्या

नासिका उत्पन्न हुई जो प्राण को बचानेवाली हुई इस से घ्राण इंद्रि हुई ॥ ५४ ॥ प्राण से वायु उत्पन्न हुआ जबवायु भेदको प्राप्तहुआ तो चक्षु इन्द्री उत्पन्नहुई कि जिससे सूर्य उत्पन्नहुआ फिर जबसूर्य भेद को प्राप्तहुआ तो कर्ण उत्पन्न हुए उनसे श्रोत्रेन्द्री तथा दिशा देवता उत्पन्नहुये ॥ ५५ ॥ फिर विराट् के त्वचा उत्पन्नहुई उसमें रोम और डाढ़ी मूछैं हुई और उन से औषधियां उत्पन्न हुई फिर लिंग उत्पन्नहुआ ॥५६॥उससे वीर्य तथा जल उत्पन्नहुआ फिर गुदा उत्पन्नहुई गुदा से अपानवायु तथा लोकको भयकारी मृत्यु हुई ॥५७॥ भगवान के हाथ भेद को प्राप्त हुए उस से बलतथा इन्द्र उत्पन्न हुआ, पांव जब भेद को प्राप्त हुए तो उस से गति तथा विष्णु देवताउत्पन्न हुए ॥ ५८ ॥ परमेश्वर की नाडी जब भेद को प्राप्त हुई तो रुधिर उत्पन्नहुआ उस से नदी प्रगटहुई जबभगवान का उदरभेदको प्राप्तहुआ तो उस से भूख प्यास तथासमुद्र हुआ ॥ ५९ ॥ जबभगवान का हृदय भेद को प्राप्तहुआ तो उस से मन उत्पन्न हुआ और मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, हृदय में बुद्धिउत्पन्न हुई बुद्धि से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ–हृदय में अहंकार होने से रुद्रउत्पन्नहुआ फिर भगवान के हृदय में चित्त उत्पन्न हुआ तिस से क्षेत्रज्ञहुआ ६० ॥ फिरयहसम्पूर्ण देवता विराट् के उठाने में समर्थ न हुए तो अपने २ स्थान में उस के उठाने के लिये क्रम स प्रवेशकरते हुए ॥ ६१ ॥ अग्नि नें वाणी सहित मुख में प्रवेश किया वायु ने घ्राण सहित नाशिका में प्रवेश किया सूर्य ने चक्षु के साथ नेत्रों में प्रवेश किया परन्तु तोभी वह विराट् न उठा ॥ ६२ ॥ दिशाओं ने श्रोत्रसहित कर्ण में प्रवेश किया, और औषधियों नें त्वचा सहित रोमों में प्रवेश किया ॥ ६३ ॥ तथा जल ने वीर्य सहित लिंग में प्रवेश किया परन्तु तौभी वह विराट् नउठा मृत्यु ने अपानवायु समेत गुदा में प्रवेश किया तौभी वह नउठा ॥ ६४ ॥ इन्द्र ने बलपूर्वक हाथों में प्रवेश किया परन्तु तौभी वह विराट्नउठा विष्णु ने गतिपूर्वक चरणों में प्रवेश किया तौभी वह सावधान न हुआ ॥ ६५ ॥ ॥ रुधिर के साथ नदियों ने नाड़ियों में प्रवेश किया परन्तु तौभी विराट् न उठा समुद्र ने क्षुधा तृषा सहित उदर में प्रवेश किया तौभी विराट् न जगा ॥ ६६ ॥ चन्द्रमा ने मनके साथ हृदय में प्रवेशकिया ब्रह्माजी ने बुद्धिकेसाथ हृदय में प्रवेश किया परन्तु तौभी बिराट्नउठा ॥ ६७ ॥ रुद्रजी ने अहंकार के साथ हृदय में प्रवेश किया

ब्रह्मापिहृदयं नोदतिष्ठत्तदाविराट्। रुद्रोऽभिमत्याहृदयं नोदतिष्ठत्तदाविराट्। ॥ ६९ ॥ चित्तेनहृदयंचैत्यःक्षेत्रज्ञःप्राविशद्यदा। विराट्तदैवपुरुषःसलिलादुदतिष्ठत ॥ ७० यथाप्रसुप्तंपुरुषं प्राणेन्द्रियमनोधियः। प्रभवन्तिविनायेन नोत्थापयितुमोजसा ॥ ७१ ॥ तमस्मिन्प्रत्यगात्मानं धियायोगप्रवृत्तया। भक्त्याविरक्त्याज्ञानेन विविच्यात्मनिचिन्तयेत् ॥ ७२ ॥

इतिश्रीमद्भा० तृतीय० षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ प्रकृतिस्थोपिपुरुषो नाज्यतेप्राकृतैर्गुणैः। अविकारादकर्तृत्वान्निर्गुणत्वाज्जलार्कवत् ॥ १ ॥ सएषयर्हिप्रकृतेर्गुणेष्वभिविषज्जते। अहंक्रियाविमूढात्मा कर्ताऽस्मीत्यभिमन्यते ॥ २ ॥ तेनसंसारपदवीमवशोऽभ्येत्यनिर्वृतः। प्रासङ्गिकैःकर्मदोषैःसदसन्मिश्रयोनिषु ॥ ३ ॥ अर्थेह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्ननिवर्तते। ध्यायतोविषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमोयथा ॥ ४ ॥ अतएवशनैश्चित्तं प्रसक्तमसतांपथि। भक्तियोगेनतीव्रेण विरक्त्याचनयेद्वशम् ॥ ५ ॥ यमादिभिर्योगपथैरभ्यसञ्छ्रद्धयाऽन्वितः। मयिभावेनसत्येन मत्कथाश्रवणेनच ॥ ६ ॥ सर्वभूतसमत्वेन निर्वैरेणाप्रसङ्गतः। ब्रह्मचर्येणमौनेन स्वधर्मेणबलीयसा ॥ ७ ॥ यदृच्छयोपलब्धेनसंतुष्टोमितभुङ्मुनिः। विविक्तशरणःशांतोमैत्रःकरुणआत्मवान् ॥ ८ ॥ सानुबंधेच देहेऽस्मिन्नकुर्वन्नसदाग्रहम्। ज्ञानेनदृष्टतत्त्वेन प्रकृतेःपुरुषस्यच ॥ ९ ॥ निवृत्तबुद्ध्यवस्थानो दूरीभूतान्यदर्शनः। उपलभ्यात्मनाऽऽत्मानं चक्षुषेवार्कमात्मदृक् ॥

परन्तु वह विराट् न उठा जिसकाल चित्त क्षेत्रज्ञने चित्त इंद्रियोंके साथ हृदय में प्रवेश किया उस काल विराट् पुरुष उठखड़ाहुआ ॥६८॥ जिसभांति कि सोतेहुए मनुष्य को जिस चेतन बिना प्राण इंद्रियां, मन, बुद्धि कोई भी नहीं उठासक्ता उसी भांति इस विराट् पुरुषको चित्तक्षेत्रज्ञके बिना कोई नहीं उठासका॥६९॥मनुष्यको उचितहै कि शरीरके भीतर जो क्षेत्रज्ञ परमेश्वरहै उसकार्य कारणके संघानरूप इसशरीर में आत्माका निश्चयकरके प्रतिसमय उसका ध्यान तथा चिंतवनकरै७०।७२॥

इति श्री भागवते० महापुराणे तृतीयस्कन्धे सरलाभाषाटीकायांषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

श्री भगवान नें कहा कि–यद्यपि पुरुष अपनी प्रकृति में स्थित हैं परन्तु वे माया के गुणों से उसमें लीन नहीं होते क्यों कि पुरुष अबिकारी, अकरता निर्गुण हैं जैसे जल में सूर्य का प्रतिबिंब लिप्त नहीं होता उसी भांति पुरुष भी देहके गुणों में लिप्त नहीं होता ॥ १ ॥ वही पुरुष जब माया के गुणों में आसक्त होजाता है तब अहंकार से मूढ़ बनकर "मैं कर्ता" हूं ऐसा अभिमान करता है ॥ २ ॥ और इस अभिमान से परवश तथा दुःखी होकर उसी के सम्बन्ध से लगेहुए शुभ तथा अशुभ योनियों में जन्म और मरण पाया करता है ॥ ३ ॥ बिषयादिक के कारण जन्म मरण से मनुष्य नहीं निवृत होता, जैसे स्वप्न मिथ्या है इस पर भी उस अवस्था वाले को वह भोगनाही पड़ता है ॥ ४ ॥ इसी हेतु खोटी इन्द्रियोंके बिषयरूप मार्ग में लगे हुए मन को धीरे २ भक्ति योग तथा वैराग्य से अपनें आधीनकरै ॥ ५ ॥ यमादिक योग मार्गोंका श्रद्धायुक्त अभ्यास करे और सत्यभावसे मेरी कथाका श्रवणकरै ॥६॥ सब प्राणिमात्र में सम भाव वरते निःसंग रहे ब्रह्मचर्य तथा मौन व्रत धारण करै अपना धर्म बलवान जान उस में स्थिर रहै ॥ ७ ॥ जो भगवद् इच्छा से मिलजाय उसी में सन्तुष्ट रहै, थोड़ा भोजन करे एकांत में रहे, शांत तथा सम्पूर्ण जनोंमें मित्रता रक्खै, सब पर करुणा करे, और मनको आधीन रक्खै ॥८॥ कुटुम्ब सहित देह में आसक्त नहो ज्ञान से तत्वका दर्शन करै जिससे यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होताहै॥९॥कारण कि जब यथार्थरूपका ज्ञान होजाताहै तब जाग्रदादिक अवस्थाओं का अभिमान

॥ १० ॥ मुक्तलिंगंसदाभासमसतिप्रतिपद्यते । सतोबन्धुमसच्चक्षुः सर्वानुस्यूत मद्वयम् ॥ ११ ॥ यथाजलस्थआभासः स्थलस्थेनावदृश्यते । स्वाभासेनतथासूर्यो जलस्थेनदिविस्थितः ॥ १२ ॥ एवंत्रिवृदहंकारो भूतेंद्रियमनोमयैः । स्वाभासै र्लक्षितोऽनेन सदाभासेनसत्यदृक् ॥१३॥ भूतसूक्ष्मेन्द्रियमनोबुद्ध्यादिष्विहनिद्रया । लीनेष्वसतियस्तत्र विनिद्रोनिरहंक्रिय ॥१४॥ मन्यमानस्तदात्मानमनष्टोनष्टवन्मृषा । नष्टेऽहंकरणेद्रष्टा नष्टवित्तइवातुरः ॥१५॥ एवंप्रत्यवमृश्यासावात्मानंप्रतिपद्यते । साहंकारस्यद्रव्यस्ययोऽवस्थानमनुग्रहः ॥१६॥ देवहूतिरुवाच ॥ पुरुषंप्रकृतिर्ब्रह्मन्नविमुंचति कर्हिचित् । अन्योन्यापाश्रयत्वाच्च नित्यत्वादनयोःप्रभो ॥ १७ ॥ यथागन्धस्यभूमेश्च न भावोव्यतिरेकतः अपांरसस्यचयथा तथाबुद्धेःपरस्यच ॥ ॥ १८ ॥ अकर्तुःकर्मबन्धोऽयं पुरुषस्ययदाश्रयः। गुणेषुसत्सुप्रकृतेः कैवल्यंतेष्वतः कथम् ॥ १९ ॥ क्वचित्तत्त्वावमर्शेन निवृत्तंभयमुल्बणम् । अनिवृत्तनिमित्तत्वात्पुनः प्रत्यवतिष्ठते ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अनिमित्तनिमित्तेन स्वधर्मेणामलात्मना । तीव्रयामयिभक्त्याच श्रुतसंभृतयाचिरम् ॥ २१ ॥ ज्ञानेनदृष्टतत्त्वेन वैराग्येणबलीयसा । तपोयुक्तेनयोगेन तीव्रेणात्मसमाधिना ॥ २२ ॥ प्रकृतिःपुरुषस्येह दह्यमानात्वहर्निशम् । तिरोभवित्री सनकैरग्नेर्योनिरिवारणिः ॥ २३ ॥ भुक्तभोगा

तथा अन्य दर्शन दूर होजाताहै जैसे कि नेत्रका दृष्टा सूर्य है वैसेही आत्माका दृष्टा ईश्वरहै ॥१०॥ इसीभांति करनेर जो परमात्मा उपाधि रहित है सदा प्रकाश रूपहै जिसमें अहंकार प्राप्तहुआ है, कार्यका प्रकाशक है और सम्पूर्ण में व्याप्त है उसका साक्षात्कारहोताहै॥११॥जैसे सूर्यका प्रतिबिंब जल में पड़ाहो और उस जल में पडे हुए प्रतिबिंब का प्रतिबिंब स्थलपर पडाहो वहां मनुष्य की दृष्टि पहिल स्थल के प्रतिबिंब पर. फिर जल के प्रतिबिंब पर फिर उसके सहारे से आकाश के प्रतिबिंब पर पड़ती है ॥ १२ ॥ वैसेही प्रथम आत्मा से प्रकाशित देह, इन्द्री तथा मनमें दृष्टि पड़ती है फिर उस के आश्रय से अपनें आत्मा पर फिर उसके सहारे से सत्य चैतन्य रूप परमात्मा में पड़ती हैं ॥ १३ ॥ निद्रा वस्था में जब निद्रा के कारण पंचभूत,उनकी सूक्ष्म तन्मात्रा, इन्द्री,मन बुद्धि, जब अज्ञान में लीन होजाती है तब यह स्वरूप साक्षात विनिद्र हो अहंकार रहित होजाता है ॥ १४ ॥ और निद्रावस्था के आनंद तथा अज्ञान का जानता है, तौभी अहंकार के नाश होनेके कारण वह आत्मा उस काल में इस भांति से ऐसा प्रतीत होता है कि मानों आत्मा हैही नहीं और जैसे कोई द्रव्य के नाश होने से आतुर होता है वैसेही वह आतुर होताहै १५ । १६ ॥ देवहूती ने कहा–कि हे ब्रह्मन् ! यह पुरुष (परमात्मा) तथा प्रकृति (माया) यह दोनों एक दूसरे के आश्रय हैं तथा नित्य हैं इसी हेतु यह परस्पर एक दूसरे का त्यागन नहीं करते ॥१७॥ जैसे गंध और पृथ्वी का और रस तथा जल का भाव न्यारा नहीं हैं तैसेही माया तथा परमेश्वर का न्यारा होना असम्भव है ॥ १८ ॥ माया के गुण देहादिक कि जिनके हेतु परमात्मा के अकर्ता होनेंपर भी कर्मबंधन हुआ है उन गुणों के वर्तमान रहनेपर जो मायाके आश्रयहैं मनुष्य कैसे मोक्ष पासकता है ॥ १९ ॥ कभी तत्व विचार करने से यह महाभय निवृत्त होजाता है परन्तु माया के निवृत्तनहोंने से वह फिर स्थित होजाता है ॥ २० ॥ भगवान ने देवहुती से कहा कि निष्काम धर्म करने से मन निर्मल करने से शास्त्र श्रवण से मुझनें तीव्रदृढ भक्ति करने से ॥ २१ ॥ दृढ तत्वज्ञान से बलवान वैराग्य से तपयुक्त योगाभ्यास से तीव्र अपनी समाधि से ॥ २२ ॥ इस पुरुष की माया पराभव को प्राप्त होती है और रातदिन धीरे २ काष्ठ की अग्नि की समान गुप्त

परित्यक्तादृष्टदोषाचानित्यशः । नेश्वरस्याशुभंधत्तेस्वे महिम्निःस्थितस्यच २४ ॥
यथाह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापोबह्वनर्थभृत् । सएवप्रतिबुद्धस्य नवैमोहायकल्पते ॥२५
एवंविदिततत्त्वस्य प्रकृतिर्मयिमानसम् । युंजतोनापकुरुतआत्मारामस्यकर्हिचित्॥
॥ २६ ॥ यदैवमध्यात्मरतः कालेनबहुजन्मना । सर्वत्रजातवैराग्य आब्रह्मभवना
न्मुनिः ॥ २७ ॥ मद्भक्तःप्रतिबुद्धार्थोमत्प्रसादेनभूयसा । निःश्रेयसंस्वसंस्थानं
कैवल्याख्यंमदाश्रयम् ॥ २८ ॥ प्राप्नोतीहांजसाधीरः स्वदृशाच्छिन्नसंशयः । यद्
गत्वा न निवर्त्तेत योगीलिंगाद्विनिर्गमे ॥ २९॥ यदानयोगोपचितासुचेतो मायासु
सिद्धस्यविषज्जतेऽङ्ग । अनन्यहेतुष्वथमेगतिःस्यादात्यन्तिकीयत्रनमृत्युहासः३०
इतिश्रीमद्भा० तृतीय०मोक्षरीतिवर्णनंनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ योगस्यलक्षणंवक्ष्ये सबीजस्यनृपात्मजे । मनोयेनैवविधि-
ना प्रसन्नंयातिसत्पथम् ॥ १ ॥ स्वधर्माचरणंशक्त्या विधर्माच्चनिवर्तनम् । दैवा-
ल्लब्धेनसंतोष आत्मविच्चरणार्चनम् ॥ २ ॥ ग्राम्यधर्मनिवृत्तिश्च मोक्षधर्मरतिस्त-
था । मितमेध्यादनं शश्वद्विविक्तक्षेमसेवनम् ॥ ३ ॥ अहिंसासत्यमस्तेयं यावद-
र्थपरिग्रहः । ब्रह्मचर्यंतपःशौचं स्वाध्यायःपुरुषार्चनम् ॥ ४ ॥ मौनंसदासनजयः
स्थैर्यंप्राणजयःशनैः । प्रत्याहारश्चेन्द्रियाणां विषयान्मनसाहृदि ॥ ५ ॥ स्वधि-
ष्ण्यानामेकदेशे मनसाप्राणधारणम् । वैकुण्ठलीलाऽभिध्यानं समाधानंतथात्मनः
॥ ६ ॥ एतैरन्यैश्चपथिभिर्मनो दुष्टमसत्पथम् । बुद्ध्यायुंजीतशनकैर्जितप्राणोह्यत-

होती जाती है ॥ २३ ॥ जिसने भोग भोगे हैं और फिर जिसने दोष देखकर उनका त्यागकर दिया है ऐसे पुरुषों का माया कुछभी अशुभ नहीं करसकती ॥ २४ ॥ जैसे सोतेहुये मनुष्य के हेतु स्वप्न नाना अनर्थों का मूलहोता है परन्तु जागने पर उसका कुछभी अनर्थ कारी नहीं होसकता ॥ २५ ॥ इसी भांति तत्वके जानने वाले और मेरेविषे मनको धारण करने वाले पुरुष का माया कभी अपकार नहीं करसकती ॥ २६ ॥ इस प्रकार अध्यात्म जिन कीरति है और अनेकों जन्म धारण करने पर उसको वैराग्य प्राप्त हुआ है वे मुनिब्रह्मा के भवन में विचरते हैं ॥ २७ ॥ मेराभक्त मेरीबड़ी भारी कृपासे कल्याण के स्थान आत्म तत्वको जानता है कि जिससे मोक्षप्राप्त होता है ॥ २८ ॥ अनायास ही जिसके संदेह ज्ञान करके दूर होगये हैं वह इस लिंग शरीर से मुक्त होजाता है ॥ २९ ॥ हे माता ! योग सिद्धि में अणिमादिक अष्ट सिद्धियां विघ्न करने को आती हैं परन्तु जिस भक्त का चित्त उन में आसक्त नहीं होता वही मोक्ष की गतिको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेतृतीयस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

श्री भगवान ने कहा कि-हे मानवि, ! अब सबीज योग का लक्षण कहूंगा कि जिस से चित्त प्रसन्न होकर श्रेष्ठ मार्ग में चलता है ॥ १ ॥ प्रथम यम और नियम कहता हूं, शक्त्यानुसार धर्मका व्यौहार करना, जो भगवदेच्छा से मिले उसीपर संतुष्ट रहना, तथा तत्व ज्ञानी मनुष्यों की सेवा करना ॥ २ ॥ ग्राम्य धर्म की निवृत्ति, तथा मोक्ष धर्म में रति और थोड़ा भोजन करना तथा एकांत में रहना ॥ ३ ॥ ॥ प्राणियों की हिंसा न करना, सत्य बोलना, किसी पदार्थ का ग्रहण न करना, जितने पदार्थ की आवश्यकता हो उतनाही लेना, ब्रह्मचर्य व्रत का धारण करना, तप, शौच, वेदपढना, परमात्मा का पूजन करना ॥ ४ ॥ मौन धारणकरके आसनको जीतना स्थिरता करके धीरे २ प्राणों को जीतना, इन्द्रियों को एकाग्र करना, तथा मन से विषयों को जीतना ॥५॥ एक स्थान में मन समत प्राणों का धारण करना, बैकुंठ भगवान में बुद्धिको लगाना और मनको एकाग्रकरना ॥ ६ ॥ यह और इनके अति रिक्त और भी योग के साधन हैं, उन से बुरेमार्गों में

न्द्रितः ॥ ७ ॥ शुचौदेशेप्रतिष्ठाप्य विजितासनआसनम्। तस्मिन्स्वस्तिसमासीन ऋजुकायःसमभ्यसेत् ॥ ८ ॥ प्राणस्यशोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः।प्रातिकूलेनवाचित्तं यथास्थिरमचंचलम् ॥ ९ ॥ मनोऽचिरात्स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः। वाय्वग्निभ्यांयथालोहं ध्मातंत्यजतिवैमलम् ॥ १० ॥ प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषान्। प्रत्याहारेणसंसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ११॥ यदामनः स्वंविरजं योगेनसुसमाहितम्। काष्ठांभगवतोध्यायेत्स्वनासाग्रावलोकनः ॥ १२ ॥ प्रसन्नवदनाम्भोजं पद्मगर्भारुणेक्षणम्। नीलोत्पलदलश्यामं शंखचक्रगदाधरम् ॥ १३ ॥ लसत्पंकजकिंजल्कपीतकौशेयवाससम्। श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ॥ १४ ॥ मत्तद्विरेफकलया परीतंवनमालया। परार्ध्यहारवलयाकिरीटाङ्गदनूपुरम् ॥ १५॥ कांचीगुणोल्लसच्छ्रोणिं हृदयाम्भोजविष्टरम्। दर्शनीयतमंशांतं मनोनयनवर्धनम् ॥ १६ ॥ अपीच्यदर्शनं शश्वत्सर्वलोकनमस्कृतम्। संतंवयसिकैशोरे भृत्यानुग्रहकातरम् ॥ १७ ॥ कीर्तन्यतीर्थयशसं पुण्यश्लोकयशस्करम्। ध्यायेद्देवंसमग्राङ्गं यावन्नच्यवतेमनः ॥ १८ ॥ स्थितंव्रजन्तमासीनं शयानंवागुहाशयम्। प्रेक्षणीयेहितं ध्यायेच्छुद्धभावेनचेतसा ॥ १९ ॥ तस्मिल्लब्धपदंचित्तं सर्वावयवसंस्थितम्। विलक्ष्यैकत्रसंयुज्यादङ्गे भगवतोमुनिः ॥ २० ॥ संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविंदं वज्रांकुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम्। उत्तुङ्गरक्त-

जातेहुये मनको खींच प्राणोंको जीत धीरे २ बुद्धिसे वशीभूत करै और निरालस्य होकर रहै॥७॥ पवित्र देशमें निवास करै, प्रथम आसन को जीतै, फिर कुशापर कृष्णचर्म, उसपर वस्त्र बिछाकर मंगलीक आसन मारकर बैठे शरीर को सीधा रखकर प्राणको वश करने का अभ्यास करै, यह स्वस्तिक आसन है ॥८॥ पूरक,कुम्भक,रेचक से प्राणके मार्गको शोधे,और प्राणायामों के उलटे क्रम से चित्तका शोधन करै, जिससे यह चित्त थिर चंचल नहो ऐसा करै ॥ ९ ॥ जिस भांति रुकाहुआ वायु अग्नि से सुवर्ण के मलको जलादेता है वैसे ही श्वासके जीतने से धीरे २ मनशुद्ध होकर निर्मल होजाता है ॥ १० ॥ प्राणायामों से देह के दोषों को दूरकरे और धारणाओं से मन के पापों को दूरकरे, प्रत्याहार से विषयादिकों को जीते तथा ध्यान से रागादिक को दूरकरे॥११॥ जिस काल योग से निर्मल मन होजाय उस काल भगवान की मूर्तिका ध्यान करे और अपनी नासिका के अग्रभाग को देखता रहै ॥ १२ ॥ जिनका कमल स्वरूपी मुख प्रसन्न है, कमलवत जिनके अरुण नेत्र हैं तथा नीले कमल की समान श्यामसुंदर अंग है, तथा शंख, चक्र, गदाको धारण किये हैं ॥ १३ ॥ सुन्दर पीताम्बार धारण किये हैं, वक्षस्थल में लक्ष्मी का चिह्न है, कौस्तुभमणि तथा मोतियों की माला धारण किये हैं ॥ १४ ॥ ऐसी वनमाला कि जिस में भौंरे गुंजरहे हैं धारण किये हैं बहु मूल्यके हार, किरीट, नूपुर, बाजू पहिने हुये हैं ॥ १५॥ जिनकी कमर में क्षुद्रघंटिका शोभायमान है भक्तों के हृदय कमल में जिनका आसन है, योग्य, अति सुन्दर, शांत तथा चित्त और नेत्रों को आनन्दायी जिनका मनोहर स्वरूप है ॥ १६ ॥ अति सुन्दर जिनका दर्शन है सम्पूर्ण मनुष्य जिनकोनमस्कार करते हैं, जिनकी किशोर अवस्था है अपने अनुचरों पर नित्यप्रति अनुग्रह करने में कुशल हैं ॥ १७ ॥ पुण्य श्लोकों में यशकरनेवाले नारायण के अंगों का ध्यान करै, अपनी नासाके अग्रभाग को देखता रहै,जबतक मन उसवांकी छबि में लय न होजाय ॥ १८ ॥ चित्त के शुद्ध भाव से, चलते फिरते, बैठते, उठते, सोते इन्हीं भगवान का ध्यान करै ॥१९॥ जिस काल में चित्त स्थिर होजाय, तब एकाग्र चित्तहो परमात्मा के सम्पूर्ण अंगों को देखे ॥२०॥ प्रथमतो परमेश्वर के बज्र, अंकुश, ध्वजा संयुक्त चरणारविंदों

विलसन्नखचक्रवालज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम् ॥ २१ ॥ यच्छौचनिः
सृतसरित्प्रवरोदकेनतीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेनशिवःशिवोऽभूत् । ध्यातुर्मनःशमलशैल
निसृष्टवज्रं ध्यायेच्चिरंभगवतश्चरणारविंदम् ॥ २२ ॥ जानुद्वयंजलजलोचनयाज
नन्या लक्ष्म्याऽखिलस्यसुरवन्दितयाविधातुः । ऊर्वोर्निधायकरपल्लवरोचिषायत्
संलालितंहृदिविभोरभवस्यकुर्यात् ॥ २३ ॥ ऊरूसुपर्णभुजयोरधिशोभमानावो
जोनिधी अतसिकाकुसुमावभासौ । व्यालम्बिपीतवरवाससि वर्तमानकांचीकला
पपरिरम्भिनितम्बबिम्बम् ॥ २४ ॥ नाभिह्रदंभुवनकोशगुहोदरस्थं यत्रात्मयोनिधि
षणाखिललोकपद्मम् । व्यूढंहरिन्मणिवृषस्तनयोरमुष्य ध्यायेद्द्वयंविशदहारमयू
खगौरम् ॥ २५ ॥ वक्षोऽधिवासमृषभस्यमहाविभूतेः पुंसांमनोनयननिर्वृतिमाद
धानम् । कण्ठंचकौस्तुभमणेरधिभूषणार्थं कुर्यान्मनस्यखिललोकनमस्कृतस्य२६॥
बाहूंश्चमन्दरगिरेःपरिवर्तनेन निर्णिक्तबाहुवलयानधिलोकपालान् । संचिन्तयेद्द
शशतारमसह्यतेजः शंखंचतत्करसरोरुहराजहंसम् ॥ २७॥ कौमोदकींभगवतो
दयितांस्मरेतदिग्धमरातिभटशोणितकर्दमेन । मालांमधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टांचै
त्यस्य तत्त्वममलंमणिमस्यकण्ठे ॥ २८ ॥ भृत्यानुकम्पितधियेहगृहीतमूर्तेः संचि
न्तयेद्भगवतोवदनारविन्दम् । यद्विस्फुरन्मकरकुण्डलवल्गितेन विद्योतितामलक
पोलमुदारनासम् ॥ २९ ॥ यच्छ्रीनिकेतमलिभिःपरिसेव्यमानं भूत्यास्वयाकुटिल

का कि जो ऊंचा अरुण और प्रकाशित नख मंडलवाले, जो साधुओ के हृदय के अन्धकार को नष्टकरदेते हैं ध्यान करे ॥ २१ ॥ जिन भगवान के चरणों के जल से तीर्थरूप गंगाजी हुई कि जिन को भगवान शिव धारण करके कल्याणरूप हुए, और जिनके वज्र के चिह्नवाले चरणों का ध्यान करने से पर्वतरूपी पाप नाश होजाते हैं ॥ २२ ॥ जिस की सम्पूर्ण देवता वंदना करते हैं, जिस के कमल की सदृश नेत्र हैं ऐसी लक्ष्मीजी जिन चरणकमलों को दोनों जंघाओं में धरकर हाथों से बड़ी चतुराई के साथ सेवा करती हैं उन्हीं परमेश्वर के चरणों का ध्यान करना योग्य है ॥ २३ ॥ गरुड़ के कंधे पर धरी हुई भगवान की जांघों का किजो अलसीके फूल की सदृश कांतिवान तथा बल की निधि हैं और पीताम्बर धारण किये, जिनका कटि प्रदेश क्षुद्रघण्टिका से शोभायमान है ऐसे भगवान का ध्यानकरे ॥ २४ ॥ फिर भगवान की नाभिका ध्यानकरे कि जिस में से इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई, तथा जिस से सम्पूर्ण सृष्टि का करनेवाला कमल और कमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं फिर उत्तम हरितमणिकेसदृश भगवान के दोनों स्तनों का कि जो सुंदरहारों से शोभायमान होरहे हैं ध्यान करे ॥ २५ ॥ इस से आगे भगवान के वक्षस्थल का ध्यान करे कि जिस में श्रेष्ठ विभूति लक्ष्मी जी का निवास है और भक्तों के मन तथा नेत्रों को आनन्ददायी है । फिर कण्ठ का ध्यान करे किजो कौस्तुभमणिका आभूषणरूप है ऐसा अपने मनमें ध्यानकरे ॥ २६ ॥ फिर भगवानकी भुजाओं का कि जिनके कंकण और बाजू मंदराचलके चलाने से उज्वल हुए हैं और लोकपाल जिन के आश्रय हैं तथा ऐसा असह्य चक्र कि जिस में सहस्रों आरे हैं धारण किये हुए हैं फिर भगवान के हस्त कमलों का कि जिन में राजहंस की समानशंख शोभायमान है ध्यान करे ॥ २७ ॥ फिर भगवान की प्यारी गदाका कि जो वैरियों के रुधिर से लिप्त है स्मर्ण करे फिर उन की मालाका कि जिस में भौंरे गूंज रहे हैं स्मर्ण करे फिर परमेश्वर के कण्ठ में बिराजी हुई कौस्तुभ मणि कि जो जीवात्मा का निर्मल तत्वरूपहै ध्यान करे ॥ २८ ॥ फिरभक्तों के हेतु अवतार धारण करने वाले परमेश्वर के कमलस्वरूप मुख का कि जिन के कपोल मकराकृत कुण्डल से शोभित होरहे हैं तथा जिस में शुकवत नाकि

कुन्तलवृन्दजुष्टम् । मीनद्वयाश्रमधिक्षिपदब्जनेत्रं ध्यायेन्मनोमयमतन्द्रितउल्लसद्भ्रु ॥ ३० ॥ तस्यावलोकमधिकंकृपयाऽतिघोरतापत्रयोपशमनाय निसृष्टमक्ष्णोः । स्निग्धस्मितानुगुणितंविपुलप्रसादं ध्यायेच्चिरंविपुलभावनयागुहायाम् ॥ ३१ ॥ हासंहरेरवनताखिललोकतीव्रशोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारम् ।संमोहनायरचितंनिजमाययाऽस्यभ्रूमण्डलं मुनिकृतेमकरध्वजस्य ॥ ३२ ॥ ध्यानायनंप्रहसितंबहुलाधरोष्ठभासाऽरुणायितनुद्विजकुन्दपंक्ति । ध्यायेत्स्वदेहकुहरेऽवसितस्यविष्णोर्भक्त्यार्द्रयार्पितमनानपृथग्दिदृक्षेत् ३३ ॥ एवंहरौभगवतिप्रतिलब्धभावो भक्त्याद्रवद्धृदयउत्पुलकप्रमोदात् । औत्कण्ठ्यबाष्पकलया मुहुरर्द्यमानस्तच्चापिचित्तबडिशंशनकैर्वियुङ्क्ते ॥ ३४॥मुक्ताश्रयंयर्हिनिर्विषयंविरक्तं निर्वाणमृच्छतिमनःसहसायथार्चिःआत्मानमत्रपुरुषोऽव्यवधानमेकमन्वीक्षते प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः ३५॥ सोप्येतयाचरमयामनसोनिवृत्त्या तस्मिन्महिम्न्यवसितःसुखदुःखबाह्ये । हेतुत्वमप्यसतिकर्तरिदुःखयोर्यत्स्वात्मन्विधत्त उपलब्धपरात्मकाष्ठः ॥ ३६ ॥ देहंचतंनचरमः स्थितमुत्थितंवासिद्धोविपश्यति यतोऽध्यगत्स्वरूपम् । दैवादुपेतमथ दैववशादपेतं वासोयथापरिकृतंमदिरामदान्धः ॥ ३७ ॥ देहोऽपिदैववशगःखलुकर्मयावत्स्वारम्भकंप्रतिसमीक्षतएवमासुः । तंसप्रपंचमधिरूढसमाधियोगःस्वाप्नंपुनर्नभजतेप्रतिबुद्धवस्तुः ॥ ३८ ॥ यथापुत्राच्चवित्ताच्च पृथङ्मर्त्यःप्रतीयते । अप्या

का है ॥२९॥ जिस में टेढे घूंघरवाले वाल हैं, कमलकी सदृश नेत्रवाला देदीप्यमान भ्रकुटी युगुल तथा जिस को भौंरों का झुण्ड सेवनकर रहा है ऐसे परमेश्वर के मुखारबिंद का ध्यान करे ३०॥ जिन की स्नेह पूर्वक चितवन तीनों तापों के भ्रातार्गों का नाश करनेवाला है तथा अत्यन्त कृपा किये हुए मुसकानयुक्त मुख का ध्यान हृदय में बहुत समय तक करे ॥ ३१ ॥ फिर भगवान के परमउदार हास्य का कि जो भक्तों के शोकरूपी समुद्र का शोषण हारा है ध्यान करे ; तदनंतर भगवान की भ्रकुटिमंडल का कि जो निज रचित माया के मोह उत्पन्नकरनेके निमित्त रचागया है, स्मर्ण करे ॥ ३२ ॥ तदुपरांत ध्यान योग्य मुसकानयुक्त मुख के सुंदर अधरों का, कि जिन की अरुणाई का प्रतिविम्ब पड़ने से दांतों की पंक्तियें भी अरुण ज्ञात होती हैं ध्यान करे इस भांति प्रेमयुक्त विष्णुभक्तिसे उसी में चितको लगावे, [illegible] इच्छा नकरै चित्तको उसी में स्थिर रक्खे ॥ ३३ ॥ इस भांति परम[illegible] ध्यान करते [illegible] भक्ति से द्रवीभूत हृदय में अत्यन्त आनंदित व प्रफुल्लित होजाय, और भगवान [illegible] उत्कण्ठा से आंसू बहाय, बारम्बार पीड़ित [illegible] चित्त रूप मछली [illegible] क्रमशः भगवत के अंग से ध्यान न्यून करदे ॥ ३४ ॥ [illegible] आश्रय [illegible] विरक्त मन अनायास सूर्य की समान मुक्ति को प्राप्त होजाता है, जब मनुष्य आत्मा को आनंद मय एक रूप देखता है तब संसार से छूटजाता है ॥ ३५ ॥ इस भांति जिस काल योगी मनकी निवृत्ति द्वारा सुख दुःख से रहित हो ब्रह्माकार होजाता है उस समय वह दुःख सुख का भोक्तापन अविद्या उत्पन्न हुए अहंकार में रख देता है ॥३६ ॥ उपरोक्त लक्षणों से सिद्धहुआ योगी अपने शरीर को नहीं देखता फिर सुख दुःख को कैसे देखे ? जैसे मत्त मनुष्यको पहिरे हुए वस्त्र का ज्ञान नहीं रहता उसी प्रकार योगी को अपने शरीर का ज्ञान नहीं रहता ॥ ३७ ॥ प्रारब्ध के बशहुआ वह शरीर जब तक उस का प्रेरक होवे तबतक इंद्रिय समेत जीतारहता है, किंतु समाधि योग को प्राप्तहुआ, आत्मस्वरूप का जाननेवाला योगी स्वप्नावस्था के शरीर की सदृश "मैं और मेरा" करके नहीं जानता ॥ ३८ ॥ जिस प्रकार पुत्र धनसे मनुष्य अपने आपको

त्मत्वेनाभिमताद्देहादेःपुरुषस्तथा ॥ ३९ ॥ यथोल्मुकाद्विस्फुलिंगाद्धूमाद्वाऽपिस्व संभवात्। अप्यात्मत्वेनाभिमताद्यथाग्निः पृथगुल्मुकात् ॥ ४० ॥ भूतेन्द्रियान्तःकरणात्। प्रधानाज्जीवसंज्ञितात्। आत्मातथापृथग्द्रष्टा भगवान्ब्रह्मसंज्ञितः ॥ ॥ ४१ ॥ सर्वभूतेषुचात्मानं सर्वभूतानिचात्मनि। ईक्षेतानन्यभावेनभूतेष्विवतदात्मताम् ॥ ४२ ॥ स्वयोनिषु यथाज्योति रेकंनानाप्रतीयते। योनीनां गुणवैषम्यात्तथाऽऽत्माप्रकृतौस्थितः ॥ ४३ ॥ तस्मादिमांस्वांप्रकृतिं दैवींसदसदात्मिकाम्। दुर्विभाव्यांपराभाव्य स्वरूपेणावतिष्ठते ॥ ४४ ॥

इतिश्रीमद्भा०तृतीय०साधनानुष्ठानंनामाष्टाविंशतिमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

देवहूतिरुवाच ॥ लक्षणंमहदादीनां प्रकृतेःपुरुषस्यच। स्वरूपंलक्ष्यतेऽमीषां येनतत्पारमार्थिकम् ॥ १ ॥ यथासांख्येषुकथितं यन्मूलंतत्प्रचक्षते। भक्तियोगस्य मेमार्गं ब्रूहिविस्तरशःप्रभो ॥ २ ॥ विरागोयेनपुरुषो भगवन्सर्वतोभवेत्। आचक्ष्वजीवलोकस्य विविधाममसंसृतीः ३ ॥ कालस्येश्वररूपस्य परेषांचपरस्यते। स्वरूपंबतकुर्वंति यद्धेतोःकुशलंजनाः ॥ ४ ॥ लोकस्यमिथ्याभिमतेरचक्षुषश्चिरं प्रसुप्तस्यतमस्यनाश्रये। श्रान्तस्यकर्मस्वनुविद्धयाधिया त्वमाविरासीःकिलयोगभास्करः ॥ ५ मैत्रेयउवाच ॥ इतिमातुर्वचःश्लक्ष्णंप्रतिनन्द्यमहामुनिः। आबभाषे कुरुश्रेष्ठ प्रीतस्तांकरुणार्दितः ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भक्तियोगोबहुविधोमार्गै

पृथक मानता है ऐसेही निजरूप माने हुए देहादिक से ईश्वरको पृथकमानता है ॥ ३९ ॥ जैसे मूर्ख मनुष्य जलते हुए काठसे कणव धूमहोता है ऐसे पृथक मानता है, किंतु यथार्थ में दाह करनेवाला और प्रकाश करनेवाला अग्नि से पृथक है, इस भांति सत ब्रह्ममयही है॥ ४० ॥ जैसे आत्मा पंचभूत, इंद्रियें, अंतःकरण प्रधान जीव संज्ञा से पृथक है इसी भांति द्रष्टाभगवान ब्रह्म पृथक है ॥ ४४ ॥ जैसे समस्तभूत मात्र में आत्मा व्याप्त है और सब प्राणिमात्र आत्मा में व्याप्त हैं; इसी भांति सब वस्तुओं में मैं हूं और मुझ में सब वस्तुयें हैं; ऐसे अनन्य भाव से जो सब प्राणियों में तदात्मा से देखते हैं वह सिद्ध हैं ॥ ४२ ॥ जैसे अग्नि एक होने पर काठ की लम्बाई चौड़ाई से पृथक २ न्यूनाधिक प्रतीत होता है वैसेही आत्मा एक होने पर भी देह के गुणों की न्यूनाधिकता से अनेक प्रकार का दृष्टि आता है ॥ ४३ ॥ इसी कारण योगीजन सत् असत्आत्मिक बिचारमें आवे ऐसी यह अपनी खोटी और तिरस्कारके योग्य प्रकृति भगवत् कृपासे जीतकर अपनें स्वरूप में स्थित होते हैं ॥ ४४ ॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

देवहूती बोली कि–हे प्रभो ! महत्तत्वादिकों का लक्षण, प्रकति पुरुष का स्वरूप तथा इन दोनों की परस्परता कहिये ॥ १ ॥ हे भगवन् ! जैसे तुमनें सांख्य योग में कहाहै परन्तु उसके कहनें का अभिप्राय भक्ति योग है अतएव आप विस्तार पूर्वक भक्ति योग का मार्ग मुझसे कहिये ॥ २ ॥ हे जगत् पते ! जिसके सुनने से वैराग्य उत्पन्न हो ऐसी सम्पूर्ण प्राणियों के आवागमन की कथा कहिये ॥ ३ ॥ तथा ईश्वर रूप काल का स्वरूप भी कहो कि जिसके डर से मनुष्य पुण्यादिक कार्य करते हैं ॥ ४ ॥ मिथ्यावादी, अहंकारी, देहादिक पदार्थों में अभिमान करने वाले, मूर्ख, कर्मासक्त, निराधार, अभिमान में बहुत दिनो से सोये हुए, कर्म करते करते थकित होगए, ऐसे अज्ञान लोगों के चैतन्य करने के निमित्त, और उनकी स्वच्छ बुद्धि करने के लिये योग शास्त्र का प्रकाश करने को आप इस सृष्टि में सूर्य रूप उत्पन्न हुए हो ॥ ५ ॥ मैत्रेय जी ने कहा कि हे महामुने ! हे विदुर ! हे कुरुश्रेष्ठ ! इस भांति माता के कहेहुए मधुर बचनों

र्गमिनिभाव्यते। स्वभावगुणमार्गेण पुंसांभावोविभिद्यते ॥ ७ ॥ अभिसंधाययोहिंसांदम्भंमात्सर्यमेववा। संरम्भीभिन्नदृग्भावं मयिकुर्यात्सतामसः ॥ ८ ॥ विषयानभिसंधाययशऐश्वर्यमेववा। अर्चादावर्चयेद्योमां पृथग्भावःसराजसः ॥९॥ कर्मनिर्हारमुद्दिश्यपरस्मिन्वातदर्पणम्। यजेद्यष्टव्यमितिवा पृथग्भावःससात्त्विकः ॥१०॥ मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयिसर्वगुहाशये। मनोगतिरविच्छिन्ना यथागङ्गाऽम्भसोऽम्बुधौ ॥११॥ लक्षणंभक्तियोगस्य निर्गुणस्यह्युदाहृतम्। अहैतुक्यव्यवहितायाभक्तिःपुरुषोत्तमे ॥ १२ ॥ सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत। दीयमानंनगृह्णन्ति विनामत्सेवनंजनाः ॥१३॥ सएवभक्तियोगाख्यआत्यन्तिकउदाहृतः। येनातिव्रज्यत्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते ॥ १४ ॥ निषेवितेनानिमित्तेन स्वधर्मेणमहीयसा। क्रियायोगेनशस्तेन नातिहिंस्रेणनित्यशः ॥ १५ ॥ मद्धिष्ण्यदर्शनस्पर्शपूजास्तुत्यभिवन्दनैः। भूतेषुमद्भावनयासत्त्वेनासंगमेनच ॥ १६ ॥ महतांबहुमानेनदीनानामनुकम्पया। मैत्र्याचैवात्मतुल्येषु यमेननियमेनच ॥ १७ ॥ आध्यात्मिकानुश्रवणान्नामसंकीर्तनाच्चमे। आर्जवेनार्यसङ्गेन निरहंक्रिययातथा ॥ १८ ॥ मद्धर्मणो

की प्रशंसा कर, अत्यन्त प्रसन्न हो प्रीति युक्त करुणा से पीड़ित कपिलदेवजी मधुर वाणी से कहने लगे ॥ ६ ॥ श्रीभगवान बोले कि हे जननि! भक्ति योग नाना भांति का है और अनेक मार्गों से प्रकाश होता है, पुरुषों की प्रकृति सत, रज, तमोगुण के होनेसे उनकी भक्ति भाव में भेद पड़जाता है ॥ ७ ॥ संकल्प से, हिंसा से, पाखण्ड से, मत्सरता से, क्रोध से, भिन्न दृष्टि का भाव मुझमें करते है वह तामसी भक्ति है ॥ ८ ॥ विषयों की इच्छा कर कीर्ति यश के निमित्त जो मूर्ति आदि में मेरी पूजा करते हैं वह राजसी भक्ति है ॥ ९ ॥ पाप नाश करने के अभिप्राय से अथवा सिद्ध साधन के अभिप्राय से मूर्ति आदिक में जो कर्म करे अथवा जो पूजन करे उस में यह मानो कि भगवान की आज्ञा है इस कारण आराधनाही के योग्य है, ऐसे भावसे जो भक्ति करते है वह सात्त्विकी भक्ति है इसका अभिप्राय यह है कि श्रवण, कीर्तन आदिक करना, जो नवधा भक्ति है, वही फल देने के निमित्त तीन भांति की तामस, तीन भांति की राजस, ३ भांति की सात्त्विक होने से सत्ताईस (२७) भांति की हुई और सुननें से एक २ में नौ २ भेद होजाते है, तब इक्यासी (८१) प्रकार की होजाती है यह सगुण भक्ति के भेद हैं ॥ १० ॥ मेरे गुणों को सुनकर गंगा अन्तर्यामी मुझमे मे कभी न निकले, इस भांति मनकी गति लगावे जैसे गंगाजल धारा में बहकर समुद्र मे लीन होजाता है, फिर नहीं लौटता है ऐसेही ईश्वर में लीन हो जाय भेद नरक्खे ॥ ११ ॥ निर्गुण भक्ति योग का यह लक्षण है, भगवान की निष्काम भेद भाव रहित भक्ति करे, परमब्रह्म के सिवाय अन्य किसी का आशा न करै ॥ १२ ॥ मेरे संग एक लोक मे निवास, समान कीर्ति, सदैव समीप रहै, मेरी सदृश रूप होजावै एक रूप होजाय, इन पाचों मुक्तियों को मै देता हूं परन्तु मेरे सेवक मेरी सेवा के अतिरिक्त और कुछ नहीं लेते ॥ १३ ॥ यह आत्यंतिक निर्गुणभक्ति योग भक्ति है, जिससे तीनों गुणों को उलंघ कर मेरे भावको प्राप्त होता है इससे अधिक और दूसरी भक्ति नहीं ॥ १४ ॥ श्रेष्ठ नित्य नैमित्तिक स्वधर्म का अनुष्ठान करके निष्काम हो हिंसा रहित पूजाकरने से हृदय पवित्र होजाता है॥ १५ ॥ मेरीमूर्ति के दर्शन, स्पर्शन, पूजा, स्तुति, दण्डवत इत्यादिक से सब भूतमात्र में मेरी भावना से धैर्य, वैराग्य से अंतःकरण शुद्धहोता है ॥ १६ ॥ साधुओं का सत्कार करने से, दीनजनों पर दया करने से, अपने समवय वालों से प्रीति करने से, यम, नियम से देह पवित्र होजाती है ॥ १७ ॥ ब्रह्म विद्याके सुननें से, मेरे नामों के कहने सुनने से, महात्माओं की संगति करने से, अभिमान छोड़ देने से चित्त

गुणैरेतैः परिसंशुद्ध आशयः । पुरुषस्यांजसाऽभ्येति श्रुतमात्रगुणं हि माम् ॥ १९ ॥ यथावातरथोघ्राणमावृंक्तेगन्धआशयात् । एवंयोगरतंचेत आत्मानमविकारियत् । ॥ २० ॥ अहंसर्वेषुभूतेषु भूतात्माऽवस्थितःसदा । तमवज्ञायमांमर्त्यःकुरुतेऽर्चाविडम्बनम् ॥ २१ ॥ योमांसर्वेषुभूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् । हित्वाऽर्चांभजतेमौढ्याद्भस्मन्येवजुहोतिसः ॥ २२ ॥ द्विषतःपरकायेमां मानिनोभिन्नदर्शिनः । भूतेषु बद्धवैरस्य नमनःशांतिमृच्छति ॥२३॥ अहमुच्चावचैर्द्रव्यैःक्रिययोत्पन्नयाऽनघे । नैवतुष्येऽर्चितोऽर्चायांभूतग्रामावमानिनः ॥ २४ ॥ अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्मकृत् । यावन्नवेदस्वहृदि सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥२५॥ आत्मनश्चपरस्यापियः करोत्यन्तरोदरम् । तस्यभिन्नदृशो मृत्युर्विदधेभयमुल्बणम् ॥ २६ ॥ अथमां सर्वभूतेषु भूतात्मानंकृतालयम् । अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याऽभिन्नेनचक्षुषा । ॥ २७ ॥ जीवाःश्रेष्ठाह्यजीवानां ततःप्राणभृतःशुभे । ततःसचित्ताप्रवरास्ततश्चेन्द्रियवृत्तयः ॥२८॥ तत्रापिस्पर्शवेदिभ्यः प्रवरारसवेदिनः । तेभ्योगन्धविदःश्रेष्ठास्ततःशब्दविदोवराः ॥ २९॥ रूपभेदविदस्तत्र ततश्चोभयतोदतः । तेषांबहुपदाःश्रेष्ठाश्चतुष्पादस्ततोद्विपात् ॥ ३० ॥ ततोवर्णाश्च चत्वारस्तेषांब्राह्मणउत्तमः । ब्राह्मणेष्वपिवेदज्ञो ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्ततः ॥ ३१ ॥ अर्थज्ञात्संशयच्छेत्ता ततःश्रेयान्स्वकर्मकृत् । मुक्तसंगस्ततोभूयानदोग्धाधर्ममात्मनः ॥३२॥ तस्मान्मय्यर्पिताशेषक्रियार्थात्मानिरन्तरः मय्यर्पितात्मनःपुंसोमयिसंन्यस्तकर्मणः नपश्यामिपरंभूतमकर्तुःस

पवित्र होता है ॥ १८ ॥ जो मनुष्य इन धारणाओंसे मेरा पूजनकरता है उसका अंतःकरण पवित्र होजाता है मेरे गुणों के श्रवण मात्र से पुरुष को मेरा स्वरूप बिना श्रमही प्राप्त होता है ॥१९॥ जिस भांति सब स्थानों मे वायुद्वारा गन्धआती है उसी भांति भक्ति होग में लगाहुआ विकार रहित मन आत्मा में स्वयही आ मिलताहै ॥२०॥सब प्राणियों मे जीवात्मारूपसे मै व्याप्त रहता हूं जो मेरा निरादर करके केवल मूर्तिका पूजन करते है वह सब विडम्बना है ॥ २१ ॥ मै सबकी देह में रहने वाला हूं जो मनुष्य मुझे त्यागकर प्रतिमा का पूजन करते है, वह अपनी अज्ञानता से राख में हवन करते है ॥ २२ ॥ मैं सब भूतोंकी देह में विराजमान हूं, जो मुझमे शत्रुता रखते है, अहंकार रखते है, भेदभाव रखते हैं उन प्राणियोंका मनकभी नहीं शांतहोता ॥ २३ ॥ हे जननि ! ऊंचे नीचे पदार्थों से, कर्म मे, पूजा से, मै संतुष्ट नहीं होता हूं तथा जो प्राणियों का तिरस्कार करताहै उसपर मैं प्रसन्न नहीं होता ॥ २४ ॥ सब प्राणियों मे परमात्मा मैं हूं, जबतक मेरा अनुभव अंतःकरण मे प्रकाशित न होवे तबतक मनुष्यों को प्रतिमा इत्यादि का पूजन करना चाहिये ॥ २५॥ जोप्राणी अपने मे और मुझमें भेद समझते हैं उनकोमें सदैव दुःख देतारहता हूं ॥२६॥ अतएव मुझको सब प्राणियों का अतर्यामी और सबभूतों में विराजमान जानकर मुझसे दान, मान मैत्री रख भेद दृष्टिसे न देखना चाहिये॥२७॥हे माता ! अचेतन जीवोंमे सचेतन जीवश्रेष्ठहै, उनसे जीव वृत्तिवाले तथा उन से चित्त वृत्तिवाले और उनसे इन्द्रिय वृत्तिवाले उत्तम हैं ॥२८॥ उनसे स्पर्श ज्ञानी तथा उन से रसज्ञानी मत्स्यादि उत्तम है, उनसे गंधज्ञानी भ्रमरादिक, उन से शब्द ज्ञानी सर्पादिक उत्तम हैं ॥ २९ ॥ उन से रूपवेत्ता काक आदिक फिर उनसे दोनो ओर दांतवाले तथा उन से बहुत पांव वाले फिर उन से चौपाये और उन से दोपैर वाले श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥ द्विपदों में चारोवर्ण उत्तम हैं, उनमें ब्राह्मण वर्ण, ब्राह्मणो मे वेदपाठी, वेदपाठियों में अर्थ वेत्ता श्रेष्ठ हैं ॥ ३१ ॥ अर्थ वेत्ताओं में संशय हारी मीमांसक, मीमांसकों से स्वकर्म करता श्रेष्ठ हैं उन से मुक्त सगी तदनतर उन से ईश्वर के धर्म कर्ता उत्तम हैं ॥ ३२ ॥जिसने अपने धर्म कर्मका फल

मद्दर्शनात् ॥ ३३ ॥ मनसैतानिभूतानि प्रणमेद्बहुमानयन् । ईश्वरोजीवकलयाप्रविष्टोभगवानिति ॥३४॥ भक्तियोगश्चयोगश्च । मयामानव्युदीरितः ययोरेकतरेणैव पुरुषःपुरुषंव्रजेत् ॥३५॥ एतद्भगवतोरूपं ब्रह्मणःपरमात्मनः । परंप्रधानंपुरुषंदैवंकर्मविचेष्टितम् ॥ ३६ ॥ रूपभेदास्पदंदिव्यं कालइत्यभिधीयते । भूतानांमहदादीनांयतोभिन्नदृशांभयम् ॥ ३७ ॥ योऽन्तःप्रविश्यभूतानि भूतैरत्त्यखिलाश्रयःसविष्ण्वाख्योऽधियज्ञोऽसौ कालःकलयतांप्रभुः ॥ ३८ ॥ नचाऽस्यकश्चिद्दयितो न द्वेष्यो नचबान्धवः । आविशत्यप्रमत्तोऽसौप्रमत्तंजनमन्तकृत् ॥४०॥ यद्भयाद्वातिवातोऽयंसूर्यस्तपतियद्भयात् यद्भयाद्वर्षतेदेवो भगणोभातियद्भयात् ॥ ४० ॥ यद्वनस्पतयोभीता लताश्चौषधिभिःसह स्वेस्वेकालेऽभिगृह्णन्तिपुष्पाणिचफलानिच ॥ ४१ ॥ स्रवन्तिसरितोभीता नोत्सर्पत्युदधिर्यतः । अग्निरिन्धेसगिरिभिर्भूर्नमज्जतियद्भयात् ॥ ४२ ॥ नभोददातिश्वसतां पदंयन्नियमाददः । लोकंस्वदेहं तनुते महान्सप्तभिरावृतम् ॥ ४३ ॥ गुणाभिमानिनोदेवाः सर्गादिष्वस्ययद्भयात् । वर्तन्तेऽनुयुगंयेषां वशएतच्चराचरम् ॥४४॥ सोऽनन्तोन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः । जनंजनेनजनयन्मारयन्मृत्युनान्तकम् ॥ ४५ ॥

इतिश्रीमद्भा०तृती०बहुविधभक्तियोगवर्णनंनामएकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः २९॥

और अपना देह मुझमें अर्पण करदिया है उनमें वह उत्तम है, जिसने अपनी आत्मा मुझमें अर्पण करदी और जो मुझमेंही सब कर्मों का संन्यास करता है उस समदर्शी साधुसे और कोई उत्तम नहीं ॥ ३३ ॥ समदर्शी मनुष्य स्वर्गको जाता है वह भगवान सबके घट २ में विराजमान हैं यह विचार कर सब प्राणियों का सत्कार पूर्वक मनही मनमें प्रणाम करता है॥ ३४ ॥ हे शुभे! मैंने तुमसे भक्ति योग और योग दोनोंही कहे, यदिकोई पुरुष इन दोनोंमें से एक कार्भी साधन करे तो वह भगवान के समीप पहुंच जाता है ॥ ३५ ॥ सबका ईश्वर प्रकृति पुरुष रूप और उन से भिन्न जो परमात्मा स्वरूप है, परम प्रधान पुरुष उसी को देव कहते हैं, जिसमें यह प्राणी नाना प्रकार की योनियों को भोगता है ॥ ३६ ॥ वही रूप भेदके आश्रय होनसे दिव्य काल कहाता है कि जिससे भेद दृष्टि वाले को महदादि भूतों का भय होताहै ॥ ३७ ॥ सबके आधार स्वरूप और यज्ञों के फल देनेवाले जो कालरूप भगवान प्राणियों के भीतर प्रवेश करके सब प्राणियों का भक्षण करते हैं वही विष्णु हैं तथा वही यज्ञपति और वही वशी करनेवालों के प्रभु हैं ३८ ॥ इसकाल का न तो कोई प्रिय है न कोई अप्रिय और न कोई मित्र स्वजनहै यह अप्रमत्त होकर प्रमत्त मनुष्यों का अन्त करता है ॥ ३९ ॥ जिसकालके डरसे वायु चलता सूर्य तपता इन्द्र वर्षा करता और तारागण प्रकाश करते हैं ॥ ४० ॥ जिसके डरसे वृक्ष, लता, वनस्पति औषधि समेत समयानुसार फल फूल उत्पन्न करती हैं ॥ ४१ ॥ जिस के भयसे नदियें दिनरात प्रवाहित रहती समुद्र अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ते अग्नि प्रज्वलित रहता और भूमि पर्वतों समेत नहीं डूबती ॥ ४२ ॥ जिसके भयसे यह आकाश सब श्वास लेनेवालों को अवकाश देता है महत्तत्व सात आवरण युक्त इस जगत में इस शरीर का विस्तार करताहै ॥ ४३ ॥ जिसके भयसे गुणाभिमानी देवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश, स्वर्गादिक में तथा युग२में विद्यमान रहते हैं और पुनः पुनः सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति और प्रलयकरते हैं॥४४॥ वह अनन्त, अन्त करनेवाला, काल अनादि, आदि करने वाला है । अव्ययहै जनोंसे जनों को उत्पन्न करता है परन्तु कालको भी मृत्युसे नाश कराता है वह कालरूप परब्रह्म अपनी इच्छानुसार काम करता है ॥ ४५ ॥

इतिश्रीमद्भा०महापु० तृतीयस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां एकोनत्रिंशतमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

कपिलउवाच ॥ तस्यैतस्यजनोनूनं नायंवेदोरुविक्रमम् । काल्यमानोऽपिबलि-
नो वायोरिवघनावलिः ॥ १ यंयमर्थमुपादत्ते दुःखेनसुखहेतवे । तंतंधुनोतिभगवा
न्पुमानशोचतियत्कृते ॥ २ ॥ यदध्रुवस्यदेहस्य सानुबन्धस्यदुर्मतिः । ध्रुवाणि
मन्यते मोहाद्गृहक्षेत्रवसूनिच॥३॥जन्तुर्वैभवएतस्मिन्यांयां योनिमनुव्रजेत् ।तस्यां
तस्यांसलभते निर्वृतिंनविरज्यते ॥४॥ नरकस्थोऽपिदेहंवै नपुमांस्त्यक्तुमिच्छति ।
नारक्यांनिर्वृतौसत्यां देवमायाविमोहितः ॥ ५ ॥ आत्मजायासुतागारपशुद्रविणब-
न्धुषु । निरूढमूलहृदयआत्मानं बहुमन्यते ॥ ६ ॥ संदह्यमानसर्वांग एषामुद्वहना
धिना । करोत्यविरतंमूढो दुरितानिदुराशयः ॥ ७ ॥ आक्षिप्तात्मेन्द्रियः स्त्रीणाम-
सतीनांचमायया । रहोरचितयाऽऽलापैः शिशूनांकलभाषिणाम् ॥ ८ ॥ गृहेषुकू-
टधर्मेषु दुःखतन्त्रेष्वनन्द्रितः कुर्वन्दुःखप्रतीकारं सुखवन्मन्यतेगृही ॥ ९ ॥ अर्थै-
रापादितैर्गुर्व्या हिंसयेतस्ततश्चतान् । पुष्णातियेषां पोषेण शेषभुग्यात्यधः स्वयम्
॥ १० ॥ वार्तायांलुप्यमानायामारब्धायांपुनःपुनः । लोभाभिभूतोनिःसत्त्वः परार्थे
कुरुतेस्पृहाम् ॥ ११ ॥ कुटुम्बभरणाकल्पो मन्दभाग्योवृथोद्यमः । श्रियाविहीनः
कृपणो ध्यायन्श्वसितिमूढधीः ॥ १२ ॥ एवंस्वभरणाकल्पं तत्कलत्रादयस्तथा ।
नाद्रियन्तेयथापूर्वं कीनाशाइवगोजरम् ॥ १३ ॥ तत्राप्यजातनिर्वेदो भ्रियमाणः

कपिलदेवजी ने कहा कि—इस प्रचण्डकाल के विक्रम को यह जीव नहीं जानसकता जैसे वायु से चलती हुई मेघमाला पवन के परमपराक्रम को नहीं जानसकती ॥ १ ॥ अपने दैहिक सुखों के निमित्त यह जीव नाना दुःखों से जिस पदार्थ को इकट्ठा करता है; उस पदार्थ को भगवान काल नष्ट करदेते हैं कि जिस के निमित्त प्राणी रात दिन शोक में निमग्नरहता है ॥ २ ॥ कारण जो पदार्थ नाशवान हैं यह मूढ कुटुम्ब समेत शरीर को, लक्ष्मी को, खेत को मोह से इन नाश होनेवाले पदार्थों को ध्रुव की सदृश अचल मानता है ॥ ३ ॥ यह जीव जगत में जिस २ योनि में जाता है निश्चयही उस२ योनि में आनन्दसे रहताहै किंतु कभी वैराग्य धारण नहीं करता ॥४॥ नारकी जीव भी अपनी देह छोड़ने की इच्छा नहीं करते नरकही को सुख का घर मानते हैं; भगवत्माया से जीव ऐसे मोहित होरहे हैं ॥ ५ ॥ और देह, गेह, पुत्र, कलत्र, पशु, हाथी, घोड़ा बन्धुओं में अपना हृदय अत्यन्त फंसा है सो अपने को अत्यन्त बुद्धिमान और सुखनिधान विचारता है ॥ ६ ॥ अपने परिवारके पालन पोषण में उस का देह गरमी, सरदीसे जलता गलता रहता है परन्तु वह मूढ़ बुरे हृदय से सदैव बुरेही बुरे कार्य करता रहता है ॥ ७ ॥ दुष्ट वेश्यादिक स्त्रियों के साथ मैथुनादिक मायासे देह इंद्रिय सब उन्मत्त रहती हैं और तोतली रस युक्त बालकों की मीठी वाणी के साथ मिथ्या बातें कर २ प्रमत्त सा बना रहता है ॥ ८ ॥ द्रव्य के लालच से धर्म करे उस में भी अधर्म, सदैव कष्ट, ऐसे गृह में आलस्य छोड़ दुःख नाशकरने के निमित्तयत्न करते हैं और गृहस्थही को आनन्द की सदृश मानते हैं ॥ ९ ॥ तथा घोर हिंसायें कर २ के द्रव्य इकट्ठा कर, कुटुम्ब का पालन पोषण करते हैं और स्वयं उस की जूठन खाय २ अपनी आयु पूरी कर अंतकाल नरकमें जाते हैं ॥ १० ॥ जब उन की आय रुकजाती है तब उस के प्राप्त करने के निमित्त सहस्रों यत्न करते हैं इस भांति पुनः पुनः वह महालालची दरिद्री उपाय करताहुआ जब मन में हारमानता है तब दूसरेके द्रव्य लेने की कामना करताहै ॥ ११ ॥ जब वह मंदभाग्य कुटुम्ब के पोषणमें असमर्थ होता है और सम्पूर्ण उद्यम वृथा जाते हैं तथा लक्ष्मी हीन होता है तबवह कृपण बनकर शोचताहुआ श्वासलेता है ॥ १२ ॥ इस भांति जब वह स्त्री पुत्रादिकों के पालन में असमर्थ होता है तब वह स्त्री पुत्रादि उस का पहिले का सा

स्वयंभृतैः । जरयोपात्तवैरूप्यो मरणाभिमुखोगृहे ॥ १४ ॥ आस्तेऽवमत्योपन्यस्तं गृहपालइवाहरन् । आमयाव्यप्रदीप्ताग्निरल्पाहारोऽल्पचेष्टितः ॥ १५॥ वायुनोत्क्रमतोत्तारःकफसंरुद्धनाडिकः । कासश्वासकृतायासः कण्ठेघुरघुरायते ॥ १६ ॥ शयानःपरिशोचद्भिः परिवीतःस्वबन्धुभिः । वाच्यमानोऽपिनब्रूतेकालपाशवशंगतः ॥ १७ ॥ एवंकुटुम्बभरणे व्यापृतात्माऽजितेंद्रियः । म्रियतेरुदतां स्वानामुरुवेदनयाऽस्तधीः ॥ १८ ॥ यमदूतौतदाप्राप्तौ भीमौसरभसेक्षणौ । सदृष्ट्वात्रस्तहृदयः शकृन्मूत्रंविमुंचति ॥ १९ ॥ यातनादेहआवृत्य पाशैर्बध्वागलेबलात् । नयतोदीर्घमध्वानंदण्ड्यं राजभटायथा ॥ २० ॥ तयोर्निर्भिन्नहृदयस्तर्जनैर्जातवेपथुः । पथि श्वभिर्भक्ष्यमाणआर्तोऽघं स्वमनुस्मरन् ॥ २१ ॥ क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः संतप्यमानःपथितप्तवालुके । कृच्छ्रेणपृष्ठेकशयाचताडितश्चलत्यशक्तोऽपिनिराश्रमोदके ॥२२॥ तत्रतत्रपतञ्छ्रान्तो मूर्छितःपुनरुत्थितः । पथापापीयसा नीतस्तमसायमसादनम् ॥२३॥ योजनानांसहस्राणि नवतिंनवचाध्वनः । त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यां वानीतःप्राप्नोतियातनाः ॥ २४ ॥ आदीपनंस्वगात्राणां वेष्टयित्वोल्मुकादिभिः ।

आदर ऐसे नहीं करते कि जैसे बूढ़े बैलका आदर किसान नहीं करता ॥ १३ ॥ जिनका प्रथम आपने पालन पोषण किया है वह लोग अबअपने को पालते हैं तथा बुढ़ापे से रूप कुरूप होगया तौ भी उस को वैराग्य नहीं उत्पन्न होता, और मरने के सन्मुख हो घर में पड़ारहता है ॥१४॥ कुटुम्बी जो कुछ अवज्ञा करके देते हैं उसी को कुत्ते की भांति खाकर घर में बैठारहता है, तथा रोग के कारण और मन्दाग्नि से अल्प आहार होजाता है और उसी से चेष्टा बिगड़कर उठने बैठने की शक्ति नहीं रहती ॥ १५ ॥ मृत्यु आकर उस को घेर लेता है, वायु से नेत्र फिरजाते हैं कफ से नाड़ियें रुकजाती हैं श्वास तथा खांसी बढ़जाती है और कण्ठ में घुरघुराहट का शब्द हुआ करता है ॥ १६ ॥ उस काल उस के भाई बन्धु शोच से व्याप्त काल की फांसी के वशीभूत मनुष्य से अनेक बातों को पूछते हैं परन्तु वह नहीं बोलसक्ता ॥ १७ ॥ जो मनुष्य आत्मा को न जीतकर ऐसेही अपने कुटुम्ब के भरण पोषण में लगारहता है, वह अपने कुटुम्ब को रोते देख अति वेदनासे अचेत होकर मरजाताहै ॥ १८ ॥ उस काल उस के लेने के लिये बड़े भयानक, क्रोधयुक्त भयानक नेत्रों वाले दो यमराज के दूत आते हैं उन्हें देखनेही वह त्रसित होजाता है तथा उस का बारम्बार मल मूत्र निकलने लगता है ॥ १९ ॥ वह दूत इस प्रकार यातना को प्राप्त करके उस मनुष्य के गले में फांसीडाल प्राण निकाल दीर्घ मार्ग से ऐसे लेजाते हैं कि जैसे दण्ड के हेतु अपराधी को राजदूत लेजाते हैं ॥ २० ॥ उन यमराज के दूतोंकेमारने से उस का हृदय फटजाता है, तथा वह कांपता है, मार्ग में उस को कुत्ते काटते हैं तब वह आर्त्त होकर अपने पापों का स्मरण करता है ॥ २१ ॥ मार्ग में क्षुधा तृषा सताती है भोजन नहींमिलता, ऊपर से सूर्य की गरमी पड़ती है नीचे तपी हुई वालूपर तपना पड़ता है, जब कहीं थककर बैठजाता है तब यमराज के दूत निर्दयीपनसे कोड़े मारते हैं, मार्ग में न कहीं ठहरनेका ठिकाना है, न कहीं कुछ प्राप्त होता है उस समय दुःख से हाय २ करता है ॥ २२ ॥ चलते२ थककर मूर्छितहो गिरपड़ता है किंतु फिर उठकर चलने लगता है इस भांति वह यमराजके दूत उसप्राणी पापी को ऐसे कठिनमार्ग से यमलोक में लेजाते हैं ॥ २३ ॥ ऐसे ९९००० योजन मार्ग उस महापापी को ३ मुहूर्त में लेजाते हैं तथा पापी प्राणी को दो मुहूर्त में लेजाते हैं वह वहां पर अनेक यातनाओं को प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ कहीं तो उस पापी के शरीर को जलाते हैं

आत्ममांसादनंक्वापि स्वकृत्तंपरतोऽपिवा ॥२५॥ जीवतश्चान्त्राभ्युद्धारः श्वगृध्रैर्यमसादने । सर्पवृश्चिकदंशाद्यैर्दशद्भिश्चात्मवैशसम् ॥ २६ ॥ कृन्तनंचावयवशो गजादिभ्योभिदापनम् । पातनंगिरिशृङ्गेभ्यो रोधनंचाम्बुगर्तयोः ॥ २७ ॥ यास्तामिस्रान्धतामिस्रा रौरवाद्याश्चयातनाः । भुंक्तनरोवानारीवामिथःसङ्गननिर्मिताः २८ ॥ अत्रैवनरकःस्वर्ग इतिमातःप्रचक्षते । यायातनावै नारक्यस्ताइहाप्युपलक्षिताः ॥ ॥ २९॥ एवंकुटुम्बंबिभ्राण उदरंभरएववा । विसृज्येहोभयंप्रेत्य भुंक्तेतत्फलमीदृशम ॥ ३० ॥ एकःप्रपद्यतेध्वान्तं हित्वेदंस्वकलेवरम् । कुशलेतरपाथेयो भूतद्रोहेण यद्भृतम् ॥ ३१ ॥ दैवेनासादितंतस्य शमलंनिरयेपुमान् । भुंक्तेकुटुम्बपोषस्य हृतवित्तइवातुरः ॥ ३२ ॥ केवलेनह्यधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुकः । यातिजीवोन्धतामिस्रं चरमंतमसःपदम् ३३ ॥ अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः । क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्राव्रजेच्छुचिः ॥ ३४ ॥

इतिश्रीमद्भा०तृती०नरकादिवर्णननामत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ कर्मणादैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये । स्त्रियाःप्रविष्टउदरं पुंसारेतःकणाश्रयः ॥ १ ॥ कललंत्वेकरात्रेण पंचरात्रेणबुद्बुदम् । दशाहेनतुकर्कन्धुः पेश्यण्डंवातभःपरम् ॥ २ ॥ मासेनतुशिरोद्वाभ्यां बाह्वङ्घ्याद्यङ्गविग्रहः । नखलोमास्थिचर्माणि लिंगाच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः ॥ ३ ॥ चतुर्भिर्धातवःसप्त पंचभिःक्षुत्तृडुद्भवः

कहीं उसी का मांस उसीको भक्षण कराते हैं कहीं वह अपनेही मांससे आप पेटभरताहै ॥२५॥ यमपुरी में कभी कुत्ते और गीध उस प्राणी के आंत निकाल २ लेजाते हैं, कहीं सर्प, बिच्छू, मच्छर, डांस यह चारोंओरसे काटते हैं तब वह प्राणी अपने अपराधोंका स्मरण करताहै ॥२६॥ कहीं २ उस के अंगों को काट काट कर खण्ड २ करते हैं कहीं हाथियों के आगे डालकर उन से खुँदवाते हैं, कहीं पर्वत के शिखरों से नीचे डालते तथा कहीं जल में डुबोते कहीं गढ़े में बंद करदते हैं ॥ २७ ॥ परस्पर दुष्ट कर्म करने से स्त्री पुरुष को तामिस्र, अंधतामिस्र, और रौरव आदि नरकों की पीड़ा भोगनी पड़ती है ॥ २८ ॥ हे माता ! यह बात कुछ आश्चर्य की नहीं है क्योंकि यहांही नर्क और यहांही स्वर्ग है जो नरक के कष्ट हैं वह यहांभी देखने में आते हैं ॥ २९ ॥ जो प्राणी केवल इस भांति अपने कुटुम्ब अथवा पेट का भरणपोषण करता है उस के वह कर्म साथ जाते हैं और यमपुर में पहुंचकर अपने कर्मों का फल अकेलेही भुगतनापड़ता है ॥ ३० ॥ यह अपना देह भी यहांही रहजाता है और परलोक के मार्ग में अकेले जीव ही को जानापड़ता है, साथ कोई नहीं रहता केवलपाप और पुण्य जो जीवों के द्रोह तथा कृपाकरके हुए हैं अवश्यही साथरहते हैं ॥ ३१ ॥ परमेश्वर के उत्पन्न कियेहुए उस कुटुम्बपोषण के पाप को वह नर्क में भोगता है और द्रव्यनाशहुए मनुष्य की भांति आतुर होता है ॥ ३२ ॥ जो प्राणी अधर्म से कुटुम्बपोषण करता है वह अंधतामिस्र नरक में गिरता है ॥ ३३ ॥ नर लोक के नीचे जितने नर्क हैं उन सब को वह क्रमानुसार भोगकरपवित्रहो फिर मनुष्य लोक में आता है ॥३४॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे सरलभाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

श्रीभगवान ने कहा कि—यह जीव पिछले जन्मकर्मों के प्रभावसे देह धारण करने के लिये मनुष्य के वीर्य द्वारा स्त्री के उदर में प्रवेश करता है, ॥ १ ॥ एकरात में तो वीर्य तथा रज मिलता है पांच रातमें बुदबुदा सा होता है, दशदिनमें बेरके फलकी समान फिर मांस पिंडाकार होजाता है ॥ २ ॥ एक महीने में शिर दो महीनमें भुजा पांव तथा अंगों के चिह्न तीसरे महीने में रोम, नख, हाड, चर्म, लिंग, सब इन्द्रियों के छिद्र यह उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥ चौथे महीनें में

बद्धभिर्जरायुणावीतः कुक्षौभ्राम्यतिदक्षिणे ॥४॥ मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसम्मते।शेतेविण्मूत्रयोर्गर्ते सजन्तुर्जन्तुसंभवे ॥५॥कृमिभिःक्षतसर्वांगः सौकुमार्यात् प्रतिक्षणम्। मूर्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैःक्षुधितैर्मुहुः ॥ ६ ॥ कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः। मातृभुक्तैरुपस्पृष्टःसर्वांगोत्थितवेदनः ॥ ७ ॥ उल्बेनसंवृतस्तस्मिन्नन्त्रैश्चबहिरावृतः। आस्तेकृत्वाशिरःकुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः ॥ ८ ॥ अशक्तःस्वांगचेष्टायां शकुन्तइवपंजरे। तत्रलब्धस्मृतिर्दैवात्कर्म जन्मशतोद्भवम् ९ ॥ स्मरन्दीर्घमनुच्छ्वासं शर्मकिंनामविन्दते । आरभ्यसप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेपितः । नैकत्रास्तेसूतिवातैर्विष्ठाभूरिवसोदरः ॥ १० ॥ नाथमानऋषिर्भीतःसप्तवध्रिःकृतांजलिः स्तुवीततं विक्लवयावाचायेनोदरेऽर्पितः ॥ ११ ॥ जन्तुरुवाच ॥ तस्योपसन्नमवितुंजगदिच्छयात्तनानातनोर्भुवि चलच्चरणारविंदम्। सोऽहंव्रजामिशरणं ह्यकुतोभयंमे येनेदृशीगतिरदर्श्यतोऽनुरूपा ॥ १२ ॥ यस्त्वत्रबद्धइवकर्मभिरावृतात्मा भूतेंद्रियाशयमयीमवलम्ब्यमायाम्। आस्तेविशुद्धमविकारमखण्डबोधमातप्यमानहृदयेऽवसितंनमामि ॥ १३ ॥ यःपंचभूतरचितेरहितःशरीरे छन्नोयथेन्द्रियगुणार्थचिदात्मकोऽहम्। तेनाऽविकुण्ठमहिमानमृषिंतमेनं वन्देपरंप्रकृतिपूरुषयोःपुमांसम् ॥१४॥ यन्माययोरुगुणकर्मनिबन्धनेऽस्मिन् सांसा

सातों धातु उत्पन्न होती हैं पांचवें महीने में क्षुधा प्यास उत्पन्न होती है छठे महीने में वह जेल में लिपटकर माताकी दाहिनी कोखमें घूमा करता है ॥ ४ ॥ सातवें महीनेमें पहिले जन्मके कर्म स्मरण होते हैं और जो कुछ माता अन्नका आहार पान करतीहै, उसका रसांस गर्भमें पहुँचता रहताहै जिससे धातु बढ़ती हैं फिर वह प्राणी मल मूत्र के गढ़ेमें पड़ारहता है ॥ ५ ॥ गर्भके कीड़े भूखसे उसके कोमल अंगों को काटतेहैं और उस कठिन पीड़ासे बारम्बार उसको दुःख प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥ माता के खायेहुये कड़वे चरपरे नमकीन कसैले पदार्थोंसे जो उसके कीड़ों के काटेहुये घावमें जाकर लगते हैं उस जीव के शरीर में बड़ी पीड़ा होतीहै ॥ ७ ॥ वहप्राणी गर्भाशय में जरायु से तथा बाहर माताके आंतरोंसे लिपटा हुआ योनिकी ओर शिरकिये धनुषसाहो मल मूत्रमें पड़ा रहता है ॥ ८ ॥ जिसभांति पिंजरेके भीतरका पक्षी कुछ अंच्छित प्रयत्न नहीं कर सकता वैसेही यह भी कुछ अपने अंगकी चेष्टा नहीं करसकता, उस[illegible] जन्मों [illegible] की स्मृति होतीहै तब उनका स्मरणकर बड़े२ श्वास लेताहुआ पश्चात्ताप करताहै ॥ ९ ॥ सातवें महीने में जब इसे ज्ञान प्राप्त होताहै तब यह बड़ा कंपायमानहोता है प्रसूति के वायुसे वह एकत्र न रहकर भ्रमता रहताहै और विष्ठाके कीड़ोंको अपना समान सम्बन्धी समझताहै ॥ १० ॥ उस समय जीव गर्भके त्राससे दुःखी होकर जिसने उदरमें रक्खाहै उसको स्तुति हाथ जोड़ व्याकुल वाणीसे नीचेको मस्तक कर इसभांति करताहै ॥११॥ जीव कहताहै कि—हे शरणागत वत्सल; आप जगतकी रक्षाके निमित्त नानाप्रकारके रूप धारणकरके पृथ्वीपर पर्यटन करतेहुये एसे आप भगवानकी मैं शरणागतहूं कि जिसने मुझ पापीको यह गर्भवासकी गति दिखलाई है ॥१२॥इस भांति माताके देहमें पंचमहाभूत इन्द्री तथा मायामें व्याप्त अपने कर्मोंसे बँधाहुआहूं अब इससंतप्त हृदयमें विशुद्ध निर्मल निर्विकार तथा अखंड बोधवाले परमेश्वरको बारम्बार प्रणाम करताहूं १३ ॥ जो परमात्मा पंचभूतसे रचेहुये शरीरमें ढकाहुआ प्रतीत होता है वैसाही इंद्रिय गुण अर्थ चैतन्य आत्मक मैंहूं।जैसेंशरीर रहितहोनेपरभी प्रकृति पुरुषसे परे जो आपहैं सो मैं आपके चरणारविन्दों की बारंबार बन्दनाकरताहूं ॥१४॥ जिसकी मायाके गुणोंसे, यहजीव कर्मों के बंधनोंसे बंधाहुआ,

रिके पथिचरंस्तदभिश्रमेण । नष्टस्मृतिःपुनरयंप्रवृणीतलोकं युक्त्याकयामहदनुग्र हमन्तरेण १६ ॥ ज्ञानंयदेतददधात्कतमःसदेवस्त्रैकालिकं स्थिरचरेष्वनुवर्तितांशः तंजीवकर्मपदवीमनुवर्तमानास्तापत्रयोपशमनायवयंभजेम ॥ १६ ॥ देह्यन्यदेहवि वरे जठराग्निनाऽसृग्विण्मूत्रकूपपतितो भृशतप्तदेहः । इच्छन्नितोविवसितुं गणय न्स्वमासान् निर्वास्यतेकृपणधीर्भगवान्कदानु ॥ १७ ॥ येनेदृशींगतिमसौदश मास्यईश संग्राहितःपुरुदयेनभवादृशेन । स्वेनैवतुष्यतुकृतेनसदीननाथः कोनाम तत्प्रति विनाऽञ्जलिमस्यकुर्यात् ॥ १८ ॥ पश्यत्ययंधिषणयाननुसप्तवध्रिःशारीरके दमशरीर्यपरःस्वदेहे । यत्सृष्टयासंतमहं पुरुषंपुराणं पश्येबहिर्हृदिच चैत्यमिवप्र तीतम् ॥ १९ ॥ सोऽहंवसन्नपिविभो बहुदुःखवासं गर्भान्ननिर्जिगमिषे बहिरन्धकू पे । यत्रोपयातमुपसर्पतिदेवमाया मिथ्यामतिर्यदनुसंसृतिचक्रमेतत् २० ॥ तस्मा दहंविगतविक्लवउद्धरिष्य आत्मानमाशुतमसःसुहृदात्मनैव । भूयोयथाव्यसनमे तदनेकरन्ध्रं मामेभविष्यदुपसादितविष्णुपादः ॥ २१ ॥ कपिलउवाच ॥ एवंकृत मतिर्गर्भे दशमास्यःस्तुवन्नृषिः । सद्यःक्षिपत्यवाचीनं प्रसूत्यैसूतिमारुतः २२ ॥ तेनावसृष्टःसहसा कृत्वाऽवाक्शिरआतुरः । विनिष्क्रामतिकृच्छ्रेण निरुच्छ्वासोह तस्मृतिः ॥२३॥ पतितोभुव्यसृङ्मूत्रे विष्ठाभूरिवचेष्टते । रोरूयतिगतेज्ञानेविपरीतांग तिंगतः ॥ २४ ॥ परच्छन्दंनविदुषा पुष्यमाणोजनेनसः । अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्या

संसार के मार्ग में नष्ट बुद्धिहो, भ्रमण करता फिरता है, उस मार्ग से यह जीव विना ईश्वर की कृपाके, निकलकर मुक्तिको नहीं प्राप्तहोसकता॥१५॥जिस भगवान की कृपासे मुझे तीनों कालका जाननेवाला ज्ञानउत्पन्न हुआहै वह परमेश्वर-स्थावर, जंगम में अंतर्यामी रूपसे रहता है अतएव जीवको कर्म पदवीके कराने वाले परमेश्वरको तीनोंतापोंके दूरहोनेके हेतु मैं प्रणामकरताहूं १६ ॥ माता के गर्भ की जठराग्नि से अत्यन्त संतप्त देह, तथा विष्ठा, मूत्रमें पड़ेहुए अतिशय दुःखी, और यहां से निकलने के हेतु महीनों को गिनते हुए, इस दुःखी प्राणी (मुझ) को हे दीनानाथ कब बाहर निकालोगे ॥ १७ ॥ हे नाथ ! जिन आपने इस दश महीने के (मुझ) प्राणी को ऐसा ज्ञान दिया, वह आप अपनेही कियेहुए उपकार से आपही प्रसन्न होतेहो केवल हाथ जोड़ ने के अतिरिक्त आपका प्रत्युपकार कौन करसक्ता है ॥ १८ ॥ इस सात धातुओं से बँधे हुए देहादिक के शरीर सम्बन्धी सुख दुःख का ज्ञान होता है, हे दीनबन्धो ! मैं तो आप के दिये हुए ज्ञान से आप के चैतन्य स्वरूप को हृदय में देखताहूं ॥ १९ ॥ हे विभो ! सो मैं अत्यन्त दुःख में हूं कारण कि यह गर्भ महा दुःख का स्थान है परन्तु तौभी बाहर नहीं निकलनाचाह- ता, क्योंकि बाहर निकलतेही, अंध कूपीसंसार में पड़कर, आप की माया में तत्कालही फँसना पड़ेगा, तथा यहस्त्री, पुत्र आदि का मिथ्या संसर्ग प्राप्त होजावेगा ॥ २० ॥ इसी कारण धैर्यधर कर, यही पर रह आप के चरण कमलों का ध्यानधर, उन्हीं के प्रभाव तथा अपनी श्रेष्ठ बुद्धि की सहायता से इस जगत् से अपना उद्धार करके आवागवनसे छूटूंगा ॥ २१ ॥ कपिल देवजी ने कहा कि-इस भांति दश महीने के जीव को स्तुति करते हुए, उस के बाहर निकलने को प्रसूतिका वायु उस का नीचा मुख कर पटककर धक्का देती है ॥ २२ ॥ उस काल वायु के धक्के से व्याकुलहो वह जीव नीचे को शिर करके, कि जिस से श्वास नहीं आता जाता, महा व्याकुलहो बाहर निकलता है, उसी काल उस की सब स्मृति का नाश होजाता है, ॥ २३ ॥ भूमि पर गिरकर रुधिर मूत्रमें विष्ठा की समान चेष्टा करता है और ज्ञान नष्ट होजाता है उस काल वह ज्ञान नाश होने के कारण विपरीत गति को प्राप्त होकर बहुत रुदन करता है ॥२४॥

ख्यातुमनीश्वरः ॥ २५ ॥ शायितोऽशुचिपर्यंके जन्तुःस्वेदजदूषिते । नेशःकण्डूयनेऽङ्गानामासनोत्थानचेष्टने ॥२६॥ तुदन्त्यामत्वचंदंशा मशकामत्कुणादयःरुदन्तं विगतज्ञानं कृमयःकृमिकंयथा॥२७॥इत्येवंशैशवंभुक्त्वा दुःखंपौगण्डमेवच।अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्युःशुचार्पितः२८ सहदेहेनमानेनवर्द्धमानेनमन्युना । करोति विग्रहंकामीकामिष्वन्तायचात्मनः॥२९॥भूतैःपंचभिरारब्धे देहेदेह्यबुधोऽसकृत् । अहंममेत्यसद्ग्राहः करोतिकुमतिर्मतिम् ॥ ३० ॥ तदर्थंकुरुतेकर्म यद्बद्धोयातिसंसृतिम् । योऽनुयातिददत्क्लेशमविद्याकर्मबन्धनः ॥ ३१ ॥ यद्यसद्भिःपथिपुनःशिश्नोदरकृतोद्यमैः । आस्थितोरमते जन्तुस्तमो विशतिपूर्ववत् ॥ ३२ ॥ सत्यंशौचं दयामौनंबुद्धिः श्रीर्ह्रीर्यशःक्षमा । शमोदमोभगश्चेतियत्संगाद्यातिसंक्षयम् ॥ ३३ ॥ तेष्वशांतेषुमूढेषु खण्डितात्मस्वसाधुषु । संगंनकुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषुच ॥ नतथाऽस्यभवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसंगतः । योषित्संगाद्यथापुंसो यथातत्संगिसंगतः ॥ ३५ ॥ प्रजापतिःस्वांदुहितरंदृष्ट्वातद्रूपधर्षितः रोहिद्भूतांसोऽन्वधावदृक्षरूपी हतत्रपः ॥ ३६ ॥ तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषुकोन्वखण्डितधीःपुमान् । ऋषिंनारायणमृते योषिन्मय्येहमायया ॥ ३७ ॥ बलंमेपश्यमायायाःस्त्रीमय्याजयिनोदिशाम् । याकरो

उस के प्रयोजन के न जाननेवाले मनुष्यों से पोषित होताहुआ बिन चाहे पदार्थों को पाकर वह अपने दुःख के कहने में असमर्थ होता है ॥ २५ ॥ बड़ी मलीन खाटपर सोयाहुआ वह जीव, मक्खियों तथा खटमलों के काटने से अपने देह को न तो खुजा सकता है न उठ सकता है, न चल सकता है ॥ २६ ॥ जिस भांति कि एक कीड़ा दूसरे को काटता है, उसी भांति डांसमच्छर इत्यादिक—इस कोमल त्वचावाले कीड़े के समान अज्ञान बालक को काटते हैं इसी से वह रुदन किया करता है ॥ २७ ॥ इस प्रकार वह नाना भांति के कष्टों को भुगत बाल्यावस्था के कष्ट भोगता है, फिर पौगण्ड अवस्था के कष्टों को भुगत युवावस्था को पहुंचता है, तथा उस काल भी इच्छित पदार्थ न पाकर मूर्खता से अत्यन्त क्रोध करता है कि जिस से प्रति समय शोच से घिरारहता है ॥ २८ ॥ देह से बढ़हुए क्रोध तथा अभिमान के कारण वह कामी मनुष्यों के संग मिलकर अपनी आत्मा के नाशार्थ लड़ाई कियाकरता है, ॥ २९ ॥ पंच महाभूतों से रचित इस देह में अज्ञानी जीव अज्ञानतावश " यह मैं हूं " " यह मेरा " है, इस भांति कहाकरता है ॥ ३० ॥ अविद्या तथा कर्म के बंधन से बंधाहुआ और कष्ट देताहुआ यह शरीर बारम्बार आयाकरता है, इसी के हेतु यह प्राणी कर्म कियाकरता है, और उन्हीं कर्मों से बंधनमें आता है इस भांति वह आवागवन में पड़ा घूमताही रहता है ॥ ३१ ॥ फिर वह यहां शिश्न व पेट के हेतु खोटे कर्मों के करने में स्थित होकर वैसीही संगति में रमने लगता है फिर कुसंगति के प्रभावसे वह पहिले की समान नर्कों में जाता है ॥ ३२ ॥ क्योंकि खोटे मनुष्यों की संगति से, सत्य, पवित्रता, दया, मौन, बुद्धि, लज्जा, लक्ष्मी, यश, क्षमा, समता, इंद्रियोंका दमन और ऐश्वर्य इन सबका क्षय होजाता है ॥ ३३ ॥ इसी हेतु अशांत, अविचारी, देहात्म बुद्धिवाले, स्त्रियों के क्रीड़ा मृग, तथा नीच मनुष्यों की संगति कभी न करे ॥ ३४ ॥ कारण कि इस जीवको जितना बंधन स्त्री के संग से तथा उनका संग करनेवाले मनुष्यों के संगसे होताहै, वैसा अन्यके संगसे नहीं होता ॥ ३५ ॥ प्रजापति ब्रह्माजी अपनी बेटी सरस्वतीको देखकर उसकेरूपसेमोहित होगये तब सरस्वती ने अपने बचने के हेतु मृगी का रूप धारण किया तो ब्रह्माजी ने मृगका रूप धारण करके उसका पीछा निर्लज्ज की भांति किया ॥ ३६ ॥ जब ब्रह्माजी की यह दशा है तब उनके रचे हुओं में ऐसा कौन है जिस की बुद्धि स्त्री रूपीमाया से खण्डित न होवे । परन्तु नारायण जो ऋषि रूप

तिपदाक्रांताम्भ्रूविजृम्भेणकेवलम् ॥ ३८ ॥ संगनकुर्यात्प्रमदासुजातु योगस्यपारं परमारुरुक्षुः । मत्सेवयाप्रतिलब्धात्मलाभो वदन्तियानिरयद्वारमस्य ॥ ३९ ॥ योपयातिशनैर्मायायोषिद्देवविनिर्मिता तामीक्षेतात्मनोमृत्युं तृणैःकूपमिवावृतम् ॥ ४० ॥ यांमन्यतेपतिं मोहान्मन्मायामृषभायतीम्। स्त्रीत्वंस्त्रीसंगतः प्राप्तोवित्तापत्यगृहप्रदम् ॥ ४१ तामात्मनोविजानीयात्पत्यपत्यगृहात्मकम्। दैवोपसादितंमृत्युम्मृगयोर्गायनं यथा ॥४२॥ देहेनजीवभूतेन लोकाल्लोकमनुव्रजन्। भुञ्जानएवकर्माणि करोत्यविरतंपुमान् ॥४३॥ जीवाह्यस्यानुगोदेहोभूतेन्द्रियमनोमयः। तन्निरोधोऽस्यमरणमाविर्भावस्तुसंभवः॥४४॥ द्रव्योपलब्धिस्थानस्यद्रव्येक्षायोग्यतायदा। तत्पञ्चत्वमहंमानादुत्पत्तिर्द्रव्यदर्शनम् ॥ ४५ ॥ यथाऽक्ष्णोर्द्रव्यावयवदर्शनायोग्यतायदा। तदैवचक्षुषोद्रष्टुर्द्रष्टृत्वायोग्यताऽनयोः ॥ ४६ ॥ तस्मान्नकार्यःसंत्रासो न कार्पण्यंनसंभ्रमः। बुद्ध्वाजीवगतिंधीरो मुक्तसंगश्चरेदिह ॥ ४७ ॥ सम्यग्दर्शनयाबुद्ध्या योगवैराग्ययुक्तया। मायाविरचितेलोके चरेन्न्यस्यकलेवरम् ॥ ४८ ॥

इतिश्रीमद्भा० तृतीय० पुण्यपापगतिवर्णनंनामएकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

॥ कपिलउवाच। अथयोगृहमेधीयान् धर्मानेवावसन्गृहे ॥ काममर्थंचधर्मान्स्वान्दोग्धभूयःपिपर्तितान् ॥१॥ सचापिभगवद्धर्मात् काममूढःपराङ्मुखः। यजते

धारण करके विराजते हैं उनको नहीं कहसकता ॥ ३७ ॥ मेरी स्त्री रूप मायाके बल को देखो, किजो सम्पूर्ण दिशाओं के जीतने वालों कोभी केवल भ्रुकुटी मात्र चलाने से अपने पैरों के नाच करलेती है ॥ ३८ ॥ इस हेतु जो मनुष्य योग के पार पानेकी इच्छा करे वह स्त्रियों का संगनि कदापि न करे— क्योंकि जिस को मेरी सेवासे आत्म लाभ होगया है वह योगी स्त्रियोंको नरकका द्वार समझता है ॥ ३९ ॥ यदि परमेश्वर की निर्माण की हुई यह स्त्री रूप माया धीरे२ प्राप्त होवे तो अपनी आत्मा की मृत्यु, घास से ढके हुये कूप की समान समझना चाहिये ॥ ४० ॥ जीव स्त्री संगके वशहो स्त्रीत्वको प्राप्त होता है मोह से बंधेहुये उस पुरुष के सदृश आचरण करने वाली मेरीमाया को धन, संतान, और घरमें प्राप्त हुये पतिरूप से मानता है ॥ ४१ ॥ जिस भांति व्याध का गाना मृगों का काल स्वरूप है इसीभांति दैव से प्राप्त पति, पुत्र गृहरूप स्त्री को अपनी मृत्यु जानना चाहिये ॥ ४२ ॥ यह प्राणी अपने देह से एक लोक से दूसरे लोक को जाता हुआ, एक कर्म का भोग करता हुआ निरंतर दूसरे कर्म किया करता है ॥ ४३ ॥ यह लिंग देह और उसके अनुगामी पंचभूत, इन्द्री, विकार रूप स्थूल देह, जब कार्य के अयोग्य होजाते हैं तब उस प्राणी की मृत्यु होती है और जब यह कार्य के योग्य होते हैं तब जीवका जन्म होता है ॥४४॥ जब नेत्र पदार्थों को नहीं देखसकते तब उसके भीतर की चक्षुइन्द्री अयोग्य होजाती है, इन दोनों की अयोग्यता से उसके द्रष्टापन की अयोग्यता होती है इसी भांति स्थूल देह तथा लिंग देह भी जब अयोग्य होजाते हैं तब वही जीवात्मा का मरण कहलाता है और इनकी योग्यता होने से प्राणी में ज्ञान उत्पन्न होता है वही जन्म कहलाता है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ इसीहेतु मरने का त्रास न करना चाहिये तथा जीवन के हेतु दीनताभी नहीं करनी चाहिये, किंतु जीव क सत्य रूपको जान निसंग हो, धैर्य धर, संसार में विचरे ॥ ४७ ॥ इस माया से बनीहुई सृष्टिको छोड़, योग तथा वैराग्य वाली बुद्धि से भ्रमण करना चाहिये ॥ ४८ ॥

इतिश्रीभागवते महापुराणे॰ तृतीयस्कंधेसरलाभाषाटीकायांएकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

कपिल देव जीने कहा—जोगृहस्थी मनुष्य घरमें रह कर गृहस्थ के धर्मोंका आचरण करते हैं अर्थात् काम, अर्थ, धर्म इनका पालन कर गृहस्थ के धर्मोंका निरबाह करते हैं ॥ १ ॥ वे मूर्ख

क्रतुभिर्देवान् पितृंश्चश्रद्धयाऽन्वितः ॥ २ ॥ तच्छ्रद्धयाक्रांन्तमतिः पितृदेवव्रतःपुमान्। गत्वाचान्द्रमसंलोकं सोमपाःपुनरेष्यति ॥ ३ ॥ यदाचाहीन्द्रशय्यायां शेतेऽनंतासनोहरिः। तदालोकालयंयान्ति तएतेगृहमेधिनाम् ॥ ४ ॥ येस्वधर्मान्नदुह्यन्ति धीराःकामार्थहेतवे। निःसङ्गान्यस्तकर्माणः प्रशांताःशुद्धचेतसः ॥ ५ ॥ निवृत्तिधर्मनिरतानिर्ममा निरहंकृताः। स्वधर्माख्येनसत्त्वेन परिशुद्धेनचेतसा ॥ ६ ॥ सूर्यद्वारेणतेयान्ति पुरुषंविश्वतोमुखम्। परावरेशं प्रकृतिमस्योत्पत्त्यन्तभावनम् ७॥ द्विपरार्धावसाने यःप्रलयोब्रह्मणस्तुते। तावदध्यासतेलोकं परस्यपरचिन्तकाः ८॥ क्ष्माऽम्भोऽनलाऽनिलवियन्मनइन्द्रियार्थभूतादिभिः परिवृतंप्रतिसञ्जिहीर्षुः। अव्याकृतंविशतियर्हिगुणत्रयात्मा कालंपराख्यमनुभूयपरःस्वयंभूः ॥ ९ ॥ एवंपरेत्य भगवन्तमनुप्रविष्टा ये योगिनोजितमरुन्मनसोविरागाः। तेनैवसाकममृतंपुरुषंपुराणं ब्रह्म प्रधानमुपयान्त्यगताभिमानाः ॥ १० ॥ अथतंसर्वभूतानां हृत्पद्मेषुकृतालयम्। श्रुतानुभावंशरणं व्रजभावेनभामिनि ॥ ११ ॥ आद्यःस्थिरचराणांयो वेदगर्भःसहर्षिभिः। योगेश्वरैःकुमाराद्यैः सिद्धैर्योगप्रवर्तकैः ॥ १२ ॥ भेददृष्ट्याऽभिमानेन निःसङ्गेनापिकर्मणा। कर्तृत्वात्सगुणं ब्रह्मपुरुषंपुरुषर्षभम् ॥ १३ ॥ ससंसृत्य पुनःकाले कालेनेश्वरमूर्तिना। जातेगुणव्यतिकरे यथापूर्वंप्रजायते ॥ १४ ॥ ऐश्वर्यं पारमेष्ठ्यंच तेऽपिधर्मविनिर्मितम्। निषेव्यपुनरायान्ति गुणव्यतिकरेसति ॥ १५ ॥ येत्विहासक्तमनसः कर्मसु श्रद्धयाऽन्विताः। कुर्वन्त्यप्रतिषिद्धानि नित्यान्यपिचकृ-

कामी मनुष्य परमेश्वर के आराधन से विमुख हो यज्ञ, तथा देवता और पितरों की पूजा करते हैं ॥ २ ॥ ऐसे पुरुष यज्ञादिक करके चन्द्र लोक को जाते हैं और फिर वहां अमृत पीकर पीछे इसी मनुष्य लोक में आते हैं ॥ ३ ॥ जब शेष शय्या पर अनंतासन भगवान सोते हैं तब सम्पूर्ण लोक लीनहोजाते हैं तथा यह सम्पूर्ण गृह मेधीके धर्म भी लीनहोजाते हैं ॥४॥ और जोकाम तथा अर्थ के हेतु धर्म नहीं करते वह आसक्ति रहित, भगवान को अर्पण करने वाले, प्रशांत, तथा शुद्ध चित्तवाले ॥ ५ ॥ निवृत्ति धर्ममें परायण, धीरजवान मनुष्य निरहंकृत, तथा अपने धर्म में ममता द्वारा सत्वगुण से अंतः करण शुद्ध होनेके कारण ॥ ६ ॥ सूर्यलोक द्वारा, सम्पूर्ण सृष्टिको उत्पन्न करने वाले, तथा स्थिति, पालन, संहार करने वाले पर अपवर्ग के स्वामी पूर्ण पुरुषोत्तम श्री भगवान को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ जो मनुष्य ब्रह्माजी को परमेश्वर जानकर उन्हीं की उपासना करते हैं वे प्रलय के अंततक ब्रह्म लोक में रहते हैं ॥ ८ ॥ और जब ब्रह्माजी पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, इन्द्रियां, तथा प्राणी आदि संयुक्त इस ब्रह्मांड के नाश की इच्छाकर परमात्मा में प्रवेश करते हैं ॥ ९ ॥ तब उन ब्रह्माजी में प्रवेश किये हुये, मन, तथा पवन को जीतने वाले योगी वैरागी उन्हीं ब्रह्माजी के साथ अमृत रूप, पुरुष प्रधान, अनादि परमात्मा को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥ परन्तु भगवत उपासना करने वाले तो उसे तत्कालही प्राप्त होते हैं इसी हेतु हे माता! सम्पूर्ण प्राणी मात्रके हृदय कमल में विराजने वाले श्री भगवान, कि जिनका प्रभाव अभी मैंने सुनायाहै, उनकी भक्ति भाव से शरण जाओ ॥११॥ भगवद्भक्त निरंतर भगवान को प्राप्त होते हैं; परन्तु भेदभाव से उपासना करने वाले, साक्षात् ब्रह्माजी भी मरीचि आदि ऋषि, योगेश्वर कुमारादिक, तथा पूर्व सिद्धों के साथ ॥ १२ ॥ भेद दृष्टि करके, अभिमान से निःसंग कर्म करके कर्ताभाव होनेसे सगुण में लीनहोकर ॥ १३ ॥ ईश्वररूप काल करके संसार में फिरजन्म ले जैसे पहले ब्रह्मा थे उसी पदवी को फिर प्राप्तहुये ॥१४॥ हे सति! धर्म विनिर्मित वे पुरुष भी पारमेष्ठ्य के ऐश्वर्य का सेवन कर फिर संसार में जन्म लेते हैं ॥ १५ ॥ औरजो मनुष्य इस लोक में आसक्त

**त्स्नशः ॥ १६ ॥ रजसाकुण्ठमनसः कामात्मानोऽजितेन्द्रियाः । पितृन्यजन्त्यनुदि-
नं गृहेष्वभिरताशयाः ॥ १७ ॥ त्रैवर्गिकास्तेपुरुषा विमुखाहरिमेधसः । कथायां
कथनीयोरुविक्रमस्य मधुद्विषः ॥ १८ ॥ नूनंदैवेनविहतायेचाच्युतकथासुधाम् ॥
हित्वाशृण्वन्त्यसद्गाथाः पुरीषमिवविड्भुजः ॥ १९ ॥ दक्षिणेनपथाऽर्यम्णः पितृ
लोकंव्रजन्तिते । प्रजामनुप्रजायन्ते श्मशानान्तक्रियाकृतः ॥ २० ॥ ततस्तेक्षीण-
सुकृताः पुनर्लोकमिमंसति । पतन्तिविवशादेवैः सद्योविभ्रंशितोदयाः ॥ २१ ॥ त-
स्मात्त्वंसर्वभावेन भजस्वपरमेष्ठिनम् । तद्गुणाश्रययाभक्त्याभजनीयपदाम्बुजम् ॥
॥ २२ ॥ वासुदेवेभगवति भक्तियोगःप्रयोजितः । जनयत्याशुवैराग्यं ज्ञानंयद्ब्रह्म-
दर्शनम् ॥२३॥ यदाऽस्यचित्तमर्थेषु समेष्विन्द्रियवृत्तिभिः । नविगृह्णातिवैषम्यं
प्रियमप्रियमित्युत ॥ २४ ॥ सतदैवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं निःसङ्गंसमदर्शनम् । हेयोपादे
यरहितमारूढपदमीक्षते ॥ २५ ॥ ज्ञानमात्रंपरब्रह्म परमात्मेश्वरःपुमान् । दृश्यादि-
भिः पृथग्भावैर्भगवानेकईयते ॥ २६ ॥ एतावानेवयोगेन समग्रेणेहयोगिनः । युज्यते
ऽभिमतोह्यर्थो यदसंगस्तुकृत्स्नशः ॥ २७ ॥ ज्ञानमेकंपराचीनैरिन्द्रियैर्ब्रह्म निर्गुणम्
अवभात्यर्थरूपेण भ्रान्त्याशब्दादिधर्मिणा ॥ २८ ॥ यथामहानहंरूपस्त्रिवृत्पंचविधः
स्वराट् । एकादशविधस्तस्य वपुरण्डंजगद्यतः ॥ २९ ॥ एतद्वैश्रद्धयाभक्त्या यो-
गाभ्यासेननित्यशः । समाहितात्मानिसंगो विरक्त्यापरिपश्यति ॥ ३० ॥ इत्येतत्**

चित्तहो श्रद्धा संयुक्त, नित्य नैमित्तिक कर्म करते हैं ॥ १६ ॥ तथा रजोगुण में व्याप्त हो
जो कामी पुरुष, अजितेन्द्रिय, घरके धंधों में फंसेहुये प्रतिदिन पितरोंका पूजन करते हैं ॥ १७ ॥
ऐसे त्रैवर्गिक पुरुष, अति पराक्रमी, कहने योग्य जिनके चरित्र हैं ऐसे भगवान की कथा से विमुख
हैं ॥ १८ ॥ और जो पुरुष नारायण की अमृत रूप कथा को त्याग रसिक प्रसंगों में मन लगाते
हैं, जैसे सब उत्तम २ पदार्थों का भक्षण करके विष्ठा भोजी विष्ठाही से प्रसन्न होता है, ऐसे ही
जो नीच लोगों की कथा सुनते रहते हैं वह निश्चय ही भाग्य के मारेहुये हैं ॥ १९ ॥ जन्म काल
से मरण काल तक—सम्पूर्ण क्रिया इस भांतिसे करनेवाले मनुष्य सूर्यसे बांए मार्ग होकर दक्षिण
दिशामें पितृलोकमें जाकर फिर पीछेसे प्रजारूप अपने वंशमें उत्पन्नहोते हैं ॥२०॥हे माता ! जब
उन पुरुषोंका सुकृत क्षीण होजाताहै तब देवता उनके सम्पोंको नष्ट करदेते हैं उसकाल वे पराधीन
हो फिर इस सृष्टिमें आतेहैं॥२१॥इसहेतु परमेश्वरका कि जिनके कमल स्वरूपी चरण भजने योग्यहैं,
सम्पूर्ण भावसे, गुणोंको आश्रयकरनेवाली भक्तिसे, भजनकरो॥२२॥जिसकाल परमेश्वरकी भक्ति
योगका साधन किया जाताहै उसकाल ज्ञान तथा वैराग्य आपही प्राप्त होजाते हैं जिससे ब्रह्मका
दर्शन होता है ॥ २३ ॥ जब इसभक्त का मन इन्द्रियों की वृत्ति से समान अर्थों में और प्रिय
अप्रिय में विषय भावको नहीं ग्रहण करता ॥ २४ ॥ तब उस काल वह स्वयंही आत्मा का
स्वप्रकाशरूप, किजो निःसंग, समदर्शी, त्यागने और ग्रहण करने से रहित, ज्ञानमय है देखता है
॥ २५ ॥ ज्ञानमात्र परब्रह्म, भगवान परमेश्वर, पुरुष, देखने योग्य पृथक भागों से भगवान एक
प्रतीत होते हैं ॥ २६ ॥ योगी को इन सम्पूर्ण साधनों में मुख्य अभिप्राय यही है कि सब ओर
से संग छूटजाय ॥ २७ ॥ ज्ञान रूप निर्गुण ब्रह्म बहिर्मुख इन्द्रिय गणों द्वारा, भ्रांतिवश शब्दादि
धर्मयुक्त अर्थ रूप से प्रतीत होते हैं; ॥ २८ ॥ जैसे एक महत्तत्व, अहंकार रूप से त्रिगुणात्मक
किरभूतरूप से पांचप्रकार, तथा इन्द्रिय रूप से एकादश प्रकारकी हुआ है और उसीमहदादि
से स्वराट् अर्थात् जीव और जीवका शरीर इस ब्रह्माण्ड और जगत में प्रकाशित होता है, वैसेही
परब्रह्म भी इस प्रपंच अर्थ रूपसे प्रकाश पाता है ॥ २९ ॥ जिसका चित्त श्रद्धा, भक्ति, वैराग्य
और सदैव योगाभ्यास करने से स्थिर होगया है वही निःसंग मनुष्य इस बातको यथार्थ रूप से

कथितंगुर्वि ज्ञानंतद्ब्रह्मदर्शनम्। येनानुबुध्यतेतत्त्वं प्रकृतेःपुरुषस्यच ॥ ३१ ॥ ज्ञान योगश्चमन्निष्ठो नैर्गुण्योभक्तिलक्षणः। द्वयोरप्येकएवार्थो भगवच्छब्दलक्षणः॥३२॥ यथेन्द्रियैः पृथग्द्वारैरर्थो बहुगुणाश्रयः। एकोनानेयते तद्वद्भगवाञ्छास्त्रवर्त्मभिः ॥ ॥ ३३ ॥ क्रियया क्रतुभिर्दानैस्तपःस्वाध्यायमर्शनैः। आत्मेन्द्रियजयेनापि संन्या- सेनचकर्मणाम् ॥ ३४ ॥ योगेनविविधांगेन भक्तियोगेनचैवहि। धर्मेणोभयचिन्हे- न यःप्रवृत्तिनिवृत्तिमान् ॥ ३५ ॥ आत्मतत्त्वावबोधेन वैराग्येण दृढेनच ॥ ईयते भगवानेभिः सगुणो निर्गुणः स्वदृक् ॥ ३६ ॥ प्रावोचं भक्तियोगस्य स्वरूपं ते चतुर्विधम् ॥ कालस्यचाव्यक्तगतेर्योऽन्तर्धावति जन्तुषु ॥ ३७ ॥ जीवस्य संस तीर्बह्वीरविद्याकर्मनिर्मिताः ॥ यास्वङ्ग प्रविशन्नात्मा न वेद गतिमात्मनः ॥ ३८ ॥ नैतत् खलायोपदिशेन्ना विनीतायकर्हिचित् ॥ नस्तब्धाय न भिन्नाय नैव धर्म ध्वजायच ॥ ३९ ॥ न लोलुपायोपदिशेन्न गृहारूढचेतसे ॥नाभक्ताय चमे जातु न मद्भक्तद्विषामपि ॥ ४० ॥ श्रद्दधानाय भक्ताय विनीतायानसूयवे ॥ भूतेषु कृतमैत्राय शुश्रूषाऽभिरतायच ॥ ४१ ॥ बहिर्जातविरागाय शांतचित्ताय दीय ताम् ॥ निर्मत्सराय शुचये यस्याहं प्रेयसां प्रियः ॥४२ ॥ य इदं शृणुयादम्बश्रद्ध यापुरुषःसकृत् ॥ यो वाऽभिधत्ते मच्चितः सह्येति पदवीं चमे ॥ ४३ ॥

इतिश्रीमद्भागवते म०तृतीयस्कन्धेकापिलेयेवर्णनंनामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ एवंनिशम्य कपिलस्य वचो जनित्रीसा कर्दमस्य दयिता किलदेवहूतिः ॥ विस्रस्तमोहपटला तमभिप्रणम्य तुष्टावतत्त्वविषयांकितसिद्धि

जान सकता है ॥ ३० ॥ हे माता ! ब्रह्मका दर्शन ज्ञान तथा प्रकृति पुरुषका तत्व ज्ञान जानने वाला मैंने यह ज्ञान कहा ॥ ३१ ॥ मेरी निष्ठा का भक्ति योग तथा निर्गुण ज्ञान योग इन दोनों का अभिप्राय एकही है। भगवत शब्द का लक्षण भगवान ने अपने आप गीता में कहा है ॥३२॥ जिस भांति रूपरस आदि नाना गुणवाले पदार्थ पृथक २ मार्ग वाली इन्द्रियों से नाना भांति के ज्ञात होते हैं वैसेही एक परमात्मा शास्त्रोंके मार्गों से अनेक भांति के ज्ञान होते हैं ॥ ३३ ॥ पूर्त्त कर्मादि (कूप आदि बनाना) यज्ञ, क्रिया, दान, तप, वेदाध्ययन, मीमांसादिक, आत्मा तथा इन्द्रियों का जीतना, सन्यास ॥ ३४ ॥ अष्टांग योग, भक्तियोग, सकाम तथा निष्काम धर्म ॥३५॥ आत्म तत्व का ज्ञान, दृढ़वैराग्य, इन सब साधनों से सगुण तथा निर्गुण, स्वप्रकाश भगवान जानने में आते हैं ॥ ३६ ॥ भक्ति योगका तो चार प्रकार का स्वरूप मैंने वर्णन किया तथा अव्यक्त गतिवाले काल काभी कि जो सम्पूर्ण जीव जंतुओं में दौड़ा फिरा करता है, रूप वर्णन किया ॥३७॥ हे माता ! अविद्या से उत्पन्न कर्मों से प्राप्त होने वाले जीवों की नाना योनियोंकाभी वर्णन किया कि जिनमें जाने से प्राणी अपने रूपको भूलजाता है ॥३८॥ यह कथा जिसका दुष्ट, चित्त है घरमें आसक्त हैं, अभक्त, पाखण्डी, अभिमानी, विनय रहित, दुराचारी, मेरे भक्तों का द्वेषी ऐसे से कदापि नहीं कहनी चाहिये ॥३९।४०॥ तथा विनयवान, प्राणीमात्रसे मित्रता रखनेवाला शुश्रुषा परायण ॥ ४१ ॥ तथा वैराग्य वाला, प्रशांत, निर्मत्सर, पवित्र, मुझको सबसे प्यारा माननेवाला, जो होवे उसको यह कथा श्रवण करानी चाहिये ॥४२॥ हे माता ! जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक, मुझमें चित्तलगा इसको एकबारभी सुनेगा अथवा कहेगा,तो वह शीघ्रही मेरी पदवीको प्राप्तहोगा॥४३॥

इतिश्रीमद्भागवते,महापुराणे०तृतीयस्कंधेसरलाभाषाटीकायांद्वात्रिंशत्तिमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

मैत्रेयजी बोले कि हे विदुरजी ! कर्दमजी की प्यारी तथा कपिलदेवजीकी माता देवहूती ने जिसका अज्ञान तथा मोह का कपटजाल कपिलजीके वाक्यों से नष्ट होगयाहै, उनकी स्तुतिकरने

भूमिम् ॥ १ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ अथाप्यजोऽन्तः सलिलेशयानं भूतेन्द्रियार्थात्ममयंवपुस्त ॥ गुणप्रवाहं सदशेषबीजं दध्यौ स्वयं यज्जठराब्जजातः ॥ २ ॥ सएव विश्वस्य भवान्विधत्ते गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ॥ सर्गाद्यनीहोऽवितथाभिसंधिरात्मेश्वरोऽतर्क्यसहस्रशक्तिः ॥ ३ ॥ सत्वंभृतोमे जठरेणनाथ कथंनु यस्योदर एतदासीत् । विश्वंयुगान्ते वटपत्र एकः शेतेस्ममायाशिशुरंघ्रिपानः ४॥ त्वं देहतन्त्रःप्रशमायपाप्मनां निदेशभाजां च विभो विभूतये । यथाऽवतारास्तव सूकरादयस्तथाऽयमप्यात्मपथोपलब्धये ॥ ५ ॥ यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपिक्वचित् । श्वादोऽपिसद्यः सवनायकल्पते कुतःपुनस्तेभगवन्नु दर्शनात् ॥ ६ ॥ अहो बतश्वपचोऽतो गरीयान्यज्जिह्वाऽग्रे वर्तते नामतुभ्यम् । ते पुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ते ये ॥ ७ ॥ तंत्वामहंब्रह्म परंपुमांसं प्रत्यक्स्रोतस्यात्मनिसंविभाव्यम् । स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहं वन्दे विष्णुं कपिलं वेदगर्भम् ॥ ८ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ ईडितो भगवानेवं कपिलाख्यःपरः पुमान् । वाचा विक्लवयेत्याह मातरं मातृवत्सलः ॥ ९ ॥ कपिलउवाच ॥ मार्गेण नेन मातस्ते सुसेव्यनोदितेनमे । आस्थितेनपरांकाष्ठा मचिरादवरोत्स्यसि १० श्रद्धत्स्वैतन्मतंमह्यं जुष्टंयद्ब्रह्मवादिभिः । येनमामभवंयाया मृत्युमृच्छन्त्यतद्विदः ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इतिप्रदर्श्यभगवान् सतीं तामात्मनोगतिम् । स्वमात्रा

लगा ॥ १ ॥ देवहूतीने कहा कि हे भगवन् ! तुम्हारा यह प्रगट शरीर भूत ,इन्द्रिय, आत्मा, और मन इन सबोंमें व्याप्त है यह सबका बीज है और इसी में सब गुणों का प्रवाह होता है, ब्रह्माजी ने तुम्हारे नाभि कमल से उत्पन्न होकर जल में सोएहुए तुम्हारे इस शरीर का ध्यान किया था किंतु उसको न देखपाया ॥ २ ॥ हे विभो ! तुम स्वयं क्रिया रहित होकर गुण प्रवाह रूप से अपनी शक्ति का विभाग कर इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते रहते हो तुम सत्य संकल्प तथा सब जीवों के ईश्वर हो तुम्हारी अगोचर शक्ति तर्कना रहित है ॥ ३ ॥ प्रलयकाल में तुमने अपने उदर में इस विश्व को धारण किया था ! मैंने तुमको किस प्रकार गर्भमें धारण किया हे नाथ ! आप प्रलयकाल के अन्त में मायासे बालक रूप हो एक वटके पत्तेपर शयन करतेतथा अंगूठे को पड़े हुये चूस रहे थे ॥ ४ ॥ हे विभो ! आप पापियों के नाश के हेतु अवतार धारण करते हो, जिस भांति आपने भक्तों की रक्षा के हेतु शूकरादिक रूप धारण किये हैं उसी भांति आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति के हेतु आपने यहभी रूप धारण किया है ॥५॥ हे भगवान ! चाण्डालभी आपके नाम श्रवण कीर्तन तथा दंडवतकरने से मोक्षको प्राप्त होता है फिर जो आपका बारम्बार दर्शन करताहै उसकी मुक्ति होना क्या आश्चर्य की बात है ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! जिह्वा के अग्र भाग से आप का नाम लेने वाला चाण्डाल भी श्रेष्ठ है, जिसने आप का नाम उच्चारण किया, उसने सम्पूर्ण तप तप लिये, होम तथा तीर्थादिक कर लिये और वेदों को पढ़ लिया ऐसा जानना चाहिये ॥ ७ ॥ परब्रह्म, परमपुरुष, अंतर्वृत्ति से ध्यान करने योग्य तथा वेद गर्भ, विष्णु आप को मैं प्रणाम करती हूं ॥ ८ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि—देवहूती ने जब कपिल भगवानकी इस भांति स्तुति की, तो मातृ वत्सल कपिल मुनि ने गंभीर बाणी से कहा कि— ॥ ९ ॥ हे माता ! सेवन करने योग्य इस वर्णन कियेहुए मार्ग पर तू चलेगी तो थोड़ेही काल में मुक्ति को प्राप्त होगी ॥ १० ॥ इस मेरे मत पर जिस का सेवन ब्रह्म वादी मुनि लोग करते हैं, श्रद्धा रख तो कल्याण कारक मुझ को प्राप्त होगी, जो इस मत को नहीं जानते वह सदैव जन्म मरणपाते है ॥ ११ ॥ श्री मैत्रेयजी ने कहा कि,—भगवान कपिलदेवजी इस भांति अपनी माता को

ब्रह्म वादिन्या कपिलोऽनुमतो ययौ ॥ १२ ॥ साचापि तनयोक्तेन योगादेशेनयोग युक्। तस्मिन्नाश्रम आपीडे सरस्वत्याःसमाहिता ॥ १३ ॥ अभीक्ष्णावगाहकपिशान् जटिलान् कुटिलालकान्। आत्मानं चोग्रतपसा बिभ्रतीचीरिणंकृशम् १४ ॥ प्रजापतेःकर्दमस्य तपोयोगविजृम्भितम् । स्वगार्हस्थ्यमनौपम्यं प्रार्थ्यं वैमानिकैरपि ॥ १५ ॥ पयः फेननिभाः शय्या दान्तारुक्मपरिच्छदाः । आसनानिचहैमानि सुस्पर्शास्तरणानिच ॥ १६ ॥ स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषुच । रत्नप्रदीपा आभांति ललनारत्नसंयुताः ॥ १७ ॥ गृहोद्यानं कुसुमितैःरम्यंबह्वमरद्रुमैः । कूजद्विहङ्गमिथुनं गायन्मत्तमधुव्रतम् ॥ १८ ॥ यत्र प्रविष्टमात्मानं विबुधानुचरा जगुः वाप्यामुत्पलगन्धिन्यां कर्दमेनोपलालितम् ॥ १९॥ हित्वातदीप्सिततममप्याखण्डलयोषिताम्। किंचिच्चकारवदनं पुत्रविश्लेषणातुरा ॥ २० ॥ वनंप्रव्रजिते पत्यावपत्यविरहातुरा । ज्ञाततत्त्वाऽप्यभून्नष्टे वत्सेगौरिववत्सला ॥ २१ ॥ तमेव ध्यायती देव मपत्यंकपिलंहरिम् । बभूवाचिरतोवत्स निःस्पृहातादृशेगृहे ॥ २२ ॥ ध्यायन्तीभगवद्रूपं यदाह ध्यान गोचरम् । सुतःप्रसन्नवदनं समस्तव्यस्तचिंतया ॥ २३ ॥ भक्तिप्रवाह योगेन वैराग्येणबलीयसा । युक्तानुष्ठानजातेन ज्ञानेनब्रह्महेतुना ॥ २४ ॥ विशुद्धेनतदात्मान मात्मनाविश्वतोमुखम् । स्वानुभूत्या तिरोभूत मायागुण विशेषणम् ॥ २५ ॥ ब्रह्मण्यवस्थितमतिर्भगवत्यात्मसंश्रये । निवृत्त

आत्मगति दिखा कर तथा उस ब्रह्म वादिनी से आज्ञा माग वहां से चले गये ॥ १२ ॥ वह देवहूती अपने पुत्रके कहे हुये योग के उपदेश को धारणकर, सरस्वती के तीर पर, एकाग्रचित्त हो सावधान होकर बैठी ॥ १३ ॥ वह बारम्बार स्नान करके कुटिल (जटिल) केशों को धारकर उग्र तपस्या के हेतु चीर धारण कर कृश देह को धारण किये हुये रहने लगी ॥ १४ ॥ कर्दम जी के तप व योग से उत्पन्न हुये सुन्दर विमान को, कि जिस को चाहना बड़े २ विमान वासी करते हैं त्याग दिया ॥ १५ ॥ जिस शय्या में दुग्ध के झाग की सदृश कोमल शय्या हाथी दांत की बनी हुई तथा सुवर्ण की सामग्री व सुवर्ण मय आसन और सुंदर कोमल बिछौना बिछा हुआ है ॥ १६ ॥ जिस स्वच्छ उज्ज्वल बिल्लौर पत्थर की दीवार में मणियें जड़ी हुईहैं तथा रत्नों के दीपक लगे हुये हैं और स्त्री रत्न आभूषण युक्त शोभायमान हैं ॥ १७ ॥ जिस में फूलों समेत उत्तम बगीचे हैं जहांपर बहुत से कल्पवृक्ष शोभायमान हैं और पक्षियों के जोड़े जहां शब्द और भौरे गानकररहे हैं ॥ १८ ॥ उस बगीचे में जब देवहूती प्रवेश करती तब देवताओं के अनुचर गान किया करते, और जहां कर्दम जी कमलों की सुगंध से सुवासित बावड़ी में रमण कराया करते ॥ १९ ॥ ऐसे सुख को देवहूती ने पुत्र के योग उपदेश से त्यागन कर दिया परन्तु पुत्रके वियोग से कुछ एक शरीर मलीन रहताथा ॥ २० ॥ पति तो बनको चले गये थे उस विरह तथा पुत्रके वियोग से तत्वज्ञान जानने पर भी ऐसी दशा होगई कि जैसे बछड़ा के बिछुड़ने पर गऊ की होती है ॥ २१ ॥ हे विदुर! वह अपने पुत्र कपिलदेव का ध्यान करती हुई वैभवयुक्त गृहोंके विषय निस्पृह होगई ॥ २२ ॥ भगवान कपिल देवजी के बताये हुयेज्ञान का ध्यान करने लगी और प्रसन्न मुख से पुत्रकी चिंता का त्याग किया ॥ ॥ २३ ॥ भक्तिके प्रवाह रूप योग से, पलिष्ट वैराग्य से, और अनुष्ठान से उत्पन्न हुए ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त करानेवाला ज्ञान ॥ २४ ॥ उससे विशेष करके शुद्ध हुआ अंतःकरण उससे सर्व व्यापक आत्मा किजो अपने रूपके प्रकाश से माया के गुणों से रहित है उस विश्वमुख आत्मा का ध्यान करने लगी ॥ २५ ॥ उसका चिंतवन करती हुई, सर्व प्राणियों के आश्रय भूत परमेश्वर में स्थिर बुद्धि होगई

जीवापत्तित्वात् क्षीणक्लेशाऽऽप्तनिर्वृतिः ॥ २६ ॥ नित्यारूढसमाधित्वात्परावृत्त-
गुणभ्रमा। न सस्मार तदाऽऽत्मानं स्वप्नेदृष्टमिवोत्थितः ॥ २७ ॥ तद्देहः परतः पोषो
ऽप्यकृशश्चाध्यसंभवात्। बभौ मलैरवच्छन्नः सधूम इव पावकः ॥ २८ ॥ स्वाङ्गं तपो
योगमयं मुक्तकेशं गताम्बरम्। दैवगुप्तं न बुबुधे वासुदेवप्रविष्टधीः ॥ २९ ॥ एवं सा
कपिलोक्तेन मार्गेण चिरतः परम्। आत्मानं ब्रह्मनिर्वाणं भगवन्तमवाप ह ॥ ३० ॥
तद्वीराऽऽसीत्पुण्यतमं क्षेत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम्। नाम्ना सिद्धपदं यत्र सा संसिद्धि
मुपेयुषी ॥ ३१ ॥ तस्यास्तद्योगविधुतमार्त्यं मर्त्यमभूत्सरित्। स्रोतसां
प्रवरा सौम्य सिद्धिदा सिद्धसेविता ॥ ३२ ॥ कपिलोऽपि महायोगी भगवा
न्पितुराश्रमात्। मातरं समनुज्ञाप्य प्रागुदीचीं दिशं ययौ ॥ ३३ ॥ सिद्ध
चारणगन्धर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः। स्तूयमानः समुद्रेण दत्तार्हणनिकेतनः ३४ ॥
आस्ते योगं समास्थाय सांख्याचार्यैरभिष्टुतः। त्रयाणामपि लोकानामुपशान्त्यै स
माहितः ॥ ३५ ॥ एतन्निगदितं तात यत्पृष्टोऽहं तवानघ। कपिलस्य च संवादो
देवहूत्याश्च पावनः ॥ ३६ ॥ य इदं मनुशृणोति योऽभिधत्ते कपिलमुनेर्मतमात्मयोग
गुह्यम्। भगवति कृतधीः सुपर्णकेतावुपलभते भगवत्पदारविंदम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० तृ० स्क० कपिलान्तर्धानवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

समाप्तोऽयं तृतीयः स्कन्धः ॥ ३ ॥

उस काल जीव भावके क्षीण होने से सब दुःख मिटगये और आत्मा का सुख प्राप्त हुआ तथा अपनी देह का स्मर्ण नरहा ॥ २६ ॥ नित्य समाधि में आरूढ़ रहने से देहादिक की भ्रांति निवृत्त होने पर अपनी देह का स्मर्ण ऐसे नहीं रहा कि जैसे स्वप्न में देखे हुए पदार्थ का स्मरण नहीं रहता ॥ २७ ॥ कर्दमादि से रक्षित, कृश देह होने पर भी वह मनको कुछ ग्लानि नहीं मानती थी, मलसे ढकीहुई धूम सहित अग्नि जैसे प्रकाश करती है ऐसीही प्रकाश पानेलगी ॥ २८ ॥ देव करके रक्षित, तथा प्रारब्ध कर्म करके पालित तप व योगमय देह के केश व वस्त्र छूट जानेपर भी परमेश्वर के ध्यान में उसे कुछ ज्ञान नहीं रहा ॥ २९ ॥ इस भांति देवहूती, कपिलदेव जी के कहेहुए मार्गका अनुसरण कर शीघ्रही परमात्मा को प्राप्त हुई ॥ ३० ॥ हे विदुर! जहांपर देवहूती सिद्धहुई, वह श्रेष्ठ पवित्र स्थान सिद्धपद नाम से त्रिलोकी में विख्यात हुआ ॥ ३१ ॥ हे विदुर! जिसके देह के योग करके मल दूर होगए हैं ऐसी उस देवहूती की मूर्तक देह सरस्वती नदीरूप होगई। जिसो सब नदियों में श्रेष्ठ, तथा सिद्धों करके सेवित और सिद्धि को देनेवाली है ॥ ३२ ॥ महायोगी, परमेश्वर रूप श्री कपिलदेव जी भी माता की आज्ञानुसार पिताके आश्रम से ईशान कोण की ओर गये ॥ ३३ ॥ वहांपर उनकी सिद्ध, चारण, गन्धर्व, तथा अप्सराओं ने स्तुति की और समुद्र ने अर्घ देकर रहने को स्थान दिया ॥ ३४ ॥ वह कपिल देवजी तीनो लोकों की शांति के हेतु एकाग्र मनहो, योग धारण कर वहांपर स्थित हुए कि जिनकी सांख्य के आचार्य सदैव स्तुति करते हैं ॥ ३५ ॥ हे तात! हे विदुर! जो तुमने अति पवित्र देवहूती तथा कपिल देवजी का संवाद पूंछा वह मैंने कहा ॥ ३६ ॥ आत्म तत्व के साधनों में यह कपिल देव जी का गुप्तयोग जो कहेगा अथवा सुनेगा, उस की बुद्धि गरुड़ध्वज भगवान में प्राप्त होगी जिसके कारण वह परमेश्वर के चरणों में प्राप्त होगा ॥ ३७ ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेतृतीयस्कन्धसारस्वतवंशोद्भवपं० जगन्नाथात्मजकन्हैयालालउपाध्यायकृत सरलाभाषाटीकायांकपिलान्तर्धानवर्णनंनामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

समाप्तोऽयंतृतियःस्कंधः ॥ ३ ॥

श्रीमद्भागवत भाषाटीका सहित।

चतुर्थ स्कन्ध।

**श्रीकृष्णायनमः ॥ मैत्रेयउवाच ॥ मनोस्तुशतरूपायां तिस्रः कन्याश्चजज्ञिरे ।
आकूतिर्देवहूतिश्चप्रसूतिरितिविश्रुताः ॥ १ ॥ आकूतिंरुचयेप्रादादपिभ्रातृमतींनृपः
पुत्रिकाधर्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः ॥ २ ॥ प्रजापतिःसभगवान्रुचिस्तस्याम
जीजनत् । मिथुनंब्रह्मवर्चस्वी परमेणसमाधिना ॥ ३ ॥ यस्तयोःपुरुषःसाक्षाद्वि
ष्णुर्यज्ञस्वरूपधृक् । यास्त्रीसादक्षिणाभूतेरंशभूताऽनपायनी ॥ ४ ॥ आनिन्येस्वगृ
हंपुत्र्याः पुत्रंविततरोचिषम् । स्वायंभुवोमुदायुक्तो रुचिर्जग्राहदक्षिणाम् ॥ ५ ॥
तांकामयानांभगवानुवाहयजुषांपतिः । तुष्टायांतोषमापन्नोऽजनयद्द्वादशात्मजा
न् ॥ ६ ॥ तोषःप्रतोषःसन्तोषो भद्रःशान्तिरिडस्पतिः । इध्मःकविर्विभुःस्वह्नःसुदे
वोरोचनोद्विषट् ॥ ७ ॥ तुषितानामतेदेवा आसन्स्वायंभुवान्तरे । मरीचिमिश्रा
ऋषयोयज्ञःसुरगणेश्वरः ॥८॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौमहौजसौ । तत्पुत्रपौत्र
नप्तॄणामनुवृत्तंतदन्तरम् ॥ ९ ॥ देवहूतिमदात्तात कर्दमायात्मजांमनुः तत्संबं
धिश्रुतप्रायं भवतागदतोमम ॥ १० ॥ दक्षायब्रह्मपुत्राय प्रसूतिंभगवान्मनुः । यस्या
वंशःस्कृतः सर्गस्त्रिलोक्यां विततोमहान् ॥ ११ ॥ याःकर्दमसुताःप्रोक्ता नवब्रह्म**

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर ! शतरूपाके गर्भ में मनुके औरस से आकूति, देवहूति प्रसूति नाम
क तीन कन्याओं ने जन्म ग्रहण किया ॥ १ ॥ इनके अतिरिक्त मनुके और दो पुत्र उत्पन्न हुए
थे परन्तु मनु ने शतरूपा की प्रेरणासे अपनी आकूति नाम कन्याको पुत्रिका करके रुचि ऋषिको
देदी "इस गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होगा वह मेरा होगा" ऐसा मानकर जो कन्यादान किया जाता
है उसको पुत्रिका कहते हैं ॥ २ ॥ ब्रह्मतेज से युक्त भगवान् रुचि ने ईश्वर की कृपासे आकूति
के गर्भ से एक पुत्र और कन्या उत्पन्न की उनमें से पुत्र तो साक्षात् यज्ञ रूप विष्णु और कन्या
लक्ष्मी के अंश से युक्त दक्षिणा हुई ॥ ४ ॥ स्वायंभुव मनुने जब सुना कि आकूति के गर्भ से
एक कोमल पुत्र उत्पन्न हुआ है, तब वह प्रसन्न चित्त से उस पुत्र को अपने घर लेआए रुचि
दक्षिणा काही पालन पोषण करने लगे ॥ ५ ॥ कुछ काल के अनन्तर दक्षिणा को अपने सहोदर
यज्ञके साथ विवाह करने की इच्छाहुई यज्ञने उसकी इच्छाके अनुसार प्रसन्न चित्तसे उसके साथ
विवाह करके उस के गर्भ से १२ पुत्र उत्पन्न किये ॥ ६ ॥ उनके नाम—तोष, प्रतोष, सन्तोष
भद्र, शान्ति, इडस्पति इध्म, कवि, विभु, स्वह्न, सुदेव और रोचन ॥ ७ ॥ स्वायंभुव मन्वन्तर में
तुषितादि नाम के यह बारह देवता हुए मरीचि आदि ऋषि हुए और यज्ञ सुरगणेश्वर (इन्द्र)
हुए. श्रीनारायण के छःप्रकार के अवतार यहीहैं ॥ ८ ॥ मनुके दो पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपाद
बड़े पराक्रमी हुए कि जिनके पुत्र पौत्रादिकों से सम्पूर्ण जगत् व्याप्त होगया ॥ ९ ॥ स्वायंभुवमनु
ने अपनी देवहूती पुत्री कर्दम ऋषि को दी कि जिसका सम्बन्ध मैंने पहिलेही वर्णन किया है ॥
॥ १० ॥ मनुने अपनी प्रसूति नाम कन्या ब्रह्म पुत्र दक्ष को दी जिस के वंश का त्रिलोकी में बड़ा

र्षिपत्नयः । तासांप्रसूतिप्रसवं प्रोच्यमानंनिबोधमे ॥ १२ ॥ पत्नीमरीचेस्तु कलासुषुवे कर्दमात्मजा । कश्यपंपूर्णिमानंच ययोरापूरितंजगत् ॥ १३ ॥ पूर्णिमासूतविरजं विश्वगंचपरंतप । देवकुल्यांहरेःपादशौचाद्याऽभूत्सरिद्दिवः ॥१४॥ अत्रेःपत्न्यनसूयात्रीन्जज्ञेसुयशसःसुतान् ।दत्तंदुर्वाससंसोममात्मेशब्रह्मसंभवान् ॥१५॥ विदुरउवाच ॥ अत्रेर्गृहेसुरश्रेष्ठाःस्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः किंचिच्चिकीर्षवोजाता एतदाख्याहिमेगुरो ॥ १६ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ ब्रह्मणानोदितःसृष्टावत्रिर्ब्रह्मविदांवरः । सहपत्न्याययावृक्षं कुलाद्रिंतपसिस्थितः ॥ १७॥ तस्मिन्प्रसूनस्तबकपलाशाशोककानने । वार्भिःस्रवद्भिरुद्घुष्टे निर्विन्ध्यायाःसमन्ततः ॥ १८ ॥ प्राणायामेनसंयम्य मनोवर्षशतंमुनिः । अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वन्द्वोऽनिलभोजनः ॥ १९ ॥ शरणंतंप्रपद्येऽहं यएवजगदीश्वरः । प्रजामात्मसमांमह्यं प्रयच्छत्वितिचिन्तयन् ॥ २० ॥ तप्यमानंत्रिभुवनं प्राणायामैधसाऽग्निना । निर्गतेनमुनेर्मूर्ध्नःसमीक्ष्यप्रभवस्त्रयः ॥२१॥ अप्सरोमुनिगन्धर्व सिद्धविद्याधरोरगैः । वितायमानयशसस्तदा श्रमपदंययुः ॥ ॥ २२ ॥ तत्प्रादुर्भावसंयोग विद्योतितमनामुनिः । उत्तिष्ठन्नेकपादेन ददर्शविबुधर्षभान् ॥ २३ ॥ प्रणम्यदण्डवद्भूमावुपतस्थेऽर्हणांजलिः । वृषहंससुपर्णस्थान्स्वैः स्वैश्चिह्नैश्चचिह्नितान् ॥ २४॥कृपावलोकेनहसद्वदनेनोपलम्भितान् । तद्रोचिषा प्रतिहते निमील्यमुनिरक्षिणी ॥ २५ ॥ चेतस्तत्प्रवणं युंजन्नस्तावीत्संहतांजलिः ।

भारी विस्तार हुआ ॥ ११ ॥ कर्दम जी की नौ पुत्रियें जो ब्रह्मऋषियों की स्त्री हुई उनकी संतान का विस्तार मैं कहता हूं तुम सुनो ॥ १२ ॥ कर्दमजी की पुत्री मरीचि की स्त्री कलाने कश्यप और पूर्णमान यह दो पुत्र उत्पन्न किये कि जिनके वंश से संसार भरगया ॥ १३ ॥ पूर्णमान के दो पुत्र विरज और विश्वग् तथा देवकुल्या नामक एककन्या हुई कि जो जन्मांतर में परमेश्वर के चरण कमल के धोने के प्रभाव से आकाश गंगा हुई ॥ १४ ॥ अत्रि की अनुसूया नाम स्त्री में विष्णु, शिव और ब्रह्माजी के अंश से तीन पुत्र दत्तात्रेय, दुर्वासा तथा चन्द्रमा उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥ विदुरने कहा कि हे गुरो ! अत्रि के गृह में देवताओं में श्रेष्ठ उत्पत्ति, पालन, संहार करनेवाले यह तीनों देव किस कार्य की इच्छा से उत्पन्न हुए वह मुझसे कहो ॥ १६ ॥ मैत्रेय जी बोले–कि ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ अत्रि, ब्रह्माजी की प्रेरणासे, विश्व सृजने के हेतु अपनी स्त्रीको साथ ले, कुलाद्रि पर्वत पर तप के हेतु गए ॥ १७ ॥ जहां फूलों के गुच्छे लटक रहे हैं पलाश के वृक्ष शोभायमान हैं तथा निर्बिन्ध्या नदी के चारों ओर पानीके झरनों का बड़ा भारी शब्द होरहा है ॥ १८ ॥ ऐसे उस पर्वत में निःसंग हो एकाग्र मनकर एकपांव उठा प्रणायाम करते तथा पवन भक्षण करते हुए, सौ वर्ष पर्यंत तप किया ॥ १९॥ उस काल वह यह चिंतवन करके स्मर्ण करने लगे कि जो जगत् का ईश्वर है उसी की शरण में मैं प्राप्त हुआ हूं वह अपनी समान मुझ को पुत्र देवे ॥ २० ॥ प्राणायाम रूपी वृद्धि को प्राप्ति हुई अग्नि से जो मुनि के मस्तक से निकलीथी उससे त्रिलोकी संतप्तहोनेलगी यह देखकर तीनों देवता उनके आश्रममें आए॥२१॥उस काल अप्सरा ये मुनि, गन्धर्व, सिद्ध; विद्याधर और नाग इन देवताओं का यश गाने लगे ॥२२॥ इन देवताओं के प्रगट होनके संयोग से मुनि का मन चकित होगया तौभी एक पैर से खड़े रह कर उन श्रेष्ठ देवताओं के दर्शन किए ॥ २३ ॥ वृषभ, हंस, गरुडपर विराजे हुए अपने२ चिन्हों से चिन्हित देवताओं को साष्टांग दंडवत कर फूल अंजली में भरकर पूजन किया ॥ २४ ॥ कृपा करके देखते और हंसते हुए मुख से अपने ऊपर प्रसन्न जान उनकी कांति से अपने मूंदे हुए नेत्रों को मल ॥ २५ ॥ अपने मनको उन्ही में लगा हाथजोड़ सुंदर बाणी से सबलोकों में श्रेष्ठ

श्लक्ष्णयासूक्तयावाचा सर्वलोकगरीयसः ॥ २६ ॥ अत्रिरुवाच ॥ विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानैर्मायागुणैरनुयुगं विगृहीतदेहाः तेब्रह्मविष्णुगिरिशाःप्रणतोऽस्म्यहंवस्तेभ्यःकएवभवतांमइहोपहूतः ॥ २७ ॥ एकोमयेहभगवान्विविधप्रधानैश्चित्तीकृतः प्रजननायकथंनुयूयम् । अत्रागतास्तनुभृतांमनसोऽपिदूरां ब्रूतप्रसीदत महानिह विस्मयो मे ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा त्रयस्ते विबुधर्षभाः । प्रत्याहुःश्लक्ष्णयावाचा प्रहस्य तमृषिंप्रभो ॥ २९ ॥ देवा ऊचुः ॥ यथाकृतस्तेसंकल्पो भाव्यंतेनैवनान्यथा । सत्संकल्पस्य ते ब्रह्मन्यद्वै ध्यायति ते वयम् ॥ ३० ॥ अथास्मदंशभूतास्ते आत्मजा लोकविश्रुताः । भवितारोऽङ्ग भद्रं ते विस्रप्स्यन्ति च तेयशः ॥ ३१ ॥ एवंकामवरंदत्वा प्रतिजग्मुःसुरेश्वराः । सभाजितास्तयोः सम्यग्दम्पत्योर्मिषतोस्ततः ॥ ३२ ॥ सोमोऽभूद्ब्रह्मणोंऽशेन दत्तो विष्णोस्तु योगवित् । दुर्वासाः शंकरस्यांशो निबोधाङ्गिरसः प्रजाः ॥ ३३ ॥श्रद्धात्वंगिरसः पत्नी चतस्रोऽसूतकन्यकाः । सिनीवाली कुहू राका चतुर्थ्यनुमतिस्तथा ॥ ३४ ॥ तत्पुत्रावपरावास्तां ख्यातौ स्वारोचिषेऽन्तरे । उतथ्यो भगवान्साक्षाद्ब्रह्मिष्ठश्चबृहस्पतिः ॥ ३५ ॥ पुलस्त्योऽजनयत्पत्न्यामगस्त्यं च हविर्भुवि । सोऽन्यजन्मनि दह्राग्निर्विश्रवाश्चमहातपाः ॥ ३६ ॥ तस्ययक्षपतिर्देवः कुबेरस्त्विडविडासुतः । रावणःकुम्भकर्णश्च तथाऽन्यस्यांविभीषणः ॥ ३७ ॥ पुलहस्य गतिर्भार्या त्रीनसुतसतीसुतान् । कर्मश्रेष्ठंवरीयांसं सहिष्णुंच महामते ॥ ३८ ॥ क्रतोरपिक्रियाभार्या बालखिल्यानसूयत । ऋषीन्षष्टिसहस्राणि ज्वलतोब्रह्मतेज

तीनों देवताओं की स्तुति करनेलगे ॥ २६ ॥ अत्रिजी बोले कि विश्वकी उत्पत्ति स्थिति और क्षय के हेतु विभज्यमान माया के गुणों से जो युग २ में देह ग्रहण करते हैं उन ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आपको मैं दण्डवत् करता हूं, मैंने तो आप में से किसी एक देवताकी इच्छा की थी ॥ २७ ॥ मैं ने तो एकही भगवान् विष्णु का नाना उपचारों से पुत्र के हेतु ध्यान कियाथा परन्तु आप तीनों देव कैसे पधारे, यह आप मुझसे कृपाकरकेकहिये, क्योंकि इसमें मुझे बड़ा आश्चर्यहुआहै ॥२८॥ मैत्रेयजी बोले कि—वह तीनों देवता इस भांति उन मुनि के बचन सुन और हंसकर मनोहर वाणी से बोले ॥ २९ ॥ हे अत्रि ! जो तुम ने संकल्प कियाहै वही होगा अन्यथा नहींहोगा, और जिस एक तत्व का तुम ध्यान करते हो वह हम तीनों देवता एकही हैं हममें भेद नहीं है ॥ ३० ॥ अब हम तीनों के अंश से तुम्हारे जगद्विख्यात तीनपुत्र होंगे जो तुम्हारे यशका विस्तार करेंगे॥३१॥ वह सुरेशादि इस भांति मनोवांछित वरदान दे ऋषि से सनमान पा, उन दोनों स्त्री पुरुषों के देखते २ उस स्थान से चलेगए ॥ ३२ ॥ फिर ब्रह्माजी के अंश से चन्द्रमा, विष्णु के अंश से दत्तात्रेय तथा महेश के अंश से दुर्वासा उत्पन्न हुए । अब अंगिराका वंश सुनों ॥ ३३ ॥ अंगिराकी श्रद्धा नाम स्त्री से चार पुत्रियें सिनीवाली, कुहुराका और अनुमती, उत्पन्न हुई ॥ ३४ ॥ उनके दो पुत्र और भी हुए जो स्वारोचिष मन्वन्तर के अंत में विख्यात हुए एक तो भगवान उतथ्य दूसरे बृहस्पतिजी, ॥ ३५ ॥ पुलस्त्य की हविर्भूनाम स्त्री से अगस्त उत्पन्न हुए जो दूसरे जन्म में जठराग्नि हुए उन पुलस्त्य के दूसरा पुत्र बड़ा तपस्वी विश्रवा हुआ ॥ ३६ ॥ विश्रवा की इडविडा नाम स्त्री से यक्षपति कुबेर उत्पन्न हुए तथा दूसरी स्त्री केशिनी से रावण, कुम्भकरण, और बिभीषण उत्पन्न हुए ॥ ३७ ॥ हे बिदुर ! पुलहकी गति नाम स्त्री से तीन पुत्र कर्मश्रेष्ठ, वरीयांस और सहिष्णु उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ क्रतु की क्रिया नाम स्त्री से ६० हजार बालखिल्य आदि ऋषि

सा ॥ ३९ ॥ ऊर्जायांजज्ञिरेपुत्रा वसिष्ठस्य परंतप । चित्रकेतुप्रधानास्तेसप्तब्रह्मर्षयोमलाः ॥ ४० ॥ चित्रकेतुः सुरोचिश्च विरजा मित्रएवच । उल्वणो वसुभृद्यानो द्युमानशक्त्यादयोऽपरे ॥ ४१ ॥ चित्तिस्त्वथर्वणःपत्नी लेभेपुत्रंधृतव्रतम् । दध्यञ्चमश्वशिरसं भृगोर्वंशं निबोधमे ॥ ४२ ॥ भृगुःख्यात्यांमहाभागः पत्न्यांपुत्रानजीजनत् । धातारं च विधातारंश्रियंचभगवत्पराम् ॥ ४३ ॥ आयतिं नियतिं चैव सुतेमेरुस्तयोरदात् । ताभ्यांतयोरभवतां मृकण्डः प्राणएवच ॥ ४४ ॥ मार्कण्डेयो मृकण्डस्य प्राणाद्वेदशिरामुनिः । कविश्च भार्गवोयस्य भगवानुशनासुतः॥ ४५ ॥ तएतेमुनयःक्षत्तर्लोकान् सर्गैरभावयन् । एषकर्दमदौहित्रसंतानः कथितस्तव ४६ शृण्वतः श्रद्दधानस्यसद्यः पापहरःपरः । प्रसूतिं मानवींदक्ष उपयेमे ह्यजात्मजः ॥ ४७ ॥ तस्यांससर्जदुहितः षोडशामललोचनाः । त्रयोदशादाद्धर्माय तथैकामग्नये विभुः ॥ ४८ ॥ पितृभ्यएकांयुक्तेभ्यो भवायैकांभवच्छिदे । श्रद्धा मैत्रीदया शांतिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः ॥ ४९ ॥ बुद्धिर्मेधा तितिक्षाह्रीर्मूर्तिर्धर्मस्यपत्नयः। श्रद्धाऽसूतशुभंमैत्री प्रसादमभयंदया ॥ ५० ॥ शांतिःसुखंमुदंतुष्टिः स्मयंपुष्टिरसूयत । योगंक्रियोन्नतिर्दर्प मर्थंबुद्धिरसूयत ॥ ५१ ॥ मेधास्मृतिं तितिक्षातु क्षेमंह्रीः प्रश्रयंसुतम् । मूर्तिःसर्वगुणोत्पत्तिर्नरनारायणावृषी ॥ ५२ ॥ ययोर्जन्मन्यदो विश्वमभ्यनन्दत्सुनिर्वृतम् । मनांसिककुभोवाताः प्रसेदुः सरितोऽद्रयः ॥ ५३ ॥ दिव्यवाद्यन्त तूर्याणि पेतुः कुसुमवृष्टयः । मुनयस्तुष्टुवुस्तुष्टा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ५४ ॥

उत्पन्न हुए ॥ ३९ ॥ परम तपस्वी वशिष्ठजी की ऊर्जा नाम स्त्री से चित्रकेतु आदिक सात पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४० ॥ चित्रकेतु,सुरोचिस,विरज,मित्र, उल्वण, वसुभृद्यान, और द्युमान उत्पन्न हुए और दूसरी स्त्री में शक्ति आदिक और पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४१ ॥ अथर्वण की चित्ति नाम पत्नीसे धृतव्रत दध्यंच और अश्वसिरा नाम पुत्र हुये अब भृगु के वंशको सुनो ॥ ४२ ॥ महाभाग भृगुकी ख्याति नाम स्त्री में धाता, विधाता दो पुत्र और भगवत्परायण लक्ष्मी नाम कन्या उत्पन्न हुई ॥ ४३ ॥ मेरुने अपनी आयति और नियति दोनोंपुत्रियें धाता और विधाता को ब्याहदीं उनमें से धाताके मृकण्ड और विधाता के प्राणनाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ४४ ॥ मृकण्ड के मार्कंडेय और प्राणके वेदशिरा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, भृगुके पुत्र भार्गव और भार्गवके उशना पुत्र हुआ ॥ ४५ ॥ हेविदुर ! इसभांति मुनियों ने सर्ग रचना की यह कर्दमजीकी पुत्रियों का वंश मैंने आपसेकहा जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इसकोसुनेगा उसके सम्पूर्ण पाप नाशहोजायँगे ४६॥ प्रसूति नाम मनु की पुत्री का दक्ष से विवाह हुआ सो दक्षने उस में १६ निर्मल कान्ति वाली कन्यायें उत्पन्न की ॥ ४७ ॥ दक्ष ने १३ पुत्रियें तो धर्म को दीं, एक अग्नि को, एक पितृगण को, और एक संसार के छेदने वाले महादेवजी को दी ॥ ४८ ॥ श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा,तितिक्षा,ह्री और मूर्ति यह धर्म की १३ पत्नी हैं ॥ ४९ ॥ श्रद्धा के, शुभ, मैत्री के प्रसाद, दयाके अभय, शांति के सुख, तुष्टि के मुद, पुष्टि के स्मय पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५० ॥ क्रिया योग को, उन्नति, दर्प को, बुद्धि, अर्थ को, मेधा. स्मृति को,तितिक्षा, क्षेम को ह्री ने प्रश्रय, नामक पुत्रों को उत्पन्न किया ॥ ५१ ॥ सम्पूर्ण गुण युक्त मूर्ति ने भगवान नर नारायण को उत्पन्न किया, जिन के जन्म को देख कर सम्पूर्ण विश्व बड़ाई करने लगा ॥ ५२ ॥ सब के मन और दिशा, पवन, नदी, पर्वत यह सब प्रसन्न होगये, स्वर्ग से देवताओं ने फूलों की वृष्टि की तथा नगाड़े बजाये ॥ ५३ ॥ ऋषि मुनि प्रसन्न हो स्तुति करने लगे गन्धर्व, किन्नर गान तथा देवांगनायें नृत्य और ब्रह्मादिक देवता स्तुति करने लगे उस समय

नृत्यतिस्मस्त्रियोदेव्य आसीत्परममङ्गलम्। देवाब्रह्मादयःसर्वे उपतस्थुरभिष्टवैः॥
५५॥ देवा ऊचुः॥ योमायया विरचितं निजयाऽऽत्मनीदं खरूपभेदमिवतत्प्रति
चक्षणाय। एतेनधर्मसदने ऋषिमूर्तिनाऽद्य प्रादुश्चकारपुरुषायनमःपरस्मै ५६॥
सोऽयंस्थितिव्यतिकरोपशमायसृष्टान् सत्त्वेननः सुरगणाननुमेयतत्त्वः। दृश्याददभ्र
करुणेन विलोकनेन यच्छ्री निकेतममलं क्षिपतारविंदम्॥ ५७॥ एवंसुरगणै
स्तात भगवन्तावभिष्टुतौ। लब्धावलोकैर्ययतुरर्चितौगंधमादनम्॥ ५८॥ तावि
मौ वै भगवतो हरेरंशाविहागतौ। भारव्ययायचभुवः कृष्णौयदुकुरूद्वहौ॥५९॥
स्वाहाभिमानिनश्चाग्ने रात्मजांस्त्रीनजीजनत्। पावकंपवमानंच शुचिंचहुतभोज
नम्॥ ६०॥ तेभ्योऽग्नयःसमभवंश्चत्वारिंशच्चपञ्चच। त एवैकोनपञ्चाशत्
साकंपितृपितामहैः॥ ६१॥ वैतानिकेकर्मणि यन्नामभिर्ब्रह्मवादिभिः। आग्नेय्य
इष्टयोयज्ञे निरूप्यंतेऽग्नयस्तुते॥ ६२॥ अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सौम्याःपितरआ-
ज्यपाः। साऽग्नयोऽनग्नयस्तेषां पत्नीदाक्षायणीस्वधा॥ ६३॥ तेभ्योदधारकन्ये
द्वे वयुनांधारिणींस्वधा। उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ ज्ञानविज्ञानपारगे॥ ६४॥ भवस्य
पत्नीतुसती भवंदेवमनुव्रता। आत्मनःसदृशंपुत्रं न लेभेगुणशीलतः॥ ६५॥ पितर्य
प्रतिरूपेस्वे भवायानागसेरुषा। अप्रौढैवात्मनात्मान मजहाद्योगसंयुता॥ ६६॥
इतिश्रीमद्भा०चतुर्थस्कन्धेमनुकन्यान्वयेनरनारायणावतारवर्णनंप्रथमोऽध्यायः १॥

बडाभारी मंगल हुआ॥ ५४॥ देवता स्तुति करने लगे कि जिस परमेश्वरने यह विश्व रचा है उन्हीं परमेश्वर ने रूप भेद देखने के हेतु माया रूप भेद से धर्म के घर मे ऋषि मूर्ति से जन्म ग्रहण किया है ऐसे पुरुष परमात्मा को हम नमस्कार करते हैं॥ ५५॥उन्हीं इन भगवान ने हम देवता गणोंको उत्पत्ति, पालन, तथा संहारके हेतु सृजा है सृष्टि की मर्य्यादा रखने के हेतु सत्वगुण से सृजे हुये लोकों को आप अपनी अत्यन्त करुणावाली श्री लक्ष्मी के धाम, कमल को भी, तिरस्कार करने वाली अपनी अत्यन्त सुन्दर दृष्टि से देखो॥ ५६॥ हे विदुर! जब देवताओं ने इस भांति स्तुति की तो भगवान् नर नारायण देवताओं की ओर निहार पूजा ग्रहण कर गंधमादन पर्वत को चले गये॥ ५७॥ वे दोनों ही भगवान के अंश पृथ्वी का भार दूर करने के हेतु प्रगट हुये हैं जिस में नरके अंशसे अर्जुन तथा नारायण के अंश से यदु कुल में भगवान् श्री कृष्ण रूप से प्रगट हुये॥ ५८॥ अग्नि की स्वाहा नाम स्त्री से पावक, पवमान, और शुचि यह तीन पुत्र हुये॥ ५९॥ इन तीनों से ४५ अग्नि हुए तथा पितर, पितृ पिता और पितामहोंसमेत ४९ पवन हुए॥ ६०॥ जिन अग्नि देवता संबंधी इष्टियों को ब्रह्म वादी लोग वैदिक कर्मरूप यज्ञमें, नाम ले ले कर किया करते हैं वह अग्नि यह है॥ ६१॥ अग्निष्वाता, बर्हिषद, सौम्य और आज्य यह पितृगण कितने ही साग्नि तथा कितने ही अनाग्नि हैं इन सब के दक्षकी पुत्री स्वधा एक ही स्त्री है॥ ६२॥ स्वधा स्त्री ने उन पितरों से वयुना और धारिणी नाम कन्या को उत्पन्न किया जो दोनो वेद वादिनी तथा ज्ञान में पारायण हुई॥६३॥ शिवजी के अनुकूल उनकी स्त्री सतीके अपने गुण शील सदृश पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ॥ ६४॥ निरपराध महादेवजी पर पिता दक्ष जब प्रतिकूल हुआ तब योग का आश्रय लेकर सतीने बालकपन ही में अपने देहको त्याग दिया॥ ६५॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेसरलाभाषाटीकायांप्रथमोऽध्यायः॥ १॥

विदुरउवाच ॥ भवेशीलवतांश्रेष्ठे दक्षोदुहितृवत्सलः विद्वेषमकरोत्कस्मा दनादृत्यात्मजांसतीम् ॥ १ ॥ कस्तंचराचरगुरुं निर्वैरंशांतविग्रहम्। आत्मारामंक थंद्वेष्टि जगतांदैवतंमहत् ॥ २॥ एतदाख्याहिमे ब्रह्मन्जामातुश्वशुरस्यच। विद्वे षस्तुयतःप्राणांस्तत्यजे दुस्त्यजान्सती ॥ ३ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ पुराविश्वसृजांसत्रे समेताःपरमर्षयः। तथाऽमरगणाःसर्वे सानुगामुनयोऽग्नयः ॥ ४ ॥ तत्रप्रविष्टमृ षयो दृष्ट्वाऽर्कमिवरोचिषा। भ्राजमानंवितिमिरं कुर्वंतंतन्महत्सदः ॥५॥ उदति ष्ठन्सदस्यास्ते स्वधिष्ण्येभ्यःसहाग्नयः। ऋतेविरिंचंशर्वंचतद्भासाक्षिप्तचेतसः ॥६॥ सदसस्पतिभिर्दक्षो भगवान्साधुसत्कृतः। अजंलोकगुरुंनत्वा निषसादत दाज्ञया ॥ ७ प्राङ्निषण्णंमृडंदृष्ट्वा नामृष्यत्तदनादृतः। उवाचवामंचक्षुर्भ्यामभि वीक्ष्यदहन्निव ॥ ८ ॥ श्रूयतांब्रह्मर्षयोमे सहदेवाःसहाग्नयः साधूनांब्रुवतोवृत्तंना ज्ञानान्नचमत्सरात् ॥९॥ अयंतुलोकपालानां यशोघ्नोनिरपत्रपः। सद्भिराचरितःपं था येनस्तब्धेनदूषितः १० ॥ एषमेशिष्यतांप्राप्तो यन्मेदुहितुरग्रहीत्। पाणिंविप्रा ग्निमुखतः सावित्र्याइवसाधुवत् ॥ ११ ॥ गृहीत्वामृगशावाक्ष्याः पाणिमर्कटलो चनः प्रत्युत्थानाभिवादार्हे वाचाऽप्यकृतनोचितम् ॥ १२ ॥ लुप्तक्रियायाशुचये मानिनेभिन्नसेतवे। अनिच्छन्नप्यदांबालां शूद्रायेवोशतींगिरम् ॥ १३ ॥ प्रेतावा सेषुघोरेषु प्रेतैर्भूतगणैर्वृतः अटत्युन्मत्तवन्नग्नो व्युप्तकेशोहसन्रुदन् ॥ १४ ॥ चि ताभस्मकृतस्नानः प्रेतस्रङ्न्रस्थिभूषणः। शिवापदेशोह्यशिवो मत्तोमत्तजनप्रियः।

विदुर जी न कहा कि–दुहितृ वत्सल दक्षने, अपनी कन्या सतीका तिरस्कार करके, शील वानों में श्रेष्ठ महादेव जी स क्यों द्वेष किया ॥ १ ॥ चराचर के गुरू, वैरभाव रहित शांत स्वरूप, आत्माराम, जगत् के पूज्य महादेव जी से दक्षने क्यों शत्रुता की ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन्! यह जामाता और श्वसुर में ऐसा बैर कैसेपड़ा कि जिससे सती ने अपने दुस्त्यज प्राणों को छोड़दिया ॥३॥ मैत्रेय जी ने कहा कि–हे विदुर! पहिले विश्वस्रष्टाओं के समाजमें सम्पूर्ण ऋषि, और देवता अपने२ अनुचरों समेत तथा मुनि और अग्नि सबही स्थित हुए थे ॥ ४ ॥ उस वृहत सभा का अंधकार नष्ट करते हुये ऐश्वर्य्य से सूर्य की समान प्रकाशित दक्षको ऋषियों ने सभा में आया देख ॥५॥ अग्नि सहित सब अपने २ आसनोंसे उठबैठे क्योंकि उनका चित्त उसकी कांति से आक्षिप्त होगया था, परन्तु महादेव जी और ब्रह्माजी अपने आसन से न उठे ॥ ६ ॥ सभासदों ने दक्षका भली भांति सन्मान किया, फिर दक्षलोकगुरू ब्रह्माको नमस्कार कर उनकी आज्ञा पाकर बैठगया ॥ ७ ॥ महादेव जी वहां पहिलेही से बैठे थे उन्हें देख उनसे हुए तिरस्कार को न सहकर मानों भस्म करेगा इस भांति कुटिल नेत्र करके बोला कि–८–हे देवताओ! हे ब्रह्मर्षियो! अग्निसमेत सुनो मैं अज्ञान और मत्सर भावको छोड़कर साधुओं का सदाचार कहता हूं ॥ ९ ॥ यह निर्लज्जतो लोकपालों के यश का नाश करने वाला है क्योंकि जिसने सभासदों के चलाये मार्गको दूषित किया ॥ १० ॥ यह मेरी शिष्यता को प्राप्त हुआ है; क्योंकि ब्राह्मण और अग्निके सन्मुख, साधु की भांति मेरीकन्या का इसने पाणिग्रहण किया है ॥ ११ ॥ इस वन्दर के से नेत्रवाले ने मेरी मृगछौने के से नेत्रवाली भोली भाली कन्या का व्याह किया, मुझ नमस्कार के योग्य का इसने वाणी से भी सन्मान नहीं किया ॥ १२ ॥ इस लुप्त क्रिया, अपवित्र, मर्यादा भंगी, तथा अहंकारी को मैं कन्या नहीं देना चाहता था परन्तु जैसे शूद्रको वेदवाणी दीजाय इसी भांति मैंने इसे कन्या दी ॥ १३ ॥ यह श्मशानों मे भूतप्रेतों को साथ लिये हुये उन्मत्त की सदृश नंगा, बालखोले, हँसता, खेलता तथा रोता हुआ फिरता है ॥ १४ ॥ चिताकी भस्म में स्नान कर, प्रेतोंके मुंडों

पतिःप्रथमभूतानां तमोमात्रात्मकात्मनाम् ॥ १५ ॥ तस्माउन्मादनाथाय नष्टशौचा
यदुर्हृदे। दत्ताबतमयासाध्वी चोदितेपरमेष्ठिना ॥ १६ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ विनिंद्यै
वंसगिरीशमप्रतीपमवस्थितम्। दक्षोऽथापउपस्पृश्य क्रुद्धःशप्तुंप्रचक्रमे॥ १७ ॥
अयंतुदेवयजनइन्द्रोपेंद्रादिभिर्भवः सहभागंनलभतां देवैर्देवगणाधमः ॥ १८ ॥
निषिध्यमानःससदस्यमुख्यैर्दक्षो गिरित्राय विसृज्यशापम्। तस्माद्विनिष्क्रम्यवि
वृद्धमन्युर्जगाम कौरव्यनिजंनिकेतनम्॥ १९ ॥ विज्ञायशापंगिरिशानुगाग्रणीर्नंदी
श्वरोरोषकषायदूषितः दक्षायशापं विससर्जदारुणंये चान्वमोदंस्तदवाच्यतांद्वि
जाः ॥ २० ॥ यएतन्मर्त्यमुद्दिश्यभगवत्यप्रतिद्रुहि। द्रुह्यत्यज्ञः पृथग्दृष्टिस्तत्त्वतोवि
मुखोभवेत् ॥ २१ ॥ गृहेषुकूटधर्मेषु सक्तोग्राम्यसुखेच्छया। कर्मतंत्रंवितनुतेवेद
वादविपन्नधीः ॥ २२ ॥ बुद्ध्यापराभिध्यायिन्या विस्मृतात्मगतिःपशुः। स्त्रीका
मःसोऽस्त्वतितरांदक्षोबस्तमुखोऽचिरात् ॥ २३ ॥ विद्याबुद्धिरविद्यायांकर्ममय्या
मसौजडः। संसरन्त्विहयेचामुमनुशर्वावमानिनम् ॥ २४॥ गिरःश्रुतायाःपुष्पिण्या
मधुगन्धेनभूरिणा। मथ्नाचोन्मथितात्मानः संमुह्यन्तुहरद्विषः ॥ २५ ॥ सर्वभक्षा
द्विजावृत्त्यै धृतविद्यातपोव्रताः। वित्तदेहेन्द्रियारामा याचकाविचरन्त्विह २६ ॥
तस्यैवंवदतःशापंश्रुत्वाद्विजकुलायवै। भृगुःप्रत्यसृजच्छापं ब्रह्मदण्डंदुरत्ययम् ॥
२७ ॥ भवव्रतधरायेचयेचतान्समनुव्रताः। पाखण्डिनस्तेभवन्तु सच्छास्त्रपरिप

की माला, हाडों के आभूषण पहिने घूमता है नामतो शिव और है अशिव, आपभी मत्त है और मत्तजनही इसे प्यारे हैं, और तमोगुणी प्रथम भूतों का यह पति है, ॥ १५॥ इस उन्माद नाथ, नष्टाचार खोटे चित्तवाले को ब्रह्माजी के कहने से मैंने अपनी सती कन्यादी ॥ १६ ॥ श्री मैत्रेय जीने कहा कि—दक्ष महादेवजी को अयोग्य की समान बैठे देख निंदाकर जल हाथ में ले क्रोधित हो शापदेने लगा ॥ १७ ॥ कि देवताओं में अधम यह महादेव देवयज्ञादिकों में इन्द्र उपेंद्र के साथ भाग न पावे ॥ १८ ॥ हे बिदुर सभासदों ने उसे निषेध किया परन्तु तो भी वह क्रोध से महादेव जी को शापदे उस स्थानसे निकल अपने स्थान को चलागया ॥ १९ ॥ महादेवजी के पार्षदों में मुख्य नन्दीश्वरने जिसके क्रोधसे लाल नेत्रहोरहे हैं दक्षको दारुण शापदिया और वहांपर जिस २ ने महादेवजी की निन्दा का अनुमोदन कियाथा उस२को भी शाप दिया ॥ ॥ २० ॥ यह दक्ष जो मनुष्य शरीरको श्रेष्ठ मानकर द्रोह रहित महादेवजी से द्रोह करताहै, इससे यह भेद दर्शी तत्वसे विमुख होजाय ॥ २१ ॥ जिसमें कपटही का धर्महै और गृहमें आशक्त है तथा ग्राम्य सुखों की इच्छा करताहै और कर्मतंत्रों का विस्तार करताहै तथा वेदवादियों में जिस की बुद्धि नाश होगई है ॥ २२ देहादिकों में जिसका अभिमान है और आत्मगति को जो भूल गयाहै सो पशुकी सदृश दक्ष अतिशय स्त्रियोंकी कामनावाला, तथा बकरेकेसे मुखवाला होजाय ॥ ॥२३॥ विद्या बुद्धि अविद्या कर्ममयी में यहीतत्व विद्याहै ऐसा ज्ञान रखता है इसहेतुयह जड़ही है, तथा जो महादेवजीके अपमान करनेवाले दक्ष का अनुसरण करते हैं वहभी जन्ममृत्यु को प्राप्त हों ॥ २४ ॥ जिसमें बहुतसे वाक्य केवल मन प्रसन्न करनेवाले फूल की सदृश हैं ऐसे वेदवाणी के मोह उत्पन्नकरनेवाले रोजकवचनोंसे मूर्ख बनेहुये ये महादेवजीके वैरी केवल कर्महीं में आसक्त रहैं ॥ २५ ॥ भक्ष्याभक्ष्य के विचार शून्य केवल पेट भरने के हेतु, विद्या, तप और व्रत करने वाले धन इन्द्रियां तथा देहही में सुख माननेवाले, यह ब्राह्मण इस सृष्टि में भिखारी होकर भिक्षा मांगते फिरैं ॥ २६ ॥ नन्दीश्वर ने इसभांति ब्राह्मण कुलको शापदिया, उसे सुनकर भृगु ऋषिने दुरत्यय शापरूप ब्रह्मदण्ड चलाया ॥ २७ ॥ कि जो महादेव के व्रतके धारण करनेवाले तथा

निधनः ॥ २८ ॥ नष्टशौचामूढधियो जटाभस्मास्थिधारिणः । विशन्तुशिवदीक्षायां यत्रदैवंसुरासवम् ॥ २९ ॥ ब्रह्मचब्राह्मणांश्चैव यद्यूयंपरिनिन्दथ । सेतुंविधारणंपुंसामतःपाखण्डमाश्रिताः ॥ ३० ॥ एषएवहिलोकानां शिवःपन्थाःसनातनः । यंपूर्वेचानुसंतस्थुर्यत्प्रमाणंजनार्दनः ॥ ३१ ॥ तद्ब्रह्मपरमंशुद्धं सतांवर्त्मसनातनम् विगर्ह्ययातपाखण्डं दैवंवो यत्रभूतराट् ॥ ३२ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ तस्यैवंवदतःशापं भृगोःसभगवान्भवः । निश्चक्रामततःकिंचिद्विमना इवसानुगः ॥ ३३ ॥ तेऽपि विश्वसृजःसत्रं सहस्रपरिवत्सरान् । संविधायमहेष्वास यत्रेज्यऋषभोहरिः ३४ ॥ आप्लुत्यावभृथंयत्रगंगायमुनयान्विता । विरजेनात्मनासर्वेस्वंस्वंधामययुस्ततः ३५

इतिश्रीमद्भ० महा० चतुर्थेऽस्कन्धेदक्षशापवर्णनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ सदाविद्विषतोरेवं कालोवै ध्रियमाणयोः । जामातुःश्वशुरस्यापि सुमहानतिचक्रमे ॥ १ ॥ यदाभिषिक्तोदक्षस्तु ब्रह्मणापरमेष्ठिना । प्रजापतीनांसर्वेषा माधिपत्येस्मयोऽभवत् ॥ २ ॥ इष्ट्वासवाजपेयेन ब्रह्मिष्ठानभिभूयच ।बृहस्पतिसवंनाम समारेभे क्रतूत्तमम् ॥ ३ ॥ तस्मिन्ब्रह्मर्षयःसर्वे देवर्षिपितृदेवता । आसन् कृतस्वस्त्ययनास्तत्पत्न्यश्चसभर्तृकाः ॥ ४ ॥ तदुपश्रुत्यनभसि खेचराणां प्रजल्पताम् । सतीदाक्षायणी देवी पितुर्यज्ञमहोत्सवम् ॥ ५ ॥ व्रजंतीः सर्वतो दिग्भ्य उपदेववरस्त्रियः । विमानयानाः सप्रेष्ठा निष्ककण्ठीःसुवाससः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वास्वनिलयाभ्याशे लोलाक्षीर्मृष्टकुण्डलाः । पतिंभूतपतिं देव मौत्सुक्या दभ्यभाषत ॥ ७ ॥ सत्युवाच ॥ प्रजापतेस्तेश्वशुरस्य साम्प्रतं निर्यापितो यज्ञ

उनके आज्ञानुकूल हैं वह श्रेष्ठ शास्त्रों से पाखण्डी होजावें ॥ २८ ॥ और नष्ट आचार होकर मूर्ख बुद्धिवाले वह लोग जटा भस्म अस्थि, को धारणकर शिवकी दीक्षा में प्रवेशकरें कि जहां मांस मदिराही देवता की भांति पूजनीय गिना जाता है ॥ २९ ॥ पुरुषों के मध्यमें मर्यादा के धारण करनेवाले वेद तथा ब्राह्मणोंकी तुमने निन्दा की इसहेतु तुम पाखण्डमें पड़ेहो ॥३०॥ लोकों का वेदमार्ग सनातन तथा कल्याणकारी है क्योंकि प्रथम ऋषियों ने इसका आश्रय लियाहै इसका प्रमाण जनार्दन भगवान हैं ॥ ३१ ॥ क्योंकि सनातन मार्गरूप इस शुद्ध वेदकी निंदा करके तुम पाखण्ड मे पड़ो ॥ ३२ ॥ मैत्रेयजीने कहा—कि जब भृगुजी इसभांति शाप देनेलगे—तब वे भगवान् महादेव कुछ उदास चित्तहो अपने अनुचरों संगत वहांसे चलेगये ॥ ३३ ॥ हेविदुर! उन विश्व स्रष्टाओं ने विष्णु भगवान के पूजन वाले इस यज्ञ को सहस्र वर्ष पर्य्यन्त किया ३४ ॥ फिर प्रयाग में जहां गंगा यमुना मिलीहैं वहांजा स्नान कर शुद्ध हो अपने २ धाम कोगये ३५ ॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे सरलाभ पाटी भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

मैत्रेय जी ने कहा कि—इस भांति इन दोनो श्वसुर जामाता में शत्रुता करते रहते बहुत समय व्यतीत होगया, ॥ १ ॥ जब ब्रह्माजी ने दक्षको सम्पूर्ण प्रजापतियों का अधिपति किया ॥ २ ॥ तब उसने घमण्ड में आकर सब ब्रह्म वादियों का तिरस्कार करके बृहस्पति सव नामक श्रेष्ठ यज्ञका आरम्भ किया ॥ ३ ॥ इस यज्ञमें ब्रह्मर्षि, देवर्षि, तथा पितृगण और देवता यह सम्पूर्ण श्रृंगार की हुई अपनी २ स्त्रियों को संग लेकर आये ॥४॥ आकाश मार्ग से स्त्रियों समेत जाते हुये देवताओंके मुखसे पिता के यज्ञका महोत्सव सुनकर ॥ ५ ॥तथा गले में पदक पहिने सुंदर वस्त्र धारण किये देवताओं को स्त्रियोंके साथ अपने घरके निकट से जाते देख ॥ ६ ॥ प्रसन्न तथा प्रफुल्लित होकर सतीजी ने भूतपति महादेवजी से कहा ॥ ७ ॥ कि आपके श्वशुर प्रजापति

महोत्सवः किल । वयंचतत्राभिसराम वाम तेयद्यर्थितामी विबुधाव्रजंतिहि ॥ ८ ॥ तस्मिन्भगिन्यो ममभर्तृभिः स्वकैर्ध्रुवं गमिष्यन्ति सुहृद्दिदृक्षवः। अहंचतस्मिन्भवताभिकामये सहोपनीतं परिबर्हमर्हितुम् ॥ ९ ॥ तत्रस्वसॄर्मेननुभर्तृसंमिता मातृष्वसॄः क्लिन्नधियंचमातरम् । द्रक्ष्ये चिरोत्कण्ठमनाःमहर्षिभिरुन्नीयमानंच मृडाध्वरध्वजम् ॥ १० ॥ त्वय्येतदाश्चर्यमजात्ममायया विनिर्मितंभातिगुणत्रयात्मकम् तथाऽप्यहंयोषिदतत्त्वविच्च ते दीनादिदृक्षे भव मे भवक्षितिम् ॥ ११ ॥ पश्यप्रयांतीरभवान्ययोषितोऽप्यलङ्कृताः कांतसखा वरूथशः । यासांव्रजद्भिःशितिकंठमण्डितम् नभोविमानैः कलहंसपाण्डुभिः ॥ १२ ॥ कथंसुतायाःपितृगेहकौतुकं निशम्य देहः सुरवर्यनेङ्गते । अनाहुताअप्यभियंति सौहृदं भर्तुर्गुरोर्देहकृतश्च केतनम् ॥ १३ ॥ तन्मेप्रसीदेदममर्त्यवांछितं कर्तुंभवान्कारुणिकोवताहेति । त्वयात्मनोऽर्धेऽहमदभ्रचक्षुषा निरूपितामाऽनुगृहाणयाचितः ॥ १४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवंगिरित्रः प्रिययाऽभिभाषितः प्रत्यभ्यधत्तप्रहसन्सुहृत्प्रियः । संस्मारितोमर्मभिदः कुवागिषून् यानाह को विश्वसृजांसमक्षतः ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वयोदितं शोभनमेवशोभने अनाहुता अप्यभियन्तिबन्धुषु । ते यद्यनुत्पादितदोषदृष्टयो बलीयसाऽनात्म्यमदेनमन्युना ॥ १६ ॥ विद्यातपोवित्तवपुर्वयःकुलैःसतां गुणैःषड्भिरसत्तमेतरैः । स्मृतौ हतायांभृतमानदुर्दृशः स्तब्धानपश्यन्तिहिधाम भूयसाम् ॥ १७ ॥ नैतादृशानां स्वजनव्यपेक्षया गृहान्प्रतीयादनवस्थितात्मनाम् । येऽभ्यागतान् वक्रधियाऽभिचक्षते आरोपितभ्रूभिरमर्षणाक्षिभिः ॥ १८ ॥ तथा

दक्षके घरमें यज्ञ होरहा है इस हेतु हे भर्त्ता ! हम और तुम दोनों वहां को चलें, क्योंकि सब देवतागण वहां जारहे हैं ॥८॥ उसयज्ञमें मेरी बहिने भी अपनेर पतियों के साथ सुहृदोंके देखने की इच्छा से आवेंगी उस यज्ञमें तुम सहित मैं कामना करती हूं कि यज्ञमें पिताके दियहुये दहेज का ग्रहण करूं ॥ ९ ॥ और मुझको वहांपर अपनी बहनों को उनके भर्त्ताओं युक्त तथा मासी व माता की बहिनों तथा ऋषिलोगोंके संयुक्त यज्ञ तथा उसकी ध्वजाके देखनेकी उत्कंठा है ॥१०॥ हे अज ! यह त्रिगुणात्मक सृष्टि आप की माया से प्रकाशित है इस हेतु आपको कुछ आश्चर्य नहीं परन्तु मैं स्त्री आपके तत्वको न जानने वाली कृपण होकर अपनी जन्म भूमिको देखना चाहती हूं ॥ ११ ॥ हे स्वामी ! यह दूसरी स्त्रियें भी समूहके समूह शृंगार से सज्जित हो अपने पतियों के संगजाती हैं हे नीलकंठ ! जिनके जातेहुये विमानों से आकाश छारहा है ॥ १२ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! पिताके घर कौतुक सुनकर मैं कैसे इच्छा न करूं, मित्र, पिता गुरू, और पति इनके घर बिना बुलाये भी जाना चाहिये ॥ १३ ॥ हे देव ! मेरे ऊपर प्रसन्नहो हे कृपालु ! मेरी मनोकामना आप पूर्णकरने योग्य हो, ज्ञान चक्षुसे मैं तुम्हारे आत्मा की अर्द्ध भागिनी हूं इससे याचना करती हूं आप मुझपर अनुग्रह करो ॥१४॥ मैत्रेय जीने कहा कि-सतीने जबभगवान महादेवसे इस भांति विनतीकी तो दक्षके खोटे बचनोंको जो मर्म स्थलके भेदने वाले थे स्मरणकर सबके प्रिय महादेव जी ने हंसकर कहा ॥ १५ ॥ श्रीमहादेव जी बोले कि—हे शोभने ! जो तुमने कहा कि भाई, पिता केघर बिना बुलाये भी जाना चाहिये, सो यह ठीक है, किंतुजब इन संबंधियों की दृष्टि बलवान तथा अनात्मा रूपी क्रोध से दूषित न होवे ॥ १६ ॥ विद्या, तप, द्रव्य, देह, अवस्था तथा कुल यह छहसंतों के गुण हैं और खोटों के यही दोषभूतहैं, इनसे विचार नष्टहोनेके कारण बढ़ेहुये घमण्ड से अंध पुरुष महात्माओं के तेजको नहीं देखते ॥ १७ ॥ इससे संबंधियोंके घरकी ओर भी न देखना चाहिये, क्योंकि यह अपने घरआये हुओं को खोटी बुद्धि और कुटिल भृकुटी से देखा करते हैं,

ऽरिभिर्नव्यथतेशिलीमुखैःशेतेऽर्दिताङ्गो हृदयेनदूयता। स्वानांयथावक्रधियांदुरु
क्तिभिर्दिवानिशंतप्यति मर्मताडितः॥ १९॥ व्यक्तंत्वमुत्कृष्टगतेःप्रजापतेः प्रिया
त्मजानामसिसुभ्रुसंमता। अथापिमानंनपितुःप्रपत्स्यसे मदाश्रयात्कः परितप्यते
यतः॥ २०॥ पापच्यमानेनहृदातुरेन्द्रियः समृद्धिभिः पूरुषबुद्धिसाक्षिणाम्। अ-
कल्प एषामधिरोढुमञ्जसा परंपदंद्वेष्टियथाऽसुराहरिम्॥ २१॥ प्रत्युद्गमप्रश्रय
णाभिवादनंविधीयतेसाधुमिथःसुमध्यमे। प्राज्ञैःपरस्मैपुरुषायचेतसा गुहाशया
यैवनदेहमानिने॥ २२॥ सत्त्वंविशुद्धंवसुदेवशब्दितंयदीयतेतत्रपुमानपावृतः।
सत्त्वेचतस्मिनभगवान्वासुदेवो ह्यधोक्षजोमेनमसाविधीयते॥ २३॥ तत्तेनिरी-
क्ष्योनपिताऽपिदेहकृद्दक्षो ममद्विट्तदनुव्रताश्चये। योविश्वसृग्यज्ञगतंवरोरु मामन-
नागसंदुर्वचसाऽकरोत्तिरः॥ २४॥ यदिव्रजिष्यस्यतिहायमद्वचो भद्रंभवत्यान
ततोभविष्यति। सम्भावितस्यस्वजनात्पराभवोयदा सस्रद्योमरणायकल्पते॥२५॥
इतिश्रीमद्भा०महापु०चतुर्थ०उमारुद्रसंवादेतृतीयोऽध्यायः॥३॥
मैत्रेयउवाच॥ एतावदुक्त्वाविररामशंकरः पत्न्यंगनाशं ह्युभयत्रचिन्तयन्।
सुहृद्दिदृक्षुःपरिशंकिता भवान्निष्क्रामती निर्विशती द्विधाऽऽसता॥ १॥ सुहृद्दि
दृक्षाप्रतिघातदुर्मनाः। स्नेहाद्रुदन्त्यश्रुकलातिविह्वला। भवंभवान्यप्रतिपूरुषंरुषा
प्रधक्ष्यतीवैक्षतजातवेपथुः॥ २॥ ततोविनिःश्वस्यसतीविहाय तंशोकेनरोषेणचदू

॥ १८॥ खोटी बुद्धि वाले संबंधियों के खोटे बचनो से जितना कष्ट होता है उतना शत्रुके बाणों से सम्पूर्ण अंग छिद जानेपर भी नहीं होता क्योंकि खोटे बचनो से नींद भी नहीं आती और शरों से विधेहुये को निद्रातो आजाती है॥ १९॥ ऊंची गतिको प्राप्त हुये दक्षकी पुत्रियों में तू प्यारी है परन्तु तेरा सन्मान नहीं होगा क्योंकि मेरे संबंध से दक्षको बड़ा संताप रहता है॥ २०॥ निरहंकार पुरुषों की समृद्धि पुण्य और कीर्त्यादिक को देखकर दुर्जन पुरुष साधुओं पर जल उठते हैं, कारण कि वह उनके ऐश्वर्य को पातो सकते नहीं परद्वेष रखते हैं जैसे असुर श्रीहरिका कुछ कर नहीं सके परन्तु उनसे द्वेष रखते हैं॥ २१॥ हे सुमध्यमे! आसन से उठखड़ा होना, नम्रीभूत होना—यह साधुओं के मिषसे अंतर्यामी भगवान को किया जाता है देहाभिमानियों को नहीं किया जाता॥ २२॥ विशुद्ध, सत्व वसुदेव यह सब सतोगुण, सर्वव्याप्त भगवान को कहते हैं, उन भगवान वासुदेव अधोक्षज को मैं नमस्कार करता हूं॥ २३॥ दक्ष तुम्हारा उत्पन्न करने वाला पिता है, परन्तु उसकी तथा उसके अनुवर्त्तियों की ओर तुम्हें देखना भी न चाहिये हे वरोरू! मेरा कुछ भी अपराध न था परन्तु तुम्हारे पिताने खोटे वाक्यों से मेरा तिरस्कार किया॥ २४॥ जो तुम मेरीबात न मानकर वहां जाओगी तो तुम्हारा भला कदापि नहोगा क्योंकि सम्बंधियों के तिरस्कार से निश्चयही मरण प्राप्त होता है॥ २५॥

इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे सरला भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

मैत्रेयजी ने कहा—कि महादेवजी पत्नी के अंग का नाश दोनों ओर विचार कर ऐसा कह चुप होरहे, और सुहृदों के देखने की इच्छा करने वाली सती कभी बाहरजाती है और कभी महादेवजी की शंका करके फिर भीतर आती है॥ १॥ सुहृदों को देखने की कामना के प्रतिघात से सती उदास चित्त, प्रेम के मारे रुदन कर रही है, तथा उसके नेत्रों से अश्रुधारा बहरही है ऐसे वह बिह्वल सती क्रोध से कांपती हुई महादेवजी की ओर ऐसे देखने लगी कि मानो भस्मकर देगी॥ २॥ फिर स्त्री स्वभाव से मूढ़मति सती शोकित तथा क्रोधित हृदय से श्वास लेकर संतोंके प्यारे महादेवजी को जिनोनें स्नेह से अपना आधा अंग देदियाहै, उन्हें छोड़कर अकेले पिता

यताद्धदा । पित्रोरगात्स्त्रैणविमूढधीर्गृहान् प्रेम्णात्मनो योऽर्धमदात्सतांप्रियः ३ ॥ तामन्वगच्छन्द्रुतविक्रमांसतीमेकां त्रिनेत्रानुचराःसहस्रशः । सपार्षदयक्षामणिमन्मदादयः पुरोवृषेन्द्रास्तरसागतव्यथाः ॥ ४ ॥ तांसारिकाकन्दुकदर्पणाम्बुजश्वेतातपत्रव्यजनस्रगादिभिः । गीतायनैर्दुन्दुभिशंखवेणुभिर्वृषेन्द्रमारोप्य विटङ्किताययुः ॥ ५ ॥ आब्रह्मघोषोर्जितयज्ञवैशसं विप्रर्षिजुष्टंविबुधैश्चसर्वशः । मृद्दार्वयःकांचनदर्भचर्मभिर्निसृष्टभाण्डं यजनंसमाविशत् ॥६ ॥ तामागतांतत्रनकश्चनाऽऽद्रियद्विमानितां यज्ञकृतोभयाज्जनः । ऋतेस्वसॄर्वैजननींचसादराः प्रेमाश्रुकण्ठ्यःपरिषस्वजुर्मुदा ॥ ७ ॥ सोदर्यसंप्रश्नसमर्थवार्त्तया मात्राचमातृष्वसृभिश्चसादरम् । दत्तांसपर्यांवरमासनंच सानादत्तापित्राऽप्रतिनन्दितासती ॥ ८ ॥ अरुद्रभागंतमवेक्ष्यचाध्वरं पित्राचदेवे कृतहेलनंविभौ । अनादृतायज्ञसदस्यधीश्वरी चुकोपलोकानिवधक्ष्यतीरुषा ॥ ९ ॥ जगर्हसाऽमर्षविपन्नयागिरा शिवद्विषंधूमपथश्रमस्मयम् । स्वतेजसाभूतगणान्समुत्थितान्निगृह्य देवीजगतोऽभिशृण्वतः१० ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ नयस्यलोकेऽस्त्यतिशायिनः प्रियस्तथाऽप्रियोदेहभृतांप्रियात्मनः । तस्मिन्समस्तात्मनिमुक्तवैरके ऋतेभवन्तंकतमःप्रतीपयेत् ॥ ११ ॥ दोषान्परेषांहिगुणेषुसाधवो गृणन्तिकेचिन्नभवादृशाद्विज । गुणांश्चफल्गून्बहुलीकरिष्णवो महत्तमास्तेष्वविदद्भवानघम् ॥ १२॥ नाश्चर्यमेतद्यदसत्सुसर्वदा महद्विनिन्दाकुणपात्मवादिषु सेर्ष्यंमहापूरुषपादपांसुभिर्निरस्ततेजस्सु तदेवशोभनम्१३

के घर को चली ॥ ३ ॥ अकेली शीघ्रता पूर्वक जाती देख महादेवही के अनुचर नंदीश्वर के साथ तथा पार्षद, यक्ष, मणिमान और मद आदिक निर्भय होकर सती के पीछे चलदिये ॥ ४ ॥ सतीजीको नंदीगण पर बिठाय मैना, गेंद, दर्पण, कमल, श्वेतछत्र, बीजना, माला इत्यादिक से शोभित श्रीशिवजी के सेवक गाते दुंदुभी, शंख, वंशी आदि बजाते चले ॥ ५ ॥ जहांपर वेदगान से यज्ञ सम्बन्धी पशुओं की हिंसा चारों ओर होरही है और जिसके आसपास ब्राह्मण और देवता बैठेहुए हैं जहांपर मिट्टी, काष्ठ, लोह, सुवर्ण दाभ, चर्म, इनके पात्र शोभायमान हैं ऐसी यज्ञ भूमि में सती नें प्रवेश किया ॥ ६ ॥ यज्ञमें सतीजी को आया देख दक्ष के डरसे माता, मौसी तथा बहिनों के अतिरिक्त किसीने भी उसका सत्कार नकिया परन्तु माता आदिक प्रेम से गद्गद होकर आनन्द पूर्वक आंसुओं से निरुद्ध कंठ हो मिलीं ॥ ७ ॥ पिता से तिरस्कार की हुई सती नें माता तथा मौसियों का सन्मान पूर्वक दीहुई पूजा और उत्तम आसन को ग्रहण नहीं किया और ॥ ८ ॥ जिसमें रुद्र का भाग नहीं है और जिसमें पिता नें विभु शिवजी का अपराध किया, ऐसे यज्ञको देख अपमानित सती नें उस यज्ञ सभा में इस भांति कोप किया कि मानों त्रिलोकी का नाशकर देंगी ॥ ९ ॥ शिव द्रोही और कर्म मार्ग के अभ्यास से अभिमानी दक्ष को भूतगण मारनें के हेतु उठे, परन्तु देवी सती नें उन्हें अपनें ऐश्वर्य से निवारण कर सब जगत के सुनते क्रोध से निन्दा करती हुई बोली ॥१०॥ देवीजीनेंकहा कि लोकोंके प्रिय आत्मा, सर्वरूप तथा निर्वैर महादेव जी का नकोई अप्रिय है और नकोई प्रिय है ऐसे महादेव से तेरे अतिरिक्त और कौन शत्रुता करे। ॥ ११ ॥ हे द्विज ! तेरी सदृश निंदक तथा दुर्जन दूसरोंके गुणोंमें से केवल दोषही लेते हैं और जो गुण, दोष दोनोंही को ग्रहण करते हैं वह मध्यस्थ और जो थोडे से गुणों को बहुत करके मानते हैं वह महत्तम हैं तूने ऐसे महात्मा शिवजी का अपमान किया ॥ १२ ॥ मिथ्या भूत देहको बडा माननें वाला दुर्जन मनुष्य सज्जनों की डाह से निंदा करे तो कोई आश्चर्य नहीं है, क्यों कि महात्माओं की चरण रेणुकासे निरस्त तेज हुए दुष्ट लोगों को यही योग्य है ॥ १३ ॥ किसी

यद्द्व्यक्षरंनामगिरेरितंनृणां सकृत्प्रसङ्गादघमाशुहन्तितत्। पवित्रकीर्तिंतमलंघ्य-शासनं भवानहोद्वेष्टिशिवंशिवेतरः॥ १४ ॥ यत्पादपद्मंमहतां मनोऽलिभिर्निषे-वितंब्रह्मरसासवार्थिभिः। लोकस्ययद्वर्षतिचाशिषोऽर्थिनस्तस्मै भवान्द्रुह्यतिवि-श्वबन्धवे॥ १५ ॥ किंवाशिवाख्यमशिवंनविदुस्त्वदन्ये ब्रह्मादयस्तमवकीर्यजटाः श्मशाने। तन्माल्यभस्मनृकपाल्यवसत्पिशाचैर्ये मूर्धभिर्दधतितच्चरणावसृष्टम्॥१६॥ कर्णौपिधायनिरयाद्यदकल्पईश धर्मावितर्यसृणिभिर्नृभिरस्यमाने। छिन्द्यात्प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चेज्जिह्वामसूनपिततोविसृजेत्सधर्मः॥ १७॥ अतस्तवोत्पन्नमिदं कलेवरं नधारयिष्येशितिकण्ठगर्हिणः। जग्धस्यमोहाद्धिविशुद्धिमन्धसो जुगु-प्सितस्योद्धरणंप्रचक्षते॥ १८॥ नवेदवादाननुवर्ततेमतिः स्वएवलोकेरमतोमहा-मुनेः। यथागतिर्देवमनुष्ययोःपृथक् स्वएवधर्मेनपरंक्षिपेत्स्थितः॥ १९॥ कर्मप्रवृ-त्तंचनिवृत्यमप्यृतं वेदेविविच्योभयलिंगमाश्रितम्। विरोधितद्यौगपदैककर्तरि द्वयं तथाब्रह्मणिकर्मनर्च्छति॥ २०॥ मावःपदव्यःपितरस्मदास्थिता यायज्ञशालासु न धूमवर्त्मभिः। तदन्नतृप्तैरसुभृद्भिरीडिता अव्यक्तलिंगाअवधूतसेविताः॥ २१॥ नैतेनदेहेनहरेकृतागसो देहोद्भवेनालमलंकुजन्मना। व्रीडाममाभूत्कुजनप्रसङ्गतस्त ज्जन्मधिग्योमहतामवद्यकृत्॥ २२॥ गोत्रंत्वदीयं भगवान्वृषध्वजो दाक्षायणी त्याहयदासुदुर्मनाः। व्यपेतनर्मस्मितमाशुतद्व्यहं व्युत्स्रक्ष्यएतत्कुणपंत्वदंगजम्॥

वार्त्तापर मुख से एकबार भी शिव कहाजाय तो शीघ्रही उसके सम्पूर्ण पाप नाश होजावें ऐसे निर्मल यश महादेवजी से कि जिनकी आज्ञा का कोई उलंघन नहीं करसक्ता तूने वैर किया, तू बड़ा अमंगल रूप है॥ १४॥ जिन भगवान् शिवजी के चरण कमलों से भौरा रूपी सज्जन पुरुष ब्रह्म रस की चाहना करते हैं तथा जिनके चरण कमल कामार्थी मनुष्यों के काम पूर्ण करते हैं ऐसे विश्व भगवान् से तू द्रोह करता है॥ १५॥ उनका नाम शिव है परन्तु अशिव होने पर भी वह कल्याण कारी है क्या कोई नहीं जानता? ब्रह्मादिक भी जानते हैं। तथा श्मशान मे जटाओं को फैलाय भस्म और मनुष्य के मस्तकों की माला धारण किये पिशाचों सहित विचरते हुये उन्हीं शिव भगवानके चरणकमल की रजको ब्रह्मादिक भी धारणकरते हैं॥ १६॥ जहां निंदक इश्वरके धर्मकी निन्दा करतेहों वहांपरसे यदि अपने मारने तथा दूसरेके मारनेमें असमर्थ हों तो कानबन्दकर वहांसे निकलजाय और जो सामर्थ्य हो तो उस नीचकी जीभको काटडाले, नहीं तो अपने प्राणों काही त्याग करदे॥ १७॥ इसीहेतु शिवजीके निन्दक तेरी देहसे उत्पन्न इस देहको नहीं रक्खूंगी क्योंकि भूल से अपवित्र अन्न के खायेहुयेकी शुद्धि वमन ही है १८॥ स्वरूपानन्द महामुनिकी मति, निषेध कियेहुये वेदवाक्यों का अनुसरण नहीं करती, इसी हेतु प्रवृत्ति तथा निवृत्तिमार्गमें स्थितहोकर दूसरे धर्म तथा दूसरे की निंदा नहीं करनाचाहिये १९॥ प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग दोनोंही ठीक हैं कारण कि वेदमें विचारकर दोनोंका आश्रय किया है रोगीको प्रवृत्ति तथा विरागी को निवृत्ति कर्म करना चाहिये और इन दोनों कर्मोंको जो एकही काल में करे तो ये विरोधी होजाते हैं इन दोनोंही का परब्रह्म परमात्मा शिवमें नामतक नहीं है॥ २०॥ हे पिता! हमारी पदवियां कि जिनके द्वारा केवल इच्छामात्र से अणिमादिक सिद्धियां प्राप्त होतीहैं तथा जिनका ब्रह्मवादी सेवन करते हैं वह तुमको नहीं मिलसकतीं कारण कि तुम्हारी पदवियां तो यज्ञशालामें रहती हैं और धूममार्गवाले लोग तथा यज्ञमें इकट्ठेहुये अन्नसे तृप्त प्राणीही उनका सेवन करते हैं॥२१॥ महादेवजीके अपराधी से उत्पन्नहुआ यह देह मेरे किसी कामका नहीं है महात्माजनों की अवज्ञा करनेवाले तुझ कुजनके प्रसंगसे मुझे लज्जा होतीहै॥ २२॥ अब भगवान शिव हे दक्षसुने!ऐसा कहकर तेरे सम्बन्ध का नाम लेंगे तब मुझे हास्य के विरुद्ध बड़ा

॥२३॥ मैत्रेयउवाच ॥ इत्यध्वरेदक्षमनूद्यशत्रुहन्क्षितावुदीचीं निषसादशांतवाक् स्पृष्ट्वाजलंपीतदुकूलसंवृता निमील्यदृग्योगपथंसमाविशत् ॥ २४ ॥ कृत्वासमानावनिलौजितासनासोदानमुत्थाप्यचनाभिचक्रतः शनैर्हृदिस्थाप्यधियोरसिस्थितंकण्ठाद्भ्रुवोर्मध्यमनिन्दिताऽनयत् ॥ २५ ॥ एवंस्वदेहंमहतांमहीयसा मुहुःसमारोपितमंकमादरात् । जिहासतीदक्षरुषामनस्विनीदधारगात्रेष्वनिलाग्निधारणाम् ॥ ॥ २६ ॥ ततःस्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं जगद्गुरोश्चिन्तयतीनचापरम् । ददर्शदेहोहतकल्मषासतीसद्यःप्रजज्वालसमाधिजाग्निना ॥ २७ ॥ तत्पश्यतांखेभुविचाद्भुतं महद्धाहेतिवादःसुमहानजायत । हन्तप्रियादैवतमस्यदेवीजहावसून्केनसतीप्रकोपिता ॥ २८ ॥ अहोअनात्म्यं महदस्यपश्यत प्रजापतेर्यस्यचराचरंप्रजाः जहावसून्यद्विमतात्मजा सतीमनस्विनीमानमभीक्ष्णमर्हति २९॥ सोयंदुर्मर्षहृदयो ब्रह्मध्रुक्चलोकेऽपकीर्तिंमहतीमवाप्स्यति यदंगजांस्वांपुरुषद्विडुद्यतांनप्रत्यषेधन्मृतयेऽपराधतः ॥ ३० ॥ वदत्स्येवजनेसत्या दृष्ट्वाऽसुत्यागमद्भुतम् । दक्षंतत्पार्षदाहन्तुमुदतिष्ठन्नुदायुधाः ॥ ३१ ॥ तेषामापततांवेगं निशाम्यभगवान्भृगुः । यज्ञघ्नघ्नेनयजुषा दक्षिणाग्नौजुहावह ॥ ३२ ॥ अध्वर्युणाहूयमानेदेवाउत्पेतुरोजसा । ऋभवोनामतपसासोमंप्राप्ताःसहस्रशः ॥ ३३ ॥ तैरलातायुधैःसर्वेप्रमथाःसहगुह्यकाःहन्यमानादिशोभेजुरुशद्भिर्ब्रह्मतेजसा ॥ ३४ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेचतुर्थस्कन्धेसतीदेहोत्सर्गेचतुर्थोऽध्यायः ४ ॥

दुःख होगा इसकारण तुझसे उत्पन्न इस अधम देहका अवश्यही त्याग करूंगा ॥ २३ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि हे विदुर ! दक्षम सतीजीने इसभांति कह मौनहो उत्तरकी ओर भूमिपर बैठ, पीतांबर धारणकर आचमन ले आखें मूंद योगमार्गका साधन किया ॥ २४ ॥ उस दूषण रहित सतीने आसन जीत प्राण और अपान वायु को समानकर उदानवायुको नाभिचक्रसे उठाय बुद्धि पूर्वक हृदयमे लाय धीरे २ कण्ठ मार्गसे भ्रुकुटी के मध्य मे चढ़ाया ॥ २५ ॥ इसभांतिसाधुओं के पूज्य श्रीशिवजी से बारम्बार सत्कार पूर्वक गोदमे लियेहुये अपने शरीर को उदार चित्त श्री सतीजीने दक्षकी निन्दा मे त्यागने की इच्छाकर शरीर में पवन तथा अग्निको धारण किया ॥२६॥ और अपने स्वामी जगदगुरु श्री शिवजीके चरणकमलकी गन्धका चिन्तवन करतीहुई पाप रहित सतीने औरको नहीं देखा फिर उसस्मय समाधि की अग्नि से उसका शरीर तत्कालही भस्म होगया ॥ २७ ॥ यह आश्चर्यहुआ देख पृथ्वी और आकाशमे बड़ा हाहाकार शब्दहुआ, कि खेदकी बात है परमदेव श्री शिवजी की प्यारी सती ने दक्ष के तिरस्कार से क्रोधित हो अपना जीवन त्याग दिया ॥२८॥ जिस प्रजापति दक्षका सम्पूर्ण प्रजाहै उसकी दुर्जनताको तौ देखो कि जिसके तिरस्कारसे बारम्बार सत्कार देनेवाली उदारचित्त सती पुत्रीने प्राणत्यागदिया ॥ २९ ॥ यह ब्रह्मद्रोही, शिवद्रोही, खोटे चित्तवाला दक्ष संसार में बड़ी अपकीर्ति को प्राप्त होगा, क्योंकि जिससे अपने अपराध से प्राण त्यागतीहुई अपनी बेटीको नही बचाया ॥३०॥ मनुष्य ऐसा कह रहेथे, कि इतनेही में सतीका अद्भुत प्राण त्यागना देखकर भगवान शिवके पार्षदोने दक्ष के मारने के हेतु आयुध उठाये ॥ ३१ ॥ भृगु ऋषिने पार्षदों को वेगसे आतेहुये देख यज्ञके नाश करनेवाले को नाश करनेवाली यजुर्वेद की ऋचाओसे दक्षिणाग्निमे होमकिया ॥ ३२॥ अध्वर्यु भृगु के होम करतेही तपसे अमृत को प्राप्तहुये सहस्रों देवता बड़े बलसे उठे ॥ ३३ ॥ देदीप्यमान देवताओं से जलतेहुये ब्रह्मतेज युक्त लकड़ियोसे मारे जानेपर श्री शिवजी के पार्षदगण यक्ष और भूत प्रेत दशो दिशाओं मे जहां तहां भागने लगे ॥ ३४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महापुराणेचतुर्थस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ भवोभवान्यानिधनंप्रजापते रसत्कृतायाअवगम्यनारदात्
स्वपार्षदसैन्यंचतदध्वरर्भुभिर्विद्रावितंक्रोधमपारमादधे ॥ १ ॥क्रुद्धःसुदष्टोष्ठपुटः
सधूर्जटिर्जटांतडिद्वह्निसटोग्ररोचिषम् । उत्कृत्यरुद्रःसहसोत्थिताहसन्गम्भीरना
दोविससर्जतांभुवि ॥२॥ ततोऽतिकायस्तनुवास्पृशन्दिवं सहस्रबाहुर्घनरुक्त्रिसूर्य
दृक् । करालदंष्ट्रोज्ज्वलदग्निमूर्धजःकपालमालीविबुधोद्यतायुधः ॥३॥तंकिंकरोमी
तिगृणन्तमाहबद्धाञ्जलिंभगवान्भूतनाथः । दक्षंसयज्ञंजहिमद्भटानांत्वमग्रणीरुद्र
भटांशकोमे ॥ ४ ॥ आज्ञप्तएवंकुपितेनमन्युना सदेवदेवंपरिचक्रमेविभुम् । मेनेत
दात्मानमसङ्गरंहसामहीयसांतातसहःसहिष्णुम् ॥ ५ ॥ अन्वीयमानःसतुरुद्रपार्ष
दैर्भृशंनदद्भिर्व्यनदत्सुभैरवम् । उद्यम्यशूलंजगदन्तकान्तकं सप्राद्रवद्घोषणभूष
णांघ्रिः ॥ ६ ॥ अथर्त्विजोयजमानःसदस्याःककुभ्युदीच्यांप्रसमीक्ष्यरेणुम् । तमः
किमेतत्कुतएतद्रजोऽभूदितिद्विजाद्विजपत्न्यश्चदध्युः ॥ ७ ॥ वातानवांतिनहिस
न्तिदस्यवःप्राचीनबर्हिर्जीवतिहोग्रदण्डः । गावोनकाल्यन्तइदंकुतोरजो लोको
धुनाकिंप्रलयायकल्पते ॥ ८ ॥ प्रसूतिमिश्राःस्त्रियउद्विग्नचित्ता ऊचुर्विपाकोवृजि
नस्यैषतस्य । यत्पश्यन्तीनांदुहितॄणांप्रजेशः सुतांसतीमवदध्यावनागाम् ॥ ९ ॥
यस्त्वन्तकालेव्युप्तजटाकलापःस्वशूलसूच्यर्पितदिग्गजेन्द्रः । वितत्यनृत्यत्युदिता
स्त्रदोर्ध्वजाउच्चाट्टहासस्तनयित्नुभिन्नदिक् ॥ १० ॥ अमर्षयित्वातमसह्यतेजसं

मैत्रेय जी ने कहा कि—दक्षसे तिरस्कार पा, सतीका मरना, और यज्ञके देवताओं से पार्षदों की सेना का भागना महादेवजी ने नारदजी से सुनकर अत्यंत क्रोध किया ॥ १ ॥ रोष में भरे हुये श्री शिवजी ने होंठ चाबते हुये भयानक रूप से गंभीर नादकर, बिजली तथा आगकी सदृश तेजवाली जटाको उखाड़ कर भूमिपर पटका ॥ २ ॥ उस जटा से; अतिऊंचे शरीर से आकाश छाहुआ, सहस्र भुजाओं वाला, कृष्णवर्ण, सूर्यके सदृश तीन नेत्रवाला, कि जिसकी भयंकर डाढें तथा प्रज्वलित अग्निके सदृश जिसके बाल मुंडमाला धारण किये और अनेक अस्त्र लियेहुये वीरभद्र उत्पन्न हुआ, और उसने विनती की ॥ ३ ॥ कि हे नाथ! मुझे क्याआज्ञा है ! मैं क्या करूं इस भांति कह हाथजोड़ खड़ाहुआ, तब शिवजी ने कहा कि हे रुद्रभट ! तूमेरे पार्षदों में श्रेष्ठ तथा मेरेअंश से उत्पन्न हुआ है इस हेतु तू दक्षके मारने योग्य है सोतू दक्षका यज्ञ समेत विनाश कर ॥ ४ ॥ हे विदुर ! क्रोधित शिवजी से आज्ञापा सर्व देवोंके देव शिवजी की परिक्रमा करके वीरभद्र चला, उस काल बड़े वेगसे वह अपने आत्माको दूसरे बलवान लोगों के नाश करने में समर्थ समझता था ॥ ५ ॥ उसके पीछे रुद्र पार्षद नाद करते हुये चले उस समय वीर भद्रने बड़ी भयंकर गर्जना की और त्रिशूल उठाय दिशाओं को पैरोंके शब्द से शब्दाय मान करताहुआ इस प्रकार दौड़ा कि मानो मृत्युको मारेगा ॥६॥ जब दक्षका मखपांच योजनदूररहा तब ब्राह्मण ऋत्विज, यजमान, और सभासदों तथा स्त्रियों ने उत्तर दिशामें बड़ीधूल उड़ती देख चिंता की कि यह क्या है ॥ ७ ॥ ऐसी तीव्र पवन भी नहीं चलती, चोरोंके घोड़े भी नहीं हैं, उग्रदण्ड देने वाले प्राचीन बर्हिराजा के होते, कोई चोर गौओंको भी नहीं लेजासकता कि उनकी धूल होवे फिर यह धूल कहां से आई क्या अभीतो प्रलय न होजायगी ॥ ८ ॥ दक्षपत्नी प्रसूति आदिक व्याकुल चित्त होकर कहने लगीं कि अपनी निरपराधनी कन्या सतीका दक्षने तिरस्कार किया है उसी पापका यह फल है ॥ ९ ॥ जो प्रलय काल में जटाओं को फैलाकर अपने त्रिशूल के अग्रभाग से दिशाओं के हाथियों को मारते हैं तथा अस्त्र उठाये भुजारूपी ध्वजाओं को फैलाये हुये जिसके कठोर बिजली की तरह तड़ाहट के सदृश हास्य से सम्पूर्ण दिशायें फटजाती हैं ॥ १० ॥ और

मन्युप्लुतं दुर्विषहं भ्रुकुट्या । करालदंष्ट्राभिरुदस्तभागणं स्यात्स्वस्ति किं कोपयतो विधातुः ॥ ११ ॥ बह्वेवमुद्विग्नदृशोच्यमाने जनेन दक्षस्य मुहुर्महात्मनः । उत्पेतुरुत्पाततमाः सहस्रशो भयावहा दिवि भूमौ च पर्यक् ॥ १२ ॥ तावत्स रुद्रानुचरैर्मखो महानानायुधैर्वामनकैरुदायुधैः । पिंगैः पिशंगैर्मकरोदराननैः पर्याद्रवद्भिर्विदुरान्वरुध्यत ॥ १३ ॥ केचिद्बभंजुः प्राग्वंशं पत्नीशालां तथापरे। सद आग्नीध्रशालां च तद्विहारं महानसम् ॥ १४ ॥ रुरुजुर्यज्ञपात्राणि तथैकेऽग्नीननाशयन् । कुण्डेष्वमूत्रयन् केचिद्बिभिदुर्वेदिमेखलाः ॥ १५ ॥ अबाधन्त मुनीनन्ये एके पत्नीरतर्जयन् । अपरे जगृहुर्देवान्प्रत्यासन्नान्पलायितान् ॥ १६॥ भृगुं बबन्ध मणिमान्वीरभद्रः प्रजापतिम् चण्डीशः पूषणं देवं भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीत् ॥ १७ ॥ सर्व एवर्त्विजो दृष्ट्वा सदस्याः सदिवौकसः । तैरर्द्यमानाः सुभृशं ग्रावभिर्नैकधाऽद्रवन् ॥ १८ ॥ जुह्वतः स्रुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान्भवः । भृगोर्लुलुंचे सदसि योऽहसच्छ्मश्रु दर्शयन् ॥ १९ ॥ भगस्य नेत्रे भगवान्पातितस्य रुषा भुवि । उज्जहार सदःस्थोऽक्ष्णा यः शपन्तमसूसुचत् ॥२०॥ पूष्णश्चापातयद्दन्तान्कालिंगस्य यथा बलः । शप्यमाने गरिमाणि योऽहसद्दर्शयन्दतः ॥ २१ ॥ आक्रम्योरसि दक्षस्य शितधारेण हेतिना । छिन्दन्नपि तदुद्धर्तुं नाशक्नोत्त्र्यम्बकस्तदा ॥ २२ ॥ शस्त्रैरस्त्रान्वितैरेवमनिर्भिन्नत्वचं हरः । विस्मयं परमापन्नो दध्यौ पशुपतिश्चिरम् ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा संज्ञपनं योगं पशूनां स पतिर्मखे । यजमानपशोः कस्य कायात्तेनाहरच्छिरः ॥ २४ ॥ साधुवादस्तदा तेषां कर्म तत्तस्य शं-

जिसके रोषको कोई नहीं सह सकता तथा जिसका क्रोधभरी कुटिल भ्रकुटी से और करालडाढ़ों से सम्पूर्ण तारागण अस्त होजाते हैं ऐसे असह्य प्रभाव वाले श्री शिवजी को कोपित करके ब्रह्मा काभी कल्याण नहीं होसकता ॥ ११ ॥ सब मनुष्य इसप्रकार व्याकुल चित्त होकर कह रहेथे कि इतनेही में अनेक भांतिके भय सूचक उत्पात आकाश और पृथ्वी में होनेलगे ॥ १२ ॥ हे विदुर! इतनेही में नाना भांतिके शस्त्रों वाले काले, पीले, मगर केसे उदर और मुखवाले वामन इत्यादिक नाना भांतिके रुद्रगणों ने उस महा यज्ञको आघेरा ॥ १३ ॥ उस में कितनों होने यज्ञके आगे की ध्वजा उखाड़ली, कितनो हीने पत्नीशाला, कितनो होने यज्ञशाला और कितनों हीने विहार स्थान को नष्ट भ्रष्ट करडाला ॥ १४ ॥ किसी ने यज्ञके पात्रो का फोड़डाला, किसी ने अग्निबुझा दी, किसी ने कुंडमें मूत्र करदिया और किसी ने वेदी और मखला को भेदन करदिया ॥ १५ ॥ किसी नें मुनियों को बांध लिया, किसी नें स्त्रियों को तर्जना आरम्भ किया और कितनोंही नें बैठे हुए तथा भागते हुए देवताओं को पकड लिया ॥ १६ ॥ मणिमान नें भृगु को बीरभद्र नें प्रजापति दक्षको चंडीश नें पूषा को और नंदीश्वर नें भग को बांध लिया ॥ १७ ॥ सम्पूर्ण ऋत्विज सभापति और देवता पार्षदों के पत्थरों से पीडित हो जहांतहां भागगए ॥ १८ ॥ भृगु ऋषि जो हाथ में स्रुवा लिये यज्ञ कररहे थे, उनकी डाढी भगवान बीरभद्र नें उखाडली क्यो कि इन्हों नें सभा में डाढी दिखाकर हास्य कियाथा ॥ १९ ॥ भगवान बीरभद्र नें भगदेवता को भूमिपर पटक उनकी आंखें निकाल लीं कारण कि शाप देते हुए दक्ष को सभा में उसनें आंखोंसे सूचना दीथी ॥ २० ॥ जिस भांति भगवान् बलदेवजी नें कलिंग के दांत तोडे थे उसी भाति पूषाके भी दांत तोड़ गए क्यों कि महादेवजी को शाप देते समय यह दांत दिखाकर हंसा था ॥ २१ ॥ बीरभद्र दक्ष की छाती पर चढ तीक्ष्ण शस्त्र से उस का शिर काटने लगे परन्तु उस समय वह नहीं काट सके ॥ २२ ॥ जब अस्त्र शस्त्र सेभी उसका थोडासा चर्म नकटा तब बीरभद्रजी उसको अस्त्रशस्त्र से अवध्य जान बड़े काल तक विचार करते रहे ॥ २३ ॥ फिर यज्ञ के हेतु संज्ञपन योग अर्थात्

सताम् । भूतप्रेतपिशाचानामन्येषां तद्विपर्ययः ॥ २५ ॥ जुहावैतच्छिरस्तस्मिन्द-
क्षिणाग्नावमर्षितः । तद्देवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठद्गुह्यकालयम् ॥ २६ ॥

इतिश्रीमद्भा०चतु०दक्षयज्ञविध्वंसनंनामपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ अथदेवगणाःसर्वे रुद्रानीकैःपराजिताः । शूलपट्टिशनिस्त्रिंश
गदापरिघमुद्गरैः ॥ १ ॥ संछिन्नभिन्नसर्वाङ्गाः सर्त्विक्सभ्याभयाकुलाः । स्वयं
भुवेनमस्कृत्यकार्त्स्न्येनैतन्न्यवेदयन् ॥ २ ॥ उपलभ्यपुरैवैतद्भगवानब्जसंभवः ।
नारायणश्च विश्वात्मानकस्याध्वरमीयतुः ॥ ३ ॥ तदाकर्ण्यविभुःप्राह तेजीयसि
कृतागसि । क्षेमायतत्रसाभूयान्नप्रायेणबुभूषताम् ॥ ४ ॥ अथापियूयंकृतकिल्बिषा
भवंयेबर्हिषोभागभाजंपरादुः । प्रसादयध्वंपरिशुद्धचेतसाक्षिप्रप्रसादंप्रगृहीताङ्घ्रि
पद्मम् ॥ ५ ॥ आशासानाजीवितमध्वरस्य लोकःसपालःकुपितेनयस्मिन् ।तमाशु
देवंप्रिययाविहीनंक्षमापयध्वंहृदिविद्धंदुरुक्तैः ॥ ६ ॥ नाहंनयज्ञोनचयूयमन्येयेदेह
भाजोमुनयश्चतत्त्वम् । विदुःप्रमाणंबलवीर्ययोर्वायस्यात्मतन्त्रस्यकउपायंविधित्से
त् ॥ ७ ॥ सइत्थमादिश्यसुरानजस्तैःसमन्वितःपितृभिःसप्रजेशैः ।ययौस्वधिष्ण्या
न्निलयंपुरद्विषःकैलासमद्रिप्रवरंप्रियंप्रभोः॥८॥जन्मौषधितपोमंत्रयोगसिद्धैर्नरेतरैः
जुष्टंकिन्नरगन्धर्वैरप्सरोभिर्वृतंसदा ॥ ९॥नानामणिमयैःशृङ्गैर्नानाधातुविचित्रितैः।
नानाद्रुमलतागुल्मैर्नानामृगगणावृतैः ॥ १० ॥ नानाऽमलप्रस्रवणैर्नानाकन्दरसानु

कंठ घोटकर मारनेका यत्न जान वीरभद्रने यजमान रूपी पशु का सिर मरोड़कर देह से उतारलिया ॥ २४ ॥ इस कर्म को देखकर भूत प्रेत पिशाचों में बड़ा अहंकार और आनन्द हुआ परन्तु देवताओं को शोक हुआ ॥ २५ ॥ वीरभद्र ने क्रोधित होकर दक्ष का सिर दक्षिणाग्नि में होमदिया इस भांति वह यज्ञ को नष्ट भ्रष्ट कर के कैलाश को चलेगए ॥ २६ ॥

इति श्री भागवते महापुराण चतुर्थस्कन्धे सरला भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

मैत्रेयजीने कहा कि—शिवजी के कटक से हारे तथा शूल, पट्टिश भाला, गदा मुद्गर १ ॥ से छिन्न भिन्न हुये सम्पूर्ण देवताओं ने ऋत्विज और सभासदों को साथ ले डरसे व्याकुल होतेहुए ब्रह्माजी के निकट जाकर प्रणाम कर सम्पूर्ण वृत्तांत निवेदन किया ॥ २ ॥ परन्तु ब्रह्मा और विश्वात्मा भगवान पहिलेहीसे इस भविष्य वृत्तांतकोजान दक्षयज्ञमें नहींगयेथे ॥ ३ ॥ देवताओं की दुहाई सुन ब्रह्माजीने कहा कि तेजस्वी मनुष्य के अपराध करने के पीछे जो उनके अपराध करने की इच्छा रखताहै उसका फल अच्छा नहीं होता है ॥ ४ ॥ तथापि भी तुमने यज्ञके भाग योग्य महादेव जी को यज्ञके भाग से वंचित रक्खा, इस कारण अवतव शीघ्र प्रसन्न होनेवाले शिवजी के चरणों में शुद्ध चित्त से गिरकर उनको प्रसन्न करो ॥ ५ ॥ यदि यज्ञ करने की फिर इच्छा होतो खोटे वचनों से हृदय में विंधेहुये स्त्री रहित उन शिवजी के निकट जाकर क्षमा मांगो कि जिनके कोप से लोक पालों समेत इस लोक का नाश होता है ॥ ६ ॥ और उन स्वतन्त्र शिवजीके आत्म तत्व बल तथा पराक्रमकीथाह न मैं जानताहूं न यज्ञभगवानही जानतेहैं और न तुम जानतेहो तथा न कोई प्राणी और मुनिही जानताहै वहां कोई कुछ यत्ननहीं करसकता ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी इसभांति देवताओं को आज्ञा दे पितरों और प्रजापतियों को संगले ब्रह्मलोकसे शिवजीके पर्वतोत्तम कैलाश पर्वतपर गये ॥ ८ ॥ जहांपर जन्म औषधि तप मंत्र और योगकी सिद्धियें देनेवाले देवता किन्नर गन्धर्व, अप्सरा सदैव बसा करते हैं ॥ ९ ॥ नानाभांति की धातुओं से चित्रित रंगविरंगी पर्वतों की चोटियों में नानाप्रकार की मणियें शोभित हैं और नानाभांति के वृक्ष लता और गुल्म फूल फलों से भरे शोभित होरहे हैं और मृगों के यूथ के यूथ दौड़ रहेहैं ॥ १० ॥ अनेक प्रकारके

भिः । रमणं विहरन्तीनां रमणैः सिद्धयोषिताम् ॥ ११ ॥ मयूरकेकाभिरुतं मदान्धालिविमूर्छितम् । प्लावितै रक्तकण्ठानां कूजितैश्च पतत्रिणाम् ॥१२॥ आह्वयन्तमिवोद्धस्तैर्द्विजान्कामदुघैर्द्रुमैः । व्रजन्तमिव मातङ्गैर्गृणन्तमिव निर्झरैः ॥ १३ ॥ मंदारैः पारिजातैश्च सरलैश्चोपशोभितम् । तमालैः शालतालैश्च कोविदारासनार्जुनैः ॥ १४॥ चूतैः कदम्बैर्नीपैश्च नागपुन्नागचम्पकैः । पाटलाशोकबकुलैः कुन्दैः कुरबकैरपि ॥ १५ ॥ स्वर्णार्णशतपत्रैश्च वरवेणुकजातिभिः । कुब्जकैर्मल्लिकाभिश्च माधवीभिश्च मण्डितम् ॥ १६ ॥ पनसोदुम्बराश्वत्थप्लक्षन्यग्रोधहिंगुभिः । भूर्जैरोषधिभिः पूगै राजपूगैश्च जम्बुभिः ॥ १७ ॥ खर्जूराम्रातकाम्राद्यैः प्रियालमधुकेंगुदैः । द्रुमजातिभिरन्यैश्च राजितं वेणुकीचकैः ॥ १८ ॥ कुमुदोत्पलकल्हारशतपत्रवनर्द्धिभिः । नलिनीषु कलं कूजत्खगवृंदोपशोभितम् ॥ १९ ॥ मृगैः शाखामृगैः क्रोडैर्मृगेन्द्रैर्ऋक्षशल्यकैः । गवयैः शरभैर्व्याघ्रै रुरुभिर्महिषादिभिः ॥ २० ॥ कर्णान्त्रैकपदाश्वास्यैर्निर्जुष्टं वृकनाभिभिः । कदलीखण्डसंरुद्धनलिनीपुलिनश्रियम् ॥ २१ ॥ पर्यस्तं नन्दया सत्याः स्नानपुण्यतरोदया । विलोक्य भूतेशगिरिं विबुधा विस्मयं ययुः ॥ २२ ॥ ददृशुस्तत्र ते रम्यामलकां नाम वै पुरीम् । वनं सौगन्धिकं चापि यत्र तन्नाम पङ्कजम् ॥ २३ ॥ नंदा चालकनंदा च सरितौ बाह्यतः पुरः । तीर्थपादपदाम्भोजरजसाऽतीव पावने ॥ २४ ॥ ययोः सुरस्त्रियः क्षत्तरवरुह्य स्वधिष्ण्यतः । क्रीडन्ति पुंसः सिञ्चन्त्यो विगाह्य रतिकर्शिताः ॥२५॥ ययोस्तत्स्नानविभ्रष्टनवकुंकुमपिंजरम् । वितृषोऽपि पिबन्त्यम्भः पाद्य

झरने सुन्दर निर्मल बहते हैं अनेकप्रकार की कन्दरा तथा नानाभांतिके सिद्ध अपनी स्त्रियों समेत क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ ११ ॥ मोर बोल रहे हैं मदसे अंधेहुए भौंरे गूंज रहेहैं, तथा और भी अनेक प्रकारके पक्षी बोलरहे हैं ॥१२॥ कामना पूर्ण करनेवाले बड़े२ ऊंचवृक्ष मानो पक्षिओंको बुलारहे हैं, व; पर्वत हाथियोंके गमनकरनेसे चलताहुआ और झरनोंके शब्दसे बोलताहुआ प्रतीतहोताहै १३॥ वहां मंदार, पारिजात, सरल, तमाल, शाल, ताल, लालकचनार, असन, अर्जुन ॥ १४ ॥ आम, कदंब, नीम, अशोक, पुन्नाग, नागकेशर, चम्पा, गुलाब, सेवती, अशोक, मौलसिरी, कुंद, कुरबक, ॥ १५ ॥ सुनहल रंग के सौ पंखुरी वाले कमल, सुंदर २ वांस, कुब्जक, मल्लिका, माधवी, ॥ १६ ॥ कटहल, गूलर, पीपल, पिलखन, वट, हिंगु, भूर्ज, औषधियां, सुपारी, राजपूग, जामुन, ॥ १७ ॥ खजूर, आंवला, आम्र, दाख, मौहा, और इंगुदी इत्यादिक नाना भांति क वृक्षों की शोभा होरही है और भी नाना भांति के वृक्ष, वायु से शब्दायमान बांस ॥१८॥ व कुमुद, उत्पल, कल्हार तथा शतपत्रवाले कमलोंसे बन शोभित होरहा है, सरोवरों में पक्षियों के केलि करने से अपूर्व शोभा होरही है ॥१९॥ हिरन, बन्दर, बाराह, सिंह, रीछ, सेही, नीलगाय, कस्तूरीमृग, वाघ, और अरने भैंस इत्यादिक फिररहे हैं ॥ २० ॥ जिनके कानोंमें आंत है, ऐसे पशु, घोड़ेके मुखकी सदृश मुखवाले जीव अर्थात् किन्नर, कस्तूरी मृग आदिक केलेके वन से घिरेहुए सरोवरों के तट शोभायमानहैं॥२१॥आगे बढ़कर देखा तो नन्दानामगंगा चारोंओर बहरही है ऐसे शिवजीके कैलाश पर्वतको देख देवताओंको बड़ा आश्चर्यहुआ ॥२२॥ कैलाश पर्वतमें अति सुंदर कुबेरकी अलकापुरी देखी, और वहांही पर सौगंधिक कमलों वाला सौगंधिक बन देखा ॥ २३ ॥ उस पुरके बाहरकी ओर हरिभगवान् के चरणों से अति पवित्र नंदा तथा अलकनंदा नदियें बहरही हैं ॥ २४ ॥ हे विदुर ! उन नदियों में देवताओं की स्त्रियाँ रति से व्याकुल होकर अपने विमानों से उतर २ क्रीड़ा करती हैं और अपने स्वामियों समेत स्नान किया करती हैं ॥ २५ ॥ देवताओं की स्त्रियों के स्नान से उनकी कुचाओं का केसर छुटने पर नदियों का जल पीतवर्ण तथा सुगंधित रहाक-

न्तोगजागजीश्च॥२६॥तारहेममहारत्न विमानशतसंकुलाम् । जुष्टांपुण्यजनस्त्रीभिर्यथाखंसतडिद्घनम्॥२७॥हित्वायक्षेश्वरपुरींवनंसौगन्धिकंचतत् । द्रुमैःकामदुघैर्हृद्यं चित्रमाल्यफलच्छदैः ॥ २८ ॥ रक्तकण्ठखगानीकस्वरखण्डितषट्पदम् । कलहंसकुलप्रेष्ठंखरदण्डजलाशयम् ॥२९॥ वनकुञ्जरसंघृष्टहरिचन्दनवायुना। अधिपुण्यजनस्त्रीणांमुहुरुन्मथयन्मनः ॥ ३० ॥ वैदूर्यकृतसोपानावाप्यउत्पलमालिनीः । प्राप्तंकिंपुरुषैर्दृष्ट्वातआराद्ददृशुर्वटम् ॥ ३१ ॥ सयोजनशतोत्सेधःपादोनविटपायतः । पर्यक्कृताचलच्छायो निर्नीडस्तापवर्जितः ॥ ३२ ॥तस्मिन्महायोगमयेमुमुक्षुशरणेसुराः । ददृशुःशिवमासीनंत्यक्तामर्षमिवान्तकम् ॥ ३३ ॥ सनन्दनाद्यैर्महासिद्धैःशांतैःसंशांतविग्रहम् । उपास्यमानंसख्याचभर्त्रागुह्यकरक्षसाम् ॥ ३४ ॥ विद्यातपोयोगपथमास्थितंतमधीश्वरम् । चरन्तंविश्वसुहृदंवात्सल्याल्लोकमङ्गलम् ॥ ३५ ॥ लिङ्गंचतापसाभीष्टंभस्मदण्डजटाजिनम् । अङ्गेनसन्ध्याभ्ररुचाचन्द्रलेखांचबिभ्रतम् ॥ ३६ ॥ उपविष्टंदर्भमय्यांबृस्यांब्रह्मसनातनम् । नारदायप्रवोचन्तंपृच्छतेशृण्वतांसताम् ॥ ३७ ॥ कृत्वोरौदक्षिणेसव्यंपादपद्मंचजानुनि। बाहुंप्रकोष्ठेऽक्षमालामासीनंतर्कमुद्रया ॥ ३८ ॥ तंब्रह्मनिर्वाणसमाधिमाश्रितंव्युपाश्रितंगिरिशंयोगकक्षाम् । सलोकपालामुनयोमनूनामाद्यंमनुंप्राञ्जलयःप्रणेमुः ॥ ३९ ॥ सतूपलभ्यागतमात्मयोनिंसुरासुरेशैरभिवन्दिताङ्घ्रिः । उत्थायचक्रेशिरसाऽभिवन्दनमर्हत्तमः कस्य

रता है उसी सुगंधि के कारण हाथी विना प्यास भी जल पीते और हथिनियों को पिलाते हैं ॥ ॥ २६ ॥ वहां यक्षों की स्त्रियां सोनें, चांदी, तथा रत्नों के विमानों पर बैठीहुई इस भांति शोभित होती है कि जैसे गगन मण्डल के बादलों में बिजली शोभित होती है ॥ २७ ॥ उस कुबेर की अलका पुरी में सौगंधिक बन के भीतर नाना भांति के विचित्र फल, फूल, पत्तेवाले, कामना पूरी करने वाले, वृक्ष शोभा देरहे हैं ॥ २८ ॥ कोकिलायें कूजरही हैं, भौंर मीठी मीठी गुंजारों से गूंजरहे हैं तथा कमल बनवाले जलाशय शोभाय मान हैं ॥ २९ ॥ बनके हाथियों से रगड़ खाकर चदन से निकली हुई सुगंधि वायु में फैलकर यक्षों की स्त्रियों का चित्त कामातुर कररही है ॥ ३० ॥ सुन्दर बावड़ियें स्फटिक मणिकी सीढ़ीयों से और कमल माला से शोभित होरही हैं ऐसे उस बनके निकट ही एक बड़ा बटका वृक्ष देखा ॥ ३१ ॥ यह वटवृक्ष १०० योजन ऊंचा तथा ७५ योजन विस्तार वाला है, इसके चारों ओर सर्वत्र अचल छायाबनी रहती है उसमें किसी पक्षी का घोसला नहीं है तथा धूप नाम को भी नहीं आती ॥ ३२ ॥ उस बट के नीचे महायोगमय मुमुक्षु जनों के शरण रूप शिवजी विराजमान हैं मानों रोष त्याग कर काल बैठाहो इस भांति देवताओं नें महादेवजी को बैठे देखा ॥ ३३ ॥ वहां प्रशांत सनंदन इत्यादिक परम सिद्ध शांतस्वरूप शिवजी की उपसना कररहे हैं, और राक्षस तथा यक्षोंके राजा शिवजी के मित्र कुबेरभी उपासना कररहे हैं ॥ ३४ ॥ वे शिव, विद्या, तप, और योग मार्ग में स्थित तथा सृष्टि के सुहृद स्नेह पूर्वक विश्व का कल्याण करनेवाले मंगलरूप सर्वेश्वर हैं ॥ ३५ ॥ भस्म दंड जटा मृगचर्म तपस्वियों के अभीष्ट चिह्न अपनें कांतिवाले शरीर में धारण किये और ललाटमें चन्द्रमा की रखा को धारण किये हैं ॥३६॥ तथा कुशासनपर विराजमान और नारदजी प्रश्नों का उत्तर तथा सज्जनों को सनातन परब्रह्म का उपदेश कररहे हैं ॥ ३७ ॥ दाहिनी जंघा पर बाम चरणको धर और बायें घुटने पर अपनाकर धरकर हाथ में रुद्राक्ष की माला लिये तर्क मुद्रा को धारण किये विराजमानहैं ॥ ३८ ॥ ब्रह्मानन्द में एकचित्तहो तथा योगपदसे विराजमान ज्ञानी पुरुषों में श्रेष्ठ शिवजी को लोकपाल तथा मुनियों ने हाथ जोड़कर दण्डवतकी ॥ ३९ ॥

यथैवविष्णुः ॥ ४० ॥ तथाऽपरेसिद्धगणामहर्षिभिर्येवैसमन्तादनुनीललोहितम्। नमस्कृतःप्राहशशाङ्कशेखरंकृतप्रणामंप्रहसन्निवात्मभूः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जाने त्वामीशंविश्वस्यजगतोयोनिबीजयोः। शक्तेःशिवस्यचपरंयत्तद्ब्रह्मनिरंतरम्४२ त्वमेवभगवन्नेतच्छिवशक्त्योःस्वरूपयोः। विश्वंसृजसिपास्यत्सिक्रीडन्नूर्णपटोयथा ॥ ४३ ॥ त्वमेवधर्मार्थदुघाभिपत्तयेदक्षेणसूत्रेणससर्जिथाध्वरम्। त्वयैवलोकेऽवसिताश्चसेतवोयन्ब्राह्मणाःश्रद्धतेधृतव्रताः ॥ ४४ ॥ त्वंकर्मणांमङ्गलमङ्गलानां कर्तुःस्मलोकंतनुषेस्वःपरंवा। अमङ्गलानांचतमिस्रमुल्बणंविपर्ययःकेनतदेवकस्यचित् ॥ ४५ ॥ नवैसतांत्वच्चरणार्पितात्मनांभूतेषुसर्वेष्वभिपश्यतांतव। भूतानिचात्मन्यपृथग्दिदृक्षतांप्रायेणरोषोऽभिभवेद्यथापशुम् ॥ ४६ ॥ पृथग्धियःकर्मदृशोदुराशयाः परोदयेनार्पितहृद्रुजोऽनिशम्। परान्दुरुक्तैर्वितुदन्त्यरुन्तुदास्तान्मावधीदैववधान्भवद्विधः ॥ ४७ ॥ यस्मिन्यदापुष्करनाभमाययादुरन्तयास्पृष्टधियःपृथग्दृशः। कुर्वीतितत्रह्यनुकंपयाकृपांनसाधवोदैवबलात्कृतंक्रमम् ॥ ४८ ॥ भवांस्तु पुंसःपरमस्यमाययादुरन्तयाऽस्पृष्टमतिःसमस्तदृक्। तयाहतात्मस्वनुकर्मचेतःस्वनुग्रहंकर्तुमिहार्हसिप्रभो ॥ ४९ ॥ कुर्वध्वरस्योद्धरणंहतस्य भोस्त्वयाऽसमाप्तस्यमनोःप्रजापतेः। नयत्रभागंतवभागिनोददुःकुयज्विनोयेनमखोनिनीयते ५० ॥

उन ब्रह्माजी को कि जिनके चरणों में बड़े २ सुर, असुर, प्रणाम करते हैं आया देख शिवजी शीघ्रता से उठे और शिरसे इसभांति प्रणाम किया कि जैसे कश्यपजीको वामनजीने प्रणाम किया था ॥ ४० ॥ इसीभांति शिव निकटस्थ दूसरे मुनियों ने भी ब्रह्माजी को दण्डवत की, अनन्तर ब्रह्माजी ने सम्पूर्ण सृष्टि से नमस्कृत चन्द्रशेखर शिवजी से कहा ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे ईश ! तुमको मैं भलीभांति जानता हूं कि तुम विश्वरूप जगत् के योनि बीज, शक्ति, प्रकृति के पुरुषके ईश, भेद रहित निर्विकार, परब्रह्म सर्वान्तरयामी हो ॥ ॥ ४२ ॥ हे भगवन् ! तुम इस विश्वको शिव शक्ति स्वरूपसे मकड़ी के जालेकी सदृश उत्पन्न करते पालते और संहार करतेहो ॥ ४३ ॥ आपने वेदही की रक्षाके हेतु दक्षसे यज्ञ करवायाथा यह सम्पूर्ण सृष्टि की मर्यादा आपही की बांधीहुई है, कि जिसका ब्राह्मण लोग श्रद्धा पूर्वक नियमानुसार पालन करते हैं ॥ ४४ ॥ हे मंगलरूप ! श्रेष्ठ कर्म करनेवालों को बैकुण्ठ तथा मुक्ति और निषिद्ध कर्म करनेवालों को घोर नरक देनेवाले आपही हो तो फिर किसकारण से किसी पुरुष को नियम विरुद्ध फल प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ आपके चरणों में मन रखनेवाले, सम्पूर्ण प्राणियों में आपही को देखनेवाले सर्व विश्वको अपने रूपसे अपृथक् देखनेवाले सज्जनों का मूर्खों की भांति क्रोधसे पराभव नहीं होसकता, तो फिर आपका तो कहनाही क्या है ॥ ४६ ॥ इसहेतु भेद बुद्धिवाले, कर्म में दृष्टि रखनेवाले खोटी वासनावाले दूसरे का उदय देखकर कुढ़नेवाले मर्म भेदी पुरुष दूसरे मनुष्यों का खोटे बचनों से चाहे पीड़ित करें तौ भी आपसे महात्माओं का धर्म है कि दैवसे मारे इन मनुष्यों को न मारें ॥ ४७ ॥ परमेश्वर की अपार मायासे मोहित जन चाहैं भेद बुद्धि रक्खें तौ भी साधु पुरुष अपनी नम्रतासे यह बिचारकर कि ईश्वरकी इच्छा ऐसीही थी उनपर कृपाही करते हैं किन्तु मारतेही नहीं॥४८॥हे प्रभु! इसीकारण मायासेनष्टबुद्धि तथा कर्मामें लगेहुये इनलोगों के इस अपराधको क्षमाकरो; क्योंकि आपकी बुद्धि भगवान् की मायासे मोहित नहीं है इसहेतु आप सबजानतेहो॥४९॥हे रुद्र ! इस यज्ञमें यज्ञ करनेवालोंने इसके फल देनेवाले आपको यज्ञकाभाग नहींदिया, इसकारण आपने इसको विध्वंसकिया अब आपही प्रजापति दक्षके

जीवताद्यजमानोऽयंप्रपद्येताक्षिणीभगः । भृगोःश्मश्रूणिरोहन्तुपूष्णोदन्ताश्चपूर्व वत् ॥ ५१ ॥ देवानांभग्नगात्राणामृत्विजांचायुधाश्मभिः । भवतानुगृहीतानामाशु मन्योस्त्वनातुरम् ॥ ५२ ॥ एषतेरुद्रभागोऽस्तुयदुच्छिष्टोऽध्वरस्यवै । यज्ञस्तेरुद्र भागेनकल्पतामद्ययज्ञहन् ॥ ५३ ॥

इतिश्रीमद्भा०चतुर्थस्कन्धेरुद्रसान्त्वनंनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

मैत्रेयउवाच ॥ इत्यजेनानुनीतेन भवेनपरितुष्यता । अभ्यधायिमहाबाहो प्रहस्यश्रूयतामिति ॥ १ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ नाघंप्रजेशबालानां वर्णयेनानुचिन्तये । देवमायाऽभिभूतानां दण्डस्तत्रधृतोमया ॥ २ ॥ प्रजापतेर्दग्धशीर्ष्णो भवत्व जमुखंशिरः मित्रस्यचक्षुषेक्षेत भागंस्वंबर्हिषोभगः ॥ ३ ॥ पूषातुयजमानस्य दद्भिर्जक्षतुपिष्टभुक् । देवाःप्रकृतसर्वाङ्गा येमउच्छेषणंददुः ॥ ४ ॥ बाहुभ्यामश्विनोःपूष्णो हस्ताभ्यांकृतबाहवः । भवन्त्वध्वर्यवश्चान्ये बस्तश्मश्रुर्भृगुर्भवेत् ॥ ५ ॥ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ तदासर्वाणिभूतानि श्रुत्वामीढुष्टमोदितम् । परितुष्टात्मभिस्तात साधुसाध्वित्यथाब्रुवन् ॥ ६ ॥ ततोमीढ्वांसमामन्त्र्य शुनासीराःसहर्षिभिः । भूयस्तद्देवयजनं समीढ्वद्वेधसोययुः ॥ ७ ॥ विधायकार्त्स्न्येनचतद्यदाहभगवान्भवः संदधुःकस्यकायेनसवनीयपशोःशिरः ॥ ८ ॥ संधीयमानेशिरसि दक्षोरुद्राभिवी-

यज्ञका उद्धार करो आप ही से यह समाप्त होगा ॥ ५० ॥ हे विभो ! अब इतना अनुग्रह कीजिये कि हमारा यजमान दक्ष जीजाय, भग देवता के नेत्र अच्छे होजायँ, भृगु के डाढी तथा पूषा के दांत निकल आवें ॥ ५१ ॥ हे मन्यो ! इन देवताओं के और ऋत्विजों के सम्पूर्ण छिन्न भिन्न हुये अंग पहिले की समान ठीक होजायँ, यह कृपा आप करिये ॥५२॥ हे कल्याण रूप ! हे यज्ञ बिध्वंसक ! इस यज्ञ में जो कुछ शेष भाग बचा है, वह सब आप का भाग है, इस प्रकार यह सब अंगीकार करते हैं, हे रुद्र ! अब आप अनुग्रह करके यह कह दीजिये कि, रुद्रके भाग से यह यज्ञ तुम्हारा पूर्ण हो ॥ ५३ ॥

इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे सरला भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

मैत्रेय जी ने कहा कि—हे महाबाहो विदुर ! जब ब्रह्माजी ने शिवजी की इस भांति प्रार्थना की तब उन्हों ने हंसकर ब्रह्माजी से कहा ॥ १ ॥ शिवजी बोले कि—हे प्रजेश ! मैं इन अज्ञानियों के अपराध का न तो वर्णन ही करता हूं न स्मरणही करता हूं—कारण कि यह मूर्खलोग देव की माया से मोहित होरहे हैं, इस लिये मैंने इनको योग्य दंडादिया है ॥ २ ॥ प्रजापति दक्ष का मस्तक तो जलगया है इस कारण उसके धड़ पर बकरे का मुखलगा दियाजाय और भग देवता अपने यज्ञके भागको मित्र देवता के नेत्रों से देखें ॥ ३ ॥ पूषा देवता पिसा हुआ अन्न यजमान के दांतों से भक्षण किया करें, और शेष देवता जिन्हों ने मुझे यज्ञका शेषभाग दिया है उन सबके अंगपूर्ण होजांयगे ॥ ४ ॥ किंतु जिनके समस्त अंग नष्ट होगये हैं उनकी भुजाओं का काम अश्विनी कुमार की भुजाओं से और हाथों का काम पूषाके हाथों से चलेगा और अध्वर्यु तथा ऋत्विज जैसे पहले थे वैसेही होजांयगे, और भृगुकी डाढी बकरे की डाढी की होगी ॥ ५ ॥ मैत्रेयजीने कहा—कि हे विदुर ! श्री शिवजी के यह स्नेहभरे बचन् सुन समस्त प्राणियों ने प्रसन्न हो साधु२ कहा ॥ ६ ॥ फिर सब ऋषियों और देवताओंने श्री शिवजी से विनती की कि वहांपर चलकर सम्पूर्ण कार्य सिद्ध करिये तब देवताओं की आज्ञा मान शिवजी ब्रह्मा और ऋषियों सहित देवताओं को साथले उस यज्ञशाला में आये ॥ ७ ॥ जिस भांति शिवजी ने कहा था उसी भांति दक्ष प्रजापति के मस्तक का बिधान किया गया ॥ ८ ॥ मस्तक के सधान

क्षितः । सद्यःसुप्तइवोत्तस्थौ ददृशेचाग्रतोमृडम् ॥ ९ ॥ तदावृषध्वजद्वेषकलिला-त्माप्रजापतिः । शिवावलोकादभवच्छरद्ध्रद इवामलः ॥ १० ॥ भवस्तवायकृतधी-र्नाशक्नोदनुरागतः । औत्कण्ठ्याद्बाष्पकालया संपरेतांसुतांस्मरन् ॥११॥ कृच्छ्रा त्संस्तभ्यचमनः प्रेमविह्वलितःसुधीः । शशंसनिर्व्यलीकेन भावेनेशंप्रजापतिः १२ ॥ दक्षउवाच ॥ भूयाननुग्रहअहोभवता कृतोमेदण्डस्त्वयामयिभृतोयदपिप्रलब्धः॥ नब्रह्मबन्धुषुचवांभगवन्नवज्ञा तुभ्यंहरेश्चकुतएवधृतव्रतेषु ॥ १३ ॥ विद्यातपोव्रत-धरान्मुखतःस्म विप्रान्ब्रह्मात्मतत्त्वमवितुंप्रथमंत्वमस्राक्षः । तद्ब्राह्मणान्परमसर्ववि-पत्सुपासिपालः पशूनिवविभोप्रगृहीतदण्डः ॥ १४ ॥ योऽसौमयाऽविदिततत्त्वदृ-शासभायांक्षिप्तो दुरुक्तिविशिखैरगणय्यतन्माम् । अर्वाक्पतन्तमर्हत्तमनिन्दयाऽ-पाद्दृष्ट्याऽऽर्द्रया सभगवान्स्वकृतेनतुष्येत् ॥ १५ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ क्षमाप्यैवंस मीढ्वांसं ब्रह्मणाचानुमन्त्रितः । कर्मसंतानयामास सोपाध्यायर्त्विगग्निभिः ॥१६॥ वैष्णवंयज्ञसंतत्यै त्रिकपालंद्विजोत्तमाः।पुरोडाशंनिरवपन्वीरसंसर्गशुद्धये ॥ १७ ॥ अध्वर्युणात्तहविषायजमानोविशांपत । धियाविशुद्धयादध्यौतथाप्रादुरभूद्धरिः॥ ॥१८॥तदास्वप्रभयातेषांद्योतयन्त्यादिशोदश । मुष्णंस्तेजउपानीतस्तार्क्ष्येणस्तोत्र वाजिना ॥ १९ ॥ श्यामोहिरण्यरशनोऽर्ककिरीटजुष्टोनीलालकभ्रमरमण्डितकुण्ड

करते ही शिवजीने दयादृष्टि से उसकी ओर देखा, दृष्टिके पड़तेही वह प्रजापति दक्ष ऐसेउठकर बैठगया मानो निद्रा से अभी जागा है और नेत्र खोलकर देखातो अपने आगे महादेव जी को देखा ॥९॥यद्यपि शिवके द्रोहसे उसका चित्त मलीनहोगयाथा परन्तु महादेवजीका दर्शन करतेही उसका चित्त शरदके तड़ाग की भांति निर्मल होगया ॥ १० ॥ उसने शिवजी की स्तुतिका विचार किया परन्तु स्नेहवश कुछ न करसका और अपनी मृत कन्या सतीके शोच से दुःखके कारण आंखोंमें आंसू भरलाया ॥११॥फिर क्लेश पूर्वक चित्त को स्थिर कर, प्रेमातुर हो दक्ष प्रजापतिनें निष्कपट भावसे शिवजी की स्तुति करनेलगा॥१२॥दक्षने कहा—कि हे भगवन् ! मैंने तो आपका तिरस्कार कियाथा, तौभी आपने उस अपमानका ध्यान त्यागकर मुझे दँडदिया यह बड़ीही कृपाकी, आप तथा हरि जब तुच्छ ब्राह्मणों की भी अवज्ञा नहीं करते तब तप व्रत धारी श्रेष्ठ ब्राह्मणों की अवज्ञा आपसे कैसे होसकती है ॥१३॥ हे प्रभो ! आपने विद्या, तप व्रत धारण करने वाले ब्राह्मणों का वेद मार्गकी रक्षाके हेतु प्रथम अपने मुख से उत्पन्न किया है हे भगवन् ! जैसे ग्वाला गौओं की रक्षा करता है इसी भांति आपभी सम्पूर्ण दुःखों से ब्राह्मणों की रक्षा करते हो ॥ १४ ॥ यद्यपि मैंने तत्व ज्ञान से रहित होकर सुर सभा के मध्य में खोटे बचनों से आप का तिरस्कार किया था तौ भी आपने उन अपराधों की गणना न करके साधुओं के तिरस्कार करनें के प्रभाव से नरक में गिरते हुए मुझको कृपा दृष्टि से बचाया हे नाथ ! अपने किये हुए उपकार से आपही सन्तुष्टहो मेरी सामर्थ्य नहीं जो इसका बदला मैं दे सकूं ॥ १५ ॥ मैत्रेयजी ने कहा कि— इस प्रकार दक्ष ने शिवजी से अपना अपराध क्षमा करवाय, ब्रह्माजी से आज्ञा मांग, उपाध्याय ऋत्विज और अग्नि सहित यज्ञ कर्म का आरम्भ किया ॥ १६ ॥ तीन प्रकार का पुरोडास विष्णु के निमित्त, यज्ञ पूर्ण करने के हेतु, प्रमथादिक वीरों की शुद्धि के लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दिया ॥ १७ ॥ हे विदुर ! अध्वर्यु ने साकल्य ग्रहण किया और यजमान ने विशुद्ध बुद्धि से ध्यान किया तो उस काल हरि भगवान् प्रगट हुए ॥ १८ ॥ उस गरुड़ पर चढ़ कर कि जिस के पंखों से सामवेद निकलता है, भगवान् आये, उस काल उनके प्रभाव से सब के प्रभाव क्षीण होगये और उनकी कांति से दिशायें प्रकाशित होगईं ॥१९॥ श्यामअंग, सुवर्ण की क्षुद्र घंटिका

लास्यः।कम्बुकञ्जचक्रशरचापगदाऽसिचर्मव्यग्रैर्हिरण्मयभुजैरिवकर्णिकारः॥२०॥
वक्षस्यधिश्रितवधूर्वनमाल्युदारहासावलोककलयारमयंश्चविश्वम्। पार्श्वभ्रमद्व्य
जनचामरराजहंसः श्वेतातपत्रशशिनोपरिरज्यमानः ॥ २१ ॥ तमुपागतमालक्ष्य
सर्वेसुरगणादयः। प्रणेमुः सहसोत्थायब्रह्मेन्द्रत्र्यक्षनायकाः ॥ २२ ॥ तत्तेजसाहत
रुचः सन्नजिह्वाः ससाध्वसाः। मूर्ध्नाधृतांजलिपुटाउपतस्थुरधोक्षजम् ॥ २३ ॥ अ-
प्यर्वाग्वृत्तयोयस्यमहित्वात्मभुवादयः। यथामतिगृणन्तिस्मकृतानुग्रहविग्रहम् ॥
२४ ॥ दक्षोगृहीतार्हणसादनोत्तमंयज्ञेश्वरंविश्वसृजांपरंगुरुम्। सुनन्दनन्दाद्यनुगैर्वृ
तंमुदागृणन्प्रपेदेप्रयतःकृतांजलिः ॥ २५ ॥ दक्ष उवाच ॥ शुद्धंस्वधाम्न्युपरताखि-
लबुद्ध्यवस्थंचिन्मात्रमेकमभयंप्रतिषिध्यमायाम्। तिष्ठंस्तयैवपुरुषत्वमुपेत्यतस्या
मास्तेभवानपरिशुद्धइवात्मतन्त्रः ॥ २६ ॥ ऋत्विज ऊचुः ॥ तत्त्वंनतेवयमनञ्जनरुद्र
शापात्कर्मण्यवग्रहधियोभगवन्विदामः। धर्मोपलक्षणमिदंत्रिवृदध्वराख्यंज्ञातंयदर्थ
मधिदैवमदोव्यवस्थाः ॥ २७ ॥ सदस्या ऊचुः ॥ उत्पत्त्यध्वन्यशरणउरुक्लेशदुर्गे
ऽन्तकोग्रव्यालान्विष्टेविषयमृगतृष्णात्मगेहोरुभारः। द्वन्द्वश्वभ्रेखलमृगभयेशोक

और सूर्य की भांति प्रकाशित क्रीट मुकुट धारण किये, भ्रमर वत नील अलकें शोभित मुख वाले, कानों में कुंडल नाना प्रकार के आभूषण धारण किये भुजाओं में शंख, चक्र, बाण, धनुष, गदा, पद्म, खड्ग, ढाल लेने से पुष्प वृक्ष की भांति शोभित ॥ २० ॥ बनमालापहिने, उदार हास्य समेत दृष्टि की कला से सम्पूर्ण विश्वको रमण कराते वक्षः स्थल में लक्ष्मी को धारणकिये शोभायमान थे उनके दोनों ओर व्यजन और चंवर ढुल रहे थे और ऊपरकी ओर पूर्णचन्द्र की सदृश श्वेत छत्र अत्यन्त शोभा को बढ़ारहाथा ॥ २१ ॥ उन श्रीभगवान् को आया देख ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र सहित सम्पूर्ण देवताओं ने उठ कर दंडवत प्रणाम किया ॥ २२ ॥ उन भगवान के तेज से जिनकी कांति मलीन होगई है ऐसे वह लोग भगवान की महिमा से क्षुभित चित्त हो गद्गद वर्णो से अधोक्षज भगवान की स्तुति करने लगे ॥ २३ ॥ तब ब्रह्मादिक देवताओं की मन वाणी की सब वृत्तियां बिसरगई भगवान की महिमा का नहीं पहुंच सकी तौभी उन्हों नें कृपा करने के लियें निज स्वरूप धारणकर अपने निकट आयेहुए भगवानकी यथा मति अनुसार सबने स्तुति की ॥ २४ ॥ दक्ष नें यज्ञपात विश्वस्रष्टा ब्रह्मादिकों के श्रेष्ठ गुरु तथा सुनंदनन्द आदि पार्षदों से घिरे हुए श्री हरि के निकट जाकर पूजा की सामग्री अर्पण की, श्री भगवाननें उस पूजा की सामग्री का पात्र अपनें कर कमल से ग्रहण किया, इस से दक्ष प्रजापति ने आनंदित हो हाथ जोड़ बड़ा धैर्यता से स्तुति की ॥ २५ ॥ दक्ष नें कहा कि जाग्रदादि अवस्थाओं से रहित, शुद्ध स्वरूप, उपरामको प्राप्त हुई बुद्धि, अभय और अद्वितीय एक आपही हो, आप माया का तिरस्कार कर स्वतन्त्र होनें परभी माया से मनुष्य देहका नाटक धरते हो, उस माया में रहने से आपऐसे ज्ञान होते हैं कि मानों राग, द्वेष आदिक आपमें आगएहों परंतु यह मेरी दृष्टिका भेद है आप तो निर्लेप और निर्बिकार हैं ॥ २६ ॥ सब ऋत्विजों नें स्तुति की कि–हे निरंजन! शिवजी के शाप से अपनें कर्मों में व्याप्त हुई बुद्धिसे धर्म के उत्पन्न करनेवाले तथा बेदके प्रतिपादक इसयज्ञ रूप आपके स्वरूप कोही हमतो जानते हैं कि जिस के हेतु देवताओं के पृथक् २ नियम हुए हैं किंतु आप के गूढ़ तत्व को नहीं जानते ॥ २७ ॥ सभासदों नें कहा कि–हे शरणागत बत्सल! इस सृष्टि रूपी मार्ग में कि जहां कही ठहरनें का स्थान नहीं है और नानाभांति के दुःखदायी स्थान हैं जहां विषय रूपी उग्रसर्प फुंकाररहाहै सुख दुःखरूप नाना भांति के गढ़े हैं दुष्ट मनुष्य घातक की समान, तथा शोक रूपी दावाग्नि प्रज्वलित होरही है उस में प्रवेश करता हुआ, तृष्णा से दुःखित

दांधेऽन्नसार्थःपादौकस्तंशरणदकदायातिकामोपमष्टः ॥ २८ ॥ रुद्र उवाच ॥ तव वरदवरांघ्रावाशिषेहाखिलार्थेह्यपिमुनिभिरसक्तैरादरेणार्हणीये। यदिरचितधियंमाविद्यलोकोऽपविद्धंजपतिनगणयेतत्त्वत्परानुग्रहेण ॥ २९ ॥ भृगुरुवाच॥ यन्मायया गहनयाऽपहृतात्मबोधा ब्रह्मादयस्तनुभृतस्तमसिस्वपन्तः। नात्मन्श्रितंतवविदन्त्यधुनाऽपितत्त्वंसोयंप्रसीदतुभवान्प्रणतात्मबंधुः ॥ ३० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नैतत्स्वरूपं भवतोऽसौपदार्थभेदग्रहैःपुरुषायावदीक्षेत्। ज्ञानस्यचार्थस्यगुणस्यचाश्रयोमायामयाद्व्यतिरिक्तोयतस्त्वम् ॥ ३१ ॥ इंद्र उवाच ॥ इदमप्यच्युतविश्वभावनंवपुरानंदकरंमनोदृशाम्। सुरविद्विट्क्षपणैरुदायुधैर्भुजदण्डैरुपपन्नमष्टभिः ॥ ३२ ॥ पत्न्य ऊचुः ॥ यज्ञोयंतवयजनायकेनसृष्टोविध्वस्तःपशुपतिनाऽद्यदक्षकोपात्। तंनस्त्वंशवशयनाभशांतमेधंयज्ञात्मन्नलिनरुचादृशापुनीहि ॥ ३३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अनन्वितंतेभगवन्विचेष्टितंयदात्मनाचरसिहिकर्मनाऽज्यसे। विभूतयेयतउपसेदुरीश्वरींनमन्यतेस्वयमनुवर्ततींभवान् ॥ ३४ ॥ सिद्धा ऊचुः ॥ अयंत्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यांमनोवारणःक्लेशदावाग्निदग्धः। तृषार्तोऽवगाढोनसस्मारदावंननिष्क्रामतिब्रह्मसंपन्नवन्नः ॥ ३५ ॥ यजमान्युवाच॥स्वागतंतेप्रसीदेश तुभ्यंनमःश्रीनिवास श्रियाकांतयात्राहिनः। त्वामृतेऽधीशनाङ्गैर्मखः शोभतेशीर्षहीनः कबन्धोयथापूरु-

तथा विषय रूपी मृग तृष्णा के जलके वाले, शरीर तथा घरके बृहत बोझको उठाए इन अज्ञानियो का समूह किस काल आप के चरण रूपी स्थान को पावेगा ॥ २८ ॥ शिवजीने स्तुति की कि हे वरद ! मै आपके चरणारविंद में, कि जो सर्व विषय त्यागी ऋषियो के भी सत्कार पूर्वक पूजने योग्य हैं, सदैव मन लगाये रहताहूं उस मुझको यह मूर्ख लोग आचार भ्रष्ट कहते हे परन्तु मे आपकी असीम कृपा से उसे कुछभी नहीं गिनता ॥२९॥ भृगु ऋषि ने स्तुति की कि हे आत्मन् ! आपकी गम्भीर माया से ज्ञान रहित अंधकार मे पड़े हुए ब्रह्मादिक भी आप के तत्व को नही जान सकते, हे भक्तों के आत्मबन्धो ! भगवान हम पर अनुग्रह करो ॥ ३० ॥ ब्रह्माजी ने स्तुति की कि—ज्ञान, अर्थ, गुणाश्रय पदार्थों को पृथक् २ भांति से जानने वाली इंद्रियों द्वारा, जो कुछ पुरुष देखता है, उन ज्ञान पदार्थो से और अधिष्ठान रूप मायाके पदार्थों से आप पृथक् हो ॥ ३१ ॥ इंद्रने स्तुति की कि—हे अच्युत ! सृष्टि पालक चिदानन्द दृष्टिको आनन्ददायी और असुरों के नाश करने वाले, ऊंचे आयुध उठाए हुए आपका यह आठ भुजाका स्वरूप आपको अत्यंत ही योग्य है ॥ ३२ ॥ स्त्रियों नें स्तुति की कि हे यज्ञ स्वरूप ! ब्रह्माजी नें आपकी ही पूजाके हेतु यज्ञ उत्पन्न किये हैं वही यज्ञ, दक्ष पर रोष के कारण श्रीशिवजी ने विध्वस कर दिया इससे यह अपवित्र होगयाहै हे यज्ञात्मन् ! आपनें कमल दल नेत्रो की दृष्टि से इसे पवित्र करो ॥ ३३ ॥ ऋषियों ने स्तुति की हे परमेश्वर ! आपकी लीला अत्यंत ही अद्भुत है कारण कि आप स्वयं कर्म करते हुए भी उनमे लिप्त नही होते, । जिन की समृद्धि के हेतु दूसरे मनुष्य भजन करते हैं, वह लक्ष्मी जी आपका अनुसरण करती हैं और आप उन का सत्कार नहीं करते, इसी कारण आपका निर्लिप्त होनाभी संभव है ॥ ३४ ॥ सिद्धों ने स्तुति की कि क्लेश रूपी दावाग्नि से दग्ध हुआ तथा तृष्णा से दुःखित यह हमारा मन रूपी हाथी आप के चरित्ररूपी पवित्र अमृत की नदी में स्नान करने से अब सृष्टि रूपी दावाग्नि का स्मरण भी नहीं करता, न उस नदी से बाहर निकलता है किंतु ऐसा ज्ञात होताहै कि वह परब्रह्म के साथ एक होगया है ॥ ३५ ॥ प्रसूति नें स्तुति की—कि हे लक्ष्मी निकेत भगवान ! आप अपनी प्यारी लक्ष्मी जी के संग आए यह बहुत अच्छा किया आप हमपर अनुग्रह करो, हमारी रक्षाकरो, हम आपको प्रणाम

षः ॥ ३६ ॥ लोकपाला ऊचुः ॥ दृष्टः किंनोदृग्भिरसद्ग्रहैस्त्वंप्रत्यग्द्रष्टादृश्यतेयेन दृश्यम् । मायाह्येषाभवदीयाहिभूमन् यस्त्वंषष्ठःपंचभिर्भासिभूतैः ॥ ३७ ॥ योगेश्वरा ऊचुः ॥ प्रेयान्नतेऽन्योऽस्त्यमुतस्त्वयिप्रभो विश्वात्मनीक्षन्नपृथग्यआत्मनः अथापि भक्त्येशतयोपधावतामनन्यवृत्त्याऽनुगृहाणवत्सल ॥ ३८ ॥ जगदुद्भवस्थितिलयेषुदैवतो बहुभिद्यमानगुणयात्ममायया । रचितात्मभेदमतयेस्वसंस्थया विनिवर्तितभ्रमगुणात्मनेनमः ॥ ३९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमस्तेश्रितसत्त्वाय धर्मादीनांचसूतये । निर्गुणायचयत्काष्ठां नाहंवेदापरेऽपिच ॥ ४० ॥ अग्निरुवाच ॥ यत्तेजसाऽहंसुसमिद्धतेजाहव्यं वहेस्वध्वरआज्यसिक्तम् । तंयज्ञियंपञ्चविधंचपंचभिःस्विष्टं यजुर्भिःप्रणतोस्मियज्ञम् ॥ ४१ ॥ देवाऊचुः ॥ पुराकल्पापायेस्वकृतमुदरीकृत्यविकृतं त्वमेवाद्यस्तस्मिन्सलिलउरगेन्द्राधिशयने । पुमान्शेषेसिद्धैर्हृदिविमृशिताध्यात्मपदविः सएवाद्याक्ष्णोर्यःपथिचरसिभृत्यानवसिनः ॥४॥ गंधर्वा ऊचुः॥अंशांशास्तेदेवमरीच्यादयएतेब्रह्मेन्द्राद्या देवगणारुद्रपुरोगाः॥क्रीडाभाण्डं विश्वमिदंयस्यविभूमंस्तस्मै नित्यंनाथनमस्तेकरवाम ॥ ४३ ॥ विद्याधरा ऊचुः ॥ त्वन्मायथाऽर्थमभिपद्यकलेवरेऽस्मिन्कृत्वा ममाहमितिदुर्मतिरुत्पथैःस्वैः । क्षिप्तोऽ

करती हैं, जैसे धड़ और अंगों के होने परभी बिना शिर के शोभा नहीं देता उसी भांति यह यज्ञ भी दूसरे अंगों के होनेपर आप विना नहीं शोभित होता ॥ ३६ ॥ लोकपालों ने स्तुति की कि हे भूमन् ! सम्पूर्ण के देखनें वाले आपके आत्म रूप को हमारी खोटे पदार्थों के ग्रहण करने वाली इन्द्रियां कदापि नहीं जान सकतीं, कारण कि पंचभूत से बने हुए शरीर में आप छठे जीव रूप से प्रकाश करते हो, यही आपकी माया है ॥ ३७ ॥ योगेश्वरों ने स्तुति की कि–हे प्रभु ! आप परब्रह्म हो जो पुरुष आपको अपने से पृथक् नहीं समझता उस से बढ़कर और आप को कोई प्यारा नहीं है हे भक्त वत्सल ! अनन्य वृत्ति से ध्यान करने वाले हम पर अनुग्रह करो ॥ ३८ ॥ सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति तथा संहार में प्राणियों की अदृष्टता के कारण जिनके गुणों का नाना भांति से भेद होता है, ऐसी माया ने जिसके रूपमें त्रिगुणात्मक, (ब्रह्मा, विष्णु, महेश,) भेद रचे हैं, परन्तु रूपकी स्थिति देखते उनमें भेदकी भ्रांति तथा गुण उसका कुछ भी कारण नहीं है, ऐसे आप परमात्मा को हम प्रणाम करते हैं ॥ ३९ ॥ वेद ब्रह्मनें स्तुतिकी—कि–धर्मों के उत्पन्न करनेवाले सत्वगुण के स्वीकार करनेवाले निर्गुण तथा जिनके तत्वको न मैं न दूसरा कोई जानता है उन आपको हम दण्डवत करते हैं ॥ ४० ॥ अग्निने स्तुतिकी–कि जिनकी कांति से मैं प्रकाशित हूं और श्रेष्ठ यज्ञ में घृतसे परिपूर्ण होकर हविको देवताओं के हेतु पहुंचाया करता हूं उन यज्ञपालक और पांचभांति के (अग्निहोत्र, दर्श पूर्णमास, चातुर्मास्य पशु और सोम)यज्ञ मूर्ति और पांच मंत्रों से (आः श्रावय, अस्तु श्रौषट्यज यजामहे, वषट्) पूजन किये जाते परमेश्वरको दंडवत करताहूं ४१ ॥ देवताओं ने स्तुतिकी कि—निज रचित सृष्टिको प्रलयकाल में अपने पेटमें लेकर प्रलय के जलमें शेष नागरूपी सेजके ऊपर जो सोयेथे वही भगवान जिनके ज्ञानमार्ग का सिद्ध पुरुष अपने चित्त में विचार करते हैं आज हमारे दृष्टिगोचर हुए आपने बड़ी कृपा की आप सदैव ऐसेही भक्तों की रक्षा करते हो ॥ ४२ ॥ गन्धर्वों ने स्तुतिकी—कि हे देव यह मरीचि आदिक ऋषी और ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र आदि देवता आपके अंशों के अंश हैं तथा यह सम्पूर्ण सृष्टि आपका खिलौना है उन आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ ४३ ॥ विद्याधरों ने स्तुति की कि—जो मनुष्य सम्पूर्ण पुरुषार्थों के देनेवाले इस शरीर को पाकर आपकी मायाके वशीभूत हो" मेरा, मैं,, इस भांति का घमण्ड करते हैं तथा खोटे मार्गगामी अपने पुत्र आदिके अपमान

प्यसत्रिपथलालसआत्ममोहं युष्मत्कथाऽमृतनिषेवकउद्व्युदस्येत् ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ त्वंक्रतुस्त्वंहविस्त्वंहुताशःस्वयंत्वंहिमन्त्रःसमिद्दर्भपात्राणिच । त्वंसदस्यर्त्विजोदम्पतीदेवता अग्निहोत्रंस्वधासोमआज्यंपशुः ॥ ४५ ॥ त्वंपुरागांरसायामहासूकरोदंष्ट्रया पद्मिनींवारणेन्द्रोयथा । स्तूयमानोनदँल्लीलयायोगिभिर्व्युज्जहर्थत्रयीगात्रयज्ञक्रतुः ॥ ४६ ॥ सप्रसीदत्वमस्माकमाकांक्षतांदर्शनंतेपरिभ्रष्टसत्कर्मणाम् । कीर्त्यमानेनृभिर्नाम्नियज्ञशतेयज्ञ विघ्नाःक्षयंयांतितस्मैनमः ॥ ४७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इतिदक्षःकविर्यज्ञंभद्ररुद्राभिमर्शितम् । कीर्त्यमानेहृषीकेशेसंनिन्येयज्ञभावने ॥४८॥ भगवान्स्वेनभागेनसर्वात्मासर्वभागभुक् । दक्षंबभाषआभास्यप्रीयमाणइवानघ ॥ ४९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहंब्रह्माचशर्वश्चजगतःकारणंपरम्। आत्मेश्वरउपद्रष्टास्वयंदृगविशेषणः ॥ ५० ॥ आत्ममायांसमाविश्यसोऽहंगुणमयींद्विज । सृजन्रक्षन्हरन्विश्वंदध्रेसंज्ञांक्रियोचिताम् ॥ ५१ ॥ तस्मिन्ब्रह्मण्यद्वितीयेकेवलेपरमात्मनि । ब्रह्मरुद्रौचभूतानिभेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥ ५२ ॥ यथापुमान्नस्वांगेषुशिरःपाण्यादिषुक्वचित् । पारक्यबुद्धिंकुरुतएवंभूतेषुमत्परः ॥ ५३ ॥ त्रयाणामेकभावानांयोनपश्यतिवैभिदाम् । सर्वभूतात्मनांब्रह्मन्सशांतिमधिगच्छति ५४ मैत्रेय उवाच ॥ एवंभगवतादिष्टःप्रजापतिपतिर्हरिम् । अर्चित्वाक्रतुनास्वेनदेवानुभयतोऽयजत् ॥ ५५ ॥ रुद्रंचस्वेनभागेनह्युपाधावत्समाहितः। कर्मणोदवसानेन

करने परभी, अज्ञानता से तुच्छ विषयों में तृष्णा रखते हैं वेमनुष्य भी यदि आपके चरित्रामृत का पानकरैं तो उनकी भी माया दूरहोजाय ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणों ने स्तुतिकी, कि यज्ञ, हवि, अग्नि, मंत्र, समिधा, दर्भ, पात्र, सभासद, ऋत्विज, यजमान, तथा उसकी पत्नी, देवता, अग्निहोत्र, स्वधा, सोमवल्ली, घृत, दुग्ध, और पशु यह आपका ही स्वरूप हैं ॥ ४५ ॥ हे वेदमूर्ति ! यज्ञ और क्रतुरूप गर्जन करते हुये, वाराह मूर्ति धारण कर आप योगियों के स्तुति करत हुये, पृथ्वी को पाताल से डाढ़पर रखकर इसभांति ले आये कि जैसे हाथी कमलनी को ले आता है ॥ ४६ ॥ वह आप हमलोगों पर जो आपके दर्शनाभिलाषी तथा सत्कर्म से भ्रष्टहुये हैं, अनुग्रह करो, हे यज्ञ भवगन्! यज्ञके भीतर मनुष्य जिसकाल आपके नामका उच्चारण करते हैं उसी कालसमस्त यज्ञके विघ्न नष्ट होजाते हैं, हे भगवन् ! ऐसे आपको हम दंडवत करते हैं ॥ ४७ ॥ मैत्रेयजी ने कहा कि वहांपर सबलोग यज्ञपालक भगवान की इसभांति स्तुति कररहे थे, कि दक्ष प्रजापति ने शिवजी के विध्वंस किये यज्ञका फिर आरम्भ किया ॥ ४८ ॥ हे विदुर ! सम्पूर्ण भागों के भोक्ता सर्वरूप परमेश्वर अपना भागले प्रसन्न हो दक्ष प्रजापति से बोले ॥ ४९ ॥ श्री भगवान बोले कि सृष्टिका परम कारण सर्वात्मा, ईश्वर, साक्षी, स्वयं प्रकाश उपाधि रहित जो मैं हूं, वही ब्रह्मा और शिवजी भी हैं ॥ ५० ॥ हे द्विज ! मैं ही त्रिगुणात्मक मायाको धारण करके विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार, करने के हेतु उन २ कार्य्यों के उचित पृथक् २ नाम धारण करता हूं ॥ ५१ ॥ मुझ अद्वितीय, परब्रह्म, परमात्मा को अज्ञानी मनुष्य, ब्रह्मा, रुद्र और प्राणियों से पृथक् देखते हैं ॥५२॥ जिसभांति मनुष्य अपने शिरहाथचरणादि अपनेअंगोंमेंसे किसी अंगकोभी दूसरेका नहीं जानता, इसीप्रकार मेराभक्तभी सब प्राणियों में मेराही रूप मानता है ॥५३ ॥ हे ब्रह्मन् ! सम्पूर्ण प्राणियों के आत्मा और एक रूप हमतीनों देवोंमें जो मनुष्य अभेद बुद्धि रखता है वही शांति पाताहै ॥ ५४ ॥ मैत्रेय जी ने कहा कि श्री परमेश्वर ने दक्ष प्रजापति को जब इस भांति शिक्षादी तब दक्षने अपने यज्ञमें प्रथम उनका पूजन कर फिर दूसरे देवताओं का पूजन किया ॥ ५५ ॥ फिर मनको स्थिर करके यज्ञके शेषभाग से शिवजी का पूजनकर तथा दूसरे

सोमपानितराप्नपि ॥ उदवस्यसहर्त्विग्भिःसस्नाववभृथंततः ॥ ५६ ॥ तस्माअप्य
नुभावेनस्वेनैवावाप्तराधसे ॥ धर्मएवमतिंदत्त्वा त्रिदशास्तेदिवंययुः ॥ ५७ ॥
एवंदाक्षायणीहित्वासतीपूर्वकलेवरम् । यज्ञेहिमवतःक्षेत्रेमेनायामितिशुश्रुम ॥५८॥
तमेवदयितंभूयआवृङ्क्तेपतिमम्बिका अनन्यभावैकगतिंशक्तिःसुप्तेवपूरुषम् ॥५९॥
एतद्भगवतःशम्भोःकर्मदक्षाध्वर द्रुहः । श्रुतंभागवताच्छिष्यादुद्धवान्मेबृहस्पतेः
॥ ६० ॥ इदंपवित्रंपरमीशचेष्टितंयशस्यमायुष्यमघौघमर्षणम् । योनित्यदाऽऽकर्
ण्यनरोऽनुकीर्तयेद्धुनोत्यघंकौरवभक्तिभावतः ॥ ६१ ॥

इतिश्रीमद्भा०म०च०दक्षयज्ञेसर्वदेवकृतस्तुतिवर्णनंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ सनकाद्यानारदश्चऋभुर्हंसोऽरुणिर्यतिः । नैतेगृहान्ब्रह्मसुता
ह्यावसन्नूर्ध्वरेतसः ॥१॥ मृषाऽधर्मस्यभार्यासीद्दम्भंमायांचशत्रुहन् । असूतमि
थुनंतत्तुनिर्ऋतिर्जगृहेप्रजः ॥ २ ॥ तयोःसमभवल्लोभो निकृतिश्चमहामते । ताभ्यां
क्रोधश्चहिंसाचयद्दुरुक्तिःस्वसाकलिः ॥ ३ ॥ दुरुक्तौकलिराधत्तभयंमृत्युंचसत्त
म । तयोश्चमिथुनंजज्ञेयातनानिरयस्तथा ॥ ४ ॥ संग्रहेणमयाऽऽख्यातःप्रतिसर्गस्त
वानघ । त्रिःश्रुत्वैतत्पुमान्पुण्यंविधुनोत्यात्मनोमलम् ॥ ५ ॥ अथातःकीर्तयेवंशं
पुण्यकीर्तेःकुरूद्वह । स्वायम्भुवस्यापिमनोर्हरेरंशांशजन्मनः ॥ ६ ॥ प्रियव्रतोत्तान
पादौशतरूपापतेःसुतौ । वासुदेवस्यकलयारक्षायांजगतःस्थितौ ॥ ७ ॥ जायेत

सोमपीने वालों का समाप्ति देनेवाले कर्म से पूजन किया ॥ ५६ ॥ दक्षको अपनेही ऐश्वर्य से सम्पूर्ण सिद्धियां प्राप्त होगई थीं परन्तु तौभी देवता गण उसको धर्म में बुद्धि रहने का वरदान देकर वैकुंठ को गये ॥ ५७ ॥ दक्षकी कन्या सती इस भांति अपनी देह त्यागकर, हिमाचल की स्त्री मैनाके गर्भ से उत्पन्न हुई, ऐसा हमने सुना है ॥ ५८ ॥ प्रलय काल में सोई हुई शक्ति जिस भांति परमेश्वर को प्राप्त होती है उसी भांति हिमाचल की कन्या जगदम्बा पार्वती भी अनन्य वृत्ति से भजने वाले भक्तों के आश्रय रूप महादेव को दूसरीबार प्राप्त हुई ॥ ५९ ॥ दक्ष यज्ञ विध्वंसी श्री भगवान् महादेव जी का यह चरित्र मैंने बृहस्पति जी के शिष्य, भगवद्भक्त उधौजी के मुख से सुनाथा सो आपको सुनाया ॥ ६० ॥ हे विदुर ! यह महादेव जी का परम पवित्र चरित्र जो आयुका बढ़ाने वाला और पापोंका नाश करनेवाला है, जो नित्य सुनेगा तथा सुनावेगा वह प्राणी भगवद्भक्ति के प्रभाव से सम्पूर्ण पापों से छूट जायगा ॥ ६१ ॥

इतिश्रीभागवते०महापुराणेचतुर्थस्कंधेसरलाभाषाटीकायांसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मैत्रेयजी ने कहा कि—हे विदुर जी ! सनकादिक, नारद, ऋभु, हंस अरुणि और यति इन ब्रह्माजी के पुत्रों ने गृहस्थाश्रम नहीं किया यह ऊर्द्धरेता हुये ॥ १ ॥ हे शत्रुहन् ! ब्रह्माजी के पुत्र अधर्म की मृषा नाम स्त्री से दंभ पुत्र तथा माया नाम कन्या हुई—इस जोडे को निर्ऋति ने लिया कारण कि उसके कोई पुत्र नहीं था ॥ २ ॥ इन दोनों से लोभ पुत्र और शठता नाम्नी कन्या हुई, तथा लोभ और शठता से क्रोध पुत्र और हिंसा नाम्नी कन्या उत्पन्न हुई और क्रोध तथा हिंसा से कलि नामक पुत्र और दुरुक्ति नाम्नी कन्या हुई ॥ ३ ॥ हे सत्तम ! कलि और दुरुक्ति से भय पुत्र तथा मृत्यु नाम्नी कन्या उत्पन्न हुई, भय और मृत्यु से निरयनाम पुत्र तथा यातना नाम्नीक कन्या हुई ॥ ४ ॥ हे विदुर ! संक्षेप से मैंने यह सर्ग वरणन किया है जो मनुष्य तीन बार इस को सुनते हैं उनके शरीर के सब मल नष्ट होजाते हैं ॥५॥ इसके अनन्तर पुण्य पवित्र यश ब्रह्माजी के अंश स्वायंभुवमनुका वंश कहता हूं, सो सुनो ॥ ६ ॥ प्रियव्रत और उत्तानपाद यह मनुकी शतरूपा स्त्री से दो पुत्र परमेश्वर के अंश से, जगत् की स्थिति

त्तानपादस्यसुनीतिःसुरुचिस्तयोः । सुरुचिःप्रेयसीपत्युर्नेतरायुत्सुतोध्रुवः ॥ ८ ॥
एकदासुरुचेःपुत्रमङ्कमारोप्यलालयन् । उत्तमंनारुरुक्षन्तंध्रुवंराजाऽभ्यनन्दत ॥९॥
तथाचिकीर्षमाणंतंसपत्न्यास्तनयंध्रुवम् । सुरुचिःशृण्वतोराज्ञःसेर्ष्यमाहातिगर्वि
ता ॥१०॥नवत्सनृपतेर्धिष्ण्यंभवानारोढुमर्हति । नगृहीतोमयायत्त्वंकुक्षावपिनृपात्म
जः ॥ ११ ॥ बालोसिबतनात्मानमन्यस्त्रीगर्भसंभृतम् । नूनंवेदभवान्यस्यदुर्लभेऽ
र्थेमनोरथः ॥ १२ तपसाऽऽराध्यपुरुषंतस्यैवानुग्रहणमे । गर्भेत्वंसाधयात्मानंयदी
च्छसिनृपासनम् ॥ १३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मातुःसपत्न्याःसुदुरुक्तिविद्धःश्वसन्
रुषादण्डहतोयथाहिः ।हित्वामिषंतंपितरंसन्नवाचंजगाममातुःप्ररुदन्सकाशम्१४
तंनिःश्वसन्तंस्फुरिताधरोष्ठंसुनीतिरुत्सङ्गउदुह्यबालम् । निशम्यतत्पौरमुखान्नितां
तंसाविव्यथेयद्गदितंसपत्न्याः ॥ १५॥ सोत्सृज्यधैर्यंविललापशोकदावाग्निनादा
वलतेवबाला । वाक्यंसपत्न्याःस्मरतीसरोजश्रियादृशावाष्पकलामुवाह ॥ १६ ॥
दीर्घंश्वसंतीवृजिनस्यपारमपश्यतीबालकमाहबाला । मामङ्गलंतातपरेष्वमंस्था
भुङ्क्तेजनोयत्परदुःखदस्तत् ॥ १७ ॥ सत्यंसुरुच्याऽभिहितंभवान्मेयद्दुर्भगा
याउदरेगृहीतः । स्तन्येनवृद्धश्चविलज्जतेयांभार्येतिवावोढुमिडस्पतिर्माम् ॥ १८ ॥
आतिष्ठतत्तातविमत्सरस्त्वमुक्तंसमात्राऽपियदव्यलीकम् । आराधयाऽधोक्षजपाद

के हेतु उत्पन्न हुए ॥ ७ ॥ उत्तानपाद के सुनीति और सुरुचि दो रानियांथीं, सुरुचि राजाको बहुत प्यारी थी और ध्रुवकी माता सुनीति राजा को अप्रियथी ॥ ८ ॥ एक समय,उत्तानपाद सुरुचि के पुत्र उत्तम को गोद में लिये हुये प्यार कर रहेथे उसी समय ध्रुवजीभी आकर गोदपर चढ़ने लगे तो राजा ने उन का आदर नहीं किया ॥ ९ ॥ सुरुचि ने अपने सौत के पुत्र ध्रुवजी को राजा की गोदी में बैठते देख ईर्षायुक्त राजाके सुनते कहनेलगी ॥ १० ॥ सुरुचि ने कहा कि हे बेटा ! तू मेरी कोखमें से नहीं उत्पन्नहुआ है इसकारण सिंहासनपर बैठने योग्य नहीं है ११ ॥ अरे ! तू अभी बालक है तुझे इस बात का ज्ञान नहीं है कि मैं दूसरी स्त्री के गर्भ से जन्मा हूं जो चेष्टा तू करता है वह मनोरथ तेरा बहुत दूर है ॥ १२ ॥ जो तू राजसिंहासनपर बैठनेकी इच्छा करता है तो परमेश्वरका आराधन कर, कि जिस की कृपासे तू मेरे गर्भ में आवे और राज्य सिंहासन के योग्य हो ॥ १३ ॥ मैत्रेयजी ने कहा कि हे विदुर ! वह ध्रुव सौतेली माके खोटे वचनों से विंधकर, बेत से मारे हुये सर्प की समान रोष से श्वास लेता हुआ मौन साधे पिता को छोड़ रोता हुआ अपनी माताके समीप गया ॥ १४ ॥ क्रोध के मारे जिस के होठ फड़क रहे हैं ऐसे ध्रुवको गम्भीर श्वास लेता देख कर माता सुनीती ने दौड़कर उसे गोदमें उठा लिया, और सौत की कही हुई बातें अंतःपुर के मनुष्यों से सुन वह अति ही पीड़ितहुई ॥ १५ ॥ और दावाग्नि के मध्य लताकी भांति शोकरूप दावाग्निसे व्याप्त वह स्त्री धीरजको छोड़ व्याकुल हो, सौतकी बातों का स्मरण कर, कमल से नेत्रों से आंसू बहाने लगी ॥ १६ ॥ बड़ी दीर्घ श्वास लेकर, दुःखकी थाह न देख सुनीति अपने बालक ध्रुवसे कहने लगी, कि हे पुत्र ! इसमें दूसरों का अपराधक मतमानो क्योंकि जो पहले औरोंको दुःख देताहै उसको उसका फल भोगनाही पड़ता है ॥ १७ ॥ जो सुरुचि ने कहा—वह ठीक है, एक तो तू मुझ आभागिनी के उदरसे जन्मा, दूसरे तू मेरा दूध पीकर इतना बड़ा हुआ राजा मुझ को भार्य्या कहते तो हैं परन्तु मनमें लज्जित होते हैं ॥ १८ ॥ हे पुत्र ! इस कारण सौत ने जो बातें कहीं हैं उन्हें तू स्मरण रख, मत्सरता छोड़, अधोक्षज भगवान के चरणों का आराधन कर तो उत्तम कैसा

पद्मंयदीच्छसेऽध्यासनमुत्तमोयथा ॥ १९ ॥ यस्यांघ्रिपद्मंपरिचर्यविश्वविभावना यात्तगुणाभिपत्तेः । अजोऽध्यतिष्ठत्खलुपारमेष्ठ्यंपदंजितात्मश्वसनाभिवन्द्यम् २० तथामनुर्वोभगवान्पितामहो यमेकमत्यापुरुदक्षिणैर्मखैः । इष्ट्वाभिपेदेदुरवाप मन्यतोभौमंसुखंदिव्यमथापवर्ग्यम् ॥ २१ ॥ तमेववत्साऽऽश्रयभृत्यवत्सलंमुमु क्षुभिर्मृग्यपदाब्जपद्धतिम् । अनन्यभावेनिजधर्मभाविते मनस्यवस्थाप्यभजस्वपूरुषम् ॥ २२ ॥ नान्यंततःपद्मपलाशलोचनाद्दुःखच्छिदंतेमृगयामिकंचन । यो मृग्यतेहस्तगृहीतपद्मयाश्रियेतरैरंगविमृग्यमाणया ॥ २३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं संजल्पितंमातुराकर्ण्यार्थागमंवचः । संनियम्यात्मनात्मानं निश्चक्रामपितुःपुरात् ॥ २४ नारदस्तदुपाकर्ण्यज्ञात्वायस्यचिकीर्षितम् । स्पृष्ट्वामूर्धन्यघघ्नेनपाणिनाप्राहविस्मितः ॥ २५ ॥ अहोतेजःक्षत्रियाणांमानभङ्गममृष्यताम् । बालोऽप्ययं हृदाधत्तेयत्समातुरसद्वचः ॥ २६ ॥ नारद उवाच ॥ नाधुनाप्यवमानन्तेसन्मानं वापिपुत्रक । लक्षयामःकुमारस्यसक्तस्यक्रीडनादिषु ॥ २७ ॥ विकल्पेविद्यमानेऽपिनह्यसंतोषहेतवः । पुंसो मोहमृतेभिन्ना यल्लोकेनिजकर्मभिः ॥ २८ ॥परितुष्येत्त तस्ताततावन्मात्रेणपूरुषः दैवोपसादितंयावद्वीक्ष्येश्वरगतिंबुधः २९ ॥ अथमात्रोप दिष्टेन योगनावरुरुत्ससि । यत्प्रसादंसवैपुंसां दुराराध्योमतोमम ॥ ३० ॥ मुनयः पदवींयस्यनिःसंगेनोरुजन्मभिः । नविदुर्मृगयन्तोऽपितीव्रयोगसमाधिना ॥ ३१ ॥

राज सिंहासन तुझ को प्राप्त होगा ॥ १९ ॥ जिन्हों ने जगत् की रक्षा के हेतु सत्वगुण का अधिष्ठान स्वीकार किया है, तथा जिन के चरण कमलों की सेवा करके ब्रह्माभी ब्रह्मादको प्राप्त हुये हैं और जिनकी बंदना मन प्राणों के बश करने वाले मुनि लोग करते है ॥ २० ॥ उसी भांति तुम्हारे पितामह मनु भगवान जिन परमेश्वर को सर्वांतर्यामी दृष्टि से पुष्कल दक्षिणा वाले यज्ञों को कर दूसरे यत्न से न मिलनेवाले पृथ्वी, स्वर्ग तथा मोक्ष संबंधी आनंद को प्राप्त हुये हैं ॥ २१ ॥ हेपुत्र ! जिन भक्तवत्सल भगवानके चरणकमलको मुमुक्षु लोग ढूंढत हैं,उन्हीं भगवान को अनन्यभाव तथा निजधर्म से अपने शुद्ध मनमें स्थापित करो और उन्हींका ध्यानकरो ॥२२॥ कमलनयन भगवान के अतिरिक्त तेरा दुःख दूर करने वाला और कोई मुझ नहीं दीखता, हे पुत्र ! जिन को ब्रह्मा इत्यादिक देवता ढूंढते रहते हैं और लक्ष्मीजी हाथमें कमल लिये जिन्ह की चाहना करती हैं उन्हीं का आराधन कर ॥ २३ ॥ मैत्रेयजी ने कहा कि इस भांति वहध्रुव अपने अभिप्राय को सिद्धि करने वाले माता के बाक्य सुन आत्मा से आत्मा का नियम करके पिता के घर से निकला ॥ २४ ॥ भगवान के परम भक्त नारदजी यह सुन तथा उसके प्रयोजन को समझ, आश्चर्यित हो, पाप दूर करने वाला अपना हाथ उसके शिरपर धर मनही मन में कहने लगे ॥ २५ ॥ अहो तिरस्कारहुए क्षत्रियों के प्रभाव को तो देखो कि यह बालक है तोभीसौतेली माता के खोटे बचनों को हृदय में धारण नहीं करसका ॥२६॥ नारदजी बोले कि हे पुत्र ! अभी तू बालक है अभी खेल में आसक्त रहना चाहिये न कि मान सन्मानका बिचार करे ॥२७॥ और यदि तुझे मान अपमान का विचार है तोभी तुझे संतुष्ट रहना चाहिये कारण कि जो असंतुष्टता के कारण हैं वह सब अज्ञान कल्पित हैं किसी प्रकार से पृथक् नहीं हैं क्योंकि सृष्टि में सब दुःख सुख कर्मों सेही होते हैं ॥ २८ ॥ हे तात ! इसी कारण परमेश्वर की कृपा से सम्पूर्ण कार्य पूरे होते हैं यह जान मनुष्यको जितना मिलजाय उतनेहीपर संतुष्ट होजावे ॥२९॥ माता के कहे हुए यत्नोंसे जिसे तू प्रसन्न करना चाहताहै उसका मनुष्यों पर प्रसन्न होना अत्यन्त दुःसह है ॥३०॥ मुनि लोग निःसंग तथा तीव्रयोगोंकी समाधि से नानाजन्मों पर्य्यन्त उसकी पदवी ढूंढते हैं

अतोनिवर्ततामेषनिर्बन्धस्तवनिष्फलः । यतिष्यतिभवान्काले श्रेयसांसमुपस्थि
ते ॥ ३२ ॥ यस्ययद्दैवविहितंसतेनसुखदुःखयोः । आत्मानंतोषयन्देहीतमसःपार
मृच्छति ३३ ॥ गुणाधिकान्मुदंलिप्सेदनुक्रोशंगुणाधमात् । मैत्रींसमानादन्विच्छे
न्नतापैरभिभूयते ॥ ३४ ॥ ध्रुवउवाच ॥ सोऽयंशमोभगवता सुखदुःखहतात्मना
म् । दर्शितःकृपयापुंसां दुर्दर्शोऽस्मद्विधैस्तुयः ॥ ३५ ॥ अथापिमेऽविनीतस्य
क्षात्रंघोरमुपेयुषः । सुरुच्यादुर्वचोबाणैर्नभिन्नेश्रयतेहृदि ॥ ३६ ॥ पदंत्रिभुवनो
त्कृष्टंजिगीषोःसाधुवर्त्ममे । ब्रूह्यस्मत्पितृभिर्ब्रह्मन्नन्यैरप्यनधिष्ठितम् ॥ ३७ ॥
नूनंभवान्भगवतोयो ऽङ्गजःपरमेष्ठिनः । वितुदन्नटतेवीणां हितार्थं जगतोऽर्क
वत् ॥ ३८ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ इत्युदाहृतमाकर्ण्य भगवान्नारदस्तदा । प्रीतः
प्रत्याहतंबालं सद्वाक्यमनुकम्पया ॥ ३९ ॥ नारदउवाच ॥ जनन्याऽभिहितः
पन्थाः सवैनिःश्रेयसस्यते । भगवान्वासुदेवस्तं भजतत्प्रवणात्मना ॥४०॥ धर्मा
र्थकाममोक्षाख्यं यइच्छेच्छ्रेयआत्मनः । एकमेवहरेस्तत्र कारणंपादसेवनम् ॥४१॥
तत्तातगच्छभद्रंते यमुनायास्तटंशुचि । पुण्यंमधुवनंयत्र सान्निध्यंनित्यदाहरेः ॥
॥ ४२ ॥ स्नात्वाऽनुसवनं तस्मिन्कालिन्द्याःसलिलेशिवे । कृत्वोचितानिनिवसन्ना
त्मनःकल्पितासनः ४३ ॥ प्राणायामेनत्रिवृता प्राणेन्द्रियमनोमलम् । शनैर्व्युदस्या
भिध्यायेन्मनसागुरुणागुरुम् ॥ ४४ ॥ प्रसादाभिमुखंशश्वत्प्रसन्नवदनेक्षणम् । सु

तोभी नहीं जानसकते ॥ ३१ ॥ इसी कारण तू इस हठको त्याग कर, तेरा यह हठ निष्फल है, श्रेष्ठ कल्याण के करने वाले समय में तुझे तप करना योग्य है ॥ ३२ ॥ परमेश्वर के दिये हुएही पर आत्मा को प्रसन्न रखना चाहिये कारण कि संतोषीही को मोक्ष प्राप्त होती है ॥ ३३ ॥ जो अपने से गुणों में विशेष होवे उसे देखकर आनंदित होवे, तथा जो न्यूनहो उसपर कृपा रक्खे और जो समान हो उससे मित्रता रक्खे, ऐसे मनुष्य का किसी प्रकार के ताप से पराभव नहीं होता ॥ ३४ ॥ ध्रुवजी ने कहा कि आपने सुख दुःख से ताड़ित मनुष्योंपर दया करके यह शांतिका मार्ग दिखाया कि जो हम सरीखों को मिलना अति दुस्तर है ॥ ३५ ॥ परन्तु मुझ दुर्विनीत तथा घोर क्षत्री स्वभाव वाले को यह ठहर नहीं सकता, कारण कि मेरा हृदय सुरुचि के दुर्वाक्य रूपी बाणों से छिदाहुआ है ॥ ३६ ॥ हे ब्रह्मन् ! उस त्रिलोकी के पदको जहां पर हमारे पुरुषा तथा औरभी दूसरे नपहुंचेहों, मैं जीतने की कामना करता हूं इस कारण आप मुझे श्रेष्ठ मार्ग बतलाइये ॥ ३७ ॥ आप भगवान साक्षात् ब्रह्माजी के अंग से उत्पन्न हुएहो, आप सूर्य की समान जगत के हित के हेतु वीणा बजाते हुए विचरते हो ॥ ३८ ॥ मैत्रेयजी ने कहा कि—नारदजी ध्रुवजी के ऐसे गम्भीर बचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और सत्य वाक्य से उस बालक पर परम स्नेह किया ॥३९॥ नारदजी बोले—कि तेरे कल्याण के हेतु जो तेरी माता ने मार्ग बतलाया है उस स साक्षात् परमेश्वर प्राप्त होंगे, तू नम्रीभूत होकर उनका भजनकर ॥४०॥ जो मनुष्य अपना सुख चाहे तो वह धर्म अर्थ काम और मोक्षके हेतु श्रीभगवानके चरणारविंदोंकी सेवाकरे क्योंकि मुख्य कल्याण का कारण वही है ॥ ४१ ॥ हे पुत्र ! यमुनाजीके पवित्र तटपर पवित्र मधुवन क्षेत्र है जहां नित्यप्रति श्रीभगवान विराजतेहैं वहांजा तेरा कल्याणहोगा ॥ ४२ ॥ उस पवित्र आश्रम में जाकर प्रतिदिन कालिन्द्रीमें कि जिसका जल अत्यन्त कल्याण कारकहै स्नानकर उचित क्रियासे निश्चितहो अपना दृढ़ आसन जमाकरके वहां तू रहना ॥ ४३ ॥ तीनप्रकार के प्राणायामसे प्राण इन्द्री और मनके मलको दूरकरके धीर मनसे गुरुरूप श्रीभगवान् ध्यानकर ॥ ४४ ॥ अपने ऊपर

नासंसुभ्रुवं चारुकपोलंसुरसुन्दरम् ॥ ४५ ॥ तरुणंरमणीयांगमरुणोष्ठेक्षणाधरम् ॥ प्रणताश्रयणंनृम्णं शरण्यंकरुणार्णवम् ॥४६॥ श्रीवत्साकंघनश्यामं पुरुषंवनमालिनम् । शंखचक्रगदापद्मैरभिव्यक्तचतुर्भुजम् ॥ ४७ ॥ किरीटिनंकुण्डलिनंकेयूरवलयान्वितम् । कौस्तुभाभरणग्रीवंपीतकौशेयवाससम् ॥ ४८ ॥ कांचीकलापपर्यस्तंलसत्कांचननूपुरम् । दर्शनीयतमंशान्तं मनोनयनवर्धनम् ॥ ४९ ॥ पद्भ्यांनखमणिश्रेण्या विलसद्भ्यांसमर्चताम् । हृत्पद्मकर्णिकाधिष्ण्यमाक्रम्यात्मन्यवस्थितम्॥५०॥ स्मयमानमभिध्यायेत्सानुरागावलोकनम् । नियतेनैकभूतेनमनसावरदर्षभम् ५१ ॥ एवंभगवतोरूपंसुभद्रंध्यायतोमनः । निर्वृत्यापरयातूर्णं संपन्नंननिवर्तते ॥ ५२ ॥ जप्यश्चपरमोगुह्यः श्रूयतांमेनृपात्मज । यंसप्तरात्रंप्रपठन् पुमान्पश्यतिखेचरान् ॥ ॥ ५३ ॥ ओंनमोभगवतेवासुदेवाय ॥ मन्त्रेणानेनदेवस्य कुर्याद्द्रव्यमयींबुधः । सपर्यांविविधैर्द्रव्यैर्देशकालविभागवित् ॥ ५४ ॥ सलिलैःशुचिभिर्माल्यैर्वन्यैर्मूलफलादिभिः । शस्तांकुरांशुकैश्चार्चेत्तुलस्याप्रिययाप्रभुम् ॥ ५५ ॥ लब्ध्वाद्रव्यमयीमर्चां क्षित्यम्ब्वादिषुवार्चयेत् । आभृतात्मामुनिःशांतोयतवांमितवन्यभुक् ५६ ॥ स्वेच्छावतारचरितैरचिन्त्यनिजमायया । करिष्यत्युत्तमश्लोकस्तद्ध्यायेद्धृदयंगमम्॥५७॥ परिचर्याभगवतो यावत्यःपूर्वसेविताः । तामंत्रहृदयेनैवप्रयुंज्यान्मन्त्रमूर्तये ॥ ५८ ॥ एवंकायेनमनसा वचसाचमनोगतम् । परिचर्यमाणोभगवान्भक्तिमत्परिचर्यया ॥ ५९ ॥ पुंसाममायिनांसम्यग्भजतांभाववर्धनः । श्रेयोदिशत्यभिम

प्रसन्न होनेमें सुमुख निरन्तर प्रसन्न बदन, सुन्दर नेत्र नासिका भ्रुकिटी कपोल देवताओं में सुंदर हैं ॥ ४५ ॥ युवा अवस्था, सुन्दर अङ्ग, अरुण होंठ बिंबवत अधर नम्रीभूतोंके आश्रय सुखदायक शरणरूप करुणानिधान, ॥ ४६ ॥ श्रीवत्सका चिह्न मेघवत श्यामवर्ण वनमाली अन्तर्यामी शंख चक्र, गदा, पद्मसे, शोभित चतुर्भुजहैं ॥ ४७ ॥ किरीट, कुण्डल केयूर कंकणसे देदीप्यमान कौस्तुभमणि और आभूषण ग्रीवा में धारणकिये पीताम्बर पहरे ॥४८॥ कटि में क्षुद्रघंटिका धारण किये कंचन के नूपुर चरणोंमें सजाये दर्शनयोग्य, शांतचित्त मन और नेत्रोंके आनन्द वर्द्धक ॥ ४९ ॥ मणिपंक्तिसे नख शोभित भक्तोंके हृदय कमलकी कलियोंपर चरण विराजमान जीवात्मा में स्थित ५० ॥ मंद २ मुसकाते प्रेमसहित अवलोकन, व दान देनेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णभगवान का प्रथम धारणासे दृढ़हुए एकाग्र मनसे ध्यानकर ॥ ५१ ॥ हे महाराज ! जो मंगलदायक भगवानके रूपका ध्यानकरताहै उसका मन शीघ्रही परमानन्दको प्राप्तहो अन्य विषयोंसे छूटजाता है ॥ ५२ ॥ हे नृपात्मज ! परमगुह्य जो जपनेयोग्य मन्त्रहै सो सुन; जिसका सातरात्रि जप करनेसे आकाशके सबदेवता प्रत्यक्ष होजाते हैं ॥५३॥ "ओंनमोभगवते वासुदेवाय" इसमन्त्रसे परमेश्वरको नानाभांतिके पूजनके पदार्थों से देशकालके विभागको जानकर पूजाकरे ॥ ५४ ॥ पवित्रजल, माला,बनके फल, श्रेष्ठपुष्प तथा भगवानकी प्यारी तुलसीसे परब्रह्मकी पूजाकरे ॥५५॥ शालिग्रामादिककी प्रतिमाबनाकर द्रव्यमयी पूजाकरे और अरचाकी पृथ्वी जलादिसे पूजाकरे चित्तमें धैर्यरख मौनहो शांतिपूर्वक थोड़ासा बनफल भोजनकरे ॥ ५६ ॥ और अपनी इच्छासे जो अवतार धारण करतेहैं उनका चिंतवनकरै फिर भगवान अपनी योगमाया करके अवतारले अनेक लीला करेंगे, इस हृदयमें ईश्वरका ध्यानकरे ॥ ५७ ॥ जिसभांतिसे प्रथम आचार्योंने भगवान्की सेवाकी है, उसीभांति द्वादशाक्षर मन्त्रका जपकर परमेश्वरकी पूजाकरै ॥ ५८ ॥ इसप्रकार देह मन, बाणीसे चित्तमें ध्यान कियेहुये परमेश्वरकी भक्ति परायण परिचर्यासे पूजाकरे ॥ ५९ ॥ निश्चल भक्ति करनेवाले भक्तोंका भक्ति बढ़ानेवाले परमेश्वर जो वह धर्मअर्थ काम मोक्ष आदिक कल्याणकारी

तंयद्धर्मादिषुदेहिनाम् ॥ ६० ॥ विरक्तश्चेन्द्रियरतौ भक्तियोगेनभूयसा । तंनिरन्तर भावेन भजेताद्धाविमुक्तये ॥ ६१ ॥ इत्युक्तस्तंपरिक्रम्यप्रणम्यचनृपार्भकः । ययौ मधुवनंपुण्यं हरेश्चरणचर्चितम् ॥ ६२ ॥ तपोवनंगतेतस्मिन्प्रविष्टोऽन्तःपुरंमुनिः । अर्हितार्हणकोराज्ञासुखासीनउवाचतम् ॥ ६३ ॥ नारदउवाच ॥ राजन्किंध्यायसे दीर्घं मुखेनपरिशुष्यता । किंवानरिशुष्यतेकामो धर्मोवाऽर्थेनसंयुतः ॥६४॥ राजो वाच ॥ सुतोमेबालकोब्रह्मन् स्त्रैणेनाऽकरुणात्मना । निर्वासितःपंचवर्षःसहमात्रा महान्कविः ॥ ६५ ॥ अप्यनाथंवनेब्रह्मन् मास्मादन्त्यर्भकंवृकाः श्रान्तंशयानंक्षुधि तंपरिम्लानमुखाम्बुजम् ॥ ६६ ॥ अहोमेबतदौरात्म्यंस्त्रीजितस्योपधारय । योऽङ्कं प्रेम्णाऽऽरुरुक्षन्तंनाभ्यनन्दमसत्तमः ॥६७॥ नारदउवाच ॥ मामाशुचःस्वतनयं देव गुप्तंविशांपते । तत्प्रभावमविज्ञाय प्रावृंक्तेयद्यशोजगत् ॥६८॥ सुदुष्करंकर्मकृत्वा लोकपालैरपिप्रभुः । एष्यत्यचिरतोराजन् यशोविपुलयंस्तव ॥ ६९ ॥ मैत्रेयउवाच इतिदेवर्षिणाप्रोक्तंविश्रुत्यजगतीपतिः।राजलक्ष्मीमनादृत्यपुत्रमेवान्वचिंतयत् ७०॥ तत्राभिषिक्तःप्रयतस्तामुपोष्यविभावरीम् । समाहितःपर्यचरदृष्यादेशेनपूरुषम् ॥ ॥ ७१ ॥ त्रिरात्रान्तेत्रिरात्रान्तेकपित्थबदराशनः । आत्मवृत्त्यनुसारेणमासंनिन्येऽर्च यन्हरिम् ॥ ७२ ॥ द्वितीयंचतथामासं षष्ठेषष्ठेऽर्भकोदिने । तृणपर्णादिभिःशीर्णैः कृतान्नोऽभ्यर्चयद्विभुम् ॥७३॥ तृतीयंचानयन्मासं नवमेनवमेऽहनि।अब्भक्षउत्तम श्लोकमुपाधावत्समाधिना ॥ ७४ ॥ चतुर्थमपिवैमासं द्वादशेद्वादशेऽहनि । वायु

पदार्थ चाहतेहैं सो देतेहैं ॥ ६० ॥ जोपुरुष मोक्षचाहे वह विषयोंसे विरक्तहोकर भक्तिद्वारा दृढ़ हुये अनन्य भावसे साक्षात् परब्रह्म का भजनकरै ६१ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि इसभांति नारदजी के वचनसुन उन्हें दण्डवतकर प्रदक्षिणादे वह राजकुमार परमेश्वरके चरणोंसे चर्चित उस पवित्र मधुवनको चलदिया ॥ ६२ ॥ ध्रुवके तपोवनजाने के पश्चात् नारदजीने राजाके अंतःपुरमें प्रवेश किया, राजा उत्तानपादने पूजनीय नारदजीकी पूजाकी नारदजीने विराजकर राजासे कहा ॥ ॥ ६३ ॥ नारदजी बोले कि हराजन् ! आपको क्या ऐसा बड़ा शोचहै कि जो आपका मुख सूख रहाहै आपका धर्म अर्थ काम तोनहीं नष्टहोगया ॥ ६४ ॥ राजाने कहा कि—हेब्रह्मन् ! मुझ कठोर चित्तने स्त्रीके वशीभूत होकर ज्ञानवान महात्मा ५ वर्ष के बालकको उसकी मातासमेत घरसे निकाल दिया ॥ ६५ ॥ हे ब्रह्मन् ! जिसका कोमल मुख कुम्हलारहाहै ऐसे थकेहुये भूखे सोतेहुये उस अनाथ बालकको कहीं वनमें भेड़िया तो न खाजायँ ॥ ६६ ॥ अहो मुझ दुरात्मा स्त्रीजितको को तो देखो कि प्रेमपूर्वक गोदीपर चढ़तेहुये उस बालक की मैंने प्रीतिनकी ॥ ६७ ॥ नारदजी ने कहा कि हेराजन्! उस दैवरक्षित अपने पुत्रका तू शोच मतकरे उसके प्रभावको तू नहीं जानता उसकी कीर्त्तिका जगतमें विस्तारहोगा ॥ ६८ ॥ लोकपालोंको भी दुस्तर ऐसा कर्मकरके थोड़ेही कालमें आवेगा हे राजन् ! वह आपकेयशका विस्तार करेगा ॥ ६९ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि राजा उत्तानपाद नारदजीके यह बचन सुन राजलक्ष्मीका निरादरकर पुत्रकी चिन्ता करनेलगा ॥७० ॥ वे ध्रुवजी यमुनामें स्नानकर स्थिरहो जिसरात्रि में वहां पहुँचे उसरात्रिको उपवासकर नारदजी की आज्ञासे एकाग्रचित्तहो परमेश्वरका पूजन करनेलगे ॥७१॥ तीन २ रात्रिके अन्तमें कैथ और बेरका भोजनकिया, इसभांति आत्माकी वृत्तिके अनुसार एक महीना बिताया ॥ ७२ ॥ इसीभांति उस बालकने दूसरे महीनेमें छठेदिनके उपरांत आपसे गिरेहुये तृण औरपत्ते आदिकका भक्षणकर परमेश्वर का भजन किया ॥ ७३ ॥ तीसरे महीनेमें नौ २ दिनमें केवल जलपानकर समाधिलगा नारायण का ध्यानकिया ॥ ७४ ॥ चौथे महीनें बारह २ दिनके उपरांत वायु भक्षणकर श्वासरोक

भक्षोजितश्वासो ध्यायन्देवमधारयत् ॥ ७५ ॥ पंचमेमास्यनुप्राप्ते जितश्वासोनृपात्मजः । ध्यायन्ब्रह्मपदैकेन तस्थौस्थाणुरिवाचलः ॥ ७६ ॥ सर्वतोमनआकृष्य हृदिभूतेन्द्रियाशयम् । ध्यायन्भगवतोरूपं नाद्राक्षीत्किंचनापरम् ७७ ॥ आधारं महदादीनांप्रधानपुरुषेश्वरम् । ब्रह्मधारयमाणस्यत्रयोलोकाश्चकम्पिरे॥ ७८ ॥ यदैकपादेनसपार्थिवार्भकस्तस्थौ तदंगुष्ठनिपीडितामही । ननामतत्रार्धमिभेन्द्रधिष्ठिता तरीवसव्येतरतःपदेपदे ॥ ७९ ॥ तस्मिन्नभिध्यायतिविश्वमात्मनो द्वारंनिरुध्याऽसुमनन्यया धिया । लोकानिरुच्छ्वासनिपीडिताभृशं सलोकपालाःशरणंययुर्हरिम् ॥ ८० ॥ देवाऊचुः ॥ नैवंविदामोभगवन्प्राणरोधम् चराचरस्याखिलसत्वधाम्नः । विधेहितन्नोवृजिनाद्विमोक्षं प्राप्तावयंत्वांशरणंशरण्यम् ॥८१॥ श्रीभगवानुवाच ॥ माभैष्टबालंतपसोदुरत्ययान्निवर्तयिष्यप्रतियातस्वधाम । यतो हिवःप्राणनिरोध आसीदौत्तानपादर्मयिसंगतात्मा ॥ ८२ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०चतुर्थस्कन्धेध्रुवचरिते अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

मैत्रेयउवाच ॥ तएवमुत्सन्नभयाउरुक्रम कृतावनामाःप्रययुस्त्रिविष्टपम् । सहस्रशीर्षापिततोगरुत्मतामधोर्वनंभृत्यदिदृक्षयागतः ॥ १ ॥ सवैधियायोगविपाकतीव्रया हृत्पद्मकोशेस्फुरितंतडित्प्रभम् । तिरोहितंसहसैवोपलक्ष्यबहिःस्थितंतदवस्थंददर्श ॥ २ ॥ तद्दर्शनेनागतसाध्वसः क्षिताववन्दतांगं विनमय्यदण्डवत् । दृग्भ्यांप्रपश्यन्प्रपिबन्निवार्भकश्चुम्बन्निवास्येनभुजैरिवाश्लिषन् ॥ ३ ॥ सतंविवक्ष

परब्रह्म परमात्मा का ध्यानकिया ॥ ७५ ॥ वह राजकुमार पांचवें महीनेमें श्वासरोक परमेश्वरका ध्यान करताहुआ ठूंठकी समान एकपैर से खड़ाहोकर अचलहोगया ॥ ७६ ॥ उस मनको कि जिसमें शब्द आदि विषय और इन्द्रियां निवास करतीहैं सबसे खींचकर परमेश्वरके रूपका ध्यान इसप्रकार करनेलगा कि उसे केवल कृष्ण के और कुछभी नहीं दीखताथा ॥ ७७ ॥ उसके महत्तत्वादिकों के आधार प्रकृति और परब्रह्म परमात्माको धारणासे त्रिलोकी कांपनेलगी ॥ ७८ ॥ जब वह राजकुमार एकपैरसे खड़ारहा, तब उसके अँगूठेसे दबाहुई भूमि इसभांतिसे कुछेक आगेको झुकगई जैसे कि हाथीके बैठनेसे नाव इधरउधर झुकती है ॥ ७९ ॥ प्राण और प्राणके द्वारोंको रोक आत्माके साथ अभेद दृष्टिकर वह परब्रह्म परमात्मा का ध्यानकरनेलगा उससमय समस्त लोक तथा लोकपाल श्वास रुकनेके कारण आत दुःखितहो परमेश्वरकी शरण में गये ॥ ८० ॥ देवताओं ने कहा कि—हेभगवन्! हम नहींजानते कि समस्त चराचर प्राणियोंके श्वास किसकारण रुकगये हेशरणागतवत्सल! हमआपकी शरणागतमेंहैं आप इसदुःखसे हमसबको बचाओ श्रीभगवान् बोले कि—तुम कुछ भय मतकरो जो बालक तपकर रहाहै उसको दुरत्यय तपसे मैं निवारण करूंगा तुम अपने २ धामको जाओ उत्तानपादका पुत्रमेरे स्वरूपकी एकता को प्राप्त होरहा है इसकारण तुम्हारा श्वास रुकगयाहै ॥ ८२ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०चतुर्थेऽस्कंधेसरलाभाषाटीकायांऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

मैत्रेयजीबोले कि—वेसबदेवता भगवानके वाक्योंको सुनअभयहो उनको दंडवतकर वैकुंठको गये, और परब्रह्म भगवान् अपने भक्तके दर्शनकी इच्छासे गरुड़पर बैठमधुवन में आये ॥ १ ॥ ध्रुवयोगसे परिपक्वहुई बुद्धिद्वारा हृदय कमलसे चपलासम चमकवाले भगवानके रूपको अन्तर्ध्यान हुआदेख ज्योंहीं रुककर खड़ाहुआ त्योंउसी रूपका कि जिसका ध्यानकर रहराथा दर्शनहुआ ॥२॥ परमेश्वरके दर्शनोंसे भ्रमयुक्तहो, उसबालकने काष्ठकी समान धरतीपरगिर इसभांति दंडवतकी किमानों नेत्रोंसेपान, मुखसे चुंबन और भुजाओंसे आलिंगन कररहाहो ॥ ३ ॥ वह बालक परमेश्वरके

न्तमतद्विदं हरिर्ज्ञात्वास्यसर्वस्यचहृद्यवस्थितः । कृतांजलिंब्रह्ममयेनकम्बुनापस्प
र्शबालंकृपयाकपोले ॥ ४ ॥ सवैतदैवप्रतिपादितांगिरं दैवींपरिज्ञातपरात्मनिर्णयः
तंभक्तिभावोऽभ्यगृणादसत्वरंपरिश्रुतोरुश्रवसंध्रुवक्षितिः ॥ ५ ॥ ध्रुव उवाच ॥
योऽन्तःप्रविश्यममवाचमिमांप्रसुप्तांसंजीवयत्यखिलशक्तिधरःस्वधाम्ना। अन्यांश्च
हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्प्राणान्नमोभगवतेपुरुषायतुभ्यम् ॥ ६ ॥ एकस्त्वमेवभ-
गवन्निदमात्मशक्त्यामायाख्ययोरुगुणयामहदाद्यशेषम् । सृष्ट्वाऽनुविश्यपुरुष
स्तदसद्गुणेषुनानेवदारुषुविभावसुवद्विभासि ॥ ७ ॥ त्वद्दत्तयावयुनयेदमचष्ट
विश्वंसुप्तःप्रबुद्धइवनाथभवत्प्रपन्नः । तस्यापवर्ग्यशरणंतवपादमूलं विस्मर्यतेऽकृत
विदाकथमार्तबंधो ॥ ८ ॥ नूनंविमुष्टमतयस्तवमाययातेयेत्वांभवाप्ययविमोक्षण
मन्यहेतोः।अर्चन्तिकल्पकतरुंकुणपोपभोग्यमिच्छंतियत्स्पर्शजंनिरयेऽपिनृणाम्॥९॥
यानिर्वृतिस्तनुभृतांतवपादपद्मध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेनवास्यात् । साब्रह्मणि
स्वमहिमन्यपिनाथमाभूत् किंत्वन्तकासिलुलितात्पततांविमानात् ॥१०॥भक्तिंमुहुः
प्रवहतांत्वयिमेप्रसंगोभूयादनन्तमहतामलाशयानाम् । येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यस
नंभवाब्धिंनेष्येभवद्गुणकथाऽमृतपानमत्तः ॥ ११ ॥ तेनस्मरन्त्यतितरांप्रियमीश
मर्त्यंयेचान्वदःसुतसुहृद्गृहवित्तदाराः । येत्वब्जनाभभवदीयपदारविंदसौगंध्य
लुब्धहृदयेषुकृतप्रसंगाः ॥ १२ ॥ तिर्यङ्नगद्विजसरीसृपदेवदैत्यमर्त्यादिभिःपरि

गुणोंके कहनेकी इच्छाकरता था परन्तु स्तुतिआदि करना नहीं जानता था, सर्वान्तर्यामी भगवान
इसबालक के मनकी बातजान उसहाथजोड़ेहुये ध्रुवके पासआकर अपने वेदमय शंखसे उसके
कपोलोंका स्पर्शकिया ॥ ४॥ परमेश्वरकी दीहुई वाणीको प्राप्तहो जीव और परमात्माके निर्णयको
जान वह ध्रुव कि जो भक्तिरसका प्रेमी और ध्रुवपदका गामी है अत्यंत कीर्तिवाले परमेश्वरकी
स्तुति करनेलगा ॥ ५ ॥ ध्रुवनेकहा कि—सर्वशक्ति धारण करनेवाले भगवान् मेरेभीतर व्याप्तहो
मेरीसोईहुई वाणीको और हाथ, पांव, कान, त्वचा, प्राणादिकों को आपचैतन्य करनेवालेहो ऐसे
पुरुषरूप आपको मैं नमस्कार करताहूं ॥ ६ ॥ हेनाथ ! आपके अतिरिक्त और कोईभी ज्ञानरूपा
और शक्तिका धारण करनेवाला नहीं है, आपएकहीहो परन्तु नाना गुणवाली अपनी मायासे महद-
हत्वादिक पदार्थोंकोरचना इन्द्रियादिकोंमें स्थितहो जैसे काष्ठमेंअग्नि अनेकरूपसे प्रकाशित होता है
वैसेही आप देवताओंके रूपसे अनेकरूप होकर प्रकाशित होतेहो॥७॥हे नाथ ! आपहीके दियेहुये
ज्ञानसे ब्रह्माजीने इसजगत्को इसभांति देखा कि जैसे सोताहुआ मनुष्य जागकर देखताहै । हेआ-
र्तबंधो ! मुक्ति देनेवाले आपके चरणोंको उपकारी मनुष्य नहीं भूलसकता ॥८॥ आवागमन छुड़ा-
नेवाले आपका जोमनुष्य कामादिक हेतुयजन करतेहैं, वह अवश्यही आपकी मायासे वंचित किएहैं,
कारणकि वे कल्पवृक्षके सदृश,आपकी सेवाकरके,मिथ्यादेह धारणकर तुच्छसुखोंकी इच्छाकरते हैं
मनुष्यको विषय सम्बन्धी सुखतो नरकमेंभी मिलसकता है ॥ ९ ॥ हेस्वामि ! देह धारियोंको जोसुख
आपके चरण कमलोंका ध्यानकरनेसे और भक्तोंकी कथा सुननेसे प्राप्तहोता है, वहसुख निजानंदरूप
ब्रह्ममेंभी नहीं है तो फिर खड्गरूप कालसे चलायमान होनेवाले विमानोंमें से गिरपड़नेवाले स्वर्गवा
सियोंको कहां मिलसकता है ॥ १० ॥ हेअनंत ! आपकी सदैवभक्ति करनेवाले निर्मलांतःकरण
सज्जनोंका संगसदैव बनारहेकि जिससे आपके गुणोंके चरित्रामृतका पानकर मतवालाहो अतिदुःख
दायी भवसागरको विनाश्रम पारहोजाऊंगा ॥ ११ ॥ हेईश ! हे कमलनाभ ! जिनदेह धारियोंको
आपके चरण कमलोंकी सुगंधिव्याप्त हृदयवाले भक्तोंकासंग प्राप्तहुआ है वेपुरुष अपने इसदेह
और देहसम्बंधी सुहृद, गृह, धन, और स्त्रियोंका अनुसंधान नहीं रखतेहैं ॥ १२॥हेअज ! हेश्रेष्ठ !

चितंसदसत्त्रिशेषम् । रूपंस्थविष्ठमजतेमहदाद्यनेकंनातःपरंपरमवेद्मिनयत्रवादः ॥ १३॥कल्पांतएतदखिलंजठरेणगृह्णञ्छेतेपुमान्स्वदृगनन्तसखस्तदंके । यन्नाभिसिंधुरुहकांचनलोकपद्मगर्भेद्युमान्भगवतेप्रणतोऽस्मितस्मै ॥ १४ ॥ त्वंनित्यमुक्तपरिशुद्धविशुद्धआत्माकूटस्थआदिपुरुषोभगवांस्त्र्यधीशः ।यद्बुद्धयवस्थितिमखण्डितयास्वदृष्ट्याद्रष्टास्थिताविधिमखोव्यतिरिक्तआस्से ॥ १५ ॥ यस्मिन्विरुद्धगतयोह्यनिशंपतन्तिविद्यादयोविविधशक्तयआनुपूर्व्यात् । तद्ब्रह्मविश्वभवमेकमनंतमाद्यमानंदमात्रमविकारमहंप्रपद्ये ॥ १६॥ सत्याऽऽशिषोहिभगवंस्तवपादपद्ममाशीस्तथाऽनुभजतःपुरुषार्थमूर्तेः । अप्येवमार्यभगवान्परिपातिदीनान्वाश्रेववत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥ १७ ॥ मैत्रेय उवाच॥अथाभिष्टुतएवंवैसत्संकल्पेनधीमता । भृत्यानुरक्तोभगवान्प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वेदाहंतेव्यवसितंहृदिराजन्यबालक । तत्प्रयच्छामिभद्रंतेदुरापमपिसुव्रत ॥ १९ ॥ नान्यैरधिष्ठितंभद्रयद्भ्राजिष्णुध्रुवक्षिति । यत्रग्रहर्क्षताराणांज्योतिषांचक्रमाहितम् ॥ २० ॥ मेढ्यांगोचक्रवत्स्थास्नुपरस्तात्कल्पवासिनाम् । धर्मोऽग्निःकश्यपःशुक्रोमुनयोयेवनौकसः ॥ चरंतिदक्षिणीकृत्यभ्रमन्तोयत्सताराकाः ॥ २१ ॥ प्रस्थितेतुवनंपित्रादत्त्वागांधर्मसंश्रयः । षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रंरक्षितामण्डलंभुवः ॥ २२॥ त्वद्भ्रातर्युत्तमे

पशु, पक्षी, वृक्ष, उरग, देव, दैत्य, मनुष्य इत्यादिकसे व्याप्त और सत, असत तथा महत्तत्त्व इत्यादिक नाना कारणवाले आपके इसविराट रूपको तोजानताहूं परन्तु उसईश्वर रूपको कि जहां शब्दका व्यापार नहींहै मैं नहीं जानता ॥ १३ ॥ जो शेष सखा परमेश्वरकि जिनकीदृष्टि अपनेही भीतरहै कल्पांतमें इससम्पूर्ण सृष्टिको आपने उदरमें लयकर शेषजीकी गोदमें शयनकरते हैं तथा जिनके नाभिरूप समुद्रसे उत्पन्न सृष्टिरूपी कमलकी कलीमें ब्रह्माजी उत्पन्नहुये उनपरमेश्वर आपको मैं दंडवत करताहूं ॥ १४ ॥ आपनित्य मुक्तहो, यहजीव आपकी कृपासे होताहै, आपचारों ओरसे शुद्धहो, वहमलीनहै, तुमज्ञानवानहो, वह अज्ञान है, आप आत्माहो, वह जड़है, आप अंतर्यामीहो, वह विकारवानहै, आप अनादिहो, वह आदिमान है, आप भगवानहो, वहभग (ऐश्वर्य्य) हीनहै, आप तीनोगुणोंके अधीशहो, वह अधीन है, आप बुद्धिकी उस अवस्थाको अखंडितचित शक्तिसे जानते हो, तथा स्थिति के हेतु आपयज्ञके अधिष्ठाता विष्णुरूप हुयेहो ॥ १५ ॥ विद्याआदिक नानाभांति की विरुद्धगतिवाली शक्तियां कि जो निरंतर अचानक प्रगटहोतीं हैं उन सृष्टि के उत्पन्न करनेवाले अनंत, अखंड, अनादि, निर्विकार, आनन्दमय, भगवान आपकी मैं शरण आयाहूं ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! जो आपके चरणकमल का सेवन करतेहैं उनके सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होजाते हैं आप उन दीन मनुष्यों की, कि जो आपकी पुरुषार्थ मूर्ति का बारम्बार भजन करतेहैं, सांसारिक भयसे ऐसे रक्षा करतेहो जैसे गऊ अपने बछड़ेको दुग्ध पिलाती तथा वृकादिकोंसे रक्षा करती है, ॥ १७ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि जब श्रेष्ठ संकल्पवाले बुद्धिमान ध्रुवने भगवान की इसभांति स्तुतिकी तब भक्तवत्सल भगवान्ने ध्रुवकी प्रशंसा करके कहा ॥ १८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे राजकुमार ! तेरे चित्तके संकल्पको मैं जानता हूं, तेरा कल्याण होगा तुझको योगियों को जो पद दुर्लभहै वह दूंगा ॥ १९ ॥ हे भद्र ! जिसपर अबतक कोई नहीं पहुंचा उसको प्रकाशित ध्रुवपद कहते हैं तथा जिसमें ग्रह, नक्षत्र, और तारोंका अधीन ज्योतिष चक्र है ॥ २० ॥ वह ज्योतिषचक्र उसके आसपास बैलोंके समूहकीसदृश चारोंओर फिरा करताहै, तथा जिसका त्रिलोकीके नाशहोनेपरभी नाश नहीं होता, और जिसकी प्रदक्षिणा धर्म, अग्नि, कश्यप, इन्द्र, सप्तर्षि करके घूमते फिरते हैं वह अतिदुर्लभ पद तुझे देताहूं ॥२१॥ अब तू अपने नगरको जा तेरा पिता

नष्टेमृगयायांतुतन्मनाः । अन्वेषंतीवनंमातादावाग्निंसाप्रवेक्ष्यति ॥ २३ ॥ इष्ट्वा मांयज्ञहृदयंयज्ञैःपुष्कलदक्षिणैः । भुक्त्वाचेहाशिषःसत्याअंतेमांसंस्मरिष्यसि २४॥ ततोगंतासिमत्स्थानंसर्वलोकनमस्कृतम् । उपरिष्टादृषिभ्यस्त्वंयतोनावर्ततेगतः ॥ २५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यर्चितःसभगवानतिदिश्यात्मनःपदम् । बालस्यपश्यतो धामस्वामगाद्गरुडध्वजः ॥ २६ ॥ सोऽपिसंकल्पजंविष्णोःपादसेवोपसादितम् । प्राप्यसंकल्पनिर्वाणंनातिप्रीतोऽभ्यगात्पुरम् ॥ २७ ॥ विदुर उवाच ॥ सुदुर्लभं यत्परमंपदंहरेर्मायाविनस्तच्चरणार्चनार्जितम् । लब्ध्वाप्यसिद्धार्थमिवैकजन्मना कथंस्वमात्मानममन्यतार्थवित् ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मातुःसपत्न्यावाग्बाणैर्हृदि विद्धस्तुतान्स्मरन् । नैच्छन्मुक्तिपतेर्मुक्तिंतस्मात्तापमुपेयिवान् ॥ २९ ॥ ध्रुवउवाच ॥ समाधिनानैकभवेनयत्पदंविदुःसनन्दादयऊर्ध्वरेतसः । मासैरहंषड्भिरमुष्यपाद योश्छायामुपेत्यापगतःपृथङ्मतिः ॥३०॥ अहोबतममानात्म्यंमन्दभाग्यस्यपश्यत । भवच्छिदःपादमूलंगत्वायाचेयदन्तवत् ॥ ३१ ॥ मतिर्विदूषितादेवैःपतद्भिरसहिष्णुभिः । योनारदवचस्तथ्यंनाग्राहिषमसत्तमः ॥३२ ॥ दैवींमायामुपाश्रित्यप्रसुप्त इवभिन्नदृक् । तप्येद्वितीयेप्यसतिभ्रातृभ्रातृव्यहृद्रुजा ॥ ३३ ॥ मयैतत्प्रार्थितंव्यर्थं चिकित्सेवगतायुषि । प्रसाद्यजगदात्मानंतपसादुःप्रसादनम् ॥ भवच्छिदमयाचेऽहंभवंभाग्यविवर्जितः ॥ ३४ ॥ स्वाराज्यंयच्छतोमौढ्यान्मानोमेभिक्षितोबत ।

तुझे राज्यदेकर वनको चलाजायगा तबतू ३६ सहस्र वर्ष धर्मानुसार पृथ्वीका राज्यकरेगा ॥२२॥ तेरा भ्राता उत्तम आखेटमें माराजायगा, तब उसकी माता उसका स्मरण करतीहुई वनमें जा दावाग्निमें प्रवेशकर जलजायगी ॥ २३ ॥ जिसकी प्रियमूर्ति यज्ञही है ऐसा मेरा यजन पुष्कल दक्षिणावाले यज्ञोंसेकर यहांपर अपने मनोर्थोंको भोग कर अंतमें मेरास्मरण करेगा ॥ २४ ॥ इसके अनंतर सम्पूर्णोंसे नमस्कृत, सप्तर्षियोंसे भी ऊंचे मेरे स्थानको जहांसे फिर कोई नहीं आना जावेगा ॥ २५ ॥ मैत्रेयजीनें कहा कि हे विदुरजी! गरुडध्वज भगवान इसभांति ध्रुवसे पूजित हो उसको आत्माका पद दे उसके देखते २ अपने धामको गए ॥ २६ ॥ यद्यपि वह ध्रुव परमेश्वरके चरणोंकी सेवासे नानाविधिके मनोर्थों को प्राप्त होगयाथा तौभी अपने मनमें प्रसन्न नहुआ क्योंकि भगवान के दर्शनोंका बियोग बिचारकर अत्यन्त दुःखी हो अपने नगरकी ओर चला ॥ २७ ॥ विदुरजीनें कहा कि सकाम मनुष्योंको अतिदुर्लभ पद, उस पुरुषार्थवेत्ता ध्रुवने परमेश्वर के चरणोंकी सेवासे एकही जन्ममें पालिया फिर अपनेको अकृतार्थसा क्यों माना ॥ २८ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि विमाताके वाक्यरूपी बाणोंसे विंधेहुए हृदयमें दुर्वचनोंका ध्यानबनारहा इसीहेतु उसने परमेश्वर से मुक्ति नहीं मांगी किंतु पश्चात् बहुत तापहुआ ॥ २९ ॥ तब ध्रुवजीनें कहा कि जिस पदको निष्ठावान ब्रह्मचारी सनकादिक मुनि अनेक जन्मोंसे समाधि लगाकर जानसकते हैं उसको मैंने परमेश्वरके चरणोंकी सेवासे छःही महीनेमें प्राप्तकर लिया फिरभी मुझको हाय! पृथ्वी मांगनेकी मति प्राप्तहुई ॥३०॥ मुझ अभागे अज्ञानको तो देखो कि संसारके छेदनेवाले भगवान के चरणकमलों को प्राप्त होकर मैंने नाशवान फलमांगा ॥ ३१ ॥ पराये उत्कर्षको नसहनेवाले देवता लोगोंने मेरी बुद्धि दूषित करदी मैंने नारदजीका कहना नमाना इसीसे मेरीबुद्धि दूषित होगई ॥ ३२ ॥ जैसे सोताहुआ मनुष्य स्वप्नमें नानाभांतिकी पृथक् २ वस्तुयें देखता है वैसेही मैं परमेश्वरकी माया के वशहो, भाईको शत्रुमान वृथा दुःखको प्राप्त होताहूं ॥ ३३ ॥ मैंने यह वृथाही प्रार्थनाकी; जिसकी आयु क्षीणहोगईहै उसके हेतु औषधि करना व्यर्थ है मुझ अभागेनें तप सेभी अति कठिनता से प्रसन्न होनेवाले भगवानको प्रसन्न करके फिरभी संसार हीको मांगा ॥ ३४ ॥ मुझ अभागे,

ईश्वरात्क्षीणपुण्येनफलीकारानिवाधनः ॥ ३५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ नवैमुकुन्दस्य पदारविंदयोरजोजुषस्तातभवादृशाजनाः । वांछंतितद्दास्यमृतेऽर्थमात्मनोयदृच्छयालब्धमनःसमृद्धयः ॥ ३६ ॥ आकर्ण्यात्मजमायांतंसंपरेत्ययथागतम् । राजानश्रद्धेभद्रमभद्रस्यकुतोमम ॥ ३७ ॥ श्रद्धायवाक्यंदेवर्षेर्हर्षवेगेनधर्षितः । वार्त्ताहर्तुरतिप्रीतोहारंप्रादान्महाधनम् ॥ ३८ ॥ सदश्वंरथमारुह्यकार्तस्वरपरिष्कृतम् । ब्राह्मणैःकुलवृद्धैश्चपर्यस्तोऽमात्यबन्धुभिः ॥ ३९ ॥ शंखदुन्दुभिनादेनब्रह्मघोषेण वेणुभिः । निश्चक्रामपुरात्तूर्णमात्मजाभीक्षणोत्सुकः ॥ ४० ॥ सुनीतिःसुरुचिश्चास्य महिष्यौरुक्मभूषिते । आरुह्यशिबिकांसार्धमुत्तमेनाभिजग्मतुः ॥ ४१ ॥ तंदृष्ट्वोपवनाभ्याशआयांतंतरसारथात् । अवरुह्यनृपस्तूर्णमासाद्यप्रेमविह्वलः ॥ ४२ ॥ परिरेभेऽङ्गजंदोर्भ्यांदीर्घोत्कण्ठमनाःश्वसन् । विष्वक्सेनांघ्रिसंस्पर्शहताशेषाघबन्धनम् ॥ ४३ ॥ अथाजिघ्रन्मुहुर्मूर्ध्निशीतैर्नयनवारिभिः । स्नापयामासतनयंजातोद्दाममनोरथः ॥ ४४ ॥ अभिवन्द्यपितुःपादावाशीर्भिश्चाभिमन्त्रितः । ननाममातरौशीर्ष्णा सत्कृतःसज्जनाग्रणीः ॥ ४५ ॥ सुरुचिस्तंसमुत्थाप्यपादावनतमर्भकम् । परिष्वज्याहजीवेतिवाष्पगद्गदयागिरा ॥ ४६ ॥ यस्यप्रसन्नोभगवान्गुणैर्मैत्र्यादिभिर्हरिः तस्मैनमन्तिभूतानिनिम्नमापइवस्वयम् ॥ ४७ ॥ उत्तमश्चध्रुवश्चोभावन्योऽन्यंप्रेमविह्वलौ । अङ्गसङ्गादुत्पुलकावस्रौघंमुहुरूहतुः ॥ ४८ ॥ सुनीतिरस्यजननीप्राणेभ्योऽपिप्रियंसुतम् । उपगुह्यजहावाधिंतदङ्गस्पर्शनिर्वृता ॥ ४९ ॥ पयःस्तना

पुण्य हीनने अपनी मुक्तिनाश निजानंद देनेवाले भगवानसे फिर राज्यकी याचनाकी ॥ ३५ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि हे विदुर ! आपसे जो मनुष्य परमेश्वरके चरणोंकी धूली के सेवक हैं वह दास्य भावके विना दूसरे पदार्थ की इच्छा नहीं करते क्यों कि जो ईश्वरकी इच्छासे मिलजाता है उसी से वह अपनेको संतुष्ट मानते हैं ॥ ३६ ॥ राजाने दूतके मुख से पुत्रको आता सुनकर, जैसे कोई मरकर पीछेआवे, ऐसे उस वार्ताका विश्वास न किया, और कहा कि मुझ अकल्याणको कल्याण कहां ॥ ३७ ॥ परन्तु फिर नारदजी के वाक्योंपर श्रद्धा धारण करके, हर्षितहो, समाचार देनेवाले को एक वडे धनका हारदिया ॥ ३८ ॥ उत्तम २ वस्त्रों से मडे जिनमें श्यामकरण घोड़े जुते ऐसे सुन्दर २ रथोंपर बैठकर ब्राह्मण, पुरोहित, कुलवृद्ध सचिव और बन्धुजनोंकासाथले शंख, दुंदुभी, वेणु बजाते वेदध्वनि करते पुत्रके देखनेकी इच्छाकरके राजा शीघ्रही नगर से वाहरनिकला ३९ ॥ ॥ ४० ॥ सुनीति और सुरुचि यह दोनों रानियां सुवर्ण के आभूषण धारणकर पालकी में बैठ उत्तम कुमार को संगले ध्रुवकी अगवानी को चलीं ॥ ४१ ॥ ध्रुवको उपवन के समीप आता देखकर राजा प्रेमासक्तहो रथसेउतर शीघ्रही उसके निकटगया ॥ ४२ ॥ और मनमेंअति उत्कंठित होनेके कारण श्वांसलेता अपने सुतसे भुजापसारकरमिला कि जिसके सम्पूर्ण पाप परमेश्वरके चरणस्पर्शसे नाशको प्राप्तहोगये हैं ॥ ४३ ॥ उससमय राजाने अपने सम्पूर्ण मनोरथ सुफल हुयेजाने और पुत्रके शिरको वारंवार सूंघकर शीतल नेत्रोंके जलसे पुत्रको स्नानकराय ॥ ४४ ॥ फिरसत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ ध्रुवजीने पिताके चरणोंको दण्डवत् कर उनसे आशीर्वादले माताओंको प्रणामकिया ॥ ४५ ॥ चरणों पर गिरेहुये उसनम्र वालकको उठा गलेलगा गद्गदवाणीसे सुरुचिने कहा" कि हे वेटा जुग २ जियो ॥ ४६ ॥ जिसभांति जल नीचेकी ओरको अपनेआप ढला चलाजाताहै वैसेही सम्पूर्ण प्राणी जिनको प्रणामकरतेहैं वे भगवान् जिसपर प्रसन्नहैं उसपर यदि सुरुचि स्नेहकरे तो कोई आश्चर्य बात नहीहै ॥ ४७ ॥ उत्तम और ध्रुव दोनों प्रेमविवश परस्पर मिलनेसे पुलकायमानहो बारम्बार अश्रुधारा बहानेलगे ॥ ४८ ॥ ध्रुवकी माता सुनीतिने अपने प्राणप्यारे पुत्रसे मिलकरउसके अंग

अर्यांसुस्राव नेत्रजैःसलिलैःशिवैः । तदाभिषिच्यमानाभ्यांवीरवीरसुवोमुहुः ॥५०॥ तांशशंसुर्नरारार्ज्ञीं दिष्ट्यातेपुत्रआर्तिहा । प्रतिलब्धश्चिरंनष्टो रक्षिताभण्डलंभुवः ॥ ५१ ॥ अभ्यर्चितस्त्वयानूनं भगवान्प्रणतार्तिहा । यदनुध्यायिनोवीरा मृत्युंजिग्युःसुदुर्जयम् ॥ ५२ ॥ लाल्यमानंजनैरेवं ध्रुवंसभ्रातरंनृपः । आरोप्यकरिणीं हृष्टः स्तूयमानोऽविशत्पुरम् ॥ ५३ ॥ तत्रतत्रोपसंक्लृप्तैर्लसन्मकरतोरणैः । सवृन्दैःकदलीस्तम्भैः पूगपोतैश्चतद्विधैः ॥ ५४ ॥ चूतपल्लववासःस्रङ्मुक्तादामविलम्बिभिः उपस्कृतंप्रतिद्वारमपां कुम्भैःसदीपकैः ॥ ५५ ॥ प्राकारैर्गोपुरागारैः शातकुम्भपरिच्छदैः । सर्वतोऽलंकृतं श्रीमद्विमानशिखरद्युभिः ॥ ५६ ॥ मृष्टचत्वररथ्याट्टमार्गं चन्दनचर्चितम् । लाजाक्षतैःपुष्पफलैस्तण्डुलैर्बलिभिर्युतम् ॥ ५७ ॥ ध्रुवायपथि दृष्टायतत्रतत्रपुरस्त्रियः । सिद्धार्थाक्षतदध्यम्बुदूर्वापुष्पफलानिच ॥ ५८ ॥ उपजह्रुः प्रयुंजानावात्सल्यादाशिषःसतीः । शृण्वंस्तद्वल्गुगीतानि प्राविशद्भवनंपितुः॥५९॥ महामणिव्रातमयेसतस्मिन्भवनोत्तमे । लालितोनितरांपित्रा न्यवसद्दिविदेववत् ॥ ६० ॥ पयःफेननिभाःशय्या दान्तारुक्मपरिच्छदाः । आसनानिमहार्हाणियत्र रौक्माउपस्कराः ॥६१॥ यत्रस्फटिककुड्येषु महामारकतेषुच । मणिप्रदीपाआभान्ति ललनारत्नसंयुताः ॥ ६२ ॥ उद्यानानिचरम्याणि विचित्रैरमरद्रुमैः । कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥ ६३ ॥ वाप्योवैडूर्यसोपानाः पद्मोत्पलकुमुद्वतीः ।

स्पर्शसे प्रफुल्लितहो मनके दुःखको त्यागदिया ॥ ४९ ॥ हे विदुर ! उससमय सुनीति के स्तनों से दूध और नेत्रोंसे अश्रुधारा बहनिकली उससे ऐसा ज्ञानहोताथा मानो जननी वीरपुत्रको दोनों धाराओंसे सींचरही है ॥५०॥ सुनीतिकी सबबड़ाई करतेथे और कहतेथे कि पृथ्वीकारक्षक, दुःख नाशक भगवद्भक्त बहुत दिनोंसे खोयाहुआ तेरापुत्र आज मिलगया यह अत्युत्तमहुआ ॥५१॥तूने अवश्यहही भक्तोंके दुःखनाशक भगवानकी सेवाकी है कि जिनके स्मरणसे वीरपुरुष दुर्जयमृत्यु कोभी जीततेहैं ॥ ५२ ॥ इसभांति जिस ध्रुवको प्यारकरतेथे उसको उत्तमकुमार समेत हथिनीपर बिठाकर प्रफुल्लितहो राजाने सबलोगोंके प्रशंसा करतेहुये नगरमें प्रवेशकिया ॥ ५३ ॥ उस नगरमें ठौर २ परमरकत मणियों के तोरण शोभायमानहैं और द्वार २ पर केलोंकेखंभ औरसुपारियोंके छोटे २ वृक्ष शोभित होरहे हैं ॥ ५४ ॥ आम्र पल्लवोंकी बंदनवारें बँधीहुई वस्त्रमाला और मोतियोंकी माला टँगीहुई जलसे भरेहुयेघटदीपकोंके समूहों सहित प्रतिद्वारमें शोभायमान थे ॥ ५५ ॥ सुन्दर विमानोंकी समान कांतिवाले सुवर्ण की सामग्रियों से नगर द्वार तथा महल इत्यादिक शोभायमानथे ॥ ५६ ॥ जहां सुन्दर २ चौराहों गलियों अटारियोंमें और मार्गोंकोझाड़ कर स्वच्छकर चन्दन का जल छिड़कागयाहै तथा खीलें लाई, अक्षत, फल फूल फैलरहेहैं बाजे बजरहे हैं और भेटें रक्खी हैं ॥ ५७ ॥ नगर नारियें जहां मार्गमें ध्रुवको देखतींथीं वहीं उनको सरसों, अक्षत, दधि, जल दूब, फूल, और फल, अर्पण करतीथीं ॥ ५८ ॥ और उन वस्तुओंको फैलातीं तथा प्यारसे ध्रुवको आशीष देतींथीं उनके गीतोंको सुनतेहुये ध्रुवने पिताके गृहमें प्रवेश किया ॥ ५९ ॥ महा मणियुक्त सुन्दर भवनमें पितासे प्यार किया ध्रुवजिसभांति देवता बैकुण्ठमें निवास करते हैं उसीभांति रहनेलगा ॥६०॥ जिसमें हाथीदांतके पायोंका पलँग सुवर्णकी सामग्री दूधके फेनकी समान शय्या बिछीहुईहै । अनमोलआसन रक्खेहैं और जहां सम्पूर्ण कार्य्यकी सामग्री ठौर २ पर धरी हैं ॥ ६१ ॥ जहां स्फटिककी भीतोंपर महा मरकतमणि जटित हैं तथा स्त्री रत्न समेत मणियोंके दीपक प्रज्वलितहैं ॥ ६२ ॥ जहां अत्यन्त सुन्दर उद्यानोंके भीतर विचित्र कल्पवृक्षोंपर पक्षियोंके जोड़े शब्द कररहे हैं और मतवाले भौंरे गुंजार रहेहैं ॥ ६३ ॥ सुंदर बाव-

हंसकारण्डवकुलैर्जुष्टाश्चक्राह्वसारसैः ॥ ६४ ॥ उत्तानपादोराजर्षिः प्रभावं तनयस्यतम् । श्रुत्वादृष्ट्वाऽद्भुततमंप्रपेदेविस्मयंपरम् ॥ ६५ ॥ वीक्ष्योढवयसंतं चप्रकृतीनांचसंमतम् । अनुरक्तप्रजंराजा ध्रुवंचक्रेभुवःपतिम् ॥ ६६ ॥ आत्मानंचप्रवयसमाकलय्यविशांपतिः । वनंविरक्तःप्रातिष्ठद्विमृशन्नात्मनोगतिम् ॥ ६७ ॥

इतिश्रीमद्भागवते०म०चतुर्थ०नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

मैत्रेयउवाच ॥ प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्यवैध्रुवः । उपयेमेभ्रमिंनाम तत्सुतौकल्पवत्सरौ ॥ १ ॥ इलायामपिभार्यायां वायोःपुत्र्यांमहाबलः । पुत्रमुत्कलमानं योषिद्रत्नमजीजनत् ॥ २ ॥ उत्तमस्त्वकृतोद्वाहो मृगायायांबलीयसा । हतः पुण्यजनेनाद्रौ तन्माताऽस्यगतिंगता ॥ ३ ॥ ध्रुवोभ्रातृवधंश्रुत्वा कोपामर्षशुचाऽर्पितः । जैत्रंस्यन्दनमास्थायगतःपुण्यजनालयम् ॥ ४ ॥ गत्वोदीचींदिशंराजा रुद्रानुचरसेविताम् । ददर्शहिमवद्द्रोण्यां पुरींगुह्यकसंकुलाम् ॥५॥ दध्मौशंखंबृहद्बाहुःखंदिशश्चानुनादयन् । येनोद्विग्नदृशःक्षत्तरुपदेव्योऽत्रसन्भृशम् ॥ ६ ॥ ततोनिष्क्रम्यबलिनउपदेवमहाभटाः । असहन्तस्तंनिनादमभिपेतुरुदायुधाः ॥७॥ सतानापततोवीरउग्रधन्वामहारथः । एकैकंयुगपत्सर्वानहन्बाणैस्त्रिभिस्त्रिभिः ८ ॥ तेवैललाटलग्नैस्तैरिषुभिःसर्वएवहि । मत्वानिरस्तमात्मानमाशंसन्कर्मतस्यतत् ९ तेपिचामुममृष्यन्तःपादस्पर्शमिवोरगाः । शरैरविध्यन्युगपद्द्विगुणंप्रचिकीर्षवः १०॥ ततःपरिघनिस्त्रिंशैःप्रासशूलपरश्वधैः । शक्त्यृष्टिभिर्भुशुण्डीभिश्चित्रवाजैःशरैरपि

ड़ियों के भीतर कि जिनमें वैदूर्यमणियोंकी सीढ़िया शोभायमान हैं कमल उत्पन्न कल्हार शोभित तथा हंस, सारस, बक और चक्रवाकों के यूथके यूथ क्रीडा कररहे हैं ॥ ६४ ॥ राजर्षि उत्तानपाद अपने पुत्र ध्रुवके उस अतुल ऐश्वर्य को कानोंसे सुन तथा नेत्रोंसे देख बड़ेही विस्मय को प्राप्त हुआ ॥ ६५ ॥ ध्रुवसे प्रजाको बहुत प्रसन्न तथा युवावस्था और राज्यके योग्य देखकर राजानें उसे पृथ्वीपति किया ॥ ६६ ॥ और राजा उत्तानपाद अपना देहवृद्ध समझ विरक्तहो अपनें आत्माकीगति विचारकर तप करनेके लिये वनको चलागया ॥ ६७ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०चतुर्थस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

मैत्रेयजी बोलेकि ध्रुवजीने शिशुमार प्रजेशकी पुत्रीभ्रमिसे विवाहकरके उससेकल्प और वत्सर यह दोपुत्र उत्पन्नकिये ॥ १ ॥ पराक्रमी ध्रुवकी दूसरीपत्नी वायुकीपुत्री इलायों जिससे उत्कल नामपुत्र और रत्नरूप एक कन्या उत्पन्नहुई ॥ २ ॥ उत्तम कुमारका विवाह नहीं हुआथा कारण किवह पहिलेही हिमालय पर्वतके भीतर आखेट करते समय एकबलवान यक्षके हाथसे मारागया और उसकी मातामी उसके उपरांत मरगई ॥ ३ ॥ जिससमय ध्रुवने सुनाकि भ्राता उत्तम मारागया उसकाल क्रोधितहो अमर्ष शोकमेंमग्नहो विजयी रथमें बैठकर उसने यक्षोंकी अलका पुरीपर चढ़ाईकी ॥ ४ ॥ उसउत्तर दिशामें जहां शिवजीके अनुचर रहते हैं जाकर ध्रुवने हिमालयकी गुफामें यक्षोंसे व्याप्त अलकापुरी देखी ॥ ५ ॥ फिरमहाबाहु ध्रुवने शंखबजाया कि जिसके शब्दसे आकाश और दिशायें शब्दायमान होगई हेविदुर ! उस शब्दसे उद्विग्नहोकर यक्षोंकी स्त्रियां अत्यंत भयभीतहुई ॥ ६ ॥ उसशब्दको न सहकर महाभटयक्ष आयुध धारण कियेहुये युद्धार्थ निकले ॥७॥ उस उग्रधनुषवाले महारथी वीरध्रुवने उनयक्षोंको आतादेख एकसाथही प्रत्येक यक्षके तीन २ बाणमारे ॥ ८ ॥ वेसबबाण उनके मस्तकों परलगे, फिरयक्ष ध्रुवसे अपने आत्माको परास्तमान उसकर्मकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ९ ॥ जैसे पांवके लगनेसे सर्पक्रोधित होताहै, वैसेही उनयक्षों नेभी क्रोधितहो ध्रुवसे बदला लेनेके हेतुएक संगही छह २ बाणमारे ॥ १० ॥ इसके अनंतर

॥ ११ ॥ अभ्यवर्षन्प्रकुपिताः सरथं सहसारथिम्। इच्छन्तस्तत्प्रतीकर्तुमयुतानित्रयोदश ॥ १२ ॥ औत्तानपादिः सतदा शस्त्रवर्षेण भूरिणा। नउपादृश्यतच्छन्न आसारेण यथागिरिः ॥ १३॥ हाहाकारस्तदैवासीत्सिद्धानांदिविपश्यताम्। हतोऽयंमानवः सूर्योमग्नः पुण्यजनार्णव ॥ १४ ॥ नदत्सुयातुधानेषुजयकाशिष्वथोमृधे। उदतिष्ठद्रथस्तस्यनीहारादिव भास्करः ॥ १५ ॥ धनुर्विस्फूर्जयन्दिव्यं द्विषतांखेदमुद्वहन्। अस्त्रौघंव्यधमद्बाणैर्घनानीकमिवानिलः ॥ १६ ॥ तस्यतेचापनिर्मुक्ताभित्त्वावर्माणिरक्षसाम्। कायानाविविशुस्तिग्मागिरीनशनयोयथा ॥ १७ ॥ भल्लैःसंछिद्यमानानांशिरोभिश्चारुकुण्डलैः। ऊरुभिर्हेमतालाभैर्दोर्भिर्वलयवल्गुभिः ॥ १८॥ हारकेयूरमुकुटैरुष्णीषैश्चमहाधनैः। आस्तृतास्तारणभुवोरेजुर्वीरमनोहराः ॥ १९ ॥ हतावशिष्टाइतरेरणाजिराद्रक्षोगणाःक्षत्रियवर्यसायकैः। प्रायोविवृक्णावयवा विदुद्रुवुर्मृगेन्द्रविक्रीडितयूथपाइव ॥ २० ॥ अपश्यमानःसतदाततायिनंमहामृधेकंचनमानवोत्तमः। पुरींदिदृक्षन्नपिनाविशद्द्विषांनमायिनांवेदचिकीर्षितंजनः ॥ २१ ॥ इतिब्रुवंश्चित्ररथःस्वसारथिंयत्तःपरेषांप्रतियोगशङ्कितः। शुश्रावशब्दंजलधेरिवेरितंनभस्वतोदिक्षुरजोऽन्वदृश्यत ॥ २२॥ क्षणेनाच्छादितंव्योमघनानीकेनसर्वतः। विस्फुरत्तडितादिक्षुत्रासयत्स्तनयित्नुना ॥ २३ ॥ ववृषूरुधिरौघासृक्पूयविण्मूत्रमेदसः। निपेतुर्गगनादस्यकबन्धान्यग्रतोऽनघ॥ २४ ॥ ततःखेऽदृश्यतागिरिर्निपेतुः

भाले, फरसे, त्रिशूल, बर्छी, भुशुंडी, खड्ग, और चित्र, विचित्र, पक्षोंवाले बाणवर्षानेलगे ॥ ११ ॥ इसप्रकार कुपितहोकर बदला लेनेके हेतु एकलाख तीसहजार यक्षोंने सारथीसहित रथपर बैठेहुये ध्रुवको चारोंओरसे घेरालिया ॥ १२ ॥ उससमय ध्रुवबहुत शस्त्रों से ऐसे ढकगया जैसे अधिक वर्षाहोनेसे सुमेरुपर्वत घटामें छिपजाता है ॥ १३ ॥ उसकाल स्वर्गस्थित सिद्धों के मध्यमें बड़ा-हाहाकार शब्दहुआ कियह मारागया—मनुवंशीसूर्य यक्षरूपी सागरमें डूबगया ॥ १४ ॥ युद्धस्थलमें यक्षलोग जय २ शब्द उच्चारण करनेलगे उससमय ध्रुवकारथ शस्त्रोंमेंसे इसभांति बाहर निकला किजैसे कुहरसे सूर्य निकलता है ॥ १५ ॥ अपने धनुषका टंकारकरते द्वेषियोंको खेदउत्पन्न करा ध्रुवने उनसबशस्त्र समूहोंको इसभांतिसे बखेरदिया किजैसे पवन बादलोंको छिन्नभिन्न करदेता है ॥ १६ ॥ उसके धनुषसे निकलेहुये बाण यक्षोंके कवचों को भेदकर उनके शरीरके भीतर ऐसे घुसनेलगे किजैसे वज्र पर्वतमें प्रवेशकरता है ॥ १७ ॥ कञ्चनके कुंडल जिनमें झलकरहे हैं, ऐसे २ सहस्रोंशिर, कंकण, भुजबंद, जिनमें शोभित ऐसी सहस्रों भुजायें काटडालीं ॥ १८ ॥ हार, केयूर, मुकुट, पगडियोंसे ढकीहुई संग्रामभूमि योद्धाओं का मनमोहनेवाला ऐसा अनुराग शोभायमान दिखाई देती थी मानो नये नये शृंगार कियेहुये आनन्दमेंमग्न है ॥ १९ ॥ क्षत्रियों में उत्तम ध्रुवके बाणों से प्रायः सभी के अंग छिन्नभिन्न होगए और दूसरे यक्ष जो मरने से बचरहेथे वह सब संग्राम भूमि से ऐसे भागे जैसे मृगेन्द्रका देख हाथियो के यूथ भागते हैं ॥ २० ॥ मनुवंशमें श्रेष्ठ ध्रुवने जब युद्धस्थलमें किसी शस्त्र धारीको नदेखा तो शत्रुपुरीके देखनेकी इच्छाकी परन्तु मायावी यक्षोंकी लीला मनुष्य नहीं जानसकता इस कारण नगए ॥ २१ ॥ ऐसे अपने सारथी से बार्त्ताकर शत्रुओंकी ओरसे संका करतेहुए ध्रुवजी वहीं स्थित रहे, इतनेमें मेघ गर्ज्जन कासदृश शब्द सुनपडा और बायुप्रेरित धूल सम्पूर्ण दिशाओंमें दीखनेलगी ॥ २२ ॥ क्षणमात्र में सम्पूर्ण आकाश बादलों करके चारोंओर से छागया, बिजली प्रत्येक दिशाओंमें चमकनेलगी और भयंकर गर्ज्जन होनेलगा ॥२३॥ हे विदुर! बादलों में से श्लेष्म, रुधिर, विष्ठा, मूत्र, मेद, मांस इनकी वर्षा होनेलगी और आकाशसे कवंध गिरनेलगे ॥२४॥ इसके उपरांत आकाशमें बडे २ पर्वत दिखाई

सर्वतोदिशम्। गदापरिघनिस्त्रिंशमुसलाःसाश्मवर्षिणः॥ २५ ॥ अहयोऽशनि निःश्वासावमन्तोऽग्निं रुषाक्षिभिः। अभ्यधावन्गजामत्ताःसिंहव्याघ्राश्चयूथशः २६ समुद्रऊर्मिभिर्भीमःप्लावयन्सर्वतोभुवम्। आससाद महाह्रादःकल्पांतइवभीषणः॥ २७॥ एवंविधान्यनेकानित्रासनान्यमनस्विनाम्। ससृजुस्तिग्मगतयआसुर्यामायाऽसुराः॥ २८॥ ध्रुवेप्रयुक्तामसुरैस्तांमायामतिदुस्तराम्। निशाम्यतस्यमुनयः शमाशंसन्समागताः॥ २९॥ मुनय ऊचुः॥ औत्तानपादे भगवांस्तवशार्ङ्गधन्वा देवःक्षिणोत्ववनतार्तिहरोविपक्षान्। यन्नामधेयमभिधायनिशम्यचाद्धालोकोऽञ्जसातरतिदुस्तरमङ्गमृत्युम्॥ ३०॥

इतिश्रीमद्भागवतेचतुर्थस्कन्धेदशमोऽध्यायः॥ १०॥

मैत्रेय उवाच॥ निशम्यगदतामेवमृषीणांधनुषिध्रुवः। संदधेऽस्त्रमुपस्पृश्य यन्नारायणनिर्मितम्॥ १ संधीयमानएतस्मिन्मायागुह्यकनिर्मिताः। क्षिप्रंविनेशुर्विदुरक्लेशाज्ञानोदयेयथा॥ २॥ तस्यार्षास्त्रंधनुषिप्रयुञ्जतः सुवर्णपुंखाःकलहंसवाससः। विनिःसृताआविविशुर्द्विषद्बलंयथावनंभीमरवाःशिखण्डिनः॥३॥ तैस्तिग्मधारैःप्रधनेशिलीमुखैरितस्ततःपुण्यजनाउपद्रुताः। तमभ्यधावन्कुपिताउदायुधाः सुपर्णमुन्नद्धफणाइवाहयः॥ ४॥ सतान्पृषत्कैरभिधावतोमृधेनिकृत्तबाहूरुशिरोधरोदरान्। निनायलोकंपरमर्कमण्डलंव्रजान्तिनिर्भिद्ययमूर्ध्वरेतसः॥ ५॥ तान्हन्यमानानभिवीक्ष्यगुह्यकाननागसश्चित्ररथेनभूरिशः। औत्तानपादिंकृपयापितामहो मनुर्जगादोपगतःसहर्षिभिः॥ ६॥ मनुरुवाच॥ अलंवत्सातिरोषेणतमोद्वारेण

देनेलगे, फिर दिशाओंमें से गदा, भाले, परिघ, मूसल, और पत्थरों की वर्षा होनेलगी॥ २५॥ फिर वज्र की समान सहस्रों सर्प फण उठाए फुंकारते श्वास लेतेहुए कुपितहो नेत्रों से अग्नि को प्रगटकरते ध्रुवपर धाए और मतवालेहाथी, सिंह तथा व्याघ्रों के समूह चारोंओर दौड़नेलगे॥२६॥ फिर समुद्र भयंकर लहरेंलेता चारोंओर से पृथ्वी को डुबाता भूधरोंको गिराता चलाआता है। और प्रलयकाल के समान महाघोर शब्द करता हुआ भयानक रूपसे ध्रुवजी के निकट आगया॥२७॥ क्रूर गतिवाले यक्षों ने अपनी आसुरी माया से कायरों को डरानेवाली ऐसी नानाभांति की माया रची॥ २८॥ यक्षोंने अतिदुस्तर माया का ध्रुवपर प्रयोगकिया तो यह देख उनके कल्याण के हेतु सप्तर्षियोंने कहा कि॥२९॥ हे ध्रुव! भक्तों के दुःख दूरकरनेवाले, धनुषधारी, परमेश्वर तेरे शत्रुओं का नाशकरें जो मनुष्य उनका स्मरण करतेरहतेहैं वह बिनाश्रमही दुस्तर मृत्युको तरजातेहैं॥३०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सरलाभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः॥ १०॥

मैत्रेयजी ने कहा कि—ध्रुवने सप्तर्षियों का यह वचन सुन आचमन कर धनुष में नारायणास्त्र का संधान किया॥ १॥ ध्रुवके इस अस्त्र के संधान करतेही हे विदुर! उस माया का इस प्रकार नाश होगया कि जैसे ज्ञान के उदय होनेपर सम्पूर्ण क्लेश दूरहोजाते हैं॥ २॥ धनुष मे नारायण अस्त्र के संधान होतेही सुवर्ण के अन्त वाले राजहंसके पक्षो के बाण शत्रुदल में इसभांति प्रवेश करनेलगे कि जैसे उच्चस्वर वाले मोर बनो मे प्रवेश करते हैं॥ ३॥ तीक्ष्ण धार वाले शरो से यक्ष छिन्नभिन्न होकर क्रोधित हो, आयुध उठा संग्राम मे इधरउधर से इस प्रकार ध्रुवपर दौड़कर आए कि जैसे सर्प फण उठाकर गरुडके सन्मुख जाते हैं॥ ४॥ ध्रुवने युद्धमें शरों से कटेहुए जंघावाले तथा भुजा, शिर, उदर आदिक अंग कटेहुए यक्षोंको परमधामको पहुंचादिया कि जहां सन्यासी लोग सूर्य मण्डलको भेद करके जाते हैं॥ ५॥ ध्रुवके पितामह स्वायंभुवमनु नें ध्रुवके हाथ से निरपराधी बहुतसे यक्षों को मरता देख कृपापूर्वक सप्त ऋषियों के संग आकर ध्रुवसे कहा॥ ६॥

पाप्मना। येनपुण्यजनानेतानवधीस्त्वमनागसः ॥ ७॥ नास्मत्कुलोचितंतातकर्मै तत्सद्भिगर्हितम्। वधोयदुपदेवानामारब्धस्तेऽकृतैनसाम् ॥ ८॥ नन्वेकस्यापराधे नप्रसङ्गाद्बहवोहताः। भ्रातुर्वधाभितप्तेनत्वयाऽङ्गभ्रातृवत्सल ॥ ९ ॥ नायंमार्गोहि साधूनांहृषीकेशानुवर्तिनाम्। यदात्मानंपराग्गृह्यपशुवद्भूतवैशसम् ॥ १० ॥ सर्व भूतात्मभावेनभूतावासंहरिंभवान्। आराध्याऽऽपदुराराध्यंविष्णोस्तत्परमंपदम् ११ सत्वंहरेरनुध्यातस्तत्पुंसामपिसंमतः। कथंत्ववद्यंकृतवाननुशिक्षन्सतांव्रतम् १२॥ तितिक्षयाकरुणयामैत्र्याचाखिलजन्तुषु। समत्वेनचसर्वात्माभगवान्संप्रसीदति १३ संप्रसन्नेभगवतिपुरुषःप्राकृतैर्गुणैः। विमुक्तोजीवनिर्मुक्तोब्रह्मनिर्वाणमृच्छति १४॥ भूतैःपञ्चभिरारब्धैर्योषित्पुरुषएवहि। तयोर्व्यवायात्संभूतिर्योषित्पुरुषयोरिह १५ एवंप्रवर्ततेसर्गःस्थितिःसंयमएवच। गुणव्यतिकराद्राजन्मायपापरमात्मनः १६॥ निमित्तमात्रंतत्रासीन्निर्गुणःपुरुषर्षभः। व्यक्ताव्यक्तमिदंविश्वंयत्रभ्रमतिलोहवत् १७॥ सखल्विदंभगवान्कालशक्त्यागुणप्रवाहेणविभक्तवीर्यः। करोत्यकर्तैवनिहन्त्यहंता चेष्टाविभूम्नःखलुदुर्विभाव्या ॥ १८ ॥ सोऽनन्तोऽन्तकरःकालोऽनादिरादिकृदव्य यः। जनंजनेनजनयन्मारयन्मृत्युनाऽन्तकम् ॥ १९॥ नवैस्वपक्षोऽस्यविपक्षएववा परस्यमृत्योर्विशतःसमंप्रजाः। तंधावमानमनुधावन्त्यनीशायथारजांस्यनिलंभूत संघाः ॥ २० ॥ आयुषोऽपचयंजन्तोस्तथैवोपचयंविभुः। उभाभ्यांरहितःस्वस्थो

जी बोले कि हे पुत्र! इस पापरूप नरक के द्वार क्रोध को छोड़दे कि जिस क्रोध से इन निरपराधी यक्षोंका तूने संहार किया है ॥ ७ ॥ हे तात! जो तुमने इन निरपराधी यक्षों का मारना आरम्भ किया है यह हमारे कुलके योग्य नहीं है इस कर्म की साधुलोग निंदा करते हैं ॥ ८ ॥ हे ध्रुव! भाईको एक यक्षके मारने से दुःखितहो तूने बहुतसे यक्षोंका नाश किया ॥ ९ ॥ भगवान के भक्तो का यह कर्म नहीं है, कि इस सर्वभूत देहको आत्मा मानकर, पशुओंकी सदृश इसके हेतु प्राणियों को वधकरे ॥ १० ॥ उन अंतर्यामी भगवान का कि जिनका यजन करना अतिदुस्तर है, सम्पूर्ण प्राणियोंमें आत्मभाव रखकर भजन करनेके प्रभावसे तू श्रेष्ठ धामको प्राप्तहुआहै ॥ ११॥ तू परब्रह्म परमेश्वरका भक्त है और भगवत् दासों में श्रेष्ठ है तूने साधुवों से सत उपदेश ग्रहण किया है फिर इस निंदनीय कर्मको क्यों किया॥१२॥ सर्वात्मा परब्रह्म भगवान, सम्पूर्ण प्राणियोंमें करुणा, मैत्री, क्षमा, दया और ऐक्यता रखनेसे प्रसन्नहोते हैं॥१३॥वह मनुष्य कि जिसपर परमेश्वर कृपाकरते हैं मायासे छूटकर शरीरसे जीवनमुक्तहो परमानन्दको प्राप्तहोताहै॥१४॥और पंचमहाभूत से इस देहकी रचना की है तथा स्त्री पुरुषके मैथुन से इस सम्पूर्ण लोक में स्त्री पुरुषकी उत्पत्ति है॥१५॥हे राजन्! परमात्माकी विचित्रमायाकरके गुणोंके उलटे पुलटेहोजानेसे इसविश्वकी उत्पत्ति पालन संहार होतारहताहै ॥ १६ ॥ जिसमें निर्गुण ब्रह्म तो निमित्तमात्रहै और इसव्यक्त अव्यक्त का कारण विश्वहै और जिसप्रकार चुम्बकपत्थर से लोहा घूमताहै उसीभांति यह विश्वभी घूमता रहताहै ॥ १७ ॥ वे भगवान अपनी कालशक्ति करके गुणोंके प्रभाव से न्यारे हैं और वह आप अकर्ता होनेपरभी इस विश्वको सृजतेहैं और अहंता होनेपरभी इस सृष्टिका वारम्बार संहारकरते हैं, ऐसे भगवानकी चेष्टा दुर्विभाव्यहै सो जाननेमें नहीं आती ॥ १८ ॥ वह आपतो अनादि अनंत और अक्षीण शक्तिहै तथा आदिका करनवालाहै उत्पन्न करनेवालाहै और कालरूपसे सबको मारने वालाहै ॥ १९ ॥ उस भगवान को न तो कोई अपना पक्षहै न परायापक्षहै जैसे वायुकेपीछे धूल के कणिका दौड़तेहैं इसीभांति सम्पूर्ण प्राणी कर्मोंके वशहो उसपरमेश्वरके पीछे दौड़ते चलेजाते हैं ॥ २० ॥ जीवकी अकालमृत्यु तथा अकाल मृत्युसे रक्षा यहदोनों कर्माधीन हैं और परमेश्वर तो

दुःस्थस्य विदधात्यसौ ॥ २१ ॥ केचित्कर्म वदन्त्येनं स्वभावमपरे नृप । एके कालं परे दैवं पुंसः काममुतापरे ॥ २२ ॥ अव्यक्तस्याप्रमेयस्य नानाशक्त्युदयस्य च । न वै चिकीर्षितं तात को वेदाऽथ स्वसंभवम् ॥ २३ ॥ न चैते पुत्रक भ्रातुर्हन्तारो धनदानुगाः । विसर्गादानयोस्तात पुंसो दैवं हि कारणम् ॥ २४ ॥ स एव विश्वं सृजति स एवावति हन्ति च । अथापि ह्यनहंकारान्नाज्यते गुणकर्मभिः ॥ २५ ॥ एष भूतानि भूतात्मा भूतेशो भूतभावनः । स्वशक्त्या मायया युक्तः सृजत्यत्ति च पाति च ॥ २६ ॥ तमेव मृत्युममृतं तात दैवं सर्वात्मनोपेहि जगत्परायणम् । यस्मै बलिं विश्वसृजो हरन्ति गावो यथा वै नसि दामयन्त्रिताः ॥ २७ ॥ यः पंचवर्षो जननीं त्वं विहाय मातुः सपत्न्या वचसा भिन्नमर्मा । वनं गतस्तपसा प्रत्यगक्षमाराध्य लेभे मूर्ध्नि पदं त्रिलोक्याः ॥ २८ ॥ तमेनमङ्गात्मनि मुक्तविग्रहे व्यपाश्रितं निर्गुणमेकमक्षरम् । आत्मानमन्विच्छ विमुक्तमात्मदृग्यस्मिन्निदं भेदमसत्प्रतीयते ॥ २९ ॥ त्वं प्रत्यगात्मनि तदा भगवत्यनन्त आनन्दमात्र उपपन्नसमस्तशक्तौ । भक्तिं विधाय परमां शनकैरविद्याग्रन्थिं विभेत्स्यसि ममाहमिति प्ररूढम् ॥ ३० ॥ संयच्छ रोषं भद्रं ते प्रतीपं श्रेयसां परम् । श्रुतेन भूयसा राजन्नगदेन यथाऽऽमयम् ॥ ३१ ॥ येनोपसृष्टात्पुरुषाल्लोक उद्विजते भृशम् । न बुधस्तद्वशं गच्छेदिच्छन्नभयमात्मनः ॥ ३२ ॥ हेलनं गिरिशभ्रातुर्धनदस्य त्वया कृतम् । यज्जघ्निवान्पुण्यजनान्भ्रातृघ्नानित्यमर्षितः ॥ ३३ ॥ तं प्रसादय वत्साशु सन्नत्या प्रश्रयोक्तिभिः

स्वयं करता है उसका न तो क्षर्ता है और न कर्ता है ॥ २१ ॥ हे राजन् ! उसे कितने एक तो कर्म कितने एक स्वभाव कितने एक काल कितने दैव और कितनेही उसे काम बतलाते हैं २२ अव्यक्त अप्रमेय तथा नानाभांतिकी शक्तियोंके उत्पन्न करनेवाले उस परब्रह्म भगवानका कर्म कोई नहीं जानता, उसीसे सम्पूर्णोंकी उत्पत्ति और नाश होता है ॥२३॥ हे पुत्र ! तेरे भाईको कुबेरके यक्षने नहीं मारा क्योंकि मृत्यु और जन्मका कारण उसका दैवही है ॥ २४ ॥ वहीतो विश्वको सृजना, रक्षाकरना, और नाश करना है यद्यपि ऐसाहै तोभी अहंकार करके त्यागनेसे गुणकर्मोंमें लिप्त नहीं होता ॥ २५ ॥ वही भूतात्मा, भूतेश भगवान जो सम्पूर्ण प्राणियोंका उत्पादकहै अपनीमाया शक्तिसे सृष्टिको सृजता, पालता तथा संहार करताहै ॥२६॥ हे पुत्र ! उसीको मृत्यु तथा उसीको अमृत कहते हैं उसी जगत्परायण देवको कि जिसको सम्पूर्ण प्रजापति बलि देते हैं तथा यह सम्पूर्ण विश्व जिसके इसभांति वशीभूतहै जैसे बैल नाकमें डोरा डालनेसे वशीभूतहोताहै। उसीकी शरणजा ॥ २७ ॥ जबतू पांचहीवर्षका था तो अपनी विमाताकी बातोंसे मर्ममें छिद्र होनेके कारण अपनी माकोछोड़ वनमें जा, भगवानका तपसे यजनकर उनके साक्षात् दर्शनपा त्रिलोकी से ऊंचे पदको प्राप्तहुआ ॥ २८ ॥ हेपुत्र ! वह तू मनमें विराजमान, निर्गुण, एकाक्षर परमात्माका कि जिसमें भेदभाव मिथ्याही प्रतीतहोताहै, अनुशरणकर ॥२९॥ जबतू दिव्यदृष्टि करके परमात्माका अनुसरण करेगा, उस समय प्रत्यक आत्मरूप, अनंत, आनंदमात्र, व्यापक सर्वशक्तिमान परमात्मा में पराभक्ति होगी फिर धीरे २ "मम" अहंकार" जो अविद्याकी ग्रंथि है वह कटजायँगी ॥ ३० ॥ हे पुत्र ! जैसे औषधि सेवन करके रोगको शांति करते हैं इसी प्रकार तू भगवत् भजन से इस क्रोधको शान्तकर जिससे तेरा कल्याण हो यह क्रोध अमंगलका मूल है अनेक शास्त्रोंके सुनने का यही फल है कि जिससे शांति हो ॥ ३१ ॥ और जो मनुष्य क्रोध के वशीभूत होजाता है उस को ज्ञान नहीं रहता, सबको डराता है, इस निमित्त आत्माका अभय चाहै तो क्रोध से बचा रहे ॥ ३२ ॥ तुमने शिवके भ्राता कुबरका जो अपमान किया और जानकर यक्षोंकावध किया उन्होंने मेरे भाईका मारडाला है ॥ ३३ ॥ हेवत्स! इस निमित्त नम्रता के मीठे वाक्यों से उनको प्रसन्न

नयाबन्महतांतेजः कुलंनोऽभिभविष्यति ॥ ३४ ॥ एवंस्वायंभुवःपौत्रमनुशास्यमनुर्ध्रुवम्। तेनाभिवन्दितःसाकमृषिभिःस्वपुरंययौ ॥ ३५ ॥

इतिश्रीमद्भा०चतु०एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ ध्रुवंनिवृत्तंप्रतिबुध्य वैशसादपेतमन्युंभगवान्धनेश्वरः। तत्रागतश्चारणयक्षकिन्नरैः संस्तूयमानोऽभ्यवदत्कृतांजलिम् ॥ १॥ धनद उवाच ॥ भो भोःक्षत्रियदायाद परितुष्टोऽस्मितेऽनघ। यस्त्वंपितामहादेशाद्वैरंदुस्त्यजमत्यजः ॥ २ ॥ नभवानवधीद्यक्षान्न यक्षाभ्रातरंतव। कालएवहिभूतानांप्रभुरप्ययभावयोः ॥ ३ ॥ अहंत्वमित्यपार्था धीरज्ञानात्पुरुषस्यहि। स्वाप्नीवाभात्यतद्ध्यानाद्यया बंधविपर्ययौ ॥ ४ ॥ तद्गच्छध्रुवभद्रंते भगवन्तमधोक्षजम्। सर्वभूतात्मभावेन सर्वभूतात्मविग्रहम् ॥ ५ ॥ भजस्वभजनीयांघ्रिमभवाय भवच्छिदम्। युक्तंविरहितं शक्त्या गुणमय्यात्ममायया ॥ ६ ॥ वृणीहिकामंनृपयन्मनोगतं मत्तस्त्वमौत्तानपदेऽविशंकितः। वरंवरार्होऽम्बुजनाभपादयोरनन्तरं त्वांवयमङ्गशुश्रुम ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सराजराजेनवरायचोदितो ध्रुवोमहाभागवतोमहामतिः। हरौसवव्रेऽचलितांस्मृतिंयया तरत्ययत्नेनदुरत्ययंतमः ॥ ८ ॥ तस्यप्रीतेनमनसा तां दत्त्वैडविडस्ततः। पश्यतोऽन्तर्दधेसोऽपि स्वपुरंप्रत्यपद्यत ॥ ९ ॥ अथायजतयज्ञेशं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः। द्रव्यक्रियादेवतानां कर्मकर्मफलप्रदम् ॥ १० ॥ सर्वात्मन्यच्युतेसर्वे तीव्रौघांभक्तिमुद्वहन्। ददर्शात्मनिभूतेषु तमेवावस्थितंविभुम् ॥ १० ॥

करो, क्यों कि महात्मा पुरुषों के तेजसे हमारे वंशका नाश न होजाय ॥ ३४ ॥ इस प्रकार अपने पौत्र ध्रुवको शिक्षा दे उसकी बन्दना को स्वीकार कर सप्त ऋषियों के साथ स्वायंभुवमनु अपने धाम को पधारे ॥ ३५ ॥

इति श्री भागवते महापुराणे सरला भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

मैत्रेयजीने कहा कि—कुबेरने ध्रुवको क्रोध तथा वधसे निवृत्तहुआ जान, चारण, यक्ष तथा किन्नरों सगत वहांआ हाथ जोड़ स्तुति करतेहुये ध्रुवसे कहनेलगे ॥ १ ॥ कुबेरजी बोले कि—हे क्षत्रियो में श्रेष्ठ ! हे अनघ ! मैं तुमारे अत्यन्त प्रसन्न हुआहूं कि तुमनें अपने पितामह के कहने से इस दुस्त्यज वैर का त्यागन कर दिया ॥ २ ॥ न तो तूने यक्षों को मारा और न यक्षोंने तेरे भ्राता को मारा, सब प्राणियोंके जीवन मरणका कारण कालही है ॥ ३ ॥ यह" मैंहूं,, यह तू है,, ऐसी मनुष्यकी मिथ्या बुद्धि तो मायाके कारण स्वप्नकी सदृश अज्ञान से उत्पन्नहुई देहके अनुसंधानसे झूंठी ज्ञानहोताहै, कि जिसका बंध और मोक्ष इत्यादिक विपर्यय हुआ करताहै ॥ ४ ॥ हेध्रुव ! तेरा कल्याणहो तू अधोक्षज भगवान का प्राणीमात्रमें आत्मभाव रखकर ॥ ५ ॥ जो सर्वात्माहैं, और जिनके चरण भजने योग्यहैं, जो अपनी माया के गुणोंसे युक्त हैं और रहितहैं, जो संसारके छेदनेवाले हैं, उन भगवानका भजनकर ॥ ६ ॥ हे नृप ! जोतेरे मन में हो वह मुझसे शंकाछोड़कर बरमांग हेअङ्ग ! तुम परमेश्वरके चरणकमलोंमें व्यासहो ऐसा हमने सुनाहै ॥ ७ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि जब कुबेरने भगवद्भक्त, परमबुद्धिमान ध्रुवसे बरदानको कहा तब ध्रुवने भगवानमें अचल भक्ति होनेका, कि जिससे मनुष्य विनाश्रम संसारसे पार होजाताहै, बर मांगा कुबेरजी प्रसन्नता पूर्वक ध्रुवजीको यह वरदानदे उनके देखते २ अन्तर्द्धान होगये और ध्रुवजी भी अपने पुरको लौटआये ९ ॥ अनन्तर ध्रुवने बड़ी दक्षिणावाले यज्ञोंसे और क्रिया द्रव्य तथा देवता सम्बन्धी कर्मसे जो सम्पूर्ण फलके देनेवालेहैं यज्ञेश्वर भगवान का पूजनकिया १० ॥ सर्वात्मा अच्युत परब्रह्मकी तीव्र भक्ति करके वह ध्रुव अपने आत्मामें सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित

तमेवंशीलसंपन्नं ब्रह्मण्यंदीनवत्सलम् । गोप्तारंधर्मसेतूनां मेनिरेपितरंप्रजाः ॥ १२॥ षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं शशासक्षितिमण्डलम् । भोगैःपुण्यक्षयंकुर्वन्नभोगैरशुभक्षयम् ॥१३॥ एवंबहुसवंकालं महात्माविचलेंद्रियः। त्रिवर्गौपयिकंनीत्वा पुत्रायादान्नृपासनम् ॥ १४ ॥ मन्यमानइदंविश्वं मायारचितमात्मनि । अविद्यारचित स्वप्नगन्धर्वनगरोपमम् ॥ १५ ॥ आत्मस्त्र्यपत्यसुहृदोबलमृद्धकोशमन्तःपुरंपरिविहारभुवश्च रम्याः । भूमण्डलंजलधिमेखलमाकलय्यकालोपसृष्टमितिसप्रययौविशालाम् ॥१६॥ तस्यांविशुद्धकरणःशिववार्विगाह्य बद्ध्वाऽऽसनंजितमरुन्मनसाहृताक्षः । स्थूलेदधारभगवत्प्रतिरूप एतद्ध्यायंस्तदव्यवहितोव्यसृजत्समाधौ ॥ १७ ॥ भक्तिंहरौ भगवति प्रवहन्नजस्रमानन्दबाष्पकलयामुहुरर्द्यमानः । विक्लिद्यमानहृदयःपुलकाचिताङ्गो नात्मानमस्मरदसाविति मुक्तलिङ्गः ॥ १८ ॥ सददर्शविमानाग्र्यंनभसोऽवतरद्ध्रुवः । विभ्राजयद्दशदिशो राकापतिमिवोदितम् ॥ १९ ॥ तत्रानुदेवप्रवरौ चतुर्भुजौश्यामौ किशोरावरुणाम्बुजेक्षणौ । स्थिताववष्टभ्यगदां सुवाससौकिरीटहारांगदचारुकुण्डलौ ॥२०॥ विज्ञायतावुत्तमगायकिंकरावभ्युत्थितः साध्वसविस्मृतक्रमः । ननामनामानिगृणन्मधुद्विषः पार्षत्प्रधानाविति संहताञ्जलिः ॥ २१ ॥ तंकृष्णपादाभिनिविष्टचेतसंबद्धाञ्जलिंप्रश्रयनम्रकन्धरम्।सुनंदनंदावुपसृत्यसस्मितं प्रत्यूचतुःपुष्करनाभसंमतौ ॥ २२॥ सुनन्दनन्दावूचतुः ॥ भोभोराजन्सुभद्रंतेवाचंनोऽवहितःशृणु । यःपंचवर्षस्तपसाभवान्देवमतीतृपत् ॥ २३ ॥ तस्याखिलजग

भगवान को देखनेलगा ॥ ११ ॥ उस शीलयुक्त ब्रह्मभक्त धर्मवत्सल दीनदयालु ध्रुवको सम्पूर्ण प्रजा पिताके सदृश माननेलगी ॥ १२ ॥ भोगसे पुण्यक्षय और अभोग (यज्ञादि) से पाप क्षय करतेहुये ध्रुवने इस पृथ्वीपर ३६००० वर्ष राज्यकिया ॥१३॥ उस महात्माने कि जिसकी इन्द्रियां वशीभूत होगई हैं त्रिवर्ग साधककालको व्यतीतकर पुत्रको नृपासन दिया ॥१४॥ सम्पूर्ण सृष्टिको मायासे रचाहुआ जानकर स्वप्न तथा गन्धर्वनगरके सदृश अविद्यासे रचाहुआ जाननेलगा ॥ १५ ॥ तन, धन, स्त्री, सन्तान सुहृद सेना ऋद्धि, कोष अन्तःपुर बिहारस्थान, पृथ्वी समुद्र इन सबको कालसे नाशवान मानकर बद्रिकाश्रमको चलेगये ॥ १६ ॥ वहां शुद्ध अन्तःकरण से निर्मल जलमें स्नानकर आसनबांध, पवनको जीत मन से इन्द्रियों को वशीभूतकर भगवानके स्थूलरूप में ध्यान लगाया, फिर बहुतकालतक ध्यान करते २ समाधि स्थित हो स्थूलरूप को भी त्याग ब्रह्मरूप होगये ॥ १७ ॥ भगवानके प्रतिभक्ति होनेसे सदैव आनन्दाश्रुपात होनेलगे जिससे शरीर बारंबार पीड़ितहो हृदय शिथिल होगया, शरीर पुलकायमान होआया; और लिंग देहके त्यागने से उसे अपनीआत्माकाभी स्मरण न रहा ॥१८॥ उससमय चन्द्रमाकी समान दशोदिशाओंको प्रकाशित करताहुआ ध्रुवजीको आकाशसे विमान उतरते दिखाई दिया ॥ १९ ॥ उस विमानके पीछे देवताओं में श्रेष्ठ श्रीभगवानके दो पार्षद खड़ेदेखे जो चतुर्भुज रूप श्यामवर्ण, युवावस्था, कमलनेत्र सुन्दर वस्त्र धारणकिये किरीट कुण्डलहार, बाजूबन्द पहने और गदा हाथमें लियेथे ॥ २० ॥ ध्रुव उन्हें भगवानका पार्षद समझ शीघ्रही खड़ाहुआ और हाथजोड़ उनके नामका उच्चारणकर नमस्कार करनेलगा क्योंकि वह मोहहोजाने के कारण पूजाका क्रम भूल गयाथा ॥ २१ ॥ भगवान के चरण कमलों में व्याप्त चित्त हाथ जोड़ नम्री भूत हुए ध्रुवके निकट जाकर भगवान के प्रधान पार्षद सुनन्द नन्दने मुसिका कर कहा ॥ २२ ॥ सुनन्द नंद बोले कि—हे राजन् ! तेरा कल्याण हो, हमारा बचन सावधान होकर सुनो,. तुमनें पांचवर्ष की अवस्था में ही तप करके, देवताओं को तृप्त करने वाले भगवान का प्रसन्न किया है ॥ २३ ॥ उन्हीं अखिललोक

क्रातुरावांदेवस्यशार्ङ्गिणः । पार्षदाविहसंप्राप्तौनेतुंत्वांभगवत्पदम् ॥ २४ ॥ सुदु-
र्जयंविष्णुपदंजितंत्वयायत्सूरयोऽप्राप्यविचक्षतेपरम् । आतिष्ठतच्चन्द्रदिवाकरा
दयोग्रहर्क्षताराःपरियातिदक्षिणम् ॥ २५॥ अनास्थितंतेपितृभिरन्यैरप्यङ्गकर्हिचित्
आतिष्ठजगतांवंद्यंतद्विष्णोःपरमंपदम् ॥२६ ॥ एतद्विमानप्रवरमुत्तमश्लोकमौलिना।
उपस्थापितमायुष्मन्नधिरोढुंत्वमर्हसि ॥ २७॥ मैत्रेय उवाच ॥ निशम्यवैकुण्ठ
नियोज्यमुख्ययोर्मधुच्युतंवाचमुरुक्रमप्रियः । कृताभिषेकःकृतनित्यमङ्गलोमुनीन्प्र
णम्याशिषमभ्यवादयत् ॥ २८ ॥ परीत्याभ्यर्च्यधिष्ण्याग्र्यंपार्षदावभिवन्द्यच ।
इयेषतदधिष्ठातुंबिभ्रद्रूपंहिरण्मयम् ॥ २९ ॥ तदोत्तानपदःपुत्रोददर्शांतकमागताम्।
मृत्योर्मूर्ध्निपदंदत्वाआरुरोहाद्भुतंगृहम् ॥ ३० ॥तदादुंदुभयोनेदुर्मृदङ्गपणवादयः।
गन्धर्वमुख्याःप्रजगुःपेतुःकुसुमवृष्टयः ॥ ३१ ॥ सचस्वर्लोकमारोक्ष्यन्सुनीतिंजन-
नींध्रुवः । अन्वस्मरदगंहित्वादीनांयास्येत्रिविष्टपम् ॥ ३२ ॥ इतिव्यवसितंतस्य
व्यवसायसुरोत्तमौ । दर्शयामासतुर्देवींपुरोयानेनगच्छतीम्॥ ३३॥तत्रतत्रप्रशंसद्भिः
पथिवैमानिकैःसुरैः । अवकीर्यमाणोददृशेकुसुमैःक्रमशोग्रहान् ॥ ३४ ॥ त्रिलोकीं
देवयानेनसोऽतिव्रज्यमुनीनपि । परस्ताद्यद्ध्रुवगतिर्विष्णोःपदमथाभ्यगात् ३५ ॥
यद्भ्राजमानंस्वरुचैवसर्वतोलोकास्त्रयोह्यनुविभ्राजन्तएते । यन्नाव्रजन्जन्तुषुयेऽन
नुग्रहाव्रजन्तिभद्राणिचरन्तियेऽनिशम् ॥ ३६ ॥ शांताःसमदृशःशुद्धाःसर्वभूता

माता परब्रह्म भगवान के हम दोनो पार्षद हैं हम तुमको भगवद्धाममें ले जानेके हेतु यहां आये हैं ॥ २४ ॥ आप ने उस दुर्लभ विष्णुपद को जीत लिया है कि जिस को बड़े २ विवेकियों ने भी नही पाया तथा जिसकी सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, और तारागण प्रदक्षिणाकरते हैं ॥२५॥ हे ध्रुव ! वहांपर तेरेपित्रादिकभी नहीं पहुंचे और न कोई पहुँचेगा,ऐसे जगतवंद्य विष्णुभगवानके श्रेष्ठ पदको तू प्राप्तहुआहै ॥२६॥ हे आयुष्मन् ! उत्तम श्लोक नारायणने यह विमान भेजाहै, सो आप इस पर चढ़ो ॥ २७ ॥ मैत्रेयजी ने कहा कि—भगवानके प्यारे ध्रुव ने भगवत् पार्षदों की अमृत मय वाणी सुन स्नान कर नित्त नैमित्तिक क्रिया से निवृत्त हो, मुनियों को दंडवतकर तथा उनसे आशीर्वादपा ॥ २८ ॥ उस श्रेष्ठ विमान का पूजन कर प्रदक्षिणादे, दिव्यरूप धारण कर उस विमान पर चढ़ने का विचार किया ॥ २९ ॥ उसी समय ध्रुवने मृत्यु को आया देखा और मृत्यु ने हाथ जोड़कर ध्रुवजी से कहा कि हे राजन् ! मुझे अंगीकार करो, तब ध्रुवजी बोले कि तू आगया यह बहुत अच्छा किया । तू एक क्षणमात्र बिलंबकर इसप्रकार उसे बैठाय उसके मस्तक पर चरण धर उस अद्भुत विमान पर बैठे ॥ ३० ॥ उस समय दुंदुभी मृदङ्ग, ढोल इ-त्यादिक बाजे बजने लगे और गन्धर्व गाने तथा फूलों की वर्षा होने लगी ॥ ३१ ॥ जिस समय वह बैकुंठ को जानलगा तब उसको अपनी माता सुनीति का स्मरण हुआ और विचारा कि में अपनी अबला माता को छोड़कर सुरलाक को कैसे जाऊं ॥ ३२ ॥ उन दोनों पार्षदों नें ध्रुवके मनकी वार्ता जानकर विमान में आगे जाती हुई सुनीति को दिखाया ॥ ३३ ॥ देव मार्ग में विमानों पर बैठे हुए देवता प्रशंसा तथा फूलों की बर्षा कररहे थे इस भांति क्रमसे उन्होंने ग्रहों को देखा ॥ ३४ ॥ इस प्रकार त्रिलोकी व सप्तर्षियों को भी उल्लंघनकर उसके आगे ध्रुवगाति वाले विष्णुपदको प्राप्तहुए ॥ ३५ ॥ जो निजकांति से सदैव प्रकाशमान है और जिससे तीनों लोक प्रकाशित होते है कि जिस को निर्दय मनुष्य नहीं पाते और जो कल्याण कारी आचरणकरते हैं वह उस पदको प्राप्त होते हैं ॥ ३६ ॥ शांत, समदर्शी, शुद्ध,

नुरञ्जनाः । यान्त्यंजसाऽच्युतपदमच्युतप्रियबांधवाः ॥ ३७ ॥ इत्युत्तानपदः पुत्रो ध्रुवः कृष्णपरायणः । अभूत्त्रयाणांलोकानांचूडामणिरिवामलः ॥३८॥ गम्भीरवेगोऽनिमिषंज्योतिषांचक्रमाहितम् । यस्मिन्भ्रमति कौरव्यमेढ्यामिवगवांगणः ॥३९॥ महिमानंविलोक्यास्यनारदोभगवानृषिः । आतोद्यंवितुदञ्श्लोकान्सत्रेऽगायत्प्रचेतसाम् ॥ ४० ॥ नारद उवाच ॥ नूनंसुनीतेःपतिदेवतायास्तपःप्रभावस्यसुतस्यतांगतिम् । दृष्ट्वाऽभ्युपायानपिवेदवादिनोनैवाधिगन्तुंप्रभवन्तिकिंनृपाः ॥ ४१ ॥ यः पंचवर्षोगुरुदारवाक्शरैर्भिन्नेनयातोहृदयेनदूयता । वनंमदादेशकरोऽजितंप्रभुंजिगायतद्भक्तगुणैःपराजितम् ॥ ४२ ॥ यःक्षत्रबन्धुर्भुविनस्याधिरूढमन्वारुरुक्षेदपिवर्षपूगैः । षट्पञ्चवर्षोयदहोभिरल्पैःप्रसाद्यवैकुण्ठमवापतत्पदम् ॥ ४३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एतत्तेऽभिहितंसर्वंयत्पृष्टोहमिहत्वया । ध्रुवस्योद्दामयशसश्चरितंसंमतंसताम् ॥ ४४ ॥ धन्यंयशस्यमायुष्यंपुण्यंस्वस्त्ययनंमहत् । स्वर्ग्यंध्रौव्यंसौमनस्यंप्रशस्यमघमर्षणम् ॥ ४५ ॥ श्रुत्वैतच्छ्रद्धयाऽभीक्ष्णमच्युतप्रियचेष्टितम् । भवेद्भक्तिर्भगवतिययास्यात्क्लेशसंक्षयः ॥ ४६॥ महत्त्वमिच्छतांतीर्थंश्रोतुःशीलादयोगुणाः यत्रतेजस्तदिच्छूनांमानोयत्रमनस्विनाम् ॥ ४७ ॥ प्रयतःकीर्तयेत्प्रातःसमवायेद्विजन्मनाम् । सायंचपुण्यश्लोकस्यध्रुवस्यचरितंमहत् ॥ ४८॥ पौर्णमास्यांसिनीवाल्यांद्वादश्यांश्रवणेऽथवा । दिनक्षयेव्यतीपातेसंक्रमेऽर्कदिनेऽपिवा ॥ ४९ ॥ श्रावयेच्छ्रद्दधानानांतीर्थपादपदाश्रयः । नेच्छंस्तत्रात्मनात्मानंसंतुष्टइतिसिध्यति ॥ ५० ॥

सम्पूर्ण प्राणियों पर अनुग्रह करनेवाले जिनके अच्युत भगवान्ही प्रियबंधु हैं ऐसे लोग बिनाश्रमही जिसपदको जाते हैं वहीलोक ध्रुवजीको प्राप्तहुआ ॥ ३७ ॥ इसभांति उत्तानपादके पुत्रध्रुव कृष्णपरायण होनेसे त्रैलोक्यके चूडामणि रूपहुये ॥ ३८ ॥ हेविदुर ! गंभीर वेगवाले आलसरहित काल रूपात्मक, ज्योतिषचक्र जिसमें कीलके आसपास घूमतेहुये बैलकी शदस घूमताहै उसपदका ध्रुवप्राप्तहुये ॥ ३९ ॥ ध्रुवकी महिमाको देखकर नारदऋषिने अपनी वीणा बजाकर प्रचेताके यज्ञमें ध्रुवजीकी महिमा तीनश्लोकोंमें बखाना॥४०॥नारदजीनेकहा, कि पतिव्रता सुनीतिके पुत्रध्रुवने तपके प्रभावसे जोगतिपाई उसको वेदवादी ब्रह्मार्षिलोगभी पानेको समर्थ नहीं होतेफिर और राजाओं कीतोबातही क्याहै ॥४१॥ जिसपांचही वर्षके ध्रुवने अपनी सौतेली माताके वाणीरूप शरोंसे विंधहुये हृदयसे वनमें जाकर मेरीशिक्षा परचल अजित भगवान्को कि जोभक्तोंके गुणोंसे हारजातेहैं, वशमें करलिया ॥ ४२ ॥ जोगति ध्रुवको मिलीहै वहगति अन्य क्षत्रियोंको अनेक वर्षोंमें तपकरके प्राप्तहोतीहै उसको ध्रुवने पांचछहही वर्षकी अवस्थामें थोड़ेदिनोंके तपसेही भगवान्को प्रसन्न करके पाली ॥ ४३ ॥ मैत्रेयजी ने कहाकि—हे विदुर ! उदारयश ध्रुवकाजो आपने चरित्रपूछा वहमैंने आपसे वर्णनकिया ॥ ४४ ॥ यहचरित्र धनका देनेवाला, यश, पुण्यस्वर्ग, आयु तथा ध्रुवस्थानका देनेवाला और पापोंका नाश करनेवालाहै ॥ ४५ ॥ जोइस अच्युतप्रिय ध्रुवका चरित्रश्रद्धा पूर्वकसुनेगा, उसका क्लेशनाशक भगवद्भक्ति प्राप्तहोगी ॥ ४६ ॥ जोइस ध्रुवचरित्रका उच्चारण करेंगे उनमें महत्त्व चाहने वालोंको साधन, सुशीलको गुण, तेजकी इच्छा वालोंकोतेज, तथामान चाहने वालोंको मान प्राप्तहोगा ॥ ४७ ॥ पुण्यश्लोक भगवानका और ध्रुवका यह अतिपवित्र चरित्र ब्राह्मणों की सभामें संध्या तथा प्रातःकाल में सावधानता पूर्वक पढ़ना चाहिये ॥४८॥ पूर्णमासी, अमावस्या, द्वादशी, श्रवणनक्षत्रवाला दिन, क्षयदिवस, व्यतीपात, संक्रांति, और रविवार ॥ ४९ ॥ कोश्रद्धावान तथा तीर्थपाद भगवानका चरणोंमें आश्रयरखने वाले मनुष्यों को निष्काम होकर सुनावे, तो उसके सम्पूर्ण मनोरथ सिद्धहोते हैं ॥ ५० ॥

ज्ञानमज्ञाततत्त्वाययोदद्यात्सत्पथेऽमृतम् । कृपालोर्दीननाथस्यदेवास्तस्यानुगृह्णते ॥ ५१ ॥ इदंमयातेऽभिहितंकुरूद्वहध्रुवस्यविख्यातविशुद्धकर्मणः ।हित्वार्भकःक्रीडनकानिमातुर्गृहंचविष्णुंशरणंयोजगाम ॥ ५२ ॥

इतिश्रीमद्भागवतमहापुराणेचतुर्थस्कन्धेध्रुवचरितंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सूत उवाच ॥ निशम्यकौषारविणोपवर्णितंध्रुवस्यवैकुण्ठपदाधिरोहणम् । प्ररूढभावोभगवत्यधोऽक्षजेप्रष्टुंपुनस्तंविदुरःप्रचक्रमे ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ केते प्रचेतसोनामकस्यापत्यानिसुव्रत । कस्यान्ववायेप्रख्याताःकुत्रवासत्रमासते ॥ २ ॥ मन्येमहाभागवतंनारदंदेवदर्शनम् । येनप्रोक्तःक्रियायोगःपरिचर्याविधिर्हरेः ॥ ३ ॥ स्वधर्मशीलैःपुरुषैर्भगवान्यज्ञपूरुषः । इज्यमानोभक्तिमतानारदेनेरितःकिल ॥ ४ ॥ यास्तादेवर्षिणातत्रवर्णिताभगवत्कथाः ।मह्यंशुश्रूषवेब्रह्मन्कात्स्न्येनाचष्टुमर्हसि ५॥ मैत्रेय उवाच ॥ ध्रुवस्यचोत्कलःपुत्रःपितरिप्रस्थितेवनम् । सार्वभौमश्रियंनैच्छदधिराजासनंपितुः ॥ ६ ॥ सजन्मनोपशांतात्मानिःसङ्गःसमदर्शनः । ददर्शलोके विततमात्मानंलोकमात्मनि ॥ ७॥आत्मानंब्रह्मनिर्वाणंप्रत्यस्तमितविग्रहम् ।अवबोधरसैकात्म्य मानन्दमनुसंततम् ॥ ८ ॥ अव्यवच्छिन्नयोगाग्निदग्धकर्ममलाशयः । स्वरूपमवरुन्धानोनात्मनोऽन्यंतदैक्षत॥९॥जडांधबधिरोन्मत्तमूकाकृतिरतन्मतिः । लक्षितःपथिबालानांप्रशांतार्चिरिवानलः ॥ १० ॥ मत्वातंजडमुन्मत्तंकुलवृद्धाः समन्त्रिणः । वत्सरंभूपतिंचक्रुर्यवीयांसंभ्रमेःसुतम् ॥ ११ ॥ स्वर्वीथिर्वत्सरस्येष्टा भार्याऽसूतषडात्मजान् । पुष्पार्णंतिग्मकेतुंचइषमूर्जंवसुंजयम् ॥ १२ ॥ पुष्पार्णस्य

जोमनुष्य अज्ञानी पुरुषको भगवत मार्गमें अमृतरूप ज्ञानदेताहै उस कृपालु और दीनजन उद्धारक पुरुषपर देवता सदा कृपा करते रहते हैं ॥ ५१ ॥ हे विदुर ! विख्यात तथा विशुद्ध कर्मवाले ध्रुव का यह चरित्र मैंने तुमसे कहा कि जो ध्रुव बाल्यावस्थामें खेल और अपनी माताके घरको छोड़कर परमेश्वरकी शरणमें गयाथा ॥ ५२ ॥

इतिश्रीभागवते०महापुराणेचतुर्थस्कंधेसरलाभाषाटीकायांद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सूतजी बोले कि विदुरजीने मैत्रेयजीके मुख से ध्रुवपदका वर्णन सुन भगवान में भावउत्पन्नहो जानेके कारण फिर मैत्रेयजी से पूछा ॥ १ ॥विदुरजी बोले कि हे सुव्रत ! प्रचेता कौनथे ! तथा किसके पुत्र और किसके वंश में उत्पन्न हुएथे और इन्होंने किस स्थान में यज्ञ किया ॥ २ ॥ देवदर्शन,महाभागवत नारदने योगक्रिया का वर्णन तथा हरिकी परिचर्याका वर्णन किया है ॥ ३ ॥ स्वधर्म पालक प्रचेता से पूजित नारदजी ने यज्ञ पुरुष भगवान के गुणोंकाही बखान कियाहोगा ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो कुछ भगवत्सम्बन्धी कथा देवर्षि नारदनें उनसे कहीहो उसका आप मुझसे वर्णन करो मैं सुननेंकी इच्छा करता हूं ॥ ५ ॥ मैत्रेयजीनें कहा कि—हे विदुर ! ध्रुवजी के बनचले जानें पर उनके पुत्र उत्कलनें राजलक्ष्मी और पिताके राज्यासन की इच्छा नकी ॥ ६ ॥ क्योंकि वह जन्म सेही शांत, निःसंग,समदर्शी, सम्पूर्णलोक में एक आत्मा और आत्मा में सम्पर्ण लोकोंको मानताथा॥ ७ ॥ब्रह्म सुखमें निमग्नहो अपनेदेहको भूलगया और ज्ञानरस, आनन्द रूप परमात्मा परब्रह्मको जानताथा॥ ८ ॥और योगरूप अग्नि से उसके अंतःकरणका मल भस्म होगयाथा इसकारण अपनें स्वरूप से पृथक उसका और कुछभी दृष्टि नहीं आताथा ॥ ९ ॥ वह विद्वान् ज्वाला रहित अग्नि के सदृश मार्गमें बालकों को जड़, अंधा, गूंगा, बहरा, विक्षिप्त और अशांत बोध होताथा ॥ १० ॥ कुलवृद्ध और मंत्रिया नें उसको जड़ तथा उन्मत्त जान, उसके लघुभ्राता भ्रमि के पुत्र वत्सर को राज्याधिकार देदिया ॥ ११ ॥ वत्सरकी प्यारी स्त्री स्वर्वीथि के छः पुत्र पुष्पार्ण,तिग्म-

प्रभाभार्यादोषाचद्वेबभूवतुः । प्रातर्मध्यंदिनंसायमितिह्यासन्प्रभासुताः ॥ १३ ॥
प्रदोषोनिशिथोव्युष्टइतिदोषासुतास्त्रयः । व्युष्टःसुतंपुष्करिण्यांसर्वतेजसमादधे ॥
१४ ॥ सचक्षुःसुतमाकूत्यांपत्न्यांमनुमवापह । मनोरसूतमहिषीविरजान्नड्वला
सुतान् ॥ १५ ॥ पुरुंकुत्संत्रितंद्युम्नंसत्यवन्तमृतंव्रतम् । अग्निष्टोममतीरात्रंप्रद्युम्नंशि
बिमुल्मुकम् ॥ १६ ॥ उल्मकोऽजनयत्पुत्रान्पुष्करिण्यांषडुत्तमान् । अङ्गंसुमनसं
ख्यातिक्रतुमङ्गिरसंगयम् ॥ १७ ॥ सुनीथाऽङ्गस्ययापत्नीसुषुवेवेनमुल्वणम् । यद्दौः-
शील्यात्सराजर्षिर्निर्विण्णोनिरगात्पुरात् ॥ १८ ॥ यमङ्गशेपुःकुपितावाग्वज्रामुनयः
किल । गतासोस्तस्यभूयस्तममन्थुर्दक्षिणंकरम् ॥ १९ ॥ अराजकेतदालोकेदस्यु
भिःपीडिताःप्रजाः । जातोनारायणांशेनपृथुराद्यःक्षितीश्वरः ॥ २० ॥ विदुरउवाच
तस्यशीलनिधेःसाधोर्ब्रह्मण्यस्यमहात्मनः । राज्ञःकथमभूद्दुष्टाप्रजायद्विमनाययौ
॥ २१ ॥ किंवांऽहोवेनउद्दिश्यब्रह्मदण्डमयूयुजन् । दण्डव्रतधरेराज्ञिमुनयोधर्मको-
विदाः ॥ २२ ॥ नावध्येयःप्रजापालःप्रजाभिरघवानपि । यदसौलोकपालानांबिभ-
र्त्योजःस्वतेजसा ॥ २३ ॥ एतदाख्याहिमेब्रह्मन्सुनीथात्मजचेष्टितम् । श्रद्दधानाय
भक्तायत्वंपरावरवित्तमः ॥ २४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अङ्गोऽश्वमेधंराजर्षिराजहार
महाक्रतुम् । नाजग्मुर्देवतास्तस्मिन्नाहूताब्रह्मवादिभिः ॥ २५ ॥ तमूचुर्विस्मितास्तत्र
यजमानमथर्त्विजः । हवींषिहूयमानानि नतगृणन्तिदेवताः ॥ २६ ॥ राजन्हवींष्य
दुष्टानि श्रद्धयाऽऽसादितानिते । छन्दांस्ययातयामानि योजितानिधृतव्रतैः ॥२७॥

केतु, इष, ऊर्ज, वसु, और जय उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ पुष्पार्ण की प्रभा और दोषा नाम्नि दो स्त्रीयें थीं, उनमें प्रभाके प्रातर, मध्यंदिन, और सायं यह तीन पुत्र हुए॥१३॥और दोषाके प्रदोष निशिथ और व्युष्ट यह तीन पुत्र हुए व्युष्ट के पुष्करिणी नाम वाली स्त्री थी जिससे सर्वतैजस पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ सर्वतेजस से आकूती नाम स्त्री मे चक्षु नाम पुत्र उत्पन्न हुआ, मनुकी नडवला स्त्री से ॥१५॥ पुरु, कुत्स, त्रित, द्युम्न, सत्यवान, धृतव्रत, अग्निष्टोम अतिरात्रि, प्रद्युम्न, शिबि, और उल्मुक, यह ग्यारहपुत्र उत्पन्नहुए ॥१६॥ उल्मुककी पुष्करिणी रानीसे अंग. सुमना, ख्याति, क्रतु, अंगिरा और गय यह छः पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १७ ॥ अंग की सुनीथा नाम स्त्री से बड़ा दुष्ट वेन नाम पुत्र उत्पन्न हुआ वेन के कुटिल कर्मो से राजा अंग दुःखित हो नगर से निकलगया ॥१८॥ हे विदुर ! वाक्य रूपी वज्र वाले मुनियो के शाप से राजा वेन मरगया, तब मुनियोंनें मृत वेन के दाहिनें हाथ का मथन किया ॥ १९ ॥ उस समय पृथ्वी पर कोई राजा नहींथा इस कारण प्रजा चोरों से अत्यन्त दुःखित होगई तो वेन के हाथसे नारायण अंश आद्य राजापृथु उत्पन्नहुए॥२०॥ बिदुरजी ने कहा कि शीलनिधि साधु ब्राह्मणों का सनमान करनेवाले राजा अंग के ऐसा दुष्ट पुत्र क्यों उत्पन्न हुआ जिसका अन्याय देखकर वह बिमनहो वनको चलेगए ॥ २१ ॥ इस वेनका कौन सा दुष्ट कर्म देख धर्मवेत्ता मुनियोंनें दंडधारी राजा को शाप दिया ॥ २२ ॥ कैसाही पापी राजा क्यों नहोय परन्तु प्रजाको उचित है कि उसको नमारे क्यों कि राजा अपनें तेजमें लोकपालोंका तेज धारण करता है ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन् ! सुनीथा के पुत्र राजा वेनका चरित्र मुझसे कहो मैं आप का भक्त हूं मुझे उसके सुननेंकी बड़ी इच्छा है ॥ २४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि राजा अंगनें अश्वमेध-यज्ञ किया उस यज्ञमे ब्रह्मवादियोंनें देवताओं का आह्वान किया परन्तु वह नआए ॥ २५ ॥ तब ब्राह्मणों ने विस्मित होकर राजा से कहा कि हे राजन् ! हम बहुतसा हवि पदार्थ होमते हैं परन्तु उन्हें देवता ग्रहण नहीं करते ॥ २६ ॥ हे राजन् ! यज्ञ पदार्थों में कुछ दोष नहीं है आप श्रद्धा से

नाविद्गमिहदेवानां हेलनंवयमण्वपि। यन्नगृह्णन्तिभागान्स्वान्ये देवाःकर्मसाक्षिणः॥ २८॥ मैत्रेय उवाच॥ अङ्गोद्विजवचःश्रुत्वा यजमानःसुदुर्मनाः। तत्प्रष्टुंव्यसृजद्वाचं सदस्यांस्तदनुज्ञया॥ २९॥ नागच्छन्त्याहुतादेवा नगृह्णन्तिग्रहानिह। सदसस्पतयोब्रूत किमवद्यंमयाकृतम्॥ ३०॥ सदसस्पतयऊचुः॥ नरदेवेहभवतोनाघं तावन्मनाक्स्थितम्। अस्त्येकंप्राक्तनमघं यदिहेदृक्त्वमप्रजः॥ ३१॥ तथासाधयभद्रंते आत्मानंसुप्रजंनृप। इष्टस्तेपुत्रकामस्य पुत्रंदास्यतियज्ञभुक्॥ ३२॥ तथा स्वभागधेयानि ग्रहीष्यन्तिदिवौकसः। यद्यज्ञपुरुषः साक्षादपत्यायहरिर्वृतः॥ ३३॥ तांस्तान्कामान्हरिर्दद्याद्यान्यान्कामयतेजनः। आराधितोयथैवैष तथापुंसांफलोदयः॥ ३४॥ इतिव्यवसिताविप्रास्तस्य राज्ञःप्रजातये। पुरोडाशंनिरवपञ्छिपिविष्टायविष्णवे॥ ३५॥ तस्मात्पुरुषउत्तस्थौ हेममाल्यमलाम्बरः। हिरण्मयेनपात्रेण सिद्धमादायपायसम्॥ ३६॥ सविप्रानुमतोराजा गृहीत्वाऽञ्जलिनौदनम्। अवघ्रायमुदायुक्तः प्रादात्पत्न्याउदारधीः॥ ३७॥ सातत्पुंसवनंराज्ञी प्राश्यवैपत्युरादधे। गर्भंकालउपावृत्ते कुमारंसुषुवेऽप्रजा॥ ३८॥ सबालएवपुरुषो मातामहमनुव्रतः। अधर्मांशोद्भवंमृत्युं तेनाभवदधार्मिकः॥ ३९॥ सशरासनमुद्यम्य मृगयुर्वनगोचरः। हन्त्यसाधुर्मृगान्दीनान्वेनोऽसावित्यरौज्जनः॥ ४०॥ आक्रीडे क्रीडतो बालान्वयस्यानतिदारुणः। प्रसह्यनिरनुक्रोशः पशुमारममारयत्॥ ४१॥

यज्ञ पदार्थ देतेहो और हम विधिवत वेदको पढते हैं॥२७॥हम देवताओं का थोड़ासा भी अपराध हुआ नहीं देखते, फिर कर्म के साक्षी रूप देवता अपना२भाग क्यों नहीं ग्रहण करते कुछ हमारीसमझ मे नहीं आता॥२८॥मैत्रेयजीबोले कि—हेविदुर! जबराजाअंगने इसभांति ब्राह्मणोंके वचनसुने तब शोकान्वितहो उनकी आज्ञासे मौनव्रत त्याग यह बात सभासदोंसे पूँछी॥२९॥ राजाने कहा कि हे सभासदो! देवता न तो बुलानेसे आते हैं और न अपना भागग्रहण करतेहैं, ऐसा मुझसे क्या निंदितकर्म हुआहै सो मुझसे कहो॥३०॥सभासदोंने कहा कि—हेराजन्! इसजन्मका तो तुम्हारा किंचितभी पाप नहींहै यहकोई पूर्वजन्मका पापहै जिसके कारण आप संतानहीनहो॥३१॥ इस-हेतु आप अपने संतानहोनेकी इच्छासे भगवान का आराधन करो, यज्ञभोक्ता भगवान तुमको नि-श्चय पुत्रदेंगे॥३२॥ ऐसा करनेसे देवताभी अपना२भाग ग्रहणकरेंगे क्योंकि पुत्रके हेतु जब तुम भगवान का यजन करोगे तो उनके साथ देवताभी आजायँगे॥ ३३॥ मनुष्य जिस २ कामना की इच्छा करताहै श्रीभगवान उसी २ कामनाको पूराकरदेतेहैं क्योंकि जो जिसभावसे उनका यजन करताहै उसको वैसाही फलदेतेहैं॥३४॥ मैत्रेयजीने कहा कि राजाने सभासदोंसे यह बात सुन निश्चयकर, संतान केहेतु ब्राह्मणों द्वारा पुरोडाश का हवन विष्णु भगवानके निमित्तकराया॥३५॥ होमके करतेही एकपुरुष सुन्दर सुवर्णकी माला और सुन्दर वस्त्र पहिने सुवर्णके थालमें सुंदर खीर लिये कुण्डसे बाहरनिकला और उसनेकहा कि हे राजन् यह तुमग्रहणकरो॥३६॥तब उदार चित्त राजाने ब्राह्मणोंकी आज्ञासे अति आनंदितहो वह खीर उस पुरुषके हाथसेलेली और सूंघकर अपनी रानीकोदेदी॥३७॥ फिर रानीने उस खीरको भक्षणकर अपने पतिका वीर्य धारणकिया जिससे गर्भरहकर समय पूर्णहोनेपर एकपुत्र उत्पन्नहुआ॥३८॥वह पुत्र बाल्यावस्थासेही अधर्मीहुआ क्योंकि उसने अपने नाना का (सुनीथाके पिता मृत्यु) जो अधर्मसे उत्पन्न हुआथा, अनुकरण किया॥३९॥ वह राजपुत्र आखेटक हेतु वनोंमें फिरतातथा पशुओं और दीनजनों का मारताथा इसकारण उसको मनुष्य वेनकहनेलगे॥४०॥ अतिकठोर दुष्ट वेन खेलमें अपनी समानके बालकों

तंविचक्ष्यखलंपुत्रं शासनैर्विविधैर्नृपः। यदानशासितंकल्पो भृशमासीत्सुदुर्मनाः ॥ ४२ ॥ प्रायेणाभ्यर्चितोदेवो येऽप्रजागृहमेधिनः। कदपत्यभृतंदुःखंयेनविन्दन्ति दुर्भरम् ॥ ४३ ॥ यतःपापीयसी कीर्तिरधर्मश्चमहान्नृणाम्। यतोविरोधःसर्वेषां यतआधिरनन्तकः ॥ ४४ ॥ कस्तंप्रजापदेशंवै मोहबन्धनमात्मनः। पंडितोबहुमन्येत यदर्थाःक्लेशदागृहाः ॥ ४५ ॥ कदपत्यंवरंमन्ये सदपत्याच्छुचांपदात्। निर्विद्येतगृहान्मर्त्यो यत्क्लेशनिवहागृहाः ॥ ४६ ॥ एवंसनिर्विण्णमनानृपो गृहान्निशीथ उत्थायमहोदयोदयात्। अलब्धनिद्रोऽनुपलक्षितोनृभिर्हित्वा गतोवेनसुवंप्रसुप्ताम् ॥४७॥ विज्ञायनिर्विद्यगतंपतिंप्रजाः पुरोहितामात्यसुहृद्गणादयः। विचिक्युरुर्व्यामतिशोककातरा यथानिगूढपुरुषंकुयोगिनः ॥ ४८ ॥ अलक्षयन्तःपदवींप्रजापतेर्हतोद्यमाः प्रत्युपसृत्यतेपुरीम्। ऋषीन्समेतानभिवन्द्यसाश्रवो न्यवेदयन्पौरवभर्तृविप्लवम् ॥ ४९ ॥ इतिश्रीमद्भा०चतु०त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

मैत्रेयउवाच ॥ भृग्वादयस्तेमुनयो लोकानांक्षेमदर्शिनः। गोप्तर्यसतिवैनृणां पश्यन्तःपशुसाम्यताम् ॥ १ ॥ वीरमातरमाहूय सुनीथांब्रह्मवादिनः। प्रकृत्यसंमतंवेनमभ्यषिंचंपतिंभुवः ॥२॥ श्रुत्वानृपासनगतं वेनमत्युग्रशासनम्। निलिल्युर्दस्यवःसद्यः सर्पत्रस्ताइवाखवः ॥ ३ ॥ सआरूढनृपस्थान उन्नद्धोऽष्टविभूतिभिः। अवमेनेमहाभागान्स्तब्धः संभावितःस्वतः ॥ ४ ॥ एवंमदान्धउत्सिक्तो निरंकुशइवद्विपः। पर्यटन्रथमास्थाय कम्पयन्निवरोदसी ॥५॥ नयष्टव्यंनदातव्यं नहोतव्यं

को पशुकी समान मारडालता था ॥४१॥ राजा अंगने इसभांति पुत्रकी दुष्टता देख नानाप्रकार से उपदेश किया परन्तु जब राजा ताड़नासेभी उसको न समझासका तो अत्यन्त दुःखितहोकर आपही आप कहनेलगा ॥ ४२ ॥ कि जिन गृहस्थियोंके पुत्रनहीं है उन्होंने परमेश्वरकी आराधना भलीभांतिकीहै-क्योंकि उनको दुष्टपुत्रोंसे दुःखतो नहीं सहने पड़ते ॥ ४३ ॥ कि जिसकेहेतु अपकीर्त्ति, अधर्म तथा लोगोंके साथ शत्रुता आदिव्यथायें होती हैं ॥४४॥ तथा जिनकेहेतु क्लेशकारक घरमें रहना पड़ताहै, ऐसे आत्माके मोहबंधनको कौनविवेकी पुरुषश्रेष्ठ मानेगा ॥ ४५ ॥ शोक देनेवाले सुपुत्रसे कुपुत्रकोमैं श्रेष्ठमानताहूं क्योंकि कुपुत्रसे मनुष्य दुःखितहोकर गृहआदिकोंसे बिरक्त होजाताहै ॥४६॥ इसप्रकार वैराग्ययुक्त, समृद्धिशाली राजाअंग आधीरात्रिको उठवेनकी माताको सोताहुआ छोड़ अकेला उसघरसे निकलगया ॥ ४७ ॥ जबप्रातः कालहुआ और राजाअंगको मन्दिरमें न देखा, तो पुरोहित, मंत्री, सुहृद, तथा प्रजा अपने स्वामीको वैराग्यकी गतिसे गयाजान इसभांति उसेपृथ्वीपर ढूंढनेलगे कि जैसे कुत्सितयोगी,हृदयके भीतर अंतरयामी पुरुषको अनुसरण करतेहैं, और नहींपाते ॥ ४८ ॥ जब राजाअंग इनको कहीं न मिला, तवसव उद्यमसे हारमान नगरको आये और सवने एकत्रहोकर ऋषियोंको प्रणामकिया, हेविदुर! वेलोग नेत्रोंमें आंसूभरकर कहने लगेकि, पुत्रका दुष्टाचरणदेख दुःखितहो आजराजाअंग कहींघरसे चलेगये ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे चतुर्थस्कंधेसरलाभाषाटीकायांत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

मैत्रेयजीने कहाकि-जगतका कल्याण शोचनेवाले ब्रह्मवेत्ता भृगुआदिक ऋषियोंने कोईभी राजा न होनेसे मनुष्योंको पशुकी समानदेखा ॥ १ ॥ ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंने और मंत्रियोंने वेनकी माता सुनीथाको बुलाकर सवकी सम्मतिसे वेनको राजगद्दीपर बिठाया ॥ २ ॥ भारीदंड देनेवाले वेनको राज्य सिंहासनपर बैठासुन सम्पूर्ण चोरऐसे छिपगयेकि जैसे सांपके भयसेचूहे छिपजाते हैं॥ ३ ॥ यह वेन राज्यगद्दीपर बैठ, अष्टविभूतियों संयुक्त गर्वित अपनी आत्माको सवसेश्रेष्ठ मानताहुआ, महात्माओंका तिरस्कार करनेलगा ॥४॥ निरंकुश हाथीकी समान मतवाला होकर आकाश और

द्विजाःक्वचित्। इतिन्यवारयद्धर्मं भेरीघोषेणसर्वशः ॥ ६ ॥ वेनस्यावेक्ष्यमुनयो-दुर्वृत्तस्यविचेष्टितम्। विमृश्यलोकव्यसनं कृपयोचुःस्मसत्रिणः ॥ ७ ॥ अहोउभयतःप्राप्तं लोकस्यव्यसनंमहत्। दारुण्युभयतोदीप्ते इवतस्करपालयोः ॥ ८ ॥ अराजकभयादेष कृतोराजाऽतदर्हणः। ततोऽप्यासीद्भयंत्वद्यकथंस्यात्स्वस्तिदेहिनाम् ॥ ९ ॥ अहेरिवपयःपोषः पोषकस्याप्यनर्थभृत्। वेनःप्रकृत्यैवखलः सुनीथागर्भसंभवः ॥ १० ॥ निरूपितःप्रजापालः सजिघांसतिवैप्रजाः। तथाऽपिसान्त्वयेमामुं नास्मांस्तत्पातकंस्पृशेत् ॥११॥ तद्विद्वद्भिरसद्वृत्तोवेनोऽस्माभिः कृतोनृपः। सान्त्वितोयदिनोवाचं नग्रहीष्यत्यधर्मकृत् ॥ १२ ॥ लोकधिकारसंदग्धं दहिष्याम स्वतेजसा। एवमध्यवसायैनं मुनयोगूढमन्यवः उपव्रज्याब्रुवन्वेनं सान्त्वयित्वा चसामभिः ॥ १३ ॥ मुनयऊचुः ॥ नृपवर्यनिबोधैतद्यत्ते विज्ञापयामभोः। आयुःश्रीबलकीर्तीनां तवतातविवर्धनम् ॥ १४ ॥ धर्मआचरितःपुंसां वाङ्मनःकायबुद्धिभिः। लोकान्विशोकान्वितरत्यथानन्त्यमसङ्गिनाम् ॥ १५ ॥ सतेमाविनशेद्वीर प्रजानांक्षेमलक्षणः। यस्मिन्विनष्टे नृपतिरैश्वर्यादवरोहति ॥ १६ ॥ राजन्नसाध्वमात्येभ्यश्चोरादिभ्यः प्रजानृपः। रक्षन्यथावलिं गृह्णन्निहप्रेत्यचमोदते ॥१७॥ यस्याराष्ट्रेपुरेचैव भगवान्यज्ञपूरुषः। इज्यतेस्वेनधर्मेण जनैर्वर्णाश्रमान्वितैः ॥१८॥ तस्यराज्ञोमहाभाग भगवान्भूतभावनः। परितुष्यतिविश्वात्मा तिष्ठतोनिजशासने ॥ १९ ॥ तस्मिंस्तुष्टेकिमप्राप्यंजगतामीश्वरेश्वरे। लोकाःसपालाह्येतस्मै हरन्तिबलिमादृताः

पृथ्वीको कंपानेवाले रथपरबैठकर बहचारों ओर घूमनलगा ॥५॥ सम्पूर्ण देशमें इसबातकी डौंड़ी पिटवादी, कोईब्राह्मण होगनकरे तथादान न देवे और परमेश्वरका आराधनभी न करे ॥ ६ ॥ उसदुराचारी वेणुका यह अत्याचार देखकर मनुष्योंको दुःखीजान दयाकरके सबमुनि एकत्रितहो विचार करनेलगे॥७॥ और कहाकि देखोएक ओरसे राजा और दूसरी ओरसे चोरोंकाभय इसप्रकार से है किजैसे लकड़ीके दोनों ओरके जलनेसे उसके कीट इत्यादिकोंको भयहोताहै ॥ ८ ॥ अराजकताके कारणतो हमने इसेराजा किया अब इससेभी बड़ाभारीभय उत्पन्नहुआ, देहधारियोंका कल्याण किसभांतिसे होगा ॥९॥ जिसभांति सर्पकोदूध पिलावे तोवह पालनेवालेहीको दुःखदेताहै, ऐसेही इसवेणुको किजो स्वभावहीसे दुष्ट और सुनीथाके गर्भसे और भीदुष्ट होगयाथा ॥ १० ॥ हमने प्रजापालक निरूपण किया अबयह प्रजाका नाश करता है तथापि इसेचलकर समझादेवें जिससे यह पातक हमें नलगे ॥११॥ हमने जान बूझकर इसराजा बनायाहै अबइसे जाकर समझावेंगे यदि समझानें परभी नमानेगा तो सम्पूर्ण लोकोंके धिक्कार से दग्ध हुएइसे हमलोग अपने तेजसे भस्म करेंगे ॥ १२ ॥ इसभांति सोच. विचार रोषको गुप्त रख वे सबमुनि राजाके निकटगए और उसको नीति वाक्यों से शांति करके बोले ॥ १३ ॥ मुनियोंने कहा कि हेनृप ! हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि जिससे आपकी लक्ष्मी, बल तथा कीर्ति बढ़े वह आप सुनियें ॥ १४ ॥ मन वचन देह और बुद्धि से धर्मका आचरण कियेजानेपर शोक रहित लोककी प्राप्तिहोती है और निष्काम मनुष्यको तो अनंत फल (मुक्ति) मिलता है ॥२५॥ हे वीर ! प्रजा की रक्षा करने में राज्य धर्मका नाश नहीं करना चाहिये क्यों कि धर्म नाशसे राजका नाश होजाता है ॥ १६ ॥ हे राजन् असाधु, अमात्य (मंत्री) से और चोरादिकों से प्रजाकी रक्षा करने से और यथोचित भेंट (कर) लेनेसे राजाको इसलोक तथा परलोकमें आनन्द प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ जिसके देश तथा नगरमें भगवान यज्ञपुरुष नारायणका धर्म पूर्वक यजन होताहै और वर्णाश्रम की मर्यादा का मनुष्य पालन करते हैं ॥ १८ ॥ हे महाभाग ! उस राजाको भगवान भूतभावन अपनी आज्ञामें स्थित हुआ देख अति प्रसन्न होते हैं ॥ १९ ॥ जिस समय ईश्वरोंका ईश्वर प्रसन्न होजाय तब

॥ २० ॥ तंसर्वलोकामरयज्ञसंग्रहं त्रयीमयंद्रव्यमयंतपोमयम् । यज्ञैर्विचित्रैर्यजतो भवायते राजन्स्वदेशाननुरोद्धुमर्हसि ॥ २१ ॥ यज्ञेनयुष्मद्विषये द्विजातिभिर्वितायमानेनसुराःकलाहरेः। स्विष्टाःसुतुष्टाःप्रदिशन्तिवांछितं तद्धेलनंनार्हसिवीरचेष्टितुम् ॥२२॥वेनउवाच ॥ बालिशाबतयूयं वाअधर्मेधर्ममानिनः । येवृत्तिदंपतिंहित्वा जारंपतिमुपासते ॥ २३ ॥ अवजानन्त्यमीमूढा नृपरूपिणमीश्वरम् । नानुविन्दन्ति तेभद्रमिह लोकेपरत्रच ॥ २४ ॥ कोयज्ञपुरुषोनाम यत्रवोभक्तिरीदृशी । भर्तृस्नेहविदूराणां यथाजारकुयोषिताम् ॥ २५ ॥ विष्णुर्विरिंचोगिरिश इंद्रोवायुर्यमोरविः पर्जन्योधनदःसोमः क्षितिरग्निरपांपतिः ॥ २६ ॥ एतेचान्येचविबुधाः प्रभवोवरशापयोः । देहेभवन्तिनृपतेः सर्वदेवमयोनृपः ॥ २७ ॥ तस्मान्मांकर्मभिर्विप्रा यजध्वंगतमत्सराः बलिंचमह्यंहरतः मत्तोऽन्यः कोऽग्रभुक्पुमान् ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्थंविपर्ययमतिः पापीयानुत्पथंगतः । अनुनीयमानस्तद्याच्ञां नचक्रेभ्रष्टमंगलः ॥ २९ ॥ इतितेऽसत्कृतास्तेन द्विजाःपंडितमानिना । भग्नायाभव्ययाच्ञायां तस्मैविदुरचुक्रुधुः ॥ ३० ॥ हन्यतांहन्यतामेष पापःप्रकृतिदारुणः । जीवंजगदसावाशु कुरुतेभस्मसाद्ध्रुवम् ॥३१॥ नायमर्हत्यसद्वृत्तो नरदेववरासनम् । योऽधियज्ञपतिंविष्णुं विनिन्दत्यनपत्रपः ॥ ३२ ॥ कोवैनंपरिचक्षीत वेनमेकमृतेऽशुभम् । प्राप्तईदृशमैश्वर्यं यदनुग्रहभाजनः ॥ ३३ ॥ इत्थंव्यवसिता हन्तुमृषयोरूढमन्यवः । निजघ्नुर्हुंकृतैर्वेनं हतमच्युतनिंदया ॥३४॥ ऋषिभिःस्वाश्रमपदं गतेपुत्रकले-

सब उसकी कामना पूर्ण होती हैं क्योंकि सम्पूर्ण लोक लोकपालों समेत उसराजाको भेटदेते हैं२० महाराज ! सम्पूर्ण लोकके देवता, यज्ञके ग्रहण करनेवाले वेदमय, द्रव्यमय, तपोमय, भगवानको नानाप्रकारके यज्ञोंसे अपने देशके कल्याणके हेतु उसका अनुसरण करनाचाहिये ॥ २१ ॥ आपके देशमें ब्राह्मणलोग यज्ञोंसे देवताओंका यजन करते हैं कि जिससे देवता प्रसन्नहो मनोवांछित मनोर्थ देतहैं इससे उन देवताओं का तिरस्कार न करना चाहिये ॥ २२ ॥ यहसुनकर वेनने कहा कि—तुममूर्खहो जो अधर्मको धर्म मानतेहो और मुझ अन्नादिकके देनेवालेको छोड़कर दूसरे जार पुरुषकी इच्छा करतेहो ॥ २३ ॥ जो मूढ़बुद्धि मनुष्य राजारूपी ईश्वरको नहीं जानते, उनको इस लोक तथा परलोकमें कल्याण नहींमिलता ॥ २४ ॥ वह यज्ञ पुरुष कौनहै जिसमें तुम्हारी इतनी भक्तिहै तुम स्वामीकी प्रीतिसे इसप्रकार दूरहो कि जैसे व्यभिचारिणी स्त्री दूसरेसे प्रीति करती है ॥ २५ ॥ विष्णु, ब्रह्मा, महादेव इन्द्र, पवन, यमराज, सूर्य, मेघ, कुबेर चन्द्रमा, पृथ्वी अग्नि, जल, ॥२६॥ और भी दूसरे देवता जो वर तथा शापके देनेवाले हैं वहसब राजाकी देहमें रहते हैं इससे राजा सर्वदेवमयहै ॥ २७ ॥ हेविप्र ! इसकारण मत्सरताको छोड़ कर्मा से मेरा यजनकरो, और मुझे भेटदो मुझसे दूसरा और कौन भोक्ता पुरुषहै ॥२८॥ मैत्रेयजीने कहा—कि विपरीत बुद्धि तथा खोटेमार्ग पर चलनेवाले उसवेणुको मुनियोंने बहुतसमझाया तथापि उस अभागेने कुछ न समझा ॥ २९ ॥ हेविदुर ! आपनेको बड़ा माननेवाले राजा वेनने जब ब्राह्मणोंका असत्कार किया और उनकी प्रार्थनाको न माना तो मुनियोंने बड़ा क्रोधकिया ॥ ३० ॥ और परस्परमें कहनेलगे कि यह स्वभावहीसे पापी और दुष्टहै यदियह जीवितरहा तो निश्चयही जगतको नष्टकरदेगा इसकारण इसके भस्मकरदो॥३१॥वह राज्यसिंहासनके योग्य नहींहै इसने यज्ञपति भगवानकी भी निन्दाकी यह बड़ाही निर्लज्जहै ॥ ३२ ॥ जिसने कृपाकरके ऐसा ऐश्वर्य दियाहै उन्ह भगवानकी इसदुष्ट के बिना और कौन निंदाकरेगा३३जब सम्पूर्ण ऋषियोंने क्रोधितहो इसकेमारनेका विचार करकिया तब इसवेनको केवल अपने हुंकार शब्दसे भस्मकरदिया ॥३४॥ ऋषिलोग इसभांति उसे मारकर अपने२

करम्। सुनीथापालयामास विद्यायोगेनशोचती ॥३५॥ एकदामुनयस्तेतु सरस्वत्सलिलाप्लुताः। हुत्वाऽग्नीन्सत्कथाश्चक्रुरुपाविष्टाः सरित्तटे ॥३६॥ वीक्ष्योत्थतान्महोत्पातानाहुर्लोकभयंकरान्। अप्यभद्रमनाथायादस्युभ्योनभवेद्भुवः ॥ ३७॥ एवंमृशंतऋषयोधावतांसर्वतोदिशम्। पांसुःसमुत्थितोभूरिश्चोराणामभिलुम्पताम् ॥ ३८॥ तदुपद्रवमाज्ञायलोकस्यवसुलुम्पताम्। भर्तर्युपरतेतस्मिन्नन्योन्यंचजिघांसताम् ॥ ३९॥ चोरप्रायंजनपदंहीनसत्त्वमराजकम्। लोकान्नावारयञ्छक्ताअपितद्दोषदर्शिनः ॥ ४०॥ ब्राह्मणःसमदृक्शांतोदीनानांसमुपेक्षकः। स्रवतब्रह्मतस्यापिभिन्नभाण्डात्पयोयथा ॥ ४१॥ नाङ्गस्यवंशोराजर्षेरेषसंस्थातुमर्हति। अमोघवीर्याहिनृपावंशेऽस्मिन्केशवाश्रयाः ॥४२॥ विनिश्चित्यैवमृषयोविपन्नस्यमहीपतेः। ममन्थुरूरुंतरसातत्रासीद्बाहुकोनरः ॥४३॥ काककृष्णोऽतिह्रस्वाङ्गोह्रस्वबाहुर्महाहनुः ह्रस्वपान्निम्ननासाग्रोरक्ताक्षस्ताम्रमूर्धजः ॥ ४४ ॥ तंतुतेऽवनतंदीनंकिंकरोमीतिवादिनम्। निषीदेत्यब्रुवंस्तातसनिषादस्ततोऽभवत् ॥ ४५॥ तस्यवंश्यास्तुनैषादागिरिकाननगोचराः। येनाहरज्जायमानोवेनकल्मषमुल्बणम् ॥ ४६ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेच०स्कन्धपृथुचरित्रेनिषादोत्पत्तिर्नामचतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

मैत्रेय उवाच ॥ अथतस्यपुनर्विप्रैरपुत्रस्यमहीपतेः। बाहुभ्यांमथ्यमानाभ्यांमिथुनंसमपद्यत ॥ १ ॥ तद्दृष्ट्वामिथुनंजातमृषयोब्रह्मवादिनः। ऊचुःपरमसंतुष्टाविदित्वाभगवत्कलाम् ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः॥एषविष्णोर्भगवतःकलाभुवनपालिनी

आश्रमको गये फिर शोककरतीहुई सुनीथाने पुत्रकी देहको औषधि और मंत्रोंके प्रयोगों से रखछोड़ा ३५ एकसमयमें सम्पूर्ण मुनिलोग सरस्वती नदी में स्नानकर हवनादिसे निश्चिन्तहो सत्कथा कहरहे थे ॥ ३६ ॥ इतनेंमे लोकोंका भय देनेंवाले पूर्वापर बडे २ उत्पात दृष्टि आनेंलगे उन्हें देखकर महात्माओं नें विचार किया कि इस समय पृथ्वीपर कोई राजा नहीं है इस निमित्त हमको इस अनाथ पृथ्वीपर चोरोंका भय है॥३७॥मुनिलोग यह बिचारही रहथे इतनेंमे चोरों के दलके दल घिरआए और उनके घोडोंके दौडनें से चारोओर धूल उडती उनके देखनेंमे आई ॥ ३८ ॥ वह सम्पूर्ण देश चोरोंसे व्याप्त होगया, सब पराक्रम हीनहोगए और सब ओर मार काट चोरी आदिक उत्पात प्रजामें होनेंलगे तब मुनियों नें बिचार किया कि ॥ ३९ ॥ जो ब्राह्मण समदृष्टि, और शांत होनें परभी दीन लोगों की रक्षा नकरें, तो उनका तप फूटेहुए वर्तनमें से जिस प्रकार जल गिरजाता है ऐसे नष्ट होजाता है ॥ ४० ॥ अंग राजाका वंश निर्वंश नजाना चाहिये क्योंकि इसमें बडे२ पराक्रमी, भगवद्भक्त राजाहुए हैं और होवेंगे यह वंश नारायणके आश्रय है ॥ ४१ ॥ इसभांति विचारकर वे ऋषि राजा वेणुकी जंघाका मथन करनेंलगे उसमें से एक बौना पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ ४२ ॥ यह पुरुष काक के सदृश काला, देह तथा हाथपैर छोटे २ लम्बी डाढ़ो और चपटी नाक तथा लालआंखे और इसके भूरेबाल थे ॥ ४३ ॥ यह पुरुष नम्री भूतहो दीनकी भांति कहनेंलगा कि हे महाराज मुझे क्या आज्ञा है तब उन मुनियोंने उससे कहा कि निषीद (बैठजा) इससे उसका नाम निषाद हुआ। ॥४४॥ इसकी जाति से निषाद अर्थात् भीललोगहुए कि जो पर्वत और बनोंमें रहते हैं हे महाराज बेनके शरीरमें पाप भराथा वही निषाद रूपसे बाहर निकला ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे सरला भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

मैत्रेयजीनें कहा—फिर उन मुनिलोगों नें अपुत्र राजा बेनकी भुजाओं का मथन किया तो उससे एक जोडा उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ वेदवादी ब्रह्मर्षियों उस जोडेको उत्पन्न हुआ देख भगवत कला जान बडे हर्षितहुए ॥ २ ॥ ऋषियोंनें कहा कि यह पुरुष भगवान विष्णुका अंश है और यह

इयंचलक्ष्म्याःसंभूतिःपुरुषस्यानपायिनी॥ ३ ॥अयंतुप्रथमोराज्ञांपुमान्प्रथयितायशः प्रथुर्नाममहाराजोभविष्यतिपृथुश्रवाः ॥ ४ ॥ इयंचसुदतीदेवीगुणभूषणभूषणा । अर्चिर्नामवरारोहापृथुमेवावरुन्धती ॥ ५ ॥ एषसाक्षाद्धरेरंशोजातोलोकरिरक्षया इयंचतत्पराहिश्रीरनुजज्ञेऽनपायिनी ॥ ६ ॥ मैत्रेय उवाच॥प्रशंसन्तिस्मतंविप्रागंधर्वप्रवराजगुः । मुमुचुःसुमनोधाराःसिद्धानृत्यन्तिस्वःस्त्रियः ॥ ७ ॥शंखतूर्यमृदंगाद्यानेदुर्दुंदुभयोदिवि । तत्रसर्वउपाजग्मुर्देवर्षिपितृणांगणाः॥८॥ ब्रह्माजगद्गुरुर्देवैः सहासृत्यसुरेश्वरैः । वैन्यस्यदक्षिणेहस्तेदृष्ट्वाचिह्नंगदाभृतः ॥ ९॥ पादयोररविंदंचतंवैमेनेहरेःकलाम् । यस्याऽप्रतिहतंचक्रमंशःसपरमेष्ठिनः ॥१० ॥तस्याऽभिषेकआरब्धोब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः । आभिषेचनिकान्यस्माआजह्रुःसर्वतोजनाः ॥११ ॥ सरित्समुद्रागिरयोनागागावःखगामृगाः । द्यौःक्षितिःसर्वभूतानिसमाजह्रुरुपायनम् ॥ १२ ॥ सोऽभिषिक्तोमहाराजःसुवासाःसाध्वलंकृतः । पत्न्याऽर्चिषाऽलंकृतया विरेजेऽग्निरिवापरः ॥ १३ ॥ तस्मैजहारधनदोहैमंवीरवरासनम् । वरुणःसलिलस्रावमातपत्रंशशिप्रभम् ॥ १४ ॥वायुश्चवालव्यजनेधर्मःकीर्तिमयींस्रजम् ।इंद्रःकिरीटमुत्कृष्टंदंडंसंयमनंयमः ॥ १५ ॥ ब्रह्माब्रह्ममयंवर्मभारतीहारमुत्तमम् ।हरिःसुदर्शनंचक्रंतत्पत्न्यव्याहतांश्रियम् ॥ १६ ॥ दशचंद्रमसिंरुद्रःशतचंद्रंतथाऽम्बिका।सोमोऽमृतमयानश्वांस्त्वष्टारूपाश्रयंरथम् ॥ १७ ॥ अग्निराजगवंचापंसूर्योरश्मिमयानिषून् । भूःपादुकेयोगमय्यौद्यौःपुष्पावलिमन्वहम् ॥ १८ ॥ नाट्यंसुगीतंवादित्र

कन्या भगवान विष्णुकी आज्ञानुवर्त्ती लक्ष्मीजी की विभूति है ॥ ३ ॥ यह पुरुष राजाओं में अग्रगण्य कीर्त्तिवान महाराज पृथुके नामसे विख्यातहोगा और सबसंसारमें अपनी कीर्त्तिको फैलावेगा ॥ ४ ॥ और यहसुन्दर सुदतीगुण आभूषणों से भूषित, वरारोहा अर्चिनाम रानी सदैव राजापृथुकी आज्ञानुवर्तिनी रहेगी, ॥ ५ ॥ यहपृथुनो सृष्टिकीरक्षा करने के लिये विष्णुभगवानका अंश उत्पन्न हुआहै । और यहउनकी आज्ञानुवर्त्तिनी श्रीलक्ष्मीजीकी कलासे उत्पन्न हुईहै ॥ ६ ॥ मैत्रेयजीने कहा—किइसप्रकार ब्राह्मण उनकी प्रशंसा करनेलगे, गन्धर्व यशगानेलगे, सिद्धफूलोंकी वर्षाकरने और अप्सरा नृत्यकरनेलगीं ॥ ७॥ स्वर्गसे शंख,धौंसा, मृदंग,नगाड़े बजाते उसीसमय सम्पूर्ण देवता, ऋषितथा पितृगणोंके समूह ॥ ८ ॥ जगद्गुरू ब्रह्माजी इन्द्रादिक देवताओं सहित आये और पृथुके दाहिने हाथमें गदाभृत चक्रकाचिह्न ॥ ९ ॥ और दोनोपांवोंमें कमलके चिह्नदेखकर ब्रह्माजीने कहाकि यहपरमेश्वरके अंशसे उत्पन्नहुआ राजाचक्रवर्त्तीहोगा ॥ १० ॥ वेदवेत्ता ब्राह्मणोंने उसके अभिषेकका आरंभकिया और सबमनुष्योंने प्रत्येक ठौरसे अभिषेककी सामग्रीयें लालाकर एकत्रितकीं ॥ ११ ॥ नदियें, समुद्र,पर्वत, वृक्ष, गऊ,नाग, पक्षी, मृग,स्वर्ग, पृथ्वी, और सम्पूर्ण प्राणीमात्र भेंटलेलेकर उपस्थितहुए ॥ १२ ॥ फिरउस महाराज पृथुका अभिषेक कियावह शुद्धहो सुंदरवस्त्र धारणकर अलंकारोंसे विभूषितहो अपनीपत्नी अर्चिकेसाथ अग्निकी सदृश, शोभाको प्राप्तहुआ ॥ १३ ॥ हेविदुर ! उसपृथुको कुबेरने श्रेष्ठआसन और वरुणने जलझरताहुआ चन्द्रमाकीसी कांतिवाला छत्रदिया ॥ १४ ॥ पवनने चमर, धर्मने कीर्त्तिमयीमाला, इन्द्रने कीटतथा यमराजने दण्डदिया ॥ १५ ॥ ब्रह्माने ब्रह्ममय कवच, सरस्वतीने सुंदरहार श्रीभगवानने सुदर्शन चक्र तथा लक्ष्मीजीने अतुल सम्पत्तिदी ॥ १६ ॥ रुद्रने दशचन्द्र नामकखड्ग पार्वतीजीने शतचन्द्रिका नामकढाल, चन्द्रमाने अमृत मयघोड़े और त्वष्टाने अतिसुन्दर रथदिया ॥ १७ ॥ अग्निने आजगव धनुष, सूर्य्यने रश्मीमयबाण, पृथ्वीने योगमय पादुका और आकाशने नित्यप्रति फूलोंका हारदिया

मन्तर्धानंचखेचराः । ऋषयश्चाशिषःसत्याःसमुद्रःशंखमात्मजम् ॥ १९ ॥ सिंधवः पर्वतानद्योरथवीथिर्महात्मनः । सूतोऽथमागधोवंदीतंस्तोतुमुपतस्थिरे॥ २० ॥स्तावकांस्तानभिप्रेत्यपृथुर्वैन्यःप्रतापवान् । मेघनिर्ह्रादयावाचाप्रहसन्निदमब्रवीत्॥ २१॥ पृथुरुवाच ॥ भोसूतहेमागधसौम्यवन्दिँल्लोकेऽधुनाऽस्पष्टगुणस्यमस्यात् । किमाश्रयोमेस्तवएषयोज्यतांमामय्यभूवन्वितथागिरोवः ॥ २२ ॥ तस्मात्परोक्षेऽस्मदुपश्रुतान्यलंकरिष्यथस्तोत्रमपीच्यवाचः । सत्युत्तमश्लोकगुणानुवादेजुगुप्सितंन स्तवयन्तिसभ्याः ॥ २३ ॥ महद्गुणानात्मनिकर्तुमीशःकःस्तावकैःस्तावयतेऽसतोऽपि । तेऽस्याभविष्यन्निति विप्रलब्धोजनावहासंकुमतिर्नवेद ॥ २४ ॥ प्रभवोह्यात्मनःस्तोत्रंजुगुप्सन्त्यपिविश्रुताः । ह्रीमन्तःपरमोदाराःपौरुषंवाविगर्हितम् ॥ २५ ॥ वयंत्वविदिताळोके सूताद्यापिवरीमभिः । कर्मभिः कथमात्मानं गापयिष्याम बालवत् ॥ २६ ॥

इतिश्रीमद्भा०चतु०पृथोरवतारप्रादुर्भाववर्णनंनामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ इतिब्रुवाणंनृपतिं गायकामुनिचोदिताः तुष्टुवुस्तुष्टमनसस्तद्वागमृतसेवया ॥ १ ॥ नालंवयंतेमहिमानुवर्णनेयो देववर्योऽवततारमायया ॥ वेनांगजातस्यचपौरुषाणिते वाचस्पतीनामपिबभ्रमुर्धियः ॥ २ ॥ अथाप्युदारश्रवसः पृथोर्हरेः कलाऽवतारस्यकथाऽमृतादृताः । यथोपदेशंमुनिभिःप्रचोदिताः श्लाघ्यानिकर्माणिवयंवितन्महि ॥ ३ ॥ एषधर्मभृतांश्रेष्ठो लोकंधर्मेऽनुवर्तयन् । गोप्ताचध

॥ १८ ॥ आकाश चारियोने नृत्य, गीत, बाजेतथा अंतर्ध्यान होनेकी शक्तियादी, ऋषियोंने सत्य आशीर्वाद और समुद्रने अपनापुत्र शंखदिया ॥ १९ ॥ समुद्र, पर्वत और नदियोंने महाराजा पृथुको मार्ग दिया, सूत, मागधतथा वंदीजन उसकी स्तुति करनेलगे ॥ २० ॥ उनको स्तुति करता जान प्रतापशाली राजा पृथु हसकरके मेघरूपी गम्भीर शब्दबोला ॥ २१ ॥ पृथुबोला कि—हे सूत ! हे मागध ! बन्दीजन, ! इसलोक में मेरे कौनसे गुण प्रगट हैं कि जिनका आश्रय करके तुम बड़ाई करतेहो तुम्हारी वाणी मेरेविषे मिथ्या न होवै ॥ २२ ॥ इसकारण कालांतर में जब मेरेगुण प्रसिद्धहोवें तबमेरी कीर्तिकी बड़ाईकरना अब उत्तम श्लोक नारायणके गुणानुवाद कहो और मनुष्यके मत कहो ॥ २३ ॥ जो बड़े पुरुषोंके गुण आपमें सम्पादन करसकताहै, तो उन अवर्तमान गुणोंके केवल सम्भावनाहीसे कौन स्तुतिकरवावे अपने गुणोंकी अपने सन्मुखही श्लाघा करना यह मन्दमतियोंका कार्य है ॥ २४ ॥ जो सामर्थ लज्जावान और अति उदारहै, वह सृष्टिमें अपनी मुख्याति होनेपरभी ब्रह्मवध आदिक निंदितकार्यकी समान निंदाही करते हैं २५ ॥ हेसूत ! हमतो अबतक कोई श्रेष्ठ कार्य करके विख्यात नहींहुये फिर मूर्खकी भांति अपनी स्तुति कैसे करवावें ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सरलाभाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

मैत्रेयजीनेकहा कि—राजातो इसप्रकार कहताहीरहा परन्तु मुनिलोगोंके प्रेरेहुये गायक प्रसन्नचित्तहोकर अमृतरूपी वाणीसे उसकीस्तुति करनेलगे ॥ १ ॥ गायक बोले—कि हेराजा ! हमें तेरी महिमाके वर्णन करने में सामर्थ नहीं है क्योंकि जो देवतदाओं में श्रेष्ठ अपनी मायासे अवतार धारणकर वनके अंगसे उत्पन्न हुये हैं उनके पौरुषके वर्णन करनेमें ब्रह्मादिकोंकी भी बुद्धि भ्रमित होती है ॥ २ ॥ तौभी उदार यशवाले भगवानके कलावतार आप पृथुके कथारूपी अमृतमें सादर होकर मुनियोंके कहनेसे जैसा उन्होंने हमारे हृदयमें उदय कियाहै उसके अनुसार हम आपके श्लाघनीय कर्मोंका विस्तार करेंगे ॥३॥ यह धर्मधारियोंमे श्रेष्ठ लोकमें धर्मकी प्रवृत्तिकरके धर्मकी

मेत्तूना शास्तातत्परिपन्थिनाम् ॥ ४ ॥ एषवैलोकपालानां बिभर्त्येकस्तनौतनूः। कालेकालेयथाभागं लोकयोरुभयोर्हितम् ॥ ५ ॥ वसुकालउपादत्ते कालेचायंविमुंचति। समःसर्वेषुभूतेषु प्रतपन्सूर्यवद्विभुः ॥ ६ ॥ तितिक्षत्यक्रमंवैन्य उपर्याक्रमतामपि। भूतानांकरुणःशश्वदार्तानांक्षितिवृत्तिमान् ॥ ७ ॥ देवेऽवर्षत्यसौदेवो नरदेववपुर्हरिः। कृच्छ्रप्राणाःप्रजाह्येष रक्षिष्यत्यंजसेन्द्रवत् ॥ ८ ॥ आप्याययत्यसौलोकं वदनामृतमूर्तिना। सानुरागावलोकेन विशदस्मितचारुणा ॥ ९ ॥ अव्यक्तवर्त्मैषनिगूढकार्यो गम्भीरवेधाउपगुप्तवित्तः अनन्तमाहात्म्यगुणैकधामापृथुः प्रचेताइवसंवृतात्मा ॥ १० ॥ दुरासदोदुर्विषह आसन्नोऽपिविदूरवत्। नैवाभिभवितुंशक्यो वेनारण्युत्थितोऽनलः ॥ ११ ॥ अन्तर्बहिश्चभूतानां पश्यन्कर्माणिचारणैः। उदासीनइवाध्यक्षो वायुरात्मेवदेहिनाम् ॥ १२॥ नादण्ड्यंदण्डयत्येष सुतमात्मद्विषामपि। दण्डयत्यात्मजमपि दण्ड्यंधर्मपथेस्थितः ॥ १३ ॥ अस्याप्रतिहतंचक्रं पृथुरामानसाचलात्। वर्ततेभगवानर्को यावत्तपतिगोगणैः ॥ १४ ॥ रंजयिष्यति यल्लोकमयमात्मविचेष्टितैः। अथामुमाहूराजानं मनोरंजनकैःप्रजाः ॥ १५ ॥ दृढव्रतःसत्यसन्धोब्रह्मण्योवृद्धसेवकः। शरण्यःसर्वभूतानांमानदोदीनवत्सलः ॥ १६ ॥ मातृभक्तिःपरस्त्रीषुपत्न्यामर्धइवात्मनः। प्रजासुपितृवत्स्निग्धःकिंकरोब्रह्मवादिनाम् ॥ १७ ॥ देहिनामात्मवत्प्रेष्ठःसुहृदांनन्दिवर्धनः। मुक्तसङ्गप्रसङ्गोऽयंदण्डपाणिरसाधुषु ॥ १८ ॥ अयंतुसाक्षाद्भगवांस्त्र्यधीशःकूटस्थआत्माकलयाऽवतीर्णः। यस्मि-

मर्यादाकी रक्षा करनेवाला होगा, और अधर्मियोंको दण्डदेगा ॥ ४ ॥ लोकपालोंके देहोंको पालन पोषण, करेगा और कार्यके अनुसार समय २ पर जिससे दोनोंलोकोंका हितहो वह कार्यकरेगा ५॥ यहकरमें द्रव्यको ग्रहण करेगा और यथोचित समयों (दुर्भिक्ष, यज्ञआदिक) मेंउसका त्यागकरेगा और सम्पूर्ण प्राणियोंपर सूर्यकी सदृश समदर्शी होकर प्रकाशितहोगा ॥ ६ ॥ यहदयालु पृथुपृथ्वी कीवृत्तिधारण करके, सर्वसहन पृथ्वीकी सदृश आर्तजनोंके अपराध करुणापूर्वक सहन करेगा ॥७॥ जिसकाल इन्द्रवर्षा न करेंगे उससमय यहनरदेव इन्द्रकीसदृश वर्षाकरके दुःखित प्रजाकी रक्षाकरेगा ॥ ८ ॥ यहअपनी कृपादृष्टि और सुंदर मुखचन्द्रकी मंदमुसकानसे चन्द्रमाकी भांतिजगतको तृप्तकरेगा ॥ ९ ॥ इसपृथुके सम्पूर्णकार्य वरुणके कार्योंकी सदृश गुप्तहोंगे, इसके आनेजानेके मार्गकी तथा परिणामके पूर्वही किसी कार्य्यकी, और इसके गंभीर प्रयोजनकी किसीकोभी सूचना नहोगी, इसकाद्रव्य छिपाहुआ रहेगा तथायह अत्यंत महिमावाले गुणोंका धामहोगा ॥१०॥ वेणुरूप अग्निसे उत्पन्नहुये इसअग्नि सदृश पृथुका कोईभी तिरस्कार नकर सकेगा ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर बाहरके कर्मोंको दूतोंद्वारा देखताहुआ इसभांति उदासीनसा रहेगाकि जैसे सम्पूर्णोंका अधिष्ठाता, देहधारियोंका आत्मभूतवायु उदासीनसा रहताहै ॥ १२ ॥ यहऐसा धर्म्मात्माहोगा कि दंडयोग्य अपने पुत्रकोभी दंडदेगा और दंडके अयोग्य शत्रुके पुत्रकोभी दंडनदेगा ॥ १३ ॥ इसपृथुका मानसोत्तर पर्वततक किजहांतक सूर्यभगवान तपतेहैं अटल राज्यहोगा ॥१४॥ यह अपने चरित्रोंसे लोगोंको आनंदित रक्खेगा इसहेतु अपना मनराजी रहने से लोगइसे राजाकहेंगे ॥१५॥ यहराजा दृढव्रत, सत्यसंकल्प ब्राह्मण तथावृद्धोंका सेवक, सबका शरणदाता, मानदेनेवाला और दीनवत्सलहोगा ॥ १६ ॥ पराईस्त्रीमें माताकीसी भक्तिवालातथा अपनीस्त्रीको अर्द्धभागिनी समझनेवाला, प्रजामें पिताकी समानस्नेह करनेवाला तथाब्रह्म वादियों का दासहोगा ॥ १७ ॥ देहधारियोंको अपनी आत्माके सदृशप्यारा समझेगा, सुहृदोंके आनंदका बढ़ावेगा, निःसंगियोंका प्रसंग करेगा और असाधुओंको दंडदेने वालाहोगा ॥ १८ ॥ यहवीर साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु, महेशकी

अविद्यारचितंविश्वमर्थंकंप्रश्रयन्तिनमात्वममपिप्रतीतम् ॥१९॥ अयंभुवोमण्डलमोदयाद्रेर्गोप्तैकवीरोनरदेवनाथः। आस्थायजैत्रंरथमात्तचापः पर्यस्यतेदक्षिणतोयथार्कः॥२०॥अस्मैनृपालाः किलतत्रतत्रवलिंहरिष्यन्तिसलोकपालाः। मंस्यन्तएषांस्त्रिय आदिराजंचक्रायुधंतद्यशउद्धरन्त्यः॥२१॥अयंमहींगांदुदुहेऽधिराजः प्रजापतिर्वृत्तिकरःप्रजानाम्। योलीलयाऽद्रीन्स्वशराग्रकोट्याभिन्दन्समांगामकरोद्यथेन्द्रः ॥२॥ ॥ २२ ॥ विस्फूर्जयन्नाजगवंधनुःस्वयंयदाचरत्क्ष्मामविषह्यमाजौ। तदानिलिल्युर्दिशिदिश्यसन्तोलांगूलमुद्यम्ययथामृगेन्द्रः॥ २३ ॥ एषोऽश्वमेधाञ्छतमाजहार सरस्वतीप्रादुरभावियत्र। अहार्षीद्यस्यहयंपुरंदरःशतक्रतुश्चरमेवर्तमाने ॥ २४॥ एषस्वसद्मोपवनेसमेत्यसनत्कुमारंभगवन्तमेकम्। आराध्यभक्त्याऽलभतामलंतज्ज्ञानंयतोब्रह्मपरंविदन्ति ॥ २५ ॥ तत्रतत्रगिरस्तास्ताइतिविश्रुतविक्रमः। श्रोष्यत्यात्माश्रितागाथाःपृथुःपृथुपराक्रमः ॥ २६ ॥दिशोविजित्याऽप्रतिरुद्धचक्रःस्वतेजसोत्पाटितलोकशल्यः। सुरासुरेन्द्रैरुपगीयमानमहानुभावोभवितापतिर्भुवः॥ २७॥

इतिश्रीमद्भा०चतु०मुनिप्रयुक्तसूतादिस्तोत्रवर्णननामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ एवंसभगवान्वैन्यः ख्यापितोगुणकर्मभिः। छन्दयामासतान्कामैः प्रतिपूज्याभिनन्द्यच ॥ १ ॥ ब्राह्मणप्रमुखान्वर्णान्भृत्यामात्यपुरोधसः। पौरांजानपदाञ्श्रेणीः प्रकृतीःसमपूजयत् ॥ २ ॥ विदुर उवाच ॥ कस्माद्दधारगोरूपंधरित्रीबहुरूपिणी। यांदुदोहपृथुस्तत्र कोवत्सोदोहनंचकिम् ॥३॥ प्रकृत्याविषमादेवी कृतातेनसमाकथम्। तस्यमेध्यंहयंदेवः कस्यहेतोरपाहरत् ॥ ४ ॥ सनत्कुमारा

कसे उत्पन्न हुआ है, नानाप्रकारके अर्थवाले इस विश्वको अविद्या रचित देखेगा ॥ १९ ॥ यह महाराजा विजयी रथपर बैठकर हाथमें धनुष ले सम्पूर्ण भूमण्डलकी सूर्यकी समान प्रदक्षिणा देताहुआ एकाकी रक्षा करेगा ॥ २० ॥ राजा तथा लोकपाल इसे कर देवेंगे और स्त्रियां इस को विष्णु भगवान का अंश मान इसकी कीर्ति का बखान करेंगी ॥ २१ ॥ यह प्रजापति प्रजाको जीविका देनेवाला गौ रूप पृथ्वी का दोहन करेगा, और सहजहीमें अपने धनुषके अग्र भागमें पहाडोंको तोड़कर सब भूमिको इन्द्रकी नाईं समकरेगा ॥ २२ ॥ जब वह युद्धस्थलमें असह्य होकर क्रुधित सिंहकी समान घूमता हुआ अपने आजगव धनुषकी टंकार करेगा, तब सम्पूर्ण दिशाओं के खल छिप जावेंगे ॥ २३ ॥ यह राजा पृथु जहांपर सरस्वती प्रगट हुई हैं वहां पर १०० अश्वमेध यज्ञ करेगा, सौवें यज्ञमें इसका घोडा इन्द्र चुराकर लेजायगा ॥ २४ ॥ यह अपने घर के उपवनमें सनत्कुमार भगवान को पाकर भक्तिपूर्वक उनका आराधन कर निर्मल ज्ञानको प्राप्त होगा।जिससे ब्रह्म पद की प्राप्ति होती है ॥२॥ यह पराक्रमी राजा पृथु जहां तहां अपने पराक्रम के आश्रय रूप वाक्यों को सुनता हुआ ॥ २६ ॥ अपने तेज से दिशाओंको जीतेगा इस राजाका चक्र कहीभी नहरुकेगा यह मनुष्योंके दुःखोंको दूर करेगा सुर असुरोंसे गायेहुए अपने प्रभावको सुनेगा और सम्पूर्ण पृथ्वी मंडल का पति होगा ॥ २७ ॥

इति श्री मद्भागवते महापुराणे० चतुर्थस्कंधे सरला भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

मैत्रेयजी बोले कि—गायकोंने जब इसभांति राजापृथुकेगुणों तथा कर्मोंका गानकिया तब राजाने उनका सत्कार तथा पूजनकर उनको प्रसन्नकिया ॥ १ ॥ इसके अनन्तर ब्राह्मणआदिक सम्पूर्ण वर्ण, भृत्य मन्त्री, पुरोहित पुरवासी तथा देशके कारीगरों और प्रजा इनसबका सनमान किया ॥२॥ विदुरजी बोले कि बहुरूपिणी पृथ्वीने गऊकारूप क्यों धारणकिया पृथुराजाने उसको दोहन किसभांति किया कौन वत्स तथा क्या पात्रथा ॥ ३ ॥ स्वभावहीसे ऊंची नीची पृथ्वीको

द्भगवतो ब्रह्मन्ब्रह्मविदुत्तमात् । लब्ध्वाज्ञानंसविज्ञानं राजर्षिःकांगतिंगतः ॥ ५ ॥
यच्चान्यदपिकृष्णस्य भवान्भगवतःप्रभोः । श्रवःसुश्रवसःपुण्यंपूर्वदेहकथाश्रयम्
॥ ६ ॥ भक्तायमेऽनुरक्ताय तदस्याधोक्षजस्य च । वक्तुमर्हसियोऽदुह्यद्वैन्यरूपेण
गामिमाम् ॥ ७ ॥ सूतउवाच ॥ चोदितोविदुरेणवं वासुदेवकथांप्रति । प्रशस्यतं
प्रीतमना मैत्रेयःप्रत्यभाषत ॥ ८ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ यदाभिषिक्तःपृथुरङ्गविप्रैराम-
न्त्रितो जनतायाश्चपालः । प्रजानिरन्नेक्षितिपृष्ठएत्य क्षुत्क्षामदेहाः पतिमभ्यवोचन्
॥ ९ ॥ वयंराजञ्जाठरेणाभितप्ता यथाऽग्निनाकोटरस्थेनवृक्षाः । त्वामद्ययाताःशर
णंशरण्यं यःसाधितोवृत्तिकरःपतिर्नः ॥ १० ॥ तन्नोभवानीहतुरातवेऽन्नं क्षुधार्दि
तानांनरदेवदेव । यावन्ननंक्ष्यामहउज्झितोर्जा वार्तापतिस्त्वंकिललोकपालः ॥११
मैत्रेय उवाच ॥ पृथुःप्रजानांकरुणं निशम्यपरिदेवितम् । दीर्घंदध्यौकुरुश्रेष्ठ निमि-
त्तंसोऽन्वपद्यत ॥ १२ ॥ इतिव्यवसितोबुद्ध्या प्रगृहीतशरासनः । सन्दधेविशिखं
भूमेःक्रुद्धस्त्रिपुरहायथा ॥ १३ ॥ प्रवेपमानाधरणी निशाम्योदायुधंचतम् । गौःस-
त्यपाद्रवद्भीता मृगीवमृगयुद्रुता ॥१४॥ तामन्वधावत्तद्वैन्यःकुपितोऽत्यरुणेक्षणः।शरं
धनुषिसंधाय यत्रयत्रपलायते ॥१५॥ सादिशोविदिशोदेवी रोदसीचान्तरं तयोः।
धावन्तीतत्रतत्रैनं ददर्शानूद्यतायुधम् ॥ १६ ॥ लोकेनाविन्दतत्राणं वैन्यान्मृत्योरिव
प्रजाः । त्रस्तातदानिववृते हृदयेनविदूयता ॥१७॥ उवाचचमहाभागं धर्मज्ञाऽपन्न

राजाने किसभांति समाकिया, तथा यज्ञके घोड़को इन्द्रक्यों हरलेगया ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ब्रह्मवेत्ताओं
मे श्रेष्ठ भगवान सनत्कुमारसे राजर्षि पृथु ज्ञानको प्राप्तहोकर किसगतिको प्राप्तहुआ ॥ ५ ॥
हेब्रह्मन् औरभी जो श्रीकृष्ण भगवानका पुण्यकारी यश पुण्यवान पृथुकी कथाके आश्रितहो वह
॥ ६ ॥ मुझ भगवद्भक्तमे आप वर्णन करो कि जिस पृथुराजाने वेनका पुत्रहोकर इसपृथ्वी का
दोहनकिया ॥७॥ सूतजीने कहा कि—जब विदुरजीने श्रीकृष्ण भगवानकी कथाकेहेतु इसप्रकार
मैत्रेयजीको प्रेरणाकी तो उन्होंने विदुरजीकी प्रशन्सा करके कहा ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि हे
विदुर ! जब ब्राह्मणोंने राजा पृथुका अभिषेक किया और प्रजापालक बनाया तब सम्पूर्ण पृथ्वी
अन्नहीन होगई और प्रजा क्षुधासे व्याकुलहो जीर्ण होगई तो सबोंने आकर अपने पति राजा
पृथुसेकहा ॥ ९ ॥ कि हेराजन् ! हम जठराग्निसे इसभांति तप्तहोरहे हैं कि जैसे वृक्षके कोटर में
अग्निलगनेसे उसके जीव जलतेहैं, हम तुम्हारेशरणहैं हमको वृत्तिदेनेवाला आपको ब्राह्मणोंने हमारा
नाथ बनाया है ॥ १० ॥ हेनरदेव ! हम क्षुधार्त होरहे हैं आप हमारी रक्षाकेहेतु उपायकरो, उस
कालतक हमें अन्नमिलजाय कि जिसकालतक हम मरेनहीं, हेलोकपालक ! तुम हमारी जीविका
के पति और जगतपालकहो ॥ ११ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि—हे विदुर ! जब पृथु राजाने इसभांति
उनका बिलाप सुना तो बड़ीदेरतक बिचारकिया और दुर्भिक्ष के कारणको जानलिया ॥ १२ ॥
बुद्धिसे इसप्रकार निश्चयकरा कि भूमि सम्पूर्ण औषधियोंके बीजको निगलगई है यह शोच धनुष
ग्रहणकर क्रुद्धितहो भूमिकेहेतु इसभांति तीक्ष्णशरका संधानकिया कि जिसभांति शिवजीने त्रिपुर
के मारनेके हेतु शरसंधानाथा ॥ १३ ॥ पृथ्वी राजापृथुको अपने ऊपर आयुध उठाय देख कांपने
लगी और गौकारूप धारणकर भयखाय इसप्रकारभगी कि जैसे शिकारी (बाधिक) को देखकर
मृगी भागतीहै ॥१४॥ जिसके लालनेत्र होरहेहैं ऐसेपृथुने क्रुद्धितहो जहां २ पृथ्वी भागकरगई वहां २
धनुषमें शरको चढ़ाये उसके पीछे दौड़ागया ॥१५॥ वह देविपृथ्वी दिशा विदिशा स्वर्गलोक और
पृथ्वीके अन्तरिक्ष जहां भागकरगई वहीं धनुषबाण धारणकिये राजाको आतेहुये देखा ॥ १६ ॥
जिसभांति प्रजाको मृत्युसे कोई रक्षाकरनेवाला नहीं होता उसभांति पृथ्वीको राजापृथुसे रक्षाकरने

वत्सल । आप्तिमामपिभूतानां पालनेऽवस्थितोभवान् ॥ १८ ॥ सत्वांजिघांससे क-स्माद्दीनामकृतकिल्बिषाम् । अहनिष्यत्कथंयोषां धर्मज्ञइतियोमतः ॥ १९ ॥ प्रहर-न्तिनवैस्त्रीषु कृतागःस्वपिजन्तवः । किमुतत्वद्विधा राजन्करुणादीनवत्सलाः २० मांविपाट्याऽजरांनावं यत्रविश्वंप्रतिष्ठितम् । आत्मानंचप्रजाश्चेमाः कथमम्भसिधा स्यसि ॥ २१ ॥ पृथुरुवाच ॥ वसुधेत्वांवधिष्यामि मच्छासनपराङ्मुखीम् । भागं बर्हिषियावृङ्क्ते नतनोतिचनोवसु ॥२२॥ यवसंजग्ध्यनुदिनंनैव दोग्ध्यौधसंपयः । तस्यामेवंहिदुष्टायां दण्डोनात्रनशस्यते ॥ २३ ॥ त्वंखल्वोषधिवीजानिप्राक् सृष्टा-निस्वयंभुवा । नमुंचस्यात्मरुद्धानि मामवज्ञायमन्दधीः ॥ २४ ॥ अमूषांक्षुत्परीता-नामार्तानां परिदेवितम् । शमयिष्यामि मद्बाणैर्भिन्नायास्तवमेदसा ॥ २५ ॥ पुमा-न्योषिदुतक्लीव आत्मसंभावनोऽधमः।भूतेषुनिरनुक्रोशो नृपाणांतद्वधोऽवधः २६ त्वांस्तब्धांदुर्मदांनीत्वा मायागांतिलशःशरैः । आत्मयोगबलेनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥ २७ ॥ एवंमन्युमयींमूर्तिं कृतान्तामिवबिभ्रतम् । प्रणताप्रांजलिःप्राह मही संजातवेपथुः ॥ २८ ॥ धरोवाच ॥ नमःपरस्मैपुरुषायमायया विन्यस्तनानातन-वेगुणात्मने । नमःस्वरूपानुभवेननिर्धुतद्रव्यक्रियाकारकविभ्रमोर्मये ॥ २९ ॥ येना हमात्मायतनंविनिर्मिता धात्रायतोऽयंगुणसर्गसंग्रहः । सएवमांहन्तुमुदायुधः स्व राडुपस्थितोऽन्यंशरणंकमाश्रये ॥ ३० ॥ यएतदादावसृजच्चराचरं स्वमाययाऽऽ त्माश्रययाऽवितर्क्यया । तयैवसोऽयंकिलगोप्तुमुद्यतःकथंनुमांधर्मपराजिघांस-

वाला कोई न मिला तबव्याकुलचित्तसे दुःखितहोकर पीछेको लौटी॥१७॥और राजापृथुसे कहनेलगी, कि हेमहाभाग ! हेधर्मज्ञ ! हेशरणागत वत्सल! तुममेरी रक्षाकरो आप सम्पूर्ण प्राणियोंके पालने-वालेहो ॥ १८ ॥ मुझ दीन निरपराधिनी अवलाको आप धर्मज्ञ होकर कैसे मारोगे ? ॥१९॥ स्त्री अपराध भीकरें तोभी उसकोनहीं मारनाचाहिये फिर हेराजन् ! तुम सरीखे करुणावान दीनवत्सल पुरुष स्त्रियोंको क्यों मारतेहो॥२०॥फिर जिस मुझपर यह संपूर्ण सृष्टि स्थितहै ऐसी मुझ दृढ़ नौका को नाश करके प्रजा तथा अपनी आत्माको जलपर किसभांति धारणकरोगे ॥२१॥ राजा पृथुने कहा कि हेपृथ्वि ! तूनेमेरी अवज्ञाकी इसहेतु मैं तेरावध करूंगा क्योंकि यज्ञमें तो तू अपनाभाग लेलेतीहै और फिर धान्य इत्यादिक द्रव्योंका विस्तार नहीं करती ॥२२॥ जो गौ प्रतिदिन हरे२ तृणोंको चरै औरफिर दूध न दे तो उसको दण्ड मिलताहै इसभांति तुझभी दण्ड मिलना योग्य है ॥ २३ ॥ तुझ मन्दबुद्धिने मेरी अवज्ञाकरके ब्रह्माजी के पहले सृजेहुये बीजोंको निगल लिया अब तू उनको नहीं त्यागती ॥ २४ ॥ इस क्षुधार्तप्रजाका तुझको विदारकर तेरे मेदसे दुःख दूर करूंगा ॥ २५ ॥ पुरुष स्त्री नपुंसक चाहे कोईहो यदिवह अधम प्राणियोंपर कृपा न करे और अहमेव (अहंकार) रक्खे उसके वधकरनेसे राजाको दोष नहीहोता ॥२६॥तुझ गर्भित मदवालीको बाणोंसे तिल२ करके अपने आत्मयोगके बलसे सम्पूर्णप्रजाको अपनेमें धारण करूंगा ॥२७॥ जब पृथ्वीने राजाकी इसभांति कालके सदृश क्रोधमयी मूर्तिदेखी तो कांपतीहुई हाथजोड विनय पूर्वक बोली ॥ २८ ॥ पृथ्वीने कहा कि—मायासे गुणात्मक देहके धारण करनेवाले पुरुषरूप परमात्मा आपको नमस्कारहै, जिन्होंने अपनेरूपके अनुभवसे द्रव्यक्रिया और अध्यात्मिक देवताओं संबंधी अहंकार, तथा रागद्वेषादि ऊर्मियोंको छोड़दियाहै उन आत्माकोमैं दण्डवत करतीहूं ॥ २९ ॥ जिस ब्रह्माने प्राणियोंके रहनेके हेतु मुझ स्थापित कियाहै और जिस मुझपर चारप्रकारके प्राणी रहते है उसको स्वराट् चक्रवर्ती आज आयुध उठाकर मारनेको उपस्थितहुआहै मैं आप बिना किसकी सरणजाऊं ॥ ३० ॥ जिस परमेश्वरने अपनी मायासे सृष्टिके चराचर प्राणियोंको उत्पन्न

ति ॥ ३१ ॥ नूनंबतेशस्यसमीहितं जनैस्तन्माययादुर्जययाऽकृतात्मभिः । नलक्ष्यते यस्त्वकरोदकारयद्योऽनेक एकःपरतश्चईश्वरः ॥ ३२ ॥ सर्गादियोऽस्यानुरुणद्धि शक्तिभिर्द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मभिः । तस्मैसमुन्नद्धनिरुद्धशक्तये नमःपरस्मैपुरुषायवेधसे ॥ ३३ ॥ सवैभवानात्मविनिर्मितं जगद्भूतेन्द्रियांतःकरणात्मकंविभो । संस्थापयिष्यन्नजमां रसातलादभ्युज्जहाराम्भसआदिसूकरः ॥ ३४ ॥ अपामुपस्थे मयिनाव्यवस्थिताः प्रजाभवानद्यरिरक्षिषुःकिल । सवीरमूर्तिःसमभूद्धराधरो यो मांपयस्युग्रशरोजिघांससि ॥ ३५ ॥ नूनंजनैरीहितमीश्वराणामस्मद्विधैस्तद्गुणसर्गमायया । नज्ञायतेमोहितचित्तवर्त्मभिस्तेभ्यो नमोवीरयशस्करेभ्यः ॥ ३६ ॥

इतिश्रीमद्भा०चतुर्थ०पृथुविजयेधरित्रीनिग्रहो नामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ इत्थंपृथुमभिष्टूयरुषाप्रस्फुरिताधरम् । पुनराहावनिर्भीतासंस्तभ्यात्मानमात्मना ॥ १ ॥ संनियच्छाभिभोमन्युंनिबोधश्रावितचमे । सर्वतःसारमादत्तेयथामधुकरोबुधः ॥ २ ॥ अस्मिँल्लोकेऽथवामुष्मिन्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । दृष्टायोगाःप्रयुक्ताश्चपुंसांश्रेयःप्रसिद्धये ॥ ३ ॥ तानातिष्ठतियःसम्यगुपायान्पूर्वदर्शितान् । अवरःश्रद्धयोपेतउपेयान्विन्दतेऽञ्जसा ॥ ४ ॥ ताननादृत्ययोविद्वानर्थानारभतेस्वयम् । तस्यव्यभिचरन्त्यर्थाआरब्धाश्चपुनःपुनः ॥ ५ ॥ पुरासृष्टाह्योषधयोब्रह्मणायाविशांपते । भुज्यमानामयादृष्टाअसद्भिरधृतव्रतैः ॥ ६ ॥ अपालिताऽनादृताच

कियाहै तथा जो उसीमायासे अभी सृष्टिकी रक्षाको उत्पन्नहुआ है सो धर्मपरायण आप मुझे कैसे मारोगे ॥ ३१ ॥ सत्यहै कि अज्ञान बुद्धि मनुष्य परमेश्वरकी अजयमायासे उसकी चेष्टाको नहीं जानसकता कि जिस एकमायासे स्वतन्त्र तथा अनेकरूपवाले परमेश्वरने यहसृष्टि उत्पन्नकी और ब्रह्माद्वारा सृष्टिमें प्राणियोंको उत्पन्न करवाया ॥ ३२ ॥ तथा जो पंचमहाभूत इन्द्री, चेतना, बुद्धि, और अहंकाररूपी अपनी शक्तियोंसे सर्गादिककी रचना स्थित और संहार करताहै ऐसीबड़ी शक्तिवाले वेधारूप परमपुरुष आपको नमस्कारहै ॥ ३३ ॥ हेप्रभु ! आपनें पंचमहाभूत, इन्द्रियें, और आत्मासे अपनीरचीहुई सृष्टिको भलीभांति स्थापितकरनेके निमित्त वाराहरूप धारणकर रसातलसे मेरा उद्धार कियाथा ॥ ३४ ॥ तथा जल के ऊपर मुझे स्थापितकर सृष्टि रक्षाकेलिये आज पृथुरूप धारणकियाहै सो मुझको स्थापित करनेवाले आप तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर मारा चाहतेहो ॥ ३५ ॥ जिन भगवानके सेवकोंकीभी चेष्टा नहीं जाननेमेंआती उनभगवानकीचेष्टा फिरकैसेजानीजाय ! इस हेतु परमेश्वरकी गुण सर्गरूप मायामें मोहितहुईमैं उनजितेंद्रिय भगवानकी कीर्तिबढ़ानेवाले भक्तोंको भी नमस्कार करतीहूं ॥ ३६ ॥

इति श्री भागवते महापुराणे सरलाभाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

मैत्रेयजी बोलेकि—भयभीत पृथ्वीने क्रोधसे फड़कतेहुये होठवाले राजापृथु की स्तुतिकरके स्थिरचित्तहोकर फिरकहा ॥ १ पृथ्वीने कहाकि हेराजन् ! क्रोधको दूरकरो और जो मैंकहतीहूं वहसुनो, विवेकी मनुष्य वस्तुकाचारों ओरसे भौंरेकी सदृशसार २ ग्रहण करतेहैं ॥ २ ॥ इसलोक और परलोकमें तत्वदर्शी मुनियोंने मनुष्योंके सुखकेहेतु जोप्रयोग बतायेहैं ॥ ३ ॥ उन्हीं मुनियोंके बतायेहुये प्रयोगोंका जोश्रद्धा पूर्वक भलीभांति अनुष्ठान करताहै वहमनुष्य उनउपायोंसे सहजहीमें पदार्थ उत्पन्न करसकताहै ॥ ४ ॥ और जोमूढ़ उनउपायोंका तिरस्कार करके अपनी बुद्धिसे दूसरे प्रकारसे उसका प्रयोग करताहै, सोउसके उनउपायोंसे वारंवार प्रयोग करने परभी उसकी सिद्धि नहींहोती ॥ ५ ॥ हेविशांपते ! प्रथम ब्रह्माजीने जोअन्न उत्पन्न कियाथा उसको मैनेअसत् हीराजा

भवद्भिर्लोकपालकैः । चोरीभूते ऽथ लोके ऽहं यज्ञार्थे ऽग्रसमोषधीः ॥ ७ ॥ नूनं ता वीरुधः क्षीणा मयि कालेन भूयसा । तत्र योगेन दृष्टेन भवानादातुमर्हति ॥ ८ ॥ वत्सं कल्पय मे वीर येनाहं वत्सला तव । धोक्ष्ये क्षीरमयान्कामाननुरूपं च दोहनम् ॥ ९ ॥ दोग्धारं च महाबाहो भूतानां भूतभावन । अन्नमीप्सितमूर्जस्वद्भगवान्वाञ्छते यदि ॥ १० ॥ समां च कुरु मां राजन्देववृष्टं यथा पयः । अपर्तावपि भद्रं ते उपावर्तेत मे विभो ॥ ११ ॥ इति प्रियं हितं वाक्यं भुव आदाय भूपतिः । वत्सं कृत्वा मनुं पाणावदुहत्सकलौषधीः १२ तथाऽपरे च सर्वत्र सारमाददते बुधाः । ततो ऽन्ये च यथाकामं दुदुहुः पृथुभाविताम् १३ ऋषयो दुदुहुर्देवीमिन्द्रियेष्वथ सत्तम । वत्सं बृहस्पतिं कृत्वा पयश्छन्दोमयं शुचि १४ कृत्वा वत्सं सुरगणा इन्द्रं सोमम दूदुहन् । हिरण्मयेन पात्रेण वीर्यमोजो बलं पयः १५ दैतेया दानवा वत्सं प्रह्लादमसुरर्षभम् । विधायादूदुहन्क्षीरमयःपात्रे सुराऽऽसवम् ॥ १६ ॥ गन्धर्वाप्सरसो ऽधुक्षन्पात्रे पद्ममये पयः । वत्सं विश्वावसुं कृत्वा गान्धर्वं मधु सौभगम् ॥ १७ ॥ वत्सेन पितरो ऽर्यम्णा कव्यं क्षीरमधुक्षत । आमपात्रे महाभागाः श्रद्धया श्राद्धदेवताः ॥ १८ ॥ प्रकल्प्य वत्सं कपिलं सिद्धाः संकल्पनामयीम् । सिद्धिं नभसि विद्यां च ये च विद्याधरादयः ॥ १९ ॥ अन्ये च मायिनो मायामन्तर्धानाद्भुतात्मनाम् । मयं प्रकल्प्य वत्सं ते दुदुहुर्धारणामयीम् ॥ २० ॥ यक्षरक्षांसि भूतानि पिशाचाः पिशिताशनाः भूतेशवत्सा दुदुहुः कपाले क्षतजासवम् ॥ २१ ॥ तथाऽहयो दन्दशूकाः सर्पा नागाश्च तक्षकम् । विधाय वत्सं दुदुहुर्बिलपात्रे विषं पयः ॥ २२ ॥ पशवो यवसं क्षीरं वत्सं कृत्वा

वेन इत्यादिकके भोगमें आता देखा ॥ ६ ॥ जब आपसे लोकपालक लोगोंने तो मेरा अनादर किया और सम्पूर्ण मनुष्य प्रायः चोर होगये, तब यज्ञके हेतु मैंने यह ओषधियें ग्रसलीं ॥ ७ ॥ वे वनस्पतियें बहुत काल रहनेपर मेरा देहमें क्षीण होगई हैं, इस हेतु मुनियोंके बताये हुये यत्नसे उस अन्नको मुझसे लेलो ॥ ८ ॥ हे वीर ! एक वत्स और दूसरा बेमाड़ी उचित पात्र कल्पित करो कि जिससे मैं आपपर प्रसन्न होकर क्षीरमय तुम्हारी सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण करूं ॥ ९ ॥ हे महाबाहो ! हे भूतभावन् ! यदि आप प्राणियोंके मनवांछित बलदायी अन्नको चाहते हो तो एक दुहनेवाला नियत करो ॥ १० ॥ हे राजन् ! हे प्रभो ! आप मुझे बराबर कर दीजिये कि जिससे वर्षाऋतुके बीत जाने पर भी इन्द्रका बर्षाया हुआ जल मेरे प्रत्येक स्थानपर सदा भरा रहे ॥ ११ ॥ राजाने पृथ्वीके इस प्रकार प्रियहितकारी वाक्य सुनकर मनुको वत्स बना हाथमें दोहनाले सम्पूर्ण औषधियोंको दुहलिया ॥ १२ ॥ और भी विज्ञ जनोंने पृथुकी पृथ्वीका अपनी कामनानुसार दोहन किया ॥ १३ ॥ हे विदुर ! ऋषियोंने इन्द्रियोंको पात्र और बृहस्पतिको वत्स बना वेदमय दुग्धको दुहा ॥ १४ ॥ देवताओंने इन्द्रको वत्स बना सुवर्णमय पात्रमें अमृत, वीर्य, और बलरूप दुग्ध दुहा ॥ १५ ॥ दैत्य और दानवोंने असुरेश्वर प्रह्लादको वत्स बना लोहमय पात्रमें मदिरा आसव रूप दुग्ध दुहा ॥ १६ ॥ गन्धर्व और अप्सराओंने विश्वावसुको वत्स कर कमलमय पात्रमें गानविद्या रूप दूधका वाणीकी मधुरता और सुंदरता सहित दुहा ॥ १७ ॥ श्राद्धके देवता पित्रीश्वरोंने अर्यमा पित्रको वत्स बना अपक्व मृत्तिकामय पात्रमें कव्यरूप दुग्धको दुहा ॥ १८ ॥ सिद्धोंने कपिलदेवजीको वत्स बनाकर आकाशरूपी पात्रमें अणिमादिक सिद्धि रूप दूधका दोहन किया, और विद्याधरों ने आकाशचारी विद्या रूप दूधको दुहा ॥ १९ ॥ और भी मायावी लोगों नें मय दैत्यको वत्स कर अंतर्ध्यानादिक अद्भुत माया तथा संकल्पमात्र से सिद्ध होनेंवाली मायारूप दूधका दोहन किया ॥ २० ॥ यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच जो मांसाहारी थे उन्होंने रुद्रको वत्स बनाकर, कपाल पात्रमें रुधिर रूपी मदिरा को दुहा ॥ २१ ॥ तैसेही अहि, दन्दशूक, नाग, बिच्छू आदिक बिषैल प्राणियोंनें, तक्षक को वत्स कर बिल रूप पात्रमें बिष रूप दूध का दोहन किया ॥ २२ ॥

खगोवृषम् । अरण्यपात्रेचाधुक्षन्मृगेन्द्रेणचदंष्ट्रिणः ॥२३॥ क्रव्यादाः प्राणिनः क्रव्यं दुदुहुः स्वकलेवरे सुपर्णवत्साविहगाश्चरंचाऽचरमेवच ॥ २४ ॥वटवत्सावनस्पतयः पृथग्रसमयंपयः । गिरयोहिमवद्वत्सानानाधातून्स्वसानुषु ॥२५॥सर्वेस्वमुख्यवत्सेनस्वेस्वेपात्रेपृथक्पयः । सर्वकामदुघांपृथ्वीं दुदुहुः पृथुभाविताम् ॥ २६ ॥ एवं पृथ्वादयःपृथ्वीमन्नादाःस्वन्नमात्मनः । दोहवत्सादिभेदेनक्षीरभेदंकुरूद्वह ॥ २७ ॥ ततोमहीपतिःप्रीतःसर्वकामदुघांपृथुः । दुहितृत्वेचकारेमांप्रेम्णादुहितृवत्सलः २८ चूर्णयन्स्वधनुष्कोट्यागिरिकूटानिराजराट् । भूमण्डलमिदंवैन्यःप्रायश्चक्रेसमंविभुः ॥ २९ ॥ अथास्मिन्भगवान्वैन्यःप्रजानांवृत्तिदःपिता । निवासान्कल्पयांचक्रे तत्रतत्रयथार्हतः ॥३०॥ ग्रामान्पुरःपत्तनानिदुर्गाणिविविधानिच । घोषान्व्रजान्सशिबिरानाकरान्खेटखर्वटान् ॥ ३१ ॥ प्राक्पृथोरिहनैवैषापुरग्रामादिकल्पना ।यथा सुखंवसंतिस्मतत्रतत्राकुतोभयाः ॥ ३२ ॥

इतिश्रीमद्भा०पधुविजयेपृथुनापृथिवीदोहनवर्णनंनामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

मैत्रेयउवाच ॥ अथादीक्षतराजा तुहयमेधशतेनसः । ब्रह्मावर्तेमनोःक्षेत्रे यत्र प्राचीसरस्वती ॥ १ ॥ तदभिप्रेत्यभगवान्कर्मातिशयमात्मनः । शतक्रतुर्नममृषे पृथोर्यज्ञमहोत्सवम् ॥ २ ॥ यत्रयज्ञपतिःसाक्षाद्भगवान्हरिरीश्वरः । अन्वभूयतसर्वात्मा सर्वलोकगुरुःप्रभुः ॥३॥ अन्वितोब्रह्मशर्वाभ्यां लोकपालैःसहानुगैः । उपगीयमानोगन्धर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः ॥ ४ ॥ सिद्धविद्याधरादैत्या दानवागुह्यकादयः ।

पशुओं ने नंदिकेश्वर को वत्स बनाकर वन रूपी पात्र मे घास रूपी दूध का, डाढवाले मांसाहारी जीवों ने सिंहको वत्स बनाकर ॥ २३ ॥ शरीर रूप पात्र मे मांस रूप दूध का और पक्षियो ने गरुड को वत्स बनाकर सब पक्षि कीट आदि अचर फल रूप दूध का दोहन किया ॥ २४ ॥ वृक्षों ने बट को वत्स बनाकर अनेक प्रकार के रसमय दूध को दुहा पर्वतो ने हिमाचल को वत्स बनाकर शिखर रूपी पात्र में नाना भांति के धातु रूप दूध को दुहा ॥२५॥ एसेही सभोने अपने २ मुखियाको वत्स बनाकर, अपने २ पात्र मे कामना पूर्ण करनेवाली पृथु की आधीन की हुई पृथ्वीसे पृथक २ दूध दुहा ॥ २६ ॥ हे विदुर ! इस भांति अन्न भक्षी पृथु आदिक सब लोगोंने पात्र वत्स आदिक भेद से अपने इच्छित पृथक् २ पदार्थो का दोहन किया ॥ २७ ॥ फिर राजा पृथुने प्रसन्नता पूर्वक सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ण करने वाली पृथ्वी का स्नेहसे अपनी प्यारी पुत्री बनाई जो पृथु बडा दुहितृ वत्सल था ॥२८॥ फिर महाराजाधिराज राजा पृथुने अपने धनुष की कोटि से पहाडों के शिखरों को चूर्ण करके इस पृथ्वी को प्राय समान करदिया ॥ २९ ॥ फिर पिता की समान, प्रजाओ को वृत्ति देने वाले राजा पृथुने इस भूमण्डल में जहा तहां निवास स्थान बनाए ॥ ३० ॥ गाव, हाट, पुर, गढ, घोषियों के रहने के स्थान, गायों के रहने के स्थान, शिबिर, किसानो के गाव, सुवर्णादिकों की खान पर्वतोंके नीचेके ग्राम आदिक नाना निवासस्थान कल्पित किए॥३१॥राजा पृथुसे पूर्व इस पृथ्वीपर ग्रामादिकोंकी रचना नहीं थी किंतु जहा मनुष्य आराम देखते थे वहीं अभय होकर रहतेथे ॥ ३२ ॥

इति श्री मद्भागवते महापुराण० चतुर्थस्कंधे सरल भाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

मैत्रेयजीने कहा–किफिर उसपृथुराजाने मनुक्षेत्र ब्रह्मावर्त्तमे जहासरस्वती नदीबहतीहै वहां १०० अश्वमेधयज्ञ करनेका संकल्पकिया ॥ १ ॥ भगवान् पृथुके इसकर्मको इन्द्र अपनेसे अधिकजान, उसके यज्ञके महोत्सवको न सहसका ॥ २ ॥ उसयज्ञमे सर्वात्मा, सम्पूर्ण लोकोंकेपति, यज्ञेश्वर साक्षात् हरिभगवान् प्रगट हुयथ ॥ ३ ॥ जिनकसंग ब्रह्मा, रुद्र, लोकपाल अपने सेवकों समेत आयेथे और गन्धर्व, अप्सरागण जिनकायश गारहेथे ॥ ४ ॥ सिद्ध, विद्याधर, दैत्य, दानव, यक्ष

सुनन्दनन्दप्रमुखाः पार्षदप्रवराहरेः ॥ ५ ॥ कपिलोनारदोदत्तो योगेशाःसन-
कादयः तमन्वीयुर्भागवता यचतत्सेवनोत्सुकाः ॥ ६ ॥ यत्रधर्मदुघाभूमिः सर्वका
मदुघासती । दोग्धिस्माभीप्सितानर्थान्यजमानस्य भारत ॥ ७ ॥ ऊहुःसर्वरसा-
न्नद्यः क्षीरदध्यन्नगोरसान् । तरवोभूरिवर्ष्माणः प्रासूयन्तमधुच्युतः ॥ ८ ॥ सिंध-
वोरत्ननिकरान्गिरयोऽन्नं चतुर्विधम् । उपायनमुपाजह्रुः सर्वेलोकाःसपालकाः ९॥
इतिचाधोक्षजेशस्य पृथोस्तुपरमोदयम् । असूयन्भगवानिन्द्रः प्रतिघातमचीकरत्
॥ १० ॥ चरमेणाऽश्वमेधेन यजमानेयजुष्पतिम् । वैन्येयज्ञपशुं स्पर्द्धन्नपोवाहतिरो
हितः ॥११॥ तमत्रिर्भगवानैक्षत्त्वरमाणं विहायसा । आमुक्तमिवपाखण्डं योऽधर्मे
धर्मविभ्रमः ॥ १२ ॥ अत्रिणाचोदितोहन्तु पृथुपुत्रोमहारथः । अन्वधावतसंक्रुद्ध-
स्तिष्ठ तिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ १३ ॥ तंतादृशाकृतिंवीक्ष्य मेनेधर्मंशरीरिणम् । जटिलं
भस्मनाच्छन्नं तस्मैबाणंनमुंचति ॥ १४ ॥ वधान्निवृत्तंतंभूयो हन्तवेऽत्रिरचोदयत्
जहियज्ञहनंतात महेन्द्रंविबुधाधमम् ॥ १५ ॥ एवंवैन्यसुतः प्रोक्तस्त्वरमाणंविहा
यसा । अन्वद्रवदभिक्रुद्धो रावणंगृध्रराडिव ॥ १६ ॥ सोऽश्वंरूपंच तद्धित्वा
तस्मा अन्तर्हितःस्वराट् । वीरःस्वपशुमादाय पितुर्यज्ञमुपेयिवान् ॥ १७ ॥ तत्तस्य
चाद्भुतंकर्म विचक्ष्यपरमर्षयः । नामधेयंददुस्तस्मै विजिताश्वइतिप्रभो ॥ १८ ॥
उपसृज्यतमस्तीव्रं जहाराश्वंपुनर्हरिः । चषालयूपतश्छन्नो हिरण्यरशनंविभुः ॥१९॥
अत्रिःसंदर्शयामास त्वरमाणंविहायसा । कपालखट्वांगधरं वीरोनैनमबाधत२०

तथा सुनंद, नंदइत्यादिक भगवान्‌के श्रेष्ठपार्षद ॥ ५ ॥ कपिलदेव, नारद, दत्तात्रेय, सनकादिक, योगेश्वर, तथा और भी जो परमेश्वर के भक्त थे वहभी परमेश्वर के संग आए ॥ ६ ॥ हे विदुर ! जहांपर सम्पूर्ण इच्छायें पूर्ण करनेवाली पृथ्वी गौ का रूप धारण करके यजमान की समस्त कामनायें पूरी करती हुई ॥ ७ ॥ सम्पूर्ण रसों को देनेवाली नदियें दूध, दही, अन्न, गोरस आदि रसों से बहने लगी और वृक्ष नाना भांति के शरीर धारण करके मधुकी सदृश मिष्ट परिपक्वफल देने लगे ॥ ८ ॥ समुद्रनें रत्नोंके समूह दिये और पर्वतों ने अपनी खानों मे चार प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोस्य पदार्थ प्रगट किये ॥९॥ तथा लोकपालोंने भेटे दी अधोक्षज पृथुके परम उदयको इंद्र न सहसका तो उसनें यज्ञ मे बाधा डाली ॥ १० ॥ और जब पृथु सौवे अश्वमेध करके परमेश्वरकी आराधना करने लगे तब इन्द्र ने स्पर्धा करके. अतर्ध्यान होकर यज्ञके पशुको हरलिया ॥ ११ ॥ अधर्म के विभ्रम, पाखण्ड के कवचको धारण किये इन्द्रको भगवान अत्रि नें आकाश मार्ग से जाते देखा ॥ १२ ॥ अत्रि ऋषिने महाराज पृथुके पुत्र को इन्द्र के मारने के हेतु प्रेरणा की तो वह महारथी अति क्रोधित हो इन्द्र के पीछे दौडा और ठहर ठहर, इस भांति पुकारा ॥ १३ ॥ परन्तु पृथु पुत्रनें इन्द्र को जटा धारण किये और भस्म लगाए देख धर्म शरीर मान उसपर बाण प्रहार नहीं किया ।१४। जब अत्रिनदेखा कि पृथुपुत्र इन्द्रके बधसे निवृत्त होगया—तो फिर प्रेरणाकी—कि हेपुत्र यह यज्ञ का नाश करनेवाला, देवताओ में अधम इंद्रहै इसको मार ॥ १५ ॥ जब अत्रिऋषिने पृथुके पुत्र से इसभांति कहा तो वह आकाश मार्गसे शीघ्रतापूर्वक वेगसेदौड़ा कि जैसे रावणकेपीछे गिद्धराज जटायू दौड़ाथा ॥ १६ ॥ तबइन्द्र घोड़को छोड़ अपनेरूपको त्यागकर अंतर्ध्यान होगया, फिरवह वीर अपने पशुकोले यज्ञशालामे आया ॥ १७ ॥ हेविदुर ! बड़े २ ऋषियोंने इसके अद्भुत कर्मको देख अश्वजीत कर लेआनेकेकारण उसका विजिताश्व नामरक्खा।१८॥फिरइन्द्रने बड़ा घोरअंधकार फैलाकर घोड़ेका यज्ञस्तम्भसे खोल सोनेकी सांकल समेत उसका हरण किया ॥ १८ ॥ अत्रिने

अत्रिणाचोदितस्तस्मै सन्दधेविशिखंरुषा । सोऽश्वंरूपंचतत्हित्वा तस्थावन्तर्हितः
स्वराट् ॥ २१ ॥ वीरश्चाश्वमुपादाय पितृयज्ञमथाव्रजत् । तदवद्यंहरेरूपं ज-
गृहुर्ज्ञानदुर्बलाः ॥ २२ ॥ यानिरूपाणिजगृहे इन्द्रोहयजिहीर्षया । तानिपाप-
स्यखण्डानि लिंगंखण्डमिहोच्यते ॥ २३ ॥ एवमिन्द्रेहरत्यश्वं वैन्ययज्ञजिघां-
सया । तद्गृहीतविसृष्टेषु पाखण्डेषुमतिर्नृणाम् ॥२४॥ धर्मइत्युपधर्मेषु नग्नरक्तपटा
दिषु । प्रायेणसज्जतेभ्रान्त्या पेशलेषुचवाग्मिषु ॥२५॥ तदभिज्ञाय भगवान्पृथुः
पृथुपराक्रमः । इन्द्राय कुपितोबाणमादत्तोद्यतकार्मुकः ॥ २६ ॥ तमृत्विजः शक्र-
वधाभिसंधितं विचक्ष्यदुःप्रेक्ष्यमसह्यरंहसम् । निवारयामासुरहोमहामतेन युज्यते
ऽत्रान्यवधःप्रचोदितात् ॥ २७ ॥ वयंमरुत्वन्तमिहार्थनाशनं ह्वयामहेत्वच्छ्रवसा
हतत्विषम् । अयातयामोपहवैरनन्तरं प्रसह्यराजंजुहवामतेऽहितम् ॥ २८ ॥ इत्या-
मन्त्र्यक्रतुपतिं विदुरास्यर्त्विजोरुषा । स्रुग्घस्तांजुह्वतोऽभ्येत्य स्वयंभूःप्रत्यषेधत
॥ २९ ॥ नवध्योभवतामिन्द्रो यद्यज्ञोभगवत्तनुः । यंजिघांसथयज्ञेन यस्येष्टास्त-
नवः सुराः ॥ ३० ॥ तदिदं पश्यत महद्धर्मव्यतिकरं द्विजाः ॥ इन्द्रेणानुष्ठितं राज्ञः
कर्मैतद्विजिघांसता ॥ ३१ ॥ पृथुकीर्तेः पृथोर्भूयात्तर्ह्येकोनशतक्रतुः अलंतेक्रतुभिः
स्विष्टैर्यद्भवान्मोक्षधर्मवित् ॥ ३२ ॥ नैवात्मनेमहेन्द्राय रोषमाहर्तुमर्हसि । उभा-
वपिहिभद्रं तउत्तमश्लोकविग्रहौ ॥ ३३ ॥ माऽस्मिन्महाराजकृथाःस्मचिन्तां नि-

आकाशमार्गसे शीघ्रतापूर्वक, जातेहुये इन्द्रको विजिताश्वको दिखाया परन्तु विजिताश्वने उस
कपाल और खट्वांगधारणकिये देख इसपर बाण न चलाया॥२०॥परन्तु अत्रिनेफिर उसको प्रेरित
किया तो उसनेक्रुधितहो इन्द्रपर शरसन्धाना किन्तु इन्द्र उसरूप औरघोड़ेको त्यागकर अन्तर्ध्या
नहोगया ॥२१॥ वहवीर घोड़ेको लेकर यज्ञस्थानमें आया इन्द्रने जो पाखण्डरूप धारण कियाथा
उसे अज्ञानियोंने धर्म समझकर ग्रहणकिया ॥२२॥घोडा चुरानेकी कामना से इन्द्र नें जो २ वेष
धारण कियेथ वही२ पापके चिह्नहुए॥२३॥पृथुके यज्ञ नाशकी कामना से इन्द्रने जो रूप धारण
करके घोडेका हरण.कियाथा वह रूप पाखंडियों ने ग्रहण करलिया ॥२४॥ वहपाखण्ड पथ यहहै
नग्न (जैन) रक्तपट (बौद्ध) और कापालिक इनको अज्ञानी धर्म मानकर इनमें फस जाते हैं
क्यों कि यह बाहरसे बडा सुदर वाणी वाले दिखाई देते हैं ॥ २५ ॥ राजापृथुने यह वृत्तांतजान
कुपितहो इन्द्रके वधकेहेतु धनुष उठा हाथ में बाणलिया ॥ २६ ॥ उसअसह्य वेगवाले पृथुको, कि
जिसके सन्मुख देखनाही अतिकठिनहै, इन्द्रके मारनेका प्रयोजन जान ऋत्विजोंने निवारणकिया-कि
हे महाबाहो ! यहांयज्ञमें पशुवधके अतिरिक्त दूसरे कावध आपको नहीं करना चाहिये ॥ २७ ॥
हेराजन् ! यदिइन्द्रके नाशकरनेकाही आपकाविचारहै तोआपके यशसे कान्तिहीन अपराक्रमी इन्द्रको
हममन्त्रोंद्वारा आह्वानकरके बुलालेंगे और फिरबलात्कार उसेअग्निकुंडमें होमदेंगे ॥२८॥ हे विदुर !
वेऋत्विज यज्ञपति राजापृथुसे इसभांतिसलाहकरकेरोषपूर्वक स्रुवा हाथमेंले होमकरनेलगेकि इतनेमेंही
ब्रह्माजीने आकर कहाकि॥२९॥तुमको इन्द्रका मारना योग्यनहीं है, क्योंकियहयज्ञ भगवान्‌की देहहै
और इन्द्रभी भगवान्‌की देहहै उसीयज्ञद्वारा आराधन कियेजाते यहसब देवता यज्ञमूर्तिहैं ॥ ३० ॥
इसनिमित्त तुमको इन्द्रसे मित्रता करनी योग्यहै । हेब्राह्मणों! राजापृथुके यज्ञका विध्वंस चाहनेवाले
इन्द्रने जोयहधर्म नाशक पाखण्डमार्ग चलायाहै उसदेखो ॥ ३१ ॥ आपके आराधन कियेहुये बहुतसे
श्रेष्ठयज्ञ भलीभांति होचुके अबआप यज्ञकरके क्याकरोगे, आपतो मोक्षधर्मके वेत्ताहो ॥ ३२ ॥ हे
राजन् ! आपका कल्याणहो-इन्द्रपर तुमको रोषनहीं करनाचाहिये क्योंकि तुमदोनोंही भगवानके
अंगहो ॥ ३३ ॥ हेमहाभाग ! यज्ञके विफल चिंतामतकरो, जोमैंकहताहूं उसेआदर पूर्वकसुन-देखके

शामया ऽस्मत्रुच आहतात्मा । यद्ध्यायतो दैवहतं नु कर्तुं मनोऽतिरुष्टं विशते तमोऽन्धम् ॥ ३४ ॥ क्रतुर्विरमतामेष देवेषु दुरवग्रहः । धर्मव्यतिकरो यत्र पाखण्डैरिन्द्रनिर्मितैः ॥ ३५ ॥ एभिरिन्द्रोपसंसृष्टैः पाखण्डैर्हारिभिर्जनम् । ह्रियमाणं विचक्ष्वैनं यस्ते यज्ञध्रुग श्वमुट् ॥ ३६ ॥ भवान्परित्रातुमिहावतीर्णो धर्मं जनानां समयानुरूपम् । वेनापचारादवलुप्तमद्य तद्देहतो विष्णुकलाऽसि वैन्य ॥ ३७ ॥ स त्वं विमृश्यास्य भवं प्रजापते संकल्पनं विश्वसृजां पिपीपृहि । ऐन्द्रीं च मायामुपधर्ममातरं प्रचण्डपाखण्डपथं जहि प्रभो ॥ ३८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्थं स लोकगुरुणा समादिष्टो विशांपतिः । तथा च कृत्वा वात्सल्यं मघोनाऽपि च संदधे ॥ ३९ ॥ कृतावभृथस्नानाय पृथवे भूरिकर्मणे । वरान्ददुस्ते वरदा ये तद्बर्हिषि तर्पिताः ॥ ४० ॥ विप्राः सत्याशिषस्तुष्टाः श्रद्धया लब्धदक्षिणाः । आशिषो युयुजुः क्षत्तरादिराजाय सत्कृताः ॥ ४१ ॥ त्वयाऽऽहूता महाबाहो सर्व एव समागताः । पूजिता दानमानाभ्यां पितृदेवर्षिमानवाः ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भा० म० च० एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ भगवानपि वैकुण्ठः साकं मघवता विभुः । यज्ञैर्यज्ञपतिस्तुष्टो यज्ञभुक्तमभाषत ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एष तेऽकार्षीद्भङ्गं हयमेधशतस्य ह । क्षमापयत आत्मानममुष्य क्षन्तुमर्हसि ॥ २ ॥ सुधियः साधवो लोके नरदेव नरोत्तमाः । नाभिद्रुह्यन्ति भूतेभ्यो यर्हि नात्मा कलेवरम् ॥ ३ ॥ पुरुषा यदि मुह्यन्ति त्वादृशा देवमायया । श्रम एव परं जातो दीर्घया वृद्धसेवया ॥ ४ ॥ अतः कायमिमं विद्वानविद्याकामकर्मभिः । आरब्ध इति नैवास्मिन्प्रतिबुद्धोऽनुषज्जते ॥ ५ ॥ असंसक्तः शरीरेऽस्मिन्नमुनोत्पादिते

बिगाड़नेवाले कार्यका जो ध्यान करताहै वह पुरुष क्रोधसे अन्धतम मोहको प्राप्तहोताहै ॥ ३४ ॥ देवताओंने जबदुराग्रह करलियाहै तो आपको यज्ञबन्दकरदेना योग्यहै क्योंकि इसमेंइन्द्ररचित पाखंड से धर्मका नाश होताहै ॥ ३५ ॥ यज्ञके द्रोही घोड़ा हरनेवाले इन्द्रके रचित पाखण्डोंसे धर्म नाश होतेहुये तो देखिये ॥ ३६ ॥ हेराजन् ! वेनके अत्याचारसे लुप्तहुये धर्मको शास्त्रवत प्रवृत्तकर उसकी रक्षाके हेतु विष्णुकी कलासे अवतारधारणकर आपप्रगटहुयेहो॥३७॥ तुमसृष्टिके कल्याण का हेतु विचारकर प्रजापतियों का पालनकरो और ऐन्द्री मायारूप प्रचण्ड पाखण्डमार्गका नाशक करो ॥३८॥ मैत्रेयजीने कहा कि—लोकगुरु ब्रह्माजीने राजाको इसभांति समझाकर यज्ञका आग्रह छुड़ाया फिर राजाने प्रेमपूर्वक इन्द्रके साथ संधिकी ॥३९॥ भूरिकर्मा राजापृथुने जिससमय अवभृथनामक यज्ञांत स्नान किया तब यज्ञमें तृप्त होनेवालोंने उसको बरदानदिये ॥ ४० ॥ हे विदुर! श्रद्धापूर्वक दक्षिणा पायेहुये ब्राह्मणोंने राजापृथुसे सनमानपाकर उनको आशीर्वाद दिये ॥ ४१ ॥ और कहा कि—हे महाबाहो ! हम यज्ञमें आयेहुये पितृ, देवता ऋषि मनुष्योंका आपने बड़ाही आदर और दानमानसे सत्कारकिया ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे चतुर्थस्कंधेसरलाभाषाटीकायांएकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

मैत्रेयजीने कहा कि—यज्ञेश्वर यज्ञभोक्ता भगवान बैकुण्ठनाथनेभी इन्द्रको सँगले यज्ञोंसे प्रसन्न होकर राजा पृथुसे कहा ॥ १ ॥ श्रीभगवानने कहा कि—इस इन्द्रने आपके सौवें अश्वमेधयज्ञमें विघ्न कियाथा अब यह तुमसे क्षमा मांगताहै । इसहेतु आपको इसपर क्षमाकरनी योग्यहै ॥२॥ हेनरदेव! श्रेष्ठबुद्धिवाले उत्तममनुष्य संसारमें प्राणियोंसेद्रोह नहींकरते क्योंकि वहजानतेहैं कि देहआत्मा नहीं है ॥३॥ और फिर आप सरीकेपुरुष देवमायासे मोहको प्राप्त होजावैं तबतो बहुतकालतककीहुई वृद्धोंकीसेवा केवल श्रमही जानो॥४॥जो विवेकी पुरुष इसदेहको अविद्या जनित कामनाकृत कर्मोंसे बनाहुआ जानताहै वह इसमें कभीभी आसक्त नहींहोता ॥ ५ ॥ जो ज्ञानी पुरुषइस देहमेंही आ-

गृहे । अपत्येद्रविणेवाऽपिकःकुर्यान्ममतांबुधः ॥ ६ ॥ एकःशुद्धःस्वयंज्योतिर्निर्गुणोऽसौगुणाश्रयः । सर्वगोऽनावृतःसाक्षी निरात्मात्मात्मनःपरः ॥ ७ ॥ यएवंसन्तमात्मानमात्मस्थंवेदपूरुषः । नाज्यतेप्रकृतिस्थोऽपितद्गुणैःसमयिस्थितः ॥ ८ ॥ यःस्वधर्मेणमांनित्यंनिराशीःश्रद्धयान्वितः । भजतेशनकैस्तस्यमनोराजन्प्रसीदति ॥ ९ ॥ परित्यक्तगुणःसम्यग्दर्शनोविशदाशयः । शांतिमेसमवस्थानंब्रह्मकैवल्यमश्नुते ॥ १० ॥ उदासीनमिवाध्यक्षंद्रव्यज्ञानक्रियात्मनाम् । कूटस्थमिवमात्मानंयोवेदाप्नोतिशोभनम् ॥ ११ ॥ भिन्नस्यलिंगस्यगुणप्रवाहोद्रव्याक्रियाकारकचेतनात्मनः दृष्टासुखंपत्सुविपत्सुसूरयोनविक्रियन्तेमयिबद्धसौहृदाः ॥ १२ ॥ समःसमानोत्तममध्यमाधमःसुखेचदुःखेचजितेन्द्रियाशयः । मयोपकॢप्ताखिललोकसंयुतोविधत्स्ववीराऽखिललोकरक्षणम् ॥ १३ ॥ श्रेयःप्रजापालनमेवराज्ञोयत्सांपरायेसुकृतात्षष्ठमंशम् । हर्ताऽन्यथाहृतपुण्यःप्रजानामरक्षिताकरहारोऽघमत्ति ॥ १४ ॥ एवंद्विजाग्र्यानुमतानुवृत्तधर्मप्रधानोऽन्यतमोविताऽस्याः । ह्रस्वेनकालेनगृहोपयातान्द्रष्टासिसिद्धाननुरक्तलोकः ॥ १५ ॥ वरंचमत्कञ्चनमानवेन्द्रवृणीष्वतेऽहंगुणशीलयन्त्रितः । नाहंमखैर्वैसुलभस्तपोभिर्योगेनवायत्समचित्तवर्ती ॥ १६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सइत्थंलोकगुरुणाविष्वक्सेनेनविश्वजित् । अनुशासितआदेशंशिरसाजगृहेहरेः ॥ १७ ॥ स्पृशन्तंपादयोःप्रेम्णाव्रीडितंस्वेनकर्मणा । शतक्रतुंपरिष्वज्यविद्वेषंविस

सक्त नहींहै वह देह जनित पुत्र और धनमें कैसे मोहको प्राप्त होसक्ताहै ॥ ६ ॥ यह आत्मा शरीर से पृथक्है क्योंकि आत्मा एक स्वयंज्योति निर्गुण,है और देह, बाल युवादि भेदोंसे नानाप्रकारकी मलीन सगुणहै आत्मा आवरण रहितहै और शरीर घर इत्यादिकसे घिराहुआहै आत्मा सर्वकासाक्षी है देह दृश्यहै आत्मा निरात्महै और शरीर स्वात्महै ॥ ७ ॥ जो मनुष्य अपनी देहमें आत्माको इसप्रकार स्थित जानता है वह मुझ ब्रह्ममें स्थित होनेके कारण शरीरमें रहनेपर भी उसके विकारोंमें लीन नहींहोता ॥ ८ ॥ हेराजा ! जो स्वधर्मसे श्रद्धापूर्वक नित्य मेरा भजनकरते हैं उनका मन धीरे धीरे प्रसन्न होजाताहै ॥९॥ फिर वह गुणोंको त्यागकरें ज्ञानीहो शांतिको प्राप्त होताहुआ मोक्षको प्राप्त होजाता है ॥१०॥ जो उदासीनकी नाईं द्रव्य,क्रिया ज्ञान आत्माके भीतर स्थित परमात्मा को जानते हैं, वह पुरुष निःसन्देह मोक्षको प्राप्तहोते हैं ॥११॥ इसनाशवान् भिन्नलिंग शरीरका संसारहै, द्रव्य,क्रिया, कारक और चेतनके चिदा भासात्मक दीखता है और जोज्ञानी पुरुष मुझसे स्नेहरखते हैं, वहसदा सम्पत्ति और विपत्तिको समान समझकर विकारको प्राप्तनहींहोते ॥१२॥ हे बीर ! सम, उत्तम, मध्यम और अधम सुख दुःख में समदर्शी होओ और इन्द्रियों तथा अंतःकरण को बश करके लोककी रचना करनेवाले मुझ ईश्वरनें तुम्हें सचिवादिका अधिकारी किया है उसको साथ रखकर सृष्टिकी रक्षा करो ॥ १३ ॥ राजा का प्रजा पालन सेही कल्याण है क्योंकि प्रजा रक्षक राजा परलोक में प्रजा के सुकृत के छठे अंस का भोक्ता होता है, और जो प्रजा पालन नकरकै उससे कर लेताहै वह क्षीण पुण्य हो प्रजा के पापों को प्राप्त होता है ॥१४॥ इस भांति श्रेष्ठ ब्राह्मणों की आज्ञा में प्रवृत्त होकर परम्पराके धर्म को प्रधान मान, अन्य धर्मों में आसक्त नहोकर इस पृथ्वी की रक्षा करोगे तो प्रजा तुमसे अत्यन्त प्रसन्न होगी फिर थोडेही काल में सनकादिकों का आप को दर्शनहोगा ॥ १५ ॥ भगवान ने कहा कि हे मानवेन्द्र ! मैं तुम्हारे गुण शील से बश होगया हूं मुझ से कुछ तो बरमांगो, मैं यज्ञ, योग, और तप से उतना प्रसन्न नहीं होता कि जितना समदर्शी पुरुषों से प्रसन्न होता हूं ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी नें कहा कि जब लोक गुरु भगवान नें इसभांति आज्ञा कि तो विश्वजित पृथुनें उनकी आज्ञा अपनें मस्तकपर धारण की ॥ १७ ॥ और स्नेह पूर्वक

सर्जह ॥ १८ ॥ भगवानथविश्वात्मापृथुनोपहृतार्हणः । समुज्जिहानयाभक्त्यागृहीतचरणाम्बुजः ॥ १९ ॥ प्रस्थानाभिमुखोऽप्येनमनुग्रहविलम्बितः । पश्यन्पद्मपलाशाक्षोनप्रतस्थेसुहृत्सताम् ॥ २० ॥ सआदिराजोरचिताञ्जलिर्हरिंविलोकितुंनाशकदश्रुलोचनः । नकिंचनोवाचसबाष्पविक्लवोहृदोपगुह्यामुमधादवस्थितः ॥ २१ ॥ अथावमृज्याश्रुकलाविलोकयन्नतृप्तदृग्गोचरमाहपूरुषम् । पदास्पृशंतंक्षितिमंसउन्नते विन्यस्तहस्ताग्रमुरङ्गविद्विषः ॥ २२ ॥ पृथुरुवाच ॥ वरान्विभोत्वद्वरदेश्वराद्बुधः कथंवृणीतेगुणविक्रियात्मनाम् । येनारकाणामपिसन्तिदेहिनांतानीश कैवल्यपतेवृणेनच ॥ २३ ॥ नकामयेनाथतदप्यहं क्वचिन्नयत्रयुष्मच्चरणाम्बुजासवः । महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्वकर्णायुतमेषमेवरः ॥ २४ ॥ सउत्तमश्लोकमहन्मुखच्युतो भवत्पदाम्भोजसुधाकणानिलः । स्मृतिंपुनर्विस्मृततत्त्ववर्त्मनांकुयोगिनां नोवितरत्यलंवरैः ॥ २५ ॥ यशःशिवंसुश्रवआर्यसंगमेयदृच्छया चोपशृणोतितेऽसकृत् । कथंगुणज्ञोविरमेद्विनापशुं श्रीर्यत्प्रवव्रेगुणसंग्रहेच्छया २६ अथाभजेत्वाऽखिलपूरुषोत्तमं गुणालयंपद्मकरेवलालसः । अप्यावयोरेकपतिस्पृधोः कलिर्नस्यात्कृतत्वच्चरणैकतानयोः ॥ २७ ॥ जगज्जनन्यांजगदीशवैशसंस्यादेव यत्कर्मणिनःसमीहितम् । करोतिफल्ग्वप्युरुदीनवत्सलःस्वएवधिष्ण्येऽभिरतस्य किंतया ॥ २८ ॥ भजन्त्यथत्वामतएवसाधवोव्युदस्तमायागुणविभ्रमोदयम् ।भव

अपनें चरणों को स्पर्श करते अपनें कर्म्म से लज्जित ऐसे इन्द्र से राजा पृथु मिला और मनसे द्वेष का त्याग कर दिया ॥ १८॥ फिर विश्वात्मा भगवान का राजा पृथुनें पूजन किया और भक्तिपूर्वक उनके चरण कमलों को ग्रहण किया ॥ १९ ॥ भगवान नें जाने की इच्छा की परन्तु पृथुपर कृपा करके संतों के सुहृद कमल दलसे नेत्र वाले भगवान उसकी ओर देखकर ठहर गए ॥ २० ॥ आदि राजा पृथु नेत्रों में आंसू आजानें से भगवान को देख नसका और गदगद कंठ होजाने से बोलभी न सका तब उसने हाथ जोड भगवान को हृदय में धारण किया ॥ २१ ॥ फिर आंसू पोंछकर राजानें भगवान का दर्शन किया परन्तु दर्शन करते २ उसकी तृप्ति नहुई, तौभी चरणों से पृथ्वी को छुए हुए, गरुड़ के कांधेपर हाथ धरे हुए भगवान से पृथु ने कहा ॥ २२ ॥ पृथु बोले कि हे बिभो ! वर दाताओं के ईश्वर ! आप से ब्रह्मादिक सम्बन्धी, नारकीय जीवों को मिलनें वाले वरदान, कोई कैसे मांग सकता है हे मोक्ष पति ! आप से मैं उन वरों को नहीं मांगता ॥ २३ ॥ हे नाथ ! मैं किसी भी वर को नहीं मांगता आप के चरण कमल की गंध जो श्रेष्ठ पुरुषों के हृदय और मुखसे श्रवीभूत हुई है उसके पान करनें अर्थात् आपका यश सुनने के हेतु मेरे दश हजार कान होजांय यही मुझ को वर दो ॥ २४ ॥ हे उत्तम श्लोक ! श्रेष्ठलोगों के मुखसे निकली हुई तुम्हारे चरण कमल की सुगन्धि वायुमें मिलकर तत्वके पथमें पड़ेहुए अपक्व योगियों को आत्मज्ञान का स्मरण दिलाती है ॥ २५ ॥ हे सुश्रव ! गुणज्ञ मनुष्य सन्तों के संगमें आपकी सुखदाई कीर्तिको जो एकबारभी सुनलेताहै, तो फिर उससे कभी बिराम नहींपाता परन्तु पशुओंकी बात न्यारी है श्रीलक्ष्मीजी भी अपनमें गुणोंका संग्रह करनेके हेतु आपके गुणोंका बर्णन करतीहैं ॥ २६ ॥ इसहेतु पुरुषोत्तम गुणोंके निवासरूप आपको मैं लक्ष्मीकी भांति उत्साहितहोकर भजताहूं यद्यपिहम दोनोंमें साथही सेवा होनेके कारण डाह उत्पन्न होकर कलह होना सम्भवहै परन्तु मेरा और लक्ष्मीका मन आप के चरणोंमें एकाग्रहेगा इससे कलह उत्पन्न नहीं होसकता ॥ २७ ॥ हे ईश ! जगज्जननी लक्ष्मी के कर्ममें भागलेनेसे यदि उनसे मेरा विरोधभीहोगा तौभी आप मेरी तुच्छसेवाको अधिक मानोगे क्योंकि आप दीनवत्सलहो, और अपनेही स्वरूपानन्दमें रमण करतेहो—इसहेतु आपको लक्ष्मी

त्पदानुस्मरणादृतेसतांनिमित्तमन्यद्भगवन्नविद्महे ॥ २९ ॥ मन्येगिरंतेजगतांविमोहिनींवरंवृणीष्वेतिभजन्तमात्थयत्। वाचानुतन्त्यायदितेजनोऽसितःकथंपुनःकर्मकरोतिमोहितः ॥ ३०॥ त्वन्माययाऽद्धाजनईशखण्डितोयदन्यदाशास्तऋतात्मनोऽबुधः। यथाचरेद्बालहितंपितास्वयंतथात्वमेवार्हसिनःसमीहितुम् ॥ ३१ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यादिराजेनमुतःसविश्वदृक्तमाहराजन्मयिभक्तिरस्तुते। दिष्ट्येदृशीधीर्मयितेकृतायया मायांमदीयांतरतिस्मदुस्त्यजाम् ॥ ३२ ॥ तत्त्वंकुरुमयादिष्टमप्रमत्तःप्रजापते। मदादेशकरोलोकःसर्वत्राप्नोतिशोभनम् ॥ ३३ ॥ मैत्रेय उवाच॥ इतिवैन्यस्यराजर्षेःप्रतिनन्द्यार्थवद्वचः। पूजितोऽनुगृहीत्वैनंगन्तुंचक्रेऽच्युतोमतिम् ॥ ३४ ॥ देवर्षिपितृगन्धर्वसिद्धचारणपन्नगाः। किन्नराप्सरसोमर्त्याःखगाभूतान्यनेकशः ॥ ३५ ॥ यज्ञेश्वरधियाराज्ञावाग्वित्ताञ्जलिभक्तितः। सभाजिताययुःसर्वेवैकुण्ठानुगतास्ततः ॥ ३६ ॥ भगवानपिराजर्षेःसोपाध्यायस्यचाच्युतः। हरन्निवमनोऽमुष्यस्वधामप्रत्यपद्यत ॥ ३७ ॥ अदृष्टायनमस्कृत्यनृपःसंदर्शितात्मने। अव्यक्तायचदेवानांदेवायस्वपुरंययौ ॥ ३८ ॥

इतिश्रीमद्भा०च०श्रीविष्णुनापृथोर्यज्ञेनुशासनवर्णनंनामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

मैत्रेयउवाच ॥ मौक्तिकैःकुसुमस्रग्भिर्दुकूलैः स्वर्णतोरणैः। महासुरभिभिर्धूपैर्मण्डितंतत्रतत्रवै ॥ १ ॥ चन्दनागुरुतोयार्द्ररथ्याचत्वरमार्गवत्। पुष्पाक्षतफलै·

का किसीभांति का पक्षनहीं है ॥ २८ हेभगवन्! साधु पुरुष ज्ञान प्राप्त होनेके पीछे भी, मायाके गुणोंके कार्यरहित आपका भजनकिया करते हैं आपके चरणकमलके अतिरिक्त दूसरा कुछभी अभिप्राय इन महात्माओं का मुझे नहींदीखता ॥ २९ ॥ भक्तोंके बरदान के हेतु कहना यह आपकी बात जगतको मोह उत्पादन करानेवालीहै, आपकी गिराखपी रस्सीमें सम्पूर्णलोक बँधेहुये हैं यदि ऐसा न होवै तो वह बारम्बार फलसे मोहित होकर किसभांति कर्मकरसते हैं ॥ ३० ॥ हे ईश! आपकी मायाने मनुष्योंको आपके सत्यस्वरूपसे पृथक् कररक्खाहै, और वे अज्ञानी बनकर पुत्रादिकों के सुखकी इच्छा करतेहैं ऐसेही मुझेभी आप अपने बरदानकी भूलमें न डालकर मेरा इसभांति हित करिये कि जैसे पिता बिनाही प्रार्थनाके पुत्र का हित करता है ॥३१॥ मैत्रेयजी बोले कि–जब राजापृथुने इसभांति स्तुतिकी तोभगवानने कहा कि हे राजन्! मुझमें तेरी भक्तिहोगी· तेरे मनमें ऐसाविचारहुआ, सो बहुत अच्छाहुआ इसीभक्तिसे तू अतिदुस्तर मायाकोतरेगा ३२॥ हेराजन्! तू मेरी आज्ञानुसार चल, जो मनुष्य मेरी आज्ञाका पालन करताहै वह सबजगह सुखी रहताहै ॥ ३३ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–श्रीभगवानने राजर्षि पृथुराजाकी बड़ाई तथा सनमानकर वहांसे चलनेका विचारकिया॥ ३४ ॥ देवता, ऋषि, पितृगण, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पन्नग, किन्नर, अप्सरा, मनुष्य, पक्षी, तथा औरभी नानाप्राणी—कि ॥३५॥ जो यज्ञमें आयेथे उनका राजा पृथुने भक्तिपूर्वक हाथजोड़ धन, वाणीसे सनमानकिया, वे सब वहांसे चलेगये फिर भगवान के पार्षदभी राजासे बिदाहो वैकुण्ठको गये ॥ ३६ ॥ भगवानभी राजा और ब्राह्मणोंके मनको हरकर अपने परमधाम को चलेगये ॥ ३७ ॥ जब आत्मस्वरूपकी शिक्षा देनेवाले, अव्यक्त देवताओं के देवता भगवान वहांसे अदृश्यहोगये तब पृथुराजाभी उनको दण्डवत्‌कर अपनेनगरमें आया ३८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सरलाभाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

मैत्रेयजी बोले–किजिससमय पृथुराजा अपने नगरमेंगया उसकाल मोती, फूलमाला, वस्त्रऔर सोनेके तोरणोंसे नगर सुसज्जित कियागया और सुगंधित धूपकी सुगंधिकीगई ॥ १ ॥ गली, चौराहे, और मार्गके बीचमें चंदन और अगरके जलसे छिड़काव कियागया, फूल, अक्षत, दूब,

स्तोकैर्मलाजैरर्चिभिरर्चितम् ॥ २ ॥ सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैःपरिष्कृतम् । तरुपल्लवमालाभिः सर्वतः समलंकृतम् ॥ ३ ॥ स्त्रियस्तंदीपबलिभिः संभृताशेष मङ्गलैः । अन्वीयुर्मृष्टकन्याश्च मृष्टकुण्डलमण्डिताः ॥ ४ ॥ शंखदुन्दुभिघोषेण ब्रह्मघोषेणचर्त्विजाम् । विवेशभवनंवीरः स्तूयमानोगतस्मयः ॥ ५ ॥ पूजितःपूजयामास तत्रतत्रमहायशाः । पौरांजानपदांस्तांस्तान्प्रीतः प्रियवरप्रदः ॥६॥ सएव मादीन्यनवद्यचेष्टितः कर्माणिभूयांसि महान्महत्तमः । कुर्वञ्छशासावनिमण्डलं यशः स्फीतंनिधायारुरुहेपरंपदम् ॥ ७ ॥ सूतउवाच ॥ श्रुत्वादिराजस्ययशोविजृम्भितं गुणैरशेषैर्गुणवत्सभाजितम् । क्षत्तामहाभागवतःसदस्पतेकौषारविंप्राह गृणन्तमर्चयन् ॥ ८ ॥ विदुरउवाच ॥ सोऽभिषिक्तः पृथुर्विप्रैर्लब्धाऽशेषसुरार्हणः बिभ्रत्सवैष्णवंतेजो बाह्वोर्याभ्यांदुदोहगाम् ॥ ९ ॥ कोन्वस्यकीर्तिनशृणोत्यभिज्ञो यद्विक्रमोच्छिष्टमशेषभूपाः । लोकाःसपालाउपजीवन्ति काममद्यापितन्मेवदकर्म शुद्धम् ॥ १० ॥ मैत्रेय उवाच । गङ्गायमुनयोर्नद्योरन्तरा क्षेत्रमावसन् । आरब्धानेववुभुजे भोगान्पुण्यजिहासया ॥ ११ ॥ सर्वत्रास्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदण्डधृक् । अन्यत्रब्राह्मणकुलादन्यत्राच्युतगोत्रतः ॥ १२ ॥ एकदासीन्महासत्रदीक्षा तत्रदिवौकसाम् । समाजोब्रह्मर्षीणांच राजर्षीणांचसत्तम ॥ १३ ॥ तस्मिन्नर्हत्सु सर्वेषु स्वर्चितेषुयथार्हतः । उत्थितःसदसोमध्ये ताराणामुडुराडिव ॥ १४ ॥ प्रांशुः पीनायतभुजो गौरः कंजारुणेक्षणः । सुनासःसुमुखःसौम्यः पीनांसःसुद्विज-

लाई और दीपकोंकी शोभाबनाईगई ॥ २ ॥ फलफूल समेत केलेके खंभे, तथाछोटे २ सुपारी के वृक्षखड़े कियेगये, औरभी नानावृक्षोंकेपत्ते और मालाओंकी शोभाचारों ओर बनाईगई ॥ ३ ॥ उस समय ब्राह्मणोंकी सुंदर कन्यायें उज्वल कुंडल पहिने दही, दीपक, फूल, फल इत्यादिक मांगलीक पदार्थ हाथमेंलिये राजाकी अगोनीको जातीथीं, ॥ ४ ॥ शंख और दुंदुभीका नादतथा ब्राह्मणोंके वेदनाद सुनतेहुये उससमृद्धि शाली, अभिमानरहित पृथुराजाने घरमें प्रवेशकिया ॥ ५ ॥ प्रतापशाली राजापृथु जहांतहां प्रजासे सनमानपा पीछेसे नगर और देशमें रहनेवाले लोगोंका सनमान किया, और उन्हेंप्रसन्नकर नानाभांतिके प्रियपदार्थ उन्हेंदिये॥६॥उत्तमकर्म करनेवाले राजापृथुने नानाकर्म कर पृथ्वीका पालनकिया और अपनेउज्ज्वल यशको पृथ्वीपर विस्तारित करताहुआ अंतमें मोक्षको प्राप्तहुआ॥७॥सूतजीबोले किहेशौनक!पृथुराजाकी गुणयुक्त कीर्तिको किजिसकाबखान गुणवानलोग करते हैं विदुरजीने मैत्रेयजीसे सुनकर उनकासनमान करकेकहा॥८॥विदुरजीबोलेकि जिसपृथुराजा को ब्राह्मणोंने राज्याभिषेककिया,और देवताओंने उत्तम२ पदार्थदिये, तथा जिसने श्रीभगवानका तेज धारणकर अपनी भुजाओंसे पृथ्वीकोदुहा ॥ ९ ॥ उसराजाकी कीर्तिको कौनविवेकी मनुष्य न सुनेगा किजिसके पृथ्वीके दोहन करनेसे सम्पूर्ण सृष्टि, लोकपाल तथा राजाओंको आजीविका प्राप्तहुई है ॥ १० ॥ मैत्रेयजीने कहाकि राजापृथुगंगा और यमुनाके बीचके क्षेत्रों में निवास करनेलगा और पुण्यक्षय की इच्छा से भोगों को भोगताहुआ राज्य करने लगा ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण स्थानोंमें जिस की आज्ञा को कोई उल्लंघन न करसका ऐसा वह राजा पृथु ब्राह्मण तथा परमेश्वर के भक्तों को छोड़ सातो द्वीपों में एकही दंड देने वाला था, उस से अन्यत्र कोई दंड देने वाला नहींथा॥१२ हे विदुर ! एक समय उस राजा ने महासत्र यज्ञकी दीक्षा ली, उस समय वहांपर देवता,ब्रह्मर्षि और राजर्षियों का समागम हुआ ॥ १३ ॥ उस सभा में बड़े २ योग्य पुरुष थे उन सबों का जब पूजन, सत्कार होचुका तब तारागणों में जैसे चन्द्रमा उदय होताहै तैसे वह राजा यज्ञके बीच में खड़ा हुआ ॥१४॥ वह राजा ऊंचा, पुष्ट लम्बी भुजाओं वाला गौरवर्ण, कमलकी सदृशनेत्र

स्मितः ॥ १५ ॥ व्यूढवक्षाबृहच्छ्रोणिर्वलिवल्गुदलोदरः । आवर्तनाभिरोजस्वी कांचनोरुरुदग्रपात् ॥ १६ ॥ सूक्ष्मवक्रासितस्निग्धमूर्धजः कम्बुकन्धरः । महाधनेदुकूलाग्र्ये परिधायोपवीयच ॥ १७ ॥ व्यंजिताशेषगात्रश्रीर्नियमे न्यस्तभूषणः कृष्णाजिनधरःश्रीमान्कुशपाणिःकृतोचितः ॥ १८ ॥ शिशिरःस्निग्धताराक्षःसमैक्षतसमन्ततः । ऊचिवानिदमुर्वीशःसदःसंहर्षयन्निव ॥ १९ ॥चारुचित्रपदंश्लक्ष्णं मृष्टंगूढमविक्लवम् । सर्वेषामुपकारार्थंतदाअनुवदन्निव॥ २०॥राजोवाच॥सभ्याः शृणुतभद्रंवःसाधवोयइहागताः । सत्सुजिज्ञासुभिर्धर्ममावेद्यंस्वमनीषितम् ॥२१ ॥ अहंदण्डधरोराजाप्रजानामिहयोजितः । रक्षितावृत्तिदःस्वेषुसेतुषुस्थापितापृथक् ॥ २२ ॥ तस्यमेतदनुष्ठानाद्यानाहुर्ब्रह्मवादिनः। लोकाःस्युःकामसंदोहायस्यतुष्यतिदिष्टदृक् ॥ २३ ॥ यउद्धरेत्करंराजाप्रजाधर्मेष्वशिक्षयन् । प्रजानांशमलंभुङ्क्ते भगंचस्वंजहातिसः ॥ २४ ॥ तत्प्रजाभर्तृपिण्डार्थंस्वार्थमेवानसूयवः।कुरुताधोक्षजाधियस्तर्हिमेऽनुग्रहःकृतः ॥ २५ ॥ यूयंतदनुमोदध्वंपितृदेवर्षयोमलाः । कर्तुःशास्तुरनुज्ञातुस्तुल्यंयत्प्रेत्यतत्फलम् ॥ २६॥अस्तियज्ञपतिर्नामकेषांचिदर्हसत्तमाः। इहामुत्रचलक्ष्यन्तेज्योत्स्नावत्यःक्वचिद्भुवः ॥ २७ ॥ मनोरुत्तानपादस्यध्रुवस्यापि महीपतेः । प्रियव्रतस्यराजर्षेरङ्गस्यास्मत्पितुःपितुः ॥ २८॥ ईदृशानामथान्येषामज

श्रेष्ठ नासिका,सुन्दर मुख,पुष्ट कंधे, सुंदर जिसके दांत तथा जिस की सुन्दर मुसकान है ॥१५॥ गुप्तवक्षःस्थल, बड़ा कटि प्रदेश, पीपल के पत्ते की सदृश त्रिवली से शोभित पेट, गंभीर ढूंढी अति पराक्रमी, सुवर्ण की सदृश जंघा, तथा ऊंचे अग्रभाग वाले जिसके चरण हैं॥ १६ ॥ सूक्ष्म, काले टेढ़े, चिकने बाल, शंख सा कंठ बहुमूल्य के वस्त्र तथा सुन्दर यज्ञोपवीत धारण किये हैं ॥ १७ ॥ जिसका सम्पूर्ण अंग शोभायमान है, नियम के हेतु आभूषणों को त्याग दिया है, काले-मृगका चर्म जिसने धारण किया है, कुशाहाथ में हैं यज्ञके उचित कर्मों से निश्चित होकर बैठा है ॥ १८ ॥ जिसके शिशिर ऋतु के तारों की सदृश नेत्र हैं ऐसा वह राजा अपने नेत्रों से चारों ओर देख कर सभा का हर्ष बढ़ाता हुआ ॥ १९ ॥ श्रेष्ठ, नम्र, गंभीर और मीठी, वाणीसे बोला ॥ २० ॥ राजाने कहा कि—हे सभासदों ! हे साधुओं ! हे सज्जनों ! मैं तुम्हारे कल्याण के हेतु जो कहता हूं उसे सुनो, जो मनुष्य धर्म की जिज्ञासा करना चाहै वह अपने विचारोंको साधुओं के सामने प्रकाशित करे ॥ २१ ॥ अपराधी प्रजा को दंड देने, तथा प्रजाका पालन करने उनको जीविका देने, पृथक् २ नियमों के रखने आदि को ब्रह्माने मुझे राजा नियत किया है ॥ २२ ॥ जिन देवताओं को ईश्वरके प्रसन्न होने पर जो सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होने वाले स्थान प्राप्त होते हैं वही स्थान मुझे भी यथोचित रीत्यनुसार राज्य चलाने से प्राप्त हो सकते हैं—ऐसे मैं जानता हूं ॥ २३ ॥ जो राजा प्रजा को धर्मोपदेशन करके उनसे करलेता है वह प्रजाओं के पाप का भागी होता है और वह अपने ऐश्वर्य्य से भी भ्रष्ट होजाता है ॥ २४ ॥ इस हेतु हे प्रजाओं ! मेरे परलोक के कल्याण के निमित्त परमेश्वरी पूर्ण बुद्धि से धर्मानुसार अपने कर्तव्य कर्म को करो मैं तुम्हारा बड़ा अनुग्रह मानूंगा ॥ २५ ॥ हे स्वच्छ चित वाले पित्रीश्वर देवताऔर ऋषियों! तुमभी मेरी इस बातका पक्ष करो—क्योंकि धर्म के सम्बन्ध में कर्ता को उपदेशक को सम्मति देने वाले को परलोक में समान फल मिलता है ॥ २६ ॥ सृष्टि में कितने ही नास्तिक और कितने हा आस्तिक हैं, और यह पक्ष सयुक्तिक निश्चय भी होता है, क्यों कि इस लोक तथा परलोक में किसी २ को अत्युत्तम देह तथा स्थान प्राप्त होता है यदि सृष्टि प्रेरक ईश्वरनहीं है तो इन का होना सम्भव ही नहीं ॥ २७ ॥ मनु, उत्तानपाद, ध्रुव, प्रियव्रत और राजा अंग

स्यचभयस्यच । प्रह्लादस्यबलेश्चापिकृत्यमस्तिगदाभृता ॥ २९ ॥ दौहित्रादीनृते मृत्योःशोच्यान्धर्मविमोहितान् । वर्गस्वर्गापवर्गाणांप्रायेणैकात्म्यहेतुना ॥ ३० ॥ यत्पादसेवाऽभिरुचिस्तपस्विनामशेषजन्मोपचितंमलंधियः । सद्यःक्षिणोत्यन्वहमेधतीसतीयथापदांगुष्ठविनिःसृतासरित् ॥ ३१ ॥ विनिर्धुताशेषमनोमलःपुमान्सङ्गविज्ञानविशेषवीर्यवान् । यदंघ्रिमूलेकृतकेतनःपुनर्नसंसृतिंक्लेशवहांप्रपद्यते ३२॥ तमेवयूयंभजतात्मवृत्तिभिर्मनोवचःकायगुणैःस्वकर्मभिः । अमायिनःकामदुघांघ्रिपङ्कजंयथाऽधिकारावसितार्थसिद्धयः ॥ ३३ ॥ असाविहानेकगुणोऽगुणोऽध्वरःपृथग्विधद्रव्यगुणक्रियोक्तिभिः । संपद्यतेऽर्थाशयलिङ्गनामभिर्विशुद्धविज्ञानघनःस्वरूपतः ॥ ३४ ॥ प्रधानकालाशयधर्मसंग्रहेशरीरएषप्रतिपद्यचेतनाम् । क्रियाफलत्वेनविभुर्विभाव्यतेयथाऽनलोदारुषुतद्गुणात्मकः ॥ ३५ ॥ अहोममामीवितरन्त्यनुग्रहंहरिंगुरुंयज्ञभुजामधीश्वरम् । स्वधर्मयोगेनयजन्तिमामका निरंतरंक्षोणितलेदृढव्रताः ॥ ३६ ॥ माजातुतेजःप्रभवेन्महर्द्धिभिस्तितिक्षयातपसाविद्ययाच । देदीप्यमानेऽजितदेवतानांकुलेस्वयंराजकुलाद्द्विजानाम् ॥ ३७ ॥ ब्रह्मण्यदेवःपुरुषःपुरातनोनित्यंहरिर्यच्चरणाभिवंदनात् । अवापलक्ष्मीमनपायिनींयशोजगत्पवित्रंचमहत्समाग्रणीः ॥ ३८॥ यत्सेवयाऽशेषगुहाशयःस्वराट् विप्रप्रियस्तुष्यतिकाममीश्वरः

॥ २८ ॥ ब्रह्मा, शिव, प्रल्हाद, राजाबलि तथा दूसरे बड़े२पुरुषों ने इस आस्तिक पक्षको अंगीकार किया है अर्थात् कर्म जड़ होने से फल नहीं दे सकते इसलिये कर्मों का फल देने वाला परमेश्वर ही है ॥२९॥ यदि धर्म,अर्थ,काम,मोक्ष और स्वर्ग मिलने के कारणोंका विचार कियाजाय तो कर्म जड़ होने से फल नहीं देसकता और देवता पर तंत्र हाने से—इस कारण सिद्ध होता है कि फल देने वाला एक परमेश्वर ही है और परमेश्वर को जो वेनादिक राजा नहीं मानतेथे वेशोच करने योग्य थे ॥ ३० ॥ भगवानके चरण कमल की सेवा सांसारिक तापों से तपे हुये मनुष्यों के मनको इस भांति दूर करदेती है कि जैसे गंगाजी मल को दूर करदेती हैं ॥ ३१ ॥ फिर मनके मल दूर होने से बैराग्य प्राप्त होकर आत्मज्ञान प्राप्त होता है कि जिस से मनुष्य भगवान के चरण कमल मे प्राप्त होकर आवागमन से छुटजाता है ॥ ३२ ॥ इस कारण मनोरथ पूर्ण करने वाले भगवानकी निष्कपट होकर मन,वाणी और काया से आराधना करोगे, तो भजन के अधिकार के अनुसार तुमको सिद्धि अवश्य प्राप्त होगी क्यों कि परमेश्वर के चरण कमल सम्पूर्ण इच्छाओं के पूर्ण करने वाले हैं ॥ ३३ ॥ यद्यपि भगवान शुद्ध स्वरूप निर्गुण ज्ञान घनहैं तौ भी कर्ममार्गमें नानापदार्थों से होते यज्ञरूपभी वहीहैं अर्थात् यज्ञमें पृथक २ पदार्थ यव इत्यादिक वस्तुयें गुण, क्रिया, मन्त्र, संकल्प, पृथक २ ज्योतिष्टोमादि, तथा इन सबसे होते हुये कर्म यह सब भगवानही के रूप हैं ॥ ३४ ॥ यह विभु भगवान माया, काल, बासना, और अदृष्टसे बनीहुई देहमें चैतन्यताको प्राप्त करके क्रियाफलसे इसभांति प्रकाशित होतेहैं कि जैसे अग्नि एकहोनेसे काष्ठके लम्बे चौड़े आकार के अनुसार प्रतीत होताहै ॥३५॥ अहो! मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह है कि मेरी प्रजा नियम पूर्वक दृढ़ व्रत धारणकर देवगुरु श्रीभगवानकी धर्मानुसार सदैव भक्ति करता है ॥३६ ॥ श्रेष्ठ राजकुल में उत्पन्नहुआ हमारा कुल सहनशील तप और विद्यासे प्रकाशित तेजयुक्त ब्राह्मण वैष्णव, भक्त, और देवताओंपर अपना प्रभाव नहीं प्रगटकरै ॥ ३७ ॥ जिन ब्राह्मणों के चरणकमलकी सेवासे ब्रह्मण्यदेव, पुरुष, पुरातन, महात्माओं में अग्रवर्त्ती हरि भगवान अनपाइनी, लक्ष्मी और सृष्टिको पवित्र करनेवाले यशको प्राप्तहुयेहैं ॥ ३८ तथा जिनकी सेवामें अन्तर्यामी स्वयंज्योति ब्राह्मणोंके

तदेवतद्धर्मपरैर्विनीतैःसर्वात्मनाब्रह्मकुलंनिषेव्यताम् ॥ ३९ ॥ पुमाँल्लभेतानतिवेलमात्मनःप्रसीदतोऽत्यन्तशमंस्वतःस्वयम् । यन्नित्यसंबन्धनिषेवयाततःपरंकिमत्रास्तिमुखंहविर्भुजाम् ॥ ४० ॥ अश्नात्यनन्तःखलुतत्त्वकोविदैःश्रद्धाहुतंयन्मुखइज्यनामभिः । नवैतथाचेतनयाबहिष्कृतेहुताशनेपारमहंस्यपर्यगुः ॥ ४१ ॥यद्ब्रह्मनित्यंविरजंसनातनंश्रद्धातपोमङ्गलमौनसंयमैः। समाधिनाबिभ्रतिहार्थदृष्टयेयत्रेदमादर्शइवावभासते ॥ ४२ ॥ तेषामहंपादसरोजरेणुमार्यावहेयाधिकिरीटमायुः । यंनित्यदाबिभ्रतआशुपापंनश्यत्यमुंसर्वगुणाभजन्ति ॥ ४३ ॥ गुणायनंशीलधनंकृतज्ञंवृद्धाश्रयंसंवृणतेऽनुसंपदः । प्रसीदतांब्रह्मकुलंगवांचजनार्दनःसानुचरश्चमह्यम् ४४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इतिब्रुवाणंनृपतिंपितृदेवद्विजातयः । तुष्टुवुर्हृष्टमनसःसाधुवादेनसाधवः ॥ ४५ ॥ पुत्रेणजयतेलोकानितिसत्यवतीश्रुतिः । ब्रह्मदण्डहतःपापोयद्वेनोऽत्यतरत्तमः ॥ ४६ ॥ हिरण्यकशिपुश्चापिभगवन्निन्दयातमः। विविक्षुरत्यगात्सूनोःप्रह्लादस्यानुभावतः ॥ ४७ ॥ वीरवर्यपितःपृथ्व्याःसमाःसंजीवशाश्वतीः । यस्येदृश्यच्युतेभक्तिःसर्वलोकैकभर्तरि ॥ ४८ ॥अहोवयंह्यद्यपवित्रकीर्तेत्वयैवनाथेनमुकुन्दनाथाः । यउत्तमश्लोकतमस्यविष्णोर्ब्रह्मण्यदेवस्यकथांव्यनक्ति ॥ ४९ ॥ नात्यद्भुतमिदंनाथतवाजीव्यानुशासनम्।प्रजानुरागोमहतांप्रकृतिःकरुणात्मनाम् ५०

प्रेमी श्रीभगवान अत्यन्त प्रसन्न होतेहैं उन ब्राह्मणोंके कुलकी धर्मानुसार नम्रतापूर्वक सेवामें तत्पर रहो ॥ ३९ ॥ कि जिनकी सदैव सेवा करने से अंतःकरण आपसे आप शुद्ध होजाता है और मनुष्य मोक्ष को प्राप्त होता है, उन ब्राह्मणों से अधिक और देवताओं का मुख क्या होसक्ता है ॥४०॥ ब्राह्मण को भगवान की साकार मूर्ति जानकर उसके मुख में देवताओं का नाम लेकर वेदवादी के हाथ से होमेहुए पवित्र पदार्थों को परमेश्वर जैसा स्वीकार करते हैं वैसा अग्नि में होमेहुए पदार्थ को नहीं स्वीकार करते ॥ ४१ ॥ जिस सनातन वेद में यह सृष्टि दर्पण की भांति प्रकाशती है उस वेद को जो ब्राह्मण लोग श्रद्धा, तप, सदाचार और जितेन्द्रियता से धारण करते हैं और सावधानी से उसके अर्थ का विचार करतेहैं॥४२॥उन ब्राह्मणोंके चरणोंकी धूलको मैं समस्त जीवनभर अपने मुकुट में धारणकरूं यही मेरी प्रार्थनाहै क्योंकि जो इस धूलको सदैव अपने मस्तकमें धारण करतेहैं उनके सम्पूर्ण पाप दूरहोकर उन्हें सम्पूर्ण गुण प्राप्त होते हैं ॥४३॥ जो पुरुष गुणवान,शीलवान,कृतज्ञ और वृद्ध पुरुषोंका दासहै उसको सम्पूर्ण सम्पदायें आपही अंगीकार करतीहैं इसीहेतु मैं विनती करताहूं कि ब्राह्मण, गऊ, परमेश्वर तथा भगवद्भक्त यह सब मुझपर प्रसन्नरहें ४४ ॥ मैत्रेयजीने कहा—कि राजा पृथुने जब इसभांति कहा तब पितृगण देवता, ब्राह्मण, यह सब हर्षितमनहो राजाको धन्यवाद दे स्तुति करनेलगे ॥ ४५ ॥ लोगोंने कहा यह वेदवाणी कि पुत्रसे परलोक सुधरजाताहै सत्यहै जिसप्रकार ब्राह्मणों के शापरूपी दंडसे मराहुआ अपराधी वेन नरकसे पार होगया ॥४६॥ हिरण्यकश्यपु भी परमेश्वरकी निंदा के अपराधसे नरकमें पड़ताथा परन्तु पुत्र प्रह्लादके प्रभावसे नरकसे पार उतरा ॥ ४७ ॥ हे वीरवर्य्य ! हेपृथ्वीके पिता ! भगवान आपको बहुतकालतक जीवितरक्खें क्योंकि आपकी जगत्पति परमेश्वरमें अत्यन्तही दृढ़ भक्ति है ॥४८॥ हेपुण्ययश ! आप आज हमारे स्वामीहुये इससे हम जानतेहैं कि साक्षात् भगवानही हमारे स्वामी हैं कारण कि आप पवित्र यश भगवान के चरित्र सुनातेहो ॥ ४९ ॥ हेस्वमी ! आप अपने आश्रयीमनुष्योंको उपदेशकरो इसमें कोई विचित्र बात नहीं है कारण कि प्रजापर स्नेह रखनाही करुणावान साधू मनुष्यों का स्वभाव है ॥ ५० ॥ हेनाथ ! हम अपने प्रारब्ध कर्मों से नष्ट

अथतत्तमसःपारस्त्वयोपासादितःप्रभो। भ्राम्यतांनष्टदृष्टीनांकर्मभिर्दैवसंज्ञितैः५१
नमोविशुद्धसत्त्वायपुरुषायमहीयसे। योब्रह्मक्षत्रमाविश्यविभर्तीदंस्वतेजसा ५२॥
इतिश्रीमद्भागवतेचतुर्थस्कन्धेएकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥
मैत्रेयउवाच। जनेषुप्रगृणत्स्वेवं पृथुंपृथुलविक्रमम्। तत्रोपजग्मुर्मुनयश्चत्वारः
सूर्यवर्चसः ॥ १ ॥ तांस्तुसिद्धेश्वरान्राजा व्योम्नोऽवतरतोऽर्चिषा। लोकानपापा
न्कुर्वत्या सानुगोऽचष्टलक्षितान् ॥ २ ॥ तद्दर्शनोद्गतान्प्राणान् प्रत्यादित्सुरिवो
त्थितः। ससदस्यानुगोवैन्य इन्द्रियेशोगुणानिव ॥ ३ ॥ गौरवाद्यन्त्रितःसभ्यः प्र
श्रयानतकन्धरः। विधिवत्पूजयांचक्रे गृहीताध्यर्हणासनान् ॥ ४ ॥ तत्पादशौच
सलिलैर्मार्जितालकबन्धनः। तत्रशीलवतांवृत्तमाचरन् मानयन्निव ॥५॥ हाटकास
नआसीनान् स्वधिष्ण्येष्विवपावकान्। श्रद्धासंयमसंयुक्तः प्रीतःप्राहभवाग्रजान्।
॥ ६ ॥ पृथुरुवाच। अहोआचरितंकिंमे मङ्गलंमंगलायनाः। यस्यवोदर्शनंह्यासीद्
दुर्दर्शानांचयोगिभिः ॥ ७ ॥ किंतस्यदुर्लभतरमिह लोकेपरत्रच। यस्यविप्राः प्र
सीदन्ति शिवोविष्णुश्चसानुगः ॥८॥ नैवलक्षयतेलोको लोकान्पर्यटतोऽपियान् ॥
यथासर्वदृशंसर्व आत्मानंयेऽस्यहेतवः ॥९॥ अधनाअपितेधन्याः साधवोगृहमे
धिनः। यद्गृहाह्यर्हवर्याम्बुतृणभूमीश्वरावराः ॥ १० ॥ व्यालालयद्रुमा वैतऽप्यरि
क्ताखिलसंपदः। यद्गृहास्तीर्थपादीयपादतीर्थविवर्जिताः ॥ ११ ॥ स्वागतंवोद्वि
जश्रेष्ठा यद्व्रतानिमुमुक्षवः। चरन्तिश्रद्धयाधीरा बालाएववृहन्तिच ॥१२॥ कच्चि

दृष्टि होकर इस सृष्टिमें भटकते हैं आपने आज उस अज्ञान से हमको पारकिया ॥ ५१ ॥ ब्राह्मण और क्षत्रियों में व्याप्त होकर अपनी शक्तिसे उनका और सृष्टिका पालन करनेवाले सत्वगुणके वृद्धि करनेवाले जो पुरुषोत्तम भगवान हैं उनको हम नमस्कार करतेहैं ॥ ५२ ॥

इति श्री भागवते महापुराणे सरलाभाषाटीकायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

मैत्रेयजीने कहा कि प्रभावशाली महाराजापृथुकी लोग इसभांति बड़ाई कररहेथे, कि-इतनेमेंहीं वहांपर सूर्यकी सदृश ऐश्वर्यवाले चारों सनकादिक मुनि आगये ॥१॥ उन सिद्धेश्वरोंको कि जिनके दर्शनमात्रसे पाप दूरहोतेहैं, आकाशसे उतरते राजा तथा राजाके सेवकोंने देखा और उनके तेजकी प्रभा से उन्हें पहिचानभी लिया ॥ २ ॥ उनके दर्शनसे गयेहुये प्राण मानों फिरलौटें इसप्रकार प्रसन्नहो राजापृथु सभासद और सेवकों सहित उठ खड़ाहुआ जैसे जीवात्मा गंधादि विषयोंके सन्मुख जाताहै ॥३॥ फिर नम्रता पूर्वक मस्तकको झुकाकर गौरवताके वशीभूतहो उन ऋषियों को आसन अर्घ्यादिदेकर विधिवत उनकी पूजा और सनमान किया ॥ ४ ॥ और उनके चरणोंके धोयेहुये जलको अपने मस्तकपर चढ़ाया सो वह पृथुका आचरण शीलवान मनुष्यों के आचरण को मान देनेवालाथा ॥ ५ ॥ अग्निके सदृश सुवर्णके आसनोंपर विराजमान महादेवजी के ज्येष्ठभ्राता सनकादिकोंसे राजाने श्रद्धासंयम संयुक्त प्रसन्नहोकर पूंछा ॥ ६ ॥ पृथुने कहा कि-हे मंगलायनो! मैंने ऐसा क्या सुकर्म कियाहै कि जो योगियोंको भी दुर्लभ आपके दर्शन मुझेहुये ॥ ७ ॥ जिसपर ब्राह्मण और अपने भक्तोंके साथ हरिहर प्रसन्न होजायँ तो उसको इसलोक और परलोकमें कोई पदार्थ दुर्लभ नहींहै ॥ ८ ॥ जैसे सर्वदृष्टा आत्माको यह देहनहीं देखसकता वैसेही सृष्टिमें विचरतेहुये आपको यहलोक नहीं देखसकता ॥ ९ ॥ जिस गृहस्थीके घरका जल, आसन भूमि भृत्य और गृहपतिको सन्तजन अंगीकारकरें वह चाहे दरिद्री क्यों नहो तोभी उसको भाग्यशालीही जानना चाहिये ॥१०॥ जिनके घर भक्तोंके तीर्थरूप चरणकमलोंसे वर्जितहैं वे घर समृद्धियुक्तहोनेपरभी सर्पोंके रहनेके बिलोंके सदृशहैं॥११॥हेद्विजोत्तमो! आपका शुभागमन हमको

कः कुशलंनाथा इन्द्रियार्थार्थवेदिनाम्। व्यसनावापएतस्मिन् पतितानांस्वकर्मभिः ॥ १३ ॥ भवत्सुकुशलप्रश्न आत्मारामेषुनेष्यते । कुशलाकुशलायत्र नसन्तिमतिवृत्तयः ॥ १४ ॥ तदहंकृतविश्रम्भः सुहृदोवस्तपस्विनाम् ॥ संपृच्छेभवएतस्मिन् क्षेमः केनांजसा भवेत् ॥ १५ ॥ व्यक्तमात्मवतामात्मा भगवानात्मभावनः । स्वाना मनुग्रहायेमांसिद्धरूपीचरत्यजः ॥ १६ ॥ मैत्रेयउवाच । पृथोस्तत्सूक्तमाकर्ण्य सारं सुष्ठुमितंमधु । स्मयमानइवप्रीत्या कुमारःप्रत्युवाचह ॥ १७ ॥ सनत्कुमारउवाच। साधुपृष्टंमहाराज सर्वभूतहितात्मना । भवताविदुषाचापि साधूनांमतिरीदृशी॥१८॥ संगमःखलुसाधूनामुभयेषांच संमतः । यत्संभाषणसंप्रश्नः सर्वेषांवितनोतिशम् । ॥ १९ ॥ अस्त्येवराजन्भवतो मधुद्विषःपादारविन्दस्यगुणानुवादने । रतिर्दुरापा-विधुनोतिनैष्ठिकी कामंकषायंमलमन्तरात्मनः ॥ २० ॥ शास्त्रेष्वियानेवसुनिश्चितो नृणांक्षेमस्यसम्यग्विमृशेषुहेतुः । असंगआत्मव्यतिरिक्त आत्मनिदृढारतिर्ब्रह्मणि-निर्गुणेचया ॥२१॥ साश्रद्धयाभगवद्धर्मचर्यया जिज्ञासयाऽध्यात्मिकयोगनिष्ठया । योगेश्वरोपासनयाचनित्यंपुण्यश्रवःकथयापुण्ययाच ॥ २२ ॥ अर्थेन्द्रियारामसगो-ष्ठ्यतृष्णयातत्संमतानामपरिग्रहेणच । विविक्तरुच्यापरितोषआत्मन्विनाहरेर्गुण पीयूषपानात् ॥ २३ ॥ अहिंसयापारमहंस्यचर्ययास्मृत्यामुकुन्दाचरिताग्र्यसी धुना । यमैरकामैर्नियमैश्चाप्यनिंदयानिरीहयाद्वन्द्वतितिक्षयाच ॥ २४ ॥ हरेर्मुहु-

बहुत अच्छा हुआ क्योंकि आपके नियमों को धैर्यवान पुरुष बालकपनहीसे मोक्षके हेतु धारणकरते हैं ॥ १२ ॥ हे समर्थो ! हम लोग विषय भागों को ही स्वार्थ मानते हैं और इस दुःख मय संसार में अपने कर्मों करके हमसे पतितभी कुशल हैं ॥ १३ ॥ और आप सरीखे आत्माराम पुरुषो से कुशल पूँछना उचित नही क्योंकि आपके मनमें कुशल और अकुशल की वृत्तियांही नहीं हैं ॥ १४ ॥ आप तपस्वियो के सुहृद हो, इसी से मै आप पर विश्वास करके बूझता हूं कि इस संसार में विना परिश्रम किये क्षेम किस प्रकार से प्राप्त होती है ॥ १५ ॥ आत्मवेत्तापुरुषों में आत्मस्वरूप से प्रकाशित तथा आत्मस्वरूप को प्रकाशित करने वाले आप साक्षात परमेश्वर हो आपका यह सिद्धस्वरूप धारण करक लोकों में विचरना भक्तों पर कृपा करनेके हेतुहै १६॥ मैत्रेयजी ने कहा कि पृथुकी सुंदर, सारभरी, प्रियवाणी सुनकर सनत्कुमार प्रीत्ति पूर्वक मुसका कर बोले ॥ १७ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि—हे महाराज ! आपने सब जानकर भी प्राणियों के हित के हेतु जो यह प्रश्नकिया वह बहुत उत्तम किया—महात्माओं की बुद्धि सदैव परोपकार में प्रवृत्त रहती है ॥ १८ ॥ साधुओं का सत्संग दोनोंको सुख दायकहै क्योंकि उनके संभाषणऔर प्रश्नों से सम्पूर्ण सृष्टि का भला होना है ॥ १९ ॥ हे राजन् ! आपकी मोक्ष साधनके हेतु श्रीकृष्ण भगवान के चरणो में अति दुर्लभ दृढ प्रीति है उसी परमेश्वर की प्रीति से अंतःकरणके कषाय दूर होजाते हैं ॥ २० ॥ मनुष्यों के कल्याणके निमित्त शास्त्रों को भली भांति से विचार कर यह निश्चय किया है कि पदार्थों मे वैराग्य, और निर्गुणरूप वाले आत्मरूप भगवान परब्रह्म में दृढ प्रीति का होना ही मनुष्य के कल्याण का कारण है ॥ २१ ॥ श्रद्धा रखना भगवद्धर्म का आचरण करना आत्मस्वरूपकी जिज्ञासा करना, अध्यात्मविद्या योग में निष्ठा रखना, योगियों की उपासना करना, पवित्र यश भगवान की नित्य पवित्र कथा सुनना, यह प्रीति होनेके साधन हैं २२॥ इंद्रिया राम राजसी प्राणियो के साथ वार्ता करने में तृष्णा न रखना, इंद्री और काम का परिग्रह न करना, एकांत स्थान में रुचि रखना, परमेश्वर के चरितामृतही को पान करके संतोष रखना ॥ २३ ॥ जीवमात्रकी हिंसा न करना परमहंस वृत्ति धारण करना नियम से परमेश्वर के चरिता

स्तत्परकर्णपूरगुणाभिधानेनविजृम्भमाणया । भक्त्याह्यसङ्गःसदसत्यनात्मनिस्यान्निर्गुणेब्रह्मणिचाञ्जसारतिः ॥ २५ ॥ यदारतिर्ब्रह्मणिनैष्ठिकीपुमानाचार्यवान्ज्ञानविरागरंहसा । दहत्यवीर्यंहृदयंजीवकोशंपञ्चात्मकंयोनिमिवोत्थितोऽग्निः ॥२६॥ दग्धाशयोमुक्तसमस्ततद्गुणोनैवात्मनोबहिरन्तर्विचष्टे। परात्मनोर्यद्व्यवधानंपुरस्तात्स्वप्नेयथापुरुषस्तद्विनाशे॥२७॥आत्मानमिन्द्रियार्थंचपरंयदुभयोरपि।सत्याशयउपाधौवैपुमान्पश्यतिनान्यदा ॥ २८ ॥ निमित्तेसतिसर्वत्रजलादावपिपूरुषः। आत्मनश्चपरस्यापिभिदांपश्यतिनान्यदा ॥ २९ ॥ इन्द्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तंध्यायतांमनः । चेतनांहरतेबुद्धेःस्तम्बस्तोयमिवह्रदात् ॥ ३० ॥ भ्रश्यत्यनुस्मृतिश्चित्तंज्ञानभ्रंशःस्मृतिक्षये । तद्रोधंकवयःप्राहुरात्मापह्नवमात्मनः ॥ ३१ ॥ नातःपरतरोलोकेपुंसःस्वार्थव्यतिक्रमः । यदध्यन्यस्यप्रेयस्त्वमात्मनःस्वव्यतिक्रमात् ॥ ३२ ॥ अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यानंसर्वार्थापह्नवोनृणाम् । भ्रंशितोज्ञानविज्ञानाभ्येनाविशतिमुख्यताम् ॥ ३३ ॥ नकुर्यात्कर्हिचित्सङ्गंतमस्तीव्रंतितीरिषुः । धर्मार्थकाममोक्षाणांयदत्यन्तविघातकम् ॥३४॥तत्रापिमोक्षएवार्थआत्यंतिकतयेष्यते।त्रैवर्ग्योऽर्थोयतोनित्यंकृतांतभयसंयुतः ॥ ३५ ॥ परेऽवरेचयेभावागुणव्यतिकरादनु । नतेषांविद्यतेक्षेममीशविध्वंसिताशिषाम् ॥ ३६ ॥तत्त्वंनरेन्द्रजगतामथतस्थुषांचदेहेन्द्रियाऽसुधि

मृत का पान करना, काम त्याग कर यम नियम करना, और सुख दुःख इत्यादिक को सहन करना ॥ २४ ॥ भगवद्भक्तोंके कार्यों का परिपूर्ण करने वाले भगवान के चरित्रों को बारंवार बखान करना और अत्यन्त भक्ति में मन लगाना इन साधनों से मनुष्य की निर्गुण भगवानमें रति होती है ॥ २५ ॥ गुरु में निष्ठा रखने वाले मनुष्य का परमात्मा में सत्य स्नेह होता है, उसका ल काठ से उत्पन्न हुई अग्नि की समान ज्ञान तथा वैराग्यके बलसे पंचमहाभूत लिंग शरीर का नाश होजाता है ॥ २६ ॥ इस के नाश से हृदयकी सम्पूर्ण उपाधियों का नाश होजाता है उसके सबगुण दूर होजाते तथा उस से उत्पन्न दृश्य दृष्टाका भेद अर्थात् आत्मा के सुख दुःख को वह ऐसे नहीं देखता कि जैसे स्वप्नावस्थाके पदार्थोंको जाग्रत पुरुष नहीं देखता ॥ २७ ॥ दृष्टा और दृश्यका भेद केवल अन्तःकरणसेही प्रतीतहोताहै, कारण कि जाग्रत और स्वप्नमें अंतःकरण होनेसे आप देखनेवाला और देखनेकी बस्तुयें और उनका सम्बन्ध करनेवाला अहंकार देखने में आताहै परन्तु सुषुप्तिमें अन्तःकरण न होनेसे कुछभी नहीदीखता ॥ २८ ॥ जैसे जल औरकांच मेंही प्रतिबिंब देखपड़ताहै औरइनके न होनेसे वह भेद देखनेमे नहींआता। आत्मा और ईश्वर में भेद नहींहै ॥ २९ ॥ विषयोंमें व्याप्त इन्द्रियों को विषय, मनको इन्द्रियें और बुद्धिकी विचार शक्तिको मन खींच लेजाताहै जैसे तटपरका वृक्ष अपनी जड़से सरोवरके जलको खींचताहै ३० ॥ बुद्धिकी चैतन्यताके नाशसे स्मृतिका नाश होताहै और स्मृति नाशसे ज्ञाननाश तथा ज्ञाननाशसे आत्मा का नाश होताहै ऐसा विवेकी लोग कहतेहै ॥ ३१ ॥ पुरुषके स्वार्थकीहानि इससेअधिक और कोई नहींहै कि उसी आत्माका नाश होना किं जो सबको प्रिय लगताहै ॥ ३२ ॥ मनुष्यों के पुरुषार्थ नाशका हेतु अर्थ कामकी तृष्णाहीहै क्योंकि इस तृष्णासे ज्ञान और विज्ञान दोनोंही नष्ट होजाते हैं और इनका नाश होजानेसे वह स्थावर भावको प्राप्तहोजाताहै ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य इस तीव्र संसारसे तरनेकीइच्छाकरै तो निःसंगरहे—क्योंकि इससगसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नाशको प्राप्तहोतेहैं ॥ ३४ ॥ इन चारोंमे मोक्षही श्रेष्ठ पुरुषार्थहै कारण कि शेष तीनो नित्यही काल के भयसे संयुक्त रहतेहैं ॥ ३५ ॥ वह काल स्वयं उत्पन्नहुये ब्रह्मातकके मनोरथोंको नाशकरदेता है और इसके भावगुण दूसरोंसे पृथक्हैं इसहेतु इससे कल्याण नहीं प्राप्तहोता ॥ ३६ ॥ हेनरेंद्र !

पणात्मभिरावृतानाम् । यः क्षेत्रवित्तपतयाहृदिविश्वगाविःप्रत्यक्चकास्तिभगव स्तमवेहिसोऽस्मि ॥ ३७ ॥ यस्मिन्निदंसदसदात्मतयाविभातिमायाविवेकविधुतिःस्रजिवाऽहिबुद्धिः। तंनित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्धतत्त्वप्रत्यूढकर्मकलिलप्रकृतिंप्रपद्ये ॥ ३८ ॥ यत्पादपङ्कजपलाशविलासभक्त्याकर्माशयंग्रथितमुद्ग्रथयन्तिसन्तः। तद्वन्नरिक्तमतयोयतयोऽपिरुद्धस्रोतोगणास्तमरणंभजवासुदेवम् ॥ ३९ ॥ कृच्छ्रो महानिहभवार्णवमप्लवेशांषड्वर्गनक्रमसुखेनतितीरपन्ति । तत्त्वंहरेर्भगवतोभजनीयमङ्घ्रिंकृत्वोडुपंव्यसनमुत्तरदुस्तरार्णम् ॥ ४० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सएवंब्रह्मपुत्रेण कुमारेणात्ममेधसा । दर्शितात्मगतिःसम्यक्प्रशस्योवाचतंनृपः ॥४१ ॥राजोवाच कृतोमेऽनुग्रहःपूर्वंहरिणाऽऽर्तानुकम्पिना । तमापादयितुंब्रह्मन्भगवन्यूयमागताः ॥ ४२ ॥ निष्पादितश्चकात्स्न्र्येनभगवद्भिर्घृणालुभिः । साधूच्छिष्टंहिमेसर्वमात्मना सहकिंददे ॥ ४३ ॥ प्राणादाराःसुताब्रह्मन्गृहाश्चसपरिच्छदाः । राज्यंबलंमही कोशइतिसर्वंनिवेदितम् ॥ ४४ ॥ सैनापत्यंचराज्यंचदण्डनेतृत्वमेवच । सर्वलोकाधिपत्यंचवेदशास्त्रविदर्हति ॥ ४५ ॥ स्वमेवब्राह्मणोभुङ्क्तेस्वंवस्तेस्वंददातिच । तस्यैवानुग्रहेणान्नंभुञ्जतेक्षत्रियादयः ॥ ४६ ॥ यैरीदृशीभगवतोगतिरात्मवादएकान्ततोनिगमिभिःप्रतिपादितानः।तुष्यन्त्वदभ्रकरुणाःस्वकृतेननित्यंकोनामतत्प्रतिकरोतिविनोदपात्रम्॥४७॥मैत्रेयउवाच ॥ तआत्मयोगपतयआदिराजेनपूजिताः । शीलं

वेद, इन्द्रिय, बुद्धि और आत्मासे व्याप्त स्थावर जंगममें जोअन्तर्यामी रूपसे प्रत्यक्ष प्रकाशते और अन्तवर्तिसे जो प्रतीत होते हैं वह परब्रह्म भगवान मैंहीहूं ऐसा आत्माको जानों ॥ ३७ ॥ ज्ञान उत्पन्न होनेपर कार्य कारणरूप संसार किजिसकी मालामेंमाया सर्पसी प्रतीत होताहै इसको निवृत्त करनेवाले, सत्यकर्मोंसे मलीनमाया के पराभव करनेवाले नित्यमुक्त, शुद्ध, ज्ञानस्वरूप परब्रह्म परमात्माकी शरणको प्राप्तहो ॥ ३८ ॥ जिन भगवानके चरणकमलके दलरूपी अंगुलियों की भक्तिसे मनुष्य उस हृदयकी अहंकाररूपी गांठ को काटता है कि जिसको बुद्धि प्रवर भी नहीं तोड़सकते, उन्हीं भगवान की शरण जाओ और उन्हीं का भजन करो ॥ ३९ ॥ इस संसार रूपी समुद्रको कि जिसमे छः (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य) ग्राह हैं, जो परमेश्वर रूपी नौकाके बिना योगादिक साधनाओं से पार होना चाहते हैं उन्हें बहुत श्रम पड़ताहै इसहेतु हे राजन् ! तुम भगवान के चरणों की नाव बनाकर इस दुःख रूपी संसार सागर से पार उतरो ॥ ४० ॥ मैत्रेयजी नें कहा कि जब वेदवादी ब्रह्माजी के पुत्र सनत्कुमारों नें राजा पृथुको इस प्रकार ज्ञानोपदेश किया तो राजा उनकी अत्यन्त बड़ाईकर कहनेलगा कि ॥ ४१ ॥ राजा नें कहा कि हेभगवन्! शरणागत वत्सल भगवानने प्रथम मेरेऊपर दयाकरके जो कहाथा हेब्रह्मन्! उसके संपादन करनेको आप यहां आएहो ॥४२॥ हे कृपालो! आपने मुझको पूर्णकिया (सबकार्य पूर्णकिये) हे महात्मन् ! मैं आप को क्या गुरु दक्षिणा दूं क्यों कि मेरा राज्य देहादिक महात्माओं ही का है ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मन् ! स्त्री, पुत्र, प्राण, घर, घरकी सामग्री, राज्य, सेना, कोष यह सब महात्माओंही का है, परन्तु जिस भांति नौकर राजाही की बस्तु राजा को अर्पण करे इसी भांति मैंने यह सम्पूर्णराज्य आपके अर्पणकिया॥४४॥वेद तथा शास्त्रवेत्ता ब्राह्मणही सेनापति, न्यायाधीश तथा सम्पूर्ण के अधिपति होनेके योग्य हैं ॥ ४५ ॥ ब्राह्मण अपनें ही भागको भोगता, देता, खाता तथा धारण करता है और क्षत्रियादिक तो ब्राह्मणों केही दियेहुए भागको भोगते हैं ॥ ४६ ॥ अध्यात्म विचार में एक वेद के ज्ञाता आप नें जो मुझे ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दी है उसका बदला हाथ जोडनें के अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं देसकता हे करुणानिधि ! परम कृपालु ! आप अपनें किये

तद्वीर्यंशंसन्तः खेऽभूवन्मिषतांनृणाम् ॥४८॥ वैन्यस्तुधुर्योमहतांसंस्थित्याऽध्यात्मशिक्षया । आप्तकाममिवात्मानंमेनआत्मन्यवस्थितः॥४९॥कर्माणिचयथाकालंयथादेशंयथाबलम् । यथोचितंयथावित्तमकरोद्ब्रह्मसात्कृतम् ॥ ५० ॥ फलंब्रह्मणिविन्यस्यनिर्विषङ्गःसमाहितः । कर्माध्यक्षंचमन्वानआत्मानंप्रकृतेःपरम् ॥५१॥गृहेषुवर्तमानोऽपिससाम्राज्यश्रियाऽन्वितः । नासज्जतेन्द्रियार्थेषुनिरहंमतिरर्कवत् ५२ एवमध्यात्मयोगेनकर्माण्यनुसमाचरन् । पुत्रानुत्पादयामासपञ्चाऽर्चिष्यात्मसंमतान् ॥ ५३ ॥ विजिताश्वंधूम्रकेशंहर्यक्षंद्रविणंवृकम् । सर्वेषांलोकपालानांदधारैकःपृथग्गुणान् ॥ ५४ ॥ गोपीथायजगत्सृष्टेःकालेस्वेस्वेऽच्युतात्मकः । मनोवाग्वृत्तिभिःसौम्यैर्गुणैःसंरञ्जयन्प्रजाः ॥ ५५ ॥ राजेत्यधान्नामधेयंसोमराजइवापरः । सूर्यवद्विसृजन्गृह्णन्प्रतपंश्चभुवोवसु ॥ ५६ ॥ दुर्धर्षस्तेजसेवाग्निर्महेन्द्रइवदुर्जयः । तितिक्षयाधरित्रीवद्यौरिवाभीष्टदोनृणाम् ॥ ५७ ॥ वर्षतिस्मयथाकामंपर्जन्यइवतर्पयन् । समुद्रइवदुर्बोधःसत्त्वेनाचलराडिव ॥ ५८ ॥ धर्मराडिवशिक्षायामाश्चर्येहिमवानिव । कुबेरइवकोशाढ्योगुप्तार्थोवरुणोयथा ॥ ५९ ॥ मातरिश्वेवसर्वात्मा बलेनसहसौजसा । अविषह्यतयादेवोभगवान्भूतराडिव ॥ ६० ॥ कन्दर्पइवसौन्दर्येमनस्वीमृगराडिव । वात्सल्येमनुवन्नृणांप्रभुत्वेभगवानजः ॥ ६१ ॥ बृहस्पतिर्ब्रह्मवादेआत्मवत्त्वेस्वयंहरिः । भक्त्यागोगुरुविप्रेषुविष्वक्सेनानुवर्तिषु ॥ ६२ ॥

हुए उपकार सेही मुझपर प्रसन्न होओ ॥४७॥ मैत्रेयजी बोले कि राजा पृथुने इस भांति उन मुनियों का बड़ा सनमान किया तब वह ब्रह्म वेत्ता सनत्कुमारादिक मुनि उस के स्वभाव की बड़ाई करतेहुए आकाश मार्ग से चलेगये ॥ ४८ ॥ ब्रह्म ज्ञान से उत्पन्न हुई चित्त की एकाग्रता से अपने स्वरूप में स्थित साधुओं में श्रेष्ठ वह राजा पृथु अपनें आत्मा को कृतार्थ सा मानने लगा ॥ ४९ ॥ वह राजा देश काल, बल, योग्यता और धनसे कियेहुए कर्मों को ब्रह्मार्पण करता था ॥ ५० ॥ उन कर्मोंके फलों को ब्रह्मार्पण करके, कर्मों की आसक्ति को त्याग अपनें आत्मा को सब कामों का साक्षी कर उसको मुख्य मान माया से परे माननें लगा ॥ ५१ ॥ उसके घर में सम्पूर्ण प्रकार की संपदायें वर्तमान थीं परन्तु वह निरहंकार होने से किसी भी विषय में लिप्त नहुआ ॥५१॥ इस भांति अंतःकरण में ज्ञान निष्ठारख लोक संग्रह के हेतु कर्म करते हुए उस पृथुने अर्चि नाम रानी में अपनें सदृश पांच पुत्र उत्पन्न किये ॥ ५३ ॥ बिजताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण, और वृक, यह राजा पृथु सब लोकपालों के गुणों को धारण करता था ॥ ५४ ॥ सृष्टि की रक्षा के हेतु परमेश्वर के अवतार रूप पृथुने मन, वाणी, वुद्धि, और श्रेष्ठ गुणों से प्रजाको प्रसन्न किया ॥ ५५ ॥ इसी हेतु पृथु को राजा की पदवीमिली सूर्यकी सदृश राजा सबपर अज्ञा करताथा और सब प्रजा से करले कर समयपर उस द्रव्य को त्याग करता था ॥ ५६ ॥ तेजमें वह अग्नि की सदृश था और इन्द्र की सदृश अजय था क्षमा में पृथ्वी की सदृश और मनोकामना पूर्ण करनें में स्वर्ग की सदृश था ॥ ५७ ॥ जिस भांति मेघ सम्पूर्ण सृष्टि को तृप्त करता है वैसेही यह राजा सबकी मनोकामना पूर्ण कर जगत को तृप्त करता था, वह समुद्र के सदृश गम्भीर और मेरु की सदृश धैर्यवान था ॥ ५८ ॥ वह उपदेश में धर्मराज, आश्चर्य में हिमालय, द्रव्य में कुवेर, और अर्थ गुप्त रखने में वरुणकी सदृश था ॥ ५९ ॥ सम्पूर्ण स्थानों में भ्रमण करने से वह बल, पराक्रम में पवन की सदृश, तथा असह्यता में रुद्र की सदृश था ॥ ६० ॥ रूप में कामदेव, साहस में सिंह, मनुष्य पर प्रीति करने में मनु और स्वामित्व में भगवान ब्रह्माजी के सदृशथा ॥ ६१ ॥ वेदवादमें बृहस्पति के सदृश, जितेन्द्रियता में विष्णुभगवान की सदृश और गौ, ब्राह्मण, गुरु, भक्तों की सेवा करने में तथा

ह्रियाप्रश्रयशीलाभ्यामात्मतुल्यःपरोद्यमे । कीर्त्योर्ध्वगीतयापुंभिस्त्रैलोक्येतत्रत
ह । प्रविष्टःकर्णरन्ध्रेषुस्त्रीणांरामःसतामिव ॥ ६३ ॥

इतिश्रीमद्भा०च०पृथुचरितेनामद्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

मैत्रेयउवाच ॥ दृष्ट्वात्मानंप्रवयसमेकदा वैन्यआत्मवान् । आत्मनावर्धिताशे षस्वानुसर्गःप्रजापतिः ॥ १ ॥ जगतस्तस्थुषश्चापि वृत्तिदोधर्मभृत्सताम् । नि ष्पादितेश्वरादेशो यदर्थमिहयज्ञिवान् ॥ २ ॥ आत्मजेष्वात्मजांन्यस्य विरहाद्रुद तीमिव ॥ प्रजासुविमनस्स्वेकः सदारोऽगात्तपोवनम् ॥ ३ ॥ तत्राप्यदाभ्य नियमो वैखानससुसंमते । आरब्धउग्रतपसि यथास्वविजयेपुरा ॥ ४ ॥ कन्दमू लफलाहारः शुष्कपर्णाशनःक्वचित् । अब्भक्षःकतिचित्पक्षान वायुभक्षस्ततःप रम् ॥ ५ ॥ ग्रीष्मेपञ्चतपावीरो वर्षास्वासारषाण्मुनिः । आकण्ठमग्नःशिशिर उदकेस्थण्डिलेशयः ॥ ६ ॥ तितिक्षुर्यतवाग्दान्त ऊर्ध्वरेताजितानिलः । आरिरा धयिषुःकृष्ण मचरत्तपउत्तमम् ॥ ७ ॥ तेनक्रमानुसिद्धेन ध्वस्तकर्मामलाशयः प्राणायामैःसंनिरुद्ध षड्वर्गश्छिन्नबन्धनः ॥ ८ ॥ सनत्कुमारोभगवान् यदाहाध्या त्मिकंपरम् । योगंतेनैवपुरुष मभजत्पुरुषर्षभः ॥ ९ ॥ भगवद्धर्मिणःसाधोः श्रद्ध यायततःसदा । भक्तिर्भगवतिब्रह्मण्य नन्यविषयाऽभवत् ॥ १० ॥ तस्यानयाभग वतःपरिकर्मशुद्ध सत्वात्मनस्तदनुसंस्मरणानुपूर्त्या । ज्ञानंविरक्तिमद्भून्निशितेन येन चिच्छेदसंशयपदंनिजजीवकोशम् ॥ ११ ॥ छिन्नान्यधीरधिगतात्मगतिर्निरी

लज्जा, नम्रता परस्वार्थ, और सुशीलता मे अपनी सदृश था अर्थात् इनमें किसी की उपमायोग्य नथा ॥ ६२ ॥ उसकी सत्पुरुषों से गाई हुई कीर्ति रामचन्द्र जी की कीर्ति की सदृश त्रिलोकी में व्याप्त होगई ॥ ६३ ॥

इति श्री मद्भागवते महापुराणे० चतुर्थस्कंधे सरला भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

मैत्रेयजी बोले कि—एकसमय आत्मज्ञानी राजापृथुने अपनी आत्माको वृद्धदेखा जिसमें अपनी आत्मासे सब संसारके पदार्थ बढ़ाये सो प्रजापतिहुये ॥ १ ॥ उस राजापृथुनें समस्त के स्थावर जंगम जीओं को धर्मकी वृत्तिदेने तथा देवताओं की आज्ञा सम्पादन करनें हेतु जन्मलियाथा ॥ २ ॥ बिरहसे रुदन करतीहुई पृथ्वीको अपने पुत्रोंको सौंपकर प्रजामें जिसका मन नहीं सो राजा पृथु अपनी स्त्री को साथले अकेला तप करनेके लिये तपोवनको चलदिया ॥ ३ ॥ पृथुराजाने जैसा कि पृथ्वीके जय करनेमें पराक्रम कियाथा वैसाही दृढ़ नियम धारणकर वानप्रस्थ लोगोंके माननीय उग्र तपकरने में प्रयत्नकिया ॥ ४ ॥ कुछ एकदिन उसने कन्दमूल, फल, फिर, कुछदिन सूखेपत्ते और कुछदिन केवल जलपानहीकिया अनन्तर वायुही भक्षणकरनेलगा॥५॥ ग्रीष्म ऋतुमें पंचाग्नि तपता वर्षाऋतुमें उग्र वर्षाका सहन करता और शीतकालमें कण्ठ पर्यंत जलमे खडारहता और पृथ्वीपर सोताथा ॥ ६ ॥ उस सहनशील, मौनी इन्द्रियदमन, ऊर्ध्वरेता पृथुराजाने वायुकोभी जीतकर परमेश्वरके आराधनकेहेतु उत्तम तपकिया॥७॥ क्रमरसे कर्मनष्टहोजानेपर राजा का अन्तःकरण निर्मल होगया, प्राणायामके प्रभावसे उसके कामक्रोधादि वशीभूतहो सब बन्धन कटगये ॥ ८ ॥ सनत्कुमार भगवानके परमश्रेष्ठ योगके उपदेशानुसार पृथुराजा परमेश्वरकी आराधना करताथा ॥ ९ ॥ यत्नपूर्वक श्रद्धासे परमेश्वरकी भक्तिकरतेहुये पृथुराजाकी श्रीभगवानमें अनन्य भक्ति होगयी ॥ १० ॥ तथा भक्तिसे राजाका मन शुद्ध सत्वको प्राप्तहो वैराग्ययुक्त ज्ञानको प्राप्तहुआ, कि जिस भगवद्भक्तिसे तीव्रहुये ज्ञानने अनेक विषयोंके आश्रयभूत जीवकोश (देहात्मबुद्धि) की ग्रन्थिको काटदिया ॥११॥ देहही आत्माहै इसभ्रमके नष्टहोजानेपर वह निजस्वरूप

ह्यजेऽच्छिन्नविद्वयुनेनयेन । तावन्नयोगगतिभिर्यतिरप्रमत्तो यावद्गदा प्र०कथासुरतिंनकुर्यात् ॥ १२ ॥ एवंसवीरप्रवरःसं योज्यात्मानमात्मनि । ब्रह्मभूतोदृढंकाले तत्याजस्वंकलेवरम् ॥ १३ ॥ संपीड्यपायुंपार्ष्णिभ्यां वायुमुत्सारयन् शनैः । नाभ्यांकोष्ठेष्ववस्थाप्य हृदुरःकण्ठशीर्षणि ॥ १४ ॥ उत्सर्पयंस्तुतंमूर्ध्नि क्रमेणावेश्यनिःस्पृहः । वायुंवायौक्षितौकायं तेजस्तेजस्ययूयुजत् ॥ १५ ॥ खान्याकाशेद्रवंतोये यथास्थानंविभागशः । क्षितिमम्भसितत्तेज स्यदोवायौनभस्यमुम् ॥१६॥ इन्द्रियेषुमनस्तानि तन्मात्रेषुयथोद्भवम् । भूतादिनाऽमून्युत्क्षिप्य महत्यात्मनिसंदधे ॥ १७ ॥ तंसर्वगुणविन्यासं जीवेमायामयेन्यधात् । तंचानुशयमात्मस्थ मसावनुशयीपुमान् ॥ १८ ॥ ज्ञानवैराग्यवीर्येण स्वरूपस्थोऽजहात्प्रभुः । अर्चिर्नाममहाराज्ञी तत्पत्न्यनुगतावनम् । सुकुमार्यतदर्हाच यत्पद्भ्यांस्पर्शनंभुवः । ॥ १९ ॥ अतीवभर्तुर्व्रतधर्मनिष्ठया शुश्रूषयाचारषदेहयात्रया । नाविन्दतार्तिंपरिकर्शिताऽपिसाप्रेयस्करस्पर्शनमाननिर्वृतिः ॥ २० ॥ देहंविपन्नाखिलचेतनादिकं पत्युःपृथिव्यादयितस्यचात्मनः । आलक्ष्यकिंचिच्चविलप्यसासती चितामथारोपयदद्रिसानुनि ॥ २१ ॥ विधायकृत्यंह्रदिनीजलाप्लुता दत्वोदकंभर्तुरुदारकर्मणः। नत्वादिविस्थांस्त्रिदशांस्त्रिःपरीत्यविवेशवह्निंध्यायतीभर्तृपादौ ॥ २२॥ विलोक्यानुगतांसाध्वींपृथुंवीरवरंपतिम् । तुष्टुवुर्वरदादेवैर्देवपत्न्यःसहस्रशः ॥ २३ ॥कुर्वत्यः कुसुमासारंतस्मिन्मन्दरसानुनि । नदत्स्वमरतूर्येषुगृणन्तिस्मपरस्परम् ॥ २४ ॥

को प्राप्तहुआ फिर राजापृथुने उस ब्रह्मज्ञानके प्रयत्नकोभी त्यागदिया जबतक परमेश्वरके चरित्रों में प्रीति नहीं कीजाती तबतक योगी सिद्धिओं में भ्रमित होजाया करता है इसी हेतु पृथुराजा को भगवत्प्रीति होनेके कारण सिद्धियोंमें लोभ नहींहुआ ॥१२॥ इसभांति उसने अपने आत्माको परमेश्वरमें मिलाकर वह वीरोत्तमवीर पृथु साक्षात् ब्रह्मरूप होगया फिर कालान्तरमें उसने अपना शरीर छोड़दिया ॥ १३ ॥ एंडियों से गुदा दबाकर मूलाधारसे धीरे२ पवनको चढ़ा प्रथम नाभ में फिर हृदयमें फिर वक्षःस्थलमें फिर कंठमें फिर शिरमें चढ़ा ॥ १४ ॥ क्रमानुसार उस वायुको ब्रह्मरन्ध्रमें चढ़ाया, निष्काम राजापृथुने पवनको पवनमें शरीरके पार्थिवभाग को पृथ्वीमें तेजको तेजमें ॥ १५ ॥ छिद्रोंको आकाशमें, रसको जलमें इसीभांति पांचों तत्त्वोंको मिलादिया, । फिर पृथ्वीको जलमें जलको वायुमें वायुको आकाश में ॥१६॥ मनको इन्द्रियोंमें इन्द्रियोंको इन्द्रियों की मात्रामें आकाश और विषयोंको अहंकार में ,मिला अहंकार को महतत्त्व में मिलाया ॥ १७ ॥ उस सम्पूर्ण गुणों के स्थानरूप महतत्त्व को जीव के विषे लीन किया, फिर ज्ञान वैराग्यके बलसे परब्रह्म में स्थित हो माया को त्याग मोक्ष को प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥ उसकी स्त्री अर्चि कि जो अत्यन्त सुकुमारी थी और जिसने पैरोंसे भी कभी पृथ्वी का स्पर्श नहीं कियाथा उसके साथ बनमें गईथी ॥१९॥ वहां वह अपनेपति पृथु के सदृश धर्म का आचरण करती हुई कंद,मूलफल खाती हुई पति की सेवा करती थी इस कारण वह बहुत जीर्ण होगईथी तौ भी अपने प्रियतम पति के करस्पर्श और प्यारके कारण दुःख, सुखका कुछ भी ध्यान नहीं करती थी ॥२०॥ उस सती अर्चीने अपनेपति पृथुराजाके देहको मरादेख कुछकरुणाकर पहाड़की चोटीपर चितालगाकर उसपर राजाके देहको रक्खा॥२१॥फिर आपभी नदीमें स्नान कर, पति को दाहांजलि दे, आकाश स्थित देवताओंको प्रणामकर, अग्नि की तीनपरिक्रमा दे, पतिके चरणोंका ध्यानकर अग्निमें प्रवेश किया ॥ २२ ॥ महावीर पृथुराजा के संग पतिव्रता आर्चीको सती हुई देख सहस्रों देवांगनायें देवताओं के संग उसकी बड़ाई करने लगीं ॥ २३ ॥ उस पर्वत की चोटी पर देवता फूल बर-

देव्य ऊचुः ॥ अहोइयंवधूर्धन्यायाचैवंभूभुजांपतिम् । सर्वात्मनापतिंभेजेयज्ञेशंश्री र्वधूरिव ॥ २५ ॥ सैषानूनंव्रजत्यूर्ध्वमनुवैन्यंपतिंसती ।पश्यतास्मानतीत्यार्चिर्दुर्विभाव्येनकर्मणा ॥ २६ ॥ तेषांदुरापंकिंत्वन्यन्मर्त्यानांभगवत्पदम् । भुविलोलायुषो येवैनैष्कर्म्यंसाधयन्त्युत ॥ २७ ॥ सवंञ्चितोवतात्मध्रुक्कृच्छ्रेणमहताभुवि । लब्ध्वा पवर्ग्यंमानुष्यंविषयेषुविषज्जते ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स्तुवन्तीष्वमरस्त्रीषुपति लोकंगतावधूः । यंवाआत्मविदांधुर्योवैन्यःप्रापाच्युताशयः ॥ २९ ॥ इत्थंभूतानु भावोऽसौपृथुःसभगवत्तमः । कीर्तितंतस्यचरितमुद्दामचरितस्यते ॥ ३० ॥ यइदं सुमहत्पुण्यंश्रद्धयाऽवहितःपठेत् । श्रावयेच्छृणुयाद्वाऽपिसपृथोःपदवीमियात् ३१ ब्राह्मणोब्रह्मवर्चस्वीराजन्योजगतीपतिः । वैश्यःपठन्विट्पतिःस्याच्छूद्रःसत्तम तामियात् ॥ ३२ ॥ त्रिःकृत्वइदमाकर्ण्यनरोनार्यथवाहृता । अप्रजःसुप्रजतमोनिर्ध नोधनवत्तमः ॥ ३३ ॥ अस्पष्टकीर्तिःसुयशामूर्खोभवतिपण्डितः । इदंस्वस्त्ययनं पुंसाममङ्गल्यनिवारणम् ॥ ३४ ॥ धन्यंयशस्यमायुष्यंस्वर्ग्यंकलिमलापहम् ।धर्मार्थ काममोक्षाणांसम्यक्सिद्धिमभीप्सुभिः ॥ श्रद्धयैतदनुश्राव्यंचतुर्णांकारणंपरम् ३५ विजयाभिमुखोराजाश्रुत्वैतदभियातियान् । बलिंतस्मैहरन्त्यग्रेराजानःपृथवेयथा ॥ ३६ ॥ मुक्तान्यसङ्गोभगवत्यमलांभक्तिमुद्वहन् । वैन्यस्यचरितंपुण्यंशृणुयाच्छ्रा वयेत्पठेत् ॥ ३७ ॥ वैचित्रवीर्याभिहितंमहन्माहात्म्यसूचकम् । अस्मिन्कृतमति मर्त्यःपार्थिवींगतिमाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ अनुदिनमिदमादरेणशृण्वन्पृथुचरितंप्रथयन्

साथ २ नगाड़े बजाते हुए उन्हीं की वार्त्ता करने लगे ॥ २४ ॥ देवांगनाओं ने कहा कि—यह आर्चि जगत् में बड़ी ही भाग्य शालिनी है क्योंकि लक्ष्मी जी जैसे विष्णुजी की सेवा करती हैं वैसेही इसने अपने पति राजापृथुकी सेवाकी ॥ २५ ॥ इस अर्चिको देखो कि अपने कर्मोंके प्रभाव से अपने पतिके पीछे ऊंचेलोकको जातीहै ॥ २६ ॥ जो मनुष्य पृथ्वीमें चंचल आयुको पाकर परब्रह्म पद प्राप्तहोनेके हेतु आत्मज्ञानकी सिद्धि करतेहैं उनको कोईभी पदार्थ दुर्लभ नहींहै ॥ २७ ॥ मोक्षदाता मनुष्य शरीरको पाकर जो मनुष्य विषयोंमें लिप्त होजातेहैं उनको ठगाहुआ आत्मद्रोही जानना चाहिये ॥ २८ ॥ मैत्रेयजीने कहा—कि देवताओंकी स्त्रियें इसभांति स्तुति कररहीथीं उससमय ब्रह्मज्ञानियोंमें मुख्यपरमेश्वरके परमभक्त राजापृथुने उसलोकमें गमनकियाथा उसीमें महारानी अर्चिभी प्राप्तहुई ॥ २९ ॥ अति पराक्रमी राजापृथु बड़ाही प्रभावशालीथा, उस उदारचित्त राजा पृथुका चरित्र मैंने तुमसे कहा ॥ ३० ॥ इस अति पवित्र चरित्र को जो मनुष्य एकाग्र चित्तहो सावधानीसे पढ़े वा सुनेगा तो वह पृथुके पदको प्राप्तहोगा ॥ ३१ ॥ इसके पढ़नेसे ब्राह्मण तो तेजस्वी क्षत्री, पृथ्वीपति, वैश्यधनाढ्य और शूद्र पवित्र होजावेगा ॥ ३२ ॥ जो स्त्री अथवा पुरुष इस चरित्र को सत्कार से पढ़े तो अपुत्र को श्रेष्ठ पुत्र अथवा निर्धनको धनमिले ॥ ३३ ॥ अप्रसिद्ध मनुष्य की संसारमें कीर्ति अधिक होवे, मूर्ख पंडितहोजाय यह मंगलमय चरित्र मनुष्योंका अति कल्याण कारीहै ॥ ३४ ॥ यह चरित्र धन, कीर्ति, आयु, स्वर्गका देनेवालाहै और कलियुगके पापोंको दूर करनेवालाहै जो मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी आकांक्षाकरे वह ॥ ३५ ॥ इस चरित्रका श्रद्धापूर्वक श्रवणकरे, यह चरित्र इन चारोंपदार्थों का मुख्य हेतुहै जो राजा युद्धमें जावे वह इस चरित्रको पढ़करजाय तो शत्रुलोग जिसभांति कि राजा पृथुको भेंटें मिलतीथीं उसीप्रकार भेंटदेवें ॥ ३६ ॥ इसलिये मनुष्यको चाहिये कि निःसंगहो परमेश्वरमें निष्काम भक्तिरख इसपवित्र पृथु चरित्र को सुने और सुनावे ॥ ३७ ॥ हे विचित्रवीर्यसुत ! भगवद्भक्त राजापृथुके इस चरित्रको जो मनुष्य सुनेगा वह पृथुकी गतिको प्राप्त होगा ॥ ३८ ॥ यह पृथुचरित्र जो मनुष्य निःसंगहो प्रतिदिन सुने

विमुक्तसङ्गः । भगवत्यभयसिंधुपोतपादे सचनिपुणां लभतेरतिंमनुष्यः ॥ ३९ ॥
इतिश्रीमद्भा०च०पृथुचरित्रसमाप्तिवर्णननामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥
मैत्रेय उवाच ॥ विजिताश्वोऽधिराजाऽऽसीत्पृथुपुत्रःपृथुश्रवाः।यवीयोभ्योऽददा
त्काष्ठाभ्रातृभ्योभ्रातृवत्सलः ॥ १ ॥ हर्यक्षायादिशत्प्राचींधूम्रकेशायदक्षिणाम् ।
प्रतीचींवृकसंज्ञायतुर्यांद्रविणसेविभुः ॥ २ ॥ अन्तर्धानगतिंशक्राल्लब्ध्वाऽन्तर्धान
संज्ञितः । अपत्यत्रयमाधत्तशिखण्डिन्यांसुसंमतम् ॥ ३ ॥ पावकःपवमानश्चशुचि
रित्यग्नयःपुरा । वसिष्ठशापादुत्पन्नाःपुनर्योगगतिंगताः ॥ ४॥अन्तर्धानोनभस्वत्यां
हविर्धानमविन्दत । यइन्द्रमश्वहर्तारंविद्वानपिनजघ्निवान् ॥ ५ ॥ राज्ञांवृत्तिंकरा
दानदण्डशुल्कादिदारुणाम् । मन्यमानोदीर्घसत्रव्याजेनविससर्जह ॥ ६ ॥ तत्रापि
हंसंपुरुषंपरमात्मानमात्मदृक् । यजंस्तल्लोकतामापकुशलेनसमाधिना ॥ ७ ॥ हवि
र्धानाद्धविर्धानीविदुरासूतषट्सुतान् । बर्हिषदंगयंशुक्लंकृष्णंसत्यंजितव्रतम् ॥८॥
बर्हिषत्सुमहाभागोहाविर्धानिःप्रजापतिः । क्रियाकाण्डेषुनिष्णातोयोगेषुचकुरू
द्वह ॥ ९ ॥ यस्येदंदेवयजनमनुयज्ञंवितन्वतः।प्राचीनाग्रैःकुशैरासीदास्तृतंवसुधा
तलम् ॥ १० ॥सामुद्रींदेवदेवोक्तामुपयेमेशतद्रुतिम् । यांवीक्ष्यचारुसर्वाङ्गींकिशोरीं
सुष्ठ्वलंकृताम् ॥ परिक्रमन्तीमुद्वाहेचकमेऽग्निःशुकीमिव ॥ ११ ॥ विबुधासुर
गंधर्वमुनिसिद्धनरोरगाः । विजिताःसूर्ययादिक्षुक्वणयन्त्यैवनूपुरैः ॥१२॥ प्राचीन

सुनावेगा तो वह उन भगवानकी भक्तिका कि जिनके चरण संसाररूपी समुद्रसे तरनेकी नौकारूप हैं प्राप्त होकर मोक्षको प्राप्तहोगा ॥ ३९ ॥

इतिश्रीमद्भा०महापुराणे चतुर्थस्कन्धेसरलाभा०टी०त्रियोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

मैत्रेयजी बोले—कि हे महाराज! पृथुके उपरांत उसका पुत्र विजिताश्व चक्रवर्ती राजा हुआ उसनें स्नेह पूर्वक अपनें छोटे भाइयों को चारोओरका राज्य बांट दिया ॥१॥ उसनें हर्यक्ष को पूर्व धूम्रकेश को दक्षिण, वृक को पश्चिम, और द्रविणस को उत्तर की ओर का राज्य दिया ॥२॥ यह विजिताश्व राजा पृथुके अश्वमेध यज्ञ में इन्द्र से उसके हरे हुए घोड़े को लाया था तब इन्द्र नें इसे अंतर्धान होनें की विद्या दीथी तबसे इसका नाम अंतर्धानी हुआ इस की शिखंडिनी रानी से पावक, पवमान तथा सुचि यह तीन श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्नहुए ॥३॥ यह तीनों पहिले अग्नि थे वशिष्ठ के शाप के कारण विजिताश्व के घर उत्पन्न हुए थे फिर योग गति से अग्नी पदवी को प्राप्त हुए॥ ४ ॥ अंतर्धान विद्या जाननें वाले महाराजा विजिताश्व नें नभस्वती रानी में हविर्धान नामक पुत्र उत्पन्न किया वह ऐसा प्रताप शाली था कि अश्व चुरानें वाले इन्द्र को जानभी लिया तौभी न मारा ॥ ५ ॥ उस विजिताश्व राजानें कर, दंड इत्यादिकोंको प्राणियों को दुःखदेनें वाला जान बहुतकालतक यज्ञ करनें के मिष से वन में वास किया ॥ ६ ॥ वहांभी आत्मज्ञानी विजिताश्व दुःखहारी भगवान की एकाग्र चित्त से आराधना करता था वह ब्रह्मज्ञानी अंत में भगवत् लोक को प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ हे विदुर! हविर्धान की हविर्धानी स्त्री से छः पुत्र बर्हिषद, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य, और जितव्रत हुए ॥ ८ ॥ हे कौरव कुल दीपक! राजा बर्हिषद बड़ाही प्रभावशाली हुआ और योग तथा कर्मकांड का बड़ा भारी ज्ञाता था ॥ ९ ॥ इस राजानें सम्पूर्ण ही पृथ्वी पर यज्ञ किया पूर्व दिशा की सम्पूर्ण भूमि कुशाओं से छादी इसी से इसका नाम प्राचीनबर्हि हुआ ॥ १० ॥ इस राजा नें ब्रह्माजी की आज्ञानुसार समुद्र की पुत्री शतद्रुति से विवाह किया वह कन्या अति सुंदर नवयौवना किशोर अवस्था, सुंदर आभूषणों युक्त विवाह में अग्नि की परिक्रमा करते समय राजा प्राचीनबर्हि उसके ऊपर ऐसे आसक्त हुए कि जैसे अग्नि शुकी पर आसक्त हुएथे ॥ ११ ॥ इस नवोढा शतद्रुति नें अपनें

बर्हिषःपुत्राःशतद्रुत्यांदशाभवन्। तुल्यनामव्रताःसर्वेधर्मस्नाताःप्रचेतसः ॥ १३ ॥
पित्रादिष्टाःप्रजासर्गेतपसेऽर्णवमाविशन्। दशवर्षसहस्त्राणितपसाऽर्चंस्तपसस्पतिम् ॥
१४ ॥ यदुक्तंपथिदृष्टेनगिरिशेनप्रसीदता। तद्ध्यायन्तोजपन्तश्चपूजयन्तश्चसंयताः
॥ १५ ॥ विदुर उवाच ॥ प्रचेतसांगिरित्रेणयथासीत्पथिसंगमः। यदुताहहरःप्रीत
स्तन्नोब्रह्मन्वदार्थवत् ॥ १६ ॥ संगमःखलुविप्रर्षेशिवेनेहशरीरिणाम्। दुर्लभो
मुनयोदध्युरसङ्गाद्यमभीप्सितम् ॥ १७ ॥ आत्मारामोऽपियस्त्वस्यलोककल्पस्य
राधसे। शक्त्यायुक्तोविचरतिघोरयाभगवान्भवः ॥ १८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रचेत
स पितुर्वाक्यंशिरसाऽऽदायसाधवः। दिशंप्रतीचींप्रययुस्तपस्यादृतचेतसः ॥१९॥
समुद्रमुपविस्तीर्णमपश्यन्सुमहत्सरः। महन्मनइवस्वच्छंप्रसन्नसलिलाशयम् २०
नीलरक्तोत्पलाम्भोजकल्हारेन्दीवराकरम्। हंससारसचक्राह्वकारण्डवनिकूजि
तम् ॥ २१ ॥ मत्तभ्रमरसौस्वर्यहृष्टरोमलतांघ्रिपम्। पद्मकोशरजोदिक्षुविक्षिपत्पव-
नोत्सवम् ॥ २२ ॥ तत्रगांधर्वमाकर्ण्यदिव्यमार्गमनोहरम्। विसिस्म्यूराजपुत्रास्ते
मृदङ्गपणवाद्यनु ॥ २३ ॥ तर्ह्येवसरसस्तस्मान्निष्क्रामन्तंसहानुगम्। उपगीयमान
ममरप्रवरंविबुधानुगैः ॥ २४ ॥ तप्तहेमनिकायाभंशितिकण्ठंत्रिलोचनम्। प्रसाद
सुमुखंवीक्ष्यप्रणेमुर्जातकौतुकाः ॥ २५ ॥ सतान्प्रपन्नार्तिहरोभगवान्धर्मवत्सलः।
धर्मज्ञाञ्छीलसंपन्नान्प्रीतःप्रीतानुवाचह ॥ २६ ॥ श्रीरुद्रउवाच ॥ यूयंवेदिषदःपुत्रा

नूपुरों की झनकार से सुर, असुर, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, ममुष्य तथा नाग लोकों के भी मनको जीत लिया ॥ १२ ॥ प्राचीनबर्हि की शतद्रुति रानी से दश पुत्र हुए जो प्रचेता, नाम से विख्यात थे यह सब समानही व्रत के धारण करने वाले धर्म निष्ठ और एकसेही थे ॥ १३ ॥ प्राचीनबर्हि राजा ने इनको प्रजा उत्पन्न करने की आज्ञा दी तो इन्हों ने समुद्र के जल में रहकर १०००० सहस्र वर्ष पर्यंत वहां तप किया ॥१४॥ तप के हेतु जातेसमय महादेवजी ने मार्ग में मिलकर स्नेह पूर्वक जिस मन्त्र-का उपदेश किया उसी के अनुसार उन्हों ने जितेन्द्रिय होकर भगवान का पूजन और आराधान किया ॥ १५ ॥ विदुरजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! प्रचेता और शिवजी के प्रसंग का उपदेश अवश्य सार-गर्भितहोगा, इस सेनु वह उपदेश मुझसे कहिये॥१६॥हे विप्रर्षे! जिन महादेवजीका मुनिलोग केवल ध्यान मात्रही करते हैं साक्षात् उनका दर्शन नहीं पासकते फिर अन्य प्राणियों को तो उनका समागम होना अत्यन्त ही दुर्भल है ॥१७॥ भगवान शिवजी स्वयंही आत्माराम है तौभी इस सृति की रक्षा के लिये बिकराल अपनी शक्ति को संग लिये भ्रमण कियाकरते हैं ॥ १८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि वे प्रचेता पिता की आज्ञा को मस्तकपर धारणकर तप करने के हेतु पश्चिम दिशा की ओर गये ॥१९॥ मार्गमें जाते२उन्होंने समुद्रकीसमान एकबड़ाभारी सरोवर देखा किजो महात्माओंके मनकी सदृश निर्मलजलसे भराथा, और मछली इत्यादिक जीवजन्तु जिसमें प्रसन्नतापूर्वक रहतेथे ॥२०॥ वहां नीलकमल लालकमल,अंभोज तथा कल्हारजातिके कमल अत्यन्त अधिकतासेथे और हंस,सारस, चकवा, और कारण्डवआदिक पक्षी क्रीड़ा कररहेथे॥२१॥मतवाले भौंरोके सुन्दर शब्दसे लताओं और वृक्षोंके केभी रोम खडे होतेथे चारोंओर कमलके किंजल्ककी उडती हुई वायुसे आनन्द आ-रहाथा॥ २२ ॥ उस सरोवरमें मृदंग, ढोल आदिक बाजे बजनेथे तथा अद्भुत गान होताथा कि जिसे सुनकर राजपुत्रों को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ २३ ॥ उसीकालमें श्री शिवजी अपने पार्षदों समेत उस सरोवरसे बाहरनिकले और उन प्रचेताओंको श्रीशिवजीके दर्शनहुये इनश्रेष्ठदेव शिवजीके समीप गन्धर्व गानकरते थे ॥ २४ ॥ स्वच्छ सुवर्ण के समान कान्तिवेलि, नीलकण्ठ त्रिनेत्र शिवजीको सामने खड़ेदेख कौतूहल पूर्वक उन प्रचेताओनेउनको दण्डवत्की ॥ २५ ॥

विदितंवश्चिकीर्षितम् । अनुग्रहायभद्रंवएवंमेदर्शनंकृतम् ॥ २७ ॥ यःपरंरंहसः साक्षात्त्रिगुणाज्जीवसंज्ञितात् । भगवन्तंवासुदेवंप्रपन्नःसप्रियोहिमे ॥ २८ ॥ स्वधर्मनिष्ठःशतजन्मभिःपुमान्विरिंचतामेतिततःपरंहिमाम् । अव्याकृतंभागवतोऽथ वैष्णवंपरंपदंयद्विबुधाःकलात्यये ॥ २९ ॥ अथभागवतायूयंप्रियास्थभगवान्यथा। नमेभागवतानांचप्रेयानन्योऽस्तिकर्हिचित् ॥ ३० ॥ इदंविविक्तंजप्तव्यंपवित्रंमङ्गलं परम् । निःश्रेयसकरंचापिश्रूयतांतद्वदामिवः ॥ ३१ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यनुक्रोशहृदयोभगवानाहताञ्छिवः । बद्धाञ्जलीन्राजपुत्रान्नारायणपरोवचः ॥ ३२ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ जितंतआत्मविद्धुर्यस्वस्तयेस्वस्तिरस्तु मे । भवताराधसाराद्धं सर्वस्माआत्मनेनमः ॥ ३३ ॥ नमःपंकजनाभाय भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मने । वासुदेवायशान्ताय कूटस्थायस्वरोचिषे ॥ ३४ ॥ संकर्षणायसूक्ष्माय दुरन्तायान्तकायच । नमोविश्वप्रबोधाय प्रद्युम्नायान्तरात्मने ॥ ३५ ॥ नमोनमोऽनिरुद्धाय हृषीकेशेन्द्रियात्मने । नमः परमहंसाय पूर्णायनिभृतात्मने ॥ ३६ ॥ स्वर्गापवर्गद्वाराय नित्यंशुचिषदेनमः । नमोहिरण्यवीर्याय चातुर्होत्रायतन्तवे ॥३७॥ नमऊर्जइषेत्रय्याः पतयेयज्ञरेतसे । तृप्तिदायचजीवानां नमःसर्वरसात्मने ॥ ३८ ॥ सर्वसत्त्वात्मदेहाय विशेषायस्थवीयसे । नमस्त्रैलोक्यपालाय सहओजोबलायच ॥ ३९ ॥ अर्थलिङ्गायनभसे नमोन्तर्बहिरात्मने । नमःपुण्यायलोकाय अमुष्मैभूरि-

---

धर्मवत्सल भगवान शिवजी धर्मज्ञाता प्रचेतासे प्रीतिपूर्वक प्रसन्न होकर बोले ॥२६॥ श्रीशिवजी बोले कि–तुम राजा प्राचीनबर्हिके पुत्रहो मैं तुम्हारे मनोरथको जानताहूं,तुम्हारा कल्याणहो तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करनेके लियेही मैंने तुमको दर्शन दियाहै ॥ २७ ॥ क्योंकि जिसने त्रिगुण प्रकृति और पुरुषसेभी परे भगवान वासुदेव को ग्रहणकियाहै वह मुझको बड़ाप्याराहै ॥ २८ ॥ मनुष्यकी १०० जन्मतक यदि स्वधर्ममें चेष्टारहै तो ब्रह्म पदवीको और उससे अधिक पुण्यहोवे तो मुझको प्राप्तहोताहै, परन्तु परमेश्वर विष्णु भगवानका भक्त तो मरनेके पश्चात्ही विष्णुपदको कि जिस पदको मैं तथा दूसर देवताभी वासनाके नाशहोनेपर प्राप्त होतेहैं प्राप्तहोताहै ॥ २९ ॥ तुम सब भगवद्भक्तहो इसलिये मुझको प्यारेहो भगवानके भक्तोंसे परे और कोई दूसरा मुझकोप्यारानहीं है ॥ ३० ॥ इस निमित्त एकांतमे जपनेयोग्य अति पवित्र मंगलीक कल्याण कारक तथा मोक्षदाता स्तोत्र मै तुमसे कहताहूं उसे सुनो॥३१॥ मैत्रेयजीने कहा कि—इसप्रकार परमदयालु भगवद्भजन मे परायण, भगवान शिवजी हाथजोड़े सामनेखड़ेदेख उन राजकुमारोंको उपदेश करनेलगे ३२॥ श्रीरुद्रजी बोले-कि हे परमेश्वर आपकी कीर्त्ति बड़े २ आत्मवेत्ताओं को स्वरूपानन्ददायिनीहै वह आनन्द मुझेभी मिले, हेसर्वात्मा भगवान मैं आपको प्रणाम करताहूं ॥ ३३ ॥ पंचमहाभूत, इंद्रियोंके प्रेरक, शांत, निर्विकार स्वयंजोति भगवान वासुदेवको मेरा प्रणाम है ॥ ३४ ॥ संकर्षण, सूक्ष्म, दुरंत, अंतक, विश्वप्रबोधक, प्रद्युम्न, अंतरात्मा रूप आपको मेरा प्रणाम है ॥ ३५ ॥ हे अनिरुद्ध रूप आपको मै बारं बार प्रणाम करता हूं, सूर्य रूपसे सारी सृष्टिको प्रकाशित करने वाले, इन्द्रियोंके ईश तथा आत्मा रूप, परमहंस रूप, पूर्ण, विश्वरूपव्यापी, आपको मै प्रणामकरताहूं ॥ ३६ ॥ आप स्वर्ग अपवर्गके मोक्षद्वाररूप, नित्यही शुचि पवित्ररूप, हिरणवीर्य्यरूप, अग्निरूप आपको नमस्कारहै ॥३७॥ पितृ और देवताओंके अन्नदाता, वेदत्रयीके स्वामी और यज्ञरूप वीर्य्य वाले चन्द्ररूप प्राणियोंके तृप्तरूप सम्पूर्ण रस मयजलरूप आपको मै नमस्कर करताहूं ॥३८॥ सम्पूर्ण जीवोंके देहरूप विशेष करके विराट्रूप, त्रिलोकीके पालनरूप ओजबल पवनरूप

वर्चसे ॥ ४० ॥ प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवाय कर्मणे । नमोऽधर्मविपाकाय मृत्यवे दुःखदाय च ॥ ४१ ॥ नमस्त आशिषामीश मनवे कारणात्मने । नमो धर्माय बृहते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥ पुरुषाय पुराणाय सांख्ययोगेश्वराय च ॥ ४२ ॥ शक्तित्रय समेताय मीढुषेऽहंकृतात्मने । चेतआकूतिरूपाय नमो वाचो विभूतये ॥ ४३ ॥ दर्शनं नो दिदृक्षूणां देहि भागवतार्चितम् । रूपं प्रियतमं स्वानां सर्वेन्द्रियगुणाञ्जनम् ॥ ४४ स्निग्धप्रावृड्घनश्यामं सर्वसौन्दर्यसंग्रहम् । चार्वायतचतुर्बाहु सुजातरुचिराननम् ॥ ४५ ॥ पद्मकोशपलाशाक्षं सुन्दरभ्रु सुनासिकम् । सुद्विजं सुकपोलास्यं समकर्णविभूषणम् ॥ ४६ ॥ प्रीतिप्रहसितापाङ्गमलकैरुपशोभितम् । लसत्पङ्कजकिञ्जल्कदुकूलं मृष्टकुण्डलम् ॥ ४७ ॥ स्फुरत्किरीटवलयहारनूपुरमेखलम् । शङ्खचक्रगदापद्ममालामण्युत्तमर्द्धिमत् ॥ ४८ ॥ सिंहस्कंधत्विषो बिभ्रत्सौभगग्रीवकौस्तुभम् । श्रियाऽनपायिन्याक्षिप्तनिकषाश्मोरसोल्लसत् ॥ ४९ ॥ पूररेचकसंविग्नवलिवल्गुदलोदरम् । प्रतिसंक्रामयद्विश्वं नाभ्याऽऽवर्तगभीरया ॥ ५० ॥ श्यामश्रोण्यधिरोचिष्णुदुकूलस्वर्णमेखलम् । समचार्वङ्घ्रिजंघोरुनिम्नजानुसुदर्शनम् ॥ ५१ ॥ पदा शरत्पद्मपलाशरोचिषा नखद्युभिर्नोऽन्तरघं विधुन्वता । प्रदर्शय स्वीयमपास्तसाध्वसं पदं गुरो मार्गगुरुस्तमोजुषाम् ॥ ५२ ॥ एतद्रूपमनुध्येयमात्मशुद्धिमभीप्सताम्

आपको मेरा प्रणाम है ॥ ३९ ॥ लिंग आकाश रूप, भीतर बाहर आत्मा रूप, पथ्य रूप, दोनो लोकोमे बड़ी कांति वाले स्वर्ग रूप आपको मेरा नमस्कार है॥४०॥प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग रूप पितृ और देवताओं के साक्षी रूप, मृत्यु रूप से अधर्म का फल रूप दुःख देने वाले आपको मेरा नमस्कार है ॥ ४१ ॥ हे ईश ! सब कामो के फल देनेवाले सब जाननें वाले, आत्मा रूप, धर्म रूप, विराट्स्वरूप, अकुंठित बुद्धि वाले पुराण पुरुष, सांख्य तथा योग के ईश्वर कृष्ण रूप आपको नमस्कार है ॥ ४२ ॥ नानों शक्तियों के धारण करनेवाले, अहंकारमय, शिव रूप आप को नमस्कार है ज्ञान, क्रिया रूप, नाना भांतिकी वाणी रचनेंवाले ब्रह्मा मूर्ति आपको नमस्कार है ॥ ४३ ॥ भक्तों को प्यारे, सम्पूर्ण इन्द्रिय गुणों के अंजन रूप, वैष्णव लोगोंसे पूजे जाने आपने रूप का हमें दर्शन दो ॥ ४४ ॥ वर्षाकाल के मेघकी सदृश श्याम वर्ण आपका अंग है कि जिसमे सम्पूर्ण सुंदरताओं का संग्रह है सुंदर लम्बायमान चारभुजा धारण किये सुंदरमुख से शोभित॥४५॥जिसके कमल की पखुरीसे सुन्दरनेत्र, सुंदर भृकुटी, सुंदर नासिका सुंदरदांत, सुंदरकपोल जो कानके आभूषणों से सोभितहै॥४६॥प्रेमे कटाक्ष कि मानों प्रीति करके हसते हैं अलकै शोभायमान, कमल के किंजल्क की समान पीतवस्त्र पहिनें सुंदरकुण्डल धारणकिये ॥४७॥ देदीप्यमान मुकुट, हार, बाजू,नूपुर,क्षुद्र घंटिका जिनके शोभायमानहै और शंख,चक्र,गदा,पद्म,इनको धारणकिये हैं और बहुमूल्य मणियों की उत्तममाला पहिने हुए है॥४८॥जिनके सिंहकेसे कंधा, सुंदरकेश, सुंदरकंठ जिसमे कौस्तुभमणि प्रकाशमान है और अनपायिनी लक्ष्मीजी वक्षःस्थलमें इसप्रकार शोभायमानहैं कि जैसे कसौटीमें सोनेकी रेखा शोभायमान होती है ॥४९॥पीपल पल्लवका सदृश पेट, पूरक और रेचकसे चलायमान त्रिवलीसे शोभित, जलके भ्रमरकी सदृश गंभीर नाभि मानों उसीमेसे निकलेहुये विश्वको प्रवेश करानेके हेतु रक्खीहो ऐसा ज्ञान होता है ॥५०॥ श्यामसुन्दर कटिपर पीताम्बर प्रकाशमान उसके ऊपर सुवर्णकी क्षुद्रघंटिका धारणकिये सुन्दर जंघा पिंडली और पूजने योग्य जिनके चरणकमल हैं ॥ ५१ ॥ जिनके चरण शरदऋतुके कमलकाभी तिरस्कार करनेवाले है तथा जिनके नखों की कांति हृदयके अन्धकारको दूरकरतीहै हेगुरो प्रभु शरणागत भक्तोंको अभयकरनवाले अपनें चरण कमलों का दर्शनदो—अज्ञानी लोगोंको मार्गके दिखानेवाले गुरू आपहीहो ॥ ५२ ॥ आत्माकी

यद्भक्तियोगोऽभयदः स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ॥ ५३ ॥ भवान्भक्तिमताॆलभ्यो दुर्लभः सर्वदेहिनाम्। स्वाराज्यस्याप्यभिमत एकान्तेनात्मविद्गतिः ॥ ५४ ॥ तं दुराराध्यमाराध्य सतामपि दुरापया। एकांतभक्त्याकोवांछेत्पादमूलं विना बहिः ॥ ५५ ॥ यत्र निर्विष्टमरणं कृतान्तो नाभिमन्यते। विश्वं विध्वंसयन्वीर्यशौर्यविस्फूर्जितभ्रुवा ॥ ५६॥ क्षणार्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवम्। भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ ५७ ॥ अथानघाङ्घ्रेस्तव कीर्तितीर्थयोरन्तर्बहिः स्नानविधूतपाप्मनाम्। भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां स्यात्सङ्गमोऽनुग्रह एष नस्तव ॥ ५८ ॥ न यस्य चित्तं बहिरर्थविभ्रमं तमोगुहायां च विशुद्धमाविशत्। यद्भक्तियोगानुगृहीतमञ्जसा मुनिर्विचष्टे ननु तत्र ते गतिम् ॥ ५९ ॥ यत्रेदं व्यज्यते विश्वं विश्वस्मिन्नवभाति यत्। तत्त्वं ब्रह्म परं ज्योतिराकाशमिव विस्तृतम् ॥ ६० ॥ यो माययेदं पुरुरूपयाऽसृजद्बिभर्ति भूयः क्षपयत्यविक्रियः। यद्भेदबुद्धिः सदिवात्मदुःस्थया तमात्मतन्त्रं भगवन्प्रतीमहि॥६१॥ क्रियाकलापैरिदमेव योगिनः श्रद्धान्विताः साधु यजन्ति सिद्धये। भूतेन्द्रियान्तःकरणोपलक्षितं वेदे च तन्त्रे च त एव कोविदाः ॥ ६२ ॥ त्वमेक आद्यः पुरुषः सुप्तशक्तिस्तया रजःसत्त्वतमो विभिद्यते। महानहं खं मरुदग्निवार्धराः सुरर्षयो भूतगणा इदं यतः ६३ सृष्टं स्वशक्त्येदमनुप्रविष्टश्चतुर्विधं पुरमात्मांशकेन। अथो विदुस्तं पुरुषं सन्तमन्त

शुद्धि चाहनेवालोंके लिये यह ध्यानकरना योग्य है जो स्वधर्ममें स्थितहोकर इस ध्यानसे भक्ति योगका साधन करते हैं वह अभय होजाते है ॥५३॥ आप भक्तोंको तो लभ्यहो परन्तु और समस्त देहधारियों को दुर्लभ हो आप स्वर्ग फल के देने वाले हो और एकांत में रहनेवाले भक्तों को आत्म गति आपही देते हो॥५५॥ जिसका मिलना महात्माओं कोभी दुःसाध्य है ऐसी एकांत की भक्ति से दुराराध्य आपका भजनकरके आपके चरणमूलको त्यागकर कौनसा मनुष्य स्वर्गादि सुखकी इच्छा करेगा॥५५॥जो काल अपने तेज और बलवीर्य के प्रभावसे अपनी भ्रुकुटिचढ़ानेहीसे सम्पूर्ण विश्वका नाश करसक्ताहै वह काल आपके भक्तोंके ऊपर दृष्टि उठाकरभी नहीं देखसकता, दण्ड देना तो बहुत कठिनहै ॥ ५ ॥ भक्तोंके आधे क्षणकी सतसंगति के सदृशमें स्वर्ग और मोक्षको भी नहीं मानता फिर मनुष्यों के यह राज्यादिक सुख तो अत्यंतही तुच्छहैं इनको कैसे मानूं ॥५७॥ आपके चरणकमल पापोंके नाश करनेवाले हैं उनके सेवनसे और गंगाजीके स्नानसे जिनके भीतर बाहरके सब पाप नष्ट होगये हैं, देहधारियों पर कृपा रखनेवाले सुन्दर शील स्वभाववाले आपके भक्तों का सदैव सत्संग हुआकरे यही आपका अनुग्रह चाहताहूं ॥ ५८ ॥ ऐसे भक्तोंकी सेवासे चित्तका भ्रम तथा तमोगुणमें प्रवेश न करनेसे मन शुद्ध होजाताहै तब चित्तमें भक्तिरूपी योग होनेसे आपकी तत्त्वगति दीख पड़ती है ॥५९॥ जिसके विषे यह विश्व प्रकाशितहै और विश्वके विषे आप प्रकाशमानमानहैं सो आकाशकी सदृश, स्वप्रकाशित परब्रह्म आपहीहो॥ ६० ॥ इसप्रकार भगवान जो बहुरूपसे अपनी माया द्वारा सृष्टिको सृजते और पालन करते हैं और निर्विकार होकर इसका नाश करते हैं तथा उसी मायासे भेद बुद्धिभी हुआ करताहै और आपकेविषे कुछभी अपना काम नहीं करसकती, ऐसे उन मायावाले आपको हम अखण्ड परब्रह्म जानतेहैं ॥ ६१ ॥ जो वेद, शास्त्र ज्ञाता आपके भूत, इन्द्रियों और अन्तःकरणसे जाननेमें आते साकाररूप का श्रद्धायुक्त नानाभांति की क्रियाओंसे अपनी सिद्धिके हेतु भलीभांति पूजन करताहै वही योगीराजहै और वही पंडितहै॥ ॥ ६२ ॥ आप आदि पुरुषहो, स्वयंशक्तिसे जब आप रजोगुण, तमोगुण और सत्वगुण रूपसे विभक्त करतेहो कि—जिससे महत्तत्व, अहंकार, आकाश, पवन, अग्नि, जल, पृथ्वी, सम्पूर्ण देवता, ऋषी, और भूतगण उत्पन्न होतेहैं ॥ ६३ ॥ तथा विश्वमें चारप्रकारके जीव जरायुज, अंडज,

मुंक्ते हृषीकैर्मधुसारघं यः ॥ ६४ ॥ स एष लोकानतिचण्डवेगो विकर्षसि त्वं खलु कालयानः । भूतानि भूतैरनुमेयतत्त्वो घनावलीर्वायुरिवाऽविषह्यः ॥६५॥ प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् । त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥६६॥ कस्त्वत्पादाब्जं विजहाति पण्डितो यस्तेऽवमानव्ययमानकेतनः । विशङ्कयाऽस्मद्गुरुरर्चति स्म यद्विनोपपत्तिं मनवश्चतुर्दश ॥६७ अथ त्वमसि नो ब्रह्मन्परमात्मन्विपश्चिताम् विश्वं रुद्रभयध्वस्तमकुतश्चिद्भया गतिः ६८ इदं जपत भद्रं वो विशुद्धा नृपनन्दनाः । स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो भगवत्यर्पिताशयाः ॥६९॥ तमेवात्मानमात्मस्थं सर्वभूतेष्ववस्थितम् । पूजयध्वं गृणन्तश्च ध्यायन्तश्चासकृद्धरिम् ॥ ७० ॥ योगादेशमुपासाद्य धारयन्तो मुनिव्रताः । समाहितधियः सर्वे एतदभ्यसतादृताः ॥७१॥ इदमाह पुराऽस्माकं भगवान्विश्वसृक्पतिः । भृग्वादीनात्मजानां सिसृक्षुः संसिसृक्षताम् ॥ ७२ ॥ ते वयं नोदिताः सर्वे प्रजासर्गे प्रजेश्वराः । अनेन ध्वस्ततमसः सिसृक्ष्मो विविधाः प्रजाः ॥७३॥ अथेदं नित्यदा युक्तो जपन्नवहितः पुमान । अचिराच्छ्रेय आप्नोति वासुदेवपरायणः ॥ ७४ ॥ श्रेयसामिह सर्वेषां ज्ञानं निःश्रेयसं परम् । सुखं तरति दुष्पारं ज्ञाननौर्व्यसनार्णवम् ॥ ७५ ॥ य इमं श्रद्धया युक्तो मद्गीतं भगवत्स्तवम् । अधीयानो दुराराध्यं हरिमाराधयत्यसौ ॥ ७६ ॥ विन्दते पुरुषोऽमुष्माद्यद्यदिच्छत्यसत्वरन् । मद्गीतगीतात्सुप्रीताच्छ्रेयसामेकवल्लभात् ॥ ७७ ॥ इदं यः कल्य उत्थाय प्राञ्जलिः श्रद्धयाऽन्वितः । शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो मुच्यते

स्वेदज और उद्भिजको उत्पन्न करके उसमें जीवरूपसे प्रवेश करतेहैं ॥ ६४ ॥ तथा वही आप अत्यन्त तीव्र वेगवाले कालरूपसे सम्पूर्ण देहधारियों का ऐसे नाश करतेहो कि जैसे पवन बादलों को नष्ट कर देताहै, यह सर्वनाशी काल किसीकी दृष्टिमें नहीं आता॥६५॥ नानाचिंताओंसे असावधान तथा बढ़ेहुए लोभसे अप्रमत्त प्राणियोंको आप कालरूप होकर शीघ्रही ऐसे ग्रसतेहो कि जैसे भूखा सर्प मूसे को ग्रसताहै ॥ ६६ ॥ आपकी बिना भक्तिके जिनका शरीर दुर्बल होताजाय ऐसा कौन विवेकी मनुष्यहै कि जो आपके चरणकमलोंको त्यागेगा कि जिनका हमारे गुरू ब्रह्माजी तथा १४ मनुओंने कालके भयसे दृढ विश्वास करके भजन कियाहै ॥ ६७ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे परमात्मन् ! यह सारी सृष्टि रुद्रके डरसे त्रसितहै उन त्रसितहुये देहधारियोंको आपही निर्भय शरणरूपहो॥६८ हे नृपनन्दनो ! शुद्ध बुद्धि होकर इस रुद्रगीतका पाठकरो तथा धर्मका अनुष्ठान करतेहुये परमेश्वर में मन लगाओ इसीसे तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ६९ ॥ अपने रूपसे समस्त प्राणियोंमें स्थित भगवान विष्णुकी स्तुति, आराधना करो और उन्हींका पूजनकरो ॥ ७० ॥ मेरे योगकी आज्ञाको प्राप्तहो मौनव्रत धारणकर सावधान बुद्धिसे इसका अभ्यास करो॥७१॥भृगु आदिक ब्रह्माके पुत्र जब सृष्टि रचना चाहतेथे तब भगवान ब्रह्माजीने सृष्टि बढ़ानेके हेतु उनको यह मन्त्र बतायाथा ॥७२॥ ब्रह्माजीने जब हम सब प्रजापतियोंको सृष्टि रचनेकी आज्ञाकी तब हम सब इस मन्त्रके जपसे निष्कपट हो नानाभांतिकी रचना करनेलगे॥७३॥जोमनुष्य भगवानकी शरण लेकर एकाग्रमनसे सावधानहो प्रतिदिन इसमंत्रका जपकरेगा वह तत्कालही वासुदेव परायण होजायगा॥७४॥इस सृष्टिमें उत्तम कल्याणका देनेवाला ज्ञानही है जिसज्ञानरूपीनौका मिलजाती है वह दुःखरूपी संसारसे शीघ्रहीपार होजाताहै ॥ ७५ ॥ जोमनुष्य श्रद्धासे मेरे इस भगवत्स्तोत्रका पाठकरेगा वह दुराराध्य भगवानको शीघ्रही प्राप्तहोगा ॥७६॥ जोकोई मेरे इस कहेहुए स्तोत्रका पाठकरता है, उसपर सबको आनंद देनेवाले हरिप्रसन्न होजाते हैं, तथावहमनुष्य जिसवस्तुकी इच्छा करता है वही उसकी कामना पूर्णहोती है ॥ ७७ ॥ जोमनुष्य प्रातःकाल उठहाथ जोड़मेरे इस स्तोत्रको श्रद्धायुक्त सुने सुनावेगा

कर्मबन्धनैः ॥ ७८ ॥ गीतंमयेदंनरदेवनन्दना:परस्यपुंसःपरमात्मनःस्तवम् । अपंत एकाग्रधियस्तपोमहत्त्वरध्वमन्तेततआप्स्यथेप्सितम् ॥ ७९ ॥

इतिश्रीमद्भा०चतु०रुद्रगीतंनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ इतिसंदिश्यभगवान्बार्हिषदैरभिपूजितः। पश्यतांराजपुत्राणां तत्रैवांतरधेहरः ॥ १ ॥ रुद्रगीतंभगवतःस्तोत्रंसर्वेप्रचेतसः। जपन्तस्तेतपस्तेपु र्वर्षाणामयुतंजले ॥ २ ॥ प्राचीनबर्हिषंक्षत्तःकर्मस्वासक्तमानसम्। नारदोऽध्यात्म तत्त्वज्ञःकृपालुःप्रत्यबोधयत् ॥ ३ ॥ श्रेयस्त्वंकतमद्राजन्कर्मणात्मनईहसे । दुःख हानिःसुखावाप्तिःश्रेयस्तन्नेहचेष्यते ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ नजानामिमहाभागपरं कर्मापविद्धधीः। ब्रूहिमेविमलंज्ञानंयेनमुच्येयकर्मभिः ॥ ५ ॥ गृहेषुकूटधर्मेषुपुत्र दाराधनार्थधीः। नपरंविन्दतेमूढोभ्राम्यन्संसारवर्त्मसु ॥ ६ ॥ नारद उवाच ॥ भो भोप्रजापतेराजन्पशून्पश्यत्वयाऽध्वरे। संज्ञापिताञ्जीवसंघान्निर्घृणेनसहस्रशः ॥७॥ एतेत्वांसंप्रतीक्षन्तेस्मरन्तोवैशसंतव। संपरेतमयःकूटैश्छिन्दन्त्युत्थितमन्यवः ॥८॥ अत्रतेकथयिष्येऽमुमितिहासंपुरातनम् । पुरञ्जनस्यचरितंनिबोधगदतोमम ॥ ९ ॥ आसीत्पुरंजनोनामराजाराजन्बृहच्छ्रवाः। तस्याविज्ञातनामाऽऽसीत्सखाऽविज्ञात चेष्टितः ॥ १० ॥ सोऽन्वेषमाणःशरणंबभ्रामपृथिवींप्रभुः। नानुरूपंयदाऽविन्दद्भू त्सविमनाइव ॥ ११ ॥ नसाधुमेनेताःसर्वाभूतलेयावतीःपुरः। कामान्कामयमानोऽ सौतस्यतस्योपपत्तये ॥ १२ ॥ सएकदाहिमवतोदक्षिणेष्वथसानुषु । ददर्शनव-

वह सम्पूर्ण कर्मोंके बन्धनोंसे छूटजायगा॥७८॥हेराजकुमारो! मेरेइस कहेहुये भगवानके स्तोत्रका भजनकरो और एकमन होकर तपस्याकरो इससे अंतमें तुम्हारी मनोकामना पूर्णहोगी ॥ ७९ ॥

इति श्रीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

मैत्रेयजीबोले—कि जब प्रचेतान से श्रीशिवजी ने इसभांति उपदेश किया तो प्रचेताओं ने उनकी,पूजाकी महादेवजीन उसे अंगीकारकिया और राजकुमारो के देखते२ वहां से अन्तर्ध्यानहोगये१॥ भगवान महादेवजीके कहेहुये स्तोत्रसे परमेश्वर का भजन करतेहुये उन प्रचेताओंने दशहजारबर्ष तक जल के भीतर खड़ेहोकर तप किया ॥ २ ॥ हेविदुर! राजा प्राचीनबर्हि कर्मोंमे अत्यन्तही लिप्था इसलिये आत्म वेत्ता कृपालु नारदजीने उसको ज्ञानोपदेश दिया ॥ ३ ॥ नारदजीने कहा किहेराजन्! आप कर्मकरके उनके द्वारा किस कल्याणकी आकांक्षारखते हो दुःखकी हानि और सुखकी प्राप्तितो इन कर्मोंसे होनहीं सकती ॥ ४ ॥ राजा प्राचीन बर्हिने कहाकि—हेमहाभाग! मेरी बुद्धि कर्मोंसे बंधी हुईहै इस हेतु आप मुझसे विमलज्ञानका उपदेशकरें जिससे मैं कर्मोंसे छूटजाऊं५॥ कपटके धर्मवाले घरोंमें, पुत्र, स्त्री, धनमें जिनकी बुद्धि लिप्तहै वेमूढ़संसारके मार्गमें भ्रमण किया करते हैं परन्तु मोक्षको नहींपाते ॥ ६ ॥ श्रीनारदजीने कहाकि–हेप्रजापति! हेराजन्! आपने कठोर हृदय होकर यज्ञमें जिनसहस्रों पशुओंका बध किया है उन्हें देखकर तुम्हें दयानही आई ॥ ७ ॥ वे समस्तजीव अपने दुःखका स्मरणकरतेहुए तेरी मृत्युकी चाहना करतेहैं जबतू मरेगा तब लोहमय अपने सींगोंसे तुझे छेदेंगे ॥ ८ ॥ मैंइसी संबंधमें एक प्राचीन इतिहास कहताहूं जिसमे पुरंजन राजाका चरित्रहै सोतुमको सुनाताहूं, सावधान होकर सुनो ॥ ९ ॥ हेराजन्! पुरंजन (जीव) नामक एक बड़ाप्रतापी राजाथा इसका अविज्ञात (ईश्वर) नामक एक सखाथा जोसम्पूर्ण चेष्टाओंको जानताथा ॥१०॥ वहराजा अपनी राजधानीके योग्य स्थानके ढूंढनेको समस्त भूमिमें फिरा परंतु योग्य स्थानकोई न मिला तब वहराजा मनमें अत्यन्त दुःखीहुआ ॥११॥ विषय भोगकी कामना वालेउस नरेशको सुखप्राप्तिके हेतु सम्पूर्ण भूमिमेंसे कोईनगरी योग्य न प्रतीतहुई (अतिरिक्त म-

भिर्द्वार्भिःपुरंलक्षितलक्षणाम् ॥ १३ ॥ प्राकारोपवनाट्टालपरिखैरक्षतोरणैः । स्वर्ण रौप्यायसैःशृङ्गैःसंकुलांसर्वतोगृहैः ॥१४॥ नीलस्फटिकवैडूर्यमुक्तामरकतारुणैः । क्लृप्तहर्म्यस्थलींदीप्तांश्रियाभोगवतीमिव ॥ १५॥ सभाचत्वररथ्याभिराक्रीडायतनापणैः । चैत्यध्वजपताकाभिर्युक्तांविद्रुमवेदिभिः ॥ १६ ॥पुर्यास्तुबाह्योपवनेदिव्य द्रुमलताकुले । नदद्विहङ्गालिकुलकोलाहलजलाशये ॥ १७ ॥ हिमनिर्झरविप्रुष्म त्कुसुमाकरवायुना । चलत्प्रवालविटपनलिनीतटसंपदि ॥१८॥ नानारण्यमृगव्रातै रनाबाधेमुनिव्रतैः । आहूतंमन्यतेपान्थोयत्रकोकिलकूजितैः ॥ १९ ॥ यदृच्छयाऽऽ गतांतत्रददर्शप्रमदोत्तमाम् । भृत्यैर्दशभिरायांतीमेकैकशतनायकैः ॥२०॥पञ्चशीर्षा हिनागुप्तांप्रतीहारेणसर्वतः । अन्वेषमाणामृषभमप्रौढांकामरूपिणीम् ॥२१॥ सुना- सांसुदतींबालांसुकपोलांवराननाम् । समविन्यस्तकर्णाभ्यांविभ्रतींकुण्डलाश्रियम् ॥२२॥पिशङ्गनीवींसुश्रोणींश्यामांकनकमेखलाम् । पद्भ्यांक्वणद्भ्यांचलतींनूपुरैर्देव तामिव ॥ २३ ॥ स्तनौव्यञ्जितकैशोरौसमवृत्तौनिरन्तरौ।वस्त्रांतेननिगूहन्तींव्रीडया

नुष्यदेहके और किसी देहमें सम्पूर्ण सुखोंकी प्राप्तिनहीं होसकती)॥ १२ ॥ एकदिन वहराजा भ्रमण करताहुआ हिमालयके दक्षिण ओरकी चोटियोंमें आपहुंचा वहां उसने दोषरहित एक नवद्वारकी नगरी (मनुष्यदेह) कोदेखा (मनुष्य देहमे नौद्वारहैं—हिमालयके दक्षिण ओर कहनेका यह अभिप्रायहै कियह भरतखंड किजो कर्मभूमि कहलाताहै हिमालयके दक्षिण ओर है)॥ १३ ॥ यहनगरी महल, बागबगीचा,अटारियों तथा तोरणोंसे अतिशोभायमानथी और उसमें सोने चांदी तथा लोहेके शिखर वाले अनेक घरथे (महल आदिकी शोभा अंगोंपर है देहमें जोछःचक्रहैं वह घरके ठौरपरहैं राजस, तामसादि घरके शिखरोंके स्थानपर हैं)॥१४॥ इसनगरीके मंदिर स्थान नीलमणि स्फटिक, वैडूर्य्य- मणि, मोती,मरकतमणि और माणिक्यरत्नोंसे बनेहुएथे (मंदिरके स्थानपर हृदय तथा मणियोंके स्थानमें नाडियां वा पृथक् २ विषयभोग) उस नगरीकी शोभा भोगवती नगरीसे कुछन्यून नहींथी ॥ १५ ॥ सभा,चौराहे, मार्ग, क्रीडास्थान, और विश्रामस्थानोंमे ध्वजा पताका तथा मूंगोंका वेदियां शोभायमानथीं ॥ १६ ॥ पुरके बाहर एक सुंदर पुष्पवाटिका (विषयवर्ग) थी वह दिव्यवृक्ष तथा लताओं (चंदन माला इत्यादिक पदार्थ) युक्तथी उसमें भौंरे और पक्षियोंका कोलाहल होरहाथा और उसीमे एक सुंदर जलाशयभी था ॥ १७ ॥ शीतल झरनोंके जल बिंदुओंको उड़ाती तथा फूलोंको स्पर्शकरके आतीहुई सुंदर पवनसे चलायमान मूंगोंके वृक्षोंकी शाखा और पल्लवोंकी शोभा सरोवरके तटपर व्याप्तहोरहीथी ॥ १८ ॥ नाना प्रकारके मृग मुनिव्रत अर्थात् अहिंसाका पालन करतेथे इसीसे वहां किसी प्रकारका भय नहीथा और जो कोकिल शब्द करतीथी उससे ऐसा प्रतीत होताथा कि मानो पथिकोंको वन बुलारहाहै ॥ १९ ॥ उस उपवन के भीतर अपनी इच्छा से एक सुंदर स्त्री (बुद्धि) आनिकली उसके साथ दश दास (इन्द्रियां) भी थे और उन दासों के साथ शतशः स्त्रियें (अनंत वृत्तियें) थीं ॥ २० ॥ एक पांच मस्तक वाला सर्प (प्राण अपान उदान, समान, और व्यान, रूपसे पंच वृत्ति प्राण) इस सुन्दर स्त्रीकी रक्षा करता था यह युवा तथा काम रूपिणी स्त्री अपने पति की खोजमें फिर रहीथी ॥ २१ ॥ इस स्त्रीकी नासिका, दांत, कपोल और मुख अत्यन्त ही सुंदरथे (गंध, रस, आदिकका ज्ञान उसको भलीभांतिथा) उसके कर्णोंमें एकप्रकार के दोनों कुंडल अत्यन्तही शोभा दे रहे थे ॥ २२ ॥ पीत वस्त्र तथा सुवर्ण की क्षुद्र घंटिका धारण कियेथी सुंदर कटि पश्चात भाग और श्याम रङ्गथा शब्दायमान नूपुरके चरणों की चाल से देववधू सी ज्ञात होतीथीं ॥ २३ ॥ किशोर अवस्था के आनेसे आपसमें मिले हुए

गजगामिनीम् ॥ २४ ॥ तामाहललितंवीरःसव्रीडस्मितशोभनाम् ।स्निग्धेनापाङ्गपुङ्खेनस्पृष्टःप्रेमोद्भ्रमद्भ्रुवा॥२५॥कात्वंकञ्जपलाशाक्षिकस्यासीहकुतःसति । इमामुपपुरींभीरुकिंचिकीर्षसिशंसमे ॥२६॥ कएतेऽनुपथायेतएकादशमहाभटाः।एताबाललनाःसुभ्रूःकोऽयंतेऽहिःपुरःसरः ॥ २७ ॥ त्वंह्रीर्भवान्यस्यथवाग्रमापतिंविविक्षतीकिंमुनिवद्रहोवने । त्वदंघ्रिकामाप्तसमस्तकामंक्वपद्मकोशःपतितःकराग्रात् ॥ २८ ॥ नाऽऽसांवरोर्वन्यतमाभुविस्पृक्पुरीमिमांवीरवरेणसाकम्। अर्हस्यलंकर्तुमदभ्रकर्मणालोकंपरश्रीरिवयज्ञपुंसा ॥ २९ ॥ यदेषतेऽपाङ्गविखण्डितेन्द्रियंसव्रीडभावस्मितविभ्रमद्भ्रुवा । त्वयोपसृष्टोभगवान्मनोभवःप्रबाधतेऽथानुगृहाणशोभने ॥ ३० ॥ त्वदाननंसुभ्रुसुतारलोचनंव्यालम्बिनीलालकवृन्दसंवृतम्। उन्नीयमेदर्शयवल्गुवाचकंयद्व्रीडयानाभिमुखंशुचिस्मिते ॥ ३१ ॥ नारद उवाच॥ इत्थंपुरंजनंनारीयाचमानमधीरवत् । अभ्यनन्दतवीरहसन्तीवीरमोहिता ॥ ३२ ॥ नविदामवयंसम्यक्कर्तारंपुरुषर्षभ । आत्मनश्चपरस्यापिगोत्रंनामचयत्कृतम् ॥३३॥ इहाद्यसन्तमात्मानंनविदामततःपरम् । येनेयंनिर्मितावीरपुरीशरणमात्मनः ॥ ३४ ॥ एतेसखायःसख्योमेनरानार्यश्चमानद । सुप्तायांमयिजागर्तिनागोऽयंपालयन्पुरीम् ३५

एक से गोऊ स्तन प्रकट होरहे थे वह गजगामिनि लाजसे उनको अपने वस्त्रों से छिपातीथी २४॥ लज्जायुक्त मंदमुसकान से शोभा देती थी इस स्त्री से स्नेह से, ऊपर की ओर घूमती हुई भ्रकुटि रूपी धनुष से निकले हुए प्रेम भरे और नेत्र की अनी रूप पुंख वाले कटाक्ष रूप बाणों से छिदकर वह राजा पुरंजन अति उत्तमता से पूछने लगा ॥ २५ ॥ कि हे कमलदल नेत्र ! तू कौन है और कहां से आई है हे सति ! तू किसकी है हे भीरु ! इस नगर के निकटवर्ती इस उद्यान में तू क्या करना चाहती है सो मुझसे कहो ॥ २६ ॥ यह ग्यारह भट तेरे संग हैं वह कौन हैं (दश इन्द्रियां और ग्यारहवां मन) यह स्त्रियां कौन हैं और यह तेरे आगे चलने वाला सर्प कौन है ॥ २० ॥ क्या तू लज्जा है जो धर्म पति को ढूंढती है क्या पार्वती है जो शिव को ढूंढती है क्या सरस्वती है जो अपने पति ब्रह्मा का खोज करती है क्या लक्ष्मी है जो विष्णु को ढूंढती है अथवा मुनीश्वरों की भांति एकांत वन को ढूंढती है मैं मानताहूं कि तेरा जो पति होगा उसके सम्पूर्ण मनोरथ तेरे चरण की कामना सेही प्राप्त हुए हैं। यदि तू लक्ष्मी है तो तेरे हाथ से कमल कहां गिरगया ॥ २८॥ हे सुमुखि! तू इन स्त्रियों में तो है नहीं कारण कि यह देवपत्नियां हैं और इनका पृथ्वीका स्पर्शकरना सम्भव नहीं इसी हेतु जैसे लक्ष्मी विष्णु भगवान के संग रहकर स्वर्ग को सुशोभित करती है ऐसेही मुझ महावीर, पराक्रमी के साथ तू रहकर इस पुरको शोभित-कर ॥२९॥हेसुन्दरि तेरीलाजभरी स्नेहपूर्वक मुसकानसे घूमतीहुई भ्रकुटिसे प्रेरित यह कामदेव,तेरी दृष्टिकी तीक्ष्णधारसे खंडित चित्त मुझे दुःख देताहै इसहेतु मुझपर दयाकर॥३०॥ हेमृदुहासिनि ! तेरा मुख कि जो श्रेष्ठ भृकुटी तथा सुन्दर पुतलियोवाले नेत्रोंसे शोभित और लम्बे तथा कालेबालों से घिराहुआ और मधुर भाषणवालाहै कि जिसको लाजसे तू मेरे सामने नहीं करती उसे ऊँचा उठाकर मुझे दिखा ॥ ३१ ॥ नारदजीने कहा कि-वह स्त्री दीनकीभांति प्रार्थना करतेहुये राजा पुरंजनकी ओर देखकर आपभी मोहित होगई फिर वह मुसकाकर आदर पूर्वक उसका कहना अंगीकार करके बोली कि ॥ ३२ ॥ हेपुरुषोंमें श्रेष्ठ ! जिसने हमको और आपको उत्पन्न कियाहै तथा हमारा और आपका नाम व गोत्र स्थित कियाहै उसको हम भलीभांति नहीं जानते ३३ ॥ हे वीर ! मुझे केवल इतनाही स्मरण है कि अभी मैं यहांहूं अब इससे अधिक बात मुझे ज्ञात नहीं मैं यहभी तो नहीं जानती कि मेरे रहनेका यह पुर किसने बनायाहै ॥ ३४ ॥ हेमहाराज ! यह

दिष्ट्याऽऽगतोसिभद्रंतेग्राम्यान्कामानभीप्ससे । उद्वहिष्यामितांस्तेऽहंस्वबन्धुभिररिंदम ॥ ३६ ॥ इमांत्वमधितिष्ठस्वपुरींनवमुखींविभो । मयोपनीतान्गृह्णानःकामभोगाञ्छतंसमाः ॥ ३७ ॥ कंनुत्वदन्यंरमयेह्यरतिज्ञमकोविदम् । असंपरायाभिमुखमश्वस्तनविदंपशुम् ॥ ३८ ॥धर्मोह्यत्रार्थकामौचप्रजानन्दोऽमृतंयशः ।लोकाविशोकाविरजायान्नकेवलिनोविदुः ॥३९॥ पितृदेवर्षिमर्त्यानांभूतानामात्मनश्चह । क्षेम्यंवदन्तिशरणंभवेऽस्मिन्यद्गृहाश्रमः ॥ ४० ॥ कानामवीरविख्यातंवदान्यंप्रियदर्शनम् । नवृणीतप्रियंप्राप्तंमादृशीत्वादृशंपतिम् ॥ ४१ ॥ कस्यामनस्तेभुविभोगिभोगयोःस्त्रियानसज्जेद्भुजयोर्महाभुज । योऽनाथवर्गाधिमलंघृणोद्धतस्मितावलोकेनचरत्यपोहितुम् ॥ ४२ ॥ नारद उवाच ॥ इतितौदंपतीतत्रसमुद्यसमयंमिथः । तांप्रविश्यपुरींराजन्मुमुदातेशतंसमाः ॥ ४३ ॥ उपगीयमानोललितंतत्रतत्रचगायकैः । क्रीडन्परिवृतःस्त्रीभिर्ह्रदिनीमाविशच्छुचौ ॥ ४४ ॥ सप्तोपरिकृताद्वारःपुरस्तस्यास्तुद्वेअधः । पृथग्विषयगत्यर्थंतस्यांयःकश्चनेश्वरः ॥ ४५ ॥ पञ्चद्वारस्तुपौरस्त्यादक्षिणैकातथोत्तरा । पश्चिमेद्वेअमूषांतेनामानिनृपवर्णये ॥ ४६ ॥ खद्योताविर्मुखीचप्राग्द्वारावेकत्रनिर्मिते । विभ्राजितंजनपदंयातिताभ्यांद्युमत्सखः ॥ ४७ ॥ नलिनी

पुरुष तो मेरे सखा तथा स्त्रियां मेरी सहेलियांहैं जब मैं शयन करतीहूं तो यह सर्प जागकर मेरी पुरीकी रक्षा करताहै ॥ ३५ ॥ हे भद्र आप यहांआये अत्यन्तही अच्छाहुआ आपका कल्याण हो यदि आप संसारी विषय भोगोंकी कामना रखतेहो तो मैं बंधुओं सहित आपको प्राप्तहूंगी ॥ ३६ ॥ हेविभो ! इस नवद्वारकी पुरीमें आप स्थितहो और मुझसे प्राप्तहुये कामका १०० वर्ष तक भोगकरो ॥३७॥ आप के अतिरिक्त मैं किससे रमणकरूंगी ? कि और दूसरा न तो रतिमें चतुरहै और न परलोक तथा इसलोककी चिंता करताहै अर्थात् पशुतुल्यहै (नैष्ठिक ब्रह्मचारीस्त्री सम्बन्धीसुख नहींजानते,संन्यासी विषय सुखको छोड़बैठे, कामीलोगोंको परलोककी चिंतानहींरहती वैराग्यवानको इसलोककी चिन्ता नहींरहती और मूर्ख पशुतुल्यहैं) ३८॥ इस पुरीके गृहस्थाश्रममें धर्म,अर्थ,काम पुत्रादिकोंका सुख, मोक्ष, यश, तथा विशोक, व निर्मललोक यह सब मिलते हैं कि जिनको संन्यासी लोग भी नहींजानते ॥ ३९ ॥ इस संसारमें गृहस्थाश्रमही पितृ, देवता, मनुष्य, ऋषि प्राणीमात्र और अपनेआत्माका अति कल्याणकारक आश्रयहै॥४०॥हेवीर ! प्रख्यात, यश, उदार, रूपवान और प्यारे आप सदृशपतिको मेरी सदृश कौन स्त्री पतिरूपसे न वरेगी ॥ ४१ ॥ हेमहावाहो ! आपजो कृपापूर्वक मंदमुसकानसे दीनलोगोंके दुःखदूर करने केहेतु विचरते फिरतेहो उन आपकी सर्पकी समानलम्बी भुजाओंमें किस स्त्रीका चित्त आसक्त न होगा ॥ ४२ ॥ नारदजी बोलेकि हेमहाराज ! इसभांतिवे स्त्री पुरुष परस्परमें समयको काटकर इस नगरीमें प्रवेशकर सौ वर्षतक बड़े आनंदको प्राप्तहुये ॥ ४३ ॥ राजापुरंजनके सुन्दर यशको गायकलोग जहांतहां गातेथे (इस में जाग्रत् अवस्था संक्षेप से सूचित है)और वह बहुत सी स्त्रियों के संग क्रीड़ा करने के हेतु सरोवर में प्रवेश करता था (इस में सुषुप्ति अवस्था सूचित है) ॥ ४४ ॥ इस पुरमें पृथक २ देशो में जाने के हेतु सात द्वार ऊपर और दो द्वार नीचें हैं (मुख १ नासिका २ नेत्र २ कान २ गुदा १ और लिंग १ यह नौ छिद्र पृथक २ विषय भोग के हेतु हैं)इनकी न्यारी २ गति है इनका ईश्वर कोई नहीं है ॥४५॥ इस पुरके पांच द्वार पूर्व को (नेत्र २ नासिका २ मुख १) एक दक्षिण की ओर तथा एक उत्तरकी ओर (दोनों कान) और दो पश्चिम की ओर हैं हेनृपति ! उनके नामों का मैं बरणन करता हूं ॥ ४६ ॥ खद्योता और आविर्मुखी नाम दो द्वार (नेत्र) पूर्व की ओर एक सूधपर बनाये गएहैं पुरंजन राजा इन द्वारों से बिभ्राजित नामक देश

नालिनीचप्राग्द्वारावेकत्रनिर्मिते । अवधूतसखस्ताभ्यांविषयंयातिसौरभम् ॥४८॥
मुख्यानामपुरस्ताद्द्वास्तयाऽऽपणबहूदनौ । विषयौयातिपुरराड्रसज्ञविपणान्वितः
४९. पितृहूर्नृपपुर्याद्वार्दक्षिणेनपुरंजनः। राष्ट्रंदक्षिणपञ्चालंयातिश्रुतधरान्वितः॥५०॥
देवहूर्नामपुर्याद्वाउत्तरेणपुरंजनः । राष्ट्रमुत्तरपञ्चालंयातिश्रुतधरान्वितः ॥ ५१ ॥
आसुरीनामपश्चाद्द्वास्तयायातिपुरंजनः । ग्रामकंनामविषयंदुर्मदेनसमन्वितः ५२
निर्ऋतिर्नामपश्चाद्द्वास्तयायातिपुरंजनः।वैशसंनामविषयंलुब्धकेनसमन्वितः ५३
अन्धावमीषांपौराणांनिर्वाक्पेशस्कृतावुभौ । अक्षण्वतामधिपतिस्ताभ्यांयातिकरो
तिच ॥ ५४ ॥ सयर्ह्यन्तःपुरगतोविषूचीनसमन्वितः।मोहंप्रसादंहर्षंवायातिजाया-
त्मजोद्भवम् ॥ ५५ ॥ एवंकर्मसुसंयुक्तःकामात्मावञ्चितोबुधः । महिषीयद्यदीहेत
तत्तदेवान्ववर्तत ॥ ५६ ॥ क्वचित्पिबन्त्यांपिबतिमदिरांमदविह्वलः। अश्नन्त्यांक्व-
चिदश्नातिजक्षन्त्यांसहजक्षति ॥ ५७ ॥ क्वचिद्गायतिगायन्त्यांरुदत्यांरुदतिक्व
चित् । क्वचिद्धसन्त्यांहसति जल्पन्त्यामनुजल्पति ॥ ५८ ॥ क्वचिद्धावतिधाव-
न्त्यां तिष्ठन्त्यामनुतिष्ठति । अनुशेतेशयानायामन्वास्ते क्वचिदासतीम् ॥ ५९ ॥

में (रूप) अपनें मित्र द्युमान (चक्षु इन्द्रिय) के संग जाया करता है ॥ ४७ ॥ नलिनी और ना-लिनी नामक (नासिका) दो द्वार पूर्व की ओर हैं यह दोनों एकत्र निर्मित हैं इन द्वारों से राजा पु-रंजन अवधूत (घ्राण) नामक सखा के संग सौरभ नामक (गन्ध) देश को जाया करता है ॥ ॥४८॥ उसी दिशा में मुख्यानाम पांचवा द्वार (मुख) है इस द्वार से पुरंजन राजा रसज्ञ (रसना) नाम मित्र के साथ आपण (भाषण) तथा बहूदन (अन्न) नाम देशों में जाया करता है ॥४९॥ इस पुरके दक्षिण की ओर पितृ (दायां कान) नाम द्वार है इस द्वार से पुरंजन राजा श्रुतिधर नाम (श्रोत्र इन्द्रिय) सखाके संग दक्षिण पांचाल नाम देश (प्रवृत्ति शास्त्र) में जाया करता है ॥५०॥ तथा इस पुर के उत्तर और देव हू (बांया कान) नामक द्वार है इस द्वार से पुरंजन राजा उत्तर पांचाल नाम देश (निवृत्ति शास्त्र) में श्रुतिधर नाम (श्रोत्र इन्द्रिया) सखाके संग जाया करता है ॥ ५१ ॥ इस पुर में पश्चिम दिशा की ओर आसुरी नामक (लिंग) द्वार है इस द्वार से पुरंजन राजा ग्रामक (मैथुन सुख) नाम देश में दुर्मद नाम (उपस्थ इन्द्रिय) सखाके संग जायाकरता है ॥५२॥ उसीदिशामें निर्ऋति (गुदा) नाम द्वारहै इसद्वार से पुरंजनराजा वैशस (मलत्याग) नाम देशमें लुब्धक (पायु इन्द्रिय) नाम सखाके संग जायाकरताहै ॥५३॥ इन नौद्वारोंके अतिरिक्त पेशस्कृत (हाथ) और निर्वाक (पांव) नामक द्वार औरभी हैं परन्तु यह सदैवही बन्द रहतेहैं इन मेसे राजा पु-रंजन निर्वाकनाम द्वारसे चलताहै और पेशस्कृत द्वारसे कामकरताहै ॥५४॥ यह पुरंजनराजा विषू-चीन (मन) सखाको संगले जब अपने अंतःपुर (हृदय) में जाताहै तब स्त्री (बुद्धि) और पुत्रों (सम्पूर्ण इन्द्रियां) के विषयमें मोह (तमोगुणका काम) प्रसाद (सत्वगुणका कार्य) और हर्ष (रजो-गुणके कार्य्य) को प्राप्तहोताहै॥५५॥ इसभांति कर्मोंमें आसक्त,कामात्मा,तथा अज्ञानी राजा पुरंजन (जीव) अपनीस्त्री (बुद्धि) की चेष्टा अनुसार वर्तने लगता है ॥५६॥ जब यह स्त्री मदिरा पानकरती है तब आपभी मदिरा पानकरताहै और उसके मदसे आपभी मत्तहोजाता है जब वह भोजन करती तब आपभी भोजनकरता जबवहचर्वणकरती तबउसकेसंग चर्वणकरताहै ॥५७॥ जब वहगाती तब आपभी गाता जब वहरोती तब आपभी रोता जब वह हँसती तब आपभी हँसता जब वहबोलती तब आपभी बोलताहै॥ ५८ ॥ जब वह दौड़ती तब आपभी दौड़ता जब वह ठहरजाती तब आप भी ठहरजाता जब वह सोती तब आपभी सोता जब वह बैठती तब आपभी उसके पीछे बैठजाता

क्वचिच्छृणोतिशृण्वत्यां पश्यन्त्यामनुपश्यति। क्वचिज्जिघ्रतिजिघ्रन्त्यां स्पृशन्त्यांस्पृशतिक्वचित् ॥ ६० ॥ क्वचिच्चशोचतीं जायामनुशोचतिदीनवत्। अनुहृष्यतिहृष्यन्त्यां मुदितामनुमोदते ॥ ६१॥ विप्रलब्धोमहिष्यैवं सर्वप्रकृतिवञ्चितः नेच्छन्नुकरोत्यज्ञः क्लैब्यात्क्रीडामृगोयथा ॥ ६२ ॥

इतिश्रीमद्भा०च० पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

नारदउवाच ॥ सएकदामहेष्वासो रथंपंचाश्वमाशुगम्। द्वीषांद्विचक्रमेकाक्षं त्रिवेणुंपंचबन्धुरम् ॥ १ ॥ एकरश्म्येकदमनमेकनीडंद्विकूबरम्। पंचप्रहरणंसप्तवरूथं पंचविक्रमम् ॥ २ ॥ हैमोपस्करमारुह्य स्वर्णवर्माऽक्षयेषुधिः। एकादशचमूनाथः पंचप्रस्थमगाद्वनम् ॥ ३ ॥ चचारमृगयांतत्र दृप्तआत्तेषुकार्मुकः ।विहाय जायामतदर्हां मृगव्यसनलालसः ॥४॥ आसुरींवृत्तिमाश्रित्य घोरात्मानिरनुग्रहः। न्यहनन्निशितैर्बाणैर्वनेषु वनगोचरान् ॥ ५ ॥ तीर्थेषुप्रतिदृष्टेषु राजामेध्यान्पशून्

है ॥ ५९ वह सुनती तब आपभी सुनता वह देखती तब आपभी देखता वह सूंघती तो आपभी सूंघता और वह जब छूती तब आपभी छूता है ॥ ६० ॥ जब कभी वह शोकाकुल होती है तब आपभी दीन की भांति शोकातुर होता है वह प्रसन्न होती तब आपभी प्रसन्न होता जब वह हर्ष करती तब आपभी हर्ष करता है ॥ ६१ ॥ इस भांति स्त्री से वंचित होकर तथा अपनी प्रकृतियों को नाश कर वह मूढ़ राजा पुरंजन स्त्री के आधीन हो अपनी कांक्षा नहोनेपर भी क्रीड़ा मृग की सदृश स्त्री के अनुसार चलता है ॥ ६२ ॥

इति श्री भागवते महापुराणे० चतुर्थस्कंधे सरला भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

नारदजी ने राजा प्राचीनबर्हि से कहा कि हे राजन् ! पुरंजन एक दिन सोने का कवच (रजोगुण) धारण कर सुवर्ण की सामग्री वाले रथ (स्वप्नावस्था सम्बन्धी शरीर) मे बैठ दृढ़ तरकस (असंख्य वासनाओं से भरा अहंकार) को संग ले पंचप्रस्थ नामक (पांच विषय) बन में गया इस रथ का बेग अत्यन्त तीव्र है (स्वप्न का शरीर जाग्रत्शरीर के सदृश बहुत देरतक नहीं रहता इसी हेतु बेग वाला कहा) उसमें पांच घोडे जोते जाते हैं (पांच ज्ञानेन्द्रिय) दो इसमें डंडि ये (अहंता ममता) हैं दो पहिये (पुण्य, पाप) एक धुरी (माया अर्थात् अज्ञान) तीन बांस (सत्व, रज, तम) तथा पांच रस्से बांधनें के हेतु (पांच प्राण) हैं एक बागडोर (मन) एक सारथी (बुद्धि) है रथी के बैठने का स्थान एकही (हृदय) है दो धुरे (शोक और मोह) प्रक्षेप करनें योग्य पांच भांति की सामग्री (पांच विषय) हैं सात उसमें बरूथ (रस,रुधिर,मांस,मेद, हड्डी, मज्जा, और वीर्य) हैं पांच प्रकार की रथ की गति (पंच कर्मेन्द्रिय) हैं उस काल राजा पुरंजन ने सुवर्ण के आभूषण धारणकर कंचन का कवच (रजोगुण) अक्षय कवच अनंत बासनाओं से भरा हुआ अहंकार उपाधि) एक बडासा धनुष (अहंता) धारण किया और दश भृत्य (दशइन्द्रियां) और उनके एक प्रधान (मन) को संग ले पंचप्रस्थ नाम (पांच विषय) वन को चला ॥ १ । २ । ३ ॥ वह घमंडी राजा पुरंजन हाथ में धनुष (विषय भोग) बाण (रागद्वेषादिक) धारणकर त्यागनें के अयोग्य अपनी रानी (बुद्धि) को त्यागकर मृगी (विषयों) को मारने (भोगनें) की इच्छा से बन में जा शिकार करने लगा (विषय भोगने लगा) ॥ ४ ॥ क्रूर चित्त निर्दई राजा पुरंजन आसुरी वृत्ति धारणकर तीव्र शरों द्वारा बन के जीवों को बध करनें लगा ॥ ५ ॥ (आखेट की निंदा इसीकारण की जाती है कि राजा के हेतु आखेट का विधान शास्त्र में कहा है कि) शास्त्रों मे जो आखेट की विधि है वह इस प्रयोजन से नहीं है कि दूसरे धर्म कार्यों की सदृश इसके बिनाकिये काम नचले परतु स्वाभाविक स्नेह से जो हिंसा की जाती है उसके कम करने के हेतु है वह इस भांति से है कि जो पशु बध में अ-

षने । यावदर्थमलब्धुघो हन्यादितिनियम्यते ॥ ६ ॥ यएवंकर्मनियतं विद्वान्कुर्वीतमानवः । कर्मणातेनराजेन्द्र ज्ञानेननसलिप्यते ॥७॥ अन्यथाकर्मकुर्वाणो मानारूढोनिबध्यते । गुणप्रवाहेपतितो नष्टप्रज्ञोव्रजत्यधः ॥ ८ ॥ तत्रानिर्भिन्नगात्राणां चित्रवाजैःशिलीमुखैः । विप्लवोऽभूद्दुःखितानां दुःसहःकरुणात्मनाम् ॥ ९ ॥ शशान्वराहान्महिषान् गवयान्रुरुशल्यकान् । मेध्यानन्यांश्चविविधान् विनिघ्नन्श्रममध्यगात् ॥ १० ॥ ततःक्षुत्तृट्परिश्रान्तो निवृत्तोगृहमेयिवान् । कृतस्नानोचिताहारः संविवेशगतक्लमः ॥ ११ ॥ आत्मानमर्हयांचक्रे धूपालेपस्रगादिभिः । साध्वलंकृतसर्वांगो महिष्यामादधेमनः ॥ १२ ॥ तृप्तोहृष्टःसुदृप्तश्च कन्दर्पाकृष्टमानसः । नव्यचष्टवरारोहां गृहिणींगृहमेधिनीम् ॥ १३ ॥ अन्तःपुरस्त्रियोऽपृच्छद्विमना इव वेदिषत् । अपिवःकुशलंरामाः सेश्वरीणांयथापुरा ॥ १४ ॥ नतथैतर्हिरोचन्ते गृहेषुगृहसंपदः । यदिनस्याद्गृहेमाता पत्नीवापतिदेवता ॥ व्यंगेरथइवप्राज्ञः कोना-

स्यन्त स्नेहहोवे तो प्रख्यात श्रद्धादिकोंमें मारे नित्यकें श्राद्धमें नमारे वहभी राजाओंको योग्यहै दूसरेको नहीं वहभी सब पशुओंको नहीं वरन उपयोगी पशुओंको जिनकामांस धर्मशास्त्रमें पवित्रमानाजाता है वहभी वन में मारने चाहिये और वहांभी जितने पशुकामके योग्यहों उतनेंही को मारे अधिकको नहीं इस भांति इन नियमोंसे शास्त्रोंमें कहाहै परन्तु इससे यहनसमझना कि शास्त्र मे हिंसाकी विधिहै।इसको इसभांति समझना चाहिये कि यदि किसी बालकको खेलमें से एक संग रोकाजाय तोवहकदापि खेल न छोड़गा कुछ नियम इसविषयके करादियेजांय किजो तू खेले तो अपना पाठपढ़कर उसके उपरांत इतनी देरतक भले बालकोंके साथ खेलाकर, इस भांति संकोच होते२कुछ दिनोंमें वह आपही खेलना छोड़देग । ऐसेही शास्त्र जोएकसाथ लोगोंको रोकता तोवह कदापि न रुकते और उस से अच्छाफल न निकलता इसी कारण शास्त्रने कुछ नियम लिखकर हिंसामें सकोच किया है कि जिससे कुछ दिनोंमें आपहीआप हिंसा छोड़देवे ॥ ६॥ शास्त्रोंने हिंसाके नियमों की भांत दूसरेकर्मोंमें भी नियम कियेहैं हे राजेन्द्र ! जो मनुष्य उन नियमों पर विचारकरके उनके अनुसार कार्य करे तो उसको ज्ञान उत्पन्न होता है और ज्ञानके होनेसे उसके किसीभांतिके कर्मका लोप नहीं होता ॥ ७ ॥ नियमों के विरुद्ध कार्य करनेसे अंतःकरणकी शुद्धि नहीं होती और बिना उस की शुद्धिके, अहंताहोने के कारण, बुद्धिभ्रष्ट होकर सृष्टि प्रवाह में पड़ अधमाधम योनियों में जन्म लियाकरता है॥८॥निश्चित वार्ताकहकर फिर पिछलीबातोंका प्रसंग कहतेहैं उस बनमें अद्भुतपखवाले शरोंसे कटने और क्लेशपाते हुए जीवों का, दयावान पुरुषोंके सहनके अयोग्य; इस भांति नाशहोनेलगा ॥ ९ ॥ शश,शूकर,अरण्य महिष, नीलगाय,रुरु तथा दूसरे पवित्र जीवोंको मारते २ वह राजा पुरंजन थकगया ॥ १० ॥ (अब जाग्रत्अवस्थाका वर्णन करतेहैं)वह राजापुरंजन भूख, प्यास और श्रम से आतुरहो वहांसे लौटकरघर आया और स्नानसे निवृत्तहो भोजन करके सोया; सोने से श्रमदूरहुआ तो ॥ ११॥नेत्र खुले. तब सुगन्धितवस्तुयें चन्दन, तथा फूलों के हारसे सुशोभितहो स्त्री के निकट जाने का बिचार किया ॥ १२ ॥ वह राजा पुरंजन तृप्तिपाकर प्रसन्नता पूर्वक अभिमानयुक्त. कामदेव के वशीभूतहोकर अंतःपुर मे गया वहां अपनी गृहिणी,श्रेष्ठजंघावाली रानी को न देखा ॥१३॥ तो उसकाल वह खेदितसा होकर अपनी रानी की सखियों से पूछा कि तुम्हारी स्वामिनी और तुम, प्रथम की सदृश तो प्रसन्नहो ? ॥ १४ ॥ घर में समस्त गृह सम्बंधी पदार्थ प्रथम की समान जो शोभा देते थे वह अब नहीं देख पड़ते इस का क्या हेतु है ? जिस घर में माता अथवा पतिव्रता स्त्री न होय वह घर विना पहिये के रथकी सदृश जाना जाता है तो फिर ऐसे भवन में कौन विवेकी पुरुष रह सकता है ?

मासीतद्दीनवत् ॥ १५ ॥ क्ववर्ततेसाललना मज्जन्तंव्यसनार्णवे। यामामुद्धरते प्रज्ञां दीपयन्तीपदेपदे ॥ १६ ॥ रामाऊचुः ॥ नरनाथनजानीमस्त्वत्प्रियायद्व्यवस्यति। भूतलेनिरवस्तारे शयानांपश्यशत्रुहन् ॥ १७ ॥ नारदउवाच ॥ पुरंजनस्त्वमहिषीं निरीक्ष्यावधुतांभुवि। तत्सङ्गोन्मथितज्ञानो वैक्लव्यंपरमंययौ ॥ १८ ॥ सान्त्वयन्श्लक्ष्णयावाचा हृदयेनविदूयता। प्रेयस्याःस्नेहसंरम्भलिंगमात्मनि नाभ्यगात् ॥ १९ ॥ अनुनिन्येऽथशनकैर्वीरो नुनयकोविदः। पस्पर्शपादयुगलमाह चोत्सङ्गलालिताम् ॥ २० ॥ पुरंजनउवाच ॥ नूनंत्वकृतपुण्यास्ते भृत्यायेष्वीश्वराःशुभे। कृतागःस्वात्मसात् कृत्वाशिक्षादण्डंनयुंजते ॥ २१ ॥ परमोऽनुग्रहोदण्डो भृत्येषु प्रभुणार्पितः। बालोनवेदतत्तन्वि बन्धुकृत्यममर्षणः ॥ २२ ॥ सात्वंमुखंसुदति सुभ्र्वनुरागभारव्रीडाविलम्बविलसद्धसितावलोकम्। नीलालकालिभिरुपस्कृतमुन्नसंनःस्वानांप्रदर्शय मनस्विनिवल्गुवाक्यम् ॥२३॥ तस्मिन्दधेदममहंतववीरपत्नी योऽन्यत्रभूसुरकुलात्कृतकिल्बिषस्तम्। पश्येनवीतभयमुन्मुदितं त्रिलोक्यामन्यत्रवैमुररिपोरितरत्रदासात् ॥२४॥ वक्त्रंनतेवितिलकंमलिनंविहर्षं संरम्भभीमम विमृष्टमपेतरागम्। पश्येस्तनावपिशुचोपहतौसुजातौ बिम्बाधरंविगतकुंकुमपङ्करा

॥ १५ ॥ वह मेरी प्राणप्यारी कि जो समय पर २ उत्तम सम्मति देकर दुःख रूपी सागर में डूबते हुये मुझको बचाती थी वह कहां है ॥ १६ ॥ सहेलियों ने कहा कि हे नृपति! हे शत्रु नाशन! आप की प्रियतमा क्या करना चाहती है यह तो हम जानतीं नहीं है परन्तु वह आंगन में विना कुछ विछाये भूमि परलेट रही हैं, उसे आप देखिये ॥ १७ ॥ नारदजी ने कहा कि—वह राजा पुरंजन कि जिस का ज्ञान स्त्री प्रसंग ने भ्रष्ट होगया है अपनी रानी को, विना देह संभाले भूमि पर पड़ा देख अत्यन्त शोकान्वित हुआ ॥ १८ ॥ और उदास चित्त हो, मीठे वाक्यों से शांति के वाक्य कहने लगा परन्तु उसके के देखने में कोई चिन्ह ऐसा न आया कि प्यारी ने जान बूझकर यह किस कारण रोष किया है ॥ १९ ॥ फिर वह वीर राजा पुरंजनस्त्रियोंके प्रसन्न करने में निपुण और २ उस को मनाने लगा और उसके दोनों पैरों को छू गोदी में बिठा इस भांति कहने लगा ॥ २० ॥ पुरंजन बोला कि—हे प्यारी! यदि सेवक कुछ अपराध करें तो उनके स्वामियों को उचित है कि शिक्षाके हेतु उन सेवकों को दंड देवें और यदि वह दंड नदेवें तो जानना चाहिये कि वह सेवक अभागे हैं ॥ २१ ॥ स्वामीके दंड देने पर, सेवक को स्वामी की अत्यन्त कृपा समझनी चाहिये हे तन्वि! वृद्धों के दंड देने का जो बालक दुःख मानते हैं और क्रोध करते हैं, वह अत्यन्त मन्दभागी हैं क्योंकि वह बालक अपने वृद्ध पुरुषों को नहीं जानते कि यह हमारे हितकारक हैं ॥ २२ ॥ हे मनस्विनि! हे सुभ्रु! हेसुदति! तेरा मुख कि जिस का हंसना और देखना प्रेम के भार से भूषित, लज्जासे शोभित अत्यन्य शोभा देताहै और जिस में सुन्दर नासिका तथा मधुर भाषण है और जो श्याम वर्ण केशरूप भौंरों से अत्यन्त ही शोभित होरहा हे प्यारी! ऐसे मुखको अपने प्रेमी मुझको दिखा ॥ २३ ॥ हेवीरपत्नि! भगवद्भक्त और ब्राह्मण कुलके अतिरिक्त जिसने तेरा अपराध कियाहो उसको दण्डदेनेको प्रस्तुतहूं कारण कि तीनोंलोक तथा इनसेभी बाहर मेरा भय न मानकर प्रसन्न रहनेवाला कोई भी मनुष्य मुझे नहीं दिखाईदेता ॥ २४ ॥ इससेपहिले किसीदिन मैंने तेरामुख तिलकहीन, मलीन रोषसे भयंकर, अप्रसन्न, प्रेमशून्य नहींदेखाथा और तेरे इन सुन्दर स्तनोंको भी शोकके आंसुओं सेभी भीगेहुये न देखाथा, और बिम्बफलकी सदृश यह होठभी पानखानेके कारण केसरके सदृश

गम् ॥ २५ ॥ तन्मेप्रसीदसुहृदःकृतकिल्बिषस्यस्वैरं गतस्यमृगयांव्यसनातुरस्य । का देवरंवशगतंकुसुमास्त्रवेगविस्त्रस्तपौंस्नमुशतीनभजेतकृत्ये ॥ २६ ॥

इतिश्रीमद्भा० च० पुरंजनोपा० षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

नारदउवाच ॥ इत्थंपुरंजनंसध्र्यग् वशमानीयविभ्रमैः । पुरंजनीमहाराज रेमे रमयतीपतिम् ॥ १ ॥ सराजामहिषींराजन् सुस्नातांरुचिराननाम् । कृतस्वस्त्ययनां तृप्तामभ्यनन्ददुपागताम् ॥ २ ॥ तयोपगूढःपरिरब्धकन्धरो रहोऽनुमन्त्रैरपकृष्टचेतनः । नकालरंहोबुबुधेदुरत्ययं दिवानिशेतिप्रमदापरिग्रहः ॥३॥ शयानउन्नद्धमदो महामना महाऽर्हतल्पेमहिषीभुजोपधिः । तामेववीरोमनुतेपरं यतस्तमोऽभिभूतान निजंपरंचयत् ॥ ४ ॥ तयैवंरममाणस्य कामकश्मलचेतसः । क्षणार्धमिवराजेन्द्र व्यतिक्रांतंनवंवयः ॥ ५ ॥ तस्यामजनयत्पुत्रान् पुरंजन्यांपुरंजनः । शतान्येकादश विराडायुषोऽर्धमथात्यगात् ॥ ६ ॥ दुहितृर्दशोत्तरशतं पितृमातृयशस्करीः शीलौदार्यगुणोपेताःपौरंजन्यःप्रजापते ॥ ७ ॥ सपंचालपतिःपुत्रान् पितृवंशविवर्धनान् । दारैःसंयोजयामास दुहितृःसदृशैर्वरैः ॥ ८ ॥ पुत्राणांचाभवन्पुत्रा एकैकस्यशतंशतम् । यैर्वैपौरंजनोवंशः पंचालेषुसमेधितः ॥ ९ ॥ तेषुतद्रिक्थहारेषु गृहकोशानुजीविषु । निरूढेनममत्वेन विषयेष्वन्वबध्यत ॥ १० ॥ ईजेचक्रतुभिर्घो

रंगरहित नहींदिखेथे ॥ २५ ॥ मैंजो तेरी आज्ञाके विना व्यसन आसक्त आखेटको गया इसकारण तेरा अपराधी हुआहूं मुझपर दयाकर, कामदेवके बाणोंके वेगसे अधीर्य और अपने वशीभूत प्यारे अपने स्वामीकी कामनावाली कौन स्त्री उचितकर्ममें सेवा न करे ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे चतुर्थस्कंधेसरलाभाषाटीकायांषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

नारदजीबोले—कि हेमहाराज ! इसप्रकार राजा पुरंजनको रानी पुरंजनीने अपने बिलास विभ्रमसे बशीभूतकिया और उससे बिहार करानेलगी और आपभी रमण करनेलगी॥१॥हेराजन्! भलीभांति स्नान करीहुई सुन्दर मुखवाली, शृंगारयुक्त और तृप्त उस रानीको राजा पुरंजनने अपने निकट आनीदेख उसका बड़ा सनमान किया ॥ २ ॥ रानीसे आलिंगन कियेहुये उस राजाने रानी को कण्ठसेलगा, एकान्तमें उसके अनुकूल गुप्त बार्ताओंसे बिचार रहितहो, रानीकोही सर्वसाधन रूपमान, उसीमें लिप्तरह रात्रिदिन आनन्दसे व्यतीत होतेहुये तीव्रकालके बेगकोभी भूलगया ३॥ अनमोल शय्यापर प्राणप्यारी के हाथका तकिया बनाकर सोताथा वह मतवाला उदारचित्त राजा पुरंजन अज्ञानता के कारण उस रानीकोही परम पुरुषार्थ रूपमाननेलगा इसप्रकार होतेहुये वह अपने यथार्थ स्वरूप (ब्रह्म) को भी भूलगया ॥ ४ ॥ हेराजन् ! राजा पुरंजनने इसप्रकार कामातुर रहकर रानीके संग भोगकरतेहुये अपनी युवावस्थाको आधेपलकी सदृश व्यतीतकरादिया तबराजा पुरंजनने अपनी रानीमें ११००पुत्र उत्पन्नकिये(११इन्द्रियोंके फल) इतनेमें इसकी आधी अवस्था व्यतीत होगई॥६॥हेप्रजापते ! उसके११०कन्यायें (बुद्धिकी वृत्तियां) उत्पन्न हुई कि जो माता पिताके यशको बढ़ानेवालीं, शीलवान और उदार चित्त आदि गुणोंसे युक्तथीं ॥ ७ ॥ पांचाल देशके (शब्द,स्पर्शआदि विषय) अधीश्वर उस पुरंजनने अपने कुलको बढ़ानेवाले पुत्रोंका अच्छी कुलीन कन्याओं (हित, अहित, चिन्ता) के संग विवाहकिया और पुत्रियोंका भी बिवाह उनके उचित बरों (योग्य विषय भोग)के सँगकिया॥८॥ पुरंजनके प्रत्येक पुत्रके सौ २ पुत्रउत्पन्न हुए(नानाभांतिके कर्म) जिससे पुरंजन राजा का बंश पांचाल देशमें अत्यन्तही वृद्धिको प्राप्तहुआ॥९॥गृहकोष आजीबिका पाताहुआपुत्र पौत्रोंके मोहमें फँसकर राजापुरंजन विषयोंमें बँधगया॥१०॥इस राजाने तेरी स-

रैर्दीक्षितः पशुमारकैः । देवान्पितॄन्भूतपतीन् नानाकामोयथाभवान् ॥११॥ युक्ते-
ष्वेवंप्रमत्तस्य कुटुम्बासक्तचेतसः । आससादसवैकालो योऽप्रियःप्रिययोषिताम्
॥ १२ ॥ चण्डवेगइतिख्यातो गन्धर्वाधिपतिर्नृप । गन्धर्वास्तस्यबलिनः षष्ट्युत्तर-
शतत्रयम् ॥ १३ ॥ गन्धर्व्यस्तादृशीरस्य मैथुन्यश्चसितासिताः । परिवृत्त्याविलु-
म्पंतिसर्वकामविनिर्मिताम् ॥ १४ ॥ तेचण्डवेगानुचराःपुरंजनपुरंयदा । हर्तुमार
भिरेतत्रप्रत्यषेधत्प्रजागरः ॥ १५ ॥ ससप्तभिःशतैरेकोविंशत्याचशतंसमाः । पुरं-
जनपुराध्यक्षोगन्धर्वैर्युयुधेबली ॥ १६॥ क्षीयमाणेस्वसम्बन्धेएकस्मिन्बहुभिर्युधा
चिंतांपरांजगामार्तःसराष्ट्रपुरबान्धवः ॥ १७ ॥ सएवपुर्यांमधुभुक्पञ्चालेषुस्वपा-
र्षदैः । उपनीतंबलिंगृह्णन्स्त्रीजितोनाविदद्भयम् ॥ १८ ॥ कालस्यदुहिताकाचि-
त्त्रिलोकींवरमिच्छती । पर्यटन्तीनबर्हिष्मन्प्रत्यनन्दतकश्चन ॥ १९ ॥ दौर्भाग्ये
नात्मनोलोके विश्रुतादुर्भगेतिसा । यातुष्टाराजर्षयेतुवृताऽदात्पूरवेवरम् ॥ २० ॥
कदाचिदटमानासाब्रह्मलोकान्महींगतम् । वव्रेबृहद्व्रतंमांतुजानतीकाममोहिता ॥
२१ ॥ मयिसंरभ्यविपुलमदाच्छापंसुदुःसहम् । स्थातुमर्हसिनैकत्रमद्याच्ञाविमु-
खोमुने ॥ २२ ॥ ततोविहतसंकल्पाकन्यकायवनेश्वरम् । मयोपदिष्टमासाद्यवव्रे

मान दीक्षा लेकर नानाभांतिकी कामनायें करके डरावने और जीववधवाले यज्ञोंसे,देवता,पितृ,और भूतपतियों का आराधन किया ॥ ११ ॥ इसप्रकार अपने कल्याणदायी कर्मोंमें अचैतन्य कुटुंबा सक्त राजापुरंजनका वह समय (बुढापा) प्राप्तहुआ कि जो समय स्त्रियोंपर स्नेह रखनेवाले मनुष्य को अप्रिय लगताहै ॥ १२ ॥ हेमहाराज ! चण्डवेग (वर्ष) नाम गन्धर्व लोकका अधिपति है उस के साथ ३६० योधा गन्धर्व (दिन रहतेहै) ॥ १३ ॥ और ३६० ही गन्धर्वोंकी स्त्रियां (रात्रिहैं) जिनमें आधी काली और आधी श्वेतहैं (कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष) वह सदैव गन्धर्वोंके संगरहतीं हैं और गन्धर्वोंके सदृशही बलवानहैं यह गन्धर्व अपनी स्त्रियों समेत घूमतेहुये सब सुखोंयुक्त नगर को लूटाकरते हैं ॥ १४ ॥ चण्डवेगके सेवक गन्धर्व जिससमय पुरंजन राजाकी नगरी को लूटने लगते हैं उससमय इसनगरी का रक्षक पांच मस्तकवाला सर्प (प्राण) उनको रोककर युद्ध करने को उपस्थित होता है ॥ १५ ॥ यह योधा पुरंजनपुरी का रक्षक सर्प ७२० गन्धर्व, गन्धर्वनियों के संग सौवर्षतक अकेला युद्ध करता रहता है ॥ १६ ॥ यह नाग अकेला उन लोगोंके संग बर्षों युद्ध करनेसे निर्बल होने लगताहै तब राजा पुरंजन आतुर होकर अपने नगर निवासियों समेत कुटुंबियों के निकट बैठकर चिन्ता करने लगा ॥ १७ ॥ वह राजापुरंजन पांचाल देश की नगरी में अल्प सुख का भोग करता हुआ और अपने सेवकों की दी हुई बलि को ग्रहण करता हुआ स्त्री के आधीनहो भय (मृत्यु) उत्पन्न होने परभी नहीं सोचता ॥ १८ ॥ हे राजन् ! उसी समय काल की पुत्री (वृद्धावस्था) अपने हेतु वर को संसार में खोजती फिरती थी परन्तु उसको किसी ने अंगीकार नहीं किया ॥ १९ ॥ तब वह मंद भागिनी होनेसे सृष्टि में दुर्भगा नाम से प्रसिद्ध हुई, पहिले राजा पुरुने इस को वरा, तब इसने प्रसन्न होकर पुरुको राज्य दिया ॥ २० ॥ यह काल कन्या एक समय चारों ओर भ्रमण करती हुई मुझे मिली, जिस समय कि मैं ब्रह्मलोक से भूलोक पर आताथा, वह मुझे जानतीथी कि यह नैष्ठिक ब्रह्मचारी है तो भी कामदेव से आसक्तहो मुझसे विवाहनेको आईथी और विवाह करनेको मुझ से कहा ॥ २१ ॥ परन्तु मैंने स्वीकार न किया इस कारण उसने क्रोधित होकर मुझको कठोर शाप दिया, कि हे मुने ! तू ने मेरी बिनय को अंगीकार नहीं किया इस लिये अबतू एक

नाम्नाभयपोतम् ॥ २३ ॥ ऋषभयवनानांत्वांवृणेवीरेप्सितंपतिम् । संकल्पस्त्वयि भूतानांकृतःकिलनरिष्यति ॥२४॥ द्वाविमावनुशोचन्तिबालावसदवग्रहौ । यल्लोकशास्त्रोपनतंनरातिनतदिच्छति ॥ २५ ॥ अथोभजस्वमांभद्रभजतींमेदयांकुरु । एतावान्पौरुषोधर्मोयदार्तानुकम्पते ॥ २६ ॥ कालकन्योदितवचोनिशम्ययवनेश्वरः । चिकीर्षुर्देवगुह्यंसस्मितंतामभाषत ॥ २७ ॥ मयानिरूपितस्तुभ्यंपतिरात्मसमाधिना । नाभिनन्दतिलोकोऽयंत्वामभद्रामसंमताम् ॥ २८ ॥ त्वमव्यक्तगतिर्भुङ्क्ष्वलोकंकर्मविनिर्मितम् । याहिमेपृतनायुक्ताप्रजानाशंप्रणेष्यसि ॥ २९ ॥ प्रज्वारोऽयंममभ्रातात्वंचमेभगिनीभव । चराम्युभाभ्यांलोकेऽस्मिन्नव्यक्तोभीमसैनिकः ॥ ३० ॥

इतिश्रीमद्भा०चतुर्थस्कन्धेपुरञ्जनोपाख्यानवर्णनंनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

नारद उवाच ॥ सैनिकाभयनाम्नोयेवर्हिष्मन्दिष्टकारिणः । प्रज्वारकालकन्याभ्यांविचेरुरवनीमिमाम् ॥ १ ॥ तएकदातुरभसापुरंजनपुरींनृप । रुरुधुर्भौमभोगाढ्यांजरत्पन्नगपालिताम् ॥ २ ॥ कालकन्याऽपिबुभुजेपुरञ्जनपुरंबलात् । ययाऽभिभूतःपुरुषःसद्योनिःसारतामियात् ॥ ३ ॥ तयोपभुज्यमानांवैयवनाःसर्वतोदिशम् । द्वार्भिःप्रविश्यसुभृशंप्रार्दयन्सकलांपुरीम् ॥ ४ ॥ तस्यांप्रपीड्यमानायामभिमानी

स्थान पर स्थिर नहीं रह सकेगा यह नैष्ठिक ब्रह्मचारियों का कुछ विघ्न नहीं करसकती औरजिस के वृद्धावस्था नहीं वह एक स्थान पर नहीं बैठता यह प्रसिद्ध है। इस कारण यह वार्ता शापकी भांति यहां लिखी गई है ॥ २२ ॥ जब उस का मनोरथ पूर्ण न हुआ, तब वह निराश होनेलगी तब मैंने उससे कहा कि, तू यवनो के (आधिव्याधि) राजा भय को वरले वह मेरी आज्ञामान उसके समीप गई ॥ २३ ॥ तू यवनो का ईश्वर है, तू मुझको बहुत प्यारा लगता है इस हेतू मैं तुझको अपना पति करूंगी, समस्त प्राणियों के संकल्प तेरे विषे नाशको नहीं प्राप्त होते ॥२४॥ लौकिक रीती से अथवा शास्त्रानुसार जो पदार्थ देना चाहिये उस पदार्थ की यदि कोई इच्छाकरे और उस समय उसे न देवे तथा योग्य पदार्थ जो लेने योग्य हो उस को न लेवे तो वह दोनों मनुष्य मूढ़, बाल बुद्धि तथा दुराग्रही और शोचनीय हैं ॥ २५ ॥ हे भद्र ! अब तू मुझको अंगीकारकर, मैं तुझको भजती हूं, मेरे ऊपर कृपा कर क्योंकि मनुष्य का धर्म यहीहै कि दुःखीजीवों पर दया करे ॥ २६ ॥ इस भांति काल कन्या की वाणी को सुनकर, यवनेश्वर भयकि जो देव गुह्य है ऐसी वात (मरना) करने की इच्छा रखताथा, मंदमुसकान सहित उससे बोला ॥ २७॥ मैंने आत्म समाधि से तेरे लिये पतिनिरूपण किया है, तेरा अभद्र और अमंगल रूप होने के कारण इस लोक में तुझको कोई नहीं ग्रहण करेगा ॥२८॥ इस हेतु तू कर्म से निर्वाण हुये लोकों (शरीरों) को अव्यक्त गति से बलात्कार के भोग ॥ २९ ॥ जिस भांति यह प्रज्वर (कालज्वर) मेरा भ्राताहै वैसेही तू मेरी भगनीहो और मेरी भयंकर सेना के संग प्रजा का नाशकर मैं भी तुम दोनों के पीछे २ गुप्त भावसे विचरा करूंगा ॥ ३० ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेसरलाभाषाटीकायांसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

नारदजी बोले कि—हे बर्हिष्मन् ! यवनेश्वर भयकी सेनाके जो बलवान योधा (रोग) थे वह प्रज्वर और काल कन्याके सँग पृथ्वीमें विचरनेलगे ॥१॥ हे महाराज ! एकदिन उन्होंने आकर उस राजा पुरंजनकी नगरीको कि जो समस्त ऐश्वर्योंसे परिपूर्णथी और जिसकारक्षा एकवृद्धा सर्प कररहाथा; चारोंओर से घेरलिया ॥२॥ जिसकाल कन्याको प्राप्त होकर मनुष्य उसमें निकलने की इच्छाकरताहै उसीकन्याने बलात्कार राजा पुरंजनकी नगरीको जीतलिया ॥ ३ ॥ जिसपुरीको

पुरञ्जनः । अवापोरुविधांस्तापान्कुटुम्बीममताकुलः ॥ ५ ॥ कन्योपगूढोनष्टश्रीः कृपणोविषयात्मकः । नष्टप्रज्ञोहृतैश्वर्योगन्धर्वयवनैर्बलात् ॥ ६ ॥ विशीर्णांस्वपुरीं वीक्ष्यप्रतिकूलाननादृतान् । पुत्रान्पौत्राऽनुगामात्यान्जायांचगतसौहृदाम् ॥ ७ ॥ आत्मानंकन्ययाग्रस्तंपञ्चालानरिदूषितान् । दुरन्तचिन्तामापन्नोनलेभेतत्प्रतिक्रियाम् ॥ ८ ॥ कामानभिलषन्दीनोयातयामांश्चकन्यया । विगतात्मगतिस्नेहः पुत्रदारांश्चलालयन् ॥ ९ ॥ गन्धर्वयवनाक्रांतांकालकन्योपमर्दिताम् । हातुंप्रचक्रमेराजा तांपुरीमनिकामतः ॥ १० ॥ भयनाम्नोऽग्रजोभ्राताप्रज्वारःप्रत्युपस्थितः । ददाहतां पुरींकृत्स्नांभ्रातुःप्रियचिकीर्षया ॥ ११ ॥ तस्यांसंदह्यमानायांसपौरःसपरिच्छदः । कौटुम्बिकःकुटुम्बिन्याउपातप्यतसान्वयः ॥ १२ ॥ यवनोपरुद्धायतनोग्रस्तायां कालकन्यया । पुर्यांप्रज्वारसंसृष्टःपुरपालोऽन्वतप्यत ॥ १३ ॥ नशेकेसोऽवितुंतत्र पुरुकृच्छ्रोरुवेपथुः । गंतुमैच्छत्ततोवृक्षकोटरादिवसानलात् ॥ १४ ॥ शिथिलावयवोयर्हिगंधर्वैर्हृतपौरुषः । यवनैरररिभीराजन्नुपरुद्धोरुरोदह ॥ १५ ॥ दुहितृःपुत्रपौत्रांश्चजामिजामातृपार्षदान् । स्वत्वावशिष्टंयत्किंचिद्गृहकोशपरिच्छदम् ॥१६॥

कालकन्याने जीताथा उसीमें चारोंओरके द्वारोंसे प्रवेश करके यवनेश्वरके सैनिक उसे भलीभांति लूटनेलगे ॥ ४ ॥ जब अपनी पुरी इसभांति दुःखित होनेलगी तब वह अहंकारी राजा पुरंजन कुटुम्बादिक के मोहसे व्याकुल होकर नानाभांतिके क्लेश पानेलगा ॥ ५ ॥ काल कन्यासे व्याप्त, वह कृपण, श्रीहीन, विषयी, राजा पुरंजन बुद्धि और कांतिहीन (चलने फिरने में अशक्त होगया ॥ ६ ॥ जब पुरंजनकी सब पुरी लुटगई, तब पुत्र, पौत्र, सेवक(इन्द्रियें) और कार्यकर्त्ता इन्द्रियोंके देवता) को प्रतिकूल चलतादेखा । मनवांछित विषय न देने और अवांछित विषय देने से) निरादर करनेलगे (अपने वशमें नहींरहे) और प्यारी पत्नीनेभी मित्रता त्यागदी (बुद्धिभी ठिकाने न रही ७ ॥ आत्माको कालकन्यासे ग्रसित और पांचालदेश (विषयों)का वैरियों(बाधाओं)से दुःखित देख राजा पुरंजनको अत्यन्त चिन्ताहुई और इसदुःखके दूरकरनेका कोई उपाय उसको न मिला यद्यपि काल कन्याके भोगनेसे सम्पूर्ण विषय निःसार होगये थे और कुटुंबियोंने भी त्यागदियाथा तो भी विषयोंकी कांक्षाही करता रहा और लोक परलोक सम्बन्धी कल्याणों से तथा पुत्रादिकोंके प्रेम से रहित होने परभी पुत्र स्त्री का स्नेह उस के मन में बनाही रहा ॥ ९ ॥ इस भांति अत्यन्त रह नें से काल कन्या से मर्दित की हुई वह पुरी गन्धर्व और यवनो से घेरी गई, तब वह राजा अनिच्छा होने परभी दुःखसे कातर हो उस पुरी का त्याग करने लगा ॥ १० ॥ उसी समय भय (मृत्यु) का ज्येष्ठ भ्राता प्रज्वार (कालज्वर) आया और उसने बंधुकी प्रसन्नता के हेतु उस समस्त नगरी को भस्मकरदिया ॥ ११ ॥ जब वह नगरी भस्महोने लगी, तब वह कुटुंबी पुरंजननगरके लोगों और कुटुंबियों तथा स्त्री पुत्रादिकों के साथ बड़े सन्तापको प्राप्तहुआ ॥ १२ ॥ कालकन्यासेघिरी हुई नगरीके द्वारोंको जब यवनोंने रोकलिया तब प्रज्वारने उसमें अग्निलगादी तो वह नगररक्षक (नाग) भी अत्यन्त सन्तप्त होनेलगा ॥ १३ ॥ यह नाग जब अत्यन्त दुःखसे कातरहोकर पुरी की रक्षा न करसका तब उसने अग्निसे जलतीहुई नगरी से इसप्रकार निकलनाचाहा, जैसे जलते हुए वृक्षके खोरखलसे सर्प निकलना चाहे ॥ १४ ॥ जिससमय राजापुरंजन का शरीर शिथिलहो गया और गन्धर्वोंने बलको नष्ट करदिया तथा यवनों ने चारोंओरसे ग्रस लिया, तब वह रोनेलगा (कफसे कण्ठ घरघरानेलगा) ॥ १५ ॥ पुत्र, कन्या, बंधु,जामाता, पौत्र, भृत्य और केवल स्वत्व अवशिष्टवाला घर (भोग न होसकनेके कारण घर आदिमें केवल मोहही मात्र रहगयाथा) सुहृद,

अहंममेतिस्वीकृत्यगृहेषुकुमतिर्गृही । दध्यौप्रमदयादीनो विप्रयोगउपस्थिते॥१७॥ लोकांतरंगतवतिमय्यनाथाकुटुम्बिनी । वर्तिष्यतेकथंत्वेषाबालकाननुशोचती १८ नमय्यनाशितेभुङ्क्तेनास्नातेस्नातिमत्परा । मयिरुष्टेसुसंत्रस्ताभर्त्सितेयतवाग्भयात॥१९॥ प्रबोधयतिमामज्ञंव्युषितेशोककर्शिता । वर्त्मैतद्गृहमेधीयंवीरसूरपि नेष्यति॥२०॥कथंनुदारकादीनादारकीर्वापरायणाः । वर्तिष्यन्तेमयिगतेभिन्ननावइवोदधौ ॥ २१ ॥ एवंकृपणयाबुद्धयाशोचन्तमनदर्हणम् ।ग्रहीतुंकृतधीरेनंभयनामाभ्यपद्यत ॥ २२ ॥ पशुवद्यवनैरेषनीयमानःस्वकंक्षयम् । अन्वद्रवन्ननुपथाःशोचन्तो भृशमातुराः ॥ २३ ॥ पुरींविहायोपगतउपरुद्धोभुजंगमः । यदातमेवानुपुरीविशीर्णाप्रकृतिंगता ॥ २४ ॥ विकृष्यमाणःप्रसभंयवनेनबलीयसा । नाविंदत्तमसाऽऽविष्टःसखायंसुहृदंपुरः ॥ २५ ॥ तंयज्ञपशवोऽनेनसंज्ञप्तायेऽदयालुना । कुठारैश्चिच्छिदुःक्रुद्धाःस्मरन्तोऽमीवमस्यतत् ॥ २६ ॥ अनन्तपारेतमसिमग्नोनष्टस्मृतिःसमाः । शाश्वतीरनुभूयार्तिंप्रमदासङ्गदूषितः ॥२७॥ तामेवमनसागृह्णन्बभूवप्रमदोत्तमा । अनंतरंविदर्भस्यराजसिंहस्यवेश्मनि ॥ २८ ॥ उपयेमेवीर्यपणांवैदर्भीं मलयध्वजः । युधिनिर्जित्यराजन्यान्पाण्ड्यःपरपुरंजयः ॥ २९ ॥ तस्यांसंजनयां

भंडार, सामग्री इत्यादिक जो था ॥ १६ ॥ उसे अहंता और ममतासे अपना जानकर दुर्मति से बँधाहुआ वह विचारा गृहस्थी पुरंजन स्त्रीके वियोग समय में सोचनेलगा ॥१७॥ कि जब मैं यहां से दूसरेलोकको चलाजाऊगा तब यह अनाथा कुटुंबवाली स्त्री पुत्रादिकोंका दुःख करतीहुई किस भांति कालक्षेप करेगी ॥१८॥ यह बिना मेरेभोजन कराये भोजन नहीं करती स्नान कराये बिना स्नाननहीं करती जब मैं क्रोध करताहू तो डरजाती है और मेरेललकार देनेसे चुप रहजाती है १९ जब मैं अज्ञानी होजाताथा तब ज्ञान देतीथी जब मैं परदेशको जाताथा तब शोकान्वित रहती थी यह पुत्रवती मेरेपीछे किसभांति गृहस्थाश्रमको चलावेगी यहतो विरहसे कातरहोकर मरजायगी ॥ २० ॥ यह दीन पुत्रादिक, स्त्री, धन, पुत्री मेरेपीछे कैसे रहेंगी? इनकी इसभांति दशाहोगी जैसे समुद्रके बीचमें जहाज टूटनेसे जहाजवाले मनुष्योंकी होती है ॥ २१ ॥ वहदीन राजापुरंजन शोक योग्य न होनेपरभी (ईश्वरका अंशहोनेसे) दीनबुद्धिसे शोक करनेलगा, इतनेमें इसके पकडनेको यवनेश्वर भय आपहुँचा ॥२२॥ यवन लोग जब इस पुरंजन को पशुकी नाईं बांधकर अपने स्थान की ओरको लेचले तब उसके कुटुंबी अत्यन्त शोकातुर हो इसके पीछे दौडे ॥ २३ ॥ यवनो के सब प्रकारसे दुःख देनेपर वह सर्प भी उस पुरी को छोडकर चला,उसके बाहर निकलतेही वह नगरी फैलगई और फिर वह पंच महाभूतों में मिलगई ॥२४॥ जबबली यवन बल पूर्वक उसे खैंच कर ले जाने लगा तोभी अज्ञान से घिरे हुए इस राजा पुरंजन को अपने प्रथम सखा का स्मरण न हुआ ॥२५॥ इस पुरंजन ने कठोरता से जिन२ पशुओंका बध सकाम कर्मों में कियाथा उन२ जीवों नें उसके अपराध का स्मरण कर क्रोध बशहो उसे कुल्हाडियों से काटना आरम्भ किया ॥ २६ ॥ उस राजा पुरंजन की कि जो स्त्री प्रसंग से दूषित तथा, स्मृति नाश होगई और अनेकों वर्ष अत्यन्त घोर अंधकार युक्त नरक में पडारहा ॥ २७ ॥ और चित्त में उसी स्त्री का स्मरण रहने से फिर उसने बिदर्भ (शास्त्रानुसार सत्कर्म करनेवाला महाराजके गृह में पुत्री का जन्म पाया ॥२८॥ उसका स्वयम्बर हुआ उस में मलयध्वज पांड्य राजा (बुद्धिमान) नें जो शत्रुजित और दक्षिणदेश में भक्ति अधिक होनें के कारण महा बैष्णव ज्ञात होता है) में श्रेष्ठ कहाजाता था संग्राम में दूसरे राजाओं का बिजय कर उस बैदर्भी को ब्याहा ॥ २९ ॥ उस मलयध्वज ने बैदर्भी में एक पुत्री उ-

चक्र आत्मजामसितेक्षणाम् । यवीयसः सप्तसुतान्सप्तद्रविडभूभृतः ॥ ३० ॥ एकै कस्याभवत्तेषांराजन्नर्बुदमर्बुदम् । भोक्ष्यतेयद्वंशधरैर्महीमन्वंतरंपरम् ॥ ३१ ॥ अगस्त्यःप्राग्दुहितरमुपयेमेधृतव्रताम् । यस्यांदृढच्युतोजातइध्मवाहात्मजोमुनिः॥ ३२ ॥ विभज्यतनयेभ्यःक्ष्मांराजर्षिर्मलयध्वजः । आरिराधयिषुःकृष्णंसजगामकुलाचलम् ॥ ३३ ॥ हित्वागृहान्सुतान्भोगानवैदर्भीमदिरेक्षणा । अन्वधावतपाण्ड्येशंज्योत्स्नेवरजनीकरम् ॥ ३४ ॥ तत्रचंद्रवसानामताम्रपर्णीवटोदका।तत्पुण्य सलिलैर्नित्यमुभयत्रात्मनोमृजन् ॥ ३५ ॥ कंदाऽष्ठिभिर्मूलफलैःपुष्पपर्णैस्तृणोदकैः वर्तमानःशनैर्गात्रकर्षणंतपआस्थितः ॥ ३६ ॥ शीतोष्णवातवर्षाणिक्षुत्पिपासेप्रियाप्रिये । सुखदुःखइतिद्वन्द्वान्यजयत्समदर्शनः ॥ ३७॥ तपसाविद्ययापक्वकषायोनियमैर्यमैः । युयुजेब्रह्मण्यात्मानंविजिताक्षानिलाशयः ॥ ३८ ॥ आस्तेस्थाणुरिवैकत्रदिव्यंवर्षशतंस्थिरः । वासुदेवेभगवतिनान्यद्वेदोद्वहन्रतिम् ॥ ३९ ॥ सव्यापकतयात्मानंव्यतिरिक्ततयात्मनि । विद्वान्स्वप्नइवामर्शसाक्षिणंविरराम ह ॥४०॥

उत्पन्न की कि जो श्याम नेत्रवाली और श्रीकृष्ण की भक्ति परायण थी इसके उपरांत उस राजाके सात पुत्र (श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वंदन, और दास्य भाव) उत्पन्न हुए यह सातो द्रविड देश के राजा हुए (यह बाद विदित है कि द्रविड देश में श्रवण कीर्तन आदि द्वारा भक्ति होती है) ॥ ३० ॥ हे राजन् ! इन में एक २ के अर्बुद २ पुत्र (श्रवणादिक भक्ति सात्विक राजस और तामसादिक नाना भेद हैं) उत्पन्न हुए जिन के वंशधर (नाना भांति के संप्रदाय) मन्वंतर से भी कुछ अधिक समय तक भूमि को भोगेगें (अज्ञान आदि से रक्षा करेंगे) ॥ ३१ ॥ पांड्य राजा की पुत्री का कि जो श्रेष्ठ नियमों (शम, दम, इत्यादिक) का प्रतिपालन करती थी अगस्त (मन) मुनि के संग विवाह हुआ, तदुपरांत इस स्त्री से अगस्त मुनि ने दृढ च्युत नाम (वैराग्य) पुत्र उत्पन्न किया और दृढच्युत के इध्मवाह नाम पुत्र हुआ । (वेदमें लिखा है कि ब्रह्मज्ञान के हेतु गुरूके समीप जाय तो समिध हाथमें रक्खे इसी हेतु इध्म समिध । वाह–उठानेवाला अर्थात् समिध उठानेवाला यह अर्थ है इससे गुरूके शरणजाना विदित होता है–तथा वैराग्य होने से गुरूकी शरणमें जासकता है इसी से वैराग्य और इध्म वाह का पिता पुत्रका सम्बन्ध कहागया है) ॥ ३२ ॥ वह पांड्यराजा अपने पुत्रोंको भूमि विभागकर ईश्वराराधन के हेतु कुलाचल पर्वतपर जानेलगा ॥ ३३॥ तब मद भरे नेत्रवाली रानी वैदर्भी जिसभांति चन्द्रिका चन्द्रमाके पीछे जाती है; उसीभांति घर, पुत्र, और ऐश्वर्योंको, त्यागकर अपने स्वामीके पीछे चली (स्त्रियोंको स्वामी सेवाही मुख्यहै) ॥ ३४ ॥ वहां ताम्रपर्णी, चन्द्रवशा, और वटोदका नाम नदियां हैं उनके पुण्य पवित्र जलसे मज्जनकर दोनों स्त्री पुरुषोंने अपने अन्तःकरणकी शुद्धि और शरीरके मलोंका नाशकिया ॥ ३५ ॥ वह राजा कन्द, मूल, फल, फूल, दल, तृण, और जल, इनको धीरे २ भक्षण करताहुआ देह सुखानेके हेतु तपमें स्थितहुआ ॥ ३६ ॥ यह राजा शीत, गर्मी, पवन, वर्षा, क्षुधा प्यास, प्रिय अप्रियका सहनकर दुःख, सुखको जीत समदर्शी होगया ॥ ॥ ३७ ॥ जिसकी वासनायें तप और उपासनासे तथा यम नियमसे निवृत्त होगई हैं ऐसे राजाने इन्द्रियें पवन और मनको जीतकर अपने आत्माको परमात्मामें लगाया ॥ ३८ ॥ वह राजास्थाणु की नाई एकही स्थानपर देवताओं के दिव्य सौवर्षतक स्थितरहा और भगवान में प्रीति रखने के कारण उसे देहादिकका कुछज्ञान न रहा॥३९॥आत्मा देहादिक और अन्तःकरणका प्रकाशकहोने से उनसेपृथक्है.स्वप्नकालमें स्वप्नकीबातका जाननेवालाआत्मा जिसप्रकार स्पष्टरीतिसेपृथक् निश्चय होताहै उसीभांति जाग्रत् अवस्थामें भी सम्पूर्ण भांतिकी अन्तःकरणकी वृत्तियोंसे उन वृत्तियोंका

साक्षाद्भगवतांक्तेनगुरुणाहरिणानृप । विशुद्धज्ञानदीपेनस्फुरताविश्वतोमुखम् ४१
परेब्रह्मणिचात्मानंपरंब्रह्मतथात्मनि । वीक्षमाणोविहायेक्षामस्मादुपरराम ह ॥ ४२॥
पतिंपरमधर्मज्ञंवैदर्भीमलयध्वजम्। प्रेम्णापर्यचरद्धित्वाभोगान्सापतिदेवता ॥४३॥
चीरवासाव्रतक्षामावेणीभूतशिरोरुहा। बभावुपपतिंशांताशिखाशांतमिवानलम्४४
अजानतीप्रियतमंयदोपरतमङ्गना । सुस्थिरासनमासाद्ययथापूर्वमुपाचरत् ॥४५॥
यदानोपालभतांघ्रावूष्माणंपत्युरर्चती । आसीत्संविग्नहृदयायूथभ्रष्टामृगीयथा४६
आत्मानंशोचतीदीनमबंधुंविक्लवाऽश्रुभिः । स्तनावासिच्यविपिनेसुस्वरंप्ररुरोदसा
॥ ४७ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठराजर्षेइमामुदधिमेखलाम् । दस्युभ्यःक्षत्रबंधुभ्योबिभ्यतीं
पातुमर्हसि ॥ ४८ ॥ एवंविलपतीबालाविपिनेऽनुगतापतिम् । पतितापादयोर्भर्तू
रुदत्यश्रूण्यवर्तयत् ॥ ४९ ॥ चितिंदारुमयींचित्वातस्यांपत्युःकलेवरम् ।आदीप्य
चानुमरणेविलपन्तीमनोदधे ॥ ५० ॥ तत्रपूर्वतरःकश्चित्सखाब्राह्मणआत्मवान् ।
सांत्वयन्वल्गुनासाम्नातामाहरुदतींप्रभो॥५१॥ब्राह्मणउवाच ॥ कात्वंकस्यासिको
वाऽयंशयानोयस्यशोचसि । जानासिकिंसखायंमांयेनाग्रेविचचर्थह ॥ ५२ ॥अपि
स्मरसिचात्मानमविज्ञातसखंसखे । हित्वामांपदमन्विच्छन्भौमभोगरतोगतः ५३॥

प्रकाश करनेवाला आत्मा पृथक् है, इसप्रकार जाननेवाला पांड्य दूसरी सम्पूर्ण वस्तुओंसे विरामको प्राप्तहुआ ॥ ४० ॥ जिसको भगवान रूप गुरुने वेदमें प्रतिपादन कियाहै ऐसे विशुद्ध निर्मलज्ञान रूप दीपकका चारोंओर अपार प्रकाश होनसे ॥ ४१ ॥ जो ब्रह्महै वही मैंहूं, जो मैंहूं वही ब्रह्महै, यह यथार्थ जाननेमें आया—यह यथार्थ ज्ञानभी एकप्रकारकी अन्तःकरणकी वृत्तिहै इसकारण इससेभी उपराम प्राप्त होनेपर वह जीवन्मुक्त हुआ ॥ ४२ ॥ पतिव्रता वैदर्भी कि जो सम्पूर्ण सुखोंको छोड़ परमपवित्र अपने पति मलयध्वज की परिचर्या प्रेमपूर्वक करती थी ॥ ४३ ॥ वह रानी नियमों के पालन करने के कारण अत्यन्त जीर्ण शरीरहो गईथी और शिर के बाल उलझ गये थे तथा वल्कलवस्त्र धारण किये रहती थी। वह अपने स्वामी के निकट रहनेसे उसी की भांति ऐसे शांतिरूप होगईथी जैसे धूम्ररहित अग्नि की प्रचण्डता अग्निके शान्त होने से आपही शान्त होजाती है ॥ ४४ ॥ वह अपने पतिको मराहुआ न जानकर पूर्वकी समान स्थिरभावसे सेवा करने लगी ॥ ४५ ॥ परन्तु जब सेवा करते २ पैरों में गर्मी न जानपड़ा तो झुण्डसे छूटीहुई हरिणी की सदृश अत्यन्तही शोकान्वितहुई ॥ ४६ ॥ वह रानी अनाथदीन की भांति अपने आत्मा का शोच कर अश्रुधारासे स्तनों को सींचतीहुई, अति दुःखित हो उस गम्भीरबन में बडे उच्चस्वरसे विलाप करने लगी ॥ ४७ ॥ हे राजर्षे! उठो २ यह भूमि नीचक्षत्रियों तथा चोरोंसे भयभीत होरही है. आप समुद्रतक इसकी रक्षाकरिये कारण कि इसभयके दूरकरनेयोग्य आपही हो ॥ ४८ ॥ यह वैदर्भी इसभांति सन्ताप करतीहुई, बनमें रोतीहुई स्वामीके पीछेजा चरणोंमें गिर अश्रुधारा बहानेलगी ॥ ४९ ॥ फिर रोते २ मनमें धैर्य्यधारणकर लकड़ियोंकी चितावना उसपर स्वामीकी देहरखकर उसमें अग्निलगा आपभी उस चिता में बैठने को प्रस्तु हुई ॥ ५० ॥ हेराजन्! उस समय इसका प्रथमसखा (ईश्वर) जाकि बड़ा बुद्धिवानथा वह ब्राह्मण के रूपसे व यहांआया और शान्तिदेते हुये मीठी वाणीसे कहा ॥ ५१ ॥ ब्राह्मणबोला कि तू कौन है! और जिसकीकन्या है तथा यह चितामें सोनेवाला कौन है कि जिसके हेतु तू इतनी कातरहोरही है, तू मुझे जानती है कि नहीं; मैं तेरा मित्रहूं, सृष्टिकी आदिमें तूने मुझमें स्थित होकर बहुतसे भोग किये हैं ॥ ५२ ॥ हेसखे! तू मुझे तो जानताहोगा किन्तु इतना तो मुझकोभी स्मरण है? कि मेरे एक अविज्ञात नामक (अनादि ईश्वर) सखाथा—और वह मुझको त्यागकर संसारि विषयोंके भोगनका स्थान खोजने

हंसावहं च त्वं चार्य सखायौ मानसायनौ । अभूतामन्तरा वौकः सहस्रपरिवत्सरान् ॥५४
स त्वं विहाय मां बन्धो गतो ग्राम्यमतिर्महीम् । विचरन्पदमद्राक्षीः कयाचिन्निर्मितं स्त्रिया
॥ ५५ ॥ पञ्चारामं नवद्वारमेकपालं त्रिकोष्ठकम् । षट्कुलं पञ्चविपणं पञ्चप्रकृति स्त्री
धवम् ॥ ५६ ॥ पञ्चेन्द्रियार्था आरामा द्वारः प्राणा नव प्रभो । तेजोऽबन्नानि कोष्ठानि
कुलमिन्द्रियसंग्रहः ॥ ५७ ॥ विपणस्तु क्रियाशक्तिर्भूतप्रकृतिरव्यया । शक्त्यधीशः
पुमांस्तत्र प्रविष्टो नावबुध्यते ॥ ५८ ॥ तस्मिंस्त्वं रामया स्पृष्टो रममाणोऽश्रुतस्मृतिः ।
तत्सङ्गादीदृशीं प्राप्तो दशां पापीयसीं प्रभो ॥ ५९ ॥ न त्वं विदर्भदुहिता नायं वीरः सु-
हृत्तव । न पतिस्त्वं पुरंजन्या रुद्धो नवमुखे यया ॥ ६० ॥ माया ह्येषा मया सृष्टा यत्पुमांसं
स्त्रियं सतीम् । मन्यसे नोभयं यद्वै हंसौ पश्यावयोर्गतिम् ॥६१॥ अहं भवान्न चान्यस्त्वं
त्वमेवाऽहं विचक्ष्व भोः । न नौ पश्यन्ति कवयश्छिद्रं जातु मनागपि ॥६२॥ यथा पुरुष आ
त्मानमेकमादर्शचक्षुषोः । द्विधाभूतमवेक्षेत तथैवान्तरमावयोः ॥६३॥ एवं स मानसो हंसो
हंसेन प्रतिबोधितः । स्वस्थस्तद्व्यभिचारेण नष्टामाप पुनः स्मृतिम् ॥६४॥ बर्हिष्मन्
एतदध्यात्मं पारोक्ष्येण प्रदर्शितम् । यत्परोक्षप्रियो देवो भगवान् विश्वभावनः ॥६५॥

इति श्रीमद्भा० च० पुरंजनोपाख्यानवर्णनो नाम अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

गयाथा ॥ ५३ ॥ हे सखे! हम और तुम दोनोंही मानसरोवर (हृदय) के रहनेवाले हंस (शुद्ध) हैं सो हम तुम दोनों मित्र सहस्रों वर्षतक बिनाही स्थानके रहेथे (महाप्रलय तक) ५४ हे बन्धो ! तू मुझे छोड़कर संसारि सुखोंकी कामनासे भूमिपर गया वहां एक स्त्री (माया) रचित पुरी दृष्टिपड़ी ॥ ५५ इसनगरीमें पांच उपवन, नौद्वार, एक पुररक्षक तीन किले, छःव्योपारी पांच दूकानें तथा पांचही मूलकारणथे, और एक स्त्री यहांकी रानीथी ॥५६॥ हे राजन् ! वहांके पांच उपवन शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धको जानो देहके नौ छिद्रोंको नौद्वार समझो प्राणको नगर रक्षक मानो, पृथ्वी, जल, तथा तेजको किला, पांचों ज्ञानेंद्री तथा छठे मनको व्यापारी समझो॥५७ पांचों कर्मेद्रियों को दूकानें समझो, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पंचमहाभूतोंको मूल कारण जानों तथा बुद्धिको उसकी रानी जानों कि जिसके आधीन होकर उसका स्वामी आत्मा अपने रूपको भूल जाताहै ॥५८॥ तू इसपुरीमें जाकर वहांकी स्वामिनी का सेवक बनकर उसके संग भोग करने-लगा इससे तू अपने रूपको भूलगया हे सखे ! स्त्री प्रसंगसेही तेरी यह बुरी दशाहुईहै॥५९॥ तू राजा विदर्भकी न तो कन्याहै न राजा मलयध्वज तेरा पति है तथा जिसरानी (बुद्धि) ने तुझे अपने नौद्वारवाली पुरीमें अटका रक्खाथा उसका तू स्वामीभी नहींहै ॥ ६० ॥ प्रथम जन्ममें तू अपनी आत्मा को पुरुष मानताथा और अब इस जन्ममें स्त्री मानताहै परन्तु वास्तवमें यह दोनोंबातें झूंठ हैं कारण कि यह तो मेरी बनाईहुई मायाहै । हम तुम दोनों हंसहैं अब तू मेरे सत्य स्वरूपको ध्यान देकर सुन ॥ ६१ ॥ हे जीव ! जो मैंहूं, वही तूहै और जो तूहै वही मैंहूं इसवार्त्ताको तू भलीप्रकार विचारकर देख, विवेकी पुरुष मुझमें और तुझमें कदापि भेदभाव नहीं देखते॥६२॥ जैसे एक शरीर का प्रतिबिंब आदर्शमें देखाजाय तो दीर्घविमल और स्थिर देखनेमें आताहै वहीदेह किसी दूसरे दर्पण में आनेही नेत्रोंसे लघुमलीन और चंचल दृष्टि आताहै, इसमें दर्पणके भलेबुरे का भेदहै प्रतिबिंबका भेद नहीं, इसीप्रकार दोनोंमें विद्या और अविद्यारूप उपाधिका भेदहै वास्तवमें किंचित्मात्रभी भेद नहीं ॥ ६३ ॥ जब उस हंसने मानसरोवर के हंसको इसभांति समझाया तब उसको प्रथम स्मृति (मैं ब्रह्महूं) कि जो प्रथम हंसके वियोगसे नाश होगईथी प्राप्त हुई ॥ ६४ ॥ हे राजा प्राचीन-बर्हि ! यह अध्यात्मज्ञान मैंने तुझको परोक्षरीतिसे दिखाया है कारणकि विश्वभावन भगवान इसप-रोक्षरीतिमें अत्यन्तही प्रसन्न होते हैं ॥६५॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे सरलाभाषाटीकायां अष्टविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

प्राचीनबर्हिरुवाच ॥ भगवंस्तेवचोऽस्माभिर्न सम्यगवगम्यते । कवयस्तद्वि-जानन्ति नवयंकर्ममोहिताः ॥ १ ॥ नारदउवाच ॥ पुरुषंपुरंजनंविद्याद् यद्व्यन-क्त्यात्मनःपुरम् । एकद्वित्रिचतुष्पादं बहुपादमपादकम् ॥ २ ॥ योऽविज्ञाताहृतस्त स्य पुरुषस्यसखेश्वरः । यन्नविज्ञायते पुंभिर्नामभिर्वाक्रियागुणैः ॥ ३ ॥ यदाजि-घृक्षुःपुरुषः कात्स्र्न्येनप्रकृतेर्गुणान् । नवद्वारंद्विहस्तांघ्रि तत्रामनुतसाध्विति ॥ ४॥ बुद्धिंतुप्रमदां विद्यान्ममाहमिति यत्कृतम् । यामधिष्ठायदेहेऽस्मिन् पुमान्भुंक्तेऽक्ष भिर्गुणान् ॥ ५ ॥ सखायइन्द्रियगणा ज्ञानंकर्मचयत्कृतम् । सख्यस्तद्वृत्तयःप्राणः पंचवृत्तिर्यथोरगः ॥ ६ ॥ बृहद्बलंमनो विद्यादुभयेन्द्रियनायकम् । पंचालाःपंच विषया यन्मध्येनवखंपुरम् ॥ ७ ॥ अक्षिणीनासिकेकर्णौ मुखंशिश्नगुदाविति । द्वे द्वेद्वारौबहिर्याति यस्तदिन्द्रियसंयुतः ॥ ८ ॥ अक्षिणीनासिकेआस्यमिति पंचपुरः कृताः । दक्षिणादक्षिणःकर्ण उत्तराचोत्तरःस्मृतः ॥ ९ ॥ पश्चिमेइत्यधोद्वारौगुदं शिश्नमिहोच्यते । खद्योताविर्मुखीचात्रनेत्रे एकत्रानिर्मिते ॥ रूपं विभ्राजितंताभ्यां विचष्टेचक्षुषेश्वरः ॥११॥ नलिनीनालिनीनासे गन्धःसौरभउच्यते । घ्राणोऽवधूतो मुख्याऽऽस्यं विपणोवाग्रसविद्रसः ॥११॥ आपणोव्यवहारोऽत्र चित्रमन्धोबहूदन म् । पितृहूर्दक्षिणःकर्ण उत्तरोदेवहूःस्मृतः ॥१२॥ प्रवृत्तंचनिवृत्तंचशास्त्रं पंचालसं

राजा प्राचीनबर्हि बोले कि हे मुनि ! आपकी बातें मेरी बुद्धि में नहीं आसकती कारण कि ऐसी बातों तो आत्म वेत्ताही जान सकते हैं हम सरीखे कर्मासक्त मनुष्य इसे कैसे जान सकते हैं इस लिये मुझको फिर से समझाकर कहो ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि हे राजन् ! पुरंजन राजा को जीवजानो जो अपनी आत्मा से पुरुष को चैतन्य करता है उन पुरुष देहों में से कितनेही एक पांव के और कितने ही दो कितनेही तीन कितनेही चार पांव और कितनेही बहुत से और कितनेही बिना पांवकेभी हैं ॥ २ ॥ और अविज्ञात नामक जो जीवका मित्र कहा है उसको ईश्वर जानना चाहिये, वह ईश्वर नाम व क्रिया करके भी पुरुषों के जानने में नहीं आता ॥ ३ ॥ जिस समय इस जीवको सम्पूर्ण विषय भोगने की इच्छा हुई तब इसने उन देहों में से नौछिद्र तथा दो हाथ और दो पांव वाले मनुष्य देह को उत्तम जाना ॥ ४ ॥ बुद्धिको स्त्री जानो कि जिसके कारण मैं और मेरा करने में आता है तथा जिसके द्वारामे जीव इंद्रियों करके विषयों का भोग करता है ॥ ५ ॥ उस बुद्धि के जो मित्र कहेगये हैं वह इन्द्रियां हैं कि जिन में कितनी इन्द्रियों से विषय का ज्ञान तथा कितनी एक से कर्म ही होता है और उसकी सहेलियां इन्द्रियों की वृत्तियां हैं तथा पांच मस्तक वाला सर्प प्राण है ॥ ६ ॥ बलवान सेनापति मनहै कि जो मन इंद्रियों का नायक है पांचो विषय पांचालदेश हैं कि जिस में नौ द्वार का पुर है ॥ ७ ॥ नाक २ कान २ आंख २ मुख १ लिंग १ गुदा १ इन द्वारों से इंद्रियों के संग वह जीव बाहरजा या करता है ॥ ८ ॥ आंख २ नाक २ मुख १ यह पांच पूर्व दिशा के द्वारहैं दाहिना कान दक्षिण का बायां कान उत्तर का तथा लिंग और गुदा पश्चिमके द्वार हैं ॥ ९ ॥ जो एक सीध में बनेहुये खद्योता और आविर्मुखी नामक द्वार कहे गये हैं वह नेत्र हैं कि जिन से होकर जीवात्मा चक्षु इं-द्रिय की सहायतासे रूप को देखता है ॥ १० ॥ नलिनी और नालिनी नामक द्वार नासिका है और सौरभदेश गंध है तथा अवधूत सखा घ्राणेन्द्रिय है, मुख्य नामक द्वार मुख है विपण और रसज्ञ अर्थात् वाणी और रसना इन्द्रिय इस के सखा हैं ॥ १२ ॥ आपण देश तो भाषण और बहु दूनदेश नानाभांतिका अन्नहै पितृहू नाम दाहिना कान और देवहूनाम बायांकानहै १२॥

क्षिनम् । पितृयानंदेवयानं श्रोत्राच्छ्रुतधराद्व्रजेत् ॥१३॥ आसुरीमेढ्रमर्वाग्द्वार्व्यवा- यो ग्रामिणांरतिः । उपस्थोदुर्मदःप्रोक्तो निर्ऋतिर्गुदउच्यते ॥ १४ ॥ वैशसंनरकं पायुर्लुब्धकोऽन्धौतुमेशृणु । हस्तपादौपुमांस्ताभ्यां युक्तोयातिकरोतिच ॥ १५ ॥ अन्तःपुरंचहृदयं विषूचिर्मनउच्यते । तत्रमोहंप्रसादंवाहर्षंप्राप्नोतितद्गुणैः ॥१६॥ यथायथाविक्रियते गुणाक्तोविकरोतिवा । तथातथोपद्रष्टात्मा तद्वृत्तीरनुकार्यते ॥ १७ ॥ देहोरथस्त्विन्द्रियाश्वः संवत्सररयोगतिः । द्विकर्मचक्रस्त्रिगुणध्वजः पंचासुबंधुरः ॥ १८ ॥ मनोरश्मिर्बुद्धिसूतो हृन्नीडोद्वन्द्वकूबरः । पंचेन्द्रियार्थप्रक्षे पः सप्तधातुवरूथकः ॥ १९ ॥ आकूतिर्विक्रमोबाह्यो मृगतृष्णांप्रधावति । एकाद- शेन्द्रियचमूः पंचसूनाविनोदकृत् । संवत्सरश्चण्डवेगः कालोयेनोपलक्षितः ॥२०॥ तस्याहानीहगन्धर्वा गन्धर्व्योरात्रयःस्मृताः । हरंत्यायुःपरिक्रान्त्या षष्ट्युत्तरशत त्रयम् ॥ २१ ॥ कालकन्याजरासाक्षाल्लोकस्तां नाभिनन्दति । स्वसारंजगृहेमृत्युः क्षयाययवनेश्वरः ॥ २२ ॥ आधयोव्याधयस्तस्य सैनिकायवनाश्चराः । भूतोदस- र्गाशुरयः प्रज्वारोद्विविधोज्वरः ॥२३॥ एवंबहुविधैर्दुःखैर्दैवभूतात्मसंभवैः । क्लिश्यमा नःशतंवर्षं देहदेहीतमोवृतः ॥ २४ ॥ प्राणेन्द्रियमनोधर्मानात्मन्यध्यस्य निर्गुणः ।

दक्षिणपांचालदेशको प्रवृत्तिमार्गकाशास्त्र औरउत्तर पांचालदेशको निवृत्ति मार्ग का शास्त्रजानों श्रुतिधरश्रोत्र इंद्रियहै कि जिसके द्वाराशास्त्रआदि सुनकर देवलोक तथा पितृलोकको जीवजाता है ॥ १३ ॥ पश्चिम दिशाके आसुरीनाम द्वारको लिंगजानो उसका दुर्मदनाम सखा उपस्थेन्द्रिय है तथा जो व्यवाय देश कहागया है वह खलोंके करनेयोग्य मैथुन है निर्ऋति नामद्वारको गुदाकहतेहैं ॥ १४ ॥ जो लुब्धक कहाहै वहा वायु इंद्री और वैशस देश नरक है । हाथ और पांव यह अन्ध द्वार हैं कि जिससे जीव कामकरताहै और चलता है॥ १५ ॥ हृदय को महल और मन को जीवका संगी कहा है कि जिस मनके सत्व,रज,तथा तमोगुण से हृदयमें मोह, प्रमाद और हर्ष प्राप्तहोता है ॥ १६ ॥ जीवात्मा स्वयंसाक्षी है, तोभी बुद्धि के गुणों से घिरेरहने के हेतु सबकर्मों को किजो (दर्शन स्पर्शन,आदिक) बुद्धिकरती है अपनेही कियेहुए मानता है तथा जाग्रतअवस्था में उसी के अनुसार इंद्रियों के परिणामों को लौटतारहता है और स्वप्नावस्था में भी वैसेही विकार को प्राप्तहोता है १७॥ इस स्वप्नावस्था की देहको रथ कहा है तथा इन्द्रियों को घोडे पाप पुण्य को पहिये तीनों गुणोंको तीन बांस तथा पांच प्राणों को पांच बन्धन के रस्से जानो और वर्ष की गतिको रथ की गति जानो ॥ १८ ॥ मनही बागडोर बुद्धि को सारथी के बैठने का स्थान हृदय सुख दुःखादि द्वन्द जुआ और पांच विषयों को सामग्री और सप्त धातुओं को पर्दा कहागया है ॥१९॥ आकूति जो प्राणोंकी शक्ति है वही रथ का पराक्रम है उसके संगकी सेना ग्यारह इन्द्रियां हैं और आखेट पांचो ज्ञानेन्द्रियों के विषयों का भोगकरना है और चंडवेग गन्धर्व, संवत्सर है जिससे काल उपस्थित होता है ॥ २० ॥ ३६० गन्धर्व जो कहे सो वर्षके दिन हैं और इतनीही श्वेत तथा काली गन्धर्व-पत्नियें शुक्ल तथा कृष्णपक्ष की रात्रियें हैं कि जो रात दिन आयुर्दा को क्षीण करती हैं ॥ २१ ॥ लोकको अप्रिय जो काल कन्या कही वह बुढापा है यवनेश्वर मृत्युनें इस काल कन्या को लोक के नाश करनें के हेतु अ- पनी भगनी प्रमाणित की है ॥ २२ ॥ मृत्यु के चारों ओर घूमने वाले यवन सैनिक, आधिव्याधि हैं और प्रज्वारनामक सखा शीत और उष्ण दोप्रकारको जो मनुष्योंको अत्यन्तही दुःखदेताहै २३ इस भांति अधि दैहिक, दैविक अधिभौतिक और देह कृत बुरे व्यसनों के दुःखों से दुःखित हो कर सौवर्ष तक ॥ २४ ॥ वह अज्ञानी पुरुष स्वयं निर्गुण होने परभी प्राण, इन्द्रिय और मन के

शेतेकामलवान्ध्यायन्ममाहमिति कर्मकृत् ॥ २५ ॥ यदात्मानमविज्ञाय भगवन्तं परंगुरुम् । पुरुषस्तुविषज्जेत गुणेषुप्रकृतेःस्वदृक् ॥ २६ ॥ गुणाभिमानीसतदा कर्माणिकुरुतेऽवशः । शुक्लंकृष्णंलोहितंवा यथाकर्माभिजायते॥२७॥शुक्लात्प्रकाश भूयिष्ठांल्लोकानाप्नोति कर्हिचित् । दुःखोदर्कान्क्रियायासांस्तमः शोकोत्कटान्क्वचित् ॥ २८ ॥ क्वचित्पुमान्क्वचिच्चस्त्री क्वचिन्नोभयमन्धधीः । देवोमनुष्यस्तिर्यग्वा यथाकर्मगुणंभवः ॥ २९ ॥ क्षुत्परीतोयथादीनः सारमेयोगृहंगृहम् । चरन्विन्दतियद्दिष्टं दण्डमोदनमेववा ॥ ३० ॥ तथाकामाशयोजीव उच्चावचपथाभ्रमन् उपर्यधोवामध्येवा यातिदिष्टंप्रियाप्रियम् ॥ ३१ ॥ दुःखेष्वेकतरेणापि दैवभूतात्महेतुषु । जीवस्यनव्यवच्छेदः स्याच्चेत्तत्तत्प्रतिक्रिया ॥ ३२ ॥ यथाहिपुरुषोभारं शिरसागुरुमुद्वहन् । तंस्कन्धेनसआधत्ते तथासर्वाःप्रतिक्रियाः ॥ ३३ ॥नैकांततः प्रतीकारः कर्मणांकर्मकेवलम् । द्वयंह्यविद्योपसृतं स्वप्नेस्वप्नइवानघ ॥ ३४ ॥ अर्थेह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्ननिवर्तते। मनसालिंगरूपेण स्वप्नेविचरतोयथा॥३५॥अथात्मनोऽर्थभूतस्य यतोऽनर्थपरम्परा। संसृतिस्तद्व्यवच्छेदो भक्त्यापरमयागुरौ ३६ वासुदेवेभगवति भक्तियोगःसमाहितः। सध्रीचीनेनवैराग्यंज्ञानंचजनयिष्यति३७ सोऽचिरादेवराजर्षे स्यादच्युतकथाश्रयः । शृण्वतः श्रद्दधानस्य नित्यदास्याद-

धर्मोंको अपनेमें स्थापनकर अल्पविषयोंकी कांक्षा रखकर अहंता ममतासे कर्म करताहुआ शरीर में रहाकरता है ॥ २५ ॥ जब यह जीवात्मा परमगुरु भगवानको न जानकर अविद्या जनित पदार्थों (देह इत्यादिक) में आसक्त होजाताहै ॥ २६ ॥ जब वह गुणोंसे अभिमानको प्राप्तहुआ जीव परवशहोकर सात्विक, राजस और तामस कर्म करताहुआ उन्हीं कर्मोंके अनुसार संसार में बारंबार जन्म लेता रहता है ॥ २७ ॥ सात्विककर्म करनेसे उत्तमकुलमें जन्मपाताहै । राजसकर्म से परिश्रम से भरेहुये दुःखदायी जन्म, मध्यमवंशमें और तामसकर्म करने से मूढ़ और दुःखसे परिपूर्ण क्लेशकारी लोगोंके घरमें उत्पन्नहोताहै ॥ २८ ॥ यह मूढ़ जीवात्मा निज कर्मानुसार किसी कालमें पुरुष, किसीमें स्त्री, कभी नपुंसक, कभी देवता और कभी पशु, कभी पक्षीकाजन्म पाताहै ॥ २९ ॥ जिसप्रकार भूखसे कातर होकर कुत्ता घर२ में भ्रमण करताहुआ कहीं चावल और कहीं लट्ठ भाग्यानुसार पाताहै ॥ ३० ॥ इसीभांति विषयासक्त जीव स्वर्ग पृथ्वी और अन्तरिक्षमें ऊंच नीच योनियोंमें भ्रमण करताहुआ भाग्यानुसार दुःख सुख पातारहताहै ॥३१॥ दुःख दूरकरनेका कोई यथार्थ उपाय तो हैही नहीं और यदि कियाभीजाय तो दैवसे प्राणियों से, और देहादिक दुःखों से वह किसीभांति भलीप्रकारसे नहीं मुक्त होसकता ॥ ३२ ॥ जैसे कि शिरपर धरेहुए बोझेको कंधेपर रखलेवे तो वह बोझउतराहुआ न कहलावेगा । ऐसेही दुःख मिटाने के जो उपाय हैं वहभी दुःखरूपही हैं, इसलिये प्राणी दुःखसे कभी नहीं छूटसकता ॥ ३३ ॥ दुःख उत्पन्न करनेवाले कर्मही हैं वह कर्म दूसरे कर्मोंसे कदापि नहीं दूरहोसकते; कारणकि कर्म ज्ञान रहित तथा वासना युक्त हैं इससे इसभांतिका एककर्म अपने दूसरेकर्मको यथार्थरीतिसे नहीं दूर करसकता जैसे पहिले देखे स्वप्नको दूसरा स्वप्न नहीं मिटा सकता ॥ ३४ ॥ मनकी स्वप्नावस्था में असत्य स्वप्नहोनेपरभी नहीं मिटसकता इसीभांति सृष्टि असत्यहै तौभी जबतक विषयोंकाध्यान मनमें रहताहै तबतक वह दूर नहीं होसकता ॥३५॥ इसलिये अज्ञान कि जिसके हेतुसे पुरुषार्थ रूप आत्माका अपार प्रवाहरूप जगतहुआहै उस अज्ञानकानाश केवल भगवद्भक्तिहीसे होताहै३६॥ यदि श्रीकृष्ण भगवानमें, अत्यन्त प्रीतिसे भक्तियोग कियाजाय तो उससे ज्ञान वैराग्य दोनोंउत्पन्न होते हैं॥३७॥हेराजन् ! भक्तियोग का आश्रय केवल भगवत कथाही है इस हेतु जो मनुष्य श्रद्धा

धीयतः ॥ ३८॥यत्रभागवता राजन्साधवो विशदाशयाः। भगवद्गुणानुकथन-श्रवणव्यग्रचेतसः ॥ ३९ ॥ तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्रपीयूषशेषसरितः परितःस्रवन्ति। तायेपिबन्त्यवितृषोनृपगाढकर्णैस्तान्नस्पृशन्त्यशनतृड्भयशोक-मोहाः ॥ ४० ॥ एतैरुपद्रुतोनित्यं जीवलोकः स्वभावजैः। नकरोतिहरेर्नूनं कथा-मृतनिधौरतिम् ॥ ४१ ॥ प्रजापतिपतिः साक्षाद्भगवान्गिरिशोमनुः। दक्षादयः प्रजाध्यक्षा नैष्ठिकाःसनकादयः ॥ ४२ ॥ मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यःपुलहःक्रतुः। भृगुर्वसिष्ठइत्येते मदन्ताब्रह्मवादिनः ॥ ४३ ॥ अद्यापि वाचस्पतयस्तपोविद्यास-माधिभिः। पश्यन्तोऽपिनपश्यन्ति पश्यन्तंपरमेश्वरम् ॥ ४४ ॥ शब्दब्रह्मणिदुष्पारे चरन्तउरुविस्तरे। मन्त्रलिंगैर्व्यवच्छिन्नं भजंतोनविदुःपरम् ॥ ४५ ॥ यदायमनु गृह्णाति भगवानात्मभावितः सजहातिमतिंलोके वेदेचपरिनिष्ठिताम् ॥ ४६ ॥ त-स्मात्कर्मसु बर्हिष्मन्नज्ञानादर्थकाशिषु। माऽर्थदृष्टिंकृथाः श्रोत्रस्पर्शिष्वस्पृष्टवस्तुषु ॥ ४७ ॥ स्वंलोकंनविदुस्तेवैयत्र देवोजनार्दनः। आहुर्धूम्रधियोवेदं सकर्मकमत-द्विदः ॥ ४८ ॥ आस्तीर्यदर्भैःप्रागग्रैः कार्त्स्न्येनक्षितिमण्डलम्। स्तब्धोबृहद्वधान्मानी कर्मनावैषियत्परम् ॥ तत्कर्महरितोषंयत्सा विद्यातन्मतिर्यया ॥ ४९ ॥ हरिर्देह-

पूर्वक भगवत कथा का श्रवण तथा कीर्तन करते हैं उन्हें थोडेही दिनों में भक्तियोग प्राप्त होजाताहै ॥ ३८ ॥ हेराजन्! ऐसे साधु वैष्णव लोग निर्मल अंतःकरण वाले जहां होवें कि जिनका चित्त सदैव भगवद्गुणों के श्रवण करने में व्याप्त रहता है ॥ ३९ ॥ वहां साधुओं के मुखसे भगवत् चरित्ररूप शुद्ध अमृत की नदियां सदैवहां चारोंओर बहाकरती हैं जो मनुष्य छलछिद्र रहित होकर सावधानता से इन सुधारूप नदियों का जल कानोंद्वारा पान करते हैं उन भक्तों को क्षुधा, तृषा, भय, शोक मोह कोई भी नहीं स्पर्शकर सकता ॥ ४० ॥ यदि बिना साधु संगति के आपही भगवत कथाका अध्ययन करने बैठें तो स्वाभाविक भूख प्यास इत्यादि बाधाओं से रस उत्पन्न होना अति कठिन है और बिना रस के भगवत कथारूप अमृत के समुद्र में यथोचित स्नेह का होना असम्भव है ॥ ४१ ॥ प्रजापतियों के पति साक्षात् ब्रह्माजी, शिवजी, मनु, दक्षादिक प्रजापति तथा सनकादिक नैष्ठिक ब्रह्मचारी ॥ ४२ ॥ मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलहक्रतु भृगु, वशिष्ठ, और मैं (नारद) ब्रह्मचारी ॥ ४३ ॥ अबतक वेद वेत्ताओं में निपुण तप विद्या, और समाधिसे सर्वव्यापक भगवानको देखरहे हैं तोभी उसको जाननहींसके हैं ॥ ४४ ॥ क्योंकि वेदका विस्तार और उसकी महिमा अपरंपार है और उसके अर्थभी अनन्त हैं इसकारण वेदवादी जोमहात्मा पुरुष हैं, वह वेदके मंत्रोमें कहेहुए चिन्हवाले इन्द्रादिक देवताओंकी कर्मके आग्रह सहित भक्तिकरते हैं, उनकोभी परमात्माका ज्ञानहोना महाकठिनहै ॥ ४५ ॥ इसकारण अंतःकरण में भलीप्रकार से ध्यान करनेपर ईश्वर जिसपर दयाकरतेहैं वहमनुष्य सांसारिक व्यवहार तथा कर्मकांडकी आसक्ति से छूटजाताहै ॥ ४६ ॥ हे राजन्! इसहेतु यज्ञादिक कर्म अज्ञानता के कारण पुरुषार्थकी सदृश ज्ञातहोते हैं वह बड़ाई सुननेसे कानोंहीको प्यारेलगते हैं परन्तु वास्तवमें सत्य बातका विचार नहीं करते उन्हें पुरुषार्थ रूपजानना यह विवेकियोंकाकाम नहीं है ॥ ४७ ॥ वेलोग अपने लोकको नहींजानते जहांभगवान जनार्दन विराजमानहैं, यज्ञके धूमसे मलिनबुद्धि वालेलोग कहते हैं किवेदका तात्पर्य केवल कर्मोंपरहै, वहमूर्ख वेदके यथार्थ अर्थको नहीं जानते और अकर्म वेदको सकर्म बताते हैं ४८ ॥ तूतोबड़ाही अज्ञानी है कि जिसतूने पूर्वकी ओर कुशोंसे भूमिको ढककर यज्ञोंमें नाना पशुओंकावध किया और उन्हें मारकर यज्ञकरके बड़ा अहंकारी बनगयाहै, तू सत्यकर्म तथा सत्य विद्याको नहीं जानता (अर्थात् वहकर्म और विद्या कि जिससे परमेश्वर प्रसन्नहोवें तथा उनमें चित्तलगजाय ॥ ४९ ॥

भूतानामात्मा स्वयंप्रकृतिरीश्वरः । तत्पादमूलंशरणं यतःक्षेमोनृणामिह ॥ ५० ॥ स-
वैप्रियतमश्चात्मा यतोनभयमण्वपि । इतिवेदसवैविद्वान्यो विद्वांसगुरुर्हरिः ॥५१॥
नारदउवाच ॥ प्रश्नएवंहिसंछिन्नो भवतःपुरुषर्षभ । अत्रमेवदतोगुह्यं निशामयसु
निश्चितम् ॥ ५२ ॥ क्षुद्रंचरंसुमनसांशरणेमिथित्वा रक्तंषडंघ्रिगणसामसुलुब्धक-
र्णम् । अग्रेवृकानसुतृपोऽविगणय्ययांतं पृष्ठेमृगंमृगयलुब्धकवाणभिन्नम् ॥ ५३ ॥
दण्डकम् ॥ सुमनःसमधर्मणांस्त्रीणांशरणआश्रमे पुष्पमधुगन्धवत्क्षुद्रतमं काम्य
कर्मविपाकजं कामसुखलवं जैह्वयौपस्थ्यादि विचिन्वन्तं मिथुनीभूय तदभिनि
वेशितमनसं षडंघ्रिगणसामगीतवदतिमनोहरवनितादि जनालापष्वतितरामति
प्रलोभितकर्णमग्रे वृकयूथवदात्मन आयुर्हरतोऽहोरात्रान्तान्काललवविशेषानवि-
गणय्य गृहेषु विहरन्तं पृष्ठतः एव परोक्षमनुप्रवृत्तो लुब्धकः कृतान्तोऽन्तःशरेणय
मिह पराविध्यति तमिममात्मानमहो राजन्भिन्नहृदयं द्रष्टुमर्हसीति ॥ ५४ ॥ सत्वं
विचक्ष्वमृगचेष्टितमात्मनोऽन्तश्चित्तं नियच्छहृदिकर्णधुनींचचित्ते । जह्यङ्गनाश्रमम
सत्तमयूथगाथं प्रीणीहिहंसशरणंविरमक्रमेण ॥ ५५ ॥ प्राचीनबर्हिरुवाच ॥ श्रुत
मन्वीक्षितं ब्रह्मन्भगवान्यदभाषत । नैतज्जानन्त्युपाध्यायाः किंनब्रूयुर्विदुर्यदि ॥५६
संशयोऽत्रतुमेविप्र संछिन्नस्तत्कृतोमहान् । ऋषयोऽपिहिमुह्यन्ति यत्रनेन्द्रियवृत्त

भगवानही सब प्राणियों के आत्माहैं तथा आपही प्रकृतिके ईश्वरहैं इसकारण उनके चरणों की शरण लेनसे मनुष्य को सब प्रकारके सुख प्राप्त होतेहैं ॥ ५० ॥ उनका रिझाना कुछ कठिन कार्य नहीं है; क्योंकि वह सबके प्यारे आत्माहैं उनके ध्यानमें किसीप्रकारका डरनहींहै जोमनुष्य इसभांति जानताहै वही विवेकीहै तथा जो विवेकी है वही गुरू व ईश्वरहै ॥ ५१ ॥ नारदजी बोले कि—हे राजन्! तुने मेरी कहीहुई कथाका जो स्पष्ट अर्थ पूँछा वह मैंने कहा, अब इस विषयमें पूर्ण निश्चय की हुई जो गुह्य वार्ताहै वह मैं कहताहूं उसे सुन ॥ ५२ ॥ तुच्छवस्तुओंका आहार करनेवाला एक मृग पुष्पोद्यानमें स्त्रीके सँग उसीमें मोहित होरहाहै उसके कान भौरोंकी गुंजारसे लोभित होरहेहैं मुखके सन्मुख फाड़खानेवाले भेड़िये खड़े हैं परन्तु तौभी यह मृग उनकी गणना न करके आगे बढ़ना चलाजाताहै और इसकी पीठ व्याधके शरोंसे जर्जर होगईहै हेराजन् तू इसको खोज॥५३॥ हेराजन्! मैंने जो मृग कहाहै वह आपहीहो कारण कि तू पुष्पोद्यान अर्थात् स्त्रीयुक्त घरों में निवास करताहै और पुष्पकी मधुर सुगन्धिकी सदृश अत्यन्त तुच्छ सुखोंको कि जो सकाम कर्मों के फलमें मिलताहै उसे तू खोजरहाहै और स्त्रियोंके सँग मिलकर उन्हींमें मन रखताहै, भौरोंकी गुंजारके सदृश स्त्रियों की मधुरवार्त्ताओंमें तेरे कान लोभित होरहे हैं मुखके सन्मुख कालके विभाग दिन, पक्ष, मास भेड़ियोंकी सदृश आयु क्षीण करतेहैं तू उनकी गणना न करके घरमें आनन्द कररहाहै और यह काल भीतर छिपेहुये शरोंसे तेरे हृदयको जीर्ण करताहै । इसलिये तुझको अपने आत्मा का विचार करना चाहिये ॥ ५४ ॥ इसभांति तेरी चेष्टा ऊपर कहेहुये मृगकी सदृश है इस वार्त्ताको सोचकर अपने मनको हृदयमें तथा बाहिरी वृत्तियोंको मनमें रोक (इन्द्रियोंको विषयों से रोक) इस गृहस्थाश्रम को कि जिसमें कामीपुरुषोंकी वार्त्तायें हैं त्यागकर और परमेश्वरको कि जो प्राणियोंके शरण रूपहैं प्रसन्न कर इसभांति क्रमशःसबको त्याग दे ॥ ५५ ॥ नारदजी की यह वार्ता सुनकर राजा प्राचीन बर्हिने कहा कि हे ब्रह्मन्! जो आपने कहा वह मैंने सुना और विचारा, परन्तु इस बातको मेरे उपदेशक ब्राह्मण क्या नहीं जानतेथे और यदि जानतेथे तो मुझ से क्यों नहीं कहा ॥५६॥ हे नारद! मेरे उपदेशकों नें मुझे इस बातपर कि मैं ईश्वरांशहूं कि नहीं बडाही भ्रम उत्पन्न कर दियाथा वह आपकी दयासे दूर हुआ परन्तु ऐसाही दूसरा एक और सं-

थः ॥५७॥कर्माण्यारभतेयेन पुमानिहाविहायतम्। अमुत्रान्येनदेहेन जुष्टानिसयद्श्नुते ॥ ५८ ॥ इतिवेदविदांवादः श्रूयते तत्रतत्रह। कर्मयत्क्रियतेप्रोक्तं परोक्षंनप्रकाशते ॥ ५९ ॥ नारदउवाच ॥ येनैवारभतेकर्म तेनैवामुत्रतत्पुमान् भुंक्तेह्यव्यवधानेन लिंगेनमनसास्वयम् ॥६०॥ शयानमिममुत्सृज्य श्वसन्तंपुरुषोयथा। कर्मात्मन्याहितंभुंक्ते तादृशेनेतरेणवा॥६१॥ममैतेमनसायद्यदसावहमितिब्रुवन्। गृह्णीयात्तत्पुमानाद्धं कर्मयेनपुनर्भवः॥६२॥यथाऽनुमीयते चित्तमुभयैरिन्द्रियेहितैः।एवं प्राग्देहजंकर्म लक्ष्यतेचित्तवृत्तिभिः॥६३॥नानुभूतंक्वचानेन देहेनादृष्टमश्रुतम्। क

शय है कि जिस में ऋषिलोग भी मोह को प्राप्त होते हैं और जहां इन्द्रियों की वृत्तियां भी नहीं पहुंचतीं दूसरे की तो सामर्थही क्या है ॥ ५७ ॥ जिस शरीर से मनुष्य इस जगत् में कर्मों को करता है और शरीर को यहीं छोड़ कर लोकांतर को चलाजाता है तथा वहां प्राप्त होकर दूसरे देह से उन्हीं कर्मोंकेफलका भोग करताहै,सोमुझें यह संशयहै कि इस शरीरसे किये हुए कर्म दूसरे शरीर से भोगेजाते हैं ॥५८॥ यह वार्त्ता वेदवेत्ता लोग सदा कहाकरते हैं, और आपनें भी पहले कहा है कि, पुरंजननें जो २ कर्म इस जन्ममे कियेथे, उन २ का फल उसको दूसरे जन्म में प्राप्त हुआ सो आपका कथन सत्य है परन्तु मुझको इसमे बड़ा सन्देह है, क्यों कि एक शरीर के किये हुए कर्म के फलको दूसरा शरीर भोगे यह उचित नहीं,परञ्च न्याय विरुद्ध है फिर मुझे औरभी एक बड़ाभारी संशय है कि, जो मनुष्य वेद विहित कर्म करता है, वह कर्म थोड़ेही काल में अदृष्ट हो जाता है जिस प्रकार कोई अग्नि में हवन करे और वहां जितनीं देरतक हवन करता रहेगा, वह उतनीही देरतक दृष्टि आवेगा, हवनहोनें के उपरांत वह अदृष्ट होजायगा, बस जो कर्म छिपगया वा नष्ट होगया, उसका फल परलोक में मिले यह वार्त्ता मेरी समझ में नहीं आती, फिर संशय किसप्रकार दूरहो ॥ ५९ ॥ नारदजी बोले कि, हे राजन्! स्थूल देह को कर्तृत्व और भोक्तृत्व कुछभी नहीं है क्यों कि इस में मुख्य अन्तःकरण है, सो यह अन्तःकरण स्थूल शरीर के संग नष्ट नहीं होता, एक स्थूल शरीर का नाश होजाने पर दूसरे शरीर में अन्तःकरण वही रहता है इस कारण जिस अन्तःकरण ने एक स्थूल शरीर में जो कर्म किया है, वही अन्तःकरण दूसरे स्थूल शरीर में उसी कर्म के फलको भोगता है ॥ ६० ॥ अब लिंग शरीर का भोक्तृत्व स्वप्न दृष्टांत से स्पष्ट करते हैं परन्तु इस मे यथार्थ भोक्तृत्व अन्तःकरण काही है और वह अन्तःकरण जाग्रत् अवस्था में जोथा वही स्वप्न शरीर में है, जैसे अपने जीतेजी ही अलग अलग शरीर प्राप्तहोते हैं, परन्तु उन शरीर में भोक्ता नहीं फिरता, ऐसेही मृत्युके पश्चात् शरीर बदलजानें पर भी उस मे भोक्ता जो अन्तःकरण है सो नहीं बदलता, जाग्रत् अवस्था में मनके भीतर जो संस्कार रहते हैं, वेही स्वप्न में दूसरा शरीर प्राप्त होनेपर भोगने पड़ते हैं, इसी प्रकार एक जन्म के अन्तःकरण के संस्काररूप कर्म दूसरे जन्म में भोगने पड़ते हैं, सिद्धांत यह है कि स्थूल शरीर को भोक्तृत्व नहीं है क्यों कि अन्तःकरण कर्म करने वाला है उसमें स्थूल शरीर केवल द्वार रूप है ॥६१॥ यह अन्तःकरण अनेक पुत्रादिकों के स्थूल शरीर में स्नेह रखता है कि यह पुत्र, स्त्री, कुटुंब मेरा है मैं ब्राह्मण हूं क्षत्री हूं इस अहंकार के होने से यह निश्चय है कि, इस अन्तःकरण के अहंकार का स्थान केवल स्थूल देहही है, परन्तु इतना होनें से स्थूल देहको कर्त्तापन नहीं कहसकते, कर्त्ता अन्तःकरण ही है और जिस शरीर मे अन्तःकरण ने ऐसा अहंकार कियाहो तो उसी शरीर मे रहकर अन्तःकरण के कर्मानुसारही बारंबार जन्म हुआ करता है इससे निश्चय हुआ कि कर्त्ता और भोक्ता अन्तःकरणही है ॥ ६२ ॥ जिस भांति कर्मेन्द्री और ज्ञानेंद्रियों पर अधिकार रखने वाला एक पदार्थ है कि जो चित्त नाम से प्रसिद्ध है, ऐसा अनुमान हुआ है इसी भांति पूर्व शरीर के कर्मानुसार चित्त की वृत्तियें उत्पन्न होती हैं ॥६३॥

दाचिदुपलभ्येत यद्रूपंयादृगात्मनि॥६४॥तेनास्यतादृशं राजँल्लिङ्गिनोदेहसंभवम् । श्रद्धत्स्वाननुभूतोर्थो नमनःस्प्रष्टुमर्हति ॥६५॥ मनएवमनुष्यस्यपूर्वरूपाणिशंसति । भविष्यतश्च भद्रंतेतथैवनभविष्यतः ॥ ६६ ॥ अदृष्टमश्रुतंचात्रक्वचिन्मनसिदृश्यते। यथातथाऽनुमन्तव्यंदेशकालक्रियाश्रयम् ॥ ६७ ॥ सर्वेक्रमानुरोधेनमनसीन्द्रिय गोचराः । आयांतिवर्गशोयांतिसर्वेसमनसोजनाः ॥ ६८ ॥सत्त्वैकनिष्ठेमनसिभग- वत्पार्श्ववर्तिनि । तमश्चन्द्रमसीवेदमुपरज्यावभासते ॥ ६९ ॥ नाहंममेतिभावोऽयं पुरुषेव्यवधीयते । यावद्बुद्धिमनोऽक्षार्थगुणव्यूहोह्यनादिमान् ॥ ७० ॥ सुप्तिमूर्छो पतापेषुप्राणायनविघाततः । नेहतेऽहमितिज्ञानंमृत्युप्रज्वारयोरपि ॥ ७१ ॥ गर्भे बाल्येप्यपौष्कल्यादेकादशविधंतदा। लिङ्गंनदृश्यतेयूनःकुह्वांचन्द्रमसोयथा ७२॥ अर्थेह्यविद्यमानेऽपिसंसृतिर्ननिवर्तते । ध्यायतोविषयानस्यस्वप्नेऽनर्थागमोयथा ॥ ॥७३॥ एवंपञ्चविधंलिङ्गंत्रिवृत्षोडशविस्तृतम् । एषचेतनयायुक्तोजीवइत्यभिधी यते ॥ ७४ ॥ अनेनपुरुषोदेहानुपादत्तेविमुञ्चति । हर्षशोकंभयंदुःखंसुखंचानेन

हेराजन् ! इस देहने जिस पदार्थ का कभी अनुभवन कियाहो तथा न देखा न सुनाहो उसीप्रकार का पदार्थ कभी २ स्वप्नमें तथा मनोरथमें अपने मनमें प्राप्त होताहै ॥ ६४ ॥ तो उसको मानना पड़ताहै कि उसका अनुभव पूर्व देहमें अवश्य हुआहोगा कारण कि जिस पदार्थका अनुभव नहीं होता वह कदापि मनमें नहीं आता, इससे निश्चय होताहै कि पूर्व शरीर और इस शरीरका मन एकहीहै ॥ ६५ ॥ मनहीसे पूर्व जन्म तथा भविष्य जन्मका स्वरूप मनकी शुभाशुभ वृत्तियों से जाना जासकताहै ॥ ६६ ॥ इस विषयमें कितनेएक कहतेहैं कि—जो पूर्वजन्म में अनुभवकी हुई वस्तु इस जन्ममें स्वप्नमें देखनेमें आतीहै, तो जो वस्तु कभीभी देखनेमें नहींआई तो वह स्वप्न में किसप्रकार दीख पड़तीहै ? स्वप्नमें देखनेका कारण यहहै कि जो बातें मनके मनोरथसे अनु- मान कीजातीहैं वह देश, काल और क्रियाके आश्रय होकर स्वप्नमें निद्रा दोष के कारण देखनेमें आती हैं ॥ ६७ ॥ और इन्द्रीगोचर मनमें तो सम्पूर्णप्रकारके विषय, अनुक्रमसे उत्पन्न होते और भोगके पीछे गमन करतेहैं ॥ ६८ ॥ जिससमय सत्वगुणमें निष्ठा पायाहुआ मन निराकारका ध्यान करनेलगताहै उससमय ऐसा निश्चय होताहै कि मानो सम्पूर्ण सृष्टि मनमें व्याप्तहै; जिसभांति कि राहु देखनेमें नहीं आता तौभी चन्द्रमाके संसर्ग से देखाजाताहै उसीप्रकार सब सृष्टिका देखना असंभवसा तोहै परन्तु शुद्धहुये मनसे समस्त संसार देखना संभवहै॥६९॥जबतक इस पुरुषके जीव में मैंहूं यह मेराहै, यह भाव, तथा बुद्धि, मन, इन्द्रियोंके विषयोंका समूह रूप नहीं प्रकाशित होता तभीतक वह आदिमान अनादिमान और शुद्धहै ॥ ७० ॥ सुप्तावस्था मूर्छा, उपताप, मृत्यु, और ज्वरमें इन्द्रियों का विघात होनेसे अहंताका अहंकार प्रगट नहीं होता किन्तु सूक्ष्म रूपसे रहताहै अर्थात् उससमय स्थूल देहका सूक्ष्म देहसे विच्छेद होजाताहै ऐसा कदापि न समझना ॥ ॥ ७१ ॥ गर्भ में बाल्यावस्था में (इन्द्रियां पूर्ण न होने से) पौगण्ड अवस्था में व तरुण अवस्था में स्थूल देह ग्यारह इन्द्रियों से जैसा स्पष्ट प्रतीत होता है वैसालिंग देहनहीं प्रतीत होता-कि जैसे अमावास्याके दिन चंद्रमा नहीं देखपड़ता ॥ ७२ ॥ जैसे स्वप्नका विचार, जबतक स्वप्नरहता है तबतक निवृत्त नहीं होता वैसेही जबतक विषयोंकी चिंतालगी रहती है तबतक जीवात्माकी निवृत्त असार संसार से नहीं होती ॥ ७३ ॥ पंच तन्मात्रा (रूप, रस, गंध, स्पर्शशब्द) तीनवृत्ति (सत्व, रज, तम) सोलह विकारों (दशोइन्द्रियें मन, और पांचोतत्व) से विस्तारित यह लिंगशरीर परब्रह्मका अंश होनेपरभी जीवनाम से पुकाराजाता है ॥ ७४ ॥ इसी

विंदति ॥ ७५ ॥ यथातृणजलूकैवनापयात्यपयातिच । नत्यजेन्म्रियमाणोपिप्राग्देहाभिमानंजनः ॥ ७६ ॥ यावदन्यंनविंदेतव्यवधानेनकर्मणाम् । मनएवमनुष्येन्द्र भूतानांभवभावनम् ॥ ७७ ॥ यदाऽक्षैश्चरितान्ध्यायन्कर्माण्याचिनुतेऽसकृत । सति कर्मण्यविद्यायांबन्धःकर्मण्यनात्मनः ॥ ७८ ॥ अतस्तदपवादार्थंभजसर्वात्मना हरिम् । पश्यंस्तदात्मकंविश्वंस्थित्युत्पत्त्यप्ययायतः ॥ ७९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ भागवतमुख्योभगवान्नारदोहंसयोर्गतिम् । प्रदर्श्यह्यमुमामन्त्र्यसिद्धलोकंततोऽगमत् ॥ ८० ॥ प्राचीनबर्हीराजर्षिःप्रजासर्गाभिरक्षणे । आदिश्यपुत्रानगमत्तपसेकपिलाश्रमम् ॥ ८१ ॥ तत्रैकाग्रमनाधीरोगोविंदचरणाम्बुजम् । विमुक्तसङ्गोऽनुभजन्भक्त्यातत्साम्यतामगात् ॥ ८२ ॥ एतदध्यात्मपारोक्ष्यंगीतंदेवर्षिणाऽनघ । यःश्रावयेद्यः शृणुयात्सलिङ्गेनविमुच्यते ॥ ८३ ॥ एतन्मुकुन्दयशसाभुवनंपुनानंदेवर्षिवर्यमुखनिःसृतमात्मशौचम् । यःकीर्त्यमानमधिगच्छतिपारमेष्ठ्यंनास्मिन्भवेभ्रमतिमुक्तसमस्तबन्धः ॥ ८४ ॥ अध्यात्मपारोक्ष्यमिदंमयाऽधिगतमद्भुतम् । एवंस्त्रियाऽऽश्रमःपुंसश्छिन्नोऽमुत्रचसंशयः ॥ ८५ ॥

इतिश्रीमद्भा०चतुर्थ०एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

लिंगशरीर से यह जीवात्मा कितनेही देहधारण करता तथा छोड़ता है और इसी लिंगशरीर के निमित्त जीवात्माको सुख, दुःख हर्ष, विस्मय, और भयभी उत्पन्न होते हैं ॥ ७५ ॥ जैसे तृण जलौका जबतक दूसरी घासको न पकड़े तबतक प्रथमकी पकड़ीहुई घासको नहीं छोड़ती वैसेही यह जीवभी मृत्युके समय पूर्वजन्मकी गतिको तबतक नहीं त्यागता ॥ ७६ ॥ किजबतक कर्मोका समाप्ति न होकर—दूसरे देहको न प्राप्तहोवे । हेमनुष्येन्द्र ! यहमन सम्पूर्ण प्राणियोंको, संसारका देनेवाला है ॥ ७७ ॥ यह मनुष्य इन्द्रियों से भोगकिये हुये विषयोंका विचार करके बारंबार जोकर्म करता है, उन्हीं कर्मोंद्वारा मन संसारका हेतु है और अविद्याके कारण शरीर आदिक जड़पदार्थ सम्बन्धी कर्मों में, आत्माकाभी बंधनहोता है ॥ ७८ ॥ इसलिये समस्त बंधन मिटानेके लिये, सम्पूर्ण संसारको परब्रह्म रूपजान सबप्रकार से परमेश्वरकी भक्तिकरो किजिनसे इससृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहारहुआ करता है ॥ ७९ ॥ मैत्रेयजी बोलेकि—भगवद्भक्तोंमें मुख्य भगवान नारदजी, राजाप्राचीन बर्हिको इसभांति से जीवतथा भगवत स्वरूपका उपदेश करके उनसे आज्ञाले सिद्धलोकको चलेगये ॥ ८० ॥ और राजाप्राचीन बर्हि अपने मंत्रियोंको इसभांति उपदेश देकर; "किमेरपुत्र जबआवें तबउन्हें राज्यतथा प्रजारक्षाका उपदेश देना" ऐसाकहकर तपके हेतु सिद्धेश्वर कपिलजीके आश्रममें चलागया ॥ ८१ ॥ उस आश्रम में राजाप्राचीन बर्हिमुक्त संगहोकर एकाग्र चित्तसे भगवत चरणों में ध्यानलगा भक्ति करताहुआ मोक्षको प्राप्तहुआ ॥ ८२ ॥ हेअनघ विदुर ! नारदजी के कहेहुये इस अध्यात्म परोक्ष ज्ञानको जोश्रवण करेंगे या करावेंगे वह दोनों देहोंसे छूटजायँगे ॥ ८३ ॥ परमेश्वर के यशके प्रभावसे सृष्टिको पवित्र करनेवाला तथा अंतःकरणको शुद्धकरने वाला और श्रेष्ठफलका देनेवाला, यह नारदजी के मुखसे निकला हुआ प्रसंग जोसुनेगा, वह सम्पूर्ण बंधनों से छूटजायगा और फिरइस संसारमें कभी भी जन्म नहीं धारण करेगा ॥ ८४ ॥ यह अध्यात्म परोक्षज्ञान मुझसे तुमको प्राप्त हुआ है इससे बुद्धिसहित अहंकारका नाशहोजाता है तथा परलोकमें कर्मफल मिलने का संशय भी निवृत्त होजाता है ॥ ८५ ॥

इति श्री भागवते महापुराणे० चतुर्थस्कंधे सरला भाषाटीकायां एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

विदुरउवाच ॥ येत्वयाऽभिहिताब्रह्मन्सुताःप्राचीनबर्हिषः। तेरुद्रगीतेनहरिं सिद्धिमापुःप्रतोष्यकाम् ॥१॥ किंवार्हस्पत्येहपरत्रवाऽथकैवल्यनाथप्रियपार्श्ववर्तिनः आसाद्यदेवंगिरिशंयदृच्छयाप्रापुःपरंनूनमथप्रचेतसः ॥ २ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ प्रचेतसोऽन्तरुदधौ पितुरादेशकारिणः। जपयज्ञेनतपसापुरंजनमतोषयन् ॥ ३॥ दशवर्षसहस्रान्तेपुरुषस्तुसनातनः। तेषामाविरभूत्कृच्छ्रंशांतेनशमयन्रुचा ॥ ४ ॥ सुपर्णस्कन्धमारूढोमेरुशृङ्गमिवांबुदः। पीतवासामणिग्रीवःकुर्वन्वितिमिरादिशः ॥ ५ ॥ काशिष्णुनाकनकवर्णविभूषणेनभ्राजत्कपोलवदनोविलसत्किरीटः। अष्टायुधैरनुचरैर्मुनिभिःसुरेन्द्रैरासेवितोगरुडकिन्नरगीतकीर्तिः ॥ ६ ॥ पीनायताष्टभुजमण्डलमध्यलक्ष्म्यास्पर्धच्छ्रियापरिवृतोवनमालयाऽद्यः। बर्हिष्मतःपुरुषआहसुतान्प्रपन्नान्पर्जन्यनादरुतयासघृणावलोकः ॥७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वरंवृणीध्वंभद्रंवोयूयंमेनृपनन्दनाः। सौहार्देनाऽपृथग्धर्मास्तुष्टोऽहंसौहृदेनवः ॥ ८ ॥ योऽनुस्मरतिसंध्यायांयुष्माननुदिनंनरः। तस्यभ्रातृष्वात्मसाम्यंतथाभूतेषुसौहृदम् ॥ ९ ॥ येतुमांरुद्रगीतेनसायंप्रातःसमाहिताः। स्तुवन्त्यहंकामवरान्दास्येप्रज्ञांचशोभनाम् ॥ १० ॥ यद्यूयंपितुरादेशमग्रहीष्टमुदान्विताः। अथोवउशतीकीर्तिर्लोकाननुभविष्यति ११॥ भविताविश्रुतःपुत्रोऽनवमोब्रह्मणोगुणैः। यएतामात्मवीर्येणत्रिलोकींपूरयिष्यति१२

विदुरजी बोले कि, हे मैत्रेयजी ! आपने जो प्राचीनबर्हि राजाके पुत्रोंका प्रसंग वर्णन किया था सो उन प्रचेताओंने रुद्रगीतसे भगवानको प्रसन्नकरके किस सिद्धिको प्राप्तकिया ? ॥ १ ॥ हे बार्हस्पत्य ! परमेश्वरके बड़े प्रेमी श्रीशिवजी के निकटवर्ती तथा उनके कृपापात्र प्रचेताओंने अवश्यही मुक्ति पाया होगा किंतु मुक्ति होने के प्रथम इस लोक तथा परलोक में उन्हें क्या प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ मैत्रेयजी बोले, कि पिता की आज्ञा माननेवाले प्रचेता राजा प्राचीनबर्हि की आज्ञा मानकर समुद्र के भीतर प्रवेश कर रुद्र गीत के जप रूप यज्ञसे हरि भगवान को प्रसन्न करने लगे ॥ ३ ॥ दश सहस्र वर्ष के उपरांत, तप करते हुए प्रचेताओं को श्रीपरमेश्वर ने दर्शन दिया और अपनी शांत कांति से उन के तप के कष्ट को दूर किया ॥ ४॥ जिस भांति मेरु पर्वत के शिखरपर श्यामघटा शोभादेती है वैसेही गरुड के कन्धेपर श्री भगवान विराजमान थे तथा पीताम्बर पहिने और कौस्तुभमणि को धारण किये दिशाओंको प्रकाशित कररहे थे ॥ ५ ॥ सुंदर आभूषणोंसे कपोल और मुख शोभायमान होरहाथा और किरीट मुकुट शीशपर देदीप्यमान होरहाथा तथा आठों भुजाओं में शस्त्र धारण कियेथे, पार्षद, मुनि, सुरेन्द्र इत्यादिक सेवा में उपस्थित थे और गरुड़जी अपने पक्षोंसे उनकी कीर्तिका गान कररहेथे ॥ ६ ॥ उनकी आठों लम्बी भुजाओं के मध्य वक्षःस्थलमें लक्ष्मीजीका चिह्न विराजमानथा तथा बनमाला धारण कियेथे ऐसे आदिपुरुष भगवानने शरणागत प्रचेताओंकी ओर कृपादृष्टिसे देखकर—गम्भीर वाणीसे वक्ष्यमाण बचन कहे ॥ ७ ॥ श्रीभगवान बोले कि—हेराजकुमारो ! तुम मुझसे वरदानमांगो तुम्हारा कल्याणहोगा सौहृदता पूर्वक तुम सब एकहीधर्मका प्रतिपालन करतेहो—सो तुम्हारी सौहृदतासे मैं बड़ा प्रसन्न हुआहूं ॥ ८ ॥ जो मनुष्य प्रतिदिन संध्याकालमें तुम्हारा ध्यान करेगा तो अपने भाइयोंमें तुम्हारी सदृश, उसकी प्रीतिहोगी तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें सुहृदभावहोगा ॥ ९ ॥ जो मनुष्य प्रातः तथा संध्याकालमें सावधान होकर, रुद्र गीतसे मेरा भजन करेंगे उनको मैं इच्छितवर तथा श्रेष्ठ, बुद्धि, दूंगा ॥ १० ॥ तुमने हर्षपूर्वक पिताकी आज्ञाको ग्रहणकिया इसकारण लोकोंमें तुम्हारी सुन्दर कीर्तिका विस्तारहोगा ॥ ११ ॥ तुम्हारे; ब्रह्मासे कीर्तिमें न्यून नहीं ऐसा गुणवान, प्रसिद्ध पुत्र,

कण्डोःप्रम्लोचयालब्धाकन्याकमललोचना । तांचापविद्धांजगृहुर्भूरुहानृपनन्दनाः ॥ १३ ॥ क्षुत्क्षामायामुखेराजासोमःपीयूषवर्षिणीम् । देशनींरोदमानायानिदधे सदयाऽन्वितः ॥ १४ ॥ प्रजाविसर्गआदिष्टाःपित्रामामनुवर्तता। तत्रकन्यांवरारोहां तामुद्वहतमाचिरम् ॥ १५ ॥ अपृथग्धर्मशीलानांसर्वेषांवःसुमध्यमा । अपृथग्धर्मं शीलेयंभूयात्पत्न्यर्पिताशया ॥ १६ ॥ दिव्यवर्षसहस्राणांसहस्रमहतौजसः । भौमान्भोक्ष्यथभोगान्वैदिव्यांश्चानुग्रहान्मम ॥१७॥ अथमय्यनपायिन्याभक्त्यापक्वगुणाशयाः । उपयास्यथमद्धामनिर्विद्यानिरयादतः ॥ १८ ॥ गृहेष्वाविशतांचापिपुंसां कुशलकर्मणाम् । मद्वार्तायातयामानांनबंधायगृहामताः ॥ १९ ॥ नव्यवद्धृदयेयज्ञो ब्रह्मैतद्ब्रह्मवादिभिः । नमुह्यंतिनशोचन्तिनहृष्यंतियतोगताः ॥२०॥ मैत्रेयउवाच॥ एवंब्रुवाणंपुरुषार्थभाजनंजनार्दनंप्राञ्जलयःप्रचेतसः । तद्दर्शनध्वस्ततमोरजोमला गिराऽगृणन्गद्गदयासुहृत्तमम् ॥ २१ ॥ प्रचेतसऊचुः ॥ नमोनमःक्लेशविनाशनाय निरूपितोदारगुणाह्वयाय । मनोवचोवेगपुरोजवाय सर्वाक्षमार्गैरगताध्वने नमः ॥ २२ ॥ शुद्धाय शान्ताय नमः स्वनिष्ठया मनस्यपार्थं विलसद्द्वयाय॥ मनो जगत्स्थानलयोदयेषु गृहीतमायागुणविग्रहाय ॥ २३ ॥ नमो विशुद्धसत्त्वाय हरये हरिमेधसे ॥ वासुदेवाय कृष्णाय प्रभवे सर्वसात्वताम् ॥ २४ ॥ नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने ॥ नमः कमलपादाय नमस्ते कमलेक्षण ॥ २५ ॥ नमः

उत्पन्न होगा, जो अपनी (सन्तान) से त्रिलोकीको, परिपूर्ण करदेगा, ॥ १२ ॥ हे नृपनन्दनो ! प्रम्लोचा नाम अप्सरामें कण्डूऋषिके कमललोचना, कन्या उत्पन्नहुई, उसके उत्पन्न होतेही वह अप्सरा उसको बनमें त्यागकर देवलोकको चलागई तब उस पुत्रीको वृक्षोंने अपने पासरक्खा ॥ ॥ १३ ॥ वह पुत्री क्षुधासे व्याकुल होकर रोनेलगी, तो उससमय वृक्षोंकेराजा चन्द्रमाने दयायुक्त हो अपनी अमृतवर्षिणी अंगुली (तर्जनी) को पिलाई ॥ १४ ॥ मेरे अनुवर्ती तुम्हारे पिताने प्रजा रचनाके हेतु तुमको आज्ञादी है इसहेतु तुम उस आज्ञामें प्रवृत्त होनेके लिये शीलवान इसकन्याको ग्रहण करो ॥ १५ ॥ तुम सब कि जो एकही धर्म तथा स्वभाववालेहो इसहेतु तुम सबके मध्यमें यह एकही स्त्री होगी इसका मन सदैवही तुमसे प्रसन्न रहेगा और तुम्हाराहीसा धर्म और स्वभाव होगा ॥ १६ ॥ दिव्य सहस्र वर्षतक तुम्हारा बल न घटेगा और स्वर्गके सम्पूर्ण भोगोको भोगोगे ॥ १७ ॥ अन्तमें मेरी दृढ़भक्तिसे तुम्हारी सब संसारी वासनायें नष्टहोंगी और वैराग्य पाकर मेरे धामको प्राप्तहोगे ॥ १८ ॥ जो मनुष्य घरमें रहकरभी सम्पूर्ण कर्म मेरे अर्पण करताहै और मेरीही वार्तासे समय व्यतीतकरता है उसको गृहका बंधन कभी नहींहोता ॥ १९ ॥ श्रीमैत्रेयजीने कहा कि प्रचेताओं ने कि जिनके रजोगुण तथा तमोगुण, रूपमल परमेश्वर के दर्शन से दूर होगये हैं, परम उपकारी तथा पुरुषार्थ देनेवाले भगवान के वाक्य सुनकर, गद्गद बाणी से हाथजोड़ स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥ २१ ॥ प्रचेताओं ने कहा कि–दुःख दूर करने वाले; मन, वाणी के भी अगोचर, तथा इन्द्रियों द्वारा जिनकी गति नहीं जानीजासकती, और जिनके उदारगुण, नाम वेदमें कहे जाते है ऐसे परमेश्वर आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ २२ ॥ अपनीनिष्ठासे शुद्ध शांतमन में व्यर्थ प्रकाशित हैं ऐसे अद्वैतरूप आपको हम नमस्कार करते हैं सृष्टि के उत्पत्ति, पालन और संहार के हेतु माया के गुणों से जो ब्रह्मादिरूप धारण करते हैं ऐसे आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ २३ ॥ विशुद्ध सत्वस्वरूप, सर्वव्यापक, सबभक्तों के स्वामी, हरिवासुदेव, कृष्ण भगवान आपको हमारा प्रणाम है ॥ २४ ॥ हे कमलाक्ष ! हेकमलनाभ ! कमलों की माला धारण करने वाले, कमल से पाद भगवान हम आपको नमस्कार करते हैं ॥२५॥

कमलकिञ्जल्कपिशङ्गामलवाससे ॥ सर्वभूतनिवासाय नमोऽयुङ्क्ष्महि साक्षिणे ॥ २६ ॥ रूपं भगवता त्वेतदशेषक्लेशसंक्षयम् ॥ आविष्कृतं नः क्लिष्टानां किमन्यदनुकम्पितम् ॥२७॥ एतावत्त्वंहि प्रभुभिर्भाव्यं दीनेषु वत्सलैः ॥ यदनुस्मर्यते काले स्वबुद्ध्याऽभद्ररन्धन ॥ २८ ॥ येनोपशान्तिर्भूतानां क्षुल्लकानामपीहताम् ॥ अन्तर्हितोऽन्तर्हृदयेकस्मान्नोवेदनाशिषः ॥ २९ ॥ असाववरोऽस्माकमीप्सितो जगतःपते। प्रसन्नोभगवान्येषामपवर्गगुरुर्गतिः ॥ ३० ॥ वरंवृणीमहेऽथापिनाथ त्वत्परतःपरात्। नह्यन्तस्त्वद्विभूतीनांसोऽनन्तइतिगीयसे ॥ ३१ ॥पारिजातेऽञ्जसा लब्धेसारङ्गोऽन्यंनसेवते। त्वदंघ्रिमूलमासाद्यसाक्षात्किंकिंवृणीमहि ॥३२॥यावत्ते माययास्पृष्टाभ्रमामइहकर्मभिः। तावद्भवत्प्रसङ्गानांसङ्गःस्यान्नोभवेभवे ॥ ३३ ॥ तुलयामलवेनापिनस्वर्गंनापुनर्भवम्। भगवत्सङ्गिसङ्गस्यमर्त्यानांकिमुताशिषः ३४॥ यत्रेड्यंतेकथामृष्टास्तृष्णायाःप्रशमोयतः। निर्वैरंयत्रभूतेषुनोद्वेगोयत्रकश्चन ३५ ॥ यत्रनारायणःसाक्षाद्भगवान्न्यासिनांगतिः। संस्तूयतेसत्कथासुमुक्तसङ्गैःपुनःपुनः॥ ३६॥ तेषांविचरतांपद्भ्यांतीर्थानांपावनेच्छया। भीतस्यकिंनरोचेततावकानांसमागमः ॥ ३७ ॥ वयंतुसाक्षाद्भगवन्भवस्यप्रियस्यसख्युःक्षणसङ्गमेन। सुदुश्चिकित्स्यस्यभवस्यमृत्योर्भिषक्तमंत्वाऽद्यगतिंगताःस्म ॥ ३८ ॥ यन्नःस्वधीतंगुरवःप्रसादिताविप्राश्चवृद्धाश्चसदानुवृत्त्या। आर्यानताःसुहृदोभ्रातरश्चसर्वाणिभूतान्यनसूय

कमलके अंकुर के तुल्य पीतपटधारणकरने वाले तथा समस्त प्राणियों के निवासरूप, भक्तोंके साक्षीभूत आपको हमारा प्रणाम है ॥ २६ ॥ आपने, दुःख दूर करने वाले अपने रूपको दुःखित मनुष्यों (हम) के हेतु प्रगट किया है इससे अधिक और क्या कृपा होगी ॥ २७ ॥ हे विभु! दीन मनुष्यों को अपना जानकर उनपर वत्सलता करना इतनाही बहुत है हेविश्वनायक! उचित समय में; आपका स्मरण करने से आपका दर्शन हुआ ॥ २८ ॥ हे प्रभु जब कृपालुलोग स्मरण करते हैं, तो दीनप्राणियों के हृदय में शांति होजाती है, जब आप तुच्छ प्राणियों के हृदय में भी अन्तर्यामी रूपसे विराजते हो तब हमारे मनोरथों को कि जो हम आपके उपासक हैं कैसे न जानोगे ॥ २९ ॥ हेजगत्पते! मुक्तिमार्ग के दिखानेवाले, पुरुषार्थ रूप आप हमपर प्रसन्नहुए यही हम बरदान चाहते थे ॥ ३० ॥ हेनाथ! आपपरे से भी परे हो और कारण के भी कारण हो, आपकी विभूतियों का अन्त नहीं है इसीसे आप अनन्त कहे जाते हो; हम आप से एक बरदान मांगते हैं ॥ ३१ ॥ जिस भांति कि भौंरा अनायासही कल्पवृक्ष को पाकर और का सेवन नहीं करता ऐसेही हमभी आप के चरणमूल कोपाकर और दूसरे क्या २ बरमांगें ॥ ३२ ॥ इससे हम इतनाही मांगते हैं कि जबतक आपकी माया से घिरेहुये, अपने कर्मों द्वारा इस संसार में भ्रमण करें तबतक जन्मजन्मान्तर में आप के श्रेष्ठ भक्तों से सदा सत्सङ्ग रहे ॥ ३३ ॥ आप के भक्तों के लवमात्र सत्सङ्ग के समान न तो हम स्वर्ग को मानते हैं और न मोक्ष की गणना करते हैं फिर मनुष्यों के सुखों की तो बातही क्या है! ॥ ३४ ॥ कि जो सदैव आपकी सुन्दर कथा को " जो तृष्णा का नाश करने वाली है, " कहा करतेहैं और जहां सम्पूर्ण प्राणी निर्वैर और अभय रहते हैं ॥ ३५ ॥ और मुक्त संग लोग, सन्यासियोंके शरणरूप साक्षात् नारायण की कथाओं में परमेश्वरका भजन कियाकरतेहैं॥३६॥वह आपके भक्तजन तीर्थोंको पवित्रकरनेके अभिप्रायसे विश्व में विचराकरते हैं, उनका सत्सङ्ग संसारसे डरेहुये मनुष्य को अच्छा क्यों न लगेगा॥३७॥हे आद्य पुरुष! आपके प्रियसखा साक्षात् महादेवजी के एकक्षण मात्र के सत्सङ्गसे, जन्म—मरणरूपी रोग के नाशक वैद्यरूप आपके चरणकमल को हम प्राप्त हुये हैं ॥ ३८॥ तथा हमने वेद अध्ययन किया है और गुरू ब्राह्मण तथा वृद्धों की आज्ञा का पालन भी किया है इसके अतिरिक्त

यैव ॥ ३९ ॥ यन्नः स्वधर्मतप्यतदीर्घानिरन्धसांकालमप्सुमप्स्सु। सर्वंतदेतत्पुरुषस्य
भूम्नोवृणीमहेतेपरितोषणाय ॥ ४० ॥ मनुःस्वयंभूर्भगवान्भवश्चयेऽन्येतपोज्ञानवि-
शुद्धसत्त्वाः । अदृष्टपाराअपियन्महिम्नःस्तुवन्त्यथोत्वात्मसमंगृणीमः ॥ ४१ ॥ नमः
समायशुद्धायपुरुषायपरायच । वासुदेवायसत्त्वायतुभ्यंभगवतेनमः ॥ ४२॥ मैत्रेय
उवाच ॥ इतिप्रचेतोभिरभिष्टुतोहरिःप्रीतस्तथेत्याहशरण्यवत्सलः । अनिच्छतां
यानमतृप्तचक्षुषांययौस्वधामाऽनपवर्गवीर्यः ॥ ४३ ॥ अथनिर्यायसलिलात्प्रचेतस
उदन्वतः । वीक्ष्याकुप्यन्द्रुमैश्छन्नांगांगांरोद्धुमिवोच्छ्रितैः ॥४४॥ ततोग्निमारुतौराजन्
अमुञ्चन्मुखतोरुषा । महींनिर्वीरुधंकर्तुंसंवर्तकइवात्यये ॥ ४५ ॥ भस्मसात्क्रियमा-
णांस्तान्द्रुमान्वीक्ष्यपितामहः । आगतःशमयामासपुत्रान्बर्हिष्मतोनयैः ॥ ४६ ॥तत्रा
वशिष्टायेवृक्षाभीतादुहितरंतदा । उज्जह्रुस्तेप्रचेतोभ्यउपादिष्टाःस्वयंभुवा ॥४७॥ते
चब्रह्मणआदेशान्मारिषामुपयेमिरे । यस्यांमहदवज्ञानादजन्यजनयोनिजः ॥४८॥चाक्षु
षेत्वन्तरेप्राप्तेप्राक्सर्गकालविद्रुते । यःससर्जप्रजाइष्टाःसदक्षोदैवचोदितः ॥४९॥योजाय
मानःसर्वेषांतेजस्तेजस्विनांरुचा । स्वयोपादत्तदाक्ष्याच्चकर्मणांदक्षमब्रुवन् ॥५०॥
तंप्रजासर्गरक्षायामनादिरभिषिच्यच । युयोजयुयुजेऽन्यांश्चसवैसर्वप्रजापतीन् ॥५१॥
इतिश्रीमद्भा० च० प्रचेतसांगृहेदक्षोत्पत्तिवर्णनंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

डा को नमस्कार किया है और भ्राता इत्यादिक तथा प्राणियों से द्रोह भी नहीं किया ॥ ३९ ॥ और अन्नखाना छोडकर, बहुतकालतक जल के भीतर तपस्याभी की है, इन सब श्रेष्ठ कर्मों से हे ईश ! पुरुष ! भूमा ! भगवान ! आपकी हमपर दया हो ॥ ४० ॥ मनु, ब्रह्मा, भगवान महादेव, तथा और भी कि जिनका अन्तःकरण तपज्ञान से शुद्ध हुआ है ऐसे महात्मा आपकी महिमा का पार न पाकर अपनी बुद्धि के अनुसार आपकी स्तुति करते हैं ऐसेही हमभी अपनी बुद्धि के अनुसार आपकी स्तुति करते रहैं ॥ ४१ ॥ सर्वसमानरूप, शुद्ध, पुरुष परमात्मा, सत्वमूर्त्ति भगवान आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ ४२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, जब प्रचेताओं ने इसभांति स्तुतिकी तो शरणागत वत्सल भगवान ने प्रसन्न होकर 'तथास्तु, यह कहा, और नेत्र तृप्त न होने के कारण प्रचेता वहां से भगवानका जाना नहीं चाहते थे तौभी अकुण्ठप्रभाव वाले भगवान वहां से अपने धाम को चले गये ॥ ४३ ॥ तदनन्तर प्रचेता समुद्र के जल से निकले और ऊंचे वृक्षों से पृथ्वी को ढकाहुआ; मानों स्वर्ग को रोकेंगे, " देख अत्यन्त कुपित हुये ॥ ४४ ॥ हे विदुर ! प्रचेताओं ने क्रोध के वशीभूत हो वृक्ष नाश करने के हेतु अपने मुख से इस भांति अग्नि उत्पन्नकी कि जैसे प्रलयकालमें सृष्टिनाशके हेतु श्रीमहादेवजी कालाग्नि उत्पन्नकरतेहैं॥४५॥ उस अग्निसे वृक्षोंको जलतेहुये देखकर ब्रह्माजी वहां आये और उन्हों ने नीतियुक्त बचन कहकर प्रचेताओंके क्रोधको शान्तकिया ॥ ४६ ॥ इस अग्निसे बचेहुये वृक्षोंने प्रचेताओंके डरसे तथा ब्रह्माजीके उपदेशानुसार अपनी पुत्री प्रचेताओंको देदी ॥ ४७ ॥ ब्रह्माजीकी आज्ञानुसार प्रचेताओं ने इस उत्तम कन्याको अंगीकार किया, फिर इस कन्यासे प्रचेताओंके दक्षनाम पुत्र उत्पन्नहुआ कि जो पहिले ब्रह्माजीका पुत्रथा, परन्तु शिवजीके तिरस्कारके पापसे उसका द्वितीय जन्म क्षत्री कुलमें हुआ ॥ ४८ ॥ जो ब्रह्माका पुत्रथा वही कालगतिसे मरकर प्रचेताओं के घरमें उत्पन्नहुआ इसने ईश्वरकी प्रेरणासे चाक्षुष मन्वन्तरके अनुसार सृष्टि रचनाकी ॥ ४९ ॥ इसने जन्मलेतेही अपनी कांतिसे दूसरे तेजस्वी पुरुषोंका तेज हरणकिया इसीकारण उसके कर्मकी चतुरता देख सब उसे दक्ष २ कहनेलगे ॥ ५० ॥ ब्रह्माजी ने दक्षका अभिषेककर सृष्टिकी रक्षा करने में सबका स्वामी बनाया इसलिये वह दक्ष दूसरे प्रजापतियोंको अपने काममें सदा आज्ञाकारतारहताथा ५१॥
इतिश्री भागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेसरलाभाषाटीकायांत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

मैत्रेय उवाच ॥ ततउत्पन्नविज्ञानाआश्वधोक्षजभाषितम् । स्मरन्तआत्मजेभा-
र्यांविसृज्यप्राव्रजन्गृहात् ॥ १ ॥ दीक्षिताब्रह्मसत्रेणसर्वभूतात्ममेधसा । प्रतीच्यां
दिशिवेलायांसिद्धोऽभूद्यत्रजाजलिः ॥ २ ॥ तान्निर्जितप्राणमनोवचोदृशोजिताख
नाञ्छांतसमानविग्रहान् ।परेऽमलेब्रह्मणियोजितात्मनःसुरासुरेड्योददृशेस्मनारदः
॥ ३ ॥ तमागतंतउत्थायप्रणिपत्याभिनन्द्यच । पूजयित्वायथादेशंसुखासीनमथा
स्तुवन् ॥ ४ ॥ प्रचेतस ऊचुः ॥ स्वागतंतेसुरर्षेद्यदिष्ट्यानोदर्शनंगतः ।तवचंक्रमणं
ब्रह्मन्नभयाययथारवेः ॥ ५ ॥ यदादिष्टंभगवताशिवेनाधोक्षजेनच । तद्गृहेषुप्रस-
क्तानांप्रायशःक्षपितंप्रभो ॥ ६ ॥ तन्नःप्रद्योतयाध्यात्मज्ञानंतत्त्वार्थदर्शनम् ।येनाञ्जसा
तरिष्यामोदुस्तरंभवसागरम् ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच॥इतिप्रचेतसांपृष्टोभगवान्नारदो
मुनिः । भगवत्युत्तमश्लोकआविष्टात्माऽब्रवीन्नृपान् ॥ ८ ॥ नारद उवाच ॥तज्जन्म
तानिकर्माणितदायुस्तन्मनोवचः । नृणांयेनेहविश्वात्मासेव्यतेहरिरीश्वरः ॥ ९ ॥
किंजन्मभिस्त्रिभिर्वेहशौक्लसावित्रयाज्ञिकैः । कर्मभिर्वात्रयीप्रोक्तैःपुंसोऽपिविबुधा
युषा ॥ १० ॥ श्रुतेनतपसावाकिंवचोभिश्चित्तवृत्तिभिः । बुद्ध्यावाकिंनिपुणयावले
नेन्द्रियराधसा ॥ ११ ॥ किंवायोगेनसांख्येनन्यासस्वाध्याययोरपि । किंवाश्रेयो
भिरन्यैश्चनयत्रात्मप्रदोहरिः ॥ १२ ॥ श्रेयसामपिसर्वेषामात्माह्यवधिरर्थतः।सर्वेषा
मपिभूतानांहरिरात्माऽऽत्मदःप्रियः ॥ १३ ॥ यथातरोर्मूलनिषेचनेनतृप्यन्तितत्स्कंध

मैत्रेयजीने कहा कि—सहस्रोंवर्ष संसारि भोग भोगनेके उपरांत प्रचेताओंको ज्ञान प्राप्तहुआ और भगवानके वाक्योंका स्मरण आया तब वह अपनी रानी और पुत्रादिको छोड़ तप करनेके निमित्त बनको चलेगये ॥१॥ पश्चिम दिशामें समुद्र तटपर जहां जाजलि ऋषि, सिद्धहुयेथ जाकर सर्व पदार्थों में आत्माको जानकर ब्रह्मविचार करनेका संकल्प किया ॥ २ ॥ मन, बाणी, प्राण, और दृष्टिको जीत आसनबांध, देहको शांत तथा सरलरख ईश्वरमें मनलगाकर वे बैठे, उससमय, सुर और असुरोंसे सवित नारदजी वहां आये ॥ ३ ॥ उन्होंने नारदजीको, आया देख, खड़ेहो, दण्डवतकर उनका आदरकिया तथा विधिपूर्वक उनकी पूजाकर उनसे कहा ॥ ४ ॥ प्रचेता बोले कि हेदेवर्षे ! आज आपका आना अत्युत्तमहुआ, हमारा भाग्य धन्यहे, जो आपने दर्शनदिया, हे ब्रह्मन् ! सूर्यकी समान आपभी सृष्टिका भय दूर करनेके लिये विचरतेहो ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! श्री शिवजीने और विष्णुजीने जो हम ज्ञान दिया वह सब ज्ञान घरके प्रसङ्ग में आसक्त होकर भूल गये ॥ ६ ॥ इसलिये आप हमसे वह अध्यात्म ज्ञानकहो कि जिससे इस अपार भवसागरसे स-हजहीमें पार होजांय ॥ ७ ॥ मैत्रेयजी ने कहा कि प्रचेताओं के इस भांति प्रार्थना करने पर यशस्वी, भगवद्भक्त नारदजी ने उनसे इस प्रकार कहा ॥ ८ ॥ हे राजन् ! जो मनुष्य विश्वात्मा भगवान की सेवा करते हैं उन्हीं का जन्म, कर्म, आयु, मन, वचन, सफल है ॥ ९ ॥ यदि निज स्वरूप दाता भगवान की सेवा तथा ज्ञान न बनसके तो तीनों जन्मों (अर्थात् माता पिता से, यज्ञोपवीत से, और यज्ञ की दीक्षा लेने से) के होने तथा वेदानुसार कर्म करने और देवताओं की सदृश आयु होने से क्या फल हुआ ॥ १० ॥ तथा शास्त्र सुनने तप बाणी विलास, चित्तकी वृत्ति, निपुण बुद्धि और इन्द्रियो के बलके होनेसे ॥ ११ ॥ और योग, सांख्य इन्द्रियन्यास, वेदाध्ययन, और दूसरे साधनोंके होने से क्या फलहै जबतक आत्माके देने वाले ईश्वर का प्रिय नहो ॥ १२ ॥ सब प्राणियोंमें जो आत्मा है वही भगवान है, और दूसरे पदार्थ होनेसे आत्माही को प्यारे लगतेहैं इस हेतु भगवानकी सेवा तथा उनका ज्ञान होवे तो सब सफल है ॥ १३ ॥ जिस भांति वृक्ष की जड़को सींचनेसे उस की शाखा उपशाखा आद हराभरा रहती

भुजोपशाखाः । प्राणोपहाराच्चयथेंद्रियाणांतथैवसर्वार्हणमच्युतेज्या॥१४॥यथैव सूर्यात्प्रभवन्तिवारःपुनश्चतस्मिन्प्रविशन्तिकाले । भूतानिभूमौ स्थिरजंगमानितथा हरावेवगुणप्रवाहः ॥ १५ ॥ एतत्पदंतज्जगदात्मनःपरंसकृद्विभातंसवितुर्यथाप्रभा। यथाऽसवो जाग्रतिसुप्तशक्तयोद्रव्यक्रियाऽज्ञानभिदाभ्रमात्ययः ॥ १६॥यथानभस्य भ्रमतःप्रकाशाभवंतिभूपानभवन्त्यनुक्रमात् । एवंपरेब्रह्मणिशक्तयस्त्वमूरजस्तमः सत्त्वमितिप्रवाहः ॥ १७ ॥ तेनैकमात्मानमशेषदेहिनांकालंप्रधानंपुरुषंपरेशम् । स्वतेजसाध्वस्तगुणप्रवाहमात्मैकभावेनभजध्वमद्धा ॥ १८ ॥ दययासर्वभूतेषु संतुष्ट्यायेनकेनवा । सर्वेन्द्रियोपशान्त्याचतुष्यत्याशुजनार्दनः ॥१९॥ अपहतसकलैषणामलात्मन्यविरतमेधितभावनोपहूतः । निजजनवशगत्वमात्मनोऽयन्नसरति छिद्रवदक्षरःसतांहि ॥ २० ॥ नभजतिकुमनीषिणांसइज्यांहरिरधनात्मधनप्रियो रसज्ञः । श्रुतधनकुलकर्मणांमदैर्येविदधतिपापमकिञ्चनेषुसत्सु ॥ २१ ॥ श्रियमनुचरतींतदर्थिनश्चद्विपदपतीन्विबुधांश्चयत्स्वपूर्णः।नभजतिनिजभृत्यवर्गतन्त्रःकथममुमुद्विसृजेत्पुमान्कृतज्ञः ॥ २२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इतिप्रचेतसोराजन्नन्याश्चभगवत्कथाः । श्रावयित्वाब्रह्मलोकंययौस्वायंभुवोमुनिः ॥ २३ ॥ तेऽपितन्मुखनिर्यातं

है और प्राणों को भोजन देने से इन्द्रियां तृप्त रहती हैं वैसेही भगवान के तृप्त रहने से सम्पूर्ण देवता तृप्त रहते हैं ॥ १४ ॥ जिस भांति सूर्य से जल उत्पन्न होता है और काल पाकर उसी में प्रवेश करता है ऐसेही प्राणी, स्थावर, जंगम, परमेश्वर के गुणों के प्रभाव से पृथ्वी में उत्पन्न होते और काल पाकर उसी में लीन होजाते हैं ॥ १५ ॥ यह जो सम्पूर्ण विश्व है सो भगवान का सर्व उपाधि रहित स्वरूप है यह कभी प्रकाशित होता तथा कभी गुप्त होजाता है जैसे सूर्य बादल में कभी प्रकाश करता और कभी गुप्त होजाता है और जैसे जाग्रत अवस्था में समस्त इन्द्रियां जागती हैं और सुषुप्ति में सोजाती हैं ऐसेही अज्ञानकाल में जगतदीख पड़ता है और ज्ञानकाल में उसका कुछ पता नहीं लगता यह द्रव्य, क्रिया और ज्ञानका भेद भ्रम ईश्वरही के स्वरूप में उत्पन्न होता है ॥ १६ ॥ जिस प्रकार आकाश में मेघमण्डल कभी तमरूप कभी प्रकाशरूप देखने में आते हैं और फिर उसीमें लीन होजाते हैं इसीभांति परब्रह्म में रज,तम अज्ञान दृष्टि से यह सत्व गुण देखने में आते हैं और ज्ञानदृष्टि से देखनेपर लीन होजाते हैं इसी भांति संसारका प्रवाह है॥ ॥ १७ ॥ प्राणियों के अधिष्ठानरूप भगवान कि जो कालप्रकृति तथा पुरुषरूप होने से सबके कारण हैं और जिनकेरूपका ज्ञान होने से सृष्टि प्रवाह नहीं देखने में आता ऐसे परमेश्वरको अपने में जान साक्षात रीति से भजन करो ॥ १८ ॥ सब प्राणियों पर दया करने से जो मिले उसीपर सन्तुष्ट रहने से, इन्द्रियों को शांत रखने से परमेश्वर शीघ्रही प्रसन्न होते हैं ॥ १९ ॥ जिसका आत्मा, सम्पूर्ण चाहना के नष्ट होने से, निर्मल होगया है तथा जो बढ़ी हुई भक्ति परमेश्वर की आधीनता प्रगटकरता है उस भक्त के हृदय से आकाशकी सदृश भगवान दूर नहीं होते ॥ ॥ २० ॥ जो दुर्बुद्धि मनुष्य शास्त्र अभ्यास तथा धन, कुल और कर्म के अहङ्कार से सतभक्तोंका अपमान करते हैं उनकी पूजा श्रीभगवान " कि जो अधनात्मा के प्रियधन, भक्तों पर स्नेह करने वाले तथा भक्तिरस जाननेवाले हैं; "नहीं स्वीकार करते ॥२१॥ आपकामना पूर्ण होने परभी अपने भक्तों के वशीभूत रहनेवाले भगवान, अपनी अज्ञानुवर्त्तिनी लक्ष्मीजी तथालक्ष्मीजीकी कामना वाले राजा और देवताओं का भी भक्तों के हेतु अनादर करते हैं फिर ऐसे भगवान को कौन रसज्ञ मनुष्य त्याग सकता है ॥ २२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि–हे विदुर ! नारदजी प्रचेताओं को इस प्रकार का उपदेश दे तथा ध्रुव आदिक की कथा सुना आप ब्रह्मलोक को चले गये ॥ २३ ॥ और प्रचेता

यशोलोकमलापहम्। हरेर्निशम्यतत्पादंध्यायंतस्तद्गतिंययुः ॥ २४ ॥ एतत्तेऽभिहितंक्षत्तर्यन्मांत्वंपरिपृष्टवान्। प्रचेतसांनारदस्यसम्वादंहरिकीर्तनम् ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यएषउत्तानपदोमानवस्यानुवर्णितः। वंशःप्रियव्रतस्यापिनिबोध नृपसत्तम ॥ २६ ॥ योनारदादात्मविद्यामधिगम्यपुनर्महीम्। भुक्त्वाविभज्यपुत्रेभ्य ऐश्वरंसमगात्पदम् ॥ २७ ॥ इमांतुकौषारविणोपवर्णितांक्षत्तानिशम्याजितवादसत्कथाम्। प्रवृद्धभावोऽश्रुकलाकुलोमुनेर्दधारमूर्ध्नाचरणंहृदाहरेः ॥ २८ ॥ विदुर उवाच ॥ सोऽयमद्यमहायोगिन्भवताकरुणात्मना। दर्शितस्तमसःपारोयत्राकिंच नगोहरिः ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यानम्यतमामन्त्र्यविदुरोगजसाह्वयम्। स्वानांदिदृक्षुःप्रययौ ज्ञातीनांनिर्वृताशयः॥३०॥एतद्यःशृणुयाद्राजन् राज्ञांहर्यर्पितात्मनाम्। आयुर्धनंयशःस्वस्ति गतिमैश्वर्यमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥

इति श्री मद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां चतुर्थस्कन्धे प्राचेतसोपाख्यानं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

समाप्तोऽयं चतुर्थः स्कन्धः ॥ ४ ॥

श्री नारदजी के मुख से सृष्टि मलहारी मुरारीके सुयशको सुन परमेश्वर के चरणों का ध्यान करते हुये भगवत गति को प्राप्त हुये ॥ २४ ॥ हे विदुर ! जो तुमने भगवत् वर्णन वाला प्रचेता और नारदजी का सम्वादरूप आख्यानमुझ से पूछा था वह मैंने प्रीतिसहित तुमसे कहा ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी ने राजा परिक्षित से कहा कि हे नृपश्रेष्ठ ! स्वायंभुव मनुकेपुत्र राजा उत्तानपादका वंश तुमको मैने सुनाया। अब राजा प्रियव्रतका वंश कहताहूं उसेसुनो ॥ २६ ॥ कि जो प्रियव्रत राजा नारदजी से आत्म विद्याकोपा, पृथ्वीका राज्यकर अंतमें पृथ्वीको अपने पुत्रोंकोबांट आप भगवत पदको प्राप्तहुआ ॥ २७ ॥ विदुरजी भगवत् कथा सम्बंधीइस पवित्र चरित्रको सुन, भक्ति बुद्धिमे गद्गदहो, आंसू बहानेलगे और श्री मैत्रेयजी के चरणों में अपना शिरधर परमेश्वर के चरणों को निजहृदय में धारण किया ॥ २८ ॥ विदुरजी बोले कि हेतात। महायोगिन् ! आपने कृपा करके मुझे अज्ञानरूपी अंधकार सेपार करादिया कि जिससे परमेश्वर के रूपका मुझे ज्ञानहुआ ॥ २९ ॥ श्री शुकदेवजी बोलेकि शांत हृदय विदुरजी मैत्रेयजी को इसभांति नमस्कार कर उनसे आज्ञाले बंधुओं के देखने की इच्छासे हस्तिना पुरकोगये ॥ ३० ॥ हेराजन् ! जिनका चित्त परमेश्वर में लगाहुआ है ऐसे इन राजाओं का चरित्र जोमनुष्य सुनेंगे उनको यश धन, आयु तथा कल्याण दायीगति प्राप्तहोगी ॥ ३१ ॥

इति श्रीभागवतेम०पु०च०स्क०सारस्वतवंशोद्भव पं०जगन्नाथात्मजकन्हैयालालउपाध्याय विरचितायां सरलाभाषाटीकायांनामप्रचेतोपाख्यानंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

समाप्तोऽयंचतुर्थःस्कन्धः ॥ ४ ॥

श्रीमद्भागवत भाषाटीका सहित.

पंचमस्कन्ध.

श्रीगणेशायनमः । अथ पंचमस्कन्धःप्रारभ्यते । राजोवाच । प्रियव्रतोभागवत आत्मारामःकथंमुने । गृहेऽरमतयन्मूलः कर्मबन्धःपराभवः ॥१॥ ननूनंमुक्तसङ्गानां तादृशानांद्विजर्षभ । गृहेष्वभिनिवेशोऽयं पुंसांभवितुमर्हति ॥ २ ॥ महतांखलुविप्रर्ष उत्तमश्लोकपादयोः । छायानिर्वृतचित्तानां नकुटुम्बेस्पृहामतिः ॥ ३ ॥ संशयोऽयं महान्ब्रह्मन्दारागारसुतादिषु । सक्तस्ययत्सिद्धिरभूत्कृष्णेच मतिरच्युता ॥४॥ श्रीशुकउवाच॥बाढमुक्तंभगवत उत्तमश्लोकस्य श्रीमच्चरणारविन्दमकरंदरस आवेशितचेतसो भागवतपरमहंसदयितकथां किंचिदंतरायविहतां स्वांशिवतमांपदवींनप्रायेणहिन्वन्ति ॥५॥ यर्हिवावहराजन्स राजपुत्रःप्रियव्रतः परमभागवतोनारदस्य चरणोपसेवयाऽञ्जसाऽवगतपरमार्थसतत्त्वो ब्रह्मसत्रेण दीक्षिष्यमाणोऽवनितलपरिपालनायाम्नातप्रवरगुणगणैकान्तभाजनतयास्वपित्रोपामन्त्रितोभगवति वासुदेवएवाव्यवधानसमाधियोगेन समावेशितसकलकारकक्रियाकलापो नैवाभ्यनन्दद्यद्यपितदप्रत्याम्नातव्यं तदधिकरण आत्मनोऽन्यस्मादसतोऽपि पराभवमन्वीक्षमाणः ॥६॥ अथ हभगवानादिदेवएतस्यगुणविसर्गस्य परिबृंहणानुध्यानव्यवसितसकलजगदभिप्राय आत्मयोनिरखिलनिगमनिजगणपरिवेष्टितः स्वभवनादवततार॥७॥सतत्रतत्रगगनतलउडुपतिरिव विमानावलिभिरनुपथममरपरिवृढैरभिपू-

---

ओंनमो भगवते वासुदेवाय । अथ पञ्चमस्कन्ध प्रारम्भः ।—राजापरीक्षितने कहा कि—हेमुनि ! राजा प्रियव्रतने कि जो भगवद्भक्त तथा आत्मारामथा, गृह में जो कर्मबन्धन और पराभवका मूलहै; कैसे रमणकिया ? ॥ १ ॥ हे द्विजवर ! वैसे निःसंग, पुरुषोंकी घरोंमें प्रीतिहोना संभवनहीं ॥ २ ॥ जिन महात्माओं का चित्त, उत्तमयश, भगवानके चरणोंकी छायासे आनन्दित रहताहै उन साधुओंकी बुद्धि कुटुम्बकी ओर नहींहोती ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् मुझे बड़ासंदेहहै कि स्त्री,पुत्र, घर इत्यादिकोंमें आसक्त राजा प्रियव्रतकी मोक्षहुई और श्रीकृष्णजीमें अखण्डित मतिहुई ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–हेराजन् सत्यहै उत्तमयशवाले भगवान्के सुन्दर चरणारविंदके मकरन्द रसमें जिनका चित्त लगगयाहै वे परमहंस ! कुछ विघ्नहोने परभी भगवानकी कथारूप अपने मंगलमय मार्गको नहीं छोड़ते हैं ॥ ५ ॥ हेराजन् ! परमभागवत राजपुत्र प्रियव्रतने नारदजीके चरणोंकी सेवासे अनायासही आत्मतत्वको जानलियाथा अतः अध्यात्म ज्ञानकी दीक्षा लिया चाहताथा, उससमय पिता स्वायंभुव मनुने उत्तम गुणोंके समूहका पात्रजान पृथ्वी पालनेके हेतु आज्ञादी, परन्तु भगवान वासुदेवमें समाधि योग लगने और सब कर्म त्याग देनके कारण राजा प्रियव्रतने मिथ्याभूत राज्यके प्रपंचसे अपने पराभवको विचार राज्यकी इच्छा पिताकी आज्ञा होनेपरभी न की ॥ ६ ॥ तब सब जगत्के अभिप्रायको जाननेवाले ब्रह्माजी सृष्टि बढ़ानेकी इच्छा करके मूर्तिमान वेद और अपने मरीचि आदि पुत्रोंको संग लेकर सत्यलोकसे

ज्यमानः पथिपथिचवरूथशः सिद्धगन्धर्वसाध्यचारणमुनिगणैरुपगीयमानो गन्ध मादनद्रोणीमवभासयन्नुपससर्प ॥८॥ तत्रहवाएनं देवर्षिर्हंसयानेन पितरं भगवन्तं हिरण्यगर्भमुपलभमानः सहसैवोत्थायार्हणेन सहपितापुत्राभ्यामवहितांजलिरुपत स्थे ॥ ९ ॥ भगवानपिभारत तदुपनीतार्हणः सूक्तवाकेनातितरामुदितगुणगणाव- तारसुजयः प्रियव्रतमादिपुरुषस्तं सदयहासावलोकइतिहोवाच ॥१०॥ श्रीब्रह्मोवा च ॥ निबोधतातेदमृतंब्रवीमिमाऽसूयितुंदेवमर्हस्यप्रमेयं ।वयंभवस्तेततएषमहर्षि- र्वहामसर्वेविवशायस्यदिष्टम् ॥ ११ ॥ नतस्यकश्चित्तपसा विद्ययावानयोगवीर्येण मनीषयावा । नैवार्थधर्मैः परतःस्वतोवाकृतंविहंतुंतनुभृद्भिर्भूयात् ॥ १२ ॥ भवाय नाशायचकर्मकर्तुंशोकायमोहायसदाभवाय । सुखायदुःखायचदेहयोगमव्यक्त दिष्टंजनताऽङ्गधत्ते ॥ १३ ॥ यद्वाचितंत्यांगुणकर्मदामभिःसुदुस्तरैर्वत्सवयंसुयो जिताः । सर्वेवहामोबलिमीश्वरायप्रोतानसीवद्विपदेचतुष्पदः ॥ १४ ॥ ईशाऽभि सृष्टंह्यवरुन्ध्महेऽङ्गदुःखंसुखंवागुणकर्मसङ्गात् । आस्थायतत्तद्यदयुङ्क्तनाथश्चक्षु- ष्मताऽन्धाइवनीयमानाः ॥ १५ ॥ मुक्तोपितावद्बिभृयात्स्वदेहमारब्धमश्नन्नभिमान शून्यः । यथाऽनुभूतंप्रतियातनिद्रःकिंत्वन्यदेहायगुणान्नवृङ्क्ते ॥ १६॥ भयंप्रमत्त-

उतरे ॥ ७ ॥ वह ब्रह्माजी आकाश में चन्द्रमाकी सदृश प्रकाशमान होते, तथा विमानोंपर बैठे हुये श्रेष्ठ देवता, सिद्ध, गन्धर्व, साध्य, चारण और मुनियोंकी पूजा स्वीकार करते और उनसे गाये हुये यशको सुनतेहुये, गन्धमादनकी गुफाओंको प्रकाशित करतेहुये राजा प्रियव्रतके निकटआये ८॥ उस समय नारदजी प्रियव्रत को अध्यात्म विद्या का उपदेश कर रहे थे तथा मनुजी प्रिय पुत्र प्रियव्रत को लने वहां आये थे, हंस को देखते ही जान लिया कि हमारे पिता ब्रह्माजी आये हैं, इस कारण मनु और प्रियव्रतके साथ कर जोड़ उसी समय उठ खड़े हुए और पूजनकी सामग्री हाथ में लेकर प्रार्थना करने लगे ॥ ९ ॥ हेराजन् ! इसके अनन्तर पूजाकी वस्तु उनके संमुख रखकर मधुर वाक्यों से उनके गुण यश और सर्वोत्कर्ष विषयों का वर्णन किया। तब आदि पुरुष ब्रह्माजी हास्ययुक्त दृष्टि से सस्नेह वचनों द्वारा प्रियव्रत से कहने लगे ॥ १० ॥ ब्रह्माजी ने कहा कि—हेतात ! मेरा वचन मानो, सत्य अप्रमेय परमेश्वर में दोष का लगादेना उचित नहीं है, तुम, तुम्हारे पिता और यह तुम्हारे देवर्षि गुरु नारद जी और मैं—सबही विवश हो उनकी आज्ञा को माना करते हैं ॥ ११ ॥ कोई भी तप, विद्या, समाधि या बुद्धि बल से आपही या किसी दूसरे के सहारे से उन के सृष्ट विषय को मिथ्या नहीं कर सकता और अर्थ व धर्म से भी उनके किये कार्यको नाश नहीं कर सकता ॥१२॥ हे प्रियव्रत! समस्त जीव जन्म, मोह, मृत्यु शोक भय सुख और दुःखादि के आधीन हो कर्म के ही करने के निमित्त ईश्वरकेदिये देह योग को सदाही धारण करते हैं। कोई भी स्वाधीन भावसे कोई काम नहीं करसकता ॥ १३ ॥ हम लोग परमेश्वर की वाक्यरूप रस्सी में सत्वादि गुण, कर्म और ब्राह्मणादि शब्द द्वारा दृढता से बंध कर सब उन को ही पूजोपहार देते हैं। बैलादि चौपाये, जंतु, जैसे नाथ से बंधकर दो पांव के मनुष्यों की इच्छा नुसार उनके लिये कर्म किया करते हैं वैसे ही हम परमेश्वर की इच्छानुसार उनही के लिये कर्म करते हैं ॥ १४ ॥ हे प्रियव्रत ! जैसे नेत्रों वाले मनुष्य अंधो को छाया या धूपमें ले जाते हैं वैसे ही परमेश्वर हमको पशु पक्षी इत्यादि चाहे जिस योनि में डालदें हम उस को ही स्वीकार करके सुख दुःखादि का भोग किया करते हैं ॥ १५ ॥ हेप्रियव्रत ! जैसे निद्रा से उठा हुआ मनुष्य स्वप्न की बातों का स्मरण करता है तैसे ही मुक्त मनुष्य अभिमान रहित हो बंधे हुए कर्मों का भोगकर देह धारण करता है, किंतु वह देह संबंधी गुण, कर्म व वासना-

स्यथनेष्वपिस्याद्यतःसआस्तेसहषट्सपत्नः। जितेंद्रियस्यात्मरतेर्बुधस्यगृहाश्रमः किंनुकरोत्यवद्यम् ॥ १७ ॥ यःषट्सपत्नान्विजिगीषमाणोगृहेषुनिर्विश्ययतेतपूर्वम्। अत्येतिदुर्गाश्रितऊर्जितारीन्क्षीणेषुकामंविचरेद्विपश्चित् ॥ १८ ॥ त्वंत्वब्जनाभांघ्रिसरोजकोशदुर्गाश्रितोनिर्जितषट्सपत्न्यः। भुंक्ष्वेहभोगान्पुरुषातिदिष्टान्विमुक्तसङ्गःप्रकृतिंभजस्व ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इतिसमभिहितोमहाभागवतोभगवतस्त्रिभुवनगुरोरनुशासनमात्मनोलघुतयाऽवनतशिरोधरोबाढमितिसबहुमानमुवाह ॥ २० ॥ भगवानपिमनुनायथावदुपकल्पितापचितिःप्रियव्रतनारदयोरविषममभिसमीक्षमाणयोरात्मसमवस्थानमवाङ्मनसंक्षयमव्यवहृतंप्रवर्तयन्नगमत् ॥ २१ ॥ मनुरपिपरेणैवंप्रतिसंधितमनोरथः सुरर्षिवरानुमतेनात्मजमखिलधरामण्डलस्थितिगुप्तयआस्थाप्यस्वयमतिविषमविषयजलाशयाशायाउपरराम ॥ २२ ॥ इतिहवाव सजगतीपतिरीश्वरेच्छयाऽधिनिवेशितकर्माधिकारोऽखिलजगद्बन्धध्वंसनापरानुभावस्यभगवतआदिपुरुषस्यांघ्रियुगलानवरतध्यानानुभावेनपरिरन्धितकषायाशयोऽवदातोऽपिमानवर्धनोमहतांमहीतलमनुशशास ॥ २३ ॥ अथचदुहितरंप्रजापतेर्विश्वकर्मणउपयेमेबर्हिष्मतीं नामतस्यामुहवावआत्मजानात्मसमानशीलगुणकर्मरूपवीर्योदारान्दशभावयाम्बभूवकन्यांचयवीयसीमूर्जस्वतींनाम ॥२४॥ आग्नी

ओं का भोग नहीं करता ॥ १६ ॥ जो जितेन्द्रिय न हो संग के भय से वन २ में घूमता है तो उस के साथ भी मन और पांच ज्ञानेन्द्रिय यह छह रिपु मिले ही रहते हैं अतएव जो मनुष्य जितेन्द्रिय और आत्मरत है उस का गृहाश्रम कुछभी अनिष्ट नहीं कर सकता ॥ १७ ॥ छहों रिपुओंके जीतनेकी इच्छावाले मनुष्यको प्रथमतो घरमेंरहकर संयमद्वारा उनसबरिपुओंके जीतनेका यत्न करना चाहिये। फिरशत्रु कुलके क्षीण होजानेपर घर में व अन्यत्र कहीं भ्रमण करना चाहिये। देखोना—मनुष्य दुर्गका आश्रय लेकरही बलवान शत्रुको जीतते हैं फिरवह शत्रुको जीतकर इच्छानुसार दुर्गमें व अन्यत्र वासकरते हैं ॥ १८ ॥ तुमने पद्मनाभ भगवानके चरण कमलरूपी दुर्गका आश्रयलिया है इसही कारण तुमने छओं रिपुओं को जीतलिया। ऐसाहोने परभी अब जबतक देह रहे उतने दिनों ईश्वरके दियेहुये भोगोंका भोगकर फिरनिःसंगहो अपने स्वरूपका भजन करना ॥ १९ ॥ श्री शुकदेवजी ने कहाकि—महा भागवत प्रियव्रतने, त्रिभुवन गुरू ब्रह्माजी से इसप्रकार का उपदेश पा, अपने को तुच्छजान, मस्तक झुकाय "यही करूंगा" यह कह ब्रह्माजी की आज्ञा ग्रहण की ॥ २० ॥ मनुने आनंदितहो यथा विधिसे ब्रह्माजी की पूजाकी। ब्रह्माजी भी उस पूजाकी सामग्रीको ग्रहणकर, अपने धामको जोमन और वाणीके अगोचर होनेसे व्यावहार शून्य है, गये। उनके जातेसमय प्रियव्रत और नारदजी सरल भावसे उनकी ओर देखनेलगे ॥ २१ ॥ जब ब्रह्माजीने मनुका मनोरथ इसप्रकार से सिद्धकिया तब मनुजी भी नारदजी की आज्ञानुसार समस्त पृथ्वी की स्थिति और पालनके निमित्त पुत्रके हाथमें राज्यका भारदेकर दुस्तर विषम विष जलाशय स्वरूप भोगकी कामनाओं से विरत हुए ॥ २२ ॥ जिसके ध्यानसे जगतके समस्त कर्म बंधन छूटजाते हैं उन्हीं भगवानके दोनो चरणोंका निरंतर ध्यान करने से प्रियव्रतके रागादि दग्ध होगये थे, इससे उसका चित्तशुद्ध होगया था। किंतु ब्रह्मादि की आज्ञा पालन करना विचार उनका मान बढाने के निमित्त पृथ्वी पतिहो पृथ्वीका राज्य करने लगा ॥ २३ ॥ ईश्वर की इच्छासे फिरउसे कर्माधिकार प्राप्तहुये। तदनंतर उसने प्रजापति विश्वकर्मा की पुत्री बर्हिष्मती से बिवाह किया। उस स्त्री से उसकी सदृश शील, गुण, कर्म, रूप वीर्ययुक्त सरल स्वभाव वाले दशपुत्र और ऊर्जस्वती नामक

सर्वएवाग्निनामानः ॥ २५॥ एतेषांकविर्महावीरःसवनइतित्रयआसन्नूर्ध्वरेतसस्त
आत्मविद्यायामर्भभावादारभ्यकृतपरिचयाःपारमहंस्यमेवाश्रममभजन् ॥ २६ ॥
तस्मिन्नुहवाउपशमशीलाः परमर्षयः सकलजीवनिकायावासस्यभगवतोवासु
देवस्यभीतानांशरणभूतस्यश्रीमच्चरणारविन्दाविरतस्मरणाविगलितपरमभक्ति
योगानुभावेनपरिभावितान्तर्हृदयाधिगतेभगवतिसर्वेषांभूतानामात्मभूतेप्रत्यगात्म
न्येवात्मनस्तादात्म्यमविशेषेणसमीयुः ॥२७॥ अन्यस्यामपिजायायांत्रयःपुत्राआस
न्नुत्तमस्तामसोरैवतइतिमन्वन्तराधिपतयः ॥ २८ ॥ एवमुपशमायनेषुस्वतनये
ष्वथजगतीपतिर्जगतीमर्बुदान्येकादशपरिवत्सराणामव्याहताखिलपुरुषकारसार
संभृतदोर्दण्डयुगलापीडितमौर्वीगुणस्तनितविरमितधर्मप्रतिपक्षो बर्हिष्मत्याश्चानु
दिनमेधमानप्रमोदप्रसरणयौषिण्यव्रीडाप्रमुषितहासावलोकरुचिरक्ष्वेल्यादिभिः
पराभूयमानविवेक इवानवबुध्यमान इवमहामनाबुभुजे ॥२९॥ यावदवभासयति
सुरगिरिमनुपरिक्रामन्भगवानादित्यो वसुधातलमर्धेनैव प्रतपत्यर्धेनावच्छादयतित
दाहि भगवदुपासनोपचितातिपुरुषप्रभावस्तदनभिनन्दन्समजवेन रथेनज्योतिर्म
येनरजनीमपिदिनंकरिष्यामीतिसप्तकृत्वस्तरणिमनुपर्यक्रामद्द्वितीयइवपतङ्गः ३० ॥
येवाउहतद्रथचरणनेमिकृतपरिखातास्ते सप्तसिन्धवआसन्यतएवकृताः सप्तभुवो
द्वीपाः ॥ ३१ ॥ जम्बूप्लक्षशाल्मलिकुशक्रौंचशाकपुष्करसंज्ञास्तेषां परिमाणंपूर्व
स्मात् पूर्वस्मादुत्तरोत्तरं यथासंख्यंद्विगुणमानेन बहिः समन्ततउपक्लृप्ताः ॥
॥ ३२ ॥ क्षारोदेक्षुरसोदसुरोदघृतोदक्षीरोददधिमण्डोदशुद्धोदाः सप्त जलधयः

एक सुंदर कन्याभी हुई ॥ २४ ॥ आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेतः, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र, और कविइन सबके अग्निपर्य्याय वाचकनाम थे ॥२५॥ इनमें कवि, महावीर, और सवन यह तीनो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुये, इन्होंने बाल्यावस्था मेंही आत्मविद्याका अभ्यास कियाथा इससे इन्होंने परमहंसाश्रम धारण किया ॥ २६ ॥ उस आश्रम मेंही वैज्ञान शील राजपुत्र, जीवोंके निवासभूत, भगवान वासुदेव "किजो डरेहुओंके शरण होतेहैं" के सुंदर चरणोंका निरंतर स्मरण करतेहुये अखंडितभक्ति योगके प्रभावसे शुद्धहुये अंतःकरण के भीतर प्रतीत होते समस्त प्राणियों के आत्मरूप तथा प्रत्यक्रूप ईश्वरमें अपने देहादि उपाधिसे रहितहोकर भगवद्रूपताको प्राप्तहुये॥२७॥ और दूसरी रानीसे भी मन्वन्तरपालक तीनपुत्र उत्तम, तामस, और रैवत उत्पन्नहुये ॥२८॥ इस-भांति उस शांतिस्वरूप पुत्रोंवाले राजा प्रियव्रतने ११ अर्बवर्षतक पृथ्वीका पालनकिया, उस राजा ने, कि जिसने सहजहीसे समस्त पुरुषार्थ सिद्ध करनेवाले बलसे पूर्ण, दोनों भुजाओं से खिचेहुये धनुषटंकारके शब्दसे बिना युद्ध कियेही धर्मके प्रतिपक्षी मनुष्योंका नाश करदियाथा, तथा जो बर्हिष्मतीके प्रतिदिनसे बढ़ेहुये प्रमोद उत्तमगमन, स्त्रीस्वभाव लज्जा, हास्यवचन, सुन्दर हावभाव अवलोकन इत्यादिसे विवेक रहितसा होगया मानों विषयाशक्तिसे आत्मस्वरूपको भूलगया ऐसा ज्ञात होताथा ॥२९॥ मेरुपर्वत के आसपास सूर्यके भ्रमण करनेसे पृथ्वीतलके आधेभागमें अँधेरा और आधेमें प्रकाश रहताहै इसकारण समस्त पृथ्वीतलमें एकवारही प्रकाश करनेके हेतु राजा प्रियव्रत ज्योतिर्मयरथमें बैठ कि जो सूर्यकी समान वेगवालाथा दूसरे सूर्यका सदृश सूर्यके पीछे२ सातबेर परिक्रमाकी ॥ ३० ॥ उस रथके पहियोंकी धारासे जो गड्ढे पड़गयेथे वही सात समुद्रों के नामसे प्रसिद्धहैं कि जिन सात समुद्रोंसे पृथ्वीके सात द्वीपहुए, ॥ ३१ ॥ जम्बूद्वीप, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक, पुष्कर यह सातोंद्वीप एक दूसरेसे उत्तरोत्तर विस्तारमें दूने हैं जो समुद्र के चारोंओर रचेगये हैं ॥ ३२ ॥ क्षरोद, इक्षुरसोद, सुरोद, घृतोद, क्षीरोद, दधिमंडोद और शुद्धोद

सप्तद्वीपपरिखा इवाभ्यन्तरद्वीपसमाना एकैकश्येनयथानुपूर्वं सप्तस्वपिबहिर्द्वीपेषु पृथक्परितउपकल्पितास्तेषु जम्ब्वादिषु बर्हिष्मतीपतिरनुव्रतानात्मजानाग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुहिरण्यरेतोघृतपृष्ठमेधातिथिवीतिहोत्रसंज्ञान् यथासंख्येनैकैकस्मिन्नेकमेवाधिपतिंविदधे॥३३॥ दुहितरंचोर्जस्वतींनामोशनसे प्रायच्छद्यस्यामासीद्देवयानीनामकाव्यसुता ॥ ३४ ॥ श्लोकः ॥ नैवंविधःपुरुषकारउरुक्रमस्य पुंसांतदंघ्रिरजसाजितषड्गुणानाम् ॥ चित्रंविदूरविगतःसकृदाददीत यन्नामधेयमधुनास जहातिबन्धम् ॥ ३५ ॥ सएवमपरिमितबलपराक्रमएकदातुदेवर्षिचरणानुशयनानुपतितगुणविसर्गसंसर्गेणानिर्वृतमिवात्मानंमन्यमानआत्मनिर्वेदइदमाह ॥ ३६ ॥ अहोअसाध्वनुष्ठितं यदभिनिवेशितो ऽहमिन्द्रियैरविद्यारचितविषमविषयान्धकूपे तदलमलममुष्या वनितायाविनोदमृगंमांधिग्धिगितिगर्हयांचकार ॥ ३७ ॥ परदेवतायाःप्रसादाधिगतात्मप्रत्यवमर्शेनानुप्रवृत्तेभ्यः पुत्रेभ्यइमांयथादायं विभज्यभुक्तभोगां च महिषीं मृतकमिव सहमहाविभूतिमपहाय स्वयं निहितनिर्वेदो हृदि गृहीतहरिविहारानुभावो भगवतो नारदस्यपदवीं पुनरेवानुससार ॥ ३८ ॥ तस्य ह्वा एते श्लोकाः ॥ प्रियव्रतकृतकर्मकोनुकुर्याद्विनेश्वरम् । यौनेमिनिम्नैरकरोच्छायां घ्नन्सप्तवारिधीन् ॥ ३९ ॥ भूसंस्थानंकृतंयेन सरिद्गिरिवनादिभिः । सीमाच्चभूतनिर्वृत्यैद्वीपेद्वीपेविभागशः ॥ ४० ॥ भौमंदिव्यंमानुषंच महित्वंकर्मयोगजम् । यश्चक्रेनिरयौपम्यं पुरुषानुजनप्रियः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे प्रियव्रतविजये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

यह सात समुद्र सातोंद्वीपोंकी खाईके सदृशहुये यह समुद्र बाहरकी ओर भीतरके द्वीपकी बराबर विस्तारवाले हैं, एक २ द्वीपके बाहर क्रमानुसार एक २ समुद्र बनायागया है । बर्हिष्मतीके पति राजा प्रियव्रतने, अपने आज्ञाकारी आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि व वीतिहोत्र, पुत्रोंको इन्हीं सातोंद्वीपोंमें एक २ को एक २ का राजाकिया ॥ ३३ ॥ राजा प्रियव्रतने अपनी ऊर्जस्वती कन्या शुक्राचार्यकोदी कि जिससे देवयानी नामक कन्या उत्पन्नहुई॥ ॥ ३४ ॥ हेराजन् ! जिन्होंने भगवान्के चरणोंकी रजके प्रभावसे अपनी इन्द्रियोंको वश करलिया है उन भगवद्भक्तों का ऐसा पराक्रम होना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है क्योंकि महानीच चांडाल पुरुष भी भगवान का केवल एकबार नाम स्मरण करनेसे संसारके बन्धनसे छूट जाताहै ॥ ३५ ॥ राजा प्रियव्रत नारद जी के श्री चरण आश्रय करने के समय जो राज्यादि प्रपंच आपड़ा,उसके संसर्गसे आत्माको अकृतार्थसा मानता हुआ मनमें वैराग्य को प्राप्त हो यह वचन बोला ॥ ३६ ॥ कि अहो मैंने बड़ा निंदित कर्म किया, कि जो मैंइन्द्रियोंके वशीभूत होकर अविद्या रचित विषय रूपी अंधे कूप में गिरा और इस स्त्री का क्रीड़ा मृग बना, इससे मुझे धिक्कार है २ इस भांति अपनी बहुत सी निंदा करनेलगा ॥३७॥ हे राजन् भगवान की कृपा से विवेक को प्राप्तहो, पुत्रों को यथा योग्य (दाय भाग के अनुसार) पृथ्वी व राज्य संपति सहित अपनी स्त्री को मृत शरीर के समान त्याग करके फिर नारदजी के उपदेशानुसार वर्तने लगा ॥३८॥ उस प्रियव्रत की महिमामें लोग यह श्लोक कहा करते हैं कि प्रियव्रत के कर्मोंको ईश्वर विनाकौन करसकताहै कि जिसने सूर्य्य की छाया मिटानेके लिये अपने रथके पहियोंकी धारसे सातसमुद्र किये॥३९॥तथा जिस प्रियव्रत ने द्वीपों की रचना की और नदी, पर्वत, वन इन से द्वीप २ में प्राणियों के सुखके लिये सीमा की ॥ ४० ॥ भगवद्भक्तों के प्यारे राजा प्रियव्रत ने योगज और कर्मज वैभव को तथा पाताल, स्वर्ग और पृथ्वी के सुख को नरक की समान जाना ॥ ४१ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहा०पंचमस्कंधे,सरलाभाषाटीकायांप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एवंपितरिसंप्रवृत्तेतदनुशासनेवर्तमानआग्नीध्रोजम्बूद्वीपौकसः प्रजाऔरसवद्धर्मावेक्षमाणःपर्यगोपायत् ॥१॥ सचकदाचित्पितृलोककामःसुरवर वनिताक्रीडाचलद्रोण्यांभगवन्तंविश्वसृजांपति माभृतपरिचर्योपकरणआत्मैकाग्र्येणतपस्व्याराधयाम्बभूव ॥ २ ॥ तदुपलभ्यभगवानादिपुरुषःसदसिगायन्तींपूर्वचित्तिनामाप्सरसमभियापयामास ॥ ३ ॥ साचतदाश्रमोपवनमतिरमणीयं विविधनिविडविटपि विटपनिकरसंश्लिष्टपुरटलता रूढस्थलविहङ्गममिथुनैःप्रोच्यमान श्रुतिभिः प्रतिबोध्यमानसलिलकुक्कुटकारण्डवकलहंसादि भिर्विचित्रमुपकूजिता मलजलाशयकमलाकरमुपबभ्राम ॥ ४ ॥ तस्याःसुललितगमनपदविन्यासगति विलासायाश्चानुपदं खणखणायमानरुचिरचरणाभरणस्वनमुपाकर्ण्य नरदेवकुमारः समाधि योग नामीलितनयननलिनमुकुलयुगलमीषद्विकचय्यव्यचष्ट ॥ ५ ॥ तामेवाऽविदूरेमधुकरीमिव सुमनसउपजिघ्रन्तींदिविजमनुजमनो नयनाह्लाददुघैर्गतिविहारव्रीडाविनयावलोकसुस्वराक्षरावयवैर्मनसिनृणांकुसुमायुधस्य विदधतीं विवरं ॥६॥ निजमुखविगलितामृतासवसहासभाषणामोदमदांधमधुकरनिकरोपरोधेनद्रुतपदविन्यासेनवल्गुस्पन्दनस्तनकलशकबरभाररशनांदेवींतदवलोकनेनविवृतावस

श्रीशुकदेवजी बोले कि—राजा प्रियव्रत के वनको चले जाने पर, उस के आज्ञा कारी पुत्र राजा आग्नीध्रने धर्म की ओर दृष्टि रख कर जम्बूद्वीपस्थित प्रजाका पुत्रकी सदृश पालन किया ॥ १ ॥ एक समय राजा आग्नीध्र पुत्र की इच्छा से पूजा की समस्त सामग्री एकत्रित करके देवांगनाओंकी क्रीड़ा भूमि मंदराचल पर्वतकी गुफामें बैठा और एकाग्रचित्त हो ब्रह्माजी का आराधन करने लगा ॥ २ ॥ ब्रह्माजी ने उसका अभिप्राय जान अपनी सभामें गान करती हुई पूर्व चित्ति नाम अप्सरा को उसके निकट भेजा ॥३॥ वह पूर्व चित्ती अप्सरा ब्रह्माजीकी आज्ञानुसार आग्नीध्रके आश्रमके निकटवर्त्ती बन में भ्रमणकरनेलगी । यह बन अति मनोहरथा, वहां सघन अनेकानेक वृक्षोंकी शाखाओं के ऊपर विविधप्रकारकी सुवर्णनिर्मित सुवर्ण बल्लियां लिपट रहीथीं और उन बल्लियोंके ऊपर मयूर, कीट, कोकिलादि विविध भूमिचारी पक्षी अपने २ द्वन्दों (जोडों) के साथ षड्जादि मधुर स्वरसे गान कररहेथे, उनके शब्दको सुनकर हंसकारण्डव आदि जलचारी पक्षी कमल कोशोंपर स्थितहो सावधानतासे विचित्र प्रकारके शब्द कररहेथे जिससे यह ज्ञानहोताथा कि मानों वहांके समस्त सरोवरहीकोलाहल मचारहे हैं ॥४॥ वहअप्सरा सुललित गमन करनेके लिये इसप्रकार हावभाव बतलाकर पगधरनेलगी कि—जिससे अद्भुतगति और बिलास प्रकटहुआ और प्रतिपगमें उसके सुन्दर चरणोंके गहने खन खन (झंकार) ध्वनि करने लगे, जबकि यह मनोहर नाद राजपुत्र आग्नीध्रने सुना तब वह अपने दोनों नेत्रोंको जोकि समाधी योग में सर्व प्रकार लगे हुये थे कुछ एक खोलकर देखने लगे ॥५॥ तो उस समय वह अप्सरा दिखाई दी उसको देखतेही वह राजपुत्र कामदेव के वशीभूत होगया । हेराजन् ! पूर्वचित्ति अप्सरा के देखने से आग्नीध्रजी को कामके वशी होजाना कुछ विचित्र बात नहीं है क्योंकि यह अप्सरा उनके अति समीप रहने वाली मधुकरी के समान पुष्पों को सूंघ रही थी, उसकी गति विहार के योग्य लजीली व नम्रता युक्त चितवन, मधुरबाणी और नेत्रादि अङ्ग अति मनोहर थे, उन नेत्रादि कों के द्वारा मानो दृष्टा (देखनेवाले) लोगों की शिरा (नसों) ओं में कामदेव के प्रवेश करने का मार्ग बना रही थी ॥ ६ ॥ और दूसरे उसके मुखसे अमृत तुल्य स्वादवाले और आसव के समान मादक जो मन्दमुसकान सहित मनोहर बचन बर्षरहेथे, उनके साथ सुगन्धितवायुकी तुल्य श्वांसचल रहेथे उस मादक गंध से मोहित भौंरोका समुदाय का समुदाय अंधाहो उसके वदनके

रस्यभगवतोमकरध्वजस्यवशमुपनीतोजडवदितिहोवाच ॥७॥श्लोकाः ॥ कात्वंचि
कीर्षसिचकिंमुनिवर्यशैलेमायाऽसिकापिभगवत्परदेवतायाः ।विज्येधिभर्षिधनुषी
सुहृदात्मनोऽर्थेकिंवामृगान्मृगयसेविपिनेप्रमत्तान् ॥ ८ ॥ बाणाविमौभगवतःशत
पत्रपत्रौशांतावपुंखरुचिरावतितिग्मदन्तौ । कस्मैयुयुंक्षसिवनेविचरन्नविद्मःक्षे-
मायनोजडधियांतवविक्रमोऽस्तु ॥ ९ ॥ शिष्याइमेभगवतःपरितःपठन्तिगायन्ति
सामसरहस्यमजस्रमीशम् । युष्मच्छिखाविलुलिताःसुमनोभिवृष्टीःसर्वेभजन्त्यृषि
गणाइववेदशाखाः ॥१०॥ वाचंपरंचरणपञ्जरतित्तिरीणांब्रह्मन्नरूपमुखरांशृणवाम
तुभ्यम् । लब्धांकदम्बरुचिरङ्कविटङ्कविम्बेयस्यामलातपरिधिःक्वचवल्कलंते॥११॥
किंसंभृतंरुचिरयोर्द्विजशृङ्गयोस्तेमध्येकृशोवहसियत्रदृशिःश्रितामे । पङ्कोरुणःसुर

ऊपर आच्छादि तथा, उस भ्रमर समुदायके भय से ज्यों २ वह अप्सरा अगाड़ी को चरण उठाती थी त्यों २ उसके पुष्टपयोधर तथा वेंणी (चोटी) और किंकिणी मनोहर भांति से डोलने लगते थे । ऐसे हाव भाव देखकर किस के मनमें मोह उत्पन्न न हो ! उसको देख आग्नीध्र मोहित हो कामके वश हुये । और जड़ पदार्थ की नाईं कभी को कभी पुरुष इस प्रकार उसको पुकार कर कहने लगे॥७॥ आग्नीध्रजी बोले। हे मुनिवर! तुम कौन हो? इस पर्वतके ऊपर किस काम के करने की तुम्हारी इच्छा है ? क्या तुम परदेवता भगवान की माया हो ? फिर उसकी दोनों भ्रुकुटियों को देखकर कहनलगे हे सखे ! तुम इन दो प्रत्यंचारहित धनुषों को क्या अपने अर्थ धारण करते हो ? क्या इन दोनों धनुषों से तुम्हाराही कोई काम है अथवा मृगया (शिकार) के अर्थ जितेन्द्रिय हम सरीखों को मृगके सदृश ढूंढने फिरते हो ! इस कारण यह दो धनुष आपने अपने साथ रक्खे हैं । अर्थात् मुझको वश करने के अर्थ इन दो धनुषों को धारण करते हो ॥ ॥ ८ ॥ फिर उसके ऊपर आक्षेप कर कहते हैं कि हे प्रिय ! यह तुमारे दोनो कटाक्ष दो बाण हैं, तुमारे दोनों नेत्र इनके दो फल हैं, अहो यह दोनों विभ्रम के कारण शान्त होरहे हैं यद्यपि इनमें पक्ष (पंख) नहीं हैं तथापि यह विनापक्षके भी अत्यन्त कठिन दीख पड़ते हैं और फिर भी दोनों का अगला भाग अत्यन्त तीक्ष्ण (तेज) है, क्या तुम बिना उनके चलाये शान्त न होगे ? अब यह कहो कि किसके ऊपर इनको चलाना चाहते हो । मेरी समझ में यह कुछ भी नहीं आता और भय के मारे मैं जड़की नाईं होरहा हूं, इस कारण मैं केवल तुम्हारी इतनी प्रार्थनाकर रहा हू कि यह आपका बिचरना हमारे सुखके अर्थ हो तो बहुत श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥ उसके शरीर की सुगंधि को सूंघकर अन्धेहुये जो भौंरे पीछे २ चले आते थे उनको देखकर कहने लगे । हेविभो ! क्या यह समस्त तुम्हारे शिष्य हैं ? और तुम्हारी चारोंओर परिक्रमाकर सरहस्य सामवेद का पाठ तथा गायन कररहे हैं ? तुम्हारी शिखा (चोटी) से जो यह पुष्पखसे पड़ते हैं इनको यह भौंरे इस प्रकार सेवन करते हैं जैसे कि ऋषिलोग वेद की शाखाओं को सेवन करते हैं ॥१०॥ फिरनूपुरोंकी ध्वनिसुनकर कहने लगेकि हेब्रह्मन्! इन तुम्हारे दोनो चरणों मेंपहरहुये दोनों नूपुररूपी पींजरों के मध्यगत समस्त रत्नरूपी तीतरियोंका अत्यन्त सुखदायक शब्दतो मैं सुनही रहाहू परन्तु यह वचन कौनकहरहा है उस बोलने वालेका मुख कमल मुझको नहीं दीखपड़ता, फिरउसके पहनने के पीलेवस्त्रको नितम्बकी कान्ति समझकर बोले, कि तुमने अपने सुन्दर नितम्व मण्डलमें यह कदम्वके फूलोंकी शोभा कहां से प्राप्तकी, फिर पीछे मेखलाको देखकर बोले कि यह जिसमें अंगारों की पंक्तिकी पंक्ति दीखपड़ती है और दीपमालिका का चक्रसा जोवनरहा है यह क्या है ? और तुम्हारा वल्कल कहांगया ॥ ११ ॥ फिरदोनो स्तनो को देखकर कहा कि, हे मित्र ? तुम्हने अपने दोनो स्तनो मे क्या भररक्खा है कि जिनमें मेरीदृष्टि लगी

भिरात्मविषाणईदृग्येनाश्रमंसुभगमेसुरभीकरोषि ॥ १२ ॥ लोकंप्रदर्शयसुहृत्तम तावकंमेयत्रत्यइत्थमुरसाऽवयवावपूर्वौ । अस्मद्विधस्यमनउन्नयनौविभर्तिवह्व- द्भुतंसरसराससुधाधिवक्त्रे ॥ १३ ॥ कावात्मवृत्तिरदनाद्धविरंगवातिविष्णोःकला स्यनिमिषोन्मकरौचकर्णौ । उद्विग्नमीनयुगलंद्विजपङ्क्तिशोचिरासन्नभृङ्गनिकरं सरइन्मुखंते ॥ १४ ॥ योसौत्वयाकरसरोजहतःपतङ्गोदिक्षुभ्रमन्भ्रमतएजयतेऽक्षि- णीमे । मुक्तंनतेस्मरसिवक्रजटावरूथंकष्टोऽनिलोहरतिलम्पटएषनीवीम् ॥ १५ ॥ रूपंतपोधनतपश्चरतांतपोघ्नंह्येतत्तुकेनतपसाभवतोपलब्धम् । चर्तुंतपोर्हसिमयासह मित्रमह्यंकिंवाप्रसीदतिसवैभवभावनोमे ॥ १६॥ नत्वांत्यजामिदयितं द्विजदेवदत्तं यस्मिन्मनोदृगपिनोनवियातिलग्नम् । मांचारुशृङ्गर्हसिनेतुमनुव्रतंते चित्तंयतः प्रतिसरन्तुशिवाःसचिव्यः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इतिललनाऽनुनयातिविशा-

हुई है, और मध्य भागके क्षीणहोने से जिनको आपबड़े कष्ट से धारणकर रहेहो । फिर दोनो कुचों पर कुंकुम लगाहुआ देखकर बोले, कि तुम्हारे इन कुचोंपर अरुण रंगका पंक कैसे लगगया कि जिससे तुम हमारे आश्रमको सुगन्धित कर रहेहो ॥ १२ ॥ हे सुहृदोत्तम ! आपका कहानिवासस्थान है । सोहमको भी दिखाओ मालूम होता है कि आपका निवासस्थान अत्युत्त- महोगा क्योंकि जहांके निवासी हृदयपर ऐसा अपूर्व अवयव धारण करते हैं; तुम्हारे इन अवय- वोंकी सजावट का मै क्या वरणनकरूं, इनको देखकर तोहम सरीखे पुरुषोंका मन अतिशय क्षुभित होजाता है,हेप्रियबन्धो ! आपके स्थानके रहने वाले केवल यह अवयवही नहीं धारण करते वरन उनके सुन्दर मुखमे मधुर भाषण और अद्भुत अधरा मृतभी है ॥ १३ ॥ हेमित्र ! मैं तुम से और भी एकबात् पूंछताहूं कि तुमने जगत्में शरीर धारण करने के लिये किस वृत्तिका आश्रयलिया है, मैं जानूतुम भोजन नहीं करते, विनाभोजनही प्राण धारण करतेहो क्योंकि, तुमःविष्णु भगवान के अंशहो, विष्णुजी भोजन नहीं करते, सोतुम उनके वंशमेंहो फिरभला किसभांति आपका भोजन करना संभव होसक्ता है, हेसुहृद ! मैकुछ अपने मनसे तुम्हे विष्णुजीका अंश नहीं बनाता वरन मैंजो यह देखताहूं कि तुम्हारे दोनो कानोंमें मकराकृतकुंडल शोभित होरहे हैं, फिर उनके समीप हीनिमेष शून्य दोनेत्र.शोभा विस्तारित कररहे हैं दूसरे आपका मुखमंडल यथार्थ सरोवर के तुल्य है क्योंकि इसमें यह दोनयन चंचल मीनयुगल समान क्रीड़ाकर रहे हैं और मुखकमलके भीतर यह। द्विजपंक्ति राजहंसोंकी श्रेणीकी सदृश शोभा देरही है और समीप मेंही यह केशपाश भ्रमर कुलकी भांति शोभा फैलारहा है ॥ १४ ॥ हेमित्र ! तुम अपने करसरोज से जोबारंबार गेंदको उछालतेहो, यह घूमतीहुई मेरेनेत्रों को चंचल करती है, तुम्हारे यह वेणीबंधन खसके पड़ते हैं, इनकी क्या तुमको सुधनहीं है । यह धूर्त पवन आपके नीवीबंधनको हरण करता है, क्या इसकाभी तुमको स्मरण नहीं है ॥ १५ ॥ हे तपोधन ! आपका यह स्वरूप तपस्वियों के तपको नष्ट करने वाला है। आपने किसतपस्याके प्रभावसे यह स्वरूप पाया है, हेसखे, तुममेरेसाथ तपस्याकरो जिससे ब्रह्माजी प्रसन्नहोकर तुमको मेरीस्त्री बनादें ॥ १६ ॥ हमें जानपड़ताहै कि भगवान ब्रह्माजीने आपको हमारेही हेतु भेजा है अतः हम आपका त्यागननहींकरेंगे तुममें हमारे नेत्र तथा मन लगाहुआ है सो वह किसी तरह नहीं पृथक् होसकता इसकारण हे शुभानन ! ब्रह्माजीकी दीहुई आपको मैं कदापि नहीं त्यागन करसकता । हे श्रेष्ठ अंगवाली ! जहां तुम्हारा चित्तचाहै उसी स्थानमें लेचलो । क्योंकि हम आपकेही बशीभूतहैं और आपकी यह सखियेंभी अनुकूलहों हमारे साथ २ रहैं ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! आग्नीध्रराजा देवताओं केसदृश बुद्धिमान् तथा स्त्रियोंके चित्तमेंभी वह अति अद्भुत और चतुरथा इसकारण उस आग्नीध्र

रङ्गोग्राम्यवैदग्ध्ययापरिभाषयातां विबुधवधूं विबुधमतिरधिसभाजयामास ॥ १८॥ साचतस्तस्यवीरयूथपतेर्बुद्धिशीलरूपवयः श्रियौदार्येणपराक्षिप्तमनास्तेन सहायुतायुतपरिवत्सरोपलक्षणंकालंजम्बूद्वीपपतिनाभौमस्वर्गभोगान्बुभुजे ॥ १९ ॥ तस्यामुहवाआत्मजान्सराजवरआग्नीध्रोनाभि किंपुरुषहरिवर्षेलावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमालसंज्ञान्नवपुत्रानजनयत् ॥ ॥ सासूत्वाऽथसुतान्नवानुवत्सरंगृहएवापहायपूर्वचित्तिर्भूयएवाजंदेवमुपतस्थे ॥ २० ॥ आग्नीध्रसुतास्ते मातुरनुग्रहादौत्पत्तिकेनैवसंहननबलोपेताः पित्रा विभक्ताआत्मतुल्यनामानियथा भागंजम्बूद्वीपवर्षाणिबुभुजुः ॥ २१ ॥ आग्नीध्रोराजाऽतृप्तःकामानामप्सरसमेवानुदिनमधिमन्यमानस्तस्याःसलोकतांश्रुतिभिरवारुन्धयत्रपितरोमादयन्ते ॥ २२ ॥ संपरेतेपितरिनवभ्रातरो मेरुदुहितॄर्मेरुदेवीं प्रतिरूपामुग्रदंष्ट्रींलतांरम्यांश्यामांनारीं भद्रांदेववीतिमितिसंज्ञानवोदवहन् ॥ २३ ॥

इतिश्रीमद्भा०पञ्चम०आग्नीध्रवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच । नाभिरपत्यकामोऽप्रजया मेरुदेव्याभगवन्तं यज्ञपुरुषमवहितात्माऽयजत ॥ १ ॥ तस्यहवावश्रद्धया विशुद्धभावेनयजतः प्रवर्ग्येषुप्रचरत्सु द्रव्यदेशकालमन्त्रर्त्विग्दक्षिणाविधानयोगोपपत्त्या दुरधिगमोऽपिभगवान् भागवतवात्सल्यतयासुप्रतीक आत्मानमपराजितं निजजनाभिप्रेतार्थविधित्सया गृहीतहृदयो हृदयंगममनोनयनानन्दनावयवाभिराममाविश्चकार ॥२॥अथहतमाविष्कृतभुजयुगलद्वयं

ने ग्राम्य मनुष्योंके भीतर चातुर्य्यता युक्त भाषाके द्वारा इस अप्सरा पूर्व चित्तिको भलेप्रकार आदर तथा सन्मानकर मनाया, ॥ १८ ॥ उसकी वीरेंद्र और उसकी उत्तम विद्या, बुद्धि, वयस, रूप, श्री, उदारता, और शीलता अवलोकनकर पूर्वचित्तिका भी उसमे मन लगा दशकरोड़ वर्ष पर्य्यंत जम्बूद्वीपाधिपति इस पृथ्वीनाथके साथ पृथ्वी और स्वर्गका उत्तम ऐश्वर्य, भोगतीरही ॥ १९ ॥ कालवश उसके गर्भमें राजा आग्नीध्रसे नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरणमय, कुरू भद्राश्व और केतुमाल यह नौपुत्र उत्पन्नहुये। पूर्वचित्तिने प्रत्येक साम्वत्सरमें एक २ सन्तति उत्पन्न करी, इसीप्रकार जब नौपुत्र उत्पन्नहुये, तब वह समस्तपुत्रोंका परित्यागकर भगवान ब्रह्माजीकी उपासनामें प्रवृत्तहुआ ॥ २० ॥ हेराजन् ! आग्नीध्रके नवपुत्र माताकी प्रकृतिसेंही महाहृष्ट पुष्ट, और बलवान्हुए, इसहेतु आग्नीध्रने उनको पृथक् २ पृथ्वी के विभाग करदिये, वह उन विभागोंके अनुकूल निज२ नाममें जम्बूद्वीपके नौखण्डकर राज्यभोगनेलगे,॥२१॥आग्नीध्र राजा विषय भोगसे सन्तुष्ट नहींहुआ वह सर्वदा विषय करनेकोही बड़ा मानताथा, अतः वेदोक्त कर्म करने के प्रभावसे जहां पितर आनन्द भोगतेहैं तथा जहांपर पूर्वचित्ति अप्सराथी उसीलोकको राजा आग्नीध्र प्राप्तहुआ ॥२२॥जब राजाआग्नीध्र परलोकवासीहुये, तब उनके नौपुत्रोंने मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रम्या,श्यामा,नारी,भद्रा और देववीति, आदि मेरूकी नव कन्याओं से विवाह क्रमशःकिया ॥२३॥

इति श्री भागवत महापुराणे० पंचमस्कंधे सरला भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! निस्सन्ताननाभि राजाने अपनी स्त्री मेरु देवी को संग ले पुत्रकी कामना कर यज्ञ पुरुष भगवान की पूजाकी ॥ १ ॥ वह राजा श्रद्धा पूर्वक शुद्ध भावसे प्रवर्ग नाम यज्ञ के कर्म करा रहा था, यद्यपि देश काल, द्रव्य, मंत्र, ऋत्विक दक्षिणा औरविधि इन उपायों से भी भगवान नहीं प्राप्त होते, तौ भी अपने भक्तों के कार्य करने के हेतु जिन का चित्त भक्तों की ओर खिंचा हुआ है—ऐसे भगवान भक्तों पर दया करके सुंदर देह धारण कर चित्त तथा नेत्रों को अनन्द देने वाले अंगों से सुंदर, सुखदायी स्वतंत्र रूप को प्रगट किया॥२॥

हिरण्मयं पुरुषविशेषं कपिशकौशेयाम्बरधरमुरसि विलसच्छ्रीवत्सललामं दरवर वनरुहवनमालाऽच्छूर्यमृतमणिगदादिभिरुपलक्षितं स्फुटकिरणप्रवरमणिमयमुकुट कुण्डलकटककटिसूत्रहारकेयूरनूपुराद्यङ्गभूषण विभूषितमृत्विक्सदस्यगृहपतयो ऽधना इवोत्तमधनमुपलभ्य सबहुमानमर्हणेनावनतशीर्षाण उपतस्थुः ३ ऋत्विज ऊचुः। अर्हसि मुहुरर्हत्तमार्हणमस्माकमनुपथानां नमोनम इत्येतावत्सदुपाशिक्षितं कोऽर्हति पुमान् प्रकृतिगुणव्यतिकरमतिरनीश ईश्वरस्य परस्य प्रकृतिपुरुषयोरर्वाक्तनाभिर्नामरूपाकृतिभी रूपनिरूपणम् ॥४॥ सकलजननिकायवृजिननिरसनशिवतमप्रवरगुणगणैकदेशकथनादृते ॥५॥ परिजनानुरागविरचितशबलसंशब्दसलिलसित-किसलयतुलसिकादूर्वांकुरैरपि संभृतया सपर्यया किल परम परितुष्यसि ॥ ६ ॥ अथानयाऽपि न भवत इज्ययोरुभारभरया समुचितमर्थमिहोपलभामहे ॥ ७ ॥ आत्मन एवानुसवनमंजसा व्यतिरेकेण बोभूयमानाशेषपुरुषार्थस्वरूपस्य किंतु नाथाशिष आशासानानामेतदभिसंराधनमात्रं भवितुमर्हति ॥ ८ ॥ तद्यथा बालिशानां स्वयमात्मनः श्रेयः परमविदुषां परम परमपुरुष प्रकर्षकरुणया स्वमहिमानं चापवर्गाख्यमुपकल्पयिष्यन् स्वयं नापचित एवेतरवदिहोपलक्षितः ॥९॥ अथायमेव वरो ह्यर्हत्तम यर्हि बर्हिषि राजर्षेर्वरदर्षभो भवान्निजपुरुषेक्षणविषय आसीत् ॥ १० ॥ असङ्गनिशितज्ञानानलविधूताशेषमलानां भवत्स्वभावानामात्मारामाणां मुनीनामनवरतपरिगुणितगुणगण परममङ्गलायनगुणगणकथनोऽसि ॥ ११ ॥ अथ कथंचित्

जिस में चार भुजा प्रगट हैं ऐसे, तेजमय, पुरुष श्रेष्ठ, पीताम्बर तथा श्रीवत्स का चिह्न धारण किये; शंख , चक्र, गदा, पद्म, वनमाला और कौस्तुभमणि से युक्त तथा जिन में किरणें प्रकाशित होरहा हैं ऐसे श्रेष्ठ मणियों के मुकुट, कुंडल, कोंधनी, हार, बाजूबंद और घुंघरू इत्यादिक आभूषण पहिन हुये प्रभु को, ऋत्विज सभासद और यजमान इनसबोंने देख इस भांति प्रसन्न हो कर प्रजा की पूजाकी कि जैसे निर्धनी धनको पाकर प्रसन्न होवे ॥ ३ ॥ ऋषिबोले कि—हे पूज्य तम ! हम दासों की पूजा आप बारम्बार ग्रहण करने के योग्य हो. आप के रूप का जाननाअति ही कठिन है इस हेतु आप्तों ने हमको केवल " नमोनमः " इतना ही सिखाया है, जिस पुरुष की प्रपंच में ही बुद्धि है ऐसा कौन असमर्थ पुरुष प्रपंचांतर्गनाम, रूप तथा आकार से प्रकृति पुरुष से परेईश्वर, आप के रूपका निरूपण कर करता है ॥ ४ ॥ परन्तु समस्त मनुष्योंके दुखदूर करने वाले आप के श्रेष्ठ कल्याणदायी गुण गणों के एक देश का निरूपण कर सकता है, किंतु इसके अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता ॥ ५ ॥ हे नाथ ! साधू लोग स्नेह पूर्वक गद्गद बाणी से आपकी स्तुति करते हैं और फूल, अक्षत शुद्ध पल्लव तुलसीदल दूबकेअंकुर इत्यादिक द्रव्य संपादन करके आपकी पूजा करते हैं, हे परमेश्वर ! आप उसी पूजासे प्रसन्न होजाते हो ॥ ६ ॥ और विना स्नेह के तो बहुत पदार्थों वाले यज्ञ से भी आप का आराधन किया जाय तो उससे भी हम को इच्छित अभिप्राय सिद्ध होता नहीं, दृष्टि आता ॥ ७ ॥ हे स्वामी ! आप अनायासही प्रगट होने वाले तथा पुरुषार्थ रूप और आनन्द स्वरूप हो, किन्तु हम सकामों को आपका आराधनहीं करना योग्य है ॥ ८ ॥ हे परम पुरुष ! हम अज्ञानी अपने श्रेय को नहीं जानते; आपने दया करके अपनी महिमा अर्थात् मोक्ष और हमलोगों की कामना देने के हेतु बिना पूजा किये हुयेही, इतरलोक की भांति दर्शन दिये ॥ ९ ॥ हे पूज्यतम ! हमको यही बरहुआ कि जो राजा नाभि के यज्ञ में बरदेने वालों में उत्तम आप हमलोगों के दृष्टि गोचर हुये ॥ १० ॥ वैराग्य से उत्पन्न हुई ज्ञानानल से जिनके सम्पूर्ण मल भस्म होगये हैं ऐसे, तथा आपे कैसे स्वभाववाले, आत्मा-

स्खलनक्षुत्पतनजृम्भणदुरवस्थातादिषु विवशानां नः स्मरणाय ज्वरमरणदशाया-
मपि सकलकश्मलनिरसनानि तव गुणकृतनामधेयानि वचनगोचराणि भवन्तु १२॥
किञ्चायं राजर्षिरपत्यकामः प्रजां भवादृशीमाशासान ईश्वरमाशिषां स्वर्गापवर्गयो-
रपि भगवन्तमुपधावति प्रजायामर्थप्रत्ययो धनदमिवाधनः फलीकरणम् ॥ १३ ॥
को वा इह तेऽपराजितोऽपराजितया माययाऽनवसितपदव्याऽनावृतमतिर्विषयविष
रयानावृतप्रकृतिरनुपासितमहच्चरणः ॥१४॥ यदु ह वाव तव पुनरदभ्रकर्तरिह समा
हूतस्तत्रार्थधियां मन्दानां नस्तद्यद्देवहेलनं देवदेवार्हसि साम्येन सर्वान् प्रतिवोढुम-
विदुषाम् ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति निगदेनाभिष्टूयमानो भगवाननिमिषर्षभो
वर्षधराभिवादिताभिवन्दितचरणः सदयमिदमाह ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥
अहो बताहमृषयो भवद्भिरवितथगीर्भिर्वरमसुलभमभियाचितो यदमुष्यात्मजो
मया सदृशो भूयादिति ममाहमेवाभिरूपः कैवल्यादथापि ब्रह्मवादो न मृषा भवितुम-
र्हति, ममैव हि मुखं यद्द्विजदेवकुलम् ॥ १७ ॥ तत आग्नीध्रीयेंऽशकलयावतरि-
ष्याम्यात्मतुल्यमनुपलभमानः ॥ १८ ॥ श्रीशुक उवाच । इति निशामयन्त्यां मेरु-
देव्याः पतिमभिधायान्तर्दधे भगवान् ॥१९॥ बर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त भगवान्
परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान् दर्शयितु
कामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तनुवाऽवततार ॥ २० ॥
इतिश्रीमद्भा०पञ्चम०तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

राम मुनिलोग भी आपके श्रेष्ठ मंगलकारी चरित्रों का वर्णन करते हैं परन्तु दर्शन उन्हें भी नहीं होता !! ११ ॥ हेप्रभो ! आपके दर्शनमात्रसेही हम कृतार्थ होगये परन्तु एक वर मांगते हैं कि अँगड़ाई, छींकलेने, जंभाई लेने, गिरने, दुःख की अवस्था, ज्वर, मरण और भूख इत्यादिक दशाओं में जब आपके स्मरण करने में परवश होजाय उस समय भी, दुःख दूर करने वाले आप के गुणा सहित नामों का उच्चारण होतारहे ॥ १२ ॥ हे स्वर्ग मोक्ष देनेवाले भगवान् ! यह राजर्षि नाभि आप सरीखे पुत्रकी कामना करके आपका आराधन कररहा है इसको पुत्रका मांगना ऐसा है कि जैसे कोई निर्धन कुबेर के समीप जाकर भूसी मांगे, किंतु यह तो अभी पुत्रही को पुरुषार्थ समझता है ॥ १३ ॥ यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्यों कि जिसने साधुओं के चरणों की सेवा नहीं की है वह ऐसा कौन है कि जो आप की अजित माया से नहारा हो अथवा विषय रूपी विषसे जिसकी प्रकृति न ठगीगईहो ॥ १४ ॥ हे बहुकार्योंके करनेवाले ! प्रजाहीको पुरुषार्थ जान इस थोड़ेसे कार्यके हेतु हम अज्ञानियोंने आपको बुलायाहै, इससे हेदेव ! आप हमलोगोंके अपराध को क्षमा करिये ॥ १५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—जब देवोत्तम भगवान्की ऋत्विजोंने इसभांति गद्यमय वाणीसे स्तुतिकी और उन्हींनाभिसे वंदित ऋत्विजोंने उनकी बन्दनाभीकी तब भगवानने दया सहित उनसे कहा॥१६॥श्री भगवानने बोले कि—हे ऋषियो ! सत्यवाणीवाले तुमने यह अति दुर्लभ वरमांगा कि—इस राजाके मेरी सदृश पुत्रहोवे, मेरी समान तो मैंहीहूं मैं अद्वितीयहूं तो भी ब्राह्मणोंका बचन झूठा न होना चाहिये क्योंकि ब्राह्मणोंका कुलही मेरा मुख है मेरी सदृश सृष्टिमें कोई नहींहै इसहेतु नाभिराजाके घरमेंही अंशकलासे अवतार लूंगा ॥ १८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—श्रीभगवान नाभिराजासे मेरुदेवीके सुनते ऐसा कहकर अन्तर्ध्यान होगये ॥ १९ ॥ हे विष्णुदत्त राजा परीक्षित ! जब नाभिराजा के यज्ञमें ऋषियोंने भगवानको इसभांति प्रसन्न किया तब नाभिराजाकी प्रसन्नताके हेतु उसकी रानी मेरुदेवीमें दिगम्बर, तपस्वी, ज्ञानी और नैष्ठिक ब्रह्मचारियों को उपदेश देनेके लिये भगवानने शुद्ध, सत्वमूर्तिसे अवतार लिया ॥ २० ॥

इतिश्रीमद्भागवते महा० पंचम० सरलाभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथहतमुत्पत्त्यैवाभिव्यज्यमानभगवल्लक्षणं साम्योपशम वैराग्यैश्वर्यमहाविभूतिभिरनुदिनमेधमानानुभावंप्रकृतयःप्रजाब्राह्मणा देवताश्चाव नितलसमवनायातितरांजगृधुः ॥ १ ॥ तस्यहवाइत्थंवर्ष्मणावरीयसाबृहच्छ्लोकेनचौजसाबलेनश्रिया यशसावीर्यशौर्याभ्यांचपिताऋषभइतीदंनामचकार ॥ २ ॥ तस्यहीन्द्रःस्पर्धमानोभगवान्वर्षेनववर्षतदवधार्य भगवानृषभदेवोयोगेश्वरः प्रहस्यात्मयोगमाययास्ववर्षमजनाभंनामाभ्यवर्षत् ॥ ३ ॥ नाभिस्तुयथाऽभिलषितंसुप्रजास्त्वमवरुध्यातिप्रमोदभर विह्वलोगद्गदाक्षरया गिरास्वैरंगृहीतनरलोकसधर्मंभगवन्तंपुराणपुरुषंमाया विलसितमतिर्वत्सताततेतिसानुरागमुपलालयन्परां निर्वृतिमुपगतः ॥ ४ ॥ विदितानुरागमापौरप्रकृतिजनपदोराजानाभिरात्मजंसमयसेतुरक्षायामभिषिच्यब्राह्मणेषूपनिधायसहमेरुदेव्या विशालायांप्रसन्ननिपुणेनतपसासमाधियोगेननरनारायणाख्यंभगवंतंवासुदेवमुपासीनः कालेनतन्महिमानमवाप ॥५॥ यस्यहपाण्डवेयश्लोकावुदाहरंति ॥ कोनुतत्कर्मराजर्षेर्नाभेरन्वाचरेत्पुमान् ॥ अपत्यतामगाद्यस्यहरिःशुद्धेनकर्मणा ॥ ६ ॥ ब्रह्मण्योऽन्यःकुतोनाभेर्विप्रामङ्गलपूजिताः ॥ यस्यबर्हिषियज्ञेशंदर्शयाम सुरोजसा ॥ ७ ॥ अथहभगवानृषभदेवः स्ववर्षंकर्मक्षेत्रमनुमन्यमानःप्रदर्शितगुरुकुलवासोलब्धवरैर्गुरुभिरनुज्ञातोगृहमेधिनांधर्माननुशिक्षमाणो जयन्त्यामिन्द्रदत्तायामुभयलक्षणं कर्मसमाम्नायाम्नातमभियुञ्जन्नात्मजानामात्मसमानानांशतंजनयामास ॥ ८ ॥ येषांखलुमहायोगीभरतोज्येष्ठःश्रेष्ठगुणआसीत्येनेदंवर्षंभारतमितिव्यपदिशन्ति ॥ ९ ॥ तमनुकुशावर्तइला·

श्रीशुकदेवजी बोले कि—जन्मकालमेंही जिनमें श्रीभगवानके लक्षण प्रगटथे, और समभाव, उपशम, वैराग्य, ऐश्वर्य और महाविभूतियों से दिन प्रतिदिन जिनका प्रभाव उन्नत होरहाथा उनको भूमण्डलका पालन करनेके हेतु प्रजा मन्त्री, ब्राह्मण और देवता सभी चाहतेथे॥१॥ उनका शरीर तेज,बल,लक्ष्मी,कीर्त्ति प्रभाव और उत्साह से अतिउत्तम तथा यशस्वीथा इसीलिये उनके पिता नाभिने ऋषभनाम रक्खा॥२॥इन्द्रने ईर्षासे इनके खण्डमें वर्षा न की तब योगेश्वर भगवानने यह जान हसकर अपने अजनाभखण्डमें अपनी योगमायासे वर्षाकी॥ ३ ॥ नाभिराजा जैसा पुत्र चाहताथा वैसाही मिला इसकारण आनन्दमें विह्वलहो,अपनी कामनासे जिन्होंने पुरुष देहधारणकियाहै ऐसे पुराण पुरुष भगवानको गद्गद् बाणीसे हेपुत्र!२ऐसे प्यार करतेहुये बडे आनन्दको प्राप्तहुआ ४॥ देशकेलोग, पुरकेलोग, प्रधान इनका पुत्रमें अनुराग जानकर उस समय में, मर्यादा की रक्षाके हेतुराजा नाभिने उसका राज्याभिषेक कर, ब्राह्मणोंकी गोदमेंधर, मेरुदेवीको साथले, बद्रिकाश्रम मेजा, समाधियोग से, नरनारायण की उपासना कर समयकोपा जीवनमुक्त होगया ॥ ५॥ हेराजन् ! उस राजाके विषयमें मनुष्य ऐसा कहा करते हैं। कि जिस आमात्रकेपुण्य नाभिराजा के घर, शुद्ध कर्मों से साक्षात् हरि भगवानने जन्मलिया उसके सदृश और दूसरा कौन पुरुष कर्म करसकता है ! ॥ ६ ॥ जिनको, ब्राह्मणों ने दक्षिणा से तृप्तहो यज्ञमें अपने मन्त्रबलसे परमेश्वर के दर्शन करादिये उन नाभिराजा से बढकर और दूसरा कौन ब्रह्मभक्त होसकता है ॥ ७ ॥ नाभिके उपरात, ऋषभदेवजीने अपने खंडको कर्मक्षेत्र मान, गुरुकुल में विद्यापढ गुरुको दक्षिणादे, उनसे आज्ञाले गृहस्थियों को गृहस्थके धर्म सिखलाते, श्रुतिस्मृति कथित कर्मकरते, इन्द्रकी दाईहुई जयती नामक रानीमें अपनी समान सौपुत्र उत्पन्न किये ॥ ८ ॥ उनमे भरत सबसे ज्येष्ठ, बड़ायोगी तथा श्रेष्ठ गुणीथा, जिसके नामसे इस खंडका नाम भारतखंड हुआ ॥ ९ ॥ भरतजी के उपरांत कुशावर्त,

यतो ब्रह्मावर्तो मलयः केतुर्भद्रसेन इन्द्रस्पृग्विदर्भः कीकट इति नव नवति प्रधानाः॥१०॥
कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः॥ आविर्होत्रोऽथद्रुमिलश्चमसः करभाजनः
॥ ११ ॥ इति भागवतधर्मदर्शना नव महाभागवतास्तेषां सुचरितं भगवन्महिमोपबृंहि
तं वसुदेवनारदसंवादमुपशमायनमुपरिष्टाद्वर्णयिष्यामः ॥१२॥ यवीयांस एकाशी
तिर्जायन्तेयाः पितुरादेशकरा महाशालीना महाश्रोत्रिया यज्ञशीलाः कर्म विशुद्धा ब्रा-
ह्मणा बभूवुः ॥ १३ ॥ भगवानृषभसंज्ञ आत्मतन्त्रः स्वयं नित्यनिवृत्तानर्थपरम्परः केव
लानन्दानुभव ईश्वर एव विपरीतवत्कर्माण्यारभमाणः कालेनानुगतं धर्ममाचरणेनोप
शिक्षयन्नतद्विदां सम उपशान्तो मैत्रः कारुणिको धर्मार्थयशःप्रजानन्दामृतावरोधेन
गृहेषु लोकं नियमयत् ॥ १४ ॥ यद्यच्छीर्षण्याचरितं तत्तदनुवर्तते लोकः ॥ १५ ॥
यद्यपि स्वविदितं सकलधर्मं ब्राह्मं गुह्यं ब्राह्मणैर्दर्शितमार्गेण सामादिभिरुपायैर्जनताम
नुशशास ॥ १६ ॥ द्रव्यदेशकालवयःश्रद्धर्त्विग्विविधोद्देशोपचितैः सर्वैरपि क्रतु
भिर्यथोपदेशं शतकृत्व इयाज ॥ १७ ॥ भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन्वर्षे न
कश्चन पुरुषो वाञ्छत्य विद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथंचन किमपि कर्हिचिदवेक्षते
भर्तर्यनुसवनं विजृम्भितस्नेहातिशयमन्तरेण ॥ १८ ॥ स कदाचिदटमानो भगवानृष
भो ब्रह्मावर्तगतो ब्रह्मर्षिप्रवरसभायां प्रजानां निशामयन्तीनामात्मजानवहितात्मनः
प्रश्रयप्रणयभरसुयन्त्रितानप्युपशिक्षयन्निति होवाच ॥ १९ ॥

इतिश्रीमद्भा० पञ्चम० ऋषभदेवानुचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इलावर्त्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक्, विदर्भ और कीकट यह पुत्र उत्पन्न हुये जो नब्बे पुत्रों से बड़े थे ॥ १० ॥ कवि, हरि, अंतरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन यह नौ भगवद्धर्म के दिखाने वाले और बड़े भगवद्भक्त हुये कि भगवत महिमा युक्त जिनका चारित्र वसुदेव नारद के संवाद में एकादश स्कंध में कहा जायगा ॥ ११ ॥ इनसे छोटे ८१ पुत्र पिता के आज्ञा कारी, वेदवक्ता यज्ञ करने वाले थे वह नित्य नेम के शुद्धकर्मों से श्रेष्ठ ब्राह्मण होगये ॥ १२ ॥ भगवान ऋषभ देवजी स्वतंत्र नित्य अनर्थ की परंपरा से दूर, सुहृदरूप आनंद के अनुभवी काल से प्राप्त धर्माचरण द्वारा अज्ञानियों को धर्म करना सिखाते थे, और अतिकृपालु, शांतरूप, करुणा युक्त ऋषभदेवजी धर्म, अर्थ, संतान, मोक्ष के संग्रह के संग मनुष्यों को गृहों में प्रवृत्त करते थे ॥ १३ ॥ क्योंकि सृष्टि की यह रीति है कि जो बड़े पुरुष आचरण करते हैं उसी के अनुसार सबही वर्त्तते है ॥ १४ ॥ यद्यपि आप सब धर्मों युक्त बेद को जानते थे तौभी ब्राह्मणों से पूछकर उनकी आज्ञानुसार साम दाम दण्ड भेद उपायों से लोकपालन करते थे ॥ १५ ॥ द्रव्य, देश, काल, अवस्था, श्रद्धा, और ऋत्विज इत्यादि सब सामग्री की अधिकता वाले विधि पूर्वक सम्पूर्ण यज्ञ शत२ बार किये ॥ १६ ॥ जिस काल भगवान ऋषभदेवजी इस खंड की रक्षा करते थे उस समय पुरुष ऋषभदेवजी की प्रीति के अतिरिक्त और किसी से कुछ नहीं चाहते थे ॥ १७ ॥ वे ऋषभदेवजी एक काल घूमते हुए ब्रह्मावर्त्त देश में आये कि जहां ब्रह्मर्षियों की बड़ी सभा बैठी थी उसमें जाकर, प्रजाओं के सुनते अपने पुत्रों को कि जो चित्त की नम्रता और शील के भार से नम्र हो रहे थे, शिक्षा के मिष से सबों को शिक्षा करने के हेतु इसभांति कहने लगे ॥ १८ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० पंचम० सरलाभाषाटीकायांचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ऋषभ उवाच॥नायंदेहोदेहभाजांनृलोकेकष्टान्कामानर्हते विड्भुजांये । तपो दिव्यंपुत्रकायेनसत्त्वंशुद्ध्येद्यस्माद्ब्रह्मसौख्यंत्वनन्तम् ॥ १ ॥ महत्सेवांद्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारंयोषितांसङ्गिसङ्गम् । महान्तस्तेसमचित्ताःप्रशान्ताविमन्यवःसुहृदः साधवोये ॥ २ ॥ येवामयीशेकृतसौहृदार्थाजनेषुदेहंभरवार्तिकेषु । गृहेषुजायात्मजरातिमत्सुनप्रीतियुक्तायावदर्थाश्चलोके ॥ ३ ॥ नूनंप्रमत्तःकुरुतेविकर्मयदिन्द्रियप्रीतयआपृणोति । नसाधुमन्येयतआत्मनोऽयमसन्नपिक्लेशदआसदेहः ॥४॥ पराभवस्तावदबोधजातोयावन्नजिज्ञासतआत्मतत्त्वम् । यावत्क्रियास्तावदिदंमनोवैकर्मात्मकंयेनशरीरबन्धः ॥ ५ ॥ एवंमनःकर्मवशंप्रयुङ्क्तेअविद्ययात्मन्युपधीयमाने । प्रीतिर्नयावन्मयिवासुदेवेनमुच्यतेदेहयोगेनतावत् ॥६॥ यदानपश्यत्ययथा गुणेहांस्वार्थेप्रमत्तःसहसा विपश्चित । गतस्मृतिर्विन्दतितत्रतापानासाद्यमैथुन्यमगारमज्ञः ॥ ७ ॥ पुंसःस्त्रियामिथुनीभावमेतंतयोर्मिथोहृदयग्रन्थिमाहुः । अतोगृहक्षेत्रसुताप्तवित्तैर्जनस्यमोहोऽयमहंममेति ॥ ८ ॥ यदामनोहृदयग्रन्थिरस्यकर्मानुबद्धोदृढआश्लथेत । तदाजनःसंपरिवर्ततेऽस्मान्मुक्तःपरंयात्यतिहायहेतुम् ॥ ९ ॥ हंसेगुरौमयिभक्त्याऽनुवृत्त्यावितृष्णयाद्वन्द्वतितिक्षयाच । सर्वत्रजन्तोर्व्यसनावगत्याजिज्ञासयातपसेहानिवृत्त्या ॥ १० ॥ मत्कर्मभिर्मत्कथयाचनित्यंमद्देवसङ्गात्-

ऋषभदेवजी बोले कि—हेपुत्रो ! देहधारि जीवोंका यह शरीर दुःख देनेवाले विषयभोगों के योग्यनहींहै,क्योंकि यह विषय भोग तो विष्ठा भोगी बाराहादिकोंको भी मिलताहै इसहेतु यह देह दिव्य तपके लियेहै कि जिस तपसे हृदय शुद्ध होताहै और हृदयकी शुद्धिसे अनन्तब्रह्मका सुख होताहै ॥१॥ हरिभक्तोंका सेवा मुक्ति का द्वारहै और स्त्रीसंगी मनुष्योंकी संगति नरकका द्वारहै, महात्मा पुरुष वहीहैं कि जो समान चित्त, प्रशांत, अक्रोधी, सबके सुहृद और सदाचार करनेवालेहैं २॥ और जो मुझ परमेश्वरमें सुहृद्भाव रखकर उसी भावको पुरुषार्थ जानते हैं; तथा उन मनुष्यों में कि जिनके शरीर पालनकीही बातहै और धर्मके विपरीत व स्त्री पुत्रादिकों में जिनकी प्रीतिनहीं है और अपने देह निर्वाहके अतिरिक्त किसी वस्तुकी आकांक्षा नहीं करते ॥ ३ ॥ प्रमत्त मनुष्य इन्द्रियों की प्रीतिके लिये पाप करताहै कि जो पाप देहका क्लेशका देनेवाला है, इसीकारण पाप करनेको मैं भला नहीं मानता॥४॥जबतक यह मनुष्य आत्मतत्त्वको नहीं जानता, तबही तक उसके निकट अज्ञानकृत आत्मस्वरूपका तिरस्कार होताहै क्योंकि जबतक क्रिया रहती है तबतक यह मन कर्मोंमें लगारहताहै कि जिससे शरीरका बन्धन होताहै ॥ ५ ॥ इसप्रकार आत्मा मायासे जबतक घिरारहताहै तबतक मनपूर्वकर्मोंके वशमें रहताहै यहमनही मनुष्यको कर्मके बन्धनमें डालता है इसलिये पुरुष जबतक मुझ वासुदेवमें भक्ति नहीं करता तबतक इसशरीरकी मुक्तिनहींहोती६॥ जबतक इन्द्रियोंकी चेष्टाका आत्मासे कुछ सम्बन्ध नहीं है इसप्रकार ज्ञानी बनकर नहीं जानता, तब तक यह अज्ञानी अपने ज्ञानको भूलकर स्वार्थमें उन्मत्त होने से मैथुन सुखवाले घरको पा दुःखको प्राप्तहोताहै ॥७॥ पुरुषका स्त्रीके साथ जो भावहै उसको स्त्री पुरुषके हृदयकी गांठ कहते हैं, कि जिस मिथुनी भावसे मनुष्य अहंताको प्राप्तहो घर, क्षेत्र, पुत्र कुटुम्बों और धनमें मोहको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥ कर्मबन्धनसे बँधीहुई हृदयकी ग्रन्थि जब शिथिल होजाती है तब यह पुरुष मिथुन भावसे निवृत्त होकर अहंकार को छोड़, मुक्तहो परमपदको प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ अहंकार को छुड़ानेके हेतु २५ साधना कही हैं—हंसरूपी जो मैंहूं उसकी भक्ति गुरुकी सेवा, तृष्णा का त्याग, सुख दुःखका सहन, सर्वत्र प्राणियों के दुःखका देखना तत्त्व जिज्ञासा, तप, काम्यकर्मका त्याग ॥ १० ॥ हेपुत्रों ! मेरे अर्थ कर्म करना, मेरी कथा सुनना और कहना, मेरे भक्तोंका संग

गुणकीर्तनान्मे । निर्वैरसाम्योपशमेनपुत्राजिहासया देहगेहात्मबुद्धेः ॥११॥ अध्या
त्मयोगेनविविक्तसेवयाप्राणेन्द्रियात्माभिजयेनसध्यक् । सच्छ्रद्धयाब्रह्मचर्येणश-
श्वदसंप्रमादेनयमेनवाचाम् ॥ १२ ॥ सर्वत्रमद्भावविचक्षणेनज्ञानेनविज्ञान विराज
तेन । योगेनधृत्युद्यमसत्वयुक्तो लिंगंव्यपोहेत्कुशलोऽहमाख्यम् ॥ १३ ॥ कर्माशयं
हृदयग्रन्थिबन्धमविद्ययाऽऽसादितमप्रमत्तः । अनेनयोगेनयथोपदेशंसम्यग्व्यपो
ह्योपरमेतयोगात् ॥ १४ ॥ पुत्रांश्चशिष्यांश्चनृपोगुरुर्वामल्लोककामोमदनुग्रहार्थः ।
इत्थंविमन्युरनुशिष्यादतज्ज्ञान्नयोजयेत्कर्मसुकर्ममूढान् ॥ १५ ॥ कंयोजयन्मनुजो
ऽर्थंलभेत निपातयन्नष्टदृशंहिगर्ते । एवंनराणांविषयस्पृहाच्च निपातयन्निरयेत्व
न्धकूपे ॥ १६ ॥ लोकःस्वयंश्रेयसिनष्टदृष्टिर्योऽर्थान्समीहेतनिकाम कामः ।
अन्योऽन्यवैरःसुखलेशहेतो रनन्तदुःखंचनवेदमूढः ॥ १७ ॥ कस्तंस्वयंतद
भिज्ञोविपश्चिद् विद्यायामन्तरेवर्तमानम् । दृष्ट्वापुनस्तंसघृणःकुबुद्धिंप्रयोजयेदुत्प-
थगथथान्धम् ॥ १८ ॥ गुरुर्नसस्यात्स्वजनोनसस्यात्पितानसस्याज्जननीनसा
स्यात् । दैवंनतत्स्यान्नपतिश्चसस्यान्नमोचयेद्यःसमुपेतमृत्युम् ॥ १९ ॥ इदंशरीरं
ममदुर्विभाव्यंसत्त्वंहिमेहृदयंयत्रधर्मः । पृष्ठेकृतोमेयदधर्मआरादतोहिमामृषभंप्राहु
रार्याः २०॥ तस्माद्भवंतोहृदयेनजाताःसर्वेमहीयांसममुंसनाभम् । अक्लिष्टबुद्ध्या
भरतंभजध्वंशुश्रूषणतद्भरणंप्रजानाम् ॥२१॥ भूतेषुवीरुद्भ्यउदुत्तमायेसरीसृपास्ते

मेरे गुणोंका कीर्तनकरे निर्वैर समभाव, उपशम, देह गेहमें अहन्ता ममताका त्याग करना ११ ॥ ज्ञान शास्त्र का अभ्यास, एकान्तमें रहना, प्राण इन्द्री और मनको जीतना, श्रद्धा, ब्रह्मचर्य रखना प्रमादनकरना, और बाणीको जीतना सर्वत्र मेरी भावनाके अनुभव पर्यंत ज्ञान साधना और समाधि लगाना इन २५ साधनो से धैर्य, प्रयत्न विवेकयुक्त चतुर मनुष्य अहंकार को दूर करे ॥ १३ ॥ जिसमें कर्म रहते हैं ऐसे—अविद्या प्राप्त हृदय ग्रन्थि बन्धनको और समस्त उपाधियोंको मेरे बनायेहुये उपायमे दूरकर योगसे उपरामको प्राप्तहोवे ॥ १४ ॥ मेरे अनुग्रहको पुरुषार्थ जाननेवाला जो पिता, गुरू, राजा मेरे लोकके जानेकी इच्छाकरे तो वह अपने पुत्र, शिष्य प्रजाको क्रोधको छोड़ इसी रीतिपर शिक्षादे किन्तु कर्मके विषे मूढ बुद्धि मूर्खको कर्मोंमें न लगावे ॥ १५ ॥ जन्मसेही सकाम कर्म करनेवाले मनुष्योंको फिर सकामकर्ममेंही प्रवृत्त करना तो अंधे को कुएँमें गिरानेकी समानहै ऐसे काम करनेवालेको कोई पुरुषार्थ नहीं प्राप्त होसकता ॥ १६ ॥ यह लोक अपना श्रेय देखने में आप तो अंधा है; क्योंकि यह लोभी तो दूसरेका धन चाहता है और इसीसे परस्पर वैर बाधना है फिरभी यह थोड़े सुखके हेतु प्रयत्न करता है वहां अत्यन्त दुःख आजाते हैं कि जिनको यह मूर्ख नहीं जानता ॥ १७ ॥ संसार के दुःखका जानने वाला ज्ञानवान पुरुष, अज्ञानके मार्ग में भटकते हुये मूढ मनुष्यको देखकर उसे संसार मार्ग में कभी न प्रवृत्त करेगा क्योंकि अज्ञानी मनुष्यको अज्ञानका मार्ग बताना ऐसा है कि जैसे उलटी राहपर चलनेवाले अंधेसे "इसीराह चलाजा" ऐसे कहनाहो ॥ १८ ॥ संसाररूपी मृत्युमें प्राप्तहुये मनुष्योंको जोइसलोक से नहीं छुड़ासकता उसे देवता, गुरु, स्वजन, पिता, माता, पति नहीं कहना चाहिये ॥ १९ ॥ इस मेरे शरीरमें किसीकी तर्कना नहीं चलती क्योंकि मैंने इस शरीरको अपनी इच्छाही से प्रगट किया है मेराहृदय तत्वरूप है कि जिस तत्वमें धर्म रहता है, मैंने अधर्मको दूरही से पीछेकिया है इसीसे विद्वानलोग मुझेऋषभ कहते हैं ॥ २० ॥ हेपुत्रगण! तुमसब मेरेशुद्ध हृदय से उत्पन्न हुयेहो इसकारण मत्सरताको छोड़ सुबुद्धि से अपने बड़ेभाई भरत का सेवाकरो बस ऐसा करने से तुम्हारे सबही कर्तव्य कर्म सफल होजायेंगे ॥ २१ ॥ प्राणोंकी

श्रुतबोधनिष्ठाः । ततामनुष्याःप्रमथास्ततोऽपिगन्धर्वसिद्धाविबुधानुगाये ॥ २२ ॥ देवासुरेभ्योमघवत्प्रधानादक्षादयोब्रह्मसुतास्तुतेषाम्।भवःपरःसोथविरिञ्चवीर्यः समत्परोऽहंद्विजदेवदेवः२३॥नब्राह्मणैस्तुलयेभूतमन्यत्पश्यामिविप्राःकिमतःपरंतु। यस्मिन्नृभिःप्रहुतंश्रद्धयाऽहमश्नामिकामंनतथाऽग्निहोत्रे॥२४॥धृतातनूरुशतीमपुराणायेनेहसत्त्वंपरमंपवित्रम्। शमोदमःसत्यमनुग्रहश्च तपस्तितिक्षाऽनुभवश्चयत्र२५ मत्तोऽप्यनन्तात्परतः परस्मात्स्वर्गापवर्गाधिपतेर्नकिंचित्। येषांकिमुस्यादितरेण तेषामकिंचनानांमयिभक्तिभाजाम्॥२६॥ सर्वाणिमद्धिष्ण्यतया भवद्भिश्चराणिभूतानिसुताध्रुवाणि। संभावितव्यानिपदेपदेवो विविक्तदृग्भिस्तदुहार्हणंमे ॥२७॥ मनोवचोदृक्करणेहितस्य साक्षात्कृतंमेपरिबर्हणंहि । विनापुमान्येन महाविमोहात्कृतान्तपाशान्न विमोक्तुमीशेत् ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमनुशास्यात्मजान्स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थंमहानुभावः परमसुहृद्भगवानृषभापदेश उपशमशीलानामुपरतकर्मणां महामुनीनां भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणं पारमहंस्यधर्ममुपशिक्षमाणः स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणिपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरितशरीरमात्रपरिग्रह उन्मत्त इव गगनपरिधानः प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात्प्रवव्राज ॥ २९ ॥ जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेषो ऽभिभाष्यमाणोऽपि जनानांगृहीतमौनव्रतस्तू-

सेवा करनाभी तुम्हारा धर्म है क्योंकि चेतन अचेतन प्राणियों में स्थावर श्रेष्ठ हैं उनमें जंगम अति उत्तम है उनमें ज्ञानयुक्त पशुश्रेष्ठ हैं उनमें मनुष्य, मनुष्यों से भूतप्रेतादि प्रमथगण प्रमथगणों से गंधर्व गन्धर्वों से सिद्ध, और सिद्धों से किन्नरादिक श्रेष्ठ हैं ॥ २२ ॥ किन्नरों से असुर, असुरों से सुर, सुरोंमें इन्द्रादि, इन्द्रादि में दक्षादि, दक्षादि से महादेव और उनसे ब्रह्माजी तथा ब्रह्माजी से मैं और मुझसे भी ब्राह्मण उत्तम हैं क्योंकि मैं उनका पूजन करताहूं ॥ २३ ॥ फिरवहां बैठेहुए ब्राह्मणों से पुकारकर बोले कि हे ब्राह्मणो ! ब्राह्मणों से बढ़कर और कोई प्राणी मुझे प्रिय नहीं है, मैं श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों के मुखमें होमहुये पदार्थोंका जितना स्वीकार करताहूं वैसा अग्नि में होमेहुये पदार्थका नहीं स्वीकार करता ॥ २४ ॥ जो ब्राह्मण मेरी वेदमूर्तिको धारण करते हैं तथा जिसमें अत्यंत पवित्र सत्वगुण, शम, दम, सत्यदया, तप, तितिक्षा और स्वरूपानुभव यह गुण हैं उनसे अधिक और किसेदेखूं ? ॥ २५ ॥ स्वर्ग, मोक्षके स्वामी और अनंत, परात्पर जोमैं हूं उनसे भी कुछलेनेका वह इच्छा नहीं करते फिर राजादिकसे क्या इच्छा करेंगे, वेनिष्किञ्चन मेरीभक्ति ही को करते हैं ॥ २६ ॥ हेपुत्रों ! सम्पूर्ण स्थावर जंगम प्राणीमेरे निवासरूप हैं इससे पवित्र दृष्टिहो क्षण २ में तुम इनका सत्कारकरो प्राणियोंका सत्कार करनाही मेरामुख्य पूजन है ॥ २७ ॥ सब कर्ममेरे अर्पण करना यहीमन, बचन, दृष्टि और इन्द्रीकी चेष्टाका फल है बिनामेरे अर्पण किये महा मोहरूप काल पाशसे छूटनेको कोई समर्थ नहीं होता ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि-इसभांति महा यशस्वी और सबके सुहृद ऋषभ भगवान ने, यद्यपि अपने पुत्र सबभांति से ही चतुरथे, परन्तु मनुष्यों के उपदेश देनेके हेतु प्रशांत और कर्म बंधन से रहित महा मुनियोंको भक्ति, ज्ञान और वैराग्यके दिखाने वाले, परमहंस आश्रम के धर्मकी शिक्षादेने के हेतु, अपने सौ पुत्रोंमें जेठ परम भागवत, हरिभक्तों के सेवक भरतको पृथ्वी पालन के हेतु राज्याभिषेक कर तत्कालही संसारको छोड़दिया,और आत्मामें होमाग्निका आरोपकर,केशखोल,उन्मत्तकी भांति नग्नहो, केवल शरीरको संगले, ब्रह्मावर्तमें सन्यास धारणकर वहांसे चलनिकले ॥ २९ ॥ जड़, अंधा, गूंगा, बहरा, पिशाच, उन्मत्त की सदृश, अवधूत बेषबना, मनुष्यों के पुकारने परमौन बोलते, इसप्रकार भगवान ऋषभ

ष्णींबभूव ॥ ३० ॥ तत्रतत्रपुरग्रामाकरखेटवाटखर्वटशिबिरव्रजघोषसार्थगिरिवना-
श्रमादिष्वनुपथमवनिचरापसदैः परिभूयमानो मक्षिकाभिरिव वनगजस्तर्जनता-
डनावमेहनष्ठीवनग्रावशकृद्रजः प्रक्षेपपूतिवातदुरुक्तैस्तदविगणयन्नेवासत्संस्था-
न एतस्मिन्देहोपलक्षणे सदपदेश उभयानुभवस्वरूपेण स्वमहिमावस्थानेनास-
मारोपिताहंममाभिमानत्वादविखण्डितमनाः पृथिवीमेकचरः परिबभ्राम ॥ ३१ ॥
अतिसुकुमारकरचरणोरःस्थलविपुलबाह्वंसगलवदनाद्यवयवविन्यासः प्रकृतिसुंद-
रस्वभावहाससुमुखो नवनलिनदलायमानशिशिरताराारुणायतनयनरुचिरः सदृश-
सुभगकपोलकर्णकण्ठनासो विगूढस्मितवदनमहोत्सवेन पुरवनितानां मनसि कुसु-
मशरासनमुपदधानः परागवलम्बमानकुटिलजटिलकपिशकेशभूरिभारोऽवधूतम-
लिननिजशरीरेण ग्रहगृहीतइवादृश्यत॥३२॥यर्हिवावसभगवाल्लोकमिमं योगस्या-
द्धा प्रतीप मिवाचक्षाणस्तत्प्रतिक्रियाकर्म बीभत्सितमिति व्रतमाजगरमास्थितः
शयानएवाश्नाति पिबति खादत्यवमेहति हदतिस्म चेष्टमान उच्चरितआदिग्धो-
द्देशः ॥ ३३ ॥ तस्यहयःपुरीषसुरभिसौगन्ध्यवायुस्तं देशंदशयोजनं समन्ता-
त्सुरभिंचकार ॥ ३४ ॥ एवंगोमृगकाकचर्यया व्रजंस्तिष्ठन्नासीनःशयानः काकमृ-
गगोचरितःपिबतिखादत्यवमेहतिस्म ॥ ३५ ॥ इतिनानायोगचर्याचरणो भगवान्कै-
वल्यपतिर्ऋषभोऽविरतपरममहानन्दानुभव आत्मनिसर्वेषां भूतानामात्मभूते भगव-
ति वासुदेव आत्मनो ऽव्यवधानानन्तरोदरभावेन सिद्धसमस्तार्थपरिपूर्णो योगैश्व-

देवजीने मौन व्रतको धारण किया ॥ ३० ॥ वह इसप्रकार से अकेले पुर, गांव, खान, खेतहरों के गांव,पुष्पवाटिका, सेनानिवासके डेरे, गोशाला, गोपस्थान, यात्राजनों के मिलनके स्थान, पर्वत, वन और ऋषियोंके आश्रममें, इसप्रकार मार्ग २ में नीच मनुष्य उन ऋषभ देवका अपमान करते थे अर्थात् कोई उनके ऊपर मूत्र करदेता, थूकदेता, पत्थर से मारता, विष्ठा डालता, धूलडालदेता, अधोवायुका पवन छोड़देता, कोई गालीदेता था तौभी यह उनका अपराध नहीं गिनतेथे कि जैसे मक्खियों का अपराध हाथी नहीं गिनता, क्योंकि आत्मा और अनात्मा के अनुभव के कारण आप अपनेही स्वरूप में रहते थे, इस देहरूप आकार में उनके देहाभिमान नहीं था, और मनसदा अखंडित रूप रहताथा; इसहेतु भूमिमें अकेले घूमाकरतेथे ॥ ३१ ॥ इनके हाथ, पांव तथा वक्षःस्थल अत्यंत सुकुमारथा भुजा, कंधा, गला और मुख यह बड़ेथे; सुंदर स्वभाव, आपही सिद्ध हंसनेसे मुखआति शोभित था- कमल दलसे अतिसुंदर नेत्रथे, सुंदर कपोल, कान, कंठ, नासिका यह सब समान सुशोभित थे; इनकी मंद मुसकान वाले मुख के विलासको देखकर नारियों को कामदेव उत्पन्न होताथा, उनकी चारोओरका कुटिल जटाओंका भारआगेको लटक रहाथा अवधूतशरीर मलीन होनेसे ऐसा प्रतीत होताथा कि मानोकोई भूतलगाहो इसप्रकार के दृष्टि आतेथे ॥ ३२ ॥ ऋषभदेव भगवान ने यह विचाराकि जबतक यह मनुष्य पीछा न छोड़ेंगे तबतक योग साधन न बनेगा, तब उन्होंने अजगर की वृत्तिधारण कर सोतेही सोते खाना, पीना, मल, मूत्रादिका त्याग करना प्रारंभ किया और विष्ठामें लोटकर सम्पूर्ण देहमें विष्ठाका लेपकर लिया ॥ ३३ ॥ उनकी विष्ठा की सुगंधित पवन से चारोंओरकी दश दशयोजनकी भूमि सुगंधित होगई ॥ ३४ ॥ ऋषभदेवजी ने इसभांति गौ, मृग, और काकसा आचरण धारण किया अर्थात् चलते, खड़े रहते, बैठते और सोते तथा अपनी इच्छानुसार ही मलमूत्र त्याग करते थे ॥ ३५ ॥ ऋषभ देवजी आपही मोक्षपति, अखंडित, परमानंद रूप साक्षात भगवान थे, तौभी मनुष्योंकी भाड़ न होजाय इसहेतु योगियोंको इसभांति करना चाहिये उन्हें दिखाने के कारणही ऐसा करते थे, समस्त प्राणियों के आत्मरूप

र्याणि वैहायसमनोजवान्तर्धानपरकायप्रवेशदूरग्रहणादीनि यदृच्छयोपगतानि नाञ्जसानृपहृदयेना ऽभ्यनन्दत् ॥ ३६ ॥

इतिश्रीमद्भा०पं०ऋषभदेवानुचरितेपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

राजोवाच ॥ ननूनंभगवआत्मारामाणां योगसमीरितज्ञानावभर्जितकर्मबीजानामैश्वर्याणि पुनःक्लेशदानिभवितुमर्हन्ति यदृच्छयोपगतानि॥१॥ऋषिरुवाच ॥ सत्यमुक्तंकिंत्विहएकेनमनसोऽद्धा विश्रम्भमनवस्थानस्यशठकिरातइवसंगच्छंते॥२॥तथाचोक्तम् ॥ नकुर्यात्कर्हिचित्सख्यंमनसिह्यनवस्थिते । यद्विश्रम्भाच्चिराच्चीर्णं चस्कन्दतपऐश्वरम् ॥३॥ नित्यंददातिकामस्य च्छिद्रंतमनुयेऽरयः । योगिनःकृतमैत्रस्य पत्युर्जायेवपुंश्चली॥४॥कामोमन्युर्मदोलोभः शोकमोहभयादयः । कर्मबन्धश्चयन्मूलः स्वीकुर्यात्कोनुतद्बुधः ॥ ५ ॥ अथैवमखिललोकपाललललामोऽपि विलक्षणैर्जडवदवधूतवेषभाषाचरितैरविलक्षितभवत्प्रभावो योगिनां साम्परायविधिमनुशिक्षयन्स्वकलेवरं जिहासुरात्मन्यात्मानमसंव्यवहितमनर्थान्तरभावेनान्वीक्षमाण उपरतानुवृत्तिरुपरराम ॥ ६॥ तस्यहवाएवंमुक्तलिंगस्य भगवतऋषभस्य योगमायावासनया देहइमां जगतीमभिमानाभासेन चंक्रममाणः कोङ्कवेंककुटकान्दक्षिणकर्णाटकान्देशान्यदृच्छयोपगतः कुटकाचलोपवन आस्यकृताश्मकवल उन्मादइव मुक्तमूर्धजोऽसंवीतएवविचचार ॥ ७ ॥ अथसमीरवेगविधू-

और अपने स्वरूप भूत केवल परमात्मा से शरीरादिक के अनुसंधान रहित एकता पानेके कारण आपस्वयं सिद्ध, सम्पूर्ण फलोंसे पूर्ण और कृतार्थ थे, इससे आकाश गमन मनकी समान शरीर वेग, अंतर्धान, दूसरे की देहमें प्रवेश करना और दूसरी बातोंको दूरसे जानलेना इत्यादिक सिद्धियें आपसे आप प्राप्तहोगईं परन्तु हेराजन् ! अपने मनसे उन्होंने उनका भी आदर न किया ॥३६॥

इति श्रीमद्भा०महा०पंचम०सरलाभाषाटीकायांपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

राजा परीक्षित बोले कि-हे भगवन् ! आत्माराम मुनिने कि जिनके कर्मबीज, योग जनित ज्ञानसे भस्म होगये थे आपसे आप प्राप्त हुईं सिद्धियोंका "कि जो उनको अहंता ममताकी देनेवाली न होतीं," क्यों अनादर किया ॥ १ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि-हे राजन् ! यह तुमने सत्य कहा, परन्तु बुद्धिमानलोग इस मनका विश्वास इस प्रकार नहीं करते कि जिस प्रकार बधिक पकड़े हुये मृगका अथवा मृग बधिकका विश्वास नहीं करता ॥ २ ॥ इसीसे कहा है कि इस चञ्चलमनका विश्वास कदापि नकरे कि जिस विश्वास से महादेवजी का बहुत काल का संचय किया हुआ तप मोहिनी रूप के देखतेही क्षीण होगया था ॥ ३ ॥ जैसे व्यभिचारिणी स्त्री अपने जारोंको अवकाश देकर अपने पति को नष्ट करती है ऐसेही विश्वासकरने वाले योगीका मन भी उस योगीके शत्रु कामदेव तथा उस के अनुगामी दूसरे वैरी क्रोधादिकों को अवकाश देकर उसे भ्रष्ट कर देता है ॥ ४ ॥ जिस मनसे काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, शोक और भय आदि शत्रु तथा कर्म बंधन भी होते हैं ऐसे मनको कौन विवेकी पुरुष अपने वशमेंमानेगा ॥५॥ अखिल लोकपालोंके शिरोमणि जड़की सदृश अवधूत वेष भाषा व आचरण से जिन का भगवत प्रभाव जाननेमें नहीं आता था ऐसे ऋषभदेवजी योगीराजोंको देह छोडने का प्रकार सिखानें के हेतु उनको जब अपने शरीर त्यागन की इच्छा हुई तब अपनेमें तथा परमात्मा में एक भाव बिचार देहाभिमान का त्याग किया ॥ ६ ॥ उनका स्थूल शरीर भी अन्य जीवन्मुक्तोंकी समान ईश्वर होनेके कारण योगमाया की वासना से अभिमाना भास रूपसे पृथ्वीपर भ्रमण करने लगा और आपही आप कोंक, वेंक, कुटक दक्षिणकर्णाटक देशों की ओर चलागया वहांभी कुटकाचल के उपवनमें मुखमें पत्थरका टुकडा

तवेणुविकर्षणजातोग्रदावानलस्तद्वनमालेलिहानःसहतेनददाह ॥ ८ ॥ यस्यकि-
लानुचरितमुपाकर्ण्य कोंकवेंककुटकानां राजाऽर्हन्नामोपशिक्ष्यकलावधर्म उत्कृ-
ष्यमाणे भवितव्येन विमोहितः स्वधर्मपथमकुतोभयमपहाय कुपथपाषण्डमस-
मंजसं निजमनीषया मन्दः संप्रवर्तयिष्यते॥९॥ येनहवावकलौमनुजापसदा देव-
मायामोहिताः स्वविधिनियोगशौचचारित्र विहीना देवहेलनान्यपव्रतानिनिजानि-
च्छया गृह्णाना अस्नानानाचमनाशौचकेशोल्लुञ्चनादीनि कलिनाऽधर्मबहुले-
नोपहतधियो ब्रह्मब्राह्मणयज्ञपुरुषलोकविदूषकाः प्रायेण भविष्यन्ति ॥ १० ॥ ते
च ह्यर्वाक्तनया निजलोकयात्रयाऽन्धपरम्परयाश्वस्तास्तमस्यन्धे स्वयमेव प्रपति
ष्यन्ति ॥ ११ ॥ अयमवतारो रजसोपप्लुतकैवल्योपशिक्षणार्थः ॥ तस्यानुगुणा-
न्श्लोकान्गायन्ति ॥ १२ ॥ अहो भुवः सप्तसमुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेस्वधिपुण्यमेत-
त् ॥ गायन्ति यत्रत्यजना मुरारेः कर्माणि भद्राण्यवतारवन्ति ॥१३॥अहो नु वंशो
यशसाऽवदातः प्रैयव्रतो यत्र पुमान्पुराणः ॥ कृतावतारः पुरुषः स आद्यश्चचार
धर्मं यदकर्महेतुम् ॥ १४ ॥ कोन्वस्य काष्ठामपरोनुगच्छेन्मनोरथेनाप्यभवस्य यो-
गी ॥ यो योगमायाः स्पृहयत्युदस्ता ह्यसत्तया येन कृतप्रयत्नाः ॥ १५ ॥ इति ह
स्म सकलवेदलोकदेवब्राह्मणगवां परमगुरोर्भगवत ऋषभाख्यस्य विशुद्धाचरित-
मीरितं पुंसां समस्तदुश्चरिताभिहरणं परममहामङ्गलायनमिदमनुश्रद्धयोपचितया
ऽनुश्रृणोत्याश्रावयति वाऽवहितो भगवति तस्मिन्वासुदेव एकान्ततो भक्तिरन-
योरपि समनुवर्तते ॥ १६ ॥ यस्यामेव कवय आत्मानमविरतं विविधवृजिनसं-

रखकर उन्मत्तकी भांति बाल खोले नंगे शरीर फिरता था ॥७॥ फिर वायुके वेगसे परस्पर बांस
रगडने के कारण जो प्रचंड दावानल उत्पन्न हुआ उससे बन के साथही ऋषभदेवजी का देह भी
भस्महोगया ॥८॥ जब कलिकालमें पाप बढेगा तब कोंक बेंक, और कुटक देशका अर्हन राजा
इन ऋषभदेवजी के चरित्रों को सुन उसे आप सीख, पूर्वजन्मके संचितपापों से मोहित होकरअ-
पने निजधर्म वेदमार्ग को छोड अपने विचारसेही पाखण्डरूप कुपथ को प्रवृत्त करेगा ॥ ९ ॥
इस मार्ग में चलनेवाले नीचपुरुष अज्ञानके बशहो शौच तथा सदाचारको छोडदेंगे और स्नान
तथा आचमन न करना, मलीनता रखना, केश उखाडना, इत्यादिक खोटेकर्मों से कि जिनसे दे-
वताओं का निरादर होता है उन नियमों को अपनी इच्छासे ग्रहण करेंगे और कलियुग से बुद्धि
नष्ट होने के कारण वेद, ब्राह्मण हरि तथा साधुओं की निन्दा करेंगे ॥ १० ॥ यह मनुष्य वेद
बाह्य पथ में विश्वास रखने के कारण आपही आप घोर नरक में पडेंगे ॥ ११ ॥ यह अव-
तार रजोगुण व्याप्त मनुष्यों को मोक्षमार्ग का उपदेश देने के लिये हुआ था, ऋषभदेव के च-
रित्रों को कितनेही लोग उत्तम श्लोकों से गाते हैं ॥ १२ ॥ उन. श्लोकोंका अर्थ यह है
ससागरा पृथ्वी के द्वीप खण्डों में यही भारतखण्ड अधिक पुण्यरूप है क्योंकि इस भारतवर्ष
के लोग भगवानके मंगलीक अवतारों का गान कियाकरते हैं ॥ १३ ॥ जहां प्रियव्रत के
वंशका बड़ाही सुन्दर यश है कि—जिसमें पुराण पुरुषने अवतार धारणकर मोक्ष देनेवाले धर्म
का आचरण किया ॥ १४ ॥ ऋषभ देवजीके मार्ग में चलनेका मनोरथ कोई दूसरा योगीभी कर
सकताहै ? कारण कि दूसरे योगी अणिमादिक सिद्धियोंकी इच्छा करतेहैं और ऋषभदेवजीने तो
उन्हें सिद्धियोंको दूरही से त्याग कर दिया ॥ १५ ॥ इसप्रकार सम्पूर्ण वेद, लोक देवता ब्राह्मण
गौ इनके परमगुरु भगवतऋषभदेवजी के विशुद्ध चरित्र मनुष्योंके समस्त पाप नाश करनेवाले हैं
जो मनुष्य इस मंगलमय चरित्रको श्रद्धापूर्वक सुने वा सुनावे तो श्रोता और वक्ताकी भगवान

सारपरितापोपतप्यमानमनुसवनं स्नापयन्तस्तथैव प्रया निर्वृत्या ह्यपवर्गमात्यन्तिकं परमपुरुषार्थमपि स्वयमासादितं नो एवाद्रियन्ते भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्थाः ॥ १७ ॥ राजन्पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किंकरो वः ॥ अस्त्वेवमङ्ग भगवान्भजतां मुकुन्दो मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम् ॥ १८ ॥ नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः श्रेयस्यतद्रचनयाचिरसुप्तबुद्धेः लोकस्य यः करुणयाभयमात्मलोकमाख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ॥ १९ ॥

इति श्रीमद्भा० म० पं० ऋषभदेवानुचरितवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ भरतस्तुमहाभागवतोयदाभगवताऽवनितलपरिपालनाय सञ्चिन्तितस्तदनुशासनपरःपञ्चजनीं विश्वरूपदुहितरमुपयेमे ॥ १ ॥ तस्यामुह वाआत्मजान्कात्स्न्यैनानुरूपानात्मनःपञ्चजनयामासभूतादिरिवभूतसूक्ष्माणि २ ॥ सुमतिराष्ट्रभृतंसुदर्शनमावरणंधूम्रकेतुमिति । अजनाभंनामैतद्वर्षंभारत मितियत आरभ्यव्यपदिशन्ति ॥ ३ ॥ सबहुविन्महीपतिःपितृपितामहवदुरुवत्सलतयास्वे स्वेकर्मणिवर्तमानाःप्रजाःस्वधर्ममनुवर्तमानःपर्यपालयत् ॥ ४ ॥ ईजेचभगवन्तंयज्ञक्रतुरूपंक्रतुभिरुच्चावचैः श्रद्धयाहृताग्निहोत्रदर्शपूर्णमासचातुर्मास्यपशुसोमानां प्रकृतिविकृतिभिरनुसवनंचातुर्होत्रविधिना ॥ ५ ॥ संप्रचरत्सुनानायागेषु विरचिताङ्गक्रियेष्वपूर्वंयत्तत्क्रियाफलंधर्माख्यंपरेब्रह्मणियज्ञपुरुषेसर्वदेवता लिंगानांमन्त्राणामर्थनियामकतयासाक्षात्कर्तरिपरदेवतायांभगवतिवासुदेवएवभावयमानआत्म

वासुदेव में भक्तिहाते ॥१६॥ सदैव नानाभांतिके संसाररूप दुःखोंसे वारम्बार तपाये जाते चित्तको समय२पर जो भक्तिमें स्नानकरातेहैं और जो भक्तिकोही परमानन्द मानतेहैं वह भक्त परमपुरुषार्थ रूप मोक्षपरभी स्नेह नहीं रखते ॥ १७ ॥ हे राजन् ! भगवान तुम्हारे पांडवोंके और यादवोंके पालक, गुरु, देवता प्यारे और नियंताथे वरन किसी २ कालमें सेवक भावभी करतेथे, तो भी हे राजा ! सामान्य रीतिसे देखतेहैं तो ऐसा ज्ञात होताहै कि—भगवान भजन करनेवालेको मुक्ति देतेहैं प्रेमयुक्त भक्तिको कभी नहींदेते, ॥ १८ ॥ नित्य अनुभव कियेहुये अपने रूपके लाभसेही कृतार्थहुए ऋषभदेवजीने देहादिक मनोरथोंसे बहुतसमयतक,श्रेय कल्याणके न जाननेवाले मनुष्यों पर कृपाकरके आत्मतत्व का उपदेश किया ऐसे उन परमेश्वरको मैंनमस्कार करताहूं ॥ १९ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा०पञ्चम० सरलाभाषाटीकायांषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि–हेराजन् ! महाभागवत भरतजीको जब भगवान् ऋषभदेवने पृथ्वी रक्षाके हेतु आज्ञाकी तब उनकी आज्ञा शिरोधार्यकर, विश्वरूपकी कन्या पंचजनीसे उन्होंने विवाह किया ॥ १ ॥ उस पंचजनीमें अपनी समान पांचपुत्र सुमति, राष्ट्रभृत, सुदर्शन, आवरण, और धूम्रकेतु इसभांति उत्पन्न किये कि जैसे अहंकारसे शब्द, रस,रूप, स्पर्श,गन्ध यह पांच तन्मात्रा उत्पन्न होतीहैं इस अजनाभिखण्डमें जबसे भरतने राज्यकिया तबसे इसकानाम भारतवर्षहुआ ॥ ॥३॥उस सर्वज्ञ राजाने बड़ी कृपालुतासे अपने२ धर्ममें चलनेवाली प्रजाओंका अपने बाप दादोंके सदृश धर्मकाअनुसरण करके पालनकिया॥४॥समय२में चातुर्होत्रकी विधिसे छोटे बड़े यज्ञकर यज्ञ रूप भगवानका श्रद्धासे पूजनकिया,अग्निहोत्रदर्श,पूर्णमास,चातुर्मास्य,पशुयाग,और सोमयाग इनकी प्रकृति और विकृति दोनोंकी गईथीं॥५॥नानाप्रकारकी क्रियाओंसे कियेहुये यज्ञोंके अपूर्वफल धर्मको भरतजी यज्ञपुरुष,तथा वेदके मन्त्रोंमें बोधितकिये इन्द्रादिक देवताओंके नियन्ता परमदेव भगवान के अर्पण करदेतेथे ऐसा करनेंसे जिसके रागद्वेषादिकमल निवृत्त होगये हैं ऐसे यजमान भरतजी

नैपुण्यमृदितकषायोहविष्ष्वध्वर्युभिर्गृह्यमाणेषुसयजमानोयज्ञभाजोदेवास्तान्पु-
रुषावयवेष्वभ्यध्यायत् ॥ ६ ॥ एवंकर्मविशुद्ध्या विशुद्धसत्वस्यान्तर्हृदयाकाश
शरीरेब्रह्मणिभगवतिवासुदेवेमहापुरुषरूपोपलक्षणेश्रीवत्सकौस्तुभवनमालाऽरिद
रगदादिभिरुपलक्षिते निजपुरुषहृल्लिखितेनात्मनिपुरुषरूपेण विरोचमानउच्चैस्त
रांभक्तिरनुदिनमेधमानरयाअजायत ७॥एवंवर्षायुतसहस्रपर्यंतावसितकर्मनिर्वाणा
वसरोऽधिभुज्यमानंस्वतनयेभ्यो रिक्थंपितृपैतामहंयथादायं विभज्यस्वयंसकल
सम्पन्निकेतात्स्वनिकेतात्पुलहाश्रमंप्रवव्राज ॥ ८ ॥ यत्रहवावभगवान्हरिरद्यापि
तत्रत्यानांनिजजनानांवात्सल्येनसंनिधाप्यतइच्छारूपेण ॥९॥ यत्राश्रमपदान्युभय
तोनाभिभिर्दृषच्चक्रैश्चक्रनदीनामसरित्प्रवरासर्वतः पवित्रीकरोति ॥ १० ॥ तस्मि-
न्वावकिलसएकलः पुलहाश्रमोपवने विविधकुसुमकिसलयतुलसिकाऽम्बुभिः
कन्दमूलफलोपहारैश्चसमीहमानोभगवतआराधनं विविक्तउपरतविषयाभिलाष
उपभृतोपशमःपरांनिर्वृतिमाप ॥ ११ ॥ तयेत्थमविरतपुरुषपरिचर्ययाभगवतिप्रवर्ध
मानानुरागभरद्रुतहृदयशैथिल्यः प्रहर्षवेगेनात्मन्युद्भिद्यमानरोमपुलककुलकऔत्क-
ण्ठ्यप्रवृत्तप्रणयबाष्पनिरुद्धावलोकनयनएवं निजरमणारुणचरणारविन्दानुध्यान
परिचितभक्तियोगेनपरिप्लुतपरमाह्लादगम्भीरहृदयह्रदावगाढ धिषणस्तामपि
क्रियमाणांभगवत्सपर्यांनसस्मार ॥ १२ ॥ इत्थंधृतभगवद्व्रतऐणेयाजिनवाससाऽ
नुसवनाभिषेकार्द्रकपिशकुटिलजटाकलापेनचविरोचमानः सूर्यर्चाभगवन्तंहिर-
ण्मयंपुरुषमुज्जिहानेसूर्यमण्डलेऽभ्युपतिष्ठन्नेतदुहोवाच ॥ १३ ॥ परोरजःस वितु

जिससमय ब्राह्मण हाथमें हविलेतेथे, उससमय उस हविके भागके लेनेवाले देवताओंकोभी भगवान का अगही विचारतेथे ॥ ६ ॥ इसप्रकार कर्मकी शुद्धिसे जिनका अंतःकरण शुद्ध होगया है ऐसे भारतजीके भक्तों के हृदयमें प्रगटहुये रूपसे मनमें स्थित भगवानसे दिनप्रतिदिन बढ़तीहुई उत्कट भक्ति उत्पन्नहुई भारतजीके मनमें हृदयगत आकाशके भीतर परमपुरुष भगवान शंख,चक्र आदि धारणकिये कौस्तुभ वनमाला आदिसे शोभायमान होकर दर्शनदेतेथे ॥ ७ ॥ इसप्रकार सहस्रोंवर्षों के उपरांत राज्यभोगका अन्तजान, आप अपने बाप दादोंके राज्यको कि जिसको भोगतेथे अपने पुत्रोंमें बांट संपत्ति युक्त घरको छोड़ तपके हेतु हरिक्षेत्रमेंगये ॥ ८ ॥ कि जिस आश्रममें भगवान हरि अबतक भक्तोंके प्रेमके निमित्त उनकी इच्छानुसार दर्शन देतेहैं ॥९॥ इसआश्रममें गंडकीनाम श्रेष्ठ नदीहै कि जिसकी शिलाओंके ऊपर और नीचे नाभिवाले चक्र उत्पन्न होतेहैं वे चक्र आश्रम के चारोंओरके देशोंको पवित्र करतेहैं ॥ १० ॥ इस हरिःक्षेत्रके उद्यानमें भरतजी अकेलेरहतेथे और नानाभांतिके कन्दमूल फलफूल जल आदि नैवेद्योंसे ईश्वरका यजन करतेथे ऐसे भरतजी विषयों से तृष्णा रहित तथा प्रशान्त हो अति आनन्दको प्राप्तहुये ॥ ११ ॥ इसप्रकार नित्य भगवत् आराधन से ईश्वर में भक्ति बढ़कर हृदयद्रवी भूतहो शिथिल होजाता था, आनन्द के वेगसे शरीर में रोमांच होजाताथा और उत्कण्ठा से बारम्बार आतेहुये प्रेमके आंसुओं से दृष्टिलोप होगईथी,भक्तोंको भक्तिदेनेवाले परमेश्वरके चरणोंमें बढ़ेहुये भक्तियोगके कारण चारोंओर व्याप्त परमानन्दरूप गहरी नदीमें बुद्धि डूबजानेसे करनेवाली भगवत्पूजा का भी स्मरण नहीं रहताथा ॥ १२ ॥ इसभांति भगवत व्रतधारण करते मृगछालाको ओढ़े व त्रिकाल स्नानके हेतु भीगीहुई तथा उलझीहुई कुटिल जटाओंसे शोभित भरतजी प्रभातकालमें पृथ्वीसे निकलतेहुये सूर्य मंडलके सामने खड़ेहो उसमें वर्तमान भगवानकी उपासना करतेहुये यह मन्त्र पढ़तेथे॥ १३ ॥परो-

जातवेदोदेवस्यभर्गोमनसेदंजनान ॥ सुरेतसाऽदः पुनराविश्यचष्टेहंसंगृध्राणंनृषद्रिङ्गिरामिमः ॥ १४ ॥

इतिश्रीमद्भा० म०पञ्चमस्कंधेसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एकदातुमहानद्यांकृताभिषेकनैयमिकावश्यकोब्रह्माक्षरमभिगृणानोमुहूर्तत्रयमुदकांतउपविवेश ॥ १ ॥ तत्रतदाराजन्हरिणी पिपासयाजलाशयाभ्याशमेकैवोपजगाम ॥ २ ॥ तयापेपीयमानउदकेतावदेवा विदूरेणनदतोमृगपतेरुन्नादोलोकभयंकरउदपतत् ॥ ३ ॥ तमुपश्रुत्यसामृगवधूःप्रकृतिविक्लवाचकितनिरीक्षणासुतरामपिहरिभयाभि निवेशव्यग्रहृदयापारिप्लवदृष्टिरगततृषाभयात्सहसैवोच्चक्राम ॥४॥ तस्याउत्पतन्त्याअन्तर्वत्न्याउरुभयावगलितोयोनिनिर्गतोगर्भः स्रोतसिनिपपात ॥ ५ ॥ तत्प्रसवोत्सर्पणभयखेदातुरास्वगणेनवियुज्यमानाकस्यांचिद्दर्यांकृष्णसारसतीनिपपाताथचममार ॥ ६ ॥ तंत्वेणकुणकंकृपणंस्रोतसाऽनूह्यमानमभिवीक्ष्यापविद्धंबंधुरिवानुकम्पयाराजर्षिर्भरतआदायमृतमातरमित्याश्रमपदमनयत् ॥ ७ ॥ तस्यहवाएणकुणकउच्चैरेतस्मिन्कृतनिजाभिमानस्याहरहस्तत्पोषणपालनलालनप्रीणनानुध्यानेनात्मनियमाः सहयमाःपुरुषपरिचर्यादयएकैकशः कतिपयेनाहर्गणेन वियुज्यमानाः किल सर्व एवोदवसन् ॥ ८ ॥ अहो बतायं हरिणकुणकः कृपण ईश्वररथचरणपरिभ्रमणरयेण स्वगणसुहृद्बन्धुभ्यः परिवर्जितः शरणं च मोपसादितो मामेव मातापितरौ भ्रातृज्ञातीन्यौथिकांश्चैवोपेयाय नान्यं कंचन वेद मय्यतिविस्रब्धश्चात एव मया मत्परायणस्य पोषण-

गजःसवितुर्जाविवेदा इत्यादि प्रकृतिसे परे कर्मोंके फलको देनेवाले, बुद्धिको गर्भ देनेवाले मनहीसे रचनेवाले इस जगतमें अन्तर्यामीरूपसे प्रकाशकर तृष्णावाले जीवोंको चैतन्यशक्तिसे पालनेवाले जो सूर्यनारायणकाआत्मरूप तेजहै उसकी हम शरणलेते हैं ॥ १४ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० पंचम०सरलाभाषाटीकायांसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजीबोले कि हेराजन् एक समय यह भरतजी दैहिक क्रिया से निश्चिन्त हो, गण्डकी नदी में स्नान, संध्या वन्दनादिक कर्म कर तीन मुहूर्त का नियम ले जलके तीर पर बैठे, ओंकार का जप कररहेथे ॥ १ ॥ कि उसी समय में एक हरिणी प्यास से व्याकुल हो अकेली नदी तटपर जलपीने को आई, वह जल पीती थी कि इतने में एक सिंह ने भयंकर गर्जना की ॥२॥ यह गर्जना सुन डरपोक स्वभाववाली हिरणी सिंह के भयसे हृदय में अति व्याकुलहो चकित दृष्टिसे इधरउधर देखने लगी ॥३॥ इससे उसने भयके मारे तृषा शान्ति होने के पहिलेही नदी के सन्मुख किनारे की ओर शीघ्रता से छलांगमारी ॥ ४ ॥ यह हिरिणी गर्भिणीथी, इससे, भयसे शीघ्रता पूर्वक छलांग मारने के कारण इसका गर्भ चलितहो योनिद्वार से निकल नदीके जल में गिर पड़ा ॥ ५ ॥ प्रसव का होना, नदी का फलांगना, भय से दुःखित, इन कारणों से क्लेशित अपने झुण्ड से छूटीहुई वह हिरणी किसी पर्वत की गुफा में आपड़ी और वहां जाकर मरगई ॥ ६ ॥ इस अनाथ हिरणी के बालक को जल में बहता देख राजर्षिभरत कृपापूर्वक उसे उठाकर अपने आश्रम में ले आये ॥ ७ ॥ यह हरिणका बालक मेराही बच्चा है, ऐसा अभिमान बधनेसे उसको दूध, घास आदि खिला पिलाकर लालन, पलान, करने लगे, उसमें आसक्ति बंधजाने से उनके स्नान, ध्यान यमनियम, भगवत्सेवा इत्यादिक सबही एक एक करके छूटगये ॥८॥ भरतजीने मनमें विचारा कि यह इस निराश्रय मृगके बालक ने कालकी गतिसे अपने कुटुम्बियों से अलगहो ईश्वरकी कृपासे मेराही आश्रय ग्रहण किया है। इसकारण मुझीको माता पिता भाई और

पालनप्रीणनलालनमनसूयुनाऽनुष्ठेयं शरण्योपेक्षादोषविदुषा ॥ ९ ॥ नूनं ह्यार्याः साधव उपशमशीलाः कृपणसुहृद एवंविधार्थे स्वार्थानपि गुरुतरानुपेक्षन्ते ॥ ॥ १० ॥ इति कृतानुसङ्ग आसनशयनाटनस्थानाशनादिषु सह मृगजहुना स्नेहानुबद्धहृदय आसीत् ॥ ११ ॥ कुशकुसुमसमित्पलाशफलमूलोदकान्याहरिष्यमाणो वृकसालावृकादिभ्यो भयमाशंसमानोयदासह हरिणकुणकेन वनंसमाविशति ॥ १२ ॥ तदा पथिषु च मुग्धभावेन तत्र तत्र विषक्तमतिप्रणयभरहृदयः कार्पण्यात्स्कन्धेनोद्वहति एवमुत्सङ्ग उरसिचाऽऽधायोपलालयन्मुदं परमामवाप ॥ १३ ॥ क्रियायां निर्वर्त्यमानायामन्तरालेप्युत्थायोत्थाय यदैनमभिचक्षीत तर्हिवावस वर्षपतिःप्रकृतिस्थेनमनसा तस्माआशिष आशास्ते स्वस्ति स्ताद्वत्स तेसर्वतइति ॥१४॥ अन्यदा भृशमुद्विग्नमना नष्टद्रविण इव कृपणः सकरुणमतितर्षेण हरिणकुणकविरहविह्वलहृदयसंतापस्तमेवानुशोचान्किल कश्मलं महदभिरम्भितइतिहोवाच ॥ १५ ॥ अपिबतसवैकृपण एणबालको मृतहरिणीसुतो होममानार्यस्य शठकिरातमतेरकृतसुकृतस्य कृतविस्रम्भ आत्मप्रत्ययेन तदविगणयन्सुजन इवागमिष्यति ॥ १६ ॥ अपिक्षेमेणास्मिन्नाश्रमोपवने शष्पाणिचरन्तं देवगुप्तंद्रक्ष्यामि ॥ १७ ॥ अपिचनवृकः सालावृकोऽन्यतमोवा नैकचर एकचरो वाभक्षयति॥१८॥निम्लोचतिह भगवान्सकलजगत्क्षेमोदयस्त्र्यात्माऽद्यापि ममन मृगवधून्यास आगच्छति ॥ १९ ॥ अपिस्विदकृतसुकृतमागत्य मां सुखयिष्यति

संगी जानता है। मेरे अतिरिक्त और दूसरेको यह नहीं जानता; यह मेरेऊपर अति विश्वास किये रहता है इसहेतु मुझको इसका लालन, पालन, तोषण और पोषण दोषदृष्टि (कि इसमें मेरे सब कर्म नष्ट होजांयगे) छोडकर करना योग्य है क्योंकि शरणागत का अनादर करने से जैसापाप होता है उसको मैं भलीभांति जानताहूं जोमनुष्य साधु, शांतस्वभाव, दीनबंधुहोते हैं वे ऐसे कार्य्यमें अपने बड़ेभारी स्वार्थ कोभी त्यागदेते हैं ॥१०॥ इसभांति आसक्त होनेसे भरतजीका हृदय मृगशिशुपर स्नेह से परिपूर्ण होगया इसकारण वह बैठते, सोते, फिरते, भोजन आदि करने के समयभी उस मृगके बच्चेको अपनेही संगरखते थे ॥ ११ ॥ जब कुश, फूल, समिध, फल, मूल, जल आदि लेनेको बनमेंजाते तबपीछे में कुत्ते, और भेडिये आदिके भयकी शंका से उसे अपने साथही लेजाते थे ॥ १२ ॥ जब वह बच्चा मार्गमें खड़ाहोजाता, तब भरतजी स्नेह से व्याकुलहो उसे थका हुआ जानकंधे आदिमें धरकर लेचलते थे और उसे कभी गोदमें कभी छातीमें धरकर प्यार करते थे ऐसे खिलातेहुये भरतजीउससे अत्यानंद पानेलगे॥१३॥पूजासे निवृत्त होनेपर अथवा बीचमेंही उठकर उसे देखने और प्रसन्न मनहो उसे आशीष देते कि हेपुत्र ! तेरासब ओर से मंगलहो ॥१४॥ यह बच्चा जब इधर उधर चलाजाता और दिखाई न देता, तबद्रव्य खोयेहुये कृपणकी भांति उनका मन व्याकुल होजाता था और उस हरिणी के बच्चे के विरह से, संतप्तहो करुणा पूर्वक इसभांति कहते कि ॥ १५ ॥ हाय ! मैं अत्यन्त अभद्र और अभागाहूं, मैं अतिमूर्ख और व्याधेकी नाईं निठुर हूं, उस मृतक हरिणीके निराश्रय बच्चेका चित्त अत्यन्तही पवित्र था, इसीकारण से उसने मुझमें विश्वासकियाथा, वहक्या सुजनकी समान मेरे दोषोंको कुछ नगिन कर फिरमेरे निकट आवेगा ॥ १६ ॥ अहाक्या मैं उसे फिरदेख पाऊंगा कि वह देवताओं से रक्षित होकर नवीन दूबको भक्षण करताहुआ इस आश्रम के उपवन में घूमरहा है ॥ १७ ॥ क्याऐसा होगाकि भेडिया, कुत्ते, सिंहादि हिंसक जन्तुओंने उसको अबतक भक्षण न कियाहो ॥ १८ ॥ जिसके उदय से सम्पूर्ण लोकोंका मंगल होता है, वह वेदमूर्त्ति भगवान सूर्य्य यह देखोअस्ता चलको जारहे हैं परन्तु हरिणी जिसको

हरिणराजकुमारो विविधरुचिरदर्शनीयनिजमृगदारकविनोदैरसंतोषं स्वानामपनुदन् ॥ २० ॥ क्ष्वेलिकायांमांमृषासमाधिनाऽऽमीलितदृशं प्रेमसंरम्भेण चकितचकित आगत्य पृषदपरुषविषाणाग्रेणलुठति ॥ २१ ॥ आसादितहविषि बर्हिषिदूषिते मयोपालब्धो भीतभीतः सपद्युपरतरास ऋषिकुमारवदवहितकरण कलापआस्ते ॥ २२ ॥ किंवाअरेआचरितं तपस्तपस्विन्याऽनया यदियमवनिः सविनयकृष्णसारतनयतनुतरसुभग शिवतमाखरखुरपद पंक्तिभिर्द्रविण विधुरातुरस्य कृपणस्यमम द्रविणपदवीं सूचयन्त्यात्मानंचसर्वतः कृतकौतुकं द्विजानां स्वर्गापवर्ग कामानां देवयजनंकरोति ॥ २३ ॥ अपिस्विदसौ भगवानुडुपतिरेनं मृगपतिभया न्मृतमातरं मृगबालकं स्वाश्रमपरिभ्रष्टमनुकम्पया कृपणजन वत्सलः परिपाति ॥ २४ ॥ किंवात्मजविश्लेषज्वरदवदहन शिखाभिरुपतप्यमानहृदयस्थलनलिनीकंमामुपसृतमृगीतनयं शिशिरशांतानुरागगुणित निज वदन सलिलामृतमयगभस्तिभिःस्वधयतीतिच ॥ २५ ॥ एवमघटमानमनोरथाकुल हृदयोमृगदारकाभासेनस्वारब्धकर्मणायोगारम्भणतो विभ्रंशितः सयोगतापसो भगवदाराधनलक्षणाच्चकथमितरथाजात्यन्तरएणकुणकआसङ्गः साक्षान्निःश्रेयस प्रतिपक्षतया प्राक्परित्यक्तदुस्त्यजहृदयाभिजातस्यतस्यै वमन्तराय विहतयोगारम्भणस्यराजर्षेर्भरतस्यतावन्मृगार्भकपोषणपालनप्रीणनलालनानुषङ्गेणा विगणयतआत्मानमहिरिवाखुबिलंदुरतिक्रमःकालःकरालरभसआपद्यत ॥ २६ ॥ तदा

मेरेपास धरोहर की भांति रखगई है, वह अवतक भी नहीं आता है ॥ १९ ॥ अहा ! वह हरिण कुमार लौटकर अपनी स्वाभाविक विविध मनोहर दर्शनीय क्रीड़ओं से आत्मीय जनको सन्तोष उत्पन्न कराकर क्या इस अकृत पुण्यमंदभाग्यको सुखी करेगा ॥ २० ॥ क्योंकि क्रीड़ाके समय जबमें मिथ्या समाधिको लगाकर नेत्रोंको मूंदेरहताथा, तबवह प्रेममें भरकर चकितहो चारोंओर घूमकर जल बिन्दुकी समान कोमल सींगोंकी नोकसे मुझेस्पर्श करता था ॥ २१ ॥ और जबवह चाबचूनकर अपनेमुखसे घृतमें भीजे कुशोंको अशुद्धकर देताथा तबमें उसका तिरस्कार करताथा तब वह मेरे डरपाने से ऋषिकुमार की सदृश अपनी क्रीड़ा बंदकर निश्चलहोकर बैठजाताथा ॥ २२ ॥ अरे ! इस तपस्विनी पृथ्वी ने क्या तपकिया है ? कि जिस तपसे विनय सहित कृष्ण मृगके बालक की छोटी, सुंदर, सुखदायी और कोमल खुरीवाले पैरोंकी पंक्तियों से चारोंओर से शोभायमान होकर, मुझ मृगके बालक रूप धनसे रहित और दुःखितको उसके धनका मार्ग बतलाती है और आपभी स्वर्ग तथा मोक्षकी इच्छा रखने वाले ब्राह्मणोंकी यज्ञस्थान बनी है ॥२३॥ (चन्द्रमा में मृगाकार चिन्ह देखकर कहते हैं) दीनोंपर दयाकरने वाले यह चन्द्रमाजी मेरे आश्रम से बिछुड़े हुये मृतक माताके पुत्रको कृपापूर्वक गोदमें लेकर सिंहके डरसे पालन करते होंगे ? ॥ २४ ॥ मैंकि जिसका हृदयरूपी स्थलकमलपुत्र बिछुड़ने के संतापरूप अग्निकी ज्वाला से संतप्त होरहा है, उसके निकट यह मृगीका पुत्रहीछे आकर अपने मुखके शीतल, शांत और प्रेमसे वृद्धि प्राप्तहुये अमृतकीकिरणोंकेसमान, बिंदुओं से हृदयको ठंडा करेगा ? ॥ २५ ॥ ऐसे अघट मान मनोरथों से उनका हृदय व्याकुल होगया, इस तपस्वी भरत राजाका योग व भगवत्पूजन, प्रारब्धनेही मृगशिशु के आभास से नष्टकिया नहींतो जिनभरत राजाने, जिनका त्याग कठिनतासे होवे ऐसे पुत्रोंको मोक्षमार्गका बैरीजान सहजही में त्यागकियाथा उनका चित्त दूसरे जातिके मृगछौनेपर आसक्त होवे ? इसभांति बाधा पड़ने से योगारंभ से नष्टहुये और मृगशावक के लालन, पालन में रहने से, अपने आत्माकी चिंतासे निश्चिन्त भरत राजाका प्रचंड वेगवाला तथा टालने

नीमपिपार्श्ववर्तिनमात्मज मिवानुशोचन्तमभिर्वीक्षमाणोमृगएवाभिनिवेशितमना विसृज्यलोकमिमंसहमृगेणकलेवरंमृतमनुनमृतजन्मानुस्मृतिरितरवन्मृगशरीरमवाप ॥ २७ ॥ तत्रापिहवाआत्मनोमृगत्वकारणंभगवदाराधनसमीहानुभावेनानुस्मृत्य भृशमनुतप्यमानआह ॥२८॥ अहोकष्टंभ्रष्टोऽहमात्मवतामनुपथाद्यद्विमुक्तसमस्त सङ्गस्य विविक्तपुण्यारण्यशरणस्यात्मवतआत्मनि सर्वेषामात्मनांभगवति वासुदेवेतदनुश्रवणमननसंकीर्तनाराधनानुस्मरणा भियोगेनाशून्यसकलयामेनकाले नसमावेशितं समाहितंकात्स्न्येनमनस्तत्तुपुनर्ममाबुद्धस्यारान्मृगसुतमनुपरिसुस्राव ॥ २९ ॥ इत्येवंनिगूढनिर्वेदो विसृज्यमृगींमातरंपुनर्भगवत्क्षेत्रमुपशमशीलमुनिगणदयितंशालग्रामंपुलस्त्यपुलहाश्रमं कालंजरात्प्रत्याजगाम ॥ ३० ॥ तस्मिन्नपि कालंप्रतीक्षमाणःसङ्गाच्चभृशमुद्विग्नआत्मसहचरः शुष्कपर्ण तृणवीरुधावर्तमानो मृगत्व निमित्तावसानमेवगणयन्मृगशरीरं तीर्थोदकक्लिन्नमुत्ससर्ज ॥ ३१ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०पञ्चम०अष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथकस्यचिद्द्विजवरस्याऽऽङ्गिरः प्रवरस्यशमदमतपःस्वाध्यायाध्ययनत्यागसंतोष तितिक्षाप्रश्रयविद्याऽनसूयात्मज्ञानानन्दयुक्तस्यात्मसदृशश्रुतशीलाचाररूपौदार्यगुणानवसोदर्या अङ्गजाबभूवुः मिथुनंचयवीयस्यांभार्यायाम् ॥ १ ॥ यस्तुतत्रपुमांस्तंपरमभागवतंराजर्षिप्रवरंभरतमुत्सृष्टमृगशरीरंचरमशरीरेणविप्रत्वंगतमाहुः ॥ २ ॥ तत्रापिस्वजनसङ्गाच्च भृशमुद्विजमानोभगवतः

पर न टलने वाला काल ऐसे आप्राप्त हुआ कि जैसे मूषक के बिलपर सर्प ॥ २६ ॥ उसकाल भी अपने निकट वर्ती मृगपुत्र का शोच पुत्रकी भांति करता था उसे देखने से भरत राजाका मन उसी में रहा, इससे शरीर तथा मृग के छूटने परभी उसको मृग जन्म ही लेना पड़ा परन्तु उस जन्म में भी भरतजी को पहिले जन्म का स्मरण बनारहा ॥ २७ ॥ उस मृग देह मे, भगवत आराधन के प्रभाव से अपने मृग होने के कारण को स्मरण कर बड़े ताप को प्राप्त हो अपने मन में कहने लगा कि ॥ २८ ॥ अहा ! बड़ा बुराहुआ मैं विवेकी जनों के मार्ग से भ्रष्ट हुआ सबको छोड़ अकेले पवित्र वन में योगमार्ग से सब प्राणियों के आत्मा परब्रह्म परमात्मा का भजन करताथा और उन भगवान् के श्रवण, कीर्तन, आराधन स्मरण में लगे रहने से मेरा कोई समय व्यर्थ नजाताथा, परन्तु यह सब मेरी मूढ़ता से मृग छौने के पाछे दूरही से निकल गया ॥२९॥ इस भांति अपने गूढ़ वैराग्य से अपनी मृगी माताको वहीं कालंजर पर्वतमें छोड़ हरि क्षेत्रमें आया कि जिस क्षेत्र में बहुत से शांत मुनि लोग प्रेम पूर्वक रहते हैं और पुलह पुलस्त्य मुनि का वहां तपस्थान है और उस गांव का नाम शाल के वृक्ष होनेसे शालग्राम कहलाता है ॥ ३० ॥ इस आश्रम में रहकर कालकी बाट देखताथा और किसीका साथ नहोजाय इस डरसे वह अकेला फिरता हुआ सूखे पत्ते घास, लताओं का भोजन कर कालक्षेप करताथा मृग देह के अंत को गिनता हुआ कितने दिनों के उपरांत एक दिन गंडकी नदी के जलमें अपनी मृगदेह को छोड दिया ३१॥

इति श्रीम० महा० पंचम० सरला भाषाटीकायां अष्टमो० ॥ ८ ॥

श्री शुकदेवजी बोले—कि शम, दम, तप, स्वाध्याय, त्याग, संतोष, तितिक्षा, नम्रता, विद्या, अनुसूया, आत्मज्ञान में आनंद इन गुणों युक्त एक श्रेष्ठ अङ्गिरा वंशी ब्राह्मण की बड़ी स्त्री में अपने सदृश शील, आचार, रूप, गुण, और उदारता युक्त नौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ और दूसरी स्त्री में एक कन्या और एक पुत्र उत्पन्न हुआ इसमे जो पुत्र हुआथा वह परम भागवत राजर्षियों में श्रेष्ठ मृग देह छोड़े हुए भरतजी थे इस अन्त के शरीर में यह ब्राह्मण हुए ऐसा कहते हैं ॥ २ ॥ इस

कर्मबन्धविध्वंसनश्रवणस्मरणगुणविवरणचरणारविंदयुगलंमनसाविदधदात्मनः प्रतिघातमाशंकमानो भगवदनुग्रहेणानुस्मृतस्वपूर्वजन्मावलिरात्मानमुन्मत्तजडांधवधिरस्वरूपेणदर्शयामासलोकस्य ॥ ३ ॥ तस्यापिहवाआत्मजस्यविप्रःपुत्रस्नेहानुबद्धमनाआसमावर्तनात्संस्कारान्यथोपदेशंविदधानउपनीतस्यचपुनःशौचाचमनादीन्कर्म नियमाननभिप्रेतानपिसमशिक्षयत् अनुशिष्टेनहिभाव्यंपितुःपुत्रेणेति ॥ ४ ॥ सचापितदुह पितृसन्निधावेवासध्रीचीनमिवस्मकरोति छन्दांस्यध्यापयिष्यन्सह व्याहृतिभिःसप्रणवशिरस्त्रिपदींसावित्रीं ग्रैष्मवासंतिकान्मासानधीयानमप्यसमवेतरूपंग्राहयामास ॥ ५ ॥ एवंस्वतनुजआत्मन्यनुरागावेशितचित्तः शौचाध्ययनव्रत नियमगुर्वनलशुश्रूषणाद्यौपकुर्वाणककर्माण्यनभियुक्तान्यपिसमनुशिष्टेनभाव्यमित्यसदाग्रहःपुत्रमनुशास्यस्वयंतावदनधिगतमनोरथः कालेनाप्रमत्तेनस्वयंगृहएवप्रमत्तउपसंहृतः ॥ ६ ॥ अथयवीयसीद्विजसतीस्वगर्भजातंमिथुनंसपत्न्यामुपन्यस्यस्वयमनुसंस्थयापतिलोकमगात् ॥ ७ ॥ पितर्युपरतेभ्रातरएनमतत्प्रभावविदस्त्रय्यांविद्यायामेवपर्यवसितमतयोनपर विद्यायांजडमतिरितिभ्रातुरनुशासन निर्बंधान्न्यवृत्संत ॥ ८ ॥ सचप्राकृतैर्द्विपदपशुभिरुन्मत्तजडवधिरेत्यभिभाष्यमाणोयदातदनुरूपाणिप्रभाषतेकर्माणिचसकार्यमाणःपरेच्छयाकरोतिविष्टितोवेतनतोवायाच्ञयायदृच्छयावोपसादितमल्पंबहु मिष्टंकदन्नंवाऽभ्यवहरतिपरं नेन्द्रियप्रीति निमित्तम् ॥ नित्यनिवृत्त निमित्तस्वसिद्धविशुद्धानुभवानन्दस्वात्म

ब्राह्मण जन्म में भी अपने स्वजनों के संग से बहुत डरताथा और कर्म बन्धन काटनेवाले भगवान के चरणों में ध्यानकरताहुआ उनका श्रवण, कीर्तन, स्मरण कियाकरता था और भगवत अनुग्रह से अपने पूर्व जन्म का स्मरण कर, किसी के साथ बन्धन होने के डरसे अपने को उन्मत्त, जड़ अंधा बहिरा सा दिखाताथा ॥ ३ ॥ उस के पिता ने पुत्र स्नेह से बंधकर समावर्तन पर्यंत शास्त्रवत् संस्कार करने का प्रारंभकिया और यज्ञोपवीत देकर शौच और आचमन आदि कर्मों के नियम यद्यपि जड़ भरत को प्रिय नहीं लगते थे तोभी पिता का पुत्र को नियम सिखाना अवश्य है ऐसे विचार आग्रह पूर्वक उसे सिखाने लगा ॥ ४ ॥ परन्तु किसी भांति पिता पढ़ाने का आग्रह छोड़ देवे इस कारण जड भरत पिता के सन्मुख ही नियमादि में और का और करने लगा उसका पिता वेद पढ़ाने के प्रारम्भ में व्याहृति ओंकार और शिर संगत गायत्री मंत्र पढ़ाने लगा किंतु चार महीने होगए तो भी गायत्री नआई ॥ ५ ॥ पवित्रता, वेदाध्यन, व्रत, नियम अग्नि और गुरुसेवा इत्यादिक कर्म जड़-भरत को प्रिय नथे तौभी पुत्रके स्नेह बन्धनसे वह ब्राह्मण जड़भरत को दुराग्रह से पढ़ातारहा किंतु मनोरथ को नप्राप्त हुआ ऐसे कुछ दिनों मे वह असावधान ब्राह्मण सावधान काल की झपट में आ गया ॥ ६ ॥ उस ब्राह्मण की छोटी स्त्री अपने दोनों कन्या पुत्रों को सपत्नी को सौंप आप पति के संग सती होगई पिता के मरने के उपरांत भाइयों ने कि जिन की कर्म विद्या में बुद्धि लगी है और ब्रह्म विद्या को नहीं जानते भरतजी के प्रभाव को नजान उनको मूढ़ बुद्धि समझ विद्या पढ़ाने का आग्रह छोड़ दिया ॥ ७ ॥ पशु सदृश, अधम मनुष्य जब भरतजी को हे उन्मत्त ! हे जड़ ! अरे बहरे इस प्रकार कहते थे तब भरतजीभी उन्ही शब्दों से उनको उत्तर देते थे जब कोई उनसे कुछ कर्म कराता तब वह दूसरेकी इच्छासे करतेथे और मूल्य से, भिक्षासे तथा अकस्मात् जो थोड़ाया बहुत बुरा या भला जैसा अन्न मिलजाताथा उसी को केवल जीव निर्वाह के हेतु खाया करतथे किंतु इन्द्रियों की प्रसन्नता के हेतु कुछ भी नहीं खाते थे ॥ ८ ॥ विशुद्ध अनुभव रूप परमानन्द आत्मा की कि जिस का नकोई उत्पन्न करनेवाला और न प्रगट करने वाला है उसको प्राप्त होगईथी जिस

लाभाधिगमः सुखदुःखयोर्द्वन्द्वनिमित्तयोरसंभावितदेहाभिमानः ॥ ९ ॥ शीतोष्ण वातवर्षेषुवृष इवानावृताङ्गःपीनः संहननाङ्गःस्थण्डिलसंवेशनानुन्मर्दनामज्जनरजसा महामणिरिवानभिव्यक्तब्रह्मवर्चसः कुपटावृतकटिरुपवीतेनोरुमाषिणा द्विजातिरिति ब्रह्मबन्धुरिति संज्ञया अतज्ज्ञजनावमतो विचचार ॥ १० ॥ यदा तु परत आहारं कर्मवेतनत ईहमानःस्वभ्रातृभिरपि केदारकर्मणि निरूपितस्तदपि करोति किं तु न समविषमन्यूनमधिकमिति वेद कणपिण्याकफलीकरणकुल्माषस्थालीपुरीषादीन्यप्यमृतवदभ्यवहरति ॥ ११ ॥ अथ कदाचित्कश्चिद्वृषलपतिर्भद्रकाल्यै पुरुषपशुमालभतापत्यकामः ॥१२ तस्य हदैवमुक्तस्य पशोःपदवीं तदनुचराःपरिधावंतोनिशीथसमयेतमसावृतायामनधिगतपशव आकस्मिकेन विधिनाकेदारान्वीरासनेनमृगवराहादिभ्यःसंरक्षमाणमङ्गिरःप्रवरसुतमपश्यन् ॥ १३ ॥ अथतएतमनवद्यलक्षणमवमृश्य भर्तृकर्मनिष्पत्तिंमन्यमानावद्ध्वारशनयाचण्डिकागृहमुप निन्युर्मुदाविकसितवदनाः ॥ १४ ॥ अथपणयस्तंस्वविधिनाऽभिषिच्याऽहतेनवाससाऽऽच्छाद्यभूषणालेपस्रक्तिलकादिभिरुपस्कृतं भुक्तवन्तंधूपदीपमाल्यलाजकिसलयांकुरफलोपहारोपेतया वैशससंस्थयामहतागीतस्तुतिमृदङ्गपणवघोषेणचपुरुषपशु भद्रकाल्यः पुरतउपवेशयामासुः ॥ १५ ॥ अथवृषलराजपणिःपुरुषपशोरसृगासवेनदेवींकालींयक्ष्यमाणस्तदभिमन्त्रितमसिमतिकरालनिशितमुपाददे ॥ १६ ॥ इति

से सनमान, अपमान, सुख दुःख में देहाभिमान नहीं होताथा ॥९॥ शीत, उष्ण, पवन, और वर्षा में बैलकी सदृश खुले अंग रहाकरना सब अंग पुष्ट और दृढ़ थे भूमिमें सोनेसे उबटन और स्नान न करने से लगीहुई मिट्टी के कारण, बिना स्वच्छ किए हुए मणिके तेज की सदृश उसका ब्रह्म तेज प्रगट नहीं होताथा फटासा वस्त्र कमर में बांधे रहता और मैलासा जनेऊ पहिने रहता इससे सब इसको ब्राह्मणों में अधम जातका ब्राह्मण कहा करते थे, इस प्रकार उन मूढ़ों से अपमानित होकर भरत इधर उधर विचरा करता था ॥ १० ॥ इसभांति भटकतेहुये भरत ने जब दूसरों का काम करके खाद्य पदार्थ लेने का आरम्भ किया तब भाइयों ने खेतके कर्म में लगादिया तो वह वही करने लगा परन्तु यहां खोदने से नीचा होजायगा और यहां मिट्टी डालने से ऊंचा होजायगा यह विचार उसे नहीं था इससे खेत बिगड़गया उसके भाई चावलों के कन, खल, तुष, घुने उड़द, बटलोई के नीचे की जलन आदि जो खाने को देते उसेही अमृतकी सदृशमानकर खालेता ॥ ११ ॥ किसी समय चोरों के राजाने पुत्र होने की इच्छासे भद्रकाली देवी में मनुष्य का बलिदान करने की इच्छा की ॥ १२ ॥ उन्होंने एक पुरुष को पकड़ा वह दैवेच्छासे छूटगया उसको ढूंढने के लिये राजाके लोग रात्रीहीमें दौड़े परन्तु अँधेरेमें वह पुरुष तो न मिला अकस्मात् भगवदेच्छा से ब्राह्मण के बालक भरतजीपर "कि जो खड़े हुये खेतों की रक्षा हिरण, सूकरादि पशुओंसे करते थे" उनकी दृष्टि पड़ी ॥ १३ ॥ वह जड़ भरतजी को निर्दोष लक्षण वाला जान, हमारे राजा का काम इससे सिद्धहोगा ऐसा मान, डोरीसे बांध प्रफुल्लित मुखहो देवीजीके मन्दिर में ले गये ॥ १४ ॥ उन चोरों ने भरतजी को अपनी रीत्यनुसार स्नानकराय नवीनकपड़े पहिनाय, आभूषण, चन्दन, माला तिलकआदि से अलंकृतकर भोजनकराय गान, स्तुति, करते बाजे बजाते हुये उस पुरुष पशु को भद्रकाली के सन्मुख स्थापन किया और जब धूप, दीप, फूल, चावल, फल और नैवेद्य आदि पशुबलिकी सब बिधियें होचुकीं ॥ १५ ॥ तब चोरोंके राजा के पुरोहित ने भद्रकाली को पुरुष पशु के रक्तरूप आसवसे तृप्त करने के हेतु देवी के मन्त्रसे अभि-

तेषांवृषलानांरजस्तमःप्रकृतीनांधनमदरजउत्सिक्तमनसांभगवत्कलावीरकुलंकदर्थीकृत्योत्पथेनस्वैरं विहरतां हिंसाविहाराणांकर्मातिदारुणंयद्ब्रह्मभूतस्यसाक्षाद्ब्रह्मर्षिसुतस्य निर्वैरस्यसर्वभूतसुहृदः सूनायामप्यननुमतमालम्भनंतदुपलभ्यब्रह्मतेजसातिदुर्विषहेणदन्दह्यमानेनवपुषासहसोच्चचाटसैवदेवीभद्रकाली १७॥ भृशममर्षरोषावेशरभसविलसितभ्रुकुटि विटपकुटिलदंष्ट्रारुणेक्षणाटोपातिभयानकवदनाहन्तुकामेवेदंमहाऽट्टहासमतिसंरम्भेण विमुञ्चन्तीततउत्पत्यपापीयसां दुष्टानांतेनैवासिनाविवृक्णशीर्ष्णांगलात्स्रवन्तमसृगासवमत्युष्णंसहगणेन निपीयातिपानमदाविह्वलोच्चैस्तरां स्वपार्षदैः सह जगौ ननर्त च विजहार च शिरःकन्दुकलीलया ॥ १८ ॥ एवमेव खलु महदभिचारातिक्रमः कार्त्स्न्येनात्मने फलति ॥ १९ ॥ न वा एतद्विष्णुदत्त महदद्भुतं यदसंभ्रमः स्वशिरश्छेदन आपतितेऽपि विमुक्तदेहाद्यात्मभावसुदृढहृदयग्रन्थीनां सर्वसत्त्वसुहृदात्मनां निर्वैराणां साक्षाद्भगवता अनिमिषारिवरायुधेनाप्रमत्तेन तैस्तैर्भावैः परिरक्ष्यमाणानां तत्पादमूलमकुतश्चिद्भयमुपसृतानां भागवतपरमहंसानाम् ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भागवते० म० पं० बलिप्रदानान्मुक्ति नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथ सिन्धुसौवीरपते रहूगणस्य व्रजत इक्षुमत्यास्तटे तत्कुलपतिना शिबिकावाहपुरुषान्वेषणसमये दैवेनोपसादितः स द्विजवर उपलब्ध एष पीवा युवा संहननाङ्गो गोखरवद्धुरं वोढुमलमिति पूर्वविष्टिगृहीतैः

मंत्रित कर विकराल खड्ग उठाया ॥ १६ ॥ इस भांति राजसी और तामसी प्रकृति वाले धन के मदरूप रजोगुण से पूरित, ईश्वरके अंश वाले ब्राह्मण वंशको तुच्छ समझकर कुमार्ग में चलने वाले और हिंसाही को क्रीडारूप मानने वाले यह शूद्रलोग—साक्षात् ब्रह्मभूत, ब्रह्मर्षि के पुत्र, निर्वैर, सब प्राणियों के सुहृदरूप महात्मा के " कि जो वधके अयोग्य था " बध करने का अतिघोर कर्म करने लगे, यह देख जड़ भरत के ब्रह्मतेज से भद्रकाली देवी का शरीर जलने लगा इस कारण वह प्रतिमा छोड़कर बाहर निकल आई ॥ १७ ॥ उन सबका अपराध न सहकर तथा शरीरके जलने से देवीजीने प्रतिमासे उछल बड़ा वेग किया, उनके नेत्ररूपवृक्षकी डालरूपी भौंहें ऊंचे मस्तक में चढगई, कुटिल नेत्रों और कुटिल डाढोंसे मुख अत्यन्त विकराल होगया और मानो सम्पूर्ण संसारको नष्ट करने का विचार हो इस प्रकार बड़े रोष से अट्टहास शब्दकर पापी पुरोहित से खड्गछीन उनचोरों के शिरकाटडाले और उनके गलेसे निकलते हुये, उष्ण रुधिर रूप मदको अपने गणों सहित पानकर, उस पानके मदसे पार्षदोंके साथ उच्चस्वर से गाने और नाचने लगीं और उनके शिरोंको गेंद बनाकर खेलने लगीं ॥ १८ ॥ इसलिये जोमनुष्य बड़े मनुष्योंका बुराचाहते हैं उनका सभी भांतिसे बुराहोता है ॥ १९ ॥ हेविष्णुदत्त ! भगवद्भक्त परम हंसोंको अपने शिरकटनेके कालमें भी व्याकुलता नहीं होती क्योंकि देहादिक जड़पदार्थोंको आत्मभाव मानने वाले हृदयकी ग्रन्थिको वेदूरकर देते हैं और सबजीवों के सुहृद, आत्मरूप, निर्वैर ईश्वर के निर्भय चरणारविंद के मूलमें रहने वाले इन मनुष्यों की, साक्षात् भगवान अपने सुदर्शन चक्र द्वारा पालना करते हैं ॥ २० ॥

इतिश्रीमद्भा० महा०पंचम•सरलाभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेमहाराज ! सिन्धु सौवीर देशका राजा रहूगण कपिलदेवजीके स्थान को जाताथा कि उसमार्गमें इक्षुमती नदीके किनारेपर पालकी लेजानेवालोंका नायक बेगारमें पुरुषों के पकड़नेका प्रबन्ध करताथा उसकाल दैवयोगसे उन्हें यह श्रेष्ठ ब्राह्मण भरतजी मिलगये । इन

सह गृहीतः प्रसभमतदर्ह उवाह शिबिकां स ह महानुभावः ॥ १ ॥ यदा हि द्विजवरस्येषुमात्रावलोकानुगतेर्न समाहिता पुरुषगतिस्तदा विषमगतां स्वशिबिकां रहूगण उपधार्य पुरुषानधिवहत आह ॥ हे वोढारः साध्वतिक्रमत किमिति विषममुह्यते यानमिति ॥ २ ॥ अथ त ईश्वरवचः सोपालम्भमुपाकर्ण्योपायतुरीयाच्छङ्कितमनसस्तं विज्ञापयाम्बभूवुः ॥ ३ ॥ न वयं नरदेव प्रमत्ता भवन्नियमानुपथाः साध्वेव वहामः ॥ अयमधुनैव नियुक्तोऽपि न द्रुतं व्रजति नानेन सह वोढुमु ह वयं पारयाम इति ॥ ४ ॥ सांसर्गिको दोष एव नूनमेकस्यापि सर्वेषां सांसर्गिकाणां भवितुमर्हतीति निश्चित्य निशम्य कृपणवचो राजा रहूगण उपासितवृद्धोऽपि निसर्गेण बलात्कृत ईषदुत्थितमन्युरविस्पष्टब्रह्मतेजसं जातवेदसमिव रजसाऽऽवृतमतिराह ॥ ५ ॥ अहो कष्टं भ्रातर्व्यक्तमुरु परिश्रान्तो दीर्घमध्वानमेक एव ऊहिवान् सुचिरं नातिपीवा न संहननाङ्गो जरसा चोपद्रुतो भवान्सखे नो एवापर एते संघट्टिन इति बहु विप्रलब्धोऽप्यविद्यया विहितद्रव्यगुणकर्माशयस्वचरमकलेवरेऽवस्तुनि संस्थानविशेषेऽहंममेत्यनध्यारोपितमिथ्याप्रत्ययोब्रह्मभूतस्तूष्णींशिबिकांपूर्ववदुवाह ॥ ६ ॥ अथपुनःस्वशिबिकायांविषमगतायांप्रकुपितउवाचरहूगणः किमिदमरेत्वंजीवन्मृतो मांकदर्थीकृत्यभर्तृशासनमतिचरसि,प्रमत्तस्यचतेकरोमि चिकित्सांदण्डपाणिरिवजनतायायथा प्रकृतिंस्वांभजिष्यसइति ॥ ७ ॥ एवंबह्वबद्धमपिभाषमाणंनरदेवाभिमानंरजसातमसाऽ

को पुष्ट तथा युवादेख और यह विचारकर कि बैल गधेके सदृश बोझ लेजासकताहै दूसरे बेगारियोंके संग बलपूर्वक पकड़लिया, इसकामके अयोग्य भरतजीने दूसरे बेगारियोंके संग पालकी उठाई ॥ ॥ १ ॥ महानुभाव भरतजी जीओं के दबनेके भयसे जब बाण भर पृथ्वीको देखलेते तब आगे पांव धरते इससे इनकी गति औरों के समान न होने से पालकी विषम भावको प्राप्तहुई ऐसी टेढ़ी पालकीदेख राजाने कहारोंसे कहा कि—अरे कहारो ! अच्छी रीतिसे चलो पालकीको विषम क्यों लेचलतेहो ॥ २ ॥ कहार लोग राजाके तरजन सहित बचन सुनकर दण्डके भयसे शंकितहुए और विनयके साथ कहनेलगे ॥ ३ ॥ हेराजन् ! हमारा अपराध नहींहै.हम तो आपकी आज्ञानुसार बराबर चलरहे हैं परन्तु यह पुरुष जो अभी नयाहै शीघ्रता पूर्वक नहीं चलता इससे हमभी इसके संग नहीं चलसकते ॥ ४ ॥ इसप्रकार सेवकों से दीन बचनसुन राजा ने यह निश्चय किया कि—एकके दोष होनेसे वह दोष उसके सब सङ्गियोंपर आताहै । राजा रहूगण ने ज्ञानियोंकी सेवाकीथी तो भी राजस्वभावके कारण कुछ क्रोध आजानेसे उस क्रोधके आधीनहो जड़ भरतसे कि जिनका ब्रह्मतेज दबीहुई अग्निकी सदृश प्रगट न होताथा हंसीसे इसभांति कहने लगा कि ॥ ५ ॥ हेभैया ! बड़ा कष्टहै तू बहुत थकगया होगा? तू बड़ी दूरसे अकेला पालकी उठाये चला आता है तेरा आत्मा मोटा नहीं है तू दृढ़ नहीं है तुझे बुढ़ापे ने घेर लिया है । हे सखे ! यह तेरे संगी तेरी समान नहींहै इसभांति बारबार टेढ़ी बातें करके हंसीकी; तिसपरभी जड़ भरत जीने कि जो अपने शरीरको पंचमहाभूत, इन्द्रिय, कर्म और अन्तःकरण रूप मायाके पदार्थोंसे बनाहुआहै उसमें मैं और मेरा ऐसा देहाभिमान नहींथा और आप ब्रह्मभूतथे इससेभी कुछ न कहकर पूर्वकी समान पालकी उठाकर चलनेलगे ॥ ६ ॥ परन्तु फिर पालकी टेढ़ी चलनेलगी, तब राजा क्रोधितहोकर बोला कि अरे तू क्या जीताहुआहै। मरेके समानहै तू मुझे कुछ न गिनकर मेरी आज्ञाका तिरस्कार करताहै इस तेरी असावधानतासे मैं तुझे शिक्षादूंगा कि—जैसे यमराज जीओंको शिक्षादेताहै—इससे तू सीधाहोजायगा॥७॥इसभांति राजा"कि जो रजोगुण और तमोगुणसे बढ़ेहुये

नुविद्धेनमदेनातिरस्कृताशेषभगवत्प्रिय निकेतंपण्डितमानिनंसभगवान् ब्राह्मणो ब्रह्मभूतःसर्वभूतसुहृदात्मायोगेश्वरचर्यायांनातिव्युत्पन्नमतिं स्मयमानइवविगत-स्मयइदमाह ॥ ८ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ त्वयोदितंव्यक्तमविप्रलब्धंभर्तुःसमेस्याद्य दिवीरभारः ॥ गन्तुर्यदिस्यादधिगम्यमध्वापीवेतिराशौन विदांप्रवादः ॥ ९ ॥ स्थौल्यंकार्श्यंव्याधयआधयश्चक्षुत्तृड्भयंकलिरिच्छाजराच । निद्रारतिर्मन्युरहं मदःशुचोदेहेनजातस्यहिमेनसंति ॥ १० ॥ जीवन्मृतत्वंनियमेनराजन्नाद्यन्तवद्य द्विकृतस्यदृष्टम् । स्वस्वाम्यभावोध्रुवईड्ययत्रतर्ह्युच्यतेऽसौविधिकृत्ययोगः ११ ॥ विशेषबुद्धेर्विवरंमनाक्चपश्यामियन्नव्यवहारतोऽन्यत् । कईश्वरस्तत्रकिमीशित-व्यंतथापिराजन्करवामकिंते ॥ १२ ॥ उन्मत्तमत्तजडवत्स्वसंस्थांगतस्यमेवीर चिकित्सितेन । अर्थःकियान्भवताशिक्षितेनस्तब्धप्रमत्तस्यचापिष्टपेषः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावदनुवादपरिभाषयाप्रत्युदीर्यमुनिवरउपशमशीलउपरता नात्म्यनिमित्तउपभोगेनकर्मारब्धंव्यपनयन्राजयानमपितथोवाह ॥ १४ ॥ सचापि पाण्डवेयसिंधुसौवीरपतिस्तत्त्व जिज्ञासायांसम्यक्श्रद्धयाऽधिकृताधिकारस्तद्ध् दयग्रन्थिविमोचनं द्विजवचआश्रुत्यबहुयोगग्रन्थसंमतंत्वरयाऽवरुह्य शिरसा पादमूलमुपसृतःक्षमापयन् विगतनृपदेवस्मयउवाच ॥ १५ ॥ कस्त्वं निगूढश्चरासि

अभिमान के कारण किसी भगवद्भक्तको नहीं गिनता और उनका निरस्कार करता और राजापन के अहंकारमें इसभांति बहुतबोलना, उससे ब्रह्मभूत सम्पूर्ण प्राणियों के सुहृद और आत्मारूप जड भरतजी हँसत हँसते कहनेलगे॥८॥जडभरतजी बोले कि—हेरहूगण ! आपने जो कहा वह सब सत्य है! इससे मेरीकुछभी हँसी नहीं है हेवीर!यदि भारहो और चलनेको मार्गहो तौ तो तूने मेरी हंसी की, परन्तु वह कुछभी नहींहै आपने कहा कि तेरा आत्मा मोटा नहींहै सो ऐसा तो केवल मूर्खही कहते हैं ज्ञानवान नहीं, कारण कि—पंचभूतोंका समूहरूप देहही पुष्ट होताहै आत्मा नहीं ॥ ९ ॥ स्थूलपन, पतलापन, व्याधि, भूख प्यास, भय, कलह,इच्छा जरा, निद्रा, रति क्रोध अहंकार मद शोक यह सब देहाभिमानियों के होते हैं इससे मेरे यहभी भाव नहीं है ॥ १० ॥ हे राजन् ! मैं अकेला ही जीताहुआ मृतक नहीं हूं वरन सब सृष्टिही जीती हुई मृतक की तुल्य है क्यों कि आदि अंत वाला विकृत पदार्थ देखने में आता है अर्थात् जगत जन्मता और मरता है, हे स्वामी ! यदि स्वामी भाव और सेवक भाव सच्चे हों तबतो आपकी आज्ञा करना और मेरा काम करना होसकता है परंतु यह तो असत्य है जैसे आपका राज्य नष्ट होजाय और मुझे मिलजाय तो सब बिपरीत होजाय ॥११॥ राजा और सेवक आदि की भेद बुद्धि का अवकाश व्यवहार में भी देखने में आता है और व्यवहार दृष्टि छोड यदि यथार्थ में विचार कियाजाय तो उसमें राजा और सेवक भाव कुछभी नहीं है तेरे राजापन के अहंकार से हम पालकी तो लियेहीचलते हैं और क्या करैं ॥ १२ ॥ मैं तो उन्मत्त और जडकी भांति अपने स्वरूप को प्राप्त हुआ हूं हे वीर ! मेरी दंड और शिक्षा से तुझे क्या मिलेगा मैं जीवन्मुक्त नहीं हूं तौभी मुझ उन्मत्त को शिक्षा देना व्यर्थ है कि जैसे पीसे हुए पदार्थ का पीसना ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—शांतस्वभाव देहाभिमान करनेवाली अविद्या से छूटाहुआ जड़भरत किजो सुख दुःखोंको भोगकर अपने प्रारब्ध कर्मकोनाश करता था राजा रहूगणकी कहीहुई वार्त्ता का इसभांति उत्तरदे पहिले की समान पालकी को लेकर चलनेलगा ॥ १४ ॥ हेराजा परीक्षित ! यह सिंधुसौवीरदेशका राजा कि जिसको श्रद्धासे तत्व जिज्ञासामें अधिकार मिला है जड़भरतजी "किजो हृदय की गांठको खोलने वाले और योगके ग्रंथके अनुसरण करने वालेथे" के वचन सुन

द्विजानांविभर्षिसूत्रंकतमोऽवधूतः॥ कस्यासिकुत्रत्यइहापिकस्मात्क्षेमायनश्चेदसि नोतशुक्लः ॥ १६ ॥ नाहंविशङ्केसुरराजवज्रान्नत्र्यक्षशूलान्नयमस्यदण्डात् ॥ नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्राच्छंके भृशंब्रह्मकुलावमानात् ॥ ॥ १७ ॥ तद्ब्रूह्यसङ्गो जडवन्निगूढविज्ञानवीर्यो विचरस्यपारः । वचांसियोगग्रथितानिसाधोनन:क्षमंते मनसाऽपिभेत्तुम् ॥ १८ ॥ अहंचयोगेश्वरमात्मतत्त्व विदांमुनीनांपरमंगुरुंवै । प्रष्टुं प्रवृत्तःकिमिहारणंतत्साक्षाद्धरिंज्ञानकलाऽवतीर्णम् ॥ १९ ॥ सवैभवांल्लोकनिरीक्षणार्थमव्यक्तलिंगोविचरत्यपिस्वित् । योगेश्वराणांगतिमंधबुद्धिःकथंविचक्षीतगृहानुबन्धः ॥ २० ॥ दृष्टःश्रमःकर्मतआत्मनोवैभर्तुर्गन्तुर्भवतश्चानुमन्ये । यथाऽसतोदानमनाद्यभावात्समूलइष्टो व्यवहारमार्गः ॥ स्थाल्यग्नितापात्पयसोऽभितापस्तत्तापतस्तण्डुलगर्भरंधिः । देहेंद्रियास्वाशयसन्निकर्षात्तत्संसृतिःपुरुषस्यानुरोधात् ॥ २२ ॥ शास्ताऽनुगोप्तानृपतिःप्रजानांयःकिंकरोवैनपिनष्टिपिष्टम् । स्वधर्ममाराधनमच्युतस्ययदीहमानोविजहात्यघौघम् ॥ २३ ॥ तन्मेभवान्नरदेवाभिमानमदेनतुच्छीकृतसत्तमस्य । कृषीष्टमैत्रीदृशमार्तबन्धोयथातरे सदवध्यानमंहः २४॥

तत्काल पालकी से उतर, राजमदको छोड़ उनके चरणों में माथारख क्षमा मांगताहुआ बोलाकि ॥ १५ ॥ हेमहाराज ! आपगुप्त होकर विचरने वाले कौनहो द्विजन्माओं में तुम कौनहो क्योंकितुम यज्ञोपवीत धारण कियेहो आप कौन से अवधूतहो किसके पुत्रहो यहां क्योंआयेहो ? क्या हमारे कल्याण के लिये कपिल देवजीतो नहींहो ? ॥ १६ ॥ मैं इन्द्रके वज्र से नहीं डरताहूं महादेवजीके त्रिशूल यमके दंड, अग्नि, सूर्य्य, चन्द्र, पवन, कुवेर इनके अस्त्रसे भी नहीं डरता परन्तु ब्राह्मण कुलके तिरस्कार से बहुत डरताहूं ॥ १७ ॥ इसकारण आपसे जोप्रश्न किया, उसका उत्तरदीजिये, यद्यपि आप अपने विज्ञान रूपका प्रभाव छिपाकर संगको छोड जड़कीनाई विचर रहेहो, तथापि मेरे समीप आपकी अनन्त महिमा का प्रकाश होरहा है। क्योंकि आपने जो समस्त योगभरे वचन कहे हैं, सो मैं मनसे भी उनका अर्थ जानेन में समर्थ नहींहूं ॥ १८ ॥ आत्म तत्व के जानने वाले योगेश्वर तथा मुनियों के परमगुरु, ज्ञान देनेके लिये अवतार धारण करने वाले 'कपिल देवके पास' इस बातको पूंछने जाताहूं कि इस संसार में सत्य शरण कौन है ॥ १९ ॥ क्या आपही कपिल देवतो नहींहो कि अप्रगट रूपसे लोकोंके देखने को विचरतेहो ? मंदबुद्धि तथा गृहासक्त मनुष्य योगेश्वरों की गतिकैसे जानसकता है ? ॥ २० ॥ आपने कहाकि श्रम नहीं है—यहतो मुझे असत्य ज्ञातहोता है क्योंकि कर्मादि करने से अवश्यही श्रमहोता है इसहेतु आपको भी अवश्यही श्रमहोना चाहिये; आप व्यवहार मार्गको असत् कहतेहो परन्तु जैसे घड़ेमें जल सत्यही आता है झूटा नहीं ऐसेही वह भी सत्य है ॥ २१ ॥ आपने कहाकि—सुख दुःख इत्यादिक धर्म केवल देहके हैं आत्मा के नहीं—इसमें भी मुझे संशय है—कि जैसे चूल्हेपर धरीहुई बटलोई में आंच लगाने से उसका अन्तर्वर्त्ति दूध उष्णहोता है उससे चावल उष्ण होकर खीर पकती है इसीभांति पुरुष देहको ताप होने से इन्द्रियों को और इन्द्रियों से प्राणों को और प्राणोंसे मनको तापहोता है और मनके ताप से उसके सम्बंधी आत्माको तापहोता है ॥ २२ ॥ आपने कहाकि स्वामी सेवक भाव असत्य है सो राजा यदि भगवद्भक्त होकर योग्यता से अपना राज्यकार्य चलावे और प्रजाका पालन तथा शिक्षाकरेतो वह पिष्टपेषण कैसे कहा जायगा, वरन मैं जानताहूं किवह अपने स्वधर्म से पाप समूह का नाश करता है ॥ २३ ॥ आपने जोकहा वह मुझे प्रतिकूल ज्ञातहोता है, इस लिये हेदीनबंधु! मैं किजो राजमद से साधुओंका अपमान करने वालाहूं तिसपर कृपा दृष्टिकरो कि जिससे साधुओं

न विक्रिया विश्व सुहृत्सखस्य साम्येनवीताभिमतेस्तथापि । महद्विमानात्स्वकृताद्धिमादृङ्नंक्ष्यत्यदूरादपिशूलपाणेः ॥ २५ ॥

इतिश्रीमद्भा०प०ञ्चम०रहूगणजडभरतसंवादोनामदशमोऽध्यायः॥ १० ॥

ब्राह्मण उवाच ॥ अकोविदःकोविदवादवादान्वदस्यथो नातिविदांवरिष्ठः । नसूरयोहिव्यवहारमेनं तत्त्वावमर्शेनसहामनन्ति ॥ १ ॥ तथैव राजन्नुरुगार्हमेधवितानविद्योरुविजृम्भितेषु। नवेदवादेषुहितत्त्ववादःप्रायेणशुद्धोनुचकास्तिसाधुः ॥ २ ॥ नतस्यतत्त्वग्रहणायसाक्षाद्वरीयसीरपिवाचःसमासन् । स्वप्ननिरुक्त्या गृहमेधिसौख्यं नयस्यहेयानुमितंस्वयंस्यात् ॥ ३ ॥ यावन्मनोरजसापूरुषस्य सत्त्वेनवातमसावाऽनुरुद्धम् । चेतोभिराकृतिभिरातनोति निरंकुशंकुशलंचेतरंवा॥४॥ सवासनात्माविषयोपरक्तो गुणप्रवाहोविकृतःषोडशात्मा। बिभ्रत्पृथङ्नामभिरूपभेदमन्तर्बहिष्ट्वंचपुरैस्तनोति ॥ ५ ॥ दुःखंसुखंव्यतिरिक्तंच तीव्रंकालोपपन्नंफलमाव्यनक्ति । आलिंगयमायारचितान्तरात्मा स्वदेहिनंसंसृतिचक्रकूटः ॥ ६ ॥ तावानयंव्यवहारःसदाविः क्षेत्रज्ञसाक्ष्योभवतिस्थूलसूक्ष्मः । तस्मान्मनोलिङ्गमदो वदन्ति गुणागुणत्वस्यपरावरस्य ॥ ७ ॥ गुणानुरक्तंव्यसनायजन्तोः क्षेमायनैर्गु-

के तिरस्कार करने रूपपाप से छूटजाऊं ॥ २४ ॥ विश्वके सुहृद, सखा और समताके हेतु देहाभिमान रहित हुये आपके यद्यपि कोई विकार नहींहै तौभी मेरीसमान मनुष्य तो शिवजी की समान सामर्थ्यवान होने परभी, अपने कियेहुये महात्माओं के तिरस्कार से शीघ्रही नाशहोते है ॥ २५॥

इति श्रीमद्भा०महा०पंचम०सरलभाषाटीकायांदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

जड़ भरतजी बोले कि-तू मूढ़ होकर भी विवेकियों कीसी बातें करताहै किन्तु ऐसा कहनेसे तू विद्वान नहीं कहा जासकता, क्योंकि विद्वानोंका कथनहै कि-जब यथार्थ रीतिसे विचारा जाय तब ज्ञात होताहै कि यह व्यवहार मिथ्याहै ॥ १ ॥ हेरहूगण ! लोक व्यवहारकी सदृश वेद कथित कर्म व्यवहारभी असत्यहै, गृह सम्बन्धी यज्ञके विस्तार सम्बन्धी विद्याओं के प्रतिपादक बहुतसे वेद वाक्योंमें तत्वज्ञानकी वार्ता प्रायःनहीं प्रगटहोनी कारण कि तत्वज्ञानमें राग द्वेषादिक दोषनहीं रहते और कर्मकांडकी विद्यामें रहतेहैं सकामकर्मों से तत्वज्ञानकी प्राप्ति नहींहोती किंतु जो कर्म भगवत अर्पण कियाजाय तो वह तत्वज्ञान का हेतु होजाता है ॥२॥ स्वप्न सुखकी समान गृहस्थाश्रम का सुखभी दृश्य और अनित्य होनेसे त्यागने योग्यहै जिसने ऐसा अपने हृदयमें दृढ़ विश्वास नहींकिया उसको वेदांतके वाक्य" कि जो तत्वज्ञान के लिये अति श्रेष्ठहैं,,कभी यथार्थ ज्ञान नहीं देसकते ॥ ३ ॥ इस मनुष्यका मन जबतक रजोगुण, तमोगुण, और सतोगुणके वशीभूत रहता है तबतक ज्ञानेंद्री और कर्मेन्द्रीसे पाप पुण्यका विस्तार किया करताहै ॥ ४ ॥ यह मन, पाप पुण्यकी बासना केलिये विषयोंसे क्लेशित होकर इधर उधर घूमाकरताहै, पंचमहाभूत और इन्द्रियोंमें मुख्य तथा नानाभांतिके विकारवाला यह मनही देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदिक नाना देह और पृथक् २ नाम धारण करताहै और उन देहोंसेही ऊंची नीची पदवीको प्राप्तहोताहै ॥ ५ ॥ मनही सब भांतिके काल प्राप्त सुख दुःख और मोहका उत्पन्न करनेवालाहै यह मन जीव की मायारचित उपाधिहै इससे जीवको अपने भीतर झूठा अध्यास कराकर (मैं मनहूं) संसार चक्रमें ग्राम कंटककी नाईं छलकर भ्रमाताहै ॥ इसभांति यह जाग्रत तथा स्वप्नरूप सारीसृष्टि मन कीही कल्पनासे स्थितहुईहै और मनहीके प्रमाणमें प्रकाश करतीहै, मनसेउत्पन्नहुई सृष्टिका केवल दृष्टा होनेसे यथार्थरीतिसे आत्मा उसके संग कुछ दूसरा सबन्ध नहीं रखता, तौभी मिथ्या अध्यास से (मन मैंहूं ऊँचनीच आदिक धर्म अपने भीतर मानलेता है इसभांति आत्माको देहाभिमान

ण्यमथोमनःस्यात् । यथाप्रदीपोघृतवर्तिमश्नञ्छिखाः सधूमाभजतिह्यन्यदास्वम्॥ पदंतथागुणकर्मानुबद्धं वृत्तीर्मनःश्रयतेऽन्यत्रतत्त्वम् ॥ ८ ॥ एकादशासन्मनसोहि वृत्तय आकूतयःपंचधियोऽभिमानः । मात्राणिकर्माणिपुरंचतासांवदन्तिहैकादश वीरभूमीः ॥ ९ ॥ गन्धाकृतिस्पर्शरसश्रवांसि विसर्गरत्यर्त्यभिजल्पशिल्पाः ।एका दशंस्वीकरणंममेति शय्यामहंद्वादशमेकआहुः ॥ १० ॥ द्रव्यस्वभावाशयकर्म-कालैरेकादशामी मनसोविकाराः । सहस्रशःशतशःकोटिशश्च क्षेत्रज्ञतोनमिथोन स्वतःस्युः ॥ ११ ॥ क्षेत्रज्ञएतामनसोविभूतीर्जीवस्य मायारचितस्यनित्याः । आ-विर्हिताःक्वापितिरोहिताश्च शुद्धोविचष्टेह्यविशुद्धकर्तुः ॥१२ ॥ क्षेत्रज्ञआत्मापुरुषः पुराणः साक्षात्स्वयंज्योतिरजःपरेशः । नारायणोभगवान्वासुदेवः स्वमाययाऽत्म-न्यवधीयमानः ॥ १३ ॥ यथाऽनिलः स्थावरजंगमानामात्मस्वरूपेणनिविष्टईशेत् । एवंपरोभगवान्वासुदेवः क्षेत्रज्ञआत्मेदमनुप्रविष्टः ॥ १४ ॥ नयावदेतांतनुभृन्नरेन्द्र विधूयमायांवयुनोदयेन । विमुक्तसंगोजितषट्सपत्नो वेदात्मतत्त्वंभ्रमतीहतावत् ॥ १५ ॥ नयावदेतन्मनआत्मलिंगं संसारतापावपनंजनस्य । यच्छोकमोहामयराग

देनेवाला यद्यपि मनहीहै तौभी देहाभिमानसे छुटानेवाला यह मनहै ॥ ७ ॥ गुणोंसे अनुरक्त मन प्राणीको संसारिक सुख दुःखदेताहै तथा निर्गुण गुणोंसे (विषयोंसे अलग) वही मोक्षका देने-वाला होजाताहै जैसे दीपमेंसेघृत और बत्तीको जलाताहै तबतक उसमेंसे धूमयुक्त शिखा निकलती रहतीहै और जब घृत नहींरहता तबही दीपक बुझकर तेजरूप होजाताहै ॥ ८ ॥ इसीभांति जब-तक मन विषय और कर्म्मोंमें लगारहताहै तबतक उसमें ग्यारह वृत्तियां अर्थात् पांच क्रियारूप पांचज्ञानरूप और एक अभिमान रूप देखपड़तीहैं और जब विषय और कर्म्मोंसे मुक्त होजाताहै तब ब्रह्माकार होजाताहै ॥ ९ ॥ हेराजन् ! पांचविषय, पांचकर्म और एकपुर यह ग्यारह पदार्थ ग्यारह वृत्तियोंकी भूमिहैं स्पर्श, रूप,रस और गन्धही पांच विषयहैं और मलोत्सर्ग, मैथुन, गति भाषण और शिल्प यह पांच कर्म हैं॥१०॥ग्यारहवांपुर अभिमानहै वह मनकी वृत्तिकी भूमि शरीर है किसी २ का ऐसाभी मतहै कि—और अहंकार नामवाली मनकी एकबारहवीं वृत्तिभी यद्यपि मनकी ११ वृत्तियें कहीगई हैं तौभी वह वृत्तियां स्वभाव संस्कार अदृष्ट और काल, इन सबके का रणसे उनके सैकडों, हजारों और करोंडों भेद होजाते हैं यह वृत्तियां जीव के निर्विकार होने से उससे नहीं उत्पन्न होसकतीं और न आपसही में उत्पन्न होसकतीं हैं क्योंकि इससे अन्योन्याश्रय दोष आता है और वह आप से आप भी नहीं उत्पन्न होसकतीं क्यों कि इससे आत्माश्रय दोष आ ता है इस लिये किसी भांति से इन वृत्तियों के उत्पत्ति का निश्चय नहीं होसकता इस लिये यह वृत्तियां मिथ्या ही ज्ञात होतीहैं ॥ ११ ॥ मनकी वृत्तियां इस भांति विषय और कर्मों के सम्बन्ध से उठा करती हैं उस सम्बन्ध के मिटने से मन आत्माकार होजाता है किजो आत्मा अपने को मनके प्रवाह रूप से निरंतर प्रवृत होती हुई इन वृत्तियों को शुद्ध रहकर देखा करता है जाग्रत और स्वप्नावस्था में इन वृत्तियों का प्रगट करनेवाला और सुषुप्ति में छिपानेवाला यह क्षेत्रज्ञ आत्मा है ॥ १२ ॥ क्षेत्रज्ञ दो प्रकारका है एक जीव दूसरा ईश्वर जीव का निरूपण तो किया अब ईश्वर का स्वरूप कहते हैं सर्वव्यापी, जगत का कारण, पूर्ण अपरोक्ष, अजन्मा, ब्रह्मादिकों का ईश्वर, सम्पूर्ण जीवों के आश्रय भगवान वासुदेव अपनी माया से प्राणियों के नियंता है ॥१३॥ जिस भांति वायु समस्त स्थावर जङ्गम सब जीवों में प्राण रूप से व्याप्त होकर सबको अपने आधीन रखता है वैसेही भग-वान वासुदेव इस सृष्टि में व्याप्त होकर इनको अपने आधीन रखते हैं ॥ १४ ॥ हे नरेन्द्र ! जब यह प्राणी निःसंग हो इन्द्री रूप वैरियों को जीत ज्ञान के उदय से समस्त माया को दूरकर अपने

लोभवैरानुबन्धं ममतां विधत्ते ॥ १६ ॥ भ्रातृव्यमेतं तददभ्रवीर्यमुपेक्षयाऽध्येधितमप्रमत्तः । गुरोर्हरेश्चरणोपासनास्त्रो जहिव्यलीकं स्वयमात्ममोषम् ॥ १७ ॥

इतिश्रीमद्भा०पं०नामएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

रहूगण उवाच ॥ नमोनमःकारणविग्रहाय स्वरूपतुच्छीकृतविग्रहाय । नमोऽवधूतद्विजबन्धुलिंगनिगूढनित्यानुभवायतुभ्यम् ॥ १ ॥ ज्वरामयार्तस्ययथाऽगदं सन्निदाघदग्धस्ययथाहिमाम्भः । कुदेहमानाहिविदष्टदृष्टेर्ब्रह्मन्वचस्तेऽमृतमौषधंमे ॥ २ ॥ तस्माद्भवन्तंममसंशयार्थं प्रक्ष्यामिपश्चादधुनासुबोधम् । अध्यात्मयोगग्रथितं तवोक्तमाख्याहि कौतूहलचेतसोमे ॥ ३ ॥ यदाहयोगेश्वरदृश्यमानं क्रियाफलंसद्व्यवहारमूलम् । नह्यञ्जसातत्त्वविमर्शनाय भवानमुष्मिन्भ्रमतेमनोमे ॥४॥ ब्राह्मणउवाच ॥ अयंजनोनामचलन्पृथिव्यांयः पार्थिवःपार्थिवकस्यहेतोः । तस्यापि चांघ्र्योरधिगुल्फजंघाजानूरुमध्योरशिरोधरांसाः ॥ ५ ॥ अंसेऽधिदार्वीशिबिकाचयस्यां सौवीरराजेत्यपदेशआस्ते । यस्मिन्भवान्रूढनिजाभिमानो राजाऽस्मिसिन्धुष्विति दुर्मदान्धः ॥ ६ ॥ शोच्यानिमांस्त्वमधिकष्टदीनान्विष्ट्या निगृह्-

---

रूप को जानता है तबही संसार से मुक्त होता है ॥ १५ ॥ यह मनही मनुष्यों के संसारिक दुःखों का मूल और यही शोक, मोह, रोग राग, लोभ, बैर और ममताका करने वाला है तथा स्वरूपकी उपाधि रूप है इस भांति जबतक मनुष्योंको विवेक नहीं होता तबतक संसार में भ्रमता है ॥ १६ ॥ हे राजन् ! इससे पराक्रम वाले तथा उपेक्षा से बढ़ेहुए अपने बैरी मिथ्याभूत मन का सावधान हो कर परब्रह्म गुरु के चरणों के उपासना रूप अस्त्र से नाशकर ॥ १७ ॥

इति श्रीमद्भा० म० पंचम० सरला भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

राजा रहूगण बोलेकि—हेयोगेश्वर ! आपकिजो परब्रह्म रूप, परमानंद के प्रकाश से शरीरादिक को तुच्छ मानने वाले और साधारण ब्राह्मणों के वेषसे अपने स्वाधीन अनुभवको गुप्त रखने वालेहो मैं आपको बारंवार दंडवत करताहूं ॥ १ ॥ ज्वररोग से दुःखित मनुष्यको जिसभांति औषध अमृत रूप है और गर्मी से संतप्तको ठंडाजल—वैसेही इस नीचदेह के अभिमान रूप सर्प से काटे हुये मुझअंधेको आपके बचन औषध तथा अमृत रूप हैं ॥ २ ॥ इसहेतु मैं अपने मनका संशयतो फिरपूछूंगा परन्तु अभीतो आप अपने ज्ञानयोग से गुंथेहुये बचनोंका फिरसे वर्णन कीजिये कि जिस से मेरीसमझ में ठीक २ आजाय मुझे उसके सुनने कीबड़ी अभिलाषा है ॥ ३ ॥ हे योगेश्वर ! भार इत्यादिक उठानेकी क्रिया और उससे उत्पन्न होनेवाला परिश्रम किजो साक्षात् देखपड़ता है और जोव्यवहार का कारण है उसको आप कहते हैं कि यथार्थ से बिचारकर देखाजाय तो कुछ नहीं है परन्तु इसबात से मेरे मनका संशय नहीं निवृत्त होता ॥ ४ ॥ जड़ भरतजी बोलेकि—हे राजन् ! यह जन पृथ्वीका बिकार है यह किसी कारण से पृथ्वीपर चलता है जैसे कहार आदि, और जोनहीं चलते वह पत्थर आदि हैं परन्तु बिचारकर देखने से इनमें कुछभी अंतर नहीं प्रतीत होता और पत्थरके जड़ होनेका हेतु कुछभी श्रम व भार इत्यादिक नहीं है फिरकहारको श्रम तथा भार इत्यादिक कुछ नहीं होना चाहिये जिसे श्रम होता है उसका जोवर्णन होसकता होतो हमश्रम होनेकी बातसत्य भी मान परन्तु उसका होनाही असंभव है कारण कि अवयवों के अतिरिक्त अवयवीका वर्णनही नहीं होसकता, पहिले बिचार करोकि कहारके शरीर में कितने अवयव हैं मिट्टीसे बनेहुये कहारके पांवोपरतो घुटुवे, घुटुवोंपर जंघा उरूपर घुटना और उसपर साथल और साथलपर कमर और उसपर छाती और छातीपर गर्दन और गर्दनपर कंधेहैं॥५॥कंधोंपर लकड़ीकी पालकी है और उसपर सिंधुदेशका राजाकि 'मैं सिंधुदेशका राजाहूं' ऐसा घमंड करके राजमद से मोहितहो ॥ ६ ॥ गरीब इनदीन मनुष्योंको बेगार में पकड़ता है इससे तू निर्दई है तिसपरभी कहता है कि

भिरनुग्रहोऽस्मि । जनस्यगोप्ताऽस्मिविकत्थमानोन शोभसेवृद्धसभासुधृष्टः ॥७॥
यदाक्षितावेवचराचरस्य विदामनिष्ठांप्रभवंचनित्यम् । तन्नामतोऽन्यद्व्यवहारमू-
लं निरूप्यतांसत्क्रिययाऽनुमेयम् ॥ ८ ॥ एवंनिरुक्तंक्षितिशब्दवृत्तमसन्निधानात्प-
रमाणवोये । अविद्ययामनसाकल्पितास्ते येषांसमूहेनकृतोविशेषः ॥ ९ ॥ एवंकृशं
स्थूलमणुर्बृहद्यदसच्च सज्जीवमजीवमन्यत् । द्रव्यस्वभावाशयकालकर्मनाम्ना
ऽजयाऽवेहि कृतंद्वितीयम्॥१०॥ज्ञानंविशुद्धंपरमार्थमेकमनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्मसत्यम्।
प्रत्यक्प्रशान्तंभगवच्छब्दसंज्ञं यद्वासुदेवंकवयोवदन्ति ॥ ११ ॥ रहूगणैतत्तपसा
नयातिन चेज्ययानिर्वपणाद्गृहाद्वा । नच्छन्दसानैवजलाऽग्निसूर्यैर्विना महत्पाद
रजोऽभिषेकम् ॥ १२ ॥ यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः प्रस्तूयतेग्राम्यकथाविघातः
निषेव्यमाणोऽनुदिनंमुमुक्षोर्मतिं सतींयच्छतिवासुदेवे ॥ १३ ॥ अहंपुराभरतोनाम
राजाविमुक्तदृष्टश्रुतसंगबन्धः । आराधनंभगवतईहमानो मृगोऽभवंमृगसंगाद्धता
र्थः ॥१४॥ सामांस्मृतिर्मृगदेहेऽपिवीर कृष्णार्चनप्रभवानोजहाति । अथोअहंजनसं
गादसंगो विशंकमानोऽविवृतश्चरामि ॥१५॥ तस्मान्नरोऽसंगसुसंगजातज्ञानासिने
हैव विवृक्णमोहः।हरिंतदीहाकथनस्मृतिभ्यां लब्धस्मृतिर्यात्यतिपारमध्वनः॥१६॥
इतिश्रीमद्भा०महा०पं०नामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

मैं 'जनोंकी रक्षाकरने वालाहूं' इसीहेतु तुझे विद्वानोंकी सभामें शोभा नहीं मिलसकती ॥७॥ ऊपर के अंगोंका भार नीचे के अंगोंको लगाना है ऐसाभी नहीं होसकता क्योंकि अंगवाले एक पदार्थ का जैसे वर्णन नहीं होसकता वैसही अंगोंकाभी वर्णन नहीं होसकता, क्योंके पृथ्वीही में चराचर लोकोंकी उत्पत्ति और नाशहोता है इसहेतु सब अवयव पृथ्वीके विकार हैं कवल उनके नामही पृथक् २ हैं इससे केवल नामके आतिरिक्त व्यवहारका कोईकारण कार्यकरनेके हेतुसत्य नहीं होसकता और जो है तोतूही कहो ॥ ८ ॥ इससे यह न जानना कि पृथ्वीसत्य है, यथार्थ में पृथ्वीभी झूठी है पृथ्वी अपने सूक्ष्म परमाणुओं में लयहोजाती है इससे परमाणु के अतिरिक्त पृथ्वी कोई पदार्थ नहीं है और परमाणु कि जिससे पृथ्वीरचनाकी कीगई है वह भी असत्य हैं; ॥ ९ ॥ ऐसेही कृश, स्थूल, छोटा, बड़ा कारण कार्य सचेतन और जड़ द्रव्य, स्वभाव, संस्कार, काल, और अदृष्ट यह सब माया कल्पित हैं ऐसातूजान, ॥ १० ॥ फिरसत्य क्या है ! ज्ञानमय एक परमेश्वरही सत्य है, जोविशुद्ध, परमार्थ रूप, एक, समदर्शी, सत्य, और प्रशांत है और जिसके बाहर भीतर कुछ नहीं है जिसे विवेकी जन वासुदेव भगवान कहते हैं ॥११॥ हेराजा रहूगण ! यह ज्ञानरूप वासुदेव ननोतप से न यज्ञसे, न अन्नादिक के बांटने से, न वेदाभ्यास से, न गृहस्थाश्रम से, औरन जल, अग्नि, सूर्यादिकी उपासना से मिलते हैं बरन इनकी प्राप्तिका उपाय केवल भगवद्भक्तों के चरण रजका सेवनही है ॥ १२ ॥ जोभगवद्भक्त निरंतरही विषय वार्ताकी नाश करनेवाली भगवत कथा कहा करते हैं, उस कथाको प्रतिदिन सुनने से मुमुक्षु मनुष्यको भगवत्संबंधी श्रेष्ठज्ञान उत्पन्न होता है ॥ १३ ॥ विषय संगसेतो योगभ्रष्ट होता है इसका मैने स्वयंअनुभव करलिया है मै प्रथम भरत नामराजा था मै सम्पूर्ण विषयोंको त्याग भगवत् भजन करता था परन्तु वहां हिरणके साथसे सब योगभ्रष्ट होगया और मैने मृगजन्म पाया ॥ १४ ॥ हेराजन् ! मैने भगवतभक्तिकी थी उसके प्रभाव से मृगजन्म मेंभी पूर्वजन्मका स्मरण बनारहा, मनुष्योंका संगहोजाने के भयसे गुप्त और निसंग होकर भ्रमण करताहूं ॥ १५ ॥ विरागी तथा साधुओं के सत्संग से उत्पन्न हुये ज्ञानरूपी अग्निसे जोपुरुष मोहको नाश करदेता है उसको भगवत चरित्र के कहने और सुनने से स्वरूप ज्ञान होजाता है और उसीसे अंतकाल में भगवत्स्वरूप की प्राप्तिहोती है ॥ १६ ॥

इति श्रीभा०म०पंचम०सरलभाषाटीकायांद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥ दुरत्ययेऽध्वन्यजयानिवेशितो रजस्तमःसत्त्वविभक्तकर्मदृक् । स एष सार्थोऽर्थपरः परिभ्रमन्भवाटवीं याति न शर्म विन्दति ॥ १ ॥ यस्यामिमे षण्नरदेव दस्यवः सार्थं विलुम्पन्ति कुनायकं बलात् । गोमायवो यत्र हरन्ति सार्थिकं प्रमत्तमाविश्य यथोरणं वृकाः ॥ २ ॥ प्रभूतवीरुत्तृणगुल्मगह्वरे कठोरदंशैर्मशकैरुपद्रुतः । क्वचित्तु गन्धर्वपुरं प्रपश्यति क्वचित्क्वचिच्चाशुरयोल्मुकग्रहम् ॥ ३ ॥ निवासतोयद्रविणात्मबुद्धिस्ततस्ततो धावति भो अटव्याम् । क्वचिच्च वात्योत्थितपांसुधूम्रा दिशो न जानाति रजस्वलाक्षः ॥ ४ ॥ अदृश्यझिल्लीस्वनकर्णशूल उलूकवाग्भिर्व्यथितान्तरात्मा । अपुण्यवृक्षान्श्रयते क्षुधार्दितो मरीचितोयान्यभिधावति क्वचित् ॥ ५ ॥ क्वचिद्वितोयाः सरितोऽभियाति परस्परं चालषते निरन्धः । आसाद्य दावं क्वचिदग्नितप्तो निर्विद्यते क्व च यक्षैर्हृतासुः ॥ ६ ॥ शूरैर्हृतस्वः क्व च निर्विण्णचेताः शोचन्विमुह्यन्नुपयाति कश्मलम् । क्वचिच्च गन्धर्वपुरं प्रविष्टः प्रमोदते निर्वृतवन्मुहूर्तम् ॥ ७ ॥ चलन्क्वचित् कण्टकशर्कराङ्घ्रिर्नगारुरुक्षुर्विमना इवास्ते । पदे पदेऽभ्यन्तरवह्निनार्दितः कौटुम्बिकः क्रुध्यति वै जनाय ॥ ८ ॥ क्वचिन्निगीर्णोऽजगराहिना जनो नावैति किंचिद्विपिनेऽपविद्धः । दष्टः स्म शेते क्व च दन्दशूकैरन्धोऽन्धकूपे पतितस्तमिस्रे ॥ ९ ॥ कर्हि स्म चित्क्षुद्ररसान्विचिन्वंस्तन्मक्षिकाभिर्व्यथितो विमानः । तत्रातिकृच्छ्रात्प्रतिलब्धमानो बलाद्विलु

जड़ भरत बोले कि-दुस्तरमार्गमें मायासे गिरायाहुआ और रजोगुण, तमोगुण, व सत्वगुण से पृथक् २ विभागित कर्म्मोंको अपना कर्तव्य जानताहुआ यह जीव सुखकी इच्छासे संसाररूपी अटवीमें ऐसेभ्रमण करताहै कि जैसे बनिज करनेवाला बनजारा टांडालादे घूमताहै,परन्तु सुखनहीं प्राप्तहोता॥१॥हेराजन् जिस संसाररूपी अटवीमें बुरे स्वामीवाले इस समूहको छः चोर बल पूर्वक लूटतेहैं जैसे भेड़िया घुसकर भेड़ीको और सियार अपनी स्वार्थ स्थित वस्तुको खींचलाताहै २ ॥ इस अटवीमें अनेक वृक्ष लता, घास और गुच्छोंसे पूर्णगम्भीर स्थलमें भयावने डांस और मच्छरों का बड़ाभारी उपद्रवहै किसी स्थानपर यहसमूह गन्धर्वपुरको देखताहै और कहीं उल्मुकके आकार घरदेख उसे सुवर्णजान लेनेकी इच्छा करताहै ॥ ३ ॥ ठहरनेके स्थान, जल और धनके लोभवाली बुद्धिसे इस बनमें इधरउधर भागा करताहै किसी स्थानमें आंखोंमें धूल पड़जानेसे दिशाओंको नहीं देखता ॥ ४ ॥ ऐसी झिल्लोके कि जो देखनमें नहीं आती, शब्दसे कानमें पीड़ा होतीहै, उल्लूके सब्दोंसे हृदयमें दुःख होताहै, क्षुधार्त होकर अपवित्र वृक्षका सेवन करताहै और कभी २ मृग तृष्णाके जलके पीनेके लिये दौड़ताहै, ॥ ५ ॥ कभी सूखी जलहीन नदियों का जल पीनेको दौड़ताहै कभी अन्नके पास न होनेसे दूसरोंसे मांगता कभी बनमें दावाग्निदेख उससे संतप्तहोकर भागताहै और कभी यक्षलोग प्राण लेलेतेहैं ॥ ६ ॥ कभी बलवान मनुष्य द्रव्यका हरण करते हैं इससे दुःखितहो शोच करतेहुये मोहको प्राप्तहो मूर्छित होजातेहैं किसीकाल गन्धर्वनगरमें प्रवेशकर आनन्दितहो थोड़ीदेरको आनन्द मानलेते हैं ॥ ७ ॥ कहीं मार्ग चलते पैरमें कांटे व कंकणलगते हैं इसकारण पहाड़पर चढ़नेकी कामनाको पूराहोते न देख खेदित होकर बैठजाताहै प्रतिक्षणमें भीतरी आगसे संतप्तहो यह कुटुम्बीमनुष्य दूसरों पर रोष करताहै ॥ ८ ॥ कभी अजगर सांपके लीलजानेसे, बनमें फेंकेहुये मृतककी सदृश कुछभी नहीं जानता, कभी हिंसक जीवों के काटनेसे अन्धाहोकर गहरे अन्धकूपमें पड़कर क्लेशित होता है ॥ ९ ॥ किसी स्थानपर शहदकी खोजमें जाता है और वहां उसकी मक्खियोंके काटनेसे अति पीड़ित होताहै इतने दुःख सहनकरनेपरभी

स्पन्त्यथततोऽन्ये ॥ १० ॥ क्वचिच्चशीतातपवातवर्षप्रतिक्रियांकर्तुमनीश आस्ते । क्वचिन्मिथोविपणन्यच्चकिंचिद्वेद्विषमृच्छत्युतवित्तशाठ्यात् ॥ ११ ॥ क्वचित्क्वचित्क्षीणधनस्तुतस्मिन्शय्यासनस्था न विहारहीनः।याचन्पराद्प्रति लब्धकामःपारक्यदृष्टिर्लभतेऽवमानम् ॥ १२ ॥ अन्योऽन्यवित्तव्यतिषङ्गवृद्धवैरानुबन्धोविवहन्मिथश्च । अध्वन्यमुष्मिन्नुरुकृच्छ्रवित्तबाधोपसर्गैर्विहरन्विपन्नः १३॥ तांस्तान्विपन्नान्सहितत्रतत्रविहायजातंपरिगृह्यसार्थः । आवर्ततेऽद्यापिनकश्चिदत्र वीराध्वनःपारमुपैतियोगम् ॥ १४ ॥ मनस्विनो निर्जितदिग्गजेन्द्राममेतिसर्वेभुवि बद्धवैराः । मृधेशयीरन्नतुतद्व्रजंतियन्न्यस्तदण्डोगतवैरोऽभियाति ॥१५॥ प्रसज्जतिक्वापिलताभुजाश्रयस्तदाश्रयाव्यक्तपदद्विजस्पृहः । क्वचित्कदाचिद्धरिचक्रतस्त्रसन्सख्यं विधत्तेबककंकगृध्रैः ॥ १६ ॥ तैर्वञ्चितोहंसकुलंसमाविशन्नरोचयञ्छीलमुपैतिवानरान् । तज्जातिरासेनसुनिर्वृतेन्द्रियःपरस्परोद्वीक्षणविस्मृतावधिः ॥ १७ ॥ द्रुमेषुरंस्यन्सुतदारवत्सलोव्यवायदीनोविवशःस्वबन्धने । क्वचित्प्रमादाद्गिरिकन्दरेपतन्वल्लींगृहीत्वागजभीतआस्थितः ॥ १८ ॥ अतःकथंचित्सविमुक्तआपदःपुनश्चसार्थंप्रविशत्यरिंदम । अध्वन्यमुष्मिन्नजयानिवेशितो भ्रमञ्जनोऽद्यापिनवेदकश्चन ॥ १९ ॥ रहूगणत्वमपिह्यध्वनोऽस्यसंन्यस्तदण्डःकृतभूतमैत्रः । असज्जितात्माहरिसेवया शितंज्ञानासिमादायतरातिपारम् ॥ २०॥राजोवाच ॥ अहोनृजन्माखिलजन्मशोभनं किंजन्मभिस्त्वपरैरप्यमुष्मिन् । नयद्धृषी-

यदि उसको शहद मिलजाय तो उसे दूसरेही बल पूर्वक लूटलेते हैं ॥ १० ॥ कभी शीत, उष्ण, पवन, और वर्षा से बचने का यत्न नहीं सूझ पड़ता तब ऐसेही बैठा रहता है कभी परस्परके व्यौहारमें कोई द्रव्य नहीं देता तब बैरको करताहै ॥ ११ ॥ कभी क्षीणधनहो शय्या, आसन, विहारस्थानादि से हीन होजाताहै और जब किसी दूसरेसे कुछ मांगताहै और नहीं मिलता तब अपमानको प्राप्त होताहै ॥ १२ ॥ परस्पर धनके लेनेदेनेसे बैर बढ़ताहै और फिर उन्हींसे विवाहादिक संबन्धकर इससंसार मार्गमें धनके कष्टकीबाधा तथा अनेक दुःखोंको प्राप्तहो मरेहुएकी तुल्य होजाताहै ॥ १३ ॥ हेराजन् ! इस अटवीमें जो मरजाते हैं उनको वहीं छोड़ नये जन्मेहुये कोसाथ ले घूमा करतेहैं हेवीर ! इसमार्ग के पार जो योगहै उसको कोई नहीं प्राप्तहोता ॥१४॥ दिशाओं के जीत ने वाले शूर वीर मनुष्य भी यह भूमि मेरी है, मेरी है, इस भांति भूमि के हेतु शत्रुता कर संग्राममें मरजाते हैं परन्तु निर्वैरभाव से रहने वाले सन्यासी के पदको कोई नहीं पहुंचता१५॥ कभी बन लताओं की शाखा देखकर मोहित हो लता में बैठेहुए पक्षियों की मधुर बाणी को सुनना चाहता है कभी सिंहो के समूह से डर बगुला, गीध और काक इनके साथ मैत्री करताहै ॥ १६ ॥ जब यह बगुला आदि ठगलेते हैं तब यह जानकर कि इनके साथ तो कुछ लाभ नहीं झट हंसो के साथ मिलजाता है और जब उनका व्योहार अच्छा नहीं लगता तब बानरों से मित्रता करता है बानरों की क्रीड़ा से आनंदित हो अपने काल की अवधि को भूल जाता है ॥ १७ ॥ वृक्षों में रमण करने की कामना करता हुआ स्त्री पुत्रों में स्नेह करता है, मैथुन के हेतु दीन बनकर परवश हो आप बन्धन मे पड़ता है कभी प्रमाद से पर्वत की कंदरा मे जागिरता है और इस कंदरा के हाथियों से डर कर एक लताको पकड़कर लटक रहता है ॥ १८ ॥ यह इससे भी किसी प्रकार छूटगया तो फिर उसी समूह में जामिलता है इस बन में माया से पटका हुआ कोई मनुष्य भी पारको नहीं प्राप्तहुआ ॥ १९ ॥ हे रहूगण ! तूभी इसी समूह में मिलाहुआ है इससे दण्ड को त्यागकर प्राणियों से मित्रताकर विषयोंकी आसक्ति छोड़ तीक्ष्ण ज्ञान रूप असि लेकर इस मार्ग से पारहो ॥ २० ॥ राजा

केशयशःकृतात्मनां महात्मनांवःप्रचुरःसमागमः ॥ २१ ॥ नह्यद्भुतंत्वच्चरणाब्जरेणुभिर्हतांहसो भक्तिरधोक्षजेऽमला । मौहूर्तिकाद्यस्यसमागमाच्च मेदुस्तर्कमूलोऽपहतोऽविवेकः ॥ २२॥ नमोमहद्भ्योऽस्तुनमःशिशुभ्यो नमोयुवभ्योनमआवटुभ्यः येब्राह्मणागामवधूतलिंगाश्चरन्ति तेभ्यःशिवमस्तुराज्ञाम् ॥ २३ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ इत्येवमुत्तरामातःसवैब्रह्मर्षिसुतः सिन्धुपतय आत्मसतत्त्वं विगणयतःपरानुभावः परमकारुणिकतयोपदिश्य रहूगणेन सकरुणमभिवन्दितचरण आपूर्णार्णवइवनिभृतकरणोर्म्याशयो धरणिमिमां विचचार ॥ २४ ॥ सौवीरपतिरपि सुजनसमवगतपरमात्मसतत्त्व आत्मन्यविद्याऽध्यारोपितांच्च देहात्ममतिं विससर्ज। एवंहि नृपभगवदाश्रिताश्रितानुभावः॥२५॥राजोवाच ॥ योहवाइहबहुविदा महाभागवत त्वयाऽभिहितः परोक्षेणवचसा जीवलोकभवाध्वा स ह्यार्यमनीषया कल्पितविषयो नांजसाऽव्युत्पन्नलोकसमधिगमः । अथतदेवैतद्दुरवगमं समवेतानुकल्पेन निर्दिश्यतामिति ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्भा. महापु. पंचम० भवाटव्युपवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

सहोवाच। यएषदेहात्ममानिनां सत्त्वादिगुणविशेषविकल्पितकुशलाकुशलसमवहार विनिर्मितविविधदेहावलिभिर्वियोगसंयोगाद्यनादिसंसारानुभवस्यद्वारभूतेनषडिंद्रियवर्गेणतस्मिन्दुर्गाध्ववदसुगमेऽध्वन्यापतितईश्वरस्यभगवतोविष्णोर्वशवर्तिन्यामायया जीवलोकोऽयंयथावणिक्सार्थोऽर्थपरःस्वदेहनिष्पादितकर्मा

रहूगण ने कहा। कि हे राजन् ! सब जन्मों में मनुष्य देहही श्रेष्ठहै क्योंकि जिन जन्मों में भगवत यशसे चित्त शुद्ध करने वाले आप सरीखे महात्माओं का सत्सङ्ग नहीं होता ऐसे देवादिक जन्मों से स्वर्ग में भी क्या करना है ॥ २१ ॥ सदैव आप के चरण रज की सेवा करने वाले जिस किसी के पाप छूटगये हैं उसको यदि ईश्वरकी शुद्धभक्ति प्राप्त होजाय तोकुछ अद्भुतवात नहीं है, क्योंकि आपके एक क्षणमात्र के सत्संगसे मेरा अज्ञान कि जो कुतर्कसे दृढ़ होगया था वह दूर होगया ॥ २२ ॥ ब्रह्मवेत्ता जानने में नहीं आते; इस लियेमें वृद्ध, युवा, और बाल सबको प्रणाम करताहूं, जो ब्रह्मवेत्ता अवधूत रूपसे भूमिपर भ्रमण करते हैं उनसे राजाओं का कल्याणहो ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले हेउत्तरासुत ! राजा परीक्षित ! ब्रह्मवेत्ता जड़ भरतजीने अपने तिरस्कारी राजा रहूगणको करुणापूर्वक ब्रह्म विद्याका उपदेश किया और राजाने भी बड़ी आधीनताके साथ उनको दंडवतकी, फिरजड़ भरतजी कि जिनके अंतःकरण की लहरें स्थिर पूर्ण समुद्र की सदृश शांतथीं वह इस भूमि में भ्रमण करने लगे ॥ २४ ॥ जब रहूगण को जड़भरतजीकी शिक्षासे आत्मतत्व यथार्थरूप से समझ में आगया तब आत्मस्वरूप में मूढ़ता के हेतु आरोपण की हुई देहात्म बुद्धि का परित्याग किया हेराजन्! भगवद्भक्तों की शरण लेने का यही प्रभाव है ॥ २५ ॥ राजानेकहा—कि हेभगवन् ! जो तुमने यहां बनिजारे के रूपक में संसार का वर्णन किया उसको विवेकी लोगही जान सकते हैं । सो अल्पबुद्धि मनुष्य की समझ में नहीं आ सकता इससे इस संसारमार्ग में कौन चोर कौनसाह है सो मुझसे कहो ॥ २६ ॥

इतिश्री मद्भा० महा० पंचम० सरलाभाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—देहात्ममानी जीवलोकके पृथक २ सत्त्व आदि गुणोंसे विभक्त शुभ अशुभ और मिश्र कर्मोंसे रचित भिन्न २ भांतिको नानाजन्मोंमें जन्म मरणादिक होने रूप अनादि संसारके अनुभव करनेमें द्वाररूप छः इन्द्रियोंसे ईश्वरके वशीभूत मायाके हेतु जंगलके सदृश इस संसाररूप विषयमार्गमें यह जीवलोक आपड़ाहै जैसे बनिज द्रव्य कमानेकी कामनासे परदेशमें जाता

नुभवः श्मशानवदशिवतमायां संसाराटव्यां गतो नाद्यापि विफलबहुप्रतियोगेहस्त-
त्तापोपशमनीं हरिगुरुचरणारविंद मधुकरानुपदवीमवरुन्धे। यस्यामु हवा एते षडि-
न्द्रियनामानः कर्मणा दस्यव एव ते ॥ १ ॥ तद्यथा पुरुषस्य धनं यत्किंचित्साक्षाद्धर्मौ
पयिकं बहुकृच्छ्राधिगतं साक्षात्परमपुरुषाराधनलक्षणो योऽसौ धर्मस्तं तु सांपराय
उदाहरन्ति। तद्धर्म्यं धनं दर्शनस्पर्शनश्रवणास्वादनावघ्राणसंकल्पव्यवसायगृह
ग्राम्योपभोगेन कुनाथस्याजितात्मनो यथा सार्थस्य तथाऽजितात्मनो विलुम्पन्ति ॥ २ ॥
अथ च यत्र कौटुम्बिका दारापत्यादयो नाम्ना कर्मणा वृकसृगाला एवानिच्छतोऽपि क-
दर्यस्य कुटुम्बिन उरणकवत्संरक्ष्यमाणं मिषतोऽपि हरन्ति ॥ ३ ॥ यथा ह्यनुवत्सरं
कृष्यमाणमप्यदग्धबीजं क्षेत्रं पुनरेवावपनकाले गुल्मतृणवीरुद्भिर्गह्वरमिव भवति
। एवमेव गृहाश्रमः कर्मक्षेत्रं यस्मिन्न हि कर्माण्युत्सीदन्ति यदयं कामकरण्ड एष आव
सथः ॥ ४ ॥ तत्र गतो दंशमशकसमापसदैर्मनुजैः शलभशकुन्ततस्करमूषकादि
भिरुपरुध्यमानबहिःप्राणः क्वचित्परिवर्तमानोऽस्मिन्नध्वन्य विद्याकामकर्मभि
रुपरक्तमनसाऽनुपपन्नार्थं नरलोकं गन्धर्वनगरमुपपन्नमिति मिथ्यादृष्टिरनुपश्यति ॥
५ ॥ तत्र च क्वचिदातपोदकनिभान्विषयानुपधावति पानभोजनव्यवायादिव्यसन
लोलुपः ॥ ६ ॥ क्वचिच्चाशेषदोषनिषदनं पुरीषविशेषं तद्वर्णगुणनिर्मितमतिः
सुवर्णमुपादित्सत्यग्निकामकातर इवोल्मुकपिशाचम् ॥ ७ ॥ अथ कदाचिन्निवास

हुआ बनमें चलाजाय, ऐसे मरघटके सदृश अमंगल रूप संसार बनमें चलाजाता है और वहां अपने शरीरसे रचेहुयेकर्मका फल भोगता रहताहै। और प्रयत्न करताहै वहांभी बहुतसे प्रयत्न निष्फल होजाते हैं और कितने एकमें बहुतसी बाधाएँ होती है तौभी भक्ति कि जो संसारीके तापकी शान्त करने वाली है और जो हरिरूप गुरुके चरणकमलों के भौंरों के सदृश सेवक भक्तलोगों का मार्ग है उसे तौभी नहीं पाता इस बनमें छःइंद्रियां चोरका काम करती हैं ॥ १ ॥ क्योंकि बड़े दुःख से प्राप्त कियाहुआ मनुष्य का द्रव्य कि जो परलोक के हेतु भगवत आराधन करनेरूप धर्म में लगाने योग्य है उसका दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, आस्वादन, सूंघना और नाना भांति के संकल्प विकल्पोंसे गृह सम्बन्धी तुच्छ आनन्दों का अनुभव करने से प्रयत्न कराकर, चोर लोग जिसभांति बुरे धनवान और असावधन मनुष्यका धन लूटतेहैं ऐसेही दुर्बुद्धि और अजि-तेंद्रिय मनुष्य का धन यह लूट लेती हैं ॥ २ ॥ इस संसाररूपी बन में स्त्री और पुत्रादि कुटुम्ब तो केवल कहनेहीमात्र हैं परन्तु वास्तव में यह भेड़िया और सियारही हैं क्योंकि अति लालची म-नुष्य का संचय कियाहुआ द्रव्य वह ऐसे लेजाते हैं कि जैसे भेड़िया बकरी को ॥ ३ ॥ जिस खेत में प्रतिवर्ष हल चलायाजाय उस खेतकी पृथ्वी का बीज जलनहींजाता परन्तु वह खेत अन्न बोते समय गुल्म, तृण, लतासे अदृष्ट सा होजाता है, ऐसेही यह गृहस्थाश्रम भी विषयों का पि-टारा है। वह अपने में रहेहुये कर्म नष्ट न होनेसे पहले क्षेत्रकी सदृशही है ॥ ४ ॥ सृष्टि में पड़ा-हुआ मनुष्य डांस और मच्छरों की सदृश अधम मनुष्योंसे और टीडी, पक्षी, चूहा और चोरों से उपद्रव युक्त रहता है क्योंकि उसका धनरूपी प्राणतो बाहरही रहता है और यह मनुष्य इसमार्ग में कहां का कहां मारा २ फिरता है, यह संसार यद्यपि गन्धर्वलोक की सदृश केवल असत्यज्ञात होता है तौ भी मूढ़ता, विषयवासना और कर्म से रंगे हुए मनद्वारा असत्य विचारों से इसे सत्य मान लेता है ॥५॥ खाना, पीना और मैथुन इत्यादि विषयों में लिप्त हो किसी समय मृग तृष्णा के जलकी सदृश विषयों की ओर मानता है ॥ ६ ॥ यह संसारीजीव किसीकाल रजोगुण से बु-द्धिघिर जाने के हेतु सुवर्ण कि जो अग्नि से उत्पन्न और सब दोषों का स्थानरूप है उसे लेने को ऐसे दौड़ता है कि जैसे अग्नि चाहने वाला मनुष्य उन्मुक पिशाच के लेने को दौडे ॥ ७ ॥

पानीयद्रविणाद्यनेकात्मोपजीवनाभि निवेशएतस्यांसंसाराटव्यामितस्ततःपरिधावति ॥ ८ ॥ क्वचिच्चवात्यौपम्ययाप्रमदयारोहमारोपितस्तत्कालरजसारजनीभूताइवासाधुमर्यादो रजस्वलाक्षो दिग्देवताअतिरजस्वलमतिर्नविजानाति ॥९॥ क्वचित्सकृतद्वगतविषयवैतथ्यःस्वयंपराभिध्यानेन विभ्रंशितस्मृतिस्तयैवमरीचितोयप्रायांस्तानेवाभिधावति ॥ १० ॥ क्वचिदुलूकझिल्लीस्वनवदतिपरुषरभसाटोपंप्रत्यक्षंपरोक्षंवा रिपुराजकुलनिर्भर्त्सितेनातिव्यथितकर्णमूलहृदयः ॥ ११ ॥ स यदादुग्धपूर्वसुकृतस्तदाकारस्करकाकतुण्डाद्यपुण्यद्रुमलताविषोदपानवदुभयार्थशून्यद्रविणान्जीवन्मृतान्स्वयंजीवन्म्रियमाणउपधावति ॥ १२ ॥ एकदाऽसत्प्रसङ्गान्निकृतमतिर्व्युदकस्रोतःस्खलनवदुभयतोऽपिदुःखदंपाखण्डमभियाति ॥१३॥ यदातुपरबाधयाऽन्धआत्मनेनोपनमतितदाहि पितृपुत्रबर्हिष्मतःपितृपुत्रान्वासखलुभक्षयति ॥ १४ ॥ क्वचिदासाद्यगृहंदाववत्प्रियार्थविधुरमसुखोदर्कंशोकाग्निना दह्यमानो भृशंनिर्वेदमुपगच्छति ॥१५॥ क्वचित् कालविषमितराजकुलरक्षसाऽपहृतप्रियतमधनासुःप्रमृतकइवविगतजीवलक्षणआस्ते ॥१६॥कदाचिन्मनोरथोपगतपितृपितामहाद्यसत्सदिति स्वप्ननिर्वृतिलक्षणमनुभवति ॥१७॥ क्वचित् गृहाश्रमकर्मचोदनाऽतिभरगिरिमारुरुक्षमाणो लोकव्यसनकर्शितमनाः कण्टकशर्कराक्षेत्रं प्रविशन्निव सीदति ॥ १८ ॥ क्वचित्दुःसहेन कायाभ्यन्तरवह्निना गृहीतसारःस्वकुटुम्बाय क्रुध्यति ॥ १९ ॥ सएवपुनर्निद्राऽजगरगृहीतोऽन्धे तमसिमग्नः शू-

किसी काल निवास स्थान, जल और द्रव्य इत्यादिक अपने साधनों के हेतु इस संसाररूपी अटवी में चारों ओर दौड़ा करता है ॥ ८ ॥ किसी समय पवन की सदृश स्त्री की गोदीपर चढ़ता है उस समय रजोगुण करके काम से व्याप्त अपनी आंखोंसे पापपुण्य कर्म के साक्षी दिक् देवताओं को भी नहीं देखता ॥ ९ ॥ किसीकाल ऐसा सोचता है कि विषय व्यर्थ हैं तौभी देहाभिमान के कारण उन स्मृतियों को भूल मृग तृष्णा के जलकी सदृश उन्हीं विषयों के पीछे दौड़ा करता है ॥ १० ॥ कभी उल्लू और झिल्ली के सदृश राजकुल और बैरियों के प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष कहेहुये अत्यन्तकठोर और अपमान से भरेहुये वचनों से इसके कान और हृदय पीड़ित होजाते हैं॥११॥ जब पहिले किये हुए पुण्यनष्ट होजाते हैं तब जीताहुआ मुर्दा आप दूसरे जीते हुये मुर्दोंके निकट कि "जिनका द्रव्य कारस्कर और काकतुण्ड इत्यादिक अपवित्रवृक्ष लता और कूपोंका सदृश इसलोक तथा परलोकके अभिप्रायसे रहितहैं" जाताहै॥१२॥कभी अधममनुष्यों के सङ्गसे वंचित होकर, सूखी नदियों में पड़ने के सदृश दोनो ओर से दुःखदायी पाखण्ड मार्ग में पड़जाताहै ॥ १३ जिस समय औरों को बाधा देकर भी अन्न नहीं प्राप्त होता तो पिता पुत्र का या पुत्र पिता का जिसके पास तृण मात्रभी जो कुछ लेना देखना है उन्हें दुःख देताहै ॥ १४ ॥ कभी घर कि जिसमें दावाग्निकी सदृश प्रिय बस्तु कुछभी नहीं है और अन्तमें जिसमें कष्ट है उसे पाकर शोकाग्निसे जलताहुआ बहुत पीड़ित होताहै ॥१५॥ कभी कालगति से विषमहुये राजकुल रूप राक्षस द्रव्यरूप प्यारे जीवका नाश करतेहैं तब सम्पूर्ण सुख नष्टहोजानेसे मृतककी सदृशहो बैठा रहताहै ॥ १६ ॥ किसीसमय कामनासे प्राप्तहुये पिता पितामह इत्यादिक असत्य पदार्थोंको सत्यमान स्वप्नके आनंदका अनुभव करताहै ॥ १७ ॥ कभी गृहस्थाश्रमके कर्मोंकी प्रेरणाके विस्तार रूप पहाड़पर चढ़नेकी कामना करताहै तब लोक सम्बन्धी बिषयोंसे मनमें दुःखितहो कांटे और कंकड़वाली भूमिमें जानेके सदृश दुःखित होताहै ॥ १८ ॥ कभी प्रचण्ड असह्य जठराग्निसे निर्बल हो अपने कुटुम्बियोंपर क्रोध करताहै ॥ १९ ॥ जब निद्रारूपी अजगर लीलजाताहै तब घोर अंध-

न्यारण्य इव शेतेनान्यत् किंचन वेद शव इवापविद्धः ॥ २० ॥ कदाचिद्भग्नमानदंष्ट्रो दुर्जनदन्दशूकैरलब्धनिद्राक्षणो व्यथितहृदयेनानुक्षीयमाणविज्ञानोऽन्धकूपेऽन्धवत् पतति ॥ २१ ॥ कर्हिस्मचित्काममधुलवान् विचिन्वन् यदा परदारपरद्रव्याण्य वरुन्धानो राज्ञा स्वामिभिर्वा निहतः पतत्यपारे निरये ॥ २२ ॥ अथ च तस्मादुभयथाऽपिहि कर्मास्मिन्नात्मनः संसारावपनमुदाहरन्ति ॥ २३ ॥ मुक्तस्ततो यदि बन्धाद्देवदत्त उपाच्छिनत्ति तस्मादपि विष्णुमित्र इत्यनवस्थितिः २४ क्वाचिच्च शीतवाताद्यनेकाधिदैविकभौतिकात्मीयानां दशानां प्रतिनिवारणे कल्पो दुरन्तचिन्तया विषण्ण आस्ते ॥ २५ ॥ क्वाचिन्मिथो व्यवहरन्यत्किंचिद्धनमन्येभ्यो वा काकिणिकामात्रमप्यपहरन्यत्किंचिद्वा विद्वेषमेति वित्तशाठ्यात् ॥ २६ ॥ अध्वन्यमुष्मिन्निम उपसर्गास्तथा सुखदुःखरागद्वेषभयाभिमानप्रमादोन्मादशोकमोहलोभमात्सर्येर्ष्याऽवमानक्षुत्पिपासाधिव्याधिजन्मजरामरणादयः ॥२७॥ क्वापि देवमायया स्त्रिया भुजलतोपगूढः प्रस्कन्नविवेकविज्ञानो यद्विहारगृहारम्भाकुलहृदयस्तदाश्रयावसक्तसुतदुहितृकलत्रभाषितावलोकविचेष्टितापहृतहृदय आत्मानमजितात्माऽपारेऽन्धेतमसि प्रहिणोति ॥२८॥ कदाचिदीश्वरस्य भगवतो विष्णोश्चक्रात्परमाण्वादिद्विपरार्धापवर्गकालोपलक्षणात्परिवर्तितेन वयसा रंहसा हरत आब्रह्मतृणस्तम्बादीनां भूतानामनिमिषतो मिषतां वित्रस्तहृदयस्तमेवेश्वरं कालचक्रं निजायुधं साक्षाद्भगवन्तं यज्ञपुरुषमनादृत्य पाखण्डदेवताः कंकगृध्रबकवटप्राया

कारमें डूबकर ऐसा होजाताहै मानो सूने बनमें सोताहो और उसे दूसरी किसी बातका ज्ञान, बन में फेंकेहुये मृतककी भांति नहींरहता ॥२० ॥ कभी दुर्जनरूप हिंसकलोग जब मानरूपी डाढ़तोड़ डालतेहैं तो क्षणभरभी नींद नहींआती और चित्तमें पीड़ित होनेके कारण ज्ञान भ्रष्टहो अंधेकी नाईं गहरे गढ़ेमें गिरताहै ॥ २१ ॥ कभी यह मनुष्य विषयरूप शहदकी बूंदकी सदृश तुच्छ विषयभोगोंकी खोजकरताहुआ दूसरेकी स्त्री और परद्रव्यकी ओर दौड़ता है तब राजा अथवा उसके स्वामी उसे मारतेहैं और अनन्त अपार दुःखवाले नरककमें गिरताहै ॥२२ ॥इसीहेतु इस प्रवृत्तिमार्गवाले कर्म लौकिक और पारलौकिक संसारकी जन्मभूमि कहलातीहैं ॥ २३ ॥ यदि बन्धनसे छूटभीजाय तो भी उसके पाससे वह वस्तु दूसराही मनुष्य लेलेताहै और उस दूसरे मनुष्यसे तीसरा मनुष्य लेलेता है ऐसी दशा होती है ॥ २४ ॥ कभी शीत, उष्ण इत्यादिक नानाभांतिके दैहिक, दैविक, और भौतिक दुःखोंके दूरकरनेमें असमर्थ होनेसे दुःखितहो घोर चिन्तामें निमग्न होता है ॥ २५ ॥ कभी परस्पर धनके व्यवहारमें केवल २० कौड़ी अथवा इससेभी कुछ कम धन दूसरोंसे ठगलेताहै कि जिससे उनका बैरी बनताहै ॥ २६ ॥ इस संसाररूपी पथमें यह तथा औरभी दुःख, सुख, राग, द्वेष, भय, अभिमान, प्रमाद, उन्माद, शोक, मोह, लोभ, मात्सर्य, अपमान, भूख, प्यास, आधि, व्याधि, जन्म, जरा, मरण आदिक नानाभांति के दुःख हैं ॥ २७ ॥ कभी ईश्वरकी मायारूप स्त्री अपने हाथरूप लतासे स्पर्श करती है तब विचार तथा विज्ञान नष्ट होजाने से स्त्रीके संग रमणके हेतु घरका प्रारम्भ करने के निमित्त व्याकुल होजाता है और गृह में उत्पन्न हुयेपुत्र कन्यादि की तोतली बाणी तथा चितवन की चेष्टा से मन हरणहो अजितेन्द्रिय मनुष्य अपनी आत्माको अपार अंधतम नर्क में डालता है ॥ २८ ॥ कभी ईश्वरका काल चक्र कि जोपरमाणु कालसे आरम्भ होता है और ब्रह्माजी के दोपरार्द्ध से पूराहोता है, और अवस्थाओं के फेरफार से ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त समस्त जीवोंको अपने वेगसे खींचकर लियेजाता है, उस से डरकर बचने के हेतु यज्ञ पुरुष भगवान "कि जिनका यह काल चक्र शस्त्र है" का तिरस्कार

आर्या रूमयपरिहृताः सांकेत्येनाभिधत्ते ॥ २९ ॥ यदापाखण्डिभिरात्मवंचितैस्तै रुरुवंचितो ब्रह्मकुलं समावसंस्तेषां शीलमुपनयनादिश्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानेनभग वतो यज्ञपुरुषस्य आराधनमेव तदरोचनच्छूद्रकुलं भजते निगमाचारेऽशुद्धितोऽथ स्य मिथुनीभावःकुटुम्बभरणं यथावानरजातेः ॥ ३० ॥ तत्रापिनिरवरोधःस्वैरेण विहरन्नतिकृपणबुद्धिरन्योन्यमुखनिरीक्षणादिना ग्राम्यकर्मणैवविस्मृतकालावधिः ॥ ३१ ॥ क्वचिद्द्रुमवदैहिकार्थेषुगृहेषु रंस्यन्यथावानरः सुतदारवत्सलो व्यवाय क्षणः ॥ ३२ ॥ एवमध्वन्यवरुन्धानो मृत्युगजभयात्तमसि गिरिकन्दरप्राये ॥३३॥ क्वचिच्छीतवाताद्यनेकदैविकभौतिकात्मीयानां दुःखानां प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरन्तविषयविषण्णआस्ते ॥३४॥ क्वचिन्मिथोव्यवहरन्यत्किंचिद्धनमुपयातिवित्त शाठ्येन ॥ ३५ ॥ क्वचित्क्षीणधनः शय्यासनाशनाद्युपभोगविहीनो यावदप्रति लब्धमनोरथोपगतादानेऽवसितमतिस्ततस्ततोऽवमानादीनि जनादभिलभते ॥३६ एवंवित्तव्यतिषंगविवृद्धवैरानुबन्धोऽपि पूर्ववासनयामिथउद्वहत्यथापवहति॥३७॥ एतस्मिन्संसाराध्वनि नानाक्लेशोपसर्गबाधित आपन्नविपन्नो यत्रयस्तमुहवावेतर-स्तत्रविसृज्य जातंजातमुपादाय शोचन्मुह्यन्बिभ्यद्विवदन्क्रन्दन्संहृष्यन्गायन्नह्य-मानः साधुवर्जितोनैवावर्ततेऽद्यापियतआरब्धएष नरलोकसार्थोयमध्वनःपारमुप-दिशन्ति ॥ ३८ ॥ यदिदंयोगानुशासनंनवा एतदवरुन्धतेयन्न्यस्तदण्डामुनय

करके काक, गिद्ध, बटेर, और बगुला इत्यादिक के सदृश पाखंड शास्त्रके अनुसार पाखंडी देवताओं का भजन करता है ॥ २९ ॥ पाखंडीलोग जिनको पहिले आपने ठगा है जब आपको ठगलेते हैं तब ब्राह्मणों के समीप जाता है और वहां श्रौत, स्मार्त तथा पुनःसंस्कार करके भगवत् आराधन रूप ब्राह्मणों कीरीति अच्छी न लगनी तब शूद्रोंमें जामिलता है कि जिनमें वेदनुसार व्यवहार न. करनेकी योग्यता होनेसे वानरकी शहस केवल मैथुन और कुटुंब पालन ही कियाकरता है ॥३०॥ यह कृपण बुद्धिपुरुष शूद्रोंमें मिलकर किसी बातका विचार न कर मनमाना क्रीड़ा करता है और एक दूसरे के मुख देखने आदि पशुधर्म हीसे अपने मरण कालको भूलजाता है ॥ ३१ ॥ कभी वृक्षके सदृश इस सृष्टिके पदार्थों में रमण करनेके हेतु बानर की सदृश केवल मैथुनमेंही सुखमान स्त्री पुत्रादिकों पर स्नेह रखता है ॥ ३२ ॥ इसभांति जगत् रूप अटवी की राहमें सुख दुःखादिकों का अनुभव करता हुआ यह जीव पहाड़की कंदरा के सदृश मृत्युरूप हाथी के भयवाले रागादिक दुःखोंमें पड़ताहै॥३३॥कभी रोगादि दुःखोंमें पड़शीत, पवन इत्यादिक नाना भांतिके दैहिक,दैविक और भौतिक क्लेशों के दूर करने में अशक्तहो अपार विषयोंसे दुःखित होकर बैठरहताहै ॥३४॥ कभी आपसमें कुछधन व्यवहारकर ठगईसे कुछ द्रव्यभी प्राप्तकरलेताहै॥३५॥किसीसमय द्रव्यनाश होने से,शय्या,आसन,अन्न इत्यादिक भोगकीबस्तुयें नहीं मिलतीं तब किसीदुःप्राप बस्तुकीकामना करके उसके प्राप्त करनेका प्रयत्नकरताहै इससे इसका लोग चारोंओरसे निरस्कारकरते हैं ॥३६॥ इस भांति धन के व्यवहार से एक दूसरेमें शत्रुता बढजाती है तौभी प्रथमकी बासनाओं से आपस में विवाह करता है और व्यवहार भी छोड़देता है ॥ ३७ ॥ इस संसारमें नाना प्रकारके क्लेश और विघ्न दुःखित करते हैं कोई मनुष्य यदि दुःखी होवे या मरजावे तो उसको दूसरा मनुष्य छोड़ कर जन्मे हुए को संग लेकर चलाजाता है, और शोच, मोह तथा विवाद करता और डरताहुआ चलाजाता है कभी विहार करता, कभी रोता और कभी गाता तथा हंसता हुआ जाता है परन्तु जहांसे वह प्राणी समूह चलाथा वहां साधुओं के अतिरिक्त और कोई पीछे नहीं आता ॥ ३८ ॥

उपशमशीला उपरतात्मानःसमवगच्छन्ति ॥ ३९ ॥ यद्यपिदिग्गिभजयिनो य-
ज्विनोयेवैराजर्षयःकिंतुपरंमृधेशयीरन् । मस्यामेवममेयमितिकृतवैरानुबन्धायां
विसृज्यस्वयमुपसंहृताः ॥ ४० ॥ कर्मवल्लीमवलम्व्यततआपदःकथञ्चिन्नरकाद्वि-
मुक्तः पुनरप्येवंसंसाराध्वनिवर्तमानो नरलोकसार्थमुपयाति एवमुपरिगतोऽपि४१
तस्येदमुपगायन्ति ॥ आर्षभस्येहराजर्षेर्मनसाऽपिमहात्मनः । नानुवर्त्माऽर्हतिनृपो
मक्षिकेवगरुत्मतः ॥ ४२ ॥ योदुस्त्यजान्दारसुतान्सुहृद्राज्यंहृदिस्पृशः । जहौयु-
वैवमलवदुत्तमश्लोकलालसः ॥ ४३ ॥ योदुस्त्यजान्क्षितिसुतस्वजनार्थदारान्प्रा
र्थ्यां श्रियंसुरवरैःसदयावलोकाम् । नैच्छन्नृपस्तदुचितंमहतां मधुद्विट्सेवाऽनुर-
क्तमनसामभवोऽपिफल्गुः ॥ ४४ ॥ यज्ञायधर्मपतयेविधिनैपुणाययोगाय सांख्य-
शिरसेप्रकृतीश्वराय । नारायणायहरयेनमइत्युदारं हास्यन्मृगत्वमपियःसमुदाज-
हार ॥ ४५ ॥ यइदंभागवतसभाजितावदातगुणकर्मणो राजर्षेर्भरतस्यानुचरितं
स्वस्त्ययनमायुष्यंधन्यंयशस्यं स्वर्ग्यापवर्ग्यंवाऽनुशृणोत्याख्यास्यति अभिनंदति
चसर्वाएवाशिषआत्मन आशास्तेनकांचनपरतइति ॥ ४६ ॥

इतिश्रीमद्भा०पं०नामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

क्यों कि जिस उपदेश को जीवों के अभय करनेवाले, प्रशांत, मनको वश रखनें वाले मुनि लोग स्वीकार करते हैं उस योग सम्बन्धी उपदेश का कोई अनुसरण नहीं करता ॥ ३९ ॥ यद्यपि बडे २ दिग्विजयी और यज्ञ कर्त्ता राजर्षि हुए वह सब संग्राम में मरकर सोगए हैं, इस भूमि में मोह बांध नाना शत्रुता बांधी थी तौभी अंत में सभी पृथ्वी को छोड़ चलेगए४०कर्म रूपलताको पकड यदि किसी भांति वह नरक के दुःखों से छूटजाय, तौभी पीछे संसार मार्ग में रहकर जीव लोक के संग में मिलता है यदि स्वर्ग में भी गया हो तोभी पीछे यहीं आमिलता है ॥ ४१ ॥ उन भरतजी के चरित्रों को मनुष्य पाकोंमें इसभांति गाया करतेहैं कि जैसे मक्खी गरुड़के मार्गका मनसेभी अनुसरण नहीं करसकती उसीभांति उन ऋषभदेवजीके पुत्र साधु भरतके मार्गका कौन ऐसा राजाहै जो मनसे भी अनुसरण करसकताहै ? ॥ ४२ ॥ कि जिस भरतने भगवानमें मन लगजानेके हेतु युवावस्था मेंही अति मनोहर तथा दुस्त्यज राज्य सुख और स्त्री पुत्रादिकों को मलकी सदृश त्यागदिया४३॥ अति दुस्त्यज पृथ्वी, पुत्र, सुहृद, द्रव्य तथा स्त्रियोंको और अपनेको चाहनेवाली राज्यलक्ष्मी कि जिसकी प्रार्थना श्रेष्ठ देवताभी करते हैं उसकोभी जिस भरतने न चाहा। भगवद्भक्त कि जिनका मन भगवानकी सेवामें लगगयाहै वह मुक्तिकोभी तुच्छही मानतेहैं ॥ ४४ ॥ यज्ञरूप धर्मके पालक धर्मके करनेवाले, ज्ञानरूप फलके देनेवाले अष्टांगयोग रूप अन्तर्यामी भगवानकोमैं दण्डवत् करताहूं इसभांति उदार बचन कहते२ जिन भरतजीने अपनी मृगदेहकोभी छोड़दिया उन भरतकी बराबर और कौन होसकताहै ॥ ४५ ॥ जिनके शुद्धगुणवाले कर्मोंकी प्रशंसा भगवद्भक्त करतेहैं ऐसे राजर्षि भरतजीका चरित्र, कि कल्याणकारी, आयुवर्धक तथा धन कीर्त्ति और स्वर्ग, मोक्षका देनेवालाहै, उसका जो कोई श्रवण करताहै अथवा कथन करताहै उसको सब ऋद्धियें स्वयं प्राप्त होजाती हैं और वह कुछ इच्छा नहीं करता ॥ ४६ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा०पंचम० सरलाभाषाटीकायांचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीशुकउवाच॥ भरतस्यात्मजःसुमतिर्नामाभिहितोयमुहवावकेचित्पाखण्डिन ऋषभपदवीमनुवर्तमानं चानार्याअवेदसमाम्नातांदेवतांस्वमनीषयापापीयस्याक-लौकल्पयिष्यन्ति॥१॥तस्माद्वृद्धसेनायां देवताजिन्नामपुत्रोऽभवत्॥२॥अथासुर्यांत-त्तनयोदेवद्युम्नस्ततोधेनुमत्यांसुतः परमेष्ठीतस्यसुवर्चलायांप्रतीहउपजातः ॥ ३ ॥ यआत्मविद्यामाख्यायस्वयं संशुद्धोमहापुरुषमनुसस्मार ॥ ४ ॥ प्रतीहात्सुवर्चला यांप्रतिहर्त्रादयस्त्रय आसन्निज्याकोविदाःसूनवःप्रतिहर्तुः स्तुत्यामजभूमानावज-निषाताम् ॥ ५ ॥ भूम्नऋषिकुल्यायामुद्गीथस्ततः प्रस्तावोदेवकुल्यायांप्रस्तावा-न्नियुत्सायां हृदयजआसीद्विभुः। विभोरत्यांचपृथुषेणस्तस्मान्नक्त आकूत्यांजज्ञे नक्ताद्द्रुतिपुत्रोगयो राजर्षिप्रवरउदारश्रवाअजायत साक्षाद्भगवतोविष्णोर्जगद्रिर क्षिषयागृहीतसत्त्वस्य कलात्मवत्त्वादिलक्षणेनमहापुरुषतांप्राप्तः ॥ ६ ॥ सवैस्वध र्मेणप्रजापालनपोषणप्रीणनोपलालनानुशासनलक्षणेनेज्यादिना च भगवतिमहा पुरुषेपरावरे ब्रह्मणिसर्वात्मनार्पितपरमार्थलक्षणेन ब्रह्मविच्चरणानुसेवयापादित भगवद्भक्तियोगेन चाभीक्ष्णशःपरिभावितातिशुद्धमतिरुपरतानात्म्य आत्मनिस्व-यमुपलभ्यमानब्रह्मात्मानुभवोऽपि निरभिमानएवावनिमजूगुपत् ॥ ७ ॥ तस्येमां गाथांपाण्डवेय पुराविदउपगायन्ति ॥ ८ ॥ गयंनृपःकःप्रतियाति कर्मभिर्यज्वाऽभि मानीबहुविद्धर्मगोप्ता। समागतश्रीःसदसःपतिःसतां सत्सेवकोऽन्योभगवत्कला-मृते ॥ ९ ॥ यमभ्यषिंचन्परयामुदासतीः सत्याशिषोदक्षकन्याःसरिद्भिः। यस्य

श्रीशुकदेवजी बोले कि, उनभरत के सुमति नाम पुत्र उत्पन्न हुआ यह सुमति ऋषभदेवजी के मार्ग का अनुसरण करता था उस सुमति को पाखंडी लोग कलियुगमें अपनी दुर्बुद्धि से, यद्यपि उस को वेद में कहीं देवता नहीं गिनाया, तोभी सुमति देवता अर्थात् बुद्ध का अवतार था ऐसे मानेगें। ॥ १ ॥ उस सुमति के वृद्ध सेना स्त्री में देवताजिन्नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥ फिर देवताजित की आसुरी रानी में देवद्युम्न उत्पन्न हुआ और देवद्युम्न के धनमती स्त्री में परमेष्ठी और परमेष्ठी की सुवर्चला स्त्री में प्रतीह पुत्र हुआ ॥ ३ ॥ यह प्रतीह स्वयं शुद्ध था यह आत्म विद्या का आख्यान करके महा पुरुष हरिका स्मरण करता हुआ ॥ ४ ॥ प्रतीह से सुवर्चला स्त्री में प्रतिहर्ता, प्रस्तोता और उद्गाता यह तीनपुत्र उत्पन्न हुये किजो यज्ञकरनमें बड़े निपुण थे प्रतिहर्ता की स्तुति स्त्री में अज और भूमा यह दोपुत्र उत्पन्न हुये ॥ ५ ॥ भूमाकी ऋषिकुल्या में उद्गीथ नामपुत्र हुआ जिस से देव कुल्या में प्रस्ताव नामक पुत्रहुआ उस प्रस्ताव से नियुत्सा में विभुनामक पुत्रहुआ, विभुके रतिमें पृथुसेन, पृथुसेन के आकूतिमें नक्त, और नक्तके द्रुतिस्त्री से गयपुत्र हुआ किजो राजर्षियों में श्रेष्ठ, तथा उदार यशवाला और सृष्टिकी रक्षा करनेकी कामनासे जिसने सत्वगुण धारण किया है ऐसे विष्णु भगवान का अंशरूप था और जोआत्म भावके लक्षणों से महा पुरुषताको प्राप्त हुआ था ॥ ६ ॥ वहगय प्रजाकापालन, पोषण, प्रीणन, उपलालन, अनुशासन, आदि लक्षणों युक्तथा उस राजाकी बुद्धि इन राजधर्मों तथा यज्ञादिक धर्मों से कि जो उसने सर्वात्मामहापुरुष भगवान् में अर्पण कियेथे, तथा आत्मवेत्ता पुरुषों के चरणों की सेवासे प्राप्तहुई भगवत्भक्तियोग से, बारम्बार संस्कार पाने के हेतु अति शुद्ध होगईथी यद्यपि उसके देहाभिमान रहित अन्तःकरण में साक्षात भगवान का अनुभव होचुका था तौ भी उसने निरभिमान रहकर इस भूमिका पालन किया ॥ ७ ॥ हेराजन्! इति हासवेत्ता मनुष्य इसके चरित्रोंको यो गाया करते हैं ॥ ८ ॥ कौन राजा कर्म करके गयका अनुकर्ण करसकता है? किजो भगवत् अंशरूप राजा गय यज्ञों का करने वाला, बहुवेत्ता धर्मरक्षक, लक्ष्मीवान, सभापति और साधुओं का

प्रजानांदुदुहेधराशिषो निराशिषोगुणवत्सस्नुतोधाः ॥ १० ॥ छन्दांस्यकामस्यच यस्य कामान्दुदूहुराजह्रुरथोबलिंनृपाः । प्रत्यंचितायुधिधर्मेण विप्रायदाशिषां षष्ठमंशंपरेत्य ॥ ११ ॥ यस्याध्वरेभगवानध्वरात्मा मघोनिमाद्यत्युरुसोमपीथे । श्रद्धाविशुद्धाचलभक्तियोगसमर्पितेज्याफलमाजहार ॥ १२ ॥ यत्प्रीणनाद्बर्हिषि देवतिर्यङ्मनुष्यवीरुत्तृणमाविरिञ्चात् । प्रीयेतसद्यःसहविश्वजीवः प्रीतःस्वयंप्रीतिमगाद्गयस्य ॥ १३ ॥ गयाद्गयन्त्यांचित्ररथःसुगतिरवरोधनइतित्रयः पुत्रा बभूवुश्चित्ररथादूर्णायांसम्राडजनिष्ट ॥ १४ ॥ ततउत्कलायांमरीचिर्मरीचेर्बिन्दुमत्यांबिन्दुमानुदपद्यत । तस्मात्सरघायांमधुनामाऽभवन्, मधोःसुमनसिवीरव्रतः, ततोभोजायांमन्थुप्रमन्थूजज्ञाते मन्थोःसत्यायांभौवनः, ततोदूषणायांत्वष्टाऽजनिष्ट त्वष्टुर्विरोचनायांविरजो, विरजस्यशतजित्प्रवरंपुत्रशतं कन्याचविषूच्यांकिलजातम् ॥ १५ ॥तत्रायंश्लोकः॥ प्रैयव्रतंवंशमिमंविरजश्चरमोद्भवः। अकरोदत्यलंकीर्त्या विष्णुःसुरगणंयथा ॥ १६ ॥

इतिश्रीमद्भा०म०पु०पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

राजोवाच ॥ उक्तस्त्वयाभूमण्डलायामविशेषोयावदादित्यस्तपतियत्रचासौ ज्योतिषांगणैश्चन्द्रमावासहदृश्यते ॥ १ ॥तत्रापिप्रियव्रतरथचरणपरिखातैःसप्तभिः सप्तसिन्धवउपक्लृप्ताः । यतएतस्याःसप्तद्वीपविशेषविकल्पस्त्वयाभगवन्खलुसूचितएतदेवाखिलमहंमानतोलक्षणतश्चसर्वंविजिज्ञासामि ॥ २ ॥ भगवतो

सवक है ! ॥ ९ ॥ कि जिसराजा गयके सत्य आशीर्वाद हैं और जिसका राज्याभिषेक दक्ष कन्याओं ने नदियों के जलसे परमानंद होकर किया था, यद्यपि उस राजा के मनमें किसी भांतिकी इच्छा नहीं थी तौभी उसके गुणरूपवछड़ेके कारणपृथ्वी रूपगौ उसकी प्रजाकी समस्त इच्छायें पूर्णकरती थी ॥ १० ॥ वेद और उसके कर्म उसकी मन वाञ्छित कामना पूर्णकरते, तथा संग्राम के मध्यमें राजालोग बाणोंसे सत्कार पा उसको भेंटदेते थे, और ब्राह्मण लोग धर्म तथा दक्षिणा आदि से पूजापा परलोक में प्राप्त होनेवाले अपने पुण्यके फलमें से छठाअंश देतेथे ॥ ११ ॥ उसके यज्ञमें इन्द्र बहुत सोमपान करके मदको प्राप्त हुआ, श्रद्धासे शुद्ध और अविचल भक्ति से अर्पित उसके यज्ञ फलको यज्ञ स्वरूप भगवान ने स्वयं ग्रहण किया था ॥ १२ ॥ भगवान के प्रसन्न होने से यज्ञमें देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य, लता, तृण, ब्रह्मा से लेकर सम्पूर्ण जीव प्रसन्न होतेहैं वह ईश्वर राजा गयपर स्वयंही प्रसन्न हुये ॥ १३ ॥ उनगयके गयंती नाम स्त्रीमें चित्ररथ, सुगति और अवरोधन यह तीनपुत्र उत्पन्न हुये चित्ररथ से ऊर्णामें सम्राट् पुत्रउत्पन्न हुआ॥ १४ ॥ उस सम्राट् से उत्कला में मरीचि और मरीचि के बिंदुमती में बिंदुमान और बिंदुमान के सरघा में मधु और मधुके सुमनसनामस्त्री में वीरव्रत और वीरव्रतके भोजा में मंथु और प्रमंथु दोपुत्र उत्पन्नहुये मंथुके सत्यामें भौवन और भौवनके दूषणामें त्वष्टा और त्वष्टाके विरोचनामें विरज और विरजके विषूचा स्त्रीमें शतजित इत्यादिक सौपुत्र और एककन्या उत्पन्नहुई॥ १५ ॥ जिसभांति विष्णु भगवान अपने यशसे देवताओं को शोभित करते हैं वैसेही अंतमें हुये विरज राजाने अपने यशसे प्रियव्रत राजाके वंशको शोभित किया ॥ १६ ॥

इति श्रीमद्भा०महा०पंचम०सरलाभाषाटीकायांपंचदशोऽध्याय: ॥ १५ ॥

राजा परीक्षित बोले कि–जहांतक सूर्य प्रकाश करताहै और ग्रहोंसहित चन्द्रमा देख पड़ता है वहांतक भूमण्डलका आपने वर्णनकिया ॥ १ ॥ कि जिसमें राजा प्रियव्रतके रथके पहियोंकी खाईसे सातसमुद्रहुये और इन समुद्रोंसे पृथ्वीके सातद्वीपोंकी रचनाहुईहै सो आपने संक्षेपसे कहा

गुणमयेस्थूलरूपआवेशितंमनोह्यगुणेऽपिसूक्ष्मतमआत्मज्योतिषि परेब्रह्मणिभगवतिवासुदेवाख्येक्षममावेशितुंतदुहैतद्गुरोऽर्हस्यनुवर्णयितुमिति ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ नवैमहाराजभगवतोमायागुणविभूतेःकाष्ठांमनसावचसावाऽधिगन्तुमलंविबुधायुषाऽपिपुरुषस्तस्मात्प्राधान्येनैवभूगोलकविशेषंनामरूपमानलक्षणतोव्याख्यास्यामः ॥४॥ योवाऽयंजम्बुद्वीपःकुवलयकमलकोशाभ्यंतरकोशोनियुतयोजनविशालःसमवर्तुलोयथापुष्करपत्रम् ॥ ५ ॥ यस्मिन्नववर्षाणिनवयोजनसहस्रायामान्यष्टभिर्मर्यादागिरिभिः सुविभक्तानिभवन्ति ॥ ६ ॥ एषांमध्येइलावृतंनामाभ्यंतरवर्षयस्यनाभ्यामवस्थितः सर्वतःसौवर्णःकुलगिरिराजोमेरुर्द्वीपायामसमुन्नाहःकर्णिकाभूतःकुवलयकमलस्यमूर्धनिद्वात्रिंशत्सहस्रयोजनविततोमूलेषोडशसहस्रंतावताऽन्तर्भूम्यांप्रविष्टः ॥ ७ ॥ उत्तरोत्तरेणेलावृतंनीलःश्वेतःशृङ्गवानितित्रयोरम्यकहिरण्मयकुरूणांवर्षाणांमर्यादा गिरयःप्रागायताःउभयतःक्षारोदावधयोद्विसहस्रपृथवएकैकशः पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तरउत्तरोदशांशाधिकांशेन दैर्घ्यएवह्रसन्ति ॥८॥ एवंदक्षिणेनेलावृतंनिषधोहेमकूटोहिमालयइतिप्रागायतायथानीलादयोऽयुतयोजनोत्सेधाहरिवर्षकिंपुरुषभारतानांयथासंख्यम् ॥९॥ तथैवेलावृतमपरेणपूर्वेणचमाल्यवद्गन्धमादनावानीलनिषधायतौ द्विसहस्रंपप्रथतुःकेतुमालभद्राश्वयोःसीमानंविदधाते ॥ १०॥ मंदरोमेरुमन्दरःसुपार्श्वःकुमुदइतिअयुतयोजनविस्तारोन्नाहामेरोश्चतुर्दिशमवष्टम्भगिरयउपक्लृप्ताः ॥११॥चतुर्ष्वेतेषुचूतजम्बूकदम्बन्य

अब विस्तारसे कहिये॥२॥भगवानके गुणमय स्थूलरूपमें जब मन प्रवेश करनेको समर्थ होजाताहै कि सूक्ष्मरूप निर्गुण आत्मज्योतिरूप ब्रह्मरूप भगवान वासुदेव जिनका नामहै, सो हेगुरो ! आप वर्णन करने योग्यहो ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभाग ! भगवानके मायागुणकी विभूति का कोई मनुष्य मन बचनसे पार पानाचाहै तो देवताओंके आयु कालतक भी यदि प्रयत्नकरै तोभी उसका पार नहीं पासकता इसलिये मुख्य विषय लेकर नाम, रूप, लक्षणसे इस भगोलकी व्याख्या करूंगा ॥ ४ ॥ भूमण्डल रूप कमलकोशके बीचमें यह पहिला जम्बूद्वीप लाख योजन विस्तारवालाहै कि जो कमलपत्रका सदृश गोलहै ॥ ५ ॥ जम्बूद्वीपमें नौखण्ड नौनौहजार योजनके विस्तारकेहैं कि जिनकी मर्यादा आठ पर्वतोंसे विभक्त कीगईहै ॥ ६ ॥ इन आठोंके मध्यमें इलावृत खण्डहै इसके बीचमें सब पर्वतोंका राजा सुमेरुपर्वत लाखयोजनके विस्तारकाहै कि जो भूमण्डल रूप कमलकी कलीरूपहै यह मेरु ऊपर बत्तीसहजार योजन और जड़में सोलहहजार योजन मोटा है और सोलहीहजार योजन पृथ्वीके भीतरहै ॥ ७ ॥ इलावृतके उत्तर ओर नील, श्वेत और शृंगवान यह तीनपर्वतहैं जो रम्यक, हिरण्मय और कुरुखण्डकी मर्यादाहैं तथा पूर्वकी ओर फैलेहुएहैं इसके दोनोंओर खारे समुद्र दो २ हजार योजन चौड़े हैं इन पहाड़ों में पहिले २ पर्वतकी अपेक्षा पिछले २ पर्वत लंबाई में दशांशसे कुछ अधिक कमहैं॥८॥इसीभांति इलावृतके दक्षिण ओर निषध हेमकूट और हिमालय पर्वत हैं यहभी पूर्वकी ओर फैलहुये और विस्तारमें नील आदि पर्वतोंके समानहैं यह पर्वत दश दश हजार योजन ऊँचे तथा हरिवर्ष, किंपुरुष, और भारतखण्डकी मर्यादा हैं ॥ ९ ॥ इसीभांति इलावृतके पश्चिम ओर माल्यवान और पूर्वकी ओर गन्धमादन पर्वत है यह दोनों नील और निषद पर्वततक फैलेहुये तथा दो २ सहस्र योजन चौड़े और दश २ सहस्र योजन ऊँचेहैं यह केतुमाल भद्राश्वखण्डकी सीमा बनातेहैं ॥ १० ॥ मंदर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व, कुमुद यह पर्वत दश २ हजार योजन विस्तारके हैं और मानो सुमेरु पर्वतके चारोंओर खम्भसे लगाये गयेहैं

प्रोघाश्चत्वारःपादपप्रवराः पर्वतकेतवइवाधिसहस्रयोजनोन्नाहास्तावद्विटपविततयः शतयोजनपरिणाहाः ॥१२॥ ह्रदाश्चत्वारःपयोमध्विक्षुरसमृष्टजलायदुपस्पर्शिन उपदेवगणायोगैश्वर्याणिस्वाभाविकानिभरतर्षभधारयन्ति ॥ १३ ॥ देवोद्यानानि चभवन्तिचत्वारिनन्दनंचैत्ररथंवैभ्राजकंसर्वतोभद्रमिति ॥ १४॥येष्वमरपरिवृढाः सहसुरललनाललामयूथपतयउपदेवगणैरुपगीयमानमहिमानःकिल विहरंति १५॥ मन्दरोत्सङ्गएकादशशतयोजनोत्तुङ्गदेवचूतशिरसो गिरिशिखरस्थूलानिफलान्यमृतकल्पानिपतन्ति ॥ १६ ॥ तेषांविशीर्यमाणानामतिमधुरसुरभिसुगन्धिबहुलारुणरसोदेनारुणोदानामनदी मंदरगिरिशिखरान्निपतंतीपूर्वेणेलावृतमुपप्लावयति ॥ १७ ॥ यदुपजोषणाद्भवान्याअनुचरीणांपुण्यजनवधूनामवयवस्पर्शसुगन्धवातो दशयोजनंसमंतादनुवासयति ॥ १८ ॥ एवंजम्बूफलानामत्युच्चनिपातविशीर्णानामनस्थिप्रायाणामिभकायनिभानांरसेनजम्बूनामनदी मेरुमन्दरशिखरादयुतयोजनादवनितलेनिपतंतीदक्षिणेनात्मानंयावदिलावृतमुपस्यन्दयति ॥ १९ ॥ तावदुभयोरपिरोधसोर्यामृत्तिकातद्रसेनानु विध्यमानावाय्वर्कसंयोग विपाकेनसदाऽमरलोकाभरणंजांबूनदंनामसुवर्णभवति ॥ २० ॥ यदुहवावविबुधादयःसहयुवतिभिर्मुकुटकटककटिसूत्राद्याभरणरूपेणखलुधारयंति ॥ २१ ॥ यस्तुमहाकदम्बःसुपार्श्वनिरूढोयास्तस्यकोटरेभ्यो विनिःसृताःपञ्चायामपरिणाहाः पञ्चमधुधाराः सुपार्श्वशिखरात्पतन्त्योऽपरेणात्मानमिलावृतमनुमोदयंति ॥ २२॥ याह्युपयुञ्जानानांमुखनिर्वासितोवायुःसमंताच्छतयोजनमनुवासयति ॥ २३ ॥ एवंकुमुदनिरू-

११ ॥ इन चारों पर्वतोंपर श्रेष्ठ चारवृक्ष क्रमानुसार आम, जामुन, कदम्ब और वटकेहैं यह ११०० योजन ऊंचे पर्वतों के ध्वजाकी समान हैं और ११०० योजनही शाखाओं के विस्तार वाले तथा १०० योजनमोटेहैं ॥ १२ ॥ हेपरीक्षित! वहांदूध, शहद, ईखकेरस और मीठेजलके चार सरोवर हैं कि जिनके जलके पीनेवाले उपदेव लोग स्वाभाविक ऐश्वर्यों कोधारण करते हैं ॥ १३ ॥ इन पर्वतों पर क्रमानुसार नंदन, चैत्ररथ, वैभ्राजक, और सर्वतोभद्र यह चार देवताओं के उपवन हैं ॥१४॥ उन बागोंमें देवांगनाओं में श्रेष्ठ स्त्री यूथके स्वामी श्रेष्ठ देवता लोग विहार करते है, और गन्धर्व गण उनके यशका कीर्तन किया करते हैं ॥ १५ ॥ मंदराचल पर्वतपर जो ११०० योजन ऊंचा आमका वृक्ष है उससे पर्वत के शिखर की सदृश मोटे अमृत से मीठेफल गिराकरते हैं ॥ १६ ॥ यह फल नीचे गिरने से फटजाते हैं तब उससे अत्यंत मीठा, सुगंधित लालरस बहता है कि जिससे अरुणोदा नामनदी मंदर केशिखर से गिरकर इलावृत्त खंडके पूर्व ओर को बहती है ॥१७॥ जिस जलके सेवन से पार्वती की अनुचरी, यक्षोंकी वधुओं के अंग से पवन स्पर्शकर सुगंधितहो दश२ योजनतक चारोंदिशाओंको सुगंधित करतीहै॥१८॥ऐसेही अतिसूक्ष्म गुठली वाले हाथीके शरीरकी सदृश बड़े २ जामुन अति ऊँचेसे गिरकर फट जाते हैं उनके रससे जम्बूनाम नदी दश हजारयोजन ऊँचेमेरु मन्दरके शिखरसे गिरकर इलावृतके दक्षिण ओर बहतीहै॥१९॥दोनों किनारों की मिट्टी इस रससे मिल पवन और सूर्यके संयोगसे पक जातीहै कि जिससे जाम्बू नद नामसुवर्ण उत्पन्न होताहै ॥ २० ॥ कि जिस सुवर्णके आभूषण, कीट, मुकुट, कुण्डल क्षुद्र घंटिका इत्यादिक देवतागण अपनी स्त्रियोंसमेत धारण करतेहैं ॥ २१ ॥ सुपार्श्व पर्वतवाले कदम्ब वृक्षके कोटरोंमें से पांच पांच बाहु मोटी पांच मधुकी धारा निकलतीहैं वह सुपार्श्वकी चोटी परसे गिर इलावृतके पश्चिमओरको आनन्दित करतीहैं ॥ २२ ॥ इन धाराओंके सेवन करनेवालोंके मुखकी सुगन्धिसे पवन सुगन्धितहो चारोंओरके सौसौ योजन दशोंको सुवासित करती है ॥ २३ ॥ इसीभांति कुमुद

द्दोयः शतवल्शोनामवटस्तस्यस्कन्धेभ्योनीचीनाःपयोदधि मधुघृतगुडान्नाद्यम्बर शय्यासनाभरणादयः सर्वएवकामदुघानदाः कुमुदाग्रात्पतंतस्तमुत्तरेणेलावृतमुप योजयन्ति ॥ २४ ॥ यानुपजुषाणानांनकदाचिदपिप्रजानांवलीपलितक्लमस्वेद दौर्गन्ध्यजराभयमृत्युशीतोष्णवैवर्ण्योपसर्गादयस्ताप विशेषाभवंति यावज्जीवं सुखंनिरतिशयमेव ॥ २५ ॥ कुरङ्गकुररकुसुम्भवैकङ्कत्रिकूटशिशिरपतङ्गरुचकनि· षधशिनीवासकपिलशंखवैदूर्यजारुधिहंसर्षभनागकालञ्जरनारदादयोविंशतिगि रयोमेरोःकर्णिकायाइवकेसरभूतामूलदेशेपरितउपक्लृप्ताः ॥ २६ ॥ जठरदेवकूटौ मेरुंपूर्वेणाष्टादशयोजनसहस्रमुदगायतौद्विसहस्रंपृथुतुङ्गौभवतः। एवमपरेणपवन पारियात्रौदक्षिणेनकैलासकरवीरौप्रागायतौ। एवमुत्तरतस्त्रिशृङ्गमकरावष्टभिरेतैः परिस्तृतोऽग्निरिवपरितश्चकास्तिकाञ्चनगिरिः ॥ २७ ॥ मेरोर्मूर्धनिभगवतआत्म योनेर्मध्यत उपक्लृप्तांपुरीमयुतयोजनसाहस्रींसमचतुरस्रांशातकौम्भींवदंति २८ ॥ तामनुपरितो लोकपालानामष्टानां यथादिशंयथारूपं तुरीयमानेनपुरोऽ ष्टा वुपक्लृप्ताः ॥ २९ ॥

इतिश्रीमद्भा०पञ्चमस्कन्धेभुवनकोशवर्णनंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ तत्रभगवतःसाक्षाद्यज्ञलिंगस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादांगु ष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वाण्डकटाहविवरेणान्तः प्रविष्टायाबाह्यजलधारा तच्चरणपंकजा· वनेजनारुणकिंजल्कोपरंजिताखिलजगदघमलापहोपस्पर्शनाऽमला साक्षाद्भगव· त्पदीत्यनुपलक्षितवचोऽभिधीयमानाऽतिमहता कालेन युगसहस्रोपलक्षणेन दिवो

नाम पर्वतसे शतवल्श नामक वटवृक्षकी शाखाओंमेसे अधोमुखहो दूध, दही, शहद, घी गुड़ अन्न इत्यादिक शय्या, आसन, आभरण आदिक नद बहतेहैं कि जो सबकी मनोकामना पूर्ण करतेहुये इलावृतके उत्तरकी ओर बहते हैं ॥ २४ ॥ जोइन नदोंका सेवन करते हैं उनके केश सफेद, खेद, पसीना, दुर्गंध, जरारोग, मृत्यु, शीत, गरमी, विवर्णता और विघ्न इत्यादिक कोई संताप नहीं होते और जबतक जीते हैं तबतक सर्वोत्तम सुखही बनारहता है ॥ २५ ॥ कुरंग, कुरर, कुसुंभ, वैकंक, त्रिकूट, शिशिर, पतंग, रुचक, निषध, शिनी, वास, कपिल, शंख, वैदूर्य, जारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालंजर और नारद यह २० पर्वत सुमेरुरूपी कमल के केसर की समान मेरुके मूलभाग में चारों ओर बनायेगये हैं ॥ २६ ॥ मेरुपर्वत के पूर्वका ओर जठर और देवकूट यह दोपहाड़ उत्तर की ओर अठारह सहस्र योजन लम्बे और दोसहस्र योजन चौड़े तथा ऊंचे हैं इसी भांति मेरुके पश्चिम ओर पवन और पारियात्र पहाड़ दक्षिण की ओर लम्बे और दक्षिण की ओर कैलास और करवीर दोपहाड़ पूर्वकी ओर लम्बे और उत्तर की त्रिशृंग और मकर यह दोपहाड़ पश्चिम की ओर लम्बे हैं यह सुवर्ण का मेरुपर्वत इन आठ पर्वतों से आवृत्त अग्निकी सदृश चारो दिशाओं में प्रकाशित होरहा है ॥२७॥ मेरुके ऊपर मध्यमें १० हजार योजन बड़ी सुवर्ण मय ब्रह्माजी की पुरी है ऐसा कहते हैं ॥ २८ ॥ ब्रह्माजी की पुरीके निकटही निकट उसके चारो ओर आठो लोक पालोंकी पुरी अपनी २ दिशाओं के रूपके अनुसार ढाई २ सहस्र योजन की है ॥ २९ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० पंचम० सरलाभाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि वामन भगवान ने बलि राजा के यज्ञ में विराट् रूप धर अपने दायें चरण से भूमिको दबाकर बायां चरण ऊंचा किया तब उस चरण के अंगूठे के नख से ब्रह्मांड का ऊपरी भाग फटगया उस छिद्र में से बाहर के ढके हुए जल की धारा जो भीतर आईथी वह सहस्र युग पर्यंत के समय से वैकुंठके ऊपर उतरी इस धारा से भगवान के चरण कमल धुलनें के कारण

मूर्द्धन्यवततार यत्तद्विष्णुपदमाहुः ॥ १ ॥ यत्रहवावबीरव्रतऔत्तानपादिः परमभागवतोऽस्मत्कुलदेवताचरणारविन्दोदकमिति यामनुसवनमुत्कृष्यमाणभगवद्भक्तियोगेन दृढंक्लिद्यमानान्तर्हृदय औत्कण्ठ्यविवशामीलितलोचनयुगलकुड्मलविगलितामलबाष्पकलयाऽभिव्यज्यमानरोमपुलककुलकोऽधुनापि परमादरेणशिरसाबिभर्ति ॥२॥ ततःसप्तऋषयस्तत्प्रभावाभिज्ञायां ननुतपस आत्यन्तिकी सिद्धिरेतावती भगवतिसर्वात्मनि वासुदेवऽनुपरतभक्तियोगलाभेनैवोपेक्षितान्यार्थात्मगतयो मुक्तिमिवागतांमुमुक्षवइव सबहुमानमद्यापिजटाजूटैरुद्वहन्ति ॥ ३ ॥ ततोऽनेकसहस्रकोटिविमानानीकसंकुलदेवयानेनावतरन्तीन्दुमण्डलमावार्य ब्रह्मसदनेनिपतति ॥ ४ ॥ तत्रचतुर्धाभिद्यमानाचतुर्भिर्नामभिश्चतुर्दिशमभिस्पंदन्ती नदनदीपतिमेवाभिनिविशति सीताऽलकनन्दाचक्षुर्भद्रेति ॥ ५ ॥ सीतातुब्रह्मसदनात् केसराचलादिगिरिशिखरेभ्योऽधोऽधःप्रस्रवन्तीगन्धमादनमूर्धसुपतित्वा अन्तरेणभद्राश्ववर्षंप्राच्यांदिशि क्षारसमुद्रमभिप्रविशति ॥ ६ ॥ एवंमाल्यवच्छिखरान्निष्पतन्ती ततोऽनुपरतवेगा केतुमालमभिचक्षुः प्रतीच्यांदिशिसरित्पतिंप्रविशति ॥ ७ ॥ भद्राचोत्तरतोमेरुशिरसोनिपतिता गिरिशिखराद्गिरिशिखरमतिहाय शृंगवतःशृंगादवस्पन्दमाना उत्तरांस्तुकुरूनभितउदीच्यांदिशिजलधिमभिप्रविशति॥८॥तथैवालकनन्दादक्षिणेन ब्रह्मसदनाद्बहूनिगिरिकूटान्यतिक्रम्य-

चरण सम्बन्धी अरुण केसर स वह धारा रंग गई थी उसी से उस धारा का स्पर्श सम्पूर्ण सृष्टि के पाप रूपी मलकानाश करने वालाहुआ और निर्मल थी पहले तो यह भगवत्पदी के नाम से कहने में आती थी परन्तु फिर पृथक २ प्रसंगो से जान्हवी, भागीरथी आदि नाम से प्रगट हुई ॥ १ ॥ यह धारा पहिले तो विष्णु पद कि जो स्वर्ग का मस्तक रूप है वहां आयी, जहां के रहने वाले भगवद्भक्त और दृढ़ प्रतिज्ञ ध्रुवजी उस गंगा को अपने कुलदेव भगवान के चरणों का जल जान अब तक भी सत्कार पूर्वक अपने माथे पर धारण करते हैं प्रतिक्षण बढ़ी हुई भगवद्भक्ति के प्रभाव से ध्रुवजी का अंतःकरण द्रवीभूत होताजाता है और उत्कंठा से उनके दोनो नेत्र कमल मुंद आतेहैं तब उनमें से निर्मल आंसू गिरते हैं कि जिस से वह पुलकायमान होते हैं ॥२॥ ध्रुवजी के उपरांत उनके नीचे रहनेवाले सप्तर्षि कि जो गंगाजी के ऐश्वर्य को जानते हैं और सर्वात्मारूप परब्रह्म की एकांत भक्ति प्राप्तहोने से दूसरे समस्त पुरुषार्थों का और आत्मज्ञानका भी तिरस्कार करते हैं वह गंगाजी के मिलने से अपने तप का परम फल मिलना विचार जिस भांति मुमुक्षु अपनी आई हुई मुक्ती धारण करते हैं वैसेही वह अबतक सत्सकार पूर्वक अपनी जटाओं में गंगाजी को धारण किए हुए है ॥ ३ ॥ फिर उन सप्तर्षियों के आश्रम से नीचे उस आकाश पथ में होकर कि जहां हजारों करोड़ों विमानोंके फिरनेसे भीड होरही है, चन्द्र लोक को प्लावित करती हुई गंगा ब्रह्मलोक में गिरती है ॥ ४ ॥ वहां चार प्रकार के भेदों को प्राप्त हो चार नामों से चारों दिशायों में बहकर समुद्र में प्रवेश करती है ॥ ५ ॥ इन चारों धाराओं के नाम सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा हैं सीता तो ब्रह्मलोक से केसरादिक पर्वतों की चोटियों से धीरे २ उतर गंधमादन पर्वतकी चोटियों में पड भद्राश्व खण्ड के मध्यमें बहती हुई पूर्वीक्षार समुद्र में जामिली है ॥६॥ ऐसेही चक्षु नाम धारा माल्यवानकी चोटी से पड़कर केतुमाल खण्ड में बहती हुई पश्चिमी समुद्र में जामिली हैं ॥७॥ भद्रा उत्तर की ओर सुमेरु के शिखरसे गिर मुकुन्द पर्वत पर पड़ती है और वहां से नील श्वेत और शृंगवान पर्वतों पर क्रमानुसार होती हुई उत्तर कुरुमें हो उत्तर के समुद्र में जामिलता है ॥८॥ ऐसेही

हेमकूटाद्धैमकूटान्यतिरभसतररंहसाळुठंतीभारतमभिवर्षंदक्षिणस्यांदिशिजलधिमभिप्रविशतियस्यांस्नानार्थंचागच्छतःपुंसः पदेपदेऽश्वमेधराजसूयादीनांफलंनदुर्लभमिति॥९॥अन्येचनदानद्यश्चवर्षेवर्षेसंति बहुशोमेर्वादिगिरिदुहितरःशतशः१० तत्रापिभारतमेववर्षं कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्टवर्षाणिस्वर्गिणां पुण्यशेषापभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानिव्यपदिशन्ति ॥११॥ एषुपुरुषाणामयुतपुरुषायुर्वर्षाणां देवकल्पानांनागायुतप्राणानां वज्रसंहननबलवयोमोदप्रमुदितमहासौरतमिथुनव्यवायापवर्गवर्षधृतैकगर्भकलत्राणांतत्रतु त्रेतायुगसमःकालावर्तते ॥१२॥ यत्रहदेवपतयः स्वैःस्वैर्गणनायकैर्विहितमहाऽर्हणाः सर्वर्तुकुसुमस्तबकफलकिसलय श्रियानम्यमानाविटपलताविटपिभिरुपशुम्भमानरुचिरकाननाश्रमायतनवर्षगिरिद्रोणीषु तथा चामलजलाशयेषुविकच विविधनववनरुहामोदमुदितराजहंसजलकुक्कुटकारण्डवसारसचक्रवाकादिभिर्मधुकरनिकराकृतिभिरुपकूजितेषु जलक्रीडादिभिर्विचित्रविनोदैः सुललितसुरसुन्दरीणां कामकलिलविलासहासलीलाऽवलोकाकृष्टमनोदृष्टयःस्वैरंविहरन्ति ॥ १३ ॥ नवस्वपिवर्षेषुभगवान्नारायणो महापुरुषःपुरुषाणां तदनुग्रहायात्मतत्त्वव्यूहेनात्मनाऽद्यापिसन्निधीयते ॥ १४ ॥ इलावृतेतुभगवान्भवएकएवपुमान्नह्यन्यस्तत्रापरो निर्विशतिभवान्याः शापनिमित्तज्ञो यत्प्रवेक्ष्यतःस्त्रीभावस्तत्पश्चाद्वक्ष्यामि ॥ १५ ॥ भवानीनाथैःस्त्रीगणार्बुदसहस्रैरवरुध्यमानो भगवतश्चतुर्मूर्तेर्महापुरुषस्यतुरीयांतामसींमूर्तिं प्रकृतिमात्मनः संकर्षणसंज्ञामात्मसमाधिरूपेणसन्निधाप्यैतदभिगृणन्भवउपधावति ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच॥

अलकनंदा दक्षिण की ओर हो ब्रह्मलोक से गिरबहुत पर्वतों के शिखरों को छोड़, हिमकूट पर्वत की शिखरों को अपने वेगसे लुढकाती हुई हिमकूट से भरतखंड में होतीहुई क्षिरसमुद्र में प्रवेश करती है ॥ ९ ॥ जोमनुष्य गंगामें स्नानको जाता है उसका एक २ पैगमें अश्वमेध और राजसूय यज्ञआदिकों का फल मिलना कुछ दुर्लभ नहीं है मेरुआदि पर्वतों से सैकड़ों और भी नदनदी निकल करखंड २ बही हैं ॥ १० ॥ इनखंडों में भरत खंडही कर्मक्षेत्र है और शेष आठखंड हैं वह स्वर्ग से गिरे हुओं के पुण्यभोग करने के स्थान हैं, इस से इनको भौमस्वर्ग कहते हैं ॥ ११ ॥ इन खण्डों में रहनेवाले पुरुषोंकी अवस्था १० सहस्रवर्षकीहै देवताओंके तुल्यहैं दशसहस्र हाथियों की सम उनका बलहै वज्रसा देहहै बल, अवस्था और आनन्द समेत स्त्री पुरुष संभोग किया करतेहैं अन्तमें जब एकवर्ष शेष रहताहै तब स्त्रीयें गर्भ धारण करतीहैं यहां त्रेतायुगके समान समय वर्त्तताहै ॥ १२ ॥ अपने मुख्य सेवकों समेत बड़े२ देवता लोग आश्रमोंमें पर्वतकी कंदराओं में सुन्दर सरोवरोंमे जल, विहारारादि अपनी इच्छानुसार क्रीड़ाकरतेहैं सब ऋतुओंमें फल, फूल, और कोंपल इनकी अधिकता से झुकीहुई डालियें और लतावाले वृक्षो से शोभित बनवाले आश्रम शोभाय मान होरहे हैं, खिलेहुये कमलों की सुगन्धी से प्रसन्नहो राजहंस, कारंडव, सारस और चकवा आदिक नाना भांतिके पक्षी और भौंरे सरोवरों में शब्द करते हैं अति सुंदर देवांगनाओं का काम से क्षुभित विलास, हास और लीला पूर्वक देखना, इनसे यहां क्रीड़ा करनेवाले देवताओं के मन और दृष्टिका आकर्षण होरहा है ॥ १३ ॥ इननौ खंडोंमें भगवान अपने भक्तोंपर अनुग्रह करने के हेतु एक २ रूपसे विराजते हैं ॥ १४ ॥ इलावृत्त खंडमें तो भगवान महादेवजी एकही पुरुष हैं इसमें कोई पुरुष नहीं जाता और जोजाता है वह पार्वतीजी के शापसे स्त्री रूप होजाता है सोआगे कहेंगे ॥ १५ ॥ इलावृत्त खंडमें पार्वतीजीकी दासि सहस्रोंस्त्रियां महादेवजीकी सेवाकरती हैं और महादेवजी भगवान की भक्ति करते हैं, चतुर्मूर्ति भगवान की संकर्षण नाम तमोगुण मूर्त्तिका

ओं नमोभगवतेमहापुरुषायसर्वगुणसंख्यानायानन्तायाव्यक्तायनमइति ॥१७॥ भजे भजन्यारणपादपंकजं भगस्यकृत्स्नस्यपरंपरायणम् । भक्तेष्वलंभावितभूतभावनं भयापहंत्वाभवभावमीश्वरम् ॥ १८ ॥ नयस्यमायागुणचित्तवृत्तिभिर्निरीक्षतो ह्यण्वपिदृष्टिरज्यते । ईशेयथानोऽजितमन्युरंहसांकस्तं नमन्येतजिगीषुरात्मनः ॥१९ असद्दृशोयःप्रतिभातिमायया क्षीवेवमध्वासवताम्रलोचनः । ननागवध्वोऽर्हण ईशिरेह्रिया यत्पादयोःस्पर्शनधर्षितेन्द्रियाः ॥ २० ॥ यमाहुरस्यस्थितिजन्मसंयमं त्रिभिर्विहीनंयमनन्तमृषयः । नवेदसिद्धार्थमिवक्वचित्स्थितं भूमण्डलंमूर्धसहस्रधामसु ॥ २१ ॥ यस्याद्यआसीद्गुणविग्रहोमहान्विज्ञानधिष्ण्योभगवानजःकिल यत्संभवोऽहंत्रिवृता स्वतेजसा वैकारिकंतामसमैन्द्रियंसृजे ॥ २२ ॥ एतेवयंयस्य वशेमहात्मनःस्थिताः शकुन्ताइवसूत्रयन्त्रिताः । महानहं वैकृततामसेन्द्रियाः सृजामसर्वेयदनुग्रहादिदम् ॥ २३ ॥ यन्निर्मितां कर्ह्यपिकर्मपर्वणींमायां जनोऽयंगुणसर्गमोहितः । नवेदनिस्तारणयोगमंजसातस्मै नमस्तेविलयोदयात्मने ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भा० म० पंचमस्कंधे इलावृतखण्डे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ तथाचभद्रश्रवानामधर्मसुतस्तत्कुलपतयः पुरुषाभद्राश्ववर्षेसाक्षाद्भगवतोवासुदेवस्यप्रियांतनूंधर्ममयींहयशीर्षाभिधानांपरमेणसमाधिना सन्निधाप्येदमभिगृणन्तउपधावंति ॥ १ ॥ भद्रश्रवस ऊचुः ॥ ओंनमोभगवतेधर्मा

कि जिससे स्वयंआप उत्पन्न हुये हैं भगवान महादेवजी समाधि रूपकर इस मंत्रसे जाप करते हैं ॥ १६ ॥ महादेवजी बोलेकि—सम्पूर्ण गुणोंके प्रकाशक, अनंत अव्यक्त, महापुरुष भगवान आपको मै नमस्कार करताहूं ॥१७॥हेभजन योग्य भगवान ! सम्पूर्ण ऐश्वर्यादिकों के आश्रय, अपने भक्तों को दयालु रूपका दर्शन देनेवाले,भूतोंके पालक,अभक्तोंको संसारके देनेवाले ऐसे परमेश्वर आपका मैं भजन करताहूं ॥१८॥ सृष्टि को नियम में रखनेंके हेतु आप सदैव देखाकरतेहो तौभी आपकी दृष्टि, जिसभांति क्रोधका वेग जीतनेको असमर्थ हम लोगोंकी दृष्टि लुप्तहोजाती है ऐसे बिषयों और इन्द्रियों से कुछभी लुप्त नहीं होता,इस हेतु मुक्ति की इच्छा वाले कौन पुरुष आपका भजन नकरे १९ दुष्ट दृष्टि वाले पुरुष को, आप उन्मत्त की सदृश भयंकर और मदिरा तथा आसवसे लाल नेत्र हो ऐसे माया से ज्ञात होते हो क्यों कि आपके चरण स्पर्श से कामातुर हुई नाग बधू लज्जा के वशीभूत हो आप का पूजन भी नहीं करसकतीं ॥ २०॥ वेद मंत्र आप को स्थित्यादिक से रहित और अनंत कहते हैं आप के सहस्र मस्तकों में से किसी एक मस्तकपर यह पृथ्वी मण्डल सरसों के सदृश रक्खा हुआ है, कि जिस की आप को सुधि भी नहीं है ॥२१॥ महत्तत्व कि जिसका आश्रय सत्व गुण है वह आप का गुण के सम्बन्धके कारण उत्पन्न हुआ प्रथम देह है इस शरीर में से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं और मै ब्रह्माजी से उत्पन्न हो ।त्रिगुणात्मक अहंकार के, देवता, पंचभूत, और इन्द्री वर्ग को सृजता हूं ॥ २२ ॥ हम सब, महत्तत्व, अहंकार, देवता, भूत इन्द्री जैसे पक्षी डोरी से बंध कर पराधीन रहते हैं ऐसे यह सब बंधकर आप के आधीन रह आपकी कृपा से समस्त सृष्टि को रचते है ॥ २३ ॥ संसार में आसक्त हुआ यह मनुष्य जिन की बनाई हुई और कर्मों को प्राप्त करनें बाली माया को सहज जानजाता है परन्तु उस के पार करने के यत्न को नहीं जानता उन आप को कि जो बिश्व को रचनें बाले और प्रलय करने बाले हो मैं दंडवत करता हूं ॥ २४ ॥

इति श्रीमदभा० महा० पंचम० सरला भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि भद्राश्व खंडमें धर्म का पुत्र भद्रश्रवा है उसके बंशज लोग भगवान की हयग्रीव मूर्ति को एकाग्रभाव से हृदय में स्थापित कर इस मंत्र का जप करते हैं ॥ १ ॥ भद्रश्रवा

यात्मविशोधनायनमइति ॥ २ ॥ अहोविचित्रंभगवद्विचेष्टितंघ्नंतंजनोऽयंहिमिषन्नपश्यति। ध्यायन्नसद्यर्हिविकर्मसेवितुं निर्हृत्यपुत्रंपितरंजिजीविषति॥ ३॥ वदंतिविश्वंकवयःस्मनश्वरंपश्यंतिचाध्यात्मविदोविपश्चितः। तथाऽपिमुह्यन्तितवाऽजमायया सुविस्मितंकृत्यमजंनतोऽस्मितम्॥ ४ ॥ विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्मतेह्यकर्तुरङ्गीकृतमप्यपावृतः। युक्तंनचित्रंत्वयिकार्यकारणेसर्वात्मनिव्यतिरिक्तेचवस्तुतः॥ ५ ॥ वेदान्युगान्तेतमसातिरस्कृतान्रसातलाद्योनृतुरंगविग्रहः। प्रत्याददेवैकवयेऽभियाचतेतस्मैनमस्तेऽवितथेहितायइति ॥ ६ ॥ हरिवर्षेचापिभगवान्नरहरिरूपेणास्तेतद्रूपग्रहणनिमित्तमुत्तरत्राभिधास्ये। तद्दयितंरूपंमहापुरुषगुणभाजनोमहाभागवतोदैत्यदानवकुलतीर्थीकरणशीलाचरितः प्रह्लादोऽव्यवधानानन्यभक्तियोगेनसहतद्वर्षपुरुषैरुपास्तेइदंचोदाहरति ॥७॥ ओंनमोभगवतेनरसिंहायनमस्तेजस्तेजसेआविराविर्भववज्रनखवज्रदंष्ट्रकर्माशयान्रंधयरंधयतमोग्रसग्रसओंस्वाहा।अभयमभयमात्मनिभूयिष्ठाःओंक्ष्रौम्॥८॥स्वस्त्यस्तुविश्वस्यखलःप्रसीदतांध्यायन्तुभूतानिशिवंमिथोधिया। मनश्चभद्रंभजतादधोक्षजेआवेश्यतांनोमतिरप्यहैतुकी ॥ ९ ॥ माऽगारदारात्मजवित्तबन्धुषुसङ्गोयदिस्याद्भगवत्प्रियेषुनः। यःप्राणवृत्त्यापरितुष्टआत्मवान्सिध्यत्यदूरान्नतथेन्द्रियप्रियः ॥ १० ॥ यत्सङ्गलब्धंनिजवीर्यवैभवंतीर्थं

बोले कि ! हृदय को शुद्ध करनेवाले धर्म रूप भगवान आपको हमारा नमस्कार है ॥२॥ भगवान की लीला बडीही विचित्र है कि जो अपने को मारने वाले काल को देखता हुआ भी नहीं देखता क्यों कि यह तुच्छ विषय सुख सेवन के हेतु सर्वत्र पाप काही ध्यान किया करता है, बालक या बूढ़ा जो मर जाता है उसका दाह कर उस के द्रव्य से आप जीवन की इच्छा करता है ॥ ३ ॥ विवेकी लोग तो शास्त्र से इस सृष्टि को नाशवान कहते हैं और योगी इसको समाधि में साक्षात् नाशवान देखते हैं हेअज! तौभी यह लोग आपकी मायासे मोहित होजाते हैं आपकी बड़ाही विचित्र लीला है इसहेतु शास्त्रादि श्रम को त्याग कर अजन्मा आपको मैं नस्कार करताहू ॥४॥ आप अकर्त्ता और आवरण रहित होनेपर भी सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति और प्रलयका कार्य करतेहो, क्योंकि मायाको धारण करके सर्वस्वरूप और सर्वकार्यके कर्त्ता आपमें यह कुछ विचित्र नहीहै ॥ ५ ॥ प्रलयकालमें तमरूप असुर वेदोंको हरकर लेगया, तब हयग्रीव मूर्ति धारणकर वेदोंको, स्तुति करतेहुये ब्रह्मा को दिया उन सत्यसंकल्प आपको नमस्कारहै ॥ ६ ॥ हरिवर्षखण्डमें भगवान नृसिंहरूप करके रहतेहैं कि जिसरूपके ग्रहण करनेका कारण आगे सातवें स्कन्धमें कहेंगे महापुरुषोंके गुणोंका पात्र महाभागवत दैत्य दानवकुलके पवित्र करनेवाले, शील आचरणवान प्रहलादजी एकाग्र चित्त हो अनन्य भक्तियोगसे उस खण्डके पुरुषों सहित अपने प्यारे नृसिंहरूप का उपासना करतेहुये इस मंत्रका जप करते हैं ॥७॥ तेजकेभी तेजरूप नृसिंह भगवानको मैं प्रणाम करताहूं हे वज्रसे नख तथा वज्रसी डाढ़ोंवाले! प्रगटहोओ प्रगटहोओ कर्म बासनाओंको जलादो जलादो अज्ञानको नाशकर आत्मामें अभयरूपहो अभयरूपहो ओं स्वाहा ओं क्ष्रौं यह बीज मन्त्रहै ॥ ८ ॥ हेभगवन्! विश्व का कल्याणहो, दुष्ट अपनी क्रूरताछोड़ें, प्राणी परस्पर मंगलका ध्यानकरें और मनसे उपशम इत्यादि का सेवनकरें और हमारी तथा सब मनुष्यों की बुद्धि निष्काम होकर भगवान में लगे ॥ ९ ॥ हमारा संग स्त्री, पुत्र, घर, द्रव्य और सुहृदोंमें न हो यदि हो तो भगवद्भक्तोंके साथहो क्योंकि केवल आहारसे संतोष रखनेवाला ज्ञानी जैसा तत्कालही सिद्ध होजाताहै वैसा इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाला नहींहोता ॥ १० ॥ गङ्गा आदिक तीर्थ तो बारम्बार स्नान करनेवाले मनुष्योंके दैहिक

मुहुःसंस्पृशतांहिमानसम् । इत्यजोऽन्तःश्रुतिभिर्गतोऽङ्गजंकोवैनसेवेतमुकुन्दवि-
क्रमम् ॥ ११ ॥ यस्यास्तिभक्तिर्भगवत्यकिंचनासर्वैर्गुणैस्तत्रसमासतेसुराः । हरावभ
भक्तस्यकुतोमहद्गुणामनोरथेनासतिधावतोबहिः ॥ १२ ॥ हरिर्हिसाक्षाद्भगवा
ञ्छरीरिणामात्माझषाणामिवतोयमीप्सितम् । हित्वामहांस्तंयदिसज्जतेगृहेतदाम-
हत्त्वंवयसादम्पतीनाम् ॥ १३ ॥ तस्माद्रजोरागविषादमन्युमानस्पृहाभयदैन्याधि
मूलम् । हित्वागृहंसंसृतिचक्रवालंनृसिंहपादंभजताऽकुतोभयमिति ॥ १४ ॥ केतु
मालेऽपिभगवान्कामदेवस्वरूपेणलक्ष्म्याः प्रियचिकीर्षयाप्रजापतेर्दुहितृणांपुत्राणां
तद्वर्षपतीनांपुरुषायुषाऽहोरात्रपरिसंख्यानानां यासांगर्भामहापुरुषमहास्त्रतेजसो
द्वेजितमनसांविध्वस्ताव्यसवःसंवत्सरांतेविनिपतन्ति ॥ १५ ॥ अतीवसुललित
गतिविलासविलसितरुचिरहास लेशावलोकलीलया किंचिदुत्तम्भितसुंदरभ्रूम-
ण्डलसुभगवदनारविंदश्रियारमांरमयन्निन्द्रियाणिरमयते ॥ १६ ॥ तद्भगवतोमाया
मयंरूपंपरमसमाधियोगेनरमा देवीसंवत्सरस्यरात्रिषुप्रजापतेर्दुहितृभिरुपेताऽह-
स्सुचतद्भर्तृभिरुपास्ते इदंचोदाहरति ॥ १७ ॥ ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ओंनमोभगवतेहृषी
केशायसर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मनेआकूतीनां चित्तीनांचेतसां विशेषाणांचाधि
पतयेषोडशकलायच्छन्दोमयायान्नमयायामृतमयायसर्वमयायसहसे ओजसेबलाय
कांतायकामायनमस्तेउभयत्रभूयात् ॥ १८ ॥ स्त्रियोव्रतैस्त्वाहृषिकेश्वरंस्वतोह्याारा

मलकोही दूरकरतेहैं परन्तु भगवद्भक्तोंसे प्राप्तहुई भगवत्कथा" कि जिसका असाधारण प्रभाव है केवल श्रवण द्वारा प्राप्तहोनेसे मनके मलको नाश करती है इससे हेमुकुन्द! तुम्हारे प्रतापको कौन नहीं सेवन करेगा ॥ ११ ॥ जिसकी ईश्वरमें निष्काम भक्तिहै उसमें सर्व गुणयुक्त देवता नित्यही वास करतहैं और जो हरिभक्त नहींहैं और मनोरथ बांधकर झूंठे बिषयोंकी ओर दौड़ताहै उसमें गुण, कहांसे आवे ॥ १२ ॥ जैसे मत्स्योंका जलही प्यारा आत्माहै ऐसेही प्राणियों के भगवान प्यारे आत्माहैं उनहरिको छोड़ लोक प्रसिद्ध मनुष्यभी घरमें आसक्त होजाय तो उसका महत्व भी पुरुषोंका बड़प्पन जैसे अवस्थामात्र से गिनाजाताहै वैसाही है ॥ १३॥ इससे तृष्णा, राग, द्वेष क्रोध, अभिमान, इच्छा, और भयके देनेवाले जन्म मरणादिकके कारणरूप घरको छोड़ अभयदाई नृसिंहजीके चरणोंको भजो ॥ १४ ॥ केतुमाल खण्डमें भगवान लक्ष्मीजी तथा प्रजापति संवत्सर कन्या (रात्रिके अभिमानी देवता) और पुत्र (दिवसके अभिमानी, देवता) के प्रियके हेतु कामदेव स्वरूपसे विराजते हैं जितनी संख्या सौवर्षके अहोरात्रकीहै उतनीही संख्या प्रजापति के पुत्र और कन्याओंकी (अर्थात् ३६००० हजार) है इन प्रजापतिकी कन्याओंकेगर्भ वर्षके अंत में भगवानके चक्रके तेजसे हत होकर निष्प्राण होजाते हैं इससे वहांकी संख्या अधिक नहीं होने पाती ॥ १५ ॥ अति ललित गति और विलाससे सुन्दर मन्दमुसकान सहित चितवनकी लीलाके हेतु कुछ एक ऊंच भ्रुकुटी मंडलसे बढ़ीहुई मुखारविन्दकी शोभासे लक्ष्मीजीको रमण करातेहुये अपनी इन्द्रियों को तृप्त करतेहैं ॥ १६ ॥ लक्ष्मीजी संवत्सरकी कन्या रात्रि और उनके भर्त्ता दिनको साथ ले परम समाधि योगसे भगवान के मायामय रूपकी उपासना करतीं और इस मन्त्रको जपतीहैं ॥ १७ ॥ ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं इन्द्रियोंके ईश्वर, उत्तम पदार्थोंसे जिनकास्वरूप लखाहै ऐसे, ज्ञानेंद्री, कर्मेंद्री चित्त और इनके विषयोंके अधिपति, ग्यारह इन्द्री और पांच तन्मात्रा इन सोलह कलावाले, वेदानुसार कर्मसे उत्पन्न होनेके योग्य अन्नमय अमृतमय, सर्वमय ओज और बलके हेतु कांत कामदेव मूर्तिको नमस्कार है ॥ १८ ॥ आप जो इन्द्रियों के ईश्वर हैं उनका आराधन कर जो स्त्रियाँ आपके

न्यलीकेपतिमाशासतेऽन्यम् । तासांनतेवै परिपान्त्यपत्यंप्रियंधनायूंषियतोऽस्वतं-
त्राः ॥ १९ ॥ सवैपतिःस्यादकुतोभयःस्वयंसमंततःपातिभयातुरंजनम् । सएकएवे
तरथामिथोभयंनैवात्मलाभादधिमन्यतेपरम् ॥ २० ॥ यातस्यतेपादसरोरुहार्हणं
निकामयेत्साऽखिलकामलम्पटा । तदेवरासीप्सितमीप्सितोऽर्चितोयद्भग्नयाच्ञा
भगवन्प्रतप्यते ॥ २१ ॥ मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादयस्तप्यन्तउग्रंतपऐन्द्रियेधियः ।
ऋतेभवत्पादपरायणान्नमां विंदन्त्यहंत्वद्धृदयायतोऽजित ॥ २२॥ सत्वंममाप्यच्युत
शीर्ष्णिवन्दितंकराम्बुजंयत्त्वदधायिसात्वताम् । बिभर्षिमांलक्ष्मवरेण्यमायया क
ईश्वरस्येहितमूहितुंविभुरिति ॥ २३ ॥ रम्यकेचभगवतःप्रियतमंमात्स्यमवताररूपं
तद्वर्षपुरुषस्यमनोःप्राक्प्रदर्शितम् । सइदानीमपिमहताभक्तियोगेनाराधयंतीदंचो
दाहरति ॥ २४ ॥ ओं नमोभगवतेमुख्यतमायनमःसत्त्वायप्राणायौजसेसहसेबलाय
महामत्स्यायनमइति ॥ २५ ॥ अन्तर्बहिश्चाखिललोकपालकैरदृष्टरूपोविचरस्यु
रुस्वनः । सईश्वरस्त्वंयइदंवशेनयन्नाम्नायथादारुमयींनरःस्त्रियम् ॥ २६ ॥ यंलोक
पालाःकिलमत्सरज्वराहित्वाबतन्तोऽपिपृथक्समेत्यच । पातुंनशेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः
सरीसृपंस्थाणुयदत्रदृश्यते ॥ २७ ॥ भवान्युगान्तार्णवऊर्मिमालिनि क्षोणीमिमामो
षधिवीरुधांनिधिम् । मयासहोरुक्रमतेऽजओजसातस्मैजगत्प्राणगणात्मनेनमइति

अतिरिक्त दूसरे पतिकी आशा करतीहैं, उन स्त्रियोंके पुत्र, धन, सुहृदोंकी रक्षा वह दूसरे पति नहीं करसकते; क्योंकि वह तो आप अपराधीहैं ॥ १९ ॥ पतितो वहीहै कि जो भयातुरकी चारोंओर से रक्षाकरै हेमहाराज ! ऐसे पतितो एक आपहीहो जिसका सुख दूसरे के आधीन है उसको स्वतन्त्रता नहींहै और जहां स्वतन्त्रता नहीं वहां भय है और आप तो अपने आत्मलाभसे दूसरे किसीको अधिक नहींमानते ॥ २० ॥ जो स्त्री आपके चरणारविंदके पूजनकी कामनाकर फलकी कामना नहींकरती उसे सब कामनायें प्राप्त होती है और जो फलके हेतु आपकी पूजा करतीहै तो आप उसको वही फल देतेहो किन्तु फल भोगनेके अनन्तर उस स्त्रीको दुःख प्राप्त होताहै २१ हेईश ! जिनकी बुद्धि इन्द्रियों के सुखमें लगी है ऐसे ब्रह्मादिक, सुर, असुर मेरीप्राप्ति के लिये उग्रतप करते हैं परन्तु आपके चरणारविंद की शरण बिना वह मुझे नहीं पा सकते, क्योंकि मेरा हृदय तुम्हीं में लगाहुआ है ॥ २२ ॥ हेअच्युत ! जिसहस्त कमलको आप भक्तोंके माथेपर धरतेहो तथा जिसकी साधुस्तुति करते हैं और जो सबकामनाओं का देनेवाला है उसीहस्त कमलको मेरे शिर परभी धरो हेवरेन्द्र ! आप मुझको वक्षस्थल में धारण करते हो और मेराआप तिरस्कार भी नहीं करते तौभी भक्तोंकी अपेक्षा मुझपर आपकी कृपा बहुतही न्यूनज्ञात होती है, हेईश्वर ! आपकी चेष्टाको कोई नहीं जानसकता ॥ २३ ॥ रम्यक खंडमें भगवान अपने अतिप्यारे मत्स्यावतारके रूपसे विराजते हैं कि जोरूप उसखंड के प्रधान पुरुषको पहिले दिखाया गयाथा वेराजा मनुजी इस समय बड़े भक्तियोग से उस रूपका आराधन कर इस मंत्रको जपते हैं ॥ २४ ॥ सत्वगुण, प्रधान, प्राणरूप, और देह, ओज व इन्द्रियों के बलरूप मत्स्यमूर्त्ति भगवानको मैं नमस्कार करताहूं ॥ २५ ॥ जिनके स्वरूपको लोकपालों ने नहीं देखा और जिनका नाद वेदरूप है तथा जोबाहर भीतर विराजमान हैं और जैसे मनुष्य कठपुतलीको अपने आधीन रखते हैं वैसही विधिनिषेध रूप बचनों से सम्पूर्ण सृष्टिको जोअपने वशमें रखता है, वे ईश्वर आपही हो ॥ २६ ॥ मत्सर रूप ज्वरवाले लोक पालोंने तुम्हें छोड़कर न्यारे २ वा मिलकर विश्वपालन का यत्नकिया, परन्तु दोपांव वाले (मनुष्य) चार पांववाले (पशुआदि) स्थावर, जंगम जो इस सृष्टिमें देखपड़ते हैं उनमें किसी कीभी वह रक्षा न करसके अर्थात् आपही सबके पालक और ईश्वरहो ॥ २७ ॥ जिसमें बड़ी २

॥ २८ ॥ हिरण्मयेऽपिभगवान्निवसतिकूर्मतनुंबिभ्राणस्तस्यतत्प्रियतमांतनुमर्यमा
सहवर्षपुरुषैःपितृगणाधिपतिरुपधावति । मंत्रमिमंचानुजपति ॥ २९ ॥ ओंनमो
भगवतेअकूपारायसर्वसत्त्वगुणविशेषणायानुपलक्षितस्थानायनमोवर्ष्मणेनमोभूम्ने
नमोनमोऽवस्थानायनमस्ते ॥ ३० ॥ यद्रूपमेतन्निजमाययाऽर्पितमर्थस्वरूपंबहुरूप
रूपितम् । संख्यानयस्यास्त्ययथोपलम्भनात्तस्मैनमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥ ३१ ॥
जरायुजंस्वेदजमण्डजोद्भिदंचराचरंदेवर्षिपितृभूतमैन्द्रियम् । द्यौःखंक्षितिःशैल
सरित्समुद्रद्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेयएकः ॥ ३२ ॥ यस्मिन्नसंख्येयविशेषनामरूपाकृतौ
कविभिःकल्पितेयम् । संख्याययातत्त्वदृशाऽपनीयतेतस्मैनमःसांख्यनिदर्शनायते
इति ॥ ३३ ॥ उत्तरेषुचकुरुषुभगवान्यज्ञपुरुषःकृतवराहरूपआस्तेतंतुदेवी हैषाभूः
सहकुरुभिरस्खलितभक्तियोगेनोपधावति । इमांचपरमामुपनिषदमावर्तयति ३४॥
ओंनमोभगवतेमंत्रतत्त्वलिंगाययज्ञक्रतवेमहाऽध्वरावयवायमहापुरुषायनमः कर्म
शुक्लाय त्रियुगायनमस्ते ॥ ३५ ॥ यस्यस्वरूपंकवयोविपश्चितोगुणेषुदारुष्विवजात
वेदसम् । मथ्नन्तिमथ्नामनसा दिदृक्षवोगूढंक्रियाऽर्थैर्नमईरितात्मने ॥ ३६ ॥ द्रव्य
क्रियाहेत्वयनेशकर्तृभिर्मायागुणैर्वस्तुनिरीक्षितात्मने । अन्वीक्षयाऽङ्गातिशयात्म

लहरें उठरही हैं ऐसे प्रलय कालके समुद्र में औषधि; लतादिक की निधिरूप इस भूमिको और मुझे भी ले आप बड़े वेगसे बिचरेथे उन जगतके प्राणरूप आपके मत्स्य रूपको नमस्कार है ॥ २८॥ हिरण्यमय खंडमें भगवान कच्छप मूर्त्ति धारण करके बिराजते हैं इस प्यारी मूर्त्तिको पित्रोंके राजा अर्य्यमा उसखंड के मनुष्योंके संग आराधनकर इस मंत्रको जपते हैं ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण सतोगुण स्वरूप तथा अज्ञात स्थान वाले कच्छप मूर्त्ति आपको मैं नमस्कार करताहूं जिनका कालसे नाश नहीं होता तथा सर्वगत, सर्वाधार आपको बारंबार मैं नमस्कार करताहूं ॥ ३० ॥ अपनी मााया से प्रकाशित और अनेकरूपों से निरूपणकी हुई यह पृथ्वी तथा सम्पूर्ण देखने योग्य पदार्थ आपकेही स्वरूप हैं आप से पृथक नहीं, और असत्य होने परभी देखनेके कारण इसकी संख्या मृगतृष्णाके जलकी सदृश नहीं होसकती इस हेतु यह अपार संसार जिसका रूप है उन आपको मैं दण्डवत करताहूं ॥ ३१ ॥ जरायुज, अण्डज, स्वेदज, चर, अचर, देवता, ऋषि पितर, भूत, इन्द्री, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, नदी, समुद्र द्वीप, ग्रह नक्षत्र यह सब नाम रूप-धारी एक आपही हो ॥ ३२ ॥ जिसमें अनन्त भेदवाले नाम, रूप और जातियां हैं ऐसे आपके रूपमें कपिल आदि ने चौबीस तत्त्व आदिकी संख्या कल्पना की हैं और जो संख्या तत्त्वज्ञान से मिटजाती हैं उस तत्त्वज्ञानरूप आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ३३ ॥ उत्तरकुरुखण्ड में भगवान यज्ञ पुरुष बाराहरूप धारण करके रहते हैं उन बाराहरूप को यह पृथ्वी वहांके लोगों के साहित अखण्डभक्ति क्रियायोग से भजती है और इन उपनिषद के वाक्यों का उच्चारण करती है ॥ ३४ ॥ मन्त्रों से तत्त्व करके जानेजाते यज्ञ रूप क्रतु रूप महायज्ञ रूप कर्मों से शुद्ध, तीनों गुण में प्रगट होनेवाले महापुरुष भगवान आपको मेरा नमस्कार है ॥ ३५ ॥ जिस के स्वरूप को निपुण कवि मंथनरूप साधन द्वारा, काठमें से अग्नि सदृश, विचार के साधन रूप मन द्वारा शरीर और इन्द्री आदि कार्य पदार्थोंमें से खोजते हैं और जो, कर्म और कर्म के फलों से अप्रकाशित आपको देखनेंकी इच्छा करते हैं ऐसे मंथन में जिन्हों ने अपना स्वरूप प्रगट किया उन परमेश्वर आपको मैं नमस्कार करती हूं ॥३६॥ देह, काल, विषय, इन्द्रिय व्यापार इन्द्रियों के देवता और अहंकार इन में माया के कार्यों से जिन का स्वरूप देखने मे आता है, और विचार यम नियमादिक से

बुद्धिभिर्निरस्तमायाकृतयेनमोनमः ॥ ३७ ॥ करोतिविश्वस्थितिसंयमोदयंयस्ये-प्सितंनेप्सितमीक्षितुर्गुणैः । मायायथाऽयोभ्रमतेतदाश्रयंग्राव्णोनमस्तेगुणकर्मसाक्षिणे ॥ ३८ ॥ प्रमथ्यदैत्यंप्रतिवारणंमृधेयोमांरसायाजगदादिसूकरः कृत्वाऽग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतःक्रीडन्निवेभःप्रणताऽस्मितंविभुमिति ॥ ३९ ॥

इतिश्रीमद्भा०म०पञ्चम०भुवनकोशवर्णनंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ किंपुरुषेवर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजंसीताऽभिरामं रामंतच्चरणसन्निकर्षाभिरतः परमभागवतोहनुमान्सह किंपुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते ॥१॥ आर्ष्टिषेणेनसह गन्धर्वैरनुगीयमानांपरमकल्याणींभर्तृभगवत्कथां समुपशृणोतिस्वयंचेदंगायति ॥ २ ॥ ओंनमोभगवतउत्तमश्लोकायनमआर्यलक्षणशीलव्रतायनम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकायनमः साधुवादनिकषणायनमोब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजायनमइति ॥ ३ ॥ यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकंस्वतेजसाध्वस्तगुणव्यवस्थम् । प्रत्यक्प्रशान्तंसुधियोपलम्भनं ह्यनामरूपंनिरहंप्रपद्ये ॥ ४ ॥ मर्त्यावतारस्त्विहमर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैवनकेवलंविभोः । कुतोऽन्यथास्याद्रमतःस्वआत्मनः सीताकृतानिव्यसनानीश्वरस्य ॥ ५ ॥ नवैसआत्माऽऽत्मवतांसुहृत्तमः सक्तस्त्रिलोक्यांभगवान्वासुदेवः । नस्त्रीकृतंकश्मलमश्नुवीतनलक्ष्मणंचापिविहातुमर्हति ॥ ६ ॥ नजन्मनूनंमहतोनसौभगंनवाङ्नबुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ।

निश्चयात्मक बुद्धि वाले जिन के रूपमें से माया के सम्बन्ध से उत्पन्न हुई आकृति को निकाल देते है ॥ ३७ ॥ आपके हेतु नहीं परन्तु प्राणियों के भोग के हेतु अपने इच्छित सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और संहार माया अपने गुणों से करती है यद्यपि माया जड़ है तौभी जैसे चुम्बक के आसपास लोहा आप से फिरा करता है वैसेही आप के निकट होने से यह माया समस्त क्रियायें किया करती है इस हेतु माया के गुणों तथा प्राणियों के साक्षी आप को नमस्कार करती हूं ॥ ३८ ॥ जो आप सृष्टि के कारण रूप, बाराह मूर्ति धारण कर, पाताल से मुझे डाढ के अग्रभाग पर धर समुद्र से हाथी के सदृश निकले थे और हाथी के सदृश हिरण्याक्ष को सामनें आया देख खेलतेही खेलते मारडाला उनप्रभु आप को मैं प्रणाम करती हूं ॥ ३९ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० पंचम० सरला भाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि—किंपुरुष खंडमें लक्ष्मण के बड़ेभाई सीतापति, आदि पुरुष भगवान रामचन्द्रजी का, उनके चरणों के निकट रहने वाले महाभागवत श्रीहनुमानजी वहांके निवासियों समेत अखंड भक्तियोग से भजन करते हैं ॥ १ ॥ आर्ष्टिषेण के संग गन्धर्वों से गाई जाती आनंद मय, अपने स्वामी भगवान रामचन्द्रजी की कथा सुनते हैं और आप इस मंत्रका जाप करते हैं ॥ २ ॥ उत्तम यश, उत्तम शील, व्रत, लक्षणवाले, उपशिक्षित आत्मा वाले, लोक का अनुकर्ण करने वाले, साधुता की प्रसिद्धि के कसौटी रूप स्थान, ब्रह्मण्य देव, महा पुरुष भगवान महाराज रामचन्द्रको बारंबार मेरा नमस्कार है ॥ ३ ॥ वेदांत प्रसिद्ध, विशुद्ध अनुभवरूप, प्रशांत, अपने तेजसे जाग्रदादिक अवस्था मिटानेवाले, दृश्यसे न्यारे, नाम, रूपरहित, सुंदरबुद्धि से जानने में आते और अहंकार रहित उस परब्रह्मको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ४ ॥ रामचन्द्रजी का मनुष्य अवतार केवल असुरोंके वधके हेतु नहीं था बरन मनुष्योंको उपदेश देनेके हेतुभीथा कि स्त्री संगादि जनित दुःख दूरहोना महाकठिन है, नहीं तो अपने रूपमें रमण करने वाले सृष्टिके आत्मा भगवान को सीताजी के बिरहका दुःख कैसे होसकता है ॥ ५ ॥ धीरोंके आत्मा, सुहृदोंमें श्रेष्ठ भगवान रामचन्द्रजी त्रिलोकी में कहींभी आसक्त नहीं हुये थे इससे उनको स्त्री का दुःख न होना चाहिये और लक्ष्मण कोभी न छोड़ना चाहिये परन्तु यह सब लोकोप देसके हेतु हुआथा ॥ ६ ॥ बड़े

तैर्यद्विसृष्टानपिनोवनौकसश्चकार सख्येवतलक्ष्मणाग्रजः ॥ ७ ॥ सुरोऽसुरोवाऽ
प्यथवानरोऽनरः सर्वात्मनायःसुकृतज्ञमुत्तमम् । भजेतरामंमनुजाकृतिंहरिंयउत्त
राननयत्कोसलान्दिवमिति ॥ ८ ॥ भारतेऽपिवर्षेभगवान्नरनारायणाख्य आकल्पा
न्तमुपचितधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्योपशमोपरमात्मोपलम्भनमनुग्रहायात्मवतामनुकम्प
यातपोऽव्यक्तगतिश्चरति ॥९॥ तंभगवान्नारदोवर्णाश्रमवतीभिर्भारतीभिः प्रजाभि
र्भगवत्प्रोक्ताभ्यां सांख्ययोगाभ्यां भगवदनुभावोपवर्णनं सावर्णेरुपदेक्ष्यमाणःपर
मभक्तिभावेनोपसरतिइदंचाभिगृणाति ॥ १० ॥ ओंनमोभगवतेउपशमशीलायो
परतानात्म्याय नमोऽकिंचनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगु
रवे आत्मारामाधिपतयेनमोनमइति ॥ ११ ॥ गायतिचेदम् । कर्ताऽस्यसर्गादिषु
योनबध्यतेनहन्यतेदेहगतोऽपि दैहिकैः । द्रष्टुर्नदृग्यस्यगुणैर्विदूष्यते तस्मैनमोऽस
क्तविविक्तसाक्षिणे ॥ १२ ॥ इदंहियोगेश्वरयोगनैपुणं हिरण्यगर्भोभगवान्जगाद
यत् । यदन्तकालेत्वयिनिर्गुणेमनोभक्त्या दधीतोज्झितदुष्कलेवरः ॥ १३ ॥ यथै
हिकामुष्मिककामलम्पटः सुतेषुदारेषुधनेषुचिन्तयन् । शंकेतविद्वान्कुकलेवरात्य
याद्यस्तस्य यत्नःश्रमएवकेवलम् ॥ १४ ॥ तन्नःप्रभोत्वंकुकलेवरार्पितां त्वन्मयया
ऽहंममतामधोक्षज । भिन्द्यामयेनाशुवयं सुदुर्भिदांविधेहियोगं त्वयिनःस्वभाव
मिति ॥ १५ ॥ भारतेप्यस्मिन्वर्षेसरिच्छैलाःसन्तिवहवो मलयोमङ्गलप्रस्थो
मैनाकस्त्रिकूटऋषभः कूटकःकोल्लकःसह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलोवेंकटोमहे
न्द्रो वारिधारोविन्ध्यःशुक्तिमानृक्षगिरिःपारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटोगोवर्धनो रैवत-

कुलमें जन्महोने से, सुंदररूप, मधुरबचन, उत्तमबुद्धि अथवा श्रेष्ठ जातिसे भगवान प्रसन्न नहीं होते, क्योंकि इन सम्पूर्ण गुणोंसे रहित हम बनरोंकोभी रामचन्द्रजीने अपनासखा बनाया ॥ ७ ॥ सुर, असुर, बानर या नरजो चाहिये परन्तु उसे चाहिये कि भक्तोंके थोड़े भजनको बहुतमाननेवाले, सब अयोध्या बासियोंको स्वर्गमें लेजानेवाले, मनुष्यावतार श्रीरामचन्द्रजीका भजन सब प्रकारसे करें ॥ ८ ॥ इसभरतखण्डमें नरनारायण भगवान अप्रगट रूपमें विराजते हैं दयाके हेतुबढ़ेहुये धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, उपशम इनसे परमात्माकी प्राप्तिको देनेवाले, भक्तोंपर अनुग्रहके लिये कल्पपर्यन्त तपकरते हैं ॥ ९ ॥ भगवद्भक्त नारदजी भगवान के कहे सांख्य योगका सावर्णि मनुको उपदेश देतेहुये वर्णाश्रमधर्मवाली प्रजाके साथ बड़ीभक्तिसे नरनारायणके इसमन्त्रका जपकरते हैं ॥ १० ॥ प्रशांत, निरहंकार विरागी मनुष्योंके धनरूप, ऋषियोंमें श्रेष्ठ परमहंसोंके श्रेष्ठगुरु, और ज्ञानियोंके अधिपति नरनारायण भगवानको मैं बारम्बार प्रणाम करताहूं ॥ ११ ॥ इस मन्त्रका जप करते इसभांति स्तुति करते हैं जो स्वयं इस सृष्टिके आदिकर्त्ता होनेपरभी 'मैं कर्ताहूं, ऐसा अहंकार नहींरखते शरीर में रहनेपर भी क्षुधा तृषा इत्यादिक देहिक धर्मोंसे पराभव नहींपाते द्रष्टा होनेपरभी दृष्टिगुणोंसे दूषित नहींहोती उन आसक्ति रहित, विशुद्ध सबके साक्षी परमेश्वरको मैं प्रणाम करताहूं ॥ १२ ॥ हेयोगेश्वर ! अन्तकालके समय इसअधम शरीरका अहंकार छोड़ आपके निर्गुण स्वरूपका ध्यानकरना यही ब्रह्माजीकी कहीहुई योग सम्बन्धी विचक्षणताहै ॥ १३ ॥ इसलोक और परलोकके कामों में लंपट, और स्त्री पुत्र, धन इत्यादिककी चिन्ता करनवाला मूढ मनुष्य जैसे अधम शरीरके मरनेसे डरताहै वैसेही जो विवेकी मनुष्य इस शरीरके मरनेसे डरताहै, तो उसकी विद्या इत्यादिक का उपाय केवल श्रमही है ॥ १४ ॥ अतएव हेप्रभु ! हेअधोक्षज ! आप हमको वह योगदेवें कि जिसके प्रभावसे हम इस अधम देहके आपकी मायासे कुत्सित अति दृढ़ अहन्ता और ममता को काटडालें ॥ १५ ॥ इस भारतखण्डमें नदी, पर्वत बहुतहैं मलय, मंगल प्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, कोल्लक, सह्य

का ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेङ्कटो महेन्द्रो वारिधारो विन्ध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिरिति चान्ये च शतसहस्रशः शैलास्तेषां नितम्बप्रभवा नदा नद्यश्च सन्त्यसंख्याताः ॥ १६ ॥ एतासामपो भारत्यः प्रजा नामभिरेव पुनन्तीनामात्मना चोपस्पृशन्ति ॥ १७ ॥ चन्द्रवशा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुङ्गभद्रा कृष्णा वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिन्धुरन्धः शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृती ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रुश्चन्द्रभागा मरुद्वृधा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः ॥ १८ ॥ अस्मिन्नेव वर्षे पुरुषैर्लब्धजन्मभिः शुक्ललोहितकृष्णवर्णेन स्वारब्धेन कर्मणा दिव्यमानुषनारकगतयो बह्व्य आत्मन आनुपूर्व्येण सर्वा ह्येव सर्वेषां विधीयन्ते यथावर्णविधानमपवर्गश्चापि भवति ॥ १९ ॥ योऽसौ भगवति सर्वभूतात्मन्यनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयने परमात्मनि वासुदेवेऽनन्यनिमित्तभक्तियोगलक्षणो नानागतिनिमित्ताऽविद्याग्रन्थिरन्धनद्वारेण यदा हि महापुरुषपुरुषप्रसङ्गः ॥२०॥ एतदेव हि देवा गायन्ति॥ अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः। यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः॥२१॥ किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतैर्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना। न यत्र नारायणपादपङ्कजस्मृतिः प्रमुष्टाऽतिशयेन्द्रियोत्सवात् ॥ २२ ॥ कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्क्षणायुषां भारतभूजयो वरम्। क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयान्त्यभ-

देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेंकटाचल, महेंद्र, वारिधार, विंध्याचल, शुक्तिमान, ऋक्षगिरि, पारियात्र द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, कुकुभ, नील, गोकामुख, इन्द्रकील, कामगिरि, यह तो मुख्यहैं, और भी दूसरे सेकड़ों सहस्रोंपर्वतहैं और इनके तटोंसे निकलीहुई भी असंख्य नदी और नदहैं १६ केवल नाम लेनेसेही पवित्र करनेवाली इन नदियोंके जलका स्पर्श भरतखण्ड निवासी देहसेभी करतेहैं ॥ १७ ॥ चन्द्रवशा ताम्रपर्णी अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावती, तुंगभद्रा, कृष्णा, वेणी, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा चर्मण्वती, सिंधु, अंध्र शोण यह दो नद, महानदी, वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मंदाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्र भागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी, व विश्वा यह बड़ी नदियां है॥१८॥भरतखंड में जन्म पाकर अपने किये हुए सात्त्विक,राजस,और तामस कर्मों के अनुसार देवता, मनुष्य और नरक सम्बन्धी नाना जन्म पाते हैं किंतु वर्णाश्रम के धर्म इसी खंड में है,और मोक्ष के हेतु पृथक्२ साधन और उन साधनों से मोक्ष भी इसी खण्ड में होती है॥१९॥ नाना योनियों में जन्म देनेवाले देहाभिमान छूट जाने पर सब भूतों के आत्मा भगवान कि जो रागादिकों से रहित, वाणीसे अगोचर और स्वाश्रय परमात्मा हैं उनमें भक्ति होती है यह मोक्ष भगवद्भक्तों के समागम सेही होती है ॥२०॥ देवता गण कहते हैं कि इन भारत वासियों ने किस पुण्य का साधन किया हैं कि भगवान इनपर आपही आप प्रसन्न हुए हैं क्यों कि बिना भगवत् कृपा के, भगवत् भक्ति के योग्य, मनुष्य जन्म किसी२ को इस भरत खंड में मिलता है कि जिस मनुष्य जन्म की हम केवल कामनाही किया करते हैं २१ दुष्कर तप व्रत दान और यज्ञ से हमें यह तुच्छ स्वर्ग मिला है इस स्वर्गमें नारायण के चरणार विंद का स्मरण नहीं बनता, इन्द्रियों को अति उत्सव मिलनेके कारण स्मरण नष्टहोगयाहै ॥२२॥ इस स्वर्ग को पाकर हम सब कल्प पर्यन्त जीयेंगे परन्तु फिर जन्म लेना पड़ेगा इस हेतु थोडीआयु पावें परन्तु भरत खण्ड में जन्म हो तो अति उत्तम हो क्यों कि इस में मनुष्य देह से क्षण मात्रमें

बंधंहरेः ॥ २३ ॥ नयत्रवैकुण्ठकथासुधापगा नसाधवोभागवतास्तदाश्रयाः । न-
यत्रयज्ञेशमखामहोत्सवाः सुरेशलोकोऽपिनवैससेव्यताम् ॥ २४ ॥ प्राप्तानृजातिं
त्विहयेचजन्तवो ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसंभृताम् । नवैयतेरन्नपुनर्भवायतेभूयो वनौ
काइवयान्तिबन्धनम् ॥ २५ ॥ यैःश्रद्धयाबर्हिषिभागशो हविर्निरुप्तमिष्टंविधिमन्त्र-
वस्तुतः । एकःपृथङ्नामभिराहुतोमुदा । गृह्णातिपूर्णःस्वयमाशिषांप्रभुः ॥२६॥ सत्यं
दिशत्यर्थितमर्थितोनॄणां । नैवार्थदोयत्पुनरर्थितायतः । स्वयंविधत्तेभजतामनिच्छता
मिच्छापिधानंनिजपादपल्लवम् ॥२७॥ यद्यत्रनःस्वर्गसुखावशेषितं स्विष्टस्यसूक्तस्य
कृतस्यशोभनम् । तेनाजनाभेस्मृतिमज्जन्मनःस्याद्वर्षेहरिर्यद्भजतांशंतनोति ॥२८॥
श्रीशुकउवाच ॥ जम्बूद्वीपस्यचराजन्नुपद्वीपानष्टौहैकउपदिशन्तिसगरात्मजैरश्वा
न्वेषणइमांमहींपरितो निखनद्भिरुपकल्पितान् ॥ २९ ॥ तद्यथास्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्ल
आवर्तनोरमणकोमन्दरहरिणः पांचजन्यः सिंहलोलंकेति ॥३०॥ एवंतवभारतोत्तम
जम्बूद्वीपवर्षविभागो यथोपदेशमुपवर्णितइति ॥ ३१ ॥

इतिश्रीमद्भा०पं०जम्बूद्वीपवर्णननामैकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ अतःपरंप्लक्षादीनां प्रमाणलक्षणसंस्थानतो वर्षविभागउपव
र्ण्यते ॥१॥ जम्बूद्वीपोऽयंयावत्प्रमाणविस्तारस्तावता क्षारोदधिनापरिवेष्टितो यथा
मेरुर्जम्ब्वाख्येन लवणोदधिरपिततो द्विगुणविशालेनप्लक्षाख्येनपरिक्षिप्तोयथापरिखा

अपने किये हुए कर्मों को छोड़ विवेकी पुरुष हरिपद को प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥ जिस लोक में भग
वान की कथा रूपी अमृत की नदी नहीं और भगवान की कथा के आश्रयी भगवद्भक्त तथा भग
वान के पूजनादिक का महोत्सव नहीं हैं तो ऐसा ब्रह्मलोक भी सेवन योग्य नहीं है ॥ २४ ॥ ज्ञान
क्रिया द्रव्य इनके समूह से पूर्ण मनुष्य जाति पाकर मोक्ष प्राप्ति का यत्न नहीं करते वह फिर बंधन
ही को प्राप्त होते हैं कि जैसे पक्षी बधिकसे छूटकर फिर उसीके बन्धन में आपड़ताहै ॥ २५ ॥
भरतखण्डके लोग बड़े भाग्यशाली हैं, क्योंकि उनके श्रद्धा से विधिमन्त्र और उन २ पदार्थ के भेद
से व अग्निमें देवताओं के अभिप्राय से, भागके अनुसार होते हुये और ' नमम ' ऐसे करके अ-
पने स्वामित्वसे पृथक कियेहुये पदार्थों को परब्रह्म किजो अद्वितीय होनेपरभी इन्द्रादिक पृथक २
नामों से कहने में आते हैं आप स्वयं पूर्णकाम होनेपरभी आनन्दपूर्वक ग्रहण करते हैं ॥ २६ ॥
भगवान से जिसवस्तुकी प्रार्थना कीजाय वह उसको देतेहैं; परंतु ऐसा करनेसे वह मुक्ति नहीं देते
क्योंकि एक पदार्थ मांगकर दूसराभी मांगनेकी सम्भावना है, और जो निष्कामभजन करते उनकी
इच्छापूर्ण करनेवाले भगवान अपने चरणपल्लव को देते हैं ॥ २७ ॥ हमारे कर्मानुसार स्वर्गसुख
भोगने में जोकुछ शेष रहगया है उसफलसे हमारा जन्महरिके स्मरण युक्त भरतखण्ड में हो
क्योंकि इस खण्ड के भक्तोंको भगवान अत्यन्त सुखदेते हैं ॥२८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा
परीक्षित ! कितने एक विद्वान कहते हैं कि जम्बूद्वीप के आठ उपद्वीप हैं, जिसकाल राजासगरके
पुत्र घोड़ा ढूंढनेकोगये और उन्होंने चारोंओर से भूमिको खोदा तब यह आठउपद्वीप हुये ॥२९॥
उनके नाम यह हैं स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मन्दरहरिण, पांचजन्य, सिंहल और
लंका ॥ ३० ॥ हेराजा परीक्षित ! मैंने आपसे यथायोग्य जम्बूद्वीपके खण्डों का विभागकहा॥३१॥

इतिश्री मद्भा० म० पंचम० सरलभाषाटीकायां एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि—अबप्लक्षद्वीपादिकों के प्रमाण तथा लक्षणद्वारा उसके खण्डोंके वि-
भागका वर्णन कियाजाता है ॥ १ ॥ यह जम्बूद्वीप लाखयोजन के विस्तारका है और लाखयोज-
नके क्षारसमुद्र से वेष्टित है जैसे सुमेरुद्वीपोंसे वेष्टित है और समुद्रभी अपने से विस्तारवाले प्लक्ष-

बाह्योपवनेन प्लक्षो जम्बूप्रमाणो द्वीपाख्याकरो हिरण्मय उत्थितो यत्राग्निरुपास्ते सप्त जिह्वस्तस्याधिपतिः प्रियव्रतात्मज इध्मजिह्वः स्वं द्वीपं सप्तवर्षाणि विभज्य सप्तवर्षनामभ्य आत्मजेभ्य आकलय्य स्वयमात्मयोगेनोपरराम ॥ २ ॥ शिवं यवसं सुभद्रं शान्तं क्षेममसृतमभयमिति वर्षाणि, तेषु गिरयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः ॥ ३ ॥ मणिकूटो वज्रकूट इन्द्रसेनो ज्योतिष्मान् सुपर्णो हिरण्यष्ठीवो मेघमाल इति सेतुशैलाः। अरुणा नृम्णाऽऽङ्गिरसी सावित्री सुप्रभाता ऋतम्भरा सत्यम्भरा इति महानद्यः यासां जलोपस्पर्शनाविधूतरजस्तमसो हंसपतंगोर्ध्वायनसत्याङ्गसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः सहस्रायुषो विबुधोपमसंदर्शनप्रजननाः स्वर्गद्वारं त्रय्या विद्यया भगवन्तं त्रयीमयं सूर्यमात्मानं यजन्ते ॥ ४ ॥ प्रत्नस्य विष्णोरूपं यत्सत्यस्य ऋतस्य ब्रह्मणः अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहीति ॥ ५ ॥ प्लक्षादिषु पञ्चसु पुरुषाणामायुरिन्द्रियमोजः सहो बलं बुद्धिर्विक्रम इति च सर्वेषामौत्पत्तिकी सिद्धिरविशेषेण वर्तते ॥ ६ ॥ प्लक्षः स्वसमानेनेक्षुरसोदेनावृतो यथा तथा द्वीपोऽपि शाल्मलो द्विगुण विशालः समानेन सुरोदेनावृतः परिवृङ्क्ते ॥ ७ ॥ यत्र ह वै शाल्मली प्लक्षायामा यस्यां वाव किल निलयमाहुर्भगवतश्छन्दःस्तुतः पतत्त्रिराजस्य सा द्वीपहूतये उपलक्ष्यते ॥ ८ ॥ तद्द्वीपाधिपतिः प्रियव्रतात्मजो यज्ञबाहुः स्वसुतेभ्यः सप्तभ्यस्तन्नामानि सप्तवर्षाणि व्यभजत् । सुरोचनं सौमनस्यं रमणकं देववर्षं पारिभद्रमाप्यायनमविज्ञातमिति ॥ ९ ॥ तेषु वर्षाद्रयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः । स्वरसः शतशृङ्गो वामदेवः कुन्दः मुकुन्दः पुष्पवर्षः सहस्रश्रुतिरिति ॥ अनु

द्वीपसे बाहरके बगीचेकी खाई केसदृश घिराहुआ है इसद्वीप में जामुनके समान सुवर्ण सापिलखन का वृक्ष है, उसीके नामसे इस द्वीपकानाम प्लक्षहुआ, इसवृक्षमें सातजीभवाले अग्निरहते हैं, इस द्वीपकाराजा, राजा प्रियव्रतका पुत्र अग्निजिह्व अपने द्वीपके सातभागकर उन्हीं भागों की सदृशनाम वालेअपने पुत्रोंको पृथक् २ राज्यभागदे आप आत्मयोग से उपरामको प्राप्तहुआ ॥ २ ॥ शिव, यवस सुभद्र, शांत, क्षेम, अमृत, और अभय, यही तो पुत्रों के नाम और यही खंडों के नाम है इन खण्डों में सातही पर्वत और सातही नदियां हैं ॥ ३ ॥ मणिकूट, बज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान, सुवर्ण, हिरण्यग्रीव और मेघमाल यह मर्यादा के पर्वत हैं, अरुणा, नृम्णा, आंगिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतंभरा व सत्यंभरा यह बड़ी नदियां हैं इस द्वीपमें हंस पतंग, ऊर्द्धायन और सत्यांग यह चारवर्णहैं, इन सबका रजोगुण और तमोगुण इन नदियोंके जलके स्पर्शसेही नष्ट होजाताहै, वहांके निवासियोंकी आयु हजारवर्षकी होतीहै इनकी उत्पत्ति और दिखावट देवताओं का सदृशहै यह लोग वेद त्रयीमय वैकुण्ठके द्वाररूप भगवान सूर्यनारायणकी उपासना करतेहैं और इस मन्त्रको जपतेहैं ॥ ४ ॥ पुराण पुरुष विष्णुके रूप सत्य, ऋति, ब्रह्म अमृत, मृत्यु, इनके अधिष्ठाता श्रीसूर्यनारायणकी हम शरण जातेहैं ॥ ५ ॥ प्लक्षादिक द्वीपोंके निवासियोंमें आयु इन्द्रियों की सामर्थ्य, ओज सह, बल, बुद्धि पराक्रम यह स्वभाविक सिद्धियां समान भावसे वर्त्ततीयहैं ६ जितने विस्तारवाले इक्षु रसके समुद्रसे प्लक्षद्वीप घिराहुआहै उसके बाहरभी उससमुद्रके दूने विस्तार का शाल्मलि द्वीपहै जो उतनेही विस्तार के मदिराके समुद्रसे घिराहुआहै ॥ ७ ॥ इस द्वीपमें प्लक्ष की सदृश शाल्मलि का वृक्षहै—कि जिसमें पक्षियोंके अधिपति गरुड़जी कि जो वेदसे परमेश्वरका स्तुति किया करतेहैं उनका स्थान कहतेहैं इस शाल्मलिके वृक्षसे इस द्वीपका नाम शाल्मलिहुआ ॥ ८ ॥ इस द्वीपका राजा, महाराज प्रियव्रतका पुत्र यज्ञबाहुहै इसने अपने सातोंपुत्रोंको इस द्वीप के सातखण्ड करके बांटदिये, सुरोचन, सौमनस्य, रमणक देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन, और अविज्ञात ॥ ९ ॥ इन खण्डोंमें भी सात मर्यादाके पर्वत और सातही महानदियां हैं स्वरस, शतशृंग

मतिःसिनीवालीसरस्वतीकुहूरजनीनन्दाराकेति ॥ १० तद्वर्षपुरुषाःश्रुतधरवीर्यधर वसुंधरेषन्धरसंज्ञाभगवन्तंवेदमयंसोममात्मानंवेदेनयजंते ॥ ११ ॥ स्वगोभिःपितृदेवेभ्यो विभजन्कृष्णशुक्लयोः । प्रजानांसर्वासांराजाऽन्धःसोमोनअस्त्विति १२॥ एवंसुरोदाद्बहिस्तद्द्विगुणःसमानेनावृतोघृतोदेनयथापूर्वःकुशद्वीपोयस्मिन्कुशस्तम्बो देवकृतस्तद्वीपाख्याकरोज्वलनइवापरःस्वशष्परोचिषादिशोविराजयति १३॥ तद्वीपपतिःप्रैयव्रतोराजाहिरण्यरेतोनामस्वंद्वीपंसप्तभ्यःस्वपुत्रेभ्योयथाभागंविभज्यस्वयंतपआतिष्ठत ॥ १४ ॥ वसुवसुदानदृढरुचिनाभिगुप्तस्तुत्यव्रत विविक्तवामदेवनामभ्यस्तेषां वर्षेषु सीमागिरयो नद्यश्चाभिज्ञाताः सप्तसप्तैवचक्रश्चतुःशृंगः कपिलश्चित्रकूटो देवानीकऊर्ध्वरोमाद्रविणइति ॥ १५ ॥ रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविन्दा श्रुतविंदा वेदगर्भाघृतच्युता मन्त्रमालेतियासांपयोभिःकुशद्वीपौकसः कुशलकोविदाभियुक्तकुलकसंज्ञाभगवन्तं जातवेदसरूपिणं कर्मकोशलेनयजन्ते ॥ १६ ॥ परस्यब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसिहव्यवाट् । देवानांपुरुषांगानां यज्ञेन पुरुषंयजेति ॥ १७ ॥ तथाचघृतोदाद्बहिःक्रौञ्चद्वीपोद्विगुणः स्वमानेनक्षीरोदेनपरित उपक्लृप्तोवृतोयथा कुशद्वीपोघृतोदेन, यस्मिन्क्रौञ्चोनाम पर्वतराजो द्वीपनाम निर्वर्तकआस्ते ॥ १८ ॥ योऽसौगुहप्रहरणोन्माथितनितम्बकुंजोऽपि क्षीरोदेनासिच्यमानोभगवता वरुणेनाभिगुप्तोविभयोबभूव ॥ १९॥ तस्मिन्नपिप्रैयव्रतोघृतपृष्ठो

वामदेव, कुन्द, मुकुन्द, पुष्पवर्ष और सहस्रस्तुति यह सात पर्वतहैं और अनुमति, सिनीवाली,सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा, और राका यह नदियांहैं १० ॥ इस द्वीपमें चारवर्ण श्रुतधर, वीर्यधर, बसुन्धर और इषंधर, के लोग निवास करतेहैं यहांके निवासी वेदमय चन्द्ररूपका यजनकर इस मंत्रको जपतेहैं ॥ ११ ॥ अपनी किरणोंसे शुक्लपक्षमें देवताओं को और कृष्णपक्षमें पित्रोंको विभाग करके अन्नदेनेवाले सोम देवता हमारे तथा समस्त प्रजाके अधिपतिहोवें ॥ १२ ॥ ऐसेही मदिराके समुद्रसे बाहर उससे दूना और उसीभांति घीके समुद्रसे घिराहुआ कुशद्वीपहै जिसद्वीपमें देवताओंका कियाहुआ कुशका स्तम्भहै इसीसे उस द्वीपको कुशद्वीप कहतेहैं, यह कुशका स्तम्भ दूसरे अग्निकी सदृश तेजवान अपनी शिखाओंकी कांतिसे दशोंदिशाओंको प्रकाशितकरता है ॥ १३ ॥ इस द्वीपका राजा, प्रियव्रतका पुत्र हिरण्यरेता इस द्वीपके खण्डोंकी सदृश नामवाले अपने पुत्रोंको उस देशका राजबांट आप तप करनेको चलागया॥ १४ ॥ बसु, बसदान, दृढरुचि नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और वामदेव यह उस द्वीपके खण्ड तथा राजा प्रियव्रतके पुत्रोंके नामहैं, इस द्वीपमें भी सात मर्यादाके पर्वत, और सात महानदियां हैं, चक्र, चतुःशृंग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा और द्रविण यह सात पर्वतहैं ॥१५॥ रसकुल्या, मधुकुल्या मित्रविंदा श्रुतविंदा देवगर्भा, घृतच्युता, और मंत्रमाला, यह सात महानदियांहैं इसमें चारवर्ण, कुशल कोविद अभियुक्त और कुलकके निवासी इन नदियोंके जलसे पवित्रहो अग्निरूप भगवानका आराधनकर यह मंत्रजपतेहैं॥१६॥हेअग्नि!आप साक्षात् परब्रह्म भगवानको हव्य पहुँचातेहो, अतएव भगवानके अङ्गरूप देवताओंके नामसे कीहुई पूजा परमेश्वरको पहुंचाओ ॥ १७ ॥ ऐसेही कुशद्वीपसे बाहर दूने विस्तारवाला क्रौंचद्वीपहै कि जो अपनेही समान विस्तारवाले दूधके समुद्रसे घिराहुआहै जैसे कुशद्वीप घीके समुद्रसे वेष्टितहै, इसद्वीपमें क्रौंचनामक एक बड़ापहाड़है इसीसे इसका नाम क्रौंच द्वीपहुआ ॥१८॥स्वामि कार्तिकने इस पहाड़के कुंभ नितंब अपने आयुधसे तोड़डालेथे परन्तु क्षीर समुद्रके सींचेजाने और वरुणके रक्षाकरनेसे यह सदा अभय रहताहै ॥ १९ ॥ इस द्वीपके राजा

नामाधिपतिः स्वद्वीपं वर्षाणि सप्त विभज्य तेषु पुत्रनामसु तत् रिक्थादान् वर्षपान्निवेश्य स्वयं भगवान् भगवतः परमकल्याणयशस आत्मभूतस्य हरेश्चरणारविन्दमुपजगाम ॥२०॥ आमो मधुरुहो मेघपृष्ठः सुधामा भ्राजिष्ठो लोहितार्णो वनस्पतिरिति घृतपृष्ठसुतास्तेषां वर्षगिरयः सप्त सप्तैव नद्यश्चाभिख्याताः शुक्लो वर्धमानो भोजन उपबर्हिणो नन्दो नन्दनः सर्वतोभद्र इति। अभया अमृतौघा आर्यका तीर्थवती वृत्तिरूपवती पवित्रवती शुक्लेति ॥२१॥ यासामम्भः पवित्रममलमुपयुञ्जानाः पुरुषऋषभद्रविणदेवकसंज्ञा वर्षपुरुषा आपोमयं देवमपां पूर्णेनांजलिना यजन्ते ॥२२॥ आपः पुरुषवीर्याः स्थ पुनन्तीर्भूर्भुवः सुवः तानः पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुव इति ॥ २३ ॥ एवं पुरस्तात्क्षीरोदात्परित उपवेशितः शाकद्वीपो द्वात्रिंशल्लक्षयोजनायामः समानेन च दधिमण्डोदेन परीतः। यस्मिन् शाको नाम महीरुहः स्वक्षेत्रव्यपदेशको यस्य ह महासुरभिगंधस्तं द्वीपमनुवासयति ॥ २४ ॥ तस्यापि प्रैयव्रत एवाधिपतिर्नाम्ना मेधातिथिः सोऽपि विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु स्वात्मजान् पुरोजवमनोजवपवमानधूम्रानीकचित्ररेफबहुरूपविश्वधारसंज्ञान्निधाप्याधिपतीन्स्वयं भगवत्यनन्त आवेशितमतिस्तपोवनं प्रविवेश ॥२५॥ एतेषां वर्षमर्यादागिरयो नद्यश्च सप्त सप्तैव, ईशान उरुशृंगो बलभद्रः शतकेसरः सहस्रस्रोतो देवपालो महानस इति। अनघाऽऽयुर्दा उभयस्पृष्टिरपराजिता पञ्चपदी सहस्रस्रुतिर्निजधृतिरिति ॥२६॥ तद्वर्षपुरुषा ऋतव्रतसत्यव्रतदानव्रतानुव्रतनामानो भगवन्तं वाय्वात्मकं प्राणायामविधूतरजस्तमसः परमसमाधिना यजंते ॥ २७ ॥ अन्तः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः। अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पा-

---

प्रियव्रतके पुत्र घृतपृष्ठने अपने पुत्रोंके नामसे इस द्वीपके सात खण्डकर और उनके नामोंके अनुसार उनको उन खण्डोंका राज्य दिया फिर वह सर्वात्मा भगवानके अति आनन्ददायी चरणोंको प्राप्त हुआ ॥ २० ॥ उन खण्डोंको आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ सुधामा भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति कहते हैं और यही घृत पृष्ठके पुत्रोंके नाम थे। इसमें सातही मर्यादा पर्वत और सातही नदियां हैं, शुक्ल, वर्धमान, भोजन उपबर्हिण नंदनन्दन और सर्वतो भद्र यह पर्वत हैं ॥ २१ ॥ अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, पवित्रवती और शुक्ला यह नदियां हैं यहांके चारवर्ण पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक के निवासी इन पवित्र नदियों के जलको अपने काममें ला अंजलि से जलरूप भगवानका आराधन करते हैं और इस मंत्रको जपते हैं ॥ २२ ॥ हे जल तुम भगवान के पराक्रमसे हुये हो आप भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोकको पवित्र करने वाले हो, वह आप हमारे देहको स्पर्शकर हमें पवित्र करो ॥ २३ ॥ ऐसेही क्षीर समुद्रसे परे चारोंओर से वेष्टित शाकद्वीपका विस्तार ३२ लक्ष योजनका है यह द्वीप अपने समान प्रमाण दधिसमुद्रसे वेष्टित है इसमें शाकनाम एक वृक्ष है कि जिससे इसका नाम शाकद्वीप हुआ है, इस वृक्षकी सुगन्धि सम्पूर्णद्वीपको सुवासित करती है ॥ २४ ॥ इसका राजा मेधातिथि अपने पुत्रोंके समान नामवाले इस द्वीपको सातखण्डोंमें विभक्तकर उन सातों को वहांका राज्य दे आप परमेश्वरमें मन लगा तपको गया, इन खण्डोंके नाम पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप, और विश्वधार हैं और यही मेधातिथिके पुत्रों के नाम हैं ॥ २५ ॥ इस खण्डमें ईशान, उरुशृङ्ग बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल और महानस; यह सातों मर्यादा पर्वत हैं और अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पंचपदी, सहस्रस्रुति और निजधृति यह सात महानदी हैं ॥ २६ ॥ यहां ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत, और अनुव्रत यह चारवर्ण हैं कि जो प्राणायामसे रज और तमको दूरकर परमसमाधिसे

तुनोयंद्धरेरस्फुटम् ॥ २८ ॥ एवमेवदधिमण्डोदात्परतः पुष्करद्वीपस्ततोद्विगुणाया
मः समन्ततउपकल्पितः समानेनस्वादूदकेनसमुद्रेण बहिरावृतोयस्मिन् बृहत्पु
ष्करं ज्वलनशिखामलकनकपत्रायुतायुतंभगवतः कमलासनस्याध्यासनंपरिक
ल्पितम् ॥ २९ ॥ तद्द्वीपमध्येमानसोत्तरनामैक एवार्वाचीनपराचीनवर्षयोर्मर्यादा
चलोऽयुतयोजनोच्छ्रायायामो यत्रतुचतसृषुदिक्षुचत्वारिपुराणि लोकपालानामि
न्द्रादीनां यदुपरिष्टात् सूर्यरथस्यमेरुंपरिभ्रमतःसंवत्सरात्मकंचक्रं देवानामहोरात्रा
भ्यांपरिभ्रमति ॥ ३० ॥ तद्द्वीपस्याप्यधिपतिःप्रैयव्रतो वीतिहोत्रोनामैतस्यात्मजौ
रमणकधातकिनामानौवर्षपती नियुज्यसस्वयंपूर्वजवद्भगवत्कर्मशीलएवास्ते ३१॥
तद्वर्षपुरुषाभगवन्तं ब्रह्मरूपिणंसकर्मकेन कर्मणाऽऽराधयन्ति ॥ ३२ ॥ एतत्
कर्ममयंलिंगंब्रह्मलिंगंजनोऽर्चयेत् । एकान्तमद्वयंशांतं तस्मैभगवतेनमइति ॥३३॥
ऋषिरुवाच ॥ ततःपरस्ताल्लोकालोकनामाऽचलो लोकालोकयोरंतरालेपरितउप
क्षिप्तः ॥ ३४ ॥ यावन्मानसोत्तरमेर्वोरन्तरंतावतीभूमिः कांचन्यादर्शतलोपमा य
स्यांप्रहितःपदार्थोनकथंचित्पुनःप्रत्युपलभ्यते तस्मात्सर्वसत्वपरिहृतासीत् ॥३५॥
लोकालोकइतिसमाख्या यदनेनाचलेन लोकालोकस्यांतर्वर्तिनाऽवस्थाप्यते॥३६॥
सलोकत्रयांतेपरितईश्वरेणविहितो यस्मात्सूर्यादीनांध्रुवापवर्गाणां ज्योतिर्गणानां
गभस्तयोऽर्वाचीनांस्त्रीँल्लोकानावितन्वानान कदाचित्पराचीनाभवितुमुत्सहन्ते

वायुरूपी भगवानका पूजनकरते है और इसमन्त्रको जपते हैं ॥ २८ ॥ जोसब प्राणियों के भीतर प्रवेशकर प्राणादिक वृत्तियोंससे पालताहै और जिसके वशमें यह समस्त जगतहै वह अन्तर्यामी ईश्वर हमारी रक्षाकरे ॥ २९ ॥ ऐसेही दधि मडोद के समुद्रके बाहर उससे दुगने विस्तारवाला पुष्कर द्वीप जो अपने प्रमाणवाले मीठे जलके समुद्रसे वेष्टितहै इसमें भगवान ब्रह्माजीका आसनरूप कमलहै, जिसकी करोड़ों पखुरियां अग्निकी शिखाके समाननिर्मलहैं, इसद्वीपके मध्यमें मानसरोवर नाम पर्वतहै इसीसे दोखडों की मर्यादा बांधीगई हैं एक तो इसपर्वतके भीतर का दूसरा बाहरका यह पर्वत दशहजार योजन चौडा और इतनाही ऊंचा है इसके चारोंओरके किनारों पर इन्द्रादिकों की चार नगरिया है सूर्यका रथकिजो मेरुके चारोओर फिराकरता है उसका वर्ष रूप पहिया दक्षिणायन और उत्तरायण से इसी पर्वतके ऊपर फिराकरता है॥ ३० ॥ इस द्वीपके राजा, वीतिहोत्र ने पुत्रोंके समान नामवाले इस द्वीपके दोखडकर और रमणक और धातकिदोनो पुत्रोंको राज्यदे आप अपने बड़े भाइयों की समान भगवत भजन में लगगया ॥ ३१ ॥ इसद्वीपके निवासी ब्रह्मरूप भगवान का सकाम कर्मसे पूजनकर इस मंत्रको जपते हैं ॥ ३२ ॥ कर्मके फल रूप, परब्रह्मके ज्ञापक, एक परमेश्वर मेंही निष्ठावाले, अद्वैत, शांत जिसरूपका मनुष्य पूजन करते हैं उन परमेश्वरको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि–इस मीठेजल के समुद्र के पार लोकालोक नाम पर्वत है उसे लोक (सूर्यसे प्रकाशित) अलोक (सूर्यके प्रकाश रहित) स्थानके मध्यमें उनकी मर्यादाके हेतु भगवानने सबके चारों ओर घेरादेरक्खा है ॥ ३४ ॥ जितना मानसोत्तर और मेरुपर्वत मे अंतर है उतनेही विस्तारकी भूमिमीठे समुद्रके दूसरी ओर है, उसमें जीवधारी भी रहते है, उससे परेसुवर्ण की भूमिहै और वह दर्पण की समान निर्मल है उस भूमिमें गयाहुआ पदार्थ फिरनहीं प्राप्तहोता इससे वह सब प्राणियों से रहित है ॥ ३५ ॥ इसके अनंतर लोकालोक नाम पर्वत है यह लोक और अलोक के मध्यमें स्थित है इसी से इसका नाम लोकालोक है ॥ ३६ ॥ तीनो लोकोंके अंतमें त्रिलोकी की मर्यादा रूप यह पर्वत ईश्वरने त्रिलोकी के चारो ओर रखछोड़ा है इस पर्वतकी इतनी ऊंचाई चौड़ाई है कि सूर्यसे लेध्रुवतक सम्पूर्ण तेजस्वी

चतुरष्टनायामः ॥ ३७ ॥ एतावांल्लोकविन्यासो मानलक्षणसंस्थाभिर्विचिन्तितः कविभिः सतुपंचाशत्कोटिगणितस्य भूगोलस्यतुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः ॥ ३८॥ तदुपरिष्टाच्चतसृष्वाशास्वात्मयोनिनाऽखिलजगद्गुरुणाऽधिनिवेशितायें द्विरदपतयऋषभः पुष्करचूडोवामनोऽपराजितइति सकललोकस्थितिहेतवः॥३९ तेषांस्वविभूतीनांलोकपालानांच विविधवीर्योपबृंहणायभगवान् परममहापुरुषो महाविभूतिपतिरन्तर्याम्यात्मनोविशुद्धसत्त्वं धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याद्यष्टमहासिद्ध्युप लक्षणं विष्वक्सेनादिभिः स्वपार्षदप्रवरैःपरिवारितो निजवरायुधोपशोभितैर्निज- भुजदण्डैःसंधारयमाणस्तस्मिन्गिरिवरेसमन्तात्सकललोकस्वस्तयआस्ते ॥४०॥ आकल्पमेवंवेषंगतएषभगवानात्मयोगमायया विरचितविविधलोकयात्रागोपी था येति ॥ ४१ ॥ योन्तर्विस्तारएतेनह्यलोकपरिमाणंचव्याख्यातंयद्बहिर्लोकालोकाच- लात्ततः परस्ताद्योगेश्वरगतिं विशुद्धामुदाहरन्ति ॥ ४२ ॥ अण्डमध्यगतःसूर्योद्या वाभूम्योर्यदन्तरम् । सूर्याण्डगोलयोर्मध्येकोटयःस्युःपञ्चविंशतिः ॥४३॥ मृतेऽ ण्डएषएतस्मिन्यदभूत्ततोमार्तण्डइतिव्यपदेशः । हिरण्यगर्भइतियद्धिरण्याण्डस- समुद्भवः ॥ ४४ ॥ सूर्येणहिविभज्यन्तेदिशःखंद्यौर्मही्भिदा । स्वर्गापवर्गौनरका रसौकांसिचसर्वशः ॥ ४५ ॥ देवतिर्यङ्मनुष्याणांसरीसृपसवीरुधाम् ॥ सर्वजीव निकायानांसूर्यआत्माद्दगीश्वरः ॥ ४६ ॥

इतिश्रीभ०द्वा०म०पञ्चम०विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

पदार्थों की किरण किजो जगत में प्रकाश करती हैं वह दूसरी ओर को नहीं पंहुच सकती ॥३७॥ विद्वानों ने लोक की रचना, प्रमाण लक्षण और स्थिति से इसभांति निश्चय किया है यह पर्वत, पचास कोटि योजन के भूगोल का चतुर्थांश अर्थात् साढे बारह कोटि योजन सुमेरु से चारो ओर दूर है ॥ ३८ ॥ सब जगत के गुरू भगवान ब्रह्माजी ने इसके ऊपर, चारो दिशाओं में ऋषभ, पुष्कर चूड़, वामन और अपराजित नामक चार दिग्गज रखछोड़े हैं उन्हीं से सब सृष्टिकी स्थिति रहती है ॥ ३९ ॥ महापुरुष, ऐश्वर्यवान भगवान इन दिग्गज और इन्द्रादिक लोक पालोंकी शक्तियों के बढ़ाने तथा सबसृष्टिके कल्याण के हेतु इस उत्तम पर्वतपर विराजते हैं और धर्म, ज्ञान, वैराग्य और प्रभावादिक अष्टसिद्धि रूप अपना शुद्ध सत्वगुण धारणकर, विष्वकसेन आदि पार्षदों से वेष्टित तथा श्रेष्ठ आयुधों से शोभित भुजदंडों से शोभायमान होरहे हैं ॥ ४० ॥ अपनी योगमाया रचित नानाभांति की सृष्टि मर्यादिकी रक्षाके हेतु कल्प पर्यंत ऐसीही लीला करतेहुये विराजमान रहते हैं ॥ ४१ ॥ जितना फैलाव लोक का है उतनाही अलोक का कहागया है; किजो अलोक लोकालोक पर्वत से बाहर है और वहां योगेश्वरों के अतिरिक्त और कोई नहीं जासकता ॥ ४२ ॥ सबसे ऊपर के लोक और पृथ्वी पर्य्यंत ब्रह्मांड के मध्यमें सूर्यरहताहै, अर्थात् सूर्यके नीचे और ऊपरके प्रदेशों में पचीस २ करोड़ योजन का अंतर है ॥ ४३ ॥ यह सूर्य अचेतन अंडमें वैराजरूप से प्रविष्ट हुआ इसी से इसका नाम मार्तंड पड़ा, इनमें से सुवर्णमय प्रकाश मान ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ इसी से इसकानाम हिरण्यगर्भ हुआ ॥ ४४ ॥ दिशा, आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, भोगस्थान मोक्षदश, और पातालादिक यह सब सूर्यहा स विभक्तहोते हैं ॥ ४५ ॥ देवता, तिर्य्यगादिक, मनुष्य, सर्प, पक्षी, लताआदि सबजीव समूहों के आत्मा तथा नेत्रोंके अधिष्ठाता सूर्य्यही हैं ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भा०महा०पंचम०सरलभाषाटीकायांविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

श्रीशुक उवाच । एतावानेव भूवलयस्य सन्निवेशः प्रमाणलक्षणतो व्याख्यातः ॥ एतेन हि दिवोमण्डलमानं तद्विद उपदिशन्ति ॥ १ ॥ यथा द्विदलयोर्निष्पावादीनां ते अन्तरेणान्तरिक्षं तदुभयसंधितम् ॥ २ ॥ यन्मध्यगतो भगवांस्तपतां पतिस्तपन आतपेन त्रिलोकीं प्रतपत्यवभासयत्यात्मभासा । स एष उदगयनदक्षिणायनवैषुवतसंज्ञाभिर्मान्द्यशैघ्र्यसमानाभिर्गतिभिरारोहणावरोहणसमानस्थानेषु यथासवनमभिपद्यमानो मकरादिषु राशिष्वहोरात्राणि दीर्घह्रस्वसमानानि विधत्ते ॥ ३ ॥ यदा मेषतुलयोर्वर्तते तदाऽहोरात्राणि समानानि भवन्ति यदा वृषभादिषु पंचसु च राशिषु चरति तदाऽहान्येव वर्धन्ते ह्रसति च मासि मास्येकैका घटिका रात्रिषु ॥ ४ ॥ यदा वृश्चिकादिषु पंचसु वर्तते तदाऽहोरात्राणि विपर्ययाणि भवन्ति ॥ ५ ॥ यावद्दक्षिणायनमहानि वर्धन्ते यावदुदगयनं रात्रयः ॥ ६ ॥ एवं नव कोटय एकपंचाशल्लक्षाणि योजनानां मानसोत्तरगिरिपरिवर्तनस्योपदिशन्ति। तस्मिन्नैन्द्रीं पुरीं पूर्वस्मान्मेरोर्देवधानीं नाम दक्षिणतो याम्यां संयमनीं नाम पश्चाद्वारुणीं निम्लोचनीं नाम उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम तासूदयमध्यान्हास्तमयनिशीथानीति भूतानां प्रवृत्तिनिवृत्तिनिमित्तानि समयविशेषेण मेरोश्चतुर्दिशम् ॥ ७ ॥ तत्रत्यानां दिवसमध्यंगत एव सदाऽऽदित्यस्तपति सव्येनाचलं दक्षिणेन करोति ॥ ८ ॥ यत्रोदेति तस्य ह समानसूत्रनिपाते निम्लोचति यत्र क्वच न स्यन्देनाभितपति तस्य हैष समानसूत्रनिपाते प्रस्वापयति तत्र गतं न पश्यन्ति ये तं स-

श्री शुकदेवजी बोले—कि हे राजन् ! विद्वानों ने भूमण्डल का सन्निवेश प्रमाण और लक्षण से इतनाही कहा है, खगोल का विस्तार भी विद्वान लोग ऐसे कहा करते हैं ॥ १ ॥ जैसे द्विदल, चना, अरहर इत्यादि के दो टुकड़े कियेजांय तो वह दोनों प्रमाण में समान होंगे वैसेही भूगोल और खगोल यह भी दोनों समान हैं इन दोनों के मध्य के आकाश दोनों से मिलाहुआ है ॥ २ ॥ इस आकाश के मध्य में भगवान सूर्य्य अपनी किरणोंसे त्रिलोकी को तपाते हैं और अपनी कांतिसे प्रकाशित करते हैं, यह सूर्य उत्तरायण, दक्षिणायन, और वैषुवत नामक अपना मंद, वेग, और समानगति से, ऊंचे चढ़ना, नीचे उतरना, और समान भाव पर चलना इन हेतुओंसे अपने नियत काल पर मकर इत्यादिक तीनों राशिओं पर आ दिन रात्रि को बड़ा, छोटा और समान कर देते हैं ॥ ३ ॥ जब मेष और तुलाराशियों के सूर्य आते हैं तब अहोरात्र समान, और जब वृष इत्यादिक कन्यातक [illegible] व राशिके रहते है तब दिन बड़े होते हैं और रात्रियां एक २ महीने में एक २ घड़ी न्यून होजाती हैं ॥ ४ ॥ और जब वृश्चिक आदि पांच राशियों में वर्तते हैं तब दिन छोटे और रात्रियां बड़ी होता है ॥ ५ ॥ वृषराशि से दिन बढ़ने लगता है और वह दक्षिणायन तक बढता है और वृश्चिक से रात्रियों के बढ़ने का आरम्भ होता है कि जो उत्तरायण तक बढ़ता हैं ॥ ६ ॥ ऐसे मानसोत्तर पर्वत का मण्डल ९ किरोड़ ५१ लाख योजन है, इस मानसोत्तर पर्वत में सुमेरके पूर्व की ओर देवधानी नाम इंद्र की पुरी है दक्षिण में संयमनी नाम यम की पुरी, पश्चिम में निम्लोचनी नाम वरुण की पुरी और उत्तर की ओर विभावरी नाम सोम की पुरी है इन पुरियों में सूर्य के आनेसे उदय, मध्याह्न, अस्त और अर्द्धरात्र यह चारकाल कि जो जीवों की प्रवृत्तिके कारण है सो [illegible]आ करते है (मेरु से दक्षिण की ओर रहनेवालोंके इंद्र की पुरी से, और पश्चिम में रहनेवालोंके यम की पुरीसे और उत्तर में रहनेवालों के वरुण की [illegible]री से और पूर्वके रहने वालों के सोम की पुरी से उदयादिक होते हैं ऐसा कहा है) ॥ ७ ॥ जो सुमेरु में स्थित हैं उनके तो सदैव मध्याह्नकालीन सूर्य तपा करते है, सूर्य यद्यपि मेरु को बाईं ओर रखकर घूमते हैं तौभी ज्योतिषचक्र की गति से सुमेरु पर्वत सूर्य के दाईं ओर रहता है ॥ ८ ॥ जहां उदय होते है उसी के सूत्र निपात में अस्त भी होते हैं और जहां मध्याह्न होता है उसी के सूत्र निपात में आधीरात होती है सामने

मनुपश्येरन् ॥ ९ ॥ यत्रोऽऽन्द्र्याःपुर्याःप्रचलते पञ्चदशघटिकाभिर्याम्यांसपादकोटिद्वयं योजनानां सार्धद्वादशलक्षाणि साधिकानिचोपयाति ॥ १० ॥ एवंततोवारुणींसौम्यामैन्द्रींचपुनस्तथाऽन्येच ग्रहाःसोमादयोनक्षत्रैः सहज्योतिश्चक्रे समभ्युद्यन्तिसहवानिम्लोचन्ति ॥ ११ ॥ एवंमुहूर्तेनचतुस्त्रिंशल्लक्षयोजनान्यष्टशताधिकानिसौरोरथस्रयीमयोऽसौचतसृषु परिवर्ततेपुरीषु ॥ १२ ॥ यस्यैकंचक्रंद्वादशारंषण्नेमित्रिणाभिसंवत्सरात्मकंसमामनन्तितस्याक्षोमेरोर्मूर्धनिकृतोमानसोत्तरे कृतेतरभागोयत्रप्रोतंरविरथचक्रंतैलयन्त्रचक्रवद्भ्रमन्मानसोत्तर गिरौपरिभ्रमति॥ १३ तस्मिन्नक्षेकृतमूलोद्वितीयोऽक्षस्तुर्यमानेनसंमितस्तैलयन्त्राक्षवद्ध्रुवेकृतोपरिभागः ॥ १४ ॥ रथनीडस्तुषट्त्रिंशल्लक्षयोजनायतस्तत्तुरीयभागविशालस्तावान्रविरथयुगोयत्रहयाश्छन्दोनामानःसप्तारुणयोजितावहन्तिदेवमादित्यम् ॥ १५ ॥ पुरस्तात्सवितुररुणःपश्चाच्चनियुक्तःसौत्येकर्मणिकिलास्ते ॥ १६ ॥ तथावालखिल्याऋषयोऽङ्गुष्ठपर्वमात्राःषष्टिसहस्राणिपुरतःसूर्यंसूक्तवाकाय नियुक्ताःसंस्तुवन्ति॥ १७ ॥ तथाऽन्येचऋषयोगन्धर्वाप्सरसोनागाग्रामण्योयातुधानादेवाइत्येकैकशोगणाःसप्तचतुर्दशमासिमासिभगवन्तंसूर्यमात्मानं नानानामानंपृथङ्नानानामानःपृथक्कर्मभिर्द्वन्द्वशउपासते ॥ १८ ॥ लक्षोत्तरंसार्धनवकोटियोजनपरिमण्डलंभूवलयस्यक्षणेनसगव्यूत्युत्तरंद्विसहस्रयोजनानिसभुङ्क्ते ॥ १९ ॥

इतिश्रीमद्भा०म०पञ्चम०एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

के सूत्रमेंगयेहुए सूर्यको वहाँ के लोग देखते हैं यहां के लोगों को नहीं देखपड़ता ॥ ९ ॥ सूर्य इंद्रकी पुरी से चल १५ घड़ी में सवादोकरोड़ साढ़े १२ लाख २५ हजारयोजन मार्ग कर यमकी पुरी में पहुँचते हैं ॥ १० ॥ इसी भांति यमपुरी से वरुणपुरी और वरुणपुरी से सोमपुरी और सोमपुरी से इंद्रपुरी में पहुँचते हैं, तैसेही औरग्रहचन्द्रमा आदिभी नक्षत्रों के साथ ज्योतिश्चक्र में उदयहोतेऔर नक्षत्रों के साथही अस्त होते हैं ॥ ११ ॥ त्रयी मयी सूर्य का रथ चारों पुरियों में फिरता है, यह रथ दो घड़ी में चौंतीसलाख आठसौ योजन मार्ग से चलता है ॥ १२ ॥ सूर्य के रथका संवत्सर रूप एक पहिया, बारहमहीने रूपआरा और छहऋतुरूप पहियोंकी धारा, सर्दी गर्मी बरसात यहतीन नाभि हैं, इस पहियेका धुरा पहिलाभाग सुमेरु के माथे में पोहाहुआ है जिसका प्रमाणडेढ़करोड़ साढ़ेसातलाख योजन है ऐसे कोल्हूके चक्र का सदृश सूर्य के रथका पहिया मानसोत्तर में फिरा करता है ॥ १३ ॥ उसी धुरी में जिसकामूललगा है ऐसा और उस से चतुर्थभाग के विस्तार की उन्तालीसलाख साढ़े सैंतीसहजार की दूसरी धुरीका ऊपरी भागध्रुव में बँधाहुआ है, इस हेतु इस की घटना कोल्हू की धुरी की सी है ॥ १४ ॥ वहरथछत्तीसलाखयोजन विशाल है और उसका जुआ इस के चतुर्थ भाग के प्रमाण का है जिस में गायत्री आदि छन्द के नामों वालेसातघोड़ों को अरुण सारथी जोतकर सूर्यनारायण को लेचलता है ॥ १५ ॥ अरुण सारथी सूर्य के आगे बैठता है तौभी उसका मुख पीछे की ओररहता है ॥ १६ ॥ साठसहस्र बालखिल्यऋषि जोअंगूठे के पोरवे की बराबर हैं वह सूर्य के आगे स्तुति करतेहैं ॥ १७ ॥ ऐसेही ऋषि, गंधर्व, अप्सरा, नाग, राक्षस, यक्ष, देवता कि जो एक २ करके चौदह । और दो २ करके सात हैं वह पृथक२ नामवाले, सूर्यनारायण की सेवा पृथक कार्योंद्वारा करते हैं इनकेनामभी पृथक २ हैं ॥ १८ ॥ इस भूमिमण्डलका विस्तार साढ़े नौकरोड़ एकलाख योजन है और सूर्यनारायणएकक्षण में दोहजार योजनकोस मार्ग चलते हैं ॥ १९ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०पञ्चमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायां एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

राजोवाच ॥ यदेतद्भगवतआदित्यस्यमेरुंध्रुवंचप्रदक्षिणेनपरिक्रामतोराशीना
मभिमुखंचप्रचलितंचाप्रदक्षिणंभगवतोपवर्णितममुष्यवयंकथमनुमिमीमहीति॥१॥
स होवाच॥ यथाकुलालचक्रेणभ्रमतासहभ्रमतांतदाश्रयाणां पिपीलिकादीनांगति
रन्यैव प्रदेशांतरेष्वप्युपलभ्यमानत्वात् ॥ एवंनक्षत्रराशिभिरुपलक्षितेनकालचक्रे
णध्रुवं मेरुंप्रदक्षिणेनपरिधावतासहपरिधावमानानांतदाश्रयाणांसूर्यादीनांग्रहाणां
गतिरन्यैवनक्षत्रांतरेराश्यन्तरेचोपलभ्यमानत्वात्॥२॥सएषभगवानादिपुरुषएवसा
क्षान्नारायणोलोकानांस्वस्तयआत्मानंत्रयीमयंकर्मविशुद्धिनिमित्तंकविभिरपिचवे
देनविजिज्ञास्यमानो द्वादशधाविभज्यषट्सुवसंतादिष्वृतुषुयथोपजोषमृतुगुणा
न्विदधाति ॥ ३ ॥ तमेतमिहपुरुषास्त्रय्याविद्ययावर्णाश्रमाचारानुपथाउच्चावचैः
कर्मभिराम्नातैर्योगवितानैश्चश्रद्धयायजन्तोऽञ्जसाश्रेयःसमधिगच्छन्ति ॥ ४॥अथ
सएषआत्मालोकानांद्यावापृथिव्योरन्तरेणनभोवलयस्यकालचक्रगतोद्वादशमासा
न्भुङ्क्तेराशिसंज्ञान्संवत्सरावयवान्मासःपक्षद्वयं दिवानक्तंचेतिसपादर्क्षद्वयमुप
दिशन्ति यावतापष्ठमंशंभुञ्जीतसवैऋतुरित्युपदिश्यतेसंवत्सरावयवः ॥५॥ अथ
चयावताऽर्धेननभोवीथ्यांप्रचरतितंकालमयनमाचक्षते ॥ ६ ॥ अथचयावन्नभोम-
ण्डलंसहद्यावापृथिव्योर्मण्डलाभ्यांकार्त्स्न्येनसहभुञ्जीततंकालंसंवत्सरंपरिवत्स

राजापरीक्षित ने पूछा कि—यह भगवान सूर्यनारायण कि जो ध्रुव और मेरु को दाहिनीओर रखकरफिराकरते हैं; उनको राशियों के सामने और मेरु और ध्रुवबांई ओर रहे, इस भांतिकी जो उनकी चाल आप कहआयेहो यह प्रतिकूल ज्ञात होता है, हम इस प्रतिकूलबातका कैसे विश्वास करैं ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—जैसे चलतेहुएकुम्हार के चाकपर बैठी हुई चींटी आदि चाक के संग फिरतेहों तोभी उस की गति चाक का गति से पृथक्‌कही है, इसी भांति नक्षत्रसम्बन्धी राशिओं से ज्ञात होताहुआ कालचक्र कि-जो ध्रुव और मेरु की परिक्रमाकरकेदौड़ा चलाजाता है उस के संग उस में रहनेवाले सूर्य्यादिकग्रह यद्यपि फिराकरते हैं तौभी इन ग्रहोंकी चाल न्यारीही है. क्योंकि कालचक्र के एक २ भागको छोड़कर दूसरेनक्षत्रों और दूसरी राशियों में वह आतेहुएज्ञात होते हैं. कालचक्र की गतिसे उनके मेरुतथा ध्रुव दाहिनी ओर रहते हैं. परंतु अपनी चाल से वह राशियों के सामने चलते हैं इस से मेरु व ध्रुवउनके बाईं ओर रहते हैं॥ २ ॥ यह सूर्यनारायण, कि जिनका रूप विद्वान वेद द्वारा जानना चाहते हैं सृष्टिके आनंद के हेतु वेदमय और उस २ कालके नियम से कर्मोंकी शुद्धिक हेतुरूप, अपने रूपको बारह भागों से विभक्तकर बसंत आदि छह ऋतुओं में जीवोंके भाग्यानुसार सर्दी और गर्मी इत्यादिक ऋतुओं के धर्मोंको प्रगट करते हैं ॥ ३ ॥ वर्णाश्रम के नियमानुसार चलने वाले, लौकिक तथा वैदिक ऊंचे नीचेकर्मों से और योगविस्तारसे श्रद्धापूर्वक उन भगवान सूर्यनारायण का पूजन करते हैं और उससे उन को अनायासही श्रेय प्राप्तहोता है ॥ ४ ॥ यह सूर्य सब सृष्टिके आत्मा हैं यह सूर्य स्वर्ग और पृथ्वी के मध्यमें वर्षके अंगरूप बारह महीनोंको भोगते हैं किजो महीने राशियोंपर से स्थित कियेगये हैं, चन्द्रमाके हिसाब से महीना दोपक्षका या सूर्यके सवादो नक्षत्र भुगतनेपर होता है, यह एक महीना पित्रोंका दिनरात है, सूर्य जितने समय में दोराशियोंको भोगे वहीऋतु कहलाती है किजो संवत्सर का अंग कहलाती है ॥५॥ जितने कालमें सूर्यआधी आकाश वीथी में घूमलें वह अयन कहलाता है ॥ ६ ॥ स्वर्ग और भूमिके मध्यगत आकाश में सूर्य जितनेकाल में घूमआवें वह वर्षकहलाता है, एकवर्ष में मन्द, बेग और समानगति जैसे होती है वैसेही वर्षभी इन पृथक् २ हिसाबों से पांच

रानुवत्सरंवत्सरमितिभानोर्मान्द्यशैघ्र्यसमगतिभिः समामनन्ति ॥ ७ ॥ एवंचन्द्रमाअर्क गभस्तिभ्यउपरिष्टाल्लक्षयोजनतउपलभ्यमानोऽर्कस्यसंवत्सरभुक्तिंपक्षाभ्यांमासभुक्तिंसपादर्क्षाभ्यां दिनेनैवपक्षभुक्तिमग्रचारीद्रुततरगमनोभुङ्क्ते ॥८॥ अथचापूर्यमाणाभिश्चकलाभिरमराणांक्षीयमाणाभिश्चकलाभिःपितृणामहोरात्राणिपूर्वपक्षापरपक्षाभ्यांवितन्वानःसर्वजीवनिवहप्राणोजीवश्चैकमेकंनक्षत्रंत्रिंशतामुहूर्तैर्भुंक्ते ॥ ९ ॥ यएवषोडशकलःपुरुषोभगवान्मनोमयोऽन्नमयोऽमृतमयोदेवपितृमनुष्यभूतपशुपक्षिसरीसृपवीरुधांप्राणाप्यायनशीलत्वात्सर्वमयइतिवर्णयन्ति १०॥ ततउपरिष्टात्त्रिलक्षयोजनतोनक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेनैवकालायन ईश्वरयोजितानिसहाभिजिताऽष्टाविंशतिः ॥ ११ ॥ ततउपरिष्टादुशनाद्विलक्षयोजनतउपलभ्यतेपुरतःपश्चात्सहैववाऽर्कस्यशैघ्र्यमान्द्यसाम्याभिर्गतिभिरर्कवच्चरतिलोकानांनित्यदाऽनुकूलएवप्रायेणवर्षयंश्चारेणानुमीयतेसवृष्टिविष्टम्भग्रहोपशमनः ॥ १२ ॥उशनसाबुधोव्याख्यातः ततउपरिष्टाद्विलक्षयोजनतोबुधःसोमसुतउपलभ्यमानःप्रायेणशुभकृद्यदाऽर्काद्व्यतिरिच्येततदाऽतिचरताऽभ्रप्रायानावृष्ट्यादिभयमाशंसते ॥ ॥१३॥ अतऊर्ध्वमङ्गारकोऽपियोजनलक्षद्वितयउपलभ्यमानस्त्रिभिस्त्रिभिःपक्षैरेकैकशोराशीन्द्वादशानुभुङ्क्तेयदिनवक्रेणाभिवर्ततेप्रायेणाशुभग्रहोऽघशंसः ॥ १४ ॥ ततउपरिष्टाद्द्विलक्षयोजनान्तरगतोभगवान्बृहस्पतिरेकैकस्मिन्राशौपरिवत्सरंपरिवत्सरंचरतियदिनवक्रःस्यात्प्रायेणानुकूलोब्राह्मणकुलस्य ॥ १५ ॥ ततउपरिष्टाद्योजनलक्ष

प्रकार, (संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर) का है ॥ ७ ॥ इसीभांति चन्द्रमा सूर्यकी किरणोंसे लाखयोजन ऊपर है जितना सूर्य एकवर्षमें चलता है उतना चन्द्रमा दो पक्षोंमें चलता है सूर्य जितना एक मासमें चलता है उतना चन्द्रमा सवादोदिनमें जितनासूर्य एकपक्ष में चलता है उतनाचन्द्रमा एक दिनमें, क्योंकिचन्द्रमा बडाहीअग्रचारी और शीघ्रगमन करनेवाला है ॥ ८ ॥ चन्द्रमाके बढने घटने को शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष कहते हैं इनपक्षोंसे देवताओं और पित्रोंका अहोरात्र होता है यह अन्नमय होनेसे समस्तजीवों का जीवरूप है यह चन्द्रमा साठ २ घडी में एक २ नक्षत्र को भोगता है ॥ ९ ॥ सोलहअंशवाले, मनोमय, अन्नमय, तथा अमृतमय भगवान चन्द्रमाका स्वभाव पितर, देवता, मनुष्य, भूत, पशुपक्षी, सर्प, वृक्ष, लताको तृप्तिवर्जीवन देनेवाला है इससे सम्पूर्ण पुरुष चन्द्रमा को सर्वमय कहते हैं ॥ १० ॥ चन्द्रमासे ३ लाख योजन दूर ऊपरकी ओर नक्षत्रहैं, यह कालचक्रके भीतर ईश्वरके जोडेहुये नक्षत्र मेरुकीपरिक्रमा कियाकरते हैं, इनकी संख्या अभिजित् नक्षत्र केसाथ २८ है ॥ ११ ॥ इन नक्षत्रों से ऊपर दोलाख योजनपरशुक्र है, यह सूर्यके आगे पीछे संग, शीघ्रमन्दसमान, गति से सूर्य के सदृश फिराकरता है, यह ग्रहलोगों के हेतु बहुधा अनुकूलही रहताहै जो ग्रह वर्षा का थामनेवाला है उसकोभी यह शांत करता है ॥ १२ ॥ शुक्रकीसमान बुधकास्वभाव जानो, शुक्र से दोलाखयोजन ऊपर चन्द्रमाके पुत्र बुधरहते हैं यह सभी का शुभकरते हैं परन्तु जबसूर्य से आगे चलते हैं तब अधिक वायु चलाते हैं और बादल आते हैं परन्तु वर्षा नहीं होती ॥ १३ ॥ बुधसे ऊपर दोलाख योजनपर मंगल है वह तीन २ पक्षमें एक २ राशि को भोगते हैं और सूर्यसेवक्र न होने पर शुभ करते हैं परन्तु बहुधा तो अशुभही ग्रह और दुःखका करनेवाला है ॥ १४ ॥ मंगलसे दोलाख योजन ऊपर बृहस्पति है, वह यदि वक्र न होवे तो एकवर्ष में एक २ राशिको भोगते हैं, यहसही ब्राह्मणों के अनुकूल रहते हैं ॥ १५ ॥ बृहस्पति से दोलाख योजन ऊपर शनैश्चर है जो एक

ञ्याात्प्रतीयमानःशनैश्चरएकैकस्मिन्राशौ त्रिंशन्मासान् विलम्बमानःसर्वानेवानु पर्येतितावद्भिरनुवत्सरैःप्रायेणहिसर्वेषामशांतिकरः ॥१६॥ ततउत्तरस्मादृषयएका दशलक्षयोजनांतरउपलभ्यन्ते। यएवलोकानांशनुभभावयन्तोभगवतो विष्णोर्य त्परमंपदम् प्रदक्षिणंप्रक्रमन्ति ॥ १७ ॥

इतिश्रीमद्भा०पञ्चम०ज्योतिश्चक्रवर्णनंनामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथतस्मात्परतस्त्रयोदशलक्षयोजनांतरतोयत्तद्विष्णोःपरमं पदमभिवदन्तियत्रहमहाभागवतोध्रुवऔत्तानपादिरग्निनेन्द्रेणप्रजापतिनाकश्यपेन धर्मेणचसमकालयुग्भिः सबहुमानंदक्षिणतः क्रियमाणइदानीमपिकल्पजीविनामा जीव्यउपास्ते तस्येहानुभावउपवर्णितः॥ १ ॥ सहिसर्वेषांज्योतिर्गणानांग्रहनक्षत्रा दीनामनिमिषेणाव्यक्तरंहसाभगवताकालेनभ्राम्यमाणानांस्थाणुरिवावष्टम्भईश्वरे- ण विहितःशश्वदवभासते ॥ २ ॥ यथा मेढीस्तम्भआक्रमणपशवःसंयोजितास्त्रि- भिस्त्रिभिःसवनैर्यथास्थानंमण्डलानिचरन्ति । एवंभगणाग्रहादयएतस्मिन्नंतर्बहि र्योगेनकालचक्रआयोजिताध्रुवमेवावलम्ब्यवायुनोदीर्यमाणाआकल्पान्तम्परिचंक्र मन्तिनभसियथामेघाःश्येनादयोवायुवशाःकर्मसारथयःपरिवर्तंते। एवंज्योतिर्गणा प्रकृतिपुरुषसंयोगानुगृहीताःकर्मनिर्मितगतयोभुविनपतन्ति ॥ ३ ॥ केचनैतज्ज्यो- तिरनीकंशिशुमारसंस्थानेनभगवतोवासुदेवस्ययोगधारणायामनुवर्णयंति ॥४॥ य स्यपुच्छाग्रेऽवाक्शिरसःकुण्डलीभूतदेहस्यध्रुवउपकल्पितः। तस्यलांगूलेप्रजापति रग्निरिंद्रोधर्मइतिपुच्छमूलेधाताविधाताचकट्यांसप्तर्षयः। तस्यदक्षिणावर्तकुण्ड लीभूतशरीरस्ययान्युदगयनानिदक्षिणपार्श्वेतुनक्षत्राण्युपकल्पयंति दक्षिणायना

एक राशि को तीस २ महीने में भोगता है और तीसही वर्षों में सब राशियों पर आजाता है, यह बहुधा सबकाही अमङ्गलकारी है॥ १६ ॥ शनैश्चरसे ऊपर ११ योजनपर सप्तर्षि देखपड़ते हैं जो सृष्टिका मङ्गल करते ध्रुवके स्थितरूप भग वानके परमपदकी परिक्रमा करते फिरते हैं ॥१७॥

इति श्रीमद्भाग० महा० पंचम० सरला भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—इन ऋषियोंसे परे १३ लाख योजनकी दूरीपर विष्णुजीका परमपदहै, इस पदमें महाभागवत, राजा उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव कि जो कल्पतक जीनेवालोंके आधाररूपहैं जिनका प्रभाव पहिले कहआयेहैं रहते हैं, इन ध्रुवके संग एकही कालमें जोड़ेहुये अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, कश्यप, और धर्म अबतक भी परिक्रमा करतेहुये फिरा करतेहैं ॥ १ ॥ अव्यक्त वेग- वाला काल जिनको फिराया करताहै ऐसे नक्षत्र ग्रह इत्यादिक सब ज्योतिर्गणोंको बांधकर भगवान के रचेहुओंको यह ध्रुव निरन्तर प्रकाशित करतेहैं, जैसे रस निकालनेके हेतु कोलमें बँधेहुये बैल अपने २ स्थानमें रह समय २ पर कोलीके आश्रयहो विचरा करते हैं ॥ २ ॥ ऐसेही काल चक्र के बाहर भीतर जुड़ेहुये ग्रह नक्षत्रादि कि जिन्हें पवन प्रेरित किया करताहै वह ध्रुवहीके आश्रय से कल्पतक फिरा करतेहैं जैसे आकाशमें पक्षी पवनके वशीभूतहो उड़ा करते हैं परन्तु नीचे नहीं गिरते इसभांति प्रकृति पुरुषके संयोगसे अनुग्रह पाये और कर्मोंसे जिनकी गति रचीगईहै ऐसे यह ज्योतिर्गण भूमिमें नहींगिरते ॥ ३ ॥ कितने एक ऋषि कहते हैं कि यह ज्योतिश्चक्र परमेश्वर की योग धारणामें बैलके आकारसे वर्तमानहै ॥ ४ ॥ शिर घुमाकर कुण्डलाकार हो बैठेहुये इस ज्योतिश्चक्र रूप बैलकी पूंछके अग्रभागपर तो ध्रुवहै पूंछके आगेसे आध भागतक प्रजापति अग्नि इन्द्र और धर्म हैं पूंछकी जड़ में धाता और विधाता हैं सप्तर्षि कमरमें हैं, दाईंओर कुंडलाकार

नितुसंख्येयथाशिशुमारस्यकुण्डलाभोगसन्निवेशस्यपार्श्वयोरुभयोरप्यवयवाःसम संख्याभवन्तिपृष्ठेत्वजवीथीआकाशगङ्गाचोदरतः ॥५॥पुनर्वसुपुष्यौदक्षिणवामयोः श्रोण्योरार्द्राश्लेषेचदक्षिणवामयोःपश्चिमपादयोरभिजिदुत्तराषाढेदक्षिणवामयोर्ना सिकयोर्यथासंख्यंश्रवणपूर्वाषाढे दक्षिणवामयोर्लोचनयोःधनिष्ठामूलंचदक्षिणवा मयोःकर्णयोः मघादीन्यष्टनक्षत्राणि दक्षिणायनानिवामपार्श्ववंक्रिषुयुञ्जीततथैव मृगशीर्षादीन्युदगयनानिदक्षिणपार्श्ववंक्रिषुप्रातिलोम्येनप्रयुञ्जीत । शतभिषा ज्येष्ठेस्कन्धयोर्दक्षिणवामयोर्न्यसेत् ॥ ६ ॥ उत्तराहनावगस्तिरधराहनौयमो,मुखे- षुचाङ्गारकःशनैश्चरउपस्थे बृहस्पतिः ककुदि वक्षस्यादित्योहृदयेनारायणोमनसि चंद्रोनाभ्यामुशनास्तनयोरश्विनौबुधःप्राणापानयोराहुर्गलेकेतवः सर्वाङ्गेषुरोमसु सर्वेतारागणाः ॥ ७ ॥ एतदुहैवभगवतोविष्णोःसर्वदेवतामयंरूपमहरहःसंध्या यांप्रयतोवाग्यतोनिरीक्षमाणउपतिष्ठेत । नमोज्योतिर्लोकायकालायनायानिमिषां पतयेमहापुरुषायधीमहीति ॥ ८ ॥ ग्रहर्क्षतारामयमाधिदैविकंपापापहंमन्त्रकृतां त्रिकालम् । नमस्यतःस्मरतोवात्रिकालंनश्येततत्कालजमाशुपापम् ॥ ९ ॥

इतिश्रीमद्भा०पञ्च०शिशुमारसंस्थानंनामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अधस्तात्सवितुर्योजनायुते स्वर्भानुर्नक्षत्रवच्चरतीत्येके, यो ऽसावमरत्वंग्रहत्वंचाऽलभतभगवदनुकम्पयास्वयमसुरापसदःसैंहिकेयोह्यतदर्हः तस्यतातजन्मकर्माणि चोपरिष्टाद्वक्ष्यामः ॥ १ ॥ यददस्तरणेर्मण्डलंप्रतपतस्तद्वि

देहवाले इस बैलके दक्षिण पार्श्व में अभिजित इत्यादिक पुनर्वसुतक चौदह उत्तरचारी नक्षत्रहैं पुष्य इत्यादिक उत्तराषाढ़तक चौदह नक्षत्रतक, बायें पार्श्व में इस कुण्डलीभूत शिशुमार चक्रके अङ्ग दोनों पार्श्वमें बराबर संख्यावालेहैं, अजवीथी इसकी पीठपरहै और आकाश गंगा पेटमें है ५ पुनर्वसु और पुष्य दक्षिण और बाईं श्रोणियोंपर आर्द्रा और अश्लेषा पिछले दायें बायें पैरपर अभिजित और उत्तराषाढ़ दाईं बाईं नाकपर श्रवण और पूर्वाषाढ़ दायें बायें नेत्रमें धनिष्ठा और मूल दायें बायें कानमें मघा इत्यादिक आठ दक्षिणचारी नक्षत्र बायें पार्श्वकी हड्डियोंमें और मृग- शिर आदि आठ उत्तरचारी नक्षत्र दायें पार्श्वमें। हड्डियोंमें शतभिषा और ज्येष्ठा दायें बायें कंधे पर स्थितहैं ॥ ६ ॥ ऊपरके होठमें अगस्त्य नीचेके होठमें यम, मुखमें मंगल, उपस्थमें शनैश्चर, ककुदमें बृहस्पति वक्षःस्थलमें सूर्य हृदयमें नारायण मनमें चन्द्रमा नाभिमें शुक्र स्तनोंमें अश्विनी. कुमार प्राण और अपानमें बुध गलेमें राहु, सब अंगोंमें केतु और सब रोम कूपोंमें सब तारागण वर्त्तमानहैं ॥ ७ ॥ प्रत्येकदिन सायंकालमें चैतन्यहो, मौनव्रत धारणकर, परमेश्वरके इस ज्योतिश्चक्र तथा सर्वदेवतामय रूपका दर्शनकर इस मन्त्रसे स्तुतिकरे, ज्योतिके आश्रयरूप, काल चक्ररूप और देवताओंके स्वामी, महापुरुष कालरूप भगवानका हम ध्यान करतेहुये प्रणाम करते हैं ग्रह नक्षत्र तारामय, अधिदैवक, मंत्रका जप करनेवालों का पाप नाश करनेवाले इस शिशुमार चक्र का तीनोंकालमें जो मनुष्य प्रणामकरै अथवा स्मरणकरे तो उसके समय २ के पाप नाशहोजातेहैं ९

इतिश्रीमद्भा०महा०पंचम०सरलभाषाटीकायांत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि-सूर्यसे दशसहस्र योजन नीचे राहु नक्षत्रों की नाईं घूमताहै ऐसे कितने एक विद्वान कहतहैं असुरोंमें नीच सिंहिका का पुत्र राहु परमेश्वरकी दयासे अमरता की और योग्य न होनेपरभी ग्रह भावको प्राप्तहुआ इस राहुकी उत्पत्ति और कर्मोंका वर्णन आगे किया जायगा ॥ १ ॥ सूर्य मण्डलका विस्तार दशसहस्र योजन चन्द्रमण्डल का बारह सहस्र तथा राहु

स्तरतो योजनायुतमाचक्षते द्वादशसहस्रं सोमस्यत्रयोदशसहस्रंराहोर्यःपर्वणि तद्व्यवधानकृद्वैरानुबन्धः सूर्याचन्द्रमसावभिधावति ॥ २ ॥ तन्निशम्योभयत्रापि भगवतारक्षणायप्रयुक्तं सुदर्शननामभागवतं दयितमस्त्रंतत्तेजसा दुर्विषहंमुहुःपरिवर्तमानमभ्यवस्थितो मुहूर्तमुद्विजमानश्चकितहृदयआरादेवनिवर्तते तदुपराग मितिवदन्तिलोकाः ॥ ३ ॥ ततोऽधस्तात्सिद्धचारणविद्याधराणां सदनानितावन्मात्रएव ॥ ४ ॥ ततोऽधस्ताद्यक्षरक्षःपिशाचप्रेतभूतगणानां विहाराजिरमन्तरिक्षंयावद्वायुःप्रवातियावन्मेघाउपलभ्यन्ते ॥ ५ ॥ ततोऽधस्ताच्छतयोजनान्तरइयंपृथिवीयावद्धंसभासश्येनसुपर्णादयः पतत्रिप्रवराउत्पतन्तीति ॥ ६ ॥ उपवर्णितंभूमेर्यथासंनिवेशावस्थानमवनेरप्यधस्तात्सप्त भूविवरादकैकशो योजनायुतान्तरेणा यामविस्तारेणोपक्लृप्ता अतलंवितलंसुतलंतलातलंमहातलंरसा तलंपातालमिति ॥ ७ ॥ एतेषुहिविलस्वर्गेषु स्वर्गादप्यधिककामभोगैश्वर्यानन्दविभूतिभिःसुसमृद्धभवनोद्यानाक्रीडविहारेषु दैत्यदानवकाद्रवेया नित्यप्रमुदितानुरक्तकलत्रापत्यबन्धुसुहृदनुचरा गृहपतयईश्वरादप्यप्रतिहतकामा मायाविनोदा निवसन्ति ॥ ८ ॥ येषुमहाराजमयेनमायाविनाविनिर्मिताःपुरो नानामणिप्रवरप्रवेकाविरचित विचित्रभवनप्राकारगोपुरसभाचैत्यचत्वरायतनादिभिर्नागासुरमिथुनपारावतशुकसारिकाकीर्णकृत्रिमभूमिभिर्विवरेश्वरगृहोत्तमैः समलंकृताश्चकासति ॥ ९ ॥ उद्यानानिचातितरां मनइन्द्रियानन्दिभिः कुसुमफलस्तबकसुभगाकिसलयावनतरुचिरविटपविटपिनां लताङ्गालिंगितानांश्रीभिः समिथुनविविधविहंगमजलाशयानाममलजलपूर्णानांझषकुलोल्लंघनक्षुभितनीरनीरजकुमुदकुवलयकह्लार

का बिस्तार तेरहसहस्र योजनकाहै यह राहु अपनेवैरसे अमावस्याके दिन सूर्यके सामने और पूर्णिमा के दिन चन्द्रमाके सामने को दौड़ताहै २ ॥ सूर्य, चन्द्रमाकी रक्षाके हेतु भगवानने अपना सुदर्शन चक्र कि जिसका तेज कोई नहीं सहसकता रख छोड़ाहै उसे घूमता देख राहु उनके सामने क्षण-भर में व्याकुलहो भय खा दूरहीसे लौटजाताहै जितनी देर वह खड़ा रहताहै उतनी देरको मनुष्य ग्रहण कहतेहैं ॥३॥ इस राहुसे दशहजार योजन नीचे सिद्ध, चारण और विद्याधरोंके गृहहैं ॥४॥ उनके नीचे यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत तथा प्रेत, इनके गणों का विहारस्थान आकाशहै जहां पवन अतिवेगसे चलती और जहां तहां मेघ दिखाई देते हैं ॥ ५ ॥ उस आकाशके सौ योजन नीचे यह पृथ्वीमंडलहै जहां हंस, बाज, भास, गरुड़ आदि श्रेष्ठ पक्षी सौयोजन तक उड़ा करते हैं, पृथ्वीकी यथा योग्य रचना तो मैंने आपसे कही पृथ्वीके नीचेभी सात पाताल हैं वह दश २ सहस्र योजन बिस्तारकेहैं उनको अतल, वितल, सुतल तलातल, महातल, रसातल, पातल कहतेहैं ७ ॥ इन विवर पातालोंमें स्वर्गसेभी अधिक काम भोग ऐश्वर्य, आनन्द और विभूतिहैं इसमें घर, उपवन, क्रीड़ास्थान अत्यन्त शोभाको प्राप्त होरहेहैं इन स्थानोंमें दैत्य, दानव, नागलोक कि जिनकी कामना ईश्वरसे नष्ट नहीं हैं प्रेमासक्तहो निवास करते हैं इन लोगोंके स्वामी. स्त्री, पुत्र, बन्धु, सुहृद्, अनुचर सदैव मायासे विनोद पूर्वक निवास करते हैं ॥ ८ ॥ हे महाराज ! इस पुरोंमें मयदैत्यकी बनाईहुई सुंदर नगरियों में श्रेष्ठ मणियों युक्त बिचित्र भवन, महल, द्वार, सभा, बिश्रामस्थान, चौक इत्यादिक प्रकाश कररहे हैं तथा नाग और असुरोंके मिथुनरूप परेवा, सुआ, मैनासे व्याप्त कृत्रिम भूमियों वाले पाताल निवासियोंके भवन शोभाय मान होरहे हैं ॥ ९ ॥ यहां के उपवन मन तथा इन्द्रियोंको सदा प्रफुल्लित करते हैं, फल, फूलोंके गुच्छे, सुंदर पत्तोंसे लचे हुये सुंदर डालीवाले लताओं स लिपटेहुये वृक्ष शोभायमान हैं, निर्मल जल से परिपूर्ण सरोवरों

नीलोत्पललोहितशतपत्रादिवनेषुकृतनिकेतनानामेकविहाराकुलमधुरविविधस्वना दिभिरिन्द्रियोत्सवैरमरलोकश्रियमतिशयितानि ॥ १० ॥ यत्रहवावनभयमहोरात्रा दिभिः कालविभागैरुपलक्ष्यते ॥ ११ ॥ यत्रहिमहाहिप्रवरशिरोमणयः सर्वतमःप्र बाधन्ते ॥ १२ ॥ नवाएतेषुवसतांदिव्यौषधिरसरसायनान्नपानस्नानादिभिराधयो व्याधयोवलीपलितजरादयश्च देहवैवर्ण्यदौर्गन्ध्यस्वेदक्लमग्लानिरितिवयोऽव स्थाश्चभवन्ति ॥ १३ ॥ नहितेषांकल्याणानांप्रभवतिकुतश्चनमृत्युर्विनाभगवत्ते जश्चक्रापदेशात् ॥ १४ ॥ यस्मिन्प्रविष्टेऽसुरवधूनांप्रायः पुंसवनानिभयादेवस्रवन्ति पतन्तिच ॥ १५ ॥ अथातलेमयपुत्रोऽसुरोवलोनिवसतियेनहवाइहसृष्टाःषण्णवति- र्मायाःकाश्चनाद्यापिमायाविनोधारयन्ति। यस्यचजृम्भमाणस्यमुखतस्त्रयःस्त्रीगणा उदपद्यन्त स्वैरिण्यःकामिन्यःपुंश्चल्यइति,यावैबिलायनंप्रविष्टंपुरुषंरसेनहाटकाख्ये नसाधयित्वास्वविलासावलोकनानुरागस्मितसंलापोपगूहनादिभिः स्वैरंकिलरम यन्तियस्मिन्नुपयुक्तेपुरुषईश्वरोऽहं सिद्धोऽहमिति अयुतमहागजबलमात्मानमभि मन्यमानःकत्थतेमदांधइव ॥ १६ ॥ ततोऽधस्ताद्वितलेहरोभगवान्हाटकेश्वरःस्व पार्षदभूतगणावृतःप्रजापतिसर्गोपबृंहणायभवोभवान्यासह मिथुनीभूतआस्तेयतः प्रवृत्तासरित्प्रवराहाटकी नामभवयोर्वीर्येणयत्र चित्रभानुर्मातरिश्वनासमिध्यमान ओजसापिबति,तन्निष्ठ्यूतंहाटकाख्यंसुवर्णभूषणेनासुरेन्द्रावरोधेषुपुरुषाःसहपुरुषी भिर्धारयन्ति ॥ १७ ॥ ततोऽधस्तात्सुतलउदारश्रवाःपुण्यश्लोकोविरोचनात्मजो

के भीतर नानाभांति के पक्षियोंके जोड़े शोभित होरहे हैं, जोतालाव कि मछलियों के उछलने से क्षुभित होरहे हैं उन तालावों के मध्यमें कमल, कुमुद, कुवलय, नीलकमल, लालकमल, शोभायमान, होरहेहैं वहां वनोंमें रहने वाले पक्षियों के अखंड विहारके शब्दसे इन्द्रियोंको अधिक आनंद प्राप्त है वह उपवन देवलोक कीभी शोभा से बढकर हैं ॥ १० ॥ जिन लोकोंमें सूर्य न होने से काल बिभाग वाले दिन रातका भयही नहीं देखनेमे आता ॥ ११ ॥ वहांके अंधकारको बड़े २ सापोंके शिरोंकी मणियां दूरकरती हैं॥ १२ ॥ इन पाताल लोक निवासियों को, बसंत आदि ऋतुओं में उत्पन्नहुई दिव्य औषधियें रस, रसायन, अन्न, पान, स्नान के सेवन से किसी भांतिकी आधि व्याधि, श्वेतकेश, देहमें दुर्गंधि, जराआदि अवस्था, विवर्णता (रंगपलटजाना) पसीना, श्रम, ग्लानि, आदि कुछ नहीं होता ॥ १३ ॥ इन मंगलरूप लोगोंकी भगवान के तेजरूप चक्रके अतिरिक्त और किसी से मृत्यु नहीं होती ॥ १४ ॥ जबचक्र पातालमें प्रवेश करता है तोभय से दैत्य नारियों के गर्भचलित होस्खलित होजाते हैं ॥ १५ ॥ अतल में मय दानव का पुत्र बलासुर दानव रहता है जिसकी ९६ भांति की उत्पन्न की हुई किसी २ मायाको मायावी अबतक धारण करते हैं, इस बलासुर के जंभाई लेने से इसके मुखसे तीनभांति की स्त्रियोंके यूथ स्वैरिणी, कामिनी और पुंश्चली उत्पन्न हुए, जोपुरुष अतल में जाता है उसे यह हाटक नाम रसपिला, अपने बिलास, अवलोकन, स्नेहयुक्त मंदमुसकान, भाषण, आलिंगन से रमणकराती हैं, इस रसके पीनेसे मनुष्यको दशसहस्र हाथीका बलआजाता है, इससे वह मैं ईश्वरहूं, मैं सिद्धहूं, इसभांति अहंकारयुक्त प्रमत्तकीनाई बका करताहै॥१६॥ उससे नीचे वितललोक में हाटकेश्वर महादेव अपने पार्षद भूतगणों को साथले, ब्रह्माजीकीसृष्टि बढानेके हेतु भवानीके संग बिराजतेहैं, इनभवानी और शिवके वीर्यसे हाटकीनामक नदी बहती है वहां चित्रभान अग्नि पवनके बलसे इसवीर्यको पीजाता है और फिर उगिलता है, कि जिससे हाटकनाम सुवर्ण उत्पन्न होता है इस सोने के आभूषण दैत्योंकी स्त्रियों तथा पुरुष धारणकरते हैं॥१७॥इससे नीचे सुतललोक में महायशस्वी विरोचन का पुत्र राजाबलि रहताहै इंद्र

बलिर्भगवतामहेन्द्रस्यप्रियं चिकीर्षमाणेनादितेर्लब्धकायो भूत्वाबटुवामनरूपेण पराक्षितस्वलोकत्रयोभगवदनुकम्पयैवपुनःप्रवेशितइन्द्रादिष्व विद्यमानयासुसमृद्धयाश्रियाऽभिजुष्टः स्वधर्मेणाराधयंस्तमेवभगवन्तमाराधनीयमपगतसाध्वसआस्तेऽधुनापि ॥ १८ ॥ नोएवैतत्साक्षात्कारोभूमिदान स्ययसन्द्भगवत्यशेषजीवनिकायानांजीवभूतात्मभूतेपरमात्मनिवासुदेवेतीर्थतमेसर्वजीवनियन्तर्यामात्मारामेच पात्रउपपन्ने परयाश्रद्धयापरमादरसमाहि तमनसासंप्रति पादितस्यसाक्षादपवर्गद्वारस्ययग्रिलनिलयैश्वर्यम् ॥ १९ ॥ यस्यहवावक्षुत्पतनप्रस्खलनादिषुविवशःसकृन्नामाभिगृणन्पुरुषः कर्मबंधलमञ्जसाविधुनोतियस्यहैवप्रतिबाधनंमुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभन्ते ॥ २० ॥ तद्भक्तानामात्मवतांसर्वेषामात्मन्यात्मदआत्मतयैव ॥ २१ ॥ नवैभगवान्नूनममुष्यानुजग्राह । यदुतपुनरात्मानुस्मृतिमोषणंमायामयभोगैश्वर्यमेवातनुतेति ॥२२॥ यत्तद्भगवताऽनधिगतान्योपायेनयाच्ञाछलेनापहृतस्वशरीरावशेषितलोकत्रयोवरुणपाशैश्चसंप्रति मुक्तोगिरिदर्यांचापविद्धइतिहोवाच ॥२३॥ नूनंबतायंभगवानर्थेषुननिष्णातोयो ऽसाविन्द्रोयस्यसचिवोमन्त्रायवृतएकान्ततोबृहस्पतिस्तमातहायस्वयमुपेन्द्रेणात्मानमयाचत । आत्मनश्चाशिषोनोएवतद्दास्यमितिगम्भीरवयसःकालस्यमन्वन्तरपरिवृत्तंकियल्लोकत्रयमिदम् ॥ २४ ॥ यस्यानुदास्यमवास्मत्पितामहःकिलवव्रे नतुस्वपित्र्यंयदुताकुतोभयंपदंदीयमानं भगवतःपरमितिभगवतापरतेखलुस्वपितरि॥२५॥तस्यमहानुभावस्यानुपथममृजि

की भलाई के हेतु भगवान ने अदिति के उदर से अवतार ले बटुक वामनरूपसे त्रिलोकी राज्य लिया परन्तु पीछे से दयाआजाने के कारण उस बलिको सुतललोकका राज्य दिया, जोसर्वसम्पन्न लक्ष्मी इन्द्रादिकों के निकटभी नहीं है वह राजाबलिको प्राप्त है, वह स्वधर्म से आराधन योग्य भगवानका यजन किया करता है और अवतक वहांहीअभय होकर रहता है ॥ १८ ॥ सब प्राणियोंके नियन्ता, आत्माराम, श्रेष्ठपात्र, सबके प्राणरूप, और स्वरूपभूत परब्रह्म भगवानहीं दानके पात्र मिलने से राजाबलिने बडे सत्कार तथा एकाग्रचित्तसे भूमिकादान दिया, कि जो मुक्तिका द्वार है, यह कल्पना नहीं होसकती कि इसीदानके फलसे राजाबलिको सुतलका राज्य मिला ॥ ॥ १९ ॥ क्योंकि छींकलेने, ठोकर खाने इत्यादि पराधीन अवस्थाओं मेंभी जो भगवान का नाम एकबारभी लेता है तो उसके कर्मबंधन कि जिनको मुमुक्षलोग सांख्ययोग आदि साधनों से तोडते हैं अनायासही टूटजाते हैं ॥२०॥ वे भगवान कि जो अपने भक्तों को स्वरूप, तथा ज्ञानियों को ज्ञानदेनेवाले हैं उनको भूमिदान देने काफल मुक्तही होना योग्य है ॥ २१ ॥ भगवानने राजा बलिपर अनुग्रह नहीं की जो फिर अपने स्मरण के नाश करनेवाले मायामयराज्य का ऐश्वर्यदिया ॥ ॥ २२ ॥ भगवानको जब कोई दूसरा यत्न न देखपडा तो भिक्षामांगने का कपटकर केवल उसके शरीर को रख सर्व त्रिलोकी का राज्य हरण किया और फिर वरुण पाशसे बांध, पहाडकी कन्दरा के सदृश पाताललोक में डाला, इसपरभी बलिराजाने उसकाल इस भांति कहाकि ॥२३॥ बडा खेद है, इन्द्रने अपने मन्त्रके लिये बृहस्पति को थामरक्खा है तौभी इन्द्र पुरुषार्थों में निपुण नहीं है कि जिस इन्द्रने इन वामनजीको छोड़, इन्हीं द्वारा मुझसे तीनोलोक मांगे परन्तु इनके दास्य भावको न मांगा, एक मन्वंतर में नष्ट होनेवाला यह त्रिलोकी का राज्य इन्द्रको इतने श्रमसे मिला वह कालके सामने क्यावस्तु है ॥२४॥ हमारे पितामह प्रल्हादने भगवानके दास्य भावहीको मांगा यद्यपि उनके पिताके मरनेपर भगवान उन्हें निष्कंटक राज्य देतेथे परन्तु उन महानुभाव ने इसे अनित्य और भगवान से न्याराजान इसे न स्वीकार किया ॥ २५ ॥ इनसरीखे जनकि जिनपर

तकषायकांबोऽस्मद्विधःपरिहीणभगवदनुग्रह उपजिगमिषति ॥ २६ ॥ अथतस्या नुचरितमुपरिष्टाद्विस्तरिष्यतेयस्यभगवान् स्वयमखिलजगद्गुरुर्नारायणोद्वारि गदापाणिरवतिष्ठते निजजनानुकम्पितहृदयो येनांगुष्ठेनपदा दशकन्धरोयोजनायुता युतं दिग्विजयउच्चाटितः ॥ २७॥ ततोधस्तात्तलातलेमयोनामदानवेंद्रस्त्रिपुराधि पतिर्भगवतापुरारिणा त्रिलोकीशंचिकीर्षुणा निर्दग्धस्वपुरत्रयस्तत्प्रसादाल्लब्धप दो मायाविनामाचार्योमहादेवेनपरिरक्षितोविगतसुदर्शनभयोमहीयते ॥ २८॥ ततो ऽधस्तान्महातले काद्रवेयाणांसर्पाणांनैकशिरसांक्रोधवशोनामगणः कुहकतक्षक कालियसुषेणादिप्रधानामहाभोगवन्तपतत्त्रिराजाधिपतेःपुरुषवाहादनवरतमुद्विज मानाःस्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुम्बसंगेनक्वचित्प्रमत्ताविहरन्ति ॥ २९ ॥ ततोऽधस्ता द्रसातलेदैतेयादानवाःपणयोनाम निवातकवचाःकालेयाहिरण्यपुरवासिनइतिवि बुधप्रत्यनीकाउत्पत्त्यामहौजसोमहासाहसिनोभगवतः सकललोकानुभावस्यहरेरे वतेजसाप्रतिहतबलावलेपाबिलेशयाइववसन्ति । यवैसरमयेन्द्रदूत्यावाग्भिर्मंत्र वर्णाभिरिंद्राद्बिभ्यति ॥ ३० ॥ ततोऽधस्तात्पातालेनागलोकपतयोवासुकिप्रमुखाः शंखकुलिकमहाशंखश्वेतधनंजयधृतराष्ट्रशंखचूडकम्बलाश्वतरदेवदत्तादयोमहा भोगिनो महामर्षानिवसन्ति तेषामुहवैपञ्चसप्तदशशतसहस्रशीर्षाणांफणासुवि रचितामहामणयोरोचिष्णवःपातालविवरतिमिरनिकरंस्वरोचिषाविधमन्ति ३१॥

इतिश्रीमद्भा०पञ्चम०चतुर्विंशतितमोऽध्यायः॥ २४ ॥

भगवान की न्यूनकृपा है और जिनके रागादिक द्वेषनाश नहींहुये प्रल्हादके मार्गके पानेकी इच्छा करते हैं ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि हेराजा परीक्षित् ! इनराजा बलिका वर्णन आगे (अष्टम० स्कंध) विस्तार सहित वर्णन करेंगे कि जिनके द्वारपर अखिल जगदगुरू भक्तोंपर दयाकरने वाले भगवान सदाही गदालिये खड़ेरहते हैं, जिसकाल रावण दिग्विजय कर सुतल लोकमें आया उसकाल भगवानने अपने पैरके अंगूठे से उस लक्षयोजनपर फेंकदिया॥२७॥सुतलसे नीचे तलातलमें त्रिपुर का अधिपति मय नामक दैत्यरहता है, त्रिलोकि को सुखी करने की इच्छासे महादेवजी ने इसके तीनोंपुर जलाडाले थे परन्तु फिरशिवजी ने कृपाकर उसे यह स्थानदिया, यह मायावियों का आचार्य्य महादेवजी से रक्षित होने के कारण सुदर्शन चक्रसेभी डर न कर तलातल लोक में रहता है॥२८॥ इस तलातलके नीचे महातलमें नाना शिरवाले कद्रूके पुत्रसर्प लोगोंका क्रोधवश नामक गणरहता है इनमें कुहक, तक्षक, काली और सुषेण इत्यादिक सर्प प्रधान मानेजाते हैं, बड़ी देहवाले यह सर्प भगवान के वाहन गरूड़से सदैव डराकरते हैं तौभी कभी २ अपनी स्त्री, पुत्र, सुहृद और कुटुंबियों के साथ प्रमत्त होकर विहार किया करते हैं ॥ २९ ॥ इससे नीचेरसातल लोक में निवात कवच, कालेय और हिरण्य पुरवासी यह तीनसमूह वाले पणिनाम दैत्य और दानव रहते हैं यह देवताओं के वैरी बड़े वली, साहसी, हैं तौभी लोकों में प्रभाव वाले हरिके चक्रस तेजहत होकर जैसे बिलमें सांप रहते हैं वैसेही रहा करते हैं । यह दैत्य, इन्द्रकी दूती सरमाकुत्ती के उच्चारण किये मंत्र रूपी वाक्य सुन सदैव इन्द्रसे डराकरते हैं ॥ ३० ॥ रसातलके नीचे पाताल लोकमें बड़े२ क्रोधी और बड़े २ नागरहते हैं, इन सबका अधिपति वासुकिनाग है इनमें शंख, कुलिक, महाशंख, श्वेत, धनंजय, धृतराष्ट्र शंखचूड, कंवल, अश्वतर, और देवदत्त इत्यादिक नागमुख्य मानेजाते हैं, पांच, सात, दश, सौ, सहस्र, शिरवाले यह नागलोग अपने फणोंपर वर्तमान बड़े प्रकाश वाले श्रेष्ठ मणियों की ज्योति से पाताल के घोर अंधकारको दूरकरते हैं॥ ३१ ॥

इति श्रीमद्भा०महा०पंचम०सरलाभाषाटीकायांचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ तस्यमूलदेशेत्रिंशद्योजनसहस्रांतरआस्तेयावैकलाभगवत-
स्तामसीसमाख्याताऽनन्तइतिसात्वतीयाद्रष्टृदृश्ययोः संकर्षणमहमित्यभिमानलक्ष
णंयंसंकर्षणमित्याचक्षते ॥ १ ॥ यस्येदंक्षितिमण्डलंभगवतोऽनन्तमूर्तेःसहस्रशिर
सएकस्मिन्नेवशीर्षणिध्रियमाणंसिद्धार्थइवलक्ष्यते ॥ २ ॥ यस्यहवाइदंकालेनोप
संजिहीर्षतोऽमर्ष विरचितरुचिरभ्रमद्भ्रुवोरन्तरेणसंकर्षणोनाम रुद्रएकदशव्यूह
स्त्रिशिखंशूलमुत्तम्भयन्नुदतिष्ठत् ॥ ३ ॥ यस्यांघ्रिकमलयुगलारुण विशद
नखमणिखण्डमण्डलेष्वहि पतयः सहसात्वतर्षभैरेकांतभक्तियोगे नावनमन्तः
स्ववदनानि परिस्फुरत्कुण्डलप्रभामण्डलमण्डितगण्डस्थलान्यतिमनोहराणिप्रमु-
दितमनसःखलुविलोकयंति ॥ ४ ॥ यस्यैवहिनागराजकुमार्यआशिषआशासाना
श्चार्वङ्गवलयविलसितविशदविपुलधवलसुभगरुचिरभुजरजतस्तम्भेष्वगुरुचंदन
कुंकुमपंकानुलेपेनावलिम्पमानास्तदभिमर्शनोन्मथितहृदयमकरध्वजा वेशरुचिर
ललितस्मितास्तदनुरागमदमुदितमदविघूर्णितारुणकरुणाऽवलोकनयनवदनारविं
दंसव्रीडंकिलविलोकयंति॥५॥सएवभगवाननन्तोऽनन्तगुणार्णवआदिदेवउपसंहृ-
तामर्षरोषवेगोलोकानांस्वस्तयआस्ते ॥ ६ ॥ ध्यायमानःसुरासुरोरगसिद्धगंधर्व
विद्याधरमुनिगणैरनवरतमदमुदितविकृतविह्वललोचनः सुललितमुखरिकाऽमृते
नाप्यायमानः स्वपार्षदविबुधयूथपती नपरिम्लानरागनवतुलसिकामोदमध्वास
वेनमाद्यन्मधुकरव्रातमधुरगीतश्रियं वैजयन्तींस्वांवनमालांनीलवासाएककुण्डलो
हलककुदिकृतसुभगसुन्दरभुजो भगवान्माहेन्द्रो वारणेन्द्रइवकाञ्चनींकक्षामुदार

श्रीशुकदेवजी बोले कि— पातालके तीससहस्रयोजन नीचे शेषजी कि जो भगवानकी तमोगुणी कला कहलाते हैं बिराजमान हैं यह अहंकारके अधिष्ठाताहैं और अहंकाररूपसे आत्मा तथा देहको एक करदेतेहैं इसी हेतु मनुष्य उन्हें संकर्षण कहाकरते हैं ॥ १ ॥ सहस्र शिरवाले अनन्तमूर्त्ति श्रीशेषजीके एक शिरपर यह पृथ्वीमण्डल एकसरसोंकी समान धरीहुई है ॥२॥ जिससमय प्रलय-कालमें विश्वके संहारकी इच्छाकरते हैं तब क्रोधसे टेढ़ीभौंहों के मध्यसे संकर्षणनाम ग्यारह व्यूह तथा तीननेत्रवाले रुद्र हाथमें त्रिशूललिये प्रगटहोते हैं ॥ ३ ॥ श्रेष्ठभक्तोंके साथ भक्तिसे दण्डवत करतेहुए नागलोक प्रकाशित कुण्डलोंकी ज्योतिसे शोभित कपोलवाले और अतिसुन्दर अपनेमुख को जिन शेषभगवानके चरण कमल सम्बन्धी लाल तथा निर्मलमणिके समान नख समूह में आनन्दितहोकर देखा करते हैं ॥ ४ ॥ नागकन्यायें अपने संसारी सुखोंकी इच्छाकर जिनशेष भगवानके वलयसे शोभित स्वच्छ, मोटे, धौले अतिसुन्दर भुजारूप रूपेके स्तंभों में अगर, चन्दन, तथा केसरकी कीचसे लेपन करनेसमय उनके छूनेसे विकारी हृदय में कामदेवका सञ्चारहोने से अति ललित हास्यसे मुसकराती हैं और उनके मुखको कि—प्रेम तथा मदसे आनंदित और मदसे घूमती और करुणायुक्त रीतिसे देखनेवाली दृष्टिवालाहै उसे लज्जासमेत देखाकरती हैं ॥५॥ वह अनन्तगुणोंके समुद्ररूप, अनंत तथा आदि देव शेषनाग क्रोधकोरोक, लोकों के सुख के हेतु विराजमान हैं ॥ ६ ॥ देवता, असुर, सर्प, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर, और मुनिगण सदैव उनका ध्यानकरते हैं उनके नेत्र सदैव मदसे मुदित, विकृत और विह्वल रहाकरते हैं, सुन्दर, ललित वचनामृत से अपने पार्षद तथा देवताओं के अधिपतियोंको सदैव हर्ष देतेहैं नीलाम्बर ओढ़, कुण्डल पहिने, हलके अग्रभाग में अपनीभुजा रक्खे यह भगवद्भक्त शेषभगवान इन्द्रका हाथी जैसे सोनेकी तंग धारणकरे ऐसे अपने वैजयंती नाम बनमालाको कि जिसकी प्रभा कभी हीननहीं होती बड़ी लीलाके साथ धारण किये हैं नवीन तुलसी के सुगंधमय रससे मतहो नाना भौंरे इसमालापर गूंज

लीलोबिभर्ति ॥ ७ ॥ यएषएवमनुश्रुतोध्यायमानोमुमुक्षूणामनादिकालकर्मवासनाग्रथितमविद्यामयंहृदयग्रन्थिंसत्वरजस्तमोमयमन्तर्हृदयंगतआशुनिर्भिनत्तितस्यानुभावान्भगवान्स्वायंभुवोनारदःसहतुम्बुरुणासभायांब्रह्मणःसंश्लोकयामास ॥८॥ उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्यकल्पाःसत्त्वाद्याःप्रकृतिगुणायदीक्षयाऽऽसन्। यद्रूपंध्रुवमकृतंयदेकमात्मन्नानाधात्कथमुहवेदतस्यवर्त्म ॥९॥ मूर्तिंनःपुरुकृपयाबभारसत्त्वंसंशुद्धंसदसदिदंविभातियत्र। यल्लीलांमृगपतिराददेऽनवद्यामादातुंस्वजनमनांस्युदारवीर्यः ॥ १० ॥ यन्नामश्रुतमनुकीर्तयेदकस्मादार्तोवायदिपतितःप्रलम्भनाद्वा। हन्त्यंहःसपदिनृणामशेषमन्यंकंशेषाद्भगवतआश्रयेन्मुमुक्षुः ॥ ११ ॥ मूर्धन्यर्पितमणुवत्सहस्रमूर्ध्नोभूगोलंसगिरिसरित्समुद्रसत्वम्। आनन्त्यादनिमितविक्रमस्यभूम्नःकोवीर्याण्यधिगणयेत्सहस्रजिह्वः ॥ १२ ॥ एवंप्रभावोभगवाननन्तोदुरन्तवीर्योरुगुणानुभावः। मूलेरसायाःस्थितआत्मतन्त्रोयोलीलयाक्ष्मांस्थितयेबिभर्ति ॥ १३ ॥ एताह्येवहनृभिरुपगन्तव्यागतयोयथाकर्मविनिर्मितायथोपदेशमनुवर्णिताःकामान्कामयमानैः ॥१४॥ एतावतीर्हिराजन्पुंसःप्रवृत्तिलक्षणस्यधर्मस्यविपाकगतयउच्चावचाविसदृशायथाप्रश्नंव्याचख्येकिमन्यत्कथयामइति ॥ १५ ॥

इतिश्रीमद्भा०म०पञ्चमस्कंधेपञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

रहे हैं ॥ ७ ॥ वह शेषभगवान इसभांति सुनने तथा ध्यान करनेसे मुमुक्षुओं के अंतःकरण में आय सत्व, रज, तमसे बनेहुए उनके देहाभिमान को कि जो बहुतकाल के कर्म वासनाओंसे गुंथातथा अविद्यामय है तत्काल काटदेते हैं, उनके ऐश्वर्यमय चरित्रों का नारदजीने तुंबरू गंधर्व के संग ब्रह्माजीकी सभामें गान कियाथा ॥ ८ ॥ इस सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार के हेतु रूप, सत्व आदि मायाके गुण जिनकी दृष्टि पड़ने से अपने २ कार्य में तत्पर होते हैं और जिनके अनन्त तथा अनादि स्वरूपसे एकहोनेपरभी अपने स्वरूप में नानाभांति के कार्य प्रपंच उत्पन्नहुआ करते हैं उन शेषजीके तत्वको कोई कैसे जानसकताहै ? ॥ ९ ॥ भक्तोंके अंतःकरण वशकरने के हेतु जिनकी श्रेष्ठलीलाको सिंहभी अंगीकार किया करता है ऐसे और जिनके रूपमेंही यहकार्य कारणात्मक सृष्टि प्रकाशित होती है और जिन्हों ने हमपर दयाकर यह शुद्ध, तथा सत्वरूप स्वरूप धारण किया है उन अतुल वैभव वाले शेषजी को यह मुमुक्षु मनुष्य छोड़ किस की शरण जाय ? ॥१०॥ दूसरे मनुष्यके मुखसे निकलेहुये जिन शेषजीके नामको कोई मनुष्य अनायास या आर्त हो हंसी में भी लेवे तो वह नाम पापी मनुष्य के पापों को तत्काल ही नाश करदेता है, ऐसे शेष भगवान को छोड़कर यह मुमुक्षु मनुष्य किसकी शरण में जाय ? ॥११॥ वह अपार पराक्रम तथा सहस्रशिर वाले शेष भगवान अपने एक शिरपर पर्वत,नदियां, समुद्र और सब जीवों समेत इस पृथ्वी मंडल को परमाणु की भांति धारण किये हैं उनके पराक्रमों सहस्र जीभों से भी कोई नहीं गिन सकता ॥ १२ ॥ ऐसे प्रभावशाली, अनन्त, अपार पराक्रमी, स्वतन्त्र तथा नाना गुण वाले वह शेषभगवान पाताल मूल में स्थित सृष्टि रक्षाके हेतु लीलासे पृथ्वीका धारण करते हैं ॥ १३ ॥ सांसारिक सुखोंकी कामना वाले मनुष्य अपने २ कर्म से जो लोक पाते हैं वह इतने ही हैं उनका मैंने शास्त्रवत् वर्णन किया ॥ १४ ॥ महाराज ! पुरुषों को प्रवृत्तिरूप धर्म से मिलने वाली और एक २ से पृथक २ भांति की छोटी बड़ी इतनी ही गतियां हैं जिन का वर्णन मैं आप के प्रश्नानुसार कर चुका हूं अब और क्या कहूं ? ॥ १५ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०पं०सरलाभाषाटीकायांपंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

राजोवाच ॥ महर्ष एतद्वैचित्र्यं लोकस्य कथमिति ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ त्रिगुणत्वात्कर्तुः श्रद्धया कर्मगतयः पृथग्विधाः सर्वा एव सर्वस्य तारतम्येन भवन्ति २ ॥ अथेदानीं प्रतिषिद्धलक्षणस्याधर्मस्य तथैव कर्तुः श्रद्धाया वैसादृश्यात्कर्मफलं विसदृशं भवति याह्यनाद्यविद्यया कृतकामानां तत्परिणामलक्षणाः सृतयः सहस्रशः प्रवृत्तास्तासां प्राचुर्येणानुवर्णयिष्यामः ॥ ३ ॥ राजोवाच ॥ नरका नाम भगवन्किं देशविशेषा अथवा बहिस्त्रिलोक्या आहोस्विदन्तराल इति ॥ ४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ अंतराल एव त्रिजगत्यास्तु दिशि दक्षिणस्यामधस्ताद्भूमेरुपरिष्टाच्च जलाद्यस्यामग्निष्वात्तादयः पितृगणा दिशि स्वानां गोत्राणां परमेण समाधिना सत्या एवाशिष आशासाना निवसन्ति ॥ ५ ॥ यत्र ह वाव भगवान्पितृराजो वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैर्जन्तुषु संपरेतेषु यथा कर्मावद्यं दोषमेवानुल्लंघितभगवच्छासनः सगणो दमं धारयति ॥ ६ ॥ तत्र हैके नरकानेकविंशति गणयन्ति अथ तांस्ते राजन्नामरूपलक्षणतो ऽनुक्रमिष्यामस्तामिस्रोन्धतामिस्रो रौरवो महारौरवः कुम्भीपाकः कालसूत्रमसिपत्रवनं सूकरमुखमन्धकूपः क्रमिभोजनः संदंशस्तप्तसूर्मिर्वज्रकण्टकशाल्मली वैतरणीपूयोदः प्राणरोधो विशसनं लालाभक्षः सारमेयादनमवीचिरयःपानमिति॥ किंच, क्षारकर्दमो रक्षोगणभोजनः शूलप्रोतो दन्दशूकोऽवटनिरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखमित्यष्टाविंशतिर्नरका विविधयातनाभूमयः ॥७॥ तत्र यस्तु परवित्तापत्यकलत्राण्यपहरति स हि कालपाशबद्धो यमपुरुषैरतिभयानकैस्तामिस्रे नरके बलान्निपात्यते । अनशनानुदपानदण्डताडनसंतर्जनादिभिर्यातनाभिर्यात्यमानो जन्तुर्यत्र कश्मलमासा

राजा परीक्षित् बोले कि—हे महर्षे ! प्राणियों के सुख दुःख भोग की यह विचित्रता कैसे है ? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—श्रद्धा से किये कर्मों के फलों में विचित्रता है जो पुरुष कि सात्विकी श्रद्धा से कर्म करे उसे सुख मिलता है और राजसी से दुःख सुख दोनों और तामसी से केवल दुःखही मिलता है इसी से श्रद्धा के न्यूनाधिकता से सबके सुख और दुःख में भी न्यूनाधिकताहै ॥२॥ इसीभांति निषिद्ध आचरण करने वालोंकी श्रद्धाओंमेंभी अंतर रहता है और उसी से अधर्मियों कोभी पृथक् पृथक् फल भोगकरना होता है अब अनादि काल संबंधी अविद्या के हेतु प्रगट होनी कामनाओं के परिणाम रूप सहस्रों नर्क हैं उनमें प्रधान २ नर्कोंका वर्णन करेंगे ॥३॥ राजा परीक्षित् ने कहाकि हे भगवन् ! जिनको आप नरक कहते हैं क्या वह कोई देश विशेष हैं या त्रिलोकी के बाहर हैं अथवा त्रिलोकीही के अन्तर्गत हैं ॥ ४ ॥ शुकदेवजी बोलेकि—हेराजन् ! नरक त्रिलोकीही के भीतर हैं यह दक्षिण दिशामें भूमिके नीचे और जलके ऊपर हैं कि जिस दिशामें अग्निष्वात्तादि पितृगण हृदय से अपने कुटुंबियों को सत्य आशीस देतेहुये निवास करते हैं ॥ ५ ॥ जहांपित्रों के राजा सूर्यसुत यमराज अपने दूतोंद्वारा मृतक जीवोंको अपने निकट बुला ईश्वरीय नियमानुसार चित्रगुप्तादि गणोंकी सहायता से उनके अपराधानुसार दंडदेते हैं ॥ ६ ॥ कितने एक नरकों की संख्या २१ बतलाते हैं, तामिस्र, अंधतामिस्र, रौरव महारौरव, कुंभीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अंधकूप, कृमिभोजन, संदंश, तप्तसूर्मि, वज्रकंटक शाल्मलि वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि, और अयापान इन २१ नरकोंका रूप व-लक्षणों से वर्णन करूंगा परन्तु इनसे औरभी यह सातनरक क्षारकर्दम, रक्षोगण भोजन, शूलप्रोत, दंदशूक, अवटनिरोधन, पर्यावर्तन, और सूचीमुख, पृथक् हैं यह अट्ठाईस नरक अतिदुःखदाई हैं ॥ ७ ॥ जोमनुष्य परायाद्रव्य, पुत्र, स्त्रीका हरण करता है उसको अतिभयानक यमदूत कालपाशसे बांध तामिश्र नरकमें डालते हैं यह दूत उसप्राणीको वहां न खानेको देते हैं न पीनेको—वरन

दितपकवैवमूर्छामुपयातितामिस्रप्राये ॥८॥ एवमेवान्धतामिस्रे यस्तुवंचयित्वापुरुषं दारादीनुपयुंक्ते । यत्रशरीरीनिपात्यमानोयातनास्थोवेदनया नष्टमतिर्नष्टदृष्टिश्चभवति यथावनस्पतिर्वृश्च्यमानमूलस्तस्मादन्धतामिस्रंतमुपदिशन्ति ॥९॥ यस्त्विहवा एतदहमितिममेतामिति भूतद्रोहेणकेवलंस्वकुटुम्बमेवानुदिनंप्रपुष्णातिसतदिहविहायस्वयमेवतदशुभेनरौरवेनिपतति ॥१०॥येत्विहयथैवामुनाविहिंसिताजन्तवःपरत्रयमयातनामुपगतंतएवरुरवो भूत्वातथातमेवविहिंसन्ति,तस्माद्रौरवमित्याहुःरुरुरितिसर्पादतिक्रूरसत्त्वस्यापदेशः ॥ ११ ॥ एवमेवमहारौरवोयत्रनिपतितंपुरुषं क्रव्यादानामरुरवस्तंक्रव्येणघातयंतियः केवलंदेहंभरः ॥ १२ ॥ यस्त्विहवाउग्रः पशून्पक्षिणोवाप्राणत उपरन्धयति तमपकरुणंपुरुषादैरपिविगर्हितममुत्र यमानुचराःकुम्भीपाकेतप्ततैलेउपरन्धयन्ति ॥ १३ ॥ यस्त्विहपितृविप्रब्रह्मध्रुक्सकालसूत्रसंज्ञकेनरकेऽयुतयोजनपरिमण्डले ताम्रमयेतप्तखले उपर्यधस्तादग्न्यर्काभ्यामतितप्यमानेऽभिनिवेशितःक्षुत्पिपासाभ्यांचदह्यमानान्तर्बहिःशरीरआस्तेशेतेचेष्टतेऽवतिष्ठतिपरिधावतिचयावन्ति पशुरोमाणितावद्वर्षसहस्राणि ॥ १४ ॥ यस्त्विहवैनिजवेदपथादनापद्यपगतः पाखण्डंचोपगतस्तमसिपत्रवनंप्रवेश्यकशयाप्रहरन्ति तत्र हासा वितस्ततोधावमानउभयतोधारैस्तालवनासिपत्रैश्छिद्यमानसर्वाङ्गोहाहतोऽस्मीतिपरमयावेदनयामूर्छितः पदेपदेनिपततिस्वधर्महापाखण्डानुगतंफलंभुङ्क्ते

दंडसे प्रहार करते हैं इनदुःखों से वह प्राणी दुःखितहो उस तामिस्र नर्कमें मूर्छित होजाता है ॥८॥ ऐसेही जोमनुष्य, स्वामिको बंचितकर उसकी स्त्री तथा द्रव्यादिकका भोगकरता है उसको अंधतामिस्र नर्कमें डालते हैं इस नरकमें गिरने से यातनास्थित, जीवकी बुद्धि और दृष्टि बेदनाओं से नष्ट होजाती है जैसे जड़काटने से वृक्षदुःखित होता है वैसही इसप्राणी की दशाहोती है इसी से इसको अंधतामिश्र कहते हैं ॥ ९ ॥ जोमनुष्य यह देह, द्रव्यमेरा है, ऐसा अहंकार कर दूसरे जीवोंसे शत्रुता करके केवल कुटुम्ब काही नित्य पोषण करताहै वह जीव, देह तथा कुटुम्बको यहीं छोड़ आप अकेला पापसे घोर रौरवनरक में गिरताहै ॥ १० ॥ जिसने यहां जिन जीवोंको जिस भांति मारा है वही जीव रुरुप्राणी बन यमयातना में आयेहुये प्राणीको उसी भांति मारते हैं इसी से इसका नामरौरव है यह रुरुसर्प सेभी अधिक क्रूरहोता है ॥ ११ ॥ ऐसेही जोकेवल अपने शरीर काही पोषण करता है वह महारौरव नरकमें गिरता है इस नरकमें पड़ेहुये प्राणीको क्रव्याद नाम रुरुमांसके हेतु माराकरते हैं ॥ १२ ॥ जोमहाउग्र निर्दई पुरुष जीवितपशु पक्षियोंको रांधखाते हैं उन राक्षसों से धिक्कारेहुये मनुष्योंको यमदूत कुंभीपाक नाम नरकमें डालते हैं और इसको खौलते हुये तेलमें डालकर रांधते हैं ॥ १३ ॥ जोमनुष्य पिता, ब्राह्मण, और देवता से बैरकरता है वह कालसूत्र नरकमें गिरता है, इस नरकका विस्तार दशसहस्र योजन है इसकी भूमितांबे की और महाउष्ण, समधरातलकी है यह नीचे अग्नि और ऊपर सूर्य्य से संतप्त रहती है इस नरकमें गिराहुआ जीव क्षुधा और तृषासे कातर तथा शरीर दग्धहोने से आतुर होताहुआ पशुके जितने रोम होते हैं उतने सहस्रवर्ष वहीं बैठा, सोता, खड़ा रहता तथा दौड़ाकरता है ॥ १४ ॥ जोमनुष्य वेदमार्गको छोड़पाखण्डमार्ग का अवलम्बन करता है उसे असिपत्रवन नाम नरकमें डालकोड़ों से मारते हैं जबप्राणी पिटताहुआ, इसके चारोंओर भागता है और उस तालवनके दुधारे तलवार से पत्ते उसके ऊपर गिरते हैं तब वह अंग कटने से 'हायमरा हायमरा' ऐसे चिल्लाता है और अतिदुःख से कातरहो मूर्छितहो होकर गिरता है जो स्वधर्म को छोड़ पाखंड मतका

॥ १५ ॥ यस्त्विहवैराजाराजपुरुषोवाअदण्ड्येदण्डंप्रणयतिब्राह्मणेवाशरीरदण्डं सपापीयान्नरकेऽमुत्रसूकरमुखे निपततितत्रातिबलैर्विनिष्पिष्यमाणावयवोयथैवेह क्षुखण्डआर्तस्वरेणस्वनयन्क्वचिन्मूर्छितः कश्मलमुपगतोयथैवेहादृष्टदोषाउपरुद्धाः ॥ १६ ॥ यस्त्विहवैभूतानामीश्वरोपकल्पितवृत्तीनामविविक्तपरव्यथानांस्वयंपुरुषोपकल्पितवृत्तिर्विविक्तपरव्यथोव्यथामाचरति सपरत्रान्धकूपेतदभिद्रोहेण निपतति तत्रहासौ तैर्जन्तुभिः पशुमृगपक्षिसरीसृपैर्मशकयूकामत्कुणमक्षिकादिभिर्येकेचाभिद्रुग्धास्तैःसर्वतोऽभिद्रुह्यमाणस्तमसिविहतनिद्रानिर्वृतिरलब्धावस्थानःपरिक्रामतियथाकुशरीरेजीवः ॥ १७ ॥ यस्त्विहवाअसंविभज्याश्नातियत्किंचनोपनतमनिर्मितपञ्चयज्ञोवायसंसंस्तुतःसपरत्रकृमिभोजनेनरकाधमे निपतति तत्रशतसहस्रयोजनेकृमिकुण्डेकृमिभूतःस्वयंकृमिभिरेवभक्ष्यमाणः कृमिभोजनोयावत्तदप्रत्ताप्रहुतादोऽनिर्वेशमात्मानंयातयते ॥ १८ ॥ यस्त्विहवैस्तेयेनबलाद्वाहिरण्यरत्नादीनि ब्राह्मणस्यवापहरतिअन्यस्यवाऽनापदि पुरुषस्तममुत्रराजन्यमपुरुषाअयस्मयैरग्निपिण्डैःसंदंशैस्त्वचिनिष्कुषन्ति ॥ १९ ॥ यस्त्विहवाअगम्यांस्त्रियमगम्यंवापुरुषंयोषिदभिगच्छतितावमुत्रकशयाताडयन्तस्तिग्मयासूर्म्यालोहमय्यापुरुषमालिङ्गयति स्त्रियंचपुरुषरूपयासूर्म्या ॥ २० ॥ यस्त्विहवैसर्वाभिगमस्तममुत्रनिरयेवर्तमानंवज्रकण्टकशाल्मलीमारोप्यनिष्कर्षन्ति ॥२१॥येत्विहवैराजन्याराजपुरुषावाअपाखण्डा

अवलंबन करता है उसको यही फल भोगने पड़ते हैं ॥ १५ ॥ इस संसार में राजा अथवा राजाका कोई कर्मचारी निरपराधी मनुष्यको दंडदेता है और ब्राह्मणों को शारीरिक दंडदेता है तो वह मरने के उपरांत सूकरमुख नाम नरक में गिरता है इस नरक में बड़े २ महाबली यमदूत उसके अंगोंको ऊखकी भांति कोल्हू में पेरते हैं जिससे वह पीड़ित होकर चिल्लाता और मूर्च्छित होजाता है जिस भांति उसने निरपराधी मनुष्यको दंडदिया है उसीभांति उसको भुगतना पड़ता है ॥ १६ ॥ जो मनुष्य ईश्वर के नियत कियेहुये धर्म और परपीड़ाको जानकार भी खटमल इत्यादिक जीव कि जिनकी वृत्ति भगवान ने रुधिर आदि पीनादि कल्पना की है और जोदूसरे के दुःखको नहीं जानते दुःखदेते हैं ऐसे मनुष्य मरने के उपरांत अंधकूप नरक में गिरते हैं इस नरक में पशु, मृग, पक्षी, सर्प, मच्छड़, जूं, खटमल इत्यादिकि जिनको उस मनुष्यने पीड़ादी है चारों ओर से उस प्राणी को पीड़ादेने लगते हैं न उसको नींद आवे और न वह एक स्थानपर बैठसके जैसे कीड़ादिक शरीर में जीव तड़फा करता है वैसेही इस अंधकारमय नरकमें वह तड़फाकरता है, ॥ १७ ॥ जो मनुष्यखानेकी वस्तु अकेलेही खाय औरको न बांटे तथा पंचयज्ञादिनकरे वह काकसदृश मनुष्यमरने के उपरांत कृमिभोजीनरकमें गिरता है इस लक्षयोजनके विस्तार वाले कृमि भोजनिरक में गिरेहुए पापी को उसके कीड़े खाते हैं और उसप्राणीको भी वहीकीडे खाने पडते हैं और जबतक उसका पाप बनारहता है तबतक इसी नरकमें दुःख भोगता है ॥ १८ ॥ जोमनुष्यचोरी, अथवा बलसे ब्राह्मणके सुवर्ण रत्नादिक का हरणकरता है और जोबिना आपत्कालके दूसरे कीभी चोरी करता है वह मनुष्य मरने के उपरांत संदंश नरकमें गिरता है उस प्राणीकी खाल को यमदूत लोहे के गरम चिमटे से तोड़ते हैं ॥ १९ ॥ जो मनुष्य अगम्यास्त्रीसे तथास्त्री अगम्य पुरुष से रमणकरता है वह सप्तसूर्मिनरकमें गिरता है वहां यमदूत उसे कोड़ों से मारते हैं और लोहे की जलतीहुई मूर्त्ति में स्त्री तथा पुरुषको लिपटाते हैं ॥ २० ॥ जो मनुष्य पशु इत्यादिक के संग रमणकरता है वह मरने के उपरान्त वज्रकण्टक शाल्मलि नरक में गिरता है वहां यमदूत उस प्राणी को वज्र सदृश कांटों वाले सेमल के वृक्षपर चढ़ा उसे खींचते हैं ॥ २१ ॥

धर्मसेतूम्भिन्दन्ति ते संपरेत्य वैतरण्यां निपतंति भिन्नमर्यादास्तस्यां निरयपरिखाभूतायां नद्यां यादोगणैरितस्ततो भक्ष्यमाणा आत्मना न वियुज्यमानाश्चासुभिरुह्यमानाः स्वाघेन कर्मपाकमनुस्मरन्त उपतप्यन्ते विण्मूत्रपूयशोणितकेशनखास्थि मेदोमांसवसावाहिन्यामुपतप्यंते ॥२२॥ ये त्विह वै वृषलीपतयो नष्टशौचाचारा नियमास्त्यक्तलज्जाः पशुचर्यां चरन्ति ते चापि प्रेत्य पूयविण्मूत्रश्लेष्ममलापूर्णार्णवे निपतन्ति तदेवातिबीभत्सितमश्नन्ति ॥ २३ ॥ ये त्विह वै श्वगर्दभपतयो ब्राह्मणादयो मृगयाविहारा अतीर्थे च मृगान्निघ्नन्ति तानपि संपरेतांल्लक्ष्यभूतान्यमपुरुषा इषुभिर्विध्यन्ति ॥ २४ ॥ ये त्विह वै दाम्भिका दम्भयज्ञेषु पशून्विशसन्ति तानमुष्मिँल्लोके वैशसे नरके पतितान्निरयपतयो यातयित्वा विशसन्ति ॥ २५ ॥ यस्त्विह वै सवर्णां भार्यां द्विजो रेतः पाययति काममोहितस्तं पापकृतममुत्र रेतःकुल्यायां पातयित्वा रेतः संपाययन्ति ॥ २६ ॥ ये त्विह वै दस्यवोऽग्निदा गरदा ग्रामान्सार्थान्वा विलुम्पन्ति राजानो राजभटा वा तांश्चापि हि परेत्य यमदूता वज्रदंष्ट्राः श्वानः सप्तशतानि विंशतिश्च सरभसं खादन्ति ॥ २७ ॥ यस्त्विह वा अनृतं वदति साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वा कथंचित्स वै प्रेत्य नरकेऽवीचिमत्यधःशिरा निरवकाशे योजनशतोच्छ्रायाद्गिरिमूर्ध्नः संपात्यते यत्र जलमिव स्थलमश्मपृष्ठमवभासते तदवीचिमत्तिलशो विशीर्यमाणशरीरो न म्रियमाणः पुनरारोपितो निपतति ॥ २८ ॥ यस्त्विह वै विप्रो राजन्यो वैश्यो वा सोमपीथस्तत्कलत्रं वा

जो राजा अथवा राजपुरुष श्रेष्ठकुल में उत्पन्न होकर भी धर्ममर्यादा को नाश करते हैं वह नरक की खाईरूप वैतरणी नदी नाम नरकमें गिरते हैं इन प्राणियोंको जलके जन्तु चारोंओरसे खाने लगते हैं जीव नहीं निकलता, नदीमें इधरउधर खींचे जाते हैं तब अपने पाप कर्मोंका स्मरणकर अत्यन्त दुःखित होते हैं इसभांति वह विष्ठा, मूत्र, राध, लोहू, केश, नख अस्थि, मेदमांस, वसा आदिके बहनेवाली नदी में सदैव संतप्त रहाकरते हैं ॥ २२ ॥ जो उत्तम होकर नीच वेश्याओं को रखते हैं और जो मनुष्य निर्लज्ज व शौचना आचरण तथा नियमों को नष्ट कर पशुकी नाई आचरण करते हैं वे मरने के उपरांत पूयोद नरकमें गिरते हैं यह नरक पूय, विष्ठा मल, मूत्र, व कफके समुद्रसे भराहुआ है उसमें गिरकर उसीका भोजन करना पड़ताहै ॥ २३ ॥ जो ब्राह्मणादिक गधे और कुत्तोंको पालते तथा शिकारको खेलसा मानतेहैं और शास्त्रके प्रतिकूल जीव हिंसा करते हैं वह मरनेके उपरांत प्राणरोध नरकमें गिरतेहैं वहां यमदूत उन्हें बाणोंसे बेधते हैं ॥ २४ ॥ जो पाखंडी पाखंड यज्ञमें पशुकी हिंसा करतेहैं वह मरनेके उपरांत विशसन नरकमें गिरतेहैं वहां यमदूत उनके टुकड़े २ करडालतेहैं, ॥ २५ ॥ जो ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य कामदेवसे पीड़ितहो अपने कुटुम्बकी स्त्रीसे मैथुन करताहै वह प्राणी मरनेके उपरांत लालभक्ष नरकमें गिरता है वहां यमदूत उसे वीर्यकी नदीमें पटक उसे वीर्यही पिलातेहैं ॥ २६ ॥ जो चोर राजा अथवा राजपुरुष आग लगादेतेहैं, गांववालों तथा परदेशियों को लूटलेतेहैं, विषपान करातेहैं वे मरनेके उपरांत सार मेयाद नरकमें गिरतेहैं वहां यमके दूत रूप वज्रसी डाढ़ोंवाले ७२० कुत्ते उसे फाड़ २ कर खातेहैं ॥ २७ ॥ जो मनुष्य साक्षीमें धन व्यवहार, दानादिकमें असत्य बोलताहै वह मरने के उपरांत अवीचि नरकमें गिरताहै वहां सौयोजन ऊँचे पहाड़की चोटीसे उसे उलटे शिर नीचे गिराते हैं इस नरकमें पत्थरका धरातल पानीसा ज्ञात होताहै इसीसे उसका नाम अवीचिहुआ इसमें गिरतेही शरीरके तिल सदृश टुकड़े २ होजाते हैं तौभी नहीं मरता अतएव फिर वहांसे चढ़ाकर गिराते हैं ॥ २८ ॥ ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, अथवा इनकी स्त्रियां तथा दूसरा नियमानुसार चल

सुरांव्रतस्थोऽपियापिबति प्रमादतस्तेषां निरयंनीतानामुरसिपदाक्रम्यास्येवह्निनाद्रवमाणंकार्ष्णायसंनिषिञ्चन्ति ॥ २९ ॥ अथचयस्त्विहवाआत्मसंभावनेन स्वयमधमो जन्मतपोविद्याचारवर्णाश्रमवतो वरीयसोनबहुमन्येत समृतकएवमृत्वा क्षारकर्दमेनिरयेवाक्शिरानिपातितो दुरन्तायातनाह्यश्नुते ॥३०॥ येत्विहवैपुरुषाः पुरुषमेधेनयजन्तेयाश्चस्त्रियानृपशून्खादन्तितांश्चतेपशवइवनिहतायमसदनेयातयन्तोरक्षोगणाःसौनिका इवस्वधितिनाऽवदायासृक्पिबन्तिनृत्यन्तिचगायंतिचहृष्यमाणायथेहपुरुषादाः ॥३१॥ येत्विहवाअनागसोऽरण्येग्रामे वावैश्रम्भिकैरुपसृतानुपविश्रम्भय्य जिजीविषून्शूलसूत्रादिषूपप्रोतान् क्रीडनकतयायातयन्तितेऽपिचप्रेत्ययमयातनासु शूलादिषुप्रोतात्मानः क्षुत्तृड्भ्यांचाऽभिहताः कंकवटादिभिश्चेतस्ततस्तिग्मतुण्डैराहन्यमाना आत्मशमलंस्मरन्ति ॥ ३२ ॥ येत्विहवैभूतान्युद्वेजयन्तिनरा उल्बणस्वभावायथा दंदशूकास्तेऽपिप्रेत्यनरके दंदशूकाख्येनिपतन्तियत्र नृपदन्दशूकाः पंचमुखाःसप्तमुखाउपसृत्यग्रसन्ति यथाबिलेशयान् ॥ ३३ ॥ येत्विहवाअन्धावटकुशूलगुहादिषुभूतानि निरुन्धन्तितथाऽमुत्रतेष्वेवोपवेश्यसगरेणवह्निनाधूमेननिरुन्धन्ति ॥३४॥ यस्त्विहवाअतिथीनभ्यागतान्वा गृहपतिरसकृदुपगतमन्युर्दिधक्षुरिवपापेनचक्षुषानिरीक्षतेतस्य चाऽपि निरयेपापदृष्टेरक्षिणीवज्रतुण्डागृध्राः कंककाकवटादयः प्रसह्योरुबलादुत्पाटयंति ॥ ३५॥ यस्त्विहवाआढ्याभिमतिरहंकृतिस्तिर्यक्प्रेक्षणः सर्वतोऽभिविशंकीअर्थव्ययनाशचिन्तया परिशुष्य

वाला मनुष्य प्रमाद से भी मदिरा पीता है वह अयःपान नरक में गिरता है वहां यमदूत इन भयातुर प्राणियों की छाती पर पांवधर मुँह में पिघलाहुआ लोहरस डालते हैं ॥ २९ ॥ जोनीच मनुष्य अपनेही कोश्रेष्ठ मानता है और विद्वान, आचारी तथा वर्णाश्रम धर्मवाले उत्तम मनुष्यों का सत्कार नहीं करता वह मरन के उपरांत क्षार कर्दम नरक में अधोमुख गिरायाजाता है और वहां उसे अत्यंत दुःख भोगना पड़ता है ॥ ३० ॥ जोमनुष्य नरबलि चढ़ाते हैं और जोस्त्रियां इस बलिदान के पुरुषको खाती हैं वह पशुकी मौत मरकर रक्षोगण भोजन नरक में गिरते हैं यम स्थान में प्रथम मारेहुये मनुष्य के रूपवाले यमदूत उन्हें दुःखदेते हैं और वधिकों की भांति उन को काट २ कर उनका रक्तपीते हैं नाचते, गाते हैं और मनुष्यों को खाकर जैसे वह प्रसन्न होते थे, प्रसन्न होते हैं ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य निरपराधी प्राणीको विश्वासदे जंगल अथवा गांवमें लेजाकर मारता है अथवा पक्षियोंके गलेको छेदडोरा से पिरो खिलौनाकी भांतिमान दुःखदेते हैं वह मरने के उपरांत शूलप्रोत नरक में गिरते हैं वहां यमदूत उसे शूलसे छेदकर क्षुधा, तृषासे महा दुःख देते हैं और तीव्रचोंच वालेका कादिपक्षी उसेचारो ओर से चोंचों से मारते हैं जिससे यह पापी अपने पूर्वपापोंका स्मर्णकर महादुःखी होता है ॥ ३२ ॥ जोसर्पादिकों की भांति दुष्टस्वभाव वाले मनुष्य प्राणियोंको दुःखदेते हैं वह मरने के उपरांत दंदशूक नरक में गिरते हैं वहां पांचमुंह वाले सांप झपटकर उन्हें निगलजाते हैं ॥ ३३ ॥ जोलोग यहां किसी प्राणीको गहरेगढ़े अथवा किसी कंदरा में रोकरखते हैं वह मरकर अवट निरोधन नरक में गिरते हैं वहां उसे वैसेही गढ़ों में बंद करदेते, विषैले अग्नि और धूंएसे रोकदेते हैं ॥ ३४ ॥ जोगृहस्थी अतिथि तथा अभ्यागतको क्रोध कर पापीनेत्रों से ऐसे देखता है मानो जलादेगा, वह पर्यावर्तन नरक में गिरता है वहां वज्रसदृश चोंचवाले गिद्ध, काक, कंक, बगुलादि पक्षीबल पूर्वक उस प्राणीके नेत्रोंको निकाललेते हैं ॥३५॥ जोमनुष्य अपनी धनाढ्यता का अहंकार करता है तथा अहंकारी, कुटिल दृष्टिसे देखने वाला, सब

माणहृदयवदनोनिर्वृतिमनवगतोग्रह इवार्थमभिरक्षतिसचापिप्रेत्य तदुत्पादनोत्क र्षणसंरक्षणशमलग्रहःसूचीमुखेनरकेनिपततियत्रह वित्तग्रहंपापपुरुषं धर्मराजपुरु षायकाइवसर्वतोऽङ्गेषुसूत्रैःपरिवयन्ति ३६॥एवंविधानरकायमालयेसन्तिशतशः सहस्रशस्तेषुसर्वेषुचसर्व एवाधर्मवर्तिनोयेकचिदिहोदिता अनुदिताश्चावनिपते पर्यायेणविशन्तितथैव धर्मानुवर्तिनइतरत्रइहतुपुनर्भवेत उभयशेषाभ्यांनिविशन्ति ॥ ३७ ॥ निवृत्तिलक्षणमार्ग आदावेवव्याख्यातः। एतावानेवाण्डकोशो यश्चतुर्दशधापुराणेषुविकल्पितउपगीयते यत्तद्भगवतोनारायणस्य साक्षान्महापुरुषस्यस्थविष्ठरूपमात्ममायागुणमयमनुवर्तिमादृतः पठतिशृणोतिश्रावयतिसउपगेयंभगवतः परमात्मनोऽग्राह्यमपि श्रद्धाभक्तिविशुद्धबुद्धिर्वेद ॥ ३८ ॥ श्रुत्वास्थूलंयथासूक्ष्मं रूपंभगवतोयतिः। स्थूलेनिर्जितमात्मानंशनैः सूक्ष्मंधियानयेदिति ॥ ३९ ॥ भूद्वीपवर्षसरिदद्रिनभः समुद्रपातालदिङ्नरकभागणलोकसंस्था। गीतामयातवनृपाद्भुतमीश्वरस्यस्थूलं वपुःसकलजीवनिकायधाम ॥ ४० ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेअष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांवैयासिक्यांपंचम स्कन्धेनरकानुवर्णनंनामषड्विंशतिमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

समाप्तोऽयं पंचमःस्कन्धः ॥ ५ ॥

से शंका करनेवाला धनके व्ययसे जोसदा चिंतित तथा व्याकुल हृदय रहनेवाला होता है वह सूची मुख नरक में गिरता है वहां धनके यक्षकी सदृश इसपापी पुरुषके समस्त शरीरको यमदूत सुई डोरासे दरजी की सदृश सीयाकरते हैं ॥ ३६ ॥ हे महाराज! इसीभांति के सैकड़ों तथा सहस्रों नरक यमपुरी में हैं—उन सबनरकोंमें पापीलोग जिनमें कितने एकका मैंने वर्णनकिया और कितने एकका नहीं सब क्रमानुसार इन्हीं में गिरते हैं इसी प्रकार धर्मनिष्ठ मनुष्य स्वर्गादिक में जाते हैं और पुण्यपाप के शेषरहेहुये भागसे यहां मनुष्य लोक में फिरजन्म के हेतु आते हैं निवृत्त धर्म पालन करने वाले के जानेका जोमार्ग है वह तो मैं पहिलेही कहचुका हूं, ब्रह्मांड इतनाही है कि जिसके अन्तर्गत भेद पुराणों में चौदह भांतिके कहलाते हैं जोस्थूल रूप महापुरुषके गुणोंसे बना है उसका वर्णन आपसे करचुका, जोमनुष्य सत्कार सहित इसका पाठ तथा श्रवण करेंगे उनका चित्त श्रद्धा और भक्तिसे शुद्धहोजावगा और ऐसा होनेसे वह भगवत्स्वरूप कोभी भलीभांति जान जायगा ॥ ३७ ॥ परब्रह्म स्थूल तथा सूक्ष्म रूपको सुनकर संन्यासी को उचित है कि प्रथम स्थूल रूपके ध्यान में मनको वशकरै फिरक्रमशः बुद्धिद्वारा उसी मनको सूक्ष्म रूपमें लेजावै ॥ ३८ ॥ हे महाराज! भूमि, द्वीप, भाग, नदियां, पर्वत, आकाश, समुद्र, पाताल, दिशा, ज्योतिश्चक्र और भी अन्यलोकों की स्थिति कि जोप्राणियों के स्थान रूप और भगवान के स्थूल शरीर रूप हैं उनका मैंने आपसे वर्णन किया ॥ ३९ । ४० ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणेपञ्चमस्कंधेसारस्वतवंशोद्भवश्रीमाद्विद्वज्जनवरपण्डितजगन्नाथतनूज पण्डितकन्हैयालालउपाध्यायकृतायांसरलाभाषाटीकायांषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

समाप्तोयंपञ्चमःसर्गः ॥ ५ ॥

श्रीमद्भागवत भाषाटीका सहित.

षष्ठस्कन्ध.

श्रीगणेशाय नमः ॥ राजोवाच ॥ निवृत्तिमार्गःकथितआदौभगवतायथा । क्रमयोगोपलब्धेनब्रह्मणायदसंसृतिः ॥ १ ॥ प्रवृत्तिलक्षणश्चैवत्रैगुण्यविषयोमुने।योऽसावलीनप्रकृतेर्गुणसर्गःपुनःपुनः ॥ २ ॥ अधर्मलक्षणानानानरकाश्चानुवर्णिताः । मन्वन्तरश्चव्याख्यातआद्यःस्वायंभुवोयतः ॥ ३ ॥ प्रियव्रतोत्तानपदोर्वंशस्तच्चरितानिच । द्वीपवर्षसमुद्राद्रिनद्युद्यानवनस्पतीन् ॥ ४ ॥ धरामण्डलसंस्थानंभागलक्षणमानतः । ज्योतिषांविवराणांचयथेदमसृजद्विभुः ॥ ५ ॥ अधुनेहमहाभागयथैवनरकान्नरः । नानोग्रयातनान्नेयात्तन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नचेदिहैवापचितिंयथांऽहसःकृतस्यकुर्यान्मनउक्तिपाणिभिः । ध्रुवंसवैप्रेत्यनरकानुपैतियेकीर्तितामेभवतस्तिग्मयातनाः ॥ ७ ॥ तस्मात्पुरैवाश्विहपापनिष्कृतौयतेतमृत्योरविपद्यतात्मना । दोषस्यदृष्ट्वागुरुलाघवंयथा भिषक्चिकित्सेतरुजांनिदानवित् ॥ ८ ॥ राजोवाच ॥ दृष्टश्रुताभ्यांयत्पापंजानन्नप्यात्मनोऽहितम् । करोतिभूयोविवशःप्रायश्चित्तमथोकथम् ॥ ९ ॥ क्वचिन्निवर्ततेभद्रात्क्वचिच्चरतितत्पुनः । प्रायश्चित्तमथोऽपार्थंमन्येकुञ्जरशौचवत् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कर्मणाकर्म

राजा परीक्षित बोले कि हे श्रीशुकदेवजी महाराज ! आपने पहिले निवृत्तिमार्गका वर्णनकिया कि जिस मार्गसे योगको प्राप्त होकर ब्रह्मलोककी प्राप्तिहोनेपर मोक्ष प्राप्त होता है ॥ १ ॥ हे मुने! आपने प्रवृत्ति मार्गका भी साधन कहा कि–जिसमे स्वर्गादि सुख प्राप्त होते हे और जिसमार्गमे मायालिप्त मनुष्य का भोगके हेतु बारम्बार जन्म होताहे ॥ २ ॥ अधर्म लक्षणवाले नानानरकोंका वर्णन आपनेकिया और जिसमे स्वायंभुव मनुहुये उस मन्वन्तरकी भी व्याख्या आपनेकी ॥ ३ ॥ प्रियव्रत तथा उत्तानपादका वंश और उनके चरित्रोंका भी वर्णन किया, द्वीप, खण्ड, समुद्र पर्वत नदी, उद्यान और वृक्षोंका भी वृत्तान्त सुनाया ॥ ४ ॥ पृथ्वीमण्डलकी स्थितिभाग लक्षण प्रमाण ज्योतिश्चक्र और पाताल का संस्थान जैसे परमेश्वरने रचे हे सो आपने कहे ॥ ५ ॥ हेमहाभाग ! अब यह संसारी मनुष्य संसार जिसभांति दुःखदायी नरकोंमे न जाय वह विधि मुझसे कहो ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–हेराजन् ! जो पुरुष मन, वाणी और शरीरके कियेहुये पापोंका यथायोग्य प्रायश्चित्त नही करताहै तो वह अवश्यही उनदारुण नरकोंमे जाताहै जिनका वर्णन मैंने तुमसे कियाहै ॥ ७ ॥ इसलिये जीवित अवस्थामेंही पापोंके नाशके हेतु प्रायश्चित्तमें यत्नकरै जैसे वैद्य निदानको जानकर रोगोंकी चिकित्सा करताहै वैसेही पापोंको न्यून वा अधिक देखकर उनकी निवृत्तिके हेत यत्नकरै ॥ ८ ॥ राजाने कहा कि–पापीको राजदण्ड देताहै यह स्वयं देखनेसे और यह सुननेसे कि पापी नरकमें गिरताहै मनुष्य जानताहै कि पाप मेरा वैरी है परन्तु फिरभी पराधीन होकर पाप कर्म करताहै फिर उसका प्रायश्चित्त कैसे होवे ॥ ९ ॥ कभी पापसे निवृत्त होताहै फिर कभी उसे करनेभी लगताहै तो फिर हाथीके स्नान करानेकी सदृश उस प्रायश्चित्तको मैं मिथ्या जानताहूं १०

निर्हारोनह्यात्यन्तिकइष्यते । अविद्वदधिकारित्वात्प्रायश्चित्तंविमर्शनम् ॥ ११ ॥ ना
ऽश्नतःपथ्यमेवान्नंव्याधयोऽभिभवन्तिहि । एवंनियमकृद्राजन्शनैःक्षेमायकल्पते ॥
१२ ॥ तपसाब्रह्मचर्येणशमेनचदमेनच । त्यागेनसत्यशौचाभ्यांयमेननियमेनच ॥
॥ १३ ॥ देहवाग्बुद्धिजंधीराधर्मज्ञाःश्रद्धयाऽन्विताः । क्षिपन्त्यघंमहदपिवेणुगुल्म
मिवानलः ॥ १४ ॥ केचित्केवलयाभक्त्यावासुदेवपरायणाः । अघंधुन्वन्तिकार्त्स्न्ये
ननीहारमिवभास्करः ॥ १५ ॥ नतथाह्यघवान्राजन्पूयेततपआदिभिः । यथाकृष्णा
र्पितप्राणस्तत्पूरुषनिषेवया ॥ १६ ॥ सध्रीचीनोह्ययंलोकेपन्थाःक्षेमोऽकुतोभयः ।
सुशीलाःसाधवोयत्रनारायणपरायणाः ॥ १७ प्रायश्चित्तानिचीर्णानिनारायणपराङ्
मुखम् । ननिष्पुनन्तिराजेन्द्रसुराकुम्भमिवापगाः ॥ १८॥ सकृन्मनःकृष्णपदारविंद
योर्निवेशितंतद्गुणरागियैरिह । नतेयमंपाशभृतश्चतद्भटान्स्वप्नेऽपिपश्यन्तिहि
चीर्णनिष्कृताः ॥ १९ ॥ अत्रचोदाहरंतीममितिहासंपुरातनम् । दूतानांविष्णुयमयोः
संवादस्तंनिबोधमे ॥ २० ॥ कान्यकुब्जेद्विजःकश्चिद्दासीपतिरजामिलः । नाम्नानष्ट
सदाचारोदास्याःसंसर्गदूषितः ॥ २१ ॥ बन्द्यक्षकैतवैश्चौर्यैर्गर्हितांवृत्तिमास्थितः ।
बिभ्रत्कुटुम्बमशुचिर्यातयामासदेहिनः ॥ २२ ॥ एवंनिवसतस्तस्यलालयानस्यत-
त्सुतान् । कालोऽत्यगान्महान्राजन्नष्टाशीत्यायुषःसमाः ॥ २३ ॥ तस्यप्रवयसःपुत्रा
दशतेषांतुयोऽवमः । बालोनारायणोनाम्नापित्रोश्चदयितोभृशम् ॥ २४ ॥ सबद्ध
हृदयस्तस्मिन्नर्भकेकलभाषिणि । निरीक्षमाणस्तल्लीलांमुमुदेजरठोभृशम् ॥ २५॥

श्रीशुकदेवजीबोले कि हेराजन् ! कर्मोंसे कर्मोंका नाशनहीं होता, कारण कि अधिकारी अविद्वान् मिले इस हेतु मुख्य प्रायश्चित्त भगवद्भक्ति पूर्वक ज्ञानही है ॥ ११ ॥ हेराजन् ! जो मनुष्यपथ्य से अन्नका भोजन करता है उसको कभी कोई रोग नहीं होता ऐसेही नित्य नियम करनेवाला पुरुष धीरे २ मोक्षको प्राप्त होजाता है ॥ १२ ॥ तप, ब्रह्मचर्य्य, दम, दान, यम, नियम, शौच और सत्यसे ॥ १३ ॥ धर्मज्ञ और श्रद्धावान पुरुष शरीर, वाणी और बुद्धिसे किये पापों को ऐसे जला देता है जैसे अग्नि बाँसों को जलादेती है ॥ १४ ॥ हेराजन् ! कितनेएक भगवद्भक्त केवल भगवानकीभक्तिही से पापों का नाश करते हैं जैसे सूर्य कुहर के अन्धकार को दूरकरता है ॥ १५॥ हेराजन् ! जिसने भक्तोंकी सेवाकरके श्रीकृष्णभगवानमें मनलगादिया हैं उस पुरुषके पाप जैसे इससे निवृत्त होते हैं वैसे तपादिक से नहीं होते ॥ १६ ॥ कल्याणके हेतु सबसे श्रेष्ठ मार्ग यही है कि जिसमें किंचित्भी भयनहीं और जिस श्रेष्ठभक्तिमार्ग में नारायण परायण सन्तजन चलते हैं ॥ ॥ १७ ॥ हेराजेन्द्र ! नारायणसे बर्हिर्मुख प्राणी प्रायश्चित्त करनेपरभी ऐसे पवित्र नहीं होता जैसे नदियों से मदिराकाकलश ॥ १८ ॥ इसलोक में जिसने एकबारभी हरिकानाम लिया और उनके चरणों में अपने मनका प्रवेश किया वह स्वप्नमेंभी यमदूतों को नहीं देखता क्योंकि इतनेहीमें उस के सब प्रायश्चित्त होजाते हैं ॥ १९ ॥ अतएव मैं एक पुरातन इतिहास भगवान के पार्षद और यमदूतोंके सम्वादका वर्णन करता हूं उसे आप सुनो ॥ २० ॥ कन्नौजदेश में दासीपति अजामिल नाम एक ब्राह्मण था, वह दासीके सत्सङ्ग से दूषित होकर आचार भ्रष्ट होगयाथा ॥ २१ ॥ और बन्दी पकड़ने, द्यूतकर्म, और ठगाई, चोरीइत्यादिक अधम वृत्तियें धारणकर कुटुम्बका पालनकरता हुआ वह अपवित्र अजामिल प्राणियों को दुःख देताथा ॥ २२ ॥ हेराजन् ! पुत्रोंका पालनकरते हुए उस अजामिलके, ऐसे ८८ वर्ष निकलगये ॥ २३ ॥ उस वृद्ध अजामिल के १० पुत्रथे उन में सबसे छोटेका नाम नारायणथा और वह माता पिताका बहुत प्याराथा॥२४॥वह अजामिल उस तोतली बोली बोलनेवाले बालक से बड़ाही स्नेह करताथा ॥२५॥ और उसकी लीलाओं को देख २

भुञ्जानःप्रपिबन्खादन्बालकंस्नेहयन्त्रितः । भोजयन्पाययन्मूढोनवेदागतमन्तकम् ॥
२६ ॥ सएवंवर्तमानोऽज्ञोमृत्युकालउपस्थिते । मतिंचकारतनयेबालेनारायणाह्वये
॥ २७ ॥ सपाशहस्तांस्त्रीन्दृष्ट्वापुरुषान्भृशदारुणान् । वक्रतुण्डानूर्ध्वरोम्णआत्मा
नंनेतुमागतान् ॥ २८ ॥ दूरेक्रीडनकासक्तंपुत्रंनारायणाह्वयम् । प्लावितेनस्वरेणो
च्चैराजुहावाकुलेन्द्रियः ॥ २९ ॥ निशम्यम्रियमाणस्यमुखतोहरिकीर्तनम् । भर्तुर्नाम
महाराजपार्षदाःसहसाऽपतन् ॥ ३० ॥ विकर्षतोऽन्तर्हृदयाद्दासीपतिमजामिलम्
यमप्रेष्यान्विष्णुदूतावारयामासुरोजसा ॥ ३१ ॥ ऊचुर्निषेधितास्तांस्तेवैवस्वतपुरः
सराः । केयूयंप्रतिषेद्धारो धर्मराजस्यशासनम् ॥ ३२ ॥ कस्यवाकुतआयाताः
कस्मादस्यनिषेधथ । किंदेवाउपदेवावायूयंकिंसिद्धसत्तमाः ॥ ३३ ॥ सर्वे
पद्मपलाशाक्षाःपीतकौशेयवाससः । किरीटिनःकुण्डलिनोलसत्पुष्करमालिनः ॥
॥ ३४ ॥ सर्वेचनूत्नवयसःसर्वेचारुचतुर्भुजाः । धनुर्निषङ्गासिगदाशंखचक्राम्बुज
श्रियः ॥ ३५ ॥ दिशोवितिमिरालोकाः कुर्वन्तःस्वेनरोचिषा । किमर्थंधर्मराजस्य
किंकरान्नोनिषेधथ ॥ ३६ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ इत्युक्तेयमदूतैस्तैर्वासुदेवोक्तकारिणः
तान्प्रत्यूचुःप्रहस्येदंमेघनिर्ह्रादयागिरा ॥ ३७ ॥ विष्णुदूताऊचुः । यूयंवैधर्मराजस्य
यदिनिर्देशकारिणः । ब्रूतधर्मस्यनस्तत्त्वं यच्चधर्मस्यलक्षणम् ॥ ३८ ॥ कथंस्विद्ध्रि
यतेदण्डःकिंवाऽस्यस्थानमीप्सितम् । दण्ड्याःकिंकारिणःसर्वेआहोस्वित्कतिचि
न्नृणाम् ॥ ३९ ॥ यमदूताऊचुः ॥ वेदप्रणिहितोधर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः । वेदो
नारायणःसाक्षात्स्वयंभूरितिशुश्रुम ॥ ४० ॥ येनस्वधाम्न्यमीभावा रजःसत्त्वतमोमयाः

कर प्रसन्नहोताथा और जबआप भोजनादि करताथा उस बालकको अपनेसाथ खिलाता पिलाता इसप्रकार स्नेह में बँधेहुये उसमूर्खने अपने आये कालको न जाना ॥२६॥ और उसमूढने मरण समयमें अपनीबुद्धि नारायणनाम बालकमें लगाई॥२७॥ वह अपनेपास तीन यमदूतोंको कि जिनके हाथोंमें पाशहैं और मुख टेढ़े तथा रोमखड़े हैं देखकर॥२८॥ आकुलेन्द्रियहो दूर खेलनेगयेहुये अपने नारायणपुत्रको उच्चस्वर से बुलानेलगा ॥२९॥ हेमहाराज ! उससमय मरतेहुये अजामिलके मुखसे अपने स्वामी नारायण का नाम सुनकर तत्काल भगवत्पार्षद वहां आये ॥ ३० ॥ दासीपति अजामिल की आत्माको हृदयमें से खींचतेहुये यमदूतों को वह पार्षद बलपूर्वक रोकनेलगे ॥ ३१ ॥ तब यमदूतों ने उन पार्षदों से कहा कि तुम धर्मराजकी आज्ञाका निषेधकरने वाले कौन हो ॥ ॥ ३२ ॥ तुम किसके हो ? और कहांसे आये ? और क्यों निषेध करते हो ? किन्नरहो ? या देवता या उपदेव ? या सिद्धोंमें श्रेष्ठ हो ? ॥ ३३ ॥ तुम्हारे कमलवत् नेत्र हैं, पीताम्बर धारण किये हो और कीटकुण्डलसे शोभित आपकौन हो ? ॥ ३४ ॥ आप सब युवा हैं सुन्दरचतुर्भुजरूप धारण किये, धनुष, तरकस, खड्ग, गदा, शंख, चक्र, और पद्मसे शोभायमानहो ॥ ३५ ॥ आप अपनी कांति से दिशाओं को प्रकाशित करते हुये हम धर्मराज के दूतोंको निषेध किस हेतु करते हो ? ॥ ३६ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि– जब यमदूतों ने ऐसे कहा तब विष्णुदूत मेघवत् गंभीर वाणीसे ॥ ३७ ॥ विष्णुदूत बोले कि जो तुम धर्मके दूत होतो धर्मकातत्त्व और लक्षण हमसे कहो ॥ ३८ ॥ किसभांति धर्मराजदण्ड देते हैं ? दण्डका विषयक्या है ? किसकर्म के करने वालोंको को दण्ड मिलता है ? क्या सबही को दण्ड मिलता है ? यदि मनुष्यही को दण्ड मिलता है तो उनमेंभी किस २ को ? ॥ ३९ ॥ यमदूत बोले कि–वेदविरुद्ध तो अधर्म और वेदानुकूलधर्म है, वेद साक्षात् भगवान हैं और वह नारायणके श्वास से उत्पन्न हुये हैं इसी हेतु वह साक्षात्नारायण

गुणनामक्रियारूपैर्विभाव्यन्तेयथातथम् ॥ ४१ ॥ सूर्योऽग्निःखंमरुद्गावः सोमःसंध्या हनीदिशः । कंकुःकालोधर्म इतिह्येतेदैह्यस्यसाक्षिणः ॥ ४२ ॥ एतैरधर्मोविज्ञातः स्थानंदण्डस्ययुज्यते । सर्वेकर्मानुरोधेनदण्डमर्हन्तिकारिणः ४३ ॥ संभवन्तिहि भद्राणिविपरीतानिचानघाः । कारिणांगुणसङ्गोऽस्तिदेहवान्नह्यकर्मकृत् ॥ ४४ येन यावान्यथाधर्मोऽधर्मोवेहसमीहितः । सएवतत्फलंभुंक्तेतथातावदमुत्रवै ॥ ४५ ॥ यथेहदेवप्रवरास्त्रैविध्यमुपलभ्यते । भूतेषुगुणवैचित्र्यात्तथाऽन्यत्रानुमीयते ॥ ४६ ॥ वर्तमानोऽन्ययोःकालोगुणाभिज्ञापकोयथा एवंजन्मान्ययोरेतद्धर्माधर्मनिदर्शनम् ॥ ॥४७ मनसैवपुरेदेवःपूर्वरूपंविपश्यति । अनुमामीमांसतेऽपूर्वंमनसाभगवानजः ॥ ॥४८॥ यथाऽज्ञस्तमसायुक्तउपास्तेव्यक्तमेवहि । नवेदपूर्वमपरं नष्टजन्मस्मृतिस्त था ॥ ४९ ॥ पंचभिःकुरुतेस्वार्थान्पंचवेदाथपंचभिः एकस्तुषोडशेनत्रीन्स्वयंसप्त दशोऽश्नुते ॥५०॥ तदेतत्षोडशकलंलिंगशक्तित्रयंमहत् । धत्तेऽनुसंसृतिंपुंसिहर्ष शोकभयार्तिदाम् ॥ ५१ ॥ देह्यज्ञोऽजितषड्वर्गोनेच्छन्कर्माणिकार्यते । कोशकार इवात्मानंकर्मणाऽऽच्छाद्यमुह्यति ॥ ५२ ॥ नहिकश्चित्क्षणमपिजातुतिष्ठत्यकर्मकृत् । कार्यतेह्यवशःकर्मगुणैःस्वाभाविकैर्बलात् ॥५३॥लब्ध्वानिमित्तमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं

हैं ऐसे हमने सुनाहै॥४०॥उन्हीं नारायणजीने अपने स्वरूप में सत्वगुण,रजोगुण और तमोगुणमय इनजीवोंका गुण,नाम,क्रिया और रूपसे यथायोग्य विभागकियाहै॥४१॥और सम्पूर्ण प्राणियोंके धर्म अधर्मके साक्षी सूर्य,अग्नि,वायु आकाश,चन्द्रमा,संध्या,रात,दिन,दिशा, जल, भूमि, काल और धर्म हैं॥४२॥इन्हीं से अधर्म करनेवाला जाना जाता है और अधर्मी दंडके योग्य होताहै और सम्पूर्ण जीव अपने कर्मानुसार फलोंको प्राप्तहोते हैं॥४३॥हे निष्पापों ! कर्मकरने वालोंसे भद्र और अभद्र कर्म बनतेही रहते हैं; क्योंकि इनके गुणोंका संग सदैवही बनारहताहै इसी हेतुबिना कर्मकिये नहीं रहसकते ॥ ४४ ॥ जिसने यहांपर जितना धर्म अधर्म किया है वह परलोक में उतने धर्म अधर्म काफल निश्चयही भोगेगा ॥ ४५ ॥ हे देवताओं में श्रेष्ठ ! इस जन्ममें गुणोंकी विचित्रता के हेतु शांतपन, घोरपन, रमूढता तथा सुख दुःख अथवा दोनोंकी मिश्रता से जैसे जीवों में तीन प्रकार दिखाई देते हैं वैसेही जन्मान्तर मेंभी तीन प्रकार होनेका अनुमान होता है ॥ ४६ ॥ जैसे गुणोंसे भूत, भविष्यत्, वर्तमान काल ज्ञातहोता है वैसेही मनुष्यके इस जन्मके धर्म अधर्म से उसके धार्मिक तथा अधर्मिक होनेके गुणभूत, भविष्यत के प्रगट होते हैं ॥ ४७ ॥ धर्मराजा अपनी पुरीमें स्थित होकर प्राणीका पूर्वरूप देखते हैं और अजन्मा भगवान् अपूर्व रूपका विचार करते हैं ॥ ४८ ॥ अविद्यायुक्त मूर्खजीव वर्तमान देहपाकर उपाय नहीं करता और जन्म होनेसे नष्टस्मृति यह प्राणी अपने पूर्वाऽपर जन्मको नहीं जानता ॥ ४९ ॥ पांच कर्मेन्द्रियों से स्वार्थ करता है और पांच ज्ञाने न्द्रियों से शब्द, स्पर्श इत्यादिक पांच विषयोंको जानता है और सोलहवें मनके संग सत्रहवां आप अकेला जीव कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, और मनके विषयों का भोगकरता है ॥ ५० ॥ त्रिगुणका कार्य ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, शब्दादिक विषय और मनरूप अनादि यह लिंगदेह जीवकोहर्ष, शोक, भय, आर्त्त और जन्म मरणका देनेवाला है ॥ ५१ ॥ जिसमूर्ख ने इन्द्री नहीं जीतीं उसको यदिकर्म करने की कामना न भी होतोभी लिंगदेह इसको कर्म कराताहै, और कर्मों से घिरकर ऐसा मोहित होजाता है कि जैसे रेशमका कीड़ा अपनेको रेशमसे ढककर फिर नहीं निकलनेपाता ॥ ५२ ॥ कोई प्राणीभी बिनाकर्म किये नहीं रहता, प्रथम जन्मके कर्मोंसे उत्पन्न हुये राग, द्वेषादिक गुण इसको परवशकर बलपूर्वक कर्म कराते हैं॥५३॥प्राणी पुण्य, पापरूप भाग्यको पाकरस्थूल सूक्ष्म देहको

भवत्युत ।यथायोनियथाबीजंस्वभावेनबलीयसा॥५४॥एषप्रकृतिसंगेनपुरुषस्यविपर्य
यः।आसीत्सएवनचिराद्ईशसङ्गाद्विलीयते॥५५॥अयंहिश्रुतसंपन्नःशीलवृत्तगुणालं
यः।धृतव्रतोमृदुर्दान्तःसत्यवान्मंत्रविच्छुचिः ॥ ५६ ॥ गुर्वग्न्यतिथिवृद्धानांशुश्रूषु
र्निरहंकृतः । सर्वभूतसुहृत्साधुर्मितवागनसूयकः ॥ ५७ ॥ एकदाऽसौवनंयातःपि
तृसंदेशकृद्द्विजः आदायतत आवृत्तःफलपुष्पसमित्कुशान् ॥ ५८ ॥ ददर्शकामिनं
कंचिच्छूद्रंसहभुजिष्यया । पीत्वाचमधुमैरेयंमदाघूर्णितनेत्रया ॥ ५९ ॥ मत्तयावि
श्लथन्नीव्याव्यपेतंनिरपत्रपम् । क्रीडन्तमनुगायन्तंहसन्तमनयाऽन्तिके ६० ॥
दृष्ट्वातांकामलिप्तेनबाहुनापरिरम्भिताम् । जगामहृच्छयवशंसहसैवविमोहितः ॥
॥ ६१ ॥ स्तम्भयन्नात्मनात्मानं यावत्सत्त्वंयथाश्रुतम् । नशशाकसमाधातुंमनोमद
नवेपितम् ॥ ६२ ॥ तन्निमित्तस्मरव्याजग्रहग्रस्तोविचेतनः । तामेवमनसाध्यायन्स्व
धर्माद्विरराम ह॥६३॥तामेवतोषयामासपित्र्येणार्थेनयावता । ग्राम्यैर्मनोरमैः कामैः
प्रसीदेतयथातथा ॥ ६४ ॥ विप्रांस्वभार्यामप्रौढांकुलेमहतिलम्भिताम् । विससर्ज
चिरात्पापःस्वैरिण्याऽपांगविद्धधीः ॥ ६५ ॥ यतस्ततश्चोपनिन्येन्यायतोऽन्यायतो
धनम् । बभारास्याःकुटुम्बिन्याः कुटुम्बंमन्दधीरयम् ॥ ६६ ॥ यदसौशास्त्रमुल्लं
घ्यस्वैरचार्यार्यगर्हितः। अवर्ततचिरंकालमघायुरशुचिर्मलात् ॥ ६७ ॥ ततएनंदंड
पाणेःसकाशंकृतकिल्बिषम् । नेष्यामोऽकृतनिर्वेशंयत्रदण्डेनशुध्यति ॥ ६८ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा०षष्ठस्कन्धेअजामिलोपाख्यानेप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

प्राप्तहोताहैं, यद्यपि सबके शुक्रशोणित समानहैं, तथापि कर्मवासनासेही माता पिताके समान शरीर होताहै॥५४॥यह संसार प्रकृतिके संगसे पुरुषको हुआहै सो भगवद्भक्तिसे तत्कालही नाशको प्राप्त होजाताहै॥५५॥ यह अजामिल पहिले तो वेदविहित सत्स्वभावी, सदाचारी गुणी, व्रतों का धारण करने वाला नम्र, जितेन्द्रिय, सत्यवक्ता, मंत्रज्ञ, और पवित्र॥५६॥तथा गुरु, अग्नि, अतिथि, और वृद्धोंकासेवक निरभिमानी, सबका सुहृद, साधु और अनिंदक था ॥५७॥ एक समय यह ब्राह्मण अपने पिता की आज्ञा से बन में गया वहां से फल फूल समिध कुशा लेकर पीछेको लौटा॥५८॥तो मार्गमें मदिरासे मत मतवाले नेत्रोंवाली एक दासी के संग एक कामी मनुष्य को देखा॥५९॥उस मतवाली वेश्या के संग कि जिसकी कमर से वस्त्र ढीला होगया था उस निर्लज्ज, आचार भ्रष्ट पुरुष को विहार करते तथा नाचते, गाते और हंसते हुए देखा ॥ ६० ॥ उस कामासक्त कामी की बाहु से आलिंगन की हुई उस दासी को देख यह अजामिल काम के वशही तुरंतही मोहित होगया ॥
॥ ६१ ॥ इसने अपने ज्ञान तथा बुद्धि बल से यथाशक्ति धैर्य किया परन्तु काम से कांपेहुए मनका समाधान नकरसका ॥ ६२ ॥ उस वेश्या के निमित्त से काम रूप ग्रहका ग्रसहो बुद्धि से हीन होगया और उसी का ध्यान करते हुए इसने अपने धर्म का त्यागदिया॥६३॥और गांव के मनोहर कामों से तथा पिता के सम्पूर्ण द्रव्य से उसी को प्रसन्न करने लगा ॥ ६४ ॥ इस व्यभिचारिणी के कटाक्षों से बिंध अजामिल नें थोड़ेही दिनों के उपरांत उत्तम कुल की और तरुण अवस्था वाली अपनीपत्नी को त्यागन करदिया ॥६५॥ यह अभागा अजामिल धर्म तथा अधर्म से द्रव्य लालाकर उस दासी के कुटुंब का भरण पोषण करने लगा॥६६॥आर्यों की निंदनीय पापरूप जिसकी आयु है ऐसा यह अजामिल शास्त्र के प्रतिकूल होकर बहुत समय तक स्वाधीन भाव से चलतारहा है ॥ ६७ ॥ इसी कारण प्रायश्चित नहीं कियेहुए इस पापी अजामिल को यमराज के निकट लियेजाते हैं वहां यह दंड से शुद्ध होगा ॥ ६८ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० षष्ठ० सरला भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ एवं ते भगवद्दूता यमदूताभिभाषितम्। उपधार्याऽथता न्राजन्प्रत्याहुर्नयकोविदाः ॥१॥ विष्णुदूताऊचुः ॥ अहोकष्टंधर्मदृशाम धर्मःस्पृश तेसभाम्। यत्रादंड्येष्वपापेषु दण्डोयैर्ध्रियतेवृथा ॥ २ ॥ प्रजानांपितरोयेच शा-स्तारःसाधवःसमाः। यदिस्यात्तेषुवैषम्यं कंयान्तिशरणंप्रजाः ॥ ३ ॥ यद्यदाचर तिश्रेया नितरस्तत्तदीहते। सयत्प्रमाणंकुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥ ४ ॥ यस्यां केशिरआधाय लोकःस्वपितिनिर्वृतः। स्वयंधर्ममधर्मवा नहिवेदयथापशुः ॥ ५ ॥ सकथंन्यर्पितात्मानं कृतमैत्रमचेतनम्। विस्रम्भणीयोभूतानां सघृणोद्रोग्धुमर्हति ॥६॥ अयंहिकृतनिर्वेशो जन्मकाट्यंहसामपि। यद्व्याजहारविवशो नामस्वस्त्ययनंहरेः ॥ ७ ॥ एतेनैवह्यघोनोऽस्य कृतंस्यादघनिष्कृतम्। यदानारायणायेति ज गादचतुरक्षरम् ॥ ८ ॥ स्तेनःसुरापोमित्रध्रुग्ब्रह्महागुरुतल्पगः। स्त्रीराजपितृगोह न्ता येचपातकिनोऽपरे ॥ ९ ॥ सर्वेषामप्यघवता मिदमेवसुनिष्कृतम्। नामव्याह रणंविष्णोर्यतस्तद्विषयामतिः ॥ १० ॥ ननिष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभिस्तथा विशुध्य त्यघवान्व्रतादिभिः। यथाहरेर्नामपदैरुदाहृतैस्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ११ नैकान्तिकंतद्धिकृतेऽपिनिष्कृते मनःपुनर्धावतिचेदसत्पथे। तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतांहरेर्गुणानुवादःखलुसत्वभावनः ॥ १२ ॥ अथैनंमापनयत कृताशेषाघनिष्कृतम्। यदसौभगवन्नाम म्रियमाणःसमग्रहीत् ॥१३॥ सांकेत्यंपारिहास्यंवा स्तोभंहेलनमेववा। वैकुंठनामग्रहण मशेषाघहरंविदुः॥१४॥पतितःस्खलितोभग्नः संदष्टस्तप्त

श्रीशुकदेवजी बोले कि, न्याय निपुण वह हरिपार्षद यमदूतोंकी वार्त्ता सुनकर ॥ १ ॥ विष्णु दूत बोले कि बड़ा खेद है कि धर्मराज की सभा में भी अधर्म जहां निरपराधी अदण्डनीय प्राणियों का वृथाही दंड मिलता है ॥ २ ॥ जो प्रजा पालक, शिक्षक साधु और समबुद्धि है यदि उन में भी विषय भाव होगा तो प्रजा किसकी शरण में जायगी ॥ ३ ॥ जो बड़े मनुष्य आचरण करते हैं वही इतर लोकभी करने लगते हैं और जो बड़ों ने प्रमाण किया है उसीको लोक मानते हैं ॥ ४ ॥ जिसकी गोद में शिरधर कर लोक आनंद से सोते हैं यदि वही पुरुष पशुकी सदृश धर्माधर्म को न जानेतो विश्वास घातकी पनको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ जिसने अपना आत्मा अर्पण करदिया है और मित्रताकी है और जोअचेत है एसे मनुष्य से विश्वास देनेवाले और दयावान पुरुषको द्रोह करना उचित नहीं हैं ॥ ६ ॥ यह अजामिल कोटि जन्मो के पापों का भी प्रायश्चित्त करचुका यद्यपि इसने पराधीन होकर भगवान के मोक्षदाई नामका उच्चारण किया है ॥ ७ ॥ तौभी इसके सम्पूर्ण पापोंका नाश होगया, जब इसने 'नारायणआ' इनचार अक्षरों का उच्चारण किया तभीसे यह निष्पाप होगया ॥ ८ ॥ चोरमद्यपी, मित्रद्रोही, ब्रह्मघातक, गुरुपत्नी का भोग करने वाला, राजा, पिता और स्त्री घातक आदि जोपापी हैं ॥ ९ ॥ उन सब पापियों के लिये उत्तम प्रायश्चित्त कवल विष्णुनामका उच्चारण करनाही है कि जिसनाम के उच्चारण सेही भगवान मनुष्यको अपना करलेते हैं ॥ १० ॥ वेदवेत्ता मनुआदि मुनियों ने प्रायश्चित्त क जोव्रतादि साधन कहे हैं उनसे मनुष्य इतना शुद्ध नहीं होता, कि जितना भगवान के नामलेने से शुद्धहोता है क्योंकि नामलेने से भगवत्त गुणों कीभी स्मृति होती है ॥ ११ ॥ अतिरिक्त भगवद्गुणों तथा हरि-नामके और दूसरी भांतिसे शुद्ध प्रायश्चित्त नहीं होता कारणकि और प्रायश्चित्तो से मन पापमार्ग की ओर दौड़ता है ॥ १२ ॥ अतएव निःशेष पापोंका प्रायश्चित्त कियेहुये इस अजामिलको तुम इस मार्गसे मतलेजाओ क्योंकि इसने मरण समय में हरिनाम लिया है ॥ १३ ॥ पुत्रादिकों के संकेत से, परिहास से, गीत, आलाप, तथा अवज्ञा से लियेहुये भी हरिनामको पापोंका नाशक

आहतः।हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हतियातनाम्॥१५॥ गुरूणांचलघूनांच गुरूणिचल
घूनिच।प्रायश्चित्तानिपापानां ज्ञात्वोक्तानिमहर्षिभिः॥१६॥तैस्तान्यघानिपूयन्ते तपो
दानजपादिभिः।नाधर्मजंतद्धृदयं तदपीशांघ्रिसेवया ॥१७॥ अज्ञानादथवाज्ञानादु
त्तमश्लोकनामयत्। संकीर्तितमघंपुंसो दहेदेधोयथाऽनलः ॥ १८ ॥ यथागदंवीर्य
तममुपयुक्तंयदृच्छया। अजानतोऽप्यात्मगुणंकुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः ॥ १९ ॥ श्रीशुक
उवाच ॥ तएवंसुविनिर्णीय धर्मंभागवतंनृप । तंयाम्यपाशान्निर्मुच्यविप्रंमृत्योरमू
मुचन् ॥ २० ॥ इतिप्रत्युदितायाम्या दूतायात्वायमान्तिके। यमराज्ञेयथासर्वमाच
चक्षुररिंदम ॥ २१ ॥ द्विजःपाशाद्विनिर्मुक्तोगतभीःप्रकृतिंगतः। ववन्देशिरसावि
ष्णोःकिंकरान्दर्शनोत्सवः २२॥ तंविवक्षुमभिप्रेत्यमहापुरुषकिंकराः। सहसापश्य
तस्तस्यतत्रान्तर्दधिरेऽनघ ॥ २३ ॥ अजामिलोऽप्यथाकर्ण्य दूतानांयमकृष्णयोः।
धर्मंभागवतंशुद्धं त्रैविद्यंचगुणाश्रयम् ॥ २४ ॥ भक्तिमान्भगवत्याशु माहात्म्यश्रव
णाद्धरेः। अनुतापोमहानासीत्स्मरतोऽशुभमात्मनः। अहोमेपरमंकष्टमभूदविजिता
त्मनः। येनविप्लावितंब्रह्मवृषल्यांजायतात्मना ॥ २६ ॥ धिङ्मांविगर्हितंसद्भिर्दुष्कृ
तंकुलकज्जलम्। हित्वाबालांसतींयोऽहंसुरापीमसतीमगाम्२७॥ वृद्धावनाथौपित
रौनान्यबन्धूतपस्विनौ।अहोमयाऽधुनात्यक्तावकृतज्ञेननीचवत् २८॥ सोऽहंव्यक्तंपति
ष्यामिनरकेभृशदारुणे। धर्मघ्नाःकामिनोयत्रविन्दन्तियमयातनाः२९ किमिदंस्वप्न

जानो ॥ १४ ॥ गिरते, पगखसकते, भग्नगात्र, सांपसे डसाहुआ, ज्वरादि से कातर, दंडादि से मारते समयभी श्रीहरि यह नाम विवशहोकर ले तोभी पुरुष सवपीड़ाओं से छूटजाता है ॥१५॥ छोटेबड़े पापोंके अनुसार प्रायश्चित्तों की मनुआदि महर्षियों ने न्यूनाधिक व्यवस्था कही है परन्तु हरिनाम में यह व्यवस्था नहीं है उसके तो केवल स्मरण सेही समस्त पाप निवृत्त होजाते हैं ॥१६॥ तप, दान, जपआदि से पापतो नष्ट होजाते हैं परन्तु अधर्म से मलीन हृदय शुद्ध नहीं होता, किन्तु हरिध्यान से हृदय भी शुद्ध होजाता है ॥ १७ ॥ जैसे काष्ठको अग्नि भस्मकर देता है, वैसेही ज्ञान अज्ञान से लियाहुआ हरिनाम पापी के पापों का नाश करदेता है ॥ १८ ॥ जैसे अति वीर्यवाली औषधि इच्छा अनिच्छासे खानेवाले रोगी को आरोग्यादि गुण करती है वैसेही भगवानका मन्त्ररूपीनाम पापोंका नाश करदेताहै ॥ १९ ॥ हेराजन् ! इसभांति वहदूत भगवत्धर्म का निर्णयकर यमके पाशसे उस अजामिल ब्राह्मण को छुटा मृत्यु से बचातेहुए ॥ २० ॥ उन हटायेहुये यमदूतोंने यमके समीप जाकर यह वृत्तांत जैसे २ हुआथा सब वर्णन किया ॥ २१ ॥ पार्षदों ने जिसके हृदय का भयदूरकर दिया है ऐसा वह ब्राह्मण पाशसे छूट अभय होगया और पीछे प्रकृतिको प्राप्तहो विष्णुदूतों को शिरसे नमस्कार किया ॥ २२ ॥ हे अनघ ! उन विष्णुदूतों ने उस ब्राह्मण के बोलने की इच्छा जान उसके देखतेही देखते अन्तर्ध्यान होगये ॥२३॥ फिरवह अजामिल वेद विहित और गुणों के आश्रयरूप यमदूतोंका धर्म और विष्णुजीके पार्षदों का शुद्ध भागवतधर्म सुन भगवान में भक्तिवानहुआ ॥२४॥ वह अजामिल हरि महात्म्यके सुनतेही भगवद्भक्त होगया फिर अपने पापोंको स्मरणकर अत्यन्त खेदित हुआ ॥ २५ ॥ अहो ! मुझ अजितेन्द्रियको बड़ाही क्लेश हुआ, कि जिस शूद्री में पुत्ररूप आत्माको प्रगटकरके मैंने अपना ब्राह्मणत्वभी खोदिया ॥ २६ ॥ मुझको धिक्कार है कि जो मैं श्रेष्ठजनोंसे निन्दनीय, पापिनी, कुल कलङ्किनी, दुराचारिणी स्त्रीके जालमें अपनी बिचारी बालास्त्री को छोड़कर फँसा ॥ २७ ॥ और मुझ नीच अकृतज्ञने अपने अनाथ, वृद्ध, बन्धुरहित, तपस्वी माता पिताको एकक्षणमें त्यागदिया ॥ ॥२८॥ मैं यथार्थहा मैं बड़े घोरनरकमें गिरूंगा कि जहां अधर्मी कामी को यमयातना प्राप्तहोती है

आहोस्वित्साक्षात्स्वप्नमिहाद्भुतम् ।क्व याता अद्य ते ये मां व्यकर्षन्पाशपाणयः ३०अथ ते क्व गताः सिद्धाश्चत्वारश्चारुदर्शनाः । व्यमोचयन्नीयमानं बद्ध्वा पाशैरधो भुवः ३१अथापि मे दुर्भगस्य विबुधोत्तमदर्शने।भवितव्यं मंगलेन येनात्मा मे प्रसीदति ३२॥ अन्यथा म्रियमाणस्य नाशुचेर्वृषलीपतेः । वैकुण्ठनामग्रहणं जिह्वा वक्तुमिहार्हति ॥३३॥ क्व चाऽहं कितवः पापो ब्रह्मघ्नो निरपत्रपः । क्व च नारायणेत्येतद्भगवन्नाम मंगलम् ॥ ३४ ॥ सोऽहं तथा यतिष्यामि यतचित्तेन्द्रियानिलः । यथा न भूय आत्मानमन्धे तमसि मज्जये ॥ ३५ ॥ विमुच्य तमिमं बन्धमविद्याकामकर्मजम् ॥ सर्वभूतसुहृच्छान्तो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥३६॥मोचये ग्रस्तमात्मानं योषिन्मय्यात्ममायया । विक्रीडितो ययैवाहं क्रीडामृग इवाधमः ॥३७॥ ममाऽहमिति देहादौ हित्वा मिथ्याऽर्थधीर्मतिम् । धास्ये मनो भगवति शुद्धं तत्कीर्तनादिभिः ॥ ३८ ॥ इति जातसुनिर्वेदः क्षणसंगेन साधुषु ।गंगाद्वारमुपेयाय मुक्तसर्वानुबन्धनः ॥ ३९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स तस्मिन्देवसदन आसीनो योगमाश्रितः प्रत्याहृतेन्द्रियग्रामो युयोज मन आत्मनि ॥ ४० ॥ ततो गुणेभ्य आत्मानं वियुज्यात्मसमाधिना । युयुजे भगवद्धाम्नि ब्रह्मण्यनुभवात्मनि ॥ ४१ ॥ यर्ह्युपारतधीस्तस्मिन्नद्राक्षीत्पुरुषान्पुरः उपलभ्योपलब्धान्प्राग्ववन्दे शिरसा द्विजः ॥ ४२ ॥ हित्वा कलेवरं तीर्थे गंगायां दर्शनादनु । सद्यः स्वरूपं जगृहे भगवत्पार्श्ववर्तिनाम् ॥ ४३ ॥ साकं विहायसा विप्रो महापुरुषकिंकरैः । हैमं विमानमारुह्य ययौ यत्र श्रियःपतिः ॥ ४४ ॥ एवं स विप्लावितसर्वधर्मा दास्याःपतिः

॥ २९ ॥ यह क्या मैंने स्वप्न देखा है नहीं, वास्तवही में यमदूत हाथों में पाश लिये मुझे खींचे लिये जाते थे, वह अब कहांगये ? ॥ ३० ॥ पाशोंसे बँधे, नरक में लेजाते हुये मुझको छुडानेवाले वह चारुदर्शन सिद्ध कहांगये ॥ ३१ ॥ मैं इस जन्मके विषय बड़ापापी हूं, बडा अभागा हूं, तो भी यह पूर्वजन्महीके पुण्य हैं कि जिससे श्रेष्ठ देवों का दर्शन हुआ, और आगे मेराभी कल्याण होने वाला है क्योंकि उनके दर्शन से मेरा आत्मा प्रसन्न होगया ॥ ३२ ॥ जो मेरे पूर्व पुण्य न होते, तो अपवित्र, शूद्रीके पति, मुझ अभागे की जिह्वा से हरिनाम कैसे निकलता ॥ ३३ ॥ कहांतो ब्रह्मकुल नाशक निर्लज्ज अधर्मी पापी मैं और कहां नारायणका मंगल रूपनाम ॥ ३४ ॥ अबतो मैं मन, इन्द्री और प्राणो को जीतकर ऐसा उपाय करूंगा कि जिस से मेरी आत्मा फिर घोरनरक में न प्राप्तहो ॥ ३५ ॥ अविद्या, काम तथा कर्म जनित बंधनोंको काट सम्पूर्ण जीवों के सुहृद, शांत, करुणावन, सबके मित्र, तथा बुद्धिवान होकर स्त्रीरूप भगवत्मायासे ग्रसेहुये अपने आत्माको शीघ्र छुड़ाऊंगा, मैं अधम इस स्त्रीरूप मायाके आधीन होकर क्रीड़ा मृगकी भांति नाच रहाहूं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ सत्य स्वरूप भगवान में चित्तलगाकर शरीर आदिक में अहंता ममताकि जो असत् बुद्धिसे होरही है उसे छोड़कर, परमेश्वरके कीर्तनसे शुद्धहुये अपने अंतःकरणको भगवान में लगाऊंगा ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—साधुओंकी एक क्षणभरकीही संगति से उसको वैराग्य प्राप्त होगया, वह अपने स्त्री पुत्रादि में बंधेहुये मोहरूप बंधनको छोड़ गंगातटपर जाबैठा ॥ ३९ ॥ वहां उसने भगवान के मंदिर में बैठ, जितेन्द्रियहो मनको एकाग्रकर, समाधिलगा, अपने मनको ईश्वर में लगाया ॥ ४० ॥ इसके अनंतर देहेन्द्रियों से मनको अलगकर, अनुभव स्वरूप परब्रह्म में मनलगाया ॥ ४१ ॥ जब भगवत्स्वरूप में बुद्धि ठहरगई तब उसने अपने आगे खडेहुये विष्णु दूतोंको देख उन्हें शिरसे प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ और दर्शन करतेही अपनी देहको गंगाके किनारे पर छोड़ विष्णु दूतोंके स्वरूपको प्राप्तहुआ ॥ ४३ ॥ फिरवह ब्राह्मण चतुर्भुजरूप धारणकर, विष्णु दूतोंके संग, सुवर्णके विमान में बैठ, आकाश मार्गसे स्वर्ग धामको गया ॥ ४४ ॥ यह अजामिल

पतितोगर्ह्यकर्मणा। निपात्यमानोनिरयेहतव्रतःसद्योविमुक्तोभगवन्नामगृह्णन्॥४५॥
नातःपरंकर्मनिबन्धकृन्तनंमुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात्। नयत्पुनःकर्मसुसज्जतेमनो
रजस्तमोभ्यांकलिलंततोऽन्यथा॥ ४६॥ यएवंपरमंगुह्यमितिहासमघापहम्। शृणु
याच्छ्रद्धयायुक्तोयश्चभक्त्यानुकीर्तयेत्॥ ४७॥ नवैसनरकंयातिनेक्षितोयमकिंकरैः
यद्यप्यमंगलोमर्त्योविष्णुलोकेमहीयते॥ ४८॥ म्रियमाणोहरेर्नामगृणन्पुत्रोपचारि
तम्। अजामिलोऽप्यगाद्धामकिंपुनःश्रद्धयागृणन्॥ ४९॥

इतिश्रीमद्भा०महा०षष्ठस्कन्धे अजामिलोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

राजोवाच॥ निशम्यदेवः स्वभटोपवर्णितं प्रत्याह किं तान्प्रति धर्मराजः॥
एवं हताज्ञो विहतान्मुरारेर्नैदेशिकैर्यस्यवशे जनोऽयम्॥ १॥ यमस्य देवस्य न
दण्डभङ्गः कुतश्चनर्षे श्रुतपूर्व आसीत्॥ एतन्मुने वृश्चति लोकसंशयं न हि त्वद-
न्य इतिमे विनिश्चितम्॥ २॥ श्रीशुकउवाच॥ भगवत्पुरुषै राजन्याम्याः प्रतिह-
तोद्यमाः॥ पतिं विज्ञापयामासुर्यमं संयमनीपतिम्॥ ३॥ यमदूता ऊचुः॥ कति
सन्तीह शास्तारो जीवलोकस्यवै प्रभो॥ त्रैविध्यं कुर्वतःकर्म फलाभिव्यक्तिहे-
तवः॥ ४॥ यदिस्युर्बहवो लोके शास्तारो दण्डधारिणः॥ कस्य स्यातां न वा
कस्यमृत्युश्चामृतमेववा॥ ५॥ किंतुशास्तृबहुत्वेस्याद्बहूनामिह कर्मिणाम्॥ शा
स्तृत्वमुपचाराद्धि यथा मण्डलवर्तिनाम्॥ ६॥ अतस्त्वमेको भूतानां सेश्वराणामधी

महापातकी था इसने अपने घर दासीरख निजधर्मको नष्ट करदियाथा इसहेतु इसे नरकमें डालने के लिये यमदूत लेनेआये थे परन्तु हरिनामके प्रभाव से वह पापोंसे छुटगया ॥४५॥ मुमुक्षु पुरुषोंके कर्मोका बंधन काटने वाला एक भगवद्भजनहीं है क्योंकि भगवद्भक्ति से शुद्धहुआ मन फिरकर्मोंमें आसक्त नहींहोता और दूसरे प्रायश्चितसे पापतो निवृत्त होजाते हैं परन्तु रजोगुण तथा तमोगुणसे मलिन हुआ मनशुद्ध नहीं होता॥ ४६॥ जोमनुष्य इस पाप नाशक परम गुह्य इतिहासको भक्ति पूर्वक श्रवण कीर्त्तन करताहै॥४७॥ वह नरक में कदापि नहीं जाता, और यमदूत उसे देखभी नहीं सकते, चाहे वह कितनाही पातकी क्यों न हो स्वर्ग धामहीको जाता है॥ ४८॥ जब मृत्यु को प्राप्तहुआ महापातकी अजामिल पुत्रके उपचार से हरिनाम उच्चारणकर विष्णुधामको प्राप्तहुआ तो श्रद्धायुक्त परमेश्वरका भजन करने वालों को तो अवश्यही कल्याण प्राप्तहोगा॥ ४९॥

इति श्रीमद्भा० महा० षष्ठम० सरला भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

राजा परीक्षित बोले, कि हे शुकदेवजी? धर्मराजजी नें कि जिनके आधीन सम्पूर्ण लोक हैं अपनें दूतोंकी बात कि जिनकी आज्ञा विष्णु दूतोंने भंग की थी सुनकर क्या कहा॥ १॥ हे मुने! यमराज की आज्ञा का भंग तो मैंने कहीं नहीं सुना इस विषय में मुझको संशय है इस को आपके बिना कोई और नहीं दूर करसकता ऐसा मुझे विश्वास है॥२॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! विष्णु दूतों ने जिनका उद्यम नष्ट करदिया है ऐसे यमदूत संयमनी पुरी के पति यमराज से विनतीकर कहनें लगे॥३॥ यमदूत बोले कि, हे प्रभो! तीनो प्रकार के कर्म करनेंवाले जीवों को कर्म का फल देनेंवाले न्यायाधीश इस सृष्टि में कितनेहैं॥ ४॥ जो इस लोक में दंड धारण करने वाले शिक्षादेने वाले बहुतहों तो मृत्यु रूपी दु;ख और अमृत रूपी सुख किसको होना चाहिये और किसको न-होनाचाहिये॥५॥एक न्यायाधीश'हां'कहेगा तो दूसरा'ना' कहेगा ऐसे उपचार से सुख दुःख किसी को नहोगा और यदि सब एकमत होजांय तोभी उनको आपस की इच्छा में संमति देनीही पड़ेगी इस मेंभी सुख दुःख किसी को होगा किसीको नहीं कर्म करनेंवाले लोगोंके अध्यक्ष बहुत होगे तो खंड २ राजाओं की सदृश अध्यक्ष पनभी केवल कहनें मात्र का रहजायगा॥ ६॥ हमतो जानते

श्वरः ॥ शास्ता दण्डधरो नृणां शुभाशुभविवेचनः ॥ ७ ॥ तस्य ते विहितो दण्डो न लोके वर्ततेऽधुना ॥ चतुर्भिरद्भुतैः सिद्धैराज्ञा ते विप्रलम्भिता ॥ ८ ॥ नीयमानं तवादेशादस्माभिर्यातनागृहान् ॥ व्यमोचयन्पातकिनं छित्त्वा पाशान्प्रसह्य ते ॥ ९ ॥ तांस्ते वेदितुमिच्छामो यदि नो मन्यसे क्षमम् । नारायणेत्यभिहिते मा भैरित्याययुर्द्रुतम् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति देवः स आपृष्टः प्रजासंयमनो यमः ॥ प्रीतः स्वदूतान्प्रत्याह स्मरन्पादाम्बुजं हरेः ॥ ११ ॥ यम उवाच ॥ परो मदन्यो जगतस्तस्थुषश्च ओतं प्रोतं पटवद्यत्र विश्वम् । यदंशतोऽस्य स्थितिजन्मनाशा नस्योतवद्यस्य वशे च लोकः ॥ १२ ॥ यो नामभिर्वाचि जनान्निजायां बध्नाति तन्त्यामिव दामभिर्गाः यस्मै बलिं त इमे नामकर्मनिबन्धबद्धाश्चकिता वहन्ति ॥ १३ ॥ अहं महेन्द्रो निर्ऋतिः प्रचेताः सोमोऽग्निरीशः पवनोऽर्को विरिञ्चः । आदित्यविश्वे वसवोऽथ साध्या मरुद्गणा रुद्रगणाः ससिद्धाः ॥ १४ ॥ अन्ये च ये विश्वसृजोऽमरेशा भृग्वादयोऽस्पृष्टरजस्तमस्काः । यस्येहितं न विदुः स्पृष्टमायाः सत्त्वप्रधाना अपि किं ततोऽन्ये ॥ १५ ॥ यं वै न गोभिर्मनसाऽसुभिर्वा हृदा गिरा वाऽसुभृतो विचक्षते । आत्मानमन्तर्हृदि सन्तमात्मनां चक्षुर्यथैवाकृतयस्ततः परम् ॥ १६ ॥ तस्यात्मतन्त्रस्य हरेरधीशितुः परस्य मायाधिपतेर्महात्मनः । प्रायेण दूता इह वै मनोहराश्चरन्ति तद्रूपगुणस्वभावाः ॥ १७ ॥

हैं कि राजाओं समेत समस्त प्राणियों को आज्ञा उपदेश और सबके पुण्य पाप के बिचार करनेवाले आपही एक हो ॥ ७ ॥ उन आपकी आज्ञा सृष्टि में नहीं चलती क्यों कि चार अद्भुत सिद्धों ने आपकी आज्ञा भङ्ग करडाली ॥ ८ ॥ आपकी आज्ञानुसार हम अजामिल पातकी को नरक में लाते थे कि वहां चार सिद्धोंनें हमारे पाशको बल पूर्वक काट उस को हमसे छुटादिया॥९॥हे महाराज! आप हमारे हित के हेतु कहिये कि वह कौनथे हम उनके जाननें की इच्छा करते हैं नारायण इतना नाम लेतेही तू मतडर ऐस कहते हुए वह अजामिल के निकट आ पहुंचे ॥ १० ॥ श्रीशुकदेव जी बोलेकि दूतोंके इसभांति पूछनेपर प्रसन्नहो, दंड देनेवाले यमराजने भगवानके चरणारविंदका स्मरणकर इसभांति कहा ॥ ११ ॥ यमराज बोलेकि—हेदूतो! स्थावर और जंगम का अधीश्वर हमसे पृथक्ही है, मैंतो केवल जंगमोंका इनमें भी मनुष्योंका वहांभी केवल पापियों काही स्वामी हूं और वहभी मैं उन पूर्वोक्त भगवान के आधीनरह उनकी आज्ञानुसार चलताहूं कि जिनके कला रूप ब्रह्मा, विष्णु, महेश से इस सृष्टिका उत्पत्ति, पालन और संहार होता है तथा नथेहुये बैलकी सदृश समस्त लोक जिसके आधीन हैं उन सर्वेश्वर भगवान में ततुंओं में कपड़ेकी सदृश यह समस्त संसार प्रोत होरहा है ॥१२ ॥ जैसे बनिजारा एक डोरमें सब बैलोंकी नाथ बाँधकर उन्हें रखता है ऐसेही भगवान ने सबलोगों को ब्राह्मणादि नाम से अपनी वेदवाणी में बांधरक्खा है, नाम और कर्मरूप बंधनों से बंधेहुये सबजगत भयके बशीभूतहो उनके आधीन रहकर कर्मकरते हैं ॥ १३ ॥ मैं (यम) इंद्र, निर्ऋते, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि, शिव, पवन, सूर्य, ब्रह्मा, अदिति के पुत्र, विश्वेदेवता, वसु, साध्य, मरूद्गण, रुद्रगण और सिद्धलोक ॥ १४ ॥ तथा दूसरेभी भृगुआदि प्रजापति, और देवोंके अधीश्वर, कि जिनके रजोगुण तमोगुण का स्पर्शभी नहीं है और सत्वगुण ही जिनमें मुख्य है वेभी ईश्वरकी चेष्टको नहीं जानते तोफिर मायासे मोहित प्राणी क्या जानेंगे ॥ १५ ॥ रूप जैसे अपनेको देखनेवाली आंखको नहीं जानसकता वैसही जीवभी, भगवान को "किजो सब प्राणियों के अंतर्यामी हैं" इन्द्री, वाणी, मन, प्राण, और हृदय सेभी किसी भांति नहींजानसकता॥१६॥यह संसार के ईश्वर हमसे पृथक्हैं, इन स्वाधीन महात्मा, मायाके अधिपति भगवान के सुंदर पार्षद साथमें भ्रमण किया करते हैं उनके रूप, गुण तथा स्वभावभी बहुधा

भूतानिविष्णोःसुरपूजितानिदुर्दर्शलिंगानिमहाद्भुतानि । रक्षन्तितद्भक्तिमतःपरेभ्यो मत्तश्चमर्त्यानथसर्वतश्च ॥ १८ ॥ धर्मंतुसाक्षाद्भगवत्प्रणीतंनवैविदुर्ऋषयोनापिदेवाः नसिद्धमुख्याअसुरा मनुष्याः कुतश्चविद्याधरचारणादयः ॥ १९ ॥ स्वयंभूर्नारदः शम्भुःकुमारःकपिलोमनुः ।प्रह्लादोजनकोभीष्मोबलिर्वैयासकिर्वयम् ॥ २० ॥ द्वादशैतेविजानीमोधर्मंभागवतंभटाः । गुह्यंविशुद्धंदुर्बोधंयंज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥२१॥ एतावानेवलोकेऽस्मिन्पुंसांधर्मःपरःस्मृतः ।भक्तियोगोभगवतितन्नामग्रहणादिभिः ॥ २२ ॥ नामोच्चारणमाहात्म्यंहरेःपश्यतपुत्रकाः । अजामिलोपियेनैवमृत्युपाशादमुच्यत ॥ २३ ॥ एतावताऽलमघनिर्हरणायपुंसांसंकीर्तनंभगवतोगुणकर्मनाम्नाम् । विक्रुश्यपुत्रमघवान्यदजामिलोपिनारायणेतिम्रियमाणइयायमुक्तिम् ॥२४॥ प्रायेण वेदतदिदंनमहाजनोऽयंदेव्याविमोहितमतिर्बतमाययाऽलम् । त्रय्यांजडीकृतमतिर्मधुपुष्पितायांवैतानिकेमहतिकर्मणियुज्यमानः ॥२५॥ एवंविमृश्यसुधियोभगवत्यनन्तेसर्वात्मनाविदधतेखलुभावयोगम् । तेमेन दण्डमर्हन्त्यथयद्यमीषांस्यात्पातकंतदपिहन्त्युरुगायवादः ॥ २६ ॥ तेदेवसिद्धपरिगीतपवित्रगाथा येसाधवःसमदृशोभगवत्प्रपन्नाः । तान्नोपसीदतहरेर्गदयाऽभिगुप्तान्नैषांवयंनवयःप्रभवामदण्डे२७॥ तानानयध्वमसतोविमुखान्मुकुन्दपादारविन्दमकरंदरसादजस्रम् ।निष्किंचनैःपरमहंसकुलैरसङ्गैर्जुष्टाद्गृहेनिरयवर्त्मनिबद्धतृष्णान् ॥२८॥ जिह्वानवक्तिभगवद्गुणना

भगवान केही सदृश होते हैं॥१७॥जिनका दर्शन होना अतिकठिन है ऐसे तथा देवताओंसे पूजित, अतिअद्भुत,हरिदूत भगवद्भक्ति करनेवाले मनुष्योंको वैरियोंसे तथा मुझसे और अग्नि इत्यादिक के भयों से बचाते हैं ॥ १८ ॥ ऐसामत समझो कि इन्होंने अधर्मका पक्षकिया; क्योंकि भगवानके धर्मको बड़े२ सिद्ध, प्रधान२ऋषि और देवताभी नहीं जानते फिर मनुष्यादिक कहांसे जानें ॥१९॥ ब्रह्मा, नारद, महादेव, सनत्कुमार, कपिलदेव, स्वायंभुवमनु, प्रह्लाद, राजाजनक, भीष्म, बलि, शुकदेवजी और हम (यम) ॥ २० ॥ हेदूतो ! यह द्वादशजन गोप्य, शुद्ध, दुर्बोध भगवद्धर्म को जानते हैं कि जिसधर्मके जाननेसे मोक्षप्राप्तहोती है॥२१॥इस सृष्टिमें मनुष्योंका यही श्रेष्ठधर्म है कि भगवत् नाम ग्रहणादिसे भगवानमें भक्ति उत्पन्नहो ॥२२॥ हेपुत्रो ! हरिनामका माहात्म्यतो देखो, कि जिस भगवतनाम के उच्चारणसे अजामिलभी मृत्युकी फांसीसे छूटगया ॥ २३ ॥ पुरुषोंके पापनाश होनेके हेतुइतनाही बहुत है कि ईश्वरके गुणकर्म तथा नामका कीर्तन कियाकरे, क्योंकि अजामिल स्वयं महापातकी और मरणकाल में अचेतन्यथा तथापि ' हेनारायण ! इसभांति पुत्रको बुलानेसे पापसे छूटकर मोक्षपागया ॥ २४ ॥ जिसभांति कि भौंरासुगन्धि के हेतु फूलों में व्याप्त रहता है ऐसही इस मनुष्यकी बुद्धि मायासे मोहित होरही है इसकारण वह भगवत्धर्मको नहीं जानता, और कर्मविद्यामें उनकी बुद्धिलगी हुई है इससे वह बड़े कर्मों में श्रद्धायुक्त हैं और छोटे कर्मों में नहीं प्रवृत्तहोते ॥ २५ ॥ इस विवेक से विवेकी मनुष्यतो सब प्रकार भगवान की भक्तिकाही यत्नकरते हैं, यह मनुष्य मेरे दण्डके उचित नहीं है क्योंकि उनके लेशमात्रभी पापनहींहोता और यदि होवे भी तो भगवत् कीर्त्तनही उस पापको नाशकरदेता है ॥ २६ ॥ जो महात्मा समदर्शी होकर भगवानकी शरणलेते हैं उनके श्रेष्ठ चरित्रों को सुरतथा सिद्धलोग भी गान करते हैं, इस कारण भगवान की गदासे रक्षित मनुष्यों के समीप तुममतजाओ क्योंकि उनको हमकदाकालभी दण्डनहीं देसकता ॥ २७ ॥ जोमनुष्य, मुकुन्दके चरणारविंदका मकरन्दरूपीरस कि जिसका स्वादजाननेवाले परमहंसलोग सदैव सेवन करते हैं, उसरससे विमुख और नरकके मार्गरूप घरमें तृष्णाबांधकर बैठेहुये दुष्टों को यहां लाओ ॥ २८ ॥ जिन मनुष्यों की जिह्वाने भगवान के

मचेयंचेतश्चनस्मरतितच्चरणारविंदम्। कृष्णायमोनमतियच्छिरएकदापितानानय
त्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥ २९ ॥ तत्क्षम्यतांसभगवान्पुरुषःपुराणोनारायणः
स्वपुरुषैर्यदसत्कृतंनः। स्वानामहोनविदुषांरचितांजलीनां क्षांतिगरीयसिनमःपुरु
षायभूम्ने ॥३० ॥ तस्मात्संकीर्तनंविष्णोर्जगन्मंगलमंहसाम्। महतामपिकौरव्यवि
द्ध्यैकांतिकनिष्कृतिम् ॥ ३१ ॥ शृण्वतांगृणतांवीर्याण्युद्दामानिहरेर्मुहुः। यथासुजा
तयाभक्त्याशुध्येन्नात्माव्रतादिभिः ३२ ॥ कृष्णांघ्रिपद्ममधुलिण्नपुनर्विसृष्टमायागु
णेषुरमतेवृजिनावहेषु। अन्यस्तुकामहतआत्मरजः प्रमार्ष्टुमीहेतकर्मयतएवरजःपुनः
स्यात् ॥ ३३ ॥ इत्थंस्वभर्तृगदितंभगवन्महित्वं संस्मृत्यविस्मितधियोयमकिंकरा
स्ते । नैवाच्युताश्रयजनं प्रतिशंकमाना द्रष्टुंचबिभ्यतिततः प्रभृतिस्मराजन् ॥
॥ ३४ ॥ इतिहासमिमंगुह्यं भगवान्कुम्भसम्भवः । कथयामास मलयआसीनो
हरिमर्चयन् ॥ ३५ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०षष्ठस्कन्धेभगवद्भक्तिवर्णनंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

राजोवाच ॥ देवासुरनृणांसर्गो नागानांमृगपक्षिणाम् । सामासिकस्त्वयाप्रो
क्तो यस्तुस्वायंभुवेऽन्तरे ॥ १ ॥ तस्यैवव्यासमिच्छामि ज्ञातुंतेभगवन्यथा । अनु
सर्गंयथाशक्त्या ससर्जभगवान्परः ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ इतिसंप्रश्नमाकर्ण्य राज
र्षेर्बादरायणिः । प्रतिनन्द्यमहायोगी जगादमुनिसत्तमः ॥ ३ ॥ श्रीशुकउवाच ॥

गुणोंकागान नहीं किया, जिनके चित्त ने हरिके चरणों का स्मरणनहीं किया तथा जिसप्राणी ने श्रीकृष्णजीको प्रणामनहीं किया जिसने एक दिनभीभगवत् हेतु व्रतनहींधारण किया है ऐसे असाधुनर्क को प्राप्त होंगे ॥ २९ ॥ यमराजने इसभांति दूतोंको समझाकर भगवानसे क्षमामांगी, हमारे दूतों ने अजामिलको दुःखदेनेरूप जोअन्यायकिया है उसको हे पुराणपुरुष आपक्षमा करो, हम कि जो अज्ञानी हाथजोड़ आपके सामनेखड़े हैं, हे भगवान उनहमपर आप क्षमाकरें हे भगवान्! हमआपको नमस्कार करते हैं ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजीबोले कि हे महाराज ! हरिकेनामका कीर्त्तनही जगतका मङ्गलकारक, और बड़े २ पापोंका एक प्रायश्चित है ॥ ३१ ॥ परब्रह्म परमात्मा श्रेष्ठपराक्रमों को सदैव सुनने और कीर्त्तनकरनेसे उत्पन्नहुई दृढभक्ति से जैसा अन्तःकरण शुद्ध होता है, ऐसाव्रत इत्यादिक प्रायश्चित्तों से नहीं होता ॥ ३२ ॥ जिसने भगवानके चरणकमल के रसकास्वाद लेलिया है वह मनुष्यतो क्लेशकारक विषय सुखों में स्नेहनहीं करता और असाधु मनुष्य तो तृष्णाके वशीभूतहो, अपने पापों के नाशके हेतुभी पीछे कर्मरूपही प्रायश्चित करता है कि जिससे फिर पापक मूलरूपी विषयों में आसक्ति हुआकरती है ॥ ३३ ॥ हेराजा! इस भांति अपने स्वामी यमराजके कहेहुयेभगवत्महात्म्यको सुन, यमदूतोंने वह बात आश्चर्य्यजनक न मानकर सत्य मानी और तब से कदाचित भगवद्भक्त हमें मार नडालें इस भय से अब यह यमदूत भगवद्भक्तों के सन्मुख देखने मेभी भयखाते हैं ॥ ३४ ॥ साधु अगस्त्य मुनि नें मलयाचलमें बैठकर भगवत्पूजन करते समय मनुष्यों के विश्वास होनेके हेतु बारम्बार भगवत् चरणों का स्पर्श करते हुए यह अजामिल का गुप्त इतिहास कहा है ॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० षष्ठस्कन्धे सरला भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

राजा परीक्षित ने कहा कि हे भगवन् ! देवता, असुर, मनुष्य नाग और मृग पक्षियों का सर्ग स्वायंभुव मन्वंतर में आपनें संक्षेप से वर्णन किया ॥ १ ॥ उसी सर्ग के जाननें की मेरी इच्छा है कि भगवान ब्रह्माजी नें जिस शक्ति से जिस भांति सृष्टि रची ॥२॥ सूतजी ने कहा कि हे उत्तम मुनियो महायोगी शुकदेवजी इस भांति राजा का प्रश्न सुन उनका आदर करके ॥ ३ ॥ शुकदेवजी बोले

यदाप्रचेतसःपुत्रा दशप्राचीनबर्हिषः। अन्तःसमुद्रादुन्मग्ना ददृशुर्गांद्रुमैर्वृताम्।
॥ ४ ॥ द्रुमेभ्यःक्रुध्यमानास्ते तपोदीपितमन्यवः। मुखतोवायुमग्निंच ससृजुस्तद्दि
धक्षया ॥ ५ ॥ ताभ्यांनिर्दह्यमानांस्तानुपलभ्यकुरूद्वह। राजोवाच महान्सोमो
मन्युंप्रशमयन्निव ॥ ६ ॥ मादुमेभ्योमहाभागादीनेभ्योद्रोग्धुमर्हथ। विवर्धयिषवो
यूयंप्रजानांपतयःस्मृताः ॥ ७ ॥ अहोप्रजापतिपतिर्भगवान्हरिरव्ययः। वनस्पतीनो
षधींश्चससर्जोर्जमिषंविभुः ॥८॥ अन्नंचराणामचराह्यपदःपादचारिणाम्। अहस्ता
हस्तयुक्तानांद्विपदांचचतुष्पदः ॥ ९ ॥ यूयंचपित्राऽन्वादिष्टादेवदेवेनचानघाः।
प्रजासर्गायहिःकथं वृक्षान्निर्दग्धुमर्हथ ॥ १० ॥ आतिष्ठतसतांमार्गंकोपंयच्छतदी
पितम्। पित्रापितामहेनापिजुष्टंवःप्रपितामहैः ॥११॥ तोकानांपितरौबन्धुर्दृशःपक्ष्म
स्त्रियाःपतिः। पतिःप्रजानांभिक्षूणांगृह्यज्ञानांबुधःसुहृत् ॥१२॥ अन्तर्देहेषुभूतानामा
त्माऽऽस्तेहरिरीश्वरः। सर्वंतद्धिष्ण्यमीक्षध्वमेवं वस्तोषितोह्यसौ ॥ १३ ॥ यःस
मुत्पाततंदेहआकाशान्मन्युमुल्बणम्। आत्मजिज्ञासयायच्छेत्सगुणानतिवर्तते१४॥
अलंदग्धैर्द्रुमैर्दीनैःखिलानांशिवमस्तुवः। वार्क्षीह्येषावराकन्या पत्नीत्वेप्रतिगृह्यताम्
॥ १५ ॥ इत्यामन्त्र्यवरारोहांकन्यामाप्सरसींनृप। सोमोराजाययौदत्त्वातेधर्मेणोप
येमिरे ॥१६॥ तेभ्यस्तस्यांसमभवद्दक्षःप्राचेतसःकिल। यस्यप्रजाविसर्गेणलोका
आपूरितास्त्रयः ॥ १७ ॥ यथाससर्जभूतानिदक्षोदुहितृवत्सलः। रेतसामनसाचै

कि जब राजा प्राचीनबर्हि के पुत्र प्रचेता समुद्र से बाहर निकले तब उन्हों ने पृथ्वी को वृक्षों से घिरा हुआ देखा ॥४॥ तपसे प्रकाशित वेप्रचेता वृक्षोंपर क्रोध करतेहुए मुख से पवन अग्नि उनको भस्म करनकी इच्छा से त्यागनें लगे ॥ ५ ॥ हे राजा परीक्षित ? इनसे दह्यमान इन वृक्षों को देख बनस्पतियों के राजा चन्द्रमा नें उन का रोष शांति करने के हेतु इस भांति कहा ॥६॥ हे महाभागो ! इनदोनवृक्षों पर आपको रोष नकरना चाहिये, क्योंकि आप प्रजा वृद्धि के हेतु प्रजापति नियतहुए हो ॥ ७ ॥ हे प्रजापतियों के पति ! सर्व व्यापक भगवान नें प्रजा के सुभीते के लिये इन बनस्पति औषधि और अन्न को उत्पन्न कियाहै ॥८॥ चरों का अचर अन्न है पैरसे चलने वालों को बिनापांव क प्राणी अन्न हैं हाथ वालों का बिना हाथ के जीव अन्न हैं और दो पांव वालोंको चार पांव वाले जीव अन्न हैं ॥९॥ हे अनघो ! तुम्हार पिता तथा ब्रह्माजी नें आज्ञा की है कि तुम सृष्टि रचो फिर आप प्रजाओं के अन्न रूप वृक्षों को किस भांति जलाना चाहते हो ॥ १० ॥ तुम्हारे पिता, पितामह प्रपितामह जिस मार्गपर चले हैं उसी साधुओं के मार्ग में तुमभी चलो, और इस प्रचंड क्रोध को शान्तकरो॥११॥बालकों के रक्षक माता पिता,नेत्रोंकी पलकें,स्त्रीका पति, भिक्षुकोंका गृहस्थाश्रमी, अज्ञानियों का ज्ञानी तथा प्रजाओं का रक्षक राजा है ॥ १२ ॥ सब प्राणियों में अंतर्यामी रूप से बिराजमान भगवान सम्पूर्ण सृष्टि के भगवद्धाम रूप हैं इस भांति जानों ऐसे जानने सेही ईश्वर तुमपर प्रसन्न हुएहैं॥१३॥जो मनुष्य शरीर में अकस्मात् उत्पन्न हुए भयंकर क्रोध को आत्म बिचारसे शांत करताहै वह संसार के बंधन से छूटजाताहै ॥१४॥यह बहुत से बिचारे दीन वृक्ष जलगए और जो शेष बचे हैं उनका तथा तुम्हारा कल्याण हो आप इन वृक्षों की पालीहुई श्रेष्ठ कन्या को अपनी स्त्री बनाओ ॥१५॥ हे महाराज ! चन्द्रमा ने इसभांति समझाकर अप्सरा से उत्पन्न हुई उस सुंदरी कन्याको दे आप वहांसे चलागया,फिर प्रचेताओंने धर्मरीति से उसकन्याके संग बिवाहकिया१६ उस स्त्रीके प्रचेताओं से दक्षनाम पुत्र उत्पन्न हुआ उसकी सृष्टि रचनासे समस्त त्रिलोकी परिपूर्ण होगई ॥ १७ ॥ कन्याओंपर दयालु दक्षने वीर्य तथा मनसे जिसभांति जीवोंको उत्पन्न किया वह मैं

यतन्ममाविहितःशृणु ॥ १८ ॥ मनसैवासृजत्पूर्वं प्रजापतिरिमाःप्रजाः । देव सुरम
नुष्यादीन्नभस्थलजलौकसः ॥ १९ ॥ तमबृंहितमालोक्यप्रजासर्गंप्रजापतिःविन्ध्य
पादानुपव्रज्यसोऽचरद्दुष्करंतपः ॥ २० ॥ तत्राघमर्षणंनामतीर्थंपापहरंपरम् । उ
पस्पृश्यानुसवनंतपसातोषयद्धरिम् ॥ २१ ॥ अस्तौषीद्धंसगुह्येनभगवन्तमधोक्षज
म् । तुभ्यंतदभिधास्यामिकस्यातुष्यद्यतोहरिः ॥ २२ ॥ प्रजापतिरुवाच ॥ नमःप
रायावितथानुभूतये गुणत्रयाभासनिमित्तबन्धवे।अदृष्टधाम्नेगुणतत्त्वबुद्धिभिर्निवृत्त
मानायदधेस्वयंभुवे ॥ २३ ॥ नयस्यसख्यंपुरुषोऽवैतिसख्युःसखावसन्संवसतःपु
रेऽस्मिन् । गुणोयथागुणिनोव्यक्तदृष्टेस्तस्मैमहेशायनमस्करोमि ॥ २४ ॥ देहोऽसव
योऽक्षामनवोभूतमात्रानात्मानमन्यंचविदुःपरंयत् सर्वंपुमान्वेदगुणांश्चतज्ज्ञोनवेद
सर्वज्ञमनन्तमीडे ॥ २५ ॥ यदोपरामोमनसोनामरूपरूपस्यदृष्टस्मृतिसंप्रमोषात् ।
यईयतेकेवलयास्वसंस्थयाहंसायतस्मैशुचिसद्मनेनमः ॥ २६ ॥ मनीषिणोऽन्तर्हृ
दिसंनिवेशितंस्वशक्तिभिर्नवभिश्चत्रिवृद्भिः वह्निंयथादारुणिपाञ्चदश्यंमनीषया
निष्कर्षन्तिगूढम् ॥ २७ ॥ सवैममाशेषविशेषमायानिषेधनिर्वाणसुखानुभूतिः । स
सर्वनामासचविश्वरूपः प्रसीदतामनिरुक्तात्मशक्तिः ॥ २८ ॥ यद्यन्निरुक्तंवचसानि
रूपितं धियाक्षभिर्वामनसावोतयस्य । माभूत्स्वरूपंगुणरूपंहितत्सवैगुणापायविस

कहताहूं सोतुम सुनो॥१८॥प्रथमतो दक्षने मनहीसे जल,स्थल, और आकाश स्थित नानाभांति की प्रजा तथा सुर, असुर और मनुष्यादि उत्पन्न किये ॥ १९ ॥ परन्तु प्रजासृष्टि की वृद्धि न देख विंध्याचल के समीप के पर्वत में जादुष्कर तप करनेलगा ॥ २० ॥ वहां एक अघमर्षण तीर्थ है उसमें स्नान करके तपस्याकर परमेश्वरको प्रसन्न करनेलगा ॥ २१ ॥ और हंसगुह्य नामक स्तोत्र से भगवानकी स्तुति करनेलगा, हरिभगवान जिसभांति दक्षकी स्तुतिसे प्रसन्नहुये वह मैं कहताहूं आपसुनो ॥ २२ ॥ दक्षने स्तुतिकी कि—सत्य चैतन्य जीव तथा मायाके उत्पादक, प्रमाण रहित, स्वयंप्रकाश और शरीर आदिको सत्य मानने वाले, जिनके रूपको प्राणी नहीं जानते, ऐसे सर्व श्रेष्ठ देवको मैं नमस्कार करताहूं ॥ २३ ॥ जैसे रूपादिक विषय अपने सखा चक्षुआदि इन्द्रियोंकी सख्यता और प्रकाशत्वको नहीं जानते, ऐसेही जीव इस देहमें रहन परभी अपनेसंग रहनेवाले, प्रपंचके द्रष्टा और मित्ररूप जिनभगवानकी मैत्रीको नहीं जानता उन भगवानको मैं प्रणाम करताहूं ॥ २४ ॥ शरीर, प्राण, इन्द्रियां अंतःकरण, पंचमहाभूत, और महाभूतों के विषय, यह समस्त आत्माको अर्थात् अपने अपने स्वरूपको और इन्द्रिय वर्गको और उनके रक्षक देवताओंको नहीं जानते यद्यपि जीव इनतीन तथा इनके मूल भूतगुणों कोभी जानता है, तौभी अपना स्वरूप किजो सर्वज्ञ और अनंत है, उसे नहीं जानता, उस रूपकी मैं स्तुति करताहूं ॥ २५ ॥ नाम और रूपको उत्पन्न करने वाला मन जब समाधि अवस्था में जगतके दर्शन और स्मृतिके नाशहोने से शांत होजाता है तबजो परब्रह्म केवल अपने रूपसेही ज्ञातहाते हैं उनशुद्ध भगवानको मैं प्रणाम करताहूं ॥ २६ ॥ याज्ञिक लोग सामधेनी नामक पन्द्रह मंत्रोंसे प्रकाश्य अलौकिक अग्निको, जैसे अरणि में से निकाल लेते हैं ऐसेही वेदवादी मनुष्य अपने गुह्य आत्माको विवेक से हृदय में स्थितकर प्रकृति, पुरुष, महत्तत्व, अहंकार, पंचविषय, तीनगुण, ग्यारह इन्द्रियें और पंचमहाभूतों से खींच लेते हैं ॥ २७ ॥ सबभांति की मायाका त्याग कियाजाय, तब निर्वाण सुखमें ज्ञातहोते सर्वनाम, सर्वरूप, और जिनकी शक्तिका निरूपण होना दुष्कर है वे परमेश्वर मुझपर प्रसन्न होवें ॥ २८ ॥ वाणीसे कहनेमें, बुद्धिसे निश्चय करनेमें, इन्द्रियों से ग्रहण करनेमें चित्तसे संकल्प करने में आता हुआ जोकुछ है वह सब परमेश्वरका स्वरूप नहीं है, बरन वह सबगुणों काही स्वरूप है परमेश्वर

गलक्षणः ॥ २९ ॥ यस्मिन्यतोयेनचयस्ययस्मैयद्योयथाकुरुतेकार्यतेच । परावरेषां परंप्राक्प्रसिद्धं तद्ब्रह्मतद्धेतुरनन्यदेकम् ॥ ३० ॥ यच्छक्तयोवदतांवादिनांवैविवा दसंवादभुवोभवन्ति । कुर्वन्तिचैषांमुहुरात्ममोहं तस्मैनमोऽनन्तगुणायभूम्ने ॥ ३१ ॥ अस्तीतिनास्तीतिचवस्तुनिष्ठयोरेकस्थयोर्भिन्नविरुद्धधर्मयोः । अवेक्षितंकिंचनयो गसांख्ययोः समंपरंह्यनुकूलंबृहत्तत् ॥ ३२ ॥ योऽनुग्रहार्थंभजतांपादमूलमनाम रूपोभगवाननन्तः । नामानिरूपाणिचजन्मकर्मभिर्भेजेसमह्यंपरमःप्रसीदतु ॥ ३३ ॥ यःप्राकृतैर्ज्ञानपथैर्जनानांयथाशयंदेहगतोविभाति । यथाऽनिलःपार्थिवमाश्रितोगु णंसईश्वरोमेकुरुतान्मनोरथम् ॥ ३४ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ इतिस्तुतःसंस्तुवतःसतस्मि न्नघमर्षणे । आविरासीत्कुरुश्रेष्ठभगवान्भक्तवत्सलः ॥ ३५ ॥ कृतपादःसुपर्णांसे प्रलम्बाष्टमहाभुजः । चक्रशंखासिचर्मेषुधनुःपाशगदाधरः ॥ ३६ ॥ पीतवासाघन श्यामःप्रसन्नवदनेक्षणः । वनमालानिवीताङ्गोलसच्छ्रीवत्सकौस्तुभः ॥ ३७ ॥ महा किरीटकटकःस्फुरन्मकरकुण्डलः कांच्यङ्गुलीयवलयनूपुरांगदभूषितः ॥ ३८ ॥ त्रैलोक्यमोहनंरूपंबिभ्रत्त्रिभुवनेश्वरः । वृतोनारदनन्दाद्यैःपार्षदैःसुरयूथपैः ३९ ॥ स्तूयमानोऽनुगायद्भिःसिद्धगन्धर्वचारणैः । रूपंतन्महदाश्चर्यंविचक्ष्याऽगतसाध्व

तोगुणोंही के कारण प्रलय और उत्पत्ति से जानने में आते हैं यदि चैतन्य रूप अधिष्ठान होतो जगतकी उत्पत्ति तथा प्रलय होही नहीं सकती ॥ २९ ॥ जिसमें जगत व्याप्त है जिससे निकलता और जिस साधनसे उत्पन्न होता है तथा जिसका होता और जिसके हेतु होताहै वह सबब्रह्महीहै और जोकरने में आता तथा जोकरता और क्रिया के हेतु किसी सेभी जोप्रेरित होता है वह सब ब्रह्महीहै और वह ब्रह्म सबकाहेतु, सबसे प्रथमप्रसिद्ध तथाविश्वादिक और ब्रह्माकाएककारण है ॥ ॥ ३० ॥ विवादकरनेवाले मनुष्यों में जोकुछ विवाद है और एकमत है वह सब भगवतकीमाया मेंही कल्पित है किन्तु भगवानके रूपों इनमें से कुछभी नहीं है वेदवादियोंके समझाने परभी विवादी मनुष्य अविद्या आदि शक्तियों से वारम्बार मोहित होजाते हैं ऐसे अनन्तगुणवाले भगवान को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३१ ॥ सांख्यशास्त्र में भगवानको निरवयव और योगशास्त्रमें सावयव कहा है ऐसे परस्पर विवादकरते हैं, परन्तु भगवानके होनेमें कोई विवादनहीं करता, यह विवाद केवल विषयका अधिष्ठानहै, अधिष्ठाननहोनेसे अवयवोंकी कल्पना और निषेधनहीं होसकता, इससे जोस्वरूप कि इन दोनों विवादोंका आश्रयी, दोनोंके अनुकूलदोनोंसे पृथक और दोनोंके सदृशहै वही ब्रह्महै ३२ जो भगवान नाम रूपरहित होनेपरभी अपने भक्तोंको आनन्द देनेके हेतु पृथक २ नामरूपधारण करतेहैं वे भगवान मुझपर प्रसन्नहोवें ॥ ३३ ॥ पवनएकही है परन्तु जैसे पृथक २ पदार्थों के सम्बन्ध से नानागन्धवाला ज्ञातहोता है वैसेही परमेश्वर एकही है परन्तु नानाभांतिकी उपासनाओं से उनके रूपनानाभांति के ज्ञातहोते हैं वे परमेश्वर मेरीकामनाओं को पूर्णकरैं ॥ ३४ ॥ श्रीशुकदेव जीबोले कि—हेराजन ! दक्षने जबअघमर्षणतीर्थमें स्नानकर इसभांतिस्तुतिकी तो भक्तवत्सलभगवान प्रगटहुये ॥ ३५ ॥ गरुडपर विराजमान लम्बीआठभुजाधारे, उनमें चक्र, शंख, गदा, खड्ग, ढाल, बाण, धनुष औरपाशलिये ॥ ३६ ॥ पीताम्बरधारणकिये, घनश्याम, प्रसन्नमुख, सुन्दरनेत्र, बनमाला पहिने श्रीवत्स और कौस्तुभमणि से शोभित ॥ ३७ ॥ सुन्दरकिरीट मुकुटतथा मकराकृत कुण्डलधारण किये, कांची, अँगूठा, कंकण, नूपुर और बाजूपहिने ॥ ३८ ॥ त्रिलोकीको मोहित करनेवाला रूपधारणकिये नारदसुनन्दनन्दआदि पार्षदोंयुक्त, देवताओंके यूथोंसे वेष्टित ॥ ३९ ॥ और सम्पूर्णलोकपाल, सिद्ध, चारण, गन्धर्व इनसेस्तुति कियेजाते भगवानके उसआश्चर्यजनकरूप

वः ॥४०॥ ननामदण्डवद्भूमौप्रहृष्टात्माप्रजापतिः । नकिंचनोच्चारयितुमशकत्तीव्र
यामुदा । आपूरितमनोद्वारैर्ह्रदिन्यइवनिर्झरैः ॥ ४१ ॥ स्तोत्रस्यफलमापन्नस्तंवदे
पुरुषोत्तमम । तंतथाऽवनतंभक्तंप्रजाकामंप्रजापतिम् । चित्तज्ञःसर्वभूतानामिदमाह
जनार्दनः ॥ ४२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्राचेतसमहाभाग संसिद्धस्तपसाभवान् ।
यच्छ्रद्धयामत्परयामयिभावंपरंगतः ॥४३॥ प्रीतोऽहंतेप्रजानाथयत्तेस्योद्बृंहणंतपः ।
ममैषकामोभूतानांयद्भूयासुर्विभूतयः ॥ ४४ ॥ ब्रह्माभवोभवन्तश्चमनवोविबुधेश्व
राःविभूतयोममह्येताभूतानांभूतिहेतवः ॥ ४५ ॥ तपोमेहृदयंब्रह्मंस्तनुर्विद्याक्रियाकृ
तिः । अङ्गानिक्रतवोजाता धर्मआत्माऽसवःसुराः ॥ ४६ ॥ अहमेवासमेवाग्रेनान्य
त्किंचांतरंबहिः संज्ञानमात्रमव्यक्तंप्रसुप्तमिवविश्वतः ॥ ४७ ॥ मय्यनन्तगुणेऽनन्ते
गुणतोगुणविग्रहः । यदासीत्ततएवाद्यःस्वयम्भूःसमभूदजः ॥४८॥ सवैयदामहादे
वोममवीर्योपबृंहितः । मेनेऽखिलमिवात्मानमुद्यतःसर्गकर्मणि ॥ ४९ ॥ अथमेऽभि
हितोदेवस्तपोऽतप्यतदारुणम् । नवविश्वसृजोयुष्मान्येनादावसृजद्विभुः ॥ ५० ॥
एषापंचजनस्याऽङ्गदुहितावैप्रजापतेः असिक्नीनामपत्नीत्वेप्रजेशप्रतिगृह्यताम् ५१
मिथुनव्यवायधर्मस्त्वंप्रजासर्गमिमंपुनःमिथुनव्यवायधर्मिण्यांभूरिशोभावयिष्यसि
॥ ५२ ॥ त्वत्तोऽधस्तात्प्रजाःसर्वामिथुनीभूयमायया । मदीययाभविष्यन्तिहरिष्य
न्तिचमेबलिम् ॥ ५३ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ इत्युक्त्वामिषतस्तस्य भगवान्विश्वभा
वनः । स्वप्नोपलब्धार्थइव तत्रैवान्तर्दधेहरिः ॥ ५४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०षष्ठ०दक्षोत्पत्तिवर्णनंनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

को देखदक्षको अत्यानन्दहुआ और पृथ्वीपर दण्डाकारगिर उनको साष्टांग दण्डवतकी ॥ ४० ॥
उसकालपूर्णतासे नदियोंकी सदृश, इन्द्रियोंके भरजाने के हेतु वह कुछभी न बोलसका ॥ ४१ ॥
इसभांति दण्डवतकरते, सृष्टिकी इच्छावाले अपने सेवक प्रजापतिदक्षसे सर्वान्तर्यामी भगवानने यह
कहा ॥ ४२ ॥ भगवानबोले कि-हेप्रचेताओं के पुत्रमहाभाग ! तुमतपसे सिद्धहुये हो क्योंकि पूर्ण
श्रद्धायुक्त मेरीदृढ़भक्तिकोप्राप्तहुये हो ॥ ४३ ॥ हेप्रजानाथ ! तुम्हारा तप सृष्टि बढ़ानेके हेतु है इ-
सीहेतु में तुमपरप्रसन्नहुआ हूं यहमेरी आकांक्षा है कि सृष्टिकी वृद्धिहो ॥ ४४ ॥ ब्रह्मा, रुद्र, तुम
प्रजापति और जो मनुष्य, देवताओंके ईश्वर हैं यह सब सृष्टि उत्पत्ति के हेतु मेरीही विभूतिरूपउ
त्पन्नहुये हैं ॥ ४५ ॥ जप और निगमके सङ्गकाध्यान मेराहृदय है मन्त्रकाजप शरीररूप है क्रिया
मेरी आकृति है यज्ञमेरा अंगरूप, धर्ममनरूप और देवता प्राणरूप हैं ॥४६ ॥ सृष्टिके पूर्व में मैंही
था भीतरबाहर कुछभीनथा चैतन्यमात्रतथा सबओरसे सोताहुआ ऐसा मेराही स्वरूप उसकालमें
था ॥ ४७ ॥ अनन्त तथा अनन्तगुणवाले मेरे स्वरूपमें जबब्रह्माण्ड उत्पन्नहुआ उसकाल ब्रह्मा
जी जो अयोनिज कहलाते हैं उत्पन्नहुये ॥ ४८ ॥ यह मेरी शक्तिसे उत्पन्नहुये ब्रह्माजीसृष्टिरचते
हुये जब अपने आत्माको अशक्तसा माननेलगे ॥ ४९ ॥ तब मेरी आज्ञानुसार उन्होंने बड़ाघोर
तप किया उसीतपके प्रभावसे प्रथमउन्होंने नौ प्रजापतियों को उत्पन्न किया ॥ ५० ॥ हेप्रजाप-
ति ! इस पंचजनकी कन्याअसिक्नी को अपनी स्त्रीबना ॥ ५१ ॥ मैथुनधर्मवाला तू इसस्त्री सेसृष्टि
को बहुत बढ़ावेगा ॥ ५२ ॥ अबसे होनेवाली समस्त प्रजामेरे प्रभावसे मैथुनधर्मसेही उत्पन्नहोगी
और मेरी इच्छानुसार कार्यकर मुझे भेंटे देगी ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजीबोलेकि-दक्षप्रजापति से
इसभांति कहते२ त्रिलोकीपति भगवान स्वप्नमें देखेहुये पदार्थकी सदृश वहांसे अन्तर्ध्यानहोगये ५४

इतिश्री भद्रा० महा० षष्ठ० सरलाभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ तस्यांसपांचजन्यांवै विष्णुमायोपबृंहितः । हर्यश्वसंज्ञानयुतं पुत्रानजयनद्विभुः ॥ १ ॥ अपृथग्धर्मशीलास्ते सर्वेदाक्षायणानृप । पित्राप्रोक्ताः प्रजासर्गे प्रतीचीं प्रययुर्दिशम् ॥ २ ॥ तत्रनारायणसरस्तीर्थं सिन्धुसमुद्रयोः । संगमोयत्रसुमहन्मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥ ३ ॥ तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः । धर्मेपारमहंस्येच प्रोत्पन्नमतयोऽप्युत ॥ ४ ॥ तेपिरेतपएवोग्रं पित्रादेशेनयन्त्रिताः । प्रजाविवृद्धयेयत्तान् देवर्षिस्तान्ददर्शह ॥ ५ ॥ उवाचचाथहर्यश्वाः कथंस्रक्ष्यथवैप्रजः । अदृष्ट्वान्तंभुवोयूयं बालिशावतपालकाः ॥ ६ ॥ तथैकपुरुषराष्ट्रं बिलंचादृष्टनिर्गमम् । बहुरूपांस्त्रियंचापि पुमांसंपुंश्चलीपतिम् ॥ ७ ॥ नदीमुभयतोवाहां पञ्चपञ्चाद्भुतंगृहम् । क्वचिद्धंसंचित्रकथं क्षौरपव्यंस्वयंभ्रमिम् ॥ ८ ॥ कथंस्वपितुरादेशमाविद्वांसोविपश्चितः । अनुरूपमविज्ञाय अहोसर्गंकरिष्यथ ॥९॥ श्रीशुकउवाच ॥ तन्निशम्याथहर्यश्वा औत्पत्तिकमनीषया । वाचःकूटंतुदेवर्षेः स्वयंविमम्रुशुर्धिया ॥ १० ॥ भूःक्षेत्रंजीवसंज्ञं यदनादिनिजबन्धनम् । अदृष्ट्वातस्यनिर्वाणं किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ ११ ॥ एकएवेश्वरस्तुर्यो भगवान्स्वाश्रयःपरः । तमदृष्ट्वाऽभवंपुंसः किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १२ ॥ पुमान्नैवैतियद्गत्वा बिलस्वर्गंगतोयथा । प्रत्यग्धामाऽविदइह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १३ ॥ नानारूपात्मनोबुद्धिः स्वैरिणीवगुणान्विता । तन्निष्ठामगतस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १४ ॥ तत्संगभ्रंशितैश्वर्यं संसरन्तंकुभार्यवत् । तद्गतीरबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१५॥

श्रीशुकदेवजीबोले कि–हरिकी मायायुक्तसमर्थदक्षने उस पंचजनकी कन्याअसिक्नीमें हर्यश्व नामकदशसहस्र पुत्र उत्पन्न किये ॥१ ॥ हेराजा ! एकही धर्म और शीलवाले यहदक्षके पुत्रसृष्टि रचनेके हेतु पितासे आज्ञा पा पश्चिमदिशामें गये ॥ २ ॥ उस दिशामें नारायण सरतीर्थ है जहां सिन्धु और समुद्रका संगम हुआ है और जो मुनियों तथा सिद्धों से सेवित है ॥ ३ ॥ उसतीर्थ में स्नानकरतेही उनके अन्तःकरणके मैल दूरहोगये, और उनके चित्तमें परमहंसधर्मका विचारउत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥ पिताकी आज्ञानुसार घोरतपकरते तथा सृष्टि रचने के हेतु उद्योगकरते हुये उनहर्यश्वोंको नारदजीने दर्शन दिया ॥ ५ ॥ नारदजीने कहा कि हे हर्यश्वो! तुमप्रजापति होनेपरभी मूढ़हीं हो, बिना पृथ्वीका अन्त देखे सृष्टिरचना किसभांति करोगे ? ॥ ६ ॥ तथा एक पुरुषकादेश और निकलने का मार्ग जिसमें नहीं देखपड़ता ऐसी गुफा, रूपवतीस्त्री, व्यभिचारिणी का पतिपुरुष ॥ ७ ॥ दोनोंओर बहनवालीनदी, पचीस वस्तुओं से अद्भुतघर, किसीकाल अद्भुतकथाकहताहुआ हंस, अपने आप फिरनवाला तथा छूरे व वज्रों से बनाहुआ तीक्ष्णचक्र ॥ ८ ॥ और अपने सर्वज्ञ पिताकी आज्ञा, बिना इन दशपदार्थोंके जाने तुम सृष्टिरचना किस भांति करोगे ॥ ९ ॥ शुकदेवजी बोले कि—हर्यश्व यह बात सुनकर, अपनी स्वयं सिद्ध विचारवाली बुद्धिसे इन नारदजीके गूढ़ार्थोंको विचारनेलगे ॥ १० ॥ कि अनादि तथा आत्माको जन्मानेवाला लिंगदेहही भूमि स्थानीय है, यह लिंगदेह जीवके बन्धनका कारण है, इस देहकानाश न देख झूठे कर्म करने से क्याहोताहै ॥ ११ ॥ अद्वितीय, ईश्वर, सर्वसाक्षी, स्वआधार, नित्यमुक्त पुरुषको बिना देखे तथा बिनाकर्मों के अर्पणकिये इन असत्कर्मोंसे क्याहोता॥ १२ ॥ जैसे पातालमें गया मनुष्य फिर नहीं लौटता, ऐसेही जिन स्वप्रकाश परब्रह्मको पहुँचकर मनुष्य फिर पीछे नहींआता उन ज्योतिरूप भगवानको न जानकर इन संसारिक असत्कर्मों से क्याहोता है ॥१३॥ नानाभांतिके रूप गुणवाली अपनी बुद्धिही व्यभिचारिणी स्त्रीहै उससे बिना भगवत्कर्मकी निष्ठाके प्राप्तहुए और कर्मोंके करनेसे क्याहोता है ॥ १४ ॥ व्यभिचारिणी स्त्रीके पतिकी सदृश जीव व्यभिचारिणी बुद्धिके दिये

कृपृथग्व्यथकरींमायां वेलाकूलान्तवेगिताम् । मत्तस्यतामविज्ञस्य किमसत्कर्मभिर्भ
वेत् ॥ १६ ॥ पञ्चविंशतितत्त्वानां पुरुषोऽद्भुतदर्पणम् । अध्यात्ममबुधस्येह किम
सत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १७ ॥ ऐश्वरंशास्त्रमुत्सृज्य बन्धमोक्षानुदर्शनम् । विविक्तपद
मज्ञाय किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १८ ॥ कालचक्रंभ्रमिस्तीक्ष्णं सर्वंनिष्कर्षयज्जगत् ।
स्वतन्त्रमबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १९ ॥ शास्त्रस्यपितुरादेशं योनवेदनि
वर्त्तकम् । कथंतदनुरूपाय गुणविस्रम्भ्युपक्रमेत् ॥ २० ॥ इतिव्यवसिताराजन्हर्य
श्वाएकचेतसः । प्रययुस्तंपरिक्रम्य पन्थानमनिवर्त्तनम् ॥ २१ ॥ स्वरब्रह्मणिनि
र्भातहृषीकेशपदाम्बुजे । अखण्डंचित्तमावेश्य लोकाननुचरन्मुनिः ॥ २२ ॥ नाशं
निशम्यपुत्राणां नारदाच्छीलशालिनाम् । अन्वतप्यतकःशोचन् सुप्रजास्त्वंशुचांप
दम् ॥ २३ ॥ सभूयःपाञ्चजन्यायामजेनपरिसान्त्वितः । पुत्रानजनयद्दक्षः शबला
श्वान्सहस्रशः ॥२४॥ तेपिपित्रासमादिष्टाः प्रजासर्गेधृतव्रताः । नारायणसरो जग्मु
र्यत्र सिद्धाःस्वपूर्वजाः॥२५॥तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः॥जपन्तोब्रह्मपरमं
तेपुस्तत्रमहत्तपः॥२६॥अब्भक्षाःकतिचिन्मासान् कतिचिद्वायुभोजनाः॥आराधयन्म
न्त्रमिममभ्यस्यन्त इडस्पतिम्॥२७॥ॐनमोनारायणाय पुरुषायमहात्मने। विशुद्धस·

हुए दुःख सुखको भोग उसके संगरह स्वाधीनता खोबैठाहै उसे जानेबिना बुद्धिकी मूढतासे उत्पन्न
हुए असत्कर्मोंके करनेसे क्याहोताहै! ॥१५॥ यह मायारूप दोनोंओर बहनेवाली नदी है, क्योंकि
मायाही उत्पत्ति और संहार यह दोनों कामकरती है, और अपनेमें व्याप्त प्राणियोंको तटपर पहुँ-
चानेमें (तप, विद्या आदिकी प्राप्तिमें) अतिदुःख अर्थात् क्रोध अहंकारादिक घोर दुःख देती है
इसीसे इसमायाके न जाननेवाले अचैतन्य मनुष्यके मायिक कर्मकरनेसे क्याहोना है ॥१६॥ कार्य
कारणसे रचित इस देहका अधिष्ठाता अंतर्यामी भगवानही पच्चीस तत्त्वोंका आश्रयरूप भवन है
ऐसे आत्माकोन जानकर झूठकर्म करनेसे क्याहोता है॥ १७ ॥ जो भगवानका प्रतिपादक शास्त्र
है वही हंसरूपहै क्योंकि हंसके दूध पानी पृथक्२ करनेकी सदृश यह शास्त्रभी जड़ तथा चैतन्य
को पृथक्२ कर देताहै और बंध तथा मुक्ति सम्बन्धी उत्तमोत्तम बातें कहता है ऐसेशास्त्रका बिना
अभ्यासकिये असत्कर्म करनेसे क्याहोताहै ! ॥ १८ ॥ अपने आप फिरनेवाला चक्रही कालचक्र
है यह तीक्ष्ण तथा स्वाधीनहै और सब सृष्टिको अपनीओर खींचा करता है बिना इसकाल चक्र
के जाने कर्मोंके करनेसे क्या होताहै ॥ १९ ॥ शास्त्ररूप पिता मनुष्यको निवृत्तिकेही लिये आज्ञा
करता है उसआज्ञाको न माननेवाला मनुष्यप्रवृत्ति मार्ग में विश्वासकर सृष्टि में कैसे प्रवृत्तहो॥२०॥
श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! वे एकाग्र चित्तवाले हर्यश्व इसभांति निश्चयकर, नारदजी
की परिक्रमाकर, मोक्षमार्ग कोगये ॥ २१ ॥ और नारदजीभी सर्वव्यापी भगवानके चरणों में अ-
खण्डचित्त रखकर, लोकों में भ्रमणकरनेलगे ॥ २२ ॥ दक्षप्रजापति ने जबसुना कि नारदजीनेश्रेष्ठ
शीलवान पुत्रों कानाशकरादिया तब " श्रेष्ठप्रजाशोकका स्थान है " ऐसे शोचताहुआ अत्यन्त प-
श्चात्ताप करनेलगा ॥ २३ ॥ तब ब्रह्माजीने आकर उन्हें धैर्य दिया, तदनन्तर प्रजापतिदक्षने अ-
पनी स्त्री में फिर शबलाश्वनाम एक सहस्रपुत्र उत्पन्नकिये ॥२४॥ शबलाश्वको भी दक्षने सृष्टिरचना
के हेतु आज्ञाकी तब वह नारायणसर में जहां कि उनके भाई सिद्ध हुये थे गये ॥ २५ ॥ नारायण
सरमें स्नानकरतेही उनके मनके मैल नष्टहोगये फिरवह ओंकार मन्त्रका जपकर बड़ाभारी तपक-
रनेलगे ॥ २६ ॥ कितनेही महीनेतो वह केवलजलपान करके और कितनेही महीने पवनभक्षण
करके रहे और इसमन्त्रसे भगवानका यजनकरने लगे ॥ २७ ॥ " ओंनमो नारायणायपुरुषाय म-

स्वधिष्ण्याय महाहंसायधीमहि ॥ २८ ॥ इतितानपिराजेन्द्र प्रतिसर्गधियोमुनिः । उपेत्यनारदःप्राह वाचःकूटानिपूर्ववत् ॥२९॥दाक्षायणाःसंशृणुत गदतोनिगमंमम। अन्विच्छतानुपदवीं भ्रातॄणांभ्रातृवत्सलाः ॥ ३० ॥ भ्रातॄणांप्रायणंभ्राता योऽनुतिष्ठति धर्मवित् ॥ सपुण्यबन्धुः पुरुषामरुद्भिःसहमोदते ॥ ३१ ॥ एतावदुक्त्वाप्रययौ नारदोऽमोघदर्शनः । तेऽपिचान्वगमन्मार्गं भ्रातॄणामेवमारिष ॥ ३२ ॥ सध्रीचीनं प्रतीचीनंपरः स्यानुपथं गताः । माद्यापितेनिवर्तन्ते पश्चिमायामिनीरिव ॥ ३३ ॥ एतस्मिन् कालउत्पातान् बहूनपश्यन्प्रजापतिः । पूर्ववन्नारदकृतं पुत्रनाशमुपाशृणोत्। ॥ ३४ ॥ चुक्रोधनारदायासौ पुत्रशोकविमूर्च्छितः।देवर्षिमुपलभ्याह रोषाद्विस्फुरिताधरः ॥ ३५ ॥ दक्षउवाच । अहोअसाधोसाधूनां साधुलिंगेननस्त्वया। असाध्वकार्यर्भकाणां भिक्षोर्मार्गःप्रदर्शितः ॥ ३६ ॥ ऋणैस्त्रिभिरमुक्तानाममीमांसितकर्मणाम् । विघातःश्रेयसःपाप लोकयोरुभयोःकृतः ॥ ३७ ॥ एवंत्वंनिरनुक्रोशो बालानांमतिभिद्धरेः । पार्षदमध्येचरसियशोहा निरपत्रपः ॥ ३८ ॥ ननुभागवता नित्यं भूतानुग्रहकातराः । ऋतेत्वांसौहृदघ्नंवै वैरंकरमवैरिणाम् ॥ ३९ ॥ नेत्थंपुंसां विरागःस्यात्त्वया केवलिनामृषा । मन्यसेयद्युपशमं स्नेहपाशनिकृन्तनम् ॥ ४० ॥ नानुभूयनजानाति पुमान्विषयतीक्ष्णताम् । निर्विद्यतेस्वयंतस्मान्न तथाभिन्नधीपरैः ॥ ४१ ॥ यन्नस्त्वंकर्मसंधानां साधूनांगृहमेधिनाम् । कृतवानसिदुर्मर्ष विप्रियंतवम

हात्मने विशुद्धसत्त्वधिष्णायमहाहंसायधीमहि " अर्थ—महात्मापुरुष नारायणको प्रणामकरते हैं, और शुद्धसत्त्वगुणकेआश्रयरूप भगवानका सुमिरणकरते हैं ॥ २८ ॥ हेमहाराज ! इसभांति सृष्टि सृजनेकी इच्छा करते हुये उनसबलाश्वके समीप नारदजीने आकर पहिलकीभांति गूढ़वाक्यकहे परन्तु उनसे इतना और अधिककहा ॥ २९ ॥ हेदक्षसुतो ! मुझसे शिक्षासुनो तुम अपने भाइयों पर स्नेहकरनेवाले हो इसीसे तुमभी उन्हींके मार्गका अवलम्बनकरो ॥ ३० ॥ जोधर्म वेत्ता अपने भाइयोंके मार्ग का अवलम्बनकरते हैं वे अपने पुण्यकी सहायतासे मरुतदेव के साथ आनन्द कियाकरते हैं ॥ ३१ ॥ सर्वदनारदजी इतना कहकर वहांसे चलेआये और शबलाश्वों ने भी अपने बड़ेभाइयों के मार्गका अवलम्बन किया ॥ ३२ ॥ अति श्रेष्ठ, समानचित्त भगवानके मार्गका अवलम्बनकरनेवाले वे शबलाश्व गयीहुई रात्रिकी सदृश अबतकभी पीछे नहीं आते हैं ॥ ३३ ॥ इसकालमें बहुतसे उपद्रव होतेदेख, दक्षप्रजापतिने पूर्वकी समान नारदजीसे पुत्रों के नाशहोने की बातसुनी ॥ ३४ ॥ दक्षपुत्रों के शोक से अति दुःखित होगया और क्रोधसे ओंठ फड़कने लगे, तदनन्तरवह नारदजी से मिलक्रोधितहो कहनेलगा ॥ ३५ ॥ दक्षने कहा कि—अरे! असाधु तूसन्तोंकासास्वरूपधारण किये है तूने हमारे पुत्रों के साथ बड़ा अनिष्ट किया, किस्वधर्म में प्रवृत्तहुये बालकों को भिखारियों का मार्ग दिखाया ॥ ३६ ॥ मेरे पुत्रों के दोनोंलोक सम्बन्धी कल्याणका तूने नाशकरदिया अभीतोवह तीनों ऋणों से उऋणभी नहीं हुये और न कर्मसम्बन्धीही विचारकिया ॥ ३७ ॥ इसभांति निर्दय और बच्चोंकी बुद्धिको फिरानेवाला तू भगवत्यशकानाश करनेवाला होकर, लज्जाछोड़ विष्णुदूतों के संग फिरता है ॥ ३८ ॥ स्नेहको भंगकरनेवाला और अशत्रुओं को शत्रु बनानेवाला एक तेरे अतिरिक्त दूसरे भगवद्भक्ततोजीवों के ऊपर दयाही करतेहोंगे ३९॥ यदि तू ऐसा मनमें विचारताहो कि स्नेहरूपी बन्धनको काटनेवाला एकउपशमही है तो तुम ऐसे ज्ञानियों के रूप बनानेवाले खोटे पुरुष से मनुष्यों को कभी वैराग्य न होगा ॥ ४० ॥ बिना विषयों के अनुभव किये हुये मनुष्य यह नहीं जानसकता कि विषय दुःखदायी हैं इसहेतु विषय भोगके उपरान्त जैसा वैराग्य प्राप्त होता है वैसा और दूसरीरीति से नहीं होता ॥ ४१ ॥ कर्मोंकी म-

र्षितम् ॥ ४२ ॥ तन्तुकृन्तनयन्नस्त्वममभद्रमचरः पुनः । तस्माल्लोकेषुतेमूढ नभवेद्भ्रमतःपदम् ॥ ४३ ॥ श्रीशुकउवाच । प्रतिजग्राहतद्बाढं नारदःसाधुसंमतः । एतावान्साधुवादोहि तितिक्षेतेश्वरःस्वयम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० षष्ठस्कंधे दक्षनारदशापोनामपंचमोऽध्यायः ॥५॥

श्रीशुकउवाच । ततःप्राचेतसोऽसिक्न्यामनुनीतः स्वयंभुवा । षष्टिंसंजनयामासदुहितॄःपितृवत्सलाः ॥ १ ॥ दशधर्मायकायेंदोर्द्विषट्त्रिणवदत्तवान् । भूतांगिरःकृशाश्वेभ्योद्वेद्वेतार्क्ष्यायचापराः ॥ २ ॥ नामधेयान्यमूषांत्वंसापत्यानांचमेशृणु । यासांप्रसूतिप्रसवैर्लोकाआपूरितास्त्रयः ॥ ३ ॥ भानुर्लम्बाककुज्जामिर्विश्वासाध्यामरुत्वती । वसुर्मुहूर्तासंकल्पाधर्मपत्न्यःसुतांशृणु ॥ ४ ॥ भानोस्तुदेवऋषभइन्द्रसेनस्ततोनृप । विद्योतआसील्लम्बायास्ततश्चस्तनयित्नवः ॥ ५ ॥ ककुभःसंकटस्तस्यकीकटस्तनयोयतः । भुवोदुर्गाणिजामेयः स्वर्गोनन्दिस्ततोऽभवत् ॥ ६ ॥ विश्वेदेवास्तुविश्वा अप्रजांस्तान्प्रचक्षते । साध्योगणस्तुसाध्याया अर्थसिद्धिस्तुतत्सुतः ॥ ७ ॥ मरुत्वांश्चजयन्तश्चमरुत्वत्यांबभूवतुः । जयन्तोवासुदेवांशउपेंद्रइतियंविदुः ॥ ८ ॥ मौहूर्त्तिकादेवगणामुहूर्तायाश्चजज्ञिरे । येवैफलंप्रयच्छन्ति भूतानांस्वस्वकालजम् ॥ ९ ॥ संकल्पायाश्चसंकल्पः कामःसंकल्पजःस्मृतः । वसवोऽष्टौवसोःपुत्रास्तेषांनामानिमेशृणु ॥ १० ॥ द्रोणःप्राणोध्रुवोऽर्कोऽग्निर्दोषोवसुर्विभावसुः । द्रोणस्याभिमतेःपत्न्या हर्षशोकभयादयः ॥ ११ ॥ प्राणस्योर्जस्वती

मर्यादावाले हम साधु गृहस्थों का तूने बड़ाही अपराध किया है इसकातो सहन मैंने एकबार कर लिया ॥ ४२ ॥ परन्तु हे दुर्मुख ! सत्यानाशी तूने दूसरी बेरभी मेरा अपराध किया इससे तू अब सदैव लोकों में भ्रमण किया करेगा तुझे बैठने का स्थान न मिलेगा ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि इसदक्षके शापको सन्तो के माननीय नारदजीने स्वीकारकिया, यह सन्तोंही की रीति है कि आप शाप देने को सामर्थ्य नारदजी ने स्वयं शापको ग्रहण किया ॥ ४४ ॥

इति श्री मद्भा० महा० षष्ठस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेव जी बोलेकि–फिर ब्रह्माजी की आज्ञानुसार दक्षने अपनी असिक्नी नाम स्त्रीमें साठ कन्यायें उत्पन्न कींजो अपने पितादक्ष में बड़ा स्नेह रखती थीं ॥ १ ॥ उनमें से प्रजापति दक्षने १० कन्या धर्मको, १३ कश्यपजी को, २७ चन्द्रमाको, दो भूतोंको, दो अंगिराको, दो कृशाश्वको और चारतार्क्ष्य नाम कश्यपजी को ऐसेही साठ कन्यायें दीं ॥ २ ॥ अब कुटुम्ब सहित उनके नाम कहता हूं वह सुनो कि जिनकी परंपरा संतान से त्रिलोकी परिपूर्ण होगई ॥ ३ ॥ धर्मकी स्त्रियें भानु, लंबा, ककुभ, जामि, विश्वा, साध्या मरुत्वती, वसु, मुहूर्त्ता, और संकल्पा थीं अब इनकी पुत्रोत्पत्ति सुनो ॥ ४ ॥ हेराजा! भानुके देव ऋषभ तथा देव ऋषभके इन्द्रसेन और लंबाके विद्योत और विद्योत के स्तनयित्नु नामपुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ ककुभके संकट, संकट के कीकट और कीकटके गढ़ (किलों)के अभिमानी देवता हुये–जामिके स्वर्ग, स्वर्गके नंदिपुत्र हुआ ॥ ६ ॥ विश्वाके विश्वेदेवता हुये इनके कोई संतान न थी–साध्याके साध्यगण उत्पन्न हुये उस साध्यगण के अर्थसिद्धि हुआ ॥ ७ ॥ मरुत्वती में मरुत्वान और जयंत हुये जयंत भगवत्कला हैं इससे उन्हें उपेन्द्र भी कहते हैं ॥ ८ ॥ मुहूर्ता के पुत्र मौहूर्तिक देवता गणहुये किजो प्राणियोंको अपने काल सम्बन्धी फलदिया करते हैं ॥ ९ ॥ संकल्पा के संकल्प और संकल्प के काम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ– वसुके आठ वसुपुत्र हुये उनके नाम यह हैं ॥ १० ॥ द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु और विभावसु, द्रोणके अभिमति स्त्रीमें हर्ष, शोक और भय इत्यादिक पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ११ ॥ प्राण

भार्यासहआयुःपुरोजवः। ध्रुवस्यभार्याधरणिरसूतविविधाःपुरः ॥१२॥ अर्कस्य
वासनाभार्यापुत्रास्तर्षाद्याःस्मृताः अग्नेर्भार्यावसोर्धारा पुत्राद्रविणकादयः ॥१३॥
स्कन्दश्चकृत्तिकापुत्रोयेविशाखादयस्ततः। दोषस्यशर्वरीपुत्रःशिशुमारोहरेःकला
१४ ॥ वसोरांगिरसीपुत्रोविश्वकर्माकृतीपतिः। ततोमनुश्चाक्षुषोऽभूद्विश्वेसाध्या
मनोःसुताः ॥ १५ ॥ विभावसोरसूतोषाव्युष्टंरोचिषमातपम्। पंचयामोऽथभूता
नियेनजाग्रतिकर्मसु ॥ १६ ॥ सरूपाऽसूतभूतस्यभार्यारुद्रांश्चकोटिशः। रैवतोऽजो
भवोभीमोवामउग्रोवृषाकपिः ॥ १७ ॥ अजैकपादहिर्बुध्न्योबहुरूपोमहानिति। रुद्र
स्यपार्षदाश्चान्येप्रेतभूताविनायकाः ॥१८॥ प्रजापतेरंगिरसःस्वधा पत्नीपितॄनथ।
अथर्वांगिरसंवेदं पुत्रत्वेचाकरोत्सती ॥ १९ ॥ कृशाश्वोऽर्चिषिभार्यायांधूम्रकेशम
जीजनत्। धिषणायांवेदशिरोदेवलंवयुनंमनुम् ॥ २० ॥ तार्क्ष्यस्यविनिताकद्रूःपतं
गीयामिनीइति। पतंगयसूतपतगान्यामिनीशलभानथ ॥ २१ ॥ सुपर्णाऽसूतगरुडं
साक्षाद्यज्ञेशवाहनम्। सूर्यसूतमनूरुंचकद्रुर्नागाननेकशः ॥ २२ ॥ कृत्तिकादीनिनक्ष
त्राणीन्द्रोःपत्न्यस्तुभारत। दक्षशापात्सोऽनपत्यस्तासुयक्ष्मग्रहार्दितः ॥२३॥ पुनः
प्रसाद्यतंसोमः कलालेभेक्षयेदिताः। शृणुनामानिलोकानां मातॄणांशंकराणिच ॥
॥ २४ ॥ अथकश्यपपत्नीनां यत्प्रसूतमिदंजगत्। अदितिर्दितिर्दनुः काष्ठाअरिष्टा

के ऊर्जस्वती स्त्री से सह, आयु और पुरोजव पुत्र उत्पन्न हुये ध्रुवकी धरणी स्त्री में नाना भांतिके ग्रामाभिमानी देवता उत्पन्न हुये ॥ १२ ॥ अर्क के वासना स्त्री में तर्षादि पुत्र उत्पन्न हुये—अग्नि की वसुधारा नाम स्त्री में द्रविण इत्यादिक पुत्रहुये ॥ १३ ॥ और अग्निकी कृत्तिका स्त्री में स्कंद नामपुत्र उत्पन्न हुआ, तथा स्कंदके विशाखा इत्यादिक पुत्र उत्पन्न हुये—दोषके शर्वरी नाम स्त्री में भगवत् अंश शिशुमार पुत्रहुआ ॥ १४ ॥ वसुके आंगिरसी स्त्रीमें विश्वकर्मा और विश्वकर्मा के चाक्षुष नाम पुत्र तथा मनुके विश्व और साध्यपुत्र उत्पन्न हुये ॥ १५ ॥ विभावसु की उषा स्त्री में व्युष्ट, रोचिष, और आतप यह तीनपुत्र उत्पन्न हुये आतप के दिन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ कि जिसमें यह सबप्राणी अपने २ कामों में लगेरहते हैं ॥ १६ ॥ भूतकी पहली स्त्री सरूपा से रुद्र नाम करोड़ोंपुत्र प्रगटे, इनमें से यह एकादश रुद्ररैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि ॥१७॥ अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप और महान् हैं, और रुद्रके पार्षद, भूत, प्रेत, पिशाच, विनायक आदि दूसरी स्त्री महामति से उत्पन्न हुये ॥१८॥ प्रजापति अंगिरा की स्वधा स्त्रीने पितरोंको तथा सतीनाम स्त्रीने अथर्वांगिरस नाम वेदको अपना पुत्रकिया ॥ १९ ॥ कृशाश्व की अर्चि स्त्री में धूम्रकेश, और धिषणा स्त्री में वेदशिरा, देवल, वयुन और मनु यह पुत्र उत्पन्न हुये ॥ २० ॥ कश्यप जी की विनता, कद्रू, पतंगी और यामिनी यह चारस्त्रियें थीं, पतंगीके पतंग नामक, और यामिनी के टीड्डा नामक पुत्र उत्पन्न हुये ॥ २१ ॥ विनता के एकतो हरिवाहन गरुड़ और दूसरा सूर्य सारथी अरुण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ कद्रूके अनेक नागपुत्र हुये ॥ २२ ॥ हे राजन् ! कृत्तिका आदि सत्ताईसो नक्षत्र चन्द्रमाकी स्त्रियां हैं परन्तु दक्षके शापसे क्षयरोग होनेके कारण सदैव दुःखित रहता है इसीहेतु उसके एक भी पुत्र न उत्पन्न हुआ दक्षने जब शापदिया तो पीछे चन्द्रमा ने विनती की, तब दक्षने प्रसन्न होकर यह कहाकिजो तेरीकलायें कृष्णपक्षमें क्षीण होजाती हैं वह पीछे बढ़जायगीं, इसभांति कलातो पीछे मिलगईं परन्तु कोई पुत्र न हुआ अब जगत जननी कश्यप जीकी स्त्रियों के नाम कहताहूं उन्हें सुनोकि जिनसे सबसृष्टि उत्पन्न हुई है ॥ २३ ॥ २४ ॥ अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सरमा और तिमि यह क-

सुरसाइला ॥ २५ ॥ मुनिःक्रोधवशाताम्रासुरभिःसरमातिमिः । तिमेर्यादोगणाश्वा
सनश्श्वापदाःसरमासुताः ॥ २६ ॥ सुरभेर्महिषागावोयेचान्येद्विशफानृप । ताम्रा
याःश्येनगृध्राद्यामुनेरप्सरसांगणाः ॥ २७ ॥ दन्दशूकादयःसर्पाराजन्क्रोधवशात्म
जाः । इलायाभूरुहाःसर्वे यातुधानाश्चसौरसाः ॥ २८ ॥ अरिष्टायाश्चगन्धर्वाःकाष्ठा
याद्विशफेतराः । सुतादनोरेकषष्टिस्तेषांप्राधानिकाञ्छृणु ॥२९॥ द्विमूर्धाशम्बरोऽरि
ष्टोहयग्रीवोविभावसुः । अयोमुखःशंकुशिराःस्वर्भानुःकपिलोऽरुणः ॥ ३० ॥ पुलो
मावृषपर्वाच एकचक्रोऽनुतापनः धूम्रकेशोविरूपाक्षो विप्रचित्तिश्चदुर्जयः ३१ ॥
स्वर्भानोःसुप्रभांकन्यामुवाहनमुचिःकिल ॥ वृषपर्वणस्तुशर्मिष्ठां ययातिर्नाहुषोबली
॥ ३२ ॥ वैश्वानरसुतायाश्चचतस्रश्चारुदर्शनाः । उपदानवीहयशिरापुलोमाकाल
कातथा ॥ ३३ ॥ उपदानवींहिरण्याक्षः क्रतुर्हयशिरांनृप । पुलोमांकालकांचद्वेवै
श्वानरसुतेतुकः ॥ ३४ ॥ उपयेमेऽथभगवान्कश्यपोब्रह्मचोदितः । पौलोमाःकालके
याश्च दानवायुद्धशालिनः ॥ ३५ ॥ तयोःषष्टिसहस्राणि यज्ञघ्नांस्तेपितुःपिता । ज
घानस्वर्गतोराजन्नेकइन्द्रप्रियंकरः ॥ ३६ ॥ दितेःसुतोहिरण्याक्षो हिरण्यकशिपुस्त
था । कन्याचसिंहिकानाम बभूवकुरुसत्तम ॥ ३७ ॥ विप्रचित्तिःसिंहिकायां शतं
चैकमजीजनत् । राहुज्येष्ठंकेतुशतं ग्रहत्वंयउपागताः ॥ ३८ ॥ अथातःश्रूयतांवंशो
योऽदितेरनुपूर्वशः । यत्रनारायणोदेवः स्वांशेनावतरद्विभुः ॥ ३९ ॥ विवस्वानर्य
मापूषा त्वष्टाऽथसवितामगः । धाताविधातावरुणोमित्रःशक्रउरुक्रमः ॥ ४० ॥ वि
वस्वतःश्राद्धदेवं संज्ञाऽसूयतवैमनुम् । मिथुनंचमहाभागा यमंदेवंयमींतथा । सै
वभूत्वाऽथवडवा नासत्यौसुषुवेभुवि ॥ ४१ ॥ छायाशनैश्चरंलेभेसावर्णिचमनुंततः

श्यपकी स्त्रियें थीं। हे महाराज ! तिमिके यादोगण (जलजंतु) सरमा के श्वापद। सुरभि के गाय भैंस तथा और भी दोखुरवाले पुत्र उत्पन्न हुये ताम्रा के श्येन, गिद्ध, आदि, मुनिके अप्सरागण, क्रोधवश के सर्प आदि पेटसे चलने वाले पुत्र उत्पन्न हुये इलाके यह सब वृक्षादिक, सुरसा के राक्षस अरिष्टा के गन्धर्व, काष्ठाके एक खुरवाले जीव उत्पन्न हुये दनुके इकसठ पुत्रोंमें से मुख्य २ के नाम कहताहूं। द्विमूर्धा शंबर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावसु अयोमुख, शंकुशिरा, स्वर्भानु, कपिल, अरुण। पुलोमा, वृषपर्वा, एक चक्र और अनुतापन धूम्रकेश, विरूपाक्ष, विप्रचित्ति और दुर्जय। स्वर्भानु के सुप्रभा नाम कन्याथी उसके संग नमुचिने विवाह किया और वृषपर्वाकी शर्मिष्ठा नाम कन्या से नहुषके पुत्र ययाति राजाने विवाह किया ॥ २५–३२ ॥ दनुके पुत्र वैश्वानर के अति सुंदरी चार कन्यायें उपदानवी, हयशिरा, पुलोमा और कालकाथी ॥३३॥ हे महाराज ! हिरण्याक्ष ने उपदानवी से क्रतुने हयशिरा से और कश्यपजी ने ब्रह्माजी की आज्ञानुसार पुलोमा और कालका से विवाह किया हे राजन् ! उनके पौलोम और कालकेय नामक साठ सहस्र असुर बड़े लड़ाके उत्पन्न हुये। यह यज्ञमें विघ्नकिया करते थे इसहेतु जब आपके पितामह अर्जुन स्वर्गमें गये तब इन्द्रकी आज्ञानुसार उन्होंने उन दैत्योंको मार इन्द्रका भय दूरकिया ॥ ३४ ॥ ३६ ॥ विप्रचित्ति ने सिंहिका के १०१ पुत्र, सबसे बड़ेराहु और केतु नाम पुत्र उत्पन्न किये किजो ग्रहहुये ॥३८॥ अब अदिति के वंशका कि जिसमें साक्षातभगवान ने अपनी कला से अवतारलिया है वर्णनकरत हूं वह क्रमानुसार सुनो ॥ ३९ आदिति के बारह आदित्यपुत्र, विवस्वान, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक्र और उरुक्रमहुये ॥ ४० ॥ विवस्वानकी संज्ञास्त्री में श्राद्धदेव नामक मनुपुत्र उत्पन्नहुआ और उसी महाभागा में यमपुत्र और यमुनाकन्या यह जोड़ा उत्पन्नहुआ, फिर वही संज्ञा घोड़ी बनी कि जिससे पृथ्वीपर अश्विनीकुमार पुत्र उत्पन्नहुये ॥४१॥

कन्यांचतपतींयावै यत्रेसंवरणंपतिम् ॥ ४२ ॥ अर्यम्णोमातृकापत्नी तयोश्चर्षणयः सुताः यत्रवैमानुषीजातिर्ब्रह्मणाचोपकल्पिता ॥ ४३ ॥ पूषाऽनपत्यःपिष्टादो भग्नदन्तोभवत्पुरा। योऽसौदक्षायकुपितं जहासविवृतद्विजः ॥ ४४ ॥ त्वष्टुर्दैत्यानुजा भार्यारचनानामकन्यका। सन्निवेशस्तयोर्जज्ञेविश्वरूपश्चवीर्यवान् ॥ ४५ ॥ तंवव्रिरेसुरगणा स्वस्त्रीयं द्विषतामपि। विमतेनपरित्यक्ता गुरुणाऽङ्गिरसेनयत् ॥ ४६ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० षष्ठ० दक्षकन्यावंशवर्णनंनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

राजोवाच। कस्यहेतोःपरित्यक्ता आचार्येणात्मनःसुराः। एतदाचक्ष्वभगवन् शिष्याणामक्रमंगुरौ ॥१॥ श्रीशुकउवाच। इन्द्रस्त्रिभुवनैश्वर्यमदोल्लंघितसत्पथः। मरुद्भिर्वसुभी रुद्रैरादित्यैर्ऋभुभिर्नृप ॥ २ ॥ विश्वेदेवैश्चसाध्यैश्च नासत्याभ्यांपरिश्रितः। सिद्धचारणगन्धर्वैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ ३ ॥ विद्याधराप्सरोभिश्च किन्नरैःपतगोरगैः। निषेव्यमाणोमघवान् स्तूयमानश्चभारत ॥ ४ ॥ उपगीयमानो ललितमास्थानाध्यासनाश्रितः। पाण्डुरेणातपत्रेण चन्द्रमण्डलचारुणा ॥ ५ ॥ युक्तश्चान्यैः पारमेष्ठ्यैश्चामरव्यजनादिभिः। विराजमानः पौलोम्यासहार्धासनयाभृशम् ॥ ६ ॥ सयदा परमाचार्यं देवानामात्मनश्चह। नाभ्यनन्दतसंप्राप्तं प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ ७ ॥ वाचस्पतिंमुनिवरं सुरासुरनमस्कृतम्। नोच्चचालासनादिन्द्रः पश्यन्नपिसभागतम् ॥ ८ ॥ ततोनिर्गत्यसहसा कविराङ्गिरसःप्रभुः ॥ आययौस्वगृहंतूष्णींविद्वाञ्छ्रीमदविक्रियाम् ॥ ९ ॥ तर्ह्येवप्रतिबुध्येन्द्रो गुरुहेलनमात्मनः। गर्ह-

---

विवस्वानकी छायास्त्री में शनैश्चर और सावर्णि मनु यह दोपुत्र तथातपती नामपुत्री उत्पन्न हुई कि जो संवरणके संग व्याहीगई ॥ ४२ ॥ आर्यमाकी मातृका स्त्री में चर्षणी नामपुत्र प्रगटे, ब्रह्माजीने इनकी मनुष्यजाति कल्पना की है ॥ ४३ ॥ ब्रह्मसमाज में दक्षपर कुपितहुये महादेवजीको पूषा दांत दिखा २ कर हँसाथा इससे शिवगणों ने उसके दांततोड़दिये थे तबसे वह पिष्टखाकर अपना कालक्षेप करता है इसके कोई सन्ताननहीं है ॥ ४४ ॥ दैत्योंकी छोटी भगनी रचना त्वष्टा की स्त्री था इसके सन्निवेश और विश्वरूपदोपुत्र उत्पन्नहुये ॥ ४५ ॥ यद्यपि वह अपने शत्रु दैत्यों का दौहित्रथा, तौभी जब गुरू बृहस्पतिजीने देवताओं को अवज्ञाकरनेसे छांड़दिया तब देवता ने आकर विश्वरूपसे प्रार्थनाकी और उसे अपना पुरोहित बनाने को वर्ण किया ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० षष्ठम० सरला भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

परीक्षित ने कहा कि–हे भगवन्! बृहस्पतिजी ने देवताओं को क्यों छोड़दिया? गुरू विना अपराध शिष्य को नहीं छोड़ता सो इन्होंने गुरूका क्या अपराध किया सो कहिये ॥ १ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि–महाराज! इन्द्र तीनोलोकका ऐश्वर्य्य पा, साधुओंके मार्ग का उल्लंघन कर वर्तावा करने लगे, उस इन्द्रको मरुतगण, वसु देवता, रुद्र, आदित्य और ऋभु ॥ २ ॥ विश्वेदेवा, साध्यदेवता और अश्विनीकुमार घेरे हुये थे, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, मुनि, विद्याधर इनसे सेवित था ॥ ३ ॥ हे राजन्! अप्सरा किन्नर पतंग इन्द्रकी सेवा कररहे थे ॥ ४ ॥ हे भरत बंशियों में श्रेष्ठ इन्द्र के समीप सुंदर गान होरहा था और चन्द्र मंडल की सदृश श्वेत छत्र लगा हुआ था ॥ ५ ॥ और भी महाराजों के चामर, व्यजन इत्यादिक चिह्न प्रकाशित होरहे थे और अर्धे सिंहासन में इन्द्राणी विराजमान थीं ॥ ६ ॥ उसीकालमें देवताओंके श्रेष्ठ गुरू बृहस्पतिजी उस सभा में आये तो इन्द्र ने उनका आसन आदिकसे सत्कार न किया ॥ ७ ऐसे महामुनि बृहस्पतिजीको कि जिन को सुर असुर नमते हैं, सभा में आया देख इन्द्र अपने आसनसे किंचित्मात्रभी न उठा ॥ ८ ॥ तब लक्ष्मीके मदका विकार जान महाविद्वान बृहस्पतिजी चुपचाप तत्कालही वहां से चलेआये ९॥

यामालक्ष्यदसि स्वयमात्मानमात्मन ॥१०॥ अहोबतममाऽसाधु कृतंवैदभ्रबुद्धिना । यन्मयैश्वर्यमत्तेन गुरुःसदसिकात्कृतः ॥११॥ कोगृध्येत्पण्डितोलक्ष्मी त्रिविष्टपप तेरपि । ययाऽहमासुरंभावं नीतोऽद्यविबुधेश्वरः ॥ १२ ॥ येपारमेष्ठ्यं धिषणमधि तिष्ठन्नकंचन । प्रत्युत्तिष्ठेदिति ब्रूयुर्धर्मंतेनपरंविदुः ॥ १३ ॥ तेषांकुपथदेष्टॄणां पततां तमसिह्यधः । येश्रद्दध्युर्वचस्तेवै मज्जन्त्यश्मप्लवाइव ॥ १४॥ अथाहममराचार्य म गाधधिषणंद्विजम् । प्रसादयिष्येनिशठः शीर्ष्णातच्चरणंस्पृशन् ॥ १५ ॥ एवं चि- न्तयतस्तस्य मघोनोभगवान्गृहात् । बृहस्पतिर्गतोऽदृष्टां गतिमध्यात्ममायया ॥१६ गुरोर्नाधिगतःसंज्ञां परीक्षन्भगवान्स्वराट् । ध्यायन्धियासुरैर्युक्तः शर्मनालभतात्म नः ॥ १७ ॥ तच्छ्रुत्वैवासुराःसर्वे आश्रित्यौशनसंमतम् । देवान्प्रत्युद्यमंचक्रुर्दुर्मदा आततायिनः ॥ १८ ॥ तैर्विसृष्टेषुभिस्तीक्ष्णै र्निर्भिन्नांगोरुबाहवः । ब्रह्माणंशरणं जग्मुः सहेन्द्रानतकन्धराः ॥ १९ ॥ तांस्तथाऽभ्यर्दितान्वीक्ष्य भगवानात्मभूरजः । कृपयापरयादेव उवाचपरिसान्त्वयन् ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अहोबतसुरश्रेष्ठा ह्यभ द्रंवःकृतंमहत् ॥ ब्रह्मिष्ठंब्राह्मणंदान्तमैश्वर्यान्नाभ्यनन्दत ॥ २१ ॥ तस्यायमनयस्या सीत्परेभ्योवःपराभवः । प्रक्षीणेभ्यःस्ववैरिभ्यः समृद्धानांचयत्सुराः ॥ २२ ॥ मघ वन्द्विषतःपश्य प्रक्षीणान्गुर्वतिक्रमात् । संप्रत्युपचितान्भूयः काव्यमाराध्यभक्ति तः । आददीरन्निलयनं ममापिभृगुदेवताः ॥ २३ ॥ त्रिविष्टपंकिंगणयन्त्यभेद्यम न्त्राभृगूणामनुशिक्षितार्थाः । नविप्रगोविन्दगवीश्वराणां भवन्त्यभद्राणिनरेश्वरा

उसकाल इन्द्र गुरू का अपराध हुआ जान सभा के मध्य में स्वयंही अपने को धिक्कारने लगा ॥ १० ॥ हाय ! मुझ मंदबुद्धि ने ऐश्वर्य के अहंकार से सभा के मध्य में गुरु का तिरस्कार किया यह बड़ा ही अन्याय किया ॥ ११ ॥ तीनलोक के अधिपतिकी राज्यलक्ष्मी को कौनविद्वान मनुष्य चाहे ? कि जिस लक्ष्मी से मैं सत्वगुणी देवताओं का स्वामी होकर भी आसुरी भावको प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ जो इस भांति कहते हैं कि राजा सिंहासन पर बैठ कर-किसी के सामने न उठे, वह परमधर्म को नहीं जानते ॥ १३ ॥ खोटे उपदेशोंके करनें वाले नीच नरक में गिरते हैं और उनके बचनों को जो श्रद्धायुक्त सुनता है वह पत्थर की नाव में बैठ कर आपही डूबता है ॥ १४ ॥ अतएव मैं मूढ़ता को छोड़, महाविद्वान देवताओं के गुरू बृहस्पतिजी के चरणों में शिर रखकर उनको प्रसन्न करूंगा॥१५॥जब इन्द्रने इसभांति बिचार किया और बृहस्पतिजी के घर आए तो बृहस्पतिजी अपनी मायाके प्रभावसे घरमें सभा लोप होगये॥१६॥इन्द्रने यद्यपि बहुत से यत्न किये तथापि बृहस्पतिजी न मिले तबइन्द्र तथा देवताओंने बहुत शोच किया और बुद्धिसेभी बिचारा परंतु उनको सुख न प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ जब यह बात असुरों ने सुनीतो वह मदान्मतहो शुक्राचार्य से सम्मति ले शस्त्रधारणकर देवताओंपर चढ़दौड़े ॥ १८ ॥ असुरों के चलायेहुये तीव्र शरोंसे देवताओं के अंग छिन्नभिन्न होगये और वे रणसे भगनेलगे तब सबदेवता इन्द्रको संगले- कर ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥ १९ ॥ भगवानब्रह्माजी देवताओं को दुःखी देख अत्यन्त कृपायुक्त हो उन्हें धैर्य देकर ॥ २० ॥ ब्रह्माजीबोले कि-हे देवताओ ! तुमने वेदवादी जितेन्द्रिय बृहस्पति का तिरस्कार धनके मदसे किया यह अत्यन्तही बुराकिया ॥ २१ ॥ हे सुरो ! तुमसर्व सम्पन्नथे और तुम्हारे बैरी असुर प्रचण्डथे, तौभी उनसे जो तुमहारे यह उसी अपराधका फलहै ॥२२॥ हेदेवताओ ! प्रथमतुम्हारे शत्रु शुक्राचार्य के तिरस्कार करने से क्षीण होगये थे परन्तु फिर शु- क्राचार्य की भक्ति करने से वह उन्नति पागये, यह शुक्राचार्य के सेवक तो हमारे स्थानतकका ले सकते हैं ॥ २३ ॥ यह भृगुकुलके शिष्य गुप्त विचारवाले असुर वैकुण्ठको क्या पदार्थ गिने

णाम् ॥ २४ ॥ तद्विश्वरूपं भजताशु विप्रं तपस्विनं त्वाष्ट्रमथात्मवन्तम् । सभाजितोऽर्थान्स विधास्यते वो यदि क्षमिष्यध्वमुतास्य कर्म ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तएवमुदिताराजन् ब्रह्मणा विगतज्वराः । ऋषिं त्वाष्ट्रमुपव्रज्य परिष्वज्येदमब्रुवन् ॥२६॥ देवा ऊचुः ॥ वयं तेऽतिथयः प्राप्ता आश्रमं भद्रमस्तु ते । कामः सम्पाद्यतां तात पितॄणां समयोचितः ॥ २७ ॥ पुत्राणां हि परो धर्मः पितृशुश्रूषणं सताम् । अपि पुत्रवतां ब्रह्मन् किमुत ब्रह्मचारिणाम् ॥ २८ ॥ आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः। भ्राता मरुत्पतेर्मूर्तिर्माता साक्षात्क्षितेस्तनुः ॥ २९ ॥ दयाया भगिनी मूर्तिर्धर्मस्यात्माऽतिथिः स्वयम् । अग्नेरभ्यागतो मूर्तिः सर्वभूतानि चात्मनः ॥ ३० ॥ तस्मात् पितॄणामार्तानामार्तिं परपराभवम् । तपसाऽपनयंस्तात संदेशं कर्तुमर्हसि ॥ ३१ ॥ वृणीमहे त्वोपाध्यायं ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं गुरुम् । यथाऽञ्जसा विजेष्यामः सपत्नांस्तव तेजसा ॥ ३२ ॥ नगर्हयन्ति ह्यर्थेषु यविष्ठाङ्घ्र्यभिवादनम् । छन्दोभ्योऽन्यत्र न ब्रह्मन्वयो ज्यैष्ठ्यस्य कारणम् ॥ ३३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ अभ्यर्थितः सुरगणैः पौरोहित्ये महातपाः । स विश्वरूपस्तानाह प्रसन्नः श्लक्ष्णया गिरा ॥ ३४ ॥ विश्वरूप उवाच ॥ विगर्हितं धर्मशीलैर्ब्रह्मवर्चउपव्ययम् । कथं नु मद्विधो नाथा लोकेशैरभियाचितम् । प्रत्याख्यास्यति तच्छिष्यः स एव स्वार्थ उच्यते ।।३५।। अकिंचनानां हि धनं शिलोञ्छनं तेनेह निर्वर्तितसाधुसत्क्रियः । कथं विगर्ह्यं नु करोम्यधीश्वराः पौरोधसं हृष्यति येन दुर्मतिः ३६ ॥

जिनपर ब्राह्मण, गौ, भगवानकी कृपा होती है उनका किसी भांतिसे अकल्याण नहीं होता ।।२४।। अतएव अबतुम त्वष्टाके पुत्र विश्वरूप कि जो तपस्वी और धैर्यमान हैं, उसका तत्कालही अनुसरणकरो, और जो तुम उनका आदर करोगे तथा वह असुरों का पक्षकरें उसको तुम सहोगे तो तुम्हारी समस्तकामनायें पूर्ण होजायगी ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-हेराजन् ! वे देवता ब्रह्माजीकी यहबातें सुन विश्वरूप ऋषिके समीपजा, उनका स्पर्शकर यह कहनेलगे ॥ २६ ॥ देवताओंने कहाकि तुम्हारा भलाहो हम आपके आश्रममें आज पाहुने बनकर आये हैं हेतात ! हम तुम से बड़े हैं हमारे हेतु जैसाचाहिये वैसाकामकरो।।२७।। पुत्रोंका धर्म यही है कि पिता की सेवाकरें और गृहस्थी होवें वहांपरभी जो ब्रह्मचारी होवे तो इससेबढ़कर और कोई दूसराधर्म नहीं है ।।२८।। आचार्य ब्रह्माकी मूर्ति, पिता प्रजापतिकी मूर्ति, भाई इन्द्रकी मूर्ति, माता पृथ्वीकी मूर्ति ।।२९।। भगनीदयाकी मूर्ति, अतिथिधर्मकी मूर्ति, अभ्यागत अग्निकीमूर्ति और समस्तजीव विष्णुजीकीमूर्तिहैं ३० अतएव हम दुःखित अतिथियोंका पराभव रूपी दुःख, किजो शत्रुओं से प्राप्तहुआ है अपने तपके प्रभाव से नाशकरो, हेतात! तुमहमारी आज्ञामानो ।। ३१ ।। हम, आप वेदवादी ब्राह्मको गुरुबनाया चाहते हैं कि-जिसयत्न द्वारा तुम्हारे मंत्र बलके प्रभाव से शत्रुको सहजहीं में जीतलेवें ।। ३२ ।। हे ब्रह्मन् ! अपने कार्य्य की सिद्धिके लियेयदि छोटेकोभी प्रणाम किया जायतो कोई निंदित कार्य नहीं है, वेद विद्याके विषय में अवस्था का बड़प्पन नहीं मानाजाता ।। ३३ ।। श्रीशुकदेवजी बोले कि-देवताओंनेइसभांति उनसे पुरोहित होनेकी विनती की, तोमहा तपस्वी विश्वरूपने प्रसन्न होकर मधुर स्वरसे कहा ।। ३४ ।। विश्वरूप बोलेकि-पुरोहितपन यद्यपि धर्मात्माओं से अपमानित और ब्रह्मतेज नाशक है, तथापि हे नाथो ! मैं आप लोकपालों के बचनका निषेध कैसे करूं क्योंकि मैं आपकी शिक्षाका पात्रहूं ।। ३५ ।। शिलं (खेतकी कनीको लेना) और उंछ (दूकान आदिका पड़ाहुआ अन्नलेना) यही निष्किंचिनों की जीविका है और इसी धनसे मैं महात्माओं का आदर करताहूं इससे हे अधीश्वरो ! इस तिरस्कारित पुरोहित पनको कि जिससे बुद्धिकुंठित होती है मैं

तथापिनप्रतिब्रूयां गुरुभिःप्रार्थितंकियत् । भवतांप्रार्थितंसर्वं प्राणैरर्थैश्चसाधये॥३७
॥ श्रीशुकउवाच ॥ तेभ्यएवंप्रतिश्रुत्यविश्वरूपोमहातपाः पौरोहित्यंवृतश्चक्रे परमे
णसमाधिना॥३८॥सुरद्विषांश्रियंगुप्तामौशनस्यापिविद्यया। आच्छिद्यादान्महेन्द्राय
वैष्णव्याविद्ययाविभुः॥ ३९॥ ययागुप्तःसहस्राक्षो जिग्येऽसुरचमूर्विभुः । तांप्राह
समहेन्द्राय विश्वरूपउदारधीः ॥ ४० ॥

इतिश्रीमद्भा०महा० षष्ठ० पौरोहित्यायवर्णनंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

राजोवाच ॥ ययागुप्तःसहस्राक्षः सवाहान्रिपुसैनिकान् । क्रीडन्निवविनिर्जित्य
त्रिलोक्याबुभुजेश्रियम् ॥ भगवंस्तन्ममाख्याहि वर्मनारायणात्मकम् । यथाततायि
नःशत्रून्येनगुप्तोजयन्मृधे ॥ २ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ वृतःपुरोहितस्त्वाष्ट्रो महेन्द्राया
नुपृच्छते । नारायणाख्यंवर्माह तदिहैकमनाःशृणु ॥ ३ ॥ विश्वरूपउवाच ॥ धौतां
घ्रिपाणिराचम्य सपवित्रउदङ्मुखः । कृतस्वांगकरन्यासो मंत्राभ्यांवाग्यतःशुचिः ४
नारायणमयंवर्म संनह्येद्भयआगते । पादयोर्जानुनोरूर्वोरुदरे हृद्यथोरसि ॥ ५ ॥
मुखेशिरस्यानुपूर्व्यादोंकारादीनिविन्यसेत् । ओंनमोनारायणायेतिविपर्ययमथापिवा
॥६॥करन्यासंततःकुर्याद्द्वादशाक्षरविद्यया। प्रणवादियकारांतमंगुल्यंगुष्ठपर्वसु ७॥
न्यसेद्धृदयओंकारंविकारमनुमूर्द्धनि । षकारंतुभ्रुवोर्मध्ये णकारंशिखयादिशेत् ८ ॥
वेकारंनेत्रयोर्युञ्ज्यान्नकारंसर्वसंधिषु । मकारमस्त्रमुद्दिश्य मन्त्रमूर्तिर्भवेद्बुधः ९ ॥

कैसेकरूं ॥ ३६ ॥ तौभी आपने बड़े होकर मुझसे प्रार्थना की है इससे मैं अवश्यही इसे स्वीकार करूंगा। मैं आपकी प्रार्थना कोप्राण तथा द्रव्यसे भी सिद्धकरने को प्रस्तुतहूं ॥ ३७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि–बड़े तपस्वी देवताओं से प्रार्थना कियेहुये विश्वरूप ने पुरोहित पनको स्वीकार कर उसका निर्वाह बड़े उद्यम से करनेलगे ॥ ३८ ॥ शुक्राचार्य की विद्यासे रक्षित असुरों की संपति विश्वरूप ने विष्णु कवच से इन्द्रकोदी ॥ ३९ ॥ जिस विद्याकी रक्षासे इन्द्रने दैत्योंकी सेनाजीती वह विद्या उदार बुद्धि विश्वरूप ने इन्द्रकोदी ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भा०महा०षष्ठस्कं०सरलाभाषाटीकायांसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

राजापरीक्षित बोलेकि–हे भगवन्! जिस विद्यासे इन्द्रने रक्षित होकर शत्रुकी सेनाको क्रीड़ाही से जीतकर त्रिलोकीकी संपत्तिका भोगकिया ॥ १ ॥ वह नारायण कवच मुझसे आपकहो कि किस भांति उस कवच से रक्षित होकर युद्धमें आजित शत्रुओंको जीतलिया ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–इन्द्रने जोनारायण कवच विश्वरूप पुरोहित से पूछा और विश्वरूपने इन्द्रसे कहा वह मैं कहताहूं आप सावधान होकरसुनो ॥ ३ ॥ विश्वरूप बोलेकि–किसी भांतिका भय नहो, तब हाथपैरधो, आचमन कर, शुद्धहो, उत्तर दिशाकी ओर मुखकर, अष्टाक्षर तथा द्वादशाक्षर मंत्रसे अंगन्यास तथा करन्यासकर, मौनव्रत धारणकरके, नारायण कवचको बांधे ॥ ४ ॥ " ओंनमोनारायणाय " इस अष्टाक्षरमन्त्रके ओंकारादिकअक्षरों से क्रमानुसार पांव, घुटने, जंघा, पेट, हृदय, वक्षःस्थल, मुख और माथे में न्यासकरे अथवा सिरसे चरणतक उलटे अक्षरों से न्यासकरे ॥ ५ ॥ फिर " ओंनमोभगवते वासुदेवाय " इसद्वादशाक्षर मंत्रके ओंकारसे संपुटित एक २ अक्षरका आठ अँगुलियोंमें और शेष अँगूठे के पोरुओं तथा अग्रभाग में न्यासकरे ॥ ६ ॥ फिर " ओंविष्णवेनमः " इसमंत्रके " ओंकारको हृदय में, विकारको माथे में, षकारको भ्रुकुटि मध्यमें, णकार को शिखा में, वेकार को नेत्र में, नकारको सर्व संधियों में, न्यासकरे ॥ ७ ॥ तदनंतर ' मःअस्त्राय फट् ' ऐसे कहकर दिग्बंधनकरे, ऐसाकरने से मनुष्यमंत्र मूर्ति होजाताहै ॥८॥ 'ओंविष्णवेनमः' इन छःशक्तियों से युक्त, ध्यानकरने योग्य, विद्या, तेज तथा तपरूप मूर्त्तिवाले परब्रह्मपरमात्माका

सविसर्गफडन्तं तत्सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत्। ओंविष्णवेनमइति ॥ १० ॥ आत्मानंपरमं ध्यायेद्ध्येयंषट्शक्तिभिर्युतम् । विद्यातेजस्तपोमूर्तिमिमंमन्त्रमुदाहरेत् ॥ ११ ॥ ओं हरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षांन्यस्तांघ्रिपद्मः पतगेन्द्रपृष्ठे। दरारिचर्मासिगदेषुचापपाशान् दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहुः ॥ १२ ॥ जलेषुमांरक्षतुमत्स्यमूर्तिर्यादोगणेभ्योवरुणस्य पाशात् । स्थलेषुमायावटुवामनोऽव्यात् त्रिविक्रमः खेऽवतुविश्वरूपः ॥ १३ ॥ दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषुप्रभुः पायान्नृसिंहोऽसुरयूथपारिः । विमुञ्चतोयस्यमहाऽट्टहासं दिशोविनेदुर्न्यपतंश्चगर्भाः ॥ १४ ॥ रक्षत्वसौमाऽध्वनियज्ञकल्पः स्वदंष्ट्रयोन्नीतधरोवराहः। रामोऽद्रिकूटेष्वथविप्रवासे सलक्ष्मणोऽव्याद्भरताग्रजोऽस्मान् ॥ ॥ १५ ॥ मामुग्रधर्मादखिलात्प्रमादान्नारायणः पातुनरश्चहासात् । दत्तस्त्वयोगादथयोगनाथः पायाद्गुणेशः कापिलः कर्मबन्धात् ॥ १६ ॥ सनत्कुमारोऽवतुकामदेवाद्धयशीर्षामां पथिदेवहेलनात् । देवर्षिवर्यः पुरुषार्चनान्तरात् कूर्मोहरिर्मांनिरयादशेषात् ॥ १७ ॥ धन्वन्तरिर्भगवान्पात्वपथ्याद्द्वन्द्वाद्भयादृषभोनिर्जितात्मा । यज्ञश्चलोकादवताज्जनान्ताद्बलो गणात्क्रोधवशादहीन्द्रः ॥ १८ ॥ द्वैपायनो भगवान प्रबोधाद्बुद्धस्तु पाखण्डगणात्प्रमादात् । कल्किः कलेःकालमलात्प्रपातुधर्मावनायोरुकृतावतारः ॥ १९ ॥ मांकेशवोगदयाप्रातरव्याद्गोविंद आसंगवमात्तवेणुः । नारायणःप्राह्णउदात्तशक्तिर्मध्यंदिने विष्णुररीन्द्रपाणिः ॥२०॥ देवोपराह्णेमधुहोग्रधन्वा सायंत्रिधामाऽवतुमाधवोमाम् । दोषेहृषीकेशउतार्धरात्रे निशीथएकोऽवतुपद्मनाभः ॥ २१ ॥ श्रीवत्सधामापररात्रईशः प्रत्यूषईशोऽसिधरोजनार्दनः । दा

ध्यानकर इसनारायण कवचरूप मंत्रको जपे ॥ ९ ॥ ओं गरुड़के कन्धेपर आरूढ, शंख, चक्र, गदा, बाण, धनुष, पाश, ढाल, तलवार धारणकिये, अष्टसिद्धिसम्पन्न भगवान मेरी सबभांतिकी रक्षाकरो हे मत्स्यावतार जलमें जलजन्तुरूप वरुणकी पाशसे मेरी रक्षाकरो, माया से बनेहुये वामनभगवान स्थलमें रक्षाकरो, जिनके स्वरूप में समस्तब्रह्माण्ड आगया है ऐसे विश्वरूप भगवान आकाश में रक्षाकरो ॥ १०।११ ॥ बन, तथा संग्रामके संकटस्थानमें दैत्योंके मारनेवाले, नृसिंहभगवान रक्षाकरो कि जिनके खिलखिलाकर हँसनेसे सम्पूर्ण दिशायें गूंज उठी और स्त्रियों के गर्भ स्खलित होगये ॥ १४ ॥ आपने अपनी डाढ़पर पृथ्वीको उठालिया, ऐसे यज्ञरूप अवयव वाले वाराहभगवान मार्ग में तथा पहाड़की चोटियों में भगवान परशुराम और प्रवासमें लक्ष्मण समेत भरत के बड़ेभाई राम मेरी रक्षाकरो ॥ १५ ॥ दुष्टिमूठिप्रमाद, और गर्व से नरनारायण मेरी रक्षाकरो, योगेश्वर दत्तात्रेय योगनाशसे मेरीरक्षाकरो, गुणों के ईश्वर कपिलदेव कर्मबन्धन से मेरी रक्षाकरो ॥ १६ ॥ सनत्कुमार, कामदेव से मेरी रक्षाकरो, मार्ग में देवताओं के अपराधसे हयग्रीव मेरी रक्षाकरो, भगवानकी पूजामें बत्तीस अपराधों से नारदजी रक्षाकरो, कच्छपरूप भगवान सम्पूर्ण नरकों से रक्षाकरो ॥ १७ ॥ धन्वंतरि भगवान कुपथ्यसे, जितेन्द्रिय ऋषभजी सुख दुःखोंसे यज्ञ भगवान लोकापवादों से, बलदेवजी लोकसम्बन्धीउपघातसे, शेषभगवान क्रोधी सर्पोंसे मेरी रक्षाकरो ॥ १८ ॥ वेदव्यासजी अज्ञान से, बुद्धभगवान प्रमादकारक पाखण्डयूथ से, धर्मकी रक्षा के हेतु नाना अवतार धरने वाले कल्किभगवान कालके मलरूप कलियुगसे, मेरी रक्षाकरो ॥१९॥ केशवभगवान गदासे प्रातःकालमें मेरीरक्षाकरो, वेणुके धारणकरनेवाले गोविंदसङ्गमकालमें, शक्ति धारी नारायण भगवान पूर्वाह्नकालमें, चक्रधारी भगवान मध्याह्नकाल में मेरी रक्षाकरो ॥ २० ॥ उग्रधनुषवाले मधुहाभगवान अपराह्नकाल में, ब्रह्मा, विष्णु रुद्रमूर्तिवाले माधव सायंकाल में, इंद्रियों के अधिपति भगवानप्रदोषकालमें, पद्मनाभ भगवान अर्द्धरात्रि तथा इससे पूर्वसमय में, मेरीरक्षा

मोदरोऽव्यादनुसंध्यंप्रभाते विश्वेश्वरोभगवान्कालमूर्तिः ॥ २२ ॥ चक्रंयुगान्तान लतिग्मनेमि भ्रमत्समन्ताद्भगवत्प्रयुक्तम्। दन्दग्धिदन्दग्ध्यरिसैन्यमाशुकक्षंयथा वातसखोहुताशः ॥ २३ ॥ गदेऽशनिस्पर्शनविस्फुलिंगेनिष्पिण्ढि निष्पिण्ढ्यजित प्रियासि। कूष्माण्डवैनायकयक्षरक्षोभूतग्रहांश्चूर्णयचूर्णयारीन् ॥ २४ ॥ त्वंयातु धानप्रमथप्रेतमातृपिशाचविप्रग्रहघोरदृष्टीन्। दरेन्द्रविद्रावयकृष्णपूरितोभीमस्वनो ऽरेर्हृदयानिकम्पयन् ॥२५॥त्वंतिग्मधाराऽसिवरारिसैन्यमीशप्रयुक्तो ममछिन्धिछि न्धि। चक्षूंषिचर्मन्छतचन्द्रछादयद्विषामघोनां हरपापचक्षुष म् ॥२६॥ यन्नोभयं ग्रहेभ्योऽभूत् केतुभ्योनृभ्यएवच सरीसृपेभ्योदंष्ट्रिभ्योभूतेभ्योंऽहोभ्यएवचा २७॥ सर्वाण्येतानिभगवन्नामरूपास्त्रकीर्तनात्। प्रयान्तुसंक्षयंसद्यो येनश्रेयःप्रतीपकाः ॥ गरुडोभगवान्स्तोत्रस्तोभश्छन्दोमयःप्रभुः। रक्षत्वशेषकृच्छ्रेभ्यो विष्वक्सेनःस्व नामभिः॥ २९ ॥ सर्वापद्भ्यो हरेर्नामरूपयानायुधानिनः॥ बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान्पांतु पार्षद्भूषणाः॥ ३० ॥ यथाहिभगवानेवयस्तुतःसदसच्चयत् । सत्येनानेननः सर्वे नाशमुपद्रवाः ॥ ३१ ॥ यथैकात्म्यानुभावानां विकल्परहितःस्वयम् । भूषणायुधलिंगाख्या धत्तेशक्तीः स्वमायया ॥ ३२ ॥ तेनैवसत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान्हरिः। पातुसर्वैः स्वरूपैर्नः सदासर्वत्रसर्वगः ॥ ३३ ॥ विदिक्षुदिक्षूर्ध्व मधःसमन्तादन्तर्बहिर्भगवान्नारसिंहः । प्रहापयँल्लोकभयंस्वनेनस्व तेजसा ग्रस्तसमस्ततेजाः ॥ ३४ ॥ भगवन्निदमाख्यात वर्मनारायणात्मकम् । वि

करें ॥२१॥ वत्सधामा भगवान पिछली रात्रिमें, खड्गधारी जनार्दन भगवान प्रत्यूष कालमें, दामोदर भगवान प्रभात कालमें, विश्वेश्वर कालरूप भगवान सब संधियों में मेरीरक्षाकरें ॥२२॥ हेप्रलयाग्नि के सदृश तीक्ष्णधार वालेचक्र! तू भगवान का प्रेरितहो चारो ओर घूमकर, जैसे पवनकी सहाय से अग्नि तृणको जलादेती है, ऐसेही तू शीघ्रही बैरीके कटकको जलाडाल ॥ २३ ॥ हे वज्रके से स्पर्शवाली चिनगारियोंवाली गदा! कूष्मांड, वैनायक, यक्ष, भूत, राक्षस, तथा ग्रह और शत्रुओं को चूर्णकर पीसडाल २ ॥२४॥ हे शंख! तू ईश्वरके फूकने से घोरशब्द करके बैरियों के हृदय को कँपाता, राक्षस, प्रमथ, प्रेत, पिशाच, ब्रह्म राक्षस तथा और भी अन्य कुत्सित दृष्टिवालोंको भगादे ॥ २५ ॥ हे तीक्ष्णधारी खड्ग! तू भगवान के हाथसे छूटकर मेरेवैरियोंको काटकाट, हे चन्द्रमण्डल के आकारवाली ढाल तू दुष्टों की आंखों को ढंक दे और अन्य दुष्ट दृष्टिवालोंकी दृष्टि- योंको हरले ॥ २६ ॥ ग्रह, केतु, मनुष्य, सांप आदिक, डाढवालेजन्तु और अन्य २ पाप कि जि- नसे हमको डरलगता है ॥ २७ ॥ तथा और भी जो हमारे कल्याण में विघ्नदायी हैं वे ईश्वरके नामरूप शस्त्रके कथनसे तत्कालही नाश होजाओ ॥ २८ ॥ स्तोत्रों से स्तुतिकरवाते ,वेदमय और समर्थ गरुडभगवान, सबदुःखोंसे हमें बचावो, विष्वकसेन भगवान अपने नामों सेरक्षाकरो ॥२९॥ परमेश्वर के नाम, रूप, वाहन और अस्त्र सम्पूर्ण विघ्नोंसे हमें बचाओ, भगवान्के श्रेष्ठदूत हमारी बुद्धि, इन्द्री, मन और जीवकी रक्षाकरो ॥ ३० ॥ देखने से वास्तवही में यह ज्ञातहोता है यह समस्त स्थावर और जंगम सृष्टि भगवानकोही रूप है अतएव इस सत्यता से हमारी सब बाधाएं नष्टहोवें ॥ ३१ ॥ भगवान यद्यपि अभेद दृष्टिवालों की दृष्टिमें भेदरहितही हैं तौभी वह अपनी मायासे भूषण, शस्त्र और चिह्न आदिक शक्तियें धारण करते हैं ॥ ३२ ॥ यह जोसच्चा प्रमाण है तो इस सत्य प्रमाण से सर्व व्यापक, अन्तर्यामी भगवान अपने समस्त रूपोंद्वारा, सर्वकाल तथा सर्व स्थान में मेरी रक्षाकरो ॥ ३३ ॥ भगवान नृसिंह अपनी गर्जना से, मनुष्यों को अभय करने वाले, और अपने ऐश्वर्य्य से दिक्पाल, विष, शस्त्र, जल, पवन, अग्नि इत्यादिक समस्त तेजोंको ग्रसने वाले, नृसिंह भगवान दिशा, विदिशा, ऊपर, नीचे, बाहर, भीतर सब स्थानो में मेरी रक्षाकरो ॥ ३४ ॥

जेष्यसेंऽजसायेन दंशितोऽसुरयूथपान् ॥ ३५ ॥ एतद्धारयमाणस्तु यंयंपश्यतिच क्षुषा । पदावासंस्पृशेत्सद्यः । साध्वसात्सविमुच्यते ॥३६॥ नकुतश्चिद्भयंतस्यवि द्यांधारयतोभवेत् । राजदस्युग्रहादिभ्योव्याघ्रादिभ्यश्चकर्हिचित् ॥ ३७ ॥ इमांवि द्यांपुराकश्चित्कौशिकोधारयन्द्विजः । योगधारणयास्वांगं जहौसमरुधन्वनि ३८ ॥ तस्योपरिविमानेन गन्धर्वपतिरेकदा । ययौचित्ररथःस्त्रीभिर्वृतोयत्रद्विजक्षयः ३९ गगनान्न्यपतत्सद्यः सविमानोह्यवाक्शिराः । सवालिखिल्यवचनादस्थीन्यादाय विस्मितः । प्रास्यप्राचीसरस्वत्यां स्नात्वाधामस्वमन्वगात् ॥४०॥ श्रीशुकउवा च ॥ यइदंशृणुयात्कालेयोधारयतिचादृतः । तंनमस्यन्तिभूतानि मुच्यतेसर्वतोभ यात् ॥ ४१ ॥ एतांविद्यामधिगतोविश्वरूपाच्छतक्रतुः । त्रैलोक्यलक्ष्मींबुभुजेविनि र्जित्यमृधेऽसुरान् ॥ ४२ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०षष्ठ० नारायणवर्मवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

श्रीशुकउवाच । तस्यासन्विश्वरूपस्य शिरांसित्रीणिभारत । सोमपीथंसुरा- पीथमन्नादमितिशुश्रुम ॥ १ ॥ सवैबर्हिषिदेवेभ्यो भागंप्रत्यक्षमुच्चकैः । अददद्यस्य पितरोदेवाः सप्रश्रयंनृप ॥ २ ॥ सएवहिददौभागं परोक्षमसुरान्प्रति । यजमानोऽ- वहद्भागं मातृस्नेहवशानुगः ॥ ३ ॥ तद्देवहेलनंतस्य धर्मालीकंसुरेश्वरः । आलक्ष्य तरसा भीतस्तच्छीर्षाण्यच्छिनद्रुषा ॥ ४ ॥ सोमपीथंतुयत्तस्य शिरआसीत्कपिंज- लः । कलविङ्कःसुरापीथमन्नादं यत्सतित्तिरिः ॥ ५ ॥ ब्रह्महत्यामञ्जलिना जग्राहयद्

विश्वरूप ने कहाकि—हेइन्द्र ! मैंने यह तुमसे नारायण कवच कहा, तुम इसको धारण करके बड़े २ असुरोंको सहजही में विजय करलोगे ॥ ३५ ॥ इस कवचका धारण करने वाला मनुष्य जिसके सन्मुख आंख उठाकर देखे अथवा जिसको पैरसे स्पर्शकरे वह अभय होजावे ॥ ३६ ॥ इस विद्याको जोमनुष्य धारणकरे वह राजा, चोर, ग्रह, व्याघ्र इत्यादि के भयसे मुक्त होजावे ॥ ३७ ॥ प्रथम इस विद्याके धारण करने वाले किसी कौशिकी गोत्री ब्राह्मण ने योग धारण से मारवाड़ में अपना शरीर छोड़ाथा ॥ ३८ ॥ एक समय गन्धर्वोंका राजा चित्ररथ स्त्रियों से वेष्टित विमान में आरूढ़ आकाश मार्गसे जाताथा—परन्तु वह जब उस स्थलपर आयाकि जहां ब्राह्मण ने अपना शरीर छोड़ा था ॥ ३९ ॥ तब वह विमान समेत उलटे शिरनीचे आगिरा, तदनंतर बालखिल्य ऋषियों की आज्ञा- नुसार उस ब्राह्मणकी अस्थिउठा, पश्चिम वाहिनी सरस्वती में डाल, वहां स्नानकर, आश्चर्य करता हुआ वह अपने लोकको गया ॥४०॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—जोमनुष्य इस नारायण कवचको उचित समयमें सत्कार पूर्वक सुनेगा, उसे सम्पूर्ण प्राणी प्रणाम करेंगे और वह आप अभयहोजायगा ४१ इन्द्रने विश्वरूप से इस विद्याकोपा सब असुरोंको जीत त्रिलोकी की सम्पदाका भोगकिया ॥४२॥

इति श्रीमद्भा०महा०षष्ठस्कं०सरलाभाषाटीकायांअष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ! इन विश्वरूपके तीन शिरथे एकतो सोमपानकर नेका दूसरा सुरापान करनेका और तीसरा अन्नभक्षण करनेका, ऐसा हमने सुना है ॥ १ ॥ हे राजन् ! यह विश्वरूप जी यज्ञमें देवताओं को भागदेते समय, भागदेनेके मंत्रको विनय सहित नाम लेकर उच्चारण करते थे ॥२॥ और उनकी माता कि जो असुरकी पुत्रीथी उसके मोहवश होनेके कारण असुरोंकोभी परोक्षरीति से भागदिया करते ॥ ३ ॥ विश्वरूपका धर्ममें कपट और अपराध देखकर, भयखाय, क्रोधितहो इन्द्रने तत्कालही उसके शिर काटडाले ॥४॥ उसके सोम- पीथ शिरसे कपिंजल, सुरापीथ से कलविंक, और अन्नाद शिरसे तीतर पक्षी उत्पन्नहुआ ॥ ५ ॥

पीश्वरः । संवत्सरान्ते तदघं भूतानां स विशुद्धये । भूम्यम्बुद्रुमयोषिद्भ्यश्चतुर्धा व्यभजद्धरिः ॥ ६ ॥ भूमिस्तुरीयं जग्राह खातपूरवरेण वै । ईरिणं ब्रह्महत्याया रूपं भूमौ प्रदृश्यते ॥ ७ ॥ तुर्यं छेदविरोहेण वरेण जगृहुर्द्रुमाः । तेषां निर्यासरूपेण ब्रह्महत्या प्रदृश्यते ॥ ८ ॥ शश्वत्कामवरेणांहस्तुरीयं जगृहुः स्त्रियः । रजोरूपेण तास्वंहो मासि मासि प्रदृश्यते ॥ ९ ॥ द्रव्यभूयोवरेणापस्तुरीयं जगृहुर्मलम् । तासु बुद्बुदफेनाभ्यां दृष्टं तद्धरति क्षिपन् ॥ १० ॥ हतपुत्रस्ततस्त्वष्टा जुहावेन्द्राय शत्रवे । इन्द्रशत्रो विवर्धस्व मा चिरं जहि विद्विषम् ॥ ११ ॥ अथान्वाहार्यपचनादुत्थितो घोरदर्शनः । कृतान्त इव लोकानां युगान्तसमये यथा ॥ १२ ॥ विष्वग्विवर्धमानं तमिषुमात्रं दिने दिने दग्धशैलप्रतीकाशं सन्ध्याऽभ्रानीकवर्चसम् ॥ १३ ॥ तप्तताम्रशिखाश्मश्रुं मध्याह्नार्कोग्रलोचनम् ॥ १४ ॥ देदीप्यमाने त्रिशिखे शूल आरोप्य रोदसी । नृत्यन्तमुन्नदन्तं च चालयन्तं पदा महीम् ॥ १५ ॥ दरीगम्भीरवक्त्रेण पिबता च नभस्तलम् । लिहता जिह्वयर्क्षाणि ग्रसता भुवनत्रयम् ॥ १६ ॥ महता रौद्रदंष्ट्रेण जृम्भमाणं मुहुर्मुहुः । वित्रस्ता दुद्रुवुर्लोका वीक्ष्य सर्वे दिशो दश ॥ १७ ॥ येनावृता इमे लोकास्तमसा त्वाष्ट्रमूर्तिना । स वै वृत्र इति प्रोक्तः पापः परमदारुणः ॥ १८ ॥ तं निजघ्नुरभिद्रुत्य सगणा विबुधर्षभाः । स्वैः स्वैर्दिव्यास्त्रशस्त्रौघैः सोऽग्रसत्तानि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥ ततस्ते वि-

---

ब्रह्महत्या निवृत्तकरनेमें सामर्थ्यवानहोकर भी इन्द्र ने एकवर्षतक उस ब्रह्महत्याको धारण किया, वर्षसमाप्त होनेपर शुद्धहोनेके हेतु उस ब्रह्महत्याके चारभागकर पृथ्वी, जल, वृक्ष और स्त्रीको परस्पर बांटदिया ॥ ६ ॥ एकभाग पृथ्वीने इसवर से लिया कि मेरेगढे आपही आप भरजाय कोई गढा न रहनेपावे, जब यह वरपाया तब पृथ्वीने चौथाभाग ग्रहण किया वो ब्रह्महत्या भूमिमें ऊषर करिके देखपड़ती है ॥ ७ ॥ एकभाग वृक्षोंने इसवरसे लिया कि हम काटनेके उपरांतभी हरहोजायँ, इसवरको पाकर वृक्षोंनेभी चौथाई ब्रह्महत्या ग्रहणकी कि जो गोंद तथा रसकरिके दिखाईदेती है ॥ ८ ॥ स्त्रियोंने एकभाग इसवरसे लिया कि बालकके जन्मसमयतक मैथुन कियाजाय परन्तु गर्भको किसीभांतिकी हानि नहो—वह ब्रह्महत्या महीनेकी महीने रजस्वलारूपसे देखपड़तीहै॥९॥ एकभाग जलने इसवरसे लिया कि—कूप आदिसे निकालनेके उपरांत फिर उतनेही होजाय अर्थात् झरनाहोकर बहैं; जलमें वह ब्रह्महत्या बबूले तथा फेनके रूपमें दिखाई पड़ती है ॥ १० ॥ जिसका पुत्र मरगयाहै ऐसी त्वष्टा इन्द्रके मारनेको इसअर्थके मन्त्रसे होम करनलगी " हे इन्द्रशत्रो! तू बढ़ और शीघ्र शत्रुकोमार" ॥ ११ ॥ कुछकालके उपरांत होमके प्रभावस अग्निकुण्डमेंसे घोरदर्शन वाला पुरुष, प्रलयकालमें लोकोंकि कालकी सदृश प्रगटहुआ ॥ १२ ॥ यह दिन प्रति दिन, जितनी दूर तीर फेकनेमें गिरता है चारोंओरसे बढने लगा, जलहुए पहाड की सदृश था यह काला और सायंकालके बादल की सदृश कान्तिवानथा ॥ १३ ॥ दाढी, मूछ, तथा शिरके बाल तपाये हुए तांबे की सदृश और नेत्र मध्याह्न के सूर्य की सदृश उग्र तथा प्रकाशित थे ॥ १४ ॥ आत प्रकाशित त्रिशूलपर मानोस्वर्ग और पृथ्वीको धरकर नाचरहा है और पैरों के आघात स पृथ्वीको कम्पायमानकर गर्जरहाथा ॥ १५ ॥ पहाड़की कन्दराके सदृशमुख और भयङ्कर डाढोंवाला वह असुर बारम्बार जभाई लेनेसे ऐसाज्ञात होताथा कि मानो आकाश को निगलजायगा ॥ १६ ॥ जीभसे नक्षत्रों को चाटताहुआ और त्रिलोकीको ग्रसताहुआ ज्ञातहोताथा, ऐसे भयङ्करदेह को देखभयखाय समस्त मनुष्य दशों दिशाओं मे भागनेलगे ॥ १७ ॥ इसत्वष्टासुतने सबलोकों को अंधकार से घेरलिया इससे इस पापी मूर्तिकानाम वृत्रहुआ ॥ १८ ॥ देवतागण अपनी बड़ीसेना को इकट्ठाकरके इसके सम्मुख युद्धको आये और अपने दिव्यास्त्रों से उसे मारने लगे परन्तु वहसब

स्मिताःसर्वे विषण्णाग्रस्ततेजसः । प्रत्यंचमादिपुरुषमुपतस्थुः समाहिताः ॥२०॥
देवाऊचुः। वाय्वम्बराग्न्यप्क्षितयस्त्रिलोका ब्रह्मादयो येवयमुद्विजन्तः । हरामयस्मै
बलिमन्तकोऽसौ बिभेतियस्मादरणंततोनः ॥ २१॥ अविस्मितंतंपरिपूर्णकामंस्वेनैव
लाभेनसमंप्रशान्तम् । विनोपसर्पत्यपरंहिबालिशः श्वलाङ्गुलेनातितितर्तिसिन्धुम्।
॥ २२ ॥ यस्योरुशृङ्गेजगतींस्वनावं मनुर्यथाऽऽबध्यततारदुर्गम् । सएवनस्त्वाष्ट्रभ
याद्दुरन्तात्त्राताश्रितान्वारिचरोऽपिनूनम् ॥ २३ ॥ पुरास्वयंभूरपि संयमाम्भस्यु
दीर्णवातोर्मिरवैःकराले । एकोऽरविन्दात्पतितस्ततार तस्माद्भयाद्येनसनोऽस्तुपारः
॥२४॥ यएकईशोनिजमाययानःससर्जयेनानुसृजामविश्वम् । वयंनयस्यापिपुरःसमी
हतः पश्यामलिंगंपृथगीशमानिनः ॥ २५ ॥ योनःसपत्नैर्भृशमर्द्यमानान्देवर्षितिर्यङ्नृ
षुनित्यएव । कृतावतारस्तनुभिःस्वमायया कृत्वात्मसात्पातियुगेयुगेच॥२६ ॥ तमे
वदेवंवयमात्मदैवतं परंप्रधानंपुरुषंविश्वमन्यम् । व्रजामसर्वेशरणंशरण्यं स्वानांस
नोधास्यतिशंमहात्मा ॥ २७ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ इतितेषांमहाराजसुराणामुपतिष्ठ
ताम्। प्रतीच्यांदिश्यभूदाविः शंखचक्रगदाधरः ॥ २८ ॥ आत्मतुल्यैःषोडशभिर्वि
नाश्रीवत्सकौस्तुभौ । पर्युपासितमुन्निद्रशरदम्बुरुहेक्षणम् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वातमवनौ
सर्वईक्षणाह्लादविक्लवाः दण्डवत्पतिता राजञ्छनैरुत्थायतुष्टुवुः ३० ॥ देवाऊचुः
नमस्तेयज्ञवीर्याय वयसेउततेनमः । नमस्तेह्यस्तचक्राय नमःसुपुरुहूतये ॥ ३१ ॥

के अस्त्र शस्त्र निगलगया ॥ १९ ॥ तब सम्पूर्ण देवता विस्मित हो दुःखको प्राप्तहुये फिर सावधान चित हो अन्तर्यामीभगवानकी स्तुति करनेलगे ॥ २० ॥ देवता बोले कि—पवन, आकाश, अग्नि जल, पृथ्वी, त्रिलोक, ब्रह्मादिक और हम जिसकी आज्ञाका पालन करतेहुए भेंट देते हैं और जिनसे कालभी भयखाता है वे हरि हमारे रक्षक होओ ॥ २१ ॥ निरहङ्कार, अपनेस्वरूप में स्थित, प्रशांतसमदर्शी, भगवानको त्यागजो दूसरेकी शरणलेताहै वह मूर्ख कुत्ते की पूंछ पकड़कर समुद्रको तरनाचाहता है ॥ २२ ॥ जिनके बड़े शृंग में अपनी पृथ्वीरूपी नावबांधकर मनु दुःख से पारहुये वे मत्स्यावतार भगवानहमारी रक्षाइसवृत्रासुरके अपारभयसेकरो ॥२३॥ उछलती पवनकी लहरों से भयंकर प्रलयके जलमें कमलसे गिरतसमय में भयसे स्वयंभू ब्रह्माजी जिसकी कृपासे अभयहुए सोई परमेश्वर हमारीरक्षाकरैं ॥ २४ ॥ जिन भगवानने बिना किसी की सहायता अपनी मायाही से हमको प्रगट किया और जिनकी कृपासे हम सृष्टिको रचते हैं और जो प्रभु हमारे पूर्वही से सर्वज्ञताका काम करते हैं तौ भी पृथक् २ स्वामित्वका अहंकार रखनेवाले हम उनके रूपको नहीं जानते ॥ २५ ॥ जो भगवान प्रतियुगमें, शत्रुओं से महादुःखित देवता, ऋषि, पशु, पक्षी तथा मनुष्योंको अपना जानकर उनमें अपनीमाया से अवतारले उनके दुःखको दूरकरते हैं ॥ २६ ॥ जो भगवान हमारे देवता, विश्वरूप, विश्वरूप से न्यारेकारणरूप, प्रधानपुरुषरूप हैं उनकी हम शरणआये हैं हे शरणदाता ! हमको सुखदो ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! देवताओं के इस भांति स्तुति करनेंपर शंख, चक्र, गदा धारी भगवाननें प्रथमतो उनके हृदय में दर्शन दिया तदनंतर वह पश्चिम दिशा से प्रगट हुए ॥ २८ ॥ श्रीभगवान श्रीवत्स और कौस्तुभ मणि के अतिरिक्त और सम्पूर्ण चिन्ह धारण कियेथे और सुनंद इत्यादिक सोलह पार्षद उनकी उपासना कर रहेथे शरदऋतु के फूलेहुए कमल की सदृश उनकेनेत्र थे ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण देवता उनभगवान को देख आनंदित हो विह्वलता से पृथ्वी पर दंडाकार गिरपड़े और फिर धीरे २ उठकर स्तुति करने लगे ॥३०॥ देवता बोले कि आप यज्ञरूप सामर्थ्य वान तथा कालरूपी असुरों के ऊपर चक्र चलाने वाले और उत्तम अनेक नामों वाले हो हम आपको बारम्बार दण्डवत करते हैं ॥ ३१ ॥

यच्छेगतीर्नातिगणामीशितुःपरमंपदम् । नार्वाचीनोविसर्गस्य धातर्वेदितुमर्हति ३२
ओंनमस्तेस्तु भगवन्नारायणवासुदेवादिपुरुषमहानुभावपरमंगलपरमकल्याणपरम
कारुणिककेवलजगदाधारलोकैकनाथ :सर्वेश्वरलक्ष्मीनाथ परमहंसपरिव्राजकैः
परमेणात्मयोगसमाधिनापरिभावितपरिस्फुटपारमहंस्यधर्मेणोद्घाटिततमःकपाटद्वा
पावृतआत्मलोकेस्वयमुपलब्धनिजसुखानुभवोभवान् ॥ ३३ ॥ दुरवबोधइवतवायं
विहारयोगो यदशरणोऽशरीर इदमनवेक्षितास्मत्समवाय आत्मनैवाविक्रियमाणे
नेतिसगुणमगुणः सृजसिपासिहरसि ३४ अथतत्रभवान्किंदेवदत्तवदिहगुण
विसर्गपतितःपारतंत्र्येण स्वकृतकुशलाकुशलं फलमुपाददाति आहोस्विदात्माराम
उपशमशीलःसमंजसदर्शनउदास्तइतिहवावनविदामः ॥ ३५ ॥ नहिविरोधउभयं
भगवत्यपरिगणितगुणगणईश्वरे अनवगाह्यमाहात्म्येअर्वाचीनविकल्पवितर्कविचा
रप्रमाणाभासकुतर्कशास्त्रकलिलान्तः करणाश्रयदुरवग्रहवादिनां विवादानव
सरेउपरतसमस्तमायामयेकेवलएवात्ममायामन्तर्धायकोनु अर्थोदुर्घटइवभवतिस्व
रूपद्वयाभावात् ॥ ३६ ॥ समविषममतीनां मतमनुसरसियथारज्जुखण्डः सर्पादि
धियाम् ॥ ३७ ॥ सएवहिपुनः सर्ववस्तुनिवस्तुस्वरूपः सर्वेश्वरःसकलजगत्कारण
कारणभूतःसर्वप्रत्यगात्मत्वात्सर्वगुणाभासोपलक्षित एकएवपर्यवशेषितः ३८
अथहवावतव महिमामृतरससमुद्रविप्रुषा सकृदवलीढयास्वमनसि निष्पन्दमाना

हेप्रभु आप तीनोंगुणों के अधिपति हो आपके निर्गुण स्वरूप को इससृष्टि का कोई जीव नहीं जान सक्ता॥३२॥हे भगवान! हेनारायण ! हे वासुदेव ! हे आदि पुरुष ! हे महापुरुष ! हे महानुभाव ! हे परममङ्गलरूप ! हेकल्याणरूप ! हे परम करुणावान ! हे केवल रूप ! हेजगतके आधार ! लोकों के एक नाथ ! हे सर्वेश्वर ! हे लक्ष्मीपति ! परमहंस सन्यासी परम आत्मयोग समाधि से भली भांति अभ्यास किये सुंदर भजनों से अज्ञानरूप कपाट खुलने के कारण चित्तरूप द्वारमें प्रत्यक्ष ज्ञातहोतेहुए स्वरूप प्रकाश में आप प्रतीत होतेहो उस सुखके अनुभवरूप आपहीहो ॥३३॥ यह आपकी क्रीड़ा का प्रकार जाननें में नहीं आता क्यों कि आश्रयहीन, शरीर हीन और निर्गुण आप बिना किसी की सहायता के इस निर्विकार रूपसेही सृष्टि का उत्पत्ति पालन और संहारतेहो ३४॥ इस जगत में जैसे देवतादिक और ब्रह्मादिक अपने किये शुभ अशुभ कर्मका फल भोगते हैं वैसही आप जगत को रचकर उसमें प्राणरूप से पड़ पराधीनता से अपने पाप पुण्य के फल को भोगते हो कैसा आश्चर्य है कि आप आत्माराम, शांतिशील, और अखंड चैतन्यरूप रहकर साक्षी होकर रहतेहो ॥ ३५ ॥ किंतु आपके स्वरूप में इन दोनों बातों का विरोध नहीं आता, कारण कि नाना गुण वाले और अतिमहिमा वाले आप के भगवत्स्वरूप में संशय और विचार में आते हुए कल्पित प्रमाण और उनको अवकाश देनवाले, कुतर्कों वाले शास्त्रों से व्याकुल हुए हृदयोंमें दुराग्रह के कारण जो विवाद करनेवाले हैं उनके वाद का स्थानही नहीं है यद्यपि आपका स्वरूप सब प्रपंचों से रहित और अद्वितीय है, तौभी उसके मध्यमें मायाको राखैंतो कौनसा विषय दुर्घटसा है ? जोयथार्थ रीतिसे कर्तृत्व इत्यादि होवेतो, विरोध आवे, परन्तु रूपभेद होने के कारण ऐसा कुछ भी नहीं है ॥ ३६ ॥ जैसे एक रस्सीका टुकड़ा पृथक २ देखने वालोंकी दृष्टिमें सर्प आदिक पृथक २ स्वरूप से ज्ञातहोता है ऐसेही आपभी एकहीहो परन्तु सम, विषम बुद्धिवालों की दृष्टिमें पृथक २ रूपसे ज्ञातहोतेहो ॥ ३७ ॥ आपनाना रूपसे प्रतीत होतेहो आप सब सृष्टिके कारणों केभी कारण रूपहो, सबके अंतर्यामी होनेके कारण सम्पूर्ण विषयों के प्रकाशसे पर ज्ञात होतेहो, आपको श्रुतियां एक रूपसेही अवशेष रखती हैं ॥ ३८ ॥ अतएव हे मधुसूदन ! आपके महिमा रूप अमृत रसके

नवरतमुखेनाविस्मारितदृष्टश्रुतविषयसुखलवाभासाः परमभागवता एकान्तिनो भग
वति सर्वभूतप्रियसुहृदि सर्वात्मनि नितरां निरंतरं निर्वृतमनसः कथमु ह वा एते मधुम
थन पुनः स्वार्थकुशला ह्यात्मप्रियसुहृदः साधवस्त्वच्चरणाम्बुजानुसेवां विसृज
न्ति न यत्र पुनरयं संसारपर्यावर्तः ॥ ३९ ॥ त्रिभुवनात्मभवन त्रिविक्रम त्रिनयन त्रिलो
कमनोहरानुभाव तवैव विभूतयो दितिजदनुजादयश्चापि तेषामनुपक्रमसमयोऽ
यमिति स्वात्ममायया सुरनरमृगमिश्रितजलचराकृतिभिर्यथापराधं दण्डं दण्डधर
दधर्थ एवमेनमपि भगवञ्जहि त्वाष्ट्रमुत यदि मन्यसे ॥४०॥ अस्माकं तावकानां तव नता
नां तात पितामह तव चरणनलिनयुगलध्यानानुबद्धहृदयनिगडानां स्वलिंगविवरणे
नात्मसात्कृतानामनुकम्पाऽनुरञ्जितविशदरुचिरशिशिरस्मितावलोकेन विगलित
मधुरमुखरसामृतकलया चान्तस्तापमनघार्हसि शमयितुम् ॥ ४१ ॥ अथ भगव
स्तवास्माभिरखिलजगदुत्पत्तिस्थितिलयनिमित्तायमानदिव्यमायाविनोदस्य सक
लजीवनिकायानामन्तर्हृदयेषु बहिरपि च ब्रह्मप्रत्यगात्मस्वरूपेण प्रधानरूपेण च यथा
देशकालदेहावस्थानविशेषं तदुपादानोपलम्भकतयाऽनुभवतः सर्वप्रत्ययसाक्षि
ण आकाशशरीरस्य साक्षात्परब्रह्मणः परमात्मनः कियानिह वार्थविशेषो विज्ञापनी
यः स्याद्विस्फुलिंगादिभिरिव हिरण्यरेतसः ॥ ४२ ॥ अत एव स्वयं तदुपकल्पयास्मा
कं भगवतः परमगुरोस्तव चरणशतपलाशच्छायां विविधवृजिनसंसारपरिश्रमोपश
मनीमुपसृतानां वयं यत्कामेनोपसादिताः ॥ ४३ ॥ अथो ईश जहि त्वाष्ट्रं ग्रसन्तं भुवनत्र
यम् ग्रस्तानि येन नः कृष्ण तेजांस्यस्त्रायुधानि च ॥ ४४ ॥ हंसाय दह्रनिलयाय निरी

समुद्रका एक वेर स्वादलिये बिंदुमात्र से आपने मनमें प्रगटहुये निरंतर सुखने जिसके समस्त तुच्छ
सुख विस्मरण करादिये हैं, ऐसे स्वार्थमें कुशल और केवल आपकाही प्यारे सुहृद मानने वाले आप
के भक्त तथा सच्चमहात्मा लोगकि जिनका मन सर्वात्मा भगवान में निरंतरगले रहने से परम सुखके
पात्र होगये हैं वह आपके चरणों की सेवा किस भांतिछोड़ैं कि जिस सेवासे मनुष्य फिरसंसार में
नहीं आता ॥ ३९॥ हे त्रिविक्रम ! हे त्रिलोकी के आत्मा ! हे त्रिलोकी को धीरे ! हे त्रिलोकीका
चलानवाले ! हे दंडधर भगवान ! यह सुर असुर यद्यपि आपकी विभूति हैं तोभी यह समय असुरों
के उद्यमका नहीं है, यह जान अपनी माया से देवता, मनुष्य, मृग जलचर आदिका अवतार
धारण कर अपराध के अनुसार दंडको धारण करतहो ऐसेही जो आपके मनमें आवैतो इस वृ-
त्रासुरको मारो ॥ ४० ॥ हे पिता ! हे पितामह ! हे निष्पाप ! आपके चरणों केही ध्यान से बंधी
हुई सांकल वाले तथा जिनको अपनीमूर्ति प्रगट करके आपने अपना स्वीकार किया है ऐसे हम
देवताओं के दुःखको, सुन्दर, शीतल हास्ययुक्त दृष्टिसे और मुखसे निकलीहुई मीठी रसवालीबाणी
रूपअमृत की कलासे, दूरकरो ॥४१॥ हे भगवान् ! आपसब सृष्टिके उत्पति, पालन, संहार करने
में कारण रूप होतीहुई दिव्यमाया से क्रीड़ा करने वालेहो, सब प्राणियों के हृदय में ब्रह्म स्वरूप
तथा अंतर्यामी स्वरूप से और बाहर प्रधान रूपसे, सबके मूल कारण होने के हेतु देश, काल और
अवस्थाओंका अनुभव करने वालेहो और बुद्धि इत्यादिक सम्पूर्ण पदार्थों के साक्षीनिरंजन स्वरूप
परमात्मा भगवानहो उनके समीप हमें कौन २ विषय प्रगटकरना पड़े ? जिसभांति कि अग्नि के
समीप चिनगारी इत्यादिक के प्रकाशकी आवश्यकता नहीं वैसेहीं आपके निकट हमेंकुछ
प्रगट करनेकी आवश्यकता नहीं ॥ ४२ ॥ अतएव शरणागतों के नानादुःखों से होतहुये
संसारश्रमको दूरकरनेवाली आपके चरणों की छायामें जिसकार्य की इच्छासे सरनली है उसकार्य
को आपहीसिद्धकरो ॥ ४३ ॥ हे ईश ! तीनों भुवनको ग्रसनेवाले इस वृत्रासुरको अब मारकरही

अकायकृष्णायमुष्ययशसेनिषण्णाय । संसारणामानपथानि आश्रमान्तावन्तेपरी
दुर्गतयेहरयेनमस्ते ॥ ४५ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ अथैवमीडितोराजन्सादरंत्रिदशैर्हरिः
स्वमुपस्थानमाकर्ण्य प्राहतानभिनन्दितः ॥ ४६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रीतोऽहंवः
सुरश्रेष्ठा मदुपस्थानविद्यया । आत्मैश्वर्यस्मृतिःपुंसां भक्तिश्चैवययामयि ॥ ४७ ॥
किंदुरापंमयिप्रीते तथापिऽविबुधर्षभाः । मय्येकांतमतिर्नान्यन्मत्तो वांछतितत्त्ववित्
॥ ४८ ॥ नवेदकृपणःश्रेय आत्मनोगुणवस्तुदृक् । तस्यतानिच्छतो यच्छेद्यदिसोऽ
पितथाविधः ॥४९॥ स्वयंनिःश्रेयसं विद्वान्नवक्त्यज्ञायकर्महि । नरातिरोगिणोऽप
थ्यं वांछतोहिभिषक्तमः ॥ ५० ॥ मघवन्यातभद्रं वोदध्यंचमृषिसत्तमम् । विद्या
व्रततपःसारं गात्रंयाचतमाचिरम् ॥ ५१ ॥ सवाअधिगतोदध्यंङ्ङश्विभ्यां ब्रह्मनिष्क
लम् । यद्वाअश्वशिरोनाम तयोरमरतांव्यधात् ॥५२॥ दध्यङ्ङाथर्वणस्त्वष्ट्रे वर्माभे
द्यंमदात्मकम् । विश्वरूपाय यत्प्रादात्त्वष्टा यत्त्वमधास्ततः ॥ ५३ ॥ युष्मभ्यंयाचि
तोऽश्विभ्यां धर्मज्ञोऽङ्गानिदास्यति । ततस्तैरायुधश्रेष्ठोविश्वकर्मविनिर्मितः ५४ ॥
येनवृत्रशिरोहर्ता मत्तेजउपबृंहितः । तस्मिन्विनिहतेयूयं तेजोस्त्रायुधसम्पदः । भूयः
प्राप्स्यथभद्रंवोनहिंसन्तिचमत्परान् ॥ ५५ ॥
इतिश्रीमद्भा०महा०षष्ठ०इन्द्रादिकृतगद्यपद्यात्मकस्तोत्रवर्णननामनवमोऽध्यायः ९

मरा यह वृत्रासुर हमारा तेज, अस्त्र और शस्त्रों को निगलगयाहै ॥ ४४ ॥ शुद्ध अन्तःकरणमें रहने वाले, बुद्धिइत्यादिक के साक्षी, सदानन्दरूप, सुन्दरयश, अनादि, साधुओं से ग्रहण कियेजाते और संसाररूपीमार्ग में चलनेवाले मनुष्यके शरण आनेपर अन्त में श्रेष्ठ फलरूप आप परमात्माको हम दण्डवत करते हैं ॥ ४५ ॥ शुकदेवजी बोले कि–देवताओं ने भगवानकी इसभांति स्तुतिकर उन्हें प्रसन्न किया तब भगवान अपनी स्तुति सुनकरबोले ॥ ४६ ॥ श्रीभगवान बोले कि—हे श्रेष्ठदेवो ! मेरी स्तुति समेत ब्रह्मविद्या कि जिससे मनुष्यों के अपने भगवत्कलाकी स्मृति तथा मेरी भक्ति उत्पन्न होती है उससे मैं प्रसन्न हुआ हूं ॥ ४७ ॥ हे उत्तमदेवो ! जबमैं प्रसन्न होजाऊं तबकोई भी बात दुर्लभ नहीं रहती, तौभी निरन्तर मेरेही में मनरखनेवाला वेदवादी मनुष्य मेरेअतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता ॥ ४८ ॥ अज्ञानी पुरुषोंको कि जो विषय सुखकोही सर्वसुख जानते हैं अपने यथार्थ सुखकीसुधि नहीं रहती, इससे उन विषय सुखवाले मनुष्यों को यदि इष्टदेव विषय सुखही देवें तो उस देवको भी मूढ जानना चाहिये ॥ ४९ ॥ सच्चे सुखका जाननेवाला विवेकी, मूढ मनुष्य को कर्मकरनेके हेतु कभी शिक्षा नहीं करता जैसे श्रेष्ठ वैद्य, कुपथ्य भोजन चाहनेवाले रोगीको कदापि कुपथ्य नहीं देता ॥ ५० ॥ हे इन्द्र ! मैं तुम्हारे प्रयोजन को सिद्धि के हेतु कहता हूं कि तुम सब ऋषियोंमें श्रेष्ठ दधीचि ऋषि के निकट जाओ और उनसे विद्या, तप, तथा व्रत से दृढ हुए उन्हीं के देह को मांगो इस में देर मतकरो ॥ ५१ ॥ यह दधीचि मुनि परब्रह्म भगवानको जान चुके है उन्होंने घोडे के शिर से ब्रह्मविद्या का उपदेश अश्विनी कुमारों को किया कि जिस से वह जीवन्मुक्त होगए ॥ ५२ ॥ हे इन्द्र ! अथर्ववेदी दधीचि मुनि अभेद्य तथा मद्रूप नारायण कवच केभी ज्ञाता हैं दधीचि ने यह नारायण कवच त्वष्टाको और त्वष्टा ने विश्वरूप को और विश्वरूपने तुमको दिया था ॥ ५६ ॥ तुम्हारे मांगने से वह धर्मवेत्ता दधीचि मुनि अश्विनी कुमारोंके ऊपर स्नेहके कारण तुम को अपनी अस्थि देवेंगे उन अस्थियोंमें से विश्वकर्मा वज्र नामक श्रेष्ठ शस्त्र तुम्हें बनादेगा ॥५४॥ तुम मेरे ऐश्वर्य्यसे वृद्धि पाकर उस शस्त्रसे वृत्रासुर को मारोगे उस के मरतेही तुमको तेज, अस्त्र शस्त्र तथा समस्त तुम्हारी गईहुई संपदायें मिलजायगी मेरे भक्तोंको कोई नहीं मार सकता इससे तुम्हारा कल्याणही होगा ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० सरला भाषाटीकायां षष्ठस्कं० नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ इन्द्रमेवसमादिश्य भगवान्विश्वभावनः । पश्यतामनिमेषाणां तत्रैवान्तर्दधेहरिः ॥ १ ॥ तथाऽभियाचितोदेवैर्ऋषिराथर्वणोमहान् । मोदमानउवाचेदं प्रहसन्निवभारत ॥२॥ अपिवृन्दारकायूयं नजानीथशरीरिणाम् । संस्थायांस्त्वभिद्रोहोदुःसहश्चेतनापहः ॥ ३ ॥ जिजीविषूणां जीवानामात्माप्रेष्ठइहाप्सितः । कउत्सहेततंदातुं भिक्षमाणायविष्णवे ॥ ४ ॥ देवाऊचुः ॥ किंनुतद्दुस्त्यजंब्रह्मन्पुंसांभूतानुकम्पिनाम् । भवद्विधानांमहतां पुण्यश्लोकेड्यकर्मणाम् ॥ ५ ॥ ननुस्वार्थपरोलोको नवेदपरसंकटम् । यदिवेदनयाचेत नेतिनाहयदीश्वरः ॥ ६ ॥ दधीचिरुवाच ॥ धर्मंवःश्रोतुकामेन यूयंमेप्रत्युदाहृताः । एषवःप्रियमात्मानं त्यजन्तंसंत्यजाम्यहम् ॥७॥ योऽध्रुवेणात्मनानाथा नधर्मनयशःपुमान् । ईहेतभूतदययासशोच्यःस्थावरैरपि॥८॥एतावानव्ययोधर्मःपुण्यश्लोकैरुपासितः ।योभूतशोकहर्षाभ्यामात्माशोचतिहृष्यति॥९॥अहोदैन्यमहोकष्टं पारक्यैःक्षणभंगुरैः।यन्नोपकुर्यादस्वार्थैर्मर्त्यःस्वज्ञातिविग्रहैः ॥ १० ॥ श्रीशुकउवाच ॥ एवंकृतव्यवसितो दध्यङ्ङाथर्वणस्तनुम् । परेभगवतिब्रह्मण्यात्मानंसन्नयञ्जहौ ॥ ११ ॥ यताक्षासुमनोबुद्धिस्तत्त्वदृग्ध्वस्तबन्धनः । आस्थितःपरमंयोगं नदेहंबुबुधेगतम् ॥ १२ ॥ अथेन्द्रोवज्रमुद्यम्य निर्मितंविश्वकर्मणा । मनेःशुक्तिभिरुत्सिक्तो भगवत्तेजसाऽन्वितः ॥ १३ ॥ वृतोदेवगणैःसर्वैर्गजेन्द्रोपर्यशोभत । स्तूयमानोमुनिगणैस्त्रैलोक्यंहर्षयन्निव ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि सृष्टि पालक भगवान इन्द्र को इस भांति आज्ञा दे देवताओंके देखते २ अंतर्ध्यान होगए ॥ १ ॥ हे राजन्! भगवान की आज्ञानुसार देवताओंने दधीचि ऋषि से विनती की तब दधीचि मुनि प्रसन्न हो हसकर कहने लगे ॥ २ ॥ दधीचि बोले कि हे सुरो! जो असह्य दुःख जीवन का नाश करनेवाला प्राणियोंको मरण कालमें होता है उसे तुम नहीं जानते ॥ ३ ॥ जीवन चाहनेवाले प्राणियोंको इस संसार में अपना शरीर बडाही प्रिय है इस से ऐसे प्यारे देहको यदि साक्षात् विष्णुजी भी मांगे तोभी कोई नहीं देसक्ता ॥ ४ ॥ देवता बोले कि हे ऋषि! आपसे साधु पुरुष कि जो जीवोंपर कृपाकरनेवाले और कीर्तिमान् मनुष्यों के प्रशंसा योग्यहैं किस पदार्थ को परित्याग नहीं करसकते ॥ ५ ॥ स्वार्थी मनुष्य दूसरे के दुःख को नहीं जानता यदि जानताहो तो नमांगे और वैसेही जो याचक के दुःखको जानताहो तो वह देने योग्य होकर मने न करे ।६। दधीचिने कहा कि तुम से धर्म की बात सुननेहीको मैंने उत्तर दियाथा अतएव यह शरीर कि जो मुझे किसी दिन छोडकर चलाजायगा उसको मैं तुम्हारे हेतु प्रसन्नता पूर्वक छोड दूगा ॥ ७ ॥ हे सुरा! जो पुरुष प्राणियोंपर दया रक्खकर इस शरीरसे धर्म तथा कीर्ति न प्राप्त करै वह मनुष्य अचर प्राणियोंकेभी धिक्कार योग्य है ॥ ८ ॥ दूसरे प्राणियोंको दुःखित देखकर आप शोकान्वित होना तथा दूसरे की प्रसन्नता से आप हर्षित होना यही साधुओं का अचल धर्म है ॥ ९ ॥ बडे दीनता और कष्टकी बात है कि मनुष्य इस शरीर से कि जो स्यार तथा श्वान का भक्ष्य पदार्थ है इनक्षण भंगुर धन पुत्र इत्यादि के कारण सृष्टि का परोपकार नहीं करते ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-दधीचि ऋषिने इसभांति निश्चयकर परब्रह्म भगवान में आत्माको मिलाकर अपने शरीरको छोडदिया ॥ ११ ॥ इन्द्री, प्राण, मन और नियमको बुद्धिमे रख, रूपको देखनेवाले और बंधन रहितहुये दधीचि, महाराजको श्रेष्ठ योगके आश्रय से शरीर छोडने कीभी सुधि न रही ॥ १२ ॥ तदनंतर इन हड्डियों से विश्वकर्मा ने वज्र बनाया, फिरउस वज्रको लेकर, वृद्धि पायेहुये और भगवानके तेजवाले इन्द्र ऐरावत हाथीपर चढे ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण देवता उनके चारो ओर खडे होगये और मुनिलोग वंदना करनेलगे हे राजन्! उस काल इन्द्र अतिशोभा देतेहुये

वृत्रमभ्यद्रवञ्छत्रु मसुरानीकयूथपैः। पर्य्यस्तमोजसाराजन् क्रुद्धोरुद्रइवान्तकम्। ॥ १५ ॥ ततः सुराणामसुरै रणःपरमदारुणः। त्रेतामुखेनर्मदायामभवत्प्रथमेयुगे ॥ ॥ १६ ॥ रुद्रैर्वसुभिरादित्यै रश्विभ्यांपितृवह्निभिः। मरुद्भिरृभुभिःसाध्यैर्विश्वे देवैर्मरुत्पतिम् ॥१७॥ दृष्ट्वावज्रधरंशक्रं रोचमानंस्वयाश्रिया। नामृष्यन्नसुराराजन्मृधेवृत्रपुरःसराः ॥ १८ ॥ नमुचिःशम्बरोऽनर्वा द्विमूर्धाऋषभोऽम्बरः। हयग्रीवः शंकुशिरा विप्रचित्तिरयोमुखः ॥ १९ ॥ पुलोमावृषपर्वाच प्रहेतिर्हेतिरुत्कलः। दैतेयादानवायक्षा रक्षांसिचसहस्रशः ॥ २० ॥ सुमालिमालिप्रमुखाः कार्तस्वरपरिच्छदाः। प्रतिषिध्येन्द्रसेनाग्रं मृत्योरपिदुरासदम् ॥ २१ ॥ अभ्यर्दयन्नसंभ्रांताः सिंहनादेनदुर्मदाः। गदाभिःपरिघैर्बाणैः प्रासमुद्गरतोमरैः ॥ २२ ॥ शूलैःपरश्वधैःखड्गैः शतघ्नीभिर्भुशुण्डिभिः। सर्वतोऽवाकिरञ्छस्त्रै रस्त्रैश्चविबुधर्षभान् २३ नतेऽदृश्यन्तसंछन्नाः शरजालैःसमन्ततः। पुंखानुपुंखपतितैर्ज्योतींषीवनभोघनैः। ॥ २४ ॥ नतेशस्त्रास्त्रवर्षौघा ह्यासेदुःसुरसैनिकान्। छिन्नाःसिद्धपथेदेवैर्लघुहस्तैः सहस्रधा ॥ २५ ॥ अथक्षीणास्त्रशस्त्रौघा गिरिशृङ्गद्रुमोपलैः। अभ्यवर्षन्सुरबलं चिच्छिदुस्तांश्चपूर्ववत् ॥ २६ ॥ तानक्षतान्स्वस्तिमतोनिशाम्य शस्त्रास्त्रपूगैरथवृत्रनाथः। द्रुमैर्दृषद्भिर्विविधाद्रिशृङ्गै रविक्षतांस्तत्रसुरिन्द्रसैनिकान् ॥ २७ ॥ सर्वेप्रयासाअभवन्विमोघाः कृताःकृतादेवगणेषुदैत्यैः। कृष्णानुकूलेषुयथामहत्सु क्षुद्रैःप्रयुक्ताउशतीरूक्षवाचः ॥ २८ ॥ तेस्वप्रयासंवितथंनिरीक्ष्य हरावभक्ताहतयु

त्रिलोकी को हर्षित करते थे ॥ १४ ॥ स्वयं क्रोधितहो, जिसभांति रुद्र कालपर दौड़े ऐसे वह असुरों से घिरेहुये वृत्रासुर परबडे वेगसे दौड़े ॥ १५ ॥ प्रथम चौकड़ी के त्रेतायुग के प्रारम्भ में नर्मदा तटपर सुर और असुरोंका महाघोर युद्धहुआ था ॥ १६ ॥ रुद्र, वसु, आदित्य, अश्विनी कुमार, पितृ, अग्नि, मरुद्गण, ऋभु, साध्य, और विश्वेदेवा, इनके सहित ॥ १७ ॥ वज्रको धारण किये, देदीप्यमान इन्द्रको संग्राम में देख श्रेष्ठ वृत्रासुर और उसके अनुयायी असुर सहन न करसके ॥१८॥ नमुचि, शंबर, अनर्वा, द्विमूर्द्धा, ऋषभ, अंबर, हयग्रीव, शंकुशिरा, विप्रचित्ति, अयोमुख ॥ १९ ॥ पुलोमा, वृषपर्वा, प्रहेति, हेति, उत्कल और भी दैत्य, दानव, यक्ष, राक्षस ॥ २० ॥ तथा मुख्य २ सुमाली, माली इत्यादिक सहस्रों राक्षस किजो सुवर्णके कवच इत्यादिक नानाभांति की युद्ध सामिग्री से सुसज्जित थे वेइन्द्र की सेनाको कि जिसका सामना कालभी न करसके रोककर उसे दुःखित करनेलगे ॥ २१ ॥ सिंह कीसी गर्जना करतेहुये, मतवाले असुर गदा, परिघ, बाण, प्रास, मुद्गर, तोमर ॥ २२ ॥ शूल, फरशा, खड्ग, शतघ्नी, और भुसुंडी तथा और भी पौलादी शस्त्रों की वर्षा देवताओं के चारो ओर करनेलगे ॥ २३ ॥ एक दूसरे के उपरांत बराबर शरोंके गिरने से वे देवता बाणोंके समूहसे ऐसे अदृश्य होगये कि जैसे बादलों से आच्छादित होकर नक्षत्र ॥ २४ ॥ लघु हाथवाले (फुर्तीले) सुरोंने उन अस्त्र शस्त्रोंके सहस्रों टुकड़े आकाशमेंहा करादिये जिससे वह आयुध सुर कटक के समीप भी न पहुंच सके ॥ २५ ॥ जब अस्त्र, शस्त्रोंका समूह नष्ट होगया तब असुर देवताओं के ऊपर पहाड़ोंके पत्थर, शिखर और वृक्षकी वर्षा करनेलगे परन्तु देवताओंने इन्हें भी पूर्वकी समान नष्टकरदिया ॥ २६ ॥ अस्त्र, शस्त्र, वृक्ष, पत्थर के प्रहारसे भी इन्द्रके कटकको क्षतरहित देख वृत्रासुरकी आसुरी सेनाको अत्यन्तभय उत्पन्नहुआ ॥ २७ ॥ अधम मनुष्योंकी कहीहुई कठोरवाणी जैसे बड़े मनुष्योंपर निष्फल होती है वैसेही असुरों के सम्पूर्ण प्रयत्न निष्फल होगये ॥२८॥ बैरियों ने जिनको अधीर करदिया है और

उद्दर्पाः । पलायनायाभिमुखोविसृज्य पतिंमनस्तेदधुरात्तसाराः ॥ २९ ॥ वृत्रोऽसुरांस्ताननुगान्मनस्वी प्रधावतःप्रेक्ष्यबभाषएतत् । पलायितंप्रेक्ष्यबलंचभग्नं भयेन तीव्रेणविहस्यवीरः ॥ ३० ॥ कालोपपन्नांरुचिरांमनस्विनामुवाचवाचंपुरुषप्रवीर । हेविप्रचित्तेनमुचेपुलोमन्मयानर्वञ्छम्बरमेशृणुध्वम् ॥ ३१ ॥ जातस्यमृत्युर्ध्रुवएव सर्वतः प्रतिक्रियायस्यनचेहक्लृप्ता । लोकोयशश्चाथततोयदिह्यमुंकोनामिमृत्युंनवृणीतयुक्तम् ॥ ३२ ॥ द्वौसंमताविहमृत्यूदुरापौ यद्ब्रह्मसंधारणयाजितासुः । कलेवरंयोगरतोविजह्याद्यदग्रणीर्वीरशयेऽनिवृत्तः ॥ ३३ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० षष्ठ० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीशुकउवाच ॥ त एवं शंसतोधर्मंवचः पत्युरचेतसः ॥ नैवागृह्णन्भयत्रस्ताः पलायनपरानृप ॥ १ ॥ विशीर्यमाणांपृतनामासुरीमसुरर्षभः ॥ कालानुकूलैस्त्रिदशैः काल्यमानामनाथवत् ॥२॥ दृष्ट्वाऽतप्यतसंक्रुद्ध इन्द्रशत्रुरमर्षितः ॥ तान्निवार्यौजसाराजन्निर्भर्त्स्येदमुवाचह ॥ ३ ॥ किं व उच्चरितैर्मातुर्धावद्भिः पृष्ठतोहतैः ॥ न हि भीतवधः श्लाघ्यो न स्वर्ग्यः शूर मानिनाम् ॥ ४ ॥ यदि वः प्रधने श्रद्धासारं वाक्षुल्लकाहृदि । अग्रेतिष्ठतमात्रं मनचेद्ग्राम्यसुखेस्पृहा॥५॥एवंसुरगणान्क्रुद्धोभीषयन्वपुषारिपून् । व्यनदत्सुमहाप्राणो येनलोकाविचेतसः ॥ ६ ॥ तेनदेवगणाःसर्वा वृत्रविस्फोटनेनवै । निपेतुर्मूर्छिताभूमौ यथैवाशनिनाहताः ॥ ७ ॥ ममर्दपद्भ्यां सुरसैन्यमातुरं निमीलिताक्षंरणरङ्गदुर्मदः । गांकम्पयन्नुद्यतशूलओजसा नालंवनंयू

जिनकासंग्राम में गर्व नष्ट होगया है ऐसे असुर अपने श्रमको निष्फलदेख युद्धमें अपने स्वामीको अकेला छोड भागनेका विचार करनलगे ॥ २९ ॥ अतिउदार महाबीर वृत्रासुर अपनी छिन्नभिन्न सेनाको भागने मे तत्पर देख हँसकर ॥३०॥ पुरुषों में धीरवृत्रासुर वीरपुरुषोंको प्रियलगतेहुयेवचन कहनेलगा कि हे विप्रचित्ति ! हेनमुचि! हे पुलोमा ! हे मय! हेशंबर अनर्वा! मेरा बचनसुनो ॥३१॥ इसमेंसशयनहीं कि जो जन्मेगा वह अवश्य मरेगा वह चाहे जहाजाय किन्तु वह बचेगानहीं और न उसके बचनेका कोई उपायही है फिर मरने से इसलोक में कीर्ति और परलोक मे स्वर्ग मिले तो ऐसी उत्तम मृत्युको कौन मनुष्य न चाहे ? ॥ ३२ ॥ एकतो योग मे स्नेहरख, प्राणायामकर भगवतध्यानसे देहछोडना; दूसरे सग्राम मे पीछे पांवन धरकर शरीर छोड़ना; यह दो मृत्यु संसार में अत्युत्तमकही गई हैं सो इनका मिलना अत्यन्तही दुर्लभ है ॥३३ ॥

इतिश्रीमद्भा० म० षष्ठस्कधे सरलाभाषाटीकायां दशमोऽध्याय॰ ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजीवोले कि–हेमहाराज! यद्यपिवृत्रासुर इसभांति धर्मयुक्त बचनकहताथा तौभीत्रसित और भागतेहुये असुरों ने उसकीबात न मानी ॥१॥ कालकासामना करनेवाले देवताओने अनाथकीभांति उसअसुर सैन्यको नष्टकरदिया,वृत्रासुर अपनीसेनाकी यह दशादेख अत्यन्त संतापितहुआ,फिरक्रोधितहो अपनी सेना के सहारका सहननकर देवताओंको बलपूर्वक रोकफटकार कर कहनेलगा ॥२॥ हे इन्द्र ! तेरीमाता क्या कहेगी, भागते हुये असुरों को पीठपीछे मारने मे तेक्या पुरुषार्थ है ! डरे हुओंको मारने से वीरों में प्रशंसा और स्वर्ग प्राप्तिनहीं होती ॥४॥ रेतुच्छमनों ! यदि तुमको सग्राम में प्रीति और हृदयमें धैर्यहो और संसारि सुखोंकी कामना नहोतौ मुहूर्त मात्रमेरे सन्मुख खड़ेहो ॥ ५ ॥ ऐसे कह, क्रोधितहो, अपनी देहसे देवताओं को डरता हुआ बलवान वृत्रासुर इसभांति गर्जाकि जिसे सुनकर लोग मूर्च्छित होगये ॥ ६ ॥ इस भयंकर दानके सुनतेही सब देवता वज्राहत की समान पृथ्वी पर गिरपड़े ॥ ७ ॥ ॥ वह मतवाला वृत्रासुर भूमिको कंपाता हुआ त्रिशूलउठा, सग्राम भूमिमें खड़ाहो भयातुर देवताओं की सेनाको ऐसे पांवोंसे मलने लगाकि जैसे घासके वनको

थपतिर्यथोम्मदः ॥ ८ ॥ चिलोक्ततंवज्रधरोऽत्यमर्षितः स्वशत्रवेऽभिद्रवतेमहागदाम् । चिक्षेपतामापततीं सुदुःसहांजग्राहवामेन करेणलीलया ॥ ९ ॥ सइन्द्रशत्रुः कुपितोभृशंतया महेन्द्रवाहंगदयोरुविक्रमः । जघानकुम्भस्थलउन्नदन्मृधे तत्कर्म सर्वेसमपूजयन्नृप ॥ १० ॥ ऐरावतोवृत्रगदाभिमृष्टो विघूर्णितोऽद्रिः कुलिशाहतो यथा । अपासरद्भिन्नमुखःसहेन्द्रो मुञ्चन्नसृक्सप्तधनुर्भृशार्तः ॥ ११ ॥ नसन्नवाहाय विषण्यचेतसेप्रायुंक्तभूयःसगदांमहात्मा।इन्द्रोऽमृतस्यन्दिकराभिमर्शवीतव्यथक्ष तवाहोऽवतस्थे ॥१२॥ सतं नृपेन्द्राहवकाम्ययारिपुं वज्रायुधंभ्रातृहणंविलोक्य । स्मरंश्चतत्कर्म नृशंसमंहःशोकेन मोहेनहसंजगाद ॥ १३ ॥ वृत्रउवाच ॥ दिष्ट्या भवान्मे समवस्थितोरिपुर्यो ब्रह्महागुरुहाभ्रातृहाच । दिष्ट्यानृणोऽद्याहमसत्तमत्वया मच्छूलनिर्भिन्नदृषद्धृदाऽचिरात् ॥ १४ ॥ योनोग्रजस्यात्मविदोद्विजातेर्गुरोरपापस्यचदीक्षितस्य । विश्रभ्यखड्गेनशिरांस्यवृश्चत्पशोरिवाऽकरुणः स्वर्गकामः ॥ १५ ॥ ह्रीश्रीदयाकीर्तिभिरुज्झितंत्वां स्वकर्मणापुरुषादैश्चगर्ह्यम् । कृच्छ्रेणमच्छूलविभिन्नदेहमस्पृष्टवह्निं समदन्तिगृध्राः ॥ १६ ॥ अन्येऽनुयेत्वेहनृशंसमज्ञायेह्युद्यतास्त्राः प्रहरन्तिमह्यम् । तैर्भूतनाथान्सगणान्निशातत्रिशूलनिर्भिन्नगलैर्यजामि ॥१७॥ अथोहरमेकुलिशेनवीर हर्तांप्रमथ्यैवशिरोयदीह । तत्रानृणोभूतबलिंविधाय मनस्विनांपादरजःप्रपत्स्ये ॥ १८ ॥ सुरेशकस्मान्नहिनोषिवज्रंपुरःस्थितेवैरिणिमय्यमोघम् । मासंशयिष्ठानगदेववज्रं स्यान्निष्फलंकृपणार्थेवयांचा ॥

हाथी ॥ ८ ॥ इसदौडकर आतेहुये वृत्रासुरपर वज्रधारी इन्द्रने बडीभारी गदाचलाई, उस असह्य वेगवाली गदाको उस, वृत्रासुर ने सहजही से बांएहाथसे पकडलिया ॥ ९ ॥ अति क्रोधित तथा पराक्रमी वृत्रासुरने संग्राम भूमिमें गर्जकर उसीगदा से इन्द्रके हाथी के कुम्भस्थल में प्रहारकिया इस वृत्रासुर के पुरुषार्थ से सबों ने उसकी प्रशंसाकी ॥ १० ॥ गदाके प्रहारसे हाथीका मुखचूर्ण होगया, और घूर्णितहो, रुधिर उगिलता, अति दुःखित सातधनुष पीछे हटगया ॥ ११ ॥ इन्द्रने अपने हाथीको पीडित देख फिर वृत्रासुरपर गदानहीं चलाई; और अपने अमृतवर्षीवाले हाथ से हाथीके घावका स्पर्शकर उसकी पीडा को मिटा फिर वृत्रासुरके सामने खडाहुआ ॥ १२ ॥ हेमहाराज ! इसभांति युद्धकी कामनासे, अपने भाईके मारनेवाले इन्द्रको वज्र लिये खडा देख, उनके अधम कर्मोंका स्मरणकर शोक तथा मोहमें से व्याप्त वृत्रासुर हंसकर कहनेलगा ॥ १३ ॥ वृत्रासुर बोला कि–हे इन्द्र ! तू ब्रह्महत्या, गुरुहत्या तथा मेरे भाई को मारनेवाला है तूआज मेरेसामने खडा है यह बहुत अच्छा हुआ अरेनीच थोडेहीकाल में तेरे पत्थर से हृदय को अपने त्रिशूल से विदार्ण कर भाईके ऋण से उरिण होऊंगा ॥ १४ ॥ जैसे स्वर्ग की कामना वाला यजमान कठोरता से यज्ञ के पशु का शिर काट डालता है वैसेही तूनेभी विश्वासघातकता से मेरे भाई का वध किया है कि जो ब्राह्मण, गुरु, आत्मवेत्ता और निर्दोषथा॥१५॥ तू लज्जा, लक्ष्मी, दया और यश से हीन और राक्षसों के तिरस्कारके योग्य है मेरे त्रिशूल से छिन्न भिन्न और अग्नि भी न मिले ऐसे तेरे शरीर को गिद्ध भी बडी कठिनता से खांयगे ॥१६॥ तुझ पापी का अनुसरण करनेवाले जो मूढ लोग मेरे ऊपर शस्त्रों का प्रहार करतेहैं उन सबके मस्तक तीन त्रिशूल से काटकर भैरव आदिक देवों को उनके पार्षदों समेत बलिदान दूंगा ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! यदि तू वज्र से बल पूर्वक मेरा शिर काटभी डालेगा तोभी मैं कर्म बन्धन से छूट जीवजंतुओं को अपने शरीर का बलिदान दे मनस्वियों के चरण रज को (श्रेष्ठ स्थान) प्राप्त हूंगा ॥ १८ ॥ हे देवेन्द्र ! मुझ सामने खडेहुए शत्रुपर तू अमोघ वज्र क्यों नहीं चलाता जिस भांति लोभी के पास याचना निष्फल चलीजाती है वैसही व्यर्थ गईहुई गदा की भांति,

॥ १९ ॥ नन्वेषवज्रस्तवशक्रतेजसा हरेर्दधीचेस्तपसाचतेजितः । तेनैवशत्रुंजहि विष्णुयंत्रितोयतो हरिर्विजयःश्रीर्गुणास्ततः ॥२० ॥ अहंसमाधायमनोयथाऽऽहसंकर्षणस्तच्चरणारविन्दे ।त्वद्वज्ररंहोलुलितग्राम्यपाशो गतिंमुनेर्याम्यपविद्धलोकः ॥२१॥ पुंसांकिलैकांतधियांस्वकानां याःसम्पदोदिविभूमौरसायाम् । नरातियत्रेष उद्वेगआधिर्मदः कलिर्व्यसनंसंप्रयासः ॥ २२ ॥ त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्पतिर्विधत्तेपुरुषस्यशक्र । ततोऽनुमेयोभगवत्प्रसादो योदुर्लभोऽकिंचनगोचरोन्यैः ॥२३॥ अहंहरेतवपादैकमूलदासानुदासो भवितास्मिभूयः । मनःस्मरेतासुपतेर्गुणांस्तेगृणीतवाक्कर्मकरोतुकायः ॥ २४ ॥ ननाकपृष्ठंनचपारमेष्ठ्यं नसार्वभौमंनरसाधिपत्यम् । नयोगसिद्धीरपुनर्भवंवा समंजसत्वाविरहय्यकांक्षे ॥ २५ ॥ अजातपक्षा इवमातरंखगाः स्तन्यंयथावत्सतराःक्षुधार्ताः । प्रियंप्रियेवव्युषितंविषण्णा मनोऽरविंदाक्ष दिदृक्षतेत्वाम् ॥ २६ ॥ ममोत्तमश्लोकजनेषुसख्यं संसारचक्रेभ्रमतः स्वकर्मभिः । त्वन्माययात्मात्मजदारगेहेष्वासक्तचित्तस्यननाथभूयात् ॥ २७ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०षष्ठ०वृत्रासुरेणभगवन्नामवर्णनंनामएकादशोऽध्यायः ११ ॥

ऋषिरुवाच ॥ एवंजिहासुर्नृपदेहमाजौ मृत्युंवरंविजयान्मन्यमानः । शूलंप्रगृह्याभ्यपतत्सुरेन्द्रं यथामहापुरुषंकैटभोऽप्सु ॥ १ ॥ ततोयुगान्ताग्निकठोरजि

तेरा वज्र निष्फल न जायगा तू इस में संदेह मतजानें ॥ १९ ॥ निःसंदेह यह तेरा वज्र भगवत के तेज तथा दधीचि मुनि के तपसे अत्यन्त तीक्ष्ण होगया है और तुझ भगवान नें प्रेरित भी किया है अतएव तू मुझे इस वज्र से मार क्यों कि जिस पक्षमें भगवान रहते है उसी में जय, लक्ष्मी, और गुण रहते है ॥ २० ॥ अपनें संकर्षण स्वामी के उपदेशानुसार, भगवान के चरणों में मनलगा तेरे वज्र के तेजसे विषय भोग रूपी पाशकट जानेपर शरीर छोड़ योग गति को प्राप्त हूंगा ॥ २१ ॥ तू ऐसा संदेह मतकर कि संकर्षण भगवान मुझ स्वर्ग की संपदा देवेंगे, क्योंकि भगवान अपनें भक्त को त्रिलोकी की संपदा कदापि नहीं देते, कारण कि इन संपदाओं से आधि, व्याधि, दुःख सहजही में हुआ करते हैं ॥ २२ ॥ हे इन्द्र ! हमारे भगवान तो अपने भक्त के धर्म, काम, अर्थ इत्यादिक श्रम को नष्ट करदेते हैं और इस श्रम के निवृत्त होनेसही भगवत्कृपा हुई जाननी चाहिये, ऐश्वर्यादिक से भगवत कृपा होना नजानना चाहिये कारण कि यह अति दुर्लभ भगवत कृपा निरहंकारियोंही के ऊपर होती है अन्य पर नहीं ॥ २३ ॥ हे भगवन ! मैं आपके चरणों के आश्रयी दासोंकाभी दास हूं आप ऐसा अनुग्रह करिये कि आप जो भूतों के जीवन रूपहो उनके गुणों के स्मरण मे मेरा मन लगारहै और मेरी जिह्वा आप के गुणों का कथन और देह आप की सेवा किया करे ॥ २४ ॥ हे ईश ! आपको त्याग कर मैं त्रिलोकी के राज्य और अष्ट सिद्धियों तथा मोक्ष की भी कामना नहीं करता ॥ २५ ॥ हे कमलनयन ! जैसे बिना पर वाले पक्षियों के बच्चे उल्लू आदिक से पीड़ितहो अपनी मां के देखनें की तथा भूख बछड़े दूध की, और खिन्न चित्त स्त्री अपने परदेश गये पति के देखने की इच्छा करे ऐसेही मेरा मन आपके देखनें की कामना करता है ॥ २६ ॥ हे स्वामिन् ! मैं अपने कर्मों से संसाररूपीचक्र में घूमरहा हूं, और आपकी मायासे देह, गेह, पुत्र और स्त्रियों में आसक्त होरहाहूं, अबआपके भक्तों के सङ्ग मेरी मित्रताहो और मैं अब देहादिक में आसक्त न होऊं ॥ २७ ॥

इति श्री मद्भा० म० षष्ठस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! इसभांति संग्राम में देह छोड़नेकी इच्छाकरता और जीनेकी अपेक्षा मरने को अच्छाजानता यह वृत्रासुर इसप्रकार त्रिशूलउठाकर इन्द्रपरदौड़ा कि जैसे प्रलय के जल में कैटभअसुर विष्णुजीपर दौड़ाथा ॥ १ ॥ इस शूरबीर असुरने प्रलयकालकी सदृशघोर

ह माविध्यशूलंतरसासुरेन्द्रः । क्षिप्त्वामहेन्द्रायविनद्यवीरो हतोऽसिपापेतिरुषाज गाद ॥ २ ॥ खआपतत्तद्विचलद्ग्रहोल्क वन्निरीक्ष्यदुष्प्रेक्ष्यमजातविक्लवः । वज्रेणवज्री शतपर्वणाऽच्छिनद्भुजञ्चतस्योरगराजभोगम् ॥ ३ ॥ छिन्नैकबाहु परिघेण वृत्र· संरब्धआसाद्यगृहीतवज्रम् । हनौतताडेन्द्रमथाऽमरेभं वज्रंचहस्तान्न्यपतन्मघोनः ॥ ४ ॥ वृत्रस्यकर्मातिमहाद्भुतंतत्सुरासुराश्चारणसिद्धसंघाः । अपूजयंस्तत्पुरुहूतसंकटं निरीक्ष्यहाहेतिविचुक्रुशुर्भृशम् ॥ ५ ॥ इन्द्रोनवज्रंजगृहेविलज्जितश्च्युतंस्वहस्तादरिसन्निधौपुनः । तमाहवृत्रोहरआत्तवज्रो जहिस्वशत्रुंनविषादकालः ॥ ६ ॥ युयुत्सतांकुत्रचिदाततायिनां जयःसदैकत्रनवैपरात्मनाम् । विनैकमुत्पत्तिलयस्थितीश्वरं सर्वज्ञमाद्यंपुरुषंसनातनम् ॥७॥ लोकाःसपालायस्येमेश्वसन्तिविवशावशे । द्विजाइवशिचाबद्धाः सकालइहकारणम् ॥ ८ ॥ ओजःसहोबलं प्राण ममृतंमृत्युमेवच । तमज्ञायजनोहेतु मात्मानंमन्यतेजडम् ॥ ९ ॥ यथादारुमयीनारी यथायन्त्रमयोमृगः । एवंभूतानिमघवन्नीशतन्त्राणिविद्धिभोः ॥१०॥ पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमात्माभूतेन्द्रियाशयाः । शक्नुवन्त्यस्यसर्गादौ नांघनायदनुग्रहात् । ॥ ११ ॥ अविद्वानेवमात्मानं मन्यतेऽनीशमीश्वरम् । भूतैःसृजतिभूतानि ग्रसतेतानितैःस्वयम् ॥ १२ ॥ आयुःश्रीःकीर्तिरैश्वर्य माशिषःपुरुषस्यया. । भवन्त्येवहितत्काले यथानिच्छोर्विपर्ययाः ॥ १३ ॥ तस्मादकीर्तियशसोर्जयापजययोरपि समः स्यात्सुखदुःखाभ्यां मृत्युजीवितयोस्तथा ॥१४॥ सत्वंरजस्तमइति प्रकृतेर्नात्मनो

ज्वाला वाला त्रिशूलइन्द्रपर चलाया और बडी विकट गर्जनाकरके कहा कि–रेदुष्ट ! मारलिया है ॥ ॥ २ ॥ ग्रहतथा उल्का की सदृश जिसके सामने देखा न जासके ऐसे उस त्रिशूलको आता देख, इन्द्रकुछभी भयभीत न हो अपने सौधारवाल वज्रसे उस त्रिशूलतथा सर्पराजके आकार वाली उसकीभुजाको काटडाला ॥ ३ ॥ यह एक हाथसेखण्डितहुआ वृत्रासुर कोनिनहो इन्द्रके समीपजा उनकी ठोढी तथा हाथीपर परिघकाप्रहार किया कि जिसप्रहार से इन्द्रके हाथसे बज्रभूमिपर गिरगया ॥ ४ ॥ वृत्रासुरके इस अद्भुतकार्य्यको देख दैत्य, देवता, सिद्ध,-चारण उसकी प्रशंसा करने लगे और देवतागण इन्द्रके संकटकोदख जाहिर करने लगे ॥ ५ ॥ शत्रुके सन्मुख उस गिरे हुये बज्रको इन्द्रने लाजके मारे न उठाया तब वृत्रासुरबोलाकि हेइन्द्र ! यह शोचनेका समयनहीं है वज्रउठाकर मुझमार !' ६ ॥ कही एसानहीं हुआ कि शस्त्रधारी, रणकांक्षी देहाभिमानी मनुष्यरणमें सदाही जयपावें; सबकालतथा सबस्थानों में एक भगवानही की, जयहोती है ॥७॥ यह मनुष्य जिनकी स्वाधीनता के जालमें बँधेहुये पाक्षियोंकी सदृशलोकपालों समेतजावितहैं वेहीकाल रूपभगवान जय,पराजयके कारणहैं ॥८॥ शारीरिक,मानसिक, इन्द्रियों की शक्ति,जीना,मरना और अमरपन इन सबकाहेतु कालहीहै॥९॥ हेइन्द्र! जिसभांति कठपुतली नचानेवालें के आधीनरहती है ऐसेही समस्तप्राणी ईश्वरके आधीनहै ॥१०॥ जिनकी कृपाविना पुरुष, प्रकृति पञ्चभूत, अहङ्कार इन्द्रिया और अतःकरण, इस सृष्टिको नहीं रचसकते उन्हीं भगवान के आधीन यह समस्त जगत है ॥ ११ ॥ जो इसभांति नहीं जानता, वह अपने शरीरको स्वतंत्र मानलताहै भगवान एकप्राणीसे दूसरे प्राणी को उत्पन्न करते और एकसे दूसरेका नाश करते हैं॥ १२ ॥ जिसभांति दुःखकी इच्छा न करते हुये भी आपही आप समय पर दुःख प्राप्त होजाता है वैसेही आयुष्यको, द्रव्य, यश, ऐश्वर्य्य तथा दूसरे सुखादिक भी समयपर आपसे आप प्राप्त होजाते हैं ॥१३॥ इस कारण जय, पराजय दुःख सुख, कीर्त्ति, अपकीर्त्ति जीवन, और मरण में हर्ष, शोक नहीं करना चाहिये ॥ १४ ॥ सत्वरज

गुणाः । तत्र साक्षिणमात्मानं यो वेद न स बध्यते ॥ १५ ॥ पश्य मां निर्जितं शक्र वृक्णायुधभुजं मृधे । घटमानं यथाशक्ति तव प्राणजिहीर्षया ॥ १६ ॥ प्राणग्लहोऽयं समर इष्वक्षो वाहनासनः । अत्र न ज्ञायतेऽमुष्य जयोऽमुष्य पराजयः ॥१७॥ श्रीशुक उवाच इन्द्रो वृत्रवचः श्रुत्वा गतालीकमपूजयत् । गृहीतवज्रः प्रहसंस्तमाह गतविस्मयः ॥१८ इन्द्र उवाच ॥ अहो दानव सिद्धोऽसि यस्य ते मतिरीदृशी । भक्तः सर्वात्मनात्मानं सुहृदं जगदीश्वरम् ॥ १९ ॥ भवानतार्षीन्मायां वै वैष्णवीं जनमोहिनीम् । यद्विहायासुरं भावं महापुरुषतां गतः ॥ २० ॥ खल्विदं महदाश्चर्यं यद्रजःप्रकृतेस्तव । वासुदेवे भगवति सत्त्वात्मनि दृढा मतिः ॥ २१ ॥ यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे । विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणावन्योन्यं धर्मजिज्ञासया नृप । युयुधाते महावीर्याविन्द्रवृत्रौ युधाम्पती ॥ २३ ॥ आविध्य परिघं वृत्रः कार्ष्णायसमरिन्दमः । इन्द्राय प्राहिणोद्घोरं वामहस्तेन मारिष । स तु वृत्रस्य परिघं करं च करभोपमम् । चिच्छेद युगपद्देवो वज्रेण शतपर्वणा ॥२५॥ दोर्भ्यामुत्कृत्तमूलाभ्यां बभौ रक्तस्रवोऽसुरः । छिन्नपक्षो यथा गोत्रः खाद्भ्रष्टो वज्रिणा हतः ॥ कृत्वाऽधरां हनुं भूमौ दैत्यो दिव्युत्तरां हनुम् । नभोगम्भीरवक्त्रेण लेलिहोल्बणजिह्वया ॥ २७ ॥ दंष्ट्राभिः कालकल्पाभिर्ग्रसन्निव जगत्त्रयम् । अतिमात्रमहाकाय आक्षिपंस्तरसा गिरीन् ॥२८॥ गिरिराट् पादचारीव पद्भ्यां निर्जरयन्महीम् । जग्रास स समा

और तम यह प्रकृति के गुण हैं नकि आत्मा के–आत्मा तो केवल इनका साक्षी है जो इस भांति जानता है उसको हर्ष, शोक नहीं प्राप्त होता ॥ १५ ॥ हे इन्द्र ! मैं हारगया हूं और शस्त्र हीन, भी होगया हूं तौभी तेरे प्राण लेनेकी कामना से यथाशक्ति उपाय कियेही जाता हूं उसेतू देख ॥१६॥ इस युद्धरूप द्यूतमें बाणरूप पांसे, वाहन रूप आसन, और प्राणरूप दांवरक्खा गया है इसके जय पराजयका जानना अति कठिन है ॥१७॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि–इन्द्रने वृत्रासुर की ऐसी बानेसुन उसका निष्कपट भाव से सत्कार किया और फिर बज्रको हाथमें ले, गर्व रहितहो हंसकर उससे कहने लगे ॥ १८ ॥ इन्द्र बोलेकि–हे असुर ! तू जीवनमुक्त तथा सच्चा भगवद्भक्त है क्योंकि तेरी ऐसी बुद्धि है ॥ १९ ॥ तू जगतका मोहन वाला ईश्वर की माया से पार उतरचुका, क्योंकि तू दानवी भावको छोड़ महापुरुषपनको प्राप्तहुआ है ॥ २० ॥ यह अत्यंत आश्चर्य कीबात है कि तू रजोगुणी होनेपर भी सत्वगुणी भगवान में दृढ़बुद्धि हुआ ॥ २१ ॥ मोक्षके स्वामी भगवानमें जिस की भक्तिहोवे, उसको स्वर्गादिक तुच्छ सुखों से क्या करना है ? अमृत के सागर में जो क्रीडाकर रहा है उसको गढ़ेमें भरेहुये मैले जलसे क्या प्रयोजन ? ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे नृप ! इस प्रकार आपस में धर्मचर्चा करते हुये महावीर इन्द्र तथा वृत्रासुर परस्पर संग्राम करने लगे ॥ २३ ॥ हे राजन् ! शत्रुहन वृत्रासुर ने बामकर से लोहेका भयंकर परिघ घुमाकर इन्द्रपर मारा ॥ २४ ॥ तब इन्द्रने अपने सौधार वाले बज्रसे उसका परिघ और उसकी शुंडाकार भुजा एकही संग काटगिराई ॥२५॥ खंडित भुजाओं की जड़में से जिसके रुधिर स्रावित था वह वृत्रासुर इस भांति शोभा देरहाथा कि जैसे इन्द्र के परकाटने पर आकाश से गिरेहुये पर्वत ॥ २६ ॥ तदनंतर वृत्रासुर अपना ऊपरका होंठ आकाश में और नीचेका पृथ्वी पर रखकर, आकाश की सदृश गंभीर मुख, सर्प कीसी डरावनी जिह्वा ॥ २७ ॥ और कालकी सदृश घोरदाढ़ों से ऐसे दीखने लगाकि मानो त्रिलोकी को निगले जाता है वह बहुतबड़ी देहवाला, अपने बेगसे पहाड़ों को चलाय मान करता ॥ २८ ॥ तथा चलाय मान पर्वत की सदृश अपने पैरोंसे चलकर धरती कोचूर्ण करता हुआ

साश्ववज्रिणंसहवाहनम् ॥ २९ ॥ महाप्राणोमहावीर्योमहासर्पइवद्विपम् । वृत्रग्रस्तंतमालक्ष्य सप्रजापतयःसुराः ३०॥ हाकष्टमितिनिर्विण्णाश्चुक्रुशुःसमहर्षयः॥निगीर्णोऽप्यसुरेंद्रेण नममारोदरंगतः । महापुरुषसन्नद्धो योगमायाबलेनच ॥ ३१ ॥ भित्त्वावज्रेणतत्कुक्षिं निष्क्रम्यबलभिद्विभुः। उच्चकर्तशिरःशत्रोर्गिरिशृंगमिवौजसा॥ ॥३२॥वज्रस्तुतत्कन्धरमाशुवेगःकृन्तन्समतात्परिवर्तमानः। न्यपातयत्तावदहर्गणेन योज्यांतिपामयनेवार्तहत्ये ॥ ३३ ॥ तदाचखेदुन्दुभयोविनेदुर्गंधर्वसिद्धाःसमहर्षिसंघाः वार्त्रघ्नलिंगैस्तमभिष्टुवाना मंत्रैर्मुदाकुसुमैरभ्यवर्षन् ॥ ३४ ॥ वृत्रस्यदेहान्निष्क्रांतमात्मज्योतिरारिंदम् । पश्यतांसर्वलोकानांसर्वलोकानामलोकंसमपद्यत ३५

इतिश्रीमद्भा०महा०षष्ठ०वृत्रवधोनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ वृत्रेहतेत्रयोलोका विनाशक्रेण भूरिद ॥ सपालाह्यभवन्सद्यो विज्वरानिर्वृतेन्द्रियाः ॥ १ ॥ देवर्षिपितृभूतानिदैत्यादेवानुगाः स्वयम् ॥ प्रतिजग्मुः स्वधिष्ण्यानिब्रह्मेशेन्द्रादयस्ततः ॥ २ ॥ ॥ राजोवाच ॥ इन्द्रस्यानिर्वृतेर्हेतुंश्रोतुमिच्छामि भोमुने॥ येनासन्सुखिनोदेवा हरेर्दुःखकुतोऽभवत् ॥ ३॥ ॥श्रीशुकउवाच। वृत्रविक्रमसंविग्नाः सर्वेदेवाः सहर्षिभि ॥तद्वधायार्थयन्निन्द्रंनैच्छद्भीतो बृहद्वधात् ॥ ४ ॥ इन्द्र उवाच ॥ स्त्रीभूजलद्रुमैरेनो विश्वरूपवधोद्भवम् ॥ विभक्तमनुगृह्णद्भिर्वृत्रहत्यां क्व माऽर्ज्म्यहम् ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ऋषयस्तदुपाकर्ण्य महेन्द्रमिदमब्रुवन् ॥ याजयिष्यामभद्रंते हयमेधेन मास्मभैः ॥ ६ ॥ हयमेधेनपुरुषं

इन्द्रके समीप पंहुचा और पहुंचतेही ऐरावत समेत उसे निगलगया ॥ २९ ॥ जिसभांति अजगर हाथीको निगलजाय उसी भांति महा पराक्रमी वृत्रासुर इन्द्रको निगलगया ऐसा देख प्रजापति, देवता, ऋषि खेदित होकर हा २ कर करने लगे ॥ ३० ॥ वृत्रासुर के निगल जानेपर इन्द्र उसके पेटके भीतर न मरे क्योंकि प्रथम तो योगमाया का बल दूसरे नारायण कवच धारण किये थे ॥ ३१ ॥ महा पराक्रमी इन्द्रने वज्रसे उसका पेट चीरडाला फिरबल पूर्वक बाहर निकल पहाड़के शिखर की सदृश उसका शिरकाट डाला ॥ ३२ ॥ बड़े वेगवाला वज्र वृत्रासुर के मारने के हेतु चारो ओर फिरकर उसका कंठ काटता रहा तब ३६० दिनमें वृत्रासुर का शिरनीचे कट करगिरा ॥ ३३ ॥ उस काल आकाश में नगाड़े बजने लगे और गंधर्व, सिद्ध तथा बड़े २ ऋषि वृत्रासुर के वधके मन्त्रोंसे स्तुतिकर आनंदितहो फूल बर्षानेलगे ॥ ३४ ॥ हे राजन् वृत्रासुर के मरतेही सबके देखते देखते उसके देहमें से जीवरूप तेजनिकल भगवान मे व्याप्तहोगया ॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भा०षष्ठ०सरलाभाषाटीकायांद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्री शुकदेवजी बोले कि–हे परीक्षित् ! वृत्रासुर के मरने से इन्द्रके अतिरिक्त सम्पूर्ण लोक तथा लोकपालों के दुःख दूर होकर इन्द्रियां शांत होगई ॥ १ ॥ सुर, असुर, ऋषि पितृ, भूत और देवताओंके सेवक अपने २ स्थानको गये इसके उपरांत रुद्र, इन्द्र, और ब्रह्मादिक भी अपने २ लोकों को गये ॥ २ ॥ परीक्षित् ने पूछा कि हे मुनि ! मैं जानना चाहता हूं कि इन्द्र को शांति क्यांन मिली और देवताओं को सुख तथा इन्द्र को दुःख क्यों हुआ ॥ ३ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि–वृत्रासुर के पराक्रम से दुःखित होसुर तथा ऋषियों ने इन्द्रसे वृत्रासुरके मारनेके हेतु प्रार्थना की तब इन्द्र ने ब्रह्म हत्या लगनके डरसे उसे न मारना चाहा और इस भांति कहा कि ॥ ४ ॥ विश्वरूपके मारने से जो मुझे ब्रह्महत्या लगी थी उसको तो पृथ्वी, जल, स्त्री, और वृक्षोंने मुझपर कृपा करके बांट ली परंतु वृत्रासुरके वधकी ब्रह्महत्या किस भांति उतारूंगा ॥५॥ श्री शुकदेवजी बोले कि–ऋषियों ने इन्द्रकी इस बातको सुन उनसे कहा कि हम आप को अश्वमेध यज्ञ कराबेंगे

परमात्मानमीश्वरम् ॥ इष्ट्वानारायणंदेवं मोक्ष्यसेऽपि जगद्वधात् ॥ ७ ॥ ब्रह्महा पितृहागोघ्नो मातृहाऽऽचार्यहाऽघवान् ॥ श्वादः पुल्कसकोवाऽपि शुध्येरन्यस्य कीर्तनात् ८ ॥ तमश्वमेधेनमहामखेन श्रद्धाऽन्विताऽस्माभिरनुष्ठितेन । हत्वापिस ब्रह्मचराचरंत्व नलिप्यसेकिंखलनिग्रहेण ॥ ९ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ एवंसंचोदितो विप्रैर्मरुत्वानहनद्रिपुम् । ब्रह्महत्याहतेतस्मिन्नाससादवृषाकपिम् १० ॥ तयेंद्रः स्मासहत्तापंनिर्वृतिर्नोऽमुपाविशत् । ह्रीमन्तंवाच्यतांप्राप्तं सुखयन्त्यपिनोऽगुणाः ११ ॥ तांददर्शानुधावन्तीं चांडालीमिवरूपिणीम् । जरयावेपमानांगीं यक्ष्मग्रस्तामसृक्पटाम् ॥ १२ ॥ विकीर्यपलितान्केशांस्तिष्ठतिष्ठेतिभाषिणीम् मीनगंधसुगन्धेनकुर्वतीमार्गदूषणम् ॥१३॥ नभोगतोदिशःसर्वाः सहस्राक्षोविशांपते । प्रागुदीचींदिशंतूर्णं प्रविष्टोनृपमानसम् ॥ १४ ॥ सआवसन्पुष्करनालतन्तूनलब्धभोगोयदिहाग्निदूतः । वर्षाणिसाहस्रमलक्षितोऽन्तः संचिंतयन्ब्रह्मवधाद्विमोक्षम् ॥ १५ ॥ तावत्त्रिणाकन्नहुषःशशास विद्यातपायोगबलानुभावः । ससंपदैश्वर्यमदान्धबुद्धिर्नीतस्तिरश्चांगतिमिंद्रपत्न्या ॥ १६ ॥ ततोगतोब्रह्मगिरोपहूत ऋतम्भरध्याननिवारिताघः । पापस्तुदिग्देवतयाहतौजास्त नाभ्यभूदवितंविष्णुपत्न्या ॥ १७ ॥ तंचब्रह्मर्षयोऽभ्येत्यहयमेधेनभारत । यथावद्दीक्षयांचक्रुःपुरुषाराधनेनह ॥१८॥ अथेज्यमानेपुरुषेसर्वदेवमयात्मनि । अश्वमेधेमहेंद्रेण वितते ब्रह्मवादिभिः ॥ १९ ॥ सवै

आप ब्रह्महत्या से मत डरो ॥ ६ ॥ अश्वमेध यज्ञसे भगवान का आराधन कर मनुष्य ब्रह्महत्या से तो क्या बरन समस्त संसार की हत्याओं से छूट जाता है ॥७॥ जिनके यशके गानसे मनुष्य ब्रह्महत्या, गो हत्या, मातृहत्या, पितृ हत्या तथा गुरुहत्यासे भी छूट जाता है और अधम चांडाल तथा दूसरे पापीभी शुद्ध होजाते हैं ॥ ८ ॥ उन भगवान का आराधन हमारे कराये हुये यज्ञसे श्रद्धा पूर्वक करोगे तो ब्राह्मणों समेत समस्त चर अचर प्राणियोंके बधका भी पाप आपको न होगा फिर दुष्टको दंड देनेमें तो किसी भांति पाप न लगेगा ॥ ९ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि–इसभांति ऋषियोंकी प्रेरणासे इन्द्रने वृत्रासुरको मारा उसके मारतेही इन्द्रके पीछे ब्रह्म हत्या लगा ॥ १० ॥ इसी ब्रह्महत्याके कारण इन्द्रको सुख न मिला; क्योंकि लज्जावान् मनुष्य यदि कोई निंदित कार्य करे तो उसे कोई भी गुण सुख नहीं देता ॥ ११ ॥ चांडाली के सदृश रूप वाली तथा बुढ़ापे से कांपती हुई, क्षय रोगके कारण कफ से लिपी और रक्त से भरे हुये वस्त्र वाली ॥ १२ ॥ वह ब्रह्म हत्यापीछे दौड़तीहुई देखपड़ी कि जो खुलेकेश खोलकर 'ठहर, ठहर' ऐसे पुकारती आतीथी तथा मछलीकीसी दुर्गंधितश्वास से पवनको दूषितकरतीथी ॥ १३ ॥ हेराजन्! वेइंद्र समस्त दिशाओं में फिरआये परन्तुकहीं शरणनमिली तब वे ईशानकोणकीओर मानसरोवर मानसरोवरमे घुस ॥१४॥ वहां एक सहस्रवर्षतक कमलनाले के तंतुओं मे बैठेहुये ब्रह्महत्यासे छूटनेका विचार करते रहे, अग्निजलमें नहीं जासकती अतएव उन्हें यज्ञका भागभी न मिलताथा॥१५॥ जबतक इन्द्रकमलनालमें रहे तबतक नहुषराजानेविद्या,तप,योग और बलके प्रभावसे स्वर्गका राज्यकिया परन्तु ऐश्वर्य मे मदान्धहो इन्द्राणी से संभोग की कामनाकी तब इन्द्राणीने उपाय रच उन्हें अजगर योनि में पटकदिया॥१६॥जिन्होंने भगवत् ध्यानसे पापको निवृत्तकिया है ऐसे इन्द्रफिर ब्राह्मणों के बुलाने से स्वर्ग में गये, जबतक इन्द्रमानसरोवर मे रहे तबतक ईशानकोणके देवता, श्रीरुद्र, तथाविष्णु पत्नी ने उनकीरक्षाकी इससे उन्हें ब्रह्महत्यानलगी॥१७॥हेनृप! ब्रह्मर्षियोंने आकर भगवानके आराधनवाले अश्वमेध यज्ञकीदीक्षा इन्द्रको विधिसमेतदी॥१८॥ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणलोग सर्वदेव मयभगवानके अश्वमेध

स्याग्रवधोभूयानापिपाचययोनृप । भीतस्तेनैवशून्याय नीहारइवभानुना ॥ २० ॥ स
वाजिमेधेनयथोदितेन वितायमानेनमरीचिमिश्रैः इष्ट्वाधियज्ञंपुरुषंपुराणमिन्द्रो म
हानासविधूतपापः ॥ २१ ॥ इदंमहाख्यानमशेषपाप्मनां प्रक्षालनंतीर्थपदानुकीर्त
नम् । भक्त्युच्छ्रयंभक्तजनानुवर्णनं महेंद्रमोक्षंविजयंमरुत्वतः ॥ २२ ॥ पठेयुराख्या
नमिदंसदाबुधाः शृण्वन्त्यथोपर्वणिपर्वणीन्द्रियम् । धन्यंयशस्यंनिखिलाघमोचनं
रिपुजयंस्वस्त्ययनंतथायुषम् ॥ २३ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०षष्ठ० इन्द्राश्वमेधवर्णनंनामत्रियोदशोऽध्यायः १३ ॥

परिक्षिदुवाच ॥ रजस्तमःस्वभावस्य ब्रह्मन्वृत्रस्यपाप्मनः । नारायणेभगवति
कथमासीद्दृढामतिः ॥ १ ॥ देवानांशुद्धसत्वानामृषीणांचामलात्मनाम । भक्तिर्मु
कुन्दचरणेनप्रायेणोपजायते ॥ २ ॥ रजोभिःसमसंख्याताः पार्थिवैरिहजन्तवः ।
तेषांयेकेचनेहंतेश्रेयोवैमनुजादयः ॥ ३ ॥ प्रायोमुमुक्षवस्तेषां केचनैवद्विजोत्तम ।
मुमुक्षूणांसहस्रेषु कश्चिन्मुच्येतसिध्यति ॥ ४ ॥ मुक्तानामपिसिद्धानां नारायणपरा
यण.सुदुर्लभ प्रशांतात्माकोटिष्वपिमहामुने ॥५॥ वृत्रस्तुसकथंपापःसर्वलोकोपता
पनः । इत्थंदृढमतिःकृष्ण आसीत्संग्रामउल्बणे ॥ ६ ॥ अत्रनःसंशयोभूयान्श्रो
तुंकौतूहलंप्रभो । यःपौरुषेणसमरे सहस्राक्षमतोषयत् ॥७ ॥ सूतउवाच ॥ परीक्षि
तोऽथसप्रश्नं भगवान्बादरायणिः । निशम्यश्रद्दधानस्यप्रतिनंद्यवचोऽब्रवीत् ॥८॥

यज्ञका अनुष्ठानकर इंद्रसे पूजन करवानेलगे ॥ १९ ॥ हेराजन ! उससमय भारी पापपुञ्जरूप वृ-
त्रासुरकीहत्या इसयज्ञके प्रभाव से ऐसे निवृत्तहोगई कि जैसे सूर्यसे अन्धकार निवृत्तहोजाताहै २०
मरीचि आदि ऋषियोंने विधान सहित अश्वमेध यज्ञकराया, उस यज्ञके प्रभाव से भगवानप्रसन्नहुये
तथा उनके अनुग्रह से इंद्रकापाप छूटगया तदनन्तर वहमहापूज्यबनगये ॥ २१ ॥ इन्द्रके विजय-
रूप और पापोंसे छुटानेवाला यह बड़ाचरित्र पापनाशक, परमेश्वर के कीर्तनवाला, भक्तिवर्द्धक,
भक्तोंके वर्णनसे भराहुआ,इन्द्रियशक्ति बढानेवाला, वैरियोंकानाशक तथा द्रव्य, कीर्ति, सुख और
आयु का देनेवालाहै जो ज्ञानीलोग सर्वदाइस आख्यानका पाठकरेंगे अथवा सुनेंगे वह समस्तपापों
से छूटजायगे ॥ २२ ॥ २३ ॥

इतिश्री मद्भा० महा० षष्ठस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्याय. ॥ १३ ॥

परीक्षितने कहाकि-हेमुनि ! वृत्रासुर तो रजोगुणी तथा तमोगुणी और महापापी था फिर
भगवानमे इसकी दृढबुद्धि किसभांति हुई ? ॥ १ ॥ शुद्धसत्वगुणवाले देवतातथा स्वच्छहृदयवाले
ऋषियोंकी भी भक्तिभगवत्चरणोंमें नहीं होती ॥ २ ॥ यहबातप्रसिद्ध है कि भूमिमें जितने धूलके
कण हैं उतनेही इस जगतमें प्राणी हैं उनमेंसे थोडे मनुष्य तो कुछधर्मका आचरण करते हैं ॥
॥ ३ ॥ और उनधर्मपालकों में कितने एकश्रेष्ठद्विज मोक्षकीकामनावाले होंगे और उन मुमुक्षुओं
मेंभी सहस्रोंमें कोई एकघर इत्यादिकका मोहछोड़ तत्वको जानताहै॥४॥उन करोड़ों तत्ववेत्ताओं
में कोई एक भगवत्परायण, शांत मनुष्य कठिनतासे मिलताहै फिर यहवृत्रासुर तो महापापी और
सबको दु.ख देने वालाथा फिर उसकी बुद्धि घोर युद्धमे किस भांति भगवानमें रही॥५॥ हेप्रभु !
इसमेंहमें बड़ासंशयहै और इस वृत्तांतके सुननेकी कामनाहै यदि ऐसाहोकि वृत्रासुर ने संग्राममें इन्द्र
को प्रसन्नकियाथा इससे वह इन्द्रके डरसे परमेश्वरकी शरणगया तो ऐसा कह नहींसकते ॥६॥७॥
सूतजी बोले कि हे शौनक ! शुकदेवजी श्रद्धा सहित कियेहुए राजा परीक्षित के प्रश्न को सुन उन
का आदर करके बोले ॥ ८ ॥ कि हे महाराज ! इस मेरे इतिहासको सावधान होकर सुनो यह इति

श्रीशुकउवाच॥शृणुष्वावहितोराजन्नितिहासमिमंयथा। श्रुतंद्वैपायनमुखान्नारदा
द्देवलादपि॥ ९॥ आसीद्राजासार्वभौमः शूरसेनेषुवैनृप। चित्रकेतुरितिख्यातो
यस्यासीत्कामधुङ्मही॥१०॥ तस्यभार्यासहस्राणां सहस्राणिदशाभवन्। सांता
निकश्चापिनृपोनलेभे तासुसंततिम् ११॥ रूपौदार्यवयोजन्म विद्यैश्वर्यश्रियादिभिः
संपन्नस्यगुणैःसर्वैश्चिन्तावन्ध्यापतेरभूत्॥ १२॥ नतस्यसंपदःसर्वा महिष्योवाम
लोचनाः सार्वभौमस्यभूश्चेयमभवन्प्रीतिहेतवः १३॥ तस्यैकदातुभवनमंगिरा भ
गवानृषिः। लोकाननुचरन्नेतानुपागच्छद्यदृच्छया॥ १४॥ तंपूजयित्वाविधिवत्प्र
त्युत्थानार्हणादिभिः। कृतातिथ्यमुपासीदत्सुखासीनंसमाहितः॥ १५॥ महर्षिस्त
मुपासीनं प्रश्रयावनतक्षितौ। प्रतिपूज्यमहाराज सभाभाष्येदमब्रवीत्॥ १६॥ अं
गिराउवाचअपितेऽनामयंस्वस्तिप्रकृतीनांतथात्मनः।यथाप्रकृतिभिर्गुप्तःपुमान्राजा
पिसप्तभिः॥ १७॥ आत्मानंप्रकृतिष्वद्धा निधायश्रेयआप्नुयात्। राज्ञातथाप्रकृत
योनरदेवाऽहिताधयः॥ १८॥ अपिदाराः प्रजामात्या भृत्याःश्रेण्योऽथमन्त्रिणः।
पौराजानपदाभूपा आत्मजावशवर्तिनः॥ १९॥ यस्यात्मानुवशश्चेत्स्यात्सर्वेतद्व
शगाइमे। लोकाःसपालायच्छन्तिसर्वेबलिमतन्द्रिताः॥ २०॥ आत्मनःप्रीतयेनात्मा
परतःस्वतएववा। लक्षयेऽलब्धकामंत्वां चिंतयाशबलंमुखम्॥ २१॥ एवंविकल्पि
तोराजन्विदुषामुनिनाऽपिसः। प्रश्रयावनतोऽभ्याह प्रजाकामस्ततोमुनिम् २२॥
चित्रकेतुरुवाच॥ भगवन्किंनविदितं तपोज्ञानसमाधिभिः। योगिनांध्वस्तपापानां

हास मैंने व्यासजी, नारदजी और देवल इन तीन महर्षियोंसे सुना है॥९॥ हे महाराज! शूरसेन देशमें एक चक्रवर्ती चित्रकेतु नाम राजा था यह भूमि उसकी सब इच्छायें पूरी करती थी॥ १०॥ उस राजा के सहस्रों रानियां थीं यद्यपि वह राजा अपने पराक्रम से पुत्र उत्पन्न करनेको समर्थथा परन्तु उसके उन रानियों से कोई पुत्र नहुआ॥ ११॥ रूप,उदारता, आयु श्रेष्ठ कुलमें जन्म, विद्या, तेज और लक्ष्मी इत्यादिक सर्वगुण सम्पन्न था तो भी स्त्रियोंके वन्ध्या होनेंसे वह बडा चिंतित रहता॥ १२॥ इस चक्रवर्ती राजाको स्त्री आदिक कोई पदार्थ आनंददायी नथा॥ १३॥ एक समय महात्मा अङ्गिरा ऋषि अपनी इच्छासे घूमते २ इसराजाके घरचलेआये॥ १४॥ राजाने उठकर सामनेजा, भेटें इत्यादि दे सत्कारकर उनकी यथोचित पूजाकी, तदनन्तरमुनि आसनपर बैठे और उनके समीप राजाभी बैठा॥ १५॥ हेमहाराज! पृथ्वीपर अपने निकटबैठा आश्रय से नम्रीभूत राजाका, सन्मानकर, अङ्गिराऋषि सम्बोधनकर, इस भांति बोले॥ १६॥ अङ्गिरा बोले कि—आपके राज्यतथा राज्यके अंग अच्छी भांतिस तो हैं? जिसभांति महत्तत्व आदि सात प्रकृतिसे गुप्तरहकर, जीव उन्हीं प्रकृतियों के अधीनरहना है, इसी भांतिराजाभी मन्त्री आदिकराज्यके सातों अंगों से रक्षितरह उन्हींका अनुसरण करै तो उसे राज्य का आनन्द मिलता है जैसे राजाका सुखमंत्री आदिके आधीन है वैसेही मंत्रीका सुखराजाके आधीन है॥ १७॥ १८॥ अपनीरानियां, प्रजा, अमात्य, नौकर, व्यौपारी, मंत्री, नगरवासी, देशवासी, जागीरदारतथा पुत्रयह सबतो आपके आधीनहैं॥१९॥ जिसकामन अपने वशमें है उसके यह सबवशमें हैं और सम्पूर्णलोक तथालोकपालभी उसको आलस्य छोडकर राजदेय द्रव्यदेते हैं॥ २०॥ आप अप्रसन्न से क्यों देख पडतेहो? इसका क्या हेतु है आप के मुखकी मलीनता से ऐसा ज्ञातहोता है कि आपको किसी बातकी तृष्णा है॥ २१॥ शुकदेवजी बोले कि—महाराज! अंगिरा ऋषि यद्यपि सर्वज्ञ थे तोभी उन्हों ने इसभांति पूछातब संतान की इच्छावाले राजान नम्र होकर कहा॥ २२॥ राजा चित्रकेतु बोला—कि हे भगवन्! तप, ज्ञान, और समाधि से पाप

बहिरन्तःशरीरिषु ॥ २३ ॥ तथापिपृच्छतोब्रूयां ब्रह्मन्नात्मनिचिन्तितम् भवतोविदु षश्चापिचोदितस्त्वदनुज्ञया २४॥ लोकपालैरपिप्रार्थ्याःसाम्राज्यैश्वर्यसंपदः नर्नंदंत्य प्रजमांक्षुत्तृट्कामामिवापरे २५॥ ततःपाहिमहाभागपूर्वैःसहगततमः यथातरेमदुस्तारं प्रजयातद्विधेहिनः ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यर्थितः स भगवान्कृपालुर्ब्रह्मणः सुतः ॥ श्रपयित्वाचरुंत्वाष्ट्रं त्वष्टारमयजद्विभुः ॥ २७ ॥ ज्येष्ठाश्रेष्ठाच या राज्ञो महिषीणांचभारत ॥ नाम्नाकृतद्युतिस्तस्यैयज्ञोच्छिष्टमदाद्द्विजः ॥ २८ ॥ अथाह नृपतिंराजन्भवितैकस्तवात्मजः ॥ हर्षशोकप्रदस्तुभ्यमितिब्रह्मसुतो ययौ ॥ २९ ॥ सापितत्प्राशनादेवचित्रकेतोरधारयत् ॥ गर्भंकृतद्युतिर्देवी कृत्तिकाऽग्नेरिवात्म-जम् ॥ ३० ॥ तस्याअनुदिनंगर्भः शुक्लपक्षइवोडुपः ववृधेशूरसेनेशतेजसा शनै-र्नृप ॥ ३१ ॥ अथकालउपावृत्तकुमारः समजायत ॥ जनयञ्छूरसेनानां शृण्वतांप रमांमुदम् ॥ ३२ ॥ हृष्टोराजाकुमारस्य स्नातःशुचिरलंकृतः। वाचयित्वाशिषोविप्रै कारयामासजातकम् ॥ ३३ ॥ तेभ्योहिरण्यंरजतं वासांस्याभरणानिच । ग्रामान्ह-यान्गजान्प्रादाद्धेनूनामर्बुदानिषट् ॥ ३४ ॥ ववर्षकाममन्येषां पर्जन्यइवदेहिनाम् ॥ धन्यंयशस्यमायुष्य कुमारस्यमहामनाः ॥ ३५ ॥ कृच्छ्रलब्धेऽथ राजर्षेस्तनयेऽनु दिनंपितु । यथानिःस्वस्यकृच्छ्राप्ते धने स्नेहोऽन्ववर्धत ॥३६॥ मातुस्त्वतितरांपुत्रे स्नेहोमोहसमुद्भवः । कृतद्युतेःसपत्नीनां प्रजाकामज्वरोऽभवत ॥ ३७ ॥ चित्रकेतो

हीनहुये योगियों से प्राणियों के मनकी तथा बाहरकी कोईबात छिपी नहीं रहती ॥ २३ ॥ हे भगवन्! तोभी आपने जान बूझकर मुझसे पूछा है अतएव मैं आपकी आज्ञाको शिरोधार्य्यकर अपनी चिंता कीबात कहताहू ॥ २४ ॥ यद्यपि मुझको सब ऐश्वर्य्य प्राप्त है तौभी जैसे क्षुधा, तृषार्त्त मनुष्यको चदनादिक अन्य पदार्थों से सुख नहीं प्राप्त होता वैसेही मुझेभी ऐश्वर्य्यादिक से सुख नहीं मिलता ॥ २५ ॥ हे महाभाग! मुझ सतान हीन की किजो पूर्वजों के सग नरकमे पडाहुआ हू आपरक्षाकरो और एसायत्न करियेगा कि संतान प्राप्त होकर इस दुस्तर नरक मे पारहोजाऊ ॥ २६ ॥ श्री शुकदेवजी बोलेकि—राजाके इसभाति प्रार्थना करनेपर अगिरा मुनिने त्वष्टा देवतका चरू बनाया और उससे त्वष्टा देवताका आराधन किया ॥ २७ ॥ फिरउस राजाकी सबमे बड़ी पटरानी कृ तद्युतिको उस चरूका शेष अन्न दिया ॥ २८ ॥ और कहाकि हे राजन्! इस अन्नके भक्षण से तुम्हारे एक पुत्रहोगा किजो तुम्हे हर्ष, शोक का देनेवाला होगा ऐसा कह वह ऋषितो वहां से चलेगये ॥ २९ ॥ तदनंतर उस अन्नके खाने के प्रभाव से तथा राजाके वीर्यसे उस रानीके गर्भ ऐसे रहगया कि जैसे कृत्तिका के अग्निमे रहाथा ॥ ३० ॥ हे राजन्! चित्रकेतु के वीर्यसे रहाहुआ कृतद्युति का गर्भशुक्ल पक्षके चन्द्रमा क सदश धीरे २ प्रतिदिन बढ़नेलगा ॥ ३१ ॥ समय आने पर कुमार का जन्महुआ कि जिसे सुनकर वहांके देशवासियों को बडाही आनद प्राप्तहुआ ॥३२॥ प्रसन्न चित्तराजा ने स्नानकर, शुद्धहो, शृंगारधर, ब्राह्मणो से स्वस्ति वाचन समेत जातकर्म संस्कार करवाया ॥ ३३ ॥ फिरउन ब्राह्मणों को सोने, चांदी के वस्त्र आभूषण, ग्राम, घोड़, हाथी और ६० करोड गौयेंदीं ॥ ३४ ॥ कुमार के धन, कीर्त्ति और आयु बढ़ने के हेतु उस दानी राजा ने दूसरे प्राणियों परभी उनक मन वाञ्छित पदार्थों की वर्षामेघ के सदश की ॥ ३५ ॥ जिसभांति से कि कष्टसे प्राप्तहुये धनपर निर्धन मनुष्यका स्नेह बढ़ता है उसी भांति राजाका इस कुंवरपर नित्य स्नेह बढ़नेलगा ॥ ३६ ॥ कृतद्युति किजो उस कुमार की माताथी, उसके तो मोह उत्पादक पुत्रमें भारी प्रेमवढा परन्तु सौतोंको संतान की कामना से भारीदुःख हुआ ॥ ३७ ॥ प्रतिदिन खिलाते

रतिप्रीतिर्यथा दारेप्रजावति। नतथाऽन्येषुसंजज्ञे बालंलालयतोऽन्वहम् ॥३८॥ताः
पर्यतप्यन्नात्मानं गर्हयन्त्योऽभ्यसूयया।आनपत्येनदुःखेन राज्ञोऽनादरणेनच ॥३९॥
धिगप्रजांस्त्रियंपापां पत्युश्चागृहसम्मताम् । सुप्रजाभिःसपत्नीभिर्दासीमिव तिरस्कृ
ताम् ॥ ४० ॥ दासीनांकोनुसंतापः स्वामिनःपरिचर्यया । अभीक्ष्णलब्धमानानां
दास्यादासीवदुर्भगाः ॥ ४१ ॥ एवंसंदह्यमानानां सपत्न्याःपुत्रसम्पदा । राज्ञोऽसम्म
तवृत्तीनां विद्वेषोबलवानभूत् ॥ ४२ ॥ विद्वेषनष्टमतयःस्त्रियो दारुणचेतसः । गर
ददुःकुमाराय दुर्मर्षानृपतिंप्रति ॥ ४३ ॥ कृतद्युतिरजानन्ती सपत्नीनामघंमहत् ॥
सुप्तएवेतिसंचिन्त्य निरीक्ष्यव्यचरद्गृहे ॥ ४४ ॥ शयानंसुचिरंबालमुपधार्य मनीषि
णी । पुत्रमानयमेभद्रे इतिधात्रीमचोदयत् ॥ ४५ ॥ साशयानमुपव्रज्य दृष्ट्वाचोत्ता
रलोचनम् । प्राणेन्द्रियात्मभिस्त्यक्तं हताऽस्मीत्यपतद्भुवि ॥४६॥ तस्यास्तदाकर्ण्य
भृशातुरंस्वरं घ्नन्त्याःकराभ्यामुरउच्चकैरपि । प्रविश्यराज्ञीत्वरयात्मजान्तिकं ददर्श
बालंसहसामृतंसुतम् ॥४७॥ पपातभूमौपरिवृद्धयाशुचा मुमोहविभ्रष्टशिरोरुहाम्ब
रा ॥ ४८॥ ततोनृपान्तःपुरवर्तिनोजना नराश्चनार्यश्चनिशम्यरोदनम् । आगत्यतुल्य
व्यसनाःसुदुःखितास्ताश्च व्यलीकंरुरुदुःकृतागसः ॥ ४९ ॥ श्रुत्वामृतंपुत्रमलक्षि-
तान्तकं विनष्टदृष्टिःप्रपतन्स्खलन्पथि । स्नेहानुबन्धैधितयाशुचा भृशं विमूर्छितोनु-
प्रकृतिर्द्विजैर्वृतः ॥ ५० ॥ पपातबालस्यसपादमूले मृतस्यविस्रस्तशिरोरुहाम्बरः ॥
दीर्घंश्वसन्बाष्पकलोपरोधतो निरुद्धकण्ठो नशशाकभाषितुम् ॥ ५१ ॥ पतिंनिरी-

हुए चित्रकेतु राजाका इस पुत्रकी मातापर जैसा प्रेमरहा वैसा दूसरी पर नहीं ॥ ३८ ॥ डाहतथा
बांझपने के दुःख और राजाके निरादर से अपनेको धिक्कारतीहुई वह स्त्रियां इसभांति दुःख करने
लगींकि ॥ ३९ ॥ अपुत्रवती, पापरूप, तथा पतिके घरमें अयोग्य स्त्रियोंको धिक्कार है किजो संतान
वाली स्त्रिया निःसंतान सौतोंका दासीकी नाईं अपमान करती है ॥ ४० ॥ जिनको सदैव आदर
मिले ऐसी स्त्रियोंको अपने पतिकी सेवा तथा दासत्व करने में किसी भांतिकी भी हानि नहीं है
परन्तु हमतो दासियों कीभी दासियों की सदृश मंदभाग्य है ॥ ४१ ॥ यह सौतके पुत्रहोन से इस
भांति सदैव कुढाकरती और राजाकी उन स्त्रियोंके मनमें बडाभरीद्वेष उत्पन्न हुआ ॥ ४२ ॥ डाह
से उनक्रूर हृदयवाली रानियोंकी बुद्धिनष्ट होगई उन्होंने राजाके दुर्भावका सहन न कर कुवरको विष
देदिया ॥ ४३ ॥ वह कृतद्युति सपत्नियों के इस अपराधको न जान, बालकको सोता समझ घरमें
फिरनेलगी ॥ ४४ ॥ उस चतुर कृतद्युति ने ऐसा विचारकर कि बालकको सोये बहुत देरहोगई
दासी से कहा कि हे भद्रे ! मेरे बालक को लआ ॥ ४५ ॥ वह दासी सोतेहुये कुवर के समीपगई
वहां उस जीव, इन्द्रिय तथा चैतन्य हीन या और आंखों मे से पुतलियों को गया हुआ देख आति
विलाप करतीहुई 'हायमेमरी' कहकर भूमिमे गिरपडी॥ ४६॥कृतद्युतिने बारम्बारछातीकूटन तथा व्याकु
लतासे भरेहुए शब्दोंको सुना शीघ्रहो कुंवरके निकट गई वहांउसने अपनेबालकको मराहुआदेखा॥४७
पुत्रको मराहुआ देखवह रानी शोकसे दुःखितहो पृथ्वी पर गिरकर मूर्छित होगई और उसके
केश तथा बस्त्र बिखर गये ॥ ४८ ॥ धात्री का रोना सुन अंतःपुरके नर नारी भी दुःख से रोने
लगे तथा वह अपराधिनी सपत्नियां भी कपट करके रोने लगीं ॥ ४९ ॥ अकस्मात् कुंवरकीमृत्यु
सुन, अंधा हुआ राजा, मार्ग मे गिरता पड़ता, स्नेह के कारण बढ़े हुये शोक से मूर्छित होता
ब्राह्मणोंके संग वहां आया और उसके पीछे मन्त्री लोग भी वहां आये ॥ ५० ॥ बाल तथा वस्त्र
खुला हुआ राजा चित्र केतु मृत पुत्रके पैरोंमे गिरगया तथा आंसुओंसे उसका कंठभी घिर आया
वह कुछ बोल न सका किंतु लम्बी श्वास लेने लगा ॥ ५१ ॥ अकस्मात् पुत्रको मरा तथा अपने

क्ष्योकशुचाऽर्पितंतदा मृतंचबालसुतमकस्तितिम्। अनस्यराज्ञीप्रकृतेश्चहृद्ज सनी द्धानाविललापचित्रधा ॥ ५२ ॥ स्तनद्वयकुंकुमगन्धमण्डित निषिंचतीसांजनबाष्पबिन्दुभिः। विकीर्यकेशान्विगलत्स्रजः सुतं शुशोचचित्रकुररीवसुस्वरम् ॥५३॥ अहोविधातस्त्वमतीवबालिशो यस्त्वात्मसृष्ट्यप्रतिरूपमीहसे । परेऽनुजीवत्यपरस्यमृत्युर्विपर्ययश्चेत्त्वमसिध्रुवःपरः ॥ ५४ ॥ नहिक्रमश्चेदिहमृत्युजन्मनोः शरीरिणामस्तुतदात्मकर्मभिः। यःस्नेहपाशोनिजसर्गवृद्धये स्वयंकृतस्तेतमिमंविवृश्चसि ॥ ५५॥त्वंतातनार्हसिचमांकृपणामनाथां त्यक्तुंविचक्ष्वपितरं तवशोकतप्तम्। अंजस्तरेम भवताऽप्रजदुस्तरयत् ध्वांतंनयाह्यकरुणेन यमेनदूरम् ॥ ५६ ॥ उत्तिष्ठताततइमेशिशवो वयस्यास्त्वामाह्वयन्ति नृपनन्दनसंविहर्तुम्। सुप्तश्चिरं ह्यशनयाचभवान्परीतो भुङ्क्ष्वस्तनंपिबशुचोहरनःस्वकानाम् ॥ ५७ ॥ नाहंतनुज ददृशेहतमंगलाते मुग्धस्मितंमुदितवीक्षणमाननाब्जम्। किंवागतोऽस्यपुनरन्वयमन्यलोकं नीतोऽघृणेन नशृणोमिकलागिरस्ते ५८ ॥ श्रीशुकउवाच विलपन्त्यामृतं पुत्रमितिचित्रविलापनैः चित्रकेतुर्भृशंतप्तो मुक्तकंठोरुरोदह ॥ ५९ ॥ तयोर्विलपतोः सर्वेदंपत्योस्तदनुव्रताः। रुरुदुःस्मनरानार्यःसर्वमासीदचेतनम् ॥ ६० ॥ एवंकश्मलमापन्नं नष्टसंज्ञमनायकम्। ज्ञात्वांगिरानाममुनिराजगामसनारदः ॥ ६१ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा०षष्ठ० चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पति चित्रकेतुको शोकसे दुःखित देख रानी कृतद्युति हृदय विदारकविलाप करने लगी ॥ ५२ ॥ केशर से लिप्त स्तनों को, अजन से काले हुये आसुओंसे स्नान कराती यह कृतद्युति अपनी वेणी को कि जिसमें से पुष्पों की माला सरक २ गिरती है खुली छोड़ मुक्त कंठ हो ऊंच स्वर से बिलाप करने लगी ॥ ५३ ॥ हे ब्रह्मा! तू बड़ाही मूढ़ है कि जो तू अपनी सृष्टिमें प्रति कूल चेष्टा करता है बूढ़ों के जीते बालक मरें यह अति विपरीत बात है, तू प्राणियों का शत्रु है ॥ ५४ ॥ यदि प्राणियों को अपने २ कर्मानुसार जन्म मरण होनेसे जन्म मरणका क्रम नहीं रह सकता तो फिर तेरा कामही क्या है, कदाचित् तेरे विना कर्मोंसे कुछभी न होसकता होतो तूही इस अपनी बनाई हुई स्नेह रूपी पाशको कि जो सृष्टि बढानेका हेतु है काटता है यह दुःख देख कोई सृष्टिका प्राणी अपने पुत्रादिकों पर प्रेम न करेगा ॥ ५५ ॥ पुत्र से कहती है—कि हे तात! मैं अनाथ तेरे छोड़ने योग्य नहीं हूं, शोक से दुखित यह तेरा पिता तेरे चरणोंकी मूलमें पड़ा है, इसके सामने तो तू देख यदि तू जीवितरहता तो हम अनायासही उस नरकमें पारहोजाते कि जो नरक निःसतान मनुष्यों से बड़ी कठिनतासे तिरजा सकताहै, अरे! तू इस निर्दयी यमराजके संग दूर मत जा ॥५६ हेतात! हेनृपसुत! उठ यह तेरीसमान बयवाले तेरेमित्र तुझे खेलनेको बुलाते हैं तुझे सोते हुए बड़ी बिलम्ब होगई और तुझे बहुतभूखलगीहोगी अतएव उठकर मेरास्तनपानकर और मेरे दुःखकोदूर कर ॥ ५७ ॥ हेपुत्र! सुन्दर हँसनतथा आनन्दभरी दृष्टिवाले तेरे मुखकमलको मैं अभागिनीनदेख सकी, हाय! मैं तेरी सुन्दरबाणीको नहीं सुनती, क्यापरलोक कि जहांजाकर वहांसे कोई नहीं लौटता वहीं चलागया? क्यातुझे निर्दयी यमराजलेगया ॥ ५८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—कृतद्युति रानीके बिलापसे राजा चित्रकेतुभी अतिबिलापकर उच्चस्वरसे रोनलगा ॥ ५९ ॥ राजरानीके इस भांति विलापकरनसे इनके अनुयायी और भी स्त्री, पुरुषरोनेलगे और सब मनुष्य मूर्छित से होगये ॥ ६० ॥ अंगिरा मुनि राजा चित्रकेतुको इस भांति शोकान्वित तथा अनाथ जान नारदजीके संग ले वहां आये ॥ ६१ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० षष्ठस्कन्धे सरला भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ ऊचतुर्मृतकोपान्तं पतितं मृतकोपमम् ॥ शोकाभिभूतं राजानं बोधयन्तौ सदुक्तिभिः ॥ १ ॥ कोऽयं स्यात्तव राजेन्द्र भवान्यमनुशोचति ॥ त्वं चास्य कतमः सृष्टौ पुरेदानीमतः परम् ॥२॥ यथा प्रयान्ति संयाति स्रोतोवेगेन बालुकाः ॥ संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः ॥ ३ ॥ यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च ॥ एवं भूतेषु भूतानि चोदितानीशमायया ॥ ४ ॥ वयं च त्वं च ये चेमे तुल्यकालाश्चराचराः ॥ जन्ममृत्योर्यथा पश्चात्प्राङ्नैवमधुनापि भोः ॥ ५ ॥ भूतैर्भूतानि भूतेशः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ आत्मसृष्टैरस्वतन्त्रैरनपेक्षोऽपि बालवत् ॥ ६ ॥ देहेन देहिनो राजन्देहाद्देहोऽभिजायते ॥ बीजादेव यथा बीजं देह्यर्थ इव शाश्वतः ॥ ७ ॥ देहदेहिविभागोऽयमविवेककृतः पुरा ॥ जातिव्यक्तिविभागोऽयं यथा वस्तुनिकल्पितः ॥८॥ श्रीशुक उवाच । एवमाश्वासितो राजा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ॥ प्रमृज्य पाणिना वक्त्रं माधिम्लानमभाषत ॥ ९ ॥ राजोवाच ॥ कौ युवां ज्ञानसंपन्नौ महिष्ठौ च महीयसाम् ॥ अवधूतेन वेषेण गूढाविह समागतौ ॥ १० ॥ चरन्ति ह्यवनौ कामं ब्राह्मणा भगवत्प्रियाः ॥ मादृशां ग्राम्यबुद्धीनां बोधायोन्मत्तलिङ्गिनः ॥ ११ ॥ कुमारो नारद ऋभुरङ्गिरा देवलोऽसितः ॥ अपान्तरतमा व्यासो मार्कण्डेयोऽथ गौतमः ॥ १२ ॥ वसिष्ठो भगवान्रामः कपिलो बादरायणिः ॥ दुर्वासा याज्ञवल्क्यश्च जातूकर्ण्यस्तथाऽऽरुणि ॥१३॥ रोमशश्च्यवनो दत्त आसुरिः सपतञ्जलिः ॥ ऋषिर्वेदशिरा बोध्यो मुनिः पञ्चशिरास्तथा ॥१४॥ हिरण्यनाभः कौशल्यः श्रुतदेव ऋतध्वजः ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि उस मृतक बालक के निकट मृतक की सदृश पड़ेहुए शोक में व्याकुल चित्रकेतु राजासे सुंदर वचनोंसे ज्ञानकी शिक्षा करतेहुए अंगिरा और नारदजी बोले कि ।१। हे राजेन्द्र ! तू जिसका शोक करता है वह तेरा कौन है? इस सृष्टि में तू इसका कौन है? पहिले कौनथा? और अब कौन है ? और अब आगे कौन होगा ? ॥ २ ॥ जिस भांति प्रवाह के वेग से बालुका आती है और बहि जाती है उसी भांति काल के वेग से जीव आता और वह जाता है ॥ ३ ॥ जैसे अन्न का बीज कभी उपजता और कभी नहीं उपजता ऐसेही ईश्वरकी माया से प्रेरित प्राणियों के कभी पुत्रादिक होते हैं और कभी नहीं ॥ ४ ॥ हे राजन् ! हम तुम और इस काल के सब चर अचर में से किसीका जन्म पहिले और मृत्यु पीछे है और किसीकी मृत्यु पहिले और जन्म पीछे है मरण सबकोही समान है ॥ ५ ॥ भूतेश्वर भगवान भूतों द्वारा सृजते, पालते और नाश करते हैं आप ईश्वर निरपेक्ष होनेपरभी बालककी समान क्रीडाकरतेहुए खेलबनाते और बिगाड़तेहैं॥६॥ हे राजन् ! जैसे बीज में से बीज उत्पन्न होता है वैसेही देह से देह की उत्पत्ति होती है ॥ ७ ॥ जैसे जाति और व्यक्ति का विभाग एकही वस्तु में हुआ है वैसेही देही और देहके विभाग की कल्पना एकही वस्तु में अज्ञान से हुई है ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि इस प्रकार नारदजी और अंगिराजी के समझाने से दुःख से मलीन हुए मुखको राजा चित्रकेतु हाथों से पोंछकर बोला ॥ ९ ॥ राजाने कहाकि—ज्ञान से सम्पन्न, बड़ों २ से पूजनीय, अवधूतका वेष धारण करके, गूढबातें करने वाले आप कौनहो?॥ १० ॥ भगवान के प्यारे ब्राह्मण, हमसरीखे अज्ञानियों का ज्ञान की शिक्षा करने के वास्ते पृथ्वीपर उन्मत्त कासाचिह्न धारण करके यथेच्छा से विचरते हैं॥११॥ सनत्कुमार, नारद, ऋभु, अंगिरा, देवल, असित, व्यास, मार्कंडेय गौतम, ॥ १२ ॥ वशिष्ठ भगवानपरशुराम, कपिल, शुकदेवजी, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, जातूकर्ण्य, आरुणि ॥ १३ ॥ लोमश, च्यवन, दत्तात्रेय, आसुरि, पतञ्जलि, देवशिरा, बोध्यमुनि, पंचशिर, ॥ १४ ॥ हिरण्यनाभ, कौशल्य, श्रुतदेव, ऋतध्वज, और

एतेचरेन्त्यसिद्धेशाश्चरन्ति ज्ञानहेतवे: ॥ १५ ॥ तस्माद्युवांग्राम्यपशोर्ममगूढधियः प्रभू ॥ अन्धेतमसिमग्नस्यज्ञानदीप उदीर्यताम् ॥ १६ ॥ अङ्गिरा उवाच ॥ अहंतेपुत्रकामस्य पुत्रदोऽस्म्यङ्गिरानृप ॥ एषब्रह्मसुतः साक्षान्नारदोभगवानृषिः ॥ १७ ॥ इत्थंत्वांपुत्रशोकेनमग्नंतमसि दुस्तरे ॥ अतदर्हमनुस्मृत्य महापुरुषगोचरम् ॥ १८ ॥ अनुग्रहायभवतः प्राप्तावावामिहप्रभो ॥ ब्रह्मण्योभगवद्भक्तो नावसीदितुमर्हति ॥ १९ ॥ तदैवतेपरंज्ञानं ददामिगृहमागतः । ज्ञात्वान्याऽभिनिवेशंते पुत्रमेवददावहम् ॥ २० ॥ अधुनापुत्रिणांतापो भवतैवानुभूयते। एवंदारागृहारायो विविधैश्वर्यसंपदः ॥ २१ ॥ शब्दादयश्चविषयाश्चला राजविभूतय महीराज्यं बलंकोशोभृत्यामात्यसुहृज्जनाः॥ २२ ॥ सर्वेपिशूरसेनेमे शोकमोहभयार्तिदाः। गन्धर्वनगरप्रख्याः स्वप्नमायामनोरथाः ॥ २३ ॥ दृश्यमानाविनार्थेन नदृश्यन्तेमनोभवा। कर्मभिर्ध्यायतोनानाकर्माणिमनसोऽभवन् ।२४। अयंहिदेहिनोदेहो द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः देहिनोविविधक्लेशसंतापकृदुदाहृतः ॥ २५ ॥ तस्मात्स्वस्थेनमनसा विमृश्यगतिमात्मनः । द्वैतेध्रुवार्थविश्रम्भं त्यजोपशममाविश ॥ २६ ॥ नारदउवाच एतांमन्त्रोपनिषदं प्रतीच्छप्रयतोमम। यांधारयन्सप्तरात्राद्द्रष्टा संकर्षणंप्रभुम् ॥२७॥ यत्पादमूलमुपसृत्यनरेन्द्रपूर्वे शर्वादयोभ्रममिमंद्वितयंविसृज्य । सद्यस्तदीयमतुलानधिकंमहित्वं प्रापुर्भवानपिपरं नचिरादुपैति ॥ २८ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा०पष्ठस्कं० पंचदशोऽध्याय. ॥१५॥

सिद्धेश्वर यह ज्ञानके निमित्त विचरते हैं ॥ १५ ॥ मुझघोर अंधकार मे डूबेहुए, तथा ग्रामीण पशुकी सदृश मूर्खको आपसे ज्ञानमिलेगा इससे आप ज्ञानरूप दीपकको दिखाओ ॥१६॥ अंगिरा ने कहाकि हे राजन्! तुझपुत्र की कामना वालेको पुत्र देनेवाला मैं अंगिराहूं और यह ब्रह्माके पुत्र साक्षात् नारदजी हैं ॥ १७ ॥ तू हरिभक्त शोक करने के अयोग्य है तुझेपुत्र शोकमें महा मोह मे डूबाहुआ जानकर ॥ १८ ॥ तेरे अनुग्रह के अर्थ यहां आए हैं हेनृप! तू ब्रह्मण्य और भगवद्भक्त है तुझेदुःख करना योग्य नहीं है ॥ १९ ॥ मैं पहिलेही तुझेज्ञान देनेआया था परन्तुतेरा अभिनिवेश जानकर तुझे पुत्रही दिया ॥ २० ॥ अबतूने पुत्रवालों के सन्ताप का अनुभव किया, ऐसेही स्त्री, ग्रह, द्रव्य,राज्य ऐश्वर्य और पुत्रादिक यह सब अनित्य हैं ॥२१॥शब्दादिक विषय, और पृथ्वी, राज्य, बल, सेना, भंडार, सेवक मंत्री, सुहृद, यह सब चलायमान हैं ॥ २२ ॥ हे शूरसेन देशके राजा! यह सबमंत्री, सुहृद आदि शोक, मोह, भयके देनेवाले है तथा गन्धर्व नगर की तुल्य है, स्वप्न, माया औरमनोरथके सदृश मिथ्या ज्ञानहोते हैं ॥ २३ ॥ केवल मनसे उत्पन्न हुये और सत्य रहित दीखते हैं, यदि सत्य होनेतो एक मुहूर्त्त मे देख दूसरे मुहूर्त मे उनकी बाढ न होन। चाहिये, पुरुष के कर्म मनसे उत्पन्न हुये हैं इसी से उनकर्मोंसे उत्पन्न हुए पदार्थ भी मनही से उत्पन्न हैं ॥ २४ ॥ द्रव्य, ज्ञानरूप क्रियात्मक देहका जीवही, यह देहमेरा है, "मैंहूं" ऐसा मानकर नानाक्लेश और संतापका देनेवाला है ॥ २५ ॥ इससे मनसे आत्माकी गतिको विचारकर द्वैतवस्तु में स्थिर विश्वासको छोड, उपशम में आश्रयलो ॥ २६ ॥ नारदजी ने कहाकि–इसपरम कल्याणकारी मंत्रको सावधान होकर सुन, और सातरात्रि इस उपनिषद मन्त्रका जप करेगा तो स्वप्न मे संकर्पण भगवान् को देखेगा ॥ २७ ॥ हे नरेन्द्र ! महादेव आदि पूर्व जिन के चरणों की शरण ले इस द्वैत भावको छोड़ अद्वितीय ब्रह्म स्वरूप को प्राप्तहुए हैं वे शेष भगवान तुमको थोडेही काल में मिलेंगे ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० पु० षष्ठस्कंधे सरला भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ अथदेवऋषिराजन् संपरेतंनृपात्मजम् । दर्शयित्वेतिहोवाच ज्ञातीनामनुशोचताम् ॥ १ ॥ नारदउवाच । जीवात्मन्पश्यभद्रंतेमातरंपितरंचते । सुहृदोबांधवास्तप्तांशुचा त्वत्कृतयाभृशम् ॥ २ ॥ कलेवरंस्वमाविश्यशेषमायुःसुहृद्वृतः । भुंक्ष्वभोगान्पितृप्रत्तानधितिष्ठनृपासनम् ॥ ३ ॥ जीवउवाच ॥ कस्मिञ्जन्मन्यमीमह्यं पितरोमातरोऽभवन् ॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणस्य देवतिर्यङ्नृयोनिषु ॥ ४ ॥ बन्धुज्ञात्यरिमध्यस्थमित्रोदासीनविद्विषः । सर्वएवहिसर्वेषां भवन्तिक्रमशोमिथः यथावस्तूनिपण्यानि हेमादीनिततस्ततः । पर्यटन्तिनरेष्वेवं जीवोयोनिषुकर्तृषु ६ ॥ नित्यस्यार्थस्यसंबन्धो ह्यनित्योदृश्यतेनृषु । यावद्यस्यहिसम्बन्धो ममत्वंतावदेव हि ॥ ७ एवंयोनिगतोजीवः सनित्योनिरहंकृतः । यावद्यत्रोपलभ्येत तावत्स्वत्वंहि तस्यतत् ॥ ८ ॥ एषनित्योऽव्ययःसूक्ष्म एषसर्वाश्रयःस्वदृक् । आत्ममायागुणैर्विश्वमात्मानंसृजतेप्रभुः ॥ ९ ॥ नह्यस्यातिप्रियःकश्चिन्नाप्रियःस्वःपरोऽपिवा । एकःसर्वधियांद्रष्टा कर्तॄणांगुणदोषयोः ॥ १० ॥ नादत्तआत्माहिगुणंनदोषंनक्रियाफलम् । उदासीनवदासीनः परावरदृगीश्वरः ॥ ११ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ इत्युदीर्यगतोजीवो ज्ञातयस्तस्यतेतदा । विस्मितामुमुचुः शोकंछित्वाऽऽत्मस्नेहशृंखलाम् ॥ १२ ॥ निर्हृत्यज्ञातयोदेहं तथाकृत्वोचिताःक्रियाः । तत्यजुर्दुस्त्यजंस्नेहंशोकमोहभयार्तिदम् ॥१३॥ बालंघ्न्योव्रीडितास्तत्र बालहत्याहतप्रभाः । बालहत्याव्रतं चेरुर्ब्राह्मणैर्यन्निरूपितम् । यमुनायांमहाराजस्मरन्त्योद्विजभाषितम् १४ ॥ सइत्थंप्रतिबुद्धात्मा

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! नारदजी ने उन शोकित सम्बंधियों को अपने योगबल से उसमृत राजकुमार को दिखाकर उस बालक से कहा ॥१॥ श्रीनारदजी बोले कि हे जीवात्मन् ! तेरा कल्याण हो तू अपने माता पिता सुहृद, सनेही कि जो शोक से तप्त होरहे हैं उन्हें देख ॥२॥ अपनी देह में प्रवेश कर शेष आयुको तथा सुहृदों को सग ले पिता के दियेहुए राज्यको भोग ॥३॥ तब जीव बोला कि मैं कर्मों के वशीभूत हो देवता, पशु, और पक्षियों की योनि में भ्रमण करता हू तिस के किस जन्म में यह माता और यह पिता हुआथा ॥ ४ ॥ बंधु, ज्ञाति, मध्यस्थ, मित्र, उदासीन और द्वेषी यह क्रमानुसार सब सबके परस्पर होते हैं ॥५॥ जैसे बचन योग्य सुवर्णादिक बस्तु व्योपारियों में जहां तहां भ्रमती हैं तैसेही यह जीव भी अनेकयोनियों मे घूमता फिरता है॥६॥ पशु आदिका सम्बन्ध भी मनुष्योंमें झूठा देखपडता है जिसका जबतक सम्बन्ध है तभीतक ममता है ॥ ७ ॥ ऐसेही पिता माताके संबध को प्राप्तहुआ जीव भी नित्य और निरहकारी है, जबतक कर्म वश योनियोंम भ्रमता है तभीतक पित्रादिक, मोह से पुत्रादिक को अपना करके मानते हैं ॥ ॥८॥ यह जीव नित्य, निरपेक्ष, देहादिकोंका आश्रयऔर, स्वप्रकाश है तथा अपने माया के गुणों से अपने आत्मा को विश्वरूप बनाता है ॥ ९ ॥ इसके कोई प्रिय नहीं, अप्रिय नहीं, अपना नहीं, पराया नहीं, यह गुण दोष के करनेवाली बुद्धि का साक्षी है ॥ १० ॥ आत्मा गुण को नहीं ग्रहण करता, तथा क्रिया फल और राज्यादिक कोभी नहीं ग्रहण करता ऐसा जो मैं हू उसका तुमसे सम्बन्ध नहीं, अतएव शोक मतकरो ॥ ११ ॥ शुकदेवजीनें कहा कि जीव ऐसे कहकर चला गया, तब उसके सम्बंधियों नें आश्चर्यितहो शोकको त्याग कर स्नेह रूप तापको दूरकिया ॥ १२ ॥ संबंधियों नें उसकी देहको जला उसकी उचित क्रियाकर शोक, मोह और भयके देनेंवाले दुस्त्यज, स्नेहका परित्याग किया॥१३॥ बालक के मारनेंवाली कि जिनका तेज बालहत्या से नष्ट होगया है ऐसीलज्जित रानियोंनें अंगिरा मुनि के बचन सुन पुत्रादिकीकामनाछोड़दी औरब्राह्मणोंकी आज्ञानुसार यमुना तटपर बालहत्याका प्रायश्चित किया॥१४॥इस प्रकार ब्राह्मणों के बचनोंसे ज्ञानप्राप्तहुआ राजा

चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः । गृहांधकूपान्निष्क्रांतः सरःपंकादिवद्विपः कालिंद्यांविधिव
त्स्नात्वा कृतपुण्यजलक्रियः । मौनेनसंयतप्राणो ब्रह्मपुत्राववन्दत ॥ १६ ॥ अथत
स्मैप्रपन्नायभक्तायप्रयतात्मने । भगवन्नारदःप्रीतो विद्यामेतामुवाचह ॥ १७ ॥ ओं
नमस्तुभ्यंभगवतेवासुदेवायधीमहि । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमःसंकर्षणायच १८ ॥
नमोविज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये । आत्मारामायशान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये १९ ॥
आत्मानन्दानुभूत्यैव न्यस्तशक्त्यूर्मयेनमः । हृषीकेशायमहते नमस्तेविश्वमूर्तये ॥
२० ॥ वचस्युपरतेप्राप्ययएको मनसासह । अनामरूपश्चिन्मात्रः सोऽव्यान्नःसद
सत्परः ॥ २१ ॥ यस्मिन्निदंयतश्चेदं तिष्ठत्यप्येतिजायते ॥ मृन्मयेष्विवमृज्जाति-
स्तस्मैतेब्रह्मणेनमः ॥ २२ ॥ यन्नस्पृशन्तिन विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः ॥ अन्तर्ब-
हिश्चविततं व्योमवत्तंनतोऽस्म्यहम् ॥ २३ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोधियोऽमीयदंशविद्धाः
प्रचरन्तिकर्मसु ॥ नैवान्यदालोहमिवाप्रतप्तं स्थानेषुतद्द्रष्ट्रपदेशमेति ॥२४॥
ओंनमोभगवतेमहापुरुषायमहानुभावाय महाविभूतिपतये सकलसात्वतपरिवृढ-
निकरकरकमलकुड्मलोपलालितचरणारविन्दयुगलपरम परमेष्ठिन्नमस्ते ॥ २५ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ भक्तायैतांप्रपन्नायविद्यामादिश्यनारदः ॥ ययावङ्गिरसासाक
धामस्वायंभुवप्रभो ॥ २६ ॥ चित्रकेतुस्तुविद्यांतांयथा नारदभाषिताम् ॥ धारया-
मासससाहमब्भक्षः सुसमाहितः ॥ २७ ॥ ततश्चससरात्रान्तेविद्ययाधार्यमाणया ॥

चित्रकेतु घररूप अंधकूप से ऐसे निकला कि जैसे पङ्कसे फसाहुआ हाथी निकलताहै ॥ १५ ॥
कालिन्दी में विधिपूर्वक स्नानकर तर्पणादि क्रियासे निश्चिन्तहो,मौनधारण कर जितेन्द्रियहो अंगिरा
तथा नारदजी के चरणोंको प्रणाम किया ॥ १६ ॥ इसके अनतर शरणागत तथा जितेन्द्रिय भक्त
चित्रकेतु पर नारदजी ने प्रसन्नहो इस विद्याकी शिक्षाकी, ॥ १७ ॥ तुम भगवान वासुदेवको नमस्कार
है, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा संकर्षण भगवान्को नमस्कारहै,॥ १८ ॥ अनुभव रूप, परमानंदमूर्त्ति,
आत्माराम, शांत, द्वैत दृष्टिहीन आपको नमस्कारहै॥ १९ ॥ अपने आनंदके अनुभव सेही माया
सम्बधाराग द्वेषादिकोंको निरस्त करने वाले, इन्द्रियों केईश्वर, अनंतमूर्त्ति आपको नमस्कार है ॥२०॥
जिन्हेमन व इन्द्रियां न पंहुचकर विरत होजाती हैं तव नामरूप रहित, चैतन्य मात्र सबके कारण
रूप जो एकही प्रकाशते हैं वह भगवान् हमारी रक्षाकरो ॥२१॥ जिन भगवान में यह जीवस्थित
होता, उपजता और नाशको प्राप्तहोता है तथा घटादिक पदार्थों में मृत्तिका के समान जो सबमें
व्याप्त हैं उन ब्रह्मरूप भगवानको नमस्कार है ॥ २२ ॥ जोब्रह्म आकाश की भांति भीतर बाहर
सर्वत्र व्याप्त है और जिसका स्पर्शप्राणी नहीं करसकता तथा जिसेमन, बुद्धि और इन्द्रियां नहीं
जानतीं उस ब्रह्मको नमस्कार है ॥ २३ ॥ जिसके अंशकी प्रेरणा से देह, इन्द्री, प्राण, मन, बुद्धि
अपने २ कर्मोंमें विचरते हैं, जैसे बिनाअग्नि अकेलालोहा नहीं जलसकता, वैसेही जाग्रत अवस्था
आदिमें द्रष्टानाम धरानेवाला यह जीवभी जिन्हें नहीं जानता, उन भगवानको नमस्कार है ॥२४॥
हे महापुरुष! हे महानुभाव! महाविभूति के पति भगवान आपको नमस्कार है, श्रेष्ठभक्त हस्तकमल
की कलियों से जिन दोनों चरणारविंदों का सेवन करते हैं उन परमइष्ट रूप भगवान को नमस्कार
है ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! शरण में आयेहुए चित्रकेतु भक्तको नारदजी इस
विद्या का उपदेश दे अंगिरा मुनि के साथ ब्रह्मधाम को गए ॥ २६॥ चित्रकेतु नें नारदजी के कथना
नुसार उस विद्या को सात दिन जलपान करके सावधान हो धारण किया ॥ २७ ॥ सात रात्रि पूर्ण

विद्याधराधिपत्यंसलेभेऽप्रतिहतंनृप ॥ २८ ॥ ततकतिपयाहोभिर्विद्ययेद्धमनोगतिः ॥ जगामदेवदेवस्यशेषस्य चरणान्तिकम् ॥२९॥ मृणालगौराशितिवाससं स्फुरत्किरीटकेयूरकटित्रकङ्कणम् ॥ प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनतंददर्श सिद्धेश्वरमण्डलैः प्रभुम् ॥ ३० ॥ तद्दर्शनध्वस्तसमस्तकिल्विषः स्वच्छामलान्तःकरणोऽभ्ययान्मुनिः ॥ प्रवृद्धभक्त्याप्रणयाश्रुलोचनः प्रहृष्टरोमाऽनमदादिपूरुषम् ॥ ३१ ॥ सउत्तमश्लोकपदाब्जविष्टरंप्रेमाश्रुलेशैरुपमेहयन्मुहुः ॥ प्रेमोपरुद्धाखिलवर्णनिर्गमो नैवाशकत्तंप्रसमीडितु चिरम् ॥ ३२॥ ततः समाधायमनोमनीषयाबभाषएतत्प्रतिलब्धवागसौ ॥ नियम्यसर्वेन्द्रियबाह्यवर्तनंजगद्गुरुं सात्वतशास्त्रविग्रहम् ॥३३॥ चित्रकेतुरुवाच ॥ अजितजितः सममतिभिः साधुभिर्भवाञ्जितात्मभिर्भवता ॥ विजितास्तेऽपिचभजतामकामात्मनां यआत्मदोऽतिकरुणः ॥ ३४ ॥ तवविभव खलुभगवञ्जगदुदयस्थितिलयादीनि ॥ विश्वसृजस्तेंऽशांशास्तत्रमृषास्पर्धन्ते पृथगभिमत्या ॥ ३५ ॥ परमाणुपरममहतोस्त्वमाद्यन्तान्तरवर्तीत्रयविधुरः ॥ आदावन्तेऽपिचसत्त्वानांयद्ध्रुवं तदेवान्तरालेऽपि ॥ ३६ ॥ क्षित्यादिभिरेषकिलावृतः सप्तभिर्दशगुणोत्तरैराण्डकोशः ॥ यत्रपतत्यणुकल्पः सहाण्डकोटिकोटिभिस्तदनन्तः ॥ ३७ ॥ विषयतृषोनरपशवोयउपासते विभूतीर्नपरंत्वाम् ॥ तेषामाशिषईश

होनें के उपरांत उस विद्या के प्रभाव से उसे मुख्य फलों के अंतर्गत विद्याधरों का आधिपत्य मिला कि जो फिर खंडित नहीं हुआ ॥ २८ ॥ फिर कितनें एक दिनों में विद्या के प्रभाव से जहां मनजाय वहां उसने समयमें पहुचने की गति मिली, एक दिन वह शेष नारायण के निकट गया ॥ २९ ॥ कमल दलकी नाईं गौर, नीलांबर धारण किये, प्रफुल्लित मुख, लाल नेत्र सिद्धेश्वरोंके मंडल सेवित मुकुट, भुजबंध, क्षुद्र घंटिका, और कंकण से शोभायमान, शेष भगवान के दर्शन किये ॥ ३० ॥ जिस के सब पाप उनके दर्शन मात्रसे कटगये हैं ऐसा वह स्वच्छ और निर्मल हृदय राजा चित्रकेतु, बड़ी हुई भक्ति के कारण प्रेम के आंसू डालता, पुलकायमानहो, शेषजी की शरण गया और दंडवत करता हुआ चरणों में गिरा ॥ ३१ ॥ भगवान के चरण कमल के आसन रूप श्री शेषजी को बारम्बार स्नेह के आंसुओं से भिगोता वह चित्र केतु स्नेह के कारण कंठ रुक जानेसे उनकी स्तुति न करसका ॥ ३२ ॥ फिर, बुद्धि द्वारा चित्त को स्थिर करनेसे जिसको वाणी मिली है ऐसा वह चित्रकेतु सब इन्द्रियोंकी बाहिरी वृत्तियोंको रोक, जगद्गुरु शेष भगवानकी स्तुति करने लगा ॥ ३३ ॥ चित्रकेतु ने कहा कि–हे अजित आप को समान मति वाले जितेन्द्रिय साधुओं ने जीत लिया है, और आपने कि जो निष्काम भजन करने वालों को अपना रूप देने वाले और महा कृपालु हो इन भक्तों को जीत लिया है ॥ ३४ ॥ हे भगवन् ! सृष्टि की स्थिति, प्रलय और लय आदि यह आपकी लीला हैं सृष्टिरचयिता ब्रह्मा आदि भी तो आपकी कला हैं और यह पृथक् २ ईश्वर ताके अहंकार से जगत आदि कामों में वृथा डाह रखते हैं ॥ ३५ ॥ अति सूक्ष्म और अति बड़े काम के आदि, मध्य और अंत में रहने वाले आपही हो और आप आदि अंत तथा मध्य से शून्य हो, जो सम्पूर्ण कारण के आदि अंत में होगा वही मध्य में होगा ॥ ३६ ॥ एक २ से दश गुणा बड़े पृथ्वी आदि आवरणों से वेष्टित यह ब्रह्मांड तथा दूसरे करोड़ों ब्रह्मांड आप के स्वरूप में परमाणुकी भांति घूमते फिरते हैं इससे आप अनंत हो ॥ ३७ ॥ हे विभु ! जो विषयी नर पशु आपकी विभूति रूप इन्द्रादिक देवताओं की तो उपासना करते हैं परंतु सर्व कारण रूप आपकी नहीं करते उनके सुख देवताओंके नाशके पीछे ऐसे नाश होजाते हैं जैसे राजा के नाश

तदनुविनश्यतियथा राजकुलम् ॥ ३८ ॥ कामधियस्त्वयिरचितानपरमरोहन्ति यथाकरम्भबीजानि ॥ ज्ञानात्मन्यगुणमये गुणगणतोऽस्यद्वन्द्वजालानि ॥ ३९ ॥ जितमजिततदाभवतायदाह्भागवत धर्ममनवद्यम् ॥निष्किञ्चनायमुनयआत्मारामायमुपासतेऽपवर्गाय ॥ ४० ॥ विषममतिर्नयन्नृणांत्वम मितिमम तवेतिचयद्न्यत्र ॥ विषमधियारचितोयः सह्यविशुद्धः क्षयिष्णुरधर्मबहुलः ॥ ४१ ॥ कः क्षेमा निजपरयोः कियानर्थः स्वपरद्रुहाधर्मेण ॥ स्वद्रोहात्तवकोप परसंपीडयाचतथाऽधर्मः ॥ ४२ ॥ नव्यभिचरतितवेक्ष यया ह्यभिहिताभागवतोधर्मः ॥ स्थिरचरसत्वकदम्बष्वपृथग्धियो यमुपासतेत्वार्याः ॥ ४३ ॥ नहिभगवन्नघटितमिदं त्वद्दर्शनान्नृणामखिलपापक्षयः ॥ यन्नामसकृच्छ्रवणात्पुल्कसकोऽपिविमुच्यते संसारात् ॥ ४४ ॥ अथभगवन्वयमधुना त्वदवलोकपरिमृष्टाशयमलाः ॥ सुरऋषिणा यदुदितंतावकनकथमन्यथा भवति ॥ ४५ ॥ विदितमनन्तसमस्तंतवजगदात्मनो जनैरिहाचरितम् ॥ विज्ञाप्यंपरमगुरोः किर्यादवसवितुरिव खद्योतैः ॥ ४६ ॥ नमस्तुभ्यंभगवते सकलजगत्स्थितिलयोदयेशायदुरवसितात्मगतयेकुयोगिनांभिदा परमहंसाय ॥ ४७ ॥ यंवैश्वसंतमनुविश्वसृजः श्वसन्तियंचेकितानमनुचित्तय उच्चकन्तिभूमण्डलसर्षपायति यस्यमूर्धिनतस्मैनमोभगवतेऽस्तुसहस्रमूर्ध्ने ॥ ४८ ॥ श्रीशुकउवाच संस्तुतोभगवानेवमनन्तस्तमभाषत । विद्याधरपतिंप्रीतश्चित्रकेतुंकुरूद्व

होने से राज सेवको का ॥ ३८ ॥ हे ईश ! जो विषय कामना भी आप के अर्पण कीजाय तो जैसे भूने हुए बीज दूसरे बीज को नहीं उत्पन्न कर सकते ऐसेही वह कामनाभी दूसरा देह नहीं उत्पन्न करसकती क्यों कि निर्गुण और ज्ञानमय आप के स्वरूप में ज्ञान के गुणो के हेतु जो सुख दुःखादिको के समूह होते हैं ॥ ३९ ॥ हे अजित ! निष्किञ्चन और आत्माराम सनकादिक मुनि भी मुक्ति के हेतु जिन को सेवते हैं ऐसा दोष रहित भगवत धर्म जिस समय आपने कहा उसी समयसे आपकी सबों जय होगई ॥४०॥ जो दूसरे काम्यधर्मों में 'मैंहूँ,तूहै' ऐसी विषयबुद्धि वैसी इस भागवत धर्म में नहीं रहती अत एव विषम बुद्धिसे रचाहुआ भगवत धर्म अशुद्ध, अनित्य और अधर्म रूप है ॥ ४१ ॥ इस विषम बुद्धि से क्या कुशल होगा अपने, पराये द्रोह वाले धर्मसे कौनसा धर्म होगा इस शरीरको अत्यन्त क्लेश देनेसे जैसे भगवान का कोप होताहै वैसेही दूसरे को पीडा देनेसे अधर्म और भगवत पीडा दोनेही होते है ॥ ४२ ॥ आपकी दृष्टि ने कि जिस से आपने भगवत धर्म कहा परमार्थ को नहीं त्याग किया क्यो कि चर अचर जीवो मेंसम बुद्धि रखने वाले भगवद्भक्त इसी धर्म का सेवन करतेहैं ॥ ४३ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे दर्शन से मनुष्यो के सब पाप नाश होजाय यह कुछ आश्चर्य नहीं है क्यों कि यदि आपके नाम को चाण्डाल भी एकबार सुने तो संसार से मुक्त होजाय ॥ ४४ ॥ हे भगवन् ! इसी से आपके अवलोकन से मेरे चित के मल दूर होगए, आपके भक्त नारदजीके कहमे अंतर कैसे पड़े ? ॥ ४५ ॥ हे अनन्त ! यहां कियेहुए लोगों के आचरण जगदात्मा आपको तो विदितही है, जैसे सूर्य के समीप खद्योत के प्रकाश की आवश्यकता नहीं वैसेही परम गुरु आप के आगे लोगों का प्रकाश करने की भी आवश्यकता नहीं ॥ ४६ ॥ सर्वसृष्टि के स्थिति, लय, उदय के करनेवाले जिनके तत्व को योगीजन भेद दृष्टि के हेतु नहीं जानते उन आपको नमस्कार है ॥ ४७ ॥ जिनके श्वास लेनेके पीछे प्रजापति भी श्वास लेते हैं जिनके जानने के पीछे ज्ञानेन्द्रिया भी जानती हैं तथा जिनके मस्तकपर यह समस्त भूमण्डल सरसों की समान रक्खाहै उन हजार मस्तकवाले भगवान आपको नमस्कार है ॥ ४८ ॥ शुकदेवजी बोलेकि हे राजन् ! चित्रकेतु के इसभांति स्तुति करने पर शेष भगवान ने प्रसन्न होकर

ह ४९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यन्नारदांगिरोभ्यां तेव्याहृतंमेऽनुशासनम् संसिद्धो ऽसितयाराजन्विद्यया दर्शनाच्चमे ॥ ५० ॥ अहंवैसर्वभूतानिभूतात्माभूतभावनः शब्द ब्रह्मपरब्रह्म ममाभेशाश्वतीतनू ५१ ॥ लोकेविततमात्मानलोकंचात्मानिसन्ततम् । उभ येचमयाव्याप्तमयिचैवोभयकृतम् ॥ ५२ ॥ यथासुषुप्तःपुरुषोविश्वंपश्यतचात्मनि । आ त्मानमेकदेशस्थमन्यतेस्वप्नवस्थितः ५३ एवंजागरणादीनिजीवस्थानानचात्मनः मायामात्राणिविज्ञायतद्द्रष्टारंपरंस्मरेत् ५४ ॥ येनप्रसुप्तःपुरुषः स्वापंवेदात्मनस्तदा सुखंचनिर्गुणंब्रह्मतमात्मानमवेहिमाम् ५५ उभयंस्मरतः पुंसः प्रस्वापप्रतिबोधयोः । अन्वेतिव्यतिरिच्येतयज्ज्ञानंब्रह्मतत्परम् ५६ यदेतद्विस्मृतंपुंसोमद्भावंभिन्नमात्मनः । ततः संसारएतस्यदेहोदेहोमृतेमृतिः ॥ ५७ ॥ लब्ध्वेहमानुषींयोनि ज्ञानविज्ञा- नसंभवाम् ॥ आत्मानंयोनबुध्येत न क्वचिच्छममाप्नुयात् ॥ ५८ ॥ स्मृत्वेहायां परिक्लेशंततः फलविपर्ययम् ॥ अभयंचाप्यनीहायां संकल्पाद्विरमेत्कविः ॥ ५९ ॥ सुखायदुःखमोक्षायकुर्वातेदम्पती क्रियाः ॥ ततोनिवृत्तिरप्राप्तिदुःखस्यच सुखस्य च ॥ ६० ॥ एवंविपर्ययंबुद्ध्वानृणां विज्ञाभिमानिनाम् ॥ आत्मनश्चगतिंसूक्ष्मां स्थानत्रयविलक्षणाम् ॥ ६१ ॥ दृष्टश्रुताभिर्मात्राभिर्निर्मुक्तः स्वेन तेजसा ॥ ज्ञानविज्ञानसंतुष्टो मद्भक्तःपुरुषो भवेत् ॥ ६२ ॥ एतावानेवमनुजैर्योगनैपुण्यबुद्धिभिः ॥ स्वार्थःसर्वात्मनाज्ञेयो यत्परात्मैकदर्शनम् ॥ ६३ ॥ त्वमेतच्छ्रद्धयाराजन्नप्रमत्तोव-

कहा ॥ ४९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे राजन्! नारद और अंगिरा ऋषिके किये उपदेश तथा मेरे दर्शन से तू सिद्ध हुआ ॥ ५० ॥ सम्पूर्ण प्राणीमात्र, सबका आत्मा, सबका कारण, मैंही हूं शब्द ब्रह्म और परब्रह्म यह दोनों मेरी नित्यमूर्ति हैं ॥ ५१ ॥ विवेकी को ऐसा ध्यान रखना चाहिये कि मैं सृष्टिमें और सृष्टि मुझमें व्यापरहा है तथा इनदोनों में परमात्मा व्याप रहे हैं और परमात्मामें मैं और यह सृष्टि दोनोंही कल्पित कियेगये हैं ॥ ५२ ॥ जैसे सोयाहुआ मनुष्य विश्वको आत्माही में देखता है और जागने परभी अपने आत्माको एक देशमें स्थित मानता है ॥ ५३ ॥ ऐसेही बुद्धि का जाग्रत और अवस्थायें भी मायामात्र हैं और उनका द्रष्टा आत्मा उन अवस्थाओं से न्यारा है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ५४ ॥ जिससे सोया हुआ जीव उस सोने के समय सोने के सुखको जानता है वह निर्गुण ब्रह्म मैं हूं ऐसे जान ॥ ५५ ॥ जो पुरुष इन दोनोंका स्मरण कर उसका प्रस्वाप और प्रतिबोध में प्रकाशित करके, जो सबमें प्रकाशित और नित्यन्यारा है वही ज्ञानरूप परब्रह्म है ऐसा तू जान ॥ ५६ ॥ जो मेरे इस ब्रह्मस्वरूपसे विस्मृतहोजाना है वह अपने निजस्वरूपसे भिन्न होजाता है और भिन्न होनेसेही मनुष्यको संसार प्राप्त होता है कि जि- समें बारम्बार जन्ममरण है ॥ ५७ ॥ इस मनुष्यशरीर को पाकर कि जिसमें ज्ञान और विज्ञान दोनों होनेका सम्भव है जिसने अपना स्वरूप नहीं पहिचाना उस कहींभी शांति नहीं मिलती ॥५८ प्रवृत्तिमार्ग में क्लेश और निवृत्तिमार्ग में मोक्ष है ऐसा विचार विवेकी पुरुषको निवृत्तमार्गका अव- लम्बन करना चाहिये ॥ ५९ ॥ स्त्री पुरुष सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्ति के हेतुजो कर्म क- रते हैं उन कर्मों से सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्ति नहींहोती ॥ ६० ॥ इसभांति पांडित्य का अहङ्कार रखनेवाले मनुष्य सुख दुःखके सम्बन्ध में धोखाखाते हैं महाराज! सूक्ष्म आत्मस्वरूप तीनों अवस्थाओं से विलक्षण है ऐसाजानकर ॥ ६१ ॥ ज्ञानबलसे इसलोक तथा परलोक के वि- षयों को त्याग ज्ञान तथा विज्ञान से सतुष्ट रह पुरुष को मेरी भक्ति करनी उचित है ॥६२॥ जि- नकी बुद्धियोगमें निपुण है उन मनुष्यों ने इतनाही परमपुरुषार्थ कहा है कि परब्रह्म का एकरूप से दर्शन होजाय ॥ ६३ ॥ हे राजन्! तू सावधान होकर मेरे इस बचनको धारणकर कि जिससे

चोमम । ज्ञानविज्ञानसंपन्नो धारयन्नाशुसिध्यासि॥६४॥श्रीशुकउवाच॥ आश्वास्य भगवानित्थं चित्रकेतुंजगद्गुरुः। पश्यतस्तस्यविश्वात्मातत्रश्चान्तर्दधेहरिः॥६५॥

इतिश्रीमद्भा० महा० षष्ठ० षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

श्रीशुकउवाच॥यतश्चांतर्हितोऽनन्तस्तस्यै कृत्वादिशेनमः। विद्याधरश्चित्रकेतुश्च चारगगनेचरः॥१॥सलक्षंवर्षलक्षाणामव्याहतबलेंद्रियः। स्तूयमानोमहायोगीमुनिभिःसिद्धचारणैः॥२॥कुलाचलेन्द्रद्रोणीषुनानासंकल्पसिद्धिषु।रेमेविद्याधरस्त्रीभिर्गापयन्हरिमीश्वरम्॥३॥एकदासविमानेन विष्णुदत्तेनभास्वता। गिरिशंददृशेगच्छन् परीतंसिद्धचारणैः ४ ॥ आलिंग्यांकीकृतांदेवीं बाहुनामुनिसंसदि। उवाचदेव्याः शृण्वन्त्याजहासोच्चैस्तदन्तिके॥५॥ चित्रकेतुरुवाच । एषलोकगुरुः साक्षाद्धर्मं वक्ताशरीरिणाम्। आस्तेमुख्यःसभायांवै मिथुनीभूयभार्यया ॥ ६ ॥ जटाधरस्तीव्रतपा ब्रह्मवादीसभापतिः अंगीकृत्यस्त्रियंचास्ते गतह्रीप्राकृतोयथा ॥ ७ ॥ प्रायशः प्राकृताश्चापि स्त्रियंरहसिबिभ्रति । अयंमहाव्रतधरोबिभर्ति सदसिस्त्रियम्॥ ८ ॥ भगवानपितच्छ्रुत्वाप्रहस्यागाधधीर्नृप । तूष्णींबभूवसदसिसभ्याश्चतदनुव्रताः ॥९ ॥ श्रीशुकउवाच इत्यतद्वीर्यविदुषिब्रुवाणे बह्वशोभनम्। रुषाह देवीधृष्टाय निर्जितात्माभिमानिने ॥ १० ॥ पार्वत्युवाच। अयंकिमधुनालोके शास्ता दण्डधरःप्रभुः। अस्मद्विधानांदुष्टानां निर्लज्जानांचविप्रकृत्॥११॥ नवेदधर्मंकिल

ज्ञान विज्ञानको प्राप्तहो शीघ्र मोक्षको पावे ॥ ६४ ॥ शुकदेवजी ने कहाकि–हे राजन्! इसभांति चित्रकेतु को उपदेश कर जगद्गुरु, विश्वात्मा भगवान शेषजी वहां से उसके देखते २ अंतर्ध्यान होगये ॥ ६५ ॥

इति श्रीमद्भा०महापु०षष्ठ०सरलाभाषाटीकायांषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि–जिस ओर शेषजी अंतर्ध्यान हुयेथे उस ओर को चित्रकेतु प्रणाम करके आकाश में विचरने लगा ॥ १ ॥ उसकी इन्द्रियोंका बल लाखों वर्षतक न घटा, उस महायोगी की स्तुति मुनि, सिद्ध, और चारण करते थे ॥ २ ॥ संकल्प मात्रसेही नाना सिद्धियों के देनेवाले सुमेरु की कंदराओं में वह चित्रकेतु निवास करता हुआ विद्याधरोंकी स्त्रियों के साथ हरिका स्मरण करता था ॥ ३ ॥ एक समय वह चित्रकेतु विष्णु भगवान के दियेहुये दीप्तवान विमान में बैठा हुआ जारहाथा, वहां सिद्ध और चारणों से वेष्टित महादेवजी को देखा ॥ ४ ॥ उस समय शिवजी मुनियों की सभाके मध्यमें पार्वती को गोदमें ले भुजासे उनका आलिंगन कियेहुये विराजमान थे ऐसा देख चित्रकेतु उनके निकट खड़ाहो देवीजी के सुनते हुए हंसकर बोला ॥५ ॥ चित्रकेतु ने कहाकि–कि महादेव लोकोंके गुरू और जीवोंको धर्मका उपदेश करनेवाले तथा सभामें मुख्य हैं परन्तु स्त्रीको संगलेकर बैठे हैं ॥ ६ ॥ जटाधारी, बड़े तपस्वी, वेदवक्ताओं के पति, यह महादेव प्राकृत पुरुष की समान लाज छोड़कर स्त्रीको गोदमें लेकर बैठे हैं ॥ ७ ॥ बहुधा प्राकृत लोगभी तो एकांत मेंही स्त्रीको धारण करते हैं परन्तु यह महा व्रतधारी सभाहीमें स्त्रीको साथ लेकर बैठे हैं ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे राजन्! अगाध बुद्धिवाले महादेवजी तो हसी के बचन सुनकर चुपहोगये और उनके अभिप्रायको जान सब सभासद भी चुपरहे ॥ ९ ॥ महादेव के पराक्रमको न जानने वाला, तथा जितेन्द्रियपनका अहंकार रखने वाला वह चित्रकेतु जब इस प्रकार ढीठपने की बातें करने लगा तब पार्वतीजी ने क्रोधित हो उससे ऐसे कहा ॥ १० ॥ पार्वती जी बोलीकि–क्या हमसरीखे दुष्ट, तथा निर्लज्जों को शिक्षा तथा दंडदेनेवाला और प्रतिकूल विचार करनेवाला यह चित्रकेतु प्रभु नियत हुआ है ॥ ११ ॥ ब्रह्मा, भृगु, नारद, सनत्कुमार, कपिलदेव, स्वायंभुमनु

पद्मयोनिर्न ब्रह्मपुत्रानतुनारदाद्याः । नवैकुमारःकपिलो मनुश्चयेनोनिषेधन्त्यति वर्तिनंहरम् ।१२। एषामनुध्येयपदाब्जयुग्मं जगद्गुरुंमङ्गलमंगलंस्वयम् ।यःक्षत्रबंधुः परिभूयसूरीन्प्रशास्ति धृष्टस्तदयंहिदंड्यः १३॥ नायमर्हतिवैकुण्ठपादमूलोपसर्पणम् । संभावितमतिस्तब्धः साधुभिःपर्युपासितम् ॥ १४॥ अत पापीयसींयोनिमासुरींयाहिदुर्मते । यथेहभूयोमहतां नकर्तापुत्रकिल्विषम् ॥ १५॥ श्रीशुकउवाच ॥ एवंशप्तश्चित्रकेतुर्विमानादवरुह्यसः । प्रसादयामाससतींमूर्ध्नानम्रेणभारत १६ ॥ चित्रकेतुरुवाच ॥ प्रतिगृह्णामितेशाप मात्मनोऽञ्जलिनाऽम्बिके ।देवैर्मर्त्याययत्प्रोक्त पूर्वदिष्टंहितस्यतत् ॥ १७॥ संसारचक्रएतस्मिंजंतुरज्ञानमोहितः । भ्राम्यन्सुखं चदुःखंचभुंक्तेसर्वत्रसर्वदा ॥ १८॥ नैवात्मानपरश्चापि कर्तास्यात्सुखदुःखयोः । कर्तारंमन्यतेप्राज्ञ आत्मानंपरमेवच ॥ १९ ॥ गुणप्रवाहएतस्मिन्कः शापःकोन्वनुग्रहः । कःस्वर्गोनरकःकोवा किंसुखंदुःखमेववा ॥ २० ॥ एकःसृजतिभूतानि भगवानात्ममायया । एषांबंधंचमोक्षंच सुखदुःखंचनिष्कलः ॥ २१ ॥ नतस्यकश्चिद्दयितः प्रतीपोनज्ञातिबन्धुर्नपरोनचस्वः । समस्यसर्वत्रनिरंजनस्य सुखेनरागः कुतएवरोषः ॥ २२ ॥ तथाऽपितच्छक्तिविसर्गएषां सुखायदुःखायहिताहिताय । बंधायमोक्षायचमृत्युजन्मनोः शरीरिणांसंसृतयेऽवकल्पते ॥ २३ ॥ अथप्रसादयेनत्वां शापमोक्षायभामिनी । यन्मन्यसेह्यसाधूक्तं ममतत्क्षम्यतांसति ॥ २४ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ इतिप्रसाद्यगिरिशौचित्रकेतुररिन्दम । जगामस्वविमानेनपश्यतोःस्मयतोस्तयोः २५ ततस्तुभगवान्रुद्रो रुद्राणीमिदमब्रवीत् । देवर्षिदैत्यसिद्धानां पार्षदानांचशृण्व

यह तो धर्मको जाननेहारा नहीं, किंतु शास्त्रके प्रतिकूल चलने वाले इन शिवजी को नहीं मनाकरते ॥ १२ ॥ जगत्के गुरु, धर्ममूर्त्ति, ब्रह्मादिक भी जिनके चरणोंका ध्यान करते है ऐसे महादेवको यह नीचक्षत्री शिक्षा देता है, इससे यही शिक्षाके योग्य है ॥ १३ ॥ आपनेको श्रेष्ठ मानने वाला यह चित्रकेतु भगवान के चरणों के निकट रहने योग्य नहीं है ॥ १४ ॥ अतएव हे दुष्ट ! पापी ! तू आसुरी योनिमें जा, हे पुत्र ! जिसमें तू साधुओं का अपराध न करै ॥ १५ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हे राजान् ! इस प्रकार से शाप पायाहुआ वह चित्रकेतु विमान से उतर, शिरझुका देवी से क्षमा मांगनेलगा ॥ १६ ॥ चित्रकेतु बोलाकि—हे अम्ब ! मैं आपका शाप अंजली से ग्रहण करता हू क्योंकि देवता मनुष्यको जोकुछ कहैं वह उसके भाग्य मेंही प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ इस संसार चक्रमें घूमता हुआ जीव अज्ञान से मोहितहो सबकाल और सब देशमें सुख और दुःखको भोगाही करता है ॥ १८ ॥ सुख दुःखका कर्त्ता आत्मा नहीं है परन्तु अज्ञानी मनुष्य आपनेही को कर्त्ता मानता है ॥ १९ ॥ इस संसारमें शाप, अनुग्रह, नर्क, स्वर्ग, दुःख और सुख यह कुछभी नहीं है ॥ २० ॥ देहादिक से रहित एक परमेश्वरही माया से प्राणियों को तथा उनके मोक्षबंध, सुख और दुःखको रचता है ॥ २१ ॥ समदर्शी, निःसंग भगवान का कोई प्रिय, अप्रिय वैरी, बंधु, अपना, पराया कोई भी नहीं है इनके सुखमें प्रीति नहींहै फिर प्रीतिसे होनेवाला क्रोध कहां से होवें ॥ २२ ॥ तौभी इन प्रभुकी मायाके विसर्ग से पाप पुण्य आदिक कर्महीं जीवके सुख दुःख बन्ध मोक्ष, मृत्यु जन्म रूप संसार के देनेको समर्थ होते हैं ॥ २३ ॥ इससे यह जो क्षमा मांगता हू वह शाप निवृत्ति के हेतु नहीं, किंतु हितको आप अहित मानकर बुरामानती हो उस के लिये क्षमा मांगताहूं ॥२४॥ शुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! वह चित्रकेतु महादेव और पार्वती को प्रसन्नकर विमानमें बैठ विस्मय से दोनों के देखतेर वहां से चलागया ॥२५॥ तदनंतर शिवजी ने पार्वती, देवता, ऋषीश्वर, दैत्य और पार्षदों के सुनते यह कहा कि ॥२६ ॥ हे सुश्रोणी ! अद्भुत

साम् ॥ २६ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ दृष्टवत्यसि सुश्रोणि हरेरद्भुतकर्मणः । माहात्म्यं भृत्य भृत्यानां निःस्पृहाणां महात्मनाम् ॥ २७ ॥ नारायणपराः सर्वे नकुतश्चनबिभ्यति । स्वर्गापवर्गनरकेष्वपितुल्यार्थदर्शिनः ॥२८॥ देहिनांदेहसंयोगाद्द्वन्द्वानीश्वरलीलया । सुखंदुःखंमृतिर्जन्मशापोनुग्रहएवच ॥ २९ ॥ अविवेककृतःपुंसोह्यर्थभेद इवात्मनि । गुणदोषविकल्पश्च भिदेवस्रजिवत्कृतः ॥ ३० ॥ वासुदेवेभगवतिभक्तिमुद्वहतांनृणाम् । ज्ञानवैराग्यवीर्याणां नेहकश्चिद्व्यपाश्रयः ॥ ३१ ॥ नाहंविरिंचोन कुमारनारदौनब्रह्मपुत्रामुनयःसुरेशाः । विदामयस्येहितमंशकांशका नतत्स्वरूपं पृथगीशमानिनः ॥ ३२ ॥ नह्यस्यास्तिप्रियः कश्चिन्नाप्रियःस्वः परोऽपिवा । आत्मत्वात्सर्वभूतानां सर्वभूतप्रियोहरिः ॥ ३३ ॥ तस्यचायंमहाभाग श्चित्रकेतुःप्रियोऽनुगः । सर्वत्रसमदृक्शान्तोह्यहंचैवाच्युतप्रियः ॥ ३४ ॥ तस्मान्नविस्मयःकार्यःपुरुषेषुमहात्मसु । महापुरुषभक्तेषु शान्तेषुसमदर्शिषु ॥ ३५ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ इति श्रुत्वाभगवतः शिवस्योमाऽभिभाषितम् । बभूवशान्तधीराजन्देवीविगतविस्मया ३६ ॥ इतिभागवतोदेव्याःप्रतिशप्तुमलंतमः । मूर्ध्नासंजगृहेशापमेतावत्साधुलक्षणम् ॥ ३७ ॥ जज्ञेत्वष्टुर्दक्षिणाग्नौ दानवींयोनिमाश्रितः । वृत्रइत्यभिविख्यातोज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ ३८ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यन्मांत्वंपरिपृच्छसि । वृत्रस्यासुरजातेश्च कारणंभगवन्मतेः ॥ ३९ ॥ इतिहासमिमंपुण्यंचित्रकेतोर्महात्मनः । माहात्म्यंविष्णुभक्तानांश्रुत्वाबन्धाद्विमुच्यते ॥४०॥ यएतत्प्रातरुत्थायश्रद्धयावाग्यतःपठेत् । इतिहासंहरिंस्मृत्वासयातिपरमांगतिम् ॥ ४१ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०षष्ठस्कं०सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

कर्म वाले भगवान के निःस्पृह और साधु दासों के दासों की महिमा तुमनें देखी ॥२७॥ स्वर्ग मोक्ष और नरक का भी तुल्य देखनें वाले हरिदास किसी से नहीं डरते ॥ २८ ॥ प्राणियों को देह संयोग के हेतु ईश्वर की लीला सेही सुख दुख, मरण जन्म शाप और अनुग्रह होतेहैं ॥ २९ ॥ इन द्वन्द्वों में जो इष्ट और अनिष्ट कासा गिनाजाता है वह सब पृथक् पन स्वप्ना वस्था के पदार्थों की सदृश और माला मे सर्प भेदकी सदृश केवल मिथ्या है ॥ ३० ॥ भगवत भक्ति करनेंवाले तथा ज्ञान विज्ञान का बल रखनेंवाले मनुष्योंके कोईभी वस्तु विशिष्ट बुद्धि से आश्रय नलेके योग्य नहीहै ३१॥ मैं (शिव) ब्रह्मा, सनत्कुमार, नारद, ब्रह्मा के पुत्र मुनि और देवता यह सब हरि कलाके कला रूप हैं तौभी पृथक् २ ईश्वरता का अहंकार होनेके कारण हरि के अभिप्राय को नहीं जानते फिर स्वरूप को क्या जानेंगे ॥ ३२ ॥ हरि के प्रिय, अप्रिय, अपना पराया कोईभी नहीहै वह स्वयं सब प्राणियों के आत्मा होनेक कारण सबको प्यारे हैं ॥ ३३ ॥ भाग्यशाली, समदर्शी और शांत चित्रकेतु उन्हीं हरि का प्रिय सेवक है और मैंभी हरि को भजता हूं ॥ ३४ ॥ अतएव हरि भक्त, समदर्शी, शांत, साधुजनों के हेतु कुछभी विस्मय नकरना चाहिये ॥ ३५ ॥ शुकदेवजी बोलें कि-हे महाराज ! शिवजी के इस भांति के वचन सुनकर पार्वती शांतहुई और उनका विस्मय दूरहुआ ३६ वह हरि भक्त यद्यपि शाप देनेको समर्थ था तौभी उसने पार्वतीके शाप को शिरपर चढ़ाया, यही साधुओं का लक्षण है ॥ ३७ ॥ ज्ञान विज्ञान युक्त चित्रकेतु त्वष्टा की दक्षिणाग्नि से दानवी योनि में प्राप्तहुआ वहां उसका वृत्रासुर नाम हुआ ॥ ३८ ॥ असुर जाति वृत्रासुर की बुद्धि के भगवानमें रहनें का कारण जो तुमनें पूछा वह मैनें कहा ॥ ३९ ॥ चित्रकेतु महात्मा का यह पवित्र इतिहास, और साधुओं का माहात्म्य जो सुनेंगें वह संसार बंधन से मुक्त होजायंगे ॥ ४० ॥ प्रातः काल में उठ, मौन धारणकर हरि भजन करता हुआ जो मनुष्य श्रद्धा युक्त इस इतिहास का पाठ करता है वह श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० षष्ठस्कं० सरला भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

॥श्रीशुकउवाच॥ पृश्निस्तु पत्नीसवितुः सावित्रींव्याहृतीं त्रयीम् ॥ अग्निहोत्रं पशुंसोमंचातुर्मास्यं महामखान् ॥ १॥ सिद्धिर्भगस्यभार्याङ्गमहिमानं विभुंप्रभुम् ॥ आशिषंचवरारोहांकन्यां प्रासूतसुव्रताम् ॥ २ ॥ धातुः कुहूः सिनीवालीराका चानुमतिस्तथा ॥ सायंदर्शमथप्रातः पूर्णमासमनुक्रमात् ॥ अग्नीन्पुरीष्यानाधत्त क्रियायांसमनन्तरः ॥ ३ चर्षणीवरुणस्यासीद्यस्यां जातोभृगुः पुनः ॥ वाल्मीकिश्चमहायोगीवल्मीकादभवत्किल ॥ ४ ॥ अगस्त्यश्चवसिष्ठश्च मित्रावरुणयोर्ऋषी ॥ रेतः सिषिचतुः कुम्भेउर्वश्याः सन्निधौद्रुतम् ॥ ५ ॥ रेवत्यांमित्रउत्सर्गमरिष्टंपिप्पलं व्यधात् ॥ ६ ॥ पौलोम्यामिन्द्रआधत्तत्रीन्पुत्रानितिनः श्रुतम् ॥ जयन्तमृषभंतात तृतीयंमीढुषं प्रभुः ॥ ७ ॥ उरुक्रमस्यदेवस्य मायावामनरूपिणः ॥ कीर्तौपत्न्यां बृहत्श्लोकस्तस्यासन्सौभगादयः ॥ ८ ॥ तत्कर्मगुणवीर्याणिकाश्यपस्य महात्मनः ॥ पश्चाद्वक्ष्यामहेऽदित्यांयथैवावततारह ॥ ९ ॥ अथकश्यपदायादान्दैतेयान्कीर्तयामिते ॥ यत्रभागवतः श्रीमान्प्रह्लादोबलिरेवच ॥ १० ॥ दितेर्द्वावेवदायादौ दैत्यदानववन्दितौ ॥ हिरण्यकशिपुर्नामहिरण्याक्षश्च कीर्तितौ ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपोर्भार्याकयाधुर्नामदानवी ॥ जम्भस्यतनयादत्तासुषुवेचतुरः सुतान् ॥ १२॥ संह्लादंप्रागनुह्लादंह्लादंप्रह्लादमेवच ॥ तत्स्वसा सिंहिकानामराहुं विप्रचित्तोऽग्रहीत् ॥ १३॥ शिरोऽहरद्यस्यहरिश्चक्रेण पिबतोऽमृतम् ॥ संह्लादस्यकृतिर्भार्याऽसूत पञ्चजनंततः ॥ १४ ॥ ह्लादस्यधमनिर्भार्याऽसूत वातापिमिल्वलम् ॥ योऽगस्त्याय त्वतिथयेपेचेवातापिमिल्वलम् ॥ १५॥ अनुह्लादस्यसूर्म्यांभार्यायांबाष्कलो महिषस्तथा ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! सविताकी स्त्री पृश्निमें गायत्री, व्याहृति, वेदत्रयी, अग्निहोत्र, पशुयाग, सोमयाग, चातुर्मास्य, और बड़े यज्ञों के देवता यह पुत्रहुए ॥ १ ॥ महाराज! भग की सिद्धि नाम पत्नी में महिमा, विभु, और प्रभु तथा सुभाचारणी आशिष नाम एक पुत्रीहुई २॥ धाता के कुहू नाम पत्नी में सायं नाम पुत्रहुआ, सिनीवाली में दर्श, राका में प्रातर अनुमति मे पूर्णमास उत्पन्न हुआ और विधाता के क्रिया नाम पत्नीमें पुरीष्य नाम अग्नि पुत्र हुआ ॥ ३ ॥ वरुणकी चर्षणी स्त्री में ब्रह्मा के पुत्र भृगुनें फिर जन्म लिया, और उसी से महायोगी बाल्मीकजीहुए ॥४॥ मित्र और वरुणनें उर्वसी के निकट गिरेहुए वीर्य्य को कलश में रक्खा कि जिससे अगस्त और वशिष्ट हुए ॥ ५ ॥ मित्र देवता की रेवती स्त्री में अरिष्ट उत्सर्ग और पिप्पल उत्पन्न हुए ॥६॥ इन्द्र की पौलोमी स्त्री में जयंत ऋषभ और मीढुष यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए ऐसा हमनेंसुना है ॥ ७ ॥ माया से वामन रूप धरनेंवाले उरुक्रमदेवकी कीर्ति स्त्री में बृहत श्लोक और बृहत श्लोक के भगादिक उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ कश्यपजी के पुत्र महात्मा वामनजी का कर्म पराक्रम अष्टमस्कंध में कहेंगे। ॥ ९ ॥ अब कश्यपजी के पुत्र दैत्यों को कहता हूं कि जिन दैत्योंमें महाभागवत प्रह्लाद और बलि हुए ॥१०॥ दिति के दो पुत्र हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष हुए कि जिनकी वंदना सब दैत्य दानव करतेथे ॥ ११ ॥ जंभ दानव की पुत्री कयाधू नाम स्त्री में हिरण्यकश्यप के चार पुत्रहुए ॥ १२ ॥ सल्हाद, अनुह्लाद, ह्लाद, और प्रह्लाद औरइनके सिंहिका नाम बहिन हुई कि जिसका ब्याह विप्रचिति दानव से हुआ और जिसके राहु पुत्रहुआ ॥ १३ ॥ यह राहु अमृत पीताथा तब हरि नें चक्र से इसका शिर उड़ादिया, संह्लाद की कृति नाम भार्या में पंचजन नाम पुत्रहुआ ॥ १४ ॥ ह्लादकी धमनी भार्या से वातापि और इल्वल हुए इल्वलनें वातापि को मेढा बना उसका मांस अगस्तजी को खुलादियाथा ॥ १५ ॥ अनुह्लादकी सूर्मी स्त्रीमें बाष्कल और और महिष हुए, प्रह्लाद के वि

विरोचनस्तुप्राह्रादिर्देव्यास्तस्यामभवद्बलिः ॥ १६ ॥ बाणज्येष्ठंपुत्रशतमशनायांततो-ऽभवत् ॥ तस्यानुभावः सुश्लोक्यः पश्चादेवाभिधास्यते ॥ १७ ॥ बाणआराध्य गिरिशंलेभेतद्गणमुख्यताम् ॥ यत्पार्श्वेभगवानास्तेह्यद्यापि पुरपालकः ॥ १८ ॥ मरुतश्चदितेःपुत्रा श्चत्वारिंशन्नवाधिकाः । तआसन्नप्रजा सर्वे नीताइन्द्रेणसात्मताम् ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ कथंतआसुरंभावमपोह्यौत्पत्तिकंगुरो । इन्द्रेणप्रापिताः सात्म्यंकिंतत्साधुकृतंहितैः ॥ २० ॥ इमेश्रद्दधतेब्रह्मन्नृषयोहिमयासह । परिज्ञानायभगवंस्तन्नोव्याख्यातुमर्हसि ॥ २१ ॥ सूतउवाच ॥ तद्विष्णुरातस्यसबादरायणिर्वचो निशम्यादृतमल्पमर्थवत् । सभाजयन्संनिभृतेनचेतसा जगादसत्रायण सर्वदर्शन ॥२२॥ श्रीशुकउवाच ॥ हतपुत्रादितिःशक्रपार्ष्णिग्राहेणविष्णुना ॥ मन्युनाशोकदीप्तेन ज्वलंतीपर्यचिंतयत् ।२३। कदानुभ्रातृहंतारमिन्द्रियारामपुल्बणम् । अक्लिन्नहृदयंपापं घातयित्वाशयेसुखम् ॥२४॥ कृमिविड्भस्मसंज्ञासीद्यस्येशाभिहितस्यच । भूतध्रुक्तत्कृतेस्वार्थं किंवेदनिरयोयतः ॥२५॥ आशासानस्यतस्येदं ध्रुवमुन्नद्धचेतस । मदशोषकइंद्रस्यभूयाद्येनसुतोहिमे ॥ २६ ॥ इतिभावेनसाभर्तुराचचारासकृत्प्रियम् । शुश्रूषयाऽनुरागेण प्रश्रयेणदमेनच ॥ २७ ॥ भक्त्यापरमयाराजन्मनोज्ञैर्वल्गुभाषितैः । मनोजग्राहभावज्ञा सुस्मितापांगवीक्षणैः ॥ २८ ॥ एवंस्त्रिया जडीभूतो विद्वानपिविदग्धया । बाढमित्याहविवशो नतच्चित्रंहियोषिति ॥ ॥२९॥ विलोक्यैकांतभूतानि भूतान्यादौप्रजापतिः । स्त्रियंचक्रेस्वदेहार्धं ययापुंसांमतिर्हृता ।३०। एवंशुश्रूषितस्तात भगवान्कश्यपःस्त्रिया प्रहस्यपरमप्रीतोदितिमाहाभि

रोचन और विरोचन के बलि नाम पुत्र हुआ ॥ १६ ॥ बलिकी अशना भार्या में बाणआदि शतपुत्र हुए, उस बलिका प्रभाव अष्टमस्कंध में कहेंगे ॥ १७ ॥ बाणासुर ने महादेवजी का आराधन कर उनके गणों में मुख्यता प्राप्तकी, कि जिस बाणासुर के पुरका महादेवजी अबतक पहरादते हैं ॥ १८ ॥ दितिके पुत्र ४९ मरुत देवता भी हैं वह संतान रहित हैं इससे इन्द्रने उन्हें देवता बनालिया है ॥ १९ ॥ राजा परीक्षित ने कहाकि हेगुरू ! किस सत्कर्म से ये मरुद्गण आसुरी भावको त्याग देवता पनको प्राप्तहुये ॥ २० ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरेसंग के ऋषियों कोभी इस बातके जानने की इच्छा है इससे आप कहिये ॥ २१ ॥ सूतजी ने कहाकि हे शौनक ! राजा परीक्षित का आदर युक्त वचनसुन सर्वज्ञ शुकदेवजी ने आनंदित चित्तसे उस का सत्कार करके कहा ॥ २२ ॥ शुकदेवजी बोलेकि-इन्द्रके सहाय होकर हरिने जिसके पुत्रोंको मारा है ऐसी शोक से विह्वल, दिति विचार करने लगीकि ॥ २३ ॥ भाइयों के बध कराने वाले, निर्दयी, विषयासक्त इन्द्रका मरवाकर कबमैं सुखसे सोऊंगी ॥ २४ ॥ महाराज कहलाने पर भी जोशरीर अंतमें कीड़ा, विष्ठा और भस्मरूप हुआ करताहै उस शरीर के हेतु जीवोंका द्रोही मनुष्य, क्या अपने स्वार्थको जानता है ? नहीं जानता, क्योंकि जीवोंके द्रोहसे नरक होता है ॥ २५ ॥ देह को नित्य मानने वाला, उन्मत्त चित्त इन्द्रके मदको नाश करनेवाला मेरेपुत्र होवे ॥ २६ ॥ ऐसा विचार करादिति अपने भर्त्ता कश्यपको बारबार प्रसन्न करने लगी, सेवा, स्नेह, भक्ति, कोमल भाषण, मंदहास्य और कटाक्ष सहित अवलोकनसे कश्यपके मनको अभिप्रायके जानने वाली दितिनेवश मे किया ॥ २७ ॥ महापंडित कश्यप मुनिने भी इस स्त्री के बशहो उसके मनोरथ के पूर्णकरने की प्रतिज्ञा की, स्त्रियों के सन्मुख यह होनाकुछ आश्चर्य थोड़ाहै ॥ २९ ॥ प्रजापति ब्रह्माजी ने प्राणियों को निःसंग देखकर अपने आधे शरीर कोही स्त्री रूप बनाया था-कि जिस स्त्री ने पुरुषों कीमति हरली है ॥ ३० ॥ हे तात ! दितिने जिनकी टहल की है ऐसे कश्यपजीने परम प्रसन्नहो सन्मान

मैथच।३१कश्यपउवाच॥वरंवरयवामोरु प्रीतस्तेऽहमानिन्दिते॥स्त्रियाभर्तरिसुप्रीते कःकामइहचागमः॥३२॥पतिरेवहिनारीणांदैवतंपरमं स्मृतम् ॥ मानसः सर्वभूतानां वासुदेवः श्रियः पतिः ॥३३॥ सएवदेवतालिङ्गैर्नामरूपविकल्पितैः ॥ इज्यतेभगवा न्पुंभिः स्त्रीभिश्चपतिरूपधृक् ॥ ३४ ॥ तस्मात्पतिव्रतानार्यः श्रेयस्कामः सुमध्यमे ॥ यजन्तेऽनन्यभावेन पतिमात्मानमीश्वरम्॥३५॥सोऽहंत्वयार्चितोभद्रे ईदृग्भावेनभ क्तितः।तत्तेसंपादयेकाममसतीनांसुदुर्लभम्॥३६॥ दितिरुवाच। वरदोयदिमेब्रह्मन् पुत्रमिन्द्रहणंवृणे। अमृत्युमृतपुत्राहयेनमेघातितौसुतौ॥३७॥निशम्यतद्वचोविप्रोवि मनाःपर्यतप्यत । अहोअधर्मःसुमहानद्यमेसमुपस्थितः ॥३८॥ अहोअर्थेन्द्रियारामो योषिन्मय्येहमायया ॥ गृहीतचेताःकृपणः पतिष्येनरकेध्रुवम् ॥ ३९ ॥ कोऽतिक्र मोऽनुवर्तन्त्याः स्वभावमिहयोषितः।धिङ्मांबताबुधंस्वार्थेयदहंत्वजितेन्द्रियः॥४० शरत्पद्मोत्सवंवक्त्रं वचश्चश्रवणामृतम् । हृदयंक्षुरधाराभं स्त्रीणांकोवेदचेष्टित म् ॥ ४१ ॥ नहिकश्चित्प्रियःस्त्रीणामंजसास्वाशिषात्मनाम् । पतिंपुत्रंभ्रातरंवाघ्नन्त्य र्थेघातयन्तिच ॥ ४२ ॥ प्रतिश्रुतंददामीतिवचस्तन्नमृषाभवेत् ।बधनार्हतिचेन्द्रोऽ पितत्रेदमुपकल्पते ॥ ४३ ॥ इतिसंचिन्त्यभगवान्मारीचःकुरुनन्दन । उवाचकिंचि त्कुपितआत्मानंचविगर्हयन्॥ ४४ ॥ कश्यपउवाच॥ पुत्रस्तेभविताभद्रे इंद्रहादेव बांधवः।संवत्सरंव्रतमिदं यद्यंजोधारयिष्यसि ॥ ४५ ॥ दितिरुवाच धारयिष्येव्र तंब्रह्मन्ब्रूहिकार्याणियानिमे । यानिचेहनिषिद्धानिनव्रतंघ्नन्तियानितु॥४६॥ कश्य

करके दितिसे यह कहा ॥ ३१ ॥ कश्यपजी बोलेकि–हे वामोरू ! हे अनिंदिते ! तू मुझसे वरमांग मैं तुझपर प्रसन्न हुआहू, स्वामीके प्रसन्न होनेपर स्त्रीको इस लोक तथा परलोक में कौनसा पदार्थ दुर्लभ है ॥ ३२ ॥ स्त्री कातो पतिही परम देवता है सम्पूर्ण प्राणियों के मनमें स्थित लक्ष्मी पति वासुदेव भगवान देवताओं की मूर्तिरूप से देखने में आते हैं ॥ ३३ ॥ पुरुष इन्हीं भगवानको पृथक् २ नामरूप से कल्पित की हुई इन्द्रादि देवताओं की मूर्तिरूप से पूजत हैं और स्त्रियां पति रूप से पूजती हैं ॥ ३४ ॥ हे सुमध्यमे ! स्नेह की कामना वाली पतिव्रता स्त्रियां एक भावसे पतिरूप भगवान काही पूजन करती हैं ॥ ३५ ॥ हे भद्रे ! तूनेभक्ति भावसे मेरापूजाकी है अतएव असती स्त्रियों को दुर्लभ ऐसी तेरी कामना पूरी करूगा ॥ ३६ ॥ दिति ने कहा कि–हे ब्रह्मन् ! जो वर देने होतो इन्द्र को मारने वाला अमर पुत्र मांगती हू क्यों कि इस ह्रीने मेरे दोपुत्र मारे हैं ॥ ३७ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि–दितिका वचन सुनतेही कश्यप जी का मन बिगड़ गया और पछिताने लगे कि हाय ! मुझ से आज बड़ा अधर्म हुआ ॥ ३८ ॥ मुझ बिषया सक्तको स्त्री मयी मायाने मोहित किया मैं कृपण निश्चयही नरकमें गिरूंगा ॥ ३९ ॥ स्त्रीतो अपने स्वभावको वर्तती है उसका क्या अपराध है मुझीको धिक्कार है किजो स्वार्थ को न जाना और इन्द्रियों को न जीता ॥४०॥ इनकामख शरद के कमलकी समान सुंदर और वचन कानके लिये अमृतकी समान होते हैं परन्तु हृदय छुरेकी धारसेभी अधिकपैना होताहै॥४१॥ स्त्रियोंको कोई प्यारामहीं यह अपनेही स्वार्थको चाहती हैं अपनही स्वार्थ के हेतु यह अपने पति पुत्र और भ्राता का घातकरा डालती हैं ॥ ४२ ॥ मैंने वर देनेकी प्रतिज्ञाकी है वह झूठा न होवे और इन्द्र बध के योग्य नहीं है यह शोचकर विचार करने लगे ॥ ४३ ॥ हे कुरुनदन ! ज्ञानवान कश्यपजी यह बिचार कर कुछ कुपित हो अपनी निंदा करते हुये यह बोले ॥४४॥ कश्यपजी बोले कि हे भद्रे ! इस व्रतको यथा यागयजो एक बर्ष तक धारण करगी तो तेरे इन्द्र का मारने वाला पुत्र होगा और जो व्रतमें दोष होगा तो वह देवताओं का बधु होजायगा ॥ ४५ ॥ दिति बोली कि–हे ब्रह्मन् ! मैं व्रतको धारण करूंगी उस व्रतमें करने योग्य और न करने योग्य कर्मों को आप कहिये ॥ ४६ ॥ कश्यपजी

पदवाच ॥ नहिंस्याद्भूतजातानि नशपेन्नानृतंवदेत् । नच्छिंद्यान्नखरोमाणि नस्पृशे यदमङ्गलम् ॥ ४७ ॥ नाप्सुस्नायान्नकुप्येत नसंभाषेतदुर्जनैः। नवसीतांधौतवास. स्रजंचाविधृतांक्वचित् ॥ ४८ ॥ नोच्छिष्टंचण्डिकान्नंच सामिषंवृषलाहृतम् । भुञ्जीतोदक्ययादृष्टं पिबेदंजलिनात्वपः ॥४९॥ नोच्छिष्टास्पृष्टसलिलासंध्यायांमुक्तमूर्द्धजा। अनर्चितासंयतवाङ्नासंवीता बहिश्चरेत् ॥५०॥नाधौतपादाऽप्रयता नार्द्रपान्नी उदक्शिराः । शयीतनापरांनान्यैर्ननग्नानचसंध्ययोः ॥ ५१ ॥ धौतवासा शुचिर्नित्यंसर्वमंगलसंयुता । पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्गोविप्रांश्रियमच्युतम् ॥ ५२ ॥ स्त्रियो वीरवतीश्चार्चेत्स्रग्गन्धबलिमण्डनैः । पतिंचार्च्योपतिष्ठेतध्यायेत्कोष्ठगतंचतम् ॥५३॥ सांवत्सरंपुंसवनव्रतमेतदविप्लुतम् । धारयिष्यसिचेत्तुभ्यं शक्रहाभवितासुतः ॥५४ बाढमित्यभिप्रेत्याथ दितीराजन्महामनाः । काश्यपंगर्भमाधत्तव्रतंचांजोदधारसा ॥ ५५ ॥ मातृष्वसुरभिप्रायमिंद्रआज्ञायमानद । शुश्रूषणेनाश्रमस्थांदितिंपर्यचरत्कविः ॥ ५६ ॥ नित्यंवनात्सुमनसःफलमूलसमित्कुशान् । पत्रांकुरमृदोपश्चकाले कालउपाहरत् ॥ ५७॥ एवंतस्याव्रतस्थायाव्रतच्छिद्रंहरिर्नृप । प्रेप्सुःपर्यचरज्जिह्मो मृगहेवमृगाकृतिः ॥ ५८ ॥ नाध्यगच्छद्व्रतच्छिद्रं तत्परोथमहीपते । चिंतांतीव्रांगतःशक्रः केनमेस्याच्छिवंत्विह ॥ ५९ ॥ एकदासातुसंध्यायामुच्छिष्टाव्रतकर्शिता । अस्पृष्टवार्यधौतांघ्रिः सुष्वापविधिमोहिता ॥ ६० ॥ लब्ध्वातदन्तरंशक्रो निद्राऽपहृतचेतसः ॥ दितेः प्रविष्टउदरंयोगेशो योगमायया ॥ ६१ ॥ चकर्तसप्तधागर्भं

बोले कि—किसी जीव को न मारना, न शाप देना, झूठ न बोलना, नख तथा रोम को न काटना, अमंगल वस्तु का स्पर्श न करना ॥ ४७ ॥ जल में घुसकर स्नान, क्रोध तथा दुष्टजनों से बार्त्ता आदि न करना, बिना धोये वस्त्र न पहिरना, पहिले पहनी हुई मालाको न पहिनना ॥ ४८ ॥ जूठा भोजन, चण्डिका का प्रसाद, मांस सहित पकाहुआ तथा शूद्र का देखा अन्न न खाना, और अंजली से जल न पीना ॥ ४९ ॥ जूठे मुख बिना मुख धोये, संध्या समय, बालखुले छोड़ कर, बिना शृंगार किये, वाणीको बिना नियममें रक्खे तथा बिना चादर ओढ़े बाहर न जाना ॥ ५० ॥ पांव बिना धोये, बिना सावधानरहे, भीगेपांव, उत्तरको ओर शिर और पश्चिमकी ओर माथा करके तथा सन्ध्याकालमें, व किसीका स्पर्श कियेहुए न सोना ॥ ५१ ॥ धोयेहुए वस्त्र पहिन, पवित्ररह सब मङ्गल पदार्थों से युक्तरहना और भोजन करने के पहिले गौ, ब्राह्मण, लक्ष्मी और भगवानकी पूजा करना ॥ ५२ ॥ सौभाग्यवती स्त्रियोंकी चंदन, फूल और आभूषणों से पूजाकरनी, पतिका पूजनकर हृदय मे उसका ध्यानकरना ॥ ५३ ॥ पुत्र उत्पन्नकरनेवाले इस पुंसवन व्रत को जो एक वर्षतक धारण करोगी तो तेरे इंद्रको मारनेवाला पुत्र होगा ॥ ५४ ॥ हेराजन्! दिति ने प्रसन्नहो सबबातों को स्वीकारकर कश्यपजी से गर्भधारणकिया, और उस अखण्डव्रतका पालन करनेलगी ॥ ५५ ॥ हेराजा! ज्ञानवान इंद्र अपनी मौसीका अभिप्रायजान उसके आश्रम में आ भक्तिपूर्वक सेवा करने लगा ॥ ५६ ॥ वह नित्यवन में जा समय २ पर फूल, फल, मूल, कुशा, मिट्टी और जल ला दियाकरे ॥ ५७ ॥ वह कपटी इन्द्र जैसे मृगको वेषकरके शिकारी रहता है ऐसेही वहांरहकर व्रतकरनेवाली दितिका छिद्र देखताहुआ उसकी टहलकरनेलगा ॥५८॥ परन्तु हेराजा! इन्द्रको दितिके व्रतका छिद्र न मिला, तब बड़ी चिन्ताको प्राप्तहो कहनेलगा कि मेरा कल्याण कैसे होगा? ॥ ५९ ॥ एक दिवस व्रतसे कर्षित और विधि (दैव) से मोहित दिति जूठेमुख और बिनापाव धोये संध्याकोसोरही ॥ ६० ॥ यह अवसर इंद्र निद्रासे अचेत दिति के उदर में अपनीयोगमाया के बल से घुसा ॥ ६१ ॥ उन्होंने वहांजा सुवर्णकीसी कांतिवाले गर्भ

वज्रेणकनकप्रभम् ॥ रुदन्तंसप्तधैकैकं मारोदीरितितान्पुनः ॥६२॥ तेतमूचुः पाट्यमानाः सर्वेप्राञ्जलयोनृप ॥ नोजिघांससिकिमिन्द्र भ्रातरोमरुतस्तव ॥ ६३ ॥ माभैष्टभ्रातरोमह्यं यूयमित्याहकौशिकः ॥ अनन्यभावान्पार्षदानात्मनो मरुतांगणान् ॥ ६४ ॥ नममारदितेर्गर्भः श्रीनिवासानुकम्पया ॥ बहुधाकुलिशक्षुण्णो द्रौण्यस्त्रेणयथाभवान् ॥ ६५ ॥ सकृदिष्ट्वादिपुरुषं पुरुषोयातिसाम्यताम् । संवत्सरंकिंचिदूनंदित्यायद्धरिरर्चितः ॥ ६६ ॥ सजूरिंद्रेणपंचाशद्देवास्तेमरुतोऽभवन् । व्यपोह्यमातृदोषंतेहरिणासोमपाः कृताः ॥६७॥ दितिरुत्थायददृशे कुमारानऽनलप्रभान् । इन्द्रेणसहितांदेवी पर्यतुष्यदनिंदिता ॥ ६८ ॥ अथेंद्रमाहताताहमादित्यानांभयावहम् । अपत्यमिच्छन्त्यचरं व्रतमेतत्सुदुष्करम् ॥ ६९ ॥ एकःसंकल्पितःपुत्रः सप्तसप्ताभवन्कथम् । यदितेविदितंपुत्र सत्यंकथयमामृषा ॥ ७० ॥ इंद्रउवाच अम्बतेऽहंव्यवसितमुपधार्यागतोऽन्तिकम् । लब्धांतरोऽच्छिदं गर्भमर्थबुद्धिर्नधर्मवित् ॥ ७१ ॥ कृत्तोमेसप्तधागर्भ आसन्सप्तकुमारकाः । तेऽपिचैकैकशोवृक्णाःसप्तधानापिमम्रिरे ॥ ७२ ॥ ततस्तत्परमाश्चर्यं वीक्ष्याध्यवसितंमया । महापुरुषपूजायाःसिद्धिःकाप्यानुषंगिणी ॥ ७३ ॥ आराधनंभगवत ईहमानानिराशिषः । येतुनेच्छंत्यपिपरंते स्वार्थकुशलाः स्मृताः ॥ ७४ ॥ आराध्यात्मप्रदं देवंस्वात्मानंजगदीश्वरम् । कोवृणीतेगुणस्पर्शं बुधः स्यान्नरकेऽपियत् ॥ ७५ ॥ तदिदंममदौर्जन्यंबालिशस्यमहीयसि । क्षन्तुमर्हसिमातस्त्वं दिष्ट्यागर्भोमृतोत्थितः ॥ ७६ ॥ श्रीशुक

के आगे वज्रसे सात टुकडे करदिये, जबवह रोनेलगे तब इन्द्र बोला कि 'मतरो' ऐसे कहकरफिर प्रत्येक के सात २ टुकडेकरडाले ॥ ६२ ॥ जबवह उन्हे फिरमारनेलगा तबसब हाथजोड करबोले कि हे इन्द्र ! हमारे मारने की क्यों इच्छा करतेहो हमतो मरुतनाम तुम्हारे भाई हैं ॥ ६३ ॥ तब इन्द्रबोला कि डरोमत तुममेरे भाईहो ऐसे कहकर अनन्य भाववाले मरुद्गणोंका इन्द्रने अपना पार्षद किया ॥६४॥ हरिकी कृपासे वज्रसे बहुत काटने परभी दितिका गर्भ न मरा, कि जैसे अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से तुम न मरे ॥ ६५ ॥ जोआदि रूप भगवान का एक बारभी पूजन करते हैं वह भगवान के समान रूपको प्राप्त होजाते हैं फिरदितिने तो कुछकम वर्षदिन हरिका पूजन किया ॥६६॥ इन्द्र सहित मरुत ५० देवता हुये उनको इन्द्रने उनकी माताके दोषको मिटाकर सोमपान करने वाला देवता बनालिया ॥ ६७ ॥ वह अनिंदित दिति उठकर इन्द्रके संग अग्निके से तेजवाले ५० पुत्र को देख, अति आनंदित हुई ॥ ६८ ॥ फिरइन्द्र से कहाकि हे तात ! देवताओं के भयदेने वाले पुत्रकी कामना से मैंने इस दुस्तर व्रतको धारण किया ॥ ६९ ॥ मैंने एक पुत्रका संकल्प किया था यह ४९ कहांसे हुये जोतू जानता होतो सच २ कह, मिथ्या मत कहना ॥ ७० ॥ तब इन्द्रने कहाकि हे माता ! स्वार्थी तथा धर्मका न जानने वालामैं तेरे अभिप्राय को जान तेरे निकट आरहा, जबतेरे व्रत का छिद्र पाया तब गर्भको काट डाला ॥ ७१ ॥ मैंने गर्भ के सात टुकडे किये तो ७ बालक हुए और फिरभी उनके सात २ टुकडे किये तो ४९ बालक हुए ॥ ७२ ॥ इस आश्चर्यको देख मैंने बिचार किया कि यह भगवत पूजनकी सिद्धि का कोई फल है ॥ ७३ ॥ जो निष्काम भगवत् आराधना करनेवाले मोक्षकी भी इच्छा नहीं करते वह स्वार्थ में कुशल हैं ॥ ७४ ॥ अपने स्वरूप देनेवाले आत्म रूप भगवान का भजन करके कौन बिवेकी मनुष्य विषय सुख की कामना करै क्यों कि यह विषय सुख तो नरक मेंभी मिलसकता है ॥ ७५ ॥ हे माता ! मुझ मूढकी दुष्टताको आप क्षमा करो गर्भ मरने से बचा यह बहुत अच्छा हुआ ॥ ७६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! दिति ने इन्द्रका अनन्य भाव देख उस प्रसन्न

उवाच ॥ इन्द्रस्तयाऽभ्यनुज्ञातः शुद्धभावेनतुष्टया । मरुद्भिःसहतांनत्वा जगाम त्रिदिवंप्रभुः ॥ ७७ ॥ एवंतेसर्वमाख्यातं यन्मांत्वंपरिपृच्छसि । मंगलंमरुतांजन्म किंभूयःकथयामिते ॥ ७८ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० षष्ठ० अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

राजोवाच ॥ व्रतंपुंसवनंब्रह्मन्भवतायदुदीरितम् । तस्यवेदितुमिच्छामियेनविष्णुःप्रसीदति ॥ १ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ शुक्लेमार्गशिरेपक्षे योषिद्भर्तुरनुज्ञया । आरभेतव्रतमिदं सार्वकामिकमादितः ॥ २ ॥ निशम्यमरुतांजन्म ब्राह्मणाननुमन्त्र्यच स्नात्वाशुक्लदतीशुक्ले वसीतालंकृतांबरे । पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्भगवन्तंश्रिया सह ॥३॥ अलंतेनिरपेक्षायपूर्णकामनमोस्तुते । महाविभूतिपतयेनमःसकलसिद्धये ॥ ४ ॥ यथात्वंकृपयाभूत्या तेजसामहिनौजसा । जुष्टईशगुणैःसर्वैस्ततोसिभगवान्प्रभुः ॥ ५ ॥ विष्णुपत्निमहामायेमहापुरुषलक्षणे । प्रीयेथामेमहाभागे लोकमातर्नमोऽस्तुते ॥ ६॥ ओंनमोभगवतेमहापुरुषाय महानुभवायमहाविभूतिपतयेसह महाविभूतिभिर्बलिमुपहराणीति । अनेनाहरहर्मंत्रेणविष्णोरावाहनार्घ्यपाद्योपस्पर्शनस्नानवाससउपवीतविभूषणगन्धपुष्पधूपदीपोपहाराद्युपचारांश्च समाहितउपाचरेत् ७ हविःशेषंतुजुहुयादनलेद्वादशाहुतीः । ओंनमोभगवतेमहापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहेति ॥ ८ ॥ श्रियंविष्णुंचवरदावाशिषांप्रभवावुभौ भक्त्यासंपूजयेन्नित्यंयदीच्छेत्सर्वसंपदः ॥ ९ ॥ प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ भक्तिप्रह्वेणचेतसा दशवारंजपेन्मंत्रंततः स्तोत्रमुदीरयेत् ॥ १० ॥ युवांतुविश्वस्यविभूजगतःकारणंपरम् । इयंहिप्रकृतिःसू

होकर आज्ञादी, तब इन्द्र मरुद्गणों को सङ्ग ले दण्डवत कर स्वर्ग को गए ॥७७॥ मंगलकारी मरुत देवों का जन्म जो आपनें पूछा उसको मैंने कहा अब और क्याकहूं ? ॥ ७८ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० षष्ठ० सरला भाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

परीक्षित नें पूछा कि हे मुनि ! आप के कहेहुए पुंसवन व्रतकी विधिकि जिस व्रत से भगवान प्रसन्न होजातेहैं जानना चाहताहूं ॥ १ ॥ शुकदेवजी बोले कि स्त्री को उचित है कि मार्गशिर महिनें के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से पतिकी आज्ञा ले, सब इच्छाओं के पूर्ण करनेवाले इस व्रत का प्रारम्भ ब्राह्मणोंसे विधि पूछकर तथा मरुत देवों के जन्मकी कथा सुनकर करे ॥२॥ दन्तधावन कर स्नान के पश्चात् श्वेत वस्त्र पहिन, आभूषण धारणकर, कलेऊ से पहिले लक्ष्मी सहित भगवान का पूजन करे ॥ ३ ॥ और बिनती करे कि हे निरपेक्ष, पूर्ण काम, लक्ष्मी पति, सब सिद्धिओं के निवास रूप आपको नमस्कार है ॥ ४ ॥ हे ईश्वर ! कृपा, महिमा, तेज, सामर्थ्य और २ भी दूसर श्रेष्ठ गुण यथोचितरीति से आपमें स्थितहैं ॥ ५ ॥ हे विष्णुपत्नी ! हे महामाये ! महापुरुष केसे लक्षण वाली हे महाभागे ! हे लोकों की माता ! हमपर प्रसन्न हो आपको नमस्कार है ॥ ६ ॥ महापुरुष, बडे, प्रभाव वाले, विभूतिपति आपको बडी २ विभूतियोंके साथ बलि देतीहूं इस मंत्र से प्रतिदिन आह्वान करे और पाद्य, अर्घ, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, गंध, पुष्प, धूप, दीप, आदि का उपचार सावधान होकर करै ॥ ७ ॥ फिर " ओंनमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहा " इस मंत्र से शेष हवि को अग्नि में बारह आहुति देना ॥ ८ ॥ यदिसबसंपत्तियों की कमना होवे,तो वरदेने वाले हरिऔरलक्ष्मीका नित्यप्रति पूजनकरे॥९॥भक्ति से चित्तको नम्रकर पृथ्वीपर दंडवत् नमस्कार करे,दशवेर मंत्रको जपफिर स्तोत्रका पाठकरे॥१०॥ हे भगवान ! आप विश्वके प्रभु और परम कारण रूपहो, यह लक्ष्मी सूक्ष्म प्रकृति, दुरत्यय, माया

क्ष्मामायाशक्तिर्दुरत्यया ॥ ११ ॥ तस्या अधीश्वरः साक्षात्त्वमेव पुरुषः परः । त्वं सर्वयज्ञ इज्येयं क्रियेयं फलभुग्भवान् ॥ १२ ॥ गुणव्यक्तिरियं देवी व्यञ्जको गुणभुग्भवान् त्वं हि सर्वशरीर्यात्मा श्रीः शरीरेन्द्रियाशया । नामरूपे भगवति प्रत्ययस्त्वमपाश्रयः १३ यथा युवां त्रिलोकस्य वरदौ परमेष्ठिनौ । तथा म उत्तमश्लोक सन्तु सत्या महाशिषः १४ इत्यभिष्टूय वरदं श्रीनिवासं श्रिया सह तन्निःसार्योपहरणं दत्त्वाऽऽचमनमर्चयेत् १५ ततः स्तुवीत स्तोत्रेण भक्तिप्रह्वेण चेतसा । यज्ञोच्छिष्टमवघ्राय पुनरभ्यर्चयेद्धरिम् १६ पतिं च परया भक्त्या महापुरुषचेतसा । प्रियैस्तैस्तैरुपनमेत्प्रेमशीलः स्वयं पतिः ॥ बिभृयात्सर्वकर्माणि पत्न्या उच्चावचानि च ॥ १७ ॥ कृतमेकतरेणापि दम्पत्योरुभयोरपि ॥ पत्न्यां कुर्यादनर्हायां पतिरेतत्समाहितः ॥ १८ ॥ विष्णोर्व्रतमिदं बिभ्रन्न विहन्यात्कथंचन ॥ विप्रान्स्त्रियो वीरवतीः स्रग्गन्धबलिमण्डनैः ॥ अर्चेदहरहर्भक्त्या देवं नियममास्थितः ॥ १९ ॥ उद्वास्य देवं स्वे धाम्नि तन्निवेदितमग्रतः ॥ अद्यादात्मविशुद्ध्यर्थं सर्वकामर्द्धये तथा ॥ २० ॥ एतेन पूजाविधिना मासान्द्वादश हायनम् ॥ नीत्वाऽथोपरमेत्साध्वी कार्तिके चरमेऽहनि ॥ २१ ॥ श्वोभूतेऽप उपस्पृश्य कृष्णमभ्यर्च्य पूर्ववत् ॥ पयः शृतेन जुहुयाच्चरुणा सह सर्पिषा ॥ २२ ॥ पाकयज्ञविधानेन द्वादशैवाहुतीः पतिः ॥ आशिषः शिरसाऽऽदाय द्विजैः प्रीतैः समीरिताः ॥ प्रणम्य शिरसा भक्त्या भुञ्जीत तदनुज्ञया ॥ २३ ॥ आचार्यमग्रतः कृत्वा वाग्यतः सह बन्धुभिः ॥ दद्यात्पत्न्यै चरोः शेषं सुप्रजास्त्वं सुसौभगम् ॥ २४ ॥ एतच्चरित्वा विधिवद्व्रतं विभोरभीप्सितार्थं लभते पुमानिह ॥ स्त्री त्वेतदास्थाय लभेत

शक्तिरूप है ॥ ११ । हे स्वामी ! आपही इसके स्वामीहो, आप सर्व यज्ञरूपहो, लक्ष्मी क्रियारूप और आप फलके भोगनेवालेहो ॥ १२ ॥ लक्ष्मी गुणोंको प्रगट करनेवाली है और आप गुणोंके भोगने वालेहो, आप सर्वात्मा और शरीर तथा इन्द्रियों के आश्रय रूपहो, यह लक्ष्मी नाम रूप और आप नामके प्रकाश करने वालेहो ॥ १३ ॥ हे त्रिलोकी को वरदेने वाले परमेश्वर ! उत्तम श्लोक ! मेरा आशिष सच्चा होवे ॥ १४ ॥ इसभांति लक्ष्मी के निवास रूप वरदेने वाले हरिकी स्तुति लक्ष्मीजी के सग करने के पश्चात् नैवेद्यादिक उठाकर, आचमनकर पूजाकरे ॥ १५ ॥ फिर नम्रचित्त से भक्तिपूर्वक स्तोत्रका पाठकरे, फिर पूजन के शेष पदार्थों को सूंघ हरिकी पूजाकरे ॥ १६ ॥ पतिको भगवान जान प्रियपदार्थों से भक्तिपूर्वक उसकी सेवाकर, पतिकोभी उचित है कि स्त्रीमें स्नेहरख उसके छोटेबड़े कामोंमे सहायता करे ॥ १७ ॥ स्त्री, पुरुष में से एक कोई इस व्रतको करे, स्त्री के रजस्वला होने के समय उतने दिनोंतक पतिही पूजाकरे ॥ १८ ॥ विष्णुजी के इसव्रतको धारणकर किसी प्रकार नष्ट न करे तथा ब्राह्मण, सौभाग्यवती, पुत्रवती, ब्राह्मणी, इनकी पूजा माला चंदन से करे, ॥ १९ ॥ भगवानकी मूर्त्तिको उसी स्थानपर स्थापितकर, उनके आगेकी नैवेद्यको आपखावे, क्योंकि उससे हृदय शुद्धहोकर सब इच्छाएं पूरीहोती हैं ॥ २० ॥ ऐसे शुद्धहृदय से इसप्रकार पूजाकरते हुये १२ मास व्यतीतकरे, साध्वी स्त्रीको उचित है किवर्ष के अंतकी रात्रिमें उपवास करे ॥ २१ ॥ सवेरे उठकर जलमें स्नानकर पहिल की समान श्रीकृष्णजी का पूजन करे, फिर 'पार्वण स्थालीपाक' की रीत्यनुसार दूधमें पकाये हुये घीसमेत चरुसे पति १२ आहुतिदेवे ॥ २२ ॥ ब्राह्मणोंको भोजनकरा, उन प्रसन्न हुये ब्राह्मणों के आशीर्वादको ग्रहणकर, उन्हें दंडवतकर तथा उनकी आज्ञाले बंधुओं के साथ पूर्वक भोजनकरे ॥ २३ ॥ आचार्योंको आगेकरके मौनधारण कर, भाइयों के सग रहकर, श्रेष्ठपुत्र देनेवाले, इस चरुका शेषभाग स्त्रीको खुवावे ॥ २४ ॥ पुरुष इस व्रतको विधिपूर्वक धारण करेतो सब कामनाएं पूरीहों और स्त्री धारण करेतो सौभाग्य, संतान,

सौभगंश्रियंप्रजांजीवपतिं यशोगृहम् ॥ २५ ॥ कन्याचविन्देतसमग्रलक्षणंपतिं त्ववीराहतकिल्बिषागतिम् ॥ मृतप्रजाजीवसुताधनेश्वरी सुदुर्भगासुभगा रूपमग्र्यम् ॥ २६ ॥ विन्देद्विरूपाविरुजाविमुच्यतेय आमयावीन्द्रियकल्पदेहम् ॥ एतत्पठन्नाभ्युदयचकर्मण्यनन्ततृप्तिः पितृदेवतानाम् ॥ २७ ॥ तुष्टाः प्रयच्छन्तिसमस्तकामान्होमावसानेहुतभुक्श्रीर्हरिश्च ॥ राजन्महन्मरुतांजन्मपुण्य दितेर्व्रतंचाभिहितं महत्ते ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पुंसवनव्रतकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥
समाप्तोयंषष्ठःस्कन्धः ॥

लक्ष्मी, कीर्त्ति मिलती है और पति चिरंजीव रहे ॥२५॥ कन्या इस व्रतको करेतो सुन्दर सुशील पतिमिले, विधवा करेतो उसके पापदूर होजायें,और श्रेष्ठगति मिले,जिसके पुत्र मरजातेहों उसके पुत्रादि जीवितरहैं, निर्धनको धन और कुरूपको रूप प्राप्तहोवे ॥ २६ ॥ इस व्रतसे रोगी रोग से छूटे और उसकी इन्द्रियां तथा शरीर पुष्ट होजाय, शुभकार्य में इसका पाठकरै तो देवता व पितरों को तृप्ति प्राप्तहो ॥ २७ ॥ होमके पूर्णहोने पर इसका पाठकरै तो अग्नि, लक्ष्मी और परमेश्वर प्रसन्न होकर सब कामनाए पूर्णकरें हे राजन् ! यह दितिका किया व्रत, तथा मरुतोंका पुण्यजन्म आप से मैंने कहा ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे०षष्ठस्कंधे पण्डितवरसारस्वत जगन्नाथात्मज पण्डित कन्हैयालाल निर्मितायां सरलाभाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीमद्भागवत भाषाटीकासहित·

सप्तम स्कन्ध·

॥ राजोवाच ॥ समः प्रियः सुहृद्ब्रह्मन्भूतानांभगवान्स्वयम् ॥ इन्द्रस्यार्थेकथं दैत्यानवधीद्विषमोयथा ॥ १ ॥ नह्यस्यार्थः सुरगणैः साक्षान्निः श्रेयसात्मनः ॥ नैवासुरेभ्योविद्वेषो नोद्वेगश्चागुणस्यहि ॥ २ ॥ इति नः सुमहाभागनारायणगुणान्प्रति ॥ संशयः सुमहाञ्जातस्तद्भवाञ्छेत्तुमर्हति ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ साधु पृष्टं महाराजहरेश्चरितमद्भुतम् ॥ यत्रभागवतमाहात्म्यं भगवद्भक्तिवर्धनम् ॥ ४ ॥ गीयतेपरमं पुण्यमृषिभिर्नारदादिभिः ॥ नत्वाकृष्णायमुनये कथयिष्येहरेः कथाम् ॥ ५ ॥ निर्गुणोऽपिह्यजोऽव्यक्तो भगवान्प्रकृतेः परः ॥ स्वमायागुणमाविश्य बाध्यबाधकतांगतः ॥ ६ ॥ सत्त्वंरजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ॥ नतेषां युगपद्राजन्ह्रासउल्लासएववा ॥ ७ ॥ जयकालेतुसत्त्वस्य देवर्षीन्रजसोऽसुरान् ॥ तमसो यक्षरक्षांसितत्कालानुगुणोऽभजत ॥ ८ ॥ ज्योतिरादिरिवाभाति संघातान्न विविच्यते । विदन्त्यात्मानमात्मस्थं मथित्वाकवयोऽन्ततः ॥ ९ ॥ यदासिसृक्षुःपुरआत्मनः परोरजःसृजत्येवपृथक्स्व

राजा परीक्षित बोले कि हे ब्रह्मन् ! भगवान तो स्वय सब स्थानों में वर्तमान और समदर्शी हैं तथा सब प्राणियों के प्रिय व सुहृद हैं उन्होंनें इन्द्रके निमित्त असमदर्शी क समान असुरों का सहार क्यों किया ॥ १ ॥ उनका तो स्वरूप साक्षात् परमानंद है; देवताओंसे उनका प्रयोजन नहीं है। वह निर्गुण हैं अतएव असुरों से उन्हें कोई भयभी नहीं है; इसकारण शत्रुता होनी असम्भव है ॥ २ ॥ हे महाभाग! नारायणके गुणों में मुझको इस भांतिका सदेह उत्पन्न हुआहै अतएव आप को इसका निश्चत करना उचित है ॥ ३ ॥ श्री शुकदेव जी बोले कि—हे महाराज ! आपन उत्तम प्रश्न किया है । भगवान के चरित्रही अद्भुत हैं,—हरि के भक्त प्रह्लाद का परम पवित्र माहात्म्य विष्णु भक्ति बढ़ाने के हेतु ॥ ४॥ नारदादि ऋषि गाते रहते हैं मैं भगवान व्यासजी को प्रणाम कर भगवान विष्णुजी की कथा कहता हू ॥ ५ ॥ भगवान प्रकृतिसे भिन्न और निर्गुण हैं अतएव वह राग, द्वेषादि के कारणों से रहित हैं, शरीर और इन्द्रियेंभी नहीं हैं तौभी वह अपने गुणों के आश्रयसे देह धारण और दूसरे बाध्य बाधकता को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ सत्व, रज, और तम यहतीन गुण प्रकृति के हैं; आत्मा के नहीं हैं। हे राजन् ! एकही समय में इन गुणों का बढ़ना घटना नहीं होता ॥ ७ ॥ सत्वगुण अपने वृद्धि कालमें देवता और ऋषियोंकी देहमें प्रवेश करके उनकी वृद्धि करता है; रजोगुण अपने वृद्धि के समय में असुरों को और तमोगुण अपने वृद्धि के समय में राक्षसों को बढ़ाता है ॥ ८ ॥ जैसे तेज आदि पदार्थ काष्ठादि वस्तुओं में नाना भांतिसे प्रकाश पाते हैं तैसेही परमात्मा भी नाना देहों में नाना रूपसे प्रकाश पाता है देहसे भिन्न है इस लिये जान नहीं पड़ता पंडित लोग (कार्य देखकर स्वभाव कर्मादिवाद निषेध पूर्वक) विचार करके आत्मा में रही हुई आत्मा को जान सकते हैं ॥ ९ ॥ परमेश्वर को जब दैहिक सृष्टि क करने की

मायया । सत्त्वंविचित्रासुरिरंसुरीश्वरः शयिष्यमाणस्तमईरयत्यसौ ॥ १० ॥ का
लंचरन्तं सृजतीशआश्रयं प्रधानपुम्भ्यांनरदेवसत्यकृत् । यएषराजन्नपिकालईशिता
सत्त्वंसुरानीकमिवैधयत्यतः । तत्प्रत्यनीकानसुरान्सुरप्रियोरजस्तमस्कान्प्रमिणो
त्युरुश्रवाः ॥ ११ ॥ अत्रैवोदाहृतः पूर्वमितिहासः सुरर्षिणा । प्रीत्यामहाक्रतौराजन्पृ
च्छतेऽजातशत्रवे ॥ १२ ॥ दृष्ट्वामहाद्भुतंराजा राजसूयेमहाक्रतौ । वासुदेवे
भगवति सायुज्यंचेदिभूभुजः ॥ १३ ॥ तत्रासीनंसुरऋषिंराजापांडुसुतःक्रतौ ।
प्रच्छ विस्मितमना मुनीनांशृण्वतामिदम् ॥ १४ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ अहोअत्यद्भु प
तंह्येतद्दुर्लभैकांतिनामपि । वासुदेवेपरेतत्त्वे प्राप्तिश्चैद्यस्यविद्विषः ॥ १५ ॥ एत
द्वेदितुमिच्छामः सर्वएववयंमुने । भगवन्निन्दयावेनो द्विजैस्तमसिपातितः १६ ॥
दमघोषसुतःपाप आरभ्यकलभाषणात् । संप्रत्यमर्षीगोविंदे दन्तवक्रश्चदुर्मतिः
शपतोरसकृद्विष्णु यद्ब्रह्मपरमव्ययम् । श्वित्रोनजातोजिह्वायां नांधंविविशतुस्त
मः ॥ १८ ॥ कथंतस्मिन्भगवतिदुरवग्राहधामनि । पश्यतांसर्वलोकानांलयमीयतु
रंजसा ॥ १९ ॥ एतद्भ्राम्यतिमेबुद्धिर्दीपार्चिरिववायुना । ब्रूह्येतदद्भुततमं भगवां
स्तत्रकारणम् ॥ २० ॥ श्रीशुकउवाच ॥ राज्ञस्तद्वचआकर्ण्यनारदोभगवानृषिः
तुष्टःप्राहतमाभाष्य शृण्वन्त्यास्तत्सदःकथाः ॥ २१ ॥ नारदउवाच ॥ निंदनस्तव

इच्छा हुई तब अपनी मायासे रजोगुणको पृथक् किया जब उसकी इच्छा नाना शरीरों में क्रीड़ा करने की हुई तब उसने सत्वगुण का निर्माण किया; और उन्हीं सब शरीरों के नाश करनेकी इच्छा से तमोगुण को उत्पन्न किया ॥ १० ॥ हे नरेंद्र ! भगवान प्रकृति और पुरुष के निमित्त जो कुछ करते हैं वह अमोघ है इस कालको भी कि जो प्रकृति और पुरुष का सहायक होकर घूमता है ईश्वरही ने उत्पन्न किया है । हे राजन् ! यह काल सत्वगुणही की वृद्धि साधन करता है इस ही कारण से बड़ी कीर्तिवाले देवताओं के प्यारे ईश्वरभी सत्वगुण प्रधान देवताओं को बढ़ाते तथा रज व तमोगुण प्रधान वेद के विरोधी असुरों का नाश करते हैं ॥ ११ ॥ हे राजन् ! युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञमें प्रश्नकरने पर देवर्षि नारद ने सतुष्ट होकर पहिलेही इस विषयका एक इतिहास कहाथा ॥ १२ ॥ हे राजन् ! राजा शिशुपाल भगवान श्रीकृष्णजी के स्वरूपको प्राप्त हुआ । राजसूय यज्ञमें इस अद्भुतबातको देखकर राजा युधिष्ठिर ने विस्मय मानकर सभामें बैठेहुय देवर्षि नारद से पूछा और सबमुनि उनके प्रश्नको सुनने लगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ युधिष्ठिर जी बोलेकि, अहो ! यह अत्यंत आश्चर्य का विषय है कि निष्काम भक्तो के पक्षमें भी परम तत्व वासुदेव का स्वरूप नहीं प्राप्तहोना, परन्तु शिशुपाल शत्रुहोकर भी उस स्वरूप को प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥ हे मुने ! भगवान की निंदा करनेसे वेन राजाको ब्राह्मणोंने नरक में डालाथा किंतु पापी शिशुपाल और दुष्ट दन्तवक्र नें अत्यन्त लड़कपन सेही श्रीकृष्णजी से द्वेष किया और अबतक किये आतेथे इसने बारम्बार विष्णु भगवानको कटुवाक्य कहे तौभी इसकी जीभ में कुष्ट नहोगया और यह घोर नरक में नपडा मैं इसका सम्पूर्ण कारण जानना चाहता हूंकि इन सब लोगों के सामनें उसको भगवान का दुर्लभ स्वरूप कैसेप्राप्त हुआ? जैसे वायु द्वारा दीपककी ज्योति भ्रमण करती है वैसही इस बात से मेरीभी बुद्धि भ्रमण करती है इस विषय में कौन अत्यंत आश्चर्य का कारण है आप सर्वज्ञ हो आप इसको कहिये ॥ १६–२० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि भगवाननारदऋषि राजायुधिष्ठिरकी इसबातको सुनकर संतुष्टहो उनसे संबोधनकर कथाकहनें लगे, और सभा के सब मनुष्य सुनने लगे ॥ २१ ॥ नारदजी बोले कि हे राजन् ! निंदा, स्तुति सत्कार तिरस्कार इत्यादि अनुभव करनेके निमित्त प्रकृति और पुरुष के अविवेक बशही शरीर निर्माण

सत्कारन्यक्कारार्थंकलेवरम् । प्रधानपरयोराजन्नविवेकेनकल्पितम् ॥ २२ ॥ हिं
सातदभिमानेन दण्डपारुष्ययोर्यथा । वैषम्यमिहभूतानां ममाहमितिपार्थिव २३॥
यन्निबद्धोऽभिमानोऽयं यद्वधात्प्राणिनांवधः । तथानयस्यकैवल्यादभिमानोऽखिला
त्मनः । परस्यदमकर्तुर्हिहिंसाकेनास्यकल्प्यते ॥ २४ ॥ तस्माद्वैरानुबंधेन निर्वैरेण
भयेनच । स्नेहात्कामेन वायुञ्ज्यात्कथंचिन्नेक्षतेपृथक् ॥ २५ ॥ यथावैरानुबन्धेन
मर्त्यस्तन्मयतामियात् । नतथाभक्तियोगेन इतिमेनिश्चितामतिः ॥ २६ ॥ कीटःपेश
स्कृतारुद्धः कुड्यायांतमनुस्मरन् । संरम्भभययोगेन विन्दतेतत्स्वरूपताम् २७ ॥
एवंकृष्णेभगवतिमायामनुजईश्वरे । वैरेणपूतपाप्मानस्तमापुरनुचिंतया ॥ २८॥ का
माद्द्वेषाद्भयात्स्नेहाद्यथाभक्त्येश्वरेमनः । आवेश्यतदघंहित्वा बहवस्तद्गतिंगताः॥
॥ २९ ॥ गोप्यःकामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयोनृपाः सम्बन्धाद्वृष्णयः स्नेहा
द्यूयंभक्त्यावयंविभो ॥ ३० ॥ कतमोऽपिनवेनःस्यात्पंचानांपुरुषंप्रति । तस्मात्
केनाप्युपायेनमनःकृष्णेनिवेशयेत् ॥ ३१ ॥ मातृष्वस्रेयोवैश्चैद्यो दन्तवक्त्रश्चपाण्ड
व । पार्षदप्रवरौविष्णोर्विप्रशापात्पदाच्च्युतौ॥३२॥ युधिष्ठिरउवाच॥कीदृशःकस्य
वाशापो हरिदासाभिमर्शनः । अश्रद्धेयइवाभातिहरेरेकांतिनांभवः॥३३॥देहेंद्रियासु
हीनानां वैकुण्ठपुरवासिनाम् । देहसम्बन्धसम्बन्धमेतदाख्यातुमर्हसि ॥ ३४ ॥ नार

हुआ है ॥ २२ ॥ हे राजन् ! उसी देह में अभिमान रहनें से प्राणियों के "मैं" "और" "मेरा" ऐसी विषमता तथा ससार में विषमता से बंधन, पीड़न और निंदा होती रहती है ॥२३॥ और अ-भिमान का आश्रय स्थान देह है इसका नाश होतेही प्राणि का नाश होजाता है परन्तु ईश्वर अद्वितीय और सबके आत्मा हैं उनको इसभांतिका अभिमान नहीं है, इसलिये पीडाका विचार उन को किसप्रकार होसकता है ? वह केवल हितसाधनके निमित्तही लोगोंको दण्डदेते रहते हैं ॥२४॥ इसकारण अतिशय शत्रुता, भक्तियोग, भय, स्नेह और इच्छा इनमें से चाहे जिस उपाय से भग वान का ध्यानकरै ॥ २५ ॥ इन उपायों के अतिरिक्त और किसीभांति से प्राणी उनको नहीं प्राप्त होसकता । किन्तु मनुष्य शत्रुताद्वारा भगवान में जैसा तन्मयहोजाता है वैसाभक्तियोग से नहीं हो सकता यह मेरा निश्चय विश्वास है कि ॥२६॥ जैसे भृङ्गीकीटसे पकड़ाहुआ अन्यकीट भृङ्गी के द्वेष और भयसे उसका स्मरण करता हुआ उसीके स्वरूपको प्राप्त होजाता है ॥ २७ ॥ इसीभांति माया से मनुष्यरूप साक्षात् परमेश्वर श्रीकृष्णभगवानका शत्रुभावसे ध्यानकरनेपरभी, उसध्यानके बलसे निष्पाप हो उन्हीं की स्वरूपता को प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ काम, द्वेष, भय, स्नेह अथवा भक्तिसे ईश्वर में मन लगाकर मनुष्य पापों से छूटकर भगवान के स्वरूपको प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥ हे विभो ! कामके वशसे गोपियों ने भयके वशसे कंसने, द्वेषसे शिशुपाल आदि राजाओं ने; सम्बध से वृष्णिवंशीयों ने; स्नेह के वशसे तुमने और भक्ति से मैंने उनको पाया है ॥ ३० ॥ परन्तु बेनने इन पांच उपायों में से किसी उपाय से भी श्रीकृष्णजीका ध्यान न कियाथा इसकारण चाहे जिस उपाय से हो श्रीकृष्णजी में मन लगाना चाहिये ॥३१॥ हे पाण्डव ! तुम्हारी मौसी के पुत्र शिशुपाल और दंतवक्र दोनो विष्णुजी के प्रधान पार्षद हैं । यह ब्रह्म शापके कारण अपने पदसे गिराये गयेथे ॥ ३२ ॥ युधिष्ठिरजी बोलेकि–जिस शापने विष्णु जी के भक्तोंपर आक्रमण कियाथा वह शाप क्यों और कैसहुआ ? जो भगवान के भक्तोंने मृत्युलोक में जन्म ग्रहण किया यहबाततो विश्वास योग्य नहीं है ॥३३॥ क्योंकि शुद्धसत्वमय शरीर धारी बैकुंठ निवासियों का देह, इन्द्रिय और प्राणों के साथ संबध नहीं होता किंतु यह पार्षद किस भांति देह सम्बन्ध से बँधे सो आप कहिये ॥ ३४ ॥ नारदजी बोले कि–एक समय ब्रह्माजीकेपुत्र

वृ उवाच एकदाब्रह्मणःपुत्रा विष्णोर्लोकंयदृच्छया । सनन्दनादयोजग्मुश्चरन्तोभुव
नत्रयम् ॥ ३५ ॥ पंचषड्ढायनार्भाभाः पूर्वेषामपिपूर्वजाः दिग्वाससःशिशून्मत्वाद्वा
स्थौताग्प्रत्यषेधताम् ॥ ३६ ॥ अशपन्कुपितापवं युवांवासनचार्हथः । रजस्तमो
भ्यांरहितेपादमूलेमधुद्विषः । पापिष्ठामासुरींयोनिं बालिशौयातमाश्वतः ॥ ३७ ॥
एवंशप्तौस्वभवनात्पतन्तौतैः कृपालुभिः । प्रोक्तौपुनर्जन्मभिर्वां त्रिभिर्लोकायकल्प
ताम् ॥ ३८ ॥ जज्ञातेतौदितेःपुत्रौ दैत्यदानववन्दितौ हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्या
क्षोऽनुजस्ततः ॥ ३९ ॥ हताहिरण्यकशिपुर्हरिणासिंहरूपिणा । हिरण्याक्षोधरोद्धा
रे बिभ्रतासौकरंवपुः ॥ ४० ॥ हिरण्यकशिपुःपुत्रं प्रह्लादंकेशवप्रियम् । जिघांसुर
करोन्नाना यातनामृत्युहेतवे ४१ ॥ सर्वभूतात्मभूतं प्रशान्तंसमदर्शनम् । भगवत्ते
जसास्पृष्टं नाशक्नोद्धन्तुमुद्यमैः ॥४२॥ ततस्तौराक्षसौजातौ केशिन्यांविश्रवःसु
तौ । रावणःकुम्भकर्णश्च सर्वलोकोपतापनौ ॥ ४३ ॥ तत्रापिराघवोभूत्वान्यहनच्छा
पमुक्तये । रामवीर्यंश्रोष्यसित्वं मार्कण्डेयमुखात्प्रभो ॥ ४४ ॥ तावेवक्षत्रियौजातौ
मातृष्वस्रात्मजौतव । अधुनाशापनिर्मुक्तौ कृष्णचक्रहतांहसौ ४५॥ वैरानुबन्धतीव्रे
ण ध्यानेनाच्युतसात्मताम् । नीतौपुनर्हरेःपार्श्वं जग्मतुर्विष्णुपार्षदौ ॥ ४६ ॥ युधि-
ष्ठिरउवाच ॥ विद्वेषोदयितेपुत्रे कथमासीन्महात्मनि । ब्रूहिमेभगवन्येन प्रह्लादस्या
च्युतात्मता ॥ ४७ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा०सप्त०प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सनन्दन आदि ऋषि त्रिभुवन में विचरतेहुए अपनी इच्छानुसार विष्णुजीके लोकमें गये ॥ ३५ ॥ वे बहुतकाल पहिले के उत्पन्नहुये मरीचिआदि ऋषियों से भी बड़े थे किन्तु दखने में पांचछहवर्षके बालककी समान छोटे और नग्नथे । दोद्वारपालोंने उनको बालकजानकर भीतर जाने से रोका ॥ ॥ ३६ ॥ तब उन्होंने कुपित होकर इसभांति शापदियाकि—' तुम दोनो जन, रजतमरहित भगवानके चरण कमलों मे वासकरने योग्यनहीं हो; तुम अज्ञान और पापी हो, इस स्थानसे शीघ्रही गिर असुरयोनि में जन्मग्रहणकरो ॥ ३७ ॥ इसभांति शाप युक्त होने पर वह अपने स्थानसे गिरने लगे–तब दयालु ऋषियों ने फिरकहा, कि तीनजन्मों के उपरान्त फिर तुम अपने स्थानको प्राप्त होगे ॥ ३८ ॥ उन्होंने दिति के गर्भमें पुत्ररूप से जन्म लियाथा । वह दैत्य असुरोंमें प्रधान थे बड़ेका नाम हिरण्यकशिपु और छोटेका नाम हिरण्याक्षथा ॥ ३९ ॥ भगवानने नरसिंहरूप धारणकर हिरण्यकशिपु को और पृथ्वी उद्धार के समयमें वाराहरूप धारण कर हिरण्याक्षका वधकिया ॥ ४० ॥ हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र हरिभक्तप्रह्लाद के मारने की इच्छासे उसको मृत्युकारी नानाप्रकारके दुःखदिये ॥ ४१ ॥ सब प्राणियोंके आत्म स्वरूप, शान्त और समदर्शी भगवान के तेजने प्रह्लादको ढकरक्खा था; अतएव नानायत्नों से भी वह उनका वधन करसका ॥४२॥ इस के उपरांत वह विश्रवा के वीर्य से केशिनी के गर्भसे रावण और कुंभकरण के नाम से राक्षस हुयेथे । उनसे सम्पूर्ण सृष्टिमें अशान्ति होउठी ॥ ४३ ॥ तब भगवान ने रामरूप से अवतार ले शापदूर करने के निमित्त उनको मारा । हे राजन्! तुम मार्कन्डेय ऋषिके मुखसे श्री रामचन्द्रजी का पराक्रम सुनपावोगे ॥ ४४ ॥ अब उन्हीं दोनोंजनों ने क्षत्रिय कुलमें तुम्हारा मौसी के गर्भ से जन्मलिया है । अबवे श्रीकृष्णजी के चक्रसे हतहोकर शापसे छूटे ॥४५॥ वे दोनो विष्णुजी के पार्षद बहुत दिनोतक वैरभाव से श्रीकृष्णजी का ध्यान करते रहे उसी के फलसे वे भगवान के रूपको प्राप्तहो बैकुंठ धामको गये ॥ ४६ ॥ राजा युधिष्ठिर बोलेकि–हे महात्मा! प्यारेपुत्र प्रह्लाद पर हिरण्यकशिपुको द्वेष क्यों हुआ, और प्रह्लादजी श्रीकृष्णजी के अनन्य भक्त क्योंहुये? हे भगवन ! यह मुझसे आप कहने के योग्यहो ॥ ४७ ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेभाषाटीकायांप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ नारद उवाच ॥ भ्रातर्येवंविनिहतेहरिणा क्रोडमूर्तिना ॥ हिरण्यकशिपूराजन् पर्यतप्यद्रुषाशुचा ॥ १ ॥ आहचेदंरुषाघूर्णः संदष्टदशनच्छदः ॥ कोपोज्ज्वलद्भ्यां चक्षुर्भ्यांनिरीक्षन् धूम्रमम्बरम् ॥ २ ॥ करालदंष्ट्रोऽग्रदृष्ट्या दुष्प्रेक्ष्यभ्रुकुटीमुखः ॥ शूलमुद्यम्यसदसिदानवानिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ भोभोदानवदैतेयाद्विमूर्धंस्त्र्यक्षशम्बर । शतबाहोहयग्रीवनमुचेपाकइल्वल ॥ ४ ॥ विप्रचित्तेममवचः पुलोमन् शकुनादयः । शृणुतानन्तरंसर्वे क्रियतामाशुमाचिरम् ॥ ५ ॥ सपत्नैर्घातितःक्षुद्रैर्भ्रातामेदयितःसुहृत् । पार्ष्णिग्राहेणहरिणासमेनाप्युपधावनैः ॥ ६ ॥ तस्यत्यक्तस्वभावस्य घृणेर्मायावनौकसः भजंतंभजमानस्यबालस्येवास्थिरात्मनः ७ ॥ मच्छूलभिन्नग्रीवस्यभूरिणारुधिरेणवै । रुधिरप्रियं तर्पयिष्येभ्रातरंमेगतव्यथः ॥ ८ ॥ तस्मिन्कूटेऽहितेनष्टेकृत्तमूलेवनस्पतौ । विटपाइवशुष्यन्ति विष्णुप्राणादिवौकसः ॥ ९ ॥ तावद्यातभुवंयूयंब्रह्मक्षत्रसमेधिताम् । सूदयध्वंतपोयज्ञस्वाध्यायव्रतदानिनः ॥ १० ॥ विष्णुर्द्विजक्रियामूलोयज्ञोधर्ममयःपुमान् । देवर्षिपितृभूतानां धर्मस्यचपरायणम् ॥ ॥ ११ ॥ यत्रयत्रद्विजागावो वेदावर्णाश्रमाःक्रियाः तंतंजनपदंयात संदीपयतवृश्चत ॥ १२ ॥ इतितेभर्तृनिर्देशमादायशिरसादृताः । तथाप्रजानांकदनंविदधुः कदनप्रियाः ॥ १३ ॥ पुरग्रामव्रजोद्यानक्षेत्रारामाश्रमाकरान् । खेटखर्वटघोषांश्चददहुःपत्त

नारदजी ने कहाकि—हे राजन् ! देवताओं के कल्याण के निमित्त भगवान ने वाराहमूर्त्ति धारण कर हिरण्य कशिपु के भाई हिरण्याक्षको मारा तब वह दानव शोक और रोषमें अत्यन्त दुःखित हुआ ॥ १ ॥ और क्रोधसे परिपूर्णहो बारंबार अपने ओठोंको चबाता हुआ और क्रोधसे जलती हुई आंखों द्वारा धुएं से धूम्रवर्ण आकाशकी ओर देखनेलगा ॥ २ ॥ विकराल डाढ़ें, बड़ीभारी दृष्टि और चढ़ीहुई भौहोंसे उसके भयानक मुखकी ओर कोई न देखसकता था। वह शूल उठाकर सभा में बैठेहुए असुरों से कहने लगा ॥ ३ ॥ कि-हेदैत्य दानवों! हे द्विमूर्द्ध ! हे त्र्यक्ष ! हे शम्बर ! हे शतबाहो ! हे हयग्रीव ! हे नमुचि ! हे पाक ! हे इल्वल ॥ ४ ॥ हे विप्रचित्ति ! हे पुलोमन् ! हे शकुनादि दानवो ! तुमसब मेरी बातको सुनो और मेरे कहेहुये के अनुसार कार्यकरो, विलम्ब न करना ॥ ५ ॥ तुच्छ शत्रुओं ने मेरेप्रिय और परम सुहृद् भाईका नाशकिया है विष्णु सबको समान ही भाव से देखते हैं यह मैं जानता हू परन्तु इस समय उनका स्वभाव बदलगया है । जो उसकी उपासना करते हैं वह उन्हीं का पक्षपाती होजाता है ॥ ६ ॥ यद्यपि वह शुद्ध और तेजोमय है तोभी मायाके वशमें शूकर मूर्तिहो इस समय बालकोंकी समान चंचल चित्तवाला होगया है वह अपनी उपासना करने वालोंका इच्छित कार्य करताहै ॥ ७ ॥ मैं अपने इस शूलद्वारा उसका गर्दनकाट उसी के रुधिर से अपने भाईको कि जिसे रुधिर बहुत प्याराथा, तृप्तकरूगा, ऐसा होने सेही मेरे मनका दुःख दूरहोगा ॥ ८ ॥ मैं जानता हूं कि जैसे वृक्षकी मूलकाटनेसे उसकी सब शाखाएं सूखजाती हैं वैसेही उस कपटी विष्णुके नाशहोने से सब देवताओं का नाश होजायगा । क्योंकि उन सबका प्राण विष्णुही है ॥ ९ ॥ यह पृथ्वी ब्राह्मण और क्षत्रियों से भरीहुई है अतएव वहां जायकर तपस्या, यज्ञ, वेदाध्ययन, व्रत, और दानादि करनेवाले मनुष्यों कोमारो ॥ १० ॥ द्विजगणों की यज्ञ क्रियाही विष्णु प्राप्तकी मूलहै; क्योंकि विष्णुही यज्ञमय धर्म हैं वह देवता ऋषि, पितर और भूतगणों तथा धर्म को परम आश्रय है ॥ ११ ॥ जिस २ स्थान में गौ ब्राह्मण, वेद तथा वर्ण आश्रम और क्रिया होवें उन २ स्थानों में जा उनको जलादो और मनुष्यों तथा वृक्षों को काट डालो ॥ १२ ॥ हे महाराज ! एकतो असुरों को युद्ध प्याराही है दूसरे स्वामीकी आज्ञा मिली इससे व अत्यंत प्रसन्न हो स्वामीकी आज्ञा को मस्तकपर धारण कर प्रजाको मारने लगे ॥ १३ ॥ वे अत्याचार

नानिच ॥ १४ ॥ केचित्खनित्रैर्बिभिदुःसेतुप्राकारगोपुरान् । आजीव्यांश्चिच्छिदुर्वृक्षान्केचित्परशुपाणयः । प्रादहंछरणान्यन्ये प्रजानांज्वलितोल्मुकैः ॥ १५ ॥ एवंविप्रकृतेलोके दैत्येंद्रानुचरैर्मुहुः दिवंदेवाःपरित्यज्य भुविचेरुरलक्षिताः ॥ १६ ॥ हिरण्यकशिपुर्भ्रातुःसपरेतस्यभारत कृत्वाकटोदकादीनि भ्रातृपुत्रानसांत्वयत् ॥ १७ ॥ शकुनिंशंबरंधृष्टंभूतसंतापनंवृकम् । कालनाभंमहानाभंहरिश्मश्रुमथोत्कचम् १८ ॥ तन्मातरंरुषाभानुं दितिंचजननींगिरा । श्लक्ष्णयादेशकालज्ञ इदमाहजनेश्वर १९ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ अम्बाम्बहेवधूःपुत्रा वीरंमाऽर्हथशोचितुम् । रिपोरभिमुखे श्लाघ्यःशूराणांवधईप्सितः ॥ २० ॥ भूतानामिहसंवासः प्रपायामिवसुव्रते । दैवेनैकत्रनीतानामुन्नीतानांस्वकर्मभिः ॥ २१ ॥ नित्यआत्माऽव्ययःशुद्धःसर्वगःसर्ववित्परः । धत्तेऽसावात्मनोलिंगमाययाविसृजन्गुणान् ॥ २२ ॥ यथाऽम्भसाप्रचलतातरवोपिचलाइव । चक्षुषाभ्राम्यमाणेनदृश्यतेचलतीवभूः २३ ॥ एवंगुणैर्भ्राम्यमाणेमनस्यविकलः पुमान् । यातितत्साम्यतांभद्रेह्यलिङ्गो लिङ्गवानिव ॥ २४ ॥ एषआत्मविपर्यासो ह्यलिङ्गेलिङ्गभावना ॥ एषप्रियाप्रियैर्योगोवियोगः कर्मसंसृतिः ॥ २५ ॥ संभवश्चविनाशश्चशोकश्चविविधःस्मृतः ॥ अविवेकश्चचिन्ताच विवेकास्मृतिरेवच ॥ २६ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममिति

से पुर, ग्राम, व्रज, उद्यान, धान्यादि के खेत, लगाए हुए वन (बगीचे) आश्रय, खान, किसानों के निवास स्थान, राजधानी और पर्वत की द्रोणी आदिको जलाने लगे किसी २ के कुद्दाल द्वारा पुल, किला और दरवाजे आदिके खोदने का आरम्भ किया किसी २ ने कुल्हाडी द्वारा ऊर्जीव्य फल देनेवाले वृक्षों को काटगिराया कोई २ दानव जलतेहुए अंगार फेंक २ कर प्रजा के घरों को जलाने लगे ॥ १५ ॥ हे राजन् ! जब दैत्यराज हिरण्यकशिपु के सेवक नाना प्रकारकी हानिलोंकों को पहुचाने लगे तब यज्ञ भागके बन्द होनें से देवता स्वर्ग छोडकर अलक्षित शरीरसे पृथ्वीपर भ्रमण करनें लगे ॥ १६ ॥ इस घोर समय आनेपर दानवपति हिरण्यकशिपुनें दुखित चित्त से भाईका श्राद्ध तर्पण किया तदनन्तर शकुनि, शंबर, धृष्ट, भूतसंतापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु, और उत्कच इनसब भाईके पुत्रों को तथा इनकी माता रुषा भानुको और अपनी माता दिति को सन्तोष देताहुआ मधुर वाक्यों से ॥ १७।१८।१९ ॥ हिरण्यकशिपु बोला कि हेमाता ! हेवधु ! हेपुत्रो ! मेरे वीरभाईके निमित्त तुम्हें शोक करना उचितनहीं वीर पुरुषों का शत्रुओं के सामनेंही शरीर त्यागना प्रशंसनीय व प्रिय है ॥ २० ॥ हे सुव्रते ! जैसे जल पीनेंके स्थान में बहुतसे मनुष्य इकट्ठे होजाते हैंऔर कभाजलपीकरचले जाते हैं ऐसेही पृथ्वीपर प्राणियोंका एकत्र वास करनाहै वेपुनर्जन्मके कर्मानुसार कभी आपसमें मिलतेऔर कभी बिछडते हैं ॥ २१ ॥ आत्माकी मृत्यु नहीं होती वहअव्यय, निर्मल, सर्वगामी और सर्ववेत्ताहै क्योंकि वह देहादि से भिन्नहै आत्मा अपनीही अविद्याद्वारा सुखदुःख आदि स्वीकारकर लिंग शरीर धारण करताहै ॥ २२ ॥ जैसे जलके चलायमान होनेसे उसमें पडेहुए वृक्षो के प्रतिबिंब भी चलायमान जानपडते हैं और जैसे आंखके घूमने से पृथ्वीभीघूमती ज्ञात होती है, हेभद्रे ! वैसेही मनभी गुणों द्वारा भ्रमित होताहै इसी लिये आत्मा लिंग देह रहित होकरभी उसमन के समानही ज्ञात होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ शरीर का संबंध न होनेपरभी ऐसा मानलेना कि "मैं शरीर हूं" यही अपनें स्वरूपका विपर्यास है प्रिय पदार्थोंके साथ वियोग अप्रिय के साथ संयोग तथा कर्म और संसार का मूलभी यह देहाभिमानही है ॥ २५ ॥ इससेही उत्पत्ति विनाश, अविचार चिंता, और नाना प्रकार के शोक उत्पन्न होतेहैं ॥ २६ ॥ मनुष्य शोक करनेंका कारण नहोनेंपर भी वृथा शोक करताहै इस विषय में पंडित लोग एक पुराने इतिहासको उदाहरण स्वरूपसे कहा करते

हासपुरातनम् ॥ यमस्य प्रेतबन्धूनां संवादं तं निबोधत ॥ २७ ॥ उशीनरेष्वभूद्राजा सुयज्ञ इति विश्रुतः ॥ सपत्नैर्निहतो युद्धे ज्ञातयस्तमुपासत ॥ २८ ॥ विशीर्णरत्नकवचं विभ्रष्टाभरणस्रजम् ॥ शरनिर्भिन्नहृदयं शयानमसृगाविलम् ॥ २९ ॥ प्रकीर्णकेशं ध्वस्ताक्षं रभसा दष्टदच्छदम् ॥ रजःकुण्ठमुखाम्भोजं छिन्नायुधभुजं मृधे ॥ ३० ॥ उशीनरेन्द्रं विधिना तथा कृतं पतिं महिष्यः प्रसमीक्ष्य दुःखिताः ॥ हताः स्म नाथेति करैरुरो भृशं घ्नन्त्यो मुहुस्तत्पदयोरुपापतन् ॥ ३१ ॥ रुदत्य उच्चैर्दयिताङ्घ्रिपङ्कजं सिञ्चन्त्य अस्रैः कुचकुङ्कुमारुणैः ॥ विस्रस्तकेशाभरणाः शुचं नृणां सृजन्त्य आक्रन्दनया विलेपिरे ॥ ३२ ॥ अहो विधात्राऽकरुणेन नः प्रभो भवान्प्रणीतो दृगगोचरां दशाम् ॥ उशीनराणामसि वृत्तिदः पुरा कृतोऽधुना येन शुचां विवर्धनः ३३ ॥ त्वया कृतज्ञेन वयं महीपते कथं विना स्याम सुहृत्तमेन ते ॥ तत्रानुयानं तव वीर पादयोः शुश्रूषतीनां दिश यत्र यास्यसि ॥ ३४ ॥ एवं विलपतीनां वै परिगृह्य मृतं पतिम् ॥ अनिच्छतीनां निर्हारमर्कोऽस्तं संन्यवर्तत ॥ ३५ ॥ तत्र ह प्रेतबन्धूनामाश्रुत्य परिदेवितम् ॥ आह तान्बालको भूत्वा यमः स्वयमुपागतः ॥ ३६ ॥ यम उवाच ॥ अहो अमीषां वयसाधिकानां विपश्यतां लोकविधिं विमोहः ॥ यत्रागतस्तत्र गतं मनुष्यं स्वयं सधर्मा अपि शोचन्त्यपार्थम् ॥ ३७ ॥ अहो वयं धन्यतमा यदत्र त्यक्ताः पितृभ्यां न

है किसी मरेहुए मनुष्य के सम्बंधियों और यमका कथोपकथन उस इतिहासहै उसको मैं कहताहूं सुनो ॥२७॥ उशीनर देशमें सुयज्ञ नाम एक विख्यात राजाथा, वह युद्धमें शत्रुओं के हाथ से मारागया उसके जातिवालों ने उसके समीप आय उसको चारों ओर से घेर लिया ॥२८॥ उसका रत्नजटित कवच और मालादि आभरण छिन्न भिन्न होगये थे, हृदय तीक्ष्ण शरोंसे छेदित हो रुधिरसे व्याप्त होगया था ॥ २९ ॥ उसके केश बिखर गए थे, दोनो आंखें तेज रहित होगई थीं तथा क्रोध पूर्वक उसने जो ओंठ काटे थे उनका उस समय भी वही भाव था उसका कमल मुख संग्रामकी धूल से धूसर और भुजाएं छिन्न होगईं थीं तथा उसके सब शस्त्र कटगये थे ॥ ३० ॥ महाराज सुयज्ञ का दैव वश से ऐसी दशा हुई देख उसकी स्त्रियें दुःखित हो; हाथों से बारबार अपनी छाती पीट २ कर "हम मर गईं" ऐसे कह कह उसके चरणों में गिर पड़ीं ॥ ३१ ॥ स्तनों में लगी हुई केशर से आसुओं द्वारा प्यारेपति के चरणों को रंग २ कर दुःखित हो ऊंचे स्वर से विलाप करने लगीं उनके बाल और आभूषण बिखर गये अनतर उनके करुणा भरे स्वर से मनुष्यों के अंतःकरण में शोक उत्पन्न होआया और सभी सब विलाप करनेलगे, ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! आप हमारे प्रभुहो, आपकी दुर्दशा देखकर हमारा हृदय फटाजाता है, हम आपकी ओर नहीं देखसकतीं, हाय ! विधाता ने आपकी यह गतिकरदी। पहिले तुम उशीनर देश निवासी प्रजाओं को जीविका देते थे; किंतु इस समय आपको देखने से हृदय में शोक उत्पन्न होता है ॥ ३३ ॥ हे महीपते ! आप हमारे परम सुहृद और जीविका देनेवालेहो अतएव बिनाआपके हम किसभांति जीवन धारण करें; हे वीर ! जिस स्थान पर आप जातेहो उसी स्थानपर चलने की हमेंभी आज्ञाकरो, हम उस स्थान मेंभी आपके दोनो चरणोंकी सेवा करेंगी ॥ ३४ ॥ दाहकरनेको न लेजावें, इस अभिप्राय से उस मरेपतिको रानियें गोदमेंधर इसभांति बारंबार विलाप करनेलगीं । इतने में सूर्य अस्त होगये ॥३५॥ उस समय मरेहुये राजाके संबंधियों के रोनेका शब्द यमराजके कानमेंपड़ा । उन्होंने बालक का रूप धारणकर स्वयं उसस्थान पर आ इस रीतिसे कहा ॥३६॥ यमराज बोलेकि, अहो ! यह सब मनुष्य आयुमें मुझसे अधिक हैं; यह मनुष्यों का मरना जीना वारंवार देखते हैं तौभी यह संबंधियों के वियोग से दुःख करते हैं, मनुष्य जहां से आता है वहींजाता है, फिर उसके निमित्त वृथा शोक क्यों करे ? एक दिन इसको तो मरनाही पड़ता ॥ ३७ ॥ मैं अत्यंत धन्य हूं क्योंकि

विधिस्तयामः ॥ अभक्ष्यमाणा अबला वृकादिभिः स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे । ३८ ।
यइच्छयेशः सृजतीदमव्ययो य एव रक्षत्यवलुम्पते च यः ॥ तस्याबलाः क्रीडनमाहु-
रीशितुश्चराचरं निग्रहसंग्रहे प्रभुः ॥३९॥ पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं गृहेस्थितं तद्वि
हतो विनश्यति । जीवत्यनाथोऽपि तदीक्षितो वने गृहेऽपि गुप्तोऽस्य हतो न जीवति ४०॥
भूतानि तैस्तैर्निजयोनिकर्मभिर्भवन्ति काले न भवंति सर्वशः । न तत्र ह्यात्मा प्रकृतावपि
स्थितस्तस्या गुणैरन्यतमो निबध्यते ॥४१॥ इदं शरीरं पुरुषस्य मोहजं यथा पृथग्भौति
कमीयते गृहम् । यथोदकैः पार्थिवतैजसैर्जनः कालेन जातो विकृतो विनश्यति ४२ ॥
यथाऽनलो दारुषु भिन्न ईयते यथाऽनिलो देहगतः पृथक्स्थितः । यथा नभः सर्वगतं न स
ज्जते । तथा पुमान् सर्वगुणाश्रयः परः ॥ ४३ ॥ सुयज्ञो नन्वयं शेते मूढा यमनुशोचथ ।
यः श्रोता योऽनुवक्तेह स न दृश्येत कर्हिचित् ॥४४॥ न श्रोता नानुवक्ताऽयं मुख्योऽप्यत्र
महानसुः । यस्त्विहेन्द्रियवानात्मा स चान्यः प्राणदेहयोः ॥ ४५ ॥ भूतेन्द्रियमनोलिं
गान् देहानुच्चावचान्विभुः । भजत्युत्सृजति ह्यन्यस्तच्चापि स्वेन तेजसा ॥४६॥ याव

पिता माता ने मुझे छोड़दिया तिसपर भी मैं कुछ चिंता नहीं करता; मेरे दुर्बल होनेपरभी भेड़िया आदि मुझे नहीं खाते, जिसने गर्भमें रक्षाकी है वही यहां भी रक्षक है ॥ ३८॥ हे स्त्रियों ! जोइच्छानुसारही इस सृष्टिको रचना, पालता, और सहारता है,—पंडितजन कहते हैं कि यह चराचर विश्व उन्हीं भगवान के खेलनेका पदार्थ है, और उन्हीं में पालन तथा संहार की शक्ति है ॥३९॥ मार्गमेंभी पड़ाहुआ मनुष्य परमेश्वरहीके रक्षकहोनेसे रक्षापाता है और घरमेंभी रहाहुआ मनुष्यपरमेश्वर के मारने से मरता है और उसी की कृपा दृष्टि से वनमें भी निःसहाय मनुष्य के जीवन की रक्षा होती है और उसी के विमुख होने से नाना रक्षाओं से रक्षित मनुष्यभी जीता नहीं रह सकता ॥ ४० ॥ यह देह स्वयं ही अपने कर्मों के वशीभूत हो काल क्रम से उत्पन्न तथा नाश होता है परन्तु इस देह में रहीहुई आत्मा, जन्म, मृत्यु और दूसरे शारीरिक धर्मों में लिप्त नहीं होती क्योंकि वह देहसे भिन्न है॥४१॥देह पंचभूतों से बनाहुआहै अतएव देखनेमें आताहै परन्तु आत्मा भौतिक नहीं है इससे नहीं दिखाईदेती इस लिये आत्मा देहसे भिन्न और देहकी उत्पत्ति का कारण है अज्ञानी मनुष्य भौतिक देहकोंही आत्मा मानता है परन्तु यह सत्य नहीं है जल के परमाणुओं से उत्पन्नहुए बुद्बुद पार्थिव परमाणुओं से उत्पन्न घट, तथा तैजस परमाणुओं से उत्पन्न स्वर्णके कुण्डल आदि पदार्थ नाशको प्राप्त होतेहैं तैसेही यह देहभी कालक्रम से नष्ट होती है परन्तु उसके साथ आत्मा का नाश नहीं होता ॥४२॥ अग्नि जैसे काष्ठ के भीतर रहकर भी काष्ठ से भिन्न प्रतीत होता है,वायु जैसे शरीर के भीतर रहता हुआभी पृथक ज्ञात होताहै,आकाश जैसे सर्वगत होनेंपरभी किसी से मिश्रित नहीं होता तैसेही आत्मा भी देह और इन्द्रियों का आश्रय होकरभी पृथकही रहता है, ॥ ४३ ॥ हे मूर्खो ! तुम जिसके निमित्त शोक करते हो तुम्हारा प्रभु वही सुयज्ञ तो यह सोरहा है तुम यदि कहो कि यह हमलोगों के रोनेको नहीं सुनता और न हम से कुछ बात करता तिसकाहम शोक करती हैं। तो इसका भी तुमको शोक नहीं करना चाहिये ॥४४॥ क्यों कि इस देह में जो सुननें वाला और बोलनें वाला है उसे तुमनें पहिलेभी नहीं देखाथा यदि कहो कि मुख और नाक में चलने वाले प्राण को हमने देखाथा जो सब इन्द्रियों की चेष्टा का कारण और मुख्य बोलने वाला तथा सुननेवाला था तो यहभी कारण नहीं है क्योंकि प्राण तो जड़ है इसीसे बोलने तथा सुननेवालाभी नहीं तो फिर शुद्ध चैतन्य स्वरूप जो आत्मा देह के बीच में वास करता है वही वक्ता वही श्रोता और वही द्रष्टा है वह देह, प्राण, और इन्द्रियादि सबही से पृथक् है ऊंच व नीच सबही देह पंचभूत इन्द्रिय तथा मन द्वारा निर्मित हैं ॥ ४५ ॥ आत्मा प्राण इन्द्रिय और मनके कारण शरीर

लिंगान्वितोह्यात्मा तावत्कर्मनिबन्धनम् । ततोविपर्ययःक्लेशो मायायोगोऽनुवर्तते ॥४७॥वितथाभिनिवेशोऽयंयद्गुणेष्वर्थदृग्वचः । यथामनोरथःस्वप्नःसर्वमैन्द्रियकं मृषा ॥ ४८ ॥ अथनित्यमनित्यंवा नेहशोचन्तितद्विदः । नान्यथाशक्यतेकर्तुं स्व भावःशोचतामिति ॥ ४९ ॥ लुब्धकोविपिनेकश्चित् पक्षिणांनिर्मितोऽन्तकः । वित त्यजालंविदधेतत्रतत्रप्रलोभयन् ॥५०॥ कुलिंगमिथुनंतत्रविचरत्समदृश्यत । तयोः कुलिंगीसहसा लुब्धकेनप्रलोभिता ॥ ५१ ॥ साऽसज्जतशिचस्तन्त्यां महिषीका लयंत्रिता । कुलिंगस्तांतथापन्नां निरीक्ष्यभृशदुःखितः । स्नेहादकल्पःकृपणःकृपणां पर्यदेवयत् ॥ ५२ ॥ अहोअकरुणोदेवः स्त्रियाकरुणयाविभुः कृपणमाऽनुशोचंत्या दीनयाकिंकरिष्यति ॥ ५३ ॥ कामनयतुमांदेवःकिमर्धेनात्मनोहिमे दीनेनजीविता दुःखननेनविधुरायुषा ॥५४॥ कथंत्वजातपक्षांस्तान् मातृहीनान्बिभर्म्यहम् । मंद भाग्याःप्रतीक्षन्ते नीडेमेमातरंप्रजाः ॥ ५५ ॥ एवंकुलिंगंविलपन्तमारात् प्रियावियो गातुरमश्रुकण्ठम् । सएवतंशाकुनिकःशरेण विव्याधकालप्रहितोविलीनः ॥ ५६ ॥ एवंयूयमपश्यन्त्यआत्मापायमबुद्धयः । नैनंप्राप्स्यथशोचन्त्यःपतिंवर्षशतैरपि ५७॥ हिरण्यकशिपुरुवाच । बालएवंप्रवदतिसर्वेविस्मितचेतसः ज्ञातयोमेनिरेसर्वमनि

को "मैं मेरा" ऐसा मानलेता है और जब विचार उत्पन्न होताहै तभी उस देहाभिमान को छोड़ देता है ॥ ४६ ॥ हे मूर्खों ! आत्मा जबतक लिंग शरीर युक्त रहता है तबहीतक उसके बन्धन के कारण होते हैं इसके उपरांत विपर्यय और फिर क्लेश उत्पन्न होता है । परन्तु यह सबविपर्यय आदि माया कल्पित हैं परमार्थ स्वरूप नहीं है ॥ ४७ ॥ सुख दुःख आदि आत्माके धर्म हैं ऐसा मानना और कहना यही मिथ्या अभिनिवेश है, जैसे स्वप्न के मनोरथ मिथ्या होते हैं तैसेही इन्द्रिय संबंधी सबही बातें असत्यहैं॥४८॥ अतएव जो मनुष्य आत्माको नित्य और देह को अनित्य जानताहै वह किसी की मृत्यु पर शोक प्रकाशित नहीं करता । और जो शोक करते हैं, वह उनके उलटे स्वभाव का फल है शोक ग्रसित मनुष्योंको समझाने के लिये दृष्टान्त कहते हैं कि ॥ ४९ ॥ पक्षियों का काल स्वरूप एक व्याधा जिस २ स्थान में पक्षी रहते थे उन्हीं उन्हीं स्थानों में लोभ दिखाय जाल फैलाय उनको पकड़ता था ॥ ५० ॥ एक दिन दो कुलिंग पक्षी (स्त्री पुरुष) एकत्र हो जंगल में घूमते थे उनमें से कुलिंगी व्याध के लोभमें आय जाल में फस गई । प्यारीको इस भांति आपत्ति में पड़ा हुआ देख कुलिंग का अंतःकरण अत्यंत दुःखित हुआ वह प्रेम के वश कातर हो कातर स्त्री के निमित्त विलाप करने लगा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ अहो ! दैव कैसा निठुर है ! यह स्त्री मुझे दुःखित देखकर अति दीन भावसे शोक प्रकाश करती है, रे दैव! तू इसको लेकर क्या करेगा ॥ ५३ ॥ यह प्यारी, मेरी अर्द्धांगी है इस के अलग होनेसे मेरा अर्द्धांग इस समय अत्यन्त दुःखित होरहाहै, दुःख से जीतेहुये इस देहार्द्ध से मुझे क्या करनाहै इसलिये हे दैव ! तू मुझे भी हरणकर ॥५४॥ अहो ! मेरे बच्चों के अबतक परभी नहीं निकले हैं; उनके माता रहित होने से मैं किसप्रकार उनकापालन करूंगा ? वे बच्चे घोसले में अपनी माताकी राह देखते होंगे ॥ ५५ ॥ कुलिंगपक्षी अपनी प्यारी के वियोग में इसभांति व्याकुल और अश्रुकण्ठहो विलाप कररहा था । फिर उसी समय पक्षियों के मारनेवाले उसकाल प्रेरित व्याध ने गुप्तबाणद्वारा उसको भी मारडाला ॥ ५६ ॥ तुमभी उसी प्रकार मूर्ख हो अपनी आनेवाली मृत्युकी ओर नहीं देखतीं, तुम चाहे सौ वर्षतक शोककरो परन्तु अब अपने इस पति को नहीं पासकतीं ॥ ५७ ॥ हिरण्यकशिपु ने कहाकि उस बालक के इसभांति कहनेपर सबलोगों ने विस्मित होकर विचारकिया, कियह

स्थमयथोस्थितम् ॥ ५८ ॥ यमएतदुपाख्याय तत्रैवांतरधीयत । ज्ञातयोऽपिसुयज्ञस्य व्यकुर्वन्सांपरायिकम् ॥ ५९ ॥ ततःशोचतमायूयं परस्यात्मानमेवच । कआत्माकः परोवाऽत्रस्वीयःपारक्यएववा । स्वपराभिनिवेशेन विनाज्ञानेनदेहिनाम् ॥ ६० ॥ नारदउवाच ॥ इतिदैत्यपतेर्वाक्यंदितिराकर्ण्यसस्नुषा पुत्रशोकंक्षणात्त्यक्त्वातत्त्वे चित्तमधारयत् ॥ ६१ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०सप्त०द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

नारदउवाच ॥ हिरण्यकशिपूराजन्नजेयमजरामरम् । आत्मानमप्रतिद्वन्द्वमेकराजंव्यधित्सत ॥ १ ॥ सतेपेमन्दरद्रोण्यां तपःपरमदारुणम् । ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादांगुष्ठाश्रितावनिः ॥ २ ॥ जटादीधितिभीरेजे संवर्तार्कइवांशुभिः तस्मिंस्तपस्तप्यमानेदेवाः स्थानानिभेजिरे ॥ ३ ॥ तस्यमूर्ध्नःसमुद्भूतःसधूमोऽग्निस्तपोमयः तिर्यगूर्ध्वमधोलोकानतपद्विष्वगीरितः ॥ ४ ॥ चुक्षुभुर्नद्युदन्वंतः सद्वीपाद्रिश्चचाल भूः । निपेतुःसग्रहास्तारा जज्वलुश्चदिशोदश ॥५॥ तेनतप्तादिवंत्यक्त्वा ब्रह्मलोकंययुःसुराः । धात्रेविज्ञापयामासुर्देवदेवजगत्पते ॥ ६ ॥ दैत्येंद्रतपसातप्तादिविस्थातुंनशक्नुमः । तस्यचोपशमंभूमन्विधेहियदिमन्यसे । लोकानयावन्नक्ष्यन्तिबलिहारास्तवाभिभूः ॥ ७ ॥ तस्यायंकिलसंकल्पश्चरतोदुश्चरंतपः श्रूयतांकिंनविदितं

सबही पदार्थ अनित्य और मिथ्या हैं ॥ ५८ ॥ यम यह इतिहास कहकर उस स्थान से चलेगये तदनन्तर सुयज्ञराजा के जातिवालों ने शोक छोड़कर उसके सब मृतककर्म किये॥५९॥अतएव तुम को भी अपने व दूसरे के निमित्त शोक करना उचितनहीं है । इस संसारमें अपनाही क्या है और परायाहीक्याहै? यहां कौन मनुष्य अपना और कौन दूसरेका है? "यह मेरा है""यह दूसरेका है" यह केवल अज्ञानही है। जो प्राणी इसभांति के अज्ञानसे मोहित नहीं होते उनको अपने परायेका भेद भी नहीं होता, ॥ ६० ॥ नारदजीने कहाकि अपनी पुत्रवधू समेत दिति दैत्यपति के ऐसे वचनों को सुन पुत्रशोकको त्याग परमात्मा मे मन लगातीहुई ॥ ६१ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० सप्तम० सरला भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

नारदजी बोलेकि-हे राजन् ! हिरण्यकशिपु की इच्छाहुई कि मैं अजित, अजर अमर, और चक्रवर्ती अद्वितीय राजाहोऊं ॥ १ ॥ इस इच्छासे वह दोनों भुजाओंको उठाकर आकाश कीओर दृष्टि लगाय केवल पैरके अंगूठे से पृथ्वी पर खड़ाहो मंदराचल की कंदरामें अत्यंत घोरतपस्या करने लगा ॥ २ ॥ प्रलय कालके सूर्य जैसे प्रचण्ड किरणोंद्वारा विराजित होतेहैं तैसेही यह दैत्य अपनी जटाकांति से विराजमान हुआ। स्वर्ग से भागेहुये देवतागण दैत्य राजको पर्वत की गुफामें तपस्या करते देख अपने २ स्थान में आये ॥ ३ ॥ कुछ कालके उपरांत तपके प्रभाव से हिरण्यकशिपु के शिरमें से एक प्रकार का धूमयुक्त अग्नि उठकर सब स्थानोमें फैलगया और ऊपर नीचे इधर उधर फैलकर सब लोकोंको जलाने लगा ॥ ४ ॥ उसतीव्र तपस्या के प्रभाव से नद, नदी और समुद्र क्षुभित होउठे; पर्वत, द्वीप और पृथ्वी चलायमान होगई; ग्रह और तारागण टूटनेलगे, और दशोंदिशाएं प्रज्वलित होउठीं । यह उत्पात देखकर देवतागण संतप्तहो स्वर्ग लोकको छोड़ ब्रह्म लोकमें आये, और ब्रह्माजी से कहनेलगे कि-हे देव देव ! हे जगत्पते ! ॥ ५ ॥ ६ ॥ दैत्यराज हिरण्यकशिपु की तपस्या से संतप्त हुएहम अब स्वर्गमें नहीं रहसकते । हे भूमन् ! यदि आपकी इच्छाहोतो जबतक आपके भक्तलोग भलीभांति से नष्ट न होवें उसके पहिलेही इसकी शांति का यत्नकरो ॥ ७ ॥ यद्यपि आपसे कुछछिपा नहीं है तौभी वह जिस अभिप्राय से घोरतप करताहै

स्तथाथापिनिवेदितः ॥ ८ ॥ सृष्ट्वाचराचरमिदं तपोयोगसमाधिना । अध्यास्तेसर्वधिष्ण्येभ्यः परामेष्ठीनिजासनम् ॥९॥ तदहंवर्धमानेन तपोयोगसमाधिना । कालात्मनोश्चनित्यत्वात्साधयिष्ये तथात्मनः ॥ १० ॥ अन्यथेदंविधास्येऽहमयथापूर्वमोजसा । किमन्यैःकालनिर्धूतैः कल्पांतेवैष्णवादिभिः ॥ ११ ॥ इतिशुश्रुमनिर्बंधतपः परममास्थितः विधत्स्वानंतरंयुक्तंस्वयंत्रिभुवनेश्वर ॥१२॥तवासनंद्विजगवांपारमेष्ठ्यजगत्पते । भवायश्रेयसेभूत्यै क्षेमायविजयायच ॥ १३ ॥ इतिविज्ञापितोदेवैर्भगवानात्मभूर्नृप । परितोभृगुदक्षाद्यैर्ययौदैत्येश्वराश्रमम् ॥१४॥ नत्वदर्शप्रतिच्छन्नंवल्मीकतृणकीचकैः । पिपीलिकाभिराचीर्णं मेदस्त्वङ्मांसशोणितम् ॥१५॥ तपन्तंतपसालोकान् यथाऽभ्रापिहितरविम् । विलक्ष्यविस्मितः प्राहप्रहसनंहंसवाहनः १६ ब्रह्मोवाच ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठभद्रंते तपःसिद्धोऽसिकाश्यप। वरदोऽहमनुप्राप्तो व्रियतामीप्सितोवरः ॥ १७ ॥ अद्राक्षमहमेतत्ते हृत्सारमहदद्भुतम् । दंशभक्षितदेहस्य प्राणाह्यस्थिषुशेरते ॥ १८ ॥ नैतत्पूर्वर्षयश्चक्रुर्नकरिष्यन्तिचापरे । निरम्बुर्धारयेत्प्राणान्कोवैदिव्यसमाःशतम् ॥ १९ ॥ व्यवसायेनतेऽनेन दुष्करेणमनस्विनाम्। तपोनिष्ठेनभवताजितोऽहंदितिनन्दन ॥२०॥ततस्तआशिषःसर्वाददाम्यसुरपुङ्गव । मर्त्यस्यतेअमर्त्यस्यदर्शनंनाफलंमम ॥ २१ ॥ नारदउवाच ॥ इत्युक्त्वाऽऽदिभवोदेवो

सोहम निवेदन करते हैं आप सुनिये ॥८॥ हे ब्रह्मन्! जैसे आप चराचर जगतको रचकर तप और योग निष्ठाद्वारा सर्वश्रेष्ठ आसन पर बैठेहो ॥ ९ ॥ काल और आत्मा नित्य है अतएव (एक जन्म में न होतो बहुत जन्मों में) बड़े भारीतप और योगकी निष्ठाद्वारा मैंभी उसी भांति स्वयं आप (ब्रह्मा) के श्रेष्ठ आसन का अधिकारी होऊं ॥ १० ॥ नहीं तो तपके प्रभाव से इस जगत केसमस्त नियमों को उलटादूंगा। इसके अतिरिक्त कल्पांत में नाश होनेवाले वैष्णवादि पदोंसे मुझेक्या प्रयोजन है? ॥ ११ ॥ उसदैत्य की ऐसी दृढ प्रतिज्ञा सुनी है । इसी कारण वह घोर तपस्या कररहा है । इस विषयमें जोउचितहो सोकरिये; क्योंकि आप स्वयही त्रिभुवन पतिहो ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपके पदच्युत होनेपर साधुओं का अत्यतही अनिष्ट होगा, क्योंकि ब्रह्म लोकही गौ ब्राह्मणों का प्रतिपालन तथा सर्वसुख और सर्व ऐश्वर्य व सव उत्कर्षों का आधार है ॥ १३ ॥ हे राजन्! देवताओं के इसभांति कहनेपर भगवान ब्रह्माजी—भृगु, और दक्ष आदि मुनियों सहित हिरण्यकशिपु के आश्रम में आये ॥ १४ ॥ वहांपर आयकर पहिलेतो उन्होंने उसको न देखा क्योंकि वह वल्मीक (बांबी) तृण और कीचक (बांस) से ढकगया था और चींटेआदि बहुत से कीड़े उसकी त्वचा, मांस, मेद और रुधिरको चाटगये थे ॥ १५ ॥ कुछ एक देरके उपरात ब्रह्माजी ने तपद्वारा तीनो लोक को संतप्त करने वाले उस दैत्येंद्रको मेघों से ढकेहुये सूर्यकी समान देखा । तब ब्रह्माजी ने विस्मित चित्तसे हंसते २ कहा ॥ १६ ॥ कि—हे कश्यप नंदन उठो-उठो—तुम्हारा कल्याण हो, तुम तपस्या से सिद्ध हुये; मैं वरदेने आया हूं इच्छा वर मांगो ॥ १७ ॥ तुम्हारा अतिअद्भुत धीरज मैंने देखा चींटे तुम्हारा शरीर खागये हैं, तुम्हारे प्राण केवल हड्डियों मेही रहगये हैं ॥ १८ ॥ हे वत्स ! पहिले के ऋषि भी कभी ऐसी तपस्या नहीं करसके, और न अब कोई कर सकेगा;—जल पर्य्यन्त छोड़कर कौन देवताओं के १०० वर्ष तक प्राण धारण कर सकता है ? ॥ १९ ॥ हे दिति नदन ! तुम्हारी सी कठोर तपस्या बड़े बड़े माहात्मा भी नहीं कर सकते, तुम्हारे इस तप से मैंभी पराजित होगया हूं ॥ २० ॥ अतएव हे असुर—श्रेष्ठ ! यद्यपि तुम मृत्यु (मरण युक्त) हो तौभी मैं तुमको सब इच्छित वर दूंगा । हे वत्स ! मैं अमरहूं मेरा दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता ॥ २१ ॥ नारदजी बोले कि—इतना कहकर ब्रह्माजी अपने कमडलु से जल ले हिरण्यकशिपु

भक्षिताङ्गं पिपीलिकैः। कमण्डलुजलेनौक्षद्दिव्येनामोघराधसा ॥ २२ ॥ सतत्कीचकवल्मीकात्सह ओजोबलान्वितः ॥ सर्वावयवसंपन्नो वज्रसंहननो युवा ॥ उत्थितस्तप्तहेमाभो विभावसुरिवैधसः ॥ २३ ॥ सनिरीक्ष्याम्बरे देवं हंसवाहमवस्थितम्। ननाम शिरसाभूमौ तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ २४ ॥ उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्वईक्षमाणो दशा विभुम् ॥ हर्षाश्रुपुलकोद्भेदो गिरागद्गदयाऽगृणात् ॥२५॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ कल्पान्ते कालसृष्टेन योऽन्धेन तमसावृतम्। अभिव्यनक्जगदिदं स्वयंज्योतिःस्वरोचिषा ॥ २६ ॥ आत्मना त्रिवृता चेदं सृजत्यवति लुम्पति। रजः, सत्वतमोधाम्ने पराय महते नमः ॥ २७ ॥ नम आद्याय बीजाय ज्ञानविज्ञानमूर्तये। प्राणेन्द्रियमनोबुद्धिविकारैर्व्यक्तिमीयुषे ॥२८॥ त्वमीशिषे जगतस्तस्थुषश्च प्राणेन मुख्येन पतिः प्रजानाम्। चित्तस्य चित्तेर्मनइन्द्रियाणां पतिर्महान्भूतगुणाशयेशः ॥ २९ ॥ त्वं सप्ततन्तून्वितनोषि तन्वा त्रय्या चातुर्होत्रकविद्यया च। त्वमेक आत्मात्मवतामनादिरनन्तपारः कविरन्तरात्मा ॥३१॥ त्वमेव कालोऽनिमिषो जनानामायुर्लवाद्यावयवैः क्षिणोषि। कूटस्थ आत्मा परमेष्ठ्यजो महांस्त्वं जीवलोकस्य च जीव आत्मा ३१ ॥ त्वत्तः परं नापरमप्यनेजदेजच्च किंचिद्व्यतिरिक्तमस्ति। विद्याकलास्ते तनवश्च सर्वा हिरण्यगर्भोऽसि बृहत्त्रिपृष्ठः ॥ ३२ ॥ व्यक्तं विभो स्थूलमिदं शरीरं येनेन्द्रियप्राण

के चीटों से खाये हुये शरीर में छिड़कने लगे। उस जल के स्पर्श होते ही उस का शरीर वज्रकी समान दृढ़ होगया और जो जो स्थान चींटियोंने खालिये थे व सब स्थान पूर्ण होगये, जैसे काठों से अग्नि बाहर होता है वैसेही वह हिरण्यकशिपु बांसों के खोह से निकला, उस समय उस का शरीर तपाये हुये सोने की समान प्रकाश पाने लगा। उसने हंस पर चढे हुये ब्रह्माजी को आकाश में उपस्थित देख, पृथ्वी पर गिर साष्टांग प्रणाम किया ॥ २२—२४ ॥ उनको देखकर हिरण्यकशिपु को अत्यानंद हुआ, अनन्तर वह उठकर, हाथजोड़, विनीत भाव से ब्रह्माजी की ओर एकटक दृष्टिसे देखने लगा उससमय उसके रोमांचहो आया और आनंदाश्रुबहने लगे। वह गद्गदवाणी से कहनेलगा कि॥२५॥हे विश्वसृक्! प्रलय कालके घोर अधकारसे इस विश्वको जिन्होंने प्रकाशित किया है जो स्वयं ही प्रकाशमान हैं जो सत्व, रज, और तम इन तीनो गुणों के आश्रय से जगत की उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं उन त्रिगुण के आश्रय रूप परमेश्वर को मैं प्रणाम करता हू ॥ २६ ॥ २७ ॥ आपही इस जगत के कारण हो। आप आदि पुरुष हो ज्ञान विज्ञान आपहीकी मूर्ति है। प्राण इन्द्रिय और बुद्धि रूप विकारोंसे कार्य के आकारको प्राप्त हुये आप को मैं प्रणाम करता हू ॥ २८ ॥ हे प्रभो! आप प्राण स्वरूप से इस सृष्टिके सब चर अचर के प्रतिपालक हो इस कारण आप प्रजाओंके पति और उनके चित्त, चेतना मन और इन्द्री सबके स्वामी हो, अतएव आपही महत तथा आकाशादि भूत, शब्दादि विषय, और इन सब विषयोंके भोग करने वाले एक आपही ईश्वर हो ॥ २९ ॥ हे भगवन्! आपकी वेदमयमूर्तियाग, यज्ञादिकी ज्ञान स्वरूपा है आप उसी पवित्र मूर्त्ति का आश्रय करके अग्निष्टोमादि नाना प्रकार के यज्ञोंका विस्तार करते हो। आप ही सब प्राणियों के आत्मा, अतर्यामी, सर्वज्ञ, अनंत और अनादि हो ॥ ३० ॥ हे भगवन्! आपही काल स्वरूप हो अतएव आपही निमेष शून्य हो क्षण, लवादि विभागों से सब सृष्टि की आयु क्षय करते हो। आप ज्ञान रूप परमेश्वर जन्म रहित और असीम हो आपही प्राणियों के जीवन देने वाले और आपही नियता हो ॥ ३१ ॥ कार्य, कारण, चर, अचर, कुछभी आपसे भिन्न नहीं है, वेद, उपवेद, और वेदांग आपकेही शरीर हैं आप ब्रह्म हो, आप हिरण्य गर्भ हो, और प्रकृति के परे स्थितहो ॥ ३२ ॥ हे विभो! सत्य तो

मनोगुणास्त्वम् । भुंक्षेस्थितोधामनिपारमेष्ठ्य अव्यक्तआत्मापुरुषःपुराणः ॥ ३३ ॥ अनन्ताव्यक्तरूपेण येनेदमखिलंततम् चिदचिच्छक्तियुक्ताय तस्मैभगवतेनमः ३४॥ यदिदास्यस्यभिमताम्वराम्मेवरदोत्तम । भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्मोभून्ममप्रभो ॥ ३५ ॥ नान्तर्बहिर्दिवा नक्तमन्यस्मादपिचायुधैः । नभूमौनाम्बरेमृत्युर्नरैर्नमृगैरपि ॥ ३६ ॥ व्यसुभिर्वाऽसुमद्भिर्वा सुरासुरमहोरगैः । अप्रतिद्वन्द्वतांयुद्धेऐकपत्यं चदेहिनाम् ॥ ३७ ॥ सर्वेषांलोकपालानां महिमानंयथात्मनः। तपोयोगप्रभावाणांय न्नरिष्यतिकर्हिचित् ॥ ३८ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० सप्त० तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

नारद उवाच ॥ एवंवृतः शतधृतिर्हिरण्यकशिपोरथ ॥ प्रादात्तत्तपसाप्रीतो वरांस्तस्यसुदुर्लभान् ॥१॥ ब्रह्मोवाच ॥ तातेमे दुर्लभाः पुंसांयान् वृणीषे वरान् मम ॥ तथापिवितराम्यङ्गवरान् यद्यपिदुर्लभान् ॥२॥ ततोऽगामभगवानमोघानुग्रहोविभुः ॥ पूजितोऽसुरवर्येणस्तूयमानः प्रजेश्वरैः ॥ ३ ॥ एवं लब्धवरोदैत्यो बिभ्रद्धेममयंवपुः ॥ भगवत्यकरोद्द्वेषंभ्रातुर्वधमनुस्मरन् ॥ ४ ॥ सविजित्यदिशः सर्वा लोकांश्च त्रीन्महासुरः ॥ देवासुरमनुष्येन्द्रान्गन्धर्वगरुडोरगान् ॥ ५ ॥ सिद्धचारणविद्याध्रानृषीन्पितृपतीन्मनून् ॥ यक्षरक्षःपिशाचेशान्प्रेतभूतपतीनथ ॥ ६ ॥ सर्वसत्त्वपतीञ्जित्वावशमानीय विश्वजित् ॥ जहारलोकपालानां स्थानानि सह तेजसा ॥ ७ ॥ देवोद्यानश्रियाजुष्टमध्यास्तेस्म त्रिविष्टपम् ॥ महेन्द्रभवनंसाक्षान्निर्मितं

यह है कि ब्रह्माण्डही आपका स्थूल शरीर है आप सदा इस शरीर द्वारा इन्द्रिय प्राण और मन के विषयोंका भाग करते रहतेहो अतएव आप उपाधि रहित, ब्रह्म, पुराण पुरुषहो ॥ ३३ ॥ हे अनत आप अव्यक्त रूप द्वारा इस समस्त विश्व में व्याप्त हो हे भगवन् ! आपका ऐश्वर्य अचिंतनीयहै, आप विद्या और माया युक्त रहतेहो, आपको मेरा प्रणाम है ॥ ३४ ॥ हे वरदश्रेष्ठ ! आप यदि मुझे इच्छित वर देतेहो तो यह वर दो, कि आपके रचेहुए किसी प्राणीसे मेरी मृत्यु नहो ॥ ३५ ॥ बाहर भीतर, दिनमें रात्रिमें, जो आपके रचेहुए नहीं है उनसेभी, अस्त्र द्वारा, भूमिमें आकाशमें मेरी मृत्यु नहो मनुष्य, पशु, प्राणी, अप्राणी, देव, दैत्य अथवा सर्प मुझको नमारसके हे प्रभु ! समर में अजेय चक्रवर्ती और सब प्राणी और लोकपालों का स्वामी, सर्व महिमा युक्त होऊं आप ऐसा वर दो ॥ ३६ । ३७ ॥ तप व योग के प्रभाव वाले पुरुषों की जो अणिमादिक सिद्धियां नाश नहीं होती वेही अणिमादिक ऐश्वर्य मुझकोभीदो ॥ ३८ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० सप्तमस्कंधे सरला भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

नारदजी बोले कि—हिरण्यकशिपुकी उग्र तपस्या से भगवान ब्रह्माजी ने सन्तुष्ट होकर उस की प्रार्थना के अनुसार वे सब दुर्लभ वर उसदिये ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे तात ! तूनेजो मुझ से वर मांगे वे वर मनुष्योंको अत्यन्तही दुर्लभहैं परन्तु हे दैत्येन्द्र ! यद्यपि वह सबवर दुर्लभहैं तथापि मैं तुझको देताहूं ॥२॥ फिर नारदजी ने कहा कि—ब्रह्मा इस भांति वरदान दे दैत्यराज और प्रजापतियों से पूजित हो ब्रह्मलोक को गये ॥ ३ ॥ हिरण्यकशिपु इस भांति से वरपाय कंचन का शरीर धारणकर भाई के मरण की वार्त्ता का स्मरण करताहुआ भगवान से द्वेष करनेलगा ॥ ४ ॥ उस महाअसुर ने दशोदिशायें तीनों लोक तथा देव, असुर राजा, गन्धर्व, गरुड, सर्पगण, सिद्ध, चारण, विद्याधर, ऋषिगण, पितृपति, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, पिशाचेश्वर, प्रेतपति, भूतपति, और दूसरेसब प्राणियों को जीत सबको अपने वशमें करलिया इस भांति उस विश्वविजयी ने सम्पूर्ण लोकपालोंके तेजको और उनके स्थानों को छीनलिया ॥५—७॥ तदनंतर वह दैत्येन्द्र देवताओंके उद्यानों की

विश्वकर्मणा ॥ त्रैलोक्यलक्ष्म्यायतनमध्युवासाखिलर्द्धिमत् ॥ ८ ॥ यत्रविद्रुमसो-पानामहामारकताभुवः ॥ यत्रस्फाटिककुड्यानि वैडूर्यस्तम्भपङ्क्तयः ॥९॥ यत्र चित्रवितानानिपद्मरागासनानिच । पयः फेननिभाः शय्यामुक्तादामपरिच्छदाः १० कूजद्भिर्नूपुरैर्देव्यः शब्दयन्त्ययतस्ततः । रत्नस्थलीषुपश्यन्तिसुदतीः सुन्दरं मुख-म् ॥ ११ ॥ तस्मिन्महेन्द्रभवनेमहाबलोमहामना निर्जितलोकएकराट् ॥ रेमेऽभिव-न्द्यांघ्रियुगः सुरादिभिः प्रतापितैरूर्जितचण्डशासनः ॥ १२ ॥ तमङ्गमत्तमधुनोरु-गन्धिनाविवृत्तताम्राक्षमशेषधिष्ण्यपाः ॥ उपासतोपायनपाणिभिर्विना त्रिभिस्त-पोयोगबलौजसांपदम् ॥ १३ ॥ जगुर्महेन्द्रासनमोजसास्थितं विश्वावसुस्तुम्बुरु-रस्मदादयः॥ गन्धर्वसिद्धाऋषयोऽस्तुवन् मुहुर्विद्याधरा अप्सरसश्च पाण्ड-व ॥ १४ ॥ सएववर्णाश्रमिभिः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ इज्यमानोहविर्भागानग्रहीत् स्वेनतेजसा ॥ १५ ॥ अकृष्टपच्या तस्यासीत्सप्तद्वीपवतीमही ॥ तथा कामदुघा द्यौस्तुनानाश्चर्यपदंनभः ॥ १६ ॥ रत्नाकराश्च रत्नौघांस्तत्पत्न्यश्चोहुरूर्मिभिः ॥ क्षारसिन्धुघृतक्षौद्रदधिक्षीरामृतोदकाः ॥ १७ ॥ शैलाद्रोणीभिराक्रीडं सर्वर्तुषु गुणान्द्रुमाः ॥ दधारलोकपालानामेक एवपृथग्गुणान् ॥ १८ ॥ सइत्थंनिर्जितककु-वेकराडविषयान्प्रियान् ॥ यथोपजोषंभुञ्जानो नातृप्यदजितेन्द्रियः ॥ १९ ॥ एवमै-

शोभावाले स्वर्ग में रहकर त्रिलोकी का राज्य करनेंलगा और साक्षात् विश्वकर्मा के बानयेहुए त्रिलोंकीकी लक्ष्मी वाले अत्यन्त समृद्धिशाली इन्द्रभवन में निवास करनेंलगा ॥ ८ ॥ उस स्थान की सब श्रेणिये विद्रुम की बनीहुई, सब भूमि मरकत मणि की, दीवारें स्फटिक की, और खम्भे वैडूर्य मणिकेथे ॥९॥ वहां सब स्थान विचित्र चदोबोंसे सजेहुए, सब आसन पद्मरागमणियों के बिछेहुए सेजो मे दूध के फेन सा बिछोना बिछाहुआ और मोतियोंकी मालाये शोभायमान थीं ॥१०॥ वहां सुंदर दांतावाली देवागनाएं नूपुरका शब्द करतीहुई उसके चारोंओर घूम २ कर उस रत्न भूमि में अपने सुदर मुखको देखती रहतीं ॥११॥ ऐसे इन्द्र भवनमें वह महाअभिमानी, अति उग्र आज्ञा वाला, महाबली असुर तीनों लोकोको जीतकर चक्रवर्ती राजाहो विहार करनेंलगा, देवता आदि उसके प्रताप से सतप्त हो उसके पैरोंकी वदना करनेलगे ॥ १२ ॥ हे राजन्! दैत्यपति अधिक मद्य का सेवन कर निरंतर मत्त रहता और उसके ताम्र वर्ण दोनों नेत्र सदैव घूर्णित रहते वह तप और योग बलसे इतना बलवान और तेजस्वी होगयाथा कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश के अतिरिक्त सबही लोकपाल अपने २ हाथों में भेंट लेलेकर उसकी सेवा करतेथे ॥ १३ ॥ हे पांडव! बला--त्कार से इन्द्रासनपर बैठेहुए हिरण्यकशिपु के सन्मुख विश्वावसु, तुंबरु, महर्षिगण, विद्याधर, अ--प्सरा, गन्धर्व, सिद्ध और मैं (नारद) उसकी स्तुति किया करतेथे ॥ १४ ॥ वर्णाश्रमी लोग बहुत दक्षिणा वाले यज्ञों से उसका पूजन करतेथे और वह अपनें असीम प्रभाव से यज्ञों के हवि भाग आपही ग्रहण करताथा ॥ १५ ॥ उसका इतना प्रभाव हुआ कि सातो द्वीप वाली पृथ्वी बिना जोतेही कामधेनु गौ की समान नाना प्रकार के पदार्थ देनेंलगी और आकाश मडल नाना प्रकार के आश्चर्यों से परिपूर्ण होगया ॥ १६ ॥ लवण सागर, इक्षुसागर, क्षीर सागर आदिक सातों समुद्र और उनकी स्त्री नदियें अपनी तरङ्गों से अनेक रत्न वहां वहां उसको देनेंलगीं ॥ १७ ॥ सबपर्वत अपनी कंदराओं में उस दैत्यराज को क्रीडा करनें का स्थान देते और वृक्ष सब ऋतुओं में समभा-वसेफलफूलयुक्त होनेंलगे और वह हिरण्यकशिपु सब लोकपालों के पृथक २ गुणों को अकेला ही धारण करताथा ॥ १८ ॥ वह अजितेन्द्रिय दिग्विजयी दैत्यराज इस प्रकार प्रिय विषयों को

एवमैश्वर्यमत्तस्य दृप्तस्योच्छास्त्रवर्तिनः ॥ कालोमहान्व्यतीयाय ब्रह्मशापमुपेयुषः ॥ २० ॥ तस्योग्रदण्डसंविग्नाः सर्वेलोकाः सपालकाः ॥ अन्यत्रालब्धशरणाः शरणंययुरच्युतम् ॥२१॥ तस्यैनमोऽस्तुकाष्ठायैयत्रात्माहरिरीश्वरः। यद्गत्वाननिवर्तन्ते शान्ताः संन्यासिनोऽमलाः ॥२२॥ इति तेसंयतात्मानः समाहितधियोऽमलाः । उपतस्थुर्हृषीकेशं विनिद्रावायुभोजनाः॥२३॥ तेषामाविरभूद्वाणी अरूपामेघनिःस्वना । सनादयन्तीककुभः साधूनामभयंकरी ॥ २४ ॥ माभैष्टविबुधश्रेष्ठाः सर्वेषांभद्रमस्तुवः ॥ मद्दर्शनंहिभूतानां सर्वश्रेयोपपत्तये ॥ २५ ॥ ज्ञातमेतस्यदौरात्म्यं दैतेयापसदस्य च ॥ तस्यशान्तिंकरिष्यामिकालं तावत्प्रतीक्षत ॥ २६ ॥ यदादेवेषुवेदेषुगोषु विप्रेषुसाधुषु ॥ धर्मेमयिचविद्वेषः सवाआशुविनश्यति ॥ २७ ॥ निर्वैरायप्रशान्ताय स्वसुतायमहात्मने ॥ प्रह्लादाययदाद्रुह्येद्धनिष्येऽपिवरोर्जितम् ॥ २८ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्तालोकगुरुणातंप्रणम्य दिवौकसः । न्यवर्तन्तगतोद्वेगामेनिरेचासुरंहतम् २९॥ तस्यदैत्यपतेः पुत्राश्चत्वारः परमाद्भुताः ॥ प्रह्लादोऽभून्महांस्तेषां गुणैर्महदुपासकः ॥ ३० ॥ ब्रह्मण्यः शीलसंपन्नः सत्यसंधोजितेन्द्रियः । आत्मवत्सर्वभूतानामेकः प्रियसुहृत्तमः ॥३१॥ दासवत्संनतार्याङ्घ्रिः पितृवद्दीनवत्सलः ॥ भ्रातृवत्सदृशे स्निग्धोगुरुष्वीश्वरभावनः ॥ विद्यार्थरूपजन्माढ्योमानस्तम्भविवर्जितः ॥ ३२ ॥ नोद्विग्नचित्तोव्यसनेषु निःस्पृहःश्रुतेषु दृष्टेषुगुणेष्ववस्तुदृक् ॥ दान्तेन्द्रियप्राण

भली भांति भोगताहुआभी तृप्त नहोसका ॥ १९ ॥ इस प्रकार ऐश्वर्य के मद से मत्त हुआ शास्त्र मर्यादा के उल्लघन करनें वाले और ब्राह्मणों के शाप से जन्म पायेहुए उस दैत्यको राज्य करते बहुत समय व्यतीत होगया ॥ २० ॥ लोकपाल और समस्त लोक उसके उग्र दण्ड से व्याकुल हो अन्यत्र रक्षा नपानें से भगवान विष्णुजी के शरणागत हुए॥२१॥ उसदिशाको शत शत प्रणामहैं कि जहां स्वयं आत्मा हरि विराजमान हैं और निर्मल शांत सन्यासी लोग जिसे प्राप्तहोकर फिर ससार में नहीं आते ॥ २२ ॥ उन भगवन विष्णुजी की लोकपाल गण केवल वायु भक्षण करके एकाग्र चित्त हो निद्रा को त्यागकर उपासना करने लगे ॥२३॥ एक दिन मेघ की समान गंभीर साधुओं को अभय दान देनेंवाली आकाशवाणी दिशाओंको प्रतिध्वनित करतीहुई उनदेवताओंके कर्णगोचर हुई ॥ २४ ॥ वह आकाशवाणी यहथी कि—"हे देवताओं! तुमडरोमत तुम्हारा कल्याण होगा; क्योंकि मेरादर्शन सब प्रकारके कल्याणों का देनेवालाहै ॥२५॥ मैं दुष्टदैत्य की अधमताको जानगया हूं। मैं उसकी शांतिका यत्नकरूगा, तुम समयको देखते रहो ॥२६॥ जोमनुष्य देवता, वेद, गौ, ब्राह्मण, साधु तथा धर्म्म से और मुझसे वैरकरता है वह शीघ्रही नष्ट होजाता है ॥ २७ ॥ यद्यपि हिरण्य कशिपु ब्रह्माके वरसे बढ़ा है; तौभी जिस समय वह प्रियपुत्र, निर्वैर, प्रशांत और महात्मा प्रह्लाद पर अत्याचार करेगा तभी मैं निश्चय उसको मारूंगा ॥ २८ ॥ नारदजी बोलेकि—हे राजन् ! जगद्गुरू भगवान विष्णुजी के इस प्रकार कहनेपर स्वर्गवासी देवतागण उद्वेग रहितहो अपने २ स्थानपर आये और उस असुरको माराहुआ विचारने लगे ॥ २९ ॥ इस दैत्यराज हिरण्य काशिपु के परम अद्भुत चारपुत्र थे। उनमें से प्रह्लादगुणों में सबसे अधिक, महात्मा लोगों के भक्त; जितेन्द्रिय सुशील, ब्राह्मणों के मानने वाले और अपनी प्रतिज्ञा के पूर्ण करने वाले थे। उनको अपने आत्मा की समान सबप्राणी अतिप्यारे और अतिमित्र थे, दासोंकी समानहो महात्माओंको प्रणाम करते तथा दरिद्र व दीन जनोंपर पिताकी समान स्नेह रखते थे। वह समान आयुवालों पर स्नेह रखते, और गुरूजनोंको ईश्वर जानते थे। वह विद्या, धन, रूप और कुलीनता युक्त थे परन्तु उसके कारण वह अहङ्कार अथवा अभिमान नहीं करते थे ॥ ३०—३२ ॥ उनका चित्त

शरीरधीः सदाप्रशांतकामोरहितासुरोऽसुरः ॥ ३३ ॥ यस्मिन्महद्गुणाराजन्गृह्य
न्तेकविभिर्मुहुः । नतेऽधुनापिधीयंते यथाभगवतीश्वरे ॥ ३४ ॥ यंसाधुगाथा
सदसिरिपवोपिसुरानृप । प्रतिमानंप्रकुर्वंति किमुतान्येभवादृशाः ॥ ३५ ॥
गुणैरलमसंख्येयैर्माहात्म्यंतस्यसूच्यते । वासुदेवेभगवति यस्यनैसर्गिकीरतिः
॥ ३६ ॥ न्यस्तक्रीडनकोबालो जडवत्तन्मनस्तया ॥ कृष्णग्रहगृहीतात्मानवेद
जगदीदृशम् ॥ ३७ ॥ आसीनः पर्यटन्नश्नञ्छयानः प्रपिबन्ब्रुवन् ॥ नानुसं
धत्तएतानि गोविन्दपरिरम्भितः ॥ ३८ ॥ क्वचिद्रुदतिवैकुण्ठ चिन्ताशबल-
चेतनः ॥ क्वचिद्धसतितच्चिन्ताह्लादउद्गायति क्वचित् ॥ ३९ ॥ नदतिक्वचि-
दुत्कण्ठोविलज्जो नृत्यति क्वचित् ॥ क्वचित्तद्भावनायुक्तस्तन्मयोऽनुचकार
ह ॥ ४० ॥ क्वचिदुत्पुलकस्तूष्णीमास्ते संस्पर्शनिर्वृतः ॥ अस्पन्दप्रणयानन्दस-
लिलामीलितेक्षणः ॥४१॥ सउत्तमश्लोकपदारविन्दयोर्निषेवयाऽकिञ्चनसङ्ग-
लब्धया ॥ तन्वन्परांनिर्वृतिमात्मनो मुहुर्दुःसङ्गदीनस्यमनः शमंव्यधात् ॥ ४२ ॥ त-
स्मिन्महाभागवतेमहाभागे महात्मनि ॥ हिरण्यकशिपूराजन्नकरोदघमात्मजे । ४३ ।
युधिष्ठिरउवाच ॥ देवर्षएतदिच्छामो वेदितुंतवसुव्रत । यदात्मजायशुद्धायपिता-
दात्साधवेह्यघम् ॥ ४४ ॥ पुत्रान्विप्रतिकूलान्स्वान्पितरः पुत्रवत्सलाः । उपालभन्ते

आपत्ति पड़नेपर व्याकुल नहीं होता था, वह देखे और सुनेविषयोंको मिथ्या जानते थे अतएव उनकी कामना किसी विषयमें नथी। उनके मन, प्राण, शरीर और बुद्धि सदैव शांत और वशीभूत रहतेथे। उन्हों ने असुर कुलमें जन्मतो लियाथा परन्तु उनमें कुछभी असुर भाव नहींथा ॥३३॥ हे राजन्! उनमें रहेहुये बड़े २ गुणोंको पण्डितलोग वारंवार ग्रहण करते रहते हैं तथा भगवान विष्णुजी की समान उनके वे सबगुण अबतक तिरोहित नहीं हुये हैं ॥ ३४ ॥ देवतागण शत्रुहोने परभी अपनी सभामें साधुओं की बातका प्रसंग होनेपर उनका दृष्टांत देते रहते हैं। तबफिर आप की समान दूसरे मनुष्योंकी तो कुछबातही नहीं ॥ ३५ ॥ वासुदेव भगवान में जिसकी स्वाभाविक प्रीति है, उसके गुणोंकी गणना कौनकरसकता है! मैंने तो इन वचनोंद्वारा केवल उनके माहात्म्य को दिखाया है ॥३६॥ वे बालकपन मेंही खेलछोड़कर भगवान मे एक चित्तहो जड़वत् होजाते थे उनकामन कृष्णजीमें लगगया था अतएव वह "जगत इसप्रकारका है" यह भी न जानते थे ॥ ॥ ३७ ॥ भगवान के ध्यान में मग्नहोजाने से प्रह्लादजीको बैठते, उठते, चलते, भोजनपान करते, सोते तथा बातें करने के समयमें भी उनकर्मोंका ज्ञाननहीं रहताथा ॥ ३८ ॥ वे भगवान का ध्यान करते २ कभी रोते कभी हँसते, कभी गानकरते और कभी बड़ाभारी शब्द करते थे ॥ ॥ ३९ ॥ कभी तो निर्लज्ज होकर नाचते रहते, कभी भगवानकी भावना में चित्तलगाय तन्मयहो उनका अनुकरण (नकलउतारना) करने लगजाते थे ॥ ४० ॥ कभी भगवद्भाव के प्राप्त होने से रोमांचितहो आनेपर बैठ जाते, कभी २ भगवत् प्रेमसे उनके दोनोनेत्र आनंदाश्रुओं से सजल होजाते तबवे अपने नेत्रकुछ एक बंद करलेतेथे॥४१॥हे राजन्! महात्मा प्राह्लाद,अकिंचन भगवद्भक्त साधुओं के संगसे पुण्यश्लोक भगवान के चरणों की सेवाकर अपने मनको परम शांतिदे दुःसग, दरिद्री और दूसरे मनुष्यों के मनको भी शांतिदेते थे ॥ ४२ ॥ उस महाभाग, महात्मा, परमभागवत पुत्रसे भी वह हिरण्यकशिपु द्वेष करनेलगा ॥ ४३ ॥ युधिष्ठिरजी बोलेकि–हे देवर्षि! हे सुव्रत! हिरण्यकशिपु ने पिता होकर ऐसे निर्मल चित्तसाधु पुत्रपर अत्याचार किया था,–इस विषयको आपसे जानने की बड़ी इच्छाहै ॥ ४४ ॥ पुत्रपर प्रेम रखने वालेपिता, प्रतिकूल पुत्रको

शिक्षार्थं नैवायमपरो यथा ॥ ४५ ॥ किमुतानुवशान्साधूं स्तादृशांगुरुदेवतान् ॥ एतत्कौतूहलं ब्रह्मन्नस्माकं विधमप्रभो। पितुःपुत्रायययद्वेषो मरणायप्रयोजितः४६॥

इतिश्रीमद्भा० महा० सप्त० चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

नारदउवाच ॥ पौरोहित्याय भगवान्वृतःकाव्यःकिलासुरैः। शण्डामर्कौसुतौ तस्य दैत्यराजगृहांतिके ॥ १ ॥ तौराज्ञाप्रापितंबालं प्रह्लादंनयकोविदम्। पाठयामा सतुःपाठ्यानन्यांश्चासुरबालकान् ॥ २ ॥ यत्तत्रगुरुणाप्रोक्तं शुश्रुवेऽनुपपाठच। न साधुमनसामेने स्वपरासद्ग्रहाश्रयम् ॥ ३ ॥ एकदाऽसुरराट्पुत्रमंकमारोप्यपांडव। पप्रच्छकथ्यतांवत्स मन्यतेसाधुयत्भवान् ॥ ४ ॥ प्रह्लादउवाच। तत्साधुमन्येऽसु रवर्यदेहिनांसदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात्। हित्वाऽऽत्मपातं गृहमन्धकूपं वन गतो यद्धरिमाश्रयेत ॥ ५ ॥ नारदउवाच ॥ श्रुत्वापुत्रगिरोदैत्यःपरपक्षसमाहिताः जहासबुद्धिर्बालानां भिद्यतेपरबुद्धिभिः ॥६॥ सम्यग्विधार्यतांबालो गुरुगेहेद्विजा तिभिः। विष्णुपक्षैःप्रतिच्छन्नैर्नभिद्येतास्यधीर्यथा ॥ ७ ॥ गृहमानीतमाहूय प्रह्लादं दैत्ययाजकाः। प्रशस्यश्लक्ष्णयावाचा समपृच्छन्तसामभिः ॥८॥ वत्सप्रह्लादभद्रं तेसत्यंकथयमामृषा। बालानतिकुतस्तुभ्यमेषबुद्धिविपर्ययः ॥ ९ ॥ बुद्धिभेदःपरकृ तउताहोतेस्वतोऽभवत्। भण्यतांश्रोतुकामानां गुरूणांकुलनन्दन ॥ १० ॥ प्रह्लाद

भी शिक्षाही के निमित्त ताडना करते रहते हैं, परन्तु शत्रुकी समानतो उससे बुरावर्ताव कभी नहीं करते ॥ ४५ ॥ फिर अनुकूल रहने वालेसाधु तथा पितृभक्त पुत्रोंपर हिंसाचरण करना संभव नहीं होसकता। हे ब्रह्मन्! पुत्रपर पिताका ऐसा मारात्मक द्वेषकभी नहीं सुनागया; यह सुनकर मुझको बड़ा कौतूहल उत्पन्न होता है। हे ऋषि! आपमेरे इस कौतूहल कोशांत करिएगा ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

नारदजी बोलेकि–हे राजन्! सब असुरों ने भगवान शुक्राचार्यको अपना पुरोहित किया था, इसीकारण इन आचार्य के षंड और अमर्क नामकदो पुत्रभी दैत्यराज हिरण्यकशिपु के घरके निकट बासकरते थे ॥ १ ॥ दैत्यराजने नीति जानने वाले प्रह्लादको उनके निकट पढ़नेको भेजा था। इससे वे प्रह्लादको तथा और दूसरे लडकों को पढ़ाते थे ॥२॥ गुरूजी जो २ उपदेश करते, प्रह्लाद यद्यपि वह सुनते और सुनकर वैसाही पाठ करते थे, परन्तु जिस २ शास्त्रको पढ़ने थे उसको "यह मैं, यह मेरा, यह पराया" इनशब्दों से परिपूर्ण देखभक्ति पूर्वक न पढ़ते तथा वे सब शास्त्र उनको अच्छे भी नही लगते थे ॥ ३ ॥ हे राजन्! एकदिन दैत्यराज ने अपने पुत्रको गोदमें लेकर पूछाकि–हे वत्स तुमक्कौन वस्तु उत्तम जानपड़ती है सो मुझसे कहो ॥ ४ ॥ तब प्रह्लाद ने कहा कि हे दैत्येश्वर! मनुष्यों की बुद्धि, 'मैं, मेरा' इत्यादि मिथ्या विषयों के अनुराग से सदैवही व्याकुल रहती है अतएव आत्माको नरकमें गिरनेका कारण अंधकूप की समानघर छोड़कर बनमें जाय भगवान हरिकी शरण लेने हीको मैं उत्तम जानता हूं ॥ ५ ॥ नारदजी ने कहाकि–हिरण्यकशिपु पुत्रके मुखसे अपने शत्रु विष्णुजीपर भक्ति प्रकाशक बातेंसुन हंसकर कहने लगाकि–बालकों की बुद्धि इसी भांति दूसरों की बुद्धिसे नष्ट होजाती है इसलिये ॥ ६ ॥ इस बालक कोफिर गुरूके घर लेजाओ, पुरोहित जी इसकी यत्न पूर्वक रक्षाकरें जिससे कि कोई वैष्णव वेष बदल घरमें प्रवेश करके इसकी बुद्धिमें भेद उत्पन्न नहीं करसके ॥ ७ ॥ फिर प्रह्लादगुरू के घरमे गये, दैत्यराज पुरोहित ने प्रह्लादकी प्रशंसा करकेकहा कि ॥ ८ ॥ हे वत्सप्रह्लाद! तेरा कल्याणहो; सत्यकह मिथ्यानकहना कि–ऐसी उलटी बुद्धि इन सब बालकों कीतो नहीं हुई फिर तेरी बुद्धि ऐसी क्यों होगई? ॥ ९ ॥ हे कुलनन्दन! तेरी यह बुद्धि किसी दूसरे ने फेरदी है या स्वयंही ऐसी होगई है?

वाच । स्वःपरश्चेत्यसद्ग्राहःपुंसांयन्मायया कृतः विमोहितधियांदृष्टस्तस्मैभगव तेनमः ॥११॥ सयदाऽनुव्रतःपुंसां पशुबुद्धिर्विभिद्यते । अन्यएषतथाऽन्योऽहमिति भेदगताऽसती ॥१२॥ सएषआत्मा स्वपरेत्यबुद्धिभिर्दुरत्ययानुक्रमणो निरूप्यते । मुह्यन्तियद्वर्त्मनिवेदवादिनो ब्रह्मादयोह्येषभिनत्तिमेमतिम् ॥१३॥ यथाभ्राम्यत्ययो ब्रह्मन्स्वयमाकर्षसन्निधौ तथामेभिद्यते चेतश्चक्रपाणेर्यदृच्छया ॥ १४ ॥ नारदउ वाच । एतावद्ब्राह्मणायोक्त्वा विरराममहामतिः। तंनिर्भर्त्स्याथकुपितःसुदीनोराज सेवकः ॥ १५ ॥ आनीयतामरे वेत्रमस्माकमयशस्करः । कुलाङ्गारस्यदुर्बुद्धेश्चतु र्थोऽस्योदितोदमः ॥ १६ ॥ दैतेयचन्दनवने जातोऽयंकण्टकद्रुमः । यन्मूलोन्मूल परशोर्विष्णोर्नालायितोऽर्भकः ॥ १७ ॥ इतितंविविधोपायैर्भीषयंस्तर्जनादिभिः । प्रह्रादंग्राहयामास त्रिवर्गस्योपपादनम् ॥ १८ ॥ ततएनंगुरुर्ज्ञात्वा ज्ञातज्ञेय चतुष्टयम् । दैत्येन्द्रंदर्शयामास मातृमृष्टमलंकृतम् ॥ १९ ॥ पादयोः पतितं बालंप्रतिनन्द्याशिषाऽसुरः ॥ परिष्वज्यचिरंदोर्भ्यां परमामापनिर्वृतिम् ॥ २० ॥ आ-रोप्याङ्कमवघ्रायमूर्धन्यश्रुकलाम्बुभिः ॥ आसिञ्चन्विकसद्वक्त्रमिदमाहयुधिष्ठि-र ॥ २१ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ प्रह्लादानूच्यतांतातस्वधीतं किंचिदुत्तमम् ॥ कालेनैतावताऽऽयुष्मन्यदशिक्षद्गुरोर्भवान् ॥ २२॥ प्रह्लाद उवाच ॥ श्रवणंकीर्तनं

हम जो तेरे गुरू हैं उनको इसबातके सुनने की इच्छा है; सो हमसे सत्य सत्य कह ॥ १० ॥ प्र-ह्लादजी बोलेकि-जिसकी मायासे मनुष्यों को "यह मेरा, यह पराया" इस प्रकारका मिथ्याज्ञान उत्पन्न होता है उस मायाके ईशको मैं नमस्कार करताहूं ॥ ११ ॥ वे जब मनुष्यों पर प्रसन्न होते हैं तब उन पुरुषोंकी पशुबुद्धि दूर होजाती है और वे आत्म ज्ञानको प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥ अविवेकी मनुष्य परमात्माको "अपना व पराया" कहा करते हैं। परन्तु भगवान्को इसभांति अपना व पराया विचारना उनके पक्षमें असगत नहीं है क्योंकि उनके जानने में ब्रह्माआदि वेदवादी भी मोहित होजाते हैं । उन्ही भगवान ने मेरीबुद्धिमें भेद करादिया ॥ १३ ॥ हे ब्राह्मणो ! यद्यपि वे निर्विकार हैं—किसी की बुद्धिमें भेदनहीं करते तथापि लोहा जैसे चुम्बकपत्थर के निकट आपही आप घूमाकरता है तैसही भगवानकी इच्छानुसार मेराचित्त ऐसे भेदको प्राप्तहुआ है ॥ १४ ॥ नारदजी बोलेकि-महामति प्रह्लाद इतना कहकर चुपहोगये। तब यह सुनकर शिक्षक क्रोधाग्नि प्रज्वलितहो अत्यंत तिरस्कार पूर्वक कहने लगाकि ॥ १५ ॥ अरे ! बेंतलाओ; मेराअयश करनेवाले इस दुर्बुद्धि कुलाङ्गार को दैहिक दण्डही उचित है ॥ १६ ॥ दैत्य वंशरूपी चंदन वनमें यह बालक कंटक वृक्षरूपी उत्पन्न हुआ है, इस वनके काटने के विषय में हरिही कुठार स्वरूप हैं और यह उस कुठारका दण्डस्वरूप हुआ है ॥ १७ ॥ गुरूजी ने इसप्रकार से तिरस्कारादि द्वारा भय दिखाकर प्रह्लादको धर्म, अर्थ और काम संबंधी शास्त्र पढ़ाये ॥ १८ ॥ तदनंतर गुरूजी ने जब जानाकि-यह बालक सामदाम आदिचारों विषयोंको जानगया है तब उसको राजभवन में लेगये । वहां प्रह्लादकी माताने प्रह्लाद को उबटन आदिकर स्नानकराय आभूषण पहिनाये तब आचार्य जी उनको दैत्य पतिके निकट लेगये ॥ १९ ॥ पिताके सन्मुख खडेहोकर प्रह्लादजी प्रणाम के निमित्त चरणों परगिरे, दैत्यपति ने आशीर्वाद दे दोनो भुजाओं से मिलपरम सुखका अनुभव किया ॥ २० ॥ हे राजन् ! फिर दैत्यपतिने प्रह्लादको गोदमें ले मस्तक सूंघ, अश्रुजल से सींचत २ प्रह्लाद से हसकर कहाकि-॥ २१ ॥ हे आयुष्मन् ! प्रह्लाद ! आजतक गुरुके घरमें रहकर जोकुछ तुमने पढ़ाहै, उसमें जो विषय तुमको अच्छा आताहो सामुझे सुनाओ ॥ २२ ॥ प्रह्लादजी बोलेकि हे पिता ! भगवानकी

विष्णोः स्मरणंपादसेवनम्। अर्चनंवन्दनंदास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ २३ ॥ इति पुंसार्पिताविष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा। क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥ २४ ॥ निशम्यैतत्सुतवचोहिरण्यकशिपुस्तदा। गुरुपुत्रमुवाचेदंरुषा प्रस्फुरिताधरः ॥ २५ ॥ ब्रह्मबन्धोकिमेतत्तेविपक्षं श्रयताऽसता। असारंग्राहितोबालो मामनादृत्यदुर्मते ॥ २६ ॥ सन्तिह्यसाधवोलोके दुर्मैत्राश्छद्मवेषिणः। तेषामुदेत्यघं कालेरोगः पातकिनामिव ॥ २७ ॥ गुरुपुत्र उवाच ॥ न मत्प्रणीतंनपरप्रणीतं सुतो वदत्येषतवेन्द्रशत्रो। नैसर्गिकीयं मतिरस्य राजन्नियच्छमन्युं कददाः स्म मा नः ॥ २८ ॥ नारद उवाच ॥ गुरुणैवंप्रतिप्रोक्तोभूयआहासुरः सुतम्। नचेद्गुरुमुखीयंतेकुतोऽभद्राऽसतीमतिः ॥ २९ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ मतिर्नकृष्णेपरतः स्वतो वामिथोभिपद्येत गृहव्रतानाम्। अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम् ॥ ३० ॥ नतेविदुः स्वार्थगतिंहि विष्णुंदुराशयाये बहिरर्थमानिनः। अन्धा यथान्धैरुपनीयमाना वाचीशतन्त्यामुरुदाम्निबद्धाः ॥ ३१ ॥ नैषांमतिस्तावदुरुक्रमांघ्रिं स्पृशत्यनर्थापगमोयदर्थः। महीयसांपादरजोभिषेकं निष्किंचनानां नवृणी तयावत् ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वोपरतंपुत्रं हिरण्यकशिपूरुषा। अन्धीकृतात्मास्वोत्सङ्गान्निरस्यतमहीतले ॥ ३३ ॥ आहामर्षरुषाविष्टः कषायीभूतलोचनः। वध्यतामाश्व

कथाका श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्यभाव, मित्रभाव, तथा आत्मनिवेदन इन नवलक्षणों वालीभक्ति से मनुष्य यदि कार्यकर भगवान विष्णुके समर्पण करेतो, मैं जानता हूं कि वही उत्तम शिक्षा है ॥ २३ । २४ ॥ हिरण्यकशिपु पुत्रकी यह बात्तो सुनतेही क्रोधके वेगसे कम्पिताधरहो गुरुपुत्र से कहनेलगा कि ॥ २५ ॥ रेदुर्मति ब्राह्मणाधम ! यह क्या ! मेरानिरादर करमेरे शत्रुका आश्रय ग्रहण करके इस बालकको ऐसी बुरीशिक्षा तूने क्योंदी ॥ २६ ॥ लोकमें अनेक असाधु कपट वेशधारण करके मित्रहोजाते हैं परन्तु पापीके रोगकी समान उनका विद्वेषादि अवसर आनेपर खुलजाता है ॥ २७ ॥ गुरूपुत्रने कहाकि हे इन्द्रशत्रो ! यह आपका पुत्रजोकुछ कहता है उसको नतो मैंने सिखाया है और न किसी दूसरेही ने सिखाया है। राजन् ! यह इस की स्वाभाविकही बुद्धि है; अतएव क्रोधको शांतकरो, मेरेऊपर व्यर्थदोष मतलगाओ ॥ २८ ॥ नारदजी बोलेकि गुरूपुत्रके इसभांति उत्तर देनेपर असुरराजने फिरपुत्र से पूछाकि रेदुर्विनीत ! तेरीऐसी विपरीत बुद्धि गुरूके उपदेश से नहीं हुईतो कहांसे आई ॥ २९ ॥ प्रह्लादजी बोलेकि ! हे तात ! गृहासक्त मनुष्यों की बुद्धि नतो आप न किसी दूसेर के उपदेश से तथा न परस्परकी बातोंसे किसी भांति भी भगवान में आसक्त नहीं होती है वे अजितेन्द्रिय होते हैं इस लिय फिरफिर संसार में आय २ कर चबाये हुयेका चबाते रहते हैं अर्थात् भोगे विषयोंको फिरफिर भोगते हैं ॥ ३० ॥ जिसका अन्तःकरण विषयों में आसक्त है वह भगवान विष्णुको नहीं जानसकता। जिस की आत्मा में पुरुषार्थ बुद्धि है भगवान केवल उसीको प्राप्तहोते हैं। जैसे एक अंधा मनुष्य दूसरे अंधे मनुष्यको राहनहीं दिखासकता वैसेही विषयासक्त मनुष्य विषयासक्त गुरूके समीप उपदेश पाकर भगवानको नहीं जानसकता ॥ ३१ ॥ बहुत से सूत्रोंसे बनीहुई ईश्वरकी वेदरूपी दीर्घरस्सी—कर्मजाल से उनको बांधती है, जबतक विषय अभिमानों से रहित अति प्रधान पुरुषों की चरण रजद्वारा वह अभिषिक्त नहीं होते तबतक भगवान के चरणोंका स्पर्श नहीं करसकते कि जिस स्पर्श से यह संसार रूप अनर्थ नाश होजाता है ॥ ३२ ॥ प्रह्लाद इसभांति कहकर चुपहोगये, हिरण्यकशिपु ने क्रोधान्धहो गोदमें से उन्हें पृथ्वीपर पटकदिया ॥ ३३ ॥ और क्रोधसे अधीरहो लाल

यंयथ्योनिःसार्यतनैर्ऋता॥३४॥अयंमेभ्रातृहासोऽयंहित्वास्वान्सुहृदोऽधमः। पितृव्यहन्तुर्यःपादौ विष्णोर्दासवदर्चति ॥ ३५ ॥ विष्णोर्वासाध्वसौकिंनु करिष्यत्य समंजसः। सौहृदंदुस्त्यजंपित्रोरहाद्यःपंचहायनः ॥ ३६ ॥ परोऽप्यपत्यंहितकृद्यथौषधं स्वदेहजोप्यामयवत्सुतोऽहितः। छिंद्यात्तदंगंयदुतात्मनोऽहितं शेषंसुखं जीवितियद्विवर्जनात् ॥३७॥ सर्वैरुपायैर्हन्तव्यः संभोजशयनासनैः सुहृल्लिंगधरः शत्रुर्मुनेर्दुष्टमिवेंद्रियम् ॥ ३८ ॥ नैर्ऋतास्तेसमादिष्टा भर्त्रावैशूलपाणयः। तिग्मदंष्ट्रकरालास्यास्ताम्रश्मश्रुशिरोरुहाः ॥ ३९ ॥ नदन्तोभैरवान्नादांछिंधिभिन्धीति वादिनः। आसीनंचाहनञ्छूलैः प्रह्रादंसर्वमर्मसु ॥ ४० ॥ परेब्रह्मण्यनिर्देश्येभगवत्यखिलात्मनि। युक्तात्मन्यफलाआसन्नपुण्यस्येवसत्क्रियाः॥ ४१ ॥ प्रयासेऽपहते तस्मिन्दैत्येन्द्रः परिशंकितः। चकारतद्वधोपायान्निर्बन्धेनयुधिष्ठिर ॥४२॥ दिग्गजैर्दन्दशूकैश्च भभिचारावपातनैः। मायाभिःसंनिरोधैश्च गरदानैरभोजनैः ॥ ४३ ॥ हिमवाय्वग्निसलिलैः पर्वताक्रमणैरपि । नशशाकयदाहन्तुमपापमसुरःसुतम्। चिंतांदीर्घतमांप्राप्तस्तत्कर्तुं नाभ्यपद्यत ॥४४॥ एषमेबह्वसाधूक्तो वधोपायाश्चनिर्मिताः। तैस्तैर्द्रोहैरसद्धर्मैर्मुक्तःस्वेनैवतेजसा॥४५॥ वर्तमानोऽविदूरेवैबालोप्यजड

नेत्रकर कहने लगाकि—हे असुरो ! इस मारने योग्यको शीघ्रही मारो, इसको यहां से शीघ्रदूर करदो ॥ ३४ ॥ यहीदुष्ट मेरे भाईका मारने वाला है क्योंकि यह अपने सुहृदों को छोड़कर, दास की समान अपने चचाके मारने वाले विष्णुके चरणों की पूजाकरता है ॥ ३५ ॥ कैसा आश्चर्य है ! यह दुष्ट विष्णुहीका क्या भलाकरेगा ? इस दुरात्माने पांचवर्षकीही अवस्था में दुस्त्यज माता पिताके स्नेहको छोड़दिया है ॥ ३६ ॥ औषधकी समान शत्रुभी यदि हितकारी हो तो उसको पुत्र कहाजासकताहै; परन्तु आत्मासे उत्पन्नहुआ अपना पुत्रभी यदि प्रतिकूल व्यौहारकरे तो रोगकी समान वह शत्रुहै। अपने अहितकर अंगका काटडालनाही ठीकहै, क्योंकि उसके त्याग देनेसे शेष अंग तो सुखसे जीवन धारण करसकताहै ॥ ३७ ॥ अतएव भोजन, शयन, आसन आदि कार्योंमें मारणोपाय द्वारा मुनिकी दुष्ट इन्द्रियकी समान इस मित्र वेशधारी शत्रुका वधकरो ॥ ३८ ॥ असुरलोग स्वामीकी ऐसी आज्ञापाय हाथ में शूललेके भयंकर नादकर 'मार, मार' ऐसे कहतेहुए वहां बैठेहुए प्रह्लादके मर्मस्थानोंमें शूलद्वारा प्रहार करनेलगे। उनकी दाढ़ें अत्यन्त तीक्ष्ण, मुख विकराल, मूंछें और बाल ताम्रवर्णके थे ॥ ३९। ४० ॥ परन्तु प्रह्लादका चित्त भगवानमें लगाहुआथा इसकारण वे समस्तप्रहार मंदभागी मनुष्यके बडे उद्यमकीनाईं व्यर्थ होगये क्योंकि ईश्वरतो विकार रहित, शब्दादिद्वारा अनिर्देश्य, सर्वोत्कृष्ट ऐश्वर्ययुक्त और सबके नियन्ताहैं; उनमें जिसका चित्त लगारहताहै अन्य विषय उसका स्पर्श नहीं करसकते ४१॥ हे युधिष्ठिर! दैत्योंके यह सबप्रयत्न निष्फलहोनेपर हिरण्यकशिपुको अत्यन्त शंका उत्पन्नहुई अत एव वह बडे ध्यानसे प्रह्लादके वधका उपाय सोचनलगा ॥ ४२ ॥ मत्तहाथी, महासर्प अभिचार के प्रयोग, पहाड़की शिखाओंपर से गिराना, कूए गढ़े आदिमें बन्दकरना, विष प्रयोग, भोजन करनेको न देना ॥ ४३ ॥ वर्फ, वायु, अग्नि, जल और पर्वत आदिसे गिराना, ऐसे २ उपायों द्वारा जब असुर निष्पापपुत्रको न मारसका तो बड़ी चिन्ता करताहुआ पुनर्वार वधका उपाय न करसका ॥ ४४ ॥ और मन२ में कहने लगा कि इसको बड़े२ कटुवाक्य कहे तथा इसके मारने के नाना उपायभी किये परन्तु यह अपने तेजके प्रभावसे उन सबसे छुटकारा पागया ॥ ४५ ॥ कैसा आश्चर्य है ! यह मेरेसमीप रहकरभी तथा पुत्रहोकर ऐसा निर्भय चित्त है, प्रभु शुनःशेफ

घोरयम् । नविस्मरतिमेनार्यैःशुनःशेपइवप्रभुः ॥ ४६ ॥ अप्रमेयाऽनुभावोऽयमकुत
श्चिद्भयोऽमरः । नूनमेतद्विरोधेनमृत्युर्मेभवितानवा॥४७॥इतितंचिंतयाकिंचिन्म्ला
नश्रियमधोमुखम् । शण्डामर्कावौशनसौ विविक्तइतिहोचतुः ॥ ४८॥ जितत्वयै
केनजगत्त्रयं भ्रुवोर्विजृम्भणत्रस्तसमस्तधिष्ण्यपम् । नतस्यचिन्त्यंतवनाथ चक्ष्महे
नवैशिशूनां गुणदोषयोःपदम् ॥ ४९ ॥ इमंतुपाशैर्वरुणस्यबद्ध्वा निधेहिभीतोनप
लायतेयथा । बुद्धिश्चपुंसोवयसार्यसेवया यावद्गुरुर्भार्गवआगमिष्यति ॥ ५० ॥
तथेतिगुरुपुत्रोक्तमनुज्ञायेदमब्रवीत् । धर्मोह्यस्योपदेष्टव्योराज्ञांयोगृहमेधिनाम् ५१ ॥
धर्ममर्थंचकामंच नितरांचानुपूर्वशः । प्रह्लादायोचतूराजन् प्रश्रितावनतायच ५२॥
यथात्रिवर्गंगुरुभिरात्मनेउपशिक्षितम् । नसाधुमेनेतच्छिक्षां द्वन्द्वारामोपवर्णिताम्
॥ ५३ ॥ यदाचार्यःपरावृत्तो गृहमेधीयकर्मसु । वयस्यैर्बालकैस्तत्र सोपहूतःकृतक्ष
णैः ॥ ५४ ॥ अथतान्श्लक्ष्णयावाचा प्रत्याहूयमहाबुधः । उवाचविद्वांस्तन्निष्ठांकृ
पयाप्रहसन्निव ॥५५॥ तेतुतद्गौरवात्सर्वे त्यक्तक्रीडापरिच्छदाः । बालानदूषित
धियोद्वन्द्वारामेरितेहितैः ५६॥ पर्युपासतराजेन्द्र तन्न्यस्तहृदयेक्षणाः॥ तानाहकरुणो
मैत्रोमहाभागवतोऽसुरः ॥ ५७ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० सप्त० पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जैसे पिताके किये हुए अन्यायाचरणसे विस्मृत नहीं हुए वहभी उसीभांति मेरे अन्यायाचरण से विस्मृत नहीं हुआ ॥ ४६ ॥ परन्तु इसका प्रभाव अतुल है कुछभी इसको भय नहीं हुआ । यह अमर है, इसके साथ शत्रुताहोनेसे मेरीमृत्यु निश्चयही होगी, और दूसरेप्रकारसे मेरी मृत्यु न होगी ॥ ४७ ॥ इसभांति विचार करताहुआ हिरण्यकशिपु कुछ मलीनताहो नीचेको मुख करके बैठरहा । तब शुक्राचार्यके शंड और अमर्क नामक पुत्रोंने उससे एकान्तमें कहा—कि ॥ ४८ ॥ हे नाथ ! आपने तो अकेलेही त्रिभुवनको जीतलियाहै, आपकी टेढ़ी भौंहके देखनेही सबलोकपाल भयमान होजाते हैं, हमतो आपकी चिंताका विषय कुछभी नहीं देखते, बालकों के व्यवहारपर गुण दोषका विचार नहीं होता ॥ ४९ ॥ जबतक शुक्राचार्य न आवें, तबतक इसको वरुणपाश से बांधरखिये; जिससे भयभीत होकर भाग न सके । अवस्था और साधुसेवासे मनुष्यों की बुद्धि सुधरजाती है । इस हेतु शुक्राचार्य के आनेकी राह देखिये ॥५०॥ हिरण्यकशिपु ने 'अच्छा' कह गुरुपुत्रकी बातको स्वीकार करके कहा कि आप इसको गृहस्थ राजाओंके धर्मका उपदेश दो ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! इसके उपरांत शण्डामर्क विनीत नम्रतायुक्त प्रह्लादको यथा क्रमसे धर्म, अर्थ और कामके विषय पढाने लगे ॥ ५२ ॥ प्रह्लादभी ध्यानपूर्वक अत्यन्त विनीत भावसे उस सबको सुननेलगे, परन्तु विषयानुरक्त गुरुके उपदेशसे उनका चित्त प्रसन्न न हुआ और न उस पर उनकी भक्तिही उत्पन्नहुई ॥ ५३ ॥ इसभांति कुछ दिनोंके व्यतीत होनेपर एकदिन जब गुरु सांसारिक कामोंके कारण पाठशालासे दूसरेस्थानको गये तब समान वयवाले बालकों ने खेलनेका अवसर पाय प्रह्लादको बुलाया ॥ ५४ ॥ महाज्ञानी प्रह्लादने मधुरवाक्यों द्वारा उनसे वार्तालाप किया और इस संसारका परिणाम उनको कृपापूर्वक हँसत २ समझाया ॥ ५५ ॥ उन बालकोंने उनकाप्रभाव समझ अपनाखेलना छोडदिया । हे राजेन्द्र ! बालकोंका चित्त अत्यन्त सरल किसी प्रकार के दोषसे दूषित नहीं होता । वे एकाग्रचित्तहो प्रह्लादकी बातें सुननेलगे, परमभागवत दयालु प्रह्लादजी भी उनको उपदेश देनेलगे ॥ ५६ । ५७ ॥

इतिश्री मद्भाग० महा० सप्तमस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

प्रह्लाद उवाच ॥ कौमारआचरेत्प्राज्ञोधर्मान् भागवतानिह ॥ दुर्लभंमानुषं जन्मतद-
प्यध्रुवमर्थदम् ॥ १ ॥ यथाहिपुरुषस्येहविष्णोः पादोपसर्पणम् ॥ यदेषसर्वभूता-
नांप्रियआत्मेश्वरःसुहृत् ॥ २॥ सुखमैन्द्रियकंदैत्यादेहयोगेन देहिनाम् ॥ सर्वत्रल-
भ्यतेदैवाद्यथादुःखमयत्नतः ॥ ३ ॥ तत्प्रयासोनकर्तव्योयतआयुर्व्ययः परम् । नतथा
विन्दतेक्षेमंमुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥ ४ ॥ ततोयतेतकुशलः क्षेमायभयमाश्रितः । शा-
रीरंपौरुषंयावन्नविपद्येतपुष्कलम् ॥ ५ ॥ पुंसोवर्षशतंह्यायुस्तदर्धंचाजितात्मनः ।
निष्फलंयदसौरात्र्यांशेतेऽन्धंप्रापितस्तमः ॥ ६ ॥ मुग्धस्य बाल्ये कौमारे क्रीडतो
यातिविंशतिः । जरयाग्रस्तदेहस्ययात्यकल्पस्यविंशतिः ॥ ७ ॥ दुरापूरेणकामेन
मोहेनचबलीयसा । शेषंगृहेषुसक्तस्यप्रमत्तस्यापयातिहि ॥ ८ ॥ कोगृहेषुपुमान्
सक्तमात्मानमजितेन्द्रियः । स्नेहपाशैर्दृढैर्बद्धमुत्सहेतविमोचितुम् ॥ ९ ॥कोन्वर्थ-
तृष्णांविसृजेत्प्राणेभ्योऽपियईप्सितः । यंक्रीणात्यसुभिःप्रेष्ठैस्तस्करःसेवको वणि-
क् ॥ १० ॥ कथंप्रियायाअनुकम्पितायाः सङ्गंरहस्यंरुचिरांश्च मन्त्रान् । सुहृत्सुच
स्नेहसितः शिशूनांकलाक्षराणामनुरक्तचित्तः ॥ ११ ॥ पुत्रान्स्मरंस्तादुहितॄर्हृदय्या
भ्रातॄन्स्वसॄर्वापितरौचदीनौ । गृहान्मनोज्ञोरुपरिच्छदांश्च वृत्तींश्चकुल्याः पशुभृत्य-
वर्गान् ॥ १२ ॥ त्यजेतकोशस्कृदिवेहमानः कर्माणिलोभादवितृप्तकामः । औप-
स्थ्यजैह्व्यंबहुमन्यमानः कथंविरज्येतदुरन्तमोहः ॥ १३ ॥ कुटुम्बपोषाय वियन्नि-

प्रह्लादजी बोले कि हे मित्रों ! मनुष्य जन्म मिलना अत्यन्तही दुर्लभ है सह मनुष्य जन्म में बाल्यावस्थासेही बुद्धिमान मनुष्य को भागवत धर्म का अनुष्ठान करना उचित है क्योंकि हमलोगों के आयुकी भी कुछ स्थिरता नहीं है ॥ १ ॥ अतएव इसी जन्म में महापुरुष भगवान विष्णु के चरणों की आराधना करना चाहिये क्यों कि वह सब प्राणियों के प्रिय आत्मा, ईश्वर और सुहृद हैं ॥ २ ॥ हे दैत्यों ! विषय सुख किसी देह के सम्बन्ध होने से प्रारब्ध वश दुःखकी समान स्वयही प्राप्त होजाते हैं ॥ ३ ॥ उनके हेतु यत्न करना अनुचित है उनसे वृथाही आयु नष्ट होती है तथा भगवान के चरण कमल के सेवन से जो कल्याण प्राप्त होता है विषय भोग से उतना सुख कभीभी नहीं प्राप्त होसकता ॥ ४ ॥ इस लिये मनुष्य जन्म पाकर जितनें दिन शरीर मे बलरहे उतने दिन कल्याण की कामना अवश्य करना चाहिये ॥ ५ ॥ पुरुष की परमायु केवल सौ वर्षकी है परन्तु अजितेन्द्रिय मनुष्य की आयु इससे भी आधी है क्यों कि वह रात्रि को अंधकार में घिरकर निष्फल सोतारहता है ॥ ६ ॥ उस आधी परमायु मेंसे बीस वर्ष तो बालपन और कैशोर अवस्थाकी क्रीडा में व्यतीत होजाते हैं, फिर जरा ग्रस्त होकर अशक्त दशामें बीस वर्ष बीतजाते हैं ॥ ७ ॥ दुःखसे भरे हुए काम तथा प्रबल मोहसे गृहासक्त अवस्थामें असावधान रहतेहुए मनुष्यकी शेष आयु नष्ट होजाती है ॥ ८ ॥ कौन अजितेन्द्रिय मनुष्य गृहासक्त हो दृढ स्नेह पाश को काट अपनें को मुक्त करसकता है ॥ ९ ॥ प्राणों सेभी प्यारे धन की लालसाको कौन परित्याग करसकता है चोर, सेवक और वणिक् प्राण हानिको स्वीकार करकेभी धन उत्पन्न करते हैं ॥ १० ॥ प्यारी स्त्री के साथ एकांत में निवास करनेसे उसकी मनोहर बातें सुनेसे बंधुओं के स्नेह बंधनसे तथा तोतली बातें करने वाले बालकों के संग से अनुरक्त चित्त मनुष्य इन सबका स्मरणकर किस भांति इन सबको छोड सकता है ॥ ११ ॥ पुत्र, कलत्र, भ्राता, भगिनी, वृद्धपिता, माता, सुंदरघर, पिताकी सम्पत्ति, घर मे पलेहुए पशु, और सेवकों का स्मरण करके कौन मनुष्य इन सबको भूलसकता है ? ॥ १२ ॥ जैसे कोशस्कृत कीडा अपना बासस्थान बनाकर अपनें बाहर निकलने के निमित्त द्वार नहीं रखता तैसेही विषयासक्त मनुष्य अपूर्ण कामहो लोभ वश निरंतर कर्मों हीमें घिरारहता है उपस्थ और जिह्वा के

आयुर्नश्यन्तेऽर्थोविहतंप्रमत्तः। सर्वत्रतापत्रयदुःखितात्मानिर्विद्यतेनस्वकुटुम्बरामः
॥ १४ ॥ वित्तेषुनित्याभिनिविष्टचेता विद्वांश्चदोषंपरवित्तहर्तुः । प्रेत्येहचाथाप्य-
जितेन्द्रियस्तदशान्तकामोहरतेकुटुम्बी ॥ १५ ॥ विद्वानपीत्थंदनुजाः कुटुम्बंपुष्णन्
स्वलोकायनकल्पतेवै । यःस्वीयपारक्यविभिन्नभावस्तमः प्रपद्येत यथा विमूढः
॥ १६ ॥ यतोनकश्चित्क्वचकुत्रचिद्वादीनःस्वमात्मानमलंसमर्थः । विमोचितुंकाम
दृशांविहारक्रीडामृगोयन्निगडोविसर्गः ॥ १७ ॥ ततोविदूरात्परिहृत्यदैत्यादैत्येषु
सङ्गंविषयात्मकेषु । उपेतनारायणमादिदेवं समुक्तसङ्गैरिषितोऽपवर्गः ॥ १८ ॥ न
ह्यच्युतंप्रीणयतोबह्वायासोऽसुरात्मजाः।आत्मत्वात्सर्वभूतानांसिद्धत्वादिहसर्वतः
॥१९॥ परावरेषुभूतेषुब्रह्मान्तस्थावरादिषु । भौतिकेषुविकारेषुभूतेष्वथमहत्सु च ॥
२०॥गुणेषुगुणसाम्येचगुणव्यतिकरेतथा । एकएवपरोह्यात्माभगवानीश्वरोऽव्ययः
॥ २१ ॥ प्रत्यगात्मस्वरूपेणदृश्यरूपेणचस्वयम् ॥ व्याप्यव्यापकनिर्देश्यो ह्यनिर्दे-
श्योऽविकल्पितः ॥ २२ ॥ केवलानुभवानन्दस्वरूपः परमेश्वरः । माययाऽन्तर्हि-
तैश्वर्यईयतेगुणसर्गया ॥ २३ ॥ तस्मात्सर्वेषुभूतेषुदयांकुरुतसौहृदम् । आसुरंभा-
वमुन्मुच्ययथातुष्यत्यधोक्षजः ॥ २४ ॥ तुष्टेचतत्रकिमलभ्यमनन्तआद्ये किं तैर्गुण-
व्यतिकरादिहयेस्वसिद्धाः । धर्मादयः किमगुणेनचकाङ्क्षितेन सारंजुषांचरण-

सुखों कोही वह मनुष्य बहुत जानता है अतएव वह अपार मोह में फसकर कर किस प्रकार से वि रक्त होसकता है ॥ १२ ॥ गृहासक्त मनुष्य ऐसा प्रमत्त होता है कि कुटुम्ब के पोषण में अपनी आयु तथा पुरुषार्थ का नाशभी होताहुआ नहीं जानसकता तीनों तापों से दुःखित होकरभी उनको कष्ट नहीं जानता केवल कुटुम्ब मेंही आसक्त रहता है ॥ १४ ॥ अजितेन्द्रिय कुटुम्ब युक्त मनुष्यका मन धन में इतना आसक्त होताहै कि वह यह जानकरभी कि "पराधन हरने से परलोक में नरक और इस लोक में राजदण्ड आदि मिलता है" लोभ के वशीभूत हो दूसरे के धन को हरता है ॥ १५ ॥ हे दनुजो ! इस भांति से विद्वान मनुष्य भी गृहासक्त हो कुटुम्ब के पालन पोषण में लगेरह कर आत्मा का साक्षात्कार नहीं करसकते और मूर्ख मनुष्य की समान 'यह मेरा' 'यह पराया' ऐसी अहंता ममता में घिराहुआ पडारहता है ॥ १६ ॥ ऐसे गृहासक्त मनुष्य कभी भी अपनी आत्माको मुक्त नहीं करसकते क्यों कि वह स्त्रियों के क्रीडा मृग की समान और सतान उसके गलेमें बंधन फांसी के समान होते है ॥ १७ ॥ अतएव हे दैत्यों ! विषयासक्त दैत्यों का साथ छोड़ कर आदिदेव नारायण के शरणागत होओ वेही निःसंग मुनियों को मोक्ष के देनेवाले हैं ॥ १८ ॥ हे दैत्य पुत्रो ! भगवान विष्णुजी सब प्राणियों के आत्मा तथा समदर्शी हैं इस लिये उनसे प्रीति करना कुछ कठिन कार्य नहीं है ॥ १९ ॥ अचर से लेकर ब्रह्मातक छोटे और बड़े प्राणी तथा भौतिक विकार, आकाशादि महाभूत, सत्वआदि गुण तथा इन सबगुणों की प्रकृति और महातत्त्व आदिमें वही ब्रह्मस्वरूप भगवान आत्म रूपसे विराजमान हैं ॥ २०-२१ ॥ तौभीगुण सृष्टिके करने वालीमाया से वह घिरेरहकर स्वयं अनिर्देश्य और अविकल्पित होकर भी द्रष्टा और भोक्ता रूपसे व्यापक तथा भोग्य देहादि रूपसे व्याप्य हैं इसलिये निर्देश्य और विकल्पित प्रतीत होते हैं, केवल अनुभव रूप आनन्दही उनका स्वरूप है ॥२२-२३॥ इसकारण तुम आसुरी भावको छोडकर सब प्राणियों पर दया तथा उनसे मैत्रीकरो, ऐसा करने सेही भगवान विष्णुजी संतुष्टहोंगे ॥ २४ ॥ उन आदि पुरुष, अनंत, भगवान के संतुष्ट होनेपर फिरकिस पदार्थका अभाव रहसकता है? गुण परिणाम के वशीभूत प्रारब्ध से जोस्वयं सिद्ध हैं उनधर्मोंही से क्या प्रयोजन ? मोक्षही की क्या आवश्यकता ? मैं सदैव उनके नामका गानकरता और उन्हीं के चरण कमलों के अमृतका

योऽनुगायतांनः ॥ २५ ॥ धर्मार्थकाम इति योऽभिहितस्त्रिवर्गईक्षात्रयीनयदमौवि-
विधावार्ता । मन्येतदेतदखिलंनिगमस्यसत्यं स्वात्मार्पणंस्वसुहृदःपरमस्य
पुंसः ॥२६॥ ज्ञानंतदेतदमलंदुरवापमाह नारायणोनरसखः किलनारदाय । एका-
न्तिनांभगवतस्तदकिञ्चनानां पादारविन्दरजसाप्लुतदेहिनांस्यात् ॥ २७ ॥ श्रु-
तमेतन्मयापूर्वंज्ञानं विज्ञानसंयुतम् । धर्मभागवतंशुद्धं नारदाद्देवदर्शनात् ॥ २८ ॥
दैत्यपुत्राऊचुः ॥ प्रह्लादत्वंवयञ्चापिनर्तेऽन्यविद्महेगुरुम् । एताभ्यांगुरुपुत्राभ्यांबाला
नामपिहीश्वरौ ॥ २९ ॥ बालस्यांतःपुरस्थस्य महत्सङ्गोदुरन्वयः । छिन्धिनःसंशय
सौम्य स्याच्चेद्विस्रम्भकारणम् ॥ ३० ॥

इतिश्रीमद्भा०महा० सप्त० षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

नारदउवाच ॥ एवंदैत्यसुतैःपृष्टो महाभागवतोऽसुरः । उवाचस्मयमानांस्ता
न्स्मरन्मदनुभाषितम् ॥ १ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ पितरिप्रस्थितेऽस्माकं तपसेमन्दराच
लम् । युद्धोद्यमपरंचक्रुर्विबुधादानवान्प्रति ॥ २ ॥ पिपीलिकैरहिरिवदिष्ट्यालोको
पतापनः । पापेनपापोऽभक्षीति वादिनोवासवादयः ॥ ३ ॥ तेषामतिबलोद्योगंनिश
म्यासुरयूथपाः । वध्यमानाःसुरैर्भीताद्रुद्रुवुःसर्वतोदिशम् ४ ॥ कलत्रपुत्रमित्राप्तान्गृ
हान्पशुपरिच्छदान् । नावेक्षमाणास्त्वरिताःसर्वेप्राणपरीप्सवः॥५॥ व्यलुम्पन्राजशि
बिरममराजयकांक्षिणः इंद्रस्तुराजमहिषींमातरममचाग्रहीत् ॥६॥ नीयमानांभयो

पानकरता रहता हू ॥ २५ ॥ त्रिवर्ग नाममें उपरोक्त धर्म अर्थ काम तथा आत्म विद्या, कर्मविद्या, तर्कविद्या, दंडनीति, और विविध प्रकार की जीविका यह सबवेद प्रतिपाद्य विषय यदि अंतर्यामी, परम पुरुष अपनी आत्मा के अर्पण कियेजावें तबतो वह सत्य हैं नहीं तोवेभी असत्य हैं ॥२६॥ ऐसा न जानना किमैं तुमको नया उपदेश देताहूं पहिले भगवान ने इस निर्मल ज्ञानका उपदेश नारदजी को दियाथा भगवान के एकान्त भक्त निष्काम पुरुषोंकी चरण रजजिन प्राणियों के अभिषिक्त होनी है उन्हींको इसभांति का ज्ञानउत्पन्न होता है ॥ २७ ॥ पहिले मैंने उन्हीं देवदर्शन नारदजी से इस विज्ञान युक्तज्ञान तथाशुद्ध भागवत धर्मको सुनाथा ॥ २८ ॥ दैत्य बालक कहने लगेकि हे प्रह्लाद ! इनदो गुरूपुत्रों के अतिरिक्त और दूसरे गुरूको तुमभी नहीं जानते और न हमजानें, क्योंकि हमारी अति बाल्यावस्था से यह हमारे उपदेशक हैं ॥ २९ ॥ अंतःपुरमें रहते हुये महात्मा पुरुषों की सगति होना अत्यंत दुर्घट है हे सौम्य ! यदिविश्वास दिखाने वालाकोई कारण होतो उसके द्वारा हमारे इस संशयको दूरकरो ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

नारदजी बोलेकि—हे राजन् ! दैत्यात्मजों के इसभांति पूँछनेपर महाभागवत प्रह्लाद कुछेक हंसकर मेरा कहाहुआ वाक्य स्मरण करके उनसे कहनेलगे कि ॥ १ ॥ हे वयस्यगण ! मेरेपिता हिरण्यकशिपुके तपस्यार्थ मदराचल में जानेपर इन्द्रादि देवता कहनेलगे कि—अहो ! जैसे चींटियां सर्पको खाजाती हैं तैसेही समस्त लोकोंको संताप देनेवाला पापी हिरण्यकशिपु अपनेही पापों से नष्टहोगया। इसभांति कहकर उन्हों ने दानवों के नष्ट करने के निमित्त अत्यंत युद्धका उद्योग कियाथा ॥ २ ॥ ३ ॥ उस समय असुर सेनापति देवताओं का बड़ाभारी उद्योग जान, देवताओं से निहत होहो भयभीतहो नाना दिशाओंको भागगये ॥ ४ ॥ सब अपने २ प्राणों की रक्षाके निमित्त इतने आतुर हुयेकि पुत्र, कलत्रधन, स्वजन, घर, पशु, और घरके पदार्थों की ओर देखने काभी अवसर न पाया ॥ ५ ॥ विजयी देवताओं ने दैत्यराज के घरको धूलमें मिलादिया। और इन्द्रने मेरीमाता दैत्यराजकी स्त्रीको ग्रहण किया ॥ ६ ॥ इन्द्र, भयस व्याकुल कुररी की नाईं

छिन्नां रुदतीं कुररीमिव । यदृच्छयागतस्तत्र देवर्षिर्ददृशे पथि ॥ ७ ॥ प्राह नैनां सुरप तेनेतुमर्हस्यनागसम् । मुञ्चमुञ्चमहाभाग सतीं परपरिग्रहम् ॥ ८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ आस्तेऽस्या जठरे वीर्यमविषह्यं सुरद्विषः । आस्यतां यावत्प्रसवं मोक्ष्येऽर्थपदवीं गतः ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ अयं निष्किल्बिषः साक्षान्महाभागवतो महान् । त्वया न प्राप्स्यते संस्थामनन्तानुचरो बली ॥ १० ॥ इत्युक्तस्तां विहायेन्द्रो देवर्षेर्मानयन्वचः । अनन्तप्रियभक्त्यैनां परिक्रम्य दिवं ययौ ॥ ११ ॥ ततो मे मातरमृषिः समानीय निजाश्रमम् । आश्वास्येहोष्यतां वत्से यावत्ते भर्तुरागमः ॥ १२ ॥ तथेत्यवात्सीद्देवर्षेरन्ति साप्यकुतोभया । यावद्दैत्यपतिर्घोरात्तपसो न न्यवर्तत ॥ १३ ॥ ऋषिं पर्यचरत्तत्र भक्त्या परमया सती । अन्तर्वत्नी स्वगर्भस्य क्षेमायेच्छाप्रसूतये ॥ १४ ॥ ऋषिः कारुणिकस्तस्याः प्रादादुभयमीश्वरः धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलम् ॥ १५ ॥ तत्तु कालस्य दीर्घत्वात्स्त्रीत्वान्मातुस्तिरोदधे ऋषिणाऽनुगृहीतं मां नाधुनाप्यजहात्स्मृतिः ॥ १६ ॥ भवतामपि भूयान्मे यदि श्रद्दधते वचः । वैशारदी धीः श्रद्धातः स्त्रीबालानां च मे यथा ॥ १७ ॥ जन्माद्याः षडिमे भावा दृष्टा देहस्य नात्मनः । फलानामिव वृक्षस्य कालेनेश्वरमूर्तिना १८ ॥ आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्ध एकः क्षेत्रज्ञ आश्रयः अविक्रियः स्वदृग्घेतुर्व्यापकोऽसङ्ग्यनावृतः १९ ॥ एतैर्द्वादशभिर्विद्वानात्मनो लक्षणैः परैः । अहं ममेत्यसद्भावं देहादौ मोहजं त्यजेत् २० स्वर्णं यथा ग्रावसु हेमकारः क्षेत्रेषु योगैस्तदभिज्ञ आ

रोती हुई मेरी माताको लियेजाते थे कि उस समय मार्गमें नारदजी यदृच्छा से आय निकले और ॥ ७ कहने लगेकि—हे सुरपते ! इस निरपराधिनी स्त्रीका लेजाना तुमको उचित नहीं है हे महाभाग ! पतिव्रता परस्त्रीको 'छोड़ो छोड़ो' ॥ ८ ॥ तब इन्द्रने कहाकि इसके गर्भमें दैत्यराजका दुःसह वीर्य है अतएव जितने दिन पुत्र न होगा मेरे यहां यह रहेगी; पुत्रके उत्पन्न होतेही उसको मारकर इसको छोड़दूंगा ॥ ९ ॥ नारदजी बोलेकि—हे देवराज ! इसके गर्भका बालक निष्पाप, भगवद्भक्त, गुणशाली, भगवान का अनुचर और तेजस्वी है इसकारण तुम उसको नहीं मारसकते ॥ १० ॥ देवर्षि के कथनानुसार इन्द्रने मेरी माताको छोड़दिया । और मैं भगवत प्रियहूं यह सुनकर वह मेरे ऊपर भक्ति प्रकाशकर मेरी माताकी परिक्रमाकर स्वर्गकोगये ॥ ११ ॥ तदनन्तर वे ऋषि मेरी माताको अपने आश्रममें लेआये और उसको सांत्वना देकर कहाकि—हे पुत्रि ! जबतक तुम्हारा स्वामी न आवे तबतक इस स्थानमें रहो ॥ १२ ॥ मेरी माता उनकी बातोंको मानकर, जबतक दैत्य राज घोरतपस्या से निवृत्त न हुये तबतक निर्भय चित्तसे देवर्षि के समीप रही ॥ १३ ॥ वह गर्भवती सती अपने गर्भके कल्याण की इच्छासे और पतिआने के अनन्तर प्रसवकी कामना करके भक्तिपूर्वक ऋषिकी सेवा करने लगी ॥ १४ ॥ तब प्रभाव शाली दयालु ऋषिने मुझको भी बोध देकर माताको धर्मतत्व और विशुद्ध ज्ञानका उपदेश दिया ॥ १५ ॥ किंतु दीर्घ काल होजाने से स्त्री स्वभाव मातातो उस उपदेशको भूलगईं, परन्तु ऋषिकी कृपासे मैं अबतक उस ज्ञानको नहीं भूलाहूं ॥ १६ हे मित्रों ! तुम यदि मेरी बातपर श्रद्धावान होगेतो श्रद्धावान होनेसे स्त्रियों और बालकोंकोभी मेरीसमान निर्मल बुद्धि उत्पन्न होसकती है ॥ १७ ॥ हे भ्रातृगण ! महा समर्थकाल करके जैसे वृक्षमें उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि, परिणाम, क्षय और विनाशरूप छह विकार देखेजाते हैं वैसेही देहके भी छह विकार हैं; परन्तु यह अवस्था आत्माकी नहीं है ॥ १८ ॥ क्योंकि आत्मा नित्य, अव्यय, शुद्ध, अद्वितीय, सर्वज्ञ, सर्वाश्रय, विकाररहित, समदर्शी, ज्योतिर्मय, सर्वकारण, सगरहित और अनावृत है ॥ १९ ॥ इन द्वादश लक्षणों द्वारा विद्वान मनुष्य देहादि से मोहजनित "मै और-मेरा" इस मिथ्या बुद्धिको छोड़ देता है ॥ २० ॥ जैसे पत्थर से अग्नि संयोगादि नाना उपायों द्वारा

प्नुयात् । क्षेत्रेषुदेहेषु तथात्मयोगैरध्यात्मविद्ब्रह्मगतिंलभेत ॥ २१ ॥ अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्तास्त्रयएवहितद्गुणाः ॥ विकाराः षोडशाचार्यैः पुमानेकः समन्वयात् ॥ २२ ॥ देहस्तुसर्वसंघातो जगत्तस्थुरितिद्विधा । अत्रैवमृग्यःपुरुषोनेति नेतीत्यतत्त्यजन् ॥ २३ ॥ अन्वयव्यतिरेकेणविवेकेनोशतात्मना । सर्गस्थानसमाम्नायैर्विमृशद्भिरसत्वरैः ॥ २४ ॥ बुद्धेर्जागरणंस्वप्नःसुषुप्तिरितिवृत्तयः । तायेनैवानुभूयन्तेसोऽध्यक्ष पुरुषःपरः ॥२५ ॥ एभिस्त्रिवर्णैःपर्यस्तैर्बुद्धिभेदैःक्रियोद्भवैः स्वरूपमात्मनो बुध्येद्गन्धैर्वायु मिवान्वयात् ॥२६॥एतद्द्वारोहिसंसारोगुणकर्मनिबंधनः । अज्ञानमूलोऽपार्थोऽपिपुंसः स्वप्नइवेष्यते ॥ २७ ॥ तस्माद्भवद्भिःकर्तव्यंकर्मणांत्रिगुणात्मनाम् । बीजनिर्हरणंयोगःप्रवाहोपरमोधियः ॥ २८ तत्रोपायसहस्राणामयंभगवतोदितः । यदीश्वरेभगवतियथायैरंजसारतिः ॥ २९ ॥ गुरुशुश्रूषयाभक्त्या सर्वलब्धार्पणेनच । संगेनसाधुभक्तानामीश्वराराधनेनच ॥ ३० ॥ श्रद्धयातत्कथायांचकीर्तनैर्गुणकर्मणाम् । तत्पादाम्बुरुहध्यानात्तल्लिंगेक्षाऽर्हणादिभिः ३१ हरिःसर्वेषुभूतेषुभगवानास्तईश्वरः । इतिभूतानिमनसा कामैस्तैःसाधुमानयेत् ३२ एवंनिर्जितषड्वर्गैः क्रियतेभक्तिरीश्वरे । वासुदेवेभगवतियया संलभतेरतिम् ३३॥

केवल सुनारही सोनेकी खानसे सोनाप्राप्त करता है तैसेही अध्यात्मवेत्ता मनुष्य इस देह से ब्रह्मताको प्राप्त करसकता है ॥ २१ ॥ आठप्रकृति, सत्वादि प्रकृति के तीनगुण, सोलह विकार, इन सबमें साक्षीस्वरूपसे एकही परम पुरुष परमात्मा विराजमान हैं ॥ २२ ॥ इसी कारण कपिलादि मुनियों ने आत्माको अद्वितीय माना है । इस सम्पूर्ण स्वरूप में देह दोप्रकार का है एक चर दूसराअचर इस देहही में आत्माको ढूंढलेना चाहिये । और यह सहजमें होसकता है क्योंकि " यह आत्मा नहीं यह आत्मा नहीं " इसप्रकार कह कर जडपदार्थों को पृथक् करते २ आत्माअपने आप पृथक् प्रतीत होने लगता है ॥ २३ ॥ स्याही अक्षरोंसे अलग नहीं है किंतु अक्षर स्याही से अलग हैं, इसीप्रकार देहादिक आत्मा से भिन्न नहीं है परन्तु आत्मा इनसे भिन्न है । इस अन्वय व्यतिरेक रूपविवेकसे अन्तःकरणकी शुद्धि पूर्वक सृष्टि, स्थिति, संहारका निरूपण करने वाले वेद वाक्यों का विचार करने से धीरपुरुष आत्मा को जानलेते हैं ॥ २४ ॥ हे वयस्य गण ! जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीन बुद्धिकी वृत्तियें हैं जो इनका अनुभव करता है वही साक्षी और परम पुरुष है ॥ २५ ॥ यह सब बुद्धि की वृत्तियें आत्मा का धर्म नहीं हैं क्योंकि यह सब त्रिगुणात्मक और कर्म से उत्पन्न हुई हैं । जैसे पुष्प की गंध वायु के साथ मिलकर उस वायु की गंध कही जाती है वैसेही आत्मा को बुद्धिके संयोगसे तीनो अवस्थाओंका आत्मा कहा जाता है ॥ २६ ॥ इसही के द्वारा संहार होता रहता है । गुण और कर्मही संसारके बंधन तथा अज्ञानही उसका मूल है; अतएव उसकास्वरूप मिथ्या होने परभी स्वप्नवत् देखने में आता है ॥ २७ ॥ इसलिये तुम त्रिगुणात्मक कर्म के बीज को योग द्वारा भस्म करो कि जिस से तीनों अवस्था रूप बुद्धि का प्रवाह निवृत्त होजाता है ॥ २८ ॥ जिन यथोचित धर्मों से भगवान में प्रीति होवे सहस्रों उपायों में वही अत्युत्तम उपाय है ॥ २९ ॥ गुरु शुश्रूषा, गुरु भक्ति, सम्पूर्ण लब्ध पदार्थों का अर्पण, ईश्वर की आराधना, उनकी कथा में प्रीति प्रकाश करना, उनके गुण और कर्मों का वर्णन करना, उनके चरणो का ध्यान, उनकी मूर्त्ति का दर्शन तथा पूजन आदि करना, और भगवान को सब प्राणियों में वर्तमान जानकर सब प्राणियों परकृपा करना, इनसब कर्मों द्वारा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य को जीतकर ईश्वर की भक्ति करना चाहिये।

निशम्यकर्माणिगुणानतुल्यान्वीर्याणिलीलातनुभिःकृतानि । यदातिहर्षोत्पुलकाश्रु
गद्गदंप्रोत्कण्ठउद्गायतिरौतिनृत्यति ॥ ३४ ॥ यदाग्रहग्रस्तइवक्वचिद्धसत्याक्रं
दतेध्यायतिवन्दतेजनम् । मुहुःश्वसन्वक्तिहरेजगत्पते नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रपः॥
॥ ३५ ॥ तदापुमान्मुक्तसमस्तबन्धनस्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः । निर्दग्धबी
जानुशयोमहीयसाभक्तिप्रयोगेणसमेत्यधोक्षजम्॥३६॥ अधोक्षजालम्भमिहाशुभा
त्मनःशरीरिणःसंसृतिचक्रशातनम् । तद्ब्रह्मनिर्वाणसुखंविदुर्बुधास्ततोभजध्वंहृद
येहृदीश्वरम् ॥ ३७ ॥ कोतिप्रयासोऽसुरबालकाहरेरुपासनेस्वेहृदिच्छिद्रवत्सतः ।
स्वस्यात्मनःसख्युरशेषदेहिनां सामान्यतःकिंविषयोपपादनैः ॥ ३८ ॥ रायःकलत्रं
पशवःसुतादयो गृहामहीकुंजरकोशभूतयः । सर्वेऽर्थकामाःक्षणभंगुरायुषःकुर्वंति
मर्त्यस्यकियत्प्रियंचलाः ॥ ३९ ॥ एवंहिलोकाःक्रतुभिःकृताअमीक्षयिष्णवःसाति
शयानिर्मलाः । तस्माददृष्टश्रुतदूषणंपरं भक्त्यैकयेशंभजतात्मलब्धये ॥ ४० ॥
यदर्थमर्थेहकर्माणिविद्वन्मान्यसकृन्नरः । करोत्यतोविपर्यासममोघंविंदतेफलम् ॥
४१ ॥ सुखायदुःखमोक्षायसंकल्पइहकर्मिणः । सदाप्नोतीहयादुःखमनीहायाःसुखा
वृतः ॥ ४२ ॥ कामान्कामयतेकाम्यैर्यदर्थमिहपूरुषः । सवैदेहस्तुपारक्यो भंगुरोया
त्युपैतिच ॥ ४३ ॥ किमुव्यवहितापत्यदारागारधनादयः । राज्यंकोशगजामात्यभृ

इन्हीं से भगवान वासुदेवमें प्रीति उत्पन्न होजाती है ॥ ३०—३३ ॥ माया से शरीर धारण करने वाले भगवानके कर्म अनुपम गुण, और पराक्रमके वर्णनको सुनकर जब रोमांच और अश्रुपात होवे गद्गद् स्वर से युक्त कंठ हो मनुष्य नाचने, गाने और आनंद ध्वनि करने लगे ॥ ३४ ॥ जबग्रह ग्रस्त की समान हँसे, रोवे, ध्यान करे, मनुष्यों की वंदना करे, जब बारबार श्वास छोड़ता हुआ निर्लज्ज होकर हे हरे ! हे जगत्पते ! हे नारायण ! ऐसे पुकारने लगे, तब वह सब बधनों से छूट जाता है तथा भगवान की भावना से उसके आशय भगवानके अनुरूप होते रहते हैं । प्रबल भक्ति के कारण उसका अज्ञान और वासनाए नष्ट होजाती हैं और वह भली भांति से भगवान को प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ भगवान में चित्त समर्पण करने से राग द्वेषादि नहीं रहते और यही प्राणियों के कर्मबधन काटने का एक प्रधान उपाय है पंडित लोग इसी को मोक्ष का सुख कहते हैं; अतएव तुम हृदय में अतर्यामी भगवानका भजन करो ॥ ३७ ॥ हे असुर बालकों ! अपने २ हृदय में आकाशकी समान स्थित आत्माके मित्र भगवान की उपासना में क्या कुछ विशेष प्रयास करना पड़ता है ? सर्व साधारण प्राणियों की भांति विषय सुखो से क्या अभिप्राय है ॥ ३८ ॥ धन, कलत्र, पशु, पुत्रादि, घर, पृथ्वी, हाथी भण्डार ऐश्वर्य, अर्थ और काम यह सभी नाशवान हैं यह क्षण भंगुर आयु वाले मनुष्य का कितना हित करसक्ते हैं ॥ ३९ ॥ इसी भांति यज्ञसे प्राप्त होनेवाले अगाध ऐश्वर्य तथा परस्पर की न्यूनाधिक्यता युक्त स्वर्गादि लोकभी निर्मल नहीं हैं अतएव जिसका दोष न सुना गया न देखागया उन भगवान का आत्मा के पानेके निमित्त भक्ति पूर्वक भजन करो ॥ ४० ॥ हे वयस्यों ! पाण्डित्य का अभिमान रखनें वाले मनुष्य इस संसार में जिस कारण बारम्बार कर्म करते हैं उससे अप्रकट विपरीत फल प्राप्त होतारहता है ॥ ४१ ॥ इस संसार में क्रियावान मनुष्य को सुख अथवा दुःख नाश करनेकाही संकल्प रहता है परन्तु जबतक उसने कर्म नहीं किया तबतक कर्म नकरने की अपेक्षा सुखीथा कर्म करने से सदैव दुःख पाता है ॥ ४२ ॥ इस संसार में मनुष्य जिसके हेतु काम्य कर्मों द्वारा भोगकी कामना करता है वह देहभी कुत्ते आदिकों के काम आनेवाला और क्षण भंगुर है कभी जाता है और कभी आताहै ॥ ४३ ॥ फिरशरीर से अत्यन्त दूररहे हुये पुत्र, कलत्र, गृह, धनादि, राज्य, कोष,

स्यासाममतास्पदाः ॥ ४४ किमेतैरात्मनस्तुच्छैःसहदेहेमनश्वरैः। अनर्थैरर्थसंकाशै र्नित्यानन्दमहोदधेः ॥ ४५ ॥ निरूप्यतामिहस्वार्थः कियान्देहभृतोऽसुराः। निषेका दिष्ववस्थासु क्लिश्यमानस्यकर्मभिः ४६ ॥ कर्माण्यारभतेदेहीदेहेनात्मानुवर्तिना कर्मभिस्तनुतेदेहमुभयंत्वविवेकतः ॥ ४७ ॥ तस्मादर्थाश्चकामाश्च धर्माश्चयदपाश्र याः। भजतानीहयात्मानमनीहं हरिमीश्वरम् ॥ ४८ ॥ सर्वेषामपिभूतानांहरिरा त्मेश्वरःप्रियः। भूतैर्महद्भिःस्वकृतैः कृतानांजीवसंज्ञितः ४९ ॥ देवोऽसुरोमनुष्योवा यक्षोगन्धर्वएववा। भजन्मुकुन्दचरणंस्वस्तिमान्स्याद्यथावयम् ५०॥नालंद्विजत्वंदे वत्वमृषित्वंवासुरात्मजाः। प्रीणनायमुकुंदस्यनवृत्तंनबहुज्ञता ५१ नदानंनतपोनेज्या नशौचंनव्रतानिच। प्रीयतेमलयाभक्त्या हरिरन्यद्विडम्बनम् ॥ ५२ ॥ ततोहरौभग वतिभक्तिं कुरुतदानवाः। आत्मौपम्येनसर्वत्र सर्वभूतात्मनीश्वरे ॥ ५३ ॥ दैते यायक्षरक्षांसि स्त्रियःशूद्राव्रजौकसः। खगामृगाःपापजीवाः सन्तिह्यच्युततांगताः ॥ ५४ ॥ एतावानेवलोकेऽस्मिन् पुंसःस्वार्थःपरःस्मृतः। एकांतभक्तिर्गोविंदे यत् सर्वत्रपरीक्षणम् ॥ ५५ ॥

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

नारदउवाच अथ दैत्यसुताः सर्वे श्रुत्वातदनुवर्णितम्। जगृहुर्निरवद्यत्वान्नैव गुर्वनुशिक्षितम ॥ १ ॥ अथाचार्यसुतस्तेषांबुद्धिमेकान्तसंस्थिताम्। आलक्ष्यभी तस्त्वरितोराज्ञआवेदयद्यथा ॥ २ ॥ श्रुत्वातदप्रियंदैत्योदुःसहतनयानयम्। कोपावे

हाथी, मन्त्री, दास, यह सब ममता के स्थान हैं इनसे कुछ नहीं होता ॥ ४४ ॥ यह समस्त विषय तथा देहआदि नाशवान हैं इनकी परमानंद रसके आधार आत्मा के साथ कैसे तुलना होसकती है ॥ ४५ ॥ हे असुरों ! कर्म के निमित्त गर्भ आदि स्थितिओं में कष्ट पानेहुए प्राणियों का पूर्वोक्त पदार्थों से यहां कितना और कैसा स्वार्थ होता है सो कहो ॥ ४६ ॥ प्राणी आत्मा के अनुवर्ती हो देह द्वारा कर्म करने का आरम्भ करता है उन्ही कर्मों द्वारा देह विस्तार पाता है परन्तु यह दोनोही (कर्म और देह) अविचार से होते हैं ॥ ४७ ॥ अतएव अर्थ, धर्म और काम जिस के आधीन हैं उन निरीह आत्मा ईश्वर का भजन करो ॥ ४८ ॥ हरि सबही प्राणियों के आत्मा और प्रिय तथा अपने रचेहुए पञ्च महाभूतों से बनायेहुए सब प्राणियों के अंतर्यामी हैं ॥ ४९ ॥ सुर, असुर, मनुष्य, यक्ष अथवा गंधर्व कोई क्योंनहो भगवान के चरणों को भजकर मेरे समान कल्याण प्राप्त करसकते हैं ॥ ५० ॥ हे बंधुओ ! द्विजत्व, देवत्व, ऋषित्व, बहुदर्शिता, दान, तप, यज्ञ, शौच, तथा व्रत, आदि कोईभी भगवान में प्रीति उत्पन्न नहीं करसकते, निष्काम भक्ति द्वारा ही भगवान में प्रीति होती है बिना भक्ति के और सब केवल विडंबना (ढोंग) ही है ॥ ५१ । ५२ ॥ हे दानवों ! इस कारण सबकोही आत्मवत् जानकर सब प्राणियों के आत्मा भगवान हरिकी भक्ति करो ॥५३॥ हे भ्रातृगण ! यक्ष, राक्षस, स्त्री, शूद्र, व्रजवासी, नीच जाति तथा पशु पक्षी इत्यादि पापी जीवभी भगवान के रूप को पाते है ॥५४॥ भगवान की एकांत भक्ति करना और उनको सर्वत्र विराजमान जानना यही इस लोक में मनुष्य का मुख्य स्वार्थ कहागया है ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० सप्तमस्कंध सरल भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

नारदजी बोले कि दैत्यों के बालकों नें प्रह्लाद की बात सुन उत्तम जानकर उसी को ग्रहण किया गुरु की दीहुई शिक्षा को ग्रहण नकिया ॥ १ ॥ तदनंतर गुरु पुत्रने सब बालकों की बुद्धि विष्णु भक्ति युक्त देख शीघ्रता पूर्वक भयभीत हो हिरण्यकशिपु के समीप जायकर सब वृत्तांत उस से कहा ॥ २ ॥ इस प्रकार पुत्र की अनीति सुनकर दैत्यराज का शरीर कोप के वशीभूत हो कांप

शाचलद्गात्रः पुत्रंहन्तुंमनोदधे ॥३॥ क्षिप्त्वापरुषयावाचा प्रह्लादमतदर्हणम्। आहे-
क्षमाणः पापेनतिरश्चीनेनचक्षुषा ॥ ४ ॥ प्रश्रयावनतंदान्तं बद्धाञ्जलिमवस्थितम्।
सर्पः पदाहतइवश्वसन्प्रकृतिदारुणः ॥ ५ ॥ हे दुर्विनीतदात्मन्कुलभेदकराधम।
स्तब्धंमच्छासनोद्धृत्तंनेष्ये त्वाऽद्ययमक्षयम् ॥ ६ ॥ क्रुद्धस्ययस्यकम्पन्तेत्रयोलोकाः
सहेश्वराः। तस्यमेऽभीतवन्मूढशासनंकिंबलोऽत्यगाः ॥७॥ प्रह्लाद उवाच ॥ नके-
वलंमेभवतश्चराजन्सवैबलं बलिनांचापरेषाम्। परेऽवरेऽमीस्थिरजङ्गमायेब्रह्मादयो
येनवशंप्रणीताः ॥ ८ ॥ सईश्वरःकालउरुक्रमोऽसावोजःसहःसत्त्वबलेन्द्रिया-
त्मा। सएवविश्वंपरमःस्वशक्तिभिः सृजत्यवत्यत्तिगुणत्रयेशः ॥ ९ ॥ जह्यासुरं
भावमिमंत्वमात्मनः समंमनोधत्स्वनसन्तिविद्विषः। ऋतेऽजितादात्मनउत्पथस्थि
तात्तद्धिह्यनन्तस्यमहत्समर्हणम् ॥ १० ॥ दस्यून्पुराषण्णविजित्यलुम्पतो मन्यन्त
एकेस्वजितादिशोदश। जितात्मनोज्ञस्य समस्यदेहिनां साधोःस्वमोहप्रभवाःकु
तःपरे ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ व्यक्तंत्वंमर्तुकामोऽसि योऽतिमात्रंविकत्थ
से। मुमूर्षूणांहिमन्दात्मन्ननुस्युर्विप्लवागिरः ॥ १२ ॥ यस्त्वयामन्दभाग्योक्तो मद
न्योजगदीश्वरः। क्वासौयदिसचर्वत्र कस्मात्स्तम्भेनदृश्यते ॥ १३ ॥ सोऽहंवि
कत्थमानस्य शिरःकायाद्धरामिते। गोपायेतहरिस्त्वाद्य यस्तेशरणमीप्सितम् १४॥
एवंदुरुक्तैर्मुहुरर्दयन्रुषा सुतंमहाभागवतंमहासुरः। खड्गंप्रगृह्योत्पतितोवरास

नेंलगा उसनें तिरस्कार के अयोग्य प्रह्लाद का कठोर वचनों से तिरस्कारकर उसके मारने का वि-
चार किया नम्रता पूर्वक शांतभाव से हाथ जोड खड़ेहुए प्रह्लाद को रोषयुक्त तिरछी दृष्टि से देख
स्वभावही से निठुर दैत्य परसे मारेहुए सर्प की समान श्वास छोड़ताहुआ कहनेलगा कि । ३।५।
अरे दुर्विनीत अल्प बुद्धि कुलनाशक अधम ! तूने मेरा आज्ञाका उल्लंघन किया अतएव अब तुझ
को यमपुरी भेजताहूं ॥ ६ ॥ अरे मूढ ! मेरे क्रोधित होनेंसे तीनों लोकके अधिपति भी भयभीत
होतेहैं तूने किसके बलसे निर्भय चित्तहो मेरी आज्ञा का भंग किया ॥ ७ ॥ प्रह्लादनें कहा कि हे
तात ! जिन परमेश्वरनें ब्रह्मादि चराचर को अपनें बश किया है वेही परमेश्वर मेरे बल रूपहैं के
बल मेरही नहीं किन्तु आपके तथा और भी दूसरे बलवानों केभी वेही बल रूपहैं ॥८॥ वे ईश्वर
काल और अत्यंत पराक्रमीहैं वेही सामर्थ्य, साहस, बुद्धि, बल, इन्द्रिय और आत्माहैं वेही तीनों
गुणोंके स्वामी परमपुरुष भगवान अपनी शक्ति द्वारा जगत की उत्पत्ति पालन और संहार करतेहैं
॥ ९ ॥ आप अपने इस आसुरीभाव को छोड़कर मनको समदर्शी करो उलटे मार्ग में चलनेंवाले
मनके अतिरिक्त और कोई शत्रु नहीं है समदर्शनही भगवान की प्रधान पूजाहै ॥ १० ॥ कितने-
ही एक मनुष्य पहिले सर्वस्व नाश करनवाले छह चोरोंको (काम क्रोधादि व छः इन्द्रिय) नहीं
जीतकर दशोंदिशाओं को अपनी जीतीहुई मान लेतें है जितात्मा और सब प्राणियों को समान देख
नें वालाही सच्चा महात्मा है उसका कोईभी शत्रु नहीं है ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपु नें कहा कि अरे
दुष्ट ! निश्चयही तने मरने का कामनाकी है तू अत्यन्त बड़ाई मारता है मरनेंवाले मनुष्य की बाणी
भी बदलजाती है ॥ १२ ॥ अरेमंदभाग्य! तू जोकहता है कि जगदीश्वर मुझसे भिन्न है तो अच्छा
बतला कि वह कहां है?यदिकहे कि वह सर्वत्रहै तो इस खम्भेमें क्यों नहीं दीखता ॥१३॥ प्रह्लाद
ने प्रणाम करके कहाकि यह देखपड़ते हैं। दैत्यश्वरने खम्भेमें कुछ न देख क्रोधित होकर कहाकि अ-
रेपाखंडी! तू यहांभी मुझसे छलकरताहै,मैं इसीसमय तेराशिर काटताहूं तेरेरक्षक हरि आजतेरी रक्षा
करें॥१४॥उस महाबली दैत्य ने इसभांति कटुवाक्यों से बारंबार उस महाभागवत पुत्रको पीड़ितकर

मात्स्तम्भंतताडातिबलःस्वमुष्टिना ॥ १५ ॥ तदैवतस्मिन्निनदोऽतिभीषणो बभूवयेनाण्डकटाहमस्फुटत् । यंवैस्वधिष्ण्योपगतंत्वजादयः श्रुत्वास्वधामात्ययमङ्गमेनिरे ॥ १६ ॥ सविक्रमन्पुत्रवधेप्सुरोजसा निशम्यनिर्ह्रादमपूर्वमद्भुतम् । अन्तःसभायांनददर्शतत्पदं वितत्रसुर्येनसुरारियूथपाः ॥ १७ ॥ सत्यंविधातुंनिजभृत्यभाषितं व्याप्तिंचभूतेष्वखिलेषुचात्मनः । अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन् स्तम्भेसभायांन मृगंनमानुषम् ॥ १८ ॥ ससत्त्वमेनंपरितोविपश्यन् स्तम्भस्यमध्यादनुनिर्जिहानम् । नायंमृगोनापिनरोविचित्र महोकिमेतन्नृमृगेन्द्ररूपम् ॥ १९ ॥ मीमांसमानस्यसमुत्थितोऽग्रतो नृसिंहरूपस्तदलंभयानकम् । प्रतप्तचामीकरचण्डलोचनं स्फुरत्सटाकेसरजृम्भितानम् ॥ २० ॥ करालदंष्ट्रंकरवालचंचल क्षुरान्तजिह्वंभ्रुकुटीमुखोल्वणम् । स्तब्धोर्ध्वकर्णंगिरिकन्दराद्भुतव्यात्तास्यनासंहनुभेदभीषणम् ॥ २१ ॥ दिविस्पृशत्कायमदीर्घपीवरग्रीवोरुवक्षःस्थलमल्पमध्यम् । चन्द्रांशुगौरैश्छुरितंतनूरुहैर्विष्वग्भुजानीकशतं नखायुधम् ॥ २२ ॥ दुरासदं सर्वनिजेतरायुधप्रवेकविद्रावितदैत्यदानवम् । प्रायेणमेऽयं हरिणोरुमायिनावधः स्मृतोऽनेनसमुद्यतेनकिम् ॥ २३ ॥ एवंब्रुवंस्त्वभ्यपतद्गदायुधो नदन्नृसिंहंप्रतिदैत्यकुञ्जरः । अलक्षितोऽग्नौपतितः पतङ्गमोयथा नृसिंहौजसिसोऽसुरस्तदा ॥ २४ ॥ नतद्विचित्रं

तलवारले आसनके ऊपर से कूदबल पूर्वक खम्भेमें घूसामारा॥१५॥हे राजन्! तत्कालही उस खम्भे से अतिभयानक शब्द हुआ कि जिससे ऐसा ज्ञातहुआ किमानो ब्रह्माण्डफटगया । ब्रह्मादि देवताओं ने अपने २ स्थानोंमें उस शब्दको सुनकर बिचारकिया कि हमारे स्थान नष्ट होगये ॥ १६ ॥ हिरण्यकशिपुने पुत्रके मारनेकी इच्छा करते तथा अत्यन्त पराक्रम प्रकाश करतेहुये उस अद्भुत भयदायक शब्दको सुना कि जिससे और सब दैत्य त्रसित होगये, परन्तु सभामें उस शब्द करनेवालेका चिह्नक न पाया ॥ १७ ॥ अनन्तर भगवान अपने सेवक प्रह्लादकी बात तथा अपने सर्वव्यापक होनेका प्रमाण देनेके निमित्त सभाके बीचमें उस खम्भसे न तो पशु न मनुष्य ऐसे अतिअद्भुत रूपको धारणकरके प्रगटहुये ॥ १८ ॥ हिरण्यकशिपुने खम्भेके बीचसे उस नृसिंहमूर्त्तिको निकलताहुआ देखकर कहा कि अहो क्या आश्चर्य है ! यह कौन प्राणीहै ? यह न तो मनुष्यहै और न सिंहहै—यह क्या नृसिंहरूपहै ॥ १९ ॥ हिरण्यकशिपु इसभांतिसे उस भयंकर नृसिंहरूपका विचार करताथा इतनेमें नृसिंहरूपी भगवान उसकी दृष्टिमें आये । उनके नेत्र तपेहुये सोनेकी समान भयानक थे, कन्धेके बाल और केशोंके चक्करसे मुखका भारी आडम्बर बनरहाथा, ॥ २० ॥ बडीकराल दाढें,तलवारकी समान चचल और छुरेकी धारसी पैनी जिह्वा माथेमें चढ़ीहुई भयानक भौहोंसे मुख अत्यन्त विकराल होरहाथा उनके कान खड़े और भारी नाकका छेद पहाड़की गुफाके समान कानके अंततक गलफू फटेहुये थे इससे वह औभी भयानक लगतेथे ॥ २१ ॥ शरीर स्वर्गको पहुंच जाय इतनाऊंचा, ग्रीवाछोटी और मोटी; छातीचौड़ी, और उदर अत्यंतही पतला था । उनके समस्त शरीर में चन्द्रमा की किरणों की समान श्वेतरोम व्याप्तथे; बहुतसी भुजाएं सब दिशाओं कोफैली हुईथीं । उनके नख आयुधोंकी समान शोभा देरहेथे ॥ २२ ॥ और अपने चक्रादि अस्त्र तथा वज्रादि आयुधों द्वारा शोभित थे जिससे सब दैत्य दानव भगरहे थें तथावे अत्यंत बिकराल स्वरूप के होरहेथे । दैत्यपति हिरण्यकशिपु ऐसा रूपदेख उनके प्रगट होनेका अभिप्राय सोचकर कहने लगा कि—यद्यपि यह भलीभांति जानपड़ता है कि मायावी विष्णुने इसभांति से मेरी मृत्युका यत्नकिया है तौभी इस यत्नसे मेराक्या होसकता है ॥ २३ ॥ यह कहकर वह दैत्य गदाले बारबार सिंहनाद करता हुआ उन नृसिंह जीको ताककर कूदा । वह असुर इसभांति से नृसिंह भगवान के तेज में

खलु सत्त्वधामनि स्वतेजसा यो ऽनु पुराऽपिबत्तमः । ततोऽभिपद्याभ्यहनन्महासुरो
रुषा नृसिंहं गदयोरुवेगया ॥ २५ ॥ तं विक्रमन्तं सगदं गदाधरो महोरगं तार्क्ष्यसुतो
यथाऽग्रहीत् । स तस्य हस्तोत्कलितस्तदाऽसुरो विक्रीडतो यद्वदहिर्गरुत्मतः ॥२६॥
असाध्वमन्यन्त हृतौकसोऽमरा घनच्छदा भारत सर्वधिष्ण्यपाः । तं मन्यमानो निजवी-
र्यशङ्कितं यद्धस्तमुक्तो नृहरिं महासुरः । पुनस्तमासज्जत खड्गचर्मणी प्रगृह्य वेगेन जि
तः श्रमो मृधे ॥ २७ ॥ तं श्येनवेगं शतचन्द्रवर्त्मभिश्चरन्तमच्छिद्रमुपर्यधो हरिः । कृ-
त्वाऽट्टहासं खरमुत्स्वनोल्बणं निमीलिताक्षं जगृहे महाजवः ॥ २८ ॥ विष्वक्स्फुरन्तं
ग्रहणातुरं हरिर्व्यालो यथाऽऽखुं कुलिशाक्षतत्वचम् । द्वार्यूर आपात्य ददार लीलया न-
खैर्यथाऽहिं गरुडो महाविषम् ॥ २९ ॥ संरम्भदुष्प्रेक्ष्यकराललोचनो व्यात्ताननान्तं
विलिहन्स्वजिह्वया । असृग्लवाक्तारुणकेसराननो यथान्त्रमाली द्विपहत्यया
हरिः ॥ ३० ॥ नखाङ्कुरोत्पाटितहृत्सरोरुहं विसृज्य तस्यानुचरानुदायुधान् । अह
न्समस्तान्नखशस्त्रपार्ष्णिभिर्दोर्दण्डयूथोऽनुपथान्सहस्रशः ॥ ३१ ॥ सटावधूता ज-
लदाः परापतन्ग्रहाश्च तद्दृष्टिविमुष्टरोचिषः ॥ अम्भोधयः श्वासहता विचुक्षुभुर्नि-
र्ह्रादभीता दिगिभा विचुक्रुशुः ॥ ३२ ॥ द्यौस्तत्सटोत्क्षिप्तविमानसंकुला प्रोत्सर्पत

पतित होकर अग्निमें गिरेहुये पतग की समान अदृश्य होगया ॥ २४ ॥ पहले जिन्हों ने अपने तेज द्वारा प्रलयके अंधकारको पानकर लियाथा, सत्व प्रकाशक उन भगवान हरिमें गिरेहुये तमोमय असुरका छिपजाना क्याकुछ अद्भुतबात है? तदुपरांत वह हिरण्यकशिपु अत्यत क्रोधितहो नृसिंह जीके ऊपर गदा प्रहार करनेलगा ॥२५॥ गरुड जैसे महासर्प (अजगर) को पकड़लेताहै भगवान गदाधर ने उसी भांति गदासमेत उस दानवको पकडलिया हेभारत! हिरण्यकशिपु किसी भांतिसे उन क्रीड़ासक्त भगवानके हाथसे निकल, गरुड़की चोंचसे निकलेहुये सर्पकी समान पराक्रम करने लगा ॥२६॥ उस समय मेघमें छिपेहुये स्थान भ्रष्टदेवता और लोकपाल इस वृत्तांत को देखकर अत्यंत भयभीतहुये । हे राजन्! महाअसुर जिनके हाथसेछूटा उन्हीं हरिभगवानको अपने पराक्रम से भयभीत हुआ विचारनेलगा। युद्धक्षेत्रमें कुछेक देर विश्रामकर ढाल तलवार ले शीघ्रता पूर्वक फिर उनके ऊपरउस दैत्यने प्रहारकिया॥२७॥बाजकी सदृश वेगवानहो ढाल तलवारके पेंचोंसे शत्रुकी घात न लगे इसभांति ऊपर नीचे फिरते हुये हिरण्यकशिपुको श्रीनृसिंह भगवान ने महा भयकर शब्द और अट्टहास से डराया तथा अपने तेजसे उसकी आंखें बंदकर शीघ्रता पूर्वक उसे पकड़लिया ॥ २८ ॥ वज्रके प्रहार सेभी जिसके शरीर में चोट नही लगती थी वह हिरण्यकशिपु भगवान के पकड़नेहीसे सांपसे घेरेहुये चूहेकी समान पीड़ितहो छटपटाने लगा। भगवानने द्वारके बीच अपनी जांघोंपर उसको रख, गरुड जैसे महा बिषवाले सांपको बिदारता है वैसेही सहज में अपने नखों द्वारा उसको चीरडाला॥ २९ ॥ उस समय उन नृसिंह भगवान के बिकराल नेत्र प्रज्वलितहो उठे, और वे अपनी जिह्वाद्वारा मुखके बाहरी भागको बारबार चाटने लगे । हाथी के मारने वाले सिंह की समान, अन्त्र मालाधारी नृसिंह भगवान के बाल और मुखरक्ताक्त होने से अरुण (लाल) रंगके होगए उन्होंनें नखो के अग्रभाग से उसके हृदयको चार फाड़कर फेंक दिया तदनतर शस्त्र लियेहुए उसके सहस्रों अनुचरों का वध किया इनकी नख और अस्त्र धारी भुजाएही स्थानीय सेना थीं ॥ ३० । ३१ ॥ हे राजन्! नृसिंह भगवान नें दैत्य के मारनें के निमित्त भयानक आडंबर किया था, सब मेंघ उनकी जटा कें स्पर्श से कम्पायमान होकर बिखरगए और ग्रहों की ज्योति उनकी दृष्टि द्वारा मलीन होगई तथा सब समुद्र उनके श्वास की वायुसे आहतहो क्षुभित होगए और सब दिग्गज उनका अट्ट शब्द सुनकर अत्यंत भयभीत हो चिक्कारने लगे ॥ ३२ ॥ उनकी सटाओं

क्षमाऽथपदात्तिपीडिता । शैलाः समुत्पेतुरमुष्यरंहसा तत्तेजसाखंककुभोनरेजि-
रे ॥ ३३ ॥ ततः सभायामुपविष्टमुत्तमेनृपासने संभृततेजसंविभुम्। अलक्षितद्वैरथ-
मत्यमर्षणंप्रचण्डवक्त्रंनबभाजकश्चन ॥ ३४ ॥ निशम्यलोकत्रयमस्तकज्वरं तमा-
दिदैत्यंहरिणाहतंमृधे । प्रहर्षवेगोत्कलिताननामुहुःप्रसूनवर्षैर्ववृषुःसुरस्त्रियः॥३५॥
तदाविमानावलिभिर्नभस्तलं दिदृक्षतांसंकुलमासनाकिनाम्। सुरानकादुन्दुभयो
थजघ्निरे गन्धर्वमुख्या ननृतुर्जगुःस्त्रियः ३६ ॥ तत्रोपव्रज्यविबुधा ब्रह्मेन्द्रगिरिशाद
यः । ऋषयःपितरःसिद्धा विद्याधरमहोरगाः॥३७॥ मनवःप्रजानांपतयो गन्धर्वाप्स
रचारणाः । यक्षाःकिंपुरुषास्तात वेतालाःसिद्धकिन्नराः ॥ ३८ ॥ तेविष्णुपार्षदाः
सर्वे सुनन्दकुमुदादयः । मूर्ध्निबद्धांजलिपुटा आसीनंतीव्रतेजसम्। ईडिरेनरशा
र्दूल नातिदूरचराःपृथक् ॥ ३९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नतोऽस्म्यनन्तायदुरन्तशक्तये
विचित्रवीर्यायपवित्रकर्मणे । विश्वस्यसर्गस्थितिसंयमान्गुणैः स्वलीलयासंदधते
ऽव्ययात्मने ॥ ४० ॥ श्रीरुद्रउवाच ॥ कोपकालोयुगान्तस्तेहतोऽयमसुरोल्पकः ।
तत्सुतंपाह्युपसृतं भक्तंतेभक्तवत्सल ॥ ४१ ॥ इन्द्रउवाच ॥ प्रत्यानीताःपरमभवता
त्रायतानःस्वभागादैत्याक्रांतंहृदयकमलं त्वद्गृहंप्रत्यबोधि । कालग्रस्तंकियदिदम
होनाथशुश्रूषतांतेमुक्तिस्तेषां नहिबहुमता नारसिंहापरैःकिम्॥ ४२ ॥ ऋषयऊचुः।
त्वंनस्तपःपरममात्थयदात्मतेजो येनेदमादिपुरुषात्मगतंससर्ज। तद्विप्रलुप्तममुनाऽ

के आघात से विमान और चरणों के भार से पृथ्वी पीड़ित होकर डगमगाने लगी, प्रबल वेग से प-
हाड़ गिरनेलगे आकाश तथा सब दिशायें उनके तेज से प्रभारहित होगईं ॥ ३३ ॥ अनंतर सभा
के बीच उत्तम सिंहासनपर बैठहुए, शत्रु रहित अति तेजस्वी, अति क्रोधी, तीव्र दृष्टि वाले भगवान
की सेवा कोई नकरसका ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! तीनों लोकों के दुःखदायी, शिरकी पीड़ा के सदृश
आदि दैत्य को समर में श्री नृसिंह भगवान के हाथ से माराहुआ सुन, आनंद से प्रसन्न मुख वाली दे-
वांगनायें बारम्बार उनके ऊपर फूल बरसाने लगीं ॥ ३५ ॥ उस समय दर्शनोंकी इच्छा रखनेवाले
स्वर्ग निवासी देवताओं के विमानों से आकाश मंडल व्याप्त होगया देवतागण पटह और भेरी ब-
जानेलगे गंधर्व गणों नें गानेका आरम्भ किया सब अप्सरायें नाचनें लगीं ॥ ३६ ॥ हे तात ! ब्रह्मा
इन्द्र, और महादेव आदिक देवता, ऋषि, पितर, सिद्ध, विद्याधर, महासर्प ॥ ३७ ॥ मनुष्य, प्रजा
पति, गन्धर्व, अप्सरा, चारण, यक्ष, किंपुरुष, वैताल, सिद्ध, किन्नर ॥ ३८ ॥ तथा सुनंद, कुमुद
आदि विष्णु पार्षद, उस सभा में आकर मस्तक झुकाय, हाथ जोड़ सिंहासनपर बैठेहुए विकराल
दृष्टिवाले उन नृसिंह भगवान के समीप खड़ेहो पृथक् २ स्तुति करनें लगे ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजी बोले
कि दुरंत शक्ति, बड़े पराक्रम वाले, पवित्र कर्मा, अपनी लीलासेही जगत की उत्पत्ति, स्थिति और
संहार करनेंवाले अव्ययात्मा, अनंत रूप आपको प्रणाम है ॥ ४० ॥ रुद्रजी बोले कि हे भगवन् !
सहस्र युगों के उपरांत आपके कोप करने का समय है यह समय क्रोध करनें का नहीं है, यह क्षुद्र
दैत्य नष्ट होगया, हे भक्त वत्सल ! अब कोप शांत करके शरणागत भक्त प्रह्लाद की रक्षा करो ।
॥ ४१ ॥ इन्द्र बोले कि हे परम ! इस दुष्ट हिरण्यकशिपु ने हमारे सब यज्ञ भागों का हरण करलिया
था आपने हम लोगों की रक्षाकर हमारे यज्ञांश फिर हमको लौटा करदिये आपके ध्यान करनेका
स्थान हमारा हृद कमल दैत्यों के भयसे व्याप्त था उसको फिर विकसित किया हे नाथ ? क्षणभंगुर
इस त्रिलोकी का राज्य आपके सेवकों के पक्षमें अत्यन्त तुच्छ है हे नृसिंह भगवान ! मुक्तिभी तो
उनको आदरणीय नहीं है फिर दूसरी बाततो साधारणही हैं ॥ ४२ ॥ ऋषि बोले कि हे आदिपुरुष !
आपने हमारी तपस्याको अपना तेजरूप कहा है, जिस तप द्वारा आप इस जगत की उत्पत्ति क-

यशरण्यपाल रक्षागृहीतवपुषापुनरन्वमन्स्थाः ॥ ४३ ॥ पितरऊचुः ॥ श्राद्धानिनो
ऽधिबुभुजेप्रसभंतनूजैर्दत्तानितीर्थसमयेप्यऽपिबत्तिलाम्बुःतस्योदरान्नखविदीर्ण
वपाद्यआर्च्छत्तस्मैनमोनृहरयेऽखिलधर्मगोप्त्रे ॥ ४४ ॥ सिद्धाऊचुः॥योनोगतिंयोग
सिद्धामसाधुरहारषीद्योगतपोबलेन । नानादर्पंतनखैर्निर्ददार तस्मैतुभ्यंप्रणताःस्मो
नृसिंह ॥ ४५ ॥ विद्याधराऊचुः विद्यांपृथग्धारणयाऽनुराद्धां न्यषेधदज्ञोबलवीर्यदृ
प्तःसयेनसंख्येपशुवद्धतस्तं मायानृसिंहंप्रणताःस्मनित्यम् ॥ ४६ ॥ नागाऊचुः ॥ये
नपापेनरत्नानिस्त्रीरत्नानिहृतानिनः । तद्वक्षःपाटनेनासां दत्तानन्दनमोस्तुते ४७ ॥
मनवऊचुः ॥ मनवोवयंतवनिदेशकारिणो दितिजेनदेवपरिभूतसेतवः । भवताखः
लःसउपसंहृतःप्रभो करवामतेकिमनुशाधिकिंकरान् ॥ ४८ ॥ प्रजापतयऊचुः ॥ प्र
जेशावयंतेपरेशाभिसृष्टा नयेनप्रजावैसृजामोनिषिद्धाः सएषत्वयाभिन्नवक्षानुशेते
जगन्मङ्गलंसत्वमूर्तेऽवतारः ॥ ४९ ॥ गन्धर्वाऊचुः ॥ वयंविभोतेनटनाट्यगायका
येनात्मसाद्वीर्यबलौजसाकृताः । सएषनीतोभवतादशामिमांकिमुत्पथस्थःकुशला
यकल्पते ॥ ५० ॥ चारणाऊचुः॥ हरेतवाङ्घ्रिपंकजं भवापवर्गमाश्रिताः । यदेषसाधु
हृच्छयस्त्वयाऽसुरःसमापितः ॥ ५१ ॥ यक्षाऊचुः ॥ वयमनुचरमुख्याःकर्मभिस्ते
मनोज्ञैस्तइहदितिसुतेनप्रापितावाहकत्वम् । सतुजनपरितापंतत्कृतंजानताते नरहर

रंत हो वह तप इस मरेहुए दैत्यसे लुप्त होगयाथा हेशरणागतपालक! विश्व पालनके हेतु आपनें इस शरीर को धारणकर उस तपस्या के करनेकी हमें आज्ञादी ॥४३॥ पितृगणों नें कहा कि-पुत्रगण जो श्राद्ध दान हमको करतथे, उस सबका यह दुष्ट असुर बलपूर्वक भोजन करजाताथा तथा तीर्थ स्नान कालमें दियेहुए तिलोदक कोभी स्वयंही पान करता था, तीक्ष्ण नखों द्वारा जिसनें इस दुष्टका पेट फाड़कर वह सब हमको लौटादिया उन अखिल धर्म रक्षक नृसिंह रूप आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ ४४ ॥ सिद्ध बोले कि-हे नृसिंह भगवान ! जिस दुष्ट नें अपनें योग और तपस्या के बल से हमारी योगसिद्धा अणिमादि सिद्धियों का हरण करलियाथा, बडे अभिमानी उस असुरको जिस नें नखों द्वारा विदीर्ण किया उन नृसिंह भगवान आपको प्रणाम है ॥ ४५ ॥ विद्याधरों नें कहा कि हमारी पृथक् २ धारणा द्वारा प्राप्तहुई विद्याको, जिस बल और पराक्रम के अभिमानी नें निवारण कियाथा उसको जिसनें युद्ध में पशुकी समान मारा, उन माया रूपी नृसिंह भगवान को प्रणामहै। ॥ ४६ ॥ नागगणों ने कहा कि जिस पापी नें हमारे फणास्थित रत्न और स्त्रियों का हरण कियाथा उसका वक्षःस्थल विदीर्ण कर जिसनें उन समस्त स्त्रियों को आनंद दिया हम उनको नमस्कार करते हैं ॥४७॥ मनुष्य बोले कि-हेदेव ! हम आपकी आज्ञाका प्रतिपालन करते हैं; जिस दुष्ट दैत्यन हमारे वर्णाश्रम धर्म की मर्यादाको नष्ट करदियाथा उसअधर्म को आपनें नष्टकिया हेप्रभो हम आपके दासहैं हमको आज्ञाकरिये, क्याकरें ॥४८॥ प्रजापतियोंने कहा कि—हे परेश ! हम आपके उत्पन्न कियेहुए प्रजापति हैं । जिस दुष्टके निषेधसे हम इतने कालतक प्रजाकी उत्पत्ति न करसके—वह दैत्य यहीं है, आपने इसका वक्षःस्थल विदारकर इसे भूमिपर पटका है । हे सत्वमूर्ते ! आपका अवतार जगतका कल्याण स्वरूप है ॥ ४९ ॥ गन्धर्व बोले कि-हे विभो ! हम आपके नट और नचैये गवैये हैं । जिस दुष्टने—शौर्य, वीर्य और शक्तिद्वारा प्रभावशाली होकर हमें वशवर्त्ती किया था आपने उसको आज इसदशामें प्राप्त किया । कौन कुमार्गगामी मनुष्य कल्याण प्राप्तकरसकता है ? ॥ ५० ॥ चारण बोले कि—हे हरे ! आपके यह चरणकमल संसारके मिटानेवाले हैं ; हम इनके शरणागत हुएहैं; क्योंकि आपने साधुओंके हृदयको दुखानेवाले इसअसुरका नाशकिया॥५१ यक्ष बोले कि—हे प्रभो ! हम मनोहर कर्मोद्वारा आपके अनुचरोंमें श्रेष्ठ हैं । इस दैत्यने हमको

उपनीतः पञ्चतामुपाविंश ॥ ५२ ॥ किंपुरुषा ऊचुः ॥ वयं किंपुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः ॥ अयं कुपुरुषो नष्टो धिक्कृतः साधुभिर्यदा ॥ ५३ ॥ वैतालिका ऊचुः ॥ सभासु सत्रेषु तवामलं यशो गीत्वा सपर्यां महतीं लभामहे । यस्तामनैषीद्वशमेष दुर्जनो दिष्ट्या हतस्ते भगवन्यथाऽऽमयः ॥ ५४ ॥ किंनरा ऊचुः वयमीश किंनरगणास्तवानुगा दितिजेन विष्टिममुनाऽनुकारिताः । भवता हरे स वृजिनोऽवसादितो नरसिंह नाथ विभवाय नो भव ॥ ५५ ॥ विष्णुपार्षदा ऊचुः ॥ अद्यैतद्धरिनररूपमद्भुतं ते दृष्टं नः शरणद सर्वलोकशर्म । सोऽयं ते विधिकर ईश विप्रशप्तस्तस्येदं निधनमनुग्रहाय विद्मः ॥ ५६ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० सप्त०नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नारद उवाच ॥ एवं सुरादयः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरःसराः । नोपैतुमशकन्मन्युसंरंभं सुदुरासदम् ॥ १ ॥ साक्षाच्छ्रीः प्रेषिता देवैर्दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् । अदृष्टाश्रुतपूर्वत्वात्सा नोपेयाय शंकिता ॥ २ ॥ प्रह्लादं प्रेषयामास ब्रह्मावस्थितमन्तिके । तात प्रशमयोपेहि स्वपित्रे कुपितं प्रभुम् ॥३॥ तथेति शनकै राजन्महाभागवतोऽर्भकः । उपेत्य भुवि कायेन ननाम विधृताञ्जलिः ॥ ४ ॥ स्वपादमूले पतितं तमर्भकं विलोक्य देवः कृपया परिप्लुतः । उत्थाप्य तच्छीर्ष्ण्यदधात्कराम्बुजं कालाहिवित्रस्तधियां कृताभयम् ॥ ५ ॥ स तत्करस्पर्शधुताखिलाशुभः सपद्यभिव्यक्तपरात्मदर्शनः । तत्पादपद्मं हृदि निर्वृतो दधौ

अपना वाहक (बेगारी) कियाथा । हे पंचविंश ! इसदुष्टसे सृष्टिको जो दुःख हुआथा आपने उसे जानकर नृसिंहरूप धारणकर इसका विनाशकिया ॥ ५२ ॥ किंपुरुष बोले कि—हे भगवन् ! हम किंपुरुष तुच्छ प्राणी हैं ; आपमहा पुरुष ईश्वर ने इससाधुओंकी निन्दा करनेवाले दुष्टकानाश किया यह तो आपका एकसाधारण कार्य है ॥ ५३ ॥ वैतालिकों ने कहा कि—सभा और यज्ञस्थल में आपके निर्मलयशका गानकर हम बड़ी पूजाप्राप्त करते थे, इसदुष्टने हमारी उस पूजाको अपनेवश करलियाथा । हे भगवन् ! अच्छाहुआ कि रोगके समान दुःख देनेवाले इसदुष्टको आपनेमारडाला ॥ ५४ ॥ किन्नर बोले कि—हे ईश ! हम आपके सेवक किन्नर हैं । इस दैत्यने बिना वेतनही हम से कर्म कराया है । हे हरे ! आपने इसपापीको भलेही मारा । हे नृसिंह ! हे नाथ ! आप हमारे कल्याणदायक होवो ॥ ५५ ॥ विष्णु पार्षद बोले कि—हे शरणद ! आज हमने सबलोकोंके सुख देनेवाले इसअद्भुत नरसिंहरूप को देखा । हे ईश यह दैत्य आपका वही ब्रह्मशाप ग्रस्तदास है; हम इसके निधनहोने को आपका अनुग्रहही जानते हैं ॥ ५६ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० सप्तम० सरला भाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नारदजी बोले कि—ब्रह्मा, रुद्र आदि सब देवता अत्यत क्रोधित भगवान के समीप नजासके ॥ १ ॥ देवताओं ने प्रथम तो साक्षात लक्ष्मीजी को भेजा । परतु लक्ष्मीजी भी उस भयंकर नरसिंह मूर्ती को देखकर समीप नजासकीं ॥२॥ तदुनतर ब्रह्माजी ने समीप खड़े हुये प्रह्लादसे संबोधन करके कहा कि—हे तात ! तुम्हारे पिता के अपराधसे भगवान नरसिंह जी अत्यत क्रोधित हुये हैं तुम समीपजाकर इनके क्रोधको शांत करो ॥ ३ ॥ हे राजन् ! उस महा भागवत बालक ने 'अच्छा' कहकर धीरे २ उनके समीप जाय हाथ जोड़ पृथ्वी पर शरीर को गिराय कर प्रणाम किया ॥ ४ ॥ शिशु को अपने पैरों पर पड़ा हुआ देख भगवान नृसिंह जी करुणा के वशीभूत होगये । और अपने कर कमलको कि जो कालरूपी सर्पके भय से भयभीत चित्त वालोंको अभय देने वाला है, प्रह्लाद के शिरपर रक्खा ॥ ५ ॥ नरसिंहजीके करकमलका स्पर्श होतेही प्रह्लाद के सब अशुभ दूर होगये और तत्क्षणही. ब्रह्मज्ञान का उदय होगया, अतएव वह निष्पन्द हो

हृद्यस्तनु किलन्नहृदश्रुलोचनः ॥ ६ ॥ अस्तौषीद्धरिमेकाग्रमनसासुसमाहितः। प्रेम गद्गदयावाचा तन्नयस्तहृदयेक्षणः ॥ ७ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ ब्रह्मादयःसुरगणामुन योऽथसिद्धाः सत्त्वैकतानमतयोवचसांप्रवाहैः नाराधितुंपुरुगुणैरधुनापिपिप्रुः किं तोष्टुमर्हतिसमेहरिरुग्रजातेः ॥ ८ ॥ मन्येधनाभिजनरूपतपः श्रुतौजस्तेजः प्रभाव बलपौरुषबुद्धियोगाः । नाराधनायहि भवन्तिपरस्यपुंसो भक्त्यातुतोष भगवान्ग जयूथपाय ॥ ९ ॥ विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविंदनाभपादारविंदविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्। मन्येतदर्पितमनोवचनेहितार्थप्राणं पुनातिसकुलंनतु भूरिमानः ॥ १० ॥ नैवात्मनःप्रभुरयं निजलाभपूर्णो मानंजनादविदुषः करुणो वृणीते । यद्यज्जनो भगवतेविदधीतमान तच्चात्मनेप्रतिमुखस्य यथामुखश्रीः ॥ ११ ॥ तस्मादहं विगतविक्लवईश्वरस्य सर्वात्मनामहि गृणामियथामनीषम् । नीचोऽजया गुण विसर्गमनुप्रविष्टः पूयेतयेनाहिपुमाननुवर्णितेन ॥ १२ ॥ सर्वेह्यमीविधिकरा-स्तवसत्त्वधाम्नोब्रह्मादयोवयमिवेशन चोद्विजन्तः । क्षेमायभूतयउतात्मसुखाय चास्यविक्रीडितंभगवतोरुचिरावतारैः ॥ १३ ॥ तद्यच्छमन्युमसुरश्च हतस्त्वयाद्य मोदेतसाधुरपिवृश्चिकसर्पहत्या । लोकाश्चनिर्वृतिमिताः प्रतियन्तिसर्वेरूपंनृसिंह विभयायजनाः स्मरन्ति ॥ १४ ॥ नाहंबिभेम्यजिततेऽतिभयानकास्याजिह्वार्कने-

हृदय में भगवानके चरणों का ध्यान करने लगा। उस समय उनका शरीर पुलकित, हृदय प्रेम से द्रवीभूत होगया और दोनो नेत्रों में आंसू भर आये ॥ ६ ॥ अनतर एकाग्र मन से सावधान हो भगवान में चित्त और नेत्रों को लगाय प्रेमके वशीभूत हो गद्गद बचनों से भगवानकी स्तुति करने लगा ॥ ७ ॥ प्रह्लादजी बोले कि–जिनके मन सत्वगुण सेही परिपूर्ण हैं–वे समस्त ब्रह्मादि देवता, मुनि और सिद्ध आदि महात्मा लोग बचनों के प्रवाह और बहुत गुणों द्वाराभी जिन की आराधना नहीं कर सकते वे भगवान मेरी स्तुति से कैसे संतुष्ट होंगे ॥ ८ ॥ मैं जानता हूं कि–धन, अच्छे कुल में जन्म, रूप, तपस्ता, पांडित्य, इन्द्रियों की निपुणता, तेज, प्रभाव, शारीरिक बल, पौरुष, बुद्धि और अष्टांग योग–यह सब गुणभी उस परम पुरुष की आराधना के योग्य नहीं हैं। वे भगवान केवल भक्ति द्वाराही गजेन्द्र पर सतुष्ट हुये थे ॥ ९ ॥ ऊपर कहे हुये बारह गुणों युक्त ब्राह्मण भी यदि भगवान के चरण कमलों से विमुख हो तब जिस चांडाल का मन, बचन, कर्म, धन, और प्राण भगवानही में अर्पित हैं तो उस चांडालको भी उस ब्राह्मणसे श्रेष्ठ मानता हूं। क्यों कि वह चांडाल कुल को पवित्र कर सकता है; परन्तु वह ऐश्वर्याभिमानी ब्राह्मण अपन कुलको नहीं पवित्र करसकता॥१०॥ हे प्रभु ! आप निज स्वरूपकेही लाभसे परिपूर्ण और दयालु हो, अतएव आप भक्तिहीन मनुष्योंकी पूजानहीं ग्रहणकरते। जैस अपने मुखपर जैसी शोभाहोती है वह सब प्रतिबिंबको ही प्राप्त होती है वैसेही भगवानकी जो पूजाकी जाय वही आत्माको सुखदायी होती है॥११॥अतएव मैं नीच तथा ज्ञानरहित होकरभी अपनी बुद्धिके अनुसार भगवानकी महिमा का वर्णनकरता हूं। इस वर्णनद्वारा, अविद्यासे ससारमें पड़ेहुये मनुष्यभी पवित्रहोते हैं॥१२॥हेईश ! यह समस्त देवता भयपाये हुये हैं, यह सबही आपके आज्ञानुवर्ती तथा आपके श्रद्धावान भक्त हैं–हमारी असुर जातिकी समान वैरभाव से भक्त नहीं हैं। आपके मनोहर अवतारों द्वारा इसीप्रकार से नानाभांति की क्रीड़ा केवल इस जगतके कल्याण के हेतु होती है। भय उत्पन्न करनेको नहीं, ॥ १३ ॥ अतएव इस समय आप क्रोधको शांतकरो, असुरकातो अब नाश होहीगया। साधूभी सर्प बिच्छूआदि हिंसक जीवोंके मारने से आनंदित होते हैं हे नृसिंह भगवान् ! ऐसेही असुर के मरने से साधुलोग प्रसन्न हुए हैं। अबसुखीहुये लोक आपके क्रोधशांति होनेकी राहदेखते हैं। हे भगवन्! मनुष्यलोग आपके रूपका स्मरण भयशांतिके निमित्त करते हैं॥१४॥ हेअजित! आपका

भ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात्। आन्त्रस्रजः क्षतजकेसरशंकुकर्णान्निर्हादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात् ॥१५॥ त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्रसंसारचक्रकदनाद्ग्रसतां प्रणीतः। बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु ॥ १६॥ यस्मात् प्रियाप्रियवियोगसयोगजन्मशोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः। दुःखौषधं तदपि दुःखमतद्धियाहं भूमन् भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगम् ॥ १७ ॥ सोऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया लीलाकथास्तव नृसिंह विरिञ्चगीताः। अञ्जस्तितर्म्यनुगृणन् गुणविप्रमुक्तो दुर्गाणि ते पदयुगालयहंससङ्गः ॥ १८ ॥ बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्टस्तावद्विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम् ॥ १९ ॥ यस्मिन् यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद्यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः परो वा। भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः सञ्चोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम् ॥ २० ॥ माया मनः सृजति कर्ममयं बलीयः कालेन चोदितगुणानुमतेन पुंसः। छन्दोमयं यदजयाऽर्पितषोडशारं संसारचक्रमज कोऽतितरेत्त्वदन्यः ॥ २१ ॥ स त्वं हि नित्यविजितात्मगुणः स्वधाम्ना कालो वशीकृतविसृज्यविसर्गशक्तिः। चक्रे विसृष्टमजयेश्वर षोडशारे निष्पीड्यमानमुपकर्ष विभो प्रपन्नम् ॥२२ ॥ दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपानामायुः श्रियो विभव इच्छति यान् जनोऽयम्।

यह भयानक मुख, जिह्वा, सूर्यकी समान नेत्र, टेढीभौंहें, विकराल डाढे, आंतोंकी माला, तथा दोनो कान और बाल—रक्तासे होकर ऊंचे होरहे हैं। आपकी गर्जना से सब दिग्गज भयभीत होकर भागगये हैं, नखाग्र द्वारा शत्रुके नाश करने वाले—इस स्वरूपको देखकर भी मुझे भय नहीं होता ॥१५॥ परन्तु हे दीनवत्सल ! दुःसह, उग्र संसार चक्रके दुःख से मैं दुखित होता हूं। क्योंकि अपने कर्मोंद्वारा इस संसार चक्रमें हिंसक जंतुओं के बीचमें बंधकर गिररहा हूं। हे उत्तम ! आप कब प्रसन्न होकर मोक्षदने वाले अपने चरण कमलों में मुझे बुलाओगे ॥ १६ ॥ क्योंकि हे देव ! मैं सब योनियों में प्रियके वियोग और अप्रियके संयोग से शोकरूप अग्निद्वारा अत्यंत दग्धहोता हूं। दुःख कीजो औषध है वहभी दुःखही है; मैं देहादिक के अभिमान से भ्रमित होरहा हूं। हे भगवन् ! आप मुझको अपने दास्य पदपर नियुक्त करो; ॥ १७ ॥ आपप्रिय, सुहृद तथा परम देवता हो, ब्रह्माजी आपकी लीलाको गानेरहते हैं आपके चरणों के आश्रय से परम हंसलोग संसार रूपी दुर्गम स्थानों से पार होजाते हैं ॥ १८ ॥ हे नृसिंह भगवान! दुःख से संतप्त मनुष्यों के दुःख नाश करने के निमित्त जितने उपाय लोकमें प्रसिद्ध हैं आपके उपेक्षित प्राणियों के पक्षमें वह अत्यंत उपकारी नहीं हैं। बालक के पितामाता, रोगीकी औषध तथा समुद्रमें डूबते हुये मनुष्य की नौका रक्षा नहीं करसकती ॥ १९ ॥ भिन्न २ स्वभाव वाले पहिले उत्पन्न हुये ब्रह्मादिक, अथवा उनसे पीछे उत्पन्न हुये पिता आदिक जो कोईभी जिस निमित्त, जिसके द्वारा, जब, जिससे, जिस सबंधी, जिसको, जिसभांति, जिसकी प्रेरणासे, जिस कार्यको, उत्पन्न करते हैं तथा रूपांतर करते है वह सब आपही का स्वरूप है ॥ २० ॥ काल क्रमसे मायाके गुण क्षुभित होकर, वह माया आपके अंशरूप पुरुष की अनुमोदित अनुग्रहसे, मनको प्रधान वालेलिंग शरीरको उत्पन्न करती है। यह मन दुर्जय कर्ममय और छंदोमय है मनही जीवको. अविद्या और सोलह विकार अर्पण करता है । हे अज ! ऐसे संसार चक्र रूपी मनको आपकी भक्ति विना कौन पार करसकता है ॥ २१ ॥ हे ईश्वर ! जो चैतन्य शक्ति द्वारा बुद्धि के गुणों को जीतते हैं आप वही आदिपुरुष तथा काल स्वरूप हो अतएव कार्य कारण शक्तियें सब आपही के वशीभूत हैं मैं इस सोलह चक्र वाले संसारमें माया से गिरकर ऊखका समान पेलाजाता हूं ॥२२॥ हे विभो ! आप इस शरणागत को ग्रहण करो हे प्रभो ! मैंने

येऽस्मत्पितुः कुपितहासविजृम्भितभ्रूविस्फूर्जितेनलुलिताःसतुतेनिरस्तः ॥ २३ ॥
तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषोज्ञआयुःश्रियंविभवमैन्द्रियमाविरिञ्च्यात्।नेच्छामिते
ऽविलुलितानुरुविक्रमेणकालात्मनोपनय मांनिजभृत्यपार्श्वम्॥२४॥कुत्राशिषःश्रुति
सुखामृगतृष्णिरूपाः क्वेदंकलेवरमशेषरुजांविरोहः ।.निर्विद्यतेनतुजनोयदपीति
विद्वान्कामानलंमधुलवैः शमयन् दुरापैः ॥ २५ ॥ क्वाहंरजःप्रभवईशतमोऽधि-
केऽस्मिन् जातः सुरेतरकुलेक्वतवानुकम्पा । नब्रह्मणोनतुभवस्यनवैरमाया यन्मे-
ऽर्पितः शिरसिपद्मकरः प्रसादः ॥ २६ ॥ नैषापरावरमतिर्भवतोननुस्याज्जन्तोर्य-
थात्मसुहृदोजगतस्तथाऽपि । संसेवयासुरतरोरिवतेप्रसादः सेवानुरूपमुदयोन
परावरत्वम् ॥ २७ ॥ एवंजनंनिपतितं प्रभवाहिकूपेकामाभिकाममनुयः प्रपतन् प्र-
सङ्गात् । कृत्वात्मसात्सुरर्षिणाभगवन् गृहीतः सोऽहंकथंनु विसृजेतवभृत्यसे-
वाम् ॥ २८ ॥ मत्प्राणरक्षणमनन्तपितुर्वधश्चमन्ये स्वभृत्यऋषिवाक्यमृतंविधातुम् ।
खड्गंप्रगृह्ययदवोचदसद्विधित्सुस्त्वामीश्वरो मदपरोऽवतुकंहरामि ॥ २९ ॥ ए-
कस्त्वमेवजगदेतदमुष्ययत्त्वमाद्यन्तयोः पृथगवस्यसिमध्यतश्च । सृष्ट्वागुणव्य-
तिकरंनिजमाययेदंनानेवतैरवसितस्तदनुप्रविष्टः ॥ ३० ॥ त्वंवाइदंसदसदीश

सब लोकपालों के लोक, आयु, धन, और वैभवको देखलिया मेरे पिता के क्रोध युक्त हास्य द्वारा चढ़ीहुई भौंहोंसे वह सब नाश होगयेथे, तथा आपनें मेरे उस पिताको भी मारा ॥२३॥ अतएव प्राणियों के भोगके परिमाण को मैं जानताहूं इसही कारण ब्रह्मा के भोग पर्यन्त इन्द्रिय, सम्पत्ति, ऐश्वर्य किसी विषय कीभी इच्छा नहीं करता क्योंकि महाहराक्रमी कालात्मक आप उन सब को नाश करदेते हो अतएव मुझको अपने दासोंमें स्थापित करो ॥ २४ ॥ सुननेमें कानों को सुख देनेवाले मृग तृष्णा की समान कल्याण कहां है और बहुत से रोगों का क्षेत्र रूप यह शरीरही कहां है ? यह जानकरभी मनुष्यमधुकी समान सुखों के लेशसे कामनारूप कालाग्नि के शान्त करनेमें व्यग्र रहकर वैराग्यको प्राप्त नहीं होते यह केवल आपही की माया है ॥ २५ ॥ हे ईश ! कहांतो रजोगुण से उत्पन्न और तमोगुणकी वृद्धिवाले असुरकुलमें उत्पन्नहुआ मैं? और कहां आपकीकृपा? शिव तथा लक्ष्मी के मस्तकमें आपके प्रसादस्वरूप जो करकमल अर्पित नहीं होता, इसी कृपाके वलसे वह मेरे मस्तक में अर्पणकियागया ॥ २६ ॥ आप जगत के आत्मा और सुहृदहो अतएव जैसी सामान्य मनुष्यों की बुद्धि "यह उत्तम, यहनीच" होती रहती है, आपकी उसभांतिकी नहीं है सेवा द्वाराकल्प वृक्षकी समान आपसे सबकोफल प्राप्त होता है क्योंकि आपकी कृपा कल्पवृक्षके सदृश है तथा सेवाके अनुसार धर्मादिका उदय होता रहता है, इससे उत्तमहो तथा अधमहो सब ही आपको समान हैं ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! विषयकी इच्छा रखनेवाले मनुष्य संसाररूप सर्पवाले कूप में पड़ते हैं वैसेही मैं भी उनके प्रसङ्गसे उसमें गिरताथा परन्तु हेभगवन् ! उसी समय में दे-वर्षि नारदने मुझे वशमें कर मेरे ऊपर कृपाकी, इसी कारण मैं उसकूपमें न गिरा । वहां मैं किसभांति से आपके भक्तमहात्माओं की सेवा परित्यागकरसकूं ? ॥ २८ ॥ हे अनन्त ! मेरे पिताने अन्याय कार्य के करनेकी इच्छासे तलवार लेकर जब कहाथा था कि 'मैं तेरा शिर काटता हूं परमेश्वर मुझसे भिन्न रहता हैतो तेरी रक्षाकरे' उसी समय आपने मेरे प्राणों की रक्षा और पिता का वध किया । मैं जानता हूं कि आपने केवल अपनेभक्त ऋषियों के वचन सत्यकरने के निमित्त यह श्रम किया है ॥२९॥ यह समस्त जगत आपकाही स्वरूप है; इसके आदि, मध्य और अंतमें आपही विराजमानहो । आप अपनी मायाद्वारा इस जगतकी उत्पत्तिकरके उसके प्रत्येक अणुओंमें प्रवेश कर, सत्व, रज, तम इनतीन मायाके गुणोंद्वारा नानारूपसे प्रतीत होतेहो ॥ ३० ॥ हे ईश ! आप

भवांस्ततोऽन्योमाययायदात्मपरबुद्धिरियंह्यपार्था । यद्यस्यजन्मनिधनंस्थितिरीक्ष-णंचतद्वैतदेव वसुकालवदष्टितर्वोः ॥ ३१ ॥ न्यस्येदमात्मनिजगद्विलयाम्बुमध्येशे-षेत्मनानिजसुखानुभवोनिरीहः । योगेनमीलितदृगात्मनिपीतनिद्रस्तुर्येस्थितोनतु तमोनगुणांश्चयुङ्क्षे ॥ ३२ तस्यैवतेवपुरिदंनिजकालशक्त्या संचोदितप्रकृतिधर्म-णआत्मगूढम् । अम्भस्यनन्तशयनाद्विरमत्समाधेर्नाभेरभूत् स्वकणिकावटवन्महा-ब्जम् ॥ ३३ ॥ तत्संभवः कविरतोऽन्यदपश्यमानस्त्वांबीजमात्मनिततं स्वबहिर्वि-चिन्त्य। नाविन्ददब्दशतमप्सुनिमज्जमानो जातेंकुरेकथमुहोपलभेतबीजम् ॥ ३४॥ सत्वात्मयोनिरतिविस्मितआस्थितोऽब्जं कालेनतीव्रतपसा परिशुद्धभावः त्वामा-त्मनीशभुविगन्धमिवातिसूक्ष्मं भूतेन्द्रियाशयमयेविततंददर्श ॥ ३५ ॥ एवंसहस्र-वदनांघ्रिशिरःकरोरु नासास्यकर्णनयनाभरणायुधाढ्यम् । मायामयंसदुपलक्षितस-न्निवेशं दृष्ट्वामहापुरुषमापमुदंविरिञ्चः ॥ ३६ ॥ तस्मैभवान्हयशिरस्तनुवंचबि-भ्रद्वेदद्रुहावतिबलौमधुकैटभाख्यौ । हत्वाऽनयच्छ्रुतिगणांस्तुरजस्तमश्च सत्वंतव प्रियतमांतनुमामनन्ति ॥ ३७ ॥ इत्थंनृतिर्यगृषिदेवझषावतारैर्लोकान्विभावयसि हंसिजगत्प्रतीपान् । धर्मंमहापुरुषपासियुगानुवृत्तं छन्नःकलौयदभवस्त्रियुगोऽथ

सेही यह कार्य और कारणात्मक जगत उत्पन्न हुआहै तथा यह आपसे पृथक नहीं है ; परन्तु आप इससे पृथकहो ; अतएव "अपना, पराया" इसप्रकारका ज्ञान केवल मायिक और मिथ्याहै। जिससे जिसकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयहोती है वह कार्य और कारण अपृथकहै । वृक्ष जैसे पृथ्वीमय बीजरूप तथा बीज जैसे सूक्ष्म भूतमय है और सूक्ष्मभूत परब्रह्मरूप है तैसेही यहसमस्त जगत आपका स्वरूप है आपस्वयही इसजगतको अपनेमे लीन करके अपने सुखका अनुभव कर क्रिया राहितहो प्रलयके जलमें शयनकरते रहतेहो । आप योगद्वारा नेत्रमूंद तथा स्वप्रकाश द्वारा निद्राकापराभव कर तीनोअवस्थाओं से पृथक स्वरूप में विराजकर तमोयुक्त व विषयों के भोक्ता नहीं होते ॥ ३१ । ३२ ॥ यहजगत उन्हीं आपका स्वरूप है ; अपनी कालशक्तिद्वारा प्रकृति के धर्म तीनोंगुणोंको आपही प्रेरणाकरतेहो । शेषशय्या से समाधि विरतहोने के समय आपकीनाभि से अगाधजलमें एक महापद्म हुआथा, वह आपहीके स्वरूपमें गुप्तरूपसे रहाथा । सूक्ष्म बरगद के बीजसे जैसे महावृक्ष होताहै उसकमलसे उसीभांति यह समस्त लोक उत्पन्न हुआ है । उसकमल से उत्पन्नहुए ब्रह्माजीने उस कमल के अतिरिक्त और कुछ पदार्थ न देखपाया । पद्मके कारणरूप (आप)को बाहररहाहुआ विचारकर ब्रह्माजीने सौवर्षतक जलमें डूबकर खोज किया परन्तु कमल के कारण स्वरूप आपको कि जो उनकी देहमें व्याप्त थे वह न जानसके अंकुर उत्पन्नहोनेसे क्या बीज पृथक्भावसे दिखाई देता है ? तदनन्तर ब्रह्माजी विस्मितभावसे उसी कमलका आश्रय कर बहुतसमय तक घोरतपस्याकर शुद्ध चित्तहुए तब उन्होंने भूमिके भीतर सूक्ष्मगंधकी समान— पंचभूत इन्द्रिय तथा अंतःकरणादि मय अपनी देहके भीतरही आपको व्यापक रूप से स्थित देखा ॥ ३३—३५ ॥ सहस्र मुख, सहस्र चरण, सहस्र मस्तक, सहस्र हाथ, सहस्र उरु, सहस्रनासिका सहस्र कर्ण, सहस्र नयन, सहस्र २ आभरण तथा सहस्र २ अस्त्र युक्त माया मय पातालादि अव यव वाले विराट रूप आपको देखकर आनंदितहुए ॥ ३६ ॥ तब आप हयग्रीव मूर्ति धारण करके वेदके द्रोही महाबलवान मधुकैटभ नामक रज, तम स्वरूप दोनों असुरोंका वध करके ब्रह्माजी को वेद लायकर दियेथे वेद में कहा है कि सत्वगुण आपकी प्रिय मूर्ति है ॥ ३७ ॥ आप इसी भांति से मनुष्य, पशु, पक्षी, देव, ऋषि, मत्स्य, आदि अवतारों द्वारा साधुओं का पालन और असाधुओंका

सत्त्वम् ॥ ३८ ॥ नैतन्मनस्तवकथासुविकुण्ठनाथ संप्रीयते दुरितदुष्टमसाधुतीव्रम् कामातुरंहर्षशोकभयैषणार्तं तस्मिन्कथंतवगतिंविमृशामिदीनः ॥ ३९ ॥ जिह्वैक तोऽच्युतविकर्षतिमावितृप्ता शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरंश्रवणंकुतश्चित् । घ्राणोऽन्यत श्चपलदृक्क्वचकर्मशक्तिर्बह्व्यःसपत्न्यइवगेहपतिंलुनन्ति ॥ ४० ॥ एवंस्वकर्मपति तंभववैतरण्या मन्योन्यजन्ममरणाशनभीतभीतम् । पश्यञ्जनंस्वपरविग्रहवैरमैत्रं हन्तेतिपारचरपीपृहिमूढमद्य ॥ ४१ ॥ कोन्वत्रतेऽखिलगुरोभगवन्प्रयास उत्तारणे ऽस्यभवसंभवलोपहेतोः । मूढेषुवैमहदनुग्रहआर्तबन्धो किंतेनतेप्रियजनाननुसेव तांनः ॥ ४२ ॥ नैवोद्विजेपरदुरत्ययवैतरण्यास्त्वद्वीर्यगायनमहाऽमृतमग्नचित्तः । शोचेततोविमुखचेतसइन्द्रियार्थ मायासुखायभरमुद्वहतोविमूढान् ॥ ४३ ॥ प्राये णदेवमुनयःस्वविमुक्तिकामा मौनंचरन्तिविजनेनपरार्थनिष्ठाः । नैतान्विहायकृप णान्विमुमुक्षएको नान्यंत्वदस्यशरणंभ्रमतोऽनुपश्ये ॥ ४४ ॥ यन्मैथुनादिगृहमेधि सुखंहितुच्छं कण्डूयनेनकरयोरिवदुःखदुःखम् । तृप्यन्तिनेहकृपणाबहुदुःखभाजः कण्डूतिवन्मनसिजंविषहेतधीरः ॥ ४५ ॥ मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म व्या- ख्यारहोजपसमाधयआपवर्ग्याः । प्रायःपरंपुरुषतेत्वजितेन्द्रियाणां वार्ताभवन्त्युत

विनाश तथा युग२ में चलेआते धर्मकी रक्षाकरतेहो परन्तु कलियुग में गुप्त रूप से रहनेपर ऐसा नहीं करते आपका त्रियुग नाम प्रसिद्ध है॥३८॥हे वैकुंठनाथ ! मेरा यह मन पापोंसे दूषित, बहि- र्मुख दुर्दुर्ष, कामातुर है अतएव हर्ष, शोक, भय और तीनों प्रकारके दुःखों से पीड़ित होकर भी आपकी कथा में प्रीति नहीं प्राप्त करता, ऐसा मन रहतेहुए मैं दीन किस भांति आपके तत्व का विचार करसकूं ॥ ३९ ॥ हेअच्युत ! बहुत स्त्रियों की समान अतृप्त हुई जिह्वा एक ओर शिश्न, दूसरी ओर त्वक, उदर और कान तीसरी ओर नासिका और चचल नेत्र चौथी ओर तथा सब कर्मेन्द्रियें अपनीर ओर से गृह स्वामीको चारों ओरसे खींचती हैं॥४०॥हेभगवान ! इस प्रकारकी संसार रूपी वैतरणी नदीमें अपने २ कर्मों द्वारा गिरकर परस्परमें उत्पन्नहोते, मरते, और भक्षण करतेहुए मनुष्य अत्यन्त भयभीत होरहे हैं भेदबुद्धिवाले इनमूर्ख मनुष्यों को देखकर हे पारस्थित ! आपही कृपा प्रकाशकर रक्षा करो ॥ ४१ ॥ हे भगवन् ! अखिलगुरो!आप इस जगतकी उत्पत्ति स्थिति और संहारके कारणहो आपको इन मनुष्योंके पार करनेमें क्या परिश्रम है हे आर्त्तबंधो ! आप महात्मा हो मूढ मनुष्यों परभी आप कृपा करतेरहते हो फिर हम लोग जो आपके भक्तों की सेवाकरते हैं उनका उद्धार करना क्या बड़ीबात है ॥ ४२ ॥ हे सर्वोत्तम ! आपके पराक्रम गान रूपी महा अमृत में मेरा चित्त डूबगया है इससे मैं दुस्तर संसार रूपी वैतरणी काभी भय नहीं क रता किंतु आपके चरित्रामृत से विमुखहुए इन्द्रिय भोग मायिक सुखों के निमित्त बोझा ढोनेवाले मनुष्योंको देखकर मुझे अत्यन्त शोक होताहै॥४३॥ हे देव ! मुनि लोग प्रायः अपनी २ मुक्ति की इच्छा करके एकांत में बैठ मौन व्रत धारण कियेरहते हैं दूसरों के निमित्त उनका कुछभी यत्न नहीं है मैं इन दीन बालकोंको छोड़कर अकेले मुक्ति की कामना नहीं करता आपके अतिरिक्त और कोई दूसरा इन भ्रमित मनुष्यों का रक्षक नहीं देखपड़ता ॥४४॥ स्त्री संगादि गृहस्त सुखतो ऐसे हैं कि जैसे हाथ से शरीरके खजानेपर एक दुःख निवृत्त होकर दूसरा खड़ा होजाता है वैसेही विषय सुख भोगनेपर एक दुःख दूर होकर दूसरा खड़ा होजाताहै अतएव यह अत्यन्त तुच्छ और दुःखदायी है दीन मनुष्य बहुत दुःख पाकरके भी इनसे तृप्त नहीं होसकता कौन धीरवान मनुष्य खुजली के समान अभिलाषा के सह्य करनेमें समर्थ होसकता है ॥ ४५ ॥ मौन, व्रत, श्रुत, तपस्या, अध्या-

नवाऽमतुवाऽस्मिकतनाम् ॥ ४६ ॥ रूपेइमेसदसती तववेदसृष्टे बीजांकुराविवनचान्यदरूपकस्य। युक्ताः समक्षमुभयत्र विचिन्वतेत्वां योगेनवह्निमिव दारुषुनान्यतः स्यात् ॥ ४७ ॥ त्वंवायुरग्निरवनिर्वियदम्बुमात्राः प्राणेन्द्रियाणिहृदयंचिदनुग्रहश्च सर्वंत्वमेवसगुणोविगुणश्चभूमन्नान्यत् त्वदस्त्यपि मनोवचसानिरुक्तम् ॥ ४८ ॥ नैतेगुणानगुणिनोमहदादयोये सर्वेमनःप्रभृतयःसहदेवमर्त्याः। आद्यन्तवन्तउरुगायविदन्तिहित्वामेवं विमृश्यसुधियो विरमन्तिशब्दात् ॥ ४९ ॥ तत्तेऽर्हत्तमनमःस्तुतिकर्मपूजाःकर्मस्मृतिश्चरणयोःश्रवणंकथायाम्। संसेवयात्वयिविनेतिषडङ्गयाकिं भक्तिंजनः परमहंसगतौलभेत ॥ ५० ॥ नारदउवाच ॥ एतावद्वर्णितगुणोभक्त्याभक्तेननिर्गुणः। प्रह्लादं प्रणतंप्रीतो यतमन्युरभाषत ॥ ५१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रह्लाद्भद्रभद्रंते प्रीतोऽहंते सुरोत्तम । वरंवृणीष्वाभिमतंकामपूरोऽस्म्यहंनृणाम् ॥ ॥५२॥ मामप्रीणतआयुष्मन्दर्शनंदुर्लभंहिमे । दृष्ट्वामांनपुनर्जंतुरात्मानंतप्तुमर्हति ५३॥ प्रीणन्तिह्यथमांधीराःसर्वभावेनसाधवः। श्रेयस्कामामहाभागाः सर्वासामाशिषांपतिम्॥५४॥एवंप्रलोभ्यमानोऽपि वरैर्लोकप्रलोभनैः।एकान्तित्वाद्भगवतिनैच्छत्तानसुरोत्तमः ॥ ५५ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० सप्त० नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

यन, स्वधर्म, वेद का पढना,, एकांत में निवास करना, जप और समाधि यह दश यत्न मोक्ष साधन के निमित्त प्रसिद्ध हैं परन्तु हे पुरुष ! यह साधन प्रायः अजितेन्द्रिय मनुष्यों के जीवन के उपाय होते हैं और कभी नहीं भी होते ॥ ४६ ॥ वेदकहता है कि बीज और अंकुरके समानकार्य और कारण आपही के स्वरूप हैं किन्तु आप रूपादि से वर्जितहो। जैसे मंथनकरने से काठमें अग्नि का अनुभव होता है वैसेही जितेन्द्रिय मनुष्य भक्तियोग द्वारा कार्य और कारण दोनोंही को आप के आश्रयभूत देखते हैं। अन्य प्रकारसे कार्यकारण की उत्पत्ति नहीं होसकती ॥ ४७ ॥ हेप्रभो! वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल, पंचतन्मात्रा, प्राण, इन्द्रिय, मन, चित्त तथा अधिष्ठातृ देवतावर्ग स्थूल, सूक्ष्म यह सब आपही हो; मन और वचन से प्रकाशित होतेहुये कोईभी पदार्थ आपसे भिन्न नहीं हैं ॥ ४८ ॥ गुणके अधिष्ठाता देवता, गुणीगण, महदादि, मनआदिक, देवता, मनुष्य—सबहीजड और आदिअन्तवाले हैं। हे उरुगाय ! इसही कारण बुद्धिमान विचार पूर्वक अध्ययन आदि से विरतहो समाधियोग से आपकी उपासना करते हैं ॥ ४९ ॥ हे परमाराध्यतम् ! आप परमहंसो कोही प्राप्त होते हो। नमस्कार, स्तुति, कर्मोंका अर्पणकरना, पूजन, चरणोंकास्मरण तथाकथाकाश्रवण—इन छ:अङ्गवाली सेवाके अतिरिक्त मनुष्य किसप्रकारसे आपकी भक्तिप्राप्तकरसकें? ॥ ५० ॥ नारदजीबोले कि—भगवद्भक्तप्रह्लादके इसभांति प्रशन्सा करनेपर उन निर्गुणरूप नृसिंह भगवानने कोप शान्तकर प्रीति पूर्वक प्रियप्रह्लाद से कहा ॥ ५१ ॥ श्रीभगवान बोले कि हेभद्रप्रह्लाद ! हे असुरोत्तम ! तेरा कल्याण होवे; मै तेरे ऊपर प्रसन्नहुआ, निज इच्छितवरमांग; मैं मनुष्यों की कामना पूर्ण करता हूं ॥ ५२ ॥ हेआयुष्मन् ! जो मनुष्य मुझको प्रसन्न नहीं करसकता, उसको मेरा दर्शन होना दुर्लभ है; मेरादर्शन पाने से कोई मनुष्य अपूर्ण काम होकर शोक नहीं करता ॥ ५३ ॥ हेमहाभाग ! मैं सब कल्याणोका अधीश्वर हूं; धैर्य्यवान साधूलोग कल्याणकी इच्छाकरके सबप्रकारसे मुझे सन्तुष्ट करते हैं ॥ ५४ ॥ नारदजीबोले कि—श्रेष्ठ असुर प्रह्लाद निष्कामभक्त थे; भगवानने इस प्रकारके वरदानके लोभों से उनको लुभाया परन्तु उसने किसी वरकी भी इच्छा न की ॥ ५५ ॥

इतिश्री भद्भा० म० सप्तमस्कन्धे सरलाभाषाटीकायांनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

नारदउवाच ॥ भक्तियोगस्यतत्सर्वमन्तरायतयाऽर्भकः । मन्यमानोहृषीकेशं
स्मयमानउवाचह ॥१॥ प्रह्लादउवाच ॥ मामांप्रलोभयोत्पत्त्याऽऽसक्तंकामेषुतैर्वरैः ।
तत्संगभीतोनिर्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः ॥ २ ॥ भृत्यलक्षणजिज्ञासुर्भक्तंकामे
ष्वचोदयत् । भवान्संसारबीजेषु हृदयग्रन्थिषुप्रभो ॥ ३ ॥ नान्यथातेऽखिलगुरो
घटेतकरुणात्मनः । यस्तआशिषआशास्ते नसभृत्यःसवैवणिक् ॥ ४ ॥ आशासा
नोनवैभृत्यःस्वामिन्याशिषआत्मनः । नस्वामीभृत्यतः स्वाम्यमिच्छन्योरातिचाशि
षः॥५॥अहंत्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वंचस्वाम्यनपाश्रयः।नान्यथेहावयोरर्थोराजसेवक
योरिव ॥ ६ ॥ यदिरासीशमेकामान्वरांस्त्वंवरदर्षभ । कामानांहृद्यसंरोहंभवतस्तु
वृणेवरम् ॥ ७ ॥ इन्द्रियाणिमनःप्राण आत्माधर्मोधृतिर्मतिः । ह्रीःश्रीस्तेजःस्मृतिः
सत्यं यस्यनश्यन्तिजन्मना ॥८॥ विमुञ्चतियदाकामान्मानवोमनसिस्थितान् । तर्ह्ये
वपुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वायकल्पते ॥ ९ ॥ नमोभगवतेतुभ्यं पुरुषायमहात्मने । हरये
ऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणेपरमात्मने॥१०॥नृसिंहउवाच॥ नैकान्तिनोमेमयि जात्विहाशिष
आशासतेऽमुत्रचयेभवद्विधाः । अथापिमन्वन्तरमेतदत्र दैत्येश्वराणामनुभुङ्क्ष्व
भोगान् ॥ ११ ॥ कथामदीयाजुषमाणः प्रियास्त्वमावेश्यमामात्मनिसन्तमेकम् ।
सर्वेषुभूतेष्वधियज्ञमीशं यजस्वयोगेनचकर्मेहिन्वन् ॥ १२ ॥ भोगेनपुण्यंकुशलेन
पापंकलेवरंकालजवेनहित्वा । कीर्तिंविशुद्धांसुरलोकगीतां वितायमामेष्यसिमुक्त

नारदजी बोले कि हेराजन्! उन समस्तवरोंको भक्तियोगका विघ्न समझकर प्रह्लाद ने हँसते हँसते नरसिंह भगवान से कहा ॥ १ ॥ हे भगवन्! मैं स्वभावसेही कामासक्त हूं; इन सबवरों द्वारा आप मुझे न ललचावें । मैं कामके संगसे भयभीतहो निर्विघ्न चित्तसे मोक्षकीकामना करके आपके शरणागतहुआ हू॥२॥हेप्रभो! मैं जानता हू कि " मैं आपका सच्चाभक्त हू या नहीं " केवल इसीकी परीक्षाके निमित्त मुझको इससंसारके बीजस्वरूप और हृदयके बंधनस्वरूप विषयकी वासनाओं में प्रवृत्तकरते हो ॥ ३ ॥ नहीं तो हे अखिलगुरो! आप करुणामय होकर ऐसी प्रेरणा नहीं करसकते । हे प्रभो! जोमनुष्य आपके दुर्लभ दर्शनों को पायकर आपसे सांसारिक कल्याणकारी पदार्थोंकी कामनाकरे,वहआपकादास नहींहै;किन्तु वणिकहै॥४॥तथा ऐसेही जो स्वामीदासको अपने स्वार्थकी इच्छारखकर उसे प्रियपदार्थ देवे; वह भी स्वामी नहीं है ॥ ५ ॥ मैं आपका निष्कामभक्त हूं और आपभी मेरे स्वार्थ रहित स्वामीहो अतएव राजा और सेवक की समान मेरे और आपके बीचमें कोई स्वार्थका संबंध नहीं है ॥ ६ ॥ हे वरदश्रेष्ठ! यदि आप मुझे इच्छित वरदेतेही होतो यहीवर दीजियेकि मेरे हृदय में अभिलाषा का अंकुर न उत्पन्नहो ॥ ७ ॥ हे भगवन्! कामअ
स्यतही विघ्नकारक है उसके उत्पन्न होतेही इन्द्रिय, मन,प्राण, देह, धर्म, धैर्य, बुद्धि,लज्जा,लक्ष्मी तेज, स्मृति और सत्य सबही नाश होजाते हैं ॥ ८ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष! मनुष्य जब अपने हृदय स्थितसब कामनाओं को छोडदेता है तभी मुक्तिके योग्य होता है ॥ ९ ॥ आप भगवान, परम पुरुष, महात्माहरि, विचित्र सिंह, परब्रह्म, परमात्मा आपको नमस्कार है ॥ १० ॥ भगवान ने कहा कि–हे वत्स! तुम्हारी समान भक्तलोग इसलोक और परलोक के कल्याण की इच्छा निश्चयही नहीं करते, परन्तु तुम इस मन्वंतर में इस स्थानपर दैत्येश्वरों के भोग्य पदार्थोंका भोगकरो ॥ ११ ॥ तुमसदैव मेरी प्रियकथा का श्रवणकरो, सब भूतोंमें वर्तमान, यज्ञके अधिष्ठाता, मुझको हृदय में स्थापन कर निष्कामहो सबकर्म मुझमें अर्पणकर निरंतर याग यज्ञादिक करो ॥ १२ ॥ हे वत्स! भोग द्वारापुण्य, पुण्यकार्यद्वारा पाप, कालके वेगसे देहको त्यागकर, देवताओं के गानेयोग्य शुद्ध

वन्ध ॥ १३ ॥ यएतत्कीर्तयेन्मह्यं त्वयागीतमिदंनरः । त्वांचमांचस्मरन्काले कर्मबन्धात्प्रमुच्यते ॥ १४ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ वरंवरयएतत्ते वरदेशान्महेश्वर । यदनिंदत्पितामेत्वामविद्वांस्तेजऐश्वरम् ॥१५॥ विद्धामर्षाशयःसाक्षात्सर्वलोकगुरुंप्रभुम् । भ्रातृहेतिमृषादृष्टिस्त्वद्भक्तेमयिचाघवान् ॥ १६ ॥ तस्मात्पितामेपूयेत दुरन्ताद्दुस्तरादघात् । पूतस्तेऽपांगसंदृष्टस्तदा कृपणवत्सल ॥ १७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्रिःसप्तभिःपितापूतःपितृभिःसहतेऽनघ । यत्साधोऽस्यगृहेजातो भवान्वैकुलपावनः ॥ १८ ॥ यत्रयत्रचमद्भक्ताः प्रशांताःसमदर्शिनः । साधवःसमुदाचारास्ते पूयन्त्यपिकीकटाः ॥ १९॥ सर्वात्मनानहिंसंतिभूतग्रामेषुकिंचन । उच्चावचेषुदैत्येंद्रमद्भावविगतस्पृहाः ॥२०॥ भवन्तिपुरुषालोके मद्भक्तास्त्वामनुव्रताः । भवान्मेखलुभक्तानां सर्वेषांप्रतिरूपधृक् २१ ॥ कुरुत्वंप्रेतकार्याणिपितुःपूतस्यसर्वशः । मदंगस्पर्शनेनांगलोकान्यास्यतिसुप्रजाः २२ पित्र्यंचस्थानमातिष्ठयथोक्तंब्रह्मवादिभिः । मय्यावेश्यमनस्तातकुरुकर्माणिमत्परः ॥२३॥ श्रीनारदउवाच ॥ प्रह्लादोऽपितथाचक्रेपितुर्यत्सांपरायिकम् । यथाऽऽहभगवान्राजन्नभिषिक्तोद्विजोत्तमैः २४ प्रसादसुमुखंदृष्ट्वा ब्रह्मानरहरिंहरिम् । स्तुत्वावाग्भिः पवित्राभिः प्राहदेवादिभिर्वृतः ॥२५॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेवाखिलाध्यक्षभूतभावनपूर्वज । दिष्ट्यातेनिहतः पापोलोकसंतापनोऽसुरः ॥ २६ ॥ योऽसौलब्धवरोमत्तोनवध्योममसृष्टिभिः । तपोयोगबलोन्नद्धः

यशका विस्तार करते हुये वचन मुक्तहो मुझको प्राप्तहोगे ॥ १३ ॥ जोमनुष्य यथोचित समय में तुमको और मुझको स्मरण करके तुम्हारी इस स्तुतिका पाठ करेंगे वे सबकर्मों से छूटजांयगे ॥१४॥ प्रह्लाद ने कहाकि–आप वरदाताओं में श्रेष्ठहो, आपसे इस वरकी प्रार्थना करता हूं कि–मेरेपिता ने आपकी ईश्वरता के तेजको न जानकर जोनिंदाकी है ॥ १५ ॥ तथा क्रोधित होकर साक्षात् सब लोगोंके गुरू आपको भाईका मारने वाला समझकर इस मिथ्याज्ञान केवशीभूतहो जो दुर्वचन कहे हैं और आपके भक्त मुझपर जोअत्याचार किया है ॥ १६ ॥ हे दीनवत्सल ! यद्यपि मेरापिता आपके कटाक्ष मात्रसे पवित्र होगया तोभी आपसे प्रार्थना करता हू कि वह सब अगाध दुस्तर पापों से छूटजावे ॥ १७ ॥ भगवान बोलेकि–हे अनघ! तेरापिता तथा और पहिलेकी २१ पीढि तक पवित्र होगई, क्योंकि तूने उसके कुलमें जन्म लियाहै, हेसाधो! तू अपनेकुलका पवित्र करनेवालाहै ॥१८॥ जहांपर समदर्शी, शांत, महात्मा, सदाचार युक्तमेरे भक्तलोग रहते हैं वहांनीच मनुष्य भी पवित्रता प्राप्त करते हैं ॥ १९ ॥ हे दैत्येंद्र! मेरीभक्ति से जिनकी स्पृहा (कामना) जातीरही है वे भक्त लोग महत्पुरुष उत्तम मध्यम किसी प्राणीकी भी हिंसा नहीं करते ॥ २० ॥ हे भक्त ! जोमनुष्य तेरा अनुसरण करेंगे वेभी मेरेभक्त होजांयगे अतएव तूमेरे सबभक्तों में श्रेष्ठ और उदाहरण स्वरूप है ॥ २१ ॥ तेरापिता यद्यपि सबभांति से पवित्र हैतौभी तू इस समय पुत्रके कर्तव्य कर्मसे उसका प्रेत कार्यकर, हे प्रह्लाद ! तेरापिता सत्पुत्रवान है, वह मेरे अंगके स्पर्श से पवित्र होगया अतएव वह सद्गतिको प्राप्तहोगा ॥२२॥ हेतात! अबतुम अपने पिताके राज्यासनपर स्थितहोकर, वेदवादी मुनियों की आज्ञाका उल्लंघन न करके, मुझमें अपनेमनको लगा मत्परायणहो सत्कार्य करतेरहो ॥२३॥ नारदजी बोले कि–हे राजन् ! भगवानने जैसी आज्ञा की प्रह्लाद उसी प्रकार पिताकी प्रेत क्रिया कर द्विज लोगों से अभिषिक्त हुये ॥ २४ ॥ अनंतर देवताओंसे घिरे हुये ब्रह्माजी उन नरसिंहरूप धारी भगवान के सुंदर मुख का दर्शन कर पवित्र वाक्यों से स्तुति करने लगे कि–॥ २५ ॥ हे देव देव ! हे सबके स्वामी ! हे भूत भावन ! हे पूर्वज ! इस पापी असुर ने मुझसे यह वरदान मांगलिया था कि मैं रचे हुये किसी प्राणि से न मरूं । तपस्या, योग और शक्ति से बढ़कर इसने

समस्तनिगमानहन् ॥ २७ ॥ दिष्ट्याऽस्यतनयःसाधुर्महाभागवतोऽर्भकः । त्वया विमोचितोमृत्योर्दिष्ट्यात्वांसमितोऽधुना ॥ २८ ॥ एतद्वपुस्तेभगवन्ध्यायतः प्रयतात्मनः । सर्वतोगोप्तृसंत्रासान्मृत्योरपिजिघांसतः ॥ २९ ॥ नृसिंहउवाच ॥ मैवंवरोऽसुराणांतेप्रदेयः पद्मसंभव । वरः क्रूरनिसर्गाणामहीनाममृतंयथा ॥ ३० ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वाभगवान्राजंस्ततत्रैवान्तर्दधेहरिः । अदृश्यः सर्वभूतानां पूजितः परमेष्ठिना ॥ ३१ ॥ ततः संपूज्य शिरसाववन्देपरमेष्ठिनम् । भवंप्रजापतीन्देवान्प्रह्लादोभगवत्कलाः ॥ ३२ ॥ ततः काव्यादिभिःसार्धंमुनिभिःकमलासनः । दैत्यानांदानवानांच प्रह्लादमकरोत् पतिम् ॥ ३३ ॥ प्रतिनन्द्यततोदेवाः प्रयुज्य परमाशिषः । स्वधामानिययूराजन्ब्रह्माद्याः प्रतिपूजिताः ॥ ३४ ॥ एवंतौपार्षदौ विष्णोः पुत्रत्वंप्रापितौदितेः हृदिस्थितेनहरिणावैरभावंनतौहतौ ॥ ३५ ॥ पुनश्च विप्रशापेनराक्षसौतौबभूवतुः । कुम्भकर्णदशग्रीवौहतौरामविक्रमैः ॥ ३६ ॥ शयानौयुधिनिर्भिन्नहृदयौरामसायकैः । तच्चित्तौजहतुर्देहंयथाप्राक्तनजन्मनि ॥ ३७ ॥ ताविहाथपुनर्जातौशिशुपालकरूषजौ । हरौ वैरानुबन्धेन पश्यतस्ते समीयतुः ॥ ३८ ॥ एनः पूर्वकृतंयत्तद्राजानः कृष्णवैरिणः । जहुस्त्वंतेतदात्मानः कीटः पेशस्कृतोयथा ॥ ३९ ॥ यथायथाभगवतोभक्त्यापरमयाभिदा । नृपाश्चैद्यादयः सात्म्यंहरेस्तच्चिन्तयाययुः ॥ ४० ॥ आख्यातंसर्वमेतत्तेयन्मांत्व परिपृष्टवान् । दम-

सब धर्मों का लोप कर दिया था हम लोगों केही भाग्य से जगतको पीडा देनेवाले इस असुरका आपने संहार किया, ॥ २६–२७ ॥ इस दैत्यपुत्र महा भागवत प्रह्लादको मृत्यु से बचाया यहभी अत्युत्तम हुआ, तथा इन प्रह्लादको जोआप इस समय भली प्रकार से प्राप्तहुये यहभी कुछ साधारण सौभाग्यकी बात नहींहै । हेभगवन् ! आप परमात्माहो ! जोआपका ध्यानकरते हैं, आपकी यह देह उनके सब प्रकारके भय व मृत्युसे रक्षाकरती रहती है ॥ २८–२९ ॥ भगवान ने कहाकि हे विभो ! हे पद्म सम्भव ! असुर स्वभाव सेही दुष्टहोते हैं । सर्पको दूधपिलानेकी समान एसेवर उनका देना उचित नहीं है ॥ ३० ॥ नारदजी बोलेकि–हे राजन् ! भगवान ऐसे कह और ब्रह्मासे पूजितहो, सबोंके देखते २ वहासे अतर्धान होगये ॥ ३१ ॥ अनंतर प्रह्लाद ने ब्रह्मा, शिव, प्रजापति और देवता इनसब भगवान के अंशोंकी पूजाकर मस्तकको झुकाय वंदनाकी ॥ ३२ ॥ तब पद्मयोनि ब्रह्माजी ने शुक्रादि मुनियों के साथ मिलकर प्रह्लादको दैत्य और दानवोंका अधीश्वर बनाया ॥ ३३ ॥ और प्रह्लादके ऊपर प्रसन्नता प्रकाशकर आशीर्वाद दे, उनकी दीहुई पूजाको ग्रहणकर अपने २ स्थानको गये ॥ ३४ ॥ हे नरेश्वर ! विष्णुजी के यह दोनो पार्षद ब्रह्म शापसे इसप्रकार दितिकेपुत्र रूपसे उत्पन्न हुये । शत्रुभाव से भजेजातहुये भगवान ने उनका नाशकिया ॥ ३५ ॥ तदुपरांत वह कुंभकर्ण और रावण नामक दोराक्षस हुये, अंतमें रामचन्द्रजी के पराक्रम से वे मारेगये ॥ ३६ ॥ वे रामचन्द्रजी के अमोघ बाणोंसे भिन्नहृदय होकर रणशायी हुये, प्रथम जन्मकी समान भगवान का ध्यान करते २ उन्हों ने देह छोडीथी ॥ ३७ ॥ हे युधिष्ठिर ! उन्होंनेही फिरसंसार में शिशुपाल और दंतवक्र के नामसे जन्म लियाथा, वह तुम्हारे सामनेही वैरके अनुबंध से भगवान के रूपको प्राप्तहुये ॥ ३८ ॥ इसभांति से कृष्णद्वेषी राजा अंतमें भगवान के ध्यानके प्रभाव से प्रथम के इकट्ठे हुये पापोंको छोड़ अंतमें भगवत् रूपताको ऐसे प्राप्तहुये कि जैसे भ्रमरीका चिंतवन करता हुआ कीड़ा भ्रमरीरूप बनजाताहै ॥ ३९ ॥ हे युधिष्ठिर ! तुमने पूछाथा कि शिशुपाल आदिशत्रु होकर भी किसभांति भगवद्रूपको प्राप्तहुये ? भगवानको भेद रहित देखकर उनका ध्यान करते हुये परम

घोषसुतादीनांहरेः सात्म्यमपिद्विषाम् ॥ ४१ ॥ एषाब्रह्मण्यदेवस्यकृष्णस्यचमहात्मनः । अवतारकथापुण्यावधोयत्रादिदैत्ययोः ॥ ४२ ॥ प्रह्लादस्यानुचरितंमहाभागवतस्यच । भक्तिर्ज्ञानंविरक्तिश्चयाथात्म्यंचास्यवैहरेः ॥ ४३ ॥ सर्गस्थित्यप्ययेशस्यगुणकर्मानुवर्णनम् । परावरेषांस्थानानांकालेनव्यत्ययोमहान् ॥ ४४ ॥ धर्मो भागवतानांचभगवान्येनगम्यते । आख्यानेऽस्मिन्समाम्नातमाध्यात्मिकमशेषतः ॥ ४५ ॥ यएतत्पुण्यमाख्यानं विष्णोर्वीर्योपबृंहितम् । कीर्तयेच्छ्रद्धयाश्रुत्वाकर्मपाशैर्विमुच्यते ॥ ४६ ॥ एतद्य आदिपुरुषस्य मृगेन्द्रलीलां दैत्येन्द्रयूथपवधं प्रयतः पठेन । दैत्यात्मजस्यचसतांप्रवरस्यपुण्यं श्रुत्वानुभावमकुतोभयमेतिलोकम् ॥ ४७ ॥ यूयंनृलोकेबतभूरिभागालोकंपुनाना मुनयोऽभियन्ति । येषांगृहानावसतीतिसाक्षाद्गूढंपरंब्रह्ममनुष्यलिङ्गम् ॥ ४८ ॥ सवाअयंब्रह्ममहद्विमृग्य कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः । प्रियःसुहृद्वःखलु मातुलेयआत्माऽर्हणीयो विधिकृद्गुरुश्च ॥ ४९ ॥ नयस्यसाक्षाद्भवपद्मजादिभीरूपंधियावस्तुतयोपवर्णितम् । मौनेनभक्त्योपशमेनपूजितः प्रसीदतामेषससात्वतांपतिः ॥ ५० ॥ सएषभगवान्राजन्व्यतनोद्विहतंयशः । पुरारुद्रस्य देवस्यमयेनानन्तमायिना ॥ ५१ ॥ राजोवाच । कस्मिन्कर्मणिदेवस्य मयोऽहञ्जगदीशितुः । यथाचोपचिताकीर्तिः कृष्णेनानेन कथ्यताम् ॥ ५२ ॥ नारद उवाच ॥ निर्जिताअसुरा देवैर्युध्यनेनोपबृंहितैः । मायिनां

भक्तिद्वारा शिशुपाल आदि राजा जैसे उनके रूपको प्राप्तहुए वह सब मैंने तुमसे कहा ॥ ४०।४१॥ ब्रह्मण्य देव महात्मा श्री कृष्णजी के इस पवित्र अवतार की कथाका वर्णन किया । इसमें दोनो आदि दैत्यों के वधका वर्णन है ॥ ४२ ॥ भगवद्भक्त प्रह्लाद का चरित्र. उनकी भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, उत्पत्ति स्थिति प्रलय के ईश्वर भगवान हरि का तत्व, प्रह्लादके किये हुये गुणोंका वर्णन सुर और असुरों के स्थानों के काल के कारण बड़ी ही विपरीतता, तथा जिसके द्वारा भगवानको जाना जासकता है वह भागवत धर्म–इन सब विषयों का तथा आत्म अनात्म विचारादि विषयों का भली भांति से इस में वर्णन किया गया ॥ ४३–४५ ॥ यह पवित्र आख्यान विष्णुजी के पराक्रम से बढ़ा हुआ है । जो मनुष्य इसको सुनकर श्रद्धा पूर्वक कहे वह कर्म के बन्धनों से छूट जावे ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! आदि भगवानकी नरसिंहलीला तथा दैत्य पति और दैत्य सेनापतियों के वधके वृत्तांतको जो मनुष्य पवित्र होकर पढ़ेगा, साधुश्रेष्ठ दैत्यसुत महात्मा प्रह्लाद के पवित्र प्रभावोंको जो सुनेगा—वह भयरहितहो वैकुण्ठधामको जावेगा ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! प्रह्लादको भाग्यशाली और अपनेको मन्दभाग्य विचारकर दुःखित न होना, मनुष्यों मे तुमभी बड़े भाग्यशालीहो कारण कि तुम्हारे घरम साक्षात् भगवान मनुष्यरूप धारणकर गुप्तरीति से विराजते हैं, इसही कारण बडे२ मुनिलोग जगतको पवित्र करतहुए तुम्हारे घरपर आते हैं ॥ ४८ ॥ यही श्रीकृष्णजी परब्रह्महैं, यही महात्मा पुरुषों के ढूढने योग्य निरुपाधिक परमानन्दका अनुभव स्वरूपहैं यही तुम्हारे प्रिय, सुहृद, मामा के पुत्र, आत्मा, पूजनीय आज्ञाकारी और गुरुहैं ॥४८॥ महादेव और ब्रह्मा आदिक देवता अपनी बुद्धिके बलसे जिनके रूपका निश्चयकर वर्णन नहीं करसकते वे भगवान मौनव्रत, उपशम और भक्ति योगद्वारा प्रसन्नहोते हैं ॥ ५० ॥ हे राजन्! पहिले वह मायावीमय दानवने, देवोत्तम महादेवजीके यशका नष्टकर दियाथा परन्तु इन्हीं भगवानने फिर उनके यशका विस्तार कियाथा ॥ ५१ ॥ युधिष्ठिर बोले कि हे देवर्षि ! मयदानवने किसकारण जगतके ईश्वर महादेवजीके यशको नाश कियाथा ? और भगवान श्रीकृष्णजीने किसभांति उनकी कीर्तिका विस्तार कियाथा ? सो कहिये ॥ ५२ ॥ नारदजी बोले कि—हे राजन् ! विष्णु भगवान

परमाचार्यंमयंशरणमाययुः ॥ ५३ ॥ सनिर्माय्यपुरस्तिस्रो हैमीरौप्यायसीर्विभुः ।
दुर्लक्ष्यापायसंयोगा दुर्वितर्क्यपरिच्छदाः ॥ ५४ ॥ ताभिस्तेऽसुरसेनान्यो
लोकांस्त्रीन्सेश्वरान्नृप । स्मरन्तोनाशयाञ्चक्रुः पूर्ववैरमलक्षिताः ॥ ५५ ॥ ततस्तेसे
श्वरालोका उपासाद्येश्वरंविभो । त्राहिनस्तावकान्देव विनष्टांस्त्रिपुरालयैः ॥ ५६ ॥
अथानुगृह्यभगवान्माभैष्टेतिसुरान्विभुः । शरंधनुषिसंधाय पुरेष्वस्त्रंव्यमुञ्चत ५७
ततोऽग्निवर्णाइषवउत्पेतुःसूर्यमण्डलात् । यथामयूखसंदोहानादृश्यन्तपुरोयतः ५८
तैःस्पृष्टाव्यसवःसर्वेनिपेतुःस्मपुरौकसः । तानानीयमहायोगी मयःकूपरसेऽक्षिपत्
॥ ५९ ॥ सिद्धामृतरसस्पृष्टावज्रसारामहौजसः । उत्तस्थुर्मेघदलना वैद्युताइववह
यः ॥ ६० ॥ विलोक्यभग्नसंकल्पं विमनस्कंवृषध्वजम् । तदाऽयंभगवान्विष्णुस्त
त्रोपायमकल्पयत् ॥६१॥ वत्सआसीत्तदाब्रह्मा स्वयंविष्णुरयंहिगौः । प्रविश्यत्रिपु
रंकाले रसकूपामृतंपपौ ॥ ६२ ॥ तेऽसुराह्यपिपश्यंतो नन्यषेधन्विमोहिताः । तद्वि
ज्ञायमहायोगी रसपालानिदंजगौ ॥ ६३ ॥ स्वयंविशोकःशोकार्तान्स्मरन्दैवगतिं
चताम् । देवोऽसुरोनरोऽन्योवा नेश्वरोऽस्तीहकश्चन ॥ ६४ ॥ आत्मनोऽन्यस्यवा
दिष्टंदैवेनापोहितुंद्वयोः । अथासौशक्तिभिःस्वाभिःशम्भोःप्राधनिकंव्यधात् ६५ ॥
धर्मज्ञानविरक्त्यृद्धितपोविद्याक्रियादिभिः । रथंसूतंध्वजं वाहान्धनुर्वर्मशरादियत्॥

के तेजसे बढ़ेहुए देवताओंने युद्धमें असुरोंको हरादिया तब वह मायावियोंके परमगुरु मय दानवकी शरणमें गये ॥ ५३ ॥ उस प्रभावशाली दानवने सोने, चांदी और लोहेकी तीन पुरियें बनाकर उनको दीं । उनपुरियों के भीतर के सामान व उनके भीतर आने जानेकी किसाकोभी खबर न होतीथी, उनके भीतरका वृत्तान्त जानने की किसीकोभी सामर्थ्य न था॥५४॥हे नृपा वे सबअसुर सनापतियोंसमेत पुरीमें अलक्षितरह पहिले वैरका स्मरण कर लोकपाल और सबलोकोंका नाशकरने लगे ॥५५॥अनन्तर सब लोगोंने लोकपालों समेत महादेवजीके निकटजाकर विनती की, कि—हे देव देव ! हमारे रक्षक आपहीहो, त्रिपुर निवासी राक्षस हमारानाशकरते हैं, आपरक्षाकरो॥५६॥ तदनन्तर महादेवजीने देवताओंपर कृपा करके कहाकि 'डरोमत'इतनाकह महाप्रभावशाली शिवजी अपने धनुष में शरोंको संधानकर पुरों के ऊपर चलानेलगे ॥ ५७ ॥ हे राजन् ! सूर्यमण्डलसे जैसे किरणे निकलती है उसीभांति उनवाणों से अग्निवर्णके बाणोंके समूह निकलनेलगे और उनवाणो द्वारा वह तीनोंपुरघिरगये ॥५८॥ अतएव उसस्थान में जो असुरसेनापति वास करतेथे वे बाणो के लगतेही प्राणरहितहो उसी स्थानपर गिरपड़े । इतना देखतेही उस मायावी मयदानवने उन सब दानवों को ले अपने बनायेहुये अमृत के कुण्ड में डालदिया ॥ ५९ ॥ सिद्ध अमृतरस के स्पर्श होतेही वे सब असुरसेनापति वज्रकी समान दृढांग और महाबली होगये ॥ ६० ॥ इसबातको देख अपना प्रणभंग होते जान महादेवजी अत्यन्त खिन्नचित्तहुए, तब वहां विष्णुजी ने एक उपाय किया ॥ ६१ ॥ कि उन्होंन ब्रह्माको बछड़ाबना और आप गायबन मध्याह्न समय में उस त्रिपुरके भीतरजाय उस अमृतकुण्ड के सब अमृतकोपीगये॥ ६२ ॥ वहां के असुरों ने उन्हें यद्यपि आंख से देखातौ भी मायासे मोहितहोकर निवारण न करसके । महायोगी शिवने इन सब विषयों को जानकर दैवगतिका स्मरणकर हँसते २ उनरस पालकोंसे कहाकि ॥ ६३ ॥ अपने व पराये तथा दोनों परजो कार्यदैव कल्पितहोता है, उसके विपरीत करनेकी सुर, नर अथवा और किसी मनुष्यकीभी सामर्थ्य नहीं है ॥ ६४ ॥ तदुपरान्त भगवान हरि ने धर्म, ज्ञान, वैराग्य, अणिमादि ऐश्वर्य, सम्पत्तितपस्या, विद्या और क्रियादिद्वारा अपनी शक्ति से महादेवजीके संग्राम करने के लिये रथ, सारथी, घोड़ा, ध्वजा, धनुष, बाण, कवच आदिकी रचना करदी ॥ ६५–६६ ॥

॥ ६६ ॥ सअघोरथमास्थायशरंधनुरुपाददे। शरंधनुषिसंधाय मुहूर्तेऽभिजितीश्वरः॥ ६७ ॥ ददाहतेनदुर्भेद्या हरोऽथत्रिपुरोनृप। देवदुन्दुभयो नेदुर्विमानशतसंकुलाः ६८ ॥ देवर्षिपितृसिद्धेशा जयेतिकुसुमोत्करैः। अवाकिरंजगुर्हृष्टा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ६९ ॥ एवंदग्ध्वापुरस्तिस्रोभगवान्पुरहानृप। ब्रह्मादिभिःस्तूयमानःस्वधामप्रत्यपद्यत ॥ ७० ॥ एवंविधान्यस्यहरेःस्वमायया विडंबमानस्यनृलोकमात्मनः। वीर्याणिगीतान्यृषिभिर्जगद्गुरोर्लोकान्पुनानान्यपरंवदामिकिम्॥ ७१ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा०सप्त०दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीशुकउवाच ॥ श्रुत्वेहितंसाधुसभासभाजितं महत्तमाग्रण्यउरुक्रमात्मनः। युधिष्ठिरोदैत्यपतेर्मुदायुतः पप्रच्छभूयस्तनयंस्वयंभुवः ॥ १ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ भगवन्श्रोतुमिच्छामि नृणांधर्मंसनातनम्। वर्णाश्रमाचारयुतंयत्पुमान्विन्दतेपरम् २ ॥ भवान्प्रजापतेःसाक्षादात्मजःपरमेष्ठिनः। सुतानांसमतोब्रह्मस्तपोयोगसमाधिभिः ॥ ३ ॥ नारायणपराविप्रा धर्मंगुह्यंपरंविदुः। करुणाःसाधवःशांतास्त्वद्विधानतथाऽपरे॥ ४ ॥ नारदउवाच ॥ नत्वाभगवतेऽजायलोकानां धर्महेतवे। वक्ष्ये सनातनंधर्मंनारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥ ५ ॥ योऽवतीर्यात्मनोंऽशेनदाक्षायण्यांतुधर्मतः लोकानांस्वस्तयेऽध्यास्तेतपोबदरिकाश्रमे६॥धर्ममूलंहिभगवान्सर्ववेदमयोहरिः स्मृतंचतद्विदांराजन्येनचात्माप्रसीदति ॥ ७ ॥ सत्यंदयातपःशौचंतितिक्षेक्षाशमो दमः। अहिंसा ब्रह्मचर्यंचत्यागः स्वाध्यायआर्जवम् ॥ ८ संतोषः समदृक्सेवाग्रा-

---

तब महादेवजीने कवचधारणकर हाथमें धनुषबाणलिया। हेराजन्! भगवान महादेवजीने धनुषमें शर चढ़ाय मध्याह्नकाल मे उनतीनों पुरोंको सहजमेंही जलादिया। स्वर्गमें दुंदुभी बजनेलगीं। विमानमें बैठहुये देव, ऋषि पितर, और श्रेष्ठसिद्धगण 'विजयीहो' कहकर फूलवर्षाने लगे। गंधर्व प्रसन्नित होकर गाने और अप्सरायें नाचनेलगीं ॥ ६७–६८ ॥ भगवान महादेवजी इसभांति त्रिपुरको जलाय ब्रह्मादि से पूजितहो अपने धाम मे आये ॥ ७० ॥ भगवान हरिके इसीप्रकारके चरित्र हैं; वह अपनी मायाद्वारा मनुष्यरूप धारणकर मनुष्यकीसी लीला करते हैं। इन जगद्गुरूके ऐसे २ जगत के पवित्र करनेवाले पराक्रमों को ऋषियोंने गाया है अब क्या सुननेकी इच्छा है सो कहो? ॥ ७१ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० सप्तमस्कंध सरला भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजीबोले कि-श्रेष्ठभगवद्भक्त महात्मा प्रह्लादके साधुओं के सन्मानित चरित्रों को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने अति आनन्दित हो फिर नारदजी से पूछा ॥ १ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि, हे भगवन्! मनुष्यों के सनातनधर्म तथा वर्ण और आश्रमोंके आचार सुननेकी इच्छा करता हूं क्योंकि उससे मनुष्यको ज्ञान और भक्तिप्राप्त होती है ॥ २ ॥ हेब्रह्मन्! आप परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजी के साक्षात पुत्र तथा तपस्या, योग, और समाधिद्वारा सब पुत्रों में आपही उनके अतिप्रिय हैं। ॥ ३ ॥ जो ब्राह्मण आपसरीखे भगवद्भक्त, कृपालु, महात्मा व प्रशांत है वेही इस परमगुप्तधर्म को जानते हैं दूसरे नहीं जानते ॥ ४ ॥ नारदजी बोले कि लोगों के धर्म के निमित्त श्रीभगवानको दण्डवत करके भगवानके मुखसे सुनाहुआ सनातन धर्म कहता हूं सो सुनो ॥ ५ ॥ कि जो भगवान धर्म से दक्षकी कन्या मूर्ति में अपने अंशनरके साथ जगत के मङ्गलके निमित्त बदरिकाश्रम में विराजकर तप कररहे हैं ॥ ६ ॥ हेराजन्! सर्ववेद मयभगवान हरि और वेद जाननेवालों की स्मृतियां तथा शास्त्रोक्त धर्म के द्वैतस्थल यही धर्म हैं जिसधर्म से मनको प्रसन्नताहोवे वही धर्म इनसबधर्मों का मूल है ॥ ७ ॥ सत्य, दया, तप, पवित्रता, सहनशीलता, सत् असत्का विचार, शम, दम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, दान, जप, सरलता ॥ ८ ॥ सन्तोष, महात्माओं की सेवा,

स्येहोपरमः शनैः। नृणांविपर्ययेहेक्षामौनमात्मविमर्शनम् ॥ ९ ॥ अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्चयथार्हतः। तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृपु पाण्डव ॥ १० ॥ श्रवणं कीर्तनंचास्य स्मरणंमहतांगतेः। सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ११ ॥ नृणामयंपरोधर्मःसर्वेषांसमुदाहृतः। त्रिंशल्लक्षणवान्राजन्सर्वात्मायेनतुष्यति ॥ १२॥संस्कारायत्राविच्छिन्नाःसद्विजोऽजोजगादयम्। इज्याध्ययनदानानिविहितानि द्विजजन्मनाम्। जन्मकर्मावदातानां क्रियाश्चाश्रमचोदिताः॥१३॥विप्रस्याध्ययनादीनिषडन्यस्याप्रतिग्रहः।राज्ञोवृत्तिःप्रजागोप्तुरविप्राद्वाकरादिभिः॥१४॥वैश्यस्तु वार्तावृत्तिश्चनित्यंब्रह्मकुलानुगः। शूद्रस्यद्विजशुश्रूषा वृत्तिश्चस्वामिनोभवेत् ॥ १५ ॥ वार्त्ताविचित्रा शालीनयायावरशिलोंछनम्। विप्रवृत्तिश्चतुर्वेयं श्रेयसीचोत्तरोत्तरा ॥ १६ ॥ जघन्योनोत्तमां वृत्तिमनापदिभजेन्नरः। ऋतेराजन्यमापत्सु सर्वेषामपिसर्वशः ॥ १७ ॥ ऋतामृताभ्यांजीवेत मृतेनप्रमृतेनवा। सत्यानृताभ्यां जीवेतनश्ववृत्त्याकथंचन ॥ १८ ॥ ऋतमुञ्छशिलंप्रोक्तममृतंयदयाचितम्। मृतंतु नित्ययांचास्यात्प्रमृतं कर्षणंस्मृतम् ॥ १९ ॥ सत्यानृतंतुवाणिज्यं श्ववृत्तिर्नीचसेवनम्। वर्जयेत्तांसदाविप्रो राजन्यश्चजुगुप्सिताम्। सर्ववेदमयोविप्रः सर्वदेवमयोनृपः ॥ २० ॥ शमोदमस्तपःशौचं सन्तोषःक्षान्तिरार्जवम्। ज्ञानं

प्रवृत्ति के कर्मों से निवृत्ति, मनुष्यों की निष्फल कियाका विचार, मौन, देहादि से पृथक् आत्मा अनुसंधान ॥ ९ ॥ यथोचित रूपसे प्राणियोंको अन्नादि विभाग करके देना, सब प्राणियोंमें आत्मा और देवताका ज्ञान ॥ १० ॥ श्रीकृष्णजी के नामादिका श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, उनकी सेवा, पूजा, प्रणाम, और दासभाव, उनके साथमैत्री और उनको अपनी आत्माका समर्पण करना ॥११॥ हे राजन्! यह तीस लक्षणों वालाधर्म मनुष्यों के निमित्त साधारण धर्म कहलाता है इसके अनुष्ठान से सर्वात्मा भगवान प्रसन्न होते हैं ॥ १२ ॥ जिनके मन्त्रयुक्त संस्कार अविच्छिन्न हुयेहों और ब्रह्माजीने जिनको ऐसे संस्कारों के करनेको कहा है वह द्विज हैं। कुल और आचारों से शुद्ध द्विजों को यज्ञ, अध्ययन, दान और ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमोचित क्रिया करनेकी आज्ञा है॥ १३॥ ब्राह्मणों के अध्ययन आदि छहकर्म (पढना, पढाना, यज्ञकरना, कराना, दान देना और लेना) हैं दूसरे द्विजोंके दानलेने के अतिरिक्त शेष पांचकर्म हैं। प्रजारक्षक राजाकी आजीविका का उपाय कर और शुल्कादि (टैक्स) लेना है परन्तु यह करआदि ब्राह्मणों के अतिरिक्त लियेजांय ॥ १४ ॥ वैश्यजाति का जीविका कृषि, और वनिज आदि हैं; वैश्य सदैवद्विज कुलका अनुसरण करतारहे। शूद्रजाति का धर्म द्विजोंकी सेवाही करना है और उनकी सेवासे जोप्राप्तिहो वही उनकी वृत्ति है ॥ १५ ॥ १ नाना प्रकारकी कृषिआदि २ विनामांगे जोपदार्थ प्राप्तहो ३ प्रतिदिवस धान्य मांगकर लाना ४ शिलोंछन (खतसे कणबीन करलाना)यह चार उपाय ब्राह्मणों की जीविकाके हैं। इनमें पहिली२ की अपेक्षा पिछली २ श्रेष्ठ हैं ॥ १६ ॥ नीचवर्ण के मनुष्यबिना आपत्ति कालके श्रेष्ठ वृत्तिका अवलम्बन नकरें। आपत्ति कालमें सबही सबका अवलम्बन करसकते हैं। क्षत्री आपत्ति कालमें भी दान न लेय ॥ १७ ॥ ऋत, अमृत, मृत, प्रमृत अथवा सत्यानृत द्वारा ब्राह्मणगण जीवन धारण करसकते हैं कुत्तेकी वृत्ति द्वारा कभी जीविका का निर्वाह नकरना चाहिये ॥ १८ ॥ हे राजन्! ऋत शब्दका अर्थ खेतमें छोडेहुए कणों का बीनना अमृत का अर्थ बिना मांगे द्रव्य का प्राप्त होना मृत शब्दका अर्थ प्रति दिन भिक्षा मांगना प्रमृत का अर्थ खेती आदि करना सत्यानृत शब्द का अर्थ वाणिज्य है और श्ववृत्तिका अर्थ नीचकी सेवा करना है श्ववृत्ति अत्यन्तही नीच वृत्ति है, ब्राह्मण तथा क्षत्री कभी इसको स्वीकार नकरें क्योंकि ब्राह्मण सर्व वेदमय और क्षत्री सर्व देवमय

दयाच्युतात्मत्वं सत्यंचब्रह्मलक्षणम् ॥ २१॥ शौर्यंवीर्यंधृतिस्तेजस्त्यागश्चात्मजयः
क्षमा। ब्रह्मण्यताप्रसादश्च रक्षाचक्षत्रलक्षणम् ॥ २२ ॥ देवगुर्वच्युतेभक्तिस्त्रिवर्ग
परिपोषणम्। आस्तिक्यमुद्यमोनित्यं नैपुणंवैश्यलक्षणम् ॥ २३ ॥ शूद्रस्यसंनतिः
शौचं सेवास्वामिन्यमायया। अमन्त्रयज्ञोह्यस्तेयं सत्यंगोविप्ररक्षणम् ॥ २४ ॥
स्त्रीणांचपतिदेवानां तच्छुश्रूषाऽनुकूलता। तद्बन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यंतद्व्रतधारण
म् ॥ २५ ॥ संमार्जनोपलेपाभ्यां गृहमण्डलवर्तनैः। स्वयंचमण्डितानित्यंपरिमृष्ट
परिच्छदा ॥ २६ ॥ कामैरुच्चावचैःसाध्वी प्रश्रयेणदमेनच। वाक्यैःसत्यैः प्रियैः
प्रेम्णा कालेकालेभजेत्पतिम् ॥ २७ ॥ संतुष्टाऽलोलुपादक्षा धर्मज्ञाप्रियसत्यवाक्।
अप्रमत्ताशुचिःस्निग्धा पतिंत्वपतितंभजेत् ॥ २८ ॥ यापतिंहरिभावेन भजेच्छ्रीरि
वतत्परा। हर्यात्मनाहरेर्लोके पत्याश्रीरिवमोदते ॥२९॥ वृत्तिःसंकरजातीनां तत्त
त्कुलकृताभवेत्। अचौराणामपापानामन्त्यजान्तेऽवसायिनाम् ॥ ३० ॥ प्रायःस्व
भावविहितो नृणांधर्मोयुगेयुगे। वेददृग्भिःस्मृतोराजन्प्रेत्यचेहचशर्मकृत् ॥ ३१ ॥
वृत्त्यास्वभावकृतयावर्तमानःस्वकर्मकृत्। हित्वास्वभावजंकर्म शनैर्निर्गुणतामिया
त् ॥ ३२॥ उप्यमानंमुहुःक्षेत्रं स्वयंनिर्वीर्यतामियात्। नकल्पतेपुनःसूत्याउप्तं बीजंच
नश्यति ३३ ॥ एवंकामाशयंचित्तं कामानामतिसेवया। विरज्येतयथा राजन्नग्नि

हैं ॥ १९।२० ॥ शम, दम, तपस्या शौच, संतोष, क्षमा, सरलता, ज्ञान, दया, विष्णु परायणता तथा सत्य यहीसब ब्राह्मण के लक्षण हैं ॥ २१ ॥ संग्राम में उत्साह, पराक्रम, धीरज, तेज, दान आत्म जय, क्षमा, ब्राह्मण भक्ति, प्रसन्नता, रक्षा, तथा सत्य यह सब क्षत्री के लक्षण हैं ॥२२॥ देवता गुरु और विष्णु भगवान में भक्ति, धर्म, अर्थ, काम, इन तीन वर्गोंका पोषण आस्तिक्यता, नित्य उद्योग तथा निपुणता यह सब वैश्यके लक्षणहैं॥२३॥प्रणाम, पवित्रता, निष्कपट होकर स्वामीकी सेवा करना, बिना मंत्र पढ़े यज्ञकरना, चोरी नकरना, सत्य तथा गौ ब्राह्मणोंकी रक्षाकरना यह शूद्रके लक्षणहैं॥२४॥पति की सेवाकरना, पतिकी आज्ञासे कामकरना, पतिके बंधुओंको संतुष्टरखना, पतिके नियम धारणकरना यह चार पतिव्रतास्त्रियों के धर्म व लक्षणहैं२५पतिव्रता स्त्रीको घर में झाड़ू देना लीपना, आंगन में मंडल बनाना, व घरको सजाना, घरको सुगंध युक्त पदार्थोंसे सुगंधितरखना और प्रतिदिन घरकी सब सामग्रियों को स्वच्छरखना, इन सबकार्योंद्वारा तथा स्वयं आभूषणादि पहिनकर नाना भाग पदार्थों कोले नम्रता, दम, सुंदर वचन और प्रेम प्रकाश द्वारा सदैव पतिकी सेवा करना योग्यहै ॥ २६ । २७ ॥ स्त्री, जो मिले उसी में संतुष्ट हो, किसी पदार्थ में लोलुपता नरख आलस्य को छोड़ मधुर भाषण करतीहुई सावधानहो पवित्रता पूर्वक स्नेहसे अपतित पतिकी पूजा करे ॥ २८ ॥ हे राजन् ! जो स्त्री लक्ष्मी की समान पतिव्रता हो भगवद्भाव से पतिकी सेवा करती है वह वैकुंठधाम में भगवत् स्वरूप पति के साथ लक्ष्मी की समान आनंद किया करती है ॥२९॥ अन्त्यज और दूसरे नीच वर्णसंकर जातिवाले चोरी तथा दूसरे पाप कर्म न कर अपनी सदैव से चलीआतीहुई कुलकी वृत्ति को धारणकरे। धोबी, चमार केवट आदि अन्त्यजहैं और चाण्डाल पुल्कस आदि नीच कर्मों के करनेवाले हैं ॥ ३० ॥ मनुष्यों के स्वभावानुसार युग २ में जो धर्म कल्पित होते हैं वेदवक्ता पण्डित लोग कहते हैं कि वेही धर्म उनके इसलोक और परलोक में सुख के देनेंवाले हैं ॥ ३१ ॥ स्वाभाविक वृत्तियों द्वारा जीवन धारणकर अपना कर्म करतहुए धीरे२ स्वभावसे उत्पन्न हुए कर्मोंको छोड़कर जीव निर्गुणत्व को प्राप्त करताहै ॥ ३२ ॥ जिस खेत में वारम्वार बीज बोयाजाता है वह खेत आपही आप तेज रहित होजाता है और उसमें धान्य उपजानें की शक्ति नहीं रहती तथा बोयाहुआ बीजभी नष्ट होजाता है ॥ ३३ ॥ ऐसही कामकी वासना युक्त चित्त अत्यन्त

त्कामबिन्दुभिः ॥ ३४ ॥ यस्ययल्लक्षणंप्रोक्तं पुंसोवर्णाभिव्यञ्जकम् । यदन्यत्रापिदृश्येततत्तेनैवविनिर्दिशेत् ॥ ३५ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०सप्त०नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

नारदउवाच । ब्रह्मचारीगुरुकुले वसन्दान्तोगुरोर्हितम् । आचरन्दासवन्नीचो गुरौसुदृढसौहृदः ॥ १ ॥ सायंप्रातरुपासीतगुर्वग्न्यर्कसुरोत्तमान् । उभेसन्ध्येचयतवाग्जपन्ब्रह्मसमाहितः ॥ २ ॥ छन्दांस्यधीयीतगुरोराहूतश्चेत्सुयन्त्रितः । उपक्रमेऽवसानेच चरणौशिरसानमेत् ॥ ३ ॥ मेखलाजिनवासांसि जटादण्डकमण्डलून् । बिभृयादुपवीतंच दर्भपाणिर्यथोदितम् ॥ ४ ॥ सायंप्रातश्चरेद्भैक्ष्यं गुरवेतन्निवेदयेत् भुञ्जीतयद्यनुज्ञातो नोचेदुपवसेत्क्वचित् ॥ ५ ॥ सुशीलो मितभुग्दक्ष श्रद्दधानो जितेन्द्रियः । यावदर्थंव्यवहरेत्स्त्रीषुस्त्रीनिर्जितेषुच ॥ ६ ॥ वर्जयेत्प्रमदागाथामगृहस्थोबृहद्व्रतः । इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्त्यपियतेर्मनः ॥ ७ ॥ केशप्रसाधनोन्मर्दस्नपनाभ्यंजनादिकम् । गुरुस्त्रीभिर्युवतिभिः कारयेन्नात्मनोयुवा ॥ ८ ॥ नन्वग्निः प्रमदानामघृतकुम्भसमः पुमान् । सुतामपिरहोजह्यादन्यदायावदर्थकृत् ॥ ९ ॥ कल्पयित्वात्मनायावदाभासमिदमीश्वरः । द्वैततावन्नविरमेत्ततोह्यस्यविपर्ययः ॥ १० ॥

कामके सेवन से विरक्त होसकता है हे राजन् ! जिस भांति कि जलती हुईअग्नि घीकीबूंदों से नहीं शांतहोती वैसही अल्प कामके सेवन से चित्तभी शांत नहीं होता ॥ ३४ ॥ जिस मनुष्यके वर्णका ज्ञापक जोलक्षण कहागया है वह लक्षण जोउससे दूसरे वर्णके मनुष्य में देखपडेंतो उस मनुष्य कोभी उसी वर्णका जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

इति श्रीमागवतेमहापुराणेसप्तमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायामेकादशोऽध्याय ॥ ११ ॥

नारदजी बोले कि-ब्रह्मचारी, जितेन्द्रियहोकर गुरुकुलमें वासकरताहुआ गुरुपर दृढप्रीति और स्नेहरख, नीच दासकी समान गुरुका हित साधन करे ॥१॥ गुरू, अग्नि, सूर्य और देवताओं की उपासना करे तथा गायत्रीजप और त्रिकाल सन्ध्याभी करे । सायं और प्रात दोनों सन्ध्याओं में मौनरहे ॥ २ ॥ गुरू जबबुलावें तबमन और देहको भलीभांति से स्थिरकर उनके निकट वेदाध्ययनकरे । पढने के पहिले और पीछे मस्तकसे गुरूके चरणोंको स्पर्शकर प्रणामकरे ॥ ३ ॥ मेखला मृगचर्म, वस्त्र, जटा, दण्ड, यज्ञोपवीत और कमण्डलु धारणकरे और हाथमें कुशाको रक्खे ॥४॥ सायंकाल और प्रातःकालमें भिक्षाकरके भिक्षासे प्राप्तहुए पदार्थको गुरुको अर्पणकरे, तदुपरान्त गुरूकी आज्ञासे आप भोजनकरे-नहीं तो भोजनका बिना आज्ञापाये दिन रात उपवासही करना चाहिये ॥ ५ ॥ ब्रह्मचारीको सुशील, मिताहारी, पवित्र, कार्य करनेमें चतुर और श्रद्धा शीलहोना चाहिये तथा जितेन्द्रियहोकर स्त्री तथा स्त्रीलंपट लोगों के साथ अपने अभिप्राय के अनुसारही व्यवहार रखना योग्यहै॥६॥गृहस्थ के अतिरिक्त और समस्त ब्रह्मचारियोंको स्त्रीआदिका वार्त्ता करना छोडदेना चाहिये, क्योंकि प्रबल इन्द्रिय यतियोंकेभी मनको हरण करती हैं॥ ७ ॥ युवाशिष्य गुरू स्त्री द्वारा केश सँवारना, शरीर मलना, स्नान और अभ्यंग आदि न करावे ॥ ८ ॥ क्योंकि स्त्रीतो अग्निकी समान और पुरुष घीके घडेकी समान है । एकान्त में कन्या के साथभी वार्त्तालाप नहीं करना चाहिये, दूसरे समय में (केशआदि सँवारने के अतिरिक्त समय में) उससे अपने अभिप्राय के अनुसार बातचीत करे ॥ ९ ॥ जबतक जीव आत्म साक्षात्कार द्वारा अपने यथार्थ स्वरूपको नहीं जानता अर्थात् उसका देहात्म ज्ञान नहीं उत्पन्न होता तबही तक भेदज्ञान रहता है। और जबतक भेदज्ञान रहता है तबतक भोक्ता और भोग्य इस प्रकारकी बुद्धिरहती है अतएव

एतत्सर्वंगृहस्थस्यसमाम्नातंयतेरपि । गुरुवृत्तिर्विकल्पेन गृहस्थस्यर्तुगामिनः ॥ ११ ॥अञ्जनाभ्यञ्जनोन्मर्दस्त्र्यवलेखामिषंमधु । स्रग्गन्धलेपालंकारांस्त्यजेयुर्येधृतव्रताः ॥ १२ ॥ उषित्वैवंगुरुकुलेद्विजोऽधीत्यावबुध्यच । त्रयींसाङ्गोपनिषदंयावदर्थंयथाबलम् ॥ १३ ॥ दत्त्वावरमनुज्ञातोगुरोः कामंयदीश्वरः । गृहंवनंवाप्रविशेत्प्रव्रजेत्तत्रवावसेत् ॥ १४ ॥ अग्नौगुरावात्मनिचसर्वभूतेष्वधोक्षजम् । भूतैः स्वधामभिः पश्येदप्रविष्टंप्रविष्टवत् ॥ १५ ॥ एवंविधोब्रह्मचारीवानप्रस्थोयतिर्गृही । चरन्विदितविज्ञानः परंब्रह्माधिगच्छति ॥ १६ ॥ वानप्रस्थस्यवक्ष्यामिनियमान्मुनिसंमतान् । यानातिष्ठन्मुनिर्गच्छेदृषिलोकमिहाञ्जसा ॥१७॥ नकृष्टपच्यमश्नीयादकृष्टंचाप्यकालतः । अग्निपक्वमथामंवाअर्कपक्वमुताहरेत् ॥ १८ ॥ वन्यैश्चरुपुरोडाशान्निर्वपेत्कालचोदितान् । लब्धेनवेनवेऽन्नाद्येपुराणंतुपरित्यजेत् ॥१९॥ अग्न्यर्थमेवशरणमुटजंवाऽद्रिकन्दराम् । श्रयेतहिमवाय्वग्निवर्षार्कातपषाट्स्वयम्॥२०॥केशरोमनखश्मश्रुमलानिजटिलोदधत् । कमण्डल्वजिनेदण्डवल्कलाग्निपरिच्छदान् ॥ २१ ॥ चरेद्वनेद्वादशाब्दानष्टौवाचतुरोमुनिः । द्वावेकंवायथाबुद्धिर्नविपद्येतकृच्छ्रतः ॥ २२ ॥ यदाऽकल्पः स्वक्रियायांव्याधिभिर्जरयाऽथवा । आन्वीक्षिक्यांवाविद्यायांकुर्यादनशनादिकम् ॥ २३ ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप्यसंन्यस्याहं

स्त्री आदि कानो अवश्यही परित्याग करदेना चाहिये ॥ १० ॥ यही उपरोक्त धर्म गृहस्थ और संन्यासियों के पक्षमें भी जानने चाहिये परन्तु. गृहस्थ ऋतुकाल में स्त्री संगकरे और जहांतकहो गुरु सेवाभी करे ॥ ११ ॥ ब्रह्मचारी, अंजन, शरीर में उबटन आदि लगाना, शरीरका संवारना स्त्री सग, स्त्रियों के चित्र देखना, मांस मद्यकासेवन, माला पहिनना, चदन लगाना, तथा अलङ्कारादि धारण करने आदि कर्मोंको छोड़देवे ॥ १२ ॥ द्विज (ब्रह्मचारी) इसी भांतिसे गुरुकुल में वास करके वेदांग, उपनिषद और तीनवेदोंका पठनपाठनकरे तथा अपनेज्ञान और शक्तिके अनुसार वेद के अर्थोंका विचारकरे ॥ १३ ॥ यदिशक्ति होवेतो गुरुको इच्छित दक्षिणादे उनकी आज्ञा ले अधिकारानुसार गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी होवेअथवा वहीं गुरुकुल में वासकरे ॥ १४ ॥ ब्रह्मचारी अग्नि, गुरु, अपने में तथा सब प्राणियों में आत्माको नियंता रूपसे देखे ॥ १५ ॥ हे राजन्! ब्रह्मचारी वानप्रस्थ, संन्यासी अथवा गृहस्थी इसभांति से आचरण करते हुये ज्ञेय वस्तुको जानकर परब्रह्मको प्राप्तहोते हैं ॥ १६ ॥ अब इसके अनतर वानप्रस्थ के मुनिसंमत नियमोंको कहताहूं। इनसब आचरणों का अवलम्बन करने से वानप्रस्थ मुनि निश्चयही ऋषिलोकको प्राप्तहो-सकते हैं ॥ १७ ॥ वानप्रस्थ—जोतेहुये खेतके फलादिका भक्षण न करे, किंतुविना जुतीहुई भूमिसे उत्पन्न हुये कच्चेफल अग्निमें पका अथवा सूर्यसे पकेहुये फलादिका भक्षणकरे ॥ १८ ॥ वनमें उत्पन्न हुये नीवार आदि पदार्थोंसे ओसमयपर प्राप्तहोसके चरु व पुरोडाश आदि होमकरे; नये अन्नके प्राप्त होनेसे पहिले के इकट्ठा किये हुये अन्नादिको परित्याग करदेवे॥१९॥अग्निकी रक्षाके निमित्तही पर्णकुटी अथवा पहाड़के गुफारूपी घरका आश्रय लेवे परन्तु आप शीत, वायु, अग्नि, वर्षा, और धूपका सहनकरे ॥ २० ॥ उसको जटा धारण करना चाहिये, बाल, रोम, नख, और डाढीमूछ न कटवाना चाहिये; मैले शरीरको स्वच्छ न करे; कमंडलु, मृगचर्म, दंड, और वल्कल धारण करे तथा अग्निहोत्रकी सामग्रीरक्खे ॥ २१ ॥ तपके कष्टसे बुद्धिका नाश न होवे, इस निमित्त मुनि यथा शक्ति १२, ८, ४, २ अथवा १ वर्ष वनमें घूमे ॥ २२ ॥ रोग व बुढ़ापे आदि से वह स्वधर्म के करनेमें अथवा ज्ञानाभ्यासमें असमर्थहोवे तो अनशन आदि व्रतकरे ॥ २३ ॥ अनशन आदि

ममात्मताम् । कारणेषुन्यसेत्सम्यक्संघातंतुयथाऽर्हतः ॥ २४ ॥ खेखानिवायौनिःश्वासांस्तेजस्यूष्माणमात्मवान् । अप्स्वसृक्श्लेष्मपूयानिक्षितौशेषंयथोद्भवम् ॥२५॥ वाचमग्नौसवक्तव्यामिन्द्रेशिल्पंकरावपि । पदानिगत्यावयसि रत्योपस्थंप्रजापतौ ॥ २६ मृत्यौपायुंविसर्गंचयथास्थानं विनिर्दिशेत् । दिक्षुश्रोत्रंसनादेनस्पर्शमध्यात्मनित्वचम् ॥ २७ ॥ रूपाणिचक्षुषाराजञ्ज्योतिष्यभिनिवेशयेत् । अप्सुप्रचेतसाजिह्वांघ्रेयैर्घ्राणंक्षितौन्यसेत् ॥ २८ ॥ मनोमनोरथैश्चन्द्रेबुद्धिंबोध्यैः कवौ परे । कर्माण्यध्यात्मनारुद्रेयदहंममताक्रिया । सत्त्वेनचित्तंक्षेत्रज्ञेगुणैर्वैकारिकं परे ॥ २९ ॥ अप्सुक्षितिमपोज्योतिष्यदोवायौनभस्यमुम् । कूटस्थेतच्चमहतितदव्यक्तेऽक्षरेच तत् ॥ ३० ॥ इत्यक्षरतयात्मानं चिन्मात्रमवशेषितम् । ज्ञात्वाऽद्वयोऽथ विरमेद्दग्धयोनिरिवानलः ॥ ३१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेसप्तमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

नारद उवाच ॥ कल्पस्त्वेवं परिव्रज्यदेहमात्रावशेषितः । ग्रामैकरात्रविधिना निरपेक्षश्चरेन्महीम् ॥ १ ॥ बिभृयाद्यद्यसौवासः कौपीनाच्छादनंपरम् । त्यक्तंनद ण्डलिङ्गादेरन्यत्किंचिदनापदि ॥ २ ॥ एकएवचरेद्भिक्षुरात्मारामोऽनपाश्रयः । स

व्रतधारण करनेके पहिले आत्मा में अग्निका समारोपणकर 'मैं और मेरा' इत्यादि अभिमान छोड़ भौतिक देहको आकाशादि पंचभूत में लीनकरे ॥ २४ ॥ उत्पत्तिके अनुसार देहके छिद्रोंको आकाश में, श्वासको पवनमें, गर्मीको तेजमें, रुधिर श्लेष्म और पूयको जलमें, अस्थि आदिकठिन अंगोंको पृथ्वीमें इसभांति इसदेहको अपने२ कारण में यथायोग्य लीन करना चाहिये ॥ २५ ॥ तथा वाक्यके साथ वागिन्द्रियको अग्निमें शिल्पसमेत दोनोंहाथोंको इन्द्रमें,गतिसमेत दोनों पैरोंको विष्णु में, रतिसमेत उपस्थको प्रजापति में ॥ २६ ॥ और मलोत्सर्ग समेत पायुको मृत्यु में लीन करे । हे राजन् ! शब्द समेत श्रोत्रको दिग्मण्डल में, स्पर्श समेत त्वगिन्द्रियको वायु में ॥२७॥ नेत्रों समेत रूपको तेजमें, वरुणसमेत जिह्वाको जलमें तथा अश्विनीकुमारों समेत नासिका को गन्धवती भूमि में लीन करना चाहिये ॥ २८ ॥ मनोरथों समेत मनको चन्द्रमामें, बोध्य पदार्थों समेत बुद्धिको ब्रह्ममें और अहंकार समेत सबकर्मोंको रुद्रमें लीन करना चाहिये , इस अहंकार सेही 'मैं और मेरी' इत्यादि क्रियायें होती हैं । तदनन्तर चेतनासमेत चित्तको क्षेत्रज्ञ में और गुणके साथ विकृतिको प्राप्तरूप क्षेत्रज्ञको निर्विकार ब्रह्ममें लीनकरे ॥२९॥ अन्तमें पृथ्वीको जल में, जलको तेजमें, तेजको वायुमें, वायुको आकाशमें, आकाशको अहंकार तत्व में, अहंकार तत्व को महत्तत्वमें, यह तत्वको प्रकृति में और प्रकृतिको परमात्मामें लीन करे ॥ ३० ॥ इसभांति उपाधियोंके लीनहोनेपर जो ज्ञानस्वरूप आत्मा शेषरहता है, उसको परब्रह्मरूप जान, अद्वैतभाव से विराजमानहोकर, काठजलनेसे जैसे अग्नि शान्तहोजाती है, वैसेही अपने आप विरामको प्राप्त होना चाहिये ॥ ३१ ॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणेसप्तमस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

नारदजीबोले कि—हेराजन् ! ज्ञानाभ्यासमें समर्थ मनुष्य इसभांति ध्यान करताहुआ संन्यासाश्रमका अवलम्बनकर, देहके अतिरिक्त और सबवस्तुओंका त्यागकर दवे, तथा एक २ गांवमें एक२ रात्रि निवासकरताहुआ इस नियमानुसार पृथ्वीपर विचराकरे॥१॥यदि यदि वस्त्र पहिनना चाहे तो केवल कौपीन धारण करे । दण्डादि के अतिरिक्त और कोई चिह्न बिना आपदा के ग्रहण न करना चाहिये, क्योंकि सबही चिन्ह उसको त्याज्य हैं ॥ २ ॥ भिक्षा जीवी होकर अकेले भ्रमण

वैसूतसुहृच्छान्तो नारायणपरायणः ॥ ३ ॥ पश्येदात्मन्यदो विश्वं परे सदसतोऽव्य
ये । आत्मानं च परं ब्रह्म सर्वत्र सदसन्मये ॥४॥ सुप्तप्रबोधयोः सन्धावात्मनो गतिमात्म
दृक् । पश्यन्बन्धं च मोक्षं च मायामात्रं न वस्तुतः ॥५॥ नाभिनन्देद्ध्रुवं मृत्युमध्रुवं वाऽस्य
जीवितम् । कालं परं प्रतीक्षेत भूतानां प्रभवाप्ययम् ६ नासच्छास्त्रेषु सज्जेत नोपजीवे
त जीविकाम् । वादवादांस्त्यजेत्तर्कान्पक्षं कंचन संश्रयेत् ७ न शिष्याननुबध्नीत ग्रंथा
नैवाभ्यसेद्बहून् । न व्याख्यामुपयुंजीत नारम्भानारभेत्क्वचित् ८ न यतेराश्रमः प्रायो
धर्महेतुर्महात्मनः । शान्तस्य समचित्तस्य बिभृयादुत वा त्यजेत् ९ अव्यक्तलिंगो व्यक्ता
र्थो मनीष्युन्मत्तबालवत् । कविर्मूकवदात्मानं स दृष्ट्या दर्शयेन्नृणाम् ॥१०॥ अत्राप्युदा
हरन्तीममितिहासं पुरातनम् । प्रह्लादस्य च संवादं मुनेराजगरस्य च ॥११॥ तं शयानं
धरोपस्थे कावेर्यां सह्यसानुनि । रजस्वलैस्तनूदेशैर्निगूढामलतेजसम् ॥ १२ ॥ ददर्श
लोकान्विचरन् लोकतत्त्वविवित्सया । वृतोऽमात्यैः कतिपयैः प्रह्लादो भगवत्प्रियः ।
॥ १३ ॥ कर्मणाऽऽकृतिभिर्वाचा लिंगैर्वर्णाश्रमादिभिः । न विदन्ति जना यं वै सोऽसा
विति न वेति च ॥ १४ ॥ तं नत्वाऽभ्यर्च्य विधिवत्पादयोः शिरसा स्पृशन् । विवि
त्सुरिदमप्राक्षीन्महाभागवतोऽसुरः ॥ १५ ॥ बिभर्षि कायं पीवानं सोद्यमो भोगवान्य
था । वित्तं चैवोद्यमवतां भोगो वित्तवतामिह । भोगिनां खलु देहोऽयं पीवा भवति ना

करना चाहिये, किसी स्थानमें आश्रय न लेवे । अपने आत्मविचारसे आनन्दितरहे, सब प्राणियों का मित्र, शांत और भगवद्भक्त होवे ॥ ३ ॥ इस विश्वको कार्य कारणके अतिरिक्त, अव्यय, आत्मा में स्थित देखे, तथा परब्रह्म परमात्माकोभी कार्य–कारणमय सब स्थानों में वर्तमान देखना चाहिये ॥ ४ ॥ सुषुप्ति और जागरणके संधिस्थलमें आत्मा का लक्षकर अपने यथार्थ स्वरूपको देखतारहे; और बन्ध मोक्ष दोनोंकोही केवल मायाजान ॥५॥ निश्चित व अनिश्चित देहकी निश्चित मृत्यु व अनिश्चितजीवन का अभिनन्दन न करे; केवल प्राणियों के उत्पत्ति विनाशके कारण भूत-काल का राह देखतारहै ॥ ६ ॥ जिन शास्त्रों के पढने से ब्रह्मज्ञान न उत्पन्न हो उनशास्त्रों को न पढे, किसी जीविका का धारण न करे, वादविवादके तर्कों को छोडदेवे और किसीका पक्षपात न करे ॥ ७ ॥ लाभआदि दिखाकर शिष्य न करे, बहुतग्रन्थों का अभ्यास, सभा इकट्ठी करके व-क्तृता आदिकाकार्य, और कहीं भी मठादि का स्थापन न करे ॥ ८ ॥ जो संन्यासी शांत तथा समदर्शी हैं वे परमहंस हैं; अतएव वे इच्छानुसार आश्रमका चिन्ह धारण व परित्यागकर सकते हैं ॥ ९ ॥ उनका कोई चिह्न स्पष्ट नहीं रहता केवल आत्मा का अनुसंधानही स्पष्ट रहता है । वे बुद्धिमान होकरभी अपनेको उन्मत्त और बालक की समान तथा कविहोकरभी गूंगे की समान अपने को दिखाते हैं ॥ १० ॥ इस विषय में पण्डितलोग प्रह्लाद और अजगर मुनि के सम्वाद से मिलेहुये एक प्राचीन इतिहास का उदाहरण देते हैं ॥ ११ ॥ एक समय अजगरव्रतीमुनि, कावेरीनदी के तटपर, सह्याद्रि पर्वत के समीप पृथ्वी परसोरहेथे । उनके शरीरके सब अंगधूलसे धूसरहोकर निर्मलतेज से अच्छादित थे ॥ १२ ॥ उसी समयमें भगवत्प्रियप्रहलाद कुछएक मं-त्रियोंकेसाथ, लोककादशा जानने के निमित्त त्रिलोकीमे घूमते २ उसस्थानपरआये और वहां उन मुनिको देखा ॥ १३ ॥ कर्म, आकृति, वाक्य तथा वर्णाश्रमादि के चिन्होंद्वारा मनुष्य जिनकोयह वही हैं किनहीं ऐसे न जानसके ॥ १४ ॥ महाभागवत प्रहलाद ने उनको नमस्कारकर यथाविधि पूजनद्वारा उनके चरणों को स्पर्श करके विशेषहाल जानने के निमित्त प्रश्नकिया ॥ १५ ॥ प्रहला-दजी बोले कि–हे प्रभो ! देखते हैं कि आप उद्यमशील और भोगवानों की सदृश स्थूलशरीर धा-रण करते हो । उद्योगी मनुष्योंके धन, धनवान मनुष्योंके भोग और भोगवानोंका स्थूल देहहोता है

यन्था ॥ १६ ॥ नतेशयानस्यनिरुद्यमस्य ब्रह्मन्नुहार्थोयतएवभोगः॥अभोगिनोऽयं तवविप्रदेहः पीवायतस्तद्वदनःक्षमंचेत् ॥ १७ ॥ कविःकल्पोनिपुणदृक्चित्रप्रियकथःसमः । लोकस्यकुर्वतःकर्मशेषेतद्वीक्षिताऽपिवा ॥ १८ ॥ नारदउवाच ॥ स इत्थंदैत्यपतिना परिपृष्टोमहामुनिः । स्मयमानस्तमभ्याहतद्वागमृतयन्त्रितः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ वेदेदमसुरश्रेष्ठ भवान्नन्वार्यसंमतः । ईहोपरमयोर्नृणां पदान्यध्यात्मचक्षुषा ॥ २० ॥ यस्यनारायणोदेवो भगवान्हृद्गतःसदा । भक्त्याकेवलयाऽज्ञानं धुनोतिध्वांतमर्कवत् ॥ २१ ॥ अथापिब्रूमहेप्रश्नांस्तवराजन्यथाश्रुतम् । संभावनीयोहिभवानात्मनः शुद्धिमिच्छताम् ॥ २२ ॥ तृष्णयाभववाहिन्या योग्यैःकामैरपूरया । कर्माणिकार्यमाणोऽहं नानायोनिषुयोजितः ॥ २३ ॥ यदृच्छयालोकमिमंप्रापितःकर्मभिर्भ्रमन् । स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं तिरश्चांपुनरस्यच ॥ २४ ॥ अत्रापिदम्पतीनां चसुखायान्यापनुत्तये । कर्माणिकुर्वतांदृष्ट्वा निवृत्तोऽस्मिविपर्ययम् ॥ २५ ॥ सुखमस्यात्मनोरूपंसर्वेहोपरतिस्तनुः॥ मनःसंस्पर्शजान्दृष्ट्वा भोगान्स्वप्स्यामिसंविशन् ॥ २६ ॥ इत्येतदात्मनःस्वार्थं सन्तंविस्मृत्यवैपुमान् । विचित्रामसतिद्वैते घोरामाप्नोतिसंसृतिम् २७जलंतदुद्भवैश्छन्नं हित्वाऽज्ञोजलकाम्यया । मृगतृष्णामुपाधावेद्यथाऽन्यत्रार्थदृक्स्वतः२८देहादिभिर्दैवतन्त्रैरात्मनःसुखमीहतः । दुःखात्ययंचा

इसकेबिना नहीं होती ॥ १६ ॥ हे ब्रह्मन्! आप निरन्तर सोते रहते हो अतएव निरुद्योग हो; आपका धन उत्पन्न करना असम्भव है और धनही से भोग होता है । हेविप्र! उपभोग न करने परभी किसकारण आपका देह स्थूल होगया है, यदि ऐसासम्भव है तो मुझसे कहिये ॥ १७ ॥ आप विद्वान तथा चतुर ज्ञात होते हो; आप मधुरभाषण करके मनुष्यों का चित्त मोह सकते हो, आप कार्य करनेमें चतुरभी ज्ञानहोते हो, तोफिर किस निमित्त कोई काम न करके सोतेहुये चेष्टारहित रहते हो ॥ १८ ॥ नारदजी बोलेकि जब प्रह्लादने मुनिसे इस भांति पूछा तब मुनि उनके वाक्यों से मोहितहो कुछएक हँसकरबोले कि ॥ १९ ॥ हे असुर श्रेष्ठ! तुमज्ञानियों में श्रेष्ठ हो, अतएव अन्तर्दृष्टिद्वारा मनुष्योंके प्रवृत्ति निवृत्तिरूप सबहीफलों को जानते हो ॥ २० ॥ भगवाननारायणदेव तुम्हार हृदय में प्रवेशकरके, सूर्य जैसे अन्धकार का नाश करता है उसी प्रकार अज्ञान को दूर करते हैं ॥ २१ ॥ तो भी मैंने जैसा सुना है, उसके अनुसार तुम्हार सब प्रश्नोंका उत्तरदेता हूं; क्योंकि जो मनुष्य अपने अन्तःकरण के शुद्धकरनेकी कामनाकरे, तुम्हारेसाथ उसका सम्भाषण करना अवश्य है॥२२॥हेराजन्! संसारको प्रवाहितकरनेवाली तृष्णाका यथोचित सब विषयोंसे भी पूरानहीं किया जासकता । उसके द्वारा सबकर्मों में प्रवर्तितहोकर मैंने पहिले नानायोनियों में प्रवेशकियाथा॥२३॥ कर्म फलसे भ्रमण करते२ मुझको उसीतृष्णाने अपनीइच्छानुसार इसमनुष्य देहमें प्राप्तकराया । हे राजन्! यहीदेह—स्वर्ग और मुक्तिका, कुत्ता सुअर आदिनीच योनियोंका, तथा इसमनुष्य योनिकीका भी द्वारस्वरूपहै॥२४॥किंतु इसमनुष्यजन्ममेंभी सुखलाभ और दुःख निवृत्तिके निमित्त स्त्री पुरुष अनेकों कर्म करते हैं किन्तु उनका विपरीत फल होता है उसको देखकर मैंने निवृत्ति मार्ग का अवलम्बन कियाहै॥२५॥सुखही इसआत्माका स्वरूप है जब सब क्रियायें निवृत्त होजाती हैं तब यह रूप स्वयंही प्रकाश पाता है मैं सब भोगोंको अनित्य जानकर चेष्टारहित हो सोयारहता हूं केवल प्रारब्धसे जो मिलजाताहै उसी को भोगता रहताहूं॥२६॥अपना सुख रूप पुरुषार्थ अपनेमेंही है उसे भूलकर यह मनुष्य द्वैत पदार्थ मिथ्या होने परभी भयंकर संसार के प्रवाहमें भटका करताहै ॥ २७ ॥ जैसे मूर्ख मनुष्य तृण से ढकेहुए जल को छोड़कर मृगतृष्णाकी ओर दौड़ता है तैसेही आत्म स्वरूप से अन्य दूसरे पदार्थों में अपने सुखोंका समझ उनकी ओर दौड़ताहुआ मनुष्य सं-

तीर्यास्य क्रियमाणानि कर्माण्यफलानि च ॥२९॥ न स्याद्यस्मिकादिभ्यो दुःखेभ्यो विमुक्तस्य कर्हिचित्। अर्थस्य कृच्छ्रोपनतैरर्थैः कामैः क्रियेत किम् ३० ॥ पश्यामि धनिनां क्लेशं लुब्धानामजितात्मनाम्। भयादलब्धनिद्राणां सर्वतोऽभिविशङ्किनाम् ॥ ३१ ॥ राजतश्चोरतः शत्रोः स्वजनात्पशुपक्षिणः। अर्थिभ्यः कालतः स्वस्मान्नित्यं प्राणार्थवद्भयम् ३२॥ शोकमोहभयक्रोधरागक्लैब्यश्रमादयः। यन्मूलाः स्युर्नृणां जह्यात्स्पृहां प्राणार्थयोर्बुधः ३३ ॥ मधुकारमहासर्पौ लोकेऽस्मिन्नो गुरूत्तमौ। वैराग्यं परितोषं च प्राप्ता यच्छिक्षया वयम् ॥ ३४ ॥ विरागः सर्वकामेभ्यः शिक्षितो मे मधुव्रतात्। कृच्छ्राप्तं मधुवद्वित्तं हत्वाप्यन्यो हरेत्पतिम् ॥ ३५ ॥ अनीहः परितुष्टात्मा यदृच्छोपनतादहम्। नो चेच्छये बह्वहानि महाहिरिव सत्त्ववान् ॥ ३६ ॥ क्वचिदल्पं क्वचिद्भूरि भुञ्जेऽन्नं स्वाद्वस्वादु वा। क्वचिद्भूरिगुणोपेतं गुणहीनमुत क्वचित् ॥ ३७ ॥ श्रद्धयोपाहृतं क्वापि कदाचिन्मानवर्जितम्। भुञ्जे भुक्त्वाऽथ कस्मिंश्चिद्दिवा नक्तं यदृच्छया ३८॥ क्षौमं दुकूलमजिनं चीरं वल्कलमेव वा। वसेऽन्यदपि संप्राप्तं दिष्टभुक्तुष्टधीरहम् ३९ क्वचिच्छये धरोपस्थे तृणपर्णाश्मभस्मसु। क्वचित्प्रासादपर्यङ्के कशिपौ वा परेच्छया ॥४०॥ क्वचित्स्नातोऽनुलिप्ताङ्गः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः। रथेभाश्वैश्चरे क्वापि दि-

---

सार में प्राप्त होतारहताहै ॥ २८ ॥ हे राजन् ! दैवाधीन देहादि द्वारा जो मनुष्य अपने सुख की प्राप्ति और दुःखनिवृत्तिकी इच्छा करताहै उस भाग्यहीन मनुष्य के कर्म, बारम्बार करते हुए भी निष्फल होजाते हैं॥२९॥ उनकर्मोंसे यदि किसी भांति फल प्राप्तभी होजायतो उन फलोंसे उसका कुछ उपकार नहीं होता क्योंकि वह मनुष्य आध्यात्मिकादि दुःखों से किसी भांतिभी नहीं छूट सकता ॥ ३० ॥ जो धनवान मनुष्य आत्मा को नहीं जीतसकते और अत्यन्त लोभी होते हैं वह सदैव क्लशमें गिरते रहते हैं, भयके मारे रातको उन्हें नींद नहींआती, सब स्थानों में सबमनुष्यों से वह सदैव शङ्कितहोते रहते हैं ॥ ३१ ॥ राजा, चोर, शत्रु, स्वजन, पशु, पक्षी, याचक, काल और अपने सेभी सदैव भयबनारहता है ॥ ३२ ॥ अतएव जो शोक, मोह, भय, क्रोध, अनुराग करता, तथा श्रमादिका मूल है—विद्वान मनुष्य उस धन और प्राणमें प्रेमका परित्याग करदेते हैं ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! इसलोकमें शहदकी मक्खी और अजगर सर्प यह मेरेउत्तमगुरू हैं। मैं इन्हींकी वृत्तिको देखकर इस वैराग्य और सन्तोषको प्राप्तहुआहूं ॥ ३४ ॥ मधुमक्खीके समान कष्टसे इकट्ठा कियाहुआ धन, धनीको मारकर दूसरेही हरलेते हैं—यही जानकर मधुमक्खी के निकटसे, सब कामनाओं से विरक्तहोनेकी शिक्षा मैंने ग्रहणकी है ॥ ३५ ॥ अजगर के निकटसे शिक्षा पाकर मैं चेष्टारहित और भाग्यसेजो मिलजावे उसीपर सन्तुष्ट रहताहूं। यदि कदाचित कुछ भी नप्राप्त होवे तो अजगरकी समान धैर्य धारणकरके स्थिरभाव से समय व्यतीत करताहूं॥३६॥ कभी थोड़ाही भोजन करता, कभी बहुत भक्षणकरता, कभी स्वादिष्ट अन्नखाता, कभी विस्वादही खाकर रहजाता, कभी बहुतगुण युक्त अन्नकाभोजन होता और कभीगुणहीनही आहार प्राप्त होता है॥३७॥ कभी कोई श्रद्धापूर्वक भोजन ला देताहै, कभी कोई अपमानकरक कुछ देदेताहै; किसी दिन२में भोजनकरके फिररातको दुबाराभोजनकरताहूं कभी दिन या रातमें यदृच्छासे जो मिलजाता है वही खाकरके रहजाताहूं॥३८॥रेशमीवस्त्र, सूतीवस्त्र, मृगचर्म, कौपीन, वल्कल, और जो कुछ उपस्थितहोताहै उसीको पहिनताहूं। इसीभांति से सन्तुष्ट अंतःकरणहो सदैव प्रारब्धका भोग करताहूं॥३९॥कभी पृथ्वीमें तृण,पत्ते,पत्थर अथवा राखके ऊपर—कभीदूसरेकी इच्छानुसार महलों में पलंगकेऊपर उत्तम सेजमें सोतारहताहूं॥४०॥कभीस्नानके उपरांत शरीर में चंदन आदि लगाय,

ग्वासाग्रहवद्विभो ॥ ४१ ॥ नाहंनिंदेनचस्तौमि स्वभावविषमंजनम् । एतेषांश्रेय आशासे उतैकात्म्यंमहात्मनि ॥ ४२ ॥ विकल्पंजुहुयाच्चित्तौतांमनस्यर्थविभ्रमे। मनोवैकारिकेहुत्वा तंमायायांजुहोत्यनु ॥ ४३ ॥ आत्मानुभूतौतांमायां जुहुयात्सत्यदृङ्मुनिः । ततोनिरीहोविरमेत्स्वानुभूत्यात्मनिस्थितः ॥ ४४ ॥ स्वात्मवृत्तंमयेत्थं ते सुगुप्तमपिवर्णितम् । व्यपेतंलोकशास्त्राभ्यां भवान्हिभगवत्प्रियः ॥ ४५ ॥ नारद उवाच ॥ धर्मंपारमहंस्यं वैमुनेःश्रुत्वाऽसुरेश्वरः । पूजयित्वाततः प्रीतआमंत्र्य प्रययौगृहम् ॥ ४६ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०सप्त०त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

युधिष्ठिर उवाच । गृहस्थएतांपदवीं विधिनायेनचांजसा । यातिदेवऋषेब्रूहि मादृशोगृहमूढधीः ॥ १ ॥ नारद उवाच । गृहेष्ववस्थितोराजन्क्रियाः कुर्वन्गृहोचिताः । वासुदेवार्पणं साक्षादुपासीत महामुनीन् ॥२॥ शृण्वन्भगवतोऽभीक्ष्णमवतारकथाऽमृतम् । श्रद्दधानो यथाकालमुपशान्तजनावृतः ॥ ३ ॥ सत्सङ्गाच्छनकैः संगमात्मजायात्मजादिषु । विमुञ्चेन्मुच्यमानेषु स्वयंस्वप्नवदुत्थितः ॥ ४ ॥ यावदर्थमुपासीनो देहेगेहेचपण्डितः । विरक्तोरक्तवत्तत्र नृलोकेनरतांन्यसेत् ॥ ५ ॥ ज्ञातयःपितरौपुत्रा भ्रातरःसुहृदोऽपरे । यद्वदन्तियदिच्छन्ति चानुमोदेतनिर्ममः ॥६॥

मनोहर वस्त्रोंको पहिन मालास सुशोभितहो रथ, हाथी अथवा घोडोंपर सवारहो घूमता रहताहूं, और कभी ग्रहकी समान दिगंबरहो घूमता हू ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! विषम स्वभाव वाले मनुष्यकी नतोमैं निंदा करता हूं न स्तुति; सभाके मंगलकी कामना करताहूं तथा परमात्मा विष्णुजी में एकयता होना चाहता हू ॥ ४२ ॥ भेदको मनकी वृत्तिमें होमदेना, वृत्तको पदार्थ रूप विभ्रम वाले मनमें होमदेना, मनको अहंकारमें होमदेना और अहंकारको महत्तत्वद्वारा मायामें होमदेना चाहिये ॥४३॥ अनंतर मायाको आत्मानुभव में लीनकर सत्यदर्शी मुनि,क्रियारहितहो अनुभव स्वरूप में स्थितरहे ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! तुम भगवानको प्रियहो इसी निमित्त मैंने अपनी आत्माका अतिगुप्त वृत्तांत को तुमसे कहा यह मंददृष्टिद्वारा इसलोक के शास्त्र से पृथक्तो है परन्तु तत्व दृष्टिसे वैसा नहीं है ॥ ४५ ॥ नारदजी ने कहाकि दैत्येश्वर प्रह्लाद ने, अजगर वृत्ती मुनिके समीप से इस परमहंस धर्मको सुनकर उनकी पूजाकी । तदनंतर प्रसन्नहो, मुनिकी आज्ञा ले अपने घरको आये ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

राजा युधिष्ठिरने कहाकि—हे देवर्षि ! गृहस्थी मनुष्य निश्चयही जिस विधिद्वारा इस संन्यासी की पदवीको पावे वह आप मुझसे कहिये क्योंकि मनुष्योंकी मूढमति मेरे समान गृहासक्त रहता है ॥ १ ॥ नारदजी बोलेकि—हे राजन् ! घरमें रहाहुआ मनुष्य जोकुछ वेदानुसार कर्मकरे वह सब कृष्णार्पण करदेवे और समयानुसार ऋषियोंकी सेवाभी करतारहे ॥ २ ॥ तथा सदैव अमृत स्वरूप भगवानके अवतार की कथाको श्रद्धापूर्वक सुनतारहे, और शांत मनुष्यों की सदैव संगति करता रहे ॥ ३ ॥ जैसे स्वप्नमे देखेहुये स्त्री, पुत्रादि सयन से उठेहुये मनुष्य के हृदय से आपही आप दूरहोते रहते हैं और वहभी उनका त्याग करता है तैसेही शांत मनुष्यों के संसर्ग से देह स्त्री पुत्रादिकोंका स्नेह छोड़देवे ॥ ४॥ देह और घरमें जितना प्रयोजन होवे उतनाही सबधरक्खे, मनमें और घरमें भीतर से वैराग्य रखकर बाहर से आसक्त पुरुषकी समान आचरण करता हुआ पुरुषार्थ करे ॥ ५ ॥ कभी आग्रह करना उचित नहीं, उसके ज्ञातिवाले, पिता, माता, भ्राता, पुत्र, स्वजन, तथा दूसरे मनुष्य जो कुछ इच्छाकरें वह उसी को स्वीकारकरे; परन्तु कुछमोह न रक्खे ॥ ६ ॥

दिव्यंभौमंचान्तरिक्षं वित्तमच्युतनिर्मितम्। तत्सर्वमुपभुंजान एतत्कुर्यात्स्वतोबुधः ॥७॥यावद्भ्रियेतजठरं तावत्स्वत्वंहिदेहिनाम्। अधिकंयोऽभिमन्येत सस्तेनोदण्डमर्हति। ॥ ८ ॥ मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरीसृप्खगमक्षिकाः। आत्मनःपुत्रवत्पश्येत्तैरेषामन्तरंकियत् ॥ ९ ॥ त्रिवर्गनातिकृच्छ्रेण भजेतगृहमेध्यपि। यथादेशंयथाकालंयावद्दैवोपपादितम् ॥ १० ॥ आश्वाघान्तेवसायिभ्यः कामान्संविभजेद्यथा। अप्येकामात्मनोदारां नृणांस्वत्वग्रहोयतः ॥ ११ ॥ जह्याद्यदर्थे स्वप्राणान्हन्याद्वापितरं गुरुम्। तस्यांस्वत्वंस्त्रियां जह्याद्यस्तेनह्यजितोजितः ॥ १२ ॥ कृमिविड्भस्मनिष्ठान्तं क्वेदंतुच्छंकलेवरम्। क्वतदीयरतिर्भार्याक्वायमात्मा नभश्छदिः॥१३॥ सिद्धैर्यज्ञावशिष्टार्थैः कल्पयेद्वृत्तिमात्मनः। शेषेस्वत्वंत्यजन्प्राज्ञः पदवींमहतामियात् ॥ ॥ १४ ॥ देवानृषीन्नृभूतानि पितृनात्मानमन्वहम्। स्ववृत्त्यागतवित्तेन यजेतपुरुषंपृथक् ॥ १५ ॥ यर्ह्यात्मनोऽधिकाराद्याः सर्वाःस्युर्यज्ञसंपदः। वैतानिकेन विधिनाअग्निहोत्रादिनायजेत् ॥ १६ ॥ नह्यग्निमुखतोऽयंवैभगवान्सर्वयज्ञभुक्। इज्येत हविषाराजन् यथाविप्रमुखेहुतैः ॥ १७ ॥ तस्माद्ब्राह्मणदेवेषु मर्त्यादिषुयथार्हतः।

वृष्टिसे उत्पन्न हुये धान्यादि धन, मिट्टीमें मिलाहुआ धन, परमेश्वरका दियाहुआ तथा अकस्मात् प्राप्त हुआधन जोकुछ मिलजाय उसका भोग करतारहे, परन्तु पंडितको चाहिये कि पूर्वोक्त कही हुई रीतके अनुसार उसका भोगकरे ॥ ७ ॥ दैवात् यदि अधिक धनकी प्राप्तिहोतो उससे अभिमान न करना चाहिये; क्योंकि जितने धनसे पेटभरताहै वही प्राणियोंका धनहै।जोमनुष्य धनका अधिक अहंकार करते हैं वे चोर हैं और उनको दंडदेना योग्य है ॥८॥ अतएव मृग, ऊंट, गधा, बदर, चूहा, सांप, पक्षी, मक्खी इत्यादि जोकोई प्राणी घरमें अथवा खेतमें प्रवेशकर अन्न आदिका भोजन करें तो उसका निवारणकरना उचित नहीं है किन्तु अपनी पुत्रकी समान देखना चाहिये। यथार्थ में पुत्रादि और मृगादि में कितना अंतर है? गृहस्थ भी धर्म, अर्थ और कामको अतिकष्ट से उत्पन्न कर उसका भोग नहीं करते; देश—कालके अनुसार जोकुछ भगवदिच्छासे प्राप्तहो उसीका भोग करना चाहिये ॥ ९ ॥ १० ॥ कुत्ता, नीच, तथा चाण्डालतक सब प्राणियोंको, यथा योग्य उनके उपभोग की वस्तुओंको बांटदेवे। और अतिथि सेवामे तत्पररहै यदि अपने से सेवा न होसकेतो केवल स्त्रीहीको अतिथि सेवामें तत्पर रक्खे ॥ ११ ॥ हे राजन्! मनुष्य जिसस्त्रीके निमित्त अपने प्राणतक छोडदेते हैं तथा पिता और गुरुको भी मारने पर तत्पर होजाते हैं, जोमनुष्य ऐसी स्त्री से भी स्नेह छोडदे, उससे ईश्वर भी जीतेजासकते हैं॥ १२ ॥ यह देह अतमें कीड़ा, विष्ठा, अथवा भस्म से बदल जायगी, अतएव यह तुच्छ देह कहां, इस देह से जिसके साथ स्नेहहोवे वह स्त्री भी कहां, और आकाशमंडलको भेदनेवाली आत्माभी कहां!इसभांति तत्वोंका विचारकर देह और स्त्रीको तुच्छजाने ॥ १३ ॥ हे राजन्! गृहस्थ मनुष्य ईश्वरेच्छा से प्राप्तहुये धनद्वारा पञ्चयज्ञकरे। पंचयज्ञ करने से जोशेषरहे उसीसे अपनी जीविका का निर्वाहकरे। जोमनुष्य इस शेषरहे अन्नको भी छोड़देवे वही श्रेष्ठ निवृत्ति मार्गका चलने वाला है तथा वही महापुरुषों की पदवीको प्राप्तहोताहै ॥ १४ ॥ अपनी वृत्तिसे उत्पन्न किये हुये धनद्वारा देव, ऋषि, मनुष्य, भूत, और पितर तथा अपनी भी नित्य पूजाकरना यही पृथक २ रूपसे भगवान अंतर्यामी की पूजाकरना है ॥ १५ ॥ अब अपने अधिकारादि से समस्त यज्ञ संपत्ति इकट्ठी होवेतब गृहस्थ वेद विहित अग्निहोत्रादि यज्ञकरे ॥१६॥ सबयज्ञों के भोक्ता भगवान हरिब्राह्मणके मुखमें अर्पणकी हुईहवि द्वारा जैसे तृप्तहोते हैं वैसे अग्नि मुखमें डालीहुई हविद्वारा प्रसन्न नहीं होते ॥१७॥ अतएव ब्राह्मण, देवता, मनुष्य और दूसरे प्रा-

तैस्तैःकामैर्यजस्वैनं क्षेत्रज्ञंब्राह्मणाननु ॥ १८ ॥ कुर्यादापरपक्षीयं मासिप्रौष्ठपदेद्विजः । श्राद्धंपित्रोर्यथावित्तं तद्बन्धूनांचवित्तवान् ॥ १९ ॥ अयनेविषुवेकुर्याद्व्यतीपाते दिनक्षये । चन्द्रादित्योपरागेच द्वादशीश्रवणेषुच ॥ २० ॥ तृतीयायांशुक्लपक्षे नवम्यामथकार्तिके । चतसृष्वप्यष्टकासुहेमन्ते शिशिरेतथा ॥ २१ ॥ माघेचसितसप्तम्यां मघाराकासमागमे । राकयाचानुमत्यावा मासर्क्षाणियुतान्यपि ॥ २२ ॥ द्वादश्यामनुराधा स्याच्छ्रवणस्तिस्रउत्तराः । तिसृष्वेकादशी वाऽऽसुजन्मर्क्षश्रोणयोगयुक् ॥ २३ ॥ तएतेश्रेयसःकाला नृणांश्रेयोविवर्धनाः । कुर्यात्सर्वात्मनैतेषु श्रेयोऽमोघंतदायुषः ॥ २४ ॥ एषुस्नानंजपोहोमो व्रतंदेवद्विजार्चनम् । पितृदेवनृभूतेभ्यो यद्दत्तंतद्ध्यनश्वरम् ॥ २५ ॥ संस्कारकालो जायाया अपत्यस्यात्मनस्तथा ॥ प्रेतसंस्थामृताहश्च कर्मण्यभ्युदयेनृप ॥ २६ ॥ अथदेशान्प्रवक्ष्यामिधर्मादिश्रेयआवहान् । सवैपुण्यतमोदेशः सत्पात्रं यत्रलभ्यते ॥ २७ ॥ बिम्बंभगवतोयत्र सर्वमेतच्चराचरम् । यत्रहब्राह्मणकुलं तपोविद्यादयान्वितम् ॥ २८ ॥ यत्रयत्रहरेरर्चा सदेशः श्रेयसांपदम् । यत्रगङ्गादयोनद्यः पुराणेषुचविश्रुताः ॥ २९ ॥ सरांसिपुष्करादीनि क्षेत्राण्यर्हाश्रितान्युत । कुरुक्षेत्रंगयशिरःप्रयागःपुलहाश्रमः ॥ ३० ॥ नैमिषं फल्गुनंसेतुः प्रभासोऽथकुशस्थली । वाराणसीमधुपुरीपम्पा बिन्दु

गियोंको यथा योग्यदान मानदेकर उनमें परब्रह्म भगवान का पूजनकरो और ऐसा जानो कि भगवान का प्रधान मुख ब्राह्मणहीका मुख है ॥ १८ ॥ धर्नाद्विजा को चाहियेकि अपनी शक्तिके अनुसार भाद्रमास के अर्थात् पूर्णिमान्त मासके हिसाब से आश्विनमास मे पिता, माता, तथा उनके भाई और दूसरे पक्षवालो का श्राद्ध करें ॥ १९ ॥ इसी भांति से दोनों अयन, दोनो विषुव, व्यतीपात, क्षयदिवस, चन्द्र सूर्य के ग्रहणकादिन, श्रावण द्वादशी ॥ २० ॥ अक्षयतृतीया, कार्तिकशुक्ला नवमी, अगहन पूष, माह फागुन की चार कृष्णाष्टमी ॥ २१ ॥ माघमहीनेकी शुक्लासप्तमी, मघानक्षत्र और मघानक्षत्रवाली पूर्णिमा तथा जिन २ नक्षत्रों से जिन २ मासों के नाम होते हैं वह सब नक्षत्र जब सम्पूर्ण चंद्रमा युक्तपूर्णमासी के अथवा कुछएक न्यून चंद्रमा युक्त अनुमति तिथि के साथ मिलें उस समय में, जब द्वादशी तिथि में अनुराधा, श्रवण, उत्तराफाल्गुणी, उत्तरा षाढा, व उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रका योग होवे अथवा इन पिछले शेषतीन नक्षत्रों में जब एकादशी होवे, उन्हीं २ दिन और जन्मनक्षत्र के अथवा श्रवणनक्षत्रके योग युक्त दिनमें श्राद्ध करना चाहिये । यहसबकाल केवल श्राद्धही में श्रेष्ठ हैं ऐसाभी नहीं है, यह मनुष्यों के पुण्यको बढाने वाले हैं अतएव इन्हीं सब समयो में यत्नपूर्वक श्रेष्ठ कामों को करना चाहिये । इनही सब समयों मे धर्म कर्म करने से परमआयुकी सफलता होती है ॥ २२–२४ ॥ इन समयों में स्नान, जप, होम, व्रत, देवता ब्राह्मणों की पूजा आदि जो श्रेष्ठकर्म कियेजाते हैं तथा पितृ, देव मनुष्य और दूसरे प्राणियों को जोकुछ दियाजाता है वह अक्षयहोता है ॥ २५ ॥ हेनृप! स्त्री, पुत्र कन्या तथा अपने संस्कारके समयसे, प्रेतके दाहादिकके समय तथा और दूसरे आभ्युदयिक कर्मोंमें श्रेष्ठकर्म करना चाहिये ॥ २६ ॥ अब जो २ देश धर्मादि कल्याण के साधनभूत हैं उन २ को कहता हूं;–सबभूतोंमें व्याप्त भगवानके स्वरूप सत्पात्र जहां वर्तमान हैं वही पवित्र देश है । जिस स्थान में तपस्या, विद्या, और दयायुक्त ब्राह्मणकुलवास करते हैं तथा जहां २ भगवान हरि की प्रतिमा देखी जाती हैं वेही सब देश श्रेष्ठ हैं । जहां पुराण विख्यात गंगादि नदी, पुष्करादिसरोवर, तथा सिद्धोंके आश्रयरूपक्षेत्र वर्तमान हैं, वही सब स्थान, तथा कुरुक्षेत्र, गया, प्रयाग, पुलह,आदि मुनियोंके आश्रम, नैमिषारण्य, फल्गुनदी, सेतुबन्ध, प्रभासतीर्थ, कुशस्थली, वाराणसी,

सरस्तथा ॥ ३१ ॥ नारायणाश्रमो नन्दा सीतारामाश्रमादयः । सर्वे कुलाचला राजन्महेन्द्रमलयादयः ॥ ३२ ॥ एते पुण्यतमा देशा हरेरर्चाश्रिताश्च ये । एतान्देशान्निषेवेत श्रेयस्कामो ह्यभीक्ष्णशः । धर्मो ह्यत्रेहितः पुंसां सहस्राधिफलोदयः ॥ ३३ ॥ हरिरेवैक उर्वीश यन्मयं वै चराचरम् । पात्रं त्वत्र निरुक्तं वै कविभिः पात्रवित्तमैः ३४ ॥ देवर्ष्यर्हत्सु वै सत्सु तत्र ब्रह्मात्मजादिषु । राजन्यदग्रपूजायां मतः पात्रतयाच्युतः ॥ ३५ ॥ जीवराशिभिराकीर्ण आण्डकोशाङ्घ्रिपो महान् । तन्मूलत्वादच्युतेज्या सर्वजीवात्मतर्पणम् ॥ ३६ ॥ पुराण्यनेन सृष्टानि नृतिर्यगृषिदेवताः । शेते जीवेन रूपेण पुरेषु पुरुषो ह्यसौ ॥ ३७॥ तेष्वेषु भगवान्राजंस्तारतम्येन वर्तते । तस्मात्पात्रं हि पुरुषो यावानात्मा यथेयते ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा तेषां मिथो नृणामवज्ञानात्मतां नृप । त्रेतादिषु हरेरर्चा क्रियायै कविभिः कृता ॥ ३९ ॥ ततोऽर्चायां हरिं केचित् संश्रद्धाय सपर्यया । उपासत उपास्तापि नार्थदा पुरुषद्विषाम् ॥ ४० ॥ पुरुषेष्वपि राजेन्द्र सुपात्रं ब्राह्मणं विदुः । तपसा विद्यया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेस्तनुम् ४१ ॥ नन्वस्य ब्राह्मणा राजन्कृष्णस्य जगदात्मनः । पुनन्तः पादरजसा त्रिलोकीं दैवतं महत् ॥ ४२ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०सप्त०चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

मधुपुरी, पम्पासरोवर, बिन्दुसरोवर, नारायणाश्रम, नन्दानदी सीताराम के आश्रमआदि के स्थान, महेन्द्रादि सब पर्वत और जिन २ स्थानों में भगवानकी प्रतिमा स्थित हैं वे देश परम पवित्र है जो मनुष्य सब प्रकार से कल्याणकी कामना रखते हैं वे सदैव इन स्थानों की सेवाकरते हैं क्यों कि इन स्थानोंमें कर्म करनेसे वे कर्म मनुष्य को सहस्रगुणा अधिक फल देते हैं ॥ २७ ॥ ॥ ३३ ॥ हे भूपते ! पात्र को पहिचाननेवालोंने चराचर रूपी भगवान कोही मुख्य पात्र माना है । ॥३४॥ हे राजन् ! इसही निमित्त तुम्हारे राजसूय यज्ञ में देवता, ऋषि, महात्मा, सिद्ध, मुनि और ब्रह्मनंदन आदि के उपस्थित होतेहुए भी भगवानही प्रथम पूजाके निमित्त सर्वोत्तम पात्र मानेगयेहैं ॥ ३५ ॥ भगवानही, इस ब्रह्मांड रूपी बडे वृक्षों के कि जो अनेक प्राणियों से व्याप्तहै मूल है अतएव उनकी पूजा से सब जीवों की और अपनी परम तृप्ति होती है ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! मनुष्य पशु, पक्षी, ऋषि और देवता आदिके पुर(शरीर) को भगवानहीने बनाया है और आप उन पुरोंमें जीव रूप से बिराजते हैं इसही हेतु वह पुरुष कहलाते हैं ॥३७॥ हे राजन् ! इन सब शरीरों में हरि न्यूनाधिक्य(अर्थात् पहिले२से पक्षीआदि पीछे२में मनुष्य आदि)भावसे बिराजते हैं अतएव मनुष्यही सुपात्र हैं उनमें से जिनका ज्ञान अधिक है वेही श्रेष्ठ पात्र हैं ॥ ३८ ॥ हे नृप ! मनुष्यों में परस्पर अवज्ञा को देखकर पण्डितों नें त्रेता युगमें पूजा के निमित प्रतिमा की स्थापना की ॥ ३९ ॥ उसी समय से कितनेही मनुष्य श्रद्धा युक्त भगवानकी प्रतिमाकी अर्चना (पूजा) करतेआते हैं परन्तु मनुष्योंके द्वेषी होनें से प्रतिमा पूजन परभी उनको इष्टफल नहीं प्राप्त होता किसी मनुष्य से द्वेष न करनेपर मूर्तिकी उपासना कीजायतो वह प्रतिमा मन्दभागी पुरुषकाभी पुरुषार्थ सिद्धकरदेतीहै॥४०॥ हे राजेन्द्र ! मनुष्यों में भी जो ब्राह्मण तपस्या, विद्या, तथा संतुष्टता द्वारा भगवान हरि की मूर्ति धारण करते हैं पंडितोंके मतानुसार वेही श्रेष्ठ पुरुष हैं ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! चरण रज द्वारा त्रिलोकी को पवित्र करनेंवाले ब्राह्मणही जगदात्मा कृष्णजी केभी परम देवता हैं ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भ० महा० सप्तमस्कंधे सरला भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

नारद उवाच ॥ कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठा नृपापरे । स्वाध्यायेऽन्ये प्रवचनेयेकेचिज्ज्ञानयोगयोः ॥ १ ॥ ज्ञाननिष्ठाय देयानि कव्यान्यानन्त्यमिच्छता । दैवेचतदभावेस्यादितरेभ्यो यथाऽर्हतः ॥ २ ॥ द्वौदैवेपितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्रवा । भोजयेत्सुसमृद्धोपि श्राद्धेकुर्यान्नविस्तरम् ॥ ३ ॥ देशकालोचितश्रद्धा द्रव्यपात्रार्हणानिच । सम्यग्भवन्तिनैतानि विस्तरात्स्वजनार्पणात् ॥ ४ ॥ देशेकालेचसंप्राप्ते मुन्यन्नंहरिदैवतम् । श्रद्धयाविधिवत्पात्रे न्यस्तंकामधुगक्षयम् ॥ ५ ॥ देवर्षिपितृभूतेभ्य आत्मनेस्वजनायच । अन्नंसंविभजन्पश्येत्सर्वंतत्पुरुषात्मकम् ॥ ६ ॥ नचाद्यादामिषं श्राद्धेन चाद्याद्धर्मतत्त्ववित् । मुन्यन्नैःस्यात्पराप्रीतिर्यथा नपशुहिंसया ॥ ७ ॥ नैतादृशःपरोधर्मो नृणांसद्धर्ममिच्छताम् । न्यासोदण्डस्यभूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः ॥ ८ ॥ एकेकर्ममयान्यज्ञाञ्ज्ञानिनोयज्ञवित्तमाः । आत्मसंयमनेऽनीहाजुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ ९ ॥ द्रव्ययज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्ट्वाभूतानिबिभ्यति । एषमाऽकरुणोहन्यादतज्ज्ञोह्यसुतृब्ध्रुवम् ॥ १० ॥ तस्माद्दैवोपपन्नेन मुन्यन्नेनापिधर्मवित् । संतुष्टोऽहरहःकुर्यान्नित्यनैमित्तिकीःक्रियाः ॥ ११ ॥ विधर्मःपरधर्मश्च आभासउपमाछलः । अधर्मशाखाःपंचेमा धर्मज्ञोऽधर्मवत्त्यजेत् ॥ १२ ॥ धर्मबाधो विधर्मःस्यात्परधर्मोऽन्यचोदितः । उपधर्मस्तु पाखण्डो दम्भोवाशब्दभिच्छलः ॥ १३ ॥ यस्त्विच्छया

नारदजी बोले कि–हे राजन् ! ब्राह्मणोंमे कोई२ कर्मनिष्ठ, कितनेही तपोनिष्ठ, कितनेही स्वाध्यायनिष्ठ, कितने ही व्याख्यान निष्ठ, और कितनेही ज्ञान तथा योग निष्ठ हैं ॥ १ ॥ परतु जो मनुष्य दान के अनंत फल की इच्छा करें वह ज्ञान निष्ठ ब्राह्मणको भोजन करावे यदि ऐसा ब्राह्मण न मिलै तो ज्ञान की न्यूनाधिकता के अनुसार–दूसरे मनुष्योंको भी भोजन दान करें ॥ २ ॥ श्राद्धमे देव पक्षसे दो और पित्र पक्षसे तीन अथवा दोनो स्थलों में एक २ ब्राह्मण का भोजन करावे । आप समृद्धि शाली होकर भी श्राद्ध में बहुत ब्राह्मणों को भोजन न करावे ॥ ३ ॥ हे राजन् ! स्वजनों के अनुरोध से बहुत ब्राह्मणों का निमन्त्रण करके श्राद्ध करने से देश काल के अनुसार श्रद्धा, द्रव्य, पात्र तथा पूजा–यह सब प्रायः भली भांति से नहीं होसकते ॥ ४ ॥ उचित देश–काल में प्राप्त हुये वन्य–नीवारादि (वन में उत्पन्न हुये पदार्थ) अथवा धर्मसे उत्पन्न किये हुये अन्नको भगवानके अर्थ निवेदनकर श्रद्धापूर्वक विधिवत् सत्पात्र को दियाजाय तो वह अक्षय और इच्छित फलका देनेवाला होताहै ॥ ५ ॥ हे राजन् ! देवता, ऋषि, पितर, सब प्राणी तथा आत्मा और आत्मीयजनों को यथोचित अन्न बांट करदेवे और उनसबको ईश्वरकी समान देखे ॥ ६ ॥ हेनृप ! श्राद्धमें मांस न देवे तथा धर्मका, तत्त्व जाननेवाले मनुष्यको उसकाखानाभी योग्यनहीं है । क्योंकि अन्नादि से पितर जैसे तृप्त होते हैं वैसे पशुहिंसा से नहीं होते ॥ ७ ॥ मन, वचन और काय से किसी प्राणीकी हिंसानकरना इसकी समान उत्तमधर्म चाहनेवाले मनुष्यों का और कोई परमधर्मही नहीं है ॥ ८ ॥ इसी कारण यज्ञके जाननेवालों में श्रेष्ठ, ज्ञानी मनुष्य, ज्ञान से प्रकाशित आत्म संयमनकी अग्नि में कर्ममययज्ञों को होम देते हैं ॥ ९ ॥ हेराजन् ! जो मनुष्य यज्ञकी सामाग्रियों द्वारायज्ञकरता है उसको देखकर सबजी भयपाते हैं । वे जानते हैं कि यह मनुष्यआत्म तत्त्व को नहीं जानता केवल अपने प्राणहीका तृप्तकरने वाला है अतएव इसको दयानहीं है; यह निश्चयही हमको मारेगा ॥ १० ॥ इस कारण दैवसे प्राप्तहुये अन्नादिद्वारा संतुष्टहोकर प्रतिदिन अपनी नित्य नैमित्तिक क्रियायें करतारहे ॥ ११ ॥ हेराजन् ! धर्मवेत्तामनुष्य विधर्म, परधर्म, धर्माभास, उपधर्म तथा छलधर्म–इन पांच अधर्मकी शाखाओंको अधर्मकीसमानत्यागदेवे ॥ १२ ॥ हे महाराज ! विधर्मादिका अर्थ यह है कि धर्मको जानकरभी अपने धर्म में बाधा डाले उसका नाम विधर्म है, जो धर्म दूसरेका है वह परधर्म है, पाखण्डके आचार अथवा दम्भका नाम उपधर्म है; जोधर्म ढोंग

कृतःपुंभिराभासो ह्याश्रमात्पृथक् । स्वभावविहितोधर्मः कस्यनेष्टःप्रशान्तये ॥ १४ ॥ धर्मार्थमपिनेहेतयात्राऽर्थंवाऽधनोधनम् । अनीहानीहमानस्यमहाहेरिव वृत्तिदा ॥ १५ ॥ संतुष्टस्यनिरीहस्यस्वात्मारामस्ययत्सुखम् । कुतस्तत्कामलोभे नधावतोर्थेहयादिशः ॥ १६ ॥ सदासंतुष्टमनसः सर्वाः शिवमयादिशः । शर्करा कण्टकादिभ्योयथोपानत्पदः शिवम् ॥ १७ ॥ संतुष्टः केनवाराजन्नवर्तेतापिवारि णा । औपस्थ्यजैह्व्यकार्पण्याद्गृहपालायतेजनः ॥१८॥ असंतुष्टस्यविप्रस्यतेजो विद्यातपोयशः । स्रवन्तीन्द्रियलौल्येनज्ञानंचैवावकीर्यते ॥ १९ ॥ कामस्यान्तंच क्षुत्तृड्भ्यांक्रोधस्यैतत्फलोदयात् । जनोयातिनलोभस्य जित्वा भुक्त्वादिशोभुवः ॥ २० ॥ पण्डिताबहवोराजन्बहुज्ञाः संशयच्छिदः । सदसस्पतयोऽप्येकेअसंतोषा त्पतन्त्यधः ॥ २१ ॥ असंकल्पाज्जयेत्कामंक्रोधंकामविवर्जनात् । अर्थानर्थेक्षयालो भंभयं तत्त्वावमर्शनात् ॥ २२ ॥ आन्वीक्षिक्याशोकमोहौदम्भं महदुपासया । यो गान्तरायान् मौनेनाहिंसांकायाद्यनीहया ॥ २३ ॥ कृपयाभूतजंदुःखंदैवंजह्यात्समा धिना । आत्मजंयोगवीर्येणनिद्रांसत्त्वनिषेवया ॥ २४ ॥ रजस्तमश्चसत्त्वेनसत्त्वंचो पशमेनच । एतत्सर्वंगुरौभक्त्यापुरुषोह्यञ्जसाजयेत् ॥ २५ ॥ यस्यसाक्षाद्भगव

हुआ अथवा धर्म शास्त्र के वाक्यों का विपरीत अर्थ करके मानाजाय उसका नाम छलधर्म है।१३। सेभरा मनुष्य अपनी इच्छानुसार जिसधर्मका अनुष्ठान करताहै वही धर्माभासहै। हेराजन्! स्वाभा- वानुसारधर्म किसी मनुष्यको भी शांति नहीं देसकता ॥१४॥ अतएव अपनेधर्मका अनुष्ठानकरता हुआ धर्म बढ़ाने के निमित्तभी परधर्मका आचरणनहीं करनाचाहिये। निर्धनमनुष्यधर्मके अथवा देह निर्वाह के निमित्तधनकी इच्छा न करे; जो मनुष्यधनकी कामनासे रहित हैं उनकी निश्चेष्टताही अजगर की समानजीविका देती है ॥ १५ ॥ वास्तवमें सन्तुष्ट आत्माराम मनुष्यके निश्चेष्टरहनेपर उसके अन्तःकरणमें जो सुखहोता है, कामके लोभकी कामनाकर इधर उधर दौडते हुये मनुष्यको वह सुख नहीं प्राप्त होता ॥ १६ ॥ जैसे जूता पहिननेवाले को रती व कांटे आदि से विघ्न नहीं होता तैसेही महासन्तोषी मनुष्यको सबही ओरसे कल्याण रहता है ॥ १७ ॥ हेराजन्! संतुष्ट जलपी- करभी जीवनधारण करसकता है परन्तु इंद्रियोंके वशीभूत हुआ मनुष्य कुत्ते की समान ललचाता- हुआ इधर उधर घूमाकरता है ॥ १८ ॥ इन्द्रियों के चपल होनेके कारण असंतुष्ट ब्राह्मणका तेज विद्या, तप, यश, तथा ज्ञान सबही नष्टहोजाते हैं ॥ १९ ॥ क्षुधा और तृष्णाद्वारा मनुष्यकाम का अतपा सकता है और हिंसा करके क्रोधकाभी अतपा सकता है परंतु सब दिशाओं को जीतकर और समस्त पृथ्वीका भोग करके भी कोई मनुष्य लोभका अंत नहीं पासकता ॥ २० ॥ हेमहाराज! बहुत जाननेवाले तथा संशयके दूरकरने वाले पण्डित लोग सभापति होकरभी असंतोष के कारण नरकमें गिरते हैं ॥ २१ ॥ संकल्पोंको छोड़कर कामनाको जीते, कामनाका बिसर्जनकर क्रोधका निवारणकरे, धनमें अनर्थको देखकर लोभको जीते; तत्वके खोजद्वारा भयको पराजयकरे ॥ २२ ॥ आत्मा अनात्माके विचारद्वारा शोक मोहको छोड़े, महात्मा पुरुषोंकी सेवाद्वारा पाखण्ड आदिको, मौनव्रत धारणकर योगके विघ्नरूप मिथ्या वार्तालापको,त्याग दे,तथा कामनादि विषयोंकी इच्छाको छोड़कर हिंसाको जीतनाचाहिये॥ २३॥जिन प्राणियों से भयआदिकी सभावनाहोवे उनके हितका कार्य्यकर उनसे उत्पन्नहुए दुःखको भूलजावे; दैवकृत दुःखोंको समाधिसे और देहज दुःखोंको योगबलके प्रभाव से जीते तथा निद्रा को सत्वगुणकी सेवाद्वारा दूरकरे ॥ २४ ॥ उस सत्वगुणद्वारा रज और तमोगुणको जीते फिर उस सत्वको उपशमद्वारा जीते। हे राजन्! गुरुमें भक्ति रखनेसे मनुष्य इनसबोंको भलीभांति

तिज्ञानदीपप्रदेगुरौ। मर्त्यासद्धीः श्रुतंतस्यसर्वंकुञ्जरशौचवत ॥ २६ ॥ एषवैभग
वान्साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः। योगेश्वरैर्विमृग्यांघ्रिर्लोकोयंमन्यतेनरम् ॥ २७ ॥ ष
ड्वर्गसंयमैकान्ताः सर्वानियमचोदनाः। तदन्तायदिनोयोगानावहेयुः श्रमावहाः
॥ २८ ॥ यथावार्त्तादयोह्यर्थायोगस्यार्थंनबिभ्रति। अनर्थायभवेयुस्तेपूर्त्तमिष्टंतथा
सतः ॥ २९ ॥ यश्चित्तविजयेयत्तः स्यान्निःसङ्गोऽपरिग्रहः। एकोविविक्तशरणो
भिक्षुर्भैक्षमिताशनः ॥ ३० ॥ देशेशुचौसमेराजन्संस्थाप्यासनमात्मनः। स्थिरं
समं सुखंतस्मिन्नासीतर्ज्वङ्गओमिति ॥ ३१ ॥ प्राणापानौसन्निरुन्ध्यात्पूरकुम्भ
करेचकैः। यावन्मनस्त्यजेत्कामान्स्वनासाग्रनिरीक्षणः ॥ ३२ ॥ यतोयतोनिःसर
तिमनः कामहतंभ्रमत्। ततस्ततउपाहृत्यहृदिरुन्ध्याच्छनैर्बुधः ॥ ३३ ॥ एवमभ्यस
तश्चित्तंकालेनाल्पीयसायतेः। अनिशंतस्यनिर्वाणंयात्यनिन्धनवह्निवत् ॥ ३४ ॥
कामादिभिरनाविद्धंप्रशान्ताखिलवृत्तियत्। चित्तंब्रह्मसुखस्पृष्टंनैवोत्तिष्ठेतकर्हि
चित् ॥ ३५ ॥ यः प्रव्रज्यगृहात्पूर्वंत्रिवर्गावपनात्पुनः। यदिसेवेततान्भिक्षुः सवै
वान्ताश्यपत्रपः ॥ ३६ ॥ यैः स्वदेहः स्मृतोनात्मामर्त्योविट्कृमिभस्मसात्। तए
नमात्मसात्कृत्वाश्लाघयन्तिह्यसत्तमाः ॥ ३७ ॥ गृहस्थस्यक्रियात्यागोव्रतत्यागो

जीतसकताहै ॥ २५ ॥ ज्ञान देनेवाला गुरुसाक्षात भगवानकी समानहोताहै। जो मनुष्य उनको मनुष्य जानताहै उसके पक्षमें सबशास्त्रोंका सुनना हाथीके स्नानकी समान निरर्थक होताहै॥२६॥हे युधिष्ठिर! गुरु साक्षात भगवान श्रीकृष्णजीके स्वरूप तथा प्रकृतिपुरुष के ईश्वर हैं, योगेश्वर भी इन्हीं गुरुके चरणोंकी सेवा करते हैं; जो मनुष्य इनको मनुष्य कहकर जानता है वह उसकाभ्रम है ॥ २७ ॥ हे राजन्! कूआ बावड़ी आदि बनवाना जितनी विधियें हैं। उन सबका अभिप्राय केवल इन्द्रियोंका दमन करनाही है परन्तु इन सब विधियोंके होतेहुएभी यदि योगसाधन न होसके तो वे सब केवल श्रमही देनेवाली हैं ॥ २८ ॥ जैसे खेती आदिके विषय, योगफल (मोक्ष) का साधन नहीं हैं,—वरन संसारके करनेवाले हैं तैसेही असत्, बहिर्मुख, प्रवृत्ति मार्ग में लगेहुए मनुष्य के कूआ बावड़ी आदि बनवानाभी योग फल (मोक्ष) के साधन नहीं होसकते, वरन संसार के प्रवर्तक होते हैं ॥ २९ ॥ चित्त जयके उद्योगमें लगाहुआ मनुष्य घर आदिको छोड़ निःसंगहो संन्यास धारण करे और अकेले एकान्तमें वासकर भिक्षासे प्राप्तहुए द्रव्यका आहार करतारहे३०॥ समभूमि पर स्थितहोना उचित है, पवित्र भूमिमें अपना आसनकर, सरलभावसे (जिससे कष्ट न होवे इसभांति बैठकर) प्रणवका उच्चारण करे ॥ ३१ ॥ पूरक, रेचक और कुम्भकद्वारा प्राण और अपानवायुको रोकरक्खे, तथा अपनीनाकके अग्रभाग में दृष्टि स्थिरकर मनसे कामनाओंका परित्याग करे ॥ ३२ ॥ कामनाओंसे भ्रष्टहुआ मन जिस२ स्थान (विषय) की ओर जावे उस २ स्थानसे उसको धारणकर क्रमशः हृदय में निरुद्ध कररक्खे॥३३॥हे राजन्! जो सदा इसीप्रकार से अभ्यासकरते हैं, थोड़ेही कालमें उनमनुष्योंका चित्त काष्ठहीन अग्निके समान निर्वाण पदको अर्थात् शान्ति को प्राप्त होजाता है ॥ ३४ ॥ कामादिकों से क्षुभित न होताहुआ और सब वृत्तियें जिसकी शांतहोगईहैं ऐसाचित्त ब्रह्मसुखके स्पर्शहोनेके कारण फिर पीछेकोकभी नहीं लौटता॥३५॥ परन्तु जो गृहस्थाश्रम धर्मादि त्रिवर्गका आश्रय है उस गृहस्थाश्रमको छोड़कर यदिकोई मनुष्य फिर उसकी सेवाकरेतो उसको वमन कियेहुयेका खानेवाला और निर्लज्ज जानना चाहिये ॥३६॥ इसभांति मनमें न विचारना कि संन्यास करके फिर गृहस्थाश्रम में आना असंभव है। जोमनुष्य अपनी देहको अनात्मा और नाशवान विचारकर उसको विष्ठाकीडा व भस्मरूप जानता है, वह अत्यन्त

बटोरपि । तपस्विनोग्रामसेवाभिक्षोरिन्द्रियलौल्यता ॥ ३८ ॥ आश्रमापसदाह्येते
खल्वाश्रमविडम्बकाः । देवमायाविमूढांस्तानुपेक्षेताऽनुकम्पया ॥ ३९ ॥ आत्मानं
चेद्विजानीयात्परंज्ञानधुताशयः । किमिच्छन्कस्यवा हेतोर्देहंपुष्णातिलम्पटः ॥ ४० ॥
आहुः शरीरंरथमिन्द्रियाणिहयानभीषून्मन इन्द्रियेशम् । वर्त्मानिमात्राधिषणांच
सूतं सत्त्वंबृहद्बन्धुरमीशसृष्टम् ॥ ४१ ॥ अक्षंदशप्राणमधर्मधर्मौ चक्रेऽभिमानंरथि
नंचजीवम् । धनुर्हितस्यप्रणवंपठन्तिशरंतुजीवंपरमेवलक्ष्यम् ४२ ॥ रागोद्वेषश्चलो
भश्चशोकमोहौभयंमदः । मानोऽवमानोऽसूयाचमाया हिंसाचमत्सरः ४३ रजःप्रमा
दःक्षुन्निद्राशत्रवस्त्वेवमादयः । रजस्तमःप्रकृतयःसत्त्वप्रकृतयःक्वचित् ४४ यावन्नृका
यरथमात्मवशोपकल्पंधत्तेगरिष्ठचरणार्चनयानिशातम्ज्ञानासिमच्युतबलोदधदस्त
शत्रुःस्वाराज्यतुष्टउपशांतइदंबिजह्यात् ४५ नोचेत्प्रमत्तमसदिन्द्रियवाजिसूतानीत्वो
त्पथंविषयदस्युषुनिक्षिपन्ति । तेदस्यवःसहयसूतममुं तमोऽन्धे संसारकूपउरुमृत्यु-
भयेक्षिपन्ति ४६ प्रवृत्तंचनिवृत्तंचद्विविधंकर्मवैदिकम् । आवर्ततेप्रवृत्तेननिवृत्तेनाश्नु
तेऽमृतम् ॥ ४७ ॥ हिंस्रंद्रव्यमयं काम्यमग्निहोत्राद्यशान्तिदम् । दर्शश्चपूर्णमासश्च
चातुर्मास्यंपशुःसुतः ॥ ४८ ॥ एतदिष्टंप्रवृत्ताख्य हुतंप्रहुतमेवच । पूर्तं सुरालयारा

असाधू है ॥ ३७ ॥ फिर इस देहको आत्मा बिचारकर श्लाघा करता रहता है हे राजन्! गृहस्थी मनुष्यको क्रिया छोड़ना, ब्रह्मचारीको व्रतका छोडना, तपस्वीको गांवमें बसना और भिक्षुक को इन्द्रियों की चपलता—यह केवल ढोंगही मात्र हैं ॥ ३८ ॥ यह सब आश्रमों में नीच और अधम आश्रमोंका अनुकरण करने वाले हैं—भगवान की मायासे मोहित इनलोगों पर अनुकंपा रखकर तुमको इनकी उपेक्षा करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ जोमनुष्य परब्रह्मको जानते हैं ज्ञानद्वारा उनकी सब कामनाए दूरहोजाती हैं, फिरवे किस अभिलापा से तथा किसके कारण लोलुप होकर देहका पोषण करे ॥ ४० ॥ पण्डितलोग इस शरीरको रथ, इन्द्रियोंको अश्व, मनको बलगा (वाग) शब्दादि विषयोंको पहुचने के देशरूप, बुद्धिको सारथी, तथा चित्तको रथका बधन रूप मानते हैं ॥ ४१ ॥ ऐसेही प्राण, समान, अपान, व्यान, उदान यह पांच, तथा नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनजय यह पांच—यह दश प्रकारके प्राण उसरथ के धुरे हैं धर्म और अधर्म उसके पहिये; तथा अहंकार समेत वर्तमान जीवरथीरूपसे वर्णितहुआहै, प्रणव उसरथीका धनुष है—शुद्धजीव उसकाशर, तथा परब्रह्म उसका लक्ष्य है ॥ ४२ ॥ हे राजन्! राग, द्वेष, लोभ मोह, शोक, भय, मद, मान अपमान, असूया, माया, हिंसा, मत्सरता, ॥ ४३ ॥ अभिनिवेश, अनवधानता, क्षुधा, निद्रा, यह सब तथा इसही भाति के और दूसरे विषय भी जीवके शत्रु हैं। उसका कभीरज और तमःस्वभाव होता है, कभी उस की सत्व प्रकृति होती है। परन्तु सत्व प्रकृति होने परभी समाधियुक्त सन्यासी के पक्षमें परोपकारादि प्रवृत्तिशत्रु स्वरूप हैं, अतएव इन सबका जीतना अत्यावश्यक है ॥ ४४ ॥ जबतक इस मनुष्य देहरूप रथके इन्द्रिय आदिघोडे स्वतंत्ररहैं तबतक गुरुचरणों की सेवाके प्रभाव से तीव्रज्ञान रूप खड्गसे शत्रुओंका नाशकर, शांत और आत्मानद से संतुष्टरह परमात्माका आश्रयले उस रथादि की उपेक्षा करनी चाहिये ॥ ४५ ॥ नहींतो इन्द्रिय रूप अश्व और सारथी उस प्रमत्त मनुष्यको कुमार्ग में चलाकर विषय नामक—प्रचंड चोरोंकी सभामें डालदेते हैं। इसके उपरांत वेचोर अश्व और सारथी समेत उस मनुष्यको मृत्युके महाभयानक अधकूप में डालदेते हैं ॥ ४६ ॥ प्रवृत्त और निवृत्त यहीदो प्रकार के वेदोक्त कर्म हैं। प्रवृत्त कर्मद्वारा संसार में आवागमन रहता है, परन्तु निवृत्त कर्मों से मुक्तिप्राप्त होजाती है ॥ ४७ ॥ हे राजन्! हिंसावाले श्येनयागादि अग्निहोत्र, दर्श पूर्णमास, चातुर्मास्य, पशुयाग, सोमयागा ॥ ४८ ॥ वैश्वदेव, और बलिदान आदिक कर्म किजो

मकृपाजीव्यादिलक्षणम् ॥ ४९ ॥ द्रव्यसूक्ष्मविपाकश्च धूमोरात्रिरपक्षयः । अयनं दक्षिणंसोमो दर्शओषधिवीरुधः ॥ ५० ॥ अन्नंरेतइतिक्ष्मेश पितृयानंपुनर्भवः । ए कैकश्येनानुपूर्वं भूत्वाभूत्वेहजायते ॥५१॥ निषेकादिश्मशानान्तैः संस्कारैः संस्कृतोद्विजः । इन्द्रियेषुक्रियायज्ञान्ज्ञानदीपेषु जुह्वति ॥ ५२ ॥ इन्द्रियाणि मनस्यूर्मौ वाचिवैकारिकंमनः । वाचंवर्णसमाम्नाये तमोंकारेस्वरेन्यसेत् ॥५३॥ ओंकारंबिन्दौ नादेतंतन्तुप्राणेमहत्यमुम् । अग्निःसूर्योदिवाप्राह्णः शुक्लोराकोत्तरंस्वराट् । विश्वश्चतैजसः प्राज्ञस्तुर्यआत्मासमन्वयात् ॥ ५४ ॥ देवयानमिदंप्राहुर्भूत्वा भूत्वाऽनुपूर्वशः । आत्मयाज्युपशान्तात्मा ह्यात्मस्थोननिवर्तते ॥ ५५ ॥ यएतेपितृदेवाना मयनेवेदनिर्मिते । शास्त्रेणचक्षुषावेद जनस्थोपिनमुह्यति ॥ ५६ ॥ आदावन्तेजना नांसद्बहिरन्तःपरावरम् । ज्ञानंज्ञेयंवचोवाच्यं तमोज्योतिस्त्वयंस्वयम् ॥ ५७ ॥ आबाधितोऽपिह्याभासो यथावस्तुतयास्मृतः दुर्घटत्वादैन्द्रियकं तद्वदर्थविकल्पि तम् ॥ ५८ ॥ क्षित्यादीनामिहार्थानां छायानकतमापिहि । नसंघातोविकारोपि नपृ

पदार्थों के उपयोग करने से होते हैं, यह इष्टकर्म कहाते हैं और देवालय, उपवन, कूप तथा पौसरे का निर्माण करना इत्यादि कर्मोंका नाम पूर्त्त है । तथा यहीकर्म सकाम और अत्यन्त आशक्तिके साथ कियेजांय तो प्रवृत्त कहेजाते हैं॥४९॥हेभूपते! प्रवृत्त कर्मकरनेवालामनुष्य चरु और पुरोडाश आदि के सूक्ष्म भागसे बनेहुए शरीरको धारणकर क्रमानुसार धूमके देवता, रात्रि के देवता, कृष्ण पक्षके देवता, दक्षिणायन के देवता, के समीप होताहुआ चन्द्र लोक को जाताहै वहां वह अपनें भोग कालतक रहकर फिर वृष्टि द्वारा ओषधि लता, और शुक्ररूप से बदलकर फिर पृथ्वीपर जन्म ग्रहण करताहै इसकानाम पितृयानहै॥५०।५१॥गर्भाधान से मरणतक जिसके संस्कार हुएहों वें ऐसे ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य इसप्रवृत्तकर्म करनेके अधिकारी हैं । परन्तु हेराजन् ! निवृत्त मार्ग का अवलंबन करनेवाला मनुष्य यज्ञादिको इन्द्रियोंमें,इन्द्रियोंको मनमें, मनको वाक्यमें,वाक्यको वर्ण समूहमें, वर्ण समूह को अ,उ,म युक्त ओंकारमें,ओंकारको विंदुमें, विंदुको नादमें,नादको प्राण वायुमें तथा प्राण वायुको ब्रह्ममें लीनकरे । इसभांति निवृत्तकर्मोंमें लगाहुआ मनुष्य यथाक्रमसे अग्नि,सूर्य,दिवस,पूर्वाह्न, शुक्लपक्ष, पूर्णिमा, और उत्तरायण इन सबके अभिमानी देवताओं के समीप होताहुआ ब्रह्माजी के निकटजाता है। इसभांति से ब्रह्मलोक कोप्राप्त हुआ मनुष्य वहां भोग भोगने के पीछे वह स्थूलोपाधि होता है तदनंतर वह स्थूलको सूक्ष्म में लय करके सूक्ष्मोपाधि वाला तैजस होता है, फिर सूक्ष्मोपाधिको कारणोपाधि में लयकरता है; तदनंतर कारणोपाधिका साक्षी स्वरूप में लीनकर तुरीय अवस्थाको प्राप्तहोता है फिरवह अंतमें साक्षि स्वरूपको लयकर शुद्धब्रह्म होजाता है ॥ ५२॥५४ ॥ हे राजन्! इस मार्गको पण्डित लोग देवयान कहते हैं, प्रवृत्त कर्मचारी मनुष्य जैसे क्रमशः पूर्वोक्त लोकोंमें प्राप्तहोते और फिर वहांसे लौटते हैं, आत्माका यजन करनेवाला शांतात्मा मनुष्य इस भांतिसे फिर नहीं लौटता ॥ ५५ ॥ पितृयान और देवयान इन दोनामों से मार्ग कल्पित है, जो मनुष्य इन मार्गोंको शास्त्रके नेत्रोंद्वारा देखते हैं, वे देहमें रहने परभी मोहित नहीं होते ॥ ५६ ॥ क्योंकि जोइस देहके आदिमें कारण रूपसे और अंतमें सीमा रूपसे वर्तमान हैं जोस्वयंही भोग्य और भोक्ता, ऊंच और नीच, तथा अप्रकाश और प्रकाश स्वरूप हैं वही यह जीव है ॥ ५७ ॥ हे राजन् ! जैसे प्रतिविंब आदि युक्ति विरुद्ध होने के कारण सर्वतो भावसे बाधित होने परभी पदार्थ कहाजाता है तैसेही इन्द्रिय समूहात्मक देह अर्थ रूप से कल्पित होने परभी योग्य तर्कना के सामने सिद्धनहीं ठहरता अर्थात यह मिथ्या है ॥ ५८ ॥ पृथ्वीआदि पंचभूतों की छाया देहा-

प्रकृत्याऽन्वितोमृषा॥५९॥धातवोऽवयवित्वाच्च तन्मात्रावयवैर्विना। नस्युर्ह्यसत्यव
यविन्यसन्नवयवोऽन्ततः॥ ६० ॥स्यात्सादृश्यभ्रमस्तावद्विकल्पेसतिवस्तुनः। जा
ग्रत्स्वापौयथास्वप्ने तथाविधिनिषेधता ॥६१ ॥ भावाद्वैतंक्रियाद्वैतं द्रव्याद्वैतंतथा
त्मनः। वर्तयन्स्वानुभूत्येह त्रीन्स्वप्नान्धुनुतेमुनिः ॥ ६२ ॥ कार्यकारणवस्त्वैक्य
मर्शनंपटतन्तुवत्। अवस्तुत्वाद्विकल्पस्य भावाद्वैतंतदुच्यते॥ ६३ ॥ यद्ब्रह्मणि
परेसाक्षात्सर्वकर्मसमर्पणम्। मनोवाक्तनुभिःपार्थ क्रियाद्वैतंतदुच्यते ॥ ६४ ॥ आ
त्मजायासुतादीनामन्येषांसर्वदेहिनाम्। यत्स्वार्थकामयोरैक्यं द्रव्याद्वैतंतदुच्य
ते ॥ ६५ ॥ यद्यस्यवानिषिद्धं स्याद्येनयत्रयतोनृप। सतेनेहेतकर्माणि नरोनान्यैरना
पदि ॥ ६६ ॥ एतैरन्यैश्चवेदोक्तैर्वर्तमानःस्वकर्मभिः। गृहेऽप्यस्यगतिं यायाद्राजं
स्तद्भक्तिभाङ्नरः॥६७॥यथाहियूयंनृपदेवदुस्त्यजादापद्गणादुत्तरतात्मनःप्रभोः
यत्पादपंकेरुहसेवया भवानहारषीन्निर्जितदिग्गजःक्रतून् ॥ ६८ ॥ अहंपुराऽभवंक
श्चिद्गन्धर्वउपबर्हणः। नाम्नाऽतीतेमहाकल्पे गन्धर्वाणांसुसंमतः ॥ ६९ ॥ रूपपे
शलमाधुर्य सौगन्ध्यप्रियदर्शनः। स्त्रीणांप्रियतमोनित्यं मत्तस्तुपुरलम्पटः ७० ॥

दिकपदार्थ पंचमहाभूतका संघात, कार्य व परिमाण में से किसी प्रकारकानहीं ठहरता। क्योंकि उसके अवयवों से अत्यन्त पृथक्नहीं है तथा किसीसे मिलाभी नहीं रहता, अतएव इसको मिथ्या पदार्थही जानना चाहिये ॥ ५९ ॥ हे राजन्! जैसे देहादि मिथ्या हैं वैसेही सबके हेतु स्वरूप पृथिव्यादिभी मिथ्या हैं, क्योंकि सब महाभूत अंगवाले हैं अतएव सूक्ष्म अवयवोंके व्यतिरेक से वे सबनहीं होसकते परन्तु अवयवी के असत्होने से अवयवभी असत् कहेजासकते हैं। अविद्याके विकल्प रहने से पहिले २ आरोपकी समान यह वही है इसप्रकारका भ्रमहोसकता है और जब तक यह अविद्या नष्टनहीं होती तबतक यह भ्रम रहताहै। जिसभांति स्वप्नमें कभी २ जागने और सोनेका स्वप्न होता है शास्त्रमें कहेहुए विधि निषेध भी उसीभांति हैं ॥ ६०—६१ ॥ अतएव मननशील योगी भावना, क्रिया और द्रव्यके द्वैतभाव को विचारकर आत्मतत्वके अनुभवद्वारा जाग्रत आदि तीनों अवस्थाओं का निवारण करता रहता है वास्तवमें भेदनहीं है ॥ ६२ ॥ इसही कारण वस्त्र और सूतकी समान सबकार्य और कारण को एकवस्तु रूपसे देखकर भावना को 'भावना का अद्वैत कहे ॥ ६३ ॥ और मन, वाक्य तथा कायद्वारा साक्षात्भगवान में सबकर्मों को अर्पणकरदेवे हे राजन्! इसकानाम क्रिया द्वैत है ॥ ६४ ॥ आत्मा, पुत्र, स्त्री तथा दूसरेसब प्राणियों की देहका अभेद देखकर अर्थ और कामकी ऐक्यता देखना, इसकानाम द्रव्याद्वैत है ॥ ॥ ६५ ॥ हे राजन्! जिसमनुष्यको जिसद्रव्य, जिसउपाय, जिसस्थानको जिससे लेने का शास्त्र में निषेध नहीं है आपत्काल उपस्थित न होनेपर वह उसद्रव्य द्वाराहीकार्यकरे। दूसरे प्रकारके द्रव्य से कार्यकरनेकी इच्छा न करे ॥ ६६ ॥ इन सब तथा वेदानुसार कर्म करताहुआ मनुष्यघर में रहकरभी भगवानकी गतिको प्राप्त तथा भक्तहो सकता है ॥ ६७ ॥ हेनरदेव! तुमजैसे भगवानकी श्रीकृष्णजीकी सहायता से बड़े २ कठिन दुःखोंसे पारहुये हो और उनके चरणकमलों की सेवासे तुमने दिशाओंको जीतकर बड़े२ यज्ञकियेहैं वैसेही इन आत्मस्वरूप नारायणकाआश्रय करके इस संसारसे पारहोगे हेराजन्! महात्माओंका निरादरकरने से श्रीकृष्णजीकी भक्तिकानाश होता है और उनकी सेवा करनसे मनुष्य सिद्धहोजाता है ॥ ६८ ॥ मेरा पहिलेका वृत्तांत सुनो, उसीसे इस विषयका प्रमाणपाओगे। पहिले समयके बीतहुये कल्पमें मैं उपबर्हणनाम गन्धर्वथा, सब गन्धर्व मेरा सम्मानकरतेथे ॥ ६९ ॥ सुन्दरता, मधुरता, सुकुमारता, सुगंधता इत्यादि से मैं

एकदादेवसत्रेतुगन्धर्वाप्सरसांगणाः । उपहूताविश्वसृग्भिर्हरिगाथोपगायने ७१ ॥ अहंचगायंस्तद्विद्वान्स्त्रीभिःपरिवृतोगतः । ज्ञात्वाविश्वसृजस्तन्मे हेलनंशेपुरोजसा याहित्वशूद्रतामाशु नष्टश्रीःकृतहेलनः ॥ ७२ ॥ तावद्दास्यामहंजज्ञे तत्रापिब्रह्मवादिनाम् । शुश्रूषयाऽनुषङ्गेणप्राप्तोऽहंब्रह्मपुत्रताम् ॥ ७३ ॥ धर्मस्तेगृहमेधीयो वर्णितः पापनाशनः । गृहस्थोयेनपदवीमंजसा न्यासिनामियात् ॥ ७४ ॥ यूयंनृलोकेबतभूरिभागा लोकपुनानामुनयोऽभियन्ति । येषांगृहानावसतीतिसाक्षाद्गूढंपरंब्रह्ममनुष्यलिंगम् ॥ ७५ ॥ सवाअयंब्रह्ममहद्विमृग्यं कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः । प्रियःसुहृद्वःखलुमातुलेय आत्मार्हणीयोविधिकृद्गुरुश्च ॥ ७६ ॥ नयस्यसाक्षाद्भवपद्मजादिभी रूपंधियावस्तुतयोपवर्णितम् । मौनेनभक्त्योपशमेनपूजितः प्रसीदतामेषससात्वतांपतिः ॥ ७७ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ इतिदेवर्षिणाप्रोक्तं निशम्यभरतर्षभः । पूजयामाससुप्रीतः कृष्णंचप्रेमविह्वलः ७८ ॥ कृष्णपार्थावुपामंत्र्यपूजितःप्रययौमुनिः श्रुत्वाकृष्णंपरंब्रह्मपार्थःपरमविस्मितः ७९ ॥ इतिदाक्षायणीनांतेपृथग्वंशाःप्रकीर्तिताः । देवासुरमनुष्याद्यालोकायत्रचराचराः ॥८० ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेसप्तमस्कन्धेप्रह्लादानुचरितेयुधिष्ठिरसंवादेसदाचारवर्णननामपंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

समाप्तोयं सप्तमः स्कन्धः ॥

सबका अत्यन्त प्रियथा; सबही स्त्रियें मुझे प्यारकरतीथीं, मैं सदामदमत्तहो लम्पटकीभांति अपने पुरमें समय व्यतीत करताथा॥७०॥एकसमय देवताओं के यज्ञमें भगवद्गुण गानकरने के निमित्त प्रजापतियों ने गन्धर्व और अप्सराओं को बुलवाया॥७१॥उस बुलावे को आयाजान मैंभी उन्मत्त भावसे गानकरता२ स्त्रियों से घिरकर उसस्थान पर आया मेरी इस धृष्टता (बेअदबी) को देखकर प्रजापतियों नेंअपने तेजके प्रभावसे मुझे यह शापदिया कि तुमने हमारा अपराध किया है तुम अब श्रीरहितहो शूद्रताको प्राप्तहो ॥७२॥ परन्तु ब्रह्मवेत्ता मुनियों की सेवा और उनके साथसे दासी के गर्भसे उत्पन्न होकरभी मैं ब्रह्मपुत्रता को प्राप्तहुआ ॥७३॥ हे राजन् गृहस्थियों के पाप नाशक इस धर्मका तुमसे वर्णन किया इस धर्मानुष्ठानद्वारा गृहस्थी निश्चयही संन्यासियोंकी गतिको प्राप्त होसकताहै७४॥हेराजन् ! मनुष्यलोक में तुम अत्यंत भाग्यवानहो क्योंकि जगत्के पवित्रकरनेंवाले मुनिलोग तुम्हारे यहां आते हैं तथा तुम्हारे घरमें मनुष्यदेहधारी साक्षात् भगवान विराजमानहैं७५॥ अहा ! महात्माओंके खोजने योग्य, मोक्ष सम्बन्धी सुख के अनुभव रूप वह परब्रह्म तुम्हारे प्रिय स्वजन, मामाके पुत्र, पूज्य विधिदायक तथा गुरुहैं तब फिर तुम्हारी समान भाग्यवान कौन है ! ॥७६॥ हे राजन् ! साक्षात् शिव और ब्रह्मादि देवता अपनी २ बुद्धि द्वारा जिसके रूप का यथार्थ वर्णन नहीं करसकते मैं उसका क्या वर्णन करूं वही भक्ताधीन भगवान मौन, भक्ति, तथा उस शम द्वाराही पूजित होकर प्रसन्न होते हैं ॥ ७७ ॥ शुकदेवजी बोले कि राजा युधिष्ठिर नारदजीकी बातों को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए तथा प्रेम से विह्वलहो उन्होंनें श्रीकृष्णजी की पूजाकी ॥ ७८ ॥ अनंतर नारदजी श्रीकृष्णजी और युधिष्ठिर से वार्तालाप करके चलेगए नारदजी के मुख से श्री कृष्णजीको परब्रह्म सुनकर युधिष्ठिर अत्यंत विस्मित हुए ॥ ७९ ॥ हे राजन् ! यह मैंने तुमसे दक्ष कन्याओं के पृथक् २ वंशों का वरणन किया इन्हीं वंशों में देवता, दैत्य, मनुष्य और पशु पक्षि सम्पूर्ण स्थावर जंगम जीव उत्पन्न हुए हैं ॥ ८० ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणेश्रीमद्विद्वद्वरसारस्वतवंशजपण्डितजगन्नाथात्मजपं०कन्हैयालाल निर्मितसरलाभाषाटीकायांसप्तमःस्कन्धः ॥ ७ ॥

श्रीमद्भागवत भाषाटीकासहित·

अष्टम स्कन्ध।

श्रीगणेशायनमः ॥ ॐनमोभगवते वासुदेवाय ॥ राजोवाच॥स्वायम्भुवस्येह गुरोवंशोऽयंविस्तराच्छ्रुत ।यत्र विश्वसृजांसर्गो मनूनन्यान्वदस्वनः ॥ १ ॥ यत्र यत्रहरेर्जन्मकर्माणिच महीयस । गृणन्तिकवयोब्रह्मंस्तानिनोवद शृण्वताम् ॥ २ ॥ यस्मिन्मन्वन्तरेब्रह्मन्भगवान्विश्वभावनः । कृतवान्कुरुतेकर्ताह्यतीतेऽनागतेऽद्यवा ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ मनवोऽस्मिन्व्यतीताः षट्कल्पे स्वायम्भुवादयः । आद्यस्ते कथितोयत्रदेवादीनांचसम्भव. ॥ ४ ॥ आकूत्यांदेवहूत्यांच दुहित्रोस्तस्यवैमनोः । धर्मज्ञानोपदेशार्थंभगवान्पुत्रतांगतः ॥ ५ ॥ कृतंपुराभगवत कपिलस्यानुवर्णितम् । आख्यास्येभगवान्यज्ञोयच्चकारकुरूद्वह ॥ ६ ॥ विरक्तः कामभोगेषुशतरूपापतिः प्रभु । विसृज्यराज्यंतपसेसभार्योवनमाविशत् ॥ ७ ॥ सुनन्दायांवर्षशतंपदैकेन भुवंस्पृशन् । तप्यमानस्तपोघोरमिदमन्वाहभारत ॥ ८ ॥ मनुरुवाच ॥ येनचेतयते विश्वंविश्वंचेतयतेनयम् । योजागर्तिशयानेऽस्मिन्नायंतंवेदवेदसः ॥ ९ ॥ आत्मा वास्यमिदंविश्वंयत्किञ्चिज्जगत्यांजगत्। तेनत्यक्तेनभुञ्जीथामागृधः कस्यस्वि

श्रीगणेशायनमः । राजा परीक्षित ने कहा कि हे ब्रह्मन्! जिस वंश मे मरीचि आदि विश्वस्रष्टाओं के पुत्र पौत्रादि उत्पन्न हुए उन स्वायम्भुवमनु का वंश आपके निकट विस्तार सहित मैंनेसुना अब दूसरे मनुओं का वर्णन करो ॥ १ ॥ पण्डितलोग मन्वंतर समूहमे भगवान हरिके जिन जन्म और कर्मोंका बर्णन करते है आप उन सबको कहिये मैं सुनू ॥ २ ॥ हे गुरो! विश्वकर्त्ता हरिने भूत भविष्यत् और वर्तमान मन्वतराम जो २ कर्म कियेकरेंगे और करते हैं उन सबका वर्णन अनुग्रह करके करो ॥३॥ श्री शुकदेवजी बोले कि हे राजन्! इस कल्पमे स्वायंभुव आदि छह मनु बीतचुके हैं। उनमसे आद्य मनुके वंशका वर्णन होचुका कि जिस मनुवंशमे देवता आदि सबप्राणियोंका उत्पत्ति हुई ॥ ४ ॥ उन मनुके आकूति और देवहूतिनाम दोकन्यायें थी। भगवानने धर्म और ज्ञानका उपदेश करनेके निमित्त पृथक २ कालमें इनके गर्भ मे कपिल और यज्ञरूपसे जन्म ग्रहण कियाथा ॥ ५ ॥ भगवान कपिलदेवजीकी कथाका पहिलेही वर्णन होचुकाहै, भगवान यज्ञकी कथाका अब वर्णन होचुकाहै, भगवान यज्ञकी कथका अब वर्णन करताहूं सो सुनो ॥६॥ जब शतरूपा के स्वामी प्रभु स्वायम्भुवमनु, कामभोगसे विरक्तहो, राज्यछोड तपस्याकरने के निमित्त स्त्रीके साथ बनको गये ॥ ७ ॥ तब उन्होंने सुनन्दानदी के तीर एकपैरसे खडेहो सौवर्ष तक घोर तपस्याकी। तपस्या करते२ उन्होंने यहकहा ॥ ८ ॥ मनुजीबोले कि—जिनसे यह विश्व चेतनताको प्राप्तकरता है, किन्तु विश्व जिनको चेतनता नहीं देसकता इस विश्वके शयनकरने पर जो जागते रहते हैं, अहो! प्राणी जिनको नहीं जानते, परन्तु वे प्राणियोंको भलप्रकार जानते है ॥ ९ ॥ यह विश्व और इसमें रहतेहुए प्राणी सबही ईश्वरकी चैतन्यतासे व्याप्तहैं, ईश्वर सबही में स्थित है। अतएव हे मनुष्यो! ईश्वरने जो कुछ दियाहै, उसीसे सबविषयोंका भोगकरो और

धनम् ॥ १० ॥ यनपश्यतिपश्यन्तंचक्षुर्यस्यनरिष्यति । तंभूतनिलयंदेवसुपर्णमुप
धावत ॥ ११ ॥ नयस्याद्यन्तौमध्यश्चस्वः परोनान्तरबहिः । विश्वस्यामूनियद्यस्मा
द्विश्वचततहतमहत ॥ १२ ॥ सविश्वकायः पुरुहूतईशः सत्यः स्वयंज्योतिरजः पुरा
ण. । धत्तेऽस्यजन्माद्यजयात्मशक्त्यातांविद्ययोदस्यनिरीहआस्ते ॥ १३ ॥ अथाग्रे
ऋषयः कर्माणीहन्तेऽकर्महेतवे । ईहमानोहिपुरुषः प्रायोऽनीहांप्रपद्यते ॥ १४ ॥
ईहते भगवानीशो नहि तत्र विषज्जते । आत्मलाभेन पूर्णार्थो नावसीदन्ति येऽनु
तम्॥१५॥तमीहमानानिरहङ्कृतंबुधं निराशिषंपूर्णमनन्यचोदितम् । नॄन्शिक्षयंतंनि
जवर्त्मसंस्थितंप्रभुंप्रपद्येऽखिलधर्मभावनम् ॥१६॥ श्रीशुकउवाच ॥ इतिमंत्रोपनिषि
दंव्याहरन्तंसमाहितम् । दृष्ट्वाऽसुरायातुधानाजग्धुमभ्यद्रवन्क्षुधा ॥ १७ ॥ तांस्त
थाऽवसितान्वीक्ष्य यज्ञः सर्वगतोहरिः। यामैःपरिवृतोदेवैर्हत्वाऽशासत्त्रिविष्टपम् १८
स्वारोचिषो द्वितीयस्तु मनुरग्नेः सुतोऽभवत् । द्युमत्सुषेणरोचिष्मत्प्रमुखास्तस्य
चात्मजाः ॥ १९ ॥ तत्रेन्द्रोरोचनस्त्वासीद्देवाश्चतुषितादयः । ऊर्जस्तम्भादय सप्त
ऋषयोब्रह्मवादिन ॥ २० ॥ ऋषेस्तुवेदशिरसस्तुषितानामपत्न्यभूत् । तस्यांजज्ञे
ततोदेवो विभुरित्यभिविश्रुत ॥ २१ ॥ अष्टाशीतिसहस्राणिमुनयोयेधृतव्रताः। अन्व
शिक्षन्व्रतंतस्य कौमारब्रह्मचारिणः ॥२२॥ तृतीयउत्तमोनाम प्रियव्रतसुतोमनुः ।

दूसरे क धनका लोभ मतकरो ॥ १० ॥ जो सृष्टिको देखता है किन्तु सृष्टि जिसको नहीं देख सकती और जिसके ज्ञानरूपी नेत्र कभी नहीं नष्टहोते—उसी भूताश्रय, रंगरहित, श्रेष्ठ देवताकी पूजाकरो ॥ ११ ॥ जिसका आदि, अंत, मध्यनही है, अपना परायाभी नहीं है, भीतर बाहर नहीं है, और यह विश्व तथा विश्वके सबपदार्थ जिससे प्रवर्तितहोतहै वहीमहत्परस्वरूप पूर्णब्रह्महै १२ वेही विश्वमूर्ति, अनन्तनामईश्वर, अजन्मा, स्वप्रकाश, निर्विकार और सत्यस्वरूप हैं वही अपनी माया नाम्नी निजशक्तिद्वारा इस विश्व ब्रह्माण्डकी रचनाकरते हैं। किन्तु स्वयं नित्य सिद्ध विद्या द्वारा उसमायाको छोडकर क्रियाहीन अवस्था मे रहते हैं ॥ १३ ॥ इसही दृष्टान्त से ऋषिलोगभी मुक्तिकी कामना करक कर्मों का अनुष्ठान करते रहते हैं। मनुष्यपहिले कर्मकर२ के निष्कर्म हो- जाते है॥ १४ ॥ भगवान आत्मलाभ सेही परिपूर्ण हैं, कार्यमे प्रवृत्त होनेपरभी वे कार्यके साथ कभी लिप्त नही होते । जो भगवानका अनुकरण करते हैं वेभी कर्म मे आसक्तनहीं होते ॥ १५॥ सबधर्म विधाता भगवान मनुष्य अवतार के आत्ममार्ग में स्थितहोकर मनुष्योंको शिक्षा देने के निमित्तही कार्य करते हैं। वे परमज्ञानी, परिपूर्ण, और सबके स्वामी हैं अतएव उनके अहंकार और शुभकामना भी नहीं है तथा अन्य से वे कार्य में प्रेरित नहीं होते । मैं उनकी शरणागतहूं॥ ॥ १६ ॥ श्री शुकदेवजीबोले कि—हेराजन् ! मनुकोसमाधिस्थ हुए और इसप्रकार मंत्रोपनिषद् उच्चारण करते हुएदेख क्षुधार्त्त असुर और राक्षस उनके खाने को दौडे ॥ १७ ॥ यज्ञनामक सर्वव्यापक हरिभगवानने असुर और राक्षसोंका मनुजीके खाजाने में उद्यत देख अपने पुत्रयामनामक देवताओं के साथ दैत्यों का वध किया । और स्वयं इन्द्रहोकर स्वर्गका पालनकरनेलगे ॥१८ दूसरे मनुकानाम स्वारोचिषथा, वह अग्निके सन्तानथे । सुषण और रोचिष्मत् आदिक यह मनुके पुत्रहुए ॥ १९ ॥ उस मन्वन्तर में रोचन नामकइन्द्र, तुषितादि देवता, और ऊर्जस्तम्भआदिक ब्रह्मवादी सातऋषि वर्तमानथे ॥ २० ॥ इसीमन्वन्तर में वेदशिरानामक एक ऋषिथे,और उनकी स्त्रीकानाम तुषिताथा । उसके गर्भ में वेदशिराके वीर्य से भगवान जन्मग्रहणकर विभुनामसे विख्यातहुए ॥ २१ ॥ विभुके कौमार ब्रह्मचर्य धारणकरनेपर अट्ठासी सहस्र व्रतधारीऋषियोने उन से व्रतका उपदेश पाया ॥ २२ ॥ तृतीय मनुकानाम उत्तमथा वह प्रियव्रतकी सन्तान थे । पवन,

पवनः संजयो यज्ञहोत्राद्यास्तत्सुता नृप ॥ २३ ॥ वसिष्ठतनयाः सप्तऋषयः प्रमदादयः
सत्यावेदश्रुताभद्रा देवाइन्द्रस्तु सत्यजित् ॥ २४ ॥ धर्मस्य सूनृतायां तु भगवान्पुरुषो
त्तमः । सत्यसेनइतिख्यातो जातः सत्यव्रतैः सह ॥ २५ ॥ सोऽनृतव्रतदुःशीलानस
तोयक्षराक्षसान् । भूतद्रुहोभूतगणांस्त्ववधीत्सत्यजित्सखः ॥ २६ ॥ चतुर्थउत्तम
भ्रातामनुर्नाम्नाचतामसः । पृथुःख्यातिर्नरः केतुरित्याद्यादशतत्सुताः ॥ २७ ॥ सत्य
काहरयोवीरा देवास्त्रिशिखईश्वरः । ज्योतिर्धामादयः सप्त ऋषयस्तामसेऽन्तरे ॥
॥ २८ ॥ देवावैधृतयोनामविधृतेस्तनयानृप । नष्टाः कालेनयैर्वेदा विधृताः स्वेनतेज
सा ॥ २९ ॥ तत्रापिजज्ञेभगवान्हरिण्यांहरिमेधसः । हरिरित्याहृतोयेनगजेन्द्रोमोचि
तोग्रहात् ॥ ३० ॥ राजोवाच ॥ बादरायणएतत्ते श्रोतुमिच्छामहेवयम् । हरिर्यथा
गजपतिं ग्राहग्रस्तममूमुचत् ॥ ३१ ॥ तत्कथासुमहत्पुण्यं धन्यंस्वस्त्ययनंशुभम् । यत्र
यत्रोत्तमश्लोको भगवान्गीयतेहरिः ॥ ३२ ॥ सूतउवाच ॥ परीक्षितैवंसतुबादरा
यणि प्रायोपविष्टेनकथासुचोदितः । उवाचविप्राः प्रतिनन्द्यपार्थिवं मुदामुनीनांसद
सिस्मशृण्वताम् ॥ ३३ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० अष्ट० प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ आसीद्गिरिवरो राजंस्त्रिकूटइतिविश्रुतः । क्षीरोदेनावृतः श्री
मान्योजनायुतमुच्छ्रितः ॥ १ ॥ तावताविस्तृतः पर्यक्त्रिभिः शृङ्गैः पयोनिधिम् । दि-
शः खंरोचयन्नास्ते रौप्यायसहिरण्मयैः ॥ २ ॥ अन्यैश्चककुभः सर्वा रत्नधातुविचि

संजय, और यज्ञहोत्र आदि उत्तम के पुत्रहुए ॥ २३ ॥ इस मन्वन्तरमें वसिष्ठजी के पुत्र प्रमद
आदि सप्तर्षि, सत्या वेदश्रुता और भद्रानामक देवता तथा सत्यजितनामक इन्द्रवर्तमान थे ॥२४॥
भगवान पुरुषोत्तमका उत्तम मन्वन्तरमे, धर्मकी स्त्री सनृताके गर्भमे सत्यव्रतोंके साथ सत्यसेन अ-
वतारहुआ ॥ २५ ॥ सत्यजित के सखा भगवानसत्यसेनने मिथ्याव्रतधारी, दुःशील, यक्ष और रा-
क्षस तथा जीवहिंसक प्राणियोंका वध किया ॥ २६ ॥ चौथे मनुकानाम तामसथा वे उत्तमके भ्राता
थे । पृथु, ख्याति, नर और केतुआदि तामसके दशपुत्र उत्पन्नहुए ॥ २७ ॥ इस मन्वन्तर में स
त्यक, हरि, और वीरनामकदेवता, त्रिशिखनामकइन्द्र और ज्योतिर्धाम आदिकसात ऋषि हुये ॥
॥ २८ ॥ जब युगके धर्म से कालवश सबवेद लुप्त होगये, तब विधृतिके सबपुत्रों ने अपन२ तेज
द्वारा उन सबको धारणकिया, इस मन्वन्तरमे वैधृति नामक देवताहुए ॥ २९ ॥ इसी मन्वन्तरमें
भगवान, हरिमेधाकी पत्नी हरिणी के गर्भसे जन्मग्रहणकर हरिकनामसे प्रसिद्ध हुए । हरिने ग्राहके
मुखसे गजेंद्रको छुटाया ॥ ३० ॥ राजाने कहा कि—हेवेदव्यास नंदन ! श्रीहरिने ग्राहसे पकड़ेहुये
गजेंद्रको कैसे छुडाया ? आप मुझसे इस सबवृत्तांत को कहिये मेरे सुननेका इच्छा है ॥ ३१ ॥
जिन २ चरित्रों में उत्तमश्लोक हरिभगवानकी कीर्त्ति गाई जाती है, वह कीर्त्ति बडी पवित्र, धन्य,
मङ्गलमय और शुभकारकहोती है॥ ३२ ॥ सूतजी बोले कि—हे शौनकादिक ऋषियों! अनशन व्रतधारण
किएहुए राजा परीक्षित ने जब श्रीशुकदेवजी से इसप्रकार कहा तब महात्मा वेदव्यास नन्दनने
राजाकी प्रशंसाकर, सुननेकी इच्छा रखनेवाले मुनियोंकी सभामे कथाकहनेका आरम्भकिया ॥ ३३ ॥

इतिश्री मद्भा० म० अष्टमस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां प्रथमोऽध्याय: ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हेराजन् ! त्रिकूटनामक एक प्रसिद्ध पर्वतहै । सो क्षीरसागरसे घिरा
हुआहै । वह दशसहस्र योजन ऊंचा और उतनाही चारोंओरसे फैलाहुआ है । उसके सुवर्णमय
लोहमय, और रजतमय तीन शिखरों द्वारा सब दिशायें और समुद्र प्रकाशित रहतेहैं ॥ १ । २ ॥

त्रिभे । नानाद्रुमलतागुल्मै र्निर्घोषैर्निर्झराम्भसाम् ॥ ३ ॥ स चावनिज्यमानाङ्घ्रिः समन्तात्पयऊर्मिभिः । करोति श्यामलां भूमिं हरिन्मरकताश्मभिः ॥ ४ ॥ सिद्धचारणगन्धर्वविद्याधरमहोरगैः । किन्नरैरप्सरोभिश्च क्रीडद्भिर्जुष्टकन्दरः ॥ ५ यत्र सङ्गीतसन्नादैर्नदद्गुहममर्षया । अभिगर्जन्ति हरयः श्लाघिनः परशङ्कया ॥ ६ ॥ नानारण्यपशुव्रातसङ्कुलद्रोण्यलङ्कृतः । चित्रद्रुमसुरोद्यानकलकण्ठविहङ्गमः ॥ ७ ॥ सरित्सरोभिरच्छोदैः पुलिनैर्मणिवालुकैः । देवस्त्रीमज्जनामोदसौरभाम्ब्वनिलैर्युतः ॥ ८ ॥ तस्य द्रोण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः । उद्यानमृतुमन्नाम आक्रीडं सुरयोषिताम् ॥ ९ ॥ सर्वतोऽलङ्कृतं दिव्यैर्नित्यं पुष्पफलद्रुमैः । मन्दारैः पारिजातैश्च पाटलाशोकचम्पकैः ॥ १० ॥ चूतैः प्रियालैः पनसैराम्रैराम्रातकैरपि । क्रमुकैर्नारिकेलैश्च खर्जूरैर्बीजपूरकैः ॥ ११ ॥ मधूकैः सालतालैश्च तमालैरसनार्जुनैः । अरिष्टोदुम्बरप्लक्षैर्वटैः किंशुकचन्दनैः ॥ १२ ॥ पिचुमन्दैः कोविदारैः सरलैः सुरदारुभिः । द्राक्षेक्षुरम्भाजम्बूभिर्बदर्यक्षाभयामलैः ॥ १३ ॥ बिल्वैः कपित्थैर्जम्बीरैर्वृतो भल्लातकादिभिः । तस्मिन्सरः सुविपुलं लसत्काञ्चनपङ्कजम् ॥ १४ ॥ कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रश्रियोर्जितम् । मत्तषट्पदनिर्घुष्टं शकुन्तैश्च कलस्वनैः ॥ १५ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं चक्राह्वैः सारसैरपि । जलकुक्कुटकोयष्टिदात्यूहकुलकूजितम् ॥ १६ ॥ मत्स्यकच्छपसञ्चारचलत्पद्मरजःपयः । कदम्बवेतसनलनीपवञ्जुलकैर्वृतम् ॥ १७ ॥

और भी दूसरे शिखर नानाप्रकार धातुओंसे रंजित और अनेक वृक्ष, लता और गुल्मोंसे परिपूर्ण हैं । उसमें अनेक जलकी झरनोंके शब्द दिशाओं को प्रतिध्वनित कररहे हैं ॥ ३ ॥ क्षार समुद्रकी लहरों से उसका मूलभाग भीगरहाहै ; उस त्रिकूटपर्वतके हरितवर्णकी मणियोंकी प्रभासे वहांकी पृथ्वी को श्यामवर्ण कररक्खाहै ॥ ४ ॥ उसकी कन्दराओं में सिद्ध चारण गन्धर्व विद्याधर, नाग किन्नर और अप्सरायें सदाही विहार किया करतीहैं ॥ ५ ॥ उनके मधुरगानके शब्दसे पर्वतकी गुफायें सदैव शब्दायमान रहतीहैं अहंकारी सिंह उस प्रतिध्वनिके शब्दको दूसरे सिंहकी गर्जन जान उसी की ओर मुख करके गम्भीर गर्जना कररहेहैं ॥ ६ ॥ नानाप्रकारके बनके जन्तु इकट्ठे हो २ कर घूमतेहुये उसकी खाहोंको शोभायमान कररहे हैं, उसके शिखरोंमें स्थितहुए देवताओंके उद्यानोंमें सुन्दर कोकिलायें बोलरही हैं ॥ ७ ॥ सुन्दर स्वच्छ जलवाले झरने और सरोवरों के तटपर बालूके कणके मणियोंकी समान प्रकाशितहोरहे हैं । देवांगनाओंके स्नानसे जो गंध उत्पन्न होती है उससे जल और पवन सुगन्धित होरहाहै ॥ ८ ॥ उस पर्वतकी कन्दरामें महात्मा वरुणका ऋतुमत नामक एक उपवन है वह उपवन नित्य फलफूल आनेवाले वृक्षों से चारोओर से शोभायमान होरहा है, देवांगनाएं उसमें क्रीडाकरती रहती हैं ॥ ९ ॥ हे राजन् ! मंदार, पारिजात, पाटल अशोक, चम्पक, आम, प्रियाल, पनस, आम्र, आम्रातक, सुपारी, नारियल, खजूर, अनार, मधूक, शाल, ताल तमाल, असन, अर्जुन, अरिष्टगूलर, प्लक्ष, बड़, किंशुक, चन्दन, पिचुमंद, कोविदार, सरल, देवदारु, दाख, ईख, केला, जामुन, बेर, बहेडा, हरड़, आमला, बेल, कैथ, और जंभीरी आदिवृक्ष और लताओं ने उस त्रिकूट की विशाल शोभा घेररक्खा है उस उद्यानमें एक बड़ाभारी सरोवर है । जिसमें सुवर्ण कमल शोभायमान होरहे हैं और कुमुद, कल्हार, तथा शतपत्रकी शोभा बढरही है, मत्तभौंर और सुन्दरपक्षी अपने मधुर स्वरसे उसको परिपूर्ण कररहे हैं ॥ १०-१५ ॥ हंस, कारण्डव, चक्रवाक और सारस उसमें केलिकर रहे हैं । जलमुर्गी, कोयष्टि और दात्यूह पक्षी उसमें बैठहुये शब्द कररहे हैं ॥ १६ ॥ मछली और कच्छपों के फिरने के कारण कांपते हुये कमलों से गिराहुआ केसर जलमें मिश्रित होरहा है । और तीरमें उत्पन्न हुये कदम्ब,

कुन्दैः कुरुबकाशोकैः शिरीषैः कुटजेङ्गुदैः । कुब्जकैः स्वर्णयूथीभिर्नागपुन्नागजा
तिभिः ॥ १८ ॥ मल्लिकाशतपत्रैश्च माधवीजालकादिभिः । शोभितातीरजैश्चान्यै
र्नित्यर्तुभिरलं द्रुमैः ॥ १९ ॥ तत्रैकदा तद्गिरिकाननाश्रयः करेणुभिर्वारणयूथपश्चरन् ।
सकण्टकान्कीचकवेणुवेत्रवद्विशालगुल्मं प्ररुजन्वनस्पतीन् ॥२०॥ यद्गन्धमात्राद्ध
रयो गजेन्द्रा व्याघ्रादयो व्यालमृगाः सखड्गाः । महोरगाश्चापि भयाद्द्रवन्ति सगौरकृ
ष्णाः शरभाश्चमर्यः ॥ २१ ॥ वृका वराहा महिषर्क्षशल्या गोपुच्छशालावृकमर्कटा
श्च । अन्यत्र क्षुद्रा हरिणाः शशादयश्चरन्त्यभीता यदनुग्रहेण ॥ २२ ॥ स घर्मतप्तः क
रिभिः करेणुभिर्वृतो मदच्युत्कलभैरनुद्रुतः । गिरिं गरिम्णा परितः प्रकम्पयन्निषेव्य
माणोऽलिकुलैर्मदाशनैः ॥ २३ ॥ सरोऽनिलं पङ्कजरेणुरूषितं जिघ्रन्विदूरान्मद
विह्वलेक्षणः । वृतः स्वयूथेन तृषार्दितेन तत्सरोवराभ्याशमथागमद्द्रुतम् ॥ २४ ॥
विगाह्य तस्मिन्नमृताम्बु निर्मलं हेमारविन्दोत्पलरेणुवासितम् । पपौ निकामं निजपु
ष्करोद्धृतमात्मानमद्भिः स्नपयन्गतक्लमः ॥ २५ ॥ स पुष्करेणोद्धृतशीकराम्बुभिर्नि
पाययन्संस्नपयन्यथा गृही । घृणी करेणूः कलभांश्च दुर्मदो नाचष्ट कृच्छ्रं कृपणोऽज
मायया ॥ २६ ॥ तं तत्र कश्चिन्नृप दैवचोदितो ग्राहो बलीयांश्चरणे रुषाऽग्रहीत् । यदृ
च्छयैवं व्यसनं गतो गजो यथाबलं सोऽतिबलो विचक्रमे ॥ २७ ॥ तथातुरं यूथपतिं क
रेणवो विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा । विचुक्रुशुर्दीनधियोऽपरे गजाः पार्ष्णिग्रहास्ता

वेतस, नल, नील, मौरसिरी ॥ १७ ॥ कुंद, कुरुबक, अशोक, शिरीष, कुटज, हिंगोट, स्वर्णमुखी, नाग, पुन्नाग, जुई, मल्लिका, शतपत्र, माधवी और जालक आदि वृक्ष उसके आसपास की शोभा को बढा रहे हैं । इसके अतिरिक्त प्रत्येक समयमें फलने फूलने वाले वृक्ष उसकी शोभाको और भी दुगना कररहे है ॥ १८-१९ ॥ एकदिन उस पर्वतके जंगलका रहनेवाला एक गजेन्द्र हथिनियों समेत भ्रमण करता करता कांटे सहित कीचक, बांस और बेतवाली बड़ी२ झाडियोंको तोडता- और वृक्षोंको गिराता हुआ उस वनमें भ्रमण कररहाथा ॥ २० ॥ केवल उसके मदकी गन्धि से सिंह, व्याघ्र, हिंसक जन्तु, गेंडे, बडे २ सांप, और गौर व कृष्ण वर्णके हरिण चमरी गौयें, ॥ २१ ॥ वृक (भेडिया) सूकर, भैंसे, भालू, शेल्य, वानर और कुत्ते भयभीत होकर भागनेलगे । किन्तु शशक आदि छोटे २ जानवर उसकी दयाके ऊपर निर्भय हृदयसे वनमें विचरने लगे ॥ २२ ॥ वह मदस्रावी गजराज हथिनियों से घिराहुआ बच्चोंके साथ सूर्य्यकी किरणों के ताप से सतप्तहो अपने शरीर के भारसे पर्वतको कंपायमान करता हुआ जलकी खोजमें फिर रहाथा । और मदके भूखे भौंरे उसकी सेवाकर रहेथे ॥ २३ ॥ वह मदोन्मत्त गजेन्द्र कमलके परागसे मिलेहुये सरोवर के पवनको दूरसे सूँघता हुआ, तृषासे पीडित अपने यूथको सगलिये शीघ्र उस सरोवरके समीप आया ॥ २४ ॥ हे राजन् ! गजेन्द्र इस प्रकारसे जलके समीप आयकर कुंडमें बैठगया और उसने शुंडद्वारा कमल केसरयुक्त निर्मल अमृतकी समान जलको भली भांतिसे पीया और शरीरको पानी से भिगोकर श्रमको दूरकिया ॥ २५ ॥ तदनंतर वह संसारी पुरुषोंकी समान अपनी सूंडसे हथनी और बच्चोंको जल पिलाने और स्नान कराने लगा । उस मदान्ध कृपणको ईश्वरकी लीला से जो कष्ट प्राप्त हुआ उसकी खबर नहीं पड़ी ॥ २६ ॥ हे नृप ! उस सरोवर में एक बडा बलवान ग्राहरहता था । उसने दैव से प्रेरितहो क्रोध पूर्वक हाथी के चरणको पकडलिया । महाबलवान हाथी भी सहसा आपत्तिमें गिरकर अपनेको यथाशक्ति खींचने लगा । और बलवान ग्राह भी हाथी को बलपूर्वक अपनी ओर खींचने लगा ॥ २७ ॥ ग्राहके प्रचंड आकर्षण से गजराजको कातर

रयितुंनचाशकन् ॥ २८ ॥ नियुध्यतोरेवमिभेन्द्रनक्रयोर्विकर्षतोरन्तरतोबहिर्मिथः । समाः सहस्रंव्यगमन्महीपतेसप्राणयोश्चित्रममंसतामराः ॥ २९ ॥ ततोगजेन्द्रस्य मनोबलौजसांकालेनदीर्घेणमहानभूद्व्ययः । विकृष्यमाणस्यजलेऽवसीदतोविप र्ययोऽभूत्सकलंजलौकसः ॥ ३० ॥ इत्थंगजेन्द्रः सयदापसङ्कटंप्राणस्यदेहीवि वशोयदृच्छया । अपारयन्नात्मविमोक्षणेचिरं दध्याविमांबुद्धिमथाभ्यपद्यत ॥३१॥ नमामिमेज्ञातयआतुरंगजाःकुतःकरिण्यःप्रभवन्तिमोचितुम् ।ग्राहेणपाशेनविधातुरा वृतोऽप्यहञ्च तंयामिपरंपरायणम् ॥३२॥ य कश्चनेशोबलिनोऽन्तकोरगात्प्रचण्डवे- गादभिधावतोभृशम् ।भीतंप्रपन्नंपरिपातियद्भयान्मृत्यु प्रधावत्यरणतमीमहि॥३३॥

इति श्रीमद्भा० महा० अष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुवर्णने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच । एवंव्यवसितोबुद्ध्या समाधायमनोहृदि । जजापपरमंजाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ १ ॥ गजेन्द्र उवाच । नमोभगवतेतस्मैयतएतच्चिदात्म कम् । पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥ २ ॥ यस्मिन्निदंयतश्चेदं येनेदंयइदं स्वयम् । योऽस्मात्परस्माच्च परस्तंप्रपद्येस्वयम्भुवम् ॥ ३ ॥ य स्वात्मनीदंनिजमा ययार्पितं क्वचिद्विभातंक्वचतत्तिरोहितम् । अविद्धदृक्साक्ष्युभयंतदीक्षते सआत्म

होतादेख व्याकुल चित्तसे दुःखित होकर हथिनियां चिल्लानेलगीं और दूसरे हाथीभी पीछेका भाग पकडकर उसे यथाशक्ति खींचने लगे, परन्तु उसका छुटानसके ॥ २८ ॥ बडे अहङ्कारी हाथी और ग्राहमे इसप्रकार से परस्पर युद्ध होनलगा कि ग्राहतो उसे जलके भीतरी भागकी ओर खींचरहा था औरगजराज बाहरकी ओर खींचरहाथा ऐसे युद्ध होते २ एक सहस्र वर्ष बीतगये परन्तु इस दीर्घकालमें किसी कीभी पराजय न हुई ॥ २९ ॥ देवता भी इस घटनाको देख कर बडा आश्चर्य करने लगे । क्रमशः इतने दीर्घ कालतक खिंचन के कारण गजराज की उत्साह शक्ति और शरीर इन्द्रियों का बल घटगया, किंतु जलचर ग्राहका सब प्रकार से बल बढगया ॥ ३० ॥ गजराज इस प्रकार से प्राण संकटमें गिरकर अपनेको न छुटसका तब नानाप्रकारकी चिंताएं करनेलगा अंतमें उसकी बुद्धिमे आयाकि ॥ ३१ ॥ मतो पडाहुआ व्याकुल होरहाहूं जब मेरी जातिवाले यह सबहाथी मुझे न छुडासके और मैं स्वयंभी अपने प्राणोंको नहीं बचासका तब फिरयह हथिनियां मुझे छुडावगी इस की क्या सम्भावना है? इस ग्राहने मुझे पकड़ा है यह अवश्य ही विधाताका पाश है, अतएव अब मैं जो ब्रह्मादि देवताओं के भी आश्रय हैं उन्हीं परम पुरुषकी शरण लेताहूं ॥ ३२ ईश्वरही बलशाली हैं । प्रचण्डवेग व शीघ्रता पूर्वक आतेहुये कालरूपी सर्पके भयसे भीत और विपद्ग्रस्त मनुष्योंकी जोरक्षा हैं,और जिनके भयसे मृत्युचारो ओर दौड़ाकरती है, मैं उन्हीं भगवानकी शरणमें जाताहूं ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणेअष्टमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांद्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजीबोले कि—हेराजन् ! गजराजने अपनी बुद्धि द्वारा यह निश्चयकर, मनकी सावधानतापूर्वक पूर्वजन्मका सीखाहुआ अपने योग्य परममंत्रके जप करनेका आरम्भकिया वह मंत्र यहहै प्रकृति और पुरुषरूप जो भगवान सब शरीरोंमें कारणरूपसे प्रवेश करतेहैं, और वह शरीर जिससे चेतन प्राप्त करताहै तथा जो परमेश्वरहैं, मैं केवल उन्हींका ध्यान करताहूं ॥ २ ॥ जो इस विश्वके आधारहैं, जिनसे यह विश्व उत्पन्न होता और पालाजाताहै जो स्वयंही विश्वरूपहैं और कार्यकारणसे पृथक्हैं उन्हीं स्वयम्भू भगवान के चरणोंकी शरणागतहूं ॥ ३ ॥ अपनी मायाद्वारा जिनसे कभी यह विश्व प्रकाशित और कभी प्रलयमें लीन होताहै, जो साक्षी स्वरूपसे कार्य और कारण को देखतेहैं जिनकी दृष्टि कभी नहीं लुप्तहोती और स्वयंप्रकाशमानहैं, ईश मेरी इस संकट

वतु मांपरात्परः ॥ ४ ॥ कालेनपञ्चत्वमितेषुकृत्स्नशो लोकेषुपालेषुचसर्वहेतुषु ॥ तमस्तदासीद्गहनंगभीरं यस्तस्य पारेऽभिविराजतेविभुः ॥५॥ नयस्यदेवाऋषयः पदंविदुर्जन्तुः पुनःकोऽर्हतिगन्तुमीरितुम् । यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टितो दुरत्ययानुक्रमणःसमाऽवतु ॥६॥ दिदृक्षवोयस्यपदंसुमङ्गलं विमुक्तसङ्गामुनयःसुसाधवः चरन्त्यलोकव्रतमव्रणवने भूतात्मभूताःसुहृदःसमेगतिः ॥७॥ नविद्यतेयस्यचजन्म कर्मवा ननामरूपेगुणदोषएववा । तथाऽपिलोकाप्ययसंभवाय यःस्वमाययातान्यनुकालमृच्छति ॥ ८ ॥ तस्मैनमःपरेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये । अरूपायोरुरूपाय नमआश्चर्यकर्मणे ॥९॥ नमआत्मप्रदीपाय साक्षिणेपरमात्मने । नमोगिरांविदूराय मनसश्चेतसामपि ॥ १० ॥ सत्वेनप्रतिलभ्यायनैष्कर्म्येण विपश्चिता । नमःकैवल्यनाथायनिर्वाणसुखसंविदे ॥ ११ ॥ नमःशान्तायघोराय मूढायगुणधर्मिणे । निर्विशेषायसाम्याय नमोज्ञानघनायच ॥ १२ ॥ क्षेत्रज्ञायनमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षायसाक्षिणे । पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतयेनमः ॥ १३ ॥ सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे । असताच्छाययोक्तायसदाभासाय तेनमः ॥ १४ ॥ नमोनमस्तेऽखिलकारणाय निष्कारणायाद्भुतकारणाय । सर्वागमाम्नायमहार्णवाय नमोऽपवर्गायपरायणाय ॥ १५ ॥ गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय । नैष्कर्म्यभावेन

से रक्षाकरे ॥ ४ ॥ जब कालवशसे समस्तलोक लोकपाल और सबके कारण महत्तत्वादिक भली॰ प्रकारसे नाशको प्राप्त होजातेहैं तब केवल घोर अन्धकार रहजाताहै, उस अंधकारसे परे जो विराजमान रहतेहैं वे व्यापक परब्रह्महै ॥ ५ ॥ अतएव देवता और ऋषि भी उनके स्वरूपको नहीं जानसकते फिर और कौन प्राणी उनके स्वरूपको जानसकताहै? नटकी समान जिनके चरित्र जानने में नहींआते वे ईश मेरे प्राणोंकी रक्षाकरो ॥ ६ ॥ साधु, सब प्राणियोंके प्यारे आत्मदर्शी सग त्यागी मुनि लोग, जिनके मंगलकारी चरणोंके देखनेकी लालसासे वनमें वासकर अखण्ड ब्रह्मचर्यादि नानाव्रतोंका आचरण करतेहैं वे परमात्मा मेरे रक्षकहो ॥ ७ ॥ जिनका जन्म, कर्मनही है, जो नामरहित, रूपरहित, निर्गुण और निर्दोषहैं; परंतु तौभी जो लोककी उत्पत्ति और नाशके निमित्त अपनी माया द्वारा समय २ में जन्मादि ग्रहण करतेहैं जो परमेश्वर, ब्रह्म, अनंतशक्ति, अद्भुतकर्म और बहुरूपी हैं, उनको नमस्कार करताहूं ॥ ८ । ९ ॥ जो सबके प्रकाशक और आप स्वयंप्रकाशहैं, जो परमात्मा जीवोंके नियंता तथा वाक्य, मन और चित्तके अगोचरहैं; उनको नमस्कार है ॥ १० ॥ निर्गुण और विशुद्ध सन्यास द्वारा जो प्रत्यक्ष स्वरूपसे प्राप्त होतेहैं और जो मोक्षानन्द अनुभवके स्वरूपहैं उनको नमस्कारहै ॥ ११ ॥ जो शांत, घोर मूढ़, सत्वादि धर्मों के अनुसरणकारी, विशेषरहित, समतारूपी और ज्ञान घनहैं उनको नमस्कार करताहूं ॥ १२ ॥ हेभगवन् ! आपक्षेत्रज्ञ सर्वाध्यक्ष और सबके साक्षीहो आप सबके प्रथमसे स्थितहो अतएव आत्मा के मूल और प्रकृतिके भी प्रकृतिहो;—आपको नमस्कार करताहूं ॥ १३ ॥ आप समस्त इन्द्रियों के द्रष्टा, इन्द्रियोंकी वृत्तियोंके ज्ञापक, हो विषयसमूहमें आपका सत्रूप आभास वर्तमानहै, असत् रूप अहंकार आपको प्रगट करते हैं अतएव आपको नमस्कार है ॥ १४ ॥ आप सर्वकारणरूपी, स्वयं निष्कारण व अद्भुत कारणहो । जैसे सब नदियें महासागर में जाकर मिलीहैं वैसेही समस्त शास्त्र और वेदभी आपमें समाप्त होते हैं । आपही मोक्षरूपी और साधुओंके आश्रयहो; आपको नमस्कार करताहूं,॥ १५ ॥ आप ज्ञानाग्निस्वरूप, गुणरूप काष्ठसे ढकेहुयेहो; आपका मन सृष्टिके आरम्भमें गुणोंके क्षोभसे कार्यसे विमुख होताहै । जिन्होंने आत्मतत्वकी चिन्ताद्वारा विधि निषेध

विवर्जितागमस्वयंप्रकाशायनमस्करोमि ॥ १६ ॥ मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय मुक्तायभूरिकरुणायनमोऽलयाय । स्वांशेनसर्वतनुभृन्मनसिप्रतीतप्रत्यग्दृशेभगवतेबृहतेनमस्ते ॥ १७ ॥ आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषुसक्तैर्दुष्प्रापणायगुणसङ्गविवर्जिताय । मुक्तात्मभिःस्वहृदयेपरिभाविताय ज्ञानात्मने भगवतेनमईश्वराय ॥ १८ ॥ यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा भजन्त इष्टांगतिमाप्नुवन्ति । किंत्वाशिषोरात्यपिदेहमव्ययंकरोतुमेऽदभ्रदयोविमोक्षणम् ॥ १९ ॥ एकान्तिनोयस्यनकञ्चनार्थंवाञ्छन्तियेवैभगवत्प्रपन्नाः । अत्यद्भुतंतच्चरितंसुमङ्गलंगायन्तआनन्दसमुद्रमग्नाः २० तमक्षरंब्रह्मपरंपरेशमव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम् । अतीन्द्रियंसूक्ष्ममिवातिदूरमनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥ २१ ॥ यस्यब्रह्मादयोदेवावेदालोकाश्चराचराः । नामरूपविभेदेनफल्ग्व्याचकलयाकृताः ॥ २२ ॥ यथाऽर्चिषोऽग्नेःसवितुर्गभस्तयो निर्यान्तिसंयान्त्यसकृत्स्वरोचिषः । तथायतोऽयंगुणसंप्रवाहोबुद्धिर्मनःखानिशरीरसर्गाः ॥२३॥ सवैनदेवासुरमर्त्यतिर्यङ्नस्त्रीनषण्ढोनपुमान्नजन्तुः । नायंगुणःकर्मनसन्नचासन्निषेधशेषोजयतादशेषः ॥ २४ ॥ जिजीविषेनाहमिहाऽमुयाकिमन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या । इच्छामिकालेनयस्यविप्लवस्तस्यात्मलोकावरणस्यमोक्षम् ॥२५॥

रूप आगमको छोड़दियाहै आपस्वयंही उनके अन्तःकरणमें प्रवेशपातेहो आपको नमस्कारकरताहूं १६ हे प्रभो ! आप मुक्त हो आपही मेरी समान शरण में आयेहुए पशुओं के बंधन पाशको छुटासकते हो, आपकी अपार करुणा है, अधिक क्या कृपा करनेंमें आपको आलस्य भी नहीं है, आपको नमस्कार करता हूं ॥ १७ ॥ आप समस्त प्राणियों के हृदयके बीच में अंतर्यामी रूप से बासकर ज्ञान स्वरूप से प्रकाशते हो, किंतु देहधारी जीव आपकी शेष सीमाका निश्चय नहीं करसकते आप सर्व प्राणियों के शासक हो आपको नमस्कार है आप सर्वान्तर्यामी हो जो मनुष्य देह, पुत्र, घर, धन और सेवक आदिकों में आसक्त हैं वे आपको नहीं पासकते, क्यों कि गुणों के सङ्ग आप का सम्बन्ध नहीं है जिन्हों नें देहादि की आसक्ति छोड़दी है, वही आपका ध्यान करते रहते हैं, ज्ञानही आपका स्वरूप है आप भगवान हो आपको नमस्कार करता हू ॥ १८ ॥ मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति की इच्छा से जिनकी उपासना कर अपनें २ इच्छित फल, तथा कल्याण, और अक्षय देहको प्राप्त होते हैं, जिनकी दयाकी सीमा नहीं है वे ईश्वर मेरी रक्षा करें ॥ १९॥ जो भक्त मुक्त मनुष्य की सेवा करतहुए परमानंद का संभोगकर केवल उन्हीं के अद्भुत चरित्रों का गान कियाकरते हैं उन्हीं नाश रहित, परमेश्वर, अव्यक्त, आध्यात्मिक, योग से गम्य, सूक्ष्म रूप पदार्थ की समान अतीन्द्रिय, अनंत, आद्य, और परिपूर्ण परब्रह्म को नमस्कार करता हूं ॥ २० । २१ ॥ जिनके अत्यल्प अंश द्वारा नाम और रूप भेदसे ब्रह्मादि देवतागण, चारो वेद, और चराचरा लोक उत्पन्न हुए हैं ॥ २२ ॥ जैसे अग्नि से तेज और सूर्य से किरणें निकलतीं हैं और वह तेज व किरणें अग्नि व सूर्य महीं लीन होजाती हैं वैसेही बुद्धि, मन, इन्द्रिय, और देहका प्रवाह जिससे उत्पन्नहोता और जिसमें लीन होजाता है ॥२३॥ वह परमेश्वर, देवता, असुर, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्त्री, नपुंसक, पुरुष, और लिंगहीन व कोई विशेष प्राणीभीनहीं हैं तथा नतो वह गुणही है नकार्य, न सत् न असत् न यह न वह कछभी नहीं है इस प्रकार समस्त पदार्थों का निषेध करतेहुए जो शेष रहता है वही परब्रह्म है उसी शेषहीन परमात्मा की जय हो ॥ २४ ॥ इस लोकमें वेही भगवान मेरा दु:ख दूर करों इस ग्राह से मैं छूटजाऊ तो फिर मैं जीनें की इच्छा नहीं करता क्यों कि यह हाथी का शरीर बाहर और भीतर से अज्ञान के अंधकार से ढकाहुआ है इससे कोईभी प्रयोजन नहीं है अज्ञान आत्म तत्व के प्रकाशको ढकनेंवाला और मोक्ष काल में भी नष्ट नहोनेंवाला है, मैं उस अज्ञान से

सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् । विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥ २६ ॥ योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते । योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ॥ २७ ॥ नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेगशक्तित्रयायाखिलधीगुणाय प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥ २८ ॥ नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याऽहंधिया हतम् । तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाऽभिमानाः । नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥ ३० ॥ तं तद्वदार्तमुपलभ्य जगन्निवासः स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः । छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमानश्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ॥ ३१ ॥ सोऽन्तःसरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम् ॥ उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रान्नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥ ३२ ॥ तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसाऽवतीर्य सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार । ग्राहाद्विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं संपश्यतां हरिरमूमुचदुस्त्रियाणाम् ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भा० महापुराणे अष्टमस्कन्धे गजेन्द्रमोक्षणे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥ तदा देवर्षिगन्धर्वा ब्रह्मेशानपुरोगमाः । मुमुचुः कुसुमासारं शंसन्तः कर्म तद्धरेः ॥ १ ॥ नेदुर्दुन्दुभयो दिव्या गन्धर्वा ननृतुर्जगुः । ऋषयश्चार

छूटना चाहता हूं ॥ २५ ॥ इच्छाही से जो विश्वको उत्पन्न करते हैं विश्वही जिनका स्वरूप है विश्व से जो पृथक् है और विश्वही जिनकी सम्पत्ति व विश्वही जिनकी आत्मा है उन परमपद परब्रह्मको नमस्कार करता हूं ॥ २६ ॥ भगवद्धर्म के सम्बन्ध से जिनके सब कर्म भस्म होगए हैं वह योगीजन योग से शुद्ध हुए चित्त में जिन योगेश्वर का दर्शन करते हैं उनको नमस्कार है ॥ २७ ॥ आप की तीनों शक्तियों के योग का सहन नहीं कियाजासकता आप बाहर से इन्द्रियों के स्वरूप में प्रतीत होते और शरणागतों का पालन करतेहो, आप अनन्त शक्ति वाले हो जिनकी इन्द्रियें दुष्ट हैं वे आप के पद को कभी नहीं पासकते आपको नमस्कार है ॥ २८ ॥ जिस अहंबुद्धि रूपिणी आपकी माया से मनुष्य ढककर ज्ञान रहित हो अपनें स्वरूप कोभी नहीं जानसकता, उन अपार महिमा वाले आप भगवान की शरण में हूं ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! गजेन्द्र नें मूर्ति भेद का वर्णन नकर इस प्रकार से परम तत्वकी स्तुति की ब्रह्मादि देवताओं को नाना मूर्ति भेद से अभिमान है अतएव हाथी के समीप उनके न आनेंपर सबके आत्मा, अखिल देवता स्वरूप स्वयं नारायण प्रगटहुए ॥ ३० ॥ चक्रधारी जगन्नाथ, गजेन्द्र को इस प्रकार से दुःखित जान और उसका स्तोत्र सुन वेदमय गरुड़पर बैठे उसके निकट आये देवतागण स्तुति करतेहुए उनके पीछे२ आने लगे ॥ ३१ ॥ गजराज, जलमें रहेहुये बलवान ग्राहसे खिंचकर कष्ट पारहाथा; इस समय आकाश मंडल में गरुडपर बैठेहुये नारायणको देख कमलयुक्त सूंडको ऊंचीउठा अतिकष्टसे कहाकि—हे नारायण! हे अखिलगुरो ! आपको नमस्कार है ॥ ३२ ॥ भगवान विष्णु गजेन्द्रको पीड़ित देखकर तत्काल गरुड़की पीठसे उतरपड़े और करुणायुक्त चित्तसे सरोवर से ग्राह समेत गजको निकाला और चक्र से ग्राहका मुख फाड़कर देवताओं के सामनेंही गजेन्द्रको छुड़ाया ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणेअष्टमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हेराजन् ! ब्रह्मा, आदि देवता, ऋषि, और गन्धर्व, भगवानके उस अद्भुत कर्मकी प्रशंसाकर फूल बर्षानेलगे ॥ १ ॥ स्वर्गमें दुन्दुभी बजने लगीं, गन्धर्वगण नाचने

णाः सिद्धास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥ योऽसौग्राहः सवैसद्यः परमाश्चर्यरूपधृक् ।
मुक्तोदेवलशापेनहूहूर्गन्धर्वसत्तमः ॥ ३ ॥ प्रणम्यशिरसाऽधीशमुत्तमश्लोकमव्य
यम् । अगायतयशोधामकीर्तन्यगुणसत्कथम् ॥ ४ ॥ सोऽनुकम्पितईशेनपरिक्रम्य
प्रणम्यतम् । लोकस्यपश्यतोलोकंस्वमगान्मुक्तकिल्बिषः ॥ ५ ॥ गजेन्द्रोभगव
त्स्पर्शाद्विमुक्तोऽज्ञानबन्धनात् । प्राप्तोभगवतोरूपंपीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ ६ ॥ सवै
पूर्वमभूद्राजापाण्ड्योद्रविडसत्तमः । इन्द्रद्युम्नइतिख्यातोविष्णुव्रतपरायणः ॥ ७ ॥
सएकदाऽऽराधनकालआत्मवान्गृहीतमौनव्रतईश्वरंहरिम् । जटाधरस्तापसआप्लु
तोऽच्युतंसमर्चयामासकुलाचलाश्रमः ॥ ८ ॥ यदृच्छयातत्रमहायशामुनिः समा
गमच्छिष्यगणैः परिश्रितः । तंवीक्ष्यतूष्णीमकृतार्हणादिकंरहस्युपासीनमृषिश्चु
कोपह ॥ ९ ॥ तस्मादिमंशापमदादसाधुरयंदुरात्माऽकृतबुद्धिरद्य । विप्रावमन्ता
विशतांतमोऽन्धंयथागजःस्तब्धमतिःसएव ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवंशप्त्वा
गतोऽगस्त्योभगवान्नृपसानुगः । इन्द्रद्युम्नोऽपिराजर्षिर्दिष्टंतदुपधारयन् ॥ ११ ॥
आपन्नः कौञ्जरींयोनिमात्मस्मृतिविनाशिनीम् । हर्यर्चनानुभावेनयद्गजत्वेऽप्यनु
स्मृतिः ॥ १२ ॥ एवंविमोक्ष्य गजयूथपमब्जनाभस्तेनापिपार्षदगतिंगमितेनयुक्तः ।
गन्धर्वसिद्धविबुधैरुपगीयमानकर्माऽद्भुतंस्वभवनं गरुडासनोऽगात् ॥ १३ ॥ ए
तन्महाराज तवेरितोमयाकृष्णानुभावोगजराजमोक्षणम् । स्वर्ग्यंयशस्यंकलिकल्म

और गानेलगे तथा ऋषि, चारण और सिद्धलोग नारायणकी स्तुति करनेमें प्रवृत्तहोगये ॥ २ ॥ हेराजन् ! हूहूनामक गन्धर्वने देवलऋषिके शापसे ग्राह योनिमें जन्म लियाथा ॥ ३ ॥ इससमय भगवानकी कृपासे शापसे मुक्तहो उसने अत्याश्चर्य रूप धारणकर नारायणको मस्तकद्वारा प्रणाम कर उनके गुणोंके गानेका आरम्भकिया ॥ ४ ॥ और निष्पापहो भगवानकी परिक्रमा और प्रणाम कर अपने स्थानको गया इस ओर राजानेभी भगवानके करस्पर्श होनेके कारण अज्ञानसे मुक्तहो, भगवानकी समान कांतिको प्राप्तहो पीतांबर और चतुर्भुजरूप धारणकिया ॥ ६ ॥ गजेंद्र पूर्व-जन्ममें इन्द्रद्युम्ननामक पांडुदेशका राजाथा, उसकाल द्रविड़देशमें उसकी समान और कोई साधु न था ॥ ७ ॥ विष्णुजीका व्रत करनाही इन्द्रद्युम्नका एकमात्र साधन था; आत्मज्ञानी इन्द्रद्युम्न पर्वतको आश्रम बना जटाधारण कर, तपस्वी के वेशसे भगवानके भजनमें प्रवृत्तहुआ ॥ ८ ॥ उपासनाके समयमें स्नानकर मौनव्रत धारण कियेहुए भगवान नारायण का ध्यान कररहाथा कि उसी समयमे महायश अगस्त्य मुनि शिष्योंको साथलियेहुए इच्छानुसार उस स्थानपर आये। इन्द्रद्युम्न उनकी पूजानकर एकओर मौनभावसे बैठारहा। यह देखकर मुनिको क्रोध उत्पन्नहुआ ॥ ९ ॥ वे कुपित होकर राजाको शाप देनेलगे कि इस दुष्ट असाधुने शिक्षानहीं प्राप्तकी इसहीकारण आज इसने ब्राह्मणोंका निरादर किया। यह गजकी समान जड़बुद्धि है, मनुष्य गजहोकर अज्ञान में डूब जावे ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि-हे राजन् ! भगवान अगस्त्यजी इसप्रकार से शापदे शिष्यों समेत चलेगये। राजर्षि इन्द्रद्युम्न भी "दैवही इस घटनाका मूल है" यह विचार करता करता गजयोनिको प्राप्तहुआ ॥ ११ ॥ गजयोनि में आत्म स्मृति नाश होजाती है, किंतु राजाइन्द्र द्युम्नहरि की आराधना करता था, उसीके प्रभाव से वह गजहोकर भी पूर्वके वृत्तांतको न भूला ॥ १२ ॥ पद्मनाभ गरुड़ वाहन भगवान ने गजन्द्रको इसप्रकार से मुक्तकर उसको अपना पार्षदबना उसके संग अपने स्थानको गये। गंधर्व, सिद्ध और देवतागण उनकी अद्भुत कीर्त्तिका गान करते २ पीछे २ चलने लगे ॥ १३ ॥ हे महाराज ! मैंने तुमसे कृष्णजी के गजराज विमोक्षण रूप माहात्म्य का

पापहंदुःस्वप्ननाशंकुरुवयंशृण्वताम् ॥ १४ ॥ यथाऽनुकीर्तयन्त्येतच्छ्रेयस्कामाद्विजातयः । शुचयः प्रातरुत्थायदुःस्वप्नाद्युपशान्तये ॥ १५ ॥ इदमाहहरिःप्रीतोगजेन्द्रंकुरुसत्तम । शृण्वतांसर्वदेवानांसर्वभूतमयोविभुः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ येमांत्वांचसरश्चेदंगिरिकन्दरकाननम् ॥ वेत्रकीचकवेणूनां गुल्मानि सुरपादपान् ॥ १७ ॥ शृङ्गाणीमानिधिष्ण्यानिब्रह्मणोमेशिवस्यच । क्षीरोदंमेप्रियंधामश्वेतद्वीपंचभास्वरम् ॥१८॥ श्रीवत्संकौस्तुभंमालांगदांकौमोदकींमम । सुदर्शनंपाञ्चजन्यं सुपर्णंपतगेश्वरम् ॥ १९ ॥ शेषंचमत्कलांसूक्ष्मांश्रियंदेवींमदाश्रयाम् । ब्रह्माणंनारदमृषिंभवंप्रह्लादमेवच ॥ २० ॥ मत्स्यकूर्मवराहाद्यैरवतारैः कृतानिमे । कर्माण्यनन्तपुण्यानिसूर्यंसोमंहुताशनम् ॥ २१ ॥ प्रणवंसत्यमव्यक्तंगोविप्रान्धर्ममव्ययम् । दाक्षायणीर्धर्मपत्नीः सोमकश्यपयोरपि ॥ २२ ॥ गङ्गांसरस्वतींनन्दांकालिन्दींसितवारणम् । ध्रुवंब्रह्मऋषीन्सप्तपुण्यश्लोकांश्चमानवान् ॥ २३ ॥ उत्थायापररात्रान्तेप्रयताः सुसमाहिताः । स्मरन्तिममरूपाणिमुच्यन्तेह्येनसोऽखिलात् ॥ २४ ॥ येमांस्तुवन्त्यनेनाङ्गप्रतिबुध्यनिशात्यये । तेषांप्राणात्ययेचाहंददामिविमलांमतिम् ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्यहृषीकेशः प्रध्मायजलजोत्तमम् । हर्षयन्विबुधानीकमारोहत्खगाधिपम् ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे अष्टमस्कन्धे गजेन्द्रमोक्षणंनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजन्नुदितमेतत्तेहरेः कर्माघनाशनम् । गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यंरैवतन्त्वन्तरंशृणु ॥ १ ॥ पञ्चमोरैवतोनाममनुस्तामससोदरः । बलिविन्ध्याद

वर्णन किया । जोइस प्रभातको सुनेगे वह स्वर्ग व यशको पावेंगे उनके कलियुग के पाप व दुःस्वप्नके दोष नाश होजावेंगे ॥ १४ ॥ अतएव कल्याणकी इच्छा रखने वाले द्विजोंको प्रातःकालही उठकर पवित्रहो दुःस्वप्नकी शांतिके निमित्त इसका कीर्त्तन करना उचित है ॥ १५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! सर्व भूतमय नारायण ने प्रसन्न होकर सब प्राणियों के सामने गजेन्द्र से यह कहाथा कि जोअतिम रात्रिको जागकर सावधानहो यत्नपूर्वक—मुझको, तुझको, इस सरोवर, वन, और पर्वतको, कंदरा, बांस, झाड़ी, देववृक्ष, लताओंको,ब्रह्माके, शिवके और मेरे निवास भूतइन सब शिखरोंको, मेरेप्यारे निवास स्थान क्षीरसागरको, तेजोमय श्वेत द्वीपको, मेरे श्रीवत्स, कौस्तुभमाला, कौमोदकीगदा, सुदर्शन चक्र, और पांचजन्य शंखको, पन्नगराज, गरुड़को,अनंतको, मेरेसूक्ष्म अंशस्वरूपा, मेरी आश्रिता लक्ष्मी देवीको, ब्रह्मा, नारद, और प्रह्लादको, मत्स्य, कूर्म और वराहादि अवतारों में जोसब पवित्र कार्य किये हैं उन कार्योंको, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, ओंकार, सत्य, माया, गौ, ब्राह्मण, और भक्ति लक्षण धर्मको; चन्द्र और कश्यपकी धर्म पत्नीदक्ष नंदिनियोंको; गंगा, सरस्वता, नंदा और कालिंदीको,ऐरावत,ध्रुव,सप्त ब्रह्मर्षि, और पवित्रयशवाले दानवोंको स्मरण करेंगे वे सब पापों से छूटजायंगे । यह सब मेरेरूप हैं । हे गजराज । जोरात्रि के अंतमें जगकरइन सबके द्वारा मेरी स्तुति करते हैं मरणके अंतमें मैं उन्हें सद्गति देताहूं ॥ १६—२५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन्! नारायण यह कह शंखोंमें श्रेष्ठ पांचजन्य शंखको बजाय देवताओंका आनंदित करते हुये गरुड़पर सवार हुये ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणेअष्टमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! मैंनेहरिके गजेन्द्र विमोचनरूप परमपवित्र और पापनाशन कर्मों का तुमसे वर्णन किया । अब रैवतमन्वन्तरकी कथा सुनो ॥ १ ॥ पंचममनुका नामरैवत था

यस्तस्य सुताश्चार्जुनपूर्वकाः ॥ २ ॥ विभुरिन्द्रः सुरगणा राजन्भूतरयादयः । हिरण्य रोमा वेदशिरा ऊर्ध्वबाह्वादयो द्विजाः ॥ ३ ॥ पत्नी विकुण्ठा शुभ्रस्य वैकुण्ठैः सुरसत्तमैः । तयोः स्वकलया जज्ञे वैकुण्ठो भगवान्स्वयम् ॥ ४ वैकुण्ठः कल्पितो येन लोको लोकनमस्कृतः । रमया प्रार्थ्यमानेन देव्या तत्प्रियकाम्यया ॥ ५ ॥ तस्यानुभावः कथितो गुणाश्च परमोदयाः । भौमान् रेणून्स विममे यो विष्णोर्वर्णयेद्गुणान् ॥ ६ ॥ षष्ठश्च चक्षुषः पुत्रश्चाक्षुषो नाम वै मनुः । पूरुः पूरुषसुद्युम्नप्रमुखाश्चाक्षुषात्मजाः ॥७॥ इन्द्रो मन्त्रद्रुमस्तत्र देवा आप्यादयो गणाः । मुनयस्तत्र वै राजन्हविष्मद्वीरकादयः ॥ तत्रापि देवः सम्भूत्यां वैराजस्याभवत्सुतः । अजितो नाम भगवानंशेन जगतः पतिः । ॥ ९ ॥ पयोधिं येन निर्मथ्य सुराणां साधिता सुधा । भ्रममाणोऽम्भसि धृतः कूर्मरूपेण मन्दरः ॥ १० ॥ राजोवाच ॥ यथा भगवता ब्रह्मन् मथितः क्षीरसागरः । यदर्थं वा यतश्चाद्रिं दधाराम्बुचरात्मना ॥ ११ ॥ यथाऽमृतं सुरैः प्राप्तं किञ्चान्यदभवत्ततः । एतद्भगवतः कर्म वदस्व परमाद्भुतम् ॥ १२ ॥ त्वया संकथ्यमानेन महिम्ना सात्वतां पतेः । नातितृप्यति मे चित्तं सुचिरं तापतापितम् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ संपृष्टो भगवानेवं द्वैपायनसुतो द्विजाः । अभिनन्द्य हरेर्वीर्यं मभ्याचष्टुं प्रचक्रमे ॥ १४ ॥ श्री शुक उवाच ॥ यदा युद्धेऽसुरैर्देवा बाध्यमानाः शितायुधैः । गतासवो निपतिता नोत्तिष्ठेरन्स्म भूयशः ॥ १५ ॥ यदा दुर्वाससः शापात् सेन्द्रा लोकास्त्रयो नृप । निःश्री

वैरागमगनके सहोदर भाई थे। अर्जुन, बलि और विन्ध्य इनाम उनके कई एक पुत्र हुए ॥ २ ॥ इस मन्वन्तर में विभु इन्द्र, भूतरय आदि देवता, और हिरण्यरोमा, वेदशिरा, ऊर्ध्वबाहु आदि ऋषि हुए ॥ ३ ॥ स्वयंभगवान इस मन्वन्तर में शुभ्रके वीर्य से उनकी पत्नी विकुण्ठाके गर्भमें वैकुण्ठवासी देवताओं सहित अपने अंशसे वैकुण्ठनामसे उत्पन्नहुए ॥ ४ ॥ लक्ष्मीदेवीकी कामनाम वैकुण्ठभगवानने उनके प्रिय करने के निमित्त वैकुण्ठलोक बनाया सबलोकों के रहनेवाले उस वैकुण्ठको नमस्कार करते हैं॥५॥ उन वैकुण्ठभगवानका महात्म्य और परमपवित्रगुणों काजो वर्णन किया है वह अति सामान्य है; क्योंकि जो विष्णुजी के समस्तगुणोंका वर्णन करने की इच्छाकरता है वह पृथ्वीके रज कण गिनना चाहता है॥६॥ छठे मनु कानाम चाक्षुष हुआजो चक्षुकेपुत्रथे। पुरु, पुरुष, सुद्युम्न आदि इनके पुत्रहुए ॥ ७ ॥ इस मन्वन्तर में मंत्रद्रुमइन्द्र; आप्यादि देवता, और हविस्मततथा वीरकआदि ऋषिहुए ॥ ८ ॥ चाक्षुष मन्वन्तरमें भगवानने वैराजकी भार्या सम्भूति के गर्भ में अपने अंशसे अजितनामसे अवतार लिया था ॥ ८ ॥ अजितने कच्छप मूर्ति धारणकरके जलमें घूमतेहुए मंदरपर्वतको धारणकर, समुद्रकोमथ उसमें से अमृत निकाल देवताओंको पिलाया १०॥ राजाने कहाकि—हेब्रह्मन्! भगवान ने किसकेकारण, क्योंकर और कैसे क्षीर समुद्रकोमंथन करनेको कूर्मरूप धारणकर मन्दरपर्वतको धारणकिया॥११॥ जैसे देवताओं ने अमृतप्राप्त किया और उसके प्राप्तकरने में जो घटनाएं हुई उनसबका आप वर्णनकरो भगवानके यहकर्म अत्यन्तअद्भुत हैं॥१२॥ मेरा अन्तःकरण बहुत दिनोंके ताप से सन्तप्त होरहा है, इसही कारण भक्तप्रिय भगवानकी महिमा को आप जितनाहीकहते हैं, उससे कुछभी मेरा चित्त तृप्तनहीं होता ॥ १३ ॥ श्री सूतजीने कहाकि—हेऋषियो! जबराजापरीक्षितने श्रीशुकदेवजी से ऐसे पूछा तब ऋषि शुकदेवजी हरिके पराक्रमकी प्रशंसा करके कहनेलगे कि ॥ १४ ॥ हे राजन्! असुरलोग तीव्र अस्त्रधारण करके युद्ध क्षेत्रमें देवताओं का विनाशकरने लगे; इससे अनेकोंही देवताप्राण रहित होकर गिरपड़े; और फिर न उठसके ॥ १५ ॥ इसओर दुर्वासाके शापसे इन्द्रआदि तीनोंलोक निर्धन होगये

काश्चामर्त्यस्तत्र नेशुरिज्यादयः क्रियाः ॥ १६ ॥ निशाम्यैतत्सुरगणा महेन्द्रवरुणादयः । नाध्यगच्छन्स्वयं मन्त्रैर्मन्त्रयन्तो विनिश्चयम् ॥ १७ ॥ ततो ब्रह्मसभां जग्मुर्मेरोर्मूर्द्धनि सर्वशः । सर्वं विज्ञापयांचक्रुः प्रणताः परमेष्ठिने ॥ १८ ॥ स विलोक्येन्द्रवाय्वादीन्निःसत्त्वान्विगतप्रभान् । लोकानमङ्गलप्रायानसुरानयथा विभुः ॥ १९ ॥ समाहितेन मनसा संस्मरन्पुरुषं परम् । उवाचोत्फुल्लवदनो देवान्स भगवान्परः ॥ २० ॥ अहं भवो यूयमथोऽसुरादयो मनुष्यतिर्यग्द्रुमघर्मजातयः । यस्यावतारांशकलाविसर्जिता व्रजाम सर्वे शरणं तमव्ययम् ॥ २१ ॥ न यस्य वध्यो न च रक्षणीयो नोपेक्षणीयाऽऽदरणीयपक्षः । तथापि सर्गस्थितिसंयमार्थं धत्ते रजःसत्त्वतमांसि काले ॥ २२ ॥ अयं च तस्य स्थितिपालनक्षणः सत्त्वं जुषाणस्य भवाय देहिनाम् । तस्माद्व्रजाम शरणं जगद्गुरुं स्वानां स नो धास्यति शं सुरप्रियः ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याभाष्य सुरान्वेधाः सह देवैररिन्दम । अजितस्य पदं साक्षाज्जगाम तमसः परम् ॥ २४ ॥ तत्रादृष्टस्वरूपाय श्रुतपूर्वाय वै विभो । स्तुतिमब्रूत दैवीभिर्गीर्भिस्त्ववहितेन्द्रियः ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अविक्रियं सत्यमनन्तमाद्यं गुहाशयं निष्कलमप्रतर्क्यम् । मनोऽग्रयानं वचसानिरुक्तं नमामहे देववरं वरेण्यम् ॥ २६ ॥ विपश्चितं प्राणमनोधियात्मनामर्थेन्द्रियाभासमनिद्रमव्रणम् । छायातपौ यत्र न गृध्रपक्षौ तमक्षरं खं त्रियुगं व्रजामहे ॥ २७ ॥ अजस्य चक्रं त्वजयेर्यमाणं मनोमयं पञ्चदशारमाशु । त्रिणा

तथा यज्ञादिकार्य भी बन्दहोगये ॥ १६ ॥ इन्द्र और वरुणादि देवता नानापरामर्शकरने परभी कोई उपाय स्थिर नकरसके ॥ १७ ॥ तब अन्त मे सबही सुमेरुके शृङ्गपर ब्रह्माजीकी सभामे उपस्थितहुए और ब्रह्माजीको प्रणामकर समस्त वृत्तान्त कहनेलगे ॥ १८ ॥ भगवान ब्रह्माजीने इन्द्रादिक देवताओंको निःसत्व और प्रभाहीन व लोकोंको अत्यन्त दुर्दशाग्रस्त तथा असुरोंको बलवान देखकर स्थिर चित्तसे भगवानका ध्यान करतेर प्रफुल्लवदनहो देवताओंसे कहा कि १९ ॥ २० ॥ मैं, महादेव, तुम और असुर तथा मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष और स्वेदज सबही जिनके अवतारों के अंश कलाओंसे उत्पन्न होते हैं आओ हम सब मिलकर उनके पासचलें ॥ २१ ॥ जिनके नतो कोई मारने योग्य है, न कोई रक्षाकरने के योग्य है, न कोई उपेक्षणीय है न आदरणीय है, तो भी जो कालक्रमसे उत्पत्ति, स्थिति और संहारके निमित्त रज सत्व और तमोगुणको धारणकरते है ॥ २२ ॥ उन्होंने प्राणियोंके कल्याणके अर्थ इस समय सत्वगुणका अवलम्बन किया है, यही उनकी स्थिति और पालनका काल है । हमउनके अपनेही है, अतएव चलो, हम उनकी शरणलें जगद्गुरु हमारे कल्याणका यत्नकरेंगे॥२३॥श्रीशुकदेवजीबोले कि—हेशत्रुदमन! ब्रह्माजी देवताओंसे यहबातकह उनको साथले तमोगुणसे परे स्थित परमधामक्षीर सागरमें गये और उस स्थानमे पहुंचकर सावधान मनसे वैदिकवाक्यों द्वारा अदृष्टस्वरूप भगवानकी स्तुतिकरनेलगे२५ ब्रह्माजी बोलेकि—हेदेव! आपसर्वश्रेष्ठहो, आपको हम नमस्कार करतेहैं आप आद्य,अनन्त,विकार रहित, सत्यस्वरूप और सर्वान्तर्यामीहो, आप उपाधिरहित, औरअचिन्त्यहो । मनकी अपेक्षाभी आपका वेग अधिकहै; वाक्यद्वारा आपका निश्चय नहीं कियाजासकता —आपको नमस्कारहै २६॥ अहो! जो प्राण, मन, बुद्धि, और अहङ्कारके ज्ञाता हैं जोइन्द्रिय और विषय रूपसे प्रकाश पाते है, जो स्वप्न द्रष्टाकी समान अज्ञान रहित हैं, जिनके देह नहीं है, जो अक्षय व आकाशवत् सर्वव्यापी हैं, जिनका जीवकी पक्षपातिनी अविद्या और विद्याके साथ सम्बन्ध नहीहै जो तीनो युगमें आविर्भूत होते रहतेहैं, मैं उनकी शरणागतहूं ॥ २७ ॥ मायासे प्रेरित, मनोमय, दशइन्द्री व पञ्चप्राण

भिविद्युच्चलमष्टनेमि यदक्षमाहुस्तमृतंप्रपद्ये ॥ २८ ॥ यएकवर्णंतमसःपरंतद्
लोकमव्यक्तमनन्तपारम् । आसांचकारोपसुपर्णमेनमुपासतेयोगरथेनधीराः ॥
॥ २९ ॥ नयस्यकश्चातितितर्तिमायां ययाजनोमुह्यति वेद नार्थम् । तं निर्जिता
त्मात्मगुणंपरेशं नमामभूतेषुसमंचरन्तम् ॥ ३० ॥ इमेवयंयत्प्रियथैवतन्वा सत्त्वेनसृ
ष्टाबहिरन्तराविः । गतिंनसूक्ष्मामृषयश्च विद्महे कुतोऽसुराद्याइतरप्रधानाः ॥३१॥
पादौमहीयंस्वकृतैवयस्य चतुर्विधोयत्रहिभूतसर्गः । सवैमहापूरुषआत्मतन्त्रः प्र-
सीदतांब्रह्ममहाविभूतिः ॥ ३२ ॥ अम्भस्तुयद्रेतउदारवीर्यं सिध्यन्तिजीवन्त्युतव-
र्धमानाः । लोकायतोऽथाखिललोकपालाः प्रसीदतांब्रह्ममहाविभूतिः ॥३३॥ सो-
मंमनोयस्यसमामनन्ति दिवौकसां वैबलमन्धआयुः ॥ ईशोनगानांप्रजनःप्रजानां
प्रसीदतांनःसमहाविभूतिः ॥ ३४ ॥ अग्निर्मुखंयस्यतुजातवेदा जातःक्रियाकाण्ड
निमित्तजन्मा । अन्तःसमुद्रेऽनुपचन्स्वधातून्प्रसीदतांनः समहाविभूतिः ॥३५॥ य
च्चक्षुरासीत्तरणिर्देवयानं त्रयीमयोब्रह्मणएषधिष्ण्यम् । द्वारंचमुक्तेरमृतंचमृत्युःप्रसी
दतांनःसमहाविभूतिः ॥ ३६ ॥ प्राणादभूद्यस्यचराचराणां प्राण सहोबलमोजश्च
वायुः । अन्वास्मसम्राजमिवानुगावयं प्रसीदतांनःसमहाविभूतिः ॥ ३७ ॥ श्रोत्रा
द्दिशोयस्यहृदश्चखानि प्रजज्ञिरेखंपुरुषस्यनाभ्याः । प्राणेन्द्रियात्मासुशरीरकेत प्र-

वाला आरा, तीव्रगामी, तीननाभिवाला, बिजुलीकी समान चचलगति, व आठ (प्रकृति) चक्र-
वाला जो यह जीवक शरीरादि रूप चक्रहै उसके धुरीरूप सत्य जो आपहो उनकी शरणमें आया
हू ॥ २८ ॥ जो जीवके पार्श्वमें स्थितहैं, और ज्ञानही जिनका एक मात्र स्वरूपहै जो प्रकृतिके दूर-
वर्त्ती अन्दृश्य, अव्यक्त, अनन्त और अपारहैं धीर मनुष्य योगरूप साधनद्वारा जिनकी उपासना
करतेहैं ॥ २९ ॥ मनुष्य जिनसे मोहित होकर आत्माके स्वरूपको नही जानसकते, जिन्होंने माया
और मायाके गुण सबोंहीका जय कराकियाहै; जो परमईश्वर और सर्वत्र समभावसे विचराकरतेहैं।
मैं उनको नमस्कार करताहू ॥३०॥ यह सब ऋषि और देवता व मैं जिनके प्रिय देहरूप सत्वगुण
से उत्पन्न हुयेहैं, उनकी सूक्ष्मगति बाहर और भीतर प्रकाश पाताहै; तौभी जब हम उस गतिको
नहीं जानसकते तब असुरादि दूसरे जीव कैसे जानसकतेहैं? जो रज और तमोगुण द्वारा उत्पन्न
हुयेहैं ॥ ३१ ॥ जिन्होंने इस पृथ्वीको कि जिसमें चारप्रकारके प्राणी वास करते हैं, उत्पन्नकिया,
और पृथ्वीही जिनके दोनं चरण हैं—उन विराट्रूप महापुरुष, महाविभूतिशाली भगवानमें मेरी
प्रीतिहोवे ॥ ३२ ॥ लोक और लोकपाल जिस जलसे उत्पन्न होतेहैं, जिस जल द्वारा वह वृद्धिपाते
और जीतेहैं वह उदार शक्ति जल जिसका वीर्यहै वही महैश्वर्यशाली भगवान हमारे ऊपर प्रसन्नहोवें
॥ ३३ ॥ जो चन्द्रमा—देवताओंका अन्न, बल और परमायुहै; जो सब वृक्षोंका ईश्वर और जन्म
दाताहै; वही चन्द्रमा जिनका मनहै वे महाविभूतिशाली ईश्वर मेरेऊपर प्रसन्नहोवें ॥३४॥ क्रियाकांड
के निमित्त जो अग्नि उत्पन्न होतीहै, जिस अग्निसे वेदरूप धन उत्पन्न हुआहै, और जो अग्निजीवों
के उदरमें रहकर अन्नका परिपाक करती है वही अग्नि जिनका मुखहै वेही महाविभूतिशाली महेश
मेरे ऊपर प्रसन्नहोवें ॥ ३५ जो सूर्य अर्चिरादि मार्गके देवता, वेदमय, ब्रह्माके उपासनाके स्थान
और मुक्तिका द्वार व अमृत तथा मृत्युरूपी हैं वही सूर्य जिनके नेत्रहैं वे महायश परमेश्वर मेरेऊपर
प्रसन्नहोवें ॥ ३६ ॥ जो वायु चराचरका प्राण बल, उत्साह और विक्रमहै और हम सेवककी समान
राजारूप जिस वायुका अनुसरण करतेहैं वही वायु जिनके प्राणसे उत्पन्नहुआहै वे महाऐश्वर्यवाले
प्रभु मेरे ऊपर ,प्रसन्नहोवें ॥ ३७ ॥ जिसके श्रोत्रसे दशों दिशायें हृदयसे देहगत छिद्र समूह,
और नाभि से दशप्राण, इन्द्रिय, मन और देहका आश्रयीभूत आकाश उत्पन्न हुआ है

प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३८ ॥ बलान्महेन्द्रस्त्रिदशाः प्रसादान्मन्योर्गिरीशो धिषणाद्विरिंचः। खेभ्यश्च छन्दांस्यृषयो मेढ्रतः कः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः॥३९॥ श्रीर्वक्षसः पितरश्छाययाऽऽसन्धर्मः स्तनादितरः पृष्ठतोऽभूत्। द्यौर्यस्य शीर्ष्णोऽप्सरसो विहारात्प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४० ॥ विप्रो मुखं ब्रह्म च यस्य गुह्यं राजन्य आसीद्भुजयोर्बलं च। ऊर्वोर्विडोजोऽङ्घ्रिरवेदशूद्रौ प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४१ ॥ लोभोऽधरात्प्रीतिरुपर्यभूद्द्युतिर्नस्तः पशव्यः स्पर्शेन कामः। भ्रुवोर्यमः पक्ष्मभवस्तु कालः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४२ ॥ द्रव्यं वयः कर्म गुणान्विशेषं यद्योगमायाविहितान्वदन्ति। यद्दुर्विभाव्यं प्रबुधापबाधं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४३ ॥ नमोऽस्तु तस्मा उपशान्तशक्तये स्वाराज्यलाभप्रतिपूरितात्मने। गुणेषु मायारचितेषु वृत्तिभिर्न सज्जमानाय नभस्वदूतये ॥४४॥ स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम्। प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखाम्बुजम् ॥४५॥ तैस्तैः स्वेच्छाभूतै रूपैः काले काले स्वयं विभो। कर्म दुर्विषहं यन्नो भगवांस्तत्करोति हि ॥ ४६ ॥ क्लेशभूर्यल्पसाराणि कर्माणि विफलानि वा। देहिनां विषयार्तानां न तथैवार्पितं त्वयि ॥ ४७ ॥ नावमः कर्मकल्पोऽपि विफलायेश्वरार्पितः। कल्पते पुरुषस्यैव स ह्यात्मा दयितो हितः ।४८। यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलावसेचनम्। एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च

वे महा विभूति शालीविभु हमारे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ ३८ ॥ जिनके बलसे महेन्द्र, कृपासे देवता, क्रोध से महेश, बुद्धिसे ब्रह्मा, देहके छिद्रोंसे वेद, और ऋषि तथा उपस्थ से प्रजापति उत्पन्न हुये हैं—वे महाविभूतिशाली भगवान मेरे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ ३९ ॥ जिनके वक्षःस्थल से लक्ष्मी, छाया से पितर, स्तन से धर्म, पीठसे अधर्म, शिरसे वैकुंठ, और विहार से अप्सरायें उत्पन्न हुई हैं वे महाकीर्तिवाले परमेश्वर मेरे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ ४० ॥ जिनके मुखसे ब्राह्मण और रहस्यमय वेद, भुजासे क्षत्री, बल, जंघाओं से वैश्य और निपुणता, चरणों से शूद्र और सेवा उत्पन्न हुये हैं। वेमहा विभूतिशाली भगवान हमपर प्रसन्न होवें ॥ ४१ ॥ जिनके अधर से लोभ, ऊपर के होठसे प्रीति, नासिका से कांति, स्पर्श से पशुओं के शुभसाधक काम, दोनो भौंहों से यमराज और पलकों से काल उत्पन्न हुआ है—वे महाविभूतिशाली परमेश्वर मेरे ऊपर प्रसन्न होवें ॥४२॥ पण्डितलोगभी-पंचभूत, काल, कर्म, गुण और अनित्य संसार इन सबको दुर्विभाव्य (कठिनतासे जानने योग्य) जानकर खंडन करते हैं और ज्ञानीलोग यह सब प्रपंच जिनकी योगमायासे रचा हुआ कहते हैं वह महा ऐश्वर्य वाले परमेश्वर मेरे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ ४३ ॥ प्रशांत, शक्तिमय, स्वरूपानंदके लाभसे परिपूर्ण स्वरूप, मायासे उत्पन्नहुये गुणोंमें अनासक्त, वायुकी समान क्रीड़ा करने वाले भगवान आपको प्रणाम है ॥ ४४ ॥ हे भगवन्! जैसे हमदेख सकें वैसेही आप अपनी आत्मा व हंसते हुये मुखका दर्शन कराओ हम व्याकुल होकर आपके देखने की इच्छा कररहे हैं ॥ ४५ ॥ हेप्रभो! हम जिन कामके करने में असमर्थ होते हैं आप समय २ में इच्छानुसार प्रसिद्ध मूर्ति धारणकर स्वयंही उन कर्मोंको पूराकरतेहो ॥ ४६ ॥ विषयासक्त प्राणीजोकर्म करते हैं उसमें कष्टतो अधिक है पर फल सामान्यही है, वरन कभी २ तो कुछभी फल नहीं उत्पन्न होता; किंतु जोकर्म आपमें समर्पित कियेजाते हैं वह पूर्वोक्त कर्म समूहकी समान निष्फल नहीं होते ॥ ४७ ॥ कर्मथोड़े होने परभी यदि ईश्वरको समर्पित कियेजाय, तोश्रम सफलही होता है, क्योंकि ईश्वर पुरुष के आत्मा, प्रिय और हितकारी हैं ॥४८॥ जैसे वृक्षकी मूलको जलके सींचनेपर डाल और शाखा सबही तृप्तहोजाती हैं उसी प्रकार विष्णुजी की आराधना करने से समस्तप्राणी और आत्मा काभी

हि ॥ ४९ ॥ नमस्तुभ्यमनन्ताय दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे । निर्गुणायगुणेशाय सत्वस्था यचसाम्प्रतम् ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भा०म० अष्टमस्कन्धेऽमृतमथने पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एवंस्तुतः सुरगणैर्भगवान्हरिरीश्वरः । तेषामाविरभूद्राजन्सहस्रार्कोदयद्युतिः ॥ १ ॥ तेनैवसहसासर्वेदेवाः प्रतिहतेक्षणाः । नापश्यन्खंदिशः क्षोणिमात्मानंचकुतोविभुम् ॥ २ ॥ विरिञ्चोभगवान्दृष्ट्वासहशर्वेणतांतनुम् । स्वच्छांमरकतश्यामांकञ्जगर्भारुणेक्षणाम् ॥ ३ ॥ तप्तहेमावदातेनलसत्कौशेयवाससा । प्रसन्नचारुसर्वाङ्गींसुमुखींसुन्दरभ्रुवम् ॥ ४ ॥ महामणिकिरीटेनकेयूराभ्यांचभूषिताम् । कर्णाभरणनिर्भातकपोलश्रीमुखाम्बुजाम् ॥ ५ काञ्चीकलापवलयहारनूपुरशोभिताम् । कौस्तुभाभरणांलक्ष्मींबिभ्रतींवनमालिनीम् ॥ ६॥ सुदर्शनादिभिः स्वास्त्रैर्मूर्तिमद्भिरुपासिताम् । तुष्टावदेवप्रवरः सशर्वः पुरुषंपरम् सर्वामरगणैः साकंसर्वाङ्गैरवनिंगतैः ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अजातजन्मस्थितिसंयमायागुणायनिर्वाणसुखार्णवाय । अणोरणिम्नेऽपरिगण्यधाम्नेमहानुभावायनमोनमस्ते ॥ ८ ॥ रूपंतवैतत्पुरुषर्षभेज्यंश्रेयोर्थिभिर्वैदिकतान्त्रिकेण । योगेनधातः सहनस्त्रिलोकान्पश्याम्यमुष्मिन्नुहविश्वमूर्तौ ॥ ९ ॥ त्वय्यग्रआसीत्त्वयिमध्यआसीत्त्वय्यन्तआसीदिदमात्मतन्त्रे । त्वमादिरन्तोजगतोऽस्यमध्यंघटस्यमृत्स्नेवपरः परस्मात् ॥ १० ॥ त्व

आराधन होजाता है ॥ ४९ ॥ आप अनंतहो, आपके कर्म और स्वभावका तर्कद्वारा निर्णय नहीं होसकता । आप निर्गुण और सगुण ईश्वरहो । आपसत्व गुणकाही आश्रय कियेहो । हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणेअष्टमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांपचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! जब देवताओंने श्रीभगवानकी इसप्रकार स्तुतिकी तब भगवान् उनके सामने प्रगटहुए । सहस्र सूर्योंके उदयहोनेसे जैसा प्रकाश होता है उसकालउनका देह उसीप्रकारसे प्रकाश पानेलगा ॥ १ ॥ इससे उन देवताओंकी आखें मुंदगई वे आकाश दिशा पृथ्वी यहांतक कि अपनको भी न देखसके; फिर भला ईश्वरको कैसे देखतहे ॥ २ ॥ तदनन्तर भगवान ब्रह्माजी व महादेवजीने उनकी मरकतमणिकी समान श्यामल स्वच्छकांति देखपाई। कमलके गर्भकेसे रक्त नेत्र ॥ ३ ॥ तप्तकांचनकी सदृश पीताम्बर धारणकिये सुंदर सुप्रसन्न अंगयुक्त अतिमनोहरमुख दो सुन्दर भौंहें ॥ ४ ॥ मस्तकपर अमूल्यमणि जटित किरीट दोनों कानोमे सुंदर कुण्डल, व उनकी कांतिसे प्रकाशित कपोल उससे शोभायमान मुख कमल ॥ ५ ॥ क्षुद्रघंटिका कंकण, हार,व नूपुर कौस्तुभमणि धारणकिये, बनमाला पहिने, लक्ष्मीजीको धारण किये ॥ ६ ॥ सुदर्शनादि अस्त्र मूर्तिमान होकर उस भगवत्मूर्तिकी स्तुति कररहेथे । ऐसी मनोहर मूर्ति देखकर ब्रह्माजी और शिवजी देवताओंके साथ साष्टांग दण्डवत्कर भगवानकीस्तुतिकरनेलगे॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले कि—हेभगवन् ! यह आपकीकेवल श्रीमूर्तिका आविर्भावहै, आपतो निर्गुण,जन्म, स्थिति और बिनाशरहितहो । इसहीकारण पण्डितलोग आपका अपारमोक्ष सुखका सागरस्वरूप कहते हैं । तौभी आप सूक्ष्मकेभी सूक्ष्महो, परिच्छेद रहित स्वरूप और महानुभाव आपको हम बारम्बार प्रणाम करते हैं ॥८॥ हेपुरुषोत्तम ! हेविधाता ! मंगलाभिलाषीमनुष्य तांत्रिक और वैदिकयागद्वारा आपके इसीरूपका पूजन करतेहैं । विश्व इसी मूर्तिमें विद्यमान होरहाहै अतएव मैं इसमें अपनेको व सब लोकोंको देखताहूं ॥ ९ ॥ आप स्वाधीनहो, यह जगत आदि कालमें आपके स्वरूपमेंथा मध्य कालमें उसीमेंहै और अन्तकालमेंभी उसीमें रहेगा। मिट्टीही जैसे घटका आदि मध्य और अंतहै

त्वंमायात्माश्रययास्वयेदंनिर्मायविश्वंतदनुप्रविष्टः । पश्यन्तियुक्तामनसामनीषिणो
गुणव्यवायेऽप्यगुणंविपश्चितः ॥ ११ ॥ यथाऽग्निमेधस्यमृतंचगोषु भुव्यन्नमम्बू
द्यमनेचवृत्तिम् । योगैर्मनुष्याअधियन्तिहित्वांगुणेषुबुद्ध्याकवयोवदन्ति ॥ १२ ॥ तं
त्वांवयंनाथसमुज्जिहानंसरोजनाभाऽतिचिरेप्सितार्थम् । दृष्ट्वागतानिर्वृतिमद्यसर्वे
गजादवार्ताइवगाङ्गमम्भः ॥ १३ ॥ सत्वंविधत्स्वाखिललोकपालावयंयदर्थास्तव
पादमूलम् । समागतास्तेबहिरन्तरात्मन्किंवान्यविज्ञाप्यमशेषसाक्षिणः ॥ १४ ॥
अहंगिरित्रश्चसुरादयोयेदक्षादयोऽग्नेरिवकेतवस्ते । किंवाविदामेशपृथग्विभाता
विधत्स्वशंनोद्विजदेवमन्त्रम् ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवंविरिञ्चादिभिरीडित
स्तद्विज्ञायतेषांहृदयंयथैव । जगादजीमूतगभीरयागिराबद्धाञ्जलीन्संवृतसर्वकारका
न् ॥ १६ ॥ एकएवेश्वरस्तस्मिन्सुरकार्येसुरेश्वरः । विहर्तुकामस्तानाहसमुद्रोन्म
थनादिभिः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हन्तब्रह्मन्नहोशम्भोहेदेवाममभाषितम् ।
शृणुतावहिताः सर्वेश्रेयोवः स्याद्यथासुराः ॥ १८ ॥ यातदानवदैतेयैस्तावत्सन्धि
र्विधीयताम् । कालेनानुगृहीतैस्तैर्यावद्वोभवआत्मनः ॥ १९ ॥ अरयोऽपिहिसन्धे
याः सतिकार्यार्थगौरवे । अहिमूषकवद्देवाह्यर्थस्यपदवींगतैः ॥२०॥ अमृतोत्पाद
नेयत्नः क्रियतामविलम्बितम् । यस्यपीतस्यवैजन्तुर्मृत्युग्रस्तोऽमरोभवेत् ॥ २१ ॥

उसीप्रकार आपभी इस जगतके आदि, मध्य, और अन्तहो कारण कि आप प्रधानसेभी परहो । ॥ १० ॥ हेभगवन् ! आपके आश्रय और आपकेही आधीन जो मायाहै तिसके द्वारा विश्वको उत्पन्न करके आप उसमें प्रवेश करतेहो । तत्वज्ञानी शास्त्रज्ञ यतिगण सृष्टि होनेके पीछेभी मनद्वारा आपके निर्गुण स्वरूपको देखतेरहतेहैं ॥ ११ ॥ जैसे काठसे अग्नि, गौ से घृत, पृथ्वीसे जल, और अनाज, तथा व्यौपार आदिसे आजीविका मिलतीहै; पंडित लोग कहतेहैं कि—उसीभांति आप सब गुणोंमें वर्त्तमानहो, वे बुद्धिरूप उपाय द्वारा आपको गुणोंसे प्राप्त करते रहतेहैं ॥ १२ ॥ हेनाथ ! आप के दर्शनोंकी इच्छा हमें बहुत दिनोंसे लगरहीथी हेपद्मनाभ ! योगसेभी अगम्य आपको इससमय हमने देखा । जैसे दावाग्नि से दग्धहुआहाथी गङ्गाजलको देखकर सुखी होजाताहै आजहम आप को देखकर वैसेही तृप्तहुएहैं ॥१३॥ समस्तलोकपालों समेत हम जिस इच्छासे आपके चरणोंकी शरण में आये हैं इससमय आप उसको पूर्णकरो । आप अन्तर्यामी और सबके साक्षीहो, आप को और क्या जनावैं ? ॥ १४ ॥ जैसेअग्नि से शिखाउत्पन्नहोती है तैसेही मैं, महादेव, देवता और दक्षआदि प्रजापतिगण सब पृथक् २ आपसेही प्रकाशपाते हैं, अतएव हमसब आपके कल्याणको नहीं जानते इसकारण आपही स्वयं देवता और ब्राह्मणों के कल्याणका यत्नकरो ॥१५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! ब्रह्मादि देवता इसप्रकार से स्तुतिकर हाथजोड खड़े होगये, अन्तर्यामी भगवान उनके यथार्थ संकल्पको जान मेघकीसमान गम्भीर स्वरसे कहनेलगे ॥ ॥ १६ ॥ यद्यपि नारायण अकेलेही सुरकार्य को करसकते थे परन्तु समुद्र मन्थनादि क्रीडा करने की अभिलाषा से देवताओं से ॥ १७ ॥ श्रीभगवान बोले कि—हे ब्रह्मन् ! हे शम्भो ! हेदेवताओं ! हेगन्धर्वो ! जिससे तुम्हारा मङ्गल होगा वहीकहताहूं—सब सावधान चित्त होकर सुनो ॥ १८ ॥ दैत्य इससमय शुक्राचार्यकी अनुकूलता प्राप्त करके विजयी हुए हैं । जाओ जबतक तुम अपनी उन्नति न करसको उतने दिनों के लिये दैत्यों से मित्रताकरो ॥ १९ ॥ कठिनकाम निकालने के लिये सर्प और मूसे की समान शत्रुसे मित्रताकरलेना चाहिये ॥ २० ॥ अतएव दैत्य और दानवों के साथ मिलकर अमृत उत्पन्न करने की शीघ्र चेष्टा करो । जिसका पानकरने

क्षिप्त्वा क्षीरोदधौ सर्वा वीरुत्तृणलतौषधीः। मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकि
म्॥ २२ ॥ सहायेन मया देवा निर्मन्थध्वमतन्द्रिताः। क्लेशभाजो भविष्यन्ति दै
त्या यूयं फलग्रहाः॥२३॥ यूयं तदनुमोदध्वं यदिच्छन्त्यसुराः सुराः। न संरम्भेण सिध्य
न्ति सर्वेऽर्थाः सान्त्वया यथा ॥ २४ ॥ न भेतव्यं कालकूटाद्विषाज्जलधिसम्भवात्।
लोभः कार्यो न वो जातु रोषः कामस्तु वस्तुषु ॥ २५॥ श्रीशुक उवाच। इति देवान्समा
दिश्य भगवान्पुरुषोत्तमः। तेषामन्तर्दधे राजन्स्वच्छन्दगतिरीश्वरः ॥ २६ ॥
अथ तस्मै भगवते नमस्कृत्य पितामहः। भवश्च जग्मतु स्वं स्वं धामोपेयुर्बलिं सुराः
॥ २७॥ दृष्ट्वारीनप्यसंयत्ताञ्जातक्षोभान्स्वनायकान्। न्यषेधद्दैत्यराट् श्लोक्यः स
न्धिविग्रहकालवित् ॥ २८ ॥ ते वैरोचनिमासीनं गुप्तं चासुरयूथपैः। श्रिया परमया
जुष्टं जिताशेषमुपागमन् ॥ २९ ॥ महेन्द्रः श्लक्ष्णया वाचा सान्त्वयित्वा महामतिः।
अभ्यभाषत तत्सर्वं शिक्षितं पुरुषोत्तमात् ॥ ३० ॥ तदरोचत दैत्यस्य तत्रान्ये येऽसु
राधिपाः। शम्बरोऽरिष्टनेमिश्च ये च त्रिपुरवासिनः ॥ ३१ ॥ ततो देवाऽसुराः कृत्वा
संविदं कृतसौहृदाः। उद्यमं परमं चक्रुरमृतार्थे परन्तप ॥ ३२ ॥ ततस्ते मन्दरगिरिमो
जसोत्पाट्य दुर्मदाः। नदन्त उदधिं निन्युः शक्ताः परिघबाहवः ॥ ३३ ॥ दूरभारोद्व
हश्रान्ताः शक्रवैरोचनादयः। अपारयन्तस्तं वोढुं विवशा विजहुः पथि ॥ ३४ ॥ नि
पतन्स गिरिस्तत्र बहूनमरदानवान्। चूर्णयामास महता भारेण कनकाचलः ॥ ३५ ॥

से मृत्युग्रस्त प्राणीभी अमरहो जाते हैं ॥ २१ ॥ क्षीर सागर मे समस्त तृण, लता, औषधि डाल कर और मन्दर पर्वत को मन्थन दण्ड, वासुकि को रज्जुकर ॥ २२ ॥ मेरी सहायता से आलस्य को छोडकर समुद्र मथनेके कार्य मे प्रवृत्तहोओ, इस से दैत्यों का क्लेश और तुम को कल्याण प्राप्तहोगा ॥ २३ ॥ हे देवताओ ! इस समय दैत्य जो चाहे उसी को तुम स्वीकार करो। देखोमित्रताद्वारा जैसा काम सिद्ध होता है विग्रहद्वारा वैसा सिद्धनहीं होता ॥ २४ ॥ सागरसे जो काल कूट विष उत्पन्न होवे उससे भयभीत न होना और जो दूसरे पदार्थ होवें उन सबो का लोभ, इच्छा व इच्छाकी असिद्धि होने से क्रोध कदापि न करना ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! स्वच्छन्दगामी पुरुषोत्तम भगवान् इस प्रकार देवताओं को आज्ञा दे उन्हीं के सामने अन्तर्ध्यान होगये ॥ २६ ॥ अनन्तर ब्रह्मा और महादेवजी उनको नमस्कारकर अपने २ स्थानकोगये और देवता बलिके निकटआये ॥ २७ ॥ वे युद्धकी इच्छाकरके नहीं आये थे तोभी उनको देखतेही बलिके योद्धागण अस्त्र शस्त्र साजकर संग्रामके हेतु उद्यतहुये, किन्तु बलिराजाने उनको निवारणकिया क्योंकि वह संधि और विग्रहके समयको भलीभांति जानताथा ॥ २८ ॥ सर्वजयी राजा बलि चारोंओर असुर सेनापतियोंसे रक्षित और सुन्दरी नारियोंसे सेवित सिंहासनपर विराजमान देवतागण क्रमश उसके निकटआये ॥ २९ ॥ भगवान पुरुषोत्तमने जो२ उपदेश दियाथा महामति इन्द्रने मधुर बचनोंसे सांत्वना देकर उन सबोंका वर्णन बलिसे किया ॥ ॥ ३० ॥ उनके वाक्य बलि शम्बर अरिष्टनेमि और बडे२ असुरपतियोंको तथा त्रिपुरनिवासियोंको बहुत अच्छेलगे ॥ ३१ ॥ हेशत्रुसूदन ! फिर सुर और असुर मित्रता बांध परस्पर मित्रहो अमृत प्राप्त करनेके निमित्त उद्यतहुए ॥ ३२ ॥ देव और दानवोंकी भुजाएं परिघकी समान दीर्घथीं, वे सबही बलसे अहंकारी और बलवानथे, बल पूर्वक मन्दर पर्वतका उखाडकर सिंहनाद करते २ उसको समुद्रकी ओर लेचले, ॥ ३३ ॥ किंतु बहुत दूरतक भार लेजानेके कारण इन्द्र, और बलि आदि सभाने श्रमित होकर मार्गमें पर्वतको छोडदिया ॥ ३४ ॥ मन्दराचलने वहां गिरकर अपने

तौदैत्यामन्ममनसौमन्नबाहूरुकन्धरान्। विहायभगवांस्तत्र बभूव गरुडध्वज ॥ ३६ ॥ गिरिपातविनिष्पिष्टान् विलोक्यामरदानवान्। ईक्षयाजीवयामास निर्जरानिर्व्रणान्यथा ॥ ३७ ॥ गिरिंचारोप्यगरुडे हस्तेनैकेनलीलया। आरुह्मप्रययावब्धिं सुरासुरगणैर्वृत: ॥ ३८ ॥ अवरोप्यगिरिंस्कन्धात् सुपर्ण पततांवर:। ययौ जलान्तउत्सृज्य हरिणासविसर्जित ॥ ३९ ॥

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे षष्ठोऽध्याय ॥ ६ ॥

श्रीशुक उवाच। तेनागराजमामन्त्र्य फलभागेनवासुकिम्। परिवीयगिरौ तस्मिन्नेत्रमब्धिंमुदान्विता: ॥ १ ॥ आरेभिरेसुसंयत्ता अमृतार्थेकुरूद्वह। हरि: पुरस्ताज्जगृहे पूर्वंदेवास्ततोऽभवन् ॥ २ ॥ तन्नैच्छन्दैत्यपतयो महापुरुषचेष्टितम् ॥ नगृह्णीमोवयं पुच्छमहेरङ्गममंगलम् ॥ ३ ॥ स्वाध्यायश्रुतसंपन्ना प्रख्याताजन्मकर्मभि। इतितूर्णी स्थितान्दैत्यान्विलोक्य पुरुषोत्तम: ॥ ४ ॥ स्मयमानोविसृज्याग्रं पुच्छंजग्राहसामर:। कृतस्थानविभागास्त एवंकश्यपनन्दना: ॥ ५ ॥ ममन्थु परमायत्ता अमृतार्थंपयोनिधिम्। मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारो ह्यपोऽविशत् ॥ ॥ ६ ॥ ध्रियमाणोऽपि बलिभिर्गौरवात्पाण्डुनन्दन। तेसुनिर्विण्णमनस परिम्लान मुखश्रिय। आसन्स्वपौरुषेणद्य दैवेनातिबलीयसा ॥ ७ ॥ विलोक्यविघ्नेशविधिंत देश्वरा दुरन्तवीर्योऽवितथाभिसन्धि:। कृत्वावपु काच्छपमद्भुत महत्प्रविश्य तोयं

मारामारमे अनेक देवता दानवोंका चूर्ण करडाला ॥ ३५ ॥ भगवानने उनको अग्नबाहु, भग्नकन्ध और भग्नचित्त जानकर गरुडपर सवारहो उस स्थानपर प्रगटहुए, ॥ ३६ ॥ और देवता तथा दानवोंका पहाडके गिरनेमे पिसाहुआ देखा भगवानने अपने कटाक्षद्वारा उनको फिर जीवित किया वे पहिलेकी समान स्वस्थ और व्रणहीन होकर उठे ॥ ३७ ॥ अनन्तर नारायण सहजहीमें पहाडको एकहाथसे उठाय गरुडकी पीठपरधर समुद्रकी ओरको चले और असुर सुर उनको घेरकर चलने लगे। तदनन्तर पक्षिराज गरुडजी कंधेसे पहाडको उतार समुद्रके तटपर रख नारायणकी आज्ञासे वहांसे चलेगये ॥ ३८ । ३९ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणअष्टमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायाषष्ठोऽध्याय: ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—" सागर के मथने से जो अमृत उत्पन्न होगा तुमको भी उसका भागदेंगे " हेकुरुश्रेष्ठ देवता और दानवोंने इसप्रकार समझाकर नागराज वासुकि कारज्जू (नेती) बनाय उस पहाडमे लपेट दिया और सबही सावधान हो एकाग्र चित्तसे अमृतप्राप्ति के निमित्त समुद्र मथने में प्रवृत्तहुए। नारायण ने पहिले देवताओं के साथ वासुकि के मुखको आगे को पकडा ॥ १–२ ॥ परन्तु दैत्यों ने भगवान के इसकार्य को स्वीकार न किया और कहनेलगे कि— " हम वेदाध्ययन करते हैं हमने शास्त्रकी भी शिक्षापाई है जन्मकर्मद्वारा हम सर्वत्र प्रसिद्ध हैं, अतएव हमसर्प की पूंछ न पकडेंगे, क्योंकि यह अमङ्गल है यह कहकर वे चुप खडे होगये। दैत्यों ने इसबातको सुनकर भगवान ने हँसकर देवताओं समेत सर्प के आगेका भाग छोडदिया और पिछलाभाग पकडलिया। इसप्रकार से भगवान के स्थानविभाग करदेने पर वे कश्यपनन्दन दानवगण बड़े यत्नसे अमृतके निमित्त समुद्रको मथनलगे। हे पाण्डुनन्दन! समुद्र मथित होने लगा; किन्तु मन्दर पर्वतका कोई आधार न था, और यद्यपि असुर और सुर उसको बहुत बलपूर्वक धारण किये थे परन्तु तौ भी वह अत्यन्त बोझ के कारण समुद्र के तल में चलागया। बलवान दैवका इसप्रकार से पौरुष नाश करते देख सुर असुर गण अधीर होगये, उनके

गिरिमुज्जहार ॥ ८ ॥ तमुत्थितं वीक्ष्य कुलाचलं पुनः समुद्यता निर्मथितुं सुरासुराः
दधारपृष्ठेन स लक्षयोजनप्रस्तारिणा द्वीपइवापरो महान् ॥ ९ ॥ सुरासुरेन्द्रैर्भुजवीर्य
वेपितंपरिभ्रमन्तं गिरिमङ्गपृष्ठतः । बिभ्रत्तदावर्तनमादिकच्छपो मेनेऽङ्गकण्डूयनम
प्रमेयः ॥ १० ॥ तथाऽसुरानाविशदासुरेण रूपेणतेषांबलवीर्यमीरयन् । उद्दीपयन्दे
वगणांश्चविष्णुर्दैवेन नागेन्द्रमबोधरूपः ॥ ११ ॥ उपर्यगेन्द्रंगिरिराडिवान्य आक्र-
म्यहस्तेनसहस्रबाहुः । तस्थौदिवि ब्रह्मभवेन्द्रमुख्यैरभिष्टुवद्भिः सुमनोऽभिवृष्टः ।१२
उपर्यधश्चात्मनिगोत्रनेत्रयोः परेणतेप्राविशतासमेधिताः । ममन्थुरब्धिंतरसा मदो
त्कटा महाद्रिणाक्षोभितनक्रचक्रम् ॥ १३ ॥ अहीन्द्रसाहस्रकठोरदृङ्मुखश्वासाग्नि
धूमाहतवर्चसोऽसुराः । पौलोमकालेयबलील्वलादयो दवाग्निदग्धाःसरलाइवाभ
वन् ॥ १४ ॥ देवांश्च तच्छ्वासशिखाहतप्रभान्धूम्राम्बरस्रग्वरकञ्चुकाननान् । सम-
भ्यवर्षन्भगवद्वशाघना ववुःसमुद्रोर्म्युपगूढवायवः ॥१५॥ मथ्यमानात्तथासिन्धो
र्देवासुरवरूथपैः । यदासुधानजायेत निर्ममन्थाजितःस्वयम् ॥ १६ ॥ मेघश्यामः
कनकपरिधिः कर्णविद्योतविद्युन्मूर्ध्निभ्राजद्विलुलितकचःस्रग्धरोरक्तनेत्रः । जैत्रै-
र्दोर्भिर्जगदभयदैर्दन्दशूकंगृहीत्वा मथ्नन्मथ्नाप्रतिगिरिरिवाशोभताथोधृताद्रिः॥१७

मुखकी कांति मलीन होगई । अनन्तशक्ति और सत्य संकल्प भगवान ने विघ्नेश्वर का कियाहुआ विघ्नजान अद्भुत बृहत् कच्छप शरीर धारणकर जल में पैठ पहाड़को उठाया । पहाड को उठता देख सुरासुर गण फिर उसके मथने में प्रवृत्तहुए । कूर्मरूपी भगवान ने एक द्वीप की समानलाख योजन के बिस्तारवाली पीठमें उस पहाड़को धारण किया ॥ ३—९ ॥ हेराजन् ! बलवान देवता और असुरों के पराक्रम से चलायमान, व घूमतेहुए पहाड़के पीठ में घिसने से कच्छप भगवान को खुजलीके सुखका अनुभव होनेलगा ॥ १० ॥ अनन्तर उन्होंने असुराकार से असुरोंके देहमें और देवाकार से देवताओं के देह में, प्रवेशकर उनके बल, पराक्रम को बढा और गुप्तरूप से सर्पके भीतर प्रवेशकर उसके बलवीर्य को बढाया ॥ ११ ॥ तथासहस्र बाहु द्वारा गिरिराज मन्दिर के ऊपरीभागको धारणकर आकाशमण्डल में दूसरे गिरिराज की समान शोभा पानेलगे । ब्रह्मा, इन्द्र और शिवआदि देवता उनकी स्तुति कर २ के फूल बरसानेलगे ॥ १२ ॥ भगवान विष्णुजी के, ऊपर, नीचे, पर्वत, बासुकि नाग, दैत्य तथा देवताओं में उस २ रूप से प्रवेश करने पर भगवान के बलसे बढे हुए बडे पराक्रमी देवासुरगण इसप्रकार से समुद्रको मथने लगेकि जल में बिहारकरनेवाले मकर, ग्राह आदि हिंसक जीव जन्तु व्याकुल होगये ॥ १३ ॥ फिर नागराजके सहस्र कठोर नेत्रों से, मुख के श्वास से धूँमयुक्त अग्नि निकली। कि जिससे पौलोम, कालेय, और इल्वल आदि असुर दावाग्नि से जलेहुए देवदारु वृक्षके समान प्रभारहित होगए ॥ १४ ॥ श्वासकी अग्नि शिखासे देवताओं की भी प्रभामलीन होगई, और वस्त्र, माला, कवच, तथा मुखमण्डल धूम्र बरण के होगये; परन्तु भगवान के बशवर्ती मेघ उनके ऊपर जल बरसाने लगे और वायु समुद्रकी तरङ्गों से मिल शीतलहोकर चलने लगा; अतएव असुरोंकी समान वह प्रभारहित न हुए ॥ १५ ॥ इस प्रकार देवता और दैत्येश्वर समुद्र का मन्थनकररहे थे, किन्तु जब अमृत उत्पन्न नहीं हुआ, तब स्वयं भगवान उसको मथनेलगे ॥ १६ ॥ उस-काल घनश्याम, पीताम्बर धारण किये, कानों में कुण्डल पहिन, बिखरेहुए केशों से देदीप्यमान, माला धारणकिये, अरुणनेत्र, पर्वतको धारे, जगतको अभयदेनेवाले भगवान अपनी भुजाओं से सर्प को पकड़कर पर्वत से समुद्र का मन्थन करतेहुए ऐसे शोभित होनेलगे मानो पर्वत के समीप दू-

निर्मथ्यमानादुदधेरभूद्विषं महोल्बणंहालहलाह्वमग्रतः । संभ्रान्तमीनोन्मकराहिक च्छपात्तिमिद्विपग्राहतिमिङ्गिलाकुलात् ॥ १८ ॥ तदुग्रवेगंदिशिदिश्युपर्यधो विसर्पदुत्सर्पदसह्यमप्रति । भीताःप्रजादुद्रुवुरङ्गसेश्वरा अरक्ष्यमाणःशरणंसदाशिवम् ॥ १९ ॥ विलोक्यतंदेववरंत्रिलोक्या भवायदेव्याऽभिमतंमुनीनाम् । आसीनमद्रावपवर्गहेतोस्तपो जुषाणंस्तुतिभिःप्रणेमुः ॥ २० ॥ प्रजापतयऊचुः ॥ देवदेवमहादेव भूतात्मन्भूतभावन । त्राहिनःशरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद्विषात् ॥ ॥ २१ ॥ त्वमेकःसर्वजगत ईश्वरोबन्धमोक्षयोः । तंत्वामर्चन्तिकुशलाः प्रपन्नार्तिहरंगुरुम् ॥ २२ ॥ गुणमय्यास्वशक्त्याऽस्य सर्गस्थित्यप्ययान्विभो । धत्सेयदा स्वदृग्भूमन्ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ॥ २३ ॥ त्वंब्रह्मपरमंगुह्यं सदसद्भावभावनः । नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्माजगदीश्वरः ॥ २४ ॥ त्वंशब्दयोनिर्जगदादिरात्मा प्राणेन्द्रियद्रव्यगुणस्वभावः । कालःक्रतुःसत्यमृतञ्चधर्मस्त्वय्यक्षरंयत्त्रिवृदामनन्ति ॥ २५ ॥ अग्निर्मुखंतेऽखिलदेवतात्मा क्षितिंविदुर्लोकभवांघ्रिपंकजम् । कालं गतिंतेऽखिलदेवतात्मनो दिशश्चकर्णौरसनंजलेशम् ॥ २६ ॥ नाभिर्नभस्तेश्वसनं नभस्वान्सूर्यश्च चक्षूंषिजलंस्मरेतः । परावरात्माश्रयणंतवात्मा सोमोमनोद्यौर्भगवन्छिरस्ते ॥ २७ ॥ कुक्षिःसमुद्रागिरयोऽस्थिसंघा रोमाणिसर्वौषधिवीरुधस्ते ।

सरा पर्वतही विद्यमान है ॥ १७ ॥ हे राजन् ! समुद्र के इसप्रकार मथने पर मछली, मगर, सर्प और कछुए चंचल व तिमि, हस्ती, ग्राह, और तिमिङ्गिलकुल व्याकुल हो उठे । तब उस समुद्र से सबसे पहिले हलाहल नामक विष उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ वह उग्र वेगवाला भयङ्कर विष ऊपर नीचे और सब दिशाओंमें फैलनेलगा; अतएव उसके दारुण असह्य हो उठने पर प्रजा और प्रजापतिगण अत्यन्त भयभीत हो सदाशिवकी शरण में गये क्योंकि उनके अतिरिक्त और कोई उन्हें नहीं बचासकता था ॥ १९ ॥ त्रिलोकी के मङ्गल के निमित्त, पार्वती के सङ्ग कैलाश पर्वत में विराजमान, मुनियों के निमित्त उन्हीं के मनोगत तपस्याका आचरण करते हैं; सबों ने शिवजीको इसप्रकार से विराजमान देख उनका प्रणामकर उनकीस्तुति का प्रारम्भ किया ॥ २० ॥ प्रजापति बोले कि—हे देव देव ! हे महादेव ! हे भूतात्मन् ! हे भूतभावन् ! हम सब आपकी शरण में आये हैं; आप हमारी त्रिलोकी के जलानेवाले विष से रक्षाकरो ॥ ॥ २१ ॥ आप सब जगत के बन्धन और मुक्ति के कर्त्ता, गुरु और दुःखित मनुष्योंके दुःखको दूर करने वाले हो । इसी कारण ज्ञानी लोग आपकी पूजा करते हैं ॥ २२ ॥ हे भूमन् ! हे विभो ! आपका ज्ञान स्वतः सिद्ध है । आप अपनी गुणशक्ति द्वारा इसजगतकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार की इच्छा से ब्रह्मा, विष्णु और शिवनाम धारण करते हो ॥२३॥ आप परम गोपनीय ब्रह्महो आपही से देवता, पशु, पक्षी आदि समस्त पदार्थ प्रकाशपाते हैं । आप जगदीश्वर और आत्माहो आप नानाशक्तियों द्वारा जगतरूप से परिणत (बदलना) होते हो ॥ २४ ॥ आप वेद के कारण जगत के आदि और आत्मा हो । आपके गुणोंसेही प्राण, इन्द्रिय और शरीर उत्पन्न होता है । वही आप राजसादि तीनों प्रकार के अहङ्कार स्वभाव, काल, संकल्प और सत्य तथा ऋतनामक धर्म हो । आपही त्रिगुणात्मक प्रधान पदार्थों के आश्रय हो ॥ २५ ॥ हे लोक प्रभव ! सर्वदेवमय अग्नि आपका मुख, पृथ्वी आपकी चरणकमल, काल आपकी गति, दिशाएं आपके कर्ण, वरुण आपकी जिह्वा ॥ २६ ॥ आकाश आपकी नाभि, वायु आपका श्वास, सूर्य आपका नेत्र और जल आपका वीर्य है । आप सबके आत्मा, ऊँच नीच, जीवात्मागणके

छन्दांसिसाक्षात्तवसप्तधातवस्त्रयीमयात्मन्हृदयंसर्वधर्मः ॥ २८ ॥ मुखानिपञ्चोप
निषदस्तवेश यैस्त्रिंशदष्टोत्तरमन्त्रवर्गः । यत्तच्छिवाख्यंपरमार्थतत्त्वं देवःस्वयं
ज्योतिरवस्थितिस्ते ॥ २९ ॥ छायात्वधर्मोर्मिषुयैर्विसर्गो नेत्रत्रयंसत्त्वरजस्तमांसि ।
सांख्यात्मनःशास्त्रकृतस्तवेक्षा छन्दोमयोदेवऋषिःपुराणः ॥ ३० ॥ नतेगिरित्राखि
ललोकपाल विरिंचवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम् । ज्योतिःपरंयत्ररजस्तमश्च सत्त्वंनयद्ब्रह्म
निरस्तभेदम् ॥ ३१ ॥ कामाध्वरत्रिपुरकालगराद्यनेक भूतद्रुहःक्षपयतःस्तुतयेनतत्
ते । यस्त्वन्तकालइदमात्मकृतंस्वनेत्र वह्निस्फुलिंगशिखयाभसितंनवेद ॥ ३२ ॥
येत्वात्मरामगुरुभिर्हृदिचिन्तिताङ्घ्रि द्वन्द्वंचरन्तमुमयातपसाऽभितप्तम् । कत्थन्तउ
ग्रपरुषंनिरतंश्मशाने तेनूनमूतिमविदंस्तवहातलज्जाः ॥ ३३ ॥ तत्तस्यतेसदसतोः
परतः परस्यनाञ्जः स्वरूपगमनेप्रभवन्तिभूम्नः । ब्रह्मादयःकिमुतसंस्तवनेवयंतु
तत्सर्गसर्गविषयाअपिशक्तिमात्रम् ॥ ३४ ॥ एतत्परंप्रपश्यामो नपरंतेमहेश्वर ।
मृडनायहिलोकस्य व्यक्तिस्तेऽव्यक्तकर्मणः ॥ ३५ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ तद्वीक्ष्यव्य
सनंतासां कृपयाभृशपीडितः । सर्वभूतसुहृद्देव इदमाहसतींप्रियाम् ॥ ३६ ॥ शिव
उवाच ॥ अहोबतभवान्येतत् प्रजानांपश्यवैशसम् । क्षीरोदमथनोद्भूतात् कालकू
टादुपस्थितम् ॥ ३७ ॥ आसांप्राणपरीप्सूनां विधेयमभयंहिमे । एतावान्हिप्रभोर

अ।अयहो हेभगवन् चन्द्रमा आपका मन, स्वर्ग आपका मस्तक, ॥ २७ ॥ वेदत्रयी आपकी मूर्ति समुद्र समूह आपकी कुक्षि पर्वत आपकी अस्थि, समस्त औषधि लता आपके रोम साक्षात् वेद आपकी सप्तधातु, और धर्म आपका हृदयहै ॥२८॥ हेईश्वर! पंचउपनिषद् अर्थात् सत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव और ईशान यही पंचमन्त्र आपके मुखहैं । इन्हीं मुखोंसे १३८ मंत्रोंकी उत्पत्ति हुईहै । साक्षात् ज्योतिस्वरूप प्रसिद्ध शिवनामक परमार्थ तत्त्वआपकी शांति अवस्थाहै ॥ २९ ॥ अधर्मकी लहरें (लोभ, दंभ आदि) आपकी छाया; और सत्व, रज तम आपके तीनों नेत्रहैं । शा। शास्त्रके कर्ताहो सांख्य आपकी आत्मा और वेद आपकी दृष्टि, है ॥ ३० ॥ हेगिरात्र ! आपकी परमज्योति–समस्त लोकपाल, ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र किसीको भी ज्ञात नहीं है वह आपकी परमज्योति भेदरहित ब्रह्महै उसमें सत्व, रज और तमका कुछभी सद्भाव नहींहै ॥ ३१ ॥ आपने काम, यज्ञ, त्रिपुर और कालकूट आदिक अनेक हिंसक पदार्थों व जीवोंका संहार कियाहै, परन्तु उससे आपकी प्रशंसानहीं है क्योंकि आपका रचाहुआ यह विश्व प्रलयकालमें आपके नेत्र सम्बन्धी अग्निकी चिनगारीसे ऐसे दग्ध होजाताहै कि आप उसको जानभी नहींसकते ॥ ३२ ॥ विश्वके कल्याण चाहनेवाले साधु लोग आपके चरणोंका ध्यान किया करतेहैं तो भी आप तपस्या द्वारा तापित होतेहो, अतएव जो आपको भगवती पार्वतीके साथ बास करते देखकर कामी और श्मशानमें घूमतेहुये देखकर क्रूर व हिंसक बिचारते हैं वे निर्लज्जहैं ॥ ३३ ॥ क्या वे आपकी लीला जानसकतेहैं? आप सदसतरूपी श्रेष्ठ और अति महतहो । ब्रह्मादि देवता भी आपके स्वरूपको नहीं जानसकते फिर वे सब आपकी स्तुति कैसे करसक्तेहैं ? हम तो उनकी सृष्टिमें एक तुच्छ प्राणीहैं अतएव हममें स्तुति करनेकी सामर्थ्य कहांहै ? तौ भी यथा शक्ति स्तुति करतेहैं ॥३४॥ हेमहेश्वर! हमने यद्यपि आपकेऔर दूसरे रूपको नहीं देखा तौभी इसी रूपको देखकर कृतार्थ होगये। आपके सब कर्म अव्यक्तहैं; केवल लोककी रक्षाके निमित्तही आप का यह रूप प्रकाशमान रहताहै ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! सब प्राणियोंके सुहृद् रूप भगवान शंकर प्रजागणकी इस आपत्तिको देखकर करुणासे अति पीड़ितहो प्रियतमा सतीसे कहनेलगे—कि ॥ ३६ ॥ भवानि ! देखो, क्षीरसागरके मथनेसे उत्पन्नहुये कालकूटद्वारा

यौ महीनपरिपालनम् ॥ ३८ ॥ प्राणैः स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभङ्गुरैः । ब
द्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्वात्ममायया ॥ ३९॥ पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः ।
प्रीते हरौ भगवति प्रीयेऽहं सचराचरः । तस्मादिदं गरं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे ४०
श्रीशुक उवाच ॥ एवमामन्त्र्य भगवान् भवानीं विश्वभावनः । तद्विषं जग्धुमारेभे प्र
भावज्ञाऽन्वमोदत ॥ ४१ ॥ ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम् । अभक्षयन्म
हादेवः कृपया भूतभावनः ॥ ४२ ॥ तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः । य
च्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम् ॥ ४३ ॥ तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्राय
शो जनाः । परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ॥ ४४ ॥ निशम्य कर्म तच्छम्भो
र्देवदेवस्य मीढुषः । प्रजा दाक्षायणी ब्रह्मा वैकुण्ठश्च शशंसिरे ॥ ४५ ॥ प्रस्कन्नं पिब
तः पाणेर्यत्किंचिज्जगृहुःस्म तत् । वृश्चिकाहिविषौषध्यो दन्दशूकाश्च येऽपरे ॥४६ ॥

इतिश्रीमद्भा० म०अष्टम०अमृतमथने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीशुक उवाच । पीतगरे वृषांकेण प्रीतास्तेऽमरदानवाः । ममन्थुस्तरसा सिन्धुं
हविर्धानी ततोऽभवत् ॥ १ ॥ तामग्निहोत्रीमृषयो जगृहुर्ब्रह्मवादिनः । यज्ञस्य देव
यानस्य मेध्याय हविषे नृप ॥ २ ॥ तत उच्चैःश्रवा नाम हयोऽभूच्चन्द्रपाण्डुरः । तस्मि
न्बलिः स्पृहां चक्रे नेन्द्र ईश्वरशिक्षया ॥ ३ ॥ ततऐरावतो नाम वारणेन्द्रो विनिर्गतः ।

प्रजागणको कैसा दुःख उपस्थित हुआहै । यह प्रजा अपने प्राणोंकी रक्षा चाहती है, इनको अभय-
दान देना मेराकर्तव्यहै । दीनपुरुषोंकी सहायता करनाही शक्तिवानका कार्य है ३७।३८ इसहीकारण
साधुलोग जीवनको क्षण भंगुरजान प्राणियोंकी रक्षाकरतेहैं। प्राणी दैवीमायासे मोहितहो एकदूसरे
की हिंसा करते रहतेहैं ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य उनपर कृपा प्रकाश करताहै सर्वात्मा हरि उसपर
प्रसन्न होतेहैं । भगवान हरिके संतुष्ट होनेसे सबही प्राणी उसपर संतुष्ट होजाते हैं, अतएव मैं प्रजा
के कल्याणके निमित्त इस विषका पान करूंगा, ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—विश्वभावन
भगवान महादेवजीने पार्वतीजीसे यह कह उस हलाहलके पीनेका आरम्भ किया । पार्वतीजी उनका
प्रभाव जानतीथीं अतएव उन्होंनेभी स्वीकार करलिया ॥ ४१ ॥ भूतभावन महादेवजी दुःखदायी
संसारमें व्याप्तहुए उस हलाहलको हथेलीपर रख भक्षण करगए, ॥ ४२ ॥ जलसे उत्पन्नहुए उस
विषने महादेवजीपरभी अपना पराक्रम प्रकाश किया उससे उनका कण्ठ नीला होगया, परन्तु
वह नीलवर्ण उनके कण्ठका भूषण स्वरूपहुआ ॥ ४३ ॥ साधुजन मनुष्योंके दुःखसे दुःखित होते
रहते हैं; दूसरेके दुःखमें कृपाका प्रकाश करनाही भगवानकी श्रेष्ठ आराधनाहै ॥ ४४ ॥ दयामय
महादेवजीके इसकामको देखकर पार्वतीजी, प्रजा, ब्रह्माजी और विष्णुजी उनकी प्रशंसाकरनेलगे।
॥४५॥ महादेवजीके विषपीनेके समय कुछ थोडासा उनके हाथसे टपकगयाथा, उसे साँप, बिच्छूआदि
विषैले जानवरों नेव विषैली औषधियोंने ग्रहण किया ॥ ४६ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेअष्टमस्कन्धसरलाभाषाटीकायांसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे राजन् ! वृषभवाहन महादेवजी के विषपान करने के उपरान्त देव
और दानव प्रसन्नहो फिरबल पूर्वक सागरको मथने लगे । उस मथन से कामधेनु प्रगटहुई ॥ १ ॥
ब्रह्मवादी ऋषियों ने, ब्रह्मलोक के मार्गको प्राप्त कराने वाले यज्ञसबधी पवित्र घृतके निमित्त उस
अग्निहोत्रीको ग्रहणकिया । २॥ अनंतर चन्द्रमाकी सदृश श्वेतवर्ण का उच्चैःश्रवा नाम घोडा उत्पन्न
हुआ, राजा बलिने उस घोडेकी अभिलाषा की, भगवान के निवारण करने से इन्द्रने उसको ग्रहण
करनेकी इच्छा न की ॥ ३ ॥ अनंतर ऐरावत नाम गजपति समुद्रसे उत्पन्न हुआ, कि जिसने अपने

दन्तैश्चतुर्भिः श्वेताद्रेर्हरन्भगवतो महिम् ॥४॥ कौस्तुभाख्यमभूद्रत्नं पद्मरागो महो
दधेः। तस्मिन्हरिःस्पृहांचक्रे वक्षोऽलंकरणेमणौ ॥ ५ ॥ ततोऽभवत्पारिजातः सु
रलोकविभूषणम्। पूरयत्यर्थिनोयोऽर्थैः शश्वद्भुवियथाभवान् ॥ ६ ॥ ततश्चाप्सर
सोजाता निष्ककण्ठ्यःसुवाससः। रमण्यःस्वर्गिणां वल्गुगतिलीलावलोकनैः ७।
ततश्चाविरभूत्साक्षाच्छ्री रमाभगवत्परा। रंजयन्तीदिशःकान्त्या विद्युत्सौदामनी
यथा ॥ ८॥ तस्यांचक्रुःस्पृहांसर्वे ससुरासुरमानवाः। रूपौदार्यवयोवर्णमहिमाक्षि
प्तचेतसः ॥ ९ ॥ तस्यामासनमानिन्ये महेन्द्रोमहदद्भुतम्। मूर्तिमत्यःसरिच्छ्रेष्ठा
हेमकुम्भैर्जलंशुचि ॥ १० ॥ आभिषेचनिका भूमिराहरत्सकलौषधीः। गावःपंच
पवित्राणि वसन्तोमधुमाधवौ ॥ ११ ॥ ऋषयःकल्पयांचक्रुरभिषेकं यथाविधि ॥
जगुर्भद्राणिगन्धर्वा नट्यश्चननृतुर्जगुः ॥ १२ ॥ मेघामृदंगपणवमुरजानकगोमुखा
न्। व्यनादयंच्छंखवेणुवीणास्तुमुलनिस्वनान् ॥ १३ ॥ ततोऽभिषिषिचुर्देवीं श्रि-
यंपद्मकरांसतीम्। दिगिभाःपूर्णकलशैः सूक्तवाक्यैर्द्विजेरितैः ॥ १४ ॥ समुद्रः पी-
तकौशेयवाससी समुपाहरत्। वरुणःस्रजंवैजयन्तीं मधुनामत्तषट्पदाम् ॥ १५ ॥
भूषणानिविचित्राणि विश्वकर्माप्रजापतिः। हारंसरस्वती पद्ममजो नागाश्चकुंडले
॥ १६ ॥ ततःकृतस्वस्त्ययनोत्पलस्रजं नदद्द्विरेफांपरिगृह्यपाणिना। चचालवक्त्र
सुकपोलकुण्डलं सव्रीडहासंदधतीसुशोभनम् ॥ १७॥ स्तनद्वयंचातिकृशोदरीस

श्वेतवर्ण व शिखर की समान चारदांतों से कैलाश की शोभा छीनली थी ॥ ४ ॥ हे महाराज !
अनंतर ऐरावत आदि आठ दिग्गज व अभ्रमू आदि आठ हथिनियें उत्पन्न हुईं। शषम सागर से
कौस्तुभ नामक मणि उत्पन्न हुई; नारायण ने वक्षःस्थल में धारण करने के निमित्त उसकी इच्छा
की ॥ ५ ॥ तदुपरांत स्वर्गका भूषण स्वरूप कल्पवृक्ष उत्पन्न हुआ। हे राजन् ! पृथ्वीपर आप
जैसे याचकों की इच्छा पूर्णकरतेहो, उसी भांति कल्प वृक्ष स्वर्गमें निरंतर याचकों की इच्छापूर्ण
करता है ॥ ६ ॥ फिर कंठमें पदक धारण कियेहुये, सुंदर वस्त्र पहिने अप्सरा उत्पन्न हुईं, जो
अपनी मनोहर गति विभ्रम और विलोकन से स्वर्ग वासियोंको आसक्ति उत्पन्न कराती हैं ॥७॥
अंतमें अपने अंगकी प्रभासे दिशाओं को प्रकाशित करती हुई हरिपरायण साक्षात् लक्ष्मी देवी
सुदामा पर्वत से उत्पन्न हुई बिजली की समान समुद्रसे उत्पन्न हुईं ॥ ८ ॥ उनके रूप, उदारता
वय, वर्ण, आदिकी महिमा से चित्त मोहितहो जानेके कारण सुर, असुर और मनुष्य सबही उन
की चाहना करनेलगे ॥ ९ ॥ इन्द्रने उनको अति अद्भुत आसन लाकर दिया और मूर्तिमान न-
दियोंने सोनेके कलशों में पवित्र जल ला २ कर अर्पण किया ॥ १० ॥ इसी प्रकार से पृथ्वी-
अभिषेक के योग्य समस्त औषधियें; गौयें—पंचगव्य; और बसंत ऋतुने चैत्र वैशाख के फल
फूल लाकर अर्पण किये ॥ ११ ॥ अनंतर ऋषियों ने यथारीति से अभिषेक कार्य संपादन किया।
गंधर्व मंगल पाठ करनेलगे, नदियें नाचने में प्रवृत्त हुईं ॥ १२ ॥ और सब देव—मृदंग, पणव,
मुरज, नकारे, गोमुख, शंख, वेणु और वीणा आदि बाजे बजाने लगे ॥ १३ ॥ दिग्गजों ने सोने
के कलशों से, कमल हाथमें लियेहुये लक्ष्मीका अभिषेक किया, विप्रवेद मंत्रका पाठ करने लगे
॥ १४ ॥ समुद्र ने पहिनने का पीतवस्त्र; वरुण, जिसपर भौंरेगुंज रहे हैं ऐसी वैजयन्ती माला;
प्रजापति विश्वकर्माने नानाप्रकारके आभूषण, सरस्वतीने हार, ब्रह्माने कमल और नागोंने दो कुंडल
लाकर लक्ष्मीजीको दिये ॥ १५-१६ ॥ तदुपरांत मांगलिक वेषसे सजकर कमलादेवी कोमल
हाथमें एक सुन्दर मालालेकर उसको घुमानेंलगीं। भौंरे उस मालापर बैठकर बारम्बार गुणगान
करनेलगे। लक्ष्मीजीके कानोंके कुण्डल कपोलोंपर झूमरहेथे, अत्यन्त शोभायमान होरहेथे, और

मं निरन्तरंचन्दनकुंकुमोक्षितम् । ततस्ततो नूपुरवल्गुशिंजितैर्विसर्पती हेमलतेवसा बभौ ॥१८॥ विलोकयन्तीनिरवद्यमात्मनः पदं ध्रुवंचाव्यभिचारिसद्गुणम् । गन्धर्वयक्षासुरसिद्धचारणत्रैविष्टपेयादिषु नान्वविन्दत ॥ १९ ॥ नूनंतपोयस्यनमन्युनिर्जयोज्ञानं क्वचित्तच्चनसंगवर्जितम् । कश्चिन्महांस्तस्यन कामनिर्जयः सईश्वरः किंपरतोव्यपाश्रयः ॥ २० ॥ धर्मःक्वचित्तत्रनभूतसौहृदं त्यागःक्वचित्तत्रनमुक्तिकारणम् । वीर्यंनपुंसोऽस्त्यजवेगनिष्कृतं नहिद्वितीयोगुणसङ्गवर्जितः ॥ २१ ॥ क्वचिच्चिरायुर्नहिशीलमंगलं क्वचित्तदप्यस्तिनवेद्यमायुषः । यत्रोभयंकुत्रच सोऽप्यमंगलः सुमंगलःकश्चनकांक्षतेहिमाम् ॥ २२ ॥ एवंविमृश्याव्यभिचारिसद्गुणैर्वरं निजैकाश्रयतयागुणाश्रयम् । वव्रेवरंसर्वगुणैरपेक्षितं रमामुकुन्दंनिरपेक्षमीप्सितम् । ॥ २३ ॥ तस्यांसदेशउशतीं नवकंजमालां माद्यन्मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टाम् । तस्थौ निधायनिकटेतदुरःस्वधाम सव्रीडहासविकसन्नयनेनयाता ॥ २४ ॥ तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनकोजनन्या वक्षोनिवासमकरोत्परमंविभूतेः । श्रीः स्वाः प्रजाः सकरुणेननिरीक्षणेनयत्र स्थितैधयत साधिपतींस्त्रिलोकान् ॥ २५ ॥ शंखतूर्यमृदंगानां-वादित्राणांपृथुस्वनः । देवानुगानांसस्त्रीणां नृत्यतांगायतामभूत् ॥२६॥ ब्रह्मरुद्रा-ङ्गिरोमुख्याः सर्वेविश्वसृजोविभुम् । ईडिरेऽवितथैर्मन्त्रैस्तल्लिंगैः पुष्पवर्षिणः ।२७

लज्जायुक्त हास्यसे उनका मुख अत्यन्त सुन्दर होरहाथा ॥ १७ ॥ उनके केसर लगेहुए दोनोंकुच परस्पर समान, और मध्यभाग पतलाथा । उनके चरणोंसे नूपुरका मनोहर शब्द होरहाथा । उससमय लक्ष्मीजी सुवर्णकी बेलके समान शोभायमान होकर भ्रमण कररहीथीं ॥ १८ ॥ कि-जिससे जानपड़ताथा कि अपने अविचल सद्गुण युक्त दूषणरहित आश्रयको ढूंढ़तीहैं किंतु उन्होंने गधर्व सिद्ध, असुर, यक्ष, चारण और त्रिलोकवासी दूसरे प्राणियोंमें भी अपने योग्य आश्रय न देखा ॥ ॥ १९ ॥ उन्होंने देखा कि जो तपस्वीहैं वे क्रोध नहीं जीतसकते, जो ज्ञानी हैं वे निःसंग नहीं होसकते, जिनमें महत्वहै वे काम नहीं जीतसकते, जो दूसरेकी अपेक्षा करतेहैं वे क्या ईश्वरहैं २० जो धार्मिकहैं प्राणियोंके साथ उनका प्रेमहोहै, कोई दान करतेहैं वे अपनी मुक्तिके लिये नहीं जो बलीहैं व कालको नहीं रोकसकते, कोई गुणोंका संग छोड़देतेहैं किंतु किसी सहचर के साथ भ्रमण नहीं करते ॥ २१ ॥ जिसकी दीर्घआयु है उसमें शील और मंगल नहीं है, और जिसके शील व मंगल दोनोंही हैं—उनकी आयुकी स्थिरता नहीं है, जिनमें शील व मंगल व दीर्घ परमायु भी नहीं हैं, वह स्वयं अमंगल और निर्दोष है, वह मुझे नहीं चाहता ॥ २२ ॥ भगवती लक्ष्मी ने इसप्रकार विचार करके भगवान नारायण कोहीवर रूपसे वरण किया। क्योंकि उन्होंने देखाकि हरिनित्य सत्व गुणशाली हैं, वे दूसरे की अपेक्षा नहीं करते, प्राकृतिक गुण उनके समीप आनेका साहस नहीं करते; अतएव वह सर्वोत्तम हैं । उनके निरपेक्ष होने परभी अणिमादि गुण समूह उनका आश्रय किये है ॥२३॥ यह विचारकर लक्ष्मीजी ने नारायण के गलमें मदोन्मत्त भौंरों से गूंजती हुई मनोहर कमलों की माला अर्पणकी और चुपचाप मौनभाव से खड़ी रहकर, लज्जा व हास्य सहित प्रफुल्लित नेत्रहो उनके वक्षःस्थल में स्थान प्राप्त करने की प्रतीक्षा की ॥ २४ ॥ हे महाराज ! भगवान ने उन जगज्जननी त्रिलोकी की विभूति रूप लक्ष्मीजीको अपना वक्षःस्थल रूप अविचल पददिया कि—जहांपर स्थिरभाव से अवस्थितिकर लक्ष्मीजी ने अपने करुणायुक्त कटाक्ष से प्रजाओंको व त्रिलोकी को तथा लोकपतियों को बढ़ाया ॥ २५ ॥ उस काल स्त्रियों समेत देवताओं के अनुचर नाचने गाने लगे तथा शंख, तूर्य, और मृदंग आदि बाजोंका शब्द पृथक् २ सुनाई देनेलगा ॥ २६ ॥ ब्रह्मा, रुद्र और अंगिरा आदि सब प्रजापति एक वरसाथ विष्णु

श्रियाविलोकितदिवाः सप्रजापतयःप्रजाः । शीलादिगुणसम्पन्ना लेभिरेनिर्वृतिपरा
म् ॥ २८ ॥ निःसत्वालोलुपा राजन्निरुद्योगा गतत्रपाः । यदाचोपेक्षिताळक्ष्म्या ब
भूवुर्दैत्यदानवाः ॥ २९ ॥ अथासीद्वारुणी देवी कन्याकमललोचना । असुराजगृ-
हुस्तां वैहरेरनुमतेनते ॥ ३० ॥ अथोदधेर्मथ्यमानात्काश्यपैरमृतार्थिभिः । उदति-
ष्ठन्महाराज पुरुषःपरमाद्भुतः ॥ ३१ ॥ दीर्घपीवरदोर्दण्डः कम्बुग्रीवोऽरुणेक्षणः ॥
श्यामलस्तरुणःस्रग्वी सर्वाभरणभूषितः ॥ ३२ ॥ पीतवासामहोरस्कः सुमृष्टमणि
कुण्डलः । स्निग्धकुञ्चितकेशान्तः सुभगःसिंहविक्रमः ॥ ३३ ॥ अमृतापूर्णकलशं
बिभ्रद्वलयभूषितः । सवैभगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांशसंभवः ॥३४॥धन्वन्तरिरिति
ख्यात आयुर्वेदद्दगिज्यभाक् । तमालोक्यासुराःसर्वे कलशंचामृताभृतम् ॥ ३५ ॥
लिप्सन्तःसर्ववस्तूनि कलशंतरसाऽहरन् । नीयमानेऽसुरैस्तस्मिन्कलशेऽमृतभाज
ने ॥ ३६ ॥ विषण्णमनसोदेवा हरिंशरणमाययुः । इतितद्दैन्यमालोक्य भगवान्भृ
त्यकामकृत् । माखिद्यतमिथोऽर्थंवः साधयिष्येस्वमायया ॥ ३७ ॥ मिथःकलिरभू
त्तेषां तदर्थेतर्षचेतसाम् । अहंपूर्वमहंपूर्वं नत्वंनत्वमितिप्रभो ॥ ३८ ॥देवाःस्वंभा
गमर्हन्तिये तुल्यायासहेतवः । सत्रयागइवैतस्मिन्नेष धर्मःसनातनः ॥ ३९ ॥ इति
स्वान्प्रत्यषेधन्वै दैतेयाजातमत्सराः । दुर्बलाःप्रबलान्राजन् गृहीतकलशान्मुहुः
॥ ४० ॥ एतस्मिन्नन्तरेविष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः । योषिद्रूपमनिर्देश्यं दधारपरमा

प्रतिपादक यथार्थ मंत्रोंसे विष्णुजी की स्तुति करनेलगे ॥ २७ ॥ लक्ष्मीजी के करुणा कटाक्ष से देवता, प्रजापति, और प्रजागण शीलादि सद्गुण युक्त होकर परम आनंदित हुए ॥ २८ ॥ हे राजन् ! जब लक्ष्मीजी ने दानव और दैत्यों की उपेक्षा की, तबवे निःसत्व, उद्योग रहित और निर्लज्ज होगये ॥ २९ ॥ फिर समुद्रमें से एक कमल लोचना कन्या उत्पन्न हुई उसका नाम वा-वारुणी था, भगवान की आज्ञा से असुरों ने उसको ग्रहण किया ॥ ३० ॥ हे महाराज ! इसके उपरांत वह दैत्य दानव अमृत की इच्छाकर फिर समुद्र मथनेलगे । इसबार एक परम सुंदर पुरुष अमृत से भराहुआ कलश लियेहुए बाहर निकला ॥ ३१ ॥ उसकी दोनो भुजाएं दीर्घ व स्थूल; ग्रीवा—शंख की समान; वर्ण—श्याम; वयस—यौवन; और वक्षःस्थल विशालथा । वह माला, पीत-वस्त्र, नाना आभूषण और सुंदरमणि कुंडल धारण कियेथा ॥ ३२ ॥ उसके केशचिकने और घूंघर वाले थे । वह स्त्रियोंकी समान लोभनीय और सिंहकी समान पराक्रमी था ॥ ३३ ॥ उसके हाथ में कंकण की अपूर्व शोभाहोरहीथी वह साक्षात् विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुआथा ॥ ३४ ॥ धन्व-न्वंतरिके नामसे प्रसिद्ध है । वह आयुर्वेद शास्त्रके पारदर्शी और यज्ञके भागके भोगीहुए । धन्वन्तरिके हाथ में अमृत का कलस देखकर असुरों ने बलपूर्वक उसे छीन लिया ! जिस समय दैत्य अमृत का घट छीनकर लेजाने लगे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ यह देखकर देवता व्याकुल चित्त हो भगवान की शरण में गये । भक्तों की इच्छा पूर्ण करने वाले भगवानने देवताओं को इसप्रकारसे कातर देख कर कहा कि—"तुम खेद मत करो, मैं अपनी माया द्वारा दैत्यों में परस्पर विवाद उत्पन्न कराकर तुम्हारा कार्य पूर्ण करूंगा ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! उन लोभी दैत्यों में अमृत के कलश में अधिकार करनेके निमित्त "मैं पहिले" "मैं पहिले" "तू नहीं" इस प्रकारका कलह उत्पन्न होगया ॥ ३८ ॥ उनमेंसे जो दुर्बल थे वे कहने लगे कि—देवताओंने भी समान परिश्रम किया है अतएव यज्ञके भागकी समान उनकाभी अंश मिलना चाहिये, यही सनातन धर्म है ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! दुर्बल दैत्य मात्सर्य पूर्ण हो, जिन प्रबल दैत्योंने अमृत का कलश लिया था उन्हें बारंबार निवारण करने लगे ॥ ४० ॥ इतने में सब उपायों के जानने वाले भगवानने अद्भुत स्त्रीका रूप धारण

कृतम् ॥ ४१ ॥ प्रेक्षणीयोत्पलश्यामं सर्वावयवसुन्दरम् । समानकर्णाभरणं सुक-
पोलोन्नसाननम् ॥ ४२ ॥ नवयौवननिर्वृत्तस्तनभारकृशोदरम् । मुखामोदानुरक्ता-
लि झंकारोद्विग्नलोचनम् ॥ ४३ ॥ बिभ्रत्स्वकेशभारेण मालामुत्फुल्लमल्लिकाम् ।
सुग्रीवकण्ठाभरणं सुभुजाङ्गदभूषितम् ॥ ४४ ॥ विरजाम्बरसंवीत नितम्बद्वीप-
शोभया । काञ्च्या प्रविलसद्वल्गुचलच्चरणनूपुरम् ॥ ४५ ॥ सव्रीडस्मितविक्षिप्त
भ्रूविलासावलोकनैः । दैत्ययूथपचेतःसु काममुद्दीपयन्मुहु ॥ ४६ ॥

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥ तेऽन्योन्यतोऽसुराः पात्रंहरन्तस्त्यक्तसौहृदाः । क्षिपन्तो
दस्युधर्माणआयान्तींददृशुः स्त्रियम् ॥ १ ॥ अहोरूपमहोधाम अहोअस्यानवंवय. ।
इतितेतामभिद्रुत्यपप्रच्छुर्जातहृच्छयाः ॥ २ ॥ कात्वंकञ्जपलाशाक्षिकुतोवाकिंचि
कीर्षसि । कस्यासिवदवामोरुमथ्नतीवमनांसिनः ॥ ३ ॥ नवयंत्वाऽमरैर्दैत्यैःसि
द्धगन्धर्वचारणैः । नास्पृष्टपूर्वांजानीमोलोकेशैश्चकुतोनृभिः ॥ ४ ॥ नूनंत्वंविधिना
सुभ्रूः प्रेषितासिशरीरिणाम् । सर्वेन्द्रियमनःप्रीतिंविधातुंसघृणेनकिम् ॥ ५ ॥ सा
त्वंनः स्पर्धमानानामेकवस्तुनिमानिनि ॥ ज्ञातीनांबद्धवैराणांशंविधत्स्वसुमध्यमे
॥ ६ ॥ वयंकश्यपदायादाभ्रातरः कृतपौरुषाः । विभजस्वयथान्यायंनैवभेदोयथा

किया ॥ ४१ ॥ स्त्रीका वर्ण कमल की समान श्याम और दर्शनीय था उसके सब अंग सुंदर दोनों कान परस्पर समान और कुंडलों से विभूषित, दोनों कपोल मनोहर और नासिका ऊंची थी ॥ ४२ ॥ उस नवीन यौवना के दोनों स्तन समान व गोल उठे हुए, और स्तनोंके भारसे उदर कृश होरहा था मुख की सुगंधी से मोहित हो भौंर कूज रहे थे ; इसकारण दोनों चंचल नेत्र नृत्य कर रहे थे ॥ ४३ ॥ मनोहर केश पाश, खिले हुए मल्लिका के फूलों से वेष्ठित, सुंदर कंठमें आभूषण शोभायमान, और विचित्र हाथोंमें कंकण विभूषित थे ॥ ४४ ॥ द्वीपकी सदृश शोभायमान मोटे नितंबपर निर्मल वस्त्र शोभा पा रहाथा, कटिमें मेखला धारण किये, सुंदर बजते हुए नूपुर पहिने थी ॥४५॥ वह लज्जायुक्त मधुर हास्यसे भौंहोंको विचलितकर मनमोहन दृष्टिसे बारंबार दैत्यपतियों के अंतःकरणको काम बाणसे छेदने लगी ॥ ४६ ॥

श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे सरला भाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि–हे राजन् ! वे दानव सुहृदता छोड़ चोरोंके धर्मका अवलंबनकर एक दूसरे से अमृत का कलश छीन रहेथे, इतने में उन्होंने एक स्त्री आतीहुई देखी और उसके रूप से मोहितहो विचारने लगे कि ॥ १ ॥ अहो ! इसका कैसारूप है ! कैसी कांति और कैसा नवीन यौवन है ! यहबातें करते २ उसके निकट जायकर वे सब दैत्य पूछने लगे कि–॥ २ ॥ हे पद्म पलाश लोचने ! तुम कौनहो ? कहां से आईहो ! तुम्हारा क्या अभिप्राय है ! हे वामोरु ! तुम किस की स्त्रीहो ! कहो २ हमारा मन व्याकुल होरहा है ॥ ३ ॥ हम निश्चयही जानते हैं कि मनुष्यों की तो बात दूररही, देव, दानव, सिद्ध, गन्धर्व चारण और लोकपालों नेभी इससमयतक तुम्हारा स्पर्श नहींकिया है ॥ ४ ॥ हे सुभ्रु ! करुणामय विधाता ने क्या प्राणियों के इन्द्रियवर्ग और चित्त में प्रीति उत्पन्न करने के निमित्त तुम्हें भेजा है ? अथवा तुम अपनीही इच्छाहो? हम निश्चयही जानते है कि विधाने तुमको हमारे पास भेजा है ॥ ५ ॥ अतएव तुम हमारा कल्याण करो । हे भामिनि ! हमसब भाई होकर एक पदार्थ के लिये वैर बांधकर उस के लेने की इच्छा से परस्पर में शत्रुहोगये हैं ॥ ६ ॥ हम सब कश्यपजी के पुत्र परस्पर भाई हैं; हम सबने समान पौरुष कियाहै । अब जिसप्रकार हम में आपस में विवाद न हो तुम उसी प्रकार न्यायानुसार हम

भवेम् ॥ ७ ॥ इत्युपामन्त्रितो दैत्यैर्मायायोषिद्वपुर्हरिः । प्रहस्यरुचिरापाङ्गैर्निरीक्ष
न्निदमब्रवीत् ॥ ८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कथंकश्यपदायादाः पुंश्चल्यांमयिसंगताः ।
विश्वासंपण्डितोजातुकामिनीषुनयातिहि ॥ ९ ॥ सालावृकाणांस्त्रीणांचस्वैरिणी
नांसुरद्विषः । सख्यान्याहुरनित्यानिनूत्नंनूत्नंविचिन्वताम् ॥१० ॥ श्रीशुक उवाच ॥
इतितेक्ष्वेलितैस्तस्याआश्वस्तमनसोऽसुराः । जहसुर्भावगम्भीरंददुश्चामृतभाज
नम् ॥ ११ ॥ ततोगृहीत्वाऽमृतभाजनंहरिर्बभाषईषत्स्मितशोभयागिरा । यद्यभ्युपे
तंक्वचसाध्वसाधुवाकृतंमयावोविभजेसुधामिमाम् ॥ १२ ॥ इत्यभिव्याहृतंतस्या
आकर्ण्यासुरपुङ्गवाः । अप्रमाणविदस्तस्यास्तत्तथेत्यन्वमंसत ॥ १३ ॥ अथोपो
ष्यकृतस्नानाहुत्वाचहविषाऽनलम् । दत्त्वागोविप्रभूतेभ्यः कृतस्वस्त्ययना द्विजैः
॥ १४ ॥ यथोपजोषंवासांसिपरिधायाऽहतानिते । कुशेषुप्राविशन्सर्वेप्रागग्रेष्वभि
भूषिताः ॥ १५ ॥ प्राङ्मुखेषूपविष्टेषुसुरेषुदितिजेषुच । धूपामोदितशालायांजुष्टा
यांमाल्यदीपकैः ॥ १६ ॥ तस्यांनरेन्द्रकरभोरुरुशद्दुकूलश्रोणीतटालसगतिर्मद
विह्वलाक्षी । सा कूजती कनकनूपुरशिञ्जितेनकुम्भस्तनी कलशपाणिरथाविवेश
॥ १७ ॥ तां श्रीसखीं कनककुण्डलचारुकर्णनासाकपोलवदनां परदेवताख्याम् ।
संवीक्ष्यसंमुमुहुरुत्स्मितवीक्षणेनदेवासुराविगलितस्तनपट्टिकान्ताम् ॥ १८ ॥ असु
राणांसुधादानंसर्पाणामिवदुर्नयम् । मत्वा जातिनृशंसानां न तां व्यभजदच्युतः
॥ १९ ॥ कल्पयित्वापृथक्पङ्क्तीरुभयेषांजगत्पतिः । तांश्चोपवेशयामासस्वेषुस्वे

सबका भागकर के दे दो ॥ ७ ॥ दैत्यों के ऐसे कहनेपर, माया मोहिनीरूपी हरि, हास्ययुक्त मनोहर कटाक्ष से देखकर बोले कि ॥ ८ ॥ हे कश्यप नन्दनगण ! तुम मुझ व्यभिचारिणी का विश्वास कैसे करते हो ? पण्डितलोग स्त्री का विश्वास नहीं करते ॥ ९ ॥ हे दैत्यों ! कुत्ते और व्यभिचारिणी स्त्री नित्य नवीन खोजती हैं अतएव उनकी मित्रता व्यर्थ है ॥ १० ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! मोहिनी के परम सुन्दर वचनों से असुरों के चित्त में विश्वास आगया, तब उस समय किसी गम्भीर अभिप्राय से हँसकर उन्होंने अमृतका कलश उसे दे दिया ॥ ११ ॥ हरि ने अमृतका पात्र ले हँसते हुए कहा कि—जो मैं करूं वह चाहे अच्छा हो या बुरा, यदि वह तुम्हें स्वीकार होता अमृतका भाग करसकती हूं ॥ १२ ॥ प्रधान २ असुरों ने मोहिनी की इस बातको सुन स्वीकार करके कहा कि जो तुम करोगी वही होगा ॥ १३ ॥ अनन्तर उन्होंने व्रत, स्नानकर, अग्निमें हवनकर, ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करवाय वे समस्त देव, दानव गौ ब्राह्मणों को नमस्कारकर अपने २ यथायोग्य नवीन वस्त्रों को पहिन, पूर्वकी ओर मुखवाले कुश आसनों पर बैठगये ॥ १५ ॥ हेराजेन्द्र ! धूपसे सुगन्धित, और फूल व दीपक से सुशोभित, शाला में देव व दानवगण पूर्वकी ओर मुख करके बैठगये ॥ १६ ॥ तदनन्तर वह मोहिनी कि जिसकेमद से विह्वल नेत्र और सुन्दर हथली है, मनोहर रेशमी वस्त्र पहिन, नितम्बके भार से मन्द २ गति से नूपुरों को बजातीहुई उस शालामें अमृतकाकलश हाथ में लेकर आई ॥ १७ ॥ कानों में सुन्दर सुवर्ण के कुण्डल पहिने, सुन्दर कपोल, मनोमय मुख, ऊँची नासिका, परदेवतानाम लक्ष्मी की सखी कि जिसके स्तनों पर का वस्त्र बारम्बार गिरापडताथा, उसे देख सुर और असुरों को मोह उत्पन्न होआया ॥ १८ ॥ अनन्तर मोहिनीरूपधारी भगवानने सर्पों को दूध देने की समान असुरों को अमृत देना अनुचित है क्योंकि यह स्वभाव सेही क्रूर हैं । यह विचारकर उन्होंने उनको अमृत न दिया ॥ १९ ॥ जगत्पति भगवानने देवता और असुरों की दो पंक्तियें बनाईं और अ-

पुंवक्त्रकिंचु ॥ २० ॥ दैत्यान्गृहीतकलशो वञ्चयन्नुपसंचरैः । दूरस्थान्पाययामास जरां मृत्युहरां सुधाम् ॥ २१ ॥ ते पालयन्तः समयमसुराः स्वकृतं नृप । तूष्णीमासन्कृतस्नेहाः स्त्रीविवादजुगुप्सया ॥२२॥ तस्यां कृतातिप्रणयाः प्रणयापायकातराः । बहुमानेन चाबद्धा नोचुः किंचन विप्रियम् ॥ २३ ॥ देवलिङ्गप्रतिच्छन्नः स्वर्भानुर्देवसंसदि प्रविष्टः सोममपिबच्चन्द्रार्काभ्यां च सूचितः ॥२४॥ चक्रेण क्षुरधारेण जहार पिबतः शिरः । हरिस्तस्य कबन्धस्तु सुधयाऽप्लावितोऽपतत् ॥२५॥ शिरस्त्वमरतां नीतमजो ग्रहमचीक्लृपत । यस्तु पर्वणि चन्द्रार्कावभिधावति वैरधीः ॥ २६ ॥ पीतप्रायेऽमृते देवैर्भगवाँल्लोकभावनः । पश्यतामसुरेन्द्राणां स्वं रूपं जगृहे हरिः ॥ २७॥ एवं सुराऽसुरगणाः समदेशकालहेत्वर्थकर्ममतयोऽपि फलेविकल्पाः । तत्राऽमृतं सुरगणाः फलमञ्जसाऽऽपुर्यत्पादपङ्कजरजः श्रयणान्न दैत्याः ॥२८॥ यद्युज्यतेऽसुवसुकर्ममनोवचोभिर्देहात्मजादिषु नृभिस्तदसत्पृथक्त्वात् । तैरेव सद्भवति यत्क्रियतेऽपृथक्त्वात्सर्वस्य तद्भवति मूलनिषेचनं यत् ॥ २९ ॥

इति श्रीमद्भा० अष्ट० अमृतमथने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति दानवदैतेया नाविन्दन्नमृतं नृप । युक्ताः कर्मणि यत्ताश्च वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १ ॥ साधयित्वाऽमृतं राजन्पाययित्वा स्वकान्सुरान् ॥

पनी २ पंक्तियों मे उन सबको बिठलाया ॥ २० ॥ अनन्तर कलश हाथमें ले सुन्दर २ वाक्योंद्वारा दैत्यों को ठगकर दूर बैठेहुए देवताओं को जरा मृत्युहारा अमृत पिलाने लगी ॥ २१ ॥ हेराजन् ! असुर अपनी प्रतिज्ञा का पालन करतेहुए चुपचाप बैठे रहे, स्त्री के साथ विवाद करने की उनकी इच्छा न थी क्योंकि पहिले उससे प्रेम कर चुके थे ॥ २२ ॥ और स्नेह सभी बद्धमूल होगये थे अतएव पीछे स्नेह टूटजावे इस भयसे डरकर उन्हों ने कोई बुरी बात मोहिनी जीसे नहीं कही ॥ २३ ॥ हे राजन् ! राहु, देव चिन्ह धारणकर गुप्तभावसे देवसभा में प्रवेशकर अमृत पीताथा, इतने में चन्द्रमा और सूर्य ने यह भगवान से सूचनाकी ॥ २४ ॥ तब हरि भगवान ने अमृतपीने के समयही छुरे की सी धारवाले चक्रसे उसका मस्तक काटडाला, शिर के अतिरिक्त उसकी देहमे अमृत नहीं पहुचायाथा इससे वह धड़तो गिरगया ॥ २५ ॥ किन्तु मस्तक अमृत के स्पर्श होनेसे अमर हुआ । ब्रह्माजी ने सूर्यादि की समान उसको भी ग्रह किया । वैर बुद्धिसे यह ग्रह अबतकभी पर्व २ में चन्द्रमा सूर्य की ओर दौडता रहता है ॥ २६ ॥ हेराजन् ! जब देवताओं ने सब अमृतपी लिया तब उसीसमय लोक भावन भगवान ने असुरों के सामनही अपने चतुर्भुजरूप का ग्रहण किया ॥ २७ ॥ समुद्र मथने के कार्य में देवता और असुर दोनोंही के देश, काल, हेतु, अर्थ, कर्म और बुद्धि विचार एक थे परन्तु फल पृथक् २ हुआ । देवताओं ने भगवान के चरणकमलों का आश्रय कियाथा इससे उनको अमृत प्राप्तहुआ, असुरों ने ऐसा नहीं कियाथा अतएव वे इस अमृत से विमुख रहे ॥ २८ ॥ मनुष्य भेद दृष्टि रखकर प्राण, धन, कर्म, मन और वाक्यद्वारा देह और पुत्रादि के निमित्तजो कार्य करते हैं, वह भेदाश्रय होने के कारण, मूलछोडकर शाखा सींचने की समान व्यर्थ होता है । किन्तु यदि सबका एक ईश्वररूप जानकर उन सबका अनुष्ठान करें तो उससे कल्याण प्राप्त होता है; वृक्षकी जड़ में जल डालनेसे सब शाखा प्रशाखा सिंचजाती हैं ॥ २९ ॥

इतिश्रीमद्भा० म० अष्टमस्कन्धे सरलभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! दैत्य और दानवोंने बड़े यत्न और परिश्रमसे अमृत निकाला परन्तु भगवानसे विमुख रहनेके कारण उसका पान न करसके ॥ १ ॥ भगवान् सबलोगों

पश्यतां सर्वभूतानां ययौ गरुडवाहनः ॥ २ ॥ सपत्नानां परामृद्धिं दृष्ट्वा तो दितिनन्दनाः । अमृष्यमाणा उत्पेतुर्देवान्प्रत्युद्यतायुधाः ॥ ततः सुरगणाः सर्वे सुधया पीतयैधिताः । प्रतिसंयुयुधुः शस्त्रैर्नारायणपदाश्रयाः ॥ ४ ॥ तत्र दैवासुरो नाम रणः परमदारुणः । रोधस्युदन्वतो राजंस्तुमुलो रोमहर्षणः ॥ ५ ॥ तत्रान्योन्यं सपत्नास्ते संरब्धमनसो रणे । समासाद्यासिभिर्बाणैर्निजघ्नुर्विविधायुधैः ॥ ६ ॥ शंखतूर्यमृदंगानां भेरीडमरुणां महान् । हस्त्यश्वरथपत्तीनां नदतां निःस्वनोऽभवत् ॥ ७ ॥ रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः सह पत्तयः । हया हयैरिभाश्चेभैः समसज्जन्त संयुगे ॥ ८ ॥ उष्ट्रैः केचिदिभैः केचिदपरे युयुधुः खरैः । केचिद्गौरमुखैर्ऋक्षैर्द्वीपिभिर्हरिभिर्भटाः ॥ ९ ॥ गृध्रैः कंकैर्बकैरन्ये श्येनभासैस्तिमिंगिलैः । शरभैर्महिषैः खड्गैर्गोवृषैर्गवयारुणैः ॥ १० ॥ शिवाभिराखुभिः कचित् कृकलासैः शशैर्नरैः । बस्तैरेके कृष्णसारैर्हंसैरन्ये च सूकरैः ॥ ११ ॥ अन्ये जलस्थलखगैः सत्त्वैर्विकृतविग्रहैः । सेनयोरुभयो राजन् विविशुस्तेऽग्रतोऽग्रतः ॥ १२ ॥ चित्रध्वजपटै राजन् नातपत्रैः सितामलैः । महाधनैर्वज्रदण्डैर्व्यजनैर्बार्हचामरैः ॥ १३ ॥ वातोद्धूतोत्तरोष्णीषैरर्चिर्भिर्वर्मभूषणैः । स्फुरद्भिर्विशदैः शस्त्रैः सुतरां सूर्यरश्मिभिः ॥ १४ ॥ देवदानववीराणां ध्वजिन्यौ पाण्डुनन्दन । रेजतुर्वीरमालाभिर्यादसामिव सागरौ ॥ १५ ॥ वैरोचनो बलिः संख्ये सोऽसुराणां चमूपतिः ॥ यानं वैहायसं नाम कामगं मयनिर्मितम् ॥ १६ ॥ सर्वसांग्रामिकोपेतं सर्वाश्चर्यमयं प्रभो । अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं दृश्यमानमदर्शनम् ॥ १७ ॥ आस्थितस्तद्विमानाग्र्यं सर्वानीकाधिपैर्वृतः । बालव्यजनछत्राग्र्यै रेजे चन्द्र इवोदये ॥ १८ ॥ तस्यासन्सर्वतो यानैर्यूथानां पतयोऽसुराः । नमुचिः शम्बरो बाणो विप्रचित्तिरयोमुखः

के देखते देवताओंको अमृत पिलाय गरुडपर बैठ अपने धामको गये ॥ २ ॥ इसप्रकार शत्रुओंकी सिद्धि देखकर राक्षस उसको सहन न करसके और अस्त्र शस्त्र उठा देवताओंके ऊपर दौड़े ३ ॥ अमृतपान करनेसे भगवद्भक्त देवताओंका बल बढ़गयाथा, इससमय वेभी शस्त्र लेकर युद्धमें प्रवृत्त हुए ॥ ४ ॥ समुद्रके किनारे देवता और असुरोंमें घोरयुद्ध होनेलगा ५ ॥ उस संग्रामस्थलमें क्रोधित होकर शत्रुगण एक दूसरेको पकड़ २ नानाअस्त्र से मारनेलगे ॥ ६ ॥ शंख, तुरई मृदंग, भेरी और डमरू तथा घोड़े, हाथी, रथ, और पैदलके नादसे बड़ाभारी कोलाहल होनेलगा ७ ॥ युद्धक्षेत्रमें रथी रथीके साथ, पैदल पैदलके साथ, घोड़ा घोड़े के साथ और हाथी हाथीके संग संग्राम करने लगे ॥ ८ ॥ हेराजन्! उस युद्धमें कितने एक ऊँटोंपर कितनेही हाथियोंपर, कितनेही गधोंपर कितनेही कितने गौरमुख, रीछ द्वीपी, सिंह, गिद्ध, कंक, बगुल श्येन, भास, तिमिंगिल, शरभ, भैंसे, गैंडे, बैल, रोझ, अरुण, शृगाल, मूषक, गिरगट, शश, मनुष्य, बकरे, हिरण, हंस शूकर, और २ भी दूसरे जल, स्थलमें रहनेवाले विकट शरीरके पक्षियोंपर बैठ २ युद्धक्षेत्र में आय परस्पर एक दूसरेको मारनेलगे । ९—१२ । देवता दानव वीरोंकी दोनो सेनाओंमें नाना प्रकारके ध्वजाओं के पट श्वेत व उज्ज्वलछत्र महामूल्य हीरोंके दण्डवाले मोरपंख के बनेहुए व्यजन चामर, पवनसे फहरातीहुई पागें, सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित व चमकते, कवच, आभूषण व शस्त्र आदि, शोभा देरहेथे। यह दोनोंदल युद्धक्षेत्रमें शोभायमान होरहे थे कि मानो मकर, ग्राहयुक्त दोसागर शोभायमान हो । हेनृपेन्द्र! मयदानवने अद्भुत आश्चर्ययुक्त पदार्थों द्वारा वैहायस नामक कामचारी एक अप्रतर्क्य और अचिंतनीय रथ बनायाथा वह कभी दृष्टिगोचर होता और कभी अदृश्यहोजाताथा उसके ऊपर समस्त युद्धकी सामग्रियें रक्खीथीं । दैत्योंका सेनापति विरोचनका पुत्र बलि संग्राम के भीतर उस रथपर आरूढहुआ, वह रथ चामर, पंखे और उत्तमछत्रसे ऐसा शोभायमान होरहाथा कि मानों उदयाचलमें चन्द्रमा उदयहुआहै । १३—१८ । नमुचि, शम्बर बाण विप्रचित्त

ख: ॥ १९ ॥ त्रिमूर्धाकालनाभोऽथ प्रहेतिर्हेतिरिल्वलः । शकुनिर्भूतसंतापो वज्रदं
ष्ट्रोविरोचनः ॥ २० ॥ हयग्रीवःशंकुशिराः कपिलोमेघदुन्दुभिः । तारकश्चक्रदृक्
शुम्भो निशुंभोजम्भउत्कलः ॥ २१ ॥ अरिष्टोऽरिष्टनेमिश्च मयश्चत्रिपुराधिपः । अ
न्येपौलोमकालेया निवातकवचादयः॥ २२ ॥ अलब्धभागाःसोमस्य केवलंक्लेश
भागिनः । सर्वएतेरणमुखे बहुशोनिर्जितामराः ॥ २३ ॥ सिंहनादान्विमुंचंतः शं
खान्दध्मुर्महास्वनान् । दृष्ट्वासपत्नानुत्सिक्तान् बलभित्कुपितोभृशम् ॥२४॥ ऐरा
वतंदिक्करिणमारूढःशुशुभेस्वराट् । यथास्रवत्प्रस्रवण मुदयाद्रिमहर्पतिः ॥२५॥
तस्यासन्सर्वतोदेवा नानावाहध्वजायुधाः । लोकपालाःसहगणैर्वाय्वग्निवरुणाद
यः ॥ २६ ॥ तेऽन्योन्यमभिसंसृत्य क्षिपन्तोमर्मभिर्मिथः । आह्वयन्तोविशंतोऽग्रेयुयु
धुर्द्वन्द्वयोधिनः ॥ २७ ॥ युयोधबलिरिन्द्रेण तारकेणगुहोऽस्यत ॥ वरुणोहेतिना
ऽयुध्यन् मित्रोराजन्प्रहेतिना ॥ २८ ॥ यमस्तुकालनाभेन विश्वकर्मामयेनवै । शम्ब
रोयुयुधेत्वष्ट्रा सवित्रातुविरोचनः ॥ २९ ॥ अपराजितेननमुचिरश्विनौवृषपर्वणा ।
सूर्योबलिसुतैर्देवोबाणज्येष्ठैःशतेनच॥ ३०॥राहुणाचतथासोमः पुलोम्नायुयुधेऽनिलः
निशुम्भशुम्भयोर्देवी भद्रकालीतरस्विनी॥ ३१॥ वृषाकपिस्तुजम्भेन महिषेणविभा
वसुः । इल्वलःसह वातापिर्ब्रह्मपुत्रैररिंदम ॥ ३२ ॥ कामदेवेनदुर्मर्ष उत्कलोमातृ-
भिःसह । बृहस्पतिश्चोशनसा नरकेणशनैश्चरः ॥ ३३ ॥ मरुतोनिवातकवचैः का
लेयैर्वसवोऽमराः । विश्वेदेवास्तुपौलोमै रुद्राःक्रोधवशैःसह ॥ ३४॥ तएवमाजा
वसुराःसुरेन्द्राः द्वन्द्वेनसंहत्यचयुध्यमानाः । अन्योन्यमासाद्य निजघ्नुराजसा जि-

---

अयोमुख, द्विमूर्द्ध, कालनाभ, प्रहेति, हेति, इल्वल शकुनि, भूतसंतापन वज्रदंष्ट, विरोचन हयग्रीव शंकुशिरा, कपिल, मेघदुन्दुभि, तारक, शत्रुजित शुभ, निशुभ, जम्भ, उत्कल, ॥१९—२१॥ अरिष्ट, रिष्टनेमि, त्रिपुराधिपति मय और पौलोम, कालेय, तथा निवात कवचादि औरभी दूसरे सेनापतिगण रथोंपर सवारहो २ राजा बलिके आसपास खड़ेथे इन सबके हाथोंसे देवता कई २ बार परास्तहुएथे । इससमय यह अमृतका अंश न पाकर केवल क्लेश भागीहुए । वे बड़े क्रोध से सिंहनाद करतेहुये बड़े घोरशब्दवाले शंखोंको बजानेलगे । दैत्योंको इसप्रकारसे अहंकार युक्त देख इन्द्र अतिकुपित ऐरावत नामक मदस्रावी गजेंद्रपरचढ़े उसकाल वे इन्द्र ऐसे शोभायमानथे कि मानों सूर्य झरने झरतेहुये उदयाचलपर चढ़े हैं ॥ २२—२५ । पवन, अग्नि, और वरुणादि लोकपाल देवता नानाप्रकारके वाहनोंपरचढ़ विचित्र ध्वज पताका और अस्त्र शस्त्रले अपने संगियों समेत इन्द्रको चारोंओरसे घेरेहुएथे॥२६॥वे देवदानवगण एक दूसरेके समीपआ एक दूसरेका नाम लेले बुलाबुला तिरस्कार कर२ घोरयुद्धमें प्रवृत्तहुए॥२७॥इन्द्र बलिके साथ,कार्तिकेय तारककेसाथ, वरुण हेतिके साथ; मित्र प्रहेतिके साथ;यम—कालनाभिकेसाथ, विश्वकर्मा—मयके साथ, त्वष्टा—शंबर के साथ, सविता—विरोचनके साथ, अपराजित नमुचिके साथ अश्विनाकुमार-वृषपर्वाके साथ, अकेले सूर्य-बाण आदि सौ बलिपुत्रोंके साथ,चन्द्रमा राहुकेसाथ,वायु पुलोमकेसाथ, वेगवती भद्रकालीदेवी शुंभ और निशुंभके साथ वृषाकपि—जम्भके साथ, विभावसु—महिषके साथ, ब्रह्माजीके पुत्र इल्वल और वातापिके साथ, बृहस्पतिजी शुक्राचार्यके साथ, शनि नरकके साथ, मरुत्गण, निवात कवच आदिके साथ; वसुगण—कालिकेयके साथ विश्वेदेवागण—पौलोमगण के साथ और रुद्रगण-क्रोध वश आदिके साथ युद्ध करनेमें प्रवृत्तहुए २८—३४ । असुर और देवेंद्रगण इसप्रकारसे द्वन्द्वयुद्ध करनेमें प्रवृत्तहो एक दूसरे को पकड़; जयकी इच्छाकर तीक्ष्णबाण खड्ग और तोमर द्वारा परा-

निघ्नन्तस्तीक्ष्णशरासितोमरैः ॥ ३५ ॥ भुशुण्डिभिश्चक्रगदर्ष्टिपट्टिशैः शक्त्युल्मुकैः
प्रासपरश्वधैरपि। निस्त्रिंशभल्लैःपरिघैःसमुद्गरैः सभिन्दिपालैश्च शिरांसि चिच्छि
दुः ॥ ३६ ॥ गजास्तुरंगाःसरथाः पदातयःसारोहवाहा विविधाविखण्डिताः । नि
कृत्तबाहूरुशिरोधराङ्घ्रयश्छिन्नध्वजेष्वासतनुत्रभूषणाः ॥ ३७ ॥ तेषां पदाघातरथां-
गचूर्णितादायोधनादुल्बण उत्थितस्तदा । रेणुर्दिशःखंद्युमणिंच छादयन्न्यवर्तता
सृक्स्रुतिभिः परिप्लुतात् ॥ ३८ ॥ शिरोभिरुद्धूतकिरीटकुण्डलैः संरम्भदृग्भिःपरि
दष्टदच्छदैः । महाभुजैःसाभरणैःसहायुधैः साप्रास्तृताभूःकरभोरुभिर्बभौ ॥ ३९ ॥
कबन्धास्तत्रचोत्पेतुः पतितस्वशिरोऽक्षिभिः । उद्यतायुधदोर्दण्डैराधावन्तो भटा
न्मृधे ॥ ४० ॥ बलिर्महेन्द्रंदशभिस्त्रिभिरैरावतंशरैः । चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकेनारो
हमार्च्छयत् ॥ ४१ ॥ सतानापततः शक्रस्तावद्भिः शीघ्रविक्रमः । चिच्छेद निशि
तैर्भल्लैरसंप्राप्तान्हसन्निव ॥ ४२ ॥ तस्यकर्मोत्तमंवीक्ष्य दुर्मर्षःशक्तिमाददे । तांज्व
लन्तींमहोल्काभां हस्तस्थामच्छिनद्धरिः ॥ ४३ ॥ ततःशूलंततःप्रासं ततस्तोमरमृ
ष्टयः । यद्यच्छस्त्रंसमादद्यात्सर्वं तदच्छिनद्विभुः ॥ ४४ ॥ ससर्जाथासुरीं मायाम-
न्तर्धानगतोऽसुरः । ततःप्रादुरभूच्छैलः सुरानीकोपरिप्रभो ॥ ४५ ॥ ततोनिपेतुस्त
रवो दह्यमानादवाग्निना । शिलाः सटंकशिखराश्चूर्णयन्त्यो द्विषद्बलम् ॥ ४६ ॥

कमकर एक दूसरेपर प्रहार करनेलगे॥३५॥तथा भुशुण्डि,चक्र, गदा, ऋष्टि, पट्टिश,शक्ति, उल्मुक
प्रास, परशु, निस्त्रिंश भल्ल परिघ मुद्गर और भिंदिपाल द्वारा एक दूसरेका मस्तक छेदनेलगा ॥
॥ ३६ ॥ गज, घोड़े, रथ और पैदल तथा अन्यान्य वाहन और उनके सवारोंमेंसे किसीकी भुजा
किसी का घुटना , किसी २ की ग्रीवा व पैर छिन्न भिन्न हो २ कर कटनेलगे इस भांति
नानाप्रकारसे खण्डित हो २ कर कटनेलगे और उनके ध्वज, धनुकवच, और सब आभूषण शरीर
से छूटपड़े ॥ ३७ ॥ हेराजन् ! रणक्षेत्रमें देव, दानवोंके पादप्रहार व रथके पहियोंके आघातसे
युद्धक्षेत्रकी जो धूलिउठी उससे दिशाएं गगनमंडल व सूर्य ढकगया परन्तु थोड़ीही देरमें
रुधिरधारा से भीग जाने के कारण उस धूलिका उड़ना बन्दहोगया ॥ ३८ ॥ बहुत से
योद्धाओं के कटेहुए मस्तकों से युद्धक्षेत्र परिपूर्ण होगया; उन छिन्नशिरों के कुंडल गिरगये;
आंखे उस अवस्था में भी क्रोध से लाल, और होंठदांतों से दबेहुए थे । नाना आभूषणों से
भूषित विशाल भुजाएं कटकर भी अस्त्र धारण किये हैं; तथा हथेलाके बाहिरी भाग व जांघेंछिन्न
हो २ कर रणभूमि अत्यंत विकटरूपमें शोभायमान होनेलगी ॥३९॥ उस रणभूमि में असंख्य कै
बंध उठनेलगे; वे पृथ्वीपर गिरेहुए अपने २ शिरोंको देख अस्त्र शस्त्र उठाय युद्ध स्थलमें सैनिकों
के साथ दौड़नेलगे ॥ ४० ॥ अन्तमें बलिने दशबाण इन्द्रके, तीनबाण ऐरावत हाथीके, चारबाण
चार वाहनों के और एक बाण महावत के लगाया ॥ ४१ ॥ इन्द्रने हंसते २ शीघ्रता पूर्वक हाथ
में उतनेही तीक्ष्णभल्ल ले मार्गमें आतेहुए उन बाणोंको काट गिराया ॥ ४२ ॥ उनके इस प्रशंसनीय
कार्यको देखकर बलिको ईर्षा उत्पन्न हुई तब उसने एक प्रचंड शक्ति ग्रहणकी । अग्निकी ज्वाला
के समान प्रकाशित शक्ति उसके हाथमें रहतेहुए देवराज इन्द्रने उसकोभी काटडाला ॥ ४३ ॥
असुरराज बलिने इसके उपरांत एक २ करके शूल, प्रास, तोमर और ऋष्टि ग्रहणकी, किंतु प्र-
भावशाली इन्द्रने उन सब शस्त्रोंको काटडाला ॥ ४४ ॥ तदनंतर असुर राजबलि अंतर्धान होकर
आसुरी मायाको फैलानेलगा । हे राजन् ! तब पहिलेतो देव सेनाके ऊपर एक पर्वत प्रगट हुआ
॥ ४५ ॥ फिर असंख्य वृक्ष दावानलसे जलेहुए गिरनेलगे और टांकीके समान तीक्ष्णाग्र शिलाएं

महोरगाःसमुत्पेतुर्दन्दशूकाः सवृश्चिकाः। सिंहव्याघ्रवराहाश्च मर्दयन्तोमहागजा-
न्॥ ४७ ॥ यातुधान्यश्च शतशः शूलहस्ताविवाससः। छिन्धिभिन्धीति वादिन्य-
स्तथारक्षोगणाःप्रभो ॥ ४८ ॥ ततोमहाघनाव्योम्नि गम्भीरपरुषस्वनाः। अंगारा-
न्मुमुचुर्वातैराहताः स्तनयित्नवः ॥४९॥ सृष्टोदैत्येनसुमहान्वन्हिः श्वसनसारथिः।
सांवर्तकइवात्युग्रो विबुधध्वजिनीमधाक् ॥५०॥ ततःसमुद्रउद्वेलः सर्वतःप्रत्यदृश्य
त।प्रचण्डवातउद्भूततरंगावर्तभीषणः ॥५१॥ एवं दैत्यैर्महामायैरलक्ष्यगतिभीष-
णैः। सृज्यमानासुमायासु विषेदुःसुरसैनिकाः ॥ ५२ ॥ नतत्प्रतिविधिंयत्र विदुरि-
न्द्रादयोनृप। ध्यातःप्रादुरभूत्तत्र भगवान्विश्वभावनः ॥ ५३ ॥ ततःसुपर्णांसकृतां-
घ्रिपल्लवः पिशंगवासानवकञ्जलोचनः। अदृश्यताष्टायुधबाहुरुल्लसच्छ्रीकौस्तुभा-
नर्घ्यकिरीटकुण्डलः ॥ ५४ ॥ तस्मिन्प्रविष्टेऽसुरकूटकर्मजामाया विनेशुर्महिनाम-
हीयसः। स्वप्नोयथाहिप्रतिबोधआगते हरिस्मृतिःसर्वविपद्विमोक्षणम् ॥ ५५ ॥ दृ-
ष्ट्वामृधे गरुडवाहमिभारिवाहआविध्यशूलमहिनोदथ कालनेमिः। तल्लीलयागरु-
डमूर्ध्नि पतद्गृहीत्वा तेनाहनन्नृप सवाहमरिंत्र्यधीशः ॥५६॥ मालीसुमाल्यतिबलौ-
युधिपेततुर्यच्चक्रेण कृत्तशिरसावथ माल्यवांस्तम्। आहत्यतिग्मगदयाऽहनदण्ड-
जेन्द्रं तावच्छिरोऽच्छिनदरेर्नदतोऽरिणाऽद्यः ॥ ५७ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० अष्टमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

गिरागिरकर देवताओं को चूर्ण करने लगीं ॥ ४६ ॥ इसके उपरांत बड़े २ अजगर सर्प, बिच्छू और विषैले प्राणी तथा सिंह, व्याघ्र और शूकर आदि उत्पन्न हुए। यह बड़े २ हाथियोंका सत्यानाश करनेलगे ॥ ४७ ॥ हे नरनाथ! अनंतर सैकड़ों नंगी राक्षसियें और राक्षस हाथ में शूललिये "काटो भेदो" इसप्रकार से शब्द करते हुए देवताओं की सेनापर दौड़े ॥ ४८ ॥ फिर बड़े २ घोर शब्द करते हुए मेघ आकाश में छाय वायुकी प्रेरणा से कड़कड़ाने और अंगार वर्षाय २ प्रचंड वेगसे इधर उधर भ्रमण करने लगे ॥ ४९ ॥ फिर दैत्यराज बलिने बड़ी भारी प्रलयकाल कीसी अग्नि उत्पन्नकी वह वायुसे चलायमानहोकर देवसेनाको भस्मकरने लगी॥५०॥ प्रचंड वायुसे उत्पन्न हुई तरंगों के भंवर से समुद्र उछल २ कर सब दिशाओं का ग्रास करने में तत्पर हुआ ॥ ५१ ॥ अदृश्य गतिवाले महा मायावी दैत्योंने रणस्थलमें जब इसप्रकारका माया उत्पन्न की तबसब देव सेना अत्यन्त व्याकुल होगई ॥ ५२ ॥ जब इन्द्रादिक देवता इसकी शांति का कोईयत्न न करसके तब भगवानका ध्यान करनेलगे। ध्यान करतेही विश्वभावन भगवान उस स्थानपर प्रगटहुए ॥ ५३ ॥ सबने देखाकि–पीताम्बर धारी भगवान कमल लोचनहरि, गरुड़ की पीठपर चरण कमल धरेहुए हैं उनके हाथोंमें आठ प्रकार के अस्त्र, वक्षःस्थलमें लक्ष्मी, कौस्तुभ मणि, मस्तक में अमूल्य किरीट और कानोंमें कुंडल प्रकाश पारहे हैं ॥ ५४ ॥ हे राजन्! जैसे जागरण होनेपर स्वप्नावस्था दूर होजाती है तैसेही पूजनीय हरिके युद्ध क्षेत्रमें आतेही दैत्योंके कूट कपट से रचीहुई माया सहसा प्रभारहित होगई। क्योंकि भगवानका स्मरण करतेही सब दुःख दूर होजाते हैं ॥ ५५ ॥ अनंतर सिंहपर सवार हुए कालनेमिने भगवान हरिको युद्धक्षेत्रमें आया देख शूल घुमाकर गरुड पर प्रहारकिया। गरुडके माथेके ऊपर गिरतेहुए उस शूलको त्रिलोकीनाथने सहजही में पकड़लिया और उसीसे वाहन समेत शत्रुको मारगिराया॥५६॥हरिके चक्र प्रहार से माली और सुमाली छिन्न मस्तकहो रणभूमि में गिरपड़े। तदुपरांत माल्यवान् वहांपर आय तीक्ष्णगदा पन्नगेश्वर गरुड़पर चला बड़ीघोर गर्जना करनेलगा, तब भगवान नारायण ने चक्र से उसकाभीसिर काटडाला ॥ ५७ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेअष्टमस्कंधेसरलभाषाटीकायांदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथोसुराः प्रत्युपलब्धचेतसः परस्यपुंसः परयानुकम्
पया । जघ्नुर्भृशंशक्रसमीरणादयस्तांस्तान्रणेयैरभिसंहताःपुरा ॥१॥ वैरोचनायसंर
ब्धोभगवान्पाकशासनः । उदयच्छद्यदावज्रंप्रजाहाहेतिचुक्रुशुः ॥ २ ॥ वज्रपाणि
स्तमाहेदंतिरस्कृत्यपुरःस्थितम् । मनस्विनंसुसंपन्नंविचरन्तंमहामृधे ॥ ३ ॥ नट
वन्मूढमायाभिर्मायेशान्नोजिगीषसि । जित्वा बालान्निबद्धाक्षान्नटो हरति तद्धनम्
॥ ४ आरुरुक्षन्तिमायाभिरुत्सिसृप्सन्तियेदिवम् । तान्दस्यून्विधुनोम्यज्ञान्पूर्वस्मा
च्चपदादधः ॥ ५ ॥ सोऽहंदुर्मायिनस्तेऽद्यवज्रेणशतपर्वणा । शिरोहरिष्येमन्दात्म
न्घटस्वज्ञातिभिः सह ॥ ६ ॥ बलिरुवाच ॥ संग्रामेवर्तमानानांकालचोदितकर्मणा
म् । कीर्तिर्जयोऽजयोमृत्युः सर्वेषांस्युरनुक्रमात् ॥ ७ ॥ तदिदंकालरशनं जगत्
पश्यन्तिसूरयः । नहृष्यन्तिनशोचन्ति तत्रयूयमपण्डिताः ॥ ८ ॥ नवयंमन्यमाना-
नामात्मानं तत्रसाधनम् । गिरोवःसाधुशोच्यानां गृह्णीमोमर्मताडनाः ॥ ९ ॥ श्री
शुकउवाच । इत्याक्षिप्यविभुंवीरो नाराचैर्वीरमर्दनः । आकर्णपूर्णैरहनदाक्षेपैराहतं
पुनः॥१०॥ एवंनिराकृतोदेवो वैरिणातथ्यवादिना । नामृष्यत्तदधिक्षेपं तोत्राहतइव
द्विपः॥११॥प्राहरत्कुलिशंतस्मा अमोघंपरमर्दनः । सयानोन्यपतद्भूमौ छिन्नपक्षइवा
चलः ॥१२॥ सखायंपतितंदृष्ट्वा जम्भोबलिसखःसुहृत् । अभ्ययात्सौहृदं सख्युर्ह-

---

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! इन्द्र और पवनादि देवता भगवान्की परम दयासे चेतना प्राप्त कर प्रथम जिन्होंने रणक्षेत्र में उनको मारा था उनपर वे प्रहार करने लगे ॥ १ ॥ अब सुरपति ने क्रोधितहो विरोचन नन्दन बलिपर वज्र उठाया तब प्रजा हाहाकारशब्द करने लगी ॥ ॥ २ ॥ वज्रधारी इन्द्र रणभूमि में घूमतेहुए उदारचित्त, सामने खड़े, राजाबलि का तिरस्कार कर के कहने लगे कि ॥ ३ ॥ हेमूढ ! मैं मायाका अधीश्वर हूं, तू कपटी प्राणियों की समान माया द्वारा मेरे जीतने की ऐसे इच्छा करता है ! जैसे कपटी (बाजीगर) बालकोंकी आंखे बन्द करके उनको वशीभूत कर उनका द्रव्य हरलेता है ॥ ४ ॥ जो मायाद्वारा स्वर्ग में चढ़ना चाहता है, या जो स्वर्ग को उल्लंघनकर मुक्तिपाने की कामना करता है वह मूर्ख व डाकू है वह प्रथम जिस पद पर होता है उससे भी नीचे " मैं " उसे गिराता हूं ॥ ५ ॥ तू मूर्ख दुष्ट मायावी है, सौधारवाले वज्रसे मैं तेरे शिरको काटूंगा । इससमय अपने जातिवालों समेत अपनी आत्मरक्षाका यत्नकर ॥ ॥ ६ ॥ राजाबलिने कहाकि—अरे ! इन्द्र ! इतना गर्व क्यों करता है ! मनुष्यकाल से प्रेरित हो कर संग्राम में प्रवृत्त होते हैं । कीर्ति, जय, पराजय और मृत्यु क्रमशः योद्धाओंको प्राप्त होतीही रहती है ॥ ७ ॥ इसीकारण वीरलोग जगतको कालके वशीभूत कहते हैं इस निमित्त उनको ज-यपराजय से उत्पन्न हुआ हर्ष शोक कुछभी नहीं होता । तू इस विषयको कुछभी नहीं समझता ॥ ॥ ८ ॥ यद्यपि तेरे वाक्य मेरे मर्म स्थानका छेदन करते हैं किन्तु तू कीर्ति और जयआदि में अ-पने आत्मा कोही कर्त्ता मानता है अतएव तू साधुओं के शोक करने योग्य है इसही कारण मैं ते-रे वचनों का स्वीकारनहीं करता ॥ ९ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि—हेनृपेन्द्र ! महावीरबलिने इन्द्र का इसप्रकार तिरस्कारकर उसपर कानतक खींचेहुए नाराचका प्रहारकिया ॥ १० ॥ सत्यवक्ता शत्रुका इसप्रकार से तिरस्कार नसह अंकुशसे ताड़ित कियेहुए हाथी की समान इन्द्र ने क्रोधित हो शत्रुओंके नाश करनेवाले वज्रका उसपर प्रहारकिया । उसके लगतेही बलि, परकटेहुए पर्वत की समान पृथ्वीपर विमानसहित आगिरा ॥ ११—१२ ॥ हेराजन् ! राजाबलिका एक मित्र और हितकारी जम्भनामक असुरथा । वह मित्रको गिरताहुआ देख उसकी मृतअवस्था में भी सुहृदता

तस्यापि समाचरन् ॥ १३ ॥ सिंहवाहमासाद्य गदामुद्यम्य वेगतः। जम्भ ऐरावतस्याथ कुम्भे गजं स सुमहाबलः ॥ १४ ॥ गदाप्रहारव्यथितो भृशं विह्वलितो गजः। जानुभ्यामपतद्भूमौ कश्मलं परमं ययौ ॥ १५ ॥ ततो रथो मातलिना हरिभिर्दशशतैर्वृतः। आनीतो द्विपमुत्सृज्य रथमारुरुहे विभुः ॥ १६ ॥ तस्य तत्पूजयन्कर्म यन्तुर्दानवसत्तमः। शूलेन ज्वलता तं तु स्मयमानोऽहनन्मृधे ॥ १७ ॥ सेहे रुजं सुदुर्मर्षां सत्त्वमालम्ब्य मातलिः। इन्द्रो जम्भस्य संक्रुद्धो वज्रेणापाहरच्छिरः ॥ १८ ॥ जम्भं श्रुत्वा हतं तस्य ज्ञातयो नारदादृषेः। नमुचिश्च बलः पाकस्तत्रापेतुस्त्वरान्विताः ॥ १९ ॥ वचोभिः परुषैरिन्द्रमर्दयन्तोऽस्य मर्मसु। शरैरवाकिरन्मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ॥ २० ॥ हरीन्दशशतान्याजौ हर्यश्वस्य बलः शरैः। तावद्भिरर्दयामास युगपल्लघुहस्तवान् ॥ २१ ॥ शताभ्यां मातलिं पाको रथं सावयवं पृथक्। सकृत्सन्धानमोक्षेण तदद्भुतमभूद्रणे ॥ २२ ॥ नमुचिः पञ्चदशभिः स्वर्णपुङ्खैर्महेषुभिः। आहत्य व्यनदत्संख्ये सतोय इव तोयदः ॥ २३ ॥ सर्वतः शरकूटेन शक्रं सरथसारथिम्। छादयामासुरसुराः प्रावृट्सूर्यमिवाम्बुदाः ॥ २४ ॥ अलक्षयन्तस्तमतीव विह्वला विचुक्रुशुर्देवगणाः सहानुगाः। अनायकाः शत्रुबलेन निर्जिता वणिक्पथा भिन्ननवो यथार्णवे ॥ २५ ॥ ततस्तुराषाडिषुबद्धपञ्जराद्विनिर्गतः साश्वरथध्वजाग्रणीः। बभौ दिशः खं पृथिवीं च रोचयन् स्वतेजसा सूर्य इव क्षपात्यये ॥ २६ ॥ निरीक्ष्य पृतनां देवः परैरभ्यर्दितां रणे। उदयच्छद्रिपुं हन्तुं वज्रं वज्रधरो रुषा ॥ २७ ॥ स तेनैवाष्ट

का आचरणकरता हुआ इन्द्रके सम्मुख आया ॥ १३ ॥ वह महाकाय महाबलवान दैत्य सिंहपर चढ़ाहुआ इन्द्र के समीप आ बड़ेवेग से गदाको उठाय इन्द्र व ऐरावत के कन्धे की संधियों में प्रहारकरनेलगा ॥ १४ ॥ गजराजगदाके प्रहारसे विह्वलहो दोनों घुटने नवाकर पृथ्वीपर बैठगया ॥ ॥ १५ ॥ अनन्तर मातलि सहस्र घोड़ोंसे जुताहुआ एकरथ लेआया, इन्द्र हाथीको छोड़कर उस रथपर सवारहुए ॥ १६ ॥ दानवश्रेष्ठ जम्भने मातलि के उसकार्य की प्रशंसा करके देदीप्यमान शूलका उसपर प्रहार किया ॥ १७ ॥ मातलिबलपूर्वक घोर दुःख सहकर रहगया। तब इन्द्रने कुपित होकर वज्रसे जम्भका भी शिरकाटडाला ॥ १८ ॥ नारदजी के मुखसे जम्भकी मृत्युकासम्वाद सुनकर नमुचि, बल, और पाकआदि उसकी जातिवाले असुर शीघ्रतापूर्वक युद्धक्षेत्रमें आये ॥ १९ ॥ और कठोरवाक्यों से इन्द्रका तिरस्कारकरके, मेघ जैसे पर्वतपर वर्षा करते हैं, उसीप्रकार वे दैत्यबाणोंकी वर्षा इन्द्रपर करनेलगे ॥ २० ॥ शीघ्रतासे बाणचलानेवाले बलनामक दैत्यने इन्द्र के सहस्र घोड़ों को सहस्रबाणों से एकही समयमें छेद दिया ॥ २१ ॥ पाकदैत्य ने एकही साथ धनुषमें दोसौबाण चढ़ाकर रथकी पृथक् २ सन्धियोंमें मारे और मातलिनामसारथीको भी पीड़ित किया, अतएव रणभूमि में यह एक अद्भुतकार्य हुआ ॥ २२ ॥ नमुचिभी युद्धस्थल में सुवर्ण के फलवाले बड़े २ पचास बाणोंसे इन्द्रपर प्रहारकर जलयुक्त मेघकी समान गरजने लगा ॥ २३ ॥ जैसे वर्षाकालके मेघ सूर्यको ढकलेते हैं तैसेही असुरोंने सब ओरसे बाण चला रथ और सारथी समेत इन्द्रको ढकदिया ॥ २४ ॥ देवता और देवताओंके अनुचर शत्रु सेनाके मध्य में इन्द्रको नहीं देखकर अत्यन्त व्याकुलहुए और नावके समुद्रमें टूटजानेपर बनियोंकी समान विह्वल होकर पुकारनेलगे ॥ २५ ॥ फिरते देखते २ सहस्र लोचन इन्द्र—अश्व, रथ और सारथी समेत बाणोंके पंजरसे बाहरनिकले, और रात बीत जानेपर सूर्यकी समान अपने तेज द्वारा दिशा आकाश और पृथ्वीको विकसितकर प्रकाश पानलगे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! युद्ध भूमि में शत्रुओं को सेना नाश करते देख वज्रधारी इन्द्रने उनके मारनेके निमित्त आठभार वाल वज्रको उठाया ॥ २७ ॥ और देखने वाले

धारेण शिरश्रीबलपाकयोः । ज्ञातीनांपश्यतांराजन् जहारजनयन्भयम् ॥ २८ ॥ नमुचिस्तद्वधंदृष्ट्वा शोकामर्षरुषान्वितः । जिघांसुरिन्द्रंनृपते चकारपरमोद्यमम् । ॥ २९ ॥ अश्मसारमयंशूलं घण्टावद्धेमभूषणम् । प्रगृह्याभ्यद्रवत्क्रुद्धो हतोऽसीति वितर्जयन् । प्राहिणोद्देवराजाय निनदन्मृगराडिव ॥ ३० ॥ तदापतद्गगनतलेमहाजवं विचिच्छिदेहरिरिषुभिःसहस्रधा । तमाहनन्नृपकुलिशेनकंधरं रुषान्वितस्त्रिदशपतिःशिरोऽहरन् ॥ ३१ ॥ नतस्यहित्वचमपिवज्रऊर्जितोबिभेदयः सुरपतिनौजसेरितः । तदद्भुतंपरमतिवीर्यवृत्रभित्तिरस्कृतो नमुचिशिरोधरत्वचा॥३२॥ तस्मादिन्द्रोऽबिभेच्छत्रोर्वज्रः प्रतिहतोयतः । किमिदंदैवयोगेन भूतंलोकविमोहनम् ॥ ३३ ॥ येनमेपूर्वमद्रीणां पक्षच्छेदःप्रजात्यये । कृतोनिविशतांभारैः पतत्रैःपततांभुवि ॥ ३४ ॥ तपःसारमयंत्वाष्ट्रं वृत्रोयेनविपाटितः । अन्येचापिबलोपेताः सर्वास्त्रैरक्षतत्वचः ॥ ३५ ॥ सोऽयंप्रतिहतोवज्रो मयामुक्तोऽसुरेऽल्पके । नाहंतदाददेदण्डं ब्रह्मतेजोऽप्यकारणम् ॥३६॥ इतिशक्रंविषीदन्तमाहवागशरीरिणी । नायंशुष्कैरथोनार्द्रैर्वधमर्हतिदानवः ॥ ३७ ॥ मयाऽस्मैयद्वरोदत्तो मृत्युर्नैवार्द्रशुष्कयोः अतोऽस्यान्यश्चिन्तनीयस्ते उपायोमघवन्रिपोः ॥ ३८॥ तांदैवींगिरमाकर्ण्यमघवासुसमाहितः । ध्यायन्फेनमथापश्यदुपायमुभयात्मकम् ॥ ३९ ॥ नशुष्केणनचार्द्रेणजहारनमुचेःशिरः । तंतुष्टुवुर्मुनिगणा माल्यैश्चावाकिरन्विभुम् ॥ ४० ॥ गंधर्वमुख्यौजगतुर्विश्वावसुपरावसू । देवदुन्दुभयोनेदुर्नर्तक्योननृतुर्मुदा ॥ ४१ ॥ अन्येऽ

असुरों के सामने सबको भय उत्पन्न कराते हुए उसी से बल और पाकके शिर को काट डाला ॥ २८ ॥ उनको मराहुआ देख नमुचि शोक और क्रोध से उन्मत्त होगया और इन्द्र के मारने के निमित्त यथा शक्ति चेष्टा करने लगा ॥ २९ ॥ उस दैत्य ने दारुण क्रोध से पत्थरकी समान कठिन घंटा बंधाहुआ सोनेके भूषणों से अलंकृत लोहमय शूल ग्रहण कर "मारा है" यह कहकर सिंहकी समान गर्जता हुआ इन्द्रके सन्मुख दौड़ा और उनपर उस शूलका प्रहार किया ॥ ३० ॥ महाशाली उस शूलके आकाश मंडलमें उठतेही इन्द्रने बाणों द्वारा उसके सहस्रों खण्डकरडाले हेराजन् ! अन्तमें इन्द्रने कोपितहो उसका शिर काटनेके लिये उसपर वज्र चलाया॥ ३१॥ परंतु देवराज के बल पूर्वक प्रहार करनेपर भी वह प्रभावशाली वज्र नमुचिकी त्वचातक न काटसका हेराजन् ! जिस वज्रने प्रचण्ड दानव वृत्रासुरके मस्तकको काटडालाथा आज वहनमुचिके गलेकी त्वचासे अपमानितहुआ ॥ ३२ ॥ इससे इन्द्रको भय उत्पन्नहुआ, नमुचिके अगमें वज्रको व्यर्थ होतादेख वे विचारने लगे कि—दैवयोगसे मनुष्योंकी बुद्धिको मोहनेवाली यह क्या घटनाहुई॥३३ जो पर्वत अपने परोंसे उड़ पृथ्वीपर गिरकर प्राणियोंका नाश करतेथे मैंने जिस वज्रसे उन पर्वतों के पर काटडालेथे ॥ ३४ ॥ विश्वकर्माने अपनी तपस्याका सार मंगल जिस वज्रको बनायाथा, जिस वज्रसे वृत्रके प्राण नाशकियेथे और जिस वज्रसे बडे२ दैत्योंको कि जिनकी अन्यान्य अस्त्रों से त्वचातक न कटतीथी मारा, आज वही वज्र एक क्षुद्र असुरसे अपमानित हुआ, । इसको अबनहीं धारण करूंगा यह तो एक साधारण लकड़ीसा है, यह यद्यपि ब्रह्मतेज है किंतु अभिप्राय को पूर्ण नहीं करसकता। ३५—३६ । इन्द्र इसप्रकारसे दुःख कररहेथे कि उसी समयमें आकाश वाणीने उनसे कहा कि—यह असुर सूखे व गीले पदार्थसे कदापि न मरेगा मैंने इसको बरदियाहै; कि तू सूखे व गीले पदार्थसे न मरेगा ! इन्द्र ! इसके मारनेका और कोई उपाय सोचो ३७—३८ इस दैवी वाणीको सुन इन्द्रने सावधान चित्तसे ध्यान करके देखा कि समुद्रका फेन दानोंहोंमेंहै यह न तो सूखा है न गीला । अतएव उसी फेनद्वारा उन्होंने नमुचिका मस्तक काटडाला मुनिलोग इंद्र पर फूल बर्षाय २ उनकी स्तुति करनेल । ३९—४० । विश्वावसु और परावसु दो गन्धर्व गानेकरो

व्येवंप्रतिद्वन्द्वान्वायवग्निवरुणादयः । सूदयामासुरसुरान्मृगान्केसरिणोयथा ४२
ब्रह्मणाप्रेषितोदेवान्देवर्षिर्नारदोनृप । वारयामासविबुधान्दृष्ट्वादानवसंक्षयम् ४३
नारदउवाच ॥ भवद्भिरमृतंप्राप्तं नारायणभुजाश्रयैः । श्रियासमेधिताःसर्वउपारमत विग्रहात् ॥४४॥ श्रीशुकउवाच॥ संयम्यमन्युसंरम्भं मानयन्तोमुनेर्वचः । उपगीयमानानुचरैर्ययुः सर्वेत्रिविष्टपम् ॥ ४५ ॥ येऽवशिष्टारणे तस्मिन्नारदानुमतेनते । बलिंविपन्नमादाय अस्तंगिरिमुपागमन् ॥ ४६ ॥ तत्राऽविनष्टावयवान्विद्यमानशिरोधरान् । उशनाजीवयामास संजीविन्यास्वविद्यया ४७ बलिश्चोशनसास्पृष्टःप्रत्यापन्नेन्द्रियस्मृतिः । पराजितोऽपिनाखिद्यल्लोकतत्त्वविचक्षणः॥ ४८ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा०अष्टमस्कन्धेएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीबादरायणिरुवाच॥ वृषध्वजोनिशम्येदं योषिद्रूपेणदानवान् । मोहयित्वाऽसुरगणान्हरिः सोममपाययत् ॥ १ ॥ वृषमारुह्यगिरिशः सर्वभूतगणैर्वृतः । सहदेव्या ययौद्रष्टुं यत्रास्तेमधुसूदनः ॥ २ ॥ सभाजितोभगवता सादरंसोमयाभवः । सूपविष्टउवाचेदं प्रतिपूज्यस्मयन्हरिम् ॥ ३ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ देवदेवजगद्व्यापिन् जगदीशजगन्मय । सर्वेषामपिभावानां त्वमात्माहेतुरीश्वरः ॥ ४ ॥ आद्यन्तावस्ययन्मध्य मिदमन्यदहंबहिः । यतोऽव्ययस्यनैतानि तत्सत्यंब्रह्मचिद्भवान् ॥५॥ तवैवचरणांभोजं श्रेयस्कामा निराशिषः । विसृज्योभयतःसंगं मुनयःसमुपासते

देव दुन्दुभि बजानेलगे, और नृत्य करनेवाले नाचनेलगे ॥ ४१ ॥ सिंह जैसे मृगयूथ का संहार करताहै, वैसेही वायु, अग्नि और वरुण आदि दूसरे देवता गणभी अपने शत्रु असुरों का सहार करनेलगे ॥ ४२ ॥ हेराजन् ! ब्रह्माजीने नारदजी को देवताओं के निकट भेजा नारदजीने दैत्योंका विनाश होतादेख देवताओं को युद्धसे निवारण किया और कहा कि ॥ ४३ ॥ नारायणके भुजबल का आश्रयकर तुमने अमृत प्राप्त कियाहै और लक्ष्मीकी कृपाकटाक्षसे वृद्धि पाईहै अतएव युद्ध मतकरो ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! देवतागण मुनिके वचनको मान क्रोध वेग को रोक स्वर्गको गये, अनुचर गुण गातेहुए उनके पीछेचले ॥ ४५ ॥ जो दानव कि युद्धक्षेत्रमें शेष रहेथे वे नारदजीकी आज्ञासे मृत बलिको लेकर अस्ताचलमें गये ॥ ४६ ॥ वहां उन मृतक दैत्यों मेंसे जिनके अंग और शिर नहीं नष्टहुएथे शुक्राचार्यने उस स्थानमें अपनी संजीवनी विद्यासे उन्हें फिर जीवित किया ॥ ४७ ॥ शुक्राचार्यके कर स्पर्शसे राजा बलिकी सब इन्द्रियें और स्मृतिशक्ति चैतन्य होगई । यद्यपि बलि परास्त होगयाथा किंतु वह जगतके सारको भलीभांतिसे जानाथा इससे उसने कुछभी खेद न किया ॥ ४८ ॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणेअष्टमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि-हेराजन् ! नारायणने मोहिनी रूपसे दैत्योंको मोहितकर देवताओंको अमृत पिलाया है—इस बातको सुनकर महादेवजी नंदिकेश्वरपर सवारहो उमाको साथले सब भूतगणों सहित जिस स्थानपर नारायण थे वहां उनके देखनेको आये ॥ १–२ ॥ नारायणने आदर पूर्वक हर और पार्वतीजी का सन्मान किया, और महादेवजी नेभी उनकी पूजाकर, आसन पर बैठ अमचूर होनेके उपरांत उनसे यह कहाकि ॥ ३ ॥ हे देव देव ! हे जगद्व्यापिन ! हे जगन्मय ! हे जगदीश ! आप सब पदार्थों के आत्मा, कारण और ईश्वरहो ॥ ४ ॥ जिस सत्य और चित्स्वरूप से इस विश्वका आदि, मध्य और अंतहोता है, किंतु जिसका स्वयं आदि, मध्य और अंत नहीं है, ओदृश्य, द्रष्टा, भोग्य और भोक्ता है आप वही सत्यरूप चिन्स्वरूप ब्रह्महो ॥ ५ ॥ सुख से विरक्त, मंगल चाहने वाले मुनिलोग इस लोक और परलोक की आसक्ति छोड़ आपकेही

॥६॥ त्वं ब्रह्म पूर्णममृतं विगुणं विशोकमानन्दमात्रमविकारमनन्यदन्यत् । विश्वस्य-
हेतुरुदयस्थितिसंयमानामात्मेश्वरश्च तदपेक्षतयाऽनपेक्षः ॥ ७ ॥ एकस्त्वमेव सद
सद्द्वयमद्वयं च स्वर्णं कृताकृतमिवेह न वस्तुभेदः । अज्ञानतस्त्वयि जनैर्विहितो विक
ल्पो यस्माद्गुणव्यतिकरो निरुपाधिकस्य ॥ ८ ॥ त्वां ब्रह्म केचिदवयन्त्युत धर्ममेक
एके परं सदसतोः पुरुषं परेशम् । अन्येऽवयन्ति नवशक्तियुतं परं त्वां केचिन्महापुरुष
मव्ययमात्मतन्त्रम् ॥ ९ ॥ नाहं परायुरृषयो न मरीचिमुख्या जानन्ति यद्विरचितं खलु
सत्त्वसर्गाः । यन्मायया मुषितचेतस ईश दैत्यमर्त्यादयः किमुत शश्वदभद्रवृत्ताः ।
॥ १० ॥ स त्वं समीहितमदः स्थितिजन्मनाशं भूतेहितं च जगतो भवबन्धमोक्षौ । वा
युर्यथा विशति खं च चराचराख्यं सर्वं तदात्मकतयाऽवगमोऽवरुन्त्से ॥ ११ ॥ अव-
तारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः । सोऽहं तद्द्रष्टुमिच्छामि यत्ते योषिद्वपुर्धृतम् १२
येन संमोहिता दैत्याः पायिताश्चामृतं सुराः । तद्दिदृक्षव आयाताः परं कौतूहलं हि नः ।
॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच । एवमभ्यर्थितो विष्णुर्भगवाञ्छूलपाणिना । प्रहस्य भावगं
भीरं गिरिशं प्रत्यभाषत ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच । कौतूहलाय दैत्यानां योषिद्वेषो
मया कृतः । पश्यता सुरकार्याणि गते पीयूषभाजने ॥ १५ ॥ तत्तेऽहं दर्शयिष्यामि

चरण कमलकी पूजा करते रहते हैं ॥ ६ ॥ आप पूर्ण, सुख स्वरूप, नित्य, आनंदमय, अगुण, निर्विकार और शोकहीन ब्रह्महो । आपसे अतिरिक्त कुछभी नहीं है, और आपही सर्वातिरिक्त हो; आपही विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण तथा आत्मा के ईश्वरहो । विश्वको आपकी अपेक्षा रहती है परन्तु आपको किसी की अपेक्षा नहीं है ॥ ७ ॥ जैसे एक सुवर्ण, कुंडलादि अलंकारों से बदलकरदो होजाता है तैसही परमकारणरूपी एकमात्र आपभी कार्य कारणरूपसे परिणत होकर भिन्न होते रहतेहो वास्तव में आपमें किसीप्रकारका पदार्थनहीं है । आप यद्यपि उपाधि रहितहो किन्तु गुणों के साथ आपका सम्बन्ध है, इसही कारण मूर्ख मनुष्य आ। में भेदकल्पना करते रहते हैं ॥ ८ ॥ कोई (वेदांतिक) आपको ब्रह्म; कोई (मीमांसक) आपको धर्म, कोई (सांख्यवाले) प्रकृति पुरुषसे भिन्न परमपुरुष परमेश्वर; कोई २ (पंचरात्रवाले) नवशक्तियुक्त पर पुरुष, और कोई २ (योगशास्त्रवाले) आपको स्वाधीन, अविनाशी महापुरुष मानते हैं ॥ ९ ॥ ब्रह्मा व मरीचिआदि ऋषिगण और मैं यद्यपि ये सबसत्व गुणसे उत्पन्नहुए हैं तो भी आपकी माया से मोहित चित्त होजाने के कारण इससब आपकी सृष्टिको नहीं जानसकते, फिर रज और तम से उत्पन्न दैत्यगण और मनुष्यादि जीवगण आपको कैसे जानसकते हैं ? ॥१०॥ आप ।णियों की चेष्टा, इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश और संसार के बन्धनमोक्ष सब कोही जानते हो जैसे वायु सब चराचर प्राणियों में और आकाश में व्याप्त रहता है, आपभी वैसही आत्मस्वरूप से समस्त चराचरमें व्याप्तहो, आप ज्ञानस्वरूप और सबके आत्मा हो ॥११॥ आपने गुणों समेत क्रीड़ा करते २ जिन २ अवतारों को स्वीकारकिया है उन सबको देखा है अतएव आपने जो स्त्रीरूपधारण किया था उसके भी देखनकी मेरी इच्छा है ॥ १२ ॥ जिसरूप से दैत्योंको मोहितकर देवताओं को अमृत पिलायाथा उसरूपके देखने की इच्छा से मैं आयाहूं, उसके देखनेके निमित्त अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न होरहा है ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे-राजन् ! महादेवजीके ऐसी प्रार्थनाकरने पर भगवान विष्णुने गम्भीर भाव से हँसकर उनसे कहा कि ॥ १४ ॥ अमृतका कलश हरजाने पर मैंने देखा कि—स्त्री का रूप धारणकरने परही देवताओं का कार्य सिद्ध होगा, अतएव दैत्यों को मोहित करनेके निमित्त मैंने स्त्रीरूप धारण किया था ॥

दिदृक्षोः सुरसत्तम । कामिनां बहु मन्तव्यं संकल्पप्रभवोदयम् ॥१६॥ श्रीशुकउवाच
इतिब्रुवाणो भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत । सर्वतश्चारयंश्चक्षुर्भव आस्ते सहोमया ॥
॥ १७ ॥ ततोददर्शोपवने वरस्त्रियं विचित्रपुष्पारुणपल्लवद्रुमे । विक्रीडतींकन्दुक
लीलया लसद्दुकूलपर्यस्तनितम्बमेखलाम् ॥ १८ ॥ आवर्तनोद्वर्तनकम्पितस्तनप्र
कृष्टहारोरुभरैःपदेपदे । प्रभज्यमानामिवमध्यतश्चलत्पदप्रवालंनयतींततस्ततः ॥
॥ १९ ॥ दिक्षुभ्रमत्कन्दुकचापलैर्भृशं प्रोद्विग्नतारायतलोललोचनाम् । स्वकर्णवि
भ्राजितकुण्डलोल्लसत्कपोलनीलालकमण्डिताननाम् ॥ २० ॥ श्लथद्दुकूलंकबरीं
च विच्युतां सन्नह्यतीं वामकरेणवल्गुना । विनिघ्नतीमन्यकरेणकन्दुकं विमोहयंतीं
जगदात्ममायया ॥ २१ ॥ तांवीक्ष्यदेव इति कन्दुकलीलयेषद्व्रीडास्फुटस्मितवि
सृष्टकटाक्षमुष्टः । स्त्रीप्रेक्षणप्रतिसमीक्षणविह्वलात्मा नात्मानमन्तिकउमांस्वगणां
श्चवेद ॥ २२ ॥ तस्याःकराग्रात्सतुकन्दुकोयदा गतोविदूरंतमनुव्रजत्स्त्रियाः । वा
सःससूत्रंलघुमारुतोऽहरद्भवस्यदेवस्यकिलानुपश्यतः ॥ २३ ॥ एवंतांरुचिरापां
गीं दर्शनीयांमनोरमाम् ॥ दृष्ट्वातस्यांमनश्चक्रे विषज्जन्त्यांभवःकिल ॥ २४ ॥
तयाऽपहृतविज्ञानस्तत्कृतस्मरविह्वलः । भवान्याअपिपश्यन्त्या गतह्रीस्तत्पदंययौ
॥ २५ ॥ सातमायान्तमालोक्य विवस्त्राव्रीडिताभृशम् । निलीयमानावृक्षेषु हस

॥ १५ ॥ हेदेव देव ! आपके देखने की इच्छा है तो मैं आपको दिखाऊँगा । बहुरूप कामका बढ़ाने
वाला है इसही से कामीजन उसका अतिमान करते हैं ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे नरनाथ ! भगवान ऐसाकह वहां से अन्तर्धान होगये । महादेवजी ने पार्वतीजी के समीप बैठेहुए चारोंओर को दृष्टि डालते १ थोडीदेर के उपरांत देखा कि॥१७॥ विचित्रफूल और वृक्षों से शोभित उपवन में एक परमसुन्दरी स्त्री गेंद खेलरही है जिसके रेशमीवस्त्र से वेष्टित नितम्बपर कटिमेखला शोभायमान होरही है ॥ १८ ॥ गेंद के उछालने और पकड़ने के निमित्त स्त्री का शरीर भ्रमित होरहा है इससे उसके दोनों स्तन कम्पायमान होरहे हैं । दोनों स्तन, हार, और उरुदेश के भारसे उसके चलने में प्रत्येक पगपर ऐसा ज्ञात होता है कि मानोंउसकी क्षीण कमर टूट जायगी वह सुन्दरी इस प्रकार से चलतीहुई एक स्थानसे दूसरे स्थानपर अपने चरणकमल धररही है ॥ १९ ॥ गेंद नानादिशाओं में भ्रमण कररही है इसकारण उसके विशाल नेत्रों के तारे चंचलहोरहे हैं सुन्दर दोनों कानों में सुवर्ण के कुण्डल शोभायमान होरहे हैं, उन कुण्डलों से कपोलोंकी शोभा और भी बढ़रही है उनकपोलों और काली अलकों से मुख अत्यन्त मनोमय होरहा है ॥ ॥ २० ॥ रेशमी वस्त्र और कबरी (जूड़ा) ढीली हुई जाती है, मोहिनी मनोहर बाएं हाथ सेउस रेशमी वस्त्र और कबरी को धारण कियेहुए और दूसरे हाथ से गेंदको उछालतीहुई अपनी माया द्वारा जगत् को मोहितकर रही थी ॥ २१ ॥ मोहिनी लज्जायुक्त मृदुहास्यसे कटाक्ष क्षेपकर रही थी; महादेवजी उसे देख उसके उन कटाक्षों से हत बुद्धि होगये । वह अनिमिष नेत्रों से उस स्त्री को देखने लगे, स्त्री भी उनकी ओर देखनेलगी । इससे श्रीशिवजी इतने व्याकुल होगये कि अपने समीप में बैठे हुई उमा और भूतगण को भी भूलगये ॥ २२ ॥ अनन्तर कामिनी की गेंद एकबार हाथ से दूर चलीगई मोहिनी उसके पकड़ने के निमित्त दौड़ी, तो वायु ने उसका वस्त्र कटिमेखला, सहित हरलिया । महेश्वर एकटक दृष्टि से देखनेलगे ॥ २३ ॥ सुन्दर मनोरमा सुन्दरी के तिरछे नेत्रों को देखकर महादेवजीका ज्ञान जातारहा, और उनका मन उसपर आसक्त होगया ॥ २४ ॥ दारुण कामदेव से पीड़ितहो वे भवानी के सम्मुखही, लज्जाको छोड़ मोहिनीके समीपगये ॥ २५ ॥ वह स्त्री बिना वस्त्र थी, इससे वह महादेवजीको आते देख अत्यन्त लज्जित

न्तीनाम्वतिष्ठत ॥ २६ ॥ तामन्वगच्छद्भगवान् भवः प्रमुषितेन्द्रियः । कामस्य च वशं नीतः करेणुमिव यूथपः ॥ २७ ॥ सोऽनुव्रज्यातिवेगेन गृहीत्वाऽनिच्छतींस्त्रियम् । केशबन्ध उपानीय बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥ २८ ॥ सोपगूढा भगवता करिणा करिणी यथा । इतस्ततः प्रसर्पन्ती विप्रकीर्णशिरोरुहा ॥ २९ ॥ आत्मानं मोचयित्वाऽङ्ग सुरर्षभभुजान्तरात् । प्राद्रवत्सा पृथुश्रोणी माया देवविनिर्मिता ॥ ३० ॥ तस्याऽसौ पदवीं रुद्रो विष्णोरद्भुतकर्मणः । प्रत्यपद्यत कामेन वैरिणेव विनिर्जितः ॥ ३१ ॥ तस्यानुधावतो रेतश्चस्कन्दामोघरेतसः । शुष्मिणो यूथपस्येव वासितामनुधावतः ॥ ॥ ३२ ॥ यत्र यत्रापतन्मह्यां रेतस्तस्य महात्मनः । तानि रूप्यस्य हेम्नश्च क्षेत्राण्यासन्महीपते ॥ ३३ ॥ सरित्सरःसु शैलेषु वनेषूपवनेषु च । यत्र क्व चासन्नृषयस्तत्र संनिहितो हरः ॥ ३४ ॥ स्कन्ने रेतसि सोऽपश्यदात्मानं देवमायया । जडीकृतं नृपश्रेष्ठ संन्यवर्तत कश्मलात् ॥ ३५ ॥ अथावगतमाहात्म्य आत्मनो जगदात्मनः । अपरिज्ञेयवीर्यस्य न मेने तदु हाद्भुतम् ॥ ३६ ॥ तमविक्लवमव्रीडमालक्ष्य मधुसूदनः । उवाच परमप्रीतो बिभ्रत्स्वां पौरुषीं तनुम् ॥ ३७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ दिष्ट्या त्वं विबुधश्रेष्ठ स्वां निष्ठामात्मना स्थितः । यन्मे स्त्रीरूपया स्वैरं मोहितोऽप्यङ्ग मायया ॥ ३८ ॥ को नु मेऽतितरेन्मायां विषक्तस्त्वदृते पुमान् तांस्तान्विसृजतीं भावान्दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ ३९ ॥ सेयं गुणमयी माया न त्वामभिभविष्यति । मया समेता कालेन काल

हुई तौभी हँसते २ वृक्षों की ओट में छातीहुई भागी ॥ २६ ॥ भगवान महादेवजीकी इन्द्रियें उन्मत्तहो उठीं और वे कामदेवके वशीभूत हो, जैसे हाथी हथिनी के पीछे दौड़ता है ऐसेहीवह उस स्त्री के पीछे दौड़ने लगे ॥ २७ ॥ बहुत शीघ्रतापूर्वक दौड़कर वे अन्त में उसस्त्री के समीप पहुंचगये और उसकी इच्छा न होते हुए भी उसके केश पाश पकड़ अपने निकट खींच दोनों भुजाओंसे उसका आलिंगन किया ॥ २८ ॥ हाथी जैसे हथिनी से आलिंगन करता है भगवान भूतनाथने उसीप्रकारसे आलिंगन करनेपर वह स्त्री इधर उधर विचलितहोनेलगी, इससे उसके केश खुलगये॥२९॥हेराजन्!अनंतर महादेवजीकी भुजाओंसे आनेको छुड़ाकर वह भगवानकी रचीहुई विशाल नितंबिनी माया वहांसे भागी ॥ ३० ॥ श्रीशिवजीभी उन अद्भुत चरित्रवाले भगवानके पीछे दौड़े उसकाल ऐसा ज्ञात होताथा कि मानो पूर्व वैरी कामदेवने महादेवजी को जीतलियाहै ३१ ॥ पीछे दौड़ते २ ऋतुमती हथिनी के पीछे दौड़ते हुए हाथीके समान उन अमोघ वीर्य महादेवजी का वीर्य स्खलित होनेलगा ॥ ३२ ॥ हेराजन् ! महात्मा रुद्रका वीर्य जिस २ स्थानपर गिरा उसी २ स्थानमें सोने और चांदीकी खानें होगई ॥ ३३ ॥ नदी, सरोवर, पर्वत, वन, उपवन, और जिन स्थानोंमें ऋषि वास करतेथे उन सब स्थानोंमें महादेवजी मोहिनीके पीछे २ गये ॥ ३४ ॥ वीर्यपात होजानेपर महादेवजीने जाना कि–मुझे दैवी मायाने जड़ीभूत करादियाहै यह विचारकर महादेवजी मोहसे निवृत्तहुए ॥ ३५ ॥ उन्हें जगदात्मा, अमोघ पराक्रमवाले नारायण की महिमा विदितथी अतएव अपनेको मायासे जड़ीभूत होना कुछ विचित्र बात न मानी ॥ ३६ ॥ हेराजन् ! महादेवजी को स्वस्थचित्त और लज्जारहित देख अति प्रसन्नहो अपना पुरुष रूप धारणकर भगवानने उनसे कहा कि—३७ ॥ हेदेवश्रेष्ठ ! आप मेरी स्त्री रूपिणी माया से अपनी इच्छानुसार मोहित होगयेथे इससमय जो आप अपनी स्थितिमें आगये यह बहुतही अच्छाहुआ ॥ ३८ ॥ आपके अतिरिक्त और कौन दूसरा पुरुष एकबार वशीभूतहो, नाना हाव भाव प्रगट करती अजितेंद्रिय पुरुष जिसे नहीं जीतसकते ऐसी मेरी मायाको एकहीबार में कौन परित्याग करसकताहै, ॥ ३९ ॥ हे तात ! सृष्टि आदिकी कारणरूप कालरूप मेरे प्रभावसे घटते बढ़ते रजोगुण आदि अंशसे मेरे वश

कर्मेज भागशः ॥ ४० ॥ श्रीशुकउवाच ॥ एवंभगवता राजञ्छ्रीवत्साङ्केनसत्कृतः । आमन्त्र्यतंपरिक्रम्य सगणःस्वालयंययौ ॥४१॥ आत्मांशभूतांतांमायां भवानींभगवान्भवः । शंसतामृषिमुख्यानां प्रीत्याचष्टाथभारत ॥ ४२ ॥ अपिव्यपश्यस्त्वमजस्यमायांपरस्यपुंसःपरदेवतायाः । अहंकलानामृषभोऽविमुह्ये ययाऽवशोऽन्येकिमुतास्वतन्त्राः ॥ ४३ ॥ यंमामपृच्छस्त्वमुपेत्य योगात्समासहस्रान्तउपारतंवै । सएषसाक्षात्पुरुषः पुराणोनयत्रकालोविशतेनवेदः ॥ ४४ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ इतितेऽभिहितस्तात विक्रमःशार्ङ्गधन्वनः । सिन्धोर्निर्मथनेयेन धृतःपृष्ठेमहाचलः॥४५॥एतन्मुहुःकीर्तयतोऽनुशृण्वतोनरिष्यते जातुसमुद्यमःक्वचित् । यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनं समस्तसंसारपरिश्रमापहम् ॥ ४६ ॥ असद्विषयमङ्घ्रिंभावगम्यं प्रपन्नानमृतममरवर्यानाशयत्सिन्धुमथ्यम् । कपटयुवतिवेषोमोहयन्यःसुरारींस्तमहमुपसृतानांकामपूरंनतोऽस्मि ॥ ४७ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा० अष्ट० द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥ मनुर्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेवइतिश्रुतः । सप्तमोवर्तमानो यस्तदपत्यानिमेशृणु ॥ १ ॥ इक्ष्वाकुर्नभगश्चैवधृष्टः शर्यातिरेवच । नरिष्यन्तोऽथ नाभागः सप्तमोदिष्टउच्यते ॥ २ ॥ तरूषश्चपृषध्रश्चदशमोवसुमान्स्मृतः । मनोर्वैवस्वतस्यैतेदशपुत्राः परंतप ॥ ३ ॥ आदित्यावसवोरुद्राविश्वेदेवामरुद्गणाः । अश्विनावृभवोराजन्निन्द्रस्तेषांपुरंदरः ॥ ४ ॥ कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्चविश्वामित्रोऽथ

मे रहनेवाली वह मेरी गुणमयी माया कभी आपका पराभव नहीं करसकेगी ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! श्रीनारायणके इसप्रकारसे प्रशंसा व सनमान करनेपर शिवजी उनकी परिक्रमा कर प्रमथगणोंके साथ अपने धामको गये ॥४१॥ हे भारत ! फिर महेश्वर, आत्माकी अंशभूता उसी मायाके विषयमें ऋषियोंके सामने पार्वतीजीसे कहनेलगे कि—॥ ४२ ॥ हे प्रिये ! परमपुरुष जन्मरहित भगवानकी मायाको तो देखा ? मैं सब मायाओंका भी अधीश्वर होकर उस मायासे मोहित होगया, अतएव जिसका चित्त परवशहै वह यदि मोहितहोजाय तो उसमें सन्देहही क्याहै ? ॥ ४३ ॥ मैं जब सहस्रवर्षवाले योगसे निवृत्तहुआ उससमय तुमने जिस पुरुषकी बात मुझसे पूँछीथी यही साक्षात् वह पुरुषहै काल व वेदभी इनकी महिमाका वर्णन नहीं करसकता॥४४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! जिन भगवानने समुद्र मथनकाल में पीठपर महापर्वत धारण कियाथा मैंने सबबल पराक्रम उनका वर्णनकिया॥४५॥जो बारम्बार इसको कहैंगे व सुनेंगे उनका कामना कभी निष्फल न होगी, क्योंकि भगवानके गुणोंका कहनाही संसारके क्लेशोंका नाशकरनेवालाहै॥४६॥असभ्योंको अप्राप्त भक्तिसे देवताओंने जिनके चरणोंका आश्रय लियाथा उन्हीं भगवानने सुन्दर मोहिनीरूप धारणकर दैत्योंको मोहितकर देवोंको समुद्र से उत्पन्नहुआ अमृत पिलाया उन्हीं भगवानको मैं नमस्कार करताहूं । वह अपने शरणागतोंकी अभिलाषा पूर्ण करते हैं ॥४७॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणअष्टमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांद्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

श्री शुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! सूर्य के पुत्र मनु जो श्राद्धदेव के नाम से प्रसिद्ध हैं इससमय वर्त्तमान हैं, य सातवें मनु हैं ; इनके सन्तानआदि काविवरण सुनो ॥ १ ॥ इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट, तरुष, पृषध्र और वसुमान यह दशजन वैवस्वत,मनुके पुत्र हुए ॥ २—३ ॥ इस मन्वन्तर में आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेवा, मरुद्गण, अश्विनीकुमार और ऋभुगण देवता; और पुरन्दर इस समय इनसब देवताओं के इन्द्र हैं ॥ ४ ॥

गौतमः । जमदग्निर्भरद्वाजइतिसप्तर्षयः स्मृताः ॥ ५ ॥ अत्रापिभगवज्जन्मकश्य
पाददितेरभूत् । आदित्यानामवरजोविष्णुर्वामनरूपधृक् ॥६॥ संक्षेपतोमयोक्तानि
सप्तमन्वन्तराणिते । भविष्याण्यथवक्ष्यामिविष्णोः शक्त्यान्वितानिच ॥ ७ ॥ वि
वस्वतश्चद्वेजायेविश्वकर्मसुतेउभे । संज्ञाछायाचराजेन्द्रयेप्रागभिहितेतव ॥ ८ ॥
तृतीयांवडवामेकेतासांसंज्ञासुतास्त्रयः । यमोयमीश्राद्धदेवश्छायायाश्चसुताञ्छृणु
॥ ९ ॥ सावर्णिस्तपतीकन्याभार्यासंवरणस्यया । शनैश्चरस्तृतीयोऽभूदश्विनौवडवा
त्मजौ ॥ १० ॥ अष्टमेऽन्तरआयातेसावर्णिर्भवितामनुः निर्मोकविरजस्काद्याःसा
वर्णितनयानृप ॥ ११ ॥ तत्रदेवाःसुतपसो विरजाअमृतप्रभाः । तेषांविरोचनसुतो
बलिरिन्द्रोभविष्यति ॥ १२ ॥ दत्त्वेमांयाचमानाय विष्णवेयःपदत्रयम् राद्धमिन्द्रप
दंहित्वाततः सिद्धिमवाप्स्यति ॥ १३ ॥ योऽसौभगवताबद्धः प्रीतेनसुतलेपुनः ।
निवेशितोऽधिकेस्वर्गादधुनास्तेस्वराडिव ॥ १४ ॥ गालवोदीप्तिमान्रामोद्रोणपुत्र.
कृपस्तथा । ऋष्यशृङ्गः पिताऽस्माकंभगवान्बादरायणः ॥१५॥ इमेसप्तर्षयस्तत्रभ
विष्यन्तिस्वयोगतः । इदानीमासतेराजन्स्वे स्वआश्रममण्डले ॥ १६ ॥ देवगुह्या
त्सरस्वत्यांसार्वभौमइतिप्रभुः । स्थानंपुरन्दराद्धृत्वाबलयेदास्यतीश्वरः ॥१७॥ नव
मोदक्षसावर्णिर्मनुर्वरुणसम्भवः भूतकेतुर्दीप्तिकेतुरित्याद्यास्तत्सुतानृप ॥ १८ ॥
पारामरीचिगर्भाद्या देवाइन्द्रोऽद्भुतःस्मृत । द्युतिमत्प्रमुखास्तत्रभविष्यन्त्यृषयस्त

कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ,विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज इस मन्वन्तर में यह सप्तर्षि हैं ॥५॥ इसमन्वन्तर में भी कश्यपके वीर्य से अदिति के गर्भ मे भगवानका वामनरूपमें जन्महुआ। वामन सब आदित्यों में छोटे हैं ॥ ६ ॥ मैंने संक्षेप से तुमसे सात मन्वन्तरों का वर्णन किया अब भगवान विष्णुजीकी शक्तिसे व्याप्त भविष्यत् मन्वन्तरों का वर्णन करता हूं ॥ ७ संज्ञा और छाया नामक विश्वकर्मा की यह दो पुत्रियें सूर्यकी भार्याथीं, हेराजेंद्र ! इनका वर्णन पहिलेहीकरचुका हूं ॥ ॥ ८ ॥ कोई २ कहते हैं कि सूर्यकी एक तीसरी स्त्री का नाम वडवाथा, किन्तु मैं जानता हू कि वडवासंज्ञाकाही नामांतर है । संज्ञाके तीनपुत्र यम, यमुना और श्राद्धदेव हुए । अब छायाकी सन्तानों के नाम सुनो ॥ ९ ॥ उसके सावर्णि नामसे एकपुत्र और तपतीनाम से एककन्या हुई, तपती राजा सम्वरणकी स्त्री हुई थी । शनिश्चरछायाका तीसरापुत्रथा । सूर्य के वडवानामकी जो स्त्री थी उसके गर्भ से अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए ॥ १० ॥ हेराजन् ! आठवें मन्वन्तर में सावर्णिमनु होंगे, निर्मोक और विरजस्क आदि सावर्णि मनु के पुत्र होंगे ॥ ११ ॥ इस मन्वंतर के देवताओं के नाम सुतपा, विरजा और अमृतप्रभा होंगे विरोचन नदन बलि उनके इन्द्र होंगे ॥ १२ ॥ भगवान के तीन पग पृथ्वी मांगनें से बलि नें यह पृथ्वी उनको दान करदीथी बलि आठवें मन्वंतर में प्राप्त हुए इन्द्र पद छोडकर मोक्ष को प्राप्त होगा ॥ १३ ॥ भगवानने प्रसन्न होकर इस बलि को इस समय पाताल में बांध रक्खा है वह स्वर्ग सेभी श्रेष्ठ पाताल पुरी में इन्द्र की समान वासकरताहै १४ गालव,दीप्तिमान,परशुराम,अश्वत्थामा,कृपाचार्य,ऋष्यशृंग,और मेरेपिता भगवान बादरायण वेदव्यास जी यह सातजन अष्टम मन्वंतर में ऋषिहोंगे यह इससमय अपनें२ आश्रममें योगका अवलंबनकर निवासकररहे हैं॥१५।१६॥हे राजन् !उससावर्णि मन्वंतरमें भगवान देव गुह्यके वीर्य से सरस्वतीके गर्भ में सार्वभौमके नामसे अवतीर्णहोंगे जो पुरंदरसे बलपूर्वक स्वर्ग राज्य छीनकर बलिको देवेंगे॥१७॥ वरुण का पुत्र दक्ष सावर्णी नामक नवमा मनु होगा, भूतकेतु और दीप्तिकेतु आदि उसके दो पुत्र होंगे॥१८॥ इस मन्वन्तर में पारा और मरीचिगर्भ आदि देवता होंगे, अद्भुत नाम इन्द्र और द्युति-

तः ॥ १९ ॥ आयुष्मतोऽम्बुधारायामृषभो भगवत्कला । भविता येन संराद्धां त्रिलोकीं भोक्ष्यतेऽद्भुतः ॥ २० ॥ दशमो ब्रह्मसावर्णिरुपश्लोकसुतो महान् । तत्सुता भूरिषेणाद्या हविष्मत्प्रमुखा द्विजाः ॥ २१ ॥ हविष्मान्सुकृतिः सत्यो जयो मूर्तिस्तदा द्विजाः सुवासनविरुद्धाद्या देवाः शम्भुः सुरेश्वरः ॥ २२ ॥ विष्वक्सेनो विषूच्यां तु शम्भोः सख्यं करिष्यति । जातः स्वांशेन भगवान्गृहे विश्वसृजो विभुः ॥ २३ ॥ मनुर्वै धर्मसावर्णिरेकादशम आत्मवान् । अनागतास्तत्सुताश्च सत्यधर्मादयो दश ॥ २४ ॥ विहङ्गमाः कामगमा निर्वाणरुचयः सुराः । इन्द्रश्च वैधृतिस्तेषामृषयश्चारुणादयः ॥ २५ ॥ आर्यकस्य सुतस्तत्र धर्मसेतुरिति स्मृतः । वैधृतायां हरेरंशस्त्रिलोकीं धारयिष्यति २६। भविता रुद्रसावर्णी राजन्द्वादशमो मनुः । देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठादयः सुताः २७ ऋतधामा च तत्रेन्द्रो देवाश्च हरितादयः । ऋषयश्च तपोमूर्तिस्तपस्व्याग्नीध्रकादयः ॥ २८ ॥ स्वधामाख्यो हरेरंशः साधयिष्यति तन्मनोः अन्तरं सत्यसहसः सूनृतायाः सुतो विभुः ॥ २९ ॥ मनुस्त्रयोदशो भाव्यो देवसावर्णिरात्मवान् । चित्रसेनविचित्राद्या देवसावर्णिदेहजाः ॥ ३० ॥ देवाः सुकर्मसुत्रामसंज्ञा इन्द्रो दिवस्पतिः निर्मोकतत्त्वदर्शाद्या भविष्यन्त्यृषयस्तदा ॥ ३१ ॥ देवहोत्रस्य तनय उपहर्ता दिवस्पतेः । योगेश्वरो हरेरंशो बृहत्यां सम्भविष्यति ॥ ३२ ॥ मनुर्वा इन्द्रसावर्णिश्चतुर्दशम एष्यति ॥ उरुगम्भीरबुद्ध्याद्या इन्द्रसावर्णिवीर्यजाः ॥ ३३ ॥ पवित्राश्चाक्षुषा देवाः शुचिरिन्द्रो भविष्यति अग्निर्बाहुः शुचिः शुद्धो मागधाद्यास्तपस्विनः ॥ ३४ ॥ सत्रायणस्य तनयो बृहद्भानुस्तदा हरिः । वितानायां महाराज क्रियातन्तून्वितायिता ॥

मान आदि ऋषि होंगे ॥ १९ ॥ उस मन्वतर में आयुष्मान् के वीर्य से अम्बुधाराके गर्भ में ऋषभ नाम से भगवान अवतीर्ण होंगे ऋषभ अद्भुत नामक इन्द्र को सर्व सम्पत्ति युक्त त्रिभुवनका भोगकरा वेंगे ॥ २० ॥ उपश्लोक के पुत्र ब्रह्म सावर्णि नाम दशमे मनु होंग, भूरिषेण आदि मनु के पुत्र होंगे उस मन्वतर में हविष्मत, सुकृत, सत्य, जय और मूर्ति आदि सप्तर्षि होंगे सुवासन और विरुद्ध देवता तथा शम्भु उनके इन्द्र होंगे ॥२१-२२॥ उस मन्वतर में भगवान नारायण विश्वस्रष्टा के घरमें विसूची के गर्भ से विष्वक्सेन नाम से जन्म ग्रहणकर शम्भु नाम इन्द्र के साथ मित्रता करेंगे ।२३। धर्म सावर्णि एकादश मनु होंगे उनके सत्यधर्म आदि दशपुत्र होंगे ॥ २४ ॥ उस मन्वन्तरमें विहंगम, कामगम निर्वाण और रुचि यह देवता तथा वैधृति उनके इन्द्र और अरुणादि ऋषि होंगे । ॥ २५ ॥ इस मन्वन्तरमें आर्यक के वीर्यसे वैधृताके गर्भमें भगवानके अंशसे धर्मसेतु जन्म ग्रहण कर त्रिलोकी का पालन करेंगे ॥ २६ ॥ रुद्र सावर्णि बारहवें मनुहोंगे और उनके देववान उपदेव और देव श्रेष्ठ आदि पुत्र होंगे ॥ २७ ॥ इस मन्वंतर में ऋतधामा इन्द्र हरितादि देवता, और तपोमूर्ति, तपस्वी और आग्नीध्रक् आदि ऋषि होंगें ॥ २८ ॥ हरि का अंश, सत्यसहा नामक विप्रके वीर्य से सूनृता क गर्भ में उत्पन्न हो सुधामा नाम से विख्यात होगा, उनसे वह मन्वन्तर अत्यंत प्रसिद्ध होगा ॥ २९ ॥ देव सावर्णि तेरहवे मनु होंगे, चित्रसेन और विचित्र आदि देव सावर्णि के पुत्र होंगें ॥ ३० ॥ इस मन्वंतर में सुकर्मा और सुत्रामा नामक देवता दिवस्पति इन्द्र और निर्मोक तथा तत्त्वदर्शी आदि ऋषि होंगें ॥ ३१ ॥ उस समय देवहोत्र क बृहती नाम स्त्री से योगेश्वर नामक भगवान का अंशावतार होगा वह उस समय के दिवस्पति नामक इन्द्र के सहायक होंगे ॥ ३२ ॥ इन्द्र सावर्णि चौदहवें मनुहोंगे और उरु, गम्भीर बुद्धिआदि उनके पुत्रहोंगे ॥ ३३ ॥ उस मन्वंतर में पवित्र चाक्षुष नामक देवता, शुचिइन्द्र और अग्निबाहु, शुचि, शुद्ध तथा मागधादि ऋषि होंगे ॥ ३४ ॥ नारायण इस मन्वंतर में सत्रायण के वीर्य से विनता के गर्भमें बृहद्भानु के

॥ ३५ ॥ राजंश्चतुर्दशैतानि त्रिकालानुगतानि ते । प्रोक्तान्येभिर्मितः कल्पो युगसा
हस्रपर्ययः ॥ ३६ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० अष्टम० त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ राजोवाच ॥ मन्वन्तरेषु भगवन् यथा मन्वादयस्त्विमे । यस्मिन्कर्मणि ये येन
नियुक्तास्तद्वदस्व मे ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ मनवो मनुपुत्राश्च मुनयश्च महीपते । इन्द्राः
सुरगणाश्चैव सर्वे पुरुषशासनाः ॥ २ ॥ यज्ञादयो याः कथिताः पौरुष्यस्तनवो नृप ।
मन्वादयो जगद्यात्रां नयन्त्याभिः प्रचोदिताः ॥ ३ ॥ चतुर्युगान्ते कालेन ग्रस्ताञ्छ्रुति
गणान्यथा । तपसा ऋषयोऽपश्यन्यतो धर्मः सनातनः ॥ ४ ॥ ततो धर्मं चतुष्पादं मन
वो हरिणोदिताः । युक्ताः संचारयन्त्यद्धा स्वे स्वे काले महीं नृप ॥ ५ ॥ पालयन्ति प्र
जापाला यावदन्तं विभागशः । यज्ञभागभुजो देवा ये च तत्रान्विताश्च तैः ॥ ६ ॥ इन्द्रो
भगवता दत्तां त्रैलोक्यश्रियमूर्जिताम् । भुञ्जानः पाति लोकांस्त्रीन्कामं लोके प्रवर्षति
॥ ७ ॥ ज्ञानं चानुयुगं ब्रूते हरिः सिद्धस्वरूपधृक् । ऋषिरूपधरः कर्म योगं योगेशरूप
धृक् ॥ ८ ॥ सर्गं प्रजेशरूपेण दस्यून्हन्यात्स्वराड्वपुः कालरूपेण सर्वेषामभावाय
पृथग्गुणः ९ ॥ स्तूयमानो जनैरेभिर्मायया नामरूपया । विमोहितात्मभिर्नानादर्शनै
र्न च दृश्यते ॥ १० ॥ एतत्कल्पविकल्पस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् । यत्र मन्वन्तराण्याहु
श्चतुर्दश पुराविदः ॥ ११ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० अष्टमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

नामसे अवतीर्ण होंगे जो समस्त क्रियाकांड का विस्तार करेंगे ॥ ३५ ॥ हे राजन्! भूत, वर्तमान और भविष्य इन तीनों कालके चौदह मनुओं का वृत्तांत तुमसे कहा । यह चौदह मनु सहस्र युग भोग करेंगे और सहस्र युगका एक कल्प होता है ॥ ३६ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेअष्टमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

राजा परीक्षित् बोलेकि—हे भगवन्! मन्वंतरोंमें यहमनु इत्यादि जिस प्रकार से भिन्न २ कार्यों में प्रवृत्त होते हैं आप वह सब मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन्! मनु, मनुपुत्र, इन्द्र और देवता येसब भगवान के अंशावतार की आज्ञामें रहते हैं ॥ २ ॥ जो यज्ञादि ईश्वरावतारों की और मनुआदिकों कथायेंकहीहैं वे सबही भगवान की आज्ञानुसार जगतका कार्य किया करते हैं ॥ ३ ॥ चारयुग के अंतमें कालके प्रभाव से जबसब श्रुतियें लोप होजाती हैं तब ऋषिलोग अपने तपोबल से फिर उन्हें प्रगट करते हैं । उन सबसे फिर सनातन धर्मकी उत्पत्ति होती है ॥ ४ ॥ इसके उपरांत मनुगण नारायण की आज्ञानुसार तत्पर होकर अपने २ समय में पृथ्वीपर चतुष्पाद् धर्मका प्रचार करते हैं ॥ ५ ॥ मनुके पुत्र पौत्रादि तथा स्वर्ग और पृथ्वी आदिके कर्मलिप्त निवासियों के साथ यज्ञभोजी देवतागण युगके अंततक पृथ्वीका पालन करते हैं ॥ ६ ॥ देवराज इन्द्र भगवान के दियेहुए त्रैलोक्य का भोगकर तीनोंलोक का पालन और पृथ्वीपर वर्षा करते हैं ॥ ७ ॥ भगवान युग युगमें, सनकादि सिद्धरूप धारणकर ज्ञानका याज्ञवल्क्यादि ऋषि रूप धारणकर कर्मका, और दत्तात्रेयादि योगेश्वर रूप धारणकर योगका उपदेश करते हैं ॥ ८ ॥ भगवान्—मरीच्यादि रूपसे प्रजा उत्पन्न, करते राजरूपसे चोरोंका बध करते और काल रूपसे शीत उष्ण आदि नाना प्रकारके गुणधारण कर सबका संहार करते रहते हैं ॥ ९ ॥ नाम और रूपमयी मायासे मोहित यह मनुष्य नानाशास्त्रों से भगवानकी स्तुति करते रहते हैं किंतु उनको नहीं पाते ॥ १० ॥ हे राजन्! कल्प और विकल्प के प्रमाण से यह मैंने कहा, प्राचीन विद्वानों ने इसके मध्यमें चौदह मन्वन्तरों की कल्पना की है ॥ ११ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेअष्टमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

॥ राजोवाच ॥ बलेः पदत्रयंभूमेः कस्माद्धरिरयाचत । भूतेश्वरः कृपणवल्ल
ब्धार्थोऽपिबबंधतम् ॥ १ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामोमहत्कौतूहलंहिनः । यज्ञेश्वरस्यपू
र्णस्यबन्धनंचाप्यनागसः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पराजितश्रीरसुभिश्चहापितो
हीन्द्रेणराजन्भृगुभिः सजीवितः । सर्वात्मनातानभजद्भृगून्बलिः शिष्योमहात्मा
ऽर्थनिवेदनेन ॥ ३ ॥ तंब्राह्मणाभृगवः प्रीयमाणाअयाजयन्विश्वजितात्रिणाकम् ।
जिगीषमाणंविधिनाऽभिषिच्यमहाभिषेकेणमहानुभावाः ॥ ४ ॥ ततोरथः काञ्च
नपट्टनद्धोहयाश्चहर्यश्वतुरङ्गवर्णाः । ध्वजश्चसिंहेनविराजमानोहुताशनादासहवि
र्भिरिष्टात् ॥ ५ ॥ धनुश्चदिव्यंपुरटोपनद्धंतूणावरिक्तौकवचंचदिव्यम् । पितामह
स्तस्यददौचमालामम्लानपुष्पांजलजंचशुक्रः ॥ ६ ॥ एवंसविप्रार्जितयोधनार्थस्तैः
कल्पितस्वस्त्ययनोऽथविप्रान् । प्रदक्षिणीकृत्यकृतप्रणामः प्रह्रादमामन्त्र्यनमश्चका
र ॥ ७ ॥ अथारुह्यरथंदिव्यंभृगुदत्तंमहारथः । सुस्रग्धरोऽथसन्नह्यधन्वीखड्गीधृ
तेषुधिः ॥ ८ ॥ हेमाङ्गदलसद्बाहुः स्फुरन्मकरकुण्डलः । रराजरथमारूढोधिष्ण्य
स्थइवहव्यवाट् ॥ ९ ॥ तुल्यैश्वर्यबलश्रीभिः स्वयूथैर्दैत्ययूथपैः । पिबद्भिरिवखं
दृग्भिर्दहद्भिः परिधीनिव ॥ १० ॥ वृतोविकर्षन्महतीमासुरींध्वजिनींविभुः । यया
विन्द्रपुरींस्वृद्धांकम्पयन्निवरोदसी ॥ ११ ॥ रम्यामुपवनोद्यानैः श्रीमद्भिर्नन्दनादि
भिः । कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥ १२ ॥ प्रवालफलपुष्पोरुभारशाखाम

राजा परीक्षित ने कहाकि—हे ब्रह्मन् ! भगवानने, ईश्वरहोकरभी किसकारण दीनजनोंकी समान बलिसे तीनपग पृथ्वी मांगीथी ? मांगीहुई पृथ्वी पाकरभी किसकारण से भगवान ने बलिको बांधाथा ? यह वृत्तांत जाननेकी मेरी इच्छा है । पूर्णब्रह्म ईश्वरका भिक्षा मांगना और निर्दोषबलि का बांधना इन दोनों विषयों के जाननेके निमित्त मुझे बड़ा कौतूहल होरहा है ॥ २ ॥ शुकदेव जी बोले कि—हेराजन् ! इन्द्रने बलिकी लक्ष्मी और प्राणहरलिये थे परन्तु शुक्राचार्यकी कृपासे वह फिर जीवितहोगये; इसहीकारण बलि भृगुकुलका शिष्यहोकर धनदेकर मन, वाक्य और काय से शुक्राचार्यकी उपासना करता था ॥ ३ ॥ महा प्रभावशाली भृगुवंशियों ने स्वर्ग के जीतनेकी इच्छावाले राजाबलिको महाभिषेकद्वारा अभिषिक्तकर विश्वजित यज्ञ द्वारा एक महायाग कराया ॥ ॥ ४ ॥ उस यज्ञ की अग्नि में घृतहोमने पर, उस से सुवर्ण के पट्टसे बँधाहुआ एकरथ, इन्द्र के घोड़ों की सदृश हरित वर्णके कई एक घोड़े, सिंहशोभित, ध्वज, स्वर्ण निर्मित धनुष, अक्षय बाणोंयुक्त दोतरकश, और दिव्य कवच उत्पन्नहुआ । बलिको जब यह सब सामग्री प्राप्तहुई तब प्रह्लादने एक न कुम्हलानेवाली फूलोंकीमाला और शुक्राचार्य ने एक शंखदिया ॥ ५—६ ॥ ब्राह्मणों ने इसप्रकार युद्धकी सामग्री से सजाय स्वस्तिवाचनकिया तदनन्तर बलिने उनकी परिक्रमा और प्रणामकर अपने पितामह प्रह्लादको प्रणामकर उनसे आज्ञा ले ॥ ७ ॥ गलेमें मालापहिन, भृगुवंशियों के दियेहुए दिव्यरथपरचढ़, कवचपहिन और धनुष व खड्गधारणकर पीठपर तरकस को धारणकिया ॥ ८ ॥ सुवर्ण के बनेहुए बाजूबन्द दोनों भुजाओं में शोभापानेलगे और मकराकृत कुण्डलों का प्रकाश चारोंओर को फैलनेलगा । इस प्रकारसे दैत्यराज सुसज्जितहो रथपर बैठ, घड़े में रक्खीहुई अग्निकी समान, शोभा पानेलगा ॥ ९ ॥ अपने समान ऐश्वर्य, बल, श्री युक्त; मानों दृष्टियों से आकाश को पीजायगे और दिशाओं को जलादेंगे ऐसे अपने दैत्य सेनापतियों को साथ ले भारी असुरों की सेना सहित आकाश और भूमिको कँपाता हुआ सर्वसंपत्ति युक्त उसनें इन्द्रपुरी पर आक्रमण किया ॥ १० ॥ ११ ॥ नंदनादि सुंदर उपवन द्वारा इन्द्रपुरीकी शोभा अत्यन्त रमणीय होरही थी उस उपवन और कितनेंही उद्यानों में

द्रुमैः। हंससारसचक्राह्वकारण्डवकुलाकुलाः नलिन्यो यत्र क्रीडन्ति प्रमदाः सुरसेविताः ॥ १३ ॥ आकाशगङ्गया देव्या वृतां परिखभूतया। प्राकारेणाग्निवर्णेन साट्टालेनोन्नतेन च ॥ १४ ॥ रुक्मपट्टकपाटैश्च द्वारैः स्फटिकगोपुरैः। जुष्टां विभक्तप्रपथां विश्वकर्मविनिर्मिताम् ॥ १५ ॥ सभाचत्वररथ्याढ्यां विमानैर्न्यर्बुदैर्युताम्। शृङ्गाटकैर्मणिमयैर्वज्रविद्रुमवेदिभिः १६ ॥ यत्र नित्यवयोरूपाः श्यामा विरजवाससः। भ्राजन्ते रूपवन्नार्यो ह्यर्चिर्भिरिव वह्नयः ॥ १७ ॥ सुरस्त्रीकेशविभ्रष्टनवसौगन्धिकस्रजाम्। यत्रामोदमुपादाय मार्ग आवाति मारुतः ॥ १८ ॥ हेमजालाक्षनिर्गच्छद्धूमेनागुरुगन्धिना। पाण्डुरेण प्रतिच्छन्नमार्गे यान्ति सुरप्रियाः ॥१९॥ मुक्तावितानैर्मणिहेमकेतुभिर्नानापताकावलभीभिरावृताम्। शिखण्डिपारावतभृङ्गनादितां वैमानिकस्त्रीकलगीतमङ्गलाम् ॥ २० ॥ मृदङ्गशङ्खानकदुन्दुभिस्वनैः सतालवीणामुरजर्ष्टिवेणुभिः। नृत्यैः सवाद्यैरुपदेवगीतकैर्मनोरमां स्वप्रभया जितप्रभाम् ॥ २१ ॥ यां न व्रजन्त्यधर्मिष्ठाः खला भूतद्रुहः शठाः। मानिनः कामिनो लुब्धा एभिर्हीना व्रजन्ति यत्। ॥ २२ ॥ तां देवधानीं स वरूथिनीपतिर्बहिः समन्ताद्रुरुधे पृतन्यया। आचार्यदत्तं जलजं महास्वनं दध्मौ प्रयुञ्जन् भयमिन्द्रयोषिताम् ॥२३॥ मघवांस्तमभिप्रेत्य बलेः परममुद्यमम्। सर्वदेवगणोपेतो गुरुमेतदुवाच ह ॥ २४ ॥ भगवन्नुद्यमो भूयान् बलेर्नः पूर्ववैरिणः। अविषह्यमिमं मन्ये केनासीत् तेजसोर्जितः ॥ २५ ॥ नैनं कश्चित्

पक्षियों के जोडे शब्द कररहे हैं भौंरे गूंज रहे हैं ॥ फल फूल और अंकुर के भार से कल्प वृक्षों की शाखाएं झुकरही हैं उस स्थान में हंस, सारस, चक्रवाक और कारण्डव पक्षियों युक्त अनेंको सरोवर हैं देवता और देवाङ्गनाएं उस सरोवर में जल क्रीडा कररही हैं ॥१३ ॥ आकाश गङ्गा खाईके समान इन्द्रपुरी को घेरेहुए है उसके चारोंओर ऊंचा दीवारों वाला कोट बनाहुआ है और उन दीवारो के ऊपर युद्धस्थान बनेंहुए हैं ॥ १४ ॥ नगर के सब किवाड़ें सुवर्ण के और द्वार स्फटिकमणि के बनेहुए हैं विश्वकर्मा के बनायेहुए सुंदर चौराहे परस्पर में भली भांति से विभक्त हैं उस इन्द्रपुरी में कहीं२ सुंदर बैठनें के स्थान, आंगन, गलियें, करोडों विमान, चौराहे तथा वज्र व विद्रुमकी बनी हुई वेदियां शोभायमान होरही है ॥१५।१६॥ वहांकी सुन्दर स्त्रियें कि जिनका यौवन और सुकुमारपना निरंतर समभाव से स्थिर रहता है, सुंदर स्वच्छ वस्त्र पहिनेंहुए अपनी प्रभा द्वारा अग्नि की समान प्रकाशित होरही हैं ॥ १७ ॥ वायु, इन्द्रपुरी की देवांगनाओं के केश से छूटेहुए फूलों की सुगंधि को ग्रहणकर मार्ग में मन्द २ चलरहा है ॥१८॥ स्वर्णमय झरोखों में से पीतवर्ण के सुगंधित अगर का धुआं निकलकर सब स्थानों में व्याप्त होरहाहै सुर सुंदरियें उस स्थानमें होती हुई जारही हैं ॥ १९॥ वह पुरी मोतियों की माला युक्त चंदवोंसे, मणिमय और स्वर्णमय ध्वजाओं से और नाना प्रकार की पताकाओं से शोभित तथा विमानों के अग्रभाग से व्याप्त है, मोर, कबूतर और भौंरे पुरीमें शब्द कररहे हैं, स्त्रियें विमानों में बैठीहुई सुंदर स्वर से गान करतीहुई मंगलाचरण कर रही हैं ॥ २० ॥ मृदङ्ग, शंख, पटह और दुंदुभी के शब्द से, ताल, वीणा, मुरज और ऋष्टि वंशी आदिकी ध्वनि तथा गन्धर्वों के नृत्य, वाद्य और गीत से इन्द्रपुरी अत्यन्त रमणीय होरही है वह ऐसी प्रकाशित होरही है कि जिससे साक्षात् प्रकाश के अधिष्ठात्री देवता (सूर्यादिक) भी परास्त हो रहे हैं ॥ २१ ॥ अधर्मी, दुष्ट, प्राणि हिंसक, अभिमानी, कामी व लोभी उस पुरी में प्रवेश नहींकर सकते अधर्म, दुष्टता, प्राणि हिंसा, शठता, अभिमान और लोभ आदि दोषों से जिसका अन्तःकरण दूषित नहीं है केवल वही वहां आसकते हैं ॥२२ ॥ दैत्य सेनापति बलि नें देवताओंकी पूर्वोक्त राजधानी इन्द्रपुरी को चारोओर से घेर बाहिरीभाग में स्थितिकर गुरुके दियेहुए उच्च शब्द वाले

कुतोऽपि प्रतिव्योढुमधीश्वरः। पिबन्निवमुखेनेदं लिहन्निवदिशोदश। दहन्निव दिशोदृग्भिः संवर्ताग्निरिवोत्थितः॥ २६॥ ब्रूहिकारणमेतस्य दुर्धर्षत्वस्यमद्रिपोः ओजःसहोबलंतेजो यतएतत्समुद्यमः॥२७॥ गुरुरुवाच॥ जानामिमघवन्शत्रोरु न्नतेरस्यकारणम्। शिष्यायोपभृतंतेजो भृगुभिर्ब्रह्मवादिभिः॥ २८॥ भवद्विधोभ वान्वापि वर्जयित्वेश्वरंहरिम्। नास्यशक्तःपुरःस्थातुं कृतांतस्ययथाजनाः २९॥ तस्मान्निलयमुत्सृज्य यूयंसर्वेत्रिविष्टपम्। यातकालंप्रतीक्षन्तो यतःशत्रोर्विपर्ययः॥ ॥ ३०॥ एषविप्रबलोदर्कःसंप्रत्यूर्जितविक्रमः। तेषामेवापमानेन सानुबन्धोविनं क्ष्यति॥ ३१॥ एवंसुमन्त्रितार्थास्ते गुरुणार्थानुदर्शिना। हित्वात्रिविष्टपंजग्मुर्गी र्वाणाःकामरूपिणः॥३२॥ देवेष्वथनिलीनेषुबलिर्वैरोचनःपुरीम्। देवधानीमधिष्ठा यवशंनिन्येजगत्त्रयम्॥ ३३॥ तंविश्वजयिनंशिष्यं भृगवःशिष्यवत्सलाः। शतेन हयमेधानामनुव्रतमयाजयन्॥ ३४॥ ततस्तदनुभावेन भुवनत्रयविश्रुताम्। कीर्तिं दिक्षुवितन्वानः सरेजेउडुराडिव॥ ३५॥ बुभुजेचश्रियंस्वृद्धां द्विजदेवोपलम्भि ताम्। कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानोमहामनाः॥ ३६॥

इतिश्रीमद्भा० महा० अष्ट० पंचदशोऽध्यायः॥ १५॥

शङ्ख को बजाया देवाङ्गनाओं के अंतःकरण उस शब्द से व्याकुल होउठे॥२३॥ हे राजन्! इन्द्र बलि के उस परमउद्यम को देख समस्त देवताओं के संग बृहस्पतिजी के निकट आय कहनें लगे कि॥ २४॥ हे भगवन्! देखते हैं कि हमारे पूर्व वैरी बलि का उद्यम अत्यंत प्रचण्ड है, जानपड़ता है कि इसका सहन हम नहीं करसकते परन्तु इसका तेज किस कारण से इतना बढउठा है २५ हे गुरो! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इसको कोईभी नहीं दूर करसकता क्योंकि यह तो ऐसा जानपड़ता है कि मानो मुख से जगतको पीजायगा जिह्वा से दशों दिशाओं को चाटजायगा, और नेत्रों से दिशाओं को भस्म करदेगा यह तो प्रलयाग्नि की समान प्रचण्ड होरहा है॥ २६॥ जिस कारण से हमारे शत्रु इतनें बलवान होगए हैं और जिससे इनका यह इन्द्रियबल, देहबल, पराक्रम और यह उद्यम बढगया है वह कारण कहिये॥ २७॥ बृहस्पतिजी बोले कि हे पुरंदर! जिसकारण से तुम्हारा वैरी इतना प्रतापशाली होगया वह कारण मैं जानता हूं ब्रह्मवेत्ता भृगुवंशियों ने स्नेह के कारण इसको तेजस्वी करादिया है॥ २८॥ हरि के अतिरिक्त तुम अथवा तुम्हारी समान प्रभावशाली कोई पुरुष महाबल बलि को नहीं जीतसकता ब्रह्मतेज से इसका बल बढगया है अतएव इसको कोईभी नहीं जीतसकता मनुष्य जैसे कालके सम्मुख नहीं ठहरसकता उसी प्रकार इसके सम्मुख खडेहोनें की किसीकीभी शक्ति नहीं है इस समय यही उपाय हैं कि तुम सब स्वर्ग छोड कर गुप्त होजाओ और जबतक शत्रु का नाश नहोवे तबतक गुप्तरहो इस समय इसका पराक्रम बढा हुआ है और ब्रह्मतेज के कारण इसका बल क्रमशः बढताही रहेगा परन्तु अन्त में ब्राह्मणोंही के अपमान से वह मनुष्य स्वयही वंश सहित नाश होजावेगा॥ २९॥ ३१॥ कार्य के जाननें वाले बृहस्पतिजीने जब ऐसी सम्मतिदी तब सब कामरूपी देवगण स्वर्ग छोडकर छिपगये॥ ३२॥ उनके छिपजानेपर राजाबलि ने इन्द्रपुरी पर अधिकार कर तीनों जगतको वशीभूत करलिया॥ ॥ ३३॥ शिष्यवत्सल भृगुवंशी ब्राह्मणों ने विश्वजीतने और अचलराज्य स्थिर रखने के लिये राजाबलि को सौ अश्वमेध यज्ञकराये॥ ३४॥ अति उदार चित्त राजाबलि उनसौ अश्वमेध के प्रभावसे दशोंदिशाओं में कीर्त्ति विस्तारकर चन्द्रमाकी समान प्रकाशपाने लगा॥३५॥ और अपने अपने को कृतार्थ सा मान सम्पत्ति और लक्ष्मी का संभोग करने में प्रवृत्तहुआ॥ ३६॥

इतिश्री मद्भा० म० अष्टमस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः॥ १५॥

श्रीशुकउवाच॥ एवंपुत्रेषुनष्टेषुदेवमाताऽदितिस्तदा। हृतेत्रिविष्टपेदैत्यैःपर्यतप्यदनाथवत्॥ १॥ एकदाकश्यपस्तस्या आश्रमंभगवानगात्। निरुत्सवंनिरानन्दंसमाधेर्विरतश्चिरात्॥ २॥ सपत्नीदीनवदनांकृतासनपरिग्रहः। सभाजितोयथान्यायमिदमाहकुरुद्वह॥ ३॥ अप्यभद्रंनविप्राणांभद्रेलोकेऽधुनागतम्। नधर्मस्यनलोकस्य मृत्योश्छन्दानुवर्तिनः॥४॥ अपिवाकुशलंकिंचिद्गृहेषुगृहमेधिनि। धर्मस्यार्थस्यकामस्य यत्रयोगोह्ययोगिनाम् ५॥ अपिवाऽतिथयोऽभ्येत्य कुटुम्बासक्तया त्वया। गृहादपूजितायाताः प्रत्युत्थानेनवाक्वचित्॥ ६॥ गृहेषुयेष्वतिथयोनार्चिताःसलिलैरपि। यदिनिर्यान्तितेनूनं फेरुराजगृहोपमाः॥ ७॥ अप्यग्नयस्तुवेलायां नहुताहविषासति। त्वयोद्विग्नधियाभद्रे प्रोषितेमयिकर्हिचित्॥ ८॥ यत्पूजयाकामदुघान्यातिलोकान्गृहान्वितः। ब्राह्मणोऽग्निश्चवैविष्णोः सर्वदेवात्मनोमुखम् ९
अपिसर्वेकुशलिनस्तव पुत्रामनस्विनि। लक्षयेऽस्वस्थमात्मानं भवत्यालक्षणैरहम्॥ १०॥ अदितिरुवाच॥ भद्रंद्विजगवांब्रह्मन्धर्मस्यास्यजनस्यच। त्रिवर्गस्यपरंक्षेत्रं गृहमेधिन्गृहाइमे॥ ११॥ अग्नयोऽतिथयोभृत्या भिक्षवोयेचलिप्सवः। सर्वं भगवतोब्रह्मन्ननुध्यानान्नरिष्यति॥ १२॥ कोनुमेभगवन्कामो नसंपद्येतमानसः। यस्याभवान्प्रजाध्यक्ष एवंधर्मान्प्रभाषते॥१३॥ तवैवमारीचमनःशरीरजाःप्रजाइमाः सत्त्वरजस्तमोजुषः। समोभवांस्तास्वसुरादिषुप्रभो तथापिभक्तंभजतेमहेश्वरः १४ तस्मादीशभजन्त्यामे श्रेयश्चिंतयसुव्रत। हृतश्रियोहृतस्थानान्सपत्नैःपाहिनःप्रभो।

श्री शुकदेवजी बोले कि हे राजन्! देवताओं के इस प्रकार से छिपजानें और स्वर्गका राज्य दैत्यों से अपहृत होनेंपर आदिति अनाथ की समान विलाप करनेंलगी॥१॥ इतने में उसके पति प्रजापति कश्यपजी बहुत दिनकी समाधि से विरतहो उसके निरुत्सव, आनंद रहित आश्रम में आये, कश्यपजी वहांपर आय अदिति से पूजितहो स्त्री को मलीन मुख देख कहनेंलगे॥ २।३॥ हे भद्रे! ब्राह्मणों का, धर्मका व मृत्यु के वशीभूत मनुष्यों का कुछ अकल्याण तो नहींहुआ॥ ४॥ हे सति! हे गृहिणि! गृहस्थी, योगी नहोकर भी, जिस गृहस्थाश्रम में वासकर योग फल प्राप्त करते हैं उस घर में धर्म, अर्थ और कामका तो कुछ अमंगल नहींहुआ॥ ५॥ तेरे कुटुम्ब सेवा में व्यग्र रहनें से, किसी दिन क्या घर में आयेहुए अतिथि की तू पूजा नकरसकी और वह बिना सत्कार पाये तो नचलागया॥ ६॥ अतिथिगण जिस घर में जलद्वारा भी पूजित नहो लौटजाते है वह घर सियारके घर (भाठी) की समान है॥ ७॥ हे भद्रे! मैं प्रवास (परदेस) मेंथा इस कारण तेरा मन बडाही व्याकुल रहा अतएव क्या किसी दिन अग्नि में हवन करना भूलगई॥८॥ गृहस्थ मनुष्य अग्नि की पूजा करके समस्त मनोंरथों को प्राप्त होते हैं ब्राह्मण और अग्नि सर्वात्मा भगवान विष्णु के मुख स्वरूप हैं॥९॥ हे मनस्विनी! तेरे पुत्रोंका तो कल्याण है तेरे लक्षणोंसे मैं जानता हूं कि तेरा अंतःकरण दुःखी है॥ १०॥ अदिति नें कहा कि हे ब्रह्मन्! गौ, द्विज, धर्म और लोक सबही का मंगल है मेरा यह घरभी धर्म, अर्थ, और कामको उत्पन्न करता है॥ ११॥ मैं जो आपका ध्यान करतीहूं उसके प्रभाव से अग्नि, अतिथि, भृत्य भिक्षुक और याचक लोग जो जिस कामना से आते हैं वह सब तृप्त होतेरहते हैं॥ १२॥ आप प्रजापति हो और मुझको धर्म का उपदेश करतेरहते हो अतएव मेरी कौन इच्छा पूर्ण नहोगी॥१३॥ सत्व, रज, और तमोगुण सेवी यह सब प्रजा आपकेही मन और देह से उत्पन्न हुई हैं अतएव आपको सुर असुर सबही समान हैं परन्तु तौभी भगवद्भक्त आपको बहुत प्यारे हैं॥ १४॥ हे नाथ! मैं भक्तियुक्त आप का सेवा करता हूं मेरे कल्याण का यत्नकरो। सपत्नी के पुत्रदैत्यों ने हमारी लक्ष्मी और स्थान

॥ १५ ॥ परैर्विवासितासाऽहं मग्नाव्यसनसागरे । ऐश्वर्यंश्रीर्यशःस्थानंहृतानिप्रबलैर्मम ॥ १६ ॥ यथातानिपुनःसाधो प्रपद्येरन्ममात्मजाः । तथाविधेहिकल्याणंधियाकल्याणकृत्तम ॥ १७ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ एवमभ्यर्थितोऽदित्या कस्तामाहस्मयन्निव । अहोमायाबलंविष्णोः स्नेहबद्धमिदंजगत् १८ क्वदेहोभौतिकोनात्मा क्वचात्माप्रकृतेःपरः । कस्यकेपतिपुत्राद्या मोहएवहिकारणम् ॥ १९॥ उपतिष्ठस्वपुरुषं भगवन्तंजनार्दनम् । सर्वभूतगुहावासं वासुदेवंजगद्गुरुम् २० ॥ सविधास्यतितेकामान्हरिर्दीनानुकम्पनः।अमोघाभगवद्भक्तिर्नेतरेतिमतिर्मम२१अदितिरुवाच। केनाहंविधिनाब्रह्मन्नुपस्थास्येजगत्पतिम् । यथामेसत्यसंकल्पो विदध्यात्समनोरथम् २२ ॥ आदिशत्वंद्विजश्रेष्ठ विधिंतदुपधावनम्।आशुतुष्यतिमेदेवःसीदन्त्याःसहपुत्रकैः ॥ २३ ॥ कश्यप उवाच ॥ एतन्मेभगवान्पृष्टः प्रजाकामस्यपद्मजः । यदाहतेप्रवक्ष्यामिव्रतंकेशवतोषणम् ॥ २४ ॥ फाल्गुनस्यामले पक्षेद्वादशाहंपयोव्रतः । अर्चयेदरविन्दाक्षंभक्त्यापरमयान्वितः ॥ २५ ॥ सिनीवाल्यांमृदाऽऽलिप्य स्नायात्क्रोडविदीर्णया । यदिलभ्येतवैस्रोतस्येतंमन्त्रमुदीरयेत् ॥ २६ ॥ त्वंदेव्यादिवराहेणरसायाःस्थानमिच्छता । उद्धृतासिनमस्तुभ्यंपाप्मानंमेप्रणाशय ॥ २७ ॥ निर्वर्तितात्मनियमोदेवमर्चेत्समाहितः । अर्चायांस्थण्डिलेसूर्ये जलेवह्नौगुरावपि ॥ २८ ॥ नमस्तुभ्यंभगवतेपुरुषायमहीयसे । सर्वभूतनिवासायवासुदेवायसाक्षिणे

हरलिया है मेरी रक्षाकरो ॥ १५ ॥ शत्रुओं ने मुझे निकाल दिया है, मैं दुःख सागर में डूबीहुई हूं प्रबल दैत्यों ने मेरा ऐश्वर्य, श्री, यश और अधिकार हरलिया है ॥ १६ ॥ मेरेपुत्र जिस प्रकार से अपने अधिकारको फिरपावें आप बुद्धि बलसे वही यत्नकरें ॥ १७ ॥ शुकदेवजी बोलेकि—हे महीपत ! अदिति के इसप्रकार से कहनेपर प्रजापति कश्यप विस्मित होकर कहनेलगे कि—अहो ! विष्णु मायाकी कैसी अद्भुतशक्ति है ! यह जगत स्नेह में बंधाहुआहै ॥ १८ ॥ कहांतो पांचभौतिक यह जड़देह और कहां प्रकृति से परे यह आत्मा ? हे भद्रे ! कौन किसका पुत्र और कौन किसका पति है ! मोहही इस बुद्धिका कारण है ॥ १९ ॥ आदि पुरुष जनार्दन भगवानकी उपासना करो । वह अतर्यामी और जगद्गुरु वही भगवान तेरा कल्याण करेंगे ॥ २० ॥ दीनोंपर वह बड़ीही कृपाकरते हैं, भगवान की सेवा निष्फल नहीं होती इसके अतिरिक्त और कोई यत्न नहीं है ॥ २१ ॥ अदितिने पूछाकि—हे ब्रह्मन् ! मैं किस उपाय से उन जगद्गुरुकी उपासना करूं ! जिससे वह मेरी इच्छाको पूर्णकरें । मैं पुत्रोंसमेत दुःखी होरही हूं ॥ २२ ॥ जिस यत्नसे उपासना करनेपर वह सत्य प्रतिज्ञ देव मेरेऊपर प्रसन्न होवें वह उपाय मुझसे कहियेगा ॥ २३ ॥ कश्यपजी ने कहाकि—हे देवि ! मैने पुत्रकी इच्छाकर भगवान ब्रह्माजी से प्रश्न किया तब ब्रह्माजी ने जो व्रत मुझसे कहाथा वह मैं तुमसे कहता हू ॥ २४ ॥ फागुन मासमें शुक्लपक्ष के बारह दिन पयोव्रत धारणकर भक्तियुक्त कमल लोचन भगवान की पूजाकरना चाहिये ॥ २५ ॥ यदि प्राप्त होवेतो चतुर्दशी युक्त अमावस्या में शूकर की खोदीहुई मिट्टीका शरीरमें लेपनकर नदी के जलमें स्नानकरे और स्नान करके इस मंत्रको पढ़े कि ॥ २६ ॥ हे देवि ! निवासस्थानकी रक्षाकर आदि वराहने तुमको रसातल से उद्धार कियाथा; तुमको नमस्कार है; मेरेसब पापोंका नाशकर ॥ २७ ॥ व्रतधारण करने वालेको नित्य नैमित्तिक क्रिया करके एकाग्र चित्तहो प्रतिमा में, वेदीमें, सूर्य में, जलमें, अग्निमें अथवा गुरूमें भगवान की पूजाकरना चाहिये ॥ २८ ॥ पूजाके समय इन नौमंत्रों कोपढ भगवान का आवाहनादि करे वह नौमंत्र यह हैं । हे भगवान् ! आप आराध्य, परम पुरुष; साक्षी और सर्व प्राणियों का निवास स्थानहो तथा आप सबके अंतःकरण में प्रकाश पातेहो;—

॥ २९ ॥ नमोऽव्यक्तायसूक्ष्मायप्रधानपुरुषायच । चतुर्विंशद्गुणज्ञायगुणसंख्यानहेतवे ॥ ३० ॥ नमोद्विशीर्ष्णेत्रिपदे चतुःशृङ्गायतन्तवे । सप्तहस्ताययज्ञाय त्रयीविद्यात्मनेनमः ॥ ३१ ॥ नमःशिवायरुद्राय नमःशक्तिधरायच । सर्वविद्याधिपतये भूतानांपतयेनमः ॥ ३२ ॥ नमोहिरण्यगर्भाय प्राणायजगदात्मने । योगैश्वर्यशरीराय नमस्तेयोगहेतवे ॥ ३३ ॥ नमस्तेआदिदेवाय साक्षिभूतायतेनमः । नारायणायऋषये नरायहरयेनमः ॥ ३४ ॥ नमोमरकतश्याम वपुषेऽधिगतश्रिये । केशवायनमस्तुभ्यं नमस्तेपीतवाससे ॥ ३५ ॥ त्वंसर्ववरदःपुंसां वरेण्यवरदर्षभः । अतस्तेश्रेयसेधीराः पादरेणुमुपासते ॥ ३६ ॥ अन्ववर्तन्तयंदेवाः श्रीश्चतत्पादपद्मयोः । स्पृहयन्तइवामोदं भगवान्मेप्रसीदताम् ॥ ३७ ॥ एतैर्मन्त्रैर्हृषीकेशं आवाहनपुरस्कृतम् । अर्चयेच्छ्रद्धयायुक्तः पाद्योपस्पर्शनादिभिः ॥ ३८ ॥ अर्चित्वागन्धमाल्याद्यैः पयसास्नपयेद्विभुम् । वस्त्रोपवीताभरण पाद्योपस्पर्शनैस्ततः । गन्धधूपादिभिश्चार्चेद्द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ३९ ॥ शृतंपयसिनैवेद्यं शाल्यन्नंविभवेसति ससर्पिःसगुडंदत्त्वा जुहुयान्मूलविद्यया ॥ ४० ॥ निवेदितंतद्भक्ताय दद्याद्भुञ्जीतवास्वयम् । दत्त्वाचमनमर्चित्वा ताम्बूलंचनिवेदयेत् ॥ ४१ ॥ जपेदष्टोत्तरशतं स्तुवीतस्तुतिभिःप्रभुम् । कृत्वाप्रदक्षिणंभूमौप्रणमेद्दण्डवन्मुदा ॥४२॥ कृत्वाशिरसितच्छेषां देवमुद्वासयेत्ततः । द्व्यवरान्भोजयेद्विप्रान् पायसेनयथोचितम् ॥४३॥ भुञ्जीततैरनुज्ञातः शेषंसेष्टःसभाजितैः । ब्रह्मचार्यथतद्रात्र्यां श्वोभूतेप्रथमेऽहनि ॥

आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥ आप अव्यक्त, सूक्ष्म, चौवीस तत्वों के जानने वाले; सांख्ययोग के प्रवर्त्तकहो आपको नमस्कार है ॥ ३० ॥ आप यज्ञके फलके देनेवालेहो, यज्ञरूपी आपके दो मस्तक, तीनचरण, चारसींग और सातहाथ हैं, वेदत्रयी आपकी आत्मा है आपको नमस्कार है ॥ ३१ ॥ आप रुद्र और शिवरूपी, शक्तिधर; सर्व विद्याके अधिपति और सब प्राणियों के स्वामी हो आपको नमस्कार है ॥ ३२ ॥ आप यज्ञरूपी, प्राण, जगतके आत्मा और योगके कारणहो, योगका ऐश्वर्य आपका शरीर है आपको नमस्कार है ॥ ३३ ॥ आप आदिदेव, सबके साक्षिस्वरूप, नारायण ऋषि, नर और हरिहो; आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ आप केशवहो; आपका शरीर मरकत की समान श्याम वर्णका है; आप लक्ष्मीको धारण करने वाले, पीतांबर धारीहो आपको नमस्कार है ॥ ३५ ॥ हे वरेण्य ! हे वरदश्रेष्ठ ! आप पूजनीय और वरदेने वालोंमें श्रेष्ठहो । पण्डितलोग कल्याण के निमित्त आपके चरण रेणुकी उपासना करते हैं ॥ ३६ ॥ अहा ! देवता और लक्ष्मीजी भी जिनके चरण कमलोंकी सुगंधिको चाहते हैं वह भगवान वासुदेव मेरेऊपर प्रसन्न होवें ॥ ३७ ॥ हे साध्वि ! इन नवमन्त्रों से भगवानका आवाहन कर श्रद्धायुक्त पाद्यादि से पूजन करना चाहिये ॥ ३८ ॥ भगवानकी चदन पुष्प आदिसे पूजाकर दुग्ध से स्नान करावे तदनंतर द्वादशाक्षर मन्त्र पढकर वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, पाद्य, आचमन और धूपादि से उनकी पूजामें प्रवृत्त होवे ॥३९॥ द्रव्य होनेपर–दुग्धमें अन्नपका उसमें घी और गुड़मिला भगवानको नैवेद्य का भोगलगावे और द्वादशाक्षर मंत्रसे अग्निमें हवनकरे॥४०॥वह नैवेद्यका द्रव्यचाहे भगवद्भक्तको दे चाहे स्वयंखावे।पूजाके उपरांत भगवानको आचमनकराय ताम्बूलअर्पणकरे॥४१॥तदनंतर एकसौ आठवार मन्त्रजप, स्तोत्रों से भगवान की स्तुतिकर, परिक्रमादे आनंदयुक्त पृथ्वीपर दंडवत प्रणाम करे॥४२॥अंत में प्रसादका पदार्थ ग्रहण कर भगवान का विसर्जन करे । अंत में कमसे कम दो ब्राह्मणोंको खीरकाभोजनकरावे॥४३॥और ब्राह्मणोंकीआज्ञानुसार बंधु बांधवोंसहित शेषभागका स्वयं

॥ ४४ ॥ स्नातःशुचिर्यथोक्तेन विधिनासुसमाहितः । पयसास्नापयित्वार्चेद्यावद्व्रतसमापनम् ॥ ४५ ॥ पयोभक्षोव्रतमिदं चरेद्विष्णवर्चनादृतः। पूर्ववज्जुहुयादग्निं ब्राह्मणांश्चापिभोजयेत् ॥ ४६ ॥ एवंत्वहरहःकुर्याद् द्वादशाहंपयोव्रतः। हरेराराधनंहोमं मर्हणंद्विजतर्पणम् ॥ ४७ ॥ प्रतिपद्दिनमारभ्य यावच्छुक्लत्रयोदशी। ब्रह्मचर्यमधःस्वप्नं स्नानंत्रिषवणंचरेत् ॥ ४८ ॥ वर्जयेदसदालापं भोगानुच्चावचांस्तथा। अहिंस्रःसर्वभूतानां वासुदेवपरायणः ॥ ४९ ॥त्रयोदश्यामथोविष्णोः स्नपनंपञ्चकैर्विभोः। कारयेच्छास्त्रदृष्टेन विधिनाविधिकोविदैः ॥ ५० ॥ पूजांच महतींकुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः। चरुंनिरूप्यपयसि शिपिविष्टायविष्णवे ॥५१॥ शृतेनतेनपुरुषं यजेतसुसमाहितः। नैवद्यंचातिगुणवद्दद्यात्पुरुषतुष्टिदम् ॥ ५२ ॥ आचार्यंज्ञानसंपन्नं वस्त्राभरणधेनुभिः। तोषयेदृत्विजश्चैव तद्विद्ध्याराधनंहरेः ॥ ॥ ५३ ॥ भोजयेत्तान्गुणवता सदन्नेनशुचिस्मिते ॥ अन्यांश्चब्राह्मणाञ्छक्त्या ये चतत्रसमागताः ॥ ५४ ॥ दक्षिणांगुरवेदद्यादृत्विग्भ्यश्चयथाऽर्हतः। अन्नाद्येनाश्वपाकांश्च प्रीणयेत्समुपागतान् ॥ ५५ ॥ भुक्तवत्सुचसर्वेषु दीनान्धकृपणेषुच। विष्णोस्तत्प्रीणनंविद्वान् भुंजीतसहबन्धुभिः ॥ ५६ ॥ नृत्यवादित्रगीतैश्च स्तुतिभिःस्वस्तिवाचकैः। कारयेत्तत्कथाभिश्च पूजांभगवतोऽन्वहम् ॥ ५७ ॥ एतत्पयोव्रतंनाम पुरुषाराधनंपरम्। पितामहेनाभिहितं मयातेसमुदाहृतम् ॥ ५८ ॥ त्वं

भोजन करे। अनंतर ब्रह्मचारी हो उस रात्रिको बितावे। प्रातःकाल होतेही पहिले दिनकी समान स्नान कर पवित्र और समाधिस्थ हो भगवानको स्नान कराय पूजा करे; जितने दिन व्रत शेषन होवे उतने दिनों दूधद्वारा भगवान को स्नान कराय, स्वयं दुग्ध पान से जीवन धारण कर, विष्णु पूजा मे श्रद्धान्वित हो इस महाव्रत का आचरण करे। हे देवि! प्रथम जैसे कहा है उसी प्रकार नियमानुसार से अग्नि में होम करना और ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये ॥ ४४–४६ ॥ इस प्रकार से भगवान की आराधना, होम, पूजा और ब्राह्मण भोजन कराय; बारह दिवस अर्थात प्रतिपदा से शुक्ल द्वादशी तक पयोव्रत का आचारण किया जाता है इन बारह दिनों तक ब्रह्मचर्य आचरणों का धारण करना, खाट परन सोना, पृथ्वी पर सोना; और त्रिसंध्या स्नान करना चाहिये ॥ ४७–४८ ॥ मिथ्या भाषण और ऊंच नीच भोगों का छोड़ देना चाहिये अहिंसक और वासुदेव परायण हो त्रयोदशी के दिन भगवानको पञ्चामृतसे स्नान कराय, शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों द्वारा शास्त्रोक्त विधानसे विष्णुजीको स्नानकरावे। लाभ और मूर्खता छोड़कर पूजनकरना चाहिये। सुन्दर दूधको पकाय भगवान विष्णुको अर्पणकर एकाग्रमनसे पूर्वोक्त मन्त्रोंद्वारा परमपुरुषकी पूजाकरनी चाहिये जिससे भगवान प्रसन्नहोवें उस प्रकार की सुन्दर गुणयुक्त नैवेद्यका भी निवेदनकरना चाहिये ॥ ४९—५२ ॥ ज्ञानी आचार्य और ऋत्विजों को अलङ्कारादिदानसे संतुष्टकरे हे सति! उनके सन्तुष्ट होने सेही भगवानकी आराधना होजाती है ॥ ५३ ॥ औरभी दूसरे ब्राह्मण जो उस स्थान मे आवें उनको भी यथाशक्ति उत्तम पदार्थोंका भोजन करावे ५४॥ गुरु और ऋत्विजों को यथायोग्य दक्षिणादेवें, अन्तमें सबआये हुये मनुष्यों को अन्नादि देकर सन्तुष्ट करे ॥ ५५ ॥ प्रीतिपूर्वक दान, दरिद्र और अन्धे सबकोही भोजनकराय स्वयं बन्धुओंके साथ भोजनकरे इससे भगवान प्रसन्न होते हैं ॥ ५६ ॥ व्रतकालमें प्रतिदिन नाचना, बजाना, गाना, स्तुति, स्वस्तिवाचन और भगवत् कथा से भगवान की पूजाकरे ॥ ५७ ॥ इसही का नाम पयोव्रत है। इसके द्वारा भगवानकी भलीप्रकार से सेवा हो सकती है मैने ब्रह्माजीसे इस

ध्यानेनमहाभागे सम्यक्चीर्णेनकेशवम्। आत्मनाशुद्धभावेन नियतात्माभजाव्यय
म् ॥ ५९ ॥ अयंवैसर्वयज्ञाख्यः सर्वव्रतमितिस्मृतम्। तपःसारमिदंभद्रे दानंचेश्व
रतर्पणम् ॥ ६० ॥ तएवनियमाःसाक्षात् तएवचयमोत्तमाः। तपोदानव्रतंयज्ञो येन
तुष्यत्यधोक्षजः ॥ ६१ ॥ तस्मादेतद्व्रतंभद्रे प्रयताश्रद्धयाऽऽचर। भगवान्परितुष्ट
स्ते वरानाशुविधास्यति ॥ ६२ ॥

इतिश्रीमद्भागवते महा० अष्टमस्कन्धेऽदितिपयोव्रतं नामषोडशोऽध्यायः ॥१६॥

श्रीशुकउवाच॥इत्युक्तासाऽदितीराजन्स्वभर्त्राकश्यपेनवै। अन्वतिष्ठद्व्रतमि
दंद्वादशाहमतन्द्रिता ॥ १ ॥ चिन्तयन्त्येकयाबुद्ध्यामहापुरुषमीश्वरम्। प्रगृह्येन्द्रि
यदुष्टाश्वान् मनसाबुद्धिसारथिः ॥ २ ॥ मनश्चैकाग्रयाबुद्ध्याभगवत्यखिलात्मनि।
वासुदेवेसमाधायचचारहपयोव्रतम् ॥ ३ ॥ तस्याः प्रादुरभूत्तातभगवानादिपूरुषः।
पीतवासाश्चतुर्बाहुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ४ ॥ तंनेत्रगोचरंवीक्ष्यसहसोत्थायसा
दरम्। ननामभुविकायेनदण्डवत्प्रीतिविह्वला ॥ ५ ॥ सोत्थायबद्धाञ्जलिरीडितुं
स्थितानोत्सेहआनन्दजलाकुलेक्षणा। बभूवतूष्णींपुलकाकुलाकृतिस्तद्दर्शनात्युत्स
वगात्रवेपथुः ॥ ६ ॥ प्रीत्याशनैर्गद्गदयागिराहरिंतुष्टावसादेव्यदितिः कुरूद्वह।
उद्वीक्षतीसापिबतीवचक्षुषारमापतिंयज्ञपतिंजगत्पतिम् ॥७॥ अदितिरुवाच ॥ यज्ञे
शयज्ञपुरुषाच्युततीर्थपादतीर्थश्रवःश्रवणमङ्गलनामधेय। आपन्नलोकवृजिनोपश
मोदयाद्यशंनःकृधीशभगवन्नसिदीननाथः॥८॥विश्वायविश्वभवनस्थितिसंयमायस्वै

व्रत को सुनाथा, इस समय मैंने वही तुझसे कहा॥५८॥तू इसव्रतको भलीप्रकार से धारणकर भजने योग्य भगवान विष्णु का भजन कर॥५९॥इसीका नाम सर्वयज्ञहै यही सर्वव्रत, यही तपस्याकासार, यही महत्दान, और यही ईश्वरकी तृप्तिसाधन है ॥ ६० ॥ हेभद्रे! जिससे श्रीभगवान सन्तुष्टहोवें वहीं यथार्थ नियम, वही यथार्थ संयम, वही तपस्या, दान, व्रत और वही यथार्थ यज्ञ है ॥६१॥ अतएव हे सति! तू एकाग्रचित्त से सावधानता पूर्वक श्रद्धायुक्तहो इसव्रतका आचरणकर इसीसे भगवान संतुष्टहो शीघ्र तुझे इच्छितवर देवेंगे ॥ ६२ ॥

इतिश्री मद्भा० महापुराणे अष्टमस्कन्धे सरलभाषाटीकायांषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन्! अदितिने महर्षि कश्यपजी के निकटसे इसप्रकारका उपदेशपा, आलस्य छोड़ बारह दिनतक इस व्रतका आचरण (अनुष्ठान) किया ॥ १ ॥ वह अपने बुद्धिरूप सारथी से इन्द्रिय रूपीदुष्ट घोड़ोंका दमनकर एकाग्र मनसे सर्वात्मा भगवान के ध्यानमें प्रवृत्त हुई ॥ २ ॥ और भगवान नारायण में चित्तलगाय रात्रिदिन पयोव्रतका आचरण करनेलगी ॥ ३ ॥ अदितिके इसप्रकार से व्रताचरण करनेपर पीताम्बरधारी चतुर्भुज भगवान हरि—शंख, चक्र, गदा धारणकर उसके सामने प्रगट हुए ॥ ४ ॥ अदितिने उनको देख, शीघ्रता पूर्वक सावधानी से उठ, स्नेह से विह्वलहो पृथ्वीपर गिरसाष्टांग दंडवत की ॥ ५ ॥ तदनन्तर उठ, हाथ जोड़कर खड़ी रहगई उसको स्तुति करनेकी शक्ति नरही वह चुपखड़ी रही; क्योंकि उसके दोनो नेत्र आनंदाश्रु से पूर्ण और शरीर पुलकित होगया। नारायण के दर्शनों से जोआनद उत्पन्न हुआ उस आनंद से उसकी देह कम्पायमान होगई ॥ ६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! अदितिमानो नेत्रों से पीजायगी ऐसे प्रीति पूर्वक उन रमापति, यज्ञपतिको देखते देखते अंतमें गद्गद वचनोंसे धीरे २ स्तुति करने लगी ॥ ७ ॥ अदिति बोलीकि—हे यज्ञेश्वर! हे यज्ञपुरुष! हे तीर्थपाद! हे तीर्थश्रवे! हे आद्य! मेरे कल्याण का यत्नकरो आपका नाम सुनने सेही मंगल होता है। हे भगवान! आप दीनबंधु हो; आप शरणागत मनुष्यों के पापोंके नाश करने वालेहो ॥ ८ ॥ आप परम पुरुषहो, यह विश्व

रंगृहीतपुरुशक्तिगुणायभूम्ने। स्वस्थायशश्वदुपबृंहितपूर्णबोधव्यापादितात्मतम
से हरयेनमस्ते ॥९॥ आयुःपरंवपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मीर्द्यौर्भूरसाःसकलयोगगुणास्त्रि
वर्गं। ज्ञानंचकेवलमनन्तभवन्तितुष्टात्त्वत्तोनृणांकिमुसपत्नजयादिराशीः ॥ १०॥
श्रीशुकउवाच॥ अदित्यैवंस्तुतोराजन्भगवान्पुष्करेक्षणः। क्षेत्रज्ञःसर्वभूतानामिति
होवाचभारत ॥ ११ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ देवमातर्भवत्यामे विज्ञातंचिरकांक्षितम्
यत्सपत्नैर्हृतश्रीणां च्यावितानांस्वधामतः ॥१२॥ तान्विनिर्जित्यसमरे दुर्मदानसु
रर्षभान्। प्रतिलब्धजयश्रीभिः पुत्रैरिच्छस्युपासितुम् ॥ १३ ॥ इन्द्रज्येष्ठैःस्वतनयै
र्हतानांयुधिविद्विषाम्। स्त्रियोरुदन्तीरासाद्यद्रष्टुमिच्छसिदुःखिताः ॥ १४॥ आत्म
जान्सुसमृद्धांस्त्वं प्रत्याहृतयशःश्रियः। नाकपृष्ठमधिष्ठाय क्रीडतोद्रष्टुमिच्छसि॥
१५ ॥ प्रायोऽधुनाऽतेऽसुरयूथनाथा अपारणीयाइतिदेविमेमतिः। यत्तेऽनुकूलेश्वर
विप्रगुप्ता नविक्रमस्तत्रसुखंददाति ॥ १६ ॥ अथाप्युपायोममदेविचिन्त्यः संतोषि
तस्यव्रतचर्ययाते ममार्चनंनार्हतिगन्तुमन्यथा श्रद्धानुरूपंफलहेतुकत्वात् ॥ १७ ॥
त्वयार्चितश्चाहमपत्यगुप्तये पयोव्रतेनानुगुणंसमीडितः। स्वांशेनपुत्रत्वमुपेत्यते सु
तान्गोप्तास्मिमारीचतपस्यधिष्ठितः ॥ १८ ॥ उपधावपतिंभद्रे प्रजापतिमकल्मष
म्। मांचभावयती पत्यावेवंरूपमवस्थितम् ॥ १९ ॥ नैतत्परस्मा आख्येयंपृष्टयाऽ
पिकथंचन। सर्वंसम्पद्यतेदेवि देवगुह्यंसुसंवृतम् २०॥ श्रीशुकउवाच॥एतावदुक्त्वा

आपही का स्वरूप है। विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय आपसेही होती रहती है। आप अ
पनी इच्छानुसार मायागुण ग्रहणकरते हो किंतुस्वरूपका परित्याग नहीं करते। जो पूर्णज्ञान नित्य
वृद्धिपाता रहता है आप उसकेही द्वारा मायारूपी अन्धकारको अपने से दूर उड़ा देते हो, आप
का नमस्कार है ॥ ९ ॥ हे अनन्त! आपके सन्तुष्ट होनेपर ब्रह्माकी समानदीर्घआयु, सुन्दरदेह,
अतुलऐश्वर्य, स्वर्ग,पृथ्वी,पाताल और अणिमादिकयोग सिद्धियें प्राप्त होसकती हैं, फिर शत्रुआ-
दिका जीतनातो साधारणबात है वह क्यों न सिद्ध होवे ॥ १० ॥ शुकदेवजी बोले कि-हेराजन्!
अदिति के इस प्रकारसे स्तुति करनेपर पद्मलोचन भगवान बोले कि ॥ ११ ॥ हेदेवजननि! दैत्यों
ने देवताओंकी सौभाग्य व श्री छीनली और तुम्हारे सन्तानों को उनके अधिकारों से विमुखकर
दिया। तुम अनेक दिनों से जो इच्छा कररही हो उसको मैं भलीभांति जानता हूं ॥ १२ ॥ तु-
म्हारी यह इच्छा है कि तुम्हारे पुत्रगण युद्धक्षेत्र में श्रेष्ठ दैत्यों को जीतकर फिर जयश्री को प्राप्त
होवें और तुम उनकेसाथ एकत्र निवासकरो ॥ १३ ॥ तुम्हारे पुत्रगण इन दुष्ट दैत्योंको जीतें
और उनकी स्त्रियां दुखित होकर रोवें और तुम खड़ी देखो; जिससे तुम्हारे पुत्रगणवहीं,दैत्योंके
हाथसे फिर अपनी गई हुई संपदाको पाकर स्वर्गधाममें क्रीडाकरें यही तुम्हारी इच्छा है ॥ १४॥
॥ १५ ॥ किन्तु हेदेवि! मैं जानता हूं कि इससमय तुमदैत्य सेनापतियों को पराजित नहीं कर
सकतीं। समर्थ ब्राह्मणलोग उनकी रक्षाकररहे हैं, अतएव पराक्रमद्वारा कल्याणकी आशानहीं
है ॥ १६ ॥ हेदेवि! तुम्हारे व्रताचरणसे मैं सन्तुष्ट हुआ हूं, अतएव उस विषय की मैं अवश्य
चिन्ता करूंगा। मेरी पूजा निष्फल न होगी, उससे श्रद्धाके अनुसार फलप्राप्त होगा ॥ १७ ॥
तुमने पुत्रोंकी रक्षाके निमित्त व्रतद्वारा मेरी यथाविधि पूजाकी है। मैं कश्यपजी के तपमें स्थितहो
अपने अंशसे तुम्हारा पुत्रहोकर तुम्हारी सन्तानों का पालन करूंगा ॥ १८ ॥ तुम इससमय अ-
पने निष्पापपति प्रजापति कश्यपजी के निकटजाओ और उन्हींकी सेवाकरो। और सेवाके समय
विचारना कि जैसा मैं यहां स्थित हूं वैसाही तुम्हारे पति में भी हूं ॥ १९ ॥ और तुम यह वार्त्ता

भगवान्नित्यैवान्तरधीयत । अदितिर्दुर्लभं लब्ध्वा हरेर्जन्मात्मनि प्रभोः २१ उपाधा वत्पतिं भक्त्या परयाकृतकृत्यवत् । सर्वेसमाधियोगेन कश्यपस्तदबुध्यत ॥ २२ ॥ प्रविष्टमात्मनि हरेरंशं ह्यवितथेक्षणः । सोऽदित्यांवीर्यमाधत्त तपसाचिरसंभृतम् ॥ समाहितमना राजन्दारुण्यग्निंयथाऽनिलः ॥ २३ ॥ अदितेर्धिष्ठितगर्भं भगवन्तंसनातनम् । हिरण्यगर्भोविज्ञाय समीडेगुह्यनामभिः ॥ २४ ॥ ब्रह्मोवाच । जयोरुगाय भगवन्नुरुक्रम नमोस्तुते । नमोब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणायनमोनमः॥ २५॥ नमस्ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे । त्रिनाभायत्रिपृष्ठाय शिपिविष्टायविष्णवे ॥ २६ ॥ त्वमादिरन्तोभुवनस्य मध्यमनन्तशक्तिं पुरुषंयमाहुः । कालोभवानाक्षिपतीश विश्वस्रोतो यथाऽन्तःपतितंगभीरम् ॥ २७ ॥ त्वंवैप्रजानां स्थिरजंगमानां प्रजापतीनामसि संभविष्णु । दिवौकसां देवदिवश्च्युतानां परायणंनौरिवमज्जतोऽप्सु ॥२८॥

इति श्रीमद्भा० महा० अष्टमस्कन्धे सप्तदशोऽध्याय ॥ १७ ॥

श्रीशुकउवाच । इत्थंविरिञ्चस्तुतकर्मवीर्यः प्रादुर्बभूवामृतभूरदित्याम् । चतुर्भुजःशंखगदाब्जचक्रः पिशंगवासा नलिनायतेक्षणः ॥ १ ॥ श्यामावदातोझषराजकुण्डलत्विषोल्लसच्छ्रीवदनाम्बुजः पुमान् । श्रीवत्सवक्षाः वलयांगदोल्लसत्किरी-

---

किसी से भी न कहना, यह देवताओं की गुप्तबात है, देवताओं का रहस्य जिननाहीं गुप्तरहेगा, उसके द्वारा उन्होंहीं भलाप्रकार से सिद्धि प्राप्तहोगी ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहाकि हेराजन्! भगवान यहबात कह वहांसे अन्तर्ध्यान होगये । अदिति अपने गर्भ में प्रभु भगवानका दुर्लभजन्मपाय परम कृतार्थ हो दृढभक्ति से पति की सेवा करने लगी । दिव्यदृष्टि वाले उसके स्वामी महर्षि कश्यपजीने समाधियोगसे देखा कि भगवान का अंश मेरे शरीर में प्रविष्टहुआ जैसे वायु काठ घिसने के द्वारा बनजलानेवाली अग्नि उत्पन्न करता है उसी प्रकारसे प्रजापति कश्यपजीने मन स्थिरकर, बहुतकालसे कठोर तपस्या द्वाराजो वीर्य इकट्ठाकियाथा, अदितिके गर्भमे उसवीर्य को प्रवेशकिया ॥ २१—२३ ॥ सनातन भगवानने अदितिके गर्भमें प्रवेशकिया है यह जानकर ब्रह्माजी गुह्यनामोंद्वारा उनकी स्तुति करनेलगे ॥ २४ ॥ ब्रह्माजीने कहाकि हे उरुगाय भगवन्! आपकी जयहोवे; आपको नमस्कार है । आप ब्रह्मण्यदेव हो नमस्कार है, हेत्रिगुण! आपको नमस्कार है ॥ २५ ॥ प्रथमजन्ममें इस अदितिका नाम पृश्निथा, आपने इसके गर्भमें जन्मलियाथा । सब वेद आपके गर्भ में स्थिति करते है, हे विधाता! तीनो लोक आपकी नाभिमें है, आप त्रिलोकीके ऊपर विराजमानहो; आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ आप जगतके आदि, मध्य और अन्तहो, पण्डितलोग आपको अनन्त शक्तिशाली, परमपुरुष कहकरगान किया करते है जैसे घोर गम्भीर तरङ्ग जलमें गिरेहुए तृणादि को खींचता है उसीप्रकार कालरूपी आप इस विश्वको प्रलयकाल में आकर्षण करते हो ॥ २७ ॥ स्थावर, जङ्गम, प्रजा, प्रजापतिगण आपसेही उत्पन्न होते है । हेदेव! जैसे जलमें डूबेहुए मनुष्यो की नौकाही आश्रय है, आप उसी प्रकार से स्वर्गसे भ्रष्टहुए देवताओं के एकमात्र आश्रय हो ॥ २८ ॥

इतिश्रीमद्भा० म० अष्टस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन्! जब ब्रह्माजीने इस प्रकारसे भगवानके कर्म और प्रभावों का वर्णन किया, तब जन्म मृत्यु रहित, चतुर्भुज, शंख, चक्र, गदा, पद्म और पीताम्बर धारण किये, कमल सदृश दीर्घ लोचन, भगवान अदिति के गर्भमें प्रगट हुए ॥ १ ॥ श्रीहरि का वर्ण श्याम और उज्ज्वल; मुखारविंद मकराकृत कुंडलोंकी प्रभासे प्रकाशित, कंकण, बाजूबंद, किरीट

त्कांचीगुणचारुनूपुरः ॥ २ ॥ मधुव्रतव्रातविघुष्टया स्वया विराजितः श्रीवनमालया हरिः । प्रजापतेर्वेश्मतमः स्वरोचिषा विनाशयन् कण्ठनिविष्टकौस्तुभः ॥ ३ ॥ दिशः प्रसेदुः सलिलाशयास्तदा प्रजाः प्रहृष्टा ऋतवो गुणान्विताः । द्यौरन्तरिक्षं क्षितिरग्निजिह्वा गावो द्विजाः संजहृषुर्नगाश्च ॥ ४ ॥ श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः । सर्वे नक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ॥ ५ ॥ द्वादश्यां सविता तिष्ठन् मध्यंदिनगतो नृप । विजयानाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः ॥ ६ ॥ शंखदुन्दुभयो नेदुर्मृदंगपणवानकाः । चित्रवादित्रतूर्याणां निर्घोषस्तुमुलोऽभवत् ॥ ७ ॥ प्रीताश्चाप्सरसोऽनृत्यन् गंधर्वप्रवरा जगुः । तुष्टुवुर्मुनयो देवा मनवः पितरोऽग्नयः ॥ ८ ॥ सिद्धविद्याधरगणाः सकिंपुरुषकिन्नराः । चारणा यक्षरक्षांसि सुपर्णा भुजगोत्तमाः ॥ ॥ ९ ॥ गायन्तोऽतिप्रशंसन्तो नृत्यन्तो विबुधानुगाः । अदित्या आश्रमपदं कुसुमैः समवाकिरन् ॥ १० ॥ दृष्ट्वाऽदितिस्तं निजगर्भसंभवं परं पुमांसं मुदमाप विस्मिता गृहीतदेहं निजयोगमायया प्रजापतिश्चाह जयेति विस्मितः ॥ ११ ॥ यत्तद्वपुर्भाति विभूषणायुधैरव्यक्तचिद्व्यक्तमधारयद्धरिः । बभूव तेनैव स वामनो वटुः संपश्यतोर्दिव्यगतिर्यथा नटः ॥ १२ ॥ तं वटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षयः । कर्माणि कारयामासुः पुरस्कृत्य प्रजापतिम् ॥ १३ ॥ तस्योपनीयमानस्य सावित्रीं सविताऽब्रवीत् ॥ बृहस्पतिर्ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपोऽददात् ॥ १४ ॥ ददौ कृष्णाजिनं भूमिर्दण्डं सोमो वनस्पतिः । कौपीनाच्छादनं माता द्यौश्छत्रं जगतः पतेः ॥ १५ ॥ कमण्डलुं वेदगर्भः

कटिमेखला और नूपुर श्रीअंगमें शोभायमान थे ॥ २ ॥ कंठमें सुंदर वनमाला कि जिसके भीतर भौंरे गूंज रहे थे पहिने हुए थे । ग्रीवा में कौस्तुभ मणि शोभायमान थी । भगवान ने इस प्रकार से प्रगट होकर अपने प्रकाश से कश्यपजी के घरका अंधकार दूर करदिया ॥ ३ ॥ उनके जन्म समय में सब दिशाएँ व सरोवर प्रसन्न होगये; प्रजाए अत्यानंद करने लगीं, सब ऋतुओंने अपने २ गुण प्रकाश किये और स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, देवता, गौ, द्विज और पर्वत ये सब अत्यंत हर्षित हुए ॥ ४ ॥ भगवानने भादों मासकी शुक्लाद्वादशी को अभिजित् मुहूर्त में जन्म लिया । उस दिन चन्द्रमा श्रवण नक्षत्र में स्थित था । अश्विनी आदि समस्त नक्षत्र और बृहस्पति शुक्रादि ग्रह भी अनुकूल थे ॥ ५ ॥ हे महाराज ! द्वादशी के दिन मध्याह्न समयमें भगवानका जन्म हुआ इसही कारण उस द्वादशीको विजया द्वादशी कहते हैं ॥ ६ ॥ भगवान वामन देवके उत्पन्न होतेही शंख, दुंदुभी, भेरी, मृदंग, पणव, और दूसरे भी बहुत से बाजे तुमुल शब्द से बजने लगे ॥ ७ ॥ अप्सरायें आनंदित होकर नाचने; गंधर्वगण गाने और मुनिगण स्तुति करने लगे । देव, मनु, पितर, अग्नि, सिद्ध, किंपुरुष, विद्याधर, चारण, किन्नर, पिशाच, यक्ष, रक्ष, गरुड़, सर्प और देवोंके अनुचर गाते और नाचते २ कश्यपजी के आश्रम में फूल बरसाने लगे ॥ ८–१० ॥ अदिति-परम पुरुषको अपनी योग माया से देह धारणकर गर्भसे जन्म ग्रहण करते देख अत्यंत विस्मित और संतुष्ट हुई । कश्यपजी भी विस्मितहो "जय" शब्दका उच्चारण करने लगे ॥ ११ ॥ अव्यक्त, ज्ञान स्वरूप भगवान की लीला अद्भुत है ! उन्हों ने जिस प्रकार, आभूषण और अस्त्र द्वारा स्पष्ट प्रकाशमान देह धारण की थी, देखते २ नटकी समान, उसी देह द्वारा वामन ब्राह्मण कुमारकी मूर्त्ति ग्रहण करली ॥ १२ ॥ महर्षिगण उस ब्राह्मण कुमारको वामन मूर्त्तिदेख प्रसन्न हुए और कश्यपजी को ले उनका जातकर्म आदि कार्य करने लगे ॥ १३ ॥ उन वामनजी के यज्ञोपवीत कालमें सूर्य देवने स्वयं उन्हें गायत्रीका उपदेश दिया बृहस्पति ने उन्हें ब्रह्मसूत्र और कश्यपजी ने मेखला पहिनाई ॥ १४ ॥ उन वामनरूपी जगत् पतिको भूमिने कृष्ण मृगचर्म, वनस्पतियोंकेस्वामी चन्द्रमाने दंड,

कुशान्सप्तर्षयोददुः । अक्षमालांमहाराज सरस्वत्यव्ययात्मनः ॥ १६ ॥ तस्माइत्यु पनीताय यक्षराट् पात्रिकामदात् । भिक्षांभगवती साक्षादुमाऽदादम्बिकासती १७ सब्रह्मवर्चसेनैवं सभांसंभावितोबटुः । ब्रह्मर्षिगणसंजुष्टामत्यरोचत मारिषः॥१८॥ समिद्धमाहितंवन्हिं कृत्वापरिसमूहनम् । परिस्तीर्यसमभ्यर्च्य समिद्भिरजुहोद्द्वि जः ॥ १९ ॥ श्रुत्वाऽश्वमेधैर्यजमानमूर्जितंबलिं भृगूणामुपकल्पितैस्ततः । जगाम तत्राखिलसारसंभृतो भारेणगांसन्नमयन्पदेपदे ॥२०॥ तंनर्मदायास्तटउत्तरेबलेर्य ऋत्विजस्तेभृगुकच्छसंज्ञके । प्रवर्तयन्तोभृगवःक्रतूत्तमं व्यचक्षतारादुदितंयथारवि म् ॥ २१ ॥ तेऋत्विजोयजमानः सदस्याहतत्विषोवामनतेजसानृप । सूर्यःकिला यात्युतवाविभावसुः सनत्कुमारोऽथदिदृक्षयाक्रतोः ॥ २२ ॥ इत्थंसशिष्येषुभृगु ष्वनेकधा वितर्क्यमाणोभगवान्सवामनः । छत्रंदण्डसजलंकमण्डलुं विवेशा विभ्रद्धयमेधवाटम् ॥ २३ ॥ मौञ्ज्यामेखलयावीत मुपवीताजिनोत्तरम् । जटिलंवा मनंविप्रं मायामाणवकंहरिम् ॥ २४ ॥ प्रविष्टंवीक्ष्यभृगवः सशिष्यास्तेसहाग्नि भिः । प्रत्यगृह्णन्समुत्थाय संक्षिप्तास्तस्यतेजसा ॥ २५ ॥ यजमानःप्रमुदितो द र्शनीयंमनोरमम् । रूपानुरूपावयवं तस्माआसनमाहरत् ॥ २६ ॥ स्वागतेनाभिन न्द्याथ पादौभगवतोबलिः । अवनिज्यार्चयामास मुक्तसङ्गमनोरमम् ॥ २७ ॥ त त्पादशौचंजनकल्मषापहं सधर्मविन्मूर्ध्न्यदधात्सुमङ्गलम् । यद्देवदेवो गिरिशश्चन्द्र मौलिर्दधारमूर्ध्नापरयाचभक्त्या ॥ २८ ॥ बलिरुवाच ॥ स्वागतंतेनमस्तुभ्यं ब्रह्म

मातानें कौपीन, स्वर्गने छत्र; ॥ १५ ॥ ब्रह्माजी ने कमंडलु, सप्तर्षियों ने कुश और सरस्वतीजी ने अक्षमालादी ॥ १६ ॥ वामनजी के यज्ञोपवीत होनेपर यक्षराज ने उनको भिक्षाका पात्र, और माता अन्नपूर्णा ने भिक्षादी ॥ १७ ॥ वे सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण कुमार इस प्रकार ब्राह्मोपयोगीका समस्त सामग्रियोंकोपाकर, अपने ब्रह्मतेज द्वारा ब्रह्मर्षियों से सेवित सभामें शोभा पानेलगे ॥ १८ ॥ फिर वामनजी ने प्रज्वलित हुई स्थापित अग्निका चारों ओर संमार्जन कर कुश बिछाय पूजनकर उसमें समिध से होमकिया ॥ १९ ॥ उसी समय में वामनजी ने सुनाकि—भृगुवंशियों ने महाबल दैत्य पति बलिको अश्वमेध यज्ञमें दीक्षित किया है । यह सुनतेही वह वहां से चले । वह समस्त बलसे परिपूर्ण थे अतएव उनके गमन कालमें पग पगपर पृथ्वी कांपने लगी ॥२०॥ हे राजन् ! नर्मदा नदीके उत्तर तटपर भृगु कच्छ (भड़ौच) नामक क्षेत्र में भृगुवंशी ब्राह्मण राजा बलिको श्रेष्ठ यज्ञकरा रहथे, वामन रूपी नारायण उसी स्थनपर गये । उनको देखकर ब्राह्मणोंने जाना कि—मानोस्वयं सूर्य उदय हुए हैं ॥ २१ ॥ वे सब ब्राह्मण राजाबलि और समस्त सभापति वामनजी के तेजसे प्रभारहित होगये और विचारने लगेकि—सूर्य क्या यज्ञ देखने के निमित्त आते हैं ! क्या अग्निआते हैं ? या सनत्कुमार आरहे हैं ? ॥ २२ ॥ शिष्यों समेत भृगुवंशी ब्राह्मण इसप्रकार से तर्क वितर्क कररहे थे, कि—इतने में भगवान वामनजी-दंड, छत्र और जलसे भराहुआ कमंडलु धारणकिये अश्वमेध मंडपमें आये ॥ २३ ॥ मायारूपी भगवान वामन कमरमें मूंजकी मेखला पहिने, उपवीत और मृगचर्म रूप उत्तरीय धारणकिये, जटाबांधे हुएथे और उनका शरीर बहुतही छोटा था । उनको देखतेही सब भृगुवंशी उनके तेजसे ज्ञान रहित होगये और शिष्यों तथा अग्नियों के साथ उठकर उनका सनमान करनेलगे ॥ २४—२५ ॥ यजमान राजा बलिभी उनके रूपके अनु रूप छोटे २ अंग और अतिसुंदर स्वरूपको देखकर सुंदर आसन लाया ॥२६॥ और उनका सादर अभिनंदन कर, दोनों चरण पखार, पूजाकर राजाबलि ने वामनजी के पाप नाशक चरणोदक को माथेपर चढ़ाया हे राजन् ! वह चरणोदक साधारण नहीं है, उस चरणोदक को चन्द्रशेखर महादेवजी ने आदर पूर्वक भक्तियुक्त मस्तक पर धारण किया है ॥ २७—२८ ॥ बलिने कहाकि—हे

ंकिंकरवामते। ब्रह्मर्षीणांतपःसाक्षान्मन्येत्वार्यवपुर्धरम् ॥२९॥ अद्यनःपितरस्तृ
प्ता अद्यनःपावितंकुलम्। अद्यस्विष्टःक्रतुरयं यन्भवानागतोगृहान् ॥ ३० ॥ अद्या
ग्नयोमेसुहुता यथाविधिद्विजात्मज त्वच्चरणावनेजनैः। हतांहसोवाभिरियंचभू
रहोतथापुनीता तनुभिःपदैस्तव ॥ ३१ ॥ यद्यद्वटोवांछसितत्प्रतीच्छमे त्वामर्थिनं
विप्रसुतानुतर्कये। गांकांचनंगुणवद्धामसृष्टं तथान्नपेयमुतवाविप्रकन्याम्। ग्रामां
स्समृद्धांस्तुरगान्गजान्वा रथांस्तथार्हसमसंप्रतीच्छ ॥ ३२ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा० अष्ट० अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्रीशुकउवाच॥ इतिवैरोचनेर्वाक्यं धर्मयुक्तंससूनृतम्। निशाम्यभगवान्प्रीतः प्रति
नन्द्येदमब्रवीत् १ श्रीभगवानुवाच॥वचस्तवैतज्जनदेवसूनृतंकुलोचितंधर्मयुतंयश
स्करम्। यस्यप्रमाणंभृगवः साम्परायेपितामहःकुलवृद्धःप्रशांतः॥२॥ नह्येतस्मिन्कु
लेकश्चिन्निःसत्त्वःकृपणःपुमान्। प्रत्याख्याताप्रतिश्रुत्य योवाऽदाताद्विजातये ३ ॥
नसन्तितीर्थेयुधिचार्थिनाऽर्थिताः पराङ्मुखाये त्वमनस्विनोनृपाः। युष्मत्कुलेयद्य
शसाऽमलेन प्रह्लादउद्भातियथोडुपःखे ॥ यतोजातोहिरण्याक्षश्चरन्नेकइमांमहीम्।
प्रतिवीरंदिग्विजये नाविन्दतगदायुधः ॥ ५ ॥ यंविनिर्जित्यकृच्छ्रेणविष्णुःक्ष्मोद्धार
आगतम्। नात्मानंजयिनंमेने तद्वीर्यंभूर्यनुस्मरन्॥ ६ ॥ निशाम्यतद्वधंभ्राताहिरण्य
कशिपुःपुरा। हन्तुंभ्रातृहणंक्रुद्धो जगामनिलयंहरेः॥७॥तमायांतंसमालोक्य शूलपा
णिंकृतांतवत्। चिंतयामासकालज्ञोविष्णुर्मायाविनांवरः ॥ ८ ॥ यतोयतोऽहंतत्रा

महान्! आपको प्रणामहै आप सुखसेतो आयेहो? कोई कष्टतो नहीं हुआ? आप आज्ञाकरिये, मैं आपका कौनसा कार्यकरूं? हे प्रभो? जानपडता है कि-आप ब्रह्मर्षियों की मूर्तिमती तपस्याहो ॥ २९ ॥ आपके आनेसे मेरे पितर तृप्तहोगये; आज मेराकुल पवित्र हुआ, आज यह यज्ञभली प्रकारसे पूर्णहुआ क्योंकि आज आप हमारे यहांपधारे ॥ ३० ॥ हे विप्रनंदन! आज अग्नि में होम करना मेरासार्थक हुआ; आपके चरणोंके जलसे मेरेपाप नष्टहोगये और आपके छोटे २ चरणों से आज यह भूमिभी पवित्रहोगई॥३१॥आपकी जोइच्छाहो सोकहिये, मैं उसेपूरी करूंगा, अनुमान होता है कि—आपकुछ मागने आयेहो। पृथ्वी, सुवर्ण, श्रेष्ठनिवासस्थान, मिष्टान्न, कन्या, गांव, घोड़ा, हाथी व रथ इनमें से जोआपकी इच्छाहो सोमांगो—मैं वही आपको दूंगा ॥ ३२ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेअष्टमस्कंधेसरलभाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्री शुकदेवजी बोलेकि–हे राजन्! बलिके ऐसे धर्मयुक्त सत्य वाक्योंको सुनकर भगवान सन्तुष्ट हुए और उनकी प्रशंसा करके कहने लगे ॥ १ ॥ कि-हे राजन्! आपके पारलौकिक धर्ममें कुल वृद्ध, शांत पितामह प्रह्लाद तुम्हारे उदाहरण हैं। अतएव हे नरदेव! जोतुमने सत्य वाक्य कहे यह धर्मयुक्त यशके बढ़ाने वाले और तुम्हारे कुलके योग्य हैं ॥ २ ॥ इसकुलमें इससमयतक कोई पुरुष ऐसा सत्वहीन व कृपण नहींहुआ कि जिसने ब्राह्मणको दानदेना अङ्गीकारकर फिर न दिया हो ॥ ३ ॥ तुम्हारे कुलमें जो सब मनुष्य उत्पन्नहुए हैं वे दान के समय में अथवा युद्धके समय में याचकके याचना करनेपर कभी विमुख नहींहुए। प्रह्लादभी निर्मल कीर्तिका विस्तारकर,आकाश में चन्द्रमाकी समान, प्रकाशित होरहे हैं ॥ ४ ॥ तुम्हारे इसी वंश में हिरण्याक्षने जन्मग्रहणकर गदाहाथ में ले अकेलेही दिशाओं कोजीत पृथ्वी मण्डल में भ्रमण कियाथा परन्तु कहीं भी उस को योद्धा न मिला ॥ ५ ॥ विष्णुजीके पृथ्वी उद्धारकरने के समय हिरण्याक्ष उनके निकटआया। नारायण ने बहुत कष्टसे उसको जीतकर, उसके पराक्रमका स्मरणकर अपने को विजयी नहींमाना था ॥ ६ ॥ हिरण्याक्षकाभाई हिरण्यकशिपु, अपने भाई के नाश होनेकी वार्ता सुन क्रोधितहो,भाई के मारनेवाले को मारने के निमित्त विष्णुजीके स्थानपर गया ॥ ७ ॥ मायावियों में श्रेष्ठ, समयके

क्षौमृत्युःप्राणभृतामिव अतोऽहमस्यहृदयं प्रवेक्ष्यामिपराग्दशः ॥ ९ ॥ एवंसनिश्चि त्यरिपोःशरीरमाधावतो निर्विविशेऽसुरेन्द्र । श्वासानिलान्तर्हितसूक्ष्मदेहस्तत्प्राणर न्ध्रेणविविग्नचेताः ॥ १० ॥ सतन्निकेतंपरिमृश्यशून्यमपश्यमानःकुपितोननाद । क्ष्मांद्यांदिशःखंविवरान्समुद्रान्विष्णुं विचिन्वन्नददर्शवीरः ॥ ११ ॥ अपश्यन्निति होवाचमयाऽन्विष्टमिदंजगत् । भ्रातृहामेगतोनूनं यतोनावर्ततेपुमान् ॥ १२ ॥ वैरानुबन्धएतावानामृत्योरिहदेहिनाम् । अज्ञानप्रभवोमन्युरहंमानोपबृंहितः १३ ॥ पिताप्रह्लादपुत्रस्ते तद्विद्वांद्विजवत्सल । स्वमायुर्द्विजलिंगेभ्यो देवेभ्योऽदात्सया चितः ॥ १४ ॥ भवानाचरितान्धर्मा नास्थितोगृहमेधिभिः । ब्राह्मणैःपूर्वजैःशूरैरन्यै श्चोद्दामकीर्तिभिः ॥ १५ ॥ तस्मात्त्वत्तोमहीमीषद्वृणेऽहंवरदर्षभात् । पदानित्रीणि दैत्येन्द्र संमितानिपदाममम १६॥नान्यत्तेकामयेराजन्वदान्याज्जगदीश्वरात् । नैनः प्राप्नोतिवैविद्वान्यावदर्थपरिग्रहः ॥१७ ॥ बलिरुवाच ॥ अहोब्राह्मणदायादवाचस्ते वृद्धसंमताः । त्वंबालोबालिशमतिःस्वार्थंप्रत्यबुधोयथा ॥१८॥ मांवचोभिःसमारा ध्यलोकानामेकमीश्वरम् । पदत्रयंवृणीतेयोऽबुद्धिमान्द्वीपदाशुषम् ॥ १९ ॥ नपुमा न्मामुपव्रज्यभूयोयाचितुमर्हति । तस्माद्वृत्तिकरींभूमिं वटोकामंप्रतीच्छमे २० ॥ भगवानुवाच ॥ यावन्तोविषयाःप्रेष्ठा स्त्रिलोक्यामजितेन्द्रियम् । नशक्नुवन्ति

जाननेवाले विष्णुजी त्रिशूलहाथ में लिये कालकी समान हिरण्यकशिपको आता देख मनमें विचारनेलगे कि ॥८॥ मै जहां २ जाऊंगा, प्राणियों की मृत्युकी समान यह असुर वहां २ मेरे पीछे २ आवेगा । अतएव मैं इसके हृदय में प्रवेशकरूं ॥ ९ ॥ भगवान इसप्रकार से विचार उसके हृदय के भीतर थर २ कांपतेहुए छोटासा स्वरूपबना दौड़तेहुए उसशत्रुके शरीर में श्वांस लेने के साथ प्राणके छिद्रद्वारा घुसगये ॥ १० हिरण्यकशिपु विष्णुजीको नहीं देख उनके शून्यभवन के चारोंओर घूमकर सिंहनाद करनेलगा फिर उसने उनके खोजने के निमित्त पृथ्वी, स्वर्ग, दिग्मण्डल, आकाश और समुद्र में भ्रमण किया, परन्त कहीं भी नारायण को न पाया ॥ ११ ॥ तब वह कहनेलगा कि मैने इस समस्त जगतको ढूंढा, किन्तु मेरे भाई का मारनेवाला कहीं न मिला इससे निश्चयही जानपड़ता है कि मनुष्य जिसस्थान से फिर लौटकर नहीं आता मेरे भाईका मारनेवालाभी उसी स्थानमें चलागया ॥ १२ ॥ हे महाराज ! इससंसारमें प्राणियों की शत्रुता मृत्युपर्यंत इसी प्रकारसे प्रबलरहती है क्योंकि क्रोध अज्ञान से उत्पन्न होकर अहंकार से बढ़ता रहता है॥१३॥प्रह्लादकापुत्र विरोचन तुम्हारा पिता द्विज वत्सलथा; देवताओंने ब्राह्मणों को वश बनाय उनसे आयु मांगीतो विरोचनने जानबूझकरभी उन्हें अपनीपरमायुदेदी॥१४॥गृहमेधी ब्राह्मणगण, प्राचीन वीरगण औरभी दूसरेमनुष्य जिस धर्मका अनुष्ठानकरते आये हैं तुमभी उन्हीं सबका आचरणकरते हो॥१५॥अतएव हे दैत्येन्द्र! मैं तुमसे अपनेपैरोंकी तीनपैग पृथ्वीको मांगताहूं १६॥ तुम दाता और जगतके ईश्वरहो परन्तु तुमसे मैं और कुछ नहीं चाहता । जितनेकी आवश्यकता होवे, विद्वान मनुष्य यदि उतनाहीं मांगे तो पापकाभागी नहीं होता ॥ १७ ॥ राजाबलिने कहा कि—हे विप्रतनया आपके वाक्य वृद्धोंकीसमान हैं, परन्तु आप बालकहो; इस कारण आपकी बुद्धि मूर्खों की सी है क्योंकि आप अपने स्वार्थ को नहीं जानते ॥ १८ ॥ मैं त्रिलोकीका स्वामीहूं मैं एकद्वीपतक दे सकताहू ; किन्तु आप ऐसे अबोध हो कि मुझे बचनों से सन्तुष्टकर केवलतीन पैग पृथ्वी चाहते हो ॥ १८ ॥ मनुष्य मुझको प्रसन्न करके दूसरे मनुष्य से प्रार्थना करने योग्य नहीं रहता । अतएव जितनी भूमि से भलीप्रकार आपकी संसार यात्राका निर्वाह होसके आप मुझसे उतनीही पृथ्वी मांगो ॥२०॥ श्रीभगवान बोले कि—हे राजन् ! त्रिलोकी के मध्यमें जितने

तेसर्वे प्रतिपूरयितुंनृप ॥ २१ ॥ त्रिभिःक्रमैरसंतुष्टो द्वीपेनापिनपूर्यते । नववर्षसमे
तेनसप्तद्वीपवरेच्छया ॥ २२ ॥ सप्तद्वीपाधिपतयो नृपावैन्यगयादयः । अर्थैःकामै
र्गतानांतं तृष्णायाइतिनःश्रुतम् ॥ २३ ॥ यदृच्छयोपपन्नेन संतुष्टोवर्ततेसुखम् । नासं
तुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः ॥ २४ ॥ पुंसोऽयंसंसृतेर्हेतुरसन्तोषोऽर्थकाम
योः । यदृच्छयोपपन्नेनसंतोषोमुक्तयेस्मृतः ॥ २५ ॥ यदृच्छालाभतुष्टस्य तेजोविप्र
स्यवर्धते । तत्प्रशाम्यत्यसंतोषादम्भसेवाशुशुक्षणिः ॥ २६ ॥ तस्मात्त्रीणिपदान्यं
ववृणेत्वद्वरदर्षभात् । एतावतैवसिद्धोऽहं वित्तंयावत्प्रयोजनम् ॥ २७ ॥ श्रीशुक-
उवाच ॥ इत्युक्तःसहसन्नाहवांछितप्रतिगृह्यताम् । वामनायमहींदातुं जग्राहजल
भाजनम् २८ ॥ विष्णवेक्ष्मांप्रदास्यन्तमुशनाअसुरेश्वरम् । जानंश्चिकीर्षितंविष्णोः
शिष्यंप्राहविदांवरः ॥ २९ ॥ शुक्राचार्यउवाच ॥ एषवैरोचनेसाक्षाद्भगवान्विष्णु
रव्ययः । कश्यपाददितेर्जातोदेवानांकार्यसाधकः ॥ ३० ॥ प्रतिश्रुतंत्वयैतस्मैयद
नर्थमजानता । नसाधुमन्येदैत्यानांमहानुपगतोऽनयः ॥ ३१ ॥ एषतेस्थानमैश्वर्यं
श्रियंतेजोयशःश्रुतम् । दास्यत्याच्छिद्यशक्राय मायामाणवकोहरिः ॥ ३२ ॥ त्रिभिः
क्रमैरिमाँल्लोकान्विश्वकायःक्रमिष्यति । सर्वस्वंविष्णवेदत्त्वा मूढवर्तिष्यसेकथम्
॥ ३३ ॥ क्रमतोगांपदैकेनद्वितीयेनदिवंविभोः । खंचकायेनमहता तार्तीयस्यकुतो
गतिः ॥ ३४ ॥ निष्ठांतेनरकेमन्ये ह्यप्रदातुः प्रतिश्रुतम् । प्रतिश्रुतस्ययोऽनीशःप्रति

प्रियपदार्थ हैं उनसबको पाकरभी अजितेन्द्रिय मनुष्य अपनेको सन्तुष्ट नहीं करसकता ॥२१॥ जो मनुष्य तीनपग भूमिसे सन्तुष्ट नहोगा वह द्वीपसे कैसे सन्तुष्टहोजायगा क्योंकि द्वीप मिलनेपर उसे नौ खण्डोंसमेत पृथ्वी के पानेकी कामनाहोगी॥२२॥ऐसाभी सुनाहै कि पृथु और गयआदि राजलोग सातद्वीपों के स्वामीहो और समस्त कामका भोगकरके भी विषयभोगों की तृष्णाकापार न पासके ॥२३॥सन्तुष्ट मनुष्य यदृच्छा से प्राप्तहुए पदार्थका भोगकर सुखसे वासकरताहै; किंतु अजितेन्द्रिय मनुष्य त्रिलोकी को भी पाकर सुखी नहीं होता ॥२४॥ पण्डितों ने कहा है कि—मनुष्य के अर्थ व काम में संतोषका न होना यही जन्ममरण का हेतु है; और यदृच्छा से प्राप्तहुए पदार्थपर सन्तोष करनाही उसके तेज के बढ़नेका कारण है ॥ २५ ॥ और जो सन्तोष नहीं रखता उसका तेज, जल से शांत हुए अग्निके समान, शांत होजाता है ॥ २६ ॥ हेवरदश्रेष्ठ ! मैं तुमसे तीन पग भूमिकीही इच्छा करता हूं, मैं इसहीको पाकर अपने को धन्यमानूंगा ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—वामनजीकी इसबातको सुन,राजाबलि ने हँसकर “ यहां लो ” कह भूमिकादानदेने के निमित्त जलका पात्र ग्रहणकिया ॥ २८ ॥ किंतु सर्वज्ञ दैत्यगुरु शुक्राचार्य विष्णुजीके अभिप्राय को जान (शिष्यबलिको भूमिदानकरते देख) कहने लगे कि ॥ २९ ॥ हे बलि ! यह साक्षात् भगवान विष्णु हैं; देवताओं का कार्य पूरा करने के निमित्त कश्यपजी के वीर्य से अदिति के गर्भद्वारा प्रगटहुए हैं ॥ ३० ॥ तुम इसबड़ी आपत्ति को नहीं जानसके; अतएव इन्हें दानदेना स्वीकार करलिया; मैं जानता हूं कि दैत्यों के ऊपर बड़ीभारी विपत् आ उपस्थित हुई ॥ ३१ ॥ यह कोई साधारण बटु नहीं है ! यह माया वामन रूपी श्रीभगवान हैं तुम्हारा स्थान, ऐश्वर्य, श्री, यश, तेज और विद्याका हरणकर इन्द्र को देवेंगे ॥ ३२ ॥ विश्वही इनकी देह है यह तीन पग से तीनोंलोक पर आक्रमण करेंगे तुम्हारा सर्वस्व नष्ट होजायगा हे मूढ ! विष्णु को सर्वस्व दान करके तू क्या लेवेगा ॥ ३३ ॥ यह वामन एक पग से पृथ्वी, द्वितीय पैग से स्वर्ग व आकाश नाप लेवेंगे तीसरे पग की क्या गति होगी ॥ ३४ ॥ तूने दान देना अंगीकार कियाहै, किंतु उसको देनहीं स-

पादयितुंमर्हसि । ३५ । नतद्दानंप्रशंसन्ति येनवृत्तिर्विपद्यते । दानंयज्ञस्तपःकर्मलोके वृत्तिमतोयतः ॥३६॥ धर्मायंयशसेऽर्थायकामायस्वजनायच । पंचधाविभजन्वित्त मिहामुत्रचमोदते ॥ ३७ ॥ अत्रापिबह्वृचैर्गीतं शृणुमेऽसुरसत्तम । सत्यमोमितियत्प्रोक्तंयन्नेत्याहानृतंहितत् ॥ ३८ ॥ सत्यपुष्पफलंविद्यादात्मवृक्षस्यगीयते । वृक्षेऽजीवतितन्नस्यादनृतंमूलमात्मनः ॥३९॥तद्यथावृक्षउन्मूलः शुष्यत्युद्वर्ततेऽचिरात् । एवंनष्टानृतःसद्य आत्माशुष्येन्नसंशयः॥४०॥पराग्रिक्तमपूर्णंवा अक्षरंयत्तदोमिति । यत्किंचिदोमितिब्रूयात्तेनरिच्येतवैपुमान् ॥४१॥भिक्षवेसर्वमोंकुर्वन्नालंकामेनचात्मने । अथैतत्पूर्णमभ्यात्मं यच्चनेत्यनृतंवचः । सर्वंनेत्यनृतंब्रूयात्स दुष्कीर्तिःश्वसन्मृतः ॥४२॥स्त्रीषुनर्मविवाहेच वृत्त्यर्थेप्राणसंकटे । गोब्राह्मणार्थेहिंसायां नानृतंस्याज्जुगुप्सितम् ॥ ४३ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० अष्ट० एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ बलिरेवंगृहपतिः कुलाचार्येणभाषितः । तूष्णींभूत्वा क्षणंराजन् नुवाचावहितोगुरुम् ॥ १ ॥ बलिरुवाच ॥ सत्यंभगवताप्रोक्तं धर्मोऽयंगृहमेधिनाम् । अर्थंकामंयशोवृत्तिं योनबाधेतकर्हिचित् ॥२॥ सचाहंवित्तलोभेन प्रत्या

कता अतएव प्रतिज्ञा पूर्ण नहोनें के कारण नरक में पडेगा ॥ ३५ ॥ वृत्ति युक्त मनुष्यही लोकमें दान, यज्ञ, तपस्या और पूर्तादि (कुआं बावडी आदि बनाना) कर्म करसकते हैं, जिस दान से अपनी जीविका नष्ट होजाय वह दान प्रशंसा के योग्य नहीं होता ॥ ३६ ॥ जो मनुष्य सम्पत्ति के पांच भाग करके धर्म, यश, अर्थ, काम और स्वजनों के कार्य में व्यय करता है, वह इस लोक और परलोक दोनोंही में सुखी रहता है ॥ ३७ ॥ हे देवेन्द्र ! इसी सम्बन्ध में जो श्रुति में कहा है वहभी मुझ से सुनों जो स्वीकार करके उसका पालन करताहै व सत्य, और जो स्वीकार करके उसका पालन नहीं करता वह असत्य कहलाता है ॥ ३८ ॥ श्रुति में कहा है कि सत्य, देह रूप वृक्षका फल फूल है, वृक्षके जीवित नरहनें से वह फल फूल अवश्यही नष्ट होजाता है मिथ्या से देहकी रक्षा होती है, क्योंकि मिथ्याही देहका मूल है ॥ ३९ ॥ जैसे जड उखाडडालनें से वृक्ष शीघ्रही गिरकर सूख जाता है, ऐसेही जिस मनुष्य का मिथ्या नाश होजाता है उसकी देह निश्चयही सूखजाती है ॥४०॥ पुरुष जो कुछ 'हो दान करूगा' यह कहे उसमें उसका अधिकार नहीं रहता, अतएव "हां दूंगा" यह शब्दही अपूर्ण है क्यों कि समस्त सम्पत्ति दे देनें परभी याचक की आशा नहीं पूर्ण होती और इससे देनेवाले का धन लेकर दूर जानाहोता है ॥ ४१ ॥ भिक्षुक जो कुछ प्रार्थना करे जो मनुष्य उसको सबही देना स्वीकार करले तो वह स्वयं भोग नहीं करसकता, अतएव नदूंगा यही शब्द पूर्ण है, क्यों कि इससे दूसरे विषय अपनी ओरको खिचते हैं किंतु 'नहीं' 'नदूंगा' यह मिथ्या वचन नकहना चाहिये, क्यों कि जो सर्वदा इसी बचन को कहते हैं वे अकीर्ति भागी और जीवित मृतकी समान हैं ॥ ४२ ॥ स्त्री वशीकरण काल में हास्य परिहास में विवाह में वरके गुण कहनें में आश्रितवृत्ति की रक्षा के निमित्त, प्राण संकट में, गौ ब्राह्मण के हित साधन के निमित्त और किसीकी प्राण हिंसा उपस्थित होनेंपर असत्य बोलनें में दोष नहीं है ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भ० म० पु० अष्टमस्कं सरलाभाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीशुकदेवजीबोले कि—हे राजन् ! गृह पति बलि शुक्राचार्य कीबात सुनकर कुछ समय तक चुपरहगये फिरगुरु से कहने लगे कि ॥ १ ॥ हे गुरुदेव ! आप सत्यही कहतेहो ; गृहस्थियोंका धर्मयहीहै किजिससे अर्थ, यश, काम और वृत्तिका नाश न होवे वही कर्म करे ॥ २ ॥ किंतु मैं

स चाहं वित्तलोभेन प्रत्याचक्षे कथंद्विजम् । प्रतिश्रुत्य ददामीति प्राह्रादिः कितवो यथा ॥ ३ ॥ न ह्यसत्यात्परो ऽधर्म इतिहोवाच भूरियम् । सर्वंसोढुमलंमन्ये ऋतेऽलीकपरंनरम् ॥ ४ ॥ नाहंबिभेमि निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात् । न स्थानच्यवनान्मृत्योर्यथाविप्रप्रलम्भनात् ५॥ यद्यद्धास्यतिलोकेऽस्मिन् संपरेतंधनादिकम् । तस्यत्यागेनिमित्तंकिंविप्रस्तुष्येन्नतेन चेत्॥६॥श्रेयःकुर्वन्तिभूतानां साधवोदुस्त्यजासुभिः । दध्यङ्शिबिप्रभृतयः को विकल्पोधरादिषु ॥ ७ ॥ यैरियंबुभुजेब्रह्मन् दैत्येन्द्रैरनिवर्तिभिः । तेषांकालोऽग्रसील्लोकान्न यशोऽधिगतंभुवि ॥ ८ ॥ सुलभायुधिविप्रर्षे ह्यनिवृत्तास्तनुत्यजः । नतथातीर्थआयाते श्रद्धयायेधनत्यजः ॥ ९ ॥ मनस्विनःकारुणिकस्यशोभनं यदर्थिकामोपनयेनदुर्गतिः । कुतःपुनर्ब्रह्मविदांभवादृशां ततोवटोरस्यददामिवाञ्छितम् ॥ १० ॥ यजन्तियज्ञंक्रतुभिर्यमादृता भवन्तआम्नायविधानकोविदाः । सएव विष्णुर्वरदोऽस्तुवापरो दास्याम्यमुष्मैक्षितिमीप्सितांमुने ॥ ११ ॥ यद्यप्यसावधर्मेण मांबध्नीयादनागसम् । तथाप्येनंनहिंसिष्ये भीतंब्रह्मतनुंरिपुम् ॥ १२ ॥ एषवा उत्तमश्लोको नजिहासतियद्यशः । हत्वामैनांहरेद्युद्धे शयीतनिहतोमया ॥ १३ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ एवमश्रद्धितंशिष्य मनादेशकरंगुरुः । शशापदैवप्रहितः सत्यसन्धं मनस्विनम् ॥ १४ ॥ दृढंपण्डितमान्यज्ञः स्तब्धोऽस्यस्मदुपेक्षया । मच्छासनातिगोयस्त्व मचिराद्भ्रश्यसेश्रियः ॥ १५ ॥ एवंशप्तःस्वगुरुणा सत्यान्नचलितोम

प्रह्लादकापौत्रहू मैंने दानदेना स्वीकार किया है अब धन केलोभसे साधारण कपटीकी समानकिस प्रकार से ब्राह्मणको " न दूंगा " ऐसा कहूं ॥ ३ ॥ ? मिथ्या की समान और कोई अधर्म नहीं है । पृथ्वीने कहाहै कि-मिथ्या वादी मनुष्य के अतिरिक्तमैं सबही केभारका सहनकर सकता हूं ॥ ४ ॥ ब्राह्मणको धोखादेनेमे मुझको जितनाभय लगता है-नरक, दारिद्रता, स्थानच्युत, व मृत्यु से भी उतना भय नहीं लगता ॥ ५ ॥ पुरुषका परलोक जानेपर इसलोक के पृथ्वी आदिजो २ पदार्थहैवे अवश्य छोडना पडगे उन २ पदार्थों द्वारा जबतक ब्राह्मणको संतोष न उत्पन्नहोवे तब तक उसदानक करनेसे फलही क्याहै ? ॥ ६ ॥ दधीचि और शिबि आदि साधूजनोंने दुस्त्यज प्राण देकर भी प्राणियो काहित साधन कियाहै ; फिर पृथ्वी कादान करके देनेमें क्या संशयहै ? ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! युद्धसे नहटनेवाले जिन दैत्य पतियों ने इस पृथ्वी का भोगकिया है उनके भोग को यद्यपि करालकाल नें नष्ट करदियाहै तौभी उन्होंनें पृथ्वीपरजो यशप्राप्त किया है वह अबतक नाश नहीं हुआहै ॥ ८ ॥ हे विप्रर्षे ! युद्धमें पीछे न हटकर देह त्याग देनेवाले मनुष्य अनेक पाये जाते हैं परन्तु सत्पात्रके उपस्थितहोने पर उसकी इच्छानुसार, श्रद्धासे दान देनेंवाले मनुष्य बहुत ही दुर्लभहै ॥९॥ साधारण याचककी अभिलाषा पूर्णकरनेसे जो दरिद्रता होजाय तो वह दयाशील, उदारचित्तवालेका गौरव बढानेवाली होतीहै,फिर यदि आपकी समान ब्रह्मज्ञ ब्राह्मणोंका दानकरनेमें दरिद्रताहोजाय तो उसमें कहनाही क्या है ! यह ब्राह्मणकुमार जो कुछ मांगताहै मैं इसको वही दूंगा॥१०॥आपलोग वेदानुसार विधानसे यज्ञ और क्रतुद्वारा जिनका यजनकरते हैं, हे मुने ! यह चाहें वही बरदेनेवाले विष्णुहो,वाकोई दूसराहो मैंतो इनको मांगीहुई पृथ्वीदूंगा॥११॥मुझ निरपराधी का यदि यह अधर्मपूर्वक बंधनभी करेंगे, तौभी मैं भी,तरूपभाव ब्राह्मण रूपधारी इसब्राह्मणको मैंने मारूंगा॥१२॥यह पवित्र यशवाले भगवान यदि अपनेयशके त्यागनकाइच्छा न करते तो मुझको युद्ध में मारकर इसपृथ्वीको ग्रहणकरते अथवा मुझसे निहतहोकर पृथ्वीपर सोते॥१३॥श्री शुकदेवजीबोले कि—हेराजन् ! जबराजाबलिने गुरु पर श्रद्धान रखकर इसप्रकार से उनका कहना न माना तब दैवकी प्रेरणा से गुरुने उस सत्यप्रतिज्ञ राजाबलि को शापदेकर कहा कि ॥ १४ ॥ तू मूर्ख है

हान् । वामनाय ददावेनामर्चित्वोदकपूर्वकम् ॥ १६ ॥ विन्ध्यावलिस्तदाऽऽगत्य
पत्नीजालकमालिनी । आनिन्ये कलशंहैम मवनेजन्यपांभृतम् ॥ १७ ॥ यजमानः
स्वयंतस्य श्रीमत्पादयुगंमुदा । अवनिज्यावहन्मूर्ध्नि तदपोविश्वपावनीः ॥ १८ ॥
तदासुरेन्द्रंदिविदेवतागणा गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः । तत्कर्मसर्वेऽपिगृणन्त
आर्जवं प्रसूनवर्षैर्ववृषुर्मुदाऽन्विताः ॥ १९ ॥ नेदुर्मुहुर्दुन्दुभयः सहस्रशो गंधर्व
किम्पूरुषकिन्नराजगुः । मनस्विनानेनकृतंसुदुष्करं विद्वानदाद्यद्रिपवेजगत्त्रयम् ॥ २० ॥
तद्वामनंरूपमवर्धताद्भुतं हरेरनन्तस्यगुणत्रयात्मकम् । भूःखंदिशोद्यौर्विवराःपयोध
यस्तिर्यङ्नृदेवाऋषयोयदासत ॥ २१ ॥ कायेबलिस्तस्यमहाविभूतेः सहर्त्विगा
चार्यसदस्यएतत् । ददर्शविश्वंत्रिगुणंगुणात्मके भूतेन्द्रियार्थाशयजीवयुक्तम् ॥ २२ ॥
रसामचष्टाङ्घ्रितलेऽथपादयोर्महींमहीध्रान्पुरुषस्यजंघयोः । पतत्त्रिणोजानुनिवि
श्वमूर्ते रूर्वोर्गणंमारुतमिन्द्रसेनः ॥ २३ ॥ सन्ध्यांविभोर्वाससिगुह्यऐक्षत् प्रजापती
ञ्जघनेआत्ममुख्यान् । नाभ्यांनभःकुक्षिषुसप्तसिन्धूनुरुक्रमस्योरसिचर्क्षमालाम् ॥ २४ ॥
हृद्यङ्गधर्मंस्तनयोर्मुरारेर्ऋतंचसत्यंचमनस्यथेन्दुम् । श्रियंचवक्षस्यरविन्दहस्तांकं
ठेचसामानिसमस्तरेफान् ॥ २५ ॥ इन्द्रप्रधानानमरान्भुजेषु तत्कर्णयोःककुभोद्यौ
श्चमूर्ध्नि । केशेषुमेघाञ्छ्वसननासिकायामक्ष्णोश्चसूर्यंवदनेचवह्निम् ॥ २६ ॥ वा
ण्यांचछन्दांसिरसेजलेशं भ्रुवोर्निषेधंचविधिंचपक्ष्मसु । अहश्चरात्रिंचपरस्यपुंसो

और पांडित्य का तुझे बड़ाभारी अभिमान है । मेरी उपेक्षाकरके तूने मेरी आज्ञा टालदी । बहुत शीघ्र तूभी भ्रष्टहोगा ॥ १५ ॥ अपने गुरुके इसप्रकार शापदेनेपरभी महात्मा बलिसत्य से विचलित न हुए; वामनजीकी पूजाकर जलस्पर्श पूर्वक उनको भूमिका दानदेनेलगे ॥ १६ ॥ उससमय बलिकी भार्या विन्ध्यावली मोतियों की माला और आभूषणों से विभूषितहो, चरण धोने के योग्य जलसे भराहुआ सोनेका कलस स्वामीके निकट लायी ॥ १७ ॥ यजमान बलिने परम आनन्दित होकर स्वयं वामनजी के दोनों चरणों को धो उस विश्व पावन जलको मस्तकपर धारण किया ॥ ॥ १८ ॥ उस समय स्वर्ग में देवता, गन्धर्व, सिद्ध और चारणगण सबही आनन्दित होकर उस बड़े कार्यकी प्रशंसा कर २ फूल बरसाने लगे ॥ १९ ॥ सहस्र२ दुन्दुभी बारम्बार बजनेलगीं और "इस उदारचित्त बलि राजाने बड़ाही दुष्कर कर्म किया" यह कह २ कर गन्धर्व, किन्नर, और किंपुरुषगण उत्तम स्वरसे गान करनेलगे ॥ २० ॥ देखते २ भगवान वामनजी अत्याश्चर्यरूपसे बढ़ने लगे । तीनोंरूप उसगुणके अन्तर्गतथे; अतएव पृथ्वी, आकाश, दिशाएं, स्वर्ग, विवर, समुद्र, पशु, पक्षी, नर, देव और ऋषिगण सब उसहीरूप में समारहेथे ॥ २१ ॥ बलि और उसके ऋत्विग, आचार्य और सभासदों ने महाविभूतिशाली उन हरिके गुणात्मक देहमें इस त्रिगुणात्मक विश्व और भूत, इन्द्रिय, विषय, चित्त और जीवको देखा ॥ २२ ॥ राजा बलिने उन परम पुरुष विश्वमूर्ति भगवान के पैरों नीचे रसातल चरणों में पृथ्वी, दोनों जांघों मे पर्वत घुटनों में पक्षी और साथलोंमे पवन गण को देखा ॥ २३ ॥ उनके वस्त्रोंमे संध्या गुह्य में प्रजापति, जघन में आप (बलि) और समस्त असुर लोग, नाभि में आकाश, कोख में सातो समुद्र, वक्षःस्थलमें नक्षत्र ॥ २४ ॥ हृदय में धर्म, दोनों स्तनोंमें ऋत और सत्य, मनमें चन्द्रमा, उरमें हाथ में कमल लियेहुए लक्ष्मी कंठमें सामवेद और शब्द ॥ २५ ॥ चारोंभुजाओं में समस्त इन्द्र आदि देवता, दोनों कानोंमें दिशाएं, मस्तक में स्वर्ग, केशों में मेघ, नासिकामें वायु, दोनों नेत्रों में सूर्य, मुख में अग्नि ॥ २६ ॥ वचन में वेद जिह्वा में वरुण, दोनों भौंहों के मध्यभागमें निषेध, और विधि, पलकों में दिन और रात्रि, ललाटमें क्रोध

मन्युं ललाटेऽधरएव लोभम् ॥ २७ ॥ स्पर्शे च कामं नृप रेतसाम्भः पृष्ठे त्वधर्मं क्रमणेषु यज्ञम्। छायासु मृत्युं हसिते च मायां तनूरुहेष्वोषधिजातयश्च ॥ २८ ॥ नदीश्च नाडीषु शिला नखेषु बुद्धावजं देवगणानृषींश्च। प्राणेषु गात्रे स्थिरजङ्गमानि सर्वाणि भूतानि ददर्श वीरः ॥ २९ ॥ सर्वात्मनीदं भुवनं निरीक्ष्य सर्वेऽसुराः कश्मलमापुरङ्ग। सुदर्शनं चक्रमसह्यतेजो धनुश्च शार्ङ्गं स्तनयित्नुघोषम् ॥ ३० ॥ पर्जन्यघोषो जलजः पाञ्चजन्यः कौमोदकी विष्णुगदा तरस्विनी। विद्याधरोऽसिः शतचन्द्रयुक्तस्तूणोत्तमावक्षयसायकौ च ॥ ३१ ॥ सुनन्दमुख्या उपतस्थुरीशं पार्षदमुख्याः सहलोकपालाः। स्फुरत्किरीटाङ्गदमीनकुण्डलः श्रीवत्सरत्नोत्तममेखलाम्बरैः ॥ ३२ ॥ मधुव्रतस्रग्वनमालयावृतो रराज राजन्भगवानुरुक्रमः। क्षितिं पदैकेन बलेर्विचक्रमे नभः शरीरेण दिशश्च बाहुभिः ॥ ३३ ॥ पदं द्वितीयं क्रमतस्त्रिविष्टपं न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि। उरुक्रमस्याङ्घ्रिरुपर्युपर्यथो महर्जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भा० म० अष्टम० विश्वरूपदर्शनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥ सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेन्दुभिर्हतस्वधामद्युतिरावृतोऽभ्यगात्। मरीचिमिश्रा ऋषयो बृहद्व्रताः सनन्दनाद्या नरदेव योगिनः ॥ १ ॥ वेदोपवेदा नियमान्विता यमास्तर्केतिहासाङ्गपुराणसंहिताः। ये चापरे योगसमीरदीपितज्ञानाग्निना रन्धितकर्मकल्मषाः। ववन्दिरे यत्स्मरणानुभावतः स्वायम्भुवं धाम गता अ

अधर में लोभ, ॥ २७ ॥ स्पर्श में काम, शुक्र में जल, पीठ में अधर्म, पादन्यास में यज्ञ, छायामें मृत्यु, हास्यमें माया और रोममें ओषधियें देखीं ॥ २८ ॥ तदुपरांत उस वीरने भगवान की नाड़ियों में नदी, नखोंमें शिला, बुद्धिमें ब्रह्मा, प्राणोंमें देवता और ऋषिगण तथा शरीरमें स्थावर जंगम समस्त प्राणियोंको देखा ॥ २९ ॥ हेमहाराज ! असुर, सर्वात्मा भगवान वामनजी की देह में इस त्रिभुवन को देखकर विस्मित होगये। असह्य तेजवाला सुदर्शनचक्र, मेघकी समान गंभीर शब्दवाला शृंग निर्मित धनुष ॥ ३० ॥ पांचजन्य शंख, कौमोदकी गदा, विद्याधर नामक शतचंद्र शोभित खड्ग और अक्षयबाण युक्त दो तरकस ॥ ३१ ॥ तथा सुनन्द आदि पार्षद वहांआ उपस्थितहुए। अतुल पराक्रमी हरि—प्रकाशित किरीट बाजूबंद मकराकृत कुण्डल सुन्दरशोभित, श्रीवत्सका चिह्न कौस्तुभमणि, मेखला, वस्त्र ॥ ३२ ॥ और भौरोंसे सेवित वनमाला धारण किये हुए शोभा पानेलगे। भगवानने एक पगसे पृथ्वी शरीरसे आकाश और भुजाओंसे दिशाओंको नापलिया ॥ ३३ ॥ फिर जब द्वितीय पग फैलाया तब स्वर्ग उसके निमित्त कुछ थोड़ासा हुआ परंतु तृतीय पगमें कुछभी शेष न रहा। दूसराही पग क्रमशः जनलोक और तपलोकको नापकर सत्यलोक तक चलागया ॥ ३४ ॥

इतिश्रीमद्भागवते महा० अष्टमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! भगवान वामनजीके उस चरणको सत्यलोक में उपस्थित हुआ देख ब्रह्माजी, मरीचि, सनंदनादिऋषियोंके साथ भगवानके चरणके निकट आये। भगवान के पदनखरूपी चन्द्रमाकी किरण से उनके निजस्थानकी प्रभा फीकी होगई और स्वयंभी आच्छादित होगये ॥ १ ॥ वेद, उपवेद, नियम, यम, तर्क, इतिहास, वेदांग, पुराण और संहिता इन सबोंने वहां आकर विष्णुजी को नमस्कार किया। योगरूप वायु के संयोग से उज्वल ज्ञानाग्नि द्वारा जिन मनुष्यों के कर्मफल भस्म होगयेथे, और जो लोक कर्मों द्वारा नहीं प्राप्तहोता भगवद्भक्तिके प्रभावसेही उन्होने उस ब्रह्मलोक को पाया है वे भी वहां उपस्थित हो हरिकी वन्दना क-

कर्मकम् ॥ २ ॥ अथांघ्रये प्रोन्नमिताय विष्णोरुपाहरत्पद्मभवोऽर्हणोदकम् । समर्च्य भक्त्याऽभ्यगृणाच्छुचिश्रवा यन्नाभिपङ्केरुहसम्भवः स्वयम् ॥ ३ ॥ धातुः कमण्डलुजलं तदुरुक्रमस्य पादावनेजनपवित्रतया नरेन्द्र । स्वर्धुन्यभून्नभसि सा पतती निमार्ष्टि लोकत्रयं भगवतो विशदेव कीर्तिः ॥ ४ ॥ ब्रह्मादयो लोकनाथाः स्वनाथाय समादृताः । सानुगा बलिमाजह्रुः संक्षिप्तात्मविभूतये ॥ ५ ॥ तोयैः समर्हणैः स्रग्भिर्दिव्यगन्धानुलेपनैः । धूपैर्दीपैः सुरभिभिर्लाजाक्षतफलाङ्कुरैः ॥ ६ ॥ स्तवनैर्जयशब्दैश्च तद्वीर्यमहिमाङ्कितैः । नृत्यवादित्रगीतैश्च शंखदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ ७ ॥ जाम्बवानृक्षराजस्तु भेरीशब्दैर्मनोजवः । विजयं दिक्षु सर्वासु महोत्सवमघोषयत् ॥ ८ ॥ महीं सर्वां हृतां दृष्ट्वा त्रिपदव्याजयाच्ञया । ऊचुः स्वभर्तुरसुरा दीक्षितस्यात्यमर्षिताः ॥ ९ न वायं ब्रह्मबन्धुर्विष्णुर्मायाविनां वरः । द्विजरूपप्रतिच्छन्नो देवकार्यं चिकीर्षति ॥ ॥ १० ॥ अनेन याचमानेन शत्रुणा वटुरूपिणा सर्वस्वं नो हृतं भर्तुर्न्यस्तदण्डस्य बर्हिषि ॥ ११ ॥ सत्यव्रतस्य सततं दीक्षितस्य विशेषतः । नानृतं भाषितुं शक्यं ब्रह्मण्यस्य दयावतः ॥ १२ ॥ तस्मादस्य वधो धर्मो भर्तुः शुश्रूषणं च नः । इत्यायुधानि जगृहुर्बलेरनुचराऽसुराः ॥ १३ ॥ ते सर्वे वामनं हन्तुं शूलपट्टिशपाणयः । अनिच्छतो बले राजन् प्राद्रवञ्जातमन्यवः ॥ १४ ॥ तानभिद्रवतो दृष्ट्वा दितिजानीकपान्नृप । प्रहस्यानुचरा विष्णोः प्रत्यषेधन्नुदायुधाः ॥ १५ ॥ नन्दः सुनन्दोऽथ जयो विजयः प्रबलो बलः । कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्त्रिराट् ॥ १६ ॥ जयन्तः श्रुतदेवश्च

रनेलगे ॥ २ ॥ तदुपरान्त ब्रह्माजी विष्णु भगवान के उन्नत हुए चरणकमलको धो, पूजाकर उन की भक्तिपूर्वक स्तुति करनेलगे । कमलयोनि ब्रह्माजीने उन्हीं विष्णुजीकी कमलनाभि से जन्मग्रहणकियाथा ॥ ३ ॥ ब्रह्माजीके कमण्डलुका जल, भगवानके चरण धोने के कारण पवित्र होकर स्वर्ग में नदीरूपहो आकाश गंगा के नाम से प्रसिद्ध हुआ । वह जल अबतक भगवान की निर्मल कीर्त्ति की समान आकाश से गिरकर त्रिभुवनको पवित्रकरता है ॥४॥ क्रमशः विष्णुभगवानने अपना बिस्तार छोटाकर फिर पूर्ववत बामनरूप धारण करलिया । तब ब्रह्माआदि लोकनाथ अपने अनुचरों समेत उपस्थितहो अपने स्वामी बामनरूपी विष्णु भगवानको शीतलजल, सुन्दरमाला, सुगन्धित चन्दन धूप, दीप, नैवेद्य, अक्षत, मूंगांदि और फलफूलआदि पूजाकीभेटें अर्पणकर स्तुतिकरने लगे ॥५-६॥ फिरभगवानके पराक्रम और महिमाका वर्णनकर जयशब्द उच्चारण करनेलगे और नानाप्रकारके बाजे बजाय २ नाचने तथा गानेलगे । शंख और दुन्दुभी की ध्वनि होने लगी ॥७॥ ऋक्षराज जाम्बवानने भेरीके शब्द से दिशाओं २ में विजय के महोत्सव की डौंडी पीटदी ॥ ८ ॥ तीन पग भूमि लेने के छलसे यज्ञ में दीक्षित राजाबलिकी समस्त सम्पत्ति हरीहुई देख असुरलोग महाक्रोध से कहनेलगे कि ॥ ९ ॥ अरे यह ब्राह्मण नहीं है यह बड़ाभारी मायावी विष्णु है; गुप्त-ब्राह्मणरूपसे देवताओं का कार्य सिद्ध किया चाहता है ॥ १० ॥ इस वैरी ने ब्राह्मण कुमार का रूप धारणकर भिक्षुकहो हमारे स्वामीका कि जिसने यज्ञमें दण्डका त्याग करादिया है सर्वस्व हर लियाहै ॥ ११ ॥ हमारे स्वामी निरन्तरही सत्य बोलते हैं कभी भी मिथ्यानहीं बोलते; यह ब्राह्मणों के हितैषी और दयालुहैं॥१२॥ अतएव इसबामनरूपी शत्रुका मारनाही हमारा धर्महै; इससे स्वामी की सेवाभी जानीजायगी । यह कहकर असुर अनुचरों ने बामनजीके बधके निमित्त शूल पट्टिश आदि अस्त्र शस्त्र उठाये और बलिकी इच्छा न होनेपरभी महाक्रोध से बामनजीकी ओर दौड़े ॥१३ ॥ १४ ॥ उनको दौड़ते हुए आते देख विष्णुजीके अनुचर हँसकर अपने २ अस्त्र उठा उनको निवारण करनेलगे ॥ १५ ॥ किन्तु उनको कुछभी निवृत्त न होते देख, नन्द, सुनन्द, जय, वि-

पुष्पदन्तोऽथ सात्वताः। सर्वे नागायुतप्राणाश्चमूं ते जघ्नुरासुरीम्॥ १७॥ हन्यमाना
न्स्वकान्दृष्ट्वा पुरुषानुचरैर्बलिः। वारयामास संरब्धान् काव्यशापमनुस्मरन्॥ १८॥
हे विप्रचित्ते हे राहो हे नेमे श्रूयतां वचः। मा युध्यत निवर्तध्वं न नः कालोऽयमर्थकृत्॥
॥ १९॥ यः प्रभुः सर्वभूतानां सुखदुःखोपपत्तये। तं नातिवर्तितुं दैत्याः पौरुषैरीश्वरः
पुमान्॥ २०॥ यो नो भवाय प्रागासीदभवाय दिवौकसाम्। स एव भगवानद्य वर्त
ते तद्विपर्ययम्॥ २१॥ बलेन सचिवैर्बुद्ध्या दुर्गैर्मन्त्रौषधादिभिः। सामादिभिरुपा
यैश्च कालं नात्येति वै जनः॥ २२॥ भवद्भिर्निर्जिता ह्येते बहुशोऽनुचरा हरेः। दैवेन
र्द्धैस्त एवाद्य युधि जित्वा नदन्ति नः॥ २३॥ एतान्वयं विजेष्यामो यदि दैवं प्रसीद-
ति। तस्मात्कालं प्रतीक्षध्वं यो नोऽर्थत्वाय कल्पते॥ २४॥ श्रीशुक उवाच॥ पत्यु-
र्निगदितं श्रुत्वा दैत्यदानवयूथपाः। रसां निर्विविशू राजन् विष्णुपार्षदताडिताः॥
॥ २५॥ अथ तार्क्ष्यसुतो ज्ञात्वा विराट्प्रभुचिकीर्षितम्। बबन्ध वारुणैः पाशैर्बलिं सौ
त्येऽहनि क्रतौ॥ २६॥ हाहाकारो महानासीद्रोदस्योः सर्वतो दिशम्। गृह्यमाणेऽसु
रपतौ विष्णुना प्रभविष्णुना॥ २७॥ तं बद्धं वारुणैः पाशैर्भगवानाह वामनः। नष्टश्रि
यं स्थिरप्रज्ञमुदारयशसं नृप॥ २८॥ पदानि त्रीणि दत्तानि भूमेर्मह्यं त्वयाऽसुर। द्वा
भ्यां क्रान्ता मही सर्वा तृतीयमुपकल्पय॥ २९॥ यावत्तपत्यसौ गोभिर्यावदिन्दुः स
होडुभिः। यावद्वर्षति पर्जन्यस्तावती भूरियं तव॥ ३०॥ पदैकेन मयाक्रान्तो भूर्लो
कः खं दिशस्तनोः। स्वर्लोकस्तु द्वितीयेन पश्यतस्ते स्वमात्मना॥ ३१॥ प्रतिश्रुतम

जय, प्रबल, बल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन, गरुड, ॥१६॥ जयन्त, श्रुतदेव, पुष्पदन्त आदि सब दशहजार हाथियोंका बल धारणकिये असुरसेनाका संहारकरने लगे, ॥१७॥ अपनी सेनाकोनष्टहोते देख, बलिने शुक्राचार्यके शापका स्मरणकर क्रोधित दैत्योंको निवारण किया, और कहाकि॥१८॥ हे विप्रचित्ते! हे राहो! हे नेमि! मेरीबात सुनो—युद्ध न करो, शांत होओ, यह काल इससमय हमारे अनुकूल नहीं है ॥१९॥ जो सब प्राणियों को सुख दुःखके देनेवाले हैं, पराक्रम द्वाराकोई भी उन पर आक्रमण नहीं करसकता ॥२०॥ प्रथम जो भगवान हमारे मङ्गलदाता और देवताओंको अ-मंगलदाता हुएथे, वेही इससमय इसके विपरीत कार्यमें प्रवृत्तहुएहैं ॥२१॥ बल, मंत्री, बुद्धि, दुर्ग, मंत्र, औषधि, अथवा समादि किसी उपायसे भी मनुष्य कालको नहीं जीतसकता २२ ॥ प्रथम तुमने हरिके इन्हीं अनुचरोंको बहुतबार जीताथा, किंतु इससमय यह दैवके प्रभावसे बढ़गयेहैं इसही कारण यह हमको समरमें जीतकर महागर्जन कररहे हैं ॥ २३ ॥ दैव जब हमारे अनुकूल होगा तबहम इन्हें फिर जीत सकेंगे इससे जबतककाल अपने अनुकूलहोवे तबतक उसकाल की राहदेखो ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हेराजन्! बलिकी बात सुन दैत्य सेनापति, विष्णुजीके पार्षदों के भयसे रसातलमें प्रवेश करनेको उद्यतहुए ॥ २५ ॥ फिर गरुडजीने हरिके अभिप्रायको जान यज्ञीय सोमलतापानके दिन वरुण पाशसे बलिको बांधलिया ॥ २६ ॥ बलिके बांधतेही आकाश और पृथ्वी सब दिशाओंमें घोर हाहाकार शब्द होनेलगा ॥ २७ ॥ श्रीभगवानने वरुण पाशसे बँधे हुए, श्रीभ्रष्ट, स्थिरमति, महाकीर्तिवाले बलिसे कहा कि—॥ २८ ॥ हेअसुरवर! तूनेमुझे तीन पग पृथ्वी दानकीहै, मैंने दोपगोंसे समस्त पृथ्वी नापली तीसरे पगकी भूमि कहां है सोदे ॥ २९ ॥ यह सूर्य जहांतक अपनी किरणोंसे प्रकाश पहुँचताहै, जहांतक चन्द्रमा नक्षत्रोंके साथ प्रकाश फैलता है और जहांतक सब मेघजल बरसाते हैं वहांतक तेरी भूमि है ॥ ३० ॥ मैंने एक पगसे तेरा समस्त भूमण्डल शरीर द्वारा आकाश और दिशाएं तथा दूसरे पगसे तेरे स्वर्गलोक को नापलिया

ह्यनृते निरयेवासकल्पते। विशत्वंनिरयंतस्माद् गुरुणाचानुमोदितः ॥ ३२ ॥ वृथामनोरथस्तस्य दूरेस्वर्गःपतत्यधः। प्रतिश्रुतस्याप्रदानाद्योऽर्थिनंविप्रलम्भते ॥३३॥ विप्रलब्धोददामीति त्वयाहंचाढ्यमानिना। तद्व्यलीकफलंभुङ्क्ष्व निरयंकतिचित्समाः ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० अष्टमस्कन्धे बलिनिग्रहोनामैकविंशोऽध्यायः॥ २१ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ एवंविप्रकृतोराजन् बलिर्भगवताऽसुरः। भिद्यमानोऽप्यभिन्नात्मा प्रत्याहाविक्लवंवचः ॥ १ ॥ बलिरुवाच ॥ यद्युत्तमश्लोक भवान्ममेरितं वचोऽव्यलीकंसुरवर्यमन्यते। करोम्यृतंतन्नभवेत्प्रलम्भनं पदंतृतीयंकुरुशीर्ष्णिमे निजम् ॥ २ ॥ बिभेमिनाहंनिरयात्पदच्युतो नपाशबन्धाद्व्यसनाद्दुरत्ययात्। नैवार्थकृच्छ्राद्भवतोविनिग्रहादसाधुवादाद्भृशमुद्विजेयथा ॥ ३ ॥ पुंसांश्लाघ्यतमंमन्ये दण्डमर्हत्तमार्पितम्। यंनमातापिताभ्राता सुहृदश्चादिशन्तिहि ॥ ४ ॥ त्वंनूनमसुराणांनः परोक्षःपरमोगुरुः। योनोऽनेकमदान्धानां विभ्रंशंचक्षुरादिशत् ॥ ५ ॥ यस्मिन्वैरानुबन्धेन व्यूढेनविबुधेतराः। बहवोलेभिरेसिद्धिं यामुहैकान्तयोगिनः ॥ ६ ॥ तेनाहंनिगृहीतोऽस्मि भवताभूरिकर्मणा। बद्धश्चवारुणैःपाशैर्नातिव्रीडेनचव्यथे ॥ ७ ॥ पितामहोमेभवदीयसंमतः प्रह्रादआविष्कृतसाधुवादः। भवद्विपक्षेणविचित्रवैशसं संप्रापितस्त्वत्परमःस्वपित्रा ॥ ८ ॥ किमात्मनाऽनेनजहा

है ॥३१॥ इस प्रकार से मैंने तेरा सर्वस्व लेलिया तौभी तू दान दीहुई पृथ्वीको नहीं देसका, अतएव तेरा नरकमें निवास करना उचितहै। इसकारण गुरु शुक्रकी आज्ञा लेकर नरक में जा ३२ ॥ जो ब्राह्मणोंसे प्रतिज्ञाकर फिर उनको कहाहुआ दान नहीं देसकता उसकी सब कामनाएं निष्फल होजातीहैं स्वर्गजाना तो उसका दूररहा वरन वह नरकको जाताहै ॥३३॥ तूने अपनेको धनवान जान मुझसे "दूंगा" ऐसाकहा, और अब नहींदेता। अतएव इस ठगाई और मिथ्या वार्त्ताकाफल रूप जो नरकहै उसका कुछ दिनतक भोगकर ॥ ३४ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेअष्टमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांएकविंशोऽध्यायः २१॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि–हेराजन्! भगवान वामनजीने, बलिका इसप्रकारसे अपकार किया कि वह सत्यसे चलायमान होवे परन्तु उसका चित्त विचलित न हुआ। बलिने धैर्ययुक्त यह वचन कहा कि ॥ १ ॥ हे पवित्र कीर्त्ते! हेदेवश्रेष्ठ! मैंने जो बात कहीहै क्या आप उसे मिथ्या जानते हो मैं उस बातको सत्य करूंगा, वह बात कपटकी नहीं है। आप तीसरे पगको मेरे शिर पर रक्खो ॥ २ ॥ साधूसे झूंठ बोलने में मुझको जितना भयहै उतनाभय नरक, पाशबन्धन दुःख धनका कष्ट व अपने तिरस्कार होनेकाभी नहींहै ॥३॥ महत्पुरुष जो दंड देते हैं वह दण्ड मनुष्यों को अत्यन्त सराहनीय है क्योंकि माता, पिता, भाई, बन्धु और सुहृद ऐसा दण्ड नहीं देसकते ॥ ४ ॥ यद्यपि आप असुरोंके शत्रु स्वरूपसे वर्तमानहो परन्तु यथार्थमें आप हमारेगुरूहो। मैं अत्यंत अभिमानसे अंधा होगयाथा, आपने मेरी मत्तताका नाशकर ज्ञाननेत्र दिये॥५॥योगीराज जिस सिद्धि को प्राप्त करतेहैं,उसी सिद्धिको अनेकों असुर आपसे शत्रुताकरके प्राप्त करते हैं॥६॥इससमय अनेकोंकर्म करनेवाले आपने मेरा तिरस्कार किया और वरुण पाशसे बांधा परन्तु इससे मुझे कुछभी लज्जा व दुःख नहींहै क्योंकि हेप्रभो! मुझपरजोदंडहुआहै वहदण्डनहीं किन्तु अनुग्रहहै ॥७॥मैंतुच्छ इस अपार अनुग्रहके योग्य नहींहूं। आपने अपने परमभक्त और प्यारे प्रह्लादका पौत्र जानकर मुझपर यह अनुग्रह कियाहै मेरे उन पितामह की साधुता प्रकाशित होरही है उनको आपका भक्त जान

तिपोऽन्ततः किंरिक्थहारैःस्वजनाख्यदस्युभिः। किंजायया संसृतिहेतुभूतया म
र्त्यस्यगेहैःकिमिहायुषोव्ययः ॥ ९ ॥ इत्थंसनिश्चित्य पितामहो महानगाधबोधो भ
वतःपादपद्मम्। ध्रुवंप्रपेदेह्यकुतोभयं जनाद्भीतःस्वपक्षक्षपणस्य सत्तम ॥ १० ॥
अथाहमप्यात्मरिपोस्तवान्तिकं दैवेननीतःप्रसभंत्याजितश्रीः। इदंकृतान्तान्तिकव
र्तिजीवितं ययाऽध्रुवंस्तब्धमतिर्नबुध्यते ॥ ११ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ तस्येत्थंभाषमा
णस्य प्रह्लादोभगवत्प्रियः। आजगामकुरुश्रेष्ठ राकापतिरिवोत्थितः ॥ १२ ॥ तमि
न्द्रसेनःस्वपितामहंश्रिया विराजमानंनलिनायतेक्षणम्। प्रांशुंपिशङ्गाम्बरमञ्जनत्वि
षं प्रलम्बबाहुंशुभगंसमैक्षत॥१३॥तस्मैबलिर्वारुणपाशयन्त्रितः समर्हणंनोपजहार
पूर्ववत्। ननाममूर्ध्नाऽश्रुविलोललोचनः सव्रीडनीचीनमुखोबभूवह ॥१४॥ सतत्र
हासीनमुदीक्ष्यसत्पतिं सुनन्दनन्दाद्यनुगैरुपासितम्। उपेत्यभूमौशिरसा महामना
ननाममूर्ध्नापुलकाश्रुविक्लवः ॥ १५ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ त्वयैवदत्तंपदमैन्द्रमूर्जितं
हृतंतदेवाद्यतथैवशोभनम्। मन्येमहानस्यकृतोह्यनुग्रहो विभ्रंशितोयच्छ्रियआत्म-
मोहनात् ॥ १६ ॥ ययाहिविद्वानपिमुह्यतेयतस्तत्कोविचष्टेगतिमात्मनोयथा। त
स्मैनमस्तेजगदीश्वरायवै नारायणायाखिललोकसाक्षिणे ॥१७॥ श्रीशुकउवाच ॥

उनके पिता व आपके शत्रु हिरण्य कशिपुने उन्हें नानाप्रकारसे दुःख दिया तौभी उन्होंने यही बिचारा कि— ॥ ८ ॥ देहसे क्या अभिप्रायहै ? आयुके शेष होजानेपर देह अपनेको अवश्यही छोड़जायगी स्वजनोंको लेकर क्याकरूं ? उनका नाम तो स्वजनहै परन्तु यथार्थ में वे ठग हैं वे धनका हरण करते रहतेहैं । स्त्रीही को लेकर क्या करें, ? स्त्री तो संसारका कारणहै । घरहीसे क्या प्रयोजन' घरमें रहनेसे तो केवल आयुका क्षय होताहै॥९॥और पितामह अगाध बुद्धि प्रह्लाद ने इसहीप्रकारसे विचार करके आपके चरणोंमें शरणलीथी । यद्यपि आप उनके आत्मीयजनों के संहार कारकथे तौभी वे स्वजनोंसे भयभीतहो आपहीकी शरणमें गये, ॥ १० ॥ हे प्रभो ! आप के उन चरणों का आश्रय लेनेसे फिर कोई पतित व भ्रष्ट नहींहोता, और कहींसे उसको भयभी नहीं रहता आप निश्चयही मेरे शत्रुहो परन्तु दैवने हठात् मेरी सम्पत्ति का हरणकर मुझको आप के निकट उपस्थित किया । इससे मेरा मंगलही हुआ क्योंकि धनसे जड़ बुद्धिहुए पुरुष कालके समीपवर्ती इस जीवनको अनिश्चित नहीं जानते ॥११॥श्रीशुकदेवजीबोले कि—हे कुरुश्रेष्ठ ! बलि इस प्रकार कहरहाथा कि उसी समय वहांपर प्रह्लादजी आये । उनके आतेही ऐसाजान पड़ा कि मानो पृथ्वीपर पूर्णचन्द्र उदयहुआ है॥१२॥कमलकी समान विशालनेत्र, पीताम्बर धारणकिये, श्यामवर्ण, लम्बाशरीर और लम्बीभुजावाले व शौभाग्यशाली मनुष्यों में श्रेष्ठ श्री युक्त अपने पितामह प्रह्लादको इन्द्रके अहङ्कार नाशी राजाबलिने देखा ॥ १३ ॥ किन्तु पाशमें बँधे होने के कारण प्रथमकी समान पूजा न करसका केवल मस्तक झुकाकर प्रणाम करलिया ॥ उसके दोनों नेत्रों में अश्रु आगये और वह नीचे को शिर करके रहगया ॥ १४ ॥ साधुओंके पतिहरि बलि के निकट बैठेहुए हैं सुनन्द और नन्दआदि पार्षद उनकी सेवा कररहे हैं यह देखकर उदारचित्त प्रह्लाद ने मनमें विचाराकि पौत्रपर भगवानका अनुग्रह हुआ है । प्रह्लाद यह जानकर पुलकित होगये और भगवानके निकट जा नेत्रों के जल से व्याकुलहो पृथ्वी पर मस्तक झुकाय प्रणामकर कहनेलगे कि ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! आपनेही बलिको सम्पत्ति युक्त इन्द्र पद दियाथा, इससमय आपने उसका हरणकरलिया । ज्ञात होता है कि आपने इसे श्रीरहितकर इसपर विशेष कृपा की है श्री—आत्मविस्मृति उत्पन्न करती है ॥ १६ ॥ जिसश्री से विद्वान और संयमी मनुष्य मोहित होजाते हैं, उस श्रीके रहते हुये कौनमनुष्य भलीप्रकार से आत्मतत्वको जानसकता है ? आ-

तस्यानुशृण्वतोराजन् प्रह्लादस्यकृताञ्जलेः। हिरण्यगर्भोभगवानुवाचमधुसूदनम्
॥ १८ ॥ बद्धंवीक्ष्यपतिंसाध्वी तत्पत्नीभयविह्वला। प्राञ्जलिःप्रणतोपेन्द्रं बभाषेऽ
वाङ्मुखीनृप ॥ १९ ॥ विन्ध्यावलिरुवाच ॥ क्रीडार्थमात्मनइदंत्रिजगत्कृतं तेस्वा
म्यंतुतत्रकुधियोऽपरईशकुर्युः। कर्तुःप्रभोस्तवकिमस्यतआवहन्ति त्यक्तह्रियस्त्व
दवरोपितकर्तृवादः ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भूतभावनभूतेश देवदेवजगन्मय। मु
ञ्चैनंहृतसर्वस्वं नायमर्हतिनिग्रहम् ॥ २१ ॥ कृत्स्नातेऽनेनदत्ता भूर्लोकाःकर्मार्जि
ताश्चये। निवेदितंचसर्वस्व मात्माऽविक्लवयाधिया ॥ २२ ॥ यत्पादयोरशठधीः
सलिलंप्रदाय दूर्वाङ्कुरैरपिविधायसतींसपर्याम्। अप्युत्तमांगतिमसौभजतेत्रिलो
कीं दाश्वानविक्लवमनाःकथमार्तिमृच्छेत् ॥ २३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मन्यमनु
गृह्णामि तद्विशोविधुनोम्यहम्। यन्मदःपुरुषःस्तब्धो लोकंमांचावमन्यते ॥२४॥
यदाकदाचिज्जीवात्मा संसरन्निजकर्मभिः। नानायोनिष्वनीशोऽयं पौरुषींगति
माव्रजेत् ॥ २५ ॥ जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः। यद्यस्यनभवेत्स्तम्भस्त
त्रायंमदनुग्रहः ॥ २६ ॥ मानस्तम्भनिमित्तानां जन्मादीनांसमन्ततः। सर्वश्रेयःप्र
तीपानां हन्तमुह्येन्नमत्परः ॥ २७ ॥ एषदानवदैत्यानामग्रणीःकीर्तिवर्धनः। अजै
षीदजयांमायां सीदन्नपिनमुह्यति ॥ २८ ॥ क्षीणरिक्थश्च्युतःस्थानात् क्षिप्तोबद्ध

पने इसपर दयाप्रकाशकी है। आपजगदीश्वर नारायण, सर्वलोक के साक्षी हो आपको नमस्कार है ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन्! ब्रह्माजी हाथजोड़े खड़े हुए महात्मा प्रह्लाद के सामने कुछ भगवानसे कहना चाहते थे इतनेहीमें देखा कि बलिकी स्त्री विन्ध्यावली भी भगवानसे कुछ निवेदन करने आई है, अतएव उसके सन्मानार्थ ब्रह्माजीकुछ कालके निमित्त चुप होगये॥१८॥साध्वी विन्ध्यावली पति को पाशसे बँधाहुआ देख भयभीतहो बामनजीको प्रणामकर और हाथजोड़नीचे को मुखकरके कहनेलगी कि ॥१९॥ हे ईश्वर! आपने अपनी क्रीड़ाके निमित्त इस त्रिलोकी की रचनाकी है; आपके अतिरिक्त जो अपनेहीको कर्त्ता जानते हैं वे मूढ हैं।आपही इस जगतके उत्पन्न करने वाले, पालनेवाले व संहारनेवालेहो। और दूसरेपुरुषों को "हमस्वतंत्रहै" ऐसी बात करने का अधिकार भी आपहीने दिया है अतएव मनुष्य आपको क्या देने की इच्छा करें? क्या उनको लज्जानहीं है? ॥२०॥ ब्रह्माजी बोले कि हे भूतनाथ! हे देवदेव! हे जगन्मय! आपने बलिका सर्वस्व हरलियाहै अब इसको छोड़दो। बलि अपमान योग्य नहींहै ॥ २१ ॥ बलि ने अकातर चित्तसे आपको सब पृथ्वी दानकरदी, सब कर्मभी कि जिनसे उसने लोकोंको पाया था, आपहीके अर्पण करदिये सर्वस्वदेनेके अनन्तर जो शरीररहगया वहभी आपहीको देदिया॥ ॥ २२ ॥ जिन आपके चरणोंमें निष्कपट होकर जो केवल जलमात्र अर्पण करे और केवल दूबके अंकुरसे आपकी पूजाकरे तो वहभी श्रेष्ठगतिको प्राप्त होताहै फिर—इस मनुष्यने तो दृढ़तापूर्वक त्रिलोकी का राज्य देदिया तो फिर क्या यह दुःख भोगे? इसको छोड़दो ॥ २३ ॥ श्रीभगवान बोले कि हेब्रह्मन्! मैं जिसपर दया करताहूं उसके धनको हर लेताहूं धनसे मत्तता उत्पन्न होती है; और मत्तता होतेही मनुष्य लोकका और मेरा निरादर करतेहैं ॥ २४ ॥ जीवात्मा अपने कर्म के कारण पराधीनहो क्रमसे कीटादि नाना योनियोंमें भ्रमणकर अन्तमें जब नर योनिमें प्राप्त होताहै ॥ २५ ॥ तब यदि जन्म, कर्म, रूप, विद्या, ऐश्वर्य और धनादिसे गर्वित न होवे तब जानना चाहिये कि इसपर मेरी दयाहै ॥ २६ ॥ जन्मादिही अभिमान रूप अनम्रताके कारण और येही समस्त मंगलोंके प्रतिकूलहैं। मेरा भक्त इन सब बातोंसे मोहित नहीं होता ॥ २७ ॥ इस दैत्य कुलमें सर्व श्रेष्ठ और कीर्तिवर्धक राजा बलिने अजयामायाको जीतलिया कष्ट पाकरके भी बलि

...ज्ञातिभिश्च परित्यक्तो यातनामनुयापितः ॥ २९ ॥ गुरुणाभर्त्सितःश
प्तो जहौसत्यंनसुव्रतः । छलैरुक्तोमयाधर्मो नायंत्यजतिसत्यवाक् ॥ ३० ॥ एषमे
प्रापितःस्थानं दुष्प्रापममरैरपि । सावर्णेरन्तरस्यायं भवितेन्द्रोमदाश्रयः ॥ ३१ ॥
तावत्सुतलमध्यास्तां विश्वकर्मविनिर्मितम् । यत्राधयोव्याधयश्च क्लमस्तन्द्रापरा
भवः । नोपसर्गानिवसतां संभवन्तिममेक्षया ॥ ३२ ॥ इन्द्रसेनमहाराज याहिभो
भद्रमस्तुते । सुतलंस्वर्गिभिःप्रार्थ्यं ज्ञातिभिःपरिवारितः ॥ ३३ ॥ नत्वामभिभवि
ष्यन्ति लोकेशाःकिमुतापरे । त्वच्छासनातिगान्दैत्यांश्चक्रंमेसूदयिष्यति ॥ ३४ ॥
रक्षिष्येसर्वतोऽहंत्वां सानुगंसपरिच्छदम् । सदासन्निहितंवीर तत्रमांद्रक्ष्यतेभवान्
॥ ३५ ॥ तत्रदानवदैत्यानां संगात्तेभावआसुरः । दृष्ट्वामदनुभावंवै सद्यःकुण्ठो
विनङ्क्ष्यति ॥ ३६ ॥

इतिश्री भ० महा० अष्टमस्कंधे प्रह्लादवामनसम्वादोनामद्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

श्रीशुक उवाच इत्युक्तवन्तंपुरुषपुरातनंमहानुभावोऽखिलसाधुसंमतः । ब
द्धाञ्जलिर्बाष्पकलाकुलेक्षणो भक्त्युत्कलो गद्गदयागिराऽब्रवीत् ॥ १ ॥ बलिरु
वाच ॥ अहोप्रणामायकृतः समुद्यमः प्रपन्नभक्तार्थविधौसमाहितः । यल्लोकपालै
स्त्वदनुग्रहोऽमरैरलब्धपूर्वोऽपसदेऽसुरेऽर्पितः ॥ २॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा
हरिमानम्यब्रह्माणंसभवंततः । विवेशसुतलंप्रीतोबलिर्मुक्तः सहासुरैः ॥ ३ ॥ एव

मोहित न हुआ ॥ २८ ॥ द्रव्यगया, पदसे गिराया गया शत्रुओंके हाथमे बांधागया, जातिवालोंने छोड़दिया दुःखपाया ॥ २९ ॥ गुरुने तिरस्कार किया, शापदिया तौभी इस सत्यव्रत बलिने सत्य-धर्मको न छोड़ा । मैंने कपट पूर्वक इसके धर्मको डिगाया परंतु यह अपने धर्ममें दृढ़रहा ॥ ३० ॥ अतएव मैंने इसको देवताओं को भी जो दुर्लभहै सो पददिया यह बलि सावर्णि मन्वन्तरमे इन्द्र होगा ॥ ३१ ॥ जबतक वह मन्वन्तर न आवे तबतक यह विश्वकर्माके बनायेहुये सुतललोकमें बासकरे । वहांपर मेरीदृष्टि रहनेसे आधि,व्याधि,क्लम तन्द्रा,पराभव और भौतिक उत्पात होनेकीवहां सम्भावना नहींहै ॥ ३२ ॥ तदुपरांत हरिने बलिसे कहा कि तुम अपने जातिवालोंको साथले सुतललोक को,कि जिसकी अभिलाषा देवतातक करतेहैं जावो तुम्हारा कल्याण होवे ॥ ३३ ॥ अधिक क्या लोक पाल भी तुम्हें परास्त न करसकेंगे । जो दैत्य तुम्हारी आज्ञा न मानेंगे उनका शिर मेरे चक्र से काटा जावेगा ॥ ३४ ॥ मैं तेरे सब अनुचरोंको और घरकी सामग्रीकी भलीप्रकारसे रक्षाकरूं गा । हेवीर ! मैं सत्य कहताहूं तुम देखोगे कि मै सदा तेरे द्वारापर उपस्थित रहूंगा ॥ ३५ ॥ दानव और दैत्योंके साथ रहनेके कारण जो तुम्हारा यह आसुरी स्वभाव उत्पन्नहुआहै वह सब स्वभाव मुझे देख २ कर मेरे प्रभावसे नाश होजायगा ॥ ३६ ॥

इतिश्री मद्भा० महापुराणे अष्टमस्कन्धे सरलाभाषाटीकायाद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

श्री शुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! पुराणपुरुष भगवानके इस प्रकार से कहनेपर साधुओंक प्रशंसनीय महानुभाव बलि, भक्तिवशसे व्यग्रहो हाथजोड़, आनन्दाश्रु बहातेहुए गद्गदवाणी से भगवानसे कहने लगे ॥ १ ॥ राजाबलिने कहाकि—अहो ! प्रणाम करने के निमित्त जो उद्यम कियाजाता है केवलवही उद्यम आपके भक्तों का कार्य सिद्ध करता है । आपकी जो दया प्रथम लोकपाल व देवताओं को भी नहीं प्राप्त हुई थी वह दया केवल प्रणाम करने सही मुझ नीच असुर को प्राप्त हुई है ॥ २ ॥ श्री शुकदेवजीबोले कि—बंधनसे छूटाहुआ राजाबलि यहश्ह ब्रह्मा, महेश और विष्णुजी को प्रणामकर आनन्दितहो असुरों को साथ ले सुतललोकको गया ॥ ३ ॥

निन्द्राय भगवान्प्रत्यानीयाभिविष्टपम्। पूरयित्वाऽदितेः काममशासत्सकलं जगत्
॥ ४ ॥ लब्धप्रसादं निर्मुक्तं पौत्रं वंशधरं बलिम्। निशाम्य भक्तिप्रवण. प्रह्लाद इदमब्र-
वीत् ॥ ५ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ नेमं विरिञ्चो लभते प्रसादं न श्रीर्न शर्वः किमुतापरे ते।
यन्नोऽसुराणामसि दुर्गपालो विश्वाभिवन्द्यैरभिवन्दिताङ्घ्रि ॥ ६ ॥ यत्पादपद्ममकर-
न्दनिषेवणेन ब्रह्मादयः शरणदाश्नुवते विभूतीः। कस्माद्वयं कुसृतयः खलयोनयस्ते
दाक्षिण्यदृष्टिपदवीं भवतः प्रणीता ॥ ७ ॥ चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमायालीला-
विसृष्टभुवनस्य विशारदस्य। सर्वात्मनः समदृशोऽविषमः स्वभावो भक्तप्रियो यदसि
कल्पतरुस्वभावः ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वत्स प्रह्लाद भद्रं ते प्रयाहि सुतलालयम्।
मोदमान स्वपौत्रेण ज्ञातीनां सुखमावह ॥ ९ ॥ नित्यं द्रष्टासि मां तत्र गदापाणिमव-
स्थितम्। मद्दर्शनमहाह्लादध्वस्तकर्मनिबन्धन। १०। श्रीशुक उवाच। आज्ञां भगवतो
राजन् प्रह्लादो बलिना सह। बाढमित्यमलप्रज्ञो मूर्ध्न्याधाय कृताञ्जलिः ॥ ११ ॥ प
रिक्रम्यादिपुरुषं सर्वासुरचमूपति। प्रणतस्तदनुज्ञातः प्रविवेश महाबिलम् ॥ १२।
अथाहोशनसं राजन्हरिर्नारायणोऽन्तिके। आसीनमृत्विजां मध्ये सदसि ब्रह्मवादि
नाम् ॥ १३ ॥ ब्रह्मन्सन्तनु शिष्यस्य कर्मच्छिद्रं वितन्वतः। यत्तत्कर्मसु वैषम्यं ब्रह्म-
दृष्टं समं भवेत् ॥ १४ ॥ शुक उवाच। कुतस्तत्कर्मवैषम्यं यस्य कर्मेश्वरो भवान्। य-
ज्ञेशो यज्ञपुरुषः सर्वभावेन पूजित. ॥ १५ ॥ मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः

श्रीभगवान इसप्रकारसे इन्द्रको स्वर्गका राज्यदे, अदितिकी कामना पूर्णकर त्रिभुवनका पालन क-
रनेलगे ॥ ४ ॥ बलिवर प्रसन्न बन्धन से छूटगया यह देख भक्त चूणामणि प्रह्लाद ने कहा ॥
॥ ५ ॥ कि हे मधुसूदन ! यह जगत जिनको प्रणाम करता है वे ब्रह्मादिक देवताभी आपको प्र
णाम करते हैं वह आप जगत के वन्दनीय होकरभी असुरों के गढके रक्षकहुए। दूसरे की बात
दूररही यह वर क्या ब्रह्मा, क्या लक्ष्मी और क्या महेश्वर किसाने भी नहीं पाया ॥ ६ ॥ हेभक्त
वत्सल ! ब्रह्माआदि जिनके चरणकमलों के मधुका पानकर विभूतिओं का भोगकरते हैं उनआप
की कृपाकटाक्ष हमारे ऊपर कैसे हुई क्योंकि हमतो दुराचारी और क्रूरयोनि से उत्पन्न हुए हैं ॥
॥ ७ ॥ आप सर्वज्ञ हो, आपही अपरिमेय योगमायाकी लीलाद्वारा जगतको उत्पन्न करतेहो अ-
तएव आप सब के आत्मा और समदर्शीहो। कल्पवृक्षकी समान आप सबकीही इच्छा पूर्ण करते
हो। तौभी आप भक्तोंके पक्षपातीहो आपका यह विषमस्वभाव अत्यन्तविचित्र है॥८॥श्रीभगवान
बोले कि—हेवत्स ! हेप्रह्लाद ! तुम सुतललोकको जाओ तुम्हारा कल्याण होवे। अपने पौत्रके
साथ आनन्दसे समय व्यतीतकर जातिवालोंको सुखदो ॥९॥ देखोगे कि मैं सुतलमें गदा हाथमें
लिये बैठाहूं। मुझको देखकर जो आनन्द होगा उससे तुम्हारा अज्ञान दग्ध होजावेगा ॥ १० ॥
श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! समस्त असुरोंके सेनापति निर्मल बुद्धिवाले प्रह्लादने बलिके
साथ हाथजोड जोड" जो आज्ञा,, कह भगवान की आज्ञा स्वीकारकी। और परिक्रमा व प्रणाम
कर सुतललोकको गये। ११—१२। हेराजन् ! उससमय शुक्राचार्य ब्रह्मवेत्ताओंकी सभामें पुरो
हितोंके बीच भगवानके निकट बैठेथे। बलिके पाताल जानेपर भगवानने शुक्राचार्यसे कहा कि—
॥ १३ ॥ हेब्रह्मन् ! यज्ञ करनेवाले शिष्यके यज्ञमें कुछ न्यूनता रहीहो आप उसे पूरीकरो कर्ममें
जो कुछ न्यूनता रहजाय,व० ब्राह्मणोंहीकी दृष्टिसे परिपूर्ण होजाती है॥ १४॥ शुक्राचार्यजीने कहा
कि हेभगवन् आप यज्ञेश्वर यज्ञपुरुष और ईश्वरहो। जिसनेआपको समस्तसामग्री देकर आपकी
पूजाकीहै उसके कर्ममें न्यूनता कैसे रहसकतीहै ॥ १५ ॥ मन्त्र, तन्त्र, देशकाल, पात्र व दक्षिणा

सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव ॥ १६ ॥ तथाऽपिवदतो भूमन्करिष्याम्यनुशासनम् । एतच्छ्रेयःपरंपुंसां यत्तवाज्ञाऽनुपालनम् ॥ १७ ॥ श्रीशुकउवाच । अभिनन्द्य हरेराज्ञामुशना भगवानिति । यज्ञच्छिद्रंसमाधत्त बलेर्विप्रर्षिभिःसह ॥ १८ ॥ एवंबलेर्महीं राजन्भिक्षित्वा वामनोहरिः । ददौभ्रात्रेमहेन्द्राय त्रिदिवंयत्परैर्हृतम् १९ प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा देवर्षिपितृभूमिपैः । दक्षभृग्वङ्गिरोमुख्यैः कुमारेणभवेनच ॥ २० ॥ कश्यपस्यादितेःप्रीत्यै सर्वभूतभवायच । लोकानां लोकपालानामकरोद्वामनं पतिम् ॥ २१ ॥ वेदानांसर्वदेवानां धर्मस्ययशसःश्रियः । मङ्गलानांव्रतानांच कल्पंस्वर्गापवर्गयोः ॥ २२ ॥ उपेन्द्रंकल्पयांचक्रे पतिंसर्वविभूतये । तदासर्वाणिभूतानि भृशंमुमुदिरेनृप ॥ २३ ॥ ततस्त्विन्द्रःपुरस्कृत्य देवयानेनवामनम् । लोकपालैर्दिवंनिन्ये ब्रह्मणाचानुमोदितः ॥ २४ ॥ प्राप्यत्रिभुवनंचेन्द्र उपेन्द्रभुजपालितः । श्रिया परमयाजुष्टो मुमुदेगतसाध्वसः ॥ २५ ॥ ब्रह्माशर्वः कुमारश्च भृग्वाद्यामुनयोनृप । पितरः सर्वभूतानि सिद्धावैमानिकाश्चये ॥ २६ ॥ सुमहत्कर्म तद्विष्णोर्गायन्तः परमाद्भुतम् । धिष्ण्यानिस्वानिते जग्मुरदितिंचशशंसिरे ॥ २७ ॥ सर्वमेतन्मयाख्यातं भवतःकुलनन्दन । उरुक्रमस्यचरितं श्रोतॄणामघमोचनम् ॥ २८ ॥ पारंमहिम्नउरुविक्रमतोगृणानो यः पार्थिवानिविममेसरजांसिमर्त्यः । किंजायमानउतजातउपैतिमर्त्यः इत्याहमन्त्रदृगृषिःपुरुषस्ययस्य ॥ २९ ॥ यइदंदेवदेवस्य हरेरद्भुतकर्मणः । अ

आदिमें जो कुछ न्यूनता रहजाताहै वह आपके गुणके कीर्तनसे परिपूर्ण होजाती है ॥ १६ ॥ तोभी हेभूमन् ! आप जो आज्ञा करतेहो उसका मैं पालन करूंगा । आपकी आज्ञाका पालन करनाही मनुष्योंका परममङ्गलहै ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हेराजन् ! शुक्राचार्यने भगवानकी आज्ञा मान, बलिके यज्ञमें जो न्यूनता रहीथी, विप्रर्षियोंके साथ उस न्यूनताको पूर्ण किया ॥ १८ ॥ हे-महाराज ! वामनरूपी हरिने बलिसे इसप्रकार पृथ्वीले अपने भ्राता इन्द्रको अर्पणकी ॥ १९ ॥ फिर प्रजापतियोंके पति ब्रह्मा, महादेव, देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य, और दक्ष, भृगु, अंगिरा आदि प्रजापति तथा सनत्कुमार सबहो एकचित्तहो कश्यप और अदिति के आनन्ददेन तथा सब प्राणियोंके कल्याणके निमित्त वामनजीको लोक और लोकपालोंका अधिपति बनाया ॥ २० ॥ २१ ॥ समस्त प्राणियों की समृद्धि बढानेके निमित्त पालन करनेमें चतुर वामनजीको वेद, देवता, धर्म, कीर्ति, लक्ष्मी, मंगल, व्रत तथा स्वर्ग व मोक्षके पालन कार्य में नियुक्त किया । हेराजन् ! उससमय समस्त प्राणी अत्यन्त प्रसन्न हुए । २२—२३ ॥ फिर इन्द्र ब्रह्माजीकी अनुमतिले लोकपालों युक्त विमानमें बैठ वामनजी को आगेकर स्वर्गमें लगये ॥ २४ ॥ इन्द्र, त्रिभुवन प्राप्तकर वामनजीकी भुजाओंके बलसे रक्षित होनेलगे, वह श्रेष्ठ समृद्धिके स्वामीहो निर्भयतासे आनन्दका अनुभव करनेलगे ॥ २५ ॥ हेराजन् ! ब्रह्मा शिव सनत्कुमार, भृगु आदि मुनिगण, पितर, सिद्ध और वैमानिक गण आदि समस्त प्राणी ॥ २६ ॥ भगवानके अद्भुत चरित्रका गान करते २ अपने २ स्थानको गये और अदितिकी प्रशंसा करनेलगे, ॥ २७ ॥ हेकुलनन्दन ! मैंने तुमसे भगवान के समस्त चरित्रोंका वर्णन किया इसके सुननेसे सुननेवाले के पाप नष्ट होजातेहैं २८ ॥ जो मनुष्य पराक्रमशाली परमेश्वरकी समस्त महिमा के वर्णन करनेकी इच्छा करताहै वह मानो पृथ्वीके रजकण गिनना चाहताहै । मंत्र और मन्त्र वेत्ता मनुष्योंने कहाहै कि जन्मेहुए मनुष्योंमें से भगवानकी महिमा को कोई नहीं जानसकता २९ ॥ जो मनुष्य अद्भुत कर्मवाले भगवानके इन

वतारानुचरितं शृण्वन्यातिपरांगतिम् ॥ ३० ॥ क्रियमाणेकर्मणीदं दैवे पित्र्येऽथ- मानुषे। यत्रयत्रानुकीर्त्येत तत्तेषां सुकृतं विदुः ॥ ३१ ॥

इति श्रीमद्भा० म० अष्टमस्कंधे वामनावतारचरिते त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

राजोवाच। भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि हरेरद्भुतकर्मणः। अवतारकथामाद्यां माया मत्स्यविडम्बनम् ॥ १ ॥ यदर्थमदधाद्रूपं मात्स्यंलोकजुगुप्सितम्। तमःप्रकृतिदुर्मर्षं कर्मग्रस्तइवेश्वरः ॥२॥ एतन्नोभगवन्सर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि। उत्तमश्लोकचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥ ३ ॥ सूतउवाच॥ इत्युक्तोविष्णुरातेन भगवान्बादरायणिः। उवाच चरितं विष्णोर्मत्स्यरूपेण यत्कृतम् ॥ ४ ॥ श्रीशुकउवाच। गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपिचेश्वरः। रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्यचैवहि ॥ ५ ॥उच्चावचेषुभूतेषु चरन्वायुरिवेश्वरः। नोच्चावचत्वंभजते निर्गुणत्वाद्धियोगुणैः ॥ ६ ॥ आसीदतीतकल्पान्ते ब्राह्मोनैमित्तिकोलयः। समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोकाभूरादयोनृप ॥ ७ ॥ कालेनागतनिद्रस्य धातुःशिशयिषोर्बली। मुखतोनिःसृतान्वेदान्हयग्रीवोऽन्तिकेऽहरत् ॥ ८ ॥ ज्ञात्वातद्दानवेन्द्रस्य हयग्रीवस्यचेष्टितम्। दधारशफरीरूपं भगवान्हरिरीश्वरः॥९॥तत्रराजऋषिःकश्चिन्नाम्ना सत्यव्रतोमहान्। नारायणपरोऽतप्यत् तपःससलिलाशनः ॥ १० ॥ योऽसावस्मिन्महाकल्पे तनयःसविवस्वतः श्राद्धदेवइतिख्यातो मनुत्वेहरिणाऽर्पितः ॥ ११ ॥ एकदाकृतमालायां कुर्वतोजलतर्पणम्। तस्यांजल्युदकेकाचिच्छफर्येकाऽभ्यपद्यत ॥ १२ ॥ सत्यव्रतोऽञ्जलिगतांसहतोयेनभारत। उत्ससर्जनदीतोये शफरींद्रविडेश्वरः ॥ १३ ॥ तमाहसाऽति

चरित्रोंको सुनेगा वह श्रेष्ठगतिको प्राप्त होवेगा ॥ ३० ॥ देवता पितर अथवा मानुषिक कर्म करने के समय यदि इन चरित्रोंका कीर्तन किया जाय तो सब कर्म भलीप्रकारसे सिद्धहोवें ॥ ३१ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेअष्टमऽस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

राजा परीक्षितने कहाकि—हे ब्रह्मन्! अद्भुत कर्मा भगवान ने माया से जोप्रथम मत्स्यावतार की लीला की है उस लीला के सुनने की मेरीइच्छा है ॥ १ ॥ मत्स्यरूप जगत में निंदित, तमोगुण रूप और असह्य है फिर भगवान ने कर्म ग्रस्तजीवके समान किस कारण उस मत्स्यरूपको धारण कियाथा ॥ २ ॥ आप उसका यथार्थ वर्णन करें। पवित्र कीर्त्ति भगवान के चरित्र सबही मनुष्यों को सुखदेते हैं ॥ ३ ॥ सूतजी बोलेकि—विष्णुभक्त राजा परीक्षित के इस प्रकार से कहने पर भगवान मत्स्य रूपने जो २ किया था, शुकदेव जी उन सबका वर्णन करने लगे ॥ ४ ॥ श्री शुकदेव जी बोलेकि—हे राजन्! गौ, ब्राह्मण, देवता, साधू, धर्म और अर्थ कीरक्षा करने केनिमित्त भगवान समय २ पर अवतार ग्रहण किया करते हैं ॥ ५ ॥ वे बुद्धिके गुणों से वायुकी समान ऊंच और नीच प्राणियों में भ्रमण करते हैं परन्तु वे स्वयं निर्गुण हैं इससे वे ऊंच नीच नहीं होते ॥ ६ ॥ हे राजन्! बीतेहुए कल्पके अंतमें ब्रह्माजी के निद्राआने रूपसे नैमित्तिक प्रलय हुआ उसमें भूरादि समस्तलोक समुद्रमें डूबगये ॥ ७ ॥ कालवश विधाता के निद्रित होनपर सबवेद उनके मुखसे बाहरहो निकट गिपरड़े, हयग्रीव दैत्य उन सब वेदोंको हरलेगया ॥ ८ ॥ भगवान विष्णु जीने हयग्रीव के उस कर्मको जानकर तत्काल मत्स्यरूप धारण किया ॥ ९ ॥ उस समय सत्यव्रत नामक कोई एक नारायण परायण राजर्षि जलमें बैठाहुआ तपस्या कररहाथा ॥ १० ॥ वही सत्यव्रत इस कल्पमें विवस्वान(सूर्य)का पुत्रश्राद्ध देव नामसे विख्यात हुआ और भगवानने इसको मनुकी पदवी दी ॥ ११ ॥ सत्यव्रत एक दिन कृतमाला नदीमें जलसे तर्पण कररहाथा कि इतने हीमें उसकी अंजलि के जलमें एक मछली चलीआई ॥ १२ ॥ हे भरत नंदन! द्राविड़ेश्वर सत्यव्रतने उस अंजली में आईहुई मछली को जलहीमें डालदिया ॥ १३ ॥ तब मछली ने उस परम

करुणं महाकारुणिकं नृपम् । यादोभ्योज्ञातिघातिभ्यो दीनांमांदीनवत्सल । कथं विसृजसेराजन् भीतामस्मिन्सरिज्जले ॥ १४ ॥ तमात्मनोऽनुग्रहार्थं प्रीत्यामत्स्य वपुर्धरम् । अजानन्रक्षणार्थाय शफर्याःसमनोदधे ॥ १५ ॥ तस्यादीनतरंवाक्य मा श्रुत्यसमहीपतिः । कलशाप्सुनिधायैनां दयालुर्निन्यआश्रमम् ॥ १६ ॥ सातुतत्र करात्रेण वर्धमानाकमण्डलौ । अलब्ध्वात्मावकाशंवा इदमाहमहीपतिम् ॥ १७ ॥ नाहंकमण्डलावस्मिन् कृच्छ्रंवस्तुमिहोत्सहे । कल्पयौकःसुविपुलं यत्राहंनिवसे सुखम् ॥ १८ ॥ सएनांततआदाय न्यधादौदंचनोदके । तत्रक्षितामुहूर्तेन हस्तत्र यमवर्धत ॥ १९ ॥ नमएतदलंराजन् सुखंवस्तुमुदञ्चनम् । पृथुदेहिपदंमह्य यत्वा ऽहंशरणंगता ॥ २० ॥ ततआदायसाराज्ञा क्षिप्ताराजन्सरोवरे । तदावृत्यात्मना सोयं महामीनोऽन्ववर्धत ॥ २१ ॥ नैतन्मेस्वस्तयेराजन् नुदकंसलिलौकसः । नि धेहिरक्षायोगेन ह्रदेमामविदासिनी ॥ २२ ॥ इत्युक्तःसोऽनयन्मत्स्यं तत्रतत्राविदा सिनि । जलाशयेऽसंमितंतं समुद्रेप्राक्षिपज्झषम् ॥ २३ ॥ क्षिप्यमाणस्तमाहेद मि हमांमकरादयः । अदन्त्यतिबलावीर मांनेहोत्स्रष्टुमर्हसि ॥ २४ ॥ एवंविमोहित स्तेन वदतावल्गुभारतीम् । तमाहकोभवानस्मान् मत्स्यरूपेणमोहयन् ॥ २५ ॥ नै वंवीर्योजलचरो दृष्टोऽस्माभिःश्रुतोऽपिच । योभवान्योजनशतमह्नाऽभिव्यानशेस रः ॥ २६ ॥ नूनंत्वंभगवान्साक्षाद्धरिर्नारायणोऽव्ययः । अनुग्रहायभूतानां धत्से रूपंजलौकसाम् ॥२७॥ नमस्तेपुरुषश्रेष्ठस्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वर । भक्तानांनःप्रपन्ना

दयालु राजासे करुणायुक्त होकर कहाकि—हे दीनवत्सल! मैं दुर्बल हूं मैं अपनी जातिके घातकी मत्स्य और ग्राह आदिकों से भयपाती हूं आप मुझेक्यों त्यागतेहो ॥ १४ ॥ हे राजन्! सत्यव्रत पर कृपा प्रकाश करने के निमित्तही नारायण ने मत्स्य देह धारण कीथी; किंतु सत्यव्रत इसे नहीं जानताथा तौभी राजाने अनुग्रह करके उस मछली की रक्षाकरने का विचार किया ॥ १५ ॥ दयालुराजा उसके अतिदीन वचनोंको सुन कमंडलु के जलमें रख उसको अपने स्थानको लाया ॥१६॥ मछली एक रात्रिमेंही उस कमंडलु में बढ़उठी और अपने रहनेका स्थान उसमें न देख राजास बोलीकि ॥ १७ ॥ हेराजन्! मैं इस कमंडलु में सुखसे बास नहीं करसकता। जहांपर मैं सुखसे वासकरसकूं वह स्थान मेरे निमित्त नियतकरो ॥ १८ ॥ राजाने उसको कलश में से निकालकर मटके के जलमें रक्खा। वह वहांभी एक मुहूर्त में तीनहाथ बढगई तबफिर कहने लगी ॥१९॥ कि हे राजन्! मैं इस मटके के जलमें भी सुखसे नहीं रहसकती अतएव मुझको कोई बड़ा स्थानदो, क्योंकि मैं आपके शरणागत हूं ॥ २० ॥ हे राजन्! उस महीपति सत्यव्रतने उसे मटकेसे निकाल सरोवर में रक्खा तब उस सरोवर के जलकोभी ढककर वह एक बड़ाभारी मत्स्य बनगई, और कहाकि ॥ २१ ॥ हे राजन्! हमजल निवासी हैं परन्तु इस सरोवर के जलसे मैं तृप्त नहीं होता। आपने मेरीरक्षा करने का भारलिया है; अतएव जहां जलका शेष न होवे उस कुंडमें मुझेलेचलो ॥ २२ ॥ मछली की इस बातको सुनकर राजा सत्य व्रतनें उसेले एक २ करके समस्त अक्षय जलोंके जलाशयों में डाला परन्तु वह एक २ करके समस्तही जलाशयों में बढ़गया। अतमें राजा उस मत्स्यको सागर के जलमें डालनेको लेगया ॥ २३ ॥ ज्योंही राजा मत्स्यको डालने लगा त्योंही मत्स्यने कहाकि—हे वीर! अधिक बलवाले जलचर यहांमुझे खाजायेंगे; अतएव इस सागर के जलमें आपमुझे न डालो ॥ २४ ॥ मधुरभाषी मत्स्यकी बातोंसे मोहितहो राजा सत्य व्रतने उससे कहाकि—आप कौनहो जोमत्स्य रूपसे मुझे मोहित कररहेहो ॥ २५ ॥ मैंनेतो ऐसा पराक्रमी जलचर न देखा न सुना, आप एकही दिनमें सौ योजन तालाबमें फैलगये ॥ २६ ॥ आप निश्चयही साक्षात् भगवान हरिहो, प्राणियों के कल्याण करने केनिमित्तही आपने जलचर रूप धारण किया है

नां मुख्योह्यात्मगतिर्विभो ॥ २८ ॥ सर्वेलीलाऽवतारास्ते भूतानांभूतिहेतवः । ज्ञा
तुमिच्छाम्यदोरूपं यदर्थंभवताधृतम् ॥२९॥ नतेऽरविन्दाक्षपदोपसर्पणं मृषाभवेत
सर्वसुहृत्प्रियात्मनः । यथेतरेषांपृथगात्मनांसतामदीदृशोयद्वपुरद्भुतंहिनः ॥ ३० ॥
श्रीशुकउवाच ॥ इतिब्रुवाणंनृपतिंजगत्पतिः सत्यव्रतंमत्स्यवपुर्युगक्षये । विहर्तुका
मःप्रलयार्णवेऽब्रवीच्चिकीर्षुरेकान्तजनप्रियःप्रियम् ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥
सप्तमेऽद्यतनादूर्ध्वं मह्न्येतदरिन्दम । निमंक्ष्यत्यप्ययाम्भोधौ त्रैलोक्यंभूर्भुवादिक
म् ॥ ३२ ॥ त्रिलोक्यांलीयमानायां संवर्त्ताम्भसिवैतदा । उपस्थास्यतिनौःकाचि
द्विशालात्वांमयेरिता ॥ ३३ ॥ त्वंतावदोषधीःसर्वा बीजान्युच्चावचानिच । स
प्तर्षिभिःपरिवृतः सर्वसत्वोपबृंहितः ॥ ३४ ॥ आरुह्यबृहतींनावं विचरिष्यस्यवि
क्लवः । एकार्णवेनिरालोके ऋषीणामेववर्चसा ॥ ३५ ॥ दोधूयमानांतांनावं स-
मीरेणबलीयसा । उपस्थितस्यमेशृंगे निबध्नीहिमहाहिना ॥ ३६ ॥ अहंत्वामृषि
भिःसाकं सहनावमुदन्वति । विकर्षन्विचरिष्यामि यावद्ब्राह्मीनिशाप्रभो ॥३७॥
मदीयंमहिमानंच परंब्रह्मेतिशब्दितम् । वेत्स्यस्यनुगृहीतमे संप्रश्नैर्विवृतंहृदि ३८॥
इत्थमादिश्यराजानं हरिरन्तरधीयत । सोऽन्ववैक्षततंकालं यंहृषीकेशआदिशत्
॥ ३९ ॥ आस्तीर्यदर्भान्प्राक्कूलान्राजर्षिःप्रागुदङ्मुखः । निषसादहरेःपादौ चि-
न्तयन्मत्स्यरूपिणः ॥ ४० ॥ ततःसमुद्रउद्वेलः सर्वतःप्लावयन्महीम् । वर्धमानो

॥ २७ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! आपको नमस्कार है ! हे विभो ! आप जगतकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके करने वालेहो; और हमारी समान विपद् में फंसेहुए भक्तों के मुख्य आत्मा और आश्रय हो ॥ २८ ॥ आप क्रीड़ा के निमित्त जो २ अवतार धारण करते हो वे समस्तही प्राणियों के कल्याण के देनेवाले हैं जिसकारणसे यह आपने मत्स्यरूप धारण किया है उसके जानने की मेरी इच्छा है ॥ २९ ॥ हे पद्मपलाशलोचन ! आप सबके बन्धु और प्रियआत्माहो; अहंकारी देहधारी के जो दूसरेजनों की चरणसेवा करते हैं और वह निष्फल जाती है वैसे आपके चरणों की सेवा निष्फल नहीं जाती । आपने यह अद्भुत देह दिखाकर मुझे विस्मितकर दिया है ॥ ३० ॥ शुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! राजा सत्यव्रत के इस प्रकार से पूछनेपर, युगके अन्त में प्रलयसागर में क्रीडा करने के निमित्त मत्स्यरूपधारी भक्तों के प्रिय जगदीश्वर ने उससे अपने अभिप्रायको प्रकट किया ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान बोले कि—हे शत्रुतापन ! आज से सातवें दिन यह समस्त त्रिलोकी जलमें डूब जायगी ॥ ३२ ॥ मैं उसी समय एक नौका भेजूंगा; वह बृहत् नौका तुम्हारे समीप आवेगी ॥ ३३ ॥ तुम समस्त औषधियों, छोटे और बडे बीज तथा समस्त प्राणियों को ले सप्तर्षियों समेत उस बड़ी नौका में चढकर ऋषियों के ब्रह्मतेज के बलसे उस अंधियारे प्रलय सागर में विचरते रहना ॥ ३४—३५ ॥ जब प्रचण्ड वायु वेग से नौका डिगमगावेगी उस समय मैं उपस्थित हूंगा । तुम महासर्प वासुकि द्वारा उसनौकाको मेरे सींगमें बांध देना ॥ ३६ ॥ मैं ऋषियों और तुम्हारे साथ नौका को खींचकर ब्रह्माजी की सम्पूर्ण रात्रितक समुद्र में विचरण करूंगा ॥ ३७ ॥ " परब्रह्म " इस नाम से मेरी महिमा है उसके विषय में तू मुझसे प्रश्न करेगा उसका मैं उत्तर दूंगा कि जिससे मेरी महिमा तेरे हृदय में व्याप्तहोजायगी ॥ ३८ ॥ राजा से इस प्रकार कह भगवान अन्तर्ध्यान होगये । नारायण जितने दिनकी आज्ञाकर गये थे राजा सत्यव्रत उन दिनों की राह देखने लगा ॥ ३९ ॥ वह कुशका अग्रभागपूर्वकी ओर कर उसपर बैठ मत्स्यरूपीभगवान हरिके चरणकमलों का चिंतवन करनेलगा ॥ ४० ॥ तदुपरान्त उसने देखा कि—

महामेघैर्वर्षद्भिः समप्लवत ॥ ४१ ॥ ध्यायन्भगवदादेशं ददृशे नावमागताम्। तामारुरोह विप्रेन्द्रैरादायौषधिवीरुधः ॥ ४२ ॥ तमूचुर्मुनयः प्रीता राजन्ध्यायस्व केशवम्। स वै नः संकटादस्मादविता शं विधास्यति ॥ ४३ ॥ सोऽनुध्यातस्ततो राज्ञा प्रादुरासीन्महार्णवे। एकशृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः ॥ ४४ ॥ निबध्य नावं तच्छृङ्गे यथोक्तो हरिणा पुरा। वरत्रेणाहिना तुष्टस्तुष्टाव मधुसूदनम् ॥४५॥ राजोवाच। अनाद्यविद्योपहतात्मसंविदस्तन्मूलसंसारपरिश्रमातुराः। यदृच्छयेहोपसृता यमाप्नुयुर्विमुक्तिदो नः परमो गुरुर्भवान् ॥ ४६ ॥ जनोऽबुधोऽयं निजकर्मबन्धनः सुखेच्छया कर्म समीहतेऽसुखम्। यत्सेवया तां विधुनोत्यसन्मतिं ग्रन्थिं स भिन्द्याद्धृदयं स नो गुरुः ॥४७॥ यत्सेवयाऽग्नेरिव रुद्ररोदनं पुमान्विजह्यान्मलमात्मनस्तमः। भजेत वर्णं निजमेष सोऽव्ययो भूयात्स ईशः परमो गुरोर्गुरुः ॥ ४८ ॥ न यत्प्रसादायुतभागलेशमन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम्। कर्तुं समेताः प्रभवन्ति पुंसस्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ४९ ॥ अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृतस्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः। त्वमर्कदृक्सर्वदृशां समीक्षणो वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥ ५० ॥ जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिं यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः। त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमञ्जसा प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥ ५१ ॥ त्वं सर्वलोकस्य सुहृत्प्रियेश्वरो ह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभी

मेघों के निरन्तर बरसने से समुद्र तीरपरकी भूमि को छाड़कर पृथ्वीको चारोंओर से डुबोनेलगा है ॥ ४१ ॥ भगवान ने जो कुछ कहाथा सत्यव्रत ने वही चिन्ता करते २ देखा कि एकनाव उस के निकट आ उपस्थित हुई । राजा समस्त औषधि और लताओं ऋषियों समेत उस नौकापर बैठा ॥ ४२ ॥ मुनियों ने प्रसन्नहोकर कहा कि—हेराजन्! भगवानकी चिन्ताकरो वही हमारे इस संकटको दूर करेंगे, और हमारे कल्याणका साधन करेंगे ॥ ४३ ॥ फिर राजाके ध्यान करनेपर, महासागरके बीचमें एक शृङ्गधारी दशसहस्रयोजन के विस्तारवाला सुवर्णका मत्स्य प्रगटहुआ ॥ ॥ ४४ ॥ राजाने सन्तुष्ट होकर नारायणकी आज्ञानुसार उस मत्स्यके शृंग में वासुकि रूपरज्जू द्वारा नौका बांधदी और भगवान की स्तुति करने लगा ॥ ४५ ॥ राजाने कहा कि—अनादिकाल की अविद्या से जिनका आत्मज्ञान ढकाहुआहै और अविद्या मूलकसंसार परिश्रममें कातरहै उसी इससंसार में जिसको जिनकी कृपाप्राप्त होती है वे साक्षात् मुक्ति देनेवाले आप परमगुरु होकर मेरे हृदयकी ग्रन्थिका छेदनकरो ॥४६॥यह मूर्ख मनुष्य अपने पूर्वजन्मके कर्मों में बँधकर सुखकी अभिलाषा से बडे २ दुःख भुगतकर कर्म करते रहते हैं उस सुखकी कामनारूप दुर्बुद्धि जिनकी सेवा से दूरहोजाती है वेही भगवान आप मेरे परमगुरु होकर मेरी मोह ग्रन्थिका छेदनकरो ॥४७॥ सोना और रूपा जैसे अग्निके स्पर्शसे मलत्यागकर अपने वर्णको प्राप्त करते हैं उसीप्रकार जिस की सेवा करनेसे मनुष्य आत्माके मल स्वरूप अज्ञानको छोडकर स्वस्वरूप को प्राप्त होताहै, वेही भगवान आप हमारे गुरूहो, क्योंकि आप गुरुओंकेभी परमगुरुहो, ॥ ४८ ॥ अन्य अन्य देवता, और गुरुजन सब एकत्रित होकर मनुष्यको जिनके वरके दशसहस्रवें भागका लेशमात्रभी नहीं देसकते, आप वही ईश्वरहो आपकी मैं शरणहूं ॥ ४९ ॥ अंधेको मार्ग दिखानेवाले अंधेकी समान मूर्खको मूर्ख गुरू मिलनेसे उसे कष्ट होताहै। किन्तु आपका ज्ञान सूर्यके प्रकाशकी समान स्वतः हीं प्रकाशमानहै अतएव आप समस्त इन्द्रियोंके प्रकाशकहो मुझे आत्म गतिके जाननेकी इच्छाहै अतएव मैं आपको गुरू करताहूं ॥ ५० मनुष्य मनुष्यको जो उपदेश देताहै वह दूषितहै क्योंकि- शिष्य उससे अंधकारहीमें प्रवेश करताहै किंतु आप अक्षय ज्ञानका उपदेश करतेहो मनुष्य उस ज्ञानसे निश्चयही निजपद को प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ आप सब मनुष्योंके मित्र, प्रिय, आत्मा

ष्टसिद्धिः । तथापिलोकोनभवन्तमन्धधीर्जानातिसन्तंहृदिबद्धकामः ॥ ५२ ॥ तं त्वामहंदेववरंवरेण्यं प्रपद्यईशंप्रतिबोधनाय । छिन्ध्यर्थदीपैर्भगवन्वचोभिर्ग्रन्थीन् हृदय्यान्विवृणुस्वमोकः ॥ ५३ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ इत्युक्तवन्तंनृपतिं भगवानादिपूरुषः । मत्स्यरूपीमहाम्भोधौ विहरंस्तत्त्वमब्रवीत् ॥ ५४ ॥ पुराणसंहितांदिव्यां सांख्ययोगक्रियावतीम् । सत्यव्रतस्यराजर्षे रात्मगुह्यमशेषतः ॥ ५५ ॥ अश्रौषी दृषिभिःसाक मात्मतत्त्वमसंशयम् । नाव्यासीनोभगवता प्रोक्तंब्रह्मसनातनम्॥५६ अतीतप्रलयापाय उत्थितायसवेधसे । हत्वासुरंहयग्रीवं वेदान्प्रत्याहरद्धरिः॥५७॥ सतुसत्यव्रतोराजा ज्ञानविज्ञानसंयुतः । विष्णोःप्रसादात्कल्पेऽस्मिन्नासीद्वैवस्वतोमनुः ॥ ५८ ॥ सत्यव्रतस्यराजर्षेर्मायामत्स्यस्यशार्ङ्गिणः । सम्वादंमहदाख्यानं श्रुत्वामुच्येतकिल्बिषात् ॥ ५९ ॥ अवतारोहरेर्योऽयं कीर्तयेदन्वहंनरः । संकल्पास्तस्यसिध्यन्ति सयातिपरमांगतिम् ॥ ६० ॥ प्रलयपयसिधातुःसुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः श्रुतिगणमपनीतंप्रत्युपादत्तहत्वा । दितिजमकथयद्योब्रह्मसत्यव्रतानां तमहमखिलहेतुंजिह्ममीनंनतोऽस्मि ॥ ६१ ॥

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे मत्स्यावतारचरितानुवर्णनंनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥
अष्टमस्कन्धोयं समाप्तः ॥

ईश्वर, गुरू, ज्ञान और अभीष्ट सिद्धिके देनेवालेहो, आप हृदयमें बास करतेहो परन्तु अन्ध बुद्धि और तृष्णासे बंधाहुआ यह लोक आपको नहीं जानता ॥ ५२ ॥ मैं ज्ञान प्राप्ति के निमित्तही श्रेष्ठ देवता ईश्वर आपकी शरण आयाहूं । हेभगवन् ! परमार्थ प्रकाशक वाक्य द्वारा हृदयमें उत्पन्नहुई अहंकारादि ग्रन्थियों का छेदन करके निजरूपको प्रकाशित करो ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि राजर्षिके ऐसे कहनेपर भगवान महासागरके जलमें मत्स्यरूपमे विहार करते २ उन्हे तत्वका उपदेश देनलगे ॥ ५४ ॥ उन्होंने सांख्य योग और क्रियायुक्त दिव्य मत्स्य पुराण संहिता, तथा व्याख्या और आत्मज्ञानका भी नानाप्रकारसे उपदेश किया ५५ ॥ राजाने ऋषियों समेत नौका पर बैठ भगवान के मुखसे संशयहीन आत्मतत्व और सनातन वेदको सुना ॥ ५६ ॥ फिर बीते हुएप्रलयके अन्तमें ब्रह्माजीके उठनेपर दानवारि हरिने हयग्रीवको मार उससे वेद लेलिये॥५७॥वह राजा सत्यव्रत विष्णुजीकी कृपासे ज्ञान विज्ञान युक्तहो इस कल्पमें बवस्वत मनु हुआहै ॥ ५८ ॥ जो मनुष्य राजा सत्यव्रत और मत्स्यरूपी भगवानका चरित्र सुनेगे वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जावेगें ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य प्रतिदिन भगवानके इस अवतार का कीर्त्तन करेगा उसके समस्त मनोरथ सिद्ध होंगे और वह अन्तमें परमगतिको प्राप्त होगा, ॥ ६० ॥ ब्रह्माजीकी शक्ति निद्रित होनेपर प्रलयकाल मे जिस दानवने उनके मुखसे वेद हरेथे उस दानव को जिसने मार वेदों का उद्धारकर सत्यव्रत और ऋषियोंको सनातन वेदका उपदेश कियाथा; मै उन्हीं अखिल कारण माया मत्स्यरूपी भगवान को नमस्कार करताहूं ॥ ६१ ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणेअष्टमस्कन्धेश्रीमदनवयाविद्वद्वरसारस्वतकुलोद्भवपण्डितजगन्नाथतनूज पं०कन्हैयालालशर्मनिर्मितायांसरलाभाषाटीकायांचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥
अष्टमस्कंधोयं समाप्तः ॥

श्रीमद्भागवत भाषाटीका सहित.

नवमस्कन्ध.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ राजोवाच ॥ मन्वन्तराणिसर्वाणित्वयोक्तानिश्रुतानिमे । वीर्याण्यनन्तवीर्यस्यहरेस्तत्रकृतानिच ॥ १ ॥ योऽसौसत्यव्रतोनामराजर्षिर्द्रविडेश्वरः । ज्ञानयोऽतीतकल्पान्तेलेभेपुरुषसेवया ॥ २ ॥ सवैविवस्वतः पुत्रामनुरासीदितिश्रुतम् । त्वत्तस्तस्यसुताश्चोक्ताइक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः ॥ ३ ॥ तेषांवंशंपृथक्ब्रह्मन्वंश्यानुचरितानिच । कीर्तयस्वमहाभागनित्यंशुश्रूषतांहिनः ॥ ४ ॥ येभूताये भविष्याश्चभवन्त्यद्यतनाश्चये । तेषांनः पुण्यकीर्तीनांसर्वेषांवदविक्रमान् ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ एवंपरीक्षितारात्रासदसिब्रह्मवादिनाम् । पृष्टः प्रोवाचभगवाञ्छुकः परमधर्मवित् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ श्रूयतांमानवोवंश. प्राचुर्येणपरंतप । नशक्यतेविस्तरतोवक्तुंवर्षशतैरपि ॥ ७ ॥ परावरेषांभूतानामात्माय: पुरुषः परः । सएवासीदिदंविश्वकल्पान्तेऽन्यन्नकिंचन ॥ ८ ॥ तस्यनाभे. समभवत्पद्मकोशोहिरण्मयः । तस्मिञ्जज्ञेमहाराजस्वयंभूश्चतुराननः ॥ ९ ॥ मरीचिर्मनसस्तस्यजज्ञेतस्यापिकश्यपः । दाक्षायण्यांततोऽदित्यांविवस्वानभवत्सुतः ॥ १० ॥ ततोमनुः श्राद्धदेवः संज्ञायामासभारत । श्रद्धायांजनयामासदशपुत्रान्सआत्मवान् ॥ ११ ॥ इक्ष्वाकुनृगशर्यातिदिष्टधृष्टकरूषकान् । नरिष्यन्तपृषध्रंच नभगंचकविंविभुः । १२ ।

श्रीगणेशायनमः राजा परीक्षित नें कहा कि हे भगवन् ! आपने सब मन्वन्तरों का वर्णन किया और उन मन्वन्तरों में श्री भगवाननें जो २ पराक्रम किये थे वे सबभी मैंने सुने ॥ १ ॥ तथा द्रविड देश का राजा सत्यव्रत, बीतेहुए कल्पके अंतिमभाग में जिस प्रकार भगवान की सेवाकर ज्ञान प्राप्त कर विवस्वत पुत्र मनु होकर उत्पन्न हुआ, उसकाभी वर्णन सुना इक्ष्वाकु आदि राजा उसी वैवस्वत मनु के पुत्र हैं उन सब राजाओं के पृथक् २ वंश और वंशानु चरित्र सुननें की मेरी अत्यंही इच्छा है सो आप कृपा करके उन सबका वर्णन करिये ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे महात्मन् ! उस वंश में जो मनुष्य उत्पन्न होगए जो होंगें और जो अबभी वर्तमान हैं उन सबका और उनके पराक्रम का यथार्थ वर्णन करो ॥५॥ सूतजी बोले कि ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों की सभा में राजा परीक्षितके इस प्रकार पूछनेंपर परम धर्मज्ञ शुकदेवजी कहनेंलगे कि ॥ ६ ॥ हे परंतप ! सैकडों वर्षों मेंभी मनुवंश का विस्तार नहीं कहाजासकता तौभी मैं अपनी शक्तिके अनुसार उनके वंश के मुख्य२ विषयोंका वर्णन करता हूं सो सुनो ॥ ७ ॥ जो भगवान छोटे बडे सब प्राणियो के आत्मा है, कल्पांत में केवल वही थे और कुछभी नहीं था ॥ ८ ॥ उन परम पुरुष की नाभि से एक सुवर्णमय कमल उत्पन्न हुआ हे महाराज ! उससे चतुर्मुख ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी के मनसे मरीचि उत्पन्न हुए मरीचि के कश्यपजी हुए कश्यपजी के वीर्य से दक्षकी पुत्री अदिति के गर्भसे सूर्य उत्पन्न हुए ॥ १० ॥ हे भारत ! उन्हीं सूर्य से संज्ञाके गर्भसे श्राद्धदेव मनुने जन्म ग्रहण किया । उनके वीर्यसे उनकी पत्नी श्रद्धाके गर्भसे दशपुत्र उत्पन्न हुए ॥ ११ ॥ उनके नाम यह हैं,-इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट,

अप्रजस्यमनोःपूर्वं वसिष्ठोभगवान्किल । मित्रावरुणयोरिष्टिं प्रजार्थमकरोत्प्रभुः ॥ ॥ १३ ॥ तत्रश्रद्धामनोःपत्नी होतारंसमयाचत । दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्यपयोव्रता ॥ १४ ॥ प्रेषितोऽध्वर्युणा होता ध्यायंस्तत्सुसमाहितः । हविषिव्यचरत्तेन वषट्कारंगृणन्द्विजः ॥ १५ ॥ होतुस्तद्व्यभिचारेण कन्येलानामसाऽभवत् । तां विलोक्य मनुःप्राह नातिहृष्टमनागुरुम् ॥ १६ ॥ भगवन्किमिदंजातं कर्मवोब्रह्मवादिनाम् । विपर्ययमहोकष्टं मैवस्याद्ब्रह्मविक्रिया ॥ १७ ॥ यूयंमन्त्रविदोयुक्तास्तपसा दग्धकिल्बिषाः । कुतः संकल्पवैषम्यमनृतं विबुधेष्विव ॥ १८ ॥ तन्निशम्यवचस्तस्य भगवान्प्रपितामहः । होतुर्व्यतिक्रमंज्ञात्वा बभाषेरविनन्दनम् ॥ १९ ॥ एतत्संकल्पवैषम्यं होतुस्तेव्यभिचारतः । तथाऽपिसाधयिष्ये ते सुप्रजास्त्वंस्वतेजसा ॥ २० ॥ एवंव्यवसितो राजन्भगवान्समहायशाः । अस्तौषीदादिपुरुषमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया । ॥ २१ ॥ तस्मैकामवरंतुष्टो भगवान्हरिरीश्वरः । ददाविलाऽभवत्तेन सुद्युम्नःपुरुषर्षभ ॥ २२ ॥ सएकदामहाराज विचरन्मृगयांवने । वृतः कतिपयामात्यैरश्वमारुह्य सैन्धवम् ॥ २३ ॥ प्रगृह्यरुचिरंचापं शरांश्चपरमाद्भुतान् । दंशितोऽनुमृगंवीरो जगामदिशमुत्तराम् ॥ २४ ॥ सकुमारोवनंमेरोरधस्तात्प्रविवेशह । यत्रास्तेभगवाञ्छर्वो रममाणः सहोमया ॥ २५ ॥ तस्मिन्प्रविष्टएवासौ सुद्युम्नःपरवीरहा । अपश्यत्स्त्रियमात्मानमश्वं च वडवांनृप ॥ २६ ॥ तथातदनुगाःसर्वेआत्मलिङ्गविपर्ययम् । दृष्ट्वाविमनसोऽभवन्वीक्ष्यमाणाः परस्परम् ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ कथमेवंगुणो

धृष्ट, करूपक, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि ॥ १२ ॥ हे राजन्! इक्ष्वाकु आदि की उत्पत्ति के पहिले मनु निःसंतान थे; इस कारण प्रभाव शाली वसिष्ठजी ने संतान के निमित्त मित्रावरुण नामक यज्ञ कराया ॥ १३ ॥ मनुकी पत्नी श्रद्धाने उस यज्ञमें केवल दुग्ध पानकर उत्कट नियम धारण किया और होताके निकटआय प्रणामकर कन्या उत्पन्न होनेके निमित्त प्रार्थना की ॥ १४ ॥ अध्वर्यु की प्रेरणासे होताने हविको ग्रहणकर मुखस वषट्कारका उच्चारण और हृदय में कन्या की प्रार्थनाकर यज्ञ कराया ॥ १५ ॥ होताके एसे फेर फारसे मनुके इलानाम कन्या उत्पन्न हुई । उसको देख उदास चित्तहो मनुने गुरूसे कहाकि ॥ १६ ॥ हे भगवान! आप ब्रह्म वेताहो, आप से यह विपरीत कार्य कैसे हुआ ! अहो ! कैसे दुःखकी बात है ! इस प्रकार से मन्त्रका व्यर्थ होना उचित नहीं ॥ १७ ॥ आप मन्त्रज्ञ और योगीहो; तपरूप अग्निसे आपके समस्त पाप नाशहोगये हैं, देवताओं के मिथ्या भाषणकी समान असंभवनीय आप के संकल्पमें यह विषमता कैसेहुई ॥ १८ ॥ हेराजन्! मनुके इसप्रकारके वचनसुन महर्षि वसिष्ठजीने होताका अपराध जानकर मनुसे कहा कि—॥ १९ ॥ हेवत्स! यद्यपि तुम्हारे होताने अन्यथाचरण कियाहै तौभी मैं अपने तेजसे तुमको पुत्रवान करूगा ॥ २० ॥ हेराजन्! महायशा वसिष्ठ ऐसा कहकर इलाके पुरुष होनेकी इच्छासे भगवान आदिपुरुषकी इच्छासे भगवान आदि पुरुषकी स्तुति करनलगे ॥ २१ ॥ भगवानने संतुष्ट होकर उनकी इच्छानुसार वरदान दिया उससे मनु कन्या इला सुद्युम्न नामसे श्रेष्ठ पुरुषहुई २२ हेमहाराज ! और सुद्युम्न एकदिन बनमें शिकार करनेके निमित्त सिंधुदेशके घोड़ेपर सवारहो कितनेही एक मंत्रि और सैनियोंको साथले सुन्दर धनुष और बाण धारणकर मृगके पीछे २ आता हुआ उत्तर दिशाकी ओर आनिकला ॥ २३—२४ । मेरूके नीचे का बन हर पार्वतीका विहारस्थान है ॥ २५ ॥ कुमार सुद्युम्न उस बनमें आतेही स्त्रीत्वको प्राप्त होगया, और उसका घोड़ाभी घोड़ी होगया । उसने अपनेको स्त्रीरूपी और घाड़ेको घोड़ीके स्वरूप में देखा ॥ २६ ॥ उसके सब अनुजरभी अपने शरीरमें विपरीत चिह्न देख, उदास मनहो एक दूसरेकी ओर देखनेलगे ॥ २७ ॥

देशः केनवाभगवन्कृतः । प्रश्नमेनंसमाचक्ष्वपरंकौतूहलंहिनः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदागिरिशंद्रष्टुमृषयस्तत्रसुव्रताः । दिशोवितिमिराभासाः कुर्वन्तः समुपागमन् ॥ २९ ॥ तान्विलोक्याम्बिकादेवीविवासाव्रीडिता भृशम् । भर्तुरङ्कात्समुत्थायनीवीमाश्वथपर्यधात् ॥ ३० ॥ ऋषयोऽपितयोर्वीक्ष्यप्रसङ्गंरममाणयोः । निवृत्ताः प्रययुस्तस्मान्नरनारायणाश्रमम् ॥ ३१ ॥ तदिदंभगवानाहप्रियायाः प्रियकाम्यया । स्थानंयः प्रविशेदेतत्सवैयोषिद्भवेदिति ॥ ३२ ॥ ततऊर्ध्वंवनंतद्वैपुरुषावर्जयन्तिहि । साचानुचरसंयुक्ताविचचारवनाद्वनम् ॥ ३३ ॥ अथतामाश्रमाभ्याशेचरन्तींप्रमदोत्तमाम् । स्त्रीभिः परिवृतांवीक्ष्यचकमेभगवान् बुधः ॥ ३४ ॥ साऽपितंचकमेसुभ्रूः सोमराजसुतंपतिम् । सतस्यांजनयामासपुरूरवसमात्मजम् ॥ ३५ ॥ एवंस्त्रीत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नोमानवोनृपः । सस्मारस्वकुलाचार्यंवसिष्ठमितिशुश्रुम ॥ ३६ ॥ सतस्यतांदशांदृष्ट्वाकृपयाभृशपीडितः । सुद्युम्नस्याशयंपुंस्त्वमुपाधावतशंकरम् ॥ ३७ ॥ तुष्टस्तस्मैसभगवानृषयेप्रियमावहन् । स्वांचवाचमृतांकुर्वन्निदमाहविशांपते ॥ ३८ ॥ मासंपुमान्सभवितामासंस्त्रीतवगोत्रजः । इत्थंव्यवस्थयाकामंसुद्युम्नोऽवतुमेदिनीम् ॥ ३९ ॥ आचार्यानुग्रहात्कामंलब्ध्वापुंस्त्वंव्यवस्थया । पालयामासजगतीनाभ्यनन्दन्स्मतंप्रजाः ॥ ४० ॥ तस्योत्कलोगयो

राजा परीक्षितने कहा कि—हे भगवन्! वह स्थानकिस कारण ऐसे गुणयुक्तहोगयाथा और किसने उसको ऐसा करदियाथा? इस विषयमें मुझे अत्यन्त कौतूहल उत्पन्नहोताहै। अतएव मेरे प्रश्नका उत्तरदो॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हेराजन् एकदिन सुव्रत ऋषिगण भगवान महादेवजीके दर्शनोंकी इच्छासे अपने२ प्रभाव द्वारा दिशाओं के अंधकारको नाश करते हुए उस वनमें आनिकले ॥२९॥ उस समय भगवती पार्वती और वस्त्रथीं। मुनियों को देखकर वह अत्यंत लज्जित हुई और शीघ्रता पूर्वक पतिकी गोदसे उठकर तत्कालही वस्त्र पहिनलिये ॥ ३० ॥ महादेवजी और पार्वतीजीको क्रीड़ा करतेदेख ऋषिभी अत्यन्त कलुषित चित्तहो वहांसे लौट नरनारायण के आश्रम में आये ॥ ३१ ॥ अनन्तर भगवानशंकरने प्यारीको प्रसन्न करनेके लिये कहा कि "अब से जोमनुष्य इस स्थानपर आवेगा वह तत्कालही स्त्री होजायगा" ॥ ३२ ॥ हे राजन्! उस समयसे मनुष्यों ने उस वनका जाना छोड़दिया राजा सुद्युम्न अनुचरों समेत स्त्रीत्वको प्राप्तहो वन२ में भ्रमण करनेलगा॥३३॥एकदिन वहसब स्त्रियों समेत भगवानबुधके आश्रमके निकट आया। बुधने उसको देखा, देखतेही उनको काम उत्पन्न होआया ॥ ३४ ॥ इस ओर चन्द्रतनयको स्त्री रूपी सुद्युम्न नेभी देखकर उसे पतिकरन की इच्छा प्रगटकी बुधने उसको ग्रहणकर उसके गर्भसे पुरूरवा नामक एकपुत्र उत्पन्न किया ॥ ३५ ॥ हे राजन्! सुनते हैं कि—मनुपुत्र सुद्युम्न ने इस प्रकार से स्त्रीत्वको प्राप्तहो अपने कुलगुरु महर्षि वशिष्ठजी का स्मरण किया॥ ३६ ॥ महर्षि वहांपर आय और उसकी ऐसीदशादेख कृपावशहो अत्यत कातर होगये और उसको फिरपुरुष करनेकी आशा दे आप शंकरके समीप आय उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३७ ॥ हे राजन्! भगवान महादेवजी संतुष्टहो उनको प्रसन्न करते और अपने वचनकी रक्षाकरते हुए कहने लगेकि ॥ ३८ ॥ तुम्हारा गोत्रज सुद्युम्न एक मास पुरुष और एक मास स्त्री रहेगा। इसप्रकार से वह राजकुमार पृथ्वीका पालन करे ॥ ३९ ॥ हे राजन्! इसप्रकार कुलगुरू वशिष्ठजी की कृपासे यद्यपि सुद्युम्न फिर पुंसत्वको प्राप्तहो पृथ्वीका पालन करता था, तोभी मासके अंतमें स्त्रीत्वको प्राप्तहो लज्जाके कारण गुप्त रहता था। अतएव प्रजागण उसपर अप्रसन्न थे ॥ ४० ॥ इस सुद्युम्नके उत्कल, गय और

राजन् विमलश्च सुतास्त्रयः । दक्षिणापथराजानो बभूवुर्धर्मवत्सलाः ॥ ४१ ॥ ततः परिणतेकालेप्रतिष्ठानपतिः प्रभुः । पुरूरवसउत्सृज्यगांपुत्रायगतोवनम् ॥ ४२ ॥

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कंधेइलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ एवंगतेऽथसुद्युम्ने मनुर्वैवस्वतः सुते । पुत्रकामस्तपस्तेपे य मुनायांशतंसमाः ॥ १ ॥ ततोऽयजन्मनुर्देव मपत्यार्थंहरिंप्रभुम् । इक्ष्वाकुपूर्वजान् पुत्रान् लेभेस्वसदृशान्दश ॥ २ ॥ पृषध्रस्तुमनोःपुत्रो गोपालोगुरुणाकृतः । पाल यामासगायत्तो रात्र्यांवीरासनव्रतः ॥ ३ ॥ एकदाप्राविशद्गोष्ठं शार्दूलोनिशिव र्षति । शयानागावउत्थाय भीतास्ताबभ्रमुर्व्रजे ॥ ४ ॥ एकांजग्राहबलवान् सागौ क्रोशभयातुरा । तस्यास्तत्क्रन्दितंश्रुत्वा पृषध्रोऽभिससारह ॥ ५ ॥ खड्गमादाय तरसा प्रलीनोडुगणेनिशि । अजानन्नहनद्बभ्रोः शिरःशार्दूलशंकया ॥ ६ ॥ व्याघ्रो पिवृक्णश्रवणो निस्त्रिंशाग्राहतस्ततः । निश्चक्रामभृशंभीतो रक्तंपथिसमुत्सृजन् । ॥ ७ ॥ मन्यमानोहतंव्याघ्रं पृषध्रःपरवीरहा । अद्राक्षीत्स्वहतांबभ्रुं व्युष्टायांनिशि दुःखितः ॥ ८ ॥ तंशशापकुलाचार्यः कृतागसमकामतः । नक्षत्रबन्धुःशूद्रस्त्वं क र्मणाभवितामुना ॥ ९ ॥ एवंशप्तस्तुगुरुणा प्रत्यगृह्णात्कृतांजलिः । अधारयद्व्र तंवीर ऊर्ध्वरेतामुनिप्रियम् ॥ १० ॥ वासुदेवेभगवति सर्वात्मनिपरेमले । एकान्ति त्वंगतोभक्त्या सर्वभूतसुहृत्समः ॥ ११ ॥ विमुक्तसंगःशान्तात्मा संयताक्षोऽपरि ग्रहः । यदृच्छयोपपन्नेन कल्पयन्वृत्तिमात्मनः ॥ १२ ॥ आत्मन्यात्मानमाधाय ज्ञा.न

विमल यह तीनपुत्र उत्पन्नहुए वह तीनोंही धर्मपरायण और दक्षिणदशाके राजाहुए ॥ ४१ ॥ तदुपरांत बहुत कालके बीतनेपर सुद्युम्न वृद्धहो अपनेपुत्र पुरूरवाको पृथ्वीका राज्यदे वनको चलागया ॥ ४२ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्री शुकदेवजीबोले कि—हेराजन्! सुद्युम्नके इसप्रकार वन चले जानेपर वैवस्वत मनु पुत्रकी कामना से सौ वर्षतक यमुनाके तीरपर तपस्याकरनेलगा ॥ १ ॥ और पुत्रपाने के निमित्त भगवानहरिका यजनकिया उससे अपनेसदृश मनुके दशपुत्र उत्पन्नहुए । उन दशोंपुत्रों में इक्ष्वाकु सबसे बड़ाथा ॥ २ ॥ मनुका पृषध्र नामक जो पुत्रहुआथा गुरुवशिष्ठ ने उसको गौ पालन करने में नियुक्त कियाथा; अतएव वह वीरासन लगाय रात्रिकाल में सावधानी से सब गौओं की रक्षाकरताथा ॥ ३ ॥ एकदिन रात्रि को वर्षा होतीथी; उसीसमयएक व्याघ्रने गोष्ठमेंप्रवेशकिया उसके प्रवेश करतेही सब सोतीहुई गौएंभयसे उठकर इधर उधर भागने लगीं ॥ ४ ॥ हेराजन्! उस बलवान व्याघ्र ने एक गौ को पकड़ा, वह गौ भयातुरहो कातरध्वनि करनेलगी । उसका चिल्लाना सुनकर पृषध्र उस व्याघ्र के समीप पहुंचा ॥ ५ ॥ उस बरसतेहुए घनघोर बादलकी अँधेरी रात्रि में पृषध्र ने न जानकर व्याघ्र के भ्रम से एक कपिला गौ के शिरपर प्रहार किया ॥ ६ ॥ व्याघ्रभी उस खड्ग के प्रहारसे छिन्न कर्णहो अत्यन्त भीत जिससे मार्ग में लोहू बहाता २ वहां से भगगया ॥ ॥ ७ ॥ शत्रुनाशक पृषध्र ने जानाथा कि—व्याघ्र मारागयाहै; परन्तु प्रातःकाल होनेपर देखा कि मैंने तो कपिला को मारडाला । वह गौ को मराहुआ देख अत्यन्त दुःखितहुआ ॥ ८ ॥ अज्ञान से हुए अपराध वाले अपराधी मनु पुत्रको वशिष्ठजीने शाप दिया कि—"तू क्षत्री जाति में नहीं रहसकता इसकर्म के फल से शूद्र होजायगा ॥ ९ ॥ गुरुके इसप्रकार शाप देनेपर पृषध्र ने हाथजोड़ उसको स्वीकारकर; उसी दिन से ऊर्द्धरेता हो ब्रह्मचर्य को ग्रहणकिया ॥ १० ॥ तदनन्तर सर्वात्माभगवान वासुदेव की भक्तिकर वह एकान्तिलको प्राप्तहो सब प्राणियों का सुहृद और सर्वत्रसमदर्शी हुआ ॥ ११ ॥ सङ्गरहित प्रशांत चित्त और जितेन्द्रियहुआ । वह परिग्रह रहितहो जो कुछ य-

वृत्तः समाहितः । विप्रधारमहीमेतां जडान्धबधिराकृतिः ॥ १३ ॥ एवंवृत्तोवनंग त्वादृष्टवान्दावाग्निमुत्थितम् । तेनोपयुक्तकरणो ब्रह्मप्रापपरंमुनिः ॥ १४ ॥ कविः कनीयान्विषयेषुनिःस्पृहो विसृज्यराज्यंसहबन्धुभिर्वनम् । निवेश्यचित्तेपुरुषंस्व रोचिषं विवेशकैशोरवयाःपरंगतः ॥ १५ ॥ करूषान्मानवादासन्कारुषाःक्षत्रजा तयः । उत्तरापथगोप्तारो ब्रह्मण्याधर्मवत्सलाः ॥ १६ ॥ धृष्टाद्धार्ष्टमभूत्क्षत्रं ब्रह्म भूयंगतंक्षितौ । नृगस्यवंशःसुमतिर्भूतज्योतिस्ततोवसुः ॥ १७ ॥ वसोःप्रतीकस्त त्पुत्रओघवानोघवत्पिता । कन्याचौघवतीनाम सुदर्शनउवाहताम् ॥ १८ ॥ चित्र सेनोनरिष्यन्ताद्दक्षस्तस्यसुतोऽभवत् । तस्यमीढ्वांस्ततःकूर्च इन्द्रसेनस्तुतत्सुतः ॥ १९ ॥ वीतिहोत्रस्त्विन्द्रसेनात्तस्यसत्यश्रवाःअभूत् । उरुश्रवासुतस्तस्य देव दत्तस्ततोऽभवत् ॥ २० ॥ ततोऽग्निवेश्योभगवानग्निःस्वयमभूत्सुतः । कानीन इतिविख्यातो जातूकर्ण्योमहानृषिः ॥ २१ ॥ ततोब्रह्मकुलंजात माग्निवेश्यायनं नृप । नरिष्यन्तान्वयःप्रोक्तो दिष्टवंशमतःशृणु ॥ २२ ॥ नाभागोदिष्टपुत्रोऽन्यः क र्मणावैश्यतांगतः । भलन्दनःसुतस्तस्य वत्सप्रीतिर्भलन्दनात् ॥ २३ ॥ वत्सप्रीतेः सुतःप्रांशुस्तत्सुतंप्रमतिंविदुः । खनित्रःप्रमतेस्तस्माच्चाक्षुषोऽथविविंशतिः२४॥ विविंशतिसुतोरम्भः खनिनेत्रोऽस्यधार्मिकः । करंधमोमहाराज तस्यासीदात्म जोनृपः ॥ २५ ॥ तस्याविक्षित्सुतोयस्य मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत् । संवर्तोऽयाजयद्यं

इच्छासे मिलता उसीसे निर्वाह करनेलगा ॥ १२ ॥ और परमात्मामें आत्माको धारणकर ज्ञान तृप्तहोगया । वह जडअन्ध और बधिर की समान हो पृथ्वी में भ्रमण करनेलगा । इसप्रकारसे आ-चार युक्त पृषध्र मुनिने वनमें घूमतेहुए प्रज्वलित अग्निको देखा,और उसके द्वारा अपने शरीरको जलाय आप परब्रह्ममें लीन होगया ॥ १३—१४ ॥ मनुका छोटा पुत्र कवि विषयोंसे निःस्पृहहो बन्धु बांधवों समेत राज्यको छोड, स्वप्रकाश परमपुरुषको हृदयमें स्थापितकर किशोर अवस्थामेंही ब्रह्मको प्राप्तहुआ । (अतएव उसका वंश नहीं है) ॥ १५ ॥मनुपुत्र करूषसे कारुष नामक वि-ख्यात ब्राह्मण धार्मिकमल उत्तरापथकी रक्षा करनेवाली क्षत्रियजाति उत्पन्नहुई, ॥ १६ ॥ इसी-प्रकार धृष्ट नामक मनु पुत्रसे धार्ष्टनामक प्रसिद्ध क्षत्रियजाति उत्पन्न हुई उनको पृथ्वी मडलमें ब्राह्मणत्व प्राप्त हुआहै । हेराजन् ! नृग नामक मनु पुत्रका पुत्र सुमतिहुआ । उसका पुत्र भूतज्योति भूतज्योति का पुत्र वसुहुआ ॥ १७ ॥ वसुके प्रतीक और प्रतीकके ओघवान पुत्र उत्पन्नहुआ उस ओघवान केभी ओघवान नामक पुत्र और ओघवती नाम्नी एककन्या हुई सुदर्शन राजाने उसकन्या का पाणिग्रहण किया ॥१८॥ हेराजन् ! नरिष्यन्त नामक मनु पुत्रके चित्रसेन चित्रसेनके दक्ष दक्ष के मीढ्वान,उससे पूर्ण,उस पूर्णका पुत्र इन्द्रसेन हुआ॥१९॥उससे वीतिहोत्र वीतिहोत्रके सत्यश्रवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । उसके पुत्र उरुश्रवा और उसके देवदत्त पुत्र उत्पन्न हुआ, ॥ २० ॥ भगवान अग्नि अग्निवेश्यनाम स्वयं देवदत्त के यहां पुत्ररूपसे उत्पन्न हुएथे; वेही महर्षि कानीन और जातुकर्णके नामसे विख्यातहुए ॥ २१ ॥ उन्हींके वंशसे अग्निवेश्यायन नामक ब्राह्मण वंश उत्पन्न हुआहै । हेनृप ! नरिष्यंतके वंशका वर्णन होगया अब दिष्टके वंशको सुनो ॥ २२ ॥ दिष्ट का पुत्र नाभाग हुआ । इसके आगे जो नाभाग की कथा कहूंगा यह वह नाभाग नहीं है यह कर्म वशसे वैश्यताको प्राप्त हुआथा । इसके पुत्र भलन्दनसे वत्सप्रीति ॥ २३ ॥ वत्सप्रीतिका पुत्र प्रांशु उसका पुत्र प्रमिति हुआ । प्रमिति का पुत्र खनित्र, उससे चाक्षुष;चाक्षुषका पुत्र विविंशति ॥२४॥उसका पुत्र रंभ,रंभका पुत्र परमधार्मिक खनिनेत्र और खनिनेत्र के राजा करंधम उत्पन्नहुआ ॥२५॥करंधमका पुत्र अविक्षित् उसकापुत्र चक्रवर्ती मरुत्तहुआ । अंगिराके पुत्र महायोगी संवर्त्तने

वै महायोग्यङ्गिराःसुतः ॥ २६ ॥ मरुत्तस्ययथायज्ञो नतथाऽन्यस्यकश्चन । सर्वंहि
रण्मयंत्वासीद्यत्किंचिच्चास्यशोभनम् ॥ २७ ॥ अमाद्यदिन्द्रःसोमेनदक्षिणाभि
र्द्विजातयः । मरुतःपरिवेष्टारो विश्वेदेवाःसभासदः ॥ २८ ॥ मरुत्तस्यदमःपुत्र
स्तस्यासीद्राज्यवर्धनः । सुधृतिस्तत्सुतोजज्ञे सौधृतेयोनरःसुतः ॥ २९ ॥ तत्सु-
तःकेवलस्तस्माद्बन्धुमान्वेगवांस्ततः । बन्धुस्तस्याभवद्यस्य तृणबिन्दुर्महीप
तिः ॥३० ॥ तंभेजेऽलम्बुषादेवी भजनीयगुणालयम् । वराप्सरायतःपुत्राः कन्या
चेडविडाऽभवत् ॥ ३१ ॥ तस्यामुत्पादयामास विश्रवाधनदंसुतम् । प्रादायविद्यां
परमामृषिर्योगेश्वरात्पितुः ॥ ३२ ॥ विशालःशून्यबन्धुश्च धूम्रकेतुश्चतत्सुताः । वि
शालोवंशकृद्राजा वैशालींनिर्ममेपुरीम् ॥ ३३ ॥ हेमचन्द्रःसुतस्तस्य धूम्राक्षस्त
स्यचात्मजः । तत्पुत्रात्संयमादासीत्कृशाश्वःसहदेवजः ॥ ३४ ॥ कृशाश्वात्सोम
दत्तोऽभूद्योऽश्वमेधैरिडस्पतिम् । इष्ट्वापुरुषमापाग्र्यां गतिंयोगेश्वराश्रितः ॥३५॥
सौमदत्तिस्तुसुमतिस्तत्सुतोजनमेजयः । एतेवैशालभूपालास्तृणबिन्दोर्यशोधराः

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ शर्यातिर्मानवोराजाब्रह्मिष्ठः सबभूवह । योवाअङ्गिरसांसत्रे
द्वितीयमहऊचिवान् ॥ १ ॥ सुकन्यानामतस्यासीत्कन्याकमललोचना । तयासार्धं
वनगतोह्यगमच्च्यवनाश्रमम् ॥ २ ॥ साखखीभिः परिवृताविचिन्वन्त्यंघ्रिपान्वने ।
वल्मीकरन्ध्रेददृशेखद्योतइवज्योतिषी ॥ ३ ॥ तेदैवचोदिताबालाज्योतिषीकण्टके

इसको यज्ञ कराया था ॥ २६ ॥ मरुतका यज्ञ जैसा प्रसिद्ध है वैसा और किसी राजाका यज्ञ प्रसिद्ध नहीं है । उसके समस्त यज्ञके पात्र सुवर्णकेथे ॥ २७ ॥ मरुतके यज्ञमें इन्द्र सोमरसका पान करके और ब्राह्मण बहुत दक्षिणा पायकर संतुष्टहुए । इस यज्ञमें मरुत देवता परोसनेवाले और विश्वेदेवा सभासदथे॥२८॥मरुत्तका पुत्र दम;उसका पुत्र राजवर्द्धन,राजवर्द्धनका पुत्र सुधृति सुधृति का पुत्र नरहुआ॥२९॥ नरका पुत्र केवल,केवलका पुत्र धुन्धुमान और धुन्धुमानका पुत्र वेगवान, वेगवानका पुत्रबंधु; बंधुका पुत्रराजा तृणबिंदु हुआ ॥ ३० ॥ श्रेष्ठ अप्सरा अलवुषा देवी ने सुंदर गुणोंसे भूषित उस तृणबिंदुका वरणकिया । उस अप्सराकेगर्भसे तृणबिंदुके कुछेकपुत्र और इडविडा नामक कन्या उत्पन्न हुई ॥ ३१ ॥ योगेश्वर विश्रवा ऋषिने पिताके निकट से परम विद्या प्राप्तकर उस इडविडा के गर्भसे कुबेरको उत्पन्न किया । विशाल, शून्यबंधु और धूम्रकेतु तृणबिंदुके यह तीनपुत्र हुए । उनमें से विशाल वंशधर राजा हुआकि जिसने वैशाली नामक नगरी बसाई ॥३२॥ विशालका पुत्र हेमचन्द्र हेमचन्द्रका पुत्र धूम्राक्ष; धूम्राक्षका पुत्र संयम हुआ । संयम से देवज और कृशाश्व दोपुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३३ ॥ कृशाश्व से सोमदत्त ने जन्म ग्रहण किया; उसने बहुत से यज्ञ करके यज्ञपति परम पुरुष भगवानकी पूजाकर योगेश्वरोंको शरणले प्रधान गतिको प्राप्तकिया ॥ ३४ ॥ सोमदत्तका पुत्र सुमति और उसका पुत्र जनमेजय हुआ । हे राजन् ! इन सब राजाओं ने विशाल वंशमें उत्पन्न होकर तृणबिंदु राजाके यशको बढ़ाया ॥ ३५ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेनवमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांद्वितीयोऽध्याय: ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! मनुपुत्रशर्याति अत्यन्त वेदार्थ का जाननेवालाथा । उसने अंगिराओं के यज्ञमें दूसरे दिन के कर्तव्य कर्म का उपदेश कियाथा ॥ १ ॥ सुकन्यानामक उसके एककमल लोचना पुत्रीथी । एक दिन वह उसी कन्याको साथले,च्यवनमुनि के आश्रम में प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ वन में उसकन्या ने, सखियों समेत घूमते १ वृक्षों के फलफूल इत्यादि तोडते २ एक स्थानपर एकबांबी के छिद्रमें खद्योत की समानदो प्रकाशित पदार्थ देखे ॥ ३ ॥ राजकुमारीने

नये। अविज्ञाय्मुग्धभावेनसुखावंचकृततोबहु ॥ ४ ॥ शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत्सैनिका
नांचतत्क्षणाम्। राजर्षिस्तमुपालक्ष्य पुरुषान् विस्मितोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ अप्यभद्रं
नयुष्माभिर्भार्गवस्यविचेष्टितम्। व्यक्तंकेनापिनस्तस्यकृतमाश्रमदूषणम् ॥ ६ ॥ सु
कन्याप्राहपितरंभीताकिंचित्कृतंमया। द्वेज्योतिषीअजानन्त्या निर्भिन्नेकण्टकेनवै
॥ ७ ॥ दुहितुस्तद्वचः श्रुत्वाशर्यातिर्जातसाध्वसः। मुनिंप्रसादयामासवल्मीका
न्तर्गतंशनैः ॥८॥ तदभिप्रायमाज्ञायप्रादाद्दुहितरंमुनेः। कृच्छ्रान्मुक्तस्तमामन्त्र्य
पुरंप्रायात्समाहितः ॥ ९ ॥ सुकन्याच्यवनंप्राप्य पतिंपरमकोपनम्। प्रीणयामास
चित्तज्ञा अप्रमत्ताऽनुवृत्तिभिः ॥ १० ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य नासत्यावाश्रमाग
तौ। तौपूजयित्वाप्रोवाच वयोमेदत्तमीश्वरौ ॥ ११ ॥ ग्रहंग्रहीष्येसोमस्य यज्ञेवा
मप्यसोमपोः। क्रियतांमेवयोरूपं प्रमदानांयदीप्सितम् ॥ १२ ॥ बाढमित्यूचतुर्वि
प्र मभिनन्द्यभिषक्तमौ। निमज्जतांभवानस्मिन् ह्रदे सिद्धविनिर्मिते ॥ १३ ॥ इत्यु
क्त्वाजरयाग्रस्त देहोधमनिसन्ततः। ह्रदंप्रवेशितोऽश्विभ्यां वलीपलितविप्रियः
॥ १४ ॥ पुरुषास्त्रयउत्तस्थुरपीच्यावनिताप्रियाः। पद्मस्रजःकुण्डलिनस्तुल्यरूपाः
सुवाससः ॥ १५ ॥ तान्निरीक्ष्यवरारोहा सरूपान्सूर्यवर्चसः। अजानतीपतिंसा-
ध्वी अश्विनौशरणंययौ ॥ १६ ॥ दर्शयित्वापतिंतस्यै पातिव्रत्येनतोषितौ। ऋषि
मामन्त्र्यययतुर्विमानेनत्रिविष्टपम् ॥ १७ ॥ यक्ष्यमाणोऽथशर्यातिश्च्यवनस्याश्रमं

बाल स्वभाव से दैव प्रेरितहो कांटो से उन पदार्थों को छेद डाला। तत्कालही उनसे रुधिर निक-लने लगा ॥ ४ ॥ इसी समय शर्याति के संगी सैनिकोंके मलमूत्र रुकगये। राजा शर्याति यह देख विस्मितहो मनुष्योंसे कहनेलगा कि ॥५॥ तुममेंसे किसीने महर्षि च्यवनका कोई अपराध तो नहीं किया है? भलीप्रकार जानपडता है, कि हम में से किसीने महर्षिके आश्रमका दूषन कियाहै ॥ ६ ॥ सुकन्याने डरते २ कहा कि—मैंने विनाजाने एक कांटेमे दो पदार्थोंको छेद डाला है ॥७॥ पुत्री की इसबातको सुन शर्याति भयभीतहुआ और बांबी के भीतर बैठहुए च्यवन ऋषिको प्रस-न्नकरनेलगा ॥ ८ ॥ तदनन्तर वार्तालापसे मुनि के अभिप्रायकोजान अपनी पुत्रीका व्याह उनके सङ्गकर दिया। हेराजन्! इसप्रकार वह समस्त विपद्दूर होगई। फिर राजा च्यवनऋषिसे सम्भा-षणकर अपने नगरको लौटआया ॥ ९ ॥ मनुष्यकी इच्छाको जाननेवाली सुकन्या ने परमक्रोधी च्यवनऋषि को पतिरूपसे पायसेवाकर उनको प्रसन्नकरलिया ॥ १० ॥ कुछकालके उपरान्तदोनों अश्विनीकुमार उस आश्रम में आये। मुनिवरच्यवनने उनकी भलीभांति पूजाकी और कहाकि—हे क्षमताशालिनौ! तुमदोनोंजन श्रेष्ठ वैद्यहो, तुम हमको तरुणकरदो ॥११॥ यदि मेरा रूप स्त्रियोंको प्यारा लगनेवाला करदोगे तो आपको यज्ञमें आजतक जो सोमका भागनहीं मिला है वह मैं दूगा ॥ १२ ॥ यहसुन उनदोनों वैद्यों ने प्रसन्नहोकरकहा कि अच्छा,आपसिद्धों के बनायेहुये इस कुण्ड में स्नानकरो॥१३॥ऐसे कहकर च्यवनऋषि कि—जो जरासे जर्जरशरीर और नसोंसे व्याप्त व वलि पलितसे अप्रिय लगतेथे उन्हें कुण्डमें प्रवेश कराया और आपभी प्रविष्टहुए ॥ १४ ॥ कुछ देरके उपरांत उसकुण्डमेंसे अति सुन्दर स्त्रियों के लुभानेवाले तीन पुरुष निकले। वह तीनों जन समान रूपके थे तीनोंजन पद्ममाला कुण्डलऔर उत्तम वस्त्र धारण कियेथे,॥१५॥सुकन्या सूर्यकी कान्तिके समान रूपवान तीन पुरुषों को देख अपने पतिको न पहिचान सकी। साध्वी उस समय पतिको देखने की इच्छासे दोनों अश्विनीकुमारों के शरणागत हुई ॥ १६ ॥ सुकन्याके पातिव्रतसे संतुष्ट होकर अश्विनीकुमारों ने उसके पतिको दिखाया और आप ऋषिसे आज्ञाले विमानपर बैठ स्वर्ग

गतः । ददर्श दुहितुः पार्श्वे पुरुषं सूर्यवर्चसम् ॥ १८ ॥ राजा दुहितरं प्राह कृतपादा-
भिवन्दनाम् । आशिषश्चाप्रयुञ्जानो नातिप्रीतमना इव ॥ १९ ॥ चिकीर्षितं ते कि-
मिदं पतिस्त्वया प्रलम्भितो लोकनमस्कृतो मुनिः । यत्त्वं जराग्रस्तमसत्यसंमतं वि
हाय जारं भजसेऽमुमध्वगम् ॥ २० ॥ कथं मतिस्तेऽवगताऽन्यथा सतां कुलप्रसूते
कुलदूषणं त्विदम् । बिभर्षि जारं यदपत्रपा कुलं पितुश्च भर्तुश्च नयस्यधस्तमः ॥ २१॥
एवं ब्रुवाणं पितरं स्मयमाना शुचिस्मिता । उवाच तात जामाता तवैष भृगुनन्दनः॥२२
शशंस पित्रे तत्सर्वं वयोरूपाभिलम्भनम् । विस्मितः परमप्रीतस्तनयां परिषस्वजे ॥
॥ २३ ॥ सोमेन याजयन्वीरं ग्रहं सोमस्य चाग्रहीत् । असोमपोरप्यश्विनोश्च्यवनः
स्वेन तेजसा ॥ २४ ॥ हन्तुं तमाददे वज्रं सद्यो मन्युरमर्षितः । सवज्रं स्तम्भयामास
भुजमिन्द्रस्य भार्गवः ॥ २५ ॥ अन्वजानंस्ततः सर्वे ग्रहं सोमस्य चाश्विनोः । भिष
जाविति यत्पूर्वं सोमाहुत्या बहिष्कृतौ ॥ २६ ॥ उत्तानबर्हिरानर्तो भूरिषेण इति त्रयः।
शर्यातेरभवन्पुत्रा आनर्ताद्रेवतोऽभवत् ॥ २७ ॥ सोऽन्तःसमुद्रे नगरीं विनिर्माय
कुशस्थलीम् । आस्थितोऽभुङ्क्त विषयानानर्तादीनरिंदम ॥ २८ ॥ तस्य पुत्रशतं
जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम् । ककुद्मी रेवतीं कन्यां स्वामादाय विभुं गतः २९ कन्यावरं
परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकमपावृतम् । आवर्तमाने गान्धर्वे स्थितोऽलब्धक्षणः क्षणम् ३० तदन्त
आद्यमानम्य स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वा भगवान्ब्रह्मा प्रहस्य तमुवाच ह ३१ ॥

को गये ॥ १७ ॥ हेराजन् ! कुछ दिनोंके उपरांत शर्याति राजाने यज्ञ करनेके निमित्त च्यवन ऋषिके आश्रममें आकर देखा कि कन्याके पार्श्वमें सूर्यकी समान तेजस्वी एकपुरुष बैठाहै ॥१८॥ सुकन्याने पिता को देखतेही शीघ्रतासे उठकर प्रणाम कियापरन्तु राजाने उदास चित्तहो कुछ भी आशीर्वाद न दिया।राजाने कहा कि-॥१९॥अरे तूने यह क्या किया; ?लोकोंके वंदनीय ऋषि स्वामीसे तूने छल किया? रेअसति ! जरासे जर्जर और अप्रिय लगे ऐसे पतिको छोड़कर तूने पथिक जारपतिका सेवन किया ॥ २० ॥ तूने सत्पुरुषोंके कुलमें उत्पन्न होकरभी ऐसाकर्म करने का साहस कैसे किया । तू कुलको कलंकित कर निर्लज्जहो उपपतिका सेवन करतीहै? तूने पिता और पतिके कुलका एकबारही नरकमें गिरादिया ? ॥ २१ ॥ पिताके इसप्रकार कहनेपर सुकन्या कुछ हंसकर विनीत भावसे कहने लगी कि हेपिता ! आपके जामाता भृगुनन्दन येही हैं ॥ २२ ॥ यह कहकर जैसे उन्होंने रूप और यौवन पायाथा सब पितासे कह सुनाया उसको सुनकर राजा शर्याति विस्मित और प्रसन्न होकर पुत्रीसे मिला ॥ २३ ॥ हेराजन् ! तदनन्तर महर्षि च्यवन ने शर्यातिको सोमयाग कराया. यद्यपि अश्विनी कुमारों को सोमपान करने को नहीं मिलताथा तथापि च्यवन ऋषिने अपने तेज से उनको सोमपात्र दिया ॥ २४ ॥ इससे इन्द्रने क्रोधित होकर ऋषिके मारडालने को अपना वज्र उठाया, परन्तु ऋषिने वज्र समेत इन्द्रको स्तम्भित कर-दिया॥२५॥ इसकारण यद्यपि पहिलेसे वैद्य होनेके कारण अश्विनीकुमारोंको सोम नहीं मिलताथा परंतु उस समयसे सब देवता यज्ञमें उन्हें सोमपात्र देनेलगे,॥२६॥शर्याति के उत्तानबर्हि, आनर्त्त और भूरिषेण तीनपुत्रथे । इसके उपरांत आनर्त्तके रैवत नामक एक पुत्रहुआ ॥ २७ ॥ हेअरिंम ! इस रैवतने समुद्रके भीतर कुशस्थली नामक एकनगरीबसाई यह उसमें रहहताहुआ आनर्त्त देशका पालन करताथा ॥ २८ ॥ इस रैवत राजाके अति उत्तम सौपुत्र उत्पन्नहुए, उन सबमेंसे से ककुद्मी बड़ाथा । राजा रेवत रेवती अपनी पुत्रीको संगले कन्याके लिये योग्यवर पूछने ब्रह्म-लोकमें ब्रह्माजीके समीपगया । उससमय वहां गन्धर्वगण गान कररहेथे, इसकारण अवकाश न मिलनेसे कुछदेर यहांसे बैठनापड़ा । २९—३० । फिर अवकाश पानेपर उसने आदि पुरुष ब्रह्मा

महोराजन्विवश्वस्ते कालेनहृदियेकृताः । तत्पुत्रपौत्रनप्तृणां गोत्राणिचनशृण्महे। ॥ ३२ ॥ कालोऽभियातस्त्रिणवचतुर्युगविकल्पितः । तद्गच्छदेवदेवांशोबलदेवो महाबलः ॥ ३३ ॥ कन्यारत्नमिदंराजन्नररत्नायदेहिभोः । भुवोभारावताराय भगवान्भूतभावनः ॥ ३४ ॥ अवतीर्णोनिजांशेन पुण्यश्रवणकीर्तनः । इत्यादिष्टोऽभिवंद्याजं नृपःस्वपुरमागतः ॥ ३५ ॥ त्यक्तंपुण्यजनत्रासाद्भ्रातृभिर्दिक्ष्ववस्थितैः । सुतांदत्त्वाऽनवद्यांगीं बलायबलशालिने । बदर्याख्यं गतोराजा तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥ ३६ ॥

इतिश्रीमद्भागवते महा० नवमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीशुकउवाच । नाभागोनभगापत्यं यंततंभ्रातरःकविम् । यविष्ठंव्यभजन्दायं ब्रह्मचारिणमागतम् ॥१॥ भ्रातरोऽभाक्त किं मह्यंभजामपितरंतव । त्वांममार्यास्तताभाक्षुर्मा पुत्रकतदादृथाः ॥ २ ॥ इमेअंगिरसः सत्रमासतेऽद्य सुमेधसः । षष्ठंषष्ठमुपेत्याहः कवेमुह्यन्तिकर्मणि ॥ ३ ॥ तांस्त्वंशंसयसूक्ते द्वेवैश्वदेवेमहात्मनः । तेस्वर्यन्तोधनं सत्रपरिशेषितमात्मनः ॥४ ॥ दास्यन्त्यथततोगच्छ तथासकृतवान्यथा । तस्मैदत्त्वाययुःस्वर्गं तेसत्रपरिशेषितम् ॥ ५ ॥ तंकश्चित्स्वीकरिष्यन्तं पुरुषः कृष्णदर्शनः । उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य ममेदंवास्तुकंवसु॥६॥ ममेदमृषिभिर्दत्तमिति

जीको प्रणामकर अपना अभिप्राय प्रगटकिया । उसको सुनकर ब्रह्माजीने हँसकर कहा कि ३१। हेराजन् ! तुमने वरके योग्य जिन २ मनुष्योंको विचाराथा वे सब कालके गालमेंगये इससमय उनके पुत्र, पौत्र वा प्रपौत्रोंके नाम वा वंशकी चर्चाभी तो नहीं सुननेमें आती । क्योंकि पृथ्वीमें सत्ताईस चतुर्युग बीत गये हैं॥ ३२ ॥ अब जाओ—भगवानके अंशसे बलदेवजी उत्पन्न हुएहैं उन्हींको अपनी कन्यादेओ ॥३३॥ हेराजन् ! जिनके नाम सुनने और कहनेसे पुण्य होताहै वेही भूतभावन भगवान पृथ्वीका भार हरनेके निमित्त अपने अंशसे अवतीर्ण हुएहैं॥३४॥ ब्रह्माजी से इसप्रकार आज्ञापाय उन्हें प्रणामकर राजा अपने नगरको लौटआया॥३५॥बहुनका- पूर्वसे उसके बन्धु बांधव यक्षोंके भयसे उसपुरीको छोड नानादिशाओंको भागगयेथे तब राजा बलशाली बलदेवजी को अपनी सुंदरी कन्यादे तपस्याके निमित्त नारायणाश्रममें चलागया ॥ ३६ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेनवमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ? नभग का पुत्र नाभाग हुआ नभग के बहुत दिनोंतक गुरुकुल में बास करनें से उसको नैष्ठिक ब्रह्मचारी जान भाइयों नें बांटनें समय उसका पिताका धन न रक्खा परन्तु कुछ काल में ब्रह्मचर्य शेषकर नभग नें गुरुकुल से लौटकर अपनें अंश को मांगातो भाइयों नें इसके भाग में अपनें पिता को नियत किया ॥१॥ नाभाग नें आकर कहा कि हे भाइयों तुमनें मेरे निमित्त क्या अंश रक्खाहै भाइयों नें उत्तर दिया कि हमनें तुम्हारे निमित्त पिता कोही अंश स्वरूप कररक्खा है अतएव तुम पिता को ग्रहण करो ऐसा सुनकर नाभाग ने पिता से कहा कि हे पिता ! बड़े भाइयों नें आपको किस निमित्त मेरे भागमें स्थिर किया पिता नें कहा हे वत्स! उनकी बातपर विश्वास नकरना मैं तुम्हारे जीवन का उपाय कहताहूं ॥२॥ हे विद्वन् ! आङ्गिरस मुनिगण यज्ञ के कार्य में लगेहुए हैं परन्तु वह सुंदर यज्ञ करनें वाले होकर भी प्रति छठे दिन अपनें यज्ञ कार्य को भूलजाते हैं ॥ ३ ॥ आज छठवां दिन है तुम जाकर वहां वैश्वदेव सम्बन्धी दो सूक्तों का पाठकरो कर्म समाप्त होनेपर जब वे स्वर्ग को चलेजायगे तब शेष धन यज्ञ तुम्हें देवेंगा ॥ ४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार सुनकर नाभगनें वैसाही किया और वे सब आङ्गिरस भी वह यज्ञ का शेष धन उसको देकर स्वर्गको चलेगए ॥ ५ ॥ परन्तु नाभाग जब उस धनके लेनेमें तत्पर हुआ, उसी समय कृष्णवर्ण का एक मनुष्य उत्तर की ओर आकर कहनेंलगा कि यज्ञ भूमि में रहा

तर्हिस्समानवः । स्यान्नोतोपितरिप्रश्नः पृष्टवान्पितरंतथा ॥ ७ ॥ यज्ञवस्तुगतं सर्वमु
च्छिष्टमृषयक्वचित् । चक्रुर्हिभागंरुद्राय सदेवःसर्वमर्हति ॥ ८ ॥ नाभगस्तंप्रण-
म्याह तवेशकिलवास्तुकम् । इत्याहमेपितात्रह्मञ्छिरसात्वांप्रसादये ॥ ९ ॥ यत्ते
पिताऽवदद्धर्मं त्वंतुसत्यप्रभाषसे । ददामितेमन्त्रदृशे ज्ञानंब्रह्मसनातनम् ॥१०॥गृहा
णद्रविणंदत्तं मत्सत्रेपरिशेषितम् । इत्युक्त्वाऽन्तर्हितो रुद्रो भगवान्धर्मवत्सलः ११
यएतत्संस्मरेत्प्रातः सायञ्चसुसमाहितः । कविर्भवतिमन्त्रज्ञो गतिंचैवतथाऽऽत्मनः
॥ १२ ॥ नाभागादम्बरीषोऽभून्महाभागवतः कृती । नास्पृशद्ब्रह्मशापोऽपि यंनप्र
तिहतःक्वचित् ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि राजर्षेस्तस्यधीमतः ॥
नप्राभूद्यत्रनिर्मुक्तो ब्रह्मदण्डोदुरत्ययः ॥१४॥ श्रीशुक उवाच । अम्बरीषोमहाभागः
सप्तद्वीपवतींमहीम् । अव्ययांचश्रियंलब्ध्वा विभवंचातुलंभुवि ॥ १५ ॥ मेनेऽतिदु
र्लभंपुंसां सर्वंतत्स्वप्नसंस्तुतम् । विद्वान्विभवनिर्वाणं तमोविशतियत्पुमान् ॥१६॥
वासुदेवेभगवति तद्भक्तेषुचसाधुषु । प्राप्तोभावंपरंविश्वं येनेदंलोष्टवत्स्मृतम् ।१७।
सवैमनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने । करौहरेर्मन्दिरमार्जना-
दिषु श्रुतिंचकाराच्युतसत्कथोदये ॥ १८ ॥ मुकुन्दलिंगालयदर्शनेदृशौ तद्भृत्य
गात्रस्पर्शेंगसंगमम् । घ्राणंचतत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्यारसनांतदर्पिते १९ ॥

हुआ यहसब धन मेरा है ॥ ६ ॥ इसपर नाभाग नें कहा कि यह धन ऋषियों नें मुझे दिया है उस पुरुष ने कहा अच्छा तुम्हारे पिता के निकट हम दोनों जन प्रश्न करें कौन इस धन को पावेगा नाभा गनें पिता के निकट जाकर पूछा उसके पितानें कहा कि ऋषियों नें नियम करदियाहै कि यज्ञभूमि का शेष धन रुद्रदेव को प्राप्त होवे अतएव इस सब धन के अधिकारी रुद्रदेवही हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ इतना सुनकर नाभग उस पुरुषके निकटआय हाथजोड कहनेलगाकि—हे ईश ! यज्ञभूमि मेंरहा हुआशेषधन आपही का है यहबात मेरे पिताने कही है । हेब्रह्मन् ! मैं आपको प्रणामद्वारा प्रसन्न करताहूं ॥ ९ ॥ रुद्रजीने कहा कि तुम्हारे पिताने धर्मयुक्तवाक्यकहे और तुमभी धर्मके वाक्य कहते हो इसकारण तुम मन्त्रदर्शी हो, तुमको सनातन ब्रह्मकाज्ञान देता हूं ॥ १० ॥ और यज्ञमें, शेषरहाहुआ जो यह धन है वहभी तुम्हींको देताहू सो तुम इसको ग्रहणकरो । धर्मवत्सल भगवान रुद्र यह कहकर अन्तर्ध्यान होगये ॥ ११ ॥ हे राजन् जो मनुष्य सावधान चित्तहो सायं और प्रातःकाल में इस उपाख्यान का स्मरण करेगा वह इसके प्रभावसे विद्वान् और मंत्रज्ञहो इच्छित वर प्राप्त करेगा ॥ १२ ॥ हेराजन् नाभाग के अम्बरीष पुत्र उत्पन्न हुआ । जो ब्रह्मशाप किकभी भी निष्फल नहीं होता वह ब्रह्मशापभी उसका स्पर्श नहीं करसका; वह महाभागवत और पुण्यवान हुआ ॥ १३ ॥ राजापरीक्षितने कहा कि—हे भगवन् ! अमोघ ब्रह्मदण्ड भी जिसपर अपनी शक्ति प्रकाशित न करसका उस धीमान राजा अम्बरीष के चरित्रों के सुनने की मेरी अभिलाषा है सो कहिये ॥ १४ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि—महाभाग अम्बरीष ने सप्तद्वीपा पृथ्वी, अक्षय सम्पत्ति और पृथ्वीका अतुल ऐश्वर्य प्राप्त किया था ॥ १५ ॥ परन्तु मनुष्यों को दुर्लभ उन सब पदार्थों को वह स्वप्न कल्पितमोह मात्र विचारताथा, क्योंकि वह नाशवान वैभव और मोह से भलीभांति अवगत था ॥ १६ ॥ हेराजन् ! भगवान वासुदेव और उनके भक्तों में उसका बड़ा भावथा इसी कारण वह सब संसार को मिट्टी की समान जानता था ॥ १७ ॥ उसका मन श्री कृष्णजी के चरणारविन्द में, वचन भगवान के गुणवर्णनमें, दोनों हाथ भगवान के मन्दिरके झाड़नेमें श्रवणेन्द्रिय भगवानकी कथाके सुननेमें ॥ १८ ॥ दोनो नेत्र, जिन घरों में भगवान के चिह्न हैं उनघरों के देखने में, शरीर भगवद्भक्तों के अंगस्पर्श में; घ्राणेन्द्रिय, भगवत चरणों में अर्पण

पादौहरेःक्षेत्रपदानुसर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने । कामंचदास्येनतुकामका-
म्यया यथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः ॥ २० ॥ एवंसदाकर्मकलापमात्मनः परेऽधि
यज्ञेभगवत्यधोक्षजे । सर्वात्मभावंविदधन्महीमिमां तन्निष्ठविप्राभिहितः शशासह
॥२१॥ ईजेऽश्वमेधैरधियज्ञमीश्वरं महाविभूत्योपचिताङ्गदक्षिणैः । ततैर्वसिष्ठासित
गौतमादिभिर्धन्वन्यभिस्रोतमसौ सरस्वतीम् ॥ २२ ॥ यस्यक्रतुषुगीर्वाणैः सदस्या
ऋत्विजोजनाः । तुल्यरूपाश्चानिमिषा व्यदृश्यन्तसुवाससः ॥ २३ ॥ स्वर्गोनप्रार्थि
तोयस्य मनुजैरमरप्रियः । शृण्वद्भिरुपगायद्भिरुत्तमश्लोकचेष्टितम् ॥ २४ ॥ संवर्ध
यन्तियत्कामाः स्वाराज्यपरिभाविताः । दुर्लभानापिसिद्धानां मुकुन्दंहृदिपश्यतः
॥ २५ ॥ सइत्थंभक्तियोगेन तपोयुक्तेनपार्थिवः । स्वधर्मेणहरिं प्रीणन्सर्वान्कामाञ्छ-
नैर्जहौ ॥ २६ ॥ गृहेषुदारेषुसुतेषुबन्धुषु द्विपोत्तमस्यन्दनवाजिवस्तुषु । अक्षय्यर
त्नाभरणायुधादिष्वनन्तकोशेष्वकरोदसन्मतिम् ॥ २७ ॥ तस्माअदाद्धरिश्चक्रं प्र-
त्यनीकभयावहम् । एकांतभक्तिभावेन प्रीतोभृत्याभिरक्षणम् ॥ २८ ॥ आरिराधयि
षुःकृष्णं महिष्यातुल्यशीलया । युक्तःसांवत्सरंवीरो दधारद्वादशीव्रतम् ॥ २९ ॥
व्रतान्तेकार्तिकेमासि त्रिरात्रंसमुपोषितः । स्नातःकदाचित्कालिन्द्यां हरिंमधुवनेऽ
र्चयत् ॥ ३० ॥ महाभिषेकविधिना सर्वोपस्करसम्पदा । अभिषिच्याम्बराकल्पैर्गं

की हुई तुलसीकी सुगन्ध ग्रहणकरने में और जिह्वा भगवान के निवेदित कियेहुए अन्नके भक्षण करने मे नियुक्तथी ॥ १९ ॥ वह दोनों चरणों को भगवत क्षेत्रों में भ्रमण कराने और शिरको भगवानकी बन्दना करने में नियुक्त रखताथा । भगवानके प्रसादको स्वीकारकर भगवद्भक्तोंमें प्रीति रखताथा यह सबकाम लोभ के वश विषय भोग की इच्छासे नहीं करताथा ॥ २० ॥ सर्वत्र आत्मा है यह विचारकर जो क्रियाकर्म करता वह सब भगवान में अर्पण करता और भगवद्भक्त ब्राह्मणों के उपदेश से राज्यकार्य करताथा ॥ २१ ॥ राजा अम्बरीष ने मरुदेश में सरस्वती के किनारे २ वशिष्ठ, असित और गौतमादि ऋषियों की सहायता से बहुत से अश्वमेधकरके भगवान की पूजाकीथी । आप सर्व सम्पत्ति युक्तथा अतएव उनयज्ञों में अग व दक्षिणाओं में बहुत कुछ बढ़ाव किया॥२२॥ उसके यज्ञमें सभासद, ऋत्विक्, ब्राह्मण और दूसरे मनुष्यभी सुंदरवस्त्र आभूषण पहिने देवताओंकी समान शोभादेतेथे और आश्चर्य देखनेसे उनके नेत्रभी निमेष रहित प्रतीत होतथे ॥ २३ ॥ राजा अम्बरीषके राज्यमें रहनेवाले मनुष्य देवप्रिय स्वर्गकीभी कामना नहींकरते थे, केवल भगवच्चरित्रोंके सुनने व वर्णन करनेमें रत रहतेथे ॥ २४ ॥ जो मनुष्य अपने हृदयमें भगवान वासुदेवके दर्शन करताहै,—स्वरूप सुखसे बढ़ेहुए सिद्धोंको दुर्लभ विषयभी उसको आनंदित नहीं करसकते अतएव वे सबभी उसको हर्ष नहीं उत्पन्न करासकते, ॥ २५ ॥ अम्बरीष राजाने इसप्रकारके भक्ति योग और तपस्या युक्त स्वधर्म द्वारा भगवान श्रीकृष्णजी में भक्ति उत्पन्नकर धीरे२सब कामनाओं को छोड़दिया ॥ २६ ॥ स्त्री,पुत्र, मित्र,घर,हाथी, घोड़ा, रथ और अक्षय रत्न वस्त्र, भूषणादि अनंतकोष में भी उसको उपेक्षा उत्पन्नहोगईथी ॥ २७ ॥ भगवानने उसके भक्ति भावसे प्रसन्नहोकर शत्रुकी सेनाको डरानेवाला व भक्तों की रक्षाकरनेवाला चक्र उसको देदिया२८॥ इस राजाने भगवान का आराधनकरने के निमित्त अपनी सुशीला रानी के साथ एक वर्ष पर्यंत अखंड एकादशी का व्रत धारणकिया ॥ २९ ॥ व्रत के अंतमें कार्तिकमास में त्रिरात्रउपवास के अनंतर स्नानकरके यमुनाके किनारे मधुवनमें यहराजा भगवान की पूजाकरने में प्रवृत्तहुआ ३०॥ महाभिषेक की विधि के अनुसार सकलउपचारों से अभिषेककर वसन, भूषण, गंधमालादि द्वारा

न्धमाल्यार्हणादिभिः ॥ ३१ ॥ तद्गतान्तरभावेन पूजयामास केशवम् । ब्राह्मणां
श्च महाभागान्सिद्धार्थानपि भक्तितः ॥ ३२ ॥ गवांरुक्मविषाणीनां रूप्यांघ्रीणांसु-
वाससाम् । पयःशीलवयोरूपवत्सोपस्करसंपदाम् ॥ ३३ ॥ प्राहिणोत्साधुविप्रेभ्यो
गृहेषुन्यर्बुदानिषट् । भोजयित्वा द्विजानग्रे स्वाद्वन्नंगुणवत्तमम् ॥ ३४ ॥ लब्धका
मैरनुज्ञातः पारणायोपचक्रमे । तस्यतर्ह्यतिथिःसाक्षाद्दुर्वासा भगवानभूत् ॥३५॥
तमानर्चातिथिंभूपः प्रत्युत्थानासनार्हणैः । ययाचेऽभ्यवहाराय पादमूलमुपागतः
॥ ३६ ॥ प्रतिनन्द्यसतद्याच्ञां कर्तुमावश्यकंगतः। निममज्ज बृहद्ध्यायन्कालिन्दी-
सलिले शुभे ॥३७॥ मुहूर्तार्धावशिष्टायां द्वादश्यांपारणंप्रति । चिन्तयामास धर्मज्ञो
द्विजैस्तद्धर्मसंकटे ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणातिक्रमेदोषो द्वादश्यांयदपारणे । यत्कृत्वासा-
धुमे भूयादधर्मोवानमांस्पृशेत् ॥ ३९ ॥ अम्भसाकेवलेनाथ करिष्येव्रतपारणम् । प्रा
हुरब्भक्षणंविप्रा ह्यशितंनाशितंचतत् ॥ ४० ॥ इत्यपःप्राश्य राजर्षिश्चिन्तयन्मनसा
ऽच्युतम् । प्रत्यचष्टकुरुश्रेष्ठ द्विजागमनमेवसः ॥ ४१ ॥ दुर्वासा यमुनाकूलात्कृता
वश्यक आगतः । राज्ञाऽभिनन्दितस्तस्य बुबुधेचेष्टितंधिया ॥ ४२ ॥ मन्युनाप्रच-
लद्गात्रोभ्रुकुटीकुटिलाननः । बुभुक्षितश्चसुतरां कृताञ्जलिमभाषत ॥ ४३ ॥ अहो
अस्यनृशंसस्य श्रियोन्मत्तस्यपश्यत । धर्मव्यतिक्रमं विष्णोरभक्तस्येशमानिनः ॥

एकाग्रमनसे भगवान की पूजाकी; तदुपरांत महाभाग ब्राह्मणों की भक्तिभाव से पूजा की ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ इसके उपरांत राजा ने छासठ (६६) करोड़ गायें साधु और ब्राह्मणों के घर भेजदीं । उन सब गौओं के सींग सोने से मढेहुए और खुर रूपे से मढे और शरीरमें सुन्दर वस्त्र शोभायमान थे तथा वे सब गायें दुग्धवती, रूपवती, सुशीला और अल्पवयकीथीं, सबही के बछडे और सामग्री थीं । इस के पश्चात् सब ब्राह्मणों को सुन्दरभोजनकराय उनकी आज्ञासे पारणाकरनेका उपक्रम किया । उसीसमय साक्षात् दुर्वासाऋषि वहाँ आ उपस्थितहुए ॥ ३३॥३५ ॥ राजा ने देखतेही तत्काल उठकर यथोचित सत्कार किया और चरणों में गिरकरभोजनों के निमित्त प्रार्थना करने लगा ॥ ३६ ॥ राजाकी प्रार्थना को सुनकर आनंदितहो उस की प्रार्थना को सुनकर माध्याह्निक नित्यकृत्य करनेको यमुनाजी के तटपरगये वहाँभगवान का ध्यानकरने को यमुनाजल में बैठगये ॥ ३७ ॥ अधिक समय इसीप्रकार बीतगया परन्तुदुर्वासाऋषि न लौटे। इधर द्वादशी केवल आधी घडी शेष रहगई, उस में पारणा न करने से व्रत निष्फलहोता है । धर्मज्ञ अंबरीष ने धर्मसंकट में पतितहो पारणा के विषय में ब्राह्मणों के साथ विचार किया; कि- ॥३८॥ बिना दुर्वासाके आये पारणा करूं तो अधर्म है और द्वादशी में पारणा न करने से भी दोष है, क्याकरने से मेरा कल्याण होगा औरअधर्म मेरास्पर्श न करसकेगा ? ॥ ३९ ॥ केवल जलपान करके व्रतसमाप्त करूं क्योंकि केवल जलकाभक्षण ब्राह्मणों ने भोजन में और नहीं भोजन में दोनोंही में कहा है ॥ ४० ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! राजर्षि यह कहकर मनही मनमें भगवान का ध्यान करता हुआ तपस्वी दुर्वासा के आनेकी राह देखनेलगा ॥ ४१ ॥ दुर्वासाऋषि आवश्यक कर्म समाप्तकर यमुना के किनारे से वहाँ आ उपस्थित हुए। राजा उन्हें देखकर आनंद प्रकाश करने लगा, परन्तु दुर्वासाजी अपनी ज्ञानशक्ति से उसके आचरणको जानगये थे और वह क्षुधार्त्तभी होरहे थे, इस कारण क्रोधसे भौंहेचढाय कम्पित शरीर से तिरछा मुखकर, हाथजोड़ खड़ेहुए राजासे कहने लगे कि ॥ ४२-४३ ॥ अहो ! यह मनुष्य कैसाक्रूर है ! धन सम्पत्तिके मदसे अत्यंत मत्तहोरहा है; यह विष्णुभक्त नहीं है परन्तु अपनेको बड़ाभक्त जानता है, इसके धर्मका उलंघनतो देखो ॥४४॥

॥४४॥यो मामतिथिमायातमातिथ्येन निमन्त्र्य च । अदत्त्वाभुक्तवांस्तस्य सद्यस्ते-दर्शये फलम् ॥ ४५ ॥ एवंब्रुवाणउत्कृत्य जटांरोषविदीपितः । तयासनिर्ममेतस्मै कृत्यांकालानलोपमाम् ॥ ४६ ॥ तामापतन्तीं ज्वलतीमसिहस्तां पदाभुवम् । वेपयन्तीं समुद्वीक्ष्य न चालपदान्नृपः ॥ ४७ ॥ प्राग्दिष्टंभृत्यरक्षायां पुरुषेणमहात्मना । ददाहकृत्यांतांचक्रं क्रुद्धाहिमिवपावकः ॥ ४८ ॥ तदभिद्रवदुद्वीक्ष्य स्वप्रयासं च निष्फलम् । दुर्वासादुद्रुवेभीतो दिक्षुप्राणपरीप्सया ॥ ४९ ॥ तमन्वधावद्भगवद्रथांगं दावाग्निरुद्धूतशिखो यथाऽहिम् । तथानुषक्तंमुनिरीक्षमाणो गुहांविविक्षुः प्रससारमेरोः ॥५०॥ दिशोनभःक्ष्मां विवरान्समुद्रांल्लोकान्सपालांस्त्रिदिवं गतः सः । यतोयतोधावतितत्रतत्रसुदर्शनं दुष्प्रसहंददर्श ॥ ५१ ॥ अलब्धनाथःसयदा कुतश्चित्संत्रस्तचित्तोऽरणमेषमाणः । देवंविरिंचं समगाद्विधातस्त्राह्यात्मयोनेऽजिततेजसो माम् ॥ ५२ ॥ ब्रह्मोवाच । स्थानंमदीयं सहविश्वमेतत्क्रीडावसाने द्विपरार्धसंज्ञे । भ्रूभङ्गमात्रेणहिसंदिधक्षोः कालात्मनोयस्यतिरोभविष्यति ॥ ५३ ॥ अहंभवो दक्षभृगुप्रधानाः प्रजेशभूतेशसुरेशमुख्याः । सर्वे वयंयन्नियमं प्रपन्ना मूर्ध्न्यर्पितं लोकहितंवहामः ॥ ५४ ॥ प्रत्याख्यातो विरिंचेन विष्णुचक्रोपतापितः ॥ दुर्वासाः शरणंयातः शर्वंकैलासवासिनम् ॥ ५५ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ वयंनतातप्रभवामभूम्नियस्मिन्परेऽन्येऽप्यजजीवकोशाः । भवन्तिकालेनभवन्तिहीदृशाः सहस्रशोय-

तूने अतिथि रूपसे आयेहुए मेरा आतिथ्य विधिके अनुसार निमंत्रणकर मुझे आहार करानेके पहिले स्वयं भोजनकिया अब तुझको इसका फल दिखाता हूं ॥ ४५ ॥ इस प्रकार कहते २ अत्यंत क्रोध से प्रदीप्तहो मस्तकसे जटा उखाड़ तत्कालही राजाके निमित्त कालानलकी समान कृत्या (मूठ) उत्पन्न करी ॥४६॥ राजा अंबरीषने देखाकि प्रज्वलित कृत्या हाथमें खड्ग ले पृथ्वीको कपाती हुई आरही है—परन्तु तौभी अपने स्थान से वह विचलित न हुआ ॥ ४७ ॥ परम पुरुष भगवानके दियेहुए दास रक्षार्थं चक्रने दावानल जैसे भस्म रहेहुए सर्पको जलाडालता है वैसेही उस कृत्या को जलाडाला ॥ ४८ ॥ उस चक्रको अपनी ओर आता और अपने कर्मको निष्फल हुआ देख दुर्वासाजी भयभीतहो प्राण रक्षाके निमित्त नानास्थानोंमें दौडनेलगे॥ ४९ ॥हे राजन्! जैसे वनकी बढ़ी हुई अग्नि सर्पके पीछेलगे वैसेही भगवान का चक्र ऋषिके पीछे २ दौड़नेलगा । मुनि अपने पीछे आतेहुए उस चक्रको देख मेरुकी बडी गुफामें प्रवेश करनेकी इच्छासे शीघ्रता पूर्वक दौड़ने लगे ॥ ५० ॥ दशों दिशा, आकाश, पृथ्वी, गुफा, समुद्र समस्त लोक, लोकपाल और स्वर्ग सब स्थानोंमें फिरे परन्तु जिस २ स्थानमें वहगए उसी २ स्थानमें उस दुर्धर्ष चक्रको अपने पीछे आतादेखा ॥५१॥ डरेहुए ऋषिने अपनी रक्षाके निमित्त जबकोई स्थान न पाया तब ब्रह्माजी के निकट आकर कहने लगेकि—हे विधाता आत्मयोने ! इस दुःसह हरिचक्र से आपमेरी रक्षाकरो ॥५२॥ ब्रह्माजी ने कहाकि—दोपरार्द्ध कालवाले क्रीडाके अंतमें, भस्म करने की इच्छावाले जिनकाल रूप भगवान की केवल भौंह चढ़ानेसे विश्वसमेत मेरायह स्थान तिरोहित होजावगा ॥ ५३ ॥ मैं, महादेव, दक्ष और भृगुआदि प्रजापति, भूतपति, सुरपति इत्यादि देवता जिसकी आज्ञापाकर—जिस प्रकार लोकका कल्याण होवे उसी प्रकार उस आज्ञाको शिरपर धारण करते हैं; तुमने उन्हीं के भक्तका अपकार किया है—तुम्हारी रक्षाकरना मेरीशक्ति से बाहर है ॥ ५४ ॥ विष्णु चक्रके तेज से दुःखित दुर्वासा इस प्रकार ब्रह्माजी से उत्तरपाय कैलासवासी महादेवजी की शरण में गये ॥५५॥ और बिनती की तब शङ्करने कहाकि—हे तात! उन महान् परमेश्वर के ऊपर मेरा प्रभुत्व न चलेगा जिसमें मैं घूमाकरता हूं वह वह ब्रह्माण्ड और इसकी समान सहस्र२ ब्रह्माण्ड काल क्रमसे जिन से

वयंनमामः ॥ ५६ ॥ अहंसनत्कुमारश्च नारदोभगवानजः । कपिलोऽपान्तरतमो
देवलोधर्मआसुरिः ॥ ५७ ॥ मरीचिप्रमुखाश्चान्येसिद्धेशाःपारदर्शिनः । विदामन
वयंसर्वेयन्मायांमाययावृताः ॥ ५८ ॥ तस्यविश्वेश्वरस्येदंशस्त्रंदुर्विषहंहिनः ।
तमेवशरणंयाहिहरिस्तेशंविधास्यति ॥ ५९ ॥ ततोनिराशोदुर्वासाः पदंभगवतो
ययौ । वैकुण्ठाख्यंयदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रियासह ॥६०॥ संदह्यमानोऽजितशस्त्र
वह्निनातत्पादमूलेपतितः सवेपथुः । आहाच्युतानन्तसदीप्सितप्रभो कृतागसं
माऽवहिविश्वभावन ॥ ६१ ॥ अजानतातेपरमानुभावंकृतंमयाघंभवतः प्रियाणा
म् । विधेहितस्यापचितिंविधातर्मुच्येतयन्नाम्न्युदितेनारकोऽपि ॥ ६२ ॥ श्रीभगवा
नुवाच ॥ अहंभक्तपराधीनोह्यस्वतन्त्रइवद्विज । साधुभिर्ग्रस्तहृदयोभक्तैर्भक्तजन
प्रियः ॥ ६३ ॥ नाहमात्मानमाशासेमद्भक्तैःसाधुभिर्विना । श्रियंचात्यन्तिकींब्रह्म
न्येषांगतिरहंपरा ॥ ६४ ॥ येदारागारपुत्राप्तान्प्राणान्वित्तमिमंपरम् । हित्वामांशर-
णंयाताःकथंतांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥ ६५ ॥ मयिनिर्बद्धहृदयाःसाधवःसमदर्शनाः।वशी
कुर्वन्तिमांभक्त्यासत्स्त्रियःसत्पतिंयथा ॥ ६६ ॥ मत्सेवयाप्रतीतंचसालोक्यादिच-
तुष्टयम् । नेच्छन्तिसेवयापूर्णाःकुतोऽन्यत्कालविद्रुतम् ॥ ६७॥ साधवोहृदयंमह्यंसाधू
नांहृदयंत्वहम् । मदन्यत्तेनजानन्तिनाहंतेभ्योमनागपि ॥६८॥ उपायंकथयिष्यामि
तवविप्रशृणुष्वतत् । अयंह्यात्माभिचारस्तेयतस्तंयाहिवैभवान् ॥ साधुषु प्रहितं

उत्पन्न होते और जिनमें लीन होते हैं ॥५६॥ हे वत्स! मैं, सनत्कुमार, नारद, भगवान ब्रह्माजी, मोहशून्य कपिल, देवल, धर्म, आसुरि ॥ ५७ ॥ और मरीचि आदि अन्यान्य सिद्धेश गण सर्वज्ञ होकर भी जिनकी मायाको नहीं जानसकते वरन उलटे स्वयंही उसकी माया से घिरहुए हैं ॥५८॥ उन्हीं भगवान विश्वेश्वरका यहशस्त्रहै यह मेरेभी असहनीयहै अतएव तुमउन्हींकी शरणमें जाओ, वेही तुम्हारा कल्याण करेंगे ॥ ५९ ॥ हे राजन्! दुर्वासा इस प्रकार महादेवजी के निकट से भी निराशहो भगवान के निवास स्थान वैकुंठ में आये। भगवान लक्ष्मी निवास लक्ष्मीजी समेत वहां विराजमान थे ॥ ६० ॥ वेऋषि भगवानकी चक्राग्नि से दग्ध होतेहुए भगवान के चरणों में गिरकर कम्पित शरीर से कहनेलगे कि—हे अच्युत! हे अनंत! हे साधुओंको इच्छित वरदेनेवाले! मैंने अपराध किया है हे विश्वभावन! मेरी रक्षाकरो ॥ ६१ ॥ हे प्रभो! आपके परम प्रभावको न जानकर मैंने आपके भक्तको दु:खदिया है। हे विधाता! इस अपराध से मुझे छुड़ाओ। आपके नाम का गान करने से नारकी जीवभी मुक्तिको प्राप्त करते हैं ॥ ६२ ॥ भगवान ने कहाकि—हे द्विज! मैं भक्तों के आधीन हूं अतएव मैं एक भांतिसे पराधीन हूं—;भक्तजन मेरेप्यारे हैं, साधुभक्तों ने मेरे हृदय में अपना अधिकार किया है ॥ ६३ ॥ हे ब्रह्मन्! जिन साधुओं की मैंही परम गतिहूं उन साधुओं के अतिरिक्त मैं अपने आत्मा और लक्ष्मी की भी चाहना नहीं करता ॥ ६४ ॥ वास्तवमें जोमनुष्य पुत्र, कलत्र, गृह, स्वजन, धन, प्राण और इसलोक तथा परलोक सबको छोड़कर मेरे शरणागत हैं उनको मैं किस प्रकार से छोड़सकूं ॥ ६५ ॥ जैसे पतिव्रता स्त्री अपने श्रेष्ठ पतिको वशीभूत करती है वैसेही समदर्शी साधुलोग मुझको अपने हृदय में स्थापितकर मुझे अपने वशमें करलेते हैं ॥ ६६ ॥ मेरीसेवा करके उन्हें सालोक्यादि चारों मुक्तियां प्राप्तहोती हैं परन्तुवे उनको भी ग्रहण करने की इच्छा नहीं करते, वे अपनेको सेवासेही परिपूर्ण मानते हैं; काल से नाशहोने वाले दूसरे पदार्थों की चाहना करने की तोबातही क्या है ॥ ६७ ॥ साधुलोग मेराहृदय और मैं उनका हृदय हूं। वे मेरे अतिरिक्त और किसीको नहीं जानते, और मैं भी उनके अतिरिक्त कुछ नहीं जानता ॥ ६८ ॥ अतएव हे विप्र! जिससे तुम्हारे इस नाशकी शंका उत्पन्न हुई है; उन्हीं

तेजःप्रहर्तुःकुरुतेऽशिवम् ॥६९॥ तपोविद्याचविप्राणांनिःश्रेयसकरेउभे ॥ तएवदु-
र्विनीतस्यकल्पेतेकर्तुरन्यथा ॥ ७० ॥ ब्रह्मंस्तद्गच्छभद्रंतेनाभागतनयंनृपम् । क्षमा-
पयमहाभागंततःशांतिर्भविष्यति ॥ ७१ ॥

इतिश्रीमद्भा०म०नवम०अम्बरीषचरितेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एवंभगवतादिष्टोदुर्वासाश्चक्रतापितः । अम्बरीषमुपावृत्य
तत्पादौदुःखितोऽग्रहीत् ॥ १ ॥ तस्यसोद्यमनंवीक्ष्यपादस्पर्शविलज्जितः । अस्ता-
वीत्तद्धरेरस्त्रंकृपयापीडितोभृशम् ॥ २ ॥ अम्बरीष उवाच ॥ त्वमग्निर्भगवान्सूर्य-
स्त्वंसोमोज्योतिषांपतिः । त्वमापस्त्वंक्षितिर्व्योमवायुर्मात्रेन्द्रियाणिच ॥ ३॥ सुद-
र्शननमस्तुभ्यंसहस्राराच्युतप्रिय । सर्वास्त्रघातिन्विप्रायस्वस्तिभूयाइडस्पते ॥ ४॥
त्वंधर्मस्त्वमृतंसत्यंत्वंयज्ञोऽखिलयज्ञभुक् । त्वंलोकपालःसर्वात्मात्वंतेजःपौरुषंपरम्
॥ ५ ॥ नमःसुनाभाखिलधर्मसेतवेह्यधर्मशीलासुरधूमकेतवे । त्रैलोक्यगोपायवि-
शुद्धवर्चसेमनोजवायाद्भुतकर्मणेगृहे ॥ ६ ॥ त्वत्तेजसाधर्ममयेनसंहृतंतम प्रकाश-
श्चधृतोमहात्मनाम् । दुरत्ययस्तेमहिमागिरांपतेत्वद्रूपमेतत्सदसत्परावरम् ॥७॥यदा
विसृष्टस्त्वमनञ्जनेनवैबलंप्रविष्टोऽजितदैत्यदानवम् । बाहूदरोर्वङ्घ्रिशिरोधराणि
वृश्चन्नजस्रंप्रधनेविराजसे ॥ ८ ॥ सत्वंजगत्त्राणखलप्रहाणये निरूपितःसर्वसहो
गदाभृता । विप्रस्यचास्मत्कुलदैवहेतवेविधेहिभद्रंतदनुग्रहोहिनः ॥ ९ ॥ यद्यस्ति

के निकट जाओ—विलम्ब न करो ॥ ६९ ॥ साधुओंपर चलाई हुई शक्ति चलाने वाले काही बुरा करती है। यह सत्य है कि तपस्या और विद्या यह दोनोंही ब्राह्मणोंको मुक्ति देनेवाली हैं परन्तु अविनीत ब्राह्मणोंका इन्हीं से अकल्याण होता है ॥ ७० ॥ हे ब्रह्मन्! अब जाओ तुम्हारा कल्याण हो महाभाग नाभागपुत्र अंबरीषको जाकर शांतकरो, उन्हीं से तुम्हारा कल्याण होगा। ॥ ७१ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! चक्राग्निमें संतप्तहुए दुर्वासा भगवान की आज्ञापाय तत्कालही अम्बरीषके निकट आये और दुःखितहो उनके चरणोंमें गिरपड़े ॥ १ ॥ ब्राह्मणके चरणस्पर्शमें राजर्षि अत्यंत लज्जितहुआ और उसका ऐसा उद्यमदेख कृपासे पीड़ितहो भगवच्चक्रकी स्तुति करनेलगा ॥ २ ॥ हे सुदर्शन! तुम अग्निहो तुमहो भगवान सूर्य, नक्षत्रपतिचन्द्र, जल, भूमि, आकाश, समस्त तन्मात्रा और इन्द्रियवर्गहो ॥ ३ ॥ हेसुदर्शन! मैं तुमको नमस्कार करताहूं। हे अच्युतप्रिय! तुम सहस्रधारवालहो; हेसर्वास्त्रघातिन्! हेपृथ्वीश्वर! इस श्रेष्ठविप्रकी रक्षाकरो ॥४॥ तुम साक्षात् धर्म, ऋत, सत्य, यज्ञ, सब यज्ञोंके भोक्ता, लोकपाल, सर्वात्मा और भगवानके परम तेजहो ॥ ५ ॥ हेसुनाभ! तुम सब धर्मोंके सेतु, अधर्मशील असुरोंको धूमकेतु स्वरूप; त्रैलोक्यरक्षक, विशुद्ध तेज मनकी सदृश वेगवाले और अद्भुतकर्म करनेवालेहो। तुमको मैं नमस्कार करताहूं ॥ ६ ॥ हेसुदर्शन! तुम्हारे धर्ममय तेजसे अन्धकारका नाश और महात्माओंकी दृष्टिका प्रकाश होताहै हेगीष्पते! तुम्हारी अपूर्व महिमाहै, सत, असत, पर अपर इत्यादि समस्त पदार्थ तुम्हारेही स्वरूपहैं, सूर्यादि ग्रहोंका प्रकाशभी तुम्हींसे होताहै ॥ ७॥ हे अजित! भगवान जब तुम्हें रणमें छोड़तेहैं तब तुम दैत्य और दानवोंके मध्यमें प्रविष्ट होकर बारम्बार उनकी भुजा, पेट, उरु, चरण और कंधोंको काटतेहुए समरमें अत्यन्त शोभा देतेहो॥८॥हे जगत्त्राण! तुम सबसे अधिक बलवानहो। भगवान गदाधरने दुष्टोंके नाश करनेके निमित्तही तुमको नियत कियाहै अतएव मेरे कुलके सौभाग्यके निमित्त इस दुःखित ब्राह्मणका कल्याणकरो। यह तुम्हारा आपका बड़ा अनुग्रह

यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः । कुलं नो विप्रदैवं चेद्द्विजो भवतु विज्वरः ॥ १० ॥
यदि नो भगवान्प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः । सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः ११
श्रीशुक उवाच ॥ इति संस्तुवतो राज्ञो विष्णुचक्रं सुदर्शनम् । अशाम्यत्सर्वतो विप्रं
प्रदहद्राजयाञ्चया ॥ १२ ॥ स मुक्तोऽस्त्राग्नितापेन दुर्वासाः स्वस्तिमांस्ततः । प्रश-
शंस तमुर्वीशं युञ्जानः परमाशिषः ॥ १३ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ अहो अनन्तदासानां
महत्त्वं दृष्टमद्य मे । कृतागसोऽपि यद्राजन्मङ्गलानि समीहसे ॥ १४॥ दुष्करः को नु साधू-
नां दुस्त्यजो वा महात्मनाम् । यैः संगृहीतो भगवान्सात्वतामृषभो हरिः ॥ १५ ॥ य-
न्नामश्रुतिमात्रेण पुमान्भवति निर्मलः । तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते १६॥
राजन्ननुगृहीतोऽहं त्वयाऽतिकरुणात्मना । मदघं पृष्ठतः कृत्वा प्राणा यन्मेऽभिरक्षिताः
॥ १७ ॥ राजा तमकृताहारः प्रत्यागमनकाङ्क्षया । चरणावुपसंगृह्य प्रसाद्य समभोज-
यत् ॥ १८ ॥ सोऽशित्वाऽऽहृतमानीतमातिथ्यं सार्वकामिकम् । तृप्तात्मा नृपतिं प्राह
भुज्यतामिति सादरम् ॥ १९ ॥ प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि तव भागवतस्य वै । दर्श-
नस्पर्शनालापैरातिथ्येनात्ममेधसा ॥ २०॥ कर्मावदातमेतत्ते गायन्ति स्वःस्त्रियो मुहुः
कीर्तिं परमपुण्यां च कीर्तयिष्यति भूरियम् ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संकीर्त्य राजा-
नं दुर्वासाः परितोषितः । ययौ विहायसाऽऽमन्त्र्य ब्रह्मलोकमहैतुकम् ॥ २२ ॥ संव-
त्सरोऽत्यगात्तावद्यावता नागतो गतः । मुनिस्तद्दर्शनाकाङ्क्षो राजाऽब्भक्षो बभूव ह ॥
२३ ॥ गते च दुर्वाससि सोऽम्बरीषो द्विजोपयोगातिपवित्रमाहरत् । ऋषेर्विमोक्षं

होगा ॥ ९ ॥ हे सुदर्शन ! यदि मैंने दान, यज्ञ, और स्वधर्मका अनुष्ठान भलीप्रकारसे कियाहै और ब्राह्मण यदि मेरे कुल देवताहैं तो इस ब्राह्मणकी आपत्ति दूरहोजाय ॥ १० ॥ एक, सब प्राणियों के आत्मा और सब गुणोंके आश्रय भगवान् यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहैं तो इस ब्राह्मण का दुःख दूरहोय ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—सुदर्शनचक्र दुर्वासा ऋषिको दग्ध कररहाथा, परन्तु राजाके इसप्रकार स्तुति करनेपर वह शांत होगया, ॥ १२ ॥ दुर्वासा अस्त्राग्नि के तापसे छूटकर सुखीहुए और राजाको आशीर्वाददे प्रशंसा करनेलगे, ॥ १३ ॥ दुर्वासा बोले कि अहो ! आज मैंने भगवानके दासोंका महत्व देखा । हे राजन् ! मैंने तुम्हारा अपराध किया और तुमनेहीं मेरे कल्याणका यत्न किया, ॥१४॥ जिन भक्तजनोंने भगवान हरिको वशीभूत करलियाहै उनमहात्मा साधुओंको दुष्कर अथवा दुस्त्यजक्याहै ॥१५॥ जिनके केवल नाममात्रके श्रवणसेही मनुष्य निर्मल होजातेहैं उन भगवद्भक्तोंको कौनसा पदार्थ दुर्लभहै ? ॥१६॥ हे राजन् ! तुम अत्यन्त दयालुहो, मेरे अपराधपर दृष्टि न करके मेरे ऊपर अनुग्रह करके तुमने मेरे प्राणोंकी रक्षाकी ॥१७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—राजा अम्बरीष मुनिके आनेकी बाट देखताहुआ व्रत धारण कियेरहाथा इस समय उनके चरणपकड़ प्रसन्न कर भोजन कराया ॥ १८ ॥ राजानें मुनिको सबप्रकारसे संतोष देनेवाला भोजन परोसा, दुर्वासा ऋषि भोजनकर तृप्तहो राजासे कहने लगे कि तुमभी भोजन करो ॥ १९ ॥ तुम परमभागवतहो तुम्हारे दर्श स्पर्श भाषण और सात्विक अन्नसे मैं बड़ाही संतुष्ट हुआ ॥ २० ॥ स्वर्गवासिनी देवांगनाएं तुम्हारे इस पवित्र कर्मको सदैवही गान करेंगी और पृथ्वीके रहनेवाले मनुष्य सदैव तुम्हारी पवित्र कीर्त्ति का वर्णन करेंगे ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—महर्षि दुर्वासा इसप्रकार कह संतुष्ट चित्तहो राजर्षिसे आज्ञा मांग आकाशमार्गसे शून्य ब्रह्म-लोकमें गये कि जहां निष्कामकरनेवाले साधूलोग जाया करते हैं ॥ २२ ॥ चक्रके भयसे राजा अम्बरीषके यहांसे मुनिके चले जानेपर एक वर्ष बीतगयाथा, राजाने उनकी प्रतीक्षा करतेहुए, एकवर्षतक केवल जलपान कियाथा ॥ २३ ॥ जब मुनि लौटकर आये तब मुनि समेत ब्राह्मणों

व्यसनंचबुद्ध्वामेनेस्ववीर्यंचपरानुभावम् ॥ २४ ॥ एवंविधानेकगुणःसराजापरात्मनिब्रह्मणिवासुदेवे । क्रियाकलापैःसमुवाहभक्तिययाऽऽविरिञ्चान्निरयांश्चकार ॥ २५ ॥ अथाम्बरीषस्तनयेषुराज्यंसमानशीलेषुविसृज्यधीरः । वनंविवेशात्मनिवासुदेवेमनोदधद्ध्वस्तगुणप्रवाहः ॥ २६ ॥ इत्येतत्पुण्यमाख्यानमम्बरीषस्यभूपतेः । संकीर्तयन्ननुध्यायन्भक्तोभगवतोभवेत् ॥ २७ ॥

इतिश्रीमद्भा०म०नवम०अम्बरीषचरितेपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ विरूपःकेतुमाञ्शंभुरम्बरीषसुतास्त्रयः । विरूपात्पृषदश्वोऽभूत्तत्पुत्रस्तु रथीतरः ॥ १ ॥ रथीतरस्याप्रजस्य भार्यायांतन्तवेऽर्थितः । अंगिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनःसुतान् ॥२॥ एतेक्षेत्रप्रसूतावै पुनस्त्वांगिरसाःस्मृताः । रथीतराणांप्रवराः क्षत्रोपेताद्विजातयः ॥ ३ ॥ क्षुवतस्तुमनोर्जज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतः सुतः । तस्यपुत्रशतज्येष्ठा विकुक्षिनिमिदण्डकाः ॥४॥ तेषांपुरस्तादभवन्नार्यावर्तेनृपानृप । पंचविंशतिःपश्चाच्च त्रयोमध्येपरेऽन्यतः ॥ ५ ॥ सएकदाऽष्टकाश्राद्ध इक्ष्वाकुःसुतमादिशत् । मांसमानीयतांमेध्यं विकुक्षेगच्छमाचिरम् ॥ ६ ॥ तथेतिसवनंगत्वा मृगान्हत्वाक्रियार्हणान् । श्रान्तोबुभुक्षितोवीरः शशंचादद्पस्मृतिः ॥ ७ ॥ शेषंनिवेदयामास पित्रेतेनचतद्गुरुः । चोदितःप्रोक्षणायाह दुष्टमेतदकर्मकम् ॥ ८ ॥ ज्ञात्वापुत्रस्यतत्कर्म गुरुणाऽभिहितंनृपः । देशान्निःसारयामास सुतं

को भोजन कराय फिर आपने उस पवित्र भोज्यका भोजन किया । ऋषिके ऊपर आपत्ति पड़नेका और फिर छूटनेका व अपने धैर्यादिकका स्मरणकर राजाने अपने मनमें विचारा कि यह सब भगवानकेही प्रभावसे हुआ ॥ २४ ॥ इसप्रकार विविधगुणशाली राजा अम्बरीष उत्तम कर्मोंद्वारा भगवान वासुदेवकी भक्ति करताथा ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—तदनन्तर वह वीर अंबरीष भगवान वासुदेवमें मनको स्थिरकर अपनी समान शीलवान पुत्रको राज्यका भारदे आप वनमें जाय संसारके बंधनोंसे छूटगया ॥ २६ ॥ हेराजन् ! राजा अम्बरीषके इस पवित्र आख्यानको जो मनुष्यकहेगा अथवा ध्यान करेगा वह भगवद्भक्त होवेगा।।जो मनुष्य भक्तिपूर्वक अंबरीषके चरित्रोंको सुनेगा वह भगवान् विष्णुकी कृपासे सहजहीमें मुक्ति पाजावेगे ॥ २७ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेनवमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! अम्बरीषके विरूप, केतुमान और शम्भु यह तीन पुत्रहुए उनमेंसे विरूपका पुत्र पृषदश्व और उसके रथीतर हुआ, ॥१॥ रथीतरके पुत्र व कन्या कुछ न हुआ इसीकारण उसकी प्रार्थनानुसार महर्षि अंगिराने उसकीस्त्रीसे तेजयुक्त कई एक संताने उत्पन्नकीं। ॥ २ ॥ हेराजन् ! रथीतरके क्षेत्रमें उत्पन्न होनेसे रथीतर गोत्रहुआ और अंगिराके वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण आंगिरसके नामसेभी वह गोत्र विख्यात हुआ । यह क्षत्रियजाति ब्राह्मण रथीतरके गोत्रमें कहगये ॥ ३ ॥ छींक आनेके समय मनुकी नाकसे इक्ष्वाकु का जन्महुआ इक्ष्वाकुके सौपुत्र उत्पन्न हुए । उनमेंसे विकुक्षि, निमि और दंडक ये पुत्र सबसे बड़ेथे ॥४॥ उन सौपुत्रोंमेंसे २५ जन आर्यावर्तके अग्रभागमें २५ जन पिछले भागमें तीनजन मध्यस्थलमें और अन्यान्य भागोंमें अन्यान्य पुत्र राज्य करतेथे ॥ ५ एकदिन राजा इक्ष्वाकुने अष्टका श्राद्ध करनेके निमित्त विकुक्षिको बुलाकर कहा।कि—विकुक्षि जाओ, पवित्र मांसलाओ, विलम्ब न करना ॥ ६ ॥ विकुक्षिने अच्छा कह वनमें जाय क्रियाके योग्य बहुतसे मृगमारे । वह अत्यन्त श्रमित और भूखसे व्याकुलहो एक शशक (खरगोश) को खागया ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त वह शेषमांस पिताके समीप लेआया, इक्ष्वाकु ने मांसके संस्कारके निमित्त वशिष्ठजीसे कहा, तब वशिष्ठजी बोले कि—यह मांस दूषित होगया है यह संस्कार के योग्यनहीं है ॥ ८ ॥ इक्ष्वाकु ने वशिष्ठजीसे पुत्रके इसकार्यसे।

स्त्यक्तविधिरुषा ॥ ९ ॥ सतुविप्रेणसम्वादं वापकेनसमाचरन् । त्यक्त्वाकलेवरं योगी सतेनावापयत्परम् ॥ १० ॥ पितर्युपरतेऽभ्येत्य विकुक्षिःपृथिवीमिमाम् । शासदीजेहरियज्ञैः शशादइतिविश्रुतः ॥ ११ ॥ पुरंजयस्तस्यसुत इन्द्रवाहइतीरितः । ककुत्स्थइतिचाप्युक्तः शृणुनामानिकर्मभिः ॥ १२ ॥ कृतान्तआसीत्समरो देवानांसहदानवैः । पार्ष्णिग्राहोवृतोवीरो देवैर्दैत्यपराजितैः ॥ १३ ॥ वचनाद्देवदेवस्य विष्णोर्विश्वात्मनःप्रभोः । वाहनत्वेवृतस्तस्य बभूवेन्द्रोमहावृषः ॥ १४ ॥ ससंनद्धोधनुर्दिव्य मादायविशिखाञ्छितान् । स्तूयमानःसमारुह्य युयुत्सुःककुदिस्थितः ॥ १५ ॥ तेजसाऽऽप्यायितोविष्णोः पुरुषस्यपरात्मनः । प्रतीच्यां दिशिदैत्यानां न्यरुणत्त्रिदशैःपुरम् ॥ १६ ॥ तैस्तस्यचाभूत्प्रधनंतुमुलंलोमहर्षणम् । यमायभल्लैरनयद्दैत्यान्येऽभिययुर्मृधे ॥ १७ ॥ तस्येषुपाताभिमुखंयुगान्ताग्निमिवोल्बणम् । विसृज्यदुद्रुवुर्दैत्या हन्यमानाःस्वमालयम् ॥ १८ ॥ जित्वापुरंधनं सर्वं सश्रीकंवज्रपाणये । प्रत्ययच्छत्सराजर्षि रितिनामभिराहृतः ॥ १९ ॥ पुरंजयस्यपुत्रोऽभूदनेनास्तत्सुतःपृथुः । विश्वरन्धिस्ततश्चन्द्रोयुवनाश्वश्चतत्सुतः ॥ २० ॥ शावस्तस्तत्सुतोयेनशावस्तीनिर्ममेपुरी । बृहदश्वस्तुशावस्तिस्ततःकुवलयाश्वकः ॥ ॥ २१ ॥ यःप्रियार्थमुतङ्कस्यधुंधुनामाऽसुरंबली । सुतानामेकविंशत्यासहस्रैरहनद्वृतः ॥ २२ ॥ धुन्धुमारइतिख्यातस्तत्सुतास्तेचजज्वलुः । धुन्धोर्मुखाग्निनासर्वे

जान क्रोधितहो उसको देश से निकाल दिया क्योंकि उसने शास्त्रकी मर्यादाका उल्लंघन कियाथा ॥ ९ ॥ इसके उपरांत इक्ष्वाकु वसिष्ठजी के साथ आत्मज्ञान विषयकवार्त्ता में प्रवृत्तहुआ और योगी हो योग द्वारा शरीर को छोड़ परमतत्वको प्राप्तहुआ ॥ १० ॥ पिता के मरजाने के उपरांत विकुक्षि फिर अपने देशको लौटआया और "शशाद" इस नाम से प्रसिद्ध हो पिता के राज्यको ग्रहणकर पालन और विविधयज्ञद्वारा भगवान हरिकी आराधना में प्रवृत्तहुआ ॥ ११॥ शशाद का पुत्र पुरञ्जयहुआ वह इन्द्र वाह ककुत्स्थ के नाम से भी विख्यातहुआ । जिनकर्मों से उसके बहुत से नामहुए वह सुनो ॥ १२ ॥ पहिले दैत्यों के साथ देवताओं का विश्वसंहारक समरहुआ दैत्यों से हारकर देवताओं ने उस वीर को अपनी सहायता के निमित्त बुलाया ॥ ॥ १३ ॥ पुरञ्जयने अपना वाहन इन्द्रके बनने को कहा तब विश्वात्मा देवदेव विष्णुजीकी आज्ञानुसार इन्द्रमहावृषभ (सांड़) बना । इसही कारण उसका नाम इन्द्रवाह हुआ ॥ १४ ॥ तदनन्तर युद्धार्थी पुरञ्जय कमरकस, अस्त्रलगाय दिव्यधनुष और तीक्ष्णबाणले देवताओं की समान शोभायमानहो वृषभकी ककुद (काठ) में बैठा इससे ककुत्स्थनामहुआ ॥ १५॥ तदुपरांत पुरञ्जय ने महात्मा विष्णुजी के तेजसे बर्द्धित होकर देवताओं के साथ पश्चिम ओरसे दैत्यों की पुरी को रोकलिया ॥ १६ ॥ दैत्यों के साथ इसराजाका बड़ा घोर संग्रामहुआ; जो दैत्य समर में उसके सन्मुखहुए उनको वह यमपुरी में भेजनेलगा ॥ १७ ॥ घायलदैत्यगण प्रलयाग्नि की समान उसके अति प्रचण्डबाणों से व्याकुल हो २ कर अपने २ घरोंको भागगये ॥ १८ ॥ फिर राजर्षि ने नगरजीतकर दैत्योंकी स्त्रियें व धन इन्द्रको दिया । इन्हीं सब कर्मों से वह पुरञ्जनादि नामों से विख्यातहुआ ॥ १९ ॥ पुरञ्जयका पुत्र अनेना:, अनेना; के पृथु, पृथुके विश्वरंधि, विश्वरंधिके चन्द्र, चन्द्र के युवनाश्व पुत्र उत्पन्नहुआ ॥ २० ॥ युवनाश्वके शावस्तनामक पुत्र उत्पन्न हुआ उसने शावस्ती पुरी बसाई । शावस्तका पुत्र बृहदश्व, बृहदश्वकापुत्र कुवलयाश्व हुआ ॥२१॥ इस महाबलवान राजा ने महर्षिउतङ्क के प्रसन्न करने के निमित्त २१ सहस्रपुत्रों को साथले धुन्धुनामक असुर का संहार किया ॥ २२ ॥ इसहीकारण वह धुन्धुमार के नाम से विख्यात हुआथा।

त्रयएवावशेषिताः ॥ २३ ॥ दृढाश्वःकपिलाश्वश्चभद्राश्वइतिभारत । दृढाश्वपुत्रो हर्यश्वोनिकुम्भस्तत्सुतःस्मृतः ॥ २४ ॥ बर्हणाश्वोनिकुम्भस्यकृशाश्वोऽथास्यसेनजित् । युवनाश्वोऽभवत्तस्यसोऽनपत्योवनंगतः ॥ २५ ॥ भार्याशतेननिर्विण्णऋषयोऽस्यकृपालवः । इष्टिंस्मवर्तयांचक्रुरैन्द्रींतेसुसमाहिताः ॥ २६ ॥ राजातद्यज्ञसदनंप्रविष्टोनिशितर्षितः । दृष्ट्वाशयानान्विप्रांस्तान्पपौमन्त्रजलंस्वयम् ॥ २७ ॥ उत्थितास्तेनिशाम्याथव्युदकंकलशंप्रभो । पप्रच्छुःकस्यकर्मेदंपीतंपुंसवनंजलम् ॥ २८ ॥ राज्ञापीतंविदित्वाऽथईश्वरप्रहितेनते । ईश्वरायनमश्चक्रुरहोदैवबलंबलम् ॥ २९ ॥ ततःकालउपावृत्तेकुक्षिंनिर्भिद्यदक्षिणम् । युवनाश्वस्यतनयश्चक्रवर्तीजजान ह ॥ ३० ॥ कंधास्यतिकुमारोऽयंस्तन्येरोरूयतेभृशम् । मांधातावत्समारोदीरितीन्द्रोदेशिनीमदात् ॥ ३१ ॥ नममारपितातस्यविप्रदेवप्रसादतः । युवनाश्वोऽथतत्रैवतपसासिद्धिमन्वगात् ॥ ३२ ॥ त्रसद्दस्युरितीन्द्रोऽङ्गविदधेनामतस्यवै । यस्मात्त्रसन्तिह्युद्विग्नादस्यवोरावणादयः ॥ ३३॥ यौवनाश्वोऽथमांधाताचक्रवर्त्यवनींप्रभुः । सप्तद्वीपवतीमेकःशशासाच्युततेजसा ॥ ३४ ॥ ईजेचयज्ञंक्रतुभिरात्मविद्भूरिदक्षिणैः । सर्वदेवमयंदेवंसर्वात्मकमतीन्द्रियम् ॥ ३५॥ द्रव्यंमन्त्रोविधिर्यज्ञो यजमानस्तथार्त्विजः । धर्मोदेशश्चकालश्चसर्वमेतद्यदात्मकम् ॥ ३६ ॥ यावत्सूर्य

परन्तु इसके पुत्रगण धुन्धुकी मुखाग्निद्वारा जलकर भस्महोगये थे । हेभारत! केवल दृढाश्व, कपिलाश्व और भद्राश्वनामक तीनजन शेष रहेथे दृढाश्वका पुत्र हर्यश्व, हर्यश्वका पुत्र निकुंभ ॥२३॥ ॥ २४ ॥ निकुम्भका पुत्र बर्हणाश्व, उसका पुत्र कृशाश्व, और कृशाश्वका पुत्र सेनजित हुआ । सेनजितका पुत्र युवनाश्वहुआ । इस युवनाश्वके कोई सन्तान न थी, अतएव यह खिन्नहोकर अपनी सौ रानियों को साथ ले बनको चलागया, वहां ऋषियों को इसपर दयाआगई इसकारण उन्होंने एकाग्र चित्तहो इसके पुत्र होनेके निमित्त इन्द्र की इष्टि (यज्ञ) की ॥२५—२६ ॥ एकदिन युवनाश्वको रात्रिके समय प्यासलगी तबवह यज्ञशालामें गया और ऋत्विक् विप्रों को सोते हुए देख, उन्हें जगाना अनुचितजान, सन्मुख धरेहुए अभिमन्त्रितजल को कि जो उसकी स्त्री के लिये पुत्रोत्पत्तिके निमित्त नियत कियागयाथा उसजलको आप पीगया॥२७॥हेराजन् !पुरोहितोंने सोने से उठकर देखा कि कलश में जल नहीं है तब उन्हों ने पूँछा कि इस पुत्रोत्पादक जलको किसने पिया ? ॥ २८ ॥ अनन्तर जब प्रगटहुआकि यह जल तो दैवेच्छा से राजाने पिया है तब भगवान कोनमस्कार करके उन्होंने कहा कि—" अहो ! दैवका बलही मुख्यबल है " ॥ २९ ॥ फिर समय के पूर्ण होनेपर युवनाश्वकी दक्षिण (दाहिनी) कोखफाडकर चक्रवर्ती के लक्षणोंवाला एकपुत्र उत्पन्नहुआ ॥ ३० ॥ यह स्तन पीने के निमित्त बहुत रोदन करता है क्या पीवेगा ? ऋषियों के दुःखितभाव से इसप्रकार कहनेपर देवराज इन्द्रने कहा कि हे वत्स ! ' रो मत ' तू मुझेपीवेगा, यह कहकर अपनी तर्जनी उसके मुखमें दी । इसकारण इसपुत्रकानाम मान्धाताहुआ॥ ॥ ३१ ॥ देवता और ब्राह्मणों की कृपासे मांधाता के पिता युवनाश्व का प्राणनष्ट नहीं हुआ । तपस्याद्वारा उसबन में रहकरही कुछ दिनों में वह मोक्षपागया ॥ ३२ ॥ हेराजन् ! दस्युगण उस मांधाताके प्रतापसे त्रसित रहते थे, इससे इन्द्रने इसका दूसरानाम ' त्रसद्दस्यु ' रक्खा ॥ ३३॥ तदनन्तर मांधाता चक्रवर्तीहो भगवानके तेजसे अकेलाही सातद्वीप पृथ्वीका शासनकरनेलगा३४॥ इसआत्मज्ञ मांधाताने बहुतसी दक्षिणायेंदे बहुतयज्ञोंद्वारा यज्ञरूपी सर्वदेवमय,सर्वात्मक भगवानका भजन किया ॥ ३५ ॥ द्रव्य, मन्त्र, विधि, यज्ञ, यजमान, ऋत्विक् , धर्म, देश और काल यह स-

उदेतिस्मयावच्चप्रतितिष्ठति । सर्वंतद्यौवनाश्वस्यमान्धातुःक्षेत्रमुच्यते॥ ३७॥ शश
बिन्दोर्दुहितरिबिन्दुमत्यामधान्नृपः । पुरुकुत्सममम्बरीषंमुचुकुंदंचयोगिनम् । तेषांस्व
सारःपञ्चाशत्सौभरिंवव्रिरेपतिम् ॥ ३८ ॥ यमुनाऽन्तर्जलेमग्नस्तप्यमानःपरंतपः
निर्वृतिंमीनराजस्यवीक्ष्यमैथुनधर्मिणः ॥ ३९ ॥ जातस्पृहोनृपंविप्रःकन्यामेकाम
याचत । सोऽप्याहगृह्यतांब्रह्मन्कामंकन्यास्वयंवरे ॥ ४० ॥ सविचिन्त्याप्रियंस्त्रीणां
जरठोऽयमसंमतः । वलीपलितएजत्कइत्यहंप्रत्युदाहृतः ॥ ४१ ॥ साधयिष्येतथा
त्मानंसुरस्त्रीणामभीप्सितम् ॥ किंपुनर्मनुजेन्द्राणामितिव्यवसितःप्रभुः ॥४२॥ मुनिः
प्रवेशितःक्षत्राकन्यांतःपुरमृद्धिमत् । वृतःसराजकन्याभिरेकःपञ्चाशतावरः ॥४३॥
तासांकलिरभूद्भूयांस्तदर्थेऽपोह्यसौहृदम् । ममानुरूपोनायंवइतितद्गतचेतसाम् ॥
४४ ॥ सबह्वृचस्ताभिरपारणीयतपःश्रियाऽनर्घ्यपरिच्छदेषु । गृहेषुनानोपवनामला
म्भःसरस्सुसौगन्धिककाननेषु ॥ ४५ ॥ महार्हशय्यासनवस्त्रभूषणस्नानानुलेपा
भ्यवहारमाल्यकैः । स्वलंकृतस्त्रीपुरुषेषुनित्यदारेमेऽनुगायद्द्विजभृङ्गवन्दिषु ४६
यद्गार्हस्थ्यंतुसंवीक्ष्यसप्तद्वीपवतीपतिः । विस्मितःस्तम्भमजहात्सार्वभौमश्रिया
न्वितम् ॥ ४७ ॥ एवंगृहेष्वभिरतोविषयान्विविधैःसुखैः । सेवमानोनचातुष्यदा

वही भगवान के स्वरूप हैं ॥ ३६ ॥ हेराजन्! सूर्य के उदयस्थानसे अस्ताचलतक समस्त भूमि मांधाताकी थी ऐसा कहा जाताहै ॥ ३७ ॥ इस राजा ने शशबिंदुकी पुत्री इन्दुमती के गर्भ से पुरुकुत्स, अम्बरीष और महायोगी मुचुकुन्द इन तीन पुत्रोंको उत्पन्न किया । मांधाता के पचास कन्याएं हुई वे सबही सौभरि ऋषिको व्याहीगई ॥ ३८ ॥ हेराजन् सौभरि ऋषि ने यमुना के जल में निमग्नहो, तपस्या करते २ एकदिन मत्स्यराजके मैथुनसुखको देखा. तब उनकोभी उसी प्रकार की इच्छाहुई । उन्होंने मांधाता के निकट आप विवाहके निमित्त एक कन्या की याचनाकी । मांधाता ने उनकी प्रार्थना करनेपर कहा कि—हे ब्रह्मन्! अच्छी बात है! स्वयंवर मे मेरी कन्या को ग्रहणकरो ॥ ३९—४० ॥ सौभरिने यह सुनकर मनमें विचारा कि 'मैं जरासे जीर्ण हूं, मेरे केश पकगय हैं और मेरा मस्तक निरन्तर डगमगाया करता है; और मैं तपस्वी हू, इसीकारण स्त्रियों का अप्रियहूं, यही विचारकर राजा ने मुझसे चतुराई की ॥ ४१ ॥ जो हो, अब मैं अपने को ऐसा करूंगा कि राजाओं की कन्याओं की बातक्या, देवांगनाए भी मेरी चाहनाकरें ॥ ॥ ४२ ॥ हेराजन्! तदनन्तर द्वारपाल उनको राजकन्याओं के समृद्धिशाली अन्तःपुर में लेगया। उसकाल मुनि ने तपके प्रभाव से ऐसारूप धारण किया कि उन पचासों कन्याओं ने मुनिही को अपना पति किया ॥ ४३ ॥ उनके निमित्त वे राजकन्याएं अपने आपसकी सुहृदता छोड़कर "यह मेरेही योग्य हैं तेरे योग्य नहीं" इस प्रकार कह २ कर परस्पर लड़ाई करनेलगीं; क्योंकि सबही का चित्त उनमें आसक्त होगयाथा ॥ ४४ ॥ उनके अपार तप के प्रभाव से प्रत्येकघर अमूल्य सामग्री, नानाप्रकारके वन उपवन, निर्मलजल के सरोवर व सुगन्धित कमलों के वन से सुशोभितहो रहे हैं । समस्तघर सुन्दर, वस्त्र, और आभूषणोंयुक्त तथा दास दासियोंसे अलंकृत होरहे हैं, पक्षी, भौंरे और बन्दीगण मधुरस्वरसे गानकररहे हैं । वहां ये ऋग्वेदीमुनि—महामूल्य शय्या आसन, वसन, भूषण, स्नान और चन्दन, अरगजा आदि के लेपन युक्तहो सबघरों और उपवनादि में स्त्रियों समेत सर्वदा विहारकरनेलगे ॥ ४५—४६ ॥ हेराजन्! सौभरि के गार्हस्थ्यधर्म को देख चक्रवर्त्ती राजा मांधाता को अत्यन्त विस्मय उत्पन्नहुआ । उनको जो अपनी राज्यकी सम्पत्ति का गर्वथा उसको उन्होंने छोड़दिया ॥ ४७ ॥ यद्यपि सौभरि इसप्रकार से गृहस्थाश्रम में लिप्तहो नाना सुखों से विषयभोग करनेलगे, परन्तु जैसे घी के बिन्दु डालने से अग्नि तृप्तनहीं

ज्यस्तोकैरिवानलः ॥ ४८ ॥ स कदाचिदुपासीन आत्मापह्नवमात्मनः ददर्श बह्वृचाचार्यो मीनसङ्गसमुत्थितम् ॥ ४९ ॥ अहो इमं पश्यत मे विनाशं तपस्विनः सच्चरितव्रतस्य । अन्तर्जले वारिचरप्रसङ्गात्प्रच्यावितं ब्रह्म चिरं धृतं यत् ॥ ५० ॥ सङ्गं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः सर्वात्मना न विसृजेद्बहिरिन्द्रियाणि । एकश्चरन्रहसि चित्तमनंत ईशे युञ्जीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत्प्रसङ्गः ॥ ५१॥ एकस्तपस्व्यहमथाम्भसि मत्स्यसङ्गात्पञ्चाशदास मुत पञ्चसहस्रसर्गः । नान्तं व्रजाम्युभयकृत्यमनोरथानां मायागुणैर्हृतमतिर्विषयेऽर्थभावः ॥ ५२॥ एवं वसन्गृहे कालं विरक्तो न्यासमास्थितः । वनं जगामानुययुस्तत्पत्न्यः पतिदेवताः ॥५३॥ तत्र तप्त्वा तपस्तीक्ष्णमात्मकर्षणमात्मवान् । सहैवाग्निभिरात्मानं युयोज परमात्मनि ॥ ५४ ॥ ताः स्वपत्युर्महाराज निरीक्ष्याध्यात्मिकीं गतिम् । अन्वीयुस्तत्प्रभावेन अग्निं शान्तमिवार्चिषः ॥ ५५ ॥

इतिश्रीमद्भा०म०नवम०सौभर्याख्यानेषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीशुक उवाच । मांधातुः पुत्रप्रवरो योऽम्बरीषः प्रकीर्तितः ॥ पितामहेन प्रवृतो यौवनाश्वश्च तत्सुतः । हारीतस्तस्य पुत्रोऽभून्मांधातृप्रवरा इमे ॥ १ ॥ नर्मदा भ्रातृभिर्दत्ता पुरुकुत्साय योरगैः । तया रसातलं नीतो भुजगेन्द्रप्रयुक्तया ॥२॥ गन्धर्वान्वधीत्तत्र वध्यान्वै विष्णुशक्तिधृक् । नागाल्लब्धवरः सर्पादभयं स्मरतामिदम् ३॥ त्रसद्दस्युः पौरुकुत्सो योऽनरण्यस्य देहकृत् । हर्यश्वस्तत्सुतस्तस्मात्प्ररुणोऽथ त्रिब-

होती, वैसेही उन्हे भी कुछ तृप्ति न हुई ॥ ४८ ॥ एक दिन ऋग्वेदियों के आचार्य सौभरि ऋषि बैठेहुए अपने मत्स्यसंगम से उत्पन्नहुए तपोभङ्ग को जानकर कहनेलगे कि ॥ ४९ ॥ हाय! मैं तपस्वी साधु और व्रताचारी था; मेरा सर्वनाशहोगया । जलके भीतर मछली का प्रसंग देखकर बहुतकालकी संचितकी हुई तपस्याको मैंने नष्टकरडाला ॥ ५० ॥ मुमुक्षुजनको मैथुन धर्मी जीवोंका साथ छोड़देना चाहियें, अकेला भ्रमणकरता हुआ एकांत में बैठकर परमेश्वर में चित्त लगावे, यदि संसर्ग करनाही होतो भगवद्भक्तों का संगकरे ॥ ५१ ॥ मैं अकेलाही जल में तपस्या करताथा, वहां मत्स्यका संसर्ग देख स्त्री ग्रहण करने की इच्छासे पचास स्वरूप हुआ; उनके पुत्र होने से अब पांचसहस्रस्वरूप हुआ, तो भी माया के गुणों से बुद्धि भ्रष्टहोजाने के कारण विषयों कोही पुरुषार्थमानताहुआ इसलोक व परलोक सम्बन्धी कर्म करने के मनोरथों का अन्त नहीं पाता हू ॥ ५२ ॥ हेराजन्! सौभरि इस प्रकारसे गृहस्थाश्रम में वासकरते २ विरक्तहो वानप्रस्थ धर्मका अवलम्बन कर अपनी साध्वी स्त्रियों समेत वनको चलागया ॥ ५३ ॥ वहां आत्मज्ञ सौभरि ऋषि ने, जिससे शरीर कृश होजाय ऐसा तीव्रतप करके अग्निहोत्र समेत अपने आत्माको परमात्मामे लगादिया ॥ ॥ ५४ ॥ अपने पति को इसप्रकार से परब्रह्म में लीन होते देखकर जैसे अग्निकीलपटें अग्निके शांत होतेहीशांतहोजाती हैं वैसेही. वे स्त्रियें भी उन मुनिके प्रभाव से उनकी सहगामिनी हुईं ॥५५॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेनवमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—सर्वश्रेष्ठ मांधाताके पुत्र अंबरीषको उसके पितामह युवनाश्वने अपने पुत्ररूपसे रक्खाथा, इस अम्बरीषका पुत्र यौवनाश्व हुआ । उसका पुत्र हारीतहुआ । अम्बरीष यौवनाश्व और हारीत ये तीनों मांधाताके वंशमें श्रेष्ठहुए, ॥ १ ॥ नागोंने पुरुकुत्सको अपनी नर्मदा नामक बहिनदी । वासुकीकी आज्ञासे नर्मदा पुरुकुत्सको रसातलमें लेगई ॥ २ विष्णुशक्ति धर पुरुकुत्सने उस स्थानमें वधयोग्य गन्धर्वों का वध किया । तब नागोंने उन्हें यह वरदानदिया कि इस उपाख्यान के स्मरण करने से सर्पसे भय न होगा ॥ ३ ॥ पुरुकुत्स का पुत्र त्रसद्दस्यु और उसके अनरण्य हुआ । अनरण्यका पुत्र हर्यश्व, हर्यश्व का पुत्र प्रारुण और प्रारुणका पुत्र

न्धनः ॥४॥ तस्यसत्यव्रतः पुत्रस्त्रिशङ्कुरितिविश्रुतः । प्राप्तश्चाण्डालतां शापाद्‌गुरोः कौशिकतेजसा ॥५॥ सशरीरोगतःस्वर्गमद्यापि दिविदृश्यते । पातितोऽवाक्शिरा देवैस्तेनैव स्तम्भितोबलात् ॥६॥ त्रैशंकवोहरिश्चन्द्रो विश्वामित्रवसिष्ठयोः यन्निमित्तमभूद्युद्धं पक्षिणोर्बहुवार्षिकम् ॥ ७ ॥ सोऽनपत्योविषण्णात्मा नारदस्योपदेशतः । वरुणंशरणंयातः पुत्रोमेजायतांप्रभो ॥८॥ यदिवीरोमहाराज तेनैवत्वां यजेइति । तथेतिवरुणेनास्य पुत्रोजातस्तुरोहितः ॥ ९ ॥ जातःसुतोह्यनेनांगमां यजस्वेतिसोऽब्रवीत् । यदापशुर्निर्दशः स्यादथमेध्योभवेदिति ॥ १० ॥ निर्दशेचस आगत्य यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् । दन्ताःपशोर्यज्जायेरन्नथ मेध्योभवेदिति ॥११॥ जातादन्तायजस्वेति सप्रत्याहाथसोऽब्रवीत् । यदापतन्त्यस्य दन्ताअथमेध्योभवेदिति ॥ १२ ॥ पशोर्निपतितादन्तायजस्वेत्याहसोऽब्रवीत् ॥ यदापशोःपुनर्दन्ता जायन्तेऽथपशुःशुचिः ॥ १३ ॥ पुनर्जातायजस्वेति सप्रत्याहाथसोऽब्रवीत् ॥ सान्नाहिकोयदा राजन्राजन्योऽथ पशुःशुचिः ॥ १४ ॥ इतिपुत्रानुरागेणस्नेहयन्त्रितचेतसा । कालंवञ्चयतातंतमुक्तोदेवस्तमैक्षत ॥ १५ ॥ रोहितस्तदभिज्ञायपितुःकर्म चिकीर्षितम् । प्राणप्रेप्सुर्धनुष्पाणिररण्यंप्रत्यपद्यत ॥ १६ ॥ पितरंवरुणग्रस्तंश्रुत्वा

त्रिबन्धन हुआ ॥ ४ ॥ त्रिबन्धनका पुत्र सत्यव्रतथा कि जिसका दूसरानाम त्रिशंकु हुआ, । वह गुरु वसिष्ठजीके शापसे चांडालहुआ परन्तु फिर विश्वामित्र मुनिके प्रभावसे ॥ ५ ॥ शरीर सहित स्वर्गमें गया । त्रिशंकु अबतक आकाशमें दृष्टिगोचर होताहै । देवताओंने उलटे शिर इसको पृथ्वी पर गिरादेने की इच्छाकीथी परन्तु महर्षि विश्वामित्रने अपने बलसे इसको स्तंभित कररक्खा है ॥ ६ ॥ त्रिशंकुके हरिश्चन्द्र पुत्रहुआ । इसी हरिश्चद्रके निमित्त विश्वामित्र और वसिष्ठमें कितने एकवर्ष पक्षीरूपमें घोरयुद्ध होतारहा ॥ ७ ॥ निःसंतान होनेके कारण हरिश्चन्द्र सदैव दुःखी रहते थे । देवर्षि नारदके उपदेशसे वरुणके शरणागतहो राजाने यह प्रार्थनाकी कि—हेदेव ! मेरे एक पुत्रहोवे ॥ ८ ॥ हेप्रभो ! यदि मेरे वीर पुत्र उत्पन्न होगा तो उसही पुरुषपशु द्वारा मैं आपका यज्ञ करूंगा । वरुणने" तथास्तु,, कहा तदनन्तर उसके रोहित नामपुत्रउत्पन्नहुआ, ॥ ९ ॥ जब पुत्र उत्पन्न हुआ तब वरुणने कहा कि—हेराजन् ! तुम्हारे पुत्रतो उत्पन्न होगया अब इसके द्वारा मेरा यागकरो । हरिश्चन्द्रने कहा कि हेदेव ! दशदिनके बीतनेपर पशु पवित्र होगा, दशदिन के उपरांत यज्ञकरूंगा ॥ १० ॥ दश दिनके बीतजानेपर वरुण फिर आयकर कहनेलगे कि, अब मेरा यागकर राजाने कहा कि—दांत निकलनेसेही पशु पवित्र होताहै ॥ ११ ॥ फिर दांत निकलनेके उपरांत वरुणने आनकर कहा कि—हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रके दांत निकलआये अब याग करो । हरिश्चन्द्रने कहा कि—इसके दांत जब सब गिरजायँग तब यह पशु यज्ञके योग्य होगा ॥ ॥ १२ ॥ दांत गिरजानेके उपरांत वरुणने कहा कि—हेराजन् ! पशुके सब दांत गिरगये अब मेरा यज्ञ करो । हरिश्चन्द्रने कहा कि पशुके दांत जब फिर निकल आवेंगे तब पवित्र होगा ॥ १३ ॥ दांत निकलआने पर वरुणने कहा कि तुम्हारे पुत्रके दांत पुनर्वार निकलआये अब यज्ञ करो इसपर हरिश्चन्द्रने कहा कि—हेवरुणदेव ! क्षत्रियजाति का पशु तो जब संग्रामके योग्य होजाताहै तबही पवित्र होताहै ॥ १४ ॥ पुत्रके प्रेमसे स्नेह बद्धहो राजा इसप्रकारसे वंचना करता हुआ जिस २ समयको कहनेलगा वरुणजी उसी २ कालकी राह देखतेरहे ॥ १५ ॥ इतनेमें रोहित अपने पिताके अभिप्रायको जान अपने प्राण रक्षाकी इच्छासे हाथमें धनुषले नगरसे बाहर बनकी ओर चलागया॥१६॥वरुण देवताने कुपित होकर हरिश्चन्द्रके जलोदर रोग उत्पन्न करदियाहै यह

आतमहोवरम्। रोहितोग्राममेयायतमिन्द्रःप्रत्यषेधत॥ १७ ॥ भूमेःपर्यटनंपुण्यं तीर्थक्षेत्रनिषेवणैः। रोहितायादिशच्छक्रःसोऽप्यरण्येऽवसत्समाम्॥ १८॥ एवं द्वितीयेतृतीयेचतुर्थेपञ्चमेतथा। अभ्येत्याभ्येत्यस्थविरोविप्रोभूत्वाऽऽहवृत्रहा ॥ १९॥ षष्ठंसंवत्सरंतत्रचरित्वारोहितःपुरीम्। उपव्रजन्नजीगर्तादक्रीणान्मध्यमंसुतम्॥ २०॥ शुनःशेपंपशुंपित्रेप्रदायसमवन्दत। ततःपुरुषमेधेनहरिश्चन्द्रोमहायशाः॥ २१॥ मुक्तोदरोऽयजद्देवान्वरुणादीन्महत्कथः। विश्वामित्रोऽभवत्तस्मिन्होता चाध्वर्युरात्मवान्॥ २२॥ जमदग्निरभूद्ब्रह्मावसिष्ठोऽयास्यसामगः। तस्मैतुष्टो ददाविन्द्रःशातकौम्भमयंरथम्॥ २३॥ शुनःशेपस्यमाहात्म्यमुपरिष्टात्प्रचक्षते। सत्यसारांधृतिंदृष्ट्वा सभार्यस्यचभूपतेः॥२४॥ विश्वामित्रोभृशंप्रीतो ददावविहितांगतिम्। मनःपृथिव्यांतामद्भिस्तेजसाऽऽपोऽनिलेनतत्॥२५॥खेवायुंधारयंस्तच्च भूतादौतंमहात्मनि। तस्मिन्ज्ञानकलांध्यात्वा तयाऽज्ञानंविनिर्दहन्॥ २६॥ हित्वा तांस्वेनभावेन निर्वाणसुखसंविदा।अनिर्देश्याप्रतर्क्येण तस्थौविध्वस्तबन्धनः२७॥

इतिश्रीमद्भागवते महा० नवमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

श्रीशुकउवाच। हरितो रोहितसुतश्चम्पस्तस्माद्विनिर्मिता। चम्पापुरीसुदेवोऽतो विजयोयस्यचात्मजः॥१॥भरुकस्तत्सुतस्तस्माद्वृकस्तस्यापि बाहुकः॥ सोऽरिभिर्हृतभूराजा सभार्योवनमाविशत्॥२॥ वृद्धंतंपंचतांप्राप्त महिष्यनुमरिष्यती।

सुनकर रोहितने राजधानीमें आनेका उद्योग किया परन्तु इन्द्रने उसके निकट आय निषेध करके कहा कि ॥ १७॥ तीर्थ यात्रा करतेहुए भूमिमें विचरण करना यही बड़ा पुण्य है अतएव तुम यह करो। यह सुनकर रोहितने एक वर्षतक जगलमें वासकिया॥ १८॥ इसीप्रकारसे दूसरे तीसरे चौथे और पांचवेंवर्षमें जब २ रोहितने आनेका उद्योग किया तभी २ इन्द्रने वृद्ध ब्राह्मणका वेष बनाय उसको मनाकिया ॥ १९॥ रोहित छह वर्षतक वनमें भ्रमण करतारहा, तदनन्तर नगरमें आतेहुए मार्ग में अजीगर्तनामक ब्राह्मण के मध्यमपुत्र ॥ २०॥ शुनःशेपको मोललेलिया और उसकोलाय पिताको दे प्रणामकिया। तदनन्तर महायशा प्रसिद्ध महाराजा हरिश्चन्द्रने नरमेधद्वारा॥२१॥वरुणादि देवताओंकायज्ञ आरम्भकिया उसयज्ञसे जलोदर रोगसे छूटगया। उसयज्ञ में विश्वामित्रहोता; आत्मवान् ॥२२॥ यमदग्नि अध्वर्यु; वसिष्ठ, ब्रह्मा और अयास्यमुनि उद्गाताहुए। हेराजन्! देवराज इन्द्रने सन्तुष्टहोकर उसको सुवर्णमय रथदिया ॥ २३॥ हे महाराज ! शुनःशेपका वृत्तांत आगे कहेंगे। हे परीक्षित! स्त्रीसमेत हरिश्चन्द्रकासत्य, सामर्थ्य और धैर्य देखकर ॥ ॥ २४॥ विश्वामित्र अत्यन्त प्रसन्नहुए और इसीकारण से उनको परमज्ञानका उपदेश दिया। तदनन्तर उसराजाने मनको पृथ्वीके साथ, पृथ्वीको जलके साथ, जलको तेजकेसाथ, तेजको वायु के साथ ॥ २५॥ वायुको आकाश के साथ, आकाशको अहंकार के साथ और अहंकारको महत्तत्वके साथ मिलाकर, विषयाकार को पृथक् २ करके, महत्तत्वमें शुद्ध ज्ञानांशरूप आत्मस्वरूप से ध्यानकर. उसकेद्वारा आत्माके ढकनेवाले अज्ञानको भस्मकरदिया। अन्त में मोक्षके सुखरूप ज्ञानसे उसज्ञानांशकोभी छोड़ बन्धनमुक्तहो अनिर्देश्य और तर्कनारहितस्वरूपमें रहनेलगा २६ २७॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांसप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

श्री शुकदेवजी बोले कि—रोहितकापुत्र हरित, हरित से चम्प उत्पन्नहुआ कि जिसने चम्पापुरी को बसाया। चम्पका पुत्र सुदेव, सुदेवकापुत्र विजय ॥१॥ विजयकापुत्र भरुक, भरुककापुत्र वृक और वृककापुत्र बाहुकहुआ। वैरियों ने बाहुककी पृथ्वीहरण करली अतएव वह स्त्रियों समेत वनको चलागया ॥ २॥ वहांपर वृद्ध होने के कारण कुछ दिनोंके उपरांत मरगया। उसकी रानी

और्वेणजानतात्मानं प्रजावन्तंनिवारिता ॥ ३॥ आज्ञायास्यै सपत्नीभिर्गरोदत्तोऽन्ध सासह । सहतेनैवसंजातः सगराख्योमहायशाः ॥ ४ ॥ सगरश्चक्रवर्त्यासीत्सागरी यत्सुतैःकृतः । यस्तालजंघान्यवनाञ्छकान्हैहयबर्बरान् ॥ ५ ॥ नावधीद्गुरुवाक्येन चक्रे विकृतवेषिणः । मुण्डाञ्छ्मश्रुधरान्कांश्चिन्मुक्तकेशार्धमुण्डितान् ॥ ६ ॥अनन्त र्वाससः कांश्चिदबहिर्वाससोऽपरान् । सोऽश्वमेधैरयजत सर्ववेदसुरात्मकम् ॥७॥ और्वोपदिष्टयोगेन हरिमात्मानमीश्वरम् । तस्योत्सृष्टंपशुंयज्ञे जहाराश्वंपुरंदरः ॥८॥ सुमत्यास्तनयादृप्ताः पितुरादेशकारिणः। हयमन्वेषमाणास्ते समन्तान्न्यखनन्मही म् ॥ ९ ॥ प्रागुदीच्यांदिशिहयं ददृशुःकपिलान्तिके । एषवाजिहरश्चौर आस्तेमी लितलोचनः ॥ १० ॥ हन्यतांहन्यतांपाप इतिषष्टिसहस्रिणः । उदायुधाअभिययु रुन्मिमेषतदामुनिः ॥ ११ ॥ स्वशरीराग्निनातावन् महेन्द्रहृतचेतसः । महद्व्य तिक्रमहता भस्मसादभवन्क्षणात् ॥ १२ ॥ नसाधुवादोमुनिकोपभर्जिता नृपेन्द्र पुत्राइतिसत्त्वधामनि । कथंतमोरोषमयंविभाव्यतं जगत्पवित्रात्मनिखेरजोभुवः ॥ ॥ १३ ॥ यस्येरितासांख्यमयीदृढेह नौर्ययामुमुक्षुस्तरतेदुरत्ययम् । भवार्णवंमृत्यु पथंविपश्चितः परात्मभूतस्यकथंपृथङ्मतिः ॥ १४ ॥ योऽसमञ्जसइत्युक्तः सके शिन्यानृपात्मजः । तस्यपुत्रोंशुमान्नाम पितामहहितेरतः ॥ १५ ॥ असमञ्जसआ

राजा के साथ सती होनेका उद्योग करता था, किन्तु महर्षि और्व ने उसे गर्भवती जानकर उस उद्योग से निवारण किया ॥ ३ ॥ हेराजन्! सपत्नियों ने उसे गर्भवती जानकर अन्न के साथ उस को विष देदिया । परन्तु वह गर्भ उस विष से नहीं मरा परन्तु उसगरकेसाथही जन्मग्रहण किया इसकारण उस महायशा पुत्रका नाम सगरहुआ ॥ ४ ॥ सगर चक्रवर्ती और बड़ायशस्वी हुआ इसी के पुत्रों ने सागर बनाया है । हेराजन्! उस सगर राजाने अपने गुरू और्व ऋषिकी आज्ञानुसार तालजंघ, यवन, शक, हैहय और बर्बर आदिकों को जीतकर उनका प्राणवध न किया किंतु विकृत वेष बनादिया कितनोंके तो शिर मूड़कर दाढ़ी मूछ शेषरख छोड़ी, कितने एकों को खुलेकेश और कितने एकों को अर्द्ध मुण्डितकरादिया॥५।६॥कितनेएकों को विना उत्तरीय वस्त्रके औरकितने एकों को बाहिरी वस्त्र विनाकरादिया । उसने और्वऋषि के उपदेशानुसार अश्वमेधयज्ञकर सर्वेश और सर्वदेवमय परमात्माका आराधन किया, इन्द्र उसयज्ञ में उसके घोड़ेको हरलेगया॥७—८॥ सगर के सुमति और केशनीनामक दो स्त्रियेंथीं । सुमति के अभिमानी पुत्रोंने पिताकी आज्ञाका पालन करने के निमित्त अश्वको ढूढतेहुए चारोंओर से पृथ्वी को खोदडाला ॥ ९ ॥ अनन्तर उत्तर पूर्व की ओर भगवान कपिलके समीप वहघोड़ा उनके दृष्टिगोचरहुआ। इन्द्रकी मायासे उनकी बुद्धि भ्रष्टहोगईथी, इसही कारण वे " यही मनुष्य घोड़ेका चुरानेवाला है, आंखें बन्दकरके बैठा है ॥ ॥ १० ॥ इसदुष्टको मारडालो " । यहकहकर वे साठ सहस्रभाई अस्त्रशस्त्र ले उनके मारने को दौड़े । तब कपिलदेव ने दोनोंनेत्र खोलदिये ॥ ११ ॥ उनके नेत्रों के खोलतेही उनके शरीर से उत्पन्नहुए अग्निसे वे सब एकक्षणभर में जलकर भस्महोगये ॥ १२ ॥ कोई २ कहते हैं कि सगर के पुत्र कपिलदेव के कोप से भस्महोगये थे; परन्तु यहकहना उचित नहीं । क्योंकि जगत के पवित्र करनेवाले शुद्धसत्वमूर्त्ति कपिलदेवजीके क्रोधरूप अज्ञानका होना कभी सम्भव नहींहो सकता, आकाश में क्या पृथ्वी के रजकण रहसकते हैं ॥ १३ ॥ जिन्होंने इस भवसागरसे पार होने के निमित्त सांख्यमयी दृढ नौकाबनाई है कि जिसनावद्वारा मुमुक्षुजन अगाधमृत्यु पथस्वरूप भवसागर से पारहोजाते है, उन्हीं सर्वज्ञपरमात्मस्वरूपमहामुनि के शत्रुमित्रादि भेद दृष्टि कैसे होसकती है ? ॥ १४ ॥ सगर राजाके वीर्य से केशिनी के गर्भ से जो पुत्र उत्पन्नहुआ, उसकानाम असमञ्जसथा । उसकापुत्र अंशुमानहुआ । वह सर्वदा अपने पितामह के हितमें लगा रहताथा ॥

स्मानं दर्शयन्नसमञ्जसम् । जातिस्मरःपुरासंगा योगीयोगाद्विचालितः ॥१६॥ आचरन्गर्हितंलोके ज्ञातीनांकर्मविप्रियम् । सरय्वांक्रीडतोबालान् प्रास्यदुद्वेजयञ्जनम् ॥ १७ ॥ एवंवृत्तः परित्यक्तः पित्रास्नेहमपोह्यवै । योगैश्वर्येणबालांस्तान् दर्शयित्वाततोययौ ॥१८॥ अयोध्यावासिनःसर्वे बालकान्पुनरागतान् । दृष्ट्वाविसिस्मिरेराजन् राजाचाप्यन्वतप्यत ॥ ॥ १९ ॥ अंशुमांश्चोदितोराज्ञा तुरंगान्वेषणेययौ । पितृव्यखातानुपथं भस्मान्तिदृदृशेहयम् ॥ २० ॥ तत्रासीनंमुनिंवीक्ष्य कपिलाख्यमधोक्षजम् । अस्तौत्समाहितमनाःप्राञ्जलिःप्रणतोमहान् ॥ २१ ॥ अंशुमानुवाच ॥ नपश्यतित्वांपरमात्मनोऽजनोनबुध्यतेऽद्यापिसमाधियुक्तिभिः । कुतोऽपरेतस्यमनःशरीरधीविसर्गसृष्टावयमप्रकाशाः ॥ २२ ॥ येदेहभाजस्त्रिगुणप्रधानागुणान्विपश्यन्त्युतवातमश्च । यन्मायया मोहितचेतसस्तेविदुःस्वसंस्थनबहिःप्रकाशाः ॥ २३ ॥ तंत्वामहंज्ञानघनंस्वभावप्रध्वस्तमायागुणभेदमोहैः । सनन्दनाद्यैर्मुनिभिर्विभाव्यंकथंहिमूढःपरिभावयामि ॥ २४ ॥ प्रशांतमायागुणकर्मलिङ्गमनामरूपंसदसद्विमुक्तम् । ज्ञानोपदेशायगृहीतदेहंनमामहेत्वांपुरुषपुराणम् ॥ २५ ॥त्वन्मायारचितेलोकेवस्तुबुद्ध्यागृहादिषु । भ्रमन्तिकामलोभेर्ष्यामोहविभ्रांतचेतसः ॥२६॥

॥ १५ ॥ असमञ्जस अपने को अयोग्यचारी कहकर दिखाता, क्योंकि वह पूर्वजन्म में योगीथा,सङ्गतवशसे वहयोग भ्रष्टहोगयाथा । प्रथमजन्मका वृत्तांत उसको स्मरणथा, अतएव नाना उपायों से वह निःसङ्ग रहनेकी चेष्टा करता रहताथा । वह निंदित और मनुष्यों के अप्रिय आचरणों को कियाकरता था,–उसने कितनेहीएक खेलतेहुए लड़कों को सरयू के जल में डालदियाथा इससे अयोध्यावासी सबलोग उससे बड़े व्याकुल रहते थे ॥ १६—१७ ॥ इसप्रकारके कर्मों को देखकर उसके पिता सगरने पुत्रस्नेहछोड उसको त्याग दिया, वह अपने योगैश्वर्य के प्रभावसे मरेहुए बालकों को दिखाया आप उस स्थान से चलागया ॥ १८ ॥ हेराजन् ! अयोध्यावासी मनुष्य अपने २ बालकों को आया देख विस्मित होगये और राजासगरभी पुत्रको निकाल देनेपर बहुत पछिताया ॥ १९ ॥ जिसओर अंशुमान के चचागण पृथ्वीखोदकर गये थे उसीओर अंशुमानभी राजासगरकी आज्ञानुसार घोड़ा ढूंढने को चला । आगे चलकर देखाकि भस्म के ढेर के निकट घोडा बँधाहुआ है ॥२०॥ महात्मा अंशुमानने कपिलमुनिरूपी भगवानको बैठाहुआ देख हाथजोड़ एकाग्र चित्त से उनकी स्तुति करनेलगा ॥ २१ ॥ अंशुमान ने कहा कि—ब्रह्माजी भी परमात्मा व ईश्वर आपको नहीं देखते और समाधि अथवा मुक्तियोग से आजतकनहीं जानते तब उनसे अर्वाचीनलोग कि—जो ब्रह्माजी के तन, मन व बुद्धिसे रचीहुई सृष्टि में सृजेहुए हैं वे किसप्रकार से जानें व देखें ? जब ऐसा है तब हम मूर्खलोगों की तो बातही क्याहै ? ॥ २२ ॥ आपकीमाया से मोहित चित्तवाले प्राणी बुद्धि के आधीन और बहिर्ज्ञान वाले हैं वे जाग्रत और स्वप्नावस्था में केवल विषयों को और सुषुप्ति में अज्ञानको देखते हैं । परन्तु आपको, कि जो स्वयं हृदय में विराजमान हो नहीं देखते ॥ २३ ॥ हेप्रभो ! आप शुद्धसत्वमूर्त्तिहो अतएव मायासे उत्पन्नहुआ भेदज्ञान और मोह जिनका नष्ट होगया है वे सनन्दनादि मुनिही आपका ध्यान करसकते हैं । मैं मूर्ख आपका किसप्रकार ध्यानकरसकूं ? कैसे आपको जान सकताहूं ? हे प्रशान्त ! मैं केवल आपको नमस्कार करताहूं ॥ २४ ॥ आप पुराणपुरुष मायाके गुण और कर्मों से ज्ञानमयहो, ब्रह्मादि आपही के रूपहैं । आप पुण्यपाप रहित और नामरूप शून्यहो । आपने ज्ञानोपदेश के निमित्तही देहधारण किया है मैं आपको प्रणाम करताहूं ॥ २५ ॥ हेप्रभो ! यहलोक आपकी माया से विरचित हुआ है, इस में काम, लोभ, ईर्षा व मोहसे भ्रमित चित्त मनुष्य गृह आदि पदार्थों को त-

अथनःसर्वभूतात्मन्कामकर्मेन्द्रियाशयः । मोहपाशोदृढश्छिन्नोभगवंस्तवदर्शनात् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थंगीतानुभावस्तंभगवान्कपिलोमुनिः । अंशुमन्तमुवाचेदमनुगृह्यधियानृप ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अश्वोऽयंनीयतांवत्सपितामहपशुस्तव । इमेचपितरोदग्धागङ्गाम्भोऽर्हन्तिनेतरत् ॥ २९ ॥ तंपरिक्रम्य शिरसाप्रसाद्यहयमानयत् । सगरस्तेनपशुनाक्रतुशेषंसमापयत् ॥ ३० ॥ राज्यमंशुमतिन्यस्य निःस्पृहोमुक्तबन्धनः । और्वोपदिष्टमार्गेणलेभेगतिमनुत्तमाम् ॥ ३१ ॥

इतिश्रीमद्भा०म०नवम०सगरोपाख्यानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ अंशुमांश्चतपस्तेपे गङ्गानयनकाम्यया । कालंमहान्तंनाशक्नोत्ततःकालेनसंस्थितः ॥ १ ॥ दिलीपस्तत्सुतस्तद्वदशक्तःकालमेयिवान् । भगीरथस्तस्यपुत्रस्तेपेससुमहत्तपः ॥ २ ॥ दर्शयामासतंदेवी प्रसन्नावरदाऽस्मिते । इत्युक्तःस्वमभिप्रायं शशंसावनतोनृपः ॥ ३ ॥ कोऽपिधारयितावेगं पतन्त्यामेमहीतले । अन्यथाभूतलंभित्वा नृपयास्येरसातलम् ॥ ४ ॥ किंचाहंनभुवंयास्ये नरामय्यामृजन्त्यघम् । मृजामितदघंकुत्र राजंस्तत्रविचिन्त्यताम् ॥ ५ ॥ भगीरथउवाच ॥ साधवोन्यासिनःशान्ता ब्रह्मिष्ठालोकपावनाः । हरन्त्यघंतेऽङ्गसंगात्तेष्वास्तेह्यघभिद्धरिः ॥ ६ ॥ धारयिष्यतितेवेगं रुद्रस्त्वात्माशरीरिणाम् । यस्मिन्नो

स्वजानकर उनमें भटका करते हैं ॥ २६ ॥ परन्तु हे भगवन् ! हेसर्वभूतात्मन् ! आपकी कृपासे आपके दर्शनपाकर आज मैं काम, कर्म और इंद्रियोंके आश्रयरूप दृढमोह पाशसे छूटगया ॥२७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! इसप्रकारसे स्तुति करनेपर भगवान कपिलदेवजीने अनुग्रह कर अंशुमान से कहाकि ॥ २८ ॥ हे वत्स ! तुम अपने पितामह के इस घोड़े को लेजाओ । और तुम्हारे यह सब चचा गङ्गाजल के पानसेही मुक्ति पावेंगे और किसीसे.नहीं ॥ २९ ॥ अनन्तर अंशुमानके मुनिको मस्तकद्वारा प्रणाम और परिक्रमाकर यज्ञीय घोड़ेको लेआये । राजासगरनेउस अश्वकद्वारा अपनायज्ञ समाप्त किया ॥३०॥तदनन्तर निष्कामहो अंशुमानके हाथमेंराज्यका भारदे आप और्वऋषिके उपदेश दियेहुए मार्ग के अनुसार बंधनमुक्तहो श्रेष्ठगति को प्राप्तहुआ ॥ ३१ ॥

इतिश्री मद्भा० म० नवम० सरलाभाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—जिसप्रकार सगर राजा पौत्रके हाथमें राज्यका भारदे तपस्या करने को चलेगये उसीप्रकार अंशुमानभी पुत्रको राज्यदे आप गंगालानेकी कामनासे तपस्या करनेको चलागया किन्तु गङ्गाको न लासका । कुछ कालके उपरांत .वह करालकालके गालमेंगया ॥१॥ उसका पुत्र दिलीपभी उसीके समान गंगा लानेमें असमर्थहो मृत्युको प्राप्त हुआथा, दिलीपका पुत्र भगीरथहुआ । इसने गंगा लानेके निमित्त बड़ीभारी तपस्याकी ॥ २ ॥ तपसे प्रसन्नहोकर गंगा देवीने साक्षात् उनको दर्शन देकर कहा—हेवत्स ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर तुम्हें वर- दान देने आई हूं । भगीरथने यह सुनकर मस्तक नीचा करके अपना अभिप्राय भगवतीसे प्रगट किया ॥ ३ ॥ गंगा देवीने कहा कि—हे राजन् ! मैं जब आकाशसे पृथ्वीमें पतितहूंगी तो कौन मेरा वेग धारण करेगा ? हेराजन् ! यदि कोई मेरा वेग धारण न करेगा तो मैं पृथ्वीको भेदकर रसातलमें चली जाऊंगी ॥ ४ ॥ मैं पृथ्वीपर जानेकी इच्छा नहीं करती क्योंकि मनुष्य मुझमें अपने पाप धोवेंगे उन पापोंको मैं कहां धोऊंगी ? इसका विचार करो ॥ ५ ॥ भगीरथने कहा कि हेमाता ! सन्यासी, ब्रह्मनिष्ठ, शांत साधुगण लोकपावन अपने अंग संगद्वारा तुम्हारी अपवित्रता को दूर करेंगे । उनके शरीरमें पापनाशक भगवान वर्तमान रहते हैं, ॥ ६ ॥ प्राणियों के आत्मा

यस्मिन्नोतं विश्वं शाटीव तन्तुषु ॥ ७ ॥ इत्युक्तः स नृपो देवं तपसाऽतोषयच्छिव
म् । कालेनाल्पीयसा राजंस्तस्येशः समतुष्यत ॥ ८ ॥ तथेति राज्ञाऽभिहितं सर्वलो
कहितः शिवः । दधारावहितो गंगां पादपूतजलां हरेः ॥ ९ ॥ भगीरथः स राजर्षिर्नि
न्ये भुवनपावनीम् । यत्र स्वपितॄणां देहा भस्मीभूताः स्म शेरते ॥ १० ॥ रथेन वायुवे
गेन प्रयान्तमनुधावती । देशान्पुनन्ती निर्दग्धानासिञ्चत्सगरात्मजान् ॥ ११ ॥ य-
ज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्मदण्डहता अपि । सगरात्मजा दिवं जग्मुः केवलं देहभस्मभिः ॥
॥ १२ ॥ भस्मीभूताङ्गसङ्गेन स्वर्याताः सगरात्मजाः । किं पुनः श्रद्धया देवीं सेवन्ते
धृतव्रताः ॥ १३ ॥ न ह्येतत्परमाश्चर्यं स्वर्धुन्या यदिहोदितम् । अनन्तचरणाम्भोजप्रसू
ताया भवच्छिदः ॥ १४ ॥ संनिवेश्य मनो यस्मिञ्छ्रद्धया मुनयोऽमलाः । त्रैगुण्यं
दुस्त्यजं हित्वा सद्यो यातास्तदात्मताम् ॥ १५ ॥ श्रुतो भगीरथाज्जज्ञे तस्य नाभोऽ
परोऽभवत् । सिन्धुद्वीपस्ततस्तस्मादयुतायुस्ततोऽभवत् ॥ १६ ॥ ऋतुपर्णो नलसखो
योऽश्वविद्यामयान्नलात् । दत्त्वाऽक्षहृदयं चास्मै सर्वकामस्तु तत्सुतः ॥ १७ ॥ ततः
सुदासस्तत्पुत्रो मदयन्तीपतिर्नृप । आहुर्मित्रसहं यं वै कल्माषाङ्घ्रिमुत क्वचित् । वसि
ष्ठशापाद्रक्षोऽभूदनपत्यः स्वकर्मणा १८ ॥ राजोवाच ॥ किंनिमित्तो गुरोः शापः सौदास
स्य महात्मनः । एतद्वेदितुमिच्छामः कथ्यतां न रहो यदि ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सौ
दासो मृगयां किंचिच्चरन्रक्षो जघान ह । मुमोच भ्रातरं सोऽथ गतः प्रतिचिकीर्षया २०

महादेव कि जिनमें यह सृष्टि जैसे तंतुओंमें साड़ी ओतप्रोत रहतीहै ऐसेही ओतप्रोतहै वेआपके वेग
को धारण करेंगे ॥ ७ ॥ हेकौरव्य ! राजा भगीरथ गंगाजीसे इसप्रकार कह तपस्या द्वारा महादेव
जीके प्रसन्न करनेमें प्रवृत्तहुए । थोड़ेही दिनके पश्चात् महादेवजी उनके ऊपर प्रसन्न होगये ८ ॥
सर्वलोक हितैषी भगवान महादेवजीने उनकी प्रार्थनाको स्वीकार किया तदनन्तर भगवच्चरण के
स्पर्शसे पवित्र जल गंगाजी को उन्होंने धारण किया ॥ ९ ॥ जिस स्थानमें अपने प्रपितामहगण
की देह भस्महुई पड़ीथी, राजर्षि भगीरथ वहांपर भुवनपावनी गंगाको लेआये ॥ १० ॥ वह वायु
की समान वेगशाली रथपर बैठ आगे २ चलने लगे । त्रिलोकपावनी गंगाजी उनके पीछे २ दौ-
ड़ती देशोंको पवित्र करती जलेहुए सगर नंदनोंको अपने जल से सींचनेलगीं ॥ ११ ॥ हेराजन् !
ब्राह्मणके अपमान करनेसे भस्महुए सगर पुत्र गंगाजी के जलस्पर्श होतेही स्वर्गको चलेगये ॥ १२ ॥
सगरतनय भस्महुए शरीर द्वारा जिसका स्पर्श करके स्वर्गगामी हुए फिर उसकी सेवा जो नियम
पूर्वक करे उसकी तोबातही क्याहै ॥ १३ ॥ यहांपर जो गंगाजीका माहात्म्य कहागया वह कुछ
आश्चर्यका नहींहै । निर्मल मुनिगण श्रद्धापूर्वक जिन भगवान का ध्यानकर दुस्त्यज देहके संबंधको
छोड़ तत्काल उन्हींमें मिलजातेहैं—भवनाशिनी गंगाजी उन्हींके चरणारविंद का जलहैं १४·१५
भगीरथ का पुत्र श्रुत श्रुतका पुत्र नाभ, उससे सिंधुद्वीप सिंधुद्वीपसे अयुतायु उत्पन्न हुआ १६
अयुतायुसे नलका सखा ऋतुपर्ण उत्पन्न हुआ । राजा ऋतुपर्णने नलको द्यूत विद्या सिखाकर उस
से अश्वविद्या सीखी । ऋतुपर्ण का पुत्र सर्वकाम हुआ ॥ १७ ॥ उसका पुत्र सुदास सुदासका
पुत्र सौदास जो मदयंती का स्वामीथा । वह मित्रसह वाकल्माषपादके भी नामसे विख्यातहुआ ।
वह वसिष्ठ के शापसे राक्षसहुआ और अपने कर्मफलोंसे निःसन्तान रहा ॥ १८ ॥ राजा परी-
क्षितने कहा कि—हेब्रह्मन् ! महात्मा सौदासको कुलगुरुने किसकारण शाप दियाथा इसके सुनने
की मैं इच्छा करताहूं । यदि गोपनीयनहो तो कहिये ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हेराजन् !
एकसमय सौदास राजाने मृगया करते २ एक राक्षसका वधकिया, परतु उसके भाईको छोड़दिया

संचिन्तयन्नघंराज्ञःसूदरूपधरोगृहे । गुरवेभोक्तुकामायपक्त्वानिन्येनरामिषम् ॥२१॥
परिवेक्ष्यमाणंभगवान्विलोक्याभक्ष्यमञ्जसा । राजानमशपत्क्रुद्धोरक्षोह्येवंभविष्य
सि ॥२२॥ रक्षःकृतंतद्विदित्वाचक्रेद्वादशवार्षिकम् । सोऽप्यपोऽञ्जलिनाऽऽदायगुरुं
शप्तुंसमुद्यतः ॥ २३ ॥ वारितोमदयन्त्यापोरुशतीः पादयोर्जहौ । दिशः खमवनीं
सर्वंपश्यञ्जीवमयंनृपः ॥ २४ ॥ राक्षसंभावमापन्नः पादेकल्माषतांगतः । व्यवाय
कालेददृशेवनौकोदम्पतीद्विजौ ॥ २५ ॥ क्षुधार्तोजगृहेविप्रंतत्पत्न्याऽऽहाऽकृतार्थ
वत् । नभवान्राक्षसः साक्षादिक्ष्वाकूणांमहारथः ॥ २६ ॥ मदयन्त्याः पतिर्वीरना
धर्मंकर्तुमर्हसि । देहिमेऽपत्यकामायाअकृतार्थंपतिंद्विजम् ॥ २७ ॥ देहोऽयंमानुषो
राजन्पुरुषस्याखिलार्थदः । तस्मादस्यवधोवीरसर्वार्थवधउच्यते ॥ २८ ॥ एषहि
ब्राह्मणोविद्वांस्तपःशीलगुणान्वितः । आरिराधयिषुर्ब्रह्ममहापुरुषसंज्ञितम् । सर्वभू
तात्मभावेनभूतेष्वन्तर्हितंगुणैः ॥ २९ सोऽयंब्रह्मर्षिवर्यस्तेराजर्षिप्रवराद्विभो । क
थमर्हतिधर्मज्ञवधंपितुरिवात्मजः ॥ ३० ॥ तस्यसाधोरपापस्यभ्रूणस्यब्रह्मवादिनः ।
कथंवधंयथाबभ्रोर्मन्यतेसंमतोभवान् ॥३१ ॥ यद्ययंक्रियतेभक्षस्तर्हिमांखादपूर्वतः ।
नजीविष्येविनायेनक्षणंचमृतकंयथा ॥ ३२ ॥ एवंकरुणभाषिण्याविलपन्त्याअनाथ

॥ २० ॥ वह राक्षस अपने भाईके मारनेवालेसे बदला लेनेके निमित्त राजाके घरमें रसोई बनानेवाले का रूपधारण करके रहनेलगा । उसने भोजन करनेको आएहुए वसिष्ठजीके निमित्त नर मांस पकाकर ला रक्खा ॥ २१ ॥ भगवान वसिष्ठने उस परोसे हुए मांसको यथार्थ नरमांस जान क्रोध वशहो राजाको शापदिया कि तूने नरमांसका व्यवहार कियाहै अतएव तू राक्षस होजायगा ॥ २२ ॥ परन्तु फिर उस कार्यको राक्षसका कियाहुआ जानकर कहा कि—राजाको १२ वर्षतक इस शापका फल भोगना पड़ेगा । राजा भी विनाही कारण अभिशप्तहो क्रोधितहो हाथमें जलले गुरुको शाप देनेपर उद्यतहुआ ॥ २३ ॥ परन्तु मदयन्तीसे निवारित होकर उस तीक्ष्ण जल को—दिशायें आकाश और पृथ्वी सबही स्थानोंको जीवमय देख, अपनेही पैरोंमे डाललिया २४ ॥ इसीकारण वह राक्षसहोकर कल्माषपाद हुआ । हेराजन् ! सौदास राजाने कल्माषपाद राक्षसहो वनमे घूमते २ एकदिन रति क्रीड़ासक्त वनवासी ब्राह्मणी और ब्राह्मणको देखा, ॥ २५ ॥ और भूखसे व्याकुलहो ब्राह्मणको पकड़लिया । उससमय वह दीन ब्राह्मणी कहने लगी कि—आप राक्षस नहीहो इक्ष्वाकु वंशियोंमेंसे एक महारथीहो ॥ २६ ॥ हेवीर ! आप मदयंती के स्वामीहो, आपको यह अधर्म न करना चाहिये । मैं संतानकी कामना रखतीहूं अभी मेरे स्वामीकी और मेरी अभिलाषा पूर्ण नहींहुई इसकी मुझे भिक्षादो, ॥ २७ ॥ हे राजन् ! इस मनुष्य देहसे पुरुषों के अनेक पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं, अतएव देहका नाश होनाही सब कामनाओं का नाश होना कहा जाताहै ॥ २८ ॥ और भी देखो कि यह ब्राह्मण विद्वान, तप, शील और गुणोंसे युक्त सब प्राणियों को आत्मरूप जाननेवाला, प्राणियों में देहादिकसे आच्छादित भगवान की आराधना करने वाला है ॥ २९ ॥ अतएव हे धर्मज्ञ आप श्रेष्ठ राजर्षिहो, पितासे संतानकी समान आपसे ब्रह्मर्षि का वधहोना असंभवहै ॥ ३० ॥ हे राजन् ! कर्म मन और वाक्य द्वारा सब प्राणियों में जो सुहृदता होतीहै विद्यायुक्त बुद्धिमान् मनुष्य उसीको शील कहतेहैं। आप साधुओंके माननीय हो, गोवधकी समान निष्पाप श्रोत्रिय ब्रह्मवादी इस ब्राह्मणका मारना कैसे ठीक समझतेहो ३१ ॥ हाय ! जिसके बिनामैं एक क्षणभरभी अपना जीवन धारण नहीकरसकती, उस मेरे पतिको यदि आप भक्षण करजायँगे तो मैं मृतकी समान होजाऊंगी, इसकारण पहिले मेराही भक्षण करो

वत् । व्याघ्रः पशुमिवाखादत्सौदासः शापमोहितः ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणीवीक्ष्य विधिपुं पुरुषादेन भक्षितम् । शोचन्त्यात्मानमुर्वीशमशपत्कुपिता सती ॥ ३४ ॥ यस्मान्मे भक्षितः पापकामार्तायाः पतिस्त्वया । तवापि मृत्युराधानादकृतप्रज्ञ दर्शितः ॥ ३५ ॥ एवं मित्रसहं शप्त्वा पतिलोकपरायणा । तदस्थीनि समिद्धेऽग्नौ प्रास्य भर्तुर्गतिं गता ॥ ३६ ॥ विशापो द्वादशाब्दान्ते मैथुनाय समुद्यतः । विज्ञाय ब्राह्मणीशापं महिष्या स निवारितः ॥ ३७ ॥ तत ऊर्ध्वं स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणाऽप्रजाः । वसिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयन्त्यां प्रजामधात् ॥ ३८ ॥ सा वै सप्त समा गर्भमबिभ्रन्न व्यजायत । जघ्नेऽश्मनोदरं तस्याः सोऽश्मकस्तेन कथ्यते ॥ ३९ ॥ अश्मकान्मूलको जज्ञे यः स्त्रीभिः परिरक्षितः । नारीकवच इत्युक्तो निःक्षत्रे मूलकोऽभवत् ॥ ४० ॥ ततो दशरथस्तस्मात्पुत्र ऐडविडस्ततः । राजा विश्वसहो यस्य खट्वाङ्गश्चक्रवर्त्यभूत् ॥ ४१ ॥ यो देवैरर्थितो दैत्यानवधीद्युधि दुर्जयः । मुहूर्तमायुर्ज्ञात्वैत्य स्वपुरं संदधे मनः ॥ ४२ ॥ न मे ब्रह्मकुलात्प्राणाः कुलदैवान्न चात्मजाः । न श्रियो न मही राज्यं न दाराश्चातिवल्लभाः ॥ ४३ ॥ न बाल्येऽपि मतिर्मह्यमधर्मे रमते क्वचित् । नापश्यमुत्तमश्लोकादन्यत्किंचन वस्त्वहम् ॥ ४४ ॥ देवैः कामवरो दत्तो मह्यं त्रिभुवनेश्वरैः । न वृणे तमहं कामं भूतभावनभाव

॥३२॥ ब्राह्मणी अनाथ की समान इसप्रकार करुणस्वरसे विलाप करतीही रही, किंतु उसकी बातोंको नहीं सुनकर, बाघ जैसे पशुको खाजाताहै उसीप्रकार वह शाप मोहित राजा उस ब्राह्मण को खागया ॥ ३३ ॥ गर्भाधान करनेपर उद्यत स्वामीको राक्षस खागया, यह देखकर ब्राह्मणीने शोक करते २ कुपितहो राजाको यह शाप दिया कि ॥ ३४ ॥ रेपापी ! जैसे तू मेरे पतिको रति से निवृत्त कर भक्षण करगया ऐसेही तेरी भी रतिके समय मृत्यु होजायगी ॥ ३५ ॥ हेराजन् ! वह पतिव्रता ब्राह्मणीराजा मित्रसह को यह शापदे, पतिकी हड्डियों को इकट्ठाकर चितावनाय आगलगाय आपभीउस अग्नि में प्रवेशकर पतिकीगति को प्राप्तहुई ॥ ३६ ॥ बारहवर्ष के बीतजानेपर राजा सौदास शाप से छूटा तदनन्तर एक दिन जबवह मैथुन करनेपर उद्यतहुआ तब उसकीरानी ने ब्राह्मणी के शापकी सुधि दिलाय उस उद्यम से उसको निवारणकिया ॥३७॥ हेराजन् ! उसी समय से सौदास राजाने स्त्री सम्भोग के सुखको त्यागदिया और अपने कर्म से निःसन्तानरहा । महर्षि वसिष्ठ ने राजाकी आज्ञासे उसकीरानी मदयन्ती के गर्भ उत्पन्न किया ॥ ३८ ॥ वहराज महिषी सातवर्षतक उसगर्भ का धारणकिये रही, प्रसव न करसकी । तब वसिष्ठजी ने पत्थरसे उस के गर्भ में आघात किया, इसकारण उसगर्भ से उत्पन्नहुए पुत्रकानाम अश्मकहुआ ॥ ३९ ॥ अश्मकसे बालिकराजाने जन्मग्रहणकिया । स्त्रियों ने उसको घेरकर परशुराम जीसे बचायाथा, इसकारणवह ' नारीकवच ' के भी नाम से विख्यातहुआ और पृथ्वीके निःक्षत्रा होनेपर वही क्षत्रियोंका मूल हुआथा इसही कारण उसको मूलकभी कहते थे ॥ ४० ॥ बालिक से दशरथ, दशरथ से ऐडविड, ऐडविड से राजा विश्वसह उत्पन्नहुआ । उसकापुत्र खट्वांग चक्रवर्तीहुआ ॥४१॥ खट्वांगराजा अत्यन्त दुर्जयथा । उसने देवताओं के प्रार्थना करनेपर दैत्योंका बधकियाथा, इससे देवताओंने प्रसन्नहोकर उससे वरलेनेको कहा तब राजानेकहा कि 'पहिले यह बताओ कि मेरीआयु कितनी शेषहै, तब देवताओंने कहाकि आपकी उमर केवल दो घड़ी शेष है, यहबात जानकर राजाखट्वांग देवताओं के दियेहुए विमानपर बैठ परमेश्वरका भजन करताहुआ अपने नगर में आया ॥ ४२ ॥ उसने यही निश्चयकिया कि " कुल देवता ब्राह्मणोंकी अपेक्षा मेरे प्राण, पुत्र, धन, सम्पत्ति, पृथ्वी, राज्य और स्त्री भी मुझे प्यारे नहीं है ॥ ४३ ॥ मेरा बुद्धिभी थोड़े से भी अधर्म में नहीं रमती, अतएव मैं पवित्र कीर्ति भगवान के अतिरिक्त और दूसरा कुछ पदार्थ नहीं देखता ॥ ४४ ॥ यद्यपि त्रिभुवनके देवताओं ने प्रसन्न होकर मुझे इच्छित वरदेने को

नः ॥ ४५ ॥ येविक्षिप्तेन्द्रियधियो देवास्तेस्वहृदिस्थितम् । नविन्दन्तिप्रियं शश्वदात्मानं किमुतापरे ॥ ४६ ॥ अथेशमायारचितेषुसंगं गुणेषुगन्धर्वपुरोपमेषु । रूढं प्रकृत्याऽऽत्मनि विश्वकर्तुर्भावेनहित्वा तमहंप्रपद्ये ॥ ४७ ॥ इतिव्यवसिताबुद्ध्या नारायणगृहीतया । हित्वाऽन्यभावमज्ञानं ततःस्वंभावमाश्रितः ॥ ४८ ॥ यत्तद्ब्रह्मपरं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम् । भगवान्वासुदेवेतियं गृणन्तिहिसात्वताः ॥ ४९ ॥

इतिश्रीमद्भा० महापुराणे नवमस्कंधे सूर्यवंशानुवर्णने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ खट्वांगाद्दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात्पृथुश्रवाः । अजस्ततो महाराज स्तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥ १ ॥ तस्यापिभगवानेष साक्षाद्ब्रह्ममयो हरिः । अंशांशेन चतुर्धाऽगात्पुत्रत्वं प्रार्थितःसुरैः ॥ २ ॥ रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया । तस्यानुचरितं राजन्नृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । श्रुतंहिवर्णितंभूरि त्वयासीतापतेर्मुहुः ॥ ३ ॥ गुर्वर्थेत्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनंपद्मपद्भ्यां प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजोयो हरीन्द्रानुजाभ्याम् । वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषारोपितभ्रूविजृम्भत्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोशलेन्द्रोऽवतान्नः ॥ ४ ॥ विश्वामित्राध्वरेयेनमारीचाद्यानिशाचराः । पश्यतो लक्ष्मणस्यैवहतानैर्ऋतपुङ्गवाः ॥ ५ ॥ योलोकवीरसमितौधनुरैशमुग्रंसीतास्वयंवरगृहेत्रिशतोपनीतम् । आदायबालगजलीलइवेक्षुयष्टिंसज्जीकृतंनृपविकृष्यबभ

कहाहै, किन्तु मैं भगवानके ध्यानमें लगाहुआहूं इससे मैं वरकोभी प्राथना नहीं करूंगा ॥४५॥ इन्द्रिय और विषयों से विक्षिप्त बुद्धिवाले देवताभी अपने हृदयमें रहहुए प्रियआत्माको नहीं देखपाते, दूसरेकी बातती दूररही ! ॥ ४६ ॥ भगवानकी मायासे विरचित और गन्धर्व नगरकी समान विषयों में जो मेरे मनका स्वाभाविक स्नेह लगरहा है उसे भगवाच्चिन्ताद्वारा छोडकर उन्हीं भगवान की शरणागत मैं हुआहूं ॥ ४७ ॥ हेराजन् ! राजाखट्वांग नारायण में चित्तलगाय बुद्धियोग से ऐसा निश्चयकर अज्ञानको छोड़ आत्मस्वरूप में स्थितहुआ ॥ ४८ ॥ जो सूक्ष्म, अशून्य और शून्य रूप से कल्पित परब्रह्म हैं, भक्तजन जिनको वासुदेव कहते हैं वेही आत्मस्वरूप हैं ॥ ५० ॥

इतिश्री मद्भा० म० नवम० सरलाभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! खट्वांगराजा का पुत्र दीर्घबाहु और दीर्घबाहुके महायशस्वी रघु उत्पन्नहुआ । रघुके अज और अजसे दशरथने जन्मग्रहणकिया ॥ १ ॥ साक्षात् भगवान ब्रह्ममय हरिने देवताओं की प्रार्थना से राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इन चारनामों से चार अंशों में विभक्तहो उन दशरथका पुत्रत्व स्वीकार कियाथा । हेराजन् ! तत्त्वदर्शी ऋषियोंने सीतापति रामचन्द्रजी के चरित्रों का वर्णन कियाहै, और तुमनेभी उसको बारम्बार सुना है; तौभी यहां संक्षेप से कहता हूं सो सुनो ॥ २—३ ॥ जो पिताकी आज्ञापालने के निमित्त राजछोडकर, प्यारी के कर स्पर्श से भी जिन चरणों को दुःख उत्पन्नहोताथा उनचरणों से वन २ में घूमे,—हनूमान, सुग्रीव और लक्ष्मण ने जिनके मार्गका श्रमदूर किया, जिन्होंने, शूर्पणखाकी नाक काटी जिससे रावण सीताको हर ले गया, तब सीता के विरहसे क्रोधितहो भ्रकुटी चढाय समुद्रको भ्रमितकर, उसमें पुलबांध राक्षसरूपी वनको जलायाथा वह कौशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रजी मेरी रक्षाकरें ॥ ४ ॥ उन्होंने लक्ष्मणके सामने उनकी अपेक्षा न करके भी विश्वामित्रके यज्ञमें मारीचादि प्रधान २ राक्षसों को अकेलेही माराथा ॥ ५ ॥ उन्होने सीता के स्वयंवर में वीर पुरुषोंकी सभा में बालगजकी समान लीला करते २ तीनसौ मनुष्यों से लायेहुए शिवके धनुषको ग्रहणकर, च-

मध्ये ॥ ६ ॥ जित्वाऽनुरूपगुणशीलवयोऽङ्गरूपांसीताऽभिधांश्रियमुरस्यभिलब्धमानाम् । मार्गेव्रजन्भृगुपतेर्व्यनयत्प्ररूढंदर्पंमहीमकृतयस्त्रिरराजबीजाम् ॥ ७ ॥ यः सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशंस्त्रैणस्यचापिशिरसाजगृहेसभार्यः । राज्यंश्रियंप्रणयिनः सुहृदोनिवासंत्यक्त्वाययौवनमसूनिवमुक्तसङ्गः ॥ ८ ॥ रक्षः स्वसुर्व्यकृतरूपमशुद्धबुद्धेस्तस्याः खरत्रिशिरदूषणमुख्यबन्धून् । जघ्नेचतुर्दशसहस्रमपारणीयकोदण्डपाणिरटमानउवासकृच्छ्रम् ॥ ९ ॥ सीताकथाश्रवणदीपितहृच्छयेनसृष्टंविलोक्यनृपतेदशकन्धरेण । जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाऽऽश्रमतोऽपकृष्टोमारीचमाशुविशिखेनयथाकमुग्रः ॥ १० ॥ रक्षोधमेनवृकवद्विपिनेसमक्षंवैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम् । भ्रात्रावनेकृपणवत्प्रिययावियुक्तः स्त्रीसङ्गिनांगतिमितिप्रथयंश्चचार ॥ ११ ॥ दग्ध्वात्मकृत्यहतकृत्यमहन्कबन्धंसख्यंविधायकपिभिर्दयितागतिंतैः । बुद्ध्वाऽथवालिनिहतेप्लवगेन्द्रसैन्यैर्वेलामगात्समनुजोऽजभवार्चिताङ्घ्रिः ॥ १२ ॥ यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपातसंभ्रान्तनक्रमकरोभयगीर्णघोषः । सिन्धुः शिरस्यर्हणंपरिगृह्य

हाथ और खींचकर ईखकी समान मध्यभागसे तोड़डाला॥ ६ ॥ पहिले जिसको अपने वक्षःस्थल में स्थापित करके सम्मानित कियाथा और जिसके गुण, शील, वयस और अङ्गोंकी शोभा अपने ही योग्यथी; धनुष भङ्गकरके उस लक्ष्मीरूपिणीसीताका पाणिग्रहणकर वहां से चले; तो मार्ग में परशुरामजी मिले कि जिन्होंने २१ बार पृथ्वी को निःक्षत्रियकियाथा, वहांपर उनकाभी गर्वदूर किया ॥ ७ ॥ हेराजन् ! कुछदिनके उपरांत रामचन्द्रजी यौवराज्य में अभिषिक्त होने लगे । किसी समय केकयी पर सन्तुष्ट होकर राजाने कहाथा कि ' जो वर चाहोगी वह मैं दूं, । अतएव रामचन्द्रजी के राज्याभिषेक के समय में उस केकयीने राजा से भरतके यौवराज्य औररामचन्द्रजीके वनवास होने की प्रार्थनाकी । तब रामचन्द्रजीने यद्यपि पिताकी इच्छा नथी तथापि उनके सत्य पाश से बद्धहो उनकी आज्ञा को शिरपर चढ़ाया और योगी पुरुष जैसे दुस्त्यज प्राणोंको छोड़देवें वैसेही उन्होंनें राज्य,श्री, स्नेही, सुहृद और घरको छोड़ स्त्रीसहित वनको प्रस्थान किया ॥ ८ ॥ वनमे दुष्ट राक्षस रावण की बहिन का कुरूप कर खरदूषण त्रिशिरा आदि चौदह सहस्र राक्षसों का नाश किया और असह्य धनुष हाथ में लें निरंतर कष्ट सहित वन में वास करनेलगे ॥ ९ ॥ हे राजन् ! शूर्पणखा के मुख से सीता जी की बात सुनकर कामाग्नि से प्रज्वलित हो रावण ने मरीचि को अद्भुत सुवर्ण का मृग बनाय रामजी के निकट भेजा मारीच अद्भुत रूप धारण कर रामचन्द्रजीको आश्रमसे दूरलेगया । तब रामचन्द्रजीने, रुद्रने जैसे दक्षको माराथा वैसेही मरीच को बाणसे शीघ्रही नष्ट करदिया ॥ १० ॥ फिर दुष्टराक्षस रावणने राम लक्ष्मणके न होतेहुए सीताजीका हरण करलिया, तब रामचन्द्र प्यारीके विरह से दुःखितहो ' स्त्रीसंगी मनुष्योंको इस-प्रकारका दुःखहोता है, यह विदित करनेको भाईके साथ दीनकी समान वन२ में घूमनेलगे ११॥ अनन्तर सीताजीको ढूंढतेहुए भ्रमण करते२ उन्होंने देखा कि सीताकी रक्षाके निमित्त रावण से युद्धकर जटायूपक्षी मराहुआ पड़ाहै । उसे शास्त्रोक्त संस्कारका अधिकार नहींथा परन्तु कृपापूर्वक उसका संस्कार किया, तदुपरान्त कबंधको मारा । तदनतर वानरोंके साथ मित्रताकर बालि को मार, उन वानरोंद्वारा प्यारीके समाचार जाने । समाचारजान वानरसेनाको साथले समुद्रके तटपर आये । उन्होंने यद्यपि मनुष्यका अवतार लियाथा परन्तु शिव और ब्रह्माभी उनके चरणोंकी सेवा करतेथे ॥ १२ ॥ समुद्रके तटपर तीनरात्रि तक रामचन्द्रजीने बाटदेखी, परन्तु समुद्रन आया तब रामचन्द्रजी क्रोधितहुए । उनके क्रोधके विभ्रमसे तिरछी दृष्टिके पड़तेही जिसके नक्र मगर आदि जीव जंतु क्षुभित होगये थे, भयसे जिसके तरंगोंकी गर्जना शान्तहोगईथी, वह समुद्र मूर्तिमानहो

कपीपादारविन्दमुपगम्य बभाष एतत् ॥ १३ ॥ न त्वां वयं जडधियो नु विदाम भूमन्कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम् । यत्सत्त्वतः सुरगणा रजसः प्रजेशा मन्योश्च भूतपतयः स भवान्गुणेशः ॥ १४ ॥ कामं प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहं त्रैलोक्यरावणमवाप्नुहि वीरपत्नीम् । बध्नीहि सेतुमिह ते यशसो वितत्यै गायन्ति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः ॥ १५ ॥ बद्ध्वोदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः सेतुं कपीन्द्रकरकम्पितभूरुहाङ्गैः । सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकैर्लङ्कां विभीषणदृशाऽविशदग्रदग्धाम् ॥ १६ ॥ सा वानरेन्द्रबलरुद्धविहारकोष्ठश्रीद्वारगोपुरसदोवलभीविटङ्का । निर्भज्यमानधिषणध्वजहेमकुम्भशृङ्गाटका गजकुलैर्ह्रदिनीव घूर्णा ॥ १७ ॥ रक्षःपतिस्तदवलोक्य निकुम्भकुम्भधूम्राक्षदुर्मुखसुरान्तनरान्तकादीन् । पुत्रं प्रहस्तमतिकायविकम्पनादीन्सर्वानुगान्समहिनोदथ कुम्भकर्णम् ॥ १८ ॥ तां यातुधानपृतनामसिशूलचापप्रासर्ष्टिशक्तिशरतोमरखड्गदुर्गाम् । सुग्रीवलक्ष्मणमरुत्सुतगन्धमादनीलाङ्गदर्क्षपनसादिभिरन्वितोऽगात् ॥ १९॥ तेऽनीकपा रघुपतेरभिपत्य सर्वे द्वन्द्वं वरूथमिभपत्तिरथाश्वयोधैः । जघ्नुर्द्रुमैर्गिरिगदेषुभिरङ्गदाद्याः सीताऽभिमर्शहतमङ्गलरावणेशान् २०॥ रक्षःपतिः स्वबलनष्टिमवेक्ष्य रुष्ट आरुह्य यानकमथाभिससार रामम् । स्वः स्यन्दने द्युमति मातलिनोपनीते विभ्राजमानमहनन्निशितैः क्षुरप्रैः ॥ २१ ॥ रामस्तमाह पुरुषा

मस्तकमें पूजाकी सामग्रीरख उनके चरणकमलों के समीप आकर बोला कि ॥ १३ ॥ हे भूमन् ! मैं मूर्ख बुद्धिथा इसकारण इतने दिनोंतक आपको न जानसका । आप निर्विकार, आदि पुरुष और जगदीश्वरहो,—जिनके वशवर्ती सत्वगुणसे देवतागण, रजोगुणसे सब प्रजापति और तमोगुणसे भूतपति उत्पन्न हुएहैं आप वही गुणेश्वरहो ॥ १४ ॥ हे प्रभो ! आपआनन्द पूर्वक जाओ । विश्रवाके विष्ठाकी समान त्रिभुवनको दुःखदेनेवाले दुष्ट रावणको मारकर अपनी पत्नीको प्राप्तहो हे वीर ! यशफैलानेके निमित्त यहांपर सेतुबांधो । दिग्विजयी राजगण सेतुके समीप आकर आप का यशगावेंगे ॥ १५ ॥ हे राजन् ! सागरके इसप्रकार वचन सुनकर रामचन्द्रजीने पर्वतों के शिखरोंद्वारा उसके ऊपर सेतुबांधा उन पर्वतोंके शिखरोंमें बहुतसे वृक्षथे उनसब वृक्षोंकी शाखाएं कपि सेनापतियोंके हाथोंसे अत्यन्त कम्पायमानहोरहीथीं । सेतुके बँधजानेपर विभीषणकी सम्मति से सुग्रीव, नील, हनुमान आदि और सेनापतियों समेत रामचन्द्रजीने लंकामें प्रवेश किया । सीताजीके खोजनेके समय में हनुमानजीने उस लंकाको पहिलही जलाडालाथा ॥ १६ ॥ कपियों की सेनाओंने वहांके क्रीडास्थान, धान्यागार, कोषद्वार, पुरद्वार, सभा, खिड़की, छज्जे सबहीको रोक लिया; और ध्वजी, पताका, सोनेके कलश और चौराहे सबही तोडडाले, इसकारण वह लंकापुरी हाथियोंसे डगमगाती हुई नावकी समान डगमगानेलगी ॥ १७ ॥ राक्षसपति रावण ने यह देख कर निकुंभ, कुंभ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, सुरान्तक, नरान्तक, प्रहस्त, अतिकाय और विकम्पनादि समस्त अनुचरों को तथा मेघनाद व कुंभकर्ण को भी युद्ध करनेको भेजा ॥ १८ ॥ इन राक्षसों के कटकपर कि जो असि, शूल, धनुष; प्रास, ऋष्टि, शक्ति, शरतोमर तलवार आदि नाना अस्त्रोंसे अति दुर्गमथा, सुग्रीव, हनुमान, लक्ष्मण, गंधमादन; नील, अंगद, जांबवान पनस आदि सेनापति अपने अपने योद्धाओं समेत चले ॥ १९ ॥ हेराजन ! रामचन्द्रजीके सेनापतियों समेत चले ॥ १९ ॥ हेराजन् ! रामचन्द्रजीके सेनापतियोंने—सीताके हरण करनेसे जिसके सब मंगल नष्टहोगयेथे उस रावणके हाथी, पैदल, रथ और घोड़ोंकी सेनापर आक्रमण कर उनपर वृक्ष पत्थर, गदा और शरोंका प्रहार कर कर मारनेका आरम्भ किया ॥ २० ॥ सेनाको नाश होते देखकर राक्षस राज पुष्पक विमानपर बैठ रामचन्द्रजी की ओर दौड़ा और मातलिके लायेहुए दिव्य, रथमें विराजमान रामचन्द्रजी पर तीक्ष्णबाणोंका प्रहार करनेलगा ॥ २१ ॥ रामचन्द्रजी

वपुरीषवद्यःकर्मिकंऽस्मास्वसताऽपहृता श्ववत्ते । त्यक्तत्रपस्यफलमद्यजुगुप्सितस्य
यच्छामिकालइवकर्तुरलङ्घ्यवीर्यः ॥ २२ ॥ एवंक्षिपन्धनुषिसन्धितमुत्ससर्जबाणंस
वज्रमिवतद्धृदयंबिभेद । सोऽसृग्वमन्दशमुखैर्न्यपतद्विमानाद्धाहेतिजल्पतिजने
सुकृतीवरिक्तः ॥ २३ ॥ ततोनिष्क्रम्यलङ्कायायातुधान्यःसहस्रशः । मन्दोदर्यासमं
तस्मिन्प्ररुदत्यउपाद्रवन् ॥ २४ ॥ स्वान्स्वान्बन्धून्परिष्वज्यलक्ष्मणेषुभिरर्दितान् ।
रुरुदुःसुस्वरंदीनाघ्नन्त्यआत्मानमात्मना ॥ २५ ॥ हाहताःस्मवयंनाथलोकरावण
रावण । कंयायाच्छरणंलङ्कात्वद्विहीनापरार्दिता ॥ २६ ॥ नैवंवेदमहाभागभवा-
न्कामवशंगतः । तेजोऽनुभावंसीतायायेननीतोदशामिमाम् ॥ २७ ॥ कृतैषाविधवा
लङ्कावयंचकुलनन्दन । देहःकृतोऽन्नंगृध्राणामात्मानरकहेतवे ॥२८॥ श्रीशुक उवाच
स्वानांविभीषणश्चक्रेकोशलेन्द्रानुमोदितः । पितृमेधविधानेनयदुक्तंसाम्परायिकम्
॥ २९ ॥ ततोददर्शभगवानशोकवनिकाश्रमे । क्षामांस्वविरहव्याधिंशिंशपामूल
मास्थिताम् ॥ ३० ॥ रामःप्रियतमांभार्यांदीनांवीक्ष्यान्वकम्पत । आत्मसंदर्शनाह्
लादविकसन्मुखपङ्कजाम् ॥ ३१ ॥ आरोप्यारुरुहेयानंभ्रातृभ्यांहनुमद्युतः । विभी-
षणायभगवान्दत्त्वारक्षोगणेशताम् ॥ ३२ ॥ लंकामायुश्चकल्पांतंययौचीर्णव्रतःपु-
रीम् । अवकीर्यमाणःकुसुमैर्लोकपालार्पितैःपथि ॥ ३३ ॥ उपगीयमानचरितःशत
धृत्यादिभिर्मुदा । गोमूत्रयावकंश्रुत्वाभ्रातरंवल्कलाम्बरम् ॥ ३४ ॥ महाकारुणिको

ने उससे कहा कि—अरे राक्षसोंमें विष्टारूप ! तू बड़ा दुष्टहै; कुत्ता जैसे सूने घरमें प्रवेश करके किसी वस्तुको चुरा लेजाताहै उसीप्रकार तूनेभी मेरे न होतेहुए मेरी स्त्रीका हरण कियाहै तू अत्यत निर्लज्जहै कालकी समान अमोघ पराक्रमवालों मैं अभी तेरे कुकर्मका फल देताहूं ॥ २२ ॥ इसप्रकारसे रावण का तिरस्कार करके रामचन्द्रजीने जो बाण धनुषमें चढायाथा उसीका प्रहार किया; वज्रकी समान उस बाणके लगतेही रावणका हृदय छिदगया और वह दशो मुखसे रक्त बहाता २ क्षीण पुण्य सुकृतीकी समान विमानसे गिरपड़ा । उसके गिरतेही राक्षसगण हाहाकार करने लगे ॥ २३ ॥ फिर सहस्रों राक्षसियें लंकासे निकलकर रावणकी स्त्री मंदोदरीके साथ रोती हुई रणभूमिमें आयीं ॥ २४ ॥ लक्ष्मणजीके बाणोंसे मरेहुए अपने २ बांधवों का आलिंगन कर छाती और शिरको कूट २ करुणस्वरसे रो २ कहने लगीं ॥ २५ ॥ कि हा नाथ ! हम मरगई । हे रावण ! तुम लोकरावणथे तुम्हारे न रहनेसे यह लंकापुरी शत्रुओंसे पीड़ित होरहीहै, इससमय हम अब किसकी शरणलें ? ॥ २६ ॥ हेमहाभाग ! तुम काम वशहो सीताके तेज और पराक्रम को न जानसके, इसीसे इस दशाको प्राप्तहुए ॥ २७ ॥ हेकुलनन्दन ! तुमने लंकाको और हमको विधवा, देहको गीधोंका भक्ष्य और आत्माको नरकगामीकिया ॥२८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि फिर विभीषणने रामचन्द्रजीकी आज्ञासे शास्त्रोक्त जातिवालों की मृतकक्रियाकी २९॥ तदनन्तर भगवान रामचन्द्रजीने अशोकवनमें अशोकवृक्षके नीचे अपनीविरहसे दुःखित क्षीणा और दीना प्रियतमा भार्या सीताको देखा॥३०॥सीताजीको देखतेही रामचन्द्रजीको दया होआई । स्वामी को देखतेही सीताजीको अत्यानन्दहुआ और उसीआनन्दसे कमलामुख खिलउठा॥३१॥तदुपरांत रामचन्द्रजीने विभीषणको राक्षसोंकाराज्य और कल्पके अततककी परमायुदे लक्ष्मण और सुग्रीवसमेत जानकीजी को विमानमेंमें बिठलाय हनुमानसमेत आपभी विमानपरबैठे॥३२॥इसप्रकारसे सबकार्यकर राक्षस-राज विभीषणकोभी साथलें अयोध्याजी को पधारे । उससमय मार्ग में लोकपाल उनपर फूलोंकी वर्षा कररहे थे ॥ ३३ ॥ और ब्रह्मादि देवतागण परमआनन्दितहो उनके चरित्रोंका गान कररहे थे रामचन्द्रजीने जाते २ सुनाकि भाई भरत अयोध्याके बाहिरीभाग में स्थानबनाय जटारखाय, वल्कलके वस्त्र धारण किये पृथ्वीपर शयनकरता है,—प्राणरक्षाके निमित्त गोमूत्र में पकाये केवल

ऽतप्यज्जटिलंस्थण्डिलेशयम् । भरतःप्राप्तमाकर्ण्यपौरामात्यपुरोहितैः ॥ ३५॥ पादु
केशिरसिन्यस्यरामंप्रत्युद्यतोऽग्रजम् । नन्दिग्रामात्स्वशिबिराद्गीतवादित्रनिः
स्वनैः ॥ ३६ ॥ ब्रह्मघोषेणचमुहुःपठद्भिर्ब्रह्मवादिभिः । स्वर्णकक्षपताकाभिर्हैमै
श्चित्रध्वजैरथैः ॥ ३७ ॥ सदश्वैरुक्मसन्नाहैर्भटैःपुरटवर्मभिः । श्रेणीभिर्वारमुख्या
भिर्भृत्यैश्चैवपदानुगैः ॥ ३८ ॥ पारमेष्ठ्यान्युपादायपण्यान्युच्चावचानिच । पाद
योर्न्यपतत्प्रेम्णाप्रक्लिन्नहृदयेक्षणः॥३९॥पादुकेन्यस्यपुरतःप्रांजलिर्बाष्पलोचनः। तमा
श्लिष्यचिरंदोर्भ्यांस्नापयन्नेत्रजैर्जलैः ॥४०॥ रामोलक्ष्मणसीताभ्यांविप्रेभ्योयेऽर्हस
त्तमाः तेभ्यःस्वयंनमश्चक्रेप्रजाभिश्चनमस्कृतः ॥ ४१ ॥ धुन्वन्तउत्तरासङ्गान्पतिं
वीक्ष्यचिरागतम् । उत्तराःकोशलामाल्यैःकिरन्तोननृतुर्मुदा ॥ ४२ ॥ पादुकेभरतो
ऽगृह्णाच्चामरव्यजनोत्तमे । विभीषणःससुग्रीवः श्वेतच्छत्रंमरुत्सुत ॥ ४३ ॥
धनुर्निषङ्गाञ्छत्रुघ्नः सीतातीर्थकमण्डलुम् । अबिभ्रदङ्गदःखड्गंहैमचर्मर्क्षराणनृप
॥४४॥ पुष्पकस्थोऽन्वितःस्त्रीभिःस्तूयमानश्चवन्दिभिः । विरेजेभगवान्राजन्ग्रहैश्चन्द्र
इवोदितः ॥४५॥ भ्रातृभिर्नन्दितःसोऽपिसोत्सवांप्राविशत्पुरीम् । प्रविश्यराजभवनं
गुरुपत्नीःस्वमातरम् ॥ ४६॥ गुरून्वयस्यावरजान्पूजितःप्रत्यपूजयत् । वैदेहीलक्ष्म
णश्चैवयथावत्समुपेयतु ॥४७॥ पुत्रांस्वमातरस्तास्तुप्राणांस्तन्वइवोत्थिता । आरो

यवका भक्षण करता है ॥ ३४ ॥ इसकारण महाकारुणिक रामचन्द्रजी भरत के निमित्त महासन्ता
प करनेलगे । भरत रामचन्द्रजी की खडाउओं को मस्तकपर रख नगरनिवासी, मन्त्री और पु-
रोहितोंके साथ बड़े भाई की अगमानी के लिये अपने स्थान नन्दिग्राम से गाते बजाते बाहर नि-
कले ॥ ३५—३६ ॥ और ब्रह्मवेत्ता मुनिगण उच्चस्वरसे वेदगानकरते २ चले । सुनहली
पताकाएं, स्वर्णमय विचित्र ध्वजाओं से भूषित उत्तम घोड़ोंयुक्त और सुवर्ण की सामग्रीवालेरथ
सुवर्ण के अस्त्र व वस्त्र धारणकिये योद्धागण, वेश्यायें और बहुत से सेवक उनके संग २ चले ।
महात्मा भरत—राजाओं के योग्य छत्र, चामरादि और नानाप्रकार के बहुमूल्य रत्नादि लेकर च
ले और रामचन्द्रजी के सम्मुख पहुंचतेही समस्त पदार्थ उनके अर्पणकर आप उनके चरणोंमें गि
रपड़े प्रेमाश्रुकीधारा से भरतका हृदय और नेत्र द्रवीभूत होगये ॥ ३७—३९ ॥ पहिले तो
उन्होंने हाथजोड़ दोनों पादुकाएं उनके सन्मुख रखदीं फिर आखो मे आसूभर नेत्रों के जलसे
स्नान करातेहुए बड़ी देरतक बाहुद्वारा आलिंगन कियेरहे ॥ ४० ॥ इसके उपरात रामचन्द्र ल-
क्ष्मण और सीताने ब्राह्मणों और कुलवृद्ध मनुष्यो को नमस्कार किया । तदुपरान्त प्रजाने उन-
को नमस्कार किया ॥ ४१ ॥ उत्तर कोशलके समस्त निवासी बहुत दिनोंमें अपने राजाको आया
देख आनन्दसागरमे मग्नहोगये और अपने उत्तरीयवस्त्रों को कम्पाय २ फूलोंकीमाला बरसाय २
आनन्द से नृत्य करनलगे ॥ ४२ ॥ भरतने दोनों पादुका, विभीषण और सुग्रीव ने चमर, हनुमान
जीने श्वेतछत्र और सीताजीने तीर्थ के जल से भराहुआ कमण्डलु धारण किया । हेनृप ! शत्रुघ्न ध
नुष और तूण, अंगद खड्ग और ऋक्षराज जाम्बवान स्वर्णमय तलवार लेकर संग२ चले ॥४३॥
॥ ४४ ॥ उस समय देवांगनाएं पुष्पकपर बैठेहुए रामचन्द्रजी की प्रशंसा और स्तुति करनेलगीं
उसकाल तारों के बीच उदयहुए चन्द्रमाकी समान उनकी शोभा होरहीथी ॥ ४५ ॥ इसके पश्चा
त्भ्राता से सन्मानितहो रामचन्द्रजीने प्रसन्नतापूर्वक पुरी में प्रवेश किया । रामचन्द्रजी ने राजभवन
में प्रवेश करके माता, सौतेलीमाता, और दूसरी गुरुजी, मित्र तथा अपने से छोटे सबका यथा-
योग्य सत्कार व पूजा आदिकी । उनसबलोगोंनभी यथायोग्य पूजन सम्भाषण और आशीर्वाद
किया । पश्चात् सीताजी और लक्ष्मणजी भी इन सबसे यथायोग्य मिले ॥४६—४७ ॥ प्राणप्यारे

स्याङ्केऽभिनिवेश्यैवाप्यौघैर्विजहुः शुचः ॥४८॥ जटानिर्मुच्यविधिवत्कुलवृद्धैः समं गुरुः । अभ्यषिञ्चद्यथैवेन्द्रं चतुःसिन्धुजलादिभिः ॥ ४९ ॥ एवंकृतशिरःस्नानःसुवासाःस्रग्व्यलंकृतः । स्वलंकृतैः सुवासोभिर्भ्रातृभिर्भार्ययावभौ॥५० ॥अग्रहीदासनं भ्रात्राप्रणिपत्यप्रसादितः । प्रजाःस्वधर्मनिरताःवर्णाश्रमगुणान्विताः ॥ जुगोप पितृवद्रामोमेनिरेपितरंचतम् ॥ ५१ ॥ त्रेतायांवर्त्तमानायांकालःकृतसमोऽभवत् । रामेराजनिधर्मज्ञेसर्वभूतसुखावहे ॥५२ ॥ वनानिनद्योगिरयो वर्षाणिद्वीपसिन्धवः। सर्वेकामदुघाआसन्प्रजानांभरतर्षभ ॥५३॥नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः। मृत्युश्चानिच्छतांनासीद्रामेराजन्यधोक्षजे॥५४॥एकपत्नीव्रतधरोराजर्षिचरितः शुचिः । स्वधर्मंगृहमेधीयंशिक्षयन्स्वयमाचरन् ॥ ५५ ॥ प्रेम्णानुवृत्त्याशीलेनप्रश्रयावनतासती । धियाह्रियाचभावज्ञाभर्तुःसीताहरन्मनः ॥ ५६ ॥

इतिश्रीमद्भा०म०नवम०श्रीरामचरितेदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीशुकउवाच ॥ भगवानात्मनात्मानं रामउत्तमकल्पकैः । सर्वदेवमयंदेवमीज आचार्यवान्मखैः ॥१॥ होत्रेऽददाद्दिशंप्राचीं ब्रह्मणेदक्षिणांप्रभुः । अध्वर्यवेप्रतीचीं च उदीचीं सामगायसः ॥ २ ॥ आचार्यायददौशेषां यावतीभूस्तदन्तरा । मन्यमानइदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हतिनिःस्पृहः ॥ ३ ॥ इत्ययं तदलंकारवासोभ्यामवशेषितः । तथाराज्यपिवैदेही सौमंगल्यावशेषिता ॥ ४ ॥ तेतुब्रह्मण्यदेवस्य वात्सल्यंवीक्ष्य

से जैसे देह उठखड़ी होती है वैसेही अपने २ पुत्रों को पातेही माताए सहसा उठखडी हुईं और उनको गोदमें ले आनन्दाश्रु बहातेहुए अपने२ शोक सन्ताप को त्यागकिया ॥४८॥ अनन्तर वशिष्ठ मुनिने रामचन्द्रजीकी जटाए खुलवाय, कुलवृद्ध मनुष्योंके साथमिल चार सागरोंके जलद्वारा इन्द्रकी समान उनका अभिषेक किया ॥४९॥ रामचन्द्रजीने इसप्रकार शिरसे स्नानकर सुन्दरवस्त्र पहिने । फिर माला औरअलंकारोंसे अलंकृतहो वस्त्र आभूषणोंसविभूषित भाइयों और स्त्रियोंके साथ विराजमानहुए ॥ ५० ॥ तदनन्तर भरत ने प्रणाम करके प्रसन्नकिया तब रामचन्द्र राज्यासनपर बैठे और स्वधर्म निरत तथा वर्णाश्रम के गुणोंयुक्त प्रजाका पितृवत् पालन करनेलगे ॥ ५१ ॥ प्रजागणभी उन्हें पिताकी समान जानने लगे । सर्व प्राणियों को सुख देने वाले धर्मज्ञ रामचन्द्रजी के राजाहोनेपर त्रेतायुगभी सत्ययुगकी समान होगया ॥ ५२ ॥ हे भरतर्षभ ! समुद्र, नद, नदी, गिरि, वन, द्वीप, वर्ष सबही प्रजाओं को इच्छित फलदेते थे ॥५३ ॥ अधोक्षज रामचन्द्रजी के राज्यकाल में आधि, व्याधि, जरा, शोक, दुःख, भय, ग्लानि अथवा क्लान्ति कुछभी न रही ॥५४॥ इच्छा न करनेपर मृत्यु किसीपर आक्रमण न करसकतीथी।रामचन्द्रजी पवित्र और एकपत्नीव्रतके धारणकरनेवाले हो राजर्षियों के धर्मका आचरण करतेहुए गृहस्थियोंको धर्मका उपदेश देत स्वयं उसका आचरण करनेलगे ॥५५॥ अभिप्राय को जाननेवाली श्रीसीताजी विनययुक्तहो प्रेम, सेवा, शीलता, भय और लज्जा द्वारा उनके चित्तको हरण करती थीं ॥ ५६ ॥

इतिश्री मद्भा० म० नवम० सरलाभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! तदनंतर भगवान रामचन्द्रजी आचार्य युक्त हो उत्तमोत्तम याग(यज्ञ)कर सर्वदेवमय परमदेव अपनीही पूजा में तत्परहुए॥१॥ यज्ञके अंत में होताको पूर्वदिशा ब्रह्माको दक्षिण दिशा, अध्वर्युको पश्चिम दिशा और उद्गाताको उत्तर दिशा दानकी ॥ २ ॥ उन दिशाओं के बीचमें जितनी भूमिथी वह सब ब्राह्मणोंही के पाने योग्य विचार निःस्पृह हो आचार्य को देदी इसप्रकार से रामचन्द्रजी के केवल वस्त्र और आभूषण शेष रहगए राजरानी जानकीजी केभी केवल आभूषण शेष रहगए ॥ ३—४ ॥ परन्तु ब्रह्मण्यदेव श्रीरामचन्द्रजीकी ऐसी वात्सल्य

संस्तुतम् । प्रीताःक्लिन्नधियस्तस्मै प्रत्यर्प्येदंबभाषिरे ॥ ५ ॥ अप्रत्तंनस्त्वयाकिन्नु भगवन्भुवनेश्वर । यन्नोऽन्तर्हृदयंविश्य तमोहंसिस्वरोचिषा ॥ ६ ॥ नमोब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठमेधसे । उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये ॥ ७ ॥ कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढोराव्र्यामलक्षितः । चरन्वाचोऽशृणोद्रामो भार्यामुद्दिश्यकस्यचित् ॥ ८ ॥ नाहंबिभर्मित्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् । स्त्रैणोहिबिभृयात्सीतां रामोनाहंभजेपुनः ॥९॥ इतिलोकाद्बहुमुखाद्दुराराध्यादसंविदः । पत्याभीतेनसात्यक्ता प्राप्ताप्राचेतसाश्रमम् ॥ १० ॥ अन्तर्वत्न्यागतेकाले यमौसासुषुवेसुतौ । कुशोलवइतिख्यातौ तयोश्चक्रेक्रियामुनिः ॥ ११ ॥ अंगदश्चित्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजौस्मृतौ । तक्षःपुष्कलइत्यास्तां भरतस्यमहीपते ॥ १२ ॥ सुबाहुःश्रुतसेनश्च शत्रुघ्नस्यबभूवतुः । गन्धर्वान्कोटिशोजघ्ने भरतोविजयेदिशाम् ॥ १३ ॥ तदीयंधनमानीय सर्वंराज्ञेन्यवेदयत् । शत्रुघ्नश्चमधोःपुत्रं लवणंनामराक्षसम् ॥ १४ ॥ हत्वामधुवनेचक्रे मथुरांनामवैपुरीम् । मुनौनिक्षिप्यतनयौ सीताभर्त्राविवासिता ॥१५॥ ध्यायन्तीरामचरणौ विवरंप्रविवेशह ॥ तच्छ्रुत्वाभगवान्रामो रुन्धन्नपिधियाशुचः ॥ ॥ १६ ॥ स्मरंस्तस्या गुणांस्तांस्तान्नाशक्नोद्रोद्धुमीश्वरः । स्त्रीपुंप्रसंगएतादृक् सर्वत्रत्रासमावहः ॥१७॥ अपीश्वराणांकिमुत ग्राम्यस्यगृहचेतसः । ततऊर्ध्वंब्रह्मचर्यं

ता देखकर वे सब ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न हुए और स्तुतिकर वे समस्त वस्तु लौटायकर कहनें लगे कि ॥ ५ ॥ हे भगवन ! हे भुवनेश्वर ! आपनें जब हमारे हृदय में प्रवेशकर अपनी प्रभा द्वारा हमारे अज्ञान के अंधकार का नाश किया है तब आपनें हमको क्या नहीं दिया ॥ ६ ॥ हमने तो आपसे सब पालिया हे पवित्र कीर्ते ? राम आप ब्राह्मणों के हितकारी और अकुंठ बुद्धिवाले हो आपको हम नमस्कार करते हैं आप अग्रगण्य हो मुनिगण भी अपने २ चित्त में आपके चरणयुगल की चिंता करते है ॥ ७ ॥ तदनंतर रामचन्द्रजी नें एक समय राज्य का वृत्तांत जाननें के निमित्त गुप्तरूप से वेष बदलकर नगर में भ्रमण करतें २ यह सुना ॥ ८ ॥ एक मनुष्य अपनी स्त्रीसे इस प्रकार कहरहा है कि मैं तेरा भरण पोषण नकरूंगा तू दुष्टा और व्यभिचारिणी है दूसरे के घर में रहती है रामचन्द्र स्त्रियों का लालची है इसही कारण सीता का पालन करता है मैं राम नहींहू अ तुझको ग्रहण नकरूंगा ॥ ९ ॥ इस बातके सुनतेही अवाच्य अज्ञान बहुमुख लोक से भयभीत हो रामचन्द्रजी ने सीताजी को छोड़दिया स्वामी से छोड़े जानेपर जनकनंदिनी गर्भावस्था में थी वह महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में गई ॥ १० ॥ और उसी स्थानमें समय पूर्ण होनेपर उनके दो पुत्र साथही उत्पन्न हुए वह दोनों पुत्र कुश और लव इन दोनों नामों से विख्यात हुए महर्षि वाल्मीकिजीनें उनके जातकर्मादि समस्त संस्कार किये॥११॥ इधर अयोध्या में लक्ष्मण के दो पुत्र उत्पन्न हुए उनका नाम अंगद और चित्रकेतु हुआ भरत केभी दो पुत्र तक्ष और पुष्कल हुए ॥ १२ ॥ सुबाहु और श्रुतसेन नामक दोपुत्र शत्रुघ्न के हुए । उस समय भरतने दिग्विजय करनेके निमित्त जाकर करोड़ों २ गंधर्वोंको मारा ॥ १३ ॥ और उनका सब धन लाकर राजाको दिया । शत्रुघ्नने मधुके पुत्र लवणासुर को मारकर मधुवन में मथुरापुरी बसाई ॥१४॥ जनक पुत्री श्रीसीताजीने स्वामी से निकाले जानेपर वनमेंजो दोपुत्र उत्पन्न किये, कुछ दिनके उपरांत उन्होने उनको वाल्मीकि मुनिके हाथमें समर्पण कर आप अपने पति श्रीरामचन्द्रजी के चरणोंका ध्यान करते २ पृथ्वी के विवर में प्रवेश करगईं ॥१५ ॥ रामचन्द्र जीने यह सुनकर अपनी बुद्धि केवल से शोक दूर करनेका यत्नतो किया परन्तु प्यारी के उन सबगुणों का स्मरणकर स्वयं ईश्वर होकरभी भली भांतिसे शोकदूर न करसके ॥ १६ ॥ स्त्री पुरुषों का प्रेम सर्वत्रही ऐसे भयका देनेवाला है । जब स्त्री के प्रेममें भगवानको ऐसा त्रासहुआ तब गृहासक्त मनुष्यों की क्या बातकहूं ॥ १७ ॥ तदुपरांत

धारयञ्जुहोत्प्रभुः । त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखण्डितम् ॥ १८ ॥ स्मरतां हृदिविन्यस्यविद्धंदण्डककण्टकैः । स्वपादपल्लवंरामआत्मज्योतिरगात्ततः १९ ॥ नेदंयशोरघुपतेःसुरयाञ्चयात्तलीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः । रक्षोवधोजलधिबन्धनमस्त्रपूगैःकिंतस्यशत्रुहननेकपयःसहायाः ॥ २० ॥ यस्यामलंनृपसदस्सु यशोऽधुनापिगायन्त्यघघ्नमृषयोदिगिभेन्द्रपट्टम् । तंनाकपालवसुपालकिरीटजुष्टपादाम्बुजंरघुपतिंशरणंप्रपद्ये ॥२१॥ सयैःस्पृष्टोऽभिदृष्टोवासंविष्टोऽनुगतोऽपिवा । कोशलास्तेययुःस्थानंयत्रगच्छन्तियोगिनः ॥ २२ ॥ पुरुषोरामचरितंश्रवणैरुपधारयन् । आनृशंस्यपरोराजन्कर्मबन्धैर्विमुच्यते ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ कथंसभगवान्रामोभ्रातॄन्वास्वयमात्मनः । तस्मिन्वातेऽन्ववर्तन्तप्रजाःपौराश्चईश्वरे ॥२४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथादिशद्दिग्विजयेभ्रातॄंस्त्रिभुवनेश्वरः । आत्मानंदर्शयन्स्वानां पुरीमैक्षतसानुगः ॥ २५ ॥ आसिक्तमार्गांगन्धोदैःकरिणांमदसीकरैः । स्वामिनंप्राप्तमालोक्यमत्तांवासुतरामिव ॥२६॥ प्रासादगोपुरसभाचैत्यदेवगृहादिषु । विन्यस्तहेमकलशैःपताकाभिश्चमण्डिताम् ॥ २७ ॥ पूगैःसवृन्तैरम्भाभिःपट्टिकाभिःसुवाससाम् । आदर्शैरंशुकैःस्रग्भिःकृतकौतुकतोरणाम् ॥ २८ ॥ तमुपेयुस्तत्रतत्रपौरामर्हणपाणयः । आशिषोयुयुजुर्देवपाहीमांप्राक्त्वयोद्धृताम् ॥ २९ ॥ ततःप्रजावीक्ष्य

रामचन्द्र जीने अखंडित ब्रह्मचर्य धारण करके एक हजार तीनसौ वर्षतक समस्त अग्निहोत्र किये ॥ १८ ॥ इनके उपरांत दण्डकारण्य के कांटों से विंधेहुए अपने चरण कमलोंको भक्तों के हृदय में स्थापित कर अपने धामको सिधारे ॥ १९ ॥ हे राजन् ! रामचन्द्रजी के समुद्र बंधन और राक्षसों के वध इत्यादि के कार्यको अद्भुत कहकर कविगण वर्णन करते हैं तौभी वह उनका यश नहीं है । क्योंकि जिनका अतुल्य अमोघ पराक्रम है, शत्रु के वधमें क्या कपिगण उनकी सहायता करसकते हैं ॥ २० ॥ उन भगवान ने देवताओंकी प्रार्थना से लीला के निमित्त अवतार धारण कियाथा । ऋषिगण—जिनकी पाप नाशिनी और दिग्गजों के आवरण वस्त्र स्वरूप दिगंत व्यापिनी निर्मल कीर्तिका अबतक राज सभामें गान करते हैं और देवतागण व राजागण किरीट द्वारा जिनके चरणों की सेवा करते हैं, उन्हीं रामचन्द्रजी की शरणागत हूं ॥ २१ ॥ जिन्होंने रामचन्द्रजीका स्पर्श अथवा दर्शन कियाथा जिन्हों ने उनकी सेवाकी थी वह समस्त कोशल वासीगण योगियों के गम्य स्थान को प्राप्तहुए हैं ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जो श्रीरामचन्द्रजी के इस उपाख्यानको सुनेंगे, वह सदाचारी हो कर्म के बंधनों से निश्चयही छूटजावेंगे ॥ २३ ॥ राजा परीक्षित ने कहा कि—भगवान रामचन्द्र स्वयं किसप्रकार से आचरण करते थे ? वह अपने अंशस्वरूप तीनों भाइयोंपर कैसा व्यवहार करते थे ? और साक्षात् परमेश्वर रामचन्द्रजीपर वे सब भाई और प्रजाकेलोग कैसा व्यवहार करते थे ? ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-त्रिभुवनके ईश्वर रामचन्द्रजी ने सिंहासनपर बैठने के उपरांत भाइयों को दिग्विजयार्थ आज्ञाकी और जातिवालोंपर आत्मीयता प्रकाशकर संगियों समेत स्वयं नगरी के देखभाल में प्रवृत्तहुए ॥ २५ ॥ उनके राज्याभिषेक काल में अयोध्यापुरीका मार्ग निरन्तर सुगन्धित जल व हाथियों के मद से सिंचा रहथा । वह पुरी अपने स्वामीको प्राप्तहो भलीप्रकार से समृद्धियुक्त होगई ॥ २६ ॥ वहां के महल, गोपुर, देवमन्दिर, द्वार, और सभाआदिकों में हे सुवर्ण के कलश चढे रहते और वे स्थान पताकाओंसे शोभायमान रहते थे ॥ २७॥ गुच्छायुक्त सुपारियों और केलों के वृक्षशोभा देरहे हैं, सुन्दरवस्त्र तनेहुए हैं, काच, माला, वितान और तोरणद्वारा सज्जित स्थान २ में मंगलाचार होरहा है ॥ २८ ॥ जिस २ स्थान में रामचन्द्रजी जाते थे उसी २ स्थान में पुरवासीलोग हाथोंमें भेंट ले

पतिंविरागतंदिदृक्षयोत्सृष्टगृहाःस्त्रियोनराः । आरुह्यहर्म्याण्यरविंदलोचनमतृप्तनेत्राः
कुसुमैरवाकिरन् ॥ ३० ॥ अथप्रविष्टःस्वगृहंजुष्टंस्वैःपूर्वराजभिः । अनन्ताखिल
कोशाढ्यमनर्घ्योरुपरिच्छदम् ॥ ३१ ॥विद्रुमोदुम्बरद्वारैर्वैदूर्यस्तम्भपंक्तिभिः।स्थलै
र्मारकतैःस्वच्छैर्भ्राजत्स्फटिकभित्तिभिः ॥ ३२ ॥ चित्रस्रग्भिःपट्टिकाभिर्वासोमणि
गणांशुकैः । मुक्ताफलैश्चिदुल्लासैःकांतकामोपपत्तिभिः ॥ ३३ ॥धूपदीपैःसुरभिभि-
र्मण्डितंपुष्पमण्डनैः । स्त्रीपुम्भिःसुरसंकाशैर्जुष्टंभूषणभूषणैः ॥ ३४ ॥ तस्मिन्स
भगवान्रामःस्निग्धयाप्रिययेष्टया । रेमेस्वारामधीराणामृषभःसीतयाकिल ॥ ३५ ॥
बुभुजेचयथाकालंकामान्धर्ममपीडयन् ।वर्षपूगान्बहून्नृणामभिध्याताङ्घ्रिपल्लवः ३६

इतिश्रीमद्भा०म०नवम०श्रीरामोपाख्यानेएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ कुशस्यचातिथिस्तस्मान्निषधस्तत्सुतोनभः । पुण्डरीकोऽथ
तत्पुत्रःक्षेमधन्वाऽभवत्ततः ॥ १ ॥ देवानीकस्ततोऽनीहःपारियात्रोऽथतत्सुतः ।ततो
बलःस्थलस्तस्माद्वज्रनाभोऽर्कसम्भवः ॥ २ ॥ खगणस्तत्सुतस्तस्माद्विधृतिश्चा
भवत्सुतः । ततोहिरण्यनाभोऽभूद्योगाचार्यस्तुजैमिनेः ॥ ३ ॥ शिष्यःकौशल्यआ-
ध्यात्मंयाज्ञवल्क्योऽध्यगाद्यतः । योगंमहोदयमृषिर्हृदयग्रंथिभेदकम् ॥ ४ ॥ पुष्यो
हिरण्यनाभस्यध्रुवसंधिस्ततोऽभवत् । सुदर्शनोथाग्निवर्णःशीघ्रस्तस्यमरुःसुतः॥
५ ॥ योऽसावास्तेयोगसिद्धःकलापग्राममाश्रितः । कलेरन्तेसूर्यवंशंनष्टंभावयिता

उपस्थितहोते और यह कहकर आशीर्वाद देते कि—" हेदेव! आप अपनी इस पहिलेकी उद्धार की हुई पृथ्वी की रक्षाकरो ॥ २९ ॥ जब रामचन्द्रजी कहीं बाहरसे अपनी नगरी में आते तब अपनेराजाका आना सुनकर उनके देखने के निमित्त स्त्री पुरुष सबही अपने २ घर छोडकर महलों छतोंपर चढजाते थे और अतृप्त लोचन कमलनयन भगवान रामचन्द्रजी का दर्शनकर उनपर फूल बरसाते थे ॥ ३० ॥ रामचन्द्रजी के आत्मीय प्रथम राजाओं ने जिन राजभवनका भोग कियाथा वह रामचन्द्रजी के जाने के समय अनन्तरआदिकके कोशों से परिपूर्ण और महामूल्यकी सामग्रियों से सज्जितरहते थे ॥ ३१ ॥ वह भवन विद्रुममयद्वारकी देहली, वैदूर्य के खम्भे, अतिस्वच्छ और मरकत मयगृहके आंगन, स्फटिकमय दीवार, ॥ ३२ ॥ विचित्र पुष्पमाला, श्रेष्ठपट्टिकाएं वस्त्र, रत्नसमूह के किरणजाल (झरोखे) चैतन्यकी समान स्वच्छ मुक्ताफल, स्त्रियों के भोग योग्य द्रव्य, ॥ ३३ ॥ और सुगंधित धूप, दीप से अलकृत थे । और वहां फूलों से भूषित, अलङ्कार के अलङ्कार स्वरूप देवताओंकी सदृश स्त्री पुरुष निवासकरते थे॥३४॥आत्माराम व धीर पुरुषोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्रजी वहांपर अपनी प्यारी समेत क्रीड़ा करते थे॥३५॥ उन्होंने धर्म पूर्वक बहुत वर्षोंतक इच्छित भोगकिया, वहांपर सदैव समस्त मनुष्य उनके चरण कमलोंका ध्यान कियाकरतेथे॥३६॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेसरलभाषाटीकायांएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि-हेराजन्! श्रीरामके पुत्र कुशका पुत्र अतिथि हुआ; अतिथि का पुत्र निषध हुआ । उसका पुत्रनभ; नभका पुत्र पुण्डरीक; पुण्डरीक का पुत्र क्षेमधन्वा ॥ १ ॥क्षेमधन्वाका पुत्र देवानीक और उसका अनीह अनीहका पुत्र पारिजात पारिजातका पुत्र बलस्थल हुआ। बलस्थलका पुत्र वज्रनाभ सूर्यके अंशसे उत्पन्न हुआथा॥२॥ वज्रनाभका पुत्र खगण और खगणका पुत्र विधृतहुआ।उसविधृतिसे हिरण्यनाभकी उत्पत्तिहुई।हिरण्यनाभ जैमिनके शिष्य औरयोगाचार्यथे ३॥जिसके द्वारासिद्धियें प्राप्तहोतीं और हृदयकी ग्रंथियें नाशहोती हैं याज्ञवल्क्यऋषिने इनके निकट उसीअध्यात्म योगका अभ्यास कियाथा॥४॥उसहिरण्यनाभकापुत्रपुष्प,पुष्पकापुत्र ध्रुवसंधि,ध्रुवसंधिका पुत्र सुदर्शन,सुदर्शनका अग्निवर्ण, उसकापुत्रशीघ्र, शीघ्रकापुत्रमरुहुआ॥५॥वहयोग सिद्धहो कलाप-

पुनः ॥ ६ ॥ तस्मात्प्रसुश्रुतस्तस्य सन्धिस्तस्याप्यमर्षणः । महस्वांस्तत्सुतस्तस्मा द्विश्वसाह्वोऽन्वजायत ॥ ७ ॥ ततः प्रसेनजित्तस्मात्तक्षको भविता पुनः । ततो बृहद्बलो यस्तु पित्रा ते समरे हतः ॥ ८ ॥ एते हीक्ष्वाकुभूपाला अतीताः शृण्वनागतान् । बृहद्बलस्य भविता पुत्रो नाम बृहद्रणः ॥ ९ ॥ उरुक्रियस्ततस्तस्य वत्सवृद्धो भविष्यति। प्रतिव्योमस्ततो भानुर्दिवाको वाहिनीपतिः ॥ १० ॥ सहदेवस्ततो वीरो बृहदश्वोऽथ भानुमान् । प्रतीकाश्वो भानुमतः सुप्रतीकोऽथ तत्सुतः ॥ ११ ॥ भविता मरुदेवोऽथ सुनक्षत्रोऽथ पुष्करः । तस्यान्तरिक्षस्तत्पुत्रः सुतपास्तदमित्रजित् ॥१२॥ बृहद्राजस्तु तस्यापि बर्हिस्तस्मात्कृतञ्जयः । रणञ्जयस्तस्य सुतः संजयो भविता ततः ॥ १३ ॥ तस्माच्छाक्योऽथ शुद्धोदो लाङ्गलस्तत्सुतः स्मृतः । ततः प्रसेनजित्तस्मात्क्षुद्रको भविता ततः ॥ १४ ॥ रणको भविता तस्मात्सुरथस्तनयस्ततः । सुमित्रो नाम निष्ठान्त एते बार्हद्बलान्वयाः ॥ १५ ॥ इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति । यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ १६ ॥

इति श्रीमद्भा० म० नवम० श्रीरामचरितवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

श्रीशुक उवाच ॥ निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्विजम् । आरभ्य सत्रं सोऽप्याह शक्रेण प्राग्वृतोऽस्मि भोः ॥ १ ॥ तं निर्वर्त्यागमिष्यामि तावन्मां प्रतिपालय । तूष्णीमासीद्गृहपतिः सोऽपीन्द्रस्याकरोन्मखम् ॥ २ ॥ निमिश्चलमिदं विद्वान्सत्रमा

ग्राममें निवास करता है। वह कलियुगके अन्तमें सूर्यवंशको विनष्ट होता देखकर पुत्रोत्पत्ति द्वारा फिर उस वंशका प्रवर्त्तित करेगा॥६॥मरुके प्रसुश्रुत, का पुत्र प्रसुश्रुत संधि, संधिका अमर्षण अमर्षणका पुत्र महस्वान् महस्वान्का विश्वसाहू ॥ ७ ॥ उसका पुत्र प्रसेनजित और उससे तक्षक उत्पन्न हुआ। तक्षकका पुत्र बृहद्बल हुआ यह समरमें तुम्हारे पिता अभिमन्युके हाथसे मारा गया था ॥ ८ ॥ यह इक्ष्वाकु वंशियोंका अंतिम राजा हुआ। अब जो होंगे उनके नाम कहता हूं सुनो। बृहद्बलका बृहद्रण नामक पुत्र राजा होगा ॥ ९ ॥ उसका पुत्र उरुक्रिय उसका वत्स वृद्ध होगा। वत्स वृद्धका पुत्र प्रतिव्योम प्रतिव्योमका पुत्र भानु भानुसे सेनापति दिवाकरका जन्म होगा॥१०॥उसका पुत्र सहदेव, सहदेवका पुत्र बृहदश्व बृहदश्वका पुत्र भानुमान होगा। उस भानुमानका पुत्र प्रतीकाश्व उससे सुप्रतीक उत्पन्न होगा ॥११॥ तदनन्तर मरुदेव, उसके पश्चात् सुनक्षत्र तदनन्तर उसके पुष्कर जन्मग्रहण करेगा। पुष्करका पुत्र अन्तरीक्ष अन्तरीक्षका पुत्र सुतपा, उसका पुत्र अमित्रजित होगा ॥ १२ ॥ अमित्रजित का पुत्र बृहद्राज, बृहद्राजका पुत्र बर्हि बर्हिका पुत्र कृतंजय, कृतंजय का पुत्र रणंजय, रणंजयसे संजय उत्पन्न होगा ॥ १३ ॥ संजय का पुत्र शाक्य, उसका पुत्र शुद्धोद, शुद्धोद का पुत्र लांगल होगा। लांगलसे प्रसेनजित, उससे क्षुद्रक ॥ १४॥ क्षुद्रकसे रणक, रणकसे सुरथ और सुरथके सुमित्र उत्पन्न होगा। यह बृहद्बलका वंश है ॥ १५ ॥ इक्ष्वाकु वंशक सुमित्रसे अन्त होजायगा। सुमित्र राजा के उपरान्त कलियुगमें इस वंशका ध्वंस होजावेगा॥१६

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवम स्कंधे सरला भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—इक्ष्वाकुके पुत्र निमिने यज्ञका आरम्भ कर महर्षि वशिष्ठको ऋत्विक कर्ममें वरण किया, परन्तु मुनिने कहा कि पहिले इन्द्रने मुझे वरण किया है बिना इन्द्रका यज्ञ समाप्त किये तुम्हारे यज्ञका कार्य नहीं करसक्ता। इसकारण जब तक इन्द्र का यज्ञ न होजावे तब तक और ठहरो। इस बातको सुनकर निमि चुप होगया और वशिष्ठजी भी इन्द्रका यज्ञ करनेको चले गये ॥ १ ॥ २ ॥ जितेन्द्रिय निमि जीवनकी अस्थिरता जानता था अत एव गुरुके न आते२ उस

रभतात्मवान् । ऋत्विग्भिरपरैस्तावन्नागमद्यावतागुरुः ॥ ३ ॥ शिष्यव्यतिक्रमंवी क्ष्यनिर्वर्त्यगुरुरागतः । अशपत्पततादेहोनिमेः पण्डितमानिनः ॥ ४ ॥ निमिः प्रतिद दौशापंगुरवेऽधर्मवर्तिने । तवापिपतताद्देहोलोभाद्धर्ममजानतः ॥ ५ ॥ इत्युत्ससर्जस्वदेहंनिमिरध्यात्मकोविदः । मित्रावरुणयोर्जज्ञेउर्वश्यांप्रपितामहः ॥ ६ ॥ गन्धवस्तुषुतद्देहंनिधायमुनिसत्तमाः । समाप्तेसत्रयागेऽथदेवानूचुः समागतान् ॥ ७ ॥ राज्ञोजीवतुदेहोऽयंप्रसन्नाः प्रभवोयदि । तथेत्युक्तेनिमिः प्राहमाभून्मेदेहबन्धनम् ॥ ८ ॥ यस्ययोगंनवाञ्छन्तिवियोगभयकातराः । भजन्तिचरणाम्भोजंमुनयोहरिमेधसः ॥ ९ ॥ देहंनावरुरुत्सेहंदुःखशोकभयावहम् । सर्वत्रास्ययतोमृत्युर्मत्स्यानामुदकेयथा ॥ १० ॥ देवाऊचुः ॥ विदेहउष्यतांकामंलोचनेषुशरीरिणाम् । उन्मेषणनिमेषाभ्यांलक्षितोऽध्यात्मसंस्थितः ॥११॥अराजकभयंनृणांमन्यमानामहर्षयः । देहंममन्थुः स्मनिमेः कुमारः समजायत ॥ १२ ॥ जन्मनाजनकः सोऽभूद्वैदेहस्तु विदेहजः । मिथिलोमथनाज्जातोमिथिलायेननिर्मिता ॥ १३ ॥ तस्मादुदावसुस्तस्यपुत्रोऽभून्नन्दिवर्धनः । ततः सुकेतुस्तस्यापिदेवरातोमहीपते ॥ १४ ॥ तस्माद्बृहद्रथस्तस्यमहावीर्यः सुधृतिपता । सुधृतेर्धृष्टकेतुर्वैहर्यश्वोऽथमरुस्ततः ॥ १५ ॥ मरोः प्रतीपकस्तस्माज्जातः कृतिरथोयतः । देवमीढस्तस्यसुतोविश्रुतोऽथमहाधृ

ने दूसरे ऋत्विक् द्वारा यज्ञका आरम्भ करादिया ॥ ३ ॥ अनन्तर वशिष्ठजी इन्द्रकायज्ञ समाप्त करके आये और शिष्यके इस अन्याय कार्यको देखकर यह शाप दियाकि—इस पण्डिताभिमान निमिका देह शीघ्रहीपात होजावे ॥ ४ ॥ कुलगुरुके इसप्रकार से अधर्मवर्त्ती होनेपर निमिनेभी उनको यह शाप दिया कि—तुमने लोभके वशीभूतहो धर्मपर दृष्टि न की; अतएव तुम्हारीभी देह पतित होजाव ॥ ५ ॥ यह कहकर अध्यात्मज्ञानी निमि ने अपनी देह छोडदी । उसी समय वसिष्ठऋषि काभी शरीर पात होगया; मित्रावरुण के वीर्य से उर्वशी के गर्भ में वसिष्ठजी फिर उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ ऋत्विकमुनियो ने सुगन्धित पदार्थों के बीचमें निमिकी देह स्थापितकर यज्ञसमाप्त किया । यज्ञके समाप्त होनेपर देवता आये तब उन्होंने देवताओं से प्रार्थनाकी॥७॥कि आप यदि प्रसन्न और शक्तिवान होतो इस निमिराजाकी देहको सजीवकरदो, इसपर देवताओं ने 'तथास्तु' कहा तब निमि सुगन्धित पदार्थोंके बीचमें से बोला कि—मैं देहका बन्धन नहीं चाहता ॥ ८ ॥ हरिभक्त मुनिलोग वियोग के भयसे कातरहो कभी भी देह के सम्बन्धकी इच्छानहीं करते,—मुक्ति के निमित्त केवल भगवान केही चरणकमलोंका भजन कियाकरते हैं ॥ ९ ॥ मनुष्यकी देह दुःख, सुख और भयका निवासस्थान है; मैं अब उसके धारण करने की इच्छा नहीं करता; क्योंकि जलमें मछली के समान सर्वत्र देधारहाको मृत्युको सम्भावना रहती है ॥ १० ॥ देवताओं ने कहा कि—तब देहरहित होकरभी सब प्राणियों के नेत्रों में तुमअपनी इच्छानुसार बास करोगे । उस अध्यात्म निमिके रहनका चिह्न नेत्रोंके खोलने मूंदने के द्वारा जानाजाता है ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहाकि—इसके उपरांत मुनियोंने विचारकिया कि—राज्य के अराजक होनेसे प्रजाको सर्वदात्रास रहेगा । अतएव सबने राजकुमारकी इच्छाकरके उस निमिकी देहके मन्थन करनेका आरम्भ किया; इससे उनकी मृतदेहसे एकपुत्र उत्पन्नहुआ ॥ १२ ॥ इस निमिपुत्रका इसप्रकार से जन्म होने के कारण "जनक" नाम हुआ, पिता की विदेहावस्था में जन्म ग्रहण करने से 'वैदेह' और मथन से उत्पन्न होनेके कारण मिथिल, नामसे विख्यातहुआ । उसने मिथिलापुरी बसाई॥१३॥जनकका पुत्र उदावसु, उदावसुका नन्दिवर्धन, नंदिवर्धनका सुकेतु, सुकेतुका देवरात ॥ १४ ॥ देवरातका बृहद्रथ बृहद्रथका महावीर्य महावीर्यका सुधृति, सुधृतिका धृष्टकेतु, धृष्टकेतुका हर्यश्व, हर्यश्व का मरु, ॥१५॥ मरुका प्रतीपक' प्रतीपक का कृतरथ, उस का देवमीढि देवमीढिका

नि॰॥ १६ ॥ कृतिरातस्ततस्तस्मान्महारोमाऽथतत्सुतः। स्वर्णरोमासुतस्तस्य ह्रस्वरोमाव्यजायत ॥ १७॥ ततः सीरध्वजोजज्ञे यज्ञार्थंकर्षतोमहीम्। सीतासीराग्रतोजातातस्मात्सीरध्वजः स्मृतः ॥ १८ ॥ कुशध्वजस्तस्यपुत्रस्ततोधर्मध्वजोनृपः। धर्मध्वजस्यद्वौपुत्रौकृतध्वजमितध्वजौ ॥ १९ ॥ कृतध्वजात्केशिध्वजः खाण्डिक्यस्तुमितध्वजात्। कृतध्वजसुतो राजन्नात्मविद्याविशारदः॥ २० ॥ खाण्डिक्यः कर्मतत्त्वज्ञोभीतः केशिध्वजाद्द्रुतः। भानुमांस्तस्यपुत्रोऽभूच्छतद्युम्नस्तुतत्सुतः ॥ २१ ॥ शुचिस्तत्तनयस्तस्मात्सनद्वाजस्ततोऽभवत्। ऊर्ध्वकेतुः सनद्वाजादजोऽथपुरुजित्सुतः ॥ २२ ॥ अरिष्टनेमिस्तस्यापिश्रुतायुस्तत्सुपार्श्वकः। ततश्चित्ररथोयस्यक्षेमधिर्मिथिलाधिपः ॥ २३ ॥ तस्मात्समरथस्तस्यसुतः सत्यरथस्ततः। आसीदुपगुरुस्तस्मादुपगुप्तोऽग्निसंभवः ॥ २४ ॥ वस्वनन्तोऽथतत्पुत्रोयुयुधोयत्सुभाषणः। श्रुतस्ततोजयस्तस्माद्विजयोऽस्मादृतः सुतः ॥ २५ ॥ शुनकस्तत्सुतोयज्ञेवीतहव्योधृतिस्ततः। बहुलाश्वोधृतेस्तस्यकृतिरस्यमहावशी ॥ २६ ॥ एतेवैमैथिलाराजन्नात्मविद्याविशारदाः। योगेश्वरप्रसादेनद्वन्द्वैर्मुक्तागृहेष्वपि ॥ २७ ॥

इतिश्रीमद्भा॰म॰नवम॰निमिवंशानुवर्णनंनामत्रयोदशोऽध्यायः॥ १३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथातःश्रूयतांराजन्वंशःसोमस्यपावनः। यस्मिन्नैलादयोभूपाः कीर्त्यन्तेपुण्यकीर्तयः ॥ १ ॥ सहस्रशिरसःपुंसोनाभिह्रदसरोरुहात्। जातस्यासीत्सुतोधातुरत्रिःपितृसमोगुणैः ॥ २ ॥ तस्यदृग्भ्योऽभवत्पुत्र सोमोऽमृतमयःकिल।

विश्रुत, विश्रुतका महाधृति॥१६॥महाधृतिका कृतिरात, कृतिरातका महारोमा, महारोमाका स्वर्णरोमा, स्वर्णरोमाका ह्रस्वरोमा॥१७॥और ह्रस्वरोमाका शीरध्वजहुआ। शीरध्वजकीकन्या सीताहुई। शीरध्वज राजायज्ञके निमित्त भूमिको जोतरहाथा; उसीसमय हलके अग्र सीताजीका जन्महुआ। इसप्रकार हलके शीर से उसका कीर्त्ति सूचक शीरध्वजनामहुआ॥१८॥शीरध्वजका पुत्र कुशध्वज और उसकाधर्मध्वजहुआ। धर्मध्वजके दोपुत्र कृतध्वजऔर मितध्वजहुए॥१९॥उनमेंसे कृतध्वजके केशिध्वज औरमितध्वज, मितवध्वजसे खाण्डिक्य उत्पन्नहुआ। हे राजन्! केशिध्वज ब्रह्मविद्यामें निपुणथा॥२०॥कर्मके तत्त्वका जाननेवाला खाण्डिक्य केशिध्वज के भयसे भागगया। केशिध्वजका पुत्र भानुमान,उसकापुत्र शतद्युम्न,॥२१॥शतद्युम्नका पुत्र शुचिहुआ। इस शुचिसे सनद्वाज उत्पन्न हुआ।सनद्वाजका पुत्र ऊर्ध्वकेतु, ऊर्ध्वकेतुकापुत्र अज और उसके पुरुजित ॥२२॥पुरुजितका पुत्र अरिष्टनेमि, अरिष्टनेमिका पुत्र श्रुतायु, श्रुतायुका पुत्र सुपार्श्वक हुआ। सुपार्श्वक से चित्ररथ उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र क्षेमधि, ॥ २३ ॥ क्षेमधिका पुत्र समरथ, समरथका पुत्र सत्यरथ, सत्यरथ का पुत्र उपगुरु, और उसके वीर्यसे अग्निके अंश उपगुप्तने जन्म ग्रहणकिया ॥२४॥ उपगुप्तका पुत्र वस्वनंत, वस्वनंतका युयुधान, युयुधानका पुत्र सुभाषण, सुषणका पुत्र श्रुत; श्रुतका पुत्र जय, जयका पुत्र विजय हुआ।विजय सेऋत उत्पन्न हुआ ॥ २५ ॥ ऋतका पुत्र शुनक, शुनकका पुत्र वीतहव्य; वीतहव्यका पुत्र धृति, धृतिका पुत्र बहुलाश्व, उसका पुत्र जितेन्द्रिय कृतिहुआ ॥२६॥ हे राजन्! यह सब मिथिला देशीय राजा हुए हैं यह सब आत्म विद्यामें पण्डित और योगश्वरों के प्रसाद से घरमें वास करते हुएभी सुख दुःख आदि सांसारिक बंधनों से मुक्त थे ॥ २७ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

श्रीशुकदेवजीबोले कि—हेराजन्! अब पवित्रकरनेवाले सोमवंशका वर्णनकरताहूं-सुनो? इस वंशमेंही पुरूरवाआदिराजा उत्पन्नहुएथे॥१॥हेमहाराज! सहस्रशीर्षा परमपुरुषभगवानके नाभिकमल से ब्रह्माउत्पन्न हुए; उनके पुत्र अत्रिहुए। वह गुणों में पिताही के तुल्यथे ॥ २ ॥ उन अत्रिके

विप्रौषध्युडुगणानांब्रह्मणाकल्पितःपतिः ॥ ३ ॥ सोऽयजद्राजसूयेनविजित्यभुवन
त्रयम्। पत्नींबृहस्पतेर्दर्पात्तारांनामाहरद्बलात् ॥ ४ ॥ यदासदेवगुरुणायाचितो
ऽभीक्ष्णशोमदात्। नात्यजत्तत्कृतेजज्ञेसुरदानवविग्रहः ॥ ५ ॥ शुक्रोबृहस्पतेर्द्वेषा
दग्रहीत्सासुरोडुपम्। हरोगुरुसुतंस्नेहात्सर्वभूतगणावृतः ॥ ६ ॥ सर्वदेवगणोपेतो
महेन्द्रोगुरुमन्वयात्। सुरासुरविनाशोऽभूत्समरस्तारकामयः ॥ ७ ॥ निवेदितोऽ
थाङ्गिरसासोमंनिर्भर्त्स्यविश्वकृत। तारांस्वभर्त्रेप्रायच्छदन्तर्वत्नीमवैत्पतिः ॥ ८ ॥
त्यजत्यजाशुदुष्प्रज्ञेमत्क्षेत्रादाहितंपरैः। नाहंत्वांभस्मसात्कुर्यांस्त्रियंसान्तानिकः
सति ॥ ९ ॥ तत्याजव्रीडितातारारकुमारंकनकप्रभम्। स्पृहामाङ्गिरसश्चक्रेकुमारे
सोमएवच ॥ १० ॥ ममायंनतवेत्युच्चैस्तस्मिन्विवदमानयोः। पप्रच्छुरृषयोदेवा
नैवोचेव्रीडितातुसा ॥ ११ ॥ कुमारोमातरंप्राहकुपितोऽलीकलज्जया। किंनवोच-
स्यसद्वृत्तेआत्मावद्यंवदाऽशुमे ॥ १२ ॥ ब्रह्मातांरहआहूयसमप्राक्षीच्चसान्त्व
यन्। सोमस्येत्याहशनकैःसोमस्तंतावदग्रहीत् ॥ १३ ॥ तस्यात्मयोनिरकृतबुधइत्य-
भिधांनृप। बुद्ध्यागम्भीरयायेनपुत्रेणापोडुराण्मुदम् ॥ १४॥ ततःपुरूरवाजज्ञे इला
यांयउदाहृतः। तस्यरूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् ॥ १५ ॥ श्रुत्वोर्वशीन्द्रभ-

नेत्र से अमृतमय सोमनामक पुत्रउत्पन्नहुआ। भगवान ब्रह्माने उस सोमको विप्र, औषधि, और नक्षत्र सबका आधिपत्यदिया ॥ ३ ॥ उसने त्रिभुवन को जीतकर राजसूय यज्ञ किया। एकसमय उस सोमने अहंकारपूर्वक बलात्कार से बृहस्पतिकी पत्नी ताराका हरणकरलियाथा ॥ ४॥ देवगुरु बृहस्पतिजीने अनेकबार सोमसे अपनी पत्नीके पानेकी प्रार्थनाकी किंतु मदसंमतवाले सोमने गुरुपत्नी को परित्याग करनेकी इच्छानकी। उससे सुर और असुरों में महाभयानक युद्ध उपस्थितहोगया ५ बृहस्पतिजी के ऊपर शुक्राचार्य का द्वेषभावथा, इसकारण वह अपनेशिष्य असुरों समेत चन्द्रमाके पक्ष में हुए। इस ओर भगवान महादेवजी अपने पार्षदों समेत निजगुरुपुत्र बृहस्पति की ओरहुए ॥६॥ इन्द्रभी अपने सब देवताओं समेत अपनेगुरुबृहस्पतिजी के पक्षमें हुए। इसके पश्चात् ताराके निमित्त सुर असुर विनाशक महायुद्धहुआ ॥ ७ ॥ हेराजन्! कुछ दिनों के उपरांत अंगिराने यहसबवृत्तांत ब्रह्माजी से कहा। इस से ब्रह्माने आकर चन्द्रमा का बहुत तिरस्कार किया। ब्रह्माजीके कहनेसे चंद्रमाने बृहस्पतिजी को तारादेदी ॥८॥ बृहस्पतिजी ने अपनी स्त्रीकोगर्भवती जानकर कहाकि—रेदुर्बुद्धि तूने मेरे क्षेत्र में दूसरे का बीर्य धारण कियाहै, शीघ्र इसका त्यागकर। अरे असति! तू स्त्रीजाति और मैं संतानकी कामनावालाहूं इस से मैं तुझे भस्म न करूंगा ॥ ९ ॥ पतिकी इसबातके सुनतेही ताराने लज्जितहो तत्कालही गर्भ से सुवर्णकीसी कांतिवालेकुमारका परित्यागकरदिया। हेराजन्! अत्यन्तसुन्दर कुमारको देखतेही उसपर बृहस्पति औरचन्द्रमा दोनोंही का चित्तचलायमानहुआ ॥ १० ॥ दोनों में परस्पर इस बातका विवादहोनेलगा कि, यह बालक मेरा है तेरा नहीं, इस विवाद को देखकर ऋषियों और देवताओं ने तारा से पूछा कि 'यह किसकापुत्र है' परन्तुतारा ने लज्जित होकर कुछभी उत्तर न दिया ॥ ११ ॥ अनन्तर उस बालक ने कुपित होकर माता से कहा कि अरे दुष्टा! तू क्यों नहीं बोलती, शीघ्र मुझ से अपने दोषकोकह ॥ १२ ॥ अनन्तर ब्रह्माजीने ताराको एकांत में बुलाय सांत्वनादेकर पूछा तबतारा ने धीरे२कहा कि 'सोमका है'। तबचन्द्रमा उस पुत्रको लेगये ॥ १३ ॥ लोककर्ताब्रह्माजीने उस बालककी गंभीर बुद्धिको देखकर उसका नाम 'बुध'रक्खा। हेराजन्! नक्षत्रपतिचन्द्रमा को उस पुत्रसे अतिआनन्दप्राप्तहुआ ॥ १४ ॥ पहिलेहा कह आये हैं कि इसी बुधके बीर्य से इलाके गर्भ में पुरूरवाकाजन्महुआ। वह अत्यन्तही

भने गीयमानान्सुरर्षिणा । तदन्तिकमुपेयाय देवीस्मरशरार्दिता ॥ १६ ॥ मित्राव रुणयोः शापादापन्ना नरलोकताम् । निशम्यपुरुषश्रेष्ठं कन्दर्पमिवरूपिणम् ॥ १७ ॥ धृतिं विष्टभ्यललना उपतस्थेतदन्तिके । सतां विलोक्य नृपतिर्हर्षेणोत्फुल्ललोचनः उवाचश्लक्ष्णयावाचा देवींहृष्टतनूरुहः ॥ १८ ॥ राजोवाच । स्वागतंतेवरारोहे आस्यतांकरवामकिम् । संरमस्वमयासाकं रतिर्नौशाश्वतीःसमाः ॥ १९ ॥ उर्वश्युवाच । कस्यास्त्वयिनसज्जेत मनोदृष्टिश्चसुन्दर । यदङ्गान्तरमासाद्य च्यवतेहरिरंसया ॥ २० ॥ एतावुरणकौराजन् न्यासौरक्षस्वमानद । संरंस्येभवतासाकं श्लाघ्यः स्त्रीणांवरःस्मृतः ॥ २१ ॥ घृतंमेवीरभक्ष्यं स्यान्नेक्षेत्वान्यत्रमैथुनात् । विवाससंतत्तथेति प्रतिपेदेमहामनाः ॥ २२ ॥ अहोरूपमहोभावो नरलोकविमोहनम् ॥ कोनसेवेतमनुजो देवींत्वांस्वयमागताम् ॥ २३ ॥ तयासपुरुषश्रेष्ठो रमयन्त्यायथार्हतः । रेमेसुरविहारेषु कामंचैत्ररथादिषु ॥ २४ ॥ रममाणस्तयादेव्या पद्मकिंजल्कगन्धया । तन्मुखामोदमुषितो मुमुदेऽहर्गणान्बहून् ॥ २५ ॥ अपश्यन्नुर्वशीमिन्द्रो गन्धर्वान्समचोदयत् । उर्वशीरहितं मह्यमास्थानं नातिशोभते ॥ २६ ॥ तउपेत्य महारात्रे तमसिप्रत्युपस्थिते । उर्वश्याउरणौ जह्रुर्न्यस्तौराजनिजायया ॥ २७ ॥ निशम्याक्रन्दितंदेवी पुत्रयोर्नीयमानयोः । हताऽस्म्यहंकुनाथेन नपुंसावीरमानिना ॥

विख्यातथा देवर्षि नारदनें स्वर्ग में उसके रूप, गुण, उदारता, शीलता, धन और विक्रमका गान किया कि जिससे उर्वशी यह सुनकर काम पीड़ित हो उस राजा के निकट आई ॥ १५ ॥ १६ ॥ मित्रावरुण के शाप से उर्वशी मनुष्य भावको प्राप्त हुईथी तब उस पुरुश्रेष्ठ पुरुरवा को कामदेव की समान रूपवान सुनकर अधीर भावसे उसके निकट स्वयंही आ उपस्थितहुई॥ १७॥ हेराजन्! उर्वशी को देखतेही पुरुरवा के भी नेत्र आनंद से खिलउठे राजा नें पुलकित होकर मधुर बचनों से कहा। ॥ १८ ॥ कि हे बरारोहे! आने में कोई क्लेश तो नहीं हुआ? बैठो, बतलाओ मैं क्या करूं मेरेसाथ विहार करो मैं चाहता हूं कि हमारे तुम्हारे बीच मे बहुत दिनों तक सुखसे विहार होवे ॥ १९ ॥ उर्वशी ने कहा कि हे सुंदर! तुम्हारे ऊपर किसका मन व नेत्र आसक्त नहोंवे क्योंकि ऐसा नहीं है कि जो आपको देखकर विहार की इच्छा किसीकी बलवती न हो ॥ २० ॥ हे मानद! जब आप इन दोनों भेड़ीके बच्चों की भली भांति रक्षा करोगे तो मैं तुम्हारे साथ विहार करूंगी जो उत्तम पुरुष है वही स्त्रियोंको प्रियहोता है ॥ २१ ॥ हे वीर! मैं केवल घृत का भक्षण करूंगी और मैथुन कालके अतिरिक्त तुम्हें वस्त्ररहित नहीं देखूंगी यह यदितुमको स्वीकारहोतो मैं तुम्हारेसाथ विहार करूं पुरुरवा उसकी सुंदरता, मधुरता से मोहित होगया था अतएव उसने जो २ कुछ कहा उस सबको अंगीकारकरके उसनेकहा॥ २२॥ कि हे सुंदरि! तुम्हारे आश्चर्य रूप और अद्भुत भाव को देखकर मनुष्य मोहितहोजाते हैं तुम स्वर्गगामिनी देवी होकरभी स्वयंही आईहो, कौनमनुष्य तुम्हारी सेवा नकरेगा ॥ २३॥ यहकहकर श्रेष्ठपुरुष पुरुरवा उर्वशी के साथ देवताओंके क्रीड़ास्थल चैत्ररथ आदि स्थानोंमें विहारकरनेलगा॥ २४॥ कमलके केसरसी सुगंधिवाली उसअप्सराके संग विहारकरता हुआ वह राजा उसके मुखकी सुगंधिसे ऐसालोभितहोगया कि उसको आमोद प्रमोदमें बहुतसे दिन बीतगए ॥ २५॥ इधर देवराज इंद्रने उर्वशी कोन देख मेरी सभा उर्वशी विना शोभाको नहीं प्राप्त होती यहकहकर उर्वशीको लानेके निमित्त गन्धर्वोंको भेजा ॥ २६ ॥ आधीरात्रिके समय जब घोर अन्धकारसे सम्पूर्ण जगतमें अंधेराहोरहाथा तब वह गंधर्व मर्त्यलोकमें आए और पुरूरवाके निकट उर्वशीने जो दोभेड़के बच्चे धरोहरके रूपसे रक्खेथे उनको हरलिया॥ २७॥ उर्वशी उनदोनों भेड़ों को पुत्ररूपसे जानतीथी, गन्धर्वगण जब उनको लेजानेलगे तब वह बड़े करुणस्वरसे चिल्लानेलगी

॥२८॥ यद्विश्रम्भादहंनष्टा हृतापत्याचदस्युभिः । यःशेतेनिशिसंत्रस्तो यथानारी
दिवापुमान् ॥ २९ ॥ इतिवाक्सायकैर्विद्धः प्रतोत्त्रैरिवकुञ्जरः । निशिनिस्त्रिंशमा-
दाय विवस्त्रोऽभ्यद्रवद्रुषा ॥ ३० ॥ तेविसृज्योरणौतत्र व्यद्योतन्तस्मविद्युतः । आ-
दायमेषावायान्तंनग्नमैक्षतसापतिम् ॥ ३१ ॥ ऐलोऽपिशयनेजायामपश्यन्विमना
इव । तच्चित्तोविह्वलःशोचन्बभ्रामोन्मत्तवन्महीम् ॥ ३२॥ सतांवीक्ष्यकुरुक्षेत्रेसर-
स्वत्यांचतत्सखीः । पञ्चप्रहृष्टवदनाःप्राहसूक्तंपुरूरवाः ॥ ३३ ॥ अहोजायेतिष्ठ
तिष्ठघोरेनत्यक्तुमर्हसि । मांत्वमद्याप्यनिर्वृत्यवचांसिकृणवावहै ॥ ३४ ॥ सुदेहोऽयं
पतत्यत्रदेविदूरंहृतस्त्वया । खादन्त्येनंवृकागृध्रास्त्वत्प्रसादस्यनास्पदम् ॥ ३५ ॥
उर्वश्युवाच ॥ मामृथाःपुरुषोसित्वंमास्मत्वाऽद्युर्वृकाइमे । क्वापिसख्यंनवैस्त्रीणां
वृकाणांहृदयंयथा ॥ ३६ ॥ स्त्रियोह्यकरुणाःक्रूरादुर्मर्षाःप्रियसाहसाः । घ्नन्त्यल्पा
र्थेऽपिविश्रब्धंपतिंभ्रातरमप्युत ॥ ३७ ॥ विधायालीकविश्रम्भमज्ञेषुत्यक्तसौहृदाः ।
नवंनवमभीप्सन्त्यःपुंश्चल्यःस्वैरवृत्तयः ॥३८॥ संवत्सरान्तेहिभवानेकरात्रंमयेश्वर ।
वत्स्यत्यपत्यानिचते भविष्यन्त्यपराणिभोः ॥ ३९ ॥ अन्तर्वत्नीमुपालक्ष्यदेवींसप्रय
यौपुरम् । पुनस्तत्रगतोऽब्दान्तेउर्वशींवीरमातरम् ॥ ४० ॥ उपलभ्यमुदायुक्तःसमु

उर्वशी उसको सुनकर कहने लगी कि—हाय ! मैं इस दुष्ट स्वामी के हाथमें पड़कर मरगई। यह नपुंसक अपने आपको वीर कहकर अभिमान करताहै ॥ २८ ॥ इसपर विश्वास करके मैं नष्ट होगई, मेरी संतानों को चोरोंने हरलिया । अहो ! यह तो दिनको पुरुष रहता है, परन्तु रात्रि को स्त्रीकी समान भीत होकर सोरहा ॥ २९ ॥ जैसे हाथी अंकुशसे विद्ध होता है वैसेही राजा उर्वशी के ऐसे वाक्य शरोंसे विद्धहो नगनही हाथमें खड्ग ले गन्धर्वोंके पीछे दौड़ा ॥ ३० ॥ उस को देखतेही गन्धर्वोंने तत्कालही उन दोनों मेषोंको छोडदिया और वह बिजली रूपहो चमकने लगे। राजा मेंढके बच्चोंको लेकरलौटा आताथा, किन्तु उससमय राजाको नंगा देखकर प्रतिज्ञा भंग होनेसे उर्वशी चलीगई ॥ ३१ ॥ पुरूरवा उर्वशीको शय्यामें न देखकर बड़ा दुःखित होगया उसका चित्त उर्वशीमें आसक्तथा। कातर होकर शोक तुःहो उन्मत्तकीसमान पृथ्वीपर भ्रमण करने लगा॥ ३२ ॥ कुछ दिनके उपरांत कुरुक्षेत्रमें सरस्वतीके तटपर उस अप्सराको उसकी पांच सखियों सहित देखपाया पुरूरवाने प्रसन्नचित्तहो सुन्दरीसे कहा, ॥ ३३ ॥ हे प्यारी ! खड़ीहो २ अहा निर्दय स्त्री मुझे सुखदिए बिना छोडदेना तुझे उचित नहींहै । आओ यहांपर बैठकर मुझसे बातेंकरो ॥ ३४ ॥ हेदेवि ! मेरे इस सुंदर शरीरको तूने खींचकर बाहर करदिया, देखो—यह इस स्थानमें गिरताहै और बिना तेरी कृपाके इस देहको गीध और भेड़िये खाजायगे ॥ ३५ ॥ उर्वशी ने कहा कि—हेराजन् ! मरे मतजाओ।तुम पुरुषहो धैर्यको धारण करो इन्द्रियोंको वशमें रक्खो । हे राजन्! कहींस्त्रियोंकी मित्रता नहीं निभती,क्योंकि उनका स्वभाव भेडियेकी समान होताहै॥३६॥ स्त्रियें स्वभावसेही अकरुण,क्रोधिन और असहनशील होतीहैं प्यारेके निमित्त अधर्मादिका साहस करती रहतीहैं और थोडेसे विषयमेंभी अपने विश्वास योग्य पति अथवा भाईको मारडालती हैं ॥३७॥ जो व्यभिचारिणी और अपने इच्छानुसार कार्य करनेवाली स्त्री होतीहै वह सुहृदता को एकवारही छोड़ देतीहैं केवल नवीनही नवीन पतियोंपर उनकी अभिलाषा रहती है ॥ ३८ ॥ हेस्वामिन् ! सालके अन्तमें केवल एकदिन कोही मुझसे क्रीड़ा करसकोगे उससेही तुम्हारे कईएक संताने उत्पन्नहोंगी ॥ ३९ ॥ हेराजन् ! यह कहकर वह गर्भिणी अपने नगरमें चलीगई । एकवर्षके उपरांत वह फिर उसीस्थानपर आई । पुरूरवा वीर प्रसविनी उर्वशीको देखकर परम आनंदित हुआ और उस

धासतयानिशाम्। अथैनमुर्वशीप्राहकृपणंविरहातुरम्॥ ४१ ॥ गंधर्वानुपधावेमां स्तुभ्यंदास्यन्तिमामिति। तस्यसंस्तुवतस्तुष्टाअग्निस्थालींददुर्नृप ॥ उर्वशींमन्य मानस्तांसोबुध्यतचरन्वने॥ ४२ ॥ स्थालींन्यस्यवनेगत्वागृहानाध्यायतोनिशि। त्रेतायांसंप्रवृत्तायांमनसित्रय्यवर्तत ॥ ४३ ॥ स्थालीस्थानंगतोऽश्वत्थंशमी गर्भं विलक्ष्यसः। तेनद्वेअरणीकृत्वाउर्वशीलोककाम्यया ॥ ४४ ॥ उर्वशींमंत्रतोध्यायन् धरारणिमुत्तराम्। आत्मानमुभयोर्मध्येयत्तत्प्रजननंप्रभुः ॥४५॥तस्यनिर्मन्थनाज्जा- तोजातवेदाविभावसुः। त्रय्यासविद्ययाराज्ञापुत्रत्वेकल्पितस्त्रिवृत् ॥ ४६ ॥ तेना यजतयज्ञेशंभगवंतमधोक्षजम्। उर्वशीलोकमन्विच्छन्सर्वदेवमयंहरिम्॥ ४७ ॥ एकएवपुरावेदःप्रणवःसर्ववाङ्मयः। देवोनारायणोनान्यएकोऽग्निर्वर्णएवच ४८ पुरूरवसएवासीत्त्रयीत्रेतामुखेनृप। अग्निनाप्रजयाराजाल्लोकंगांधर्वमेयिवान्४९

इतिश्रीमद्भा०म०नवम०ऐलोपाख्यानेचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ ऐलस्यचोर्वशीगर्भात्षडासन्नात्मजानृप। आयुः श्रुतायुश्च स्त्यायुरथोऽथविजयोजयः ॥ १ ॥ श्रुतायोर्वसुमान्पुत्रः सत्यायोश्चश्रुतंजयः। रय स्यसुतएकश्चजयस्यतनयोऽमितः ॥ २ ॥ भीमस्तुविजयस्याथकाञ्चनोहोत्रकस्त तः। तस्यजह्नुः सुतोगङ्गांगण्डूषीकृत्ययोऽपिबत्। जह्नोस्तु पूरुस्तत्पुत्रोबला

के साथ एकरात्रि वासकिया। जाते समय उर्वशीने राजाको विरहातुर देखकर कहाकि ॥४०॥ ॥ ४१ ॥ हेराजन्! गन्धर्वोंको प्रसन्नकरो तो वह मुझको तुम्हें ददेंगे। हेमहाराज! उर्वशीकी इस बातको सुनकर पुरूरवाने गन्धर्वों की स्तुतिकी। इससे उन्होंने सन्तुष्टहोकर राजाको एक अग्नि- स्थालीदी। कामान्धराजा अग्निस्थालीको ही उर्वशीजानकर वनमें भ्रमण करनेलगा। फिर जान- लिया कि यह उर्वशी नहीं है ॥४२॥ तब उस स्थालीको वनमें रखकर घर चलागया, और वहां भी रातको निरयही उसकी चिन्ता कियाकरता; इससे त्रेतायुगके आरम्भमें उसके हृदयसे कर्म- बोधक वेदत्रयी उत्पन्नहुई ॥ ४३ ॥ फिरवह उस स्थानपर कि जहां स्थाली रक्खीथी आया, वहां पर आकर उसने देखा कि—शमीवृक्षके गर्भसे एक पीपलका वृक्ष उत्पन्नहुआ है। अतएव इस के बीचमें अग्नि है—यह विचारकर उर्वशी के लोक प्राप्तकी कामनासे राजाने पीपलकी दो अ रणी बनाई, और अग्नि मथने लगा ॥ ४४ ॥ मन्त्रानुसार राजा नीचे की अरणी को उर्वशी और ऊपरकी अरणी को अपना स्वरूपजान, इन दोनों के बीचमें जो काष्ठ खण्डथा उसको पुत्ररूप से ध्यान करने लगा ॥ ४५ ॥ पुरूरवाके अरणि मन्थनद्वारा जातवेद अग्नि उत्पन्नहुआ। इस अग्नि को कि जो वेदोक्त संस्कार से आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्निरूप उत्पन्नहुआ उसे पुरूरवा ने अपना पुत्रस्थिर किया ॥ ४६ ॥ और उर्वशी के लोककी कामना करके उससे सर्वदेवमय य- ज्ञेश्वर भगवान हरिका यज्ञ किया ॥ ४७ ॥ हेराजन्! पहिले सत्ययुग में सर्ववाणी का बीजरूप एक ओंकारही वेदरूप था; नारायणही एकमात्र देवता, अग्निभी एकही और वर्णभी एकहीथा ॥ ॥ ४८ ॥ हेराजन्! त्रेतायुग के प्रथममें पुरूरवा से तीन वेद उत्पन्नहुए। वह राजा अग्निरूप प्रजाद्वारा गन्धर्वलोक को प्राप्तहुआ ॥ ४९ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेनवमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेवजीबोलेकि–उर्वशीके गर्भसे पुरूरवा के छहपुत्र आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय उत्पन्नहुए ॥१॥ इनमें से श्रुतायुका पुत्र वसुमान; सत्यायुका पुत्र श्रुतंजय; रयका पुत्र एक; जयका पुत्र अमित ॥ २ ॥ विजयका पुत्र भीमहुआ। भीमका पुत्र काञ्चन; काञ्चनका पुत्र होत्रक हुआ। जिस जह्नुने एकही चुल्लूसे गंगाजीको पानकर लियाथा वह इसी होत्रकसे उत्पन्न

कस्यात्मजोऽजकः ॥ ३ ॥ ततः कुशः कुशस्यापिकुशाम्बुर्मूर्तयोवसुः । कुशनाभ श्चचत्वारोगाधिरासीत्कुशाम्बुजः ॥ ४ ॥ तस्यसत्यवतींकन्यामृचीकोऽयाचतद्विजः । वरंविसदृशंमत्वागाधिर्भार्गवमब्रवीत् ॥ ५ ॥ एकतः श्यामकर्णानांहयानां चन्द्रवर्चसाम् । सहस्रंदीयतांशुल्कंकन्यायाः कुशिकावयम् ॥ ६ ॥ इत्युक्तस्तन्मतं ज्ञात्वागतः सवरुणान्तिकम् । आनीयदत्त्वातानश्वानुपयेमेवराननाम् ॥ ७ ॥ सऋषिः प्रार्थितः पत्न्याश्वश्र्वाचापत्यकाम्यया । श्रपयित्वोभयैर्मन्त्रैश्चरुंस्नातुंगतोमुनिः ॥ ८ ॥ तावत्सत्यवतीमात्रास्वचरुंयाचितासती । श्रेष्ठंमत्वातयाऽयच्छन्मात्रेमातुरदत्स्वयम् ॥ ९ ॥ तद्विज्ञायमुनिः प्राहपत्नींकष्टमकारषीः । घोरोदण्डधरः पुत्रोभ्राताते ब्रह्मवित्तमः ॥ १० ॥ प्रसादितः सत्यवत्यामैवंभूदितिभार्गवः । अथतर्हिभवेत्पौत्रोजमदग्निस्ततोऽभवत् ॥ ११ ॥ साचाभूत्सुमहापुण्याकौशिकीलोकपावनी । रेणोः सुतांरेणुकांवैजमदग्निरुवाहयाम् ॥ १२ ॥ तस्यांवैभार्गवऋषेः सुतावसुमदादयः । यवीयाञ्जज्ञएतेषांरामइत्यभिविश्रुतः ॥ १३ ॥ यमाहुर्वासुदेवांशंहैहयानांकुलांतकम् । त्रिःसप्तकृत्वोयइमांचक्रेनिःक्षत्रियांमहीम् ॥ १४ ॥ दुष्टंक्षत्रंभुवोभारमब्रह्मण्यमनीनशत् । रजस्तमोवृतमहन्फल्गुन्यपिकृतेंहसि ॥ १५ ॥ राजोवाच ॥ किंतदंहोभगवतोराजन्यैरजितात्मभिः । कृतंयनकुलंनष्टं क्षत्रियाणामभीक्ष्णशः ॥

हुआथा । इस जह्नु का पुत्र पुरू, उसका पुत्र बलाक, बलाकका पुत्र अजक, ॥ ३ ॥ अजकका पुत्र कुश, कुशके कुशाम्बु, मूर्तय.वसु और कुशनाभ यह चार पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें से कुशम्बु के गाधि उत्पन्न हुआ ॥ ४.॥ उस गाधिके सत्यवती नामक एक कन्या हुई । द्विजवर ऋचीक ने गाधिसे उस कन्याको मांगाथा परन्तु राजाने उनको अयोग्यवर जानकर उनसे कहाकि ॥ ५ ॥ हे ब्रह्मन् ! चन्द्रमा की समान ज्योतिवाले और एक ओर के श्यामकर्णवाले सहस्र अश्वमेरी कन्या का शुल्कदो, क्योंकि हम कुशिक बंशी हैं ॥ ६ ॥ इस बातको सुन ऋषिराजाका अभिप्राय जान वरुणके समीप गये, और वहां से वैसेही अश्व लाय राजाको दे उस कन्यासे व्याहाकिया ॥ ७ ॥ कुछ कालके उपरांत ऋचीक की स्त्री सत्यवती और सत्यवती की माने पुत्रकी.कामना से चरु करने की प्रार्थना की । इससे पत्नीके निमित्त ब्रह्ममंत्र से और सासके निमित्त क्षात्रमंत्रसे दोचरु पकाकर ऋषिस्नान करनेको चलेगये ॥ ८ ॥ अपने चरुसे कन्या का चरु श्रेष्ठजान सत्यवतीकी माताने सत्यवतीका चरूमांगा; सत्यवती नेभी माताको अपना चरूदेदिया और स्वयं माताके चरू का भोजन किया ॥ ९ ॥ अनंतर मुनिने लौटकर उस वृत्तांतको जाना और पत्नीसे संबोधन करके कहाकि—तूनेअति बुराकर्म किया, चरूके बदलने से तेरेबड़ा भयानक क्षात्रिय प्रकृतिका और तेरी माताके श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञ पुत्र होगा ॥ १० ॥ यह सुनकर सत्यवती अत्यंत भयभीत हुई और नाना प्रकार की विनयों से मुनिको.प्रसन्न करके कहाकि—हे भगवन् ! ऐसा न होवे । ऋषि प्रसन्न होकर बोलेकि—पुत्र नहीं तोतेरा पौत्र भयानक होगा। तदनंतर सत्यवती के जमदग्नि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ इसके उपरांत सत्यवती लोक पावनी महापुण्या कौशिकीनामक नदीहुई । जमदग्नि ने रेणुकी कन्या रेणुका से ब्याह किया ॥ १२ ॥ उसके गर्भसे उन जमदग्नि के वीर्य से वसुमान आदि संतान उत्पन्न हुए । इनके छोटेभाईका नाम 'राम' था ॥ १३ ॥ इन्होंनेहैहय वंशका नाश किया, पण्डितजन इनको भगवानका अंश कहते हैं। उन्होंने पृथ्वीको २१ बार क्षत्रिय रहित किया था ॥ १४ ॥ पहिले क्षत्रिय जातिरज और तमोगुण से परिपूर्णहो अहंकार युक्त वेदके विरुद्ध चारीहो भूमंडल के भार स्वरूप होरहेथे, अतएव उनके सूक्ष्म अपराध के करने परभी परशुराम जी ने उनके प्राणोंका नाश कियाथा ॥ १५ ॥ राजा परीक्षित ने पूछाकि—हे ब्रह्मन् ! अजितेन्द्रिय

१६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हैहयानामधिपतिरर्जुनःक्षत्रियर्षभः। दत्तंनारायणस्यांशा
माराध्यपरिकर्मभिः ॥ १७ ॥ बाहून्दशशतंलेभेदुर्धर्षत्वमरातिषु। अव्याहतेन्द्रियौ
जःश्रीतेजोवीर्ययशोबलम् ॥ १८ ॥ योगेश्वरत्वमैश्वर्यंगुणायत्राणिमादयः। चचारा
व्याहतगतिर्लोकेषुपवनोयथा ॥१९॥ स्त्रीरत्नैरावृतःक्रीडन्रेवाम्भसिमदोत्कटः। वैज
यन्तींस्रजंबिभ्रद्रुरोधसरितंभुजैः ॥२०॥ विप्लावितंस्वशिबिरंप्रतिस्रोतःसरिज्जलैः।
नामृष्यत्तस्यतद्वीर्यंवीरमानीदशाननः ॥ २१ ॥ गृहीतोलीलयास्त्रीणांसमक्षंकृतकि
ल्बिषः। माहिष्मत्यांसन्निरुद्धोमुक्तोयेनकपिर्यथा ॥ २२॥ सएकदातुमृगयांविच
रन्विपिनेवने। यदृच्छयाऽश्रमपदंजमदग्नेरुपाविशत् ॥ २३ ॥ तस्मैसनरदेवाय
मुनिरर्हणमाहरत्। ससैन्यामात्यवाहायहविष्मत्यातपोधनः ॥ २४ ॥ सवीरस्तत्र
तद्दृष्ट्वाआत्मैश्वर्यातिशायनम्। तन्नाद्रियताग्निहोत्र्यांसाभिलाषःसहैहयः॥२५॥
हविर्धानीमृषेर्दर्पान्नरान्हर्तुमचोदयत्। तेचमाहिष्मतींनिन्युःसवत्सांक्रन्दतींबलात्
॥ २६ ॥ अथराजनिनिर्यातेरामआश्रमआगतः। श्रुत्वातत्तस्यदौरात्म्यंचुक्रोधाहि
रिवाहतः ॥ २७ ॥ घोरमादायपरशुंसतूणंवर्मकार्मुकम्। अन्वधावतदुर्धर्षोमृगेन्द्र
इवयूथपम् ॥ २८ ॥ तमापतन्तंभृगुवर्यमोजसाधनुर्धरंबाणपरश्वधायुधम्। ऐणेय
चर्माम्बरमर्कधामभिर्युतंजटाभिर्ददृशेपुरींविशन् ॥ २९॥ अचोदयद्धस्तिरथाश्व

क्षत्रियों ने भगवान परशुरामका क्या अपराध कियाथा कि जिससे उन्हों ने बारंबार क्षत्रिय कुलका
नाश किया ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हैहयवंशी क्षत्रियों के अधिपति व क्षत्रियों में उत्तम
कार्त्तवीर्यार्जुनने परिचर्याद्वारा नारायणके अंशके अंश भगवान दत्तात्रेयकी आराधनाकरके १७॥
सहस्रबाहु और बड़ाभारी पराक्रम इन्द्रियशक्ति, सामर्थ्य, लक्ष्मी, प्रभाव, पराक्रम, बल ॥ १८॥ और
योगेश्वरत्व प्राप्तकियाथा। और जिसमें अणिमादि गुण विराजमानहैं उसऐश्वर्य कोभीप्राप्तकियाथा।
इसकारण वह अखंड गतिसे पवनकीसमान समस्तलोकों में विचरणकिया करताथा ॥१९॥ एक
समय उस मदमत्त अर्जुन ने वैजयन्ती माला धारणकर बहुतसी स्त्रियोंके साथ नर्मदा के जलमें
क्रीड़ा करतेहुए बाहुद्वारा उसनदीकाजल रोकलिया॥२०॥उसी समय रावणने दिग्विजयके निमित्त
ठैहरहो माहिष्मती पुरीके निकट डेराडाला। कार्त्तवीर्यार्जुनके जल रोकलेनेसे नदीका प्रवाह उ-
लटाहो तटको डुबोनेलगा। प्रतिकूल बाहिनी नदी के जलसे उसका डेरा डूबगया ॥ २१ ॥
अभिमानी रावणने अर्जुनके उस कार्यका सहनकर तत्कालही उसपर आक्रमण किया। कार्त्तवीर्य
ने स्त्रियोंके सामनेही बानरकी समान सहजहींसे उसको पकड़ माहिष्मती नगरीमे बंद कररक्खा,
अंतमें कुछ दिनोंके उपरांत तिरस्कार करके छोड़दिया ॥ २२ ॥ वह एकदिन आखेटके निमित्त
बाहरहो एकांत बनमें भ्रमण करता २ जमदग्नि मुनिके आश्रममें गया ॥ २३ ॥ जमदग्नि मुनिने
कामधेनु द्वारा मंत्री, सेना और घुड़सवारों समेत राजाका सत्कार किया ॥ २४ ॥ मुनिकी उस
कामधेनु को अपने ऐश्वर्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ देख अर्जुनने उस गायके लेनेकी इच्छाकी ॥२५॥ इस-
कारण आतिथ्य सत्कारसे प्रसन्न न हुआ। अहंकार वश अपने मनुष्योंको उसने ऋषिकी काम-
धेनुके हरण करनेकी आज्ञादी; इससे वह रोतीहुई बछड़े समेत गायको बलपूर्वक माहिष्मती नगरी
को लेगये ॥ २६ ॥ अनन्तर राजा के चलेजाने पर मुनिपुत्र परशुरामजी आश्रममें आए। अर्जुन
की अधम वार्त्ताको सुन वह आहत सर्पकी समान क्रोधितहुए ॥ २७ और घोर परशु, तूण धनुष
औरढाललेकर सिंह जैस हाथियोंके यूथपतिके पीछे दौड़ताहै वैसही वह राजाके पीछे दौड़े ॥२८॥ का
र्त्तवीर्यने नगरीमें प्रवेश करते २ देखा कि—भृगु श्रेष्ठ परशुराम मृगचर्म पहिने, धनुष, बाण और
परशु धारण किये बड़े वेगसे आरहेहैं, और सूर्यकी समान प्रकाशित उनकी जटाएं इधर उधर

परिघासिबाणर्ष्टिशतघ्निशक्तिभिः । अक्षौहिणीः सप्तदशातिभीषणास्ता राम
एको भगवानसूदयत् ॥ ३० ॥ यतोयतोऽसौप्रहरत्परश्वधोमनोऽनिलौजाःपरचक्रसू-
दनः । ततस्ततश्छिन्नभुजोरुकन्धरानिपेतुरुर्व्यांहतसूतवाहनाः॥ ३१ ॥ दृष्ट्वास्वसै-
न्यंरुधिरौघकर्दमेरणाजिरेरामकुठारसायकैः । विवृक्णवर्मध्वजचापविग्रहंनिपाति
तंहैहयआपतद्रुषा ॥३२॥अथार्जुनःपञ्चशतेषुबाहुभिर्धनुःषुबाणान्युगपत्ससंदधे।
रामायरामोऽस्त्रभृतांसमग्रणीस्तान्येकधन्वेषुभिराच्छिनत्समम् ॥ ३३ ॥ पुनःस्व
हस्तैरचलान्मृधेऽङ्घ्रिपानुत्क्षिप्यवेगादभिधावतोयुधि । भुजान्कुठारेणकठोरनेमिना
चिच्छेदरामःप्रसभंत्वहेरिव ॥ ३४ ॥ कृत्तबाहोःशिरस्तस्यगिरेःशृङ्गमिवाहरत् ।
हतेपितरितत्पुत्राअयुतंदुद्रुवुर्भयात् ॥३५॥ अग्निहोत्रीमुपावर्त्यसवत्सांपरवीरहा ।
समुपेत्याश्रमंपित्रेपरिक्लिष्टांसमर्पयत्॥३६॥स्वकर्मतत्कृतंरामःपित्रेभ्रातृभ्यएवच ।
वर्णयामासतच्छ्रुत्वाजमदग्निरभाषत ॥ ३७ ॥ राम राम महाबाहो भवान्पापमकार
षीत् । अवधीन्नरदेवंयत्सर्वदेवमयंवृथा ॥ ३८ ॥ वयंहिब्राह्मणास्तातक्षमयाऽर्हण
तांगताः । ययालोकगुरुर्देवःपारमेष्ठ्यमगात्पदम् ॥ ३९ ॥ क्षमयारोचतेलक्ष्मी-
र्ब्राह्मीसौरीयथाप्रभा । क्षमिणामाशुभगवांस्तुष्यतेहरिरीश्वरः ॥ ४० ॥ राज्ञोमूर्धाऽ
भिषिक्तस्यवधोब्रह्मवधाद्गुरुः । तीर्थसंसेवयाचांहोजह्यङ्गाच्युतचेतनः ॥ ४१ ॥
इतिश्रीमद्भा०म०नवम०पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

विचर रहीहैं ॥ २९ ॥ यह देखनेही अर्जुनने गदा, असि बाण, ऋष्टि शतघ्नी और शक्ति शस्त्रधारी हाथी, घोड़े रथ और पैदलोंवाली सत्रह अक्षौहिणी सेनाको भेजदिया, किंतु भगवान परशुरामजी ने अकेलेही उन सबका तत्कालही नाश करदिया ॥ ३० ॥ मन और वायुकी समान वेगवान शत्रु सैन्य नाशक वह राम जहां २ परशुका प्रहार करनेलगे; उसी २ स्थानके योद्धागण छिन्नबाहु छिन्नउरु और छिन्नकंधहो पृथ्वीपर गिरने लगे और उनके अश्व, सारथी सबही निहत होगये । ॥ ३१ ॥ हैहयपति अर्जुनने देखा कि—रणभूमिमें रुधिरकी धारासे कीचहोरहाहै और परशुराम के कुठार व बाणके प्रहारसे अपने सैनिकों के अस्त्र शस्त्र और शरीर छिन्न भिन्न होगये हैं और प्रायः सबही सेनाका नाश होगयाहै यह देखकर वह अति क्रोधितहो स्वयही समरक्षेत्रमें आया ३२ अनन्तर अर्जुनने परशुरामजीको देख अपनी सब भुजाओं से एकबारही पांचसौ धनुष ग्रहणकर पांचसौ बाणछोड़े । अस्त्रधारियों में शिरोमणि परशुरामजीने केवल अपने एक धनुष के बाणोंसही अर्जुनके सब धनुषों को काटदिया ॥ ३३ ॥ अनन्तर सहस्रार्जुन अपनी भुजाओं से बड़े २ पर्वत वृक्षों को उखाड़ बड़ेवेग से समरमें परशुरामजीकीओर दौड़ा । परशुरामजी ने कठोरधारवाले कु-ल्हाड़े से, सर्पके फणकीसमान सब भुजाओंको काटकर ॥ ३४ ॥ उस छिन्नबाहु अर्जुनका शिर भी पर्वत के शिखरकी समान काटगिराया । हे राजन् ! पिताके मरतेही उसके दश सहस्रपुत्रभय से भागगये ॥ ३५ ॥ शत्रुओं के मारनेवाले परशुरामजी ने बछड़े समेत उस कामधेनुको ले आश्रम में आय क्लेशितगायको पिताके हाथ में अर्पणकिया ॥३६॥ परशुरामजी ने आकर अपने कियेहुए कर्मको पिता व भाइयों से कहा, उस वृत्तांतको सुनकर जमदग्नि ने कहा ॥३७॥ कि—हे राम ! हेराम ! हेमहाबाहो ! तुमनेयह पाप किया । कि सर्व देवमय राजाको मारडाला ॥ ३८ ॥ हे तात ! हम ब्राह्मणक्षमा सेही पूजितहुए हैं । इस क्षमागुण द्वाराही ब्रह्माजी लोकगुरुहोकर श्रेष्ठपदको प्राप्तहुए हैं ॥ ३९ ॥ हेवत्स ! क्षमाही से सूर्य की प्रभाके समान ब्रह्मश्री शोभापाती है और क्षमा वान मनुष्योंके ऊपरही भगवान ईश्वर सन्तुष्टरहते हैं॥४०॥हेपुत्र ! अभिषिक्त क्षत्रियराजाकामारना ब्रह्महत्यासे भी भारी है । अतएव तुम भगवानमें चित्तलगाय तीर्थ सेवाद्वारा पापमोचनकरो ॥४१॥
इतिश्री० मद्भा० म० नवम० सरलभाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ पित्रोपशिक्षितो रामस्तथेति कुरुनन्दन । संवत्सरं तीर्थयात्रां
चरित्वाऽऽश्रममाव्रजत् ॥ १ ॥ कदाचिद्रेणुका याता गङ्गायां पद्ममालिनम् । गन्धर्व
राजं क्रीडन्तमप्सरोभिरपश्यत ॥ २ विलोकयन्ती क्रीडन्तमुदकार्थं नदीं गता । होम
वेलां न सस्मार किञ्चिच्चित्ररथस्पृहा ॥ ३ ॥ कालात्ययं तं विलोक्य मुनेः शापविशङ्कि-
ता । आगत्य कलशं तस्थौ पुरोधाय कृताञ्जलिः ॥ ४ ॥ व्यभिचारं मुनिर्ज्ञात्वा पत्न्याः
प्रकुपितोऽब्रवीत् । घ्नतैनां पुत्रकाः पापामित्युक्तास्ते न चक्रिरे ॥ ५ ॥ रामः सञ्चोदितः
पित्रा भ्रातॄन्मात्रा सहावधीत् । प्रभावज्ञो मुनेः सम्यक्समाधेस्तपसश्च सः ॥ ६ ॥ वरेण
च्छन्दयामास प्रीतः सत्यवतीसुतः । वव्रे हतानां रामोऽपि जीवितं चास्मृतिं वधे ॥ ७ ॥
उत्तस्थुस्ते कुशलिनो निद्रापाय इवाञ्जसा । पितुर्विद्वांस्तपोवीर्यं रामश्चक्रे सुहृद्वधम् ॥
८ ॥ येऽर्जुनस्य सुता राजन्स्मरन्तः स्वपितुर्वधम् । रामवीर्यपराभूता लेभिरे शर्म न क्व-
चित् ॥ ९ ॥ एकदाऽऽश्रमतो रामे सभ्रातरि वनं गते । वैरं सिषाधयिषवो लब्धच्छिद्रा
उपागमन् ॥ १० ॥ दृष्ट्वाग्न्यगार आसीनमावेशितधियं मुनिम् । भगवत्युत्तमश्लोके
जघ्नुस्ते पापनिश्चयाः ॥ ११ ॥ याच्यमानाः कृपणया राममात्राऽतिदारुणाः । प्रसह्य
शिर उत्कृत्य निन्युस्ते क्षत्रबन्धवः ॥ १२ ॥ रेणुका दुःखशोकार्ता निघ्नन्त्यात्मानमात्म-
ना । राम रामेति तातेति विचुक्रोशोच्चकैः सती ॥ १३ ॥ तदुपश्रुत्य दूरस्था हा राम-

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे कुरुनन्दन ! पिताके उपदेशानुसार परशुरामजी 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर एक सालतक तीर्थपर्यटन करते रहे । फिर आश्रम में लौटआये ॥ १ ॥ हे राजन् ! एक समय रेणुका जल लेनेको श्रीगङ्गाजीपर गई वहां गन्धर्वराज चित्ररथको पद्ममाला धारण कियेहुए अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करतेदेखा ॥ २ ॥ रेणुका नदीमें जल लेने गईथी वहां क्रीड़ासक्त गन्धर्व राजको देख उसपर कुछ इच्छावती होकर खड़ी रहगई । इधर होमके समयका स्मरण नहीं रहा ॥ ॥ ३ ॥ फिर उसने विचारा कि समय बहुत व्यतीत होगया । तब मुनि के शापसे डरतीहुई वहां पर आय कलशे को आगेरख वह हाथजोड़कर खड़ी होगई ॥ ४ ॥ इधर स्त्री के व्यभिचार का ज्ञान मुनिने क्रोधित होकर कहाकि—हेपुत्रों ! इस दुष्टास्त्री को मारडालो । परन्तु पुत्रों ने उनकी आज्ञा न मानी ॥ ५ ॥ परशुरामजी ने पिताकी आज्ञासे माता और भाइयों को मारडाला । वे पिता की समाधि और तपस्या के प्रभावको भलीप्रकार जानते थे ॥ ६ ॥ जमदग्नि मुनिने प्रसन्नहोकर परशुरामजीसे बर मांगने को कहा । उनसे परशुरामजीने यह बरमांगा कि यह मरेहुए मनुष्य फिर जीवितहोजांय और इनको जो मैंने मारा है उसका स्मरण कदापि नहो ॥ ७ ॥ हेराजन् ! बर देने के उपरांत वे सब मरेहुए मनुष्य स्वस्थहो सोतेहुए मनुष्यकी समान शीघ्रही उठबैठे । परशुराम जी पिताके तपके प्रभाव को भलीभांति से जानते थे इसही से उन्होने सुहृदों का बध कियाथा ॥ ॥ ८ ॥ हेराजन् ! सहस्रार्जुन के जो पुत्रथे वे परशुरामजी के पराक्रमसे पराजितहो अपने पिताके बध वृत्तांतका स्मरण करतेहुए कभी सुखी नहीं रहते थे ॥ ९ ॥ एकसमय परशुरामजी भाइयोंसमेत आश्रम से बनको गयेथे कि उसी समय सब सहस्रार्जुनके पुत्र पिताके बधका बदला लेनेका समय विचार वहांपर आये ॥ १० ॥ और अग्निशाला में भगवान में ध्यानलगाये जमदग्निमुनिको बैठादेख उन दुष्टों ने उनको मारडाला ॥ ११ ॥ परशुरामजी की माता ने कातरभावसे पतिकीप्राण रक्षाके निमित्त बहुतकुछ प्रार्थनाकी, परन्तुतोभी वे निष्ठुर अधमक्षत्रिय बलपूर्वक उनकाशिरकाटकर लेगये ॥ १२ ॥ सतीरेणुका अपने दुःख के शोकसे पीड़ितहो अपनेहीआप हाथोंसे छातीमाथा कूटकर 'हाराम!' 'हाराम' ! 'हातात! हातात! कह ऊंचेस्वर से रोनेलगी ॥ १३ ॥ दूरसे 'हाराम !' इसशब्दको

स्यार्तवत्स्वनम्। त्वरयाऽऽश्रममासाद्य ददृशेपितरंहतम् ॥ १४ ॥ तद्दुःखरोषाम-
र्षार्तिशोकवेगविमोहितः। हातातसाधोधर्मिष्ठ त्यक्त्वाऽस्मान्स्वर्गतोभवान् ॥ १५॥
विलप्यैवंपितुर्देहं निधायभ्रातृषुस्वयम् प्रगृह्यपरशुरामः क्षत्रान्तायमनोदधे ॥१६॥
गत्वामाहिष्मतींरामो ब्रह्मघ्नविहतश्रियम्। तेषांसशीर्षभीराजन्मध्ये चक्रेमहागिरि
म् ॥ १७ ॥तद्रक्तेननदीं घोरामब्रह्मण्यभयावहाम्। हेतुंकृत्वापितृवधं क्षत्रेऽमंगलका
रिणि ॥ १८ ॥ त्रिःसप्तकृत्वःपृथिवींकृत्वा निःक्षत्रियांप्रभुः। स्यमन्तपंचके चक्रेशो
णितोदान्ह्रदान्नव ॥१९॥ पितुःकायेनसंधाय शिरआदायबर्हिषि। सर्वदेवमयं दे
वमात्मानमयजन्मखैः ॥ २० ॥ ददौप्राचींदिशंहोत्रे ब्रह्मणेदक्षिणांदिशम्। अध्व-
र्यवेप्रतीचींवैउद्गात्रे उत्तरां दिशम् ॥ २१ ॥ अन्येभ्योऽवान्तरदिशः कश्यपायच
मध्यतः। आर्यावर्तमुपद्रष्ट्रे सदस्येभ्यस्ततःपरम् ॥ २२ ॥ ततश्चावभृथस्नानविधू-
ताशेषकिल्बिषः। सरस्वत्यांमहानद्यां रेजेऽब्भ्रइवांशुमान् ॥२३॥ स्वदेहंजमदग्नि
स्तु लब्ध्वासंज्ञानलक्षणम्। ऋषीणांमण्डले सोऽभूत्सप्तमो रामपूजितः ॥ २४ ॥ जा
मदग्न्योऽपिभगवान्रामः कमललोचनः। आगामिन्यन्तरे राजन्वर्तयिष्यतिवैबृहत्।
॥ २५ ॥ आस्तेऽद्यापिमहेन्द्राद्रौ न्यस्तदण्डःप्रशान्तधीः। उपगीयमानचरितः सि
द्धगन्धर्वचारणैः ॥२६॥ एवंभृगुषुविश्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः। अवतीर्यपरंभारं
भुवोऽहन्बहुशोनृपान् ॥ २७ ॥ गाधेरभून्महातेजाः समिद्धइवपावकः। तपसाक्षा
त्रमुत्सृज्य यालेभेब्रह्मवर्चसम् ॥ २८ ॥ विश्वामित्रस्यचैवासन्पुत्रा एकशतंनृप। म

सुनकर सबभाइयोंनेशीघ्रतापूर्वक आश्रम में आकर देखा कि पिता मारेगये ॥ १४ ॥ वे दुःखक्रोध से अधीर होकर मूर्छित होगये। "हातात ! हासाधो ! हा धर्मिष्ठ ! हमको छोड़कर आप स्वर्गको चलेगये" ॥ १५ ॥ इस भांति नानाप्रकार से बिलापकर परशुरामजी पिताकीमृत देहको भाइयों के समीपरख आप क्षत्रियवंश के नाशकरने में तत्परहुए ॥ १६ ॥ हेराजन् ! परशुरामजी ने ब्रह्महत्या से श्रीहीन माहिष्मती पुरी में आकर मध्यस्थल में सहस्रार्जुन के पुत्रों के मस्तकों द्वारा एकबड़ा पर्वत बनादिया ॥ १७॥अनन्तर परशुरामजी ने उन के रुधिर से एकबड़ीनदी बहाई; वह नदी ब्रह्मद्वेषियों का अत्यन्तही भयानक है। तदनन्तर उन्होंने पितृवधके कारण अन्यायवर्त्ती क्षत्रियों को मारमार इक्कीसबेर पृथ्वी निःक्षत्रिकी। इसप्रकार युद्धक्षेत्र में नौ रुधिर के कुण्डबनाये ॥ १८ । १९ ॥ परशुरामजी नेमरेहुए पिताके मस्तकको उनके धड़मे मिलाय,कुशों के ऊपररख नानाप्रकारकेयज्ञों द्वारा सर्वदेवमय भगवान की पूजाकी ॥ २० ॥ उस यज्ञ में होता को पूर्वदिशा, ब्रह्माको दक्षिण दिशा, अध्वर्युको पश्चिमदिशा, उद्गाताको उत्तरदिशा ॥ २१ ॥ अन्यान्य ऋत्विजों को दिशाओं के कोण, कश्यपजी को मध्यस्थल और उपद्रष्टा को आर्यावर्त्त देश दक्षिणामें दिया,इस के उपरांत सभासदों को भी यथायोग्य भूमि दक्षिणामें दी ॥ २२ ॥ तदनन्तर महानदी सरस्वती में अवभृथ स्नानकर समस्त पापोंको धोय स्वच्छ सूर्यकी समान बिराजमानहुए ॥ २३ ॥ इधर जमदग्निमुनि राम से पूजितहो स्मृतिरूप चिह्नवाला शरीरपाकर सप्तर्षिमण्डल में सातवेंऋषि हुए॥२४॥हेराजन् ! कमललोचन भगवान परशुरामजी भी आगामी मन्वन्तर में सप्तर्षि होंगे ॥ २५ ॥ वह क्षत्रियों के मारने का आग्रह छोड़ शांतचित्तहो अबतक महेंद्रपर्वत में बिराजमान हैं। सिद्ध,चारण और गंधर्व गण सदैव उनके विचित्र चरित्रोंका गानकरतेरहते हैं ॥२६॥ इसप्रकार से विश्वात्माभगवान हरि ने भृगुकुल में अवतार ले बहुतबार क्षत्रियों का बधकर भूमि के भारका हरण कियाथा ॥ २७ ॥ हे राजन् ! गाधिसे प्रदीप्तअनल के समान महातेजस्वी विश्वामित्रउत्पन्नहुए। उन्होंने तप के प्रभाव से क्षत्रियत्व को छोड़कर ब्रह्मतेज प्राप्त कियाथा ॥ २८ ॥ इन विश्वामित्र के सौपुत्रउत्पन्न

ज्यमस्तुमधुच्छन्दा मधुच्छन्दस एवते ॥ २९ ॥ पुत्रंकृत्वाशुनःशेपं देवरातंचभार्गवम्। आजीगर्तंसुतानाह ज्येष्ठएषप्रकल्प्यताम् ॥३०॥ योवैहरिश्चन्द्रमखे विक्रीतः पुरुषःपशुः। स्तुत्वादेवान्प्रजेशादीन्मुमुचे पाशबन्धनात् ॥ ३१ ॥ योरातोदेवयजने देवैर्गाधिषुतापसः। देवरातइतिख्यातः शुनःशेपःसभार्गवः ॥३२॥ येमधुच्छन्दसोज्येष्ठाः कुशलंमेनिरेनतत्। अशपत्तान्मुनिःक्रुद्धो म्लेच्छाभवतदुर्जनाः ॥ ३३ ॥ सहोवाचमधुच्छन्दाः सार्धंपंचाशतातः ॥ यन्नोभवान्सजानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम् ॥ ३४ ॥ ज्येष्ठंमन्त्रदृशं चक्रुस्त्वामन्वंचो वयंस्महि। विश्वामित्रःसुतानाह वीरवन्तोभविष्यथ। येमानंमेऽनुगृह्णन्तो वीरवन्तमकर्तमाम् ॥ ३५॥ एषवःकुशिकावीरो देवरातस्तमन्वित। अन्येचाष्टकहारीतजयक्रतुमदादयः ॥ ३६ ॥ एवंकौशिकगोत्रंतु वैश्वामित्रैःपृथग्विधम्। प्रवरान्तरमापन्नं तद्धिचैवंप्रकल्पितम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

श्रीशुकउवाच॥ यःपुरूरवसःपुत्र आयुस्तस्याभवन्सुताः। नहुषःक्षत्रवृद्धश्च रजीरम्भश्चवीर्यवान् ॥१॥अनेनाइतिराजेन्द्र शृणुक्षत्रवृधोऽन्वयम्। क्षत्रवृद्धसुतस्यासन्सुहोत्रस्यात्मजास्त्रयः ॥२॥ काश्यःकुशोगृत्समदइति गृत्समदादभूत्। शुनकः शौनकोयस्य बह्वृचप्रवरोमुनिः॥३॥काश्यस्यकाशिस्तत्पुत्रो राष्ट्रोदीर्घतमःपिता। धन्वन्तरिर्दैर्घतमआयुर्वेदप्रवर्तकः ॥ ४॥ यज्ञभुग्वासुदेवांशःस्मृतमात्रार्तिनाशनः

हुए उनमें से एक पांचवालेकानाम मधुच्छंदाथा इससे सब मधुच्छन्दा केहीनामसे विख्यातहुए ॥ २९ ॥ महातपा विश्वामित्र ने भृगुवंशीय अजीगर्त्त के पुत्र शुनःशेफ को देवरातनामकपुत्रकरअपने दूसरे पुत्रों से कहाथा कि तुम इस को ज्येष्ठभाईजानो ॥ ३० ॥ पिताका बेचाहुआ पुरुष, पशु,शुनःशेफ हरिश्चन्द्र के यज्ञमें प्रजापति आदि देवताओं की स्तुति कर बन्धन से छूटगयाथा' ॥ ३१ ॥ अतएव वह भृगुवंशियों में होकरभी देवताओं के दियेजाने के कारण गाधिवंश में ' देवरात'केनाम से विख्यातहुआ ॥ ३२ ॥ विश्वामित्रमुनि के जो मधुच्छन्दानामक ज्येष्ठपुत्रथे उन्होंने शुनःशेफको ज्येष्ठबनाने में अपना अमंगलसमझा, अतएव मुनिने क्रोधितहो उनको शाप दिया कि " तुम सब अत्यन्त दुष्टहो अतएव तुम दुर्जन म्लेच्छहोओ " ॥३३॥ इस के उपरांत मध्यम मधुच्छन्दाके पचास छोटे भाई पिता के निकटआकर कहनेलगे कि-आप हमारे पिताहो आपहमसे ऊंचा नीचा जो कहेंगे उसी को हम स्वीकारकरेंगे ॥ ३४ ॥ यह कहकर उन्होंने मन्त्रदर्शी शुनःशेफ को अपना ज्येष्ठकिया और सबने कहा कि-हम तुमसे छोटे हैं। विश्वामित्र ने प्रसन्नहोकर उनपुत्रों से कहा कि–हे वत्सो ! तुमने मेरामानरख मुझको पुत्रवान किया अतएव तुमभी पुत्रवान होओगे ॥ ३५॥ हे कुशिकगण ! यह देवरात कौशिकही गोत्र है, क्योंकि यह मेरा पुत्रहुआ है; अतएव तुम इस की सेवाकरो। विश्वामित्रके और भी अष्टक, हारीत, जय, क्रतुमान आदि अनेक पुत्रहुए ॥३६॥ इसप्रकारसे विश्वामित्रजी के पुत्रों द्वारा कौशिकगोत्र नानाप्रकारकाहुआ। देवरात के ज्येष्ठ करने से दूसरे प्रवर प्राप्तहुए ॥ ३७ ॥

इति श्री मद्भागवते महापुराणे नवम स्कंधे सरला भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजेन्द्र ! पुरूरवाके आयु नामक जो पुत्रहुआ उसके नहुष,क्षत्रवृद्ध, रजिरंभ और अनेना यह पांच पुत्रहुए इनमेंसे क्षत्रवृद्धका वंशसुनो। क्षत्रवृद्धका पुत्र सुहोत्र हुआ। उसके तीन पुत्रहुए, ॥ १—२ ॥ जो काश्य, कुश और गृत्समद के नामसे कहेजातेथे। उनमेंसे गृत्समदसे शुनकने जन्म ग्रहण किया। उसका पुत्र शौनक हुआ जो ऋग्वेदियोंमें उत्तम कहेजातेहैं ॥ ३ ॥ काश्यका पुत्र काशि काशिका पुत्र राष्ट्र और उसके दीर्घतमा हुआ। दीर्घतमाके पुत्र धन्वन्तरीजीहुए कि जिन्होंने वैद्यकशास्त्र प्रवृत्त किया ॥ ४ ॥ ये भगवानके अवतार

तत्पुत्रः केतुमानस्य जज्ञे भीमरथस्ततः ॥ ५ ॥ दिवोदासो द्युमांस्तस्मात्प्रतर्दन इति स्मृतः। स एव शत्रुजिद्वत्स ऋतध्वज इतीरितः ॥ तथा कुवलयाश्वेति प्रोक्तोऽलर्कादयस्ततः ॥ ६ ॥ षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिं वर्षशतानि च। नालर्कादपरो राजन्मेदिनीं बुभुजे युवा ॥ ७ ॥ अलर्कात्संततिस्तस्मात्सुनीतोऽथ सुकेतनः। धर्मकेतुः सुतस्तस्मात्सत्यकेतुरजायत ॥ ८ ॥ धृष्टकेतुः सुतस्तस्मात्सुकुमारः क्षितीश्वरः। वीतिहोत्रस्य भर्गोऽतो भार्गभूमिरभून्नृपः ॥ ९ ॥ इतीमे काशयो भूपाः क्षत्रवृद्धान्वयायिनः। रभस्य रभसः पुत्रो गम्भीरश्चाक्रियस्ततः ॥ १० ॥ तस्य क्षेत्रे ब्रह्म जज्ञे शृणु वंशमनेनसः। शुद्धस्ततः शुचिस्तस्मात्त्रिककुद्धर्मसारथिः ॥ ११ ॥ ततः शान्तरयो जज्ञे कृतकृत्यः स आत्मवान्। रजेः पञ्चशतान्यासन्पुत्राणाममितौजसाम् ॥ १२ ॥ देवैरभ्यर्थितो दैत्यान्हत्वेन्द्रायाददाद्दिवम्। इन्द्रस्तस्मै पुनर्दत्त्वा गृहीत्वा चरणौ रजेः ॥ १३ ॥ आत्मानमर्पयामास प्रह्लादाद्यरिशङ्कितः। पितर्युपरते पुत्रा याचमानाय नो ददुः ॥ १४ ॥ त्रिविष्टपं महेन्द्राय यज्ञभागान्समाददुः। गुरुणा हूयमानेऽग्नौ बलभित्तनयान्रजेः ॥ १५ ॥ अवधीद्भ्रंशितान्मार्गान्न कश्चिदवशेषितः। कुशात्प्रतिः क्षात्रवृद्धात्संजयस्तत्सुतो जयः ॥ १६ ॥ ततः कृतः कृतस्यापि जज्ञे हर्यबलो नृपः। सहदेवस्ततो हीनो जयसेनस्तु तत्सुतः ॥ १७ ॥ संकृतिस्तस्य च जयः क्षत्रधर्मा महारथः। क्षत्रवृद्धान्वया भूपाः शृणु वंशं च नाहुषात् ॥ १८ ॥ इति श्रीमद्भा० म० नवम० चन्द्रवंशानुवर्णनं सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

केवल स्मरण करनेसेही रोगीकी पीडाको दूर करनेवाले और यज्ञके भागके भोक्ताहुए धन्वन्तरी के पुत्र केतुमान, केतुमानके भीमरथ ॥ ५ ॥ भीमरथके दिवोदास, दिवोदासके द्युमान हुआ। वह प्रतर्दन शत्रुजित, वत्स, ऋतध्वज और कुवलयाश्व इन नामों से विख्यातथा, उस द्युमानके अलर्क आदि अनेक संतानें हुईं ॥ ६ ॥ उसने छियासठ सहस्रवर्ष पृथ्वीका पालन कियाथा, हे राजन्! अलर्कके अतिरिक्त किसी युवाने इतने दिन राज्यका भोग नहीं किया, ॥ ७ ॥ उस अलर्कका पुत्र संतति, संततिकापुत्र सुनीथ, सुनीथका निकेतन, उसका धर्मकेतु धर्मकेतुका पुत्र सत्यकेतु हुआ ॥ ८ ॥ सत्यकेतुका पुत्र धृष्टकेतु हुआ, उससे राजा सुकुमारने जन्मग्रहण किया। उसका पुत्र वीतिहोत्र उसका भर्ग, भर्गकापुत्र भार्गभूमि हुआ, ॥ ९ ॥ हे परीक्षित! यह सब काशिवंशीय राजा क्षत्रवृद्ध के वंशसे उत्पन्न हुएथे। रम्भकापुत्र रभस रभसका, गम्भीर, गम्भीरसे अक्रिय उत्पन्न हुआ ॥ १० ॥ अक्रियके क्षेत्रमें ब्राह्मण उत्पन्नहुए। हेराजन्! अब अनेनाके वंशका वर्णन करताहूं उसे सुनो। अनेनाका पुत्र शुद्ध, शुद्धका शुचि, उससे त्रिककुद उत्पन्नहुआ त्रिककुद का धर्म सारथी उसका पुत्र शांतरय हुआ जो कृतकृत्य और आत्मज्ञानीहुआ हेराजन्! रजिके बड बलवान पांचसौ पुत्र उत्पन्नहुए ॥ १२ ॥ एकदिन रजिने देवताओंकी प्रार्थनासे दैत्यों का नाश करके इन्द्रको स्वर्ग पुरीदी। तब इन्द्रने रजिके चरणोंपर गिर ॥ १३ ॥ उस पुरीको उनके हाथोंदे प्रह्लादि रिपुओं के भयसे अपना शरीर भी रजिके अर्पण करदिया परन्तु रजिके मरजाने पर इन्द्रने जब उनके पुत्रोंसे स्वर्गको मांगा तब उन्होंने न दिया और आप स्वर्गाधिपहो यज्ञका भागतक लेनेलगे ॥ १४ ॥ अतएव देवगुरु बृहस्पतिने रजिके पुत्रोंकी बुद्धि भ्रष्ट करनेको अभिचार विधान द्वारा होमका आरम्भकिया॥१५॥इससे वह थोड़ेही विलम्बमें नीतिमार्ग से भ्रष्टहो गये तदनन्तर इन्द्रने थोड़ेही श्रमसे उन सबको मारडाला एकजनभी शेष न रहा। क्षत्रवृद्धकापौत्र कुश, कुशकापुत्र प्रति, प्रतिकासंजय और उसकाजयहुआ॥१६॥जयकापुत्रकृत उसके हर्यवनहुआ हर्यवनका पुत्र सहदेव उसकाहीन, हीनका जयसेन जयसेनका॥१७॥ पुत्र संस्कृति उसका पुत्र जय, जयके क्षत्रधर्मा उसके महारथहुआ यह सब राजाक्षत्रवृद्धके वंशवाले हैं अब इसके पश्चात् नहुष वंशका वृत्तांत सुनो ॥१८॥ इतिश्रीमद्भा० महा० नवम० सरलभाषाटीकायांसप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

श्रीशुक उवाच ॥ यतिर्ययातिःसंयातिरायतिर्वियतिःकृतिः। षडिमे नहुषस्यासन्निन्द्रियाणीवदेहिनः ॥ १ ॥ राज्यंनैच्छद्यतिःपित्रादत्तंतत्परिणामवित्। यत्र प्रविष्टःपुरुषआत्मानंनावबुध्यते ॥२॥ पितरिभ्रंशितेस्थानादिन्द्राण्याधर्षणाद्विजैः। प्रापितेऽजगरत्वंवैययातिरभवन्नृपः ॥ ३ ॥ चतसृष्वादिशद्दिक्षुभ्रातॄन्भ्रातायवीयसः। कृतदारोजुगोपोर्वींकाव्यस्यवृषपर्वणः ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मर्षिर्भगवान्काव्यः क्षत्रबन्धुश्चनाहुषः। राजन्यविप्रयोःकस्माद्विवाहःप्रतिलोमकः ॥ ५ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ एकदादानवेन्द्रस्यशर्मिष्ठानामकन्यका। सखीसहस्रसंयुक्तागुरुपुत्र्याचभामिनी ॥ ६ ॥ देवयान्यापुरोद्यानेपुष्पितद्रुमसंकुले। व्यचरत्कलगीतालिनलिनीपुलिनेऽबला ॥ ७ ॥ ताजलाशयमासाद्यकन्याःकमललोचनाः। तीरेन्यस्यदुकूलानिविजह्रुःसिञ्चतीर्मिथः ॥ ८ ॥ वीक्ष्यव्रजंतंगिरिशंसहदेव्यावृषास्थितम्। सहसोत्तीर्यवासांसिपर्यधुर्व्रीडिताःस्त्रियः ॥ ९ ॥ शर्मिष्ठाऽजानतीवासोगुरुपुत्र्याःसमव्ययत्। स्वीयंमत्वाप्रकुपितादेवयानीदमब्रवीत् ॥ १० ॥ अहोनिरीक्ष्यतामस्यादास्याःकर्मह्यसाम्प्रतम्। अस्मद्धार्यंधृतवतीशुनीवहविरध्वरे ॥ ११ ॥ यैरिदंतपसासृष्टंमुखंपुंसःपरस्यये। धार्यतेयैरिहज्योतिःशिवःपन्थाःप्रदर्शितः ॥ १२ ॥ यान्वंदन्त्युपतिष्ठन्तेलोकनाथाःसुरेश्वराः। भगवानपिविश्वात्मापावनःश्रीनिकेतनः ॥ १३ ॥ वयं तत्रापिभृगवःशिष्योऽस्यानःपितासुरः। अस्मद्धार्यंधृतवतीशूद्रोवेदमिवासती १४

श्रीशुकदेवजी बोले कि—प्राणियों की छहइन्द्रियों की समान नहुष राजाके यति, ययाति, शर्याति, आयति, वियति और कृति यह छः पुत्रहुए ॥ १ ॥ इनमें से यति राज्य के परिणाम को अनर्थरूप जानताथा इसकारण पिताके राज्य देनेपरभी उसने ग्रहण करनेकी इच्छा न की। क्योंकि उसको निश्चयथा कि—राज्यासक्त मनुष्यको आत्मस्वरूपका बोध नहींहोता ॥ २ ॥ इन्द्राणीका अपराध करनेसे जब अगस्तआदि ऋषियोंने नहुषको स्वर्गसे गिराय अजगररूप किया तब ययाति राजा हुआ ॥ ३ ॥ उसने चारो छोटेभाइयोंको चारोंओर राज्य करनेकी आज्ञादी। और आप शुक्राचार्य व वृषपर्वाकी कन्या से विवाहकर पृथ्वीका पालन करनेलगा ॥ ४ ॥ राजा परीक्षितने पूछा कि—हेब्रह्मन्! भगवान शुक्राचार्य तौ ब्रह्मर्षि और नहुष पुत्र ययाति क्षत्रीथा फिर किसप्रकार ब्राह्मण क्षत्री का प्रतिलोम विवाह हुआ ? ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि एक-दिन दानवेन्द्र वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठा सहस्र सखियों और गुरुकन्या ॥ ६ ॥ देवयानीके साथ नगरके उपवनमें भ्रमण कररहीथीं। उद्यानमें असंख्य वृक्ष फूल रहेथे। वहां कमलोंकी सुगन्धि से तालावके तटपर भौंरे गूंज रहेथे ॥ ७ ॥ वह सब कमलनयनी स्त्रियें किनारेपर वस्त्र रख तालाब में कूद एक दूसरेपर जल डाल २ परस्पर क्रीड़ा करनेलगीं ॥ ८ ॥ उसीसमय दैवात् महादेवजी पार्वतीके साथ बैलपर सवारहुए, उसओर को आए। उन्हें देखतेही सब कन्याओं ने अत्यंत लज्जितहो शीघ्रतापूर्वक किनारेपर आय अपने २ वस्त्र पहिन लिये ॥ ९ ॥ शीघ्रतासे न जानने के कारण गुरुकन्याके वस्त्रोंको अपना विचार शर्मिष्ठाने पहिनलिया। यह देख देवयानीने कुपित होकर कहा ॥ १० ॥ कि अहो! इस दासीका अन्याय कर्म तो देखो ? जैसे कुत्ती यज्ञमें हवि-ष्यान्न खाजाय उसीप्रकार इस दासीने मेरा पहिनाहुआ वस्त्र पहिनलिया, ॥ ११ ॥ जो तपस्या द्वारा जगत्को उत्पन्न करतेहैं जो भगवानके मुखसे उत्पन्न होनेके कारण सर्व श्रेष्ठहैं जो ब्रह्मको धारण करते हैं जिन्होंने मंगलमय वेद मार्ग प्रकाशित कियाहै. ॥ १२ ॥ और समस्त लोकपाल सुरेश्वरगण और भगवान विश्वात्मा भी ॥ १३ ॥ जिनकी वंदना और उपासना करतेहैं वह मैं ब्राह्मण जाति तिसपर भी भृगुऋषियों में उत्पन्नहुईहूं। इसका पिता मेरा शिष्यहै, इसकी ढिठाई तो देखो! शूद्रजातिके वेद धारणकी समान इसने मेरे, वस्त्र पहिन लिये ॥ १४ ॥ हे राजन्!

एवंक्षिपंतींशर्मिष्ठागुरुपुत्रीमभाषत । रुषाश्वसन्त्युरङ्गीवधर्षितादष्टदच्छदा ॥१५॥
आत्मवृत्तमविज्ञाय कत्थसेबहुभिक्षुकि । किंनप्रतीक्षसेऽस्माकं गृहान्बलिभुजो
यथा ॥ १६ ॥ एवंविधैःसुपरुषैःक्षिप्त्वाऽचार्यसुतांसतीम् । शर्मिष्ठाप्राक्षिपत्कूपे
वासश्चादाय मन्युना ॥ १७ ॥ तस्यांगतायांस्वगृहंययातिर्मृगयांचरन् । प्राप्तोयदृ
च्छयाकूपे जलार्थीतांददर्शह ॥ १८ ॥ दत्त्वास्वमुत्तरंवासस्तस्यैराजाविवाससे ।
गृहीत्वापाणिना पाणि मुज्जहारदयापरः ॥ १९ ॥ तंवीरमाहौशनसीप्रेमनिर्भरया
गिरा । राजंस्त्वयागृहीतोमेपाणिःपरपुरंजय ॥ २० ॥ हस्तग्राहोऽपरोमाऽभूद्गृही
तायास्त्वयाहिमे । एषईशकृतोवीरसंबन्धोनौनपौरुषः ॥ २१ ॥ यदिदंकूपलग्नाया
भवतोदर्शनंमम । नब्राह्मणोमेभविताहस्तग्राहोमहाभुजः ॥ कचस्यबार्हस्पत्यस्य
शापाद्यमशपंपुरा ॥ २२ ॥ ययातिरनभिप्रेतं दैवोपहृतमात्मनः । मनस्तुतद्
गतंबुद्ध्वा प्रतिजग्राहतद्वचः ॥ २३ ॥ गतेराजनिसाधीरे तत्रस्मरुदतीपितुः ॥
न्यवेदयत्ततःसर्वमुक्तंशर्मिष्ठया कृतम् ॥ २४ ॥ दुर्मनाभगवान्काव्यःपौरोहित्यं वि
गर्हयन् । स्तुवन्वृत्तिंचकापोतीं दुहित्रासययौपुरात् ॥ २५ ॥ वृषपर्वातमाज्ञाय प्रत्य
नीकविवक्षितम् । गुरुंप्रसादयन्मूर्ध्ना पादयोःपतितःपथि ॥२६॥ क्षणार्धमन्युर्भगवा
ञ्छिष्यं व्याचष्टभार्गवः । कामोऽस्याःक्रियतांराजन्नैनांत्यक्तुमिहोत्सहे ॥२७ ॥ त
थेत्यवस्थितेप्राह देवयानीमनोगतम् । पित्रादत्तायतोयास्ये सानुगायातुमामनु ॥

गुरुपुत्री देवयानी के इसप्रकारसे तिरस्कार करनेपर शर्मिष्ठा क्रोधित होकर दबीहुई सर्पिनीके समान बड़े २ श्वास छोड़कर क्रोधित होकर होठोंको दांतों से पीस २ कर कहन लगी कि—अरे भिक्षुकि ! अपने आचरणको न जानकर तू इतनी बड़ाई मारतीहै कौवेकीसमान तू क्या हमारे घरकेटुकड़ोंकी चाहना नहीं करती? ॥१६॥ इसप्रकार उसने नाना कटुवचनोंके प्रयोगसे गुरुकन्या का तिरस्कार कर क्रोधितहो उसके सब वस्त्र खींच उसे कुएमें डालदिया, ॥ १७ ॥ शर्मिष्ठाके अपने घरचलेजाने पर ययाति राजा आखेट करता २ दैवेच्छासे उस स्थानपर आ उपस्थित हुआ और जलकी इच्छाकर उस कुएके समीप आ देवयानी को उस स्थानमें देखा ॥ १८ ॥ राजाने दयालु होकर उस नग्ना देवयानीको अपना उत्तरीय वस्त्र पहिनने को दिया, फिर अपने हाथसे उसका हाथ पकड़ कुएसे निकाललिया ॥ १९ ॥ देवयानी कुएसे निकल प्रेमयुक्त वचनों से ययातिसे कहनेलगी कि—हेराजन् ! हेपरपुरंजय ! आपने मेरा पाणिग्रहण किया मैं, आपकी गृहिणीहुई, मैं प्रार्थनाकरतीहूं कि आपजिसका पाणिग्रहणकरचुके उसका दूसरेकेसाथ पाणिग्रहण न होना चाहिये । हेवीर!यह मेरा और आपका समागम केवल दैवकृत हुआ यह मनुष्य कृत नहीं है॥२०।२१॥हेमहाबाहो ! मैंने प्रथम बृहस्पतिके पुत्र कचको शापदियाथा, इससे उन्होंनेभी मुझको शापदिया कि तुझे ब्राह्मण पति न मिलेगा इसकारण ब्राह्मण मेरापति न होगा,॥२२॥राजाययातिने इसबात को शास्त्र विरुद्ध समझा परन्तु तौभी इस दैव घटनाको उपस्थित हुआ और देवयानीमें चित्तको आसक्तहुआजान उसकीबातोंको स्वीकारकिया,॥२३॥अनन्तरराजाके चलेजानेपर देवयानी ने रोते २ पिताके घर में आय शर्मिष्ठाकी सब बातोंको कहा ॥ २४ ॥ भगवान शुक्राचार्य जी दुःखितहो पुरोहितके कामकी निंदा और उंच्छ वृत्तिकी प्रशंसा करतेहुए कन्या समेत नगर से बाहरहुए ॥ २५ ॥ इस वृत्तांतको वृषपर्वाने सुनकर विचारा कि—शुक्राचार्यजीने यह अभिप्राय सोचाहै कि—देवताओं से मिलकर असुरोंको हरादेवें, यह विचार वृषपर्वा मार्गमे आय उनके चरणोंमें गिर उनके क्रोधको शांति करने लगा॥ २६ ॥ भगवान शुक्रका क्रोध तो एक आधेक्षण काथा उन्होंने शिष्यसे कहा कि—हेराजन् ! मेरी कन्या की जो इच्छाहो वह पूर्णकरो मैं इसको छोड नहींसकता॥२७॥यह सुन गुरुकन्याकी इच्छा जाननेको वृषपर्वा खड़ाहोगया देवयानीने अपनी

॥ २८ ॥ स्वानां तत्संकटं वीक्ष्य तदर्थस्य च गौरवम् । देवयानीं पर्यचरत्स्त्रीसहस्रेण दासवत् ॥ २९ ॥ नाहुषाय सुतां दत्त्वा सह शर्मिष्ठयोशना । तमाह राजञ्छर्मिष्ठामाधास्तल्पे न कर्हिचित् ॥ ३० ॥ विलोक्यौशनसीं राजञ्छर्मिष्ठा सुप्रजां क्वचित् । तमेव वव्रे रहसि सख्याः पतिमृतौ सती ॥ ३१ ॥ राजपुत्र्यार्थितोऽपत्ये धर्मं चावेक्ष्य धर्मवित् । स्मरञ्छुक्रवचः काले दिष्टमेवाभ्यपद्यत ॥३२॥ यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत । द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ३३ ॥ गर्भसंभवमासुर्या भर्तुर्विज्ञाय मानिनी । देवयानी पितुर्गेहं ययौ क्रोधविमूर्छिता ॥ ३४ ॥ प्रियामनुगतः कामी वचोभिरुपमन्त्रयन् । न प्रसादयितुं शेके पादसंवाहनादिभिः ॥ ३५ ॥ शुक्रस्तमाह कुपितः स्त्रीकामानृतपूरुष । त्वां जरा विशतां मन्द विरूपकरणी नृणाम् ॥ ३६ ॥ ययातिरुवाच । अतृप्तोऽस्म्यद्य कामानां ब्रह्मन्दुहितरि स्म ते । व्यत्यस्यतां यथाकामं वयसा योऽभिधास्यति ॥ ३७ ॥ इति लब्धव्यवस्थानः पुत्रं ज्येष्ठमवोचत । यदो तात प्रतीच्छेमां जरां देहि निजं वयः ॥ ३८ ॥ मातामहकृतां वत्स न तृप्तो विषयेष्वहम् । वयसा भवदीयेन रंस्ये कतिपयाः समाः ॥३९॥ यदुरुवाच । नोत्सहे जरसा स्थातुमन्तरा प्राप्तया तव । अविदित्वा सुखं ग्राम्यं वैतृष्ण्यं नैति पूरुषः ॥४०॥ तुर्वसुश्चोदितः पित्रा

इच्छाको प्रगट करके कहाकि-मैं पिताकी दीहुई जहांपर जाकर रहूं वहां तुम्हारी कन्या शर्मिष्ठा सखियों समेत रहकर मेरी सेवाकरे ॥ २८ ॥ आचार्य के चले जानेपर अपने पर सङ्कट पड़ेगा, गुरुके यहां रहने से बहुत से कार्य सिद्धहोंगे, यह विचारकर वृषपर्वा ने देवयानीको सखियों समेत शर्मिष्ठादी। पिताकी दीहुई शर्मिष्ठा सहस्र सखियों समेत दासीकी समान देवयानी को सेवा में प्रवृत्त हुई ॥ २९ ॥ अनतर शुक्राचार्य ने शर्मिष्ठा समेत देवयानीको ययाति के हाथमें देकर ययाति से कहादियाकि हे राजन् ! तुम शर्मिष्ठाको कभीसग शय्यामें न सुलाना ॥ ३० ॥ हे राजन्! शर्मिष्ठाने देखाकि देवयानी ने स्वामीके सहवास से परम सुंदर पुत्र उत्पन्न किया है, अतएव उसने भी ऋतुकाल में एकांत में अपनीसखी के पति ययाति राजा से पुत्रोत्पादनके निमित्त प्रार्थना की ॥ ३१ ॥ 'राजपुत्री पुत्र उत्पन्न करने के निमित्त प्रार्थना करती है और यह धर्म संगतभी है'— धर्मज्ञ राजाने यह विचारकर शुक्राचार्य के वचनका स्मरण रहते हुएभी दैव से प्राप्त हुएज्ञान से शर्मिष्ठा के संग संगम करना स्वीकार किया ॥ ३२ ॥ देवयानी ने यदु और तुर्वसुको व शर्मिष्ठा ने द्रुह्यु, अनु और पुरुको उत्पन्न किया ॥ ३३ ॥ हे राजन्! अपने स्वामी से असुर पुत्रीके पुत्र उत्पन्न हुए हैं—यह विचारकर वह मानवती देवयानी क्रोधितहो अपने पिता के घर चलीगई ॥ ३४ ॥ ययाति अत्यंत कामीथा, प्यारीको क्रोधित देख विनयके वाक्यों से प्रसन्न करता २ उसके पीछे २ गया, किंतु पैरआदि पकड़ करभी उसको प्रसन्न न करसका ॥ ३५ ॥ यह वृत्तांत सुन शुक्रने क्रोधित होकर कहाकि—रेस्त्रीकाम ! तू अत्यंतही असत्यभाषी है, रेमद ! मनुष्योंको कुरूप करने वाला बुढ़ापा तुझे प्राप्त होजावे ॥ ३६ ॥ ययाति ने कहाकि—हे ब्रह्मन् ! आपकी पुत्रीके साथ संभोग करके मैं अबतक तृप्त नहीं होसका। शुक्रने कहाकि—जोतेरा बुढापा ग्रहण करसके तू उसकी युवावस्था लेसकता है ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! ययातिने इस प्रकार से बुढापा बदलने का उपाय अपने ज्येष्ठ पुत्र यदुसे कहाकि—हे तात ! यदु ! तुममेरी जरा ग्रहण करके अपनी युवावस्था मुझेदो ॥ ३८ ॥ हे वत्स ! तुम्हारे नाना ने मुझको बूढ़ाकर दिया है किंतु मैं अबतक विषय भोगसे तृप्त नहीं हुआ,—इच्छा है कितुम्हारे यौवन से मैं कुछदिनों विहार करूं ॥ ३९ ॥ यदुने कहाकि—हे पिता ! आपकी जरावस्था लेकरमैं नहीं रहना चहता क्योंकि विषय सुखोंको बिना-भली भांतिजाने मनुष्यकी विषय तृष्णा नहीं मिटती ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे भारत!

द्रुह्युश्चानुश्च भारत । प्रत्याचख्युरधर्मज्ञा ह्यनित्येनित्यबुद्धयः ॥ ४१ ॥ अपृच्छत्तनयं पूरुं वयसोनं गुणाधिकम् । नत्वमग्रजवद्वत्समां प्रत्याख्यातुमर्हसि ॥ ४२ ॥ पूरुरुवाच । कोनुलोकेमनुष्येन्द्र पितुरात्मकृतःपुमान् । प्रतिकर्तुंक्षमोयस्य प्रसादाद्विन्दतेपरम् । ॥ ४३ ॥ उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात्प्रोक्तकारीतुमध्यमः । अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्तोच्चरितं पितुः ॥४४ ॥ इतिप्रमुदितः पूरुः प्रत्यगृह्णाज्जरांपितुः । सोऽपि तद्वयसा कामान्यथावज्जुजुषेनृप ॥४५॥ सप्तद्वीपपतिः सम्यक्पितृवत्पालयत्प्रजाः यथोपजोषंविषयाञ्जुजुषेऽव्याहतेन्द्रियः ॥ ४६ ॥ देवयान्यप्यनुदिनंमनोवाग्देहवस्तुभिः । प्रेयसःपरमांप्रीतिमुवाहप्रेयसीरहः ॥ ४७ ॥ अयजद्यज्ञपुरुषंक्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः । सर्वदेवमयंदेवंसर्ववेदमयंहरिम् ॥ ४८ ॥ यस्मिन्निदंविरचितंव्योम्नीव जलदावलिः । नानेवभातिनाभातिस्वप्नमायामनोरथः ॥४९॥ तमेवहृदिविन्यस्य वासुदेवंगुहाशयम् । नारायणमणीयांसंनिराशीरयजत्प्रभुम् ॥ ५० ॥ एवंवर्षसहस्राणिमनःषष्ठैर्मनःसुखम् । विदधानोऽपिनातृप्यत्सार्वभौमःकदिन्द्रियैः ॥ ५१ ॥

इतिश्रीमद्भा०म०नवम०अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ सइत्थमाचरन्कामान्स्त्रैणोऽपह्नवमात्मनः । बुद्ध्वाप्रियायैनिर्विण्णागाथामेतामगायत ॥ १॥ शृणुभार्गव्यमूंगाथांमद्विधाचरितांभुवि । धीरायस्यानुशोचन्तिवनेग्रामनिवासिनः॥ २ ॥वस्तएकोवनेकश्चिद्विचिन्वन्प्रियमात्मनः ।

इसी प्रकार से पिताकी आज्ञाको तुर्वसु, द्रुह्यु और अनुने भी अस्वीकार किया; उनको धर्मका ज्ञान न था । वह अनित्य पदार्थ कोभी नित्य जानते थे ॥ ४१ ॥ अनंतर ययाति ने अवस्था में छोटे और गुणोंमें बड़े पुरूसे कहाकि हे वत्स ! बड़े भाइयों की समान मेरी प्रार्थनाका अस्वीकार करना तुझे उचित नहीं है ॥ ४२ ॥ पुरूने कहाकि—हे नरनाथ ! जिसकी कृपासे परमपद प्राप्त होता है और जिससे देह उत्पन्न होती है, उस पिताका इस लोकमें कौन प्रत्युपकार करसकता है ॥४३॥ तौभी जोपुत्र पिताकी इच्छाको पूर्णकर वही श्रेष्ठ कहलाता है जोकहा हुआ कार्य पूराकरे वह मध्यम जोबिना श्रद्धाकरे वह अधम पुत्र है और जोपिता की आज्ञा पाकर भी काम नहीं करता वह पुत्र नहीं है केवल पिताकी विष्ठामात्र है ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! यह कह पुरूने प्रसन्नता पूर्वक पिता की जरा ग्रहणकी और राजा भी पुत्रके यौवन द्वारा यथोचित विषय भोग करनेलगा ॥ ४५ ॥ हे महाराज ! ययाति राजा सातों द्वीपोंका अधिपति था वह भली प्रकार से पुत्रवत् प्रजाका पालन कर इन्द्रियों की शक्ति रहते हुए इच्छानुसार विषयोंका भोग करनेलगा ॥ ४६ ॥ इधर देवयानी भी मन, वाक्य, देह और अन्यान्य वस्तुओं द्वारा एकांत में रातदिन प्रियतमको प्रसन्न रखनेलगी ॥ ४७ ॥ ययाति राजाने अनेक दक्षिणावाले बहुत से यज्ञकर सर्व देवमय सर्व वेद स्वरूप यज्ञ पुरुष भगवान की अर्चना की ॥ ४८ ॥ आकाश में मेघकी समान जिससे यह जगत विरचितहो स्वप्न माया और कल्पनाकी समान कभी प्रकाशित और कभी लीनहोताहै, राजाने निष्कामहो उन अंतर्यामी भगवानको हृदयमें स्थापनकर उन्हींका यजन किया ॥४९॥ सर्वभूमि पति ययाति इस प्रकार मनआदि छह चपल इन्द्रियों से हजारवर्षतक विषय भोगकरके भी तृप्त न होसका॥५०॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेनवमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांअष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्रीशुकदेवजीबोले कि—ययाति राजाने इसप्रकारसे स्त्री प्रियहो विषय भोग करते २ अपने सर्वनाशको समझा, अतएव वैराग्ययुक्तहो अपनी प्यारी के निकटआय इस इतिहासको वर्णन करने लगा ॥ १ ॥ कि—हे भृगुनन्दिनि ! जिनग्रामवासियों के आचरणको देखकर वनवासी धीर जन शोककरते हैं उनका चरित्र इसप्रकारसे वर्णित है सोसुनो ॥ २ ॥ एक बकरे ने वनमें अ-

ददर्शकूपेपतितांस्वकर्मवशगामजाम् ॥ ३ ॥ तस्याउद्धरणोपायंबस्तःकामीविचिन्तयन् । व्यधत्ततीर्थमुद्धृत्यविषाणाग्रेणरोधसी ॥ ४॥ सोत्तीर्यकूपात्सुश्रोणीतमेवचकमेकिल । तयावृतंसमुद्वीक्ष्यबह्व्योऽजाःकांतकामिनीः ५॥ पीवानंश्मश्रुलंप्रेष्ठंमीढ्वांसंयाभकोविदम् ॥ सएकोऽजवृषस्तासांबह्वीनांरतिवर्द्धनः । रेमेकामग्रहग्रस्तआत्मानंनावबुध्यत ॥ ६ ॥ तमेवप्रेष्ठतमयारममाणमजाऽन्यया ।विलोक्यकूपसंविग्नानामृष्यद्बस्तकर्मतत् ॥ ७ ॥ तंदुर्हृदंसुहृद्रूपंकामिनंक्षणसौहृदम् ।इन्द्रियाराममुत्सृज्यस्वामिनंदुःखिताययौ ॥ ८ ॥ सोऽपिचानुगतःस्त्रैणःकृपणस्तांप्रसादितुम् । कुर्वन्निडविडाकारंनाशक्नोत्पथिसंधितुम् ॥ ९ ॥ तस्यास्तत्रद्विजःकश्चिदजास्वाम्यच्छिनद्रुषा । लम्बन्तंवृषणंभूयःसंदधेऽर्थाययोगवित् ॥१०॥ संबद्धवृषणः सोऽपि ह्यजयाकूपलब्धया । कालंबहुतिथंभद्रेकामैर्नाद्यापितुष्यति ॥११॥ तथाऽहं कृपणःसुभ्रुभवत्याःप्रेमयन्त्रितः ।आत्मानंनाभिजानामिमोहितस्तवमायया ॥ १२ ॥ यत्पृथिव्यांव्रीहियवं हिरण्यंपशवःस्त्रियः । नदुह्यंतिमनःप्रीतिंपुंसःकामहतस्यते ॥ १३ ॥ नजातुकामःकामानामुपभोगेनशाम्यति । हविषाकृष्णवर्त्मेवभूयएवाभिवर्धते ॥ १४ ॥ यदानकुरुतेभावंसर्वभूतेष्वमङ्गलम् । समदृष्टेस्तदापुंसःसर्वाःसुखमया दिशः ॥ १५ ॥ यादुस्त्यजादुर्मतिभिर्जीर्यतोयानजीर्यते । तांतृष्णांदुःखनिवहां शर्मकामोद्रुतंत्यजेत् ॥ १६ ॥ मात्रास्वस्रादुहित्रावानाविविक्तासनोभवेत् । बलवा

पने इच्छितपदार्थ को ढूंढते २ निजदोषसे कुएमें गिरीहुई एकबकरी को देखा ॥३ ॥वह बकरा अत्यन्त कामी था । उस बकरी के निकालने का उपायशोच उसकुएकी मुन्डेरकी मिट्टी अपने सींगों से खोद उसने निकलनेकामार्ग बनादिया ॥४ ॥ उस सुन्दर कटिवाली बकरीने कुएंसे निकलते ही बकरेपर इच्छा प्रगटकी । जब उस बकरीने बकरे से बरणकिया तब दूसरी औरभी बहुतसी बकरियों ने उस मोटे बहुत डाढ़ी मूछवाले, वीर्यवान मैथुनके जाननेवाले उस छागकी इच्छाकी ॥ ॥ ५ ॥ वह अकेला बकरा पुरुष अनेक बकरियों में फँस कामातुरहो विहार करनेलगा । वह विहार करताहुआ अपने स्वरूपको भी भूलगया ॥ ६ ॥ परन्तु जो बकरी कुएमें गिरगईथी वहउस बकरेको दूसरी प्यारी बकरियोंके साथ रमणकरता देख उसका सहन न करसकी ॥७॥ वहउस मित्रवेशी, यथार्थ में शत्रु, क्षणमात्र के प्रेम रखनेवाले, इन्द्रिय सुखसेवी बकरेको छोड़कर दुःखित चित्तस रक्षकके निकटगई ॥ ८ ॥ स्त्रीलम्पट बकराभी " बो २ " शब्द करताहुआ उस बकरी के पीछे २ चला, किन्तु मार्ग में उसको पकड़ न सका ॥ ९ ॥ उस बकरी के रक्षक ब्राह्मण ने क्रोधितहो उस बकरे के लटकतेहुए दोनोंअण्डकोषकाटदिये; किन्तु उपायके जाननेवाले ब्राह्मणने कार्य पूर्णहोने के निमित्त उन अण्डोंको फिर जोडदिया ॥ १० ॥ हेभद्रे ! उस बकरे ने इस प्रकार से रतिशक्तियुक्तहो कुएसे प्राप्तहुई उस बकरी के साथ बहुत दिनोंतक विषय भोगकिया किंतु कामसेवा से उसको सन्तोष नहीं उत्पन्न हुआ ॥११॥ हेशुभ्रू ! उस बकरे के समान मैं भी तुम्हारे प्रेममें बँधकर अत्यन्तदीन होरहाहूं । तुम्हारी माया से मोहितहोकर मैं अपनेकाभी नहीं जानसकता ॥ १२ ॥ पृथ्वीपर जितना अन्न, यव, सुवर्ण, पशु और स्त्री हैं वे सब कामातुर पुरुष के चित्तको तृप्तनहीं करसकते ॥ १३ ॥ विषयभोगसे काम कदापि नहींशांत होता, बरन घृतद्वारा अग्निकी समान वे विषयभोग बढ़तेहीरहते हैं ॥ १४ ॥ जब मनुष्य रागद्वेषादि की विषमता को छोड़कर सर्वत्र समदर्शी होता है तब उसको सब दिशायेंही सुखकारी होजाती हैं ॥ १५ ॥ जिसका परित्याग करना दुष्ट मनुष्योंको असाध्य है और स्वयंजीर्ण होकर भी जीर्ण नहीं होती उस दुःखदायी तृष्णाको सुख चाहनेवाला मनुष्य शीघ्रहीछोड़देवे ॥ १६ ॥ बहिन अथवा कन्याके साथ

निन्द्रियग्रामो विद्वांसमपिकर्षति ॥ १७ ॥ पूर्णवर्षसहस्रंमेविषयान्सेवतोऽसकृत् । तथाऽपिचानुसवनंतृष्णातेषूपजायते॥१८॥ तस्मादेतामहंत्यक्त्वाब्रह्मण्यध्यायमानसम् । निर्द्वन्द्वोनिरहङ्कारश्चरिष्यामिमृगैःसह ॥ १९ ॥ दृष्टंश्रुतमसद्बुद्ध्वानानुध्यायेन्नसंदिशेत् । संसृतिंचात्मनाशंचतत्रविद्वान्सआत्मदृक् ॥ २० ॥ इत्युक्त्वानाहुषो जायांतदीयपूरवेवयः । दत्त्वास्वजरसंतस्माददादेविगतस्पृहः ॥ २१ ॥ दिशिदक्षिणपूर्वस्यांद्रुह्युंदक्षिणतोयदुम् । प्रतीच्यांतुर्वसुंचक्रउदीच्यामनुमीश्वरम् ॥ २२ ॥ भूमण्डलस्यसर्वस्यपूरुमर्हत्तमंविशाम् । अभिषिच्याग्रजांस्तस्यवशेस्थाप्यवनंययौ ॥ २३ ॥ आसेवितंवर्षपूगान्षड्वर्गंविषयेषुसः । क्षणेनमुमुचेनीडंजातपक्षइव द्विजः ॥ २४ ॥सतत्रनिर्मुक्तसमस्तसङ्गआत्मानुभूत्या विधुतत्रिलिङ्गः। परेऽमलेब्रह्मणि वासुदेवेलेभेगतिंभागवतींप्रतीतः ॥ २५ ॥ श्रुत्वागाथांदेवयानीमेनेप्रस्तोभमात्मनः स्त्रीपुंसोःस्नेहवैक्लव्यात्परिहासमिवेरितम् ॥ २६ ॥ सासन्निवासंसुहृदांप्रपायामिव गच्छताम् । विज्ञायेश्वरतन्त्राणांमायाविरचितंप्रभोः॥ २७॥ सर्वत्रसङ्गमुत्सृज्यस्वप्नौ पम्येनभार्गवी।कृष्णेमनःसमावेश्यव्यधुनोल्लिङ्गमात्मन ॥ २८ ॥नमस्तुभ्यंभगवतेवा सुदेवायवेधसे। सर्वभूताधिवासायशान्तायबृहतेनमः ॥ २९ ॥

इतिश्रीमद्भा०म०नवम०एकोनविंशोऽध्याय ॥ १९ ॥

भी एकान्त में निवासकरना उचितनहीं; क्योंकि इन्द्रियें अत्यन्त बलवान होती हैं, वे विद्वान पुरुष को भी खींच लती हैं ॥ १७ ॥ धीरे २ विषय सेवा करने २ मेरे सहस्रवर्ष पूरे हुए तौभी रातदिन उन सम्पूर्ण वस्तुओंपर तृष्णाही उत्पन्नहोती रहती है ॥ १८ ॥ अतएव इस समय मैं तृष्णाको छोड़कर परब्रह्म में मन लगाऊंगा और सुख दुःख आदिसे निर्द्वंद और निरंहकारहो मृगों के साथ भ्रमण करूगा ॥ १९ ॥ हे प्रिये ! जो कुछ देखने व सुनने में आता है उस सबको असत्यजानकर उसका नतो ध्यानकरे न सेवनकरे इनके ध्यान और सेवनसे स्वरूपका अज्ञान और जन्ममरणरूप संसृति होती है इसप्रकार जो जानता है उसे आत्मज्ञान होता है ॥२०॥ हेराजन्! ययातिराजाने उससे इस प्रकार कह छोटेपुत्र पुरुको उसकी युवावस्था लौटाय इच्छारहितहो उसके निकट से अपनी जराग्रहणकी ॥ २१ ॥ उसने अग्निकोण द्रुह्युको दक्षिणदिशा यदुको, पश्चिम दिशा तुर्वसु को और उत्तरदिशा अनुको दी ॥ २२ ॥ और समस्त भूमण्डलका राज्यश्रेष्ठक्षत्री प्यारे कनिष्ठपुत्र पुरुको दिया और सब भाइयों को पुरु के आधीन में कर आप बनको गया ॥२३॥ हेराजन्! ययाति ने बहुत दिनोंतक शब्दादि विषय समूह से छहो इन्द्रियों द्वारा सुख सम्भोग तो कियाथा परन्तु उसने उनकी इसप्रकार से अपेक्षा न की कि जैसे पंख उत्पन्न होने से पक्षी का घासला छोड़ देता है उसनेभी इसीप्रकार विषय सुखोंकी अपेक्षा न कर इन्द्रियसुखोंको छोड़दिया ॥ ॥ २४ ॥ वह निःसंगहोगया; उसके आत्मानुभवद्वारा त्रिगुणात्मक उपाधि दूरहोगई इसप्रकार से उस राजा ने निर्मल परब्रह्म वासुदेवकी भागवतीगतिको प्राप्तकिया ॥ २५ ॥ स्त्रीपुरुष सम्बन्धी स्नेहके कारण इसगाथाको सुन देवयानी ने हँसी समझी परन्तु पीछे अभिप्रायको जानकर आत्मज्ञानको प्राप्तहुई ॥ २६ ॥ भृगुपुत्री देवयानी ने पौसरेपर इकट्ठेहुए मनुष्यों की समान ईश्वराधीन सुहृदों के सङ्गको प्रभुकीमायासे रचाहुआजाना और स्वप्नकी समान सबको जान उनका सङ्ग छोड़ भगवान में मनलगाय अपनी उपाधि छोड़दी ॥ २७—२८ ॥ हे भगवन्! आप विधाता, वासुदेव, सर्वप्राणियों के निवासभूमि, परमशांत और अतिबृहतहो आपका नमस्कार है ॥ २९ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेनवमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायाएकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीशुकउवाच । पूरोर्वंशंप्रवक्ष्यामि यत्रजातोऽसिभारत । यत्रराजर्षयोवंश्या ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे॥१॥जन्मेजयोह्यभूत्पूरोः प्रचिन्वांस्तत्सुतस्ततः । प्रवीरोऽथनमस्युर्वै तस्माच्चारुपदोऽभवत् ॥ २ ॥ तस्यसुद्युरभूत् पुत्रस्तस्माद्बहुगवस्ततः । संयातिस्तस्याहंयाति रौद्राश्वस्तत्सुतःस्मृतः ॥ ३ ॥ ऋतेयुस्तस्यकक्षेयुः स्थण्डिलेयुः कृतेयुकः । जलेयुः संततेयुश्च धर्मसत्यव्रतेयवः ॥ ४ ॥ दशैतेऽप्सरसः पुत्रावनेयुश्चावमःस्मृतः । घृताच्यामिन्द्रियाणीव मुख्यस्यजगदात्मनः ॥ ५॥ ऋतेयोरन्तिभारोऽभूत् त्रयस्तस्यात्मजानृप । सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः ।६। तस्य मेधातिथिस्तस्मात्प्रस्कण्वाद्या द्विजातयः । पुत्रोऽभूत्सुमतेरेभ्यो दुष्यन्तस्तत्सुतोमतः ॥७॥ दुष्यन्तोमृगयांयातः कण्वाश्रमपदंगतः । तत्रासीनांस्वप्रभया मंडयन्तींरमामिव ।' ८ ॥ विलोक्यसद्योमुमुहे देवमायामिवस्त्रियम् । बभाषेतांवरारोहांभटैःकतिपयैर्वृतः ॥९॥ तद्दर्शनप्रमुदितःसन्निवृत्तपरिश्रमः।पप्रच्छकामसंतप्तः प्रहसन्श्लक्ष्णयागिरा ॥ १० ॥ कात्वंकमलपत्राक्षिकस्यासिहृदयंगमे । किंस्विच्चिकीर्षितंत्वत्रभवत्यानिर्जनेवने ॥ ११ ॥ व्यक्तंराजन्यतनयांवेद्म्यहंत्वांसुमध्यमे । नहिचेतःपौरवाणामधर्मेरमतेक्वचित् ॥ १२ ॥ शकुन्तलोवाच ॥ विश्वामित्रात्मजैवाहंत्यक्तामेनकयावने । वेदैतद्भगवान्कण्वोवीरकिंकरवामते ॥ १३ ॥ आस्यतांह्यरविंदाक्षगृह्यतामर्हणंचनः । भुज्यतांसन्तिनीवाराउष्यतांयदिरोचते ॥ १४ ॥ दु॰

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेभारत ! अब पुरुके वंशका वर्णन करताहूं सो सुनो उसी वंशमें तुमने जन्म ग्रहण कियाहै । अनेकराजर्षि और ब्रह्मर्षि पुरुवंशमें उत्पन्नहुए॥१॥पुरुसे जनमेजय का जन्महुआ । उसका पुत्र प्रचिन्वान् उससे प्रवीरने जन्मग्रहण किया । प्रवीरका पुत्र नमस्यु उससे चारुपद हुआ ॥ २ ॥ चारुपदसे सुद्यु सुद्युसे बहुगव बहुगवसे संयाति संयातिसे अहंयाति, अहंयातिसे रौद्राश्व उत्पन्नहुआ ॥ ३ ॥ रौद्राश्वने घृताची अप्सराके गर्भसे दशपुत्र ऋतेयु, कक्षेयु, स्थंडिलेयु, कृतेयु, जलेयु, सन्ततेयु, धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु और वनेयु उत्पन्नकिये वनेयु, सबसे छोटाथा । हेराजन् ! इन्द्रियें जगदात्मा प्राणके वशीभूत रहतीहैं उसीप्रकार वे दशपुत्रभी रौद्राश्व के वशीभूतथे ॥ ४—५ ॥ ऋतेयु का पुत्र रंतिभार हुआ, । रतिभार के सुमति, ध्रुव और अप्रतिरथ यह तीनपुत्र उत्पन्नहुए अप्रतिरथ के कण्व हुआ ॥ ६ ॥ कण्व का पुत्र मेधातिथि हुआ । इस मेधातिथि से प्रस्कण्व आदि द्विजगण उत्पन्नहुए । हे राजन् ! रंतिभारका बडा पुत्र सुमति, सुमतिका पुत्र रेभि, रेभिका पुत्र दुष्यन्तहुआ ॥ ७ ॥ राजा दुष्यन्त एकदिन मृगया करते २ वनमें प्रवेशकर महर्षि कण्वके आश्रममें उपस्थित हुये, वहां एक स्त्री बैठीहुई साक्षात् लक्ष्मीके समान अपने शरीरकी प्रभासे आश्रमको प्रकाशित कररहीथी ॥८॥ देवमायाकी समान उस स्त्रीको देखतेही राजा मोहितहो उसकी ओर देख अत्यन्त आनन्दित और श्रम शून्य होगया फिर कुछएक सेनाके साथ उस सुन्दरीके निकट आय उससे वार्त्ता करनेलगा ॥ ९ ॥ उसने काम पीड़ितहो मधुर वचनोंसे हसते २ कहा कि— ॥ १० ॥ हेकमलनयने ! तुम कौनहो ? हेहृदयहारिणि ! तुम किसकी पुत्रीहो ? तुम निर्जन वनमें क्या करतीहो, ? ॥ ११ ॥ हेसुमध्यमे ! पुरु वंशियोंका चित अधर्ममें कभीभी रत नहींहोता मेरा हृदय तुममें आसक्तहै, इसकारण मैं भलीप्रकार जानताहूं कि तुम क्षत्रिय तनयाहो ॥ १२ ॥ शकुन्तलाने कहा कि-हेराजन्! मैं विश्वामित्रकी कन्या हूं मेनिका मेरी माता है मेनिका वनमे मुझे डालगईथी भगवान कण्व इस विषय को जानते हैं हे वीर ! मैं क्या करूं ॥१३॥ आप आज्ञा करो हे कमललोचन ! आप बैठो मेरी पूजाको ग्रहण करो यहांपर सुंदर चावल हैं इच्छा हो तो भोजनकरो यदि अभिलाषा हो तो यहांरहो

ष्यन्त उवाच ॥ उपपन्नमिदं सुभ्रुजातायाःकुशिकान्वये । स्वयंहिवृणतेराज्ञांकन्य
काःसदृशंवरम् ॥ १५ ॥ ओमित्युक्तेयथाधर्ममुपयेमेशकुन्तलाम् । गांधर्वविधिना
राजादेशकालविधानवित् ॥ १६ ॥ अमोघवीर्योराजर्षिर्महिष्यांवीर्यमादधे । श्वो
भूतेस्वपुरंयातःकालेनासूतसासुतम् ॥ १७ ॥ कण्वःकुमारस्यवनेचक्रेसमुचिताः
क्रियाः । बद्ध्वामृगेन्द्रांस्तरसाक्रीडतिस्मसबालकः ॥ १८ ॥ तंदुरत्ययविक्रांतमा
दायप्रमदोत्तमा । हरेरंशांशसंभूतंभर्तुरंतिकमागमत् ॥ १९ ॥ यदानजगृहेराजा
भार्यापुत्रावनिन्दितौ । शृण्वतांसर्वभूतानांखेवागाहाशरीरिणी ॥२०॥ मातामस्त्रा
पितुःपुत्रोयेनजातःसएवसः । भरस्वपुत्रंदुष्यन्तमाऽवमंस्थाःशकुन्तलाम् ॥ २१ ॥
रेतोधाःपुत्रोनयतिनरदेवयमक्षयात् । त्वंचास्यधातागर्भस्यसत्यमाहशकुन्तला ॥
२२ ॥ पितर्युपरतेसोऽपिचक्रवर्तीमहायशाः । महिमागीयतेतस्यहरेरंशभुवोभुवि ॥
२३ ॥ चक्रंदक्षिणहस्तेऽस्यपद्मकोशोऽस्यपादयोः । ईजेमहाभिषेकेणसोऽभिषिक्तो
ऽधिराड्विभुः ॥ २४ ॥ पञ्चपञ्चाशतामेध्यैर्गङ्गायामनुवाजिभिः । मामतेयंपुरोधाय
यमुनायामनुप्रभुः ॥२५॥ अष्टसप्ततिमेध्याश्वान्बबन्धप्रददद्वसु । भरतस्यहिदौष्यं
तेरग्निःसाचीगुणेचितः ॥ सहस्रंबद्वशोयस्मिन्ब्राह्मणागाविभेजिरे ॥ २६ ॥ त्रय-
स्त्रिंशच्छतंह्यश्वान्बद्ध्वाविस्मापयन्नृपान् । दौष्यन्तिरत्यगान्मायांदेवानांगुरुमाय
यौ ॥ २७ ॥ मृगाञ्शुक्लदतःकृष्णान्हिरण्येनपरीवृतान् । अदात्कर्मणिमष्णारे नियु

॥१४॥ दुष्यत नें कहा कि हे सुभ्रु! तुमने कुशिक वंश में जन्म ग्रहण किया है सो तुम्हारा यह आ
चरण बहुत ही उचित है क्यों कि राजकन्यायें अपने सदृश वरको आपही वरा करती हैं ॥ ५ ॥
शकुनला ने यह कहकर स्वीकार किया देशकाल के विधान के जाननेवाले राजा नें गंधर्व विधि के
अनुसार उसका पाणिग्रहण किया ॥ १६ ॥ अमोघवीर्य राजर्षि दुष्यत नें उस स्त्री में वीर्य
धारण किया तदनतर दूसरे दिन वह अपने नगर को चलागया यथासमय में शकुनला नेभी एक
पुत्र रत्न उत्पन्न किया ॥ १७ ॥ महर्षि कण्वने वनमेंही कुमारका जातकर्मादि संस्कार किया।
हे राजन् ! वह बालक बलपूर्वक सिंहों को पकडकर उनसे खेलाकरता था ॥ १८ ॥ शकुं-
तला आनंदित हो भगवान के अंशके अंश से उत्पन्न हुए अत्यत पराक्रमी पुत्रको लेकर स्वामी
के निकट गई ॥ १९ ॥ किंतु जब राजा ने निर्दोष पुत्र और स्त्री को ग्रहण न किया तब
यह आकाश वाणीहुई कि जिसको सबने सुना ॥ २० ॥ हे दुष्यत ! माता तो एक चमड़े के
पात्रकी समान है परन्तु पुत्र पिताकाही होता है; क्योंकि आत्माही पुत्ररूप से उत्पन्न होता है; अ-
तएव आप पुत्रको ग्रहणकर पालनकरो शकुंतलाका तिरस्कार मतकरो ॥ २० ॥ हे नरदेव ! अपने
वीर्य से उत्पन्न हुआ पुत्रपिताको यमभवनसे तारदेताहै । तुमने यह गर्भाधान कियाथा, शकुतला
यह सत्य कहती है ॥ २२ ॥ फिर राजा दुष्यत नें उस स्त्री पुत्रको ग्रहण किया पिता के देह त्याग
करनेपर महायशस्वी पुत्र भरत चक्रवर्ती राजा हुआ भरत भगवान हरिके अंश से उत्पन्न हुए उन
की महिमा समस्त पृथ्वीपर गाईजाती है ॥ २३ ॥ उसके दाहिनें हाथ में चक्र और दोनों पैरों में
पद्म कोश के चिन्ह विराजमान थे उस राजा भरतनें महा अभिषेक से अभिषिक्तहो ॥२४॥ गङ्गा-
जी के किनारे ५५ अश्वमेध यज्ञ किए उस राजानें ममताकेपुत्र भरद्वाजको पुरोहित कर ब्राह्मणोंको
इच्छित दान दे यमुना के किनारे ७८ अश्वमेधीय घोडे बांधे थे हे राजन् ! भरतने इस प्रशस्तगुण
वाले देश में अग्निचयन किया कि जिसमें सहस्रों ब्राह्मणों को एक २ बद्व (१३०८४) गौयें दान
दीथीं ॥ २५ । २६ ॥ हे महाराज ! भरत ने इस प्रकार १३३ घोडे बांधकर राजाओं को आश्च-
र्यान्वितकर देवताओं केभी प्रभावको हरादिया ।२७। उसनें मष्णारनामक किसी यज्ञ कर्म में श्वेत

तानिचतुर्दश ॥२८॥ भरतस्यमहत्कर्मनपूर्वेनापरेनृपाः । नैवापुर्नैवप्राप्स्यन्तिबाहुभ्यां त्रिदिवंयथा ॥ २९ ॥ किरातहूणान्यवनानन्ध्रान्कङ्कान्खशाञ्छकान् । अब्रह्मण्यान्नृपांश्चाहन्म्लेच्छान्दिग्विजयेऽखिलान् ॥ ३० ॥ जित्वापुराऽसुरादेवान्येरसौकांसिभेजिरे । देवस्त्रियोरसांनीताःप्राणिभिःपुनराहरत् ॥ ३१ ॥ सर्वकामान्दुदुहतुःप्रजानांतस्यरोदसी । समास्त्रिणवसाहस्रीर्दिक्षुचक्रमवर्तयत् ॥ ३२ ॥ ससम्राड्लोकपालाख्यमैश्वर्यमधिराट्श्रियम् । चक्रंचास्खलितंप्राणान्मृषेत्युपरराम ह ॥ ३३ ॥ तस्यासन्नृपवैदर्भ्यःपत्न्यस्तिस्रःसुसंमताः । जघ्नुस्त्यागभयात्पुत्रान्नानुरूपाइतीरिते ॥ ३४ ॥ तस्यैवंवितथेवंशेतदर्थंयजतःसुतम् । मरुत्स्तोमेनमरुतोभरद्वाजमुपाददुः ॥ ३५ ॥ अन्तर्वत्न्यांभ्रातृपत्न्यांमैथुनायबृहस्पतिः । प्रवृत्तोवारितोगर्भंशप्त्वावीर्यमवासृजत् ॥ ३६ ॥ तंत्यक्तुकामांममतांभर्तृत्यागविशङ्किताम् । नामनिर्वचनंतस्यश्लोकमेनंसुराजगुः ॥३७॥ मूढेभरद्वाजमिमंभरद्वाजंबृहस्पते । यातौयदुक्त्वापितरौभरद्वाजस्ततस्त्वयम् ॥३८॥ चोद्यमानासुरैरेवंमत्वावितथमात्मजम् । व्यसृजन्मरुतोऽबिभ्रन्दत्तोऽयंवितथेऽन्वये ॥ ३९ ॥

इतिश्रीमद्भा०म०नवम०विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

देनेवाले चौदहलक्ष श्रेष्ठ हाथियों को सुवर्ण के अलङ्कारोंसे अलकृत कर दान कियाथा ॥२८॥ महात्मा भरत ने जोर कर्म कियेथे जैसे बाहुसे स्वर्ग नहीं प्राप्तहोसकता वैसेही पहिले और पिछले राजाओं को भी वे कर्म दुष्प्राप्य हैं ॥ २९ ॥ उसनें दिग्विजय काल में किरात, हूण, यवन अंध, कङ्क, खश शक और दूसर अधर्मी राजा और समस्त म्लेच्छ जाति को नष्टकर दियाथा ॥३० ॥ पहिले जिन दैत्यों ने देवताओं को जीतलियाथा और हारेहुए देवताओं की स्त्रियोंको लेकर रसातलम जारहे थे, महात्मा भरत उनसब दैत्यों को मार फिर उन देवांगनाओं को लेआये ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! महात्मा भरत के राज्य काल में स्वर्ग और पृथ्वी सब प्रजाओं की इच्छा पूर्ण करतेथे उस राजाने सत्ताईस सहस्र वर्षतक राज्यासन पर बैठ अखंड पृथ्वी का राज्य कियाथा ॥ ३२ ॥ राज्य भोग करने के कुछ काल के उपरांत चक्रवर्ती भरत लोकपालोंसे अधिक ऐश्वर्य अधिराज सम्पत्ति, विकट सेना और आत्मप्राण सबही को मिथ्या विचार विषय तृष्णा से निवृत्त हुआ ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! उस के विदर्भ देशाय अतिप्यारी तीन पत्नियें थीं उनमेंसे एक स्त्री के पुत्र होनेपर राजा उसको देखकर कहताथा कि "यह पुत्र मेरी समान नहीं है" राजा भरत के इस प्रकार से कहनेपर व्यभिचारकी शङ्का से हमें छोड़ न दें इस भयसे वह स्त्रियां अपने २ पुत्रों को मार डालतीथीं ॥ ३४ ॥ इस प्रकार वंश के नाश होनेपर महाराज भरत ने अपनी समान पुत्र पाने की इच्छा से मरुत्स्तोम नाम क यज्ञ किया उस से मरुद् देवतागणने प्रसन्न होकर उनके हाथमें भरद्वाजनामक पुत्र समर्पण किया ॥३५॥ गर्भवती भाई की स्त्री से बृहस्पति जब मैथुन करनेंको प्रवृत्तहुए तब गर्भ में रहेहुए बालकनें उनको निवारण किया बृहस्पतिनें बालक को शाप दे वीर्यत्याग किया ॥ ३६ ॥ स्वामी व्यभिचारिणी कहकर छोड़ देगा इस भयसे भीतहो ममतानें जब उस पुत्रके त्यागनेकी इच्छा की तब देवताओंनें ममता के वि, वादको श्लोकके रूपमें रचकर एक श्लोक गाया कि ॥ ३७ ॥ मूढे ! इस द्वाजक (एकके क्षेत्र में दूसरे के वीर्य से उत्पन्न हुआ पुत्र) का भरण पोषणकर' 'तूही इसका पालन कर' इस प्रकार से आपसमें वार्त्ता कर (बृहस्पति और ममता) चलेगए, उस पुत्र का नाम भरद्वाज हुआ ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! देवताओं नेभी ममताको समझाया परन्तु ममतानें व्यभिचार से उत्पन्न हुए पुत्रको निरर्थक जान उस पुत्रको त्याग दिया तब मरुद्गणों में उसका प्रतिपालन किया अब भरत का वंश नष्ट होनेलगा उसी समय उन्होंने राजाको वह भरद्वाज नामक पुत्र दिया ॥ ३९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कंधे सरला भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

श्रीशुक उवाच ॥ वितथस्यसुतोमन्युर्बृहत्क्षत्रोजयस्ततः । महावीर्योनरोगर्गः संकृतिस्तुनरात्मजः ॥१॥ गुरुश्चरन्तिदेवश्चसंकृतेःपाण्डुनन्दन । रन्तिदेवस्यहि यशइहामुत्रचगीयते ॥ २ ॥ वियद्वित्तस्यददतोलब्धंलब्धंबुभुक्षतः । निष्किञ्चन स्यधीरस्यसकुटुम्बस्यसीदतः ॥ ३ ॥ व्यतीयुरष्टचत्वारिंशदहान्यपिबतः किल । घृतपायससंयावंतोयंप्रातरुपस्थितम् ॥ ४ ॥ कृच्छ्रप्राप्तकुटुम्बस्यक्षुत्तृड्भ्यांजात वेपथोः । अतिथिर्ब्राह्मणःकालेभोक्तुकामस्यचागमत् ॥५॥तस्मैसंव्यभजत्सोऽन्न मादृत्यश्रद्धयान्वितः । हरिंसर्वत्रसंपश्यन्सभुक्त्वाप्रययौद्विजः ॥ ६ ॥ अथान्योभो क्ष्यमाणस्यविभक्तस्यमहीपते । विभक्तंव्यभजत्तस्मैवृषलायहरिंस्मरन् ॥ ७ ॥ या तेशूद्रे तमन्योऽगादतिथिः श्वभिरावृतः । राजन्मे दीयतामन्नं सगणाय बुभुक्षिते ॥ ८ ॥ सआदृत्यावशिष्टंयद्बहुमानपुरस्कृतम् । तच्चदत्त्वानमश्चक्रेश्वभ्यः श्वपतये विभुः ॥ ९ ॥ पानीयमात्रमुच्छेषंतच्चैकपरितर्पणम् । पास्यतः पुल्कसोऽभ्यागाद् पोदेह्यशुभस्यमे ॥ १० ॥ तस्यतांकरुणांवाचंनिशम्यविपुलश्रमाम् । कृपयाभृशसं तप्तइदमाहामृतवचः ॥ ११ ॥ नकामयेऽहंगतिमीश्वरात्परामष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा । आर्तिंप्रपद्येऽखिलदेहभाजामन्तःस्थितोयेनभवन्त्यदुःखाः ॥ १२ ॥ क्षुत्तृट्श्र मोगात्रपरिभ्रमश्चदैन्यंक्लमः शोकविषादमोहाः । सर्वेनिवृत्ताः कृपणस्यजन्तोर्जिजी

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेपांडुनन्दन ! वितथ (भरद्वाज) का पुत्र मन्यु हुआ । मन्युसे बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर, और गर्ग यह पांच पुत्र उत्पन्नहुए । नरका पुत्र संकृति हुआ ॥ १ ॥ संकृतिका पुत्र गुरु और रंतिदेव हुआ । हेराजन् ! रतिदेवकी महिमा इस लोक और परलोक में सदैव गाई जाती है ॥ २ ॥ वह राजा दैवेच्छासे प्राप्तहुए धनसे अपना निर्वाह करताथा और जो कुछ पास होता उसे तत्कालही दान करदेताथा । एकसमय वह राजा समस्त धन दान कर अत्यंत निर्धनहो परिवार समेत क्षुधासे अत्यन्त कातरहो गया ॥ ३ ॥ बिना जलपिये उसे ४८ दिनबीतगए । परिवार भूख और प्याससे कांपने व अति कष्ट पानेलगा । उनचासवें दिन प्रातःकालही घृत, खीर, लपसी और प्रातःकाल में जल में उपस्थित हुआ ॥ ४ ॥ राजाके भोजन करने के समयही एकजन ब्राह्मण अतिथि आ उपस्थितहुआ ॥ ५ ॥ राजा ने श्रद्धायुक्त सर्वत्र हरिको व्याप्त जान अपने भोजनमेंसे उसको भोजन कराया, वह ब्राह्मण भोजन करके चलागया ॥ ६ ॥ तदनन्तर उस बचेहुए अन्नको परिवार वालोंको बांट स्वयं भोजन करने जाताथा कि उसीसमय एक जन शूद्र वहां आ उपस्थितहुआ । रंति देवने भगवानका स्मरणकर उस बचेहुए शेष भोजनको उसे देदिया॥७॥भोजनके उपरांत शूद्र अतिथिके जानेपर एक मनुष्य कुत्तोंको लियेहुए वहांपर आयकर कहनेलगा कि—हेराजन् ! मैं और मेरे सब कुत्ते भूखेहैं मुझको भोजन दो ॥ ८ ॥ राजाने उस मनुष्य का बहुत सन्मान किया और बचेहुए भोजनको कुत्तों को और उस मनुष्य कोदे उनको नमस्कार किया ॥९॥ एक जनकी तृष्णा दूरहोसके केवल इतनाही जल शेष रहगयाथा, राजा उसीके पीनेका उद्योग करताथा कि इतनहीमें वहांपर एक चांडाल आय करुणायुक्त वचनोंसे कहनेलगा, कि—महाराज ! मैं अत्यन्त प्यासा होरहाहूं मुझ अपवित्र मनुष्यको कुछ थोड़ासा जलदो उस मनुष्यके इस सकरुण वचन और बहुत श्रमके वर्णनको सुनकर रंतिदेवको अत्यन्त दया उत्पन्न होआई । उन्होंने अत्यन्त दुःखितहो अमृतमय वाक्यों से कहा कि—॥१०॥११॥मैं परमेश्वरके निकटसे अणिमादि अष्टसिद्धि युक्त मुक्ति नहीं चाहता, मेरी यही प्रार्थना है कि—सब प्राणियों के भीतर रहकर सबका दुःख मैं भोगा करूं जिससे सब सुखी होजाय, सब प्राणियों का दुःख दूरहोवे इससे मैं अपना दुःख दूरहोना समझताहूं १२॥ यह दीन

विषोजीवजलार्पणान्मे ॥ १३ ॥ एवमभाष्यपानीयंम्रियमाणः पिपासया । पुल्कसा यादवाद्धीरोनिसर्गकरुणोनृपः ॥ १४ ॥ तस्यत्रिभुवनाधीशाः फलदाः फलमिच्छताम् । आत्मानंदर्शयांचक्रुर्मायाविष्णुविनिर्मिताः ॥ १५ ॥ सवैतेभ्योनमस्कृत्यनिःसङ्गोविगतस्पृहः । वासुदेवेभगवतिभक्त्याचक्रेमनः परम् ॥ १६ ॥ ईश्वरालम्बनंचित्तंकुर्वतोऽनन्यराधसः । मायागुणमयीराजन्स्वप्नवत्प्रत्यलीयत ॥ १७ ॥ तत्प्रसङ्गानुभावेनरन्तिदेवानुवर्तिनः । अभवन् योगिनः सर्वेनारायणपरायणाः ॥ १८ ॥ गर्गाच्छिनिस्ततोगार्ग्यःक्षत्राद्ब्रह्मह्यवर्तत । दुरितक्षयोमहावीर्यात्तस्यत्रय्यारुणिः कविः ॥ १९ ॥ पुष्करारुणिरित्यत्रयेब्राह्मणगतिंगताः । बृहत्क्षत्रस्यपुत्रोऽभूद्धस्तीयद्धस्तिनापुरम् ॥ २० ॥ अजमीढोद्विमीढश्चपुरुमीढश्चहस्तिनः । अजमीढस्यवंश्याःस्युः प्रियमेधादयोद्विजाः ॥२१॥ अजमीढाद्बृहदिषुस्तस्यपुत्रोबृहद्धनुः । बृहत्कायस्ततस्तस्यपुत्रआसीज्जयद्रथः ॥ २२ ॥ तत्सुतोविशदस्तस्यसेनजित्समजायत । रुचिराश्वोदृढहनुः काश्योवत्सश्चतत्सुताः ॥ २३ ॥ रुचिराश्वसुतः पारः पृथुसेनस्तदात्मजः । पारस्यतनयोनीपस्तस्यपुत्रशतंत्वभूत् ॥ २४ ॥ सकृत्व्यांशुककन्यायांब्रह्मदत्तमजीजनत् । सयोगीगविभार्यायांविष्वक्सेनमधात्सुतम् ॥ २५ ॥ जैगीषव्योपदेशेनयोगतन्त्रंचकारह । उदक्स्वनस्ततस्तस्माद्भल्लादोबार्हदीषवाः॥२६॥

जीवन धारण करनेके निमित्त इच्छा करताहै; इसके जीवन रक्षाके निमित्त जलार्पण करनसेही मेरी भूख; प्यास, थकावट शरीर का घूमना, कातरता दुःख, शोक, विषाद और मोह यह सबही निवृत्त होजायँगे ॥ १३ ॥इसप्रकार कह स्वभावसेही दयालु महाराज रंतिदेवने स्वयं प्यासको रोक उस चांडालको पानी पीनेको दिया ॥ १४ ॥ फल चाहनेवालोंको फल देनेवाले विष्णु निर्मित त्रैलोक्यके स्वामी ब्रह्मादि देवता महाराज रंतिदेवके धैर्यकी परीक्षाके निमित्त प्रथम मायासे ब्रह्मादि रूप धारणकरके आयेथे, परन्तु उनके धैर्यको देख अपने २ यथार्थ रूपको उन्होंने धारण किया, ॥ १५ ॥ महाराज ! रंतिदेवने उन सब देवताओं को प्रणामकर निःसंग और निःस्पृहहो भगवान में ध्यान लगालिया ॥ १६ ॥उनसे राजाने कुछ भी न चाहा—। हेराजन् ! अनन्य भक्त राजा न अपना चित्त केवल भगवानहीमें लगादियाथा, इससे उसकी गुणमयी माया स्वप्नकीसमान विलाय गई ॥ १७ ॥ उसके अनुगामी भक्त लोग उसीके प्रभावसे नारायण परायण योगी हुएथे ॥१८॥ गर्गसे शिनि उत्पन्न हुआ। शिनिका पुत्र गार्ग्यहुआ। क्षत्रियसे उत्पन्न होकरभी यह ब्राह्मण हुए थे। महावीर्यसे दुरक्षय उत्पन्न हुआ, दुरिक्षयके तीन पुत्र त्र्यारुणि, कवि ॥१९ ॥ और पुष्करारुणि हुए। यह तीनोंजन ब्राह्मणत्वको प्राप्तहुए। बृहत्क्षत्र का पुत्र हस्तीहुआ जिसने हस्तिनापुर बसाया॥२०॥ हस्तीके तीनपुत्र अजमीढ,द्विमीढ और पुरुमीढ हुए। अजमीढके वंशमें प्रियमेधादि द्विजगण उत्पन्नहुए ॥ २१ ॥ अजमीढसे बृहदिषुनामकएकऔरभी पुत्र उत्पन्न हुआ; उसका पुत्र बृहद्धनु हुआ। बृहद्धनुका पुत्र बृहत्काय, बृहत्कायका जयद्रथ, ॥ २२ ॥ जयद्रथका विशद, विशदका पुत्रस्येनजित हुआ। स्येनजित के पुत्र रुचिराश्व, दृढ हनु, काश्य और वत्सहुए ॥ २३ ॥ रुचिराश्वका पुत्र पार, पारका पुत्र पृथुसेनथा। पारके नीप नामक और भी एक पुत्रथा उसके सौपुत्रहुए ॥ २४ ॥ इस नीपनही शुककी कन्या कृत्वीके गर्भ में ब्रह्मदत्तको उत्पन्न किया, वह ब्रह्मदत्त योगीथा। उसने अपनी स्त्री सरस्वती देवी के गर्भसे विष्वक्सेन नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ २५ ॥ विष्वक्सेन ने जैगीषव्य के उपदेशसे योग शास्त्रका ग्रन्थबनाया।उस विष्वक्सेन से उदक्स्वन और उससे भल्लाद उत्पन्न हुआ। यही बृहदिषु के वंशसे उत्पन्न हुएथे ॥ २६ ॥

यवीनरोद्विमीढस्य कृतिमांस्तत्सुतः स्मृतः । नाम्ना सत्यधृतिर्यस्य दृढनेमिः सुपार्श्वकृत् ॥ २७ ॥ सुपार्श्वात्सुमतिस्तस्य पुत्रः सन्नतिमांस्ततः । कृती हिरण्यनाभाद्यो योगं प्राप्य जगौ स्म षट् ॥ २८ ॥ संहिताः प्राच्यसाम्नां वै नीपो ह्युद्ग्रायुधस्ततः । तस्य क्षेम्यः सुवीरोऽथ सुवीरस्य रिपुंजयः ॥ २९ ॥ ततो बहुरथो नाम पुरुमीढोऽप्रजोऽभवत् । नलिन्यामजमीढस्य नीलः शान्तिः सुतस्ततः ॥ ३० ॥ शान्तेः सुशान्तिस्तत्पुत्रः पुरुजोऽर्कस्ततोऽभवत् । भर्म्याश्वस्तनयस्तस्य पञ्चासन्मुद्गलादयः ॥ ३१ ॥ यवीनरो बृहदिषुः काम्पिल्यः संजयः सुताः । भर्म्याश्वः प्राह पुत्रा मे पञ्चानां रक्षणाय हि ॥ ३२ ॥ विषयाणामलमिमे इति पञ्चालसंज्ञिताः । मुद्गलाद्ब्रह्मनिर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्यसंज्ञितम् ॥ ३३ ॥ मिथुनं मुद्गलाद्भार्म्याद्दिवोदासः पुमानभूत् । अहल्या कन्यका यस्यां शतानन्दस्तु गौतमात् ॥ ३४ ॥ तस्य सत्यधृतिः पुत्रो धनुर्वेदविशारदः । शरद्वांस्तत्सुतो यस्मादुर्वशीदर्शनात्किल ॥ ३५ ॥ शरस्तम्बेऽपतद्रेतो मिथुनं तदभूच्छुभम् । तद्दृष्ट्वा कृपयाऽगृह्णाच्छन्तनुर्मृगयां चरन् । कृपः कुमारः कन्या च द्रोणपत्न्यभवत्कृपी ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महा० न० एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

श्रीशुक उवाच । मित्रायुश्च दिवोदासाच्च्यवनस्तत्सुतो नृप । सुदासः सहदेवोऽथ सोमको जन्तुजन्मकृत् ॥ १ ॥ तस्य पुत्रशतं तेषां यवीयान्पृषतः सुतः ॥ द्रुपदो द्रौपदी तस्य धृष्टद्युम्नादयः सुताः ॥ २ ॥ धृष्टद्युम्नाद्धृष्टकेतुर्भार्म्याः पंचालका इमे ॥

द्विमीढका पुत्र यवीनर, यवीनरका पुत्र कृतिमान हुआ । कृतिमानका पुत्र सत्यधृति, सत्यधृतिका पुत्र दृढनेमि, दृढनेमिका सुपार्श्व ॥ २७ ॥ सुपार्श्वका सुमति, सुमतिका सन्नतिमान्, सन्नतिमान्का कृती हुआ जिसने हिरण्यनाभसे योग प्राप्तकर अपने शिष्योंको प्राच्यसामकी छह संहिताएं पढाईं ॥ २८ ॥ उस कृतीसे उग्रायुध की उत्पत्ति हुई । उसका पुत्र क्षेम्य, क्षेम्यका पुत्र सुवीर, सुवीरका पुत्र रिपुंजय हुआ ॥ २९ ॥ रिपुंजयका बहुरथ हुआ, पुरुमीढ निःसंतान था । अजमीढ के जो नलिनीनाम स्त्री थी, उसके गर्भसे नीलनामक एक संतान उत्पन्न हुई। उसका पुत्र शान्ति हुआ ॥ ३० ॥ शांतिका पुत्र सुशांति, सुशांतिका पुत्र पुरुज, पुरुजका अर्क, अर्कका पुत्र भर्म्याश्व हुआ । उसके मुद्गल, यवीनर, बृहदिषु, कांपिल्य और संजय यह पांचपुत्र उत्पन्न हुए भर्म्याश्वने एकबार कहा था कि मेरे पांचपुत्र पांचदशोंकी रक्षाकरने में समर्थ हैं ॥ ३१–३२ ॥ इसी कारण यह पंचाल नामसे प्रसिद्ध हुए । मुद्गल से ब्राह्मण जातिका मौद्गल्यगोत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३३ ॥ भर्म्याश्व के पुत्र मुद्गल के एक मिथुन उत्पन्न हुआ । पुत्रका नाम दिवोदास और कन्याका नाम अहल्याथा। उस गौतमकी पत्नी अहल्या से शतानंदने जन्म ग्रहण किया ॥ ३४ ॥ शतानंदका पुत्र सत्यधृति हुआ धनुर्वेदका बडाभारी पंडितथा । उसका पुत्र शरद्वान हुआ । उर्वशी के देखने से शरद्वान का वीर्य कास मे गिरगया था उससे एक मिथुन संतान उत्पन्न हुई शांतनुराजा मृगयाको गयाथा वहां उसने इनदोनों बच्चोंको देखपायातो कृपालुहो उनदोनों बालकोंको लेआया। उनमेंसे पुत्रका नाम कृप और कन्याका नाम कृपी हुआ । कृपी द्रोणाचार्यको व्याही गईथी ॥ ३६ ॥

इतिश्री मद्भागवतमहापुराणेनवमस्कंधसरलाभाषाटीकायांएकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि–दिवोदासका पुत्र मित्रायु, मित्रायुका च्यवन, च्यवनका पुत्र सुदास, सुदासका पुत्र सहदेव, सहदेवका पुत्र सोमक हुआ । सोमक के सौपुत्र उत्पन्न हुएथे उनमें से जंतुजेठा और पृषत छोटाथा । उस पृषत से सर्व सम्पद युक्त राजा द्रुपद ने जन्म ग्रहण किया । उस द्रुपद से द्रौपदी और धृष्टद्युम्न आदिका जन्म हुआ ॥ १–२ ॥ धृष्टद्युम्नका पुत्र धृष्टकेतु था

योऽजमीढसुतो ह्यन्य ऋक्षः संवरणस्ततः ॥ ३ ॥ तपत्यां सूर्यकन्यायां कुरुक्षेत्रपतिः कुरुः । परीक्षित्सुधनुर्जह्नुर्निषधाश्च कुरोः सुताः ॥ ४ ॥ सुहोत्रोऽभूत्सुधनुषश्च्यवनोऽथ ततः कृती । वसुस्तस्योपरिचरो बृहद्रथमुखास्ततः ॥ ५ ॥ कुशाम्बमत्स्यप्रत्यग्रचेदिपाद्याश्च चेदिपाः । बृहद्रथात्कुशाग्रोऽभूदृषभस्तस्य तत्सुत. ॥ ६ ॥ जज्ञे सत्यहितोऽपत्यं पुष्पवांस्तत्सुतो जहुः । अन्यस्यां चापि भार्यायां शकले द्वे बृहद्रथात् ॥ ७॥ ते मात्रा बहिरुत्सृष्टे जरया चाभिसंधिते । जीव जीवेति क्रीडन्त्या जरासन्धोऽभवत्सुतः ॥ ८ ॥ ततश्च सहदेवोऽभूत्सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवाः । परीक्षिदनपत्योऽभूत्सुरथो नामजाह्नव. ॥ ९ ॥ ततो विदूरथस्तस्मात्सार्वभौमस्ततोऽभवत् । जयसेनस्तत्तनयो राधिकोऽतोऽयुतोह्यभूत् ॥ १० ॥ ततश्चाक्रोधनस्तस्माद्देवातिथिरमुष्य च । ऋक्षस्तस्य दिलीपोऽभूत्प्रतीपस्तस्य चात्मजः ॥ ११ ॥ देवापिः शंतनुस्तस्य बाह्लीक इति चात्मजाः । पितृराज्यं परित्यज्य देवापिस्तु वनं गतः ॥ १२ ॥ अभवच्छन्तनू राजा प्राङ्महाभिषसंज्ञितः । यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः ॥ १३ ॥ शान्तिमाप्नोति चैवाग्र्यां कर्मणा तेन शन्तनुः । समा द्वादश तद्राज्ये न ववर्ष यदा विभुः ॥ १४ ॥ शन्तनुर्ब्राह्मणैरुक्तः परिवेत्तायमग्रभुक् । राज्यं देह्यग्रजायाशु पुरराष्ट्रविवृद्धये ॥१५॥ एवमुक्तो द्विजैर्ज्येष्ठं छन्दयामास सोऽब्रवीत् । तन्मन्त्रिप्रहितैर्विप्रैर्वेदाद्विभ्रंशितो गि

यह भर्म्याश्ववंशी पांचाल राजाथे। अजामीढ के ऋक्षनामक जोएक और दूसरा पुत्रथा उसका पुत्र सम्वरण हुआ ॥ ३ ॥ उस सम्वरण के वीर्यसे सूर्यतनया तपना के गर्भसे कुरुक्षेत्रपति कुरुने जन्म ग्रहण किया। उस कुरुके चारपुत्र परीक्षित, सुधनु, जह्नु, और निषधादि उत्पन्नहुए॥ ४ ॥ सुधनु कापुत्र सुहोत्र, सुहोत्रका पुत्र च्यवन, च्यवनका कृती, कृतीका उपरिचर वसुनामक पुत्र उत्पन्नहुआ। वसुके बृहद्रथ ॥ ५ ॥ कुशाम्ब, मत्स्य, प्रत्यग्र और चेदिप इत्यादि पुत्र उत्पन्न हुए। यह सबही चेदि देशके राजाथे बृहद्रथ से कुशाग्रका जन्महुआ। कुशाग्रका पुत्र ऋषभहुआ ॥ ६ ॥ ऋषभका सत्यहित, सत्यहितका पुत्र पुष्पवान और उसका जहु हुआ। हेराजन् बृहद्रथकी दूसरी स्त्रीसे एक एक खण्ड करके देहके दोभाग उत्पन्नहुए ॥ ७ ॥ उसकी माताने उसको ऐसा देख बाहर फेंक दिया। परन्तु जराराक्षसीने उसे देखकर ' जीवितहो जीवितहो ' यह कहकर क्रीडा करते २ उन दोनों खण्डों को मिलादिया। इससे उस बालक के सब अङ्ग मिलगये और उसका नाम जरासंध हुआ ॥ ८ ॥ जरासन्धका पुत्र सहदेव, सहदेवका सोमापि और उसका श्रुतश्रवा पुत्र उत्पन्नहुआ। कुरुपुत्र परीक्षित निःसन्तानथा। जन्हुके सुरथहुआ ॥ ९ ॥ सुरथ से विदूरथका जन्महुआ। विदूरथकापुत्र सार्वभौम, सार्वभौम का जयसेन और जयसेनका पुत्र राधिकहुआ, उससे अयुतकी उत्पत्ति हुई॥ १० ॥ अयुतकापुत्र अक्रोधन, उसका देवातिथिहुआ देवातिथि का पुत्र ऋक्ष, ऋक्षका दिलीपहुआ। दिलीपकापुत्र प्रतीपथा ॥ ११ ॥ प्रतीपके तीनपुत्र देवापि, शन्तनु और बाह्लीकहुए। उनमें से बड़ा देवापि पिताका राज्यछोड़ बनको चलागया ॥ १२ ॥ तो शन्तनुराजाहुआ। पूर्वजन्ममें इनका नाम महाभिष था। यह हाथों द्वारा जिसवृद्ध पुरुषका स्पर्श करते, वह मनुष्य युवा होजाता ॥ १३ ॥ और बड़ाही शांत होजाता; इसीही कर्मसे इनका नाम शंतनु हुआ। किसी समय शंतनु राजाके राज्यमें बारह बरस वृष्टि न हुई ॥ १४ ॥ तब राजाने व्याकुलहो ब्राह्मणों से पूछा तब ब्राह्मणो ने उत्तर दियाकि—महाराज! बड़भाई के होतेहुए आपके राज्य करने से आप दोषीहुएहो नगरके सुख वृद्धिके निमित्त बडेभाईको बुलायकर शीघ्रही राज्यदो ॥ १५ ॥ ब्राह्मणों की आज्ञानुसार शांतनने बड़ेभाई से राज्य करने का अनुरोध किया। किंतु इससे पहिले शांतनु के मंत्रियों ने कुछेक ब्राह्मण देवापि के निकट भेजे थे, उन्हों ने पाखण्ड मतके उपदेश से देवापि

रा ॥ १६ ॥ वेदवादातिवादान्वैतदादेवोववर्षह । देवापिर्योगमास्थायकलापग्राम
माश्रितः ॥ १७ ॥ सोमवंशेकलौनष्टेकृतादौस्थापयिष्यति । बाह्लीकात्सोमदत्तो
ऽभूद्भूरिर्भूरिश्रवास्ततः॥१८॥शलश्चशान्तनोरासीद्गङ्गायांभीष्मआत्मवान् । सर्व
धर्मविदांश्रेष्ठोमहाभागवतःकविः ॥ १९ ॥ वीरयूथाग्रणीर्येनरामोऽपियुधितोषितः
शान्तनोर्दाशकन्यायांजज्ञेचित्राङ्गदःसुतः॥२०॥विचित्रवीर्यश्चावरजोनाम्नाचित्राङ्गदो
हतः । यस्यांपराशरात्साक्षादवतीर्णोहरेःकला ॥२१॥ वेदगुप्तोमुनिःकृष्णोयतोऽहमि
दमध्यगाम्।हित्वास्वशिष्यान्पैलादीन्भगवान्बादरायणः॥ २२॥ मह्यंपुत्रायशान्ताय
परंगुह्यमिदंजगौ । विचित्रवीर्योऽथोवाहकाशिराजसुतेबलात् ॥ २३ ॥ स्वयंवरा
दुपानीतेअम्बिकाम्बालिकेउभे । तयोरासक्तहृदयोगृहीतोयक्ष्मणामृतः ॥ २४ ॥
क्षेत्रेऽप्रजस्यवैभ्रातुर्मात्रोक्तोबादरायणः । धृतराष्ट्रंचपाण्डुंचविदुरंचाप्यजीजनत् ॥
२५ ॥ गान्धार्यांधृतराष्ट्रस्यजज्ञेपुत्रशतंनृप । तत्रदुर्योधनोज्येष्ठोदुःशलाचापिकन्य
का ॥ २६ ॥ शापान्मैथुनरुद्धस्यपाण्डोःकुन्त्यांमहारथाः । जाताधर्मानिलेन्द्रेभ्यो
युधिष्ठिरमुखास्त्रयः ॥२७॥ नकुलःसहदेवश्चमाद्र्यांनासत्यदस्रयोः । द्रौपद्यांपञ्च
पञ्चभ्यःपुत्रास्तेपितरोऽभवन्॥ २८ ॥ युधिष्ठिरात्प्रतिविन्ध्यःश्रुतसेनोवृकोदरात् ॥
अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तुशतानीकस्तुनाकुलिः ॥ २९ ॥ सहदेवसुतोराजन्श्रुतकर्मा

को वेदमार्ग से भ्रष्ट करके नास्तिक बनादिया ॥ १६ ॥ अतएव वेद निंदासे पतित होकर देवापि राज्यके योग्य न रहा; इस कारण शन्तनु केभी राज्य करने में कोई दोष न रहा। फिरयथा समय में वर्षा होनेलगी। तबसे देवापि योगका अवलंबनकर कलाप ग्राममें अबतक निवास करता है ॥ १७॥ कलियुग के अंतमें चन्द्र वंशके नाश होनेपर सत्ययुग के प्रथम में वह उस वंशका स्थापन करेगा। बाल्हीक से सोमदत्त की उत्पत्ति हुई । सोदत्त के तीनपुत्र भूरि, भूरिश्रवा ॥ १८ ॥ और शल हुए । शांतनु के वीर्य और गगाके गर्भसे आत्मज्ञ भीष्मने जन्म लिया था । महात्मा भीष्म सब धर्मज्ञों से श्रेष्ठ, महाभागवत, विद्वान और वीरों में शिरोमणि हुए। उन्होंने संग्राम करके परशुराम जी कोभी संतुष्ट करादिया था। शन्तनु के वीर्यसे धीमर से पालीहुई सत्यवती में चित्रांगद और विचित्र वीर्य नामक दोपुत्र उत्पन्न हुए। चित्रांगदतो चित्रांगद नामक एक गंधर्व से युद्धमें मारागया। सत्यवती के क्वारे पनमें पराशर ऋषिसे साक्षात् हरिके अंश वेद रक्षक भगवान व्यास जी उत्पन्न हुएथे। मैं उन्हींका पुत्रहूं और उन्हीं से इस भागवत शास्त्रको पढ़ा है। मैं उनका सगगुणावलंबी पुत्रथा इसही कारण उन भगवान व्यासजीने पैलआदि शिष्योंको छोड़कर मुझहीसे परम गुह्य भागवत शास्त्र कहाथा। ऊपर कहेहुये विचित्र वीर्यने काशिराज की दोकन्या अम्बिका और अम्बालिका से पाणिग्रहण कियाथा। इन दोनों कन्याओंको भीष्मने बलपूर्वक स्वयम्बरसे हरण कियाथा। दोनों स्त्रियोंमें आसक्त होजानेसे विचित्र वीर्य थोड़ेही कालमें यक्ष्मा रोगमें ग्रस्त होकर काल कवलित हुआ। १९---२४ । उसके संतान न हुई। उनके भाई भगवान व्यासजीने माता की आज्ञासे उनके क्षेत्रमें धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर इन तीन पुत्रोंको उत्पन्नकिया २५॥हेराजन्! धृतराष्ट्र के वीर्यसे गांधारी के गर्भसे १०० पुत्र और दुःशाला नामक एक पुत्री उत्पन्न हुई, उन सबमें दुर्योधन बड़ाथा ॥ २६ ॥ पाण्डु शापके वशसे मैथुन न करसकताथा। उसकी पत्नी कुंती के गर्भसे धर्म, वायु, और इन्द्रसे युधिष्ठिरादि तीन महारथ पुत्रोंने जन्म ग्रहण किया ॥२७॥ और उसकी माद्री नाम जोस्त्री थी, उससे दोनों अश्विनी कुमारों के नकल और सहदेव दोपुत्र उत्पन्न हुए। उनपाचों पाण्डवों की स्त्री द्रौपदी थी। युधिष्ठरादि पांच पाण्डवों से उसके पांचपुत्र उत्पन्न हुए जो तुम्हार चाचा थे ॥ २८ ॥ युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य, भीमसे श्रुतसेन, अर्जुन से श्रुतकीर्ति,

तथापरे । युधिष्ठिरात्तु पौरव्यां देवकोथ घटोत्कचः ३०भीमसेनाद्धिडिम्बायां काल्यां सर्वगतस्ततः । सहदेवात्सुहोत्रं तु विजयाऽसूत पार्वती ॥ ३१ ॥ करेणुमत्यां नकुलो निरमित्रं तथार्जुनः । इरावन्तमुलूप्यां वै सुतायां बभ्रुवाहनम् ॥ मणिपूरपतेः सोऽपि तत्पुत्रः पुत्रिकासुतः ॥ ३२ ॥ तव तातः सुभद्रायामभिमन्युरजायत । सर्वातिरथजिद्वीर उत्तरायां ततो भवान् ॥ ३३ ॥ परिक्षीणेषु कुरुषु द्रौणेर्ब्रह्मास्त्रतेजसा । त्वं च कृष्णानुभावेन सजीवो मोचितोऽन्तकात् ॥ ३४ ॥ तवेमे तनयास्तात जनमेजयपूर्वकाः । श्रुतसेनो भीमसेन उग्रसेनश्च वीर्यवान् ॥ ३५ ॥ जनमेजयस्त्वां विदित्वा तक्षकान्निधनं गतम् । सर्पान्वै सर्पयागाग्नौ स होष्यति रुषाऽन्वितः ॥ ३६ ॥ कावषेयं पुरोधाय तुरं तुरगमेधयाट् । समन्तात्पृथिवीं सर्वा जित्वा यक्ष्यति चाध्वरैः ॥ ३७॥ तस्य पुत्रः शतानीको याज्ञवल्क्यात्त्रयीं पठन् । अस्त्रज्ञानं क्रियाज्ञानं शौनकात्परमेष्यति ॥ ३८ ॥ सहस्रानीकस्तत्पुत्रस्ततश्चैवाश्वमेधजः । असीमकृष्णस्तस्यापि नेमिचक्रस्तु तत्सुतः ॥ ३९ ॥ गजाह्वये हृते नद्या कौशाम्ब्यां साधु वत्स्यति । उक्तस्ततश्चित्ररथस्तस्मात्कविरथः सुतः ॥ ४० ॥ तस्माच्च वृष्टिमांस्तस्य सुषेणोऽथ महीपतिः । सुनीथस्तस्य भविता नृचक्षुर्यत्सुखीनलः ॥ ४१ ॥ परिप्लवसुतस्तस्मान्मेधावी सुनयात्मजः । नृपंजयस्ततो दूर्वस्तिमिस्तस्माज्जनिष्यति ॥ ४२ ॥ तिमेर्बृहद्रथस्तस्माच्छतानीकः सुदासजः शतानीकाद्दुर्दमनस्तस्यापत्यं महीनरः ॥ ४३ ॥ दण्डपाणिर्निमिस्तस्य क्षेमको भविता नृपः । ब्रह्मक्षत्रस्य वै प्रोक्तो वंशो देवर्षिसत्कृतः ॥ ४४ ॥ क्षेमकं प्राप्य राजानं सं-

नकुल से शतानीक हुआ ।२९। और सहदेव से श्रुतकर्मा उत्पन्न हुआ हे राजन् ! उन पांच पाण्डवों की दूसरी स्त्रियों से और भी कई पुत्र उत्पन्न हुए थे युधिष्ठिर के पौरवी नाम स्त्री से देवक भीमसेन की हिडम्बी नाम स्त्री से घटोत्कच, और काली के गर्भ से सर्वगत, सहदेव के पर्वतनंदिनी विजया के गर्भ से सुहोत्र हुआ॥३०।३१॥ नकुलके करेणुमती स्त्री से नरमित्र अर्जुन के वीर्यसे उलूपी उलूपीसे इरावान, मणिपुरकी राजपुत्री से बभ्रुवाहन और सुभद्रा के गर्भ से तुम्हारे पिता अभिमन्यु उत्पन्न हुए बभ्रुवाहन मणिपुर के राजाकी पुत्री का पुत्र था इस कारण उसही का पुत्र होकर रहा अभिमन्यु सब अतिरथियोंको जीतनेवाला और महावीर था उसके वीर्यसे उत्तराके गर्भ में तुम्हारा जन्म हुआ॥३२॥ ३३ ॥ हे राजन् ! अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्रके तेजसे कुरुवंश क्षीण हुआ जाता था और तुमभी उस से नष्ट होगये थे केवल भगवान श्रीकृष्णजी के प्रभाव से तुम मृत्युसे बचे ॥३४॥ हे तात ! तुम्हारे इस समय जनमेजय, श्रुतसेन भीमसेन और उग्रसेन यह चार पुत्र हैं ॥ ३५ ॥ जनमेजय तक्षक से तुम्हारी मृत्यु को हुआ जान रोषवश सर्प यज्ञ का आरम्भ कर यज्ञाग्नि में सब सर्पोंको होमेंगा।३६। तुम्हारा वह पुत्र पृथ्वी को जीतकर अश्वमेध यज्ञ के करने में प्रवृत्त होगा और कावषेय नामक ऋषि को पुरोहित कर और भी अन्यान्य यज्ञ करेगा ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! इस जनमेजय के शतानीक नामक एक पुत्र उत्पन्न होगा वह याज्ञवल्क्य मुनि से वेद पाठकर क्रिया ज्ञान शौनक से आत्मज्ञान, और कृपाचार्य से अस्त्र ज्ञान प्राप्त करेगा ॥ ३८ ॥ शतानीक का पुत्र सहस्रानीक, सहस्रानीक का अश्वमेधज, अश्वमेधज का असीमकृष्ण और उसका पुत्र नेमिचक्र होगा॥ ३९ ॥ हस्तिनापुर के नदी द्वारा नाश होजानेपर वह कौशाम्बीनगर में सुख से वास करेगा नेमिचक्र का पुत्र उक्त, उसका चित्ररथ, और उससे कविरथ उत्पन्न होगा ॥ ४० ॥ कविरथ के वृष्टिमान उससे सुषेण, सुषेण से सुनीथ महीपति उत्पन्न होगा सुनीथ का नृचक्षु उसका सुखीनल होगा ॥ ४१ ॥ सुखीनल का पुत्र परिप्लव, परिप्लव का पुत्र सुनय उसका पुत्र मेधावी, मेधावीका पुत्र नृपञ्जय, उसका दूर्व पुत्र होगा । उसका पुत्र तिमि॥४२॥तिमिका बृहद्रथ, बृहद्रथ का सुदास, सुदासका शतानीक, शतानीकका दुर्दमन, दुर्दमनका महीनर।४३॥महीनरका दण्डपाणि, दण्डपाणिका निमि, निमिकेवीर्य से क्षेमक उत्पन्न होगा। ब्राह्मण और क्षत्रियों के उत्पन्नकरनेवाले देवर्षिआदृतका वंश कलियुग में क्षेमकराजातक रहेगा। हेराजन् ! मगधवंश

स्यांप्राप्स्यतिवैकली । अथमागधराजानोभवितारोवदामिते ॥ ४५ ॥ भवितासह देवस्यमार्जारिर्यच्छ्रुतश्रवाः । ततोऽयुतायुस्तस्यापि निरमित्रोऽथतत्सुतः ॥ ४६ ॥ सुनक्षत्रः सुनक्षत्राद्बृहत्सेनोऽथकर्मजित् । ततःसृतंजयाद्विप्रःशुचिस्तस्यभविष्यति ॥ ४७ ॥ क्षेमोऽथसुव्रतस्तस्माद्धर्मसूत्रःशमस्ततः । द्युमत्सेनोऽथसुमतिःसुबलोजनिताततः ॥ ४८ ॥ सुनीथःसत्यजिदथविश्वजिद्यद्रिपुंजयः । बार्हद्रथाश्चभूपालाभाव्याःसाहस्रवत्सरम् ॥ ४९ ॥

इतिश्रीमद्भा०म०नवम०द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२

श्रीशुक उवाच ॥ अनोः सभानरश्चक्षुः परोक्षश्चसुतास्त्रयः । सभानरात्कालनरः सृंजयस्तत्सुतस्ततः ॥१॥ जनमेजयस्तस्यपुत्रोमहाशीलोमहामनाः । उशीनरस्तितिक्षुश्चमहामनसआत्मजौ ॥ २ ॥ शिबिर्वनः शमिर्दक्षश्चत्वाराशीनरात्मजाः वृषादर्भः सुवीरश्चमद्रः कैकेयआत्मजाः ॥३॥ शिबेश्चत्वारएवासंस्तितिक्षोश्चरुशद्रथः । ततोहेमोऽथसुतपाबलिःसुतपसोऽभवत् ॥ ४ ॥ अङ्गवङ्गकलिङ्गाद्याःसुह्मपुण्ड्रान्ध्रसंज्ञिताः । जज्ञिरेदीर्घतमसो बलेःक्षेत्रेमहीक्षितः ॥ ५ ॥ चक्रुःस्वनाम्नाविषयान्षडिमान्प्राच्यकांश्चते । खनपानोऽङ्गतोजज्ञेतस्माद्दिविरथस्ततः ॥ ६ ॥ सुतोधर्मरथोयस्यजज्ञेचित्ररथोऽप्रजाः रोमपादइतिख्यातस्तस्मैदशरथः सखा ॥ ७ ॥ शान्तांस्वकन्यांप्रायच्छदृष्यशृङ्गउवाहताम् । देवेऽवर्षतियंरामाआनिन्युर्हरिणीसुतम् ॥८॥ नाट्यसङ्गीतवादित्रैर्विभ्रमालिङ्गनार्हणैः । सतुराज्ञोऽनपत्यस्यनिरूप्येष्टिंमरुत्वतः ॥९ प्रजामदाद्दशरथोयेनलेभेऽप्रजाःप्रजाः। चतुरङ्गोरोमपादात्पृथुलाक्षस्तुतत्सुतः ॥१०॥ बृहद्रथोबृहत्कर्मा बृहद्भानुश्चतत्सुताः । आद्याज्जयद्रथस्तस्माद्दृढरथस्ततः १।? ...

में जाराजा होंगे उनका वर्णन करता हूँ ॥४४॥४५॥ जरासंधननंग सहदेवका पुत्र मार्जारि हुआ उससे मार्जारिसे श्रुतश्रवा जन्मग्रहण करेगा। उसका पुत्र अयुतायु, उसका निरमित्र॥४६॥ निरमित्र। सुनक्षत्र, सुनक्षत्रका पुत्र बृहत्सेन, बृहत्सेनका कर्मजित, कर्मजितका सृतंजय, सृतंजयका विप्र, उसका शुचि ॥ ४७ ॥ शुचिका क्षेम, क्षेमका सुव्रत, सुव्रतका धर्मसूत्र, धर्मसूत्रका शम, शमका द्युमत्सेन, द्युमत्सेनका सुमति उससे सुबल उत्पन्न होगा ॥ ४८ ॥ सुबलका पुत्र सुनीथ, सुनीथका सत्यजित, सत्यजितका विश्वजित और उससे रिपुंजय उत्पन्न होगा। बृहद्रथवंशीय राजगण और भी सहस्र वर्ष राज्य करेंगे ॥ ४९ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०नवम०सरलाभाषाटीकायांद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! अनु के तीन पुत्र सभानर, चक्षु और परोक्ष हुए सभानर का पुत्र कालनर, कालनर का सृंजय हुआ सृंजय से ॥१॥ जनमेजय ने जन्म ग्रहण किया जनमेजय का पुत्र महाशील और महाशीलका महामना हुआ महामनाके दो पुत्र उशीनर और तितिक्षु हुए ॥२॥ उशीनर के चार पुत्र शिबि, वन, शमि और दक्ष थे शिबि से वृषादर्भ, सुवीर, मद्र, केकय यह चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३॥ तितिक्षु का पुत्र रुशद्रथ, उसका हेम, उसका सुतपा सुतपा का पुत्र बलि हुआ ॥४॥ उस बलि के क्षेत्र में दीर्घतमा ऋषि से अंग, बङ्ग, कलिंग, सुह्म, पुंड्र, और अंध्र नामक राजा उत्पन्न हुए ५ ॥ उन्होंने पूर्व दिशामें अपने २ नामके छहराज्य स्थापित किये । अंगसे खानपान उत्पन्न हुआ था । उसका पुत्र दिविरथ, दिविरथका ॥ ६ ॥ पुत्र धर्मरथ और उसका चित्ररथ हुआ । चित्ररथके संतान नहींहुई । वह रोमपादके नामसे विख्यात हुआ । उसके मित्र दशरथने ॥ ७ ॥ उसको शांतानामक अपनी कन्या, कन्याकी समान रखनेको देदीथी । हरिणी तनय ऋष्यशृंग मुनिने उस कन्याका पाणिग्रहण किया । रोमपाद राजा के राज्यमें कुछ कालतक देवताओंने जल न बरसाया तब राजाकी आज्ञासे वेश्याओंने तपोवनमें जा नृत्य, गीत, विभ्रम, विलास और आलिंगन आदिसे मोहित कर उन ऋषियों को लआई, । ऋष्यशृंग के आतेही वहां जल बरसा पानन्तर उस मुनिने निःसन्तान राजाके निमित्त इन्द्र यागकराया ८॥९। जिसने निःसतान दशरथके चारपुत्र उत्पन्नहुए रोमपादसे चतुरंग उसकापुत्र पृथुलाक्षहुआ १० पृथुलाक्षसे बृहद्रथ, बृहत्कर्मा और

विजयस्तस्यसंभूत्यांततोधृतिरजायत । ततोधृतव्रतस्तस्य सत्कर्माऽधिरथस्ततः ॥१२॥ योऽसौगङ्गातटेक्रीडन्मञ्जूषाऽन्तर्गतंशिशुम् । कुन्त्यापविद्धंकानीनमनपत्यो ऽकरोत्सुतम् ॥ १३ ॥ वृषसेनः सुतस्तस्यकर्णस्यजगतीपते ॥ द्रुह्योश्चतनयोबभ्रुः से तुस्तस्यात्मजस्ततः ॥ १४ ॥ आरब्धस्तस्यगान्धारस्तस्यधर्मस्तुतद्धृतः । धृतस्यदु र्मनास्तस्मात्प्रचेताः प्राचेतसंशतम् ॥ १५ ॥ म्लेच्छाधिपतयोऽभूवन्नुदीचींदिश माश्रिताः । तुर्वसोश्चसुतोवह्निर्वह्नेर्भर्गोऽथभानुमान् ॥१६॥ त्रिभानुस्तत्सुतोऽस्या पिकरधम उदारधीः ।मरुतस्तत्सुतोऽपुत्रः पुत्रपौरवमन्वभूत् ॥१७॥ दुष्यन्तः सपुन र्भेजेस्ववंशराज्यकामुकः।ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्ययदोर्वंशंनरर्षभ ॥ १८ ॥ वर्णयामिमहा पुण्यंसर्वपापहरंनृणाम् यदोर्वंशंनरः श्रुत्वासर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १९ ॥ यत्रावतीर्णो भगवान्परमात्मानराकृतिः । यदोःसहस्रजित्क्रोष्टानलोरिपुरितिस्मृताः ॥ २० ॥ च त्वारः सूनवस्तत्रशतजित्प्रथमात्मजः । महाहयोवेणुहयोहैहयश्चेतितत्सुताः ॥२१॥ धर्मस्तुहैहयसुतोनेत्रःकुन्तेःपितातताः । सोहंजिरभवत्कुन्तेर्महिष्मान्भद्रसेनकः ॥२२ दुर्मदोभद्रसेनस्यधनकः कृतवीर्यसूः । कृताग्निः कृतवर्मा च कृतौजा धनकात्मजा ॥ २३ ॥ अर्जुनः कृतवीर्यस्यसप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् । दत्तात्रेयाद्धरेरंशात्प्राप्तयोगम हागुणः ॥२४॥ ननूनकार्तवीर्यस्यगतिंयास्यन्तिपार्थिवाः । यज्ञदानतपोयोगश्रुतवी र्यजयादिभि ॥ २५ ॥ पञ्चाशीतिसहस्राणिह्यव्याहतबलः समाः । अनष्टवित्तस्म रणोबुभुजेऽक्षय्यषड्वसु ॥ २६ ॥ तस्यपुत्रसहस्रेषुपञ्चैवोर्वरितामृधे । जयध्वजः शूरसेनोवृषभोमधुरूर्जितः ॥ २७ ॥ जयध्वजात्तालजंघस्तस्यपुत्रशतंत्वभूत् । क्ष

बृहद्भानु यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए । बृहद्रथमें बृहन्मनाने जन्मग्रहण किया उसका पुत्र जयद्रथ हुआ ॥ ११ ॥ जयद्रथका पुत्र विजय हुआ । उसकी संभूती नाम स्त्रीसे धृतिने जन्मग्रहण किया धृतिकापुत्र धृतव्रत उसका सत्कर्मा हुआ, सत्कर्मासे अधिरत उत्पन्नहुआ॥१२॥इसअधिरथने गंगाके तटपर क्रीडाकरतेहुए कुन्तीके छोडेहुए मंजूषा(पिटारी)मेंके जिसमें कुन्तीने सुतरखकर बहादियाथा, पाया, आप निःसंतानथा इसकारण उसे अपना सुत करके रक्खा । हेराजन्! उसबालकका नाम कर्णहुआ ॥१३॥उसका पुत्र वृषसेनहुआ ययातिके पुत्र द्रुह्युका बभ्रु, उसका सेतु, सेतुकापुत्र आरब्ध उसकागांधार, उसका धर्म, धर्मकाधृत पुत्रहुआ । धृतका दुर्मना, उसका प्रचेता और प्रचेताके सौ पुत्र उत्पन्नहुए॥१५॥ उन्होंने उत्तरदिशामें रहकर म्लेच्छोंका आधिपत्य ग्रहणकिया । तुर्वसुका पुत्र वह्नि उसका भर्ग उसका भानुमानहुआ ॥ १६ ॥ भानुमानका पुत्र त्रिभानु उसका उदारमति कर- धम करन्धमका पुत्र मरुतहुआ यह मरुत अपुत्रथा ॥ १७ ॥ इसकारण पुरु वंशीय दुष्यन्तकोही इस ने पुत्रमाना। यहदुष्यन्त फिरराज्याभिलाषाहो अपनेवंश में प्रविष्टहुआ॥हेनरवर! अब इस के उपरांत ययातिके बडेपुत्र यदुके वंशका वर्णनकरताहूं। सोसुनो॥१८॥वह पवित्रवंश मनुष्यों के पापोंकानाशकरने वाला है ।जिसवंश में भगवानने मनुजरूपधारणकियाथा उसयदुवंशका वर्णनसुननेसे मनुष्योंकेसबपाप दूरहोजाते हैं । सहस्रजित,क्रोष्टु,नल,और रिपुनामक ये यदुकेचारपुत्रथे ॥ १९।२०॥सहस्रजितकापुत्र शतजितहुआ ।उसकेतीनपुत्रमहाहय,वेणुहय और हैहयहुए॥ २१॥ हैहयकापुत्र धर्म, उसकानेत्र,नेत्रका कुन्ति,कुन्तिकासोहंजि, ।उसका पुत्रमाहिष्मान;माहिष्मानकापुत्रभद्रसेनहुआ ॥२२ ॥भद्रसेनकेदोपुत्र दुर्मद औरधनकहुए।धनकके चारपुत्र कृतवीर्य,कृताग्नि,कृतवर्मा और कृतौजाहुए २३॥कृतवीर्यकापुत्र अर्जुन सातोद्वीपोंकाराजाहोकर भगवान के अंश दत्तात्रेयजी के संग से योगगुणकोप्राप्तहुआ ॥२४॥ दूसरा और कोई राजायज्ञ,दान तप,योग,वेदाध्ययन,शौर्य,वीर्य और जयादि में उसमहात्माकीसमानता नहींकरसकता ॥२५॥उसराजानेअपने अखण्डपराक्रमसे ८५०००वर्ष अक्षयहो छहइन्द्रियों के विषय भोग किये।उस से उसकास्मरण व पराक्रम कभीनष्टनहींहुआ॥२६॥उस अर्जुन के सहस्रपुत्रहुए जिन मेंसे केवल पांचही जयध्वज,शूरसेन, वृषभ,मधु और ऊर्जितयुद्धमें शेषबचेथे ॥२७॥ उनमेंजयध्वजका

यत्तालजंघाख्यमौर्वतेजोपसंहृतम् ॥२८॥ तेषांज्येष्ठोवीतिहोत्रोवृष्णिः पुत्रोमधोः
स्मृतः। तस्यपुत्रशतंत्वासीद्वृष्णिज्येष्ठंयतः कुलम् ॥ २९ ॥ माधवावृष्णयोराज
न्यादवाश्चेतिसंज्ञिताः। यदुपुत्रस्यचक्रोष्टोः पुत्रोवृजिनवांस्ततः ॥ ३० ॥ स्वाहि
स्ततोरुशेकुर्वैतस्यचित्ररथस्ततः। शशबिन्दुर्महायोगीमहाभोजोमहानभूत् ।३१।
चतुर्दशमहारत्नश्चक्रवर्त्यपराजितः। तस्यपत्नीसहस्राणांदशानांसुमहायशाः ३२॥
दशलक्षसहस्राणिपुत्राणांतास्वजीजनत्। तेषांतुषट्प्रधानानां पृथुश्रवस आत्मजः
॥ ३३॥ धर्मोनामोशनातस्यहयमेधशतस्यपाट्। तत्सुतोरुचकस्तस्यपञ्चासन्ना
त्मजाः शृणु। पुरुजिद्रुक्मरुक्मेषुपृथुज्यामघसंज्ञिताः ॥ ३४ ॥ ज्यामघस्त्वप्रजोऽ
प्यन्यांभार्यांशैब्यापतिर्भयात्। नाविन्दच्छत्रुभवनाद्भोज्यांकन्यामहारषीत् ॥ ३५॥
रथस्थांतांनिरीक्ष्याह शैब्यापतिममर्षिता। केयं कुहकमत्स्थानं रथमारोपितेति वै
॥ ३६ ॥ स्नुषातवेत्यभिहितेस्मयन्तीपतिमब्रवीत्। अहंवन्ध्याऽसपत्नीचस्नुषामे
युज्यतेकथम् ॥ ३७ ॥ जनयिष्यसियंराज्ञिनस्येयमुपयुज्यते। अन्वमोदन्ततद्विश्वे
देवाः पितरएवच ॥ ३८ ॥ शैब्यागर्भमधात्कालेकुमारंसुषुवेशुभम्। सविदर्भ
इति प्रोक्तउपयेमेस्नुषां सतीम् ॥ ३९ ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे यदुवंशानुवर्णने त्रयोविंशोऽध्यायः।२३।
श्रीशुक उवाच तस्यांविदर्भोऽजनयत्पुत्रौनाम्नाकुशक्रथौ। तृतीयंरोमपादंच
विदर्भकुलनन्दनम् ॥ १ ॥ रोमपादसुतोबभ्रुर्बभ्रोःकृतिरजायत। उशिकस्तत्सुतस्त
स्माच्चेदिश्चैद्यादयोनृप ॥ २ ॥ क्रथस्यकुन्तिःपुत्रोऽभूद्वृष्टिस्तस्याथनिर्वृतिः। ततो
दशार्होनाम्नाऽभूत्तस्यव्योमःसुतस्ततः ॥ ३ ॥ जीमूतोविकृतिस्तस्ययस्यभीमरथः

पुत्रतालजंघहुआ इसके सौपुत्रथे। तालजंघनामक सबक्षत्रियों को सगरनेमारडालाथा॥२८॥तालजंघके
सौ पुत्रों में से वीतिहोत्र जेठाथा। वृष्णिमधुका पुत्रथा उसमधु के सौपुत्रउत्पन्नहुए उननें से वृष्णिसबसे
जेठाथा॥२८॥ हेराजन्! यदु, मधु और वृष्णि के कारण यह वंश यादव, माधव और वृष्णि के नाम से
विख्यात हुआ। यदुकापुत्र जो क्रोष्टुथा उसके वृजिनवानपुत्रहुआ ॥ ३०॥ वृजिनवानकापुत्रस्वाहित,
उसका रुशेकु, इसकापुत्र चित्ररथ, उसकापुत्र महायोगी शशबिंदुहुआ ॥ ३१ ॥ इसकेपास बड़े २
चौदहरत्नथे यह किसीसेनहीं हारनेवाला चक्रवर्ती राजाहुआ इसके दशसहस्र स्त्रियेंथी ॥३२॥ प्रत्येक-
कासे एक२लक्षपुत्र उत्पन्नहुए इससे उसके एक अरबपुत्र हुए। उनसबपुत्रों में से पृथुश्रवा,पृथु
कीर्ति,पृथुयशाआदि छःजनप्रधानथे॥३३॥उनमेंसे पृथुश्रवाकापुत्रधर्म,उसकापुत्र उशनाहुआ।उशना
ने सौअश्वमेधयज्ञकिये। उशनाकापुत्ररुचकथा रुचकके पांचपुत्र॥३४॥पुरुजित,रुक्म,रुक्मेषु,पृथु और
ज्यामघहुए। इनमें से ज्यामघकी शैब्यानामकभार्याथी। ज्यामघ निःसन्तानथा तौभी स्त्री के भयसे
उसने दूसरी स्त्री का ग्रहणनहीं किया॥३५॥ वह एकसमयशत्रुके घरसे भोज्यानामक एककन्याका
हरण करके लियेहुएआरहा, उसकन्याको रथपरबैठीहुई देख शैब्याक्रोधितहो पति से कहनेलगीकि
॥ ३६॥ यहक्या? किसे रथपर बैठायेहुएलारहा है? ज्यामघने कहाकि यह तेरेपुत्रकी बहूहै। ज्या-
मघकी इसबातको सुनकर शैब्याविस्मितहो कहनेलगी ॥३७॥ कि मैंतो बन्ध्याहूं और मेरे सपत्नी
भी नहीं है फिरयह मेरे पुत्रकी बहू कैसे होसकती है? ज्यामघ ने कहाकि हेराज्ञि! तेरे जोपुत्र उ-
त्पन्न होगा उसीकी यह स्त्री होगी ॥३८॥ हेराजन्! देवता और पितर ज्यामघकी इसबातको सु-
नकर अत्यन्त प्रसन्नहुए। तदनन्तर शैब्याने गर्भधारण कर नियतसमय में उसने एकपुत्रउ-
त्पन्नकिया। उस कुमारकानाम विदर्भहुआ,इसने अपने पिताकी लाईहुई साध्वीसे बिवाहकिया॥३९॥
इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेनवमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥
श्री शुकदेवजी बोलेकि—हेराजन्! विदर्भ ने उसस्त्री से कुश और क्रथनामकदोपुत्र उत्पन्नकिये
विदर्भका कुलनन्दनरोमपाद तीसरापुत्रहुआ ॥१॥ रोमपादकापुत्र बभ्रु, बभ्रुसे कृति उत्पन्नहुआ।
कृतिकापुत्र उशिक,उशिकसे चेदि और दमघोषआदि उत्पन्नहुए ॥२॥ हे राजन्! विदर्भकेपुत्रक्रथ

सुतः । ततोनवरथःपुत्रोजातोदशरथस्ततः ॥ ४ ॥ करम्भिःशकुनेःपुत्रोदेवरातस्त-
दात्मजः । देवक्षत्रस्ततस्तस्यमधुःकुरुवशादनुः ॥ ५ ॥ पुरुहोत्रस्त्वनोःपुत्रस्तस्या
युःसात्वतस्ततः । भजमानोभजिर्दिव्योवृष्णिर्देवावृधोऽन्धकः ॥ ६ ॥ सात्वतस्य
सुताःसप्तमहाभोजश्चमारिष । भजमानस्यनिम्लोचिःकिंकिणोधृष्टिरेवच ॥ ७ ॥
एकस्यामात्मजाःपत्न्यामन्यस्यांचत्रयःसुताः । शताजिच्चसहस्राजिदयुताजिदि
तिप्रभो ॥ ८ ॥ बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोःश्लोकौपठन्त्यमू । यथैवशृणुमोदूरात्संपश्या
मस्तथाऽन्तकात् ॥ ९ ॥बभ्रुःश्रेष्ठोमनुष्याणांदेवैर्देवावृधःसमः। पुरुषाःपञ्चषष्टि-
श्चषट्सहस्राणिचाष्ट च ॥ १० ॥ येऽमृतत्वमनुप्राप्ताबभ्रोर्देवावृधादपि ।महाभोजो-
पिधर्मात्माभोजाआसंस्तदन्वये ॥ ११ ॥ वृष्णेःसुमित्रःपुत्रोऽभूद्युधाजिच्चपरंतप ।
शिनिस्तस्यानमित्रश्चनिघ्नोऽभूदनमित्रतः ॥ १२ ॥ सत्राजितःप्रसेनश्चनिम्नस्या
प्यासतुःसुतौ । अनमित्रसुतोयोऽन्यःशिनिस्तस्याथसत्यकः ॥ १३ ॥युयुधानःसात्य
किर्वैजयस्तस्यकुणिस्ततः । युगन्धरोऽनमित्रस्यवृष्णिःपुत्रोपरस्ततः ॥१४॥ श्वफ-
ल्कश्चित्ररथश्चगांदिन्यांचश्वफल्कतः । अक्रूरप्रमुखाआसन्पुत्राद्वादशविश्रुताः १५
आसङ्गःसारमेयश्चमृदुरोमृदुविद्गिरिः । धर्मवृद्धःसुकर्माचक्षेत्रोपेक्षोऽरिमर्दनः १६
शत्रुघ्नोगन्धमादश्चप्रतिबाहुश्चद्वादश । तेषांस्वसासुचीराख्याद्वावक्रूरसुतावपि
॥ १७ ॥ देववानुपदेवश्चतथाचित्ररथात्मजाः । पृथुर्विदूरथाद्याश्चबहवोवृष्णिनन्द
नाः ॥ १८ ॥ कुकुरोभजमानश्चशुचिःकम्बलबर्हिषः । कुकुरस्यसुतोवह्निर्विलोमा
तनयस्ततः ॥ १९ ॥ कपोतरोमातस्यानुःसखायस्यचतुम्बुरुः । अन्धकादुन्दु
भिस्तस्य दरिद्योत पुनर्वसुः ॥ २० ॥ तस्याहुकश्चाहुकीच कन्याचैवाहुकात्मजौ ।

का कुन्ति उसका धृष्टि उसका निर्वृति, निर्वृतिकापुत्र दशार्ह, दशार्हकापुत्र व्योम ॥३॥ व्योमकापुत्र जीमूत, जीमूतकापुत्र विकृति, विकृतिकापुत्रभीमरथ, भीमरथकापुत्रनवरथहुआ । नवरथकापुत्रद-शरथ ॥४॥ उसका शकुनि, शकुनिकाकरम्भि, उसका देवरात, देवरातकादेवक्षत्र, उसकापुत्रमधु, मधुसे कुरुवंश उत्पन्नहुआ कुरुवंशकापुत्रमनु ॥५॥ उसकापुरुहोत्र, पुरुहोत्रकापुत्रआयु और उस से सात्वतकी उत्पत्तिहुई । हेआर्य ! सात्वतके सातपुत्र भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध,अन्धक ॥६॥ उत्पन्नहुए । भजमान के दो स्त्रियें थीं । एकस्त्री से निम्लोचि, किंकण और धृष्टि ॥ ॥७॥यह तीनपुत्र और दूसरी पत्नी से शताजित् ,सहस्राजित और अयुताजित यहतीनपुत्रहुए॥८॥ देवावृधका पुत्र बभ्रुथा । इन देवावृध और बभ्रुके प्रसंगमें दोश्लोक कहेजातेहैं सो यहहैं देवावृध और बभ्रुको जैसा दूरसे हमनेसुनाथा निकटसे वैसाहीदेखा॥९॥बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ और देवावृध देवताओं की समानहैं । ६०७३ मनुष्य बभ्रु और देवावृधके उपदेशसे मोक्षको प्राप्तहुए सात्वतकापुत्र महाभोज अत्यन्तही धर्मात्माथा उसकेवंशमें भोजगणोंकी उत्पत्तिहुई १०-११।हेपरतप ! सात्वतकेपुत्र वृष्णि के सुमित्र और युधाजित दोपुत्रथे । युधाजितकापुत्रशिनि और अनमित्रथा।अनमित्रकेपुत्र निम्नके १२ सत्राजित और प्रसेन यह दोपुत्रहुए।हेराजन् !अनमित्रके शिनिनामक एकऔरभी पुत्रथा उसका पुत्र सत्यकहुआ॥१३॥ उस सत्यककापुत्र युयुधान,उसकापुत्र जय, जयकापुत्रकुणि कुणिसे युगन्धरका जन्महुआ । अनमित्रके वृष्णिनामसे और एक पुत्रथा॥१४॥उसकापुत्र श्वफल्कहुआ।उससे गांदिनी के गर्भसे अक्रूर और दूसरे १२ विख्यात पुत्र उत्पन्नहुए १५॥वेआसंग, सारमेय मृदुर,मृदुविद, गिरि, धर्मवृद्ध, सुकर्मा, क्षेत्रोपेक्ष, अरिमर्दन॥१६॥शत्रुघ्न,गंधमाद और प्रतिबाहु इननामोंसे प्रसिद्धथे इन के सुचारा नामक एक बहिनभी हुईथी । अक्रूरके देववान और उपदेव नामक दोपुत्र उत्पन्नहुए । चित्ररथके पृथु विदूरथ आदि बहुतसे पुत्रउत्पन्नहुएथे वे सबही वृष्णिवंशीथे १७—१८। अन्धकके कुकुर, भजमान शुचि, कम्बल बर्हिष यह चारपुत्र उत्पन्नहुये, । उनमेंसे कुकुरका सुत वह्नि, वह्निका विलोमा॥१९॥विलोमाका कपोतरोमा उसकासुत अनुहुआ तुंबुरु उस अनुका सखाथा ।अनुकासुत अन्धक उसकादुन्दुभिथा । दुंदुभिकासुत दरिद्योत उसका पुनर्वसु॥२०॥पुनर्वसुकासुतआहुक और

देवकश्चोग्रसेनश्च चत्वारो देवकात्मजाः ॥२१॥ देववानुपदेवश्च सुदेवो देववर्धनः ।
तेषां स्वसारः सप्तासन्धृतदेवादयो नृप ॥ २२ ॥ शान्तिदेवोपदेवा च श्रीदेवा देवर-
क्षिता । सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः ॥ २३ ॥ कंसः सुनामा न्यग्रोधः कंकः
शंकुः सुहूस्तथा । राष्ट्रपालोऽथ सृष्टिश्च तुष्टिमानौग्रसेनयः ॥२४॥ कंसा कंसवती कंका
शूरभू राष्ट्रपालिका । उग्रसेनदुहितरो वसुदेवानुजस्त्रियः ॥ २५ ॥ शूरो विदूरथा
दासीद्भजमानः सुतस्ततः । शिनिस्तस्मात्स्वयं भोजो हृदीकस्तत्सुतो मतः ॥२६॥
देवबाहुः शतधनुः कृतवर्मेति तत्सुताः । देवमीढस्य शूरस्य मारिषा नाम पत्न्यभूत् ।
॥ २७ ॥ तस्यां स जनयामास दश पुत्रानकल्मषान् । वसुदेवं देवभागं देवश्रवसमा
नकम् ॥ २८ ॥ सृंजयं श्यामकं कंकं शमीकं वत्सकं वृकम् । देवदुन्दुभयो नेदुरानका
यस्य जन्मनि ॥२९॥ वसुदेवं हरेः स्थानं वदन्त्यानकदुन्दुभिम् । पृथा च श्रुतदेवा च
श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवाः ॥ ३० ॥ राजाधिदेवी चैतेषां भगिन्यः पंच कन्यकाः । कुन्तेः स
ख्युः पिता शूरो ह्यपुत्रस्य पृथामदात् ॥ ३१ ॥ साऽऽप दुर्वाससो विद्यां देवहूतीं प्रतो-
षितात् । तस्या वीर्यपरीक्षार्थमाजुहाव रविं शुचिम् ॥ ३२ ॥ तदैवोपागतं देवं वीक्ष्य
विस्मितमानसा । प्रत्ययार्थं प्रयुक्ता मे याहि देव क्षमस्व मे ॥ ३३ ॥ अमोघं दर्शनं देवि
आधत्से त्वयि चात्मजम् । योनिर्यथा न दुष्येत कर्ताऽहं ते सुमध्यमे ॥ ३४ ॥ इति तस्यां
स आधाय गर्भं सूर्यो दिवं गतः । सद्यः कुमारः संजज्ञे द्वितीय इव भास्करः ॥३५॥ तं सा
ऽत्यजन्नदीतोये कृच्छ्राल्लोकस्य बिभ्यती । प्रपितामहस्तामुवाह पाण्डुर्वै सत्यविक्रमः ॥
३६॥ श्रुतदेवां तु कारूषो वृद्धशर्मा समग्रहीत् । यस्यामभूद्दन्तवक्त्र ऋषिशप्तो दितेः सुतः
॥३७॥ कैकेयो धृष्टकेतुश्च श्रुतकीर्तिमविन्दत । सन्तर्दनादयस्तस्यां पञ्चासन्कैकयाः

आहुककेहुए आहुकके दो सुत देवक और उग्रसेन हुये। देवकके चार पुत्र ॥२१॥ देववान, उपदेव, सुदेव और देववर्धन यह हे राजन्! उनके धृतदेवा आदि सात बहिनें थीं ॥२२॥ धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी इन नामोंसे प्रसिद्ध थीं. इन सातों कन्याओंसे वसुदेवनेही विवाह किया।
॥ २३ ॥ हे राजन्! उग्रसेनके कंस, सुनाम, न्यग्रोध कंक, शंकु, सुहू, राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान उत्पन्नहुये ॥२४॥ इनके अतिरिक्त कंसा कंसवती, कंका, शूरभू और राष्ट्रपालिका यह पांच कन्यायें थीं। यह वसुदेवके भाई देवभागादिकी स्त्रियेंहुई॥ २५ ॥ चित्ररथकेसुत विदूरथसे शूरने जन्मग्रहण किया। उसकासुत भजमान उसका शिनिहुआ। शिनिकासुत भोज उसका हृदिकहुआ॥ २६ ॥ उससे देवबाहु, शतधनु और कृतवर्मा यह तीनसुत उत्पन्नहुये देवमीढकासुत शूरहुआ उसके मारिषानामक एकस्त्रीथी॥२७॥शूरनेमारिषा के गर्भमे वसुदेव, देवभाग, देवश्रव आनक सृंजय, श्यामक, कंक, शमीक और वत्सक वृक नामक दश निष्पाप सुत उत्पन्न किये वसुदेवके जन्मसमयमें देवताओंने स्वर्गमें दुंदुभी आदि बाजे बजायेथे ।२८–२९। इसहीकारण उन हरिके प्रादुर्भाव आश्रयरूप वसुदेवको आनक दुंदुभी कहते हैं। इनके पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा॥३०॥ और राजाधिदेवी पांचबहिने थीं। शूरने अपने मित्र कुन्तिराजको अपुत्रके देख अपनीपुत्री उसको देदीथी ॥३१॥ इस पृथाने दुर्वासा ऋषिको संतुष्ट करके उनसे "देवहूति" नामक विद्या प्राप्तकी थी फिर प्रसन्न उस विद्याकी परीक्षा के निमित्त पवित्रहो सूर्य देवका आह्वानकिया॥३२॥ आह्वान करतेही सूर्य देव तत्कालहीवहांपर आ उपस्थित हुए। उनको देखतेही उसे अत्यंत विस्मय उत्पन्न हुआ। कुंती (पृथा) ने विनयपूर्वक उनसे कहाकि—हेदेव! मैंने केवल परीक्षाही के निमित्त इस विद्याका प्रयोग कियाथा। इस समय आपजाओ मेराअपराध क्षमा करो ॥ ३३ ॥ सूर्यने कहाकि देवताका दर्शन व्यर्थ नहीं होता; मैं तुम्हारे गर्भाधानाके जिससे योनिन बिगडे ऐसा करदूंगा ॥ ३४ ॥ इस प्रकार से कह सूर्य गर्भाधान कर वहां से चलेगये। उनके जातेही तत्काल दूसरे सूर्यकी समान कुंतीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३५ ॥ पृथाने लोकभय से भयभीतहो उस पुत्र को नदीके जलमें डालदिया फिरतुम्हारे प्रपितामह सत्य विक्रम पाण्डुने पृथाका पाणिग्रहण किया ॥ ३६ ॥ श्रुतदेवा से कारूषवंशी वृद्धशर्मा ने विवाह

सुताः॥३८॥राजाधिदेव्यामावंत्यौजयसेनोऽजनिष्टह।दमघोषश्चेदिराजःश्रुतश्रवस-
मग्रहीत्॥३९॥शिशुपालःसुतस्तस्याःकथितस्तस्यसंभवः।देवभागस्यकंसायांचि-
त्रकेतुबृहद्बलौ॥४०॥कंसवत्यांदेवश्रवसःसुवीरइषुमांस्तथा।कङ्कायामानकाज्जातः
सत्याजित्पुरुजित्तथा॥४१॥सृंजयाराष्ट्रपाल्यांचवृषदुर्मर्षणादिकान्।हरिकेशहिरण्या
क्षौशूरभूम्यांचश्यामकः॥४२॥मिश्रकेश्यामप्सरसिवृकादीन्वत्सकस्तथा।तक्षपुष्क
रशालादीन्दुर्वाक्ष्यांवृकआदधे॥४३॥सुमित्राऽर्जुनपालादीञ्छमीकात्तुसुदामिनी।
कङ्कश्चकर्णिकायांवैऋतधामजयावपि॥४४॥पौरवीरोहिणीभद्रामदिरारोचनाइला।
देवकीप्रमुखाआसन्पत्न्यआनकदुन्दुभेः॥४५॥बलंगदंसारणंचदुर्मदंविपुलंध्रुवम्।
वसुदेवस्तुरोहिण्यांकृतादीनुदपादयत्॥४६॥सुभद्रोभद्रबाहुश्चदुर्मदोभद्रएवच।
पौरव्यास्तनयाह्येतेभूताद्याद्वादशाभवन्॥४७॥नन्दोपनन्दकृतकशूराद्यामदिरात्म-
जाः।कौशल्याकेशिनंत्वेकमसूतकुलनन्दनम्॥४८॥रोचनायामतोजाताहस्तहेमाङ्ग-
दादयः॥इलायामुरुवल्कादीन्यदुमुख्यानजीजनत्॥४९॥विपृष्ठोधृतदेवायामेकआ
नकदुन्दुभेः।शांतिदेवात्मजाराजञ्छमप्रतिश्रुतादयः॥५०॥राजानःकल्पवर्षाद्याउप
देवासुतादश।वसुहंससुवंशाद्याःश्रीदेवायास्तुषट्सुताः॥५१॥देवरक्षितयालब्धानं
वचात्रगदादयः।वसुदेवःसुतानष्टावादधेसहदेवया॥५२॥पुरुविश्रुतमुख्यांस्तुसाक्षा
द्धर्मोवसूनिव।वसुदेवस्तुदेवक्यामष्टपुत्रानजीजनत्॥५३॥कीर्तिमंतंसुषेणंचभद्रसेन
मुदारधीः।ऋजुंसमर्दनंभद्रंसंकर्षणमहीश्वरम्॥ ५४ ॥अष्टमस्तुतयोरासीत्स्वयमेव
हरिःकिलासुभद्राचमहाभागातवराजन्पितामही॥५५॥यदायदाहिधर्मस्यक्षयोवृद्धि-

किया। उसके गर्भमें दितिके पुत्र दंतवक्रने ऋषिके शापवश जन्म ग्रहण किया ॥ ३७ ॥ कैकेयवंशी धृष्टकेतुने श्रुतकीर्तिका पाणिग्रहण कियाथा; उसके सन्तर्दन आदि पांचपुत्र उत्पन्न हुएथे ॥ ३८॥ जयसेन ने राजाधिदेवीका पाणिग्रहणकर उसके गर्भमें विन्द और अनुविंद नामक दोपुत्र उत्पन्न किये। चेदिराज दमघोष ने श्रुतश्रवाका पाणिग्रहण किया ॥ ३९ ॥ उसका पुत्र शिशुपाल हुआ इसकी उत्पत्तिका वर्णनकर आये हैं। देवभाग के वीर्यसे कंसाके गर्भमें चित्रकेतु और बृहद्बल॥४०॥ देवश्रवा के वीर्यसे कंसवती के गर्भमें सुवीर और इषुमान, कंकके वीर्यसे कंकाके गर्भमें बक, सत्यजित और पुरुजित् ॥ ४१ ॥ सृंजयके वीर्यसे राष्ट्रपाला के गर्भमें वृष दुर्मर्षण आदि; श्यामक के वीर्यसे शूरभूमि के गर्भमें हरिकेश और हिरण्याक्ष ॥ ४२ ॥ वत्सक के वीर्यसे मिश्रकेशी अप्सरा के गर्भमें वृकादि, वृकके वीर्यसे दुर्वाक्षी के गर्भमें तक्ष और पुष्करशाल आदि ॥ ४३ ॥ समीक के वीर्यसे सुदामनी के गर्भमें सुमित्र, अर्जुनपाल आदि, और आनकके वीर्यसे कर्णिका के गर्भमें ऋतधामा और जय उत्पन्न हुए ॥ ४४ ॥ पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला और देवकी आदि वसुदेवकी औरभी स्त्रियेंथीं ॥ ४५ ॥ उनमें से रोहिणी के गर्भसे बलदेव, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव और कृतादि पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४६ ॥ पौरवीसे सुभद्र, भद्रबाहु, दुर्मद, भद्र और भूत आदि वारह पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४७ ॥ मदिराके गर्भमे नंद, उपनंद, कृतक, और शूरआदि उत्पन्न हुए। भद्राने कुलनंदन केशिनामक एकपुत्र उत्पन्न किया ॥४८ ॥ रोचना के गर्भसे हस्त, हेमांगद आदिपुत्र उत्पन्न हुए। वसुदेव के इलाके गर्भसे उरुवल्क आदि श्रेष्ठयदु उत्पन्न हुए ॥४९॥ धृतदेवा के गर्भसे विपृष्ठने जन्म ग्रहण किया। शांतिदेवा के गर्भसे श्रम, प्रतिश्रुत आदि पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५०॥ उपदेवा के गर्भसे राजन्य, कल्प, वर्षआदि दशपुत्र, श्रीदेवाके गर्भसे वसु, हंस, सुवंश आदि छहपुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५१ ॥ और देवरक्षिता के गर्भसे गदआदि नौपुत्र उत्पन्न हुए। जैसे साक्षात् धर्मने वसुओंका उत्पन्न कियाथा उसी प्रकार से वसुदेव ने सहदेवाके गर्भसे प्रवर श्रुतमुख्य, आदि आठपुत्र किये ॥५२॥ देवकी सेभी वसुदेव के आठपुत्र कीर्तिमान, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, संमर्दनभद्र, शेषनाग के अवतार संकर्षण और आठवें गर्भमें साक्षात् भगवान हरिउत्पन्न हुए। तुम्हारी पितामही महाभागा सुभद्रा भी उन्हीं से उत्पन्न हुई ॥ ५३-५५ ॥ जिस २

अपाप्मनः॥ तदात्मभगवानीशआत्मानंसृजतेहरिः॥५६॥नह्यस्यजन्मनोहेतुःकर्मणोवा महीपते।आत्ममायांविनेशस्यपरस्यद्रष्टुरात्मनः॥५७॥यन्मायाचेष्टितंपुंसःस्थित्युत्प स्यप्ययायहि।अनुग्रहस्तन्निवृत्तेरात्मलाभायचेष्यते॥ ५८ ॥अक्षौहिणीनांपतिभिरसु रैर्नृपलाञ्छनैः।भुवआक्रम्यमाणायाअभारायकृतोद्यमः॥ ५९॥कर्माण्यपरिमेयाणिमन साऽपिसुरेश्वरैः।सहसंकर्षणश्चक्रेभगवान्मधुसूदनः॥ ६०॥कलौजनिष्यमाणानांदुः खशोकतमोनुदम्।अनुग्रहायभक्तानांसुपुण्यंव्यतनोद्यशः॥६१॥यस्मिन्सत्कर्णपीयूषे यशस्तीर्थवरेसकृत्।श्रोत्राञ्जलिरुपस्पृश्यधुनुतेकर्मवासनाम्॥ ६२ ॥भोजवृष्ण्यन्ध कमधुशूरसेनदशार्हकैः।श्लाघनीयेहितःशश्वत्कुरुसृञ्जयपाण्डुभिः॥६३॥स्निग्धस्मि तेक्षितोदारैर्वाक्यैर्विक्रमलीलया।नृलोकंरमयामासमूर्त्यासर्वाङ्गरम्यया॥६४॥यस्या ननमकरकुण्डलचारुकर्णभ्राजत्कपोलसुभगंसविलासहासम्। नित्योत्सवंनततृपुर्दृ शिभिःपिबन्त्योनार्योनराश्चमुदिताःकुपितानिमेश्च॥ ६५ ॥जातोगतःपितृगृहाद्व्रज मेधितार्थोहत्वारिपून्सुतशतानिकृतोरुदारः।उत्पाद्यतेषुपुरुषःक्रतुभिः समीजेआत्मा नमात्मनिगमंप्रथयञ्जनेषु॥६६॥पृथ्व्याःसवैगुरुभरंक्षपयन्कुरूणामन्तःसमुत्थकलि नायुधिभूपचम्वः। दृष्ट्याविधूयविजयेजयमुद्विघोष्यप्रोच्योद्धवायचपरंसमगात्स्व धाम ॥ ६७ ॥ इतिश्रीमद्भा०म०नवम०चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

समय धर्मका नाश और अधर्म की वृद्धिहोती है उसी २ समय में भगवान हरि अपनेको उत्पन्न करते है ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! नहींतो जोमाया के नियंता, संगरहित, सर्वसाक्षी, और सर्वगत हैं उन भगवानको अपनी मायाके अतिरिक्त दूसरा कोईभी जन्म व कर्मका कारण नहीं है ॥५७॥ उनकी मायाकी चेष्टा प्राणियों के पक्षमें अनुग्रह स्वरूप है क्योंकि वही सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कारण हैं-उसीके द्वारा सृष्टिआदि की निवृत्ति होनेसे वह जीवके पक्षमें मोक्षकाभी कारण होती है ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! अनेक अक्षौहिणी वाले नृपति चिह्नधारी असुरों क पृथ्वीपर आक्रमण करने से पृथ्वी बड़ेभार से दुःखित होरही थी; उसी भारदूर करने के निमित्त भगवानका इस कारणसे अवतार हुआथा ॥ ५९ ॥ क्योंकि जोसब कर्म देवताओं केभी मनद्वारा तर्कना करने से नहीं उठसकते, भगवान हरिने संकर्षण के साथ उन सबकर्मोंको किया ॥ ६० ॥ हे राजन्! भगवान सर्व शक्तिमान हैं, यद्यपि वह केवल संकल्पसेही पृथ्वीका भार हरण करसकते थे, तौभी कलियुग में जोभक्त उत्पन्न होंग उनके ऊपर अनुग्रह प्रकाशकर दुःख और तमोगुण के नाशक पवित्र यशका विस्तारकिया ॥ ६१ ॥ वे यश साधुओं के कर्णामृत और श्रेष्ठतीर्थ स्वरूप हैं; केवल एकवार श्रोत्ररूप अंजली द्वारापान करनेसे पुरुष कर्म वासनाओंके छोड़ने में भली प्रकारसे समर्थ होसकता है ॥६२अतएव भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन; दशार्ह; कुरु, सृंजय और पांडुवंशीय मनुष्य सदैव ही उनके चरित्रोंकी प्रशंसा किया करतेहैं।६३॥उन भगवानने स्निग्ध हास्ययुक्त दृष्टि उदार वचन पराक्रम और सर्वांग सुंदर मूर्त्तिद्वारा सब मनुष्योंको आनन्दित किया॥ ६४॥ मकराकृत कुण्डलोंसे दोनों कानों और दोनों कपोलोंकी कैसी शोभा होतीथी ! विलासयुक्त हास्य उस मुखमें होरहाथा। इसीकारण उस उत्सववाले मुखको दृष्टि द्वारापान करके स्त्री पुरुष तृप्त नहीं होतेथे । यद्यपि उनके भुवन मोहनरूपको देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न होते परंतु दर्शनोंमें विघ्न करनेवाली पलकोंपर बारंबार क्रोधित होते॥६५॥हेराजन्! श्रीकृष्ण निजरूपसे जन्मग्रहणकर फिर मनुष्याकारहो पिताके घरसे व्रजमें आये और वहां शत्रुओंका नाशकर व्रजवासियोंकी इच्छापूर्णकी।तदनंतर बहुतसी स्त्रियों को ग्रहणकर उनसबमें सौ२ पुत्र उत्पन्न किये और लोकमें अपनेकियेहुए वेदमार्गका विस्तारकर अनेक यज्ञोंद्वारा अपनीही पूजाकी॥६६॥कौरवोंके मध्यमें खड़ेहो युद्धकाकारणकर युद्धमेंदृष्टिद्वारा राजाओंकी सेनाका नाशकर पृथ्वीके बड़े बोझको दूरकर अर्जुनको जिताय उद्धवको तत्वज्ञानका उपदेशदे भगवान अपने धामको गये॥ ६७ ॥ इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेनवमस्कन्धे सारस्वतवंशज श्रीमत्पण्डितवर जगन्नाथात्मज पण्डित कन्हैयालाल निर्मित सरलाभाषाटीकायांचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

ॐ

* श्रानकश्रावह रा नम *

श्रीमद्भागवत

दशमस्कन्ध.

मुरादाबाद निवासी सारस्वतवंशोद्भव
पण्डित जगन्नाथात्मज
पण्डित-कन्हैयालालउपाध्याय·
द्वारा अनुवादित

और भागवत् प्रकाश कार्यालयद्वारा प्रकाशित।

पं० बलदेवप्रसादमिश्र

मैनेजर तत्त्वप्रभाकर प्रेस द्वारा मुद्रित।

मुरादाबाद·

संवत् १९ ८ सन् १९०१ ई०

॥ श्रीहरिः ॥

मङ्गलाचरण

* जुगल छवि आज अनूपबनी *

* श्रीनिकुञ्जविहारिणेनमः *



* श्रीश्याम गौरछबिराधानखसिख छबिकमनी ॥ १ ॥ *

* कलितकिशोरीलाल रसिकवर, मृदुमुसकानिमनी ॥ २ ॥

* खंजननयन मयन मदगंजन, अंजनरेखसनी *

श्रीमद्भागवत भाषाटीका सहित

दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ राजोवाच ॥ कथितोवंशविस्तारोभवतासोमसूर्ययोः । राज्ञांचोभयवंश्यानांचरितंपरमाद्भुतम् ॥ १ ॥ यदोश्चधर्मशीलस्य नितरांमुनिसत्तम । तत्रांशेनावतीर्णस्यविष्णोर्वीर्याणिशंसनः ॥ २ ॥ अवतीर्ययदोर्वंशेभगवान्भूतभावनः । कृतवान्यानिविश्वात्मातानिनोवदविस्तरात् ॥ ३ ॥ निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् । कउत्तमश्लोकगुणानुवादात्पुमान्विरज्येत

राजा परीक्षित नें श्रीशुकदेवजी से कहा कि चन्द्र और सूर्य वंश का विस्तारित वर्णन आपने किया दोनों वंश वाले राजाओंके अद्भुत चरित्रों का वर्णन ॥ १ ॥ तथा धर्म शील यदुके वंशकाभी वर्णन किया अब उसी वंश में अंश से उत्पन्नहुए भगवान विष्णु के पराक्रम की कथा कहो ॥ २ ॥ भूत भवान भगवान् नें यदु वंशमें अवतार के जो २ अद्भुत कर्म कियेथे, आप उन सबको विस्तार सहित मुझसे कहो ॥ ३ ॥ मुक्त मनुष्यभी उन उत्तम श्लोक भगवान के गुणों का कीर्त्तन करते हैं, मुमुक्षुलोगों का संसारसे छूटनेंका यही एक उपायहै, क्योंकि संसार रूपी रोगकी औषधि तथा कानं

विनापशुघ्नात् ॥ ४ ॥ पितामहामेसमरेऽमरञ्जयैर्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिङ्गिलैः। दुरत्ययंकौरवसैन्यसागरंकृत्वाऽतरन्वत्सपदंस्मयत्प्लवाः ॥ ५ ॥ द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदंमदङ्गंसंतानबीजंकुरुपाण्डवानाम्। जुगोपकुक्षिंगतआत्तचक्रोमातुश्चमेयः शरणंगतायाः ॥ ६ ॥ वीर्याणितस्याखिलदेहभाजामन्तर्बहिः पूरुषकालरूपैः। प्रयच्छतोमृत्युमुतामृतंचमायामनुष्यस्यवदस्वविद्वन् ॥ ७ ॥ रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तोरामः संकर्षणस्त्वया। देवक्यागर्भसंबन्धः कुतोदेहान्तरंविना ॥ ८ ॥ कस्मान्मुकुन्दोभगवान्पितुर्गेहाद्व्रजंगतः। क्ववासंज्ञातिभिः सार्धंकृतवान्सात्वतांपतिः ॥ ९ ॥ व्रजेवसन्किमकरोन्मधुपुर्यांचकेशवः। भ्रातरं चावधीत्कंसं मातुरद्धाऽतदर्हणम् ॥ १० ॥ देहंमानुषमाश्रित्यकतिवर्षाणिवृष्णिभिः। यदुपुर्यांसहावात्सीत्पत्न्यः कत्यभवन्प्रभोः ॥ ११ ॥ एतदन्यच्चसर्वंमेमुनेकृष्णविचेष्टितम्। वक्तुमर्हसिसर्वज्ञश्रद्दधानायविस्तृतम् ॥ १२ ॥ नैषाऽतिदुःसहाक्षुन्मांत्यक्तोदमपिबाधते। पिबन्तंत्वन्मुखाम्भोजच्युतंहरिकथामृतम् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ एवंनिशम्यभृगुनन्दनसाधुवादंवैयासकिः सभगवानथविष्णुरातम्। प्रत्यर्च्यकृष्णचरितंकलिकल्मषघ्नंव्याहर्तुमारभतभागवतप्रधानः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सम्यग्व्यवसिताबुद्धिस्तवराजर्षिसत्तम। वासुदेवकथायांतेयज्जातानैष्ठिकीरतिः ॥ १५ ॥ वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन्पुनातिहि। वक्तारंपृच्छकंश्रोतॄंस्तत्पादसलिलं यथा ॥ १६ ॥

और मनको सुखकर होनेसे यही विषयी मनुष्योंका एक मात्र विषय है पशुघाती मनुष्य के अतिरिक्त और कौन मनुष्य उस से विरक्त होसकता है ॥४॥ देवताओं के जीतनेवाले अतिरथी भीष्मादि रूप मत्स्यों से परिपूर्ण कौरव सैन्य रूपी सागरका पारहोना अत्यंत कठिन था परन्तु हमारे पितामह भगवान के दोनों चरण को नावकर गौके खुर की समान सहजही में उस सागरसे पारहुए थे ॥५॥ कुरु पांडव संतति की बीज रूप मेरे इस देहके अश्वत्थामा की अस्त्र अग्नि द्वारा दग्ध होनेपर जिन भगवान नें चक्र धारण कर शरण में आई मेरी माताके गर्भमें प्रवेशकर रक्षा कीथी ॥ ६ ॥ जो कालस्वरूप से सम्पूर्ण प्राणियों के भीतर और बाहर स्थित हैं। मोक्ष और संसार को देतेहैं उन माया मय भगवान के सम्पूर्ण पराक्रम मुझसे कहो ॥ ७ ॥ आपनें कहा कि बलदेवजी रोहिणी के सुत हैं फिर कहते हो कि देवकी के सुत हैं सो दूसरी देह विना धारण किये देवकी के गर्भमें प्रवेश करना कैसे सम्भव होसकता है ॥ ८ ॥ भगवान श्रीकृष्णजी किस कारण पिता के घरसे व्रजमेंगए सात्वतपति भगवान् नें ज्ञातिवालों के साथ कहांपर वास किया ॥९॥ केशव ने व्रज और मथुरा मे निवासकर कौन २ कार्य किये थे माता के भाई नमारने योग्य कंस को सम्बन्ध होनेंपर भी अपनें हाथ से क्यों मारा ॥ १० ॥ मनुष्य देह धारणकर भगवान कितनें समय तक वृष्णिगणो के साथ मथुरामें रहे उनके कितनी स्त्रियां थीं ॥ ११ ॥ हे मुने ! हे सर्वज्ञ ! इनको तथा और भी दूसरे कृष्ण चरित्रों को कहो उनके सुननेकी मेरी इच्छा है ॥१२॥ आपके मुख से जो हरिकथा रूप अमृत निकलता है मैं उसको भली भांति पान करता हूं इसी से यद्यपि मैंनें जल का पान करना तक छोड़दिया है तौभी क्षुधामुझको दुःख नहीं देसकती ॥ १३ ॥ सूतजी ने कहा कि—हे शौनक ! परम भागवत, व्यासजी के पुत्र शुकदेवजीने राजा परीक्षित की इस उत्तम बातको सुनकर उनकी प्रशंसाकर, कलिके पाप नाशक श्रीकृष्णजी के चरित्रोंका कहना आरंभ किया ॥१४॥ शुकदेवजी नेंकहाकि—हे उत्तम राजर्षि ! तुम्हारी बुद्धिने अतिउत्तम निश्चय किया है किजो ऐसे विषयों में प्रवृत्त हुई है इसही कारण श्रीकृष्णजी की कथामें तुम्हारी नैष्ठिकी भक्ति उत्पन्न हुई ॥ १५ ॥ विष्णुजीका चरणोदक अर्थात् गंगा जैसे नहाने वालोंकी तीन पीढ़ियोंको पवित्र करती है

भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः। आक्रान्ताभूरिभारेणब्रह्माणंशरणंययौ ॥१७॥
गौर्भूत्वाऽश्रुमुखीखिन्नाक्रन्दन्तीकरुणंविभोः । उपस्थिताऽन्तिकेतस्मैव्यसनंस्वम
वोचत ॥ १८ ॥ ब्रह्मातदुपधार्याऽथसहदेवैस्तयासह । जगामसत्रिनयनस्तीरंक्षीर
पयोनिधेः॥१९॥तत्रगत्वाजगन्नाथंदेवदेवंवृषाकपिम् । पुरुषंपुरुषसूक्तेनउपतस्थेस
माहितः ॥२० ॥ गिरंसमाधौगगनेसमीरितांनिशम्यवेधास्त्रिदशानुवाचह । गांपौ
रुषींमेशृणुताऽमराः पुनर्विधीयतामाशुतथैवमाचिरम् ॥ २१ ॥ पुरैवपुंसाऽवधृतो
धराज्वरोभवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् । सयावदुर्व्याभरमीश्वरेश्वरः स्वकालश
क्त्याक्षपयंश्चरेद्भुवि ॥ २२ ॥ वसुदेवगृहेसाक्षाद्भगवान्पुरुषःपरः । जनिष्यतेतत्प्रि
यार्थंसंभवन्तुसुरस्त्रियः ॥ २३ ॥ वासुदेवकलानंतःसहस्रवदनःस्वराट् । अग्रतो
भवितादेवोहरेःप्रियचिकीर्षया ॥ २४ ॥ विष्णोर्मायाभगवतीययासंमोहितंजगत्।
आदिष्टाप्रभुणांशेनकार्यार्थेसंभविष्यति ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्या
ऽमरगणान्प्रजापतिपतिर्विभुः । आश्वास्यचमहींगीर्भिःस्वधामपरमंययौ ॥ २६ ॥
शूरसेनोयदुपतिर्मथुरामावसन्पुरीम् । माथुराञ्छूरसेनांश्चविषयान्बुभुजेपुरा ॥२७॥
राजधानीततःसाऽभूत्सर्वयादवभूभुजाम् ।मथुराभगवान्यत्रनित्यंसंनिहितोहरिः॥
२८ ॥ तस्यांतुकर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवःकृतोद्वहः। देवक्यासूर्ययासार्धंप्रयाणेरथमारु
हत् ॥ २९ ॥ उग्रसेनसुतःकंसःस्वसुःप्रियचिकीर्षया । रश्मीन्हयानांजग्राहरौक्मै

तैसेही भगवान श्रीकृष्णजी विषयक प्रश्नवक्ता प्रश्नकर्त्ता और श्रोता—इनतीन मनुष्योंको पवित्र करता है ॥ १६ ॥ हे महाराज ! अहंकारी राजवेशधारी—दैत्योंकी असंख्य सेनारूप पृथ्वी के भारसे दुःखित होकर पृथ्वीने ब्रह्माजी की शरणली ॥ १७ ॥ उस दुःखित पृथ्वीने गऊरूप धारण कर, आंसूबहाती, करुण स्वरसे रोती २ ब्रह्माजी के समीप जाय अपने अभिप्रायको प्रगटकिया ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी उसके वृत्तांतको सुन महादेव तथा और देवताओंको साथले पृथ्वी समेत क्षीर सागरके तटपर गये ॥ १९ ॥ उस स्थानमें पंहुचकर एकाग्र चित्तहो वेदमन्त्रों से नारायण की स्तुति करने लगे, उन्हीं मंत्रोंसे जगन्नाथ देव देव नारायण की आराधना करनेलगे ॥ २० ॥ कुछ कालके उपरांत ब्रह्माजी ने आकाशवाणी सुनकर देवताओं से कहाकि—हे देवताओ ! भगवान ने जोकुछ कहा है उसको सुनकर उसी के अनुसार कार्यकरो—विलंब नहो ॥ २१ ॥ निवेदन करने के पहिलेही से भगवानको पृथ्वी की विपद विदित है । तुमअपने २ अंशसे यदुवंशियों में जन्म ग्रहणकरो, भगवान् हारकुछही समयके उपरांत अपनी कालशक्ति द्वारा पृथ्वीका भार उतार कर भूतल में विहार करेंगे ॥ २२ ॥ परम पुरुष भगवान शीघ्रही वसुदेव के घरमें जन्म लेवेंगे। उनके प्रियकरने के निमित्त देवांगनाए पृथ्वीपर उत्पन्नहों ॥ २३ ॥ भगवानके अंश, सहस्र वदन विराट् शेषनागजी भगवानके प्रियकरने के निमित्त पहिले जन्म लेवेंगे ॥ २४ ॥ जोभगवती विष्णु माया जगतको मोहित करती है वह भगवान की आज्ञासे कार्य सिद्धि करन के निमित्त यशोदाके गर्भसे अंशसे उत्पन्नहोगी ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हे राजन् ! देवताओंको यह आज्ञा कर, नाना मधुर वचनोंसे पृथ्वीको समझाय ब्रह्माजी अपने स्थानकोगये ॥ २६ ॥ पहिले यदुपति शूरसेन मथुरानगरी में वासकर माथुर तथा शूरसेन देशोंका भोगकरते थे ॥ २७ ॥ इसही कारण तभीसे मथुरा यदुपतियों की राजधानी हुई । भगवान श्रीकृष्णजी सदैव वहां विराजमान रहते हैं ॥ २८ ॥ एक समय उस नगरीमें शूरवंशी वसुदेवजी व्याह करके अपनेघर आने के निमित्त अपनी नव विवाहिता स्त्री देवकी के साथ रथपर सवार हुये ॥ २९ ॥ उग्रसेनके पुत्र कंसने देवकीके प्रिय करनेको, सैकड़ों सोनेके रथोंको साथले, स्वयं बहिनके रथपर बैठ घोड़ों

रथशतैर्वृतः ॥ ३० ॥ चतुःशतंपारिबर्हंगजानांहेममालिनाम् । अश्वानामयुतंसार्धं
रथानांचत्रिषट्शतम् ॥ ३१ ॥ दासीनांसुकुमारीणांद्वेशतेसमलंकृते । दुहित्रेदेवकः
प्रादाद्यानेदुहितृवत्सलः ॥ ३२ ॥ शंखतूर्यमृदंगाश्चनेदुर्दुंदुभयःसमम् । प्रयाण
प्रक्रमेतावद्वरवध्वोःसुमङ्गलम् ॥ ३३ ॥ पथिप्रग्रहिणंकंसमाभाष्याऽऽहाऽशरीरवा-
क् । अस्यास्त्वामष्टमोगर्भोहंतायांवहसेऽबुध ॥ ३४ ॥ इत्युक्तःसखलःपापोभोजा-
नांकुलपांसनः । भगिनींहन्तुमारब्धंखड्गपाणिःकचेऽग्रहीत् ॥ ३५ ॥ तंजुगुप्सित
कर्माणंनृशंसंनिरपत्रपम् । वसुदेवोमहाभागउवाचपरिसांत्वयन् ॥ ३६ ॥ वसुदेव
उवाच ॥ श्लाघनीयगुणःशूरैर्भवान्भोजयशस्करः । सकथंभगिनींहन्यात्स्त्रियमुद्वा-
हपर्वणि ॥ ३७ ॥ मृत्युर्जन्मवतांवीरदेहेनसहजायते । अद्यवाऽब्दशतांतेवामृत्युर्वै
प्राणिनांध्रुवः ॥ ३८ ॥ देहेपञ्चत्वमापन्ने देहीकर्मानुगोऽवशः । देहांतरमनुप्राप्य
प्राक्तनंत्यजतेवपुः ॥ ३९ ॥ व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेनयथैवैकेनगच्छति । यथातृणजलूकैवं
देहीकर्मगतिंगतः ॥४०॥ स्वप्नेयथापश्यतिदेहमीदृशंमनोरथेनाऽभिनिविष्टचेतनः ।
दृष्टश्रुताभ्यांमनसाऽनुचिन्तयन्प्रपद्यतेतत्किमपिह्यपस्मृतिः ॥ ४१ ॥ यतोयतोधाव
तिदैवचोदितंमनोविकारात्मकमापपञ्चसु । गुणेषुमायारचितेषुदेह्यसौप्रपद्यमानः
सहतेनजायते ॥ ४२ ॥ ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदःसमीरवेगानुगतंविभाव्यते ।
एवंस्वमायारचितेष्वसौपुमान्गुणेषुरागानुगतोविमुह्यति ॥ ४३ ॥तस्मान्नकस्यचि

की बाग पकडी ॥ ३० ॥ पुत्री को चाहनेवाले देवकने पुत्री को भण्डारियों समेत सुवर्ण मालाधारी ४०० हाथी १५००० घोडे १८०० रथ, तथा नाना प्रकार के आभूषणों से विभूषित २०० सुंदर दासियें दहेज में दीं । ३१ । ३२ । हे वत्स ! वर और वहूके जानें के समय में दुंदुभी, शंख तुरही और मृदंग सब माङ्गलिक शब्द करनेलगे ॥ ३३ ॥ उसी समय मार्गके मध्य में आकाशवाणी नें कंसको पुकारकर कहा कि रे अबोध ! तू जिसको लियेजाता है, उसके आठवें गर्भ से उत्पन्न हुई संतान तेरा प्राण बध करेगी ॥ ३४ ॥ भोजवंशियों के कुल के कलंकी उस पापी कंस नें इस बात को सुन तलवार ले बहिन के मारनेंपर तत्परहो उसके केश पकड़ लिये ॥ ३५ ॥ महाभाग वसुदेव नें उस निर्लज्ज कंसकी निठुरता को देख उसको समझाकर कहा कि ॥ ३६ ॥ हे कंस ! तुम्हारे गुणों की प्रशंसा शूरगण करतेरहते हैं तुम भोज वंशियों के यशको बढानेवाले हो सो बिवाह के उत्सवमें इस स्त्री जाति बहन को मारना कैसे चाहतेहो ॥ ३७ ॥ हे वीर ! प्राणियों की मृत्यु प्राणियों के साथही जन्म ग्रहण करती है आजहो चाहे सौ वर्ष के उपरांत हो प्राणियों की मृत्यु निश्चय ही होगी ॥ ३८ ॥ इस देह के नाश होनेसे कर्मानुवर्ती जीव दूसरी देह के पानेंपर पहिले शरीरको छोड़ता है जैसे मनुष्य चलनें के समय एक पाव भूमिपर रखकर फिर दूसरा पैर भूमि से हटाता है जैसे जोंक आगेके तिनकेको पकड़कर पहिले के पकड़ेहुये तिनके को छोडती है, वैसेही कर्ममार्गी जीव भी देहोंको प्राप्त होता रहताहै ॥ ४० ॥ जागनेकी अवस्थामें देखने व सुननेके कारण जो संस्कार (विचार) मनमें उत्पन्न होते हैं एकाग्रचित्तसे उन देखे व सुनेहुए विषयोंको विचारनेसे वैसेही विषय आग्रदवस्थाके मनुष्य जैसे स्वप्नमें देखा करते हैं वैसेही जीवकर्म वशहो स्मृति रहित देहको प्राप्त होकर पूर्व शरीरका परित्याग करताहै ॥ ४१ ॥ देहके पञ्चत्व प्राप्त होनेके समय नाना विकारात्मक मन फलाभिमुख कर्मोंसे प्रेरितहो, माया द्वारा नाना देहरूपसे विरचित पंचभूत वर्णोंके मध्यमें जिस २ रूपको प्राप्त होताहै—उसी२रूपका जीवजन्म लेता रहताहै ॥ ४२ ॥ चंद्रादिज्योतिः पदार्थ जैसे तैल घृत जलादि पार्थिव व पदार्थोंमें प्रतिबिंबित होकर वायुसे कम्पायमान प्रतीत होतेहैं, तैसेही जीव इस अविद्या रचित गुणोंका अनुगत (साथी) हो उन्हींसे मोहितहोताहै ॥

कृ्रो हमाचरेत्स तथाविधः । आत्मनःक्षेममन्विच्छन्द्रोग्धुर्वैपरतोभयम् ॥ ४४ ॥ एषातवानुजाबालाकृपणापुत्रिकोपमा । हन्तुंनार्हसि कल्याणीमिमांत्वंदीनव-त्सलः ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच । एवंससामभिर्भेदैर्बोध्यमानोऽपिदारुणः । नन्यवर्ततकौरव्य पुरुषादाननुव्रतः ॥ ४६ ॥ निर्बन्धंतस्यतंज्ञात्वाविचिन्त्या-नकदुन्दुभिः । प्राप्तंकालंप्रतिव्योढुमिदंतत्रान्वपद्यत ॥ ४७ ॥ मृत्युर्बुद्धिमता-ऽपोह्यो यावद्बुद्धिबलोदयम् । यद्यसौननिवर्तेत नापराधोऽस्तिदेहिनः ॥ ४८ ॥ प्रदायमृत्यवेपुत्रान्मोचयेकृपणामिमाम् । सुतामेयदिजायेरन्मृत्युर्वानम्रियेतचेत् ॥ ॥ ४९ ॥ विपर्ययोवाकिंन स्याद्गतिर्धातुर्दुरत्यया । उपस्थितोनिवर्तेतनिवृ-त्तः पुनरापतेत् ॥ ५० ॥ अग्नेर्यथादारुवियोगयोगयोरदृष्टतोऽन्यन्ननिमित्तमस्ति । एवंहिजन्तोरपिदुर्विभाव्यः शरीरसंयोगवियोगहेतुः ॥ ५१ ॥ एवंविमृश्यतंपापंया-वदात्मनिदर्शनम् । पूजयामासवैशौरिर्बहुमानपुरःसरम् ॥ ५२ ॥ प्रसन्नवदनाम्भो-जोनृशंसंनिरपत्रम् । मनसादूयमानेनविहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५३ ॥ वसुदेव उवाच॥ नह्यस्यास्तेभयंसौम्ययद्विसाऽऽहाशरीरवाक् । पुत्रान्समर्पयिष्येऽस्यायतस्तेभय मुत्थितम् ॥ ५४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वसुर्वधान्निववृतेकंसस्तद्वाक्यसारवित् ।

॥ ४३ ॥ ऐसी स्थितिवाले प्राणी यदि अपने कल्याणकी इच्छाकरें तो कभी किसीकी हिंसा न करें। क्योंकि जो दूसरेकी हिंसा करते हैं तो दूसरोंसे उनकी भी हिंसा होनेकी संभावनाहै तथा परलोकमें यमराजसे भी दुःख मिलनेकी सम्भावनाहै, ॥ ४४ ॥ तुम्हारी यह छोटी बहिनहै तथा यह बालिका; दीन और कातरहै भयसे यह काठकी पुतलीके समान अचेत होगईहै। तुम दीनोंपर दया करनेवालेहो, अतएव इस कल्याणरूप बालिकाको मारना तुम्हें उचित नहीं है॥४५॥ शुकदेव जीने कहा कि—हेकौरव्य ! कंस अति निठुर और दैत्योंके परामर्शका माननेवालाथा, अतएव वसुदेवके इसभांतिसे मित्रताकरने और भयदिखाकर समझाने परभी वह निवृत्त न हुआ,॥ ४६ ॥ वसुदेव उसके अभिप्रायको जानकर किसप्रकार आयेहुए कालका यत्नकरूं इसप्रकार चिंताकर यह मनमें ठहराने लगे ॥ ४७ ॥—कि बुद्धिमान मनुष्यको अपनी बुद्धि और बलके अनुसार मृत्युको निवारण करना चाहिये। यदि उससे भी निवारण न करसके तो फिर प्राणीका अपराध नहीं है ॥ ॥ ४८ ॥ मैं कालरूपी इस कंसको सब पुत्रोंके देनेका बचन देकर इस दीन स्त्रीकी रक्षाकरूं, । फिर जब मेरे पुत्र उत्पन्न होगा तब जो होनाहोगा सो होरहेगा, इससमय तो देवकी बचजायगी ॥ ४९ ॥ कदाचित् मेरे पुत्र उत्पन्न होनेके पहिलेही कंसकी मृत्यु होजावे। और यदि कस न भी मरेगा तो मेरा पुत्रभी तो इसको मारसकताहै क्या विधाताकी आकाशवाणी मिथ्याहोसकतीहै ? " पुत्रदूंगा,, यह स्वीकार करलेनेसे आईहुई मृत्यु निवृत्त होसकतीहै; कालके प्रभावसे यदि फिर इसकी मृत्यु होजावे तो ऐसा होनेसे मेरा कोई अपराध नहीं है, ॥ ५० ॥ अग्निके काठक संयोग वियोगका अदृष्टही एक कारणहै अर्थात् गांवमें गृहस्थके घर आग लगकर जलाते २ वह कभी निकटके घर आदिकोंको छोड़कर दूरके घरोंको जलाती है, उसका कारण जैसे भाग्यके अतिरिक्त और कुछभी नहींहै ऐसेही प्राणियोंकी जन्ममृत्युभी भाग्याधीनहै ॥ ५१ ॥ अपने ज्ञानानुसार वसु-देवने इसभांति विचारकर मानपूर्वक पापीकंसका सत्कार किया ॥ ५२ ॥ तथा प्रफुल्लित मुखसे हंसते २ दुःखित मनसे उस दुष्ट कंससे फिर कहा ॥५३॥ हे सौम्य ! आकाश बाणीने जो कहा है उसका विचार व भय तुम मतकरो, क्योंकि इसके पुत्रोंहीसे तो तुमको, भयहै सो वह पुत्र जो होंगे सब तुम्हारे अर्पण करूंगा ॥ ५४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—वसुदेवके वचनोंको अभि-

वसुदेवोऽपितंप्रीतः प्रशस्यप्राविशद्गृहम् ॥ ५५ ॥ अथकालउपावृत्तेदेवकीसर्वदे
वता। पुत्रान्प्रसुषुवेचाष्टौकन्यांचैवानुवत्सरम् ॥ ५६ ॥ कीर्तिमन्तंप्रथमजंकंसाया
नकदुन्दुभिः। अर्पयामासकृच्छ्रेणसोऽनृतादतिविह्वलः ॥ ५७ ॥ किंदुःसहंनुसा
धूनांविदुषांकिमपेक्षितम्। किमकार्यंकदर्याणांदुस्त्यजंकिंधृतात्मनाम् ॥ ५८ ॥ दृ
ष्ट्वासमत्वंतच्छौरेः सत्येचैवव्यवस्थितिम्। कंसस्तुष्टमनाराजन्प्रहसन्निदमब्रवी
त् ॥ ५९ ॥ प्रतियातुकुमारोऽयंनह्यस्मादस्तिमेभयम्। अष्टमाद्युवयोर्गर्भान्मृत्युर्मे
विहितःकिल ॥ ६० ॥ तथेतिसुतमादाययवावानकदुन्दुभिः। नाभ्यनन्दततद्वा
क्यमसतोऽविजितात्मनः ॥ ६१ ॥ नन्दाद्यायेव्रजेगोपायाश्चामीषांचयोषितः। वृष्ण
योवसुदेवाद्यादेवक्याद्यायदुस्त्रियः ॥ ६२ ॥ सर्वेवैदेवताप्रायाउभयोरपिभारत।
ज्ञातयोबन्धुसुहृदोयेचकंसमनुव्रताः ॥ ६३ ॥ एतत्कंसायभगवाञ्छशंसाभ्येत्यनार
दः। भूमेर्भारायमाणानांदैत्यानांचवधोद्यमम् ॥ ६४ ॥ ऋषेर्विनिर्गमेकंसोयदून्म
त्वासुरानिति। देवक्यागर्भसंभूतंविष्णुंचस्ववधंप्रति ॥ ६५ ॥ देवकींवसुदेवंचनिगृ
ह्यनिगडैर्गृहे। जातंजातमहन्पुत्रंतयोरजनशङ्कया ॥ ६६ ॥ मातरंपितरंभ्रातॄन्सर्वां
श्चसुहृदस्तथा। घ्नन्तिह्यसुतृपोलुब्धाराजानः प्रायशोभुवि ॥ ६७ ॥ आत्मानमि
हसंजातंजानन्प्राग्विष्णुनाहतम्। महासुरंकालनेमिंयदुभिः सव्यरुध्यत ॥ ६८ ॥
उग्रसेनंचपितरंयदुभोजान्धकाधिपम्। स्वयंनिगृह्यबुभुजेशूरसेनान्महाबलः ॥ ६९ ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे श्रीकृष्णावतारोपक्रमे प्रथमोऽध्यायः

प्रिय कमझकर कंस बहिनके मारनेसे निवृत्त हुआ, । और वसुदेवभी प्रीतिपूर्वक हसते २ अपने घरकोगये ॥५५॥ अनन्तर समयानुसार सर्व देवमयी देवकीने प्रतिवर्ष एक२ पुत्र करके आठपुत्र और एककन्या उत्पन्नकी ॥५६॥ वसुदेवने असत्य भाषाके डरसे विह्वलहो कष्टपूर्वक कीर्तिमान नामक प्रथमपुत्रको कंसके हाथमेंदिया॥५७॥सत्यप्रतिज्ञा साधूगण क्या नहीं सहसक्ते?विद्वान्मनुष्य कौनसी वस्तुकी अपेक्षारखताहै ? दुष्ट मनुष्यको कौनसा कुकार्यहै भगवद्भक्त क्या नहीं छोड़सकते ॥५८॥ हेराजन् ! वसुदेवकी ऐसीसाधुता और सत्यनिष्ठताको देखकर कंस प्रसन्नहो हसते२ कहने लगा कि॥५९॥तुम इसपुत्रको लेजाओ इससे मुझेभयनहीं है तुम्हारे आठवेंपुत्रसेही मेरीमृत्यु निश्चित हुई है॥६०॥वसुदेव(एसाहीकरूंगा)कहकर चलेगये परन्तु कंसकी इन बातोंपर उन्हें विश्वासनहुआ क्योंकि कंस मिथ्यावादी और अजितेन्द्रियथा॥६१॥हेराजन्!नारदने कंससे कहदियाथा कि ब्रजवासी नंद आदिगोप, उनसबगोपों की स्त्रियें, वसुदेव आदि सबवृष्णिवंशी, देवकी आदि यदु स्त्रियें, वसुदेव और नन्दकुल के जातिवाले बन्धु तथ सुहृद, और जो कंस के आधीन हैं वह सबही देवता के समान हैं। नारदजीने यहभी कंस से कहदियाथा कि—देवतागण पृथ्वीके भारभूत असुरों के मारने का उद्योगकररहे हैं ॥ ६२ । ६४ ॥ नारदजी के चलेजाने पर कंस ने इस बात को विचार करा कि "यदुवंशी देवता हैं और विष्णुजी मेरे मारने के निमित्त देवकी के गर्भ से अवतारलेंगे" वसुदेव और देवकी को बेडीपहनाय अपने घर में रखछोड़ा।उनके जो पुत्रउत्पन्नहोनेलगे उन्हें कंस अपनी मृत्यु कारण विष्णुजानकर एक २ को मारनेलगा ॥ ६५ । ६६॥पृथ्वीमण्डल में हिंसकराजा अपने २ प्राणपोषण के निमित्त माता,पिता, भ्राता और बन्धुओं का बधकरते हैं ॥ ६७॥ पहिले मैनेजन्मइस पृथ्वी पर कालनेमि नामक असुररूपसे जन्मग्रहण कियाथा तब विष्णु ने मेरावध कियाथा, —यह जानकरके कंस यदुवंशियों के साथ विरोध करनेलगा ॥ ६८ ॥ यदुभोज, और अन्धकगणों के स्वामी अपने पिता उग्रसेन को बद्ध (कैद) कर के महाबली कंस शूरसेन आदिराज्यों का भोग करने लगा ॥ ६९ ॥

इतिश्रीमद्भा०महापुराणेदशमस्कन्धेसरलभाषाटीकायांप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ प्रलम्बबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः॥ १॥ अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः। यदूनांकदनंचक्रे बली मागधसंश्रयः॥ २॥ तेपीडितानिविविशुःकुरुपञ्चालकेकयान्। शाल्वान्विदर्भान्निषधान्विदेहान्कोसलानपि॥ ३॥ एकेतमनुरुन्धानाज्ञातयःपर्युपासते। हतेषुषट्सुबालेषुदेवक्याऔग्रसेनिना॥ ४॥ सप्तमोवैष्णवंधामयमनन्तंप्रचक्षते। गर्भोबभूवदेवक्या हर्षशोकविवर्धनः॥ ५॥ भगवानपिविश्वात्माविदित्वाकंसजंभयम्। यदूनांनिजनाथानांयोगमायांसमादिशत्॥ ६॥ गच्छदेविव्रजंभद्रेगोपगोभिरलंकृतम्। रोहिणी वसुदेवस्य भार्याऽऽस्तेनन्दगोकुले। अन्याश्चकंससंविग्ना विवरेषुवसन्तिहि॥ ७॥ देवक्याजठरेगर्भं शेषाख्यंधाममामकम्। तत्संनिकृष्यरोहिण्या उदरेसंनिवेशय। ॥ ८॥ अथाऽऽहमंशभागेन देवक्याःपुत्रतांशुभे। प्राप्स्यामित्वंयशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि॥ ९॥ अर्चिष्यन्तिमनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम्। धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम्॥ १०॥ नामधेयानिकुर्वन्ति स्थानानिचनराभुवि। दुर्गेति भद्रकालीति विजयावैष्णवीतिच॥ ११॥ कुमुदाचण्डिकाकृष्णा माधवीकन्यकेति च। मायानारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेतिच॥ १२॥ गर्भसंकर्षणात्तं वैप्राहुःसंकर्षणंभुवि। रामेतिलोकरमणाद्बलं बलभद्रुच्छ्रयात्॥ १३॥ संदिष्टैवंभगवता तथेत्योमितितद्वचः। प्रतिगृह्यपरिक्रम्य गांगतातत्तथाऽकरोत्॥ १४॥ गर्भेप्रणीते

श्रीशुकदेव जी बोले कि—हेराजन्! बलके अहंकारी कंसने मगधवासियोंका आश्रय ग्रहण कर प्रलम्ब, बक, चाणूर, तृणावर्त्त, अघ; मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद पूतना, केशी, धेनुक, बाण, भौम और दूसरे असुर राजाओं के साथ मिलकर यदुवंशियोंके नाश करनेका आरम्भ किया १—२। वह घोर अत्याचारसे पीड़ित होकर कुरु, पांचाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह तथा कौशल देशोंको भागगये, ॥ ३ ॥ केवल कुछ एक जातिवाले कसका अनुसरण कर उसकी सेवामें लगेरहे। कंससे छ.सतानोंके नाश होनेपर देवकी को हर्ष और शोक उत्पन्न करनेवाला सातवां गर्भ उत्पन्न हुआ। वह गर्भ विष्णुजीका अंशथा। लोक उसको अनन्त नामसे पुकारतेहैं ४—५। दुष्ट कंसके ऐसे अत्याचारोंको विश्वात्मा भगवानने जाना कि मेरे आश्रयी यदुवंशी कसके डरसे भयभीतहोरहे हैं। तब उन्होंने योगमायाको आज्ञादी कि ॥६॥ हे देवि! हेभद्रे! गोप और गापगणोंसे अलंकृत अजधाममें जाओ वहां नन्द गोकुलमें वसुदेवकी स्त्री रोहिणी निवासकरती हैं। वसुदेवकी और दूसरी स्त्रियेंभी कंसके भयसे व्याकुलहोकर गुप्तस्थानोंमें छिपी हैं ॥ ७ ॥ अनंत नामक मेरेअंशने देवकीके गर्भमें प्रवेशकिया है। तुम उसगर्भको खैंचकर रोहिणीके उदरमें स्थापनकरो ॥ ८ ॥ हे शुभे! इसके उपरांत मैं पूर्णरूप से देवकीका पुत्रहोकर उत्पन्न हूंगा और तुम नन्दकी स्त्री यशोदाके गर्भ में जन्म ग्रहणकरो ॥ ९ ॥ मनुष्यगण तुमको सर्वकाम तथा सबवरों के देनेवाली और अधीश्वरी कहकर नानाभेंट देवेंगे तथा बलिद्वारा तुम्हारी पूजा करेंगे ॥ १० ॥ पृथ्वीपर तुम अनेकनामोंसे विख्यात होगी जैसे;—दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी॥ ११॥ कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका॥ १२॥ गर्भ के संकर्षण (खींचना) करनेसे पृथ्वीपर उसगर्भ से उत्पन्नहुई संतानको 'संकर्षण' नाम से पुकारेंगे। इसके अतिरिक्त वह मनुष्योंके मनको रमाने के कारण 'राम' तथा बलकी अधिकता से 'बलभद्र' नामसेभी प्रसिद्धहोंगे ॥ १३ ॥ भगवान् की इसभांति आज्ञापाय, "यही करूंगी" कहकर माया उनकी आज्ञाको धारणकर तथा उनकी परिक्रमा कर पृथ्वीपर आय उसीभांति करतीहुई॥

देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया । अहो विस्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥ १५ ॥ भ
गवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयंकरः । आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥
॥ १६ ॥ स बिभ्रत्पौरुषं धाम भ्राजमानो यथा रविः । दुरासदोऽतिदुर्धर्षो भूतानां सं
बभूव ह ॥ १७ ॥ ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी । दधार सर्वा-
त्मकमात्मभूतं काष्ठा यथाऽऽनन्दकरं मनस्तः ॥ १८ ॥ सा देवकी सर्वजगन्निवास-
निवासभूता नितरां न रेजे । भोजेन्द्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा सरस्वती ज्ञानखले यथा स
ती ॥ १९ ॥ तां वीक्ष्य कंसः प्रभया जितान्तरां विरोचयन्तीं भवनं शुचिस्मिताम् । आ
हैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां ध्रुवं श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी ॥ २० ॥ किमद्य तस्मिन्करणीय-
माशु मे यदर्थतन्त्रो न विहन्ति विक्रमम् । स्त्रियाः स्वसुर्गुरुमत्या वधोऽयं यशः श्रियं ह-
न्त्यनुकालमायुः ॥ २१ ॥ स एष जीवन्खलु संपरेतो वर्तेत योऽत्यन्तनृशंसितेन । देहे
मृते तं मनुजाः शपन्ति गन्ता तमोऽन्धं तनुमानिनो ध्रुवम् ॥२२॥ इति घोरतमाद्भावात्स
न्निवृत्तः स्वयं प्रभुः । आस्ते प्रतीक्षंस्तज्जन्म हरेर्वैरानुबन्धकृत् ॥२३॥ आसीनः संवि-
शंस्तिष्ठन्भुञ्जानः पर्यटन्महीम् । चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत्तन्मयं जगत् ॥ २४ ॥
ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः । देवैः सानुचरैः साकं गीर्भिर्वृषणमैडयन् ॥२५॥

॥ १४ ॥ योगमायाने जब देवकीका गर्भ लेकर रोहिणीके गर्भमें स्थापित किया तब पुरवासीलोग 'हाय देवकीका गर्भ नष्टहोगया' कहकर रोनेलगे ; परन्तु कोई इसभेदको न जानसके ॥१५॥ इस ओर भक्तोंका अभयदान देनेवाले भगवान्भी पूर्णरूपसे वसुदेवके मनमें प्रविष्टहुये ॥ १६ ॥ वसुदेवजीके मनमें श्रीमूर्तिके धारणहोतेही वह सूर्यकी समान प्रकाशितहोगये और समस्तप्राणियों के दुरासद (सहनयोग नहीं) और बड़ेही दुर्द्धर्ष होउठे ॥ १७ ॥ फिर जैसे पूर्वदिशा चन्द्रमा की किरणोंको धारण करती है वैसेही शुद्ध, प्रकाशित सती देवकीने वसुदेवजीके अर्पण कियेहुए भगवानके अंशको अपने मनद्वारा धारण किया ॥ १८ ॥ हे राजन् ! भगवान् सर्वात्मा हैं; अत एव पहिलेहीसे देवकी के आत्मामें वर्तमानथे । जिसमें समस्तजगत वासकरता है देवकी उनका निवासस्थान होकर स्वयं अति आनन्दितहुई परन्तु सब मनुष्योंको आनंदित न कर सकी क्योंकि जैसे घड़े के भीतर दीपककी सुन्दर शिखा तथा ज्ञान छुपानेवाले मनुष्योंके हृदय मे जैसे सुन्दर कथायेंरुकी रहती हैं वैसेही वह कंस के घर में बन्दी (कैद) थी ॥१९॥ एक दिन कंस उसस्ती देवकी के प्रकाशद्वारा उसघरको प्रकाशित देखकहनेलगा–" किनिश्चयहीजानाजाता है कि मेरेप्राणों का नाश करनेवाला विष्णु इसके गर्भ में प्रकटहुआ है । क्योंकि मेराघरपहिले कभी देवकी से ऐसा प्रकाशित नहींहुआ॥२०॥ इससमय विष्णु पर मुझे क्याकरना चाहिये ? मनुष्यको स्वार्थीहोकरभी कभी स्त्री वध द्वारा अपने अपने पराक्रमका नाश नहीं करनाचाहिये । देवकीके मारनेसे स्त्री वध भगिनी वध, और गर्भिणीका वध करनाहोगा, इससे यश, लक्ष्मी, और परमायु दिन२ नाशहोती रहेगी ॥ २१ ॥ जो मनुष्य केवल हिंसाही करके जीवन धारण करताहै वह जीताहुआ भी मराहै वह पापी जितनदिन जीवन रहताहै उतनेदिन सबके निंदाका पात्रहो जीवन धारण करताहै और मरनेके उपरांत निश्चयही नरकमें जाताहै॥ २२ ॥ प्रभावशाली कंस इस घोर चिंताके कारण स्त्री वधसे निवृत्तहो भगवान् पर वैरभाव रख उनके जन्मकी राह देखनेलगा ॥ २३ ॥ दिनरातमें वह किसी घड़ीभी शांति न पाता, खड़े होने, बैठने, भोजन, पान चलने; सोनेमें सबहीकाल सर्वमय भगवान्का ध्यानकर जगत्को तन्मय देखनेलगा ॥ २४ ॥ हे राजन् ! उसी समयमें ब्रह्मा और महादेव, नारदादि मुनि तथा अनुचर देवताओं को साथले देवकीके समीप आय वाक्यों द्वारा

देवाऊचुः । सत्यव्रतंसत्यपरंत्रिसत्यं सत्यस्ययोनिंनिहितंचसत्ये । सत्यस्यसत्यमृ
तसत्यनेत्रं सत्यात्मकंत्वांशरणंप्रपन्नाः ॥ २६ ॥ एकायनोऽसौद्विफलस्त्रिमूलश्चतूर-
सः पंचविधःषडात्मा । सप्तत्वगष्टविटपोनवाक्षो दशच्छदीद्विखगोह्यादिवृक्षः ॥२७॥
त्वमेकएवास्यसतःप्रसूतिस्त्वं सन्निधानंत्वमनुग्रहश्च । त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां
पश्यन्तिनानानविपश्चितोये ॥ २८ ॥ बिभर्षिरूपाण्यवबोधआत्मा क्षेमाय लोकस्य
चराचरस्य । सत्त्वोपपन्नानिसुखावहानि सतामभद्राणिमुहुःखलानाम् ॥ २९ ॥ त्व
य्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि समाधिनावेशितचेतसैके । त्वत्पादपोतेनमहत्कृतेन कु
र्वन्तिगोवत्सपदंभवाब्धिम् ॥३०॥ स्वयंसमुत्तीर्यसुदुस्तरंद्युमन्भवार्णवं भीममद-
भ्रसौहृदाः । भवत्पदाम्भोरुहनावमत्रतेनिधाययाताःसदनुग्रहोभवान् ॥ ३१ ॥ ये
ऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः । आरुह्यकृच्छ्रेणपरं
पदंततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥ ३२ ॥ तथानतेमाधवतावकाः क्वचिद्भ्र-
श्यन्तिमार्गात्त्वयिबद्धसौहृदाः।त्वयाऽभिगुप्ताविचरन्तिनिर्भया विनायकानीकपमू-
र्धसुप्रभो ॥ ३३ ॥ सत्त्वंविशुद्धंश्रयतेभवान्स्थितौ शरीरिणांश्रेयउपायनंवपुः । वेद

भगवान की स्तुति करनेलगे ॥ २५ ॥ कि—हेभगवन्! आप सत्यव्रतहो सत्यही आपका संकल्प है, सत्यही आपकी प्राप्तिका साधनहै आप तीनोंकालमें सत्य, सत्यके कारण, और सत्यहीमें अवस्थितहो, आप सत्यके सत्यहो । आप ऋत और सत्य इन दोनोंके प्रवर्त्तकहो । अतएव आप सत्यमयहैं इसभांति सब प्रकारसेही आप सत्यात्मक हुएहो,—हम सत्यरूपी आपके शरणागत हुये हैं ॥ २६ ॥ यह देहरूप आदि वृक्ष कि—जिसमें एकप्रकृति इसका आश्रयहै, सुख दुःख इसके दोफलहैं, सत्व, रज और तम यह तीनोंगुण इसके मूलहैं. धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इसके चार रसहैं, पच इन्द्रियां ज्ञान, शोक, मोह,जरा,मृत्यु, भूख और प्यास यह इसके छह स्वभावहैं, रस, रक्त, मांस, मेद, हड्डी. मज्जा और शुक्र—यह सात इसकी त्वचाहैं, पांच इन्द्रिय तथा मन, बुद्धि अहंकार यह आठ इसकी शाखाहैं, नवद्वार इसके नव छिद्र और दशप्राण इसके पत्ते हैं जीवात्मा और परमात्मा दोपक्षी इसमें वास करतेहैं ॥ २७ ॥ केवल एक आपही कार्य स्वरूप इस वृक्ष के उत्पत्ति स्थान, लयस्थान और पालन कर्त्ताहो । जिनका ज्ञान आपकी मायामें ढकाहै वे आप के रूपको नानाभांतिसे देखते रहते हैं परन्तु विद्वान मनुष्य उस भांति नहीं देखते॥२८॥ हेभगवन् ज्ञान स्वरूप आप समस्त प्राणियोंके कल्याणके निमित्त वारम्बार सत्वगुणमय अनेक रूप धारण करतेहो, यह सब रूप साधुओं के सुख देनेवाले और दुष्टोंके नाश करनेवाले होते हैं, । अतएव आपकी ऐसी प्रशंसा करना हमें अनुचित नहीं है ॥ २९ ॥ हेकमललोचन! आप निर्मल सत्वगुण के भण्डारहो । निर्मल सत्व निष्ठ विवेकी मनुष्य समाधियोग से चित्तको एकाग्रकर आपमें लगाय,बडे महात्माओं से कीहुई आपकी चरणरूपी नौकाका आश्रय ग्रहणकर भवसागरको गऊखुरं के जल की समान तुच्छजानते रहतेहैं ॥ ३० ॥ भक्तों पर आप कृपाकरते रहतेहो तथा वेआपको ही अधिक प्यार करतेहैं; वे दूसरों के भयदायी भवसागर को पार होने के निमित्त स्वयं पारहो कर आपकी चरणरूपी नौका को इसी स्थान पर रखगये हैं ॥ ३१ ॥ हेअम्बुजनयन! आप के भक्तों के अतिरिक्त और दूसरे जो अपने को मुक्तकहकर अभिमानकरते हैं; वे बडे दुःखसे श्रेष्ठ पदको प्राप्तकरते हैं और अन्त में उस से पतित होतेहैं; क्योंकि आप में उनकी भक्ति नहींहै इस ही लिये उनकी बुद्धिभी शुद्ध नहीं है तथा वे आप के श्रीचरणों का निरादर करते रहते हैं ॥ ३२ ॥ हेकेशव! जो मनुष्य आप के भक्त हैं तथा आपही में सुहृदताका बन्धन रखते हैं;—उन की इस भांति दुर्गति नहींहोती; आपसे सुरक्षितहोकर वह विघ्नकारियों के मस्तकोंपर निर्भयहो घूमा करते हैं ॥ ३३ ॥ आप सृष्टिपालनके निमित्त कर्मफल उत्पन्नकरनेवाली सत्वमूर्तिको धारण करते

क्रियायोगतपःसमाधिभिस्तवार्हणं येनजनःसमीहते ॥ ३४ ॥ सत्त्वंनचेद्धातरिदं निजं भवेद्विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम् । गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्प्रकाशते यस्य चयेनवागुणः ॥ ३५ ॥ ननामरूपे गुणजन्मकर्मभिर्निरूपितव्ये तवतस्यसाक्षिणः । मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो देवक्रियायांप्रतियन्त्यथापिहि ॥ ३६ ॥ शृण्वन्गृणन्संस्मरयंश्च चिन्तयन्नामानिरूपाणिच मङ्गलानिते क्रियासुयस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता नभवायकल्पते ॥ ३७ ॥ दिष्ट्याहरेस्याभवतःपदोभुवो भारोपनीतस्तवजन्मनेशितुः । दिष्ट्याऽङ्कितांत्वत्पदकैः सुशोभनैर्द्रक्ष्यामगांद्यांच तवानुकम्पिताम् ।३८। नतेऽभवस्येश भवस्यकारणं विनाविनोदंबततर्कयामहे ॥ भवोनिरोधःस्थितिरप्यविद्यया कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ॥ ३९ ॥ मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंसराजन्यविप्रविबुधेषुकृतावतारः । त्वंपासिनस्त्रिभुवनंचयथाऽधुनेश भारंभुवोहरयदूत्तम वन्दनंते ॥ ४० ॥ दिष्ट्याऽम्बतेकुक्षिगतःपरः पुमानंशेन साक्षाद्भगवान्भवायनः । माभूद्भयंभोजपतेर्मुमूर्षोर्गोप्ता यदूनांभवितातवात्मजः॥ ४१ ॥ श्रीशुकउवाच ।इत्यभिष्टूयपुरुषं यद्रूपमनिदंयथा । ब्रह्मेशानौपुरोधाय देवाःप्रतिययुर्दिवम् ।४२ इति श्रीमद्भा.महा.दशम.गर्भगतविष्णोर्ब्रह्मादिकृत स्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

हो कि जिस मूर्तिके द्वारा ब्रह्मचारी वेदाध्ययन से, गृहस्थी कर्मयोग से, वानप्रस्थतपसे, सन्यासी समाधि से, आप का पूजनकरते हैं ॥ ३४ ॥ आप शरीर का आश्रय न करें तो पूजाके अभाव से कर्मफल सिद्धनहोवें । हे विधातः! यदि सत्त्व आपकी देह नहोता तो अज्ञान और भेद का नाश करनेवाला विज्ञानभी नहीं उत्पन्न होता, क्योंकि जो गुणप्रकाश पाते रहते हैं उनसब गुणोंकेआप साक्षीहो, इसप्रकार गुणों के प्रकाश से आप के स्वरूप का अनुमान होता है । परन्तु आपका स्वरूप नेत्रों से प्रत्यक्ष नहीं देखपड़ता ॥३५॥ उनसाक्षी स्वरूप आप के मार्ग का केवलअनुमान हीहोता है क्योंकि आप के नाम और रूप जोकिमन और वचनके अगोचर हैं -गुण, जन्म और कर्म से निरूपण नहींकियेजासके । तथापि हेदेव !भक्तजन उपासनादिक क्रिया में आपकोप्रत्यक्ष देखते हैं यह बार्ता प्रसिद्ध है ॥ ३६ ॥ जो आपके मङ्गलकारी नाम और रूप का श्रवण और उच्चारणकरते हैं—दूसरे को सुनाते हैं, ध्यानकरते हैं तथाआपके दोनों चरणकमलों को मनमेंधारण किये रहतेहैं उनका फिरसंसार में दूसरीबार आनानहींहोता ॥ ३७ ॥ अहा! क्यासुखका विषय है! आप ईश्वरहो आपके जन्म लेने से आपके चरण अंकित इस पृथ्वीकाभारदूरहोगा । अहो ! क्या मङ्गलका विषय है आप कृपापूर्वक अनेक चरणों के ध्वज, बज्र, अंकुशादि चिन्होंद्वारा पृथ्वीतथा सुरलोकको पवित्रकरेंगे;—यह हम देखेंगे ॥ ३८ ॥ हे ईश ! आप असंसारी हो अतएव आप के जन्मकाकारण लीलाकरने के अतिरिक्त और कुछ नहीं अनुमान कियाजासकता । जीवात्माओंका जो उत्पत्ति स्थिति और संहार होता रहता है, वह सब आपकी अविद्याही से होता है ! वास्तवमें जीवात्माकाभी जन्मआदि कुछनहीं है ॥ ३९ ॥ आपने मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, हंस, क्षत्रिय, विप्र और देवताओं में अवतार लेकर संसारका और हमारा जैसे पोषण कियाहै—हेयदुश्रेष्ठ! वैसेही इससमय पृथ्वी के भारीबोझको दूरकरो हम सब आपको प्रणाम करते हैं ॥ ४० ॥ हेदेवकि ! यह अच्छाहुआ कि—परम पुरुष भगवान् हमारे कल्याण के निमित्त पूर्णरूप से तुम्हारे गर्भ में प्रविष्टहुये हैं अब कंसका भय न करना; उसको मरनेकी इच्छाहुई है; तुम्हारा यह पुत्र यदुवंशियों का रक्षाकारी होगा ॥ ४१ ॥ हेराजन् ! जिसकारूप किसी के दृष्टिगोचर न होवे उन भगवान्की इसभांति स्तुतिकर देवतागण—ब्रह्मा और महादेवजी को ले अपने २ स्थानको गये॥४२

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभाषाटीकायांद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच॥ अथसर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षंशा
न्तर्क्षग्रहतारकम् ॥ १ ॥ दिशःप्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम् । मही मङ्गलभूयिष्ठ
पुरग्रामव्रजाकरा ॥ २ ॥ नद्यःप्रसन्नसलिलाह्रदाजलरुहश्रियः । द्विजालिकुलस-
न्नादस्तबकावनराजयः ॥ ३ ॥ ववौवायुःसुखस्पर्शःपुण्यगन्धवहःशुचिः । अग्नय
श्चद्विजातीनांशान्तास्तत्रसमिन्धत ॥ ४ ॥ मनांस्यासन्प्रसन्नानिसाधूनामसुरद्रुहाम्
जायमानेऽजनेतस्मिन्नेदुर्दुन्दुभयोदिवि ॥ ५ ॥ जगुःकिन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुःसिद्धचा
रणाः । विद्याधर्यश्चननृतुरप्सरोभिःसमंतदा ॥ ६ ॥ मुमुचुर्मुनयोदेवाःसुमनांसि
मुदान्विताः । मंदंमंदंजलधराजगर्जुरनुसागरम् ॥ ७ ॥ निशीथेतमउद्भूते जायमाने
जनार्दने । देवक्यांदेवरूपिण्यांविष्णुःसर्वगुहाशयः ॥ आविरासीद्यथाप्राच्यांदि
शीन्दुरिवपुष्कलः ॥ ८ ॥ तमद्भुतंबालकमम्बुजेक्षणंचतुर्भुजंशङ्खगदाद्युदायुधम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मंगलशोभिकौस्तुभंपीताम्बरंसान्द्रपयोदसौभगम् ॥ ९ ॥ महार्हवैदूर्य
किरीटकुण्डलत्विषापरिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् । उद्दामकाञ्च्यङ्गदकंकणादिभिर्विरो
चमानंवसुदेवऐक्षत ॥ १० ॥ सविस्मयोत्फुल्लविलोचनोहरिंसुतंविलोक्यानकदुंदु-
भिस्तदा । कृष्णावतारोत्सवसंभ्रमोऽस्पृशन्मुदाद्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतोगवाम् ११
अथैनमस्तौदवधार्यपूरुषंपरंनताङ्गःकृतधीःकृताञ्जलिः । स्वरोचिषाभारतसूतिका
गृहंविरोचयन्तंगतभीःप्रभाववित् ॥ १२ ॥ वसुदेव उवाच ॥ विदितोऽसिभवा-

---

श्रीशुकदेवजीबोले कि—हेराजन्! फिर जिसकालमें, समय सर्वगुणसम्पन्न और अत्यन्त रमणीयहोउठा—रोहिणी नक्षत्र उदय और उसके साथ अश्विनी आदि नक्षत्र और सब ग्रहगण उसके अनुकूल हुए ॥१॥ दिशाएँ निर्मल होगईं, जब आकाशमें तारागण भलीभांतिसे प्रकाश पाने लगे, पृथ्वीके नगर गांव, व्रज और खान आदिमें बहुत मंगल होनेलगे, ॥ २ ॥ नदियोंकी धाराने निर्मलभाव धारण किया, सरोवर कमलोंसे सुशोभित हुए जङ्गली वृक्षोंकी कलियां खिलउठीं और जलमें भौंरे आनन्दसे गान करनेलगे ॥ ३ ॥ वायु पवित्र सुगन्धित तथा मंद २ चलनेलगी, जब ब्राह्मणोंकी अग्नि शांति भावसे जलनेलगी ॥४॥ असुरोंके शत्रु साधुओं का मन प्रसन्न हुआ—विष्णु का जन्मसमय उपस्थित देखकर किन्नर और गन्धर्वगण गाने सिद्ध और चारणगण स्तुति करने तथा विद्याधरी सब अप्सराओं समेत एकत्रित होकर नाचनेलगीं, ॥ ५—६ ॥ जब मुनि और देवता प्रसन्नहो फूल बरसाने लगे, उसीसमय बादलसे ढके हुए चन्द्रमाकी समान भगवान प्रगट हुए। उससमय समुद्रके साथ साथ बादल मन्दमंद गर्जना करनेलगे ॥७॥ पूर्व ओरसे पूर्णिमाके चन्द्रमाकी समान देवरूपिणी देवकीके गर्भसे सर्वान्तर्यामि भगवान् विष्णुजी उत्पन्न हुए, ॥ ८ ॥ वसुदेवने देखा कि—यहबालक बड़ाही अद्भुतहै। उसके नेत्र कमलदलके समान दीर्घ, चतुर्भुजरूप धारणकिये तथा भुजाओंमें शंख चक्र आदि अस्त्रलियेहैं। वक्षःस्थलमें श्रीवत्सकाचिह्न शोभायमानहै; गलेमें कौस्तुभमणि धारणाकिये पीतवस्त्रपहिनें और रंग बादलोंकेसमान श्याममन हरनेवालाहै ॥९॥ अनेक केश घूंघरवालेहैं और अनमोल वैदूर्य किरीट और कुंडलकी प्रभासे झलक रहे हैं कांति श्रेष्ठ मेखला बाजूबन्द और कंकण आदि आभूषणों द्वारा शरीर शोभाको प्राप्त होरहे है ॥ १० ॥ वसुदेवजी ने विस्मितहो प्रफुल्लितनेत्रों से पुत्ररूपी हरि को देखकर मनहीमन में ब्राह्मणोंको दश सहस्र गऊदानकी। उस काल वह बन्धनावस्थामें थे अतएव यथार्थ में दान कैसे होसकताथा! कृष्णउनके पुत्ररूप से उत्पन्न हुएहैं,—इसी आनन्द में वसुदेवजी प्रफुल्लितहोरहेथे ॥११॥ हेभारत! अनन्तर उनको परमपुरुष रूप से स्थिरकर महात्मा वसुदेव पृथ्वीपर गिर, शुद्धभावसे हाथ जोड़

न्साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः । केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥ १३ ॥ स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम् । तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥ १४ ॥ यथेमेऽविकृता भावास्तथा ते विकृतैः सह । नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयन्ति हि ॥ १५ ॥ संनिपत्य समुत्पाद्य दृश्यन्तेऽनुगता इव । प्रागेव विद्यमानत्वान्न तेषामिह संभवः ॥ १६ ॥ एवं भवान्बुद्ध्यनुमेयलक्षणैर्ग्राह्यैर्गुणैः सन्नपि तद्गुणाग्रहः । अनावृतत्वाद्बहिरन्तरं न ते सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः ॥ १७ ॥ य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः । विनाऽनुवादं न च तन्मनीषितं सम्यग्यतस्त्यक्तमुपाददत्पुमान् ॥ १८ ॥ त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान्विभो वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात् । त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥ १९ ॥ स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः । सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥ २० ॥ त्वमस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषुर्गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर । राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपैर्निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः ॥ २१ ॥ अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे श्रुत्वाऽग्रजांस्ते न्यवधीत्सुरेश्वर । स तेऽवता

प्रभाव से निर्भयहो उनकी स्तुति करनेलगे ॥ १२ ॥ वसुदेवजी ने कहाकि— अहो ! मैं आपको जानताहूं आप प्रकृति से परे परमपुरुषहो, मेरा कैसा सौभाग्य है ! कि आज आपने मुझको साक्षात् दर्शन दिये । भगवान ! आप निरवच्छिन्न, अनुभव और आनन्दस्वरूप तथा सर्वजनों की बुद्धि के साक्षीहो ॥ १३ ॥ आप अपनी मायाद्वारा इस त्रिगुणात्मक विश्वको रचकर पश्चात् इस के भीतर नहीं प्रवेशकरते; केवल प्रविष्ट के समान लक्ष्य में आतेहो ॥ १४ ॥ सबमहदादि तत्व, सोलहविकारों समेत मिलकर इस ब्रह्मांड को उत्पन्नकरते हैं, पृथक् २ होकर वह सब सृष्टिको नहीं उत्पन्न करसकते ॥ १५ ॥ब्रह्मांड उत्पन्न करने के पीछे उस में प्रविष्टहुए से जानने मेंआतेहो किंतुयथार्थ में प्रविष्टनहींहोते, क्योंकि वे सबतत्व कारणरूप से प्रथमही वर्तमानथे ॥ १६ ॥ इस भांति रूपादि ज्ञानद्वारा जिसके स्वरूपका अनुमान कियाजाता है, आप उनसब विषयों में वर्तमान रहने परभी उनके साथ आप का प्रत्यक्षनहीं होता । आप सर्वस्वरूप, सर्वात्मा, सर्वव्यापक, परमार्थ वस्तुहो अतएव अपरिच्छिन्नहो; इसही कारण आप के स्वरूप में बाहर भीतर का भेद नहीं है ॥ १७ ॥ हे प्रभो! आप अन्तर्यामित्व रूप से सब में प्रवेश करकेभी जब यथार्थ रूपसे नहीं जानपड़ते तब देवकीके गर्भ में आपने कैसे प्रवेशकिया? अतएव आपकेवल आनन्द और अनुभवस्वरूपहो; आपको जो मैंने जाना यही मेरा परमसौभाग्य है। जो मनुष्य आत्माके दृश्यगुण देहादि को आत्माको पृथक् रूप से वर्तमान पदार्थ जानता है वह मूर्ख है क्योंकि विचारकर देखाजाय तो कथनमात्र बिना देहादिक सब झूठेही हैं अतएव झूठे देहादि को जो सत्यमाने वह मूर्खहै ॥ १८ ॥ हे प्रभो ! तत्ववेत्ता गण कहते हैं कि-आपही से इस विश्वकी उत्पत्ति और लय होती रहती है अतएव आप निर्गुण,और निर्विकारहो; अथवाआपही ईश्वरऔर ब्रह्महो; आपमें इन दोनोंका विरोध नहीं होसकता। आप गुणों के आश्रयहो; सबगुणोंसे सृष्टचादि आपहीमें आरोपित होती रहती हैं ॥१९॥ आपअपनी मायाद्वारा त्रिलोकीके पालनार्थ अपने सत्वगुणसे शुक्लवर्ण उत्पत्ति के निमित्त रजोगुणसे बढ़ाहुआ रक्तवर्ण और नाशके निमित्त तमोगुणके योगसे कृष्णवर्ण स्वीकारकरते रहतेहो ॥२०॥ हे अखिलेश्वर ! हे विभो ! आपने इससमस्त लोककी रक्षाके निमित्त कृष्णवर्ण धारणकर मेरेघरमें अवतार लिया है । राजन्य नामधारी करोड़ों असुर सेनापतियोंके साथ जोसेना इधर उधर घूमती फिरती है, आप उन सबका नाश करेंगे ॥ २१ ॥ हे सुरेश्वर ! दुष्ट कंसने मेरेघर आपका जन्म होना सुनकर आपके बड़ेभ-

रंपुरवैः समर्पितंश्रुत्वाऽद्युनैवाभिसरत्युदायुधः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैन मात्मजंवीक्ष्यमहापुरुषलक्षणम् । देवकीतमुपाधावत्कंसाद्भीताशुचिस्मिता॥२३॥ देवक्युवाच ॥ रूपंयत्तत्प्राहुरव्यक्तमाद्यंब्रह्मज्योतिर्निर्गुणंनिर्विकारम् । सत्तामात्रं निर्विशेषंनिरीहंसत्वंसाक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः ॥ २४ ॥ नष्टेलोकेद्विपरार्धावसाने महाभूतेष्वादिभूतंगतेषु । व्यक्तेऽव्यक्तंकालवेगेनयातेभवानेकः शिष्यतेऽशेषसंज्ञः ॥ २५ ॥ योऽयंकालस्तस्यतेऽव्यक्तबन्धोचेष्टामाहुश्चेष्टतेयेनविश्वम् । निमेषादिर्वं त्सरान्तोमहीयांस्तंत्वेशानंक्षेमधामप्रपद्ये ॥ २६ ॥ मर्त्योमृत्युव्यालभीतः पलायन्लो कान्सर्वान्निर्भयंनाध्यगच्छत् । त्वत्पादाब्जंप्राप्ययदृच्छयाद्यस्वस्थः शेतेमृत्युरस्मा दपैति ॥२७॥ सत्वंघोरादुग्रसेनात्मजान्नस्त्राहित्रस्तान्भृत्यवित्रासहाऽसि । रूपंचेदं पौरुषंध्यानधिष्ण्यंमाप्रत्यक्षंमांसदृशांकृषीष्ठाः ॥ २८ ॥ जन्मतेमय्यसौपापोमावि द्यान्मधुसूदन । समुद्विजेभवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥ २९ ॥ उपसंहरविश्वा त्मन्नदोरूपमलौकिकम् । शंखचक्रगदापद्मश्रियाजुष्टंचतुर्भुजम् ॥ ३० ॥ विश्वंयदेत त्स्वतनौनिशान्तेयथावकाशंपुरुषः परोभवान् । बिभर्तिसोऽयंममगर्भगोऽभूदहोनृ लोकस्यविडम्बनंहितत् ॥३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वमेवपूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वा यंभुवेसति । तदाऽयंसुतपानामप्रजापतिरकल्मषः ॥ ३२ ॥ युवांवैब्रह्मणादिष्टौप्र

दूतोंका बधाकिया है। प्रहरीगण आपका जन्म समाचार उसको देंगे वह समाचार पातेही शस्त्र उठाय इस समय आताही होगा ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन्! तदनंतर कंससे डरीहुई देवकी ने पुत्रके लक्षण भगवान केसे देख विस्मित चित्तसे उनकी स्तुति करनेका आरंभ किया ॥ २३ ॥ देवकी ने कहाकि—हे भगवन्! वेद जिसे एक आदि कारण अव्यक्त, वृहत, चेतन, निर्गुण, निर्विकार, सत्तामात्र, निर्विरोध, और निरीहवस्तु कहता रहता है आप साक्षात् वही विष्णुहो आप आत्माके दीपकहो, अतएव बुद्ध्यादि इन्द्रिय समूहों के प्रकाशकहो ॥ २४ ॥ ब्रह्माके द्विपरार्द्धके अंतमें कालके वगस लोकों के नाश होनेपर जब सब महाभूत आदिभूतमें और आदिभूत प्रकृति में प्रवेश करते हैं तब केवल आपही शेष रहतेहो ॥ २५ ॥ उस समय अशेषात्मन् प्रधान में आपकी बुद्धिहोती है तब आप चिंता करतेहो—कि यह प्रधान मुझमें लीन होगया है इसको फिर प्रकाशितकरू, निमेषादि से वर्षतक इसी द्विपरार्द्ध रूप कालमें इस विश्वका परिवर्तन होता है, हे प्रकृति प्रवर्तक! यही आपकी लीला कहीजाती है; आप अभय के स्थान रूपहो अतएव मैं आपके शरणागतहूं ॥ २६ ॥ मृत्युलोक वासी मनुष्य मृत्युरूप सांपसे भयभीत होकर समस्त लोकों में भागता फिरता है परन्तु उसको कहीं भी निर्भय स्थान नहीं मिलता। जोकोई एक अनिर्वचनीय भाग्योदय केवल से आपके चरण कमलों को प्राप्तकर शांतचित्त से सोता है; मृत्यु उसके समीप से भागजाती है, वह आप हमारीभी रक्षाकरो ॥ २७ ॥ आप भक्तों के भयको दूर करने वालेहो; हम उग्रसेन के पुत्रदुष्ट कंससे भयभीत हैं, कृपाकरके हमारी रक्षाकरो। आप अपने इस ध्यानयोग्य ईश्वर रूपको चर्म चक्षुओं के दृष्टिगोचर न करें ॥ २८ ॥ हे मधुसूदन! मेरे गर्भमें आपका जन्म हुआ है, पापी कंस यह न जानने पावे। मेराचित्त बड़ाही चंचल है; अतएव आपके कारणही कंस से भयभीतहूं ॥ २९ ॥ हे विश्वात्मन्! आप इस शंख, चक्र, गदा, पद्मयुक्त चतुर्भुज रूपको अंतर्ध्यान करें ॥ ३० ॥ प्रलय कालमें आप जब अपनी देह में इस विश्व ब्रह्माण्डको धारण करतेहो तब विश्वकी किसी वस्तुकाभी उस स्थानपर संकोच नहीं होता; वही आप मेरे गर्भ में उत्पन्न हुये है मनुष्यों के लिये यह एक प्रकार की विडंबना मात्र है ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान् बोले कि—हेसति! पूर्वजन्मके स्वायम्भुव मन्वन्तर में तुम्हारानाम पृश्निथा उससमयमें

प्रजासर्गायवाततः । सन्नियम्येन्द्रियग्रामंतेपाथेपरमंतपः ॥ ३३ ॥ वर्षवातातपहिमघ
र्मकालगुणाननु । सहमानौश्वासरोधविनिर्धूतमनोमलौ ॥ ३४ ॥ शीर्णपर्णानिलाहा
रावुपशान्तेनचेतसा । मत्तः कामानभीप्सन्तौमदाराधनमीहतुः ॥ ३५ ॥ एवंवां
तप्यतोस्तीव्रंतपः परमदुष्करम् । दिव्यवर्षसहस्राणिद्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥ ३६ ॥ त
दावांपरितुष्टोहममुनावपुषाऽनघे । तपसाश्रद्धयानित्यंभक्त्याचहृदिभावितः ॥३७॥
प्रादुरासंवरदराड्युवयोः कामदित्सया । व्रियतांवरइत्युक्तेमादृशोवांवृतः सुतः
॥ ३८ ॥ अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौचदम्पती । नवव्राथेऽपवर्गंमेमोहितौदेवमाय
या ॥ ३९ ॥ गतेमयियुवांलब्ध्वावरंमत्सदृशंसुतम् । ग्राम्यान्भोगानभुञ्जाथांयुवां
प्राप्तमनोरथौ ॥ ४० ॥ अदृष्ट्वाऽन्यतमंलोकेशीलौदार्यगुणैः समम् । अहंसुतोवाम
भवंपृश्निगर्भइतिश्रुतः ॥ ४१ ॥ तयोर्वांपुनरेवाहमदित्यामासकश्यपात् । उपेन्द्र
इतिविख्यातोवामनत्वाच्चवामनः ॥ ४२ ॥ तृतीयेऽस्मिन्भवेऽहंवैतेनैववपुषाऽथवा
म् । जातोभूयस्तयोरेवसत्यंमेव्याहृतंसति ॥४३॥ एतद्वांदर्शितंरूपंप्राग्जन्मस्मरणा
यमे । नान्यथामद्भवंज्ञानंमर्त्यलिङ्गेनजायते ॥ ४४ ॥ युवांमांपुत्रभावेनब्रह्मभावेनचा
सकृत् । चिन्तयन्तौकृतस्नेहौयास्येथेमद्गतिंपराम् ॥ ४५ ॥ (यदिकंसाद्बिभेषि
त्वंतर्हिमांगोकुलंनय । मन्मायामानयाशुत्वं यशोदागर्भसंभवाम् ॥ १ ॥) श्रीशुक
उवाच । इत्युक्त्वासीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया । पित्रोःसंपश्यतोःसद्यो बभूव

यह निष्पाप वसुदेव सुतपा नामके प्रजापतिथे ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजीने तुम दोनोंको प्रजा उत्पन्न करने की आज्ञादी तुम इन्द्रियों को वशमें कर तपस्या करनेमें प्रवृत्तहुए ॥ ३३ ॥ वर्षा,वायु,धूप,जाड़ा, गर्मी आदि इन सब कालोंके गुणोंका सहन किया तुम प्राणायाम द्वारा मनके मलको स्वच्छकर । गिरेहुए पत्ते और वायुका भक्षण करतेहुए मुझसे इच्छित वर पानेकी इच्छाकर शांत चित्तसे मेरा ध्यान करनेलगे ॥ ३५ ॥ हेभद्रे ! मुझमें चित्तलगाय तुम दोनों इसप्रकारसे परमदुष्कर तपस्यामें प्रवृत्तहुए कि बारहसहस्र दिव्य वर्ष बीतगए ॥ ३६ ॥ हे पापरहित ! तब तपस्या श्रद्धा और नित्य भक्ति योग द्वारा चिन्तित होकर वरदेनेवालोंमें श्रेष्ठ मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ ॥ ३७ ॥ तथा वरदेनेकी इच्छासे शरीर धारणकर तुम्हारे समीप आयकर कहनेलगा कि वरमांगो । यह सुनकर तुमने मेरी समान पुत्रकी प्रार्थनाकीथी ॥ ३८ ॥ तुम दोनों स्त्री पुरुषोंने ग्राम्य सुख नहीं भोगे तथा तुम्हारे पुत्रभी नहीं हुएथे अतएव तुमने हमसे मुक्ति न मांगी मेरी मायाने तुमको मोहित कर दियाथा ॥ ३९ ॥ मेरे चलेजानेपर तुम मेरी समान पुत्र होनेका वरपाय सफल मनोरथहो उपभोगोंमें प्रवृत्तहुए ॥ ४० ॥ मैंने सृष्टिमें शील, उदारता और गुणमें अपनी समान दूसरे मनुष्य को न देखकर तुम्हारे यहां अवतार लिया पृश्नि पुत्रके नामसे विख्यात हुआ, ॥ ४१ ॥ मनमें विचारो कि दूसरे जन्ममें भी मैं तुम्हारा पुत्रहुआथा, इससमय मैंने कश्यपके वीर्यसे अदितिके गर्भ में जन्मग्रहण किया—इन्द्रसे छोटाथा इससे उपेंद्र और आकृतिमें छोटाथा इससे' वामन, नामसे विख्यात हुआ ॥ ४२ ॥ इस जन्ममें भी वही मैं उस शरीरको धारणकर फिर तुम्हारेही गर्भमें उत्पन्न हुआ । हेसति ! इसमें जो मैंने कहा वह सब सत्यहै, ॥ ४३ ॥ पहिले मैंने इसही रूपसे जन्म ग्रहण कियाथा यह स्मरणादि लानेके निमित्तही मैंने तुमको यहरूप दिखाया ऐसा न होनेसे मनुष्यरूप देखकर तुम कदापि न पहिंचानसकते॥४४॥पुत्र भावसेहो चाहे ब्रह्मभावसे हो तुम मेरा सदैव ध्यानकर तथा मुझपर स्नेहरख श्रेष्ठपदको प्राप्तहोगे॥४५॥श्रीशुकदेवजी बोले कि—भगवान् यहबात कहकर चुपहुए और अपनीमायाके योगसे उसीसमय माता पिताके सामनेही बालक रूप होगये ॥४६॥ तदनन्तर जो तुम कंससे डरतेहो तो मुझे गोकुल में लेचलो और यशोदाकी कन्या कि—जो मेरी मायारूपहै उसे यहां लेआओ,, भगवान् की ऐसी आज्ञासे वसुदेवजीने पुत्रको लेकर

प्राकृतः शिशुः ॥ ४६ ॥ ततश्चशौरिर्भगवत्प्रचोदितः सुतंसमादायससूतिकागृ-
हात् । यदाबहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजायायोगमायाऽजनि नन्दजायया ॥ ४७ ॥ तया
हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु द्वाःस्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ । द्वारस्तुसर्वाःपिहितादुर-
त्ययाबृहत्कपाटायसकीलशृंखलैः ॥ ४८ ॥ ताः कृष्णवाहेवसुदेवआगते स्वयंव्य-
वर्यन्तयथातमोरवेः । ववर्षपर्जन्यउपांशुगर्जितः शेषोन्वगाद्वारिनिवारयन्फणैः ॥
॥ ४९ ॥ मघोनिवर्षत्यसकृद्यमानुजागम्भीरतोयौघजवोर्मिफेनिला । भयानकाव-
र्तशताकुलानदीमार्गंददौ सिन्धुरिवश्रियःपतेः ॥ ५० ॥ नन्दव्रजं शौरिरुपेत्यतत्र-
तान्गोपान्प्रसुप्तानुपलभ्यनिद्रया ॥ सुतंयशोदाशयनेनिधाय तत्सुतामुपादायपुन-
र्गृहानगात् ॥ ५१ ॥ देवक्याःशयनेन्यस्यवसुदेवोऽथदारिकाम् । प्रतिमुच्यपदो-
र्लोहमास्तेपूर्ववदावृतः ॥ ५२ ॥ यशोदानन्दपत्नी च जातंपरमबुद्ध्यत । नतल्लिङ्गं
परिश्रान्ता निद्रयाऽपगतस्मृतिः ॥ ५३ ॥

इतिश्रीमद्भा० म० दशम० तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच । बहिरन्तःपुरद्वारः सर्वाःपूर्ववदावृताः । ततोबालध्वनिंश्रुत्वा
गृहपालाःसमुत्थिताः ॥ १ ॥ तेतुतूर्णमुपव्रज्य देवक्यागर्भजन्मतत् । आचख्युर्भो-
जराजाय यदुद्विग्नःप्रतीक्षते ॥ २ ॥ सतल्पात्तूर्णमुत्थाय कालोऽयमितिविह्वलः ।
सूतीगृहमगात्तूर्णं प्रस्खलन्मुक्तमूर्धजः ॥ ३ ॥ तमाहभ्रातरंदेवी कृपणाकरुणंसती ।
स्नुषेयंतवकल्याण स्त्रियंमाहन्तुमर्हसि ॥ ४ ॥ बहवोहिंसिताभ्रातः शिशवःपावको

सूतिका गृहसे बाहर निकलने की इच्छाकी इस ओर योगमाया ने जन्मरहितहोकर भी यशोदा के घर में जन्मग्रहण किया ॥ ४७ ॥ उसी माया के प्रभाव से सबद्वारपाल और पुरजन अचेतहोकर निद्राके वशहोगये । सबद्वारों के बड़े किवाड़का लोहेकी कीलोंकी सकलों द्वारा बंदहोने से खुलना अत्यन्त कठिनथा ॥ ४८ ॥ परन्तु वसुदेवजी कृष्णजीको लेज्योंही समीप पहुँचे वैसेही सूर्योदयसे अन्धकारकी समान वहसब आपही आप खुल गये ।बादल गरज २करवर्षनेलगे शेषनाग फणद्वारा जल निवारण करते २ वसुदेवजी के पीछे २ चले ॥ ४९ ॥ लगातार वर्षने से यमुना, गम्भीर जल राशिके वेगकीतरंगों से फेनयुक्तथा सहस्रों भँवरोंसे परिपूर्ण होगई । परन्तुजैसे समुद्र ने रामचन्द्र जीकामार्ग दियाथावैसेही यमुना ने वसुदेवजीको मार्ग दिया ॥ ५० ॥ वसुदेवजी श्रीकृष्णजी को ले कर नन्दके व्रजमें आये । वहां आयकर देखाकि-समस्तगोपगण एकसाथही निद्राके वशीभूत हो गये हैं । यह देख पुत्रको यशोदाकी शय्या में लिटाय और उसकी कन्याको ले फिरघरको लौटे॥ ५१ ॥ तदनन्तरदेवकी की शय्या में उस कन्या को रखकर, दोनों पैरोंमें फिर लोहे की बेड़ियें पहिलेकी समान बन्धनावस्था में होगये ॥ ५२ ॥ नन्दपत्नी यशोदा ने केवलइतनाही जानपायाथा कि कुछ उत्पन्नहुआ है ।वह कामित और माया के वशसे स्मृति रहित होगईथीं;अतएव जिससमय सन्तानउत्पन्नहुईथी उससमय यह निश्चयनकरसकीं किपुत्रउत्पन्नहुआ है याकन्या ॥ ५३ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन् ! वसुदेवजी के लौट आनेपर बाहिरी द्वार, भीतरद्वार और नगर द्वार—सबही पहिले की समान बंद होगये।तदनंतर बालकका रोनासुन द्वारपालों ने उठकर शीघ्रता पूर्वक कंसके यहांजाय देवकी के आठवें पुत्र होनेकी वार्त्ताकही; राजा उसही के निमित्त व्याकुल होकर उसकी राह देखताथा ॥ १ ॥ २ ॥ यही मेराकाल है; ऐसा विचार विह्वलहो वह शीघ्रतासे शय्यापर से उठा तथा खुलेहुये केश, ठोकर खाता हुआ सूतिका गृहमें आया ॥ ३ ॥ उसको देखकर सती देवकी ने दुःखितहो निष्ठुर भाई से कहाकि—हे कल्याण ! यह तुम्हारी भानजी है,

पमाः । त्वयादैवनिसृष्टेन पुत्रिकैकाप्रदीयताम् ॥ ५ ॥ नन्वहंतेह्यवरजा दीनाहत-सुताप्रभो । दातुमर्हसिमन्दाया अंगेमांचरमांप्रजाम् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच । उप-गुह्यात्मजामेवंरुदत्यादीनदीनवत् । याचितस्तां विनिर्भर्त्स्यहस्तादाचिच्छिदे खलः ॥ ७ ॥ तांगृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रां स्वसुःसुताम् । अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थो-न्मूलितसौहृदः ॥ ८ ॥ सातद्धस्तात्समुत्पत्य सद्योदेव्यम्बरंगता । अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाऽष्टमहाभुजा ॥ ९ ॥ दिव्यस्रगम्बरालेपरत्नाभरणभूषिता । धनुः शूलेषुचर्मासिशंखचक्रगदाधरा ॥ १० ॥ सिद्धचारणगन्धर्वैरप्सरःकिन्नरोरगैः । उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ किंमयाहतयामन्द जातःखलुतवा-न्तकृत् । यत्रक्ववापूर्वशत्रुर्मा हिंसीःकृपणान्वृथा ॥१२॥ इतिप्रभाष्यतंदेवी मायाभ गवतीभुवि । बहुनामनिकेतेषु बहुनामाबभूवह ॥ १३ ॥ तयाऽभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः । देवकींवसुदेवंच विमुच्यप्रश्रितोऽब्रवीत् ॥ १४ ॥ अहोभगिन्यहो-भाम मयावांबतपाप्मना । पुरुषादइवापत्यं बहवोहिंसिताःसुताः ॥ १५ ॥ सत्वहं त्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत्खलः । काँल्लोकान्वैगमिष्यामि ब्रह्महेवमृतः श्वसन् ॥ १६ ॥ दैवमप्यनृतंवक्ति नमर्त्याएवकेवलम् । यद्विश्रम्भादहंपापः स्वसुर्निहतवा-ञ्छिशून् ॥ १७ ॥ माशोचतंमहाभागा वात्मजान्स्वकृतंभुजः । अन्तवोनसदैकत्र दैवाधीनाःतथाऽऽसते ॥ १८ ॥ भुविभौमानिभूतानि यथायान्त्यपयान्तिच । नाय

स्त्री का मारना तुम्हे उचितनहीं ॥ ४ ॥ हेभाई ! कालसे प्रेरितहो अग्निकी समान तुमने मेरेकई बच्चोंको मारा है, एक सन्तानतो मुझे भिक्षा में दो ॥ ५ ॥ मैं तुम्हारी छोटी बहिनहू, दूसरे पुत्रों के मरने से मैं बड़ीही कातर होरहीहू हे प्रभो ! इसअभागिनी को अन्तिमसन्तान दानकरनाउ-चित है ॥ ६ ॥ शुकदेवजी बोले कि-हेराजन् ! देवकी उस कन्याको छाती से लगायकर अत्यंत कातराकी समान रोरोकर प्रार्थनाकरने लगी, तौभी दुष्टकंसने उसका निरादर करके उस के हाथ से कन्या को छीनलिया ॥ ७॥ तथा उस तत्काल की उत्पन्नहुई बहिनकी कन्याके पैर पकड़ उसे शिलापर फेंकमारा । महाराज ! ज्योंही दुष्टकंस ने विष्णुकी छोटी बहिनको पत्थरपर पटका ॥ ८ ॥ त्योंही वह कंसके हाथ से छूटआकाश में उड़गई, और देवी रूपहो दीखने लगी । देवी के आठ भुजायेंथी-वह उनआठों भुजाओं में धनुष, शूल, बाण, तलवार, ढाल, चक्र, खड्ग और गदा धारण कियेथी देह दिव्यमाला बसन,चन्दन, और रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषितथी ९-१० ।सिद्ध चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर और उरगगण पूजाके पदार्थों द्वारा पूजा करके स्तुति कररहेथे देवीने कहा कि-११ ॥ रेदुष्ट ! मरे मारनेसे तुझे क्या मिलेगा? तेरे पूर्वजन्मका शत्रु तेरे प्राणका लेनेवाला होकर कहीं दूसरेही स्थानमें जन्माहै अतएव दूसरे निर्दोष बालकोंको व्यर्थही मारता है ॥ १२ ॥ भगवती मायादेवी कंससे यह बात कहकर काशी आदि नाना स्थानों में अनेक नामों से विख्यात हुई ॥ १३ ॥ कंस उस मायाकी बात सुनकर विस्मित होगया, तथा देवकी और ब-सुदेवको बंधन से छोड़ नम्रभाव से कहनेलगा कि ॥ १४ ॥ हे बहिन ! हे बहनोई ! तुम हमारे आत्मीयहो; किंतुराक्षस जैसे बच्चोंका बधकरता है, वैसेही मुझ पापात्माने तुम्हारी कितनीही संतानों का नाशकिया है ॥ १५ ॥ मैं निर्दय, जाति और सबधियों का त्याग करने बाला, दुष्ट, ब्रह्मघाती की सदृश जीताहुआ भी मराहुआ सोमैं कौनसे लोकको जाऊंगा ॥ १६ ॥ केवल मनुष्यही नहीं किन्तु देवता भी असत्य बोलते हैं । देवताओं की बातपर विश्वास करकेही मैने बहिनके लड़कोंको मारा ॥ १७ ॥ हे महाभाग ! पुत्रों के निमित्त दुःख न करना, उन्हों ने अपने २ कर्म फलोंका भोग किया है समस्त प्राणी दैवकेही वशमें हैं; वे सदैव एकत्र नहीं रहसकते ॥ १८ ॥ जैसे पृथ्वीपर

मात्मातथैतत्तु विपर्येतियथैवभूः ॥ १९ ॥ यथाऽनेवंविदोभेदो यतआत्मविपर्ययः। देहयोगवियोगौच संसृतिर्ननिवर्तते ॥ २० ॥ तस्माद्भद्रेस्वतनयान्मया व्यापादितानपि। माऽनुशोचयतःसर्वः स्वकृतंविन्दतेऽवशः ॥२१॥ यावद्धतोस्मि हन्तास्मीत्यात्मानं मन्यतेस्वदृक्। तावत्तदभिमान्यज्ञो बाध्यबाधकतामियात् ॥ २२ ॥ क्षमध्वंममदौरात्म्यं साधवोदीनवत्सलाः। इत्युक्त्वाऽश्रुमुखःपादौश्यालःस्वस्रोरथाग्रहीत् ॥ २३ ॥ मोचयामास निगडाद्विस्रब्धःकन्यकागिरा। देवकींवसुदेवंच दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥ २४ ॥ भ्रातुःसमनुतप्तस्य क्षान्तरोषाचदेवकी। व्यसृजद्वसुदेवश्च प्रहस्यतमुवाचह ॥२५॥ एवमेतन्महाभाग यथावदसिदेहिनाम्। अज्ञानप्रभवाहंधीः स्वपरेतिभिदायतः ॥२६॥ शोकहर्षभयद्वेषलोभमोहमदान्विताः। मिथोघ्नन्तं नपश्यन्ति भावैर्भावंपृथग्दृशः ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच। कंसएवंप्रसन्नाभ्यां विशुद्धंप्रतिभाषितः। देवकीवसुदेवाभ्यामनुज्ञातोऽविशद्गृहम् ॥ २८ ॥ तस्यांरात्र्यांव्यतीतायां कंसआहूयमन्त्रिणः। तेभ्यआचष्टतत्सर्वं यदुक्तंयोगनिद्रया ॥२९॥ आकर्ण्यभर्तुर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः। देवान्प्रतिकृतामर्षा दैतयानातिकोविदाः ॥३०॥ एवंचत्तर्हिभोजेन्द्र पुरग्रामव्रजादिषु। अनिर्दशान्निर्दशांश्च हनिष्यामोऽद्यवैशिशून् ॥ ३१ ॥ किमुद्यमैःकरिष्यन्ति देवाःसमरभीरवः। नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषै

पार्थिव पदार्थ घटआदि उत्पन्न होते और टूटजाते हैं किंतु मिट्टीवनीही रहती है तैसेही देहादि भी उत्पन्न होते और नाश होते हैं- आत्मा उसही अवस्था में रहता है—देहके विकार होने से आत्मा का विकार नहीं होता। जोभली भांतिसे इसको नहीं जानता, उन्हीं की देहमें आत्म बुद्धि उत्पन्न होती रहती है, और उसही बुद्धिके कारण भेदज्ञान भी उत्पन्न होता है, उसही भेदज्ञान से पुत्रादि के देहके साथ संयोग और वियोग होता है। और उस देहके साथ संयोग वियोग होने से सुख दुःख होता रहता है, विनाज्ञान के उदय हुये संसार से निवृत्ति नहीं होती॥ १९ । २० ॥ हे भद्रे! यद्यपि मैंने तुम्हारे पुत्रोंको मारा है तथापि उनके निमित्त दुःख न करो। कोई स्वाधीन नहीं है, सभी को अपने २ कर्मों का भोगकरना पड़ता है ॥ २१ ॥ "मैंनेमारा" तथा "मुझकोमारा" ऐसा जबतक माने तबतक यह देहाभिमानी अज्ञानी मनुष्य प्रायश्चित्त का अधिकारी है ॥ २२॥ तुम दोनों जन साधु तथा बन्धुवत्सलहो, अतएव मेरी दुष्टता को क्षमाकरो। कंस यहबात कहकर नेत्रों से जल डालतेर बहिन और बहनोई के चरणों में गिरपड़ा ॥ २३ ॥ उसने मायारूपी कन्या की बातपर विश्वासकर देवकी और वसुदेव को बन्धन से छोड़ उनपर अपनी सुहृदता प्रकाशकी ॥ २४ ॥ भ्राताको संताप करते देखकर देवकी ने उसपर से क्रोध त्यागदिया। वसुदेवजी भी क्रोध छोड़कर हँसते२ कहनेलगे कि—॥ २५ ॥ प्राणियों के पक्ष में जोकुछ कहा वह निश्चयहीइसी भांति है। अहंबुद्धि अविद्याही से उत्पन्नहोती है; उसी अहंबुद्धि से यह 'मेरा' यह 'पराया' इस भांति का ज्ञान उत्पन्न होता है॥ २६ ॥ भेददर्शी प्राणी देहके निमित्त शोक, हर्ष,भय, द्वेष, लोभ, मोह, तथा अहंकारसे परिपूर्णहो परस्परकी देह का विनाशकरते रहते हैं किंतु सर्वात्मा जगदीश्वर कि जो उनके समस्तकार्यों को देखते रहते हैं, वह उनको एकबारभी नहीं देखते ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि वसुदेव और देवकी को प्रसन्न होकर यह कहनेपर कंस उनकी आज्ञाले अपने घर परगया ॥ २८ ॥ तदनन्तर उस रात्रिके प्रभात होतेही कंस ने मंत्रियों को बुलाया, तथा कन्यारूपिणी माया ने जो २ कुछ कहाथा वहसब उनसे कहसुनाया ॥ २९ ॥ देवताओंपर क्रोधकरनेवाले मूर्ख,देवशत्रु, दानवगणों ने कंस की बात सुनकर कहा कि—॥ ३० ॥ हे भोजेन्द्र! यदि यही है तो ऐसाहोने से सबबालकों को कि जिनकी आयु दशदिनकी होगईहै तथा दश दिन नहीं बीते—उन सबको पुर, नगर और व्रजआदि में जायजाकर नाश करडालें ॥ ३१ ॥ देवतातो समरमें डरपोक

धेनुषस्तव ॥३२॥ अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्यमानाः समन्ततः । जिजीविषवउत्सृज्य प लायनपरायणुः ॥ ३३ ॥ केचित्प्राञ्जलयोदीना न्यस्तशस्त्रादिवौकसः । मुक्तकच्छ शिखाः केचिद्भीताःस्मइतिवादिनः ॥ ३४ ॥ नत्वंविस्मृतशस्त्रास्त्रान्विरथान्भयसं वृतान् । हंस्यन्यासक्तविमुखान्भग्नचापानयुध्यतः ॥३५॥ किंक्षेमशूरैर्विबुधैरसंयु गविकत्थनैः रहोजुषाकिंहरिणा शंभुनावावनौकसा । किमिन्द्रेणाल्पवीर्येणब्रह्मणा वातपस्यता ॥ ३६ ॥ तथापिदेवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्याइतिमन्महे । ततस्तन्मूलखन- ने नियुङ्क्ष्वास्माननुव्रतान् ॥ ३७ ॥ यथाऽऽमयोऽङ्गे समुपेक्षितो नृभिर्नशक्यतेरू- ढपदश्चिकित्सितुम् । यथेन्द्रियग्राम उपेक्षितस्तथा रिपुर्महान्बद्धबलोनचाल्यते । ॥ ३८ मूलंहिविष्णुर्देवानां यत्रधर्मःसनातनः । तस्यचब्रह्मगोविप्रास्तपोयज्ञाः सद क्षिणाः ॥ ३९ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ॥ तपस्विनोयज्ञशी- लान्गाश्च हन्मोहविर्दुघाः ॥ ४० ॥ विप्रागावश्चवेदाश्च तपःसत्यंदमःशमः । श्रद्धा दयातितिक्षाच क्रतवश्चहरेस्तनूः ॥ ४१ ॥ सहिसर्वसुराध्यक्षो ह्यसुरद्विड्गुहाश- यः । तन्मूलादेवताःसर्वाः सेश्वराःसचतुर्मुखाः । अयवैतद्वधोपायो यदृषीणां वि- हिंसनम् ॥ ४२ ॥ श्रीशुकउवाच । एवंदुर्मन्त्रिभिःकंसः सहसंमन्त्र्यदुर्मतिः । ब्रह्म हिंसां हितंमेने कालपाशावृतोऽसुरः ॥ ४३ ॥ संदिश्यसाधुलोकस्य कदनंकदनप्रि

ही हैं आपके धनुषशब्द से उनके चित्त सदैव व्याकुल होतेरहते हैं; अतएव वहयुद्धका उद्यम करके क्याकरेंगे ? ॥ ३२ ॥ आप के बाणों से बींधने तथा मारने को तत्पर होने पर वह प्राणों के भयसे चारोंओरको भागगयेथे॥३३॥किसी देवताने डरकर, शस्त्र शस्त्र छोड, हाथजोड़आप से दया की प्रार्थनाकीथी, कोई२ तो कांछ और शिखाको खोलकर कहतेथे-कि'हम भयभीत होरहे हैं॥ ३४ ॥ आपने फिर उनको नहीं मारा क्योंकि वह अपनेर अस्त्र शस्त्र भूलगयेथे तथा विमुख होगयेथे । उन के रथनहींथा, उनकाधनुष टूटगयाथा, युद्ध करनेकी उनका इच्छानथी॥३५॥जिस स्थानमें डरनहीं होता देवता उसी स्थानमें वीरता को प्रकाश करते हैं । वह युद्धके अतिरिक्त और सबही स्थानों पर अपनी वीरता की बड़ाई करने में नहीं चूकते उनका क्या भयहै? नारायण तो एकांतही में वास करता है वह क्या करसकता है ? शिव वनवासी हैं उससे होही क्या सकता है ? और ब्रह्मा तो तपस्वी है इन्द्र का पराक्रम अतिही साधारण है ॥ ३६ ॥ तब फिर उनके मध्यमें कौन है ? देखो, प्राण पण से चेष्टा करने परभी देवता गण कुछ नहीं कर सकते, तौभी वे हमारे शत्रु हैं-उनकी उपेक्षा करना उचित नहीं । अतएव उनके समूल नष्ट करनेके निमित्त हमको नियुक्त करो ॥ ३७ ॥ देहसे उत्पन्न हुआ रोग रोगी से उपेक्षित होनेपर जड़ बांध कर जैसे असाध्य होजाता है; जैसे इन्द्रियों से उपेक्षित होने पर उनका वशीभूत करना असाध्य होजाता है-तैसेही प्रबल शत्रुके दृढ़ होनेपर उसका उखाडना असाध्य होजाताहै, ॥ ३८ ॥ जिस स्थानमें सनातन धर्महै उसी स्थानमें विष्णुभी निवास करतेहैं । और विष्णुही देवताओंमें प्रधान हैं । और वेद ब्रा- ह्मण, गौ, तपस्या, यज्ञ तथा दक्षिणा यही धर्मकी जड़हैं ॥ ३९ ॥ अतएव हेराजन् ! सब प्रयत्नों से ब्रह्मवेत्ता तपस्वी,यज्ञशील ब्राह्मणोंको तथा घृत उत्पन्न करनेवाली सब गौओंके मारनेका आरम्भ करो ॥ ४० ॥ देवता, तपस्या, सत्य, दम, शम, श्रद्धा, दया, क्षमा और नानाप्रकार के यज्ञ यह सब विष्णुकी मूर्त्तिहैं॥४१॥ विष्णुही सब देवताओंका अधीश्वरहै, असुर द्वेषी तथा अन्तर्यामी विष्णु ही महादेव और ब्रह्मा आदिसमस्त देवताओंका आदि कारणहैं; । अतएव ऋषियों का वध होने सेही विष्णुका वध होसकताहै ॥ ४२ ॥ दुष्टकंस, दुष्टमंत्रियोंके साथ परामर्श कर ब्रह्महत्या करने

यान्। कामरूपधरादिक्षु दानवान्गृहमाविशत् ॥ ४४ ॥ तेवैरजःप्रकृतयस्तमसामूढचेतसः। सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यवः ॥४५॥ आयुःश्रियंयशोधर्मं लोकानाशिषएवच। हन्तिश्रेयांसिसर्वाणि पुंसोमहदतिक्रमः ॥ ४६ ॥
इति श्रीमद्भा०महा०दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कंसोद्यमनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

श्रीशुक उवाच ॥ नन्दस्त्वात्मजउत्पन्नेजाताह्लादोमहामनाः। आहूयविप्रान्वेदज्ञान्स्नातः शुचिरलंकृतः ॥ १ ॥ वाचयित्वास्वस्त्ययनंजातकर्मात्मजस्य वै। कारयामासविधिवत्पितृदेवार्चनंतथा ॥ २ ॥ धेनूनांनियुतेप्रादाद्विप्रेभ्यः समलंकृते। तिलाद्रीन्सप्तरत्नौघशातकौम्भाम्बरावृतान् ॥ ३ ॥ कालेनस्नानशौचाभ्यांसंस्कारैस्तपसेज्यया। शुध्यन्तिदानैःसंतुष्ट्याद्रव्याण्यात्मात्मविद्यया ॥ ४ ॥ सौमङ्गल्यगिरोविप्राः सूतमागधवन्दिनः। गायकाश्चजगुर्नेदुर्भेर्योदुन्दुभयोमुहुः ॥५॥ व्रजः सम्मृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहान्तरः। चित्रध्वजपताकास्रक्चैलपल्लवतोरणैः ॥६॥ गावोवृषावत्सतराहरिद्रातैलरूषिताः। विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकाञ्चनमालिनः॥७॥ महार्हवस्त्राभरणकञ्चुकोष्णीषभूषिताः।गोपाःसमाययू राजन्नानोपायनपाणयः॥८ गोप्यश्चाकर्ण्यमुदितायशोदायाःसुतोद्भवम्। आत्मानंभूषयांचक्रुर्वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः॥९॥नवकुंकुमकिञ्जल्कमुखपङ्कजभूतयः।बलिभिस्त्वरितंजग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥१०॥ गोप्यःसुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्यश्चित्राम्बराःपथिशिखाच्युत

कोही श्रेष्ठजान तथा बधप्रिय कामरूपधारी दैत्योंको साधुओंके मरनेके निमित्त आज्ञादे घरमें गया ॥४३-४४॥ उन दुष्ट असुरोंके अंतःकरण तमोगुणसे ढकेहुएथे उन्होंने साधुओंसे शत्रुता करनी आरम्भकी। मृत्यु उनके निकट आगईथी ॥ ४५ ॥ हे परीक्षित्! महात्माओंके निरादरसे मनुष्योंकी आयु, लक्ष्मी, यश, धर्म, स्वर्गादि, लोक, कल्याण, और समस्त इष्ट नष्ट होजाते हैं ॥ ४६ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० दशम० सरलाभाषाटीकायांचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि-हे राजन्! पुत्रका उत्पन्नहोना देख, उदार मनवाले नंदजीने आनंदित हो वेद जानने वाले ब्राह्मणोंको बुलाया तथा स्नानकर पवित्रहो उन सब ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्ययन कराय यथा विधिसे पुत्रका जातकर्म करके पितृपूजा और देवपूजा कराई ॥ १—२ ॥ उन्होंने ब्राह्मणों को सजीहुई दोलक्ष गौएं, रत्न समूह तथा सुनहरे वस्त्रों से घिरेहुये सात पर्वतों के तिल दानकिये ॥ ३ ॥ धनआदि पदार्थ जैसे काल, स्नान, शौच, संस्कार, तपस्या, यज्ञ, दान और संतुष्टि द्वारा शुद्ध होते हैं वैसेही आत्म ज्ञान द्वारा आत्मा भी शुद्ध होता रहता है ॥ ४ ॥ नंदजी के व्रजमें उस आनंदके दिन वंशका कीर्त्तन करनेवाले बंदी, सूत और मागधगण स्वस्तिवाचन करनेलगे, गायकों ने गाना आरंभकिया। चारों ओर से भेरी और दुंदुभी बजनेलगीं ॥ ५ ॥ सम्पूर्ण व्रजकेघर विचित्र ध्वजा, पताका, माला, तोरण और वंदन वारसे सुशोभित होगये, घरोंके द्वार, आंगन, और भीतर के भाग स्वच्छहो तथा धोये जाकर अपूर्व शोभाको बढाने लगे ॥ ६ ॥ गाऐं, बैल और बछडे सभी तेल और हल्दी से रंगगये तथा उनको विचित्र धातु व मोरछल लगाई, झूलें ओढाईं और सोनेकी माला पहिनाई ॥ ७ ॥ गोपगण बडे मोलके वस्त्र, आभूषण, अंगरखा और पाग पहिन कर हाथमें नाना भेटेंले नंदजी के घरमें आनेलगे ॥ ८ ॥ यशोदा के पुत्रहुआ है यह सुनकर सब गोपियें आनंदित हुईं तथा वस्त्र, आभूषण और अंजनादि द्वारा अपनेको विभूषित करने लगीं ॥९॥ बडे बडे नितम्बों वाली तथा जिनके त्रिवली शोभायमान होरही हैं ऐसी गोपियों के कमल मुख नए केसरके चरचने से अति शोभायमान हुये। वह भेंटें आदि लेकर शीघ्रता पूर्वक नंदजी के घर में गमन करने लगीं। शीघ्रता से चलने के कारण उनके बडे २ स्तन कंपायमान होतेथे ॥१०॥

माल्यवर्षाः। नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजुर्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः॥११
ता आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालके। हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्योजनमु
ज्जगुः॥१२॥अवाद्यन्तविचित्राणिवादित्राणिमहोत्सवे। कृष्णेविश्वेश्वरेऽनन्तेनन्दस्य
व्रजमागते॥१३॥गोपाः परस्परं हृष्टादधिक्षीरघृताम्बुभिः। आसिञ्चन्तोविलिम्पन्तो
नवनीतैश्चाचिक्षिपुः॥ १४ ॥ नन्दोमहामनास्तेभ्योवासोलंकारगोधनम्। सूतमाग
धवन्दिभ्योयेऽन्येविद्योपजीविनः ॥ १५ ॥ तैस्तैः कामैरदीनात्मायथोचितमपूजय
त्। विष्णोराराधनार्थायस्वपुत्रस्योदयायच ॥ १६ ॥ रोहिणीचमहाभागानन्दगो
पाभिनन्दिता। व्यचरद्दिव्यवासःस्रक्कण्ठाभरणभूषिता ॥ १७ ॥ ततआरभ्यनन्द
स्यव्रजः सर्वसमृद्धिमान्। हरेर्निवासात्मगुणैरमाक्रीडमभून्नृप ॥ १८ ॥ गोपान्गो
कुलरक्षायांनिरूप्यमथुरांगतः। नन्दः कंसस्यवार्षिक्यंकरंदातुंकुरूद्वह॥१९॥वसुदे
वउपश्रुत्यभ्रातरंनन्दमागतम्। ज्ञात्वादत्तकरंराज्ञेययौतदवमोचनम्॥२०॥तंदृष्ट्वास
हसोत्थायदेहःप्राणमिवागतम्। प्रीतःप्रियतमं दोर्भ्यांसस्वजेप्रेमविह्वलः॥२१पूजितः
सुखमासीनः पृष्ट्वाऽनामयमादृतः। प्रसक्तधीःस्वात्मजयोरिदमाह विशांपते॥२२॥
दिष्ट्याभ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्यते। प्रजाशायानिवृत्तस्य प्रजायत्समपद्यत॥
॥ २३ ॥ दिष्ट्या संसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानः पुनर्भवः ॥ उपलब्धोभवानद्य दुर्लभ

वह सुंदर वस्त्र पहिने हुई हैं उनके कानोंमे कुण्डल प्रकाशित होरहे हैं तथा गलेमे सुंदर२ चन्द्रहार शोभायमान होरहे हैं। सोनेके अनेक आभूषणों से आभूषित होकर वह सब गोपियें जब नंदके घरको जानेलगीं तबमार्ग में उनके खुलेहुये केशों से फूल झड़ने तथा कुंडल, स्तन और हार हिलने लगे, इससे उनकी और भी शोभा बढ़गईथी॥ ११ ॥ वह चिरंजीव कहकर बालकको आशीर्वाद दे मनुष्यों के शरीर में हलदीका चूर्ण, तैल और जल डालने और उच्चस्वर से मधुरगान करनेलगीं ॥ १२ ॥ नंदजी के घरमें श्रीकृष्णजी के उत्पन्न होने से उस महोत्सव में नाना प्रकार के बाजे बजने लगे ॥ १३ ॥ सबगोप आनंद से पुलकितहो दही, दूध, घी और जल द्वारा एक दूसरेको भिगोनेतथा एकदूसरेके मक्खनलगायकर एकदूसरे के ऊपर फेंकनेलगे ॥१४॥ नंदजी ने उनको प्रसाद की भांति नाना प्रकार के वस्त्र,अलंकार और गौ प्रदान कीं। पौराणिक,मागध, बंदी,तथा और भी दूसरे विद्योपजीवी मनुष्य जोवहां उपस्थितथे उन्होंने जोरचांहा नंदजीने वहीरदानदकर उनका यथोचित सत्कारकिया॥१५–१६॥महाभागा रोहिणीजीने विष्णुजीकी पूजाकर तथा अपने पुत्रके कल्याण की कामना कर सुंदर वस्त्र आभूषण पहिन भगवानका ध्यान करती हुई यथाशक्ति दानकिया। यह देखकर नंद और गोपोंका अत्यंत आनंद हुआ ॥ १७ ॥ उस समय नंदरायका ब्रज सर्व संपत्तियुक्त विष्णुजी के निवास स्थानके कारण विशेष गुणों से विभूषितहो लक्ष्मीकी विहार भूमिहोगया ॥ १८ ॥ तदनंतर नंदराय गोपोंको गोकुलकी रक्षाके निमित्त नियुक्तकर आप कंसको वार्षिक राज करदने के निमित्त मथुरा में गये ॥ १९ ॥ वसुदेवजी उनके आनेकी वार्त्तासुन तथा 'राजाको करदेन आये हैं' यह जान उनके आश्रम में गये ॥ २० ॥ नंदराय मित्रको आता देखकर अति आनंदित हुये तथा जैसे देह प्राणकोपायकर उठ बैठती है तैसेही शीघ्रता से उठ प्रीति और प्रेमसे विह्वलहो दोनो बाहों द्वारा प्यारे वसुदेवजी से मिले ॥ २१ ॥ हे राजन्! वसुदेवजी ने पूजा पाय आसन पर बैठ श्रमको दूरकिया तथा आदर पूर्वक कुशल प्रश्न करके कहाकि ॥ २२ ॥ हे भ्राता! तुम वृद्धहोगये थे, इस समय तक तुम्हारे पुत्र नहीं हुआ था; पुत्रकी आशा भी तुमने छोड़दीथी; अब तुम्हारे पुत्रहुआ यह परम भाग्यकी बात है ॥ २३ ॥ अच्छा हुआ कि तुम्हारा फिर पुनर्जन्म हुआ, क्योंकि तुमने संसारचक्रमें स्थित होकर अब दुर्लभ प्रिय दर्शन पुत्रप्राप्त किया है

प्रियदर्शनम् ॥ २४॥ नैकत्रप्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम् । ओघेनव्यूह्यमानानां प्लवानांस्रोतसोयथा ॥ २५॥ कच्चित्पशव्यंनिरुजं भूर्यम्बुतृणवीरुधम् । बृहद्वनंतदधुनायत्रास्से त्वंसुहृद्वृतः॥२६॥ भ्रातर्मम सुत.कच्चिन्मात्रासह भवद्व्रजे । तातं भवन्तंमन्वानोभवद्भ्यामुपलालितः ॥ २७ ॥ पुंसस्त्रिवर्गोविहितः सुहृदोह्यनुभावितः । नतेषुक्लिश्यमानेषुत्रिवर्गोऽर्थायकल्पते ॥ २८ ॥ नन्द उवाच ॥ अहोतेदेवकीपुत्राः कंसेनबहवोहताः । एकाऽवशिष्टाऽवरजाकन्यासाऽपिदिवंगता ॥२९॥ नूनंह्यदृष्टनिष्ठोऽयमदृष्टपरमोजनः । अदृष्टमात्मनस्तत्त्वंयोवेदनसमुह्यति ॥ ३० ॥ वसुदेव उवाच ॥ करोवैवार्षिकोदत्तोराज्ञेदृष्टावयंचवः । नेहस्थेयंबहुतिथसन्त्युत्पाताश्चगोकुले ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति नन्दादयोगोपाः प्रोक्तास्तेशौरिणाययुः । अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्यगोकुलम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भा०म०दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नन्दवसुदेवसंगमो नाम पञ्चमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच॥नन्दः पथिवचः शौरेर्नमृषेतिविचिन्तयन् । हरिंजगामशरणमुत्पातागमशङ्कितः ॥ १ ॥ कंसेनप्रहिताघोरापूतनाबालघातिनी । शिशूंश्चचारनिघ्नन्तीपुरग्रामव्रजादिषु ॥ २ ॥ नयत्रश्रवणादीनिरक्षोघ्नानिस्वकर्मसु । कुर्वन्तिसात्वतांभर्तुर्यातुधान्यश्चतत्रहि ॥ ३ ॥ साखेचर्येकदोपेत्यपूतनानन्दगोकुलम् ।

॥ २४ ॥ प्रत्येक प्राणियों के कर्म पृथक् २ हैं, अतएव जलके वेगसे बहते हुये तृण काष्ठादि की समान सबप्रिय जनोंका निवास एकत्र नहीं रहसकता ॥ २५ ॥ तुम बंधुजनोंसे घिरकर पशु चराने योग्य बृहत बनमें बास करतेहो उस बनमें कोई दुर्घटना तो उपस्थित नहीं हुई ? वहां बहुत सा जल, तृण, वृक्ष और लतादितो हैं ॥ २६ ॥ हमारा एक पुत्र अपनी माता समेत तुम्हारे व्रजमें रहता है, तुम उसका पालन करते रहतेहो, वह तुम्हींको पिता कहकर जानता है, वह सुख से तो जीता है ॥ २७ ॥ पुरुष के धर्म, अर्थ, और काम जो अपने संबंधियों के उपयोगी होंतो वही सफल कहेजाते हैं और यदिवे संबंधी दुःखपावैंतो वह धर्मादिक किसी कामके नहीं ॥ २८ ॥ नंदजीने कहाकि—अहो! कंसने देवकी के गर्भसे उत्पन्न हुये तुम्हारे अनेक बालकोंका नाशकिया है, अंतमें केवल एक छोटी कन्या शेषरहीथी वह भी स्वर्गको चलीगई ॥ २९ ॥ प्रारब्धहीसे मनुष्यों का शेषहोता रहता है, और प्रारब्धही मनुष्योंका सर्वस्व है। जोप्रारब्धकोही सुख दुःखका कारण जानते हैं वे कुछभी दुःखित नहीं होते ॥ ३० ॥ वसुदेवजी बोलेकि—तुमने वार्षिक करतो ददिया और हमारे साथ साक्षात् भी होगया। अब बहुत दिनों इस स्थानपर रहना उचित नहीं, क्योंकि गोकुल में अनेक उत्पात होंगे अतएव शीघ्रही जावो ॥ ३१ ॥ वसुदेवजी की इस बातको सुनकर नंदादि गोपोंने उनसे विदाले बैलोंके जुतेहुये गाड़ोंपर सवारहो गोकुलकी ओर प्रस्थान किया॥३२॥

इतिश्रीमद्भा० महा० दशम०सरलाभाषाटीकायांपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दो० । कहत छठे अध्यायमें दुष्टनकी संहार । ताहूको निजगति दई करुणासिंधु खरार १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! नन्दजीने जाते २ मार्गमें विचारा कि—वसुदेव मिथ्या नहीं कहेंगे तो फिर क्या यथार्थही व्रजमें उत्पात होंगे? उत्पात होनेके भयसे भगवान्के शरणागत हुए ॥ १ ॥ और यथार्थमेंही उससमय कामचारिणी बालक घातिनी, दुष्टा पूतना—कंससे प्रेरित हो बच्चोंके मारनेके निमित्त नगर, गांव और व्रजादिमें घूमतीथी ॥ २ ॥ नन्दजी शंका करते हुए जातेथे कि उसीसमयमें यह देववाणी हुई कि—जिसस्थान के निवासी अपने २ कार्यमें भक्तपति भगवान् के राक्षस नाशक नामों को नहीं सुनते उसी स्थान में राक्षसों का प्रादुर्भाव होसकता है, किन्तु जिसस्थान में वह साक्षात् बास करते हैं उसस्थान में क्या शंका ! ॥ ३ ॥ हेमहाराज ! कामचारिणी आकाश गामिनी पूतना उसीसमयमें नन्द

योषित्वामाययाऽऽत्मानंप्राविशत्कामचारिणी ॥ ४ ॥ तांकेशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकांबृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम् । सुवाससंकम्पितकर्णभूषणत्विषोल्लसत्कुन्तलमण्डिताननाम् ॥ ५ ॥ वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितैर्मनो हरन्तींवनितांव्रजौकसाम् । अमंसताम्भोजकरेणरूपिणींगोप्यः श्रियंद्रष्टुमिवागतांपतिम् ॥ ६ ॥ बालग्रहस्तत्र विचिन्वतीशिशून्यदृच्छयानन्दगृहेऽसदन्तकम् । बालंप्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसंददर्शतल्पेऽग्निमिवाहितंभसि ॥ ७ ॥ विबुध्यतांबालकमारिकाग्रहंचराचरात्मासनिमीलितेक्षणः । अनन्तमारोपयदङ्कमन्तकंयथोरगंसुप्तमबुद्धिरज्जुधीः ॥ ८ ॥ तांतीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितांवीक्ष्यांतराकोशपरिच्छदासिवत् । वरस्त्रियंतत्प्रभयाचधर्षिते निरीक्षमाणेजननीह्यतिष्ठताम् ॥ ९॥ तस्मिन्स्तनंदुर्जरवीर्यमुल्बणंघोरांकमादायशिशोर्ददावथ । गाढंकराभ्यांभगवान्प्रपीड्यतत्प्राणैःसमंरोषसमन्वितोऽपिबत् ॥ १० ॥ सामुञ्चमुञ्चालमितिप्रभाषिणीनिष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि । विवृत्यनेत्रेचरणौभुजौमुहुःप्रस्विन्नगात्राक्षिपतीरुरोदह ॥ ११ ॥ तस्याःस्वनेनातिगभीररंहसासाद्रिर्मही द्यौश्चचचालसग्रहा ।रसादिशश्चप्रतिनेदिरेजनाःपेतुःक्षितौ

गोकुल के समीप आय मायाद्वारा सुन्दर स्त्रीका वेष बनाय उसमें प्रवेश करतीहुई ॥ ४ ॥ स्त्रीके केश पाश चमेलीके फूलोंसे गुथेहुएथे।मध्यदेशके एकओर तो विशाल नितंब तथा दूसरीओर स्तनों के भारसे कमर कचक रहीथी बहुत सुन्दर वस्त्र धारण कियेथी । कानोंके आभूषणोंकी शोभा तथा प्रकाशित कुंडलोंकी कांतिद्वारा गण्डस्थल देदीप्यमान हो उठेथे ॥५॥ उसके हाथमें एक कमलथा वह स्त्री मनोहर हास्य तथा कटाक्ष युक्त देखने द्वारा व्रजवासियोंके मनका हरण करतीथी । गोपियोंने उसको देखकर बिचारा जान पड़ताहै कि भगवान् के श्रीकृष्ण रूपसे गोकुलमें अवतीर्ण होनेपर लक्ष्मी अपने पतिके निमित्त शरीर धारण करके आईहै । अतएव किसीने उसको कहीं भी जानेसे निषेध न किया ॥ ६ ॥ हेराजन् ! नारीरूपिणी पूतना बालकोंके ग्रह स्वरूप है । उस कामचारिणीने बालकको ढूंढ़तीहुई इच्छानुसार नन्दके घरमें घूमते २ शय्याके ऊपर बालक को देखपाया । उस बालकको कि जो असाधुओं का नाश करनेवाला तथा जिसने राखसे ढकीहुई आग के समान अपने असीम तेजको गुप्त कररक्खाथा ॥ ७ ॥ उस खेचरी पूतनाने न जानपाया, अतएव उनको देखकर उसको भय न हुआ । चराचरके आत्मा हरि भगवान ने देखा कि—यह स्त्री नहींहै किंतु बालकोंका नाश करनेवाली राक्षसीहै, इसनिमित्त उसके नाश करनेकी इच्छासे उन्होंने अपने दोनों नेत्र बन्दकरलिये । जैसे कोई मनुष्य अज्ञानके वशीभूतहो रस्सी के भ्रमसे कालसर्प को गोदमें लेलवे वैसेही पूतना ने दुष्टों के नाश करनेवाले उन भगवानको गोदमें लेलिया ॥ ८ ॥ म्यानके भीतर छिपीहुई तलवारकी समान पूतना का हृदय तो अत्यन्त तीक्ष्णथा किंतु बाहिरी बर्तावसे माताके बर्तावकी समान अत्यन्त स्नेहमय थी । उसकी आकृति भी श्रेष्ठ स्त्रियोंकी आकृति के समान देखी जातीथी । अतएव श्रीकृष्णजीकी दोनों माता घरके बीचमें उसको देखकर केवल उसकी ओर देखतीही रहीं निवारण न करसकीं ॥ ९ ॥ अनन्तर दुष्टा पूतनाने उस स्थानसे पुत्रको गोदमेंले घोर विषयुक्त प्राणनाशक स्तन उसके मुहमें देदिया भगवान् हरि क्रोधितहो दोनों हाथों द्वारा स्तनोंको भलीभांतिसे दबाय उसके प्राण समेत पीगए ॥ ॥ १० ॥ समस्त मर्म स्थानोंमें कष्ट उपस्थित होनेपर वह राक्षसी छोड़ २ बसकर कहतीहुई चिल्लाने लगी । उसके सब शरीरमें पसीना निकलआया और आंखें फटगईं । अति दुःखसे वह बारम्बार हाथ पैर पटककर रोनेलगी ॥ ११ ॥ उसके चिल्लानेके घोरशब्दसे पर्वतों समेत पृथ्वी और ग्रहगणों समेत आकाश बिचलित होगया रसातल और दिशायें प्रतिध्वनित होनेलगीं तथा

वज्रनिपातशङ्कया ॥ १२ ॥ निशाचरीत्थंव्यथितस्तनाव्यसुर्व्यादायकेशांश्चरणौभुजावपि । प्रसार्यगोष्ठेनिजरूपमास्थितावज्राहतोवृत्रइवापतन्नृप ॥ १३ ॥ पतमानोऽपितद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान् । चूर्णयामासराजेन्द्रमहदासीत्तदद्भुतम् ॥ १४ ॥ ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकन्दरनासिकम् । गण्डशैलस्तनंरौद्रंप्रकीर्णारुणमूर्धजम् ॥ १५ ॥ अन्धकूपगभीराक्षंपुलिनारोहभीषणम् । बद्धसेतुभुजोर्वङ्घ्रिशून्यतोयह्रदोदरम् ॥ १६ ॥ संतत्रसुःस्मतद्वीक्ष्यगोपागोप्यःकलेवरम् । पूर्वंतुतन्निःस्वनितभिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥ १७ ॥ बालंचतस्याउरसिक्रीडन्तमकुतोभयम् । गोप्यस्तूर्णंसमभ्येत्यजगृहुर्जातसंभ्रमाः ॥ १८ ॥ यशोदारोहिणीभ्यांताःसमंबालस्यसर्वतः । रक्षांविदधिरेसम्यग्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥ १९ ॥ गोमूत्रेणस्नापयित्वापुनर्गोरजसार्भकम् । रक्षांचक्रुश्चशकृताद्वादशाङ्गेषुनामभिः ॥ २० ॥ गोप्यःसंस्पृष्टसलिलाअङ्गेषुकरयोःपृथक् । न्यस्यात्मन्यथबालस्यबीजन्यासमकुर्वत ॥ २१॥ अव्यादजोऽङ्घ्रिमणिमांस्तवजान्वथोरूयज्ञोऽच्युतःकटितटंजठरंहयास्यः । हृत्केशवस्त्वदुरईशइनस्तुकण्ठंविष्णुर्भुजंमुखमुरुक्रमईश्वरःकम् ॥ २२ ॥ चक्र्यग्रतः सहगदोहरिरस्तुपश्चात्त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसीमधुहाऽजनश्च । कोणेषुशङ्खउरुगायउपर्युपेन्द्रस्तार्क्ष्यःक्षितौहलधरःपुरुषःसमन्तात् ॥ २३ ॥ इन्द्रियाणिहृषीकेशःप्राणान्नारायणोऽवतु । श्वेतद्वीपपतिश्चित्तंमनोयोगेश्वरोऽवतु ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भस्तुतेबुद्धिमात्मानंभगवा

सब लोकों ने वज्रपात होने से मनमें विचार किया कि अब पृथ्वी पर से गिरने का आरंभ होता ही है ॥ १२ ॥ हे राजन् ! स्तनों में इस भांति की पीड़ा होने से राक्षसी अपना निजरूप धारण कर हत जीवाहो केश, दोनों पांव और दोनों भुजायें फैलाय, वज्रसे मारेहुये वृत्रासुर की समान व्रजमें गिरपडी ॥ १३ ॥ हे राजन् ! उसकी देहके गिरने से छे कोस तकके वृक्ष आदिकों का चूर्ण होगया । सबही उसको देखकर अत्यत विस्मित और आश्चर्यान्वितहोगये ॥ १४ ॥ उसकी दाढें हलके फलकी समान तीक्ष्ण और नासिका के छेद पर्वतकी कंदराके समान गभीर थे तथा दोनोस्तन पहाड की चोटीके समान बड़े थे बाल लालवर्णके और बिखरे हुयेथे॥१५॥ दोनो आंखें अंधे कुएकी समान गहरी, नदीके तटके समान भयकर नितंब, बंधेहुये पुलके समान दोनों भुजायें और साथलें तथा पेट सूखेहुये जलरहित तालाब की समान था ॥ १६ ॥ इस राक्षसी के भयकर शब्दसे गोप और गोपियों के हृदय, कान और मस्तक विदीर्ण होगये थे; इस समय वह उसके इस देहको देखकर अत्यत भयभीत और स्तंभित होगये ॥ १७ ॥ परन्तु बालक निर्भयता से उस की छातीपर खेल करता था । सब गोपियों ने व्याकुलहो शीघ्रता पूर्वक वहांपर आय बालक को छातीसे उठालिया ॥ १८ ॥ रोहिणी और यशोदा के साथ वह सबबाला बालकके ऊपर गोपुच्छ घुमाय २ सब प्रकार से रक्षाका विधान करने लगीं ॥ १९ ॥ पहिलेतो गोमूत्र फिर गोधूलि द्वारा बालकको स्नान कराय ललाट आदि द्वादश अंगों में केशवादि द्वादश नाम लिखदिये ॥ २० ॥ इस के उपरांत आचमनकर पहिलेतो अपने सब अंगा में तथा दोनो हाथों में पृथक पृथक अजादि एकादश बीजन्यासकर फिरबालक केभी अङ्गादि में उसी प्रकार से किया और कहाकि ॥२१॥ अजतेरे पैरोंकी; मणिमान तेरे घुटनोंकी; यज्ञतेरे साथलोंकी, अच्युतकमरकी, हयग्रीव पेटकी; केशव हृदय की; ईशवक्षःस्थलकी; सूर्यकण्ठकी; विष्णुभुजाकी; उरुक्रमसुखकी; तथाईश्वरतेरे मस्तककी; रक्षा करें ॥ २२ ॥ चक्रधारी मुरारि तेरेअग्रभाग में; गदाधारी हरि तेरे पिछलेभागमें; धनुर्धारीमधुसूदन तथाअसिधारी अज तेरी दोनों भुजाओं के पार्श्वों में; शंखधारी विष्णुसब दिशाओं में; उपेंद्रऊपरी भाग में तार्क्ष्य अधोभाग में; तथाहलधर भगवान् चारोंओर स्थितरहें ॥ २३ ॥ इस भांति बाहिरी भागकी रक्षाका विधानकर फिर भीतरी रक्षाका विधानकरनेलगीं—हृषीकेश तेरी सब इंद्रियों की;

श्वरः । क्रीडंतंपातुगोविंदःशयानंपातुमाधवः ॥ २५ ॥ व्रजन्तमव्याद्वैकुण्ठआसीनं त्वांश्रियःपतिः । भुञ्जानंयज्ञभुक्पातुसर्वग्रहभयंकरः ॥ २६॥ डाकिन्योयातुधान्य श्चकूष्माण्डायेऽर्भकग्रहाः । भूतप्रेतपिशाचाश्चयक्षरक्षोविनायकाः ॥ २७ ॥कोटरा रेवतीज्येष्ठापूतनामातृकादयः । उन्मादायेह्यपस्माराद्देहप्राणेन्द्रियद्रुहः ॥ २८ ॥स्व प्नदृष्टामहोत्पातावृद्धबालग्रहाश्चये । सर्वेनश्यंतुतेविष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥ २९ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ इतिप्रणयबद्धाभिर्गोपीभिःकृतरक्षणम् । पाययित्वास्तनंमातासंन्य वेशयदात्मजम् ॥ ३०॥ तावन्नंदादयोगोपामथुरायाव्रजंगताः विलोक्यपूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ॥ ३१ ॥ नूनंबतर्षिःसंजातोयोगेशोवासमासस । सएवदृष्टो ह्युत्पातोयदाहानकदुंदुभिः ॥ ३२ ॥ कलेवरंपरशुभिश्छित्त्वातत्तेव्रजौकसः । दूरे क्षिप्त्वाऽवयवशोन्यदहन्काष्ठधिष्ठितम् ॥३३॥दह्यमानस्यदेहस्यधूमश्चागुरुसौरभः उत्थितःकृष्णनिर्भुक्तसपद्याहतपाप्मनः ॥ ३४ ॥ पूतनालोकबालघ्नीराक्षसीरुधि राशना । जिघांसयापिहरयेस्तनंदत्त्वाऽऽपसद्गतिम् ॥ ३५ ॥किंपुनःश्रद्धयाभक्त्या कृष्णायपरमात्मने । यच्छन्प्रियतमंकिंनुरक्तास्तन्मातरोयथा ॥ ३६ ॥ पद्भ्यांभक्त हृदिस्थाभ्यांवंद्याभ्यांलोकवन्दितैः । अंगंयस्याःसमाक्रम्यभगवानपिबत्स्तनम्॥३७ यातुधान्यपिसास्वर्गमवापजननीगतिम् । कृष्णभुक्तस्तनक्षीराःकिंमुगावोनुमातरः ॥ ॥ ३८ ॥ पयांसियासामपिबत्पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम् । भगवान्देवकीपुत्रःकैवल्याद्य खिलप्रदः॥३९॥तासामविरतंकृष्णेकुर्वतीनांसुतेक्षणम् । नपुनःकल्पतेराजन्संसारो

नारायण सबप्राणों की; श्वेतद्वीपपति चित्तकी; योगेश्वरमनकी; ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भ बुद्धिकी; तथा परमभगवान् तेरेआत्माकी रक्षाकरें । तू जबखेले तब गोविंद; जबसोवे तबमाधव; ॥२५ ॥जब चले फिरे तब वैकुण्ठ; जब बैठे तबश्रीपति; तथा जबभोजनकरे तबसबग्रहों को भयदेनेवाले यज्ञभगवान तेरी रक्षाकरें ॥ २६ ॥ डाकिनी,राक्षसी और कूष्मांड आदि सबबालग्रह, भूतगण; भूतमातृगण; पिशाच, यक्ष, राक्षस, तथा विनायकगण, ॥ २७ ॥ कोटरा,रेवती,ज्येष्ठा और पूतनाआदि मातृका गण; देह औरप्राणनाशक अपस्मार और उन्माद आदि रोग समूह; स्वप्न में देखेहुए उत्पाततथा बालवृद्ध ग्रह जितने हैं वे सब विष्णुकानाम लेतेही भीतहोकर नष्टहोजावें ॥ २८ । २९॥ हेराजन्! गोपियों ने स्नेहबद्धहो इस प्रकारसे मंगलका विधान किया-फिर यशोदापुत्रको गोद में दूध पिलाने लगीं ॥ ३० ॥ इसी समयमें नंदादि गोप मथुरा से व्रजको आगयेथे । उन्हों ने पूतना की देह को देख विस्मितहोकरकहा ॥ ३१ ॥निश्चयही जानपड़ता है कि वसुदेव ऋषि व योगेश्वरहोगयेहैं क्योंकि उन्होंने जो उत्पातकी बात कहीथी वही तो देखाजाताहै॥३२॥अनन्तर व्रजवासियोंने कुल्हाड़ों से पूतनाकी देहको काट एक२ अंग दूर२डाल काठसे घेरकर जलाय दिया ॥३३॥अबउसकी देह जलने लगी तब उस की देह से अगरकी समान सुगंधित धुआं निकला । श्रीकृष्णजी के स्तनपानकरतेही तत्कालउसके सबपाप नाश होगयेथे ॥ ३४ ॥ मनुष्यों के बालकों को मारनेवाली, रुधिरपीनेवाली राक्षसीपूतना, प्राणनाश करने के अभिप्रायसे स्तनपानकरायकर श्रेष्ठ गति को प्राप्तहुई ॥ ३५ ॥ फिरजो गोपियें श्रद्धायुक्त भक्तिसहित भगवान् श्रीकृष्णजी को पुत्रकी समानजान माता की सदृश प्रियपदार्थ दानकरती हैं उनकी बात क्याकहें ? ॥ ३६ ॥ जो दोनों चरण भक्तों के हृदय में सदा विराजमान रहते हैं; लोकों से वंदना कियेजात देवतादि जिनपदों की वंदनाकियाकरते हैं, भगवान् श्रीकृष्णजीने उन्हीं दोनों पांवों द्वारा जिसके अंग में आक्रमणकर स्तनपान किया वह राक्षसी भी जब माताकी गतिकी समान सद्गति को प्राप्तहुई; तब मुक्ति देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजीने जिन गौओं और माता की समान गोपियों के स्तनों का कि जो पुत्रस्नेह से टपकरहे हैं पानकिया तोउन को श्रेष्ठगति प्राप्त होनेमें संदेहही क्या है ? ॥ ३७ । ३८ । ३९ ॥ हेराजन्! वे सबगोपियें श्रीकृष्ण

ऽप्यात्मजेभवः ॥४०॥ कटधूमस्यसौरभ्यमवघ्रायव्रजौकसः॥ किमिदंकुतएवेतिवदंतो व्रजमाययुः ॥४१॥ तेतत्रवर्णितंगोपैःपूतनागमनादिकम्॥श्रुत्वातन्निधनंस्वस्तिशिशोश्चासन्सुविस्मिताः॥ ४२॥नंदःस्वपुत्रमादायप्रेत्यागतमुदारधीः ॥मूर्ध्न्युपाघ्राय परमांमुदंलेभेकुरूद्वह ॥ ४३ ॥ यएतत्पूतनामोक्षंकृष्णस्यार्भकमद्भुतम्। शृणुयाच्छ्रद्धयामर्त्योगोविंदेलभतेरतिम् ॥ ४४ ॥

इतिश्रीमद्भा०म०दशम०षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

राजोवाच ॥ येनयेनावतारेणभगवान्हरिरीश्वरः। करोतिकर्णरम्याणिमनोज्ञानिचनः प्रभो ॥ १ ॥ यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णासत्त्वंचशुध्यत्यचिरेण पुंसः। भक्तिर्हरौतत्पुरुषेचसख्यंतदेवहारंवदमन्यसेचेत् ॥२॥ अथान्यदपिकृष्णस्यतोकाचरितमद्भुतम्। मानुषंलोकमासाद्यतज्जातिमनुरुन्धतः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवेजन्मर्क्षयोगेसमवेतयोषिताम्। वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकैश्चकारसूनोरभिषेचनंसती ॥ ४ ॥ नन्दस्यपत्नीकृतमज्जनादिकंविप्रैः कृतस्वस्त्ययनंसुपूजितैः। अन्नाद्यवासः स्रगभीष्टधेनुभिः संजातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः ॥ ५ ॥ औत्थानिकौत्सुक्यमनामनस्विनीसमागतान्पूजयतीव्रजौकसः। नैवाशृणोद्वैरुदितंसुतस्यसारुदन्स्तनार्थीचरणावुदक्षिपत् ॥ ६ ॥ अधः शयानस्यशिशोर

ष्णको निरंतर पुत्ररूप से देखती रहीं अतएव फिर वे संसार के बंधन में न बँधसकीं ॥ ४० ॥ जो व्रजवासी दूर गयथे उन्होंने चिता से उठेहुए सुगंधित धुएं को सूंघकर कहाकि' यह क्या है कहां से ऐसी सुगंधि आती है ॥ ४१ ॥ यह बात कहते कहते व्रजमें आयकर तथा गोपों के मुखसे पूतना के आनेका समस्तवृत्तांत, उसकावध, तथा बालकका किसीप्रकार से भी अमंगल नहींहुआ यहसब सुनकर अत्यंत विस्मितहुए ॥ ४२ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! उदारबुद्धिवाले नंदजी अपने घरमें आय पुत्रको गोदमें ले माथासूंघकरअतिआनंदितहुए॥४३॥जोमनुष्यश्रीकृष्णजीके इसपूतनामोक्षणरूपबालचरित्रकोश्रद्धापूर्वकसुनैंगे उनको भगवान् श्रीकृष्णजी में प्रीतिउत्पन्नहोगी ॥ ४४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभाषाटीकायांषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

राजा परीक्षितने कहा कि—हे ब्रह्मन् ! भगवान श्रीकृष्णजी ने अवतार धारण कर जोरचरित्र किये हैं, हे प्रभो ! वह सबही मेरे कान और मनको प्रिय लगते हैं ॥ १ ॥ उन सब चरित्रों के सुनने से मनका मैल और समस्त तृष्णाआदि दूर होजाती हैं तथा थोड़ेही समय में अंतःकरण शुद्ध होकर भगवान्में भक्ति उत्पन्न होती और हरि भक्तोंके साथ मित्रता रहती है यदि अनुग्रह होवे तो उन मनोहर भगवत् चरित्रोंको कहिये ॥ २ ॥ कृष्णजी ने मनुष्य लोक में आय मनुष्यों का अनुकरण कर जोर चरित्र किये हैं कृपाकरके उनसबका वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन्! किसीसमय बालक के करवट लेने तथा वर्षगांठके आनपर उत्सवका आरम्भहुआ। उस महोत्सवमें इकट्ठीहुई स्त्रियोंके बीच साध्वीयशोदाने बाजे, गीत और ब्राह्मणोंके मंत्र समेत स्वस्तिवाचन से पुत्रका अभिषेक कराया ॥४॥ पुत्रका स्नानकार्य समाप्तहोनेपर ब्राह्मण गण खानेके पदार्थ, वस्त्र, माला और इच्छित गायोंको पाय स्वस्त्ययन करनेलगे, यशोदाने देखा कि श्रीकृष्णजीकी आंखोंमें नींद आरही है; अतएव उनको धीरेसे एक शकटके नीचे सुलादिया ॥ ५ ॥ यशोदा का मन करवट लेनके महोत्सव में उत्साहित था तथा वह आये हुये व्रजवासियों की पहुनाई कर रही थीं,अतएव बालक रोया तो उसके रुदन का शब्द न सन पाया। स्तन पान करने के निमित्त रोदन करते २ भगवान् अपने दोनो चरण ऊपर को उछालने लगे ॥ ६ ॥

सोऽल्पकप्रवालमृद्वङ्घ्रिहतंव्यवर्तत । विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनंव्यत्यस्तचक्राक्ष
विभिन्नकूबरम् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वायशोदाप्रमुखाव्रजस्त्रियऔत्थानिकेकर्मणियाःसमाग
ताः । नन्दादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाःकथंस्वयंवैशकटंविपर्यगात् ॥ ८ ॥ (इतिबुद्ध
थ्योतिविषादमोहिताजनाःसमंतात्परिबभ्रुरातवत् ।)ऊचुरव्यवसितमतीन्गोपान्गो
पीश्चबालकाः । रुदतानेनपादेनक्षिप्तमेतन्नसंशयः ॥ ९ ॥ नतेश्रद्दधिरेगोपाबालभा
षितमित्युत । अप्रमेयंबलंतस्यबालकस्यनतेविदुः ॥ १० ॥ रुदन्तंसुतमादाययशो-
दाग्रहशङ्किता । कृतस्वस्त्ययनंविप्रैःसूक्तैःस्तनमपाययत् ॥ ११ ॥ पूर्ववत्स्थापितंगोपै
र्बलिभिःसपरिच्छदम् । विप्राहुत्वाऽर्चयाञ्चक्रुर्दध्यक्षतकुशाम्बुभिः ॥ येऽसूयानृत
दम्भेर्ष्याहिंसामानविवर्जिताः । नतेषांसत्यशीलानामाशिषोविफलाःकृताः ॥ १३ ॥
इतिबालकमादायसामर्ग्यजुरुपाकृतैः । जलैःपवित्रौषधिभिरभिषिच्यद्विजोत्तमैः ।
१४ ॥ वाचयित्वास्वस्त्ययनंनन्दगोपःसमाहितः । हुत्वाचाग्निंद्विजातिभ्यःप्रादा
दन्नंमहागुणम् ॥ १५ ॥ गावःसर्वगुणोपेतावासःस्रग्रुक्ममालिनीः । आत्मजाभ्युद
यार्थायप्रादात्तेचान्वयुञ्जत ॥ १६ ॥ विप्रामन्त्रविदोयुक्तास्तैर्याःप्रोक्तास्तथाशिषः
तानिष्फलाभविष्यन्तिनकदाचिदपिस्फुटम् ॥ १७ ॥ एकदाऽऽरोहमारूढंलालयंती
सुतंसती । गरिमाणंशिशोर्वोढुंनसेहेगिरिकूटवत् ॥ १८ ॥ भूमौनिधायतंगोपीवि-
स्मिताभारपीडिता । महापुरुषमादध्यौजगतामासकर्मसु ॥ १९ ॥ दैत्योनाम्नातृणा

तब शकट उनके छोटे और कोमल चरणों द्वारा आहत होकर गिर पड़ा, उसमें जोदही दूध आदि नाना रसों से परिपूर्ण कांसे के बर्तन रक्खे थे वह सब टूटगये और शकट के पहिये, धुरी और जुवां आदि सब छिन्न भिन्न होगये ॥ ७ ॥ यशोदा के घर आई हुई ब्रजनारियें तथा नंद आदि गोप इस अद्भुत घटनाको देख व्याकुल होकर कहने लगे कि—यह शकट क्या आपही आप उलट गया ? गोप और गोपी गण अपनी बुद्धि द्वारा कुछभी स्थिर न कर सके ॥ ८ ॥ तब उनबालकों ने कि जो, उस समय वहां उपस्थित थे कहा कि—इस बालकने रोते २ दोनो पैर उछाल कर इस शकट को गिरा दिया है ॥ ९ ॥ परंतु गोप और गोपियों ने बालकों की बात पर विश्वास न किया वे इस बालकके असीम बलको नहीं जानते थे ॥ १० ॥ यशोदा ने ग्रहकी शंका कर रोते हुये पुत्रको गोदमें ले ब्राह्मणों द्वारा राक्षस नामक वेद मंत्र से उसका स्वस्तिवाचन कराय स्तन पान कराया ॥ ११ ॥ बलवान गोपों ने सब सामग्री समेत पहिले की समान उस गाढ़े को स्थापित किया और ब्राह्मणों ने ग्रहादिकों की शांतिके अर्थ होमकर दही, अक्षत, कुश और जल द्वारा श्री कृष्णजी के कल्याणका विधान किया ॥ १२ ॥ हे राजन् ! असूया (गुण में दोष प्रगट करना) झूट, पाखण्ड, ईर्षा, हिंसा और अभिमान—यह सब जिन ब्राह्मणों के पवित्र अंतः करण का स्पर्श भी नहीं कर सकते उनका आशीर्वाद कभी मिथ्या नहीं होता ॥ १३ ॥ यह विचार कर नंद गोपने सावधान चित्तसे बालकको लाय ब्राह्मणों के साम, यजु और ऋक् के मंत्रों से संस्कार किये हुये पवित्र औषधिवाले जलसे न्हिलाया ॥ १४ ॥ तथा स्वस्तिवाचन और होमकराय पुत्रके क ल्याणार्थ ब्राह्मणोंको, सब प्रकारके अन्न, सर्वगुण संयुक्त गायें, वस्त्र, माला और रत्नों के हारदान किये ॥ १५–१६ ॥ ब्राह्मण गण आशीर्वाद देनेलगे; वेद वेत्ता और योगी ब्राह्मण जोआशीर्वाद देते हैं वह कभी निष्फल नहीं होते ॥ १७ ॥ राजन् ! एक दिनसती यशोदा पुत्रको गोदीमें किये दूधपिलाती थीं इतने में उसको पुत्र पहाड़ की शिलाके समान बोझिल जानपड़ा; वह फिर पुत्रको गोदमें न रखसकीं ॥ १८ ॥ बहुत बोझके होनेसे पीड़ित विस्मितहो पुत्रको पृथ्वीपर रख भगवान्

दैत्यः कंसभृत्यःप्रणोदितः । चक्रवातस्वरूपेणजहारासीनमर्भकम् ॥ २० ॥ गोकुलं
सर्वमावृण्वन्मुष्णंश्चक्षूंषिरेणुभिः । ईरयन्सुमहाघोरशब्देनप्रदिशोदिशः ॥ २१ ॥
मुहूर्तमभवद्गोष्ठंरजसातमसावृतम् । सुतंयशोदानापश्यत्तस्मिन्न्यस्तवतीयतः ॥
२२ ॥ नापश्यत्कश्चनात्मानंपरंचापिविमोहितः । तृणावर्तनिसृष्टाभिःशर्कराभिरुप-
द्रुतः ॥ २३ ॥ इतिखरपवनचक्रपांशुवर्षेसुतपदवीमबलाऽविलक्ष्यमाता । अतिक-
रुणमनुस्मरन्त्यशोचद्भुविपतितामृतवत्सकायथागौः ॥ २४ ॥ रुदितमनुनिशम्य
तत्रगोप्योभृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः । रुरुदुरनुपलभ्यनन्दसूनुंपवनउपारतपां
शुवर्षवेगे ॥ २५ ॥ तृणावर्तःशान्तरयोवात्यारूपधरोहरन् । कृष्णंनभोगतोगंतुंनाश
क्नोद्भूरिभारभृत् ॥ २६ ॥ तमश्मानंमन्यमानआत्मनोगुरुमत्तया । गलेगृहीतउत्स्रष्टुं
नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥ २७ ॥ गलग्रहणनिश्चेष्टोदैत्योनिर्गतलोचनः । अव्यक्तरा-
वोन्यपतत्सहबालोव्यसुर्व्रजे ॥ २८ ॥ तमंतरिक्षात्पतितंशिलायांविशीर्णसर्वावय
वंकरालम् । पुरंयथारुद्रशरेणविद्धंस्त्रियोरुदत्योददृशुःसमेताः ॥ २९ ॥ प्रादायमात्रे
प्रतिहृत्यविस्मिताःकृष्णंचतस्योरसिलम्बमानम् । तंस्वस्तिमंतंपुरुषादनीतंविहाय
सामृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥ गोप्यश्चगोपाःकिलनन्दमुख्यालब्ध्वापुनःप्रापुरतीवमोदम्
॥ ३० ॥ अहोबतात्यद्भुतमेषरक्षसाबालोनिवृत्तिंगमितोऽभ्यगात्पुनः । हिंस्रःस्वपापे

का ध्यान करनेलगी ॥ १९ ॥ इसी बीचमें कंसके सेवक तृणावर्त्त नामक दैत्य कंसका पठाया हुआ आचक्र वाकके रूपसे पृथ्वीपर बैठेहुये बालकका हरणकर लेगया ॥ २० ॥ असुरने महा भयानक घोर शब्दसे दिशा विदिशाओं को शब्दाय मानकर धूलसे समस्त गोकुल को ढक सबकी दृष्टिका हरण करलिया ॥ २१ ॥ क्षण कालमेंही समस्त ब्रज धूरसे अंधकार मय होगया यशोदा नेजिस स्थानपर पुत्रको रक्खाथा वहांपर उसको न देखपाया ॥ २२ ॥ सबही उस प्रचंड वायुमें मोहित होगये तृणावर्त्त के फेंकेहुये कंकड़ोंसे व्याकुल होकर कोई मनुष्य अपनेको तथा दूसरेको नहीं देख पाता था ॥ २३ ॥ प्रचड वायुके कंकड़ों की वर्षा होने परभी अबला यशोदा माता पुत्रका खोज करने लगी; परन्तु देख न पाकर, मरेहुये बछडेवाली गायके समान, पृथ्वीपर गिरकर अतिकारुण स्वरसे विलाप करनेलगी ॥ २४ ॥ अनतर जब पवनकी रजोवृष्टिका बंदहुआ तब यशोदाका रोना सुनकर सब गोपियेंभी आंसू बहाती हुई उस स्थानपर आई परन्तु श्रीकृष्णजी को न देखकर अत्यंत संतप्त होकर रोनेलगीं ॥ २५ ॥ तृणावर्त्त ने बबूलेका रूप धारणकर श्रीकृष्णजी का हरण किया, क्रमसे उसका वेगशांतहोआया वह आकाश तक उठकर बहुत बोझसे दुःखितहो फिरआगे न चलसका ॥ २६ ॥ अत्यंत बोझके कारण बालक उसे पर्वतकी समान जान पड़नेलगा, बालकने उसका गला पकड़लिया अतएव वह उसको फेंकने मेंभी समर्थ न हुआ ॥ २७ ॥ कंठके पकड़लेने से वह चेष्टारहित होगया तथा उसकी दोनोआंखें बाहर निकलपड़ीं, गलाघुटने के कारण चिल्लाभी न सका तदनंतर वह जीवन रहित होकर ब्रजके ऊपर गिरपड़ा सब स्त्रियें एकत्रित होकर विलाप करतीथीं उन्हों ने देखाकि भीषण राक्षस, महादेवजी के बाणसे मरेहुये त्रिपुरासुरकी समान शिला के ऊपर पड़ा है तथा उसके सब अंगचूर्ण होगये हैं ॥ २८–२९ ॥ कृष्णजी उसकी छाती पर लिपटे हुये थे, स्त्रियों ने उन्हें लेकर यशोदाको दिया। इस अद्भुत घटनाको देखकर सबही विस्मित होगये। बालकको उठाकर राक्षस आकाश तक लेगयाथा तौभी वह मृत्युके मुख से बचगया; चोट तक न आई। गोपीतथा नंदआदि गोप बालकको ऐसी अवस्था से फिर पायकर अत्यंत आनंदित होकर कहने लगे ॥ ३० ॥ अहोकैसा आश्चर्य है। कि राक्षस ने बालकको मारहीडालाथा तौभी

तविहिंसितः खलः साधुः समत्वेनभयाद्विमुच्यते ॥ ३१ ॥ किंनस्तपश्चीर्णमधोक्ष
जार्चनंपूर्तेष्टदत्तमुतभूतसौहृदम् । यत्संपरेतः पुनरेवबालकोदिष्ट्यास्वबन्धून्प्रणय
न्नुपस्थितः ॥ ३२ ॥ दृष्ट्वाद्भुतानिबहुशोनन्दगोपोबृहद्वने । वसुदेववचोभूयोमा
नयामासविस्मितः ॥ ३३ ॥ एकदार्भकमादायस्वाङ्कमारोप्यभामिनी । प्रस्नुतंपाय
यामासस्तनंस्नेहपरिप्लुता ॥ ३४ ॥ पीतप्रायस्यजननीसुतस्यरुचिरस्मितम् । मु
खंलालयतीराजञ्जृम्भतोददृशेइदम् ॥ ३५ ॥ खंरोदसीज्योतिरनीकमाशाः सूर्येन्दु
वह्निश्वसनाम्बुधींश्च । द्वीपान्नगांस्तद्दुहितॄर्वनानिभूतानियानिस्थिरजङ्गमानि
॥ ३६ ॥ सावीक्ष्यविश्वंसहसाराजन्संजातवेपथुः । संमील्यमृगशावाक्षीनेत्रेआ
सीत्सुविस्मिता ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ गर्गः पुरोहितोराजन्यदूनांसुमहातपाः । व्रजंजगामनन्दस्य
वसुदेवप्रचोदितः ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वापरमप्रीतः प्रत्युत्थायकृताञ्जलिः । आनर्चाधो
क्षजधियाप्रणिपातपुरः सरम् ॥ २ ॥ सूपविष्टंकृतातिथ्यंगिरासूनृतयामुनिम् । नन्द
यित्वाऽब्रवीद्ब्रह्मन्पूर्णस्यकरवामकिम् ॥ ३ ॥ महद्विचलनंनृणांगृहिणांदीनचेतसाम् ।
निःश्रेयसायभगवन्कल्पतेनान्यथाक्वचित् ॥ ४ ॥ ज्योतिषामयनंसाक्षाद्यत्तज्ज्ञानम
तीन्द्रियम् । प्रणीतंभवतायेनपुमान्वेदपरावरम् ॥ ५ ॥ त्वंहिब्रह्मविदांश्रेष्ठः संस्का

बालक फिर जीवित होकर आगया । दुष्ट हिंसक मनुष्य अपने पापोंही से मरजाते हैं परन्तु महात्मा मनुष्य सब प्राणियों को समान भावसे देखते है इसी कारण आपत्तियों से बचते रहते हैं ॥ ३१ ॥ मैंने क्या तपस्या की है या विष्णुकी आराधना की है, या तालाब आदि बनवाये हैं, या दानकिये है, या प्राणियों को मित्रता के भावसे देखा है कि जिसके प्रभाव से बालक ने मरकर भी भाग्यबल से संबंधियों के निकट आय उनको आनंदित किया ॥ ३२ ॥ गोपराज नंद उस बृहत्वनमें बारंबार आश्चर्य युक्त घटनाएँ देखकर आश्चर्यान्वित हुये तथा वसुदेव के वाक्यको सत्य जानकर बारबार स्मरण करनेलगे ॥ ३३ ॥ एकदिन नंदजीकी पत्नी यशोदाजी स्नेहयुक्त बालकको गोदमें ले स्तन पान कराती थीं । बालक के भली भांतिसे स्तनपान करनेपर माताने कृष्णजी के सुंदर हास्य से शोभित मुखका चुम्बन आदि किया । इतने में श्रीकृष्णजी के जंभाई लेने से यशोदा ने देखा कि ॥ ३४–३५ ॥ उनके मुखके भीतर आकाश, अंतरिक्ष, ज्योतिर्मंडल, दिशायें, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, सागर, द्वीप, पर्वत, नदी, वन, तथा चर अचरआदि समस्तप्राणी विराजमानहैं ॥ ३६ ॥ हेराजन् ! हठात् संसारको देखकर यशोदा कंपायमान होगई मृग नयनी यशोदा ने विस्मित होकर अपने दोनों नेत्र बंदकर लिये ॥ ३७ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! एकदिन यदुवंशियोंके पुरोहित महातपस्वी गर्गमुनि वसुदेव जीके भेजेहुए नन्दजीके व्रजमें आये ॥ १ ॥ नन्दजी उनको देखकर अत्यन्त आनन्दित हुये तथा खड़ेहोकर दोनों हाथजोड़ परमेश्वर रूप जान प्रणाम करके उनकी पूजाकी ॥ २ ॥ गोपराज नंद जीने ऋषिका सत्कारकर आनन्दपूर्वक आसनपर बिठलाय मधुर वाणी से कहा कि—हे ब्रह्मन् ! दीन गृहस्थी मनुष्योंके कल्याण के निमित्तही महात्मा पुरुष अपने २ आश्रमोंसे बाहर निकलतेहैं । ३—४ । जो इन्द्रियोंके अगोचर ज्ञानका साधन ज्योतिषशास्त्रहै उसी ज्योतिषशास्त्रको आपने बनायाहै मनुष्य इसही शास्त्रद्वारा कार्य कारणको जानसकताहै ॥ ५ ॥ आप वेद वेत्ताओंमेंभी श्रेष्ठ

रान्कर्तुमर्हसि । बालयोरनयोर्नृणांजन्मनाब्राह्मणोगुरुः ॥ ६ ॥ गर्ग उवाच ॥ यदू
नामहमाचार्यः ख्यातश्चभुविसर्वदा । सुतंमयासंस्कृतंतेमन्यतेदेवकीसुतम् ॥ ७ ॥
कंसः पापमतिः सख्यंतवचानकदुन्दुभेः । देवक्या अष्टमोगर्भोनस्त्रीभवितुमर्हति
॥ ८ ॥ इति संचिंतयञ्छ्रुत्वादेवक्यादारिकावचः । अपिहन्तागताशङ्कस्तर्हित
न्नोऽनयोभवेत् ॥ ९ ॥ नन्द उवाच ॥ अलक्षितोऽस्मिन्रहसिमामकैरपिगोव्रज ।
कुरुद्विजातिसंस्कारंस्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवंसंप्रार्थि
तोविप्रः स्वचिकीर्षितमेवतत् । चकारनामकरणंगूढोरहसिबालयोः ॥ ११ ॥ गर्ग
उवाच ॥ अयंहिरोहिणीपुत्रोरमयन्सुहृदोगुणैः । आख्यास्यतेराम इति बलाधिक्या
द्बलंविदुः । यदूनामपृथग्भावात्संकर्षणमुशन्त्युत ॥ १२ ॥ आसन्वर्णास्त्रयोह्यस्य
गृह्णतोऽनुयुगंतनूः । शुक्लोरक्तस्तथापीतइदानींकृष्णतांगतः ॥ १३ ॥ प्रागयंवसु
देवस्यक्वचिज्जातस्तवात्मजः । वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥ १४ ॥
बहूनिसन्तिनामानिरूपाणिचसुतस्यते । गुणकर्मानुरूपाणितान्यहंवेदनोजनाः ॥१५॥
एषवः श्रेयआधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः । अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ
॥ १६ ॥ पुरानेनव्रजपतेसाधवोदस्युपीडिताः अराजकेरक्ष्यमाणाजिग्युर्दस्यून्समे
धिताः ॥ १७ ॥यएतस्मिन्महाभागाःप्रीतिंकुर्वन्तिमानवाः । नारयोऽभिभवन्त्येता
न्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ १८ ॥ तस्मान्नन्दात्मजोऽयंतेनारायणसमोगुणैः । श्रिया

हो अतएव इन दोनों बालकोंका संस्कार करना आपको उचितहै । ब्राह्मण जन्मसेही मनुष्योंका गुरुहै ॥ ६ ॥ गर्गजीने कहा कि—हेगोपराज ! यह बात समस्त पृथ्वीमें प्रसिद्धहै कि मैं यदुवंशियों का आचार्यहूं । यदि तुम्हारे पुत्रोंका संस्कार करूंगा तो कंस अपने मनमें यही विचारेगा-—कि यह देवकीके पुत्रहैं ॥ ७ ॥ तुममें और वसुदेवमें जो परस्पर मित्रता है' दुष्टकंस उसको भलीभांति जानताहै तथा देवकीकी आठवीं संतानमें कन्या कभी होही नहींसकती देवकीकी कन्या महामाया का यह वचन रातदिन उसके मनमें स्मरण रहताहै, अतएव पीछसे वह ऐसी अशंका करके बालकोंका नाश करेगा ऐसा होनेसे मेरा सब नाश होजायगा ८—९ । नन्दजीने कहा कि हेब्रह्मन्! आप गोव्रजमें हम लोगोंसेभी गु... एकांतमें स्वस्ति वाचनकर द्विजाति योग्य समस्त संस्कार करिये, आपको कोई भी दूसरा या मेरा आत्मीय तक नहीं देखसकेगा, ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! गर्गजी तो स्वयंही उस कार्यके करनेको आएथे अब इससमय ऐसी प्रार्थना कियेजाने पर गुप्तभावसे एकांतमें बालकोंका उन्होंने नाम करण करके कहा कि— ॥ ११ ॥ यह रोहिणी का पुत्र अपने गुणों द्वारा सबको रमण करावेगा अतएव एकका नाम 'राम, होगा । यह बलवानभी होगा इसकारण बलके नामसे पुकारा जायगा और परस्परकी शिक्षा देकर यदुवंशियों में मेलकरादेगा, इसकारण इसको संकर्षण भी कहेंगे ॥ १२ ॥ तुम्हारा पुत्र युग २ में देह धारण करता रहताहै । पहिले इसका वर्ण तीनप्रकारका श्वेत, रक्त और पीत हुआथा इससमय कृष्णवर्ण धारण कियाहै ॥ १३ ॥ अतएव इसका एक नामतो कृष्ण होगा हेश्रीमन् ! तुम्हारा यह पुत्र पहिले किसीसमय में वसुदेवका पुत्र हुआथा अतएव इसका नाम 'वासुदेवभी होगा ॥ १४ ॥ तुम्हारे पुत्र के गुण और कर्मके अनुसार बहुतसे नाम तथा रूपहैं मुझको सब ज्ञात नहींहै और मनुष्य भी नहीं जानते ॥ १५ ॥ हेगोप ! यह पुत्र तुम्हारा अति कल्याण करेगा, इसकी सहायता के द्वारा तुम सब आपत्तियोंसे छूट जाओगे १६ ॥ हेव्रजपते ! प्रथम साधुओंके ऊपर चोरोंने अत्याचार कियाथा इससे अराजकता होगईथी । उस अवस्थामेंभी इसने साधुओंकी रक्षाकीथी इससे उन्होंने फिर प्रबल होकर चोरोंको जीता ॥ १७ ॥ जो मनुष्य इस महाभागसे प्रीति करेंगे उनको शत्रुगण एसे ने परास्त करसकेंगे कि—जैसे असुर विष्णुभक्ति भक्तोंको पराजय नहीं करसकते ॥ १८ ॥ हे

कीर्त्याऽनुभावेनगोपायस्वसमाहितः ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥इत्यात्मानंसमा
दिश्यगर्गेचस्वगृहंगते । नन्दः प्रमुदितोमेनेआत्मानंपूर्णमाशिषाम् ॥२०॥कालेनव्र
जताऽल्पेनगोकुले रामकेशवौ । जानुभ्यांसहपाणिभ्यांरिङ्गमाणौविजह्रतुः २१॥ताव
ङ्घ्रियुग्ममनुकृष्यसरीसृपन्तौ घोषप्रघोषरुचिरंव्रजकर्दमेषु । तन्नादहृष्टमनसावनुसृ
त्यलोकं मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्तिमात्रोः॥२२॥तन्मातरौनिजसुतौघृणयास्नुवन्त्यौ
पङ्कांगरागरुचिरावुपगुह्यदोर्भ्याम् ।दत्त्वास्तनंप्रपिबतोःस्ममुखंनिरीक्ष्यमुग्धस्मिता-
ल्पदशनंययतुःप्रमोदम् ॥ २३ ॥ यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीलावन्तर्व्रजे तदबलाःप्र
गृहीतपुच्छैः । वत्सैरितस्ततउभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षन्त्यउज्झितगृहाजहृषुर्हसन्त्यः
॥ २४ ॥ शृङ्ग्यग्निदंष्ट्र्यसिजलद्विजकण्टकेभ्यः क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौनिषे-
द्धुम् । गृह्याणिकर्तुमपियत्रनतज्जनन्यौ शेकात आपतुरलंमनसोऽनवस्थाम् ॥ २५ ॥
कालेनाल्पेनराजर्षे रामःकृष्णश्चगोकुले । अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा ॥
॥ २६ ॥ ततस्तुभगवान्कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः । सहरामोव्रजस्त्रीणां चिक्रीडेज
नयन्मुदम् ॥ २७ ॥ कृष्णस्यगोप्योरुचिरं वीक्ष्यकौमारचापलम् । शृण्वन्त्याः कि-
लतन्मातुरिति होचुःसमागताः ॥२८ ॥ वत्सान्मुञ्चन्क्वचिदसमये क्रोशसंजातहा
सः स्तेयंस्वाद्वत्त्यथदधिपयः कल्पितैःस्तेययोगैः । मर्कान्भोक्ष्यन्विभजतिसचेन्नाति
भाण्डंभिनत्तिद्रव्यालाभे सगृहकुपितोयात्युपक्रोश्यतोकान् ॥ २९ ॥ हस्ताग्राह्योर-

नन्द ! तुम्हारे यह पुत्र गुणवान, लक्ष्मीवान, कीर्त्तिवान तथा प्रभावमें नारायणकी समान होंगे तुम सावधान होकर इनका पालन करो ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हेमहाराज ! इसभांतिसे कह- कर गर्गजी अपनें स्थानको गये । नन्दजी आनन्दित होकर अपनेंको सब मंगलोंसे परिपूर्ण जानने लगे ॥ २० ॥ इसप्रकार धीरे २ समय व्यतीत होनेलगा । राम और केशव गोकुलमें घुटनों और दोनों हाथोंसे घूम २ कर क्रीडा करनलेगे ॥ २१ ॥ जब वह दोनों पावोंको खींचकर शीघ्रतापूर्वक चलते तब पावोंकी पैंजनियां और कमरकी किंकिणी का अत्यन्त शब्द होता । वह उसी शब्दसे आनन्दित होते तथा आनन्दित होकर इधर उधर जानेवाले व्रजवासियोंके पीछे २ जाते और फिर उन्हें न पहिंचान अपनी माताके समीप लौटआते॥२२॥पंकरूपी केसरसे दोनों भाइयोंकीसुंदर देह अत्यन्त अधिकतर सुन्दर दिखातीथी । स्नेहसे उनकी दोनोंमाताओंके स्तनोंसे धार बहने लगतीथी वह दोनों अपने दोनों पुत्रोंको दोनों हाथोंसे उठाय स्तन पान करानेंलगती और मोहित होकर भोरी मुसकान और छोटे २ दांतोंवाले मुखको देखकर आनन्दित होतीथीं ॥ २३ ॥ क्रमशःउन- के बाल क्रीड़ा का समय आया । खेलते २ जब वह गौ के बछड़ोंकी पूछ पकड़ते और बछड़े उन दोनों को खींच २ कर इधरउधर दौड़ते तबसब्रव्रजनारियें उनको देख २ करहंसतीं औरआनन्द प्रकाश करतीथीं ॥ २४ ॥ जब दोनों मातायें खेलतेहुए अति चंचल दोनों बालकों को सींगवालेजानवर अग्नि, दाढोंवालेजानवर, सांप, जल, पक्षी और कांटेआदि से रक्षाकरने में और घरके कामकाज करने में असमर्थ होजातीं तब उनका हृदय अत्यन्त दुःखितहोता; कि- क्याकरें—यह विचारकर कुछ भी स्थिर न करसकतीं ॥ २५ ॥ हेराजर्षे ! रामकृष्ण थोड़ेही दिनों में घुटनों के बलचल बलपूर्वक पैरों द्वारा चलने लगे ॥ २६ ॥ तदुपरांत रामकृष्णव्रजबाल- कों के साथ व्रजनारियोंको आनंद देतेहुए क्रीड़ा करनेलगे ॥ २७ ॥ गोपियें श्रीकृष्णजीकी लड़क- पनकी मनोहरचंचलता को देख२कर उनकी माताको सुना २कर कहनेलगीं कि—॥२८॥तुम्हारे यहबालक—कभी असमय में बछड़ों को छोड़ देता है इस से यदि कोई चिल्लाता है तो हँसदेता है कभी चोरी के उपाय से सुंदर दही दूधको चुरा करके खाजाता है; आप खाकर बन्दरों कोभी खिला देते है । बानरों के न खाने पर बर्तनही फोड़ डालता है । कोई पदार्थ न पाने से घरकी

चयतिविधिंपीठकोलूखलाद्यैश्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनःशिक्यभाण्डेषुतद्वित्। ध्वा-
न्तागारेधृतमणिगणंस्वांगमर्थप्रदीपं कालेगोप्योयर्हिगृहकृत्येषुसुव्यग्रचित्ताः ३०॥
एवंधार्ष्ट्यान्युशतिकुरुतेमेहनादीनिवास्तौ स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीकोयथा
स्ते । इत्थंस्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभिर्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखीन ह्यु-
पालब्धुमैच्छत् ॥ ३१ ॥ एकदाक्रीडमानास्ते रामाद्यागोपदारकाः। कृष्णोमृदंभक्षि
तवानिति मात्रेन्यवेदयन् ॥३२॥ सागृहीत्वाकरे कृष्णमुपालभ्यहितैषिणी। यशोदा
भयसंभ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषत ॥ ३३॥ कस्मान्मृदमदान्तात्मन्भवान्भक्षितवान्रहः।
वदन्तितावकाह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ॥३४॥ नाहंभक्षितवानम्ब सर्वेमिथ्या
भिशंसिनः। यदिसत्यगिरस्तर्हि समक्षंपश्यमेमुखम् ॥ ३५ ॥ यद्येवंतर्हिव्यादेही-
त्युक्तः सभगवान्हरिः। व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥ ३६ ॥ सातत्र
ददृशेविश्वं जगत्स्थास्नुचखंदिशः। साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम्
॥ ३७ ॥ ज्योतिश्चक्रंजलंतेजो नभस्वान्वियदेवच ॥ वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनो-
मात्रागुणास्त्रयः ॥ ३८ ॥ एतद्विचित्रं सहजीवकालस्वभावकर्माशयलिंगभेदम् ॥
सूनोस्तनौवीक्ष्यविदारितास्ये व्रजंसहात्मानमवापशंकाम् ॥ ३९॥ किंस्वप्नएतदुत

स्वामिनीपर कुपितहोकर उसके लड़कोंहीको रुलादेते हैं॥२९॥यदि हाथ फैलाने परभी कोई वस्तुनहीं मिलती तो पाटा या ओखली आदि पर चढकर उसका यत्नकरता है। छींकों पर रक्खे हुएबर्तनों में जो दही दूधरहता है, उसके लेने की इच्छाकरके उनसबबर्तनो में छेद करदेता है । तुम्हारा लड़का छिद्रकरन में अत्यन्तही चतुर है।एकतो इसका अंग वैसेही प्रकाशित है-फिर उस परमाणि मालाभी पहिनेहुए है; जबसब गोपियेंघरके काम में लगी होती हैं-तब अंधेरे घर में जायकर अपने अंग के प्रकाश से अंधेरेको उजालाकर अपने अभिप्रायको पूर्णकरता है ॥ ३० ॥ इस भांतिनाना प्रकारकी चंचलताकरता है । कभी लीपे पोते घर में मलमूत्र त्यागकरदेता है कभी चोरीके उपाय से द्रव्यादिका हरण करता है अबतो तुम्हारे सामने निरासाधूहीसा होगया है। सब नारियों ने श्री कृष्णजी के भययुक्त-नेत्रों से शोभायमान श्री मुखकी ओर देखकर उनके सबगुणोंका वर्णनकिया, तब यशोदा यह सुनकर हंसने लगीं वह श्रीकृष्णजी को न धमका सकीं ॥ ३१ ॥ एक दिनराम और सब गोपबालकों ने खेलने २ आयकर यशोदा मातासे कहाकि-माता ! कृष्णने मिट्टीखाई है ॥ ३२ ॥ हितचाहने वाली यशोदा ने बालक के दोनो हाथ पकड़ भयसे चकित हुये नेत्रवाले पुत्र का तिरस्कार करके कहाकि ॥ ३३ ॥ रे दुर्विनीत! एकांत में मिट्टिक्योंखाई है यह सब व्रजबालक तथा तेराभाई रामभीतो यही कहता है ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णजी ने कहा कि—हे माता ! मैंने मिट्टी नहीं खाई; यह सबही झूठ कहते हैं । सबके सामने मेरे मुखको देखो—इनकी बातें झूठी हैं किनहीं ॥ ३५ ॥ यशोदा ने कहा कि मुख खोल । हे राजन्!भगवान् श्रीकृष्णजी ने क्रीड़ाके छलसे मनुष्य शिशुरूपधारण कियाथा परन्तु उनका ऐश्वर्य नष्टनहींहुआथा। श्रीकृष्णजी ने यशोदाजीकी बातसुन कर अपना मुख खोलदिया ॥ ३६ ॥ यशोदाजी ने मुख के भीतर दृष्टि डालकर देखा कि-भीतरे चर, अचर; अंतरिक्ष,दिशाएँ,पहाड़,समुद्र, और द्वीपों समेत पृथ्वीकेलोक; वायु;प्रकाशित अग्नि, चन्द्रमा और नक्षत्रों समेत ज्योतिश्चक्र, जल, तेज, आकाश, स्वर्ग,इंद्रियों के अधिष्ठातृ देवता,इं-द्रियवर्ग, मन, शब्दादि विषय तथा तीनों गुण इत्यादि सबही विश्व विराजमान है ॥ ३७ । ३८ ॥ पुत्रके फैलायहुए मुख के बीचमें जीव, काल, स्वभाव, कर्म, और कर्म से उत्पन्नहुए संस्कार द्वारा चराचर शरीर का भेद यहसब देखा तथा एक ओर व्रज औरअपने कोभी देखकर यशोदाअत्यंत

भीत्यसत्वरस्ततोऽवरुह्यापससारभीतवत् । गोप्यन्वधावन्नयमापयोगिनांक्षमंप्रवे
ष्टुंतपसेरितंमनः ॥ ९ ॥ अन्वञ्चमानाजननीबृहच्चलच्छ्रोणीभराक्रान्तगतिः सु
मध्यमा । जवेनविस्रंसितकेशबन्धनच्युतप्रसूनानुगतिः परामृशत् ॥ १० ॥ कृता
गसंतंप्ररुदन्तमक्षिणीकषन्तमञ्जन्मषिणीस्वपाणिना। उद्वीक्षमाणंभयविह्वलेक्षणं
हस्तेगृहीत्वाभिषयन्त्यवागुरत् ॥ ११ ॥ त्यक्त्वायष्टिंसुतंभीतंविज्ञायार्भकवत्सला
। इयेषकिलतंबद्धुंदाम्नाऽतद्वीर्यकोविदा ॥ १२ ॥ नचान्तर्नबहिर्यस्यनपूर्वंनापिचा
परम् । पूर्वापरंबहिश्चान्तर्जगतोयोजगच्चयः ॥ १३ ॥ तंमत्वाऽऽत्मजमव्यक्तंमर्त्य
लिङ्गमधोक्षजम् । गोपिकोलूखलेदाम्नाबबन्धप्राकृतंयथा ॥ १४ ॥ तद्दामबध्यमान
स्यस्वार्भकस्य कृतागसः । द्व्यङ्गुलोनमभूत्तेनसंदधेऽन्यच्च गोपिका ॥ १५ ॥ यदा-
सीत्तदपिन्यूनं तेनान्यदपि संदधे । तदपिद्व्यङ्गुलंन्यूनं यद्यदादत्तबन्धनम् ॥ १६ ॥
एवंस्वगेहदामानि यशोदासंदधत्यपि । गोपीनांसुस्मयन्तीनां स्मयन्तीविस्मिताऽ
भवत् ॥ १७ ॥ स्वमातुःस्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः। दृष्ट्वापरिश्रमंकृष्णः कृप
याऽऽसीत्स्वबन्धने ॥ १८ ॥ एवंसंदर्शिताह्यङ्ग हरिणाभृत्यवश्यता। स्ववशेनापिकृष्णे
न यस्येदंसेश्वरंवशे ॥ १९ ॥ नेमंविरिञ्चोनभवोन श्रीरप्यङ्गसंश्रया। प्रसादंलेभिरे

धावोंसे पुत्रके पीछे जाचली हुई ॥ ८ ॥ कृष्णजी ने उन्हें पीछे खड़ा जान पीछे फिर कर देखा कि
माता हाथ में लकडी लिये खडी है । यह देखते ही श्रीकृष्णजी भयभीत हो ओखली से कूदकर
भागने लगे । हे राजन्! तप से तदाकार हुआ प्रवेश करने के योग्य योगियों का मनभी जिन
को नहीं पहुंचसकता ॥ ९ ॥ सुमध्यमाय यशोदा उन्हींके पीछे २ दौडने लगी हिलते हुए बड़े २
नितम्बोंके बोझसे उनकी चाल रुकने लगी शीघ्रतापूर्वक भागनेसे बंधेहुए केशोंके गुंथेहुए फूल गिरने
लगे वह श्रीकृष्णजीके पीछे २ दौड़नेलगीं । यशोदाजीने कुछ दूर ऐसे दौडकर कृष्णजीको पकड़
लिया ॥ १० ॥ उन्हों ने देखा कि अपराध करने से कृष्ण रोरहे हैं वह अपने दोनों हाथों से
आंखोंको मलरहेहैं इससे आंखोंके दोनोंओर काजल फैलरहाहै और दोनोंनेत्र भयसे व्याकुल होरहे
हैं । अतएव यशोदाजीने दोनों हाथ पकड़ भय दिखाय कृष्णजीके धमकाना आरम्भ किया ॥११॥
पुत्रको भयभीत होता देख पुत्रपर स्नेह रखनेवाली यशोदाजी हाथकी छड़ीडाल उनके बांधनेपर
उद्यत हुई वह श्रीकृष्णजीके पराक्रमको नहीं जानतीथीं ॥ १२ ॥ जिनके बाहर, भीतर, पूर्व और
पर (आदि, अन्त) कोई नहींहै जो जगतके आदि अन्त और भीतर बाहर रहते हैं तथा जो ज-
गन्मयहैं उन अव्यक्त अधोक्षज मनुष्य रूपधारी भगवानको पुत्र विचारकर साधारण पुत्रकी समान
गोपियोंने रस्सी द्वारा ऊखलसे बांधा ॥ १३—१४ । यशोदाजी अपने अपराधी पुत्रको जिसरस्सी
द्वारा बांधतीथीं वही रस्सी दोअंगुल कम होजातीथी यह देखकर उन्होंने एक रस्सीमें दूसरीरस्सी
बांधा ॥ १५ ॥ वह भी जब उतनीही छोटीहुई तब उसमें और भी एक रस्सी बांधदी वहभी दो
अंगुल छोटी होगई अतएव उससे भी उनका बंधन न होसका ॥१६॥ इसप्रकारसे अपने तथा
गोपियोंके घरकी सब रस्सियों को भी मिलाकर जब यशोदाजी कृष्णजीको न बांधसकीं तब अ-
त्यन्त विस्मित और लज्जित होगईं और गोपियोंकोभी अत्यन्त विस्मय उत्पन्न हुआ ॥ १७ ॥
बांधनेके श्रमके कारण यशोदाजीके समस्त शरीरसे पसीना निकलआया । जूड़ेसे फूलोंकी माला
खिसक पड़ी श्रीकृष्णजी अपनी माता का परिश्रम देख कृपाकर स्वयंही बँधगए ॥ १८ ॥
हेमहाराज ! भगवानने कि—जिनके वशमें यह सब जगत् लोकपाल और देवताओं समेतहै इस-
भांतिसे अपनी भक्त वश्यता स्वतन्त्र होनेपरभी दिखाई ॥ १९ ॥ मुक्ति देनेवाले श्रीकृष्णजीसे जो

गोपीयत्तत्प्रापविमुक्तिदात् ॥ २० ॥ नायंसुखापोभगवान्देहिनां गोपिकासुतः । ज्ञा-
निनांचात्मभूतानां यथाभक्तिमतामिह ॥ २१ ॥ कृष्णस्तुगृहकृत्येषु व्यग्रायांमातरि
प्रभुः । अद्राक्षीदर्जुनौपूर्वं गुह्यकौधनदात्मजौ ॥ २२ ॥ पुरानारदशापेन वृक्षतांप्रा-
पितौमदात् ॥ नलकूवरमणिग्रीवाविति ख्यातौश्रियान्वितौ ॥ २३ ॥

श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

राजोवाच । कथ्यतांभगवन्नेतत्तयोः शापस्यकारणम् । यत्तद्विगर्हितं कर्मयेन-
वादेवर्षेस्तमः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ रुद्रस्यानुचरौभूत्वासुदृप्तौधनदात्मजौ ।
कैलासोपवनेरम्येमन्दाकिन्यांमदोत्कटौ ॥ २ ॥ वारुणींमदिरांपीत्वामदाघूर्णितलो
चनौ । स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चेरतुःपुष्पितेवने ॥ ३ ॥ अन्तःप्रविश्यगङ्गायामम्भोजव
नराजिनि । चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविवकरेणुभिः ॥ ४ ॥ यदृच्छयाचदेवर्षिर्भग
वांस्तत्रकौरव । अपश्यन्नारदोदेवौक्षीबाणौसमबुध्यत ॥ ५ ॥ तंदृष्ट्वाव्रीडितादेव्यो
विवस्त्राः शापशङ्किताः । वासांसिपर्यधुः शीघ्रंविवस्त्रौनैवगुह्यकौ ॥ ६ ॥ तौदृ
ष्ट्वामदिरामत्तौश्रीमदान्धौसुरात्मजौ। तयोरनुग्रहार्थायशापंदास्यन्निदंजगौ ॥७॥
नारदउवाच ॥ नह्यन्योजुषतोजोष्यान्बुद्धिभ्रंशोरजोगुणः । श्रीमदादाभिजात्यादि
र्यत्रस्त्रीद्यूतमासवः ॥ ८ ॥ हन्यन्तेपशवोयत्रनिर्दयैरजितात्मभिः । मन्यमानैरिमंदे
हमजरामृत्युनश्वरम् ॥ ९ ॥ देवसंज्ञितमप्यन्तेकृमिविड्भस्मसंज्ञितम् । भूतध्रुक्त

वर यशोदाजीने पाया। ब्रह्मा, महादेव तथा विष्णुजी के अंगकी आश्रयवाली लक्ष्मीजी भी उसको नहीं प्राप्त करसकतीं ॥ २० ॥ भक्तगण भगवान् श्रीकृष्णजीको जैसे सहज में प्राप्त करसकते हैं आत्मवेत्ता ज्ञानीगण वैसा सहज में नहीं पासकते ॥ २१ ॥ माताके घरके काम में लगजानेपर यमलार्जुन नामक दोवृक्षोंपर श्रीकृष्णजी की दृष्टिपड़ी यह दोनों वृक्ष प्रथम जन्ममें कुबेरके दो पुत्रथे उनका नाम नलकूबर और मणिग्रीवथा वे अत्यन्त लक्ष्मीवानथे। गर्वके मदसे अंधे होरहेथे इसकारण नारदजीके शाप देनेपर वृक्ष हुए ॥ २३ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

राजा परीक्षित बोले कि-हेब्रह्मन् ! उन दोनों जनों को नारदजीने क्या शाप दियाथा उन्होंने कौनसा बुराकार्य किया सो कहिये ? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! कुबेर के वे दोनों पुत्र अत्यन्त गर्वित और मतवालेथे वे शिवजीके अनुचरहो कैलाश पर्वतके रमणीय फूलेहुये उपवनमें तथा मंदाकिनीके किनारे फिर रहेथे ॥२॥ मदिरापानसे उनके नेत्र सदैवही घूर्णित रहतेथे । स्त्रियोंको साथलिये गान करते २ वह दोनों यक्षराजके पुत्र सब स्थानोंमें घूमा करतेथे ॥ ३ ॥ एक दिन वे देवगंगाके कमलों युक्त जलमें पैठ जैसे हाथी हथिनियोंके साथ क्रीड़ा करताहै तैसेही स्त्रियों के साथ विहार करने लगे ॥ ४ ॥ हे कौरव ! उसही समय में भगवान् देवर्षि नारद उस स्थान पर आये । उन्हें देखकर नारदजी ने विचारा कि यह मत्त हैं ॥ ५ ॥ क्योंकि वस्त्र रहित गन्धर्व नारियों ने उन्हें देखकर शापके भयसे तत्कालही वस्त्र पहिन लिये; परन्तु उनदोनों गंधर्वो ने नंगे रहने परभी वस्त्र नहीं पहिने ॥ ६ ॥ देवर्षि नारदजी ने देखाकि कुबेर के दोनोंपुत्र मदिरा से मतवाले होउठे हैं और उनकी आंखें ऐश्वर्य के मदसे अंधी होरही हैं। यह देखकृपा करने के निमित्त शाप देनेकी इच्छा करके कहाकि ॥ ७ ॥ ऐश्वर्य के मदके कारण स्त्री, जुआ और मद्य यह तीन ही हैं, इनही के कारण मनुष्यकी बुद्धि ऐसीभ्रष्ट होजाती है। क्या पाण्डित्य क्या रजोगुण के कार्य हास्यादि किसी सेभी इस भांति बुद्धि भ्रष्टनहीं होती । ऐश्वर्य के गर्वके वशीभूत होकरही अजितेन्द्रिय, निठुर, मनुष्य इस नाशवान देहको अजर और अमर विचारकर पशुओं की हत्या करतेरहते हैं ॥ ८ । ९ ॥ यह नाशवान देह नरदेव और भूदेव आदि नामोंसे विख्यात होकरभी अंत में

त्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ १० ॥ देहः किमन्नदातुः स्वं निषेक्तुर्मातुरेव च । मातुः
पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा ॥ ११ ॥ एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम् ।
को विद्वानात्मसात्कृत्वा हन्ति जन्तूनृतेऽसतः ॥ १२ ॥ असतः श्रीमदान्धस्य दारि
द्र्यं परमाञ्जनम् । आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ॥ १३ ॥ यथा कण्टक
विद्धाङ्गो जन्तोर्नेच्छति तां व्यथाम् । जीवसाम्यं गतो लिङ्गैर्न तथाऽविद्धकण्टकः ॥ १४ ॥
दरिद्रो निरहंस्तम्भो मुक्तः सर्वमदैरिह । कृच्छ्रं यदृच्छयाऽऽप्नोति तद्धि तस्य परं तपः
॥ १५ ॥ नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकाङ्क्षिणः । इन्द्रियाण्यनुशुष्यन्ति हिंसा-
ऽपि विनिवर्तते ॥ १६ ॥ दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः । सद्भिः क्षिणोति
तं तर्षं तत आराद्विशुध्यति ॥ १७ ॥ साधूनां समचित्तानां मुकुन्दचरणैषिणाम् ।
उपेक्ष्यैः किं धनस्तम्भैरसद्भिरसदाश्रयैः ॥ १८ ॥ तदहं मत्तयोर्माध्व्या वारुण्या श्री-
मदान्धयोः । तमोमदं हरिष्यामि स्त्रैणयोरजितात्मनोः ॥ १९ ॥ यदिमौ लोकपालस्य
पुत्रौ भूत्वा तमःप्लुतौ । न विवासखमात्मानं विजानीतः सुदुर्मदौ ॥ २० ॥ अतोऽर्ह-
तः स्थावरतां स्यातां नैवं यथा पुनः । स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात् ॥ २१ ॥
वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते । वृत्ते स्वर्लोकतां भूयो लब्धभक्ती भविष्य

कीड़ा, विष्ठा व भस्मके नाम से प्रसिद्ध होती है तब फिर इस देह के निमित्त जो मनुष्य जीवोंकी हिंसा
करता है वह क्या अपनें अभिप्राय को जानता है ॥ १० ॥ देह क्या अन्नदाताकी या पिता की
या माताकी या मातामह की या मोल लेनेंवाले की या बलवान मनुष्य की या अग्नि की वा कुत्ते की
किनकी है यह भली भाति से नहीं जाना जासकता ॥ ११ ॥ जब इस भाति संदेह है तब यह सा-
धारण देह अव्यक्त से उत्पन्न हुई है और अव्यक्तही में लीनहोजायगी फिर मूर्ख के अतिरिक्त और
कौन मनुष्य देहका आत्म विचारकर प्राणियों की हत्या करेगा ॥ १२ ॥ ऐश्वर्य के मदसे जिसकी
आंखें अंधी होरही हैं दरिद्रताही उस अंधेपनको दूर करनेके लिये श्रेष्ठ अंजन है दरिद्री मनुष्य अ
पने साथ समानता करके सबकोही श्रेष्ठ जानता है ॥ १३ ॥ जिसके शरीर में कांटा लगा है वह
दूसरे के मुख मलीनादि चिन्हों को देखकर जानसकता है कि सबकोही यह दुःख समान है फिर
वह दूसरे मनुष्य के कांटा लगने की इच्छा नहीं करता परन्तु जिसके शरीर में कांटा नहीलगा वह
दूसरे का दुःख भी नहीं जानसकता अतएव दूसरे का उपकार भी नहीं करसकता ॥ १४ ॥ जो
दरिद्री मनुष्य है उसका 'मैं' और 'मेरा' इस भांति का गर्व दूर होजाता है वह इस लोक में सब
गर्वों से छूटजाता है भाग्यवश वह जो कष्ट भोगता है वही उसकी परम तपस्या है ॥ १५ ॥ अन्न
हीन दरिद्री मनुष्य की देह भूख से प्रतिदिन क्षीण होती जाती है सब इन्द्रियें निरस होजाती है इस
से लोभ और तृष्णा भी शांति होजाती है ॥ १६ ॥ समदर्शी महात्मा मनुष्यों का समागम भी दरिद्री
हीको होता है दरिद्री मनुष्य साधुओं की सत्सङ्गति करके तृष्णाको छोड़ शीघ्रही शुद्ध होजाता है ।
॥ १७ ॥ समदर्शी, नारायण के चरणों के आश्रयी, महात्मागण धन से गर्वित कुसंगतिवाले असाधु
को लेकर क्या करें क्यों कि वह महात्मा तो उनको उपेक्षाही करने योग्य मानते है ॥ १८ ॥ अत
एव मैं इन मदमत्त, ऐश्वर्य के मद से अंध, स्त्री लंपट, अजितेन्द्रिय दोनो गन्धर्वों के अज्ञान से उ-
त्पन्न हुए अहंकार का नाश करूंगा ॥ १९ ॥ यह लोकपाल कुवर के पुत्र हैं परन्तु अज्ञानसे इतने
ढकेहुए हैं तथा इनका घमंड इतना भारी होगया है कि अपनें शरीरका नग्नहुआ भी नहीं विचार
ते ॥ २० ॥ अतएव यह अचर होनें योग्य है अचर होनेंपरभी इनकी स्मरणशक्ति मेरी कृपा से
नष्ट नहोगी स्मृति बनी रहने से इनको भय रहेगा फिर ऐसा कर्म कभी नकरेंगे ॥ २१ ॥
देवताओं के सौवर्ष बीतने पर भगवान श्रीकृष्णजी के दर्शन पाय फिर स्वर्गमें आकर भगवद्भक्ति

तः ॥२२॥ श्रीशुक उवाच । एवमुक्त्वा स देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम् । नलकूबरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ॥ २३ ॥ ऋषेर्भागवतमुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः । जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ ॥२४॥ देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ । तत्तथा साधयिष्यामि यद्गीतं तन्महात्मना ॥२५॥ इत्यन्तरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ । आत्मनिर्वेशमात्रेण तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥२६॥ बालेन निष्कर्षयताऽन्वगुलूखलं तद्दामोदरेण तरसोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ । निष्पेततुः परमविक्रमितातिवेपस्कन्धप्रवालविटपौ कृतचण्डशब्दौ ॥२७॥ तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरन्तौ सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः । कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽखिललोकनाथं बद्धाञ्जली विरजसाविदमूचतुः स्म ॥२८॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः । व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥ २९ ॥ त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः । त्वमेव कालो भगवान्विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥३०॥ त्वं महान्प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी । त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित् ॥३१॥ गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः । को न्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः ॥३२॥ तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे । आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥३३॥ यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः । तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसंगतैः ॥३४॥ स भवान्सर्वलोकस्य

को प्राप्त होंगे ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! नारदजी यह कहकर बैकुण्ठधाम को चलेगए और नलकूबर तथा मणिग्रीव दोनों यमलार्जुन हुए ॥ २३ ॥ हरिभगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ नारदजी के वचनोंके सत्य करनेके निमित्त जिसस्थानपर वे दोनों यमलार्जुनथे वहां धीरे २ आये ॥ २४ ॥ नारदजी मेरे प्यारेहैं और वे दोनों यमलार्जुन भी यही हैं अतएव ऋषिने जो कुछ कहाहै उसको पूरा करूंगा ॥ २५ ॥ यह विचारकर श्रीकृष्णजी उन दोनों यमलार्जुनके बीचमें घुसे । उनकेप्रवेश करतेही ऊखल उलट पड़ा और उनकी कमर में जो रस्सी बँधीथी उससे वह उनके पीछे २ घिसटने लगा । कृष्णजीने बलपूर्वक उस उखलको खींचकर उन दोनों वृक्षोंके बीचमें लगाय उनको जड़से उखाड़ डाला श्रीकृष्णजीके अत्यन्त पराक्रम से उन वृक्षोंकी डालियें पत्ते और टहनियें अत्यन्त कांपने लगीं उसीकाल बड़े भयानक शब्दसे वह दोनो वृक्ष गिरपड़े ॥ २६-२७ ॥ हे महाराज ! उन दोनों वृक्षोंसे अग्नि की समान दो सिद्ध पुरुष बाहर निकल कर बड़ीभारी कांति द्वारा दिशाओंको प्रकाशित करनेलगे तथा समीपआय मस्तक द्वारा भगवान् श्रीकृष्णजीको प्रणामकर हाथ जोड़ बिनय भाव सहित नम्र बचनोंसे कहनलगे, ॥ २८ ॥ हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! आप बालक नहींहो आदि श्रेष्ठ पुरुष परब्रह्महो । यह व्यक्त और अव्यक्त संसार आप का स्वरूपहै, ॥ २९ ॥ एक मात्र आपही सब प्राणियोंकी देह प्राण, आत्मा और इन्द्रियोंके ईश्वरहो । आप अव्यय ईश्वर बिष्णु भगवानहो इसकारण आपही काल हो ॥ ३० ॥ हे प्रभो ! आपही महान् अर्थात् कार्य; आपही सत्त्व रज, और तमोमयी सूक्ष्म प्रकृतिहो । हे भगवन् ! आपही पुरुष आपही सबके अध्यक्षहो इसकारण आपही सर्व स्वरूपहो ॥ ३१ ॥ हे विभो ! आप द्रष्टाहो इसही कारण दृश्यत्व रूपसे बर्तमान प्राकृत विकार रूप इन्द्रियादि आपका ग्रहण नहीं करसकतीं सब जीवोंकी उत्पत्तिके पहिलेसे आप बिराजमानहैं अतएव देहादिसे ढकेहुए कौन प्राणी आपको जान सकतेहैं । ॥ ३२ ॥ आप भगवान, बासुदेव, बिधाता, परब्रह्महो । आपको हम प्रणाम करतेहै ॥ ३३ ॥ जो सब गुण आपसे प्रकाशित हुयेहैं वेही सब गुण आपको ढकेहुयेहैं । आप को नमस्कारहै; आपके शरीर तो नहीहै परंतु जो अतुल ऐश्वर्य तथा पराक्रम प्राणियोंके पक्षमें असम्भवहै उन सब पराक्रमों को देखकर प्राणियोंमें आपके अवतारका होना जाना जाताहै ॥ ३४ ॥ सबके ईश्वरआप इससमय

भवाय विभवाय च । अवतीर्णोऽशभागेन साम्प्रतं पतिराशिषाम् ॥ ३५ ॥ नमः परम
कल्याण नमः परममङ्गल । वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः ॥ ३६ ॥ अनुजानी
हिनौ भूमंस्तवानुचरकिंकरौ । दर्शनंनौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात् ॥ ३७ ॥ वा
णीगुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौच कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः । स्मृत्यां शिरस्तव
निवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
इत्थं संकीर्तितस्ताभ्यां भगवान्गोकुलेश्वरः दाम्ना चोलूखले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ
॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना । यच्छ्रीमदान्धयो
र्वाग्भिर्विभ्रंशोऽनुग्रहः कृतः ॥ ४० ॥ साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम् ।
दर्शनान्नो भवेद्बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ॥ ४१ ॥ तद्गच्छतं मत्परमौ नलकूबर
सादनम् । संजातो मयि भावो वामीप्सितः परमोऽभवः ॥४२॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यु
क्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः । बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥४३॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीशुक उवाच ॥ गोपा नन्दादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम् । तत्राजग्मुः कुरुश्रे
ष्ठ निर्घातभयशंकिताः ॥ १ ॥ भूम्यां निपतितौ तत्र ददृशुर्यमलार्जुनौ । बभ्रमुस्तद
विज्ञाय लक्ष्यं पतनकारणम् ॥ २ ॥ उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं च बालकम् । क-
स्येदं कुत आश्चर्यमुत्पात इति कातराः ॥ ३ ॥ बाला ऊचुरनेनेति तिर्यग्गतमुलूखल

सब सृष्टिकी उत्पत्ति और ऐश्वर्योंके निमित्त पूर्णावतार हुएहो ॥ ३५ ॥ हे परमकल्याण ! हे विश्व मंडल ! आपको प्रणामहै, आप वासुदेव, शांत और यदुपति हो आपको नमस्कार है ॥ ३६ ॥ हे भूमन् ! हम आपके दासानुदास हैं नारदजी की कृपासे हमने आपका दर्शन पाया ॥ ॥ ३७ ॥ हमारी जिह्वा आपके गुणोंका कीर्तन करने में दोनों कान आपके चरित्र सुनने में, दोनों हाथ आपकी चरणसेवा में, चित्त, आपके दोनों चरणों को ध्यान करने में, मस्तक आपके निवास रूप जगत के प्रणाम करने में, तथा दृष्टि आपके मूर्ति भूत साधुओं के दर्शन में तत्पररहे ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णजी रस्सी द्वारा ऊखल में बँधेहुएथे उन दोनों यक्षोंकी स्तुति सुन हास्य मुखहो कहनेलगे, ॥ ३९ ॥ कि–तुम दोनोंही ऐश्वर्य के मदसे अन्धे होरहेथे, तब देवर्षि नारदने तुमको शाप देकर पदच्युत रूपसे कृपा की–मैंने इसको पहिलेही जान लियाथा ॥४०॥ जैसे सूर्यके देखनेसे मनुष्योंकी आंखों का बन्धन नहीं रहता। वैसेही स्वधर्मवर्त्ती, ब्रह्मवेत्ता और उनमें भी फिर मुझमे चित्त अर्पण करनेवाले भक्तों के दर्शन करनेसे मनुष्योंको संसारका बंधन नहीं रहता ॥ ४१ ॥ अतएव हे नलकूबर ! तुम दोनों जन घरको जाओ । मुझमें तुम्हारी भक्ति उत्पन्न हुईहै अतएव अब तुम्हारी संसारमें आनेकी सम्भावना नहीं है ॥ ४२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! यह बात सुनकर वे दोनों गन्धर्व ऊखलमें बँधेहुए श्रीकृष्ण जी की परिक्रमा कर बारम्बार प्रणाम करते हुए आज्ञाले उत्तरकी ओर को चलगये ॥ ४३ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा०दशम० सरलाभाषाटीकायांदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे कुरुश्रेष्ठ ! दोनों वृक्षोंके गिरने का शब्द सुन नंदादि गोपगण वज्र गिरने की शंकाकर उस स्थान पर आये ॥ १ ॥ वहां आयकर देखा कि-यमलार्जुन के वृक्ष पृथ्वीपर गिर गयेहैं वृक्षगिरने के कारणभूत—ऊखल खींचने वाले, रस्सी से बँधेहुए बालकको सामने देखा तौभी उस का कारण स्थिर न करसके और यह कहते२ लगे–'यह किसका काम है ?' किस कारणसे ऐसाहुआ ? क्या आश्चर्य है ! उत्पातकी आशंका से भयभीतहो इधरउधर घूमनेलगे॥२।३॥

म्। विकर्षतामध्यगेन पुरुषावप्यचक्ष्महि ॥ ४ ॥ नतेतदुक्तंजगृहुर्न घटेतेतितस्य तत्। बालस्योत्पाटनंतर्वोः केचित्संदिग्धचेतसः ॥ ५ ॥ उलूखलंविकर्षन्तं दाम्नाबद्धंस्वमात्मजम्। विलोक्यनन्दःप्रहसद्वदनोविमुमोचह ॥ ६ ॥ गोपीभिःस्तोभितोनृत्यद्भगवान्बालवत्क्वचित्। उद्गायतिक्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयन्त्रवत् ॥ ७ ॥ बिभर्तिक्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम्। बाहुक्षेपंचकुरुते स्वानांचप्रीतिमावहन् ॥ ८ ॥ दर्शयंस्तद्विदांलोक आत्मनोभृत्यवश्यताम्। व्रजस्योवाहवैहर्षं भगवान्बालचेष्टितैः ॥ ९ ॥ (क्रीणीहिभोफलानीति श्रुत्वासत्वरमच्युतः। फलार्थीधान्यमादाय ययौसर्वफलप्रदः ॥ १० ॥ फलविक्रयिणीतस्य च्युतधान्यंकरद्वयम्। फलैरपूरयद्रत्नैः फलभाण्डमपूरिच ॥ ११ ॥ सरित्तीरगतंकृष्णं भग्नार्जुनमथाह्वयत्। रामंचरोहिणीदेवी क्रीडन्तंबालकैर्भृशम् ॥ १२ ॥ नोपयातांयदाहूतौक्रीडासङ्गेनपुत्रकौ। यशोदांप्रेषयामासरोहिणीपुत्रवत्सलाम् ॥ १३ ॥ क्रीडन्तंसाग्रजंबालैरतिवेलंसहाग्रजम्। यशोदाऽजोहवीत्कृष्णपुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ॥ १४॥ कृष्णकृष्णारविन्दाक्षतातएहिस्तनंपिब। अलंविहारैःक्षुत्क्षान्तःक्रीडाश्रान्तोऽसिपुत्रक ॥ १५ ॥ हेरामागच्छताताशुसानुजःकुलनन्दन। प्रातरेवकृताहारस्तद्भवान्भोक्तुमर्हति ॥ १६ ॥ प्रतीक्षतेत्वांदाशार्हभोक्ष्यमाणोव्रजाधिपः। एह्यावयोःप्रियंधेहि स्वगृहान्यातबालकाः ॥ १७ ॥ धूलिधूसरिताङ्गस्त्वंपुत्रमज्जनमावह। जन्मर्क्षंतेऽ-

---

॥ ३ ॥ अन्य बालकों ने कहा कि—" कृष्ण ने बीचमें आकरके ऊखलको टेढाकर उसकोबलपूर्वक खींच इन दोनों वृक्षों को गिरा दिया है। केवल इतनाही नहीं, वरन वृक्षसे हमने दो दिव्य पुरुषों को भी निकलते देखा है ॥ ४ ॥ हे राजन्! बालकों की इस बात को गोपों ने असम्भव जानकर उस पर विश्वास नहीं किया और किसी२ ने विश्वास करभीलिया कि ऐसाहोभी सकता है ॥५॥ नन्दजी ने पुत्रको रस्सी से बँधा और ऊखल खींचतहुए इधरउधर घूमता देखकर हँसते२ खोलदिया ॥ ६ ॥ इस प्रकार से बाललीला करतेहुए श्रीकृष्णजी कभी गोपियों के ताली बजाने से प्रसन्न होकर नाचने लगते, कभी कठपुतली की सदृश उनके वशीभूतहोकर गानकरते रहते ॥ ७ ॥ तथा कभी उनकी आज्ञा से उनकी कोई वस्तु लेआते कभी उनके कहने से पटे, पायली, पादुकाउठाते, कभी अपने सम्बन्धियों को प्रसन्न करतेहुए केवलहाथही फैलाते और कभी अपने सेवक ग्वालबालों को प्रसन्न करने के लिये श्रीकृष्णजी नानाप्रकार की क्रीड़ाकरतेथे ॥ ८ । ९ ॥ हेराजन्! एक दिन फल बेचनेवाली की (फललो) इस बात को सुनकर सबके फल देनेवाले श्रीकृष्णजी फल लेनेकी इच्छा से अन्न ले शीघ्रता पूर्वक वहां गए ॥ १० ॥ श्रीकृष्णजी के धान्य डालनेपर उस फल बेचनेवाली नें जैसेही उनके दोनों हाथ फलों से भरे तैसेही उसका पात्र रत्नों से परिपूर्ण होगया ॥११॥ हे राजन्! यमलार्जुन वृक्षों के टूटन के उपरांत एक दिन राम और कृष्ण नदी के तीरपर घूम २ कर खेलरहे थे उसी समय रोहिणीजी नें उनको बुलाया ॥ १२ ॥ खेल में लगेहुए दोनों पुत्र उनका शब्द सुनकर भी जब नआए तब पुत्र वत्सला रोहिणी नें यशोदा को वहां भेजा ॥ १३ ॥ कृष्णजी बलराम और अन्य गोप बालकों के साथ कुसमय में खेलरहे हैं यह देख पुत्र स्नेह के कारण यशोदाजी के दोनों स्तनों से दूध टपकनेलगा उन्होंनें कृष्णजी को बुलाकरकहा ॥ १४ ॥ हे कृष्ण! हे कमलनयनवत्स! आ, दूधपी अब खेलनें का समय नहीं है भूख से व्याकुल होगयाहोगा चलकर भोजन कर ॥१५॥ वत्स कुलनन्दनराम! छोटे भाई को लेकर शीघ्रआओ कृष्ण नें प्रातःकाल में भोजन किया था देखती हूं कि खेलनें के कारण अत्यन्त भ्रमित होरहा है ॥ ॥ १६ ॥ व्रजपति नंद भोजन करनेंको बैठेहुए तेरी राहदेखरहे हैं अब आओ और हमको प्रसन्न करो हे बालको! अब तुम अपनें २ घरको जाओ ॥ १७ ॥ वत्स कृष्ण! तेरा शरीर धूल से धूसित

यमवतिविप्रेभ्योदेहिगाःशुचिः॥१८॥पश्यपश्यवयस्यास्तेमातृमृष्टान्स्वलंकृतान्। त्वंचस्नातःकृताहारोविहरस्वस्वलंकृतः॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थंयशोदा तमशेषशेखरंमत्वासुतंस्नेहनिबद्धधीर्नृप । हस्तेगृहीत्वासहराममच्युतंनीत्वास्व वाटंकृतवत्यथोदयम्॥ २० ॥ गोपवृद्धामहोत्पातानुभूयबृहद्वने । नन्दादयःसमा गम्यव्रजकार्यममन्त्रयन्॥ २१ ॥ तत्रोपनन्दनामाऽऽहगोपोज्ञानवयोधिकः । देश कालार्थतत्त्वज्ञःप्रियकृद्रामकृष्णयोः ॥ २२ ॥ उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुलस्यहि- तैषिभिः । आयान्त्यत्रमहोत्पाताबालानांनाशहेतवः ॥ २३ ॥ मुक्तःकथंचिद्राक्षस्या बालघ्न्याबालकोह्यसौ । हरेरनुग्रहान्नूनमनश्चोपरिनापतत्॥ २४ ॥ चक्रवातेननी तोऽयंदैत्येनविपद्वियत्। शिलायांपतितस्तत्रपरित्रातःसुरेश्वरैः॥ २५ ॥ यन्नम्रि- येतद्रुमयोरंतरंप्राप्यबालकः। असावन्यतमोवापितदप्यच्युतरक्षणम्॥ २६ ॥याव दौत्पातिकोऽरिष्टोव्रजंनाभिभवेदितः।तावद्बालानुपादाययास्यामोऽन्यत्रसानुगाः ॥ २७ ॥ वनंवृंदावनंनामपशव्यनवकाननम् । गोपगोपीगवांसेव्यंपुण्याद्रितृणवीरु धम्॥ २८॥ तत्तत्राद्यैवयास्यामःशकटान्युङ्क्तमाचिरम्। गोधनान्यग्रतोयांतुभव तांयदिरोचते॥२९॥तच्छ्रुत्वैकधियोगोपाःसाधुसाध्वितिवादिनः।व्रजान्स्वान्स्वान् समायुज्यययूरूढपरिच्छदाः ॥ ३० ॥ वृद्धान्बालान्स्त्रियोराजन्सर्वोपकरणानिच। अनस्स्वारोप्यगोपालायत्ताआत्तशरासनाः ॥ ३१ ॥ गोधनानिपुरस्कृत्यशृङ्गाण्या

होरहा है आकर स्नान कर आ आज तेरी जन्म गांठ है पवित्र होकर ब्राह्मणोंको गोदान चलकेकर ॥ १८ ॥ देख अपनें साथियोंको तो देख उनकी मातामोंनें उनको स्नान कराकर सजा दिया है तूभी स्नानकर सुन्दर वस्त्रादि पहन भोजन करके खेलनेंको आना ॥ १९ ॥ हे राजन्! स्नेहमयी यशोदाजी भगवान् अच्युतको इस भांतिसे पुत्र मानकर हाथपकड़ राम सहित अपने घरआई और आकर सब मंगलकारी कार्यों को किया ॥ २० ॥ हे राजन् उस बड़ेवन में नित्य प्रति बहुत से उत्पातों को होतादेख नन्द आदि सब वृद्ध गोपगण एक स्थानपर इकट्ठेहुए और इस विषयका परामर्श करनेलगे क्या यत्न कियाजावे कि जिससे गोकुल का कल्याण होवे ॥ २१ ॥ उस सभामें एक उपनन्द नामक ज्ञानवान और वृद्ध होगयाथा । वह मनुष्य देशकाल और कार्य के तत्वका जाननेवाला तथा राम और श्रीकृष्णजीका हितकारीथा । उपनन्दने कहा कि ॥ २२ ॥ यदि गोकुलके कल्याण की इच्छा करतेहो तो हमको इस वनसे उठही जाना उचितहै ! इसस्थान में व्रज नाशके निमित्त यहां नित्य नित्य महाउत्पात होनेलगेहैं॥ २३ ॥ इस बालकने दैवकी कृपा से बालकोंके नाश करनेवाली राक्षसीके हाथसे छुटकारा पायाहै वह भी भगवानहीकी कृपाहुई कि इसके ऊपर शकट न गिरपड़ा ॥ २४ ॥ बौंडर रूपी दैत्यने इसको आकाशमें लेजाकर आपत्तिमें डालाथा परन्तु वह आपही शिलामें गिरा केवल भगवान्हीकी कृपासे बालक बचा॥ २५ ॥ इसके उपरांत दोनों वृक्षोंके बीचमें प्रवेश करनेसे यह तथा दूसरे बालक भी न मरे यह केवल नारायण कीही कृपाहै ॥ २६ ॥ अतएव अब दूसरा कोई उत्पात व्रजमे न होवे ऐसे रक्षित स्थानमें बालकों तथा सेवकों समेत सब सामान लेकर चलना चाहिये ॥ २७ ॥ वृन्दावन नामक एक पवित्र बन पर्वत; तृण और लतामोंसे परिपूर्णहै उसके आस पास घने २ बनहैं। पशु वहांपर भलीभांतिसे चर सकतेहैं, गो, गोपी तथा गोपगण भी सुखसे रहेंगे ॥ २८॥ यदि तुम्हारी इच्छाहो तो लोचलो अभी हम सब उस बनमें जावें, सब गाड़ोंको जोतो, विलम्ब न करो गाय आगे २ चलें ॥ २९ ॥ यह बात सुनकर समस्त गोप एक मतहो 'साधु २ कह अपने २ गाड़ेजोत उनपर सब सामान आदि लाद वृन्दावन की ओर चले ॥ ३० ॥ हेराजन्! गोपोंने बड़े बूढ़े समेत गाड़ोंके ऊपर सब

पूर्वसर्वतः । तूर्यघोषेणमहताययुःसहपुरोहिताः ॥ ३२ ॥ गोप्योरूढरथानूत्नकुच कुंकुमकांतयः । कृष्णलीलाजगुःप्रीतानिष्ककण्ठयःसुवाससः ॥३३॥ तथायशोदा रोहिण्या वेकंशकटमास्थिने । रेजतुःकृष्णरामभ्यांतकथाश्रवणोत्सुके ॥ ३४ ॥ वृंदावनंसंप्रविश्यसर्वकालसुखावहम् । तत्रचक्रुर्व्रजावासंशकटैरर्धचन्द्रवत् ॥ ३५॥ वृंदावनगोवर्धनंयमुनापुलिनानिच । वीक्ष्यासीदुत्तमाप्रीतीराममाधवयोर्नृप ॥३६॥ एवंव्रजौकसांप्रीतिंयच्छंतौबालचेष्टितैः। कलवाक्यैःस्वकालेनवत्सपालौबभूवतुः ॥ ३७ ॥ अविदूरेव्रजभुवःसहगोपालदारकैः । चारयामासतुर्वत्सान्नानाक्रीडापरिच्छदौ ॥ ३८ ॥ क्वचिद्वादयतोवेणुंक्षेपणैःक्षिपतःक्वचित् । क्वचित्पादैःकिंकिणीभिःक्वचित्कृत्रिमगोवृषैः ॥ ३९ ॥ वृषायमाणौनर्दंतौयुयुधातेपरस्परम् । अनुकृत्यरुतैर्जंतूंश्चेरतुःप्राकृतौयथा ॥ ४० ॥ कदाचिद्यमुनातीरेवत्सांश्चारयतोःस्वकैः । वयस्यैःकृष्णबलयोर्जिघांसुर्दैत्यआगमत् ॥ ४१ ॥ तंवत्सरूपिणंवीक्ष्यवत्सयूथगतंहरिः । दर्शयन्बलदेवायशनैर्मुग्धइवासदत् ॥ ४२ ॥ गृहीत्वापरपादाभ्यांसहलांगूलमच्युतः । भ्रामयित्वाकपित्थाग्रेप्राहिणोद्गतजीवितम् ॥ सकपित्थैर्महाकायःपात्यमानैःपपातह ४३ ॥ तंवीक्ष्यविस्मिताबालाःशशंसुःसाधुसाध्विति । देवाश्च परिसंतुष्टाबभूवुःपुष्पवर्षिणः ॥ ४४ ॥ तौवत्सपालकौभूत्वासर्वलोकैकपालकौ ।

...मग्री रखी तथा वृद्ध, बालक और स्त्रियोंको उनपर बिठाया और अस्त्र शस्त्र ले गौओं को आगे आगेकर सींग और तुतारीका शब्द करतेहुये पुरोहितों को साथले वृन्दावन को चले ३१—३२ गोपियें रथपर सवारहो कृष्ण लीलाका गान करतीहुई उनके पीछे२ चलीं । उनके कुच मंडल केसर से रंगेहुएथे कानोंमें मनोहर कुण्डल और अंगमें सुन्दर वस्त्र धारण कियेथीं ॥ ३३ ॥ यशोदा और रोहिणी भी एक रथपर बैठ कृष्ण तथा बलराम समेत शोभा पानेलगीं कृष्ण जीके चरित्र सुन २ कर वे अति आनन्दित हुईं॥३४॥हे राजन् ! वृन्दावन सब कालमेंही सुखदायकहै गोपगणों ने वहां प्रवेशकर गाड़ोंको अर्द्ध चन्द्राकार स्थापितकर उसी स्थानपर गौओं का वासस्थान बनाया ॥ ३५ ॥ हेराजन् ! बलरामजी तथा श्रीकृष्णजी वृन्दावन तथा यमुना की रेतीको देख अत्यन्त आनन्दितहुये॥३६॥राम, कृष्ण पहिले कहेके अनुसार बालचरित्र तथा मधुरवाक्योंसे व्रजवासियों को आनन्द देतेहुये योग्यकालमें गौ चराने के कार्यमें प्रवृत्तहुये ॥ ३७ ॥ नानाप्रकार के खेलोंसे उनका समय बीतने लगा नानाअलंकार धारणकर वह गोप बालकों के साथ वृन्दावन के निकट बछड़ोंको चराने लगे ॥ ३८ ॥ कभी बंशीबजाते; कभी बेल और आंवले आदि फलों को गोफन में रखकर फेंकते, कभी किंकणी पहिनेहुए पावों से दौड़ २ कर पृथ्वी पर खेलते, कभी २ बालकों को कमरी ओढ़ाय उन्हें गोवृष का रूप धारण कराते ॥ ३९ ॥ तथा कभी आपभी उसी भांति से वृष बन वृषकासा शब्द करतेहुए उनके साथ युद्ध करते रहते । कभी अनेकों जंतुओं का अनुकरण कर उन्हीं का शब्द करते ॥ ४० ॥ कुमारावस्था में वे राम और कृष्णजी इसहीप्रकार से साधारण बालकों की समान क्रीडाकर २ के भ्रमण करने लगे । एक दिन श्रीकृष्णजी तथा बलरामजी अपने संगियों समत यमुना के किनारे अपने २ बछड़ों को चरारहेथे—उसी समय उनके नाश करने की इच्छा से एक दैत्य वहां पर आया ॥ ४१ ॥ श्रीकृष्णजी ने उस दैत्य को बछड़े का रूप धारण किये हुए बछडों के बीच में घूमताहुआ देख बलदेवजी को दिखाया तदनन्तर अजानकी समानहो धीरे २ उस के पीछे पहुँचे ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्णजी ने उस के दोनों पिछले पैरों को पकड़ घुमाय, प्राण निकाल कैथ के पेड़पर पटका । उस महाकाय के बोझ से वह कैथ गिरने लगाओर उस वृक्ष के साथही वह असुरभी पृथ्वी पर गिरपड़ा ॥ ४३ ॥ बालकगण उस को मराहुआ देख 'साधु' 'साधु' कहने लगे तथा देवतागण अत्यन्त संतुष्टहो फूलों की वर्षा करने लगे ॥ ४४ ॥

सप्रातराशौगोवत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः ॥ ४५ ॥ स्वंस्वंवत्सकुलंसर्वेपाययिष्यन्त
एकदा। गत्वाजलाशयाभ्याशंपाययित्वापपुर्जलम् ॥ ४६ ॥ तेतत्रददृशुर्बालामहा
सत्त्वमवस्थितम्। तत्रसुर्वज्रनिर्भिन्नंगिरेः शृङ्गमिवच्युतम् ॥ ४७ ॥ सवैबकोनामम
हानसुरोबकरूपधृक्। आगत्यसहसाकृष्णंतीक्ष्णतुण्डोऽग्रसद्बली ॥ ४८ ॥ कृष्णंम
हाबकग्रस्तंदृष्ट्वारामादयोऽर्भकाः। बभूवुरिन्द्रियाणीवविनाप्राणंविचेतसः॥४९॥
तंतालुमूलंप्रदहन्तमग्निवद्गोपालसूनुंपितरंजगद्गुरोः चच्छर्दसद्योऽतिरुषाऽक्षतं
बकस्तुण्डेनहन्तुंपुनरभ्यपद्यत ॥ ५० ॥ तमापतन्तंसनिगृह्यतुण्डयोर्दोर्भ्यांबकंकंस
सखंसतांपतिः पश्यत्सुबालेषुददारलीलयामुदावहोवीरणवद्दिवौकसाम् ॥ ५१ ॥
तदाबकारिंसुरलोकवासिनः समाकिरन्नन्दनमल्लिकादिभिः। समीडिरेचानकश
ङ्खसंस्तवैस्तद्वीक्ष्यगोपालसुताविसिस्मिरे ॥ ५२ ॥ मुक्तंबकास्यादुपलभ्यबाल
कारामादयः प्राणमिवेन्द्रियोगणः। स्थानागतंतंपरिरभ्यनिर्वृताःप्रणीयवत्सान्व्रज
मेत्यतज्जगुः ॥ ५३ ॥ श्रुत्वातद्विस्मितागोपागोप्यश्चातिप्रियादृताः। प्रेत्यागतमि
वौत्सुक्यादैक्षन्ततृषितेक्षणाः ॥ ५४ ॥ अहोबतास्यबालस्यबहवोमृत्यवोऽभवन्।
अप्यासीद्विप्रियंतेषांकृतंपूर्वंयतोभयम् ॥ ५५ ॥ अथाप्यभिभवन्त्येनंनैवतेघोरदर्श
नाः। जिघांसयैनमासाद्यनश्यन्त्यग्नौपतङ्गवत् ॥ ५६ ॥ अहोब्रह्मविदांवाचोनास

हेराजन्! सबलोकों के श्रेष्ठपालक राम तथा श्रीकृष्णजी दोनों भाई वत्सपालहोकर प्रातःकालके भोजन की सामग्री साथले बछड़ों को चराते फिरतेथे ॥ ४५ ॥ एक दिन सब गोपों के बालकों ने जलाशय के समीपजाय अपने २ बछडों को जल पिलाय और आपभी जल पिया ॥ ४६ ॥ उस समय उन्होंने देखा कि—उस स्थान में वज्र से मारेहुए पृथ्वी पर गिरे पहाड़की सदृश एक बड़ा भारी जीव बैठा है ॥ ४७ ॥ वह एक बड़ाभारीअसुर बगले का रूप धारण कियथा। वह अत्यन्त बलवान तथा उसकी चोंच बड़ी तीक्ष्णथी! वह बकासुर शीघ्रतापूर्वक वहां पर आय श्रीकृष्णजी को निगल गया ॥ ४८ ॥ यह देखकर राम आदि सब बालक प्राण रहित इंद्रियों की समानअचेत होगये ॥ ४९ ॥ इस ओर जबबकासुर श्रीकृष्णजी को निगलगया तबश्रीकृष्णजी ने अग्निकी सदृश उसका गलाजलाना आरम्भ किया। जब बकासुर उस ज्वाला का सहननकरसका तब उस ने भगवान् श्रीकृष्णजी को तत्कालही उगल दिया, और बधकरने के निमित्त उनके निकट चोंचों से मारने को आया ॥ ५० ॥ साधुओं के आश्रय श्रीकृष्णजी ने दोनों हाथोंसे उस सामने आत हुए कंस के मित्र बककी दोनों चोंचें पकड़, देवताओं को आनन्द देतेहुए, बालकों के सामनेसहजही से तिनके की समान चीरडाला ॥ ५१ ॥ तब सुरलोक निवासी देवतागण भगवान श्रीकृष्णजी के ऊपर नन्दनबन के फूल आदि बर्षाने तथा ढक्का और शंख बजाय स्तोत्रों द्वारा उनकी स्तुतिकरने लगे। यह देखकर गोपों के बालक अत्यन्तही विस्मितहुए ॥ ५२ ॥ राम आदि बालकगण बकासुरके मुख से श्रीकृष्णजी को छूटाहुआ देख उनसे मिल ऐसे आनंदितहुए कि जैसे प्राण के स्थान पर आने से इंद्रियें चैतन्य होती हैं तदनन्तर बछडों को एकत्रितकर बनसे ब्रज में आय बालकों ने उस सब वृत्तांतको कहा॥५३॥ गोप और गोपियें उसे सुनकर विस्मितहो बहुत स्नेह से आदर युक्त श्रीकृष्णजी को ऐसे उत्सुक चित्त से देखनेलगे कि मानों परलोक से फिर लौट आये हैं अनन्तर उन सब मनुष्यों ने कहा ॥ ५४ ॥ कैसाआश्चर्य है कि इस बालक की कितनीही बार मृत्यु आई परन्तु जो घातकरने आये वह स्वयंही इसके हाथ से मारे गये क्योंकि उन्होंने पहिले दूसरों को भयउत्पन्न किया ॥ ५५ ॥ यह लोग बड़े भयङ्कर रूप हैं तौभी इसको परास्त नहीं करसके मारनेकी कामना से इस के निकटआय, अग्नि में गिरकर जैसे पतंग नष्टहोता है वैसेही नष्टहोगये

त्याः शान्तिकार्हिचित्। गर्गोयदाहभगवानन्वभावितथैवतत् ॥ ५७ ॥ इति मन्वाद योगोपाः कृष्णरामकथांमुदा। कुर्वन्तोरममाणाश्चनाविन्दन्भववेदनाम् ॥ ५८ ॥ एवंविहारैः कौमारैः कौमारंजहतुर्व्रजे। निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः॥५९॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः॥११॥

श्रीशुक उवाच॥ क्वचिद्वनाशायमनोदधद्व्रजात्प्रातः समुत्थायवयस्यवत्स पान्। प्रबोधयञ्छृङ्गरवेणचारुणाविनिर्गतोवत्सपुरः सरोहरिः ॥ १ ॥ तेनैवसाकंपृथुकाः सहस्रशः स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः। स्वान्स्वान्सहस्रोपरिसङ्ख्ययान्वितान्वत्सान्पुरस्कृत्यविनिर्ययुर्मुदा ॥ २ ॥ कृष्णवत्सैरसङ्ख्यातैर्यूथीकृत्यस्ववत्सकान्। चारयन्तोऽर्भलीलाभिर्विजह्रुस्तत्रतत्रह ॥ ३ ॥ फलप्रवालस्तबकसुमनःपिच्छधातुभिः। काचगुञ्जामणिस्वर्णभूषिताअप्यभूषयन् ॥ ४॥ मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीञ्ज्ञातानाराच्चचिक्षिपुः। तत्रत्याश्चपुनर्दूराद्धसन्तश्चपुनर्ददुः ॥ ५ ॥ यदि दूरंगतः कृष्णोवनशोभेक्षणायतम्। अहंपूर्वमहंपूर्वमितिसंस्पृश्यरेमिरे॥६॥ केचिद्वेणून्वादयन्तोध्मान्तः शृङ्गाणिकेचन। केचिद्भृङ्गैःप्रगायन्तःकूजन्तःकोकिलैःपरे॥७॥ विच्छायाभिः प्रधावन्तोगच्छन्तःसाधुहंसकैः। बकैरुपविशन्तश्चनृत्यन्तश्चकलापिभिः ॥८॥ विकर्षन्तः कीशबालानारोहन्तश्चतैर्द्रुमान्। विकुर्वन्तश्चतैः साकंप्लवन्तश्चपलाशिषु॥९॥ साकंभेकैर्विलंघंतः सरित्प्रस्रवसंप्लुताः। विहसन्तः प्रतिच्छायाः श

॥ ५६ ॥ अहो! वेदवेत्ताओं का वाक्य कभी मिथ्यानहीं होता; महर्षि गर्ग जोकुछ कहगये हैं— ठीक वैसाही होताहै॥५७॥नंद आदि गोपगण इसप्रकार से आनन्द प्रकाशकर, रामकृष्णकेचरित्रकहते हुए समय बितानेलगे संसार के कष्ट उनको दुःख न दसके ॥ ५८ ॥ इस प्रकार छिपना पुलिन बांधना वानरकी समान कूदना इत्यादि कुमारअवस्था के खेलों से इन दोनों भाइयों ने कुमार अवस्था बिताई ॥ ५९ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजा! एकदिन श्रीकृष्णजी वनमें भोजन करनेकी इच्छाकर प्रातःकालही उठे तथा गोपालकोंके लड़कोंको जगाय सुन्दर शृंगध्वनि करते २ बछड़ों को आगेकर ब्रजसे बाहरहुये ॥ १ ॥ सहस्र सहस्र स्नेहयुक्त बालक सुंदर छींके, लकड़ी; सींग और वेणु हाथोंमें ले अपने २ सहस्रों बछडोंको आगेकर ब्रजसे निकले ॥ २ ॥ सबने श्रीकृष्णजीके असंख्य बछड़ों के साथ अपने बछड़ों का यूथ बांधलिया तथा चराते २ उन्हीं वनोंमें बालक्रीडा करके खेलने लगे ॥ ३ ॥ वह काच, मोती मणि और सोनेमे सजे हुयेथे तौ भी वनसे फूल; फल कोमल गुच्छा मोर पिच्छ और धातुओंसे अपनेको अलंकृत करनेलगे ॥ ४ ॥ एक दूसरे के छींके आदि चुराने लगे और जैसेही उनमेंसे कोई पदार्थ निकलते तैसेही दूर फेंकदेनेलगे फिर जो बालक उस स्थान पर खड़े होते वे उस पदार्थको लाकर देनेलगे ॥ ५ ॥ कृष्णजी वनकी शोभा देखनेको दूर चले जाते तो वह सब मैं आगे मैं आगे ऐसा कहकर उनको छूछूकर खेलनेलगे ॥ ६ ॥ कोई २ वंशी बजानेलगा कोई २ सींग कोई भौंरोंके साथ गाने और कोई कोयलके साथ टहूका देनलगा ७ ॥ कोई २ उड़तेहुए पक्षियोंकी छायाके साथ दौडनेलगा; कोई हंसोंके साथ अच्छीतरहसे चलनेलगा कोई २ बकपांतिके साथ बैठगए किसी २ ने मोरोंके साथ नाचना आरम्भ किया॥ ८ ॥ कोई २ बालक वृक्षकी शाखापर चढेहुये बन्दरोंके बच्चोंकी पूछ पकड़कर खींचनेलगे किसी किसीने उनके साथही पेड़पर चढ़कर एक डालसे दूसरी डालपर फांदना आरम्भ किया ॥ ९ ॥ कोई २ उनके साथ दांत आदि दिखा मुह टेढा करनेलगे कोई मेढ़कोंके साथ बोलते कोई २ नदीमें नहाने कोई

पन्त्यश्चप्रतिस्वनान् ॥ १० ॥ इत्थंसतांब्रह्मसुखानुभूत्यादास्यंगतानांपरदैवतेन । मा
याश्रितानांनरदारकेणसाकंविजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥ ११ ॥ यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृ
च्छ्रतोधृतात्मभिर्योगिभिरप्यलभ्यः । सएवयद्दृग्विषयः स्वयंस्थितः किंवर्ण्यते
दिष्टमतोव्रजौकसाम् ॥ १२ ॥ अथाघनामाऽभ्यपतन्महासुरस्तेषांसुखक्रीडनवीक्ष
णाक्षमः । नित्यंयदन्तर्निजजीवितेप्सुभिः पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ॥ १३ ॥ दृष्ट्
वाऽर्भकान्कृष्णमुखानघासुरः कंसानुशिष्टः सबकीबकानुजः । अयंतुमेसोदरना
शकृत्तयोर्द्वयोर्ममैनंसबलंहनिष्ये ॥ १४ ॥ एतेयदामत्सुहृदोस्तिलापः कृतास्तदान
ष्टसमाव्रजौकसः । प्राणेगतेवर्ष्मसुकाऽनुचिन्ताप्रजासवः प्राणभृतोहियेते ॥ १५ ॥
इति व्यवस्याजगरंबृहद्वपुः सयोजनायाममहाद्रिपीवरम् । धृत्वाऽद्भुतंव्यात्तगुहान
नंतदापथिव्यशेतग्रसनाशयाखलः ॥ १६ ॥ धराधरोष्ठोजलदोत्तरोष्ठोदर्याननान्तो
गिरिशृङ्गदंष्ट्रः । ध्वान्तान्तरास्योविततावधजिह्वः परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ।१७।
दृष्ट्वातंतादृशंसर्वेमत्वावृन्दावनश्रियम् । व्यात्ताजगरतुण्डेनह्युत्प्रेक्षन्तेस्मलीलया
॥१८॥ अहोमित्राणिगदतसत्त्वकूटंपुरः स्थितम् । अस्मत्संग्रसनव्यात्तव्यालतुण्डा
यतेनवा ॥ १९ ॥ सत्यमर्ककरारक्तमुत्तराहनुवद्घनम् । अधराहनुवद्रोधस्तत्प्रति

कोई अपनी छायाको देखकर हसने और प्रतिध्वनिको सुनकर गाली देनेलगे ॥ १० ॥ हे राजन् ! जो भगवान् हरि विद्वानोंके ब्रह्म सुख और अनुभव रूपहैं भक्तोंके परमदैवत रूप हैं और मायासे मोहित मनुष्योंके नर बालकरूपहैं उन्हीं भगवान् हरिके साथ वे गोप बालक इसभांति विहारकरने लगे निश्चयही उन्होंने पुण्योंके समूहका सञ्चयकियाहै॥११॥जितेंद्रिय योगीगण बहुतजन्म कष्टकरके भी जिनकी चरणरजको नहीं पासकते वे भगवान् जिनके दृष्टिगोचर होकर निवास करते हैं उन ब्रजवासियों के सौभाग्य को और क्याकहूं ? ॥१२॥हेराजन् ! तदनन्तर बालकोंका ऐसे सुखकी क्रीडा करतेहुए देख उसकासहन न कर उसीसमय अघ नामक एकभयकर असुर उसीस्थानपर आ पहुचा अघासुर बड़ाही प्रचण्ड राक्षसथा । देवतागण अमृत पानकर अमर होकरभी अपने२ प्राणोंके बचानेकी इच्छासे निरंतरही अघका छिद्र ढूंढाकरतेथे ॥ १३ ॥ वह अघासुर पूतना और बकका छोटा भाईथा । कंसका पठायाहुआ आकर कृष्ण आदि बालकोंको देखकर विचारने लगा कि" इसी बालकने मेरे भाई और बहिनका नाश कियाहै अतएव आजमैं दल समेत इसकोमारूंगा ॥ १४ ॥ ये सब जब मेरे सहोदरोंके तिलांजलि रूप होजायगे। तब सब ब्रजवासीही नाश होजा यंगे । क्योंकि यह उनके प्राण स्वरूपहैं प्राण बाहर होनेसे देह फिर किसकाम की रहसकतीहैं ॥ ॥ १५ ॥ दुष्ट असुरने इसभांति निश्चयकर एक योजन लम्बा पर्वतके समान मोटा बड़े अजगरका रूप धारणकिया तथा गुफाकी समान मुखको फैलाय निगललेनेकी इच्छासे मार्गमें सोरहा १६ ॥ उसका नीचेका ओष्ठ पृथ्वीको और ऊपरका ओष्ट बादलोंका स्पर्श करताथा दोनों गलफेर दोदरों की समान फटेहुयेथे एक २ दांत पहाड़की चोटीके सदृश देख पड़ताथा । मुखका भीतरी भाग घोर अधकारकी समान जिह्वा मार्गकी समान विस्तारित श्वास प्रचण्ड वायुके समान और दोनों आंखें दावाग्निकी समान प्रज्वलित प्रतीत होतीथीं ॥ १७ ॥ उसको देखकर बालकोंको वृन्दावन की कल्पितिका भ्रमहुआ सब बालक खेलते २ उस अजगरके फैलाहुये मुंहकी अपेक्षा (निरादर) करके कहनेलगे कि— ॥ १८ ॥ हेवयस्यगण ! देखो हमारे सामने यह कुछ प्राणीके आकारका देख पड़ताहै यह हमारे निगलनेके निमित्त सर्पकासा मुख फैलायेहै कि नहीं ? सो कहो ॥ १९ ॥ यह देखो सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे लाल बादल उसके ऊपरके ओष्ठकी समान तथा उस बादल

च्छाययारुणम् ॥ २० ॥ प्रतिस्पर्धेते सृक्किभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे । तुङ्गशृङ्गालयोप्येतास्तद्दंष्ट्राभिश्च पश्यत ॥ २१ ॥ आस्तृतायाममार्गोऽयं रसनां प्रतिगर्जति । एषामन्तर्गतं ध्वान्तमेतदप्यन्तराननम् ॥ २२ ॥ दावोष्णखरवातोऽयं श्वासवद्भाति पश्यत । तद्दग्धसत्त्वदुर्गन्धोऽप्यन्तरामिषगन्धवत् ॥ २३ ॥ अस्मान्किमत्र ग्रसिता निविष्टान्यं तथा चेद्बकवद्विनङ्क्ष्यति । क्षणादनेनेति बकार्युशन्मुखं वीक्ष्योद्धसन्तः करताडनैर्ययुः ॥ २४ ॥ इत्थं मिथोऽतथ्यमतज्ज्ञभाषितं श्रुत्वा विचिन्त्येत्यमृषा मृषायते । रक्षो विदित्वाखिलभूतहृत्स्थितः स्वानां निरोद्धुं भगवान्मनो दधे ॥ २५ ॥ तावत्प्रविष्टास्त्वसुरोदरान्तरं परं न गीर्णाः शिशवः सवत्साः । प्रतीक्षमाणेन बकारिवेशनं हतस्वकान्तस्मरणेन रक्षसा ॥२६॥ तान्वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो ह्यनन्यनाथान्स्वकरादवच्युतान् । दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान्घृणार्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ॥२७॥ कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनं न वा अमीषां च सतां विहिंसनम् । द्वयं कथं स्यादिति संविचिन्त्य तज्ज्ञात्वाऽविशत्तुण्डमशेषदृग्घरिः ॥ २८ ॥ तदा घनच्छदा देवा भयाद्धा हेति चुक्रुशुः । जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबान्धवाः ॥ २९ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्कृष्णस्त्वव्ययः सार्भवत्सकम् । चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा ववृधे गले ॥ ३० ॥ ततोऽतिकायस्य निरुद्धमार्गिणो ह्युद्गीर्णदृष्टेर्भ्रमतस्त्वितस्ततः । पूर्णोऽन्तरङ्गे पवनो

की छायासे लालहुई पृथ्वी उसके निचले होंठकी समान होरहीहै ॥ २० ॥ बायें और दक्षिण दो पहाड़की कन्दरायें गलफरेकी समान देखपड़तीहैं और यह सब पहाड़की चोटियें उसकी डाढ़ोंकी समान प्रतीत होतीहैं ॥ २१ ॥ यह विशाल मार्ग जीभके समान और यह सब पहाड़की चोटियों के भीतरका अंधेरा उसके मुखके भीतरी भागकी सदृश जान पड़ताहै ॥ २२ ॥ दावाग्निसे तपी हुई अति उष्ण वायु उसके श्वासकी सदृश ज्ञातहोतीहै तथा दावाग्निसे जलेहुये प्राणियोंकी दुर्गंध सर्पकी देहके भीतरी मांसकी गन्धके समान प्रतीत होतीहै, ॥ २३ ॥ यह क्या हमको निगल जायगा ? हमारा नाश तो कभी न होगा । यदि यह सर्पहीहै तो ऐसा होनसे बकासुरकी समान कृष्णके हाथसे अभी अभी माराजावेगा । यह कहकर बालकगण बकारि भगवान् श्रीकृष्णजीके सुन्दर मुखको देखते २ हँसतेहुए ताली बजाय अघासुरके उदरमें प्रवेश करगये ॥ २४ ॥ बालकगणोंने अनजान होकर यह बातें कहीं श्रीकृष्णजी यह सुनकर चिंता करने लगे कि—यह यथार्थमें सर्प सर्पदेहधारी असुरहै परन्तु हमारे मित्रोंको यह असत्य जानपड़ताहै,, सब प्राणियोंके अतर्यामी भगवान्ने यह यथार्थ निश्चयकर उनके निवारण करनेकी इच्छाकी ॥ २५ ॥ इतनेमेंही सब बालक अपने २ बछड़ोंकोले असुरके पेटमें प्रवेश करगये, परन्तु राक्षसने अपना मुंह बन्द न किया, क्योंकि वह अपने आत्मीयजनोंका स्मरणकर श्रीकृष्ण भगवान् के प्रवेश करनेकी राह देखरहाथा॥२६॥सबके अभयदाता श्रीकृष्णजी उन दीनबालकोंको अपनसे बिछुड़ाहुआ तथा मृत्युकी जठराग्निमें भस्म होताहुआ देख इसको दैवी घटना जान अत्यन्त विस्मितहुये॥२७॥अनन्तर उन्होंने विचारा कि-यहांपर क्या करना चाहिये? कि जिससे यह दुष्ट असुरभी मरे और बालकों के प्राणभी न नाश होवें । अनन्तर शोच विचारकर समदर्शी भगवान् सर्पके मुंहमें प्रवेश करगये ॥२८॥देवतागण जो आकाशमें स्थितथे वह भगवान्को अघासुरके मुंहमें प्रवेश करतेदेख अत्यन्त चीत्कार और विलाप करनेलगे और अघासुरके बांधव कंस आदि राक्षसों के आनन्द की सीमा न रही॥२९॥अव्यय भगवान् श्रीकृष्णजीने उनका हाहाकारसुन, उससर्पके गलदेशमें बालक और बछड़ों समेत अपनेदेहको बढ़ाया । इससे असुरका गलाघुटकर उसके दोनोंनेत्र निकलपड़े ॥३०॥ वह व्याकुलहोकर इधरउधर चक्कर खाने लगा । थोड़ीही देर में वायु उसकी देह में रुकजानेसे भर

निरुद्धो मूर्द्धन्विनिर्भिद्यविनिर्गतोवहिः ॥३१॥ तेनैवसर्वेषुवहिर्गतेषुप्राणेषु वत्सान्सुहृदःपरेतान्। दृष्ट्यास्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुनर्वक्त्रान्मुकुन्दो भगवान्विनिर्ययौ ॥ ३२ ॥ पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं महज्ज्योतिःस्वधाम्ना ज्वलयद्दिशोदश। प्रतीक्ष्य खेऽवस्थितमीशनिर्गमं विवेशतस्मिन्मिषतांदिवौकसाम् ॥ ३३ ॥ ततोऽतिहृष्टाः स्वकृतोऽकृतार्हणं पुष्पैःसुराअप्सरसश्च नर्तनैः। गीतैःसुगावाद्यधराश्चवाद्यकैः स्तवैश्चविप्राजयनिःस्वनैर्गणाः ॥ ३४ ॥ तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिकाजयादिनैकोत्सवमंगलस्वनान्। श्रुत्वास्वधाम्नोऽन्त्यज आगतोऽचिराद्दृष्ट्वा महीशस्य जगाम विस्मयम् ॥ ३५ ॥ राजन्नाजगरंचर्म शुष्कं वृन्दावनेऽद्भुतम् ॥ व्रजौकसांबहुतिथं च भूवाक्रीडगह्वरम् ॥ ३६ ॥ एतत्कौमारजंकर्म हरेरात्माहिमोक्षणम् । मृत्योःपौगण्डकेबाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिताव्रजे ॥ ३७ ॥ नैतद्विचित्रंमनुजार्भमायिनः परावराणांपरमस्यवेधसः। अघोऽपियत्स्पर्शनधौतपातकः प्रापात्मसाम्यंत्वसतांसुदुर्लभम् ।३८। सकृद्यदंगप्रतिमान्तराहिता मनोमयीभागवतींददौगतिम्। सएव नित्यात्मसुखानुभूत्यभिव्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हिकिंपुनः ॥ ३९ ॥ सूतउवाच। इत्थंद्विजायादवदेवदत्तः श्रुत्वास्वरातुश्चरितंविचित्रम्। प्रपच्छभूयोऽपितदेवपुण्यं वैयासकिंयन्निगृहीतचेताः॥४०॥राजोवाच। ब्रह्मन्कालान्तरकृतं तत्कालीनंकथंभवेत्। यत्कौ

गई और ब्रह्मरन्ध्र फोड़कर बाहर निकली ॥ ३१ ॥ उस वायु के साथही सब इंद्रियां बाहर निकल पड़ीं, तब श्रीकृष्णजी, अमृत बरसाय मरहुए बछड़ों और अपने साथियों को फिर से जिलाय उन के साथ बाहर निकले ॥ ३२॥ उस सर्प के स्थूलदेहवाली शुद्ध,सत्वमय,अद्भुत,महत् ज्योति अपने तेज से दशों दिशाओं को प्रकाशित करती हुई, भगवान् के निकलने की राहदेखतीहुई आकाश में रुकीथी–, श्रीकृष्णजी के बाहर निकलतेही–वह ज्योति देवताओं के सामने श्रीकृष्णजी में प्रवेश करगई ॥ ३३ ॥ तदनन्तर देवतागण फूल बरसाने, अप्सरायें नाचने, गन्धर्वगण गाने, औरविद्याधर गण बाजे बजाने लगे। ब्राह्मणगण स्तुति और चारणगण जयध्वनि से अपने कार्यसाधक श्रीकृष्णजी की पूजा में प्रवृत्तहुए। नानाप्रकार की उत्सवयुक्त अद्भुत स्तुतियें, सुन्दरबाजे, गानेऔर जयआदि के मङ्गलकारी शब्द सुनकर पितामह ब्रह्माजी शीघ्र वहां पर आय भगवान् की महिमा को देख विस्मित होगये ॥ ३५ ॥ हेराजन्! वृन्दावन में अजगर का अद्भुत चमडा सूखकर बहुत दिनोंतक ब्रजवासियों के खेलन की गुफाहुआथा ॥ ३६ ॥ हरि ने पांचवर्ष की वय में अघासुर रूपी मृत्युके हाथ से सबका बचायाथा, परन्तु जिन ब्रजबालकों ने वह कर्म देखाथा, उन्होंने भगवान् का छहवर्ष की आयु में ब्रज में कहाथा कि–" आजही यह घटनाहुई है' ॥ ३७॥ असाधु मनुष्य किसी भांति सेभी भगवान् के रूप को नहीं पासकता किंतु अघासुर केवल भगवान् के अंग स्पर्श सेही सब पापोंस छूट उनकी समान रूप को प्राप्तहुआ;माया से मनुष्य बालक रूप,श्रेष्ठ नीच सब पदार्थों में उत्तम भगवान् के ऐसे कार्यों में कुछ आश्चर्य नहीं है- ॥३८ ॥ जिनकीकेवल श्रीमूर्ति की मनोहर आभा ने हृदय में बलपूर्वक प्रतिष्ठितहो प्रह्लादादि परमभक्तों को भागवती गतिदीथी, उन्हीं नित्य, आत्मसुख के अनुभव से माया के निवासकर्ता भगवान् ने स्वयंही उस असुरके भीतर प्रवेश कियाथा तब क्या वह मुक्त न होते ? ॥ ३९ ॥ सूतजी ने कहा कि—हे द्विजो! यदुकुल देवता से पालेहुए राजा परीक्षित ने श्रीकृष्णजी के ऐसे२विचित्र चरित्र सुन श्रीशुकदेवजी से इस पवित्र चरित्र कहने का प्रश्न किया; भगवच्चरित्रों को सुनकर उनकामन भगवान् के वशीभूत होगयाथा ॥ ४० ॥ राजा ने कहा कि–हेमुने! जो कार्य पाहिले किया है वह

मारेहरिकृतंजगुः पौगण्डकेऽर्भकाः ॥४१॥ तद्ब्रूहिमेमहायोगिन्परं कौतूहलंगुरो। नूनमेतद्धरेरव मायाभवतिनान्यथा ॥ ४२ ॥ वयंधन्यतमालोके गुरोऽपिक्षत्रबन्धवः प्रपिबामोमुहुस्त्वत्तः पुण्यंकृष्णकथामृतम् ॥ ४३ ॥ सूतउवाच ॥ इत्थंस्मपृष्टःसतु बादरायणिस्तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः। कृच्छ्रात्पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तमम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ साधुपृष्टंमहाभाग त्वयाभागवतोत्तम ॥ यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपिकथांमुहुः ॥१॥ सतामयंसारभृतां निसर्गो यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि। प्रतिक्षणंनव्यवदच्युतस्य यत्स्त्रियाविटानामिवसाधुवार्ता ॥२॥ शृणुष्वावहितोराजन्नपि गुह्यंवदामिते। ब्रूयुःस्निग्धस्यशिष्यस्य गुरवोगुह्यमप्युत ॥ ३ ॥ तथाऽघवदनान्मृत्योरक्षित्वा वत्सपालकान्। सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥ अहोऽतिरम्यंपुलिनंवयस्याःस्वकेलिसंपन्मृदुलाच्छवालुकम् ॥ स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिकध्वनिप्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ॥ ५ ॥ अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवारूढं क्षुधार्दिताः। वत्साःसमीपेऽपः पीत्वा चरन्तुशनकैस्तृणम् ॥ ६ ॥ तथेतिपाययित्वार्भा वत्सानारुध्य शाद्वले ॥ मुक्त्वाशिक्यानिबुभुजुः समंभगवतामुदा ॥७॥

वर्तमान का कैसे होसकता है? भगवान् ने जो काम पांचवर्ष की आयु में कियाथा बालकों ने उस कर्म को छहवर्ष की आयु में क्यों तत्कालका हुआकहा ? ॥ ४१ ॥ हे महायोगिन् आप इसप्रश्न का उत्तरदो। हे गुरो! मुझे अत्यन्त कुतूहल उत्पन्न हुआ है, निश्चयही यह भगवान् की माया है ॥ ४२ ॥ मैं नीचक्षत्री जाति तोहूं परन्तु संसार में सर्वापेक्षा धन्यहूं क्योंकि आपके मुख से पवित्र कृष्ण-कथामृत—का पान करताहूं ॥ ४३ ॥ सूतजी ने कहा कि—हे भागवतश्रेष्ठ शौनक ! इस प्रकार राजा परीक्षितके प्रश्न करने पर भगवान् का स्मरणआतेही पहिले तो शुकदेवजी की सब इंद्रियां भगवान् में लीन होगईं, तौभी उन्हों ने कष्टपूर्वक फिर बाहिरी दृष्टि प्राप्त करके धीरे २ उनको उत्तरदेना आरम्भ किया ॥ ४४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभाषाटीकायांद्वादशोऽध्याय ॥ १२ ॥

शुकदेवजीने कहा कि—हेमहाभाग ! भागवत श्रेष्ठ ! तुमने अतिउत्तम विषयको पूछाहै। तुम ईश्वरकी कथामृत का बारम्बार पान करके प्रश्नों द्वारा उसको नई करतेहो ॥ १ ॥ सारग्राही महात्माओंकी वाणी कान और चित्त यह सब परमेश्वरही की कथामेंलगे रहते हैं तौभी जैसे स्त्री लंपट मनुष्यों.का स्वभाव स्त्रियोंकी वार्त्ताको क्षण २ में नवीन करताहै तैसेही महात्माओंका भी स्वभाव भगवान्की वार्त्ताको क्षण २ में नवीन करताहै, ॥ २ ॥ हेराजन् ! एकाग्र चित्त होकर सुनो अति गूढ रहस्य तुमसे कहताहूं, गुरुगण प्रिय शिष्यको गुप्त विषयकाभी उपदेश करते हैं। ॥३॥ श्रीकृष्णजी अघके मुखरूपी मृत्युसे गोपबालकोंकी रक्षा करने के उपरांत सबको यमुनातट पर लायकर कहनेलगे कि—४ ॥ अहो, वयस्यगण ! यह रेती अति रमणीयहै हमारे खेलने की सब सामग्रियें यहांपर प्रस्तुतहैं, यहांकी बालू अति कोमलहै खिलेहुये कमलोंकी गन्धसे खिंचकर भौंरे आदि जलमें होतेहुये शब्द कररहेहैं, रेतीके ऊपर शब्दों की प्रतिध्वनिसे शोभायमान वृक्ष चारोंओर व्याप्त होरहेहैं ॥ ५ ॥ आओ ! हम सब इसीस्थानपर भोजन करें समय व्यतीत जाने से भूख के मारे दुःखित होरहेहैं। बछडे भी पानी पीकर समीपही धीरे २ घास चराकरेंगे ६ बालकोंने 'अच्छा, कहकर बछडोंको जलपिलाय हरीघासके जंगलमें छोडदिया, तथा सब अपने २

कृष्णस्य विष्वक्पुरुराजिमण्डलैरभ्याननाः फुल्लदृशोव्रजार्भकाः । सहोपविष्टा विपिने विरेजुश्छदा यथाम्भोरुहकर्णिकायाः ॥ ८॥ केचित्पुष्पैर्दलैः केचित्पल्लवैरंकुरैः फलैः । शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः ॥९॥ सर्वेमिथोदर्शयन्तः स्वस्वभोज्यरुचिंपृथक् । हसन्तो हासयन्तश्चाभ्यवजह्रुः सहेश्वराः ॥ १० ॥ बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृंगवेत्रेच कक्षेवामे पाणौमसृणकवलं तत्फलान्यंगुलीषु ॥ तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदोहासयन्नर्मभिः स्वैः स्वर्गेलोके मिषति बुभुजेयज्ञभुग्बालकेलिः॥११॥ भारतैवंवत्सपेषु भुंजानेष्वच्युतात्मसु । वत्सास्त्वन्तर्वने दूरं विविशुस्तृणलोभिताः ॥ १२॥ तान्दृष्ट्वाभयसंत्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भीभयम् । मित्राण्याशान्माविरमतेहानेष्ये वत्सकानहम् ॥१३॥ इत्युक्त्वाऽद्रिदरीकुंजगह्वरेष्वात्मवत्सकान् । विचिन्वन्भगवान्कृष्णः सपाणिकवलोययौ ॥ १४ ॥ अम्भोजन्मजनिस्तदन्तरगतो मायार्भकस्येशितुर्द्रष्टुंमञ्जु महित्वमन्यदपितद्वत्सानितो वत्सपान् । नीत्वाऽन्यत्र कुरूद्वहान्तरदधात्खेऽवस्थितोयःपुरादृष्ट्वाऽघासुरमोक्षणम् प्रभवतःप्राप्त परंविस्मयम् ॥ १५ ॥ ततोवत्सानदृष्ट्वैत्यपुलिनेऽपिच वत्सपान् । उभावपिवनेकृष्णो विचिकायसमन्ततः ॥ १६ ॥ क्वाप्यदृष्ट्वाऽन्तर्विपिने वत्सान्पालांश्चविश्ववित् । सर्वं विधिकृतंकृष्णः सहसाऽवजगामह ॥ १७ ॥ ततःकृष्णोमुदंकर्तुं तन्मातॄणांचकस्यच

छींकोंको निकाल आनन्द सहित भगवान् के साथ भोजन करनेलगे ॥ ७ ॥ प्रफुल्लित नेत्रवाले ब्रजबालक बन में श्रीकृष्णजी के चारोंओर मंडल बनाय उन के सन्मुख मुख करके बैठ गये वह बालक कमलकर्णिकाके पत्तों की सदृश शोभा पाने लगे ॥ ८ ॥ किसी २ ने फूल किसी २ ने पत्ते, किसी २ ने अंकुर, किसी २ ने फल, किसी २ ने कोंपल, किसी २ ने छींके, किसी २ ने छाल, किसी २ ने पत्थरों के बासन बनायकर भोजनकरना आरम्भ किया ॥ ९ ॥ सब अपने २ पृथक् २भोजन के पदार्थों का स्वाद दिखाते,हँसते हँसातेहुए भगवान के साथ भोजन करनेलगे ॥१०॥ श्रीकृष्ण भगवान् भी यज्ञभोजी होकर बालकों की समान केलि करनेलगे तथा पेट में बँधेहुए वस्त्र के बीचमें बेणु, बाईं कांख में सींग, बांए हाथ में बेंत, सवअंगुलियों में खाने योग्य नानाप्रकारके फल तथा दहिने हाथ में दहीभातकाग्रासले,मध्यभागमेंकर्णिका की समान स्थित,अपने हँसी के बचनों से अपने चारों ओर बैठेहुए बन्धुओंको हँसाते भोजन करने लगे ॥ ११ ॥ स्वर्गवासी और मृत्युबासी सबही इस कार्य को देखकर आश्चर्य करने लगे, वत्सपालक ब्रजबालक भगवान के साथ एकात्माहो इस भांति भोजन करतेथे कि-इतने में बछड़े घास के लोभ से चरतेहुए बन में बहुत दूर तक चलेगये ॥ १२ ॥ इस से बालकों को भयहुआ; श्रीकृष्णजी जगत् के भयके भी भय देनेवाले हैं । उन्हों ने मित्रों को व्याकुल देखकर कहा कि- ' भोजन को मतछोड़ो, मैं तुम्हारे सबके बछड़ोंको लिये आताहूं ॥ १३ ॥ यह कहकर वह हाथ में खाने का ग्रासले पहाड़, गुफा, कुंज,और घने जंगलों में साथियों के बछड़ों को ढूंढते २ फिरनेलगे पद्मयोनि ब्रह्माजी आकाश में स्थितहोकर कृष्णजी के, अघासुरसे बालकों के बचने आदि के चरित्र देखकर अत्यन्त बिस्मितहुए । माया बालकरूपी भगवानकी दूसरी महिमा को देखने की इच्छा से यहा से बालकों और बछड़ों को हर दूसरे स्थान में लेजाय अन्तर्ध्यान होगये ॥ १५ ॥ अनन्तर श्रीकृष्णजी वहां बछड़ों को कहीं न देखपाये फिर रेती में लौट आये । उस स्थान में भी बालकों को न देखकर उनको खोजने लगे ॥ १६ ॥ किंतु कहीं भी बछड़े और बालकों को न देख सहसा जानलिया कि-यह करतूत ब्रह्माहीकी है ॥ १७॥ तब भगवान श्रीकृष्णजीने बालकों

उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥ १८ ॥ यावद्वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत्कराङ्घ्र्यादिकं यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषाम्बरम् । यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ ॥१९॥ स्वयमात्माऽऽत्मगोवत्सान्प्रतिवार्यात्मवत्सपैः । क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद्व्रजम् ॥२०॥ तत्तद्वत्सान्पृथङ्नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः । तत्तदात्माऽभवद्राजंस्तत्तत्सद्म प्रविष्टवान् ॥२१॥ तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरम् ॥ स्नेहस्नुतस्तन्यपयःसुधासवं मत्वा परं ब्रह्म सुतानपाययन् ॥ २२ ॥ ततो नृपोन्मर्दनमज्जलेपनालङ्काररक्षातिलकाशनादिभिः । संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन्सायं गतो यामयमेन माधवः ॥२३॥ गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं हुङ्कारघोषैः परिहूतसंगतान् । स्वकान्स्वकान्वत्सतरानपाययन्मुहुर्लिहन्त्यः स्रवदौधसं पयः । ॥ २४ ॥ गोगोपीनां मातृताऽस्मिन्सर्वा स्नेहर्द्धिकां विना । पुरोवदास्वपि हरेस्तोकता मायया विना ॥ २५ ॥ व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्ल्याब्दमन्वहम् । शनैर्निःसीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत् ॥ २६ ॥ इत्थमात्माऽऽत्मनाऽऽत्मानं वत्सपालमिषेण सः।

की माताओं तथा ब्रह्मा को संतोष उत्पन्नकरने के निमित्त, विश्वकर्ता ने स्वयंही बछड़ों औरबालकों की मूर्ति धारणकी । उनके ऐसा करने का यह अभिप्रायथा कि—यदिबछड़ों को लाये देता हूं तो ऐसा होन से ब्रह्मा का मोह नहोगा तथा यदिस्वयंही बालकनहीं बनता तो उनकी मातायें शोकितहोगी । इसही कारण हरि ने दोनों रूप धारण किये ॥ १८ ॥ जितने बालक और बछड़े जैसा उनकाछोटाशरीर, जैसे जिसके हाथ पांव; जैसी जिसकी लाठी, सींग, वेणु और छींके, जिस के जिस प्रकार के वस्त्र आभूषण, जिसका जैसा शील, गुण नाम आकृति और वय, तथा जिसके जैसे आहार विहारादिथे, भगवान् ने उसहीप्रकार सबप्रकार से प्रकाशितहो " सर्व जगत विष्णुमय इस वाक्यको सार्थक किया, ॥ १९ ॥ भगवान्ने आपही इसरूपसे सर्वात्माही व्रजमें प्रवेशकिया । वह स्वयंही हांकनेवालेहो आत्मस्वरूप बछड़ोंको हांकते हांकते आपही खेलते खिलाते चले ॥ २० ॥ हेराजन् ! वह व्रजमें प्रवेशकर विशेष २ बछड़ों को पृथक् २ गोष्ठमेंकर विशेष २ बालकोंके घरों गये, ॥ २१ ॥ बालकोंकी मातायेंभी वेणु का शब्द सुन शीघ्रता पूर्वक उठीं तथा अपना २ पुत्र जान भगवान् को दोनों भुजाओंसे भलाभांति आलिंगन कर उठालिया और स्नेह वशहो टपकतेहुये स्तनोंका दूध जो अमृतकी सदृश सुस्वादु और आसव की समान मादकथा पिलाया ॥ २२ ॥ हेराजन् ! श्रीकृष्णजी बालकोंके समयानुसार खेलते, तथा उन्हींके अनुसार सायंकालको घरमें आय सुन्दर आचरणों द्वारा माताओंका आनन्दित करते वह उनका मर्दन (उबटन लगाना) स्नान, चन्दन आदि लगाने वस्त्र आभूषण पहिनाने तथा तिलक लगाने व भोजन कराने आदिसे और उनकी रक्षाका विधानकर लालन पालन करनेलगीं ॥ २३ ॥ तदनन्तर गायेंभी शीघ्रतासे गोष्ठमें आय हुंकारकर अपने बछड़ोंको चाटने और टपकतेहुये दूधका पान करानेलगीं ॥ २४ ॥ पहिले भी श्रीकृष्णजी पर गायों और गोपियों का मातृभावथा, परन्तु इससमय स्नेह अधिक बढ़गया, तथा इनमें भगवान्की बाल भावना तो पूर्ववत रही परन्तु यह मेरी माताहै और मैं इसका पुत्रहूं ऐसा मोह न रहा ॥ २५ ॥ पहिले श्री कृष्णजी पर व्रजवासियोंका जैसा अधिक स्नेहथा तैसा स्नेह इससमय एक वरषतक अपने पुत्रों में बढ़ा श्रीकृष्णजी इसभांतिसे वत्सपालहो बछड़े और उनके पालकगणोंका रूप धारणकर अपने आपको पालन करते २ वन और गोष्ठमें क्रीड़ाकरने लगे ॥ २६ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने वत्स

पालयन्वत्सपोवर्षंचिक्रीडेवनगोष्ठयोः ॥ २७ ॥ एकदाचारयन्वत्सान्सरामोवनमा
विशत् । पञ्चषासुत्रियामासुहायनापूरणीष्वजः ॥ २८ ॥ ततोऽविदूराच्चरतोगा
वोवत्सानुपव्रजम् । गोवर्धनाद्रिशिरसिचरन्त्योददृशुस्तृणम् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वाऽथत
त्स्नेहवशोऽस्मृतात्मासगोव्रजोऽत्यात्मपदुर्गमार्गः । द्विपात्ककुद्ग्रीवउदास्यपुच्छो
ऽगाद्धुंकृतैरास्रुपयाजवेन ॥ ३० ॥ समेत्यगावोऽधोवत्सान्वत्सवत्योऽप्यपाययन् ।
गिलन्त्यइवचाङ्गानिलिहन्त्यःस्वौधसंपयः ॥ ३१ ॥ गोपास्तद्रोधनायासमौघ्यल
ज्जोरुमन्युना । दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽभ्येत्यगोवत्सैर्ददृशुःसुतान् ॥ ३२ ॥ तदीक्षणोत्प्रे
मरसाप्लुताशयाजातानुरागागतमन्यवोऽर्भकान् । उदुह्यदोर्भिःपरिरभ्यमूर्धनिघ्रा
णैरवापुःपरमांमुदंते ॥ ३३ ॥ ततःप्रवयसोगोपास्तोकाश्लेषसुनिर्वृताः । कृच्छ्रा
च्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ॥ ३४ ॥ व्रजस्यरामःप्रेमर्धेर्वीक्ष्यौत्कण्ठ्यमनुक्ष
णम् । मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविदचिन्तयत् ॥ ३५ ॥ किमेतदद्भुतमिववासुदेवेऽ
खिलात्मनि । व्रजस्यसात्मनस्तोकेष्वपूर्वंप्रेमवर्धते ॥ ३६ ॥ केयंवाकुतआयातादैवी
वानार्युतासुरी । प्रायोमायाऽस्तुमेभर्तुर्नान्यामेऽपिविमोहिनी ॥ ३७ ॥ इति संचि
न्त्यदाशार्होवत्सान्सवयसानपि । सर्वानाचष्टवैकुण्ठंचक्षुषावयुनेनसः ॥ ३८ ॥ नै
तेसुरेशाऋषयोनचैतेत्वमेवभासीशभिदाश्रयेऽपि । सर्वंपृथक्त्वंनिगमात्कथंवदे

पालक होकर वत्स और बालकोंके बहानेसे अपनेही रूपको आपही पालन करते एकवर्ष पर्यंत और ब्रजमें क्रीडाकी ॥ २७ ॥ हेराजन् ! एकवर्ष पूर्ण होनेमें पांच व छहदिन शेष रहेथे कि उस समय कृष्णजी रामके साथ बछड़े चराते २ वनमें गये, ॥ २८ ॥ बहुत दूर गोवर्द्धन पहाड़ की चोटियोंपर सब गायें चररहीथीं । उन्होंने उस स्थानसे देखपाया कि ब्रजके निकट सर्व बछड़े चरतेहैं ॥ २९ ॥ यह देखकर अपनेको भी भूलगईं । इसप्रकार समस्त गौएँ स्नेहसे खिंचकर हुंकार छोड़तीहुईं रक्षकोंके लौटानेपर भी न लौटीं, तथा विषम मार्गसे कूदती फांदती शीघ्रतापूर्वक ब्रजके निकट पहुंचीं । उनके शीघ्रतापूर्वक दौडनेसे जान पड़ताथा कि यह दोही पांवोंसे दौड़ती हैं सबही अपनी गर्दन लाठपर लगाय पूछको ऊंची उठाय दौड़ आईं । गौओंका दूध चारोंओरको झररहाथा ॥ ३० ॥ यद्यपि उनके दूसरे वारभी बछड़े उत्पन्न होगयेथे तौभी गोवर्द्धनके नीचे बछड़ों से मिल, ग्रास करनेकी समान उनके अंग और अपने, दूधसे झरतेहुए स्तनों को पिलानेलगीं॥३१॥ सबगोपों ने उनगायों के रोकनका प्रयत्न किया परन्तु न रोकसके, इससे लज्जित और क्रोधित हुए। दुर्गम मार्गों चलनेसे वह अत्यन्त श्रमितहोगये,इससमय बछड़ों के साथअपने२पुत्रोंको देखकर उनको प्रेमरस उत्पन्नहोआया ॥३२॥ इससे उनकामन भरआया और अनुराग उत्पन्नहोने से क्रोध दूरहोगया उन्होंने बालकोंको गोदमेंले दोनों हाथोंसे आलिंगन किया और उनके मस्तक सूंघ परमानन्दका अनुभवकरने लगे॥३३॥वृद्धगोपों ने बालकों से मिलकर अत्यन्त संतोष प्राप्तकिया; यद्यपि उन्होंने अतिकष्ट से धीरे २ आलिंगन त्याग किया परन्तु बालकों के स्मरण से उनके नेत्रों में जल भरआया ॥ ३४ ॥ जिन बच्चों ने स्तनपान करना छोड़ दिया है उनके ऊपरभी ब्रजबासियों का प्रेम बढते देखकर बलरामजी इसकारण स्थिर न करसके । इसकारण वह अत्यन्त चिंता करने लगे ॥ ३५ ॥ कि-यह क्या आश्चर्य है । पहिले कृष्णपर ब्रजबासियों की जैसी प्रीतिथी इस समय अपने २ पुत्रों पर वैसी प्रीति क्यों बढ़ी है ? ॥ ३६ ॥ मेरामनभी उनके स्नेह से क्यों स्नेहार्द्र होता है ? यह क्या माया है ? यह मायाकहांसे आई ? यह क्या दैवी, मानुषी वा आसुरी माया है ? निश्चयजानपड़ता है कि यह मेरेही प्रभुकी माया है; क्योंकि यहमाया मुझेभी मोहित करती है- ॥ ३७ ॥ बलरामजी ने ऐसी चिंताकरके ज्ञानमय नेत्र खोलकर देखा कि—सबबछड़े और बालक श्रीकृष्णही स्वरूप हैं ॥ ३८ ॥ तदुपरांत श्रीकृष्णजी से पूछा कि—हेतातकृष्ण ! मैं

स्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत् ॥ ३९ ॥ तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन त्रुट्यनेहसा । पुरोवदब्दं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिम् ॥ ४० ॥ यावन्तो गोकुले बाला सवत्साः सर्व एव हि । मायाशये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः ॥ ४१ ॥ इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे । तावन्त एव तत्राब्दं क्रीडन्तो विष्णुना समम् ॥ ४२ ॥ एवमेतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मभूः । सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथंचन ॥ ४३ ॥ एवं संमोहयन्विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् । स्वयैव माययाऽजोऽपि स्वयमेव विमोहितः ॥ ४४ ॥ तम्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि । महतीतरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युंजतः ॥ ४५ ॥ तावत्सर्वे वत्सपाला. पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् । व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥ ४६ ॥ चतुर्भुजाः शंखचक्रगदाराजीवपाणयः ॥ किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ॥ ४७ ॥ श्रीवत्सांगददोरत्नकम्बुकंकणपाणयः । नूपुरै कटकैर्भाताः कटिसूत्रांगुलीयकै. ॥ ४८ ॥ आंघ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः । कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः ॥ ४९ ॥ चन्द्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापांगवीक्षितैः । स्वकार्थानामिव रज.सत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालका ॥ ५० ॥ आत्मादिस्तम्बपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः । नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक्पृथगुपासिता. ॥ ५१ ॥ अणिमाद्यै-

पहिले मैं जानताहूं कि-यहसबबछड़े ऋषिगणतथा यह सब वत्सपाल देवताओं के अंशहैं; किंतु इस समय अब वह रूप नहीं देखता । इस समय देखताहूं कि इन सब में पृथक २ आपही वर्तमान हो, इसका क्याकारण है आप कहिये । बलदेवजी के इस भांति पूछनेपर श्रीकृष्णजी ने सबव्यौरा बलदेवजी से कहा ॥ ३९ ॥ हेमहीपते ! इसप्रकारसे श्रीकृष्णजी उन मायारचित बालकों और बछड़ों के साथ क्रीडाकरनलगे । धीरे २ एकबरस बीतगया । हेराजन् ! वह ब्रह्माका एक त्रुटि काल है । ब्रह्माजीने उस त्रुटिकालके बीतनेपर आकरदेखा कि कृष्णजी पहिलेकासमान अपनसाथियों के साथ क्रीडाकररहे हैं ॥ ४० ॥ ब्रह्माजी कृष्णजीका प्रेम समेत क्रीडाकरते देख मन २ में तर्क वितर्क करनेलगे कि-गोकुलमें जितने बालक और बछड़े थे सबही मेरीमाया मय शय्यामें सोते हैं, अबतक वह नहीं उठे, ॥ ४१ ॥ तब फिर वही सब इसस्थानपर कहांसे आये ? जानपड़ताहै कि उन सबने एकवर्षतक कृष्णजीके साथ ऐसेही क्रीडा की है ॥ ४२ ॥ बड़े देरतकभी इसप्रकारसे विचारकरने पर ब्रह्माजीको सत्यासत्यका ज्ञान न हुआ ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजी इसभांतिसे मोहरहित विश्वमोहन विष्णुजी को मोहनेगये थे परन्तु वहां स्वयंही अपनीही मायासे मोहितहोगये ॥ ४४ ॥ जैसे कुहरेसे उत्पन्न हुआ अन्धकार अँधेरी रातमें पृथक् २ आवरण नहीं करसकता, रातही के अन्धकारमें लीनहोजाताहै, तथा जैसे जुगनू दिनमें स्वयं पृथक प्रकाश नहीं करसकता तैसेही जो मनुष्य बड़े मनुष्यों पर मायाका प्रयोग करता है तो उसकी नीचमाया उसहीकी सामर्थ्य नाश करती रहती है ४५॥ हे महाराज ! इसके अतिरिक्त और एक आश्चर्य जनक घटना सुनो कि ब्रह्माजी यह सबघटना देख रहेथे इतनेहीमें सहसा उन्होंने देखा कि—क्या बालक, क्या, बछड़े, क्या छड़ी सींग आदि सबही मेघकी समान श्यामवर्ण के हैं, सबही पीताम्बर धारण कियेहुए ॥ ४६ ॥ सबही चतुर्भुज, सबही के हाथमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, सबही के मस्तकमें किरीट, सबहीके कानोंमें कुंडल सबहीके गलोंमेंहार बनमाला शोभायमान हैं ॥ ४७ ॥ सबहीकी भुजाओंमें श्रीवत्स की प्रभासे प्रकाशित बाजूबंद सबही के हाथ में रत्नों के बनेहुए शंखकी समान कंकण, तथा सबही नूपुर, मेखला, कटक, और मुँदरी धारण कियेहुए शोभायमान हैं ॥ ४८ ॥ पुण्यवान मनुष्योंने जो कोमल नवीन तुलसीदल अर्पण किये हैं उससे शिरसे पांवतक परिपूर्ण होरहे हैं ॥ ४९ ॥ चन्द्रिकाकी समान निर्मल मन्द मुसकानोंसे अपने भक्तोंकी कामनाओंका मानो सत्वगुणसे पालनकरते और अरुणवर्णकी कटाक्ष दृष्टिद्वारा रजोगुणसे सृजतेहुए ज्ञातहोते हैं ॥ ५० ॥ ब्रह्मासे लेकर तृणतक समस्त चराचर जीव

र्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभिः । चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीतामहदादिभिः ॥५२॥
कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः । स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्तिमद्भिरुपासि
ताः ॥ ५३ ॥ सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैकरसमूर्तयः । अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्यु
पनिषद्दृशाम् ॥ ५४ ॥ एवंसकृद्ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान् ॥ यस्यभासासर्व-
मिदं विभातिसचराचरम् ॥५५॥ ततोऽतिकुतुकोद्वृत्तस्तिमितैकादशेन्द्रियः । त-
द्धाम्नाऽभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यन्तीवपुत्रिका ॥ ५६ ॥ इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि
स्वप्रमितिके परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ । अनीशेऽपिद्रष्टुंकिमिदमिति-
वामुह्यतिसति चच्छादाजो ज्ञात्वासपदि परमोऽजाजवनिकाम् ॥ ५७॥ ततोऽर्वाक्प्र
तिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः । कृच्छ्रादुन्मील्यवै दृष्टीराचष्टेदं सहात्मना ॥ ५८ ॥
सपद्येवाभितः पश्यन्दिशोऽपश्यत्पुरः स्थितम् । वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णंस-
माप्रियम् ॥ ५९ ॥ यत्रनैसर्गदुर्वैराः सहासन्नृमृगादयः । मित्राणीवाजितावास-
द्रुतरुट्तर्षकादिकम् ॥६०॥ तत्रोद्वहत्पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं ब्रह्माद्वयं परमनन्तमगा
धबोधम् । वत्सान्सखीनिवपुरः परितो विचिन्वदेकंसपाणिकवलं परमेष्ठ्यचष्ट ॥
॥६१॥ दृष्ट्वात्वरेणनिजधोरणतोऽवतीर्यपृथ्व्यांवपुः कनकदण्डमिवाभिपात्य । स्पृ-
ष्ट्वाचतुर्मुकुटकोटिभिरंघ्रियुग्मंनत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ॥ ६२ ॥ उत्थायो

मूर्तिमानहो नृत्य गीतादि नाना पूजाके साधनों द्वारा सबही पृथक् २ उपासना करते हैं ॥ ५१ ॥
सबही अणिमादि महिमा माया आदि शक्ति और चौबीस तत्वोंद्वारा व्याप्त होरहे हैं ॥ ५२ ॥
काल, स्वभाव, संस्कार, काम, कर्म और गुणादिक पदार्थ मूर्तिमानहो प्रत्येककी सेवा करते हैं,
इन सबकी स्वाधीनता परब्रह्मके सामनेनष्ट होगई है ॥ ५३ ॥ सबही सत्य, ज्ञानानन्दरूप, अनंत
मूर्ति, भेदरहित, तथा सर्वदा एकरूप हैं अतएव आत्मज्ञानही जिसके नेत्रहैं एसे महात्माभी उनके
माहात्म्यका स्पर्श नहीं करसकते ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! जिन परब्रह्मकी ज्योतिसे यह चराचर
विश्व प्रकाशित होताहै, ब्रह्माजीने इसभांतिसे एक समयमेंही उन सबको परब्रह्ममय देखा ॥५५॥
ब्रह्माजी यह देखकर कौतुकसे विस्मितहोगये उनमूर्त्तियों के तेजसे उनकी इन्द्रियें जड़ होगई,
और वह कठपुतली की समान खड़े रहगये कि जिससे यह जानपड़ा कि ब्रजके अधिष्ठाता
देवता के समीप एक सोने की चौमुखी प्रतिमा विराजमान है ॥ ५६ ॥ जो ब्रह्म वाणी के
अधीश्वर, अतर्क असाधारण महिमा युक्त, स्वप्रकाश, सुख स्वरूप जन्मरहित और प्रकृति
से परे तथा ब्रह्मसे भिन्न जो स्वयंही प्रकाशित हैं वह ब्रह्मा " यह क्या,, ऐसे कहकर अचेत
होगए, और दर्शन करनेकी शक्ति न रही । श्रीकृष्णजी ने यह जानकर अपनी अद्भुत माया
को खींचलिया ॥ ५७ ॥ अनन्तर ब्रह्माजीको बहिर्दृष्टि प्राप्तहुई । मराहुआ मनुष्य जैसे कुछ
एक उठताहै तैसे उन्होंने बड़े कष्टसे उठकर आंखें खोल अपने साथ इसजगतको देखा यह देख-
कर चारोंओरको दृष्टि डालनेलगे।इतनमें प्राणियोंको आहार देनवाला नानावृक्षों से युक्त चारोंओर
से इच्छित पदार्थोंसे परिपूर्ण वृन्दावन उन्होंने देखा ॥ ५९ ॥ जिनका स्वभावसेही वैरभावहै यह
सब प्राणी वृन्दावनमें मित्रभावसे एकत्र वास करतेथे । और श्रीकृष्णजी के वास करनेसे क्रोध
लोभ आदि वहांसे दूर होगयेथे ॥ ६० ॥ ब्रह्माजीने देखा कि—उस वृन्दावनमें अद्वय पर अनंत
अगाध बोध एक ब्रह्म बालक भावका नाटक करतेहुए श्रीकृष्णजी हाथमें खानेकी सामग्रीका क-
वलले पहिलेकी समान इधर उधर घूमकर बछड़ों और बालकोंको ढूंढरहे हैं ॥ ६१ ॥ यह देखकर
ब्रह्माजी अपने वाहन परसे उतरे, और पृथ्वीपर सोनेके दण्डकी समान गिरकर चारों मुकुटों के
अग्रभागसे दोनों चरणोंको प्रणामकर आनन्दाश्रुरूप सुन्दर जलसे उन्हें भिगानेलगे ॥ ६२ ॥ श्री

त्थायकृष्णस्य चिरंतस्यपादयोःपतन् । आस्तेमहित्वंप्राग्दृष्टं स्मृत्वास्मृत्वापुनःपुनः ॥
॥ ६३ ॥ शनैरथोत्थायविमृज्यलोचने मुकुन्दमुद्वीक्ष्यविनम्रकन्धरः ॥ कृताञ्जलिः प्रश्रयवान्समाहितः सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥ ६४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ नौमीड्यतेऽभ्रवपुषेतडिदम्बरायगुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय । वन्यस्रजेकवलवेत्रविषाणवेणुलक्ष्मश्रियेमृदुपदेपशुपाङ्गजाय ॥ १ ॥ अस्यापिदेववपुषोमदनुग्रहस्यस्वेच्छामयस्यनतुभूतमयस्यकोऽपि । नेशेमहित्ववसितुंमनसान्तरेणसाक्षात्तवैवकिमुतात्मसुखानुभूतेः ॥ २ ॥ ज्ञानेप्रयासमुदपास्यनमन्तएवजीवन्तिसन्मुखरितांभवदीयवार्ताम् । स्थानेस्थिताः श्रुतिगतांतनुवाङ्मनोभिर्येप्रायशोऽजितजितोऽप्यसितैस्त्रिलोक्याम् ॥ ३ ॥ श्रेयः सृतिंभक्तिमुदस्यतेविभोक्लिश्यन्तियेकेवलबोधलब्धये । तेषामसौक्लेशलएवशिष्यतेनान्यद्यथास्थूलतुषावघातिनाम् ॥ ४ ॥ पुरेहभूमन्बहवोऽपियोगिनस्त्वदर्पितेहानिजकर्मलब्धया । विबुध्यभक्त्यैवकथोपनीतयाप्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युतते गतिंपराम् ॥ ५ ॥ तथापिभूमन्महिमाऽगुणस्यतेविबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः । अविक्रियात्स्वानुभवादरूपतोह्यनन्यबो

कृष्णजीकी पहिली देखीहुई महिमा जितनी बार याद आनेलगी उतनीही बार उठ २ कर चरणों में गिरने लगे ॥ ६३ ॥ इसप्रकार ब्रह्माने बहुत देरतक यह कार्यकिया । तदुपरांत धीरे २ उठकर दोनों आंखें पोंछ तथा श्रीकृष्णजीको देख माथा नीचाकर, हाथजोड़ विनीत भावसे एकाग्रचित्तहो कांपतेहुये शरीरसे गद्गद् वाक्यों द्वारा स्तुति करनेलगे ॥ ६४ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा०दशम० सरलाभाषाटीकायांत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

ब्रह्माजीने कहाकि—हेस्तुति करने के योग्य ! मैं आपकी प्रसन्नताके निमित्त आपहीकी स्तुति करता हूं । आपके नवीन बादलकी सदृश श्यामशरीर में बिजली की समान पीताम्बर शोभायमान होरहा है, गुञ्जाके बनेहुये कानों के आभूषण तथा मोरपंखों से आपके मुख मण्डलकी कांति बढ़रही है । गल में बनमाला शोभित है । खानेकी सामग्री के कवल, छडी, सींग और वंशी इन सबचिन्हों से आपकी अपूर्व शोभाहोरही है । हेनन्दनन्दन ! आपके दोनों चरण अत्यन्त कोमल हैं ॥ १ ॥ हे देव ! आपकी यह देहभक्तों को अतिप्यारी है इस देहसे मेरे ऊपरभी कृपाप्रकाशित होती है, यह आपकी मूर्त्तिशुद्ध सत्वगुण से उत्पन्न हुई पचभूतोंसे बनीहुई नहींहै अतएव दमन कियेहुये मन द्वारा भी कोई इस स्वरूप के माहात्म्य को नहीं जानसकता हेप्रभो ! जब इस गुणमय रूपकाही महिमा नहीं जानीजाती तब आपके साक्षात् आत्म सुखानुभव स्वरूपकी महिमाको कौन जानसकताहै? हेहरि! यद्यपि आपकी महिमा जानने योग्य नहींहै तौभी इस संसारके बंधनसे छूटनेकी असंभावना नहीं देखीजाती क्योंकि जो ज्ञान लाभके निमित्त थोडासा भी परिश्रम करके अपने स्थानपर स्थितहो महात्माओंके कहेहुए कानमें गये आपके चरित्र सुनकर वाक्य और मन द्वारा उसका आदर करतेहुये केवल जीवन धारण करतहैं हेअजित ! त्रिलोकीमें वही आपको जीतसकतेहैं उनके पक्षमें आप दुर्लभ नहींहो । जो थोडेसे अन्नको छोड़कर बहुतसा भूसा कूटताहै उसको जैसे कोई फल नहीं प्राप्तहोता, उसीभांति आपकी कल्याणकारी भक्तिको छोड़ जो केवल ज्ञानही प्राप्त करनेका यत्न करतेहैं उनको क्लेशही प्राप्त होताहै । हेअपरिच्छन्न ! हेअच्युत ! इस पृथ्वीमें पहिले बहुतसोंने योगी होकरभी ज्ञान न प्राप्त करसकनेपर आपकी चेष्टाका ध्यान करते हुये अपने २ कर्मोंको अर्पणकर आपकी कथाका निरंतर श्रवणकिया उससे आपपर जो उनकी भक्ति उत्पन्न हुई उस भक्ति योगसेही उन्होंने आत्माको जानकर आपके श्रेष्ठपदको प्राप्त किया अतएव भक्ति द्वाराही ज्ञान उत्पन्न होता रहताहै॥२-५॥ हेभूमन् ! क्या सगुण क्या निर्गुण तुम

स्यात्मतयानचान्यथा ॥ ६ ॥ गुणात्मनस्तेऽपिगुणान्विमातुंहितावतीर्णस्यकईशिरे ऽस्य । कालेनयैर्वाविमिताःसुकल्पैर्भूपांसवःखेमिहिकाद्युभासः ॥ ७ ॥ तत्तेऽनुक म्पांसुसमीक्षमाणोभुञ्जानएवात्मकृतंविपाकम् । हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्तेजीवेत योमुक्तिपदेसदायभाक् ॥ ८ ॥ पश्येशमेऽनार्यमनन्तआद्येपरात्मनित्वय्यपिमायिमा यिनि । मायांवितत्येक्षितुमात्मवैभवंह्यहंकियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥ ९ ॥ अतःक्षम स्वाच्युतमेरजोभुवोह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः । अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुष एषोऽनुकम्प्योमयिनाथवानिति ॥ १० ॥ क्वाहंतमोमहदहंखचराग्निवार्भूसंवेष्टि ताण्डघटसप्तवितस्तिकायः । क्वेदृग्विधाऽविगणिताण्डपराऽणुचर्यावाताध्वरोम विवरस्यचतेमहित्वम् ॥ ११ ॥ उत्क्षेपणंगर्भगतस्यपादयोः किंकल्पतेमातुरधोक्षजा गसे । किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितंतवास्तिकुक्षेः कियदप्यनन्तः ॥ १२ ॥ जगत्त्र यान्तोदधिसंप्लवोदेनारायणस्योदरनाभिनालात् । विनिर्गतोऽजस्त्वितिवाङ्नवैमृ षाकिन्त्वीश्वरत्वन्नविनिर्गतोऽस्मि ॥ १३ ॥ नारायणस्त्वंनहिसर्वदेहिनामात्माऽस्य धीशाऽखिललोकसाक्षी । नारायणोऽङ्गंनरभूजलायनात्तच्चापिसत्यंनतवैवमाया

दोनोंप्रकारसेहीनहीं जानेजासकते तौभी जिसने इन्द्रियोंको विषयोंमेंसे खींचकर अन्तःकरणमें रोक रक्खाहै वह जितेंद्रिय पुरुष अन्तःकरणके साक्षात्कारसे निर्विकारता विषयमात्र और स्वप्रकाशता रूपसे ही तुम्हारी महिमाहो कुछ एक जानसकतेहैं। निपुण मनुष्य चाहे तो बहुत जन्मोंमें पृथ्वीके- परमाणु आकाशके हिमकण और गगनमण्डलके नक्षत्रादिकी किरणोंके परमाणुओंकी गिनती कर- सकताहै परन्तु इस विश्वके मंगलकारी गुणोंके अधिष्ठाता भगवान् श्रीकृष्णजीके गुणोंकी गणना का कोई भी वर्णन नहीं करसकता । अतएव जो आदरपूर्वक तुम्हारी कृपाकी अभिलाषा कर, अपने कर्मफलोंका भोग करताहुआ अन्तःकरण, वाक्य और देहद्वारा तुमको नमस्कारकर जीवित रहताहै वही मोक्षरूपी धनकर अधिकारी होसकताहै । हेराजन् ! ब्रह्माजी इसप्रकारसे स्तुतिकरके अपने अपराध के क्षमा करानके निमित्त अपने अपराध को कहने लगे कि—हेईश्वर ! मेरी दु- र्जनता तो देखो । आप अनन्त, आदि, परमात्मा तथा माया जीवियों को भी मोहनेवालेहो, मैं इतना मूर्खहूं कि आपसेभी माया विस्तारकरके अपने ऐश्वर्य दिखानेकी इच्छाकीथी जैसे अग्नि के सामने ज्वाला कुछ नहीं है वैसेही मैं भी आप के निकट कुछ नहीं हूं ॥ ६—९ ॥ हे भग- वन् ! मेरे ऊपर दयाकरो, मेरी उत्पत्ति रजोगुण से है अतएव न जानकर " मैंहीजगतकर्त्ता हूं " इस अहंकार से मेरी दोनों आंखें अन्धी होगईथीं; इसी से जानताथा कि आपसे भिन्न दूसरा भी ईश्वर है । हे अच्युत ! इस समय मुझको अपना दासजानकर मेरा अपराध क्षमाकरो॥ १०॥ अपने परिमाण से सातबालिश्त का प्रकृति, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी से बना हुआ यह ब्रह्मांड यद्यपि मेरी देह है परन्तु आप के प्रत्येक रोमकूप में ऐसे असंख्य ब्रह्मांड निरन्तर आते जाते हैं । इस कारण मैं किस प्रकार से आपकी महिमाजानसकूंगा ॥ ११ ॥ हे अज ! गर्भ में रहाहुआ बालक जो दोनों पैरों से मारता है, माताक्या उसकाअपराध ग्रहणकरती है ? स्थूल और सूक्ष्म, कार्य कारण के नाम से कहेहुए इन समस्त पदार्थोंमेंक्याकोई आप के उदर से बाहर है ॥ १२ ॥ प्रलयकालके परस्पर मिलेहुए समुद्रके जलमें स्थितनारायण के उदर के नाभि देश से ब्रह्मा उत्पन्नहुए, यह वाक्य यद्यपि सत्य है; तथापि हे ईश्वर ! क्या मैं आप से उत्पन्न नहीं हुआ ? आप सबप्राणियों के आत्मा और समस्तलोकों के साक्षीहो ॥१३॥ तो फिर क्या आप नारायण नहींहो ? जीवसमूह जिस से उत्पन्नहुएहों और नरसे उत्पन्न चौबीस तत्व और जल जिसका आश्रयहोने से नारायण नाम के द्वारा विख्यात है वह भी आपही का

॥ १४ ॥ तच्चेज्जलस्थंतववसज्जगद्वपुः किंमेनदृष्टंभगवंस्तदैव । किंवासुदृष्टंहृदिमे तदैवकिंनोसपद्येवपुनर्व्यदर्शि ॥१५॥ अत्रैवमायाधमनावतारेह्यस्यप्रपञ्चस्यबहिः स्फुटस्य । कृत्स्नस्यचान्तर्जठरेजनन्यामायात्वमेवप्रकटीकृतंते॥१६॥यस्यकुक्षाविदं सर्वंसात्मंभातियथातथा । तत्त्वय्यपीहतत्सर्वंकिमिदंमाययाविना ॥ १७॥ अद्यैवत्व दृतेऽस्यकिममनतेमायात्वमादर्शितमेकोऽसिप्रथमंततोव्रजसुहृद्वत्साः समस्ताअपि तावन्तोऽसिचतुर्भुजास्तदखिलैः साकंमयोपासितास्तावंत्येवजगन्त्य भूस्तदमितं ब्रह्माद्वयंशिष्यते ॥ १८ ॥ अजानतांत्वत्पदवीमनात्मन्यात्मात्मनाभासिवितत्यमा याम् ।सृष्टाविवाहंजगतोविधानइवत्वमेषोऽन्तइवत्रिनेत्रः १९॥सुरेष्वृषिष्वीशतथैवनृ ष्वपितिर्यक्षु यादस्स्वपितेऽजनस्य । जन्मासतांदुर्मदनिग्रहाय प्रभोविधातःसद नुग्रहायच ॥२०॥ कोवेत्तिभूमन्भगवन्परात्मन्योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् । क्व वाकथंवाकतिवाकदेति विस्तारयन्क्रीडसि योगमायाम् ॥ २१ ॥ तस्मादिदं जगद शेषमसत्स्वरूपं स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम् । त्वय्येवनित्यसुखबोधतनाव नन्तेमायात उद्यदपिसत्सदिवावभाति ॥ २२ ॥ एकस्त्वमात्मापुरुषःपुराणः सत्यः स्वयंज्योतिरनन्तआद्यः । नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखोनिरञ्जनः पूर्णोऽद्वयोमुक्तउपाधि-

अंश है । सबही आपकी माया है ॥ १४ ॥ हे देव ! जगतकी आश्रयभूत यह देह जल के बीच में स्थितथी यदि यह बात सत्य है । तो कमलनाल के मार्ग से जल में प्रवेशकर सौ वर्ष तक खोज करने परभी आपको क्यों न देखपाया ? और अन्तःकरण मे भी क्यों न देखपाया ? परंतु तपस्या करनेपरही—मेरे दृष्टिगोचर क्योंहुए ? ॥ १५ ॥ हे माया विनाशक ! यहसब प्रपंचबाहर भली भांति प्रकाशमानतो होरहा है तौभी उदर मे माता को यह समस्त दिखाकर आपनेअवतार मेंही अपनी माया दिखाई ॥ १६ ॥ जैसे यह विश्व आपके साथ आप के उदर में प्रकाश पाता है वैसेही बाहरभी ठीक उसी भांति से प्रकाशित होता है; तब यहसबही आपकी माया के कार्य के अतिरिक्त और क्या होसकता है ? ॥ १७ ॥ इस समयही आपने मुझे दिखाया कि आप के अतिरिक्त सब विश्वही माया है । आप प्रथम एक थे; तदुपरांत व्रजबालक और बछडों का रूप धारण किया । फिर देखा कि सबही चतुर्भुज रूप से वर्तमान हैं और मैं समस्ततत्वों समेत उन सब मूर्तियों की उपासनाकरताहू । तदुपरांत उतनेही ब्रह्माण्डरूप बनगये । इस समय वही आप परिच्छेद रहित, अद्वैत परब्रह्मरूप से विराजमानहो ॥ १८ ॥ हे प्रभो ! आपही प्रकृति में स्थित हुए आत्माहो । जो मनुष्य आप के स्वरूपको नहीं जानता, उस के पक्ष में आपकीमाया स्वयंही प्रकाशपाती है; जैसे जगत की उत्पत्ति में मुझ ब्रह्माण्डरूप से और पालन में स्वयंही विष्णुरूपसे और संहार में रुद्ररूप से भासतेहो ॥ १९ ॥ हे प्रभो ! विधाता ! ईश्वर ! आप अजन्माहो, तौ भी देवता, ऋषि, मनुष्य, पशु, पक्षी तथाजलचरों में जो आपका जन्म होता है वह केवल दुष्टों का नाशऔर भक्तों पर कृपा करने के निमित्तही होता है ॥ २० ॥ हे भूमन् ! हे भगवन् ! हे परमात्मन् ! हे योगेश्वर ! त्रिलोकी में कौनपुरुष कहांपर है, किसप्रकार से है और किस काल में है यह केवल आपकी लीलाही से विदित होसकता है ॥ २१ ॥ आप योगमाया का विस्तारकरके क्रीडाकरतेहो अतएवयह असत्स्वरूप स्वप्नकी समान, प्रतिभासरहित, अशेषसंसार—आप के नित्यसुख, चैतन्यमय अनन्त स्वरूप में माया से उत्पन्न होने और लय होने के कारण नित्य सुख चैतन्य रूप सा प्रतीत होता है ॥ २२ ॥ एक आपही सत्यहो ! क्योंकि आप आत्मा और पुरुष होने के कारण सृष्ट्यादि कार्यों के पहिलेही से वर्तमानऔर आदिहो—आपही नित्य, अनन्त, और अद्वयहो, आपकासुख निरवच्छिन्न है । आप का क्षय, विनाशनहीं है, आप स्वयंही

तोऽमृतः ॥२३॥ एवंविधंत्वांसकलात्मनामपि स्वात्मानमात्मात्मतयाविचक्षते। गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषाये तेतरन्तीवभवानृताम्बुधिम् ॥ २४ ॥ आत्मानमेवात्मतयाऽविजानतां तेनैवजातं निखिलंप्रपञ्चितम् ॥ ज्ञानेनभूयोऽपिचतत्प्रलीयते रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौयथा ॥ २५ ॥ अज्ञानसंज्ञौभवबन्धमोक्षौ द्वौनामनान्यौ स्तऋतज्ञभावात् । अजस्रचित्यात्मनिकेवलेपरेविचार्यमाणेतरणाविवाहनी ॥२६॥ त्वामात्मानंपरंमत्वापरमात्मानमेवच । आत्मापुनर्बहिर्मृग्यअहोऽज्ञजनताऽज्ञता।२७। अन्तर्भवेऽनन्तभवन्तमेवह्यतत्त्यजन्तोमृगयन्तिसन्तः असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेणसन्तंगुणंतंकिमुयन्तिसन्तः ॥ २८ ॥ अथापितेदेवपदाम्बुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीतएवहि । जानातितत्त्वंभगवन्महिम्नोनचान्यएकोऽपिचिरंविचिन्वन् ॥ २९ ॥ तदस्तुमेनाथसभूरिभागोभवेऽत्रवाऽन्यत्रतुवातिरश्चाम् । येनाहमेकोऽपिभवज्जनानांभूत्वानिषेवेतवपादपल्लवम् ॥ ३० ॥ अहोऽतिधन्याव्रजगोरमण्यःस्तन्यामृतंपीतमतीवतेमुदा । यासांविभोवत्सतरात्मजात्मनायत्तृप्तयेऽद्यापिनचालमध्वराः ॥३१॥ अहोभाग्यमहोभाग्यंनन्दगोपव्रजौकसाम् । यन्मित्रं परमानन्दंपूर्णंब्रह्मसनातनम् ॥ ३२ ॥ एषांतुभाग्यमहिमाऽच्युततावदास्तामेकादशैवहिवयंवतभूरिभागाः । एतद्धृषीकचषकैरसकृत्पिबामः शर्वादयोऽङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवंते ॥ ३३ ॥ तद्भूरिभा

प्रकाशवान्, निर्मल और उपाधि रहित हैं ॥ २३ ॥ जो इसप्रकार से समस्त प्राणियों के आत्म स्वरूप आपको मुख्य आत्मस्वरूप से देखते रहते हैं,वे सूर्यरूपी गुरु से प्राप्तहुए ज्ञाननेत्रों केद्वारा संसाररूप मिथ्यासागर से पारहोजाते हैं ॥ २४ ॥ जैसे रस्सी से महासर्प की उत्पत्ति और अस्वीकारता होती रहती है, वैसेही जो आत्माको आत्मा कहकर नहीं जानते, उन के सामनेही उसी अज्ञान से यहसब प्रपंच प्रकट प्रकाशित होते हैं और ज्ञानके उत्पन्न होतेही वे सब नाश होजाते हैं ॥ २५ ॥ भवबन्धन और मोक्ष यह दोनों नामही अज्ञानकल्पित हैं,यह दोनों सत्य ज्ञानस्वरूप आत्मा से भिन्न नहीं हैं । सूर्य में जैसे रात्रि दिन कुछ नहीं हैं, शुद्ध, चैतन्य ब्रह्म मे भी वैसेही बन्धन और मोक्षभी कुछ नहीं है ॥ २६ ॥ यह मूर्खों की मूर्खता है—कि आप जो आत्मा हो उन आप को वह आत्मा से पृथक् तथा देहादिकोही आत्मा जानते हैं । आत्मा का क्या बाहर खोजाकियाजाता है ॥ २७ ॥ हे अनन्त ! सबसाधू जड़पदार्थों को छोडकर देहके भीतरही आत्मा का अनुसन्धान करते हैं । निकटसर्प नहीं है तोभी सर्प को अस्वीकार न कर कौनमनुष्य उसको रस्सी जानसकता है ? ॥ २८ ॥ हेभगवन् ! ज्ञानद्वारा मोक्षतो प्राप्तहोसकती है तोभी हे देव ! जो तुम्हारे चरणकमलों की प्राप्तिके अंशमात्रभी अनुग्रहीत हुए हैं वेही आपकी महिमा के तत्त्व को जानसकते हैं; इस के अतिरिक्त और चाहे कोई होवे, विना मिथ्या परित्यागकिये चाहेबहुत काल तक विचार किया करे तौभी नहीं जानसकता ॥ २९ ॥ अतएव हेनाथ ! इसही जन्म में हूं चाहे पशु पक्षियों आदि किसी दूसरे जन्म में हूं परन्तु आप के भक्तों का एक सेवक होकर उन के चरणों की सेवा करसकूं यह मुझे सौभाग्य प्राप्तहो ॥ ३० ॥ अहो ! व्रजनारियें और व्रजगायें बड़ीही भाग्यशाली हैं । हेविभो ! आपने एक वर्षतक पुत्ररूप से आनन्दित होकर उनके स्तन्यामृतका पान कियाहै समस्त यज्ञभी अबतक आपकी तृप्ति नहीं कर सके ॥ ३१ ॥ अहो ! नन्दगोपआदिक व्रजवासीगण कैसे भाग्यशालीहैं कि परमानन्द स्वरूप पूर्ण सनातन ब्रह्म उनके आत्मीय हैं ॥ ३२ ॥ हेअच्युत ! दश इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकारके अधिष्ठाता हम तेरह देव और हम सबों में मुख्य शिवजीभी भाग्यशाली हैं क्योंकि इन व्रजवासियोंके इन्द्रियमय प्यालोंसे आपके चरणारविंद के मकरन्द रूप मधुर आसवका बारम्बार पान करतेहैं ॥

ष्यमिहजन्मकिमप्यटव्यांयद्गोकुलेऽपिकतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम् । यज्जीवितंतुनि
खिलंभगवान् मुकुन्दस्त्वद्यापियत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥ ३४ ॥ एषांघोषनिवा
सिनामुतभवान् किंदेवरातेतिनश्चेतोविश्वफलात् फलं त्वदपरंकुत्राप्ययन्मुह्यति ॥
सद्वेषादिवपूतनापिसकुला त्वामेवदेवाऽऽपिता यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणा-
शयास्त्वत्कृते ॥ ३५ ॥ तावद्रागादयःस्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम् । तावन्मोहोंऽघ्रि
निगडो यावत्कृष्णनतेजनाः ॥ ३६ ॥ प्रपंचंनिष्प्रपंचोऽपि विडम्बयसिभूतले । प्रप·
न्नजनताऽऽनन्दसन्दोहंप्रथितुंप्रभो ॥ ३७ ॥ जानन्तएवजानन्तु किंबहूक्त्यानमेप्रभो
मनसोवपुषोवाचो वैभवंतवगोचरः ॥ ३८ ॥ अनुजानीहिमांकृष्ण सर्वंत्वंवेत्सिसर्व-
दृक् । त्वमेवजगतांनाथो जगदेतत्तवार्पितम् ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्कर-
जोषदायिन्क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् । उद्धर्मशार्वरहर क्षितिराक्षसध्रुगा
कल्पमार्कमर्हन्भगवन्नमस्ते ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच । इत्यभिष्टूयभूमानं त्रिःपरिक्र-
म्यपादयोः । नत्वाऽभीष्टंजगद्धाता स्वधामप्रत्यपद्यत॥४१॥ततोऽनुज्ञाप्यभगवान्स्व
भुवं प्रागवस्थितान् । वत्सान्पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखंस्वकम् ॥ ४२ ॥ एकस्मि
न्नपियातेऽब्दे प्राणेशंचान्तरात्मनः ॥ कृष्णमायाहता राजन्क्षणार्धंमेनिरेऽर्भकाः ॥
॥ ४३ ॥ किं किंनविस्मरन्तीह मायामोहितचेतसः ॥ यन्मोहितं जगत्सर्वमभीक्ष्णं

॥३३॥ इसजीव लोकमें उसमेंसे व्रजमें और व्रजमेंसे गोकुलमें जिसका जन्महो वहीबडा भाग्यशाली है क्योंकि गोकुलमें जन्म होनेसे किसी न किसी गोकुलवासीके चरणकी रज शरीरमें पडहीसक ती है। जिन परमात्माकी चरणरजको वेदभी ढूंढतेहैं वह श्रीकृष्ण भगवान् जिनके अखिल जीवन रूपहैं उन ब्रजवासियोंकी चरणरज मिलना बडाही कठिन कार्य है ॥ ३४ ॥ हेदेव ! आपके भक्तों का अनुकरण मात्र करके जब पूतना, बकासुर, और अघासुर आदि राक्षसगण अपने आत्मीय· जनों समेत आपको प्राप्तहुए तब आप इन ब्रजवासियोंको सर्वफलके देनेवाले अपनेसेभी श्रेष्ठ और कौनसा फल देंगे, मेरा चित्त सबकुछ विचार करके भी इसका निश्चय नहीं करसकता क्योंकि आप ब्रजवासियोंके गृह, धन बन्धु, प्रियजन, पुत्र, प्राण और अभिलाषाके एक मात्र कारणहो अतएव उनकोभी पूतनाही की समान लाभमिले तो वह पूरा नहीं होसकता ॥३५॥ हे श्रीकृष्णजी जबतक आपकी मनुष्यसे पूर्ण भक्ति नहीं होसकती तबतक रागादि चोररूपी घर कारागृहरूपी और मोह पैरकी बेडा रूप रहताहै ॥ ३६॥ हे विभो ! आप निष्प्रपञ्च होकरभी दुःखित शरणागत मनुष्योंके आनन्द देनेके कारण पृथ्वीपर प्रपञ्चका अनुकरण करतेहो, ॥ ३७ ॥ हे विभो ! जो जानतेहों वे जानें परन्तु आपका वैभव मेरे शरीर मन, वाक्य का विषय नहीं है आज्ञा करिये मैं जाऊँ ॥ ३८ ॥ आप सर्वदर्शीहो अतएव कुछ जानतेहो । आप जगतके अधीश्वरहो अतएव ममता का विषय यह जगत और शरीर आपको अर्पण करताहूं ॥ ३९ ॥ हेकृष्ण ! हेवृष्णिकुल कमल के प्रकाश करनेवाले सूर्य ! हेपृथिवी, देव, द्विज और पशु और सागर के बढानेवाले चन्द्रमा ! हेपाखण्ड धर्मरूपी रात्रिके अन्धकार को नाश करनेवाले ! हेसूर्य आदि पूज्य देवताओंके पूज्य ! कल्प पर्यंत आपको मेरा प्रणामहै ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हेराजन् ! जगत् स्रष्टा ब्रह्माजी भगवान की इसभांति स्तुति और तीन परिक्रमा व चरणोंको प्रणामकर अपने लोकको सिधारे ४१ अनन्तर भगवान् श्रीकृष्णजी, ब्रह्माजी की आज्ञा ले पूर्ववत् स्थितहो सबबछड़ों को यमुनातटपर ले आये; रेती भी पहिले की समानसखाओं से परिपूर्ण होगई ॥ ४२ ॥ हेराजन् ! अपने प्राणेश्वर श्रीकृष्णजी के बिना यद्यपि बालकों को एक क्षण वर्ष से भी अधिक ज्ञातहोताथा तौभी उन्होंने माया से मोहितहो एक वर्ष के बीतजाने को आधा क्षण जाना ॥ ४३ ॥ जिस मायासे मोहित

विस्मृतात्मकम् ॥ ४४ ॥ ऊचुश्चसुहृदःकृष्णं स्वागतंतेऽतिरंहसा । नैकोऽप्यभोजि कवल एहीतःसाधुभुज्यताम् ॥ ४५ ॥ ततो हसन्हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य सहार्भकैः ॥ दर्शयंश्चर्माजगरं न्यवर्ततवनाद्व्रजम्॥४६॥बर्हप्रसूननवधातुविचित्रितांगः प्रोद्दामवेणुदलशृंगरवोत्सवाढ्यः । वत्सान्गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्तिर्गोपीदृगुत्सवदृशिःप्रविवेशगोष्ठम् ॥ ४७ ॥ अद्यानेनमहाव्यालो यशोदानन्दसूनुना । हतोऽविताक्यंवा इमाविति बालाव्रजेजगुः ॥ ४८ ॥ राजोवाच । ब्रह्मन्परोद्भवेकृष्णे इयान्प्रेमाकथंभवेत् । योऽभूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच । सर्वेषामपिभूतानां नृपस्वात्मैववल्लभः । इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैवहि॥५०॥ तद्राजेन्द्रयथास्नेहः स्वस्वकात्मनिदेहिनाम् । नतथा ममतालम्बिपुत्रवित्तगृहादिषु ॥ ५१ ॥ देहात्मवादिनांपुंसामपि राजन्यसत्तम । यथादेहःप्रियतमस्तथा नह्यनुयेचतम् ॥ ५२ ॥ देहोऽपि ममताभाक्चेत्तर्ह्यसौ नात्मवत्प्रियः । यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिन्जीविताशा बलीयसी ॥ ५३॥ तस्मात्प्रियतमःस्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ॥ तदर्थमेवसकलं जगदेतच्चराचरम् ॥५४॥कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् जगद्धितायसोऽप्यत्रदेहीवाभातिमायया ॥ ५५ ॥ वस्तुतोजानतामत्रकृष्णंस्थास्नुचरिष्णुच । भगवद्रूपमखिलंनान्यद्वस्त्विहकिंचन ॥ ५६ ॥ सर्वेषामपिवस्तूनांभावार्थोभवतिस्थितः । तस्यापिभगवान्कृष्णःकिमतद्वस्तुरूप्यताम् ॥ ५७ ॥ समा

होने पर संसार क्षण २ में आत्मा को भूलजाता है-संसार में उसी माया से जिनके चित्त मोहित होजाते हैं वेक्या नहीं भूलसकते ॥ ४४ ॥ व्रजबालकों ने श्रीकृष्णजी से कहा कि—हे सखे ! तुम बहुतही शीघ्र आगये हमने एक ग्रासतक भक्षणनकरपाया। इस ओर आओ, भोजन करो, विलम्ब न करो ॥ ४५ ॥ श्रीकृष्णजी हँसे और बालकों के साथ भोजन कर अजगर का चमड़ा देखते२ व्रजधाम मे आने लगे ॥ ४६ ॥ धीरे २ श्रीकृष्णजी ने व्रज में प्रवेश किया । मोरपक्ष फूल और नवीन धातुओं से उनका श्रीअंग चित्रितथा । वह उच्चस्वर से वंशीबजाय और सींग के शब्द से आनन्दयुक्तहो आदर पूर्वक बछडों को बुलाते थे । उनकी श्रीमूर्ति गोपियों के कमलरूपी नेत्रों को प्रफुल्लितकरतीथी ॥ ४७ ॥ हेराजन् ! बालकों ने व्रजमें आकर कहा कि—यशोदा और नन्दके इसपुत्र ने आज अजगर को मारा, हमने इस से रक्षापाई है ॥ ४८ ॥ राजा परीक्षित् ने कहा कि—हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्णजी तो दूसरे के पुत्रथे । अपने अपने पुत्रों पर व्रजवासियों का जो स्नेहथा उसकी अपेक्षा श्रीकृष्णजी पर उनका अधिकस्नेह क्यों हुआ ? आप इस बातको कहिये ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-हेराजन् ! आत्माही सबप्राणियों को प्रिय है; पुत्रसम्पत्ति आदि समस्तपदार्थ आत्माही के प्रियहोने से प्रिय हैं ॥ ५० ॥ अतएव हे राजेन्द्र ! अपनी २ आत्मा के ऊपर प्राणियों को जितना स्नेह है, ममताश्रयी धन, पुत्र और घरपर उतनानहीं है ५१ हे क्षत्रियश्रेष्ठ ! जो देहकोही आत्मा कहते हैं उनकोभी देह जितनी प्रिय है कि देह के अनुवर्ती पुत्रादि उतने नहीं हैं ॥ ५२ ॥ देह, ममता का भाजनतो है, परन्तु आत्मा की समान प्रिय नहीं है । देखो-देह यद्यपि जीर्ण भी होजावे तौभी जीवनकी आशा प्रबलरहती है ॥ ५३ ॥ अतएव अपना आत्माही सबप्राणियों को प्रिय है, और यह चराचर जगत्भी आत्माही के कारण प्रिय है ॥५४॥ और श्रीकृष्णजी सबआत्माओंके आत्मा हैं । वे जगत् के कल्याण के निमित्त महायोग से इस पृथ्वी पर प्राणियों की समान प्रकाशपाते हैं ॥ ५५ ॥ जो श्रीकृष्णजी को सबजगत्काकारण रूप जानते हैं उनके सामने समस्त चराचर भगवत्रूप है उन से भिन्न और कोई पदार्थहीनहीं है ॥ ५६ ॥ समस्तपदार्थों के परमार्थ कारण से स्थितरूप कृष्णजी उन कारणों केभी कारण हैं

श्रितायेपदपल्लवप्लवंमहत्पदंपुण्ययशोमुरारेः । भवाम्बुधिर्वत्सपदंपरंपदं पदंपदं यद्विपदांनतेषाम्॥५८॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंयत्पृष्टोऽहमिहत्वया । यत्कौमारेहरिकृतं पौगण्डेपरिकीर्तितम् ॥ ५९ ॥ एतत्सुहृद्भिश्चरितमुरारेरघार्दनंशाद्वलजेमनंच । व्यक्तेतरद्रूपमजोर्वभिष्टवंशृण्वन्गृणन्नेतिनरोऽखिलार्थान् ॥ ६० ॥ एवंविहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे । निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ६१ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ ततश्चपौगण्डवयः श्रितौव्रजेबभूवतुस्तौपशुपालसंमतौ । गाश्चारयन्तौसखिभिः समंपदैर्वृन्दावनंपुण्यमतीवचक्रतुः ॥ १ ॥ तन्माधवोवेणुमुदीरयन्वृतोगोपैर्गृणद्भिः स्वयशोबलान्वितः । पशून्पुरस्कृत्यपशव्यमाविशद्विहर्तुकामः कुसुमाकरंवनम् ॥ २ ॥ तन्मञ्जुघोषालिमृगद्विजाकुलं महन्मनः स्वच्छपयः सरस्वता । वातेनजुष्टंशतपत्रगन्धिनानिरीक्ष्यरन्तुंभगवान्मनोदधे ॥ ३ ॥ सतत्रतत्रारुणपल्लवश्रियाफलप्रसूनोरुभरेणपादयोः । स्पृशच्छिखान्वीक्ष्यवनस्पतीन्मुदास्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहोअमीदेववरामरार्चितंपादाम्बुजंतेसुमनःफलार्हणम् । नमन्त्युपादायशिखाभिरात्मनस्तमोऽपहत्यैतरुजन्मयत्कृतम् ॥ ५ ॥ एतेऽलिनस्तवयशोऽखिललोकतीर्थंगायन्तआदिपुरुषानु

अतएव भगवान से कोई भी पदार्थ भिन्ननहीं होसकता ॥ ५७॥ महात्मा मनुष्य, पवित्रकीर्तिवाले भगवान के जिन नौकारूपी चरणकमलों की पूजाकरते रहते हैं, जिन्होंने उसी नौकाका आश्रय किया है; उनके लिये भवसागर गौ के खुरकी समान है । वही परमपद वैकुण्ठको प्राप्तकरसकते हैं; विपदके आश्रय संसाररूपी कारागार में फिर वह नहीं आते ॥ ५८ ॥ हेराजन् ! तुमने जो मुझ से पूछाथा कि—भगवान् ने पांचवर्ष की वय में जो कर्म कियेथे वह उनके छठवें वर्ष में किस भांति कहे गये । मैंने तुमसे इसका सबकारणकहा ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य, भगवान् के बन्धुओं के साथ क्रीडाकरने, अघासुर के मारने, हरियाली भूमि में भोजन करने शुद्धसत्वात्मक बछड़े और बालकों का रूप धारण करने और ब्रह्माजीकी स्तुति,को सुनेगा अथवा कहेगा उसको सबपुरुषार्थ प्राप्तहोंगे ॥ ६० ॥ हे महीपाल ! राम,कृष्ण ने इसप्रकारसे पुलबांधने और बालकों के साथखेलने आदि की लीला द्वारा व्रज में कौमार अवस्था के खेल खेलकर उस अवस्था को व्यतीतकियाथा

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन् ! राम, कृष्ण छठवें वर्षमें पदार्पण करतेही पशु पालन के योग्य हुये,तब साथियों समेत गौ चराते हुये अपने चरण स्पर्श द्वारा सब दिशाओं में वृन्दावनको पवित्र करने लगे ॥ १ ॥ एक दिन श्रीकृष्णजी खेलने की इच्छा से, बंशी बजाते बजाते पशुओंको आगेकर, बलरामजी के साथ उस फूलों के वनमें गये गोपगण यशका गान करते २ उनके साथ २ चले ॥ २ ॥ भगवान् ने देखाकि—वन—सुंदरपक्षी, भौंरों से और मृगोंसे परिपूर्ण है; वहां महात्माओं के अंतःकरण की समान स्वच्छ सरोवर कमलों से शोभायमान है—वायुकमलों की सुगंधिसे सुगंधित हो वनके चारो ओर विहार कररहा है । यह देखकर श्रीकृष्णजी उस स्थान में विहार करने लगे ॥ ३ ॥ वनमें वृक्षोंको फल फूलके बोझसे लचेहुए लालपत्तों की कांतिसमेत शाखाओंको पैरों में लगता देख वे आनंदित हुये और हंसकर बलदेवजी से कहने लगे ॥ ४ ॥ कैसा आश्चर्य है ! कि जिनपापों से इन सब वृक्षोंका वृक्ष जन्म हुआ है उन्हीं पापों के नाश करने के निमित्त यह फूल फलोंको भेटमें लेकर अपनी शाखा के अग्रभाग द्वारा, देवताओं से पूजित आपके चरणकमलों को नमस्कार करते हैं ॥ ५ ॥ हे आदि पुरुष ! यह सबभौंरे आपके सब लोकको पवित्र करने वाले

पदं भजन्ते । प्रायोअमीमुनिगणाभवदीयमुख्यागूढंवनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम्
॥ ६ ॥ नृत्यन्त्यमीशिखिनईड्यमुदाहरिण्यः कुर्वन्तिगोप्यइवतेप्रियमीक्षणेन । सू
क्तैश्चकोकिलगणागृहमागतायधन्यावनौकसइयान्हिसतांनिसर्गः ॥ ७॥ धन्येयम
द्यधरणीतृणवीरुधस्त्वत्पादस्पृशोद्रुमलताः करजाभिमृष्टाः । नद्योऽद्रयः खगमृगाः
सदयावलोकैर्गोप्योन्तरेणभुजयोरपियत्स्पृहा श्रीः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं
वृंदावनंश्रीमत्कृष्णः प्रीतमनाः पशून् । रेमेसंचारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सुसानुगः
॥ ९ ॥ क्वचिद्गायतिगायत्सुमदान्धालिष्वनुव्रतैः । उपगीयमानचरितः स्रग्वी
संकर्षणान्वितः ॥ १० ॥ क्वचिच्चकलहंसानामनुकूजतिकूजितम् । अभिनृत्यति
नृत्यन्तं बर्हिणंहासयन्क्वचित् ॥ ११ ॥ मेघगम्भीरयावाचा नामभिर्दूरगान्पशून् ।
क्वचिदाह्वयतिप्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया ॥ १२ ॥ चकोरक्रौंचचक्राह्वभारद्वा
जांश्चबर्हिणः । अनुरौतिस्मसत्त्वानां भीतवद्व्याघ्रसिंहयोः ॥ १३ ॥ क्वचित्क्रीडा-
परिश्रान्तं गोपोत्सगोपबर्हणम् । स्वयंविश्रमयत्यार्यं पादसंवाहनादिभिः ॥ १४ ॥
नृत्यतोगायतःक्वापि.वल्गतोयुध्यतोमिथः । गृहीतहस्तौ गोपालान्हसन्तौ प्रशशं
सतुः ॥ १५ ॥ क्वचित्पल्लवतल्पेषु नियुद्धश्रमकर्शितः । वृक्षमूलाश्रयःशेते गोपो
त्सगोपबर्हणः ॥ १६ ॥ पादसंवाहनंचक्रुः केचित्तस्यमहात्मनः । अपरेहतपाप्मानो
व्यजनैः समवीजयन् ॥ १७ ॥ अन्येतदनुरूपाणि मनोज्ञानिमहात्मनः गायन्तिस्मम

सुयशका गानकर आपके साथ २ जाते हैं। हे अनत ! निश्चयही यह आपके सेवक ऋषिगण हैं।
देखो—आप वनमें गुप्तभाव से रहतेहो तौभी यह आपको परित्याग नहीं करते, आप इनके आत्म
देवतहो ॥ ६ ॥ हे पूज्य ! यह सब वनवासी अत्यंत भाग्यशाली हैं। यह सबमोर आपको घरसे
आयादेख.आनद युक्तहो आपके निकट नाचते हैं और यह हरिणियें गोपियों की समान आनंद
पूर्वक देखतीं हैं तथा कोकलायें सुदर स्वरसे गाय गायकर आपको सतोष उत्पन्न करातीं हैं; स-
त्पुरुषोंका यही स्वभाव है ॥ ७ ॥ आज यह पृथ्वी, घास और लताऐं आपके स्पर्शसे, वृक्ष, लता
सब आपके नखों से छिन्न होकर; नदी, पहाड पक्षी और हिरण आपकी कृपा दृष्टि प्राप्त करके
तथा गोपियें लक्ष्मी काभी वांछनीय आपकी भुजाओं को प्राप्त होकर धन्य और कृतार्थ हुई ॥८॥
श्रीशुकदेवजी बोलेकि-हे राजन्! श्रीकृष्णजी अनुचरों समेत आनंदित और प्रसन्न चित्तहो वृन्दा
वनमें पशुओंको चराय २ पहाड़ और नदी के किनारों पर विहार करनेलगे ॥ ९ ॥ मार्गमें संगी
उनके चरित्रोंका गान करते रहते, बलरामजी के संग मतवाले भौंरों के साथ वहभी गानेलगे॥१०॥
कभी मधुरभाषी तोतों के साथ बातकरने लगते, कभी कोकिल की मधुरवाणीका अनुकरण करके
दौड़ने लगते; कभी कलहंसों के मधुर शब्दके साथ मधुरनाद करने लगते; कभी साथियोंको हँसाय
मोरों के साथ नाचना आरंभ करते ॥ ११ ॥ कभी मेघकी समान गभीर और गोप, गायों को
प्रियलगे ऐसी वाणी से दूर गयेहुये पशुओं को प्रीतिपूर्वक बुलाते ॥ १२ ॥ कभी चकोर, क्रौंच,
चक्रवाक, भारद्वाज और मोरोंका अनुकरणकर शब्द करते २ इधर उधर भागे २ फिरते कभी
ऐसा दिखाते कि—मानो पशुओं के बीचमें बाघ और सिंहके आनेसे भयभीत हुयेहैं॥ १३ ॥ कभी
क्रीड़ासे थकेहुये बलरामजीको गोपोंकी गोदरूप शय्यामें लिटाय स्वय उनके पैरचाप उनका श्रम
दूरकरते ॥ १४ ॥ कभी दोनोंभाई परस्पर हाथ पकडकर सहते २ नाचते, गाते, कूदते, फांदते,
और कभी सब मल्लयुद्ध करने वाले बालकों की प्रशंसा करतेथे॥ १५ ॥ जबक्रीड़ा से श्रमितहो
वृक्षोंकी जड़में गोपोंकी गोदपर मस्तक रखकर शयन करते,हे महाराज ! उस समय कोई २ पाप
रहित बालक श्रीकृष्णजी के चरणचापते, कोई २ बीजनसे पवन करते; कोई २ स्नेहके वशीभूत

हाराज केहलिभधियःशनैः ॥१८॥एवंनिगूढात्मगतिःस्वमायया गोपात्मजत्वं चरितै र्विडम्बयन्। रेमेरमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैःसमंग्राम्यवदीशचेष्टितः॥ ११ ॥ श्रीदामानामगोपालो रामकेशवयोःसखा। सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाःप्रेम्णेदमब्रुवन् ॥ २० ॥ रामराममहाबाहो कृष्णदुष्टनिबर्हण। इतोऽविदूरेसुमहद्वनं तालालिसंकुलम् ॥२१॥ फलानितत्रभूरीणि पतन्तिपतितानिच ॥ सन्तिकिंत्ववरुद्धानि धेनुकेनदुरात्मना ॥ २२ ॥ सोऽतिवीर्योऽसुरोराम हेकृष्णखररूपधृक्। आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिर्वृतः ॥ २३ ॥ तस्मात्कृतनराहारान्द्भीतैर्नृभिरमित्रहन्। नसेव्यते पशुगणैःपक्षिसंघैर्विवर्जितम् ॥ २४ ॥ विद्यन्तेऽभुक्तपूर्वाणि फलानिसुरभीणिच। एषवैसुरभिर्गन्धो विषूचीनोऽवगृह्यते ॥ २५ ॥ प्रयच्छतानिनःकृष्ण गन्धलोभितचेतसाम्। वाञ्छास्तिमहतीराम गम्यतांयदिरोचते ॥ २६ ॥ एवंसुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया। प्रहस्यजग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनंप्रभू ॥ २७ ॥ बलः प्रविश्यबाहुभ्यां तालान्संपरिकम्पयन्। फलानिपातयामास मतंगजइवौजसा ॥२८॥ फलानांपततांशब्दं निशम्यासुररासभः। अभ्यधावत्क्षितितलं सनगंपरिकम्पयन्। ॥२९॥ समेत्यतरसाप्रत्यग्द्वाभ्यां पद्भ्यांबलंबली। निहत्योरसिकाशब्दं मुंचन्पर्यसरत्खलः ॥ ३० ॥ पुनरासाद्यसंरब्ध उपक्रोष्टापराक्स्थितः। चरणावपरौ राजन्बलाय प्राक्षिपद्रुषा ॥ ३१ ॥ सतंगृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना। चिक्षेपतृणरा-

हो मृदुस्वर से श्रीकृष्णजी के चरित्रोंका गानकरते ॥ १६—१८ ॥ लक्ष्मी जिनके चरणों की सेवा करती हैं वही ईश्वर अपने स्वरूपको गुप्तकर अपनी माया द्वारा क्रीडा करते हुये गोप बालकोंका अनुकरणकर साधारण बालकों के साथ उन्हीं की समान क्रीडा करनेलगे, वहां बीच २ में कभी ईश्वर की लीलाभी दिखाई पड़तीथी ॥ १९ ॥ बलराम ने और श्रीकृष्णजी के सखा श्रीदामा नामक गोप और सुबल स्तोक कृष्ण आदि दूसरे गोपों ने एकदिन प्रीतिपूर्वक कहा कि—॥ २० ॥ हेराम ! हेमहाबलराम ! हेदुष्टदमन कृष्ण ! इसस्थान से बहुतही समीप एक ताल बनहै, वहां नित्य बहुतसे फल गिरतेहैं और अबभी पडेहुएहैं। परंतु दुष्ट धेनुका सुर उन फलोंकी रक्षा करताहै २१—२२ हेराम ! हेकृष्ण ! यह असुर अत्यन्त पराक्रमीहै, गधेकारूप धारणकर वह नित्य वहां वासकरताहै। उसकेसमानही बलवान औरभी दूसरी जातिवाले असुर उसके साथहैं ॥ २३ ॥ हे शत्रुघ्न ! वह मनुष्यका आहार करता है; अतएव सब मनुष्य उसके भयसे भीत रहतेहैं उस स्थानमें बहुतसे सुगन्धित फल पडेहुयेहैं उनका भोजन अबतक किसीने नहीं करपाया। यह देखो चारोंओरसे सुगन्धि चली आरहीहै ॥ २४—२५ ॥ इस सुगन्धिसे हमारा चित्त मोहित होगयाहै इससे उन फलोंके खानेका बड़ाही लोभ उत्पन्नहोआयाहै हेकृष्ण ! हमें उन सब फलोंको देवो, हे राम ! हमारी अत्यन्त इच्छाहै यदि तुम्हारी इच्छाहो तो चलो ॥ २६ ॥ हेराजन् ! प्रभु राम कृष्ण मित्रोंकी इसबातका सुनकर उनकी इच्छापूर्ण करनेके निमित्त हंसते २ गोपोंके साथ उस तालवनको गये ॥ २७ ॥ बलदेवजी तालवनमें प्रवश करके मतवाले हाथीके सामन हाथोंसे तालवनको हिलाय २ कर फल गिरानेलगे ॥ २८ ॥ फलोंके गिरने का शब्द सुनकर गधारूपी असुर पर्वतकी समान पृथ्वीको कम्पाताहुआ दौड़कर आया॥२९॥ उसने आतेही पिछले दोनों पैरोंसे बलपूर्वक बलराम की छातीपर आघात किया, तदनन्तर गधे की समान घोर शब्द करताहुआ चारोंओर को भागनेलगा ॥ ३० ॥ हेराजन् ! फिर उस क्रोधित गधेने क्रोधसे बलरामजीके ऊपर दोनों पिछले पैरोंका प्रहार किया ॥ ३१ ॥ बलरामजीने एक

जाग्रे ग्रामणत्यक्तजीवितम् ॥ ३२ ॥ तेनाहतोमहातालो वेपमानोबृहच्छिराः । पार्श्वस्थकम्पयन्भग्नः सचान्यंसोऽपिचापरम् ॥३३॥ बलस्यलीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः । तालाश्चकम्पिरेसर्वे महावातेरिताइव ॥ ३४ ॥ नैतच्चित्रंभगवति ह्यनन्तेजगदीश्वरे । ओतप्रोतमिदं यस्मिंस्तन्तुष्वंगयथापटः ॥ ३५ ॥ ततःकृष्णंचरामञ्च ज्ञातयो धेनुकस्यये । क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन्सर्वे संरब्धाहतबान्धवाः ॥ ३६ ॥ तांस्तानापततःकृष्णो रामश्चनृपलीलया । गृहीतपश्चाच्चरणान्प्राहिणोत्तृणराजसु ॥ ३७ ॥ फलप्रकरसंकीर्णं दैत्यदेहैर्गतासुभिः । रराजभूःसतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलम् ।३८। तयोस्तत्सुमहत्कर्म निशाम्यविबुधादयः मुमुचुःपुष्पवर्षाणि चक्रुर्वाद्यानि तुष्टुवुः ॥ ॥ ३९ ॥ अथ तालफलान्यादन्मनुष्या गतसाध्वसाः ॥ तृणंच पशवश्चेरुर्हतधेनुककानने ॥ ४० ॥ कृष्णःकमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः । स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजोव्रजमाव्रजत् ॥ ४१ ॥ तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्हवन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् । वेणुक्वणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन्समेताः । ॥ ४२ ॥ पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृङ्गैस्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽह्नि । तत्सत्कृतिंसमधिगम्य विवेशगोष्ठं सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षम् ॥ ४३ ॥ तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोःपुत्रवत्सले । यथाकामंयथाकालं व्यधत्तांपरमाशिषः ।४४।

हाथसेही उसके दोनों पैर पकड़ घुमाय ताल वृक्षपर देमारा ॥ ३२ ॥ इसप्रकार घुमानेहीमें उस के प्राण निकल गयेथे । अति ऊँचा ताल वृक्ष गधेके शरीरसे आहत हो कांपते २ पासके वृक्षों को कम्पायमान करताहुआ गिरपड़ा । वह पासका वृक्ष दूसरेको और वह दूसरा तीसरेको कम्पाने लगा ॥ ३३ ॥ बलदेवजीने सहजसेही उस गधेकी देहको फेंका कि जिसके द्वारा हताहतहुये समस्त ताल वृक्ष ऐसे कांपनेलगे कि जैसे महावायुके चलनेसे कांपतेहों ३४ ॥ हेमहाराज ! भगवान् जगदीश्वर शेषजीके इस कार्यमें कुछ आश्चर्य नहीं है तंतु समूहमें.वस्त्रकी समान यह संसारउनमें ओतप्रोत भावसे विराजमान है ॥ ३५ ॥ धेनुककी जातिवाले जो दूसरे गधेथे वे बांधवके मरने से क्रोधितहो राम और कृष्णजीके ऊपर आक्रमण करनेको दौडे॥३६॥ हेराजन् ! वे जैसे२ दौड़दौडकर आने लगे; वैसे २ राम और श्रीकृष्णजी सहजसेही पैर पकड़ २ ताल वृक्षोंपर उनको पटकनेलगे ॥ ३७ ॥ वनभूमि असंख्य दैत्यों के शरीर तथा ताल वृक्षोंके फलोंसे परिपूर्णहो बादलों से ढकहुए आकाश की समान शोभा पानेलगी ॥ ३८ ॥ बलरामजी व कृष्णजीके उस अद्भुत कर्मको सुन देवता आदि फूल बरसाने दुन्दुभी बजाने और नानाप्रकारकी स्तुति करनेलगे ३९ ॥ उस दिनसेही सब लोग निर्भय होकर उस तालवनमें ताल फल ग्रहण करनेलगे तथा पशुगण तृण भक्षण करनेलगे; ॥ ४० ॥ हेराजन् ! जिनके नामादि सुनने और कहनेसे पवित्रता उत्पन्न होतीहै वे कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णजी बलदेवजीके साथ व्रजकी ओरचले, ॥ ४१ ॥ गोपगण स्तुति करते २ उनके पीछेरचले । गायोंके खुरोंकी उड़ीहुई धूलसे श्रीकृष्णजीके केश धूसरित होगयेहैं उनमें मोरपंखका मुकुट व वनके फूल गुथेहुएहैं वह सुन्दर नेत्र व सुन्दर हास्ययुक्त और वंशी बजारहेहैं । उनके देखनेके निमित्त सब गोपियोंके नेत्र उत्सुकथे इससमय उनको आयादेख सब मिलकर निकट आई ॥ ४२ ॥ दिनभर कृष्णजीके वियोगसे.जो ताप उत्पन्नहुआथा व्रजनारियोंने नेत्ररूपी भौंरों द्वारा श्रीकृष्णजी के मुखरूपी मधुका पानकर उसको दूरकिया । श्रीकृष्णजीभी उनके लज्जायुक्त हास्य और विनययुक्त कटाक्ष विक्षेपरूप पूजाको स्वीकारकर व्रजमेंगये ॥ ४३ ॥ पुत्रवत्सला यशोदा और रोहिणीने दोनों पुत्रोंको गोदमेंले समयोचित श्रेष्ठ आशीर्वाद दिया

गताध्वानश्रमौतत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः ॥ नीवींवसित्वारुचिरौ दिव्यस्रग्गन्धमण्डितौ ॥ ४५ ॥ जनन्युपहृतंप्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ । संविश्यवरशय्यायां सुखसुषुपतुर्व्रजे ॥ ४६ ॥ एवंसभगवान्कृष्णो वृन्दावनचरःक्वचित् । ययौराममृते राजन्कालिन्दीं सखिभिर्वृतः ॥ ४७ ॥ अथगावश्चगोपाश्च निदाघातपपीडिताः ॥ दुष्टंजलंपपुस्तस्यास्तृषार्ता विषदूषितम् ॥ ४८ ॥ विषाम्भस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः । निपेतुर्व्यसवःसर्वे सलिलान्तेकुरूद्वह ॥४९॥ वीक्ष्यतान्वैतथाभूतान्कृष्णो योगेश्वरेश्वरः । ईक्षयाऽमृतवर्षिण्या स्वनाथान्समजीवयत् ॥५०॥ ते संप्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलान्तिकात् । आसन्सुविस्मिताःसर्वे वीक्षमाणाःपरस्परम् ॥ ५१॥ अन्वमंसततद्राजन्गोविन्दानुग्रहेक्षितम् ।पीत्वा विषंपरेतस्यपुनरुत्थानमात्मनः ५२

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ विलोक्यदूषितांकृष्णां कृष्णःकृष्णाहिनाविभुः । तस्याविशुद्धिमन्विच्छन् सर्पंतमुदवासयत् ॥१॥ राजोवाच ॥ कथमन्तर्जलेऽगाधे न्यगृह्णाद्भगवानहिम् । सवैबहुयुगावासं यथाऽऽसीद्विप्रकथ्यताम् ॥ २ ॥ ब्रह्मन्भगवतस्तस्य भूम्नःस्वच्छन्दवर्तिनः । गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतंजुषन् ॥३॥ श्रीशुक उवाच ॥ कालिंद्यांकालियस्यासीद्ध्रदःकश्चिद्विषाग्निना । श्रप्यमाणपयायस्मिन्पतन्त्युपरिगाःखगाः ॥४॥ विप्रुष्मताविषोदोर्मि मारुतेनाभिमर्शिताः । म्रियन्तेतीरगा

॥ ४४ ॥ राम और कृष्णजीने उबटन स्नान द्वारा मार्ग का श्रम दूरकिया और सुन्दर वस्त्र पहिन दिव्यमाला और सुगन्धित पदार्थों से विभूषितहुए ॥ ४५ ॥ तदनन्तर माताओंने जा सुस्वादु अन्न लाकर दिया उसको आदर समेतखाय श्रेष्ठ शय्यामें लेट सुखसे सोने लगे ॥ ४६ ॥ हेराजन् ! वह भगवान् श्रीकृष्णजी इस प्रकार से वृन्दावन में विचरण करते थे, एक दिन वह बलरामजी को साथ न ले सखाओं सहित यमुना तटपरगये ॥ ४७ ॥ गाय और गोपगणों ने गरमी से संतप्त और प्यासेहो उस स्थानपर विष दूषित जलपान किया ॥४८॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! दैववश मोहित चित्त होने से उस विष जलकापानकर सबहो अचेतहो नदी की रेती पर गिरपड़े ॥ ४९ ॥ श्रीकृष्णजी ने उनको ऐसी दशा में प्राप्तहुआ देख अमृतवर्षिणी दृष्टिद्वारा फिर जीवित किया और तत्कालही उनकी स्मृति शक्ति आगई ॥ ५० ॥ हे राजन् ! वह जल के निकट से उठकर बड़ेही विस्मितहुए और विस्मय सहित एक दूसरे का मुख देखने लगे ॥५१॥ सबने विचार किया कि—हमसब विषपान से परलोकगामी होकर जो फिर जीकर उठखड़ेहुएयह केवल श्रीकृष्णजीही की दया दृष्टि का कारण है ॥ ५२ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा०दशम० सरलाभाषाटीकायांपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! कालियसर्प द्वारा कालिंदी का जल दूषितहोताहुआ देख सर्वशक्तिमान भगवान ने उस के शुद्ध करनेकी इच्छाकी भगवान् ने उस सर्प को वहां से निकाल कर बाहर करादिया ॥ १ ॥ राजा परीक्षित ने कहा कि—हेमहात्मन् ! भगवान् ने अगाध जल में से किस प्रकार सर्प को निकालाथा ? और वह सर्प भी जलचर न होकर किसप्रकारसे बहुत दिनों तक जल में रहा ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! सर्वव्यापी भगवान ने अपनी इच्छानुसार जो २ कार्य किये है वहसबही चरित्र अमृत के तुल्य हैं; बहुत सेवनकरने परभी उनसे कोई भी उकता नहीं सकता ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! यमुना में एक कुण्डथा, कालिय उसी में वास करताथा । उस सर्प की विषाग्नि के संयोग से उस कुण्ड का जल सदैव खौलतारहताथा यदि उस के ऊपर से कोईभी पक्षी उड़ता तो वह उसही में गिरपड़ताथा ॥ ४ ॥ इस कुण्ड में होती

यस्य प्राणिनःस्थिरजङ्गमाः ॥ ५ ॥ तंचण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्यतेनदुष्टांनदींच खल
संयमनावतारः । कृष्णःकदम्बमधिरुह्यततोऽतितुङ्गमास्फोट्यगाढरशनोन्यपतद्वि-
षोदे ॥ ६ ॥ सर्पह्रदः पुरुषसारनिपातवेगसंक्षोभितोरगविषोच्छ्वसिताम्बुराशिः।
पर्यक्प्लुतोविषकषायविभीषणोर्मिर्धावन्धनुः शतमनन्तबलस्यकिंतत् ॥ ७ ॥
तस्यह्रदेविहरतोभुजदण्डघूर्णवार्घोषमङ्गवरवारणविक्रमस्य। आश्रुत्यतत्स्वसद-
नाभिभवंनिरीक्ष्य चक्षुःश्रवाःसमसरत्तदमृष्यमाणः ॥८॥ तंप्रेक्षणीयसुकुमारघनाव
दातं श्रीवत्सपीतवसनंस्मितसुन्दरास्यम्। क्रीडन्तमप्रतिभयंकमलोदराङ्घ्रिंसंदश्य
मर्मसुरुषाभुजयाचछाद ॥९॥ तंनागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्टमालोक्यतत्प्रियसखाः
पशुपाभृशार्ताः। कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा दुःखानुशोकभयमूढधियोनि-
पेतुः ॥ १० ॥ गावोवृषावत्सतर्यः क्रन्दमानाःसुदुःखिताः । कृष्णेन्यस्तेक्षणाभीता
रुदन्त्यइवतस्थिरे ॥ ११ ॥ अथव्रजेमहोत्पातास्त्रिविधाह्यतिदारुणाः । उत्पेतुर्भुवि
दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः ॥ १२ ॥ तानालक्ष्यभयोद्विग्ना गोपानन्दपुरोगमाः ।
विनारामेणगाःकृष्णं ज्ञात्वाचारयितुंगतम् ॥ १३ ॥ तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं मत्वाप्राप्तमत
द्विदः । तत्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः ॥ १४ ॥ आबालवृद्धवनिताः
सर्वेऽङ्गपशुवृत्तयः । निर्जग्मुर्गोकुलाद्दीनाः कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १५ ॥ तांस्तथा
कातरान्वीक्ष्यभगवान्माधवोबलः । प्रहस्यकिंचिन्नोवाचप्रभावज्ञोऽनुजस्यसः ॥ १६ ॥

हुई विषैली वायु को जिसका स्पर्श होजाता वह तत्कालही मरजाता। दुष्टों के दमनकरने के निमित्तही भगवानने अवतार लियाथा वह इस घोर वेगवाले विष के पराक्रम से जल को दूषितहोताहुआ देख कदम्ब के वृक्षपर चढ़गये और भलीभाँति कछोटाकसके, खमठोंक उस अतिऊँचे वृक्षपर से कुण्डके जल में कूदपड़े ॥ ५ । ६ ॥ भगवान के कूदने के वेग से सबसर्पगण व्याकुलहोगये । उनव्याकुल हुएसर्पगणों के विषसे कालियदहका जल खौलने लगा । हे श्रीमन्! उस खौलतेहुए जल की विषैली, भयंकर तरंगें सौधनुषतक फैलकर चारों ओर को छूटनेलगीं ॥ ७ ॥ हेराजन्! गजराज की समान पराक्रमवाले भगवान उस कुण्ड में क्रीडाकरनेलगे । उनके भुजदण्डकी ठोकरों से जल घूमनेलगा । उस जल के शब्द को सुनकर तथा अपने घरपर आक्रमण होता देख सर्प सहन न करसका वह तत्कालही भगवान के समीप आय उन दर्शनीय, सुकुमार, श्रीवत्स औरपीताम्बर धारी, कमलसे चरणवाले निर्भयतासे क्रीडाकरनेवाले हास्यसे शोभितहुएमुँहवाले श्रीनन्दनन्दन के मर्मस्थानों में क्रोधपूर्वक काटनेलगा और उनके समस्त शरीर को अपने शरीरसे लपेट लिया ८।९ श्रीकृष्णजीही जिनके प्रिय हैं, उन सर्व गोपाल गणोंने जिन श्रीकृष्ण भगवानमें आत्मा आत्मीय, प्रयोजन, स्त्री और अभिलाष, सबही समर्पण करदिया है, उन भगवानको गोपगण सर्पसे वेष्टित और चेष्टारहित होतेदेख अत्यंत कातर होगये तथा दुःख, अनुताप, और भयसे ज्ञान रहितहो पृथ्वी पर गिरपड़े ॥ १० ॥ गाय, वृष, बछड़े और बछियें सबही अत्यंत दुःखितहो शोक के जतलाने वाले शब्द करने लगे तथा श्रीकृष्णजीकी ओर एकटक देख, भयभीतहो इसप्रकार से रम्भाने लगीं कि मानो वह रोती हैं ॥ ११ ॥ इधर व्रजमें अति दारुण, तत्काल भय दिखलाने वाले बड़े २ उत्पात पृथ्वी, आकाश और शरीर में होनेलगे ॥ १२ ॥ इन सब उत्पातोंको देख तथा श्रीकृष्णजी रामको न ले गौ चरानगये हैं यह जान, नंद आदि गोपगण भयसे काँपनेलगे ॥ १३ ॥ वह श्री कृष्णजी के प्रभावको नहीं जानतेथे । भगवान कृष्णजी उनके प्राण और मनथे; अतएव सबही बड़े बूढ़े, स्त्री, बालक इन सब उत्पातोंको देख विचारने लगे 'जानपड़ता है कि श्रीकृष्ण मारेगये' इस कारण दुःख, शोक, और भयसे कातरहो वह श्रीकृष्णजी के देखने की इच्छा से दीन भाव युक्तहो गोकुल से बाहर निकले ॥ १४–१५ ॥ मधुकुल में उत्पन्न हुये भगवान् बलदेवजी उनको

तेऽन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः । भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ॥ १७ ॥ ते तत्र तत्राब्जयवाङ्कुशाऽशनिध्वजोपपन्नानि पदानि विश्पतेः । मार्गे गवामन्यपदान्तरान्तरे निरीक्षमाणा ययुरङ्ग सत्वराः ॥ १८ ॥ अन्तर्ह्रदे भुजगभोगपरीतमाराात्कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयान्ते । गोपांश्च मूढधिषणान्परितः पशूंश्च संक्रन्दतः परमकश्मलमापुरार्ताः ॥ १९ ॥ गोप्योऽनुरक्तमनसो भगवत्यनन्ते तत्सौहृदस्मितविलोकगिरः स्मरन्त्यः । ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदुःखतप्ताः शून्यं प्रियव्यतिहृतं ददृशुस्त्रिलोकम् ॥ २० ॥ ताः कृष्णमातरमपत्यमनुप्रविष्टां तुल्यव्यथाः समनुगृह्य शुचः स्रवन्त्यः । तास्ता व्रजप्रियकथाः कथयन्त्य आसन्कृष्णानने ऽर्पितदृशो मृतकप्रतीकाः ॥ २१ ॥ कृष्णप्राणान्निर्विशतो नन्दादीन्वीक्ष्य तं ह्रदम् । प्रत्यषेधत्स भगवान्रामः कृष्णानुभाववित् ॥ २२ ॥ इत्थं स्वगोकुलमनन्यगतिं निरीक्ष्य सस्त्रीकुमारमतिदुःखितमात्महेतोः । आज्ञाय मर्त्यपदवीमनुवर्तमानः स्थित्वा मुहूर्तमुदतिष्ठदुरङ्गबन्धात् ॥ २३ ॥ तत्प्रथ्यमानवपुषा व्यथितात्मभोगस्त्यक्त्वोन्नमय्य कुपितः स्वफणान्भुजङ्गः । तस्थौ श्वसञ्छ्वसनरन्ध्रविषाम्बरीषस्तब्धेक्षणोल्मुकमुखो हरिमीक्षमाणः ॥ २४ ॥ तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं द्वे सृक्किणी ह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम् । क्रीडन्नमुं परिससार यथा खगेन्द्रो बभ्राम सोऽप्यवसरं प्रसमीक्षमाणः ॥ २५ ॥ एवं परि-

इस प्रकार से कातर देख हँसकर रहगये, कुछकहा नहीं क्योंकि वह छोटे भाईके प्रभावको भली प्रकार से जानते थ ॥ १६ ॥ हे राजन् ! गोप और गोपियें प्यारे कृष्णजी को ढूंढते २ उनके ध्वज वज्रांकुश चिह्नपैरों के चिह्नोंद्वारा सूचित मार्ग देखते हुये यमुना के तीरगये ॥ १७ ॥ हे महाराज ! जैसे योगीगण वेद मार्गमें विशेष २ उपाधियोंको छोड़कर परम तत्वका खोज करते हैं, उसी प्रकार गोप और गोपीगण—जिसमार्ग से गायें गईथीं उसी मार्ग से, दूसरे पदचिह्नों के बीच २ विशेष २ पदचिह्नोंको छाड़ पद्म, यव, अंकुश, वज्र, और ध्वज से चिह्नित श्री कृष्णजी के पैरोंके चिह्नों को देखते हुये चलनलगे ॥ १८ ॥ दूरसेही कुंडमें श्रीकृष्णजीको सांपके शरीर से घिराहुआ, व यमुना के किनारे सब गोपालों को अचेत तथा चारो ओर से पशुओं को रोतदेख घोर दुःख से सबही व्याकुल होकर मूर्छितहो गिरपड़े ॥ १९ ॥ गोपियोंका मन भगवान् श्रीकृष्णजी में लगाहुआ था। उन प्रियतम श्रीकृष्णजी को सर्प से घिराहुआ देख, और उनकी सुहृदता, हास्य, दृष्टि और वाक्य का स्मरण कर वह अत्यंत दुःखसे कातर होगईं और प्रियके विरहसे त्रिलोकीको शून्य माननेलगीं ॥ २० ॥ यशोदाजी कृष्णजी के कारण अत्यंतही कातर होगई, वह निकट जाय शोक करते करते व्रजके प्रिय श्रीकृष्णजीके चरित्र कहनेलगीं और भगवान् श्रीकृष्णजीकी ओर दृष्टि लगाय मृतक की समान होगईं ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णजी नदादि गोपों के प्राणथे । वे शोकसे विह्वलहो कुंड में कूदनेको तत्पर हुये परन्तु कृष्णजीके प्रभावको जाननेवाले भगवान् बलदेवजी ने उनको निवारण किया ॥ ॥ २२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णजी मनुष्य स्वभावका अनुकरण करतेथे । वह अपनेको ऐसी अवस्था में घिराहुआ देख तथा स्त्री बालक आदि गोकुल बासियोंको अपने निमित्त दुःखी जान एक क्षण भर उसी अवस्थामें रहकर फिर सर्पके बंधनसे छूटगए, ॥ २३ ॥ भगवान्के बढ़ेहुए शरीर द्वारा सांपका शरीर व्यथित होगया । वह भगवान् को छोड़कर क्रोधपूर्वक अपना फणा उठाय उनकी ओर देखने और बड़े २ श्वास छोड़नेलगा। उसकालउसकी नाकके नथनोंसे विषनिकल रहाथा उसकी आंखें और मस्तक जलतेहुए आंवेकी समान संतप्तथा तथा मुखसे बड़ी२आग की लपटें निकलतीथीं ॥ २४ ॥ सांप दोहरी फटीहुई जीभसे दोनों गलफरोंको चाटता और घोर विषाग्नियुक्त दृष्टि डालताथा भगवान् श्रीकृष्णजी गरुडकी समान खेलतेहुये उसके चारोंओर फिरनेलगे सर्पभी

भ्रमहतोजसमुभ्रतोसमानम्य तत्पृथुशिरःस्वधिरूढआद्यः। तन्मूर्द्धरत्नानिकरस्पर्शातिताम्रपादाम्बुजोखिलकलादिगुरुर्ननर्त ॥ २६ ॥ तंनर्तुमुद्यतमवेक्ष्यतदा तदीयगन्धर्वसिद्धसुरचारणदेववध्वः। प्रीत्यामृदङ्गपणवानकवाद्यगीतपुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः ॥२७॥ यद्यच्छिरोननमतेऽङ्गदातेकचीर्णेस्तत्सम्ममर्दखलदण्डधरोऽ ङ्घ्रिपातैः। क्षीणायुषोभ्रमतउल्बणमास्यतोऽसृङ्नस्तोवमन्परमकश्मलमापनागः ॥२८ तस्याक्षिभिर्गरलमुद्वमतःशिरस्सुयद्यत्समुन्नमतिनिःश्वसतोरुषोच्चैः। नृत्यन्पदाऽनुनमयन्दमयांबभूवपुष्पैःप्रपूजितइवेहपुमान्पुराणः ॥ २९ ॥ तच्चित्रताण्डवविरुग्णफणातपत्रोरक्तंमुखैरुरुवमन्नृपभग्नगात्रः। स्मृत्वाचराचरगुरुंपुरुषंपुराणंनारायणंतमरणंमनसाजगाम ॥३०॥ कृष्णस्यगर्भजगतोऽतिभरावसन्नंपार्ष्णिप्रहारपरिरुग्णफणातपत्रम्। दृष्ट्वाऽहिमाद्यमुपसेदुरमुष्यपत्न्यआर्ताःश्लथद्वसनभूषणकेशबन्धाः ॥ ३१ ॥ तास्तंसुविग्नमनसोऽथपुरस्कृतार्भाः कायंनिधायभुविभूतपतिंप्रणेमुः। साध्व्यः कृताञ्जलिपुटाः शमलस्यभर्तुर्मोक्षेप्सवः शरणदंशरणंप्रपन्नाः ॥ ३२ ॥ नागपत्न्यऊचुः ॥ न्याय्योहिदण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मिंस्तवावतारः खलनिग्रहाय। रिपोः सुतानामपितुल्यदृष्टेर्धत्सेदमंफलमेवानुशंसन् ॥ ३३ ॥ अनुग्रहोऽयंभवता कृतोहिनादण्डोऽसतांतेखलुकल्मषापहः। यद्दन्दशूकत्वममुष्यदेहिनः क्रोधोऽपिते

भागने का अवसर देखताहुआ भ्रमण करनेलगा ॥ २५ ॥ इसप्रकार घूमत २ उसका बल हीन होआया, और दोनों कन्धे ऊँचे होगये। तब जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णजी उसके ऊँचे कंधोंको नीचाकर मस्तकोंपर चढ़ नाचनेलगे। इससे सर्पके शिरकी मणियोंसे भगवान्के चरणकमल अत्यन्त लालवर्ण होगये ॥ २६ ॥ भगवान् कृष्णजी को नाचनेपर तत्पर देख गन्धर्व, सिद्ध, मुनि और देवांगना प्रीतिपूर्वक मृदंग, पणव आदि अनेकों बाजे बजाय गीत गाने तथा फूलोंकी वर्षा कर करके प्रीतिपूर्वक उनके समीप यह सब आये ॥ २७ ॥ हेराजन्! वह दुष्ट सर्प क्षीण जीवन होकरभी प्राणोंके भयसे इधर उधर घूमता रहा। उसके प्रधान सौमस्तकोंमें जो जो मस्तक नीचे न हुये दुष्टोंके दमन करनेवाले कृष्णजीने नाचके मिषसे पैरोंकी ठोकरें मार २ कर उनको नीचा किया। इसकारण मुख और नासिकाके छिद्रों द्वारा सर्प रुधिर उगिलता हुआ एकबारही अचेत होगया ॥ २८ ॥ वह बारम्बार क्रोधसे लम्बे सांस छोड़ता नेत्रों द्वारा विष उगिलतारहा वह सर्प भगवानके नाचसमय जिस२ शिरको उठाता भगवान्ने नाचकरते २ पैरों द्वारा उस २ मस्तकको नवाय कृपापूर्वक उसका कल्याणकिया। यह देखकर देवता और गन्धर्वगण अत्यन्त आनन्दित हो शेषजीकी शय्यापर पौढ़ेहुए नारायणकी समान श्रीकृष्णजीको अनेक फूलोंकी भेटसे पूजनेलगे ॥ २९ ॥ हेराजन्! श्रीकृष्णजी के नानाप्रकार से ताड़नेपर सर्प के सब फन और शरीर भग्न होगया वह मुखोंसे रक्त उगलते २ मनही मन चराचर गुरु पुराण पुरुष भगवान् का स्मरणकर उन्हीं के शरणागत हुआ ॥ ३० ॥ समस्त जगत् जिसके पेटमें स्थित है सर्प उन्हीं श्रीकृष्णके भारसे दुःखित होगया तथा उन्हीं के चरणों के प्रहार से उसके सब फनरूपी छत्र अत्यन्त भग्न होगये हैं यह देखकर उसकी स्त्रियें बाल खोल, वस्त्र, आभूषण ढीलेकिये तथा अत्यन्त दुःखयुक्तहो भगवान् के निकट आईं ॥ ३१ ॥ अति विह्वल चित्त उन सर्पपतिमना स्त्रियोंने, अपने बच्चोंको आगेकर भगवान् के चरणोंमें गिर उनको प्रणामकर पापात्मा पतिके मोक्षकी इच्छासे आश्रय देनेवाले भगवानका आश्रय लिया ॥ ३२ ॥ नाग पत्नियोंने कहा कि—हे भगवन्! आपने जो इसके कियेहुए पापका दण्डदिया वह उचितही किया दुष्टोंको दण्डदेनेके निमित्तही आपनेअवतार लियाहै। मित्र और शत्रु र आपकीसमान दृष्टि है ॥३३॥ आप फलका विचारकरकेही दण्ड देते हैं। इससे आपने हमारे ऊपर निश्चयही अनुग्रह

ऽनुग्रहएवसंमतः ॥ ३४ ॥ तपः सुतप्तंकिमनेनपूर्वंनिरस्तमानेनचमानदेन । धर्मोऽथवासर्वजनानुकम्पयायतोभवांस्तुष्यतिसर्वजीवः ॥ ३५ ॥ कस्यानुभावोऽस्यनदेवविद्महेतवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः । यद्वाञ्छयाश्रीर्ललनाचरत्तपोविहायकामान्सुचिरंधृतव्रता ॥ ३६ ॥ ननाकपृष्ठंनचसार्वभौमंनपारमेष्ठ्यंनरसाधिपत्यम् । नयोगसिद्धीरपुनर्भवंवावाञ्छन्तियत्पादरजःप्रपन्नाः ॥ ३७ ॥ तदेषनाथाऽऽपदुरापमन्यैस्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः । संसारचक्रेभ्रमतः शरीरिणोयदिच्छतः स्याद्विभवः समक्षः ॥ ३८ ॥ नमस्तुभ्यंभगवतेपुरुषायमहात्मने । भूतावासायभूतायपरायपरमात्मने ॥ ३९ ॥ ज्ञानविज्ञाननिधयेब्रह्मणेऽनन्तशक्तये । अगुणायाविकारायनमस्तेप्राकृतायच ॥४०॥ कालायकालनाभायकालावयवसाक्षिणे । विश्वायतदुपद्रष्ट्रेतत्कर्त्रेविश्वहेतवे ॥ ४१ ॥ भूतमात्रेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने । त्रिगुणेनाभिमानेनगूढस्वात्मानुभूतये ॥ ४२ ॥ नमोऽनन्तायसूक्ष्मायकूटस्थायविपश्चिते । नानावादानुरोधायवाच्यवाचकशक्तये ॥ ४३ ॥ नमः प्रमाणमूलायकवयेशास्त्रयोनये । प्रवृत्तायनिवृत्तायनिगमायनमोनमः ॥ ४४ ॥ नमः कृष्णायरामायवसुदेवसुतायच । प्रद्युम्नायानिरुद्धायसात्वतांपतयेनमः ॥ ४५ ॥ नमोगुणप्रदीपायगुणा

किया है । क्योंकि आप जो दुष्ट मनुष्योंपर दण्डकरतेहो उसके पाप नष्टहोजाते हैं । इस प्राणीको जिससे सर्प शरीर मिला वह पाप आपके कोपसे शांतहुआ अतएव आपक कोपकोभी कृपाही मानना चाहिये ॥ ३४ ॥ हे हरि ! इसने पूर्वजन्म में अभिमानरहितहो सम्मान पूर्वक ऐसी कौनसी तपस्या या धर्म किया है ; कि सबजीवोंके जीवनदाता आप इसपर प्रसन्नहुए ॥ ३५ ॥ आपके जिन चरणरेणुके प्राप्तकरनेकी इच्छासे लक्ष्मीने स्त्रीहोकरभी सबकाम छोड़ व्रतधारण कर बहुत काल तपस्या कीथी ॥ ३६ ॥ किस महापुण्यके बलसे आज यह भुजंग आपके उन्हीं कमलाबांछित चरणरजको मस्तक में धारणसका ? हेदेव ! हम इसको नहीं जानसकतीं जो प्राणी आपकी चरणरजको प्राप्त होतेहैं वे स्वर्ग, चक्र वर्तित्व, ब्रह्मपद, पृथ्वीका राज्य, योग सिद्धि व मुक्ति की भी कामना नहीं करते ॥ ३७ ॥ संसार चक्रमें भ्रमताहुआ जीव जो चरण रजकी इच्छाकरता है वही सब ऐश्वर्योंको प्राप्त करसकताहै तथा प्रेमादि दूसरे उपायोंसे जो चरणरज प्राप्त होना कठिनहै, अहोनाथ! यह सर्प तमोगुण युक्त और क्रोध वशहोकरभी उसी चरणरजको प्राप्तहुआ यह बड़ा भाग्यशालीहै ॥३८॥ हेभगवान् ! आप अन्तर्यामी रूपसे समस्त देहोंमें विराजमान रहते हो परन्तु उन देहोंसे परिच्छिन्न नहींहो क्योंकि आप आदि कारण और पहिलेसे वर्तमानहो, अतएव आकाशादि भूतोंके आश्रय स्वरूपहो आप परमकारणहो आपको नमस्कारहै ॥ ३९ ॥ आप ज्ञान और विज्ञानके भंडारहो क्योंकि आप प्रकृतिके प्रवर्त्तक, अविकारी, निर्गुण और अनंतशक्ति परब्रह्महो आपको नमस्कारहै ॥ ४० ॥ आप कालस्वरूप कालशक्तिके आश्रय और कालके अवयव सबके साक्षीहो अतएव आप विश्वरूप विश्वके द्रष्टा, कर्त्ता और कारणहो ॥ ४१ ॥ भूत पञ्चतन्मात्र, इन्द्रिय, इन्द्रियवृत्ति, प्राण मन बुद्धि और चित्त यह सब आपक स्वरूपहैं । त्रिगुणद्वारा आच्छन्न करके आप अपने अनुभूत आत्मा को सबके लिये नहीं जाननेदेते ॥ ४२ ॥ आप अनन्त तथा सूक्ष्महो, आप सर्वव्यापक और सर्वज्ञहो, आप अनेकों वादानुवाद का अनुवर्त्तन करते रहतेहो । शब्द और अर्थभी आपकी शक्ति हैं आपको नमस्कार है ॥ ४३ ॥ आप सबप्रमाणों के मूल; चक्षुरादि इंद्रियों के इंद्रियरूपहो अतएव आप कवि अर्थात् निरपेक्ष ज्ञानशाली और शास्त्रों के योनिहो । आप प्रवृत्त, निवृत्त और अंतिमपदार्थहो, आपको नमस्कार है ॥ ४४ ॥ हे हरि ! आप शुद्धसत्व से प्रकाशमान श्रीकृष्ण, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अ-

रमच्छाद्मायच्छ । गुणवृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥ ४६ ॥ अव्याकृतविहारा
य सर्वव्याकृतसिद्धये । हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने ॥ ४७ ॥ परावरगति
ज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः । अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे ॥ ४८ ॥ त्वं ह्यस्य
जन्मस्थितिसंयमान्प्रभो गुणैरनीहोऽकृतकालशक्तिधृक् । तत्तत्स्वभावान्प्रतिबोध
यन्सतः समीक्षयाऽमोघविहार ईहसे ॥ ४९ ॥ तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां शान्ता
अशान्ता उत मूढयोनयः । शान्ताः प्रियास्ते ह्यधुनाऽवितुं सतां स्थातुश्च ते धर्मपरीप्स
येहतः ॥ ५० ॥ अपराधः सकृद्भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः । क्षन्तुमर्हसि शान्तात्म
न्मूढस्य त्वामजानतः ॥ ५१ ॥ अनुगृह्णीष्व भगवन्प्राणांस्त्यजति पन्नगः । स्त्री
णां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥५२॥ विधेहि ते किंकरीणामनुष्ठेयं तवा
ज्ञया । यच्छ्रद्धयाऽनुतिष्ठन्वै मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं
स नागपत्नीभिर्भगवान्समभिष्टुतः ॥ मूर्च्छितं भग्नशिरसं विससर्जाङ्घ्रिकुट्टनैः ॥
।५४। प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः कालियः शनकैर्हरिम् । कृच्छ्रात्समुच्छ्वसन्कृष्णं दीनः
प्राह कृतांजलिः ॥५५॥ वयं खलाः सहोत्पत्त्या तामसा दीर्घमन्यवः । स्वभावो दुस्त्य-
जो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ॥५६॥ त्वया सृष्टमिदं विश्वं धातर्गुणविसर्जनम् । ना

निरुद्धहो; आपको नमस्कार है ॥ ४५ ॥ आप का अन्तःकरण सबका प्रकाशक हो।आपअंतःकरण के समूहद्वारा अपने को अच्छन्न करके नानारूप से प्रकाश पाते रहतेहो ।अंतःकरणकी सबवृत्तियों द्वारा आप का अनुमान होतारहता है ।आप समस्त अंतःकरणों के दृष्टिगोचरहो आपको नमस्कार है ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! आपकी महिमा अतर्क्य है अतएव आपही सर्वकार्यों की उत्पत्तिके प्रकाशक और कारणरूपहो। आप इंद्रियों के प्रवर्त्तकहो परन्तु आत्मारामहो और आत्मारामताही आप का स्वभाव है; आपको नमस्कार है ॥ ४७ ॥ हे प्रभो ! आप स्थूल और सूक्ष्म के गति और सबके अधिष्ठाताहो । यह विश्व आप में अधिष्ठितनहीं है और आपही विश्वस्वरूप, विश्वकेद्रष्टा, और विश्व के कारणरूपहो आपको नमस्कार है ॥ ४८ ॥ हे विभो ! आप चेष्टारहितहो; किन्तु कालशक्ति-धारण करके गुणोंद्वारा इस विश्व की उत्पत्ति, पालन और संहार करतेरहतेहो।संस्काररूप से वर्त्तमान विशेष २ स्वभावों को बुद्धिशक्तिद्वारा उद्बोधन करके क्रीडा करतेहो ॥ ४९ ॥ त्रिलोकी में शांत, अशांत और मूढ अर्थात् सात्विक, राजस, तामस जितने देह हैं वे सब आपही की क्रीडा के साधनरूप हैं,,तौभी आप को शांत स्वरूपही प्यारा है क्योंकि आप ने सत्पुरुषोंही के धर्म पालने के निमित्त अवतार लिया है ॥ ५० ॥ आप जगत् के स्वामीहो, आपको अपनेदास का प्रथम अपराध क्षमाही करना उचित है । हे शांतात्मन् ! यह सर्प अत्यन्तमूर्ख है—आपको यह नहीं जानता; इस का अपराध आपको क्षमाकरना उचित है ॥ ५१ ॥ हे भगवन् ! प्रसन्नहोवो, सर्प के प्राण जाते हैं । हम इसकी स्त्री हैं, इस के मरने से हमारी अत्यन्त दुर्दशा होजायगी;हमारे स्वामीको प्राणदानकरो॥५२॥हम आपकी दासियें हैं; जोआज्ञाहो वह हमकरें । जोमनुष्य आपकी आज्ञाको श्रद्धापूर्वक सम्पादन करते हैं उन मनुष्योंको किसी स्थ न मेंभी भय नहीं रहता ॥५३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—नागपत्नियों के इस प्रकार से स्तुतिकरने पर भगवान ने, पैरों के प्रहार से मूर्छित व भग्नशिरा सांपको छोड़ दिया ॥ ५४ ॥ कालिय धीरे २ इन्द्रिय शक्ति और प्राण प्राप्त करके अति कष्टसे श्वास छोड़ता हुआ हाथजोड़ कातर वचनों से भगवान से कहने लगा ॥ ५५ ॥ हे नाथ ! मैं जन्म सेही दुष्ट तमोगुण युक्त और अत्यंत क्रोधी हूं । जिस स्वभाव से शरीर उत्पन्न होता है उस स्वभाव का त्याग करना भी अत्यंत दुःसाध्य है ॥ ५६ ॥

नानास्वभाववीर्यौजोयोनिबीजाशयाकृति ॥५७॥ वयं च तत्र भगवन्सर्पा जात्युरुमन्यवः । कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ॥ ५८ ॥ भगवान्हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः । अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद्विधेहि नः ॥ ५९ ॥ श्रीशुक उवाच । इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान्कार्यमानुषः । नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि मा चिरम् ॥ ६० ॥ स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यतां नदी । य एतत्संस्मरेन्मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनम् ॥ ६१ ॥ कीर्तयन्नुभयोः सन्ध्योर्न युष्मद्भयमाप्नुयात् । योऽस्मिन्स्नात्वा मदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः । उपोष्य मां स्मरन्नर्चेत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६२ ॥ द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः । यद्भयात्स सुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पादलाञ्छितम् ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच । एवमुक्तो भगवता कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यश्च सादरम् ॥ ६४ ॥ दिव्याम्बरस्रङ्मणिभिः परार्ध्यैरपि भूषणैः । दिव्यगन्धानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया ॥ ६५ ॥ पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजम् । ततः प्रीतोऽभ्यनुज्ञातः परिक्रम्याभिवन्द्य तम् । सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमब्धेर्जगाम ह ॥ ६६ ॥ तदैव सामृतजला यमुना निर्विषाऽभवत् ॥ अनुग्रहाद्भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ॥ ६७ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

हे विधाता! आपने इस विश्वको उत्पन्न किया है, यह नानागुणों से उत्पन्न हुआ है इसी से स्वभाव, वीर्य, बल, योनि बीज चित्त और आकृति भी नाना प्रकार की हुई है ॥ ५७ ॥ हे भगवन्! मैं इस जगत में सर्पजाति हूं किस प्रकार से आपकी दुस्त्यज मायाको छोड़सकता हूं ॥५८॥ हे सर्वज्ञ! जगदीश्वर आपही अपनी मायाको परित्याग करासकते हो। दया और दंड इन दोनों में जिसको आप अच्छा जानते हो मुझपर वही करो ॥ ५९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे महीपते! भगवान् ने सर्पके एम वचनों को सुनकर कहा कि हे सर्प! तुम अब इस स्थानपर नहीं रहसकते ज्ञातिवाले पुत्र और स्त्रियों को ले शीघ्रही समुद्र में जाओ। गौ ब्राह्मण इस नदी का जल पीतेरहते हैं, तुम्हारे इस स्थानपर रहने से वह यहां नहीं आसकते ॥ ६० ॥ और मैंने जो तुमको दंड दिया है उसको जो मनुष्य प्रातःकाल व संध्याको स्मरण व कीर्तन करेगा उसे तुम्हारा भय नहीं होगा ॥ ६१ ॥ मेरे क्रीडा के स्थान इस कुण्ड में जो मनुष्य स्नानकर जल द्वारा देवादिकों का तर्पण और उपवासकर श्रद्धापूर्वक मेरा भजन करेगा वह सब पापों से छूटकर मुक्तिको प्राप्त होवेगा ॥६२॥ तुम इस दहको छोड़कर रमणक द्वीपको जाओ। मेरा वाहन गरुड़ तुम्हारा कुछभी अनिष्ट नहीं करसकेगा अब तुम्हारे मस्तक में जबतक मेरे पैरों के चिह्न रहेंगे तबतक गरुड़ से तुम्हें कछभी भय नहीं होगा ॥६३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन्! अद्भुतकर्मा श्रीकृष्णजी के छोड़नेपर नाग और उसकी स्त्रियां आनंदितहो दिव्यरत्न, मणि महामूल्य के वस्त्र आभूषण दिव्य सुगंधित पदार्थ और बहुत से कमलों की मालाओं से भगवान की पूजाकरने लगीं ॥ ६४—६५ ॥ कालिय, भगवान श्रीकृष्णजी की पूजाकर उनकी आज्ञानुसार, आनंदितहो उन भगवान की परिक्रमा और उनको प्रणामकर स्त्री, पुत्र तथा ज्ञातियों को ले समुद्र के मध्यवाले रमणक द्वीपमें गया। क्रीडाकरने वाले मनुष्य रूपी भगवान की अनुग्रह से उसी समय से कालिंदी का जल विषरहितहो अमृत के समान सुस्वादु होगया ॥ ६६—६७ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांषोडशोऽध्याय ॥ १६ ॥

राजोवाच । नागालयं रमणकं कस्मात्तत्याज कालियः ॥ कृतं किंवा सुपर्णस्य
तेनैकेनासमञ्जसम् ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच । उपहार्यैः सर्पजनैर्मासि मासीह यो बलिः
वानस्पत्यो महाबाहो नागानां प्राङ्निरूपितः ॥२॥ स्वं स्वं भागं प्रयच्छन्ति नागाः पर्व-
णि पर्वणि । गोपीथायात्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने ॥ ३ ॥ विषवीर्यमदाविष्टः का-
द्रवेयस्तु कालियः । कदर्थीकृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बलिम् ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा कुपितो
राजन्भगवान्भगवत्प्रियः । विजिघांसुर्महावेगः कालियं समपाद्रवत् ॥ ५ ॥ तमा-
पतन्तं तरसा विषायुधः प्रत्यभ्ययादुत्थितनैकमस्तकः । दद्भिः सुपर्णं व्यदशद्ददा-
युधः करालजिह्वोच्छ्वसितोग्रलोचनः ॥ ६ ॥ तं तार्क्ष्यपुत्रः स निरस्य मन्युमान्प्रच-
ण्डवेगो मधुसूदनासनः । पक्षेण सव्येन हिरण्यरोचिषा जघान कद्रुसुतमुग्रविक्रमः ॥
॥ ७ ॥ सुपर्णपक्षाभिहतः कालियोऽतीव विह्वलः । ह्रदं विवेश कालिन्द्यास्तदगम्यं
दुरासदम् ॥ ८ ॥ तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम् । निवारितः सौभरिणा प्र
सह्य क्षुधितोऽहरत् ॥ ९ ॥ मीनान्सुदुःखितान्दृष्ट्वा दीनान्मीनपतौ हते ॥ कृपया
सौभरिः प्राह तत्रत्यक्षेममाचरन् ॥ १० ॥ अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान्स खादति।
सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥११॥ तं कालियः परं वेद नान्यः कश्चन ले-
लिहः । अवात्सीद्गरुडाद्भीतः कृष्णेन च विवासितः ॥ १२ ॥ कृष्णं ह्रदाद्विनिष्क्रा-
न्तं दिव्यस्रग्गन्धवाससम् । महामणिगणाकीर्णं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥ १३ ॥ उपल

राजा परीक्षितने कहा कि—हेब्रह्मन्! कालियने किसकारण नागगणोंके आसस्थानको छोड़-दियाथा? उसने गरुड़का क्या अप्रिय कियाथा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! पहिले यह निश्चयहुआ कि गरुड़के भक्ष्यरूप नाग गरुड़की पीड़ा हरनेके निमित्त महीने २ में उनके खानेके लिये वृक्षके मूलमें बलिदान रख जायाकरें ॥ २ ॥ नागगण अपनी २ रक्षाके निमित्त पर्व २ में महात्मागरुड़ को वे समस्त बलिदानदेते ॥३॥ परन्तु कद्रूसुत कालियविष और विक्रमसे उन्मत्तहो गरुड़का निरादर कर बलिदान न देता और जो कोई दूसरा बलिदेता उसेभी आप खा जाता॥४॥हेराजन्! यह वृत्तांत जानकर भगवत्प्रिय गरुड़को क्रोध उत्पन्नहुआ। वह उसके मारनेको क्रोधित होकर बड़े वेगमें दौड़ा॥५॥ विषही जिसका अस्त्र है ऐसा कालियनाग गरुड़को आतेहुए अपने मस्तक उठाये सन्मुख चला और गरुड़को दांतोंसे काटने लगा क्योंकि दांतही उसके शस्त्र थे उस कालिकी जिह्वा बड़ी भयावनी, नेत्र क्रोधभरे और उग्रप्रतीत होतेथे॥६॥भगवान के आसन, प्रचण्ड वेग व बड़े पराक्रमवाले गरुड़जीने सोने की समान प्रकाशित बांए पक्षसे कालिय पर प्रहार किया ॥ ७ ॥ कालिय गरुड़ के पक्षाघात से अत्यन्त विह्वलहोकर उस अगाध ह्रद में किजहां गरुड़के भी जाने का सामर्थ्य नथा प्रवेशकरगया । हे राजन्! यमुना के उस कुण्ड में गरुड़ क्यों नहीं जासकताथा वह भी कहताहूं सुनो ॥ ८ ॥ एक समय गरुड़ उस कुण्ड में एक मछली के खाने पर तत्परहुआ तो सौभरि ऋषि ने उसे निषेध किया; परन्तु भूखा गरुड़ उनका कहनानमान उसे खागया ॥ ९ ॥ मीनस्वामी के नष्ट होजाने से दीन मछलियों को अत्यन्त दुःखित देख सौभरि ऋषि ने वहां कल्याण होने के निमित्त कृपापूर्वक कहा कि—॥ १०॥"अब से यदि इस स्थान पर गरुड़ प्रवेश करके किसी प्राणी को खायगा तो वह तत्कालही मरजायगा-मैं सत्य कहताहूं" ॥ ११ ॥ कालिय के अतिरिक्त औरकोई भी इस वृत्तांत को नहीं जानताथा। इसही कारण गरुड़से भयमानहो उस ने वहां वासकिया फिर श्रीकृष्णजी ने उसे वहां से भी निकाला ॥ १२ ॥ हेराजन्! इस ओर श्रीकृष्णजी दिव्यमाला, गन्ध, और दिव्यवस्त्रोंयुक्त,महा मणियों से अलंकृत और सुवर्ण से विभूषितहो कुण्डसे बाहर निकले ॥ १३ ॥ उन्हें देखतेही,

त्थोत्थिताः सर्वेलब्धप्राणाइवासवः । प्रमोदनिभृतात्मानोगोपाः प्रीत्याऽभिरेभिरे
॥ १४ ॥ यशोदारोहिणीनन्दोगोप्योगोपाश्चकौरव । कृष्णंसमेत्यलब्धेहाआसँल्ल
ब्धमनोरथाः ॥ १५ ॥ रामश्चाच्युतमालिङ्ग्यजहासास्यानुभाववित् । नगागावोवृ
षावत्सालेभिरेपरमांमुदम् ॥१६॥ नन्दंविप्राः समागत्यगुरवः सकलत्रकाः । ऊचु
स्तेकालियग्रस्तोदिष्ट्यामुक्तस्तवात्मजः ॥ १७ ॥ देहिदानंद्विजातीनांकृष्णनि
र्मुक्तिहेतवे । नन्दः प्रीतमनाराजन्गाः सुवर्णंतदाऽदिशत् ॥ १८ ॥ यशोदापिमहा
भागानष्टलब्धप्रजासती । परिष्वज्याङ्कमारोप्यमुमोचाश्रुकलांमुहुः ॥ १९ ॥ तांरा
त्रिंतत्रराजेन्द्रक्षुत्तृड्भ्यांश्रमकर्षिताः । ऊषुर्व्रजौकसोगावः कालिन्द्या उपकूलतः
॥ २० ॥ तदाशुचिवनोद्भूतोदावाग्निः सर्वतोव्रजम् । सुप्तंनिशीथआवृत्यप्रदग्धुमु
पचक्रमे ॥२१॥ ततउत्थायसंभ्रान्तादह्यमानाव्रजौकसः । कृष्णंययुस्तेशरणमाया
मनुजमीश्वरम् ॥ २२ ॥ कृष्णकृष्णमहाभागहेरामामितविक्रम । एषघोरतमोवह्नि
स्तावकान्ग्रसतेहिनः ॥ २३ ॥ सुदुस्तरान्नःस्वान्पाहि कालाग्नेःसुहृदःप्रभो । नश
क्नुमस्त्वच्चरणं संत्यक्तुमकुतोभयम् ॥ २४ ॥ इत्थंस्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्यजगदीश्व
रः । तमग्निमपिबत्तीव्रमनन्तोऽनन्तशक्तिधृक् ॥ २५ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

प्राणआने से इन्द्रियवर्ग की समान समस्तगोप उठखडे हुए और आनन्दितमनसे प्रीतियुक्तउनका आलिंगन करने लगे ॥ १४ ॥ हे कौरव ! यशोदा, रोहिणी, नन्द और अन्यान्य गोप तथागोपियें श्रीकृष्णजीसे मिलकर सचेष्टहुई और उनका मनोरथ परिपूर्णहुआ ॥ १५ ॥ बलदेवजी कृष्णजी के प्रभावको जानतेथे वह उनसे मिलकर-हँसने लगे और गोद में बिठलाय बारम्बार मुख देखने लगे । गाय, बैल, बछडे सब अत्यन्तही आनन्दितहुए ॥ १६ ॥उस समय सबब्राह्मण स्त्रियोंसमेत आय कर कहने लगे कि-हेनन्द ! तुमबडे भाग्यशालीहो, इसही कारण तुम्हारा पुत्र कालिय से घिर कर फिर बचआया ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णजी के छुटआने के कारण ब्राह्मणों को धनदानकरो।हेराजन्! नन्दराय ने भी प्रीतिपूर्वक सबब्राह्मणों को बहुतसा सुवर्ण तथा गायें दानकीं ॥ १८ ॥ महाभागा सती यशोदा गएहुयेपुत्रको पाय आलिंगनकर गोद में ले बारम्बार आनन्दाश्रु बहानेलगीं ॥ १९ ॥ गायें और व्रजवासी सब भूँखप्यास से अत्यन्त कातर होरहेथे अतएव उस रात्रिको वहीं यमुना तटपर विश्राम किया ॥ २० ॥ अर्द्धरात्रिके समय घरकण्ड बन से दावाग्नि उठ निद्रितव्रजवासियों को चारोंओर से घेर जलानेलगी ॥ २१ ॥ फिर जलतेहुए व्रजवासी गण शीघ्रता से उठ माया मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णजी के शरणागतहोकर कहनेलगे कि-॥ २२ ॥ हेमहाभागकृष्ण! हेअमित विक्रमराम ! हम तुम्हारे हैं, यह घोरअग्नि तोहमको ग्रासकिये जाती है । ॥ २३ ॥ हेप्रभो ! हम तुम्हारे मित्र, आत्मीय और स्वजन हैं; इस दुस्तर कालाग्नि से हमारा उद्धारकरो हम अपने मरने से नहीं डरते परन्तुआपके चरणों से हम विमुक्त होजायँगे इसही भयसे हम व्याकुल होतेहैं२४॥ हम आपके युगलचरणों को परित्याग नहीं करसकते । अनन्त शक्तिधारी,जगदीश्वर,आत्मीयजनों की ऐसी कातरता देख उस घोर दावानलको पीगये ॥ २५ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दो० । धन वृन्दावन धाम है, धन वृन्दावन नाम । रहत जहां आनँद सहित, श्रीयुत राधा श्याम १
वृन्दावन जे बासकर, साग पात नितखाहिं । तिनके वैभवको निरखि, ब्रह्मादिक ललचाहिं २
हम न भये ब्रजमें प्रकट,यही रही मन आश । नितप्रति निरखें जुगलछबि, कर वृन्दावन बास ३

श्रीशुक उवाच। अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः। अनुगीयमानो न्यविशद्व्रजं गोकुलमण्डितम् ॥१॥ व्रजे विक्रीडतोरेवं गोपालच्छद्ममायया। ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयाञ्छरीरिणाम् ॥ २ ॥ स च वृन्दावनगुणैर्वसन्त इव लक्षितः। यत्रास्ते भगवान्साक्षाद्रामेण सह केशवः ॥ ३ ॥ यत्र निर्झरनिर्ह्रादनिवृत्तस्वनझिल्लिकम्। शश्वत्तच्छीकरर्जीषद्रुममण्डलमण्डितम् ॥ ४ ॥ सरित्सरःप्रस्रवणोर्मिवायुना कह्लारकञ्जोत्पलरेणुहारिणा। न विद्यते यत्र वनौकसां दवो निदाघवह्न्यर्कभवोऽतिशाद्वले ॥ ५ ॥ अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभिर्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समन्ततः। न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्बणा भुवो रसं शाद्वलितं च गृह्णते ॥ ६ ॥ वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम्। गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ॥ ७ ॥ क्रीडिष्यमाणस्तत्कृष्णो भगवान्बलसंयुतः। वेणुं विरणयन्गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ॥८॥ प्रवालबर्हस्तबकस्रग्धातुकृतभूषणाः। रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ॥ ९ ॥ कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन्। वेणुपाणितलैः शृङ्गैः प्रशशंसुरथापरे ॥ ॥ १० ॥ गोपजातिप्रतिच्छन्ना देवा गोपालरूपिणः। ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ॥ ११ ॥ भ्रामणैर्लङ्घनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः। चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित् ॥ १२ ॥ क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम्। शशंसतुर्महाराज साधु साध्विति वादिनौ ॥ १३ ॥ क्वचिद्बिल्वैः क्वचित्कुम्भैः क्व चामलकमुष्टि

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन्! फिर श्रीकृष्णजी आत्मीय स्वजनों के साथ गोसमूह परिपूर्ण व्रजधाम में गये, जातिवाले आनन्द चित्तसे उनका यश गाते २ उनके पीछे चले, ॥ १ ॥ गोपाल के मिषसे माया करके व्रजमें दोनों भाइयों को क्रीड़ा करतेहुए ग्रीष्मऋतु आया जो प्राणियों को अतिप्यारा नहींहै ॥ २ ॥ परन्तु साक्षात् भगवान बलरामजी के साथ जिस वृन्दावनमें विहार करतथे उस वृन्दावन के गुणसे ग्रीष्मने भी वसन्तकी समान शोभा धारणकी ॥ ३ ॥ उस ग्रीष्मकालमें भी झरनोंके शब्द के आगे झिल्ली का शब्द सुनाई न देताथा और निरन्तर झरनोंके जलकी बूंदोंसे लहलहे वृक्षोंका समूह वृन्दावनमें शोभायमान होरहाथा॥४॥ जो स्थान तृण रहितथे उन स्थानोंमेंभी ग्रीष्मकालकी आग्नि और सूर्यसे व्रजवासियोंको सन्ताप नहीं उत्पन्न होता क्योंकि झरने और लहरोंसे मिश्रित ठंढ कल्हार, कमल और उत्पलकी रजपर होकर बहनेवाली सुगन्धित पवन चलने लगी ॥ ५ ॥ अगाध जलसे भरीहुई नदियोंकी तरंगें उनके तटका स्पर्श करके किनारे की रेतको निरन्तर भीगीहुई रखनेलगीं सूर्यकी किरणें विषकी समान तीव्र होनेपरभी सब ऐश्वर्यों से परिपूर्ण वृन्दावनकी भूमिके रस और नई घासको सुखा न सकीं ॥ ६ ॥ रमणीय वन फूलों से परिपूर्ण होगया वहां नानाप्रकारके मृग और पक्षी शब्द करने तथा मोर और भौंर मधुर गानसे गानेलगे और कोकिल व सारसें निरन्तर शब्द करनेलगीं ॥ ७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णजी बलरामजीके साथ गोप और गौ समूहसे घिर वेणु बजाते २ खेलनेके अभिप्राय उस वनमेंगये ॥ ८ ॥ प्रवाल मोर पिच्छ फूलोंके गुच्छोंकी माला और धातुओंके गहने बनाय श्रीकृष्णजीने बलरामजी व गोप बालकोंके साथ नाचने मल्लयुद्ध और क्रीड़ा करनेका आरम्भ किया ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णजी नाचने कोई २ गोपालगण गाने और कोई २ ताली व सींग बजाने और कोई उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ १० ॥ नट जैसे नटकी सेवा करताहै उसीप्रकार देवरूपी गोपजाति गोपालरूपी राम व कृष्णजीकी पूजा करते रहते॥११॥हेमहाराज! उससमयमें काकपक्ष (पट्टे) धारण किये राम व कृष्णजी चक्कर खाना, फांदना, कूदना खम ठोकना, खेंचना मल्लयुद्ध करना इत्यादि नानाप्रकारके अद्भुत खेल करते रहते ॥ १२ ॥ कभी दूसरे गोप नाचते राम और कृष्ण गाने व बजानेवाले होकर उनकी प्रशंसा करते ॥ १३ ॥ कभी बेलों से कभी कुंभी के फलों से कभी आंवला व मु-

भिः । मल्लयुद्धनेत्रबन्धाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ॥ १४ ॥ क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः । कदाचित्स्पन्दोलिकया कर्हिचिन्नृपचेष्टया ॥ १५ ॥ एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने । नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरस्सु च ॥ १६ ॥ पशूंश्चारयतोर्गोपैस्तद्वने रामकृष्णयोः । गोपरूपी प्रलम्बोऽगादसुरस्तज्जिहीर्षया ॥ १७ ॥ तं विद्वानपि दाशार्हो भगवान्सर्वदर्शनः । अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिन्तयन् ॥ १८ ॥ तत्रोपाहूय गोपालान्कृष्णः प्राह विहारवित् । हे गोपा विहरिष्यामो द्वन्द्वीभूय यथायथम् ॥ १९ ॥ तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा रामजनार्दनौ । कृष्णसंघट्टिनः केचिदासन्रामस्य चापरे ॥ २० ॥ आचेरुर्विविधाः क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणाः । यत्रारोहन्ति जेतारो वहन्ति च पराजिताः ॥ २१ ॥ वहन्तो वाह्यमानाश्च चारयन्तश्च गोधनम् । भाण्डीरकं वटं नाम जग्मुः कृष्णपुरोगमाः ॥ २२ ॥ रामसंघट्टिनो यर्हि श्रीदामवृषभादयः । क्रीडायां जयिनस्तांस्तानूहुः कृष्णादयो नृप ॥ २३ ॥ उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः । वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणीसुतम् ॥ २४ ॥ अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानवपुङ्गवः वहन्द्रुततरं प्रागादवरोहणतः परम् । ॥ २५ ॥ तमुद्वहन्धरणिधरेन्द्रगौरवं महासुरो विगतरयो निजं वपुः । स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ तडिद्द्युमानुडुपतिवाडिवाम्बुदः ॥ २६ ॥ निरीक्ष्य तद्वपुरलमम्बरे

ठियों से खेलते; कभी आंख मिचौनी खेलते कभी एक दूसरे के छूनेको दौड़ते । कभी मृग व अन्य पक्षिया की समान घूमते व शब्द करके क्रीड़ा में मत्तहाते ॥ १४ ॥ कभी मेंडककी समान कूद २ कर चलते । कभी एक दूसरे की हंसी करते २ झूलार झूलते रहते, कभी राजायन नाना प्रकार के कौतुकोंसे समय बिताते ॥ १५ ॥ बलराम और कृष्णजी इस प्रकार लोक प्रसिद्ध नाना प्रकार की क्रीड़ाओं से वृन्दावन के नदी, पर्वत, गुफा, कुंज; कानन और सरोवर में नाना प्रकार की क्रीड़ा किया करते थे ॥ १६ ॥ दोनोभाई एक दिन गोपों के साथ उस वृन्दावन में पशुचराते थे—उसी समय में प्रलम्ब नामक असुर श्रीकृष्णजी व बलरामजी को हरन के निमित्त गोपरूप धारणकर वहां आया ॥१७ ॥ सर्वज्ञ श्रीकृष्णजी उसको जानकर और उसके मारनेकी इच्छाकर मित्रभाव से उसके साथ खेलनेलगे ॥१८॥ क्रीडाके जाननेवाले श्रीकृष्णजी उस स्थानमें गोपोंको बुलवाकर कहनेलगेकि–हेगोपो ! आओ हमवयस और बलके अनुसार दोदलहोकर बिहारकरें ॥१९॥तब गोपोंने उनके कथनको स्वीकारकर राम और कृष्णजीको नायककिया और कुछेकगोप बलरामजी व कुछेकगोप श्रीकृष्णजीकी ओर हुए॥२०॥ तदनन्तर वह चढने और चढाने इत्यादि नानाप्रकार के खेल खलनेलग जिसमें जो हारें वह जीतनें वालोंको चढाकर लेजांय और जोजीतें वह चढें ॥ २१ ॥ ऐसे खेलतेहुये चढ़त चढ़ाते गायों को चराते कृष्णजीको आग किये बहुसब भाण्डीरकनामक बड़के निकट पहुंचे ॥ २२ ॥ जब बलरामजीके पक्षवाले श्रीदामआदि गोप क्रीडा में जीते, तब श्री कृष्णजी आदि ने उनको अपने ऊपर चढाय ॥ २३ ॥ हारेहुय भगवान् श्रीकृष्णजी श्रीदामाको लेकर चले तथा भद्रसेन वृषभको और प्रलम्ब बलरामजीको लेकरचला॥ ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णजीको तेजस्वी विचार उनकी दृष्टि बचाताहुआ वह प्रलम्बासुर बलरामजीको नियत स्थानसे बहुत दूरतक लिये चलागया ॥ २५ ॥ दैत्यकी देह, बिजली युक्त बादलकी स मान श्यामवर्ण की और सोने के आभूषणों स भूषितथी । पर्वतकी सदृश बलदेवजीका भारीभार उठानें से उसका वेग बन्द होगया तब उसन अपना दैत्य शरीर धारण किया वह असुर बिजली की समान प्रकाशित चन्द्रमायुक्त मेघकी समान शोभापानेलगा ॥ २६ ॥ वह शरार अति बगसे

चरत्प्रदीप्तदृग्भ्रुकुटितटोग्रदंष्ट्रकम् । ज्वलच्छिखं कटककिरीटकुण्डलत्विषाऽद्भुतं हल
धर ईषदत्रसत् ॥ २७ ॥ अथाऽऽगतस्मृतिरभयो रिपुं बलो विहाय सार्थमिव हरन्त
मात्मनः । रुषाऽहनच्छिरसि दृढेन मुष्टिना सुराधिपो गिरिमिव वज्ररंहसा ॥ २८ ॥
स आहतः सपदि विशीर्णमस्तको मुखाद्वमन्रुधिरमपस्मृतोऽसुरः । महारवं व्यसुर
पतत्समीरयन्गिरिर्यथा मघवत आयुधाहतः ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा प्रलम्बं निहतं बलेन बल
शालिना । गोपाः सुविस्मिता आसन्साधु साध्विति वादिनः ॥ ३० ॥ आशिषोऽभि
गृणन्तस्तं प्रशशंसुस्तदर्हणम् । प्रेत्यागतमिवालिङ्ग्य प्रेमविह्वलचेतसः ॥ ३१ ॥ पापे प्रल
म्बे निहते देवाः परमनिर्वृताः । अभ्यवर्षन्बलं माल्यैः शशंसुः साधु साध्विति ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः । स्वैरं चरन्त्यो वि
विशुस्तृणलोभेन गह्वरम् ॥ १ ॥ अजा गावो महिष्यश्च निर्विशन्त्यो वनाद्वनम् । इषीका
टवीं निर्विविशुः क्रन्दन्त्यो दावतर्षिताः ॥ २ ॥ तेऽपश्यन्तः पशून्गोपाः कृष्णरामाद
यस्तदा । जातानुतापा न विदुर्विचिन्वन्तो गवां गतिम् ॥ ३ ॥ तृणैस्तत्खुरदच्छिन्नै
र्गोष्पदैरङ्कितैर्गवाम् । मार्गमन्वगमन्सर्वे नष्टाऽऽजीव्या विचेतसः ॥ ४ ॥ मुञ्जाट
व्यां भ्रष्टमार्गं क्रन्दमानं स्वगोधनम् । संप्राप्य तृषिताः श्रान्तास्ततस्ते संन्यवर्तयन्

आकाशतक ऊंचा होगया, दोनों नेत्रों से आगकी चिनगारियें निकलनेलगीं और भयानक दृष्टि भ्रकुटियों तक आ मिलीं । उसके केश जलतीहुई अग्नि शिखाकी समान प्रकाशित होगये तथा किरीट और कुण्डलके प्रकाश से उसका अद्भुत शरीर और भी प्रकाशित होगया । बलरामजी उस भयानक देहको देखकर कुछएक भयभीतहुये ॥ २७ ॥ परन्तु थोडीही देरके उपरांत स्मृति आतेही निडरहो, इन्द्रने जैसे वज्रके वेगसे पर्वतों पर प्रहार कियाथा तैसेही उन्होंने दृढमुष्टिद्वारा अपने शत्रुके मस्तकपर आघातकिया ॥ २८ ॥ हेराजन् ! घूंसे के लगतेही उसका शिर चूरहोगया मुख से रक्त बहनेलगा और स्मृतिशक्तिकानाश होगया । वह प्राणरहितहो इन्द्रके वज्रसे घायल हुये पर्वतकी समान एक घोरशब्दकरके गिरपडा ॥ २९ ॥ बलशाली बलदेवजीने प्रलम्बासुरको मारडाला यह देखकर गोपगण विस्मितहो बारम्बार उनकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ३० ॥ कोई २ आशीर्वाद देतेहुए बडाईके योग्य बलरामजीकी बडाई करनेलगे और प्रेमसे विह्वलचित्तहो मरनेके उपरांत आयेहुएकी समान उनका आलिंगनकरनेलगे ॥ ३१ ॥ दुष्ट प्रलम्बासुर के नाश होने से देवतागण आनन्दितहो बलदेवजीके ऊपर फूलों की वर्षाकर करके उनकी प्रसंशाकरनेलगे ॥ ३२ ॥

इतिश्री मद्भा० म० दशम० सरलाभाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे राजन् ! एक दिन गोपगण क्रीडा में आसक्त होरहेथे–उसी समय में उनकी गायें अपनी इच्छानुसार चरते २ तृणके लोभसे बहुत दूरतक जंगलमें चलीगईं ॥ १ ॥ बकरी, गाय, भैंस आदि एक वनसे आकर दूसरे वनमें घास चरती थीं–दैवात् दावाग्नि से संतप्त और तृषितहो चिल्लाते चिल्लाते मूंजके वनमें चलीगईं ॥ २ ॥ इस ओर कृष्णजी बलरामजी तथा दूसरे गोप आदि पशुओंको न देख संतप्त हृदयसे उनको खोजनेलगे, परन्तु कहीं पता न पाया ॥ ३ ॥ पशुगणही गोपोंके जीवनोंपायहैं उस जीवनो पायके नष्ट होजानेसे प्रायः सबही अचेतसे होगये उन गोपोंने अपने पशुओंके खुर और उनके खायेहुए तृण तथा पैरोंसे खुदीहुई भूमिके मार्गसे चलकर उनको खोजना आरम्भ किया ॥ ४ ॥ अन्तमें मूंजके वनमें भूले भटके रोतेहुये अपने गोधन समूहको देखा, यद्यपि गोपालगण थकित होगयेथे तौभी, वह वहांसे न लौटे ॥ ५ ॥ भगवान्

॥ ५ ॥ ता आहूता भगवता मेघगम्भीरया गिरा । स्वनाम्नां तन्निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षि
ताः ॥ ६ ॥ ततः समन्ताद्दवधूमकेतुर्यदृच्छयाऽभूत्क्षयकृद्वनौकसाम् । समीरितः
सारथिनोल्बणोल्मुकैर्विलेलिहानः स्थिरजङ्गमान्महान् ॥ ७ ॥ तमापतन्तं परितो द
वाग्निं गोपाश्च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः ऊचुश्च कृष्णं सबलं प्रपन्ना यथा हरिं मृत्युभया
र्दिता जनाः ॥ ८ ॥ कृष्ण कृष्ण महावीर्य हे रामामितविक्रम । दावाग्निना दह्यमानान्प्र
पन्नांस्त्रातुमर्हथः ॥ ९ ॥ नूनं त्वद्बान्धवाः कृष्ण न चार्हन्त्यवसीदितुम् । वयं हि सर्वध
र्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वचो निशम्य कृपणं बन्धूनां
भगवान्हरिः । निमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत ॥ ११ ॥ तथेति मीलिताक्षेषु भ
गवानग्निमुल्बणम् । पीत्वा मुखेन तान्कृच्छ्राद्योगाधीशो व्यमोचयत् ॥ १२ ॥ ततश्च
तेऽक्षीण्युन्मील्य पुनर्भाण्डीरमापिताः । निशाम्य विस्मिता आसन्नात्मानं गाश्च मोचि
ताः ॥ १३ ॥ कृष्णस्य योगवीर्यं तद्योगमायाऽनुभावितम् । दावाग्नेरात्मनः क्षेमं वी
क्ष्य ते मेनिरेऽमरम् ॥ १४ ॥ गाः सन्निवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः वेणुं विरणय
न्गोष्ठमगाद्गोपैरभिष्टुतः ॥ १५ ॥ गोपीनां परमानन्द आसीद्गोविन्ददर्शने । क्षणं यु
गशतमिव यासां येन विनाऽभवत् ॥ १६ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० पुराणे द० दावाग्निपानं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीशुक उवाच । तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः । गोपाः स्त्रीभ्यः समा
चख्युः प्रलम्बवधमेव च ॥ १ ॥ गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः ॥ मे-

---

श्रीकृष्णजी के द्वारा मेघकी सदृश गम्भीर वाणीसे बुलानेपर अपने नामों का शब्दसुन सबगायें आनन्दितहो रंभाने लगीं ॥ ६ ॥ तदनन्तर बनवासियों का नाशकरनेवाली भीषणअग्नि वायु से चलायमानहो बड़ी २ लपटों की तरगें लेती हुई समस्त चराचर का ग्रास करते२यदृच्छा से चारोंओर को फैलगई । गाय और गोपगण उस दावाग्नि को समीप देखकर भय से व्याकुल होगये। जैसे मनुष्य मृत्यु से पीड़ितहो भगवान से प्रार्थनाकरता रहता है वैसेही गोपगणकातरहो बलराम व कृष्णजी से कहनेलगे ॥ ७। ८ ॥ हे कृष्ण ! हेराम ! हम दावाग्नि से जलतेहुएकातर होरहे हैं हमारीरक्षाकरना तुमकोउचित है ॥ ९ ॥ हे कृष्ण ! हे महावीर्य !जो तुम्हारे बन्धु हैं उन को दुःख देना उचितनहीं । हे सर्वधर्मज्ञ ! तुम्हीं हमारे नाथ और अतिमआश्रयहो ॥ १० ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! भगवान हरि बांधवोंके ऐसे दीनबचन सुनकर कहनेलगे कि—"भय मतकरो, आंखें बंदकरलो" ॥ ११ ॥ उन के कहने के अनुसार गोपों ने आंखें बंदकरलीं,योगा-धीश्वर भगवान् ने मुख से उस भयानक अग्नि का पानकर उनको आपत्ति से बचाया ॥ १२ ॥ फिर गोपों ने आंखें खोलकर देखा तो अपने को भाण्डीरकबन के समीप पाया । और गोपगण तथा वह स्वयं दावाग्नि से बचगये । यह देखकर सब विस्मितहुए ॥ १३ ॥ श्रीकृष्ण के उस अनि-र्वचनीय योग पराक्रम और योगमाया के अद्भुतप्रभाव तथा अपने को दावाग्निसे निस्ताररूप कल्याणकारी विषयविचार वह कृष्णजी को देवता जानने लगे ॥ १४ ॥ सन्ध्या होतेही भगवान श्रीकृष्णजी गायों को लौटाय बंशी बजाते २ बलरामजीकेसाथ गोष्ठ में लौटआये ।गोपगणउनकी स्तुति करते २ पीछे २ चले ॥ १५ ॥ भगवान् को देखकर गोपियों को परमआनन्द उत्पन्नहुआ बिनाश्रीकृष्णजी के वह सब गोपियें एक क्षणमात्रको सौयुग जानतीथीं ॥ १६ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० दशम०सरलाभाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् गोपों ने घर में आकर दावाग्नि से अपने रक्षापाने और प्रलम्बासुर का बधरूप राम, कृष्णका अद्भुतकर्म स्त्रियों से कहा ॥ १ ॥ वृद्धगोप और गोपियें

निरे देवप्रवरौ कृष्णरामौव्रजंगतौ ॥ २ ॥ ततःप्रावर्ततप्रावृट् सर्वसत्त्वसमुद्भवा । वि
द्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला ॥३॥ सान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योमसविद्युत्स्तनयि
त्नुभिः । अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेवसगुणंबभौ ॥ ४ ॥ अष्टौमासान्निपीतं यद्-
भूम्याश्चोदमयंवसु । स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यःकालआगते ॥ ५ ॥ तडित्वन्तो म
हामेघाश्चण्डश्वसनवेपिताः । प्रीणनंजीवनंह्यस्य मुमुचुःकरुणाइव ॥ ६ ॥ तपःकृ
शादेवमीढा आसीद्वर्षीयसीमही । यथैव काम्यतपसस्तनुःसम्प्राप्यतत्फलम् ॥७॥
निशामुखेषुखद्योतास्तमसाभान्तिनग्रहाः। यथापापेन पाषण्डा नहि वेदाःकलौयुगे
॥८॥ श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूकाव्यसृजन्गिरः । तूष्णींशयानाः प्राग्यद्वद्ब्राह्मणा
नियमात्यये ॥ ९ ॥ आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः । पुंसोयथाऽस्व
तन्त्रस्यदेहद्रविणसंपदः ॥ १० ॥ हरिताहरिभिः शष्पैरिन्द्रगोपैश्चलोहिता । उच्छि
लीन्ध्रकृतच्छायानृणांश्रीरिवभूरभूत् ॥ ११ ॥ क्षेत्राणिसस्यसंपद्भिः कर्षकाणांमु
दंददुः । धनिनामुपतापंचदैवाधीनमजानताम् ॥ १२ ॥ जलस्थलौकसः सर्वेनव
वारिनिषेवया । अबिभ्रद्रुचिररूपं यथाहरिनिषेवया ॥१३॥ सरिद्भिःसङ्गतः सिन्धु
श्चुक्षुभे श्वसनोर्मिमान् । अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुणयुग्यथा ॥ १४ ॥ गिर-
यो वर्षधाराभिर्हन्यमाना नविव्यथुः । अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाऽधोक्षजचेतसः ।

उस को सुनकर विस्मितहुए और मन में विचारने लगे कि कोई श्रेष्ठ देवता लीलाकरने के निमित्त व्रज में अवतीर्णहुए हैं ॥ २ ॥ कुछ दिन के उपरांत वर्षा आई । वर्षामें सबप्राणियों को उत्पत्ति होती है और दिशाएं उज्ज्वल व आकाश क्षुभित रहता है ॥ ३ ॥ वर्षा के आने से आकाश—श्यामघटा और बिजली व गर्जना से परिपूरित तथा मेघों से आच्छन्नहो अव्यक्त ज्योति सगुणब्रह्म की समान प्रकाश पानेलगा ॥ ४ ॥ राजा जैसे समय पर द्रव्यले पीछे समय पर देता है वैसेही सूर्यनारायणभी आठमास तक पृथ्वी का जल रूप धन अपनी किरणों द्वारा लेकर समय पर देने लगे ॥ ५ ॥ जैसे कृपालु मनुष्य दुःखित मनुष्यको देखकर दयावशहो उसकी प्रसन्नता के लिये जीवनतक त्यागदेते हैं वैसेही प्रचण्डवायुसे चलायमान बिजली से शोभित महा मेघ समूह-जगत के कल्याण के निमित्त जल बरसाने लगे ॥ ६ ॥ जैसे काम्यतपस्वीका शरीर उसी तपस्या के फलको प्राप्तहो पुष्ट होता रहताहै वैसेही ग्रीष्मसे कृशहुई पृथ्वीन वर्षाद्वारा सिंचकर पुष्टि प्राप्तकी ॥ ७ ॥ जैस कलियुगमें पापके बलसे पाखण्डीहो प्रकाश पाते रहते हैं किंतु वेदवक्ता ब्राह्मण प्रभाहीन होजाते हैं ऐसेही वर्षासमय में रात्रिको मेघोंसे नक्षत्र व ग्रह ढकगये और जुगनू प्रकाश पानेलगे ॥ ८ ॥ जैसे नित्य कर्मके उपरांत आचार्यका शब्द सुनकर उसके शिष्य ब्राह्मणगण अध्ययन करने लगते हैं—वैसेही, वर्षाके पहिले जो मेंढक मौनभावसे सोरहथे, मेघध्वनि सुनकर वह शब्द करनेलगे ॥ ९ ॥ क्षुद्रनदियें—अजितेन्द्रिय पुरुषके देह, धन और सम्पत्तिके समान उलटे मार्गसे चलनेलगीं ॥ १० ॥ पृथ्वी किसी स्थानपर तृणद्वारा हरीहोकर किसी स्थानमें छत्राक (बरसातीपेड) द्वारा छायायुक्त होकर राजाओं की सेना सम्पत्तिके समान शोभा पानेलगी॥११॥ सबखेत अन्नरूपी सम्पत्तिद्वारा किसानोंको आनन्द उपजाने लगे,—और लाभहोना दैवाधीन है ऐसे न जान अन्नके व्यापारी दुःखीहुए ॥ १२ ॥ भगवानकी सेवाकरके मनुष्य जैसे सौंदर्यता प्राप्त करते हैं वैसेही समस्त जल थल वासियों ने नवीन जलसे अभिषिक्तहो मनोहररूप धारण किया ॥ १३ ॥ पवनसे तरंगें लेताहुआ समुद्र नदियोंसे मिलकर ऐसे क्षुभित होनेलगा कि जैसे अपक्व योगीका चित्त कामवासना और विषयोंसे युक्तहो क्षुभित होजाताहै ॥ १४ ॥ जिसका चित्त भगवान् में लगाहुआहै वह विषय वासनाओंसे घिरकरभी जैसे व्यथित नहीं होता वैसेही

॥१५॥ मार्गा बभूवुः संदिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः । नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः
कालहताइव ॥ १६ ॥ लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः । स्थैर्यं न चक्रुः कामि-
न्यः पुरुषेषु गुणिष्विव ॥ १७ ॥ धनुर्वियति माहेन्द्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात् । व्यक्ते गु
णव्यतिकरेऽगुणवान्पुरुषो यथा ॥ १८ ॥ नरराजोडुपश्छन्नः स्वज्योत्स्नाराजितैर्घ-
नैः । अहंमत्याभासितया स्वभासा पुरुषो यथा ॥ १९ ॥ मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्य
नन्दञ्छिखण्डिनः । गृहेषु तप्तानिर्विण्णा यथाऽच्युतजनागमे ॥ २० ॥ पीत्वाऽपः पा
दपाः पद्भिरासन्नानात्ममूर्तयः । प्राक्क्षामास्तपसाश्रान्ता यथाकामानुसेवया ॥ २१ ॥
सरःस्वशान्तरोधस्सु न्यूषुरंगापि सारसाः । गृहेष्वशान्तकृत्येषु ग्राम्याइव दुरा-
शयाः ॥ २२ ॥ जलौघैर्निरभिद्यन्त सेतवो वर्षतीश्वरे । पाखण्डिनामसद्वादैर्वेदमा
र्गाः कलौ यथा ॥ २३ ॥ व्यमुञ्चन्वायुभिर्नुन्ना भूतेभ्योऽथामृतं घनाः । यथाऽऽशिषो
विश्पतयः कालेकाले द्विजेरिताः ॥ २४ ॥ एवं वनं तद्वर्षिष्ठं पक्वखर्जूरजम्बुमत् । गो
गोपालैर्वृतो रन्तुं सबलः प्राविशद्धरिः ॥ २५ ॥ धेनवो मन्दगामिन्य ऊधोभारेण भू-
यसा । ययुर्भगवताऽऽहूता द्रुतं प्रीत्या स्नुतस्तनीः ॥ २६ ॥ वनौकसः प्रमुदिता वन
राजीर्मधुच्युतः । जलधारा गिरेर्नादादासन्ना ददृशे गुहाः ॥ २७ ॥ क्वचिद्वनस्पति

पर्वतभी मूसलाधार वर्षा होनेपरभी दुःखित नहीं है ॥ १५ ॥ जैसे ब्राह्मणोंके अभ्यास न करने और समय बीत जानेसे सब श्रुतियें लोपहोजाती हैं वैसेही मनुष्योंके न आन जाने और तृण ढक जानेसे समस्त मार्गभी लोप होगये ॥ १६ ॥ जैसे व्यभिचारिणी स्त्री गुणवान पुरुषोंमें स्थिरता नहीं करतीं वैसेही लोकोपकारी बादलोंमें बिजली स्थिर नहींहोती ॥१७॥ गुणयुक्त प्रपंचमें निर्गुण पुरुषकी समान, गर्जित शब्दसे पूरित आकाशमें गुण (रस्सी) शून्य इन्द्र धनुष शोभापानेलगा ॥ १८ ॥ जैसे जीव अपनी चैतन्यताके द्वाराही प्रकाशमानहो अहंकारसे ढककर प्रकाश नहीं पासकता वैसेही चन्द्रमा अपनी चन्द्रिकासे प्रकाशितहोकरभी बादलोंसे ढककर प्रकाश नहीं पाता ॥ १९ ॥ घरमें बासकरने से जिनका अंतःकरण दुःखित होरहा है वह हरिभक्त विरागी पुरुष को जैसे घर में आताहुआ देखकर संतुष्ट होता है—वैसेही मोर बादलोंको आया देख अति प्रसन्नहो आनन्द प्रकाश करने लगे ॥ २० ॥ घोर तपस्या करने से जिन ऋषियों के शरीरकृश होरहे हैं वह जैसे तपस्या सिद्ध होने पर तपका श्रम दूर करन के निमित्त नानाप्रकार के उप-भोगों को भोगकर नानारूप के शरीर धारणकरते हैं, ग्रीष्म से तपेहुए सबवृक्षभी वैसही मूलद्वारा जलपानकर नानाप्रकारकी देह धारणकरतेहुए शोभाको प्राप्तहुए ॥ २१ ॥ हे राजन् ! गृहस्थाश्रम में भयानक कर्मोंका अभावनहीं है तौभी नीचमनुष्य जैसे उस में रहना अच्छाजानते हैं वैसेही सारसकभी कीच और काँटों से व्याप्त तालाबों में बासकरने लगे ॥ २२ ॥ जैसे कलि में पाख-ण्डियों के कुतर्क से वेदमार्ग नष्टहोजाताहै, वैसेही इंद्र के वर्षाकरने से जल के वेगद्वारा सब पुल नष्टहोगये ॥ २३ ॥ जैसे राजागण पुरोहितों की आज्ञानुसार समय २ पर नानाकाम्य पदार्थोंका दान करते हैं वैसेही जलयुक्त मेघ पवन से चलायमानहो प्राणियों के ऊपर अमृत बरसाने लगे ॥ २४ ॥ बन उपवन आदि इस प्रकार से समृद्धिशाली होगये और खजूर व यमुना के फल पक उठे। भगवान् श्रीकृष्णजी बलरामजी को साथले गौ और गोपगणों से घिर क्रीड़ा करनेके निमित्त बहां गये ॥ २५ ॥ गौएं थनों में दूधहोने के बोझ से बोझिलहो धीरे २ चलतीथीं; परन्तुभगवान के बुलाने से प्रीतिवशहो शीघ्रतापूर्वक चलने लगीं। चलन के समय उनके थनों से दूध टपकने लगा ॥ २६ ॥ भगवान् ने बनके चारो ओर दृष्टि डालकर देखा कि;—सबही बनवासीआनन्दित होरहे हैं, वृक्ष मधु बरसाते हैं, और पहाड़ों से जल की धारा गिररही है—तथा सबगुफाएं उस

क्रोडे गुहायांचाभिवर्षति । निर्विश्य भगवान्रेमे कन्दमूलफलाशनः ॥२८॥ दध्यो-
दनंसमानीतं शिलायांसलिलान्तिके । संभोजनीयैर्बुभुजे गोपैःसंकर्षणान्वितः ॥
॥ २९॥ शाद्वलोपरिसंविश्य चर्वतोमीलितेक्षणान् । तृप्तान्वृषान्वत्सतरान्गाश्च स्वो-
धोभरश्रमाः ॥ ३०॥ प्रावृट्श्रियंचतांवीक्ष्य सर्वभूतमुदावहाम् । भगवान्पूजयांच-
क्रे आत्मशक्त्युपबृंहिताम् ॥ ३१ ॥ एवंनिवसतोस्तस्मिन्रामकेशवयोर्व्रजे ॥ शर-
त्समभवद्व्यभ्रा स्वच्छाम्ब्वपरुषानिला ॥ ३२ ॥ शरदानीरजोत्पत्त्या नीराणिप्रकृ-
तिंययुः । भ्रष्टानामिवचेतांसि पुनर्योगनिषेवया ॥ ३३ ॥ व्योम्नोऽब्दंभूतशाबल्यं
भुवःपंकमपांमलम् । शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णेभक्तिर्यथाऽशुभम् ॥ ३४ ॥ सर्वस्वं-
जलदाहित्वा विरेजुःशुभ्रवर्चसः । यथात्यक्तैषणाःशान्ता मुनयोमुक्तकिल्बिषाः ॥
॥ ३५ ॥ गिरयोमुमुचुस्तोयं क्वचिन्नमुमुचुःशिवम् । यथाज्ञानामृतंकाले ज्ञानिनो-
ददतेनवा ॥ ३६ ॥ नैवाविदन्क्षीयमाणं जलंगाधजलेचराः । यथायुरन्वहंक्षय्यं न-
रामूढाःकुटुम्बिनः ॥ ३७ ॥ गाधवारिचरास्तापमविन्दञ्छरदर्कजम् । यथादरिद्रः
कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ॥ ३८ ॥ शनैःशनैर्जहुःपंकं स्थलान्यामंचवीरुधः ।
यथाहंममतांधीराः शरीरादिष्वनात्मसु ॥ ३९ ॥ निश्चलाम्बुरभूत्तूष्णीं समुद्रःश-
रदागमे । आत्मन्युपरतेसम्यङ् मुनिर्व्युपरतागमः ॥४०॥ केदारेभ्यस्त्वपोऽगृह्णन्क

जल के गिरने के शब्द से परिपूरित होरही हैं ॥ २७ ॥ हे महाराज!वनमें वृष्टि होने से श्रीकृष्ण जी कभी वृक्षों के तले कभी गुफा में प्रवेश कर बलरामजी के साथ कन्द, मूल और फलखाकर क्रीड़ाकरने लगे ॥ २८ ॥ भोजन के निमित्त लायहुये दही और अनका, बलदेवजी के साथ जल के निकटवालीशिलापर बैठ, साथ भोजन करनेवाले गोपों के संग भक्षण करते ॥ २९ ॥ थनमें आयनके भार से श्रमितहुई गौएं, बैल और बछड़े चाराचरके परितृप्तहो नई घासपर बैठ,आंखें मूंद कर पागुर करते थे ॥ ३० ॥ भगवान उन सबको और सबको सब समय में सुख देनेवाली वर्षा लक्ष्मी को देखकर आनंदित हुए और अपनी शक्ति से बढ़ी हुई वर्षाकी लक्ष्मी की प्रशंसा करने लग ॥ ३१ ॥ इसप्रकार से खेल कूदमें आसक्त रहकर राम और कृष्णजी इसप्रकार से व्रजमें दिन बिताने लगे । क्रमसे वर्षा ऋतुगई और शरद ऋतु आई । तब फिर आकाश में मेघन दिखाई दिया, जल निर्मल होगया और वायु ने अपनी प्रचण्डता छोड़दी ॥ ३२ ॥ जैसे भ्रष्ट योगियों के चित्त फिर योग के सेवन से स्वच्छ होजाते हैं वैसेही शरद ऋतुमें कमल उत्पन्न होने से जल निर्मल होगया ॥ ३३ ॥ जैसे श्रीकृष्णजी की भक्ति करनेसे आश्रमी मनुष्य अमंगलों से छूट जाता है; वैसेही शरत्ने—आकाशके मेघ, वर्षा की अधिकता से प्राणियों का एकत्रवास; पृथ्वीकीकीच और जलकी मलीनता को दूर करादिया ॥३४॥ जैसे पापों से छूटे हुए मुनिगणसब वासनाओंको छोड़ शांतहोकर शोभा पाते हैं वैसेही मेघ अपना सर्वस्व छोड़ श्वेत वर्ण धारणकर शोभायमानहुए॥३५॥जैसेज्ञानी पुरुष यथोचित समयमें ज्ञानामृत किसीको देते हैं किसीकोनहीं!वर्षाके व्यतीत होजानेस पहाड़भी उसीप्रकार कहीं निर्मल जल छोड़नेलगे कहीं नहीं॥३६॥जैसे मूर्खकुटुम्बी मनुष्य परमायुके प्रतिदिन क्षय होनेको नहीं जानसकते,वैसेही थोड़ेही जलमें बिहार करनेवाले जल-चर गण उस जलका नित्य कम होते नहीं जानसकते ॥ ३७ ॥ दीन दरिद्री, अजितेंद्रिय,कुटुम्बी के समान थोड़ेही जलमें बिहार करनेवाले जलचरगण शरत्काल के सूर्यके तापसे संतप्त होनलगे ॥ ३८ ॥ जैसे धीर मनुष्य आत्माके अतिरिक्त देहादिसे ममता छोड़देतेहैं वैसेही भूमि, कीच और लताओंने अपक्वता त्यागदी ॥ ३९ ॥ सबप्रकारकी क्रियाओंसे निवृत्त होकर मुनि जैसे वेदपाठ भी परित्याग करदेतेहैं, शरत्कालके आनेसे जल निश्चल होकर समुद्रने वैसेही शांतिभाव धारण

केदारास्तुः सेतुभिः। यथाप्राणैःस्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेनयोगिनः ॥ ४१ ॥ शरदर्कांशुजांस्तापान्भूतानामुडुपोऽहरत्। देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम् ॥ ४२ ॥ खमशोभतनिर्मेघं शरद्विमलतारकम्। सत्त्वयुक्तंयथाचित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥ ४३ ॥ अखण्डमण्डलोव्योम्नि रराजोडुगणैःशशी। यथायदुपतिःकृष्णो वृष्णिचक्रावृतोभुवि ॥ ४४ ॥ आश्लिष्यसमशीतोष्णं प्रसूनवनमारुतम्। जनास्तापञ्जहुर्गोप्यो नकृष्णहृतचेतसः ॥ ४५ ॥ गावोमृगाःखगानार्यः पुष्पिण्यःशरदाऽभवन्। अन्वीयमानाःस्ववृषैः फलैरीशक्रियाइव ॥ ४६ ॥ उदहृष्यन्वारिजानि सूर्योत्थाने कुमुद्विना। राज्ञातुनिर्भया लोका यथादस्यून्विनानृप ॥ ४७ ॥ पुरग्रामेष्वाग्रयणैरैन्द्रियैश्च महोत्सवैः। बभौभूःपक्वसस्याढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ॥ ४८ ॥ वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान्प्रपेदिरे ॥ वर्षरुद्धा यथा सिद्धाःस्वपिण्डान्काल आगते ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे विंशोऽध्याय ॥ २० ॥

श्रीशुक उवाच ॥ इत्थंशरत्स्वच्छजलंपद्माकरसुगन्धिना। न्यविशद्वायुनावातं सगोगोपालकोऽच्युतः ॥ १ ॥ कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्गद्विजकुलघुष्टसरःसरिन्महीध्रम्। मधुपतिरवगाह्यचारयन्गाः सहपशुपालबलश्चुकूजवेणुम् ॥२॥ त

किया ॥ ४० ॥ जैसे योगी लोग इन्द्रियमार्गको रोक उस मार्गसे जातेहुये प्राणको रोक रखतेहैं वैसेही किसानोंने मेंड बांधकर खेतोंके भीतरका जल रोकदिया ॥ ४१ ॥ जैसे विद्यासे देहाभिमान का और भगवान् श्रीकृष्णजी के दर्शनसे गोपियोंका ताप नाश होताहै वैसेही रात्रिका चन्द्रमा शरत्काल के सूर्यके तापसे.सतसहुए प्राणियोंका ताप हरनेलगा ॥ ४२ ॥ जैसे सत्वगुणात्मकी का चित्त वेदमार्गको देखकर शोभा पाताहै उसीभांति आकाश, शरत्के आनेसे निर्मलहो तारोंको प्रकाशितकर रात्रिके समय शोभायमानहुआ, ॥४३॥ जैसे श्रीकृष्णजी यदुकुलसे परिवृतहो अपना चक्र धारणकर शोभापावें, उसीप्रकार चन्द्रमा आकाशमें ताराओं से घिर अखण्ड मण्डल द्वारा प्रकाशित होनेलगा ॥ ४४ ॥ जैसे श्रीकृष्णजीका आलिंगनकर गोपियोंका संताप दूरहोजाता वैसेही फूलेहुए बनकी सुगन्धित, समशीतोष्ण वायुका सेवनकर मनुष्योंने अपना संताप दूरकिया ॥ ४५ ॥ जैसे भगवदाराधन की क्रियायें आराधन करनेवालेकी इच्छा बिना भी सफल होजाती हैं वैसेही इच्छा न होनेपरभी शरत्कालमें स्वप्रियोंके संकपूर्वक अनुगमन करनेसे गायें मृगी, पक्षिणी और स्त्रियें गर्भिणी होगईं ॥ ४६ ॥ हेराजन्! जैसे राजाके उदयहोनसे चोरके अतिरिक्त सब मनुष्योंको प्रसन्नता होतीहै वैसेही सूर्यके उदय होनेसे कुमुदके अतिरिक्त और जलसे.उत्पन्नहुए फूल खिलउठे ॥ ४७ ॥ ग्राम और नगरोंमें नवीन अन्नके भोजनके निमित्त वैदिक तथा इन्द्रियों के सुखकारक लौकिक महोत्सव होनेलगे। हरिके दो अंशोंद्वारा पृथ्वी अत्यन्त शोभाको प्राप्तहुई ॥४८॥ ऋषि मन्त्र और योगादिके प्रभावसे सिद्धपुरुष आयु द्वारा रुककर समय आनेपर जैसे योगादि से प्राप्तहुये, देवादि शरीरोंको प्राप्त होते हैं, वैसेही वणिमें मुनि, राजा और ब्रह्मचारी जो वर्षा के कारण अपने २ स्थानोंमें रुके हुएथे इससमय बाहर हो २ कर अपने २ कार्योंमें लगे ४९॥

इतिश्रीमद्भा० महा० दशम० सरलाभाषाटीकायांविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन्! शरत्के आनेसे बनका जल स्वच्छ होगया और वायु कमलों के संसर्ग से सुगंधित होकर चलनेलगी; भगवान् ने गाय तथा गोपाल गणोंको साथले उस बनमें प्रवेशकिया ॥ १ ॥ फूलेहुये वृक्षोंकी श्रेणी के ऊपर मतवाले भौंरे और पक्षी बैठेहुये शब्द करतेथे, उनके शब्द से बनके सरोवर, नदी और पर्वत सभी प्रतिध्वनित होरहे थ। भगवान् ने उस बनमें

तद्व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् । काश्चित्परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ॥ ३ ॥ तद्वर्णयितुमारब्धाः स्मरन्त्यः कृष्णचेष्टितम् । नाशकन्स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ॥ ४ ॥ बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् । रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन्गोपवृन्दैर्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः ॥ ५ ॥ इति वेणुरवं राजन्सर्वभूतमनोहरम् । श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेभिरे ॥ ६ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः । वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टं यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥ ७ ॥ चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्जमालाऽनुपृक्तपरिधानविचित्रवेशौ । मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां रङ्गे यथा नटवरौ क्वच गायमानौ ॥ ८ ॥ गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुर्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् । भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः ॥ ९ ॥ वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद्देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि । गोविन्दवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥ १० ॥ धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या

प्रवेशकर बलराम जी और अन्य बालकों के साथ गौ चराते २ वंशी बजाई ॥ २ ॥ श्रीकृष्णजी के उस वेणुगीत को सुनकर गोपियों के मनमें कामदेव उत्पन्न हुआ; उनमें से कोई २ एकांत में अपनी सखियों के निकट उनके गुणका वर्णन करनेलगीं ॥ ३ ॥ परन्तु वर्णन करतेही उनके चरित्रोंका स्मरण होने से कामदेव के वेग के कारण उनका चित्त चंचल होउठा अतएव उनका मन फलीभूत न हुआ ॥ ४ ॥ वे मनमें विचारने लगीं कि नटवर श्रीनंद नंदनने अधरा मृतसे वंशीके छिद्रोंको पूर्णकर श्रीवृन्दावन में प्रवेश किया । उनके मस्तक में मोरपंखका बनाहुआ मुकुट, दोनो कानों में कनर के फूल शरीर में सुवर्ण के रंगकासा पीतांबर और गलेमें वैजयन्ती माला शोभाय-मान होरही थी । वृन्दावन उनके पदचिह्नों से चिह्नित हो रति उत्पन्न करने वाला होउठा ॥ ५ ॥ हे राजन् ! सब प्राणियों को प्यारी बांसुरी की ध्वनि सुनकर समस्त व्रजनारियें इस प्रकार से वर्णन करते २ क्षण २ में परमानंद मूर्त्ति भगवान् का आलिंगन करने लगीं ॥ ६ ॥ गोपियों ने कहाकि हे सखियों ! इस समय व्रजेश्वर राम कृष्णदोनों भ्राताओं ने अपने साथियों के साथ पशुओं को ले बनमें प्रवेश किया है । उनके मुखमें बांसुरी लगी रहती है और वह सुन्दर कटाक्ष चलाया करते हैं जिन्हों ने इनदोनों मुखार विंदों के मकरंद का पानकिया है उन्हीं के नेत्र सफल हैं और दूसरे के नहीं ॥ ७ ॥ यह सुनकर दूसरी व्रजनारी ने कहाकि—अहो ! गोपोंका कैसा बडा पुण्य है ! कि उनकी सभाके बीचमें राम और कृष्ण नील और पीतवस्त्रों से विचित्र वेश धारणकर अत्यंत शोभा से विराजते हैं । उनके बहनील और पीतवस्त्र आमकी कोंपल, मोरपिच्छ, उत्पल और कमलोंकी माला धारण करने से और भी शोभायमान होरहे हैं ॥ ८ ॥ दूसरी गोपी ने कहाकि-हे गोपियो ! इस वंशी ने ऐसा क्या पुण्य कियाथा ! देखो—श्रीकृष्णजी के ओअधरामृत केवल गोपिकाओंही के भोगके योग्य हैं इनका रसमात्र शेष रखकर अकेलेही सबका भोग करती है । जिसके जलसे इसकी पुष्टिहुई थी वह सब नदियें इसके अपूर्व सौभाग्यको देखकर खिलेहुये कमलों के रूप से रोमांचित होरही हैं । और वृक्ष अपने वंशमें पुण्यात्माको जन्मादेख रसके मिषसे ऐसे आंसूबहा-रहे हैं कि जैसे कुलवृद्ध अपने वंशमें भगवद्भक्तको देख पुलकित आनंदाश्रु गिराते हों ॥ ९ ॥ किसी २ स्त्री ने कहाकि—हे सखि ! देखो, देखो, ! श्रीवृन्दावन श्रीकृष्णजी के चरण कमलों के संसर्ग से कैसी शोभापाता है ! श्रीकृष्णजी की मुरली ध्वनिको सुनकर मोर मतवाले होकर नाचरहे हैं । उनके नृत्यको देखकर बनके दूसरे समस्त प्राणी सब कामनाएं छोड़कर इकट्ठे हो हो पर्वतकी तराईमें दौडरहे हैं । सुखमय वृन्दावन पृथ्वीकी कीर्त्तिका विस्तार करता है ॥ १० ॥ और २ स्त्रियों ने

नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम् । आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः पूजां दधुर्विरचि-
तां प्रणयावलोकैः ॥ ११ ॥ कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं श्रुत्वा च तत्क्वणितवे-
णुविचित्रगीतम् । देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनी-
व्यः ॥ १२ ॥ गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः । शा-
वाः स्नुतस्तनपयःकवलाः स्म तस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाऽश्रुकलाः स्पृशन्त्यः ॥१३॥
प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् । आरुह्य ये
द्रुमभुजान्रुचिरप्रवालाञ्छृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥ १४ ॥ नद्यस्तदा
तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः । आलिंगनस्थगितमूर्मिभुजै-
र्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥ १५ ॥ दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून्सह रामगो-
पैः संचारयन्तमनुवेणुमुदीरयन्तम् । प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः सख्युर्व्यधात्स्व-
वपुषाम्बुद आतपत्रम् ॥ १६ ॥ पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जरागश्रीकुंकुमेन दयिता-
स्तनमण्डितेन । तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम्
॥१७॥ हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो यद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः । मानं तनोति
सहगोगणयोस्तयोर्यत्पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः ॥ १८ ॥ गागोपकैरनुवनं न

कहाकि—हे सखि ! हरणियें पशुयोनि में उत्पन्न तोहुई हैं परन्तु यह भी मुरली की ध्वनि सुनकर हिरणों के संगत एकत्र होकर विचित्र वेशधारी श्रीकृष्णजी की ओर प्रेमकी दृष्टिसे देखकर सन्मान करती हैं ॥ ११ ॥ दूसरी गोपी ने कहाकि—हे गोपीगण ! श्रीकृष्णजी के रूप व चरित्रको देखकर किस स्त्रीको आनंद उत्पन्न न होगा ? उनको देख तथा उनकी बंशीकी ध्वनि सुनकर देवनारियें भी प्रियतम की गोद में गमन करते हुये कामदेव के वेगसे व्याकुलहो उठती हैं । उस समय उनके बालों के जूडे से फूल गिरने लगते हैं और कमर बंधन ढीला पडजाता है ॥ १२ ॥ सबगायें कान उठायेहुये, श्रीकृष्णजी के मुखसे निकले गीतामृतका पानकर मनमें नेत्रोंद्वारा उनका आलिंगनकर आंसू भरेहुये नेत्रों से देखती हुईखडी रहती हैं। दूधको पीतेहुये बछडे भी यदिकान उठाकर उस गीतामृतका पानकरते हैं तो स्तनों से निकले हुये दूधका ग्रास उनके मुहहीमें रहजाता है और नेत्र भी एक प्रकार का अश्रुधारा से परिपूर्ण होजाते हैं ॥ १३ ॥ हे सखि ! इस वनमें जो पक्षी हैं वह मुनिहोने योग्य हैं, क्योंकि जैसे मुनिगण भगवान्का दर्शन करते हैं वैसेही यह भी मनोहर पत्तोंयुक्त वृक्षोंपर बैठकर दूसरी बातोंको छोड, आंखे बंदकिये श्रीकृष्णजी के सुंदर वेणु गीतको सुनाकरते हैं ॥ १४ ॥ सचेतनों की बातदूर रही; श्रीकृष्णजी के गीत सुनकर सब नदियें भी भंवर पडने के मिषसे कामका वेग प्रकाश करती है। कामके वेगसे उनका वेग न्यून होजाता है। वह तरङ्ग स्वरूप भुजाओं से कमलों को भेटमें ले, आलिंगन के साथ आच्छादन करती हुई श्री कृष्णजी के चरणोंको धारण करती हैं ॥ १५ ॥ बलराम और गोपालों समेत अपने सखाको बंशी बजाते २ व्रजके पशुओंको धूपमें चराते देख मेघ मस्तकों के ऊपर उदयहोते हैं और प्रेमके बशीभूतहो पुष्पकी समान नन्हीं २ बूंदें बरसाय अपनी देहों से उनकी छत्ररचना करते है ॥१६॥ भीलनियों कोभी धन्य है; क्योंकि जोकेसर स्त्रियों के स्तन में लगा रहनके कारण श्रीकृष्णजी के चरण कमलोंमें लगता रहता है वह श्रीकृष्णजी के वनमें बारंबार भ्रमण करने के कारण चरणों से छूटकर तृणोंमें लगता है उसी केसरको देखकर कामदेव से व्याकुलहो भीलनियें उसीको शरीर और कुचोंमें मलकर कामदेव की व्यथाको नाश करती हैं ॥ १७ ॥ हे सखियो ! देखो यह गोवर्धन पर्वत श्रीकृष्णजी के भक्तों में श्रेष्ठ है क्योंकि राम कृष्णको देखकर यह आनंदितहो अन्न, सुंदरतृण, गुफा, कंद, मूल द्वारा उन श्रीकृष्णजी की पूजाकरता है ॥ १८ ॥ हे सखीगण ! देखो

पतोऽस्फुरवेणुरवैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः। अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥ १९ ॥ एवंविधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः। वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥२१॥

श्रीशुक उवाच ॥ हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः। चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥ १ ॥ आप्लुत्याम्भसि कालिन्द्या जलान्ते चोदितेऽरुणे। कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम् ॥ २ ॥ गन्धैर्माल्यैः सुरभिभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः। उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतण्डुलैः ॥ ३ ॥ कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि। नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः। इति मन्त्रं जपन्त्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः ॥ ४ ॥ एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः। भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नन्दसुतः पतिः ॥ ५ ॥ उषस्युत्थाय गोत्रैः स्वैरन्योन्याबद्धबाहवः। कृष्णमुच्चैर्जगुर्यान्त्यः कालिन्द्यां स्नातुमन्वहम् ॥ ६ ॥ नद्याः कदाचिदागत्य तीरे निक्षिप्य पूर्ववत्। वासांसि कृष्णं गायन्त्यो विजह्रुः सलिले मुदा ॥ ७ ॥ भगवांस्तदभिप्रेत्य कृष्णो योगेश्वरेश्वरः। वयस्यैरावृतस्तत्र गतस्तत्कर्मसिद्धये ॥ ८ ॥ तासां वासांस्युपादाय नीपमारुह्य सत्वरः। हसद्भिः प्रहसन्बालैः परिहासमुवाच ह ॥ ९ ॥ अत्रागत्याबलाः कामं स्वं स्वं वासः प्रगृह्यताम्। सत्यं ब्रवाणि नो नर्म यद्यूयं व्रतकर्शिताः ॥ ॥ १० ॥ न मयोदितपूर्वं वा अनृतं तदिमे विदुः। एकैकशः प्रतीच्छध्वं सहैवोत

क्या आश्चर्य का विषय है ! कि राम, कृष्ण पैरके बांधनेवाली रस्सियें और पाश लेकर गोपाल गणों के साथ गायोंको एक वनसे दूसरे वनमें लेजाते है, इनके मधुर वेणुनादको सुनकर जीवमात्र निश्चल और वृक्षआदि पुलकित होजाते हैं ॥ १९ ॥ भगवान् ने वृन्दावन में घूम २ कर जो २ क्रीड़ा कीथी गोपियें उन सबका इस प्रकार से वर्णन कर २ तन्मयताको प्राप्त हुईं ॥ २० ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांएकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! हेमन्तकाल के प्रथम मास में नन्द व्रजकी कुमारियोंने हविष्यान्नभोजन कर कात्यायनी देवी के पूजनका व्रतधारण किया ॥ १ ॥ हेराजन् ! सबकुमारियें अरुणोदय होतेही कालिंदी के जल में स्नानकर जल के निकट बालूकी देवी की मूर्ति बनायसुगंधि गंध,माला, नैवेद्य, धूप, दीप, श्रेष्ठ २ सामग्रियों और ताम्बूल द्वारा पूजाकरतीं ॥ २ । ३ ॥ और यह मन्त्र पढ़तीं कि—हेकात्यायनि ! हेदेवि !.नन्दगोपके पुत्र को हमारा स्वामी करदो; आप को हम नमस्कार करती हैं ॥ ४ ॥ "कृष्णही हमारे पति होवें"इस इच्छासे श्रीकृष्णजीमें चित्तसमर्पण कर कुमारियों ने इस प्रकार से एक महीने तक व्रतका आचरण कर भद्रकाली की पूजाकी ॥५॥ वह प्रतिदिन प्रातःकाल उठ, एक दूसरे का हाथ पकड कालिंदी में स्नानकरने को जाते समय अपने २ नामों सहित कृष्णजी का गुण गातीरहतीं ॥ ६ ॥ एक दिन उन सब व्रजकुमारियों ने नदी में आयकर और दिनों की समान किनारे पर अपने २ वस्त्रधर कृष्णजी के गुणों का गान किया व आनन्द पूर्वक जलक्रीड़ाकरने का आरम्भकिया ॥७॥ योगेश्वरों के ईश्वर भगवान कृष्णजी उनकी कामना को जान, उनके कर्मों का फल देने के निमित्त, साथियों को साथले उस स्थानपर आये और उन के सबवस्त्रों को हरणकर कदम्ब के वृक्षपर चढ़ हँसनवाले बालकों के साथ हँसते हँसते परिहास करके कहने लगे कि—॥ ८ । ९ ॥ हे अबलागण ! तुमइस स्थान परआय प्रसन्नता पूर्वक अपने २ वस्त्रों को लो; मैं सत्यकहताहू–परिहास नहीं करता क्योंकि तुम व्रतकरके अत्यंत दुबली होरहीहो ॥ १० ॥ यहसब बालक जानते हैं कि मैं मिथ्या नहीं कहता । हेसर्वसुमध्यमा !

सुमध्यमाः ॥११॥ तस्यतत्क्ष्वेलितंदृष्ट्वागोप्यः प्रेमपरिप्लुताः । व्रीडिताः प्रेक्ष्यचा न्योऽन्यंजातहासानिर्ययुः॥१२॥एवंब्रुवतिगोविन्देनर्मणाऽऽक्षिप्तचेतसः। आकण्ठ मग्नाःशीतोदेवेपमानास्तमब्रुवन् ॥ १३ ॥ माऽनयंभोः कृथास्त्वांतुनन्दगोपसुतंप्रि यम् । जानीमोऽङ्गव्रजश्लाघ्यंदेहिवासांसिवेपिताः ॥ १४ ॥ श्यामसुन्दरतेदास्यः करवामतवोदितम् । देहिवासांसिधर्मज्ञनोचेद्राज्ञेब्रुवामहे ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवा च । भवत्योयदिमेदास्यो मयोक्तंवाकरिष्यथ । अत्रागत्यस्ववासांसि प्रतीच्छन्तु शुचिस्मिताः ॥ १६ ॥ ततोजलाशयात्सर्वा दारिकाःशीतवेपिताः । पाणिभ्यां यो निमाच्छाद्य प्रोत्तेरुःशीतकर्शिताः ॥ १७ ॥ भगवानाहतावीक्ष्य शुद्धभावप्रसादि तः । स्कन्धेनिधायवासांसि प्रीतःप्रोवाचसस्मितम् ॥ १८ ॥ यूयंविवस्त्रायदपोधृ तव्रता व्यगाहतैतत्तदुदेवहेलनम् । बद्ध्वाञ्जलिंमूर्ध्न्यपनुत्तयेंऽहसः कृत्वानमोऽधोव सनंप्रगृह्यताम् ॥ १९ ॥ इत्यच्युतेनाभिहितंव्रजाबला मत्वाविवस्त्राऽऽप्लवनं व्रतच्यु तिम् । तत्पूर्तिकामास्तदशेषकर्मणां साक्षात्कृतंनेमुरवद्यमृग्यतः ॥ २० ॥ तास्तथा वनताद्दृष्ट्वा भगवान्देवकीसुतः । वासांसिताभ्यः प्रायच्छत्करुणस्तेन तोषितः ॥ ॥ २१ ॥ दृढंप्रलब्धास्त्रपयाचहापिताः प्रस्तोभिताःक्रीडनवच्चकारिताः । वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमुं तानाभ्यसूयन् प्रियसंगनिर्वृताः ॥ २२ ॥ परिधायस्ववासां सि प्रेष्ठसंगमसज्जिताः । गृहीतचित्तानो चेलुस्तस्मिँल्लज्जायितेक्षणाः ॥ २३ ॥ ता-

एक २ आवो चाहे सब एकत्रितहोकर आवो, आकर अपने वस्त्र लेजावो ॥ ११ ॥ उनके इस परिहास करने को देखकर गोपियें विह्वल और लज्जितहो परस्पर एक दूसरे का देखकर हंसनेलगीं—जलसे तीरमें न आसकीं ॥ १२ ॥ गोपियों का चित्त क्रीड़ामें आसक्तथा, ठंडे जल में कण्ठतक डूबे रहनेसे उनका शरीर कांपनेलगा । श्रीकृष्णजीके बारम्बार ऐसा कहनेपर वह कां-पते कांपते कहनेलगीं कि— ॥१३॥ हे कृष्ण ! अन्याय न करो आप नन्दगोप के पुत्रहो तमको हम भलीभांति जानती हैं । हम जानतीहैं कि व्रजमें तुम सबसे श्रेष्ठहो । हमारे वस्त्र देदो हम कांप रहीहैं ॥ १४ ॥ हेश्यामसुन्दर ! हम तुम्हारी दासीहैं । आप जो आज्ञाकरें वहीकरे । हे धर्मज्ञ ह-मारे वस्त्र देदो नहींतो हम राजासे जाकर कह देंगी ॥१५॥ श्रीभगवान्ने कहा कि—हेसुहासिनी गण ! यदि तुम हमारी दासीहो और मेरी आज्ञाका प्रतिपालनभी करना चाहतीहो तोला मैं आज्ञा करेताहूं कि—इसस्थानपर आकर अपने वस्त्र लेवो ॥ १६ ॥ ऐसा न करने से मैं वस्त्र न दूंगा, वृद्ध राजा हमरा क्या करेगा ? स्त्रियें शीतसे कष्ट पारहीथीं, वह अन्तमें दोनों हाथोंसे अंगको ढककर शीतसे कांपते २ जलसे तीरपर आईं ॥ १७ ॥ भगवान् उनको विशुद्ध भावसे खड़ाहुआ और उनके अक्षत अंगको देखकर प्रसन्नहुए और सब वस्त्रों को कन्धेपर रख हंसते२ बोले कि— ॥ १८ ॥ तुमने व्रतका आचरण करतेहुये नंगी होकर जलमें स्नान कियाहै । इससे निश्चयही देवता का अपराध हुआहै । अतएव इस पापको दूर करनेके निमित्त मस्तकपर हाथजोड़ मस्तक नवाय नमस्कार कर वस्त्रलो, ॥ १९ ॥ हे राजन् ! व्रजांगनाओंने, भगवान् का यह वचन सुन, निश्चयही व्रत भंग होगा जान उसकी परिपूर्णताकी कामनाकर उस व्रतके तथा और नानाप्रकारके कर्मोंके फल स्वरूप उन श्रीकृष्णजीको प्रणाम किया उन्होंने विचार किया कि यही पापोंके नाश करनेवाले हैं ॥ २० ॥ भगवान् श्रीकृष्णजी उनको इस प्रकार से नम्रहुआ देख संतुष्टहुए और कृपापूर्वक वस्त्र देदिये ॥ २१ ॥ हेराजन् ! श्रीकृष्णजी ने उन व्रजकुमारियों को ठगा, निर्लज्ज किया, उपहास किया, वस्त्रहरण किये—अधिकक्या कठपुतलीकी समान नचाया तोभी उन स्त्रियों ने उनपर दोषारोपण न किया; क्योंकि प्यारे के संग वह आनन्द में मग्नहोगईथीं ॥ २२ ॥ हेराजन् ! वस्त्र पहिनकरभी वहसब स्त्रियें वहां से न चलसकीं; क्योंकि प्यारे के संगम से वशीभूतहोकर उनका

संविज्ञाय भगवान् स्वपादस्पर्शकाम्यया। धृतव्रतानां संकल्पमाह दामोदरोऽब-
लाः ॥ २४ ॥ संकल्पोविदितःसाध्व्यो भवतीनांमदर्चनम्। मयाऽनुमोदितः सोऽ-
सौसत्यो भवितुमर्हति ॥ २५ ॥ नमय्यावेशितधियां कामःकामायकल्पते। भर्जि
ताःक्वथिताधानाप्रायो बीजायनेष्यते ॥ २६ ॥ याताऽबलाव्रजंसिद्धा मयेमारंस्य
थक्षपाः। यदुद्दिश्यव्रतमिदं चेरुरार्यार्चनंसतीः ॥ २७ ॥ श्रीशुकउवाच। इत्यादि
ष्टाभगवता लब्धकामाःकुमारिकाः। ध्यायन्त्यस्तत्पदाम्भोजं कृच्छ्रान्निर्विविशुर्व्र-
जम् ॥२८॥ अथगोपैःपरिवृतो भगवान्देवकीसुतः। वृन्दावनाद्गतोदूरं चारयन्गाः
सहाग्रजः ॥ २९ ॥ निदाघार्कातपेतिग्मे छायाभिःस्वाभिरात्मनः। आतपत्रायि-
तान्वीक्ष्य द्रुमानाहव्रजौकसः ॥ ३० ॥ हेस्तोककृष्णहेअंशो श्रीदामन्सुबलार्जुन ॥
विशालर्षभ तेजस्विन्देवप्रस्थ वरूथप ॥ ३१ ॥ पश्यतैतान्महाभागान्परार्थैकान्तजी
विनः। वातवर्षातपहिमान्सहन्तो वारयन्तिनः ॥ ३२ ॥ अहोएषांवरंजन्म सर्वप्रा-
ण्युपजीवनम्। सुजनस्येवयेषांवै विमुखायान्तिनार्थिनः ॥ ३३ ॥ पत्रपुष्पफलच्छा
यामूलवल्कलदारुभिः। गन्धनिर्यासभस्मास्थितोक्मैः कामान्वितन्वते ॥ ३४ ॥
एतावज्जन्मसाफल्यंदेहिनामिहदेहिषु। प्राणैरर्थैर्धियावाचाश्रेयआचरणंसदा
॥ ३५ ॥ इति प्रवालस्तबकफलपुष्पदलोत्करैः। तरूणांनम्रशाखानांमध्यतोयमुनां
गतः ॥ ३६ ॥ तत्रगाः पाययित्वाऽपः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः। ततोनृपस्वयंगो

चित्त भगवान की ओर खिचगयाथा; इसहीकारण वह श्रीकृष्णजीकी ओर सलज्जभावसे देखने लगीं ॥ २३ ॥ इन्होंने मेरे चरणस्पर्श की कामनासेही व्रतधारण किया है—उनकी इसइच्छाको भगवान ने जानकर कहा कि– ॥ २४ ॥ हसाध्वी स्त्रियो! तुमने जिस संकल्प से यह व्रत किया उस को मैं जानताहूं और स्वीकारभी करताहूं। अतएव उसका पूर्ण होना उचित है ॥२५॥ जिस का चित्त मुझमें लगाहुआ है-उसकी इच्छा पूर्ण होजाने पर फिर उसका फल नहीं भोगनापड़ता, भुनाहुआ व औटाहुआ बीज दूसरे बीज को नहीं उत्पन्न करसकता ॥ २६ ॥ हे अबलाओ! तुम व्रज में जाओ; तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। हे सतीगण! आगामी रात्रियों में तुममेरे साथ विहार करसकोगी। क्योंकि यही कामना करके तुमने देवी का व्रत किया है ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हेराजन्! कृतार्थहुई गोपियें भगवान की इस आज्ञा को पाय उनके चरणकमलों की चिंता करते २ अतिकष्ट से व्रज में आईं ॥ २८ ॥ अनन्तर भगवान् देवकीनन्दन—बलदेवजी समेत गोपों को संगले गौ चराते २ वृन्दावन से दूर निकल गये ॥ २९ ॥ वहां ग्रीष्म की प्रचण्ड धूप से वृक्षों को अपने मस्तकके ऊपर छाते की समानछायाकरते देख व्रजवासियों से बोले कि ॥ ३० ॥ हे स्तोककृष्ण! हे अंशु! हे श्रीदामन्! हे सुबल! हेअर्जुन! हे विशाल! हे वृषभ! हे ओजस्विन्! हे देवप्रस्थ! हे वरूथप! ॥ ३१ ॥ इनसब महाभाग वृक्षों को देखो; यह दूसरे के स्वार्थ के निमित्त जीवित होरहे हैं। देखो—स्वयं वात, वर्षा, धूप और शीत सहनकर हमारी सबकी रक्षाकरते हैं ॥ ३२ ॥ अहो! इनका जन्म अत्यन्तही श्रेष्ठ है। यहसब प्राणियों कोजीविका देते हैं। दानी मनुष्य के निकट से याचककी समान, इन के निकट से प्राणिगण कभी भी विमुखनहीं होते ॥ ३३ ॥ यहपत्र, फूल, फल, छाया, मूल, छाल, गोंद,काठ,भस्म, अस्थि, कोंपल आदि से सबकी कामना पूर्ण करते हैं ॥ ३४ ॥ प्राणियों में उन्हीं प्राणियों का जन्म सफल है कि-जो प्राण, धन और वाक्य द्वारा सबका कल्याण करते हैं ॥ ३५ ॥ हेराजन्! इस प्रकार से प्रशंसा करतेहुए कोंपल, गुच्छक, फल, फूल और पत्तों के बोझ से लदीहुई डालियों के बीच में होतेहुए भगवान् यमुना तटपर पहुँचे ॥ ३६ ॥ महाराज! गोपगणों ने उस स्थान में अतिस्वच्छ

पः कामंस्वादुगपर्जलम् ॥ ३७ ॥ तस्याउपवनेकामंचारयन्तः पशून्नृप । कृष्णरामावुपागम्यक्षुधार्त्तादमब्रुवन् ॥ ३८ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

गोपा ऊचु ॥ रामराममहावीर्यकृष्णदुष्टनिबर्हण । एषावैबाधतेक्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इतिविज्ञापितोगोपैर्भगवान्देवकीसुतः । भक्तायाविप्रभार्यायाः प्रसीदन्निदमब्रवीत् ॥ २ ॥ प्रयातदेवयजनंब्राह्मणाब्रह्मवादिनः । सत्रमाङ्गिरसंनामह्यासतेस्वर्गकाम्यया ॥ ३ ॥ तत्रगत्वौदनंगोपायाचतास्मद्विसर्जिताः । कीर्तयन्तोभगवतआर्यस्यममचाभिधाम् ॥ ४ ॥ इत्यादिष्टाभगवतागत्वाऽयाचन्तेतथा । कृताञ्जलिपुटाविप्रान्दण्डवत्पतिताभुवि ॥ ५ ॥ हेभूमिदेवाः शृणुतकृष्णस्यादेशकारिणः । प्राप्ताञ्जानीतभद्रंवोगोपान्नोरामचोदितान् ॥ ६ ॥ गाश्चारयन्तावविदूरओदनंरामाच्युतौवोलषतोबुभुक्षितौ । तयोर्द्विजाओदनमर्थिनोर्यदिश्रद्धाचवोयच्छतधर्मवित्तमाः ॥ ७ ॥ दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सौत्रामण्याश्चसत्तमाः । अन्यत्रदीक्षितस्यापिनान्नमश्नन्हिदुष्यति ॥ ८ ॥ इतितेभगवद्याच्ञांशृण्वन्तोऽपिनशुश्रुवुः । क्षुद्राशाभूरिकर्माणोबालिशावृद्धमानिनः ॥ ९ ॥ देशः कालः पृथग्द्रव्यंमन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः । देवतायजमानश्चक्रतुर्धर्मश्चयन्मयः ॥ १० ॥ तंब्रह्मपरमंसाक्षाद्भगवन्तमधोक्षजम् । मनुष्यदृष्ट्यादुष्प्रज्ञामर्त्यात्मानोनमेनिरे ॥ ११ ॥ ननतइतिप्रोचुर्नेतिचपरन्तप । गोपानिराशाः प्रत्येत्यतथोचुः कृष्णरामयोः

पवित्रजल गौओं को पिलाय आपभी पान किया ॥ ३७ ॥ कालिंदीकेवनमें इच्छानुसार गाय चराते २ भूखसे व्याकुलहोकर गोपगण–श्रीकृष्णजी व बलरामजीके निकट जाय यह वचन बोले ॥ ३८ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभ षाटीकायांद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

गोपों ने कहा कि–हेराम ! हेमहावीर्यराम ! हेदुष्टदमनश्रीकृष्ण ! हम भूख से दुःख पारहे हैं इस के दूरकरने का आपको प्रयत्न करना चाहिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हेराजन् ! गोपों के इस प्रकार कहने पर श्रीकृष्णजी ने, अपना भक्त द्विजनारियों पर कृपा करने की इच्छा से यह कहा कि–॥ २ ॥ तुम देवयज्ञ में जाओ, वेदवेत्ता ब्राह्मणोंने स्वर्गकी कामनाकर आंगिरस नामक यज्ञका आरम्भ कियाहै ॥ ३ ॥ हेगोपगण ! मैं तुमको भेजता हूं । तुम उस स्थानमें जाकर भगवान् बलदेवजी और मेरा नाम लेकर अन्न मांगना ॥ ४ ॥ गोपगणोंने भगवान्की इस आज्ञाको पाय उस स्थान में जाय,पृथ्वीपर गिर हाथजोड़ ब्राह्मणोंसे अन्न मांगा ॥ ५ ॥ गोपोंनेकहा कि–हेब्राह्मणगणो आपका कल्याणहो सुनो, हम श्रीकृष्णजीके भेजेहुए आयेहैं, हम गोपोंको रामने आपके समीप भेजाहै, ॥ ६ ॥ राम और कृष्ण इस स्थानके निकटही गौ चराते २ भूखसे कातर हुएहैं, उनकी इच्छाहै कि–आपके अन्नका भोजन करें । हेधर्मज्ञ श्रेष्ठ ब्राह्मणगण ! यदि आपकी श्रद्धाहो तो आप अन्न दवें,वह प्रार्थना करते हैं ॥ ७ ॥ हेसाधुओं ! जबसे दीक्षा आरम्भहो, तबसे अग्निष्टोमाका पशुमरे उसके पहिले दीक्षित अन्न खानेका दोषहै परन्तु पशु मरनेके उपरांत नहीं तैसेही सौत्रामणि नामक यज्ञ बिना दीक्षितका अन्न खानेमें कोइदोष नहीं ॥ ८ ॥ हेराजन्! वह सब ब्राह्मण इसप्रकार कृष्णजीकी प्रार्थनाको सुनी अनसुनी करगए । साधारण स्वर्गादिकी आशा करके–वह क्लेशकारक कर्मोंको करतेथे और अपनेको बड़ाज्ञानी मानतेथे । इसहीकारण भगवान्की आज्ञाको सुनकर उस आज्ञा का प्रतिपालन न किया ॥ ८ ॥ उन भूखे ब्राह्मणोंने–देश, काल, भिन्न २ पदार्थ, मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विक् अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्मजिसके स्वरूपहैं उन्हीं भगवान् परब्रह्मको सामान्य पुरुष जानकर सन्मान न किया ॥ ११ ॥ हेपरंतप ! जब उन्होंने

॥१२॥ तदुपाकर्ण्य भगवान्प्रहस्य जगदीश्वरः । व्याजहार पुनर्गोपान्दर्शयँल्लौकि
कीं गतिम् ॥ १३ ॥ मां ज्ञापयत पत्नीभ्यः ससंकर्षणमागतम् । दास्यन्ति काममन्नं वः
स्निग्धा मय्युषिता धिया ॥ १४ ॥ गत्वाऽथ पत्नीशालायां दृष्ट्वाऽऽसीनाः स्वलंकृ
ताः । नत्वा द्विजसतीर्गोपाः प्रश्रिता इदमब्रुवन् ॥ १५ ॥ नमो वो विप्रपत्नीभ्यो निबोध
त वचांसि नः । इतोऽविदूरे चरता कृष्णेनेहेषिता वयम् ॥ १६ ॥ गाश्चारयन्स गोपालैः
सरामो दूरमागतः । बुभुक्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयताम् ॥ १७ ॥ श्रुत्वाऽच्यु
तमुपायान्तं नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः । तत्कथाक्षिप्तमनसो बभूवुर्जातसंभ्रमाः ॥ १८ ॥
चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः । अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः ॥१९॥
निषिध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बन्धुभिः सुतैः । भगवत्युत्तमश्लोके दीर्घश्रुतधृताश
याः ॥ २० ॥ यमुनोपवनेऽशोकनवपल्लवमण्डिते । विचरन्तं वृतं गोपैः साग्रजं दद
शुः स्त्रियः ॥ २१ ॥ श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्हधातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे ।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥ २२ ॥ प्रा
यः श्रुतप्रियतमोदयकर्णपूरैर्यस्मिन्निमग्नमनसस्तमथाक्षिरन्ध्रैः । अन्तः प्रवेश्य सु
चिरं परिरभ्य तापं प्राज्ञं यथाऽभिमतयो विजहुर्नरेन्द्र ॥ २३ ॥ तास्तथा त्यक्तसर्वाशाः

ने "हां,, "ना,, कुछ न कहा तब गोपगणों ने निराश होकर कृष्णजी व बलदेवजीके समीप आय यह सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १२ ॥ भगवान श्रीकृष्णजी उस बातको सुन हंसकर गोपोंसे कहने लगे कि—हेगोपालगण ! कार्य करतेहुए कोई निराश नहीं होता, जो कार्य पूर्ण करनेकी इच्छा करतेहैं उनको निराश न होना चाहिये ॥ १३ ॥ तुम द्विजनारियों के यहां जाकर कहो, कि—मैं राम समेत यहां उपस्थितहूं । वह तुमको अन्न देंगी, वह मुझे बहुत चाहतीहैं उन्होंने मुझमेंही अपनी बुद्धि लगारक्खीहै, ॥ १४ ॥ अनन्तर गोपोंने पत्नीशालामें देखा कि—द्विजपत्नियें सुन्दर अलंकार धारण कियेहुए बैठीहैं । गोपोंने विनय भाव से कहा कि—१५ ॥ हेविप्रपत्निओं ! आपको प्रणामहै । हमारी बात सुनो, श्रीकृष्णजी इस स्थानके समीप भ्रमण कररहे हैं ॥१६॥ वह गोपालगण और बलरामजीके साथ गौ चरातेर बाहरचले आयेहैं इसकारण भूखसे अत्यन्त दुःखित होरहेहैं । आप उनको और उनके सेवकोंको अन्नदानकरें॥१७॥श्रीकृष्णजीके चरित्रों से द्विजनारियोंका मन उनकीओर खिंचगयथा; इसहीकारण वह उनके दर्शन करने की कामना बहुत दिनों से कररहीथीं । इससमय उनके आनेका समाचार सुनकर अत्यन्त अधीर होउठीं॥१८॥बहुतदिनों से भगवान् की लीलाओंको सुनतेहुये उनका चित्त पवित्र कीर्त्ति श्रीकृष्णजीमें बंधगयाथा अतएव पति, पिता, भ्राता, और बंधुओंके निवारण करनेपरभी समुद्र में गिरने वाली नदीके समान, सबही पात्रोंमें भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, पेय अन्न लेकर प्यारेके निकट दौड़चलीं ॥ १९ । २० ॥ यमुना तीरपर पहुंचकर देखाकि—श्रीकृष्णजी अशोक वृक्षके नवीन पत्तोंसे विभूषित यमुनाके उपवनमें गोपगण तथा बडेभाई के साथ घूमरहे हैं ॥ २१ ॥ उनका श्यामवर्ण है पीतवस्त्र पहिने, गले में वनमाला धारण किये; मोरपंख धातु और पत्तोंद्वारा अपना वेश बनाये नटकी समान शोभा पा रहे हैं । वह एक हाथ सेवकों के कंधेपर रखदूसरे हाथ से एक नील कमल घुमारहे हैं । उनके दोनो कानों में कमल, कपोलों पर अलकें, और कमल मुखमें हास्य शोभित होरहा है ॥ २२ ॥ बारंबार प्रियतम के श्रेष्ठ चरित्रोंको सुनकर उनके कर्ण छकित होरहे थे इसही कारण सब प्राणियों का मन श्रीकृष्णजी में निमग्न होरहाथा । उन भगवान्को नेत्ररूप द्वारों से अपने हृदय में बिठलाय, बड़ी देरतक आलिंगनकर; सुंदमात्र पुरुष के आलिंगन से आई बुद्धिकी समान सब

प्राप्तानात्मदिदृक्षया । विज्ञायाखिलदृग्द्रष्टा प्राह प्रहसिताननः ॥ २४ ॥ स्वागतंवो महाभागा आस्यतां करवाम किम् । यन्नोदिदृक्षया प्राप्ता उपपन्नमिदं हि वः ॥ २५ ॥ नन्वद्धामयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थदर्शिनः । अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा ॥ २६ ॥ प्राणबुद्धिमनः स्वात्मदारापत्यधनादयः । यत्संपर्कात्प्रिया आसंस्ततः कोऽन्वपरः प्रियः ॥ २७ ॥ तद्यात देवयजनं पतयो वो द्विजातयः । स्वसत्रं पारयिष्यन्ति युष्माभिर्गृहमेधिनः ॥ २८ ॥ पत्न्य ऊचुः ॥ मैवं विभोऽर्हति भवान्गदितुं नृशंसं सत्यं कुरुष्व निगमं तव पादमूलम् । प्राप्ता वयं तुलसिदाम पदावसृष्टं केशैर्निवोढुमतिलङ्घ्य समस्तबन्धून् ॥ २९ ॥ गृह्णन्ति नो न पतयः पितरौ सुता वा न भ्रातृबन्धुसुहृदः कुत एव चान्ये । तस्माद्भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो नान्या भवेद्गतिररिन्दम तद्विधेहि ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पतयो नाभ्यसूयेरन्पितृभ्रातृसुतादयः । लोकाश्च वो मयोपेता देवा अप्यनुमन्वते ॥ ३१ ॥ न प्रीतयेऽनुरागाय ह्यङ्गसङ्गो नृणामिह । तन्मनो मयि युञ्जाना अचिरान्मामवाप्स्यथ ॥ ३२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ता मुनिपत्न्यस्ता यज्ञवाटं पुनर्गताः । ते चानसूयवः स्वाभिः स्त्रीभिः सत्रमपारयन् ॥ ३३ ॥ तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवन्तं यथाश्रुतम् । हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम् ॥ ३४ ॥ भगवानपि गोविन्दस्तेनैवान्नेन गोपकान् । चतुर्विधेनाऽऽशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभुः ॥ ३५ ॥ एवं

संतापोंको दूर करदिया ॥ २३ ॥ वह सब स्त्रियें आश छोडकर आई हैं--यह जानकर भगवान् श्रीकृष्णजी ने हंसते हुये उनसे कहाकि—॥ २४ ॥ हे महाभाग ! तुमसब सुख से तो आईहो ? आओ बैठो । क्या करनेकी आज्ञा है ? हमारे दर्शन की इच्छा से जोतुम आईहो यह तुमको उचितही है ॥२५॥ जोविवेकी मनुष्य विवेक द्वारा अपने २ अभिप्रायको देखते रहते हैं वह मुझप्रिय आत्मा की भक्ति फलाभिसंधान रहित और निरवच्छिन्न होकर करते हैं ॥ २६ ॥ कारण कि—आत्मा सबसे प्यारा-प्राण, बुद्धि, जातिवाले, देह, धन, पुत्र, कलत्र आदि जिसके संबंध से प्यारे लगते हैं उससे अधिक फिर कौनप्यारा है ॥ २७ ॥ अतएव अवतुम कृतार्थ हुई; इस समय देव यज्ञको जावो। यद्यपि तुमको याग, यज्ञकी आवश्यकता नहीं है तौभी गृहस्थ ब्राह्मण तुम्हारे स्वामी तुम सबको लेकर उस यज्ञको पूर्ण करेंगे ॥ २८ ॥ द्विजनारियों ने कहाकि--हे विभो ! ऐसे निष्ठुर वचन कहना आपको उचित नहीं है । हम अपने सब स्वजनों की अवज्ञा करके तिरस्कार सेभी दीहुई तुलसीकी मालाके सदृश धारण करनेको अर्थात् दासी होनेको आपके समीप आई हैं ॥२९॥ दूसरे की बाततो दूररही पति, पिता, माता, पुत्र, भ्राता जातिवाले और बंधुगण भी हमको ग्रहण न करेंगे । अतएव हे रिपुदमन ! जिससे हमारी दूसरा गति न होवे आपवही करदेवें । हम आपके चरणों की शरण में आई हैं ॥ ३० ॥ श्रीभगवान् ने कहाकि—पति, पिता, भ्राता और पुत्रादि तथा और मनुष्यभी तुमको दोषनि करसकेंगे और देखो, देवताभी मेरी आज्ञाको स्वीकार करते हैं इस जगत् में मनुष्यको अंगसंग सेही सुख प्राप्त होताहो, सोनहीं है तुम मुझमें अपना मन समर्पणकर मुझको प्राप्त होगी मेरे नामादि क सुनने, मुझे देखने, मेरे ध्यान करने और मेरे गुणोंका वर्णन करने से जैसामुझ में प्रेम उत्पन्न होता है केवल मेरे निकट रहने से वैसा प्रेममुझ में नहीं होसकता । अतएव तुम घरको लौटजावो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन् ! श्रीकृष्णजी के इसभांति कहनेपर वह द्विजनारियें फिरयज्ञ स्थानमें लौटआई । ब्राह्मणों नेभी दोष न देखकर स्त्रियोंको साथले यज्ञ समाप्त किया ॥ ३३ ॥ एक स्त्री स्वामी से पकड़ी जाकर श्री कृष्णजी के दर्शनोंको न जासकी; इस कारण उसने जैसा सुनाथा उसी प्रकार भगवान्का हृदय द्वारा आलिंगनकर कर्मकी अनुगामी देहको छोड़दिया ॥ ३४ ॥ यहां श्रीकृष्णजी ने गोपोंको उस

लीलानरवपुर्लोकमनुशीलयन् । रेमेगोगोपगोपीनांरमयन्रूपवाक्कृतैः ॥ ३६ ॥ अथानुस्मृत्यविप्रास्तेअन्वतप्यन्कृतागसः । यद्विश्वेश्वरयोर्याच्ञामहन्मनृविडम्बयाः ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वास्त्रीणांभगवतिकृष्णभक्तिमलौकिकीम् । आत्मानंचतयाहीनमनुतप्ताव्यगर्हयन् ॥ ३८ ॥ धिग्जन्मनस्त्रिवृद्विद्यांधिग्व्रतंधिग्बहुज्ञताम् । धिक्कुलंधिक्क्रियादाक्ष्यंविमुखायेत्वधोक्षजे ॥ ३९ ॥ नूनंभगवतोमायायोगिनामपिमोहिनी । यद्वयंगुरवोनृणांस्वार्थेमुह्यामहेद्विजाः ॥ ४० ॥ अहोपश्यतनारीणामपिकृष्णेजगद्गुरौ । दुरन्तभावं योऽविध्यन्मृत्युपाशान्गृहाभिधान् ॥ ४१ ॥ नासांद्विजातिसंस्कारोन निवासोगुरावपि । नतपोनात्ममीमांसानशौचंनक्रियाः शुभाः ॥ ४२ ॥ अथापिह्युत्तमश्लोकेकृष्णेयोगेश्वरेश्वरे । भक्तिर्दृढानचास्माकंसंस्कारादिमतामपि ॥ ४३ ॥ ननुस्वार्थविमूढानांप्रमत्तानांगृहेहया । अहोनःस्मारयामासगोपवाक्यैः सतांगतिः ॥ ४४ ॥ अन्यथापूर्णकामस्यकैवल्याद्याशिषांपतेः । ईशितव्यैः किमस्माभिरीशस्यैतद्विडम्बनम् ॥ ४५ ॥ हित्वाऽन्यान्भजतेयंश्रीः पादस्पर्शाशयाऽसकृत् । आत्मदोषापवर्गेणतद्याच्ञाजनमोहिनी ॥ ४६ ॥ देशः कालः पृथग्द्रव्यंमन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः । देवतायजमानश्चक्रतुर्धर्मश्चयन्मयः ॥ ४७ ॥ सएषभगवान्साक्षाद्विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः । जातोयदुष्वित्यशृण्मह्यपिमूढानविद्महे ॥ ४८ ॥ अहोवयंधन्यतमायेषांनस्तादृशीः स्त्रियः । भक्त्यायासांमतिर्जाताह्यस्माकंनिश्चलाहरौ ॥ ४९ ॥ नम

चारो प्रकारका अन्न खिलाय आपभी खाया ॥ ३५ ॥ लीला के निमित्त नर शरीरधारी भगवान् इस प्रकार से मनुष्योंका अनुकरण करते हुये रूप, वाक्य और कर्मद्वारा गौ, गोप और गोपियों को क्रीड़ा कराने तथा स्वयं क्रीड़ा करनेलगे ॥ ३६ ॥ तदनंतर वह ब्राह्मणगण यह विचारकर कि "नररूप धारी भगवान् बलराम जी व कृष्णजी की प्रार्थना का हमने निरादर किया इस से अपराधी हुए" अत्यन्त संताप करनेलगे ॥ ३७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णजी में अलौकिक भक्ति और अपनेको भक्ति रहित देखकर वह अनुताप के साथही साथ अपनेको धिक्कारनेलगे ॥ ३८ ॥ हम भगवान से विमुख है । हमारे तीनो जन्मोंको, व्रतको, पाण्डित्यको, कुल, कर्म, और निपुणताको धिक्कार है ॥ ३९ ॥ निश्चयही जानते हैं कि भगवान् की माया योगियों कोभी मोहित करडालती है। हम मनुष्यों के गुरु ब्राह्मण होकर भी अपने स्वार्थको न समझसके ॥ ४० ॥ अहा! भगवान श्री कृष्णजी में स्त्रियों की तो प्रीतिदेखो कि जिसने घररूप मृत्यु पाशोंको काटदिया ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणों की समान इनका उपनयन संस्कार नहीं हुआ; इन्हों ने गुरुकुल में वास नहीं किया, तपस्याभी नही की; और न आत्म तत्त्वका अन्वेषणही किया । इनके पवित्रता नहीं है; संध्यावन्दनादि शुभ कार्य भी नहीं हैं ॥ ४२ ॥ तौभी योगश्वरों के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णजी में इनकी दृढ़भक्ति है! हम संस्कारादि युक्त होनेपरभी उस भक्तिसे विमुख है॥ ४३ ॥ निश्चयही जानते हैं कि हम स्वार्थ भूलकर घरके कामों में प्रमत्त होरहे है; साधुओंको गतिदेने वाले भगवान्‌ने गोपोंके वचनों द्वारा हमको सद्गति का स्मरण करादिया ॥ ४४ ॥ यदिऐसा न होतातो पूर्णकाम, मोक्षदाता, वरदेन वाले भगवान् हमसे याचनाही क्यों करते? निश्चयही यह भगवान् की विडंबना है॥ ४५॥ लक्ष्मी, चरण स्पर्श की इच्छा करके अपनी चंचलताको छोड़ दूसरों का परित्यागकर वारम्वार जिसका भजन करती हैं, उनकी याचना देखकर मनुष्योंको केवल विस्मयही उत्पन्न होता है ॥ ४६ ॥ देशो—काल, भिन्न २ द्रव्य, मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विक् अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म जिस के स्वरूप हैं ॥ ४७ ॥ उन साक्षात् भगवान् योगश्वरों के ईश्वर विष्णुजी ने यदुकुल में जन्मलिया है यह हमने सुनाथा; तौभी इतने मूर्ख—कि उनको जान न सके ॥ ४८ ॥ अहो हमबड़े धन्य हैं, क्योंकि जिनहमारी स्त्रियां ऐसी भगवत भक्त हैं, जिनकी भक्तिसे हमारी भी हरिमें दृढबुद्धि हुई

तस्मैभगवतेकृष्णायाकुण्ठमेधसे । यन्मायामोहितधियोभ्रमामःकर्मवर्त्मसु ॥५०॥ सवैनआद्यःपुरुषःस्वमायामोहितात्मनाम् । अविज्ञातानुभावानांक्षन्तुमर्हत्यतिक्रमम् ॥ ५१ ॥ इतिस्वाघमनुस्मृत्यकृष्णेतेकृतहेलनाः । दिदृक्षवोऽप्यच्युतयोःकंसाद्भीतानचाऽचलन् ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ भगवानपितत्रैवबलदेवेनसंयुतः । अपश्यन्निवसन्गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान् ॥ १ ॥ तदभिज्ञोऽपिभगवान्सर्वात्मासर्वदर्शनः । प्रश्रयावनतोऽपृच्छद्वृद्धान्नन्दपुरोगमान् ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कथ्यतांमेपितःकोऽयंसंभ्रमोवउपागतः । किंफलंकस्यचोद्देशःकेनवासाध्यतेमखः ॥ ३ ॥ एतद्ब्रूहिमहान्कामोमह्यंशुश्रूषवेपितः । नहिगोप्यंहिसाधूनांकृत्यंसर्वात्मनामिह ॥ ४ ॥ अस्त्यस्वपरदृष्टीनाममित्रोदास्तविद्विषाम् । उदासीनोरिवद्वर्ज्यआत्मवत्सुहृदुच्यते ॥५॥ ज्ञात्वाऽज्ञात्वाचकर्माणिजनोऽयमनुतिष्ठति । विदुषःकर्मसिद्धिःस्यात्तथानाविदुषोभवेत् ॥ ६ ॥ तत्रतावत्क्रियायोगोभवतांकिंविचारितः । अथवालौकिकस्तन्मेपृच्छतःसाधुभण्यताम् ॥ ७ ॥ नन्द उवाच ॥ पर्जन्योभगवानिन्द्रोमेघास्तस्यात्ममूर्तयः । तेऽभिवर्षन्तिभूतानांप्रीणनंजीवनंपयः ॥ ८ ॥ तंतातवयमन्येचवार्मुचांपतिमीश्वरम् । द्रव्यैस्तद्रेतसासिद्धैर्यजन्तेक्रतुभिर्नराः ॥ ९ ॥ तच्छेषेणोपजीवंति

॥ ४९ ॥ जिन अकुंठित मेधाशाली भगवान श्रीकृष्णजी की माया से मोहित बुद्धि होकर हमकर्म मार्गमें भ्रमण करते हैं उनको नमस्कार है ॥ ५० ॥ उन भगवान की मायासे हम मोहित होकर उनके प्रभावको न जानके; यह हमसे अपराध हुआ वह आदि पुरुष हमारे अपराधको क्षमाकरें ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णजीका अनादरकर उन सब ब्राह्मणों ने इसप्रकार से अपने अपराधका स्मरणकर ब्रजमें जानकी इच्छाकी परन्तु कंसके भयसे न जासके ॥ ५२ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! ब्राह्मणगण कंस के भय से अपनेही अपने आश्रमों में रहकर भगवान की पूजा करने लगे । इस ओर भगवान श्रीकृष्णजी ने बलरामजी के साथ ब्रज में वासकरते २ देखा कि—गोपगण इन्द्रयज्ञ करने के लिये उद्योग कर रहे हैं ॥ १ ॥ सर्वदर्शी भगवान यद्यपि उस का सबभेद जानतेथे; तौभी विनयपूर्वक नन्द आदि गोपों से पूछने लगे कि- ॥ २ ॥ हे पिता ! आप इतने अधीर क्यों होरहेहो ? किस कारण किस के द्वारा यह यज्ञ सिद्धहो सकता है ? इस का फल क्या है ? हमसे कहो; इस के सुननेकी मेरी अत्यन्त इच्छा है ॥ ३ ॥ जो सबकोही आत्मवत् देखते हैं, और जिनको अपने पराए का ज्ञान नहीं है; भेद ज्ञान के नहोने से जिनका कोई शत्रुमित्र नहीं है; उदासीन नहीं है उनसे कोई कार्य गुप्तनहीं है और भेद ज्ञानके होने से उदासीन कोभी शत्रु की समान छोड देना चाहिये । सुहृदगण आत्मतुल्य होते हैं, इस कारण परामर्श के समय उनका त्याग न करना चाहिये ॥ ४ । ५ ॥ मनुष्यों में कोई जानकर और कोई अनजानकर कर्म करते रहते हैं । जो जानकर करते हैं उन्हीं का काम सिद्ध होताहै और जो अनजानकर करतेहैं उनका कार्य भलीभांतिसे पूर्ण नहींहोता ॥ ६ ॥ आपने यह कार्य करना लौकिक रीतमें विचारा है या शास्त्रसे ? यह आप मुझसे भलीप्रकार कहिये, ॥७॥ नन्दजी ने कहा कि—हे तात ! भगवान् इन्द्र मेघरूपहैं, मेघ उनकी प्रियमूर्त्तिहैं—वह प्राणियों के कल्याणके निमित्त प्राणके देनेवाले जलकी वर्षा करते रहतेहैं ॥ ८ ॥ हे वत्स ! उन मेघपति के बरसायेहुए जलसे जो पदार्थ उत्पन्न होतेहैं उन्हीं द्वारा यह यज्ञ कियाजाताहै ॥ ९ ॥ यज्ञकर

त्रिवर्गफलहेतवे । पुंसांपुरुषकारणांपर्जन्यःफलभावनः ॥ १० ॥ यएवंविसृजेद्धर्मं
पारम्पर्यागतंनरः । कामाल्लोभाद्भयाद्द्वेषात्सवैनाप्नोतिशोभनम् ॥ ११ ॥ श्रीशुक
उवाच ॥ वचोनिशम्यनन्दस्यतथान्येषांव्रजौकसाम् । इन्द्रायमन्युंजनयन्पितरंप्राह
केशवः ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कर्मणाजायतेजन्तुःकर्मणैवविलीयते । सुखं
दुःखंभयंक्षेमंकर्मणैवाभिपद्यते ॥१३॥ अस्तिचेदीश्वरःकश्चित्फलरूप्यन्यकर्मणाम्।
कर्तारंभजतेसोपिनह्यकर्तुःप्रभुर्हिसः ॥ १४ ॥ किमिन्द्रेणेहभूतानांस्वस्वकर्मानुव
र्तिनाम् । अनीशेनान्यथाकर्तुंस्वभावविहितंनृणाम् ॥ १५ ॥ स्वभावतन्त्रोहिजनः
स्वभावमनुवर्तते । स्वभावस्थमिदंसर्वंसदेवासुरमानुषम् ॥ १६ ॥ देहानुच्चाव
चाञ्जन्तुःप्राप्योत्सृजतिकर्मणा । शत्रुर्मित्रमुदासीनःकर्मैवगुरुरीश्वरः ॥१७॥तस्मा
त्संपूजयेत्कर्मस्वभावस्थःस्वकर्मकृत् । अञ्जसायेनवर्तेततदेवास्यहिदैवतम् ॥ १८ ॥
आजीव्यैकतरंभावंयस्त्वन्यमुपजीवति । नतस्माद्विन्दतेक्षेमंजारंनार्यसतीयथा॥१९॥
वर्तेतब्रह्मणाविप्रोराजन्योरक्षयाभुवः । वैश्यस्तुवार्तयाजीवेच्छूद्रस्तुद्विजसेवया ॥
२० ॥ कृषिवाणिज्यगोरक्षाःकुसीदंतुर्यमुच्यते । वार्ताचतुर्विधातत्रवयंगोवृत्तयोऽ
निशम् ॥ २१ ॥ सत्त्वंरजस्तमइति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः । रजसोत्पद्यतेविश्वमन्यो
न्यंविविधंजगत् ॥ २२ ॥ रजसाचोदितामेघावर्षन्त्यम्बूनिसर्वतः । प्रजास्तैरेवसि
ध्यन्तिमहेन्द्रःकिंकरिष्यति ॥ २३ ॥ ननःपुरोजनपदानग्रामानगृहावयम् । नित्यंवनौ
कसस्तातवनशैलनिवासिनः ॥ २४ ॥ तस्माद्गवांब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतांमखः ।

मे से जो शेष रहताहै मनुष्य धर्म, अर्थ और काम सिद्धके निमित्त उसके द्वारा जीवन धारण करतेहैं मनुष्योंके जो कुछ व्यापार व वृत्तियेंहैं उन सबका उत्पन्न करनेवाला मघही है ॥ १० ॥ यह कर्म बहुत समयोंसे चला आताहै । जो मनुष्य काम, द्वेष, भय व लोभके वशहो इस धर्मको छोड़ देताहै उसका कल्याण कभी नहींहोता ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! नन्दजीकी और दूसरे ब्रजवासियोंकी इसबातको सुनकर कृष्णजीने इन्द्रको क्रोधयुक्त करनेके कारण पितासे कहा कि—१२ ॥ हेपिता ! प्राणी कर्मके वशसेही सुख दुःख भय और कल्याण पाते रहते हैं । और यदि दूसरे के कर्मोंका फल देनेवाला एक ईश्वरही रहताहै तो ऐसा होनेसे वहभी कर्म करने वालेके आधीनहै क्योंकि जो कर्म नहीं करे वह उसको फल भी नहीं देसकता १३—१४ अतएव जीवगण जब कर्मोंकेही अनुसारसे वर्ततहैं तब फिर इन्द्रका क्या प्रयोजन ? पूर्व संसकारोंके अनुसारसे मनुष्यके भाग्यमें जो होताहै इन्द्र उसके विपरीत कभी नहीं करसकता, ॥ १५ ॥ मनुष्य स्वभावकेही आधीन होकर स्वभावकाही अनुसरण करता रहताहै । देवता असुर, मनुष्य स्वभाव मेंही अवस्थित रहतेहैं ॥ १० ॥ जीवकर्म वशसेही ऊँची नीची देह प्राप्तकर कर्मवशसेही उसका परित्याग करता रहताहै । कर्मही शत्रु, मित्र, उदासीन और ईश्वरहै, ॥ १७ ॥ अतएव स्वभाव स्थित कर्म करनेवाले प्राणीको कर्महीकी पूजा करनी चाहिये ॥ १८ ॥ यथार्थमें जिससे आजीविका चले वही देवताहै जैसे व्यभिचारिणी स्त्री उपपतिको पाकर सुख नहीं करसकती वैसेही जो मनुष्य एककी दीहुई आजीविका खाकर दूसरेकी सेवाकर उसको कल्याण कभी नहीं प्राप्त होसकता ॥ १९ ॥ ब्राह्मण को वेदाध्ययनसे क्षत्रीको पृथ्वी शासनसे वैश्यको वार्तासे और शूद्रको तीनोवर्णों की सेवा करके जीविका का निर्वाह करना चाहिये ॥२०॥ व्यापार चारप्रकारकाहै—खेती, वनिज, गौ पालन करना और ब्याजलेना । इनचार प्रकारों में से हमगौ पालन करते हैं ॥ २१ ॥ सत्व,रज और तम—पालन, उत्पत्तिऔर संहार के कारण हैं । यह संसार तथा और भी जगत रज से उत्पन्नहोते हैं,मेघसमूह रजसे चलितहो सबस्थानों पर जल वर्षाते हैं;जल से धान्यउत्पन्न होता है और उसी धान्य से प्रजा जीती है; अतएव इस में इन्द्रकी क्या आवश्यकता ? ॥ २३ ॥

यऐन्द्रयागसंभारास्तैरयंसाध्यतांमखः ॥ २५ ॥ पच्यन्तांविविधापाकाःसूपांताःपा
यसादयः । संयावापूपशष्कुल्यःसर्वदोहश्चगृह्यताम् ॥२६॥ हूयन्तामग्नयःसम्यग्
ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः । अन्नंबहुगुणंतेभ्योदेयंवोधेनुदक्षिणाः ॥ २७ ॥ अन्येभ्यश्चा
श्वचाण्डालपतितेभ्योयथार्हतः । यवसंचगवांदत्त्वागिरयेदीयतांबलिः ॥ २८ ॥
स्वलंकृताभुक्तवन्तःस्वनुलिप्ताःसुवाससः । प्रदक्षिणंचकुरुतगोविप्राऽनलपर्वतान्
॥ २९ ॥ एतन्मममतंतातक्रियतांयदिरोचते । अयंगोब्राह्मणाद्रीणांमह्यंचदयितो
मखः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कालात्मनाभगवताशक्रदर्पजिघांसता । प्रोक्तं
निशम्यनन्दाद्याःसाध्वगृह्णंततद्वचः ॥ ३१ ॥ तथाचव्यदधुःसर्वंयथाहमधुसूदनः
वाचयित्वास्वस्त्ययनंतद्द्रव्येणगिरिद्विजान् ॥ ३२ ॥ उपहृत्यबलीन्सर्वानादृता
यवसंगवाम् । गोधनानिपुरस्कृत्य गिरिंचक्रुःप्रदक्षिणम् ॥ ३३ ॥ अनांस्यनडुद्युक्ता
नितेचारुह्यस्वलंकृताः । गोप्यश्चकृष्णवीर्याणिगायन्त्यःसद्विजाशिषः॥३४॥कृष्ण
स्त्वन्यतमंरूपंगोपविश्रम्भणंगतः॥शैलोऽस्मीतिब्रुवन्भूरिबलिमादद्बृहद्वपुः ॥३५॥
तस्मैनमोव्रजजनैःसहचक्रेआत्मनाऽऽत्मने । अहोपश्यतशैलोऽसौरूपीनोऽनुग्रहंव्य
धात् ॥३६॥एषोऽवजानतोमर्त्यान्कामरूपीवनौकसः । हन्तिह्यस्मैनमस्यामःशर्मणे-
आत्मनोगवाम्॥३७॥ इत्यद्रिगोद्विजमखंवासुदेवप्रणोदिताः । यथाविधायतेगोपाः
सहकृष्णाव्रजंययुः॥३८॥ इतिश्रीमद्भा०म०दशम०पू०चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

हमारे नगर, बस्ती, गांव, घर कुछभी नहीं है हम वनवासी हैं ॥ २४ ॥ अतएव गौ, ब्राह्मण और पर्वत इनकी पूजाके निमित्तही यज्ञकरना चाहिये।इन्द्र के यज्ञके निमित्त यह जो सामग्रीइकट्ठी हुई है उस से इस यज्ञ का आरम्भकरो ॥ २५ ॥ खीर से लेकर दालतक,हलवा,लपसी, मालपुवा पूरी, कचौरी, करो और सब गौओं का दूध दुहलो ॥ २६ ॥ वेदवेत्ता ब्राह्मणों के हाथ से अग्नि में होम करनेका आरंभकरो। और उनको नाना प्रकारके अन्नदान व गोदान दो ॥ २७ ॥ श्वपच चाण्डाल और पतित आदि अन्यान्य मनुष्यों कोभी यथा योग्य दानकरो। गौओं को तृण और पहाड़को बलिदानकरो ॥ २८ ॥ भोजन के अंतमें उत्तम वस्त्र आभूषण पहिन तथा चंदन लेपन करगौ, ब्राह्मण, अग्नि और पर्वत की परिक्रमाकरो ॥ २९ ॥ हे पिता ! यही मेरी इच्छा है; यदि अच्छा समझोतो करो। यह यज्ञगौ ब्राह्मण आदिको तथा मुझको भी प्रिय है ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेव जी बोलेकि–हे राजन ! काल रूपी भगवान श्रीकृष्णजी ने इन्द्रका अहंकार नाश करने की इच्छा से जोकुछ कहा उनको सुनकर नंदादि गोप सतुष्ट हुये और उनको "साधु साधु" कह उनके कथनानुसार यज्ञ करनेलगे ॥ ३१ ॥ स्वस्ति वाचन कराय आदर पूर्वक पहाड़ और ब्राह्मणो को वह सब सामग्री भेंटमेंदे गौओंको तृणादिया और गोधनको आगेकर पहाड़की परिक्रमा करनेलगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ गोपियें भी भली प्रकार से वस्त्र आभूषण पहिन श्रेष्ठ बैलों युक्त गाड़ीपर सवार हो श्रीकृष्णजी के चरित्रोंका गान करती हुई पहाड़ की परिक्रमा करने लगीं। ब्राह्मण आशीर्वाद देनेलगे ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णजी गोपोंको विश्वास उत्पन्न कराने के निमित्त दूसरे प्रकारका रूपधारण कर "मैंपर्वतहूं" यह कहकर ढेरोंबलिका भोजन करनेलगे। उस समय उनका शरीर दीर्घ होगया ॥ ३५ ॥ अनतर व्रज वासियों के साथ आपने भी उस पर्वत रूपी आपनेको नमस्कार करके कहा कि–इस आश्चर्यकोतो देखो ! इस पर्वत ने देह धारणकर हमारे ऊपर अनुग्रहकी है। यह कामरूपी है। जोवनवासी इसका निरादर करते हैं उनको यह नाश करते रहते हैं। हम-अपने और गौओं के कल्याण के निमित्त इसको प्रणाम करते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ श्रीकृष्णजी की आज्ञानुसार इस प्रकार यथारीति से यज्ञकर गोपगण उनके साथ व्रजमें लौटआये ॥ ३८ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कन्धेसरलाभाषाटिकायांचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रस्तदात्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप । गोपेभ्यः कृष्णनाथे-
भ्यो नन्दादिभ्यश्चकोप सः ॥ १ ॥ गणं सांवर्तकं नाम मेघानां चान्तकारिणाम् । इन्द्रः
प्राचोदयत्क्रुद्धो वाक्यं चाहेशमान्युत ॥ २ ॥ अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौक-
साम् । कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम् ॥ ३ ॥ यथादृढैः कर्ममयैः क्रतुभि-
र्नामनौनिभैः । विद्यामान्वीक्षिकीं हित्वा तितीर्षन्ति भवार्णवम् ॥ ४ ॥ वाचालं बालि-
शं स्तब्धमज्ञं पण्डितमानिनम् । कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ॥ ५ ॥
एषां श्रियावलिप्तानां कृष्णेनाध्मापितात्मनाम् । धुनुत श्रीमदस्तम्भं पशून्नयत संक्ष-
यम् ॥ ६ ॥ अहं चैरावतं नागमारुह्यानुव्रजे व्रजम् । मरुद्गणैर्महावीर्यैर्नन्द-
गोष्ठजिघांसया ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं मघवताऽऽज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबन्धनाः
। नन्दगोकुलमासारैः पीडयामासुरोजसा ॥ ८ ॥ विद्योतमाना विद्युद्भिः स्तनन्तः
स्तनयित्नुभिः । तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्ना ववृषुर्जलशर्कराः ॥ ९ ॥ स्थूणास्थूला वर्षधा-
रामुञ्चत्स्वभ्रेष्वभीक्ष्णशः । जलौघैः प्लाव्यमाना भूर्नादृश्यत नतोन्नतम् ॥ १० ॥ अ-
त्यासारातिवातेन पशवो जातवेपनाः । गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययुः ॥ ११ ॥
शिरः सुतांश्च कायेन प्रच्छाद्यासारपीडिताः । वेपमाना भगवतः पादमूलमुपाययुः
॥ १२ ॥ कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो । त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद्भक्त-
वत्सल ॥ १३ ॥ शिलावर्षनिपातेन हन्यमानमचेतनम् । निरीक्ष्य भगवान्मेने कुपितेन्द्र-
कृतं हरिः ॥ १४ ॥ अपर्त्वत्युल्बणं वर्षमतिवातं शिलामयम् । स्वयागे विहतेऽस्माभि

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन्! अपनी पूजाका भंगहोना सुनकर इन्द्र-कृष्णजीके आधीन नन्दादि गोपोंपर क्रोधित हुये ॥ १ ॥ इन्द्रको स्वयं ईश्वरता का गर्वथा। उसने क्रोधित होकर संवर्तक नामक प्रलयकारी मेघोंको बुलाकर कहा कि—२ ॥ अहो! बनवासी गोपगणोंके धन ऐश्वर्यका कैसा माहात्म्यहै। उन्होंने साधारण मनुष्य कृष्णका आश्रयले देवताओंका निरादरकिया ॥ ३ ॥ जैसे मनुष्य ब्रह्म विद्याको त्याग—असमर्थ नागमात्रकी नौका स्वरूप कर्ममय यज्ञोंसे भवसागर पार होनेकी कामना करताहै ४ ॥ तैसेही गोपगणोंने-चंचल बालक, विनयरहित अभिमानी मूर्ख, कृष्णका अवलम्बन कर मेरा अप्रिय किया, ॥ ५ ॥ ऐश्वर्यके गर्वसे गर्वित हुये सब गोप कृष्णसे बढ़हैं अतएव इनके ऐश्वर्यके गर्वको दूरकरो और इनके पशुओं का नाश करो ६। मैं भी ऐरावत हस्तिपर चढ़कर महावेगसे देवताओंके साथले नन्दके गोष्ठको ध्वंस करनेके निमित्त शीघ्रही आताहूं, ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! सब मेघ इन्द्रकी इस आज्ञाको पाय बन्धन से छूट और बलपूर्वक बरस २ कर नन्दके गोकुलमें उत्पात करनेलगे ॥८॥ बिजली चमकने बादल गरजने और प्रचण्ड पवनकी प्रेरणासे ओले पड़नेलगे ॥ ९ ॥ मेघ निरन्तर मूसला धारसे बरसने लगे, पृथ्वी जलसे परिपूर्ण होगई कि जिससे ऊँचा नीचा पृथ्वी का बोध न रहा, ॥ १० ॥ महावर्षा और प्रचण्ड वायुसे सब पशु कांपनेलगे गोप और गोपीगणभी शीतसे दुःखित हो भगवान् श्रीकृष्णजीकी शरणमें गये, ॥ ११ ॥ ये सब मस्तक और सन्तानोंको देहसे ढककर जलकी धारासे पीड़ितहो कांपते २ श्रीकृष्णजीकी चरण शरणमें गये,॥ १२ ॥ गोपोंने उनकी शरणमें जाकर कहा कि—हेकृष्ण! हेमहाभाग! तुमही गोकुलके स्वामीहो हेभक्तवत्सल! क्रोधित इन्द्रसे हमारी रक्षा करना तुम्हारा कामहै ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णजीने गोकुलमें ओले पड़ते और प्रचण्ड वायु चलते देखकर पहिलेही जानलियाथा कि क्रोधित इन्द्रकीही यह सब करतूतहै, ॥ १४ ॥ उन्होंने सोचा कि—मैंने इन्द्रका यज्ञ भंगकियाहै अतएव वह गोकुल के नाश करने के निमित्त अकालमें

शिलोत्सायवर्षाणि ॥ १५ ॥ तत्रप्रतिविधिंसम्यगात्मयोगेनसाधये । लोकेशमानि
नांमौढ्याद्धरिष्येश्रीमदंतमः ॥ १६ ॥ नहिसद्भावयुक्तानांसुराणामीशविस्मयः । म
त्तोऽसतांमानभङ्गः प्रशमायोपकल्पते ॥ १७ ॥ तस्मान्मच्छरणंगोष्ठंमन्नाथंमत्परिग्र
हम् । गोपायेस्वात्मयोगेनसोऽयंमेव्रतआहितः १८ ॥ इत्युक्त्वैकेनहस्तेनकृत्वागोव
र्धनाचलम् । दधारलीलयाकृष्णश्छत्राकमिवबालकः ॥ १९ ॥ अथाहभगवान्गोपा
न्हेऽम्बतातव्रजौकसः । यथोपजोषंविशतागिरिगर्तंसगोधनाः ॥ २० ॥नत्रासइहवः
कार्योमद्धस्ताद्रिनिपातिते । वातवर्षभयेनालंतत्त्राणंविहितंहिवः ॥ २१ ॥ तथानि
र्विविशुर्गर्तंकृष्णाश्वासितमानसाः । यथावकाशंसधना सव्रजा सोपजीविनः २२॥
क्षुत्तृड्व्यथांसुखापेक्षांहित्वातैर्व्रजवासिभिः । वीक्ष्यमाणोदधावद्रिंसप्ताहंनाचल
त्पदात् ॥ २३ ॥ कृष्णयोगानुभावंतंनिशम्येन्द्रोऽतिविस्मितः । निस्तम्भोभ्रष्ट
संकल्पःस्वान्मेघान्सन्न्यवारयत् ॥ २४ ॥ खंव्यभ्रमुदितादित्यंवातवर्षंचदारुणम् ।
निशम्योपरतंगोपान्गोवर्धनधरोऽब्रवीत् ॥ २५ ॥ निर्यातत्यजतत्रासंगोपाः सस्त्री
धनार्भकाः । उपारतंवातवर्षंव्युदप्रायाश्चनिम्नगाः ॥ २६ ॥ ततस्तेनिर्ययुर्गोपाः स्वं
स्वमादायगोधनम् । शकटोढोपकरणंस्त्रीबालस्थविराःशनैः ॥ २७ ॥ भगवानपि
तंशैलंस्वस्थानेपूर्ववत्प्रभुः । पश्यतांसर्वभूतानांस्थापयामासलीलया ॥ २८ ॥ सं

वर्षा कर रहाहै और अति प्रचण्ड वायु व ओले बरसा रहाहै, ॥ १५ ॥ मैं अपने प्रभावसे इसका यत्न करूंगा । यह मोहके वशहो अपनेही को समस्त संसारका ईश्वर कहकर अभिमान करताहै मैं इसके ऐश्वर्य गर्वरूपी तमका नाश करूंगा ॥ १६ ॥ सत्व गुणवाले देवता गर्वके वशीभूतहो-कर कभी अपनेको ईश्वर नहीं मानते । मैं जिस अहंकार का नाश करूंगा उससे असाधुओंको भी विनयही उत्पन्न होती रहताहै ॥ १७ ॥ मैंही गोष्ठका शरणद और स्वामीहूं । गोष्ठ मेराही परिवार है । मैं आत्मयोग द्वारा इस गोष्ठकी रक्षा करूंगा यही मैंने निश्चय किया है ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णजी नें यह बात कहकर, बालक जैसे छाते को उठाता है उसी भांति अपने हाथ में गोवर्धन पर्वत को उठालिया ॥ १९ ॥ अनंतर भगवान ने गोपों से कहा कि हे पिता ! हे माता ! हे ब्रज वासीगण ! तुम अपनी इच्छानुसार सुख पूर्वक गोधन समेत पहाडकी कंदरामें प्रवेशकरो ॥२०॥ तुम यह भय नकरो कि यह पर्वत मेरे हाथसे गिरजावेगा पवन और वर्षा काभी भय नकरो इससे बचनेके निमित्त ही मैंने यह यत्न किया हैं ॥ २१ ॥ कृष्णजी की धैर्य युक्त बातोंसे ब्रजवासीगण धैर्यवान हो उनके वाक्यानुसार धन, शकटमंडल, और सेवक पुरोहितादिकों का ले पहाडकी कंदरा में सुख पूर्वक गए ॥ २२ ॥ श्रीकृष्णजी भूख प्यास दुःख सुख छोडकर सातदिनतक पर्वत धारण कियेरहे क्षणभर केभी निमित्त उस स्थान से चलायमान नहुए ॥२३॥ सब ब्रजवासी इस अद्भुत घटना को देखकर विस्मित होगए श्रीकृष्णजी के पराक्रम को देखकर इन्द्र कोभी अत्यंत विस्मय-हुआ उसने गर्व और अहंकार त्यागकर सब मेघों को बरसने से निवृत्त किया ॥ २४ ॥ तदनंतर आकाश मेघ रहित होगया और सूर्य प्रकाशित हुआ प्रचंड पवन और वर्षा बंद होगई यह देख कर गोवर्धनधारी श्रीकृष्णजी ने गोपों से कहा कि ॥ २५ ॥ हे गोपगण ! स्त्री, धन, संपत्ति लेकर बाहर निकलो भय नहीं है वायु और पानी का बरसना बंद होगया नदी काभी जल कमहोगया । ॥ २६ ॥ तब स्त्री, बालक, और वृद्ध गोपगण अपने २ गोधनको साथ ले गाडों में सब सामान भर धीरे २ बाहर निकले ॥ २७ ॥ श्रीकृष्ण भगवाननें भी सब के सामनेही लीलापूर्वक उस पर्वत को पहिले की समान उसी स्थानपर रखदिया ॥२८॥ सब ब्रजवासी प्रेम से परिपूर्ण हो श्रीभग-

प्रेमवेगाभिभूतात्मा जौकसोयथासमीयुः परिरम्भणादिभिः । गोप्यश्चसस्नेहमपूज-
यन्मुदा दध्यक्षताद्भिर्युयुजुः सदाशिषः ॥ २९ ॥ यशोदारोहिणी नन्दोरामश्चबलि
नांवरः । कृष्णमालिङ्ग्ययुयुजुराशिषःस्नेहकातराः ॥ ३० ॥ दिवि देवगणाः साध्याः
सिद्धगन्धर्वचारणाः । तुष्टुवुर्मुमुचुस्तुष्टाः पुष्पवर्षाणि पार्थिव ॥ ३१ ॥ शंखदुन्दुभयोने-
दुर्दिवि देवप्रणोदिताः । जगुर्गन्धर्वपतयस्तुम्बुरुप्रमुखानृप ॥ ३२ ॥ ततोऽनुरक्तैःपशुपैः
परिश्रितोराजन्स्वगोष्ठंसबलोऽव्रजद्धरिः । तथाविधान्यस्यकृतानिगोपिकागायन्त्य
ईयुर्मुदिताहृदिस्पृशः ॥ ३३ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा० दशम०पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एवंविधानिकर्माणिगोपाः कृष्णस्यवीक्ष्यते । अतद्वीर्यविदः
प्रोचुः समभ्येत्यसुविस्मिताः ॥ १ ॥ बालकस्यपदेतानिकर्माण्यत्यद्भुतानिवै । क
थमर्हत्यसौजन्मग्राम्येष्वात्मजुगुप्सितम् ॥ २ ॥ यः सप्तहायनोबालः करेणैकेनली
लया । कथंबिभ्रद्गिरिवरंपुष्करंगजराडिव ॥ ३ ॥ तोकेनामीलिताक्षेणपूतनायामहौ
जसः । पीतः स्तनः सहप्राणैः कालेनेवक्यस्तनोः ॥ ४ ॥ हिन्वतोऽधः शयानस्य
मास्यस्यचरणावुदक् । अनोऽपतद्विपर्यस्तंरुदतः प्रपदाहतम् ॥ ५ ॥ एकहायनआ
सीनोह्रियमाणोविहायसा । दैत्येनयस्तृणावर्तमहन्कण्ठग्रहातुरम् ॥ ६ ॥ क्वचिद्धै
यङ्गवस्तैन्येमात्राबद्धउलूखले । गच्छन्नर्जुनयोर्मध्येबाहुभ्यांतावपातयत् ॥ ७ ॥ वनेसं
चारयन्वत्सान्सरामोबालकैर्वृतः । हन्तुकामंबकंदोर्भ्यांमुखतोऽरिमपाटयत् ॥ ८ ॥

वान के निकट आय यथोचित रीति से उनका आलिङ्गनादि करनेलगे गोपियें भी आनंद से स्नेह
पूर्वक दही अक्षत और जल द्वारा उनकी पूजाकर आशीर्वाद देने लगीं ॥ २९ ॥ यशोदा, रोहिणी
नंद और बलरामजी स्नेह से विह्वल हो आलिंगन कर कृष्णजी को आशीर्वाद देनेलगे ॥ ३० ॥ स्वर्ग में
देवता, सिद्ध, साध्य, गंधर्व, और चारणगण आनंद से स्तुति करनें और फूल बरसाने तथा शंख
और दुंदुभी बजानेंलगे और देवताओं की आज्ञा से तुंबरु आदि गंधर्व पति गान करनेलगे ॥ ३१ ॥
॥ ३२ ॥ अनतर प्रेम युक्त गोपोंसे वेष्टित हो बलरामजी के साथ भगवान व्रजमें गए गोपियें भी
आनंद चित्त से मनोहर चरित्रों का गान करतीहुई साथ साथ चलीं ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे सरला भाषाटीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे राजन्! गोपगण श्रीकृष्णजी का पराक्रम नहीं जानते थे; वह सब
श्रीकृष्णजी के चरित्रोंको देख विस्मितहो आपस में कहने लगे ॥ १ ॥ किसप्रकार से गोपजाति
में इस अपूर्व बालक ने जन्म लिया? यह मनुष्य जन्मतो इसके योग्य नहीं था क्योंकि इसके सब
चरित्रोंको देखकर हमेंबड़ा आश्चर्य होता है ॥ २ ॥ जिस प्रकार से गजराज कमलको धारणकरे
उसी प्रकार से इस सातवर्ष के लड़के नेसहजही में पहाड़को धारण करलिया ॥ ३ ॥ काल जैसे
जीवकी आयुका पानकरता है उसी प्रकार इसने बचपन में आंखें बदकर महाबल शालिनी पूतना
के स्तनपान कियेथे ॥ ४ ॥ तनि महीने की वयमें जब शकट के नीचेसोते हुये रोते २ दोनों पैर
ऊपरको उठाये थे तब इसके पैरोंके अग्रभाग द्वारा आहत होकर शकट किस प्रकार से उलटगया
था ॥ ५ ॥ यह एक वर्षका होकर एकदिन बैठाहुआ था, कि उसी समय दैत्य तृणावर्त इसको
हरण करके आकाशको उड़गया था परन्तु बालकने उसका कंठ पकड़ पीड़ितकर कैसे मारडाला
॥ ६ ॥ और एकदिन मक्खन हरने के कारण माताने इसको बांधदिया था, इसने उसी अवस्थामें
दोनो अर्जुन वृक्षों के बीचमें जाय दोनो बाहुओं से किस प्रकार वृक्षोंको गिरादिया ॥ ७ ॥ जब
बलदेवजी गोपों के साथ वनमें बछड़े चरारहे थे उस समय मरनेकी इच्छा करके जो बकासुर दैत्य

वत्सेन्त्वसुत्सरूपेणप्रविशन्तं जिघांसया । हत्वान्यपातयत्तेनकपित्थानिचलीलया ॥ ९ ॥ हत्वारासभदैतेयंतद्बन्धूंश्चबलान्वितः चक्रेतालवनंक्षेमंपरिपक्वफलान्वितम् ॥ १० ॥ प्रलम्बंघातयित्वोग्रंबलेनबलशालिना । अमोचयद्व्रजपशून्गोपांश्चारण्यवह्नितः ॥ ११ ॥ आशीविषतमाहीन्द्रंदमित्वाविमदंहृदात् । प्रसह्योद्वास्ययमुनांचक्रेऽसौनिर्विषोदकाम् ॥ १२ ॥ दुस्त्यजश्चानुरागोऽस्मिन्सर्वेषांनोव्रजौकसाम् । नन्दतेतनयेऽस्मासुतस्याप्यौत्पत्तिकः कथम् ॥ १३ ॥ क्वसप्तहायनोबालः क्वमहाद्रिविधारणम् । ततोनोजायतेशङ्काव्रजनाथतवात्मजे ॥ १४ ॥ नन्द उवाच ॥ श्रूयतांमेवचोगोपाव्येतुशङ्काचवोऽर्भके । एनंकुमारमुद्दिश्यगर्गोमेयदुवाचह ॥ १५ ॥ वर्णास्त्रयः किलास्यासन्गृह्णतोऽनुयुगंतनूः । शुक्लोरक्तस्तथापीतइदानींकृष्णतांगतः ॥ १६ ॥ प्रागयंवसुदेवस्यक्वचिज्जातस्तवात्मजः । वासुदेवइतिश्रीमानभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥ १७ ॥ बहूनिसन्तिनामानिरूपाणिचसुतस्यते । गुणकर्मानुरूपाणितान्यहंवेदनोजनाः ॥ १८ ॥ एषवः श्रेयआधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः अनेनसर्वदुर्गाणियूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥ १९ ॥ पुराऽनेनव्रजपतेसाधवोदस्युपीडिताः । अराजकेरक्ष्यमाणाजिग्युर्दस्यून्समेधिताः ॥ २० ॥ यएतस्मिन्महाभागाः प्रीतिंकुर्वन्तिमानवाः । नारयोऽभिभवन्त्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ २१ ॥ तस्मान्नन्दकुमारोऽयंतेनारायणसमोगुणैः । श्रियाकीर्त्यानुभावेनतत्कर्मसुनविस्मयः ॥ २२ ॥ इत्यद्धा

आयातो उस दुष्टकी चोंचहाथों से पकड़ केसे चीरडाली ॥ ८ ॥ मारने की इच्छा से वत्सासुरने वत्स रूप धारणकर वत्सपालों के बीचमें प्रवेशकिया तब किस प्रकार से सहजही में खेलते हुये उसे कपित्थ के वृक्षपरदे माराथा ॥९॥ बलरामजी के साथ मिलकर धेनुकासुर और उसके जातिवालोंको मार किस प्रकार से पकेहुये फलोंयुक्त ताल वनको निर्भय किया ॥ १० ॥ किसप्रकार भगवान बलदेवजी से दुष्ट प्रलयासुरको मरवाय ब्रजके गोपों और पशुओंको छुड़ाया ॥ ११ ॥ किस प्रकार से अति तीक्ष्ण सांपको बलपूर्वक दमन और गर्व रहितकर दहसे निकाल कालिंदीका जल निर्मल किया ॥ १२ ॥ हे नंद ! तुम्हारे बालकपर हमारा अत्यंत अनुराग उत्पन्न हुआ है, इसका भी हमारे ऊपर स्वाभाविक अनुराग क्यों है ॥ १३ ॥ कहांतो यह सात वर्षका बालक, और कहां इतना ऊंचा यह गोवर्द्धन पर्वत ! परन्तु तौभी इस बालक ने उसे सहजही में उठालिया ! हे ब्रज नाथ ! तुम्हारे बालकपर हमें संदेह होताहै ॥१४॥ नंदजीने कहाकि-हे गोपो! मेरीबात सुनो। इस बालक पर जो तुम्हारा संदेह है उसको दूरकरो । गर्गाचार्य इस बालके निमित्त जोकुछ कहगये हैं उसको कहताहूं सो सुनो ॥ १५ ॥ उन्हों ने कहाथा कि यह युग २ में शरीर धारण करता है । श्वेत, रक्त और पीत यही तीन इसकेवर्ण हैं, इस समय यह कृष्ण वर्ण होकर अवतीर्ण हुआ है ॥ १६ ॥ तुम्हारे इस पुत्रने पहिले वसुदेव के वीर्यसे जन्म ग्रहण कियाथा इसी कारण पंडितलोग इसको श्रीमान् 'वासुदेव, कहते हैं ॥ १७ ॥ तुम्हारे इस पुत्रके गुण और कर्मों के अनुसार अनंत रूप और अनेक नाम सुनेजाते हैं वह मुझेज्ञात हैं और मनुष्य भी नहीं जानते ॥ १८ ॥ यह गोप और गोकुलका आनंद उत्पन्न कराने वाला होकर तुम्हारा कल्याण करेगा । तुम इसकी सहायता के सब आपत्तियों से छूटजावोगे ॥ १९ ॥ हे ब्रजपते ! पहिले चोरोंने साधुओंको पीड़ा उत्पन्नकी और देश अराजक होगयाथा तब साधुओं की इसने रक्षाकी । इसकी कृपासेही प्रजाने वृद्धिप्राप्त करके दस्युगणों को जीताथा ॥ २० ॥ जोमनुष्य इस महाभाग से प्रेम करेंगे-असुर जैसे विष्णु भक्तोंको पराजित नहीं करसकते तैसेही शत्रुगण उनको नहीं परास्त करसकेंगे ॥ २१ ॥ अतएव हे नंद ! यह कुमार गुण, श्री, कीर्ति और प्रभावमें नारायणकी समान होगा । अतएव हे गोपो !

मांसमादिश्यगर्गेचस्वगृहंगते । मन्येनारायणस्यांशंकृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥ २३ ॥
इतिनन्दवचः श्रुत्वागर्गगीतंव्रजौकसः । दृष्टश्रुतानुभावास्तेकृष्णस्यामिततेजसः ।
मुदितानन्दमानर्चुः कृष्णंचगतविस्मयाः ॥ २४ ॥ देवेवर्षतियज्ञविप्लवरुषावज्रा
श्मपर्षानिलैः सीदत्पालपशुस्त्रिआत्मशरणंदृष्ट्वानुकम्प्युत्स्मयन् । उत्पाट्यैककरे
ण शैलमबलोलीलोच्छिलीन्ध्रं यथा बिभ्रद्गोष्ठमपान्महेन्द्रमदभित् प्रीयान्नइन्द्रो
गवाम् ॥ २५ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ गोवर्धनेधृतेशैल आसाराद्रक्षितेव्रजे। गोलोकादाव्रजत्कृष्णं
सुरभिःशक्रएवच ॥ १ ॥ विविक्तउपसंगम्य व्रीडितःकृतहेलनः। पस्पर्शपादयोरेनं
किरीटेनार्कवर्चसा ॥ २ ॥ दृष्टश्रुतानुभावोऽस्य कृष्णस्यामिततेजसः । नष्टत्रिलो-
केशमद इन्द्रआहकृताञ्जलिः॥ ३॥ इन्द्रउवाच ॥ विशुद्धसत्त्वंतवधामशान्तं तपोमयं
ध्वस्तरजस्तमस्कम् । मायामयोऽयंगुणसंप्रवाहोनविद्यतेतेऽग्रहणानुबन्धः ॥ ४ ॥
कुतोनुतद्धेतवईश तत्कृतालोभादयो येऽबुधलिङ्गभावाः । तथाऽपिदण्डंभगवान्
बिभर्तिधर्मस्यगुप्त्यैखलनिग्रहाय ॥ ५ ॥ पितागुरुस्त्वंजगतामधीशो दुरत्ययःकाल
उपात्तदण्डः । हितायचेच्छातनुभिःसमीहसेमानं विधुन्वन् जगदीशमानिनाम्
॥ ६ ॥ येमद्विधाज्ञाजगदीशमानिनस्त्वां वीक्ष्यकालेऽभयमाशुतन्मदम् । हित्वाऽऽ

इसके कामोंको देखकर आश्चर्य मतकरो ॥ २२ ॥ जबसे गर्गाचार्य यह कहकर अपने घरकोगये हैं तबही से मैं इसको नारायण का अंश मानता हूं क्योंकि कृष्ण क्लेशोंका नाश करता है ॥ २३ ॥ ब्रजवासियों ने गर्गाचार्य के कथनको नंदजी के मुखसे सुनकर विस्मयको छोडदिया और आनंदित हो उन्हों ने नंदराय व श्रीकृष्णजी की पूजाकी ॥ २४ ॥ यज्ञभंग होने के कारण क्रोधातुर इन्द्रने वर्षा करने का आरंभकिया, जल, ओले और प्रचंडवायु से गाय, गोपाल, और स्त्रियें व्याकुल होगईं; जिन्हों ने दयाके वशसे हंसते हुये जैसे बालक छातेको धारणकरे वैसेही सहज से उखाडकर एक हाथसे पहाड़ धारणकर स्वयं जिनने ब्रजकी रक्षाकी वह इन्द्र के गर्वका नाश करने वाले भगवान मेरे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ २५ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेनरभाषाटीकायांविंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! श्रीकृष्णजी के गोवर्द्धन पर्वत उठानें और वर्षा से ब्रजकी रक्षा करनेपर इन्द्र और गोलोक से कामधेनु श्रीकृष्णजी के निकट आई ॥ १ ॥ आज्ञाकारी इन्द्र ने लज्जित भाव से आयकर सूर्य की समान कांति वाले किरीट द्वारा एकांत में श्रीकृष्णजी के चरणों का स्पर्श किया ॥ २ ॥ मैं त्रिलोकी का स्वामी हूं ऐसाजो उसे अहंकार था अमित तेजवालेश्री कृष्णजी के प्रभाव के देखने सुनने से वह नाश होगया वह हाथ जोडकर कहने लगा कि ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! आप के स्वरूप में रज और तमोगुणकी स्थिति नहीं है इस कारण आप शांत एक रूप अत्यंत ज्ञानयुक्त हो मायाका कार्य यह संसार आपके नहीं है क्योंकि अज्ञान सेही इसकी उत्पत्ति होती है ॥ ४ ॥ अतएव हे ईश्वर ! लोभादि जो कुछ हैं वे अज्ञान और देह सेही उत्पन्न होते हैं जीव के सद्भाव से देखनेपर उस अज्ञान को आनाजाता है वह सब आपमें किस भांति होवेंतो भी आप धर्म की रक्षा के कारण और दुष्टोंके दमन करनेंके निमित्त आप दंड धारणकरतेहो अतएव दंड के निमित्तही मेरा अभिमान नाश किया ॥ ५ ॥ आप जगत के पिता, गुरु, अधीश्वर और दुर्निवार्य काल हो हित के निमित्त अपनी इच्छानुसार नाना देह ग्रहण पूर्वक दंड धारण कर, जो अपनें को जगत का ईश्वर जानते हैं उनका अभिमान नाश करते रहतेहो ॥ ६ ॥ मेरे समान

र्थमार्गप्रभजन्त्यपस्मयाईहा खलानामपितेऽनुशासनम् ॥ ७ ॥ सत्वंममैश्वर्यमद-प्लुतस्य कृतागसस्तेऽविदुषःप्रभावम्। क्षन्तुंप्रभोऽथार्हसिमूढचेतसो मैवंपुनर्भून्म तिरीशमेऽसती ॥ ८ ॥ तवावतारोऽयमधोक्षजेह स्वयंभराणामुरुभारजन्मनाम्। चमूपतीनामभवायदेव भवाययुष्मच्चरणानुवर्तिनाम्॥९॥नमस्तुभ्यंभगवते पुरुषाय महात्मने। वासुदेवायकृष्णाय सात्वतांपतयेनमः ॥ १० ॥ स्वच्छन्दोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्तये। सर्वस्मैसर्वबीजाय सर्वभूतात्मनेनमः ॥ ११ ॥ मयेदंभगवन् गोष्ठनाशायासारवायुभिः। चेष्टितंविहतेयज्ञे मानिनातीव्रमन्युना ॥१२॥ त्वयेशानु गृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तम्भोवृथोद्यमः। ईश्वरंगुरुमात्मानं त्वामहंशरणंगतः ॥१३॥ श्रीशुकउवाच ॥ एवंसंकीर्तितःकृष्णो मघोनाभगवानमुम्। मेघगम्भीरयावाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मयातेऽकारिमघवन् मखभङ्गोऽनु-गृह्णता। मदनुस्मृतयेनित्यं मत्तस्येन्द्रश्रियाभृशम् ॥ १५ ॥ मामैश्वर्यश्रीमदान्धो दण्डपाणिंनपश्यति। तंभ्रंशयामिसंपद्भ्यो यस्यचेच्छाम्यनुग्रहम् ॥ १६ ॥ गम्यतां शक्रभद्रंवः क्रियतांमेऽनुशासनम्। स्थीयतांस्वाधिकारेषु युक्तैर्वःस्तम्भवर्जितः ॥ १७ ॥ अथाहसुरभिःकृष्णमभिवाद्यमनस्विनी। स्वसंतानैरुपामन्त्र्य गोपरूपिण-मीश्वरम् ॥ १८ ॥ सुरभिरुवाच ॥ कृष्णकृष्णमहायोगिन् विश्वात्मन्विश्वसंभव। भवतालोकनाथेन सनाथावयमच्युत ॥ १९ ॥ त्वंनःपरमकंदैवं त्वंनइन्द्रोजगत्पते।

जो मूर्ख मनुष्य अपनें आपही को ईश्वर जानकर अभिमान करते हैं वे भय के समय मेंभी निर्भय आपको देख तत्कालही अहंकार को छोड गर्व रहित हो श्रेष्ठ मार्ग का सेवन करते हैं इससेही जो आपके चरित्र हैं वह खलों के दंड रूप हैं ॥ ७ ॥ मैं ऐश्वर्य के मदसे मत्त होकर आप के प्रभाव को नहीं जानताथा इससे मैं अपराधी हूं मेराचित्त अज्ञानके अंधकारमें ढकाहुआथा हे प्रभो ! मुझे क्षमा करो ! हे ईश्वर ! मेरी ऐसी कुबुद्धि और कभी नहोवे ॥ ८ ॥ हे अधोक्षज ! हे देव ! यह आपका अवतार स्वयंभार रूप और भार रूप सेनापतियों के नाश के निमित्त है जो आपके चरणों की सेवा करता है उसका कल्याण होताहै ॥ ९ ॥ आप अंतर्यामी, सर्वज्ञ, अपरिच्छिन्न और या दवों के अधिपति हो आपको नमस्कार है ॥ १० ॥ आप विशुद्ध, ज्ञान मूर्ति; अपनी इच्छानुसार देह धारण करते हो आप सर्वस्वरूप, सर्वातीत और सर्वभूतमय हो आपको नमस्कार है ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! मैं अभिमानी हूं इससे मेरा क्रोध भी अत्यंत प्रचंड है कि यज्ञनष्ट होनेंसे जलको वर साय और वायुद्वारा व्रजके नाश करने की मैंने चेष्टाकी ॥ १२ ॥ हे ईश्वर ! आपनें मेरा गर्वनाश कर मेरे ऊपर अति अनुग्रह किया मेरा उद्यम व्यर्थ होनेसे मेरा गर्व दूर होगया आप ईश्वर गुरू, और आत्माही मैं आपकी शरणागत हुआहूं ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इन्द्र के इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान हसे और मेघकी समान गंभीर वाणी से बोले कि ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्य से अति मतवाले होगयेथे तुम मेरा स्मरण करसको इसी कारण मैनें कृपा करके तुम्हारे यज्ञ का भंग किया है ॥ १५ ॥ मनुष्य ऐश्वर्य के मदसे अंधे होकर मुझे भूल जाते हैं और हाथ में लियेहुए मेरे दंड को नहीं देखते उनमें से मैं जिसके ऊपर अनुग्रह करना चाहता हू उसी को ऐश्वर्य रहित करदेताहूं ॥१६॥ हे देवेन्द्र ! इस समय तुम जाओ और मेरी आज्ञाका पालन करो तुम्हारा कल्याण होगा तुम गर्व रहित और अभिमान शून्य होकर अपने २ पदोंपर स्थितहो ।१७। अनंतर मनस्विनी कामधेनु अपने वंश वालोंको साथले गोप रूपी भगवान श्रीकृष्णजी को प्रणाम करके कहने लगी कि ॥ १८ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे विश्व के उत्पादक हे अ च्युत ! हे लोकनाथ ! आपने हमको क्रोधित इन्द्र के ध्वंस करनेसे बचालिया आप हमारे परमदे-

भवाय भवगोविप्रदेवानां ये च साधवः ॥ २० ॥ इन्द्रं नस्त्वाभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा चोदिता
वयम् । अवतीर्णोऽसि विश्वात्मन् भूमेर्भारापनुत्तये ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
एवं कृष्णमुपामन्त्र्य सुरभिः पयसाऽऽत्मनः । जलैराकाशगङ्गाया ऐरावतकरोद्धृतैः
॥ २२ ॥ इन्द्रः सुरर्षिभिः साकं नोदितो देवमातृभिः । अभ्यषिञ्चत दाशार्हं गोवि
न्द इति चाभ्यधात् ॥ २३ ॥ तत्रागतास्तुम्बुरुनारदादयो गन्धर्वविद्याधरसिद्धचार
णाः । जगुर्यशो लोकमलापहं हरेः सुराङ्गनाः संननृतुर्मुदान्विताः ॥ २४ ॥ तं तुष्टु
वुर्देवनिकायकेतवो ह्यवाकिरंश्चाद्भुतपुष्पवृष्टिभिः । लोकाः परां निर्वृतिमाप्नुवंस्त्रयो
गावस्तदा गामनयन् पयोद्रुताम् ॥ २५ ॥ नानारसौघाः सरितो वृक्षा आसन् मधुस्रवाः ।
अकृष्टपच्यौषधयो गिरयोऽबिभ्रदुन्मणीन् ॥ २६ ॥ कृष्णेऽभिषिक्त एतानि सत्त्वानि
कुरुनन्दन । निर्वैराण्यभवंस्तात क्रूराण्यपि निसर्गतः ॥ २७ ॥ इति गोगोकुलपतिं गो
विन्दमभिषिच्य सः । अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् । स्नातुं नन्दस्तु
कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत् ॥ १ ॥ तं गृहीत्वाऽनयद्भृत्यो वरुणस्यासुरोऽन्ति
कम् । अविज्ञायासुरीं वेलां प्रविष्टमुदकं निशि ॥२॥ चुक्रुशुस्तमपश्यन्तः कृष्ण रामेति
गोपकाः । भगवांस्तदुपश्रुत्य पितरं वरुणाहृतम् ॥ ३ ॥ तदन्तिकं गतो राजन् स्वानाम

वताहो अतएव हे जगत्पते ! गो, ब्राह्मण, देवता और साधु मनुष्य इन सबके कल्याण के निमि-
त्तही हमारे इन्द्र होजाओ ॥ १९ ॥ २० ॥ ब्रह्माने हमको आज्ञा की है कि हम आपका इन्द्रत्व के
लिये अभिषेक करें हे विश्वात्मन् ! आपने पृथ्वी का भार दूर करने के निमित्त ही अवतार लिया है
॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! गौ ने भगवानसे इस प्रकार कह उनको अपने दुग्ध
से और इन्द्र नें ऐरावत हाथीकी सूंड से लायेहुए आकाश गंगा के जल से अभिषिक्त किया ।२२।
और देवमाताओंकी आज्ञानुसार सब देवताओंने इन्द्रसहित भगवानका अभिषेककर गोविंदनाम
रक्खा ॥ २३ ॥ तुम्बुरु, नारद, विद्याधर और चारण आदि सब उसस्थानमें आकर पापनाशक
भगवानके चरित्रोंका गान करनेलगे और देवांगनाएंभी आनन्दित होकर नाचनेलगीं॥२४॥देवता
स्तुति करने और फूल बरसाने लगे, उससमय तीनोंलोकोंको परम आनन्द उत्पन्नहुआ, गौओं ने
दूधसे पृथ्वीको तर करदिया ॥ २५ ॥ समस्त नदियें नानारसोंको और वृक्ष मधुको बहाने लगे,
औषधियें बिना बर्षाकेही पकउठीं और मणियोंने भीतरसे निकलकर पर्वतों के ऊपरी भागमें शोभा
धारण की ॥ २६ ॥ हे कुरुनन्दन ! कृष्णजीके अभिषेक से जो प्राणीस्वभावसेही दुष्ट व परस्पर
वैर रखनेवाले थे वह निर्वैरहोगये ॥ २७ ॥ इन्द्र और गो गोकुलपति श्रीकृष्णजीका इसप्रकार से
अभिषेककर उनकी आज्ञानुसार देवताओं के साथ स्वर्ग में गये ॥ २८ ॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे सरलाभाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! गोपराज नन्दजीने एकादशीका व्रतकर भगवानकी पूजा
की, और द्वादशीके दिन स्नान करनेके निमित्त कालिन्दीके जलमें ज्यों प्रवेश किया ॥ १ ॥ त्यों
एक वरुण का सेवक दैत्य उन्हें पकड़कर वरुणजीके पासलेगया । क्योंकि वे आसुरी बेलाको न
जानकर रात्रिमें जलमें घुसगयेथे ॥ २ ॥ गोपगण उनको न देखकर हेराम ! हेकृष्ण ! कहकर चि-
ल्लाने लगे । हेराजन् ! वरुण पिताको लेगयेहैं, यह सुनकर श्रीकृष्णजीने, गोपोंको धीरज बँधाय
अभयदान दिया और आप वरुणके निकट गये ॥ ३ ॥ उनको आते देखकर लोकपाल वरुणजी
अत्यन्तही आनन्दितहुए और बड़ी सामग्रीके साथ उनकी पूजाकरके बोले ॥ ४ ॥ हेप्रभो ! आज

भगवान्विभुः । प्राप्तंवीक्ष्यहृषीकेशंलोकपालःसपर्यया॥ महत्यापूजयित्वाऽऽहतद्दर्शनमहोत्सवः ॥ ४ ॥ वरुण उवाच ॥ अद्यमेनिभृतोदेहोऽद्यैवार्थोऽधिगतःप्रभो । त्वत्पादभाजोभगवन्नवापुःपारमध्वनः ॥ ५ ॥ नमस्तुभ्यंभगवतेब्रह्मणेपरमात्मने । न यत्रश्रूयतेमायालोकसृष्टिविकल्पना ॥ ६ ॥ अजानतामामकेनमूढेनाकार्यवेदिना । आनीतोऽयंतवपितातद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥ ७॥ ममाप्यनुग्रहंकृष्णकर्तुमर्हस्यशेषदृक् । गोविंद्नीयतामेषपितातेपितृवत्सल ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥एवंप्रसादितः कृष्णोभगवानीश्वरेश्वरः । आदायागात्स्वपितरंबन्धूनांचावहन्मुदम् ॥ ९ ॥ नन्दस्त्वतीन्द्रियंदृष्ट्वा लोकपालमहोदयम् । कृष्णेचसन्नतिंतेषांज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत् ॥ १० ॥ तेत्वौत्सुक्यधियोराजन् मत्वागोपास्तमीश्वरम् । अपिनःस्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः ॥ ११ ॥ इतिस्वानांसभगवान् विज्ञायाखिलदृक्स्वयम् ॥ संकल्पसिद्धयेतेषां.कृपयैतदचिन्तयत् ॥ १२ ॥ जनोवैलोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः । उच्चावचासुगतिषु नवेदस्वांगतिंभ्रमन् ॥ १३ ॥ इतिसंचिन्त्यभगवान् महाकारुणिकोहरिः । दर्शयामासलोकंस्वं गोपानांतमसःपरम् ॥ १४ ॥ सत्यंज्ञानमनन्तं यद्ब्रह्मज्योतिःसनातनम् । यद्धिपश्यन्तिमुनयो गुणापायेसमाहिताः ॥ १५॥ तेतुब्रह्महृदंनीता मग्नाःकृष्णेनचोद्धृताः । ददृशुर्ब्रह्मणोलोकं यत्राऽक्रूरोऽध्यगात्पुरा ॥ १६ ॥ नन्दादयस्तुतंदृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः । कृष्णंचतत्रच्छन्दोभिः स्तूयमानंसुविस्मिताः ॥ १७ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधेऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

मेरा शरीर सफल हुआ, आज यथार्थही सम्पत्ति प्राप्तहुई । हे भगवन् ! जो आपके चरणोंकी सेवा करते हैं वे मोक्षपद प्राप्त करतेहैं ॥ ५ ॥ आप अत्यन्त ऐश्वर्यरूपी और पूर्ण स्वरूपहो । जो माया भ्रांति उत्पन्न करनेके निमित्त तीनोंलोकोंको उपजातीहै, आपमें उसका सद्भाव नहीं है, अतएव आप समस्त प्राणियोंके नियन्ताहो आप को नमस्कारहै ॥ ६ ॥ मेरा सेवक मूर्खहै उसको कार्या- कार्यका विचार नहींहै । वह अनजाने आपके पिताको लेआया, अतएव हेप्रभो क्षमाकरो, ॥ ७ ॥ हेपितृवत्सल गोविन्द ! आपके पिता यहहैं इनको आप लेजाइये ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- हेराजन् ! भगवान् श्रीकृष्णजी इसप्रकार वरुणसे पूजितहो अपने पिताको लेकर लौटआये ॥ ९ ॥ उनको और नन्दजीको देखकर बन्धुगण प्रसन्नहुए गोपराज नन्दने वरुणके अदेखे (अदृष्ट) ऐ- श्वर्य और श्रीकृष्णके प्रति उनकी पूजादेख अत्यन्त विस्मितहो सब वृत्तांत जातिवालोंसे कहा१०॥ हेराजन् ! वे गोपाल उन्हें भगवानजान जीमें उत्कण्ठा करनलगे कि क्या परमेश्वर हमें भी निजधाम ब्रह्मपदको लेजावेंगे ॥ ११ ॥ सर्वदर्शी भगवान् अपने आत्मीयकी इस इच्छाको जान उसके पूर्ण करनेके निमित्त कृपावशहो विचारने लगे कि—१२ ॥ यह जीव इसलोकमें अविद्या, काम और कर्मके योगसे ऊँची नीची गतिमें भ्रमण करताहुआ अपनी गतिको नहीं जानसकता ॥ १३ ॥ महादयालु भगवानने यह विचारकर गोपोंको प्रकृतिसे परवर्त्ती अपने वैकुण्ठ लोकको दिखादिया। ॥ १४ ॥ जिसका कोई बाधक नहीं है, जो अजड़, अपरिच्छिन्न, स्वप्रकाश, नित्य और समाहित है कि जिसको ज्ञानीजन गुणोंके उपाय में एकमनहो देखतेहैं उस ब्रह्मरूपको भगवानने कृपाकर के गोपोंको दिखादिया ॥ १५ ॥ तदुपरान्त उन्हें ब्रह्मकुंडके निकटलेगये । उन्होंने उसमें डूबकर वैकुंठलोकको देखा, अक्रूरनेभी इसीकुंडमें श्रीकृष्णजीके पदको देखाथा ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णजी के फिर उठानेपर वे पहिलेकी समान रूपदेखकर अत्यन्त विस्मितहुये । और परमानंदमें मगनहो भग वानकी नानाप्रकारके वेद वाक्योंसे स्तुति करनेलगे ॥ १७ ॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे सरलभाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

श्रीशुकउवाच । भगवानपि ता रात्रीः शारदोत्फुल्लमल्लिकाः । वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १ ॥ तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शंतमैः । स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ २ ॥ दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं रमाननाभं नवकुंकुमारुणम् । वनं च तत्कोमलगोभिरंजितं जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥ ३ ॥ निशम्य गीतं तदनंगवर्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः । आजग्मुरन्योऽन्यमलक्षितोद्यमाः स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥ ४ ॥ दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सुकाः । पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ॥ ५ ॥ परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून्पयः । शुश्रूषन्त्यः पतीन्काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ॥ ६ ॥ लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अंजन्त्यः काश्च लोचने । व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित्कृष्णान्तिकं ययुः ॥ ७ ॥ ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः । गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥ ८ ॥ अन्तर्गृहगताः काश्चिद्गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः । कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः । ॥ ९ ॥ दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः । ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमंगलाः ॥ १० ॥ तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्याऽपि संगताः । जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्र

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! भगवान ने गोपकुमारियों से आगामी शरदऋतु में विहार करने को कहाथा । वही शारदीया सुहावनी रात्रि आई । उस सुखमयी रात्रि में मल्लिका के फूलों को फूलाहुआ देख भगवान ने योगमाया का आश्रय ग्रहणकर विहारकरने की इच्छाकी ॥ १ ॥ आकाश में चन्द्रमाउदयहुआ । स्वामी जैसे बहुत दिनों में आकर केसर से अपनी प्यारी का मुख रंगता है, चन्द्रमाभी वैसेही सुखमय किरणों द्वारा अरुण राग से पूर्व दिशाका मुख रंग मनुष्यों का क्लेश दूर करने लगा ॥ २ ॥ लक्ष्मी देवी के मुख मण्डलकी समान चन्द्रमाअखण्ड मण्डल और केसर की समान अरुण वर्ण का होकर उदयहुआ । वन में उसकी सुन्दर किरणों को फैलाहुआ देख श्रीकृष्णजी स्त्रियों को मोहित करनेवाले गीतों को गाने लगे ॥ ३ ॥ उस से सब व्रजनारियों के चित्त भली प्रकार से खिचगये । वह उन आनन्द उत्पादकगीतों को सुनकर अपनी इच्छा एक दूसरे को न जनाय उनके निकट जाने लगीं । शीघ्रतापूर्वक चलने से उन के कुण्डल चलायमानहोरहेथे ॥ ४ ॥ कोई २ गोपी दूध दुहते २ श्रीकृष्णजी के गीतों को सुनकर अपने कार्य को छोड़ उत्कण्ठा पूर्वक चलीं । कोई चूल्हे पर के चढ़ेहुए दूधको बिनाउतारे उतारे तथा कोई गेहूंका पक्वान्नद्रव्य बिना चूल्हे से उतारे चलदीं ॥ ५ ॥ कोई २ परोसतीथीं, कोई २ बच्चों को दूधपिलातीथीं; कोई २ स्वामी की सेवाकरतीथीं—परन्तु वे सब कामों को छोड़२कर चलदीं कोई २ भोजन करने को बैठीहीथीं । वे बिना पूराअन्नखायेही उठचलीं ॥ ६ ॥ कितनीएकलीपती थीं, कोई २ उबटन लगातीथीं, कोई २ देह मलतीं और कोई २ आंखों में सुरमालगातीथीं; काम समाप्त न कर वहां से दौडचलीं । कोई २ गोपी वस्त्र अलंकारादि से विभूषितहो श्रीकृष्णजी के समीप चलीं गमन करने में शीघ्रता करने के कारण उनके वस्त्र आभूषण उलटे पुलटे होगये ॥ ७ ॥ पिता, पति, भाई और बन्धुगण उनका निवारणकरते थे परन्तु वे निवृत्त नहुईं; क्योंकि-उन के चित्त श्रीकृष्णजी से हरण होकर मोहित होगये थे ॥ ८ ॥ अन्तःपुरवासिनी जो कोई २ गोपी बाहरही न होनेपाईं वे अपने नेत्र बन्दकर श्रीकृष्णजी का ध्यानकरने लगीं ॥ ९ ॥ एकतो उन का चित्त पहिलेही से भगवान में लगाहुआथा; इस समय उन्हीं का ध्यान करने लगीं। प्रियतम के दुःसह विरह से जो सन्ताप उत्पन्नहुआ; उसी से उन सब गोपियों के अकल्याणका नाश होगया और ध्यान योग में प्राप्तहो श्रीकृष्णजी का आलिंगनकर जोसुख सम्भोग प्राप्तहुआ इस से उनके पुण्यका क्षेप होगया ॥ १० ॥ अतएव वह यद्यपि उनको उपपति जानतीथीं तौभी

क्षीणबन्धनाः ॥ ११ ॥ राजोवाच । कृष्णंविदुःपरंकान्तं नतुब्रह्मतयामुने । गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियांकथम् ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच । उक्तंपुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिंयथागतः । द्विषन्नपिहृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥ १३ ॥ नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतोनृप । अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्यगुणात्मनः ॥ १४ ॥ कामंक्रोधंभयंस्नेहमैक्यं सौहृदमेवच । नित्यंहरौ विदधतो यान्ति तन्मयतांहिते ॥ १५ ॥ नचैवंविस्मयःकार्यो भवताभगवत्यजे । योगेश्वरेश्वरेकृष्णे यतएतद्विमुच्यते ॥ १६ ॥ तादृष्ट्वान्तिकमायाता भगवान्व्रजयोषितः । अवदद्वदतांश्रेष्ठो वाचःपेशैर्विमोहयन् ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स्वागतंवोमहाभागाः प्रियंकिंकरवाणिवः । व्रजस्यानामयंकच्चिद् ब्रूतागमनकारणम् ॥ १८ ॥ रजन्येषाघोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता । प्रतियातव्रजंनेह स्थेयंस्त्रीभिःसुमध्यमाः ॥ १९ ॥ मातरःपितरःपुत्रा भ्रातरःपतयश्चवः । विचिन्वन्तिह्यपश्यन्तो मा कृढ्वंबन्धुसाध्वसम् ॥ २० ॥ दृष्टंवनं कुसुमितंराकेशकररञ्जितम् । यमुनाऽनिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥ २१ ॥ तद्यातमाचिरंगोष्ठंशुश्रूषध्वंपतीन्सतीः । क्रन्दन्तिवत्सावालाश्चतान्पाययतदुह्यत ॥ २२ ॥ अथवामदभिस्नेहाद्भवत्योयन्त्रिताशयाः । आगताह्युपपन्नंवः प्रीयन्तेमयिजन्तवः ॥ २३ ॥ भर्तुः शुश्रूषणंस्त्रीणांपरोधर्मोह्यमायया । तद्बन्धूनांचकल्याण्य

उन परमात्मा को प्राप्त होकर उसी काल सुख दु:ख से अशेष कर्मों को नाशकर उन्होंने त्रिगुणात्मक देह छोड़दी ॥ ११ ॥ राजा परीक्षित ने कहा कि—हे मुने ! गोपिकायें श्रीकृष्णजी को उपपति जानतीथीं; वह उनको परब्रह्म नहींजानतीथीं । फिर किसप्रकार वे संसार से विरतहुई ? उनकी बुद्धितो गुणोंही में आसक्तथी ॥ १२ ॥ शुकदेवजी बोले कि हेराजन् ! मैंने पहिलही यह बात कही है । शिशुपाल भगवान से शत्रुता करके भी जब सिद्धहुआथा तब जो उनकीप्यारी हैं उनकी बातमें क्या कहूं ॥ १३ ॥ हे राजन् ! भगवान अव्यय, अप्रमाण, निर्गुण और गुणों के नियंता हैं । साधुओं के कल्याण के निमित्तही उनका रूप प्रकाश पातारहता है ॥ १४ ॥ काम, क्रोध, भय, स्नेह, भक्ति और संबंध चाहे जाहो—इनमें से केवल एक केई। द्वारा जिसका चित्त भगवान में लगजाता है वह तन्मयताको प्राप्तहोता है ॥ १५ ॥ तुम—भगवान योगेश्वर श्रीकृष्णजी पर ऐसा विस्मय न करो कारण कि इनसे स्थावर आदि कोभी मोक्षहोती है ॥ १६ ॥ बोलने वालोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण भगवान उन ब्रज नारियोंको समीप आयादेख बातों से उन्हें मोहित करके बोलेकि ॥१७॥ हे बड़भागिनियों ! सुख से तो आई हो ? तुम्हारा क्या कार्य करूंसोकहो ? ब्रज में मंगलतो है ? तुम्हारे यहां आनेका क्या कारण है ॥ १८ ॥ इस भयंकर रात्रिमें इस बनमें हिंसक जीव इधर उधर घूमते फिरते हैं, अतएव तुम ब्रजको लौटजाओ । हे सुमध्यमागण ! इस स्थान में स्त्रियों का रहना उचित नहीं ॥ १९ ॥ तुम्हारे माता, पिता, भ्राता और पति तुम्हें न देखकर खोज करेंगे । तुम बंधुओं को शंकाग्रस्त उत्पन्न कराओ ॥ २० ॥ इतना वचन सुनकर गोपियें प्रेमके क्रोध से दूसरी ओर देखने लगीं । तब भगवान ने फिर कहाकि फूला हुआवन, चन्द्रमाकी पूर्ण किरणों से रंजित होरहा है, यमुनाजी का जल हवासे कंपित हुए वृक्षों के पत्तोंसे शोभायमान होरहा है, तुम यदि यह देखने आई होतो देखलिया अब गोष्ठ में जाओ, विलम्ब नकरो। तुम पतिव्रताहो अपने २ घर जाकर पतियों की सेवाकरो । बछड़े और बालक रोतेहोंगे उनको जाकर दूध पिलाओ ॥२१॥ ॥ २२ ॥ और यदिमेरेही स्नेह से चित्त वशीभूत हुआहो इससे आई होतो इस में भी दोष नहीं है क्योंकि सबप्राणी मुझसे प्रीति करते हैं॥२३॥हेकल्याणियों ! निष्कपट होकर स्वामीकी ओर स्त्रीकी

प्रजानांचानुपोषणम् ॥ २४ ॥ दुःशीलोदुर्भगोवृद्धोजडोरोग्यधनोऽपिवा । पतिः स्त्रीभिर्नहातव्योलोकेप्सुभिरपातकी ॥ २५ ॥ अस्वर्ग्यमयशस्यंचफल्गुकृच्छ्रंभयावहम् । जुगुप्सितंचसर्वत्रऔपपत्यंकुलस्त्रियाः ॥ २६ ॥ श्रवणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् । नतथासन्निकर्षेणप्रतियाततततोगृहान् ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति विप्रियमाकर्ण्यगोप्योगोविन्दभाषितम् । विषण्णाभग्नसंकल्पाश्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् ॥ २८ ॥ कृत्वामुखान्यवशुचः श्वसनेनशुष्यद्बिम्बाधराणिचरणेनभुवंलिखन्त्यः । अस्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुंकुमानि तस्थुर्मृजन्त्यउरुदुःखभराः स्मतूष्णीम् । ॥ २९ ॥ प्रेष्ठंप्रियेतरमिवप्रतिभाषमाणं कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः । नेत्रेविमृज्य रुदितोपहतेस्म किंचित्संरम्भगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥ ३० ॥ गोप्य ऊचुः । मैवंविभोऽर्हतिभवान्गदितुंनृशंसं सन्त्यज्यसर्वविषयांस्तव पादमूलम् । भक्ताभजस्वदुरवग्रहमात्यजास्मान्देवो यथादिपुरुषोभजतेमुमुक्षून् ॥ ३१ ॥ यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरंग स्त्रीणांस्वधर्मइतिधर्मविदा त्वयोक्तम् । अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशेप्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किलबन्धुरात्मा ॥ ३२ ॥ कुर्वन्तिहित्वयिरतिंकुशलाः स्वआत्मन्नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् । तन्नःप्रसीदपरमेश्वर मास्मछिंद्या आशांभृतां त्वयिचिरादरविन्दनेत्र ॥ ३३ ॥ चित्तंसुखेनभवताऽपहृतंगृहेषु यन्नि र्विशत्युतकरावपिगृह्यकृत्ये ॥ पादौपदंनचलतस्तव पादमूलाद्यामःकथंव्रजमथो

के बंधुओं को सेवा और बच्चोंका लालन पालन करना यही स्त्रियोंका परम धर्म है ॥ २४ ॥ पति चाहे दुष्ट स्वभाव, अभागा, वृद्ध, जड़, और निर्धनहो परन्तु सद्गति चाहने वाली स्त्रीको उसका त्याग कदापि नहीं करना चाहिये ॥२५॥ कुल स्त्रीको जार पुरुषका सेवन स्वर्गका नष्ट करनेवाला कीर्तिको मिटाने वाला, तुच्छ, कष्ट देनेवाला, भयकारी और सब स्थानो पर निंदनीय है ॥ २६ ॥ मेरेनामके सुनने, मेराध्यान और मेरागुण कीर्तन करने से मुझमें जैसा स्नेहउत्पन्न होताहै वैसा मेरे निकट रहने से नहीं उत्पन्न होता, अतएव तुम घरको लौटजाओ ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! गोविंद के इस अप्रिय वाक्यको सुनकर गोपियें मनोरथ पूर्ण न होने से अत्यंत विषाद को प्राप्त हुई ॥ २८ ॥ शोक के कारण उनके बडे २ श्वास चलनेलगे, इससे कुंदुरू से होंठ सूखगये वह अत्यंत दुःख से व्याकुल हो नीचा मुखकर, पैरके अंगूठे से भूमि खोदने लगीं और काजल युक्त आंसुओं की धारा से कुचोंकी केसरको धो मौन भाव से खड़ी रहगई ॥ २९ ॥ गोपियें श्रीकृष्णजी की अनुरागिनी थीं और उनकेही कारण उन्होंने और सब कामनाओंको त्यागदियाथा, । वह उनके अत्यन्त प्यारेथे इससमय वे उनके मुखसे शत्रुओं समान बातें सुन कुछ कुपित हुई क्रोधसे उनका गला रुकगया । वह आंसुओंको रोक आंखोंको पोंछ गद्गद स्वरसे कहने लगीं कि—३० ॥ हेविभो ! ऐसे निठुर वाक्य कहना तुम्हें उचित नहीं है । हम समस्त विषय वासनाओंको छोड़कर तुम्हारेही चरणकमलोंको भजतीहैं । हेस्वाधीन ! जैसे देवआदि पुरुष मुमुक्षु मनुष्योंको ग्रहण करतेहैं तैसेही आप हमको ग्रहण करो ॥ ३१ ॥ हे अंग ! पति, पुत्र और बन्धुओं की सेवा करनाही स्त्रियों का स्वधर्महै,, हेधर्मज्ञ ! तुमने जो यह उपदेश दिया हम वही करेंगी । परन्तु उपदेश के देनेवाले ईश्वर, तुम्हारीही सेवा करनेसे हमारी वे सब सेवायें होजावेंगी क्योंकि आपही सब प्राणियोंके प्यारे, बन्धु आत्मा और नित्यप्रियहो ॥ ३२ ॥ शास्त्रवेत्ता मनुष्य तुम्हींसे प्रेम किया करतेहैं । पति पुत्रादि तो दुःख दायक हैं उनको लेकर क्या होगा ? अतएव हेईश्वर ! हमपर प्रसन्नहो । हेकमललोचन ! तुम बहुत दिनोंकी पोषण की हुई हमारी आशाको भंग न करो ॥ ३३ ॥ हमारा जो चित्तथा दोनों हाथ अबतक स्वाधीनथे

करवामकिंवा ॥ ३४ ॥ सिंचांगनस्त्वदधरामृतपूरकेण हासावलोककलगीतजहृ-
च्छयाग्निम् ॥ नोचेद्वयंविरहजाग्न्युपयुक्तदेहा ध्यानेनयामपदयोः पदवींसखेते ॥
॥ ३५ ॥ यर्ह्यम्बुजाक्षतवपादतलं रमाया दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ॥ अ-
स्प्राक्ष्मतत्प्रभृतिनान्यसमक्षमंग स्थातुं त्वयाऽभिरमिताबतपारयामः ॥ ३६ ॥ श्री-
र्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या लब्ध्वाऽपिवक्षसिपदंकिलभृत्यजुष्टम् । यस्याःस्व
वीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयासस्तद्वद्वयंच तवपादरजःप्रपन्नाः ॥ ३७ ॥ तन्नःप्रसीदवृजि
नार्दन तेऽङ्घ्रिमूलंप्राप्ताविसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः । त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षण
तीव्रकामतप्तात्मनां पुरुषभूषणदेहिदास्यम् ॥ ३८ ॥ वीक्ष्यालकावृतमुखंतव कुण्डल
श्रीगण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् । दत्ताभयंचभुजदण्डयुगंविलोक्य वक्षः
श्रियैकरमणंच भवामदास्यः ॥३९॥ कास्त्र्यङ्गतेकलपदायतमूर्च्छितेनसंमोहिताऽऽ
र्यं चरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् । त्रैलोक्यसौभगमिदंच निरीक्ष्यरूपं यद्गोद्विजद्रुमम्रृ
गाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥ ४० ॥ व्यक्तंभवान्व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो देवो यथाऽऽदि
पुरुषः सुरलोकगोप्ता । तन्नोनिधेहिकरपंकजमार्तबन्धो तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किं
करीणाम् ॥ ४१ ॥ श्रीशुकउवाच । इतिविक्लवितंतासां श्रुत्वायोगेश्वरेश्वरः । प्रह-
स्यसदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥ ४२ ॥ ताभिःसमेताभिरुदारचेष्टितः प्रिये

से घरके कामोंमें लगे रहतेथे उनको आपने हरलिया । आपके चरणमूलको छोड़कर हमारे चरण एक पगभी नहीं चलते । अतएव ब्रजमें जाकर क्याकरें ? और कैसे जांय ? ॥ ३४ ॥ तुम्हारी हास्य युक्त दृष्टि और मधुर गीतोंसे जो कामाग्नि उत्पन्न हुईहै तुम अपने अधरामृतकी धारासे उसका सिंचन करो ? नहीं तो हेसखे ! हम बिरहाग्निमे दग्ध देहहो ध्यान योगसे तुम्हारे चरणों को प्राप्त होंगी ॥ ३५ ॥ हेकमलनयन ! तुम्हार चरण लक्ष्मीको आनन्द उत्पन्न करातेहैं हेअरण्यजन प्रिय ! तुम्हारे उन चरणोंका जिससमय से हमने स्पर्श कियाहै और इस अरण्यमें जबसे तुमने हमको आनन्द दियाहै उससमय से हम दूसरे के निकट नहीं रहसकतीं, ॥ ३६ ॥ जिन लक्ष्मीके कटाक्ष प्राप्त करनेके कारण दूसरे देवता निरन्तरही अधीर रहतेहैं वह लक्ष्मी हृदयमें स्थान पाकरभी तुलसीके साथ मिल भक्तोंके भोगेहुए जिन चरण रजके सभोगकी इच्छा करतीहैं हम उन्हींके समान उस चरण रजके शरणागत हुईहैं ॥ ३७ ॥ अतएव हेपापनाशक ! हमारे ऊपर प्रसन्नहो तुम्हारी सेवा करनेके निमित्त हम आई हैं । तुम्हारे सुन्दर हास्यको देखकर हमारे तीव्रकामाग्नि उत्पन्न होती है हम उससे संतप्त होती हैं हेपुरुषभूषण ! हमको दासी होनेदो ॥ ३८ ॥ तुम्हारा सुन्दर मुख अलकोंसे घिरा हुआहै दोनों कपोलोंपर दोकुण्डल शोभायमान हैं और अधरमें अमृतहै उससे सुन्दर मन्द हास्ययुक्त दृष्टि शोभित होरहीहै तुम दोनों भुजदण्डों से अभयदान दो तुम्हारा वक्षःस्थल लक्ष्मीको रति का उत्पन्न करनेवालाहै । यह सब देखकर हम तुम्हारी दासीहुईहैं ॥ ३९ ॥ त्रिलोकी में ऐसी कौन स्त्रीहै जो तुम्हारे मधुर पदरूप अमृतमय वेणुगीतसे मोहित हो सत्मार्गसे विचलित न होवे ? तुम्हारे इस त्रिलोक मोहन रूपको देखकर गो, पक्षी, वृक्ष, और मृगोंको रोमाञ्च होआताहै ॥ ४० ॥ हम निश्चय जानतीहैं कि—जैसे आदि पुरुष देवलोकके रक्षक होकर देवताओंकी पीड़ा हरतेहैं तुमभी वैसेही ब्रजकी पीड़ा नाश करनेके निमित्त अवतीर्ण हुयेहो । अतएव हेदीनबन्धो ! हमारे संतप्त स्तनों और मस्तकको अपनाकरकमलदान करो हम आपकी दासीहैं ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् श्रीकृष्णजी योगेश्वरोंके ईश्वर, आत्माराम हैं; तौभी इनसब गोपियोंके ऐसे कातर वचन सुन दयार्द्रहो हँसकर उनको क्रीड़ा कराने लगे ॥ ४२ ॥ उदार कर्मा भगवान के हास्य और दांतोंकी पंक्तिसे कुंद कुसुम की आभा

क्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः । उदारहासद्विजकुन्ददीधितिर्व्यरोचतैणाङ्क इवोडुभि-
र्वृतः ॥ ४३ ॥ उपगीयमान उद्गायन्वनिताशतयूथपः । मालां बिभ्रद्वैजयन्तीं व्यचर-
न्मण्डयन्वनम् ॥ ४४ ॥ नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम् । रेमे तत्तर-
लानन्दकुमुदामोदवायुना ॥ ४५ ॥ बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरुनीवीस्तनाऽऽल-
भननर्मनखाग्रपातैः । क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणामुत्तम्भयन्रतिपतिं रमयां-
चकार ॥ ४६ ॥ एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः ॥ आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां
मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि ॥ ४७ ॥ तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ॥ प्रश-
माय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४८ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः । अतप्यंस्तमचक्षाणाः
करिण्य इव यूथपम् ॥ १ ॥ गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितैर्मनोरमाऽऽलापविहारविभ्रमैः ।
आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥ २ ॥ गतिस्मित-
प्रेक्षणभाषणादिषु प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः । असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका
न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥ ३ ॥ गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकव-
द्वनाद्वनम् । पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥ ४ ॥ दृष्टो वः
कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः । नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥ ५ ॥

निकलने लगी। वह प्रियदर्शन के कारण, प्रसन्न मुखी उनसब गोपिकाओं से वेष्टितहो तारागणों से घिरेहुये चंद्रमाकी समान, शोभा पानेलगे ॥ ४३ ॥ श्रीकृष्णजी सौस्त्रियों के मध्यमें यूथपतिहो कभी आपगाते कभी औरोंका गाना सुनते और वैजयंती माला धारण कियेहुये बनको शोभायमान करते वहां विचरनेलगे ॥ ४४ ॥ कालिंदीका वह प्रकाशित किनारा शीतल वायुसे परिपूर्ण था; वायु कमलोंकी सुगंधिसे सुगंधितहो वहां मंदभावसे चलरहाथा॥४५॥श्रीकृष्णजी उसमनोहर रेतीमें प्रवेशकर, हाथ पसारना, आलिंगन करना, हाथ, अलक, जांघ, नीवी और स्तनों का स्पर्श कर हास्य के वचन, नखों के अग्रभाग का चुभाना, क्रीड़ा, देखना, हंसना, आदि से ब्रजनारियों के कामदेवको उद्दीप्तकर उनको विहार करानेलगे ॥ ४६ ॥ अनासक्त चित्त भगवान से इस प्रकार मानपाकर गोपिकाए मानवती होगई, और अपनेको पृथ्वीमें सबस्त्रियों से श्रेष्ठ माननेलगीं ॥४७॥ भगवान उनके उस सौभाग्य के अभिमानको देखकर गर्वनाश करने और प्रसन्न होने के निमित्त उसी स्थान में अंतर्धान होगये ॥ ४८ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषटीकायांएकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे राजन् ! गजराज के खोजाने से जैसे हथिनियें व्याकुल होजाती हैं तैसेही हठात् भगवान के अंतर्धान होने से ब्रजनारियें संतप्त होने लगीं गति, अनुराग, हास्य, विभ्रमदृष्टि, सुंदरवार्ता, विलास और भ्रम से स्त्रियोंका चित्त खिंचगयाथा इस कारण वह तन्मयताको प्राप्त होगई थीं, इस समय वह श्रीकृष्णजी के नाना चारित्रों का अनुकरण कर क्रीड़ा करनेलगीं ॥ २ ॥ प्यारेकी गति, हास्य, देखना और वार्त्ता करना सब प्यारियों की मूर्ति में प्रवेशकरगये थे, अतएव उनका विहार और विभ्रम श्रीकृष्णजी कीही समान होनेलगा। इस कारण सबही कृष्णात्मिकाहो 'मैंहीकृष्णहूं' इस प्रकार कहनेलगी ॥ ३ ॥ फिरवे, एकत्रितहो ऊंचेस्वरसे गान करतं२ भगवान के खोजनेको उन्मत्त की समान बन २ में घूमने लगीं। और जोभगवान आकाश की समान प्राणियोंके बाहर भीतर स्थित हैं उस परम पुरुष भगवान की वार्त्ता वे वनस्पतियों से पूछने लगीं ॥ ४ ॥ कि–हे पीपल ! हे पाकर ! हे बढ ! श्रीनंद नंदन प्रेम और हास्य से सुंदर कटाक्षों

कच्चित्कुरबकाशोकनागपुन्नागचम्पकाः। रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ॥ ६ ॥ कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविंदचरणप्रिये। सह त्वाऽलिकुलैर्बिभ्रद्दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥७॥ मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जातियूथिके। प्रीतिं वो जनयन्यातः करस्पर्शेन माधवः ॥ ८ ॥ चूतप्रियालपनसाऽसनकोविदारजम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः। येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ॥ ९ ॥ किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवाङ्घ्रिस्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गरुहैर्विभासि। अप्यङ्घ्रिसंभव उरुक्रमविक्रमाद्वा आहो वराहवपुषः परिरम्भणेन ॥१०॥ अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रैस्तन्वन्दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः। कान्ताङ्गसङ्गकुचकुंकुमरञ्जितायाः कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः ॥ ११ ॥ बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः। अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं किं वाऽभिनन्दति चरन्प्रणयावलोकैः ॥१२॥ पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पतेः। नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥ १३ ॥ इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः। लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥ १४ ॥ कस्याश्चित्पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत्स्तनम्। तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाऽहन्शकटायतीम् ॥ १५ ॥ दैत्यायित्वा जहारान्यामेका कृष्णार्भभावनाम्। रिङ्गयामास काऽप्यंघ्री कर्षन्ती घोष-

---

द्वारा हमारे चित्तका हरणकर भगगये हैं; क्या तुमने उनको देखा है ॥ ५ ॥ हे कुरवक ! हे अशोक ! हे नाग ! हे पुन्नाग ! हे चम्पक ! जिसका हास्य मानवतियों के मानको हरण करता है वह बलराम जी के छोटे भैया क्या इधर से गये हैं ॥ ६ ॥ हे कल्याणि तुलसि ! हे गोविंद चरण प्रिये ! तुम्हारे अति प्रिय अच्युत भौंरों समेत तुमको धारण करते रहते हैं तुमने क्या उनको देखा है ॥ ७ ॥ हे मालति ! हे मल्लिके ! हे जाति ! हे यूथिके ! माधव क्या हाथ से स्पर्शकर तुम्हें आनंद देतेहुये इसमार्ग से गये हैं ॥ ८ ॥ हे आम ! हे प्रियालो ! हे पनस ! हे असन ! हे कोविदार ! हे जामुन ! हे अर्क ! हे बिल्व ! हे बकुल ! हे चूत ! हे कदम्ब ! हे नीप ! हे दूसरों के स्वार्थ के निमित्त उत्पन्न हुये समस्त यमुनातीर वासीवृक्षो ! श्रीकृष्णजी किसमार्ग से गए हैं— तुमने क्या उनको देखा है ? हमारा चित्त शून्य होगया है ॥ ९ ॥ अहा ! पृथ्वी ! तुमने क्या तपस्या कीथी ? कि—जिससे कृष्णजी के पैरोंके स्पर्श से तुम्हें आनंद उत्पन्न हुआ है, इसही कारण जानपड़ता है कि तुमवृक्षों द्वारा रोमांचितसी होरहीहो। क्यायही पादस्पर्श होनेका आनंद है ? या त्रिविक्रम के चरणोंको पायकर आनंदित होरहीहो ? अथवा इससे भी पहिले वराहके आलिंगन से आनंद हुआ है ॥ १० ॥ हे हरिण पत्नीगण ! हमारे अच्युत अपने अंग प्रत्यंग से तुम्हारे नेत्रों को तृप्त करते हुये प्यारी के साथ क्या इस स्थानपर आयेथे ? क्योंकि यह स्थान श्रीकृष्णजी के प्यारीके अंगस्पर्श होनेके कारण कुचोंके केसरसे रंगेहुये कुंद कुसुमकी मालाकी गंधसे सुगंधित है ॥ ११ ॥ हे तरुगण ! एक हाथ प्यारी के कंधेपर धर, दूसरे हाथमें कमल लिये, तुलसी की गंध से पीछेआते हुये भौंरोंके संग श्रीकृष्णजी ने इस स्थानपर विचरते २ स्नेह दृष्टिसे क्या तुम्हारे प्रणाम को स्वीकार किया है ॥ १२ ॥ हे सखि ! इन लताओं से पूंछो। यद्यपि यह प्रियतम की भुजा पकड़े रहती हैं तोभी निश्चयही देखाजाता है। कि श्रीकृष्णजी ने नखोंद्वारा इनका स्पर्श किया था। अहो ! इसही कारण यह पुलकित गात होरही हैं ॥ १३ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णजी को ढूंढते २ अति विह्वलहो श्रीकृष्णात्मिका गोपिका गण इस प्रकार उन्मत्त कैसे बातें कहते २ अंतमें उनके नानाप्रकारकी क्रीड़ाओं का अनुकरण करने लगीं ॥ १४ ॥ एक गोपी कृष्णहुई; और एकगोपी पूतना होकर उस का स्तन पान करनेलगी। एक जन शकटहुई; दूसरी एक जनने कृष्णहोकर उस शकट पर पैरोंका प्रहारकिया ॥ १५ ॥ एक रमणी श्रीकृष्णजी के लड़कपनका अनुकरण

त्रिस्वनैः ॥ १६ ॥ कृष्णरामायितेद्वेतु गोपायन्त्यश्चकाश्चन । वत्सायतींहन्तिचान्या
तत्रैकातुबकायतीम् ॥ १७ ॥ आहूयदूरगायद्वत् कृष्णस्तमनुवर्त्ततीम् । वेणुंक्वणन्तीं-
क्रीडन्तीमन्याः शंसन्तिसाध्विति ॥१८॥ कस्यांचित्स्वभुजं न्यस्यचलन्त्याहापरा
ननु । कृष्णोऽहंपश्यतगतिं ललितामितितन्मनाः ॥१९॥ माभैष्टवातवर्षाभ्यां तत्त्राणं
विहितंमया । इत्युक्त्वैकेनहस्तेन यतन्त्युदिदधेऽम्बरम् ॥२०॥ आरुह्यैकापदाक्रम्य
शिरस्याहापरांनृप । दुष्टाहेगच्छजातोऽहं खलानांननुदण्डधृक् ॥२१॥तत्रैकोवाच
हेगोपादावाग्निंपश्यतोल्बणम् चक्षूंष्याश्वपिदध्वंवो विधास्येक्षेममञ्जसा ॥ २२ ॥
बद्धाऽन्ययास्रजाकाचित् तन्वीतत्रउलूखले । भीतासुदृक्पिधायास्यं भेजेभीतिवि-
डम्बनम् ॥२३॥एवंकृष्णंपृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून् । व्यचक्षतवनोद्देशे पदानि
परमात्मनः ॥ २४ ॥ पदानिव्यक्तमेतानि नन्दसूनोर्महात्मनः । लक्ष्यन्तेहि ध्वजा-
म्भोजवज्राङ्कुशयवादिभिः ॥ २५ ॥ तैस्तैःपदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्त्योऽग्रतोऽबलाः
वध्वाःपदैःसुपृक्तानि विलोक्यार्ताःसमब्रुवन् ॥ २६ ॥ कस्याःपदानिचैतानि याता
यानन्दसूनुना । अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोःकरिणायथा ॥२७॥ अनयाऽऽराधि
तोनूनं भगवान्हरिरीश्वरः । यन्नोविहायगोविन्दः प्रीतोयामनयद्रहः ॥२८॥ धन्या
अहोअमीआल्यो गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः । यान्ब्रह्मेशौरमादेवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ।

करतीथी और एक रमणी दैत्यहोकर उस का हरण करलेगई । एक गोपी युवक का शब्दसुन अपने चरणों को घसीटती घुटनों से चलने लगी ॥ १६ ॥ दो कामिनी कृष्ण और राम हुई; कुछेक रमणी गोपहुई । एक जनने वत्सासुर के वेश धरनेवाली को दूसरी ने बकासुर के रूपधरने वालीको मारा ॥ १७ ॥ एक जन श्रीकृष्णजी की समान बंशी बजाते २ दूरगई हुई गौओं को बुलाकर क्रीड़ा करनेलगी, और कुछेक ने " साधु साधु " करके बड़ाई की ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णजी की प्यारी कोई गोपी दूसरी एक गोपी के कन्धे पर हाथ रख विचरण करते २ दूसरी गोपिका-ओं से कहने लगी,—कि—" मैं कृष्णहूं " कैसे भलीप्रकारसे चलताहूं देखो ! ॥ १९ ॥ वायु और वर्षासे भयभीत नहोना; मैंने उसको रक्षाका उपाय निश्चय किया है यह कहकर एक हाथ से अपना उत्तरीयवस्त्र उठालिया ॥ २० ॥ हेराजन् ! एकस्त्री दूसरी स्त्री के मस्तकपर बैठ लातें मार २ कर कहनेलगी कि—रेदुष्ट सर्प यहां से चलाजा; मैं दुष्टों को दण्डदेनवालाहोकर अवतीर्ण हुआहूं ॥ २१ ॥ एक गोपी ने कहाकि—हे गोपगण ! भयानक दावाग्नि को देखो ! तुम अपने नेत्र बन्दकरलो, मैं इसी समय तुम्हारी रक्षाकरताहूं ॥ २२ ॥ एक गोपी को दूसरी ने माला से ऊखल में बांधदिया वह गोपी भयभीत होतीहुई अपनामुहँ छिपा भयका अनुकरण करने लगी ॥ २३ ॥ गोपिकाएं पहिले के कहेहुए के अनुसार फिर वृन्दावन के तरुलताओं से कृष्णजीकी वार्त्ता पूंछ २ कर उन्हें ढूंढने लगीं वहां वनभूमि में ढूंढते २ उन्होंने श्रीकृष्णजी के चरणों के चिह्न देखे ॥ २४ ॥ देखतेही वहसब कहनेलगीं कि—ध्वज, पद्म, बज्र और अंकुश देखकर यह निश्चयही जानाजाता है कि यहसब पदचिह्न महाराज नन्दनन्दन के हैं ॥ २५ ॥ हेराजन् ! उन सबगोपियों ने उन पदचिह्नोंद्वारा श्रीकृष्णजी को ढूंढते २ कुछ दूर आगे जाकर देखा कि—उनपैरों के चिह्नों के साथही साथ किसी स्त्रीके भी पैरोंके चिह्न मिलेहुएहैं । यह देखतेही वहसब कातरहोकर कहने लगीं कि—॥२६॥ यह किस स्त्री के पैरों की पंक्तियें हैं, हथिनी की समान किस स्त्रीने हाथी के समान श्रीकृष्णजी का अनुसरण किया है ! ॥ २७ ॥ श्रीकृष्णजी ने निश्चयही उसके कंधे में अपनाहाथ रक्खाथा । इस स्त्री ने आराधनाद्वारा निश्चयही भगवान हरिको सन्तुष्ट किया है; नहीं तो भला श्रीकृष्णजी हमको छोड़कर इसे क्यों एकांतमें लेजाते, ! ॥२८॥ हेसखि ! श्रीगोविंदकी

॥ २९ ॥ तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वन्त्युच्चैः पदानि यत् । यैकापहृत्य गोपीनां रहो भु-
ङ्क्तेऽच्युताधरम् ॥ ३० ॥ न लक्ष्यन्ते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणांकुरैः । खिद्यत्सुजाताङ्घ्रि
तलामुन्निन्ये प्रेयसीं प्रियः ॥ ३१ ॥ (इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम् ॥ गो-
प्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः । अत्रावरोपिता कान्ता पुष्पहेतोर्महात्म-
ना ॥ १ ॥) अत्र प्रसूनावचयः प्रियार्थे प्रेयसा कृतः । प्रपदाक्रमणे एते पश्यताऽसक-
लेपदे ॥ ३२ ॥ केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ॥ तानि चूडयता कान्ता-
मुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखण्डितः । कामिनां द-
र्शयन्दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम् ॥ ३४ ॥ इत्येवं दर्शयन्त्यस्ताश्चेरुर्गोप्यो विचेत-
सः । यां गोपीमनयत् कृष्णो विहायान्याः स्त्रियो वने ॥ ३५ ॥ सा च मेने तदात्मानं व-
रिष्ठं सर्वयोषिताम् । हित्वा गोपीः कामयाना मामसौ भजते प्रियः ॥ ३६ ॥ ततो गत्वा
वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत् । न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ॥ ३७ ॥ एवमु-
क्तः प्रियामाह स्कन्धमारुह्यतामिति । ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥ ३८ ॥
हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज । दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्नि-
धिम् ॥ ३९ ॥ अन्विच्छन्त्यो भगवतो मार्गं गोप्योऽविदूरतः । ददृशुः प्रिय
विश्लेषमोहितां दुःखितां सखीम् ॥ ४० ॥ तया कथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिं च माध-

---

यह चरणरज अत्यन्तही पवित्रहै । ब्रह्मा महादेव और लक्ष्मी देवी पाप नाश करनेके कारण इसे अपने मस्तकमें धारण करतेहैं आओ हम सब इसपवित्र चरणरजसे स्नानकरें ॥ २९ ॥ उस स्त्री के यह चरणचिह्न हमको अत्यंत क्षुभित करतेहैं क्योंकि वह गोपियोंसे छिपकर एकांतमें अच्युतके अधरका पान करतीहै॥३०॥इस स्थान में उसके चरण चिह्न देखही नहीं पड़ते इससे जानाजाता है कि तृणके अंकुरोंसे प्यारीके कोमल पैरोंके तलुवों में घाव होगयेथे इसलिये प्यारेने उसको उठालियाहै ॥ ३१ ॥ हेगोपियों ! देखो; कामी श्रीकृष्ण प्यारीके बोझसे बहुत बोझिल होगयेथे, क्योंकि यहां पृथ्वीपर उनके पैर बहुत धसेहुएहैं । श्रीकृष्णजीने फूलोंके हेतु इसस्थानपर प्यारी को उतारा है, प्यारेने इसस्थानपर प्यारीके निमित्त फूल बीनेहैं, देखो पृथ्वीपर केवल पैरोंका अग्रभागही रक्खाहै इसहीकारण पैरोंके चिह्न असंपूर्ण होरहेहैं,। कामीने इसस्थानपर कामिनीके केश ओछेहैं और निश्चयही इसस्थानपर बैठकर प्यारीके जूडेमें फूल गूंथेहैं ३२—३३ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हेमहाराज ! श्रीकृष्णजी आत्मा रामहैं वह अपने आपही क्रीड़ा करतेहैं, स्त्रियों का विलास उनको मोहित नहीं करसकता, तौ भी कामी पुरुषोंकी दीनता और स्त्रियोंकी दुरात्मता दिखानेके निमित्त गोपियोंके साथ क्रीडाकीथी॥३४॥जो हो वह सब गोपियें इसप्रकार पैरोंके चिह्नों को देखतीहुई अचेतकी समान भ्रमण करनेलगीं,। हे राजन् ! श्रीकृष्णजी दूसरी स्त्रियोंको छोड़कर जिस स्त्रीको वनमें लेगयेथे उसके मनमें यह अहंकारहुआ कि—मेरी समान और कोई स्त्री नहीं है मैं सब स्त्रियों में उत्तमहूं कि—मेराही इच्छासे मेरा प्यारा सबगोपियों को छोड़ मेरा भजन कररहाहै ॥ ३५—३६ ॥अनन्तर वह वनमें घूमतीहुई अहंकार पूर्वक श्रीकृष्णजीसे कहने लगी कि—मै चलनहीं सकती जिसस्थान पर चाहों उस स्थानपर मुझे चढ़ाकर लचलो, ३७ ॥ यह बात सुनकर श्रीकृष्णजीने प्यारीसे कहा कि आओ कन्धेपर चढ़लो अनन्तर वह जैसेही चढ़नेको उद्यतहुई कि—तैसेही श्रीकृष्णजी अन्तर्धान होगये॥३८॥तब वह स्त्री संताप करके कहने लगी कि—हानाथ ! हाप्रियतम ! हारमण ! हामहाबाहो ! कहांहो ? हेसखे ! मैं दुःखिनी तुम्हारी दासीहूं तुम कहांहो मुझे दर्शनदो, ॥ ३९ ॥ हेमहाराज ! इसओर सब गोपियों ने भगवान को ढूंढते २ देखपाया कि—उनकी सखी विरहसे मोहित और दुःखित यहांपर स्थित है, ॥ ४० ॥

वात् । अवमानंच दौरात्म्याद्विस्मयं परमंययुः ॥ ४१ ॥ ततोऽविशन्वनंचन्द्रज्यो-
त्स्ना यावद्विभाव्यते । तमःप्रविष्टमालक्ष्य ततोनिववृतुःस्त्रियः ॥ ४२ ॥ तन्मनस्का
स्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः । तद्गुणानेवगायन्त्यो नात्मागाराणिसस्मरुः
॥ ४३ ॥ पुनःपुलिनमागत्य कालिन्द्याःकृष्णभावनाः । समवेताजगुःकृष्णं तदागम
नकाङ्क्षिताः ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

गोप्य ऊचुः ॥ जयतितेऽधिकंजन्मनाव्रजः श्रयतइन्दिराशश्वदत्रहि । दयित
दृश्यतांदिक्षुतावकास्त्वयिधृतासवस्त्वांविचिन्वते ॥ १ ॥ शरदुदाशयेसाधुजात
सत्सरसिजोदरश्रीमुषादृशा । सुरतनाथतेशुल्कदासिकावरदनिघ्नतोनेहकिंवधः
॥ २ ॥ विषजलाप्ययाद्व्यालराक्षसाद्वर्षमारुताद्वैद्युतानलात् । वृषमयात्मजाद्वि
श्वतोभयादृषभतेवयंरक्षितामुहुः ॥ ३ ॥ नखलुगोपिकानन्दनोभवानखिलदेहिनाम
न्तरात्मदृक् । विखनसाऽर्थितोविश्वगुप्तयेसखउदेयिवान्सात्वतांकुले ॥ ४ ॥ विर
चिताभयंवृष्णिधुर्यतेचरणमीयुषांसंसृतेर्भयात् । करसरोरुहंकान्तकामदंशिरसिधे
हिनः श्रीकरग्रहम् ॥५॥ व्रजजनार्तिहन्वीरयोषितांनिजजनस्मयध्वंसनस्मित । भ
जसखेभवत्किङ्करीः स्मनोजलरुहाननंचारुदर्शय ॥ ६ ॥ प्रणतदेहिनांपापकर्शनं

उसके मुखसे श्रीकृष्णजीसे मान प्राप्त होना और दुरात्माके कारण तिरस्कारका होना सुनकर वह अत्यन्त विस्मित हुई ॥ ४१ ॥ तदुपरांत जबतक चन्द्रमाका प्रकाशरहा तबतक उन्होंने बनमें भ्रमण किया । शेषमें अन्धकार होनेसे उन्होंने श्रीकृष्णजीका ढूंढना बन्द करदिया परन्तु तौ भी घरकी सुधि किसीको न आई, ॥ ४२ ॥ क्योंकि सबही श्रीकृष्णजी के विषय की बातें करतीं श्रीकृष्णजीकी समान कार्य करतींथीं इससे सबही श्रीकृष्णमय होगईथीं इसकारण सबही उनके गुणोंको गाने लगीं, ॥ ४२—४३ ॥ इसप्रकार से श्रीकृष्णजी का ध्यान करते २ वह फिर यमुनाकी रेतीमें आई, और श्रीकृष्णजी के आनेकी इच्छा से वह सब एकत्र हो उनका गुण गाने लगीं— ॥ ४४ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

गोपियों ने कहाकि—हे कांत ! तुम्हारे जन्म से हमारा व्रज अत्यंतही श्रेष्ठ होगया है और लक्ष्मी इसको भूषित करके निरंतर यहां वासकरती है । इससे सबही व्रजवासी सुखी हैं । किंतु हे नाथ ! जोतुम्हारेही कारण प्राण धारण करती हैं वह तुम्हारी अभागिनी गोपियें तुम्हारे बिरह से अत्यंत कातरहो इस स्थानपर दिशाओंर में तुम्हें ढूंढती फिरती हैं अतएव हमें दर्शनदो ॥ १ ॥ हे संभोगपते ! हे अभीष्टप्रद ! तुम्हारे नेत्र शरत्कालमें उत्पन्नहुये सुंदर कमलकी कांतिका हरणकरते हैं; हम तुम्हारी बिनावेतन की दासी हैं; तुम अपने उन नेत्रों से प्रहार करतेहो क्या वह बधनहीं है ॥ २ ॥ हे श्रेष्ठ ! तुमने हमको विषके जलपीने से जोमृत्यु हुई उससे और अघासुर, वर्षा—पवन, वज्रपात, अग्नि, वृषभासुर, व्योमासुर, और दूसरे अनेकों प्रकारके डरोंसे बारंबार बचाया है तब इस समय रक्षाक्यों नहीं करते ॥ ३ ॥ तुम यशोदा के पुत्र नहींहो; समस्त प्राणियों की बुद्धिके साक्षीहो । तुम ब्रह्माकी प्रार्थना से विश्वके पालनेके निमित्त यदुकुलमें जन्मेहो । हम तुम्हारे भक्त हैं; अतएव हमारी इच्छा पूर्णकरो ॥ ४ ॥ हे यदुकुल धुरंधर ! जोसंसार के भयसे तुम्हारे चरणोंकी शरणलेते हैं और तुम उनके ऊपरकर कमलरख अभय दानदे उनकी इच्छा पूरण करतेहो उन्हीं कर कमलोंने लक्ष्मीजीका पाणिग्रहण किया हे स्वामी! तुम हमारे मस्तकपर वहीकर कमल रक्खो ॥ ५ ॥ हे व्रज वासियों के दुःख नाशक ! हे वीर ! तुम्हारा हास्य तुम्हारे भक्तोंका गर्वनाश करता है; हे सखे ! हम दासियोंको आप भजिये और अपने सुंदर कमल मुखका दर्शन दीजिये ॥ ६ ॥

तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् । फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम्
॥ ७ ॥ मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण । विधिकरीरिमा वीर मु
ह्यतीरधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः ॥ ८ ॥ तव कथाऽमृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं
कल्मषापहम् । श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥ ९ ॥ प्रहसितं
प्रियप्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम् । रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो म
नः क्षोभयन्ति हि ॥ १० ॥ चलसि यद्व्रजाच्चारयन्पशून्नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥ ११ ॥ दिनपरिक्षये नी
लकुन्तलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् । घनरजस्वलं दर्शयन्मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छ
सि ॥ १२ ॥ प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि । चरणपङ्कजं शन्त
मं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥ १३ ॥ सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सु
ष्ठु चुम्बितम् । इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥ १४ ॥ अटति य
द्भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ॥ कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उ
दीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥ १५ ॥ पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलङ्घ्य तेऽन्त्य-
च्युतागताः । गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥ १६ ॥

और बांधवोंका निरादरकर तुम्हारे समीप आई हैं। हे शठ ! रात्रिकाल में शरण में आईहुई स्त्रियों तुम्हारे चरण कमल—जोशरणागत प्राणियों के पाप नाशक और पशुओं के पीछे फिरने वाले हैं; लक्ष्मी उनमें वासकरती हैं, तुमने सर्पके फणपर उनको अर्पण किया है; इस समय हमारे कुचों को दान करके हमारे कामदेव की व्यथाहरो ॥ ७ ॥ हे कमल लोचन ! हम तुम्हारी दासी हैं; आपके मधुर पदोंयुक्त पण्डितोंकेभी हृदय ग्राही वाक्यों से हम मोहितहुई हैं अधरामृत द्वारा हमको चैतन्यकरो ॥ ८ ॥ पृथ्वीपर संतप्त जनोंको जीवन देनेवाले कवियों से पूजित, काम और कर्मके निवारक, श्रवण करने सेही कल्याण देनेवाले आपके सुन्दर कथामृत का जोविस्तार पूर्वक उच्चारणकरते हैं उन्हों ने पूर्वजन्म में अनेकों दानकिये हैं ॥ ९ ॥ हे प्रिय ! हे कपटी ! जिसका ध्यान करनेसे कल्याणहोता है, तुम्हारी वह हास्य, वह प्रेमयुक्त कटाक्ष, वह बिहार, और वह मनको मोहित करने वाली क्रीडाका स्मरण आनें से हमारा चित्त क्षुभित होता है ॥ १० ॥ हे कांत ! हे नाथ ! जबतुम पशुचराते चराते व्रजसे चलेजातेहो, तब यह विचारकरकि—तुम्हारे कोमलचरण कंकर और कांटों से दुःख पातेहोंगे हमारा मन अत्यंत व्याकुल होजाता है ॥ ११ ॥ हे वीर ! दिनके अंतमें जब तुमगाएँ लेकर लौट आतेहो तब अपने केशों से घिरेहुये, गोरज से व्याप्त कमल मुख का दर्शनदे हमको कामपीड़ा उत्पन्न करदेतेहो परन्तु संग नहीं देते; इससे तुमको कपटी कहें या न कहें ॥ १२ ॥ हे रमण ! हे आर्तिहर ! तुम्हारे चरण कमल—शरणागतों की अभिलाषाको पूर्ण करने वाले, लक्ष्मी के कर कमलों से सेवित, पृथ्वीके भूषण विपत्ति कालमें ध्यान करने योग्य, और सेवा के समय में सुख देनेवाले हैं; इस समय उन चरणोंको हमारे स्तनोंपर धरो ॥ १३ ॥ तुम्हारा अधरामृत,—कामोद्दीपक और शोकनाशक है; शब्दायमान वंसी भली प्रकार से उसका चुंबन करती रहती है । उस अधरामृत से मनुष्यों की सार्व भौमादि सुखेच्छा भी विस्मृत होती है । आप हमको उसी अधरामृतका पान कराओ ॥ १४ ॥ दिनमें जब आप वृन्दावन में भ्रमण करते हो तब तुमको न देखकर हम आधेक्षणको भी युगकी समान जानती हैं । इसके अनंतर जबतुम दिनके अंतमें आतेहो तब सुंदर घूंघर वाले बालों से युक्त आपके श्री मुखका दर्शन अनिमिष नेत्रों से करती हैं; उस काल पलकें बनाने वाला ब्रह्मा हमें मूर्ख जानपड़ता है ॥ १५ ॥ हे अच्युत ! तुमगीतों की गतिके अवगतहो; तुम्हारे उच्चगीतों से मोहितहो हम पति, पुत्र, जातिवाले, भ्राता

रहसिसंविदंहृच्छयोदयं प्रहसिताननंप्रेमवीक्षणम् । बृहदुरःश्रियोवीक्ष्यधामते मु
हुरतिस्पृहामुह्यतेमनः ॥ १७ ॥ व्रजवनौकसांव्यक्तिरंगते वृजिनहन्त्र्यलंविश्वमङ्ग
लम् । त्यजमनाक्चनस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजांयन्निषूदनम् ॥ १८ ॥ यत्तेसुजा
तचरणाम्बुरुहं स्तनेषुभीताःशनैः प्रियदधीमहि कर्कशेषु । तेनाटवीमटसितद्व्यथ
तेन किंस्वित्कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषांनः ॥ १९ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ इतिगोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्चचित्रधा । रुरुदुः सुस्व
रंराजन्कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १ ॥ तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वीसाक्षान्मन्मथमन्मथः ॥ २ ॥ तंविलोक्यागतंप्रेष्ठंप्रीत्युत्फुल्ल
दृशोऽबलाः । उत्तस्थुर्युगपत्सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम् ॥ ३ ॥ काचित्कराम्बुजं
शौरेर्जगृहेऽञ्जलिनामुदा । काचिद्दधारतद्बाहुमंसेचन्दनभूषितम् ॥ ४ ॥ काचिद
ञ्जलिनाऽगृह्णात्तन्वीताम्बूलचर्वितम् । एकातदंघ्रिकमलं सन्तप्तास्तनयोरधात्
॥ ५ ॥ एकाभ्रुकुटिमाबध्यप्रेमसंरम्भविह्वला । घ्नन्तीवैक्षत्कटाक्षेपैः संदष्टदशन
च्छदा ॥ ६ ॥ अपराऽनिमिषद्दृग्भ्यांजुषाणातन्मुखाम्बुजम् । आपीतमपिनातृप्यत्
सन्तस्तच्चरणंयथा ॥ ७ ॥ तंकाचिन्नेत्ररन्ध्रेणहृदिकृत्वानिमील्यच । पुलकांग्यु

को तुम्हारे अतिरिक्त और कौन छोड़सकता है ॥ १६ ॥ तुम्हारी काम उत्पन्न करने वाली सुंदर क्रीड़ा, हंसता हुआमुख, प्रेमयुक्त कटाक्ष, और लक्ष्मी के निवास मूतविशाल वक्षःस्थलको देखकर हमारा चित्तवारंबार मोहित होता है ॥ १७ ॥ हे सखे ! तुम्हारा प्रगट होना ब्रजवासियोंका दुःख नाशक, और जगतका मंगल स्वरूप है । तुम्हारे मिलने का इच्छा से हमारा चित्त व्याकुल होरहा है जिससे तुम अपने भक्तों के हृदयका रोगनाश करतेहो, आप कृपणता छोड़ कृपाकर वही औषधि हमको दीजिये ॥ १८ ॥ हे प्यारे ! तुम्हीं हमारे जीवनहो; पीछे दुःख होताहोगा,—इसही भयसे हम तुम्हारे जिनचरण कमलोंको अपने कठिन कुचोंके तृप्तकरने के निमित्त धारण करती हैं तुम उन्हीं पावों से जंगल में भ्रमण करतेहो । क्या कंकरो से उन्हें दुःख न पहुंचताहोगा ? यही विचारकर हमारा हृदय व्याकुल होता है ॥ १९ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशस्कंधेसरलाभाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! गोपिका गण श्रीकृष्णजी के दर्शनों की अभिलाषा से इसप्रकार गानकरतीं और बहुत प्रकारसे विलापकर २ रोरहीथीं ॥ १ ॥ कि उसी समय हास्य मुख, पीताम्बरधारी, साक्षात् कामदेव को भी मोहित करनेवाले श्रीकृष्णजी उनके निकट आये॥ २ ॥ प्यारे को सामने देखकर गोपियें अति आनन्दितहुईं, उन के कमल से नेत्र खिल गये प्राणों के लौटआने से जैसे हाथ पांव सचेतहोजाते हैं वैसेही वह श्रीकृष्णजी को पाय पुनर्जीवितहो फिर एकबार उठखड़ी हुई ॥ ३ ॥ किसी गोपी ने आनन्दितहो श्रीकृष्णजी के दोनों कर कमल पकड़ लिये । किसी ने उनकी चन्दन चर्चित भुजा अपने कन्धे में रखली ॥ ४ ॥ किसी रमणी ने उन का खायाहुआ पान अंजुली में लेलिया, किसी विरह से सन्तप्तहुई गोपकी ने उन के दोनों चरण अपने दोनों स्तनों पर रखलिये ॥ ५ ॥ और एक स्त्री प्रेम के कोप से विह्वलहो भृकुटी चढ़ाय, होंठ काटतीहुई कटाक्ष मार कर देखने लगी ॥ ६ ॥ कोई २ रमणी अनिमिष दोनों नेत्रों से बार-म्बार उन के कमलमुख का पानकरने लगी; किंतु श्रीकृष्णजीके चरणों को देखकर जैसे साधुओं को तृप्तिनहीं होती तैसेही उन स्त्रियों की तृषा शान्तिनहुई ॥ ७ ॥ कोई स्त्री नेत्रमार्ग से उनको

पगुह्यास्ते योगीवानन्दसंप्लुता ॥८॥ सर्वास्ताः केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः । ज हुर्विरहजंतापंप्राज्ञंप्राप्ययथाजनाः ॥ ९ ॥ ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतोवृतः व्यरोचताधिकंतातपुरुषः शक्तिभिर्यथा ॥ १० ॥ ताः समादायकालिन्द्यानिर्विश्य पुलिनंविभुः । विकसत्कुन्दमन्दारसुरभ्यनिलषट्पदम् ॥ ११ ॥ शरच्चन्द्रांशुस न्दोहध्वस्तदोषातमः शिवम् । कृष्णायाहस्ततरलाऽऽचितकोमलवालुकम् ॥ १२ ॥ तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजोमनोरथान्तंश्रुतयोयथाययुः । स्वैरुत्तरीयैः कुचकुङ्कु माङ्कितैरचीक्लृपन्नासनमात्मबन्धवे ॥ १३ ॥ तत्रोपविष्टोभगवान्सईश्वरोयोगेश्वरान्त र्हृदि कल्पितासनः । चकास गोपीपरिषद्गतोर्चितस्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्दधत ॥ १४ ॥ सभाजयित्वातमनंगदीपनं सहासलीलेक्षणविभ्रमभ्रुवा । संस्पर्शनेनांक- कृतांघ्रिहस्तयोः संस्तुत्यईषत्कुपिताबभाषिरे ॥ १५ ॥ गोप्यऊचुः । भजतोऽनुभ- जन्त्येक एकएतद्विपर्ययम् । नोभयांश्चभजन्त्यन्य एतन्नोब्रूहिसाधुभोः ॥ १६ ॥ श्री भगवानुवाच ॥ मिथोभजन्तियेसख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमाहिते ॥ नतत्रसौहृदंधर्मः स्वार्थार्थंतद्धिनान्यथा ॥ १७ ॥ भजन्त्यभजतोयेवै करुणाःपितरोयथा । धर्मोनिर-

---

हृदय में लेजाय, दोनों आंखे बन्दकर, उनका आलिंगनकर पुलकित शरीर और आनन्दमयहोकर योगियों की समान आनन्द में मग्नहोगई ॥ ८ ॥ हेराजन् ! जैसे मुमुक्षु मनुष्य ईश्वर को पाकर संसार के ताप को दूरकरता है, वैसेही श्रीकृष्णजी के दर्शन के कारण परमानन्द में सुखीहो सब गोपिकाओं ने विरह से उत्पन्नहुए सन्ताप को दूर किया ॥ ९ ॥ हेतात ! भगवान् अच्युत उन सब पापरहित गोपियों से घिरकर, सत्वादि गुणों से वेष्टित परमात्माकी समान अत्यन्त शोभा को पानेलगे ॥ १० ॥ मदन—मोहन उन सब गोपियों को ले यमुना की सुखदाई रेती में जाय क्रीड़ा करनेलगे उस रेती में खिलेहुए कुन्द और मन्दारकी सुगंधि से सुगंधित हुई पवन चलरही थी और भौंरे गूंजरहेथे ॥ ११ ॥ शारदीय चन्द्रमाकी किरणों से रात्रि का अन्धकार दूरहोगया, यमुनाजी ने अपने हाथों की समान लहरों से सुन्दरबालू बिछादीथी ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णजी का दर्शन पायकर गोपियों की कामव्यथा नाशहोगई । श्रुतियें कर्मकाण्डमें परमेश्वर को नहीं देखतीं कर्मों का अनुगमनकर जैसे अपूर्ण काम की समानरहती हैं परन्तु ज्ञानकाण्ड में परमेश्वरको देख आनन्द से पूर्णकामहो कामनाओं को त्यागकरती हैं, वैसही श्रीकृष्णजी के दर्शन से सबगोपियें पूर्णकामहुई । उन्होंने कुच केसर से रंगेहुए अपने २ उत्तरीयवस्त्र से भगवान का आसन बना दिया ॥ १३ ॥ योगेश्वरों के हृदय में जिनका आसन विराजमान रहता है, आज वेही भगवान श्रीकृष्णजी गोपियों की सभाके बीचमें उनके बनायेहुए उस आसन पर बैठे । त्रिलोकीमें जितनी शोभा है भगवान उतनी सबशोभा का केवल एक शरीर धारणकर गोपियों की मण्डली के बीच सम्मानितहो शोभा पानेलगे ॥ १४ ॥ उनके चरण और हाथों को गोपियें गोद में ले चापती हुई हास्य व विलास सहित शोभायमान भ्रकुटी से कामदेव का उद्दीपन करनेवाले भगवानकासम्मान कर कुछ एक कुपित होकर कहनेलगीं ॥ १५ ॥ हे श्रीकृष्ण ! कोई मनुष्य एक जनके भजन करनेपर उसका भजन करता है, कोई मनुष्यइसके विपरीत करतारहता है, कोई मनुष्य स्वयंही परस्पर एक दूसरे का भजन नहीं करते हैं हे सखे ! इसका भलीप्रकारसे निर्णयकरके हमसेकहो ॥ १६ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हेसखीगण! जो स्वार्थ साधन की इच्छाकरते हैं वेही परस्पर भजन करते रहते हैं वहां कोई सुहृदपन व धर्म नहीं है; स्वार्थही उनका अभिप्राय है,-इस के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ॥ १७ ॥ किंतु जो नहीं भजनेवाले को भजते हैं वह कृपालु और

धर्मो दोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः ॥ १८ ॥ भजतोऽपि न वै केचिद्भजन्त्यभजतः कुतः
आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ॥ १९ ॥ नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून्भ-
जाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये । यथाऽधनो लब्धधने विनष्टे तच्चिन्तयाऽन्यन्निभृतो न वे-
द ॥ २० ॥ एवं मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः । मयापरोक्षं
भजता तिरोहितं माऽसूयितुं मार्हथ तत्प्रियं प्रियाः ॥ २१ ॥ न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः । या माऽभजन्दुर्जरगेहशृङ्खलाः संवृश्च्य तद्वः प्रति-
यातु साधुना ॥ २२ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः । जहुर्विरहजं ता-
पं तदङ्गोपचिताशिषः ॥ १ ॥ तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः । स्त्रीरत्नैरन्वि-
तः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥ २ ॥ रासोत्सवः संप्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः ।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः । प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः ।
॥ ३ ॥ यं मन्येरन्नभस्तावद्विमानशतसंकुलम् । दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृ-
तात्मनाम् ॥ ४ ॥ ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः । जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्री-
कास्तद्यशोऽमलम् ॥ ५ ॥ वलयानां नूपुराणां किङ्किणीनां च योषिताम् । सप्रिया-

स्नेही हैं जैसे माता पिता—ऐसे भजन से दयालु मनुष्यों को निष्काम धर्म और स्नेहमयमनुष्यों को सुहृदता प्राप्त होती रहती है ॥ १८ ॥ यहांपर अनिन्दित धर्म और सुहृदता दोनोंही हैं । जो आत्माराम, पूर्णकाम, अकृतज्ञ व गुरुद्रोही हैं वह—भजन नहीं करते सो उनकी बातनो दूरही, जो भजन करते हैं उनकाभी भजन नहीं करते॥ १९॥ हे सखीगण ! मैंतो—अपनेभजन करनेवालोंका भी भजन नहीं करता। क्योंकि ऐसा होनेसे वह निरंतरही मेराध्यान किया करते हैं । जैसे दरिद्री पुरुष धनपाकर, उसके खोजानेसे उस धनकी जैसे चिन्ता कियाकरता है और दूसरी सब चिन्ताको भूलजाता है ॥ २० ॥ हे अबलाओं ! इसी प्रकार तुमनेभी मेरे निमित्त धर्मा धर्मका विचार न कर लोक और जातिवालोंको छोड़दिया है, तुमने निरंतरही मेराध्यान किया इसही कारण मैं अंतर्धान होगयाथा, और अदृश्य रहकर, तुम्हारे प्रेमके वचन सुनताथा, अतएव हे प्यारियों ! प्यारे परदोषारोपण करना तुम्हें उचित नहीं है ॥ २१ ॥ तुमबड़ा दृढ़घरका बंधन छोड़कर मेरे साथमिलीहो, इस मिलाप से कुलनिंदा नहीं की जासकती । मैं देवताओं कीसी परमायुपाकर भी तुम्हारा प्रत्युपकार नहीं करसकता । अतएव मैं तुम्हारी सुशीलताही से अऋणी होसकता हूं प्रत्युपकार द्वारा नहीं होसकता ॥ २२ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! अत्यन्त कोमल चित्तवाली गोपिकाओंने भगवानके ऐसे सांत्वना युक्त वाक्य सुन पूर्णकामहो विरहसे उत्पन्न हुये सन्तापको छोड़ परमानन्दितहो परस्पर एक दूसरे की भुजायें पकड़लीं । श्रीगोविंद उन सब स्त्री रत्नोंसे वेष्टितहो रासलीला करने लगे ॥ ॥ १—२ ॥ रासोत्सवके आरम्भ होनेपर गोपी मण्डलसे घिरे भगवान् श्रीकृष्णजीने दो २ जनोंके बीचमें प्रवेशकर गोपियोंके गलेमें हाथडालदिये इससे प्रत्येक गोपीने जाना कि—श्रीकृष्णजी हमारेही निकटहैं ॥ ३ ॥ रासके आरम्भ होतेही आकाश में देवता अपनी २ स्त्रियों समेत रास देखनेको आये उनके विमानों से आकाश मण्डल परिपूर्ण होगया ॥ ४ ॥ उन्होंने आकाशसे दुंदुभी बजाने तथा फूल बरसानेका आरम्भ किया और स्त्रियों समेत गन्धर्व पति श्रीकृष्णजी के निर्मल यशको गानेलगे ॥ ५ ॥ रास मण्डलमें प्यारेके साथकी स्त्रियोंके कंकण नूपुर और किं-

णामभूत्सुमहाञ्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥ ६ ॥ तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान्देवकीसुतः ॥
मध्येमणीनांहैमानां महामरकतोयथा ॥ ७ ॥ पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितै
र्भ्रूविलासैर्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैःकुण्डलैर्गण्डलोलैः। स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्र-
न्थयः कृष्णवध्वो गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥ ८ ॥ उच्चैर्जगुर्नृत्यमा
ना रक्तकण्ठ्योरतिप्रियाः। कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥ ९ ॥ काचि
त्समंमुकुन्देनस्वरजातीरमिश्रिताः। उन्निन्येपूजितातेन प्रीयतासाधुसाध्विति ।त
देवध्रुवमुन्निन्ये तस्यैमानंचबह्वदात् ॥ १० ॥ काचिद्रासपरिश्रान्ता पार्श्वस्थस्य
गदाभृतः ॥ जग्राहबाहुनास्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिका ॥ ११ ॥ तत्रैकांसगतंबाहुं
कृष्णस्योत्पलसौरभम्। चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमाचुचुम्बह ॥ १२ ॥ कस्याश्चि
न्नाट्यविक्षिप्त कुण्डलत्विषमण्डितम्। गण्डंगण्डे संदधत्या अदात्तांबूलचर्वितम्
॥ १३ ॥ नृत्यन्तीगायतीकाऽपि कूजन्नूपुरमेखला। पार्श्वस्थाच्युतहस्ताब्जं श्रांता
ऽधात्स्तनयोः शिवम् ॥ १४ ॥ गोप्योलब्ध्वाऽच्युतंकान्तं श्रियएकान्तवल्लभम् ॥
गृहीतकण्ठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायन्त्यस्तंविजह्रिरे ॥ १५ ॥ कर्णोत्पलालकविटंककपो-
लघर्मवक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः। गोप्यःसमंभगवता ननृतुः स्वकेशस्रस्तस्र-
जो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥ १६ ॥ एवं परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामवि

किणीका बड़ाभारी शब्द होनेलगा ॥ ६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णजी उन सब गोपियोंके बीचमें स्वर्ण वर्णकी मणियोंसे मण्डित मरकत मणिकी समान शोभा पानेलगे ॥ ७ ॥ पैरों का चलाना भुज कंपाना हसकर भौंहें चलाना कमर कचकाना कुचोंको चंचलकरना आदि और कपोलोंके ऊपर कुण्डलोंके हिलनसे उन गोपियों के कमल मुखसे पसीना निकलआया उनका जू ा और नाराढीला पड़गया श्रीकृष्णजीका गान कर तीहुई मेघमण्डल में बिजली की समान शोभा पानेलगीं ॥ ८ ॥ वे रक्तकण्ठवाली गोपियें श्रीकृष्णजीके अंगस्पर्शसे आनन्दितहो उच्चस्वरस गाने लगीं उस गानसे ब्रह्माण्ड परिपूर्ण होगया ॥ ८—९ ॥ श्रीकृष्णजी जिस स्वरसे जिसप्रकार गातेथे गोपियें उनके उस स्वरसे गीत न मिलाय कर नानाप्रकारसे स्वयं गानेलगीं । श्रीकृष्ण जी उसस आनन्दितहो उनकी प्रशंसा करनेलगे । गोपियें उसीस्वर को ही ध्रुवताल से बदलकर गानें लगीं, । श्रीकृष्णजीने उनका यथोचित सत्कारकिया रासके श्रमसे श्रमितहो किसी गोपीके वलय और किसी की मल्लिका ढीली पडगयी, उन्हों ने बाहुद्वारा पार्श्व में खड़ेहुए माधव के कधेपर हाथ रखलिये ॥१०-११॥ एक गोपी—भगवान को कमल की समान सुगंधितचदन से चर्चित भुजाको अपने कधेपर रख उसेसूंघ, रोमांचितहो चुंबन करने लगी ॥ १२ ॥ नृत्य करतेहुये उन गोपियोंके चचल कुंडलों की आभा से भगवान के कपोल शोभित होनेलगे। किसी गोपीने अपने कपोलपर भगवान का कपोल रखलिया और उनने उसको अपना चबाया हुआ बीड़ा देदिया ॥ १३ ॥ और एक गोपी गानकरते हुए नाचरहीथी उसके दोनों पैरोंकी नूपुर और मेखला बजनेलगीं, उनने अत में श्रमित होकर भगवान् के मंगल दायी करकमलोंको अपने दोनों स्तनोंपर रखलिया ॥ १४ ॥ गोपिएं लक्ष्मी कांत भगवानको एकांत में पाकर अपने गलेमें उनकी भुजाएं डालगान कर २ विहार करनेलगीं ॥ १५ ॥ और रास—सभामें गानकर रहेथे, सबगोपी उस सभामें वलय, नूपुर, और किंकिणी के बाजेके साथ जब भगवान के संग नाचने लगीं, तब कानोंके कमल, अलकों से शोभायमान कपोल और पसीने के बिंदुओं द्वारा उनका मुख मंडल अत्यंत शोभाको प्राप्तहुआ उनके चलायमान केशों से फूल गिरनेलगे ॥ १६ ॥ हे राजन्! बालक जैसे अपने प्रतिबिंबको लेकरक्रीडा

काबहासैः । रेमेरमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथाऽर्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥ १७ ॥ त
दंगसंगप्रमुदाकुलेन्द्रियाः केशान्दुकूलंकुचपट्टिकांवा । नांजःप्रतिव्योढुमलंव्रज-
स्त्रियो विस्रस्तमालाभरणाः कुरूद्वह ॥ १८ ॥ कृष्णविक्रीडितंवीक्ष्य मुमुहुःखेचर-
स्त्रियः । कामार्दिताःशशांकश्च सगणोविस्मितोऽभवत् ॥ १९ ॥ कृत्वातावन्तमा-
त्मानं यावतीर्गोपयोषितः । रेमेस भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥ २० ॥ ता
सामतिविहारेण श्रान्तानां वदनानिसः । प्रामृजत्करुणः प्रेम्णा शन्तमेनांगपाणिना
॥ २१ ॥ गोप्यः स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विड्गण्डश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन
मानंदधत्यऋषभस्यजगुःकृतानि पुण्यानितत्करुहस्पर्शप्रमोदाः ॥ २२ ॥ ताभिर्यु
तः श्रममपोहितुमंगसंगघृष्टस्रजःस कुचकुंकुमरञ्जितायाः । गन्धर्वपालिभिरनुद्रुत
आविशद्वाः श्रान्तो गजीभिरिभराडिव भिन्नसेतुः ॥ २३ ॥ सोऽम्भस्यलंयुवतिभिः
परिषिच्यमानः प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग । वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरी-
ड्यमानो रेमेस्वयंस्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः ॥ २४ ॥ ततश्चकृष्णोपवने जलस्थलप्र-
सूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे । चचार भृंगप्रमदागणावृतो यथा मदच्युद्द्विरदःकरेणु-
भिः ॥ २५ ॥ एवं शशांकांशुविराजितानिशाः स सत्यकामोनुरताबलागणः । सि-
षेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥ २६ ॥ राजोवाच । सं

करता है तैसेही भगवान् रमापति इसी प्रकार से आलिंगन, करमर्दन, कटाक्ष विक्षेप, और हास्य
विलास से व्रजनारियों के संग क्रीड़ा करने लगे ॥ १७ ॥ उनके अंगसंग से गोपियोंको जोआनंद
उत्पन्न हुआ उससे व्रजनारियों की सब इन्द्रियें व्याकुल होगईं। हे कुरुश्रेष्ठ! वह–गिरेहुये, माला;
आभूषण, रेशमी वस्त्र, और स्तनों के ऊपर के वस्त्र पहिले की समान धारण न करसकीं ॥१८॥
श्रीकृष्णजी के विहारको देखकर देवांगनाएँ कामातुरहो मोहित होगई। चन्द्रमा भी तारागणों समेत
विस्मित होगया और विस्मित होकर अपनी गतिको भूलगया; अतएव रात्रिबड़ीभारी होगई इस
ही कारण विहार भी बहुत देरतक हुआ ॥ १९ ॥ भगवान यद्यपि आत्माराम हैं तोभी जितनी
गोपियें थीं आपभी उतनेही हो उनके साथ क्रीड़ा करने लगे ॥ २० ॥ हे राजन् ! बहुत देरतक
क्रीड़ा करके जब वह श्रमित होगई, तब उन दयालु भगवान ने प्रेमवशहो अपने शुभहाथों द्वारा
उनका मुखपोछा । उनके नखके स्पर्श से गोपियों को अति आनंद उत्पन्न हुआ ॥ २१ ॥ वह
भगवान् के प्रकाशित स्वर्ण कुंडल और उनसे प्रकाशित हुये कपोलों की शोभा और सुंदर हास्य
कटाक्षको देख उनका सन्मान करके उनका यशगाने लगीं । अंतमें भगवान्, हथिनियों से घिरे
हुये, पुलतोड़ने से श्रमितहुये गजराजकी समान श्रमनाश करने के निमित्त उन सब गोपिकाओं
समेत जलमें घुसे उस समय अंगके संगसे मर्दनकी हुई तथा स्तनको केसर से रंगीहुई माला के
पीछे गंधर्व पतिके समान भौंरेगान करते हुयेचले ॥ २२—२३ ॥ हे राजन् ! जलमें सब स्त्रियां
हंसते २ प्रेमयुक्त चारोंओर से जल उछाल २ कर श्रीकृष्णजी को भिगोने लगीं, उस काल दे-
वताओं ने फूल बरसाय२ उनकी पूजाकी । वह स्वयं आत्माराम होकरभी गजराज की समानइस
प्रकार विहार करनेलगे ॥ २४ ॥ अनतर श्रीकृष्णजी ने, भौंरे और स्त्रियों से घिरकर, हथिनियों
के साथ मत्त गजराज की समान, उपवन में भ्रमण करना आरंभकिया स्थल और जलसे उत्पन्न
हुये फूलोंकी सुगंधि से सुगंधित होकर वायु उस उपवनमें चल रहीथी ॥ २५ ॥ हे महाराज !
सत्य संकल्प, प्रेमी स्त्रियों के मंडल में परिवृत श्रीकृष्णजी ने अपने शुक्रको रोककर, शरत काल
के चन्द्रमा की शोभायमान रात्रिमें शास्त्र कथित सब रसयुक्त क्रीड़ाओंको किया ॥ २६ ॥ राजा

स्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च । अवतीर्णोहि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥२७॥ स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्त्ताऽभिरक्षिता । प्रतीपमाचरद्ब्रह्मन्परदाराभिमर्शनम् ॥ ॥ २८ ॥ आप्तकामो यदुपतिः कृतवान्वै जुगुप्सितम् । किमभिप्राय एतं नः संशयं छिंधि सुव्रत ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच । धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् । तेजीयसां न दोषाय वन्हेः सर्वभुजो यथा ॥ ३० ॥ नैतत्समाचरेज्जातु मनसाऽपि ह्यनीश्वरः । विनश्यत्याचरन्मौढ्याद्यथाऽरुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥ ३१ ॥ ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् । तेषां यत्स्ववचोयुक्तं बुद्धिमांस्तत्समाचरेत् ॥ ३२ ॥ कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते । विपर्ययेण वाऽनर्थो निरहङ्कारिणां प्रभो ॥ ३३ ॥ किमुताखिलसत्त्वानां तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम् । ईशितुश्चेशितव्यानां कुशलाकुशलान्वयः ॥ ३४ ॥ यत्पादपङ्कजपरागनिषेवतृप्ता योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः । स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमानास्तस्येच्छयाऽऽत्तवपुषः कुत एव बन्धः ॥ ३५ ॥ गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् । योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक् ॥ ३६ ॥ अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमास्थितः । भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥ ३७ ॥ नासूयन्खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया । मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान्स्वान्स्वान्दारान्व्रजौकसः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः । अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान्भगवत्प्रियाः ॥ ३९ ॥ विक्रीडितं व्रजवधू

परीक्षितने कहाकि-हे ब्रह्मन् ! धर्मकी रक्षा और अधर्म के नाश करने के निमित्तही भगवान् ने पृथ्वीपर अवतार लियाथा ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! उन्हों ने धर्म सेतुके वक्ता, कर्त्ता और रक्षक होकर क्योंकर परस्त्रियोंसे संभोग रूप अधर्मका अनुष्ठान कियाथा ॥ २८ ॥ श्रीकृष्णजी तो पूर्णकाम हैं; तो फिरऐसे निंदनीय कार्य से उन्हे क्या अभिप्राय था ? मेरे इस संदेहको दूरकरो ॥ २९ ॥ श्री शुकदेवजी बोलेकि—हे राजन् ! ईश्वरोंको धर्मका उल्लघन और साहस करते देखागया है। परन्तु तेजस्वियोंको उसका दोष नहींहोता । अग्नि जैसे सबपदार्थोंका भक्षणकरती रहती है तैसेही ईश्वर को कोई दोषनहीं लगता ॥ ३० ॥ जोईश्वर नहीं हैं वह कभी ऐसा आचरण नहीं करता रुद्रने समुद्रमें उत्पन्न हुये विषको पिया यदिकोई और पियेतो मरजाय ॥ ३१ ॥ ईश्वरों के वचन सत्य होते हैं और कहीं२ आचरण भी सत्य होते हैं। अतएव वह जोकहते हैं बुद्धिमान् पुरुष वही करते हैं ॥ ३२ ॥ हे प्रभो ! उन निरहंकारी ईश्वरों के न तो धर्माचरण से अभिप्राय है और न अधर्माचरण से अनर्थही है ॥ ३३ ॥ अतएव जोपक्षी, मनुष्य और देवताआदि समस्त जीवोंके ईश्वर हैं, जोसमस्त ईश्वरों के अधिपतिहै तो उनकी कुशलऔर अकुशल की संभावना कहां से हो ॥३४॥ जिनके चरणोंके सेवक भक्तगण और ज्ञानीगणभी योगके प्रभावसे समस्तकर्मके बंधनोंको काटकर स्वाधीन होकर विचरा करते हैं और कभी संसार में नहीं फंसते, तद इच्छानुसार देह धारण करने वाले उन भगवान्को बंधन कैसे होसकता है ॥ ३५ ॥ जोगोपियों, के स्वामी, और समस्त-प्राणियों के हृदय में विराजमान और बुद्धि आदिके साक्षी हैं उन्हींभगवान्ने लीलाके कारण देह धारण कीथी ॥ ३६ ॥ प्राणियों के कल्याण के निमित्त वह मनुष्य मूर्त्ति गृहणकर इसप्रकार क्रीड़ा करते रहते हैं; प्राणी उनसब चरित्रोंको सुनकर उनपर भक्तिवान होसकता है ॥३७॥ हे राजन् ! व्रज वासियों ने श्रीकृष्णजी पर दोषारोपण न किया क्योंकि उन्हों ने माया से मोहित होकर अपने मनमें यही जानाकि—हमारी स्त्रियां हमारे पास सोती है ॥ ३८ ॥ अनंतर ब्राह्म मुहूर्त आनेपर कृष्णजीकी प्यारी सब गोपियें श्रीकृष्णजी की आज्ञापाय इच्छा बिनाभी अपने२घरगई ॥३९॥ जो

भिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथवर्णयेद्यः । भक्तिपरांभगवतिप्रतिलभ्य कामंहृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेणधीरः ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एकदादेवयात्रायांगोपालाजातकौतुकाः । अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥ १ ॥ तत्रस्नात्वासरस्वत्यांदेवंपशुपतिंविभुम् । आनर्चुरर्हणैर्भक्त्यादेवींचनृपतेऽम्बिकाम् ॥ २ ॥ गावोहिरण्यंवासांसिमधुमध्वन्नमादृताः । ब्राह्मणेभ्योददुः सर्वेदेवोनः प्रीयतामिति ॥ ३ ॥ ऊषुः सरस्वतीतीरेजलं प्राश्यधृतव्रताः । रजनींतांमहाभागानन्दसुनन्दकादयः ॥ ४ ॥ कश्चिन्महानहिस्तस्मिन् विपिनेऽतिबुभुक्षितः । यदृच्छयाऽऽगतोनन्दंशयानमुरगोऽग्रसीत् ॥ ५ ॥ सचुक्रोशाहिनाग्रस्तः कृष्णकृष्णमहानयम् । सर्पो मांग्रसते तातप्रपन्नं परिमोचय ॥ ६ ॥ तस्यचाक्रन्दितंश्रुत्वागोपालाः सहसोत्थिताः । ग्रस्तंचदृष्ट्वाविभ्रान्ताः सर्पंविव्यधुरुल्मुकैः ॥ ७ ॥ अलातैर्दह्यमानोऽपिनामुञ्चत्तमुरङ्गमः तमस्पृशत्पदाऽभ्येत्यभगवान्सात्वतांपतिः ॥ ८ ॥ सवैभगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः । भेजे सर्पवपुर्हित्वारूपंविद्याधरार्चितम् ॥ ९ ॥ तमपृच्छद्धृषीकेशः प्रणतंसमुपस्थितम् । दीप्यमानेनवपुषापुरुषंहेममालिनम् ॥ १० ॥ कोभवान् परयालक्ष्म्यारोचतेऽद्भुतदर्शनः । कथंजुगुप्सितामेतांगतिंवाप्रापितोऽवशः ॥ ११ ॥ सर्प उवाच ॥ अहंविद्याधरः कश्चित्सुदर्शनइतिश्रुतः । श्रियास्वरूपसम्पत्त्याविमानेनाचरन्दिशः ॥ १२ ॥

व्रजनारियों समेत श्रीकृष्णजी की इस लीलाको श्रद्धापूर्वक सुनेंगे व कहेंगे वह बहुतही शीघ्र भगवान् में परमभक्ति प्राप्तकर धीरचित्तहो कामरूप मानसिक पीडाओं से छूटजावेंगे ॥ ४० ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कन्धसरलाभाषाटीकायांत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

श्रीशुकदेवजीबोले कि–हे राजन् ! किसी समय देवयात्रा उपस्थित होनेपर, गोपगण प्रसन्न चित्त हो वृषभ युक्त शकटों में चढ़ आम्बिका के बनमें गये ॥ १ ॥ वहां सरस्वती में स्नानकर नाना भटोंसे भक्ति युक्त महादेवजी तथा अम्बिका देवीका पूजन किया ॥ २ ॥ "देव हमारे ऊपर प्रसन्न हो" इस इच्छासे सबही ने आदर पूर्वक ब्राह्मणों को गायें, सुवर्ण, वस्त्र और सुंदर मधुयुक्त मिष्ठान्न दान किये ॥ ३ ॥ नंद और सुनंदादि महाभाग गोप गणों ने केवल जल पानकर उपवास किया और व्रत धारण कर उस रात्रि को सरस्वती ही के तीर रहे ॥ ४ ॥ नंदराय बन में सोरहे थे, कि उसी समय एक सर्प ने भूखे हो इच्छानुसार वहां आय नंदजी को ग्रस लिया ॥ ५ ॥ सर्पसे ग्रस्त होतेनहोते "कृष्ण ! कृष्ण ! यह अजगर मुझे निगले जाता है हे वत्स ! मुझ शरणागत को छुड़ावो यह कहकर नंदजी चिल्ला उठे ॥ ६ ॥ उनका चिल्लाना सुनकर गोपालगण सहसाउठ खड़े हुये और नंदजीको सांपसे ग्रसित होता देख व्याकुल चित्त हो मशालों द्वारा उसको जलाने लगे ॥ ७ ॥ अजगर ने जलते हुये अंगारों से जलकर भी उनको न छोड़ा । अनंतर भक्त पाले भगवान् ने वहां पर आयकर उस के लात मारी ॥ ८ ॥ भगवानके श्रीचरण के स्पर्श होतेही उसके सब अशुभ दूरहोगये और वह अपनी सर्प देह छोड़ विद्याधरोंसे वन्दित परममनोहर रूप धारणकर उनके चरणोंमें लोटनेलगा ॥ ९ ॥ भगवान्ने उस स्वर्ण मालाधारी पुरुषसे पूछा कि–तुम कौनहो जो उत्तम वेश धारण करके शोभायमान होरहेहो ? तुम अद्भुत पुरुषहो किसप्रकार से परवशहो ऐसी निन्दित गतिको प्राप्त हुयेथे, ॥ १०—११ ॥ सर्पने कहा कि—हे प्रभो ! मैं एक गन्धर्वहूं लक्ष्मीकी कृपा और अपने सुन्दर रूपके कारण मैं सुदर्शन नामसे प्रसिद्धथा एक-

...रूपीन्विरूपानाङ्गिरसः प्राहसंरूपदर्पितः । तैरिमांप्रापितोयोनिंप्रलब्धैः स्वेनपाप्मना ॥ १३ ॥ शापोमेऽनुग्रहायैवकृतस्तैः करुणात्मभिः । यदहंलोकगुरुणापादस्पृष्टोहतागुभः ॥ १४ ॥ तंत्वाऽहंभवभीतानांप्रपन्नानांभयापहम् । आपृच्छेशापनिर्मुक्तः पादस्पर्शादमीवहन् ॥१५॥ प्रपन्नोऽस्मिमहायोगिन्महापुरुषसत्पते । अनुजानीहि मांदेवसर्वलोकेश्वरेश्वर॥१६॥ब्रह्मदण्डाद्विमुक्तोऽहंसद्यस्तेऽच्युतदर्शनात् । यन्ना मगृह्णन्नखिलाञ्छ्रोतॄनात्मानमेवच ॥१७॥सद्यःपुनातिकिंभूयस्तस्यस्पृष्टःपदाहिते इत्यनुज्ञाप्यदाशार्हंपरिक्रम्याभिवन्द्यच । सुदर्शनोदिवंयातः कृच्छ्रान्नन्दश्चमोचि तः ॥ १८ ॥ निशाम्यकृष्णस्यतदात्मवैभवंव्रजौकसोविस्मितचेतसस्ततः । समा प्यतस्मिन्नियमंपुनर्व्रजंनृपाऽऽययुस्तत्कथयन्तआदृताः ॥ १९ ॥ कदाचिदथगोविन्दो रामश्चाद्भुतविक्रमः । विजह्रतुर्वनेरात्र्यांमध्यगौव्रजयोषिताम् ॥ २० ॥ उपगीयमा नौललितंस्त्रीजनैर्बद्धसौहृदैः । स्वलंकृतानुलिप्ताङ्गौस्रग्विणौविरजोम्बरौ ॥ २१ ॥ निशामुखंमानयन्तावुदितोडुपतारकम् । मल्लिकागन्धमत्तालिजुष्टंकुमुदवायुना२२॥ जगतुः सर्वभूतानांमनः श्रवणमङ्गलम् । तौकल्पयन्तौयुगपत्स्वरमण्डलमूर्च्छितम् ॥२३॥ गोप्यस्तद्गीतमाकर्ण्यमूर्च्छितानाविदन्नृप । स्रंसद्दुकूलमात्मानंस्रस्तकेश स्रजंततः ॥ २४ ॥ एवंविक्रीडतोः स्वैरंगायतोः सम्प्रमत्तवत् । शङ्खचूडइतिख्यातो धनदानुचरोऽभ्यगात् ॥ २५ ॥ तयोर्निरीक्षतोराजंस्तन्नाथंप्रमदाजनम् । क्रोशन्तं

दिन मैं अपने रूपसे गर्वितहो विमान में बैठ दिशाओं में घूमता २ अंगिरा वंशी ऋषियों की कुरूपता को देख हंसा इससे उन्होंने शाप दिया कि जिससे मैं सर्पयोनि को प्राप्तहुआ॥ १२—१३॥ उन दयालु ऋषियोंने मेरे ऊपर कृपा करकेही मुझे यह शाप दियाथा इसहीकारण आज आपके त्रिलोक वन्दित चरणोंका स्पर्श हुआ, ॥ १४ ॥ हे त्रिलोकीनाथ ! आपके श्री चरणों के स्पर्शसे मेरे सब अशुभ दूरहोगये । हे दुःखनाशन ! भवभयभंजन ! अब आज्ञा करिये मैं अपने नगर को जाऊँ॥१५ ॥ हेमहायोगिन् ! हेमहापुरुष! मैं आपकी शरणहूं । हेदेव ! हेसर्व लोकेश्वरोंके ईश्वर ! मुझे आज्ञादो॥ १६॥ हेअच्युत ! केवल आपको देखतेही मैं ब्रह्मशापसे छूटगया, । जो आपका नाम लेताहै वह सब श्रोताओंको व अपनेको पवित्र करताहै फिर जिसके अंगमें आपके पैरोंका स्पर्श हुआ उसके मुक्त होनेमें सन्देहही क्या, ? ॥ १७ ॥ हे राजन् ! सुदर्शन इसप्रकार आज्ञाले श्रीकृष्णजीको प्रणाम व परिक्रमा कर स्वर्गमें गया, । श्रीनन्दरायकी विपद् दूरहोगई ॥ १८ ॥ ब्रजवासीगण श्रीकृष्णजीके अद्भुत पराक्रम को देख विस्मित होगये और उस स्थानमें व्रत समाप्त कर आदर पूर्वक इस चरित्र को कहते २ फिर ब्रजमे आये, ॥ १९ ॥ कुछ दिनों के उपरांत वीर पराक्रमी राम और कृष्ण रात्रिको ब्रजांगनाओं के साथ क्रीड़ा करनेमें प्रवृत्त हुये, ॥ २० ॥ वह सुन्दर अलकार, अनुलेपन, माला और सुन्दर वस्त्रोंसे अलंकृतथे । स्त्रियें स्नेहके वशीभूतहो सुन्दर स्वरोंसे उनकी स्तुति गानेलगीं ॥ २१ ॥ उससमय रात्रिका प्रथम प्रहरथा । चन्द्रमा और ताराओं से आकाश शोभायमान होरहाथा और फूलोंसे सुगन्धितहुई वायु मन्द२ चलतीथी॥२२॥ राम कृष्णने उस रात्रिके आरम्भका सन्मान किया वह दोनों जन एक साथही सब स्वरोंकी मूर्च्छना कर जिसप्रकार प्राणियोंके मन और कानोंको आनन्द उत्पन्न होवे उसीप्रकार से गाने लगे ॥ २३ ॥ उन मनोहर गीतोंको सुनकर गोपनारियों के शरीरसे अचैतन्यता के कारण रेशमी वस्त्र और केशोंसे मालायें खिसक पड़ीं ॥ २४ ॥ राम, कृष्ण प्रमत्तकी समानहो इसप्रकार क्रीड़ा कररहे थे कि उसीसमय शंखचूड़ नामक एक असुर कुबेरका सेवक वहांआया ॥ २५ ॥ वह उन दोनों

कालियामास दिश्युदङ्ग्यामशङ्कितः ॥२६॥ क्रोशन्तं कृष्णरामेति विलोक्य स्वपरिग्रहम् । यथा गा दस्युना ग्रस्ता भ्रातरावन्वधावताम् ॥ २७ ॥ मा भैष्टेत्यभयाऽऽरावौ शालहस्तौ तरस्विनौ । आसेदतुस्तं तरसा त्वरितं गुह्यकाधमम् ॥ २८ ॥ स वीक्ष्य तावनुप्राप्तौ कालमृत्यू इवोद्विजन् । विसृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवज्जीवितेच्छया ॥ २९ ॥ तमन्वधावद्गोविन्दो यत्र यत्र स धावति । जिहीर्षुस्तच्छिरोरत्नं तस्थौ रक्षन्स्त्रियो बलः ॥ ३२ ॥ अविदूर इवाभ्येत्य शिरस्तस्य दुरात्मनः । जहार मुष्टिनैवाङ्ग सहचूडामणिं विभुः ॥ ३१ ॥ शङ्खचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरम् । अग्रजायाददात्प्रीत्या पश्यन्तीनां च योषिताम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

श्रीशुक उवाच । गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः । कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ १ ॥ गोप्य ऊचुः । वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् । कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥ २ ॥ व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः । काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥ ३ ॥ हन्त चित्रमबलाः शृणुतेदं हारहास उरसि स्थिरविद्युत् । नन्दसूनुरयमार्तजनानां नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः ॥४॥ वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् । दन्तदष्टकवला धृतकर्णा निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ॥५॥ बर्हिणस्तबकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः । कर्हिचित्सबल आलि

भाइयोंके सामनेही उनश्रीकृष्णजीकी प्यारी अबलाओंको बलपूर्वक उत्तर दिशाकी ओर लेचला । ॥ २६ ॥ स्त्रियें" हे कृष्ण ! हे राम ! ,, कहकर रोनेलगीं । तब राम कृष्ण सिंहसे घिरी.गायोंकी समान व्याकुल उन गोपियोंके पीछे २ दौड़े ॥ २७ ॥ दुष्ट यक्ष शीघ्रतापूर्वक भागा जाताथा इन दोनों भाइयोंने भय न करना कहकर हाथमें शालका वृक्षले उसके पीछे दौड़ना आरम्भ किया ॥ ॥ २८ ॥ वह मूर्ख शङ्ख चूड़ काल और मृत्युकी समान उन दोनों जनोंको आता देख अत्यन्त व्याकुल हुआ और स्त्रियोंको छोड़ बचने की इच्छासे भाग निकला, ॥ २९ ॥ परन्तु वह जिस २ स्थान में भागकर गया भगवान् उसके शिरका रत्न लेनेके निमित्त उसके पीछे २ दौड़ गये, । हेराजन्! बलदेवजी स्त्रियोंके रक्षकहोकररहे॥३०॥ भगवान्‌ने बहुत दूरजाकर घूंसेके द्वाराही उस दुष्टका मस्तक छेदनकिया ॥३१॥ और स्त्रियोंके सामनेही वह निर्मल शिरोमणि लाकर प्रीतिपूर्वक बलरामजीकोदी॥३२॥ इतिश्री मद्भा०महा० दशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! श्रीकृष्णजी के वन में जाने पर गोपियां कि–जिनका चित्त भगवान में लग रहाथा, भगवान के चरित्रोंका गानकरतीहुईबड़े दुःख से समय बितातीथीं ॥ १ ॥ गोपियें कहतीं कि—हे सखिवृन्द ! श्रीकृष्णजी जब बाएं भुजा की जड़ में बाएं कपोल को रख, भौंह नचाते२,कोमल अंगुली द्वारा स्वरों के छिद्रों को रोक अधरपर रखकर बंशीबजाते हैं; तब उस बंशी का सुनकर सिद्धगणों के निकट बैठीहुई सिद्धांगनाओं को प्रथम तो विस्मय उत्पन्नहोता है तदुपरांत कामदेव के बाण से लज्जित चित्त होकर मोहित होजाती हैं । उस समय वह नारे के छूटजाने से वस्त्र काभी बांधना भूलजाती हैं ॥ २ । ३ ॥ हे अबलागण! एकआश्चर्य की घटना तो सुनो;जिन का हास्यहारकी समान प्रकाशित होता है, जिन के वक्षःस्थल में बिजली की सदृश चंचललक्ष्मी भी स्थिर रहती है और जो पीड़ित मनुष्यों को आनन्द देनेवाले हैं वह श्रीनन्दनन्दनजब बंशी बजाते है–तब दूर रहने परभी, चित्त के खिंचजाने से,व्रज के वृष, मृग, और गायें दांतों में तृणदाब और कान उठाय निद्रित की समान चित्र लिखे से खड़े रहजाते हैं ॥ ४ । ५ ॥ हे सखिगण ! श्रीकृष्णजी—बलराम और गोपालगणों सहित मयरपुच्छ, धातु, और

वगोपैर्गाःसमाह्वयति यत्रमुकुन्दः ॥ ६ ॥ तर्हिभग्नगतयःसरितो वैतत्पदाम्बुजर-
जोऽनिलनीतम्। स्पृहयतीर्वयमिवाऽबहुपुण्याः प्रेमवेपितभुजास्तिमितापः ॥ ७ ॥
अनुचरैःसमनुवर्णितवीर्य आदिपूरुषइवाचलभूतिः। वनचरोगिरितटेषु चरन्तीर्वे
णुनाऽऽह्वयतिगाःसयदाहि ॥ ८॥ वनलतास्तरवआत्मनि विष्णुं व्यंजयन्त्यइवपुष्प
फलाढ्याः। प्रणतभारविटपा मधुधाराः प्रेमहृष्टतनवः ससृजुःस्म ॥ ९ ॥ ॥ दर्शनी-
यतिलको वनमालादिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः। अलिकुलैरलघु गीतमभीष्टमाद्रि-
यन्यर्हिसन्धितवेणुः ॥ १० ॥ सरसि सारसहंसविहंगाश्चारुगीतहृतचेतस एत्य। ह
रिमुपासततेयतचित्ता हन्त मीलितदृशोधृतमौनाः ॥ ११ ॥ सहबलःस्रगवतंसवि-
लासःसानुषु क्षितिभृतोव्रजदेव्यः। हर्षयन्यर्हिवेणुरवेण जातहर्षउपरम्भति विश्व
म् ॥ १२ ॥ महदतिक्रमणशंकितचेता मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः। सुहृदमभ्यवर्षत्सु
मनोभिश्छायया च विदधत्प्रतपत्रम्॥१३॥ विविधगोपचरणेषु विदग्धोवेणुवाद्यउरु
धानिजशिक्षाः। तवसुतःसतियदाऽधरबिम्बे दत्तवेणुरनयत्स्वरजातीः ॥१४॥ स-
वनशस्तदुपधार्यसुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः। कवयआनतकन्धरचित्ताः क-
श्मलं ययुरनिश्चिततत्वाः ॥ १५ ॥ निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्रनीरजांकुशविचित्रल-
लामैः। व्रजभुवःशमयन्खुरतोदं वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥ १६॥ व्रजतितेनवयंस

पलाशद्वारा मल्ल का वेश धारणकर जब गायों को बुलाते हैं तब पवन से उडीहुई उनकीचरण रज की इच्छाकर सबनदियें अपनी गति बंदकरदेती हैं; परन्तु निश्चयही हमारीसमान उनकाभी पुण्यअत्यन्त अल्प है; क्योंकि प्रेमवश से उन के तरंगरूप हाथ केवल एकबारही कम्पित होते हैं किंतु थोड़ीही देर में निश्चल होजाती हैं ॥ ६ । ७ ॥ आदिपुरुषके समान अचललक्ष्मीवाले देवता दिभी जिन के पराक्रम का वर्णन किया करते हैं; वह भगवान् जबवन में प्रवेशकर पहाड़ के तट में विचरनेवाली अपनी गायों को वेणु के गानसे बुलाते हैं, तब भार से जिनकी शाखा लचरहीहैं ऐसी लतायें मानो अपने मन में प्रगटहुए विष्णु का सूचन करतीहुईहों ऐसे स्नेह से पुष्टहो, फूल फल से युक्त मधुकी धारा बरसाने लगती हैं और उनके पति वृक्षोंकोभी वैसाही आनन्द होता है ॥ ८. । ९ ॥ वनमाला के मध्य में स्थित दिव्य सुगंधवाली तुलसी के मधुमें मत्तहो भ्रमर जो अनुकूल उच्चगीत करते हैं, उनगीतों का आदरकरसुन्दर श्रेष्ठ भगवान जब वेणु बजाते हैं, तब सरोवरमें बैठेहुए सबसारस, हंस और दूसरे पक्षी उन मनोहर गीतों से प्रसन्नचित्तहो वहां आय एकाग्रचित्त से आंखें बन्दकर चुपचापहो भगवान् का ध्यान करने लगते हैं ॥ १० । ११ ॥ हे गोपिकागण ! फूलों से बनेहुए दोनों कर्णभूषणों द्वारा उनकी अपूर्व शोभा होती रहती है। वह जबबलरामजी के साथ पर्वत के सानुदेश को हर्षितकर बंशी का शब्द पूर्ण करते हैं, तब मेघ, महात्मा के अपराध के डर से भयभीतहो बंशी के शब्दके साथही साथ मंद २ गर्जना करते रहते हैं और विश्व कीपीड़ा हरने से अपने धर्म की समान धर्मवाले अपने सुहृद उन गोविंद के ऊपर फूल बरसाय २ छायाद्वारा उनकी छत्ररचना करते हैं ॥ १२ । १३ ॥ हे यशोदे ! तुम्हारा पुत्र नानाप्रकारकी गोपक्रीडा में अति निपुण है। इस ने बंशीबजाने के विषय में स्वयंही अपनी बुद्धि से स्वरजाति उत्पन्नकी है, अधर में बंशी लगाकर जबआलापता है तब इंद्र, महादेव और ब्रह्मा आदि देवतागणभी, ऊंचे नीचे और मध्य के भेद क्रम से उन समस्तगीतों का अलापसुन कर पंडितहोकर भी मोह को प्राप्त होते हैं। उस समय गीतध्वनि से मोह होने के कारण उन के कन्धे और चित्त नीचे होजाते हैं। वह उस अलाप के स्वर भेद को नहीं जानसकते ॥ १४॥ ॥ १५ ॥ हे गोपियो ! श्रीकृष्णध्वजवज्र और अंकुशद्वारा विचित्र रूप से चिह्नित अपने चरणरूप कमल की व्रजभूमि के गौखुर के प्रहार से उत्पन्नहुई व्यथा शांतकर गजराज की समान भ्रमण

विलासवीक्षणार्पितमनोभववेगाः।कुजगतिंगमिता नविदामः कश्मलेन कबरं वसनं वा
॥ १७ ॥ मणिधरः क्वचिदागणयन्गा मालया दयितगन्धतुलस्याः । प्रणयिनोऽनु-
चरस्य कदांसे प्रक्षिपन्भुजमगायत यत्र ॥ १८ ॥ क्वणितवेणुरववञ्चितचित्ताः
कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः । गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो गोपिका इव विमुक्तगृहा-
शाः ॥ १९ ॥ कुन्ददामकृतकौतुकवेषो गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ॥ नन्दसूनुरनघे
तव वत्सो नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥ २० ॥ मन्दवायुरुपवात्यनुकूलं मानयन्मलय
जस्पर्शेन । वन्दिनस्तमुपदेवगणा ये वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः ॥ २१ ॥ वत्सलो व्र-
जगवां यदगध्रो वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः । कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते गीतवेणुर-
नुगेडितकीर्तिः ॥ २२ ॥ उत्सवं श्रमरुचाऽपि दृशीनामुन्नयन्खुररजश्छुरितस्रक् । दि
त्सयैति सुहृदाशिष एष देवकीजठरभूरुडुराजः ॥ २३ ॥ मदविघूर्णितलोचन ईष-
न्मानदः स्वसुहृदां वनमाली । बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं मण्डयन्कनककुण्डलल-
क्ष्म्या ॥ २४ ॥ यदुपतिर्द्विरदराजविहारो यामिनीपतिरिवैष दिनान्ते । मुदितवक्त्र
उपयाति दुरन्तं मोचयन्व्रजगवां दिनतापम् ॥ २५॥ श्रीशुक उवाच । एवं व्रजस्त्रियो
राजन्कृष्णलीलानुगायतीः । रेमिरेऽहस्सु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

करते हैं तब उन का विलासयुक्त टेढ़ाकटाक्ष हममें काम वेग उत्पन्नकरता है;—उस समयहमारी वृक्षकीसी दशा होजाती है और मोहके कारण—हमको वस्त्र और केशों का मान नहींरहता १६॥ ॥ १७ ॥ वह गायों के गिनने के समय सुन्दर मणिमाला और प्रियगन्धा तुलसी की मालाधारण किये रहते हैं । जब प्रेमी सेवकों के कन्धे पर हाथ रखकर श्रीकृष्णजी गोगणना करतेहुए गान करते तथा वेणु बजाते हैं तब उस वेणु के शब्दको सुनकर मोहित हुई हरिणियें उन के निकट आजाती हैं और घरकी आश छोड़ीहुई गोपियों की समान उन के समीपही खड़ी रहती हैं ॥१८ ॥ १९ ॥ हे निष्पापे ! तुम्हारे पुत्र कृष्ण खेलसे कुन्दकी मालाद्वारा वेश रचकर जब गायोंसे घिर अपने साथियों को आनन्द देतेहुए यमुना के किनारे भ्रमण करते हैं तबसुन्दर सुगंद वायु चंदन के स्पर्श से सुगंधितहो उनका सम्मान कर उन्हीं के अनुकूल चलती है और देवतागण स्तुतिकरते हुए वाद्य, गीत और पूजाकी सामग्री द्वारा चारोंओर से उनकी सेवा करते हैं ॥ २० । २१ ॥ हे सखि ! अब दिन अस्तहोने पर आया; देवकी के गर्भ से उत्पन्नहुए गोकुल के चन्द्रमा समस्त गोधनको एकत्रितकर, हम लोगों के मनोरथ पूर्ण करने के निमित्त वेणु बजाते २ वह आरहे हैं वह परमकृपालु है; क्योंकि उन्होंने गोवर्द्धन पर्वत को धारणकर ब्रज और गायों की रक्षाकी । उन के लौटने पर मार्ग में ब्रह्मादि वृद्धगण उनके चरणों की वन्दना करते हैं ! इसी से आने में देरी होजाती है । वह सुनो, अनुचर उनके यशका गान कररहे हैं । देखो ! देखो ! उनकी कांति मलीन होरही है तौभी नेत्र अधिक आनन्द देनेवाले हैं । उनकी माला गौओं के खुरोंकी धूलसे धूस रीहोरही है । वह देखो संध्याकालमें चन्द्रमाकी समान प्रसन्नमुख यदुपति ब्रजमें बँधीहुई गायोंका ताप दूर करतेहुए गजेन्द्रकी समान समीप आरहे हैं । देखो ! उनके दोनोंनेत्र मदसे कुछेक घूर्णित होरहे हैं । वह अपने बंधुओंको आनंद उत्पन्न करारहे हैं । उनके गलेमें वनमाला शोभायमान है । कपोल, कुंडलों की कांतिसे दीप्तिवान् हैं इसही कारण मुख कुछेक पकेहुए बेरकी समान पाण्डुवर्ण का होरहा है ॥ २२—२५ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हे राजन् ! ब्रजनारियोंका चित्त और मन श्रीकृष्णजी में अर्पितथा इससे वह परम आनंदित रहतीथीं । इसही कारण विरह में भी श्री कृष्णजी के चरित्रोंको गाय २ कर सुखपाती थीं ॥ २६ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथतर्ह्यागतोगोष्ठमरिष्टोवृषभासुरः । महींमहाककुत्कायः
कम्पयन्खुरविक्षताम् ॥ १ ॥ रम्भमाणः खरतरंपदाचविलिखन्महीम् । उद्यम्यपुच्छं
वप्राणिविषाणाग्रेणचोद्धरन् ॥ २ ॥ किञ्चित्किञ्चिच्छकृन्मुञ्चन्मूत्रयन्स्तब्धलोच
नः । यस्यनिर्ह्रादितेनाङ्गनिष्ठुरेणगवांनृणाम् ॥ ३ ॥ पतन्त्यकालतोगर्भाः स्रवन्तिस्म
भयेनवै । निर्विशन्तिघनायस्य ककुद्यचलशंकया ॥ ४ ॥ तंतीक्ष्णशृंगमुद्वीक्ष्य गो
प्यो गोपाश्चतत्रसुः । पशवोदुद्रुवुर्भीता राजन्सन्त्यज्य गोकुलम् ॥५॥ कृष्णकृष्णेति
तेसर्वे गोविन्दंशरणंययुः । भगवानपितद्वीक्ष्य गोकुलंभयविद्रुतम् ॥ ६ ॥ माभैष्टे-
तिगिराऽऽश्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत् । गोपालैःपशुभिर्मन्द त्रासितैःकिमसत्तम ।७।
बलदर्पहाऽहंदुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनाम् । इत्यास्फोट्याच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन
कोपयन् ॥ ८ ॥ सख्युरंसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितो हरिः ॥ सोऽप्येवंकोपितोऽ
रिष्टः खुरेणावनिमुल्लिखन् । उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः क्रुद्धः कृष्णमुपाद्रवत् ॥ ९ ॥ अ
ग्रन्यस्तविषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनोऽच्युतम् । कटाक्षिप्याऽद्रवत्तूर्णमिन्द्रमुक्तो-
ऽशनिर्यथा ॥ १० ॥ गृहीत्वाशृंगयोस्तंवा अष्टादशपदानिसः । प्रत्यपोवाह भगवा-
न्गजं प्रतिगजोयथा ॥ ११ ॥ सोऽपविद्धोभगवता पुनरुत्थायसत्वरः । आपतत्स्विन्न
सर्वांगो निःश्वसन्क्रोधमूर्छितः ॥ १२ ॥ ॥ तमापतन्तंसनिगृह्यशृंगयोःपदासमा-
क्रम्य निपात्यभूतले । निष्पीडयामास यथाऽऽर्द्रमम्बरंकृत्वा विषाणेनजघानसोऽ
पतत् ॥ १३ ॥ असृग्वमन्मूत्रशकृत्समुत्सृजन्क्षिपंश्च पादाननवस्थितेक्षणः । जगा

श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे राजन् ! कुछदिनों के उपरांत अरिष्टासुर बैलका आकार धरणकर
खुरोंसे पृथ्वी कोक्षत विक्षत और कंपायमान करता हुआ गोठमें आया उसका ककुद और शरीर
अत्यंत विशालथा ॥ १ ॥ वह घोरशब्द करता, पृथ्वी खोदता, पूछउठाये सींगो से दीवारोंको गिराता
॥ २ ॥ और बीच २ में कुछेक मलमूत्र त्यागता उसके दोनो नेत्रभयङ्कर होरहे थे । उसका इतना
भयानक शब्द था जिसमे अकाल मेंही गायों और स्त्रियों के गर्भपात होतेथे । मेघ उसके विशाल
ककुदको पहाड समझकर उसपर बैठते थे उसके सींग अत्यत तीक्ष्ण थे । उस बैलको देखकर
गोप और गोपी अत्यंतही भयभीत हुये और पशु गोकुलको छोडकर भागनेलगे ॥ ३—५ ॥ गो-
कुलवासीगण "हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! रक्षाकरो यह कहकर सबही गोविंद के शरणागत हुए ।
गोकुलको भयसे विह्वल हुआ देखकर भगवान् "भय न करना" कहकर सबको धैर्य बंधाया और
वृषभासुरको ललकार कर कहनेलगे कि—"रेदुष्ट ! तेरीसमान दुष्टोंको दण्डदेने वाला मेरे वर्तमान
रहते हुए तू पशुओंको भय दिखाता है हे राजन् ! श्रीकृष्णजी ने इस प्रकार से कह भुजा फैलाय
तालठोंक अरिष्टको क्रोधित किया तथा आप स्वयंसखा के कंधेपर हाथडाले खडेरहे । अरिष्टभी
क्रोधितहो खुरोंसे पृथ्वीको खोदनेलगा और पूँछउठाय मेघ मंडलको कपाता हुआ श्रीकृष्णजी की
ओर दौडा ॥ ६—९ ॥ वह सींगोंको फैलाय और लाल लाल आंखें निकाल भगवान् की ओर
देखता २ इन्द्रके फेंकेहुए वज्रकी समान शीघ्रता पूर्वकचला ॥१०॥ गजके प्रतिद्वंदी गजके समान
भगवान् ने उसके दोनो सींगपकड पीछेकी ओर १८ पगतक ढकेलकर गिरादिया ॥ ११ ॥ वह
गिरकर शीघ्रही फिरखडा होगया । उसका समस्त शरीर पसीने से भीगगया और वह क्रोध से ज्ञान
रहितहो बडे २ श्वाँस छोडता हुआ फिर श्रीकृष्णजी की ओर दौडा ॥ १२ ॥ भगवान् ने सम्मुख
आतेहुये वृषभके दोनो सींगपकड लातोंसे मार पृथ्वीपर गिरादिया और गीलेवस्त्र की समान उसे
निष्पीडन करनेलगे । फिरसींग उखाडकर उसी से मारनेलगे ॥१३॥ अरिष्ट गिरकर रक्त उगलने
और बीच २ में मलमूत्र त्यागने लगा; वह अपने हाथ पांव इधर उधर फैंकने लगा और उसकी

मकरन्दनिर्झरैरवनयपुष्पैःकिरन्तोहरिमीडिरेसुराः ॥ १७ ॥ एवंककुद्मिनंहत्वास्तू
यमानः स्वजातिभिः । विवेशगोष्ठंसबलोगोपीनांनयनोत्सवः ॥ १५ ॥ अरिष्टेनिह
तेदैत्येकृष्णेनाद्भुतकर्मणा । कंसायाथाहभगवान्नारदोदेवदर्शनः ॥ १६ ॥ यशोदा
या सुतांकन्यांदेवक्याः कृष्णमेवच । रामंचरोहिणीपुत्रंवसुदेवेनबिभ्यता ॥१७॥
न्यस्तौस्वमित्रेनन्देवैयाभ्यांतेपुरुषाहताः । निशम्यतद्भोजपतिः कोपात्प्रचलितेन्द्रि
यः ॥ १८ ॥ निशातमसिमादत्तवसुदेवजिघांसया । निवारितोनारदेनतत्सुतौमृ
त्युमात्मनः ॥ १९ ॥ ज्ञात्वालोहमयैः पाशैर्बबन्धसहभार्यया । प्रतियातेतुदेवर्षौकंस
आभाष्यकेशिनम् ॥ २० ॥ प्रेषयामासहन्येतांभवतारामकेशवौ । ततोमुष्टिकचा
णूरशलतोशलकादिकान् ॥ २१ ॥ अमात्यान्हस्तिपांश्चैवसमाहूयाहभोजराट् । भो
भोनिशम्यतामेतद्वीरचाणूरमुष्टिकौ ॥ २२ ॥ नन्दव्रजेकिलासातेसुतावानकदुन्दु
भेः । रामकृष्णौततोमह्यंमृत्युः किलनिदर्शितः ॥ २३ ॥ भवद्भ्यामिहसम्प्राप्तौहन्ये
तांमल्ललीलया । मञ्चाः क्रियन्तांविविधामल्लरङ्गपरिश्रिताः ॥ पौराजानपदाः
सर्वेपश्यन्तुस्वैरसंयुगम् ॥२४॥महामात्रत्वयाभद्ररङ्गद्वार्युपनीयताम् । द्विपःकुवल
यापीडोजहितेनममाहितौ ॥ २५ ॥ आरभ्यतांधनुर्यागश्चतुर्दश्यांयथाविधि । विश
सन्तुपशून्मेध्यान्भूतराजायमीढुषे ॥ २६ ॥ इत्याज्ञाप्यार्थतन्त्रज्ञआहूययदुपुङ्गवम् ।
गृहीत्वापाणिनापाणिंततोऽक्रूरमुवाचह ॥ २७ ॥ भोभोदानपतेमह्यंक्रियतांमैत्रमा

आंखें घूमगईं । इस प्रकार से वह कष्टभोगता हुआ अंतमें यमपुरीको सिधारा । यह देखकर दे-
वतागण फूल बरसाय २ भगवान की स्तुति करनेलगे ॥ १४ ॥ गोपियों के नेत्रोंको आनंद देनेवाले
नंदनंदन श्रीकृष्णजी इस प्रकारसे वृषकोमार बलदेवजी के साथ गोष्ठमें आए गोपगण उनकी स्तुति
करनेलगे ॥ १५ ॥ हे राजन ! जब कृष्णजी ने अरिष्टासुरको मारडाला तब एकदिन नारदजी कंस
के समीप आयकर कहनलगे कि ॥१६॥"हे असुरराज ! देवकी के आठवें गर्भमें जोकन्या हुई वह
यशोदाकी कन्याथी, कृष्ण और राम रोहिणी के पुत्र हैं देवकी और वसुदेव भयपाकर अपने मित्र
नंदके निकट उन दोनोंको रखआये हैं । उन्हीं दोनों भ्राताओं के हाथसे तुम्हारे सेवक मारेगये हैं।
यहबात सुनकर भोजपति कंसकी सब इन्द्रियां व्याकुल होउठी ॥ १७—१८ ॥ उसने वसुदेव को
मारने के निमित्त तीक्ष्णखड्ग धारण किया, किंतु नारदजी के निवारण करनेमें वधतो न कियापरन्
उनके तथा देवकी के पैरोंमें लोहकी बेडी डालदी । देवर्षि के चलेजानेपर कंसने केशीको आज्ञादी
कितुम राम और कृष्णका नाशकरो इसके उपरांत भोजराज कंसनेमुष्टिक, चाणूर, शल और तो-
शलादि, मन्त्रियों और महावतों को बुलायकर कहाकि—अहो वीर चाणूर ! अहो वीर मुष्टिक !
मैं जोकहताहूं उसको सुनो ॥ १९—२२ ॥ राम और कृष्ण नामक वसुदेव के दोपुत्र व्रजमें वास
करते हैं । देवर्षि नारद कहगए हैं ॥ २३ ॥ कि उनके हाथसे मेरी मृत्युहोगी । यह सुनतेही वह
दोनों दानव उसी समय व्रजमें जानेको उद्यत हुए परन्तु असुर राजने निवारण करके कहाकि—
तुम उस स्थानमें न जाओ, उन दोनों भाइयोंको इसी स्थानपर बुलाकर मल्लक्रीड़ा करके मारडालो
नाना प्रकारके मंच और अखाडे बनाओ पुरवासी और नगरवासी सबही इस युद्धकोदेखें ॥२४॥
हे भद्रमहावत ! तू रंगद्वारमें कुवलयापीड़ हाथीको खड़ाकरदेना, उससे हमारे शत्रुओं को मारना
॥ २५ ॥ चतुर्दशी से पवित्र धनुषयज्ञका आरंभहो और वरदेनेवाले महादेवजी की पूजाके निमित्त
पशुहत्याकी जाय ॥ २६ ॥ कार्यके सिद्धांतको जाननेवाला कंस यह आज्ञाकर यदुश्रेष्ठ अक्रूरको
बुलाय और उनका हाथपकड आग्रह पूर्वक कहनेलगा कि ॥ २७ ॥ हे अक्रूर ! तुम हमारे सुहृद

हितः। नान्यस्त्वत्तोहिततमोविद्यतेभोजवृष्णिषु ॥ २८ ॥ अतस्त्वामाश्रितः सौम्य
कार्यगौरवसाधनम्। यथेन्द्रोविष्णुमाश्रित्यस्वार्थमध्यगमद्विभुः ॥ २९ ॥ गच्छन
न्दव्रजंतत्रसुतावानकदुन्दुभेः। आसातेताविहानेनरथेनानयमाचिरम् ॥३०॥निसृष्टः
किलमेमृत्युर्देवैर्वैकुण्ठसंश्रयैः। तावानयसमंगोपैर्नन्दाद्यैःसाभ्युपायनैः ॥३१ ॥ घा
तयिष्यइहानीतौकालकल्पेनहस्तिना। यदिमुक्तौततोमल्लैर्घातयेवैद्युतोपमैः ॥३२॥
तयोर्निहतयोस्तप्तान्वसुदेवपुरोगमान्। तद्बन्धून्निहनिष्यामिवृष्णिभोजदशार्हका
न् ॥ ३३ ॥ उग्रसेनंचपितरंस्थविरंराज्यकामुकम्। तद्भ्रातरंदेवकंचयेचान्येविद्वि
षोमम ॥ ३४ ॥ ततश्चैषामहीमित्र भवित्रीनष्टकण्टका। जरासन्धोममगुरुर्द्विविदो
दयितः सखा ॥ ३५ ॥ शम्बरोनरकोबाणोमय्येवकृतसौहृदाः। तैरहंसुरपक्षीया
न्हत्वाभोक्ष्येमहींनृपान् ॥ ३६ ॥ एतज्ज्ञात्वाऽऽनयक्षिप्रंरामकृष्णाविहार्भकौ। धनु
र्मखनिरीक्षार्थंद्रष्टुंयदुपुरश्रियम् ॥ ३७ ॥ अक्रूर उवाच ॥ राजन्मनीषितंसध्र्यक्
तवस्वावद्यमार्जनम्। सिद्ध्यसिद्ध्योः समंकुर्याद्दैवंहिफलसाधनम् ॥ ३८ ॥ मनोर
थान्करोत्युच्चैर्जनोदैवहतानपि। युज्यतेहर्षशोकाभ्यांतथाप्याज्ञांकरोमिते ॥ ३९ ॥
श्रीशुकउवाच एवमादिश्य चाक्रूरंमन्त्रिणश्चविसृज्यसः। प्रविवेशगृहंकंसस्तथा
क्रूरः स्वमालयम् ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भा० महा दशमस्कन्धे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

हो; सुहृदका एक कामकरो। यदु और भोजवंश में तुम्हारी अपेक्षा आदरणीय और हितकारी मित्र मेराकोई नहीं है ॥ २८ ॥ हे सौम्य ! जैसे सर्वशक्तिमान् इन्द्रने विष्णुके आश्रय से कार्य पूराकिया था वैसेही मैं कार्य साधन के निमित्त तुम्हारा आश्रय करता हूं ॥ २९ ॥ तुम नंदके व्रजमें जाओ वहांपर वसुदेव के दोपुत्र हैं। इस रथमें बैठालकर उन दोनो पुत्रोंको लेआवो, देरनकरो ॥ ३० ॥ विष्णुके आश्रित देवताओं ने उनके हाथसे मेरीमृत्युका होना निश्चय किया है। भेटों (कर) समेत नंदादि गोपोंको और उनकोभी इस स्थानपर लेआवो ॥ ३१ ॥ इस स्थानपर आतेही काल की समान गजराज द्वारा उसको यमपुरी में भेजदुंगा। यदि उससे बचजायगेतो वज्रकी समान शरीर वाले मल्लों से मरवाडालूंगा ॥ ३२ ॥ उनके नाश होनेपर, उनके दुःखसे दुःखी भाई वसुदेवआदि वृष्णिवंशी, भोज और दाशार्ह-वंशियों कोभी सहजही मारसकूंगा ॥ ३३ ॥ राज्यहीन मेरावृद्धपिता उग्रसेन और उसका भाई देवक तथा और भी दूसरे जोमेरे विद्रोही हैं उनको भी नष्ट करदूंगा ॥ ३४ ॥ हे सुहृद ! ऐसा होने से यह पृथ्वी कंटक रहित होजावेगी। जरासंध मेरागुरू है; द्विविद मेरा प्यारा मित्र है ॥ ३५ ॥ शंबर नरक और बाणकाभी मेरे साथ बन्धुत्व है। मैं इन्हीं केद्वारा देवपक्षी राजाओं का नाश करके सुखसे पृथ्वी को भोगूंगा ॥ ३६ ॥ यह जानकर अब इस के पूर्ण करने के निमित्त राम, कृष्णको शीघ्रही यहां लेआवो। 'धनुषयज्ञ और यदुपुरीकी शोभा देखो' यह कहकर उन्हें लाना ॥ ३७ ॥ अक्रूर ने कहा कि हेराजन् ! तुमने जो उपाय सोचा है वह बहुतही उत्तम है। इस उपायसे तुम्हारी मृत्यु निवारण होसकती है। परन्तु इस काम के सिद्धहोने की जैसी सम्भावना है वैसीही सम्भावना असिद्धहोने की भी है। क्योंकि कार्य दैवही सिद्ध करता रहता है ॥ ३८ ॥ ऊंची आशाओं का दैवसही विनाशहोता है; तौभी मनुष्य वैसी इच्छाकरके दुःख सुख भोगा करते हैं। चाहे जोहो—आपकी आज्ञा का पालन करूंगा ॥ ३९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! कंसअक्रूर का ऐसी आज्ञा दे मंत्रियों को बिदाकर अपने घरमेंआया और अक्रूरभी अपने घर में आये ॥ ४० ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ केशीतुकंसप्रहितःखुरैर्महीं महाहयोनिर्जरयन्मनोजवः । सटावधूताऽभ्रविमानसंकुलं कुर्वन्नभोहेषितभीषिताखिलः ॥ १ ॥ (विशालनेत्रो विकटास्यकोटरो बृहद्गलोनीलमहाघनोपमः । दुराशयःकंसहितंचिकीर्षुर्व्रजं सनन्दस्यजगामकम्पयन् ॥१॥) तंत्रासयन्तंभगवान्स्वगोकुलं तद्धेषितैर्वालविघूर्णिताम्बुदम् । आत्मानमाजौमृगयन्तमग्रणीरुपाह्वयत्सव्यनदन्मृगेन्द्रवत् ॥ २ ॥ सतंनिशाम्याभिमुखोमुखेन खंपिबन्निवाभ्यद्रवदत्यमर्षणः । जघानपद्भ्यामरविन्दलोचनं दुरासदश्चण्डजवोदुरत्ययः ॥३॥ तद्वञ्चयित्वातमधोक्षजोरुषा प्रगृह्यदोर्भ्यां परिविध्यपादयोः । सावज्ञमुत्सृज्यधनुःशतान्तरे यथोरगंतार्क्ष्यसुतोव्यवस्थितः ॥४॥ सलब्धसंज्ञःपुनरुत्थितोरुषा व्यादायकेशीतरसाऽपतद्धरिम् । सोऽप्यस्यवक्त्रेभुजमुत्तरं स्मयन्प्रवेशयामासयथोरगंबिले ॥ ५ ॥ दन्तानिपेतुर्भगवद्भुजस्पृशस्ते केशिनस्तप्तमयस्पृशोयथा। बाहुश्चतद्देहगतोमहात्मनोयथाऽऽमयःसंववृधेउपेक्षितः ॥ ६ ॥ समेधमानेनसकृष्णबाहुना निरुद्धवायुश्चरणांश्चविक्षिपन् । प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः पपातलेण्डंविसृजन्क्षितौव्यसुः ॥७॥ तद्देहतःकर्कटिकाफलोपमाद्व्यसोरपाकृष्यभुजंमहाभुजः । अविस्मितोऽयत्नहतारिरुत्स्मयैःप्रसूनवर्षैर्दिविषद्भिरीडितः ॥८॥ देवर्षिरुपसंगम्य भागवतप्रवरोनृप । कृष्णमक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत ॥९॥ कृष्णकृष्णाप्रमेयात्मन्योगेशजगदीश्वर । वासुदेवाखिलावास सात्वतांप्रवर

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! इसओर केशी कंसका भेजाहुआ मनकी समान वेगशाली विशाल अश्वकी मूर्ति धारणकर सब को भय उत्पन्न कराता और खुरोंसे पृथ्वीको खोदता हुआ गोकुलमें आया मेघ उसकी सटाके वेगसे और विमान इधर उधर तितर बितरहो आकाश में व्याप्त होगये और भयानक हिनहिनाहट से विश्व कांप उठा ॥ १ ॥ उसको इसप्रकारसे भीम रूप धारणकिये युद्धके निमित्त आता देखकर श्रीकृष्ण भगवान् उसके आगे निकले और 'निकट आ, ऐसा कहकर उसको बुलाया । केशीभी उससमय सिंहकीसी गर्जना कर उठा ॥ २ ॥ अनन्तर प्रचण्ड वेगवाला वह दुष्ट केशी मुख फैलाय मानो आकाशको पान करताहो ऐसे उनकी ओर दौड़ आया और आतेही अत्यन्त क्रोधसे अपने पिछले दोनोंपांव उन भगवान् के मारे ॥ ३ ॥ परन्तु भगवान् ने सहजहीमें उस प्रहारको बचालिया । तब उस असुरने फिर भगवान्के लात मारनें की इच्छाकी उसकाल श्रीकृष्णजीने दोनों हाथोंसे उसके दोनों पैर पकड़ लिये और गरुड़ जैसे सर्प फेंकताहै वैसेही सहजही उसको सौधनुष पर फेंक आप वहींपर खड़ेरहे ॥ ४ ॥ केशी चैतन्य होकर फिर उठा और क्रोधसे मुख फैलाय बड़ीशीघ्रतासे श्रीकृष्णजी की ओर दौड़ा । भगवानने भी हंसतेहुये बांबीमें सर्पकी समान उसके मुंहमें अपनी भुजा डालदी ॥ ५ ॥ भगवान् की भुजाका स्पर्श होतही उसकेदांत ऐसेगिरगये कि—जैसे तपेहुए, लोहके स्पर्शसे गिरजाते हैं श्रीकृष्णजीकी भुजाभी उसके हृदयमें प्रवेशकर उपेक्षा कियेहुए जलोदर रोगकी समान बढ़नेलगी ॥ ६ ॥ श्रीकृष्णजी की बाहुके बढनेसे उसकी वायु रुकगई, शरीरमें पसीना निकलआया और दोनों आंखें उलटगईं । वह चारों पैर फैलाय मल त्यागताहुआ प्राण रहितहो पृथ्वीपर गिरपड़ा, ॥ ७ ॥ हे-राजन् ! ककड़ी जैसे पककर फैल जातीहै उसीप्रकार केशीकी देह विदीर्ण होगई । महाभुज श्रीकृष्णजीने उसकी देहसे अपनी भुजा बाहर करली । इनके मुखमें किसीप्रकार काभी विस्मयका चिह्न न देखपड़ा उन्होंने सहजहीमें शत्रुको मारडाला । देवतागण फूल बरसाय कर इनकी स्तुति करनेलगे ॥ ८ ॥ उसीसमय में भागवत प्रधान नारद उपस्थितहो भगवान श्रीकृष्णजीसे एकान्तमें कहनेलगे ॥ ९ ॥ कि—हेकृष्ण ! हेअप्रमेयात्मन् ! हेयोगेश ! हेजगदीश ! हेवासुदेव ! हेसर्वाश्रय

प्रभो ॥ १० ॥ त्वमात्मासर्वभूतानामेकोज्योतिरिवैधसाम् । गूढोगुहाशयःसाक्षी महापुरुषईश्वरः ॥ ११॥ आत्मनाऽऽत्माश्रयःपूर्वं माययाससृजेगुणान् । तैरिदंसत्य सङ्कल्पः सृजस्यत्स्यवसीश्वरः ॥ १२ ॥ सत्वंभूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम् । अवतीर्णोविनाशाय सेतूनांरक्षणायच ॥ १३ ॥ दिष्ट्यातेनिहतोदैत्यो लीलयायं हयाकृतिः । यस्यहेषितसंत्रस्तास्त्यजन्त्यनिमिषादिवम् ॥ १४॥ चाणूरंमुष्टिकंचैव मल्लानन्यांश्चहस्तिनम् । कंसंचनिहतंद्रक्ष्ये परश्वोऽहनितेविभो ॥ १५ ॥ तस्यानु शंखयवनमुराणांनरकस्यच । पारिजातापहरणमिन्द्रस्यचपराजयम् ॥ १६ ॥ उद्वाहंवीरकन्यानां वीर्यशुल्कादिलक्षणम् । नृगस्यमोक्षणं पापाद्द्वारकायांजगत्प ते ॥ १७ ॥ स्यमन्तकस्यच मणेरादानं सहभार्यया ॥ मृतपुत्रप्रदानंच ब्राह्मणस्य स्वधामतः ॥ १८ ॥ पौण्ड्रकस्यवधं पश्चात्काशिपुर्याश्च दीपनम् । दन्तवक्रस्य नि धनं चैद्यस्यचमहाक्रतौ ॥ १९ ॥ यानिचान्यानिवीर्याणि द्वारकामावसन्भवान् ॥ कर्ताद्रक्ष्याम्यहंतानि गेयानिकविभिर्भुवि ॥ २० ॥ अथतेकालरूपस्य क्षपयिष्णोर मुष्यवै । अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः ॥ २१ ॥ विशुद्धविज्ञानघनस्व संस्थया समाप्तसर्वार्थममोघवाञ्छितम् । स्वतेजसानित्यनिवृत्तमायया गुणप्रवा· हंभगवन्तमीमहि ॥ २२ ॥ त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया विनिर्मिताशेष विशेष कल्पनम् । क्रीडार्थमद्याऽऽत्तमनुष्यविग्रहं नतोऽस्मिधुर्यं यदुवृष्णिसात्वताम्॥२३॥

श्रीशुकउवाच । एवंयदुपतिंकृष्णं भागवतप्रवरोमुनिः।प्रणिपत्याऽभ्यनुज्ञातो ययौत

हेसात्वतगणोंमें श्रेष्ठ ! हेप्रभो ! ॥ १० ॥ काठके मध्यमें आगकी समान आप सब प्राणियों के भीतर सदैव आत्मरूपसे स्थित रहते हैं । अतएव आप गूढ़ बुद्धिके साक्षी और अप्रगटहो आप महापुरुषहो इसहीकारण ढकीहुई बुद्धिसे जीव आपके स्वरूपको नहीं जानसकते, हे प्रभो ! आप सबके ईश्वरहो, आप स्वतन्त्र और सत्यप्रतिज्ञहो, आपने पहिले अपनी माया द्वाराही गुणोंको उ· त्पन्न कियाथा । उन सब गुणों द्वारा आप विश्वकी उत्पत्ति पालन और संहार करतेहो ११–१२ वही आप रजोरूपी दैत्यों और राक्षसोंको मारने तथा साधुओंकी रक्षाकरने के निमित्त पृथ्वीपर अवतीर्ण हुयेहो ॥ १३ ॥ अहो ! कैसा अच्छा हुआ, कि—जिसकी हिनहिनाहट के शब्दसे भय पाकर देवताओंने स्वर्ग त्याग दियाथा, उस घोड़ेके स्वरूपवाले राक्षस को आपने सहजहीमें मार- डाला ॥ १४ ॥ कुछही दिनमें देखूंगा कि—आपने चाणूर मुष्टिक और दूसरे शत्रुगण तथा हाथी और कंसकोभी मारडाला ॥१५॥ हेजगत्पते ! इसके उपरांत शंख, यवन, मुर और नरककी मृत्यु पारिजात हरण, इन्द्रकी पराजय ॥ १६ ॥ पराक्रम और शुल्कादिसे वीर कन्याओं का विवाह, द्वा- रकामें नृगराजाका पाप मोचन ॥ १७ ॥ स्त्री समेत स्यमंतक मणिका ग्रहण करना महाकाल पुर से ब्राह्मणके मरे पुत्रोंको लाकर देना ॥ १८ ॥ पौंड्रक बध; काशीपुरीका जलाना और महायज्ञ में दन्तवक्र व शिशुपालका मरना देखूंगा ॥ १९ ॥ आप द्वारकामें रहकर जिन पराक्रमों को करेंगे उन सबको देखपाऊंगा कविगण पृथ्वीमें आपके पराक्रमका वर्णन करेंगे; ॥ २० ॥ अन्तमें आप भूभार हरने के निमित्त अर्जुनके सारथीहो जिन अक्षौहिणी सेनाओं का नाश करेंगे उन सबको देखूंगा ॥ २१ ॥ हेहरि ! केवल ज्ञानही आपकी प्रधान मूर्त्तिहै अतएव अपने रूपके यथोचित स- मावेशसेही आपको समस्त अर्थ भलीप्रकार प्राप्त होतेहैं आप सत्य संकल्पहो आप अपनेही तेज से नित्य गुणोंके प्रवाहको निवृत्त करते रहतेहो मैं आपके चरणोंकी शरणहूं ॥ २२ ॥ आप ईश्वर और स्वाधीनहो आप अपनी मायासे सर्वप्रकार के विषयोंकी कल्पना और क्रीड़ाके निमित्त मनुष्य देहधारण करते रहतेहो ? आप वृष्णि, यदु, और सात्वत गणोंके धुरन्धरहो मैं आपको नमस्कार करताहूं ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! श्रीकृष्णजीको देखकर भगवद्भक्त मुनि के

हृष्टोत्सवः ॥ २४ ॥ भगवानपि गोविन्दो हत्वा केशिनमाहवे । पशूनपालयत्पालैः
प्रीतैर्व्रजसुखावहः ॥ २५ ॥ एकदा ते पशून्पालाश्चारयन्तोऽद्रिसानुषु । चक्रुर्निला-
यनक्रीडाश्चोरपालापदेशतः ॥ २६ ॥ तत्रासन्कतिचिच्चोराः पालाश्च कतिचिन्नृप ।
मेषायिताश्च तत्रैके विजह्रुरकुतोभयाः ॥ २७ ॥ मयपुत्रो महामायो व्योमो गोपालवे-
षधृक् । मेषायितानपोवाह प्रायश्चोरायितो बहून् ॥ २८ ॥ गिरिदर्यां विनिक्षिप्य
नीतंनीतं महासुरः । शिलया पिदधे द्वारं चतुःपञ्चावशेषिताः ॥ २९ ॥ तस्य तत्कर्म
विज्ञाय कृष्णः शरणदः सताम् । गोपान्नयन्तं जग्राह वृकं हरिरिवौजसा ॥ ३० ॥ स
निजं रूपमास्थाय गिरीन्द्रसदृशं बली । इच्छन्विमोक्तुमात्मानं नाशक्नोद्ग्रहणातुरः
॥ ३१ ॥ तं निगृह्याच्युतो दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले । पश्यतां दिवि देवानां पशुमा-
रममारयत् ॥ ३२ ॥ गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान्निःसार्य कृच्छ्रतः । स्तूयमानः सुरैर्गो-
पैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः । उषित्वा रथमास्था-
य प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥ गच्छन्पथि महाभागो भगवत्यम्बुजेक्षणे । भक्तिं परा-
मुपगत एवमेतदचिन्तयत् ॥ २ ॥ किं मयाचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः । किं वाऽथा-
प्यर्हते दत्तं यद्द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥ ३ ॥ ममैतद्दुर्लभं मन्य उत्तमश्लोकदर्शनम् ।

अति आनन्द उत्पन्न हुआ । वह इसप्रकारसे श्रीकृष्णजी को प्रणामकर उनसे आज्ञाले अपने स्थान को गए ॥ २४ ॥ व्रजको सुख देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी भी युद्धमे केशीको मारकर अपने प्यारे पशुपालकोंके साथ पशु पालनलगे, ॥२५॥ एकसमय वे ग्वाल पर्वतकी चोटिया पर पशु चराते चोर व पालक बनकर छिपनेका खेलखेलनेलगे॥२६॥उसखेलमे कोई तो चोर कोई पशुपाल और कोई बालक मेष बनकर परस्पर खेलकरने लगे ॥ २७ ॥ उससमय मयकापुत्र महामायावी व्योमासुर पशुपालकका रूप धारणकर चोरबन, मेषरूपधारी बालकोंका हरण करनेलगा ॥२८॥ उस महासुरने धीरे २ इसप्रकारसे बहुतसे बालकोंको लेजाय पहाड़की कन्दरामें डाल पत्थर से उसका मुँह बन्द करदिया । क्रीडा स्थानमे केवल चार पांचबालक रहगये ॥ २९ ॥ साधुओंको शरण देनेवाले श्रीकृष्णजी उसके कर्मोंको जानगये । जैसेही वह गोपोंको लिये जाताथा, वैसेही सिंह जैसे भेड़ियेपर आक्रमणकरे उन्होंने वैसेही बलपूर्वक उसको पकड़ा ॥ ३० ॥ उस बलवान असुरने पहाड़की समान अपना रूप धारण कर अपने छूटने का यत्न किया; परंतु श्री कृष्णजीसे पकड़ा जाकर वह अत्यन्त पीड़ितहोगयाथा इससे वह अपनेको न छुटासका ॥ ३१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णजीने उसे दोनोंहाथों से पकड़ पृथ्वीपर गिरादिया और देखनेवाले देवताओंके सामने उस को पशुकीसमान मारडाला॥३२॥तदनन्तर उन्होंने ढकीहुई कंदराको खोलकर गोपोंको कष्टदायक स्थान से निकाला और अनुचरों तथा देवताओंसे स्तुति कियेजाने अपने गोकुल में आए॥३३॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां सप्तत्रिंशोऽध्याय ॥ ३७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! महा बुद्धिवान् अक्रूरजीभी उसरात्रिको मथुराहीमें रह, प्रातःकाल रथपर बैठ नन्दरायजीके गोकुलको चले ॥ १ ॥ मार्ग में जाते २ वह भगवान्की परम भक्तिको प्राप्तहो इसप्रकार चिंता करनेलगे कि ॥ २ ॥ मैंने ऐसा क्या पुण्यकिया है ? ऐसी क्या तपस्या की है ? ऐसे किस योग्य पात्रको दान दियाहै ? कि आज कृष्णजीके दर्शन पाऊंगा॥३॥ मैं जानताहूं कि पवित्र कीर्ति भगवान का दर्शन होना मुझे दुर्लभ है; शूद्रके वीर्य से उत्पन्नहुए मनुष्य को जैसे वेदोच्चार दुर्लभ है कि—उसी प्रकार कृष्णजी के दर्शन मुझे दुर्लभ हैं अथवा ऐसे

विषयात्मनोयथाब्रह्मकीर्तनंशूद्रजन्मनः॥ ४ ॥ मैवंममाधमस्यापिस्यादेवाच्युतदर्शनम्। ह्रियमाणः कालनद्याक्वचित्तरतिकश्चन॥ ५ ॥ ममाद्यामङ्गलंनष्टंफलवांश्चैवमेभवः। यन्नमस्येभगवतोयोगिध्येयांघ्रिपङ्कजम् ॥ ६ ॥ कंसोबताद्याऽकृतमेऽत्यनुग्रहंद्रक्ष्येंऽघ्रिपद्मंप्रहितोऽमुनाहरेः। कृतावतारस्यदुरत्ययंतमःपूर्वेऽतरन्यन्नखमण्डलत्विषा ॥ ७ ॥ यदर्चितंब्रह्मभवादिभिः सुरैः श्रियाचदेव्यामुनिभिः ससात्वतैः। गोचारणायानुचरैश्चरद्वनेयद्गोपिकानांकुचकुङ्कुमाङ्कितम् ॥ ८ ॥ द्रक्ष्यामिनूनंसुकपोलनासिकंस्मितावलोकारुणकञ्जलोचनम्। मुखंमुकुन्दस्यगुडालकावृतंप्रदक्षिणंमेप्रचरन्तिवैमृगाः ॥ ९ ॥ अप्यद्यविष्णोर्मनुजत्वमीयुषोभारावतारायभुवोनिजेच्छया। लावण्यधाम्नोभवितोपलम्भनंमह्यंनन्स्यात्फलमञ्जसादृशः॥१०॥ यईक्षिताऽहंरहितोऽप्यसत्सतोः स्वतेजसापास्ततमोभिदाभ्रम. । स्वमाययाऽऽत्मन्रचितैस्तदीक्षयाप्राणाक्षधीभिः सदनेष्वभीयते ॥ ११ ॥ यस्याखिलाऽमीवहभिः सुमङ्गलैर्वाचोविमिश्रागुणकर्मजन्मभिः। प्राणन्तिशुम्भन्तिपुनन्तिवैजगद्यास्तद्विरक्ताः शवशोभनामताः॥ १२ ॥ सचावतीर्णः किलसात्वतान्वयेस्वसेतुपालामरवर्यशर्मकृत्। यशोवितन्वन्व्रजआस्तईश्वरोगायन्तिदेवायदशेषमङ्गलम् ॥ १३ ॥ तंत्वद्यनूनंमहतांगतिंगुरुंत्रैलोक्यकान्तंदृशिमन्महोत्सवम्। रूपंदधानंश्रियईप्सितास्प

नहीं, यद्यपि मैं अधमहूं तोभी भगवान के दर्शन होसकते हैं, कालरूपी नदी में बहताहुआ कोई मनुष्य कभी पारभी होजाता है ॥ ४ । ५ ॥ आज मेरे समस्त अकल्याण नाशहोगये, आज मेरा जन्म सार्थक हुआ क्योंकि आज मैं योगियों के ध्यान करने योग्य भगवान के चरण कमलों का दर्शन करूंगा ॥ ६ ॥ कैसा आश्चर्य है ! कि—आज कंस ने भी मेरे ऊपर अनुग्रहकी मैं उसीकंस का भेजाहुआ जाकर अवतारधारी कृष्णजी के पाद पद्म का दर्शन करूंगा; पूर्व समयके अम्बरीष आदि महात्मगण जिन चरणकमल के नखों की कांति से सहायपाय दुस्तर भवसागर से पार होगए ॥ ७ ॥ देवों के देव महादेव, ब्रह्मादि देवतागण, लक्ष्मी देवी, तथा मुनि और भक्तगण जनकी पूजाकरते रहते हैं । फिर गऊ चराने के निमित्त अनुचरों के साथ वनमें विचरतेहुए वह गोपियों के स्तनों की केसर से रंगते हैं । भगवान का मुख—सुन्दर कपोल व नासिका से शोभायमान तथा सुंदर हास्ययुक्त दृष्टि से प्रति समयशोभित और कमल से अरुण नेत्रों युक्त व घूंघरवाले बालों से आच्छादित रहता है मैं निश्चयही उस मुखको देखूंगा; क्योंकि मृगगण मेरी परिक्रमा करतेहुए विचरण कर रहे हैं । तदनन्तर वह मनही मन में और विचारकरने लगे कि—श्रीकृष्णजी ने अपनी इच्छानुसार पृथ्वी का भार हरने के निमित्त मनुष्यरूप धारण किया है; आज क्या उन के लावण्य के स्थान शरीर को देखपाऊंगा ? यदि ऐसाहोवे तो निश्चयही मेरीआंखेंसफल हों ॥ ८ । ९ । १० ॥ जो केवल दृष्टि सेही कार्य और कारण के कर्त्ता हैं, जिनको अहंकारनहीं है; जो अपने तेजद्वारा तमसे उत्पन्नहुए भेद के हेतु भ्रम को दूर करते हैं; तौभी अपनीही दृष्टि से प्राण, इंद्रिय, और बुद्धिद्वारा अपने रचेहुए प्राणियों के साथ वृन्दावन में और गोपियों के घर में लीला के वश से कर्म करआसक्तकी समान प्रतीत होते हैं ॥ ११ ॥ जिनके गुण, कर्म, और जन्मचरित्र नानाप्रकार के पापों को नाशकरते तथा जगतको जीवित, शोभित और पवित्रकरते हैं ऐसे वर्णन से रहितवाणी, वस्त्रादि से अलंकृत शव के समान मानीजाती है ॥ १२ ॥ औरजो अपने रचेहुए वर्णाश्रम धर्म के पालनकर्त्ता, श्रेष्ठ देवताओं को सुख देनेवाले हैं वहीभगवान्सात्वत वंश में अवतार ले यश का विस्तार करतेहुए ब्रज में विराजमान हैं, देवतागण उन के समस्त कल्याणकारी यशों का गानकरते हैं ॥ १३ ॥ उन्होंने जो रूप धारण किया है—त्रिलोकी के मध्य

वृन्दस्य मेममाऽऽलम्नुयस्युः सुदर्शनाः॥१४॥ अथावरूढः सपदीशयो रथात्प्रधानपुंसो श्चरणं स्वलब्धये। धियाधृतंयोगिभिरप्यहं ध्रुवं नमस्य आभ्यां च सखीन्वनौकसः॥ ॥ १५ ॥ अप्यङ्घ्रिमूलेपतितस्यमेविभुः शिरस्यधास्यन्निजहस्तपङ्कजम्। दत्ताभयं कालभुजङ्गरंहसा प्रोद्वेजितानांशरणैषिणांनृणाम्॥१६॥समर्हणंयत्रनिधायकौशिक स्तथा बलिश्चापजगत्त्रयेन्द्रताम्। यद्वाविहारेव्रजयोषितांश्रमं स्पर्शेनसौगन्धिकग न्ध्यपानुदत्॥१७॥ नमय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युतःकंसस्यदूतःप्रहितोऽपिविश्वदृक् योऽन्तर्बहिश्चेतस एतदीहितं क्षेत्रज्ञईक्षत्यमलेनचक्षुषा॥१८॥ अप्यङ्घ्रिमूलेऽवहि- तंकृताञ्जलिं मामीक्षिता सस्मितमार्द्रयादृशा। सपद्यपध्वस्तसमस्तकिल्बिषो वोढा मुदंवीतविशंकऊर्जिताम्॥१९॥ सुहृत्तमंज्ञातिमनन्यदैवतं दोर्भ्यांबृहद्भ्यांपरिर- प्स्यतेऽथमाम्। आत्माहितीर्थीक्रियते तदैवमेबन्धश्च कर्मात्मकउच्छ्वसित्यतः॥ ॥२०॥ लब्ध्वाङ्गसंगंप्रणतं कृताञ्जलिंमां वक्ष्यतेऽक्रूरततेत्युरुश्रवाः। तदावयंजन्म भृतोमहीयसा नैवादृतोयो धिगमुष्यजन्मतत्॥२१॥ नतस्यकश्चिद्दयितःसुहृत्तमो नचाप्रियोद्वेष्यउपेक्ष्यएववा। तथाऽपिभक्तान्भजते यथा तथा सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रि तोऽर्थदः॥ २२॥ किंचाऽग्रजोमाऽवनतं यदूत्तमः स्मयन्परिष्वज्यगृहीतमंजलौ॥

में केवल सुन्दर दृष्टियुक्त मनुष्य उस के दर्शन से असीम आनन्द प्राप्त करते हैं; वह लक्ष्मी के वांछितआश्रय हैं। वह भगवान हरि महात्मा मनुष्योंकी गति और गुरु हैं। आज मैं उनको निश्चयही देखपाऊंगा; क्योंकि आज प्रातःकालसेही बहुत मंगल चिह्नों को देखरहाहूं॥ १४॥उन श्रीमूर्तिधारी हरि के दर्शन होतेही मैं रथसे उतरूंगा और योगीजन अपने लाभ के निमित्त प्रधान पुरुष राम कृष्ण के जिनचरणोंको केवल बुद्धिद्वारा धारण किया करते हैं उन चरणों को निश्चयही नमस्कार करूंगा। इस के उपरांत उन के साथवाले उन के आत्मीय गोपगणों को भी नमस्कार करूंगा॥ १५॥ जो मनुष्य कालसर्प के वेग से अत्यन्त व्याकुलहो उनकी शरणलेता है भगवान अपने कर कमलों से उस को अभयदान देते हैं; मैं नारायण के चरणों में गिरूंगा, तो वह क्या अपने वही करकमल मेरे मस्तक पर न धरेंगे?॥ १६॥ उन करकमलों में पूजाआदि अर्पण कर इंद्र और बलि ने तीनों जगत का इन्द्रत्व प्राप्त कियाथा। कमल की समान सुगन्धित उन्हीं करकमलों ने रास के समय गोपियों के श्रमको नाशकियाथा। अतएव वह मोक्ष चाहनेवालों को संसार निवारक, सकाम मनुष्यों को उन्नति देनेवाले और भक्तोंको परम सुखदायकहैं॥ १७॥ कंसने मुझे भेजाहै अतएव कंसका दूत समझकर भगवान् पद्मनयन मुझको यह मनुष्य शत्रु पक्षका है ऐसा न विचारेंगे क्योंकि वह सर्वदर्शी हैं अतएव अपने नित्यज्ञानसे वह मेरे मनकी और बाहरकी चेष्टाको जानतेहैं॥१८॥ मैंजब उनके चरण मूलमें गिर हाथ बांधकर खड़ाहोजाऊँगा तब क्या वह हंसकर अपनी दयामयी दृष्टिसे मेरीओर देखेंगे? यदि ऐसा करेंगे तो उसीसमय मेरे समस्त पाप नष्टहोजावेंगे और मैं सब भयसे छूट परमानन्दको प्राप्त हूंगा॥१९॥ मैं उनका श्रेष्ठ मित्र और उनकी ज्ञातिवालाहूं उनकेअतिरिक्त मेरा और कोई देवता नहींहै यदि वहअपनी दोनों लम्बी भुजाओंसे मेरा आलिंगन करेंगे तो मेरी आत्मा पवित्र होजायगी उसीसमय समस्त कर्म बन्धन देहसे ढीले पड़जावेंगे॥ २०॥ मैं जबउनका अंग संग प्राप्तकर हाथ जोड़ खड़ाहूंगा तब यदि भगवान् मुझको 'अक्रूर' कहकर बुलावेंगे। तो मेरा जन्म सुफलहोगा जो पूजनीय के निकट आदर नहीं प्राप्तकरसकता उसके जन्मको धिक्कार है॥ २१॥ नारायण का न तो कोई प्यारा है न मित्र, न शत्रु न उदासीन तौ भी जैसे कल्पवृक्ष आश्रित मनुष्यों की इच्छा पूर्ण करता है तैसेही वह भक्तों को भजते हैं॥ २२॥ मैं प्रणाम करके

गृहं प्रवेश्याप्तसमस्तसत्कृतं सम्प्रेक्ष्यते कंसकृतं स्वबन्धुषु ॥ २३ ॥ श्रीशुकउवाच इतिसंचिंतयन्कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि । रथेनगोकुलंप्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिंनृप ॥२४॥ पदानि तस्याखिललोकपालकिरीटजुष्टामलपादरेणोः ॥ ददर्शगोष्ठे क्षिति-कौतुकानि विलक्षितान्यब्जयवांकुशाद्यैः ॥ २५ ॥ तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसम्भ्रमः प्रेम्णोर्ध्वरोमाऽश्रुकलाकुलेक्षणः । रथादवस्कन्द्यसतेष्वचेष्टत प्रभोरमून्यंघ्रिरजांस्यहोइति ॥ २६ ॥ देहंभृतामियानर्थो हित्वादम्भंभियंशुचम् ॥ सन्देशाद्यो हरेर्लिङ्ग-दर्शनश्रवणादिभिः ॥ २७ ॥ ददर्शकृष्णंरामंच व्रजेगोदोहनंगतौ । पीतनीलाम्बरधरौ शरदम्बुरुहेक्षणौ ॥२८॥ किशोरौश्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौबृहद्भुजौ। सुमुखौ सुन्दरवरौ बालद्विरदविक्रमौ ॥ २९ ॥ ध्वजवज्रांकुशाम्भोजैश्चिह्नितैरंघ्रिभिर्व्रजम् । शोभयन्तौमहात्मानौ सानुक्रोशस्मितेक्षणौ ॥ ३० ॥ उदाररुचिरक्रीडौ स्रग्विणौवनमालिनौ । पुण्यगन्धानुलिप्तांगौ स्नातौ विरजवाससौ ॥ ३१ ॥ प्रधानपुरुषावाद्यौ जगद्धेतूजगत्पती । अवतीर्णौजगत्यर्थे स्वांशेनबलकेशवौ ॥ ३२ ॥ दिशोवितिमिराराजन्कुर्वाणौ प्रभयास्वया। यथामारकतः शैलो रौप्यश्चकनकाचितौ ॥ ३३ ॥ रथात्तूर्णमवप्लुत्यसोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः । पपातचरणोपान्ते दण्डवद्रामकृष्णयोः ॥ ३४ ॥ भगवद्दर्शनाह्लादबाष्पपर्याकुलेक्षणः । पुलकाचितांग औत्कण्ठ्यात्स्वाख्यानेनाशकन्नृप ॥ ३५ ॥ भगवांस्तमभिप्रेत्य रथांगांकितपाणिना । प-

---

जब हाथ जोडूंगा तब मेरा हाथपकड़ हंसतेहुये आलिंगन कर घरमेंलेजाय सबप्रकार सन्मानकर बड़े भाई बलरामजी अपने आत्मीयजन व कंसका वृत्तांत पूंछेंगे ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हेराजन् ! इसप्रकारसे अक्रूर चिंता करतेहुये रथपर सवारहो गोकुल में आये इसधार सूर्यनारायण भी अस्ताचल पहुंचे ॥२४॥समस्त लोकपाल जिनकी निर्मल चरण रजको किरीट से धारण करते हैं अक्रूरने गोष्ठमें उन्हीं श्रीकृष्णजी के पद्म, यव, अंकुशआदि द्वारा चिह्नित पृथ्वीके अलंकार भूत चरण चिह्नको देखा ॥ २५ ॥ उनको देखनें से आनंदगाय पुलकित होगये और नेत्रों से आनंदाश्रु बहानेलगे । वह "अहो ! यह सब भगवान् की चरणरज हैं" ऐसे कहकर उनमें लोटने लगे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! दंभ और शोकको छोड़कर, भगवान के चिह्नदर्शन व श्रवण आदिसे अक्रूरजीकी समान आचरण करनाही प्राणियोंका पुरुषार्थ है ॥ २७ ॥ हे महाराज ! अक्रूरने देखा कि व्रजमें जिस स्थानपर गोदोहन होता है, राम, कृष्ण उसी स्थानपर खड़े हैं वह नीले और पीले वस्त्र पहिने हुए हैं, उनके नेत्रशरत् कालके कमल की समान शोभायमान होरहे हैं ॥ २८ ॥ किशोरवय, श्वेत व श्यामवर्ण, लक्ष्मी के—आश्रय, बड़ी भुजावाले, सुंदरमुख, हाथी की शदस पराक्रमी सर्वश्रेष्ठ ॥ २९ ॥ ध्वज, व्रज, अंकुश, व कमल के चिह्नवाले चरणों से भूमिको शोभायमान करते सुंदर मंद मुसकान व. दयादृष्टियुक्त है ॥ ३० ॥ वह उदार क्रीड़ावाले, वनमाला पहिने, रत्नोंके हार धारण किये, चदन लगाए स्नान किये, सुंदर वस्त्र पहिने हैं ॥ ३१ ॥ वह प्रधान पुरुष, आद्य, जगत के कारण, और जगत के पति पृथ्वीका भार हरने के निमित्त मनुष्य रूपसे अवतीर्ण हुए हैं ॥ ३२ ॥ कनक मण्डित मरकत मय और रौप्यमय पर्वत की समान वह अपनी २ प्रभासे दिशाओंको प्रकाशितकर विराजमान होरहे हैं ऐसे उन दोनों भाइयोंको देखकर॥३३॥अक्रूरजी रथसे शीघ्रता पूर्वक उतरे और स्नेहसे विह्वलहो राम, कृष्णके चरणों में दंडकी समान गिरपड़े॥३४॥ भगवान्के दर्शन होनेके कारण आनंदसे उनकी आंखों में आनंदाश्रु आगये और शरीर पुलकायमान होगया। वह चित्तकी चंचलता के कारण अपना परिचय भी न देसके ॥ ३५ ॥ प्रणत वत्सल भगवान्—यह अक्रूर है और इस निमित्त

विरेमेऽभ्युपाकृष्य प्रीत प्रणतवत्सलः ॥ ३६ ॥ संकर्षणश्चप्रणतमुपगुह्य महामनः गृहीत्वापाणिनापाणी अनयत्सानुजोगृहम् ॥ ३७ ॥ पृष्ट्वाथस्वागतंतस्मै निवेद्य वरासनम्। प्रक्षाल्यविधिवत्पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत् ॥ ३८ ॥ निवेद्यगांचातिथये संवाद्यश्रान्तमादृत । अन्नबहुगुण मेध्यं श्रद्धयोपाहरद्विभुः ॥ ३९ ॥ तस्मैभुक्तवतेप्रीत्या राम परमधर्मवित् ॥ मुखवासैर्गन्धमाल्यैः परांप्रीतिंव्यधात्पुन ॥ ४० ॥ पप्रच्छसत्कृतनन्दः कथंस्थनिरनुग्रह । कंसे जीवतिदाशार्ह सौनपाला इवावय । ॥४१॥ योऽवधीत्स्वस्वसुस्तोकान्क्रोशन्त्या असुतृप्खलः । किंनुस्वित्तत्प्रजानांवः कुशलंविमृशामहे ॥ ४२ ॥ इत्थसूनृतयावाचा नन्देनसुसभाजित. । अक्रूरःपरिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधेऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ सुखोपविष्टः पर्यङ्केरामकृष्णोरुमानितः । लेभेमनोरथान्सर्वान्पथियान्सचकारह ॥ १ ॥ किमलभ्यंभगवतिप्रसन्नेश्रीनिकेतने । तथाऽपितत्पराराजन्नहियाञ्छन्तिकिञ्चन ॥ २ ॥ सायन्तनाशनंकृत्वाभगवान्देवकीसुत । सुहृत्सुवृत्तंकंसस्यपप्रच्छान्यच्चिकीर्षितम् ॥ ३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ताततौम्यागत कच्चित्स्वागतंभद्रमस्तुवः । अपिस्वज्ञातिबन्धूनामनमीवमनामयम् ॥ ४ ॥ किंनुन कुशलंपृच्छेएधमानेकुलामये । कंसे मातुलनाम्न्यङ्ग स्वानां नस्तत्प्रजासु च ॥ ५ ॥ अहोअस्मदभूद्भूरिपित्रोर्वृजिनमार्ययो । यद्धेतोः पुत्रमरणंयद्धेतोर्बन्धनंतत

आए हैं उनका यह सब अभिप्राय जान, प्रीति पूर्वक चक्र चिह्नित हाथों द्वारा उनको उठाकर आलिंगन किया ॥ ३६ ॥ बड़े मनवाले बलरामजी भी प्रणत से मिलहाथ से हाथ पकड़ भाई के साथ उनको घरलेआए ॥ ३७ ॥ अनंतर कुशल प्रश्नकर उनको श्रेष्ठ आसनदिया और यथाविधि से पैर धोकर मधुपर्क अर्पणकिया ॥ ३८ ॥ भगवानने अक्रूरजी का नम्रवचनों से सत्कार किया और आदर सहित श्रमनाश होने के निमित्त स्वयं बीजना करने लगे। तदनंतर श्रद्धा युक्त पवित्र अन्नका उन्हें भोजनकराया ॥ ३९ ॥ उनके भोजन करनेपर परम धर्मज्ञ रामने प्रीतिपूर्वक बाड़ा, चदन, फूल और माला, अर्पणकर स्नेहप्रगट किया ॥ ४० ॥ अनंतर श्रीनंदजी ने, पूजित अक्रूर से पूछाकि–हे दाशार्ह! दया रहित कंसके जीवित रहते हुए, कसाई केघर बकरी के समान तुम किस प्रकार जीवन धारण करते हो ॥ ४१ ॥ दुष्ट कंस–प्राणों के तृप्त करने वाले ने अपनी रोती हुई बहिन की संतानों को मार डालाथा। तुम उसकी प्रजाहो, उसके निकट तुम्हारा जीवनमात्र दुर्लभ है, अतएव तुम्हारा कुशलाकुशल क्या पूछूं ॥ ४२ ॥ इसप्रकार मधुर वाक्यों से नदजी ने बहुत आदर किया और उन्हें प्रश्नोंको सुन अक्रूर जीके मार्ग काश्रम दूर हुआ ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण दशमस्कंध सरलाभाषाटीकायां अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे राजन्! अक्रूरने मार्ग में आते हुए जिन २ कामनाओंको किया था, राम, कृष्ण के निकट आदर पाय सेज के ऊपर सुख से बैठ उन समस्त कामनाओंको प्राप्त किया। श्रीभगवान् के प्रसन्न होने से दुर्लभ क्या रहता है? तोभी हे राजन्! जो भगवद्भक्त हैं वह कुछभी कामना नहीं करते ॥ १–२ ॥ भगवान् देवकी नंदन सायंकाल का भोजनकर फिर अक्रूर के समीप आये और बंधुओं पर कंस कैसा आचरण करता है और क्या करनेकी इच्छा है यह सब बात पूछी ॥ ३ ॥ श्रीभगवान ने कहा कि—हे तात! सुख से तो आयहो? तुम्हारी स्वयं कुशलतो है? सुहृद, जातिवाले और बन्धुगण सुख मे और आरोग्य तो हैं? अथवा जब हमारे कुल का रोग मामाकंस वृद्धि पारहा है तब फिर तुम्हारी व जातिवालों की तथा प्रजागण की क्या कुशल पूछूं? ॥ ४। ५ ॥ अहो! हमारे निरपराधी माता पिता हमारे कारण बहुतकष्ट

यो: ॥ ६ ॥ दिष्टयाऽद्यदर्शनंस्वानांमह्यंवः सौम्यकाङ्क्षितम् । संजातंवर्ण्यतांतात तवागमनकारणम् ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पृष्टोभगवतासर्वंवर्णयामासमाधवः । वैरानुबन्धंयदुषुवसुदेववधोद्यमम् ॥ ८ ॥ यत्सन्देशोयदर्थंवादूतः संप्रेषितः स्वयम् । यदुक्तंनारदेनास्यस्वजन्मानकदुन्दुभेः ॥ ९ ॥ श्रुत्वाऽक्रूरवचः कृष्णोबलश्च परवीरहा । प्रहस्यनन्दंपितरंराज्ञाऽऽदिष्टंविजज्ञतुः ॥ १० ॥ गोपान्समादिशत्सोऽपिगृह्यतांसर्वगोरसः । उपायनानिगृह्णीध्वंयुज्यन्तांशकटानिच ॥ ११ ॥ यास्यामः श्वोमधुपुरींदास्यामोनृपतेरसान् । द्रक्ष्यामः सुमहत्पर्वयान्तिजानपदाः किल । एवमाघोषयत्क्षत्रानन्दगोपः स्वगोकुले ॥ १२ ॥ गोप्यस्तास्तदुपश्रुत्यबभूवुर्व्यथिता भृशम् । रामकृष्णौपुरींनेतुमक्रूरंव्रजमागतम् ॥ १३ ॥ काश्चित्तत्कृतहृत्तापश्वासम्लानमुखश्रियः । स्रंसद्दुकूलवलयकेशग्रन्थ्यश्चकाश्चन ॥१४॥ अन्याश्चतदनुध्याननिवृत्ताशेषवृत्तयः । नाभ्यजानन्निमंलोकमात्मलोकंगताइव ॥ १५ ॥ स्मरन्त्यश्चापराः शौरेरनुरागस्मितेरिताः । हृदिस्पृशश्चित्रपदागिरः संमुमुहुःस्त्रियः ॥ १६ ॥ गतिंसुललितांचेष्टांस्निग्धहासावलोकनम् । शोकापहानिनर्माणिप्रोद्दामचरितानिच ॥ १७ ॥ चिन्तयन्त्योमुकुन्दस्यभीताविरहकातराः । समेताः संघशः प्रोचुरश्रुमुख्योऽच्युताशयाः ॥ १८ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ अहोविधातस्तवनक्वचिद्दयासंयोज्य मैत्र्याप्रणयेनदेहिनः तांश्चाकृतार्थान्वियुनङ्क्ष्यपार्थकंविचेष्टितंतेऽर्भकचेष्टितंयथा

भोग रहे हैं उनकेहीं पुत्र मरे और वही कारागार में बन्दहुए ॥ ६ ॥ हे सौम्य ! यह बहुतही अच्छाहुआ कि आज अपनी जातिवालों में से आपका दर्शन हुआ । यही मेरी इच्छाभीथी।हेतात! तुम अपने आने का कारण कहो ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हेराजन् ! मधुवंश में उत्पन्न हुए अक्रूर ने भगवान के इसप्रकार से पूछने पर समस्तवृत्तांत वर्णन किया ॥ ८ ॥ कंस का यदुवंशियों से शत्रुताकरना; वसुदेव के मारने का उद्योग करना तथा स्वयं जो संदेशा लायेथे व जिस निमित्त उनको दूतबनाकर भेजाथा, और " वसुदेव से श्रीकृष्णका जन्महुआ है "–नारदजी का कंस से यह कहना यह समस्त बात यथार्थ कहीं ॥ ९ ॥ शत्रु वीर नाशक राम और कृष्ण इस बात को सुनकर हँसने लगे और राजाकी आज्ञा को नन्दराय से जाकरकहा ॥१०॥ नन्दजीने भी गोपोंको आज्ञादी कि––सबकोई गोरस व नानाप्रकारका सामग्रियें लेकर शकटों में भरलो;॥११॥ कलमधुपुरी को चलनाहोगा; राजा को सबरस चलकर देंग और वहां का उत्सव देखेंगे;––सब नगर और गांव क निवासी जारहे हैं । नन्दजीने रक्षक से गोकुल में इस का ढिंढोरा पिटवादिया ॥ १२ ॥ इस ढिंढोरेको सुनकर जब गोपियों ने सुना कि राम कृष्ण के लेनेको मधुपुरी से अक्रूर व्रज में आये हैं तब उनके दुःख की सीमा न रही; और कामदेवकी पीड़ा से वह अत्यन्तही दुःखितहुई ॥ १३ ॥ इस सम्बाद को सुनकर जो सन्ताप उत्पन्नहुआ उस से कितनीही गोपियों के मुख की कांति मलीन होगई; अनेकों के वस्त्र, कंकण और बालों की ग्रंथिखुल गई । श्रीकृष्णजी का ध्यानकरते २ कितनीही गोपियों की इन्द्रियों की वृतियें रुकगई; अतएव मुक्त मनुष्यकी समान उन्हें अपनी २ देह काभी भान न रहा ॥ १४ ॥ १५ ॥ और कितनीही स्त्रियें उन के अनुराग व मंदमुसकान की उच्चारित, हृदयकी लुभानेवाली विचित्र पदयुक्तवाणी का स्मरण कर मोहित होगई ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णजी की सुन्दर गति, चेष्टा,प्रीतिपूर्वक मुसकानि सहित देखना शोकके दूरकरनेवाले हास्ययुक्त वचन,सर्वोत्तम चरित्र व ॥१७॥ क्रीड़ाका ध्यानकरतीहुई विरह से संतप्त भगवान में चित्तलगाये गोपियों का समूह एकत्रित हो आंसू बहाय बहाय परस्पर कहने लगा॥१८॥गोपियोंने कहा कि-अहो!विधाता! तुझेकुछभी दयानहींहै, तूप्राणियोंको बधुता द्वारा मिलाकर

था ॥ १९ ॥ यस्त्वं प्रदर्श्यासितकुन्तलावृतं मुकुन्दवक्त्रं सुकपोलमुन्नसम् । शोकाप नोदस्मितलेशसुन्दरं करोषि पारोक्ष्यमसाधु ते कृतम् ॥ २० ॥ क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्यया स्म नश्चक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत् । येनैकदेशेऽखिलसर्गसौष्ठवं त्वदीयमद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥ २१ ॥ न नन्दसूनुः क्षणभङ्गसौहृदः समीक्षते नः स्वकृतातुरा बत । विहाय गेहान्स्वजनान्सुतान्पतींस्तद्दास्यमद्धोपगता नवप्रियः ॥ २२ ॥ सुखं प्रभाता रजनीयमाशिषः सत्या बभूवुः पुरयोषितां ध्रुवम् । याः संप्रविष्टस्य मुखं व्रजस्पतेः पास्यन्त्यपाङ्गोत्कलितस्मितासवम् ॥ २३ ॥ तासां मुकुन्दो मधुमञ्जुभाषितैर्गृहीतचित्तः परवान्मनस्व्यपि । कथं पुनर्नः प्रतियास्यतेऽबला ग्राम्याः सलज्जस्मितविभ्रमैर्भ्रमन् ॥ २४ ॥ अद्य ध्रुवं तत्र दृशो भविष्यते दाशार्हभोजान्धकवृष्णिसात्वताम् । महोत्सवः श्रीरमणं गुणास्पदं द्रक्ष्यन्ति ये चाध्वनि देवकीसुतम् ॥ २५ ॥ मैतद्विधस्याकरुणस्य नाम भूदक्रूर इत्येतदतीव दारुणः । योऽसावनाश्वास्य सुदुःखितं जनं प्रियात्प्रियं नेष्यति पारमध्वनः ॥ २६ ॥ अनार्द्रधीरेष समास्थितो रथं तमन्वमी च त्वरयन्ति दुर्मदाः । गोपा अनोभिः स्थविरैरुपेक्षितं दैवं च नोऽद्य प्रतिकूलमीहते ॥ २७ ॥ निवारयामः समुपे

उनकी इच्छा पूर्ण न होतेर उनका व्यर्थही वियोग करदेताहै तू अति मूर्खहै तेराकाम बालकों की समान है ॥ १९ ॥ श्रीकृष्णजी का मुख मण्डल कृष्णवर्ण कुण्डलों से आवृत्त सुन्दर कपोल और नासिकासे शोभित व कुछक हास्यसे अति रमणीयहै तू उस मुखको दिखाकर फिर दृष्टि से दूर किये देताहै, अतएव तेरा कार्य निंदनीयहै ॥ २० ॥ तू क्रूरहै तुझ बिना दूसरे किसीसे ऐसा काम नहीं होसकता कि हमको जो आंखेंदीहैं उन आंखोंसे हम श्रीकृष्णजी को एक स्थानसे देखकर तेरी सम्पूर्ण सृष्टिकी सुन्दरता देखती हैं परन्तु तू अक्रूरका नामधर अज्ञानकी समान हमारी उन आंखोंका हरण करताहै ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णजीके विरह के कारण हम आजसे अन्धी होजावेंगी । हेसखीगण ! श्रीनन्दनंदनकी सुहृदता चंचलहै उन्हें तो नबाही नया प्यारा रहताहै परन्तु हम तो उनके कार्य, उनके गूढहास्य द्वारा वशीभूत होकर घर, पुत्र सुजन और स्वामी आदिको छोड कर साक्षात् उन्हींके वशीभूतहोगयी हैं अब यह क्या हमारी ओर स्नेहकी दृष्टिसे न देखेंगे, ? हे सखि ! ऐसा न होगा कि हम उन्हें छोडदें २२ ॥ आज निश्चयही मधुपुरकी स्त्रियों के लिये सुप्रभात हुआहै—आज निश्चयही उनका आशीर्वाद सफल हुआ आज वह भगवान् के मुखका कि—; जो कटाक्षसे बढ़हुए और मन्द मुसकानके कारण आसव रूपहै पान करेंगी ॥ २३ ॥ उन सब स्त्रियों के मधुर वाक्यसे मुकुन्दका चित्त खिंचजायगा और उनके सलज्ज हास्य और विलास से वह मोहित होजायंगे, इसलिये यद्यपि वह पिताादिके आधीन व धीरहैं तौभी फिर क्या वह हमारे समीप लौटकर आसक्तेहैं ॥ २४ ॥ हाय ! हमारे उत्सव को दूसरे भोगेंगे ! आज निश्चयही मधुपुरीमें दाशार्ह, भोज, अंधक और वृष्णि वंशियोंके नेत्रोंका महोत्सवहोगा क्योंकि वह आज लक्ष्मी के आनन्द देनेवाले और गुणोंके आश्रय कृष्णजीके कमल मुखको देखेंगे आज उस मधपुरी को धन्यहै अहो ! जब वह मधुपुरीके मार्गसे आवेंगे तब सब नगर निवासी उन्हें देखकर आनन्दित होंगे, ॥ २५ ॥ अहो यह अक्रूर अति निर्दयी और निठुरहै कि दु.खित मनुष्यों को धैर्य बँधाय कर प्राणसेभी प्यारे प्रियको नेत्रोंसे दूर स्थलमें लिये जाताहै अतएव इसका नाम अक्रूर न होना चाहिये ॥ २८ पाषाण हृदय अक्रूर रथपर बैठ गयाहै मदोन्मत्त गोपगण भी उसके पीछे गाड़ियों पर सवारहुए चलने को व्यग्रहोरहे हैं वृद्धभी निवारण नहीं करते । दैवभी आज हमारे ऊपर प्रतिकूलता कररहा है यदि दैव प्रतिकूल न होता तो इनमें से कोई एक अवश्य मरजाता नहीं तो अकस्मात् वज्र गिरता या कोई उत्पात होजाता परतु वह कुछभी नहीं देखती ; अतएव दैवही प्रतिकूल है ॥ २७ ॥ चलो—सब मिलकर माधवको निवारण

त्यमाथ्रबंकिनोऽकरिष्यन्कुलवृद्धबान्धवाः । मुकुन्दसङ्गान्निमिषार्द्धदुस्त्यजाद्दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम् ॥ २८ ॥ यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्रलीलावलोकपरिरम्भणरासगोष्ठ्याम् । नीताः स्म नः क्षणमिवक्षणदा विना तं गोप्यः कथन्वतितरेम तमो दुरन्तम् ॥ २९ ॥ योऽह्नः क्षये व्रजमनन्तसखः परीतो गोपैर्विशन्खुररजश्छुरितालकस्रक् । वेणुं क्वणन्स्मितकटाक्षनिरीक्षणेन चित्तं क्षिणोत्यमुमृते नु कथं भवेम । ३० । श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः । विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ ३१ ॥ स्त्रीणामेवं रुदन्तीनामुदिते सवितर्यथ । अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिको रथम् ॥ ३२ ॥ गोपास्तमन्वसज्जन्त नन्दाद्याः शकटैस्ततः । आदायोपायनं भूरि कुम्भान्गोरससम्भृतान् ॥ ३३ ॥ गोप्यश्च दयितं कृष्णमनुव्रज्यानुरंजिताः । प्रत्यादेशं भगवतः कांक्षन्त्यश्चावतस्थिरे ॥ ३४ ॥ तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः । सान्त्वयामास सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः ॥ ३५ ॥ यावदालक्ष्यते केतुर्यावद्रेणू रथस्य च ॥ अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिताः ॥ ३६ ॥ ता निराशा निववृतुर्गोविन्दविनिवर्तने । विशोका अहनी निन्युर्गायन्त्यः प्रियचेष्टितम् ॥ ३७ ॥ भगवानपि संप्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप । रथेन वायुवेगेन कालिन्दीमघनाशिनीम् ॥ ३८ ॥ तत्रोपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभम् । वृक्षखण्डमुपव्रज्य सरामो रथमाविशत् ॥ ३९ ॥ अक्रूरस्तावुपामन्त्र्य निवेश्य च रथोपरि । कालिन्द्या ह्रदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥ ४० ॥ नि

करें, कुलके बूढे और बांधवगण हमारा क्या करेंगे ? श्रीकृष्णजीका साथ हम एक मुहूर्त्तको भी नहीं छोड़ सकतीं , दुर्दैव वश उनसे बिछुड जांयगी , इससे हमारा चित्त अत्यन्त दीन होरहाहै ॥२८॥ हे गोपियों ! रासलभा में जिनके प्रीतियुक्त वार्तालाप, सुन्दर कटाक्ष विक्षेप, क्रीडा और आलिंगन द्वारा हम सबरात्रिको क्षणभर में व्यतीत करदेती थीं उनको छोडकर हम कैसे दुरन्त विरहके दुःख से पारहोंगी ॥ २९ ॥ जो दिनके अंतमें खुरोंसे उड़ीहुई धूलिसे धूसरित अलकें, और मालाधारणकिये गोपोंके साथ बंसी बजाते २ हास्ययुक्त कटाक्ष विक्षेप से व्रजमें प्रवेशकर हमारे चित्तका हरण करते हैं उनके बिना हम कैसे जीवित रहसकती हैं ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! श्रीकृष्ण में आसक्त चित्तवाली गोपियें विरह से अत्यन्त कातरहो यह बातें कहते २ लज्जा छोडकर "गोविंद" ! "माधव" कह ऊंचे स्वरसे रोनेलगीं॥ ३१ ॥ इसओर सूर्य भगवान् उदय होआये । स्त्रियों के इसप्रकार रोतेहुएभी अक्रूरने उनका कुछ ध्यान न कर सन्ध्यावन्दनादि कार्य समाप्तकर रथको चलाया ॥ ३२ ॥ नन्दादि गोपगण गोरसके असंख्य कलस भेटको ले गाड़ी में चढ उनके पीछे २ चले ॥ ३३ ॥ गोपियां अपने प्यारे श्रीकृष्णजीके पीछे२ चलीं और उनकी ओर प्रेमभरी दृष्टिसे देखती हुई जिधरको वह जारहेथे उधरको मुँहकर के खड़ी होगईं ॥ ३४ ॥ गोपिकाओंको इसप्रकार से दुःखित देखकर श्रीकृष्णजीने शीघ्र " आऊंगा" इन प्रेमयुक्त वाक्योंद्वारा उनको संतोष दिया ॥ ३५ ॥ उनका चित्त श्रीकृष्ण जीके पीछे २ दौडरहाथा , तौभी जबतक रथकी ध्वजा और धूलि दिखाईदी तबतक लिखेहुए चित्रकी समान वहींपर खड़ी रहीं । अन्तमें गोविंदके लौटनेसे निराशहो वह अपने २ घर लौटआईं और प्रियके चरित्रोंका गान करतेहुये शोकको शांतिकर दिन बितानेलगीं ॥ ३६ । ३७ ॥ हे राजन् ! भगवान श्री बलराम और अक्रूरके संग पवनवेगगामी रथपर आरूढहो पापनाशिनी यमुना के तटपरआये ॥ ३८ ॥ वहां स्नानकर स्वच्छ मणिकी समान निर्मल जलका पानकिया, तदनन्तर वृक्षोंके बीचमेंसे होतेहुए बलराम जीके साथ रथपर आ बैठे ॥ ३९ ॥ अक्रूरजी उन दोनोंको रथपर बैठाय

मज्य तस्मिन्सलिले जपन्ब्रह्मसनातनम् । तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौसमन्वितौ
॥ ४१ ॥ तौरथस्थौकथमिह सुतावानकदुन्दुभेः । तर्हिस्वित्स्यन्दनेन स्त इत्युन्म
ज्ज्यव्यचष्टसः ॥४२॥ तत्रापिच यथापूर्वमासीनौ पुनरेवसः । न्यमज्जद्दर्शनंयन्मे मृ
षाकिंसलिलेतयोः ॥ ४३ ॥ भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत्स्तूयमानमहीश्वरम् । सिद्ध-
चारणगन्धर्वैरसुरैर्नतकन्धरैः ॥ ४४ ॥ सहस्रशिरसंदेवं सहस्रफणमौलिनम् ॥ नी-
लाम्बरंविसश्वेतं शृंगैः श्वेतमिवस्थितम् ॥ ४५ ॥ तस्योत्संगेघनश्यामं पीतकौशे-
यवाससम् । पुरुषंचतुर्भुजंशान्त पद्मपत्रारुणेक्षणम् ॥ ४६ ॥ प्रसन्नचारुवदनं चा
रुहासनिरीक्षणम् । सुभ्रून्नसंचारुकर्णं सुकपोलारुणाधरम् ॥ ४७ ॥ प्रलम्बपीवरभु
जंतुंगांसोरः स्थलश्रियम् । कम्बुकण्ठंनिम्ननाभिं वलिमत्पल्लवोदरम् ॥ ४८ ॥ बृ-
हत्कटितटश्रोणिकरभोरुद्वयान्वितम् । चारुजानुयुगंचारु जंघायुगलसंयुतम् ।४९।
तुंगगुल्फारुणनखव्रातदीधितिभिर्वृतम् । नवांगुल्यंगुष्ठदलैर्विलसत्पादपंकजम्।५०।
सुमहार्हमणिव्रातकिरीटकटकांगदैः । कटिसूत्रब्रह्मसूत्रहारनूपुरकुण्डलैः ॥ ५१ ॥
भ्राजमानंपद्मकर शंखचक्रगदाधरम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभंवनमालिन-
म् ॥ ५२ ॥ सुनन्दनन्दप्रमुखैः पार्षदैः सनकादिभिः । सुरेशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्च द्वि
जोत्तमैः ॥ ५३ ॥ प्रह्लादनारदवसुप्रमुखैर्भागवतोत्तमैः । स्तूयमानं पृथग्भावैर्व-
चोभिरमलात्मभिः ॥ ५४ ॥ श्रियापुष्ट्यागिराकान्त्या कीर्त्यातुष्ट्येलयोर्जया । वि-

उनकी आज्ञा से कुण्ड में नहाने गये और वहां जलमें डुबकी लगाय सनातन ब्रह्मका जपकरते २ देखा कि राम कृष्ण वहां एकहीसाथ विराजमान हैं ॥ ४० । ४१ ॥ "वसुदेवके दोनों पुत्र रथपर बैठे हैं, वह इस स्थान पर कहांसे आये ? क्या वह रथपर नहीं हैं ?" —यह कह कर वह विस्मित होगये और उठकर देखा कि पहिले की समान वह उसी स्थान पर बैठे हैं ॥ ४२ ॥ मेरा उनको जलके भीतर देखना क्या मिथ्या है ? यह विचारकर अक्रूर ने फिर जलमें डुबकी लगाई ॥ ४३ ॥ और फिर देखा–कि उसी स्थान में शेषजी विराजमान हैं। सिद्ध, उरग, और असुरगण मस्तक नीचेकिये उनकी स्तुतिकररहे हैं ॥४४॥ अनंत देवके सहस्र मस्तक, सहस्र फणोंमें सहस्र किरीट शोभापारहे हैं। वह नीलांबर धारण किये हैं, कमल नालकी समान उनका श्वेतवर्ण है; अतएव शिखर समूह द्वारा विराजमान कैलासपर्वत की समान शोभायमान थे ॥ ४५ ॥ उनकी गोदमें घनश्याम, पीतवस्त्र धारी पुरुष चतुर्भुज रूप धारण किये और शांत स्वभाव से विराजमान है। उनके नेत्र कमल पत्रकी समान रक्तवर्ण के मुख सुंदर और प्रसन्न। दृष्टि मनोहर हास्ययुक्त; भौंहसुंदर, नासिका ऊंची, कर्णमनोहर, सुंदर कपोल, रक्तवर्ण के अधर भुजा मांसयुक्त और विशाल, दोनो कंधेऊंचे हैं और वक्षःस्थल में लक्ष्मीजी विराजमान होरही हैं। उनका कण्ठशंखकी सामान, गंभीरनाभि, पीपलके पत्तेकी समान उदर(पेट)कमर और श्रोणि विशाल, दोनो उरू दोनोंजानु, और दोनोजंघा अत्यंत मनोहर हैं, उनके चरण कमल कुछ एक ऊंचे, ऊंचे गुल्फ, लाल नखों के समूह की कांति से वेष्टित, व कोमल अंगुली व अंगूठे रूप पखुरियों से शो-भायमान चरण कमल शोभित होरहे हैं। वह महामूल्य के मणियों से खचित किरीट कटक, अंगद, कटिसूत्र, यज्ञोपवीत, हारनूपुर, और कुंडल धारण कियहुए शोभा पारहे हैं ॥ ४६–५१ ॥ उनके हाथमें कमल, शंख, चक्र, गदा, वक्षःस्थल में श्रीवत्स, और प्रकाशित कौस्तुभ और गलेमें वनमाला शोभायमान है ॥५२॥ निर्मल चित्त सुनंद, नंद और सनकआदि पार्षद, ब्रह्मा, रुद्रआदि सुरेश्वर, मरीच्यादि ब्राह्मणगण, और प्रह्लाद, नारद और वसुआदि भागवत प्रधान भिन्न २ वाक्यों द्वारा उनकी स्तुतिकररहे हैं ॥ ५३–५४ ॥ और श्री, पुष्टि, वाणी, कांति, कीर्ति, तुष्टि, इला, ऊर्जा, विद्या,

यथाविद्ययाऽशक्त्या मायया च निषेवितम् ॥ ५५ ॥ विलोक्य सुभृशंप्रीतो भक्त्या परमयायुतः । हृष्यत्तनूरुहो भावपरिक्लिन्नात्मलोचनः ॥ ५६ ॥ गिरागद्गदयाऽस्तौषीत् सत्त्वमालम्ब्य सात्वतः । प्रणम्य मूर्ध्नावहितः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥ ५७ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

अक्रूर उवाच । नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् । यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद्ब्रह्माऽविरासीद्यत एष लोकः ॥ १ ॥ भूस्तोयमग्निः पवनः खमादिर्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि । सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे ये हेतवस्ते जगतोऽङ्गभूताः ॥२॥ नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीताः । अजोऽनुबद्धः स गुणैरजाया गुणात्परं वेद न ते स्वरूपम् ॥ ३ ॥ त्वां योगिनो यजन्त्यद्धा महापुरुषमीश्वरम् । साध्यात्मं साधिभूतं च साधिदैवं च साधवः ॥ ४ ॥ त्रय्या च विद्यया केचित् त्वां वै वैतानिका द्विजाः । यजन्ते विततैर्यज्ञैर्नानारूपामराख्यया ॥ ५ ॥ एके त्वाऽखिलकर्माणि संन्यस्योपशमं गताः । ज्ञानिनो ज्ञानयज्ञेन यजन्ति ज्ञानविग्रहम् ॥ ६ ॥ अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाऽभिहितेन ते । यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम् ॥ ७॥ त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम् । बह्वाचार्यविभेदेन भगवन्समुपासते ॥ ८ ॥ सर्व एव यजन्ति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम् । येऽप्यन्यदेवताभक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो ॥ ९ ॥ यथाऽद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो । विश-

और अविद्या शक्ति और माया उनकी सेवा कररही हैं ॥५५॥ हेभरत नदन ! अक्रूर बहुत देरतक इस अपूर्व दृश्यको देखते रहे; उनको अत्यंत स्नेह होआया, शरीर पुलकायमान होगया और चित्त तथा नेत्र द्रवीभूत हुए ॥ ५६ ॥ उन्हों ने सत्व गुणका अवलम्बनकर ध्यान पूर्वक प्रणाम सहित हाथजोड़ गद्गद वाक्य से स्तुति करना आरंभ किया ॥ ५७ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांएकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

अक्रूरजी बोले कि—हे श्रीकृष्णजी ! मैं आपको प्रणामकरताहूं आप बालक नहीं हो, आदि पुरुषहो;आप सब कारणों के कारण, अव्यय, नारायणहो, आपकी नाभि से जो कमल उत्पन्न हुआथा; उसी से ब्रह्माजी ने उत्पन्नहोकर समस्तसृष्टि की रचनाकीथी; —ऐसे आप को प्रणाम है ॥ १ ॥ पृथ्वी, जल, वायु, और आकाश, और अग्नि; अहंकार तत्व, महत्तत्व, प्रकृति और पुरुष, मन, इंद्रियां के विषयसमूह तथा सम्पूर्ण देवता यहसब जगत के कारण आपके अंग से उत्पन्नहुए हैं ॥ २ ॥ प्रकृति आदि यहसब प्रत्यक्षादि द्वारा दृष्ट होते रहते हैं; अतएव यहजड़ हैं और इसही कारण यह आप के स्वरूप को नहीं जानसकते।ब्रह्माभी प्रकृति के गुणों से आच्छन्न हैं अतएव वह भी गुणों के परवर्त्ती आप के स्वरूपको नहीं जानसकते ॥ ३ ॥ योगी साधुगण-अध्यात्म, आधिभूत, और आधिदैव के साक्षी; आपकी आराधना महापुरुष और नियंतारूप से किया करते हैं; कुछेक वेदविद्याद्वारा आपकी उपासना करते हैं ॥ ४ ॥ कर्मी योगिगण नानारूप और नानानाम से नाना विस्तृत यज्ञों द्वारा आप का भजन करते रहते हैं ॥ ५ ॥जो ज्ञानीपुरुष सबकर्मों को छोड़कर शांत होरहे हैं वह ज्ञान यज्ञद्वारा ज्ञानरूपी आपकी पूजाकरते हैं ॥ ६॥और दूसरे जिन मनुष्यों के चित्त वैष्णव, शैव आदिदीक्षासे दीक्षित हैं वह आपकी कहीहुई पंचरात्रादि के विधानों द्वारा बहुत रूप और एक रूप से आपकीही सेवा करते रहते हैं ॥ ७ ॥ और कितनेही शिवोक्त विधान से अनेकों आचार्य भेद से शिवरूपी भगवान आपकीही आराधना करते रहते हैं ॥ ८ ॥ हे सर्वदेवमय ! हे प्रभो ! जो नाना देवताओं के भक्त हैं उनकी बुद्धि यद्यपि दूसरे में आसक्त है तौभी सबही आप ईश्वरकी पूजाकरते हैं ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! जैसे पर्वत से

न्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोऽन्ततः ॥ १० ॥ सत्त्वं रजस्तम इति भवतः प्रकृतेर्गुणाः तेषु हि प्राकृताः प्रोता आब्रह्मस्थावरादयः ॥ ११ ॥ तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविषक्तदृष्टये सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे । गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु ॥ १२ ॥ अग्निर्मुखं तेऽवनिरंघ्रिरीक्षणं सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः । द्यौः कं सुरेन्द्रास्तव बाहवोऽर्णवाः कुक्षिर्मरुत्प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥ १३ ॥ रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः । निमेषणं रात्र्यहनी प्रजापतिर्मेढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ॥ १४ ॥ त्वय्यव्ययात्मन्पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहुजीवसंकुलाः । यथा जले संजिहते जलौकसोऽप्युदुम्बरे वा मशका मनोमये ॥ १५ ॥ यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि । तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः ॥ १६ ॥ नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च । हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे ॥ १७ ॥ अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे । क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्तये ॥ १८ ॥ नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह । वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च ॥ १९ ॥ नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे । नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च ॥ २० ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च । प्रद्युम्नायाऽनिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥ २१ ॥ नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने । म्लेच्छप्रायक्षत्रहन्त्रे नमस्ते क

निकली हुई सब नदियें वर्षा के जल से पूर्ण हो सब ओर से बहकर समुद्र ही में जा गिरती हैं; तैसेही समस्त गति भी अन्त में आपही में जा मिलती हैं ॥ १० ॥ क्योंकि प्रकृति आपकी है, सत्व, रज, और तम प्रकृति के गुण हैं और ब्रह्मासे लेकर अचरतक प्रकृति के कार्य इन्हीं गुणों के अंतर्गत हैं ॥ ११ ॥ आपको प्रणाम है, आप सर्वात्मा और साक्षीहो, अतएव आपकी बुद्धि किसी में लिप्त नहीं है और आप सब बुद्धिके साक्षीहो । हे प्रभो ! देव, मनुष्य, पक्षी जिनके आत्मा हैं और जो देवादि, शरीराभिमानी हैं उन सबही के मध्यमें आपका यह अविद्या कृतगुण प्रवाह प्रवृत्त रहता है, अतएव उनमें और आपमें बहुतभेद है ॥ १२ ॥ हे भगवन् ! अग्नि आपका मुख, पृथ्वी आपका चरण, सूर्य आपके नेत्र, आकाश आपकी नाभि, दिशायें आपके कान, स्वर्ग आपका मस्तक, देवतागण भुजा, सब समुद्र आपकी कुक्षि, वायु आपका प्राण, और बल, वृक्ष तथा औषधियें आपके केश, पर्वत समूह आपके नख और अस्थि, रात्रि और दिन आपके निमेष, प्रजापति लिंग और वृष्टि आपका वीर्य है ॥ १३–१४ ॥ जलमें जलचर और गूलर के फलमें भुनगों की समान बहुत से जीव लोकपालों सहित लोकों में अव्ययात्मा मनोमय पुरुष आपसे विरचितहो विचरा करते हैं ॥ १५ ॥ इस प्रकार से न जानने योग्य आपके स्वरूपको साधुगण अवतार कथामृत से सेवन करते रहते हैं । आप क्रीडा के निमित्त इस पृथ्वीपर जो २ रूप धारण करतेहो मनुष्य उन्हीं के द्वारा सबशोकों कोछोड़ आनंद से आपके यशका गानकरते रहते हैं ।' १६ ॥ आपआदि मत्स्यहो प्रलय सागर के जलमें विचरे थे, आपको नमस्कार है। आपने हयग्रीव होकर मधुकैटभको मारा था, आपको प्रणाम है ॥ १७ ॥ आपने बृहत् कर्म होकर मंदर पर्वतको धारण किया था, आपने बराह मूर्तिहो पृथ्वी का उद्धारकर विहार कियाथा. आपको नमस्कार है ॥ १८ ॥ हे साधुजन के भय दूरकरने वाले! आपने अद्भुत नृसिंह रूप धारणकर हिरण्य कशिपुको माराथा, आपने वामन होकर त्रिभुवनको नाप लियाथा आपको नमस्कार है ॥ १९ ॥ आपने भृगुकुलके अधिपति परशुरामहो अहंकारी क्षत्रियोंका नाश कियाथा, आपने रघुकुल के धुरंधरहो रावणका वधकिया था आपको नमस्कार है ॥ २० ॥ आप संकर्षणहो आपही प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सात्वतगणों के अधिपतिहो आपको नमस्कार है ॥ २१ ॥ आपदैत्य, दानवों के मोहन कारीशुद्ध बुद्धहो—आपको

किकरूपिणे ॥ २२॥ भगवञ्जीवलोकोऽयंमोहितस्तवमायया । अहंममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यतेकर्मवर्त्मसु ॥ २३ ॥ अहंचात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु । भ्रमामिस्वप्नकल्पेषुमूढ सत्यधियाविभो ॥ २४ ॥ अनित्यानात्मदुःखेषुविपर्ययमतिर्ह्यहम् । द्वन्द्वारामस्तमोविष्टोनजानेत्वात्मनः प्रियम् ॥ २५ ॥ यथाऽबुधोजलंहित्वाप्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः । अभ्येतिमृगतृष्णांवैतद्वत्त्वाऽहंपराङ्मुखः ॥ २६ ॥ नोत्सहेऽहंकृपणधीः कामकर्महतंमनः । रोद्धुंप्रमाथिभिश्चाक्षैर्ह्रियमाणमितस्ततः ॥ २७ ॥ सोऽहंतवांघ्र्युपगतोऽस्म्यसतांदुरापंतच्चाप्यहंभवदनुग्रहईशमन्ये । पुंसोभवेद्यर्हिसंसरणापवर्गस्त्वय्यब्जनाभसदुपासनयामतिः स्यात् ॥ २८ ॥ नमोविज्ञानमात्रायसर्वप्रत्ययहेतवे । पुरुषेशप्रधानायब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥२९॥ नमस्तेवासुदेवायसर्वभूतक्षयाय च । हृषीकेशनमस्तुभ्यंप्रपन्नंपाहिमांप्रभो ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४०॥

श्रीशुकउवाच । स्तुवतस्तस्य भगवान्दर्शयित्वा जलेवपुः । भूयःसमाहरत्कृष्णो नटानाट्यमिवात्मनः ॥ १ ॥ सोऽपिचान्तर्हितं वीक्ष्यजलादुन्मज्ज्य सत्वरः ॥ कृत्वाचावश्यकंसर्वं विस्मितोरथमागमत् ॥ २ ॥ तमपृच्छद्धृषीकेशः किंतेदृष्टमिवाद्भुतम् । भूमौवियतितोयेवा तथात्वांलक्षयामहे ॥ ३ ॥ अक्रूरउवाच । अद्भुता

नमस्कार है आपकल्की होकर म्लेच्छ राजाओंका नाशकरते रहतेहो, आपको नमस्कार है ॥२२॥ हे भगवन् ! यह समस्त लोक आपकी माया से मोहित है इसही कारण 'मैं, और 'मेरा, ऐसा मिथ्या अभिमानकर कर्म मार्गमें भ्रमण कररहे हैं ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! मैं मूढभी स्वप्नकी समान देह, पुत्र, घर स्त्री, अर्थ और स्वजन आदिको सत्य जानकर भ्रमित होरहाहूं ॥ २४ ॥ अज्ञानसे आच्छन्न हुआ मैं अनित्य, अनात्म, दुःखों में चित्तलगाय द्वन्द्व क्रीडा करता रहताहू आत्मा और प्रिय आपको नहीं जानसकता ॥ २५ ॥ जैसे मूर्ख मनुष्य जलसे उत्पन्न हुए तृणादिकों से ढके जलको छोडकर मृगतृष्णा की ओर दौडता है तैसेही मैं आपको छोडकर देहादि की ओर चित्त लगारहा हू ॥ २६ ॥ मेरीबुद्धि विषय वासनाओं से भ्रमित होगईहै मै काम और कर्मों से क्षुभित और मतवालाहो इन्द्रियगणों से इधर उधर चलायमान मनको सावधान नहीं करसकता ॥ २७॥ ऐसे परवश हुआ मैं आपके चरणों की शरण में आया हू । हे अंतर्यामिन् ! दुष्ट मनुष्य आपके चरणों की शरण नहीं पाता, अतएव मैं जानता हूं कि मेरे ऊपर आपका अनुग्रह है । हे पद्मनाभ ! जब मनुष्य के संसार की समाप्तिहो आती है तभी साधुओंकी सेवाद्वारा आपमें उसकी बुद्धिहोती है, किंतु आपकी कृपानहोने से साधुसेवा आपमें उसकी बुद्धिकभी नहीं होती, फिरतो मुक्तिका होना भी असंभव है ॥ २८ ॥ हे प्रभो ! आप विज्ञान मात्र और समस्त ज्ञानों के कारणहो । आप परिपूर्णहो और आपकी शक्ति अनंत है अतएव आप सबके नियंताहो, आपको नमस्कार है ॥२९॥ आप हृषीकेश, बुद्धि और मनके अधिष्ठाता प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धहो, मैने आपके चरणों की शरणली है, हे प्रभो ! आप मेरीरक्षाकरो ॥ ३० ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि-हेराजन् ! अक्रूर स्तुति कररहेथे श्रीकृष्णजी नें नटके नाट्य की समान जलमें अपने शरीरको दिखाय फिर अन्तर्धान करलिया ॥ ११ ॥ वह भी उन्हें न देख जल से उठे और शीघ्र आवश्यक कार्योंको समाप्तकर विस्मितहो रथमें लौटआये ॥ २ ॥ श्रीकृष्णजीने उनसे पूछा कि—हेअक्रूर ! तुम्हें देखकर जान पडताहै कि तुमने यहां जलमें अथवा आकाश में

गीदवाबन्ति भूमौवियतिवाजले । त्वयिविश्वात्मकेतानि किंमेऽदृष्टं विपश्यतः ।४।
यत्राद्भुतानिसर्वाणि भूमौवियतिवाजले । तंत्वाऽनुपश्यतो ब्रह्मन्किमे दृष्टमिहाद्भुत
म् ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वाचोदयामास स्यंदनंगान्दिनीसुतः । मथुरामनयद्रामं कृष्णं चैव-
दिनात्यये ॥ ६ ॥ मार्गेग्रामजना राजंस्तत्र तत्रोपसंगताः । वसुदेवसुतौवीक्ष्य प्री-
ता दृष्टिंनचाऽऽददुः ॥ ७ ॥ तावद्व्रजौकसस्तत्र नन्दगोपादयोऽग्रतः । पुरोपवन-
मासाद्य प्रतीक्षन्तोऽवतस्थिरे ॥ ८ ॥ तान्समेत्याह भगवानक्रूरं जगदीश्वरः । गृ-
हीत्वापाणिनापाणिंप्रश्रितंप्रहसन्निव ॥ ९ ॥ भवान्प्रविशतामग्रेसहयानः पुरींगृह
म् । वयंत्विहावमुच्याथततोद्रक्ष्यामहेपुरीम् ॥ १० ॥ अक्रूरउवाच ॥ नाहंभवद्भ्यांरहितः
प्रवेक्ष्येमथुरांप्रभो । त्यक्तुंनार्हसिमांनाथभक्तंतेभक्तवत्सल ॥ ११ ॥ आगच्छयाम
गेहान्नः सनाथान्कुर्वधोक्षज । सहाग्रजः सगोपालैःसुहृद्भिश्च सुहृत्तम ॥ १२ ॥
पुनीहिपादरजसागृहान्नोगृहमेधिनाम् । यच्छौचेनानुतृप्यन्तिपितरः साग्नयःसुराः
॥ १३ ॥ अवनिज्यांघ्रियुगलमासीच्छ्लोक्योबलिर्महान् । ऐश्वर्यमतुलंलेभेगतिंचै
कान्तिनांतुया ॥ १४ ॥ आपस्तेंघ्र्यवनेजन्यस्त्रींल्लोकाञ्छुचयोऽपुनन् । शिरसाऽध
त्ताः शर्वः स्वर्याताः सगरात्मजाः ॥ १५ ॥ देवदेवजगन्नाथपुण्यश्रवणकीर्तन ।
यदूत्तमोत्तमश्लोकनारायणनमोऽस्तुते ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आयास्येभवतोगे
हमहमार्यसमन्वितः । यदुचक्रद्रुहंहत्वावितरिष्येसुहृत्प्रियम् ॥ १७ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ एवमु
क्तोभगवतासोऽक्रूरो विमनाइव । पुरींप्रविष्टः कंसायकर्माऽऽवेद्यगृहंययौ ॥ १८ ॥ अ

कुछ अद्भुत सा देखाहै ॥ ३ ॥ अक्रूर ने कहा कि हे भगवन् ! जल थल व आकाशमें जो कुछ अद्भुतहै सबआपहीमें विराजितहै जब आपकेदर्शन भलीप्रकारसे करचुका तब किस अद्भुतके दर्शन न किये? हेपरमेश्वर ! आपहीमें सब अद्भुत प्रकाशित होतेहैं ॥४॥ हेभगवन् ! जब मैं आपहीका दर्शन करताहूं तब पृथ्वी आकाश व जलमें आप बिना दूसरा क्या अद्भुत देखाहोगा ॥ ५ ॥ हेमहाराज ! अक्रूर ने यह बात कहकर रथ चलाया और राम व कृष्णजी को लेकर सन्ध्याकाल में मथुरा पहुंचे ॥ ६ ॥ हेराजन् मार्गसे जानके समय राम कृष्ण जिन २ गांवों में होकर गये उन २ गांवोंके मनुष्य आय २ कर उनके दर्शन कर २ आनन्दित हुये और अपनी दृष्टिको नहीं हटा-सके ॥ ७ ॥ नन्दादि व्रजवासीगण पहिलेहीसे पहुंचकर नगर के उपवनमें ठहरे और श्रीकृष्णजी के आनेकी राह देखनेलगे ॥८॥ भगवान् जगदीश्वर नन्दादि से मिल विनीत अक्रूरका हाथ अपने हाथपर रख उनसे कहनेलगे कि—९ ॥ हेतात ! तुम रथ लेकर आगे २ नगरमें व घर में जाओ मैं इसस्थानमें विश्रामकर फिर पुरीको देखूंगा ॥ १० ॥ अक्रूरने कहा कि—हेप्रभो ! मैं आपको बिनालिये पुरीमें प्रवेश नहीं करसकता हे भक्तवत्सल ! मैं आपका भक्तहूं मुझे त्यागना आपको उचित नहींहै ॥ ११ ॥ हेअधोक्षज ! हेसुहृत्तम गोपालगण और बन्धुओंके साथ मेरेघर में चलकर मुझे सनाथ करो॥१२॥ मैं गृहस्थहूं आप अपने चरण रज द्वारा मेरे घरको पवित्रकरो उन चरणों के धोनेके जलसे पितृगण और अग्नि सहित देवतागण तृप्त होते हैं॥१३॥उन चरणों को धोकर महात्मा बलिने पवित्र कीर्ति अतुल ऐश्वर्य और भक्तोंकी गति प्राप्त कीथी, ॥ १४ ॥ आपके चरणोदक से त्रिलोकी पवित्र हुई है । महादेवजीने स्वयंही उस जलको शिरमें धारणकिया सगरकी संतानको उसी जलके प्रभाव से स्वर्गमें जानेकी शक्तिहुई॥ १५ हेदेवदेव ! हेजगन्नाथ ! हेपवित्रकीर्ति ! हेपुण्यश्रवण! हेपुण्यकीर्तन ! हेयदुश्रेष्ठ ! हेनारायण आपको नमस्कारहै ॥ १६ ॥ श्रीभगवानने कहा कि—अक्रूरजी ! बडे भाई बलदेवजीके संग तुम्हारेघर आऊँगा और यदुकुलके हिंसकका मार सुहृदोंका कार्य पूराकरूंगा ॥१७॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन् ! भगवान्की इस बातको सुनकर अक्रूरजी कछेक मलिनहुए और पुरीमें प्रवेशकर कंससे सबवृत्तांत कह अपने

थापराह्णेभगवान्कृष्णः सङ्कर्षणाऽन्वितः । मथुरांप्राविशद्गोपैर्दिदृक्षुः परिवारि
तः ॥ १९ ॥ ददर्शतांस्फाटिकतुङ्गगोपुरद्वारांबृहद्धेमकपाटतोरणाम् । ताम्रारको
ष्ठांपरिखादुरासदामुद्यानरम्योपवनोपशोभिताम् ॥ २० ॥ सौवर्णशृङ्गाटकहर्म्यनि
ष्कुटैः श्रेणीसभाभिर्भवनैरुपस्कृताम् । वैदूर्यवज्राऽमलनीलविद्रुमैर्मुक्ताहरिद्भिर्व
लभीषुवेदिषु ॥ २१ जुष्टेषुजालमुखरन्ध्रकुट्टिमेष्वाविष्टपारावतबर्हिनादिताम् । सं
सिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरांप्रकीर्णमाल्याङ्कुरलाजतण्डुलाम् ॥ २२ ॥ आपूर्णकुम्भै
र्दधिचन्दनोक्षितैः प्रसूनदीपावलिभिः सपल्लवैः । सवृन्दरम्भाक्रमुकैः सकेतुभिः
स्वलंकृतद्वारगृहांसपट्टिकैः ॥ २३ ॥ तांसम्प्रविष्टौवसुदेवनन्दनौवृतौवयस्यैर्नरदेव
वर्त्मना । द्रष्टुंसमीयुस्त्वरिताः पुरस्त्रियोहर्म्याणिचैवारुरुहुर्नृपोत्सुकाः ॥ २४ ॥ का
श्चिद्विपर्यग्धृतवस्त्रभूषणाविस्मृत्यचैकंयुगलेष्वथापराः । कृतैकपत्त्रश्रवणैकनूपुरा
नाङ्क्त्वाद्वितीयंत्वपराश्चलोचनम् ॥ २५ ॥ अश्नन्त्यएकास्तदपास्यभोजनमभ्यज्य
मानाअकृतोपमज्जनाः । स्वपन्त्यउत्थायनिशम्यनिःस्वनं प्रपाययन्त्योऽर्भमपोह्य
मातरः ॥ २६ ॥ मनांसितासामरविन्दलोचनः प्रगल्भलीलाहसितावलोकनैः । ज
हारमत्तद्विरदेन्द्रविक्रमोदृशांददच्छ्रीरमणात्मनोत्सवम् ॥ २७ ॥ दृष्ट्वा मुहुःश्रुत
मनुद्रुतचेतसस्तं तत्प्रेक्षणोत्स्मितसुधोक्षणलब्धमानाः । आनन्दमूर्तिमुपगुह्य दृशा-

---

घरगये ॥ १८ ॥ तदनतर भगवान ने मथुरा के देखने की इच्छा से गोपोंके साथ बलदेवजी कोले सायंकालको मथुरा में गये ॥ १९ ॥ वहां देखाकि—स्फटिक मणिके गोपुर और द्वार हैं, उसमें बडा २ तोरणें शोभा पारही हैं और सोने के कपाट लगरहे हैं । सब कोठेतांबे और पीतल के बने हुए हैं। वह पुरी चारों ओर से विशाल खाई द्वारा घिरीहुई है, इस कारण उस पुरीपर आक्रमण करना दुःसाध्य है । बाग, बगीचे, सुंदर उपवन उसकी शोभा बढारहे हैं ॥ २० ॥ सुंदर सुवर्ण के चौराहे, धनिकों के भवन, गृहके योग्य गृहमें उपवन, एकही प्रकार के व्योपारियों की मडली और आन्यन्य दूसरे गृहोंने उसको अलंकृत कररक्खा है । वैदूर्यमणि, हीरा, स्फटिकमणि, नील मणि, मूगा, मोती और हरित मणियों से जडेहुए झरोखों के छिद्र, छज्जे, वेदी शोभायमान होरहे हैं, सुवर्णमय वेदियों में मोर और कबूतर शब्द कररहे हैं । राजमार्ग, गली, बाजार और आंगन सबही में जल छिड़का हुआ है उन में फूल, अंकुर, लावा और चावल बिखरेहुए हैं ॥२१।२२॥ वहां के समस्तघर-—दही और चन्दन से सिंचे, कुसुम और दीपकों की माला से सजे हैं, पत्र युक्त कदली के खम्भ और फलों के गुच्छों समेत सुपारी के वृक्ष तथा पट्टियें उनकी शोभा बढा रहे हैं ॥ २३ ॥ हेराजन् ! राम और कृष्ण वयस्यगण से घिर राजमार्ग से होतेहुए पुरी में पहुने पुरनारियें उनके देखने को शीघ्रतापूर्वक घरोंकी छतपरचढगई ॥ २४ ॥ शीघ्रताके कारण किसी किसी ने उलटे वस्त्र आभूषण पहिन लिये, किसी २ ने एक कंकण के स्थानपर दो कंकणपहिन लिये, किसी २ ने कानपर एक २ पत्रलगाया, किसी २ ने एकही नूपुरपाहिना, और कोई २ तो एकही आंखमें अंजनलगाकर दौडीं॥२५॥कोईतो भोजनकररहीथीं वे भोजन छोड़, कोई तेलमर्दन करवातीथीं वे बिना स्नानकिये श्रीकृष्णजीके देखनेको दौडीं,कोई२ सोरहीथीं वहशब्द सुनतेही उठीं औरमाता सन्तानोंको दूधपिलातेहुएभी उन्हेंछोड़कर चलीगई॥२६॥ हेराजन् ! मतवाले गजराज की समान, पराक्रमी, कमलाक्ष हरि ने सुन्दर लीला सहित कटाक्ष विक्षेप और लक्ष्मी को आनन्द देनेवाले अपने शरीरद्वारा नेत्रों को आनन्द उत्पन्नकर उनका मन हर लिया ॥ २७ ॥ हे शत्रुदमन ! बारम्बार कृष्णजी के चरित्रों को सुनकर उन स्त्रियों के चित्त उन्हींकीओर दौडे थे, इस समय उनके दर्शन कर उनके हास्ययुक्त कटाक्षरूप अमृत से मान प्राप्त किया औरनत्रों

स्मलब्धं हृदयस्थंचो अङ्करनन्तमरिन्दमाधिम् ॥ २८ ॥ प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्यु-
त्फुल्लमुखाम्बुजाः । अभ्यवर्षन्सौमनस्यैःप्रमदाबलकेशवौ ॥ २९ ॥ दध्यक्षतैःसो
दपात्रैः स्रग्गन्धैरभ्युपायनैः । तावानर्चुःप्रमुदितास्तत्र तत्रद्विजातयः ॥ ३० ॥ ऊचुः
पौराअहोगोप्यस्तपः किमचरन्महत् । याह्येतावनुपश्यन्ति नरलोकमहोत्सवौ ।३१
रजकंकंचिदायान्तं रंगकारंगदाग्रजः । दृष्ट्वाऽयाचतवासांसि धौतान्यत्युत्तमानि
च ॥ ३२ ॥ देह्यावयोःसमुचितान्यंग वासांसिचार्हतोः । भविष्यतिपरंश्रेयो दातु-
स्तेनात्रसंशयः ॥ ३३ ॥ सयाचितोभगवता परिपूर्णेनसर्वतः । साक्षेपंरुषितः प्राह
भृत्योराज्ञःसुदुर्मदः ॥ ३४ ॥ ईदृशान्येववासांसि नित्यंगिरिवनेचराः । परिधत्तकि-
मुद्वृत्ता राजद्रव्याण्यभीप्सथ ॥ ३५ ॥ याताशुबालिशामैवं प्रार्थ्यंयदिजिजीविषा।
बध्नन्तिघ्नन्तिलुम्पन्ति दृप्तंराजकुलानिवै ॥ ३६ ॥ एवंविकत्थमानस्य कुपितो देवकी
सुतः । रजकस्यकराग्रेण शिरःकायादपातयत् ॥ ३७ ॥ तस्यानुजीविनःसर्वे वासः
कोशान्विसृज्यवै । दुद्रुवुःसर्वतोमार्गं वासांसिजगृहेऽच्युतः ॥ ३८ ॥ वसित्वात्म-
प्रिये वस्त्रेकृष्णः संकर्षणस्तथा। शेषाण्यादत्तगोपेभ्यो विसृज्यभुविकानिचित् ।३९
ततस्तुवायकःप्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत्।विचित्रवर्णैश्चैलेयैराकल्पैरनुरूपतः ४०॥ना
नालक्षणवेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः । स्वलंकृतौबालगजौ पर्वणीवसितेतरौ ।४१।
तस्यप्रसन्नो भगवान्प्रादात्सारूप्यमात्मनः । श्रियंचपरमांलोके बलैश्वर्यस्मृतीन्द्रि

के मार्गद्वारा उनको हृदय में स्थापित करके आलिंगनकर पुलकायमान होगईं ॥ २८ ॥ प्रीति के वश से स्त्रियों के कमल मुख प्रफुल्लित होउठे वह महलों की चोटियों पर चढ़ राम और कृष्ण जी के ऊपर फूल बरसाने लगीं ॥ २९ ॥ ब्राह्मणों ने भी आनन्दित होकर स्थान प्रतिस्थान में जलयुक्त अक्षत, फूल, गंध, और भेट आदि से उनकी पूजाकी ॥ ३० ॥ नगर नारियें परस्पर कहनेलगीं कि—अहो! गोपियों ने क्याबड़ी तपस्याकीथी कि—जिसके कारण इन परमआनन्द देनेवाले दोनों भ्राताओं का दर्शन प्रत्येक समय करती हैं ॥ ३१ ॥ हेराजन्! उसी मार्ग से एक रंगकार धोबी आरहाथा, श्रीकृष्णजी ने उसे आता देख धुलेहुए उत्तम २ वस्त्र मांगे ॥ ३२ ॥ श्रीकृष्णजी ने कहा कि अहो रजक! हमको उत्तम २ वस्त्रदो वस्त्र देने से निश्चयही तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ३३ ॥ वह रजक राजाकंस का सेवक होने के कारण अत्यन्त अभिमानी था। पूर्णब्रह्म के वस्त्र मांगने को सुना अनसुना कर निजघमण्ड से अत्यन्त कुपितहो, तिरस्कार करके कहनेलगा कि— ॥ ३४ ॥ रेउद्धत्त तू पहाड़, जंगलों में घूमतारहता है, क्या नित्य ऐसेही वस्त्र पहिनता है जो राजा के वस्त्रों की प्रार्थना करता है ॥ ३५ ॥ शीघ्र दूरहो! रेमूर्ख! यदि तुझे अपने जीने की इच्छा है तो ऐसी प्रार्थना न करना। राजा के सेवक अभिमानी मनुष्यों को बांध देते, नाशकरदेते और उनकी सम्पत्ति छीन लेते हैं ॥ ३६ ॥ हेराजन्! उस धोबी ने इस प्रकार से तिरस्कार करना आरम्भ किया तब श्रीकृष्णजी ने कुपित होकर हाथ द्वारा उस के शिर को धड़से हटादिया ॥ ३७ ॥ उस के सेवकगण सबवस्त्रों के गट्ठों को छोड़ चारों ओर को भागगये ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्णजी व बलदेवजी ने उन सबवस्त्रों को ले अपनी इच्छा नुसार उत्तम वस्त्र पहिन शेष वस्त्र गोपों को दे कुछेक पृथ्वी पर फेंकदिये ॥ ३९ ॥ तदुपरांत एक दरजी आनन्दितहोकर वहां आया और बहुत २ उत्तम वस्त्र आभूषणोंद्वारा उसने उनदोनों की वेशरचनाकी ॥ ४० ॥ राम कृष्ण नानाप्रकार के वेश धारणकर, उत्सव सिंगाराकियेहुए श्वेत वर्ण और कृष्णवर्ण के बालगजकी समान शोभा पानेलगे ॥ ४१ ॥ भगवान ने प्रसन्न होकर उस

यम् ॥ ४२ ॥ ततःसुदाम्नोभवनं मालाकारस्यजग्मतुः। तौदृष्ट्वासःसमुत्थाय ननाम शिरसाभुवि ॥ ४३ ॥ तयोरासनमानीय पाद्यंचार्घ्यार्हणादिभिः। पूजांसानुगयो-श्चक्रे स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः ॥ ४४॥ प्राहनःसार्थकंजन्म पावितंचकुलंप्रभो। पितृदेवर्षयोमह्यंतुष्टा ह्यागमनेनवाम् ॥ ४५ ॥ भवन्तौकिलविश्वस्य जगतःकारणंपरम्। अवतीर्णाविहांशेन क्षेमायचभवायच ॥४६ ॥ नहिवांविषमादृष्टिः सुहृदोर्जगदात्मनोः। समयोःसर्वभूतेषु भजन्तंभजतोरपि ॥ ४७ ॥ तावाज्ञापयतंभृत्यं किमहंकरवाणिवाम्। पुंसोत्यनुग्रहोह्येष भवद्भिर्यन्नियुज्यते ॥ ४८ ॥ इत्यभिप्रेत्यराजेन्द्र सुदामा प्रीतमानसः। शस्तैःसुगन्धैः कुसुमैर्मालां विरचितांददौ ॥४९॥ताभिःस्वलंकृतौप्रीतौ कृष्णरामौसहानुगौ। प्रणताय प्रपन्नाय ददतुर्वरदौवरान् ॥ ५० ॥ सोऽपिवव्रेऽचलांभक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्मनि। तद्भक्तेषुचसौहार्दं भूतेषुचदयांपराम्। ॥ ५१ ॥ इतितस्मैवरान्दत्त्वा श्रियंचान्वयवर्धिनीम्। बलमायुर्यशःकान्तिं निर्जगाम सहाग्रजः ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

श्रीशुक उवाच। अथव्रजन्राजपथेनमाधवः स्त्रियं गृहीतांगविलेपभाजनाम्॥ विलोक्यकुब्जांयुवतींवराननां पप्रच्छयान्तींप्रहसन्रसप्रदः ॥ १ ॥ कात्वंवरोर्वेतदुहानुलेपनं कस्यांगनेवा कथयस्वसाधुनः। देह्यावयोरंगविलेपमुत्तमं श्रेयस्ततस्ते

दरजी को मुक्तिदी और इस लोक में लक्ष्मी, बल, ऐश्वर्य, स्मृति शक्ति और इंद्रिय पटुता प्रदान की ॥ ४२ ॥ तदनन्तर दोनों भाई सुदामा नाम माली के घरगये। सुदामा उनको देखतेही उठा और पृथ्वी पर गिर प्रणामकिया ॥ ४३ ॥ आसन पर बिठलाय पाद्य, अर्घ्य, पूजोपकरण, फूल, ताम्बूल और चन्दनादि से उनकी पूजाकर कहनेलगा कि—॥ ४४ ॥ हेप्रभो! आप के आने से मेराजन्म सार्थक और कुल पवित्रहुआ तथा देवतागण व पितृगण मेरे ऊपर सन्तुष्टहुए ॥ ४५ ॥ आप निश्चयही जगतके परमकारणहो; आप कल्याण और कुशलता के निमित्तही अंशों समेत पृथ्वी पर अवतीर्ण हुएहो ॥ ४६ ॥ हे प्रभो! जो आप का भजन करते हैं; यद्यपि आपभी उस को भजतेही रहतेहो तौभी आप में विषम दृष्टिनहीं है; क्योंकि आप जगतके आत्मा और बन्धुहो; आप के सबप्राणी समान हैं ॥ ४७॥ मैं आप का दासहूं; आज्ञा करो; मैं आप का कौनसाकार्य करूं? आपकी आज्ञा का पालन करना मनुष्यों को अत्यन्तही मंगलकारक है ॥ ४८ ॥ हेराजेन्द्र सुदामा ने इस प्रकार प्रार्थना कर,उनका अभिप्रायसमझ, आनन्दितहो फूलों की मालाबनायश्री कृष्णजी को पहिनाई ॥ ४९ ॥ राम, व कृष्णजी ने अनुचरों समेत उसमाला से भली प्रकार अलंकृतहो शरणागतसुदामा को अनेक वर दिये.॥ ५० ॥ उस माली ने—अखिलात्माभगवान् से अचलभक्ति, भक्तों का सत्संग और सबप्राणियों पर दया रहने की प्रार्थना की ॥ ५१ ॥ श्री कृष्णजीने उसको वही सब वरदान दिये और उस के प्रार्थना न करने परभी कहा कि–"हेमाल्य कार! तेरे वंशमें सदैव लक्ष्मी की वृद्धि रहेगी और तेरा बल, आयु, यश और कांति बढ़ती रहेगी इस प्रकार से वरदेकर वह भाई समेत वहां से आगे चले ॥ ५२ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभाषाटीकायांएकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! तदनन्तर सुख देनेवाले श्रीकृष्णजीने राजमार्गमें जाते २ देखा कि—एक तरुण सुमुखी कुब्जा स्त्री चन्दनका पात्र हाथमें लिये उसी मार्गसे जारहीहै माधवने उसे देख हंसकर पूछा कि— १ ॥ हेवरोरु! हेअंगने! तुम कौनहो? यह चन्दन किसके

न चिराद्भविष्यति॥२॥ दास्यस्म्यहं सुन्दर कंससंमता त्रिवक्रनामा ह्य
नुलेपकर्मणि । मद्भावितं भोजपतेरतिप्रियं विना युवां कोऽन्यतमस्तदर्हति॥३॥ रूपपे
शलमाधुर्यहसितालापवीक्षितैः। धर्षितात्मा ददौ सान्द्रमुभयोरनुलेपनम्॥४॥ ततस्ता
वङ्गरागेण स्ववर्णेतरशोभिना । संप्राप्तपरभागेन शुशुभातेऽनुरञ्जितौ ५ प्रसन्नो भग
वान्कुब्जां त्रिवक्रां रुचिराननाम् । ऋज्वीं कर्तुंमनश्चक्रे दर्शयन्दर्शने फलम् ॥ ६ ॥
पद्भ्यामाक्रम्य प्रपदे द्व्यङ्गुल्युत्तानपाणिना। प्रगृह्य चिबुकेऽध्यात्म मुदनीनमदच्युतः७
सा तदर्जुसमानाङ्गी बृहच्छ्रोणिपयोधरा। मुकुन्दस्पर्शनात्सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा८
ततो रूपगुणौदार्य संपन्ना प्राह केशवम् । उत्तरीयान्तमाकृष्य स्मयन्ती जातहृच्छया
॥ ९ एहि वीर गृहं यामो न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे । त्वयोन्मथितचित्तायाः प्रसीद पुरुष
र्षभ ॥ १० ॥ एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णो रामस्य पश्यतः । मुखं वीक्ष्यानु गोपानां
प्रहसंस्तामुवाच ह ॥ ११ ॥ एष्यामि ते गृहं सुभ्रु पुंसामाधिविकर्शनम् । साधिता
र्थोऽगृहाणां नः पान्थानां त्वं परायणम् ॥ १२ ॥ विसृज्य माध्व्या वाण्या तां व्रजन्मार्गे
वणिक्पथैः । नानोपायनताम्बूलस्रग्गन्धैः साग्रजोऽर्चितः ॥ १३ ॥ तद्दर्शनस्मरक्षो
भादात्मानं नाविदन्स्त्रियः । विस्रस्तवासःकबरवलयालेख्यमूर्तयः ॥१४॥ ततः पौरा-
न्पृच्छमानो धनुषः स्थानमच्युतः । तस्मिन्प्रविष्टो ददृशे धनुरैन्द्रमिवाद्भुतम् ॥ १५ ॥
पुरुषैर्बहुभिर्गुप्तमर्चितं परमर्द्धिमत् । वार्यमाणो नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुराददे ॥ १६॥

लगाओगी? मुझसे सत्य२कहो । हमदोनों भाइयों के तुम चन्दन लगादो तो तुम्हारा बहुत कल्याण होगा॥२॥ कुब्जाने कहा कि—हेसुन्दर! मेरा नाम त्रिवक्राहै मैं राजा कंसकी दासीहूं और राजाके चन्दन लगातीहूं कार्यमें निपुण होनेसे राजा मेरा बहुत सन्मान करतेहैं और मेरे हाथका घिसा हुआ चन्दन राजा को प्याराभी लगताहै इस चन्दनको आपके अतिरिक्त और कौन पासक्ताहै ? ॥ ३ ॥ हेराजन् ! भगवान् के रूप मधुरता युक्त हास्य बातचीत और दृष्टिसे वशीभूतहो कुब्जा ने उन दोनों भ्राताओं के चन्दन लगाया ॥ ४ ॥ उस पीतादि चंदनके लगानेसे वह दोनों भाई परमशोभायमान हुये ॥ ५ ॥ भगवान् न प्रसन्न होकर दर्शनों का फल देनके निमित्त उस कुब्जा त्रिवक्रा को सीधा पांवके करने की इच्छा की ॥ ६ ॥ श्रीकृष्णजी ने अपने दोनों पैरोंसे उसके दोनों अग्रभाग को दाब हाथकी दोउंगलियां उठाकर ठोढ़ी के नीचे लगाय उसकी देहको उठा-दिया ॥ ७ ॥ भगवान का करस्पर्श होतेही कुब्जाका अंग सुन्दर और समान होगया तथा नितम्ब और स्तन बड़े होनेसे एक उत्तम स्त्री होगई ॥ ८ ॥ हेराजन् ! वह रानी—रूप गुण और उदारता युक्त होनेसे कामदेवके वशीभूत होगई और अहंकार सहित केशवके दुपट्टेका छोर खींच कर कहने लगी कि—९ ॥ हेवीर ! आओ घरचलें मैं इसस्थानसे तुमको छोड़कर नहीं जासकती हेपुरुषश्रेष्ठ ! तुमने मेरे चित्तको क्षुभित करदियाहै मेरे ऊपर कृपाकरो ॥१०॥ कुब्जाके इसप्रकार कहनेपर श्रीकृष्णजी राम और गोपोंके मुखको देख हँसते २ उससे कहने लगे कि—११ ॥ हे-सुन्दर भौंहवाली ! मैं कार्य सिद्ध होनेके उपरांत तेरघरपर तेरे मनका दुःखदूर करनेको आऊँगा हे सुन्दरि ! स्त्री रहित हम पथिकों को तो तेराही परम आश्रयहै १२ ॥ श्रीकृष्णजी मधुर वाक्यों से उसको विदाकर राजमार्ग से वणिक मार्गमें हो चलने लगे । बनियोंने अनेक भेट, ताम्बूल माला और गन्धसे बलरामजी समेत उनकी पूजाकी ॥ १३ ॥ उनको देखकर कामदेवके वेगसे स्त्रियों के वस्त्र करधनी और कंकण गिरपड़े चित्रलिखी पुतलियों की समान रहगई, ॥ १४ ॥ कुछ ज्ञान न रहा । हेराजन् ! तदनन्तर भगवान् ने नगर निवासियों से धनुर्यज्ञशाला को पूछ वहां प्रवेश किया और वहां इन्द्र धनुषकी समान अद्भुत धनुष देखा ॥ १५ ॥ वह धनुष परम समृद्धि युक्त था बहुत मनुष्य उसकी रक्षा और पूजा करतेथे श्रीकृष्णजीने रक्षकोंसे निवारित होनेपरभी हठसे

करेणवामेनसलीलमुद्धृतं सज्यंचकृत्वानिमिषेणपश्यताम् । नृणांविकृष्यप्रबभञ्ज मध्यतो यथेक्षुदण्डंमदकर्युरुक्रमः ॥ १७ ॥ धनुषोभज्यमानस्य शब्दः खंरोदसी दिशः । पूरयामासयंश्रुत्वा कंसस्त्रासमुपागमत् ॥ १८ ॥ तद्रक्षिणःसानुचराः कुपिताआततायिनः । ग्रहीतुकामाआवव्रुर्गृह्यतांवध्यतामिति ॥ १९ ॥ अथतान्दुर-भिप्रायान्विलोक्यबलकेशवौ । क्रुद्धौधन्वनआदाय शकलेतांश्चजघ्नतुः ॥ २० ॥ ब लंचकंसप्रहितंहत्वाशालामुखात्ततः निष्क्रम्यचेरतुर्हृष्टौ निरीक्ष्यपुरसम्पदः ॥२१॥ तयोस्तदद्भुतंवीर्यं निशाम्यपुरवासिनः । तेजःप्रागल्भ्यंरूपंच मेनिरेविबुधोत्तमौ ॥ २२ ॥ तयोर्विचरतोःस्वैरमादित्योऽस्तमुपेयिवान् । कृष्णरामौवृतौ गोपैः पुराच्छ कटमीयतुः ॥ २३ ॥ गोप्योमुकुन्दविगमेविरहातुराया आशासताशिषऋतामधु-पुर्यभूवन् । संपश्यतांपुरुषभूषणगात्रलक्ष्मीं हित्वेतरान्नुभजतश्चकमेऽयनंश्रीः॥२४॥ अवनिक्ताङ्घ्रियुगलौ भुक्त्वाक्षीरोपसेचनम् ऊषतुस्तांसुखंरात्रिं ज्ञात्वाकंसचिकीर्षितम् ॥ २५ ॥ कंसस्तुधनुषोभङ्गं रक्षिणांस्वबलस्यच । वधंनिशम्यगोविन्दरामवि-क्रीडितंपरम् ॥ २६ ॥ दीर्घप्रजागरोभीतो दुर्निमित्तानिदुर्मतिः । बहून्यचष्टोभयथा मृत्योर्दौत्यकराणिच ॥२७॥ अदर्शनंस्वशिरसः प्रतिरूपेचसत्यपि । असत्यपिद्वितीये च द्वैरूप्यंज्योतिषांतथा ॥ २८ ॥ छिद्रप्रतीतिश्छायायां प्राणघोषानुपश्रुतिः । स्वर्ण प्रतीतिर्वृक्षेषु स्वपदानामदर्शनम् ॥ २९ ॥ स्वप्नेप्रेतपरिष्वङ्गः खरयानंविषादनम् ।

हुये उस धनुष को उठालिया ॥ १६ ॥ और देखनेवाले मनुष्योंके सामनेही बायेंहाथ से पकड़ पनच चढ़ाय खींचकर एक क्षणभरमें बीचसे तोड़डाला कि—जैसे मतवाला हाथी ऊखके दण्डको तोडडाले ॥ १७ ॥ धनुष जब टूटनेलगा तब उसका शब्द आकाश अन्तरिक्ष और दिशाओं में भरगया । उस भयानक शब्द से कंसका हृदय व्याकुल होउठा ॥ १८ ॥ धनुषके टूटने से धनुषके रक्षकगण कुपितहो सेवकों समेत उनके पकडने को । 'पकडो' 'मारो' कहकर सामने दौडे ॥ १९ ॥ राम, कृष्ण उनकी दुष्टता जानकर क्रोधित हुए और धनुषके दोनो खंडलेकर उनका नाश करनेलगे ॥ २० ॥ कंसने भी बहुतसी सनाभेजी; परन्तु राम कृष्णने उस काभी नाश करादिया और अतमें शाला से बाहरहो नगरकी सजावट देखते हुए प्रसन्न चित्तस घूमनेलगे ॥ २१ ॥ पुरवासियों ने उनदोनो के अद्भुत पराक्रम, तेज, दृढता और रूपको देखकर उन्हें श्रेष्ठ देवतामान ॥ २२ ॥ राम कृष्णके भ्रमण करते२ सूर्यभी अस्तहोगये; तबगोपोंकेसाथ अपने उस स्थानमें कि जहां शकट खड़ेथे आये ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णजी के यात्रा कालमें गोपियों ने मथुरा के सौभाग्य संबंध में जो २ कहाथा मथुरा निवासियों की इच्छा पूरीहुई, क्योंकि ब्रह्मादि देवतागण जिनलक्ष्मी की कृपाकटाक्ष पानेके निमित्त उनका भजन करते रहते हैं वही लक्ष्मी भी जिनका रातदिन भजन करती हैं आज नगर निवासियों ने उन्हीं भगवान के दर्शन किये ॥ २४ ॥ हे राजन्! अनंतर राम, कृष्णने पांवधोय दूधमेले हुए अन्नका भोजन किया, और कंसका अभि-प्राय समझ उस रात्रिको तोवहीं सुख से बिताया ॥ २५ ॥ हे महीपते ! जबदुष्ट कंसने सुना कि—राम कृष्णने सहजही से धनुषको तोडा उसके रक्षकों सहित मेरीसेनाका नाशकर दिया, तब फिर उसके भयका सीमा न रही । उस रात्रिको उसे नींद भी न आई और जागते व सोते दोनों अवस्थाओं में वह मृत्यु सूचक भयानक दृश्य देखनेलगा ॥ २६—२७ ॥ कंसने देखा कि-जलादि में अपना प्रतिबिंबतो देखपडता है परन्तु उसमें शिरही नहीं है; अंगुली आदिकोई पदार्थ आंख की कोरमें न लगाने परभी सब पदार्थ दो २ दिखाई देनेलगे ॥ २८ ॥ प्रतिबिंब में छिद्र प्रतीत होनेलगे, अंगुली से कानबंद करनेपर प्राणशब्द सुनाई नहीं आता । वृक्षगण सुनहले जान पड़ने लगे, धूल कीचआदिमें पांवोंके चिह्न नहीं देखपडते ॥ २९ ॥ स्वप्नमें प्रेतके साथ आलिंगन करने

यायाज्जलन्ग्रमाल्येकस्तैलाभ्यक्तोदिगम्बरः ॥ ३० ॥ अन्यानिचेत्थंभूतानि स्वप्नजाग रितानिच । पश्यन्मरणसंत्रस्तो निद्रांलेभेनचिन्तया ॥३१॥ व्युष्टायांनिशिकौरव्य सूर्येचाद्भ्यःसमुत्थिते । कारयामासवैकंसो मल्लक्रीडामहोत्सवम् ॥३२॥ आनर्चुः पुरुषारङ्गं तूर्यभेर्यश्चजघ्निरे । मञ्चाश्चालंकृताः स्रग्भिःपताकाचैलतोरणैः ॥ ३३ ॥ तेषुपौराजानपदाब्रह्मक्षत्रपुरोगमाः । यथोपजोषंविविशू राजानश्चकृतासनाः ॥३४॥ कंसःपरिवृतोऽमात्यै राजमञ्चमुपाविशत् । मण्डलेश्वरमध्यस्थो हृदयेनविदूयता ॥ ३५ ॥ वाद्यमानेषुतूर्येषु मल्लतालोत्तरेषुच । मल्लाःस्वलंकृताःदृप्ताः सोपाध्यायाः समासत ॥ ३६ ॥ चाणूरोमुष्टिकःकूटः शलस्तोशलएवच । तआसेदुरुपस्थानं वल्गुवाद्यप्रहर्षिताः ॥ ३७ ॥ नन्दगोपादयोगोपा भोजराजसमाहुताः । निवेदितो पायनास्ते एकस्मिन्मञ्चआविशन् ॥ ३८ ॥

इति श्रीमद्भा०म०द०पू०मल्लरङ्गोपवर्णनंनाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथकृष्णश्चरामश्च कृतशौचौपरन्तप ॥ मल्लदुन्दुभिनिर्घोषं श्रुत्वाद्रष्टुमुपेयतुः ॥ १ ॥ रङ्गद्वारंसमासाद्य तस्मिन्नागमवस्थितम् । अपश्यत्कुवल- यापीडं कृष्णोऽम्बष्ठप्रचोदितम् ॥ २ ॥ बद्ध्वापरिकरंशौरिः समुह्यकुटिलालकान् ॥ उवाचहस्तिपंवाचा मेघनादगभीरया ॥ ३ ॥ अम्बष्ठाम्बष्ठमार्गं नौदेह्यपक्रमभाचिर म् । नोचेत्सकुंजरंत्वाऽद्य नयामियमसादनम् ॥ ४ ॥ एवंनिर्भर्त्सितोऽम्बष्ठः कुपितः

लगा, गधेपर सवार होकर फिरने और मृणाल भक्षण करनेलगा । और देखाकि एक पुरुष तेल लगाए, नंगबदन, जपाके लाल फूलोंकी माला धारण किये सन्मुख आरहा है । जागते और सोते में राजाकंस ऐसे ऐसे अशुभदृश्योंको देख अत्यंत भयभीत हुआ, इस दारुणदृश्य के कारण वह रात्रिको कुछ देरभी न सोसका ॥ ३०-३१ ॥ हे कुरुनंदन ! रात्रिव्यतीत हुई प्रभात हुआ, देखते २ सूर्यदेव जलसे बाहर निकले । तब कंसने मल्लक्रीडा महोत्सव के आरंभ करने की आज्ञादी ॥३२॥ मनुष्य रंगभूमिको सजाय तूरी, भेरीआदि बजानेलगे; सर्वमंच माला, पताका, वस्त्र और तोरणसे अलंकृत हुए ॥ ३३ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रीआदि सब नगर निवासी व देश निवासी उनपर सुख पूर्वक बैठे और राजालोग भी अपने २ आसनोंपर बैठे ॥ ३४ ॥ कंसभी राजमन्त्रियों से घिरे राजमंचमें मंडलेश्वर राजाओं के बीचसंतप्त अंतःकरण से बैठा ॥३५॥ तदनंतर बाजे बजनेलगे । जब मल्लों का ताल बडेशब्द से सुनाई देनेलगा तब अहंकारी मल्लगण भलीप्रकार से अलंकृतहो गुरूओं के साथ सभामें आये ॥ ३६ ॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल—यह सब मनोहर बाजोंको सुनकर प्रसन्न चित्तहो अखाडे में आये ॥३७॥ नंदादि गोपगण भी कंसका बुलावा पाय वहां आय राजाको भटआदि दे एक मंचपर बैठगये ॥ ३८ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेपरंतप ! अनन्तर राम, कृष्ण, मल्ल, दुन्दुभी का शब्द सुनकर देखने के निमित्त मल्ल रंगमें आए । उन्होंने पहिलेही दिन यह विचार कियाथा कि—हमने ध- नुर्भंगादि द्वारा अपने ऐश्वर्य को प्रकाशित कियाहै परंतु तौ भी दुष्ट कंसने हमारे माता पिताको न छोडा हमारे मारनेका भी उद्योग कररहाहै अतएव वह मामा होकर भी मारने योग्य है इसके मारनेसे हमें कोई दोष नहींहै ॥ १ ॥ श्रीकृष्णजीने रंगद्वारमें पहुंचकर देखा कि महावतसे प्रेरित कुवलया पीड़ हाथी वहांपर खड़ाहै ॥ २ ॥ यह देखकर भगवान् युद्ध वेषकी रचना कर टेढ़ी अलकोंको बांध मेघकी समान गम्भीर वचन महावत से कहनेलगे कि—॥३॥ हे महावत ! अहो महावत! हम दोनों भाइयोंको मार्गदो, शीघ्र हटजाओ नहीं तो हाथीसमेत इसीसमय तुझे यमपुरी

कोविद्वा गजम्। चोदयामास कृष्णाय कालान्तकयमोपमम् ॥ ५ ॥ करीन्द्रस्तमभिद्रुत्य करेण तरसाऽग्रहीत्। कराद्विगलितः सोऽमुं निहत्याङ्घ्रिष्वलीयत ॥ ६ ॥ संक्रुद्धस्तमचक्षाणो घ्राणदृष्टिः सकेशवम्। परामृशत्पुष्करेण सप्रसह्य विनिर्गतः ॥७॥ पुच्छे प्रगृह्याऽतिबलं धनुषः पञ्चविंशतिम्। विचकर्ष यथा नागं सुपर्ण इव लीलया ॥८॥ स पर्यावर्तमानेन सव्यदक्षिणतोऽच्युतः। बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोवत्सेनेव बालकः ॥९॥ ततोऽभिमुखमभ्येत्य पाणिनाऽऽहत्य वारणम्। प्राद्रवन्पातयामास स्पृश्यमानः पदे पदे ॥ १० ॥ स धावन्क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसोत्थितः। तं मत्वा पतितं क्रुद्धो दन्ताभ्यां सोऽहनत्क्षितिम् ॥ ११ ॥ स्वविक्रमे प्रतिहते कुञ्जरेन्द्रोऽत्यमर्षितः। चोद्यमानो महामात्रैः कृष्णमभ्यद्रवद्रुषा ॥ १२ ॥ तमापतन्तमासाद्य भगवान्मधुसूदनः। निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले ॥ १३ ॥ पतितस्य पदाक्रम्य मृगेन्द्र इव लीलया दन्तमुत्पाट्य तेनेभं हस्तिपांश्चाहनद्धरिः ॥ १४ ॥ मृतकं द्विपमुत्सृज्य दन्तपाणिः समाविशत्। अंसन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदबिन्दुभिरङ्कितः ॥ १५ ॥ विरूढस्वेदकणिकावदनाम्बुरुहो बभौ। वृतौ गोपैः कतिपयैर्बलदेवजनार्दनौ रंगं विविशतू राजन्गजदन्तवरायुधौ ॥ १६ ॥ मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः। मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः ॥१७॥ हतं कुवलयापीडं दृष्ट्वा

भेजूंगा ॥ ४ ॥ महावत ऐसे तिरस्कार के वाक्य सुन कुपित हुआ और कालांतक यमतुल्य हाथी को कुपित करके श्रीकृष्णजी के ऊपर चलाया ॥ ५ ॥ गजराजने उनके सन्मुख दौडकर उन्हें सूंड से पकड लिया। वह शुण्डसे निकल हाथीके पांवपर प्रहारकर अदृश्य होगये क्रोधित हाथीने श्रीकृष्णजीको न देखकर सूंघने २ फिर उनको सूंडसे पकड़ा परन्तु वह फिर बलपूर्वक निकलगए। ॥ ७ ॥ गरुड़ जैसे खेलसही सांपको खींचताहै श्रीकृष्णजी वैसेही अति बलसे हाथीकी पूंछपकड २५ धनुष तक पीछे घसीट लेगये ॥ ८ ॥ हाथी जैसे बाईं और दाहिनी ओर घूमनेलगा भगवान भी वैसेही उसको घुमातेहुए गो बछड़ोंके साथ बालकों की समान उसके साथ भ्रमण करनेलगे। श्रीकृष्णजीने उसकी पूँछ पकडली थी उनके पकड़नेके निमित्त कुवलया जैसेही बाईंओरको फिरता तैसेही वहउसके दाहिनी ओर और वह दाहिनी ओर जाता तो वह बाईंओर भ्रमणकरातेथे॥९॥ तदनन्तर भगवानने हाथीके सन्मुख आय हाथसे उसके ऊपर प्रहार किया और आगे २ दौड़ २ उसके पैरोंमें ठोकरें मार मार गिरादिया ॥ १० ॥ भगवान क्रीडा करनेसे दौड़त २ पृथ्वीपर गिर तत्काल उठ खडेहुए। वह गिरपडे हैं—यह विचारकर क्रोधित हाथी दोनोंदांतों से पृथ्वीपर आघात करनेलगा ॥ ११ ॥ परन्तु अपने पराक्रमको व्यर्थ हुआ जान गजराज अत्यंत क्रोधित हुआ और महावत से प्रेरितहो क्रोध पूर्वक श्रीकृष्णजी की ओर दौड़ा ॥१२॥ वह जैसेही निकट आया तैसेही भगवान मधुसूदन ने हाथी से उसकी सूंड पकड़ पृथ्वीपर गिरादिया ॥ १३ ॥ हाथी के गिरतेही, सिंहकी समान सहजही में भगवानने उसको लातों से मार दांत उखाड लिये और उन्हीं दांतों से उसे व महावतको मारडाला ॥ १४ ॥ तदनन्तर मरेहुए हाथीको छोड श्रीकृष्णजी दांत हाथमें ले रंगभूमि में आये कांधे में दांत धरेहुए, सब शरीर रुधिर और हाथीके मदकणों से भीगाहुआ बदन में पसीना निकल रहाथा, इससे वह अत्यंत शोभायमान होरहे थे ॥ १५ ॥ हे राजन्! बलदेवजी व भगवान् श्रीकृष्णजी कुछएक गोपोंको साथलिये, दंतरूप श्रेष्ठअस्त्र धारणकिये, रंगभूमिमें आये ॥ १६ ॥ वह भाई के साथ प्रवेश करके,—मल्लोंके पक्षमें वज्र, मनुष्योंको मनुष्य श्रेष्ठ, स्त्रियोंको मूर्तिमान कामदेव, गोपोंको स्वजन, दुष्ट राजाओंको शासन कर्त्ता, अपने पिता माताको पुत्र, कंस को मृत्यु, गंवारोंको गंवार, योगियोंको परमतत्व, और वृष्णिगणको परम देवता रूप से मानपड़े

तावपि तुर्जयौ । कंसोमनस्व्यपि तदा भृशमुद्विविजेनृप ॥१८॥ तौरेजतूरंगगतौमहा
भुजौ विचित्रवेषाभरणस्रगम्बरौ । यथानटावुत्तमवेषधारिणौ मनःक्षिपन्तौ प्रभया
निरीक्षताम् ॥ १९ ॥ निरीक्ष्यतावुत्तमपूरुषौ जना मंचस्थितानागरराष्ट्रकानृप । प्रह
र्षवेगोत्कलितेक्षणाननाः पपुर्नतृप्ता नयनैस्तदाननम् ॥ २० ॥ पिबन्तइवचक्षुर्भ्यां लि
हन्तइवजिह्वया । जिघ्रन्तइवनासाभ्यां श्लिष्यन्तइवबाहुभिः ॥ २१ ॥ ऊचुःपरस्प
रंतेवै यथादृष्टंयथाश्रुतम् । तद्रूपगुणमाधुर्यप्रागल्भ्यस्मारिताइव ॥ २२ ॥ एतौभग-
वतः साक्षाद्धरेर्नारायणस्यहि । अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्यवेश्मनि ॥ २३ ॥ ए
षवैकिलदेवक्यां जातोनीतश्चगोकुलम् ॥ कालमेतंवसन्गूढो ववृधेनन्दवेश्मनि ॥
॥ २४ ॥ पूतनानेननीतान्तं चक्रवातश्चदानवः ।.अर्जुनौगुह्यकःकेशी धेनुकोन्येचत
द्विधाः ॥ २५ ॥ गावःसपालाएतेन दावाग्नेःपरिमोचिताः ॥ कालियोदमितःसर्प
इन्द्रश्चविमदःकृतः ॥२६ ॥ सप्ताहमेकहस्तेन धृतोद्रिप्रवरोऽमुना । वर्षवाताशनि
भ्यश्च परित्रातंचगोकुलम् ॥ २७ ॥ गोप्योऽस्य नित्यमुदितहसितप्रेक्षणं मुखम् । प
श्यन्त्यो विविधांस्तापांस्तरन्ति स्माश्रमंमुदा ॥ २८ ॥ वदन्त्यनेनवंशोऽयं यदोःसु
बहुविश्रुतः । श्रियंयशोमहत्त्वंच लप्स्यतेपरिरक्षितः ॥ २९ ॥ अयंचास्याग्रजःश्री
मान्रामःकमललोचनः । प्रलम्बोनिहतोयेन वत्सकोयेबकादयः ॥३०॥ जनेष्वेवंब्रुवा
णेषु तूर्येषुनिनदत्सुच । कृष्णरामौसमाभाष्य चाणूरोवाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ हेन-
न्दसूनोहेराम भवन्तौवीरसंमतौ । नियुद्धकुशलौश्रुत्वा राज्ञाऽऽहूतौदिदृक्षुणा ३२

॥ १७ ॥ हे महाराज! कुवलया पीड़को मराहुआ देखकर दुष्टकंस राम, कृष्ण के जीतनेको दुः-
साध्य जानकर मनमें अत्यंत भयभीत हुआ ॥ १८ ॥ महाभुज दोनोभ्राता—विचित्रवेश, आभरण,
माला और वस्त्र धारणकर रंगभूमि में गाय, श्रेष्ठ वेशधारी दोनटों की समान, अपने प्रकाश द्वारा
दर्शकों के मनको विचलित करनेलगे ॥ १९ ॥ हेराजन्! उन दोनों श्रेष्ठ पुरुषोंको देख मंचपर
बैठेहुए नगर निवासी और राजाओं के मुख और नेत्र हर्ष से प्रफुल्लितहो उठे, वह नेत्रोंद्वारा उन
के मुखका पानकरने लगे परन्तु तौ भी उनकी तृषा न बुझी॥ २० ॥ वे लोग नेत्रों से मानोपान
करतेहैं, जिह्वा से चाटतेहैं, नासिकासे सूंघतेहैं, भुजासे मिलतेहैं ऐसे ज्ञातहोरहे थे॥२१॥उन्होंने
जिसप्रकारदेखा और सुनाथा उसी प्रकार आपस में बात करनेलगे। उस समय राम, कृष्णकेरूप
गुण, मधुरता, और धृष्टताने मानों उनको स्मरण दिलादिया॥२२॥ वह कहनेलगे कि—यह दोनों
जन साक्षात् भगवान के अंश से पृथ्वीपर वसुदेव के घर में अवतीर्ण हुए हैं॥२३॥ यही देवकी के
गर्भ से उत्पन्नहुएथे, इन्हीं को गोकुल लेजायागयाथा। वहांपर इतने समयतकगुप्तभावसे रहकर
नन्दके घरमेंही वृद्धि पाई है ॥ २४ ॥ इन्हीं के हाथसे पूतना, तृणावर्त, यमलार्जुन, धेनुक,केशी,
शंखचूड़, औरभी कई एक अघासुरादि दैत्य नष्टहुए हैं ॥ २५ ॥ इन्होंने ग्वालोंसमेत गायों को
दावाग्निसे छुटायाथा; इन्हीं ने कालिय सर्पका दमन कियाथा, इन्द्रका गर्व इन्हींसे खर्व हुआ
था ॥ २६ ॥ इन्होंने सातदिनतक एकहाथसे पहाड़को धारण कियाथा तथा इन्होंने वर्षा, वायु,
और वज्रसे गोकुलकी रक्षाकी थी ॥ २७ ॥ इनके मुखसे निरंतर हास्य और कटाक्ष प्रकाशित
रहते हैं, गोपियें इन्हींके किंचित् हास्यको देखकर आनंदितहो अनेक संतापोंको दूर करतीरहती
हैं ॥२८॥ यदुका विख्यात वंश इन्हीं से रक्षितहोकर लक्ष्मी, यश और महत्त्व प्राप्त करेगा २९॥
कमल लोचन भगवान् बलदेवजी इनके बड़े भाई हैं; इन्होंने प्रलम्बको माराथा। वत्स और ब-
कादिभी इन्हींके हाथसे मारेगये थे ॥३०॥ मनुष्यगण इसप्रकारसे कहरहेथे और बाजे सबबजरहे
थे—कि उसीसमय में चाणूर ने राम कृष्णको ललकारकर कहा कि ॥ ३१ ॥ हे नंदतनय! हे
राम! तुम दोनोंजन बड़े पराक्रमी और मल्लयुद्धमें बड़े निपुणहो, राजाने यह सुनकर परीक्षाके

प्रियंराज्ञःप्रकुर्वत्यः श्रेयोविन्दन्तिवैप्रजाः । मनसाकर्मणावाचा विपरीतमतोऽन्यथा ॥ ३३ ॥ नित्यंप्रमुदितागोपा वत्सपालायथास्फुटम् । वनेषुमल्लयुद्धेन क्रीडन्तश्चारयन्तिगाः ॥ ३४ ॥ तस्माद्राज्ञःप्रियंयूयं वयंचकरवामहे । भूतानिनःप्रसीदन्ति सर्वभूतमयोनृपः ॥ ३५ ॥ तन्निशम्याब्रवीत्कृष्णो देशकालोचितंवचः । नियुद्धमात्मनोऽभीष्टं मन्यमानोऽभिनन्द्यच ॥ ३६ ॥ प्रजाभोजपतेरस्य वयंचापिवनेचराः करवामप्रियंनित्यं तन्नःपरमनुग्रहः ॥ ३७ ॥ बालावयंतुल्यबलैः क्रीडिष्यामोयथोचितम् । भवेन्नियुद्धंमाऽधर्मः स्पृशेन्मल्लसभासदः ॥ ३८ ॥ चाणूरउवाच । नबालोनकिशोरस्त्वं बलश्चबलिनांवरः । लीलयेभोहतोयेन सहस्रद्विपसत्त्वभृत् ॥३९॥ तस्माद्भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नाऽनयोऽत्रवै । मयिविक्रमवार्ष्णेय बलेनसह मुष्टिकः ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एवंचर्चितसङ्कल्पोभगवान्मधुसूदनः । आससादाथचाणूरं मुष्टिकंरोहिणीसुतः ॥ १ ॥ हस्ताभ्यांहस्तयोर्बद्ध्वापद्भ्यामेवचपादयोः । विचकर्षतुरन्योन्यंप्रसह्यविजिगीषया ॥ २ ॥ अरत्नीद्वेअरत्निभ्यांजानुभ्यांचैवजानुनी । शिरः शीर्ष्णोरसोरस्तावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ३ ॥ परिभ्रामणविक्षेपपरिरम्भावपातनैः । उत्सर्पणापसर्पणैश्चान्योन्यंप्रत्यरुन्धताम् ॥ ४ ॥ उत्थापनैरुन्नयनैश्चालनै

निमित्त तुम्हें बुलाया है ॥ ३२ ॥ प्रजागण—कर्म, मन और वाक्यद्वारा राजाका प्रियकरकेही कल्याण प्राप्त करते हैं, इसका अन्यथाहोने से विपरीत फल प्राप्तहोता है ॥ ३३ ॥ औरभी कहा है कि—गोपगण नित्य आनन्दित मनसे वनमें मल्लयुद्ध क्रीडाकरके गोचारण करतेहुए घूमते रहते हैं ॥ ३४ ॥ अतएव आओ तुम और हम राजाकी इच्छा पूर्णकरें । ऐसा होनेसे सबमनुष्य हमारे तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहोंगे, क्योंकि राजाही सर्वभूत स्वरूपहोते हैं ॥३५॥ बाहु युद्धही श्रीकृष्णजीका अभीष्टथा, अतएव चाणूर के वचनोंको सुन उसका सनमानकर देश और कालके अनुसार उससे कहने लगे ॥ ३६ ॥ कि यद्यपि हम बनचर हैं तौभी राजाकंसकी प्रजाही हैं । "राजाकी इच्छा पूर्ण करू" यह आज्ञा मेरे पक्षमें अत्यन्तही अनुग्रह की है–परन्तु हम बालक हैं अतएव हमारी समान बलशाली बालकोंके साथ जैसे बाहु युद्ध होताहै वैसेही क्रीड़ा करना चाहिये । ऐसा होनेसे मल्लसभासदों को अधर्म स्पर्श न करेगा ॥ ३७—३८ ॥ चाणूरने कहाकि—तुम अथवा बलदेव, इनमें से कोई न तो बालक हैं न किशोरही हैं तुम बलवानों में श्रेष्ठहो; जिसहाथी में सहस्रहाथियों का बलथा उसहाथीको तुमने सहजही में मारडाला ॥ ३९ ॥ अतएवजो बलवानहो उसी के साथ तुमको युद्धकरनायोग्य है; इससे किसीप्रकारसभी अधर्मनहीं है । हे वृष्णिनन्दन ! आओ, तुम मेरे ऊपर अपना पराक्रम प्रकाशकरो, और मुष्टिक बलभद्र के साथ मल्लयुद्धमें प्रवृत्तहो॥४०॥

इतिश्री मद्भा० म० दशम० सरलाभाषाटीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! इसप्रकार दृढ निश्चय होनेपर भगवान् श्रीकृष्णजीचाणूर से और रोहिणीनन्दन मुष्टिक से भिड़े ॥ १ ॥ दोनों हाथोंसे दोनों हाथ, और दोनों पैरों से दोनों पैर लपेट जय करने की इच्छासे दोनों एक दूसरे को परस्पर खींचने लगे ॥ २ ॥ एकजनअपनी अरत्नि दूसरे की अरत्नि में, घुटनों में घुटना, शिर में शिर, छाती में छाती, परस्पर भिड़ाने लगे ॥ ३ ॥ चारोंओर घुमाना, दोनों बाहों से धक्कादेना, हाथ में लेकर दबाना, नीचे गिराना, आगे बढ़ना, पीछे हटना, एसे पेचों से एक दूसरेको घुमाने लगे ॥ ४ ॥ घुटना और पांव समेटकरपके

स्थापनैरपि । परस्परं जिगीषन्तावपचक्रतुरात्मनः ॥ ५ ॥ तद्बलाबलवद्युद्धं समेताः सर्वयोषितः । ऊचुः परस्परं राजन्सानुकम्पा वरूथशः ॥ ६ ॥ महानयं बताऽधर्म एषां राजसभासदाम् । ये बलाबलवद्युद्धं राज्ञोऽन्विच्छन्ति पश्यतः ॥ ७ ॥ क्व वज्रसारसर्वाङ्गौ मल्लौ शैलेन्द्रसन्निभौ । क्व चातिसुकुमाराङ्गौ किशोरौ नाप्तयौवनौ ॥ ८ ॥ धर्मव्यतिक्रमो ह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत् । यत्राधर्मः समुत्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हिचित् ॥ ९ ॥ न सभां प्रविशेत्प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन् । अब्रुवन्विब्रुवन्नज्ञो नरः किल्बिषमश्नुते ॥ १० ॥ वल्गतः शत्रुमभितः कृष्णस्य वदनाम्बुजम् । वीक्ष्यतां श्रमवार्युप्तं पद्मकोशमिवाम्बुभिः ॥ ११ ॥ किं न पश्यत रामस्य मुखमाताम्रलोचनम् । मुष्टिकं प्रति सामर्षं हाससंरम्भशोभितम् ॥ १२ ॥ पुण्या बत व्रजभुवो यदयं नृलिङ्गगूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः । गाः पालयन्सहबलः क्वणयंश्च वेणुं विक्रीडयाऽञ्चति गिरित्ररमार्चिताङ्घ्रिः ॥ १३ ॥ गोप्यस्तपः किमचरन्यदमुष्य रूपं लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम् । दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुरापमेकान्तधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य ॥ १४ ॥ या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ । गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥ १५ ॥ प्रातर्व्र

हुए को सरकाना, उठाना, चलाना, और चिपटेहुए को दूरकरना इसप्रकार से ऐसी क्रियाएं कर कर दोनों एक दूसरे के जीतने की इच्छा से अपनी २ देहों का तिरस्कार करनेलगे ॥ ५ ॥ हे राजन् ! उस युद्ध में एक ओर बलवान और एक ओर निर्बल देखकर सबस्त्रियें एकत्रितहो दयार्द्र चित्त परस्पर कहनेलगीं कि— ॥ ६ ॥ यह मल्लयुद्ध अत्यन्त अयोग्य है ! अहो ! यहाँकेराज सभासद् अत्यन्तही अधर्मी हैं । बालक के साथ बलवान का मल्लयुद्ध देखकरराजा को तो निवारण करना चाहिए वरन ऐसा न करके वह स्वयंही उसका अनुमोदन करते हैं ॥ ७ ॥ पर्वतराज की समान इन दोनों मल्लों के सर्वांग वज्रकी समान कठोरहैं-और यह दोबालक सुकुमार किशोर अवस्था के हैं-इस समय तक युवावस्था में नहीं आये; इनका परस्पर युद्धहोना कभी उचितनहीं है ॥ ८ ॥ निश्चयही इस सभा में धर्म का उल्लंघन होरहा है; जिस स्थान में अधर्म होवे उस स्थान में कभी नहीं रहना चाहिये ॥ ९ ॥ सभा में जो जानबूझकर भी नहीं कहते, जो विपरीत कहते हैं, या जो कहते हैं किहम कुछ नहीं जानते; वहसब दोषी होते हैं अतएव सभासदों के दोष जाननेवाले बुद्धिमानपुरुष को ऐसी अधर्म की सभा में न जानाचाहिए ॥ १० ॥ देखो—शत्रु के चारों ओर घूमने से श्रीकृष्णजी का मुख.कमल, जल से व्याप्त कमलकी समान पसीने से व्याप्त होरहा है ॥ ११ ॥ तब दूसरी सखी ने कहा कि—तुमव्याकुल क्यों होतीहो,तुमक्या नहींदेखतीं कि-राम का कुछक लालवर्ण का सुन्दर मुख, मुष्टिकके ऊपर क्रोधयुक्त होने परभी हास्य के वश से कैसा शोभायमान होरहा है ॥ १२ ॥ व्रज की भूमि बड़ी पुण्यवान है; क्योंकि शिव और लक्ष्मी जिनके चरणों की पूजाकरती हैं; वही पुराण पुरुष मनुष्यरूप धारणकर, वन से उत्पन्नहुए मालाओंको पहिन वंशीबजातेर बलरामजीके साथ गौचरातहुए वहां भ्रमण करते हैं ॥ १३ ॥ गोपियोंने क्या तपस्या कीथी—कि जो श्रीकृष्णचन्द्रका रूप कि जो लावण्यसे श्रेष्ठ, नित्यप्रति नयानदुर्लभ, कीर्ति, लक्ष्मी, और ऐश्वर्यका आश्रयधाम, स्वयं सिद्ध, और सृष्टि में न कोई उसके समानहै न अधिक है उसे नेत्रोंसे मानो पीजातीहो ऐसे देखतीहैं, ॥ १४ ॥ सब व्रजांगनाओं का धन्यहै, कि—वह गद्गद कण्ठहो दोहन, अवस्थित, मंथन उपलेपन और बालकों के रोदन सेचन और मार्जन इत्यादि सब समय में ही इनको पवित्र कीर्तिका गान करती रहती हैं उनकी बुद्धि इन्हीं भगवान्में लगी रहतीहै अतएव इनमें जिनका चित्त आसक्त है उनको सब विषय प्राप्त होजातेहैं । जब हरि

जाद्व्रजत आविशतश्च सायं गोभिः समं क्वणयतोऽस्य निशम्य वेणुम् । निर्गम्य तूर्णम
बलाः पथि भूरिपुण्याः पश्यन्ति सस्मितमुखं सदयावलोकम् ॥ १६ ॥ एवं प्रभाषमा
णासु स्त्रीषु योगेश्वरो हरिः । शत्रुं हन्तुं मनश्चक्रे भगवान्भरतर्षभ ॥ १७ ॥ सभयाः
स्त्रीगिरः श्रुत्वा पुत्रस्नेहशुचातुरौ । पितरावन्वतप्येतां पुत्रयोरबुधौ बलम् ॥ १८ ॥ तै
स्तैर्नियुद्धविधिभिर्विविधैरच्युतेतरौ । युयुधाते यथान्योन्यं तथैव बलमुष्टिकौ ॥ १९ ॥
भगवद्गात्रनिष्पातैर्वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः । चाणूरो भज्यमानाङ्गो मुहुर्ग्लानिमवाप ह ।२०।
स श्येनवेग उत्पत्य मुष्टीकृत्य करावुभौ । भगवन्तं वासुदेवं क्रुद्धो वक्षस्यबाधत ॥ २१ ॥
नाचलत्तत्प्रहारेण मालाहत इव द्विपः । बाह्वोर्निगृह्य चाणूरं बहुशो भ्रामयन्हरिः ।२२।
भूपृष्ठे पोथयामास तरसा क्षीणजीवितम् । विस्रस्ताऽऽकल्पकेशस्रगिन्द्रध्वज इवापत
त् ॥ २३ ॥ तथैव मुष्टिकः पूर्वं स्वमुष्ट्याभिहतेन वै । बलभद्रेण बलिना तलेनाभिहतो
भृशम् ॥ २४ ॥ प्रवेपितः स रुधिरमुद्वमन्मुखतोऽर्दितः । व्यसुः पपातोर्व्युपस्थे वा
ताहत इवाङ्घ्रिपः ॥ २५ ॥ ततः कूटमनुप्राप्तं रामः प्रहरतां वरः । अवधील्लीलया रा
जन्सावज्ञं वाममुष्टिना ॥ २६ ॥ तर्ह्येव हि शलः कृष्णपदापहतशीर्षकः । द्विधा विदी
र्णस्तोशलक उभावपि निपेततुः ॥ २७ ॥ चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते । शे
षाः प्रदुद्रुवुर्मल्लाः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥ २८ ॥ गोपान्वयस्यानाकृष्य तैः संसृज्य वि
जह्रतुः । वाद्यमानेषु तूर्येषु वल्गन्तौ रुतनूपुरौ ॥ २९ ॥ जनाः प्रजहृषुः सर्वे कर्मणा

बेणु बजाते २ गोपोंके साथ प्रातःकाल व्रजसे बाहर होते हैं तब बेणुके शब्दको सुनतेही वह सब स्त्रियें बाहर निकलकर दया दृष्टि से मार्गमें इनके मुखको देखा करतीहैं उनके अनेक पुण्यहैं ॥ ॥ १५—१६ ॥ हेभरतश्रेष्ठ ! स्त्रियें इसभांति कहतीथीं उसीसमय योगेश्वरों के ईश्वर श्रीकृष्ण जीने शत्रुके मारनेकी इच्छाकी ॥ १७ ॥ स्त्रियों के वाक्य सुन २ कर राम कृष्णके पिता माता पुत्र स्नेह के कारण शोकसे कातर होगए, और दोनों पुत्रोंके पराक्रम को न जान सन्ताप करने लगे ॥ १८ ॥ चाणूर और केशव जिसप्रकारसे मल्लयुद्ध करतेथे बलदेवजी और मुष्टिकभी ठीक उसीप्रकारसे करनेलगे ॥१९॥ भगवान् के तीक्ष्ण वज्रपातकी समान कठिन अंगके प्रहारसे भग्नांग होकर चाणूर वारम्वार कष्ट पानेलगा ॥ २० ॥ श्येन (बाज) की समान वेगवाले चाणूर ने दोनों हाथोंसे मूठी बांध छलांग मार क्रोधसे भगवान् की छातीपर प्रहार किया ॥ २१ ॥ किंतु वह फूलोंस मारेहुए हाथीकी समान उसके प्रहारसे कुछभी विचलित न हुए श्रीकृष्णजी चाणूर को दोनों बाहोंसे पकड उसको वारम्बार घुमानेलगे, इससे उसकी जीवनी शक्ति क्षीण होगई, फिर बलपूर्वक पृथ्वीपर पछाड़ दिया पछाड़तही उसके गहने केश और माला बिखरगये और वह इन्द्रध्वज की समान प्राण रहित होगया ॥ २२ ॥ मुष्टिकने भी पहिले अपनी मूठी द्वारा बलभद्र जी पर प्रहार कियाथा और बलशाली बलभद्रने भी मूठी द्वारा उसपर घोर प्रहार किया, २४ ॥ उनके प्रचण्ड प्रहारसे मुष्टिक कांपने लगा और व्यथित होकर मुख से रक्त उगलते २ वायुसे गिरेहुए वृक्षकी समान प्राण रहितहो पृथ्वीपर गिरपड़ा ॥ २५ ॥ हे राजन् ! मुष्टिकके प्राण त्याग करनेपर कूट नामक दैत्य बलभद्रजी के सन्मुख हुआ । प्रहार करनेवालों में श्रेष्ठ बलरामजी ने उसका निरादर कर बाए घूंसेसे प्रहारकर सहजही में उसको मारडाला ॥ २६ ॥ ठीक उसी समय में शल और तोशल नामक दोमल्लों ने श्रीकृष्णजी के पैरों के प्रहार से भग्नशिर तथा दोनों भागों से विदीर्ण होकर प्राण त्याग दिये ॥ २७ ॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशलको निहत होता देख सब मल्ल प्राण रक्षाके निमित्त वहां से भागगए ॥ २८ ॥ उस काल सबबाजे बजरहे थे । तदनंतर राम और कृष्ण चरणों में रवनूपुर धारणकर साथवाले

रामकृष्णयोः श्रुतेकंसंविप्रमुख्याः साधवः साधुसाध्विति ॥३०॥ हतेषुमल्लवर्येषु विद्रुतेषुचभोजराट्। न्यवारयत्स्वतूर्याणिवाक्यंचेदमुवाचह॥३१॥निःसारयतदुर्वृत्तौवसुदेवात्मजौपुरात्। धनंहरतगोपानांनन्दंबध्नीतदुर्मतिम्॥ ३२ ॥ वसुदेवस्तु दुर्मेधाहन्यतामाश्वसत्तमः। उग्रसेनः पिताचापिसानुगः परपक्षगः॥ ३३ ॥ एवं विकत्थमानेवैकंसेप्रकुपितोऽव्ययः। लघिम्नोत्पत्यतरसामञ्चमुत्तुङ्गमारुहत्।३४। तमाविशन्तमालोक्यमृत्युमात्मनआसनात्। मनस्वीसहसोत्थायजगृहेसोऽसिचर्मणी॥ ३५ ॥ तंखड्गपाणिंविचरन्तमाशुश्येनंयथादक्षिणसव्यमम्बरे। समग्रहीद्दुर्विषहोग्रतेजायथोरगंतार्क्ष्यसुतःप्रसह्य॥ ३६ ॥ प्रगृह्यकेशेषुचलत्किरीटंनिपात्यरङ्गोपरितुङ्गमञ्चात्। तस्योपरिष्टात्स्वयमब्जनाभः पपातविश्वाश्रयआत्मतन्त्रः॥ ३७ ॥ तंसंपरेतंविचकर्षभूमौहरिर्यथेभंजगतोविपश्यतः। हाहेतिशब्दः सुमहांस्तदाऽभूदुदीरितः सर्वजनैर्नरेन्द्र॥ ३८ ॥ सनित्यदोद्विग्नधियातमीश्वरंपिबन्वदन्वाविचरन्स्वपञ्छ्वसन्। ददर्शचक्रायुधमग्रतोयथातदेवरूपंदुरवापमाप।३९ तस्याऽनुजाभ्रातरोऽष्टौकङ्कन्यग्रोधकादयः। अभ्यधावन्नभिक्रुद्धाभ्रातुर्निर्वेशकारिणः॥ ४०॥ तथाऽतिरभसांस्तांस्तुसंयत्तान्रोहिणीसुतः।अहन्परिघमुद्यम्यपशूनिवमृगाधिपः॥ ४१ ॥ नेदुर्दुन्दुभयोव्योम्निब्रह्मेशाद्याविभूतयः। पुष्पैः किरन्तस्तंप्रीत्याशशंसुर्ननृतुः स्त्रियः॥ ४२ ॥ तेषांस्त्रियोमहाराजसुहृन्मरणदुःखिताः। तत्रा

गोपोंको ले उनके साथ मिल नृत्यादि और विहार करनेलगे ॥ २९ ॥ कंसके अतिरिक्त ब्राह्मणादि समस्त साधुलोग राम, कृष्णके कर्मोंसे प्रसन्न चित्तहो "साधु","साधु" कहनेलगे ॥३०॥ श्रेष्ठ२ मल्लोंमें से कुछ एकके मरने और कुछ एकके भागजाने से भोजराज कसने अपने सब बाजों को बंदकरवाकर कहाकि—॥ ३१ ॥ वसुदेव के इनदोनो दुष्ट पुत्रोंको नगरसे दूरकरदो, गोपोंकी धन सम्पत्तिको छीनलो, दुष्ट नदको बांधदो ॥ ३२ ॥ दुर्मति वसुदेवका शीघ्र वधकरो, शत्रुके पक्षपाती मेरे पिता उग्रसेन कोभी अनुचरा समेत मारडालो ॥ ३३ ॥ कंसने इस प्रकार के अहकार युक्त वचनों के कहने का आरभ कियातो अव्यय भगवान अत्यंत क्रोधित हुए और बहुत शीघ्रता से छलांग मारऊंचे मंचपर चढगये ॥ ३४ ॥ मनस्वी कसने अपने मृत्युरूपी श्रीकृष्णको मंचमें प्रवेश करता देख सहसा आसन से उठढाल तलवार लेली॥३५॥ और आकाश मडल में घूमते हुए बाज की समान दहिने बाएँ घूमनेलगा प्रचंड तेजवाले श्रीकृष्णजी न—गरुड़ जैसे सर्पको पकड़ता है वैसे ही उसको बलपूर्वक ग्रहण किया॥ ३६ ॥ उसके केशोंको पकडतेही उसका किरीट गिरगया, उसको इसी अवस्था में ऊंचे मचसे रगभूमिके ऊपर गिराय, विश्वके आश्रय, स्वाधीन कृष्ण भगवान स्वयं उसके ऊपर कूदपडे ॥ ३७ ॥ असुर राजकंस उनक कूदतेही पिचकर मरगया। सिंह जैसे हाथीको खींचता है भगवान तैसेही कसको देखने वाले मनुष्यों के सामने पृथ्वीपर खींचनेलगे। हे राजन्! उस काल "हा" "हा" शब्द मनुष्योंके मुखसे निकलकर भारीशब्द होनेलगा ॥३८॥ चित्तके व्याकुल रहनेसे कंस—खाने, पीने, चलने, फिरने, निद्रा और जागरण सब समय मेंही चक्रधारी नारायणको सम्मुख देखा करताथा, इस समय उनके हाथ से निहतहो उसी दुष्प्राप्य रूप को प्राप्तहुआ ॥ ३९ ॥ हे राजन्! कंक,और न्यग्रोधादि कंसके आठ छोटेभाई बडेभाई के ऋणशोध करनेमें प्रवृत्तहो अत्यन्त क्रोधसे श्रीकृष्णपर आटूटे ॥ ४० ॥ परन्तु रोहिणी नन्दन बलरामजीने परिघ उठाकर, सिंह जैसे पशुओं को संहार करता है, तैसेही अति वगमान् और उद्यम शीलउन सबों को मारडाला ॥ ४१ ॥ आकाश में दुन्दुभी बजनेलगीं ब्रह्मारुद्रादि देवतागण स्नेह पूर्वक फूल बरसाय२ उनकी स्तुति करनेलगे; सब अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ४२ ॥ हेमहाराज! कंसादि

श्रीयुर्विनिष्नमस्थः शीर्णाण्यश्रुविलोचनाः ॥ ४३ ॥ श्यालाम्भीरशय्यायांपतीना
लिङ्ग्य शोचतीः । विलेपुः सुस्वरंनार्योविसृजन्त्योमुहुः शुचः ॥ ४४ ॥ हानाथप्रि
यधर्मज्ञकरुणानाथवत्सल । त्वयाहतेनिहताथयंतेसगृहप्रजाः ॥ ४५ ॥ त्वयावि र
हितापत्यापुरीयंपुरुषर्षभ । नशोभतेवयमिवनिवृत्तोत्सवमङ्गला ॥ ४६ ॥ अनागसां
त्वंभूतानां कृतवान्द्रोहमुल्बणम् । तेनेमांभोदशांनीतो भूतध्रुक्कोलभेतशम् ॥४७॥
सर्वेषामिहभूतानामेषहिप्रभवाप्ययः । गोप्तायद्ध्यायी नक्वचित्सुखमेधते ॥
॥ ४८ ॥ श्रीशुकउवाच । राजयोषितआश्वास्य भगवाँल्लोकभावनः । यामाहुर्लौ
किकींसंस्थां हतानांसमकारयत् ॥ ४९ ॥ मातरंपितरंचैव मोचयित्वाऽथबन्धना-
त् । कृष्णरामौववन्दाते शिरसाऽऽस्पृश्यपादयोः ॥ ५० ॥ देवकीवसुदेवश्च विज्ञा
यजगदीश्वरौ । कृतसंवन्दनौपुत्रौ सस्वजातेनशंकितौ ॥ ५१ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० कंसवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वापुरुषोत्तमः । माभूदितिनिजां
मायां ततानजनमोहिनीम् ॥ १ ॥ उवाचपितरावेत्य साग्रजःसात्वतर्षभः । प्रश्र
यावनतःप्रीणन्नम्बताततेतिसादरम् ॥ २ ॥ नास्मत्तोयुवयोस्तात नित्योत्कण्ठितयोर
पि । बाल्यपौगण्डकैशोराः पुत्राभ्यामभवन्क्वचित् ॥ ३ ॥ नलब्धोदैवहतयोर्वा
सोनौभवदन्तिके । यांबालाःपितृगेहस्था विन्दन्तेलालितामुदम् ॥ ४ ॥ सर्वार्थसं

की स्त्रियें अपने २ स्वामी के मरणसे दुःखितहो आंसू बहाती छातीपीटतीं उसी स्थानपर आईं ॥ ४३ ॥ सबस्त्रियें वीरशय्या में सोयेहुए स्वामियों का आलिंगन कर शोक करतेहुए रोते२वारम्बार बिलाप करने लगीं ; ॥ ४४ ॥ हानाथ ! हा प्रिय ! हा धर्मज्ञ ! हादयालो ! हा अनाथवत्सल ! तुमने हतहोकर घर और पुत्रों सहित हमारावध किया ॥ ४५ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुमहमारे स्वामी हो तुम्हारे बिरहसे समस्त उत्सव और मंगल नष्टहोगये—यह नगरी हमारी समान प्रभा रहितहो गई ॥ ४६ ॥ हे स्वामिन् ! तुमने निरपराध मनुष्यों से बड़ी भयानक शत्रुता कीथी इसी कारण इस दशाको प्राप्तहुए। प्राणियों के अनिष्ट की इच्छाकरके कौनमनुष्य कल्याण प्राप्त करसक्ता है ॥ ४७ ॥ यह श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत् के उत्पन्न करनेवाले पालने और संहारनेवाले हैं इन से द्वेष करके कभी सुख नहीं प्राप्त होसकता ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! लोकभावन भगवान ने राजस्त्रियों को धैर्य बँधाय उनकेद्वारा मृतमनुष्यों की लौकिक मृतक्रियासम्पादन कराई ॥ ४९ ॥ अनन्तर बलदेव और श्रीकृष्णजी ने माता और पिता को बन्धनसे छोड़ाय उनकेचरणों पर शिररक्खा ॥ ५० ॥ वसुदेव और देवकी दोनों पुत्रों को जगत्का ईश्वरजानतेथे अतएव श्री कृष्णजी के नमस्कार करतेहुए उनसे नहीं मिले केवल हाथ जोड़कर सामने खड़े रहगये ॥ ५१ ॥

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे सरलाभाषाटीकायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजीनेजानाकि—माता पिताको ज्ञान उत्पन्न हुआ, यह ज्ञान अभीठीक नहीं ऐसा विचार अपनी जन मोहिनीमायाका विस्तार किया ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णजी बलदेवजीके साथ माता पिताके समीप आय विनययुक्त नम्र वचनोंसे उनको प्रसन्नकरतेहुए हेतात ! हेमात ! कहकर ऐसा सनमानयुक्त बचन बोले कि ॥ २ ॥ हे पिता ! हम आपके पुत्र हैं आप हमारे निमित्त सदैव उत्कण्ठित रहतेथे तौभी हमारीबाल्य पौगण्ड और किशोर अवस्था से आप सुखनहीं प्राप्त करसके ॥ ३ ॥ हमहीं मन्दभागी हैं कि जो आपके निकट निवास नहीं करसके माबापके घरपर रहने से बालकोंको जोसुख प्राप्तहोते हैं उनका हमभोग

भवो देहो जनितः पोषितो यतः । न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ॥ ५ ॥ य
स्तयोरात्मजः कल्प आत्मना च धनेन च । वृत्तिं न दद्यात्तं प्रेत्य स्वमांसं खादयन्ति हि॥
॥ ६ ॥ मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुम् । गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽबिभ्र
च्छ्वसन्मृतः ॥ ७ ॥ तन्नावकल्पयोः कंसान्नित्यमुद्विग्नचेतसोः । मोघमेते व्यति
क्रान्ता दिवसा वामनर्चतोः ॥ ८ ॥ तत्क्षन्तुमर्हथस्तात मातर्नौ परतन्त्रयोः । अकु
र्वतोर्वां शुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुर्हृदा भृशम् ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति मायामनुष्य
स्य हरेर्विश्वात्मनो गिरा । मोहितावङ्कमारोप्य परिष्वज्यापतुर्मुदम् ॥ १० ॥ सिञ्च
न्तावश्रुधाराभिः स्नेहपाशेन चावृतौ । न किंचिदूचतू राजन् बाष्पकण्ठौ विमोहि
तौ ॥ ११ ॥ एवमाश्वास्य पितरौ भगवान्देवकीसुतः । मातामहं तूग्रसेनं यदूनाम
करोन्नृपम् ॥ १२ ॥ आह चास्मान्महाराज प्रजाश्चाज्ञप्तुमर्हसि । ययातिशापाद्य
दुभिर्नासितव्यं नृपासने ॥ १३ ॥ मयि भृत्य उपासीने भवतो विबुधादयः । बलिं ह
रन्त्यवनताः किमुतान्ये नराधिपाः ॥१४॥ सर्वान्स्वान्ज्ञातिसंबन्धान् दिग्भ्यः कंस
भयाकुलान् । यदुवृष्ण्यन्धकमधुदाशार्हकुकुरादिकान् ॥ १५ ॥ सभाजितान्स
माश्वास्य विदेशावासकर्शितान् । न्यवासयत्स्वगेहेषु वित्तैः सन्तर्प्य विश्वकृत्॥
॥ १६ ॥ कृष्णसंकर्षणभुजैर्गुप्ता लब्धमनोरथाः । गृहेषु रेमिरे सिद्धाः कृष्णरामगत
ज्वराः ॥ १७ ॥ वीक्षन्तोऽहरहः प्रीता मुकुन्दवदनाम्बुजम् । नित्यं प्रमुदितं श्रीम-
त्सदयस्मितवीक्षणम् ॥ १८ ॥ तत्र प्रवयसोऽप्यासन्युवानोऽतिबलौजसः ॥ पिब-

नहीं करसके ॥ ४ ॥ समस्त अर्थ देहही से उत्पन्न होते हैं, यह देह जिसके द्वारा पोषित हुई है मनुष्य सौवर्ष जीवित रहकर भी उनपिता माताके ऋणसे उद्धार नहीं होसके ॥ ५ ॥ जोपुत्र धन वा देहसे सामर्थ्य होकर माता पिताका पोषण नहींकरता, उसे परलोक में यमके दूत उसीका मांस भक्षण कराते हैं ॥ ६ ॥ समर्थ मनुष्य यदिवृद्ध पिता, माता, साध्वीभार्या, शिशुसन्तान, ब्राह्मण और शरणागत मनुष्यका भरण पोषण नहीं करता वह जीताहुआमुर्दा है ॥७॥ अतएव हमारे इतने दिन व्यर्थही वीतगये, हम समर्थ होकर भी कंसके भयसे नित्यभीत चित्तहो आपकी सेवा न करसके ॥ ८ ॥ अतएव हे पिता ! हे माता ! हमको क्षमाकरो हम पराधीन होकर आपकी सेवा नहीं करसके, दुष्ट कंससे हमने अनेक कष्टपाये हैं ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे राजन् ! वसुदेव और देवकी—माया मनुष्य विश्वात्मा भगवान् की ऐसी बातोंसे मोहितहो उनको गोदमें ले और आलिंगनकर परमानन्द से पुलकित होगये ॥ १० ॥ आंसुओं से कंठपूर्ण होगया । स्नेह के पाशसे बंध और मोहितहो उनको आंसुओं की धारासे सींचनेलगे,–कुछभी न कहसके ॥ ११ ॥ भगवान देवकीनंदन नें इस प्रकार से पिता माताको धैर्यबंधाय, मातामह उग्रसेनको यदुओं के राज सिंहासन पर बिठाया ॥ १२ ॥ और कहनेलगे कि–हे महाराज ! हम आपकी प्रजा हैं, हमें आज्ञाकरो । ययातिके शापके कारण यदुगण राज्यासन पर नहीं बैठसकते ॥ १३ ॥ मैं सेवक होकर आपके निकट रहूंगा, दूसरे राजाओं की बात दूररही, देवता भी शिरझुकाकर आपको भेटेंदगे ॥१४॥ हे भरतनंदन ! विश्वकर्त्ता श्रीकृष्णजी के जातिवाले और संबंधी, यदु, वृष्णि, अंधक, मधु, दाशार्ह, और कुकुरादि कंस के भय से दूरदेशों में जाय अत्यंत क्लेश भोगरहे थे । उन्हों ने उनकों आदर पूर्वक बुलाय धनद्वारा संतुष्टकर उनको उनके घरोंमें बसाया ॥ १५—१६ ॥ राम, कृष्णके भुज बलसे रक्षित होकर उनके समस्त मनोरथ सिद्धहुए । वह राम कृष्णद्वारा संताप रहित होगये और निरंतर श्रीकृष्णजी के प्रफुल्लित, श्रीयुक्त, सदय हास्य और कटाक्ष से शोभित मुख देखकर आनंद से अपने २ घरों समय बितानेलगे ॥ १७—१८ ॥ वहां वृद्धभी वारंवार नत्रोंद्वारा श्रीकृष्णजी

स्तोऽसौ मुकुन्दस्य मुखाम्बुजसुधां मुहुः ॥ १९ ॥ अथनन्दं समासाद्य भगवान्देवकीसुतः । संकर्षणश्च राजेन्द्र परिष्वज्येदमूचतुः ॥ २० ॥ पितर्युवाभ्यां स्निग्धाभ्यां पोषितौ लालितौ भृशम् । पित्रोरभ्यधिका प्रीतिरात्मजेष्वात्मनोऽपिहि ॥ २१ ॥ स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत् । शिशून्बन्धुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोषरक्षणे ॥२२॥ यात यूयं व्रजं तात वयं च स्नेहदुःखितान् । ज्ञातीन्वो द्रष्टुमेष्यामो विधाय सुहृदां सुखम् ॥ २३ ॥ एवं सान्त्वय्य भगवान्नन्दं सव्रजमच्युतः । वासोऽलंकारकुप्याद्यैरर्हयामास सादरम् ॥ २४ ॥ इत्युक्तस्तौ परिष्वज्य नन्दः प्रणयविह्वलः ॥ पूरयन्नश्रुभिर्नेत्रे सह गोपैर्व्रजं ययौ ॥ २५ ॥ अथ शूरसुतो राजन्पुत्रयोः समकारयत् । पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद्द्विजसंस्कृतिम् ॥ २६ ॥ तेभ्योऽदाद्दक्षिणा गावो रुक्ममालाः स्वलंकृताः । स्वलंकृतेभ्यः संपूज्य सवत्साः क्षौममालिनीः ॥ २७ ॥ याः कृष्णरामजन्मर्क्षे मनोदत्ता महामतिः । ताश्चाददादनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हृताः ॥ २८ ॥ ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ । गर्गाद्यदुकुलाचार्याद्गायत्रं व्रतमास्थितौ ॥२९॥ प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ ॥ नान्यसिद्धामलज्ञानं गूहमानौ नरेहितैः ॥ ॥३०॥ अथो गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः । काश्यं सान्दीपनिं नाम ह्यवन्तिपुरवासिनम् ॥३१॥ यथोपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम् । ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ ॥ ३२ ॥ तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः ॥ प्रोवाच

के मुख कमल रूप अमृतको पीकर युवा और अत्यंत बलवान होगए ॥ १९ ॥ हे राजेन्द्र! अनंतर भगवान् देवकीनंदन और रामने नंदराय के पास आय आलिंगन करके कहा कि—॥ २० ॥ हे पिता! आपने स्नेह पूर्वक बहुत कालतक हमारा पोषण और पालन किया और माता पितासे भी अधिक आपने हमपर प्रीति रक्खी ॥ २१ ॥ अपनी देहसे भी अधिक पुत्रके ऊपर माता पिताका स्नेह रहता है। पोषण से असमर्थ, बन्धुओं से छोड़हुए पुत्रोंका जो पालन करता है वही पिता माता है ॥ २२ ॥ हे पिता! इस समय आप व्रजको जाओ। मैंभी अपने आत्मीयजनों को सुखदे, स्नेह से दुःखित ज्ञातिवाके और आपके दर्शनोंको आऊंगा ॥ २३ ॥ भगवान अच्युत नें व्रजवासियों समेत नंदरायको इसप्रकार से सांत्वना दे वस्त्र, अलंकार और कांस्यादि पात्रों से आदर उनकी पूजाकी ॥ २४ ॥ नंदराय यह बात सुन स्नेह से विह्वल होगए, और राम कृष्ण का आलिंगनकर आंसू बहाते हुए गोपोंके साथ व्रजको गये ॥ २५ ॥ हे राजन्! अनन्तर वसुदेवजी ने गर्गाचार्य और ब्राह्मणों द्वारा दोनों पुत्रों का यथाविधि से उपनयन संस्कार कराया ॥ २६ ॥ और उन सब ब्राह्मणों को भलीभांति से अलकृत कर, अर्चना पूर्वक सोने की मालाओं स विभूषित, भली प्रकार से सजीहुई, बछड़ोंयुक्त, रेशमी वस्त्र पहिनाय गौएं दक्षिणा में दीं ॥ २७ ॥ वसुदेवजीने राम कृष्ण के जन्म समयमें मन २ में जो गायें दान कीथीं, दुष्ट कंसने जानकर उन सबका अधर्मसे हरण करलिया। इससमय उसका स्मरण होतेही राजगोष्ठसे उत्तमही धेनु मंगा कर ब्राह्मणोंकोदीं ॥ २८ ॥ तदनन्तर सुव्रत राम कृष्णने यदुकुलके आचार्य गर्गद्वारा उपनयन संस्कारसे संस्कृतहो द्विजत्व प्राप्तकर ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया ॥ २९ ॥ यद्यपि यह दोनों भाई जगदीश्वर सर्व विद्याओं के उत्पादक और सर्वज्ञथे तो भी मनुष्य लीलासे स्वत. सिद्ध ज्ञान को गुप्त रखतेथे ॥ ३० ॥ इससमय गुरुकुलमें वास करनेकी इच्छासे दोनो भाई उज्जैन निवासी काश्यप गोत्रज सांदीपन नामक मुनिके निकट गए ॥ ३१ ॥ सब इन्द्रियोंका दमनकर प्रीतिपूर्वक गुरुभक्ति करनेलगे। बहुतोंको इसप्रकारकी शिक्षादी कि—गुरुकी सेवा किसप्रकार स करना चाहिये। इसप्रकार वशीभूत और भक्तियुक्तहो वह भक्ति भाव से देवता की समान गुरू की सेवा

वेदानखिलान्साङ्गोपनिषदो गुरुः ॥ ३३ ॥ सरहस्यंधनुर्वेदं धर्मान्न्यायपथांस्तथा।
तथाचान्वीक्षिकींविद्यां राजनीतिंचषड्विधाम् ॥ ३४ ॥ सर्वंनरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्या
प्रवर्तकौ। सकृन्निगदमात्रेणतौ संजगृहतुर्नृप ॥३५॥ अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या संयतौ
तावतीःकलाः। गुरुदक्षिणयाऽऽचार्यं छन्दयामासतुर्नृप ॥ ३६ ॥ द्विजस्तयोस्तंम-
हिमानमद्भुतंसंलक्ष्यराजन्नतिमानुषींमतिम्। संमन्त्र्यपत्न्यासमहार्णवेमृतंबालंप्र-
भासेवरयाम्बभूवह ॥ ३७ ॥ तथेत्यथारुह्यमहारथौरथंप्रभासमासाद्यदुरन्तविक्र
मौ। वेलामुपव्रज्यनिषीदतुःक्षणंसिन्धुर्विदित्वाऽर्हणमाहरत्तयोः ॥ ३८ ॥ तमाह
भगवानाशुगुरुपुत्रःप्रदीयताम्। योऽसाविहत्वयाग्रस्तोबालकोमहतोर्मिणा॥ ३९ ॥
समुद्र उवाच ॥ नैवाहार्षमहंदेव दैत्यःपञ्चजनोमहान्। अन्तर्जलचरःकृष्णशंख
रूपधरोऽसुरः ॥ ४० ॥ आस्तेतेनाहृतोनूनंतच्छ्रुत्वासत्वरंप्रभुः।जलमाविश्यतंहत्वा
नापश्यदुदरेऽर्भकम् ॥ ४१ ॥ तदङ्गप्रभवंशंखमादायरथमागमत्।ततःसंयमनींनाम
यमस्यदयितांपुरीम् ॥ ४२ ॥ गत्वाजनार्दनःशंखंप्रदध्मौसहलायुधः।शंखनिर्ह्राद
माकर्ण्यप्रजासंयमनोयमः ॥ ४३ ॥ तयोःसपर्यांमहतींचक्रेभक्त्युपबृंहिताम्। उवा
चावनतःकृष्णंसर्वभूताशयालयम् ॥ लीलामनुष्यहेविष्णोयुवयोःकरवामकिम् ॥
४४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गुरुपुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबन्धनम्। आनयस्वमहा
राजमच्छासनपुरस्कृतः ॥ ४५ ॥ तथेतितेनोपानीतंगुरुपुत्रंयदूत्तमौ। दत्त्वास्वगुर

करनेलगे ॥ ३२ ॥ द्विजवर सांदीपन उनकी शुद्ध भक्तियुक्त सेवासे संतुष्ट हुये तथा उनको अंग और उपनिषद समेत सब वेदोंकी शिक्षादी ॥ ३३ ॥ राम कृष्णने उनके निकट मन्त्र और देवता ज्ञानसहित धनुर्वेद विविध धर्म, नीतिमार्ग, आन्वीक्षिकीविद्या और षड्प्रकारकी राजनीति कीभी शिक्षापाई ॥३४॥ हेराजन्! सब विद्याओं के प्रवर्तक उन दोनों देवश्रेष्ठ भाइयोंने केवल एकबार सुनकरही समस्त विद्या पढ़ली ॥ ३५ ॥ इसप्रकारसे उन्होंने जितेन्द्रिय होकर केवल ६४ दिनों में ६४ कला सीखलीं। हेराजन्! इसप्रकारसे उन्होंने समस्त विद्या प्राप्तकर अन्तमें गुरूसे गुरुद-क्षिणा ग्रहण करनेको कहा ॥ ३६ ॥ प्रभास क्षेत्रमें महासागर के बीच द्विजवर सांदीपनका पुत्र मरगयाथा इससमय उन्होंने राम कृष्ण की अद्भुत महिमा और चमत्कारिक बुद्धिको देख स्त्रीके परामर्श से उसी पुत्रको दक्षिणा स्वरूप में मांगा ॥ ३७ ॥ महारथ अतिपराक्रमी राम कृष्ण तथा-स्तु,, कह रथपर सवारहो प्रभास तीर्थमें आय समुद्रके किनारे कुछ देरतक खडेरहे समुद्रने उन्हें आया जान वहां आय उनकी पूजाकी ॥ ३८ ॥ भगवान् ने उससे कहा कि—तुमनें जिस को इसस्थान से बड़ी २ तरंगों द्वारा ग्रास कियाहै मेरे उसी गुरुपुत्रको शीघ्र लेआओ॥३९॥ समुद्र ने कहा कि—हेदेव! मैंने उस बालकका हरण नहींकिया पंचजन नामक एक महासुर शंखरूप धा-रण कर मेरे जलमें वास करताहै॥४०॥ उसीने निश्चय बालकका हरण कियाहोगा यह बातसुन प्रभुने तत्काल जलमें प्रवेशकर पंचजनको मारडाला किन्तु उसके पेटमें बालक को न देखा ४१॥ तदनन्तर उसके अंगसे उत्पन्न हुए शंखकोले फिर रथमें लौटआये और बलभद्रजी के साथ सं-यमनी नामक यमकी प्यारी पुरीमें आकर शंख बजाया,॥४२॥हेराजन्! प्रजासंहारक यमनें उस प्रचंड शंखके शब्दको सुन वहांपर आय उनकी बड़ी पूजाकर और शिर झुकाय सर्व प्राणियों के अन्तर्यामी श्रीकृष्णजीसे कहा। कि—हेप्रभो! आप दोनोंजन साक्षात् विष्णुहो लीलाहीके निमित्त पृथ्वीपर मनुष्य रूपसे अवतीर्ण हुएहो। मैं आपका कौनसा कार्यकरूं आज्ञा करिये ४३—४४॥ भगवान् ने कहा कि—हेमहाराज! मेरागुरुपुत्र अपने कर्म बन्धननोंसे इसस्थानपर आयाहै इससमय मेरी आज्ञा को मान उसको लेआओ ॥ ४५ ॥ "जो आज्ञा,, यह कहकर यमराज गुरुपुत्र

वेमूर्पोद्यमीप्स्येतितमूचतुः॥४६॥गुरुरुवाच॥सम्यक्सम्पादितोवत्सभवद्भ्यांगुरुनिष्क्रयः।कोनुयुष्मद्विधगुरोःकामानामवशिष्यते॥४७॥गच्छतंस्वगृहंवीरौकीर्तिर्वामस्तुपावनी। छन्दांस्ययातयामानिभवन्त्विहपरत्रच ॥ ४८ ॥ गुरुणैवमनुज्ञातौरथेनानिलरंहसा। आयातौस्वपुरंतातपर्जन्यनिनदेनवै ॥ ४९॥समनन्दन्प्रजाःसर्वादृष्ट्वारामजनार्दनौ ।अपश्यन्त्योबह्वहानिनष्टलब्धधनाइव ॥ ५० ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशमस्कन्धेपञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४५॥

श्रीशुकउवाच ॥ वृष्णीनांप्रवरोमन्त्री कृष्णस्यदयितःसखा। शिष्योबृहस्पतेःसाक्षादुद्धवोबुद्धिसत्तमः ॥ १ ॥ तमाहभगवान्प्रेष्ठं भक्तमेकान्तिनंक्वचित् । गृहीत्वापाणिनापाणिं प्रपन्नार्तिहरोहरिः ॥२॥ गच्छोद्धवव्रजंसौम्य पित्रोर्नौप्रीतिमावह । गोपीनांमद्वियोगाधिं मत्सन्देशैर्विमोचय ॥ ३ ॥ तामन्मनस्कामत्प्राणामदर्थेत्यक्तदैहिकाः । येत्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थेतान्बिभर्म्यहम् ॥ ४ ॥ मयिताःप्रेयसांप्रेष्ठे दूरस्थेगोकुलस्त्रियाः। स्मरन्त्योङ्गविमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्यविह्वलाः॥५॥धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायःप्राणान्कथंचन । प्रत्यागमनसन्देशैर्बल्लव्योमेमदात्मिकाः ॥ ६ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ इत्युक्तउद्धवो राजन्संदेशंभर्तुरादृतः । आदायरथमारुह्य प्रययौनन्दगोकुलम् ॥ ७ ॥ प्राप्तोनन्दव्रजंश्रीमान्निम्लोचतिविभावसौ । छन्नयानः

को लेआये । राम और कृष्णजी उस बालक को ले गुरुके निकट आय पुत्रकोदे गुरुसे कहने लगे कि—अब क्या आज्ञाहै ॥ ४६ ॥ गुरूने कहा कि—हेवत्स ! तुम दोनोंने गुरुदक्षिणा भलीप्रकारसे दी जो तुम्हारी समान शिष्यके गुरूहैं उनकी कौनसी अभिलाषा शेष रहतीहै ॥४७॥ हेवीरद्वय ! घरको जावो । तुम्हारा लोकपावन यश होवे और इसलोक तथा परलोकमें तुम्हारे वेद सदा सफलहों ॥ ४८ ॥ हेराजन् ! गुरूके इसप्रकारसे कहनेपर राम और केशव उनकी आज्ञासे वायु की समान वेगवाले रथ पर सवारहो अपने नगरमें आये ॥ ४९ ॥ प्रजागण ने बहुतसमय से राम और कृष्णको न देखाथा, इससमय उनको देखकर जैसे गयाहुआ धन प्राप्तहो ऐसा आनन्द उनको प्राप्त हुआ ॥ ५० ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! श्रीकृष्ण जी के प्यारे मित्र साक्षात् बृहस्पतिजीके शिष्य बुद्धिमान उद्धवजी वृष्णि वंशियोंके श्रेष्ठ मंत्रीथे ॥ १ ॥शरणागतोंके दुःख दूर करनेवाले भगवान् केशव प्यारे भक्त उद्धवके हाथमें हाथ रखकर कहने लगे कि– ॥ २ ॥ हेसौम्य उद्धव ! शीघ्र ब्रजमें जाकर हमारे माता पिता को आनन्ददो और हमारे विरहसे गोपियोंको जो सन्ताप उत्पन्न हुआहै मेरे सम्वाद द्वारा उसको नाश करआओ ॥ ३ ॥ गोपियोंका मन मुझहीमें अर्पितहै मैं ही उनका प्राणहूं । मेरे निमित्त उन्होंने अपने पति पुत्रादि छोडदिये और प्रिय आत्मा मुझको मन द्वारा प्राप्तहुई । जिसने मेरे निमित्त इसलोक और परलोक का सुख छोडदिया मैं निरंतर उसको सुखी करता रहताहूं ४ ॥ हेउद्धव ! गोपियें सब पदार्थोंसे मुझे अधिक प्यारीहैं । मेरे दूरहोनेसे मेरा स्मरण कर । विरहसे उत्पन्नहुई उत्कण्ठासे व्याकुलहो मोहित होतीहैं ॥ ५ ॥ गोकुलसे मथुरा आनेके समय मैंने उनसे यह कहकर । कि—शीघ्र आऊंगा। उन्हें धीरज बँधायाथा, । इसी धीरज से वह अबतकभी बडे कष्टसे प्राण धारण कररहीहैं । उनकी आत्मा मुझपरही है इसहीकारण बोध होताहै कि–वह अत्यन्त कष्टसे जीवन धारण कररही हैं नहीं तो अपनी २ देहमें उनका आत्मा होनसे इतने दिनोंमें वह विरहानल से दग्ध होजातीं ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हेराजन् ! उद्धव इसबातको सुनकर संतुष्टहुये और आदरपूर्वक स्वामीके समाचारको ले रथपर बैठ नन्द के गोकुलकोचले ॥ ७ ॥ सूर्यास्त होते २ वह नन्दरायके ब्रजमें पहुचे । उससमय सब पशु गोष्ठको

प्रविशन्गोपशूनांखुररेणुभिः ॥ ८ ॥ वासितार्थेऽभियुध्यद्भिर्नादितंशुष्मिभिर्वृषैः ।
धावन्तीभिश्चवास्राभिरुधोभारैः स्ववत्सकान् ॥ ९ ॥ इतस्ततोऽविलंघद्भिर्गोवत्सै
र्मण्डितंसितैः । गोदोहशब्दाभिरवंवेणूनांनिःस्वनेनच ॥ १० ॥ गायन्तीभिश्चकर्मा
णिशुभानिबलकृष्णयोः । स्वलंकृताभिर्गोपीभिर्गोपैश्चसुविराजितम् ॥ ११ ॥ अग्न्य
र्कातिथिगोविप्रपितृदेवार्चनान्वितैः । धूपदीपैश्चमाल्यैश्चगोपावासैर्मनोरमम् १२ ॥
सर्वतः पुष्पितवनंद्विजालिकुलनादितम् । हंसकारण्डवाकीर्णैः पद्मषण्डैश्चमण्डि
तम् ॥ १३ ॥ तमागतंसमागम्यकृष्णस्यानुचरंप्रियम् । नन्दः प्रीतः परिष्वज्यवासु
देवधियाऽर्चयत् ॥ १४ ॥ भोजितंपरमान्नेनसंविष्टंकशिपौसुखम् । गतश्रमंपर्यपृच्छ
त्पादसंवाहनादिभिः ॥ १५ ॥ कच्चिदङ्गमहाभागसखानः शूरनन्दनः । आस्तेकु
शल्यपत्याद्यैर्युक्तोमुक्तः सुहृद्वृतः ॥ १६ ॥ दिष्ट्याकंसोहतः पापः सानुगः स्वेन
पाप्मना । साधूनांधर्मशीलानांयदूनांद्वेष्टियः सदा ॥ १७ ॥ अपिस्मरतिनः कृष्णो
मातरंसुहृदः सखीन् । गोपान्व्रजंचात्मनाथंगावोवृन्दावनंगिरिम् ॥ १८ ॥ अप्या
यास्यतिगोविन्दः स्वजनान्सकृदीक्षितुम् । तर्हिद्रक्ष्यामतद्वक्त्रंसुनसंसुस्मितेक्षण
म् ॥ १९ ॥ दावाग्नेर्वातवर्षाच्चवृषसर्पाच्चरक्षिताः । दुरत्ययेभ्योमृत्युभ्यः कृष्णे
नसुमहात्मना ॥ २० ॥ स्मरतांकृष्णवीर्याणिलीलापाङ्गनिरीक्षितम् । हसितंभाषितं
चांगसर्वानःशिथिलाःक्रियाः ॥ २१ ॥ सरिच्छैलवनोद्देशान्मुकुन्दपदभूषितान् ।

लोट रहेथे । उनके खुरोंकी उड़ीहुई धूलसे उनका रथ आच्छादित होगया ॥ ८ ॥ ऋतुमें पुष्पवती गायों के निमित्त वृषगण मतवाले होकर शब्द कररहेथे थनोंके भारसे बोझिल होकर भी गायें अपने बच्चोंके सामने वेगसे दौड़ी आरहीथीं ॥ ९ ॥ और श्वेतवर्ण के बछड़े इधर उधर कूदफांद कर ब्रजकी शोभा को बढ़ारहेथे गो दोहन और वेणुके शब्दसे ब्रजके चारोंओर एकप्रकारका शब्द होरहाथा ॥ १० ॥ भलीप्रकारसे अलङ्कृत गोप और गोपगण बलराम और श्रीकृष्णजीके शुभ चरित्रोंका गानकररहेथे उनके द्वारा ब्रजकी शोभा औरभी बढ़रहीथी॥११॥गोपोंके घरोंमें अग्नि सूर्य अतिथि, गौ, ब्राह्मण, पितृयुक्त और देवताओं की पूजा होरहीथी उन घरोंको धूप व दीप मालासे युक्त देखनेपर अति सुन्दर शोभा होतीथी ॥ १२ ॥ ब्रजके चारोंहीओर के फूलेहुए उपवनों में पक्षी और भौरोंका शब्द होरहाथा तथा हंस और कारंडवयुक्त कमलोंसे उनकी और भी सुंदरता बढ़रहीथी ॥ १३ ॥ हेराजन् ! श्रीनन्दराय श्रीकृष्णजी के प्रियसखा उद्धवको आतेदेख आनन्द से उनके निकट आए और उनसे मिल उन्हें श्रीकृष्णही जान उनकी पूजाकी ॥ १४ ॥ तदनतर उद्धवजी श्रेष्ठ अन्न का आहारकर शय्यामें सुखपूर्वक लेटरहे और नन्दजी उनके पैर चापनेलगे श्रम दूरहोनेके उपरांत नन्दजीने उनसे पूछा कि–१५ ॥ हेमहाभाग ! हमारे परममित्र वसुदेव बंधनसे छूटकर सुहृद्गण और पुत्रादिकों के साथ कुशलसे तो हैं ॥ १६ ॥ यह अच्छाहुआ कि दुष्ट कंस जो सर्वदा धर्मशील साधुओं और यदुवंशियों से द्वेष रखताथा वह अपने पापोंसेही अनुजों समेत मारागया ॥ १७ ॥ कृष्ण क्या मेरा सुहृदों का सखाओं का गोपों का वह स्वय जिस के स्वामी हैं उस गोकुलका वृन्दावन का और पर्वतका कभी एकबार भी स्मरण करतेहैं, ॥ १८ ॥ गोविंद क्या स्वजनोंके देखनेको यहां एकबारभी न आवेंगे ? उनका मुखसुन्दर नासिका वाला मन्दमुसकान युक्त कब देख पाऊंगा ? ॥ १९ ॥ महात्मा श्रीकृष्ण ने दावाग्नि, वात, वर्षा सर्प, वृष और दूसरी मृत्युकी घटनाओं से मेरी रक्षाकीथी ॥ २० ॥ हेउद्धव ! कृष्ण के नानापराक्रम लीलापूर्वक बक्र दृष्टि, हास्य, और बाक्य का स्मरण करके हम सब कामोंको भूल जातेहैं, २१ ॥

आक्रीडानीक्षमाणानांमनोयातितदात्मताम्॥ २२ ॥ मन्येकृष्णंचरामंचप्राप्ताविह सुरोत्तमौ। सुराणांमहदर्थायगर्गस्यवचनंयथा ॥ २३ ॥ कंसंनागायुतप्राणंमल्लौ गजपतिंतथा । अवधिष्टांलीलयैवपशूनिवमृगाधिपः ॥ २४ ॥ तालत्रयंमहासारं धनुर्यष्टिमिवेभराट्। बभञ्जैकेनहस्तेनसप्ताहमदधाद्गिरिम् ॥ २५॥ प्रलम्बोधेनु कोऽरिष्टस्तृणावर्तोबकादयः। दैत्याःसुरासुरजितोहतायेनेहलीलया ॥ २६ ॥ श्री शुक उवाच॥ इतिसंस्मृत्यसंस्मृत्यनन्दःकृष्णानुरक्तधीः। अत्युत्कण्ठोऽभवत्तूष्णीं प्रेमप्रसरविह्वलः ॥ २७ ॥ यशोदावर्ण्यमानानिपुत्रस्यचरितानिच । शृण्वन्त्य श्रूण्यवास्राक्षीत्स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ २८ ॥ तयोरित्थंभगवतिकृष्णेनन्दयशोदयोः। वीक्ष्यानुरागंपरमंनन्दमाहोद्धवोमुदा ॥ २९ ॥ उद्धव उवाच ॥ युवांश्लाघ्यतमौनूनं देहिनामिहमानद । नारायणेऽखिलगुरौयत्कृतामतिरीदृशी ॥ ३० ॥ एतौहिविश्व- स्यचबीजयोनीरामोमुकुन्दःपुरुषःप्रधानम्। अन्वीयभूतेषुविलक्षणस्यज्ञानस्यचेशा तइमौपुराणौ ॥ ३१ ॥ यस्मिन्जनःप्राणवियोगकालेक्षणंसमावेश्यमनोविशुद्धम् । निर्हृत्यकर्माशयमाशुयातिपरांगतिंब्रह्ममयोऽर्कवर्णः ॥ ३२ ॥ तस्मिन्भवन्तावखि- लात्महेतौनारायणेकारणमर्त्यमूर्तौ।भावंविधत्तांनितरांमहात्मन्किंवाऽवशिष्टंयुवयोः सुकृत्यम् ॥ ३३ ॥ आगमिष्यत्यदीर्घेणकालेनव्रजमच्युतः । प्रियंविधास्यतेपित्रो र्भगवान्सात्वतांपतिः ॥ ३४ ॥ हत्वाकंसंरङ्गमध्येप्रतीपंसर्वसात्वताम् । यदाहवः

मुकुन्दके पद चिह्नोंसे भूषित नदी, पहाड़, बन, और क्रीडाके स्थानको देखकर हमारा मन तन्मय हो उठता है ॥ २२ ॥ महामुनि गर्ग के कथनानुसार, मैं जानताहूं कि—श्रीकृष्ण और बलराम दोनों देव श्रेष्ठहैं; देवताओं के बड़े कार्य के पूर्ण करने के निमित्त पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं ॥२३॥ दशसहस्र हाथियों के बलवाले कंसको, उसके दोनों मल्लोंको, और हाथीको उन्होंने ऐसे मार-डाला कि—जैसे सिंह पशुओंको मारडालता है ॥ २४ ॥ गजराज जैसे लाठीको तोड़डालता है कृष्ण ने तैसेही तीनताड़ लंबे महा कठिन धनुषको तोडडाला और इसीव्रज में सातदिन तक एक हाथपर पहाड़को धारण किया ॥ २५ ॥ प्रलम्ब, धेनुक, अरिष्ट, तृणावर्त्त, और बकआदि देव-ताओं के जीतनेवाले दैत्यगण भी उनके हाथसे सहजहीमें मारेगये ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि— हे राजन् ! कृष्णजीमें अनुरक्त चित्तवाले नंदजी बारबार उन सबचरित्रोंका स्मरण कर प्रेमसे गद्गद और अश्रुकण्ठहो चुपचाप होगये ॥ २७ ॥ पुत्रके वर्णन कियेहुए चरित्रोंको सुनते २ स्नेहमें बँधीहुई यशोदाके स्तनों से दूध टपकनेलगा । वह आंसुओंकी धारा बहाने लगीं ॥२८॥ भगवान् श्रीकृष्णजी पर नंद यशोदाका अत्यन्त अनुराग देख उद्धवजी आनन्दित होकर कहने लगे कि—॥२९॥ हे नारद ! इस लोकमें आप दोनोंमाणी निश्चयही सराहने योग्यहो क्योंकि अ-खिलगुरु नारायणमें आपकी इतनी बुद्धि है ॥ ३० ॥ राम और कृष्ण यह दोनों विश्वके बीज और उत्पत्ति के कारण हैं, वह दोनोंजन सब प्राणियों में प्रवेशकर, उन उपाधियोंसे पृथक् २ ज्ञात होते हैं, यही पुराण पुरुष जीवोंके नियन्ता भी हैं ॥ ३१ ॥ हे महात्मन् ! प्राण निकलने के समयमें मनुष्य क्षणमात्र भी जिनमें मन और बुद्धिको लगाय कर्म वासनाओंका दाहकर, ज्ञानी और शुद्ध सत्वमयहो परमगतिको प्राप्त होताहै ॥ ३२ ॥ उन सर्व के आत्मा और कारणरूप ने, प्रयोजनसे मनुष्यरूप धारण किया है, ऐसे परब्रह्ममें आप दोनों निरन्तर भाव रखतेहो अतएव अब आपका कौनसाकार्य शेषरहा ॥ ३३ ॥ सात्वतगण के अधिपति भगवान् थोड़ेही काल में आय पिता माताका कार्य पूराकरेंगे ॥ ३४ ॥ रंगभूमि में कंसको मार समस्त सात्वतगण के

समागत्यकृष्णः सत्यंकरोतिसत् ॥ ३५ ॥ मा खिद्यतमहाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णमंतिके। अन्तर्हृदिसभूतानामास्तेज्योतिरिवैधसि ॥ ३६ ॥ नह्यस्यास्तिप्रियः कश्चिन्नाप्रियो वाऽस्त्यमानिनः। नोत्तमोनाधमोवाऽपिसमानस्यासमोऽपिवा ॥ ३७ ॥ नमाताम पितातस्यनभार्यानसुतादयः। नात्मीयोनपरश्चापिनदेहोजन्मएवच ॥ ३८ ॥ नचा स्यकर्मवालोकेसदसन्मिश्रयोनिषु। क्रीडार्थःसोऽपिसाधूनांपरित्राणायकल्पते ॥ ३९ ॥ सत्त्वंरजस्तमइतिभजतेनिर्गुणोगुणान्। क्रीडन्नतीतोऽत्रगुणैःसृजत्यवतिहं-त्यजः ॥४०॥ यथाभ्रमरिकादृष्ट्याभ्राम्यतीवमहीयते। चित्तेकर्तरितत्रात्माकर्तेवाहं धियास्मृतः ॥ ४१ ॥ युवयोरेवनैवायमात्मजोभगवान्हरिः। सर्वेषामात्मजोह्यात्मा पितामातासईश्वरः ॥ ४२ ॥ दृष्टंश्रुतंभूतभवद्भविष्यत्स्थास्नुश्चरिष्णुमहदल्पकंच। विनाऽच्युताद्वस्तुतरांनवाच्यंसएवसर्वंपरमार्थभूतः ॥ ४३ ॥ एवंनिशासाब्रुवतो-र्व्यतीतानन्दस्यकृष्णानुचरस्यराजन्। गोप्यःसमुत्थायनिरूप्यदीपान्वास्तून्सम-भ्यर्च्यदधीन्यमन्थन् ॥ ४४ ॥ तादीपदीप्तैर्मणिभिर्विरेजूरज्जूर्विकर्षद्भुजकङ्कणस्रजः। चलन्नितम्बस्तनहारकुण्डलत्विषत्कपोलारुणकुंकुमाननाः ॥४५॥ उद्गायतीनाम रविन्दलोचनंव्रजाङ्गनानांदिवमस्पृशद्ध्वनिः। दध्नश्चनिर्मन्थनशब्दमिश्रितोनिरस्य तेयेनदिशाममङ्गलम् ॥ ४६ ॥ भगवत्युदितेसूर्येनन्दद्वारिव्रजौकसः। दृष्ट्वारथंशात

सामने कृष्णजीने आयकर आपसे जो कहाथा उसको वह सत्यकरेंगे ॥ ३५ ॥ इससमय आप दुःखित न होवें श्रीकृष्णजी को बहुत शीघ्र देखपावोगे। काठके मध्यमें जैसे अग्नि रहती है तैसे-वह सबप्राणियोंके हृदयके भीतर वासकरते हैं ॥ ३६ ॥ उनको अभिमान नहीं है वह सबकोही समान हैं। उनको कोई अत्यन्त प्रिय व अप्रिय, उत्तम व अधम नहीं है ॥ ३७ ॥ वह किसीके पिता, माता, भार्या, पुत्रादि, अपने, पराये, नहींहैं न उनके देहहै न जन्महै, और न कर्म है॥ ३८ यद्यपि उनके जन्म, कर्म नहीं हैं तौभी क्रीडाके निमित्त वह साधुओंके परिपालन करनेके कारण इसलोकमें देव, मत्स्य आदि योनियों में उत्पन्न होते हैं ॥ ३९ ॥ वह काढा रहित व निर्गुण हैं तौ भी क्रीडाकरके सत्त्व, रज और तम इन तीनगुणोंको धारण करते हैं और उन्हीं गुणोंद्वारा सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहारभी करते हैं ॥ ४० ॥ जैसे नेत्रोंमें भ्रांति उत्पन्न होनेसे पृथ्वी भी भ्रमण करती हुई जानपडती है, तैसेही चित्तके कर्म करतेहुएभी, उस चित्तमें आत्माके अध्यास होनेसे आत्माही कर्त्ता विचाराजाता है ॥ ४१ ॥ यह भगवान् हरि कृष्णजी केवल आपकेही पुत्र नहींहैं वरन वह सबके पुत्र, आत्मा, पिता, माता, और ईश्वर हैं ॥ ४२ ॥ जो देखने औरसुनने में आता है, भूत, भविष्यत्, वर्तमान, स्थावर, जंगम, बडा, छोटा कोई भी पदार्थ भगवान बिना नहीं है वेही सर्वरूप और परमार्थ स्वरूप हैं ॥ ४३ ॥ हेराजन्! कृष्णजी के प्यारे सखा उद्धव ने नन्दजी से ऐसी बातें कहते २ उस रात्रिको बिताया रात्रि के अन्त में गोपियां उठकर दीपक जलाय, शरीर आदि का मार्जन कर दही मथने लगीं ॥ ४४ ॥उनके मुख में अरुणवर्ण का केसर था और कपोल कुण्डलों की किरणों से प्रकाशित होरहेथे। उन के आभूषणों की मणियां दीपक की आभा से चमक उठीं। वह कंकण पहिनेहुए भुजाओं से मथन की रस्सी पकड कर खींचने लगीं उन के नितम्ब, स्तन और हार हिलनेलगे। इस से वह अत्यन्त शोभायमान हुई ॥ ४५ ॥ व्रजांगनागण श्रीकृष्णजी का यश गानेलगीं, गीतध्वनि दधिमंथन के साथ मिलकर आकाश का स्पर्श करनेलगी। उस ध्वनि से सबओर के अमंगल नष्ट होजातेथे ॥ ४६ ॥ अनन्तर भगवान सूर्य देव के उदय होने पर व्रज के द्वारमें सुवर्ण निर्मित रथको देख वह गोपियां आपस में कहने लगीं कि— ॥ ४७ ॥ " यह किसका है! कंसके कार्य को पूर्ण करनेवाला अक्रूर इस स्थान से

कौरभं कल्याणमिति वाशुभनम्॥४७॥ अक्रूरआगतः किंवा यः कंसस्यार्थसाधकः॥ येननीतोमधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः॥ ४८॥ किंसाधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रेतस्य निष्कृतिम्। इतिस्त्रीणां वदन्तीनामुद्धवोऽगात्कृताह्निकः॥ ४९॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

श्रीशुक उवाच। तंवीक्ष्यकृष्णानुचरंव्रजस्त्रियः प्रलम्बबाहुंनवकंजलोचनम्। पीताम्बरंपुष्करमालिनं लसन्मुखारविन्दं मणिमृष्टकुण्डलम्॥१॥ शुचिस्मिताः कोऽयमपीव्यदर्शनः कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः। इतिस्मसर्वाः परिवव्रुरुत्सुकास्तमुत्तमश्लोकपदाम्बुजाश्रयम्॥ २॥ तंप्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः। रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने विज्ञायसंदेशहरंरमापतेः॥३॥ जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदंसमुपागतम्। भर्त्रेहप्रेषितः पित्रोर्भवान्प्रियचिकीर्षया॥ ४॥ अन्यथागोव्रजेतस्य स्मरणीयंनचक्ष्महे। स्नेहानुबन्धोबन्धूनां मुनेरपिसुदुस्त्यजः॥५॥ अन्येष्वर्थकृतामैत्रीयावदर्थविडम्बनम्। पुम्भिःस्त्रीषुकृता यद्वत्सुमनस्स्विवषट्पदैः॥ ६॥ निःस्वंत्यजन्तिगणिका अकल्पंनृपतिंप्रजाः। अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम्॥ ७॥ खगावीतफलंवृक्षं भुक्त्वाचातिथयोगृहम्। दग्धंमृगास्तथारण्यं जारोभुक्त्वारतां स्त्रियम्॥८॥ इतिगोप्योहिगोविन्दे गतवाक्कायमानसाः। कृष्णदूतेव्रजंयाते उद्धवेत्यक्तलौकिकाः॥ ९॥ गायन्त्यःप्रियकर्माणि रुदत्यश्चगत-

श्रीकृष्णजी को मथुरा लेगया है क्या वही यहां पर फिरआया है? ॥ ४८ ॥ वह क्या हमारे मांस से परलोक गयेहुए अपने स्वामी की मृतकक्रिया करेगा? गोपांगनागण इसीप्रकार से कहरहीथीं-कि उसी समय उद्धव आह्निकक्रिया करके वहां आये ॥ ४९ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभाषाटीकायांषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! श्रीकृष्णजी के अनुचर उद्धवजी, किजनकी लम्बीभुजा हैं, नेत्रनवीन कमल की समान, पीताम्बर पहिनहुए, गले में वनमाला धारण किये, सुन्दर हास्ययुक्त कमल मुख और दोकुण्डलों से शोभायमान हैं, उनको देखकर सब व्रजनारियें अत्यन्त विस्मितहुई और "यह सुन्दर पुरुष कौन है? कहां से आया है? किस का दूत है? यह श्रीकृष्णजी के समान अलंकार धारण कियेहुए है" ऐसे परस्पर कहर कर प्रसन्न चित्त से पवित्रयश भगवान के कमलचरण के आश्रयी, उन उद्धवजी को चारों ओर से घेरलिया ॥ १। २ ॥ वह श्रीकृष्णजी का सम्वाद लेकर आये हैं यह जानकर विनय से शिरझुकाय, सलज्ज हास्ययुक्त, कटाक्ष और मीठे वाक्यादि द्वारा उनकी पूजा करनेलगीं, और उनको आसनपर बैठाय कुशल पूछकर कहा ॥ ३ ॥ हम जानती हैं कितुम श्रीकृष्णजी के सेवकहो; और इसी व्रज में आयेहो पिता माता केप्रसन्न करने को तुम्हारे प्रभु ने तुम्हें भेजा है ॥ ४ ॥ नहीं तो इसव्रज में उन माता पिता के अतिरिक्त और कुछ पदार्थ उन महापुरुषका स्मरणीय नहीं देखाजाता;-मुनिगणभी बन्धुओं के स्नेह को नहीं छोड़ सकते ॥ ५ ॥ और दूसरोंके साथ जो मित्रता है वह तो केवल कार्यहीके कारण है-वह तो केवल कार्य पूरे होनेतककी है; स्त्रियों के साथ पुरुष की मित्रता तो केवल फूलों के साथ भौंरे की मित्रता के समान है ॥ ६ ॥ वेश्या—निर्धन मनुष्यको, प्रजा—असमर्थ राजाको, विद्यापढाहुआ शिष्य—आचार्यको, और पुरोहित—दक्षिणादियेहुए यजमान को छोड़ देते हैं ॥७॥ पक्षीफलहीन वृक्षको, अतिथि—भोजन होतेही घरको, मृगगण—दग्धवनको जैसे छोड़ देते हैं तैसेही उपपति, भोगहोने के उपरांतही स्नेहवती स्त्रीको छोड देते हैं ॥ ८ ॥ हेराजन्! गोपियों के तन, मन और बचन श्रीकृष्णजीमेंही अर्पितथे; श्रीकृष्णजी के दूत उद्धवजी के आनेपर वह माधव के किशोर

ह्रियः। तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः॥१०॥काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्या-
यन्ती कृष्णसंगमम्। प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत्॥ ११ ॥ गोप्युवाच।
मधुप कितवबन्धो मा स्पृशांघ्रिं सपत्न्याः कुचविलुलितमालाकुंकुमश्मश्रुभिर्नः। वह-
तु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक्॥ १२॥
सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान्भवादृक्। प-
रिचरति कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥ १३ ॥ किमिह
बहु षडंघ्रे गायसि त्वं यदूनामधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम्। विजयसखसखीनां
गीयतां तत्प्रसंगः क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ॥ १४॥ दिवि भुवि च रसायां
काः स्त्रियस्तद्दुरापाः कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः। चरणरज उपास्ते य-
स्य भूतिर्वयं का अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥ १५ ॥ विसृज शिरसि पादं वे-
द्म्यहं चाटुकारैरनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात्। स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्य-
न्यलोका व्यसृजदकृतचेताः किंनु सन्धेयमस्मिन् ॥ १६ ॥ मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्य-
धे लुब्धधर्मा स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम्। बलिमपि बलिमत्त्वाऽवेष्टयद्
ध्वांक्षवद्यस्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥ १७ ॥ यदनुचरितलीलाकर्ण-

और बाल्यावस्था के सब चरित्रों का स्मरणकर, निर्लज्जहो, लौकिकव्यवहारों को छोड़, प्यारे के चरित्रों का गानकरते रोते २ इसप्रकारसे पूछनेलगीं ॥ ९ । १० ॥ प्यारे के संग का ध्यानकरते करते कोई गोपी भौंरे को देख, प्यारे ने इसको दूतबनाकर भेजा है;—ऐसी कल्पना करके कहने लगीं कि—॥ ११ ॥ हे धूर्तके बन्धु भौंरे ! मेरे चरणका स्पर्शनकर,क्योंकि देखती हैं कि-तेरेडाढ़ी मूछ सपत्नी के कुचों से मर्दित मालाकी केसर से रंगेहुए हैं, मधुपति उन्हीं मानवतियों को प्रसन्न रक्खें परन्तु यादवों की सभा में इसबात की अवश्य हँसी होती होगी जिस का तू ऐसादूत है ॥ १२ ॥ हे भृंग ! तेरीही समान दुष्ट कि—जो फूलकी सुगन्धि ले तत्कालही उसे परित्यागकरदेता है वैसाही तेरा स्वामी है, कि जिसने हमको केवल एकवार मोहित करनेवाला अपना अधरामृत पिलाय छोड़दिया। लक्ष्मी कैसे उनके चरणकमल की सेवा करती है ? अहो ! जानती हैं कि—भगवान की मिथ्याबातों से उनकाभी चित्त हरगया है ॥ १३ ॥ हेषट्पद ! हमने यदुपति का अनेकवार अनुभव किया है अतएव वह हमारेनिकट पुराने होगये; तब फिर बारम्बार उनकागान हमारे समीप क्यों करता है ? हम उनकी स्त्री नहीं है। जो श्रीकृष्णजी की नई सखियां हैं उन्हीं के निकट उनकागान कर; वह उनकी प्यारी हैं-उन के आलिंगन करने से उनके कुचों का ताप दूर होता है; वह तुझको इच्छित फल देगीं ॥ १४ ॥ स्वर्ग में, पृथ्वी में और रसातल में ऐसी कौन स्त्री है कि जिसको वह नहीं पासकते ? क्योंकि उनका कपट मनोहर हास्य और विलास ऐसाही है लक्ष्मी जिनके पदरजका सेवनकरती हैं; उनके निकट हमक्या वस्तु हैं ? किंतु जो दुःखी प्राणियों पर कृपाकरते हैं उन्हींको " उत्तम श्लोक " कहाजासकता है ॥ १५ ॥ मेरे पैरों पर शिर मतरख—यह क्यातूने श्रीकृष्णजी से शिक्षा पाई है ? दूतकर्म और बातें बना २ कर प्रार्थना करने में तू बड़ाही निपुण है हम तेरे सब ढंग जानती हैं। अहो ! कृष्णजी का क्या अपराध है ? यह बात न कहो ! देखो—जिसके निमित्त हमने पुत्र, पति, और परलोक को त्यागदिया वह ऐसा चंचल चित्त है कि—उसने हमको छोड़दिया । इससे वह क्या विश्वास योग्य होसकता है ? ॥ १६ ॥ वह ऐसा क्रूर है कि—रामावतार में इसने दाशरथि होकर व्याध की समान वानर राजावाली का संहार कियाथा स्त्री के वशीभूतहो शूर्पणखा को विरूप कियाथा, और वामनावतार में बलिका भोजनकर काकवत् आचरण कर उसकी बांधलिया—उसकी मित्रतासे कछभी प्रयोजन नहीं है ॥ १७ ॥ जिन्होंने जिन भगवान्

पीयूषबिंदुद्रुतककवनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः। सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीनावहवहवो विहंगा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥ १८ ॥ वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः । ददृशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्रस्मररुज उपमन्त्रिन्भण्यतामन्यवार्ता ॥ १९ ॥ प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग । नयसि कथमिहास्मान्दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वं सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते ॥ २० ॥ अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते स्मरति स पितृगेहान्सौम्य बन्धूंश्च गोपान् । क्वचिदपि स कथा नः किंकरीणां गृणीते भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत्कदा नु ॥२१॥ श्रीशुक उवाच । अथोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसाः । सान्त्वयन्प्रियसन्देशैर्गोपीरिदमभाषत ॥ २२ ॥ उद्धव उवाच । अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः । वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः ॥ २३ ॥ दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः । श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥ २४ ॥ भगवत्युत्तमश्लोके भवतीभिरनुत्तमा । भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥ २५ ॥ दिष्ट्या पुत्रान्पतीन्देहान्स्वजनान्भवनानि च । हित्वाऽवृणीत यूयं यत्कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥ २६ ॥ सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनामधोक्षजे । विरहेण महाभागा महान्मेऽनुग्रहः कृतः ॥ २७ ॥ श्रूयतां प्रियसन्देशो भवतीनां सुखावहः । यमादायागतो भद्रा अहं भर्तू रहस्करः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच । भवतीनां वियोगो मे नहि सर्वात्मना क्वचित्। यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही।

क कालारूप कर्णामृत 'के एक कणका एकबार भी पान'करलिया है वे राग, द्वेषादि को छोड भीख मागते फिरतेहैं परन्तु तो भी तो उनकी बातका प्रसंग हमसे नहीं छोडाजाता ॥ १८ ॥ जैसे अज्ञान कृष्णसार की स्त्रियां हरिणागण व्याधके गानेपर विश्वासकर दुःख पाती हैं तैसेही हमभी उन कपटी की बातपर विश्वासकर बारम्बार उनके नखस्पर्श से उत्पन्नहुए कामदेवकी पीडाका सहन करतीहै। अतएव हे दूत ! और कुछ कह ॥ १९ ॥ हे प्यारे के सखा ! क्या प्यारेने तुझे फिर भेजाहै? अहो ! तू हमारा पूज्य है क्या इच्छाहै कह । जिनका समागम छोडना अत्यंतकठिन है तू हमको इसदशामें उनके निकट कैसे लेजायगा—हमसे क्या लक्ष्मीतो उनके वक्ष स्थलमें सदा रहतीहैं—फिर हमारा क्या प्रयोजनहै ॥२० ॥ आर्यपुत्र इससमय क्या मथुरामें हैं हेसौम्य! कहो' वह कभी पिता माता घर बन्धु और गोपोंका स्मरण करते हैं ? इन दासियोंकी बात कभी कहते हैं ? अहो ! अगर चन्दनका सुगन्ध उन सुगन्धित बाहोंको वह कब हमारे मस्तकपर धरेंगे ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! उद्धवजीने इसप्रकार सुनकर श्रीकृष्ण दर्शनाभिलाषिणी गोपियोंको प्यारेके सन्देशसे धीरज बधाय इन बातोंके कहने का आरम्भ किया कि—२२ अहो ! तुम लोकमें पूजनीयहो क्योंकि भगवान् वासुदेवमें तुम अपना मन समर्पित कियेहो २३॥ दान,व्रत, तपस्या, होम, जप, वेदाध्ययन,इन्द्रिय दमन और नानाप्रकार के मांगलिक अनुष्ठानों से श्रीकृष्णजी की भक्तिका साधन किया जासकताहै ॥ २४ ॥ यह अच्छाहुआ कि जो भक्ति मुनि लोगोंको भी दुर्लभहै भगवान् उत्तम श्लोकमें तुम्हारी श्रेष्ठ वही भक्ति प्रवाहित हुई है ॥ २५ ॥ भाग्यबलसे तुमने पुत्र, पति, देह, स्वजन और घरको छोडकर श्रीकृष्ण नामक परमपुरुष को स्वीकार कियाहै ॥ २६ ॥ तुमने भगवान की परमभक्ति प्राप्त की है । हेमहाभागगण ! तुम्हारे विरहने मेरे ऊपर अत्यन्त अनुग्रह किया, इसहीकारण मैं भगवत् प्राप्त मुख देखताहूं, ॥ २७ ॥ मैं प्रभुका गुप्तकार्य करनेको तुम्हारे प्यारेका संदेशा लेकर आया हूं उसको सुनो इससे तुमसुख पावोगी ॥ २८ ॥ देखो—श्री भगवान् ने कहा है कि तुम्हारे साथ मेरा कभी भी वियोग नहीं है;

तथाहं च मनःप्राणभूतेन्द्रियगुणाश्रयः ॥ २९ ॥ आत्मन्येवात्मनात्मानं सृजे हन्म्यनुपालये। आत्ममायानुभावेन भूतेन्द्रियगुणात्मना ॥३०॥ आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तोगुणान्वयः। सुषुप्तिस्वप्नजाग्रद्भिर्मायावृत्तिभिरीयते ॥ ३१ ॥ येनेन्द्रियार्थान्ध्यायेतमृषा स्वप्नवदुत्थितः। तन्निरुन्ध्यादिन्द्रियाणि विनिद्रःप्रत्यपद्यत ॥ ३२ ॥ एतदन्तःसमाम्नायो योगःसांख्यंमनीषिणाम्। त्यागस्तपोदमःसत्यं समुद्रान्ताइवापगाः ॥ ३३ ॥ यत्त्वहंभवतीनां वै दूरेवर्ते प्रियोदृशाम्। मनसःसन्निकर्षार्थं मदनुध्यानकाम्यया ॥ ३४ ॥ यथादूरचरेप्रेष्ठे मनआविश्यवर्तते ॥ स्त्रीणांचनतथाचेतः सन्निकृष्टेऽक्षगोचरे ॥ ३५ ॥ मय्यावेश्यमनःकृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्तियत्। अनुस्मरन्त्योमां नित्यमचिरान्मामुपैष्यथ ॥ ३६ ॥ यामयाक्रीडतारात्र्यां वनेऽस्मिन्व्रज आस्थिताः। अलब्धरासाःकल्याण्यो माऽऽपुर्मद्वीर्यचिन्तया ॥३७॥ श्रीशुकउवाच। एवंप्रियतमादिष्टमाकर्ण्य व्रजयोषितः। ताऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्सन्देशाऽऽगतस्मृतीः ॥ ३८ ॥ गोप्यऊचुः। दिष्ट्याऽहितोहतःकंसो यदूनांसानुगोऽघकृत्। दिष्ट्याऽऽप्तैर्लब्धसर्वार्थैः कुशल्यास्तेऽच्युतोऽधुना ॥ ३९ ॥ कच्चिद्गदाग्रजः सौम्य करोतिपुरयोषिताम्। प्रीतिंनः स्निग्धसव्रीडहासोदारेक्षणार्चितः ॥ ४० ॥ कथंरतिविशेषज्ञः प्रियश्चवरयोषिताम्। नानुबध्येततद्वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुपूजितः ॥ ४१ ॥

क्योंकि मैं सबका आत्मा हूं। जैसे पृथ्वी, जल, तेज और आकाश—यह सब महाभूत सब प्राणियों में स्थित हैं तैसेही मैं मन, प्राण, बुद्धि, इन्द्रिय और गुणोंका आश्रय हू ॥ २९ ॥ मैं भूत, इन्द्रिय, और गुणरूप अपनी मायाके प्रभाव के साथ अपने द्वाराही अपने में अपनको सृजता, पालता और संहार करता रहता हूं ॥ ३० ॥ आत्मा ज्ञानमय होने के कारण भिन्न है अतएव गुणों के साथ उसका संबंध नहीं है। वह शुद्ध है; सुषुप्ति स्वप्न और जागरण, नामक मनोवृत्ति द्वाराही विश्व तैजस और प्राज्ञरूप से प्रतीत होताहै ॥३१॥ जैसे निद्रासे उठाहुआ मनुष्य मिथ्या स्वप्नोंका ध्यान करता है, तैसेही जिसक द्वारा इन्द्रियें विषयों की चिंताकरती हैं और जिसके द्वारा इन्द्रियें क्षुभित होती हैं उस मनको आलस्य छोड़कर दमन करना चाहिये ॥ ३२ ॥ जैसेनदी समुद्रमें गिरती है, वैसेही वेद, अष्टांग योग, सांख्य, सन्यास, स्वधर्म, इन्द्रिय निग्रह, और सत्य इन सबका फलमनो निग्रहही है ॥ ३३ ॥ नेत्रोंका प्यारा मैं जोतुम से दूरवास करता हूं, इसका और कोई अभिप्राय नहीं है केवल तुम्हारा मन मुझमें लगजाय इसी लियेरहता हूं ॥ ३४ ॥ प्रियतम के दूर रहने से स्त्रियोंका चित्त जैसा उसमें लगारहता है निकट और आंखों के सामने रहने से उस प्रकार से नहीं लगता ॥ ३५ ॥ इसही कारण तुमसब कामना छोड़कर मुझमें मन लगाय नित्य मेरा ध्यानकर शीघ्रही मुझको प्राप्तहोगी ॥ ३६ ॥ हे कल्याणीगण! वृंदावन में रात्रिको मेरेसाथ क्रीडा करने में जो स्त्रियें अपने पतिआदि से रोकी जाकर मेरे साथ रास न करसकीं थीं, तो वह मेरे पराक्रम का विचार करती हुई शीघ्रही मुझको प्राप्तहुई ॥ ३७ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहाकि—हे राजन्! व्रजनारियें प्रियतमकी इस आज्ञाको सुन प्रसन्नहुई और प्रियतम ने जोसंदेशा कहला भेजाथा उससे पिछली बातोंका स्मरण होतेही गोपियें उद्धव जी से कहनेलगीं कि ॥ ३८ ॥ हे सौम्य! अच्छा हुआ कि यदुवंशियोंका दुःख दायीशत्रु कंस सेवकों समेत मरगया। श्रीकृष्णजी सब कामनाएं प्राप्तकर इस समय सुखसेतो हैं? यही परम सुखका विषय है ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्ण जी जोहमपर प्रीतिकरते थे, नगर नारियों परभी उनके सुंदर सलज्ज हास्य और उदार कटाक्ष विक्षेप द्वारा पूजितहो वैसीही प्रीतिकरते हैं ॥ ४० ॥ वह रतिके कार्य में बड़ेचतुर हैं फिर श्रेष्ठ स्त्रियोंके प्यारे और उनके हास्य, विलास से पूजित श्रीकृष्णजी उनपर कैसे अनुरक्त न होवेंगे ?

अपि स्मरति नः साधो गोविन्दः प्रस्तुतः क्वचित् । गोष्ठीमध्ये पुरस्त्रीणां ग्राम्याः स्वैरकथान्तरे ॥ ४२ ॥ ताः किं निशाः स्मरति यासु तदा प्रियाभिर्वृन्दावने कुमुदकुन्दशशांकरम्ये । रेमे क्वणच्चरणनूपुररासगोष्ठ्यामस्माभिरीडितमनोज्ञकथः कदाचित् ॥ ४३ ॥ अप्येष्यतीह दाशार्हस्तप्ताः स्वकृतया शुचा । संजीवयन्नु नो गात्रैर्यथेन्द्रो वनमम्बुदैः ॥ ४४ ॥ कस्मात्कृष्ण इहायाति प्राप्तराज्यो हताऽहितः । नरेन्द्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्वसुहृद्वृतः ॥ ४५ ॥ किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वा महात्मनः । श्रीपतेराप्तकामस्य क्रियेताऽर्थः कृतात्मनः ॥ ४६ ॥ परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिण्यप्याह पिंगला । तज्जानतीनां नः कृष्णे तथाऽप्याशा दुरत्यया ॥ ४७ ॥ क उत्सहेत संत्यक्तुमुत्तमश्लोकसंविदम् । अनिच्छतोऽपि यस्य श्रीरंगान्न च्यवते क्वचित् ॥४८॥ सरिच्छैलवनोद्देशा गावो वेणुरवा इमे । संकर्षणसहायेन कृष्णेनाचऽऽरिताः प्रभो ॥ ॥ ४९ ॥ पुनः पुनः स्मारयन्ति नन्दगोपसुतं बत । श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव शक्नुमः ॥ ५० ॥ गत्या ललितयोदार हासलीलावलोकनैः । माध्व्या गिरा हृतधियः कथं तं विस्मरामहे ॥ ५१ ॥ हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन । मग्नमुद्धर गोविन्द गोकुलं वृजिनार्णवात् ॥ ५२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततस्ताः कृष्णसन्देशैर्व्यपेतविरहज्वराः । उद्धवं पूजयाञ्चक्रुर्ज्ञात्वात्मानमधोक्षजम् ॥ ४३ ॥ उवास कतिचिन्मासान् गोपीनां विनुदन् शुचः । कृष्णलीलाकथां गायन्रमयामास गोकुलम् ॥ ५४ ॥ या

॥ ४० ॥ हे साधो ! हम ग्राम निवासिनी हैं, नगर नारियोंकी सभामें उपस्थित होकर वह कभी २ हमारा भी स्मरण करते हैं ॥४१॥ कुमुद, कुद और चन्द्रमा से शोभित हुए वृन्दावन के बीचजिन रात्रियों में रासमडली में प्यारियों के साथ विहार कियाथा-और बिहार के समय में उनके चरणों की नूपुरबजी थीं और हमने उनकी मनोहर कथाका गान कियाथा क्याकभी उन रात्रियों काभी वह स्मरण करते हैं ॥४३॥ उनके कारण हम नित्यशोक से संतप्त हुआ करती हैं इन्द्र जैस अमृत रूपीवर्षा करके गर्मी से तप्तवनको जीवित करता है, क्या वैसेही श्रीकृष्णजी भी यहांपर आयकर स्पर्शनादि द्वारा हमारे संतापको दूरकरेंगे ॥ ४४ ॥ और एक दूसरी गोपीने कहाकि—हे सखि ! श्रीकृष्णजी ने राज्यपाया है, शत्रुका मारा है और राज कन्याओं से विवाहकर सब बंधुओं से बेष्टितहो सुखसे विराजमान हैं, वह ऐसा ऐश्वर्य त्यागकर यहांपर क्यों आवेंगे ॥ ४५ ॥ और एक स्त्री ने कहाकि—हे सखि ! तुम नहीं जानतीं, श्रीकृष्णजी धीर व लक्ष्मीपति हैं, उन्हों ने अपने आपही सब काम किये हैं अतएव वह पूर्ण हैं हमवन वासियों की वह कौन इच्छापुरी करेंगे और राजकुमारी व दूसरी स्त्रियोंहीको क्या करेंगे ॥४६॥ पिंगला वेश्याने भीता कहा है--"कि आशाको छोड़ देनाही परम सुख है" हम यह जानती हैं परन्तु तोभी आशा कैसे छोड़सकती हैं श्रीकृष्ण जी पर हमारी इतनी आशा है कि वह नहीं छूटसकती ॥ ४७ ॥ जिन भगवान् की इच्छा रहते हुए भी लक्ष्मी उनके अंगसे कभी दूर नहीं होती, उनके एकांत की वार्ताको कौन छोड़सकता है ॥ ४८ ॥ हे प्रभो ! बलरामजी के साथ श्रीकृष्णजी ने जिनमें रमण कियाथा वेनदी, पर्वत, बन प्रदेश, गौ, वेणुनाद ॥ ४९ ॥ यह सब नंदनदनका स्मरण करवाते हैं उन स्थानों में उनके चरण चिह्न देखकर हमभी उनका विस्मरण नहीं करसकतीं ॥ ५० ॥ हे उद्धव ! श्रीकृष्णजी के ललित गति, उदार हास्य, लीला, अवलोकन और मधुर वाक्यों ने हमारे चित्तको हरण करलिया है; अतएव अब हम उसे कैसेभूलें ॥ ५१ ॥ हे कृष्ण ! हे रमानाथ ! हे व्रजनाथ ! हे आर्तिनाशन ! हे गोविंद ! एकबार आकर देखजाओ; गोकुल दुःख सागर में डूबगया है; इसका उद्धार करो ॥ ५२ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हे राजन् ! श्रीकृष्णजी के संवाद से गोपियों के विरह का तापदूर होगया । श्रीकृष्णजी भगवान् और आत्मा हैं यह विचारकर उद्धवजी की पूजाकी ॥५३॥

वन्त्यहानिनन्दस्य व्रजेऽवात्सीत्स उद्धवः । व्रजौकसांक्षणप्रायाण्यासन्कृष्णस्य वार्तया ॥ ५५ ॥ सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन्कुसुमितान्द्रुमान् । कृष्णंसंस्मारयन्रेमे हरिदासोव्रजौकसाम् ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वैवमादि गोपीनां कृष्णाऽऽवेशात्मविक्लवम् । उद्धवःपरमप्रीतस्ता नमस्यन्निदंजगौ ॥ ५७ ॥ एताःपरंतनुभृतोभुविगोपवध्वो गोविन्दएव निखिलात्मनिरूढभावाः । वाञ्छन्तियद्भवभियो मुनयोवयंचकिं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य॥५८॥क्वेमाःस्त्रियोवनचरीर्व्यभिचारदुष्टाःकृष्णेक्वचैषपरमात्मनिरूढभावः । नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षाच्छ्रेयस्तनोत्यगदराजइवोपयुक्तः५९॥नायंश्रियोऽङ्गउनितान्तरतेःप्रसादःस्वर्योषितां नलिनगन्धरुचांकुतोऽन्याः । रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठलब्धाशिषां य उदगाद्व्रजवल्लवीनाम् ॥ ६० ॥ आसामहोचरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपिगुल्मलतौषधीनाम् । यादुस्त्यजंस्वजनमार्यपथंच हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥ ६१॥ या वैश्रियाऽर्चितमजादिभिराप्तकामैर्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ॥ कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणारविन्दं न्यस्तंस्तनेषु विजहुःपरिरभ्यतापम् ॥ ६२ ॥ वन्देनन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः । यासांहरिकथोद्गीतं पुनातिभुवनत्रयम् ॥ ६३ ॥ श्रीशुकउवाच । अथगोपीरनुज्ञाप्य यशोदांनन्दमेवच । गोपानामन्त्र्यदाशार्हो यास्यन्नारुरुहेरथम् ॥ ६४ ॥ तंनिर्गतंसमासाद्य नानोपायनपाणयः । नन्दादयोऽनुरागेण

उद्धवजी गोपियों के शोक का नाश करते हुए कई महीने गोकुल में रहे और कृष्णजी के चरित्रों का गानकर २ गोकुलको आनंद दिया ॥ ५४ ॥ उद्धवजी जितने दिन नन्द रायके गोकुल में रहे श्रीकृष्णजी सम्बन्धी कथा वार्त्ता से व्रजवासियों को उतने दिन क्षण की समान व्यतीत हुए ॥ ५६ ॥ वह हरिभक्त उद्धवजी—नदी, वन; पर्वत द्रोणी और कुसुमित वन देख; व्रजवासियों को श्रीकृष्णजी का स्मरण कराय आनन्द से समय विताने लगे ॥ ५७ ॥ उद्धवजी श्रीकृष्णजी में लगहुए गोपियों के चित्तकी ऐसी कातरता देख अत्यन्त आनन्दितहो उन को प्रणामकर इसप्रकार कहनलगे कि—५८ ॥ पृथ्वी मण्डलमें इन्हीं गोपियोंने यथार्थ देह धारण की है, क्योंकि इन्होंने भगवान् में इसप्रकार का दृढ़ प्रेम जोड़ा है। यह प्रेम साधारण नहीं है संसार से डरहुए मुनि लोग मुक्ति प्राप्तिकी इच्छा से इसही प्रेम को कहतेहैं। भगवत चरित्रोंमें जिनका चित लगरहाहै उसका ब्राह्मण जन्म होनेसे क्या प्रयोजन ॥ ५९ ॥ कहा तो यह वनमें रहनेवाली व्यभिचार के दोषसे दूषित स्त्रियां और कहां श्रीकृष्णजी पर ऐसी दृढ़भक्ति अहो! अज्ञान मनुष्य भी यदि भक्ति करे तो ईश्वर उसको साक्षात् फल देतेहैं न जानकर भी अमृत पानसे कल्याणही होताहै ॥ ६० ॥ रासोत्सव में भगवान्ने अपना भुजदण्ड गोपियों के कण्ठमें डालकर जो कृपा उनपरकी वैसी कृपा श्रीहरिके वक्षःस्थल में वास करनवाली परमप्यारी लक्ष्मीजी को भी कभी नहीं प्राप्तहुई और न कमलकीसी सुगन्धि व कांतिवाली स्वर्गकी स्त्रियोंहीको वहप्राप्तहुई ॥६१॥ यह सब गोपियें नछोड़नयोग्य स्वजन और आर्यधर्म को छोड़कर वेद जिसका खोज करताहै उन भगवान् की सेवा करतीहैं, वृन्दावनमें जो गुल्म लता और औषधियें उनके चरणरजका सेवन करतीहैं उनमेंसे व्रजके बीच में भी कोई होजाऊं ॥६२॥ लक्ष्मीजी श्रीकृष्णजीके जिन चरण रजका सेवन करती हैं और ब्रह्मादि पूर्णकाम मुनिगण हृदयमें जिनकीपूजाकरतेहैं उन्हीं भगवान्के चरणकमलको रासमें स्तनोंपरधर आलिंगनकर इन्होंनेअपने सन्तापको दूरकियाथा॥६३॥ अतएवमें नन्दके व्रजकी रहनेवाली स्त्रियोंकी चरणरजको बारंबार प्रणाम करताहूं जिनका भगवत्संबंधी गान त्रिलोकी को पवित्र करताहै ॥६४॥ श्रीशुकदेवजी बोले

प्रावीचद्वमुखोचनाः ॥ ६५ ॥ मनसोवृत्तयोनःस्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः । वाचो
ऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥ ६६॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्रक्वापी-
श्वरेच्छया । मंगलाचरितैर्दानैरतिर्नः कृष्णईश्वरे ॥ ६७ ॥ एवंसभाजितोगोपैः कृ-
ष्णभक्त्या नराधिप । उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ॥ ६८ ॥ कृष्णाय
प्रणिपत्याऽऽहभक्त्युद्रेकंव्रजौकसाम् । वसुदेवाय रामाय राज्ञेचोपायनान्यदात्६९
इति श्रीमद्भा० महा० सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथविज्ञायभगवान्सर्वात्मासर्वदर्शनः । सैरन्ध्र्याः कामत
प्तायाः प्रियमिच्छन्गृहंययौ ॥ १ ॥ महार्होपस्करैराढ्यंकामोपायोपबृंहितम् । मुक्ता
दामपताकाभिर्वितानशयनासनैः । धूपैः सुरभिभिर्दीपैः स्रग्गन्धैरपि मण्डितम्
॥ २ ॥ गृहंतमायान्तमवेक्ष्यसाऽऽसनात्सद्यः समुत्थायहिजातसंभ्रमा । यथोपसं
गम्यसखीभिरच्युतंसभाजयामाससदासनादिभिः ॥३॥ तथोद्धवः साधुतयाऽभि
पूजितोन्यषीदद्वुर्व्यामभिमृश्यचासनम् । कृष्णोऽपितूर्णंशयनंमहाधनंविवेशलोका
चरिताप्यनुव्रतः ॥ ४ ॥ सामज्जनालेपदुकूलभूषणस्रग्गन्धताम्बूलसुधासवादिभिः
प्रसाधितात्मोपससारमाधवंसव्रीडलीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः ॥ ५ ॥ आहूयकान्तां
नवसंगमह्रियाविशङ्कितांकङ्कणभूषितेकरे । प्रगृह्यशय्यामधिवेश्यरामयारेमेऽनुले
पार्पणपुण्यलेशया ॥ ६ ॥ साऽनङ्गतप्तकुचयोरुरसस्तथाक्ष्णोर्जिघ्रन्त्यनन्तचरणेन

कि—हेराजन् ! उद्धवजी इसप्रकारसेकुछ महीने वहां निवासकर गोपीगण यशोदा और नन्दजी
से आज्ञाले मथुरा जानके निमित्त रथपर चढे ॥ ६५ जानेके समय नंदादि गोपगण अनेक भेंटले
उद्धवजी के निकट आय प्रेमवश रो २ कर कहनेलगे ॥ ६६ ॥ हमारे मनकी वृत्तियां श्रीकृष्णजी
में लगीरहें वाणी उनके नामोंका कीर्तन करें और शरीर उनके प्रणाम आदि करनेमें लगारहे
॥ ६७ ॥ कर्मवशसे भ्रमण करते २ ईश्वरेच्छा से किसी योनिमें क्यों न जांय मंगलाचरण और
दानादि द्वारा भगवान् श्रीकृष्णजी में हमारी बुद्धिरहे ॥ ६८ ॥ हे राजन् ! गोपगणों से श्रीकृष्ण
जीकी भक्तिद्वारा इसप्रकार पूजितहो उद्धवजी श्रीकृष्णजी से पालित मथुरापुरी में आये ॥ ६९ ॥
श्रीकृष्णजी को प्रणामकर,व्रजवासियों की एकान्तकी भक्ति का वर्णनकर उनकीदीहुई भेंटआदि
वसुदेवजी, बलभद्रजी और राजाको समर्पणकी ॥ ७० ॥

इतिश्री मद्भा० म० दशम० सरलाभाषाटीकायांसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! तदनन्तर सर्वात्मा, सर्वदर्शी भगवान काम से संतप्तहुई
कुब्जा का प्रिय करनेकी इच्छासे उस के घर गये ॥ १ ॥ वहघर—महामूल्यघरकी सामग्रियों और
कामोद्दीपकपदार्थों से परिपूर्णथा । मोतियों की झालर, पताका, बितान, शय्या और आसन से
सुशोभित और सुगंधि, धूप,दीप, माला तथा सुगन्धितपदार्थों से विभूषितथा ॥२॥ कुब्जाश्रीकृष्ण
जी को घरमें आते देखकर शीघ्रता पूर्वक आसन से उठी और सखियों के साथ उनको व उद्धव
जीको आसनादि देकर पूजाकी ॥ ३ ॥ हरिभक्त उद्धवजी आसन छोडकर पृथ्वी पर बैठगए ।
श्रीकृष्णजी लोकरीति का अनुकरण करतहुए शीघ्र महामूल्यशय्या में पधारे ॥ ४ ॥ कुब्जाभी
मज्जन, आलेपन, रेशमीवस्त्र, आभूषण, फूल, माला, पान, सुगन्धितपदार्थ, और अमृतकी सदृश
आसव पदार्थों से शरीर को सजाय, लाजयुक्त,लीलासे हँसती कटाक्ष विक्षेपकरती श्रीकृष्णजी के
निकट आई ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णजी नवीन संगम से उत्पन्नहुई लज्जा के कारण कुछ एक डरतीहुई
सुन्दरी को बुलाय उस के कंकण से भूषित दोनों हाथ पकड, शय्या पर लिटायकर क्रीडाकरने
लगे । कुब्जा ने केवल चन्दन अर्पण करके इसफलको प्राप्त किया ॥ ६ ॥ तदनन्तर कुब्जा न

रुजो मृजन्ती । दोर्भ्यां स्तनान्तरगतं परिरभ्य कान्तमानन्दमूर्तिमजहादतिदीर्घतापम्
॥ ७ ॥ सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्रापमीश्वरम् । अङ्गरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत
॥ ८ ॥ आहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया । रमस्व नोत्सहे त्यक्तुं सङ्गं तेऽम्बुरु
हेक्षण ॥ ९ ॥ तस्यै काममवरं दत्त्वा मानयित्वा च मानदः । सहोद्धवेन सर्वेशः स्वधा
मागमदर्चितम् ॥१०॥ दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् । यो वृणीते मनोग्रा
ह्यमसत्त्वात्कुमनीष्यसौ ॥ ११ ॥ अक्रूरभवनं कृष्णः सहरामोद्धवः प्रभुः । किञ्चि
च्चिकीर्षयन्प्रागादक्रूरप्रियकाम्यया ॥ १२ ॥ स तान्नरवरश्रेष्ठानाराद्वीक्ष्य स्वबान्ध
वान् । प्रत्युत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्याभिनन्द्य च ॥ १३ ॥ ननाम कृष्णं रामं च स तैरप्य
भिवादितः । पूजयामास विधिवत्कृतासनपरिग्रहान् ॥ १४ ॥ पादावनेजनीरापो धा
रयञ्छिरसा नृप । अर्हणेनाम्बरैर्दिव्यैर्गन्धस्रग्भूषणोत्तमैः ॥ १५ ॥ अर्चित्वा शिरसा
ऽऽनम्य पादावङ्कगतौ मृजन् । प्रश्रयावनतोऽक्रूरः कृष्णरामावभाषत ॥ १६ ॥ दि
ष्ट्या पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम् । भवद्भ्यामुद्धृतं कृच्छ्राद्दुरन्ताच्च सम
धितम् ॥ १७ ॥ युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ । भवद्भ्यां न विना किञ्चित्पर
मस्ति न चापरम् ॥ १८ ॥ आत्मसृष्टमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः । ईयते बहुधा
ब्रह्मञ्छ्रुतप्रत्यक्षगोचरम् ॥ १९ ॥ यथा हि भूतेषु चराचरेषु मह्यादयो योनिषु भान्ति ना
ना । एवं भवान्केवल आत्मयोनिष्वात्माऽऽत्मतन्त्रो बहुधा विभाति ॥ २० ॥ सृजस्यथो
लुम्पसि पासि विश्वं रजस्तमःसत्त्वगुणैः स्वशक्तिभिः । न बध्यसे तद्गुणकर्मभिर्वा

भगवान के चरण सूंघ, कामदव से सन्तप्तहुए दोनों कुचों,वक्षःस्थल,और दोनों नेत्रों की व्यथा नाशकी, और दोनों स्तनों के अन्तर्गत आनन्दमूर्त्ति भगवान का आलिंगन कर अतिदीर्घ सन्ताप को दूर किया ॥ ७ ॥ अहो ! उस दुर्भगा कुब्जा ने, चन्दन समर्पणकर, मोक्षदेनेवाले दुष्प्राप्य ईश्वर को पाय यह प्रार्थनाकी कि— ॥ ८ ॥ हेप्रियतम ! इस स्थानपर कुछ दिनों वासकर मेरे साथ विहारकरो; हेकमलनयन ! तुम्हारा साथ छोड़ने की मेरीइच्छा नहीं है ॥ ९ ॥ सर्वेश्वर मान देनेवाले भगवान उस कुब्जाको इच्छितवरदे और अलंकारादि दानद्वारा सनमानकर उद्धवके साथ अपने समृद्धिशाली घर आये ॥ १० ॥ सर्वेश्वर भगवान् विष्णु को आराधनाकर जो मनुष्य विषय सुखों की प्रार्थना करता है वह महाअज्ञानी है—क्योंकि विषयसुखतो तुच्छपदार्थ है ॥ ११ ॥ हे राजन् ! इस कार्य के उपरांत भगवान् श्रीकृष्णजी अक्रूर के प्रसन्न करनेको उनको हस्तिनापुर भेजने की इच्छासे राम और उद्धव के साथ उनके घरपर गये ॥ १२ ॥ अक्रूर ने दूरसेही उन आत्मबांधव, मनुष्यों में श्रेष्ठ श्रीकृष्णजी आदि को आता देख उनका आलिंगन और अभिनन्दन कर प्रणामकिया ॥ १३ ॥ वहभी उनका अभिनन्दनकर आसनपर बैठगये । अक्रूर ने उनकीपूजा की ॥ १४ ॥ हेमहाराज ! अक्रूरजी ने उनके चरणामृत को मस्तकपर धारण किया और भेंट, दिव्यवस्त्र, गन्ध, माला, उत्तम आभूषण ॥ १५ ॥ इन से पूजन व शिरसे प्रणामकर उनके चरण अपनी गोदीमें ले धीरे २ चापतेहुए विनय से नम्रहो राम, कृष्ण से कहा ॥ १६ ॥ अच्छाहुआ कि दुष्ट कंस अनुचरोंसमेत मारागया,और आप दोनों ने अपने वंश को कष्ट से उद्धारकरउसकी वृद्धिकी ॥ १७ ॥ आप दोनोंजन प्रधानपुरुष; जगत् के कारण और जगन्मयहो । आप से भिन्न और कोई कार्य व कारण नहींहै ॥ १८ ॥ हेमहान् ! रज आदि अपनी शक्तिद्वारा आपही अपने रचेहुएइसजगत में प्रविष्टहो देखने और सुनने में आतेहुए पदार्थरूप अनेकप्रकार से प्रतीत होते हो ॥ १९ ॥ जैसे अपनेही रूपांतर से अभिव्यक्त—चराचर भूतगणों में पृथिव्यादिकारण नाना रूप से प्रकाश पाते हैं तैसेही आप निरवच्छिन्न आत्मा और स्वतंत्रहोकरभी आप अपने कार्यरूप सबपदार्थों में अनेक रूपसे प्रतीत होतेहो ॥ २० ॥ रज,तम, और सत्वगुण आपकी निजशक्ति हैं

ज्ञानात्मनस्तेक्वचबन्धहेतुः ॥ २१ ॥ देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्भवोनसाक्षान्नभिदा
ऽऽत्मनः स्यात्। अतोनबन्धस्तवनैवमोक्षःस्यातांनिकामस्त्वयिनोऽविवेकः॥२२॥
त्वयोदितोऽयंजगतोहिताययदायदावेदपथः पुराणः । बाध्येतपाखण्डपथैरसद्भि
स्तदाभवान्सत्त्वगुणंबिभर्ति ॥ २३ ॥ सत्वंप्रभोऽद्यवसुदेवगृहेऽवतीर्णः स्वांशेन
भारमपनेतुमिहासिभूमेः।अक्षौहिणीशतवधेनसुरेतरांशराज्ञाममुष्यचकुलस्ययशो
वितन्वन् ॥२४॥ अद्येशनोवसतयःखलुभूरिभागा यःसर्वदेवपितृभूतनृदेवमूर्तिः ।
यत्पादशौचसलिलं त्रिजगत्पुनातिसत्वं जगद्गुरुरधोक्षजयाः प्रविष्टः ॥ २५ ॥ कः
पंडितस्त्वदपरंशरणं समीयाद्भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदःकृतज्ञात्। सर्वान्ददाति सु
हृदोभजतोऽभिकामा नात्मानमप्युपचयापचयौनयस्य ॥ २६ ॥ दिष्ट्याजनार्दनभ
वानिहनः प्रतीतोयोगेश्वरैरपिदुरापगतिः सुरेशैः । छिन्ध्याशुनः सुतकलत्रधनाप्तगे
हदेहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥ २७ ॥ इत्यर्चितःसंस्तुतश्च भक्तेनभगवान्ह
रिः अक्रूरंसस्मितंप्राह गीर्भिःसंमोहयन्निव ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच । त्वंनोगुरुः
पितृव्यश्चश्लाघ्यो बन्धुश्च नित्यदा । वयंतुरक्ष्याःपोष्याश्च अनुकम्प्याःप्रजाहिवः ॥
॥ २९ ॥ भवद्विधामहाभागानिषेव्याअर्हसत्तमाः । श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाःस्वा
र्थानसाधवः ॥ ३० ॥ नह्यम्मयानितीर्थानि नदेवामृच्छिलामयाः । तेपुनन्त्युरुकाले

आप इन्हीं शक्तियोंद्वारा जगतकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशकरतेहो । किंतु आप इनसबकर्मों व गुणोंद्वारा बँधेनहींहो; क्योंकि आप ज्ञानात्माहो अतएव बन्धन का कारण अविद्याकभी आप में नहीं रहसकती ॥ २१ ॥ विचार करके देखने से देहादि उपाधि का यथार्थ संस्थापन नहीं किया जासकता; अतएव जीवात्मा काभी जन्म व जन्ममूलक भेद नहीं होसकता;इसकारण आप बन्धन व मोक्ष दोनों सेही मुक्तहो । हमारा अज्ञानही आप के बन्ध और मोक्षकी कल्पनाकरता है॥२२॥ जगत के मंगलार्थ आपने जो यह पुराण वेदमार्ग प्रकाशित किया है; यह मार्ग जबर मिथ्यापाखण्ड मार्गद्वारा बाधित होताहै, आप तबही तब सत्त्वगुण का अवलम्बन करते रहतेहो ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! यहां आप असुरों के अंशसे उत्पन्नहुए राजाओं की सैकड़ों अक्षौहिणियों को मारकरपृथ्वी को भार उतारने के निमित्त वसुदेव के घर में अवतारले यदुकुल की कीर्तिको बढ़ारहेहो ॥२४॥ हे ईश्वर ! समस्त वेद, पितृ, भूत, नर, और देवतागण जिसकी मूर्त्ति है और जिसकाचरणामृत तीनो जगत को पवित्रकरता है वही अधोक्षज भगवान् आज मेरेघर आये, अतएव आज मेराघर पवित्रहुआ ॥ २५ ॥ आप के आनेसे आज मैं कृतार्थ होगया। आप भक्तप्रियहो इसकारणसत्य वक्ताहो;आप कृतज्ञहो अतएव सबके सुहृदहो—आपकी अधिकता व न्यूनता नहीं है । जो भक्त पुरुष आप का भजन करते हैं;आप चारोओर से उनकी इच्छा पूर्णकियेरहतेहो किन्तु आप अपने आत्मस्वरूप तकको उसे देदेतेहो;अतएव कौनमनुष्य पण्डितहोकर आपके अतिरिक्त और दूसरेकी शरणागत होगा ॥ २६ ॥ हे योगेश्वर ! देवता, इन्द्र आदिभी आपके स्वरूप को नहीं जानसकते; यहांपर आप मेरे दृष्टिगोचर हुए सो यह मेरा बड़ाभारी सौभाग्य है आप जिस माया से पुत्र, स्त्री धन, स्वजन, घर और देहादिरूप मोह उत्पन्न करतेहो आप उस माया को मुझसे दूर करदो ॥ ॥२७॥ हेराजन् ! भक्तअक्रूर के इसप्रकार से अर्चना व स्तुतिकरनेपर भगवान् कृष्ण एक हँसकर वचनों से उनको मोहित करतेहुएबोले ॥ २८ ॥ कि—हे तात ! तुमहमारे गुरु, चचा और सब समय में प्रशंसायोग्य बन्धुहो । हमतो आपके रक्ष्य, पोष्य औरकृपाके पात्र हैं ॥२९॥जो मनुष्य मंगलकी कामना करतेहैं उनको आपकी समान पूज्यतम महाभाग मनुष्यों की सेवाकरनाउचित है । देवतागण तो स्वार्थी होते हैं परन्तु साधू वैसे नहीं होते ॥ ३० ॥ किंतु ऐसा कहने से यह न

न दर्शनादेवसाधवः ॥ ३१ ॥ समवान्सुहृदां चैनः श्रेयान्श्रेयश्चिकीर्षया । जिज्ञासार्थंपाण्डवानां गच्छस्वत्वंगजाह्वयम् ॥ ३२ ॥ पितर्युपरतेबालाः सहमात्रासुदुःखिताः आनीताःस्वपुरंराज्ञा वसन्तइतिशुश्रुम ॥ ३३ ॥ तेषुराजाऽम्बिकापुत्रो भ्रातृपुत्रेषुदीनधीः । समोनवर्ततेनूनं दुष्पुत्रवशगोऽन्धदृक् ॥ ३४ ॥ गच्छजानीहितद्वृत्तमधुना साध्वसाधुवा । विज्ञायतद्विधास्यामो यथाशंसुहृदां भवेत् ॥ ३५ ॥ इत्यक्रूरंसमादिश्य भगवान्हरिरीश्वरः । संकर्षणोद्धवाभ्यां वैततःस्वभवनंययौ॥३६

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे पूर्वार्धेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

श्रीशुकउवाच । सगत्वाहास्तिनपुरं पौरवेन्द्रयशोऽङ्कितम् । ददर्शतत्राम्बिकेयं सभीष्मंविदुरंपृथाम् ॥ १ ॥ सहपुत्रंचबाह्लीकं भारद्वाजंसगौतमम् । कर्णंसुयोधनंद्रौणिं पाण्डवान्सुहृदोऽपरान् ॥ २ ॥ यथावदुपसंगम्य बन्धुभिर्गान्दिनीसुतः । संपृष्टस्तैःसुहृद्वार्तांस्वयं चापृच्छदव्ययम् ॥ ३ ॥ उवासकतिचिन्मासान्राज्ञोवृत्तविविस्तया । दुष्प्रजस्याल्पसारस्य खलच्छन्दानुवर्तिनः ॥ ४ ॥ तेजओजोबलंवीर्यं प्रश्रयादींश्चसद्गुणान् । प्रजानुरागंपार्थेषु नसहद्भिश्चिकीर्षितम् ॥ ५ ॥ कृतंच धार्तराष्ट्रैर्यद्गरदानाद्यपेशलम् । आचख्यौसर्वमेवास्मै पृथाविदुरएवच ॥ ॥६ ॥ पृथातुभ्रातरं प्राप्तमक्रूरमुपसृत्यतम् । उवाचजन्मनिलयं स्मरन्त्यश्रुकलेक्षणा

जानना कि—सबजलमयतीर्थ-तीर्थ नहीं हैं और मिट्टी पत्थर आदि के बनायेहुए देवता-देवता नहीं हैं; निश्चयही वह सब देवता और तीर्थ हैं;—परन्तु यद्यपि जलमय स्नानतीर्थ और मिट्टी,पत्थर कीमूर्त्ति देवता हैं तौभी साधुओं में और उनसबों में बहुत भेद देखाजाता है, क्योंकि देवता और तीर्थों की बहुत दिनों तक सेवाकरने से पवित्रता होती है किंतुसाधुओं की केवल सवाहीसे शुद्धि उत्पन्नहोती है ॥ ३१ ॥ मेरे जितने आत्मीय हैं तुम उनसबों में श्रेष्ठहो,अतएव तुम पाण्डवों के कल्याणकरने के निमित्त उनकी कुशलक्षेम पूछने को हस्तिनापुरजाओ ॥ ३२ ॥ वह बालक हैं;सुना है कि—पिताके स्वर्गवासहोने से माता समेत वह अत्यन्त दुःखितहुए हैं; राजा धृतराष्ट्र उन्हें अपने नगर में ले आये हैं; इसकारण वह वहांही वासकररहे हैं ॥३३॥ अम्बिका के पुत्र दीनबुद्धिराजाधृतराष्ट्र अंधे हैं इस से वह अपनेदुष्ट पुत्रों के वशीभूत होरहे हैं; मैं जानताहूं कि—वह अपने भतीजों पर समानव्योहार नहीं करते ॥ ३४ ॥ इस समय वहांजायकर जानआओ कि उनका समाचार भला है याबुरा । जाननेपर आत्मीय जनों का जैसे भलाहोगा वह करूगा ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण जी अक्रूरजी को यह आज्ञादे बलरामजी व उद्धवजी के साथ अपने घर पर आये ॥ ३६ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभाषाटीकायांअष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! अक्रूर श्रेष्ठ पुरुवंशियों की कीर्त्तिसे व्याप्त हस्तिनापुर में आय धृतराष्ट्र भीष्म, विदुर, कुन्ती, बाह्लीक और उनके पुत्रगण, भारद्वाज, गौतम, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, पांडवगण और दूसरे भी सुहृदों से मिले ॥ १—२ ॥ गांदिनीनन्दनने सब बंधुओंसे मिलकर उनकी कुशल पूंछी, और उन्होंने भी उनकी कुशल पूंछी॥३॥ हे महाराज ! अक्रूर दुमर्ति राजा के आचरण जाननेको कई एक महीने हस्तिनापुर में रहे उन्होंने देखा कि—राजा के सब पुत्र असत् हैं और वह दुष्ट कर्णादिक की इच्छानुसार कार्य करते हैं ॥ ४ ॥ कुन्ती और विदुरने पांडवोंके तेज,शास्त्रादिकी निपुणता बल वीर्य, विनयादि सद्गुण और उनके ऊपर प्रजाके स्नेहका यथार्थ वर्णन किया । और दुष्ट धृतराष्ट्र आदि भी उनके गुणोंका सहनकर विष आदि देने व दूसरेभी जो कर्म कियेहैं और जो करनेकी इच्छाहै उन सब बातों का अक्रूर जी से वर्णन किया ५—६ ॥ कुन्ती अपने भाई अक्रूर के समीप आय जन्मभूमि, व माता, पिता, का

॥ ७ ॥ अपिस्मरन्ति नः सौम्य पितरौ भ्रातरश्च मे । भगिन्यो भ्रातृपुत्राश्च जामयः सख्य एव च ॥ ८ ॥ भ्रात्रेयो भगवान्कृष्णः शरण्यो भक्तवत्सलः । पैतृष्वसेयान्स्मरति रामश्चाम्बुरुहेक्षणः ॥ ९ ॥ सपत्नमध्ये शोचन्तीं वृकाणां हरिणीमिव । सान्त्वयिष्यति मां वाक्यैः पितृहीनांश्च बालकान् ॥ १० ॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिन्विश्वात्मन्विश्वभावन । प्रपन्नां पाहि गोविन्द शिशुभिश्चावसीदतीम् ॥ ११ ॥ नान्यत्तव पदाम्भोजात्पश्यामि शरणं नृणाम् । बिभ्यतां मृत्युसंसारादीश्वरस्यापवर्गिकात् ॥ १२ ॥ नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने । योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गता ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच । इत्यनुस्मृत्य स्वजनं कृष्णं च जगदीश्वरम् । प्रारुदद् दुःखिता राजन्भवतां प्रपितामही ॥ १४ ॥ समदुःखसुखोऽक्रूरो विदुरश्च महायशाः । सान्त्वयामासतुः कुन्तीं तत्पुत्रोत्पत्तिहेतुभिः ॥ १५ ॥ यास्यन्राजानमभ्येत्य विषमं पुत्रलालसम् । अवदत्सुहृदां मध्ये बन्धुभिः सौहृदोदितम् ॥ १६ ॥ अक्रूर उवाच । भो भो वैचित्रवीर्य त्वं कुरूणां कीर्तिवर्धन । भ्रातर्युपरते पाण्डावधुनाऽऽसनमास्थितः ॥ १७ ॥ धर्मेण पालयन्नुर्वीं प्रजाः शीलेन रञ्जयन् । वर्तमानः समः स्वेषु श्रेयः कीर्तिमवाप्स्यसि ॥ १८ ॥ अन्यथा त्वाचरँल्लोके गर्हितो यास्यसे तमः । तस्मात्समत्वे वर्तस्व पाण्डवेष्वात्मजेषु च ॥ १९ ॥ नेह चात्यन्तसंवासः कर्हिचित्केनचित्सह । राजन्स्वेनापि देहेन किमु जायात्मजादिभिः ॥ २० ॥ एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते । एकोऽनु

स्मरण कर रो २ कर कहने लगी कि— ॥ ७ ॥ हे सौम्य ! हमारे पिता, माता, भ्राता, भगिनी, भाई के पुत्र कलत्री और सखियां क्या कभी मेरा स्मरण करती हैं ? शरण देनेवाले, भक्तवत्सल, भ्रातृ पुत्र, भगवान् श्रीकृष्णजी और कमलनयन राम क्या अपनी फूफी के लड़कों का स्मरण करते हैं ॥ ८—९ ॥ व्याघ्रों के बीच में पड़ी हुई हरिणी की समान मैं शत्रुओं के बीच में पड़ी हुई शोक कररही हूं कृष्ण क्या मुझे और इन सब पिता हीन बालकों को अपने वचनोंसे सांत्वना देंगे ॥ १० ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे विश्वात्मन् ! हे विश्वपालक ! मैं आपकी शरणागत हूं छोटे बच्चों को लेकर मैं उनके साथ बहुत दुःखित होरहाहूं , हे गोविन्द ! मेरी रक्षाकरो ॥ ११ ॥ हे ईश्वर ! आप के मोक्ष देनेवाले चरणों के अतिरिक्त मृत्यु और संसार के भयसे भीत मनुष्योंको कोई और शरण देनेवाला नहीं देखपड़ता ॥ १२ ॥ धर्मात्मा, अपरिच्छिन्न प्राणियों के मित्र अणिमादि गुणों युक्त ज्ञानात्मा श्रीकृष्ण जी को नमस्कारहै, हे प्रभो ! मैं आपकी शरणागत हूं, ॥ ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हे राजन् ! तुम्हारी प्रपितामही अपने स्वजनों और श्रीकृष्ण जी का इसप्रकार से स्मरण कर दुःखित हो रोनेलगी ॥ १४ ॥ जिनको सब दुःख सुख समान हैं ऐसे अक्रूर व महायशवाले विदुरजी उनके पुत्रों के जन्म के कारणभूत इन्द्रादिकोंकी कथा कह २ कर कुन्तीको सांत्वना देनेलगे ॥ १५ ॥ अनंतर अक्रूरजी जाने के समय पुत्रवत्सल विषमाचारी राजा धृतराष्ट्र के निकट आए और राम कृष्णने जो कहाथा वह सब कहनेलगे ॥ १६ ॥ अक्रूर जी ने कहा कि—हे विचित्र वीर्य नन्दन ! आप कौरवोंकी कीर्तिके बढ़ानेवाले भाई पांडुके मरने पर इससमय राजगद्दी पर बैठेहो यदि आत्मीय जनोंपर समान व्यवहार करके सुंदर चरित्रोंद्वारा प्रजाको प्रसन्नरख पृथ्वीका पालन करोगे तो तुम्हें कल्याण प्राप्त होकर यश प्राप्तहोगा ॥ १८ ॥ नहीं तो इसके विपरीत आचरण करनेसे लोकमें निंदित होगे, । अतएव आप अपने पुत्र और पांडवोंपर समान व्यवहारकरो ॥ १९ ॥ हे राजन् इसलोक में कोईभी किसीके साथ बहुतदिनों तक नहीं रहसकता । स्त्री पुत्रादिकोंकी बाततो दूररही अपनी देहके साथही बहुत दिनोंतक वास नहीं

भुङ्क्तेसुकृतमेकएवचदुष्कृतम् ॥ २१ ॥ अधर्मोपचितंवित्तंहरन्त्यन्येऽल्पमेधसः ।
संभोजनीयापदेशैर्जलानीवजलौकसः ॥ २२ ॥ पुष्णातियानधर्मेणस्वबुद्ध्यातम
पण्डितम् । तेऽकृतार्थंप्रहिण्वन्तिप्राणारायः सुतादयः ॥ २३ ॥ स्वयंकिल्बिषमा
दायतैस्त्यक्तोनार्थकोविदः । असिद्धार्थोविशत्यन्धंस्वधर्मविमुखस्तमः ॥ २४ ॥
तस्माल्लोकमिमंराजन्स्वप्नमायामनोरथम् । वीक्ष्यायम्यात्मनात्मानंसमः शान्तोभ
वप्रभो ॥२५॥ धृतराष्ट्र उवाच ॥ यथावदतिकल्याणींवाचंदानपतेभवान् । तथाऽ
नयानतृप्यामिमर्त्यः प्राप्ययथाऽमृतम् ॥ २६ ॥ तथाऽपिसूनृतासौम्यहृदिनस्थीय
तेचले । पुत्रानुरागविषमेविद्युत्सौदामनीयथा ॥ २७ ॥ ईश्वरस्यविधिंकोनुविधु
नोत्यन्यथापुमान् । भूमेर्भारावताराययोऽवतीर्णोयदोः कुले ॥ २८ ॥ योदुर्विमर्श
पथयानिजमाययेदंसृष्ट्वागुणान्विभजतेतदनुप्रविष्टः । तस्मैनमोदुरवबोधविहारत
न्त्रसंसारचक्रगतयेपरमेश्वराय ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिप्रेत्यनृपतेरभि
प्रायंसयादवः । सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनर्यदुपुरीमगात् ॥ ३० ॥ शशंसरामकृष्णा
भ्यांधृतराष्ट्रविचेष्टितम् । पाण्डवान्प्रतिकौरव्ययदर्थंप्रेषितः स्वयम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

होता॥२०॥जीव अकेलाही उत्पन्नहोता अकेलाही नाशहोता और अकेलाही सुकर्मों कुकर्मोंका भोग करताहै॥२१॥जलवासी मत्स्यादिके जलकी समान पालेहुए पुत्रादिकानाम धर मूढ़ मनुष्य अधर्मसे इकट्ठे कियेहुए धनका हरण करतेहैं॥२२॥मूर्ख मनुष्य अपना जानकर जिन प्राण अर्थ और पुत्रादिकोंका अधर्मसे पोषण करताहै परन्तु वह भोगका सुख प्राप्त होनेके पहिलेही उसको छोड़देते हैं॥२३॥उनके छोड़नेपर वह स्वधर्मसे विमुख, अपने प्रयोजनको न जाननेवाला अपूर्ण काम मनुष्य अपने पापोंको साथले घोरनरक में गिरता है ॥ २४ ॥ अतएव हे राजन् ! हेप्रभो ! इसलोक को स्वप्न माया और मनोरथकी समान जान अपने द्वारा अपनेको दमन कर शांत व सर्वदर्शी होवो, ॥ २५ ॥ धृतराष्ट्रने कहा कि—हेअक्रूरजी ! आपके यह वाक्य कल्याणकारीहैं मनुष्य जैसे अमृत को पाकर नहीं २ कहता तैसेही मैं यह सच्चहै अब नहीं ऐसा नहीं कहसकता॥२६॥किंतुहेसौम्य! मेरा हृदय पुत्रोंके प्रेमके कारण विषम होकर चंचल होरहाहै आपके वाक्य सत्य होनेपर भी सुदाम पर्वतपर चमकतीहुई बिजलीके समान स्थिर नहीं रहसकते ॥ २७ ॥ जो ईश्वर भूमिका भार हरनेके निमित्त यदुकुल में अवतीर्ण हुए हैं उन्होंने जो यत्न कियाहै कौन मनुष्य उसके विपरीत कार्य करसकता ? ॥२८॥ जो अपनी अतर्क्य माया से इस विश्वको उत्पन्न करके इसके भीतर प्रवेशकर कर्म और कर्मफलोंका विभाग करदेते हैं उन परमेश्वरको प्रणाम करताहूं, २८ ॥ उनकी अज्ञेय क्रीड़ाही संसारका कारण है उसीसे इसकी गति होती रहतीहै ॥२९॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हेराजन् ! यदुनन्दन अक्रूर राजा धृतराष्ट्रके अभिप्रायको जान सुहृदोंसे आज्ञा ले फिर मथुरा में आए और पांडवों पर धृतराष्ट्र के उस आचरणका वर्णन श्रीकृष्णजी और बलरामजी को सुनाया ॥ ३०—३१ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहा० दशम०स्कं०भाषाटीकायांएकोनपंचाशोऽध्यायः ४९ ॥

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्भागवत सटीक

दशम स्कन्धउत्तरार्ध

श्रीगणेशायनमः अथोत्तरार्द्धःप्रारंभः॥श्रीशुकउवाच ॥ अस्तिःप्राप्तिश्चकंसस्य
महिष्यौभरतर्षभ । मृतेभर्तरिदुःखार्ते ईयतुःस्मपितुर्गृहान् ॥ १ ॥ पित्रेमग
धराजाय जरासन्धायदुःखिते । वेदयांचक्रतुःसर्वमात्मवैधव्यकारणम् ॥ २ ॥ स
तदप्रियमाकर्ण्यशोकामर्षयुतोनृप । अयादवींमहींकर्तुं चक्रेपरममुद्यमम् ॥३॥अक्षौ
हिणीभिर्विंशत्या तिसृभिश्चापिसंवृतः । यदुराजधानीं मथुरांन्यरुणत्सर्वतोदिश
म् ॥ ४ ॥ निरीक्ष्यतद्बलंकृष्ण उद्वेलमिवसागरम् । स्वपुरंतेनसंरुद्धं स्वजनंचभया
कुलम्॥५॥चिन्तयामासभगवान्हरिःकारणमानुषः। तद्देशकालानुगुणंस्वावतारप्र
योजनम् ॥ ६ ॥ हनिष्यामिबलंह्येतद्भुविभारंसमाहितम् । मागधेनसमानीतंवश्या
नांसर्वभूभुजाम् ॥ ७ ॥ अक्षौहिणीभिःसंख्यात भटाश्वरथकुञ्जरैः । मागधस्तुनहं
तव्योभूयःकर्त्ताबलोद्यमम् ॥ ८॥ एतदर्थोऽवतारोऽयंभूभारहरणायमे । संरक्षणा·
यसाधूनां कृतोऽन्येषांवधायच ॥ ९ ॥ अन्योऽपिधर्मरक्षायै देहः संभ्रियतेमया ।
विरामायाप्यधर्मस्य कालेप्रभवतःक्वचित् ॥ १० ॥ एवंध्यायतिगोविन्द आकाशा
त्सूर्यवर्चसौ । रथावुपस्थितौसद्यः ससूतौसपरिच्छदौ ११ ॥ आयुधानिचदिव्या
नि पुराणानियदृच्छया । दृष्ट्वातानिहृषीकेशः संकर्षणमथाब्रवीत् ॥ १२ ॥ पश्या

श्रीशुकदेवजीबोले कि—हे भरतश्रेष्ठ ! अस्ति और प्राप्ति कंसकी दोनों स्त्रियें स्वामी के म-
रने से दुःखितहो अपने पिता के घरचली गई ॥ १ ॥ और पिता जरासन्धको अपने विधवाहोने
का समस्त कारण कह सुनाया ॥ २ ॥ राजाजरासन्ध इन अप्रियबातों को सुन शोकार्त और को-
पितहुआ और पृथ्वीको यादवरहित करने का उद्योग करनेलगा ॥ ३ ॥ अनन्तर तेईस अक्षौ-
हिणी सेनाको ले चारोंओर से यदुवंशियों की राजधानी को घेरलिया ॥ ४ ॥ भगवान श्रीकृष्णजी
क्षोभित समुद्रकी समान उस सेनाद्वारा अपनी पुरीको घिराहुआ और स्वजनों को भयातुर होता
देख देश और काल के अनुसार अपने अवतार के प्रयोजनका विचारकरनेलगे ॥ ५—६ ॥ म-
गधराज ने अपने वशवर्ती राजाओंकी जिस पैदल, रथ, गज, घोड़ेवाली कई अक्षौहिणी सेना से
मेरे नगरपर आक्रमण किया है, वही पृथ्वीका संचितभार है । मैं इसही सेनाका नाशकरूंगा, म-
गधराजको न मारूंगा कि जिससे यह फिर सेनाको इकट्ठाकरसके ॥ ७—८ ॥ पृथ्वीका भार ह-
रने, साधुओंकी रक्षा और असाधुओं का नाशकरने के निमित्तही मेरा अवतार हुआ है ॥ ९ ॥
समयानुसार धर्मकी रक्षा और अधर्म के नाशके निमित्तही मुझे जन्मग्रहण करना पड़ता है ॥
॥ १० ॥ गोविंद इसप्रकारसे विचारकररहेथे कि उसी समय सारथी और सब सामग्री समेत सू
र्यकी किरणों के समान प्रकाशमान दो ॥ ११ ॥ विचित्र ध्वजा पताका और दिव्य अस्त्र शस्त्र
समेत आकाश से आये। श्रीकृष्णजी ने उन सबको देखकर बलरामजी से कहा कि—॥ १२ ॥

सैन्यंसमंप्राप्तं यदूनांत्वावतांप्रभो । एषतेरथआयातो दयितान्यायुधानिच ॥ १३ ॥
यानमास्थायजह्येतद्व्यसनात्स्वान्समुद्धर । एतदर्थंहिनौजन्म साधूनामीशशर्मकृ
त् ॥ १४ ॥ त्रयोविंशत्यनीकाख्यं भूमेर्भारमपाकुरु । एवंसम्मन्त्र्यदाशार्हौ दंशितौ
रथिनौपुरात् ॥ १५ ॥ निर्जग्मतुःस्वायुधाढ्यौ बलेनाल्पीयसाऽवृतौ शंखंदध्मौवि
निर्गत्यहरिर्दारुकसारथिः ॥ १६ ॥ ततोऽभूत्परसैन्यानांहृदिवित्रासवेपथुः । तावा
हमागधोवीक्ष्यहेकृष्णपुरुषाधम ॥ १७ ॥ नत्वयायोद्धुमिच्छामिबालेनैकेनलज्जया।
गुप्तेनहित्वयामन्दनयोत्स्येयाहि बन्धुहन् ॥ १८ ॥ तवरामयदिश्रद्धायुध्यस्वधैर्य
मुद्वह । हित्वावामच्छरैश्छिन्नंदेहंस्वर्याहिमांजहि ॥ १९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ न
वैशूराविकत्थन्तेदर्शयन्त्येवपौरुषम् । नगृह्णीमोवचोराजन्नातुरस्यमुमूर्षतः । २० ।
श्रीशुक उवाच ॥ जरासुतस्तावभिसृत्यमाधवौमहाबलौघेनबलीयसाऽवृणोत् । स
सैन्ययानध्वजवाजिसारथीसूर्यानलौवायुरिवाभ्ररेणुभिः ॥ २१ ॥ सुपर्णतालध्वज
चिह्नितौरथावलक्षयन्त्योहरिरामयोर्मृधे । स्त्रियः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरंसमाश्रिता
संमुमुहुः शुचार्दिताः ॥ २२ ॥ हरिः परानीकपयोमुचांमुहुः शिलीमुखात्युल्बणव
र्षपीडितम् । स्वसैन्यमालोक्यसुरासुरार्चितंव्यस्फूर्जयच्छार्ङ्गशरासनोत्तमम् ॥२३॥
गृह्णन्निषङ्गादथसन्दधच्छरान्विकृष्यमुञ्चञ्छितबाणपूगान् । निघ्नन्रथान्कुञ्जरवा
जिपत्तीन्निरन्तरंयद्वदलातचक्रम् ॥ २४ ॥ निर्भिन्नकुम्भाः करिणोनिपेतुरनेकशोऽ

हे आर्य ! देखो आप जिनके स्वामी हो उन यदुवंशियोंपर आपत्ति उपस्थित हुई है । हे भ्राता! यह आपका रथ और अस्त्र शस्त्र सब उपस्थित हैं ॥ १३ ॥ रथमें बैठ शत्रु सेना का नाश और विपद से स्वजनोंकी रक्षाकरो । हे ईश्वर ! साधुओं के कल्याणके निमित्तही हमने जन्मग्रहण किया है ॥ १४ ॥ तेईसअक्षौहिणी नामक भूमिका भार शीघ्रही हरणकरो । यह कहकर दोनों भाइयों ने कवच पहिना और उत्तम २ अस्त्र शस्त्र ग्रहणकर रथपर बैठ थोड़ीसी सेना लेकर नगर से बाहरको प्रस्थान किया । दारुक श्रीकृष्णजीका सारथी था । श्री हरिने पुरसे बाहर निकलकर शंख बजाया ॥१५-१६॥ उस शंखके शब्दसे शत्रुसेना का हृदय कांपउठा । मगध राजने कृष्णजी व बलरामजीको देखकर कहाकि ॥ १७ ॥ रे पुरुषाधम ! कृष्ण तू बालक है, तेरे साथ युद्ध करने से मुझे लज्जाहोगी इस कारण तेरे साथ युद्ध करनेकी इच्छा नहीं है। रे बंधुनाशन ! तू गुप्त रहनेवाला है। रे मंद ! तेरेसाथ युद्ध न करूंगा तू जा ॥ १८ ॥ राम ! यदि तेरी इच्छा है तो युद्धकर डरमत । या तो मेरेबाणों द्वारा छिन्न देहको त्याग स्वर्गमें जा नहीं तो मुझको मारकर विजयीहो ॥ १९ ॥ श्रीभगवानने कहाकि-वीरपुरुष अपनी बड़ाई नहीं मारत केवल पौरुषही दिखाते हैं । राजन् ! तुममरना चाहतेहो इसीसे उन्मत्त होरहेहो, तुम्हारी बातोंपर मैं ध्यान नहीं देता ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहाकि-हेराजन् ! वायुजैसे मेघोंद्वारा सूर्यको और धूलिद्वारा अग्निको ढकलेती है मगधराज जरासंध ने वैसेही अभिमुखहो अपने प्रचंड महाबल सैनद्वारा सेना, रथ, ध्वज, अश्व और सारथी के साथ मधुवंशीय राम कृष्णको घेरलिया ॥ २१ ॥ स्त्रियेंनगरी की अटारियें, महलका छतों, दरवाजों पर चढ़ीहुई युद्ध देखती थीं । हरि और रामको गरुड़ और तालध्वज से चिह्नित दोनों रथोंको रणभूमि में न देखना वह शोक के संतप्तहो क्षण २ में मूर्छित होनेलगीं ॥ २२ ॥ शत्रुसेना रूपी विशाल बादल से जोभांति प्रचंडबाणों की वर्षा होतीथी, हरिने उससे अपनी सेनाको पीड़ित होतादेख अंगार चक्रकी समान शृंगनिर्मित शार्ङ्ग धनुषको धारण किया ॥ २३ ॥ और उसमें तीक्ष्णबाणोंको छोड़कर अनेकानेक रथ, गज, अश्व और पैदलोंका संहार करनेलगे ॥ २४ ॥

श्वाः शरवृक्णकन्धराः । रथाहताश्वध्वजसूतनायकाः पदातयश्छिन्नभुजोरुकन्धराः ॥ २५ ॥ संछिद्यमानद्विपदेभवाजिनामङ्गप्रसूताः शतशोऽसृगापगाः । भुजाहयः पूरुषशीर्षकच्छपाहतद्विपद्वीपहयग्रहाकुलाः ॥ २६ ॥ करोरुमीनानरकेशशैवलाधनुस्तरङ्गायुधगुल्मसंकुलाः। अच्छूरिकावर्तभयानकामहामणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ॥ २७ ॥ प्रवर्तिताभीरुभयावहामृधेमनस्विनांहर्षकरीः परस्परम् । विनिघ्नताऽरीम् मुसलेनदुर्मदान्संकर्षणेनापरिमेयतेजसा ॥ २८ ॥ बलंतदङ्गार्णवदुर्गभैरवंदुरन्तपारंमगधेन्द्रपालितम् । क्षयंप्रणीतंवसुदेवपुत्रयोर्विक्रीडितंतज्जगदीशयोः परम् ॥ २९ ॥ स्थित्युद्भवान्तंभुवनत्रयस्ययः समीहतेऽनन्तगुणः स्वलीलया । नतस्यचित्रंपरपक्षनिग्रहस्तथापिमर्त्यानुविधस्यवर्ण्यते ॥ ३० ॥ जग्राहविरथंरामो जरासन्धंमहाबलम् । हतानीकावशिष्टासुंसिंहः सिंहमिवौजसा ॥ ३१ ॥ बध्यमानंहतारातिंपाशैर्वारुणमानुषैः । वारयामासगोविन्दस्तेनकार्यचिकीर्षया ॥ ३२ ॥ समुक्तोलोकनाथाभ्यांव्रीडितोवीरसंमतः । तपसेकृतसङ्कल्पोवारितः पथिराजभिः ॥ ३३ ॥ वाक्यैःपवित्रार्थपदैर्नयनैःप्राकृतैरपि ॥ स्वकर्मबन्धप्राप्तोऽयं यदुभिस्तेपराभवः ॥ ३४ ॥ हतेषुसर्वानीकेषु नृपोबार्हद्रथस्तदा । उपेक्षितोभगवता मगधान्दुर्मनाययौ ॥ ३५ ॥ मुकुन्दोऽप्यक्षतबलो निस्तीर्णारिबलार्णवः । विकीर्यमाणः

कुम्भस्थल विदीर्ण होकर हाथीगिरते हैं, अनेकों घोड़ों की गरदनें बाणों से कटीजाती हैं रथोंके घोड़े मरते, ध्वजाएं टूटती, सारथी और रथी गरते हैं, पैदलों की उरु, भुजा और गरदनें कटीजाती हैं ॥ २५ ॥ अनत तेजवाले बलदेवजी ने युद्ध भूमिमें मूसल द्वारा दुष्ट शत्रुओंका नाशकर निहतहुए पैदल, हाथी, और अश्वोंके अगसे उत्पन्न, डरनेवालोंको डरावना और वीरोंको वीररसका उत्पादक सैकड़ों नदियें उत्पन्न कीं । वह सब नदियें परस्पर २ बहनेलगीं । भुजाए नदियों की सर्पसी, शिर कच्छप से निहतहाथी द्वीप से, घोड़े ग्राह से ॥ २६ ॥ हाथ और साथल मत्स्य से, मनुष्यों के केश शिवाल से; धनुष तरग से; अस्त्र घाससे, ढालें भयकर भंवरसी और उत्तम २ महामणि और आभूषण उसके पत्थर के टुकड़े और रेतीकी सदृश होरहे थे ॥ २७ ॥ अमित बलशाली बलदेवजी ने मूसल द्वारा सैकड़ों दुष्ट शत्रुओंको मारा, और मगधराज से पालीहुई सागर की समान दुर्गम, भयानक और अगाध सेनाका नाश करडाला । वसुदेव के दोनोपुत्र ईश्वर थे, उनको तो यह कार्य केवल क्रीड़ाहीथा ॥ २८–२९ ॥ जोअनत गुण भगवान अपनी लीला द्वारा त्रिभुवन की उत्पत्ति पालन और नाश करते हैं, शत्रुका नाश करना उनके लिये कुछ आश्चर्य की बात नहीं है तोभी मनुष्यावतार धरने के कारण उनका मै वर्णन करता हू ॥ ३० ॥ जोहो, सिंह जैसे दूसरे सिंहपर आक्रमण करता है महाबल रामने उसी प्रकार जरासंधको पकड़लिया । उस समय जरासध का रथ और सेना नष्ट होगई थी, केवलप्राण बचरहथे ॥ ३१ ॥ राजा जरासध ने बहुत से शत्रुओं को माराथा । तोभी बलदेवजी जब वारुण और मानुष पाशद्वारा उसके बांधने पर उद्यत हुए तब भगवान ने जरासध से और कामके लेनेकी इच्छा से बलदेवजी को निवारण किया ॥ ३२ ॥ राजा जरासंध वीरपुरुषों में माननीय था, इस समय राम कृष्णसे छूटकर उसने लज्जाके कारण तपस्या करने का संकल्प किया ॥ ३३ ॥ परन्तु मार्गमें राजाओं ने धर्मोप देश वाक्यों और लौकिक नीति कथन द्वारा उसको निवारणकरके कहाकि 'अपनेकर्म बधनोंहीके कारण आपयदुवंशियोंसे पराजित हुएहो ॥ ३४ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि–हे राजन्! जब समस्त सेनाके नाशहो जानेपर भगवान ने उसे छोड़दिया तब वह जरासंध उदास होकर मगधपुरीको लौटआया ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्णजी भी शत्रुसैन्य रूपी सागर से पारहो प्रसन्नता पूर्वक मथुरा वासियों समेत अपने नगरकी ओर आये ।

कुसुमैरभिवर्षद्भिरनुमोदितः ॥ ३६ ॥ माथुरैरुपसंगम्य विज्वरैर्मुदितात्मभिः । उपगी-
यमानविजयः सूतमागधवन्दिभिः ॥३७॥ शंखदुन्दुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः
वीणावेणुमृदंगानि पुरंप्रविशति प्रभौ ॥ ३८ ॥ सिक्तमार्गांहृष्टजनां पताकाभिरलं-
कृताम् । निर्घुष्टांब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्धतोरणाम् ॥ ३९ ॥ निचीयमानो नारीभिर्मा
ल्यदध्यक्षतांकुरैः । निरीक्ष्यमाणःसस्नेहं प्रीत्युत्कलितलोचनैः ॥ ४० ॥ आयोधनग
तं वित्तमनन्तंवीरभूषणम् । यदुराजाय तत्सर्वमाहृतंप्रादिशत्प्रभुः ॥ ४१ ॥ एवं स
प्तदशकृत्वस्तावत्यक्षौहिणीबलः । युयुधेमागधोराजा यदुभिःकृष्णपालितैः ॥४२॥
अक्षिण्वंस्तद्बलंसर्वं वृष्णयःकृष्णतेजसा । हतेषुस्वेष्वनीकेषु त्यक्तोऽयादरिभिर्नृ-
पः ॥ ४३ ॥ अष्टादशमसंग्रामे आगामिनितदन्तरा । नारदप्रेषितो वीरो यवनःप्र-
त्यदृश्यत ॥ ४४ ॥ रुरोधमथुरामेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभिः । नृलोकेचाप्रतिद्वन्द्वो
वृष्णीन्श्रुत्वात्मसंमितान् ॥ ४५ ॥ तं दृष्ट्वाऽचिन्तयत्कृष्णः संकर्षणसहायवान् ॥
अहोयदूनांवृजिनं प्राप्तं ह्युभयतोमहत् ॥४६॥ यवनोऽयंनिरुन्धेऽस्मानद्य तावन्महा
बलः । मागधोऽप्यद्य वाश्वोवापरश्वो वाऽगमिष्यति ॥ ४७ ॥ आवयोर्युध्यतोरस्य
यद्यागन्ताजरासुतः । बन्धून्हनिष्यत्यथवा नेष्यतेस्वपुरंबली ॥४८॥ तस्मादद्यवि-
धास्यामो दुर्गंद्विपददुर्गमम् । तत्रज्ञातीन्समाधाय यवनंघातयामहे ॥ ४९ ॥ इति
संमन्त्र्यभगवान्दुर्गं द्वादशयोजनम् । अन्तःसमुद्रेनगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥५०॥

उनकी अमृत दृष्टिद्वारा सेनामें से किसी के भी शरीर में क्षत न रहा । देवतागण उनके ऊपर फूल बरसाय २ 'साधु साधु' कह उनके कार्यकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ३६ ॥ और सूत, मागध व बन्दीजन उनके विजयका गान गानेलगे ॥ ३७ ॥ भगवान के नगरी में प्रवेश करतेही असंख्य शंख, दुन्दुभि, भेरी, वीणा, वेणु और मृदंग बजनेलगे ॥ ३८ ॥ नगरी के मार्ग जल से सिंचकर नाना पताकाओं से सुशोभित हुए । उसकाल समस्त मनुष्य प्रसन्न होरहेथे सब स्थानोंपर वेदध्वनि सुनाई देतीथी । उत्सव के कारण नगरीमें तोरण शोभायमान होरहेथे ॥ ३९ ॥ नगर में प्रवेश करनेके समय स्त्रियें भगवान के ऊपर माला, दही ,अक्षत, और दूर्वांकुर डाल २ कर प्रीति के कारण प्रसन्नचित्तहो नेत्रों से स्नेह सहित उनको देखने लगीं, ॥ ४० ॥ रणभूमिमें जो अनन्त धन और वीर पुरुषोंके आभूषण गिरेथे उन सबको भगवानने लाय उग्रसेनके अर्पणकिया ॥ ४१ ॥ हेराजन् ! पराजय होकर भी मगधराज निरुत्साह नहींहुआ अगणित सेना ले श्रीकृष्ण जी से रक्षित यदुवंशियोंसे उसने क्रमशः सत्तरह बार युद्धकिया, ॥ ४२ ॥ यदुगण श्रीकृष्णजी के तेजसे प्रतिबारही उस समस्त सेनाका नाशकर विजयीहुए । सत्तरहवीं बार सेनाके नाश होतेही जरासन्ध शत्रुओंसे छूटकर नीचेको मुख कियेहुए अपनें नगरको आया ॥ ४३ ॥ अनन्तर अठारहवां युद्ध करनेका उसने उद्योग कियाथा कि उसीसमय नारदजी से प्रेरितकालयवन युद्ध भूमिमें आया ॥ ४४ ॥ वह यह सुनकर कि पृथ्वीपर मेरी समान दूसरा कोई नहींथा अब यादव मेरी समान हुयहैं मथुरा नगरीमें आया और तीन कोटि म्लेच्छों से उसने पुरीको घेरलिया ॥४५॥ श्रीकृष्णजी उसे देख बलदेवजी के साथ परामर्श करनेलगे । — " कैसा आश्चर्यहै कि—दोनों ओरसे यदुवंशियों को महा दुःख आन उपस्थित हुआ ॥ ४६ ॥ यह महाबल यवन आज हमारे ऊपर आक्रमण करेगा और मगध राजभी आज या कल वा परसों अवश्य आवेगा ॥ ४७ ॥ हम दोनों जन इस यवनके संग युद्ध करनेमें प्रवृत्तहोवें और यदि उसीसमय महाबली जरासन्ध आवे तो वह निश्चयही हमारे बंधुओं का संहार करेगा अथवा बन्दी करके अपनी नगरीको लेजावेगा ॥ ४८ ॥ अतएव आज मनुष्यों का दुर्गम एक गढ़ निर्माणकर और उसमें जातिवालोंकी रक्षा कर हम यवन को विनाश करना चाहिये ॥ ४९ ॥ भगवान ने यह परामर्श कर समुद्रके भीतर

हर्म्यशैतयत्रहिरण्यार्द्रं विज्ञानंशिल्पनैपुणम्। रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथावास्तु विनिर्मितम् ॥५१॥ सुरद्रुमलतोद्यानविचित्रोपवनान्वितम्। हेमशृंगैर्दिविस्पृग्भिः स्फाटिकाट्टालगोपुरैः ॥ ५२ ॥ राजताऽऽरकुटैः कोष्ठैर्हेमकुम्भैरलंकृतैः। रत्नकूटैर्गृहैर्हैमैर्महामरकतस्थलैः ॥ ५३ ॥ वास्तोष्पतीनांच गृहैर्वल्भीभिश्च निर्मितम्। चातुर्वर्ण्यं जनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ॥ ५४ ॥ सुधर्मांपारिजातंच महेन्द्रःप्राहिणोद्धरेः। यत्रचावस्थितोमर्त्यो मर्त्यधर्मैर्नयुज्यते ॥ ५५ ॥ श्यामैककर्णान्वरुणो हयाञ्छुक्लान्मनोजवान्। अष्टौनिधिपतिः कोशाँल्लोकपालो निजोदयान् ॥ ५६॥ यद्यद्भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये। सर्वंप्रत्यर्पयामासुर्हरौ भूमिगतेनृप ॥ ५७ ॥ तत्रयोगप्रभावेन नीत्वासर्वजनंहरिः। प्रजापालेनरामेण कृष्णःसमनुमन्त्रितः। निर्जगामपुरद्वारात्पद्ममाली निरायुधः ॥ ५८ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशम० पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

श्रीशुकउवाच। तं विलोक्य विनिष्क्रान्तमुज्जिहानमिवोडुपम्। दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ १ ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम्। पृथुदीर्घचतुर्बाहुं नवकंजारुणेक्षणम् ॥ २ ॥ नित्यप्रमुदितं श्रीमत्सुकपोलं शुचिस्मितम्। मुखारविन्दंबिभ्राणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३॥ वासुदेवोह्ययमिति पुमाञ्छ्री

एक बारहयोजन का विस्तारित गढ़ बनवाय उसके बीचमें एक आश्चर्यमय नगरबनवाया ॥५०॥ उसमें विश्वकर्मा का ज्ञान और शिल्प (कारीगरी) की निपुणता दिखाई देनेलगी घरोंके बनाने का स्थानरख राजमार्ग, गली आंगन आदि बनाये, ॥ ५१ ॥ अनेकों उद्यानों में कल्पवृक्ष और लतायें लगा२कर उनको सुशोभितकिया सुवर्ण के शिखरों वाली अत्यन्त उंची २ अटारियें व दरवाज़े सुवर्णके कलशोंसे अलकृतथ ॥५२॥ चांदी पीतल और लोहेसे बनीहुई अश्वसाला और अन्नशाला आदि जो बनायेगए उनपर सुवर्णकेकलश शोभायमानहोरहे हैं। अमूल्य मरकतमणिके स्थलवाले सुवर्णके घरोंके शिखर माणिक इत्यादि रत्नोंके बनायेगयेहैं ॥५३॥ देवताओंके मन्दिर और ओकाशियोंकी सुन्दर रचना बनीहै चारों वर्णोंके मनुष्योंके व्याप्त होनेसे राजभवन शोभायमानहोरहाहै ॥ ५४ ॥ हेराजन् इन्द्रने भगवान के निकट देवसभा और कल्पवृक्ष भेजा जिस सभामें मनुष्य बैठारहे और उसे भूख प्यासादि मर्त्यलोकके धर्म व्याप्त न होवे॥५५॥ वरुणने मनकी समान वेगवान् श्वेतवर्ण केवल एक कानके काले घोड़े, निधपति कुबेरने आठों निधियें और लोकपालोंने अपनी २ विभूतियें भेजदीं ॥५६॥ हेराजन्! भगवान ने अपने कार्य साधन के निमित्त दूसरे सिद्धगणों को जो २ आधिपत्य दियाथा उनके पृथ्वीपर अवतार लेनेसे उन्हों (सिद्धगण) ने सब आधिपत्य देदिये ॥ ५७ ॥ भगवान श्रीकृष्णजीने सब प्रजाको अपनी योगमायाके बलसे नगरमें पहुंचाय उनकी रक्षाके निमित्त बलदेवजी को वहांरख आप उनसे परामर्श कर केवल कमलोंकी माला पहिन बिना अस्त्र शस्त्र लिये नगरसे बाहरहुए ॥ ५८ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभाषाटीकायांपचाशोऽध्यायः ॥ ५० ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि-हे राजन्! हरि उदय हुए चन्द्रमा की समान नगर से बाहर हुए। उनका सुंदर श्रेष्ठ श्यामवर्ण था, पीताम्बर पहिने वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न और गलेमें प्रकाशित कौस्तुभमणि शोभायमान है। मोटे और लंबेचारभुजा धारण किये हैं नवीन कमल की समान रक्तवर्णके नेत्र हैं ॥ १—२ ॥ सदैव आनंदयुक्त, शोभायुक्त, सुंदर कपोल वाला, सुदर मुसकान युक्त मुख मकराकृत कुंडलसे प्रकाशित होरहा है ॥ ३ ॥ यवन इस रूपको देख मन२ में विचार

वत्सलाञ्छनः । चतुर्भुजोऽरविन्दाक्षो वनमाल्यतिसुन्दरः ॥ ४ ॥ लक्षणैर्नारदप्रोक्तैर्नान्यो भवितुमर्हति । निरायुधश्चलन्पद्भ्यां योत्स्येऽनेननिरायुधः ॥ ५ ॥ इति निश्चित्य यवनःप्राद्रवन्तं पराङ्मुखम् । अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपियोगिनाम् ॥६॥ हस्तप्राप्तमिवात्मानं हरिणासपदेपदे । नीतोदर्शयतादूरं यवनेशोऽद्रिकन्दरम् ।७। पलायनंयदुकुले जातस्यतवनोचितम् । इतिक्षिपन्ननुगतो नैनंप्रापाहताशुभः॥ ८ ॥ एवंक्षिप्तोऽपि भगवान्प्राविशद्गिरिकन्दरम् । सोऽपिप्रविष्टस्तत्रान्यं शयानंददृशे नरम् ॥ ९ ॥ नन्वसौदूरमानीय शेतेमामिहसाधुवत् । इतिमत्वाऽच्युतंमूढस्तं पदा समताडयत् ॥ १० ॥ सउत्थायचिरंसुप्तः शनैरुन्मील्यलोचने.॥ दिशोविलोकयन्पार्श्वे तमद्राक्षीदवस्थितम् ॥ ११ ॥ सतावत्तस्यरुष्टस्य दृष्टिपातेनभारत । देहजेनाऽग्निनादग्धो भस्मसादभवत्क्षणात् ॥ १२ ॥ राजोवाच । कोनामसपुमान्ब्रह्मन्कस्य किंवीर्यएवच । कस्माद्गुहांगतःशिश्ये किंतेजोयवनार्दनः ॥ १३ ॥ श्रीशुकउवाच । सइक्ष्वाकुकुलेजातो मान्धातृतनयोमहान् । मुचुकुन्दइतिख्यातो ब्रह्मण्यःसत्यसङ्गरः ॥ १४ ॥ सयाचितः सुरगणैरिन्द्राद्यैरात्मरक्षणे । असुरेभ्यःपरित्रस्तैस्तद्रक्षां सोऽकरोच्चिरम् ॥ १५ ॥ लब्ध्वागुहंतेस्वःपालं मुचुकुन्दमथाब्रुवन् । राजन्विरमतां कृच्छ्राद्भवान्नःपरिपालनात् ॥ १६ ॥ नरलोकेपरित्यज्य राज्यं निहतक

नेलगा कि देवर्षि नारदने जिसप्रकार कहाथा इस पुरुषका ठीक उसी प्रकारका रूप दिखाई देता है। यह श्रीवत्सके चिह्नसे चिह्नित और अत्यंत सुंदर है । इसका रूप चतुर्भुज है इसके नेत्र कमलकी समान हैं और यह गलेमें वनमाला धारण किये हुए है ॥ ४ ॥ इन सब चिह्नोंके देखने से निश्चय ही जानपड़ता है कि यह वासुदेव है और कोई नहीं है। यह इस समय निरस्त्रहो पैदल जारहा है, अतएव मैंभी इसके साथ निरस्त्र होकर युद्धकरूंगा ॥५॥ यवन इसप्रकार से निश्चयकर, विमुखहो भागते हुए योगियों कोभी दुष्प्राप्य श्रीकृष्णजी के पकड़ने के निमित्त उनके पीछे २ दौड़ा ॥६॥ भगवान् पग २ में अपना एक हाथका अंतर दिखाते हुए यवन राजको अति दूरवर्त्ती पहाड़ की कंदरा में लेगये ॥ ७॥ यवन "तू यदुकुलमें उत्पन्न हुआ है तुझे भागना उचित नहीं" यह कहता हुआ तिरस्कार करता उनके पीछे२ जानेलगा । परन्तु उसके कर्मोंका क्षय नहीं हुआथा इसकारण वह उनको न पासका ॥ ८ ॥ भगवान उससे तिरस्कारित होनेहुए भी गिरिकंदरामें प्रवेश करगये। यवनने भी उसमें प्रवेश करके देखा कि एक मनुष्य सोरहा है ॥ ९ ॥ उसमूर्ख काल यवनने यह जानकर कि यही दुष्ट मुझको इतनी दूरलाकर अब साधूकी समान सोरहा है उस मनुष्यको श्रीकृष्णजी जान उसके लातमारी ॥ १० ॥ वह मनुष्य बहुत दिनोंसे सोरहाथा । धीरे २ आंखें खोल चारोंओर दृष्टिडाल पार्श्वमें उस यवनकोही देखपाया ॥ ११ ॥ वह अत्यंत क्रोधित हुआ, तबही उसकी देहसे अग्नि उत्पन्न हुई । यवन उससे जलकर तत्कालही भस्म होगया ॥१२॥ परीक्षितने पूँछा कि–हेब्रह्मन्! उसपुरुषने कि जिसने यवनकोमारा कौनथा? किसवंशकाथा? क्या नामथा किसका पुत्रथा ? उसका ऐसा प्रभाव क्योंकर हुआ ? और किस कारण वह गुफामें शयनकररहा था ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि–हे राजन् ! उसने इक्ष्वाकुवंशमें जन्म ग्रहण कियाथा, उसका नाम मुचकुंद था और वह मांधाता का पुत्रथा । मुचकुंद बड़ाही सत्य प्रतिज्ञ और ब्राह्मणोंका हितकारीथा ॥ १४ ॥ युद्धमें उसकी प्रतिज्ञा निष्फल नहीं होती थी । इन्द्रादि देवताओं ने असुरों से भयभीतहो अपनी रक्षाके निमित्त उससे सहायताचाही, उसने अनेक दिन उनकी रक्षाकी थी ॥ १५ ॥ अनंतर देवताओं ने कार्त्तिकेयको स्वर्गका रक्षकपा मुचुकुंद से कहाकि हे राजन् तुम हमारे पालन रूप कष्टके सहने से निवृत्तहो ॥ १६ ॥ हेवीर ! मनुष्य लोक और निष्कंटक राज्य

यदुकम् । अस्मात्पालयतोवीर कामास्तेसर्वउज्झिताः ॥ १७ ॥ सुतामहिष्योभवतो ज्ञातयोऽमात्यमन्त्रिणः । प्रजाश्चतुल्यकालीया नाऽधुनासन्तिकालिताः ॥ १८ ॥ कालोबलीयान्बलिनां भगवानीश्वरोऽव्ययः । प्रजाःकालयते क्रीडन्पशुपालो यथा पशून् ॥ १९ ॥ वरंवृणीष्वभद्रंते ऋतेकैवल्यमद्यनः । एकएवेश्वरस्तस्य भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ २० ॥ एवमुक्तःसवै देवानभिवन्द्य महायशाः ॥ निद्रामेवततोवव्रे स राजाश्रमकर्शितः ॥ २१ ॥ यःकश्चिन्ममनिद्रायाभंगकुर्यात्सुरोत्तमाः । सहिभस्मीभवेदाशु तथोक्तश्चसुरैस्तदा ॥२२॥ स्वापंयातंयस्तुमध्ये बोधयेत्त्वामचेतनः ॥ त्वयायदृष्टमात्रस्तु भस्मीभवतुतत्क्षणात् ॥ ॥ २३ ॥ यवनेभस्मसान्नीते भगवान्सात्वतर्षभः । आत्मानंदर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते ॥ २४ ॥ तमालोक्यघनश्यामं पीतकौशेयवाससम् । श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभेनविराजितम् ॥ २५॥ चतुर्भुजंरोचमानं वैजयन्त्याचमालया । चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥२६ ॥ प्रेक्षणीयंनृलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम् । अपीच्यवयसं मत्तमृगेन्द्रोदारविक्रमम् ॥ २७॥ पर्यपृच्छन्महाबुद्धिस्तेजसा तस्य धर्षितः । शंकितःशनकैराजा दुर्धर्षमिवतेजसा ॥ २८ ॥ मुचुकुन्द उवाच ॥ को भवानिह संप्राप्तो विपिनेगिरिगह्वरे । पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकण्टके ॥ २९ ॥ किंस्वित्तेजस्विनां तेजोभगवान्वा विभावसुः । सूर्यःसोमोमहेन्द्रोवा लोकपालोपरोऽपिवा ॥ ३० ॥ मन्येत्वांदेवदेवानां त्रयाणांपुरुषर्षभम् । यद्बाधसेगुहा-

को छोडकर हमारी रक्षा करने में प्रवृत्तहो तुमने समस्त भोग परित्याग करदिये ॥ १७ ॥ तुम्हारे पुत्र, स्त्री, सम्बधी, मन्त्री और तुम्हारे समय के प्रजागण कालसे चलायमानहो अब जीवित नहीं है ॥ १८ ॥ काल—बलवानों में श्रेष्ठ, भगवान, ईश्वर और अव्यय है, क्रीड़ा करता हुआ ग्वाल जैसे पशुओंको चलाता है तैसेही वह प्रजागणको चलायमान करता है ॥ १९ ॥ तुम्हारा कल्याण होवे। मोक्षके अतिरिक्त जोइच्छाहो कहो, वहीवर पाओगे।क्योंकि मुक्तिके अधीश्वर केवल नारायणही हैं ॥ २० ॥ देवताओं कीइस बातको सुनकर महायशा मुचुकुंदने उनको नमस्कार किया और राज्य श्रमसे थकित होनेके कारण उनसे देवताओं से निद्राही मांगी ॥ २१ ॥ मुचुकुन्दने कहा कि—हे सुरोत्तमो ! जोकोई आकर मेरी निद्रामें विघ्नकरे, वह तुरन्त भस्महोजाय, यहवर मुझको दो तब देवताओंने 'तथास्तु' कहा ॥२२ ॥ और ऐसावरदान दिया कि आपके सोतेसमय बीचमें जो मूर्ख जगावेगा उसपर आपकी दृष्टि पडतही वह तुरत भस्म होजायगा फिर वह देवताओं की दीहुई निद्रासे गुफामें जाकर सोरहा ॥ २३ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार से कालयवन के भस्म होनेपर सात्वत श्रेष्ठ भगवान ने मुचुकुंदको अपनी मूर्त्ति दिखाई ॥ २४ ॥ उनका मेघका समान श्यामवर्ण है पीताम्बर पहिने, वक्षःस्थल में श्रीवत्सधारण किये हैं प्रकाशित कौस्तुभमणि उनकी और भी शोभा बढ़ारही है ॥ २५ ॥ चतुर्भुज, वैजयंती मालासे प्रकाशित, सुंदर प्रसन्न मुखारबिंद धारण किये, मकरा कृतकुंडल पहिने ॥ २६ ॥ मनुष्यों के देखन योग्य, स्नेहयुक्त मंद मुसकान सहित देखते हुए, सुंदर अवस्था व मत्तसिंह की समान पराक्रम वाले ॥ २७ ॥ तेजयुक्त उस रूपको देखकर वह राजा भगवान केतेजसे अभिभूत और भयभीत होगया तथा धीरे २ उन तेजयुक्त भगवान से पूँछनेलगा कि ॥ २८ ॥ आप कौनहो—जोइस बहुत से कंटक युक्त वनके बीचों आय पहाड़ की कंदराओं प्रवेशकर चरण कमल द्वारा इधर उधर भ्रमणकर रहेहो ॥ २९ ॥ आप क्या तेजस्वियों के तेज या भगवान विभावसुहो ? या सूर्य, चन्द्र,इन्द्र,लोकपाल इनमें से कोई हो ॥ ३० ॥ जानपड़ता है कि तीनदेवों में से आप विष्णुजी हो। क्योंकि आप दीपक कीसमान

ध्वान्तंप्रदीपः प्रभयायथा ॥ ३१ ॥ शुश्रूषतामव्यलीकमस्माकं नरपुङ्गव । स्वज-न्मकर्मगोत्रंवाकथ्यतां यदिरोचते ॥ ३२ ॥ वयंतुपुरुषव्याघ्रऐक्ष्वाकाः क्षत्रबन्धवः। मुचुकुन्दइतिप्रोक्तो यौवनाश्वात्मजःप्रभो ॥ ३३ ॥ चिरप्रजागरश्रान्तो निद्रयाप-हतेन्द्रियः । शयेऽस्मिन्विजनेकामं केनाप्युत्थापितोऽधुना ॥ ३४ ॥ सोपिभस्मी कृतोनूनमात्मीयेनैवपाप्मना । अनन्तरंभवाञ्छ्रीमाँल्लक्षितोऽमित्रशातनः ॥ ३५ ॥ तेजसातेऽविषह्येणभूरिद्रष्टुंनशक्नुमः। हतौजसोमहाभागमाननीयोऽसिदेहिनाम् ॥ ॥ ३६ ॥ एवंसम्भाषितो राज्ञाभगवान्भूतभावनः । प्रत्याहप्रहसन्वाण्या मेघनाद-गभीरया ॥ ३७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जन्मकर्माभिधानानि सन्तिमेऽङ्गसहस्रशः । नशक्यन्तेऽनुसंख्यातुमनन्तत्वान्मयापिहि॥३८॥ क्वचिद्रजांसिविममे पार्थिवान्यु रुजन्मभिः।गुणकर्माभिधानानि नमेजन्मानिकर्हिचित्॥३९॥कालत्रयोपपन्नानिजन्म कर्माणिमेनृप। अनुक्रमन्तोनैवान्तंगच्छन्तिपरमर्षयः॥४०॥तथाप्यद्यतनान्यङ्गशृणुष्व गदतोमम। विज्ञापितोविरिञ्चेनपुराऽहंधर्मगुप्तये । भूमेर्भारायमाणानामसुराणांक्ष यायच॥४१॥अवतीर्णोयदुकुलेगृहआनकदुन्दुभेः । वदन्तिवासुदेवेतिवसुदेवसुतं हिमाम् ॥ ४२ ॥ कालनेमिर्हतःकंसःप्रलम्बाद्याश्चसद्द्विषः । अयंचयवनोदग्धोरा-जंस्तेतिग्मचक्षुषा ॥ ४३ ॥ सोऽहंतवानुग्रहार्थं गुहामेतामुपागतः । प्रार्थितःप्रचुरं पूर्वंत्वयाऽहंभक्तवत्सलः ॥ ४४ ॥ वरान्वृणीष्वराजर्षेसर्वान्कामान्ददामिते । मांप्र-पन्नोजनःकश्चिन्नभूयोऽर्हतिशोचितुम् ॥ ४५॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तस्तंप्रणम्या

अपने प्रकाश से गुफाका अंधकार दूर करतेहो ॥ ३१ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! आपके यथार्थ जन्म, कर्म और गोत्रके सुनने की मेरी अत्यंत इच्छा है, यदि इच्छा होतो कहिये ॥ ३२ ॥ हे प्रभो ! मैं इक्ष्वाकुवंशी विख्यात क्षत्रीहूं मैं युवनाश्व के पुत्र मांधाता का पुत्र मुचुकुन्दहूं ॥ ३३ ॥ अनेक दिनों के जागते रहने से श्रमित और निद्रामे हतेन्द्रियहो इस निर्जनवन मे आय इच्छानु-सार सोरहाथा, केवल इसी मनुष्य ने मेरी निद्रा भंगकी है ॥ ३४ ॥ निश्चयही यह अभागा अप-नेही पापों से भस्महोगया है । इस के भस्महोने के उपरांतही श्रीमान् आपने अपने दर्शन दिये ॥ ३५ ॥ आपके असहनीय तेजसे मेरा तेज नाशहोगया है इसकारण मै और वृत्तांत नहीं पूँछ सकता, हे महाभाग ! आप देहधारियों में श्रेष्ठहो ॥ ३६ ॥ भूतभावन भगवान इसप्रकार से पूँछे जानेपर हँसतहुए मेघ की समान गम्भीर बाणी से बोले कि— ॥ ३७ ॥ हेराजन् ! मेरे सहस्रोंही जन्म, कर्म और नाम हैं उनसबका अन्तनहीं है इसलिये मैंभी उनकी गणना नहीं करसकता ॥ ३८ ॥ पृथ्वी के रजकण गिने जासकते हैं; परंतु बहुत जन्मों में भी कभी कोई मेरे गुण, कर्म, नाम और जन्मकी गणनानहीं करसकता ॥ ३९ ॥ परम ऋषिगण मेरे त्रिकाल सिद्धजन्म और कर्मों का यथाक्रम से वर्णन करकेभी अन्त नहीं पाते ॥ ४० ॥ तौभी हे महाराज!मैंअपनेवर्तमान जन्म और कर्म सब आपसे कहताहूं,-सुनो प्रथम कमलयोनि ब्रह्माजीने धर्म कीरक्षाऔर पृथ्वी के भारभूत असुरों के नाशके निमित्त मुझ से प्रार्थनाकीथी ॥ ४१॥ इसकारण मैंने यदुकुल में वसु-देव के घर अवतार लिया है । मैं वसुदेवका पुत्रहूं इसीकारण मनुष्यमुझको वासुदेव कहते हैं ॥ ४२ ॥ साधुओं से द्वेष रखनेवाले कालनेमि–कंस और प्रलम्बादि असुरगण मेरे हाथ से मारेगये हैं। और केवल तुम्हारी तीक्ष्ण दृष्टि से इस असुरकोभी नाशकराया ॥ ४३ ॥ तुम्हारेऊपर अनु-ग्रह करने के निमित्तही मैं इस स्थानमें आयाहूं । मुझ भक्तवत्सलकी प्रथमतुमने अनेक प्रार्थनाएं कीथीं ॥ ४४ ॥ हे राजर्षि ! वरमांगो । मैं सर्वकाम का देनेवालाहूं मुझको पाकर ।फिर किसी मनुष्य को शोककरना उचितनहीं ॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि इस बात को सुन मुचुकुन्द परम

द्मुचुकुन्दोमुदान्वितः ॥ ज्ञात्वानारायणंदेवंगर्गवाक्यमनुस्मरन् ॥ ४६ ॥ मुचुकु न्दउवाच ॥ विमोहितोऽयंजनईशमायया त्वदीययात्वांनभजत्यनर्थदृक् । सुखाय दुःखप्रभवेषुसज्जतेगृहेषुयोषित्पुरुषश्चवंचितः ॥ ४७ ॥ लब्ध्वाजनोदुर्लभमत्रमा नुषं कथंचिदव्यंगमयत्नतोऽनघ । पादारविन्दं नभजत्यसन्मतिर्गृहान्धकूपेपतितो यथापशुः ॥ ४८ ॥ ममैषकालोऽजितनिष्फलोगतो राज्यश्रियोन्नद्धमदस्यभूपतेः । मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभूष्वासज्यमानस्य दुरन्तचिन्तया ॥ ४९ ॥ कलेवरेऽ स्मिन्घटकुड्यसन्निभे निरूढमानोनरदेवइत्यहम् । वृतोरथेभाश्वपदात्यनीकपैर्गां प र्यटंस्त्वगणयन्सुदुर्मदः ॥ ५० ॥ प्रमत्तमुच्चैरिति कृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् । त्वमप्रमत्तः सहसाऽभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥ ५१ ॥ पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन्मतंगजैर्वा नरदेवसंज्ञितः । सएवकालेनदुरत्ययेनतेकल वरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ॥ ५२ ॥ निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो वरासनस्थः स मराजवन्दितः । गृहेषुमैथुन्यसुखेषुयोषितां क्रीडामृगः पूरुषईशनीयते ॥ ५३ ॥ क रोतिकर्माणितपःसुनिष्ठितो निवृत्तभोगस्तदपेक्षयाददत् । पुनश्चभूयेयमहंस्वरा- डिति प्रवृद्धतर्षोनसुखायकल्पते ॥ ५४ ॥ भवापवर्गोभ्रमतोयदाभवेज्जनस्य तर्ह्यच्यु

आनंदितहुआ और जो गर्गमुनि ने कहाथा कि " अट्ठाईसवें युग में भगवान अवतार लेंगे " इस समय उस बात का स्मरणकर उनको देवदेव नारायणजान प्रणामकर स्तुति करनेलगा ॥ ४६ ॥ मुचुकुन्द ने कहा कि-हे ईश्वर ! यह लोक स्त्री और पुरुष इन दो भागों से विभक्तहो आपकी मायासे मोहित है; अतएव परमार्थ सुख स्वरूप आप को नहीं देखपाता और न आपकी सेवाकर एक दूसरे से बंचितहोकर सुख के कारण दुःख के उत्पत्तिस्थानघर में आसक्त होतारहता है ॥ ४७ ॥ हे निष्पाप ! कालानुसार किसी प्रकार से दुर्लभ अविकलाङ्ग मनुष्यजन्म को पाकर मनुष्यों को विषयसुख हीकी बुद्धि होती रहती है। पशुगण जैसे तृण के लोभ से तृण से ढकेहुए अंधे कुए में गिरते हैं वैसेही वहभी घररूपी अंधकुए में गिरकर आपके चरणकमलों का भजन नहीं करते ॥ ४८ ॥ मैं राजाथा । राज्य सम्पत्ति के कारण मुझे अहंकार उत्पन्नहोगयाथा । मैं आत्मा देहकोही जानकर घोर चिंता के साथ पुत्र, स्त्री, कोष और भूमि आदि में आसक्तथा ॥ ४९ ॥ और घड़े व दीवारकी समान इस शरीर में " मैं राजाहूं " ऐसा अभिमान कर रथ, हाथी, घोड़े और पैदल वाली सेना से घिरे भ्रमण करता २ अत्यंत गर्वित होगयाथा । उससमय मैंने आपका भजन नहीं किया इसकारण मेरा इतना समय व्यर्थहोगया ॥ ५० ॥ भूँखा सांप जैसे गलफड़े चाटताहुआ चूहेपर आक्रमण करता है वैसेही अप्रमत्त कालरूप आपको यह २ कार्य समाप्त करनाचाहिये ऐसी चिंताओं से प्रमत्त विषय वासनाओंसे व्याकुल और बँधेहुए तृष्णान्वित मनुष्यों का हठात् भक्षण करलेतेहो ॥ ५१ ॥ जो शरीर प्रथम राजाके नामसे गर्वितहो सुवर्णसे मढ़ेहुए रथ व हाथीपर भ्रमणकरताहै इससमय आपका अटलनीय काल मूर्त्तिसे विष्ठा कृमि व भस्म नामको पाता है ५२ ॥ हे ईश्वर ! जो पुरुष दिशा विदिशाके राजाओं को जीतकर सबसे ऊंचे आसनपर बैठ राजाओंका पूजनीयहुआहै वहभी क्रीड़ा मृगकी समान एक स्त्री के घरसे दूसरी स्त्री के घर घूमता फिरताहै मैथुन धर्मही उन सब घरोंका सुखहै ॥५३॥ इस समय सब छोड़कर जन्मान्तर में जिसप्रकारसे चक्रवर्ती होसकूं वह करूं यह विचारकर वह म- नुष्य सब भोगों से निवृत्त होताहै और उस भोगको त्याग तपस्या में अत्यन्तहो निष्ठितहो, कर्म करता है। इसप्रकारसे उस की तृष्णा प्रतिदिन बढ़ती रहती है; इसकारणवह सुख को नहींप्राप्त करसकता ॥ ५४ ॥ हे अच्युत ! आपके अनुग्रह से संसारी मनुष्यों के जबसांसारिक कर्म शेष

तस्सत्समागमः । सत्संगमोयर्हितदैवसद्गतौ परावरेशेत्वयिजायतेमतिः ॥ ५५ ॥
मन्येममानुग्रहईशतेकृतो राज्यानुबन्धापगमो यदृच्छया । यःप्रार्थ्यतेसाधुभिरेकचर्यया वनंविविक्षद्भिरखण्डभूमिपैः ॥५६॥ नकामयेऽन्यंतव पादसेवनादकिंचनप्रार्थ्यतमाद्वरं विभो । आराध्यकस्त्वांह्यपवर्गदंहरे वृणीतआर्योवरमात्मबन्धनम् ॥५७॥
तस्माद्विसृज्याशिषईश सर्वतो रजस्तमःसत्वगुणानुबन्धनाः । निरंजनंनिर्गुणमद्वयंपरंत्वां ज्ञप्तिमात्रंपुरुषंव्रजाम्यहम् ॥ ५८ ॥ चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापैरवितृषषडमित्रोऽलब्धशान्तिः कथंचित् । शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्मन्नभयमृतमशोकंपाहि माऽऽपन्नमीश ॥ ५९ ॥ श्रीभगवानुवाच । सार्वभौममहाराज मतिस्तेविमलोर्जिता । वरैःप्रलोभितस्यापि नकामैर्विहतायतः ॥ ६० ॥ प्रलोभितोवरैर्यत्त्वमप्रमादाय विद्धितत् । न धीर्मय्येकभक्तानामाशीर्भिर्भिद्यते क्वचित् ।६१।
युंजानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः । अक्षीणवासनं राजन्दृश्यते पुनरुत्थितम् ॥ ६२ ॥ विचरस्वमहींकामं मय्यावेशितमानसः । अस्त्वेवनित्यदातुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी ॥ ६३ ॥ क्षात्रधर्मस्थितोजन्तून्न्यवधीर्मृगयादिभिः । समाहितस्तत्तपसा जह्यघंमदुपाश्रितः ॥ ६४ ॥ जन्मन्यनन्तरे राजन्सर्वभूतसुहृत्तमः । भूत्वाद्विजवरस्त्वंवै मामुपैष्यसिकेवलम् ॥ ६५ ॥

इति श्रीमद्भा०महा० द० उ० एकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

होजाते हैं, तभी वह साधुओं का संग प्राप्तकरते हैं । जैसेही साधुसंग उत्पन्नहुआ वैसेही साधुओं की गति और कार्य कारण के नियंता आप में भक्ति उत्पन्नहोती है ॥ ५५ ॥ हे ईश्वर ! तपस्या के निमित्त वनमें प्रवेशकर अभिलाषीहो विवेकी चक्रवर्त्ती गण आप के निकट जा प्रार्थनाकरते हैं उसी राज्यानुराग से मेरीइच्छा दूरहोगई है–जानना पड़ता है कि यह आपही की कृपा है ॥५६॥ हे प्रभो ! आप के चरणों की सेवाकरनाही निरहंकारी मनुष्यों की एक प्रार्थना है मैंभी आप से उसी वरको मांगताहूं । हे हरे ! आप मुक्तिके देनेवालेहो कौनमनुष्य आप का आराधन कर इस प्रकार का वरमांगेगा कि जिससे आत्माका बंधनहोवे ॥ ५७ ॥ अतएव हे ईश्वर ! रज, तम, और सत्वगुण से बँधाहुई समस्त कामनाओं को छोड़कर मैं निरंजन, निर्गुण, अद्वय, श्रेष्ठ और विज्ञानमात्र पुरुष आप के चरणों की शरणमें आयाहूं ॥ ५८ ॥ हेपरमात्मन् ! इस असार में मैं बहुत दिनों से कर्मफलों से पीड़ितहूं, बहुत दिनों से उनमत्त वासनाओंद्वारा संतप्त होरहाहूं;तौभी मेरे छःशत्रुओं की तृष्णा दूरनहीं हुई । अतएव किसी प्रकारसे भी शांति न पा आप के सत्य,भयरहित और शोकहीन चरणकमलों का आश्रय किया है । हे ईश्वर मेरी रक्षाकरो विपत्ति मुझको व्याप्त होरही है ॥ ५९ ॥ भगवान ने कहा कि—हे सार्वभौम महाराज ! तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त निर्मल और गंभीर है क्योंकि तुमको वरद्वारा मैंने इतने लोभ दिखाये तौभी तुम्हारीबुद्धि इच्छाओं से मोहित न हुई ॥ ६० ॥ तुमको जो वरद्वारा मैंने लोभ दिखाया, निश्चयही जानना कि तुमको भ्रममें डालनेके निमित्त मैंने नहीं कहा, जो एकांत भक्त हैं उनकी बुद्धि, भोग सुखोंको प्राप्तहोकरभी उनमें आसक्त नहीं होती ॥ ६१ ॥ किंतु हे राजन् ! जो भक्त नहीं हैं, देखाजाता है कि उनका मन प्राणायामादिद्वारा मुझमें लगाकरभी कभी २ विषयोंकी ओर दौड़ता रहताहै ॥६२॥ तुम अपने मनको मुझमें लगाकर इच्छानुसार पृथ्वी में भ्रमण करो, मुझपर सर्वदाही तुम्हारी ऐसीही निश्चलाभक्ति रहेगी ॥ ६३ ॥ क्षत्रियधर्म का अवलंबनकर तुमने मृगया में नानाजंतुओंका वध कियाहै, अतएव मेरा आश्रयकर एकाग्र मनसे तपस्याद्वारा पापोंका नाशकरो ॥६४॥ हेराजन् ! दूसरे जन्ममें तुम सर्वप्राणियों के सुहृद श्रेष्ठद्विजहो केवल मुझको प्राप्तहोगे ॥ ६५ ॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां एकपंचाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ इत्थंसोऽनुगृहीतोऽङ्गकृष्णेनेक्ष्वाकुनन्दनः । तंपरिक्रम्यसंन
म्यनिश्चक्रामगुहामुखात् ॥ १ ॥ संवीक्ष्यक्षुल्लकान्मर्त्यान्पशून्वीरुद्वनस्पतीन् । म
त्वाकलियुगंप्राप्तंजगामदिशमुत्तराम् ॥ २ ॥ तपःश्रद्धायुतोधीरोनिःसङ्गोमुक्तसंश
यः । समाधायमनः कृष्णेप्राविशद्गन्धमादनम् ॥३॥ बदर्याश्रममासाद्यनरनाराय
णालयम् । सर्वद्वन्द्वसहः शान्तस्तपसाऽऽराधयद्धरिम् ॥ ४ ॥ भगवान्पुनराव्रज्य
पुरींयवनवेष्टिताम् । हत्वाम्लेच्छबलंनिन्येतदीयंद्वारकांधनम् ॥ ५ ॥ नीयमानेधने
गोभिर्नृभिश्चाच्युतचोदितैः । आजगामजरासन्धस्त्रयोविंशत्यनीकपः ॥ ६ ॥ वि
लोक्यवेगरभसंरिपुसैन्यस्यमाधवौ । मनुष्यचेष्टामापन्नौराजन्दुद्रुवतुर्द्रुतम् ॥७॥ वि
हायवित्तंप्रचुरमभीतौभीरुभीतवत् । पद्भ्यांपद्मपलाशाभ्यांचेलतुर्बहुयोजनम् ॥८॥
पलायमानौतौदृष्ट्वामागधः प्रहसन्बली । अन्वधावद्रथानीकैरीशयोरप्रमाणवित्
॥ ९ ॥ प्रद्रुत्यदूरंसंश्रान्तौतुङ्गमारुहतांगिरिम् । प्रवर्षणाख्यंभगवान्नित्यदायत्रवर्ष
ति ॥ १० ॥ गिरौनिलीनावाज्ञायनाधिगम्यपदंनृप । ददाहगिरिमेधोभिः समन्ताद
ग्निमुत्सृजन् ॥ ११ ॥ ततउत्पत्यतरसादह्यमानतटादुभौ । दशैकयोजनात्तुङ्गान्निपे
ततुरधोभुवि ॥ १२ ॥ अलक्ष्यमाणौरिपुणासानुगेनयदूत्तमौ । स्वपुरंपुनरायातौस
मुद्रपरिखांनृप ॥ १३ ॥ सोऽपिदग्धाविति मृषामन्वानोबलकेशवौ । बलमाकृष्यसु
महन्मगधान्मागधोययौ ॥१४॥ आनर्ताधिपतिः श्रीमान्रैवतोरैवतींसुताम् । ब्रह्मणा

श्रीशुकदेवजी बोले–कि हे राजन् ! इक्ष्वाकुनन्दन मुचुकुंद भगवान् श्रीकृष्णजीसे ऐसा अनुग्रह प्राप्तकर उनकी परिक्रमा व दण्डवतकर गुफामेंसे बाहर निकला ॥ १ ॥ बाहर निकलतेही उसने देखा कि–पशु, लता और वनस्पति सबही छोटेहोगये हैं, अतएव 'कलियुग आगया' यह विचारकर वह उत्तरकी ओर गया ॥ २ ॥ और तपस्यामें श्रद्धायुक्त, धीर, निःसंग और निःसंशयहो श्रीकृष्णजीमें मनलगाय गंधमादन पर्वत में उपस्थित हुआ ॥ ३ ॥ वहां नरनारायणके निवासस्थान बदरिकाश्रममें प्राप्तहो सब सुख दुःखादि द्वंद्वोंका सहनकर शांतभाव से तपस्याद्वारा भगवानकी आराधना करनेलगा ॥४॥ हे राजन् ! इधर यवनके नाशहोनेपर भगवान फिर मथुरा में आये और म्लेच्छ सेनाका संहार कर उनके धनको द्वारका के जानेलगे ॥ ५ ॥ वह मनुष्य और बैलोंमें धनलिये जातेथे कि–उसी समयमें जरासंध तेईस अक्षौहिणीका सेनापतिहो फिर वहांआया ॥६॥ हे राजन् ! राम कृष्णने शत्रुसेनाके वेगको देख मनुष्य लीलाका अवलम्बनकर वेगसे भागने का आरंभ किया ॥ ७ ॥ वह यद्यपि निर्भय थे तथापि अत्यंत भीतकी समानहो अमित धनछोड़ कमल पत्रकी समान कोमल चरणों से कई योजनतक भाग चलेगये ॥ ८ ॥ बलवान मगधराज उन दोनों ईश्वरों की ईश्वरताको नहीं जानता था; उनको भागता हुआ देखरथ और सेनाले उनके पीछे २ दौड़ने लगा ॥ ९ ॥ राम और केशव अनेक दूर दौडकर श्रमित होगये तब विश्राम के निमित्त प्रवर्षण नामक अतिऊंचे पर्वतपर चढगये। इन्द्र उस पर्वतपर सदैवही वर्षाकरताहै ॥१०॥ राजा जरासंधने देखाकि राम कृष्ण इस पर्वत में छिपरहे इस कारण उसने इनके ढूंढनेका बहुतसा यत्नकिया परन्तु उनका खोजनपा काष्ठद्वारा अग्निको उत्पन्नकर पर्वतको जलानेलगा ॥ ११ ॥ तब राम कृष्ण उस पर्वतके जलते हुए शिखर से शीघ्रता पूर्वक फांद ग्यारह योजन नीचे भूमिपर कूदपड़े और शत्रु व उसके अनुचरों की दृष्टिको बचाय समुद्रसे घिरीहुई अपनी पुरीमें आए॥१२॥ ॥१३॥ मगधराज ने विचारा कि—बलराम और कृष्ण जल गये हैं अतएव वह सेनाको इकट्ठाकर अपने राज्य को लौटआया ॥ १४ ॥ हेभारत ! आनर्त्त देशके राजा श्रीमान् रैवत नरेश ने

चोदितः प्राद्राह्मलायेतिपुरोदितम् ॥१५॥ भगवानपितोविन्द्रउपयेमेकुरूद्वह। वैद र्भीभीष्मकसुतांश्रियोमात्रांस्वयंवरे ॥ १६ ॥ प्रमथ्यतरसाराज्ञः शाल्वादींश्चैद्यपक्ष गान्। पश्यतांसर्वलोकानांतार्क्ष्यपुत्रः सुधामिव ॥ १७ ॥ राजोवाच ॥ भगवान्भी ष्मकसुतांरुक्मिणींरुचिराननाम्। राक्षसेनविधानेनउपयेमइतिश्रुतम् ॥ १८ ॥ भग वन्श्रोतुमिच्छामिः कृष्णस्यामिततेजसः यथामागधशाल्वादीञ्जित्वाकन्यामुपाहर त् ॥ १९ ॥ ब्रह्मन्कृष्णकथाः पुण्यामाध्वीर्लोकमलापहाः। कोनुतृप्येतशृण्वानः श्रु तज्ञोनित्यनूतनाः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजाऽऽसीद्भीष्मकोनामविदर्भाधिप तिर्महान्। तस्यपञ्चाभवन्पुत्राः कन्यैकाचवरानना ॥ २१ ॥ रुक्म्यग्रजोरुक्मर थोरुक्मबाहुरनन्तरः। रुक्मकेशोरुक्ममालीरुक्मिण्येषांस्वसासती ॥ २२। सोप श्रुत्यमुकुन्दस्यरूपवीर्यगुणश्रियः। गृहागतैर्गीयमानास्तंमेनेसदृशंपतिम् ॥ २३ ॥ तांबुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणाश्रयाम्। कृष्णश्चसदृशीं भार्यांसमुद्वोढुंमनोदधे ॥ २४ ॥बन्धूनामिच्छतांदातुंकृष्णायभगिनींनृप। ततोनिवार्यकृष्णद्विड्रुक्मीचैद्य ममन्यत ॥ २५ ॥ तदवेत्यासितापाङ्गीवैदर्भीदुर्मनाभृशम्। विचिन्त्याऽऽप्तंद्विजंक श्चित्कृष्णायप्राहिणोद्द्रुतम् ॥२६॥ द्वारकांससमभ्येत्यप्रतीहारैः प्रवेशितः। अप श्यदाद्यंपुरुषमासीनंकाञ्चनासने ॥ २७ ॥ दृष्ट्वाब्रह्मण्यदेवस्तमवरुह्यनिजासना त्। उपवेश्यार्हयाञ्चक्रेयथात्मानंदिवौकसः ॥ २८ ॥ तंभुक्तवन्तंविश्रान्तमुपगम्य

ब्रह्माकी आज्ञापाय अपनी पुत्री रेवतीका बलरामजीसे विवाहकिया। सो प्रथमही मैंने तुमसे यह कथा कहीहै॥१५॥ हेकुरुश्रेष्ठ! गरुड़ने जैसे देवताओं का मथनकर अमृत हरण कियाथा भगवान कृष्णजीनेभी वैसेही सब मनुष्योंके सामने बलपूर्वक शिशुपालके पक्षवाले शाल्व आदि राजाओंको जीतकर लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न हुई भीष्मक राजाकी पुत्री रुक्मिणी से विवाह किया १६–१७॥ राजा ने पूँछा कि—हेब्रह्मन्! भगवान ने राक्षस विधि के अनुसार—भीष्मककी पुत्री सुंदर मुख वाली रुक्मिणी का विवाह किया,—यह तो मैंने सुना ॥ १८ ॥ किंतु उन्होंने जिसप्रकार जरासंध और शाल्व आदि को जीतकरकन्याको हरण कियाथा; वह सुननेकी मेरीइच्छा है ॥ १९॥हेब्रह्मन्! श्रीकृष्णजीकी कथाका अमित फल है, उस के सुनने से महासुख उत्पन्नहोता है। वह मनुष्यों के पापों को नाशकरनेवाली और नित्यनवीन है; उस के सुनने से किस सुननेवालेकी तृष्णा दूरहो सकती है ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—राजन्! भीष्मकनामक एक राजा विदर्भ देश के सिंहासनपरथा। उस के पांचपुत्र और मनलुभानेवाली एक कन्या उत्पन्नहुई ॥ २१ ॥ उन सब में रुक्मी जेठाथा, और रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश और रुक्ममाली यह उस से छोटे थे साध्वी रुक्मिणी इनकी बहिनथी ॥ २२ ॥ इसने घर में आयेहुए मनुष्यों के मुख से श्रीकृष्णजी के रूप वीर्य, गुण और श्रीका वर्णन सुन उन्हीं को अपने योग्य बर स्थिर किया ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णजी ने भी बुद्धि, लक्षण, उदारता, रूप, शील और गुणों की आश्रयभूता उस रुक्मिणीको अपने योग्य पात्री विचार उन के संग बिवाह करनेकी इच्छाकी ॥ २४ ॥ हेराजन्! यद्यपि बंधुओं ने श्री कृष्णजी को रुक्मिणी देने का विचार किया परन्तु श्रीकृष्णजी के द्वेषी रुक्मी ने उन सबको निवारणकर शिशुपाल को रुक्मिणी देने का विचार किया ॥ २५ ॥ वह श्यामकटाक्षवाली रुक्मिणी यह जानकर अत्यन्त उदासहुई और किसी एक विश्वासी ब्राह्मण को शीघ्रही श्रीकृष्णजी के निकट भेजा ॥ २६ ॥ वह ब्राह्मण शीघ्रतापूर्वक द्वारका में आया और द्वारपाल से आज्ञाले भीतर जायकर उसने देखा कि आदिपुरुष सुवर्ण के सिंहासनपर बैठेहुए हैं ॥ २७ ॥ ब्रह्मण्य देव श्रीकृष्णजीउस ब्राह्मणको देख सिंहासनसे उतरपड़े और उसको आसनपर बैठाय उसकी पूजाइसप्रकारकी-कि जैसे देवता उनकी (भगवान) पूजाकरते हैं ॥ २८ ॥ अनन्तर भोजन के उपरांत ब्राह्मणको

सतांगतिः पाणिनाऽभिमृशन्पादावव्यग्रस्तमपृच्छत ॥२९॥ कच्चिद्द्विजवरश्रे
ष्ठधर्मस्तेवृद्धसंमतः । वर्ततेनातिकृच्छ्रेणसंतुष्टमनसःसदा ॥ ३० ॥ संतुष्टोयर्हि
वर्तेतब्राह्मणोयेनकेनचित् । अहीयमानः स्वाद्धर्मात्सह्यस्याखिलकामधुक् ॥ ३१ ॥
असंतुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपिसुरेश्वरः । अकिञ्चनोऽपिसंतुष्टः शेतेसर्वाङ्गविज्व
रः ॥ ३२ ॥ विप्रान्स्वलाभसंतुष्टान्साधून्भूतसुहृत्तमान् । निरहङ्कारिणः शान्तान्न
मस्येशिरसाऽसकृत् ॥३३॥ कच्चिद्वः कुशलंब्रह्मन्राजतोयस्यहिप्रजाः । सुखंवसन्ति
विषयेपाल्यमानाः समेप्रियः ॥ ३४ ॥ यतस्त्वमागतोदुर्गंनिस्तीर्येहयदिच्छ
या । सर्वंनोब्रूह्यगुह्यंचेत्किंकार्यंकरवामते ॥ ३५ ॥ एवंसंपृष्टसंप्रश्नोब्राह्मणः परमे
ष्ठिना । लीलागृहीतदेहेनतस्मैसर्वमवर्णयत् ॥ ३६ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ श्रुत्वागुणा
न्भुवनसुन्दरशृण्वतांतेनिर्विश्यकर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम् । रूपंदृशांदृशिमतामखि
लार्थलाभंत्वय्यच्युताऽऽविशतिचित्तमपत्रपंमे ॥ ३७ ॥ कात्वामुकुन्दमहतीकुल
शीलरूपविद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् । धीरापतिंकुलवतीनवृणीतकन्याका
लेनृसिंहनरलोकमनोऽभिरामम् ॥ ३८ ॥ तन्मेभवान्खलुवृतः पतिरङ्गजायामात्मा
र्पितश्चभवतोऽत्रविभोविधेहि । मावीरभागमभिमर्शतुचैद्यआराद्गोमायुवन्मृगपते
र्बलिमम्बुजाक्ष ॥ ३९ ॥ पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्रगुर्वर्चनादिभिरलंभगवान्परे

श्रम दूरहुआजान साधुओं की गति श्रीभगवान ने हाथों से उनके चरणचापते २ धीरभावसे पूछा ॥ २९ ॥ हे द्विजवर ! आप का मन सदैवसन्तुष्ट रहकर आपका वृद्धपुरुषों के माननीय धर्म तो सहज से प्रवर्तता है? ॥ ३० ॥ ब्राह्मण यदि किसी प्रकार से भी सन्तुष्ट रहकरस्वधर्म से पृथक् नहो जीवनको धारणकरसके तो धर्महो उनकी समस्तइच्छाये पूर्णकरता है ॥ ३१ ॥ जो असन्तुष्ट है वह इंद्रहोकरभी बारम्बार इस लोक से उसलोक में चक्कर खातारहता है, और जो सन्तुष्ट है वह दरिद्र होकरभी सुख से समय को विताय।करते हैं ॥ ३२ ॥ जो स्वयप्राप्तहुए धनसे संतुष्ट,साधु, प्राणियों के श्रेष्ठवन्धु, अभिमानरहित और शांत हैं, ऐसे ब्राह्मणों को मस्तकझुकाय मैं बारम्बार प्रणामकरताहू ॥ ३३ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप आनन्द से तोहो ? जिस राजा के राज्य में प्रजा रक्षितहो सुख से वासकरती है वही मेरा प्रीति का पात्र है ॥ ३४ ॥ आप जिस कार्य की इच्छा से समुद्र पारकरके इस स्थानपर आयेहो वह यदि गुप्त न होवे तो मुझ से कहिये मुझे क्याआज्ञा है ॥ ३५ ॥ लीला से मनुष्यरूप धारण करनेवाले भगवान के इस भांति प्रश्न करने पर ब्राह्मण ने समस्त वृत्तांत उनसे वर्णन किया । और रुक्मिणी ने एकांत में जो पाती लिखीथी उसे थैली से निकाल श्रीकृष्णजी को दिखाया और श्रीकृष्णजी की आज्ञासे उसे पढ़कर कहनेलगा॥३६॥ श्रीरुक्मिणीजी कहती हैं कि-हेअच्युत ! हेभुवनसुन्दर ! आपके जो गुण कर्णविवरोंद्वारा प्रवेशकर सुननेवालों के शरीर का ताप हरते हैं वहसब गुण और दृष्टिवालों की दृष्टि के सम्पूर्णमनोरथों का कामस्वरूप आप के रूपका जबसे वर्णनसुना है तबसे मेरा चित्त निर्लज्जहोकर आप में आसक्त होरहा है ॥ ३७ ॥ हेमुकुन्द ! आप कुल, शील, रूप, विद्या, वय, द्रव्य, संपत्ति और प्रभाव में अपनीहीसमानहो । हे नरश्रेष्ठ ! आप से मनुष्यों को आनन्द उत्पन्नहोतारहता है; विवाहकाल उप-स्थितहोने पर कौनगुणवती, गुणश्रेष्ठा, बुद्धिमान स्त्री आप के पति होने की इच्छा न करता होगी ॥ ३८ ॥ हे विभो ! इसहीकारण मैं आपको अपना पतिबना आत्मसमर्पण करतीहूं ; अतएव आप इस स्थानपर आय मुझको अपनी स्त्री बनाओ । हेकमलाक्ष ! सियारजैसे सिंहकाभाग हरण नहीं करता वैसेही शिशुपाल आकर आपके भागका स्पर्श न करनेपावे ॥३९॥ यदि मैंने बावड़ी, कुआ

शः। आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥ ४० ॥ श्वो भाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान्गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः। निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम् ॥ ४१ ॥ अन्तःपुरान्तरचरीमनिहत्य बन्धूंस्त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम्। पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवयात्रा यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ॥ ४२ ॥ यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजःस्नपनं महान्तो वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै। यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून्व्रतकृशाञ्छतजन्मभिः स्यात् ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण उवाच। इत्येते गुह्यसंदेशा यदुदेव मयाऽऽहृताः। विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनन्तरम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ वैदर्भ्याः स तु संदेशं निशम्य यदुनन्दनः। प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि। वेदाहं रुक्मिणा द्वेषान्ममोद्वाहो निवारितः ॥ २ ॥ तामानयिष्य उन्मथ्य राजन्यापसदान्मृधे। मत्परामनवद्याङ्गीमेधसोऽग्निशिखामिव ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उद्वाहर्क्षं च विज्ञाय रुक्मिण्या मधुसूदनः। रथः संयुज्यतामाशु दारुकेत्याह सारथिम् ॥ ४ ॥ स चाश्वैः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः। युक्तं रथमुपानीय तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥ ५ ॥ आरुह्य स्यन्दनं शौरिर्द्विजमारोप्य तूर्णगैः। आनर्तादेकरात्रेण

आदि बनवाय दान, नियम, व्रत तथा देवता, ब्राह्मण और गुरुके पूजनादिद्वारा भगवानकी आराधना की है तो दमघोष पुत्र आदि कोई मेरा स्पर्श न करसकें;-हेभगवान ! आपहीआकर मेरा पाणिग्रहणकरो ॥ ४० ॥ हे भगवान कल विवाह का दिन है तो आजही आप गुप्तभाव से आओ और सेनापतियों को संगले शिशुपाल और जरासंधकी सेना के बलकामथनकर वीर्यरूप शुल्क दे राक्षस विधिके अनुसार मेरा विवाहकरो ॥ ४१ ॥ यदि कहोकि-तू अंतः पुरमें रहती है विनातेरे बंधुओं को मारे किस प्रकार तुझे विवाहसकताहूं ? तो उसका उपायवह है कि विवाह के प्रथम दिन हमारे यहां कुल देवकी यात्राहोती है, उस यात्रामें व्याही जानेवाली कन्याको नगर के बाहर देवीके मंदिर में जानाहोता है ॥ ४२ ॥ हे कमल लोचन ! महादेवजी के समान बड़े मनुष्य अपने आत्मा के अज्ञान नाशके निमित्त जिन आपके चरण रजमें स्नान करनेकी प्रार्थना करते हैं मैं यदि उन आपका प्रसाद न पाऊंगी तोव्रत द्वारा जीर्णहो अपने प्राणोंको छोड़दूगी, चाहे सौजन्म मेंभी आपकी अनुग्रह होवे परन्तु उसको अवश्य प्राप्त करूंगी ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण ने कहा कि—हे यदुदेव ! मैं इस प्रकार का यह सम्वाद लाया हूं विचार करके जोकरना उचितहो शीघ्र करिये ॥४४॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांद्विपचाशत्तमोऽध्याय: ॥५२॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! रुक्मिणी के उस सम्वादको सुनकर श्रीकृष्ण जी अपने हाथसे ब्राह्मणका हाथ पकड़ हसकर उससे कहने लगे कि—१ ॥ मेरा मनभी इसीप्रकार रुक्मिणी में आसक्त होरहाहै इससे मुझको रात्रिको निद्रा भी नहीं आती। मैं जानताहूं कि—रुक्मीने द्वेषके कारण मेरे व्याह होनेको निवारण करादिया है, ॥ २ ॥ मैं युद्धमें दुष्टक्षत्रियों को मारकर काठसे अग्निकी समान उस अनिंदित अंगवाली रुक्मिणी को लाऊंगा ॥ ३ ॥ हेभरतनन्दन ! परसों रात्रिको रुक्मिणी का विवाह होगा। यह जानकर श्रीकृष्णजीने सारथीसे कहा कि हेदारुक ! शीघ्रही रथको जोतलाओ ॥४॥ दारुकभी शैब्य,सुग्रीव,मेघ, पुष्प और बलाहक नामक चार घोड़ों का रथ जोड़कर लाय और हाथ जोड़ सामने आकर खड़ा होगया ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णकी

विदर्भानगमद्धयैः ॥ ६ ॥ राजासकुण्डिनपतिः पुत्रस्नेहवशंगतः । शिशुपालायस्वां कन्यांदास्यन्कर्माण्यकारयत् ॥ ७ ॥ पुरंसंमृष्टसंसिक्तमार्गरथ्याचतुष्पथम् । चित्रध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलंकृतम् ॥ ८ ॥ स्रग्गन्धमाल्याभरणैर्विरजोम्बरभूषितैः जुष्टंस्त्रीपुरुषैः श्रीमद्गृहैरगुरुधूपितैः ॥९॥ पितॄन्देवान्समभ्यर्च्यविप्रांश्चविधिवन्नृप । भोजयित्वायथान्यायंवाचयामासमङ्गलम् ॥ १० ॥ सुस्नातांसुदतींकन्यांकृतकौतुकमङ्गलाम् । अहतांशुकयुग्मेनभूषितांभूषणोत्तमैः ॥११॥ चक्रुःसामर्ग्यजुर्मन्त्रैर्वध्वा रक्षांद्विजोत्तमाः । पुरोहितोऽथर्वविद्वैजुहावग्रहशान्तये ॥१२॥ हिरण्यरूप्यवासांसितिलांश्चगुडमिश्रिताम् । प्रादाद्धेनूश्चविप्रेभ्योराजाविधिविदांवरः ॥ १३ ॥ एवं चेदिपतीराजादमघोषः सुतायवै । कारयामासमन्त्रज्ञैः सर्वमभ्युदयोचितम् ॥१४॥ मदच्युद्भिर्गजानीकैः स्यन्दनैर्हेममालिभिः । पत्त्यश्वसंकुलैःसैन्यैः परीतःकुण्डिनं ययौ ॥ १५ ॥ तंवैविदर्भाधिपतिः समभ्येत्याभिपूज्यच । निवेशयामासमुदा कल्पितान्यनिवेशने ॥ १६ ॥ तत्रशाल्वोजरासंधो दन्तवक्त्रोविदूरथः । आजग्मुश्चैद्यपक्षीयाः पौण्ड्रकाद्याःसहस्रशः ॥ १७ ॥ कृष्णरामद्विषोयत्ताः कन्यांचैद्यायसाधितुम् । यद्यागत्यहरेत्कृष्णो रामाद्यैर्यदुभिर्वृतः ॥ १८ ॥ योत्स्यामःसंहतास्तेन इतिनिश्चितमानसाः । आजग्मुर्भूभुजःसर्वे समग्रबलवाहनाः ॥ १९ ॥ श्रुत्वैतद्भगवान्रामो विपक्षीयनृपोद्यमम् । कृष्णंचैकंगतंहर्तुं कन्यांकलहशङ्कितः ॥ २० ॥ बले

रथपर बैठ ब्राह्मण को भी बैठाय शीघ्रगामी अश्वों द्वारा एक रात्रिमें आनर्त्त देशसे कुण्डिनपुर में आगए ॥ ६ ॥ इसप्रकार कुण्डिनाधिपति राजा भीष्मकने पुत्र स्नेहके वशवर्त्तीहो शिशुपाल को कन्या देनेके निमित्त सब कर्त्तव्य कर्म करवाये ॥ ७ ॥ अनन्तर नगरके राजमार्ग गली चौराहे झाड़े और सींचे गये तथा नानाप्रकारके ध्वजा पताका और तोरण से वह भलीप्रकार भूषितहुए ॥ ८ ॥ नगर के स्त्री पुरुषोंने माला चन्दन और आभूषण धारण किये वह सुन्दर वस्त्रोंसे सज्जित हो अत्यन्त शोभा पानेलगे । श्रीयुक्त सबघर अगर द्वारा धूपितहुए॥९॥हेराजन्! राजा भीष्मकनें भी विधिवत् पितरों और देवताओंकी पूजाकर ब्राह्मणोंको भोजन कराया वह सबब्राह्मण न्याया-नुसार स्वस्ति वाचन करनेलगे ॥ १० ॥ सुन्दर कन्यायें भलीप्रकारसे स्नानकर मंगल कृत्यकर नवीन वस्त्र और उत्तम अलंकारोंसे सज्जित हुई ॥ ११ ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने साम, ऋक् और यजुके मन्त्रोंसे कन्याकी रक्षाकी और अथर्व वेदविद् पुरोहित ग्रह शांतिके निमित्त होम करनेलगे॥१२॥ विधिके जाननेवाले नर श्रेष्ठ राजा भीष्मक ने ब्राह्मणों को सोना, चांदी, वस्त्र, गुड, मिलेहुए, तिल और गायें दान करनेका आरम्भ किया, ॥ १३ ॥ इसीप्रकार से चेदिराज राजा दमघोषने भी मन्त्रज्ञ ब्राह्मणों द्वारा पुत्रका सब विवाह कार्य कराया ॥ १४ ॥ फिर मद झरते हुये हाथी स्वर्ण की सामग्री वाले रथ और पैदल व घोडों की सेनासे वेष्टितहो कुण्डिन नगर में आया, ॥ १५ ॥ विदर्भराज भीष्मकने आगे बढ़कर भगवानीकी और चेदिपति के निमित्त जो निवासस्थान सजाया था उसमें उसको राजा भीष्मक लेगए ॥ १६ ॥ उस स्थानमें शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्त्र, विदूरथ और पौंड्रक आदि शिशुपाल के पक्षवाले सहस्रों राजा आये ॥ १७ ॥ राम कृष्ण के द्वेषी राजाओं की यही इच्छाथी. कि—शिशुपाल कोही कन्या मिले इसहीकारण उन्होंने यह परामर्श किया कि यदि कृष्ण और बलराम आदि यदुवंशी गण यहांपर आकर कन्याका हरण करें, तो सब एकपक्ष होकर उनके साथ युद्ध करेंगे । यह स्थिरकर वह सब अपनी सेना समेत वहांआये, ॥ १८—१९ ॥ भगवान बलरामजी भी "शत्रुओं का ऐसा उद्यम और कृष्ण अकेले कन्या हरन को गयेहैं" यह सम्वाद सुन युद्धके भयसे भ्राताकी रक्षाके निमित्त बडी सेनाको सगके रथ, हाथी

नमहतासार्धं भ्रातृस्नेहपरिप्लुतः।त्वरितःकुण्डिनंप्रागाद् गजाश्वरथपत्तिभिः ॥२१॥ भीष्मकन्यावरारोहा काङ्क्षन्त्यागमनंहरेः। प्रत्यापत्तिमपश्यन्ती द्विजस्याचिन्तयत्तदा ॥ २२ ॥ अहोत्रियामान्तरित उद्वाहोमेऽल्पराधसः। नागच्छत्यरविन्दाक्षो नाहंवेद्म्यत्रकारणम् ॥ २३ ॥ सोऽपिनावर्ततेऽद्यापि मत्सन्देशहरोद्विजः। अपिमय्यनवद्यात्मा दृष्ट्वाकिञ्चिज्जुगुप्सितम्। मत्पाणिग्रहणेनूनं नायातिहिकृतोद्यमः ॥२४॥ दुर्भगायानमेधाता नानुकूलोमहेश्वरः। देवीवाविमुखागौरी रुद्राणीगिरिजासती ॥ २५ ॥ एवंचिन्तयतीबाला गोविन्दहृतमानसा। न्यमीलयतकालज्ञा नेत्रेचाश्रुकलाकुले ॥ २६ ॥ एवंवध्वाःप्रतीक्षन्त्या गोविन्दागमनंनृप। वामऊरुर्भुजोनेत्रमस्फुरन्प्रियभाषिणः ॥ २७ ॥ अथकृष्णविनिर्दिष्टः सएवद्विजसत्तमः। अन्तःपुरचरीं देवीं राजपुत्रींददर्शह ॥२८॥ सातंप्रहृष्टवदनमव्यग्रात्मगतिं सती। आलक्ष्यलक्षणाभिज्ञा समपृच्छच्छुचिस्मिता ॥ २९ ॥ तस्या आवेदयत्प्राप्तं शशंसयदुनन्दनम्। उक्तंच सत्यवचनमात्मोपनयनं प्रति ॥ ३० ॥ तमागतंसमाज्ञाय वैदर्भीहृष्टमानसा। नपश्यन्तीब्राह्मणाय प्रियमन्यन्ननामसा ॥ ३१ ॥ प्राप्तौश्रुत्वा स्वदुहितुरुद्वाहप्रेक्षणोत्सुकौ। अभ्ययात्तूर्यघोषेण रामकृष्णौसमर्हणैः ॥३२॥ मधुपर्कमुपानीय वासांसि विरजांसिसः। उपायनान्यभीष्टानि विधिवत्समपूजयत् ॥ ३३ ॥ तयोर्निवेशनं श्रीमदुपाकल्प्यमहामतिः। ससैन्ययोःसानुगयोरातिथ्यं विदधेयथा ॥ ३४ ॥ एवं-राज्ञांसमेतानां यथावीर्यंयथावयः। यथाबलंयथावित्त सर्वैःकामैःसमर्हयत् ॥३५॥

और दोनों सगत कुण्डिन पुरमें आये ॥ २०—२१ ॥ सर्वांग सुन्दरी भीष्मककी पुत्री श्रीकृष्ण जी के निमित्त अत्यन्त उत्सुक होरहीथी, सूर्योदय होचला परन्तु उस गयेहुये ब्राह्मण को आता न देख वह चिन्ता करनेलगी, ॥ २२ ॥ अहो ! रात्रिके बीततेही प्रातःकाल मुझ अभागिनी का विवाहहै किन्तु भगवान कमललोचन अबतक न आये इसकाकारण कुछ स्थिर नहीं करसकती। जो ब्राह्मण मेरा सन्देश लेकर गयाहै वहभी अबतक नहीं लौटा॥२३॥अनिंदितात्मा श्रीकृष्णजीने क्या मुझमें कुछ निंदाका कारण देखा ? जो मेरे पाणिग्रहण विषयमें उद्योगीहोकर भी न आए ॥ २४ ॥ मै मंदभागिनीहूं, विधाता और महेश्वर भी मुझसे रूठगए क्या गिरिपुत्री सती रुद्राणी देवीभी मेरे ऊपर दयालु नहीं हैं ॥ २५ ॥ श्रीकृष्णजीसे हृतचित्त हुई समयके जाननेवाली बालाने आंसू बहाते २ दोनों नेत्र बंद करलिये ॥ २६ ॥ हेराजन् ! रुक्मिणी इसीप्रकार से श्रीकृष्णजी के आनेकी राह देखतीथी कि—उसीसमय उसके मंगल सूचक बाईं साथल, बाईं भुजा और बायां नेत्र फड़कनेलगा ॥ २७ ॥ थोड़ेही बिलम्बके पश्चात् श्रीकृष्णजीका पठाये हुए उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने आकर अतःपुरमें रहनेवाली राजकुमारीको देखा ॥ २८ ॥ उस साध्वी लक्षणों के जानने वाली, पवित्र राजपुत्री ने उसके प्रसन्न मुख और शीघ्र गतिको देख उससे पूछा ॥ २९ ॥ ब्राह्मण ने राजपुत्री से श्रीकृष्णजी के आनेका समाचार कहा और उन्हों ने पाणिग्रहण करने के निमित्त जो प्रतिज्ञा कीथी वह भी कहसुनाई ॥ ३० ॥ श्रीकृष्णजीको आया हुआ जानकर रुक्मिणी मनमें अत्यन्त प्रसन्न हुई, वह और कोई दूसरा प्रिय पदार्थ न देख ब्राह्मणको नमस्कार करनेलगी, तदनन्तर उसको बहुतसा द्रव्यभी दिया ॥ ३१ ॥ विदर्भराजने जबसुना कि—पुत्री का विवाहोत्सव देखने के निमित्त राम कृष्ण आये हैं तबवह अत्यन्त आनन्दितहुआ वह पूजाकी सामग्रीले बाजे गाजे के साथ राम कृष्णके समीपआया ॥ ३२ ॥ राजा ने मधुपर्क लाय निर्मलवस्त्र और इच्छित भेंट अर्पण कर विधिपूर्वक उनका सन्मान किया ॥ ३३ ॥ महामति राजा भीष्मकने सेना और अनुचरों समेत उन दोनों आयेहुए यदुवीरों को अच्छेस्थान में टिकाय उनका सत्कार किया ॥ ३४ ॥ उसने इसीप्रकार से सब आयेहुए राजाओं का सत्कार उनके पराक्रम और सम्पत्तिके

कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भपुरवासिनः। आगत्य नेत्रांजलिभिः पपुस्तन्मुखपंकजम् ॥ ३६ ॥ अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा। असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः ३७ किंचित्सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत्। अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः ॥ ३८ ॥ एवं प्रेमकलाबद्धा वदन्ति स्म पुरौकसः। कन्या चांतःपुरात्प्रागाद्भटैर्गुप्ताऽम्बिकालयम् ॥ ३९ ॥ पद्भ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्याः पादपल्लवम्। सा चाऽनुध्यायती सम्यङ्मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥ ४० ॥ यतवाङ्मातृभिः सार्धं सखीभिः परिवारिता। गुप्ता राजभटैः शूरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः। मृदङ्गशंखपणवास्तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥ ४१॥ नानोपहारबलिभिर्वारमुख्याः सहस्रशः। स्रग्गन्धवस्त्राभरणैर्द्विजपत्न्यः स्वलंकृताः गायन्त्यश्च स्तुवन्तश्च गायका वाद्यवादकाः। परिवार्य वधूं जग्मुः सूतमागधवन्दिनः ॥ ४३ ॥ आसाद्य देवीसदनं धौतपादकराम्बुजा। उपस्पृश्य शुचिः शान्ता प्रविवेशाम्बिकाऽन्तिकम् ॥ ४४ ॥ तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञा विप्रयोषितः। भवानीं वन्दयांचक्रुर्भवपत्नीं भवान्विताम् ॥ ४५ ॥ नमस्ये त्वाऽम्बिकेऽभीक्ष्णं स्वसन्तानयुतां शिवाम्। भूयात्पतिर्मे भगवान्कृष्णस्तदनुमोदताम् ॥ ४६ ॥ अद्भिर्गन्धाक्षतैर्धूपैर्वासःस्रङ्माल्यभूषणैः। नानोपहारबलिभिः प्रदीपावलिभिः पृथक् ॥ ॥ ४७ ॥ विप्रस्त्रियः पतिमतीस्तथा तैः समपूजयत्। लवणापूपतांबूलकण्ठसूत्रफलेक्षुभिः ॥ ४८ ॥ तस्यै स्त्रियस्ताः प्रददुः शेषां युयुजुराशिषः। ताभ्यो देव्यै नमश्चक्रे शेषां च जगृहे वधूः ॥ ४९ ॥ मुनिव्रतमथ त्यक्त्वा निश्चक्रामाम्बिकागृहात्। प्रगृह्य

अनुसार किया ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्णजी को आया हुआ सुनकर विदर्भ निवासी सब मनुष्य उपस्थित हो नेत्ररूप अंजलि द्वारा उनके कमल मुख का पान करने लगे ॥३६॥ और कहने लगे कि-रुक्मिणीही इनकी स्त्री होनेयोग्य है, और स्त्री नहीं। और यह अनिंदितवरभी रुक्मिणी के पति होने योग्य है ॥ ३७ ॥ हमारा जोकुछ थोड़ाबहुत पुण्य है भगवान उस से संतुष्ट होकर कृपापूर्वक रुक्मिणी का पाणिग्रहण करें ॥ ३८ ॥ प्रेम के आंसू बहा २ पुरवासी गण इसप्रकार कह रहेथे कि इतनेही में कन्या सैनिकों से रक्षित हो अंतःपुर से देवीजी के मन्दिर को चली ॥ ३९॥ रुक्मिणी अस्त्र शस्त्रयुक्त वीर सैनिकों से रक्षित और सखियों से वेष्टित हो, मौन धारणकर भली प्रकार से श्रीकृष्णजी के चरणकमलों का ध्यान करते २ माताओं के साथ जैसेही देवी के चरण कमल के दर्शन को चली वैसेही मृदग, शंख, तुरी और भेरी आदि बाजे बजने लगे ॥४०।४१॥ सहस्रों वेश्याएं नानाप्रकारकी भेंटें और पूजाकी सामग्री ले तथा भलीप्रकार से सजीहुई ब्राह्मणों की स्त्रियें माला, चन्दन, वस्त्र और आभूषण ले कन्याको घेरकर चलनेलगीं ॥ ४२ ॥ गवैये, बजवैये सूत, मागध और बन्दीगण गान औरस्तुति करते २ उनके चारोंओर दलबांध २ करचले॥ ४३॥ राजपुत्री ने देवमंदिर में पहुँचकर हाथ, पैर धोय और आचमनपूर्वक पवित्र व शांत हो देवी के निकट प्रवेश किया ॥ ४४ ॥ विधि के जाननेवाली वृद्धा विप्रपत्नियों ने उस पुत्री से महादेवजी समेत गौरी की पूजा कराई ॥ ४५ ॥ हे अम्बिके ! मैं मंगलस्वरूप तुम्हें और तुम्हारे गणेश आदि पुत्रों को नमस्कार करतीहू ; तुम यह वरदान देवो कि भगवान श्रीकृष्णजी मेरे स्वामीहोंवें॥४६॥ कुमारी ने इसप्रकार प्रार्थनाकर पृथक् २ जल, चन्दन, अक्षत, फूल, धूप, वस्त्र,भूषण और दीपक आदि से पूजाकी ॥ ४७ ॥ सधवा विप्र पत्नियों ने भी उनसब सामग्री और लवण, हलवा, तांबूल कण्ठसूत्र फल और ईखद्वारा भलीप्रकारसे उनकी पूजाकी ॥ ४८ ॥ अनन्तर उन सब स्त्रियों ने रुक्मिणी को प्रसाद दे आशीर्वाद दिया । रुक्मिणी ने भी उनको और देवी को प्रणाम किया ॥

पाणिनाभूत्या रत्नमुद्रोपशोभिना ॥ ५० ॥ तांदेवमायामिवधीरमोहिनीं सुमध्यमां कुण्डलमण्डिताननाम् । श्यामांनितम्बार्पितरत्नमेखलां व्यंजत्स्तनींकुन्तलशंकितेक्षणाम् ॥ ५१ ॥ शुचिस्मितांबिम्बफलाधरद्युति शोणायमानद्विजकुन्दकुड्मलाम् । पदाचलन्तींकलहंसगामिनीं सिञ्जत्कलानूपुरधामशोभिना ॥ ५२ ॥ विलोक्यवीरामुमुहुःसमागता यशस्विनस्तत्कृतहृच्छयार्दिताः ॥ ५३ ॥ यांवीक्ष्यतेनृपतयस्तदुदारहास व्रीडावलोकहृतचेतसउज्झितास्त्राः । पेतुःक्षितौगजरथाश्वगताविमूढा यात्राच्छलेनहरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम् ॥ ५४ ॥ सैवंशनैश्चलयतीचलपद्मकोशौ प्राप्तिंतदाभगवतःप्रसमीक्षमाणा । उत्सार्यवामकरजैरलकानपांगैः प्राप्तान्ह्रियैक्षत नृपान्ददृशेऽच्युतंसा ॥५५॥ तांराजकन्यांरथमारुरुक्षतीं जहारकृष्णोद्विषतांसमीक्षताम् । रथंसमारोप्यसुपर्णलक्षणं राजन्यचक्रं परिभूयमाधवः ॥ ततोययौ रामपुरोगमैःशनैः सृगालमध्यादिव भागहृद्धरिः ॥ ५६ ॥ तंमानिनःस्वाभिभवंयशःक्षयं परेजरासंधवशानसेहिरे । अहोधिगस्मान्यश आत्तधन्वनां गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव ॥ ५७ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ इतिसर्वेसुसंरब्धावाहानारुह्यदंशिताः स्वैः स्वैर्बलैः परिक्रान्ताअन्वीयुर्धृतकार्मुकाः ॥ १ ॥ तानापततआलोक्ययादवानीकयूथपाः । तस्थुस्तस्तंमुखाराजन्विस्फूर्ज्यस्वधनूंषिते ॥ २ ॥ अश्वपृष्ठेगजस्कन्धेरथोपस्थेचकोवि

४९ ॥ तदनन्तर वह मौन व्रतको छोड़ रत्नकी अंगूठी से शोभित हस्तद्वारा दासी को पकड़ देवी के मंदिर से बाहर हुई ॥ ५० ॥ वह देवमाया की समान धीरमनुष्यों को भी मोह उत्पन्नकरतीथी उसका कटिदेश अत्यन्त सुन्दर और मुख कुण्डलों की प्रभा से भूषितथा; रजोदर्शन जिसको अबतक नहीहुआ है, नितम्ब देशमें सुवर्णकीमेखला बँधीहुईथी, स्तन प्रगट और नेत्र कुण्डलोंके भयसे भीत होकर चंचल होरहेथे ॥ ५१ ॥ उसकी सुंदरमुसकान से खुलीहुई दंतपंक्ति कुंदरू के समान होठोंकी कांति से रक्तवर्णकी होरहीथी । वह हंसकी समान गमन करतीथी, चरण शोभायुक्त शब्दायमाननूपुर की आभा से शोभा पारहेथे ॥ ५२ उसको देखकर उस के दर्शनसेउत्पन्न हुए कामदेव से पीड़ितहो संग में आयेहुए यशस्वी वीरगण मोहित होगये ॥ ५३ ॥ घोड़े, रथ, और हाथियों में बैठेहुए वह समस्त राजगण उसके उदारहास्य और सलज्ज चितवन से मोहित चित्तहो अस्त्र शस्त्र छोड़ उस को देखने लगे और रुक्मिणी श्रीकृष्णजी के आने की राहदेखती हुई धीरे २ चलने लगी ॥ ५४ ॥ वह रुक्मिणी अलकों को. उठाय सलज्ज चितवन से राजाओं की ओर वहां आयेहुए श्रीकृष्णजी को देखने लगी ॥ ५५ ॥ महाराज ! वह कन्या रथ पर बैठ नहीथी कि उसी समय श्रीकृष्णजी ने वहां उपस्थितशत्रुओं के सामनेही उसे गरुड़ध्वज रथ पर बिठालिया और क्षत्रियों का तिरस्कार कर रुक्मिणी को हर लिया. । तदुपरांत वह सियारों के मध्य से अपने भागहारी सिंह की समान बलरामजी को आगेकर धीरे २ गमन करने लगे ५६॥ जरासंध आदि अभिमानी शत्रुगण अपने उस तिरस्कार और कीर्त्तिनाशको सहन न करके अपने संगियों से कहने लगे कि—अहो ! हमको धिक्कार है ! जिसप्रकार सिंहोंके भागको मृग हर ले जाय, वैसेही आज यह गोपगण धनुषधारीहो हमारे यशको हरण करके लियेजाते हैं ॥ ५७ ॥

इतिश्री मद्भा० म० दशम० सरलाभाषाटीकायांत्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! सब राजाओंने इस प्रकारसे कहे अत्यन्त कोधितहो कवच पहिन अपने २ वाहनोंपर आरूढहो अपनी २ सेनाको ले धनुषउठाय पश्चात्पीछाकिया ॥१॥ उनको आताहुआ देखकर सेनापति यादवगण अपने २ धनुषको टङ्कारकर उनके सम्मुखहुए ॥

रा:। मुमुचुः शरवर्षाणिमेघाअद्रिष्वपोयथा ॥ ३ ॥ पत्युर्बलंशरासारैश्छन्नंवीक्ष्य सुमध्यमा । सव्रीडमैक्षत्तद्वक्त्रंभयविह्वललोचना ॥ ४ ॥ प्रहस्यभगवानाहमास्मभै र्वामलोचने । विनङ्क्ष्यत्यधुनैवैतत्तावकैः शात्रवंबलम् ॥ ५ ॥ तेषांतद्विक्रमंवीरा गदसंकर्षणादयः । अमृष्यमाणानाराचैर्जघ्नुर्हयगजाग्रथान् ॥ ६ ॥ पेतुः शिरांसि रथिनामश्विनांगजिनांभुवि । सकुण्डलकिरीटानिसोष्णीषाणिचकोटिशः ॥७॥ हस्ताः सासिगदेष्वासाः करभाऊरवोऽङ्घ्रयः । अश्वाश्वतरनागोष्ट्रखरमर्त्यशिरांसिच ॥८॥ हन्यमानबलानीकावृष्णिभिर्जयकाङ्क्षिभिः । राजानोविमुखाजग्मुर्जरासन्धपुरःस राः ॥ ९ ॥ शिशुपालंसमभ्येत्यहृतदारमिवातुरम् । नष्टत्विषंगतोत्साहंशुष्यद्वदन मब्रुवन् ॥ १० ॥ भोभोःपुरुषशार्दूलदौर्मनस्यमिदंत्यज । नप्रियाप्रिययोराजन्निष्ठा देहिषुदृश्यते ॥ ११ ॥ यथादारुमयीयोषिन्नृत्यतेकुहकेच्छया । एवमीश्वरतन्त्रोऽय मीहतेसुखदुःखयोः ॥ १२ ॥ शौरेः सप्तदशाहंवैसंयुगानिपराजितः । त्रयोविंशति भिः सैन्यैर्जिग्यएकमहंपरम् ॥ १३ ॥ तथाऽप्यहंनशोचामिनप्रहृष्यामिकर्हिचित् । कालेनदैवयुक्तेनजानन्विद्रावितजगत् ॥ १४ ॥ अधुनापिवयंसर्वेवीरयूथपयूथपाः । पराजिताः फल्गुतन्त्रैर्यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ १५ ॥ रिपवोजिग्युरधुनाकालआ त्मानुसारिणि । तदावयंविजेष्यामोयदाकालः प्रदक्षिणः ॥ १६ ॥ एवंप्रबोधितोमि त्रैश्चैद्योऽगात्सानुगः पुरम् । हतशेषाः पुनस्तेपिययुः स्वंस्वंपुरंनृपाः ॥१७॥ रुक्मी

॥ २ ॥ शस्त्रधारी राजगण घोड़े और हाथियोंपर बैठेहुए बादल जैसे पर्वतके ऊपर पानी बरसाता है उसीप्रकार वह यादवों के ऊपर शरोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ३ ॥ शरोंकी वर्षासे स्वामीकी सेना को घिराहुआ देख सुमध्यमा रुक्मिणी के दोनोंनेत्र विह्वलहो उठे; वह लज्जायुक्त भगवान के मुख को देखनेलगी ॥ ४ ॥ तब भगवान ने हँसकर कहाकि—हेवामलोचने ! भयनकर; तेरेपक्षवाले सैनिकों से यह शत्रुबल अभी नष्टहोजावेगा ॥ ५ ॥ गद और सङ्कर्षण आदि वीरगण शत्रुओं के उस पराक्रमको सहन न कर बाणोंद्वारा हाथी, घोड़े और रथ सबके ऊपर प्रहार करनेलगे ॥ ॥ ६ ॥ रथ, घोड़े और हाथियोंपर बैठेहुए योद्धाओं के कुण्डल और किरीटसे शोभित व पगड़ी बँधेहुएमस्तक; और तलवार, गदा व धनुषलियेहुए हाथ, लम्बी २ साथले व जांघ कट २ कर रणभूमि मे गिरनेलगीं और घोड़े, खच्चर, ऊंट, गज तथा पैदलों के शिर कट २ कर गिरनेलगे ॥ ॥ ७—८ ॥ जयकी इच्छावाले यादवोंसे शूरवीर और सेनाकानाश होतेदेख जरासन्ध आदिराजा विमुख होकर भागगये ॥ ९ ॥ और स्त्री के चलेजाने की समान दुःखी और प्रभा रहितहो, निरुत्साह और सूखे मुँहसे शिशुपालके निकट आकर कहनेलगे ॥ १० ॥ कि अहे! अहे! राजसिंह मनकी इस उत्कण्ठाको छोड़दो हेराजन् ! प्राणियों के भले और अनभले की स्थिति नहीं देखी जाती ॥ ११ ॥ मनुष्य जैसे काठकी पुतली को इच्छानुसार नचाता है तैसेही प्राणी ईश्वरके वश हो सुख दुःखका भोगकिया करताहै ॥ १२ ॥ मैं (जरासन्ध) तेईस अक्षौहिणी सेना केवल श्री कृष्णसे युद्धकरके सत्रहबेरहारा परन्तु अन्त में एक युद्धमें जीतगया ॥ १३ ॥ तथापि न तो मैंने इसका हर्ष शोककिया और न मैंने कुछ विचारहीकिया हे राजन् ! कालदेवसे प्रेरितहो जगतपर आक्रमण करता है ॥ १४ ॥ इस समय हम वीरगण भूपति कृष्णसे रक्षित थोड़ीसी यादवसेनासे हारगये ॥ १५ ॥ अभी उनका दैव अनुकूलहै इससे शत्रुओं की जीतहुई जब दैव हमारे अनुकूल होगा तब हमभी जीतसकेंगे ॥ १६ ॥ मित्रों के इसप्रकार समझानेपर शिशुपाल अपने अनुचरों समेत अपनी नगरी को गया और युद्धमें बचेहुये राजाभी अपने २ नगरोंको लौटगये, ॥ १७ ॥

तु राक्षसोद्वाहंकृष्णद्विडसहन्स्वसुः।पृष्ठतोऽन्वगमत्कृष्णमक्षौहिण्या वृतो बली॥१८॥
रुक्म्यमर्षी सुसंरब्धः शृण्वतां सर्वभूभुजाम् । प्रतिजज्ञे महाबाहुर्दंशितः सशरास-
नः ॥ १९ ॥ अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् । कुण्डिनंनप्रवेक्ष्यामि सत्य
मेतद्ब्रवीमि वः ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा रथमारुह्य सारथिंप्राह सत्वरः । चोदयाश्वान्यतः
कृष्णस्तस्य मे संयुगंभवेत् ॥ २१ ॥ अद्याहंनिशितैर्बाणैर्गोपालस्य सुदुर्मतेः । नेष्ये
वीर्यमदं येन स्वसामेप्रसभंहृता ॥ २२ ॥ विकत्थमानः कुमतिरीश्वरस्याप्रमाणवित्
रथेनैकेन गोविन्दं तिष्ठतिष्ठेत्यथाह्वयत् ॥ २३ ॥ धनुर्विकृष्य सुदृढं जघ्नेकृष्णंत्रि
भिःशरैः । आह चात्रक्षणं तिष्ठ यदूनांकुलपांसन ॥ २४ ॥ कुत्रयासिस्वसारंमे मुषि
त्वाध्वाङ्क्षवद्धविः । हरिष्येऽद्यमदंमन्द मायिनःकूटयोधिनः ॥ २५ ॥ यावन्नमेहतो
बाणैः शयीथामुञ्चदारिकाम् ।स्मयन्कृष्णो धनुश्छित्त्वा षड्भिर्विव्याधरुक्मिणम् ॥
॥ २६ ॥ अष्टभिश्चतुरोवाहान्द्वाभ्यां सूतंध्वजंत्रिभिः । सचान्यद्धनुरादाय कृष्णंवि
व्याधपंचभिः ॥२७॥ तैस्ताडितः शरौघैस्तुचिच्छेद धनुरच्युतः । पुनरन्यदुपादत्त
तदप्यच्छिनदव्ययः ॥ २८ ॥ परिघंपट्टिशंशूलं चर्मासीशक्तितोमरौ । यद्यदायुध-
मादत्त तत्सर्वं सोऽच्छिनद्धरिः ॥२९॥ ततोरथादवप्लुत्य खड्गपाणिर्जिघांसया ।
कृष्णमभ्यद्रवत्क्रुद्धः पतंगइवपावकम् ॥ ३० ॥ तस्यचापततःखड्गं तिलशश्चर्मचेषु
भिः । छित्त्वासिमाददे तिग्मं रुक्मिणंहन्तुमुद्यतः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वाभ्रातृवधोद्योगं रु-

हे राजन् ! श्रीकृष्णजी का द्वेषी बलवान् रुक्मी बहिन के राक्षसी विवाहका सहन न करसका उसने एक अक्षौहिणी सेनाको साथले श्रीकृष्णजी का पीछा किया ॥ १८ ॥ क्रुद्ध स्वभाव महाबाहु रु-क्मीने अत्यन्त क्रोधितहो कवच पहिन धनुष धारण कर सब राजाओं के सामने प्रतिज्ञा की ॥ ॥ १९ ॥ कि—बिना कृष्णको मारे और बहिनको उद्धार किये मैं कुण्डिनपुरमें न आऊंगा यह मैं सत्य कहताहूं ॥ २० ॥ यह कह रथपर बैठ शीघ्रतापूर्वक सारथिसे कहने लगा कि—जिधर कृ-ष्ण है उधरही घोड़ोंको लेचल उसके साथ मेरा युद्धहोगा ॥ २१ ॥ अत्यन्त दुष्ट गोप ने अपने पराक्रम के घमण्डसे मेरी बहिनका हरण कियाहै, आज मैं निश्चयही बाणों द्वारा उसके पराक्रम को दूर करूगा ॥ २२ ॥ हेमहाराज ! दुर्मति रुक्मी भगवानके प्रभावको न जानताथा, अतएव इसप्रकार से बकवाद करता हुआ रथपर से श्रीकृष्णजी से कहने लगा कि " ठहर ठहर,, २३ ॥ फिर धनुषको खींच तीनबाणों से श्रीकृष्णजी पर प्रहार किया और कहने लगाकि—रे यदुकुल दूषण ! थोड़ी देरयहां ठहर ॥ २४ ॥ कौआ जैसे होमकी सामग्रीले, भागता है, वैसेही तू मेरी बहिन को हरण करके कहांजाता है । तू कैसाछली और मायावी है वह आज देखूंगा, आजमें तेरागर्व दूर करूगा ॥ २५ ॥ मेरेबाणों से निहतहो शयन करने के प्रथमही मेरी बहिनको छोड़दे । श्री कृष्णजी ने कुछेक हसकर उसके धनुषको काट छः बाणों से रुक्मीको वेधित किया ॥ २६ ॥ और आठबाणों से चारों घोड़ोंपर तीनबाणों से ध्वज और दोबाणों से सारथीपर प्रहारकिया । रुक्मनी ने दूसरा धनुष ग्रहणकर पांचबाणों से श्रीकृष्णजी पर प्रहारकिया ॥ २७ ॥ भगवानने उनबाणों से आहतहो शरोंद्वारा उसके धनुषको काटडाला । रुक्मी ने फिरधनुष ग्रहण किया, श्रीकृष्णजी ने फिर उसे काटडाला.॥ २८ ॥ रुक्म परिघ, पटिश, शूल, ढाल, तलवार, शक्ति, तोमर इत्यादि जो २ अस्त्र ग्रहण करनेलगा भगवान उन सबको काटनेलगे ॥ २९ ॥ अंतमें रुक्म रथसे फांद पृथ्वीपर कूदपड़ा और बधकरने के निमित्त हाथमें खड्गले पतंग जैसे अग्निकी ओर दौड़ता है वैसेही वह क्रोधितहो श्रीकृष्णजी की ओर दौड़ा॥३०॥बाणद्वारा उसके खड्ग और ढालके टुकडे २ कर श्रीकृष्णजी भी तीक्ष्ण खड्गले उसके मारने पर उद्यत हुए ॥३१॥ भाईके मारे जानेका स-

रुक्मिणीभयविह्वला पतित्वा पादयोर्भर्तुरुवाच करुणंसती ॥ ३२ ॥ योगेश्वराप्रमे-
यात्मन्देवदेव जगत्पते । हन्तुंनार्हसि कल्याण भ्रातरंमेमहाभुज ॥ ३३ ॥ श्रीशुक
उवाच । तयापरित्रासविकम्पिताङ्गया शुचाऽवशुष्यन्मुखरुद्धकण्ठया । कातर्यवि
स्रंसितहेममालया गृहीतपादःकरुणोन्यवर्तत ॥३४॥ चैलेनबद्ध्वा तमसाधुकारिणं
सश्मश्रुकेशं प्रवपन्व्यरूपयत् । तावन्ममर्दुःपरसैन्यमद्भुतं यदुप्रवीरानलिनींयथाग
जाः ॥ ३५ ॥ कृष्णान्तिकमुपव्रज्य ददृशुस्तत्र रुक्मिणम् । तथाभूतंहतप्रायं दृष्ट्वा
संकर्षणोविभुः । विमुच्यबद्धंकरुणो भगवान्कृष्णमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ असाध्विदंत्व
याकृष्ण कृतमस्मज्जुगुप्सितम् । वपनंश्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सुहृदोवधः ॥ ३७ ॥
मैवास्मान्साध्व्यसूयेथा भ्रातुर्वैरूप्यचिन्तया ॥ सुखदुःखदोनचान्योऽस्ति यतः
स्वकृतभुक्पुमान् ॥ ३८ ॥ बन्धुर्वधार्हदोषोऽपिन बन्धोर्वधमर्हति । त्याज्यःस्वेनैव
दोषेण हतःकिंहन्यतेपुनः ॥ ३९ ॥ क्षत्रियाणामयंधर्मः प्रजापतिविनिर्मितः । भ्रा-
ताऽपिभ्रातरं हन्याद्येनघोरतमस्ततः ॥ ४० ॥ राज्यस्यभूमेर्वित्तस्य स्त्रियोमानस्य
तेजसः । मानिनोऽन्यस्यवाहेतोः श्रीमदान्धाःक्षिपन्तिहि ॥४१॥ तवेयं विषमाबुद्धिः
सर्वभूतेषुदुर्हृदाम् । यन्मन्यसे सदाऽभद्रंसुहृदां भद्रमज्ञवत् ॥ १२ ॥ आत्ममोहो
नृणामेव कल्प्यतेदेवमायया । सुहृद्दुर्हृदुदासीनइति देहात्ममानिनाम् ॥ ४३ ॥

योगदेख रुक्मिणी भयसे विह्वल होगई और स्वामी के दोनों चरणों पर गिरकर कहनेलगी कि—
॥ ३२ ॥ हेयोगेश्वर ! हेअप्रमेयात्मन् ! हेदेवदेव ! हेजगत्पते ! हेकल्याण ! हेमहाभुज ! मेरेभाई
को मतमारो ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! त्रास के कारण रुक्मिणी के अंग अ-
त्यन्त कम्पित होरहेथे, शोकसे मुँह सूख रहाथा कण्ठ रुकगया और व्याकुलता के कारण सुवर्ण
की माला खिसक पड़ी वह उसी अवस्थामें श्रीकृष्णजी के पैरोंपर गिरपड़ीं तब श्रीकृष्णजी रुक्म
के मारनेसे निवृत्त हुये ॥ ३४ ॥ और रस्सीमें उसको बांध डाढ़ी मूँछ और बालोंको स्थान२ पर
शेषरख मुण्डन करादिया । मतवाला हाथी जैसे कमलवनको दलता है उससमय यदुवंशी वैसेही
शत्रुकी सेनाका मर्दन करनेलगे ॥ ३५ ॥ अनन्तर उन्होंने श्रीकृष्णजीके निकट आय उसस्थान
में रुक्मी को देखा । दयालु स्वभाव बलराम जीने पूर्वोक्त दशासे रुक्म को मृतप्राय देख उसको
बंधनसे छोड़दिया और श्रीकृष्णजीसे कहनेलगे कि—३६ ॥ हेकृष्ण ! तुमने यह अन्यायकिया,
है बन्धुकी डाढी मूछ मूड़ना कुरूप करना और मारना हमारे पक्षमें निंदनीय है ॥३७॥ हेसाध्वी !
तुमभी भाईकी कुरूपता का विचारकर हमसे द्वेष न करना एक दूसरेको कोई सुख या दुःख नहीं
देसकता, क्योंकि मनुष्य अपनेही कर्मोंका भोग करता रहताहै ॥ ३८ ॥ हे कृष्ण ! बन्धु यदि वध
के दोषसे दूषित होकर वधके योग्य होवे तो उसका वध करना बन्धुको उचित नहीं है उसको
छोड़ देनाही उचितहै हेभ्राता ! जो अपने दोषसेही हत हुआहै उसको क्या फिर वध करनाचाहिये
॥ ३९ ॥ हेभीष्मक कन्या ! क्षत्रियोंका धर्म यहीहै प्रजापतिने यही धर्म उत्पन्न कियाहै इसही धर्म
से भाई भाई का नाश करताहै । यह अत्यन्त दारुण धर्महै इसकारण इसमें हमारा अपराध नहीं
है ॥ ४० ॥ हेकृष्ण ! जो लक्ष्मी के मदसे अन्धेहैं वही राज्य, भूमि, धन, लक्ष्मी, मान, तेज, व
अन्यान्य कारणों से सम्बन्धियों का तिरस्कार करते हैं हमको यह उचित नहीं ॥ ४१ ॥
हे सति ! तुम्हारा भाई सर्वदा सब प्राणियों का अनिष्ट करता रहता है,—तुम अज्ञान की समान
उसके मंगलकी कामना करतीहो, यह तुम्हारी बुद्धिकी भूलहै क्योंकि उसका भलाचाहने से दूसरे
संबंधियों का अनभल होगा ॥ ४२ ॥ यह मरामित्र, यह शत्रु और यह उदासीन है इसभांति जो
देहाभिमानियों की बुद्धि है वह अंतःकारण का अज्ञान केवल ईश्वर की मायसे कल्पित है ॥४३॥

एकएवपरोह्यात्मा सर्वेषामपिदेहिनाम्। नानेवगृह्यतेमूढैर्यथा ज्योतिर्यथानभः॥४४॥ देहआद्यन्तवानेष द्रव्यप्राणगुणात्मकः। आत्मन्यविद्ययाक्लृप्तः संसारयतिदेहिनम्॥४५॥ नात्मनोऽन्येन संयोगोवियोगश्चासतःसति। तद्धेतुत्वात्तत्प्रसिद्धेर्दृग्रूपाभ्यां यथारवेः॥ ४६॥ जन्मादयस्तुदेहस्य विक्रियानात्मनःक्वचित्। कलानामिवनैवेन्दोर्मृतिर्ह्यस्य कुहूरिव॥ ४७॥ यथाशयानआत्मानं विषयान्फलमेवच अनुभुंक्तेऽप्यसत्यर्थे तथाऽऽप्नोत्यबुधो भवम्॥४८॥तस्मादज्ञानजं शोकमात्मशोषविमोहनम्। तत्त्वज्ञानेननिर्हृत्य स्वस्थाभवशुचिस्मिते॥ ४९॥ श्रीशुक उवाच। एवंभगवतातन्वी रामेणप्रतिबोधिता। वैमनस्यंपरित्यज्य मनोबुद्ध्यासमादधे॥५०॥ प्राणावशेषउत्सृष्टो द्विड्भिर्हतबलप्रभः॥ स्मरन्विरूपकरणं वितथात्ममनोरथः॥ चक्रेभोजकटंनाममनिवासायमहत्पुरम्॥ ५१॥ अहत्वादुर्मतिंकृष्णमप्रत्यूह्ययवीयसीम्। कुण्डिनंनप्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वातत्रावसद्रुषा॥ ५२॥ भगवान्भीष्मकसुतामेवंनिर्जित्यभूमिपान्। पुरमानीयविधिवदुपयेमेकुरूद्वह॥ ५३॥ तदामहोत्सवोनृणां यदुपुर्यांगृहेगृहे। अभूदनन्यभावानांकृष्णेयदुपतौनृप॥ ५४॥ नरानार्यश्चमुदिताः प्रमृष्टमणिकुण्डलाः। पारिबर्हमुपाजह्रुर्वरयोश्चित्रवाससोः॥ ५५॥ सावृष्णिपुर्युत्तम्भितेन्द्रकेतुभिर्विचित्रमाल्याम्बररत्नतोरणैः। बभौप्रतिद्वार्युपकॢप्तमङ्गलैरापूर्णकुम्भाऽगुरुधूपदीपकैः॥ ५६॥ सिक्तमार्गामदच्युद्भिराहूतप्रेष्ठभूभुजाम्। गजैर्द्वाः

सब प्राणियों में शुद्ध आत्मा एकही है तौभी मूर्ख मनुष्य उसे नाना प्रकार से मानते हैं जैसे जल युक्त बासन में चन्द्रआदि ज्योति एक है तथापि वह नानारूप से प्रकाशती है और आकाश एक है तौभी घटादिकों में नानारूप से भासता है॥ ४४॥ आदि, अतयुक्त अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवात्मक देह अविद्या द्वारा आत्मा से रचितहो प्राणीको संसार में भटकाता है॥ ४५॥ जिसप्रकार सूर्यसे नेत्र और रूपका प्रकाश होता है उसी प्रकार आत्मा से अधिभूतादि का प्रकाश रहता है अतएव वह सब मिथ्या है; इस कारण उनके साथ आत्माका संयोग भी नहीं है और न वियोगही है॥ ४६॥ जन्मादि देहकेही विकार हैं आत्मा के नहीं। जैसे चन्द्रमा में जो घटाव बढाव जानपड़ता है वह कलाओंका है चन्द्रमाका नहीं वहतो सदैव पूर्णरूप है और आत्मा का मरण अमावस्या की समान है॥ ४७॥ जैसे सोताहुआ मनुष्य मिथ्या विषयोंका भोक्ताहो भोग्य और भोगका अनुभव करता है, वैसही मूर्ख मनुष्यको संसार प्राप्तहोता रहता है॥ ४८॥ इस कारण हे शुचिस्मिते! आत्मा के शोषक और मोहकारक अज्ञान से उत्पन्न हुए शोकको तत्त्व ज्ञानद्वारा नाशकर सावधानहो॥ ४९॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन्! क्षीणांगी रुक्मिणी ने भगवान बलरामजी से इस प्रकारकी बातेंसुन वैमनस्यको छोड़ बुद्धिसे मनको स्थिर किया॥५०॥ शत्रुके हाथसे रुक्मीका बल और प्रभाव नष्ट होगया, उसके केवल प्राणही शेष रहगये; उसका मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ। उसने इस दशासे छूटकर वासकरनेके निमित्त भोजकट नामक एकनगर बसाया। और "विनाकृष्ण के मारे व बहिनको लाये कुंडिन पुरमें न आऊंगा" इस प्रणका स्मरण कर उसी स्थान में रहने लगा॥ ५१—५२॥ हे कुरुश्रेष्ठ! भगवान श्रीकृष्णजी ने राजाओं को इस प्रकार से जीत भीष्मक सुताको नगरमें लाय उससे विधिपूर्वक विवाह किया॥५३॥ राजन्! श्रीकृष्णजी में अनन्यभक्ति होने से उस समय यदुवंशियों के घर२ में महोत्सव होनेलगा॥५४॥ स्त्री पुरुष सुंदर मणिकुंडल पहिन आनंदितहो सुंदर वस्त्र पहिने हुए वर कन्याके देने के निमित्त नानाप्रकार की सामग्री लानेलगे॥५५॥यदुवंशियों की वह नगरी इन्द्रध्वज, विचित्रमाला, वस्त्र और रत्नोंके तोरणसे सुसज्जित हुई, लाजा, दूर्वा, फूल और पल्लवादि मांगलिक द्रव्य, भरेहुए कलश अगर धूप और दीपसे उसकी अत्यंत शोभा होनेलगी॥ ५६॥ निमंत्रित राजाओं के मदस्रावीरुगा,

स्तुकूलमुक्तदामभिः पूगरम्भाप्रसूनोपभोभिता ॥५७॥ कुरुसञ्जयकैकयविदर्भयदुकुन्तयः । मिथो मुमुदिरेतस्मिन्संभ्रमात्परिधावताम् ॥ ५८॥ रुक्मिण्याहरणंश्रुत्वागीयमानंततस्ततः राजानोराजकन्याश्चबभूवुर्भृशविस्मिताः ॥ ५९ ॥ द्वारकायामभूद्राजन्महामोदः पुरौकसाम् । रुक्मिण्यारमयोपेतंदृष्ट्वाकृष्णंश्रियःपतिम् ॥ ६० ॥

इतिश्रीभा०म०द०स्क०उ०चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

श्रीशुकउवाच । कामस्तुवासुदेवांशो दग्धःप्राग्रुद्रमन्युना । देहोपपत्तयेभूय स्तमेव प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥ सएवजातोवैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः । प्रद्युम्नइति वि ख्यातः सर्वतोऽनवमःपितुः ॥ २ ॥ तंशम्बरःकामरूपी हृत्वातोकमनिर्दशम् । स विदित्वात्मनःशत्रुं प्रास्योदन्वत्यगाद्गृहम् ॥ ३ ॥ तंनिर्जगारबलवान्मीनः सोऽ प्यपरैःसह । वृतोजालेनमहता गृहीतोमत्स्यजीविभिः ॥ ४ ॥ तंशम्बरायकैवर्ता उ पाजह्रुरुपायनम् । सूदामहानसंनीत्वाऽवद्यन्स्वधितिनाऽद्भुतम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वातदु देबालंमायावत्यैन्यवेदयन् । नारदोऽकथयत्सर्वंतस्याः शङ्कितचेतसः । बालस्यत त्त्वमुत्पत्तिंमत्स्योदरनिवेशनम् ॥ ६ ॥ साचकामस्यवैपत्नीरतिर्नामयशस्विनी । प त्युर्निर्दग्धदेहस्यदेहोत्पत्तिंप्रतीक्षती ॥ ७ ॥ निरूपिताशम्बरेणसासूपौदनसाधने । कामदेवंशिशुंबुद्ध्वाचक्रेस्नेहंतदाऽर्भके ॥८॥ नातिदीर्घेणकालेनसकार्ष्णीरूढयौव नः । जनयामासनारीणांवीक्षन्तीनांचविभ्रमम् ॥ ९ ॥ सातंपतिंपद्मदलायतेक्षणंप्र लम्बबाहुंनरलोकसुन्दरम् । सव्रीडहासोत्तभितभ्रुवेक्षतीप्रीत्योपतस्थेरतिरङ्गसौर

हाथियों के मद से मार्ग सिंचने लगा, और केला तथा सुपारियों से प्रतिद्वार की शोभा होनेलगी ॥ ५७ ॥ वहांकुरु, सृंजय, केकय, विदर्भ, यदु और कुंति वंशीय राजगण प्रसन्न चित्तहो चारोंओर दौड़ २ बंधुओं से परस्पर मिलने लगे ॥ ५८ ॥ रुक्मिणी हरण की वार्त्ता के इधर उधर गीत होनेलगे, उनको सुन२कर राजा और राजकन्यागण अत्यंत विस्मित होनेथीं ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! द्वारका में श्रीकृष्णजी के साथ लक्ष्मीरूपा रुक्मिणीको देख पुरवासिगण अत्यत आनंदितहुए ॥६०॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणदशमस्कंधेसरलाभाषार्टीकायांचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! भगवान का अंश कामदेव जो प्रथम महादेवजी के क्रोध से भस्महोगयाथा उसने देह प्राप्ति के निमित्त फिर वासुदेव का आश्रय किया ॥ १ ॥ वही श्री कृष्णजी के वीर्य से विदर्भ नन्दिनी के गर्भ में जन्म ग्रहणकर प्रद्युम्न नामसे विख्यातहुआ।प्रद्यु- म्न किसी अंश में भी पिताकी अपेक्षा न्यूननहींथा ॥ २ ॥ कामरूपी शंबर दैत्य प्रद्युम्नको अपना शत्रुजान दशदिन के भीतरही उस का हरणकर समुद्र में डाल अपने घर को चलागया ॥ ३ ॥ एक बलवान मत्स्य उस बालकको निगलगया । वह मत्स्यभी दूसरे मत्स्यों के साथ धीमरों द्वारा बड़े जाल में फँसकर पकड़ागया ॥ ४ ॥ धीमरों ने उस मत्स्यको ले शंबरको भेंट में दिया।रसो- इयेने उस को वहां से लेजाय उस अद्भुतमत्स्य को छुरी से चीरा ॥ ५ ॥ उस के चीरतेही उस ने उस के पेट से एक बालक को निकला देख मायावती को सौंप दिया मायावती मन में शंकित हुई तब नारदजी ने उस से बालक का तत्त्व उत्पत्ति और मत्स्य के उदर में प्रवेश करना यह सब आकर कह दिया ॥ ६ ॥ हे राजन् ! वह मायावती काम की पतिव्रता स्त्री रति भस्महुएपति के देह उत्पन्न होने की प्रतीक्षा करतीहुई वहां रहतीथी ॥ ७ ॥ शंबरने उसको रसोई के काम में नियत कररक्खाथा । वह पुत्रको कामदेव जान उसपर स्नेह करनेलगी ॥ ८ ॥ थोड़ेही दिनों में वह प्रद्युम्न युवावस्थाको प्राप्तहुआ,—उसको देखनेवाली स्त्रियें मोहित होकर क्षुभित होने लगीं ॥ ९ ॥ रति सलज्जभावसे हास्यकर ऊंची भृकुटि द्वारा कमल नेत्रों को घुमाय दीर्घभुजावालेमनु-

तैः ॥ १० ॥ तामाह भगवान्कार्ष्णिर्मातस्ते मतिरन्यथा । मातृभावमतिक्रम्य वर्तसे कामि
नीयथा ॥ ११ ॥ रतिरुवाच ॥ भवान्नारायणसुतः शम्बरेणाहृतो गृहात् । अहंतेऽ
धिकृता पत्नी रतिः कामो भवान्प्रभो ॥ १२ ॥ एषत्वाऽनिर्दशंसिन्ध्वावक्षिपच्छम्बरा
ऽसुरः । मत्स्योऽग्रसीत्तदुदराद्वितः प्राप्तो भवान्प्रभो ॥ १३ ॥ तमिमंजहि दुर्धर्षंदु-
र्जयंशत्रुमात्मनः । मायाशत विदंत्वंचमायाभिर्मोहनादिभिः ॥ १४ ॥ परिशोचति
तेमाताकुररीवगतप्रजा । पुत्रस्नेहाकुलादीनाविवत्सागौरिवातुरा ॥ १५ ॥ प्रभाष्यै
वंददौविद्यांप्रद्युम्नायमहात्मने । मायावतीमहामायांसर्वमायाविनाशिनीम् ॥ १६ ॥
सचशम्बरमभ्येत्यसंयुगायसमाह्वयत् । अविषह्यैस्तमाक्षेपैःक्षिपन्सञ्जनयन्कलिम्
॥ १७ ॥ सोऽधिक्षिप्तोदुर्वचोभिःपदाहतइवोरगः । निश्चक्रामगदापाणिरमर्षात्ताम्र
लोचनः ॥ १८ ॥ गदामाविध्यतरसाप्रद्युम्नायमहात्मने । प्रक्षिप्यव्यनदन्नादंवज्र
निष्पेषनिष्ठुरम् ॥ १९ ॥ तामापतन्तींभगवान्प्रद्युम्नोगदयागदाम् । अपास्यशत्रवे
क्रुद्धःप्राहिणोत्स्वगदांनृप ॥ २० ॥ सचमायांसमाश्रित्यदैतेयींमयदर्शिताम् । मुमु-
चेऽस्त्रमयंवर्षंकार्ष्णौवैहायसोऽसुरः ॥ २१ ॥ बाध्यमानोऽस्त्रवर्षेणरौक्मिणेयोम-
हारथः । सत्त्वात्मिकामहाविद्यांसर्वमायोपमर्दिनीम् ॥ २२ ॥ ततोगौह्यकगांधर्व
पैशाचोरगराक्षसीः । प्रायुङ्क्तशतशोदैत्यःकार्ष्णिर्व्यधमयत्सताः ॥ २३ ॥ निशा
तमसिमुद्यम्यसकिरीटसकुण्डलम् । शम्बरस्यशिरःकायात्ताम्रश्मश्रोजसाऽहर-
त् ॥ २४ ॥ आकीर्यमाणोदिविजैःस्तुवद्भिःकुसुमोत्करैः । भार्ययाम्बरचारिण्यापुरं

थौं में सुन्दर अपने स्वामी प्रद्युम्न को देखती ॥ १० ॥ एक दिन भगवान श्रीकृष्णनन्दन ने उस को इसप्रकार देखकर कहा कि—माता ! तुम्हारी बुद्धि अन्य प्रकारकी होगई है तुम मातृभावको छोड़कर स्त्री की समान अवस्थिति करतीहो ॥ ११ ॥ रति ने कहा कि–तुमश्रीकृष्ण के पुत्रहो; शंबर तुमको हरलाया है, मैं तुम्हारीपत्नी रतिहूं और तुमकामहो ॥ १२ ॥ इस शंबरने बालकपनमेंही तुम को समुद्र में डाल दियाथा, प्रभो ! मत्स्य ने तुमको निगल लियाथा; उस मत्स्य के उदरसे मैंने तुमको पाया है ॥ १३ ॥ उसी इस दुष्ट दुर्जेय मायावी अपने शत्रुका तुम इस समय मोहनादि मायाद्वारा नाशकरो ॥ १४ ॥ पुत्रके नाशहोजाने पर तुम्हारी माता बिछुड़ेहुए बछड़ेवाली गायके समान कातर व दुःखित और कुररी की समान शोककरती है ॥ १५ ॥ मायावती ने इस प्रकार से कह महात्मा प्रद्युम्न को सर्वमाया नाशिनी महामाया विद्यादी ॥ १६ ॥ प्रद्युम्न शंबर के निकट जाय कठोर तिरस्कार के वाक्यों से उसका तिरस्कार करनेलगे, इस प्रकार दोनोंही में कलह उ-त्पन्नहोगया ॥ १७ ॥ कठोर बचनों से तिरस्कृतहो लातसे मारेहुए सांपकी समान शंबर के नेत्र क्रोधसे ताम्रवर्ण के होगये । उसने गदा हाथ में ले बाहरनिकल बलपूर्वक गदाको घुमा महा-त्मा प्रद्युम्नपर प्रहारकिया, उस से बज्र गिरने की समान अत्यन्त घोरशब्द उत्पन्नहुआ ॥ १८ ॥ १९ ॥ गदाको सन्मुख आता देख महात्मा प्रद्युम्न ने गदाही से उसका निवारण किया और क्रोध से ऊंचाशब्द कर शत्रुपर अपनी गदाका प्रहार किया ॥ २० ॥ वह असुरभी मयदानवकी दीहुई आसुरी मायाका आश्रयकर आकाश में पहुंच प्रद्युम्नपर पत्थर बरसाने लगा ॥ २१ ॥ महारथ प्रद्युम्न ने पत्थरकी वर्षासे पीडितहो सर्वमाया बिनाशिनी सत्त्वगुण मयी महाविद्याका प्रयो-ग किया ॥ २२ ॥ अनन्तर उस दैत्यने गुह्यक, गन्धर्व, पिशाच, उरग, और राक्षस संबंधी शत शत माया का प्रयोग किया परंतु प्रद्युम्नने उनसबोंही का नाश करदिया ॥ २३ ॥ अन्तमें तीक्ष्ण खड्ग उठाय शम्बरके किरीट, भूषित कुण्डल मण्डित ताम्रवर्ण की दाढ़ी मूछवाले शिरको बलपूर्वक काट डाला ॥ २४ ॥ उसकाल देवता स्तुति करने व फूल बरसानेलगे, और आकाश में चलनेवाली

नीतोविहायसा ॥ २५ ॥ अन्तःपुरवरराजल्ललनाशतसंकुलम् । विवेशपत्न्यागगना
द्विद्युतेवबलाहकः ॥ २६ ॥ तंदृष्ट्वाजलदश्यामंपीतकौशेयवाससम् । प्रलम्बबाहुं
ताम्राक्षंसुस्मितारुचिराननम् ॥ २७ ॥ स्वलंकृतमुखाम्भोजंनीलवक्रालकालिभिः
कृष्णंमत्वास्त्रियोह्रीतानिलिल्युस्तत्रतत्रह ॥ २८ ॥ अवधार्यशनैरीषल्लक्षण्येनमपो
षितः । उपजग्मुःप्रमुदिताःस्त्रीरत्नंसुविस्मिताः ॥ २९ ॥ अथतत्रासितापाङ्गी वै-
दर्भीवल्गुभाषिणी । अस्मरत्स्वसुतंनष्टं स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ ३० ॥ कोन्वयंनरवै
दूर्यः कस्यवाकमलेक्षणः । धृतःकयावाजठरेकेयं लब्धात्वनेनवा ॥३१॥ममचाप्या
त्मजोनष्टो नीतोयःसूतिकागृहात । एतत्तुल्यवयोरूपो यदिजीवतिकुत्रचित् ॥३२॥
कथंत्वनेनसंप्राप्त सारूप्यंशार्ङ्गधन्वनः । आकृत्यावयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः ॥
॥ ३३ ॥ सएववाभवेन्नूनं योमेगर्भेधृतोऽर्भकः । अमुष्मिन्प्रीतिरधिका वामःस्फु
रतिमेभुजः ॥ ३४ ॥एवंमीमांसमानायां वैदर्भ्यांदेवकीसुतः । देवक्याऽऽनकदु-
न्दुभ्यामुत्तमश्लोकआगमत् ॥ ३५ ॥ विज्ञातार्थोऽपिभगवांस्तूष्णीमासीज्जनार्द
नः । नारदोऽकथयत्सर्वं शम्बराहरणादिकम् ॥ ३६ ॥ तच्छ्रुत्वामहदाश्चर्यं कृ
ष्णान्तःपुरयोषितः । अभ्यनन्दन्बहूनब्दान्नष्टं मृतमिवागतम् ॥ ३७ ॥ देवकीवसु
देवश्च कृष्णरामौतथास्त्रियः । दम्पतीतौपरिष्वज्य रुक्मिणीचययुर्मुदम् ॥ ३८ ॥
नष्टंप्रद्युम्नमायातमाकर्ण्यद्वारकौकसः । अहोमृतइवायातो बालोदिष्ट्येतिहाऽब्रुव

स्त्रियें उनको आकाश मार्गसे द्वारका में लेगई ॥ २५ ॥ हे राजन् ! बिजली के साथ मेघकी समान स्त्री समेत प्रद्युम्नने बहुतसी स्त्रियोंवाले अन्तःपुरमें प्रवेशकिया, ॥ २६ ॥ मेघ सा श्यामवर्ण, पीतांबर पहिने लम्बी भुजावाले अरुण नेत्र सुन्दर मुसकान युक्त व नीके तथा टेढ़ी अलकावली रूप भौंरोंसे शोभितमुखवाले प्रद्युम्न को देख सब अंतःपुरकी स्त्रियां श्रीकृष्णजान लज्जितहोस्थान प्रतिस्थानमें छिपनेलगीं ॥ २७ । २८ ॥ धीरे२ उनमें कुछ विलक्षणता देख यह श्रीकृष्णनहीं हैं ऐसा निश्चयकर आनन्दित और विस्मितहुई और उस अद्भुतरत्न से विस्मितहो उस के निकट आनेलगीं ॥ २९ ॥ अनन्तर मधुरभाषिणी श्यामकटाक्षवाली रुक्मिणी ने वहां पर आय अपने खोयेहुएपुत्रका स्मरण किया । और स्नेहके कारण उनके स्तनों से दूध गिरनेलगा॥३०॥वहकहने लगीं कि यह पुरुष श्रेष्ठ कौन है ? यह कमललोचन किसकापुत्र है ? किस स्त्री ने इसको अपने उदर में धारण किया है? इसने जो स्त्री पाई है वहकौन है ? ॥३१॥ मेराभी पुत्र जो सूतिकागृह से खोगयाथा वह यदि कहीं जीता होगा तो अवस्था और रूप में इसही की समानहोगा ॥३२॥ यह क्योंकर आकृति, अवयव, गति, स्वर, हास्य, और चितवन में श्रीकृष्णजी की समानहुआ अथवा मैंने जिसपुत्रको गर्भ में धारण कियाथा क्या यह वही है ? इसपर मुझे बड़ाभारी स्नेहहोता है और मेरी बाईं भुजा फड़कती है ॥ ३४ ॥ राजन् ! रुक्मिणी इस प्रकार से विचार करतीथीं कि इतनेही में भगवान श्रीकृष्णजी देवकी और वसुदेव के साथ वहांपर आये ॥ ३५ ॥ भगवान जनार्दन उस सब विषयको जानकर भी चुपचाप खड़े होगए, उसी समय नारदजी ने आनकर शंबरआदि के हरने का समस्त वृत्तांत कहा ॥ ३६ ॥ उस अद्भुत घटना को सुन श्रीकृष्णजी की स्त्रियों मृत्युके घर से आए हुए मनुष्य की समान बहुत दिनों में आयेहुए प्रद्युम्न का आदर करनें लगीं ॥ ३७ ॥ देवकी वसुदेव, राम, श्रीकृष्णजी, सब स्त्रियें और रुक्मिणी उस वर कन्या का आलिंगनकर अत्यन्त आनंदित हुए ॥ ३८ ॥ खोयाहुआ प्रद्युम्न आयाहै यह सुनकर द्वारकावासी कहने लगे, अच्छा हुआ कि जो बालक मरेहुए मनुष्यकी समान फिरआया है ॥ ३९ ॥ प्रद्युम्नका

मू ॥ ३९ ॥ यंवैमुहुःपितृसरूपनिजेशभावास्तन्मातरोयदभजन्रहरूढभावाः । चि
त्रंनतत्खलुरमास्पदबिम्बबिम्बे कामेस्मरेऽक्षविषयेकिमुतान्यनार्यः ॥ ४० ॥
इतिश्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे पंचपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५॥
श्रीशुक उवाच ॥ सत्राजितःस्वतनयांकृष्णायकृतकिल्बिषः । स्यमन्तकेन
मणिनास्वयमुद्यम्यदत्तवान् ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ सत्राजितःकिमकरोद्ब्रह्मन्कृ-
ष्णस्यकिल्बिषम् । स्यमन्तकःकुतस्तस्यकस्माद्दत्तासुताहरेः ॥२॥ श्रीशुक उवाच॥
आसीत्सत्राजितःसूर्योभक्तस्यपरमःसखा । प्रीतस्तस्मैमणिप्रादात्सूर्यस्तुष्टःस्यम-
न्तकम् ॥ ३ ॥ सतंबिभ्रन्मणिंकण्ठेभ्राजमानोयथारविः । प्रविष्टो द्वारकांराजन्ते-
जसानोपलक्षितः ॥ ४ ॥ तंविलोक्यजनादूरात्तेजसामुष्टदृष्टयः।दीव्यतेऽक्षैर्भगवते
शशंसुःसूर्यशङ्किताः ॥ ५ ॥ नारायणनमस्तेऽस्तुशंखचक्रगदाधर । दामोदरार
विंदाक्षगोविंदयदुनन्दन ॥ ६ ॥ एषआयातिसवितात्वांदिदृक्षुर्जगत्पते । मुष्णन्ग-
भस्तिचक्रेणनृणांचक्षूंषितिग्मगुः ॥ ७ ॥ नन्वन्विच्छन्तितेमार्गंत्रिलोक्यांविबुधर्ष
भाः । ज्ञात्वाद्यगूढंयदुषुद्रष्टुंत्वांयात्यजःप्रभो ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच॥ निशम्यबाल
वचनंप्रहस्याम्बुजलोचनः । प्राहनासौरविर्देवःसत्राजिन्मणिनाज्वलन् ॥ ९ ॥ स-
त्राजित्स्वगृहंश्रीमत्कृतकौतुकमङ्गलम् । प्रविश्यदेवसदने मणिंविप्रैर्न्यवेशयत् १० ॥
दिनेदिनेस्वर्णभारानष्टौसमृजतिप्रभो। दुर्भिक्षमार्यरिष्टानिसर्पाधिव्याधयोऽशुभाः।

रूप श्रीकृष्णजी की समान था इसही कारण उनकी माताएँ भी उनको अपना संबधी और स्वामी जान २ उनका ध्यान करती थीं । यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं है क्यों कि जिसके स्मरण करने सेही क्षोभ उत्पन्न होता है वह नेत्रों के सामने विराजमान है दूसरे वह श्रीकृष्णजी की श्री मूर्तिके प्रतिबिंब ही थे जब उनकी माताओं कोभी भ्रांति होगई तब दूसरी स्त्रियों की तो बातही क्या है

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० सरला भाषाटीकायां पंचपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! सत्राजित ने अपराध कर अपराध दूर करने के निमित्त स्वयं श्रीकृष्णजी को स्यमंतक मणि सहित अपनी पुत्री दी ॥ ॥ १ ॥ राजा ने पूँछाकि सत्राजितने श्रीकृष्णजी का क्या अपराध कियाथा उसने स्यमंतक मणि कहां से पाईथी श्रीकृष्णजी को कन्या क्योंदी ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी नें कहा कि हे राजन् ! सत्राजित सूर्य का परमभक्त था और सूर्यभी सत्राजित को परममित्र मानतेथे उन्होंनेही प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर सत्राजित को स्यमंतक मणि दीथी ॥ ३ ॥ हे राजन् ! सत्राजित कंठमें उस मणि को धारणकर सूर्य की समान प्रकाशितहो द्वारका में आया उस मणि से इस प्रकार का प्रकाश होताथा कि उसको कोई नजानसका कि यह सत्राजित है ॥ ४ ॥ दूर सेही उसका देखकर सबकी दृष्टि नष्ट होगई भगवान उस समय चौसर खेलरहे थे, सब मनुष्य सूर्य का आताजान उनके समीप आयकर कहने लगे कि ॥ ५ ॥ हे नारायण ! हे शंख, चक्र, गदा, पद्मधर ! हे दामोदर ! हे जलजलोचन ! हे गोविन्द ! हे यदुनन्दन आपको प्रणाम है ॥ ६ ॥ हे जगत्पते ! भगवान सूर्य अपनी किरणों से मनुष्यों की दृष्टि को नष्ट करते हुए आपके दर्शन करने के निमित्त आते हैं ॥ ७ ॥ श्रेष्ठ देवताभी त्रिलोकी में आपही के मार्गका अन्वेषण करते हैं हे प्रभो!आप यदु कुल में गुप्त रीति से रहते हो जानपड़ता है कि आज सूर्य देव आपके दर्शनों की इच्छा से आते हैं ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! अनजान मनुष्यों की बातको सुन भगवान हंसकर कहने लगे कि यह सूर्यदेव नहीं हैं यह सत्राजित यादव स्यमंतक मणिकी किरणों से इसप्रकार प्रकाशित होरहाहै॥९॥इधरसत्राजित ने अपने श्री युक्त घर में प्रवेश कर विप्रों द्वारा मंगलाचरण कराय देवगृह में मणि स्थापन की ॥ १० ॥ वह मणि प्रति-

नसन्तिमायिनस्तत्रयत्रास्तेऽभ्यर्चितोमणिः ॥ ११ ॥ सयाचितोमणिंक्वापियदु
राजायशौरिणा। नैवार्थकामुकःप्रादाद्याच्ञाभङ्गमतर्कयन् ॥ १२ ॥ तमेकदामणिं
कण्ठेप्रतिमुच्यमहाप्रभम्। प्रसेनोहयमारुह्यमृगयांव्यचरद्वने ॥ १३ ॥ प्रसेनंसहयं
हत्वामणिमाच्छिद्यकेसरी । गिरिंविशञ्जाम्बवतानिहतोमणिमिच्छता ॥ १४ ॥
सोऽपिचक्रेकुमारस्यमणिंक्रीडनकंबिले। अपश्यन्भ्रातरंभ्रातासत्राजित्पर्यतप्यत ॥
१५ ॥ प्रायःकृष्णेननिहतोमणिग्रीवोवनंगतः। भ्राताममेतितच्छ्रुत्वाकर्णेकर्णेऽजप-
ञ्जनाः ॥ १६ ॥ भगवांस्तदुपश्रुत्यदुर्यशोलिप्तमात्मनि। माष्टुंप्रसेनपदवीमन्वपद्य
तनागरैः ॥१७॥ हतंप्रसेनमश्वंचवीक्ष्यकेसरिणावने। तंचाद्रिपृष्ठेनिहतमृक्षेणदद्
शुर्जनाः ॥ १८ ॥ ऋक्षराजबिलंभीममन्धेनतमसावृतम् । एकोविवेशभगवानव-
स्थाप्यबहिःप्रजाः ॥ १९ ॥ तत्रदृष्ट्वामणिश्रेष्ठंबालक्रीडनकंकृतम् । हर्तुंकृतमति
स्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकान्तिके ॥ २० ॥ तमपूर्वंनरंदृष्ट्वाधात्रीचुक्रोशभीतवत् ।
तच्छ्रुत्वाऽभ्यद्रवत्क्रुद्धोजाम्बवान्बलिनांवरः ॥ २१ ॥ सवैभगवतातेनयुयुधेस्वा
मिनात्मनः । पुरुषंप्राकृतंमत्वाकुपितोनानुभाववित् ॥ २२ ॥ द्वन्द्वयुद्धं
सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः। आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिःक्रव्यार्थेश्येनयोरिव ॥ २३ ॥
आसीत्तदष्टाविंशाह मितरेतरमुष्टिभिः । वज्रनिष्पेषपरुषैरविश्रममहर्निशम् ॥
॥ २४ ॥ कृष्णमुष्टिविनिष्पातनिष्पिष्टाङ्गोरुबन्धनः । क्षीणसत्त्वःस्विन्नगात्रस्त

दिन आठ भार सुवर्ण देती और वह पूजित होकर जिस स्थानपर रहती वहां दुःख के कारण दुर्भिक्ष, अकाल मृत्यु, अमंगल, सर्प, व्याधि, आधि, अशुभ और माया कुछ नहीं होता ॥ ११ ॥ एक दिन श्रीकृष्णजी ने सत्राजित से उग्रसेन के निमित्त उस मणि को मांगाथा परन्तु लालची सत्राजित नें उनकी याचना भंगकर उन्हें मणि नदी ॥ १२ ॥ हे राजन् ! अनन्तर सत्राजित का भाई प्रसेनजित एक दिन उस महाप्रकाशित मणि को कंठ में धारण कर घोडे पर बैठ बन में मृगया के निमित्त गया ॥ १३ ॥ वहां एक सिंह घोडे समेत प्रसेन को मार मणि ले पर्वत पर चलागया जाम्बवान ने मणि की इच्छाकर उस सिंह को मारा और गुफा में जाय अपने बालकको खिलौना बनाया इधर भाई को न देख सत्राजित संतप्त होकर कहने लगा कि ॥ १४ । १५ ॥ मेरा भाई गलेम मणि बांधकर बन में गयाथा निश्चय ही कृष्णनें उसको मारडाला और अन्य मनुष्य भी इस बातकी कानाफूँसी करनेलगे ॥ १६ ॥ भगवान ने भी उसको सुना और अपने कलंकके दूर करने के निमित्त वह नगर के मनुष्यों को साथ ले प्रसेन के ढूंढने को बनमें गये ॥ १७ ॥ बनमें इधर उधर ढूंढतेहुए उन्होंने सिंह से मरेहुए प्रसेन और घोडे को और इस के उपरांतरीछ से मरेहुए उस सिंह को देखा ॥ १८ ॥ वहां रीछ की भयानक गुफाभी उनके दृष्टिगोचरहुई भगवान उस गुफा के द्वारपर अपने मनुष्यों को बैठाय आप उस अंधेरी गुफा मे गये ॥ १९ ॥ वहां यह देखकर कि मणि बालक का खिलौनाहुई है उस के लेने की इच्छा से बालकके निकट जाकर खड़ेहोगये ॥ २० ॥ उस अपूर्व मनुष्य को देखकर उस बालककी धाय भयभीतहो बडे शब्द से चिल्लानेलगी । उस शब्दको सुनकर बलवानों में श्रेष्ठ जाम्बवान वहां दौड़ाआया ॥२१॥ और भगवान के प्रभाव को न जान उन्हें एक साधारणमनुष्य मान उनसे युद्ध करने में प्रवृत्त हुआ । क्योंकि वह उनके प्रभावको नहीं जानताथा ॥ २२ ॥ दोनोंही अपने जयकी इच्छाकरतेथे; मांस के निमित्त दो बाजों की समान शस्त्र, पत्थर, वृक्ष और भुजाओं द्वारा उन दोनों में अत्यंत घोर युद्ध होनेलगा ॥ २३ ॥ अठ्ठाईस दिवसतक इसप्रकार का घोरयुद्धहोतारहा वे दोनों अठ्ठाईस दिन बराबर रात दिन बिना विश्राम लिये मुष्टिप्रहारकरतेरहे ॥ २४ ॥ अन्त में श्रीकृष्णजी के

माहातीवविस्मितः ॥ २५ ॥ जानेत्वांसर्वभूतानांप्राणओजःसहोबलम् । विष्णुंपुरा
णपुरुषंप्रभविष्णुमधीश्वरम् ॥ २६ ॥ त्वंहिविश्वसृजांस्रष्टासृष्टानामपियच्चसत् । का
लःकलयतामीशः परआत्मातथात्मनाम् ॥ २७ ॥ यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षै
र्वर्त्मादिशत्क्षुभितनक्रतिमिंगिलोऽब्धिः । सेतुः कृतः स्वयशउज्ज्वलिताचलङ्कार
क्षः शिरांसिभुविपेतुरिषुक्षतानि ॥ २८ इतिविज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः । व्या
जहारमहाराजभगवान्देवकीसुतः ॥ २९ ॥ अभिमृश्यारविन्दाक्षः पाणिनाशंकरे
णतम् । कृपयापरयाभक्तंप्रेमगम्भीरयागिरा ॥ ३० ॥ मणिहेतोरिहप्राप्तावयमृक्षपते
बिलम् । मिथ्याऽभिशापंप्रमृजन्नात्मनोमणिनामुना ॥ ३१ ॥ इत्युक्तः स्वांदुहितरंक
न्यांजाम्बवतींमुदा । अर्हणार्थंसमणिनाकृष्णायोपजहारह ॥ ३२ ॥ अदृष्ट्वानिर्ग
मंशौरेः प्रविष्टस्यबिलंजनाः । प्रतीक्ष्यद्वादशाहानिदुःखिताः स्वपुरंययुः ॥ ३३ ॥
निशम्यदेवकीदेवीरुक्मिण्यानकदुन्दुभिः । सुहृदोज्ञातयोऽशोचन्बिलात्कृष्णमनि
र्गतम् ॥ ३४ ॥ सत्राजितंशपन्तस्तेदुःखिताद्वारकौकसः । उपतस्थुर्महामायांदुर्गां
कृष्णोपलब्धये ॥ ३५ ॥ तेषांतुदेव्युपस्थानात्प्रत्यादिष्टाशिषासच । प्रादुर्बभूवसि
द्धार्थः सदारोहर्षयन्हरिः ॥ ३६ ॥ उपलभ्यहृषीकेशंमृतंपुनरिवागतम् । सहपत्न्या
मणिग्रीवंसर्वेजातमहोत्सवाः ॥ ३७ ॥ सत्राजितंसमाहूयसभायांराजसन्निधौ ।

घूंसा मारने से जाम्बवान के अंग के सब बन्धन ढीलेपड़गये , और शरीर पसीने से भीगगया तब उस ने अत्यन्त विस्मितहो भगवान से कहा कि— ॥ २५ ॥ मैं जानताहूं कि आप पुराण पुरुष अधीश्वर, सर्व शक्तिमान् श्री विष्णुजी हैं आप समस्त प्राणियों के प्राण, इन्द्रिय बल,देहबल और मनोबलहैं ॥ २६ ॥ जो विश्वको उत्पन्न करते हैं आपने उनकोभी उत्पन्न किया है । सब पदार्थोंसे उनके आपही उपादान कारणहो इसीकारण आप पुराण पुरुषहो । जो सबका नाश करता है आप उसकालकेभी काल और सब आत्माओंके परमात्माहो ॥ २७ ॥ हे प्रभो ! आप के कुछ एक रोषसे कटाक्षपातके कारण समुद्रके मकर और ग्राह क्षुभित होउठेथे ; इससे समुद्रने आपको मार्ग देदियाथा परन्तु तोभी आपने सेतुको बांध अपने यशको प्रकाशित करतेहुए लंका-पुरीको जलाया । आपकेही बाणोंसे छिन्नहोकर राक्षस रावणका मस्तक भूमिपर गिराथा ॥ २८ ॥ हे महाराज ! ऋक्षराज जाम्बवानको जब इसप्रकारका ज्ञान प्राप्तहुआ तब भगवान देवकीनन्दन ने अपने शुभकारी हाथों से भक्तका स्पर्शकर परम कृपापूर्वक मेघकी समान गंभीर शब्द से कहा ॥ ॥ २९ । ३० ॥ हे ऋक्षराज ! मणिके निमित्तही मैं इसगुफा में आयाहूं , इस मणिसेही मैं अपने मिथ्या कलंकको दूर करूंगा ॥ ३१ ॥ इसबातको सुन सतुष्टहो पूजाके निमित्त श्रीकृष्णजी को मणिसमेत अपनी पुत्री जाम्बवती देदी ॥ ३२ ॥ इसओर प्रजाने गुफा से बाहर निकलने की बारह दिनतक उनकी राहदेखी परन्तु उनको बाहर न होता देख वह अत्यंत दुःखितहो अपने नगरको लौटआये ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्णजी गुफासे न निकले इसबातको सुनकर देवी देवकी और रुक्मिणी व वसुदेव, सुहृद तथा ज्ञातिवाले सबही शोक करने लगे ॥३४॥ और द्वारकावासी सत्राजितको गाली देतेहुए दुःखितहो श्रीकृष्णजीके आने के निमित्त चन्द्रभागानाम्नी दुर्गाकी पूजा करनेलगे ॥ ३५ ॥ उनके पूजाकरनेके उपरांत देवीने उनको जैसेही आशीर्वाददिया वैसेही उस आशीर्वादके साथही साथ हरि भगवानने अपनाकार्य पूराकर स्त्रीसमेत वहां आय सबको आनन्दित किया ॥ ३६ ॥ फिरकरआये हुए मृत मनुष्य की समान गले में मणिधारणकिये स्त्री समेत भगवानको पाय सब मनुष्योंको अत्यन्तही आनन्द प्राप्तहुआ ॥ ३७ ॥ अनन्तर भग-

प्रीतिस्तस्याश्च भगवान्मणिं च तस्मै प्रदत्तम्॥ ३८॥ स चाति व्रीडितो रत्नं गृहीत्वाऽवा क्मुखस्ततः। अनुतप्यमानो भवनमगमत्स्वेन पाप्मना॥ ३९॥ सोऽनुध्यायंस्तदेवा घं बलवद्विग्रहाकुलः। कथं मृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद्वाऽच्युतः कथम्॥ ४०॥ किं कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद्वा जनो यथा। अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम्॥ ४१॥ दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च। उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शान्तिर्न चान्यथा॥ ४२॥ एवं व्यवसितो बुद्ध्या सत्राजित्स्वसुतां शुभाम्। मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह॥ ४३॥ तां सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि। बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम्॥ ४४॥ भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप। तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः॥ ४५॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे उ० षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५६॥

श्रीशुक उवाच। विज्ञातार्थोऽपि गोविन्दो दग्धानाकर्ण्य पाण्डवान्। कुन्तीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून्॥ १॥ भीष्मं कृपं सविदुरं गान्धारीं द्रोणमेव च। तुल्यदुःखौ च संगम्य हा कष्टमिति होचतुः॥ २॥ लब्ध्वैतदन्तरं राजञ्छतधन्वानमूचतुः। अक्रूरकृतवर्माणौ मणिः कस्मान्न गृह्यते॥ ३॥ योऽस्मभ्यं संप्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्य नः। कृष्णायादान्न सत्राजित्कस्माद्भ्रातरमन्वियात्॥ ४॥ एवं भिन्नमतिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तमः। शयानमवधील्लोभात्स पापः क्षीणजीवितः॥ ५॥ स्त्रीणां

वानने सभामें राजाके सामनेही सत्राजितको बुलाया और जिसप्रकारसे वह मणि मिलीथी उस सब का वर्णनकर उसको मणिदी॥३८॥ सत्राजितलज्जितहो नीचको मुखकर मणिके अपने अपराध से सन्तप्त होताहुआ अपने घरआया॥ ३९॥ वह उस अपराधकी चिन्ता करनेलगा और ब. लवान के साथ कलह उपस्थितहोजाने से अत्यन्त व्याकुलहोउठा। सत्राजित विचारनेलगा—कि किसप्रकार से इस अपराधको दूरकरूं? किसप्रकार से श्रीकृष्णजी प्रसन्नहोंगे?॥ ४०॥ क्या करने से मेरा कल्याणहोगा? क्या करने से मनुष्य मुझको अविचारी, कृपण, मन्दबुद्धि, धनलोलुप कहकर गाली न देंगे?॥ ४१॥ मेरी पुत्री स्त्री रत्नहै, मैं उनको यह स्त्री रत्न और मणिदूंगा। इस उपाय के अतिरिक्त और किसी उपाय से इस अपराध की शांति न होगी॥ ४२॥ मनमें इस बातका विचार करके यही निश्चयकर सत्राजित ने अपनी मंगल स्वरूपा कन्या और मणि श्रीकृष्णजी को दी॥ ४३॥ भगवान ने यथारीति से सत्राजित की पुत्री सत्यभामा से विवाह किया। सत्यभामा शील, रूप, उदारता और गुणों से अलंकृत थी। बहुत से मनुष्यों ने उससे विवाह होने की इच्छा की थी॥ ४४॥ हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णजी मणिको भेटमें देखकर कहने लगेकि—मैं मणिको न लूंगा। आपसूर्य के भक्तहो, यह आपही के पासरहे, मैंही इसके फलका भोगीहूंगा॥४५॥

इतिश्री मद्भा० म० दशम० उ० सरलाभाषाटीकायांषट्पंचाशत्तमोऽध्यायः॥ ५६॥

श्रीशुकदेवजीबोलेकि–हेराजन्! पाण्डवगण जिस प्रकार सुरंग द्वारसे हो लाक्षा भवनसे निर्विघ्न निकलगये वह सब बात श्रीकृष्णजी भली प्रकार जानते थे तौभी पाण्डव अपनी माता समेत सब भस्महो लाक्षागृहमें जल गये यह बातसुन कुलोचित व्यवहार करनेके निमित्त भाई बलराम जी केसाथ श्रीकृष्णजी कुरुदेश मेंगये और भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर और गांधारीके साथ मिल उन्हीं की समान दुःख प्रकाशकर के कहने लगे कि हाय! बडा कष्टहै!॥ २॥ हे राजन्! यह अवसर पाकर अक्रूर और कृतवर्मा ने शतधन्वा से आकर कहाकि-अब किस कारणसे मणि नहीं लेता!॥ ३॥ जिस सत्राजितने हमारे निकट कन्यारत्न देना स्वीकारकर श्रीकृष्णको दी किंतु मणि नहीं दी, वह क्या भाई के पीछे न जाय॥ ४॥ ऐसे उन दोनों के बहकाने से उस नीच पापी क्षीणजीवी, पापचारी ने लोभ के कारण सोतेहुए सत्राजितको जाकर मारडाला॥ ५॥ सब

विक्रोशमानानां क्रन्दन्तीनामनाथवत्। हत्वा पशून्सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान् ॥ ६ ॥ सत्यभामा च पितरं हतंवीक्ष्य शुचाऽर्पिता। व्यलपत्तात तातेति हा हतास्मीति मुह्यती ॥ ७ ॥ तैलद्रोण्यां मृतंप्रास्य जगामगजसाह्वयम्। कृष्णाय विदितार्थाय तप्ताचख्यौ पितुर्वधम् ॥ ८ ॥ तदाकर्ण्येश्वरौ राजन्ननुसृत्य नृलोकताम्। अहो नः परमं कष्टमित्यस्राक्षौ विलेपतुः ॥९॥ आगत्य भगवांस्तस्मात्सभार्यः साग्रजः पुरम्। शतधन्वानमारेभे हन्तुं हर्तुं मणिं ततः ॥ १० ॥ सोऽपि कृतोद्यमं ज्ञात्वा भीतःप्राणपरीप्सया। साहाय्ये कृतवर्माणमयाचत स चाब्रवीत् ॥ ११ ॥ नाहमीश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः। को नु क्षेमाय कल्पेत तयोर्वृजिनमाचरन् ॥ १२ ॥ कंसः सहानुगोऽपीतो यद्द्वेषात्त्याजितःश्रिया। जरासन्धःसप्तदश संयुगाद्विरथो गतः ॥ १३ ॥ प्रत्याख्यातः स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत। सोऽप्याह को विरुध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम् ॥ १४ ॥ य इदं लीलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च। चेष्टां विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताऽजया ॥ १५ ॥ यः सप्तहायनः शैलमुत्पाट्यैकेन पाणिना। दधार लीलया बाल उच्छिलीन्ध्रमिवार्भकः ॥ १६ ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे। अनन्तायादिभूताय कूटस्थायात्मने नमः ॥ १७ ॥ प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम्। तस्मिन्न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ ॥ १८ ॥ गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ। अन्वयातां महावेगैरश्वै राजन्गुरुद्रुहम् ॥ १९ ॥ मिथिलाया उपवने

स्त्रियें आर्त्तनाद करने और अनाथ की समान रोनेलगीं। शतधन्वा पशुमारने वाले कसाई की समान सत्राजितको मार मणिलेकर चलागया ॥ ६ ॥ सत्यभामा पिताको मरादेख 'हा तात!' कहकर विलाप करनेलगी ॥ ७ ॥ अनन्तर वह तेलके कढ़ाव में पिताकी मृत देहरख हस्तिनापुर को गई और वहां पहुंचकर श्रीकृष्णजी से पिताके मरनेका वृत्तांत कहा ॥ ८ ॥ हे राजन्! वह दोनो ईश्वर यद्यपि उस घटनाको जानते थे तोभी मनुष्योंका अनुसरणकर 'हा! हमको महाकष्ट उपस्थित हुआ' यह कह आंसूबहा २ विलाप करने लगे ॥ ९ ॥ अनन्तर भगवान स्त्री और भाई को ले हस्तिनापुर से अपने नगर में आये और शतधन्वाको मारने तथा मणिलेनेपर तत्पर हुए ॥ १० ॥ वह दुराचारी शतधन्वा श्रीकृष्णजी के उद्योगका समाचार पाय भयभीतहो प्राणों की रक्षाके निमित्त कृतवर्मा के निकट आय उससे सहायता मांगनेलगा। कृतवर्माने कहाकि ॥ ११ ॥ राम, कृष्ण ईश्वर हैं मैं उनका अपराध नहीं करसकता उनका अपराध करके कौन कुशल पासकता है ॥ १२ ॥ जब कंस उनसे वैरकर राजलक्ष्मी से च्युतहो मारागया, जब जरासंध सत्रहवेर हारकर भागगया ॥ १३ ॥ तब उनसे बिगाड़कर उनका अपराधीहो किसका कल्याण होसकता है शतधन्वाने वहांसे निराशहो अक्रूर से जाकर सहायता की प्रार्थना की ॥ १४ ॥ अक्रूरने कहाकि— दोनों ईश्वरों के प्रभावको जानकर व सुनकर कौन मनुष्य उनसे विरोध करसकता है जोक्रीड़ासे ही इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और प्रलय करते हैं; विश्वको उत्पन्न करनेवाले जिनकी माया से मोहितहो जिनकी चेष्टातक कोभी नहीं जानसकते ॥ १५ ॥ जिन्हों ने सात वर्षकी अवस्था में बालक जैसे छत्रको धारणकरे वैसेही बाएं हाथसे पर्वतको उठाकर धारण किया था ॥ १६ ॥ उन भगवान्, अद्भुतकर्मा, अनंत, आदिभूत, निर्विकार स्वरूप भगवानको बारंबार प्रणाम व नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे राजन्! शतधन्वा अक्रूर केभी निकट से निराशहो उन्हींको मणिदे आप सौ योजन जानेवाले घोड़ेपर सवारहो भाग निकला ॥ १८ ॥ राम और कृष्णजी भी गरुड़ध्वज से शोभित रथपर बैठ शीघ्रगामी घोड़ों द्वारा गुरुद्रोही के पीछे २ दौड़े ॥ १९ ॥ शतयोजन चलकर शतधन्वा

विसृज्य पतितं हयम् । पद्भ्यामधावत्संत्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद्रुषा ॥ २० ॥ पदाते-
र्भगवांस्तस्य पदातिस्तिग्मनेमिना । चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससोर्व्यचिनोन्मणिम् ।
॥ २१ ॥ अलब्धमणिरागत्य कृष्ण आहाऽग्रजान्तिकम् । वृथा हतः शतधनुर्मणिस्त
त्र न विद्यते ॥ २२ ॥ तत आह बलो नूनं स मणिः शतधन्वना । कस्मिंश्चित्पुरुषे न्यस्त
स्तमन्वेष पुरं व्रज ॥ २३ ॥ अहं विदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम । इत्युक्त्वा मिथि-
लां राजन्विवेश यदुनन्दनः ॥ २४ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः ॥
अर्हयामास विधिवदर्हणीयं समर्हणैः ॥ २५ ॥ उवास तस्यां कतिचिन्मिथिलायां समा
विभुः । मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना । ततोऽशिक्षद्गदां काले धार्तराष्ट्रः
सुयोधनः ॥ २६ ॥ केशवो द्वारकामेत्य निधनं शतधन्वनः ॥ अप्राप्तिं च मणेः प्राह
प्रियायाः प्रियकृद्विभुः ॥ २७ ॥ ततः स कारयामास क्रिया बन्धोर्हतस्य वै । साकं सु-
हृद्भिर्भगवान्या याः स्युः साम्परायिकाः ॥ २८ ॥ अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनो-
र्वधम् । व्यूषतुर्भयवित्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ ॥ २९ ॥ अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्या
सन्वै द्वारकौकसाम् । शारीरा मानसास्तापा मुहुर्दैविकभौतिकाः ॥ ३० ॥ इत्यङ्गो
पदिशन्त्येके विस्मृत्य प्रागुदाहृतम् । मुनिवासनिवासे किं घटेतारिष्टदर्शनम् ॥ ३१ ॥
देवेऽवर्षति काशीशः श्वफल्कायागताय वै । स्वसुतां गान्दिनीं प्रादात्ततोऽवर्षत्स्म
काशिषु ॥ ३२ ॥ तत्सुतस्तत्प्रभावोऽसावक्रूरो यत्र यत्र ह । देवोऽभिवर्षते तत्र नोप-

का अश्व मिथिलाके किसी उपवन में गिरपड़ा । तब वह उस अश्वको छोड़ डरता हुआ, पैरोंसे भागने लगा, शत्रुको पैरों भागता देख भगवान स्वयं पैदलचल उसके पीछेदौड़ तीक्ष्णधार के चक्र द्वारा उसका शिरकाट उसके बस्त्रों में मणिको ढूढने लगे ॥ २०–२१ ॥ श्रीकृष्णजी मणिको न पा बलरामजी के निकट आकर कहने लगेकि–अकारणही शतधन्वाको मारा; उसके निकट मणि नहीं है ॥ २२ ॥ बलरामजी ने कहाकि–शतधन्वा ने वह मणि निश्चयही किसी दूसरे मनुष्य के निकट रक्खीहोगी तुम नगर में जाकर उस मनुष्यका खोजकरो ॥ २३ ॥ मेरीइच्छा प्यारे विदेह राजासे मिलने की है । हे राजन् ! यह कहकर बलरामजी मिथिला में गये ॥ २४ ॥ मिथिला के राजाने पूजनीय बलदेवजीको आया देखस्नेह पूर्वक उठकर पूजनकी सामग्रीद्वारा यथाविधि से उनकी पूजाकी ॥ २५ ॥ बलरामजी उस मिथिला में कुछवर्ष सुखसे रहे । पूर्वोक्त घटना के कुछ दिन उपरान्त धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन मिथिला में आया और महात्मा जनक से पूजित व सन्मानितहो उसने बलरामजी से गदायुद्ध सीखा ॥ २६ ॥ इधर प्यारी के प्रियकरने वाले भगवान् द्वारका में आय शतधन्वा के मारने और मणि न मिलनेका वृत्तांत प्यारी से कहा ॥ २७ ॥ तदनंतर सुहृदों के संग मरेहुए सत्राजितकी सब पारलौकिक क्रिया करवाई ॥ २८ ॥ हे राजन् ! इधर शतधन्वा के मरनेका समाचार पाय उसेमणि हरनेको प्रेरित करने वाले अक्रूर और कृतवर्मा त्रसितहो द्वारकासे भागगये ॥ २९ ॥ अक्रूर के द्वारकापुरी छोडदेनेसे उस देशके निवासी सबैवही शारीरिक, मानसिक, दैविक और भौतिक नाना प्रकार के संतापोंको भोगने लगे ॥ ३० ॥ हे राजन् ! श्री कृष्णजी के महात्म्यको भूलकर कोई २ अक्रूरकेनगर छोडदेने सेही उस सब उपद्रवों के होनेका निश्चय करने लगे । किंतु यह बात सत्य नहीं जानपड़ती, क्योंकि मुनिलोगों के निवास भूत श्रीकृष्णजी के रहते हुए यह अरिष्ट कैसे होसकता है ॥ ३१ ॥ अक्रूरजी के जानेपर द्वारका के वृद्ध पुरुष कहने लगे कि जब एक समय इन्द्र ने बरसा न की तब काशी के राजा ने अपनी नगरी में आये हुए अक्रूर के पिता श्वफल्क को गांदिनी नाम अपनी पुत्रीदी तब काशी में जलकी वर्षाहुई ॥ ३२ ॥ अक्रूर उसी से उत्पन्नहुए पुत्र हैं अतएव उनका भी ऐसाही

तापानमारिकाः ॥ ३३ ॥ इतिवृद्धवचःश्रुत्वा नैतावदिहकारणम् । इतिमत्वासमाना य्य प्राहाक्रूरंजनार्दनः ॥ ३४ ॥ पूजयित्वाभिभाष्यैनं कथयित्वाप्रियाःकथाः । विज्ञाताखिलचित्तज्ञः स्मयमानउवाचह ॥ ३५ ॥ ननुदानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतधन्वना । स्यमन्तकोमणिःश्रीमान्विदितः पूर्वमेवनः ॥ ३६ ॥ सत्राजितोऽनपत्यत्वाद्गृह्णीयुर्दुहितुः सुताः । दायंनिनीयाऽपः पिण्डान्विमुच्यर्णंच शेषितम् ॥ ३७ ॥ तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रतेमणिः । किंतुमामग्रजः सम्यन प्रत्येतिमणिंप्रति ॥ ३८ ॥ दर्शयस्वमहाभाग बंधूनां शान्तिमावह । अव्युच्छिन्ना मखास्तेऽद्य वर्तन्ते रुक्मवेदयः ॥ ३९ ॥ एवंसामभिरालब्धः श्वफल्कतनयोमणिम् । आदायवाससाच्छन्नं ददौसूर्यसमप्रभम् ॥ ४० ॥ स्यमन्तकंदर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रजआत्मनः । विमृज्यमणिनाभूयस्तस्मैप्रत्यर्पयत्प्रभुः ॥ ४१ ॥ यस्त्वेतद्भगवतईश्वरस्यविष्णोर्वीर्याढ्यवृजिनहरंसुमङ्गलंच । आख्यानंपठतिशृणोत्यनुस्मरेद्वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्ययातिशान्तिम् ॥ ४२ ॥

इतिश्रीमद्भागवते महा० दशम० उ० सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एकदापाण्डवान्द्रष्टुंप्रतीतान्पुरुषोत्तमः । इन्द्रप्रस्थंगतः श्रीमान्युयुधानादिभिर्वृतः ॥ १ ॥ दृष्ट्वातमागतंपार्थामुकुन्दमखिलेश्वरम् । उत्तस्थुर्युगपद्वीराः प्राणामुख्यमिवागतम् ॥ २ ॥ परिष्वज्याच्युतंवीराअङ्गसङ्गहतनसः । सानुरागस्मितंवक्त्रंवीक्ष्यतस्यमुदंययुः ॥ ३ ॥ युधिष्ठिरस्यभीमस्यकृत्वापादाभिव

प्रभावहै वह जिस २ स्थान में निवास करते हैं उसी २ स्थानमें देवता वर्षा करतेहैं वहा रोग व उपद्रवों की शंका नहीं रहती, ॥ ३३ ॥ वृद्धोंकी इसबातको सुनकर भगवान ने विचारा कि— अक्रूर के न रहनेका यह कारण नहींहै मणिके खोजाने काही यह कारणहै यह विचारकर उन्होंने अक्रूरजीको बुलवाया, ॥ ३४ ॥ और यथाविधि से उनका सन्मानकर सुन्दर बातें कह हसते २ कहा कि— ॥ ३५ ॥ हे दानपते ! शतधन्वाने निश्चयही तुमको स्यमन्तक मणिदी है मुझे यह प्रथमही से ज्ञातहै ॥ ३६ ॥ सत्राजित निःसन्तान है इसकारण उस मणिके अधिकारी उसकी बेटीके पुत्रहैं क्योंकि जो मनुष्य पितृ पुरुष का ऋण चुकाता व जल पिंड देताहै शास्त्रानुसार वही मृत पुरुष के सम्पत्तिका अधिकारी होना है ॥ ३७ ॥ किन्तु उस मणिको दूसरा धारण नहीं करसकता अतएव वह आपहीके निकटहै क्योंकि आप सुन्दर व्रतके धारण करनेवालेहो मणिके विषय में हमारे बड़े भाई भी मुझपर विश्वास नहीं करते ॥ ३८ ॥ अतएवतुम मुझे उसे एकबार दिखाकर बन्धुओं के शांति का यत्नकरो । देखताहूं कितुम सुवर्ण की वेदीवाले अखण्डयज्ञकरते हो ॥ ३९ ॥ जब भगवान ने अक्रूर से इसप्रकार कहा तब अक्रूर ने सूर्य की समान प्रकाशित मणि वस्त्र में लपेटकरलाय भगवान के हाथ मेंदी ॥ ४० ॥ भगवान ने ज्ञातिवालों को वह मणि दिखाय उस मणिसे अपना कलंक उतार फिर वह अक्रूर के हाथ में देदी ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य भगवान के पराक्रमयुक्त, अनिष्टनिवारक, कल्याणकारी इसआख्यान को पढ़े,सुने वा स्मरणकरेगा वह दुष्कीर्ति और कलंकों से छूटकर शांतिको पावैगा ॥ ४२ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेउ०सरलाभाषाटीकायांसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय: ॥ ५७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि–हेराजन् ! एक समय श्रीभगवान सात्यकि आदि आत्मीय जनों को साथले पाण्डवों के देखने के निमित्त इन्द्रप्रस्थ को गये ॥ १ ॥ जिस प्रकार प्राणों के आने से सब इन्द्रियां सचेतहोजाती हैं-वैसेही भगवान को आते देख सबवीरपाण्डव एकसाथ उठ खड़ेहुए २ ॥ भगवान का आलिंगनकर उनके अंग स्पर्श से सब वीरों के पाप नाशहोगये वह प्रेम व मुसकान संयुत मुखारविंद को देख परमानन्द को प्राप्तहुए ॥ ३ ॥ भगवान ने भी युधिष्ठिर व भीम के

न्दनम् । फाल्गुनंपरिरभ्याथयमाभ्यांचाभिवन्दितः ॥ ४ ॥ परमासनआसीनंकृष्णा कृष्णमनिन्दिता । नवोढाव्रीडिताकिञ्चिच्छनैरेत्याभ्यवन्दत ॥ ५ ॥ तथैवसात्यकिः पार्थैः पूजितश्चाभिवन्दितः । निषसादासनेऽन्येचपूजिताः पर्युपासत ॥ ६ ॥ पृथांसमागत्यकृताभिवादनस्तयातिहार्दार्द्रदृशाऽभिरम्भितः । आपृष्टवांस्तांकुशलंसहस्नुषांपितृष्वसारंपरिपृष्टबान्धवः ॥ ७ ॥ तमाहप्रेमवैक्लव्यरुद्धकण्ठाश्रुलोचना । स्मरन्तीतान्बहून्क्लेशान्क्लेशापायात्मदर्शनम् ॥ ८ ॥ तदैवकुशलंनोऽभूत्सनाथास्तेकृतावयम् । ज्ञातीन्नः स्मरताकृष्णभ्रातामेप्रेषितस्त्वया ॥ ९ ॥ नतेऽस्तिस्वपरभ्रान्तिर्विश्वस्यसुहृदात्मनः । तथापिस्मरतांशश्वत्क्लेशान्हंसिहृदिस्थितः ॥ १० ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ किंनआचरितंश्रेयोनवेदाहमधीश्वर योगेश्वराणां दुर्दर्शोयन्नोदृष्टः कुमेधसाम् ॥ ११ ॥ इतिवैवार्षिकान्मासान्राज्ञासोऽभ्यर्थितः सुखम् । जनयन्नयनानन्दमिन्द्रप्रस्थौकसांविभुः ॥ १२ ॥ एकदारथमारुह्यविजयोवानरध्वजम् । गाण्डीवंधनुरादायतूणौचाक्षयसायकौ ॥ १३ ॥ साकंकृष्णेनसंनद्धो विहर्तुंगहनंवनम् । बहुव्यालमृगाकीर्णंप्राविशत्परवीरहा ॥ १४ ॥ तत्राविध्यच्छरैर्व्याघ्रान्सूकरान्महिषान्रुरून् । शरभान्गवयान्खड्गान्हरिणाञ्छशशल्लकान् ॥ १५ ॥ तान्निन्युः किङ्करराज्ञेमेध्यान्पर्वण्युपागते । तृट्परीतः परिश्रान्तो बीभत्सुर्यमुनामगात् ॥ १६ ॥ तत्रोपस्पृश्यविशदं पीत्वावारिमहारथौ । कृष्णौददृशतुःकन्यां चरन्तीं

चरणों को बन्दना और अर्जुन से आलिंगनकिया तथा नकुल सहदेव ने आकर उनकी पूजाकी॥ ४ ॥ अनन्तर श्रीकृष्णजी के परम आसन पर बैठनेपर अनिन्दिता,नई ब्याहीहुई द्रौपदी ने सलज्ज भावसे धीरे २ वहांपर आय उनको अभिवादन किया ॥ ५ ॥ सात्यकिभी पार्थ आदि से उसी प्रकार पूजित और वंदितहो आसन पर बैठे और दूसरे मनुष्य भी भलीप्रकार से पूजितहो यथा योग्य आसनों पर विराजे ॥ ६ ॥ अनन्तर श्रीकृष्णजी ने कुन्ती के निकट जाकर उनको प्रणाम किया स्नेह से कुन्ती के नेत्रों मे आंसूभरआये । उस ने इसी अवस्था में श्रीकृष्णजीका आलिंगन किया और उनसे अपने बांधवोंकी कुशलप्रश्नपूछी भगवान ने भी उस अपनी फुफी—और उनकी बहुओंकी कुशल पूछी ॥ ७ ॥ उन्होंने भक्तोंके क्लेश दूर करने के निमित्तही अवतार लियाहै । कुन्तीका प्रेमसे विह्वल होनेके कारण कण्ठ रुकगया और नेत्रों में आंसू भरआये वह अपने पूर्व क्लेशोंका स्मरणकर श्रीकृष्णजीसे कहनेलगी कि— ॥ ८ ॥ हेकृष्ण ! तुमने जब अपनी जाति-वाले हमारा स्मरणकर हमारे भाई अक्रूर को भेजाथा हम तभी सनाथ होचुके, ॥ ९ ॥ तुम ज-गतके बन्धु और आत्माहो अतएव अपने और पराये का आपमें कुछ विचार नहीं है तौभी जो नि-रन्तर तुम्हारा स्मरण करताहै तुम उसके मानसिक क्लेशोंको नष्ट करते रहतेहो ॥ १० ॥ युधि-ष्ठिरने कहा कि—हेअधीश्वर ! नहीं जानते कि—हमने क्या ऐसा पुण्य कियाथा कि जो अपने योगियों को भी दुर्लभहो विषयासक्त चित्तवाले हमें दर्शनदिया ॥ ११ ॥ भगवान इसप्रकार राजा युधिष्ठिरसे सन्मानितहो वर्षामें कई महीने वहां निवासकर वहांके निवासियोंको नेत्रोंका आनन्द दे-तेहुए सुखसे रहे ॥ १२ ॥ इतनेमें एकसमय वीर अर्जुनने कपिध्वज रथपर बैठ दो अक्षय तूण और गांडीव धनुषले कवच धारणकर सखा श्रीकृष्णजी के संग विहार करनेकी इच्छासे बहुतसे हिंसक प्राणियोंके सुन्दर वनमें प्रवेशकिया ॥ १३—१४ ॥ वहां बाणोंसे व्याघ्र शूकर भैंसा रुरु शरभ, गवय (रोज) गैंडे, हरिण, और स्याही आदिको मारनलगे ॥ १५ ॥ सेवक यज्ञीय प-शुओं को राजाके समीप लानेलगे । इधर श्रीकृष्णजी और अर्जुन थकित और प्यासेहो यमुना के तटपर आए ॥ १६ ॥ उस स्थानमें महावीर कृष्ण और अर्जुनने हाथ पांव धोय निर्मल जलकापान

चारुदर्शनाम् ॥ १७ ॥ तामासाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिराननाम् । पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदोत्तमाम् ॥ १८ ॥ का त्वं कस्यासि सुश्रोणि कुतोऽसि किं चिकीर्षसि । मन्ये त्वां पतिमिच्छन्तीं सर्वं कथय शोभने ॥ १९ ॥ कालिन्द्युवाच । अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती । विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थिता ॥ २० ॥ नान्यं पतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेतनम् । तुष्यतां मे स भगवान्मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः ॥ २१ ॥ कालिन्दीति समाख्याता वसामि यमुनाजले । निर्मिते भवने पित्रा यावदच्युतदर्शनम् ॥ २२ ॥ तथाऽवदद्गुडाकेशो वासुदेवाय सोऽपि ताम् । रथमारोप्य तद्विद्वान्धर्मराजमुपागमत् ॥ २३ ॥ यदैव कृष्णः संदिष्टः पार्थानां परमाद्भुतम् । कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥ २४ ॥ भगवांस्तत्र निवसन्स्वानां प्रियचिकीर्षया । अग्नये खाण्डवं दातुमर्जुनस्यास सारथिः ॥ २५ ॥ सोऽग्निस्तुष्टो धनुरदाद्धयान्श्वेतान्रथं नृप । अर्जुनायाक्षयौ तूणौ वर्म चाभेद्यमस्त्रिभिः ॥ २६ ॥ मयश्च मोचितो वह्नेः सभां सख्य उपाहरत् । यस्मिन्दुर्योधनस्यासीज्जलस्थलदृशिभ्रमः ॥ २७ ॥ स तेन समनुज्ञातः सुहृद्भिश्चानुमोदितः । आययौ द्वारकां भूयः सात्यकिप्रमुखैर्वृतः ॥ २८ ॥ अथोपयेमे कालिन्दीं सुपुण्यर्त्वृक्ष ऊर्जिते । वितन्वन्परमानन्दं स्वानां परममङ्गलम् ॥ २९ ॥ विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दुर्योधनवशानुगौ । स्वयंवरे स्वभगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधताम् ॥ ३० ॥ राजाधिदेव्यास्तनयां मित्रविन्दां पितृष्वसुः । प्रसह्य हृतवान्कृष्णो राजन्राज्ञां प्रपश्यताम् ॥ ३१ ॥ नग्नजिन्नाम कौसल्य आसीद्राजातिधा

कर वहां एक सुन्दर स्त्री का भ्रमण करते देखा ॥ १७ ॥ अर्जुनने श्रीकृष्णजी के कहनेके अनुसार उस रूपवती सुन्दर दांतोंवाली सुमुखीसे पूछा कि ॥ १८ ॥ हे सुश्रोणि ! तुम कौन हो किसकी स्त्री हो किस कामना से यहां भ्रमण करती हो, ? हे सुन्दरि ! जान पड़ता है कि—तुम अभी कुंवारी हो और तुम्हें पति की इच्छा है ॥ १९ ॥ कालिंदी ने कहा कि—मैं भगवान सूर्य की कन्या हूं सबको वर देनेवालों में सर्वोत्तम विष्णु मेरे पति होवें इस कारण यहां कठोर तपस्या करती हूं ॥ २० ॥ हे वीर ! मैं श्रीपति के अतिरिक्त और किसीको अपना स्वामी नहीं बनाना चाहती ; अनाथों के नाथ भगवान मेरे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ २१ ॥ मैं कालिंदी के नामसे विख्यात हूं, मेरे पिताने यमुना जलके बीचमें एक घर बनवादिया है जबतक कि भगवानके दर्शन न होंगे मैं इसही घरमें रहूंगी ॥ ॥ २२ ॥ श्रीकृष्णजी तो प्रथमही से इस वृत्तान्तको जानते थे इस समय अर्जुन से समस्त वृत्तांतको जान सखा समेत उस कन्याको रथपर चिठाय युधिष्ठिरके निकट आये ॥ २३ ॥ महाराज ! इसके अनन्तर अर्जुनके कहने से श्रीकृष्णजी ने विश्वकर्मा द्वारा एक विचित्र नगर बनवाया ॥ २४ ॥ उस नगर में बन्धुओं के प्रसन्न रखने की इच्छासे भगवान वहांपर रहे और अग्निको खांडववन जलाने के निमित अर्जुनके सारथी हुए ॥ २५ ॥ अग्निने संतुष्ट होकर धनुष, श्वेत घोड़े दो अक्षय तूण, और अभेद्य कवच अर्जुनको दिया ॥ २६ ॥ वहां अग्नि से अर्जुन ने मयदानवको बचाया, मयदानवने अग्निसे बचकर सखाको एक अपूर्व सभा बनादी कि उस सभाको देखकर दुर्योधनको जलमें थलका और थलमें जलका भ्रम हुआ था ॥ २७ ॥ अनन्तर वर्षा के बीत जानेपर श्रीकृष्णजी पाण्डवोंसे आज्ञा ले व बंधुओंकी सम्मतिसे सात्यकि आदि यादवोंके साथ द्वारका आये ॥ २८ ॥ वहां बन्धुओं को आनन्दित करते हुए पुण्य ऋतु और पुण्य नक्षत्रयुक्त लग्न में कालिंदी से विवाह किया ॥ २९ ॥ हे राजन् ! विंद और अनुविंद नामक दो अवंती के राजा दुर्योधन के वशवर्ती थे । उनकी बहिन मित्रविंदा ने स्वयंवर में श्रीकृष्णजी को वरमाला देना चाहती थी किंतु उस के भाइयों ने उसको निवारण किया ॥ ३० ॥ इस से श्रीकृष्णजी ने सब राजाओं के सामने फूफी राजाधिदेवी की पुत्री मित्रविंदाका बलपूर्वक हरण किया ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! कौशलदेश में एक

र्मिकः। तस्यसत्याऽभवत्कन्यादेवीनाग्नजितीनृप ॥ ३२ ॥ नतांशेकुर्नृपा वोढुम जित्वासप्तगोवृषान्। तीक्ष्णशृङ्गान्सुदुर्धर्षान्वीर्यगन्धासहान्खलान् ॥ ३३ ॥ तांश्रु त्वावृषजिल्लभ्यांभगवान्सात्वतांपतिः। जगामकौसल्यपुरंसैन्येनमहतावृतः॥ ३४॥ सकोसलपतिःप्रीतः प्रत्युत्थानासनादिभिः। अर्हणेनापिगुरुणाऽपूजयन्प्रतिनन्दित ॥ ३५॥ वरंविलोक्याभिमतंसमागतंनरेन्द्रकन्याचकमेरमापतिम्। भूयादयंमेपति राशिषोऽनलः करोतुसत्यायदिमेधृतोव्रतैः ॥ ३६ ॥ यत्पादपङ्कजरजः शिरसाबि भर्तिश्रीरब्जजः सगिरिशः सहलोकपालैः। लीलातनुः स्वकृतसेतुपरीप्सयेशः कालेऽदधत्सभगवान्ममकेनतुष्येत् ॥ ३७ ॥ अर्चितंपुनरित्याहनारायणजगत्पते। आत्मानन्देनपूर्णस्यकरवाणिकिमल्पकः ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तमाहभगवा न्हृष्टः कृतासनपरिग्रहः। मेघगम्भीरयावाचासस्मितंकुरुनन्दन ॥ ३९ ॥ श्रीभगवा नुवाच ॥ नरेन्द्रयाच्ञाकविभिर्विगर्हिताराजन्यबन्धोर्निजधर्मवर्तिनः। तथापियाचे तवसौहृदेच्छयाकन्यांत्वदीयांनहिशुल्कदावयम् ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ कोऽन्य स्तेऽभ्यधिकोनाथकन्यावरइहेप्सितः। गुणैकधाम्नोयस्याङ्गेश्रीर्वसत्यनपायिनी॥ ४१॥ किंत्वस्माभिःकृतःपूर्वंसमयः सात्वतर्षभ। पुंसांवीर्यपरीक्षार्थंकन्यावरपरीप्सया ॥ ४२ ॥ सप्तैतेगोवृषावीरदुर्दान्तादुरवग्रहाः। एतैर्भग्नाः सुबहवोभिन्नगात्रानृपा त्मजाः ॥ ४३ ॥ यदिमेनिगृहीताः स्युस्त्वयैवयदुनन्दन। वरोभवानभिमतोदुहितु

नग्नजित नामक धार्मिक राजाथा; उसके सत्यानामक एक रूपवती पुत्रीथी। पिता के नाम के अनुसार उसका दूसरानाम नग्नजितीथा ॥ ३२॥ राजा ने प्रण कियाथा कि जो कोई तीक्ष्णसींग वाले, अतिदुर्धर्ष, वीरों की गन्ध का सहन न करनेवाले और दुष्ट सातसाँडों को जीते वही मेरी पुत्री से व्याह करसकेगा बहुत से राजा इस प्रण को सुनकर वहां आये परन्तु हार२ कर लौट गये ॥ ३३ ॥ इस समाचार को सुनकर श्रीकृष्णजी भी बहुतसी सेना के साथ कौशलदेश में आये ॥ ३४ ॥ कौशलपति स्नेहपूर्वक उठकर आसनादि श्रेष्ठ अर्घ्यद्वारा उनकी पूजाकर परम आनन्दित हुआ ॥ ३५ ॥ राजा की कन्या सत्या ने अपने इच्छितवर को आया देख उन्हीं रमापतिसे अपने व्याह होने की इच्छाकर कहनेलगी कि—"यदि मैंने व्रतधारण किया है तो हे अग्नि देव! मुझे येह आशीर्वाददो कि—येही मेरे पतिहोवें ॥ ३६ ॥ नारायण की पूजाकरके राजा उनसे कहनेलगा कि—हेनारायण! हे जगत्पते! आप आत्मानन्दसे पूर्णहो, मैं क्षुद्र आपका कौन कार्य करसकता हू? लक्ष्मी, ब्रह्मा, महादेव और लोकपालगण जिनके चरणकमलकी रजको अपने शिरमें धारण करते हैं जो अपनी बनाईहुई मर्यादा के पालने के निमित्त समय समय पर लीला देह धारणकरते हैं वह आप मुझपर किसप्रकार से सन्तुष्टहोंगे? ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- हे कुरुनन्दन! भगवान कृष्णजी आसन पर बैठकर मेघ की समान गम्भीरवाणी से कौशलराज से कहने लगे कि—॥ ३९ ॥ हे राजन्! पण्डितजन कहते हैं स्वधर्मवर्त्ती क्षत्रियों को याचना करना बहुतही बुरा है, परन्तु तौभी आप के साथ सम्बन्ध करने की इच्छासे आपकी पुत्री को मांगताहूं परन्तु मैं शुल्क न दूंगा ॥ ४० ॥ राजा ने कहा कि—हे नाथ! आप गुणों के एकमात्र आधारहो, आप के अंग में लक्ष्मी सदैव निवास करती हैं; अतएव हे प्रभो! आप से अधिक उत्तम और कौन कन्या का वर होसकता है? ॥ ४१ ॥ किंतु हेयदुश्रेष्ठ! कन्या के योग्यवरपाने के निमित्त राजाओं की परीक्षा के कारण मैंने प्रथमही एक प्रतिज्ञाकी है ॥ ४२ ॥ हेवीर! जो इन अशिक्षित और दूसरे के पकड़ने में न आवें ऐसे सातसाड़ों को जीते वही कन्या को वर सकता है यह बातसुन बहुत से राजकुमार क्षत्रिय यहांपर आये और अपने अंग तुड़ा२ कर चले गये ॥ ४३ ॥ हे यदुनन्दन! हे श्रीपते! यदि आपसेही यह पराजित होवें तो आपही मेरी पुत्री

मेंप्रियः पते ॥ ४४ ॥ एवंसमयमाकर्ण्यबद्ध्वापरिकरंप्रभुः । आत्मानंसप्तधाकृत्वा न्यगृह्णाल्लीलयैवतान् ॥४५॥ बद्ध्वातान्दामभिः शौरिर्भग्नदर्पान्हतौजसः । व्यकर्षल्लीलया बद्धान्बालो दारुमयान्यथा ॥ ४६ ॥ ततःप्रीतःसुतांराजा ददौकृष्णायविस्मितः । तांप्रत्यगृह्णाद्भगवान्विधिवत्सदृशींप्रभुः ॥ ४७ ॥ राजपत्न्यश्चदुहितुः कृष्णंलब्ध्वाप्रियंपतिम् । लेभिरेपरमानन्दं जातश्चपरमोत्सवः ॥ ४८ ॥ शङ्खभेर्यानका नेदुर्गीतवाद्यद्विजाशिषः । नरानार्यःप्रमुदिताः सुवासःस्रगलङ्कृताः ॥ ४९ ॥ दशधेनुसहस्राणि पारिबर्हमदाद्विभुः । युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससाम् । ॥ ५० ॥ नवनागसहस्राणिनागाच्छतगुणान्रथान् । रथाच्छतगुणानश्वानश्वाच्छतगुणान्नरान् ॥५१॥ दम्पतीरथमारोप्य महत्यासेनयावृतौ । स्नेहप्रक्लिन्नहृदयो यापयामास कोसलः ॥ ५२ ॥ श्रुत्वैतद्रुरुधुर्भूपा नयन्तंपथिकन्यकाम् । भग्नवीर्याःसुदुर्मर्षा यदुभिर्गोवृषैःपुरा ॥ ५३ ॥ तानस्यतः शरव्रातान्बन्धुप्रियकृदर्जुनः । गाण्डीवी कालयामास सिंहःक्षुद्रमृगानिव ॥ ५४ ॥ पारिबर्हमुपागृह्य द्वारकामेत्य सत्यया । रेमेयदूनामृषभो भगवान्देवकीसुतः ॥ ५५ ॥ श्रुतकीर्तेःसुतां भद्रामुपयेमे पितृष्वसुः । कैकेयींभ्रातृभिर्दत्तां कृष्णःसन्तर्दनादिभिः ॥५६॥ सुतांच मद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्षणैर्युताम् । स्वयंवरेजहारैकःस सुपर्णःसुधामिव ॥ ५७ ॥ अन्याश्चैवंविधाभार्याः कृष्णस्यासन्सहस्रशः । भौमंहत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः ॥ ५८ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

के योग्य वर होसकते हैं ॥ ४४ ॥ हेराजन्! श्रीकृष्णजी ने इसबात को सुनकर कमरधारणकिया और अपने शरीर के सातस्वरूप धारणकर सहजही में उनको पराजित करदिया ॥ ४५ ॥बालक जैसे खेलते २ काठके बैलों को बांधकर खींचते हैं भगवान तैसेही उनको सहजही में रस्सी से बांधकर तेजरहित और अभिमान रहित करके खींचनेलगे ॥ ४६॥यह देख कौशलपति ने प्रसन्न होकर श्रीकृष्णजी को अपनी कन्यादी ।अपनी योग्य उस कन्या से श्रीकृष्णजी ने विधिवत्पाणिग्रहण किया ॥ ४७ ॥ राजरानियें कन्या के प्रियपति श्रीकृष्णजी को पाय आनन्द से प्रफुल्लितहुईं, राजभवन में उत्सव की सीमा न रही ॥ ४८ ॥ शंख, भेरी और नगाड़े बजने लगे, वस्त्र और माला आदि से अलंकृत स्त्री पुरुष गान और आशीर्वाद करनेलगे ॥ ४९ ॥ राजा—सुन्दर वेश वाली आभूषणों से विभूषित तीन सहस्र दासियें, दशसहस्रगौएं, नवसहस्रहाथी, नवलाख रथ,नव कोटि अश्व और नवपद्म दान दहेज में देकर परमआनन्दितहुआ ॥ ५० । ५१ ॥ बहुत सेना से घिरेहुए वर कन्या को रथपर बिठाय कौशलपति ने स्नेह से आर्द्र हृदयहो बिदाकिया ॥५२॥यादव और सांडों से जिन राजाओं का पराक्रम भंग होगयाथा वे इससब वृत्तांत को सुनकर अत्यन्त क्रोधितहो मार्ग में आय श्रीकृष्णजी को रोकलिया ॥ ५३ ॥ वह सब बाणों का प्रहार करनेलगे तब शुभ चाहनेवाले अर्जुन ने सिंह जैसे छोटे पशुओं का मारता है वैसेही उनसबको मारडाला ॥ ५४ ॥ श्रीकृष्णजी सब बिवाह की सामग्रीले सत्या के साथ द्वारका में आय बिहार करनेलगे ॥ ५५ ॥ इसके उपरांत भगवान ने अपनी फूफी श्रुतकीर्तिकी पुत्री सन्तर्दन आदि भाइयोंके देने पर केकय देशमें उत्पन्नहुई भद्राका पाणिग्रहण किया ॥ ५६ ॥ और गरुड़ ने जैसे अकेलेही अमृत का हरण कियाथा वैसेही सुलक्षणा मद्रराज की पुत्री लक्ष्मणाका हरण स्वयंवरमें उपस्थितहोकर किया ॥५७॥ हेराजन्! ऐसेही श्रीकृष्णजी के और भी सहस्रों स्त्रियांथीं। वह भूमिपुत्र नरकको मार उसके अन्तःपुर से सुन्दरमुखवाली स्त्रियों को लेआयेथे ॥ ५८ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभाषाटीकायामष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

राजोवाच । यथाहतोभगवताभौमो येनचताःस्त्रियः । निरुद्धाएतदाचक्ष्व वि-
क्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १ ॥ श्रीशुकउवाच । इन्द्रेणहृतच्छत्रेण हृतकुण्डलबन्धुना । हृ
तामराद्रिस्थानेन ज्ञापितोभौमचेष्टितम् ॥ २ ॥ सभार्योगरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं
ययौ । गिरिदुर्गैः शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम् । मुरपाशायुतैर्घोरैर्दृढैःसर्वतआवृ
तम् ॥ ३ ॥ गदयानिर्बिभेदाद्रीञ्छस्त्रदुर्गाणि सायकैः । चक्रेणाग्निंजलंवायुं मुरपा
शांस्तथासिना ॥ ४ ॥ शंखनादेनयन्त्राणि हृदयानिमनस्विनाम् । प्राकारं गदया
गुर्व्या निर्बिभेद गदाधरः ॥५॥ पाञ्चजन्यध्वनिंश्रुत्वा युगान्ताशनिभीषणम् । मुरः
शयानउत्तस्थौ दैत्यःपञ्चशिराजलात् ॥ ६ त्रिशूलमुद्यम्य सुदुर्निरीक्षणो युगान्तसू
र्यानलरोचिरुल्बणः । ग्रसंस्त्रिलोकीमिव पंचभिर्मुखैरभ्यद्रवत्तार्क्ष्यसुतं यथोरगः ।
॥ ७ ॥ आविध्यशूलंतरसागरुत्मते निरस्य वक्त्रैर्व्यनदत्सपंचभिः । सरोदसीसर्व-
दिशोम्बरं महानापूरयन्नण्डकटाहमावृणोत् ॥ ८ ॥ तदापतद्वैत्रिशिखंगरुत्मतेहरि-
शराभ्यामभिनत्त्रिधौजसा ॥ मुखेषुतंचापिशरैरताडयत्तस्मै गदांसोपिरुषाव्यमुं-
चत ॥ ९ ॥ तामापतन्तीं गदयागदांमृधे गदाग्रजोनिर्बिभिदे सहस्रधा । उद्यम्य बा
हूनभिधावतोऽजितःशिरांसि चक्रेणजहारलीलया ॥ १० ॥ व्यसुःपपाताम्भसिकृ-
त्तशीर्षो निकृत्तशृंगोऽद्रिरिवेन्द्रतेजसा ॥ तस्यात्मजाःसप्त पितुर्वधातुराःप्रतिक्रि-
यामर्षजुषः समुद्यताः ॥ ११ ॥ ताम्रोऽन्तरिक्षःश्रवणो विभावसुर्वसुर्नभस्वानरुण-

राजा परीक्षित ने कहा कि—हेब्रह्मन् ! भौम ने स्त्रियों को क्यों बन्दकररक्खाथा ? वह भौम किसकारण भगवान के हाथ से मारागया ? आप श्रीकृष्णजी के इसपराक्रम का वर्णन करो ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–हेराजन् ! भौम ने इंद्र की माता अदिति के दोनों कुण्डल और इद्रकाछत्र छीनकर उनको इन्द्रपुरी से भगादिया तब इंद्र ने आकर उसके अत्याचार का भलीप्रकारसेवर्णन किया । श्रीकृष्णजी इस वृत्तांतको सुन सत्यभामा को साथले प्राग्ज्योतिष नगर को आये ॥ २ ॥ वह नगर गिरिदुर्ग और शस्त्रदुर्ग से अत्यन्त दृढ़था और वह चारोंओर जल, वायु और अग्निके होने से अत्यन्त दुर्गमथा । वह मुरदैत्य के दशसहस्र अतिप्रचण्ड पाशों से सबओर से घिरकर दुर्गमहोरहाथा । भगवान श्रीकृष्णजीने गदाके प्रहार से गिरिदुर्ग, बाणद्वारा शस्त्रदुर्ग, चक्रद्वारा अग्नि, जल और वायुदुर्ग, खड्गद्वारा मुरदैत्य के सम्पूर्ण पाशोंको, शंखनादद्वारा से शूरवीरों के हृदयको और भारी गदाके प्रहार से गढ़को तोड़डाला ॥ ३ । ५ ॥ जलकी शय्या में सोता हुआ पांचशिरवाला मुरदैत्य प्रलयकाल के वज्रकी समान पांचजन्यशंख का शब्द सुनकर जलसे उठखड़ा हुआ ॥ ६ ॥ वह प्रलय कालके सूर्य और अग्निकी समान उग्रमूर्त्ति धारण कर, त्रिशूलको उठाय सर्प जैसे गरुडके सन्मुख दौड़ताहै वैसेही पांचो मुखोंको फैलाय मानो त्रिलोकीको निगलजायगा ऐसे श्रीकृष्णजी के सामने दौड़ा और शूलको उठाय अतिवेग से गरुडपर प्रहारकर पांचो मुखों से घोरशब्द करने लगा । वह शब्द आकाश मंडल, स्वर्ग और दिशाओं में परिपूर्णहो ब्रह्मांडको पार करगया ॥७–८॥ उसके फेंकेहुए शूलको गरुड़पर आता देख श्रीकृष्णजी नेअपनी निपुणता से उस शूलके तीन टुकड़े करडाले और उस दैत्यका मुखबाणों से भरादिया । फिरउस दैत्य नेभी श्रीकृष्णजी पर गदाका प्रहार किया ॥ ९ ॥ उस गदाको आतादेख भगवान् ने युद्ध स्थलमें अपनी गदाके प्रहार से उसके सहस्र खंडकरडाले । तदुपरांत दैत्य भुजा उठाय श्रीकृष्णजी पर दौड़ा । तब अजित श्रीकृष्णजीने सहज सेही चक्र द्वारा लीलासेही उसके शिरकाट गिराये ॥ १० ॥ मुर शिरकटने से प्राणरहितहो, इन्द्रके वज्रसे टूटीहुई शिखाओं के पर्वतकी समान जल में गिरपड़ा । तब उसके सातपुत्र ताम्र, अन्तरीक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान और अरुण

अग्रसतमः। पीठपुरस्कृत्यचमूपतिंमृधे भौमप्रयुक्तानिरगन्धृतायुधाः ॥ १२ ॥ प्रायुं-
जतासाद्यशरानसीन्गदाः शक्त्यृष्टिशूलान्यजिते रुषोल्बणाः। तच्छस्त्रकूटं भग-
वान्स्वमार्गणैरमोघवीर्यस्तिलशश्चकर्तह ॥१३॥ तान्पीठमुख्याननयद्यमालयं निक
त्तशीर्षोरुभुजांघ्रिवर्मणः। स्वानीकपानच्युतचक्रसायकैस्तथा निरस्तान्नरको ध-
रासुतः ॥ १४ ॥ निरीक्ष्यदुर्मर्षण आस्रवन्मदैर्गजैः पयोधिप्रभवैर्निराक्रमत्। दृष्ट्वा
सभार्यंगरुडोपरिस्थितं सूर्योपरिष्टात्सतडिद्घनंयथा। कृष्णंसतस्मै व्यसृजच्छत-
घ्नीं योधाश्चसर्वे युगपत्समविव्यधुः ॥ १५ ॥ तद्भौमसैन्यंभगवान्गदाग्रजो विचित्र
वाजैर्निशितैःशिलीमुखैः। निकृत्तबाहूरुशिरोध्रविग्रहं चकार तर्ह्येवहताश्वकुंजरम्
॥ १६ ॥ यानियोधैःप्रयुक्तानिशस्त्रास्त्राणि कुरूद्वह। हरिस्तान्यच्छिनत्तीक्ष्णैःशरै-
रेकैकशस्त्रिभिः ॥ १७ ॥ उह्यमानःसुपर्णेन पक्षाभ्यांनिघ्नतागजान्। गरुत्मताहन्य
मानास्तुण्डपक्षनखैर्गजाः ॥ १८ ॥ पुरमेवाविशन्नार्ता नरकोयुध्ययुध्यत। दृष्ट्वा
विद्रावितंसैन्यं गरुडेनार्दितंस्वकम् ॥ १९ ॥ तंभौमःप्राहरच्छक्त्या वज्रःप्रतिहतो-
यतः। नाकम्पततयाविद्धो मालाहतइवद्विपः ॥ २० ॥ शूलंभौमोऽच्युतंहन्तुमाददे
वितथोद्यमः। तद्विसर्गात्पूर्वमेव नरकस्यशिरोहरिः। अपाहरद्गजस्थस्यचक्रेणक्षुर
नेमिना ॥ २१ ॥ सकुण्डलंचारुकिरीटभूषणं बभौपृथिव्यांपतितंसमुज्ज्वलत्। हा

भौमकी आज्ञानुसार अस्त्र धारणकर अपने पिताके मारने वालेको मारने के निमित्त उत्साहितहो उठे और पीठनामक एक असुरको सेनापति बना रणभूमि में आ ॥ ११–१२ ॥ ये बड़े भयानक दैत्य श्रीकृष्णजी पर एक साथही बाण, खड्ग, गदा, शक्ति, ऋष्टि और शूलकी वर्षा करने लगे। अमोघ पराक्रम वाले भगवान ने उन अस्त्रोंको अपने बाणों द्वारा तिल तिल करडाला ॥ १३ ॥ और मुरके पुत्रोंके शिर, भुजा, कंधे, चरण और कवच काट २ उनके सेनापति पीठ समेत उन्हें यमालय में भेजदिया। पृथ्वीसुत नरक भगवान के चक्र और बाणों द्वारा अपने सेनापतिको इस प्रकार से मरता देख अत्यंत क्रोधित हुआ और समुद्र से उत्पन्न हुए मदस्रावी हाथीपर चढ़ श्रीकृष्णजीपर उसने आक्रमण किया अनंतर नरकने सूर्यके ऊपरी भागमें बिजली समेत मेघकी समान सत्यभामा के साथ गरुडपर बैठेहुए श्रीकृष्णजीको देखकर उनपर शतघ्नीका प्रहार किया ॥ १४–१५ ॥ फिरसब योद्धाभी एकही समय नाना अस्त्रोंका प्रहार करने लगे। भगवान श्रीकृष्णजी ने तत्कालही विचित्र पंखवाले तीक्ष्ण बाणोंद्वारा भौमकी सेनाके घोड़े और हाथियोंको मार किसी के भुज, किसी के साथल, किसी के मस्तक, किसी के कंधे और किसी के शरीरको काटडाला ॥ १६ ॥ हे कुरु धुरन्धर! योद्धाओं ने जिनबाणों का प्रहार किया था उन सब शरोंके आनेके पहिलेही भगवान ने उस सब सेनाका नाशकर तीन २ तीक्ष्ण शरों से एक २ करके उन सब अस्त्रों शस्त्रों को काटडाला ॥ १७ ॥ गरुड़पर श्रीकृष्णजी बैठेहुए थे; वह भी दोनो पंखों से हाथियोंका नाश करने लगा। जब गरुड़ ने चोंच, पंख और नखों से वध करनेका आरंभ किया तब हाथी कातर होकर नगर में भागगये ॥ १८ ॥ नरक युद्धस्थलमें अकेलाही युद्ध करन लगा। उसने गरुड़ से अपनी सेनाको नाश होता देख गरुडपर शक्तिका प्रहार किया। किंतु जिस के अंगसे लगकर वज्र भी कुठित हुआथा वही गरुड उस शक्ति से आहतहो फूलसे मारे हुए हाथी की समान अटल खड़ा रहा ॥ १९—२० ॥ तब भौमासुर ने श्रीकृष्णजी को मारने के अभिप्राय से शूल ग्रहणकिया, किंतु सफल न हुआ क्योंकि शूल के प्रहार करनेके पूर्वही भगवान ने छुरेकी धार की समानवाले चक्र से हाथी पर बैठेहुए नरक का शिर काटडाला ॥ २१ ॥ कुण्डलयुक्त मनोहरमस्तक पृथ्वी पर गिरकर शोभा पानेलगा। ऋषिगण और देवता

इतिस्ताविदायुषयःसुरेश्वराः माल्यैर्मुकुन्दं विकिरन्तईडिरे ॥ २२ ॥ ततश्चभूःकृष्ण मुपेत्यकुण्डले प्रतप्तजाम्बूनदरत्नभास्वरे । सवैजयन्त्या वनमालयाऽऽर्पयत्प्राचेतसं छत्रमथोमहामणिम् ॥२३॥ अस्तौषीदथ विश्वेशं देवीदेववरार्चितम् । प्रांजलिः प्रणताराजन्भक्तिप्रवणया धिया ॥ २४ ॥ भूमिरुवाच। नमस्तेदेवदेवेश शंखचक्र गदाधर । भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन्नमोऽस्तुते ॥ २५ ॥ नमः पंकजनाभाय नमः पंकजमालिने ॥ नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजांघ्रये ॥ २६ ॥ नमो भगवतेतुभ्यंवासुदेवायविष्णवे । पुरुषायादिबीजायपूर्णबोधायतेनमः ॥ २७ ॥ अजायजनयित्रेऽस्यब्रह्मणेऽनन्तशक्तये । परावरात्मन्भूतात्मन्परमात्मन्नमोऽस्तुते ॥ ॥२८॥त्वंवैसिसृक्षूरजउत्कटंप्रभोतमोनिरोधायबिभर्ष्यसंवृतः। स्थानायसत्त्वंजगतो जगत्पतेकालः प्रधानंपुरुषोभवान्परः ॥ २९ ॥ अहंपयोज्योतिरथानिलोनभोमात्राणिदेवामनइन्द्रियाणि । कर्तामहानित्यखिलंचराचरंत्वय्यद्वितीयेभगवन्नयंभ्रमः ॥ ३० ॥ तस्यात्मजोऽयंतवपादपंकजंभीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः । तत्पालयैनं कुरुहस्तपंकजंशिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम् ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इतिभूम्याऽर्थितोवाग्भिर्भगवान्भक्तिनम्रया । दत्त्वाऽभयंभौमगृहंप्राविशत्सकलर्द्धिमत् ॥ ३२ ॥ तत्रराजन्यकन्यानांषट्सहस्राधिकायुतम् । भौमाहृतानांविक्रम्यराजभ्यो ददृशेहरिः ॥ ३३ ॥ तंप्रविष्टंस्त्रियोवीक्ष्यनरवीरंविमोहिताः । मनसावव्रिरेऽभीष्टं पतिंदैवोपसादितम् ॥ ३४ ॥ भूयात्पतिरयंमह्यंधातातदनुमोदताम् । इतिसर्वाः पृथ

हाहाकारकर 'साधु साधु' कह भगवान के ऊपर फूल बरसाने और स्तुति करनेलगे ॥ २२ ॥ अनन्तरपृथ्वीने वैजयन्ती वनमाला के साथ श्रीकृष्णजीको तप्तसुवर्णके रत्नजटित उज्वल दोकुण्डल वरुणकाछत्रवमणि और इन्द्रपुरी को समर्पण किया ॥ २३ ॥ फिर हाथजोड विनीतभाव से देव देव ब्रह्माकेभी पूजनीय भगवानकी स्तुति करनेलगी ॥ २४ ॥ पृथ्वी ने कहा कि—हे देवदेवईश्वर हे शंख चक्र गदाधर ! हे भक्तोंको इच्छानुसाररूप धारणकरनेवाले ! हे अन्तर्यामिन ! आप को नमस्कार करतीहूं ॥ २५ ॥ हे कमलनाभ ! कमल लोचन ! कमल मालिन् ! कमल से चरणवाले ! आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ हेभगवन् ! हे वासुदेव ! हे विष्णो ! हे पुरुष ! हे आदिबीज ! हे पूर्णबोध ! आप को नमस्कार है ॥ २७ ॥ आप बृहत्हो, आपकी शक्ति अनन्त है अतएव आप जन्मरहित और सबके नियंताहो आप उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) अपकृष्ट (नीच) सबही के आत्माहो; आपको नमस्कार है ॥ २८ ॥ हे प्रभो ! आप निर्लिप्तहोकरभी विश्व रचने की इच्छासे उत्कट रजोगुण, जगत्के पालने की इच्छासे सत्वगुण और जगतके नाशकरने की इच्छा से तमोगुण धारणकरतेहो ॥ २९ ॥ हे जगत्पते ! आप से काल प्रकृति और पुरुष ये जुदेनहीं हैं । हेभगवन् आप अद्वितीयहो । पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, इन्द्रिय,और इंद्रियों के अधिष्ठातृदेवताओं द्वारा यह चराचर जगत् उत्पन्न होकर आप के अद्वितीय स्वरूप में भ्रमरूप से भासता है ॥ ३० ॥ हे शरणागतों के दुःखनाशक ! यह भौमकापुत्र भगदत्त भयभीतहोकर आपके चरणों की शरण में आया है; इसका पालन करिये, आप अपने कलिपाप नाशक हाथको इसके मस्तक पर धरो ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन् ! भगवाने इस प्रकार से नम्रहुई भूमिके वाक्यों द्वारा पूजितहो उसे अभयदान दे समस्त समृद्धियों युक्त भौमके घरमें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! भौम राजाओं से अपने पराक्रम पूर्वक सोलह सहस्र कन्यायें छीन लायाथा, भगवान ने उन सबको अतःपुरमें देखा ॥ ३३ ॥ वेसव कन्यायें उन्हें देखतेही 'मोहित होगई' और मनही मनमें दैव प्रेरित उन प्यारे पतिको वरणकर भगवान से प्रार्थना करने लगींकि ॥ ३४ ॥ हे विधाता !

कृ कृष्णेभावेनहृदयंवधुः ॥ ३५॥ ताः प्राहिणोद्द्वारवतींसुमृष्टविरजोऽम्बराः। नर
यानैर्महाकोशान्रथाश्वान्द्रविणंमहत् ॥ ३६ ॥ ऐरावतकुलेभांश्चचतुर्दन्तांस्तरस्वि
नः। पाण्डुरांश्चचतुःषष्टिंप्रेषयामासकेशवः ॥ ३७॥ गत्वासुरेन्द्रभवनंदत्वाऽदित्यै
चकुण्डले। पूजितस्त्रिदशेन्द्रेणसहेन्द्राण्याचसप्रियः॥३८॥चोदितोभार्ययोत्पाट्य
पारिजातंगरुत्मति। आरोप्यसेन्द्रान्विबुधान्निर्जित्योपानयत्पुरम् ॥ ३९ ॥ स्थापित
सत्यभामायागृहोद्यानोपशोभनः। अन्वगुर्भ्रमराः स्वर्गात्तद्गन्धासवलम्पटाः॥४०॥
ययाचआनम्यकिरीटकोटिभिः। पादौस्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम्। सिद्धार्थएतेनवि
गृह्यतेमहानहोसुराणांचतमोधिगाढ्यताम् ॥ ४१ ॥ अथोमुहूर्तएकस्मिन्नानागारेषुताः
स्त्रियः। यथोपयेमेभगवांस्तावद्रूपधरोऽव्ययः ॥ ४२ ॥ गृहेषुतासामनपाय्यतर्क्य
कृन्निरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थितः। रेमेरमाभिर्निजकामसंप्लुतोयथेतरोगार्हकमे
धिकांश्चरन् ॥४३॥ इत्थंरमापतिमवाप्यपतिंस्त्रियस्ताब्रह्मादयोऽपिनविदुः पदवींय
दीयाम्। भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनवसङ्गमजल्पलज्जाः॥४४॥
प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः। केशप्रसारश
यनस्नपनोपहार्यैर्दासीशताअपिविभोर्विदधुः स्मदास्यम् ॥ ४५ ॥
इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धेउत्तरार्धे नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः॥ ५९ ॥

आप स्वीकार करोकि यह श्रीकृष्णजीही म्हारे स्वामी होवें। भगवान से इस प्रकार की प्रार्थना कर सबने पृथक् २ प्रीति सहित श्रीकृष्णजी को हृदय में धारण किया ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्णजी ने पालकी में उन सब स्त्रियोंको बिठाय द्वारका पुरीको भेजदिया; और बहुतसा द्रव्य, रथ, घोड़े, अतुल ऐश्वर्य, और शीघ्रगामी ऐरावत के कुलसे उत्पन्न हुए चार दांतवाले श्वेतरंग के हाथी भी भेज और चौंसठ हाथी पाण्डवोंके निकट भी भेजदिये ॥ ३६–३७ ॥ अनन्तर प्यारा के संग इन्द्र भवनमें जाय अदितिको कुंडलदे इन्द्र और इन्द्राणी से पूजितहो सत्य भामाके कहने से कल्पवृक्ष को उखाड़ और गरुड़को पीठपर रख इन्द्रादि देवताओंको युद्धमें जीत अपनी राजधानी में आय ॥ ३८–३९॥ फिर सत्यभामा के बगीचे में शोभाहोने के निमित्त उस कल्पवृक्षको स्थापित किया। उसकी सुगंध के मदके लोभीभौंरे स्वर्ग से पीछे २ चलेआये ॥ ४० ॥ तदुपरान्त इन्द्र ने प्रथम अपने मुकुट के अग्रभाग से भगवान् के चरणोंका स्पर्शकर प्रणाम किया और अपनी कार्य्य सिद्धिके निमित्त भगवान से प्रार्थना की तथा कार्य्य सिद्धहोने पर भगवान से विरोध किया। अहो! देवताओं बड़ा क्रोध आता है ॥ ४१ ॥ अनंतर भगवान ने जितनी स्त्रियें थीं उतनेही रूप धारणकर एकही समय में सबके घरोंमें प्रवेशकर उन सब स्त्रियों से विवाह किया ॥ ४२ ॥ उनके घरमें उनकी अपेक्षा अधिक व समान कोई भी घर न था। अचिन्त्य कर्मोंके करने वाले अपने आनंद से परिपूर्ण श्रीकृष्णजी उन सब घरोंमें निरंतर वासकर गृहस्थाश्रमी मनुष्यों की सामन काममें मग्नहो उन सब स्त्रियों के साथ रमण करनेलगे ॥ ४३ ॥ ब्रह्मादिक भी जिनकी गतिको नहीं जान सकते, सबस्त्रियें उन्हीं भगवानको पतिपाय प्रसन्न चित्तसे प्रेमसहित हास्य विलास व अवलोकन तथा आनंद पूर्वक नवीन संगम, भाषण और लज्जा समेत भगवान का भजन करनेलगी ॥४४॥ हे राजन्! उन प्रत्येक स्त्रियों के पास यद्यपि सैकड़ों दासियें थीं तोभी श्रीकृष्णजी के सामने जाना, आसनदेना, पूजनकरना, पांवधोना, चंदन फूल अर्पण करना, केश सुलझाना, बिछाना और भेंट आदिसे उनकी सेवा करती थीं ॥ ४५ ॥

इतिश्री मद्भा०महापुराणेदशमस्कंधेउ०सरलाभाषाटीकायामेकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ कर्हिचित्सुखमासीनंस्वतल्पस्थंजगद्गुरुम्। पतिंपर्यचरद्भैष्मीव्यजनेनसखीजनैः ॥ १ ॥ यस्त्वेतल्लीलयाविश्वंसृजत्यत्त्यवतीश्वरः। सहिजातस्स्वसेतूनांगोपीथाययदुष्वजः ॥ २ ॥ तस्मिन्नन्तर्गृहेभ्राजन्मुक्तादामविलम्बिना। विराजितेवितानेनदीपैर्मणिमयैरपि ॥ ३ ॥ मल्लिकादामभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादिते। जालरन्ध्रप्रविष्टैश्चगोभिश्चन्द्रमसोऽमलैः ॥ ४ ॥ पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना। धूपैरगुरुजैराजन्जालरन्ध्रविनिर्गतैः ॥ ५ ॥ पयः फेननिभेशुभ्रेपर्यङ्केकशिपूत्तमे। उपतस्थेसुखासीनंजगतामीश्वरंपतिम् ॥ ६ ॥ वालव्यजनमादायरत्नदण्डंसखीकरात्। तेनवीजयतीदेवीउपासाञ्चक्रईश्वरम् ॥ ७ ॥ सोपाच्युतंक्वणयतीमणिनूपुराभ्यांरेजेऽङ्गुलीयवलयव्यजनाग्रहस्ता। वस्त्रान्तगूढकुचकुंकुमशोणहारभासानितम्बधृतयाचपरार्ध्यकाञ्च्या ॥ ८ ॥ तांरूपिणींश्रियमनन्यगतिंनिरीक्ष्ययालीलयाधृततनोरनुरूपरूपा। प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककण्ठवक्त्रोल्लसत्स्मितसुधांहरिराबभाषे ॥ ९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ राजपुत्रीप्सिताभूपैर्लोकपालविभूतिभिः। महानुभावैः श्रीमद्भीरूपौदार्यबलोर्जितैः ॥ १० ॥ तान्प्राप्तानर्थिनोहित्वाचैद्यादीन्स्मरदुर्मदान्। दत्ताभ्रात्रास्वपित्राचकस्मान्नोववृषेऽसमान् ॥ ११ ॥ राजभ्योबिभ्यतः सुभ्रूः समुद्रंशरणंगतान्। बलवद्भिः कृतद्वेषान्प्रायस्त्यक्तनृपासनान् ॥ १२ ॥ अस्पष्टवर्त्मनांपुंसामलोकपथमीयुषाम्। आस्थिताः पदवींसुभ्रूः प्रा

श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन्! एक समय श्रीकृष्णजी रुक्मिणी की शय्या में सुख से बैठेथे वह सखियों समेत पंखेसे जगद्गुरू भगवान् की सेवाकर रहीथी ॥ १ ॥ जोईश्वर सहजसे ही इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं वह जन्म रहित होकर भी अपनी मर्यादाकी रक्षा करने के निमित्त यदुकुल में उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥ हे राजन्! रुक्मिणी का अत्यंत सुंदरघर अनेकों मोतियों की मालासे शोभायमान व शोभित छत्त तथा मणिमय दीपकोंसे जगमगा रहाथा ॥ ३ ॥ मधु मल्लिका के फूलोंकी मालाओं पर भौंरोंका समूह गुंजरहा था, जालियों में होकर चन्द्रमाकी सुंदर किरणें प्रकाशित होरही थीं ॥ ४ ॥ कल्पवृक्ष के वनकी सुगंधिसे सुगंधित वायुआ रहाथा झरोखों में से अगर की धूपका धूम्र निकल रहाथा ॥ ५ ॥ सुंदर पलंगपर दूधके फेनकी सदृश श्वेत व कोमल बिछौना बिछाथा उस पर बैठेहुए श्रीकृष्णजी की रुक्मिणी सेवा कररहीथीं ॥ ६ ॥ रत्नोंकी डंडीवाली पंखी को सखी के हाथसे ले रुक्मिणी स्वयं श्रीकृष्णजी पर पवनकर रहीथी ॥ ७ ॥ रुक्मिणी जड़ाऊ नूपुरों के झनकार का शब्द करतीहुई शोभा देरहीथी वह अंगुरियों में मुंदरी पहुँचे में चूरी व कङ्कण धारण किये हाथ में पंखा लिये साड़ी से ढकेहुए स्तनों की केसर से रंगाहुआ हार पहिने कमरमें कटिमेखला धारण कियेथीं ॥ ८ ॥ उनका रूप माया से देह धारणकरनेवाले श्रीकृष्णजीही के योग्यथा। अलकों, कुण्डलों औरचन्द्रहार से शोभितकंठ व शोभितमुख प्रसन्नित होरहाथा। श्रीकृष्णजी के अतिरिक्त जिसकी और कोई गति नहीं है भगवान उसी मूर्तिवान लक्ष्मी पर दृष्टिडाल कुछ एक हँसकर कहने लगे कि—॥ ९॥ हेराजपुत्रि! लोकपालों की समान बिभूतिशाली, महानुभाव, धनवान श्रीमान् और रूप, उदारता और बलयुक्त राजाओं ने तुम्हारी प्रार्थनाकीथी ॥ १० ॥ कामदेव से उन्मत्तहुआ शिशुपाल तुम्हारे पानेकीइच्छा से आयाथा; तुम्हारे भाई और पितानें भी तुम्हें उसको देदियाथा; तोभी तुम उन सबको छोड़कर हमको कि जो तुम्हारे योग्य नहीं हैं क्यों वरलिया? ॥ ११ ॥ हे सुन्दर भौंहवाली! हमने राजाओं से भयभीत होकर समुद्र की शरणली है; बलवानोंसे हमारीशत्रुता होहीरही है इसहीकारण हमने राज्यासन छोड़ दिया है ॥ १२ ॥ जिन मनुष्यों का आचार नहीं जानाजाता और जो स्त्रियों

यः सीदन्त्यियोषितः ॥ १३ ॥ निष्किञ्चना वयं शश्वन्निष्किञ्चनजनप्रियाः । तस्मा त्प्रायेण नह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे ॥ १४ ॥ ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृति र्भवः । तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥ १५ ॥ वैदर्भ्येतदविज्ञाय त्व याऽदीर्घसमीक्षया । वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा ॥ १६ ॥ अथात्मनो ऽनुरूपं वै भजस्व क्षत्रियर्षभम् । येन त्वमाशिषः सत्या इहामुत्र च लप्स्यसे ॥ १७ ॥ चै द्यशाल्वजरासन्ध दन्तवक्त्रादयो नृपाः । मम द्विषन्ति वामोरु रुक्मी चापि तवाग्रजः ॥ १८ ॥ तेषां वीर्यमदान्धानां दृप्तानां स्मयनुत्तये । आनीतासि मया भद्रे तेजोऽपहर ताऽसताम् ॥ १९ ॥ उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः । आत्मलब्ध्याऽऽस्म हे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावदुक्त्वा भगवानात्मा नं वल्लभामिव । मन्यमानामविश्लेषात्तद्दर्पघ्न उपारमत् ॥ २१ ॥ इति त्रिलोकेशपतेस्त दात्मनः प्रियस्य देव्यश्रुतपूर्वमप्रियम् । आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथुश्चिन्तां दुरन्तां रुदती जगाम ह ॥ २२ ॥ पदा सुजातेन नखारुणश्रिया भुवं लिखन्त्यश्रुभिरञ्जनासि तैः । आसिञ्चती कुंकुमरूषितौ स्तनौ तस्थावधोमुख्यतिदुःखरुद्धवाक् ॥ २३ ॥ तस्या सुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धेर्हस्ताच्छ्लथद्वलयतो व्यजनं पपात । देहश्च विक्लवधि यः सहसैव मुह्यन्रम्भेव वायुविहता प्रविकीर्य केशान् ॥ २४ ॥ तद्दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः प्रियायाः प्रेमबन्धनम् । हास्यप्रौढिमजानन्त्याः करुणः सोऽन्वकम्पत ॥ २५ ॥ पर्यं कादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः । केशान्समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत्पद्मपाणिना ॥ २६ ॥

के वश में नहीं होते स्त्रियें उनका अनुसरण करके दुःखही पाती रहती हैं ॥ १३ ॥ हम निष्किञ्चन हैं और निष्किञ्चनही मुझे प्यारे हैं । हे सुमध्यमे ! जिनका धन, जन्म, आकृति और ऐश्वर्य समान है उन्हीं का परस्पर विवाह और मित्रता होसकती है ॥ १४ ॥ उत्तम और अधम मे कभी मित्रता व सम्बन्ध नहीं होसकता ॥ १५ ॥ हे विदर्भनन्दिनि ! तुम दूरदर्शिनी नहीं हो; तुमने मेरा बिचार न करके मुझ गुणहीन को ब्याहलिया । भिक्षुकही मेरी प्रशंसा किया करते हैं ॥ १६ ॥ जिसके साथ रहकर तुम इसलोक और परलोक में सुख पासको अबभी ऐसे किसी श्रेष्ठक्षत्री का भजन करो ॥ १७ ॥ हे वामोरु ! शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध और दन्तवक्त्रादि सबराजा और तुम्हारा भाई रुक्मी भी हम से शत्रुता किये रहता है ॥ १८ ॥ हे भद्रे ! जो मैं तुझे हरलायाहूं वह केवल अभिमानी राजाओं के गर्व दूर करने के निमित्तही हरलाया हूं ॥ १९ ॥ मैं देह और घर से उदासीनहूं, स्त्री पुत्र वा धन की कामना नहीं करता मैं तो आत्मलाभसेही परिपूर्ण और दीपादि ज्योति की समान क्रियारहितहू ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-हेराजन् ! रुक्मिणी को श्रीकृष्ण जी के साथ से कभी भी वियोग न हुआथा इसकारण वह जानतीथीं कि श्रीकृष्णजी केवल मुझेही प्यार करते हैं । भगवान उसका अहंकार दूर करने के निमित्त उस से ऐसी बातें कर चुपहोरहे ॥ २१ ॥ भगवान श्रीकृष्णजी से ऐसे पहिले न सुनेहुए बचनों को सुनकर रुक्मिणीजी भय से भीतहो कांपने लगीं। वह अत्यन्त चिन्तितहो रोनेलगीं और नखकी अरुणकांति से शोभितचरणों से पृथ्वीको खोदने व काजल के संयोग से काले आंसुवोंद्वारा दोनों स्तनों को भिगोय नीचे को मुखकर खडी होगई ॥ २२ । २३ ॥ दारुण व्यथाके कारण उसके मुखसे बचन न निकला और अत्यन्त दुःख, भय व शोकके कारण बुद्धि नाशहोगई; हाथ का कंकण ढीलापड़गया और पंखा गिरगया । परवशबुद्धिवाली रुक्मिणी का शरीर भी ज्ञानरहितहो वायु से गिरेहुए केले की समान गिरगया, सब केश बिखरगये ॥ २४ ॥ रुक्मिणी उपहास की गम्भीरता न जानसकीं; श्रीकृष्णजी प्यारी के उस प्रेमबन्धन को देख दयालुता के कारण दयासे द्रवीभूत होगये ॥ २५ ॥ आप ने तत्कालही पलँग पर से उतर चतुर्भुज रूप धारणकर रुक्मिणी को उठालिया और केशों को बांध

प्रमृज्याश्रुकले नेत्रे स्तनौ चोपहतौ शुचा । आश्लिष्य बाहुना राजन् अनन्यविषयां सती
म् ॥ २७ ॥ सान्त्वयामास सान्त्वज्ञः कृपया कृपणां प्रभुः । हास्यप्रौढिभ्रमच्चित्ता मत
दर्हां सतांगतिः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मामावैदर्भ्यसूयेथा जाने त्वां मत्पराय-
णाम् । त्वद्वचः श्रोतुकामेन क्ष्वेल्याचरितमङ्गने ॥ २९ ॥ मुखंच प्रेमसंरम्भस्फुरिता
धरमीक्षितुम् । कटाक्षेपारुणापाङ्गं सुन्दरभ्रुकुटीतटम् ॥ ३० ॥ अयंहि परमो लाभो गृ
हेषु गृहमेधिनाम् । यन्नर्मैरीयते यामः प्रियया भीरुभामिनि ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ।
सैवं भगवता राजन्वैदर्भी परिसान्त्विता । ज्ञात्वा तत्परिहासोक्तिं प्रियत्यागभयं जहौ
॥ ३२ ॥ बभाष ऋषभं पुंसां वीक्षन्ती भगवन्मुखम् । सव्रीडहासरुचिरस्निग्धापाङ्गेन
भारत ॥ ३३ ॥ रुक्मिण्युवाच । नन्वेवमेतदरविन्दविलोचनाऽहं यद्वै भवान्भग
वतोऽसदृशी विभूम्नः । क्वस्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः क्वाहं गुणप्रकृ
तिरज्ञगृहीतपादा ॥ ३४ ॥ सत्यं भयादिव गुणेभ्य उरुक्रमान्तः शेते समुद्र उ-
पलम्भनमात्र आत्मा । नित्यं कदिन्द्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं त्वत्सेवकैर्नृपपदं
विधुतं तमोऽन्धम् ॥ ३५ ॥ त्वत्पादपद्ममकरन्दजुषां मुनीनां वर्त्मास्फुटं नृपशु
भिर्ननु दुर्विभाव्यम् । यस्मादलौकिकमिवेहितमीश्वरस्य भूमंस्तवेहितमथो
अनुयेभवन्तम् ॥ ३६ ॥ निष्किञ्चनो ननु भवान्न यतोऽस्ति किञ्चिद्यस्मै
बलिं बलिभुजोऽपिहरन्त्यजाद्याः । नत्वाविदन्त्यसुतृपोऽन्तकमाढ्यतान्धाः प्रेष्ठो भ

उसके मुख को कमलहस्त से पोछनेलगे ॥ २६ ॥ हेराजन् ! सांत्वना करने में चतुर, साधुओं की गति भगवान देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी ने कृपापूर्वक रुक्मिणी के आंसुओं से व्याकुलहुए दोनों नेत्र और शोकसे मुरझायेहुए दोनों स्तनों को पोंछ अनन्य परायणा सतीका बाहुद्वारा आलिंगनकर उसकी सांत्वनाकी वह ऐसे गूढ़ परिहासके योग्य नथी अतएव इन श्रीकृष्णजी के वाक्योंसे उस की बुद्धि भ्रमित होगईथी ॥ २७ । २८ ॥ श्रीभगवान ने कहा कि—हे विदर्भतनये ! मेरे ऊपर क्रोध न करना, मैं जानता हूं कि तुममेरे अतिरिक्त और किसी को नहीं जानतीं । हे सुंदरि ! तुम्हारी बातों के सुनने की इच्छा से मैने यह हंसी की थी ॥ २९ ॥ प्रेमके कोपसे फड़कता हुआ अधर, कटाक्ष युक्त रक्तवर्ण के नेत्र और चलती हुई भौंहों वाले मुखके देखने के निमित्तही मैंने इस प्रकार से कहाथा ॥ ३० ॥ हे भीरू ! हे भामिनि ! जोगृहस्थ गृहस्था श्रममें प्यारी के साथ हास्य परिहास से समय बिताता है वही धन्य है ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन् ! विदर्भ नंदिनी भगवान से इस प्रकार की सांत्वना पाय और यह जानकर कि यह सब परिहास से कहाहै सतुष्ट हुई और 'प्रियमुझे छोड़ देवेंगे' इस प्रकारका जोभय हुआथा वह त्यागदिया॥३२॥ हे भारत ! रुक्मिणी सलज्ज हास्ययुक्त सुंदर स्निग्ध कटाक्ष द्वारा भगवानका मुख देखकर कहने लगी कि ॥ ३३ ॥ हे कमल लोचन ! आपने जोकहा कि 'मैं तेरे समान नहीं हूं' यह सत्यही है क्योंकि कहांतो अपने स्वरूपानंदमें मग्न रहने वाले तथा ब्रह्मादि के स्वामी आप और कहां त्रिगुण स्वभाव वाली व मूढ़ोंकी पूजनीया मैं ॥ ३४ ॥ हे विशाल विक्रम ! आप निरवच्छिन्न, ज्ञान घन आत्माहो, राजाओं के भयसे जोसमुद्र के भीतर वास करतेहो यहभी सत्य है, क्योंकि जो अजितेन्द्रिय हैं आप निस्संदेही उनसे विद्वेष करतेहो । राजपद घोर अज्ञान है, जब आपके सेवकही उस पदको त्यागते हैं तब आपकी तो बातही क्याकहें ॥ ३५ ॥ आपके चरण कमल के मकरंद सेवी मुनियों केही आचरण जानने में नहीं आते, फिर पशुकी समान् मनुष्य आपको कैसे जानसकते हैं । जोमनुष्य आपका अनुसरण करते हैं जब उन्हीं के चरित्र अलौकिक हैं तब हे भूमन् ! आपके चरित्र अलौकिक होने में क्या संदेह है ॥ ३६ ॥ जोब्रह्मादि दूसरों से पूजापाते रहते हैं वह भी

यान्त्यकिञ्चनभुजामपि तेऽपि तुभ्यम् ॥ ३७ ॥ त्वं वै समस्तपुरुषार्थमयः फलात्मा यद्वा
ञ्छया सुमतयो विसृजन्ति कृत्स्नम्। तेषां विभो समुचितो भवतः समाजः पुंसः स्त्रिया
श्च रतयोः सुखदुःखिनोर्न ॥ ३८ ॥ त्वं न्यस्तदण्डमुनिभिर्गदितानुभाव आत्मात्मद
श्च जगतामिति मे वृतोऽसि। हित्वा भवद्भ्रुव उदीरितकालवेगध्वस्ताशिषोऽब्जभ
वनाकपतीन्कुतोऽन्ये ॥ ३९ ॥ जाड्यं वचस्तव गदाग्रज यस्तु भूपान्विद्राव्य शार्ङ्गनि
नदेन जहर्थ मां त्वम्। सिंहो यथा स्वबलिमीश पशून्स्वभागं तेभ्यो भयाद्यदुदधिं शर
णं प्रपन्नः ॥ ४० ॥ यद्वाञ्छया नृपशिखामणयोऽङ्गवैन्य जायन्तनाहुषगयादय ऐक्यप
त्यम्। राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमम्बुजाक्ष सीदन्ति तेऽनुपदवीं त इहास्थिताः किम्॥ ४१
कान्यं श्रयेत तव पादसरोजगन्धमाघ्राय सन्मुखरितं जनतापवर्गम्। लक्ष्म्यालयं
त्वविगणय्य गुणालयस्य मर्त्या सदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः ॥ ४२ ॥ तं त्वानुरूपमभ
जं जगतामधीशमात्मानमत्र च परत्र च कामपूरम्। स्यान्मे तवाङ्घ्रिररणं सृतिभिर्भ्रम
न्त्या यो वै भजन्तमुपयात्यनृतापवर्गः ॥ ४३॥ तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः स्त्री
णां गृहेषु खरगोश्वबिडालभृत्याः। यत्कर्णमूलमरिकर्षण नोपयायाद्युष्मत्कथा मृडवि
रिञ्चसभासु गीता ॥ ४४ ॥ त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्तर्मांसास्थिरक्तकृमि

आपको पूजादेते हैं तब आप निष्किंचन नहींहो परन्तु एक प्रकार से होसकता है कि आपसे भिन्न दूसरा कुछ नहीं है इससे निष्किञ्चनहो। धनके मदसे अंधे हुए मनुष्य आपको काल कहकर नहीं जानसकते क्योंकि वह इन्द्रियों कोही तृप्तकरते हैं परन्तु आपको नहीं भजते ॥ ३७ ॥ बुद्धिमान मनुष्य जिनकी इच्छा करके सब छोडदेते हैं आप वही समस्त पुरुषार्थ और परमात्मा स्वरूपहो। हे विभो! पूर्वोक्त ब्रह्मादि के साथही आपका सबन्ध होना योग्य है स्त्री पुरुषका हमारा सबध आप के योग्य नहीं है कारण कि हमतो सख दुःख से व्याकुल हैं ॥ ३८ ॥ दण्डके त्यागने वाले मुनिगणही आपके अनुभावको जानते हैं, 'आप जगतके आत्मा और आत्म प्रदहो' यह जानकर ब्रह्मादि कोभी छोडकर मैंने आपसे विवाह किया है। आपकी दोनों भौंहोंके बीचसे जिसकाल की उत्पत्ति हुई है, उसी से उन ब्रह्मादि क कल्याण का नाशहोता है अतएव दूसरे की और क्या बातकहूं ॥ ३९ ॥ हे गदाग्रज! सिंह जैसे गर्जन शब्द से पशुओंको भगाय अपने आहारको ग्रहण करता है आपने वैसेही धनुषकी टङ्कारसे राजाओंका भगाय अपने अंशका अर्थात् मेराहरण किया था, उन्हीं आपने राजाओंके भयसे समुद्रकी शरणली है यह आपका कहना कैसे सभव होसकता है ॥ ४० ॥ हे पद्मनेत्र! अंग, पृथु, भरत, ययाति और गयआदि श्रेष्ठराजाओं ने भजन करनेकी इच्छासे अपने चक्रवर्ती राज्यको छोड़ आपकी पदवी का आश्रय करने के निमित्त वनमें प्रवेशकर कितना कष्ट पायाथा? आप गुणोंके आश्रयरूपहो आपके चरणकमलकी गन्ध लक्ष्मीकी सेव्य, साधुओं से वर्णित, और भक्तों के मोक्षदायक है उस गन्धको सूंघकर, जो अपने प्रयोजन को जानती है ऐसी कौनसी स्त्री मरणशील निरन्तर अधिकभयसे भीत दूसरेका आश्रय ग्रहणकरेगी? ॥ ४१ ॥ ॥ ४२ ॥ आप जगतके अधीश्वर और आत्मा व इसलोक और परलोककी इच्छाको पूर्ण करने वाले हो; मैंने ऐसा विचारकरही आपको वरण कियाथा। मैं प्रार्थना करती हूं कि—म दव पशु आदि चाहें जिस योनि में भ्रमणकियाकरूं परन्तु आपके चरण कमलकी शरणागतरहूं। जो आप की सेवा करते हैं आप उसको अपना करलते है और आपसेही उसके संसारका अंत होता है ॥ ॥ ४३ ॥ हेअच्युत! हेशत्रुनाशन! आपके चरित्रजो ब्रह्मा, महादेवकी सभा में भलीभांति से गाये जाते हैं वह चरित्र जिस मन्द भागिनी के कर्ण छिद्रों में नहीं गये,—स्त्रियोंके घरमें गधा, गो, कुत्ता, बिडाल और सेवककी समान आचरणवाले नीच राजाही उसके पति होवें ॥ ४४ ॥ आप के चरणारविंद के मकरन्दको जिस मूर्खा स्त्री ने नहीं सूंघा वही " यह मेरा पति है " ऐसा बि-

विट्कृमिपित्तवातम् । जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढायातेपदाम्बुजमकरन्दमजि घ्रतीस्त्री ॥ ४५ ॥ अस्त्वम्बुजाक्षममतेचरणानुरागआत्मन्रतस्यमयिचानतिरिक्त दृष्टेः । यर्ह्यस्यवृद्धयउपात्तरजोऽतिमात्रोमामीक्षसेतदुहनः परमाऽनुकम्पा ॥ ४६ ॥ नैवालीकमहंमन्येवचस्तेमधुसूदन । अम्बाया इवहिप्रायः कन्यायाः स्याद्रतिःक्व चित् ॥ ४७॥ व्यूढायाश्चापिपुंश्चल्यामनोऽभ्येतिनवंनवम् । बुधोऽसतींनबिभृयात्तां बिभ्रदुभयच्युतः ॥ ४८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साध्व्येतच्छ्रोतुकामैस्त्वंराजपुत्रिप्र लम्भिता । मयोदितंयदन्वात्थसर्वंतत्सत्यमेवहि ॥ ४९॥ यान्यान्कामयसेकामान्म य्यकामायभामिनि । सन्तिह्येकान्तभक्तायास्तवकल्याणिनित्यदा ॥ ५० ॥ उपल ब्धंपतिप्रेमपातिव्रत्यंचतेऽनघे । यद्वाक्यैश्चाल्यमानायानधीर्मय्यपकर्षिता ॥ ५१ ॥ येमांभजन्तिदाम्पत्येतपसाव्रतचर्यया । कामात्मानोऽपवर्गेशंमोहितामम मायया ॥ ५२ ॥ मांप्राप्यमानिन्यपवर्गसंपदंवाञ्छन्तियेसंपदएवतत्पतिम् । तेमन्दभाग्या निरयेपियेनृणांमात्रात्मकत्वान्निरयःसुसंगमः ॥५३॥ दिष्ट्यागृहेश्वर्यसकृन्मयित्वया कृतानुवृत्तिर्भवमोचनीखलैः । सुदुष्कराऽसौसुतरांदुराशिषोह्यसुंभरायानिकृतिं जुषः स्त्रियाः ॥ ५४ ॥ नत्वादृशींप्रणयिनींगृहिणींगृहेषुपश्यामिमानिनियया स्वविवाह

चारकर ऊपर से चमड़ा, डाढ़ी, मूंछ, रोम, नख और केशों से घिरेहुए और भीतर से मांस, अ-स्थि, रक्त, कृमि, विष्ठा, कफ, पित्त और वात से परिपूर्ण जीवित शवकी सेवाकरती है ॥ ४५ ॥ यद्यपि आपको किसीकी अपेक्षा नहींहै और मुझपरभी आपकी अधिक दृष्टि नहीं है तौभी हे कमल नयन ! आपकेही चरणकमलों में मेरा प्रेम होवे । आपजो इस जगत की वृद्धिके निमित्त श्रेष्ठरजो गुण धारणकर मुझपर कटाक्ष करतेहो मैं उसकोही बड़ाभारी अनुग्रह मानतीहूं ॥ ४६ ॥ हेमधु-सूदन ! आपने जो कहा कि—' किसी दूसरे श्रेष्ठ क्षत्री का वरणकरले 'सो यह भी असत्यनहीं है क्योंकि जगत् में कोई २ स्त्री कुमारपनमेंही दूसरे पुरुषपर आसक्त होजाती हैं,—देखिये,—का-शिराज की पुत्री अम्बा शाल्वराजापर आसक्त होगईथी ॥४७॥ व्याह होजाने परभी व्यभिचारिणी का मन नवीन २ मनुष्योंपर आसक्त होतारहता है । जो पण्डित हैं वह कभीभी खोटी से विवाह नहीं करते और यदि करते हैं तो इसलोक और परलोक से पतित होते हैं ॥ ४८ ॥ भगवान ने कहा कि—हेसाध्वि ! हेराजपुत्रि ! यहसब सुननेके निमित्तही मैंने तुम्हारा उपहास कियाथा तुमने मेरे ऊपर जो कहा वह यथार्थ में ही सत्य है ॥ ४९ ॥ हे कामिनि ! तेरी मुझ में एकांत भक्ति है मुक्ति और निर्वाण साधनके निमित्त जिसरवस्तु को चाहती है वहसब तुझको सदैवही प्राप्तहोते रहें गे ॥ ५० ॥ हे निष्पापे ! तू पति प्रेम और पातिव्रत्य धर्म को प्राप्तहुई है क्योंकि मैंने बातें कहर कर तुझे क्रोध उत्पन्नकराया तौभी मुझसे तेरामन दूर न हुआ ॥ ५१ ॥ मैं मोक्षका अधीश्वरहूं, जो विषयी मनुष्य तप और व्रतधारणकरके दंपतिसम्बन्धी सुखभोग के निमित्त मेरा भजन करते हैं उन्हें मेरी मायासे मोहितहुआ जानना चाहिए ॥ ५२ ॥ हे मानिनि ! मुक्ति और सम्पत्ति मुझ में अवस्थित हैं,—मैं समस्त सम्पत्ति का अधीश्वरहूं;जो मुझको पाकरके मुझसे सम्पत्तिकी प्रार्थना करता है वह मन्दभाग्य है; सम्पत्ति तो नीचयोनि में भी प्राप्त होसकती है; वरन विषयसुख में चित्त रहने से नरकही प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ हे गृहेश्वरि!तूने जो बारम्बार मेरी निष्कपट सेवा की है यह अत्यन्तही मंगल का विषय है । दूसरा मनुष्य इसप्रकारकी सेवा कभी नहीं करसकता विशेषकर जो दुष्टबुद्धि हैं वेतो केवल प्राणों के पोषणकरनेपरही तत्पर रहते हैं, तेरीसी सेवाकरना ठगोरी स्त्रियों के पक्षमें अत्यन्तही दुष्कर है ॥ ५४ ॥ हे मानिनि ! मैंने गृहस्थाश्रम में तेरीसमान

वाहकाले । प्रासान्नृपानवगणय्यरहोहरोमेप्रस्थापितोद्विजउपश्रुतसत्कथस्य ।५५।
भ्रातुर्विरूपकरणंयुधिनिर्जितस्यप्रोद्वाहपर्वणिचतद्वधमक्षगोष्ठ्याम् । दुःखंसमुत्थम
सहोऽस्मदयोगभीत्यानैवाब्रवीः किमपितेनवयंजितास्ते ॥ ५६ ॥ दूतस्त्वयाऽऽत्म
लभनेसुविविक्तमन्त्रः प्रस्थापितोमयिचिरायतिशून्यमेतत् । मत्वाजिहासइदमङ्ग
मनन्ययोग्यंतिष्ठेततत्त्वयिवयंप्रतिनन्दयामः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवंसौरत
संलापैर्भगवाञ्जगदीश्वरः । स्वरतोरमयारेमे नरलोकं विडम्बयन् ॥ ५८ ॥ तथा
न्यासामपि विभुर्गृहेषुगृहवानिव । आस्थितो गृहमेधीयान्धर्मांल्लोकगुरुर्हरिः ५९
इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे उ० षष्टितमोऽध्याय ॥ ६० ॥

श्रीशुकउवाच । एकैकशस्ताःकृष्णस्य पुत्रान्दशदशाबलाः ॥ अजीजनन्नन
मात्पितुः सर्वात्मसंपदा ॥ १ ॥ गृहादनपगंवीक्ष्य राजपुत्र्योऽच्युतं स्थितम् । प्रेष्ठं
न्यमंसतस्वंस्वं न तत्तत्त्वविदःस्त्रियः ॥ २ ॥ चार्वब्जकोशवदनायतबाहुनेत्रसप्रेम
हासरसवीक्षितवल्गुजल्पैः । संमोहितामगवतोनमनोविजेतुं स्वैर्विभ्रमैः समशक
न्वनिताविभूम्नः ॥ ३ ॥ स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमण्डलप्रहितसौरतम
न्त्रशौण्डैः । पत्न्यस्तुषोडशसहस्रमनंगबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुंकरणैर्नशेकुः ॥४॥
इत्थंरमापतिमवाप्य पतिंस्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपिनविदुःपदवींयदीयाम् । भेजुर्मुदा
ऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनवसंगमलालसाद्यम् ॥ ५ ॥ प्रत्युद्गमासन

प्रेमवाली और किसी स्त्रीको नहीं देखा तूने केवल मेरी प्रशंसाको सुनकर विवाहकाल में आयेहुए
राजाओं को तुच्छमानकर ब्राह्मण को समाचार देकर गुप्तरीति से मेरे निकट भेजाथा ॥ ५५ ॥
युद्धमें पराजितहुए भाई के विरूपहोने और विवाहकाल में द्यूतसभामें उसके वधका स्मरणकर
बारम्बार मन में कष्टपाकरभी, मेरे सामने अलगहोजाने के भय से तू उसका सहनकरके कुछभी
न बोली इसी से तूने मुझको अपने वशीभूत करलिया है ॥ ५६ ॥ तूने मुझे पानेके निमित्तअपना
दृढ़ निश्चयकर दूतको भेजाथा और मेरे आने में विलम्ब जानकर इस जगत्‌को शून्य देख दूसरे के
अयोग्य इसअपने शरीर को छोड़देने की इच्छाकीथी अतएव मैं तेरेइस ऋणसे उद्धारनहींहोसक्ता
मैंतो केवल तुझे सन्तुष्ट करनेकाही यत्नकरताहूं ॥ ५७ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हेराजन् !
भगवान् देवकीनन्दन आत्माराम होकरभी मनुष्यों का अनुकरण करतेहुए हास्य विलास से लक्ष्मी
के अवतार रुक्मिणी के संग विहार करनेलगे ॥ ५८ ॥वह लोकगुरुहोकरभी गृहस्थियों की सी
गार्हस्थ्यधर्म का आचरणकर औरभी दूसरी स्त्रियों के साथ विहार करनेलगे ॥ ५९ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभाषाटीकायांषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! श्रीकृष्णजी नें एक २ स्त्री में दश २ पुत्र उत्पन्न किये वे
सब पुत्र सब प्रकार से अपनें पिताही की समान थे ॥ १ ॥ स्त्रियां श्रीकृष्णजी के आत्मारामपन
को नहीं जानती थीं इसही कारण श्रीकृष्णजी को अपने २ घर में सदैव रहते हुए देख सब मनमें
यही विचार करतीं कि श्रीकृष्णजी हमेंही अधिक प्यार करते हैं ॥ २ ॥ वह परिपूर्ण भगवान के
सुंदर पद्मकोषकी समान मुख, दीर्घ भुजा और विस्तीर्ण नेत्र व प्रेमयुक्त हास्य रस पूर्वक दृष्टिऔर
मनोहर भाषण से मोहित हो अपनें २ हास्यविलास से उनके मनको वशीभूत नकरसकीं ॥ ३ ॥
स्त्रियोंकी संख्या सोलह सहस्र थी तोभी गूढ़ हास्ययुक्त कटाक्ष द्वारा सूचित किये अभिप्रायसेमन
हरनेवाले भ्रुकुटिमंडल से प्रेरित जो सुरत संबंधी विचार होते हैं उनमें कामदेव के बाण और का
मशास्त्र के प्रसिद्ध उपायोंसेभी वह भगवान के मनको वश में नकरसकीं ॥ ४ ॥ ब्रह्मादिभी जि-
नकी पदवी को नहीं जानते ऐसे रमापति को पतिपायके स्त्रियां निरंतर बढ़े हुए आनंद के साथ
अनुराग पूर्वक हास्य, अवलोकन और नव संगम से उत्सुकता इत्यादि विविध विलासोंसे संयोग

वराऽर्हणपादशौचताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः । केशप्रसारशयनस्नपनोप-
हार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ६ ॥ तासां या दशपुत्राणां कृष्णस्त्री-
णां पुरोदिताः । अष्टौ महिष्यस्तत्पुत्रान्प्रद्युम्नादीन्गृणामि ते ॥ ७ ॥ सुदेष्णश्चारुदेष्ण-
श्च चारुदेहश्च वीर्यवान् । सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथाऽपरः ॥८॥ चारुचन्द्रो
विचारुश्च चारुश्च दशमो हरेः । प्रद्युम्नप्रमुखा जाता रुक्मिण्यां नावमाः पितुः ॥ ९ ॥
भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा । चन्द्रभानुर्बृहद्भानुरतिभानुस्तथाऽष्टमः
॥ १० ॥ श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभामात्मजा दश । साम्बः सुमित्रः पुरुजिच्छत-
जिच्च सहस्रजित् ॥ ११ ॥ विजयश्चित्रकेतुश्च वसुमान्द्रविडः क्रतुः । जाम्बवत्याः
सुता ह्येते साम्बाद्याः पितृसम्मताः ॥ १२ ॥ वीरश्चन्द्रोऽश्वसेनश्च चित्रगुर्वेगवान्वृषः ।
आमः शङ्कुर्वसुः श्रीमान्कुन्तिर्नाग्नजितेः सुताः ॥ १३ ॥ श्रुतः कविर्वृषो वीरः सुबाहु-
र्भद्र एकलः । शान्तिर्दर्शः पूर्णमासः कालिन्द्याः सोमकोऽवरः ॥ १४ ॥ प्रघोषो गा-
त्रवान्सिंहो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः । माद्र्याः पुत्रा महाशक्तिः सह ओजोऽपराजितः ॥
॥ १५ ॥ वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्धनोऽन्नाद एव च । महाशः पावनो वह्निर्मित्रविन्दा-
त्मजाः क्षुधिः ॥ १६ ॥ संग्रामजिद्बृहत्सेनः शूरः प्रहरणोऽरिजित् । जयः सुभद्रो भ-
द्रायां वाम आयुश्च सत्यकः । दीप्तिमांस्ताम्रतप्ताद्या रोहिण्यास्तनया हरेः ॥ १७ ॥
प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धोऽभूद्रुक्मवत्यां महाबलः । पुत्र्यां तु रुक्मिणो राजन्नाम्ना भोजकटे
पुरे ॥१८॥ एतेषां पुत्रपौत्राश्च बभूवुः कोटिशो नृप । मातरः कृष्णजातीनां सहस्राणि च षो-
डश ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ कथं रुक्म्यरिपुत्राय प्रादाद्दुहितरं युधि । कृष्णेन परि-

---

करनलगीं ॥ ५ ॥ प्रत्येक स्त्री सौ दासियों की स्वामिनी थी, तौभी सन्मुख जाना, आसन देना, पू-
जन करना, पाव धोना, पान देना, पंखा करना, चंदन लगाना, पाव दाबना, फूलोंकी माला पहिरा-
ना, बाल सुलझाना, सुलाना, निहलाना और भोजन कराना आदि कर्मों से भगवान की सेवा करती
थीं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! भगवान श्रीकृष्णजी की स्त्रियों से जो दश २ पुत्र हुए उनमें से पहिले जो
आठ स्त्रियें कही हैं उनके पुत्र प्रद्युम्न आदिका वर्णन करता हूं सुनो ॥ ७ ॥ प्रद्युम्न, चारुदेष्ण-
सुदेष्ण, वीर्यशाली चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु और चारु यह दश पुत्र
रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए यह कोई भी पिता से न्यून न थे ॥ ८ । ९ ॥ भानु, सुभानु, स्वर्भानु
प्रभानु, भानुमान्, चन्द्रभानु बृहद्भानु, अतिभानु, श्रीभानु और प्रतिभानु यह दश पुत्र सत्यभामा
के हुए ॥ १० ॥ साम्ब, सुमित्र, पुरुजित, शतजित, सहस्रजित, विजय, चित्रकेतु, द्रविण, वसुमा-
न् और क्रतु यह दश पुत्र जाम्बवती के हुए यहभी पिताही की समान थे ॥ ११ ॥ १२ ॥ श्रीमान्
वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान, वृष, आम, शंकु, वसु और कुंति यह नाग्नजिती के पुत्र हुए ॥१३॥
श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और सबसे छोटा सोमक यह कालिन्दी
के पुत्र हुए ॥ १४ ॥ प्रघोष, गात्रवान, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज, और अ-
पराजित यह माद्री के पुत्र हुए ॥ १५ ॥ वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्द्धन, अन्नाद, महाश, पावन,
वह्नि और क्षुधि यह मित्रविंदाके पुत्र थे ॥ १६ ॥ संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अ-
रिजित्, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक यह दशपुत्र भद्राके थे ॥ १७ ॥ रोहिणी के गर्भसे
भगवान के दीप्तिशाली, ताम्रतप्त आदिपुत्र उत्पन्न हुए । हे राजन् ! भोजकट नगर के रुक्मीकी
पुत्री रुक्मवती के गर्भसे प्रद्युम्नके वीर्यसे अनिरुद्ध उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ हेमहाराज ! इन सब
श्रीकृष्णजी के पुत्रों से और भी करोड़ों पुत्र पौत्रादि उत्पन्न हुए । श्रीकृष्णजी की सतानों के सो-
लह सहस्र माताएं थीं ॥ १९ ॥ राजा परीक्षित ने पूँछाकि—हे ब्रह्मन् ! युद्धमें पराजितहो रुक्मी

भूतस्तंहन्तुं रन्ध्रंप्रतीक्षते ॥ २० ॥ एतदाख्याहि मे विद्वन्द्विषोर्वैवाहिकं मिथः । अ-
नागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियम् । विप्रकृष्टं व्यवहितंसम्यक्पश्यन्तियोगिनः ॥
॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृतःस्वयंवरेसाक्षादनङ्गोऽङ्गयुतस्तया । राज्ञःसमेतान्नि
र्जित्यजहारैकरथोयुधि ॥ २२ ॥ यद्यप्यनुस्मरन्वैरंरुक्मीकृष्णावमानितः । व्यत-
रद्भागिनेयायसुतांकुर्वन्स्वसुः प्रियम् ॥२३॥ रुक्मिण्यास्तनयां राजन्कृतवर्मसुतो
बली । उपयेमे विशालाक्षींकन्यांचारुमतींकिल ॥ २४ ॥ दौहित्रायानिरुद्धायपौ-
त्रींरुक्म्याददाद्धरेः । रोचनांबद्धवैरोऽपिस्वसुःप्रियचिकीर्षया । जानन्नधर्मंतद्यौ-
नंस्नेहपाशानुबन्धनः ॥ २५ ॥ तस्मिन्नभ्युदयेराजन्रुक्मिणीरामकेशवौ । पुरंभो-
जकटं जग्मुःसाम्बप्रद्युम्नकादयः ॥२६॥ तस्मिन्निवृत्तउद्वाहेकालिङ्गप्रमुखानृपाः ।
दृप्तास्तेरुक्मिणंप्रोचुर्बलमक्षैर्विनिर्जय ॥ २७ ॥ अनक्षज्ञोह्ययंराजन्नपितद्व्यसनंमह
त् । इत्युक्तोबलमाहूय तेनाक्षैरुक्म्यदीव्यत ॥ २८ ॥ शतंसहस्रमयुतं रामस्तत्राद
दे पणम् । तंतुरुक्म्यजयत्तत्र कालिङ्गःप्राहसद्बलम् । दन्तान्सन्दर्शयन्नुच्चैर्नामृष्य
त्तद्धलायुधः ॥२९॥ ततोलक्षंरुक्म्यगृह्णाद्ग्लहंतत्राजयद्बलः । जितवानहमि
त्याह रुक्मीकैतवमाश्रितः ॥ ३० ॥ मन्युनाक्षुभितःश्रीमान्समुद्रइवपर्वणि जात्या
रुणाक्षोऽतिरुषान्यर्बुदंग्लहमाददे ॥ ३१ ॥ तंचापिजितवान्रामो धर्मेणच्छलमाश्रि
तः रुक्मीजितंमयाऽत्रेमे वदन्तुप्राश्निकाइति॥३२॥तदाऽब्रवीन्नभोवाणी बलेनैव

श्रीकृष्णजी के मारने के निमित्त छिद्रढूंढा करता था, उसने क्यों शत्रुके पुत्रको कन्यादी ? शत्रु शत्रुओं परस्पर वैवाहिक सम्बंध क्योंकर हुआ इसका विशेष वृत्तांत मुझसे कहिये ॥ २० ॥ योगी-जन, भूत, भविष्यत, वर्तमान, इन्द्रियों के अगम्य, दूरस्थ और छिपेहुए विषयोंको भलीभांति से देखते हैं ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—उसने साक्षात् मूर्तिमान कामदेव प्रद्युम्नको स्वयंवर में वरलिया, तब वह एकही रथसे युद्धस्थलमें एकत्रित हुए सब राजाओंको जीत, हरलाये ॥ २२॥ हे राजन् ! यद्यपि श्रीकृष्णजी से अपमानित होकर रुक्मी मनमें सर्वदा श्रीकृष्णजी से शत्रुता ही करता रहा परन्तु तौभी बहिन के प्रियकरने के निमित्त भांजेको अपनी उसन पुत्रीदी ॥ २३ ॥ हे राजन् ! कृतवर्मा के बलवान पुत्रने रुक्मिणी की विशाललोचना चारुमती नामक पुत्रीसे विवाह किया ॥ २४ ॥ भगवान और रुक्मी से शत्रुता थी कि ऐसा विवाह धर्म सगत नहीं है, तौभी स्नेह पाशसे बधकर बहिन के प्रियकरने के निमित्त दौहित्र अनिरुद्धको रोचना नामक अपनी पुत्री दी ॥ २५ ॥ हे राजन् ! उस उत्सव के देखनेको रुक्मिणी, राम, कृष्ण और प्रद्युम्न आदि सब यादव भोजकट नगर में गये ॥ २६ ॥ वहां विवाहका कार्य समाप्त होनेपर कालिंग आदि अभिमानी राजाओं ने रुक्मी से कहाकि द्यूत (जुआ) से बलरामको जीतलो ॥ २७ ॥ हे राजन् ! वह द्यूतक्रीड़ा नहींजानतेथे परन्तु द्युतका व्यसनभी उनको बड़ाभारीथा रुक्मी इसबातका सुन बल-देवजीको बुलाय जुआ खेलनेको बैठा॥२८॥बलरामजीने उसमें सौ,सहस्र और दशसहस्र स्वर्णमुद्रा दांवमें रक्खे परन्तु रुक्मी ने उन सबको जीतलिया । तब कालिंग देशके राजाने दांत दिखाय बलदेवजी का उपहास किया. बलदेवजी उसका सहन न करसके अनन्तर रुक्मीने लाख सुवर्णकी मुद्रा दांवमें रक्खीं बलरामजी ने उनको जीतलिया परन्तु रुक्मीने छल करके कहा कि " मैं जीताहूं ॥ ३० ॥ श्रीमान् रामने पूर्णिमा के दिन के समुद्रकी समान क्षुभितहो दशकोटि मुद्रा दांव में रक्खे क्रोध से उनके नेत्र लालरंग के होगये ॥ ३१ ॥ रामने धर्म-पूर्वक उन दसकोटि मुद्राओं को भी जीतलिया परन्तु रुक्मीने छल करके कहा कि—अब भी मैं ही जीताहूं इसके विषय में मुमासद कहैं ॥ ३२ ॥ उसीसमय में आकाशवाणी हुई कि—धर्मा-

जितोऽग्लह: । धर्मतोवचनेनैव रुक्मीवदतिवैमृषा ॥ ३३ ॥ तामनादृत्यवैदर्भोदुष्टराजन्यचोदित: । संकर्षणंपरिहसन्बभाषे कालचोदित: ॥ ३४ ॥ नैवाक्षकोविदा यूयं गोपालावनगोचरा: । अक्षैर्दीव्यन्तिराजानो बाणैश्चनभवादृशा: ३५ ॥ रुक्मिणैवमधिक्षिप्तो राजभिश्चोपहासित: । क्रुद्ध:परिघमुद्यम्य जघ्नेतंनृम्णसंसदि ॥३६॥ कालिङ्गराजंतरसा गृहीत्वादशमेपदे । दन्तानपातयत्क्रुद्धो योऽहसद्विवृतैर्द्विजै:३७ अन्येनिर्भिन्नबाहूरु शिरसोरुधिरोक्षिता: । राजानोदुद्रुवुर्भीता बलेनपरिघार्दिता: ॥ ३८ ॥ निहतेरुक्मिणिश्याले नाब्रवीत्साध्वसाधुवा । रुक्मिणीबलयोराजन्स्नेहभङ्गभयाद्धरि: ३९ ॥ ततोऽनिरुद्धंसहसूर्ययावरंरथंसमारोप्ययथु: कुशस्थलीम् । रामादयोभोजकटाद्दशार्हा: सिद्धाखिलार्थामधुसूदनाश्रया: ॥ ४० ॥

इतिश्रीमद्भा०महा० दशम० उ० एकषष्टितमोऽध्याय: ॥ ६१ ॥

राजोवाच ॥ बाणस्यतनयामूषा मुपयेमेयदूत्तम: । तत्रयुद्धमभूद्घोरं हरिशंकरयोर्महत् ॥ एतत्सर्वंमहायोगिन् समाख्यातुंत्वमर्हसि ॥ १ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ बाण:पुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मन: । येनवामनरूपाय हरयेऽदायिमेदिनी॥२॥ तस्यौरस:सुतोबाण: शिवभक्तिरत:सदा । मान्योवदान्योधीमांश्च सत्यसन्धोदृढव्रत: ॥ ३ ॥ शोणिताख्येपुरेरम्ये सराज्यमकरोत्पुरा । तस्यशम्भो:प्रसादेन किंकराइवतेऽमरा: ॥ सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवेऽतोषयन्मृडम् ॥ ४ ॥ भगवान्सर्वभूतेश: शरण्योभक्तवत्सल: । वरेणच्छन्दयामास सतंवव्रेपुराधिपम् ॥ ५ ॥ सएक

सार बलदेवजीही यह दांव जीतेहैं रुक्मी मिथ्या कहताहै ॥ ३३ ॥ रुक्मीने कालसे प्रेरित होकर उस देववाणी को भी न माना और सब सभासदों की सम्मति से बलदेवजी का उपहास करके कहने लगा कि— ॥ ३४ ॥ तुम गो पालनेवाले वनके निवासीहो द्यूत क्रीड़ाको क्या जानो राजा ही द्यूत और बाणोंसे क्रीड़ा करतेहैं तुम्हारी समान मनुष्य मनुष्योंमें नहींहैं ॥ ३५ ॥ रुक्मीसे इस प्रकार तिरस्कृत और राजाओंसे उपहसितहो बलदेवजी क्रोधित हुए, और परिघको उठाय उस सभामेंही रुक्मी को मारडाला, ॥ ३६ ॥ जो कालिंग राज दांत फैलायकर हसाथा बलरामजी ने दशवें पगमें उसको पकड़ क्रोधसे उसके दांत तोड़डाले ॥ ३७ ॥ और दूसरे राजा भी बलरामजी की परिघसे पीड़ित और छिन्नबाहु छिन्नउरु छिन्नशिरा और रुधिरसे भीगर भयभीतहो वहां से भागगए ॥ ३८ ॥ हेराजन् ! साले रुक्मी के मारेजाने पर स्नेह टूटनेके डरसे भगवान ने रुक्मिणी वा बलदेवजी से भला बुरा कुछ न कहा ॥ ३९ ॥ अनन्तर रामा श्रीकृष्णादि के आश्रित यदुवंशी अपना कार्य पूराकर दूल्हा अनिरुद्धको दुलहन सगेत रथपर बिठाय भोजकटसे द्वारकापुरी को आये ॥ ४० ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधसरलाभाषाटीकायांएकषष्ठितमोऽध्याय: ॥ ६१ ॥

राजा परीक्षित ने कहा कि—बाणासुरकी कन्या ऊषासे अनिरुद्धनें विवाहकिया श्रीकृष्णजीमें और महादेवजी में घोरयुद्ध हुआ सो हेमहायोगिन् ! यह सब आप मुझसे कहिये ? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! राजा बलिके सौपुत्रथे, उनमें बाणासुर सबसे बड़ाथा, जिस बलिने वामनरूप भगवानको पृथ्वीदीथी ॥ २ ॥ यह बलिका औरस पुत्र बाणासुर शंकरका परम भक्त, मान्य, बुद्धिमान,उदार, सत्यप्रतिज्ञ और दृढ नियमवालाथा ॥३॥ सोपहिले सुंदर शोणित पुरमें राज करताथा महादेवजी के अनुग्रह से उसके समीप देवता सेवककी भांति रहतेथे उसके सहस्र भुजाएथीं । एकसमय महादेवजी नाचरहथे तब उसने बाजा बजाकर उनको संतुष्ट किया, ॥ ४ ॥ जब भगवान् भक्तवत्सल शरण देनेवाले सब प्राणियोंके ईश्वर शिवजीने उससे वर मांगने

दाह गिरिशं पार्श्वस्थंवीर्यदुर्मदः। किरीटेनार्कवर्णेन संस्पृशंस्तत्पदाम्बुजम् ॥६॥ नमस्येत्वांमहादेव लोकानांगुरुमीश्वरम्। पुंसामपूर्णकामानां कामपूरामराङ्घ्रिपम् ॥ ७ ॥ दोःसहस्रंत्वयादत्तं परंभारायमेऽभवत्। त्रिलोक्यांप्रतियोद्धारं नलभेत्व दृतेसमम् ॥ ८ ॥ कण्डूत्यानिभृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम्। आद्यायांचूर्णयन्न द्रीन् भीतास्तेऽपिप्रदुद्रुवुः ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वाभगवान्क्रुद्धः केतुस्तेभज्यतेयदा। त्व द्दर्पघ्नंभवेन्मूढ संयुगंमत्समेनते ॥ १० ॥ इत्युक्तःकुमतिर्हृष्टःस्वगृहंप्राविशन्नृप। प्रतीक्षन्गिरिशादेशं स्ववीर्यनशनंकुधीः ॥ ११ ॥ तस्योषानामदुहिता स्वप्नेप्राद्यु म्निनारतिम्। कन्याऽलभतकान्तेन प्रागदृष्टश्रुतेनसा ॥ १२ ॥ सातत्रतमपश्यन्ती क्वासिकान्तेतिवादिनी। सखीनांमध्यउत्तस्थौ विह्वलाव्रीडिताभृशम् ॥ १३ ॥ बा णस्यमन्त्रीकुम्भाण्डश्चित्रलेखाचतत्सुता। सख्यपृच्छत्सखीमूषां कौतूहलसम न्विता ॥ १४ ॥ कंत्वंमृगयसेसुभ्रूः कोऽयंतेमनोरथः। हस्तग्राहंनतेऽद्यापि राज पुत्र्युपलक्षये ॥ १५ ॥ ऊषोवाच ॥ दृष्टःकश्चिन्नरःस्वप्ने श्यामःकमललोचनः। पी तवासाबृहद्बाहुर्योषितांहृदयंगमः ॥ १६ ॥ तमहंमृगयेकान्तं पाययित्वाऽधरंमधु क्वापियातःस्पृहयतीं क्षिप्त्वामांवृजिनार्णवे ॥ १७ ॥ चित्रलेखोवाच ॥ व्यसनं ते ऽपकर्षामि त्रिलोक्यांयदिभाव्यते। तमानेष्येनरंयस्ते मनोहर्तातमादिश ॥ १८॥ इत्युक्त्वादेवगन्धर्व सिद्धचारणपन्नगान्। दैत्यविद्याधरान्यक्षान् मनुजांश्चयथाऽ

को कहा तब इसने कहा कि—आप मेरे पुरके रक्षक होओ ॥ ५ ॥ यह बाणासुर पराक्रमके गर्व से अत्यंत गर्वितहो एकदिन सूर्यके समान प्रकाशित किरीटसे भगवान् महादेवजी के चरणकमल का स्पर्श करके कहने लगा कि— ॥ ६ ॥ हेमहादेव ! आप अपूर्ण काम मनुष्यों के काम पूरे करनेवाले व कल्पवृक्षहो हेलोकगुरो ! आप को नमस्कार करताहूं ॥ ७ ॥ आपने मुझको सहस्र भुजाएं दीहैं वह सब मेरे अत्यंत बोझका कारण हुईहैं मैं आपके अतिरिक्त त्रिलोकी में अपनेसमान और कोई योद्धा नहीं देखता ॥ ८ ॥ बोझरूपी भुजाओंकी खुजली दूर करनेके निमित्त पर्वतोंको चूर्ण करताहुआ युद्ध करनेके निमित्त दिशाओं के हाथियोंके निकटगया किंतु वेभी भयभीत होकर भागगए ॥ ९ ॥ यह बात सुनकर महादेवजीने कोधित होकर कहा कि—रेमूढ ! जिसदिन मेरी समान मनुष्यके साथ तेरा अभिमान नाशक युद्धहोगा उसहीदिन तेरी ध्वजा टूटजायगी ॥ १० ॥ हेराजन् ! इसबातको सुनकर दुर्बुद्धि बाणासुर प्रसन्नहो अपने घरआया और अपने पराक्रमनाशक शिवजीकी आज्ञाके सफलहोनेकी राह देखनेलगा॥११॥ इस बाणासुरके उषानामक एककन्याथी सुंदर मुखवाली ऊषाने प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्धको न तो कभी देखाथा औरन कभी सुनाही था। एक दिन उसी अनिरुद्ध के साथ स्वप्नमें उसको बिहार सुख प्राप्तहुआ ॥ १२ ॥ फिरवहां उसने उसको न देखपाया तब हे सखे ! कहांहो यह कहकर सखियों के बीचों से नींद से उठ, खड़ी हो अत्यंत लज्जित हुई ॥ १३ ॥ हेराजन् ! कुंभाण्ड नामक बाणासुरका एकमंत्री था एक उसके चित्रलेखानाम पुत्रीथी उसने कौतुकके साथ अपनी सखी ऊषासे पूछाकि॥१४॥ हेसुंदर भौंहवाली ! तू किसकी खोजकरती है ? तेरी क्या इच्छा है ? हे राजपुत्रि ! अबतकतो तेरा पाणिग्रहण भी नहीं हुआ है ॥ १५ ॥ ऊषाने कहाकि—हे सखि ! मैंने स्वप्नमें एक श्यामवर्ण के पुरुषको देखा है। उसके दोनों नेत्र कमल की समान हैं उसकी लंबी भुजाएं हैं वह स्त्रियों के मनको मोहने वाला पीताम्बर धारण किये हुएहै मैं उसकीही खोज करती हूं ॥ १६ ॥ वह मुझको अधरामृतका पान कराय मुझ इच्छावतीको दुःख सागर में डालकर कहीं चलागया ॥ १७ ॥ चित्रलेखाने कहाकि—तुम्हारा दुःखदूर करूंगी। जिस पुरुष ने तुम्हारे मनको हरणकिया है वह यदि त्रिलोकी में कहीं भी रहताहोगा तो मैं उसको लादूंगी,—तुम मुझको आज्ञादो ॥ १८ यह कहकर चित्रलेखाने देव,

लिखितान् ॥ १९ ॥ मनुजेषु च सा वृष्णीञ्छूरमानकदुन्दुभिम् । व्यलिखद्रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं वीक्ष्य लज्जिता ॥ २० ॥ अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्योषावाङ्मुखी ह्रिया । सोऽसावसाविति प्राह स्मयमाना महीपते ॥ २१ ॥ चित्रलेखा तमाज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी । ययौ विहायसा राजन् द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥ २२ ॥ तत्र सुप्तं सुपर्यङ्के प्राद्युम्निं योगमास्थिता । गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत् ॥ २३ ॥ सा च तं सुन्दरवरं विलोक्य मुदितानना । दुष्प्रेक्षे स्वगृहे पुम्भी रेमे प्राद्युम्निना समम् ॥ २४ ॥ परार्ध्यवासःस्रग्गन्धधूपदीपासनादिभिः । पानभोजनभक्ष्यैश्च वाक्यैः शुश्रूषयार्चितः ॥ २५ ॥ गूढः कन्यापुरे शश्वत् प्रवृद्धस्नेहया तया । नाहर्गणान्स बुबुधे ऊषयाऽपहृतेन्द्रियः ॥ २६ ॥ तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रताम् । हेतुभिर्लक्षयांचक्रुराप्रीतां दुरवच्छदैः ॥ २७ ॥ भटा आवेदयांचक्रू राजंस्ते दुहितुर्वयम् । विचेष्टितं लक्षयामः कन्यायाः कुलदूषणम् ॥ २८ ॥ अनपायिभिरस्माभिर्गुप्तायाश्च गृहे प्रभो । कन्याया दूषणं पुम्भिर्दुष्प्रेक्षाया न विद्महे ॥ २९ ॥ ततः प्रव्यथितो बाणो दुहितुः श्रुतदूषणः । त्वरितः कन्यकागारं प्राप्तोऽद्राक्षीद्यदूद्वहम् ॥ ३० ॥ कामात्मजं तं भुवनैकसुन्दरं श्यामं पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षणम् । बृहद्भुजं कुण्डलकुन्तलत्विषा स्मितावलोकेन च मण्डिताननम् ॥ ३१ ॥ दीव्यन्तमक्षैः प्रियया ऽभिनृम्णया तदङ्गसंगस्तनकुङ्कुमस्रजम् । बाह्वोर्दधानं मधुमल्लिकाश्रितां तस्याग्र आसीनमवेक्ष्य विस्मितः ॥

गंधर्व, सिद्ध, चारण, नाग, दैत्य, विद्याधर, यक्ष और मनुष्यों के अविकल चित्र लिखकर दिखाये ॥ १९ ॥ मनुष्योंमें से वृष्णिवंश, बलवान अनाक दुदुभि, राम, कृष्ण और प्रद्युम्न के चित्र लिखे । राजपुत्री प्रद्युम्नको देखकर लज्जित होगई ॥ २० ॥ तदुपरांत चित्त चुराने वाले अनिरुद्धको देख वह राजपुत्री लज्जासे नीचा मुखकर कुछेक हसकर कहने लगी कि—"वह यही है" ॥ २१ ॥ हे राजन् ! योगिनी चित्रलेखा उसको श्रीकृष्णजीका पौत्र जानकर आकाश मार्गसे श्रीकृष्ण पालित द्वारका पुरीमें आई ॥ २२ ॥ वहां प्रद्युम्नका पुत्र सुंदर सेजपर सोरहाथा । चित्रलेखाने उसे शो-णितपुर लेआयकर सखीको दिखाया ॥ २३ ॥ उस सुंदर अनिरुद्धको देख ऊषाका मुख प्रफुल्लित होउठा । वह पुरुषों की जिसपर दृष्टि न पडे ऐसे अपने घरमें अनिरुद्ध के साथ विहार करनेलगी ॥ २४ ॥ अनिरुद्ध भी सन्मान सहित महामूल्य के वस्त्र, फूल, चंदन, धूप, दीप और आसनादि तथा पान भोजन और नाना वाक्यों से पूजित हो अंतःपुर में गूढ भाव से वास करनेलगा ॥ २५ ॥ ऊषाका स्नेह दिन प्रतिदिन बढताही रहा ऊषा से इन्द्रियों के मोहित होजानेपर अनिरुद्धनें यहभी नजाना कि कितनें दिन बीतगए ॥ २६ ॥ अनिरुद्धनें जो ऊषा के साथ संभोग किया इससे राज कुमारी के अंग अत्यंत प्रकाशित हो उठे ॥ २७ ॥ उन सब गुप्त चिन्होंको देख रक्षकोंको संदेह उत्पन्न होगया उन्हों नें राजभवन मेंजाकर निवेदन किया कि हे राजन् ! हम आपकी क्वारी कन्या के कुलदूषण आचरणों का अनुमान करें हैं ॥ २८ ॥ हे प्रभो ! हम सदैव वहां उपस्थित रहकर सावधानी से उस घरकी रक्षा करते हैं, कोई पुरुष भी नहीं देखपड़ता तोभी नजानें किस प्रकार से उसने बुरे आचरण किये ॥ २९ ॥ कन्या को दूषित हुआ सुनकर बाणासुर अत्यंत व्य-थित हुआ और शीघ्रता से कन्या के घरमें आयकर उसने अनिरुद्ध को देखा ॥ ३० ॥ वह ज-गत को मोहनें वाला श्याम वर्ण, कमल नयन, पीताम्बर पहिनें, लम्बी भुजा धारण किये कुण्डल और केशों की कांति से जिसका मुख शोभायमान होरहा है ॥ ३१ ॥ सर्व कल्याण रूप प्यारी के संग पांसों से खेलता, वसंत ऋतु संबंधी फूलों की माला कि जिस में प्यारीके स्तनों की केसर अंग संग के कारण लगगई है वक्षःस्थल में धारण किये कामदेव के पुत्र अनिरुद्ध को अपनीपुत्री

॥ ३२ ॥ सतंप्रविष्टं वृतमाततायिभिर्भटैरनीकैरवलोक्यमाधवः। उद्यम्यमौर्वंपरिघं व्यवस्थितोयथाऽन्तको दण्डधरोजिघांसया ॥ ३३ ॥ जिघृक्षयातान्परितःप्रसर्पतः शुनोयथासूकरयूथपोऽहनत्। तेहन्यमानाभवनाद्विनिर्गता निर्भिन्नमूर्धोरुभुजाःप्रदुद्रुवुः ॥ ३४ ॥ तंनागपाशैर्बलिनन्दनोबली घ्नन्तंस्वसैन्यं कुपितोबबन्ध ह ॥ ऊषा भृशंशोकविषादविह्वला बद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरौदिषीत् ॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

श्रीशुकउवाच। अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बन्धूनांचभारत। चत्वारोवार्षिकामासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ १ ॥ नारदात्तदुपाकर्ण्य वार्तांबद्धस्यकर्मच। प्रययुःशोणितपुरं वृष्णयःकृष्णदेवताः ॥ २ ॥ प्रद्युम्नोयुयुधानश्च गदःसाम्बोऽथसारणः। नन्दोपनन्दभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः ॥ ३ ॥ अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिः समेताःसर्वतोदिशम्। रुरुधुर्बाणनगरं समन्तात्सात्वतर्षभाः ॥ ४ ॥ भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्टालगोपुरम्। प्रेक्षमाणोरुषाविष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ ॥५॥ बाणार्थेभगवान्रुद्रः ससुतैःप्रमथैर्वृतः। आरुह्यनन्दिवृषभं युयुधेरामकृष्णयोः ॥ ६ ॥ आसीत्सुतुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम्। कृष्णशङ्करयो राजन्प्रद्युम्नगुहयोरपि ॥ ७ ॥ कुम्भाण्डकूपकर्णाभ्यां बलेनसहसंयुगः। साम्बस्यबाणपुत्रेण बाणेनसहसात्यकेः ॥ ८ ॥ ब्रह्मादयःसुराधीशा मुनयःसिद्धचारणाः। गन्धर्वाप्सरसोयक्षा विमानैर्द्रष्टुमागमन् ॥९॥

के सन्मुख बैठा देख बाणासुर आश्चर्य करने लगा ॥ ३२ ॥ शस्त्रधारी अनेक योद्धाओं समेत उस बाणासुर को घर में आया देख अनिरुद्ध उसके संहार करने की इच्छा से दंडधर यमराज की समान लोहे का परिघ लेकर उठ खड़ा हुआ ॥ ३३ ॥ पकड़ लेने की इच्छा से चारों ओर से आते हुए इन योद्धाओं को अनिरुद्ध ऐसे ऐसे मारने लगा कि जैसे बड़ा शूकर कुत्ते को मारे वह मारखाते हुए योधा भग्नशिर, भग्नबाहु और भग्नपांव हो २ कर घर से बाहर भगगए ॥ ३४ ॥ तब बलवान बाणासुर ने कुपित होकर अपनी सेनाके मारनेवाले अनिरुद्ध को नगपाश से बांधलिया अनिरुद्ध को बंधा हुआ सुनकर ऊषा अत्यंत शोक और विषाद से विह्वल होगई और आंसू बहा२ कर ऊंचे स्वर से रोने लगीं ॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महा० द० उ० सरला भाषाटीकायां द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेभरतनन्दन! अनिरुद्ध के बन्धु बांधवोंनें उसको न देखपाय शोक से चारवर्ष व्यतीत किये ॥ १ ॥अनन्तर नारदजी के मुख से उसकाबंधन और बाणकेसाथ युद्ध होनेके वृत्तांतको सुनकर कृष्णजी ने यादवों को साथले शोणितपुर चढ़ाईकी ॥ २ ॥ राम कृष्ण के पीछे २ प्रद्युम्न, युयुधान, गद, साम्ब, सारण, नन्द, उपनन्द और भद्रादि श्रेष्ठ यादवों ने १२ अक्षौहिणी सेना लेकर चारोंओर से बाणासुर के नगर को घेरलिया ॥ ३ । ४ ॥ तथा नगर के बाग, महल, छत और दरवाजों को तोड़ना आरम्भकिया यह देखकर बाणासुरक्रोधितहो समान सेनाले युद्ध करने के निमित्त नगर से बाहर निकला ॥ ५ ॥ बाणासुर के निमित्त भगवान् महादेवजी नन्दी वृषपर चढ़ पुत्र और भूतों को संगले राम कृष्णके साथ युद्ध करने में आये ॥ ६ ॥ हेराजन्! श्रीकृष्णजी व महादेवजी और प्रद्युम्न व कार्त्तिकेय से जो घोरयुद्धहुआ उसके सुननेसे रोमांच होता है ॥ ७ ॥ कुम्भांड और कूपकर्ण के साथ बलरामका बाणासुर के पुत्र के साथ सांबका और बाणके साथ सात्यकीका युद्ध आरम्भहुआ ॥ ८ ॥ उस समय ब्रह्मादि सुरेश्वर, मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरायें और यक्ष विमानों पर बैठ२युद्ध देखने के निमित्त

शङ्करानुचराञ्छौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् । डाकिनीर्यातुधानांश्च वेतालान्सविनायका-
न् ॥ १० ॥ प्रेतमातृपिशाचांश्च कुष्माण्डान्ब्रह्मराक्षसान् । द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः
शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥ ११ ॥ पृथग्विधानि प्रायुङ्क्त पिनाक्यस्त्राणि शार्ङ्गिणे । प्रत्य-
स्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिरविस्मितः ॥ १२ ॥ ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च
पार्वतम् । आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्य च ॥ १३ ॥ मोहयित्वा तु गिरिशं जृ-
म्भणास्त्रेण जृम्भितम् । बाणस्य पृतनां शौरिर्जघानासिगदेषुभिः ॥ १४ ॥ स्कन्दः प्र-
द्युम्नबाणौघैरर्द्यमानः समन्ततः । असृग्विमुञ्चन्गात्रेभ्यः शिखिनाऽपाक्रमद्रणात् ॥ १५
कुम्भाण्डकूपकर्णश्च पेततुर्मुसलार्दितौ । दुद्रुवुस्तदनीकानि हतनाथानि सर्वतः ॥
॥ १६ ॥ विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा बाणोऽत्यमर्षणः । कृष्णमभ्यद्रवत्संख्ये रथी
हित्वैव सात्यकिम् ॥ १७ ॥ धनूंष्याकृष्य युगपद्बाणः पंचशतानि वै । एकैकस्मिञ्छ-
रौ द्वौ द्वौ सन्दधे रणदुर्मदः ॥ १८ ॥ तानि चिच्छेद भगवान् धनूंषि युगपद्धरिः । सा-
रथिं रथमश्वांश्च हत्वा शंखमपूरयत् ॥ १९ ॥ तन्माता कोटरा नाम नग्ना मुक्तशिरो-
रुहा । पुरोऽवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ॥ २० ॥ ततस्तिर्यङ्मुखो नग्नाम-
निरीक्षन्गदाग्रजः । बाणश्च तावद्विरथश्छिन्नधन्वाऽविशत्पुरम् ॥ २१ ॥ विद्राविते
भूतगणे ज्वरस्तु त्रिशिरास्त्रिपात् । अभ्यधावत दाशार्हं दहन्निव दिशो दश ॥ २२ ॥
अथ नारायणो देवस्तं दृष्ट्वा व्यसृजज्ज्वरम् । माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ
॥ २३ ॥ माहेश्वरः समाक्रन्दन् वैष्णवेन बलार्दितः । अलब्ध्वाऽभयमन्यत्र भीतो

रणभूमि में आनलगे ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णजी शार्ङ्ग धनुष से छूटेहुए पैनी अनीवाले बाणों से महादेवजी
के अनुचर प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, राक्षस, वैताल, विनायक, भूत, मातृगण, पिशाच, कूष्मांड
और ब्रह्मराक्षसों को ताड़ित करनेलगे ॥ १० । ११ ॥ महादेवजी ने पृथक् २ करके श्रीकृष्णजी
पर दिव्य अस्त्रों का प्रहार किया परन्तु श्रीकृष्णजी ने विस्मित न होकर अपने अस्त्रों से उनसब
को काटडाला ॥ १२ ॥ ब्रह्मास्त्रपर ब्रह्मास्त्र, वायव्यपर पर्वतास्त्र, आग्नेयास्त्रपर पर्जन्यास्त्र, और
पाशुपतास्त्रपर नारायणास्त्र का प्रहार किया ॥ १३ ॥ अनन्तर सम्मोहनास्त्रद्वारा जंभाई लेतेहुए
महादेवजी को मोहितकर श्रीकृष्णजी खड्ग,गदा और बाणों से बाणासुर की सेना का नाशकरने
लगे ॥ १४ ॥ स्वामिकार्तिक चारोंओर से प्रद्युम्न के बाण लगने से व्यथित होगए; उनकी सब
देह से रुधिर बहनेलगा; तब वह मयूर पर बैठकर भागगये ॥ १५ ॥ कुंभांड और कूपकर्ण मूसल
के प्रहारसे पीड़ितहो रणभूमि मे गिरगये । उनकी सेना सेनापतियों के मरजाने से चारोंओरको
भागने लगी ॥ १६ ॥ अपनी सेना को चारोंओर को भागता हुआ देख बाणासुर अत्यन्त
क्रोधित हुआ और युद्ध में सात्यकि को छोड़कर रथमें बैठ श्रीकृष्णजी पर दौड़ा ॥ १७ ॥ रण-
मत्तबाणासुर ने पांचसौ धनुष एक बारही खींचकर प्रत्येक धनुष में दो २ शर चढ़ाये ॥ १८ ॥
भगवान हरिने उन सब धनुष और बाणोंको एक समय मेंही काटडाला और सारथी, रथ
तथा घोड़ोंको नष्टकर शंख बजाने लगे ॥ १९ ॥ कोटरा नामक बाणासुर की माता नंगीहो
तथा बालोंको खोल पुत्रके प्राणोंकी रक्षाके कारण श्रीकृष्णजी के आगे आकर खड़ी होगई ॥२०॥
श्रीकृष्णजीने उसनग्नाको सन्मुख खड़ीदेख कुछ न कह मुख फेरलिया, इधर बाणासुरने धनुष कट
जाने व रथहीन होजाने पर नगर में प्रवेश किया ॥ २१ ॥ भूतोंके भाग जानेपर तीनशिर और
तीन पैरोंवाला ज्वर युद्ध करने के निमित्त दहकता हुआ श्रीकृष्णपर आया ॥ २२ ॥ नारायण ने
भी उसको देखकर शीत ज्वरको उससे युद्ध करनेको भेजा । तब माहेश्वर और वैष्णव दोनोंज्वर
परस्पर युद्ध करनेलगे ॥ २३ ॥ माहेश्वर ज्वर युद्ध करते २ वैष्णव ज्वर के बलसे पीड़ित होगया

माहेश्वरोज्वरः ॥ शरणार्थीहृषीकेशं तुष्टावप्रयतांजलिः ॥ २४ ॥ ज्वरउवाच ॥ नमामित्वाऽनन्तशक्तिपरेशं सर्वात्मानंकेवलंज्ञप्तिमात्रम् । विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद्ब्रह्मब्रह्मलिंगंप्रशान्तम् ॥ २५ ॥ कालोदैवंकर्मजीवःस्वभावो द्रव्यं क्षेत्रंप्राणआत्माविकारः । तत्संघातोबीजरोहप्रवाहस्त्वन्मायैषातन्निषेधंप्रपद्ये ॥ २६ ॥ नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान्साधूँल्लोकसेतून्बिभर्षि । हंस्युन्मार्गान्हिंसयावर्तमानांजन्मैतत्तेभारहारायभूमेः ॥ २७ ॥ तप्तोऽहंतेतेजसा दुःसहेन शान्तोग्रेणात्युल्बणेनज्वरेण । तावत्तापोदेहिनांतेऽङ्घ्रिमूलं नोसेवेरन्यावदाशानुबद्धाः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्रिशिरस्तेप्रसन्नोऽस्मि व्येतुतेमज्ज्वराद्भयम् । योनौस्मरतिसंवादं तस्यत्वन्नभवेद्भयम् ॥ २९ ॥ इत्युक्तोऽच्युतमानम्य गतोमाहेश्वरोज्वरः बाणस्तुरथमारूढः प्रागाद्योत्स्यञ्जनार्दनम् ॥ ३० ॥ ततोबाहुसहस्रेण नानायुधधरोऽसुरः । मुमोचपरमक्रुद्धो बाणांश्चक्रायुधेनृप ॥ ३१ ॥ तस्याऽस्यतोऽस्त्राण्यसकृच्चक्रेणक्षुरनेमिना । चिच्छेदभगवान्बाहूञ्छाखाइववनस्पतेः ॥ ३२ ॥ बाहुषुच्छिद्यमानेषु बाणस्यभगवान्भवः । भक्तानुकम्प्युपव्रज्य चक्रायुधमभाषत ॥ ३३ ॥ श्रीरुद्रउवाच ॥ त्वंहिब्रह्मपरंज्योतिर्गूढंब्रह्मणिवाङ्मये । यंपश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिवकेवलम् ॥ ३४ ॥ नाभिर्नभोग्निर्मुखमम्बुरेतो द्यौःशीर्षमाशाःश्रुतिरंघ्रिरुर्वी । चन्द्रोमनोयस्यदृगर्कआत्मा अहंसमुद्रोजठरंभुजेन्द्रः ॥ ३५ ॥ रोमाणियस्यौषधयोम्बुवाहाः केशाविरंचोधिषणाविसर्गः । प्रजापतिर्हृदयंयस्यधर्मः सवैभ

और दूसरेका आश्रय न पाय हाथजोड़ भगवान की स्तुति करने लगा ॥ २४ ॥ ज्वरने कहा कि– आप अनंत शक्ति परमेश्वरहो आपको नमस्कार है। आप सर्वात्मा, निरवच्छिन्न केवल विज्ञान और ब्रह्मादि के ईश्वरहो। आपही जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के कारणहो। आपकर्म रहितहो अतएव जोवेद से अगम्य ब्रह्म है वह भी आपहीहो;–आपको नमस्कार है ॥ २५ ॥ काल, दैव, कर्म, जीव, स्वभाव, सूक्ष्म, भूतगण, प्राण, अहंकार, ग्यारह इन्द्रियें, पंचमहाभूत, देह और देहका प्रवाह यह सब आपकी माया है, किंतु आपसे इनका सद्भाव नहीं है, मैं आपकी शरणागत हुआ हूं ॥ २६ ॥ आप लीलावश सेही मत्स्य कूर्मादि नाना अवतार धारणकर देवगण, साधुगण और लोककी मर्यादा का पालन और हिंसामें प्रवृत्त हुए उत्पथगामी दैत्योंका संहार करते हैं; आपका यह जन्म पृथ्वीका भार हरने के निमित्त है ॥ २७ ॥ आपसे उत्पन्न हुए दुःसह तेजसे तप्त होरहा हूं प्राणी जबतक आशा में बंधारहकर आपके चरणों की सेवा नहीं करता तबही तक वह संतप्त रहता है ॥ २८ ॥ भगवान ने कहाकि–हे त्रिशिरा ज्वर! मैं तुझपर प्रसन्न हुआ, मेरे ज्वरसे जो तुझेभय हुआ है उस छोडदे। आजसे जोमनुष्य मेरे इस संवादका स्मरण करेगा तुझसे उसको भय नहीं उत्पन्न होगा ॥ २९ ॥ माहेश्वर ज्वर इस बातको सुन भगवानको प्रणाम करके चला गया हे राजन्! इधर बाणासुर भगवान के संगयुद्ध करने के निमित्त रथपर चढ़कर फिरआया ॥३०॥ वह सहस्र भुजाओं में नाना अस्त्र शस्त्रोंको धारणकर परम क्रोधितहो श्रीकृष्णजी के ऊपर प्रहार करने लगा ॥ ३१ ॥ दैत्य पतिके बारंबार बाणवृष्टि करने पर भगवान ने छुरेकी धारवाले चक्रसे बड़े वृक्षकी शाखाओं के समान उसकी सब भुजाएं काटडालीं ॥ ३२ ॥ जब बाणासुर की भुजाएं कटनेलगीं तब भगवान महादेवजी भक्तपर दया प्रकाश करते हुए श्रीकृष्णजी के निकट आयकर कहने लगेकि ॥ ३३ ॥ हे ब्रह्मन्! तुम वेदसे गूढ परम ज्योतिरूप परब्रह्महो, निर्मलात्मा साधुगण केवल आकाश की समानही आपका दर्शन करते हैं ॥ ३४ ॥ आकाश आपकी नाभि, अग्नि आपका मुख, जलवीर्य, स्वर्ग मस्तक दिशाएं कर्ण, पृथिवी पद, चन्द्रमा मन, सूर्यनेत्र, अहंकार आत्मा, समुद्र उदर, इन्द्र आपकी भुजाएं, ओषधियें आपके रोम, मेघ आपके केश, ब्रह्मा

षाम्पुरुषोलोककल्पः ॥ ३६ ॥ तवावतारोऽयमकुण्ठधामन्धर्मस्यगुप्त्यैजगतोभवा
य। वयंचसर्वेभवतानुभाविता विभावयामोभुवनानिसप्त ॥ ३७ ॥ त्वमेकआद्यः
पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्यः स्वदृग्घेतुरहेतुरीशः। प्रतीयसेऽथापियथाविकारं स्वमायया
सर्वगुणप्रसिद्ध्यै॥३८॥ यथैवसूर्यःपिहितश्छाययास्वयाछायांचरूपाणिचसंचका
स्ति। एवंगुणेनापिहितोगुणांस्त्वमात्मप्रदीपोगुणिनश्चभूमन् ॥ ३९ ॥ यन्मायामो
हितधियः पुत्रदारगृहादिषु। उन्मज्जन्तिनिमज्जन्ति प्रसक्तावृजिनार्णवे ॥ ४० ॥
देवदत्तमिमंलब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः। योनाद्रियेतत्वत्पादौ सशोच्योह्यात्मवं
चकः ॥४१ ॥ यस्त्वांविसृजतेमर्त्यआत्मानंप्रियमीश्वरम्। विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं वि
षमत्त्यमृतंत्यजन् ॥ ४२ ॥ अहंब्रह्माऽथविबुधा मुनयश्चामलाशयाः। सर्वात्मनाप्र
पन्नास्त्वा मात्मानंप्रेष्ठमीश्वरम् ॥ ४३ ॥ तंत्वाजगत्स्थित्युदयान्तहेतुं समंप्रशान्तंसु
हृदात्मदैवम्। अनन्यमेकंजगदात्मकेतं भवापवर्गायभजामदेवम् ॥ ४४ ॥ अयंममे
ष्टोदयितोऽनुवर्ती मयाऽभयंदत्तममुष्यदेव। सम्पाद्यतांतद्भवतःप्रसादो यथाहि
तेदैत्यपतौप्रसादः ॥ ४५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थभगवंस्त्वन्नः करवामप्रियं
तव। भवतोयद्व्यवसितं तन्मेसाध्वनुमोदितम् ॥ ४६ ॥ अवध्योऽयंममाप्येष वैरो
चनिसुतोऽसुरः। प्रह्लादायवरोदत्तो नवध्योमेतवान्वयः ॥ ४७ ॥ दर्पोपशमनाया
ऽस्यप्रवृक्णाबाहवोमया। सूदितंचबलंभूरि यच्चभारायितंभुवः ॥४८॥ चत्वारोऽस्य

बुद्धि, प्रजापति शिश्न और धर्म आपका हृदय है,—आपलोक कल्पित विराट पुरुषहो ॥३५–३६॥ हे अखण्ड स्वरूप ! धर्म के पालन और संसार के कल्याण के निमित्तही आप अवतार ग्रहण करते हो हमसब आपसेही पालितहोकर सातों भुवनों का पालन करते हैं ॥ ३७ ॥ आप स्वयं प्रकाशमान, शुद्ध, आदि पुरुष और एकही आप कारण और कारण से रहित अद्वितीय ईश्वरहो; तौभी सब विषयों के प्रकाश करने के निमित्त आप मायायोग से प्रत्येक शरीरोंमें भिन्न भिन्न रूप से प्रतीत होतेहो ॥ ३८ ॥ जैसे सूर्य अपनी छायासे आच्छादित होकरभी छाया और रूप का प्रकाश करता है हे भूमन् ! तैसेही आत्मस्वप्रकाश आप गुणों से आच्छादित होकरभी गुण और गुणियों (जीव) का प्रकाश करतेहो ॥ ३९ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारी माया से मोहित हुआ प्राणी पुत्र, स्त्री और घर आदि में आसक्त होकर दुःखसागर में डूबता उछलता है ॥४०॥ इस आपके दियेहुए मनुष्य देह को पाकर जो अजितेन्द्रिय मनुष्य आपके चरणकमलका आदर नहीं करता उस आत्मवंचककी अवस्था अत्यन्तही शोचनीय है ॥ ४१ ॥ जोमनुष्य जड़,अप्रिय और अनीश्वर पुत्रादिकों के निमित्त चैतन्य, प्रिय और ईश्वररूप आपको त्याग देते हैं वे अमृत को छोड़.विषका भक्षण करते हैं ॥ ४२ ॥ मैं, ब्रह्मा और निर्मल चित्तवाले मुनिलोग मन, वचन और कर्म से प्रियतम आत्मा आपकाही भजन करते हैं ॥ ४३ ॥ हे देव ! जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण, सम, शांत, मित्र, आत्मरूप, इष्टदेव, सजातीय विजातीय भेदरहित विश्व और प्राणियों के अधिष्ठानरूप आपका हम संसार से पार होने के निमित्त भजन करते हैं ॥ ४४ ॥ यह बाणासुर मेरा भक्त और प्रिय सेवक है हे देव ! मैंने इसको अभयदान दियाहै; दैत्य राज बलिपर जैसे आपने अनुग्रह कियाथा वैसही इसपरभी कीजिये ॥ ४५ ॥ भगवानने कहा कि- हेभगवन् ! तुमने जो मुझ से कहा मैं वही तुम्हारा प्रियसाधन करूंगा। तुमने जो कुछ कहा है वह सबही उत्तम है; उस में मेरीभी सम्मति है ॥ ४६ ॥ यह बलिका पुत्र मेरे मारने योग्य नहीं है क्योंकि मैंने प्रह्लाद को प्रथमही वर देदिया है कि मैं तुम्हारेवंशवालों को न मारूंगा ॥४७॥ मैंने इसका अहंकार दूर करने के निमित्तही इसकी सबभुजायें काटडाली हैं और इसका जो बल पृथ्वी के अतिभारके निमित्त हुआथा उसको भी नाशकरदिया ॥ ४८ ॥ इसकी केवलचारभुजाएं

भुजाःशिष्टा भविष्यत्यजरामराः। पार्षदमुख्यो भवतो नकुतश्चिद्भयोऽसुरः॥४९॥
इतिलब्ध्वाभयंकृष्णं प्रणम्यशिरसासुरः। प्राद्युम्निंरथमारोप्य सवध्वासमुपानयत्
॥ ५० ॥ अक्षौहिण्यापरिवृतं सुवासःसमलङ्कृतम्। सपत्नीकंपुरस्कृत्ययथौरुद्रानु
मोदितः ॥ ५१ ॥ स्वराजधानींसमलंकृतांध्वजैः सतोरणैरुक्षितमार्गचत्वराम्।
विवेशशंखानकदुन्दुभिस्वनैरभ्युद्यतः पौरसुहृद्द्विजातिभिः ॥ ५२ ॥ यएवंकृष्ण
विजयं शंकरेणचसंयुगम्। संस्मरेत्प्रातरुत्थाय नतस्यस्यात्पराजयः ॥ ५३ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एकदोपवनं राजञ्जग्मुर्यदुकुमारकाः। विहर्तुंसाम्बप्रद्युम्न-
चारुभानुगदादयः ॥ १ ॥ क्रीडित्वासुचिरंतत्रविचिन्वन्तः पिपासिताः। जलनि-
रुदकेकूपेददृशुःसत्त्वमद्भुतम् ॥ २ ॥ कृकलासंगिरिनिभंवीक्ष्यविस्मितमानसाः।
तस्यचोद्धरणेयत्नं चक्रुस्तेकृपयान्विताः ॥ ३॥ चर्मजैस्तान्तवैः पाशैर्बद्ध्वापति
तमर्भकाः। नाशक्नुवन्समुद्धर्तुंकृष्णायाचख्युरुत्सुकाः ॥ ४ ॥ तत्रागत्यारविन्दा-
क्षोभगवान्विश्वभावनः । वीक्ष्योज्जहारवामेनतंकरेणसलीलया ॥ ५॥ सउत्तम-
श्लोककराभिमृष्टोविहायसद्यःकृकलासरूपम्।सन्तप्तचामीकरचारुवर्णःस्वर्ग्यद्भुता
लंकरणाम्बरस्रक् ॥ ६ ॥ पप्रच्छविद्वानपितन्निदानंजनेषुविख्यापयितुंमुकुन्दः। क
स्त्वंमहाभागवरेण्यरूपोदेवोत्तमंत्वांगणयामिनूनम् ॥ ७॥ दशामिमांवाकतमेनक-

शेष रही हैं यह अजर और अमर दैत्य आपका प्रधान पार्षद होगा इसे किसी का भी भय न होगा ॥ ४९ ॥ बाणासुर ने इसबातको सुन नमस्कार करके श्रीकृष्णजीको नमस्कार किया और अनिरुद्ध को वधू समेत रथपर बिठाय वहां लेआया ॥ ५० ॥ श्रीकृष्णजी बाणासुर की दीहुई एक अक्षौहिणी सेना लेकर सुन्दर वस्त्र और अलंकारों से सुसज्जित स्त्रीसमेत अनिरुद्ध को आगे कर महादेवजी की संमति से वहां से चलदिये ॥ ५१ ॥ इधर भगवान का आनासुन सुन्दर ध्वजाओं से द्वारका सजाई गई और उसके चौराहे व मार्ग सुशोभित किये गये भगवान ने उस शोभित नगरी में प्रवेश किया। ब्राह्मण, पुरवासी और सब बान्धव शंख, डंका और दुन्दुभी आदि बाजे बजातेहुए—आगे जाय उनका सत्कार करके लेआये ॥ ५२ ॥ हेराजन्! जो मनुष्य प्रातःकाल उठतेही श्रीकृष्णजी और शंकर के इस युद्ध और विजय का स्मरण करेगा उसकी कभी पराजय न होगी ॥ ५३ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम० उ०सरलाभाषाटीकायांत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! एकदिन सांब, प्रद्युम्न, चारु, भानु, और गदादि, यदुकुमार गण क्रीडा करनेके निमित्त उपवनमेंगये ॥ १ ॥ वहां बडी देरतक खेलते रहनेके कारण उन सबको प्यास लगी तब जलको ढूंढते २ एक कुएके समीप पहुँच उन्होंने उस कुएमें एक अद्भुत जीव देखा ॥ २ ॥ वे पर्वतकी समान उसमें गिरगिट को पड़ादेख अत्यन्त विस्मितहुए फिर उन्होंने सदय होकर उसके निकालने का यत्नकिया ॥ ३ ॥ उन बालकोंने चमड़े और रस्सी के पाशोंसे उस जीवको बांधकर उसके निकालनेके बहुतसे यत्नकिये परन्तु उसे न निकालसके तब उत्सुक चित्तसे श्रीकृष्णजीके समीप आय उस सब वृत्तान्त को कहा ॥ ४ ॥ कमललोचन भगवान् ने वहां आय उसको देख सहजसेही बांए हाथसे उसको उठालिया ॥ ५ ॥ भगवान् के हाथका स्पर्श होतही वह गिरगिट अपने रूपको छोड़ सुन्दरवर्ण का अत्यंत अलंकारों से अलंकृत तप्त सुवर्णकी समान देवमूर्ति होगया ॥ ६ ॥ भगवान ने इसकारण को जानकरभी जगतमें प्रचार होने के निमित्त उससे पूँछा कि—हेमहाभाग! सुन्दर रूपधारी आपकौनहो? आप तो कोई श्रेष्ठ दे-

र्मणास्म्यागमितोऽस्यतदर्हः सुभद्र । आत्मानमाख्याहि विवित्सतां नो यन्मन्यसे नः क्षम
मत्र वक्तुम् ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति स्म राजा संपृष्टः कृष्णेनानन्तमूर्तिना । मा-
धवं प्रणिपत्याह किरीटेनार्कवर्चसा ॥ ९ ॥ नृग उवाच ॥ नृगो नाम नरेन्द्रोऽहमि-
क्ष्वाकुतनयः प्रभो । दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम् ॥ १० ॥ किं नु तेऽवि-
दितं नाथ सर्वभूतात्मसाक्षिणः । कालेनाव्याहतदृशो वक्ष्येऽथापि तवाज्ञया ॥ ११ ॥
यावत्यः सिकता भूमेर्यावत्यो दिवि तारकाः । यावत्यो वर्षधाराश्च तावतीरददं स्म-
गाः ॥ १२ ॥ पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूपगुणोपपन्नाः कपिला हेमशृङ्गीः । न्यायार्जि-
ता रूप्यखुराः सवत्सा दुकूलमालाभरणा ददावहम् ॥ १३ ॥ स्वलंकृतेभ्यो गुणशील-
वद्भ्यः सीदत्कुटुम्बेभ्य ऋतव्रतेभ्यः । तपःश्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः प्रादां युवभ्यो द्विज-
पुंगवेभ्यः ॥ १४ ॥ गोभूहिरण्यायतनाश्वहस्तिनः कन्याः सदासीस्तिलरूप्यशय्याः ।
वासांसि रत्नानि परिच्छदान्रथानिष्टं च यज्ञैश्चरितं च पूर्तम् ॥ १५ ॥ कस्यचिद्द्विज-
मुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने । संपृक्ताऽविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥ १६ ॥ तां नीय-
मानां तत्स्वामी दृष्ट्वोवाच ममेति तम् । ममेति प्रतिग्राह्याह नृगो मे दत्तवानिति ॥ १७ ॥
विप्रौ विवदमानौ मामूचतुः स्वार्थसाधकौ । भवान्दाताऽपहर्तेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद्भ्र-
मः ॥ १८ ॥ अनुनीतावुभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्रगतेन वै । गवां लक्षं प्रकृष्टानां दास्याम्येषा प्र-
दीयताम् ॥ १९ ॥ भवन्तावनुगृह्णीतां किंकरस्याविजानतः । समुद्धरतं मां कृच्छ्रात्प-
तन्तं निरयेऽशुचौ ॥ २० ॥ नाहं प्रतीच्छे वै राजन्नित्युक्त्वा स्वाम्यपाक्रमत् । नान्यद्

बताजान पड़तेहो ॥ ७ ॥ हे सुभद्र ! तुम किन कर्मोंके करनेसे इस दशाको प्राप्त हुयेथे आप तो इस योग्य न थे । यदि तुम इस वृत्तान्तको कहसकतेहो तो कहो मुझे इसके सुननेकी बड़ी इच्छाहै ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! जब श्रीकृष्णजीने उससे इसप्रकार पूँछा तबवह सूर्य के समान प्रकाशमान किरीटसे प्रणामकर उनसे कहने लगा कि— ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! मैं नृग नामक इक्ष्वाकु वंशीय राजाहूं दाता पुरुषोंका नाम सुनने के समय निश्चयही आपने मेरे नामको भी सुना होगा ॥ १० ॥ हे नाथ ! आप सब प्राणियोंकी बुद्धि के साक्षीहो आपका ज्ञान कालसेभी नष्टनहीं होता क्या आप इससे अज्ञातहैं?परन्तु तो भी आपकी आज्ञानुसार कहताहूं ॥ ११ ॥ पृथ्वीमें जितने रजकण, आकाशमें जितने नक्षत्र और वर्षाकी जितनी धारा हैं उतनीही दुग्धवती, तरुणी, शीलवान, रूपवान, गुणवान कपिला सुवर्णसे मढ़ेहुए सींगोंवाली न्यायपूर्वक पाईहुई चांदीसे मढ़े हुए खुरोंवाली, बछड़े युक्त वस्त्रादिसे अलंकृत गायें—गुण शीलयुक्त बहुत कुटुम्बी सदाचारी तपस्वी शुभकर्म करनेवाले वेदपाठी उदार और युवा ब्राह्मणों को दानदीथीं १२—१४ ॥ गौ पृथ्वी सुवर्ण, घर, घोड़ा, हाथी, दासी समेत कन्या, तिल, चांदी शय्या, वस्त्र रत्न और सबप्रकार की सामग्री व रथ दान करता यज्ञ करता और बावड़ी कुआ बनवाता हुआ समय बिताताथा ॥ १५ ॥ एकसमय किसी एक ब्राह्मणकी गाय मेरे गोधनमें मिलगई मैंने बिनाजाने एक दूसरे ब्राह्मण को वह गाय दान करदी ॥ १६ ॥ वह ब्राह्मण उसको लियेजाताथा कि—उसीसमय उस गाय के प्रथम स्वामीने उसको देख उस ब्राह्मणसे कहा कि—यह गाय मेरीहै दूसरेने भी कहा कि यह मेरीहै, राजा नृगने मुझे दान दीहै ॥ १७ ॥ इसप्रकार से विवाद करते २ वह दोनो ब्राह्मण अपना २ कार्य पूरे होनेके कारण मुझसे आकर कहनेलगे कि आपही देनेवाले और आपही छीनने वालेहो, यह सुनकर मैं व्याकुल होगया ॥ १८ ॥ धर्मसंकट उपस्थित होजानेसे मैंने दोनों ब्राह्मणों से प्रार्थना करके कहा कि—उत्तम २ एकलक्ष गौएं दान करता हूं आप इसको देदो, ॥ १९ ॥ मैं आपका दास हूं बिना जाने मैंने अपराध किया है आप मेरे ऊपर अनुग्रह करो मैं अपवित्र नरक में पड़ता हूं आप इस कष्टसे मुझे बचाइये ॥ २० ॥

गवामप्ययुतमिच्छामीत्यपरोययौ ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नन्तरेयामैर्दूतैर्नीतोयमक्षयम् । यमेनपृष्टस्तत्राहंदेवदेवजगत्पते ॥ २२ ॥ पूर्वंत्वमशुभंभुंक्षउताहोनृपतेशुभम् । नान्तंदानस्यधर्मस्यपश्येलोकस्यभास्वतः ॥ २३ ॥ पूर्वंदेवाशुभंभुञ्जइतिप्राहपतेतिसः । तावदद्राक्षमात्मानंकृकलासंपतन्प्रभो ॥ २४ ॥ ब्रह्मण्यस्यवदान्यस्यतवदासस्यकेशव । स्मृतिर्नाद्यापिविध्वस्ताभवत्संदर्शनार्थिनः ॥ २५॥ सत्वंकथंममविभोऽक्षिपथःपरात्मायोगेश्वरैः श्रुतिदृशाऽमलहृद्विभाव्यः । साक्षादधोक्षजउरुव्यसनान्धबुद्धेःस्यान्मेऽनुदृश्यइहयस्यभवापवर्गः ॥ २६ ॥ देवदेवजगन्नाथगोविन्दपुरुषोत्तम । नारायणहृषीकेशपुण्यश्लोकाच्युताव्यय ॥ २७॥ अनुजानीहिमांकृष्णयान्तंदेवगतिंप्रभो । यत्रक्वापिसतश्चेतोभूयान्मेत्वत्पदास्पदम् ॥ २८ ॥ नमस्तेसर्वभावायब्रह्मणेऽनन्तशक्तये । कृष्णायवासुदेवाययोगानांपतयेनमः ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वातंपरिक्रम्यपादौस्पृष्ट्वास्वमौलिना । अनुज्ञातोविमानाग्र्यमारुहत्पश्यतांनृणाम् ॥ ३० ॥ कृष्णः परिजनंप्राहभगवान्देवकीसुतः । ब्रह्मण्यदेवोधर्मात्माराजन्याननुशिक्षयन् ॥३१॥ दुर्जरंबतब्रह्मस्वं भुक्तमग्नेर्मनागपि । तेजीयसोऽपिकिमुतराज्ञामीश्वरमानिनाम् ॥ ३२ ॥ नाहंहालाहलंमन्येविषंयस्यप्रतिक्रिया । ब्रह्मस्वंहिविषंप्रोक्तंनास्यप्रतिविधिर्भुवि ॥ ३३ ॥ हिनस्तिविषमत्तारं वह्निरद्भिः प्रशाम्यति । कुलं

मेरी बातें सुनकर 'मैं राजाका दान नहीं लेता' ऐसे कहकर गौका स्वामी चलागया; 'मैं दशलक्ष गौओं का भी इच्छा नहीं करता' यह कहकर दूसरा ब्राह्मणभी चलागया ॥ २१ ॥ इसीअवसर में यमदूत आकर मुझको यमपुरी में लेगये । हे देव देव जगन्नाथ ! वहां यमने मुझ से पूँछा कि- ॥ २२ ॥ हेराजन् ! आप प्रथम धर्म का भोग करोगे? या पापका? धर्मानुष्ठान और दान से जो सुन्दर लोक प्राप्त होगा उसका तो मैं अन्तभी नहीं देखता ॥ २३ ॥ मैंने कहा कि हे देव ! मैं प्रथम पापकाही भोग करूंगा । तब उन्होंने कहा कि—तो नीचयोनि में पड़ । हे प्रभो!उसकालही मैंने देखा कि गिरगिट होकर पतितहुआहूं ॥ २४ ॥ हे केशव ! मैं ब्राह्मणों का हितकारी, दाता और आपका दासहूं मेरी स्मृति शक्ति अबतक नष्ट नहीं हुई । आप के दर्शन करने की मेरेमनमें इच्छाथी किंतु मैं निश्चितहोताहूं कि आप किसप्रकार से मेरे दृष्टिगोचरहुए ॥ २५ ॥ इंद्रियों से जो ज्ञानउत्पन्न होता है वह आप के निकट उपस्थित नहीं होसकता, अतएव योगेश्वरभी उपनिषद्रूप नेत्रोंद्वारा निर्मल हृदयमें आपका ध्यानकरसकते हैं, आप परमात्माहो । जिसकासंसारनष्ट होता है उसी को आपका दर्शन होता मैं सांसारिक दुःखों से अन्धा होरहाहूं सो मुझे आपका दर्शनहुआ ॥ २६ ॥ हे देव देव ! हेजगन्नाथ ! हेगोविंद ! हेपुरुषोत्तम ! हेनारायण ! हे हृषीकेश! हेपुण्यश्लोक ! हेअच्युत ! हेअव्यय ॥ २७ ॥ हेकृष्ण ! आप आज्ञा दीजिये मैं देवलोकको जाऊं। हे विभो ! जिस किसीस्थान में रहूं मेरा चित्त आपही के चरण कमलों में लगारहे ॥ २८॥ आप से समस्त पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है परन्तु आप विकार रहितहो क्योंकि माया आपकी शक्ति है—। आप सब प्राणियों के आश्रय, आनन्दस्वरूप कर्मों के फल देनेवालेहो आप को नमस्कार है ॥ २९ ॥ राजानृग यह कहकर अपने मुकुटाग्रद्वारा श्रीकृष्णजी के दोनों चरणों का स्पर्श व उनकी परिक्रमाकर व उनसे आज्ञाले सबके सन्मुखही विमानपर बैठकर चलागया ॥ ३० ॥ ब्राह्मणों के भक्त धर्मात्मा श्रीकृष्णजी क्षत्रियों को शिक्षा देतेहुए अपने कुटुम्बियों से कहने लगे कि ॥ ३१ ॥ अहो ! ब्राह्मणोंका थोड़ासाभी भक्षण किया हुआ धनअग्नि की समान तेजस्वि मनुष्यों कोभी पचना कठिन होजाता है फिर मिथ्या अहङ्कार रखनेवाले राजाओंको कैसे पचे ॥३२॥ मैं हलाहलको विष नहीं जानता क्योंकि उसकातो उपाय है ।ब्राह्मण के धनकोही यथार्थ विषकहा जासकता है क्योंकि पृथ्वीपर इसका यत्न नहीं है ॥ ३३ ॥ विषतो खानेवाले कोही नाश करता है

समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं हन्ति त्रिपूरुषम्। प्रसह्य तु बलाद्भुक्तं दश पूर्वान्दशापरान् ॥३५॥ राजानो राजलक्ष्म्याऽन्धा नात्मपातं विचक्षते। निरयं येऽभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वं साधुबालिशाः ॥ ३६ ॥ गृह्णन्ति यावतः पांसून्क्रन्दतामश्रुबिन्दवः। विप्राणां हृतवृत्तीनां वदान्यानां कुटुम्बिनाम् ॥ ३७॥ राजानो राजकुल्याश्च तावतोऽब्दान्निरंकुशाः। कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते ब्रह्मदायापहारिणः ॥ ३८ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ३९ ॥ न मे ब्रह्मधनं भूयाद्यद्गृध्वाऽल्पायुषो नराः। पराजिताश्च्युता राज्याद्भवन्त्युद्वेजिनोऽहयः ॥४० ॥ विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः। घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥४१॥ यथाऽहं प्रणमे विप्राननुकालं समाहितः। तथा नमत यूयं च योऽन्यथा मे स दण्डभाक् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणार्थो ह्यपहृतो हर्तारं पातयत्यधः। अजानन्तमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥ ४३ ॥ एवं विश्राव्य भगवान्मुकुन्दो द्वारकौकसः। पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमन्दिरम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

श्रीशुक उवाच। बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान्रथमास्थितः ॥ सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥१॥ परिष्वक्तश्चिरात्कण्ठैर्गोपैर्गोपीभिरेव च। रामोऽभिवाद्य पितरावाशीर्भिरभिनन्दितः ॥ २ ॥ चिरं नः पाहि दाशार्ह सानुजो जगदीश्वरः। इत्यारो

और अग्नि जलसे शांत होजाता है परन्तु ब्रह्म द्रव्यरूप काठसे जो अग्नि उत्पन्न होता है वह वंश के मूलतकको जलाडालता है ॥ ३४ ॥ यदि विनासमति किये ब्राह्मण के धनका भोग किया जावे तो तीन पीढियोंका नाश होता है हठात् बल पूर्वक छीनलेने से पहिली और पिछली दश पीढियों का नाशहोता है ॥३५॥ जो ब्राह्मण के धनकी इच्छा करते हैं वे नरकके अभिलाषी होते हैं अतएव ब्राह्मण के धनकी इच्छा वाले मूर्ख राजा राज्यलक्ष्मी समेत पतित होते हैं वे अपनी हानिको नहीं देखते ॥३६॥ दान,शील,कुटुंबी ब्राह्मण की वृत्ति हरण करने पर वह जब रोना आरम्भ करता है तब उसके आंसुओं से जितने रजकण भीगते हैं, निरंकुश ब्रह्मधन हारी राजा और राज परिवार उतनेही वर्षतक कुम्भीपाक नरक में पकाये जाते हैं ॥ ३७–३८ ॥ जो अपना दिया अथवा दूसरे का दिया हुआ ब्राह्मणका धनहरता है वह साठ सहस्र वर्षतक विष्ठाका कीड़ा होकर रहता है ॥३९॥ मेरे घरमें ब्राह्मणका धन न आवे कि जिस धनसे राजा अल्पायु, पराजित, राजच्युत, और अत्यंत दुःखित होते हैं ॥ ४० ॥ हे बंधुबांधवो! ब्राह्मण यदि अपराध भी करे तोभी उसका अनिष्ट नहीं करनाचाहिये। वह यदि वध वा शाप देनाभी प्रवृत्तहो तोभी उनको नित्य नमस्कार करना चाहिये ॥ ४१ ॥ मैं जैसे सावधान चित्तसे प्रत्येक समय ब्राह्मणोंको प्रणाम करता हूं वैसेही तुमको भी करना चाहिये। जो इसके अन्यथा करेंगे मैं उनका दंडदूंगा ॥ ४२ ॥ न जानकरभी जो ब्राह्मण का धनहरते हैं वे नरकमें गिरते हैं। इसही कारण राजानृग गिरगिट होकर पतित हुआथा ॥४३॥ हे राजन्! सर्वलोक के पवित्र करनेवाले भगवान् कृष्णजी द्वारका की प्रजाको सदुपदेश दे अपने घरको गये ॥ ४४ ॥

इतिश्री मद्भा० महापुराणे दशमस्कंधे उ० सरलाभाषाटीकायां चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हेकुरुश्रेष्ठ! भगवान बलभद्रजी बंधुओं के दर्शन करने के निमित्त उत्कंठितहो रथपर बैठ नंदके गोकुल में आये ॥ १ ॥ वहां आकर उत्कंठित हुए गोप गोपियों से मिल पितामाताको वंदनाकी। उन्हों ने आशीर्वाद देकर उनका सम्मान करके कहाकि ॥ २ ॥

ष्योकमालिंग्य नेत्रैः सिषिचतुर्जलैः ॥ ३ ॥ गोपवृद्धांश्च विधिवद्यविष्ठैरभिवन्दितः यथावयो यथासख्यं यथासम्बन्धमात्मनः ॥ ४ ॥ समुपेत्याथ गोपालान्हास्यहस्तग्रहादिभिः । विश्रान्तंसुखमासीनं पप्रच्छुः पर्युपागताः ॥ ५ ॥ पृष्टाश्चानामयंस्वेषु प्रेमगद्गदयागिरा । कृष्णेकमलपत्राक्षे संन्यस्ताखिलराधसः ॥ ६ ॥ कच्चिन्नोबान्धवाराम सर्वेकुशलमासते । कच्चित्स्मरथनोराम यूयंदारसुतान्विताः ॥ ७ ॥ दिष्ट्याकंसोहतःपापो दिष्ट्यामुक्ताःसुहृज्जनाः । निहत्यनिर्जित्य रिपून्दिष्ट्या दुर्गंसमाश्रिताः ॥ ८ ॥ गोप्योहसन्त्यःपप्रच्छू रामसंदर्शनादृताः । कच्चिदास्तेसुखंकृष्णः पुरस्त्रीजनवल्लभः ॥ ९ ॥ कच्चित्स्मरतिवा बन्धून्पितरंमातरंचसः । अप्यसौमातरंद्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति । अपिवास्मरतेऽस्माकमनुसेवां महाभुजः ॥ १० ॥ मातरंपितरं भ्रातृन्पतीन्पुत्रान्स्वसॄरपि । यदर्थेजहिमदाशार्ह दुस्त्यजान्स्वजनान्प्रभो ॥ ११ ॥ तानसद्यःपरित्यज्य गतःसंछिन्नसौहृदः । कथंनुतादृशंस्त्रीभिर्न श्रद्धीयेतभाषितम् ॥ १२ ॥ कथंनुगृह्णन्त्यनवस्थितात्मनो वचःकृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः । गृह्णन्तिवैचित्रकथस्य सुन्दर स्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः ॥१३॥ किंनस्तत्कथयागोप्यः कथाःकथयतापराः । यात्यस्माभिर्विनाकालो यदितस्यतथैवनः ॥१४॥ इतिप्रहसितंशौरेर्जल्पितं चारुवीक्षितम् । गतिंप्रेमपरिष्वंगं स्मरन्त्योरुरुदुःस्त्रियः ॥ १५ ॥ संकर्षणस्ताःकृष्णस्य संदेशैर्हृदयंगमैः । सान्त्वयामास भगवान्नानाऽनु-

हे दाशार्ह ! तुम जगदीश्वर छोटभई सगंत हमारा निरंतर पालन करो । यह कहकर गोदमें ले नेत्रों के जलमे बलदेवजी को भिगोने लगे ॥ ३ ॥ ह पर गोपोंको वन्दनाकर छोटी अवस्थावाले गोपों से पूजित हुए ॥ ४ ॥ समान वयवाले गोपों के सम्बध और बन्धुता के अनुसार हास्य और हस्त ग्रहणादि द्वारा मिल सम्भाषण कर सुखपूर्वक वहाँ बैठ और कुशल पूछा, ॥ ५ ॥ उसकाल सब गोप कि—जिन्होंने श्रीकृष्ण जी के निमित्त समस्त विषयों को छोड़ दियाथा उनके निकट आय चारोंओर बैठगये और बलरामजी से पूछनेलगे कि—६ ॥ हेराम ! हमारे सब बन्धु बांधव कुशल से तो हैं ? तुम दोनोंजन स्त्री पुत्रोंको पाकर क्या कभी हमारा भी स्मरण करतेहो ? ।७॥ अच्छा हुआ कि—कंस मारागया और सब बांधव दुःखसे छूटे । अच्छाहुआ कि—तुमने शत्रुओं को हरा । उनका नाशकर गढका आश्रय लिया ॥ ८ ॥ गोपियें रामको देख आनन्दितहो हसतेर कहने लगीं कि—नगरकी स्त्रियों के प्यारे श्रीकृष्णजी तो सुखसे हैं ॥ ९ ॥ वह क्या कभी पिता माता और बन्धुओं का स्मरण करतेहैं ? वह महाभुज क्या कभी हमारी सेवा का भी स्मरण करतेहैं ॥ १० ॥ हेयदुनन्दन ! हेप्रभो ! हमने उनके निमित्त दुस्त्यज माता, पिता, भाई पति, और बहिन को त्यागदिया ॥ ११ ॥ तो भी वह एकसाथ मित्रताको छोड़ हमें त्यागकर चलेगये वह जोनेसमय जो कहगयेथे उन मनोहर वाक्योंपर कौन स्त्री विश्वास न करै ॥ १२ ॥ दूसरी एक गोपीने कहा कि नगरकी स्त्रियें चतुर होतीहैं वह कृतघ्न और अस्थिर चित्तवाले श्रीकृष्णके वचनों पर कैसे विश्वास करती होंगी ? अथवा श्रीकृष्णकी बातें अति मनोहरहै वहभी उनके सुन्दरहास्य युक्त कटाक्ष विक्षेप द्वारा कामदेवसे पीड़ित और चंचलहो उनकी बातोंपर विश्वास करलेतीहों । ॥ १३ ॥ दूसरी गोपीने कहा कि—हेगोपीगण ! उनकी बातोंसे हमारा क्या प्रयोजन है दूसरी बात कहो यदि हमारे बिना उनका समय व्यतीत होताहै तो हमारा भी उनके बिना समय व्यतीत होताहै ॥ १४ ॥ ऐसी बातें कह वह सब स्त्रियें श्रीकृष्णजीके हास्य विलास बातें करना सुन्दरदृष्टि गति और प्रेमसे मिलने का स्मरणकर रोनेलगीं ॥ १५ ॥ नाना प्रकार के विषयोंकी जानने वाले

नयकोविदः ॥ १६ ॥ द्वौमासौतत्रचावात्सीन्मधुंमाधवमेवच । रामःक्षपासु भगवान्गोपीनां रतिमावहन् ॥ १७ ॥ पूर्णचन्द्रकलामृष्टे कौमुदीगन्धवायुना । यमुनोपवनेरेमे सेवितेस्त्रीगणैर्वृतः ॥ १८ ॥ वरुणप्रेषितादेवी वारुणीवृक्षकोटरात् । पतन्तीतद्वनंसर्वं स्वगन्धेनाध्यवासयत् ॥१९॥ तंगन्धंमधुधाराया वायुनोपहृतंबलः । आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिःसमंपपौ ॥ २० ॥ उपगीयमानचरितो वनिताभिर्हलायुधः । वनेषुव्यचरत्क्षीबो मदविह्वललोचनः ॥ २१ ॥ स्रग्व्येककुण्डलो मत्तो वैजयन्त्याचमालया । बिभ्रत्स्मितमुखाम्भोजं स्वेदप्रालेयभूषितम् ॥ २२ ॥ सआजुहाव यमुनां जलक्रीडार्थमीश्वरः । निजंवाक्यमनादृत्य मत्तइत्यापगांबलः ॥ अनागतां हलाग्रेण कुपितोविचकर्षह ॥ २३ ॥ पापेत्वंमामवज्ञाय यन्नायासिमयाऽऽहुता ॥ नेष्येत्वांलांगलाग्रेण शतधाकामचारिणीम् ॥ २४॥ एवंनिर्भर्त्सिताभीता यमुनायदुनन्दनम् । उवाचचकितावाचं पतितापादयोर्नृप ॥ २५ ॥ रामराममहाबाहो नजाने तवविक्रमम् । यस्यैकांशेन विधृता जगतीजगतःपते ॥ २६ ॥ परंभावंभगवतो भगवन्मामजानतीम् । मोक्तुमर्हसि विश्वात्मन्प्रपन्नां भक्तवत्सल ॥ २७ ॥ ततोव्यमुंचद्यमुनां याचितोभगवान्बलः । विजगाहजलंस्त्रीभिः करेणुभिरिवेभराट् ॥ २८ ॥ कामंविहृत्य सलिलादुत्तीर्णायासिताम्बरे । भूषणानिमहार्हाणि ददौकान्तिःशुभांस्रजम् ॥ २९॥ वसित्वावाससीनीले मालामामुच्यकांचनीम् । रेजेस्वलंकृतोलिप्तो

चिन्हित रामने श्रीकृष्णजी के मनोहर सन्देशों द्वारा उनको सान्त्वना की ॥ १६ ॥ बलदेवजी रात्रि कालमें गोपियोंको रमण कराते हुए चैत्र वैशाख दोमहीने वहां रहे ॥ १७॥ और स्त्रियों से घिरकर पूर्ण चन्द्रमा की किरणों से उज्वल और कमलों की गंधसे सुगंधित हुए वायुसे सेवित यमुना के उपवन में विहार किया ॥ १८ ॥ वारुणी देवी वरुणकी आज्ञासे वृक्षोंकी खोहसे पृथ्वी पर पड़ने लगी उसकी सुगंध से समस्त वन सुगंधित होगया ॥ १९ ॥ बलदेवजी ने उस मधुकी धाराकी सुगंधको चलती हुई वायुसे सूंघ वहांजाय स्त्रियों समेत उसका पानकिया ॥ २० ॥ बलदेवजी के नेत्र मदसे विह्वल होगये और उन्मत्तहो वनमें भ्रमण करनेलगे। सबस्त्रियें उनके चरित्रों को गानेलगीं ॥ २१ ॥ हे राजन् ! बलदेवजी के गलेमें वैजयन्ती माला और कानमें एक कुण्डल शोभित होरहा है । हास्य युक्त मुख कमल पसीने के बिंदुरूप हिमकरण से भीगा हुआ है ॥२२॥ उन्होंने मदोन्मत्तहो जलक्रीडा करने के निमित्त यमुना को बुलाया परन्तु यमुना न आई । इससे उन्होंने विचारा कि मैं मत्तहूं इस कारण यमुना ने मेरे वचनों का तिरस्कार किया है । बलदेवजी यह विचारकर कुपितहो हलके अग्र से यमुना को खींचकर कहनेलगे ॥ २३ ॥ अरेदुष्टा ! मैंने तुझे बुलाया परन्तु तू मेरा तिरस्कारकरके न आई, तू अपनी इच्छानुसार कार्य करती है; अतएव हलके अग्रभागसे तेरी सौ धाराएं किये देताहूं ॥ २४ ॥ हेराजन् ! इसप्रकार से तिरस्कार करने पर भयभीत यमुना चकितहोकर कांपतीहुई बलदेवजी के चरणों पर गिरकर कहने लगी कि—हेराम ! हेमहाबाहो ! मुझे आपका पराक्रम नहीं ज्ञातथा—हेजगत्पते ! आपके एक अंश से पृथ्वी धारण कीजाती है ॥ २६ ॥ हेभगवन् ! मैं आपकी अपारमहिमा को नहीं जानती। हेविश्वात्मन् ! हेभक्तवत्सल ! मुझ शरण में आई हुईको आप छोड़दो ॥ २७॥ यमुना के इसप्रकारकहने पर बलदेवजी ने उसको छोड़ दिया और हाथिनियों समेत हाथी की समान स्त्रियों समेत जल में उतरे ॥ २८ ॥ वह इच्छानुसार जल में विहार करके बाहर निकले, लक्ष्मीजी ने उनको नीलवस्त्र और आभूषण और कल्याणकारी मालादी ॥ २९ ॥ बलरामजी भी नीलवस्त्र व आभूषण और

माहेन्द्रइववारणः ॥ ३० ॥ अद्यापिदृश्यते राजन्यमुनाकृष्टवर्त्मना । बलस्यानन्तवीर्यस्य वीर्यंसूचयतीवहि ॥ ३१ ॥ एवंसर्वानिशायाता एकेवरमतोव्रजे । रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥ ३२ ॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे दशा० उ० पंचषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ नन्दव्रजंगतेरामे करूषाधिपतिर्नृप । वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतंकृष्णायप्राहिणोत् ॥ १ ॥ त्वंवासुदेवोभगवानवतीर्णो जगत्पतिः । इतिप्रस्तोभितोबालैर्मेनआत्मानमच्युतम् ॥ २ ॥ दूतंचप्राहिणोन्मन्दः कृष्णायाव्यक्तवर्त्मने । द्वारकायांयथाबालोनृपो बालकृतोऽबुधः ॥ ३ ॥ दूतस्तुद्वारकामेत्यसभायामास्थितंप्रभुम् । कृष्णंकमलपत्राक्षं राजसन्देशमब्रवीत् ॥ ४ ॥ वासुदेवोऽवतीर्णोहमेकएवनचापरः । भूतानामनुकम्पार्थंत्वंतुमिथ्याऽभिधांत्यज ॥५॥ यानित्वमस्मच्चिह्नानिमौढ्याद्बिभर्षिसात्वत त्यक्त्वैहिमांत्वंशरणंनोचेद्देहिममाहवम् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कत्थनंतदुपाकर्ण्यपौण्ड्रकस्याल्पमेधसः ॥ उग्रसेनादयः सभ्याउच्चकैर्जहसुस्तदा ॥ ७ ॥ उवाचदूतंभगवान्परिहासकथामनु । उत्स्रक्ष्येमूढचिह्नानियैस्त्वमेवं विकत्थसे ॥ ८ ॥ मुखंतदपिधायाज्ञकङ्कगृध्रवटैर्वृतः । शयिष्यसेहतस्तत्र भवितांशरणंशुनाम् ॥ ९ ॥ इतिदूतस्तदाक्षेपंस्वामिनेसर्वमाहरत् । कृष्णोऽपिरथमास्थायकाशीमुपजगामह ॥ १० ॥ पौण्ड्रकोपितदुद्योगमुपलभ्यमहारथः । अक्षौ

सुवर्ण की मालाधारणकर भली भांति से अलंकृत और चन्दनसे लिप्तहो इन्द्र के हाथीकी समान शोभा पानेलगे ॥ ३० ॥ हेमहाराज ! बलदेवजी ने जो यमुनाजी को खींचा इससे उस स्थानपर यमुनाजी टेढी होकर अबतक उनके पराक्रम को प्रगटकरती हैं ॥३१ ॥ इसप्रकार से व्रजनारियों के मधुर विलासद्वारा उन्मत्त चित्तहो बलदेवजी ने उनके साथ रमण किया वह सब रात्रियें एक रात्रि के समान बीत गईं ॥ ३२ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधउ•सरलाभाषाटीकायांपञ्चषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हेराजन् ! बलराम जी के नद व्रजमें चले जानेके कुछ दिनोंके उपरा॰ करूष देशके राजा अज्ञानान्ध पौंड्रकने "मैं वासुदेव हूं" ऐसा कह श्रीकृष्णजी के निकट दूत ॥ १ ॥ मूर्ख मनुष्यों के "आप भगवान जगत्पति वासुदेवहो पृथ्वीपर आप अवतीर्ण हुएहो" यह कहने पर वह बहक कर अपनेको वासुदेवही समझने लगा ॥ २ ॥ और खेलके समय बालकों से बनाये हुए कल्पित बालक राजाकी समान उस मूर्ख मद बुद्धिने द्वारका में भगवान के निकट दूतभी भेजदिया ॥ ३ ॥ दूत द्वारकामें आय सभामें उपस्थित हुआ और वहां बैठेहुए कमल नत्र श्रीकृष्णजी से अपने राजाका संदेशा कहने लगा ॥४॥ मैंही एक वासुदेवजी हूं दूसरा कोई नहीं है; प्राणियों पर दया प्रकाश करने के निमित्तही मैंने अवतार लिया है मिथ्या 'वासुदेव' इस नामको छोड़ ॥ ५ ॥ हे यादव ! तूने मूर्खता वश मेरे जिन चिन्होंको धारण किया है उन सबको छोड़ मेरे निकट आयमेरी शरणले; नहीं तो मेरेसाथ युद्धकर ॥६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हेराजन् ! उग्र सेनादि सभासद उस अल्पबुद्धि पौंड्रककी ऐसी बातोंको सुनकर उच्चस्वर से हँस उठे ॥ ७ ॥ भगवान ने हंसकर उस दूतसे कहा—रेमूढ़ ! जिनकी सहायता से तू ऐसी बड़ाई करता है मैं उन सब सुदर्शनादि चिह्नों को छुड़ायदूंगा ॥ ८ ॥ तू जिसमुखसे बकता है उस मुख को ढककर समर में सोवेगा, कंक, गीध और बट पक्षी तुझको घेरेंगे उस स्थान मैं तू कुत्तों का आश्रयहोगा ॥ ९ ॥ उस दूत ने इनसब वाक्यों को स्वामी से जाकरकहा । श्रीकृष्णजी भी रथपर बैठकर काशी को चले ॥ १० ॥ महारथ पौंड्रकभी श्रीकृष्णजी के इस उद्योग को देख दो अक्षौहिणी

हिणीभ्यां संयुक्तो निश्चक्राम पुराद्द्रुतम् ॥ ११ ॥ तस्य काशिपतिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोऽन्वयान्नृप । अक्षौहिणीभिस्तिसृभिरपश्यत्पौण्ड्रकं हरिः ॥ १२ ॥ शंखार्यसिगदाशार्ङ्गश्रीवत्साद्युपलक्षितम् । बिभ्राणं कौस्तुभमणिं वनमालाविभूषितम् ॥ १३ ॥ कौशेयवाससी पीते वसानं गरुडध्वजम् । अमूल्यमौल्याभरणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा तमात्मनस्तुल्यवेषं कृत्रिममास्थितम् ॥ यथा नटं रङ्गगतं विजहास भृशं हरिः ॥ १५ ॥ शूलैर्गदाभिः परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः । असिभिः पट्टिशैर्बाणैः प्राहरन्नरयो हरिम् ॥ १६ ॥ कृष्णस्तु तत्पौण्ड्रककाशिराजयोर्बलं गजस्यन्दनवाजिपत्तिमत् । गदासिचक्रेषुभिरार्दयद्भृशं यथा युगान्ते हुतभुक्पृथक्प्रजाः ॥ १७ ॥ आयोधनं तद्रथवाजिकुञ्जरद्विपत्खरोष्ट्रैररिणाऽवखण्डितैः । बभौ चितं मोदवहं मनस्विना माक्रीडनं भूतपतेरिवोल्बणम् । ॥ १८ ॥ अथाह पौण्ड्रकं शौरिर्भो भोः पौण्ड्रक यद्भवान् । दूतवाक्येन मामाह तान्यस्त्राण्युत्सृजामि ते ॥ १९ ॥ त्याजयिष्येऽभिधानं मे यत्त्वयाज्ञ मृषा धृतम् । व्रजामि शरणं तेऽद्य यदि नेच्छामि संयुगम् ॥ २० ॥ इति क्षिप्त्वा शितैर्बाणैर्विरथीकृत्य पौण्ड्रकम् । शिरोऽवृश्चद्रथाङ्गेन वज्रेणेन्द्रो यथा गिरेः ॥ २१ ॥ तथा काशिपतेः कायाच्छिर उत्कृत्य पत्रिभिः । न्यपातयत्काशिपुर्यां पद्मकोशमिवानिलः ॥ २२ ॥ एवं मत्सरिणं हत्वा पौण्ड्रकं ससखं हरिः । द्वारकामाविशत्सिद्धैर्गीयमानकथामृतः ॥ २३ ॥ स नित्यं भगवद्ध्यानप्रध्वस्ताखिलबन्धनः । बिभ्राणश्च हरे राजन्स्वरूपं तन्मयोऽभवत् ॥ २४ ॥ शिरः पतितमालोक्य राजद्वारे सकुण्ड-

सेनाले शीघ्र नगर से बाहर हुआ ॥ ११ ॥ हे राजन् ! उसका मित्र काशिराजभी तीन अक्षौहिणी सेनाले उसकी सहायता के निमित्त वहां आया हरिने देखा कि— ॥ १२ ॥ पौंड्रक शंख, श्रेष्ठ खड्ग, गदा, धनुष और श्रीवत्स चिह्नोंसे चिह्नित कौस्तुभ व वनमालाको धारण कियेहुए है ॥ १३ ॥ पीताम्बर व उत्तरीय वस्त्रों और सुन्दर आभूषणों से अलंकृत है । उसके कानों में मकराकार्त कुण्डल शोभायमान हैं ॥ १४ ॥ रेशमी वस्त्र धारण कियेहुए वह कृत्रिम गरुड़ की पीठपर बैठाहै । रंगभूमि के नटकीसमानकृत्रिम वेशधारी उस पौंड्रक को अपनावेश बनाएहुए देख भगवान् बहुत हँसे ॥ १५ ॥ शत्रु, शूल, गदा, परिघ, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, तोमर, खड्ग, पट्टिश और बाणों से भगवान पर प्रहार करने लगे ॥ १६ ॥ प्रलयकाल की अग्नि जैसे सबप्रजा का संहार करती है, वैसही श्रीकृष्णजी गदा, खड्ग, चक्र, और बाणों द्वारा पौंड्रक और काशिराजकीचतुरङ्गिणी सेना का नाश करने लगे ॥ १७ ॥ रणभूमि चक्र से टुकडे २ हुए रथ, अश्व, हाथीऔर पैदलों से व्याप्तहोगई वीर पुरुषों की वीरताको बढानेवाली वह रणभूमि प्रलयकालके रुद्रकेरणस्थल की समान शोभा पाने लगी ॥ १८ ॥ अनन्तर भगवान ने पौंड्रक से कहा अरे पौंड्रक ! दूतके मुख से जो तूने मुझे कहला भेजाथा वे शस्त्र अब तुम्हारही छोड़ताहूं ॥ १९ ॥ रेमूर्ख ! जो तूने मेरा झूठानाम धर लिया है वह अभी छुडावूंगा यदि मैं युद्ध न चाहता होऊं तो तेरी शरण आऊं ॥ २० ॥ यह कहकर इंद्र जैसे वज्रद्वारा पर्वत को काटते हैं तैसेही कृष्णजी ने बाणों से पौंड्रक को रथहीन कर उसका शिर काटडाला ॥ २१ ॥ और इसी प्रकार बाणोंद्वारा काशिराज कीभी देह से मस्तक को काट, वायु से चलायमान कमलपत्र की समान काशीपुरी में फेकदिया ॥ २२ ॥ श्रीहरि इसप्रकार से गर्वित पौंड्रक को उस के मित्रसमेत मार आप द्वारका में आये । सिद्धगण उनकी अमृत कथाका गानकरने लगे ॥ २३ ॥ हे राजन् ! पौंड्रक विद्वेष के कारण सर्वदाही भगवान का ध्यानकरता रहताथा अतएव उसके सब बन्धन कटगये ॥ २४ ॥ इधर काशीपुरीके राज

लम् । किमिदंकस्यवावक्त्रमितिसंशयिरेजनाः ॥ २५ ॥ राज्ञःकाशिपतेर्ज्ञात्वाम-
हिष्यःपुत्रबान्धवाः । पौराश्चहाहतराजन्नाथनाथेतिप्रारुदन् ॥ २६ ॥ सुदक्षिणस्त
स्यसुतःकृत्वासंस्थाविधिंपितुः । निहत्यपितृहंतारंयास्याम्यपचितिंपितुः ॥ २७ ॥
इत्यात्मनाऽभिसंधायसोपाध्यायोमहेश्वरम् । सुदक्षिणोऽर्चयामासपरमेणसमाधि
ना ॥ २८ ॥ प्रीतोविमुक्तोभगवांस्तस्मैवरमदाद्विभुः । पितृहन्तृवधोपायंसवव्रेवर-
मीप्सितम् ॥ २९ ॥ दक्षिणाग्निंपरिचरब्राह्मणैःसममृत्विजम् । अभिचारविधानेन
सचाग्निःप्रमथैर्वृतः ॥ ३० ॥ साधयिष्यतिसङ्कल्पमब्रह्मण्ये प्रयोजितः । इत्यादिष्ट
स्तथाचक्रे कृष्णायाभिचरन्व्रती ॥ ३१ ॥ ततोऽग्निरुत्थितःकुण्डान्मूर्तिमानतिभी·
षणः । तप्तताम्रशिखाश्मश्रुरङ्गारोद्गारिलोचनः ॥ ३२ ॥ दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीदण्डकठो-
रास्यः स्वजिह्वया । आलिहन्सृक्विणीनग्नोविधुन्वंस्त्रिशिखंज्वलत् ॥ ३३ ॥ पद्भ्यां
तालप्रमाणाभ्यांकम्पयन्नवनीतलम् । सोऽभ्यधावद्वृतोभूतैर्द्वारकांप्रदहन्दिशः ॥
॥३४॥तमाभिचारदहनमायान्तंद्वारकौकसः। विलोक्यतत्रसुःसर्वेवनदाहेमृगायथा
॥३५॥अक्षैःसभायांक्रीडन्तंभगवंतं भयातुराः । त्राहित्राहित्रिलोकेशवह्नेःप्रदह्यतः
पुरम् ॥ ३६ ॥ श्रुत्वातज्जनवैक्लव्यंदृष्ट्वास्वानांचसाध्वसम् । शरण्यःसंप्रहस्याह
मामैष्टेत्यवितास्म्यहम् ॥ ३७ ॥ सर्वस्यान्तर्बहिःसाक्षीकृत्यांमाहेश्वरींविभुः । वि
ज्ञायतद्विघातार्थं पार्श्वस्थंचक्रमादिशत् ॥३८॥ तत्सूर्यकोटिप्रतिमंसुदर्शनं जाज्व

भवन के द्वारमें गिरेहुए कुण्डलों समेत शिरको देखकर मनुष्य " यह क्या ! किसका शिर है? " इसका विचार करने लगे ॥ २५ ॥ परन्तु फिर काशीपति का शिर जानकर राजरानियें,पुत्र,बांधव, गण और सबप्रजा " हा ! मरगये, हाराजन् ! हानाथ ! हानाथ ! ऐसे कहकर ऊंचे स्वरसे रोने लगे ॥ २६ ॥ अनन्तर राजा के पुत्र सुदक्षिण ने पिता की मृतक क्रिया करके प्रण किया कि— पिता के मारनवाले को मारकर पिताके ऋण से मुक्तहूगा । यह निश्चयकर वह उपाध्यायों समेत परम समाधि योगसे महादेवजी की पूजाकरने लगा ॥ २७ । २८ ॥ भगवान महादेवजी प्रसन्न हो उससे कहने लगे कि " वरमांग " । उसने पिता के मारनेवाले के बधका उपायरूप वरमांगा ॥ २९ ॥ महादेवजी ने कहा कि—ब्राह्मणों के साथ अभिचार के विधानानुसार ऋत्विक् के समान दक्षिणाग्नि की उपासना करो । ऐसा होनेसे वह अग्नि हिंसाकार्यमें नियुक्तहो-प्रमथ गणोंसे घिर कर तुम्हारा कार्य पूरा करेगा । सुदक्षिण ने यह आज्ञा पाय नियम धारणकर श्रीकृष्णजी पर अभिचार करने को वैसेही किया ॥ ३० । ३१ ॥ अनन्तर अति भयानक अग्नि मूर्तिमानहो कुण्ड से बाहरनिकला । उसकी शिखा और डाढी मूंछ तपेहुए तांबे की समानथे और दोनों नेत्रों से अङ्गार निकलतेथे ॥ ३२ ॥ डाढ और प्रचण्ड भौंहों द्वारा मुख अत्यन्त भयानक होरहाथा । यह अग्नि अपनी जिह्वा से दोनों गलफड़ों को चाटता, ताड़की समान दीर्घ दोनों पैरों से पृथिवीको कंपाता, दिशाओं को जलाता, प्रमथगण के साथ नग्नवेश से प्रकाशमान होताहुआ द्वारका के सम्मुख दौडा- ॥ ३३ । ३४ ॥ अभिचार कार्य से उत्पन्न हुई इस भयानक अग्निको आतादेख वन जलने के समय पशुओं की समान द्वारकावासी व्याकुल होगए ॥ ३५ ॥ भगवान उस समय में चौपड़खेलरहेथे । सबप्रजा उनकी शरण में हो, भयभीतहो कातरस्वर से भगवान से कहने लगी—हे त्रिलोकनाथ ! नगर अग्नि से दग्ध होता है; रक्षाकरो ॥ ३६॥ श्रीकृष्णजी प्रजाकी सब- व्याकुलता को सुन और सुहृदों को भयभीत देख हँसकर कहनेलगे " भय न करो मैं तुम्हारी रक्षाकरताहू ॥ ३७ ॥सबके अन्तर और बाहरके साक्षी भगवान ने उस अग्निको माहेश्वरीअग्नि जान उसके नाश करने के निमित्त निकट में रहेहुएचक्र को आज्ञाकी ॥३८॥ श्रीकृष्णजी के उस

प्रथमानं प्रलयानलप्रभम्। स्वतेजसाखं ककुभोऽथ रोदसीचक्रं मुकुन्दास्त्रमथाग्नि मार्दयत्॥ ३९॥ कृत्यानलः प्रतिहतः सरथांगपाणेरस्त्रौजसा सनृपभग्नमुखो निवृत्तः। वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तं सर्त्विग्जनं समदहत्स्वकृतोऽभिचारः॥४०॥ चक्रंचविष्णोस्तदनुप्रविष्टं वाराणसींसाट्टसभालयापणाम्। सगोपुराट्टालककोष्ठसंकुलां सकोशहस्त्यश्वरथान्नशालाम्॥ ४१॥ दग्ध्वावाराणसींसर्वां विष्णोश्चक्रंसुदर्शनम्। भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत्कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः॥ ४२॥ यएनंश्रावयेन्मर्त्य उत्तमश्लोकविक्रमम्। समाहितोवाशृणुयात्सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ४३॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० षट्षष्टितमोऽध्यायः॥ ६६॥

राजोवाच। भूयोऽहंश्रोतुमिच्छामि रामस्याद्भुतकर्मणः॥ अनन्तस्याप्रमेयस्य यदन्यत्कृतवान्प्रभुः॥ १॥ श्रीशुकउवाच। नरकस्यसखा कश्चिद्द्विविदोनामवानरः। सुग्रीवसचिवःसोऽथ भ्रातामैन्दस्य वीर्यवान्॥ २॥ सख्युःसोऽपचितिंकुर्वन्वानरो राष्ट्रविप्लवम्। पुरग्रामाकरान्घोषानदहद्वह्निमुत्सृजन्॥ ३॥ क्वचित्सशैलानुत्पाट्य तैर्देशान्समचूर्णयत्। आनर्तान्सुतरामेव यत्रास्तेमित्रहाहरिः॥४॥ क्वचित्समुद्रमध्यस्थो दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तज्जलम्। देशान्नागायुतप्राणो वेलाकूलानमज्जयत्॥ ५॥ आश्रमानृषिमुख्यानां कृत्वाभग्नवनस्पतीन्। अदूषयच्छकृन्मूत्रैरग्नीन्वैतानिकान्खलः॥ ६॥ पुरुषान्योषितोदृप्तः क्ष्माभृद्द्रोणीगुहासुसः। निक्षिप्यचाप्यधाच्छैलैः पेशस्कारीवकीटकम्॥७॥ एवंदेशान्विप्रकुर्वन्दूषयंश्च कुलस्त्रियः। श्रुत्वासुललितंगीतं गिरिंरैवतकंययौ॥ ८॥ तत्रापश्यद्यदुपतिंराम पुष्करमा

कोटिसूर्य को समान प्रकाशित सुदर्शनचक्र ने प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रज्वलितहो अपने तेज से आकाश, दिशा और अन्तरिक्षको प्रकाशितकर उस अग्निको बहुत पीडित किया॥३९॥ हे राजन्! उस कृत्याग्नि ने भगवान के अस्त्र के तेज से दुःखितहो वहां से लौटकर काशी में आय सुदक्षिण का ऋत्विक् और सभासदों समेत जलाडाला॥ ४०॥ विष्णुजी का चक्र भी अग्नि के पीछे २ जाय अटारी, सभामंडप, महलों, छज्जों और कोठों से व्याप्त कोषशाला, हाथीशाला, अश्वशाला और अन्नशाला से शोभायमान वाराणसी में प्रवेश कर समस्त काशीकोजलाय फिर श्रीकृष्णजी के समीप आय उपस्थितहुआ॥ ४१। ४२॥ हेराजन्! जोमनुष्य सावधानहो श्रीकृष्णजी के इस पराक्रम को सुने वा सुनावेगा वह सबपापों से छूटजावेगा॥ ४३॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम० उ० सरलाभाषाटीकायांषट्षष्टितमोऽध्यायः॥ ६६॥

राजानेकहाकि—हे ब्रह्मन्! अद्भुत कर्मा, अनंत, अप्रमेय बलरामजी ने और भी जो २ कर्म कियेथे, मैं उन सब पराक्रमोंको सुनने की इच्छा करताहूं॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन्! सुग्रीवका मन्त्री और मैंदका भाई पराक्रमी द्विविद नामक एक वानर भौमासुरका सखाथा॥२॥ वह वानर मित्रका बदला लेनेके निमित्त उत्पात करनेकी इच्छासे अग्नि लगाय २ गौशाला, नगर, गांव और घोषोंको जलाने लगा॥ ३॥ दशसहस्र हाथियों की सामन बलवाला वह वानर पहाडों के शिखरोंको उखाडकर प्रदेशोंको विशेषकर भगवान के निवास स्थानोंको चूर्ण करनेलगा॥४॥ कभी समुद्रमें बैठ दोनों हाथोंसे जलको उछाल २ किनारे के देशोंको डुबोता था। दुष्ट द्विविद श्रेष्ठ ऋषियों के आश्रमो के वृक्षोंको उखाड २ विष्ठा, और मूत्र कर २ के उनकी पूजाकी सामग्रीको दूषित करने लगा॥ ५—६॥ भौंरा जैसे दूसरे कीडोंको पकड अपने घरमें बदकर रखता है वैसेही वह अभिमानी वानर भी स्त्री पुरुषोंको पर्वतकी गुफामें डाल पत्थर से उनको बंदकर देता था॥ ७॥ इसप्रकार से सब देशोंमें उत्पात करता, कुलस्त्रियोंको दूषित करता २ वह बंदर एक समय सुंदर गीतसुन रैवतक पर्वत पर जहां बलदेवजी थे वहां आया॥ ८॥ उसने वहां आकर

लिनम् । सुदर्शनीयसर्वांगं ललनायूथमध्यगम् ॥ ९ ॥ गायन्तंवारुणीपीत्वा मद-विह्वललोचनम् । विभ्राजमानंवपुषा प्रभिन्नमिववारणम् ॥१०॥ दुष्टः शाखामृगः शाखामारूढः कम्पयन्द्रुमान् । चक्रे किलकिलाशब्दमात्मानं संप्रदर्शयन् ॥ ११ ॥ तस्यधार्ष्ट्यंकपेर्वीक्ष्य तरुण्योजातिचापलाः।हास्यप्रियाविजहसुर्बलदेवपरिग्रहाः ॥ १२ ॥ ताहेलयामासकपिर्भ्रूक्षेपैः सम्मुखादिभिः । दर्शयन्स्वगुदंतासां रामस्य चनिरीक्षतः ॥ १३ ॥ तंग्राव्णाप्राहरत्क्रुद्धो बलःप्रहरतांवरः । सवंचयित्वाग्रावाणं मदिराकलशंकपिः ॥ १४ ॥ गृहीत्वाहेलयामास धूर्तस्तंकोपयन्हसन् । निर्भिद्यक लशंदुष्टो वासांस्यास्फालयद्बलम् ॥ १५ ॥ कदर्थीकृत्य बलवान्विप्रचक्रेमदोद्धतः । तंतस्याविनयंदृष्ट्वा देशांश्चतदुपद्रुतान् । क्रुद्धोमुसलमादत्त हलंचारिजिघांसया ॥ १६ ॥ द्विविदोऽपि महावीर्यः शालमुद्यम्य पाणिना । अभ्येत्यतरसातेन बलं मूर्धन्यताडयत् ॥ १७ ॥ तंतुसंकर्षणोमूर्ध्नि पतन्तमचलोयथा । प्रतिजग्राह बलवा-न्सुनन्देनाहनच्चतम् ॥ १८ ॥ मुसलाहतमस्तिष्को विरेजेरक्तधारया ॥ गिरिर्यथा गैरिकया प्रहारं नानुचिन्तयन् ॥ १९ ॥ पुनरन्यंसमुत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्रमोजसा ॥ तेनाहनत्सुसंक्रुद्धस्त बलःशतधाऽच्छिनत् ॥ २० ॥ ततोऽन्येनरुषाजघ्ने तंचापिशतधाऽच्छिनत् । एवंयुध्यन्भगवता भग्नेभग्नेपुनःपुनः ॥ २१ ॥ आकृष्यसर्वतो वृ-क्षान्निर्वृक्षमकरोद्वनम् । ततोऽमुंचच्छिलावर्षं बलस्योपर्यमर्षितः । तत्सर्वंचूर्णया-मास लीलयामुसलायुधः ॥ २२ ॥ सबाहूतालसंकाशौ मुष्टीकृत्यकपीश्वरः । आ-साद्यरोहिणीपुत्रं ताभ्यांवक्षस्यरूरुजत् ॥ २३ ॥ यादवेन्द्रोऽपिसंत्यज्य दोर्भ्यां त्यक्त्वामु-

---

देखाकि बलदेवजी के गलेमें वनमाला पड़ीहुई है उनके सब अंग देखने में अति सुंदर हैं । वह स्त्रियों के बीचमें बैठ ॥ ९ ॥ वारुणी को पी मदसे विह्वल नेत्रहो गानकर रहे हैं । शरीर के देखने से जानपड़ता है कि यह एक मत्तहाथी हैं ॥ १० ॥ वह दुष्ट बन्दर डालियोंपर बैठ वृक्षोंको हिला२ कर किलकिला शब्द करने लगा ॥ ११ ॥ चंचल स्वभाव वाली, हास्यही जिनको प्रिय है ऐसी बलदेवजी की स्त्रियें उस कपिकी ढिठाईको देख हसने लगीं ॥ १२ ॥ वह कपि बलरामजी के समाने ही; अपनी गुदाको दिखाय, भौंहेचलाय, मुख टढाकर उन स्त्रियोंका बारबार अनादर करने लगा ॥ १३ ॥ वीरश्रेष्ठ रामने क्रोधित होकर उसपर पत्थरका टुकडाफेंका वह दुष्ट बानर पत्थर के टु-कड़ेको बचाय मदिरा का कलश ले दूरजाय हास्यादि से बलदेवजी को क्रोध उत्पन्न कराय हंसने लगा । उस दुष्टने इस परभी शांत न हो मदिराका कलस फोड़डाला वह स्त्रियों के वस्त्र खींचकर फाड़ने लगा तथा नाना कुकर्म कर २ के उसने बलदेवजी के साथ बैरबांधा ॥ १४-१५-१६ ॥ बलदेवजी उस बानर की दुष्टताको देखकर क्रोधित होगये और शत्रुके मारने के निमित्त उन्हों ने हल मूसलको उठाया ॥ १७ ॥ महा पराक्रमी द्विविदने हाथों से शाल वृक्षको उखाड़ निकट आय बलपूर्वक बलदेवजी के शिरपर उसका प्रहार किया ॥ १८ ॥ बलरामजी पहाड़ की समान अचल खड़ेरहे और मस्तक पर गिरते समय उस वृक्षको पकड़ मूसल से उस बानर पर प्रहार किया ॥ १९ ॥ वह बानर मूसल के प्रहारको कुछ न गिन, गेरूकी धारा से शोभायमान पहाड़ की समान रुधिरकी धारासे शोभापाने लगा ॥ २० ॥ उस बानरने फिर दूसरी बारभी अत्यत क्रोधितहो बलपूर्वक वृक्षको उखाड और उसके पत्तेनोच उसका बलदेवजीपर प्रहार किया । ब-लरामजी ने उस वृक्षके सौटूकडे करडाले॥२१॥बानरने और भी एक वृक्षका प्रहारकिया, हलधर ने उसके भी सौटुकड़े करडाले । बानर ने इस प्रकार से युद्ध कर२ वृक्षों के टूटने से बनमें से वृक्ष लाय २ उस बनको निर्वृक्ष करदिया ॥ २२ ॥ अंतमें क्रोधितहो वह बलदेवजी के ऊपर पत्थर बर-साने लगा । रामने सहज सेही उन सबका चूर्णकरदिया ॥ २३ ॥ कपिराजने तालकी समान दोनों

सकलांगले । जत्रावभ्यर्दयत्क्रुद्धः सोऽपतद्रुधिरं वमन् ॥ २४ ॥ चकम्पेतेन पतता
सटंकःसवनस्पतिः । पर्वतःकुरुशार्दूलवायुना नौरिवाम्भसि ॥ २५ ॥ जयशब्दो
नमःशब्दः साधुसाध्वितिचाम्बरे । सुरसिद्धमुनीन्द्राणामासीत्कुसुमवर्षिणाम् ॥२६॥
एवंनिहत्यद्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् । संस्तूयमानो भगवाञ्जनैःस्वपुरमाविशत्

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ दुर्योधनसुतांराजँल्लक्ष्मणांसमितिञ्जयः । स्वयंवरस्थाम
हरत्साम्बोजाम्बवतीसुतः ॥ १ ॥ कौरवाः कुपिताऊचुर्दुर्विनीतोऽयमर्भकः । कद
र्थीकृत्यनः कन्यामकामामहरद्बलात् ॥ २ ॥ बध्नीतेमंदुर्विनीतंकिंकरिष्यन्तिवृष्णयः
येऽस्मत्प्रसादोपचितांदत्तांनोभुञ्जतेमहीम् ॥ ३ ॥ निगृहीतंसुतंश्रुत्वायद्येष्यन्तीह
वृष्णयः । भग्नदर्पाः शमंयान्तिप्राणाइवसुसंयताः ॥ ४ ॥ इतिकर्णः शलोभूरिर्यज्ञ
केतुः सुयोधनः । साम्बमारेभिरेबद्धुंकुरुवृद्धानुमोदिताः ॥ ५ ॥ दृष्ट्वाऽनुधावतः
साम्बोधार्तराष्ट्रान्महारथः । प्रगृह्यरुचिरंचापंतस्थौसिंहइवैकलः ॥ ६ ॥ तंतेजिघृ
क्षवः क्रुद्धास्तिष्ठतिष्ठेतिभाषिणः । आसाद्यधन्विनोबाणैः कर्णाग्रण्यःसमाकिरन्
॥ ७ ॥ सोऽपविद्धः कुरुश्रेष्ठकुरुभिर्यदुनन्दनः । नामृष्यत्तदचिन्त्यार्भःसिंहःक्षुद्र
मृगैरिव ॥ ८ ॥ विस्फूर्ज्यरुचिरंचापंसर्वान्विव्याधसायकैः । कर्णादीन्षड्रथान्वीर
स्तावद्भिर्युगपत्पृथक् ॥ ९ ॥ चतुर्भिश्चतुरोवाहानेकैकेनचसारथीन् । रथिनश्चमहे

भुजाओं की मुट्ठीबांध बलरामजी के निकट आय उनकी छातीपर प्रहार किया ॥ २४ ॥ भगवान
बलरामजी ने क्रोधितहो हल मूसलको छोड उसकी दोनों हंसलियों पर दोनों मुठियोंका प्रहारकिया
वहरक्त उगलता हुआ पृथ्वीपर गिरगया ॥ २५ ॥ हे राजन् ! उसके गिरने से समुद्र मे वायुसे
कांपते हुए जहाज की समान उस पर्वतके वृक्ष और वनस्पतियें कांपउठीं ॥ २६ ॥ आकाश से
देवतागण फूल बरसानेलगे तथा सिद्ध और मुनि "जय जय" कर "साधु साधु" कहनेलगे ॥२७॥
हे राजन् ! भगवान बलभद्रजी संसार में उत्पात करने वाले द्विविदको इस प्रकार से मार अपने
नगर में आये, देवता उनकी स्तुति करनेलगे ॥ २८ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! इन सब घटनाओंके उपरांत दुर्योधन की पुत्री ल-
क्ष्मणाका स्वयम्बर हुआ जाम्बवती के पुत्र युद्ध विजयी साम्बने स्वयम्बरमेंसे उसका हरण किया,
॥ १ ॥ तब कौरवों ने कुपित होकर कहा, कि—इस दुष्ट बालकने हमारी कन्या की इच्छा न
रहतेहुए भी उसका बलपूर्वक हरण कियाहै ॥ इस दुष्टको मारडालो यदुवंशी क्या करेंगे वे ह-
मारे दियेहुए राज्य का भोग करतेहैं वे स्वयं राजा नहीं हैं हमारीही कृपा से उस राज्यका एश्वर्य
बढ़गयाहै ॥ ३ ॥ पुत्रको मराहुआ सुनकर यदि वृष्णिगण आवेंगे तो प्राणायामादिसे दमन की
हुई इन्द्रियों की समान वह भी अहंकार रहित होकर बालककीसी दशाको प्राप्तहोंगे ॥ ४ ॥ कुरु
वृद्ध भीष्मने भी इसको स्वीकार किया । अनन्तर कर्ण, शल्य, भूरि यज्ञकेतु और दुर्योधन भीष्म
के संगहो साम्बको बांधने के निमित्त उसके पीछे २ दौड़े ॥५॥ धृतराष्ट्र के पुत्रोंको दौड़ताहुआ
आता देख महाबली सांब सुन्दर धनुषको ग्रहणकर सिंहकी समान अकेलाही खड़ा होगया ॥६॥
कुरुनन्दन उसके पकडनेकी इच्छाकर सावधानहो खड़ारह २ कह उसके निकट आए और धनुष
के बाणोंसे उसपर प्रहार किया । कर्ण उनका सेनापति हुआ, ॥ ७ ॥ हेकुरुश्रेष्ठ ! उन अचिन्त्य
पुरुष भगवान.का बालक साम्ब अत्यन्त क्रोधितहो उनका सहन ऐसे न करसका कि—जैसे सिंह
तुच्छ मृगोंके प्रहार का सहन न करसके ॥ ८ ॥ उस वीरने सुन्दर धनुष चढ़ाय कर्णादि छै र-
थियों को पृथक् २ छै २ बाणोंसे बेधा ॥ ९ ॥ महा धनुषधारी सब रथियोंका भी उसने इसप्र-

श्वाश्वांस्तस्यततेऽभ्यपूजयन् ॥ १० ॥ तंतुतेविरथंचक्रुश्चत्वारश्चतुरोहयान्। एक स्तुसारथिंजघ्ने चिच्छेदान्यःशरासनम् ॥ ११ ॥ तंबध्वाविरथीकृत्यकृच्छ्रेणकुरवो युधि। कुमारंस्वस्यकन्यांचस्वपुरंजयिनोऽविशन् ॥ १२ ॥ तच्छ्रुत्वानारदोक्तंमरा जन्संजातमन्यवः। कुरून्प्रत्युद्यमंचक्रुरुग्रसेनप्रचोदिताः॥१३॥सान्त्वयित्वातुतान्रा मः संरब्धान्वृष्णिपुङ्गवान्। नैच्छत्कुरूणांवृष्णीनांकलिंकलिमलापहः ॥ १४ ॥ जगामहास्तिनपुरंरथेनादित्यवर्चसा। ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्चवृतश्चन्द्रइवग्रहैः ॥१५॥ गत्वागजाह्वयंरामोबाह्योपवनमास्थितः। उद्धवंप्रेषयामासधृतराष्ट्रंबुभुत्सया ॥१६॥ सोऽभिवन्द्याम्बिकापुत्रंभीष्मंद्रोणंचबाह्लिकम्। दुर्योधनंचविधिवद्राममागतम ब्रवीत् ॥ १७ ॥ तेऽतिप्रीतास्तमाकर्ण्यप्राप्तरामसुहृत्तमम्। तमर्चयित्वाभिययुः स र्वेमङ्गलपाणयः ॥ १८ ॥ तंसंगम्ययथान्यायंगामर्घ्यंचन्यवेदयन्। तेषांयेतत्प्रभाव ज्ञाः प्रणेमुः शिरसाबलम् ॥ १९ ॥ बन्धून्कुशलिनः श्रुत्वापृष्ट्वाशिवमनामयम्। प रस्परमथोरामोबभाषेऽविक्लवंवचः ॥ २० ॥ उग्रसेनः क्षितीशेशोयद्वआज्ञापयत्प्रभुः। तदव्यग्रधियः श्रुत्वाकुरुध्वंमाविलम्बितम् ॥ २१ ॥ यद्यूयंबहवस्त्वेकंजित्वाऽधर्मे णधार्मिकम्। अबध्नीताथतन्मृष्येबन्धूनामैक्यकाम्यया ॥ २२ ॥ वीर्यशौर्यबलोन्न द्धमात्मशक्तिसमंवचः। कुरवोबलदेवस्यनिशम्योचुः प्रकोपिताः ॥ २३ ॥ अहोमह च्चित्रमिदंकालगत्यादुरत्यया। आरुरुक्षत्युपानद्वैशिरोमुकुटसेवितम् ॥ २४ ॥ ए तेयौनेनसंबद्धाः सहशय्यासनाशनाः। वृष्णयस्तुल्यतांनीताअस्मद्दत्तनृपासनाः॥

कार से सन्मान किया ॥ १० ॥ हेमहाराज ! कौरवों नें भी साम्बको विरथ करदिया चार जनों ने चारों घोड़ों और एक जनने सारथीको मारा और एक जनने धनुषको काटदिया ॥ ११ ॥ कौरवोंने युद्ध भूमिमें अति कष्टसे साम्बको विरथ करके बांधा वह सब उस कुमार और अपनी कन्याको ले विजयी हो अपने नगरको लौटआये ॥ १२ ॥ हेराजन् ! नारदजी से इससब समाचार को सुन वृष्णि वीरगण क्रोधित होउठे और उग्रसेनकी आज्ञा पाय कौरवोंसे युद्ध करनेपर उद्यत हुए ॥ १३ ॥ राम की यह इच्छा नहींथी कि कौरवों और यदुवंशियों से विवाद होवे। अतएव उन्होंने युद्धकी इच्छावाले उन यदुवंशियों को शांतकिया और स्वयं ताराओंसे घिरेहुए चन्द्रमाकी समान कुलवृद्ध ब्राह्मणोंसे घिर सूर्यकी समान प्रकाशित रथपर बैठ हस्तिनापुरमें आए १४—१५। रामने हस्तिनापुरमें पहुंच नगर के बाहर उपवन में ठहर धृतराष्ट्र का अभिप्राय जानने के निमित्त उद्धव को भेजा ॥१६॥ उद्धवने भी यथायोग्य धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, बाह्लीक और दुर्योधन को वन्दना करके कहा कि—राम आयेहैं ॥ १७ ॥ उन्होंने भी श्रेष्ठ बन्धु रामका आना सुनकर उद्धवकी पूजाकी अनन्तर वह मांगलिक द्रव्यले बलदेवजी के निकट आए, ॥१८॥ और उनसे यथायोग्य मिल गौ अर्पणकर अर्घदे उनके प्रभावको जाननेवालों ने उनका शिरसे प्रणाम किया ॥ १९ ॥ अनन्तर परस्पर कुशल पूँछी बंधुओं की कुशलता पूँछकर अंतमें रामने धीरभाव से कहा॥२०॥हेराजाधिराज!महाराज उग्रसेनने जो तुमको आज्ञाकीहै उसको सावधान चित्तहो सुनो और वैसाही करो ॥२१॥ उन्होंनें कहाहै कि—तुम सबने जो अधर्मसे जीतकर एक धार्मिक जनको बांधाहै बंधुता की रक्षाके कारण हमने उसका सहन करलिया अतएव तत्कालही उस पुत्रको लाकर हमकोदो ॥ २२ ॥ प्रभाव, उत्साह और धैर्ययुक्त तथा अपनी शक्तिके अनुसार बलरामजी का बचन सुनकर गर्वित कौरव क्रोधित होकर बोले कि —२३ ॥ अहो ! बड़ा आश्चर्य है काल की गति बड़ीही टेढ़ीहै कि जूता मुकुटसे सेवित शिरपर चढ़नेकी इच्छा करताहै ॥ २४ ॥ केवल कुंती के संग ब्याह का सम्बंध होनेसे इनको हमने राज्यासन इनके संग सोना बैठना और भोजन

॥ २५ ॥ चामरव्यजने शङ्खमातपत्रं च पाण्डुरम् । किरीटमासनं शय्यां भुञ्जन्त्यस्म
दुपेक्षया ॥ २६ ॥ अलं यदूनां नरदेवलाञ्छनैर्दातुः प्रतीपैः फणिनामिवामृतम् । ये
स्मत्प्रसादोपचिता हि यादवा आज्ञापयन्त्यद्य गतत्रपा बत ॥ २७ ॥ कथमिन्द्रोऽपि कु
रुभिर्भीष्मद्रोणार्जुनादिभिः । अदत्तमवरुन्धीत सिंहग्रस्तमिवोरणः ॥ २८ ॥ श्रीशु
क उवाच ॥ जन्मबन्धुश्रियोन्नद्धमदास्ते भरतर्षभ । आश्राव्य रामं दुर्वाच्यमसभ्याः
पुरमाविशन् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा कुरूणां दौःशील्यं श्रुत्वाऽवाच्यानि चाच्युतः । अवोच
त्कोपसंरब्धो दुष्प्रेक्ष्यः प्रहसन्मुहुः ॥ ३० ॥ नूनं नानामदोन्नद्धाः शान्तिं नेच्छन्त्य
साधवः । तेषां हि प्रशमो दण्डः पशूनां लगुडो यथा ॥ ३१ ॥ अहो यदून्सुसंरब्धान्कृ
ष्णं च कुपितं शनैः । सान्त्वयित्वाऽहमेतेषां शममिच्छन्निहागतः ॥ ३२ ॥ त इमे मन्द
मतयः कलहाभिरताः खलाः । तं मामवज्ञाय मुहुर्दुर्भाषान्मानिनोऽब्रुवन् ॥ ३३ ॥ नो
ग्रसेनः किल विभुर्भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः । शक्रादयो लोकपाला यस्यादेशानुवर्तिनः
॥ ३४ ॥ सुधर्माऽऽक्रम्यते येन पारिजातोऽमराङ्घ्रिपः । आनीय भुज्यते सोऽसौ न किला
ध्यासनार्हणः ॥ ३५ ॥ यस्य पादयुगं साक्षाच्छ्रीरुपास्तेऽखिलेश्वरी । स नार्हति कि
ल श्रीशो नरदेवपरिच्छदान् ॥ ३६ ॥ यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजोऽखिललोकपालैर्मौल्युत्तमै
र्धृतमुपासिततीर्थतीर्थम् । ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः श्रीश्चोद्वहेम चिर
मस्य नृपासनं क्व ॥ ३७ ॥ भुञ्जते कुरुभिर्दत्तं भूखण्डं वृष्णयः किल । उपानहः किल
वयं स्वयं तु कुरवः शिरः ॥ ३८ ॥ अहो ऐश्वर्यमत्तानां मत्तानामिव मानिनाम् । असंबद्धा

करके इनको अपने समान बनाया ॥ २५ ॥ किंतु बड़ाही आश्चर्य है कि यह मूढ हमारेही दिये हुए राज्या सनको पाय हमारीही समानता करते हैं इस समय यह हमारीही उपेक्षाकर चामर, व्यंजन, शंख, श्वेत,छत्र,आसन और शय्याको भोग करतेहैं,॥ २६ ॥ अहो ! यदुवंशी हमारीही अनुग्रहसे बढकर अब हमींपर आज्ञा करतेहैं सांपको दूध पिलाने की समान इन यादवों को राजचिह्न देनेसे अपनाही अनभल होताहै अतएव इन राजचिह्नों को छीन लेना चाहिये २७॥ भीष्म द्रोणादि कौरवोंके दान न करनेपर इंद्रभी क्या किसीवस्तु को ग्रहण करसकतेहैं भेड़ क्या सिंहके द्रव्य को ग्रहण करसकताहै ॥२८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–हेराजन् ! जन्म बंधु और लक्ष्मीसे जिनका गर्व बढगयाहै वे सब असभ्य कौरव बलराम जीको ऐसे कुवाक्य सुनातेहुए फिर नगरमें आए ॥ २९ ॥ भगवान कौरवोंके दुष्टाचार को देख और उनकी बातोंको सुन कुपितहुए वह क्रोधसे वारम्वार हंसकर कहने लगे कि—३० ॥ यह सत्यहै कि नानागर्वोंसे गर्वित असाधु मनुष्य शांतिकी इच्छा नहीं रखते पशुओंपर डण्डा मारने की समान वह भी दण्डेही से शांत होते हैं ॥ ३१ ॥ अहो ! क्रोधित यदुवंशियों और श्रीकृष्णको मैं धीरे२ शांतकर शांतिकी इच्छा से इस स्थान में आयाथा ॥ ३२ ॥ परंतु इन दुष्ट मंदबुद्धि योंको युद्धही प्याराहै क्योंकि यह बहुतगर्वित होरहे हैं, इन्हों ने मेरा तिरस्कार कर मुझही बहुतसे कुवाक्य कहे ॥३३॥ इन्द्रादि लोकपालगण जिसकी आज्ञाका पालन करते हैं वृष्णि और अंधकगणों के स्वामी वह उग्रसेन राजा नहीं हैं ॥ ३४ ॥ जिन्हों ने सुधर्माको छीन, पारिजातको लाय अपने उपवनमें स्थापित किया वह श्रीकृष्णजी आसनके योग्य नहीं हैं ॥ ३५ ॥ सबकी स्वामिनी साक्षात् लक्ष्मी जिनके दोनों चरणों की सेवा करती हैं वह लक्ष्मी पति राजचिह्नों के योग्य नहीं हैं ॥ ३६ ॥ लोकपालगण, योगीजन जिनके चरण रजको शिरमें धारण करते हैं और जिनके अंशोंके अंश ब्रह्मा,महादेव, लक्ष्मी, और मैभी जिनके चरणों की उपासना करता हू उनको राज्यासन कहां ॥ ३७ ॥ निश्चयही यदुवंशी कौरवों के दियेहुए राज्यका भोगकरते हैं हमतो जूताहैं, कौरवतो अपने शिर हैं ॥ ३८ ॥ अहो !

गिरो रूक्षाः कः सहेतानुशासिता ॥ ३९ ॥ अद्य निष्कौरवीं पृथ्वीं करिष्यामीत्यमर्षितः । गृहीत्वा हलमुत्तस्थौ दहन्निव जगत्त्रयम् ॥ ४० ॥ लांगलाग्रेण नगरमुद्विदार्य गजाह्वयम् । विचकर्ष स गङ्गायां प्रहरिष्यन्नमर्षितः ॥ ४१ ॥ जलयानमिवाघूर्णं गंगायां नगरं पतत् । आकृष्यमाणमालोक्य कौरवा जातसंभ्रमाः ॥ ४२ ॥ तमेव शरणं जग्मुः सकुटुम्बा जिजीविषवः । सलक्ष्मणं पुरस्कृत्य साम्बं प्राञ्जलयः प्रभुम् ॥ ४३ ॥ राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते । मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षन्तुमर्हस्यतिक्रमम् ॥ ४४ ॥ स्थित्युत्पत्त्यप्ययानां त्वमेको हेतुर्निराश्रयः । लोकान्क्रीडनकानीश क्रीडतस्ते वदन्ति हि ॥ ४५ ॥ त्वमेव मूर्ध्नीदमनन्त लीलया भूमण्डलं बिभर्षि सहस्रमूर्धन् । अन्ते च यः स्वात्मनिरुद्धविश्वः शेषेऽद्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥ ४६ ॥ कोपस्तेऽखिलशिक्षार्थं न द्वेषान्न च मत्सरात् । बिभ्रतो भगवन्सत्त्वं स्थितिपालनतत्परः ॥ ४७ ॥ नमस्ते सर्वभूतात्मन्सर्वशक्तिधराव्यय । विश्वकर्मन्नमस्तेऽस्तु त्वां वयं शरणं गताः ॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच । एवं प्रपन्नैः संविग्नैर्वेपमानायनैर्बलः । प्रसादितः सुप्रसन्नो मा भैष्टेत्यभयं ददौ ॥ ४९ ॥ दुर्योधनः पारिबर्हं कुंजरान्षष्टिहायनान् । ददौ च द्वादश शतान्ययुतानि तुरंगमान् ॥ ५० ॥ रथानां षट्सहस्राणि रौक्माणां सूर्यवर्चसाम् । दासीनां निष्ककण्ठीनां सहस्रं दुहितृवत्सलः ॥ ५१ ॥ प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं भगवान्सात्वतर्षभः । ससुतः सस्नुषः प्रायात्सुहृद्भिरभिनन्दितः ॥ ५२ ॥ ततः प्रविष्टः स्वपुरं हला

मत्त मनुष्यों की समान ऐश्वर्य से मतवाले हुए अभिमानियों के वाक्य असंबंध और रूखेहोते हैं, स्वयं दंड देनेवाला होकर कौन मनुष्य उसका सहन करसकता है ॥ ३९ ॥ आजमें पृथिवी को कौरव रहित करदूंगा यह विचारकर बलदेवजी ने दारुण क्रोधसे मानो जगतका नाश करेंगे ऐसे हलको ग्रहण किया ॥ ४० ॥ और हलके अग्रभाग से हस्तिना पुरको उखाडकर गंगामें फेंकदेने के निमित्त खींचने लगे ॥ ४१ ॥ खिंचते हुए नगरको गंगामें गिरता और नावकी समान घूमता हुआ देख कौरव भयसे व्याकुल होगये ॥ ४२ ॥ और प्राण बचानेकी इच्छासे कुटुंबियों के साथ लक्ष्मण समेत साम्बको ले बलरामजी की शरण में आय हाथ जोडकर कहने लगे ॥ ४३ ॥ हे राम ! हे अखिलाधार ! हम तुम्हारे प्रभावको नहीं जानते थे हममूर्ख और कुबुद्धि हैं; हे अधीश्वर ! हमारे ऊपर आपको क्षमाकरनी उचित है ॥ ४४ ॥ आप सृष्टि, स्थिति और संहार के कारण हैं, आप आश्रय रहित हैं। तुम्हारे क्रीडा करनेमें प्रवृत्त होनेपर यह लोक तुम्हारी क्रीडाकी सामग्री रूपसे उत्पन्न होता है ॥ ४५ ॥ हे सहस्र शिरवाले ! आप अनंतहो, लीला सेही अपने मस्तकपर भूमंडलको धारण करतेहो । प्रलय कालमें अपने स्वरूप में जगतका लय करके, अद्वितीय और शेषरहने वाले आपही शेषनाग पर शयन करतेहो ॥ ४६ ॥ आपही स्थिति और पालन में तत्पर हो आपही सत्वगुणका अवलंबन करतेहो । आपका यह कोप शिक्षादेने के निमित्तही हुआ है कुछ द्वेषवा मत्सरता से नहीं ॥ ४७ ॥ हे सर्व भूतात्मन् ! हे सर्वशक्तिधर ! हे अव्यय ! हे विश्वकर्मन् ! आपको नमस्कार है। हमने आपके चरणों की शरणली है ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि राजन् ! फिर जिनका नगर कम्पित हुआ था उन दुःखित और भयभीत कौरवों से बलदेवजी ने पूजितहो उनको अभयदान दिया ॥ ४९ ॥ अनंतर पुत्रीपर प्रेमरखने वाले दुर्योधन ने साठ २ वर्षके बारह सौ हाथी, दश सहस्र घोडे, सुवर्ण के बनेहुए सूर्यकी किरण के समान प्रकाशित छः सहस्र रथ, और अलंकार युक्त सहस्र दासियें दहेज में दीं ॥ ५०-५१ ॥ भगवान बलदेवजी इन सबको ले पुत्रवधू के साथ बंधुओं से सन्मानितहो वहां से चले ॥ ५२ ॥ तदनंतर अपनी पुरीमें आय बल-

युधः समेत्यबन्धूननुरक्तचेतसः। शशंससर्वंयदुपुंगवानां मध्येसभायांकुरुषुस्वचेष्टितम् ॥ ५३ ॥ अद्यापिचपुरं ह्येतत्सूचयद्रामविक्रमम्। समुन्नतंदक्षिणतो गंगायामनुदृश्यते ॥ ५४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ नरकंनिहतंश्रुत्वातथोद्वाहंचयोषिताम्। कृष्णेनैकेनबह्वीनां तद्दिदृक्षुः स्मनारदः ॥ १ ॥ चित्रंबतैतदेकेनवपुषायुगपत्पृथक्। गृहेषुद्व्यष्टसाहस्रं स्त्रियएकउदावहत् ॥२॥ इत्युत्सुकोद्वारवतींदेवर्षिर्द्रष्टुमागमत्। पुष्पितोपवनाराम द्विजालिकुलनादिताम् ॥ ३ ॥ उत्फुल्लेन्दीवराम्भोजकह्लारकुमुदोत्पलैः। छुरितेषुसरस्सूच्चैः कूजितांहंससारसैः ॥ ४ ॥ प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टांस्फाटिकराजतैः। महामारकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ॥ ५ ॥ विभक्तरथ्यापथचत्वरापणैः शालासभाभीरुचिरांसुरालयैः। संसिक्तमार्गांगणवीथिदेहलींपतत्पताकाध्वजवारितातपाम् ॥६॥ तस्यामन्तः पुरंश्रीमदर्चितंसर्वधिष्ण्यपैः। हरेः स्वकौशलंयत्रत्वष्ट्राकार्त्स्न्येनदर्शितम् ॥ ७ ॥ तत्रषोडशभिः सद्मसहस्रैः समलंकृतम्। विवेशैकतमंशौरेः पत्नीनांभवनंमहत् ॥ ८ ॥ विष्टब्धंविद्रुमस्तम्भैर्वैदूर्यफलकोत्तमैः। इन्द्रनीलमयैः कुड्यैर्जगत्याचाऽहतत्विषा ॥ ९ ॥ वितानैर्निर्मितैस्त्वष्ट्रामुक्तादामविलम्बिभिः। दान्तैरासनपर्यंकैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः ॥ १० ॥ दासीभिर्निष्ककण्ठीभिःसुवासोभिरलंकृतम्। पुम्भिः सकञ्चुकोष्णीषसुवस्त्रमणिकुण्डलैः ॥ ११ ॥ रत्नप्रदीपनिकरद्युति

देवर्जान आपने अनुरक्त चित्त बधुओंसे मिल कौरवोंकी समस्त बातोंको यदुवंशियोंकी सभामें कहा ॥ ५३ ॥ हे राजन्! वह नगर दक्षिण भागमें गंगाकी ओर ऊंचाहो अबतक बलरामजी के पराक्रमको प्रकाश करता है ॥ ५४ ॥

इतिश्री मद्भागवतमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांअष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! नरकासुरको मारकर श्रीकृष्णजीने बहुतसी स्त्रियोंसे बिवाह कियाहै, यह सुनकर उनके देखने के निमित्त नारदजीकी इच्छाहुई ॥ १ ॥ अहो! यह अत्यन्तही आश्चर्यका विषयहै कि अकेले श्रीकृष्णजीने एक शरीरसे पृथक् २ घरमें एकही समयमें सोलहसहस्र स्त्रियोंसे बिवाह कियाहै ॥ २ ॥ यह बिचारकर नारदजी देखने के निमित्त उत्सुक चित्तसे द्वारकामें आये। द्वारकाके फूलेहुए उपवन और बागोंमें भौंर और पक्षी शब्द कररहे थे॥३॥ और समस्त तालाब फूलेहुए इंदीवर, कमल, कल्हार, बघौले और उत्पल से व्याप्त होरहेथे। हंस और सारस उन सबसरोवरों में ऊंचे शब्दसे बोलरहे थे ॥ ४ ॥ वह पुरी स्फटिक और चांदीके बनेहुए लाखों महलोंकी मरकतमणिसे प्रकाश पारही थी और रत्नोंकी सामग्रियोंसे अपूर्व शोभा को बढ़ारही थी ॥ ५ ॥ परस्पर बँटेहुए राजमार्ग, गलियें, चौराहे, दुकानें, शाला और देवमंदिरों की उस नगरीमें शोभा होरहीथी। उसके मार्ग, गलियें और देहली सब छिड़के हुएथे; और फहरातेहुए ध्वजा पताका वहांकी धूपको निवारण करतेथे ॥ ६ ॥ उस नगरीमें जो भगवानकेमहल थे वह सब लक्ष्मीयुक्त और लोकपालोंसे पूजितथे। विश्वकर्माकी उसमें भलीप्रकारसे कारीगरी दीखतीथी ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णजीके वहां सोलहसहस्र महलबनेहुए थे। नारदजीने उन महलोंमेंसे एक प्रधान महलमें प्रवेश किया ॥८॥ वह घर विद्रुममणिके खम्भोंसे व्याप्त, वैदूर्यमणिके उत्तम पटे, इन्द्र नीलमणिकी दीवारें व इन्द्र नीलमयी पृथ्वीसे शोभायमानथा ॥ ९ ॥ वह मोतियोंकी झालरेयुक्त विश्वकर्मा के बनाये चँदोवे, उत्तम मणियोंसे खचित आसन व पलंग ॥ १० ॥ गले में चन्द्रहार पहिरे सुन्दर वस्त्र धारण किये दासियें, और जामा, पगडी, सुन्दर वस्त्र व मणियों के

भिर्निरस्तध्वान्तंविचित्रवलभीषुशिखण्डिनोऽङ्ग । नृत्यन्तियत्रविहितागुरुधूपमक्षै
र्निर्यान्तमीक्ष्यघनबुद्धयउन्नदन्तः ॥ १२ ॥ तस्मिन्समानगुणरूपवयःसुवेषदासी
सहस्रयुतयाऽनुसवंगृहिण्या । विप्रोददर्शचमरव्यजनेनरुक्मदण्डेनसात्वतपतिंप
रिवीजयन्त्या ॥ १३ ॥ तंसंनिरीक्ष्यभगवान्सहसोत्थितः श्रीपर्यंकतः सकलधर्म
भृतांवरिष्ठः । आनम्यपादयुगलं शिरसाकिरीटजुष्टेनसांजलिरवीविशदासने स्वे
॥ १४ ॥ तस्यावनिज्यचरणौ तदपःस्वमूर्ध्ना बिभ्रज्जगद्गुरुतरोपि सतांपतिर्हि । ब्र-
ह्मण्यदेवइतियद्गुणनामयुक्तं तस्यैवयच्चरणशौचमशेषतीर्थम् ॥ १५ ॥ संपूज्यदे-
वऋषिवर्यमृषिः पुराणो नारायणोनरसखो विधिनोदितेन । वाण्याभिभाष्य मितया
ऽमृतमिष्टयातंप्राह प्रभोभगवतेकरवामहे किम् ॥ १६ ॥ नारद उवाच । नैवाद्भुतंत्व
यि विभोऽखिललोकनाथे मैत्री जनेषुसकलेषुदमः खलानाम् ॥ निःश्रेयसायहिजग-
त्स्थितिरक्षणाभ्यां स्वैरावतार उरुगाय विदामसुष्ठु ॥ १७ ॥ दृष्टंतवांघ्रियुगलं जन
ताऽपवर्गंब्रह्मादिभिर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ॥ संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथास्मृतिःस्यात् ॥ १८ ॥ ततोऽन्यदाविशद्गेहं कृष्णपत्न्याः
सनारदः । योगेश्वरेश्वरस्यांग योगमायाविवित्सया ॥ १९ ॥ दीव्यन्तमक्षैस्तत्रापि
प्रियया चोद्धवेन च । पूजितःपरयाभक्त्या प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ २० ॥ पृष्टश्चा-

---

कुण्डल धारण किये पुरुषों से शोभायमानथा ॥ ११ ॥ हे राजन् ! वहांका अंधकार रत्नों के दीपकोंसे दूर होताथा, जालियोंमेंसे निकलतेहुए अगरके धुँएको देख उसे मेघजान ऊंचे स्वरसे शब्द कर करके मोर छज्जोंपर नाचकर रहेथे ॥ १२ ॥ वहां प्रत्येक समयमें अपनी समान गुण, रूप, वय तथा सुंदर वेषवाली सहस्रों दासियों के संग रुक्मिणी सुवर्णकी डंडीवाला पंखा हाथ में लिये श्रीकृष्णजीपर पवन करती थीं । नारदजीने वहां जाकर इसप्रकारसे श्रीकृष्णजीको देखा ॥ १३ ॥ सबधर्मिकोंमें श्रेष्ठ भगवान श्रीकृष्णजी नारदजीको आतादेख रुक्मिणीकी सेजस सहसा उठ खडे हुए और हाथजोड़ किरीट धरेहुए मस्तक से उनके दोनों चरणों को प्रणामकिया, और अपने आसनपर बिठाया ॥ १४ ॥ जिनके चरणों का धोयाहुआ जल (गंगा) सबकातीर्थ है अतएव वह जगतके सर्वश्रेष्ठगुरु हैं तौभी उन्होंने नारदजी के चरणों को धुलाय उस जलको अपनेमस्तक पर चढ़ाया । वह यथार्थही में साधुओं के स्वामी हैं गुणों के कारण जो उनका नाम 'ब्रह्मण्यदेव' है उसके योग्यही उन्होंने यहकाम किया ॥ १५ ॥ परमपुरुष, नरके सखा नारायण ने शास्त्रयुक्त विधिवत् नारदजीका पूजनकर अमृतकी समान मीठे वचनों से उनसे बातें करके कहा कि हेप्रभो ! आप का क्या कार्य करनाहोगा, आज्ञा करिये ॥ १६ ॥ नारदजी ने कहा कि–हेविभो ! हेअखिल लोकेश्वर ! आप सबसज्जनोंपर स्नेह रखतेहो और दुष्टोंको दण्ड देतेहो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । हे विशालकीर्त्ते ! मैं भलीप्रकार से जानताहूं कि जगत के धारण, पालन और कल्याण के निमित्तही यह आपका इच्छानुसार अवतार हुआ है ॥ १७ ॥ आप के चरणभक्तों के मोक्षदेनेवाले हैं; अगाधज्ञानवाले केवल ब्रह्मादि देवतागणही उनका हृदयमें ध्यानकरसकते हैं । वह संसार कूपमें गिरेहुए मनुष्यों के उठने के निमित्त प्रधानअवलम्बनस्वरूप हैं । आज मैंने उन्हीं चरणों का दर्शन किया । तौभी जिससे उनकास्मरणरहे, आप कृपाकरके वही करो । इसहीकारणउनका ध्यान करताहुआ भ्रमणकररहाहू ॥ १८ ॥ हेराजन् ! तदुपरांत उन नारदजी ने भगवानश्रीकृष्णजी की योगमाया जानने के निमित्त उनकी एक स्त्रीके घरमें फिर प्रवेश करके देखा ॥ १९ ॥ कि उसस्थानमेंभी श्रीकृष्णजी प्रिया और उद्धव के संग चौसर खेलरहे हैं । भगवान लक्ष्मीपति ने मानों नहींजानते इसप्रकार से उठ आसनआदि दे विधिवत् परम भक्तिसे नारदजी की पूजाकी

विदुषेवाधो कदाऽऽयातोभवानिति। क्रियते किंनु पूर्णानामपूर्णैरस्मदादिभिः॥२१ अथापिब्रूहिनो ब्रह्मञ्जन्मैतच्छोभनंकुरु। सतुविस्मितउत्थाय तूष्णीमन्यदगाद्गृहम् ॥२२॥ तत्राप्याचष्टगोविन्दं लालयन्तंसुताञ्छिशून्। ततोऽन्यस्मिन्गृहेऽपश्यन्मज्जनाय कृतोद्यमम् ॥ २३ ॥ जुह्वन्तंच वितानाग्नीन्यजन्तं पंचभिर्मखैः। भोजयन्तं द्विजान्क्वापि भुंजानमवशेषितम् ॥ २४ ॥ क्वापिसन्ध्यामुपासीनं जपन्तंब्रह्मवाग्यतम्। एकत्रचासिचर्मभ्यां चरन्तमसिवर्त्मसु ॥ २५ ॥ अश्वैर्गजैरथैः क्वापि विचरन्तंगदाग्रजम्। क्वचिच्छयानं पर्यंके स्तूयमानंच वन्दिभिः। मन्त्रयन्तंच कर्पर्यंके स्तूयमानंच वन्दिभिः ॥ २६ ॥ मन्त्रयन्तंच कस्मिंश्चिन्मन्त्रिभिश्चोद्धवादिभिः। जलक्रीडारतंक्वापि वारमुख्याऽबलावृतम् ॥२७॥ कुत्रचिद्द्विजमुख्येभ्यो ददतंगाःस्वलंकृताः। इतिहासपुराणानि शृण्वन्तंमंगलानिच ॥ २८ ॥ हसन्तंहास्यकथया कदाचित्प्रियया गृहे। क्वापिधर्मं सेवमानमर्थकामौच कुत्रचित् ॥२९॥ ध्यायन्तमेकमासीनं पुरुषंप्रकृतेःपरम्। शुश्रूषन्तंगुरून्क्वापि कामैर्भोगैःसपर्यया। ॥ ३० ॥ कुर्वन्तंविग्रहंकैश्चित्सन्धिं चान्यत्रकेशवम्। कुत्रापिसहरामेण चिन्तयतं सतां शिवम् ॥ ३१ ॥ पुत्राणांदुहितॄणांच काले विध्युपयापनम्। दारैर्वरैस्तत्सदृशैः कल्पयन्तंविभूतिभिः ॥ ३२ ॥ प्रस्थापनोपानयनैरपत्यानांमहोत्सवान्। वीक्ष्य योगेश्वरेशस्य येषांलोका विसिस्मिरे ॥ ३३ ॥ यजन्तंसकलान्देवान्क्वापिक्रतुभिरूर्जितैः। पूर्तयन्तंक्वचिद्धर्मंकूपाराममठादिभिः ॥ ३४ ॥ चरन्तंमृगयांक्वापि हयमारुह्यसैन्धवम्। घ्नन्तंततःपशून्मेध्यान्परीतंयदुपुङ्गवैः ॥ ३५ ॥ अव्यक्तलिंगंप्रकृ-

॥ २० ॥ और उनसे पूछा कि-आप कबआये ? आप पूर्णहो; मेरी समान अपूर्ण मनुष्यआपका क्याकार्य पूराकरसकते हैं ॥ २१ ॥ हे ब्रह्मन् ! तौभी आप मुझे आज्ञाकरो; मेरा जन्म सार्थक होवे। नारदजी विस्मितहो कुछनकह उठकर दूसरे घरमें गये ॥ २२ ॥ उस स्थानमें भी देखाकि-श्रीकृष्णजी पुत्रोंको खिलारहे हैं तदनंतर दूसरे घरमें देखाकि वहां वे नहाने की इच्छा कररहे हैं ॥ २३ ॥ इसप्रकार से कहीं पर अग्निहोत्र का होम, पंच महायज्ञ करते, कहीं ब्राह्मणोंको भोजन कराते और शेषरहे भोजनको आप भोजन करते दीखपडे ॥ २४ ॥ कहीं सन्ध्यामें बैठहुए एकाग्र चित्तसे गायत्रीका जपकर रहे हैं; एक स्थान में ढाल तलवार लिये पटा खेलते दीखपड़े ॥ २५ ॥ कहीं हाथी, घोडा, रथपर बैठे फिरते हुए देखनेमें आये कहीं आप पलंगपर शयन कररहे हैं और बंदीजन स्तुतिकर रहे हैं ॥ २६ ॥ कहीं उद्धवादि मंत्रियों के संग परामर्श कर रहे हैं कहीं वेश्या-आदि स्त्रियोंसे घिर जलक्रीडा कररहे हैं ॥ २७ ॥ कहीं सुन्दर गौओं' को ब्राह्मणों को दान देते हैं। किसी घर में इतिहास, पुराण और मंगल की कथा सुनते हैं ॥ २८ ॥ कहीं परिहासकर २ प्यारीसे हँसी कररहे हैं। कहीं धर्म कहीं अर्थ, काम का सेवन करते हैं ॥ २९ ॥ कहीं एकांतमें बैठकर प्रकृति से पर आत्माका ध्यान कररहे हैं किसीस्थान में इच्छितपदार्थों के भोगोंद्वारागुरुओं की सेवा में तत्पर हैं ॥ ३० ॥ कहीं किसी के साथ संधिं और किसी के संग विग्रह कररहे हैं। किसी स्थान में बलरामजी के साथ बैठेहुए साधुओं के कल्याण के विचार में लगे हैं ॥ ३१ ॥ कहींपर बड़ी धूमधाम के साथ पुत्रों का योग्य स्त्रियों के संग और कन्याओं का योग्य वरों के संग समयानुसार यथाविधि से विवाह कररहे हैं ॥३२॥ कहींपर कन्या और जामाताओंको बुलाते और भेजते और कहीं महोत्सवोंको कररहे हैं श्रीकृष्णजी के पुत्र पौत्रादिकों के उस महोत्सवको देख सब विस्मित होरहे हैं ॥ ३३ ॥ कहीं बड़े २ यज्ञकर अपने अंशभूत देवताओंका भजनकरते हैं, कहींपर कुआ, बावड़ी, देवमंदिरआदि बनवाते हैं ॥ ३४ ॥ कहींपर श्रेष्ठ यादवों-से वेष्ठितहो सिंधु देश के घोड़े पर बैठ आखेट करतेहुए यज्ञीय पशुओं को माररहे हैं ॥ ३५ ॥ भगवानकहीं

तिष्ठन्तःपुरगृहादिषु। क्वचिच्चरंतंयोगेशंतत्तद्भावबुभुत्सया॥ ३६॥अथोवाच हृषीकेशंनारदःप्रहसन्निव। योगमायोदयंवीक्ष्यमानुषीमीयुषोगतिम्॥ ३७॥ विदामयोगमायास्तेदुर्दर्शाअपिमायिनाम्। योगेश्वरात्मन्निर्भाताभवत्पादनिषेवया॥ ३८॥ अनुजानीहिमांदेवलोकांस्तेयशसाप्लुतान्। पर्यटामितवोद्गायँल्लीलाभुवनपावनीम्॥ ३९॥ श्रीभगवानुवाच॥ ब्रह्मन्धर्मस्यवक्ताऽहंकर्तातदनुमोदिता। तच्छिक्षयँल्लोकमिममास्थितःपुत्रमाखिदः॥ ४०॥ श्रीशुक उवाच॥ इत्याचरन्तंसद्धर्मान्पावनान्गृहमेधिनाम्। तमेवसर्वगेहेषुसन्तमेकंददर्शह॥ ४१॥ कृष्णस्यानन्तवीर्यस्ययोगमायामहोदयम्। मुहुर्दृष्ट्वाऋषिरभूद्विस्मितोजातकौतुकः ४२॥ इत्यर्थकामधर्मेषुकृष्णेनश्रद्धितात्मना। सम्यक्सभाजितःप्रीतस्तमेवानुस्मरन्ययौ॥ ४३॥ एवंमनुष्यपदवीमनुवर्तमानोनारायणोऽखिलभवायगृहीतशक्तिः।रेमेऽङ्ग षोडशसहस्रवराङ्गनानांसव्रीडसौहृदनिरीक्षणहासजुष्टः॥ ४४॥ यानीहविश्वविलयोद्भववृत्तिहेतुःकर्माण्यनन्यविषयाणिहरिश्चकार। यस्त्वङ्गगायतिशृणोत्यनुमोदतेवाभक्तिर्भवेद्भगवतिह्यपवर्गमार्गे॥ ४५॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०एकोनसप्ततितमोऽध्यायः॥ ६९॥

श्रीशुकउवाच॥ अथोषस्युपवृत्तायां कुक्कुटान्कूजतोऽशपन्। गृहीतकण्ठ्यःपतिभिर्माधव्योविरहातुराः॥ १॥ वयांस्यरूरुवन्कृष्णं बोधयन्तीववन्दिनः। गायत्स्वलिष्वनिद्राणि मन्दारवनवायुभिः॥२॥ मुहूर्तंतंतुवैदर्भी नामृष्यदतिशोभनम्।

कहीं नगर और अन्तःपुर के अभिप्रायको जानने के निमित्त वेष बदलर कर भ्रमण कररहे हैं॥ ३६॥ इसप्रकार से नारदजी ने मनुष्यावतार भगवान के योगमाया को देख कुछेक हँसकर उनसे कहा कि–॥ ३७॥ हे प्रभो! मायावी पुरुषों केभी न जानने योग्य आपकी योगमायाको हमकेवल आप के चरणों की सेवाही से जानते हैं परन्तु आपके परमार्थ स्वरूप को नहींजानते॥ ३८॥ हेदेव! आप आज्ञा करें कि–त्रिलोकी को पवित्र करनेवाले आपके चरित्रों का गानकरताहुआ आपके यशमे व्याप्त लोकों में भ्रमणकरूं॥ ३९॥ श्रीभगवान ने कहा कि हे ब्रह्मन्! मैं धर्मकावक्ता कर्त्ता और अनुमोदन करनेवालाहूं, मनुष्यों को धर्म की शिक्षा देनाहुआ इसप्रकार से स्थितिकरताहूं अतएव तुम मोहमें न पड़ो॥ ४०॥ शुकदेवजी बोले कि-हेराजन्! नारदजी ने सबघरों में इसप्रकार से अकेले भगवानको गृहस्थियों के उत्तमधर्मो का आचरणकरते देखा॥४१॥अनन्त पराक्रमवाले श्रीकृष्णजी की योगमाया का वारम्बार उदयदेख नारदजी को अत्यन्त कौतुक उत्पन्नहुआ और अत्यन्त विस्मितहुए॥ ४२॥ अर्थ, काम, धर्म में इसप्रकार श्रद्धायुक्त श्रीकृष्णजीने भलीप्रकार से उनका सन्मान किया, तब नारदजी प्रसन्नहो उनका ध्यानकरते २ वहां से चलेगए॥ ४३॥ हेराजन्! सर्व मङ्गलों के निमित्त अवतार धारणकरनेवाले वह भगवान मनुष्य पदवी का अनुकरणकर सोलहसहस्र श्रेष्ठस्त्रियों के घरमें हास्य विलास, कटाक्ष और संभोगआदि से इसप्रकार विहार करतेथे॥ ४४॥ विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार के कारणहरिनेपृथिवी पर जो असाधारण कर्म कियेथे, जो उनसबकर्मों को गावे, सुने वा अनुमोदनकरे उसकी मुक्ति के द्वार भगवान में भक्ति उत्पन्नहोवे॥ ४५॥

इतिश्री मद्भा०महापुराणेदशमस्कन्धे उ०सरलभाषाटीकायांएकोनसप्ततितमोऽध्यायः॥ ६९॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! एकदिन प्रातःकाल में मुर्गे शब्दकर रहेथे, पति के गलेमें भुजा डालेहुए आलिंगन की हुई श्रीकृष्णजी की स्त्रियां उनके विरहके भयसे मुर्गोंको शाप देनेलगीं॥ १॥ भौंरे कमलोंसे सुगन्धित हुई वायुके संगही संगगान करनेलगे, और सब पक्षी निद्रासे उठ बन्दीजनों की समान श्रीकृष्णजी को जगातेहुये ऊँचेस्वरसे शब्द करनेलगे,॥ २॥

। परिरम्भणविश्लेषात्प्रियबाह्वन्तरं गताः ॥३॥ ब्राह्मेमुहूर्तउत्थायवार्युपस्पृश्यमाधवः। दध्यौप्रसन्नकरण आत्मानंतमसःपरम् ॥ ४ ॥ एकंस्वयंज्योतिरनन्यमव्ययं स्वसंस्थयानित्यनिरस्तकल्मषम्। ब्रह्माख्यमस्योद्भवनाशहेतुभिः स्वशक्तिभिर्लक्षितभावनिर्वृतम् ॥ ५ ॥ अथाप्लुतोऽम्भस्यमलेयथाविधि क्रियाकलापंपरिधायवाससी। चकारसंध्योपगमादिसत्तमो हुतानलोब्रह्मजजापवाग्यतः ॥६॥ उपस्थायार्कमुद्यन्तंतर्पयित्वात्मनःकलाः। देवानृषीन्पितॄन्वृद्धान्विप्रानभ्यर्च्यचात्मवान् ॥ ७ ॥ धेनूनांरुक्मशृङ्गीणांसाध्वीनांमौक्तिकस्रजाम्। पयस्विनीनांगृष्टीनां सवत्सानांसुवाससाम् ॥८॥ ददौरूप्यखुराग्राणां क्षौमाजिनतिलैःसह। अलंकृतेभ्योविप्रेभ्यो बद्वंबद्वंदिनेदिने ॥९॥ गोविप्रदेवतावृद्धगुरून्भूतानिसर्वशः। नमस्कृत्यात्मसम्भूतीर्मङ्गलानिसमस्पृशत् ॥१०॥ आत्मानंभूषयामास नरलोकविभूषणम्। वासोभिर्भूषणैः स्वीयैर्दिव्यस्रगनुलेपनैः ॥११॥ अवेक्ष्याज्यंतथाऽऽदर्शं गोवृषद्विजदेवताः। कामांश्चसर्ववर्णानां पौरान्तःपुरचारिणाम्। प्रदाप्यप्रकृतीःकामैः प्रतोष्यप्रत्यनन्दत ॥१२॥ संविभज्याग्रतोविप्रान्स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः। सुहृदःप्रकृतीर्दारानुपायुङ्क्ततःस्वयम् ॥१३॥ तावत्सूत उपानीय स्यन्दनंपरमाद्भुतम्। सुग्रीवाद्यैर्हयैर्युक्तं प्रणम्यावस्थितोऽग्रतः ॥ १४ ॥ गृहीत्वापाणिनापाणी सारथेस्तमथारुहत्। सात्यक्युद्धवसंयुक्तः पूर्वाद्रिंमिवभास्करः ॥ १५ ॥ ईक्षितोऽन्तःपुरस्त्रीणां सव्रीडप्रेमवीक्षितैः। कृच्छ्राद्विसृष्टोनिरगाज्जातहासोहरन्मनः ॥१६॥ सुधर्माख्यांसभां सर्वैर्वृष्णिभिः परिवारितः। प्राविशद्यन्नि

वह शब्द यद्यपि अत्यन्त सुंदरथा तो भी प्रियके आलिंगनसे बिछुड़ जानेके भयसे रुक्मणी आदि स्त्रियें उस शब्दको क्षणभर भी नहीं सहसकतीथीं ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णजी ब्राह्म मुहूर्त में उठ जलसे आचमन कर प्रसन्न चित्तहो प्रकृतिसे पर आत्मा का ध्यान करने लगे, ॥ ४ ॥ वह उपाधि रहित आत्मस्थित, अव्यय, अखण्ड, अज्ञान रहित, ज्योतिःस्वरूप और इस जगतकी उत्पत्ति व नाशके कारण भूत, अपनी शक्तियोंसेही जिनकी सत्ता दिखाई देती है ब्रह्मनामक सदानन्द मय अपनेही स्वरूपका ध्यान करनेलगे ॥ ५ ॥ साधु श्रेष्ठ श्रीकृष्ण जी ने निर्मल जलसे स्नानकर वस्त्र धारण किये तथा विधिवत् सन्ध्योपासनादि कर्म व अग्निहोत्रकर संयम चित्तसे गायत्री का जप करने लगे ॥ ६ ॥ अनन्तर सूर्यनारायण को उदय हुआ देख उठकर उनको नमस्कार किया। उन्होंने अपने अंशभूत देवता, ऋषि पितर वृद्ध और ब्राह्मणों की पूजाकी तदुपरांत ब्राह्मणों को रेशमी वस्त्र, मृगचर्म और तिल समेत तेरहसहस्र चौरासी गौयें कि जिनके सींग स्वर्णसे मढ़ेहुए थे जो मोतियों की माला पहिन सुंदर स्वभाव वाली प्रथमबारकी ब्याईहुई बहुत दुग्धवती बछड़े युक्त सुन्दर वस्त्र पहिनाई हुई चांदीसे मढेहुए खुरोंवालीथीं दानकीं, ॥ ७—९ ॥ श्रीकृष्णजी ने अपनी विभूति गौ, ब्राह्मण, देवता, वृद्ध, गुरु और समस्त प्राणियोंको नमस्कारकर कपिला गौ, आदि मांगलिक पदार्थों का स्पर्श किया ॥ १० ॥ सृष्टि के भूषण स्वरूप अपनेको वस्त्र, आभूषण, दिव्यमाला और चन्दनसे भूषित किये॥११॥ और घृत, दर्पण, गौ, ब्राह्मण और देवताओं, का दर्शन कर सबनगर निवासी वर्णों और अन्तःपुरचारियोंको इच्छित दानदिया फिरइच्छित सामग्री दे प्रजाको संतुष्टकर स्वयं आनन्दितहुए ॥१२॥ अनंतर प्रथम ब्राह्मणोंको चन्दन और पानआदि देकर फिर स्वयं मित्र सुहृद और स्त्रियोंसे मिले ॥ १३ ॥ उसही समय सारथी सुग्रीवादि घोड़ोंको जोत परम अद्भुत रथलाय प्रणामकर सम्मुख खड़ाहोगया ॥ १४ ॥ सूर्य जैसे उदयाचलमें चढ़तेहैं भगवान वैसेही अपने हाथसे सारथी का हाथ पकड़ सात्यकि और उद्धव समेत रथपर चढ़े ॥ १५ ॥ अन्तःपुरकी नारियें प्रेम और लज्जायुक्त दृष्टिसे उनकी ओर देखनेलगीं भगवान उनके निमित्त थोड़ी देरतक खड़े रहकर हास्य द्वारा उनके मनका हरणकर वहांसेचले ॥ १६ ॥ हेराजन्! इसप्रकार

विशन्तीनसम्यषडूर्मयः ॥१७॥ तत्रोपविष्टःपरमासनेविभुर्बभौस्वभासाककुभो
ऽवभासयन् । वृतोनृसिंहैर्यदुभिर्यदूत्तमोयथोडुराजोदिवितारकागणैः ॥ १८ ॥
तत्रोपमन्त्रिणोराजन्नानाहास्यरसैर्विभुम् । उपतस्थुर्नटाचार्यानर्तक्यस्ताण्डवैःपृ-
थक् ॥ १९ ॥ मृदङ्गवीणामुरजवेणुतालदरस्वनैः । ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्चसूतमागध
बन्दिनः ॥ २० ॥ तत्राहुर्ब्राह्मणाःकेचिदासीनाब्रह्मवादिनः । पूर्वेषांपुण्ययशसां
राज्ञांचाकथयन्कथाः ॥ २१ ॥ तत्रैकःपुरुषोराजन्नागतोऽपूर्वदर्शनः । विज्ञापितो
भगवतेप्रतीहारैःप्रवेशितः ॥ २२ ॥ सनमस्कृत्यकृष्णायपरेशायकृताञ्जलिः।राज्ञा
मावेदयद्दुःखंजरासन्धनिरोधजम् ॥ २३ ॥ येचदिग्विजयेतस्यसंनतिंनययुर्नृपाः
प्रसह्यरुद्धास्तेनासन्नयुतेद्वेगिरिव्रजे ॥२४॥ कृष्णकृष्णाप्रमेयात्मन्प्रपन्नभयभंजन ।
वयंत्वांशरणंयामोभवभीताःपृथग्धियः ॥ २५ ॥ लोकोविकर्मनिरतःकुशलेप्रमत्तः
कर्मण्ययंत्वदुदितेभवदर्चनेस्वे । यस्तावदस्यबलवानिहजीविताशांसद्यश्छिनत्त्य
निमिषायनमोऽस्तुतस्मै ॥ २६ ॥ लोकेभवाञ्जगदिनःकलयावतीर्णःसद्रक्षणाय
खलनिग्रहणायचान्यः । कश्चित्त्वदीयमतियातिनिदेशमीशकिंवाजनःस्वकृतमृ-
च्छतितन्नविद्मः ॥ २७ ॥ स्वप्नायितंनृपसुखंपरतन्त्रमीशशश्वद्भयेनमृतकेनधुरंव-
हामः । हित्वातदात्मनिसुखंत्वदनीहलभ्यंक्लिश्यामहेऽतिकृपणास्तवमाययेह ॥
२८ ॥ तन्नोभवान्प्रणतशोकहराङ्घ्रियुग्मोबद्धान्वियुङ्क्ष्वमगधाह्वयकर्मपाशात्।

सब घरोंसे पृथक् २ निकल एकहो सब वृष्णि वंशियोंके साथ उन्होंने सुधर्मा नामक सभामें प्र-
वेश किया । हेराजन् ! उस सभामें बैठेहुये मनुष्यों को भूख प्यास आदि छै शत्रु बाधा नहीं दे-
सकते ॥ १७ ॥ विभु कृष्णजी उस सभामें प्रवेशकर यदुओंसे घिर तारागणों से घिरेहुये चंद्रमा
की समान प्रकाश पानलगे ॥ १८ ॥ महाराज ! वहां परिहासक (भांड़) नाना हास्य रससे नट
और नाचनेवाले अपने २ नृत्य आदिसे उनकी उपासना करनेलगे, ॥ १९ ॥ सूत मागध और
बन्दी मृदंग, वीणा, पखावज, वेणु, करताल और शंखके शब्दके साथ नृत्य और गान कर२ के
उनको सतुष्ट करनेलगे ॥ २० ॥ वहांपर बैठेहुये कुछेक वाक्य निपुण ब्राह्मण वेदमन्त्रोंसे व्याख्या
करने और प्राचीन राजाओंके पवित्र यशको भी कहने लगे ॥ २१ ॥ हेराजन् उसहीसमय उस
स्थानमें एक अनदेखाहुआ ब्राह्मण आया भगवान से इस वृत्तांत को जनाय द्वारपाल उसको ले-
कर उनके निकट गया ॥ २२ ॥ उस ब्राह्मणने हाथ जोड़ भगवानको नमस्कार कर जरासन्धसे
बंधेहुए राजाओं के दुःख को कहा, ॥ २३ ॥ जरासन्ध के दिग्विजय में जो राजा उसके वश न
हुएथे उन सबको उस दुष्टने गिरिव्रज नामक दुर्गमें बलपूर्वक बन्द कररक्खा है उन राजाओं की
संख्या बीस सहस्रहै । राजाओंने कहा है कि—हेकृष्ण ! हेकृष्ण ! हेभक्तभयनाशन ! हम भेद
बुद्धिवाले संसार से भीत होकर आपकी शरणागत हुएहैं ॥ २४—२५ ॥ मनुष्योंके सकाम और
अधम कर्मोंमें अत्यन्त रत होनेसे आपके कहेहुये पूजा रूप अपने मंगल कर्ममें रत होनेसे जो ब-
लवान पुरुष आकर तत्कालही उस जीवित मायाको काटडालताहै उन कालस्वरूप आपको प्रणाम
है ॥ २६ ॥ आप जगत के ईश्वरहो साधुओं की रक्षा और दुष्टोंके दमन करनेके निमित्तही आप
ने पृथ्वी पर अवतार लियाहै, । हेईश्वर ! दूसरा कोई आपकी आज्ञा को भंग करता अथवा म-
नुष्य (हम लोग) अपने २ कर्मोका भोग करतेहैं यह हम नहीं जानसकते, ॥ २७ ॥ राज्य स-
म्बन्धी सुख विषय साध्यहैं इसकारण पराधीन होनेसे वह स्वप्न सुखकी समानहै और यह देहभी
निरन्तर भयसे भराहुआ रहताहै तो भी इससे केवल स्त्री पुत्रादिक कीही चिन्ता करते रहते हैं ॥
निष्काम मनुष्य आपसे जो स्वतःसिद्ध सुखको पाते हैं आपकी मायासे बंधकर उस सुखको छोड़
कर हम अत्यन्त कष्ट पारहे हैं ॥ २८ ॥ आपके दोनों चरण भक्तजनों के शोकको दूर करते हैं।

योभूभुजोऽयुतमतङ्गजवीर्यमेकोबिभ्रद्रुरोधभवनेमृगराडिवाऽवीः ॥ २९ ॥ योवैत्व
याद्विनवकृत्वउदात्तचक्रभग्नोमृधेखलुभवन्तमनन्तवीर्यम् जित्वानृलोकनिरतंसक
दूढदर्पोयुष्मत्प्रजारुजतिनोऽजिततद्विधेहि ॥ ३० ॥ दूत उवाच ॥ इतिमागधसं
रुद्धाभवद्दर्शनकाङ्क्षिणः । प्रपन्नाःपादमूलंतेदीनानांशंविधीयताम् ॥ ३१ ॥ श्री
शुक उवाच ॥ राजदूतेब्रुवत्येवंदेवर्षिःपरमद्युतिः । बिभ्रत्पिङ्गजटाभारंप्रादुरासी
द्यथारविः ॥ ३२ ॥ तंदृष्ट्वाभगवान्कृष्णःसर्वलोकेश्वरेश्वरः।ववन्दउत्थितःशीर्ष्णा
ससभ्यःसानुगोमुदा ॥ ३३ ॥ सभाजयित्वाविधिवत्कृतासनपरिग्रहम् । बभाषेसू
नृतैर्वाक्यैः श्रद्धयातर्पयन्मुनिम् ॥ ३४ ॥ अपिस्विदद्यलोकानां त्रयाणामकुतोभय
म् । ननुभूयान्भगवतो लोकान्पर्यटतोगुणः ॥ ३५ ॥ नहितेऽविदितंकिञ्चिल्लोके
ष्वीश्वरकर्तृषु । अथपृच्छामहेयुष्मान् पाण्डवानांचिकीर्षितम् ॥ ३६ ॥ नारद
उवाच ॥ दृष्टामयातेबहुशोदुरत्यया मायाविभोविश्वसृजश्चमायिनः । भूतेषुभूम
श्चरतःस्वशक्तिभिर्वह्नेरिवच्छन्नरुचोनमेऽद्भुतम् ॥ ३७ ॥ तवेहितंकोऽर्हतिसाधुवे
दितुं स्वमाययेदंसृजतोनियच्छतः । यद्विद्यमानात्मतयाऽवभासते तस्मै नमस्ते
स्वविलक्षणात्मने ॥ ३८ ॥ जीवस्ययःसंसरतोविमोक्षणं नजानतोऽनर्थवहाच्छरी
रतः । लीलावतारैःस्वयशःप्रदीपकं प्राज्वालयत्त्वातमहंप्रपद्ये ॥ ३९ ॥ अथाप्यथ
श्रावयेब्रह्मन्नरलोकविडम्बनम् । राज्ञःपैतृष्वस्रेयस्य भक्तस्यचचिकीर्षितम् ॥४०॥

इस दशसहस्र हाथियोंके बलवाले निष्ठुर सिंहकी समान जरासन्ध ने अकेलेही हम भेड़ोंकी समान राजाओंको अपने घरमें बंदकर रक्खा है। आप इस मगध राजरूपी कर्मके बन्धनोंसे हमें छुड़ाओ ॥ २९ ॥ हे सुदर्शन चक्रधारी! जरासंध आपसे अठारह बेर संग्राम करके सत्रह बेरहारा था और केवल एकबार मनुष्योंके अनुकरण करनेवाले आपको जीतकर वह अत्यंत अभिमानीहो आपके भक्तोंको दुःख देरहा है। हे अजित! इस विषयमें जो उचितहो करियेगा ॥ ३० ॥ हे प्रभो! इस प्रकार मगध राजसे बंधेहुए राजाओंने आपके दर्शनों की इच्छाकर आपके चरणों की शरण ली है आप उन दीनोंका कल्याण करो ॥ ३१ ॥ राजदूत इसप्रकार से कह रहाथा कि उसी समय परम कांतिवान, पीतवर्णकी जटा धारण किये देवर्षि नारदजी सूर्यकी समान वहां आ उपस्थित हुए ॥ ३२ ॥ सर्व लोकेश्वरों के ईश्वर भगवान श्रीकृष्णजी ने उनको देख सभासद और अनुचरों सहित उठ आनंद पूर्वक उनकी वंदनाकी और विधिवत् उनका पूजनकर आसन पर बैठाय श्रद्धासे सन्तुष्टकर मीठे वचनों से कहाकि ॥ ३३-३४ ॥ इस समय त्रिलोकी में तो किसी प्रकार का भय नहीं है? इतनाही हमको परम लाभ है कि आप त्रिलोकी में भ्रमण करते रहतेहो, ईश्वर के रचेहुए इस लोक में आपसे अप्रगट कुछभी नहीं है अतएव आपसे पूंछताहूं कि पाण्डव क्या करते हैं? ॥ ३५ । ३६ ॥ नारदजीने कहा कि हे विभो! हे भगवन्! आप ब्रह्म मोहके उत्पन्न करनेवाले और ढकी हुई अग्नि के समान अपनी शक्तियोंद्वारा अन्तर्यामीरूपसे सबप्राणियोंमें वर्तमानहो। मैंने आपकी माया को अनेकों बार देखा है अतएव आप के इसप्रकार से पूछने पर कुछआश्चर्य नहीं है ॥ ३७ ॥ यह जो जगत वास्तव में अविद्यमान है वह आपकी माया से वंधकर विद्यमान सा प्रतीत होता है, आप अपनीही माया से इसकी उत्पत्ति और नाश करते हैं अतएव आपकी इच्छा को क्या कोई जानसकता है। आप का स्वरूप अचिन्त्य है इसकारण आपको केवलप्रणाम करताहूं ॥ ३८ ॥ अनर्थदायी शरीरके बन्धन से संसार में प्रवृत्तहुए मनुष्योंको मुक्ति देनेके निमित्त आप अपने लीलावतारों से ज्ञानके उत्पन्न करनेवाले अपने यशको प्रकाशित करतेहो, मैं आपकी शरणहूं ॥ ३९ ॥ हेभगवन्! आप ब्रह्महो परन्तु मनुष्यों का अनुकरण करतेहो; अतएव अपनी

यक्ष्यति त्वामखेन्द्रेण राजसूयेन पाण्डवः । पारमेष्ठ्यकामो नृपतिस्तद्भवाननुमोद
ताम् ॥ ४१ ॥ तस्मिन्देवक्रतुवरे भवन्तंवैसुरादयः । दिदृक्षवः समेष्यन्ति राजान
श्च यशस्विनः ॥ ४२ ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्ध्यानात् पूयन्तेऽन्तेऽवसायिनः । तवब्रह्म
मयस्येश किमुतेक्षाभिमर्शिनः ॥ ४३ ॥ यस्यामलं दिवियशः प्रथितं रसायां भूमौ
चतेभुवनमंगल दिग्वितानम् । मन्दाकिनीतिदिविभोगवतीतिचाधो गंगेतिचेहचर
णाम्बुपुनातिविश्वम् ॥४४॥ श्रीशुक उवाच ॥ तत्रतेष्वात्मपक्षेष्व गृह्णत्सुविजिगी
षया । वाचः पेशैः स्मयन्भृत्यमुद्धवंप्राहकेशवः ॥ ४५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वं
हिनःपरमंचक्षुः सुहृन्मन्त्रार्थतत्त्ववित् । तथाऽत्र ब्रूह्यनुष्ठेयं श्रद्दध्मः करवामतत् ४६
इत्युपामन्त्रितोभर्त्रा सर्वज्ञेनापिमुग्धवत् । निदेशंशिरसाऽऽधाय उद्धवः प्रत्यभा
षत ॥ ४७ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

श्रीशुक उवाच॥ इत्युदीरितमाकर्ण्यदेवर्षेरुद्धवोऽब्रवीत् । सभ्यानांमतमाज्ञाय
कृष्णस्यचमहामतिम् ॥ १ ॥ उद्धव उवाच ॥ यदुक्तमृषिणादेवसाचिव्यंयक्ष्यत
स्त्वया । कार्यंपैतृष्वस्रेयस्यरक्षाचशरणैषिणाम् ॥ २ ॥ यष्टव्यंराजसूयेनदिक्चक्र
जयिनाविभो । अतोजरासुतजयउभयार्थोमतोमम ॥३॥ अस्माकंचमहानर्थोह्येतेनै
वभविष्यति । यशश्चतवगोविन्दराज्ञोबद्धान्विमुञ्चतः ॥ ४ ॥ सवैदुर्विषहोराजा

फूफी के बेटों व भक्तों के राजकार्य को सुनो ॥ ४० ॥ राजा युधिष्ठिर आप के संतुष्ट करने की इच्छा से श्रेष्ठराजसूय यज्ञद्वारा आपकी आराधना करना चाहते हैं, आप उसकी सम्मतिदो ॥४१॥ उस श्रेनयज्ञ में देव दि और यशस्वी राजा भी आपके देखने को आवेंगे। जब चाण्डाल भी आप परब्रह्म के नाम और कर्मों को सुनकर व गायकर पवित्र होता है तबजो आप के दर्शन और स्पर्शन करेंगे उनकी बातको क्या कहूं ॥ ४२ । ४३ ॥ हे भुवनमंगल ! आपका यश, दिशा, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल में दिशाओं के अलंकाररूप से व्याप्त होरहा है आप के चरणोंका जल मंदा-किनी, गंगा और भोगवती के नाम से स्वर्ग, मर्त्य और पाताल को पवित्र करता है ॥ ४४ ॥ शुकदेवजी ने कहा—हेराजन् ! जब नारदजी ने इसभांतिकहा तब यादवों ने जरासंध के विजयकी इच्छा स युधिष्ठिर के यज्ञमें जानेकी सम्मति नदी—तब भगवान ने हँसकर, मीठे बचनोंसे अपने सेवक उद्धवजी से कहा ॥ ४५ ॥ हेउद्धव ! तुमहमारे परमबन्धु, मंत्रज्ञ और बात के तत्व को जाननेवालेहो इसकारण तुमहमारे परमनेत्र स्वरूपहो; मैं तुम्हारे वचनों को मानताहूं अतएव इस विषयमें जो उचितहो सोकहो मैं वही करूं ॥ ४६ ॥ स्वामी के सर्वज्ञ होने परभी इसप्रकार अज्ञान की समान परामर्श करने पर उद्धव ने उनकी आज्ञाको मस्तक पर धारणकरकेकहा॥४७॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०उ०सरलाभाषाटीकायांसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हेराजन्! उद्धवजी इस बातको सुन और देवर्षि, सभासद व श्रीकृष्ण जी के अभिप्रायको जानकर कहनेलगे ॥ १ ॥ हे देव ! आपकी फूफी के बेटे जब राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं तब आपको उनकी सहायता करनी चाहिये, यह बात जो देवर्षिने कही वह आपको करना उचित है और संदेशा भेजने वाले राजाओं की रक्षाभी अवश्यही करना चाहिये ॥ २ ॥ हे विभो ! युधिष्ठिर दिग्विजय करकेही राजसूय यज्ञ करेंगे अतएव मेरामत है कि दिग्विजय करने परही जरासंधको जीतना चाहिये; इससे दोकार्य सिद्ध होवेंगे प्रथम तो राजसूय यज्ञहोगा दूसरे शरणागतों की रक्षाहोगी ॥३॥ हे गोविंद ! ऐसा करने सेही हमारा अभिप्राय पूराहोगा । राजाओं को बधन से छुटानेपर आपकी भी कीर्त्ति बढ़ेगी ॥४॥ वह जरासंध दशसहस्र हाथियों की समान

नागायुतसमोबली । बलिनामपिचान्येषांभीमंसमबलंविना ॥ ५ ॥ द्वैरथेसतुजेतव्योमाशताक्षौहिणीयुतः । ब्रह्मण्योऽभ्यर्थितोविप्रैर्नप्रत्याख्यातिकर्हिचित् ॥ ६ ॥ ब्रह्मवेषधरोगत्वातंभिक्षेतवृकोदरः । हनिष्यतिनसन्देहोद्वैरथेतवसन्निधौ ॥७॥ निमित्तंपरमीशस्यविश्वसर्गनिरोधयोः । हिरण्यगर्भः शर्वश्चकालस्यारूपिणस्तव ॥८॥ गायन्तितेविशदकर्मगृहेषुदेव्योराज्ञांस्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणंच । गोप्यश्चकुञ्जरपतेर्जनकात्मजायाः पित्रोश्चलब्धशरणामुनयोवयंच ॥ ९ ॥ जरासन्धवधः कृष्णभूर्यर्थायोपकल्पते । प्रायः पाकविपाकेनतवचाभिमतःक्रतुः ॥१०॥ श्रीशुक उवाच इत्युद्धववचोराजन्सर्वतोभद्रमच्युतम् । देवर्षिर्यदुवृद्धाश्च कृष्णश्चप्रत्यपूजयन् ॥ ॥ ११ ॥ अथादिशत्प्रयाणायभगवान्देवकीसुतः । भृत्यान्दारुकजैत्रादीननुज्ञाप्य गुरून्विभुः ॥ १२ ॥ निर्गमय्यावरोधान्स्वान्ससुतान्सपरिच्छदान् । संकर्षणमनुज्ञाप्ययदुराजं च शत्रुहन् । सूतोपनीतंस्वरथमारुहद्गरुडध्वजम् ॥ १३ ॥ ततोरथद्विपभटसादिनायकैःकरालयापरिवृत आत्मसेनया । मृदङ्गभेर्यानकशंखगोमुखैःप्रघोषघोषितककुभोनिराक्रमत् ॥१४॥ नृवाजिकाञ्चनशिबिकाभिरच्युतंसहात्मजाः पतिमनुसुव्रताययुः ।वराम्बराभरणविलेपनस्रजः सुसंवृतानृभिरसिचर्मपाणिभिः ॥ १५ ॥ नरोष्ट्रगोमहिषखराश्वतर्यन:करेणुभिः पारजनवारयोषितः । स्वलंकृताःकटकुटिकम्बलाम्बराद्युपस्कराययुरधियुज्यसर्वतः ॥ १६ ॥ बलंबृहद्ध्वजपट-

बलवान है, समबल वाले भीमसेन बिना वह और किसी बली से जीताभी नहीं जासकता ॥ ५ ॥ उसको द्वैरथ (दो मनुष्यों) युद्ध सेही जीतना आवश्यक है नहीं तो सौ२ अक्षौहिणी सेभी वह न जीता जासकेगा । ब्राह्मण के याचना करनेपर वह उससे कभी भी विमुख नहीं होगा । भीमसेन को ब्राह्मण वेशधारण कर वहांजाय उससे युद्धकी प्रार्थना करनी चाहिये वह आपके सामने द्वन्द्व युद्धमें उसको मारेंगे इसमें संदेह नहीं है॥६-७॥निराकार कालरूप भगवान आपही विश्वकी उत्पत्ति और संहार करतेहो ब्रह्मा और रुद्रतो केवल निमित्तमात्र हैं ऐसेही आप जरासंधको मारोगे भीमसेनतो केवल निमित्त मात्रहोंगे ॥ ८ ॥ जैसे गोपियें शंखचूड़ के मारने से अपने छुड़ाने रूप आपके पवित्र यशको गाती हैं, शरणागत लोग ग्राहके मारने और गजके छुड़ाने रूप व जैसे मुनिलोग रावणके मारने व जानकी के छुड़ाने रूप व जैसे हम कंसके मारने और उससे माता पिताके छुड़ाने रूप आपकी पुण्य कीर्तिको गाते हैं वैसेही उन सबबंदी राजाओंके छूटजानेसे उनकी स्त्रियें अपने २ पतिके छूटने रूप आपके यशको गावेंगी ॥ ९ ॥ हे कृष्ण ! जरासंध के मरने से बहुत कार्य सिद्धहोंगे । राजाओं के पुण्य विपाक के कारणही उस यज्ञमें जानेकी आपकी इच्छा हुई है ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे राजन् ! देवर्षि नारद, श्रीकृष्णजी और सब यदुवंशियों ने उद्धवजी के वचनोंको स्वीकार किया ॥ ११ ॥ अनंतर प्रभावशाली भगवान श्रीकृष्णजी ने यात्रा करने के निमित्त गुरुजनों की आज्ञाले दारुक, जैत्रआदि सेवकोंको आज्ञाकी ॥ १२ ॥ उन्हों ने बलदेवजी की आज्ञाले अपनी स्त्रियों, पुत्रों समेत सब सामग्रीको आगेकर आप सारथी के लायेहुए गरुडध्वज रथपर बैठे ॥ १३ ॥ फिररथ, हाथी, पैदल और घोड़ोंकी भयानक सेना उनके साथ२ चली । मृदङ्ग, भेरीढक्का, शंख और गोमुखों के प्रचंड शब्दों से दिशाएं शब्दायमान होनेलगीं॥१४॥ श्रीकृष्णजी पुरीसे बाहर हुए । पतिव्रता स्त्रियें उत्तम २ वस्त्र आभूषण पहिन, चन्दन और माला धारणकर ढाल तलवार लियेहुए मनुष्यों से भलीप्रकार रक्षितहो पुत्रोंसमेत रथ, बग्घी और सुवर्ण की सामग्री वाली पालकियोंपर बैठ पति श्रीकृष्णजी के पीछे २ चलनेलगीं ॥ १५ ॥ परिजनकी स्त्रियां और वेश्याएं भलीप्रकार से अलंकृतहो चटाइयों के डेरे व कंबल वस्त्रआदि सब सामग्री मनुष्य ऊंट, बैल, भैंसे, गधे, खच्चर, गाड़े और हथिनियोंपर लाद २ चारों ओरसे चलीं ॥१६॥

छत्रचामरैर्ध्वजायुधाभरणकिरीटवर्मभिः । दिवांशुभिस्तुमुलरवंबभौरवेर्यथार्णवः क्षुभिततिमिङ्गिलोर्मिभिः ॥ १७ ॥ अथोमुनिर्यदुपतिनासभाजितःप्रणम्यतंहृदिविदधद्विहायसा । निशम्यतद्व्यवसितमाहृतार्हणोमुकुन्दसन्दर्शननिर्वृतेन्द्रियः ॥१८॥ राजदूतमुवाचेदंभगवान्प्रीणयन्गिरा । माभैष्टदूतभद्रंवोघातयिष्यामिमागधम् १९ इत्युक्तःप्रस्थितोदूतोयथावदवदन्नृपान् । तेऽपिसन्दर्शनं शौरेःप्रत्यैक्षन्यन्मुमुक्षवः ॥२०॥आनर्तसौवीरमरूंस्तीर्त्वाविनशनंहरिः। गिरीन्नदीरतीयाय पुरग्रामव्रजाकरान् ॥ २१ ॥ ततोदृषद्वतींतीर्त्वामुकुन्दोऽथसरस्वतीम् । पञ्चालानथमत्स्यांश्चशक्रप्रस्थमथागमत् ॥ २२ ॥ तमुपागतमाकर्ण्यप्रीतोदुर्दर्शनंनृणाम् । अजातशत्रुर्निरगात्सोपाध्यायःसुहृद्वृतः ॥ २३ ॥ गीतवादित्रघोषेणब्रह्मघोषेणभूयसा । अभ्ययात्सहृषीकेशंप्राणाःप्राणमिवादृतः ॥ २४ ॥ दृष्ट्वाविक्लिन्नहृदयःकृष्णंस्नेहेनपाण्डवः । चिराद्दृष्टंप्रियतमंसस्वजेऽथपुनःपुनः ॥ २५ ॥ दोर्भ्यांपरिष्वज्यरमाऽमलालयंमुकुन्दगात्रं नृपतिर्हताशुभः । लेभेपरांनिर्वृतिमश्रुलोचनोहृष्यत्तनुर्विस्मृतलोकविभ्रमः ॥२६॥ तंमातुलेयंपरिरभ्यनिर्वृतोभीमःस्मयन्प्रेमजलाकुलेन्द्रियः । यमौकिरीटीचसुहृत्तमंमुदाप्रवृद्धबाष्पाःपरिरेभिरेऽच्युतम् ॥ २७ ॥ अर्जुनेनपरिष्वक्तोयमाभ्यामभिवादितः । ब्राह्मणेभ्योनमस्कृत्यवृद्धेभ्यश्चयथाऽर्हतः ॥ २८ ॥ मानितोमानयामासकुरुसृञ्जयकेकयान् । सूतमागधगन्धर्वान्वन्दिनश्चोपमन्त्रिणः ॥ २९ ॥

तुमुल शब्द युक्त वह भयानक सेना ध्वजा, चमर, छत्र, पट, अस्त्रशस्त्र, आभूषण, किरीट, कवच व सूर्यकी किरणों से शोभायमानहो तिमिंगल और तरङ्गों से क्षुभितहुए सागर की समान शोभा पानेलगी ॥ १७ ॥ अनंतर देवर्षि नारद श्रीकृष्णजी से पूजित और उनके दर्शनों से परम आनंदितहो, उनके उद्योगको विचार प्रणाम किया और हृदयमें उनका विचार करते २ आकाश मार्गसे चलेगये ॥ १८ ॥ भगवान ने सुंदर बचनों से उस राजदूतको सन्तुष्ट करके कहा कि हे दूत ! राजाओं से कहना कि तुमभय मतकरो मैं निश्चयही शीघ्रही जरासंधको मार तुम्हारा कल्याण करूंगा ॥ १९ ॥ यह सुनकर दूतने जाय राजाओं से उस सब वृत्तांतको कह सुनाया, वे भी अपने छूटनेकी इच्छा से भगवान के दर्शनों की राह देखनेलगे ॥ २० ॥ इधर हरि आनर्त, सौवीर, मरुदेश और कुरुक्षेत्रको लांघकर पर्वत, नगर, गांव, व्रज और खानों को मझाते हुए दृषद्वती और सरस्वती के पारहो पांचाल और मत्स्यदेश को लांघकर इन्द्रप्रस्थ में आये ॥ २१ । २२ ॥ जिनके दर्शन मनुष्यों को बडे दुर्लभ हैं उन श्रीकृष्णजी को आयाहुआ सुनकर युधिष्ठिर आनन्दितहो ब्राह्मणों और बन्धुओं समेत पुरी से बाहरहुए ॥ २३ ॥ जैसे इन्द्रियें प्राणसेमिलें वैसेही वह युधिष्ठिर बाजे गाजेसे और वेदध्वनि करतेहुए आदर समेत श्रीकृष्णजी से मिले ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णजी को देखतेही पाण्डवों का हृदय स्नेह से द्रवीभूत होगया । वह बहुत काल के उपरांत प्यारे को देख बारम्बार उनसे मिलने लगे ॥ २५ ॥ लक्ष्मी के निर्दोष आश्रय भूत लक्ष्मीपति के शरीर से आलिंगनकरने पर राजा के सब अमंगल नष्टहोगये उनके दोनों नेत्रों से आनन्दाश्रु बहनेलगे, शरीर पुलकित होगया । उनको सब लौकिक व्यवहार भूलगया ॥ २६ ॥ भीम अपने उन मामा के पुत्रसे हँसकर मिले वहभी प्रेमाश्रु की धारासे आकुल होगये । नकुल सहदेव और अर्जुनभी आनन्द से प्यारे सुहृदका आलिंगनकर प्रेमाश्रुसे उनको सींचने लगे॥२७॥ अर्जुन श्रीकृष्णजी से मिले और नकुल व सहदेव ने मिलने के अनन्तर उनको प्रणामभी किया। उस समय श्रीहरि ने ब्राह्मण और वृद्धपुरुषों को यथायोग्य प्रणामकर उनसे सन्मानितहो कुरु, सृंजय और केकय वंशियों का तथा सूत, मागध, बन्दी व सेवकों का सत्कार किया ॥२८।२९॥

मृदङ्गशंखपटहवीणापणवगोमुखैः । ब्राह्मणाश्चारविन्दाक्षं तुष्टुवुर्ननृतुर्जगुः ॥ ३० ॥ एवं सुहृद्भिः पर्यस्तः पुण्यश्लोकशिखामणिः । संस्तूयमानो भगवान्विवेशाऽलंकृतं पुरम् ॥ ३१ ॥ संसिक्तवर्त्म करिणां मदगन्धतोयैश्चित्रध्वजैः कनकतोरणपूर्णकुम्भैः । मृष्टात्मभिर्नवदुकूलविभूषणस्रग्गन्धैर्नृभिर्युवतिभिश्च विराजमानम् ॥ ३२ ॥ उद्दीप्तदीपबलिभिः प्रतिसद्मजालनिर्यातधूपरुचिरं विलसत्पताकम् । मूर्धन्यहेमकलशै रजतोरुशृङ्गैर्जुष्टं ददर्श भवनैः कुरुराजधाम ॥ ३३ ॥ प्राप्तं निशम्य नरलोचनपानपात्रमौत्सुक्यविश्लथितकेशदुकूलबन्धाः । सद्यो विसृज्य गृहकर्म पतींश्च तल्पे द्रष्टुं ययुर्युवतयः स्म नरेन्द्रमार्गे ॥ ३४ ॥ तस्मिन्सुसंकुल इभाश्वरथद्विपद्भिः कृष्णं सभार्यमुपलभ्य गृहाधिरूढाः । नार्यो विकीर्य कुसुमैर्मनसोपगुह्य सुस्वागतं विदधुरुत्स्मयवीक्षितेन ॥ ३५ ॥ ऊचुः स्त्रियः पथि निरीक्ष्य मुकुन्दपत्नीस्तारा यथोडुपसहाः किमकारि भूभिः । यच्चक्षुषां पुरुषमौलिरुदारहासलीलावलोककलयोत्सवमातनोति ॥३६॥ तत्रतत्रोपसंगम्य पौरा मङ्गलपाणयः । चक्रुः सपर्यां कृष्णाय श्रेणीमुख्या हतैनसः ॥३७॥ अन्तःपुरजनैः प्रीत्या मुकुन्दः फुल्ललोचनैः । ससंभ्रमैरभ्युपेतः प्राविशद्राजमन्दिरम् ॥३८॥ पृथा विलोक्य भ्रात्रेयं कृष्णं त्रिभुवनेश्वरम् । प्रीतात्मोत्थाय पर्यङ्कात्सस्नुषा परिषस्वजे ॥ ३९ ॥ गोविन्दं गृहमानीय देवदेवेशमादृतः । पूजायां नाविदत्कृत्यं प्रमोदोपहतो नृपः ॥ ४० ॥ पितृष्वसुर्गुरुस्त्रीणां कृष्णश्चक्रेऽभिवादनम् । स्वयं

ये लोग मृदङ्ग, शंख, पटह, बीणा, पणव और वेणुके साथ नृत्य व गान कर २ हरि को प्रसन्न करने लगे ॥ ३०॥जिनके नाम और गुणों के कहने से पवित्रता उत्पन्न होती है उनके शिरोमणि भगवान सुहृदों के साथ सुन्दरपुरी मे आये,उस समय सबमनुष्य उनकी स्तुति कररहेथे ॥३१॥ मदमत्त हाथियों के झरतेहुए मदसे नगर के मार्ग सिंचगएथे; विचित्रध्वजा, सुवर्ण के तोरण,और भरेहुए कलशों से नगर शोभायमान होरहाथा। शुद्ध चित्त स्त्री पुरुष नवीन रेशमी वस्त्र पहिने नाना प्रकार के अलंकार, माला चन्दनादि धारण किये सब स्थानों में बिराजमानथे ॥ ३२ ॥ श्रीकृष्णजी ने कुरुराजका निवासस्थान देखा कि घर२में दीपक और पुष्प आदि शोभायमान होरहे हैं।घरों की जालियों से धुआं निकलरहा है और उस से पताकाएं शोभायमान होरही हैं उन में सुवर्णके कलश औरकलशों के नीचे चांदी के शिखर शोभायमानहोरहे हैं ॥३३ ॥ स्त्रियोंके नेत्रों को आनन्द देनेवाले श्रीकृष्णजीके अतिसुन्दर केश और वस्त्रों के बन्धनढीले होगए,वह तत्कालहीघरका सबकाम और शय्या में स्वामियों को छोड़ राजमार्ग में उनके देखने के निमित्त आनेलगीं॥३४॥ हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों से व्याप्त उस राजमार्ग में स्त्रियों समेत श्रीकृष्णजी को देख घरों के ऊपर बैठीहुई स्त्रियें उनके ऊपर फूल बरसाय २ मन २ में उनका आलिंगन कर बिस्मययुक्त दृष्टि से उनका आदर करनेलगीं ॥३५॥ चन्द्रमाके साथ नक्षत्रों की समान मार्ग में श्रीकृष्णजीके साथ स्त्रियोंको देख नगरकी स्त्रियें कहने लगीं कि–इन्होंने ऐसा क्या पुण्यकियाथा कि जिससे श्रीकृष्णजी उदारहास्य विलास और लीला से इनको आनन्द उत्पन्न कराते हैं ॥ ३६ ॥ अनन्तर पुरबासी और कारीगरलोग विशेष२ स्थानों में मांगलिक द्रव्यों से श्रीकृष्णजी की पूजाकरनेलगे ॥ ३७ ॥ श्रीकृष्णजी ने प्रीतिसे प्रफुल्लित नेत्रहो अंतःपुरके निवासियों से घिरकर राजमंदिर में प्रवेश किया ॥ ३८ ॥ कुंतीभाई के पुत्र त्रिभुवनेश्वर श्रीकृष्णजीको देखकर अत्यंत आनंदित हुई और पुत्रकी बहुओं समेत पलंगपरसे उठ उनका आलिंगन किया॥ ३९ ॥ राजा युधिष्ठिर आदर पूर्वक उनदेव देवेश कृष्णजीको लेआये वह उस समय प्रेमसे ऐसा व्याकुल होगये किपूजा करने की बिधिभी भूलगये ॥ ४० ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णजी ने फूफी और गुरु स्त्रियोंको प्रणाम किया

च कृष्णया राजभगिन्या चाभिवन्दितः ॥ ४१ ॥ श्वश्र्वासंचोदिताकृष्णा कृष्णप-
त्नीश्च सर्वशः । आनर्चरुक्मिणींसत्यां भद्रांजाम्बवतीं तथा ॥ ४२ ॥ कालिन्दींमि
त्रविन्दांच शैब्यांनाग्नजितींसतीम् । अन्याश्चाभ्यागतायास्तु वासःस्रङ्मण्डनादि-
भिः ॥ ४३ ॥ सुखंनिवासयामास धर्मराजोजनार्दनम् । ससैन्यंसानुगामात्यं स-
भार्यंचनवंनवम् ॥ ४४ ॥ तर्पयित्वाखाण्डवेन वह्निंफाल्गुनसंयुतः । मोचयित्वाम
यंयेन राज्ञेदिव्यासभाकृता ॥ ४५ ॥ उवास कतिचिन्मासान्राज्ञः प्रियचिकीर्षया ।
विहरन्रथमारुह्य फाल्गुनेनभटैर्वृतः ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एकदातुसभामध्यआस्थितोमुनिभिर्वृतः । ब्राह्मणैःक्षत्रियै
र्वैश्यैर्भ्रातृभिश्चयुधिष्ठिरः ॥ १ ॥ आचार्यैः कुलवृद्धैश्चज्ञातिसंबन्धिबान्धवैः । शृ
ण्वतामेवचैतेषामाभाष्येदमुवाचह ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ क्रतुराजेनगोविन्द
राजसूयेनपावनीः । यक्ष्येविभूतीर्भवतस्तत्सम्पादयनः प्रभो ॥ ३ ॥ त्वत्पादुकेअवि
रतंपरियेचरन्तिध्यायन्त्यभद्रनशनेशुचयोगृणन्ति । विन्दन्तितेकमलनाभभवाप
वर्गमाशासतेयदितआशिषईशनान्ये ॥ ४ ॥ तद्देवदेवभवतश्चरणारविन्दसेवाऽनु
भावमिहपश्यतुलोकएषः । येत्वांभजन्तिनभजन्त्युतवोभयेषांनिष्ठांप्रदर्शयविभोकु
रुसृञ्जयानाम् ॥ ५ ॥ नब्रह्मणः स्वपरभेदमतिस्तवस्यात्सर्वात्मनः समदृशः स्वसु

और द्रौपदी व बहिन सुभद्राने भी आकर उनको प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ द्रौपदी ने सासकी आज्ञानुसार रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती, कालिंदी, मित्रविंदा, शैब्या, नाग्नजिती और समस्त आईहुई श्रीकृष्णजी की स्त्रियों की पूजाकी । और दूसरी भी जोस्त्रियें आई थीं वस्त्र, माला और आभूषणादि देकर उनकी अर्चना की ॥ ४२–४३ ॥ युधिष्ठिर कृष्णजीको व उनकी सेना, मन्त्री और स्त्रियोंको नित्य नवीन २ सुख देकर प्रसन्नित करनेलगे ॥ ४४ ॥ श्रीकृष्णजी राजाको प्रियकरने के निमित्त सेना समेत अर्जुन सहित रथपर बैठ बिहार करते हुए कई महीने हस्तिनापुरमें रहे और अर्जुन के संगही खाण्डव बनसे अग्निको संतुष्ट कराय मयको छुड़ाय उससे युधिष्ठिरकी अद्भुतसभा बनवाई ॥ ४५ ॥ श्रीकृष्णजी अर्जुनको साथके, रथमें बैठ, योधाओंके संग राजाको प्रसन्न रखने के लिये कितने एक दिन इन्द्र प्रस्थमें रहे ॥ ४६ ॥

इतिश्री मद्भागवतमहापुराणेदशमस्कंधे उ० सरलभाषाटीकायांएकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! एकदिन युधिष्ठिरने मुनि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, भ्राता, आचार्य, कुलवृद्ध, सम्बन्धी और बांधवों से घिरकर सभामें बैठेहुये उन सबके सुनते श्रीकृष्णजीसे सम्बोधन करके कहा कि— ॥ १—२ ॥ हेगोविन्द ! मैं यज्ञश्रेष्ठ राजसूय यज्ञद्वारा आपके अंश रूप देवताओं का पूजन करना चाहताहूं, हेप्रभो ! तुम उसको पूर्णकरो, ॥ ३ ॥ हेकमलनाभ! हेईश्वर ! जो पवित्र मनुष्य निरन्तर आपकी पादुकाओं का सेवन व ध्यान करते हैं अथवा अमंगल नाशके निमित्त पवित्र होकर नामका उच्चारण करतेहैं वेही संसारसे मुक्ति पातेहैं । और यदि वे कल्याण की इच्छा करते हैं तो उनको वही प्राप्तहोताहै कि—जिसको चक्रवर्ती भी नहीं पासकते ॥ ४ ॥ अतएव हेदेव ! इन सब मनुष्यों को आपके चरणों की सेवा का प्रभाव अवश्य ही दिखाना चाहिये । हेविभो ! कुरु और संजय वंशियों मेंसे जो आपका भजन करते हैं और जो नहीं करते उन दोनों कोही अपनी मर्यादा दिखाओ, ॥ ५ ॥ आप निरुपाधि सबके आत्मा, समदर्शी और आत्मा रामहो अतएव आपको अपने और परायेका भेद नहीं है तोभी जो आप की

कमनुभूतेः । संसेवतांसुरतरोरिवतेप्रसादः सेवानुरूपमुदयोनविपर्ययोऽत्र ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सम्यग्व्यवसितंराजन्भवताशत्रुकर्शिना । कल्याणीयेनतेकीर्तिर्लोकाननुभविष्यति॥७॥ऋषीणांपितृदेवानांसुहृदामपिनःप्रभो। सर्वेषामपिभूतानामीप्सितः क्रतुराडयम् ॥ ८ ॥ विजित्यनृपतीन्सर्वान्कृत्वाचजगतींवशे । सम्भृत्यसर्वसंभारानाहरस्वमहाक्रतुम् ॥ ९ ॥ एतेतेभ्रातरोराजँल्लोकपालांशसंभवाः । जितोऽस्म्यात्मवताते‌ऽहंदुर्जयोयोऽकृतात्मभिः ॥१०॥ नकश्चिन्मत्परंलोकेतेजसायशसाश्रिया । विभूतिभिर्वाऽभिभवेद्देवोऽपिकिमुपार्थिवः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्यभगवद्गीतंप्रीतः फुल्लमुखाम्बुजः।भ्रातॄन्दिग्विजयेऽयुङ्क्तविष्णुतेजोपबृंहितान् ॥१२ ॥ सहदेवंदक्षिणस्यामादिशत्सहसृञ्जयैः । दिशिप्रतीच्यांनकुलमुदीच्यांसव्यसाचिनम् । प्राच्यांवृकोदरंमत्स्यैः केकयैः सहमद्रकैः ॥ १३ ॥ तेविजित्यनृपान्वीराआजह्रुर्दिग्भ्यओजसा । अजातशत्रवेभूरिद्रविणंनृपयक्ष्यते ॥ १४ ॥ श्रुत्वाऽजितंजरासन्धंनृपतेर्ध्यायतोहरिः। आहोपायंतमेवाद्यउद्धवोयमुवाचह।१५। भीमसेनोऽर्जुनः कृष्णोब्रह्मलिङ्गधरास्त्रयः। जग्मुर्गिरिव्रजं तात बृहद्रथसुतो यतः ॥ १६ ॥ तेगत्वातिथ्यवेलायांगृहेषुगृहमेधिनम् । ब्रह्मण्यंसमयाचेरन्राजन्याब्रह्मलिङ्गिनः ॥ १७ ॥ राजन्विद्ध्यतिथीन्प्राप्तानर्थिनोदूरमागतान् । तन्नःप्रयच्छभद्रंतेयद्वयंकामयामहे ॥ १८ ॥ किंदुर्मर्षंतितिक्षूणांकिमकार्यमसाधुभिः। किंनदेयंवदान्या

सेवा करतेहैं कल्पवृक्ष की समान आप उनहीं पर प्रसन्न होतेहो । जो मनुष्य आपकी जैसी सेवा करताहै आप उसको वैसाही फल देतेहो कभी उसके विपरीत नहीं होता ॥ ६ ॥ श्रीभगवान ने कहा कि—हेराजन् ! हेशत्रुकर्षण ! आप जो संकल्प करतेहो वह अत्यन्तही श्रेष्ठहै आपकी यह मंगलदायी कीर्त्ति सर्वलोकमें व्याप्त होगी ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! यह महायज्ञ ऋषियोंको, पितरोंको, देवताओंको, बन्धुओं को, समस्त प्राणियों की और मुझको भी अतिप्रिय है, ॥८॥ तुम समस्त राजाओं को जीत और पृथिवीको वशीभूत कर सब सामग्रीका प्रस्तुतकर श्रेष्ठ यज्ञका अनुष्ठान करो ॥ ९ ॥ हेराजन् ! आपके यह सब भाई लोकपालों से उत्पन्न हुए हैं इनकेही द्वारा सब राजा परास्त होंगे । मैं भी अजितेन्द्रिय मनुष्यों का अजेय आपकी जितेन्द्रियता से आपके वशीभूत हुआहूं ॥ १० ॥ राजाओंकी बातें तो दूररहीं देवता भी मेरे भक्तों का तेज, कीर्त्ति लक्ष्मी और सेनापति आदि से पराजय नहीं करसकते ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! भगवान की बातोंको सुन स्नेहसे राजाका कमलमुख प्रफुल्लितहोउठा उन्हों ने विष्णु के तेज से बढ़ेहुये भाइयोंको दिग्विजयके निमित्त नियुक्त किया ॥ १२ ॥ सृंजयगणके साथ सहदेवको दक्षिण और मत्स्यगण के साथ नकुल को पश्चिमऔर केकय गण के साथ अर्जुन को उत्तर की ओर मद्रदेश के क्षत्रियों के साथ भीमको पूर्वकी ओर भेजा ॥ १३ ॥ हेराजन् ! वे सब वीर चारोंओरसे बलपूर्वक राजाओं को जीत २ बहुतसा धन ला २ राजा युधिष्ठिरको देनेलगे ॥ १४ ॥ केवल जरासंध के अतिरिक्त और सब राजा परास्त हुए, यह सुन राजाके चिंतित होनेपर भगवान हरिने उद्धव के कहेहुए उपाय को कहा ॥ १५ ॥ हेराजन् ! अनन्तर भीमसेन, अर्जुन और श्रीकृष्णजी तीनों जन ब्राह्मण का वेश धारणकर जरासन्ध की राजधानी गिरिव्रज में आए ॥ १६ ॥ ब्राह्मण वेश धारण कियेहुए इन क्षत्रियों ने जरासन्ध के घर अतिथि के पूजन समयमें पहुंच ब्राह्मण सेवा के निमित्त उससे याचना करके कहा कि— ॥ १७ ॥ हेराजन् ! हम बहुत दूरसे आयेहुए अतिथि हैं अतएव हमारी इच्छाको आप पूरी करो आपका कल्याण होवे ॥ १८ ॥ क्षमाशील मनुष्योंको कुछ दुःसह नहींहै असज्जनों को कोई भी कुकार्य नहींहै दान शील मनुष्योंको कुछ भी अदेयनहीं

नांकः परः समदर्शिनाम् ॥ १९ ॥ योऽनित्येनशरीरेणसतांगेयंयशोध्रुवम् । नाऽऽ
चिनोतिस्वयंकल्पः स वाच्यःशोच्यएवसः ॥ २० ॥ हरिश्चन्द्रोरन्तिदेव उञ्छवृत्तिः
शिबिर्बलिः । व्याधःकपोतोबहवो ह्यध्रुवेणध्रुवंगताः ॥ २१ ॥ श्रीशुकउवाच । स्व
रैराकृतिभिस्तांस्तु प्रकोष्ठैर्ज्याहतैरपि । राजन्यबन्धून्विज्ञाय दृष्टपूर्वानचिन्तयत् ॥
॥ २२ ॥ राजन्यबन्धवोह्येते ब्रह्मलिंगानिबिभ्रति । ददामिभिक्षितंतेभ्य आत्मानम-
पिदुस्त्यजम् ॥ २३ ॥ बलेर्नुश्रूयते कीर्तिर्विततादिक्ष्वकल्मषा। ऐश्वर्याद्भ्रंशितस्या
पि विप्रव्याजेन विष्णुना ॥ २४ ॥ श्रियंजिहीर्षतेन्द्रस्य विष्णवेद्विजरूपिणे । जान-
न्नपिमहीं प्रादाद्वार्यमाणोऽपिदैत्यराट् ॥ २५ ॥ जीवताब्राह्मणार्थाय कोन्वर्थःक्षत्र-
बन्धुना । देहेनपतमानेन नेहतावियुलंयशः ॥ २६ ॥ इत्युदारमतिःप्राह कृष्णार्जुन-
वृकोदरान् । हेविप्रा व्रियतांकामो ददाम्यात्मशिरोपिवः ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच
युद्धंनोदेहिराजेन्द्र द्वन्द्वशोयदिमन्यसे ॥ युद्धार्थिनोवयंप्राप्ता राजन्यानान्यकांक्षि-
णः ॥ २८ ॥ असौवृकोदरःपार्थस्तस्य भ्राताऽर्जुनोह्ययम्। अनयोर्मातुलेयमां कृष्णं
जानीहि ते रिपुम् ॥ २९ ॥ एवमावेदितोराजा जहासोच्चैःस्ममागधः । आहचामर्षि
तोमन्दा युद्धंतर्हिददामिवः ॥ ३० ॥ नत्वयाभीरुणायोत्स्ये युधिविक्लवचेतसा ॥
मथुरांस्वपुरींत्यक्त्वा समुद्रंशरणंगतः ॥ ३१ ॥ अयंतुवयसाऽतुल्यो नातिसत्त्वो न
मेसमः । अर्जुनोनभवेद्योद्धा भीमस्तुल्यबलोमम ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वाभीमसेनाय प्रा

है और समदर्शियों को कोई भी दूसरा नहीं है ॥१९॥ जो पुरुष स्वयं समर्थ होकर इस अनित्य देहमें साधुओं के गानेयोग्य निर्मल यशको नहीं प्राप्त करता वह पुरुष निंदनीय और शोकित होताहै ॥ २० ॥ देखो ! हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, मुद्गल, शिबि, व्याध, कपोत और भी दूसरे बहुतोंने इस अनित्य शरीरसे नित्यलोकको प्राप्त कियाहै, ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! बातचीत आकृति और धनुषकी प्रत्यंचा के घातके चिह्नोंवाले भुजाओंसे उनको क्षत्रिय और पहिले भी कभी देखाहुआ जान जरासन्ध विचार करनेलगा, कि— ॥ २२ ॥ यह क्षत्रीहैं, परन्तु ब्राह्मण का चिह्न धारण कियेहुए हैं मैं इनको नहीं त्यागने योग्य आत्मा को भी इनके मांगने पर आज देदूंगा ॥ २३ ॥ श्रीविष्णु ने इन्द्रका ऐश्वर्य रखने के निमित्त ब्राह्मण वेश धारणकर बलिका ऐश्वर्य छीनाथा तौ भी क्या बलिका निर्मल यश चारोंओर नहीं व्याप्त हुआ ॥ २४ ॥ दैत्यराजने जानकर और शुक्राचार्य के निवारण करनेपर भी ब्राह्मणरूपी भगवान को पृथिवी देदीथी, २५ ॥ यह देह अनित्यहै क्षत्रियों की देह यदि ब्राह्मणों का कार्यकर विपुल यशके प्राप्त करनेका यत्न न करे तो उसके जीवित न रहनेसेही क्या फलहै ॥ २६ ॥ उदार बुद्धि जरासन्धने इसप्रकारसे निश्चय कर श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेन से कहा, हेविप्रो ! आप इच्छित वरको मांगो, यदि आप मेरे मस्तक को भी मांगोगे तो वह भी मैं आपको देदूंगा ॥ २७ ॥ श्रीभगवानने कहा कि-हेराजेन्द्र ! हम क्षत्रीहैं युद्धकी इच्छासे यहां आयेहैं, और हमारी कुछ इच्छा नहींहै यदि इच्छाहो तो हमारे साथ द्वन्द्वयुद्ध का आरम्भ करो ॥ २८ ॥ यह कुन्ती के पुत्र भीमसेन हैं यह उनके भाई अर्जुनहैं मैं इन दोनोंके मामाका पुत्र और आपका शत्रु कृष्ण हूं, ॥ २९ ॥ राजा जरासन्ध यह सुनकर उच्चस्वरसे हंसने और क्रोधित होकर कहनेलगा कि—रेमूर्खो ! तब तो मैं तुम्हें युद्ध दूंगा, ॥ ३० ॥ कृष्ण ! तू डरपोक है तू युद्धभूमि से भागगयाथा तूने अपनी पुरी मथुरा को छोड़कर समुद्रकी शरण ली है मैं तेरे संग युद्ध न करूंगा ॥ ३१ ॥ यह अर्जुन भी वय में छोटा और निर्बल है तथा देह मेंभी मेरी समान नहीं है । अतएव यह योद्धा नहीं होसकता । भीमसेन मेरी ही समान बलवान है, इससे ही संग युद्ध करूंगा ॥ ३२ ॥ राजा जरासंध ने यह

दावमेहत्तांगदाम्। द्वितीयांस्वमादाय निर्जगामपुराद्बहिः॥३३॥ ततस्तमेकजेवीरौ संयुक्ताबितरेतरौ। अन्नतुर्वेजकल्पाभ्यां गदाभ्यांरणदुर्मदौ॥ ३४॥ मण्डलानि विचित्राणि सव्यंदक्षिणमेवच। चरतोः शुशुभेयुद्धं नटयोरिवरंगिणोः॥ ३५॥ स तत्रटचटाशब्दो वज्रनिष्पेषसन्निभः। गदयोःक्षिपयो राजन्दन्तयोरिव दन्तिनोः। ॥ ३६॥ तेवेगदेभुजजवेन निष्पातयमास अन्योऽन्यतोऽसकटिपादकरोरुजत्रून्। चूर्णीबभूवतुरुपेत्यथाऽर्कशाखे संयुध्यतोर्द्विरदयोरिवदीप्तमन्व्योः॥ ३७॥ इत्यंततयोः प्रहृतयोर्गदयोर्नृवीरौ क्रुद्धौस्वमुष्टिभिरयः स्पर्शैरपिष्टाम्। शब्दस्तयोःप्रहरतोरिभयोरिवासीन्निर्घातवज्रपवनस्तलताडनोत्थः॥३८॥ तयोरेवंप्रहरतोःसमशिक्षाबलौजसोः। निर्विशेषमभूद्युद्धमक्षीणजवयोर्नृप॥ ३९॥ एवंतयोर्महाराज युध्यतोःसप्तविंशतिः। दिनानिनिरगंस्तत्र सुहृद्वन्निशि तिष्ठतोः॥ ४०॥ एकदामातुलेयंवै प्राहराजन्वृकोदरः। नशक्तोऽहंजरासन्धं निर्जेतुंयुधिमाधव॥४१॥ शत्रोर्जन्ममृती विद्वाञ्जीवितंच जराकृतम्। पार्थमाप्याययन्स्वेन तेजसाऽचिन्तयद्धरिः॥ ४२॥ संचिन्त्यारिवधोपायं भीमस्यामोघदर्शनः। दर्शयामासविटपं पाटयन्निवसंज्ञया। ॥ ४३॥ तद्विज्ञायमहासत्वो भीमःप्रहरतांवरः। गृहीत्वापादयोःशत्रुं पातयामास भूतले॥ ४४॥ एकंपादंपदाक्रम्य दोर्भ्यामन्यंप्रगृह्यसः। गुदतः पाटयामास शाखामिवमहागजः॥ ४५॥ एकपादोरुवृषणकटिपृष्ठस्तनांसके। एकबाह्वक्षिभ्रूक-

कहकर भीमसेन को एक बडी भारी गदादी और स्वयं एक दूसरी गदा ले घरसे बाहर निकला ॥ ३३॥ अनंतर वह दोनों रणमें मदोन्मत्त वीर वज्रकी समान गदाओं से परस्पर एक दूसरेपर प्रहार करने लगे ॥ ३४ ॥ दाहिनी ओर बांई ओर भ्रमण करते हुए उन दोनों वीरों का युद्ध रंग भूमि मे प्रवेश किये हुए दो नटों के युद्ध की समान शोभा देने लगा ॥ ३५ ॥ हे राजन्! दो हाथियों के लड़ने में उनके दांतों के होतेहुए शब्दकी समान उन दोनों गदाओंका वज्रपात की सदश चट चट शब्द होता था ॥ ३६ ॥ प्रचण्ड क्रोध वाले दो हाथियों के युद्धमें प्रवृत होने पर जिस प्रकार उनके अंग से लगकर आककी शाखाएं टूट जाती हैं उसी प्रकार हाथों के वेगसे चलाईजातीहुई गदाएं परस्पर मे कन्धा, कमर, हाथ, साथल और हसियों में लगकर चूर्णहोगई ॥ ३७ ॥ उन दोनों गदाओं के इसप्रकार से टूटजाने पर वह दोनों क्रोधित वीर अपनी २ लोहे की समान मुक्कियों से परस्पर लड़ने लगे वह दोनों मुक्कियों से एक दूसरे के शरीर को चूर्णकरने लगे। मत्तहाथी की सदश प्रहार करतेहुए इनवीरों की मुक्कियों का प्रहार वज्र के शब्दकीसमान कठोर होताथा ॥ ३८ ॥ हेराजन्! वह दोनोंजन शिक्षा, बल और प्रभाव मे समानहीथे अतएव किसी का भी वेग क्षीणनहुआ। उन दोनों का एकसायुद्ध होनेलगा ॥ ३९ ॥ इसप्रकार से युद्ध करते २ सत्ताईस दिन बीतगए, वह दिन में तो युद्ध करते परन्तु रात्रि में मित्र की समान रहते थे ॥ ४० ॥ एक दिन भीमसेन नें कृष्णजी से कहा कि—महाराज! मैंतो युद्ध में जरासंध को नहीं जीतसकता ॥ ४१ ॥ हरि को शत्रुकाजन्म, मृत्यु और जीवन ज्ञातथा वह अपने तेजसे भीमसेन को बढ़ाय जरा राक्षसीके कार्य का विचार करने लगे ॥ ४२ ॥ अमोघ दर्शन श्रीकृष्णजीने एक वृक्षकी टहनी ले उसको चीर सैन से भीमको शत्रु के मारने का यत्न बतलादिया ॥ ४३ ॥ प्रहारकरनेवालों में श्रेष्ठ महाबलवान भीमने उसको जान दोनों पैर पकड़ शत्रुको पृथ्वीपर गिरादिया ॥ ४४ ॥ अनन्तर अपने पैर से उसके एक पैर को दाब दोनों हाथों से उसके दूसरे पैर को पकड़ मत्तहाथी से चीरीहुई शाखा के समान गुदासे उसको चीरडाला ॥ ४५ ॥ इस से दोनों ओर को दोखण्ड गिरपड़े। उसकी कमर से एक २ ओर एक २ पैर, वृषण, कटि, स्तन,

र्गे शकलेददृशुःप्रजाः ॥ ४६ ॥ हाहाकारोमहानासीन्निहते मगधेश्वरे । पूजयामा सतुर्भीमं परिरभ्यजयाच्युतौ ॥ ४७ ॥ सहदेवंतत्तनयं भगवान्भूतभावनः । अभ्य षिंचदमेयात्मा मगधानांपतिंप्रभुः । मोचयामास राजन्यान्संरुद्धा मागधेनये ४८॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

श्रीशुकउवाच । अयुतेद्वेशतान्यष्टौ लीलयायुधि निर्जिताः । ते निर्गतागिरिद्रो ण्यां मलिनामलवाससः ॥ १ ॥ क्षुत्क्षामाःशुष्कवदनाः संरोधपरिकर्शिताः । ददृ- शुस्तेघनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ २ ॥ श्रीवत्सांकंचतुर्बाहुं पद्मगर्भारुणेक्षण म् । चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३ ॥ पद्महस्तं गदाशंखरथांगैरुपल- क्षि तम् । किरीटहारकटककटिसूत्रांगदांचितम् ॥ ४ ॥ भ्राजद्वरमणिग्रीवं निवीतं वनमालया । पिबन्तइवचक्षुर्भ्यांलिहन्तइवजिह्वया ॥ ५ ॥ जिघ्रन्तइवनासाभ्यांर- म्भन्तइवबाहुभिः । प्रणेमुर्हतपाप्मानोमूर्धभिःपादयोर्हरेः ॥ ६ ॥ कृष्णसंदर्शनाह्- लादध्वस्तसंरोधनक्लमाः । प्रशशंसुर्हृषीकेशंगीर्भिःप्राञ्जलयोनृपाः ॥ ७ ॥ रा- जान ऊचुः ॥ नमस्तेदेवदेवेशप्रपन्नार्तिहराव्यय । प्रपन्नान्पाहिनःकृष्णनिर्विण्णा न्घोरसंसृतेः ॥ ८ ॥ नैनंनाथान्वसूयामोमागधंमधुसूदन । अनुग्रहोयद्भवतोराज्ञां राज्यच्युतिर्विभो ॥ ९ ॥ राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो नश्रेयोविन्दतेनृपः । त्वन्मायामो- हितोऽनित्यामन्यतेसम्पदोऽचलाः ॥ १० ॥ मृगतृष्णांयथाबालामन्यन्तउदकाशय

कन्धा, भुजा, नेत्र, भौंह और कानरहगये । मनुष्य उसको देखकर बडेही अचम्भितहुए ॥ ४६॥ मगधराज के मरने से बडाही हाहाकारहुआ । अर्जुन और श्रीकृष्णजी ने भीम से मिलकर उनकी पूजाकी ॥ ४७॥ भूतभावन, अमोघात्मा भगवान ने उस जरासंध के पुत्र सहदेवको मगधदेशकी राजगद्दी पर बिठायसबबन्दीराजाओंको बन्दीगृहसे छुडाया ॥ ४८ ॥

इतिश्री मद्भा०महापुराणेदशमस्कंधेउ०सरलाभाषाटीकायांद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे राजन् ! बीस सहस्र आठसौ राजा युद्धमें हारकर जरासंध से पर्वत की गुफामें बंदीहुए थे । बहुत दिनतक गुफामें बंदरहने से वह अत्यंत मलीन, कृश और भूख से पीडित होगये थे। क्षीण शरीरयुक्त कारागार से निकल उन्होंने श्रीकृष्णजीका दर्शन किया ॥ १–२॥ वे भगवान पीताम्बर धारण कियेहुए थे, वक्षःस्थल में श्रीवत्सका चिह्न व चारभुजा धारण किये, उनके दोनों नेत्र कमल के भीतरी भागके समान लालवर्ण के हैं उनका मुख सुंदर व प्रसन्न है वह कानों में प्रकाशित मकराकृत कुंडल धारण किये व हाथमें कमल लिये हैं । वह गदा, शंख, और चक्रके चिह्नोंसे चिह्नित और किरीट, हार, कडे, कटिमेखला और भुजबंद से भूषित होरहे हैं। उनके कंठमें कौस्तुममणि प्रकाशित होरही है वह बनमाला धारण कियेहुए हैं । श्रीकृष्णजी के दर्शनों से जोआनंद प्राप्तहुआ तब राजा उससे कारागारके दुःखको भूलगये, उनके सब पापभी नष्टहोगये । वह दोनों नेत्रोंसे मानों पीतेहोंमें, जिह्वासे मानों चाटते, नासिका से मानों सूंघते और दोनों भुजाओं से मानों आलिङ्गन करतेहों इसप्रकारसे वे सबराजा मस्तक से हरिके दोनों चरणों को प्रणामकर हाथजोड उनकी स्तुति करनेलगे ॥ ७ ॥ राजाओं ने कहाकि–हे देव देवेश ! हे अव्यय आपको नमस्कार है। हे कृष्ण ! हम आपकी शरण में आये हैं इस दुःखदायी घोरसंसार से हमारा उद्धारकरो ॥ ८ ॥ हे नाथ ! हे मधुसूदन ! हम इस मगधराजको कुछभी दोष नहीं देते । हे विभो ! हमलोग जो राजच्युत हुए वह आपका अनुग्रह है । राजा, राज्य और ऐश्वर्य के मदसे मत्तहोकर कल्याण नहीं प्राप्त करसकते; आपकी मायासे मोहितहो अनित्य सम्पत्तिको नित्यजान गर्वित होजाते हैं ॥ ९–१० ॥ जैसे बालक मृगतृष्णाको जलाशय जानते हैं तैसेही अ-

म् । पश्यंवैकारिकींमायामयुक्तावस्तुचक्षते ॥ ११ ॥ वयंपुराश्रीमदनष्टदृष्टयोजिगी षयाऽस्याइतरेतरस्पृधः । घ्नन्तःप्रजाःस्वाअतिनिर्घृणाःप्रभोमृत्युंपुरस्त्वाऽविगण- य्यदुर्मदाः ॥ १२ ॥ तएवकृष्णाद्यगभीररंहसादुरन्तवीर्येणविचालिताःश्रियः । कालेनतन्वाभवतोऽनुकम्पयाविनष्टदर्पाश्चरणौस्मरामते ॥ १३ ॥ अथोनराज्यंमृग- तृष्णिरूपितंदेहेनशश्वत्पततारुजांभुवा । उपासितव्यंस्पृहयामहेविभोक्रियाफलं- प्रेत्यचकर्णरोचनम् ॥ १४ ॥ तंनःसमादिश्योपायंयेनतेचरणाब्जयोः । स्मृतिर्यथा नविरमेदपिसंसरतामिह ॥ १५ ॥ कृष्णायवासुदेवायहरयेपरमात्मने । प्रणतक्ले- शनाशायगोविन्दायनमोनमः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संस्तूयमानोभगवान्राज भिर्मुक्तबन्धनैः । तानाहकरुणस्तातशरण्यःश्लक्ष्णयागिरा ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवा च ॥ अद्यप्रभृतिवोभूपामय्यात्मन्यखिलेश्वरे । सुदृढाजायतेभक्तिर्बाढमाशंसितं तथा ॥ १८ दिष्ट्याव्यवसितंभूपाभवन्तऋतभाषिणः । श्रियैश्वर्यमदोन्नाहंपश्य उन्मादकंनृणाम् ॥ १९ ॥ हैहयोनहुषोवेनोरावणोनरकोऽपरे । श्रीमदाद्भ्रंशिताःस्था नाद्देवदैत्यनरेश्वराः ॥ २० ॥ भवन्तएतद्विज्ञायदेहाद्युत्पाद्यमन्तवत् । मांयजन्तोऽ ध्वरैर्युक्ताःप्रजाधर्मेणरक्षथ ॥ २१ ॥ संतन्वन्तःप्रजातन्तून्सुखंदुःखंभवाभवौ । प्रा- प्तंप्राप्तंचसेवन्तोमच्चित्ताविचरिष्यथ ॥ २२ ॥ उदासीनाश्चदेहादावात्मरामाधृत व्रताः । मय्यावेश्यमनःसम्यङ्मामन्तेब्रह्मयास्यथ ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्या दिश्यनृपान्कृष्णोभगवान्भुवनेश्वरः । तेषांन्ययुङ्क्तपुरुषान्स्त्रियोमज्जनकर्मणि ॥ २४ ॥

विचारी मनुष्य विकारवान मायाको सत्य मानते हैं ॥ ११ ॥ पहिले ऐश्वर्य्य के गर्वसे हमलोगों की भी बुद्धि भ्रमित होगई थी, इस पृथ्वी के जीतनेकी कामना से हम परस्पर शत्रुता रखते, और अपने शिरपर रहेमृत्यु रूप आपको न गिनकर मतवालेहो अत्यंत निठुरता से मनुष्योंको मारते थे ॥ १२ ॥ हे श्रीकृष्ण ! हम सम्पत्ति के गम्भीर पराक्रम से गर्वितहोरहे थे, आज आपकी कृपासे अनुग्रह से अभिमान रहितहो आपके दोनों चरण कमलों का स्मरण करते हैं ॥ १३ ॥ अबहमें राज्यकी कामना नहीं है। राज्य मृगतृष्णा की समान है, सबरोगों की जन्मभूमि इस क्षणभंगुर देहसे उसकी नित्य उपासना करनी पड़ती है। हम परलोक मेंभी कर्म फलसे स्वर्गादि की भी कामना नहीं करते क्योंकि वहतो केवल कानोंहीको प्रिय है ॥ १४ ॥ अतएव आप ऐसा उपाय बतलाओ कि जिससे हम संसारमें भ्रमण करते हुएभी आपके चरण कमलोंको न भूलसकें ॥ १५ ॥ हे श्रीकृष्ण,वासुदेव, हरि,परमात्मा, भक्तोंके क्लेशनाशक गोविंद आपको बारबार हमारा नमस्कार है ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे वत्स ! शरणागत वत्सल दयालु भगवान की जब छूटेहुए राजाओं ने इस प्रकार स्तुति की तब भगवान ने मनोहर वाक्यों से उनसे कहाकि—॥ १७ ॥ हे राजाओं ! तुमलोग जोइच्छा करतेहो वह निश्चयही आजसे मुझ अखिलेश्वर आत्मा में तुम्हारी दृढभक्ति होवेगी ॥ १८ ॥ हे राजालोग ! तुम्हारा संकल्प बहुतही अच्छा है, तुमलोग जोकहतेहो वह सब सत्य हैं। मै देखता हूं कि लक्ष्मी और ऐश्वर्यका मदलोगोंको उन्मत्त करदेता है ॥ १९ ॥ कार्त्तवीर्य, नहुष, वेण, रावण, नरकासुर और दूसरे भी देव, दैत्य और राजा ऐश्वर्य के मदसे अंधे होकर अपने स्थानों से पतित हुए हैं ॥ २० ॥ तुम इस देहसे उत्पन्नहुई वस्तुओं का अन्त है, यह जान मेरी आराधना कर सावधानहो धर्मानुसार प्रजाका पालन करो ॥ २१ ॥ पुत्र पौत्रों का होना, सुख दुःख, मंगल अमंगल जो होवे उसीसे सन्तुष्टहो मुझमें चित्तलगाय भ्रमणकरो ॥ २२ ॥ जो तुम देहादि से उदासीन व आत्माराम होकर नियमपूर्वक रहोगे तो अन्तमें परब्रह्म स्वरूप मुझ को प्राप्त होओगे ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! भुवनेश्वर भगवान श्रीकृष्णजी राजा- ओंको इसप्रकारसे आज्ञादे उनके उबटन और स्नानादि करानेके निमित्त कितनेही दास दासी

सपर्यांकारयामाससहदेवेनभारत । नरदेवोचितैर्वस्त्रैर्भूषणैः स्रग्विलेपनैः ॥ २५ ॥ भोजयित्वावरान्नेनसुस्नातान्समलंकृतान् । भोगैश्चविविधैर्युक्तांस्ताम्बूलाद्यैर्नृपोचितैः ॥ २६ ॥ तेपूजितामुकुन्देनराजानोमृष्टकुण्डलाः । विरेजुर्मोचिताःक्लेशात्प्रावृडन्तेयथाग्रहाः ॥ २७ ॥ रथान्सदश्वानारोप्यमणिकाञ्चनभूषितान् । प्रीणय्यसूनृतैर्वाक्यैःस्वदेशान्प्रत्ययापयत् ॥ २८ ॥ तएवंमोचिताःकृच्छ्रात्कृष्णेनसुमहात्मना । ययुस्तमेवध्यायन्तःकृतानिचजगत्पतेः ॥२९॥ जगदुःप्रकृतिभ्यस्तेमहापुरुषचेष्टितम् । यथाऽन्वशासद्भगवांस्तथाचक्रुरतन्द्रिताः ॥ ३० ॥ जरासन्धंघातयित्वाभीमसेनेनकेशवः । पार्थाभ्यांसंयुतःप्रायात्सहदेवेनपूजितः ॥ ३१ ॥ गत्वातेखाण्डवप्रस्थंशङ्खान्दध्मुर्जितारयः । हर्षयन्तःस्वसुहृदोदुर्हृदांचासुखावहाः ॥३२॥ तच्छ्रुत्वाप्रीतमनसइन्द्रप्रस्थनिवासिनः । मेनिरेमागधंशान्तंराजाचाप्तमनोरथः ॥ ॥ ३३ ॥ अभिवन्द्याथराजानंभीमार्जुनजनार्दनाः । सर्वमाश्रावयाञ्चक्रुरात्मनायदनुष्ठितम् ॥ ३४ ॥ निशम्यधर्मराजस्तत्केशवेनानुकम्पितम् । आनन्दाश्रुकलांमुञ्चन्प्रेम्णानोवाचकिञ्चन ॥ ३५ ॥

इतिश्री म०भा०द०उ० कृष्णाद्यागमने त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एवंयुधिष्ठिरोराजाजरासन्धवधंविभोः । कृष्णस्यचानुभावंतंश्रुत्वाप्रीतस्तमब्रवीत् ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ येस्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वेलोकमहेश्वराः । वहन्तिदुर्लभंलब्ध्वाशिरसैवानुशासनम् ॥ २ ॥ सभवानरविन्दाक्षो

नियुक्त करादिये ॥२४॥ हे भारत! सहदेवसे राजाओं के योग्य वस्त्र,आभूषण,माला और चन्दन आदिसे उनका सन्मान करवाया ॥ २५ ॥ उन्हें श्रेष्ठ अन्नका भोजन करवाय, न्हिलाय, धुलाय, नाना प्रकार के भोग अर्पणकर, पानआदि पदार्थ दे ॥ २६ ॥ श्रीकृष्णजी ने उन राजाओं का सन्मान किया, तबवे सुंदर कुंडल धारणकर क्लेशरहितहो; वर्षाऋतु के अंतके ग्रहोंकी समान, शोभावेने लगे ॥ २७ ॥ श्रीकृष्णजी ने नाना मधुर वचनों से उन्हें सन्तुष्टकर रत्न और सुवर्ण की सामग्री वाले रथोंपर कि जिनमें श्रेष्ठ घोड़ेजुते थे विठाय उनको अपने २ देशोंमें भेजदिया॥२८॥ वे महात्मा श्रीकृष्णजी के इसप्रकार बंदीग्रह से छुटाने और उनके कार्योंका ध्यान करते २ अपने २ देशकोगये ॥ २९ ॥ उन्हों ने अपने २ राज्यमें पहुंच भगवानका सब चरित्र कहा और भगवानने जिसप्रकार से आज्ञाकी थी उसी प्रकारसे दुष्टोंको दंडदेते हुए राज्य कार्यमें प्रवृत्त हुए॥३०॥ हे महाराज! श्रीकृष्णजी इस प्रकार से भीमसेन द्वारा जरासंधको मरवाय, सहदेवकी पूजाको ग्रहणकर अर्जुन और भीमसेन के साथ इन्द्र प्रस्थको चले ॥ ३१ ॥ शत्रुविजयी उनतीनों वीरोंने इन्द्र प्रस्थमें पहुंच अपने बंधुओंको आनंदित और शत्रुओंको दुःखितकर.शंख बजाया ॥ ३२ ॥ इन्द्र प्रस्थवासी उस शंख नादको सुनकर जानगये कि जरासंध मारागया और राजा युधिष्ठिर के भी मनोरथपूर्ण हुए ॥ ३३ ॥ अनंतर भीम, अर्जुन और श्रीकृष्णजी ने राजाको वंदनाकी और श्रीकृष्णजी ने जोकुछ वहां किया था वह सब कह सुनाया ॥ ३४ ॥ धर्मराज श्रीकृष्णजी की उस अनुकम्पा का वृत्तान्तसुन आनंदाश्रु गिराते हुए प्रेमसे गद्गद होगये। और प्रेमके मारे उनके मुख से बोल न निकला ॥ ३५ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि राजायुधिष्ठिर इसप्रकारसे जरासंधके वध और श्रीकृष्णजी के उस प्रभावको सुन प्रफुल्लितहो थोड़ी देरके उपरान्त श्रीकृष्णजीसे कहा ॥ १ ॥ कि हेप्रभो! त्रिलोकी के गुरु सनकादि ऋषि और समस्त लोक व लोकपालगण भी आपकी दुर्लभ आज्ञाको पाय उस

दीनानामीशमानिनाम् । धत्तेऽनुशासनं भूमंस्तदत्यन्तविडम्बनम् ॥ ३ ॥ नह्येकस्या
द्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः । कर्मभिर्वर्धते तेजो ह्रसते च यथा रवेः ॥ ४ ॥ न वै तेऽ
जित भक्तानां ममाहमिति माधव । त्वं तवेति च नानाधीः पशूनामिव वैकृता ॥ ५ ॥ श्री
शुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा यज्ञिये काले वव्रे युक्तान्स ऋत्विजः । कृष्णानुमोदितः पार्थो
ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ॥ ६ ॥ द्वैपायनो भरद्वाजः सुमन्तुर्गोतमोऽसितः । वसिष्ठश्च्य
वनः कण्वो मैत्रेयः कवषस्त्रितः ॥ ७ ॥ विश्वामित्रो वामदेवः सुमतिर्जैमिनिः क्रतुः ।
पैलः पराशरो गर्गो वैशम्पायन एव च ॥ ८ ॥ अथर्वा कश्यपो धौम्यो रामो भार्गव आसु
रिः । वीतिहोत्रो मधुच्छन्दा वीरसेनोऽकृतव्रणः ॥ ९ ॥ उपहूतास्तथा चान्ये द्रोणभी
ष्मकृपादयः । धृतराष्ट्रः सहसुतो विदुरश्च महामतिः ॥ १० ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वै
श्याः शूद्रा यज्ञदिदृक्षवः । तत्रेयुः सर्वराजानो राज्ञां प्रकृतयो नृप ॥ ११ ॥ ततस्ते दे
वयजनं ब्राह्मणाः स्वर्णलाङ्गलैः । कृष्ट्वा तत्र यथाम्नायं दीक्षयाञ्चक्रिरे नृपम् ॥ १२ ॥
हैमाः किलोपकरणा वरुणस्य यथा पुरा । इन्द्रादयो लोकपाला विरिञ्चिभवसंयुता
॥ १३ ॥ सगणाः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः । मुनयो यक्षरक्षांसि खगकिन्नरचा
रणाः ॥ १४ ॥ राजानश्च समाहूता राजपत्न्यश्च सर्वशः । राजसूयं समीयुः स्म राज्ञः
पाण्डुसुतस्य वै ॥ १५ ॥ मेनिरे कृष्णभक्तस्य सूपपन्नमविस्मिताः । अयाजयन्महाराजं या
जका देववर्चसः ॥ १६ ॥ राजसूयेन विधिवत्प्राचेतसमिवामराः । सौत्येऽहन्यवनीपालो
याजकान्सदसस्पतीन् । अपूजयन्महाभागान्यथावत्सुसमाहितः ॥ १७ ॥ सदस्याग्र्या
र्हणार्हं वै विमृशन्तः सभासदः । नाध्यगच्छन्ननैकान्त्यात्सहदेवस्तदाऽब्रवीत् ॥ १८ ॥

को शिरपर धारण करते हैं । हे कमललोचन ! हे ईश्वर ! हे भूमन् ! वही भगवान आप दीन
और अभिमानी मेरी आज्ञा का पालन करतेहो यह अत्यंतही विडम्बना है ॥ २—३ ॥ आप
एक, अद्वितीय, ब्रह्म और परमात्माहो; सूर्य के तेज की समान आपकी महिमा किसी कर्म
से भी नहीं घटबढ़सकती ॥ ४ ॥ हेमाधव ! हे अजित ! अज्ञान पशुओं की समान आप के
भक्तों की शरीरादि विषय में 'मेरा' और 'मैं' व 'तू' और 'तेरा' ऐसी भेद बुद्धि नहीं
होती तब आपकी क्या बात कहूं ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—युधिष्ठिर ने इसप्रकार से कह
भगवान से सम्मतिले यज्ञके योग्य समय मे ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण और पुरोहितों का वरण किया ६ ॥
हेराजन् ! व्यासजी, भरद्वाज, सुमंतु, गौतम, असित, वशिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रय, कवष, त्रित,
॥ ७ ॥ विश्वामित्र, वामदेव, जैमिनि, सुमति, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशम्पायन, ॥ ८ ॥ अथर्वा
कश्यप, धौम्य, परशुराम, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्दा, वीरसेन, अकृतव्रण ॥ ९ ॥ औरभी
दूसरे ऋषि और द्रोण, भीष्म, कृपादि, पुत्रों समेत धृतराष्ट्र, महामति विदुर ॥ १० ॥ ब्राह्मण,
वैश्य, शूद्र, समस्त राजा और राजाओं की प्रजा ये सब यज्ञ देखने की इच्छा से वहां आये ॥
॥ ११ ॥ अनन्तर उनसब ब्राह्मणों ने सुवर्ण के हलसे यज्ञभूमि प्रस्तुतकर वेदानुसार राजा को
दीक्षित किया ॥ १२ ॥ पूर्वकाल में जैसे वरुण के यज्ञमें सबसामग्री सुवर्ण कीथी वैसेही राजा
युधिष्ठिर के भी यज्ञमें सबसामग्री सुवर्ण की हुई इन्द्रादि लोकपाल, गणोंसमेत शंकर, ब्रह्मा, सिद्ध,
गन्धर्व, विद्याधर, उरग, मुनि, यक्ष, राक्षस, पक्षी, किन्नर, चारण और सर्वत्र से सबराजा और
राजरानियें निमंत्रित होकर वहां आईं ॥ १३-१४—१५ ॥ उन सबने विस्मितनहो श्रीकृष्णजी
के भक्त राजा युधिष्ठिर के यज्ञको भलीप्रकार पूर्णकराया । देवताओं की समान तेजस्वीऋत्विज
ने देवताओं ने जैसे वरुणको यज्ञकरायाथा वैसेही महाराज युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ करवाया ॥
१६ ॥ राजा युधिष्ठिर ने सावधानहो सोमाभिषव के दिन ऋत्विज और सभासदों का यथाविधिसे
पूजन किया ॥ १७ ॥ हेराजन् ! वहांपर प्रथमपूजा पानेके योग्य बहुत से मनुष्य बैठेथे, अतएव

अर्हति ह्यच्युतः श्रैष्ठ्यं भगवान्सात्वतांपतिः। एष वै देवताः सर्वा देशकालधनादयः
॥ १९ ॥ यदात्मकमिदं विश्वं क्रतवश्च यदात्मकाः। अग्निराहुतयो मन्त्राः सांख्यं
योगश्च यत्परः ॥ २० ॥ एक एवाद्वितीयोऽसावैतदात्म्यमिदं जगत्। आत्मनाऽऽत्मा
श्रयः सभ्याः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ २१ ॥ विविधानीह कर्माणि जनयन्यदवेक्षया।
ईहते यदयं सर्वः श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥ २२ ॥ तस्मात्कृष्णाय महते दीयतां परमार्ह
णम्। एवं चेत्सर्वभूतानामात्मनश्चार्हणं भवेत् ॥ २३ ॥ सर्वभूतात्मभूताय कृष्णायान
न्यदर्शिने। देयं शान्ताय पूर्णाय दत्तस्यानन्त्यमिच्छता ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वा सहदेवो
ऽभूत्तूष्णीं कृष्णानुभाववित्। तच्छ्रुत्वा तुष्टुवुः सर्वे साधु साध्विति सत्तमाः ॥ २५ ॥
श्रुत्वा द्विजेरितं राजा ज्ञात्वा हार्दं सभासदाम्। समर्हयद्धृषीकेशं प्रीतः प्रणयविह्वलः
॥२६॥ तत्पादाववनिज्यापः शिरसा लोकपावनीः। सभार्यः सानुजामात्यः सकुटु
म्बोऽवहन्मुदा ॥ २७ ॥ वासोभिः पीतकौशेयैर्भूषणैश्च महाधनैः। अर्हयित्वाऽश्रुपू
र्णाक्षो नाशकत्समवेक्षितुम् ॥ २८ ॥ इत्थं सभाजितं वीक्ष्य सर्वे प्राञ्जलयो जनाः। न
मो जयेति नेमुस्तं निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ २९ ॥ इत्थं निशम्य दमघोषसुतः स्वपीठादु
त्थाय कृष्णगुणवर्णनजातमन्युः। उत्क्षिप्य बाहुमिदमाह सदस्यमर्षी संश्रावयन्भगव
ते परुषाण्यभीतः ॥ ३० ॥ ईशो दुरत्ययः काल इति सत्यवती श्रुतिः। वृद्धानामपि यद्बु
द्धिर्बालवाक्यैर्विभिद्यते ॥ ३१ ॥ यूयं पात्रविदां श्रेष्ठा मा मन्ध्वं बालभाषितम्। सदस

प्रथम किसको अर्घ्य देनाचाहिए सभासद इसको विचार करनेलगे। तब सहदेव ने कहा ॥१८॥ यदुवंशियों के अधिपति भगवान श्रीकृष्णजी प्रथम पूजापाने के योग्य हैं, देश, काल और पात्र के विचारसे इनकी पूजा करनेपरही सब देवताओं की पूजाहोजायगी ॥ १९ ॥ यही विश्वके और सबयज्ञों के आत्माहैं। यही अग्नि, आहुति, मंत्र, ज्ञान और यही योगकी अंतिम सीमा हैं॥२०॥ यही एक, अद्वितीय और यही जगत् के आत्माभी हैं। हेसभासदो! यही स्वाश्रय भगवानही आप जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं ॥ २१ ॥ इसकारण यह समस्त लोक इनके ही अनुग्रह से नानाकर्मों का अनुष्ठानकर धर्मादि रूप मङ्गलका साधन करसकते हैं ॥ २२ ॥ अतएव श्रीकृष्णजीकोही पहिले पूजा देनीचाहिए ऐसा करने से सबप्राणियों के आत्मा की पूजा होजावेगी ॥ २३ ॥ जो दानके अनन्तफलकी इच्छा करें उनको उचित है कि वह सर्व प्राणियों के आत्मभूत भेदज्ञानरहित शांत और पूर्ण श्रीकृष्णजीकोही दानकरें ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णजी के प्रभाव को जाननेवाले सहदेव यह कहकर चुप होगये। यहसुनकर सब श्रेष्ठसाधू 'साधु साधु' कहनेलगे ॥ २५ ॥ राजा युधिष्ठिर ब्राह्मणों का साधुवादसुन और सभासदों का मतजान प्रेम से विह्वल होगये और उन्होंने श्रीकृष्णजी की पूजाकी, ॥ २६ ॥ श्रीकृष्णजी के दोनों पावों को धोय उस लोकपावन जलको स्त्री, भाई, मन्त्री और कुटुम्बियों समेत शिरपर धारणकिया ॥२७॥ रेशमी पीताम्बर और अमूल्य आभूषणों से पूजा करते २ राजा के दोनों नेत्रोंसे आंसू गिरनेलगे इससे वह भगवान को भलीप्रकार से न देखसके ॥ २८ ॥ सब मनुष्य श्रीकृष्णजी को इसप्रकार से पूजित होता देख हाथ जोड़ 'जय, 'नमः, यह कहकर उनको नमस्कार करने लगे और फूलों की वर्षा होनेलगी, ॥ २९ ॥ हे राजन्! श्रीकृष्णजी के गुणोंकी वर्णना होनेके कारण दमघोष के पुत्र शिशुपाल को क्रोध उत्पन्न हुआ श्री हरिके इसप्रकार के सन्मान को वह न सहसका। वह अपने आसन से उठ दोनों भुजाओं को उठाय क्रोध सहित निर्भय चित्तहो सबको सुनाता हुआ कटु वाक्योंसे भगवानकी निंदा करनेलगा ॥ ३० ॥ शिशुपाल बोला कि कैसा अलंघ्य और समर्थ काल आ उपस्थित हुआ कि—जिस से इससमय बालक के वाक्यों से वृद्धों की भी बुद्धि विचलित होगई ॥३१॥ हेसभासदो! आप पात्र जाननेवालों में श्रेष्ठहो इस बालकके

स्ततयः सर्वेकृष्णोयत्समतोऽर्हणे ॥ ३२ ॥ तपोविद्याव्रतधराञ्ज्ञानविध्वस्तकल्मषा
न् । परमर्षीन्ब्रह्मनिष्ठाँल्लोकपालैश्चपूजितान् ॥ ३३ ॥ सदस्पतीनतिक्रम्यगोपा
लः कुलपांसनः । यथाकाकः पुरोडाशंसपर्यांकथमर्हति ॥ ३४ ॥ वर्णाश्रमकुलापे
तः सर्वधर्मबहिष्कृतः । स्वैरवर्तीगुणैर्हीनः सपर्यांकथमर्हति ॥ ३५ ॥ ययातिनैषां
हिकुलंशप्तंसद्भिर्बहिष्कृतम् । वृथापानरतंशश्वत्सपर्यांकथमर्हति ॥ ३६ ॥ ब्रह्मर्षि
सेवितान्देशान्हित्वैतेऽब्रह्मवर्चसम् । समुद्रंदुर्गमाश्रित्यबाधन्तेदस्यवः प्रजाः ।३७।
एवमादीन्यभद्राणिबभाषनष्टमङ्गलः । नोवाचकिञ्चिद्भगवान्यथासिंहः शिवारुत
म् ॥ ३८ ॥ भगवन्निन्दनंश्रुत्वादुःसहंतत्सभासदः । कर्णौपिधायनिर्जग्मुः शपन्तश्चे
दिपंरुषा ॥ ३९ ॥ निन्दांभगवतः शृण्वंस्तत्परस्यजनस्यवा । ततोनापैतियः सोऽ
पियात्यधः सुकृताच्च्युतः ॥ ४० ॥ ततः पाण्डुसुताः क्रुद्धामत्स्यकैकयसृञ्जयाः । उ
दायुधाःसमुत्तस्थुः शिशुपालजिघांसवः ॥४१॥ ततश्चैद्यस्त्वसंभ्रान्तो जगृहेखड्ग
चर्मणी । भर्त्सयन्कृष्णपक्षीयान्राज्ञः सदसिभारत ॥ ४२ ॥ तावदुत्थाय भगवा-
न्स्वानिवार्यस्वयंरुषा । शिरःक्षुरान्तचक्रेण जहारापततोरिपोः ॥ ४३ ॥ शब्दःको
लाहलोऽप्यासीच्छिशुपालेहतेमहान् ॥ तस्यानुयायिनोभूपा दुद्रुवुर्जीवितैषिणः ॥
॥ ४४ ॥ चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत् । पश्यतांसर्वभूतानामुल्केव भु
विखाच्च्युता ॥४५॥ जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया धिया । ध्यायंस्तन्मयतांयातो

कहनेपर ध्यान न दो क्या श्रीकृष्ण पूजाके योग्य है, ॥ ३२ ॥ तपस्या, विद्या, व्रत, और ज्ञान से जिनके पाप नष्ट और अज्ञान दूरहोगयाहै, जो ब्रह्मनिष्ठ हैं लोकपाल भी जिनकी पूजा करते है उन सर्व श्रेष्ठ ऋषि सभासदों को छोड़कर कुलनाशक अहीर किसप्रकार से पूजा के योग्य होसकता है ? भला काक क्या पुरोडाश को लेसकता है ॥ ३३—३४ ॥ यह कृष्ण—वर्ण, आश्रम और कुलसे भ्रष्टहै यह सब धर्मोंसे बाहरहै इसमें और कोई गुण नहीं है. यह केवल स्वेच्छाचारी है, यह किसप्रकार पूजाको प्राप्त होसकताहै ॥ ३५ ॥ ययातिने इसके कुलको शापदिया साधुओं ने इस को छोड़दिया और निरन्तरही वृथा मद्पान में रहता है इसका कुल किसप्रकार से पूजाके योग्य होसकताहै ॥ ३६ ॥ यह ब्रह्मर्षियों से सेवित देशको समुद्रकी शरणले डाकुओं की समान प्रजा को दुःख देता रहताहै ॥ ३७ ॥ जिसके मंगल नष्ट होगयेहैं ऐसे शिशुपालने इसप्रकारके अनेकों कटुवाक्य कहे किन्तु सिंह जैसे सियार के शब्द को नहीं सुनता भगवान ने वैसेही उन सबको सुनकर कुछ न कहा ॥ ३८ ॥ सभासद इस असह्य भगवन्निन्दा को सुन दोनों कानोंको बन्दकर क्रोधसे शिशुपाल को गाली देते २ बाहर होनेलगे ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य भगवान व भगवद्भक्तकी निन्दा सुनकर उस स्थान से चले नहींजाते वह पुण्य रहितहो नरकमें गिरतेहैं ॥ ४० ॥ अनन्तर पांडुपुत्र, मत्स्य, सृञ्जय और केकयगण क्रोधितहो अपने शस्त्र शस्त्र उठाय शिशुपालके मारने के निमित्त उठे ॥ ४१ ॥ हेभारत ! परन्तु शिशुपाल उससे कुछभी विचलित न हुआ। उसने श्रीकृष्ण जीके पक्षवाले राजाओं का तिरस्कारकर ढाल तलवार हाथमेंली ॥ ४२ ॥ उसीसमय भगवान् ने उठकर अपने पक्षवालों को निवारण किया और शिशुपाल जैसेही आगे बढा वैसेही छुरेकी धारवाले चक्रसे उसका शिर काटडाला, ॥ ४३ ॥ शिशुपाल के मरतेही बड़ा घोर शब्द हुआ, । उसके वशवर्त्ती राजा प्राण रक्षाकी इच्छासे भागनेलगे ॥ ४४ ॥ जैसे आकाश से छूटकर उल्का पृथिवीपर गिरतीहै वैसेही शिशुपाल की देहसे ज्योति निकलकर सब मनुष्यों के सामनेही भगवानकी देहमें प्रवेश करगई ॥ ४५ ॥ तीन जन्मसे जो उसने वैरकी चिन्ता की थी, इसकारण

भावोहिभवकारणम् ॥ ४६ ॥ ऋत्विग्भ्यःसदस्येभ्यो दक्षिणांविपुलामदात्। स
र्वान्संपूज्य विधिवच्चक्रेऽवभृथमेकराट् ॥ ४७ ॥ साधयित्वाक्रतुं राज्ञः कृष्णोयोगे-
श्वरेश्वरः। उवास कतिचिन्मासान्सुहृद्भिरभियाचितः ॥४८॥ ततोऽनुज्ञाप्यराजा-
नमनिच्छन्तमपीश्वरः। ययौसभार्यःसामात्यः स्वपुरंदेवकीसुतः ॥ ४९ ॥ वर्णितं
तदुपाख्यानं मयातेबहुविस्तरम्। वैकुण्ठवासिनोर्जन्म विप्रशापात्पुनःपुनः ॥ ५० ॥
राजसूयावभृथ्येन स्नातोराजायुधिष्ठिरः। ब्रह्मक्षत्रसभामध्ये शुशुभेसुरराडिव ॥
॥ ५१ ॥ राज्ञासभाजिताःसर्वे सुरमानवखेचराः। कृष्णंक्रतुंचसंशन्तः स्वधामानि
ययुर्मुदा ॥ ५२ ॥ दुर्योधनमृतेपापं कलिंकुरुकुलामयम्। योनसेहे श्रियंस्फीतां दृ-
ष्ट्वापाण्डुसुतस्यताम् ॥ ५३ ॥ यइदंकीर्तयेद्विष्णोः कर्मचैद्यवधादिकम्। राजमो-
क्षंवितानंच सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

राजोवाच। अजातशत्रोस्तंदृष्ट्वा राजसूयमहोदयम्। सर्वेमुमुदिरे ब्रह्मन्नृदे-
वा येसमागताः ॥ १ ॥ दुर्योधनंवर्जयित्वा राजानःसर्षयःसुराः। इतिश्रुतंनोभगवं
स्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ २ ॥ ऋषिरुवाच ॥ पितामहस्यतेयज्ञे राजसूयेमहात्मनः
बान्धवाःपरिचर्यायां तस्यासन्प्रेमबन्धनाः ॥ ३ ॥ भीमोमहानसाध्यक्षो धनाध्यक्षः
सुयोधनः। सहदेवस्तुपूजायां नकुलोद्रव्यसाधने ॥४॥ गुरुशुश्रूषणेजिष्णुः कृष्णः
पादावनेजने। परिवेषणेद्रुपदजा कर्णोदानेमहामनाः ॥ ५ ॥ युयुधानोविकर्णश्चहा

क्रोधसे चिन्ता करता हुआ शिशुपाल श्रीहरि की स्वरूपता को प्राप्त हुआ, हे राजन्! ध्यानही ध्येय वस्तु की स्वरूपता का कारण है ॥ ४६ ॥ राजा युधिष्ठिरने सभासद और ऋत्विजों को इच्छित दक्षिणादी और यथाविधिसे सबकी पूजाकर अवभृत स्नान किया, ॥ ४७ ॥ योगेश्वरों के ईश्वर श्रीकृष्णजी राजा का यज्ञ समाप्त कराय बन्धुओं की प्रार्थनानुसार कुछेकदिन वहींपररहे ॥ ॥ ४८ ॥ तदनन्तर राजा की इच्छा न होतेहुए, भी उनको जनाय मन्त्री और स्त्रियों समेत अपनी नगरीमें आए ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणों के शाप से जय विजय वैकुण्ठ वासियों का बारम्बार जन्म हुआथ इस बहुत विस्तारवाले उपाख्यान को मैं तुमसे कहचुकाहूं, ॥ ५० ॥ राजसूय यज्ञ के अन्तमें स्नानकर राजा युधिष्ठिर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के बीच इन्द्रकी समान शोभा पानेलगे ॥ ५१ ॥ कुरु कुल के रोग कलिरूपी पापी दुर्योधनके विना देवता मनुष्य और प्रथमगण सबही राजा से पूजितहो यज्ञ और श्रीकृष्णजी की प्रशंसा करते २ आनन्द से अपने २ स्थान में आए ॥ ५२ ॥ पांडुपुत्रों की उस बढ़ीहुई लक्ष्मी का दुर्योधन सहन न करसका ॥५३॥ जो भगवानके शिशुपाल वध आदि कार्य और राजाओं के बन्दीगृहसे छूटने का चरित्र जो गावेगा अथवा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञके विषय को विचारेगा वह समस्त पापोंसे छूट जावेगा ॥ ५४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०उ०सरलाभाषाटीकायांचतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

राजा परीक्षित् ने कहा कि—हेब्रह्मन्! अजात शत्रु राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ को देखने के निमित्त जो देवता, ऋषि, और राजा आएथे वह सबही आनन्दित हुये, ॥ १ ॥ हेभगवन्! परन्तु केवल राजा दुर्योधनही को क्या आनन्द न हुआ, इसका क्या कारणथा सो आप कहिये ॥ १—२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! तुम्हारे उस महात्मा पितामहके यज्ञ में बांधव गण प्रेम से बद्धहो यज्ञ कार्य में नियुक्त हुए थे ॥ ३ ॥ भीम रसोई के अध्यक्ष और दुर्योधन धन के अध्यक्ष (भंडारी) हुए थ। सहदेव सत्कार कार्य में, नकुल सामग्री के प्रस्तुत करने में ॥ ४ ॥ अर्जुन साधुओं की सेवा में, श्रीकृष्णजी साधुओं के पैर धोने में, द्रौपदी भोजन परोसनेमें और उदार चित्त कर्ण दान देनेमें तत्पर हुआ ॥ ५ ॥ हेराजन्! युयुधान, विकर्ण

[illegible] ॥ १७ ॥ [illegible] ॥ १८ ॥ [illegible] ॥ १९ ॥ [illegible]
॥ १२ ॥ [illegible] ॥ १४ ॥ तैलगोरस [illegible] ॥ १५ ॥ [illegible]
विरेजु ॥ १६ ॥ [illegible] विचुहंतीभिः [illegible] विहारैः ।
॥१७॥ [illegible] मीलिनम् । [illegible] क्रियाभिः
क्रतुराडिव ॥ १८ ॥ [illegible]

हार्दिक्य, विदुर आदि भूर्यादि, बाल्हीक के पुत्रादि और सन्तर्दन आदि जो थे वे सब महोत्सव में नियुक्त हो राजा के प्रिय करने की इच्छा से नाना कार्यों में प्रवृत्त हुए थे ॥ ६ । ७ ॥ ऋत्विज सभासद और बहुवेत्ता [illegible] श्रेष्ठ मधुपर्क, मधुर वचन, अलङ्कारादि और दक्षिणा द्वारा भलीप्रकार से पूजित हुए । तदनन्तर भगवान के चरणोंमें शिशुपाल के प्रवेश करने पर राजा [illegible] निमित्त अवभृथ पर आये ॥ ८ ॥ स्नान के उत्सव में मृदङ्ग शङ्ख, पणव, धुन्धुरी, ढक्का और गोमुख आदि नाना प्रकार के बाजे बजने लगे ॥ ९ ॥ नाचने वाली आनन्द से नाचने और गाने वाले गाने में प्रवृत्त हुए उनके उस वेणु, वीणा और करताल से उठे हुए शब्द ने आकाशमार्ग को [illegible] किया ॥ १० ॥ यदु, सृञ्जय, काम्बोज, कुरु, केकय और कोशल देशके राजा, आप सुवर्णकी माला धारण कर यजमान युधिष्ठिर को आगे कर नाना प्रकार की ध्वजा पताकाओं युक्त गजेन्द्र, रथ, घोड़े और भलीप्रकारसे सुसज्जित सेनाकेसाथ पृथ्वीको कंपाते २ बाहर हुए ॥ ११ ॥ १२ ॥ सभासद, ऋत्विज और भी दूसरे श्रेष्ठ २ ब्राह्मण वेदध्वनि करते हुए बाहर निकले । देवर्षि पितर और गन्धर्व फूल बरसाय २ स्तुति करनेलगे ॥ १३ ॥ स्त्री पुरुष गन्ध, माला और श्रेष्ठ आभूषणों से भूषितहो नानाप्रकारके रसोंसे सेचन और लेपनकर परस्पर क्रीडा करनेलगे ॥ १४ ॥ वेश्याएं तैल, गोरस, सुगन्धित जल, हल्दी और केसरद्वारा मनुष्योंसे लिप्तहो और उनको लिप्तकर क्रीड़ा करने लगीं ॥ १५ ॥ यह सब देखने के निमित्त जैसे देवाङ्गनाएं श्रेष्ठ विमानोंपर बैठकर आईं वैसेही राजरानियें भी पहरवालों से रक्षितहो रथोंपर बैठ २ कर बाहर होनेलगीं । वे रानियें गगरों से अपनी सखियों के और मामा के पुत्रोंके भिगोईं जानेलगीं, लज्जायुक्त हास्य से उनका कमल मुख प्रफुल्लित होउठा ॥ १६ ॥ वेभी पचक की झोलियों से सालियों और देवरोंको भिगोने लगीं । उनके [illegible] अङ्गके, छाती, कुच, जाँघ और कमर स्पष्ट दीखने लगीं, उत्सुकता के कारण जूड़े (चोटीका बन्धन) ढीला पड़गया और फूल बिखरगये । इस प्रकार नाना मनोहर विहारों से वे कामियों के चित्तमें कामकला उत्पन्न करने लगीं ॥ १७ ॥ राजा युधिष्ठिर स्त्रियों समेत [illegible] रथपर बैठकर, क्रियाओं के साथ साक्षात् यज्ञश्रेष्ठ राजसूयकी समान शोभापाने लगे ॥ १८ ॥

उकर्मणास्नापयांसहकृष्णया ॥१९॥ देवदुन्दुभयोनेदुर्नरदुन्दुभिभिःसमम् ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि देवर्षिपितृमानवाः ॥ २० ॥ सस्नुस्तत्रततःसर्वे वर्णाश्रमयुतानराः ॥ महापातक्यपियतः सद्योमुच्येतकिल्बिषात् ॥ २१ ॥ अथराजाऽहतेक्षौमे परिधाय स्वलंकृतः। ऋत्विक्सदस्यविप्रादीनानर्चाभरणाम्बरैः ॥ २२ ॥ बन्धुज्ञातिनृपान्मित्र सुहृदोऽन्यांश्चसर्वशः। अभीक्ष्णंपूजयामास नारायणपरोनृपः ॥ २३ ॥ सर्वेजनाःसुररुचो मणिकुण्डलस्रगुष्णीषकंचुकदुकूलमहार्घ्यहाराःनार्यश्च कुण्डलयुगालकवृन्दजुष्टवक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ॥ २४॥ अथर्त्विजोमहाशीलाःसदस्याब्रह्मवादिनः। ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रराजानोयेसमागताः ॥ २५ ॥ देवर्षिपितृभूतानिलोकपालाःसहानुगाः । पूजितास्तमनुज्ञाप्यस्वधामानिययुर्नृप ॥ २६ ॥ हरिदासस्यराजर्षेराजसूयमहोदयम्। नैवातृप्यन्प्रशंसन्तःपिबन्मर्त्योऽमृतंयथा। ॥ २७ ॥ ततोयुधिष्ठिरोराजासुहृत्संबन्धिबान्धवान् । प्रेम्णानिवारयामासकृष्णंचत्यागकातरः ॥२८॥ भगवानपितत्राङ्गन्यवात्सीत्तत्प्रियङ्करः। प्रस्थाप्ययदुवीरांश्चसाम्बादींश्चकुशस्थलीम् ॥ २९ ॥ इत्थंराजाधर्मसुतोमनोरथमहार्णवम्। सुदुस्तरंसमुत्तीर्यकृष्णेनासीद्गतज्वरः ॥ ३० ॥ एकदान्तःपुरेतस्यवीक्ष्यदुर्योधनःश्रियम्। अतप्यद्राजसूयस्यमहित्वंचाच्युतात्मनः ॥ ३१ ॥ यस्मिन्नरेन्द्रदितिजेन्द्रसुरेन्द्रलक्ष्मीर्नानाविभान्तिकिलविश्वसृजोपक्लृप्ताः। ताभिःपतीन्द्रुपदराजसुतोपतस्थेयस्यांविषक्तहृदयःकुरुराडतप्यत् ॥ ३२ ॥ यस्मिंस्तदामधुपतेर्महिषीसहस्र-

उन ऋत्विजों ने पत्नी संयाज और अवभृथ सम्बन्धी कर्म कराने के पश्चात् आचमन करवाय राजा को द्रौपदी समेत गंगामें स्नान करवाया ॥ १९ ॥ उस समय देव दुंदुभि और नर दुंदुभि बजने लगी तथा देवता, ऋषि, पितर, और मनुष्य फूलोंकी वर्षा करनेलगे ॥ २० ॥ फिर उस स्थानमें समस्तवर्ण और आश्रम के मनुष्यों ने स्नानकिया। हे राजन्! उस स्थान पर स्नान करने से महा पापी भी तत्कालही पापसे छूटजाता है ॥ २१ ॥ अनन्तर राजाने नवीन रेशमी वस्त्र पहिन भली-प्रकार से अलंकृतहो वस्त्र और आभूषणों द्वाराऋत्विज और सभासदों की पूजाकी ॥ २२ ॥ भ-गवद्भक्त राजाने अपनेबंधु,जातिवाले, राजा, मित्र, सुहृद और भी दूसरों की भलीप्रकारसे पूजाकी ॥२३॥ सब मनुष्य देवताओं की समान कांतिवानहो और मणि,कुंडल,माला,पगड़ी,दुपट्टा,रेशमी वस्त्र और बड़े मूल्यवाले हार पहिरकर परम शोभाको प्राप्तहुए। स्त्रियोंका मुख कमल भी कुंडलों से शोभित हुआ। वह सोनेकी मेखला धारणकर और भी शोभाको पानेलगीं ॥ २४ ॥ अनंतर महाशील ऋत्विज, ब्रह्मवेत्ता सभासद और ब्राह्मण, क्षत्री, शूद्र, राजगण, देवर्षि, पितर, भूत, अ-नुचरों समेत सब लोकपाल और दूसरे भी जोवहां उपस्थित थे वे सबही पूजितहो राजा युधिष्ठिर की आज्ञाले प्रसन्न होर कर अपने २ घरको गये ॥ २५—२६ ॥ जैसे मनुष्य अमृत पीकर तृप्त नहीं होता तैसेही वेभी हरिभक्त राजर्षि युधिष्ठिरके राजसूयकी प्रशंसा करके तृप्तनहीं होतेथे ॥२७॥ अनंतर राजा युधिष्ठिर ने सुहृद, सम्बंधी, बांधव और श्रीकृष्णजी कोभी कातर भावसे प्रेम समेत विदाकिया ॥ २८ ॥ हे राजन्! भगवान श्रीकृष्णजी ने राजाके कातर वचनों से दयाईहो अपने यदुवीर साम्ब आदिको द्वारका भेजा और आप वहींपर निवास करनेलगे ॥२९॥ हे राजन्! राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्णजी की सहायता से इस प्रकार दुस्तर मनोरथ रूप महासागर के पारहो निश्चिंत हुए ॥ ३० ॥ महाराज! एक समय दुर्योधन उन हरिभक्त राजा युधिष्ठिर की लक्ष्मी और रा-जसूय की प्रशंसा सुनकर अत्यंत संतप्त हुआ॥३१॥ जिस अन्तःपुरमें नरेन्द्र, दैत्येन्द्र, और सुरेन्द्र आदि व नाना प्रकार की विभूतियें मयसे विरचित होकर शोभा पारही थीं, वहां उन विभूतियों समेत द्रौपदी अपने पतियों की सेवाकरती थी, राजा दुर्योधन उनको देखकर अत्यंत संतापको

श्रीमन्मुखप्रचलकुण्डलकुन्तलाढ्यम् (line illegible in part)
श्रोणीभरेणवशनैःक्वणदङ्घ्रिशोभम् । मध्येसुवासकुचकुङ्कुमशोणहारैःश्रीमन्मुखप्र
चलकुण्डलकुन्तलाढ्यम् ॥ ३३ ॥ सभायांमयक्लृप्तायांक्वापिधर्मसुतोऽधिराट् ।
वृतोऽनुजैर्बन्धुभिश्चकृष्णेनापिस्वचक्षुषा ॥ ३४ ॥ आसीनःकाञ्चनेसाक्षादासने
मघवानिव । पारमेष्ठ्यश्रियाजुष्टःस्तूयमानश्चवन्दिभिः ॥ ३५ ॥ तत्रदुर्योधनो
मानीपरीतोभ्रातृभिर्नृप । किरीटमालीन्यविशदसिहस्तःक्षिपन्रुषा ॥ ३६ ॥
स्थलेऽभ्यगृह्णाद्वस्त्रान्तंजलंमत्वास्थलेऽपतत् । जलेचस्थलवद्भ्रान्त्यामयमा-
याविमोहितः ॥ ३७ ॥ जहासभीमस्तंदृष्ट्वास्त्रियोनृपतयोऽपरे । निवार्यमाणा
अप्यङ्गराज्ञाकृष्णानुमोदिताः ॥ ३८ ॥ सव्रीडितोऽवाग्वदनोरुषाज्वलन्निष्क्रम्य-
तूष्णींप्रययौगजाह्वयम् । हाहेतिशब्दःसुमहानभूत्सतामजातशत्रुर्विमनाइवाभव-
त् । बभूवतूष्णींभगवान्भुवोभरंसमुज्जिहीर्षुर्भ्रमतिस्मयद्दृशा ॥ ३९ ॥ एतत्तेऽभि
हितंराजन्यत्पृष्टोऽहमिहत्वया । सुयोधनस्यदौरात्म्यंराजसूयेमहाक्रतौ ॥ ४० ॥

इतिश्रीमा० म० द० उ० पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथान्यदपिकृष्णस्यशृणुकर्माद्भुतंनृप । क्रीडानरशरीरस्य
यथासौभपतिर्हतः ॥ १ ॥ शिशुपालसखः शाल्वोरुक्मिण्युद्वाहआगतः । यदुभि
र्निर्जितः सङ्ख्येजरासन्धादयस्तथा ॥ २ ॥ शाल्वः प्रतिज्ञामकरोच्छृण्वतांसर्वभू
भुजाम् । अयादवांक्ष्मांकरिष्येपौरुषंममपश्यत ॥ ३ ॥ इतिमूढः प्रतिज्ञायदेवंपशु
पतिंप्रभुम् । आराधयामासनृपःपांसुमुष्टिंसकृद्ग्रसन् ॥ ४ ॥ संवत्सरान्तेभगवानाशु

प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ उस अन्तःपुरमें श्रीकृष्णजी की स्त्रियें शोभा पारही थीं, वे नितम्बों के भार से धीरे २ चलती हुई, चरणों के झनझनायमान आभूषण धारण किये, स्तनोंकी केसर से रक्तवर्ण के हार पहिरे, चलायमान कुंडल व केश पाशयुक्त सुंदर मुख व सुंदर कटिवाली स्त्रियें वहां अत्यंत शोभाको बढारही थीं ॥३३॥ एक समय धर्मराज युधिष्ठिर भाइयों, बंधुओं और अपने नेत्रस्वरूप श्रीकृष्णजी सहित लक्ष्मी वाली मयकी रचीहुई सभामें इन्द्रकी समान सुवर्णमय सिंहासनपर बैठे थे, वहां वंदीजन उनकी स्तुतिकर रहेथे । कि उसी समय अभिमानी राजा दुर्योधन भाइयों सहित क्रोधसे युधिष्ठिर का तिरस्कार करते २ हाथोंमें खड्ग लियेहुए वहांपर आया ॥ ३४—३६ ॥ वह वहां मयकी मायासे मोहितहो जल जान स्थलमें वस्त्रोंको ऊपर उठानेलगा और स्थल के भ्रमसे जलमें गिरपड़ा ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! उसको देखकर, युधिष्ठिर के निवारण करने परभी श्रीकृष्ण जी की संमति से भीम, व सब स्त्रियें और दूसरे राजा भी हंसने लगे ॥ ३८ ॥ दुर्योधन लज्जितहो क्रोध से जलते २ नीचेको मुखकिये चुपचाप हस्तिनापुर चलागया । उस समय साधुओं में बड़ा-भारी हाहाकार हुआ । इससे युधिष्ठिर कुछएक उदास होगये किन्तु भगवान चुपहोगये । पृथ्वीका भारदूर करने की ही उनकी इच्छा थी, केवल उनकी ही दृष्टिसे दुर्योधन भ्रम में पतित हुआ था ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! तुमने जो राजसूय यज्ञ में दुर्योधन के दुरात्मता की बात पूछी थी वह मैंने तुम से कही ॥ ४० ॥

इतिश्री भद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेउत्तरार्धेभाषाटीकायांपंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! जिसप्रकार सौभपति शाल्व मारागयाथा, क्रीड़ाकेनिमित्त मनुष्यरूपधारी श्रीकृष्णजी का एक और भी अद्भुतकर्म सुनो ॥ १ ॥ रुक्मिणी के विवाह में शिशुपाल का मित्र शाल्व आयेहुए यादवों से जरासंध की समान युद्ध में पराजित हुआथा ॥ २ ॥ उस समय शाल्व ने सबराजाओं के सामनेही प्रतिज्ञा कीथी कि—" पृथ्वी को यादवरहित करदूंगा मेरा पराक्रम देखना " ॥ ३ ॥ वह मूर्ख राजा इसप्रकार की प्रतिज्ञाकर प्रतिदिनएक मुट्ठी धूल को फांक महादेवजीकी आराधना करनेलगा ॥ ४ ॥ एक वर्ष के अन्तमें भगवान महादेवजी ने

प्रोवाच पशुपतिं । ... देवासुरमनुष्याणां ॥ ५ ॥ देवासुरमनुष्याणां
गन्धर्वोरगरक्षसाम् । अभेद्यं कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम् ॥ ६ ॥ तथेति गिरिशा
दिष्टो मयः परपुरञ्जयः । पुरं निर्माय शाल्वाय प्रादात्सौभमयस्मयम् ॥ ७ ॥ स
लब्ध्वा कामगं यानं तमोधाम दुरासदम् । ययौ द्वारवतीं शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन्
॥ ८ ॥ निरुध्य सेनया शाल्वो महत्या भरतर्षभ । पुरीं बभञ्जोपवनानुद्यानानि च सर्वश
ः॥ ९ ॥ सगोपुराणि द्वाराणि प्रासादाट्टालतोलिकाः । विहारान्स विमानाग्र्यान्निपेतुः
शस्त्रवृष्टयः ॥ १० ॥ शिला द्रुमाश्चाशनयः सर्पा आसारशर्कराः । प्रचण्डश्चक्रवातो
ऽभूद्रजसाऽऽच्छादिता दिशः ॥ ११ ॥ इत्यर्द्यमाना सौभेन कृष्णस्य नगरी भृशम् ।
नाभ्यपद्यत शं राजंस्त्रिपुरेण यथा मही ॥ १२ ॥ प्रद्युम्नो भगवान्वीक्ष्य बाध्यमाना निजाः
प्रजाः । मा भैष्टेत्यभ्यधाद्वीरो रथारूढो महायशाः ॥ १३ ॥ सात्यकिश्चारुदेष्णश्च
साम्बोऽक्रूरः सहानुजः । हार्दिक्यो भानुविन्दश्च गदश्च शुकसारणौ ॥ १४ ॥ अपरे च महेष्वा
सा रथयूथपयूथपाः । निर्ययुर्दंशिता गुप्ता रथेभाश्वपदातिभिः ॥ १५ ततः प्रववृते यु
द्धं शाल्वानां यदुभिः सह । यथाऽसुराणां विबुधैस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ १६ ॥ ताश्च
सौभपतेर्माया दिव्यास्त्रै रुक्मिणीसुतः । क्षणेन नाशयामास नैशं तम इवोष्णगुः ॥ १७ ॥
विव्याध पञ्चविंशत्या स्वर्णपुङ्खैरयोमुखैः । शाल्वस्य ध्वजिनीपालं शरैः सन्नतपर्व
भिः ॥ १८ ॥ शतेनाताडयच्छाल्वमेकैकेनास्य सैनिकान् । दशभिर्दशभिर्नेतॄन्वाह
नानि त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १९ ॥ तदद्भुतं महत्कर्म प्रद्युम्नस्य महात्मनः । दृष्ट्वा तं पूजयामा
सुः सर्वे स्वपरसैनिकाः ॥ २० ॥ बहुरूपैकरूपं तद्दृश्यते न च दृश्यते । मायामयं मयकृत

शरणागत शाल्व से कहा कि-' वरमांग ' ॥ ५ ॥ तब शाल्व ने महादेवजी से देवताओं को अभेद्य और यदुवंशियों को भय उपजानेवाला विमान मांगा ॥ ६ ॥ महादेवजी ने ' तथास्तु ' कहकर शत्रुपुरको जीतनेवाले मयको आज्ञादी उसने लोहे का सौभनामक विमानबनाकर शाल्वको दिया ॥ ७ ॥ शाल्व उस तमोमय दुष्प्राप्य, इच्छाचारी विमान को पाय यदुवंशियोंके बैर का स्मरणकर द्वारका में आया ॥ ८ ॥ और अपनी बडी सेना से नगरी को घेर वहां के बाग और फुलवाडियों को तोडनेलगा ॥ ९ ॥ उस से द्वार, महल, छत, छज्जे, और खेलने के स्थान टूटने और विमान से अस्त्र, पत्थर, वृक्ष वज्र, सर्प और ओलेपडनेलगे । प्रचण्ड वायु चलने लगा और धूलसे द . दिशाएं ढकगई ॥ १० । ११ ॥ महाराज ! पृथिवीजैसे त्रिपुरसे पीडित हुईथी वैसेही श्रीकृष्णजी का नगर शाल्व से पीडितहो सुख से न रहसका ॥ १२ ॥ अपनी प्रजाको पीडित होता देख ' भय न करो ' ऐसा कह महारथीवीर भगवान प्रद्युम्न रथपरचढ दौडे ॥ १३ ॥ सात्यकि,चारु देष्ण, साम्ब, अक्रूर, भाइयों समेत हार्दिक्य, भानुविंद, गद, शुक और सारण ॥ १४ ॥ तथा औरभी महाधनुर्द्धर सेनापतियों के सेनापति कवच पहिर रथ,हाथी, घोडे और पैदलों से रक्षितहो युद्ध के निमित्त नगर से बाहरहुए ॥ १५ ॥ अनन्तर देवताओं के साथ जैसे असुरों का संग्राम हुआथा वैसेही यदुवंशियों के साथ शाल्व के पक्षवालों से घोरसंग्राम होने लगा ॥ १६ ॥ हेराजन् ! उस भयानक युद्ध का वृत्तान्तसुनकर रोमाञ्चहोता है । सूर्य जैसे रात्रिके अन्धकार को दूरकरते हैं वैसेही प्रद्युम्न ने सौभपति के विख्यात मायाजाल को अपने दिव्य अस्त्रों से क्षणभर में छिन्न भिन्न करडाला ॥ १७ ॥ उन्होने लोहे के फलवाले, सुवर्ण के पुङ्खवाले और छोटी २ सन्धियोंवाले पच्चीस बाणों से शाल्व के सेनापति को मारा, सौ बाणों से शाल्वपर, एक २ बाण से उसकी सेनापर, दश २ बाणों से सेनापतियों पर और तीन २ बाणों से सबवाहनों पर प्रहार किया ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ महात्मा प्रद्युम्न के इस बडे अद्भुतकार्य को देखकर शत्रु और मित्र सबकी सेना के मनुष्य उनकी प्रशंसा करनेलगे ॥ २० ॥ मय का बनायाहुआ वह मायामय विमान कभी बहुत

दुर्विभाव्यं परैरभूत् ॥२१॥ क्वचिद्भूमौ क्वचिद्व्योम्नि गिरिमूर्ध्नि जले क्वचित्। अ
लातचक्रवद्भ्राम्यत्सौभं तद्दुरवस्थितम् ॥२२॥ यत्र यत्रोपलक्ष्येत ससौभः सहसै
निकः। शाल्वस्ततस्ततोऽमुञ्चञ्छरान्सात्वतयूथपाः ॥ २३ ॥ शरैरग्न्यर्कसंस्प
र्शैराशीविषदुरासदैः। पीड्यमानपुरानीकः शाल्वोऽमुह्यत्परेरितैः ॥ २४ ॥ शाल्वा
नीकपशस्त्रौघैर्वृष्णिवीरा भृशार्दिताः। न तत्यजू रणं स्वं स्वं लोकद्वयजिगीषवः ॥२५॥
शाल्वामात्यो द्युमान्नाम प्रद्युम्नं प्राक्प्रपीडितः। आसाद्य गदया मौर्व्या व्याहत्य व्यनदद्ब
ली ॥ २६ ॥ प्रद्युम्नं गदया शीर्णवक्षःस्थलमरिन्दमम्। अपोवाह रणात्सूतो धर्मविद्दा
रुकात्मजः ॥ २७ ॥ लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन कार्ष्णिः सारथिमब्रवीत्। अहो असाध्विदं
सूत यद्रणान्मेऽपसर्पणम् ॥ २८ ॥ न यदूनां कुले जातः श्रूयते रणविच्युतः। विना म
त्क्लीबचित्तेन सूतेन प्राप्तकिल्बिषात् ॥ २९ ॥ किं नु वक्ष्येऽभिसङ्गम्य पितरौ रामकेश
वौ। युद्धात्सम्यगपक्रान्तः पृष्टस्तत्रात्मनः क्षमम् ॥ ३० ॥ व्यक्तं मे कथयिष्यन्ति ह
सन्त्यो भ्रातृजामयः। क्लैब्यं कथं कथं वीर तवान्यैः कथ्यतां मृधे ॥ ३१ ॥ सारथि
रुवाच। धर्मं विजानताऽऽयुष्मन्कृतमेतन्मया विभो। सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेद्रथिनं सार
थिं रथी ॥ ३२ ॥ एतद्विदित्वा तु भवान्मयापोवाहितो रणात्। उपसृष्टः परेणेति मू
र्च्छितो गदया हतः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे उ० षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

रूप से कभी एक रूप से दिखाई देताथा, कभी दीखपडता कभी अदृश्य होजाताथा, इसकारण यादवगण उसको न जानसके ॥ २१ ॥ शाल्व का विमान कभी पृथ्वी पर, कभी आकाशपर, कभी जल में, कभी पहाड़की चोटी में अलात चक्र के समान भ्रमण करनेलगा ॥ २२ ॥ शाल्व सौभ विमानमें बैठाहुआ सैनिकों समेत जिधरही दीखताथा यदुसेनापति उधरही को बाण छोड़ते थे ॥ २३ ॥ अग्नि और सूर्य की समान स्पर्शवाले सर्पकी समान दुःसह, शत्रुओं के फेंकेहुए बाणों से शाल्व की सेना नाशहोनेलगी; तब शाल्व कोभी मोह प्राप्तहुआ ॥ २४ ॥ दोनों लोकों के जीतने की इच्छावाले यदुवंशियों ने शाल्व के सेनापतियों से पीड़ित होकरभी रणभूमि न छोडी ॥ २५॥ द्युमान् नाम शाल्व का एक मंत्री प्रथम प्रद्युम्न से पीड़ितहुआथा । इस समय उस बलीने निकट आय कृष्णलोह की बनीहुई गदासे प्रद्युम्न पर प्रहारकर बड़ा घोर शब्द किया ॥ २६ ॥ द्युमान् की गदासे वक्षःस्थल के जर्जर होजाने पर धर्मवेत्ता सारथि दारुकनन्दन शत्रुनाशक प्रद्युम्न को युद्धभूमि से दूसरे स्थान पर लेगया ॥ २७ ॥ प्रद्युम्नने थोड़ी देरमें सचेतहो सारथी से कहा अहो सूत ! तुमने मुझे रणभूमि से लाकर बुरा किया ॥ २८ ॥ हाय ! मुझ व्याकुल चित्तको सारथी ने रणसे बाहरलाकर दोषी किया । मेरे अतिरिक्त यदुवंशियों में कोई भी युद्ध से भागा नहीं सुना गया ॥ २९ ॥ मैं धर्मयुद्ध से भागाहुआ पिता राम—कृष्ण के निकट पहुंच उनसे अपने इस अयोग्य कार्य को किसप्रकारकहूंगा ॥ ३० ॥ यह निश्चयही जानाजाता है कि मेरे भाइयोंकीस्त्रियें यह कहकर कि 'हेवीर ! युद्ध में शत्रु ने तुम्हारा पराक्रम कैसे नाशकरदियाथा, इसप्रकार उपहास कर मुझे नपुंसक बनावेंगी ॥ ३१ ॥ सारथी ने कहा कि—हेआयुष्मान् ! हे विभो ! सारथी को आपत्ति में फँसेहुए रथीकी और रथीको आपत्ति में फँसेहुए सारथी की रक्षाकरनी चाहिए। इसही धर्म के अनुसार मैंने यह कार्य किया है ॥ ३२ ॥ आप शत्रुकी गदाके प्रहार से आहतहो पीड़ित और मूर्छितहोगये, इसही कारण मैं आपको युद्धभूमि से लेआयाथा ॥ ३३ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० दशम० उ० सरलभाषाटीकायांषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ स उपस्पृश्य सलिलंदंशितोधृतकार्मुकः । नयमांद्युमतःपा-
र्श्वंवीरस्येत्याहसारथिम् ॥ १ ॥ विधमन्तंस्वसैन्यानिद्युमन्तंरुक्मिणीसुतः । प्रति-
हत्यप्रत्यविध्यन्नाराचैरष्टभिःस्मयन् ॥ २ ॥ चतुर्भिश्चतुरोवाहान्सूतमेकेनचाहनत्
द्वाभ्यांधनुश्चकेतुंचशरेणान्येनवैशिरः ॥ ३ ॥ गदसात्यकिसाम्बाद्याजघ्नुःसौभ
पतेर्बलम् । पेतुःसमुद्रेसौभेयाःसर्वेसञ्छिन्नकन्धराः ॥ ४ ॥ एवंयदूनांशाल्वानां
निघ्नतामितरेतरम् । युद्धंत्रिणवरात्रंतदभूत्तुमुलमुल्बणम् ॥ ५ ॥ इन्द्रप्रस्थंगतःकृ-
ष्णआहूतोधर्मसूनुना । राजसूयेऽथनिर्वृत्तेशिशुपालेचसंस्थिते ॥ ६ ॥ कुरुवृद्धाननु
ज्ञाप्यमुनींश्चससुतांपृथाम् । निमित्तान्यतिघोराणिपश्यन्द्वारवतींययौ ॥ ७ ॥ आह
चाहमिहायातआर्यमिश्राभिसङ्गतः । राजन्याश्चैद्यपक्षीयानूनंहन्युःपुरींमम ॥ ८ ॥
वीक्ष्यतत्कदनंस्वानांनिरूप्यपुररक्षणम् । सौभंचशाल्वराजंचदारुकंप्राहकेशवः ॥
॥ ९ ॥ रथंप्रापयमेसूतशाल्वस्यान्तिकमाशुवै । संभ्रमस्तेनकर्तव्योमायावीसौभरा
डयम् ॥ १० ॥ इत्युक्तश्चोदयामासरथमास्थायदारुकः । विशन्तंददृशुःसर्वेस्वेपरे
चारुणानुजम् ॥ ११ ॥ शाल्वश्चकृष्णमालोक्यहतप्रायबलेश्वरः प्राहरत्कृष्णसूताय
शक्तिंभीमरवांमृधे ॥ १२ ॥ तामापतन्तींनभसिमहोल्कामिवरंहसा । भासयन्तीं
दिशःशौरिःसायकैःशतधाऽच्छिनत् ॥ १३ ॥ तंचषोडशभिर्विद्ध्वाबाणैःसौभंचखे
भ्रमत् । अविध्यच्छरसन्दोहैःखंसूर्यइवरश्मिभिः ॥ १४ ॥ शाल्वःशौरेस्तुदोःसव्यं

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! फिर प्रद्युम्नने जलसे आचमनकर कवच पहिन धनुष ले सारथी से कहा कि—'मुझको वीर द्युमान के निकट लेचल ॥ १ ॥ द्युमान प्रद्युम्नकी सेनाका नाश कररहाथा, रुक्मिणी नन्दन ने उसको रोक हँसकर आठबाण उसके मारे ॥ २ ॥ चारबाण घोड़ोंके और एकबाण सारथीके मारा । तदनन्तर उसने दोबाणों से उसके धनुष और केतुको और एकबाणसे द्युमानका शिर काटडाला ॥ ३ ॥ इधर गद, सात्यकि और साम्ब आदि वीर सौभपति की सेनाका नाश कररहेथे । सौभकी सेना शिर रहितहोकर समुद्रमें गिरने लगी ॥४॥ हे राजन् ! इसप्रकारसे एक दूसरेको नाश करनेवाला घोरयुद्ध यदुवंशियोंसे और शाल्वसे सत्ताईस दिनतक हुआ ॥५॥ युधिष्ठिरसे निमन्त्रितहोकर श्रीकृष्णजी इन्द्रप्रस्थ गयेथे । राजसूयसमाप्त होने और शिशुपालके मरनेपर श्रीकृष्णजी भयानक उत्पात देखनेलगे । इससे वृद्ध कौरव, मुनियों कुंती और युधिष्ठिरादि से आज्ञा ले वह द्वारकाको चले ॥ ६ । ७ ॥ मार्ग में मन २ में विचारने लगे कि—मैं बलदेवजीके संग इन्द्रप्रस्थमें निवासकरताथा, निश्चयही शिशुपालके पक्षवाले राजाओंने मेरीनगरीमें उत्पात आरम्भ कियाहै॥८॥अनन्तर उन्होंने द्वारकामेंआय अपने मनुष्योंसे सब वृत्तान्त सुन और देख रामको नगरकी रक्षा में नियुक्त किया और सौभ व शाल्व राजाको देख दारुक से कहा कि ॥ ९ ॥ हे सारथे ! शीघ्रही शाल्वके निकट मेरेरथको लेचल, यह बड़ाही मायावी है इससे तू कुछभी मन घबडाना ॥ १० ॥ दारुक ने यहसुन भलीप्रकार से रथपर बैठ रथको चलाया । अपने और शत्रुके पक्षवाले सबोंहीने श्रीकृष्णजीको देखा ॥११॥ शाल्वने अपनी बहुतसी सेनाको मरादेख श्रीकृष्णजी के सारथीपर भयंकर वेगवाली शक्तिका प्रहार किया १२ ॥ वह प्रचण्ड शक्ति बडी उल्काके समान दिशाओं को प्रकाशित करतीहुई आकाश मार्गसे शीघ्रता पूर्वक आनेलगी श्रीकृष्णजीने बाणोंसे उसके सौटुकडे करडाले, ॥ १३ ॥ उन्होंने शाल्वको भी सोलहबाणोंसे बेध सूर्य जैसे किरणोंसे आकाश को भेदताहै वैसेही बाणोंसे उन्होंने आकाश में भ्रमण करनेवाले सौभको भेदडाला ॥ १४ ॥ परन्तु शाल्वने धनुषधारी श्रीकृष्णजी की धनुष स-

सशार्ङ्गंशार्ङ्गधन्वनः । बिभेदन्यपतद्धस्ताच्छार्ङ्गमासीत्तदद्भुतम् ॥ १५ ॥
हाहाकारोमहानासीद्भूतानांतत्रपश्यताम् । निनद्यसौभराडुच्चैरिदमाहजनार्द-
नम् ॥ १६ ॥ यत्त्वयामूढनः सख्युर्भ्रातुर्भार्याहृतेक्षताम् ॥ प्रमत्तःससभाम-
ध्येत्वयाव्यापादितःसखा ॥ १७ ॥ तंत्वाद्यनिशितैर्बाणैरपराजितमानिनम्नया
म्यपुनरावृत्तिं यदितिष्ठेर्ममाग्रतः ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच । वृथात्वंकत्थ
सेमन्द न पश्यस्यन्तिकेऽन्तकम् । पौरुषंदर्शयन्ति स्मशूरानबहुभाषिणः ॥
॥ १९ ॥ इत्युक्त्वाभगवाञ्छाल्वं गदयाभीमवेगया । तताडजत्रौसंरब्धः सचकम्पे
वमन्नसृक् ॥ २० ॥ गदायांसन्निवृत्तायां शाल्वस्त्वन्तरधीयत । ततोमुहूर्तआगत्य
पुरुषःशिरसाऽच्युतम् । देवक्याप्रहितोऽस्मीति नत्वाप्राहवचोरुदन् ॥२१॥ कृष्ण
कृष्णमहाबाहो पिताते पितृवत्सल । बद्ध्वाऽपनीतःशाल्वेन सौनिकेनयथापशुः ॥
॥ २२ ॥ निशम्यविप्रियंकृष्णो मानुषींप्रकृतिंगतः । विमनस्कोघृणी स्नेहाद्बभाषे प्रा
कृतोयथा ॥ २३ ॥ कथंराममसंभ्रान्तं जित्वाऽजेयंसुरासुरैः । शाल्वेनाल्पीयसा नी
तः पितामेबलवान्विधिः ॥ २४ ॥ इतिब्रुवाणेगोविन्दे सौभराट्प्रत्युपस्थितः । वसु
देवमिवानीय कृष्णं चेदमुवाचसः ॥ २५ ॥ एषतेजनितातातो यदर्थमिहजीवसि ।
वधिष्येवीक्षतस्तेऽमुमीशश्चेत्पाहि बालिश ॥ २६ ॥ एवंनिर्भर्त्स्यमायावी खड्गेना
नकदुन्दुभेः । उत्कृत्यशिरआदाय खस्थंसौभंसमाविशत् ॥ २७ ॥ ततोमुहूर्तंप्रकृ-
तावुपप्लुतः स्वबोधआस्ते स्वजनानुषंगतः । महानुभावस्तदबुध्यदासुरीं मायांस
शाल्वप्रसृतां मयोदिताम् ॥ २८ ॥ नतत्रदूतंनपितुःकलेवरं प्रबुद्धआजौ समपश्यद-

न बाईं भुजापर प्रहार किया तब उनके हाथसे धनुष छूटगया, ॥ १५ ॥ जो प्राणी उस घोर
संग्रामको देख रहेथे वे महा हाहाकार करउठे सौभराजने उच्चस्वरसे श्रीकृष्णजीसे कहा, ॥१६॥
रेमूढ ! मेरे सामनेही तूने मेरे मित्र और भाई की स्त्री का हरण कियाथा, और मेरे मित्र की
असावधानी पर तूने उसे सभामें मारडाला ॥१७॥ यदि तू आज मेरे सन्मुख स्थितरहा तो तीक्ष्ण
शरसे तुझे यमपुरी भेजूंगा । तेरे मनमें इसबात का बड़ाही अहंकारहै कि—मुझको कोई परास्त
ही नहीं करसकता ॥ १८ ॥ भगवानने कहा कि—रेमूर्ख ! तू वृथा बकवाद करताहै, तेरे सन्मुख
जो काल खड़ाहै उसको नहीं देखता । वीर पुरुष वीरताही दिखातेहैं वृथा बकबक नहीं करते ॥
॥ १९ ॥ भगवान ने यह कह क्रोधितहो बड़ी भयानक वेगवाली गदासे शाल्वपर प्रहार किया,
इससे वह रुधिर उगिलताहुआ कांपनेलगा ॥ २० ॥ गदाकी पीड़ा कुछेक दूर होनेपर शाल्व स-
चेतहो अन्तर्ध्यान होगया । अनन्तर एक क्षणमात्रमें एक पुरुषनेआय भगवानको प्रणामकर रोतेर
कहाकि हेमहाराज! देवी देवकीने मुझकोभेजाहै और कहाहै कि॥२१॥हेकृष्ण! हेकृष्ण! हेमहाबाहो!
हे पितृवत्सल ! कसाई जैसे पशुको लेजाय वैसेही शाल्व तुम्हारे पिताको बांधकर लेगयाहै ॥२२॥
मनुष्य प्रकृतिको प्राप्तहुये दयावान श्रीकृष्णजी इस अशुभ समाचार को सुनकर स्नेह से विवश
होगए और सामान्य मनुष्यों की भांति कहनेलगे, कि— ॥ २३ ॥ सुर और असुरों के जीतने
योग्य भ्रमरहित रामको जीतकर क्षुद्र शाल्व मेरे पिताको किसप्रकार लेगया, ॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण-
जी इसप्रकार कहरहेथे कि—उसीसमय शाल्वने वहांपर आय वसुदेवकी समान एक मनुष्यको वहां
लाय श्रीकृष्णजी से कहा कि—यह तेरा जन्मदाता पिताहै जिसके निमित्त तू जीताहै मैं तेरे स-
म्मुखही इसका मारे डालताहूं रेमूर्ख ! यदि तुझ में शक्तिहै तो इसको बचा ॥ २५—२६ ॥ यह
कहकर मायावी शाल्व खड्ग से वसुदेव का शिर काट उसेले आकाश चारी सौभमें चलागया ।
॥ २७ ॥ श्रीकृष्णजी स्वयंही ज्ञानवानहैं तो भी पिताके स्नेहके कारण क्षणभर मनुष्य स्वभाव से
चुपचाप बैठेरहे फिर विचारा कि—यह शाल्वकी मायारचित आसुरी मायाहै, ॥ २८ ॥ थोड़ीही

च्युतः । एवं मयमुपाधीरमवीरमुरारिविन्दु सौभस्थमौक्ष्याचिनिहन्तुमुद्यतः ॥ २९ ॥ एवं वदन्ति राजर्षे ऋषयः केचनान्विताः । यत्स्ववाचो विरुध्येत नूनं ते न स्मरन्त्युत ॥ क्व शोकमोहौ स्नेहो वा भयं वा येऽज्ञसम्भवाः । क्व चाखण्डितविज्ञानज्ञानैश्वर्यस्त्वखण्डितः ॥ ३१ ॥ यत्पादसेवोर्जितयाऽऽत्मविद्यया हिन्वन्त्यनाद्यात्मविपर्ययग्रहम् । लभन्त आत्मीयमनन्तमैश्वरं कुतो नु मोहः परमस्य सद्गतेः ॥ ३२ ॥ तं शस्त्रपूगैः प्रहरन्तमोजसा शाल्वं शरैः शौरिरमोघविक्रमः । विद्ध्वाऽच्छिनद्वर्म धनुः शिरोमणिं सौभं च शत्रोर्गदया रुरोज ह ॥ ३३ ॥ तत्कृष्णहस्तेरितया विचूर्णितं पपात तोये गदया सहस्रधा । विसृज्य तद्भूतलमास्थितो गदामुद्यम्य शाल्वोऽच्युतमभ्यगाद्द्रुतम् ॥ ३४ ॥ आधावतः सगदं तस्य बाहुं भल्लेन छित्त्वाऽथ रथाङ्गमद्भुतम् । वधाय शाल्वस्य लयार्कसन्निभं बिभ्रद्बभौ सार्क इवोदयाचलः ॥ ३५ ॥ जहार तेनैव शिरः सकुण्डलं किरीटयुक्तं पुरुमायिनो हरिः । वज्रेण वृत्रस्य यथा पुरन्दरो बभूव हाहेति वचस्तदा नृणाम् ॥ ३६ ॥ तस्मिन्निपतिते पापे सौभे च गदया हते । नेदुर्दुन्दुभयो राजन्दिवि देवगणेरिताः । सखीनामपचितिं कुर्वन्दन्तवक्त्रो रुषाऽभ्यगात् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ शिशुपालस्य शाल्वस्य पौण्ड्रकस्यापि दुर्मतिः । परलोकगतानां च कुर्वन्पारोक्ष्यसौहृदम् ॥ १ ॥ एकः पदातिः संक्रुद्धो गदापाणिः प्रकम्पयन् । प

देर के उपरांत भगवानने स्वप्नकी प्रपंचकी समान वहां पुत्र व पिता के शरीर कौं न देख पाया और वह शत्रु का सौभक ऊपर बैठाहुआ आकाशमें विचरता देख उसके मारनेपर उद्यत हुये ॥ २९ ॥ हे राजर्षे । कोई २ कुछेक मूर्ख ऋषि इसप्रकार कहते हैं परन्तु इससे उनके वचनोंमें विरुद्धता पड़ताहै यह वह नहीं विचारते हैं—कहां तो मूर्ख मनुष्योंके उत्पन्न होनेवाला शोक मोह स्नेह, और भय और कहां विज्ञान और ज्ञानसे परिपूर्ण श्रीकृष्णजी ॥ ३०—३१ ॥ और भी साधु मनुष्य जिनके चरणोंकी सेवासे बढ़ीहुई आत्मविद्या द्वारा अनादि कालका देहात्म बुद्धिका त्याग कर अनन्त ईश्वरपदको प्राप्त होतेहैं उन साधओं की गति परमेश्वरको मोह कहांसे होसक्ताहै ॥ ३२ ॥ अतएव ऊपर मुनियों के कहेहुये वचन अत्यन्तही तुच्छहैं । शाल्व बलपूर्वक शस्त्रोंके प्रहार करता हुआ अमोघ पराक्रमवाले श्रीकृष्णजीने बाणोंसे उसको छेदकर कवच, धनुष व मस्तककी मणि को काट उसके सौभ विमानको गदासे तोड़डाला ॥ ३३ ॥ वह विमान श्रीकृष्णजी के हाथ से छूटीहुई गदाके प्रहारसे चूर्णहो जलमें गिरपड़ा । शाल्व उसको छोड़ पृथिवीपर खड़ा होगया और गदाले उठाय बड़ा वेगसे श्रीकृष्णजी परदौड़ा, ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णजी ने सामने दौड़ेआतेहुए शाल्वकी भुजाको गदा समेत भालेसे काटडाला उसके मारने के निमित्त प्रलयकालके सूर्यकी समान सुदर्शनचक्रको धारणकर वे सूर्य समेत उदयाचल की समान शोभा पानेलगे ॥ ३५ ॥ जैसे इन्द्र ने वज्र से वृत्रासुरके मस्तक को काटाथा वैसेही हरिने चक्र से मायावी शाल्व के कुण्डल व किरीट युक्त मस्तकको काटडाला उससमय मनुष्य हाहाकार करनेलगे, ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! उस पापी के नाश होने और सौभ के गदा से टूटनेपर देवता स्वर्ग से दुन्दुभी बजाय व पुष्प बरसाने लगे, उसीसमय दन्तवक्त्र, मित्रों का बदला लेने की कोधितहो श्रीकृष्ण जी के सन्मुख आया, ॥ ३७ ॥

इतिश्री मद्भागवतमहापुराणेदशमस्कन्धे उ० सरलभाषाटीकायांसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! मारेगये दुष्ट दन्तवक्त्र, मरे हुए शिशुपाल, शाल्व, और पौंड्रक की मित्रता प्रकाश करने को अकेला पृथ्वी को कपाता हुआ क्रोधित हो, श्रीकृष्णजीकी

द्भ्यामिमांमहाराजमहासत्वोव्यदृश्यत ॥ २ ॥ तंतथाऽऽयान्तमालोक्यगदामादाय सत्वरः । अवप्लुत्यरथात्कृष्णः सिन्धुंवेलेवप्रत्यधात् ॥ ३ ॥ गदामुद्यम्यकारूषोमु कुन्दंप्राहदुर्मदः । दिष्ट्यादिष्ट्याभवानद्यममदृष्टिपथगतः ॥ ४ ॥ त्वंमातुलेयोनः कृ ष्णमित्रध्रुङ्मांजिघांससि । अतस्त्वांगदयामन्दहनिष्येवज्रकल्पया ॥ ५ ॥ तर्ह्यानृ ण्यमुपैम्यज्ञमित्राणांमित्रवत्सलः । बन्धुरूपमरिंहत्वाव्याधिंदेहचरंयथा ॥ ६ ॥ एवं रूक्षैस्तुदन्वाक्यैः कृष्णंतोत्रैरिवद्विपम् । गदया ताडयन्मूर्ध्नि सिंहवद्व्यनदच्चसः ॥ ७ ॥ गदयाऽभिहतोऽप्याजौनचचालयदूद्वहः । कृष्णोऽपितमहन्गुर्व्याकौमोद क्यास्तनान्तरे ॥ ८ ॥ गदानिर्भिन्नहृदय उद्वमन्रुधिरंमुखात् । प्रसार्यकेशबाह्वङ्घ्री- न्धरण्यांन्यपतद्व्यसुः ॥ ९ ॥ ततःसूक्ष्मतरंज्योतिः कृष्णमाविशदद्भुतम् ॥ पश्यतां सर्वभूतानां यथाचैद्यवधेनृप ॥ १० ॥ विदूरथस्तुतद्भ्राता भ्रातृशोकपरिप्लुतः ॥ आगच्छदसिचर्मभ्यामुच्छ्वसंस्तज्जिघांसया ॥ ११ ॥ तस्यचापततःकृष्णश्चक्रेण- क्षुरनेमिना । शिरोजहारराजेन्द्र सकिरीटंसकुण्डलम् ॥ १२ ॥ एवंसौभंचशाल्वं दन्तवक्त्रं सहानुजम् । हत्वादुर्विषहानन्यैरीडितः सुरमानवैः ॥ १३ ॥ मुनिभिः सिद्धगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः । अप्सरोभिःपितृगणैर्यक्षैः किन्नरचारणैः ॥ १४ ॥ उपगीयमानविजयः कुसुमैरभिवर्षितः । वृतश्चवृष्णिप्रवरैर्विवेशालंकृतांपुरीम् ।१५ एवंयोगेश्वरःकृष्णो भगवाञ्जगदीश्वरः । ईयतेपशुदृष्टीनां निर्जितो जयतीतिसः१६॥ श्रुत्वायुद्धोद्यमंरामः कुरूणांसहपाण्डवैः । तीर्थाभिषेकव्याजेन मध्यस्थःप्रययौकि-

और दौड़ा ॥ १ ॥ २ ॥ उसको इस प्रकार से गदा हाथमें लिये हुए आता देख श्रीकृष्णजी ने शीघ्रही रथसे कूद पृथिवी पर आय जैसे वेला समुद्रको रोकती है वैसेही उसको रोकलिया ॥ ३ ॥ दुष्ट दन्तवक्त्रने गदा उठाय श्रीकृष्णजी से कहा कि—अच्छा ! अच्छा ! आज तू मेरे दृष्टि गोचर हुआ है ॥ ४ ॥ कृष्ण ! तू मेरे मामा का पुत्र और मित्रघाती है; तुझे मेरेभी मारनेकी इच्छा है अतएव रे मन्द ! आज तुझे वज्रकी समान गदा से मारूंगा ॥ ५ ॥ हे मूर्ख ! मैं मित्रोंका चाहने वाला तुझ बंधुरूप शत्रु को मार कर मित्रों के ऋण से उऋण हूंगा । जैसे अंकुशसे हाथी पीड़ित होता है दन्तवक्त्र वैसेही कटु वचनों से श्रीकृष्णजीको पीड़ित कर गदासे उनके मस्तक पर प्रहार कर सिंह की समान गर्जने लगा ॥ ६ ॥ ७ ॥ यदुश्रेष्ठ रण भूमि में गदासे आहत होकरभी क्षण भर को चलाय मान न हुए; उन्होने भी अपनी कौमोद की गदा उसकी छातीमें मारी ॥ ८ ॥ उस प्रचण्ड गदाके प्रहार से दंतवक्त्रका हृदय चूर२ होगया; वह रुधिर उगिलता हुआ केशोंको बिखराय व हाथों पावों को फैलाय प्राण रहित हो गिर पड़ा ॥ ९ ॥ हे राजन् ! जैसे शिशुपाल के शरीर की ज्योति ने श्रीकृष्णजी के चरण कमलों में प्रवेश किया था, वैसेही दन्तवक्त्रकी देहसे भी सूक्ष्म ज्योति निकल सब प्राणियों के सामनेही श्रीकृष्णजी में प्रवेश कर गई ॥ १० ॥ उसका भाई विदूरथ भाई के शोक से व्याकुल हो श्रीकृष्णजी के मरने के निमित्त ढाल तलवार ले दीर्घ श्वास छोड़ता हुआ दौड़ा आया ॥ ११ ॥ हे राजेन्द्र ! श्रीकृष्णजीने छुरेकी धार वाले चक्रसे उस आते हुए विदूरथके कुंडल किरीट से शोभित मस्तक को काट डाला ॥ १२ ॥ इसप्रकार से श्री कृष्णजी सौभविमान, शाल्व, और भाइयों समेत दंतवक्त्र आदि दुःसह वीरों को मार श्रेष्ठ यदु वंशियोंसे घिर अपनी सुंदर नगरी में आये । देवता और मनुष्य उनकी स्तुति और मुनि, सिद्ध गन्धर्व, विद्याधर, नाग, अप्सरा, पितर, यक्ष, किन्नर और चारण गण उनके चरित्रों का गान करने लगे ॥ १३—१५ ॥ योगेश्वर भगवान इसप्रकार लीला से सदैवही जय पाते हैं परंतु कोई २ पशु बुद्धि मनुष्य कहते हैं कि वे जरासंधसे हार गये थे ॥ १६ ॥ हे राजन् ! एकदिन बलदेव जी ने सुना कि कौरव और पाण्डवों के संग युद्ध का उद्यम होरहा है बलदेवजी किसी की ओर

छ ॥ १७ ॥ स्नात्वा प्रभासे संतर्प्य देवर्षिपितृमानवान् । सरस्वतीं प्रतिस्रोतं ययौ ब्रा-
ह्मणसंवृतः ॥१८॥ पृथूदकं बिन्दुसरस्त्रितकूपं सुदर्शनम् । विशालं ब्रह्मतीर्थं च च-
क्रं प्राचीं सरस्वतीम् ॥ १९ ॥ यमुनामनु यान्येव गंगामनु च भारत । जगाम नैमिषं यत्र
ऋषयः सत्रमासत ॥ २० ॥ तमागतमभिप्रेत्य मुनयो दीर्घसत्रिणः । अभिनन्द्य यथा
न्यायं प्रणम्योत्थाय चाऽऽर्चयन् ॥ २१ ॥ सोऽर्चितः सपरीवारः कृतासनपरिग्रहः ।
रोमहर्षणमासीनं महर्षेः शिष्यमैक्षत ॥ २२ ॥ अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृतप्रह्वणा-
ञ्जलिम् । अध्यासीनं च तान्विप्रांश्चुकोपोद्वीक्ष्य माधवः ॥ २३ ॥ कस्मादसाविमा-
न्विप्रानध्याऽऽस्ते प्रतिलोमजः धर्मपालांस्तथैवास्मान्वधमर्हति दुर्मतिः ॥ २४ ॥
ऋषेर्भगवतो भूत्वा शिष्योऽधीत्य बहूनि च । सेतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्व-
शः ॥ २५ ॥ अदान्तस्याविनीतस्य वृथा पण्डितमानिनः । न गुणाय भवन्ति स्म नट
स्यैवाऽजितात्मनः ॥ २६ ॥ एतदर्थो हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः । वध्या मे धर्म
ध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः ॥२७॥ एतावदुक्त्वा भगवान्निवृत्तोऽसद्वधादपि
। भावित्वात्तं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत्प्रभुः ॥ २८ ॥ हाहेतिवादिनः सर्वे मुनयः
खिन्नमानसाः ऊचुः संकर्षणं देवमधर्मस्ते कृतः प्रभो ॥ २९ ॥ अस्य ब्रह्मासनं दत्त-
मस्माभिर्यदुनन्दन । आयुश्चात्माऽक्लमं तावद्यावत्सत्रं समाप्यते ॥ ३० ॥ अजानतै
वाचरितस्त्वया ब्रह्मवधो यथा । योगेश्वरस्य भवतो नाम्नायोऽपि नियामकः ॥३१॥
यद्येतद्ब्रह्महत्यायाः पावनं लोकपावन । चरिष्यति भवाँल्लोकसंग्रहोऽनन्यचोदितः

न होने की इच्छासे तीर्थ स्नान के मिष से द्वारका से प्रभास तीर्थ को चले गये ॥ १७ ॥ अनंतर
वहां पर स्नान कर देव, ऋषि, पितर और मनुष्यों को तृप्तकर ब्राह्मणों समेत सरस्वती पर आये
॥ १८ ॥ क्रमसे वह पृथूदक, बिंदुसर, त्रितकूप, सुदर्शन, विशाला, ब्रह्मतीर्थ, चक्र और पश्चिम
वाहिनी सरस्वतीमें गये और गंगा व यमुनाके पार वाले सब तीर्थोंमें होते हुए नैमिषारण्य में पहुंचे
ऋषिगण वहां बारह बरसवाले यज्ञके अनुष्ठान में प्रवृत्तथे ॥ १९–२० ॥ बलरामजीको आयादेख
दीर्घ यज्ञवाले उन मुनियों ने उठकर उनको प्रणाम व वंदना की ॥ २१ ॥ रामने मुनियों से पू-
जितहो आसनपर बैठकर देखाकि महर्षि व्यासके शिष्य रोमहर्षण बैठेहुए हैं ॥ २२ ॥ वह जाति
का सूत होकर न उठान प्रणाम व दंडवत की और ब्राह्मणों की अपेक्षा ऊंचे आसनपर बैठाहुआ है
यह देखकर बलदेवजी क्रोधित हुए ॥ २३ ॥ और 'यहदुष्ट प्रतिलोम जातिका सब धर्मपाल ब्राह्मणों
और मेरी अपेक्षा भी ऊंचे आसनपर क्यों बैठारहा ? यह दुष्ट मारने योग्य है ॥ २४ ॥ भगवान
वेद व्यासका शिष्यहो अनेक इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्रोंको पढ़कर भी यहज्ञानी और विनीत
नहीं हुआ ॥ २५ ॥ व्यर्थही अपनेको पंडित जानता है' । आत्माको तो जीतही न सका अतएव
नटकी समान इसके सबगुण नाममात्रको हैं ॥ २६ ॥ जोधर्मका चिह्न धारण करता है वह अधिक
पातकी है इस प्रकार के धर्म नाशक मनुष्यों के मारने के निमित्तही मैंने अवतार लिया है ॥२७॥
भगवान संकर्षण ने दुष्टोंको भी मारना छोड़दियाथा तौभी भावीवश इतना कहकर हाथमें लिये
हुए कुशके अग्रसे सूतको मारडाला ॥ २८ ॥ तबसब मुनिलोग हाहाकार करनेलगे और अत्यंत
खिन्नहो बलदेवजी से कहनेलगे कि–प्रभो ! आपने अधर्म किया ॥ २९ ॥ हे यदुनंदन ! जबतक
यज्ञ समाप्त न होवे तबतक के निमित्त हमने इसको ब्रह्म आसन और शारीरिक क्लेशरहित आयु
दीथी । आपने न जानकर ब्रह्म वधकी समान इसका संहार किया ॥ ३० ॥ आप योगेश्वरहो, वेद
भी आपका नियामक नहीं है तौभी हे लोकपावन् ! यदि आपही इस ब्रह्महत्या के समान पापका
प्रायश्चित्त करोगे तभी सृष्टिकी मर्यादा रहेगी ॥३१॥ भगवान ने कहाकि–मैं सृष्टिपर अनुग्रह करने

॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच । करिष्ये वधनिर्वेशं लोकानुग्रहकाम्यया । नियमः प्रथमे कल्पे यावान्सतु विधीयताम् ॥३३॥ दीर्घमायुर्बतैतस्य सत्त्वमिन्द्रियमेव च । आशासितं यत्तद्ब्रूत साधये योगमायया ॥३४॥ ऋषय ऊचुः ॥ अस्त्रस्य तव वीर्यस्य मृत्योरस्माकमेव च । यथा भवेद्वचः सत्यं तथा राम विधीयताम् ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम् । तस्मादस्य भवेद्वक्ता आयुरिन्द्रियसत्त्ववान् ॥ ३६ ॥ किं वः कामो मुनिश्रेष्ठा ब्रूताहं करवाण्यथ । अजानतस्त्वपचितिं यथा मे चिन्त्यतां बुधाः ॥ ३७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ इल्वलस्य सुतो घोरो बल्वलो नाम दानवः । स दूषयति नः सत्रमेत्य पर्वणि पर्वणि ॥ ३८ ॥ तं पापं जहि दाशार्ह तन्नः शुश्रूषणं परम् । पूयशोणितविण्मूत्रसुरामांसाभिवर्षिणम् ॥ ३९ ॥ ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः । चरित्वा द्वादशमासांस्तीर्थस्नायी विशुध्यसे ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे उ० अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ ततः पर्वण्युपावृत्ते प्रचण्डः पांसुवर्षणः भीमो वायुरभूद्राजन्पूयगन्धस्तु सर्वशः ॥ १ ततोऽमेध्यमयं वर्षं बल्वलेन विनिर्मितम् । अभवद्यज्ञशालायां सोऽन्वदृश्यत शूलधृक् ॥ २ ॥ तं विलोक्य बृहत्कायं भिन्नाञ्जनचयोपमम् । तप्तताम्रशिखाश्मश्रुं दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीमुखम् ॥ ३ ॥ सस्मार मुसलं रामः परसैन्यविदारणम् । हलं च दैत्यदमनं ते तूर्णमुपतस्थतुः ॥ ४ ॥ तमाकृष्य हलाग्रेण बल्वलं गगनेचरम् । मुसलेनाहनत्क्रुद्धो मूर्ध्नि ब्रह्मद्रुहं बलः ॥ ५ ॥ सोऽपतद्भुवि निर्भिन्नललाटोऽसृक्समुत्सृज

की इच्छासे इस हत्याका प्रायश्चित करूंगा; मुख्य पक्षमें जो नियमहो आप उसका वर्णन करो ॥३२॥ हे मुनियों ! इस सूतकी दीर्घ आयु, बल, इन्द्रिय सामर्थ और दूसरे भी जो चाहतेहो कहो । मैं योगमाया से उसके अनुसार वही करूंगा ॥ ३३ ॥ ऋषियों ने कहाकि–हे राम ! जिस प्रकार से आपका अस्त्र और पराक्रम, इसकी मृत्यु और हमारे वाक्य सत्यहोवें आप वहीकरो आपसे और अधिक क्याकहें ॥ ३४ ॥ भगवान ने कहाकि—वेदमें यह उपदेश है कि आत्मा पुत्ररूप से उत्पन्न होता है । अतएव इसका पुत्र उग्रश्रवा आपलोगोंका वक्ता होवेगा इसकोही आयु, इन्द्रियों की सामर्थ्य और बलप्राप्त होवेगा ॥ ३५ ॥ हे श्रेष्ठ मुनियो ! इसके उपरांत मैं आपका कौनसा कार्यकरूं कहिये । और मेरे अज्ञानसे किये हुए ब्रह्मवधका प्रायश्चित्तक्या है उसकाभी आप विचार करिये ॥ ३६ ॥ ऋषियोंने कहाकि–हे देव ! इल्वलका पुत्र बल्वल नामका एक घोरदैत्य पर्व २ में आकर हमारे यज्ञको दूषित करता है ॥ ३७ ॥ हे यादव ! उस दुष्टको मारो उसके मरनेसेही हमारा उपकार होगा । वह दानव पूय, रुधिर, विष्ठा, मूत्र, सुरा और मांसकी वर्षा करकर यज्ञका विघ्नकरता है ॥ ३८ ॥ उसको मार करके आप काम क्रोधादि रहितहो भारत वर्षमें भ्रमण करो और बारह महीने कष्टको सह.तीर्थोंका स्नानकरो तब शुद्धहोगे ॥ ३९ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कन्धे उ०सरलाभाषाटीकायामष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! अनन्तर पर्व आनेपर प्रचण्ड भयानक वायु चलने लगी, और सब ओरसे पूयकी गन्ध फैलगई ॥ १ ॥ इसके उपरांत यज्ञशालामें बल्वल अपवित्र पदार्थों को बरसाने लगा और हठात् शूल धारणकर सबके आगे वह प्रगट हुआ ॥२॥ वह काजल के ढेरकी समान अति श्यामवर्ण उसकी चोटी और दाढ़ी-मूछ तपेहुए तांबेकी समान, बड़ी भौंहोयुक्तमुख डाढ़ों समेत देखने में अत्यन्त भयानक, और शरीर अत्यन्त दीर्घथा । उसको देख बलरामजी ने शत्रु-सैन्यनाशक मूषल और दैत्य दमन हलको स्मरण किया । तत्कालही वह आ उपस्थितहुये ॥ ३ । ४ ॥ बलदेवजी ने क्रोधितहो उस ब्रह्मद्रोही आकाशचारी बल्वल को हलसे खींच मूषल से उस पर प्रहार किया ॥ ५ ॥ जिस से उसका मस्तक चूर्णहोगया । वह

न् । मुञ्चन्नार्तस्वरंशैलोयथावज्रहतोऽरुणः ॥ ६ ॥ संस्तुत्यमुनयोरामंप्रयुज्यावि
तथाशिषः । अभ्यषिञ्चन्महाभागावृत्रघ्नंविबुधायथा ॥ ७ ॥ वैजयन्तींददुर्मालां
श्रीधामाम्लानपङ्कजाम् । रामायवाससीदिव्येदिव्यान्याभरणानिच ॥ ८ ॥ अथतै
रभ्यनुज्ञातः कौशिकीमेत्यब्राह्मणैः । स्नात्वासरोवरमगाद्यतः सरयुरास्रवत् ॥ ९ ॥
अनुस्रोतेनसरयूंप्रयागमुपगम्यसः । स्नात्वासंतर्प्यदेवादीञ्जगामपुलहाश्रमम् ॥ १०॥
गोमतींगण्डकींस्नात्वाविपाशांशोणआप्लुतः । गयांगत्वापितॄनिष्ट्वागङ्गासागरसं
गमे ॥ ११ ॥ उपस्पृश्यमहेन्द्राद्रौरामंदृष्ट्वाऽभिवाद्यच । सप्तगोदावरींवेणांपम्पां
भीमरथींततः ॥ १२ ॥ स्कन्दंदृष्ट्वाययौरामः श्रीशैलंगिरिशालयम् । द्रविडेषुम
हापुण्यंदृष्ट्वाद्रिंवेङ्कटंप्रभुः ॥ १३ ॥ कामकोष्णींपुरींकाञ्चींकावेरींचसरिद्वराम् ।
श्रीरङ्गाख्यंमहापुण्यंयत्रसन्निहितोहरिः ॥ १४ ॥ ऋषभाद्रिंहरेः क्षेत्रंदक्षिणांमथुरां
तथा । सामुद्रंसेतुमगमन्महापातकनाशनम् ॥ १५ ॥ तत्रायुतमदाद्धेनूर्ब्राह्मणेभ्यो
हलायुधः । कृतमालांताम्रपर्णींमलयंचकुलाचलम् ॥ १६ ॥ तत्रागस्त्यंसमासीनं
नमस्कृत्याभिवाद्यच । योजितस्तेनचाशीर्भिरनुज्ञातोगतोऽर्णवम् । दक्षिणंतत्रकन्या
ख्यांदुर्गांदेवींददर्शसः ॥ १७ ॥ ततः फाल्गुनमासाद्यपञ्चाप्सरसमुत्तमम् । विष्णुः
सन्निहितोयत्रस्नात्वाऽस्पर्शद्गवायुतम् ॥ १८ ॥ ततोऽभिव्रज्यभगवान्केरलांस्तुत्रिगर्त
कान् । गोकर्णाख्यंशिवक्षेत्रंसान्निध्यंयत्रधूर्जटेः ॥ १९ ॥ आर्यांद्वैपायनींदृष्ट्वाशूर्पा
रकमगाद्बलः । तापींपयोष्णींनिर्विन्ध्यामुपस्पृश्याथदण्डकम् ॥ २० ॥ प्रविश्यरेवा

रक्त उगलताहुआ आर्त्तनादकरता २ वज्र से टूटेहुए अरुणवर्ण के पर्वत की समान भूमि में गिर पड़ा ॥ ६ ॥ यह देखकर बेसब ऋषि रामकी स्तुति करने और अमोघ आशीर्वाद देनेलगे; देवता ओं ने जैसे वृत्रासुर के मारनेवाले इन्द्र का अभिषेक कियाथा, तैसेही उन्होंने उनका अभिषेक किया ॥ ७ ॥ अनन्तर उन्होंने रामको न कुम्हलानेवाले कमलों की लक्ष्मी की निवासभूत वैज-यन्तीमाला, दिव्यवस्त्र व दिव्यआभूषण दिये ॥ ८ ॥ अनन्तर राम ने उनकी आज्ञाले ब्राह्मणों समेत कौशिकी में आय स्नानकिया; फिर जिससे सरयूनदी निकली है उस सरोवर पर आये ९॥ फिर वह सरयू में होतेहुए प्रयाग में आये और वहां स्नान व देवताओं का तर्पणकर पुलहाश्रम में आये ॥ १० ॥ फिर वहां से गोमती, गण्डकी, विपाशा और शोण में स्नानकर गया में पहुँच पित्रों की पूजाकी वहां गंगासागर के संगम में स्नानकर महेन्द्र पर्वत पर पहुंचे। वहां पर परशुराम को देख प्रणामकर वहां से सप्तगोदावरी, वेणु, पंपा और भीमरथी में हो स्वामिकार्तिक के दर्शन कर महादेवजी के श्रीशैल पर्वत पर आये । फिर बलरामजी ने द्रविड़ देश में पहुंच महापुण्य वेंकट पर्वत के दर्शन किये ॥ ११—१३ ॥ वह कामकोष्ठी, कांचीपुरी, सरिद्वरा, कावेरी, जहां हरि वि-राजमान रहते हैं उस महापुण्य श्रीरंग, हरिक्षेत्र, ऋषभपर्वत और दक्षिणमथुराको देख महापाप नाशक सेतुबन्धमें पहुंचे ॥ १४ । १५ ॥ बलरामजी वहां ब्राह्मणों को दशसहस्र गौएं दानकर कृत माला और ताम्रपर्णी कुलाच में हो मलयाचल में गये । वहां बैठेहुए अगस्त्य मुनि को नमस्कार और प्रणामकर उनका आशीर्वाद और आज्ञा पाय दक्षिण समुद्रको गये ॥ १६ । १७ ॥ उन्होंने वहां कन्यानाम्नी दुर्गा देवी का दर्शन किया, फिर फाल्गुनतीर्थ पर आय उत्तम पंचाप्सर सरोवर में स्नानकर दशसहस्र गौएं दानकीं; उस स्थान में विष्णुजी सदैव विराजमान रहते हैं ॥ १८ ॥ अनन्तर केरल और त्रिगर्त देश में होतेहुए गोकर्ण क्षेत्रमें कि जहां शिवजीसदैव विराजमान रहते हैं पहुंचे ॥ १९ ॥ बलदेवजी वहां आर्या द्वैपायनी का दर्शनकर शूर्पारक में गये । अनन्तर तापी पयोष्णी और निर्विन्ध्या में स्नानकर दण्डकारण्य में आय माहिष्मती पुरी के निकट नर्मदा में

...मगमयममाहिष्मतीपुरी । मनुतीर्थमुपस्पृश्यप्रभासंपुनरागमत् ॥ २१ ॥ श्रुत्वाद्विजैः कथ्यमानंकुरुपाण्डवसंयुगे । सर्वराजन्यनिधनंभारंमेनेहृतंभुवः ॥ २२ ॥ सभीमदुर्योधनयोर्गदाभ्यांयुध्यतोर्मृधे । वारयिष्यन्विनशनंजगामयदुनन्दनः ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरस्तुतंदृष्ट्वायमौकृष्णार्जुनावपि । अभिवाद्याभवंस्तूष्णींकिंविवक्षुरिहागतः ॥२४॥ गदापाणीउभौदृष्ट्वासंरब्धौविजयैषिणौ । मण्डलानिविचित्राणिचरन्ताविदमब्रवीत् ॥ २५ ॥ युवांतुल्यबलौवीरौहेराजन्हेवृकोदर । एकंप्राणाधिकंमन्येउतैकंशिक्षयाधिकम् ॥ २६ ॥ तस्मादेकतरस्येहयुवयोःसमवीर्ययोः । नलक्ष्यतेजयोऽन्योवाविरमत्वफलोरणः ॥ २७ ॥ नतद्वाक्यंजगृहतुर्बद्धवैरौनृपार्थवत् । अनुस्मरन्तावन्योन्यंदुरुक्तंदुष्कृतानिच ॥ २८ ॥ दिष्टंतदनुमन्वानोरामोद्वारवतींययौ । उग्रसेनादिभिः प्रीतैर्ज्ञातिभिः समुपागतः ॥ २९ ॥ तंपुनर्नैमिषंप्राप्तमृषयोऽयाजयन्मुदा । क्रत्वङ्गंक्रतुभिः सर्वैर्निवृत्ताखिलविग्रहम् ॥ ३० ॥ तेभ्योविशुद्धविज्ञानंभगवान्व्यतरद्विभुः । येनैवात्मन्यदोविश्वमात्मानंविश्वगंविदुः ॥ ३१ ॥ स्वपत्न्यावभृथस्नातोज्ञातिबन्धुसुहृद्वृतः रेजेस्वज्योत्स्नयेवेन्दुः सुवासाः सुष्ठ्वलंकृतः ॥ ३२ ॥ ईदृग्विधान्यसंख्यानिबलस्यबलशालिनः । अनन्तस्याप्रमेयस्यमायामर्त्यस्य सन्तिहि ॥३३॥ योऽनुस्मरेतरामस्य कर्माण्यद्भुतकर्मणः । सायं प्रातरनन्तस्य विष्णोः सदयितो भवेत् ॥३४॥ इति श्रीमद्भा०महा०दशमस्कन्धेउ०एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

स्नान किया । अन्त को मनुतीर्थ में स्नानकर फिर प्रभास में आवे ॥ २० । २१ ॥ वहां ब्राह्मण कौरव पाण्डवों का युद्ध और क्षत्रियों के मारेजाने की बातें कहरहेथे,बलदेवजी ने उसको सुनकर जानलिया कि पृथ्वी का भार दूरहोगया ॥ २२॥ उस समय भीम और दुर्योधन युद्धभूमि में गदा युद्ध कररहेथे; बलदेवजी उन्हें मनाकरने को कुरुक्षेत्र में गये ॥ २३ ॥ युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव अर्जुन और श्रीकृष्णजीने उनको देखकर प्रणाम किया और वह क्या कहने के निमित्त इसस्थान में आये हैं, यह विचारतेहुए चुप खड़ेरहगए ॥ २४ ॥ इधर भीमसेन और दुर्योधन दोनों अपने अपने हाथों में गदा लिये क्रोधित होतेहुए विजयकी इच्छा से नाना मण्डलों में (चक्करकाटतेहुए) भ्रमण कररहेथे, राम ने उनको देखा और देखकरकहा ॥ २५ ॥ हेराजन्! हेवृकोदर ! तुमदोनों जन बलमें समानहो; दोनों जनही समान वीरहो; मैं एक जनको बलमें और दूसरेको शिक्षा में अधिक जानताहूं ॥ २६ ॥ अतएव इसयुद्ध में तुमदोनोंजनों के समान पराक्रमी होने से एककीजीत वा हारहोतीहुई नहीं दिखाई देती; अतएव निष्फलयुद्धकरने से निवृत्तहोओ ॥ २७ ॥ हेराजन्! दोनों जनों में बहुत शत्रुता बंधीथी एक ने दूसरे के कटुवाक्य और अपकार का स्मरणकर बल० देवजी के इन धर्मवाले वचनों पर ध्यान न दिया ॥ २८ ॥ इससे बलरामजी, भावीही बलवान है ऐसा कह द्वारका में आये उन्होंने वहां जातिवालों और उग्रसेनादिसे मिलकर उनको प्रसन्न किया ॥ २९ ॥ महाराज ! बलदेवजी फिर नैमिषारण्य में आये । यज्ञमूर्ति, भेदज्ञानरहित बलदेवजीको ब्राह्मणों ने आनन्दपूर्वक यज्ञकराया ॥ ३० ॥ भगवान बलरामजी ने उन को जो शुद्धज्ञान दिया उससे उन मुनियों ने विश्व को आत्मा में और आत्मा को सर्वत्र स्थित देखा ॥ ३१ ॥ बलराम जी जातिवाले, बन्धुओं और सुहृदों से वेष्टितहो अपनी स्त्री समेत अवभृथ स्नानकर सुन्दरवस्त्र धारणकर माला को पहिर ताराओं समेत चन्द्रमा की समान प्रकाश पानेलगे ॥ ३२ ॥ हेराजन्! माया मनुष्य, बलशील, अप्रमेय, अनन्त बलदेवजी के इसप्रकार से अनेक कर्म हैं ॥ ३३ ॥ जो सन्ध्या और प्रातःकाल में अद्भुत कर्मवाले अनन्त बलरामजी के कर्मों का स्मरण करे वह विष्णुभक्त होजावे ॥ ३४ ॥

इतिश्री मद्भा०महापुराणेदशमस्कंधेउ०सरलाभाषाटीकायांएकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

राजोवाच ॥ भगवन्यानि चान्यानि मुकुन्दस्य महात्मनः । वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य
श्रोतुमिच्छामहे प्रभो ॥ १ ॥ को नु श्रुत्वासकृद्ब्रह्मन्नुत्तमश्लोकसत्कथाः । विरमे
त विशेषज्ञो विषण्णः काममार्गणैः ॥ २ ॥ सा वाग्यया तस्य गुणान्गृणीते करौ च तत्क
र्मकरौ मनश्च । स्मरेद्वसन्तं स्थिरजङ्गमेषु शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ॥ ३ ॥ शि-
रस्तु तस्योभयलिङ्गमानमेत्तदेव यत्पश्यति तद्धि चक्षुः । अङ्गानि विष्णोरथ तज्जनानां
पादोदकं यानि भजन्ति नित्यम् ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ विष्णुरातेन संपृष्टो भगवान्बाद
रायणिः । वासुदेवे भगवति निमग्नहृदयोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृष्ण-
स्यासीत्सखा कश्चिद्ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः । विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशान्तात्मा जितेन्द्रि-
यः ॥ ६ ॥ यदृच्छयोपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी । तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुत्क्षामा च
तथाविधा ॥ ७ ॥ पतिव्रता पतिं प्राह म्लायता वदनेन सा । दरिद्रं सीदमाना सा वेप-
मानाभिगम्य च ॥ ८ ॥ ननु ब्रह्मन्भगवतः सखा साक्षाच्छ्रियः पतिः । ब्रह्मण्यश्च शरण्य
श्च भगवान्सात्वतर्षभः ॥ ९ ॥ तमुपैहि महाभाग साधूनां च परायणम् । दास्यति द्रविणं
भूरि सीदते ते कुटुम्बिने ॥ १० ॥ आस्तेऽधुना द्वारवत्यां भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः ।
स्मरतः पादकमलमात्मानमपि यच्छति ॥ ११ ॥ किं न्वर्थकामान्भजतो नात्यभीष्टा
ञ्जगद्गुरुः । स एवं भार्यया विप्रो बहुशः प्रार्थितो मुहुः ॥ अयं हि परमो लाभ उत्तमश्लो

राजा परीक्षितने कहा कि हे भगवन् ! हे प्रभु ! महात्मा अनन्त पराक्रमवाले श्रीकृष्णजी के जो पराक्रम हैं, मैं उनके सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! भगवानकी सुन्दर कथाओं को एकबारभी सुनकर कौन तत्त्वज्ञ मनुष्य कि जो कामके बाणोंसे खेदितहै ; उनसे विरक्त होसकता है ॥ २ ॥ जिस वाणीसे भगवानके गुणगाएजावें वही वाणी है ; जिन हाथोंसे भगवानकी सेवा की जावे वेही हाथ हैं, जो मन स्थावर जगम में रहेहुए भगवानका स्मरणकरे वही मन है, जो कान उनकी पवित्र कथाको सुनें वही कानहैं ॥ ३ ॥ जो मस्तक उनके स्थावर जगमरूपको प्रणामकरे वही मस्तकहै, जो नेत्र भगवानका दर्शन करें वेही नेत्र सफल हैं और जो अंग उन विष्णुजी व उनके भक्तोंके चरणोदकका सेवनकरें वेही अंग सफल हैं ॥ ४ ॥ सूतजीने कहाकि जब राजा परीक्षितने वेदव्यासतनय शुकदेवजीसे इसप्रकार पूँछा तब शुकदेवजी वासुदेवमें चित्त को लगाय उनके गुणोंका कहनेलगे ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! कोई एक वेद-वेत्ता श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रीकृष्णजीका सखाथा वह इन्द्रियों के सेवनकरने योग्य सब विषयोंसे विरक्त होकर शान्तात्मा और जितेन्द्रिय होगयाथा वह ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण भगवदिच्छासे जो प्राप्त होता उसी द्रव्य से जीवन धारणकर एक मलीनवस्त्र पहिन गृहस्थाश्रममें वास करता । उसकी स्त्री भी वैसेही वस्त्र पहिन सदैव भूँख से कातर रहती । स्वामी भोगों को प्राप्त न करसकताथा इस कारण वह पतिव्रता सदैवही दुःखसे समय बिताती । एकदिन उसने कांपते २ मलीन मुखहो स्वामी से कहा कि ॥ ६—८ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने सुनाहै कि लक्ष्मीपति ब्राह्मणों के हितकारी, शरणागतवत्सल यादव श्रेष्ठ भगवान तो आपके सखा हैं ॥ ९ ॥ हे महाभाग ! व साधुओं के परमस्थान हैं आप उनके निकट जाओ । आप कुटुम्बी कष्ट पारहेहो यह देखकर वे आपको आपकी इच्छानुसार धन देवेंगे ॥ १० ॥ वे इस समय भोज, वृष्णि और अन्धकोंके राजाहो द्वारका में वास करते हैं । जो उनके चरण कमलों का ध्यान करते हैं वे जगद्गुरु उसको आत्मातक देदेते हैं । उनका भजन करने से वे जो इच्छित वरदेवें उसमें सन्देहही क्याहै उस दरिद्र ब्राह्मण से जब उसकी स्त्री ने इसप्रकार बारम्बार कहा तब उसने विचारा कि और चहे कुछहो चाहे न हो बड़ाभारी लाभ यही होगा कि—श्रीकृष्णजी के दर्शन होंगे ॥ ११ ॥

कदर्शनम् ॥ १२ ॥ इति संचिन्त्य मनसा गमनाय मतिं दधे । अप्यस्त्युपायनं किंचिद्गृहे कल्याणि दीयताम् ॥ १३ ॥ याचित्वा चतुरो मुष्टीन्विप्रान्पृथुकतण्डुलान् । चैलखण्डेन तान्बद्ध्वा भर्त्रे प्रादादुपायनम् ॥ १४ ॥ स तानादाय विप्राग्र्यः प्रययौ द्वारकां किल । कृष्णसन्दर्शनं मह्यं कथं स्यादिति चिन्तयन् ॥ १५ ॥ त्रीणि गुल्मान्यतीयाय तिस्रः कक्षाश्च सद्विजः । विप्रोऽगम्यान्धकवृष्णीनां गृहेष्वच्युतधर्मिणाम् ॥ १६ ॥ गृहं द्व्यष्टसहस्राणां महिषीणां हरेर्द्विजः । विवेशैकतमं श्रीमद्ब्रह्मानन्दं गतो यथा ॥ १७ ॥ तं विलोक्याच्युतो दूरात्प्रियापर्यङ्कमास्थितः । सहसोत्थाय चाभ्येत्य दोर्भ्यां पर्यग्रहीन्मुदा ॥ १८ ॥ सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेरङ्गसङ्गातिनिर्वृतः । प्रीतो व्यमुञ्चदब्बिन्दून्नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥ १९ ॥ अथोपवेश्य पर्यङ्के स्वयं सख्युः समर्हणम् । उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः ॥ २० ॥ अग्रहीच्छिरसा राजन्भगवाँल्लोकपावनः । व्यलिम्पद्दिव्यगन्धेन चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ॥ २१ ॥ धूपैः सुरभिभिर्मित्रं प्रदीपावलिभिर्मुदा । अर्चित्वाऽऽवेद्य ताम्बूलं गां च स्वागतमब्रवीत् ॥ २२ ॥ कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनिसन्ततम् । देवी पर्यचरत्साक्षाच्चामरव्यजनेन वै ॥ २३ ॥ अन्तःपुरजनो दृष्ट्वा कृष्णेनामलकीर्तिना । विस्मितोऽभूदतिप्रीत्या अवधूतं सभाजितम् ॥ २४ ॥ किमनेन कृतं पुण्यमवधूतेन भिक्षुणा । श्रिया हीनेन लोकेऽस्मिन्गर्हितेनाधमेन च ॥ २५ ॥ योऽसौ त्रिलोकगुरुणा श्रीनिवासेन सम्भृतः । पर्यङ्कस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तोऽग्रजो यथा ॥ २६ ॥ कथयाञ्चक्रतुर्गाथाः पूर्वा गुरुकुले सतोः । आत्मनो ललिता राजन्करौ गृह्य परस्परम् ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अपि ब्रह्मन्गुरुकुलाद्भवता लब्धदक्षि

॥ १२ ॥ यह मन २ में विचार उसने जानेका निश्चय कर अपनी स्त्रीसे कहा कि हे कल्याणि ! घरमें जो कुछ भेट देनेकी सामग्रीहो वह दे तो मैं लेजाऊं, ॥ १३ ॥ ब्राह्मणी यह सुन चारमुट्ठी चावलों को मांगकर लाई और एक चीथडे में बांधकर स्वामीको दिये, ॥ १४ ॥ वह द्विजश्रेष्ठ उन चारमुट्ठी चावलों कोले किसप्रकार मुझे महाराज श्रीकृष्ण जी का दर्शन होगा यह विचारते विचारते द्वारकामें पहुंचा ॥ १५ ॥ वह ब्राह्मण तीन चौकी और तीन ड्योढियोंको उल्लंघ कर धर्मधारी व अगम्य वृष्णि और अंधकगणों के घरों के बीच में होताहुआ श्रीकृष्णजी की सोलह सहस्र स्त्रियों मेंसे एक स्त्री के सुन्दर घर में गया उससमय उसको जानपडा कि मानों मैं ब्रह्मानन्दको प्राप्तहुआहूं ॥ १६–१७ ॥ श्रीकृष्ण जी प्यारी के साथ सेजपर बैठेहुयेथे दूरसेही ब्राह्मण को आतादेख सहसा उठकर निकट आय आनन्दपूर्वक उससे दोनों भुजा पसारकर मिले ॥ १८ ॥ अपने प्रियमित्र ब्राह्मणके अंगस्पर्श से श्रीकृष्ण जी को आनन्द उत्पन्न हुआ उनके दोनों नेत्रोंसे आनंदाश्रु बहनेलगे ॥ १९ ॥ हेराजन् ! अनन्तर भगवान मित्र को सेजपर बिठाय स्वयं पूजाकी सामग्री लाये और उसके दोनों चरणोंको धोय लोकपावन भगवानने उस चरणोदकको मस्तक पर चढाया । फिर सुन्दर सुगन्ध युक्तचन्दन अगर और कुंकुमसे प्यारेको लिप्तकिया ॥ २०–२१ ॥ और सुगन्धित धूप दीपसे पूजाकर पान और गौदे मित्रकी कुशलपूछी ॥ २२ ॥ ब्राह्मण मलीन और दुर्बल व चिथडे पहिरे हुएथा उसके समस्त शरीरमें नसें दीखरहीथी । साक्षात् देवी सखियों समेत पंखेसे उसकी पवन करनेलगी ॥ २३ ॥ पुण्यकीर्ति श्रीकृष्णजी को उस अवधूत की पूजा करतेदेख सब अन्तःपुरवासी विस्मित होगये और विचारनेलगे, कि ॥ २४ ॥ इस अवधूत भिखारी, निर्धन, लोकनिन्दित मनुष्य का कैसा पुण्यहै कि जो लोकगुरु श्रीकृष्णजी ने इसका सम्मानकिया और पलँगपर बैठेहुए अपनी प्यारीको छोड़ बड़े बडेभाई की समान इससे मिले, ॥ २५—२६ ॥ हेराजन् ! अनन्तर श्रीकृष्णजी और वह ब्राह्मण परस्पर एक दूसरे का हाथ पकड़ आप पहिले जब गुरुकुलमेंथे उससमयकी सुन्दर बातें कहनेलगे ॥ २७ ॥ भगवानने कहा कि—हेब्रह्मन् ! हे

जात्। समावृत्तेनधर्मज्ञभार्योढासदृशीनवा ॥ २८ ॥ प्रायोगृहेषुतेचित्तमकामवि-
हितंतथा। नैवातिप्रीयसेविद्वन्धनेषुविदितंहिमे ॥ २९ ॥ केचित्कुर्वन्तिकर्माणिका
मैरहतचेतसः। त्यजन्तःप्रकृतीर्दैवीर्यथाऽहंलोकसंग्रहम् ॥ ३० ॥ कच्चिद्गुरुकुले
वासंब्रह्मन्स्मरसिनौयतः। द्विजोविज्ञायविज्ञेयंतमसःपारमश्नुते ॥ ३१ ॥ सवैस-
त्कर्मणांसाक्षाद्द्विजातेरिहसंभवः। आद्योऽङ्गयत्राश्रमिणांयथाऽहंज्ञानदोगुरुः ॥३२॥
नन्वर्थकोविदाब्रह्मन्वर्णाश्रमवतामिह। येमयागुरुणावाचातरन्त्यञ्जोभवार्णवम् ॥
॥ ३३ ॥ नाहमिज्याप्रजातिभ्यांतपसोपशमेनवा। तुष्येयंसर्वभूतात्मागुरुशुश्रूषया
यथा ॥ ३४ ॥ अपिनःस्मर्यतेब्रह्मन्वृत्तंनिवसतांगुरौ। गुरुदारैश्चोदितानामिन्ध-
नानयने क्वचित् ॥३५॥ प्रविष्टानां महारण्यमपर्तौ सुमहद्द्विज। वातवर्षमभूत्तीव्रं
निष्ठुराः स्तनयित्नवः ॥ ३६ ॥ सूर्यश्चास्तंगतस्तावत्तमसा चावृतादिशः ॥ निम्नं
कूलंजलमयन प्राज्ञायतकिंचन ॥ ३७ ॥ वयंभृशंतत्र महानिलाम्बुभिर्निहन्यमाना
मुहुरम्बुसंप्लवे। दिशोऽविदन्तोऽथपरस्परं वनेगृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः ॥३८॥
एतद्विदित्वाउदितेरवौ सान्दीपनिर्गुरुः। अन्वेषमाणोनः शिष्यानाचार्योऽपश्यदा-
तुरान् ॥ ३९ ॥ अहोहेपुत्रका यूयमस्मदर्थेऽतिदुःखिताः। आत्मावैप्राणिनां प्रेष्ठस्त
मनादृत्य मत्पराः ॥ ४० ॥ एतदेवहिसच्छिष्यैः कर्तव्यंगुरुनिष्कृतम्। यद्वैविशुद्ध-
भावेन सर्वार्थात्मार्पणंगुरौ ॥ ४१ ॥ तुष्टोऽहंभोद्विजश्रेष्ठाः सत्याःसन्तुमनोरथाः ॥

धर्मज्ञ ! दक्षिणादे गुरुकुलसे लौट तुमने अपनेसमान स्त्रीसे विवाह किया या नहीं॥२८॥ मैं जानता हूं कि—प्रायः तुम्हारा मन घरके कामोंमें आसक्त न होता होगा हे विद्वन् इसीसे धनमें तुम्हारी प्रीति नहीहै ॥ २९ ॥ कुछ एक मनुष्य काम आदिसे हतचेतन न हो ईश्वरकी रचीहुई मायाकी वासनाको छोड़ देते हैं और वे मेरीही समान लोककी मर्यादाके निमित्त कर्म करते रहते हैं,॥३०॥ हेब्रह्मन् ! जहां रहकर द्विजलोग आत्मतत्व का ज्ञान संसारसे पार होजाते हैं उस श्रेष्ठ गुरुकुल में हमने तुमने निवास कियाथा वह तुमको स्मरणहै ॥ ३१ ॥ हेसखे ! इस संसार में जिससे जन्म होताहै वह प्रथमगुरु जिससे ब्राह्मणोंके सत्कर्मकी उत्पत्ति होतीहै वह दूसरा गुरु और आश्रमवा-सियोंको ब्रह्मविद्या देनेवाला तीसरा गुरुहै जो साक्षात् मेरी समानहै ॥ ३२ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस मनुष्य जन्ममें जो गुरुरूपी मेरे उपदेशसे संसाररूपी समुद्रसे पार होजातेहैं वह निश्चयही अपने अभिप्राय साधनमे पण्डितहैं ॥ ३३ ॥ मैं गुरूकी सेवासे जितना संतुष्ट होताहूं गृहस्थ,ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यासी धर्मसेभी उतना संतुष्ट नहीं होता ॥ ३४ ॥ हेब्रह्मन् ! जब हम गुरुकुल में रहतेथे तब जो एक घटनाहुईथी उसका तो तुम्हें स्मरण होहीगा ॥३५॥ हेद्विज! गुरुपत्नीकी वन से लकडी लानेकी आज्ञापाय जब महावन में प्रवेश किया, तब बिना समयही प्रचण्ड वायु चलने और घनघोर मेघ गर्जनेलगे ॥ ३६ ॥ सूर्यनारायण अस्त होनेकोथे, कि—उसीसमय दशों दिशाएं अन्धकारसे छागईं सब पृथ्वी जलमय होगई इससे कुछ ऊंचा नीचा नही जानपडताथा, ॥ ३७ ॥ जलसे भरेहुए उस वनमें हम महावायु और जलसे बारम्बार पीड़ित होनेलगे और दिशाओं का विचार न कर हम तुम एक दूसरे का परस्पर हाथ पकड़ कातरहो बोझा लेकर चलने लगे, ॥ ३८ ॥ आचार्य गुरु सांदीपन सूर्योदय होते न होते हमारे खोजनेको बाहर निकले और वनमें हमको कातर देखकर कहनेलगे कि—, ॥ ३९ ॥ अहो हेपुत्रों ! आत्माही प्राणियों में श्रेष्ठहै तुम उसी आत्माका तिरस्कारकर मुझको श्रेष्ठ मान और मेरे निमित्त दुःख भोगतेहो ॥ ॥४०॥ यह देह कि जिससे सब पुरुषार्थ प्राप्त होतेहैं उसदेहको शुद्ध भावसे गुरुके समर्पण करना यही उत्तम शिष्योंके लिये गुरुका प्रत्युपकार है, ॥ ४१ हेद्विजश्रेष्ठ मैं तुम्हारे ऊपर संतुष्ट हुआ

छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ॥ ४२ ॥ इत्थंविधान्यनेकानि वसतां गुरुवेश्मसु । गुरोरनुग्रहेणैव पुमान्पूर्णः प्रशान्तये ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण उवाच । किमस्माभिरनिर्वृत्तं देवदेव जगद्गुरो । भवता सत्यकामेन येषां वासो गुरावभूत् ॥ ४४ ॥ यस्य छन्दोमयं ब्रह्म देह आवपनं विभो । श्रेयसां तस्य गुरुषु वासोऽत्यन्तविडम्बनम् ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

श्रीशुक उवाच । स इत्थं द्विजमुख्येन सह संकथयन्हरिः । सर्वभूतमनोऽभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् ॥ १ ॥ ब्रह्मण्यो ब्राह्मणं कृष्णो भगवान्प्रहसन्प्रियम् । प्रेम्णा निरीक्षणेनैव प्रेक्षन्खलु सतां गतिः ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किमुपायनमानीतं ब्रह्मन्मे भवता गृहात् । अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत् । भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ ३ ॥ पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति । तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ ४ ॥ इत्युक्तोऽपि द्विजस्तस्मै व्रीडितः पतये श्रियः । पृथुकप्रसृतिं राजन्न प्रायच्छदवाङ्मुखः ॥ ५ ॥ सर्वभूतात्मदृक् साक्षात्तस्यागमनकारणम् ॥ विज्ञायाचिन्तयन्नायं श्रीकामो माऽभजत्पुरा ॥ ६ ॥ पत्न्याः पतिव्रतायास्तु सखा प्रियचिकीर्षया । प्राप्तो मामस्य दास्यामि सम्पदोऽमर्त्यदुर्लभाः ॥ ७ ॥ इत्थं विचिन्त्य वसनाच्चीरबद्धान्द्विजन्मनः । स्वयं जहार किमिदमिति पृथुकतण्डुलान् ॥ ८ ॥ नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे । तर्पयन्त्यङ्ग मां विश्वमेते पृथुकतण्डुलाः ॥ ९ ॥ इति मुष्टिं सकृज्जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुमाददे । तावच्छ्रीर्जगृहे हस्तं तत्परा परमेष्ठिनः ।

तुम्हारे मनोरथ पूर्ण होवें, मेरे निकट जो वेद पढे हैं उनका सार इसलोक और परलोक मेंभी पूरन होवे ॥ ४२ ॥ हे ब्रह्मन् ! गुरुकुलमें वास करनेके समय इसप्रकार की जो हमारे पक्षमें घटनाएं हुईथीं उनका क्या तुम्हें स्मरण है ? गुरुकी ही कृपासे मनुष्य शांति को प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण ने कहा—हे देव देव ! जगद्गुरो ! आप सत्यकाम हो; हम और आप जब साथही गुरु कुल में वास करते थे तब मुझे किसी बातकी पूर्णता न हुई ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! जिसकी देह वेद मय ब्रह्म और मंगलोंकी उत्पत्तिस्थान है उसका गुरुकुल में वास करना केवल विडंबना की बात है ॥ ४५ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशमस्कन्धे उ० सरलाभाषाटीकायां अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन् ! उस श्रेष्ठ ब्राह्मणके साथ इस प्रकारसे बातें करते २ सब प्राणियोंके मनके अभिप्रायको जानने वाले भगवान ने हंसते २ कहा ॥ १ ॥ ब्राह्मणों के हितकारी साधुओं के गति भगवान् श्रीकृष्णजी प्यारेको प्रेमदृष्टि से देख हंसकर बोले । हे ब्रह्मन् ! तुमघर से मेरे निकट क्या भेंटलाएहो ? भक्तोंके लायेहुए अणुमात्र द्रव्यकोभी मैं बहुत मानता हूं । अभक्तों के लायेहुए बहुत द्रव्य से भी मुझे संतोष नहीं होता ॥ २–३ ॥ पत्ते, फूल, और जलभक्ति पूर्वक जोकुछ मुझको दान कियाजाता है मैं उसीको ही ग्रहण करता हूं ॥ ४ ॥ हे राजन् ! वह ब्राह्मण इस प्रकार कहेजाने परभी लज्जाके कारण चावल आदि भगवानको न देसका, केवल नीचेको मुख करके रहगया ॥ ५ ॥ साक्षात् सब प्राणियों के अन्तःकरण के साक्षी श्रीकृष्णजी उस ब्राह्मण का आना जानकर चिंताकरने लगेकि इसने लक्ष्मी की कामना करके पहिले मेरी उपासना नहीं की । किंतु अपनी पतिव्रता स्त्री के प्रिय करने के निमित्त मेरे निकट आया है, अतएव इसको देवताओं की समान दुर्लभ सम्पत्तिदूंगा ॥ ६—७ ॥ श्रीकृष्णजी ने इसप्रकारसे विचारकर "यह क्या है" कहकर उस ब्राह्मण के वस्त्र से चीथड़ेमें बंधेहुए चावल छीनलिये और कहा कि ॥ ८ ॥ हे सखे ! यह भेंटतो मुझको अत्यंतही प्यारी है । हे सखे ! इन चावलों से मैं जगदात्मा संतुष्ट होजाऊंगा ॥ ९ ॥ यह कहकर भगवान एक मुट्ठी चावलतो उसमें से खागये और दूसरी मुट्ठी

॥ १० ॥ एतावताऽलं विश्वात्मन्सर्वसंपत्समृद्धये । अस्मिँल्लोकेऽथवाऽमुष्मिन्पुंसस्त्वत्तोषकारणम् ॥ ११ ॥ ब्राह्मणस्तां तु रजनीमुषित्वाऽच्युतमन्दिरे । भुक्त्वा पीत्वा सुखं मेने आत्मानं स्वर्गतं यथा ॥ १२ ॥ श्वोभूते विश्वभावेन स्वसुखेनाभिवन्दितः । जगाम स्वालयं तात पथ्यनुव्रज्य नन्दितः ॥ १३ ॥ स चालब्ध्वा धनं कृष्णान्न तु याचितवान्स्वयम् । स्वगृहान्व्रीडितोऽगच्छन्महद्दर्शननिर्वृतः ॥ १४ ॥ अहो ब्रह्मण्यदेवस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया । यद्दरिद्रतमो लक्ष्मीमाश्लिष्टो बिभ्रतोरसि ॥ १५ ॥ क्वाहं दरिद्रः पापीयान्क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः । ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः ॥ १६ ॥ निवासितः प्रियाजुष्टे पर्यङ्के भ्रातरो यथा । महिष्या वीजितः श्रान्तो बालव्यजनहस्तया ॥ १७ ॥ शुश्रूषया परमया पादसंवाहनादिभिः । पूजितो देवदेवेन विप्रदेवेन देववत् ॥ १८ ॥ स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि संपदाम् । सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ॥ १९ ॥ अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत् । इति कारुणिको नूनं धनं मेऽभूरि नाददात् ॥ २० ॥ इति तच्चिन्तयन्नन्तः प्राप्तो निजगृहान्तिकम् । सूर्यानलेन्दुसंकाशैर्विमानैः सर्वतो वृतम् ॥ २१ ॥ विचित्रोपवनोद्यानैः कूजद्द्विजकुलाकुलैः । प्रोत्फुल्लकुमुदाम्भोजकह्लारोत्पलवारिभिः ॥ २२ ॥ जुष्टं स्वलंकृतैः पुम्भिः स्त्रीभिश्च हरिणाक्षिभिः । किमिदं कस्य वा स्थानं कथं तदिदमित्यभूत् ॥ २३ ॥ एवं मीमांसमानं तं नरा नार्योऽमरप्रभाः । प्रत्यगृह्णन्महाभागं गीतवाद्य

कनेको हाथ पसारा कि इतनेही में लक्ष्मीजी ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहाकि ॥ १० ॥ हे विश्वात्मन् ! इसलोक और परलोक में भक्तकी जिस संपत्तिको देखकर आप प्रसन्न होतेहो उस समृद्धिके निमित्त तो इतनाही बहुत है दूसरी मुट्ठी खाकर क्या मुझे इसके आधीन करोगे ॥ ११ ॥ हे वत्स! ब्राह्मणने भगवानके मंदिरमें उस रात्रिको निवासकिया, सुखसे भोजन तथा पानकर आपको वह स्वर्गमें गया हुआ विचारने लगा ॥ १२ ॥ दूसरेदिन प्रातःकाल अपने घरकी ओर चला और विश्वके उत्पन्न करने वाले श्रीकृष्णजी ने साथ साथमें कुछदूर जाय प्रणाम और विनयकी बातोंसे उसका संतुष्ट किया ॥ १३ ॥ न तो भगवानने उसे धन दिया और न उसने लाजके मारे मांगा, भगवान के दर्शन से आनंद युक्त हो वह अपने घरको चला ॥ १४ ॥ जाते समय मनमें विचारने लगाकि— अहो ! मैंने ब्राह्मणों के भक्त भगवान के दर्शन किये, वे वक्ष स्थलमें लक्ष्मीजीको धारण करते हैं तोभी उन्हों ने मुझ दरिद्रीको आलिंगन किया ॥ १५ ॥ कहांतो मैं दरिद्री और नीच ? और कहां लक्ष्मी के निवास भूमि श्रीकृष्णजी ? मैं श्रेष्ठ ब्राह्मण हूं इसही कारणसे दोनों भुजाओं से मुझ से मिले ॥ १६ ॥ भाइयों की समान लक्ष्मी के सेवन योग्य पलग पर बिठाया और चामर हाथमें ले लक्ष्मी ने भी मुझपर पवनकी ॥ १७ ॥ जैसे ब्राह्मण देवताओं की पूजा करते हैं, भगवान ने वैसेही परम सेवा और पांव आदि दाबकर मेरी पूजाकी ॥ १८ ॥ उनके चरणों की सेवा मनुष्योंको स्वर्ग, मुक्ति, पृथ्वीपर बहुतसी संपत्ति, और समस्त सिद्धियों की जड़ है, तोभी ॥ १९ ॥ यह निर्धन धनपाय अत्यंत मतवालाहो मेरास्मरण न करेगा, निश्चयही यह विचारकर परम दयालु भगवानने मुझको धन न दिया ॥ २० ॥ ब्राह्मण इस प्रकार से विचार करते २ अपने घरके निकट आया तोवहां देखाकि घरके चारों ओर सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा की समान प्रकाशित विमान व्याप्तहो रहे हैं ॥ २१ ॥ वह विचित्र बाग और फुलवाड़ियों से परिपूर्ण है; उन बागोंके वृक्षोंकी शाखाओं में नाना प्रकार के पक्षी सुखसे गानकररहे हैं सरोवरों में बघोला, कल्हार, उत्पल, कमल आदि नाना प्रकार के फूल शोभा पारहे हैं ॥ २२ ॥ और भली प्रकार से सजेहुए स्त्री पुरुष वहां शोभित होरहे हैं यह देखकर वह ब्राह्मण "यह क्या ? यह स्थान किसका है ? किस प्रकार यह स्थान ऐसा होगया ?" मन २ में इस प्रकार का विचार करनेलगा ॥ २३ ॥ उसही समय देवताओं के

मभूत्तदा ॥ २४ ॥ पतिमागतमाकर्ण्य पत्न्युद्धर्षोऽतिसंभ्रमा । निश्चक्राम गृहात्तूर्णं
रूपिणी श्रीरिवालयात् ॥ २५ ॥ पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा प्रेमोत्कण्ठाऽश्रुलोचना । मीलि
ताक्ष्यनमद्बुद्ध्या मनसा परिषस्वजे ॥ २६ ॥ पत्नीं वीक्ष्य विस्फुरन्तीं देवीं वैमानि-
कीमिव । दासीनां निष्ककण्ठीनां मध्ये भान्तीं सविस्मितः ॥ २७ ॥ प्रीतः स्वयं तया युक्तः
प्रविष्टो निजमन्दिरम् । मणिस्तम्भशतोपेतं महेन्द्रभवनं यथा ॥ २८ ॥ पयःफेननिभाः
शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः । पर्यङ्का हेमदण्डानि चामरव्यजनानि च ॥ २९ ॥ आ
सनानि च हैमानि मृदूपस्तरणानि च । मुक्तादामविलम्बीनि वितानानि द्युमन्ति च ॥ ३०
स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च । रत्नदीपान्भ्राजमानाँल्ललना रत्नसंयुताः
॥ ३१ ॥ विलोक्य ब्राह्मणस्तत्र समृद्धीः सर्वसंपदाम् । तर्कयामास निर्व्यग्रः स्वसमृ
द्धिमहैतुकीम् ॥ ३२ ॥ नूनं बतैतन्मम दुर्भगस्य शश्वद्दरिद्रस्य समृद्धिहेतुः । महावि
भूतेरवलोकतोऽन्यो नैवोपपद्येत यदूत्तमस्य ॥ ३३ ॥ नन्वब्रुवाणो दिशते समक्षं या
चिष्णवे भूर्यपि भूरिभोजः । पर्जन्यवत्तत्स्वयमीक्षमाणो दाशार्हकाणामृषभः सखा
मे ॥ ३४ ॥ किञ्चित्करोत्युर्वपि यत्स्वदत्तं सुहृत्कृतं फल्ग्वपि भूरिकारी । मयोपनीतं
पृथुकैकमुष्टिं प्रत्यग्रहीत्प्रीतियुतो महात्मा ॥ ३५ ॥ तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्रीदास्यं
पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात् । महानुभावेन गुणालयेन विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसङ्गः ॥ ३६ ॥
भक्ताय चित्रा भगवान्हि संपदो राज्यं विभूतीर्न समर्थयत्यजः । अदीर्घबोधाय विचक्ष

प्रभाकी समान स्त्री पुरुषों ने बाजेगाजे से आनंद पूर्वक भेटआदि दे उसका आदर किया ॥२४॥
स्वामीका आनासुन उस ब्राह्मण की स्त्रीको अत्यंत आनंद हुआ । वह अत्यन्त आदर से मूर्तिमान
लक्ष्मी की समान शीघ्रही घरसे बाहर निकली ॥ २५ ॥ पतिको देखतेही प्रेमसे उत्कंठितहो प-
तिव्रता के नेत्रोंमें आनंदाश्रु भरआये । उसने आंखोंको बन्दकर बुद्धिसे उसको प्रणाम और मनसे
आलिंगन किया ॥ २६ ॥ स्त्रीको विमान में बैठीहुई देवीकी समान प्रकाशित और आभूषणों से
सजीहुई दासियों के बीचमें विराजमान देखकर वह ब्राह्मण अत्यंत विस्मित हुआ ॥ २७ ॥ फिर
प्रसन्नहो उसके साथ स्वयं इन्द्र भवनकी समान सौ खंभोंवाले अपने घरमेंगया ॥ २८ ॥ वहां
दुग्धके फेनकी समान शय्या, सुवर्णकी सामग्री युक्त हाथीदांत के पलंग, सुवर्णकी डंडीवाले चामर
और व्यजन ॥ २९ ॥ कोमल बिछौने बिछेहुए आसन, सुंदर मोतियों की झालरयुक्त कांतिशाली
विमान और स्त्री रत्नोंसमेत स्फटिक मणियों की भीतों और मरकत मणियों के स्थलों में रत्नों के
दीपक शोभायमान होरहेथे ॥ ३०-३१ ॥ अपने घरमें इस प्रकार की सम्पत्तिको देखकर ब्राह्मण
चुपचापही स्थिर चित्तसे विचार करनेलगा, कि— ॥ ३२ ॥ मैं अत्यन्तही अभागा और दरिद्री हूं,
मेरी सम्पत्तिका कारण महा विभूतिशाली भगवान के दर्शनबिना और कुछ नहीं होसकता ॥ ३३ ॥
जैसे समुद्रको पूर्ण करने वाला महा उदार मेघ किसी समय अधिकतर वृष्टिकोभी अल्प जानकर
मानो लज्जित है । ऐसे समय में बरसता हुआ रात्रिमें मनुष्यों के सोजानेपर उनके खेतोंको जल
से पूर्ण करदेता है । वैसेही मेरे मित्रश्रेष्ठ यादव श्रीकृष्णजी बहुतसा दान करके भी स्वयं उसको
थोड़ा जानकर दर्शन करते हुए याचक के सामने न कहकर बहुत कुछदेते हैं ॥ ३४ ॥ वह अपने
दियेहुए अधिक दानको भी तुच्छ और और भक्तके दानको तुच्छ होतेहुए भी बहुत कुछ मानतेहैं
इसही कारण मैं जोथोड़े से चावल लेगयाथा, महात्मा ने प्रीतिवशहो उन्हींको ग्रहण किया ॥ ३५ ॥
मेरी उनसे यही प्रार्थना है किमुझे जन्म २ में उन्हीं में प्रेम, सुहृदता, मित्रता व दासभाव प्राप्त
होवे और उन्हीं महानुभाव भगवान में प्रीतिहो उनके भक्तों में सत्सङ्ग हुआकरै ॥ ३६ ॥ स्वयं

नः स्वयंमदयपविपातंधनिनांमदोन्नमम् ॥ ३७ ॥ इत्थंव्यवसितोबुद्ध्याभक्तोऽतीव जनार्दने । विषयाञ्जाययात्यक्ष्यन्बुभुजेनातिलम्पटः ॥ ३८ ॥ तस्यवैदेवदेवस्य हरेर्यज्ञपतेः प्रभोः । ब्राह्मणाः प्रभवोदैवंनतेभ्योविद्यतेपरम् ॥ ३९ ॥ एवंसविप्रोभगवत्सुहृत्तदादृष्ट्वास्वभृत्यैरजितंपराजितम् । तद्ध्यानवेगोद्ग्रथितात्मबन्धनस्तद्धामलेभेऽचिरतः सतांगतिम् ॥४०॥ एतद्ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वाब्रह्मण्यतांनरः । लब्धभावोभगवति कर्मबन्धाद्विमुच्यते ॥ ४१ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धोत्तरार्धे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथैकदाद्वारवत्यांवसतोरामकृष्णयोः । सूर्योपरागः सुमहानासीत्कल्पक्षयेयथा ॥ १ ॥ तंज्ञात्वामनुजाराजन्पुरस्तादेवसर्वतः । समन्तपञ्चकंक्षेत्रंययुः श्रेयोविधित्सया ॥ २ ॥ निःक्षत्रियांमहींकुर्वन्रामः शस्त्रभृतांवरः । नृपाणांरुधिरौघेणयत्रचक्रेमहाह्रदान् ॥ ३ ॥ ईजेचभगवान्रामोयत्रास्पृष्टोऽपिकर्मणा । लोकंसंग्राहयन्नीशोयथाऽन्योऽघापनुत्तये ॥४ ॥ महत्यांतीर्थयात्रायांतत्राऽगन्भारतीः प्रजाः । वृष्णयश्चतथाऽक्रूरवसुदेवाहुकादयः ॥ ५ ॥ ययुर्भारततत्क्षेत्रं स्वमघंक्षपयिष्णवः । गदप्रद्युम्नसाम्बाद्याः सुचन्द्रशुकसारणैः ॥ ६ ॥ आस्तेऽनिरुद्धोरक्षायांकृतवर्माचयूथपः । तेरथैर्देवधिष्ण्याभैर्हयैश्चतरलप्लवैः ॥ ७ ॥ गजैर्नदद्भिरभ्राभैर्नृभिर्विद्याधरद्युभिः । व्यरोचन्तमहातेजाः पथिकाञ्चनमालिनः ॥ ८ ॥ दिव्यस्रग्वस्त्रसन्नाहाः कलत्रैः खेचराइव । तत्रस्नात्वामहाभागाउपोष्यसुसमाहिताः ॥ ९ ॥ ब्राह्मणेभ्योददुर्धेनूर्वासःस्रग्रुक्ममालिनीः । रामह्रदेषुविधिवत्पुनराप्लुत्यवृ

किंकी भगवान धनी पुरुषोंको धनके मदसे गिरता देख अविचारी भक्तको नाना संपत्ति, राज्य और ऐश्वर्य नहीं देते ॥ ३७ ॥ श्रीदाम बुद्धिसे इसप्रकार निश्चयकर भगवान में अत्यंत भक्तिमान हुआ और विषयोंको धीरेधीरे त्याग अति आसक्त नहो स्त्रीके साथ विषयभोग करनेलगा ॥३८॥ देवदेव यज्ञपति भगवान के ब्राह्मणही प्रभु और इष्टदेव हैं इनसे बढकर और कोईश्रेष्ठ नहीं है ॥ ३९ ॥ इस प्रकार भगवानका मित्र वह ब्राह्मण श्रीकृष्णजी को अजित और भक्तों से पराजित होतादेख उनका ध्यान करता हुआ अहंकार रहित होगया और थोड़ेही दिनों के उपरांत ब्रह्मवेत्ताओं के गति उस शुद्ध धामको प्राप्त हुआ ॥ ४० ॥ हे राजन् ! जोमनुष्य ब्रह्मण्य देव भगवान की इस ब्रह्मण्यताको सुनेगा वह भगवद्भक्ति प्राप्तकर कर्मके बंधनों से छूटजावेगा ॥ ४१ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांएकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! राम कृष्णके द्वारकामें निवासकरतेहुए एकसमय प्रलय कालकी समान बड़ाभारी सूर्य ग्रहण पड़ा ॥ १ ॥ हे राजन् ! सबओरके मनुष्य प्रथमसेही इसको जानकर अपने कल्याणकी इच्छासे कुरुक्षेत्रमें आये ॥ २ ॥ शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ परशुरामजी ने पृथिवीको क्षत्रीरहित कर राजाओंके रुधिरसे वहां बड़े२ हृद बनायेथे ॥ ३ ॥ वहांपर भगवान परशुरामजीने पापका स्पर्श न होनेपरभी साधारण मनुष्योंकी समान पाप निवृत्तिके निमित्त लोक की मर्यादाके कारण यज्ञकिये थे ॥ ४ ॥ इस बड़े पर्वमें भारतवर्षकी समस्तप्रजा वहां आई । हे भारत ! अक्रूर, वसुदेव, और आहुकादि वृष्णिगणभी अपने पाप दूरकरनेकी इच्छासे उस क्षेत्रमें आये ॥ ५ ॥ गद, प्रद्युम्न, साम्ब, सुचन्द्र, शुक और सारण के साथ ॥ ६ ॥ अनिरुद्ध और सेनापति कृतवर्मा द्वारकामें रक्षाके निमित्तरहे ; विमानों की समान रथ, तरङ्गों की समान चंचल घोड़े, बादल की सदृश गरजतेहुए हाथी, व विद्याधरोंकी समान देदीप्यमान यादव सुवर्ण की माला धारण किये ॥७—८॥ और दिव्यवस्त्र व कवच पहिरे स्त्रियोंके संग जातेहुए देवताओंकी समान शोभा देरहे थे उससमय महाभाग वृष्णियोंने वहां स्नानकर एकाग्र चित्तसे व्रत धारण किया ॥ ९ ॥ और ब्राह्मणोंको उन्होंने वस्त्र, माला, और कचनके मालावाली गौयें दानदीं उन्हों

ष्णयः ॥ १० ॥ ददुः स्वन्नंद्विजाग्र्येभ्यः कृष्णेनोभक्तिरस्त्विति । स्वयंचतदनुज्ञा
तावृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ ११ ॥ भुक्त्वोपविविशुः कामंस्निग्धच्छायांघ्रिपांघ्रिषु । त
त्रागतांस्तेददृशुःसुहृत्संबन्धिनोनृपान् ॥ १२ ॥ मत्स्योशीनरकौसल्यविदर्भकुरुसृं-
जयान् । काम्बोजकैकयान्मद्रान्कुन्तीनानर्तकेरलान् ॥ १३ ॥ अन्यांश्चैवात्मपक्षी-
यान्परांश्चशतशोनृप । नन्दादीन्सुहृदो गोपान्गोपीश्चोत्कण्ठिताश्चिरम् ॥ १४ ॥
अन्योऽन्यसंदर्शनहर्षरंहसाप्रोत्फुल्लहृद्वक्त्रसरोरुहश्रियः । आश्लिष्यगाढंनयनैःस्र-
वज्जलाहृष्यत्त्वचोरुद्धगिरोययुर्मुदम् ॥ १५ ॥ स्त्रियश्चसंवीक्ष्यमिथोऽतिसौहृद-
स्मितामलापाङ्गदृशोऽभिरेभिरे । स्तनैःस्तनान्कुङ्कुमपङ्करूषितान्निहत्यदोर्भिःप्र-
णयाश्रुलोचनाः ॥ १६ ॥ ततोऽभिवाद्यतेवृद्धान्यविष्ठैरभिवादिताः । स्वागतंकुश-
लंपृष्ट्वाचक्रुःकृष्णकथामिथः ॥ १७ ॥ पृथाभ्रातॄन्स्वसॄर्वीक्ष्यतत्पुत्रान्पितरावपि।
भ्रातृपत्नीर्मुकुन्दंचजहौसंकथयाशुचः ॥ १८ ॥ कुन्त्युवाच । आर्यभ्रातरहंमन्येआ-
त्मानमकृताशिषम् । यद्वाआपत्सुमद्वार्तांनानुस्मरथसत्तमाः ॥ १९ ॥ सुहृदोज्ञात-
यःपुत्राभ्रातरःपितरावपि । नानुस्मरन्तिस्वजनंयस्यदैवमदक्षिणम् ॥ २० ॥ वसु
देव उवाच ॥ अम्बमास्मानसूयेथादैवक्रीडनकान्नरान् । ईशस्यहिवशेलोकःकुरुते
कार्यतेऽथवा ॥ २१ ॥ कंसप्रतापिताःसर्वेवयंयातादिशंदिशम् । एतर्ह्येवपुनःस्था-
नंदैवेनासादिताःस्वसः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वसुदेवोग्रसेनाद्यैर्यदुभिस्तेऽ-
र्चितानृपाः । आसन्नच्युतसंदर्शपरमानन्दनिर्वृताः ॥ २३ ॥ भीष्मोद्रोणोऽम्बिकापु

ने फिर दूसरीबार रामकुण्ड में विधिवत स्नानकर ॥ १० ॥ 'श्रीकृष्णजीमें हमारी भक्तिहोवे, इसका
मना से ब्राह्मणों को सुस्वादु भोजनदिया श्रीकृष्णजीही जिनके देवता हैं ऐसे वृष्णिवंशी उनकी
आज्ञापाय ॥ ११ ॥ आपभी भोजनकर शीतल छायावाले वृक्षोंके नीचे सुखसे बैठे हे राजन् !
वहां उशीनर, कौशल्य, विदर्भ, कुरु, सृंजय, काम्बोज, कैकय, मद्र, कुंति, आनर्त्त, केरल ॥१२–१३॥
आदि श्रीकृष्णजीके सुहृद और सम्बन्धी राजा व सैकड़ों दूसरे अपने पक्षवाले राजा व सुहृद
नन्दादि गोप और उत्कंठित गोपियें भी आई ॥१४॥ परस्परके दर्शनों से जो हर्ष उत्पन्नहुआ उसके
मारे उनका सुन्दर कमलमुख भलीभांति प्रफुल्लितहोगया, प्रेमसे गाढ आलिंगनकर उनके नेत्रों
से आंसुओं की धारा बहने लगी अत्यानन्द का अनुभव करनेलगे ॥१५॥ परस्पर मिल सुहृदता
के कारण स्त्रियों की कटाक्ष दृष्टि निर्मल हुई वे केसर लगेहुए स्तनों को मल २ भुजाओंसे परस्पर
आलिंगनकरने लगीं नेत्रों से उनके प्रेमाश्रू बहनें लगे ॥ १६ ॥ अनतर वे वृद्धों को प्रणामकर और
छोटों से पूजित हो परस्पर की कुशल पूछ श्रीकृष्णजी की बातें करन लगे ॥१७॥ कुंती भाइयों-
सहित बहिनों और उनके पुत्रों को पिता माता, भाइयोंकी स्त्रियों को और श्रीकृष्णजी को देख
प्रेम की. बातों से शोक रहित हुई ॥ १८ ॥ कुंतिने वसुदेव से कहाकि—हे आर्य्य भ्राता ! मैं
अपनेको अकृतार्थ जानतीहूं क्योंकि अति सामर्थ्य वान तुम विपत् कालमें भी मेरीसुध नहीं लेते
॥ १९ ॥ जिससे दैव विमुख होता है उसका स्मरण, सुहृद, जातिवाले, पुत्र, भ्राता, पिता और
माता भी नहीं करते ॥ २० ॥ वसुदेवजी ने कहा कि–हे अम्ब ! हमें दोषन दो, हम मनुष्य दैव
के खिलौने हैं; लोक भगवान केही वशमें हो कार्य करते हैं ॥ २१ ॥ हम लोग कंससे अत्यत
दुःखित हो दशों दिशाओं को भाग निकले थे । हे भगिनि ! दैवेच्छासे अभी अपने स्थान पर
आये हैं ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–हे राजन् ! पूर्वोक्त सब राजा वसुदेव और उग्रसेनादि
यदु वंशियों से पूजित हो श्रीकृष्णजी का दर्शन कर अत्यत आनंद को प्राप्त हुए ॥ २३ ॥
हे राजेन्द्र ! भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, पुत्रों समेत गांधारी, स्त्रियों समेत पाण्डव, कुंती,
संजय, विदुर, कृप, कुंतिभोज, विराट, भीष्मक, नग्नजित, पुरुजित, द्रुपद, शल्य, धृष्टकेतु,

गान्धारीससुतातथा । सदाराःपाण्डवाःकुन्तीसंजयोविदुरः कृपः॥२४॥ कुन्तिभो-
जोविराटश्चभीष्मकोनग्नजिन्महान् । पुरुजिद्द्रुपदःशल्योधृष्टकेतुःसकाशिराट् ॥
॥ २५ ॥ दमघोषोविशालाक्षोमैथिलोमद्रकेकयौ । युधामन्युःसुशर्माचससुताबा-
ह्लिकादयः ॥ २६ ॥ राजानोयेचराजेन्द्रयुधिष्ठिरमनुव्रताः । श्रीनिकेतंवपुःशौरेः
सस्त्रीकंवीक्ष्यविस्मिताः ॥२७॥ अथतेरामकृष्णाभ्यांसम्यक्प्राप्तसमर्हणाः । प्रश-
शंसुर्मुदायुक्तावृष्णीन्कृष्णपरिग्रहान्॥२८॥अहोभोजपतेयूयंजन्मभाजोनृणामिह ।
यत्पश्यथासकृत्कृष्णंदुर्दर्शमपियोगिनाम् ॥ २९ ॥ यद्विश्रुतिःश्रुतिनुतेदमलंपुनाति
पादावनेजनपयश्चवचश्चशास्त्रम् । भूःकालभर्जितभगापियदंघ्रिपद्मस्पर्शोत्थशक्ति
रभिवर्षतिनोऽखिलार्थान् ॥ ३० ॥तद्दर्शनस्पर्शनानुपथप्रजल्पशय्यासनाशनसयौ
नसपिण्डबन्धः । येषांगृहेनिरयवर्त्मनिवर्ततांवःस्वर्गापवर्गविरमःस्वयमासविष्णुः
॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नन्दस्तत्रयदून्प्राप्तान्ज्ञात्वाकृष्णपुरोगमान् । तत्रागमद्वृ
तोगोपैरनःस्थार्थैर्दिदृक्षया ॥ ३२ ॥ तंदृष्ट्वावृष्णयोहृष्टास्तन्वः प्राणमिवोत्थिताः
। परिषस्वजिरेगाढंचिरदर्शनकातराः ॥ ३३ ॥ वसुदेवःपरिष्वज्यसंप्रीतःप्रेमवि-
ह्वलः । स्मरन्कंसकृतान्क्लेशान्पुत्रन्यासंचगोकुले ॥३४॥ कृष्णरामौपरिष्वज्यपि-
तरावभिवाद्यच । नकिंचनोचतुःप्रेम्णासाश्रुकण्ठौकुरूद्वह ॥ ३५ ॥ तावात्मासन
मारोप्यबाहुभ्यांपरिरभ्यच । यशोदाचमहाभागासुतौविजहतुः शुचः ॥ ३६ ॥
रोहिणीदेवकीचाथपरिष्वज्यव्रजेश्वरीम् । स्मरन्त्यौतत्कृतांमैत्रींबाष्पकण्ठ्यौसमू-

---

काशिराज, दमघोष, विशालाक्ष, मैथिल, मद्र, केकय, युधामन्यु,सुशर्मा, पुत्रोंसमेत बाह्लीक, और युधिष्ठिर के वशवर्ती दूसरे राजा श्रीकृष्णजी को उनकी स्त्रियों समेत देखकर विस्मितहुए २४॥ ॥ २७ ॥ अतएव बलदेवजी व श्रीकृष्णजी ने उनका भलीभांति सत्कार किया वे सब राजालोग उनसे सम्मानितहो सब यादवों की प्रशंसा करने लगे ॥ २८ ॥ अहो ! भोजपते ! इसलोक में मनुष्यों में आपही का जन्म सार्थक है; कारण कि आप श्रीकृष्णजी के दर्शन कि जिनके दर्शन योगियों को भी दुर्लभ हैं निरन्तर किया करतेहो ॥ २९ ॥ श्रुति में गाई हुई जिनकी कीर्ति, व जिनके चरणों का जल और वाक्यरूप शास्त्र इस विश्व को पवित्र करते हैं और यह पृथिवी काल की गति से शक्तिहीन होनेपरभी जिनके चरणों के स्पर्श से शक्तिपाकर हमको सबपदार्थ देती है ॥ ३० ॥ आप संसार के कारणरूप घर में बसकर भी उन्हीं श्रीविष्णुजी के साथ दर्शन,स्पर्शन गमन, वार्तालाप, शयन, भोजन, विवाह, और दैहिक सम्बन्ध से सम्बन्धितहो स्वर्ग और मोक्ष की तृष्णा से निवृत्त होगयेहो अतएव तुम्हारा जन्म सफल हुआ ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि हेराजन् ! श्रीकृष्णआदि यदुवंशियों को वहां आयाहुआ जान श्रीनन्दजी दर्शन करने की इच्छा से गोपों समेत शकटों में सामग्री आदि भरकर वहां आये ॥ ३२ ॥ उनको वहां आया देख, बहुत दिनों के उपरांत दर्शन होने के कारण, यदुगण आनन्दितहो प्राण के आनेसे देह के उठने की समान उठकर भलीप्रकार उनसे मिले ॥ ३३ ॥ कंसके दियेहुए क्लेशों और गोकुल में पुत्रों के छोड़ने का स्मरणकर वसुदेवजी उनसे मिलकर अत्यन्त आनन्दित और प्रेमसे विह्वल होगए ॥ ३४ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! पिता माता से मिल और उनको प्रणामकर श्रीकृष्णजी और बलरामजी का कण्ठ प्रेमाश्रु से रुकगया और वे कुछ न कहसके ॥ ३५ ॥ महाभागा यशोदाने उन दोनों पुत्रों को अपने आसनपर बिठाय दोनों बाहों से उनसे मिल अपने सबशोक को दूर किया ॥ ३६ ॥ अनतर रोहिणी और देवकी ने यशोदाजी से मिल उनकी मित्रता का स्मरणकर आंसू भरकर उनसे एकसंगही कहा कि—॥३७॥ हे व्रजेश्वरि ! कौन स्त्री तुम दोनों जनों की मित्रता को भूलसकती है ? इंद्र की समान ऐश्वर्य पाने पर भी उसका बदला नहीं दियाजासकता॥३८॥

चक्रतुः ॥ ३७ ॥ का विस्मरेत वां मैत्रीमनिवृत्तां व्रजेश्वरि । अवाप्याप्यैन्द्रमैश्वर्यं यस्या नेह प्रतिक्रिया ॥ ३८ ॥ एतावदृष्टपितरौ युवयोः स्म पित्रोः संप्रीणनाभ्युदयपोषणपालनानि । प्राप्योषतुर्भवति पक्ष्म ह यद्वदक्ष्णोर्न्यस्तावकुत्रच भयौ न सतां परः स्वः ॥ ३९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति । दृग्भिर्हृदीकृतमलं परिरभ्य सर्वास्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम् ॥ ४० ॥ भगवांस्तास्तथाभूता विविक्त उपसंगतः । आश्लिष्यानामयं पृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४१ ॥ अपि स्मरथ नः सख्यः स्वानामर्थचिकीर्षया । गतांश्चिरायिताञ्छत्रुपक्षक्षपणचेतसः ॥ ४२ ॥ अप्यवध्यायथाऽस्मान्स्विदकृतज्ञाविशङ्कया । नूनं भूतानि भगवान्युनक्ति वियुनक्ति च ॥ ४३ ॥ वायुर्यथा घनानीकं तृणं तूलं रजांसि च । संयोज्याक्षिपते भूयस्तथा भूतानि भूतकृत् ॥ ४४ ॥ मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते । दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥ ४५ ॥ अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः । भौतिकानां यथा खं वार्भूर्वायुर्ज्योतिरङ्गनाः ॥ ४५ ॥ एवं ह्येतानि भूतानि भूतेष्वात्माऽऽत्मना ततः । उभयं मय्यथ परे पश्यताभातमक्षरे ॥ ४७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अध्यात्मशिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः । तदनुस्मरणध्वस्तजीवकोशास्तमध्यगन् ॥ ४८ ॥ आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः । संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं गेहं जुषामपि मनस्युदियात्सदा नः ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे उ० द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

जिन हमारे दोनों बालकों ने पिता माता को भी न देखा, पलकें जैसे आँखों की रक्षाकरती हैं उसी प्रकार वे, माता पिता रूप आप से भलीप्रकार भोजन, पोषण, पालनादि पाकर रक्षितहुए, कहींभी इनको भय नहींहुआ सत्य है सत्पुरुषों में भेदबुद्धि नहीं होती ॥ ३९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–हेराजन् ! जिनके दर्शन में पलकों की ओट होनेसे पलक बनानेवाले ब्रह्मा को गोपियें गाली देती हैं उन प्यारे श्रीकृष्णको उन्होंने बहुत दिनों में देखा, अतएव वे नेत्रोंद्वारा उन्हेंहृदय में स्थापितकर–योगियों को भी दुर्लभ तद्रूपभाव को प्राप्तहो गद्गद होगईं ॥ ४० ॥ जो गोपियां भगवान से एकांत में मिलीं भगवान ने उनसे आलिंगनकर आरोग्य पूछ हंसकर कहा कि–॥४१॥ हे सखियों ! क्यातुम हमारा कभी स्मरण करतीहो ? मैं अपने बंधु बांधवों के अभिप्राय पूर्ण करने के निमित्त चलाआयाथा ॥ ४२ ॥ मैं अकृतज्ञहूं–तुमक्या इसप्रकार की कुछ शंका करतीहो ? क्या इसही कारण मुझ से क्रोधित रहतीहो ? निश्चय भगवानही प्राणियों को मिलाते और बिछुड़ाते हैं ॥४३ ॥ जैसे पवन बादलों को और तृण, धूल रुई को मिलाता औरबिछुड़ाता है वैसेही ईश्वरभी प्राणियों को मिलाकर बिछुड़ा देता है ॥ ४४ ॥ मुझ में भक्ति करके प्राणी मोक्ष पासकते हैं । भाग्यवश मुझ में तुम्हारा स्नेह हुआ है कि जिससे मेरी प्राप्ति होसकती है ॥ ४५ ॥ हे अंगनाओ ! जैसे आकाश, जल, पृथिवी, वायु, और तेज ये पांच महाभूतही घटादिक पदार्थों के आदि अंत, बाहिरी भीतरी रूप हैं वैसेही मैंभी सब प्राणियों का आदि अंत बाहिरी, भीतरी रूपहूं ॥ ४६ ॥ इसी प्रकारजरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज ये चारप्रकारके जीव अपनेकारण रूप पंचमहाभूतों में रहते हैं आत्माही से भूत सबस्थानों में विस्तृत रहते हैं; परंतु यह दोनों परमपुरुष मुझ में प्रकाशमान हैं॥४७॥श्रीशुकदेवजी बोलेकि–श्रीकृष्णजीने इसप्रकार उन्हें स्वरूप उपदेश से शिक्षित किया, उसके स्मरण से उनका लिंगदेह छूटगया और उन्हीं को प्राप्तहुईं और इसप्रकार से कहने लगीं॥४८॥कि–हेपद्मनाभ ! हमारी प्रार्थनाहै कि चाहे हमघरका सेवन भलेही करें परंतु तौभी अगाध बोध योगी जिसका हृदय में ध्यान करते हैं और जो संसार कूपमें गिरे हुए मनुष्यों के लिये अवलम्बनरूप हैं उन आप के चरणों में सदैव हमारामन लगारहे ॥ ४९ ॥

इतिश्री मद्भागवतमहापुराणेदशमस्कंधउ०सरलाभाषाटीकायांद्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

श्रीशुक उवाच। तथानुगृह्य भगवान्गोपीनां सगुरुर्गतिः। युधिष्ठिरमथापृच्छत्सर्वां श्च सुहृदोऽव्ययम्॥ १॥ तएवंलोकनाथेन परिपृष्टाःसुसत्कृताः प्रत्यूचुर्हृष्टमनसस्तत्पादेक्षाहतांहसः॥ २॥ कुतोऽशिवंत्वच्चरणाम्बुजासवं महन्मनस्तोमुखनिःसृतंक्वचित्। पिबन्तियेकर्णपुटैरलंप्रभो देहंभृतांदेहकृदस्मृतिच्छिदम्॥ ३॥ हित्वाऽऽत्मधाम विधुतात्मकृतत्र्यवस्थमानन्दसंप्लवमखण्डमकुण्ठबोधम्। कालोपसृष्टनिगमावन आत्तयोगमायाकृतिं परमहंसगतिंनताःस्मः॥ ४॥ ऋषिरुवाच। इत्युत्तमश्लोकशिखामणिं जनेष्वभिष्टुवत्स्वन्धककौरवस्त्रियः। समेत्यगोविन्दकथामिथोऽगृणंस्त्रिलोकगीताः शृणुवर्णयामिते॥ ५॥ द्रौपद्युवाच। हेवैदर्भ्यच्युतो भद्रे हेजाम्बवतिकौसले। हेसत्यभामे कालिन्दि शैब्ये रोहिणिलक्ष्मणे॥ ६॥ हेकृष्णपत्न्यएतन्नोब्रूत वोभगवान्स्वयम्। उपयेमेयथा लोकमनुकुर्वन्स्वमायया॥ ७॥ रुक्मिण्युवाच। चैद्यायमाऽर्पयितुमुद्यतकार्मुकेषु राजस्वजेयभटशेखरिताङ्घ्रिरेणुः। निन्येमृगेन्द्रइव भागमजावियूथात्तच्छ्रीनिकेतचरणोऽस्तु ममार्चनाय॥ ८॥ सत्यभामोवाच॥ योमेसनाभिवधतप्तहृदा ततेन लिप्ताभिशापमपमार्ष्टुमुपाजहार॥ जित्वर्क्षराजमथरत्नमदात्सतेन भीतः पिताऽदिशतमां प्रभवेऽपिदत्ताम्॥ ९॥ जाम्बवत्युवाच। प्राज्ञायदेहकृदमुंनिजनाथदैवं सीतापतिं त्रिणवहान्यमुनाऽभ्ययुध्यत् ज्ञात्वापरीक्षितउपाहरदर्हणं मांपादौ प्रगृह्यमणिनाऽहममुष्यदासी॥१०॥ कालिन्द्यु-

शुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! सबके गुरु और गति भगवान श्रीकृष्णजीने गोपियोंपर अनुग्रह कर युधिष्ठिर और समस्त बंधुओं की कुशल पूछी,॥ १॥ भगवान के इसप्रकार अति आदर से प्रश्न करनेपर वे निष्पापहो प्रसन्न मनसे कहनेलगे कि—॥२॥ हेप्रभो! आपका चरणोदक रूप आसव प्राणियों के देह जनित अविद्या का नाश करताहै वह महात्माओं के मन से मुखद्वारा प्रगट होता रहताहै। जो कानोंरूप अंजुली से उसको पीतहैं उनको अमंगल कहांसे होसक्ता है,॥ ३॥ हम आपको प्रणाम करतेहैं, अपने तेजसेही अपने आपही तीनों अवस्थाएं दूर होतीहैं, अतएव आप सर्वानंद कदम्ब स्वरूपहो। आप अखण्ड अकुंठित शक्तिवालेहो काल वशसे लुप्तहुए वेदों की रक्षाके निमित्त आप योगमाया के योग से नानाप्रकार की मूर्त्ति धारण करते रहतेहो आप परमहंसों की गतिहो॥ ४॥ शुकदेवजीने कहा कि—हेराजन्! मनुष्य ईस प्रकार से पवित्र यशवाले भगवानकी स्तुति करनेलगे, अंधकों और कौरवोंकी स्त्रियें मिलकर परस्पर के नानागीतों से भगवान मुकुन्द के चरित्र गानेलगीं इससमय उनका वर्णन करताहूंसुनो॥ ५॥ प्रथम द्रौपदीने कहाकि—हे विदर्भनन्दिनि! हेभद्रे! हे जांबवति! हेसत्यभामे! हेकालिन्दि! हेमित्रविंदे! हेरोहिणि! हेलक्ष्मणे! हेदूसरी श्रीकृष्णजीकी स्त्रियों! स्वयं भगवानने अपनी मायाके योगसे मनुष्यों का अनुकरण कर जिसप्रकार अपने विवाह कियेथे उन सबका वर्णन करो॥ ६—७॥ रुक्मिणी ने कहा कि—जरासन्ध आदि राजा मुझे शिशुपालके देनेके निमित्त धनुष लेकर उद्यत हुएथे परन्तु श्रीकृष्णजीने अपना चरण उन अजय योद्धाओंके मस्तक पर रख सियारों के बीचमेंसे अपने भागहारी सिंहकी समान मेरा हरण कियाथा वे भगवान मेरे पूजनीयहैं॥ ८॥ सत्यभामा ने कहा कि—भाई प्रसेन के मारे जानेसे मेरा पिता अत्यन्त संतप्त हुआथा। श्रीकृष्णजी ने अपना अपयश दूर करनेके निमित्त जांबवत को परास्तकर मणिलाए। इससे मेरे पिताने उस अपने कियेहुये अपराध से भयभीतहो यद्यपि मेरी मँगनी होगईथी तो भी इन्हीं प्रभुके हाथमें मुझे अर्पण किया॥ ९॥ जांबवतीने कहा कि–पिता जांबवानने इनको अपना ईश्वर सीतापति न जान इनसे सत्ताईस दिन युद्धकिया। अन्त में निश्चय होनेपर मेरे पिता ने इनके चरणोंमें गिर भेंटकी भांति मणिके साथ मुझेभी अर्पण किया ऐसे मैं इनकी दासीहूं १०॥

वाच । तपश्चरन्तीमाज्ञाय स्वपादस्पर्शनाऽऽशया । सख्योपेत्याग्रहीत्पाणिं योऽहं तद्गृहमार्जनी ॥ ११ ॥ भद्रोवाच ॥ यो मां स्वयंवर उपेत्य विजित्य भूपान्निन्ये श्वयूथगमिवात्मबलिं द्विपारिः । भ्रातॄंश्च मेऽपकुरुतः स्वपुरं श्रियौकस्तस्यास्तु मेऽनुभवमंघ्र्यवनेजनत्वम् ॥ १२ ॥ सत्योवाच । सप्तोक्षणोऽतिबलवीर्यसुतीक्ष्णशृङ्गान्पित्रा कृतान्क्षितिपवीर्यपरीक्षणाय । तान्वीरदुर्मदहनस्तरसा निगृह्य क्रीडन्बबन्ध ह यथा शिशवोऽजतोकान् ॥ १३ ॥ य इत्थं वीर्यशुल्कां मां दासीभिश्चतुरंगिणीम् । पथिनिर्जित्य राजन्यान्निन्ये तद्दास्यमस्तु मे ॥१४॥ मित्रविन्दोवाच ॥ पिता मे मातुलेयाय स्वयमाहूय दत्तवान् । कृष्णे कृष्णाय तच्चित्तामक्षौहिण्या सखीजनैः ॥१५॥ अस्य मे पादसंस्पर्शो भवेज्जन्मनि जन्मनि । कर्मभिर्भ्राम्यमाणाया येन तच्छ्रेय आत्मनः ॥ ॥ १६ ॥ लक्ष्मणोवाच ॥ ममापि राज्ञ्यच्युतजन्मकर्म श्रुत्वा मुहुर्नारदगीतमास ह ॥ चित्तं मुकुन्दे किल पद्महस्तया वृतः सुसंमृश्य विहाय लोकपान् ॥ १७ ॥ ज्ञात्वा मम मतं साध्वि पिता दुहितृवत्सलः । बृहत्सेन इति ख्यातस्तत्रोपायमचीकरत् ॥ १८ ॥ यथा स्वयंवरे राज्ञि मत्स्यः पार्थेप्सया कृतः । अयं तु बहिराच्छन्नो दृश्यते स जले परम् । ॥ १९ ॥ श्रुत्वैतत्सर्वतो भूपा आययुर्मत्पितुः पुरम् । सर्वास्त्रशास्त्रतत्त्वज्ञाः सोपाध्यायाः सहस्रशः ॥ २० ॥ पित्रा सम्पूजिताः सर्वे यथावीर्यं यथावयः । आददुः सशरं चा-

---

कालिंदी ने कहा कि मैं श्रीकृष्णजी के चरणस्पर्श की कामनासे तपस्या करतीथी, श्रीकृष्णजी ने मुझे तपस्या करते जान अपने मित्र अर्जुन के सगजाय मेरा पाणिग्रहण कियाथा उससमयसे मैं उनके घरमे बुहारी देनेवाली दासीहुई, ॥ ११ ॥ भद्राने कहा कि—श्रीनिवास स्वयं स्वयम्बर स्थलमें जाय राजाओं को और अपकार करनेमें प्रवृत्त मेरे भाइयों को जीत कुत्तोंके बीचसे अपने बलिके लेनेवाले सिंहकी समान मुझे अपने नगरमें लेगयेथे । मैं प्रार्थना करतीहूं कि जन्म जन्मों उन्हीं के चरणोंकी सेवामें प्रवृत्तरहूं ॥१२॥ सत्याने कहा कि मेरे पिताने राजाओं के बल की परीक्षा करनेके निमित्त तीक्ष्ण सींगोंवाले अति पराक्रमी सातसांड पालेथे जैसे बालक बकरी के बच्चोंको बांधलेवै श्रीकृष्णजी ने वैसेही वीरों के मदनाशक उन सातों सांडों को सहजही से बलपूर्वक बांधलियाथा ॥१३॥ जिन्होंने इसप्रकार पराक्रमरूप शुल्कदे मार्गमें राजाओं को जीत चतुरंगिणी सेना और दासियों समेत मुझको लाए मैं निरन्तर उनकीही दासी होऊं, ॥ १४ ॥ मित्रविंदाने कहा कि–हे कृष्णे ! पिताने मेरा चित्त श्रीकृष्णजी में लगा देख स्वयंही सखियां और एक अक्षौहणी सेना समेत मुझे मामाके पुत्र श्रीकृष्णजी को देदिया ॥ १५ ॥चाहे मैं नानाकर्मोंके वशहो संसारमें भ्रमण करतीरहूं परन्तु जन्मजन्म में श्रीकृष्णजीकेही चरणोंकी दासी होऊं उसीमें मेरा कल्याणहै ॥ १६ ॥ लक्ष्मणाने कहा कि—हेराज्ञि ! नारद के मुख से बारम्बार भगवान के जन्म और कर्मों का वृत्तान्त सुनकर मेराभी चित्त लोकपालों को छोडकर श्रीकृष्णजी में आसक्त हुआ, ॥ १७ ॥ हे साध्वि ! लक्ष्मीजी ने भी जिनका वरण किया उनकी दासी होनेकामैं अत्यन्त उत्सुक हुई । पुत्रीप्रिय पिता बृहत्सेन ने मेरी कामना जानकर उसका उपाय किया, ॥ १८ ॥ हेराज्ञि जैसे आपके स्वयम्बरमें अर्जुन के पानेकी इच्छा से मत्स्य निर्माण कियागयाथा मेरे स्वयम्बर में भी ठीक वैसेही हुआ । तुम्हारेसे इसमें यह विशेषताथी कि यह मत्स्य खंभेकी जड़में रखेहुए कलशेके जलमेंही देखाजाताथा अतएव नीचेको दृष्टिकर ऊपरके निशानेको भेदनाथा । इसका होना श्रीकृष्णजी के विना और किसी से सम्भव न था ॥ १९ ॥ मेरे इस स्वयंवर के वृत्तांतको सुनकर सब स्थानों से शस्त्र के तत्वको जानने वाले सहस्रों राजा उपाध्यायों समेत दिशा विदिशासे मेरे पिताके नगरमें आनेलगे ॥ २० ॥ वेसब पराक्रम और अवस्था

पं वेद्धुंपर्षदिमाश्रियः ॥ २१ ॥ आदायव्यसृजन्केचित्सज्यं कर्तुमनीश्वराः । आको-
ष्ठेज्यां समुत्कृष्य पेतुरेकेऽमुनाहताः ॥ २२॥ सज्यंकृत्वाऽपरेवीरा मागधाम्बष्ठचेदि
पाः । भीमोदुर्योधनःकर्णो नाविन्दंस्तदवस्थितिम् ॥ २३ ॥ मत्स्याभासंजलेवीक्ष्य
ज्ञात्वाचतदवस्थितिम् । पार्थोयत्तोऽसृजद्बाणं नाच्छिनत्पस्पृशेपरम् ॥ २४ ॥ राज
न्येषु निवृत्तेषु भग्नमानेषुमानिषु । भगवान्धनुरादाय सज्यंकृत्वाऽथ लीलया ।२५
तस्मिन्संधायविशिखं मत्स्यं वीक्ष्यसकृज्जले । छित्त्वेषुणाऽपातयत्तं सूर्ये चाभिजि
तिस्थिते ॥ २६ ॥ दिविदुन्दुभयो नेदुर्जयशब्दयुताभुवि । देवाश्च कुसुमासारा-
न्मुमुचुर्हर्षविह्वलाः ॥ २७ ॥ तद्रङ्गमाविशमहंकलनूपुराभ्यांपद्भ्यांप्रगृह्यकनका-
ज्ज्वलरत्नमालाम् । नूत्नेनिवीयपरिधायचकौशिकाग्र्ये सव्रीडहासवदनाकबरीधृ-
तस्रक् ॥ २८ ॥ उन्नीयवक्त्रमुरुकुन्तलकुण्डलत्विड्गण्डस्थलंशिशिरहासकटाक्ष-
मोक्षैः । राज्ञोनिरीक्ष्यपरितःशनकैर्मुरारेरंसेऽनुरक्तहृदयानिदधेस्वमालाम् ॥ २९॥
तावन्मृदङ्गपटहाःशङ्खभेर्यानकादयः । निनेदुर्नटनर्तक्योननृतुर्गायकाजगुः ॥३०॥
एवंवृतेभगवतिमयेशेनृपयूथपाः । नसेहिरेयाज्ञसेनिस्पर्धन्तोहृच्छयातुराः ॥ ३१ ॥
मांतावद्रथमारोप्यहयरत्नचतुष्टयम् । शार्ङ्गमुद्यम्यसन्नद्धस्तस्थावाजौचतुर्भुजः ॥
॥ ३२ ॥ दारुकश्चोदयामासकाञ्चनोपस्करंरथम् । मिषतांभूभुजांराज्ञिमृगाणांमृ-
गराडिव ॥ ३३ ॥ तेऽन्वसज्जन्तराजन्यानिषेद्धुंपथिकेचन । संयत्ताउद्धृतेष्वा

के अनुसार मेरे पितासे भली प्रकार पूजितहो सबने मुझमें चित्तलगाय लक्ष्य वेधने के निमित्त सभामें धनुषबाण ग्रहणकिया ॥२१॥किसीर ने धनुषके धनुषकी प्रत्यचा न चढ़ा सकने के कारण उसको छोड़दिया; कोई कोई उसे अपनी कमरतक खींच उस धनुषके झटके सेही गिरपड़े ॥२२॥ इसी प्रकार जरासंध, अंबष्ठ और शिशुपाल आदि दूसरेवीर और भीम, दुर्योधन व कर्णआदि ने धनुषकी प्रत्यचा चढ़ाकर भी उस मत्स्यकी स्थितिन जानी ॥ २३ ॥ फिरअर्जुन ने जलमें मत्स्य की छायादेख और मत्स्यकी स्थिति भी जान सावधान होकर बाणचलाया; किंतु उसका छेदन न करसके; केवल स्पर्शही किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार समस्त क्षत्रियों के निवृत्त और अभिमानियों के मानभंग होनेपर भगवान ने धनुष ग्रहणकर सहज सेही प्रत्यचाको चढ़ालिया और उसमें बा[ण] जोड़ जलमें केवल एकबार मत्स्यको देख अभिजित मुहूर्त में उसको बाणसे बेधकर गिरादिया ॥ २५-२६ ॥ स्वर्गमें दुंदुभी बजनेलगीं । पृथिवी परभी जय शब्दहो ने और दुंदुभी बजनेलगीं । देवता हर्षसे विह्वलहो फूल बरसा ने लगे ॥ २७ ॥ उस समय मैंनें नवीन रेशमी वस्त्रोंको पहिर, स्वर्णसे उज्ज्वल रत्नोंकी माला धारणकर मधुर नूपुरकी ध्वनि करते २ सभामें प्रवेश किया । मेरे जूड़ामें फूल और मुख में लज्जायुक्त हास्य शोभा पारहाथा, कपोल कुंडलों की कांति से अलंकृत होरहे थे । मैंने मुखको उठाय, स्निग्ध हास्ययुक्त कटाक्ष विक्षेपसे चारों ओर के राजाओंको धीरे २ देखते २ श्रीकृष्णजी के गलेमें वरमाला डाली । मेराचित्त उन्हीं में लगा हुआ था ॥ २८-२९ ॥ उससमय मृदङ्ग, पटह शंख, भेरी और ढक्काआदि बाजे बजनेलगे, नचैये और गवैये नाचनेगाने लगे ॥ ३० ॥ हे याज्ञसनि ! मैंने इस प्रकार भगवान का वरणकिया, सब राजा कामसे कातरहो डाहसे इसका सहन न करसके ॥ ३१ ॥ चतुर्भुज भगवान उसी समय रत्नरूप चार घोड़ोंवाले रथमें मुझे बैठाय कवच धारणकर धनुष हाथमें ले युद्धको तइयार हुए ॥ ३२ ॥ हे राज्ञि ! दारुक सुवर्ण की सामग्री वाले रथको चलाता था । मृगोंके बीचमेंसे हो सिंहकी समान हरिने देखनेवाले राजाओं के बीचमें होकर गमन किया ॥ ३३ ॥ उन सब राजाओं ने उनका पीछा किया । जैसे

आग्रामसिंहायथाहरिम् ॥३४॥ तेद्यार्क्तच्युतबाणौघैः कृत्तबाह्वंघ्रिकन्धराः । निपेतुःप्र धनेकेचिदेकेसत्यज्यदुद्रुवुः ॥ ३५ ॥ ततः पुरीं यदुपतिरत्यलंकृतांरविच्छदध्वजपट चित्रतोरणाम् । कुशस्थलींदिविभुविचाभिसंस्तुतांसमाविशत्तरणिरिवस्वकेतनम् ॥ ३६ ॥ पितामेपूजयामाससुहृत्संबन्धिबान्धवान् । महार्हवासोलङ्कारैःशय्यासन परिच्छदैः ॥ ३७ ॥ दासीभिःसर्वसम्पद्भिर्भटेभरथवाजिभिः । आयुधानिमहार्हा णिददौपूर्णस्यभक्तितः ॥ ३८ ॥ आत्मारामस्यतस्येमावयंवैगृहदासिकाः । सर्वसङ्गनिवृत्त्याऽद्धातपसाचबभूविम ॥ ३९ ॥ महिष्यऊचुः । भौमंनिहत्यसगणंयुधितेनरुद्धाज्ञात्वाऽथनःक्षितिजयेजितराजकन्याः । निर्मुच्यसंसृतिविमोक्षमनुस्मरन्तीः पादाम्बुजंपरिणिनाययआप्तकामः ॥४०॥ नवयंसाध्विसाम्राज्यं स्वाराज्यंभौज्यम प्युत । वैराज्यंपारमेष्ठ्यंचआनन्त्यंवाहरेःपदम् ॥ ४१ ॥ कामयामहएतस्यश्रीमत्पा दरजःश्रियः । कुचकुङ्कुम गन्धाढ्यंमूर्ध्नावोढुंगदाभृतः ॥४२॥ व्रजस्त्रियोयद्वाञ्छ न्तिपुलिन्द्यस्तृणवीरुधः । गावश्चारयतोगोपाःपादस्पर्शंमहात्मनः ॥ ४३ ॥

इतिश्रीम० म० द० उ० त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ श्रुत्वापृथासुबलपुत्र्यथयाज्ञसेनीमाधव्यथक्षितिपपत्न्यउत स्वगोप्यः । कृष्णेऽखिलात्मनिहरौप्रणयानुबन्धंसर्वाविसिस्म्युरलमश्रुकलाकुला क्ष्यः ॥१॥ इतिसंभाष्यमाणासुस्त्रीभिःस्त्रीषुनृभिर्नृषु । आययुर्मुनयस्तत्रकृष्णरामदि

कुसे सिंहके रोकने की चेष्टाकरते ह उसी प्रकार कोई२ किसी के आगेहो श्रीकृष्णजीको मार्गमें रोकने के निमित्त धनुष ले युद्धके निमित्त खडे होगये ॥ ३४ ॥ वै भगवान के धनुष से छूटेहुए बाणों से छिन्नभुज, छिन्नपांव और छिन्न शरीरहो युद्धमेंगिरे और कुछेकतो युद्ध छोड़कर भगगये ॥ ३५ ॥ अनंतर भगवान ने स्वर्ग और मर्त्यलोक में प्रशसा योग्य सुदर सजीहुई अपनी नगरी द्वारकामें सूर्यके अस्ताचलमें प्रवेश करनेकी समान प्रवेश किया; वह ध्वजा, पताका और तोरणों से अत्यंत सजीहुई थी ॥ ३६ ॥ मेरे पिताने महामूल्य के वस्त्र, अलकार, शय्या, आसन और पूजाकी सामग्रियों से सुहृद, सम्बधी और बांधवोंकी पूजाकी ॥ ३७ ॥ यद्यपि भगवान सर्वविषयों से परिपूर्ण हैं तौभी पिताने उनको भक्ति पूर्वक दास दासी, सम्पत्ति, सेना, हाथी और घोड़ो समेत महामूल्य के अस्त्र और शस्त्र आदि दियेथे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार से मैं सबसगों से रहितहो स्वधर्म प्रतिपालन द्वारा उन आत्मा रामकी साक्षात घरकी दासीहुई हूं ॥ ३९ ॥ स्त्रियों ने कहाकि दलबल समेत भौमको युद्धमें मार; उसके दिग्विजयमें जोराजा पराजित हुएथे उनकी कन्याओं को उसने रोकरक्खा है यह जान भगवानने उनका उद्धार किया और स्वयंपूर्ण काम होकर भी संसार नाशक चरण कमलोंकी अभिलाषिनी उन कन्याओं से विवाह किया ॥ ४० ॥ हे साध्वि ! हम राज्य, इन्द्रत्व, अणिमादिक सिद्धियां, ब्रह्मपद, मोक्ष व हरिके पदकी भी प्रार्थना नहीं करतीं ॥ ४१ ॥ उन गदाधारी के लक्ष्मी के स्तनों की केसर से गंधयुक्त चरण रजको सर्वदा मस्तकमें धारण करने की इच्छा करती हैं ॥ ४२ ॥ वेजब नदीके तटपर गौओंको चराते तब ब्रज नारियें और गोप जिनकी इच्छा करते थे भगवान के उन्हीं चरणों के स्पर्शको हम चाहती हैं ॥ ४३ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कधे उ०सरलाभाषाटीकायांत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! कुती, गांधारी, द्रौपदी, सुभद्रा-व राजाओं की स्त्रियें और श्रीकृष्णजी की भक्त गोपियें श्रीकृष्णजी की उन स्त्रियों के प्रेम की कथा सुन आंखों में आंसूभर अत्यत विस्मय करने लगीं ॥ १ ॥ हेराजन् ! स्त्रियें स्त्रियों से और राजा राजाओं से इसप्रकार कहतेथे । कि उसी समय राम कृष्ण के दर्शन करने की इच्छा से महर्षि व्यास, नारद,

दृक्षया ॥२॥ द्वैपायनोनारदश्चच्यवनोदेवलोऽसितः। विश्वामित्रःशतानन्दोभरद्वा
जोऽथगौतमः ॥३॥ रामः सशिष्योभगवान्वसिष्ठोगालवोभृगुः। पुलस्त्यःकश्यपो
ऽत्रिश्चमार्कण्डेयोबृहस्पतिः ॥ ४ ॥ द्वितस्त्रितश्चैकतश्च ब्रह्मपुत्रास्तथाङ्गिराः। अग
स्त्योयाज्ञवल्क्यश्चवामदेवादयोऽपरे ॥ ५ ॥ तान्दृष्ट्वासहसोत्थायप्रागासीनानृपा
दयः। पाण्डवाः कृष्णरामौचप्रणेमुर्विश्ववन्दितान् ॥ ६ ॥ तानानर्चुर्यथासर्वेसह
रामोऽच्युतोऽर्चयत्। स्वागतासनपाद्यार्घ्यमाल्यधूपानुलेपनैः ॥ ७ ॥ उवाचसुख
मासीनान्भगवान्धर्मगुप्तनुः। सदसस्तस्यमहतोयतवाचोऽनुशृण्वतः ॥ ८ ॥ श्री
भगवानुवाच ॥ अहोवयंजन्मभृतोलब्धंकार्त्स्न्येनतत्फलम्। देवानामपिदुष्प्रापंय
द्योगेश्वरदर्शनम् ॥ ९ ॥ किंस्वल्पतपसांनृणामर्चायांदेवचक्षुषाम्। दर्शनस्पर्शन
प्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम् ॥ १० ॥ नह्यम्मयानितीर्थानिनदेवामृच्छिलामयाः। तेपुन
न्त्युरुकालेनदर्शनादेवसाधवः ॥ ११ ॥ नाग्निर्नसूर्योनचचन्द्रतारकानभूर्जलंखंश्व
सनोऽथवाङ्मनः। उपासिताभेदकृतोहरन्त्यघंविपश्चितोघ्नन्तिमुहूर्तसेवया। १२।
यस्यात्मबुद्धिः कुणपेत्रिधातुकेस्वधीः कलत्रादिषुभौमइज्यधीः। यत्तीर्थबुद्धिः स
लिलेनकर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषुसएवगोखरः॥१३॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्येत्थंभग
वतःकृष्णस्याकुण्ठमेधसः। वचोदुरन्वयंविप्रास्तूष्णीमासन्भ्रमद्धियः॥१४॥चिरंवि
मृश्यमुनयईश्वरस्येशितव्यताम्। जनसंग्रहइत्यूचुः स्मयन्तस्तंजगद्गुरुम्॥१५॥मु
नयऊचुः।यन्माययातत्त्वविदुत्तमावयंविमोहिताविश्वसृजामधीश्वराःयदीशितव्या

च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज, गौतम, राम, शिष्यों समेत भगवान वशिष्ठ गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति, द्वित, त्रित, एकत, ब्रह्माजी के पुत्र अंगिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य और वामदेव आदि ऋषि वहाँ पर आये ॥ २—५॥ पहिले से बैठे हुए राजा, पाण्डव व श्रीकृष्ण और राम ने उन समस्त विश्व के वन्दनीय ऋषियों को देख सहसा उठकर प्रणाम किया ॥ ६ ॥ सब विधिवत उनकी पूजा करने लगे। राम और कृष्णजी ने उन सबकी कुशल पूछ अर्घ्य, माला, धूप और चन्दन से उनकी पूजाकी ॥ ७ ॥ अनन्तर उन सब के सुख से बैठने पर धर्म की रक्षाके निमित्त देह धारण करनेवाले भगवान उनसे कहने और सब सभासद चुपचापही सुनने लगे ॥ ८ ॥ भगवान ने कहा कि—अहो ! आज हमाराजन्म सफल हुआ—;आज हमने देवताओं के भी न मिलने योग्य योगेश्वरोंके दर्शनकर जीवन का फल पाया ॥ ९॥ अल्प तपस्यावाले मनुष्य प्रतिमा कोही देवता स्वरूप से देखते हैं योगेश्वरों के दर्शन, स्पर्शन उनसे वार्तालाप, प्रणाम और उनके चरणों की पूजाकरना क्या उन मनुष्यों को प्राप्त होसकता है ॥ १० ॥ जलमय स्थान होनसेही तीर्थ नहीं होता, मिट्टी पत्थर के सब पदार्थही देवता नहीं होते; होने परभी वह मनुष्य को बहुत काल में पवित्र करते हैं; परंतु साधुओं के दर्शन करने से ही पवित्रता प्राप्त होती है ॥ ११ ॥ अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारा, पृथिवी, जल, आकाश, वायु, और वाक्य व मन भेद बुद्धि से उपासित होनेपर अज्ञान को नाश नहीं करसकते; किंतु क्षण मात्र की साधु सेवा से अज्ञान नाशहोजाता है ॥ १२ ॥ जिसकी वात पित्त कफ मय शरीर मेंही आत्मबुद्धि स्त्री आदि में आत्मीय बुद्धि, प्रतिमा आदिको देवता बुद्धि और जल आदिमें तीर्थ बुद्धि है परन्तु तत्ववेत्ता साधुओंको उसप्रकार नहीं जानता वह मनुष्य घास लादनेके गधेकी समान है ॥ १३ ॥ शुकदेवजीने कहा कि हे राजन्! वे ऋषि अकुंठित बुद्धिवाले भगवान श्रीकृष्ण जीकी ऐसीबातोंको सुन भ्रमित बुद्धिहो कुछ देरतक चुपचाप खड़े रहे। उन्होंने ईश्वरकी अनीश्वरता युक्त बातोंको सुन विचार करके जाना कि लोककी मर्यादाके निमित्त इन्होंने इसप्रकार कहा है ॥ १४ । १५ ॥ तदनन्तर वे हँसकर भगवानसे कहनेलगे कि हम श्रेष्ठ तत्ववेत्ता और लोकपालों

स्थितगूढ़ंहृयाअहोविचित्रंभगवद्विचेष्टितम् ॥ १६ ॥ अनीहएतद्बहुधैकआत्मनासृज
स्यवस्यत्सिनबध्यसेयथा । भौमैर्हिभूमिर्बहुनामरूपिणीअहोविभूम्नश्चरितंविडम्बनम्
॥ १७ ॥ अथापिकालेस्वजनाभिगुप्तयेबिभर्षिसत्त्वंखलनिग्रहायच । स्वलीलयावे
दपथंसनातनंवर्णाश्रमात्मापुरुषः परोभवान् ॥ १८ ॥ ब्रह्मतेहृदयंशुक्लंतपः स्वा
ध्यायसंयमैः । यत्रोपलब्धंसद्व्यक्तमव्यक्तंचततः परम् ॥ १९ ॥ तस्माद्ब्रह्मकुलंब्रह्म
न्छास्त्रयोनेस्त्वमात्मनः । सभाजयसिसद्धामतद्ब्रह्मण्याग्रणीर्भवान् ॥ २० ॥ अद्य
नोजन्मसाफल्यंविद्यायास्तपसोदृशः । त्वयासंगम्यसद्गत्यायदन्तः श्रेयसांपरः
॥ २१ ॥ नमस्तस्मैभगवतेकृष्णायाकुण्ठमेधसे । स्वयोगमाययाच्छन्नमहिम्नेपरमा
त्मने ॥ २२ ॥ नयंविदन्त्यमीभूपाएकारामाश्चवृष्णयः । मायाजवनिकाच्छन्नमात्मा
नंकालमीश्वरम् ॥ २३ ॥ यथाशयानः पुरुषआत्मानंगुणतत्त्वदृक् । नाममात्रेन्द्रिया
भातंनवेदरहितंपरम् ॥ २४ ॥ एवंत्वानाममात्रेषुविषयेष्विन्द्रियेहया । माययाविभ्र
मच्चित्तोनवेदस्मृत्युपप्लवात् ॥ २५ ॥ तस्याद्यतेददृशिमांघ्रिमघौघमर्षतीर्थास्पदं
हृदिकृतंसुविपक्वयोगैः । उत्सिक्तभक्त्युपहताशयजीवकोशाआपुर्भवद्गतिमथा
ऽनुगृहाणभक्तान् ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यनुज्ञाप्यदाशार्हंधृतराष्ट्रंयुधिष्ठिर
म् । राजर्षेस्वाश्रमान्गन्तुंमुनयोदधिरेमनः ॥ २७ ॥ तद्वीक्ष्यतानुपव्रज्यवसुदेवोम

के अधीश्वर होकरभी जिनकी मायासे मोहितहोरहे हैं वे आप मायाके स्वामी होकरभी मोहित मनुष्योंकी सदृश आचरण करते हैं । अहो ! आपकी लीला बड़ी अचिन्त्य है ॥ १६ ॥ जिस प्रकार पृथिवी घटादिक पदार्थोंसे अनेक नाम और रूपवाली है उसीप्रकार आप अक्रिय और एक होकरभी इस जगतकी उत्पत्ति स्थिति और प्रलयकरतेहो । आप परिपूर्ण परमेश्वरहो आपका जन्मादि धारण करना केवल विडम्बना मात्रहै, । स्वजनों की रक्षा और दुष्टों के दमन करने के निमित्तही आप समय २ पर शुद्ध सत्वात्मक स्वरूप धारण करतेहो, ॥ १७—१८ ॥ आप वर्णा श्रमात्मा पुरुष भगवान अपने आचारोंसे वेदमार्गकाभी पालन करतेहो, । तपस्या स्वाध्याय और संयम द्वारा जिससे कार्य कारण और उससे परे सन्मात्र ब्रह्मकी प्राप्ति होती है, ॥ १९ ॥ वही आप वेदोंमें कहेहुए ब्रह्म और विशुद्ध हृदयहो, । ब्रह्मन् ! इसहीकारण आप शास्त्रयोनि भी हो, । ज्ञान के श्रेष्ठ उपलब्धि स्थान ब्राह्मण आपकी पूजा करते रहते हैं अतएव आप ब्राह्मणों में अग्रणी और ब्रह्मण्य देवहो ॥ २० ॥ आप सब मंगलों की खानहो इसहीकारण आज आपसे मिलकर हमारा जन्म, विद्या, तपस्या और दृष्टि सफलहुई अपनीही योगमाया से जिसकी महिमा ढकीहै जो अकुण्ठित बुद्धिवालेहैं, एकस्थानमें रहतेहुए, सब राजा और यदुवंशी जिनके मायारूप पर्देसे ढककर जिन कालरूपी ईश्वरको नहीं जानते उन परमात्मा भगवान श्रीकृष्णजी आपको नमस्कारहै ॥ २१—२२ ॥ जैसे स्वप्न देखता हुआ मनुष्य स्वप्नके देखेहुए विषयोंको यथार्थरूप से देखताहै और मनसे प्रकाशित नाम आदि रूपको आत्मा करके मानता है उसके अतिरिक्त अपने आदिरूप इत्यादिको नहीं जानता, हेब्रह्मन् ! वैसेही यह सब लोकमाया से भ्रमित चित्तहो स्मृति नाश होनेके कारण इन्द्रिय और मन द्वारा प्रकाश पातेहुए केवल आपके नामकोही जानते हैं किंतु स्वरूपको नहीं जानते॥२३।२५॥आज हमने उन्हीं पापनाशक गंगा तीर्थके उत्पन्न करने वाले परिपक्व योगवाले योगियोंके चिंतनीय आपके चरणकमलका दर्शन किया,अतएव हमें भक्त जानकर अनुग्रह करो । बढ़ीहुई भक्तिसे जिनका इच्छारूप लिंग शरीर नाशहोगयाहै वही आपकी गति पाते हैं॥२६॥श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हेराजर्षे ! मुनियोंने इसप्रकार कह श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरकी आज्ञाले अपने २ आश्रमोंमें जानेकी इच्छाकी ॥ २७ ॥ उनको जानेपर उद्यत

हायशाः । प्रणम्यचोपसंगृह्यबभाषेदंसुयन्त्रितः ॥ २८ ॥ वसुदेव उवाच ॥ नमोवः
सर्वदेवेभ्यऋषयः श्रोतुमर्हथ । कर्मणाकर्मनिर्हारोयथास्यान्नस्तदुच्यताम् ॥२९॥
नारद उवाच ॥ नातिचित्रमिदंविप्रावसुदेवोबुभुत्सया । कृष्णंमत्वाऽर्भकंयन्नः पृ
च्छतिश्रेयआत्मनः ॥ ३० ॥ संनिकर्षोऽत्रमर्त्यानामनादरणकारणम् । गाङ्गंहित्वाय
थाऽन्याम्भस्तत्रत्योयातिशुद्धये ॥ ३१ ॥ यस्यानुभूतिः कालेनलयोत्पत्त्यादिनाऽस्य
वै । स्वतोऽन्यस्माच्चगुणतोनकुतश्चनरिष्यति॥३२॥तंक्लेशकर्मपरिपाकगुणप्रवाहैर
व्याहतानुभवमीश्वरमद्वितीयम् । प्राणादिभिः स्वविभवैरुपगूढमन्योमन्येतसूर्यमि
वमेघहिमोपरागैः ॥ ३३ ॥ अथोचुर्मुनयोराजन्नाभाष्यानकदुन्दुभिम् । सर्वेषांशृण्व
तां राज्ञांतथैवाच्युतरामयोः ॥ ३४ ॥ कर्मणा कर्मनिर्हार एषसाधुनिरूपितः । यच्छ्र
द्धयायजेद्विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरंमखैः ॥ ३५ ॥ चित्तस्योपशमोऽयंवै कविभिःशास्त्रच
क्षुषा । दर्शितःसुगमोयोगो धर्मश्चात्ममुदावहः ॥ ३६ ॥ अयंस्वस्त्ययनःपन्था द्वि
जातेर्गृहमेधिनः । यच्छ्रद्धयाऽऽप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः ॥ ३७ ॥ वित्तैषणां
यज्ञदानैर्गृहैर्दारसुतैषणाम् । आत्मलोकैषणांदेव कालेनविसृजेद्बुधः ॥ ग्रामेत्यक्तै
षणाःसर्वे ययुर्धीरास्तपोवनम् ॥ ३८ ॥ ऋणैस्त्रिभिर्द्विजोजातो देवर्षिपितृणांप्रभो
यज्ञाध्ययनपुत्रैस्तान्यनिस्तीर्य त्यजन्पतत् ॥ ३९ ॥ त्वंत्वद्यमुक्तोद्वाभ्यां वै ऋषि
पित्रोर्महामते । यज्ञैर्देवर्णमुन्मुच्य निर्ऋणोऽशरणोभव ॥ ४० ॥ वसुदेवभवान्नूनं

देख महायशस्वी वसुदेवजी उनके निकट जाय चरणों पर गिर विनीत भावसे कहनेलगे, २८ ॥
हेऋषियो ! सब देवताओं के निवासरूप आपको नमस्कारहै हेऋषियों आप सुनो कि जिस कर्मसे
मेरे कर्मोंका क्षयहोवे वह मुझसे कहिये ॥ २९ ॥ नारदजीने कहा कि—हेविप्रो ! वसुदेव श्रीकृष्ण
जी को पुत्र जान जो आपने कल्याणके निमित्त हमसे पूछते हैं यह आश्चर्यकी बात नहीं है, ॥
॥ ३० ॥ निकट रहनाही मनुष्य के निरादर का कारण है गंगाके तटपर रहनेवाले मनुष्य गंगा-
जल को छोड़कर शुद्धि के निमित्त दूसरे जलका सेवन करते हैं, ॥ ३१ ॥ इस जगत्की उत्पत्ति,
स्थिति प्रलय द्वारा अथवा काल व स्वतः परतः वा गुणतः किसीप्रकारसे भी श्रीकृष्णजीके ज्ञान
का विनाश नहीं है ॥ ३२ ॥ मनुष्य जैसे सूर्यको बादल राहु हिमसे ढकाहुआ जानते हैं उसही
प्रकार मनुष्य अखण्ड ज्ञानवाले भगवानको क्लेश, कर्म कर्मों के परिपाक गुण प्रवाह और
प्राणादि से ढका जानते हैं ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! अनन्तर मुनियों ने सुननेवाले सब राजाओं
और रामकृष्ण के सामने वसुदेवजी से सम्बोधन करके कहा ॥ ३४ ॥ हे वसुदेव ! यह
साधुओं ने निश्चय किया है कि कर्मोंही से कर्मों का क्षय होता रहता है श्रद्धा पूर्वक यज्ञकर
सर्व यज्ञेश्वर भगवान विष्णुजीकी पूजा करनाही कर्म के बन्धनों से छूटनेका उपाय है ॥ ३५ ॥
पण्डित जनोंने शास्त्ररूप दृष्टिसे चित्तोपशम और मोक्षका दक्ष व क्रमशः अन्तःकरणको शुद्धकरने
वाला सुगम स्वधर्मभी यही दिखाया ॥ ३६ ॥ न्यायसे प्राप्त कियेहुए द्रव्यसे श्रद्धायुक्त भगवान
की आराधना करनाही ब्राह्मण गृहस्थियोंको कल्याणदायक है ॥ ३७ ॥ हे वसुदेव ! ज्ञानीमनुष्य
को यज्ञ और दानसे धनकी इच्छा, गृहादि भोगोंसे स्त्री पुत्रकी इच्छा और कालसे अपने स्वर्गादि
लोककी इच्छाको छोड़ना चाहिये ॥ ३८ ॥ समस्त धीर मनुष्योंको वासना रहितहो ग्राम में वास
कर फिर तपोवन में जाना चाहिये । द्विज देवऋण ऋषिऋण और पितृऋणसे ऋणीहोकर जन्म
ग्रहण करते हैं, किंतु जो यज्ञ, वेदाध्ययन और पुत्रोत्पादनद्वारा उससे उऋण नहीं होते वे पतित
होते हैं ॥ ३९ ॥ हे महामते ! आप तो दोऋणों से मुक्त होगयेहो अब यज्ञद्वारा देवऋणसे मुक्त
हो गृह त्यागी हो ॥ ४० ॥ हे वसुदेव ! निश्चयही आपने परम भक्तिसे भगवान हरिकी पूजाकी

भक्त्यापरमयाहरिम्। जगतामीश्वरंप्रार्थ्य: सपद्मांपुत्रतांगत: ॥ ४१ ॥ श्रीशुकउवा
च। इतितद्वचनंश्रुत्वा वसुदेवोमहामना:। तानृषीनृत्विजोवव्रेमूर्ध्नाऽऽनम्य प्रसाद्य
च ॥ ४२ ॥ तएनमृषयो राजन्वृता धर्मेणधार्मिकम्। तस्मिन्नयाजयन्क्षेत्रे मखैरुत्त-
मकल्पकै: ॥ ४३ ॥ तद्दीक्षायांप्रवृत्तायां वृष्णय:पुष्करस्रज:। स्नाता:सुवाससोरा
जन्राजान: सुष्ठ्वलंकृता: ॥ ४४ ॥ तन्महिष्यश्चमुदिता निष्ककण्ठ्य: सुवासस:।
दीक्षाशालामुपाजग्मुरालिप्त वस्तुपाणय: ॥ ४५ ॥ नेदुर्मृदंगपटहशंखभेर्यानकाद
य:। ननृतुर्नटनर्तक्यस्तुष्टुवु: सूतमागधा:। जगु:सुकण्ठ्योगन्धर्व्य: संगीतंसहभ-
र्तृका: ॥ ४६ ॥ तमभ्यषिंचन्विधिवदक्तमभ्यक्तमृत्विज:। पत्नीभिरष्टादशभि:सो-
मराजमिवोडुभि: ॥ ४७ ॥ ताभिर्दुकूलवलयैर्हारनूपुरकुण्डलै:। स्वलंकृताभिर्विब
भौ दीक्षितोऽजिनसंवृत: ॥ ४८ ॥ तस्यर्त्विजोमहाराज रत्नकौशेयवासस: ॥ स-
सदस्याविरेजुस्ते यथा वृत्रहणोऽध्वरे ॥ ४९ ॥ तदारामश्चकृष्णश्च स्वै:स्वैर्बन्धुभि
रन्वितौ। रेजतु:स्वसुतैर्दारैर्जीवेशौ स्वविभूतिभि: ॥ ५० ॥ ईजेऽनुयज्ञंविधिना
अग्निहोत्रादिलक्षणै:। प्राकृतैर्वैकृतैर्यज्ञैर्द्रव्यज्ञानक्रियेश्वरम् ॥ ५१ ॥ अथर्त्विग्भ्यो
ऽददात्काले यथाम्नातंसदक्षिणा:। स्वलंकृतेभ्योविप्रेभ्यो गोभूकन्यामहाधना: ॥
॥५२॥पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वातेमहर्षय:। सस्नूरामह्रदे विप्रा यजमानपुरस्सरा:
॥ ५३ ॥ स्नातोऽलंकारवासांसि वन्दिभ्योऽदात्तथास्त्रिय:। तत:स्वलंकृतो वर्णा-
न श्वभ्योऽन्नेनपूजयत् ॥ ५४ ॥ बन्धून्सदारान्ससुतान्पारिवर्हेण भूयसा। विदर्भ

है; नहींतो यह दोनों जन किस प्रकार आपके यहां पुत्र रूपसे उत्पन्न होते ॥ ४१ ॥ शुकदेवजी ने कहा कि—मुनियों की इस बातको सुनकर उदार मनवाले वसुदेवजी ने उनको मस्तकसेप्रणाम कर उन्हें प्रसन्नकर ऋत्विज का काम करने को उनका वरण किया ॥ ४२ ॥ हेराजन्! वेसब ऋषि धर्मानुसार वरेजाकर कुरुक्षेत्र में धर्मात्मा वसुदेवजी को उत्तम कल्पयुक्त यज्ञोंसे यजनकराने लगे ॥ ४३ ॥ हे राजन्! वसुदेवजी के यज्ञमें दीक्षित होनेपर यदुवंशी और राजा लोग स्नानकर कमलों की माला व सुंदर वस्त्रों को पहिर वहां आनेलगे ॥ ४४ ॥ उनकी स्त्रियेंभी कण्ठ में आभूषण धारणकर सुंदर वस्त्रों को पहिर हाथ में पूजाकी सामग्रीले आनंदपूर्वक यज्ञशाला में आईं। ॥ ४५ ॥ मृदङ्ग,पटह,शङ्ख,भेरी,ढक्का और दुंदुभी आदि बाजे बजनेलगे; नट और नचैये नाचने,सूत मागध स्तुति करने और सुंदर कण्ठवाली गंधर्विये स्वामियों समेत गाने में प्रवृत्त हुई ॥ ४६ ॥ अनंतर ऋत्विजों ने अठारह स्त्रियों समेत वसुदेव का अञ्जन और उबटनआदि से तारागों समेत चंद्रमाकी समान अभिषेक किया ॥ ४७ ॥ वह रेशमीवस्त्र, कङ्कण,हार,कुण्डल, नूपुर आदि अलंकारों से भलीप्रकार अलंकृत उनसब स्त्रियों समेत दीक्षित और सभासदों से घिर शोभा पानेलगे ॥ ४८ ॥ हे महाराज! उसयज्ञ में सभासदों समेत उनके ऋत्विक् पीत रेशमीवस्त्र धारणकर इंद्र के यज्ञके ऋत्विकों की समान शोभायमानहुए ॥ ४९ ॥ उसही समय प्राणियोंके ईश्वर राम और कृष्ण बंधुओं समेत संयुक्तहो अपनी स्त्री, पुत्र और विभूतियों के साथ शोभा देनेलगे ॥ ५० ॥ प्रत्येक यज्ञमें विधिपूर्वक अग्निहोत्रादिक प्रकृति और विकृति रूप यज्ञों से द्रव्य, मंत्र और कर्मों से भगवान का यजनहोनेलगा ॥ ५१ ॥ अनंतर वसुदेव ने समय पर वेदानुसार भलीप्रकार से अलंकृत ब्राह्मणों की पूजाकर गौ, भूमि, कन्या और बहुतसी द्रव्य दक्षिणा के साथ दान की ॥ ५२ ॥ उन महर्षियों ने पत्नीसमाज और अवभृथ कर्मों आदि को समाप्तकर मान समेत रामकुण्ड में स्नानकिया ॥ ५३ ॥ वसुदेव ने बंदियों को नाना अलंकार, वस्त्र और स्त्रियों ने दानकर अन्नद्वारा कुत्ते आदि सब जीवों को संतुष्ट किया ॥ ५४ ॥

कोसलकुरुकाशिकेकयसृञ्जयान् ॥ ५५ ॥ सदस्यर्त्विक्सुरगणान्नृभूतपितृचारणान् । श्रीनिकेतमनुज्ञाप्य शंसन्तः प्रययुः क्रतुम् ॥ ५६ ॥ धृतराष्ट्रोऽनुजः पार्था भीष्मो द्रोणः पृथा यमौ । नारदो भगवान्व्यासः सुहृत्सम्बन्धिबान्धवाः ॥ ५७ ॥ बन्धून्परिष्वज्य यदून्सौहृदाऽऽक्लिन्नचेतसः । ययुर्विरहकृच्छ्रेण स्वदेशांश्चापरे जनाः ॥ ५८ ॥ नन्दस्तु सह गोपालैर्बृहत्या पूजयाऽर्चितः । कृष्णरामोग्रसेनाद्यैर्न्यवात्सीद्बन्धुवत्सलः ॥ ५९ ॥ वसुदेवोऽञ्जसोत्तीर्य मनोरथमहार्णवम् । सुहृद्वृतः प्रीतमना नन्दमाह करे स्पृशन् ॥ ६० ॥ वसुदेव उवाच । भ्रातरीशकृतः पाशो नृणां यः स्नेहसंज्ञितः । तं दुस्त्यजमहं मन्ये शूराणामपि योगिनाम् ॥ ६१ ॥ अस्मास्वप्रतिकल्पेयं यत्कृताऽज्ञेषु सत्तमैः । मैत्र्यर्पिताऽफला वापि न निवर्तेत कर्हिचित् ॥ ६२ ॥ प्रागकल्पाच्च कुशलं भ्रातर्वो नाचराम हि । अधुना श्रीमदान्धाक्षा न पश्यामः पुरः सतः ॥ ६३ ॥ मा राज्यश्रीरभूत्पुंसः श्रेयस्कामस्य मानद । स्वजनानुत बन्धून्वा न पश्यति ययाऽन्धदृक् ॥ ६४ ॥ श्रीशुक उवाच । एवं सौहृदशैथिल्यचित्त आनकदुन्दुभिः । रुरोद तत्कृतां मैत्रीं स्मरन्नश्रुविलोचनः ॥ ६५ ॥ नन्दस्तु सख्युः प्रियकृत्प्रेम्णा गोविन्दरामयोः । अद्य श्व इति मासांस्त्रीन्यदुभिर्मानितोऽवसत् ॥ ६६ ॥ ततः कामैः पूर्यमाणः सव्रजः सहबान्धवः । परार्ध्याभरणक्षौमनानानर्घ्यपरिच्छदैः ॥ ६७ ॥ वसुदेवोग्रसेनाभ्यां कृष्णोद्धवबलादिभिः । दत्तमादाय पारिबर्हं यापितो यदुभिर्ययौ ॥ ६८ ॥ नन्दो गोपाश्च गोप्यश्च गोविन्दचरणाम्बुजे । मनः क्षिप्तं पुनर्हर्तुमनीशा मथुरां ययुः ॥ ६९ ॥

फिर हाथी, अश्व, रथ आदि सामग्रियों से स्त्रियों समेत बंधुओं की व विदर्भ, कोशल, कुरुकाशी केकय और सृञ्जय आदि की व सभासद, ऋत्विज, देवता, मनुष्य, भूत, पितृ, और चारणों की पूजाकी। व श्रीकृष्णजी की आज्ञाले यज्ञकी प्रशंसा करते २ अपने २ घर गये ॥ ५५—५६ ॥ धृतराष्ट्र, विदुर, अर्जुन आदि, भीष्म, द्रोण, कुंती, नकुल, सहदेव, नारद, भगवान व्यास, सुहृद, सम्बंधी और सबबांधव यदुवंशियों से मिल सुहृदता के कारण अत्यंत दुःखितहृदयहो विरह से कातरहो अपने २ देश को गये और दूसरे जनभी चलेगए ॥ ५७ । ५८ ॥ परंतु बंधुवत्सल श्री नंदजी गोपाओं सहित श्रीकृष्ण, राम और उग्रसेन से बड़ी पूजापाय वहाँ वास करनेलगे ॥५९॥ वसुदेवजी अनायास से मनोरथ रूप महासागर से पारउतर बंधुओं से घिर आनंदित मनहो नंद जी का हाथपकड़कर कहने लगे कि—॥ ६० ॥ हे भ्राता! ईश्वरका कियाहुआ स्नेह नामक.... अत्यंतही दुस्त्यज है; वीरों के बल और योगियों के ज्ञानसे भी उसका छेदननहीं होसकता६१॥ तुम साधुओं के हम अकृतज्ञ हैं—आपने जो हमारे साथ इस मित्रता को स्थापित किया है; वह कभी निष्फल न होगी ॥ ६२ ॥ हेभ्राता! पहिले असमर्थता के कारण हम आपका भला नहीं करसके; इस समयभी सौभाग्यता के मदसे नेत्ररहितहो सन्मुख स्थित आप सरीखे साधुओं को नहीं देखपाते ॥ ६३ ॥ हमानद! जिस राजलक्ष्मी से अंधदृष्टि होकर मनुष्य स्वजन और बंधुओं को नहीं देखता, कल्याण की इच्छावाले मनुष्यों को वह राजलक्ष्मी नहीं प्राप्तहोती ॥ ६४ ॥वसुदेव इसप्रकार मित्रताका स्मरणकर आनंद से शिथिल चित्तहो रोनेलगे॥६५॥ नंदजीभी यदुवंशियों से सन्मानितहो अपने मित्र और राम कृष्णकी प्रसन्नता के निमित्त प्रीतिपूर्वक "आजकल" करके तीन महीने वहां रहे ॥ ६६ ॥ इसके उपरांत महामूल्यके आभूषण, रेशमीवस्त्र व अनेक प्रकारकी सामग्रियों व इच्छितकामनाओं से परिपूर्ण नंदरायजी व्रज व बांधवों को संगले ॥६७॥ वसुदेव, उग्रसेन, श्रीकृष्ण, उद्धव, और बलदेवजी आदिकी दीहुई पहिरावनी को ग्रहणकरयादवों की बड़ी सेना को साथले वहां से चले ॥ ६८ ॥ श्रीनन्द, गोपी और गोपों ने श्रीकृष्णजी के चरणकमलों में मन समर्पण कियाथा,इससमय उन्होने मनको पीछेहटाने में असमर्थहो अतिकष्टसे

वन्धुषुप्रतियातेषु वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ वीक्ष्यप्राषृषमासन्नां ययुर्द्वारवतींपुनः ॥ ॥ ७० ॥ जनेभ्यः कथयाञ्चक्रुर्यदुदेवमहोत्सवम्। यदासीत्तीर्थयात्रायां सुहृत्सन्दर्शनादिकम् ॥ ७१ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

श्रीबादरायणिरुवाच ॥ अथैकदात्मजौप्राप्तौकृतपादाभिवन्दनौ। वसुदेवोऽभिनन्द्याहप्रीत्यासङ्कर्षणाच्युतौ ॥ १ ॥ मुनीनांसवचः श्रुत्वापुत्रयोर्धामसूचकम्। तद्वीर्यैर्जातविश्रम्भः परिभाष्याभ्यभाषत ॥ २ ॥ कृष्णकृष्णमहायोगिन्सङ्कर्षणसनातन। जानेवामस्ययत्साक्षात्प्रधानपुरुषौपरौ ॥ ३ ॥ यत्रयेनयतोयस्ययस्मैयद्यद्यथायदा। स्यादिदंभगवान्साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ४ ॥ एतन्नानाविधंविश्वमात्मसृष्टमधोक्षज। आत्मनाऽनुप्रविश्यात्मन्प्राणोजीवोबिभर्ष्यज ॥ ५ ॥ प्राणादीनांविश्वसृजांशक्तयोयाःपरस्यताः। पारतन्त्र्याद्वैसादृश्याद्द्वयोश्चेष्टैवचेष्टताम् ॥ ६ ॥ कान्तिस्तेजः प्रभासत्ताचन्द्राग्न्यर्कर्क्षविद्युताम्। यत्स्थैर्यंभूभृतांभूमेर्वृत्तिर्गन्धोऽर्थतोभवान् ॥ ७ ॥ तर्पणंप्राणनमपांदेवत्वंताश्चतद्रसः। ओजः सहोबलंचेष्टागतिर्वायोस्तवेश्वर ॥ ८ ॥ दिशांत्वमवकाशोऽसिदिशःखंस्फोटआश्रयः। नादोवर्णस्त्वमोङ्कारआकृतीनांपृथक्कृतिः ॥ ९ ॥ इन्द्रियंत्विन्द्रियाणांत्वंदेवाश्चतदनुग्रहः। अवबोधोभवान्बुद्धेर्जीवस्यानुस्मृतिः सती ॥ १० ॥ भूतानामसिभूतादिरिन्द्रियाणांचतैजसः। वैकारिकोविकल्पानांप्रधानमनुशायिनाम् ॥ ११ ॥ नश्वरेष्विहभावेषुतद

मथुराको गमन किया ॥ ६९ ॥ हेराजन्! बन्धुओं के चलेजाने व श्रीकृष्णजी को इष्टदेव माननेवाले यादवों ने वर्षा को निकट आया देख फिर द्वारका को गमन किया ॥ ७० ॥ वहां उन्होंने पहुंचकर मनुष्यों से तीर्थमें सुहृदों के दर्शन आदि और वसुदेवके यज्ञमहोत्सवका वर्णनकिया ॥ ७१ ॥

इतिश्री मद्भा० महापुराणेदशमस्कंधेउ० सरलाभाषाटीकायांचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेमहाराज! वसुदेवजी ने मुनियों के मुख से राम कृष्ण के प्रभाव का वृत्तांत सुनकर उन पर विश्वास कियाथा। एक दिन दोनों भाइयों ने उनके निकट आयकर चरणों की वन्दनाकी वसुदेवजी ने उनका प्रीतिपूर्वक सत्कार करके कहा ॥ १। २ ॥ हेकृष्ण! हेमहायोगिन्कृष्ण! हेसनातन सङ्कर्षण! मैं तुम दोनों जनों को इस विश्व का साक्षात कारणरूप प्रधान पुरुष और उनका भी ईश्वरमानताहूं ॥ ३ ॥ जिसमें, जिससे, जिसके कारण जिसपर जिसका जिस प्रकार से जो होताहै तुम उन सबके साक्षात् प्रधान पुरुषहो, ॥ ४ ॥ हेभगवान! हेअधोक्षज! हे आत्मन्! आप जन्महीन होकर नानाप्रकारके विश्वमें आत्माद्वारा प्रवेशकर क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति रूपहो उसका पोषण करतेहो ॥ ५ ॥ क्रियाशक्ति आदि जो शक्तियें विश्वकी कारणहैं वे सब ऐश्वरिकहैं क्योंकि अन्य पदार्थ परतन्त्र व जडहैं निश्चयही ईश्वरकी सत्तासे उनका कार्य होता रहता है, ॥ ६ ॥ तुमही चन्द्रमा की कांति अग्निका तेज सूर्यकी ज्योति नक्षत्रोंकी प्रभा, बिजली की चमक, पर्वतों की स्थिरता और पृथ्वी की गन्धहो ॥ ७ ॥ तुमही जलकी तृप्ति करनेकी शक्ति जिलानेकी शक्ति तुमही जल और जलके रसहो। हेईश्वर! तुम वायुके इन्द्रियबल मनोबल और देहबलहो ॥ ८ ॥ तुम सब दिशाओंको अवकाश दिशाएं आकाश और उसके आश्रय शब्द तन्मात्र नाद, ओंकार, वर्ण और जिससे सब पदार्थों का नामकरण होताहै वह भी तुमहीहो। तुमही सब इन्द्रिय देवता और उनकी अनुष्ठान शक्तिहो तुमही बुद्धिकी निश्चयशक्ति और अंतःकरणकी अनुसन्धान शक्तिहो ॥ ९—१० ॥ तुमही प्राणियोंके के कारण तामस अहंकार इन्द्रियोंके कारण राजस अहंकार देवताओंके कारण सात्विक अहंकार और जीवोंके संसारके कारण प्र-

सित्वमनश्वरम् । यथाद्रव्यविकारेषुद्रव्यमात्रंनिरूपितम् ॥ १२ ॥ सत्त्वंरजस्तमइ
तिगुणास्तद्वृत्तयश्चयाः । त्वय्यद्धाब्रह्मणिपरेकल्पितायोगमायया ॥ १३ ॥ तस्मान्न
सन्त्यमीभावायर्हित्वयिविकल्पिताः।त्वंचामीषुविकारेषुह्यन्यदाऽव्यावहारिकः १४॥
गुणप्रवाहएतस्मिन्नबुधास्त्वखिलात्मनः । गतिं सूक्ष्मामबोधेन संसरन्तीहकर्मभिः
॥ १५ ॥ यदृच्छयानृतांप्राप्यसुकल्पामिहदुर्लभाम् । स्वार्थेप्रमत्तस्यवयोगतंत्वन्मा
ययेश्वर ॥१६॥ असावहंममैवैतेदेहेचास्यान्वयादिषु । स्नेहपाशैर्निबध्नातिभगवा
न्सर्वमिदंजगत् ॥ १७ ॥युवांननः सुतौसाक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरौ । भूभारक्षत्रक्षपण
अवतीर्णौतथात्थह ॥ १८ ॥ तत्तेगतोऽस्म्यरणमद्यपदारविन्दमापन्नसंसृतिभयापह
मार्तबन्धो । एतावताऽलमलमिन्द्रियलालसेन मर्त्यात्मदृक् त्वयिपरेयदपत्यबुद्धिः
॥ १९ ॥ सूतीगृहेननुजगादभवानजोनौसंजज्ञइत्यनुयुगंनिजधर्मगुप्त्यै । नानातनू
र्गगनवद्विदधज्जहासिकोवेदभूम्नउरुगायविभूतिमायाम् ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच॥
आकर्ण्येत्थंपितुर्वाक्यंभगवान्सात्वतर्षभः । प्रत्याहप्रश्रयाऽऽनम्रः प्रहसञ्श्लक्ष्णया
गिरा ॥ २१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वचोवः समवेतार्थंतातैतदुपमन्महे । यन्नः पुत्रा
न्समुद्दिश्यतत्त्वग्रामउदाहृतः ॥ २२ ॥ अहंयूयमसावार्यइमेचद्वारकौकसः । सर्वेऽ
प्येवंयदुश्रेष्ठविमृग्याः सचराचरम् ॥ २३ ॥ आत्माह्येकः स्वयंज्योतिर्नित्योऽन्यो
निर्गुणोगुणैः । आत्मसृष्टैस्तत्कृतेषुभूतेषुबहुधेयते ॥ २४ ॥ खंवायुर्ज्योतिरापोभूस्त

त्कृतिहा ॥ ११ ॥ जैसे नाशवान घट कुण्डलादि पदार्थोंमें मिट्टी और सुवर्ण आदि पदार्थ अविनाशी हैं इसीप्रकार ऊपर कहे सब पदार्थोंमें तुमही केवल अविनाशी नित्यपदार्थहो ॥ १२ ॥ सत्त्व, रज और तम और उनकी वृत्तियें अर्थात् महदादि परिणाम यह सब तुमपरब्रह्मकी योगमायामें कल्पित हुई हैं ॥ १३ ॥ अतएव यह सब भावविकार तुममें कुछ नहीं हैं । जब यह सब तुमसे कल्पितहैं तब तुमही इनके अनुगतहो, अन्यसमय में तुम निर्विकल्पहो ॥ १४ ॥ इस गुण प्रवाहसे भगवान प्रपंच हीनकी गति न जानकर देहाभिमान के कारण कियेहुए कर्मोंसे, जीव इससंसार में प्रवृत्त होताहै ॥ १५ ॥ हेईश्वर ! इच्छानुसार दुर्लभमनुष्य जन्म और अतिसुन्दर इन्द्रियों को पाय जो मनुष्य स्वार्थमें प्रमत्त होजाता है तुम्हारी मायासे ढककर उसकी आयु व्यर्थ चली जाती है ॥ १६ ॥ तुम इस समस्त जगतको देहसे अथवा देहके वंशादिसे 'मैं' और 'मेरा' इसप्रकार के स्नेह पाश से बांधते हो ॥ १७ ॥ तुम दोनों जन मेरे पुत्र नहीं हो तुम साक्षात् प्रकृति और पुरुष के ईश्वर हो, तुम पृथ्वी के भाररूप क्षत्रियोंके नाश करने के निमित्त अवतीर्ण हुए हो ॥ १८ ॥ हे आर्तबंधो ! शरणागतोंके संसार रूपी भयको दूर करने वाले आपके चरण कमलोंकी शरण आया हूं । इन्द्रियें तृष्णा द्वारा जिस मर्त्य शरीरको आत्मरूप से देखती हैं और आप परमेश्वरोंमें जो पुत्र बुद्धि हुई है इतनीही विषयलालसा बहुत है ॥ १९ ॥ तुम प्रति जन्ममें ही सूतिकागार में मुझे सम्बोधन करके कहते हो कि 'मैं अज' ईश्वर हूं अपने धर्मकी रक्षा करने के निमित्तही जन्मग्रहण किया है । आकाशकी समान तुम नाना शरीर धारण करके त्याग करते हो । हे उरुगाय ! हे सर्वगत ! तुम्हारी विभूति रूपी मायाको कौन जान सकता है ॥ २० ॥ शुकदेवजी ने कहा—हे राजन् ! भगवान ने पिता की इन बातों को सुनकर विनयसे नम्रहो सुंदर वचनों से कहा ॥ २१ ॥ हेपिता ! हम आपके पुत्र हैं जो आपने हमारे विषय में तत्त्वसमूहका निरूपण किया उसको मैं यथार्थ मानकर स्वीकार करताहूं ॥ २२ ॥ हे यदुश्रेष्ठ ! आप, आर्य बलदेव, ये द्वारकावासी और समस्त चराचर जगत को ब्रह्मरूपसेही विचारना चाहिये । एक, स्वयं प्रकाशमान, नित्य, अनन्य और निर्गुण ब्रह्म आत्मसृष्ट गुणों से प्राणियों में नानाप्रकार से प्रतीत होता है । आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी उपाधि अनुसार घटादिकपदार्थों में नाना

रकृतेषुयथाशयम्। आविरितरोऽल्पभूयेकोनानात्वंयात्यसावपि ॥ २५ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ एवंभगवताराजन्वसुदेवउदाहृतः। श्रुत्वाविनष्टनानाधीस्तूष्णींप्रीतमनाअभूत् ॥ २६ ॥ अथतत्रकुरुश्रेष्ठदेवकीसर्वदेवता। श्रुत्वाऽऽनीतंगुरोः पुत्रमात्मजाभ्यांसुविस्मिता ॥ २७ ॥ कृष्णरामौसमाश्राव्य पुत्रान्कंसविहिंसितान्। स्मरन्ती कृपणंप्राह वैक्लव्यादश्रुलोचना ॥ २८ ॥ देवक्युवाच ॥ राम रामाप्रमेयात्मन्कृष्ण योगेश्वरेश्वर। वेदाहंवां विश्वसृजामीश्वरावादिपूरुषौ ॥ २९ ॥ कालविध्वस्तसत्त्वानां राज्ञामुच्छास्त्रवर्तिनाम्। भूमेर्भारायमाणानामवतीर्णौ किलाद्यमे ॥३०॥ यस्यांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः ॥ भवन्तिकिलविश्वात्मंस्तं त्वाऽद्याहं गतिंगता ॥ ३१ ॥ चिरान्मृतसुतादाने गुरुणाकालचोदितौ। आनिन्यथुः पितृस्थानाद्गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥ ३२ ॥ तथामेकुरुतंकामं युवांयोगेश्वरेश्वरौ। भोजराजहतान्पुत्रान्कामये द्रष्टुमाहृतान् ॥ ३३ ॥ ऋषिरुवाच। एवंसंचोदितोमात्रा रामः कृष्णश्चभारत। सुतलं संविविशतुर्योगमायामुपाश्रितौ ॥ ३४ ॥ तस्मिन्प्रविष्टावुपलभ्य दैत्यराड्विश्वात्मदैवं सुतरांतथात्मनः॥ तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयःसद्यःसमुत्थायननामसान्वयः॥३५॥तयोःसमानीयवरासनंमुदानिविष्टयोस्तत्रमहात्मनोस्तयोः। दधारपादाववनिज्यतज्जलंसवृन्द आब्रह्मपुनद्यदम्बुह ॥ ३६ ॥ समर्हयामाससतौविभूतिभिर्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः। ताम्बूलदीपामृतभक्षणादिभिः स्वगोत्रवित्तात्मसमर्पणेनच ॥ ३७ ॥ सइन्द्रसेनोभगवत्पदाम्बुजंबिभ्रन्मुहुः प्रेमविभिन्नयाधिया। उवाचहाऽऽनन्दजलाकुलेक्षणःप्रहृष्टरोमानृपगद्गदाक्षरम् ३८॥

प्रकार से प्रतीत होते हैं और उसी से आविर्भाव, तिरोभाव, अल्पता, बहुलता और विविधप्रकारता प्रतीत होती है इसीप्रकार आत्माको भी जानो ॥ २३—२५ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा–हेराजन्! भगवान की ऐसी बातों को सुन वसुदेवजी की भेदबुद्धि नष्टहोगई; वह प्रसन्न चित्तहो चुपहोगए ॥ २६ ॥ हेकुरुश्रेष्ठ! 'राम कृष्ण मरे गुरुपुत्र को लेआए हैं' इस वृत्तांतकोसुन देवकीको विस्मय हुआथा, ॥ २७ ॥ इस समय उसने कंससे मारेगये पुत्रों का स्मरण कर दुःखित और विकलहो आंसू बहाते २ राम कृष्णसे कहा ॥ २८ ॥ हे अप्रमेयात्मन् राम! हे योगेश्वरोंकेईश्वर कृष्ण! मैं जानतीहूं कि तुम दोनों जन लोकपालोंके ईश्वर और आदिपुरुषहो ॥ २९ ॥ हेआद्य! काल के प्रभावसे सत्वगुण का नाश होनेपर शास्त्र की मर्यादा को उल्लंघनेवाले पृथ्वी के भारभूत राजाओं के मारने के निमित्तही तुम मेरे गर्भ में अवतीर्णहुएहो ॥ ३० ॥ हे विश्वात्मन्! हेआद्य! जिस के अंश के अंशरूप माया के गुणों के लेशसे जगतकी उत्पत्ती, स्थिति, संहार होता है उनआपके मैं शरण आईहूं ॥ ३१ ॥ हे योगेश्वरेश्वर! चिरकाल से मरेहुए पुत्र को लादेने के लिये गुरूने आज्ञा की तबतुमने पितृस्थान से गुरू को गुरुदक्षिणा लाकरदीथी। उसी प्रकार हमारीभी इच्छा पूर्ण करो; कंससे मारेहुए पुत्रों को लाओ, मैं उनके देखन की इच्छा करतीहूं ॥ ३२—३३ ॥ ऋषि ने कहा कि—हेभारत! राम कृष्ण ने इसप्रकार माता से आज्ञा पाय योगमाया का अवलम्बनकर सुतल में प्रवेश किया ॥ ३४ ॥ विश्व के विशेषकर अपने इष्टदेवता उन दोनों जनों को वहां पर आया देख उनके दर्शनों से प्रसन्नचित्तहो दैत्यराजबलिका चित्त अभिषिक्त होगया। उसने तत्कालही वंश समेत उठकर प्रणाम किया ॥ ३५ ॥ और आनन्द से उनको श्रेष्ठआसन लाकरदिया अनंतर वे दोनों महात्मा उसपर बैठे। दैत्यराज ने उनकेदोनों चरणों को धोय उस जलको सपरिवार मस्तकपर धारण किया ॥ ३६ ॥ और महाविभूति, महामूल्य के वस्त्र और आभूषण, चंदन, माला, धूप, दीप, चित्त और आत्म समर्पण से उनकीपूजा की ॥ ३७ ॥ हेराजन्! उस बलि ने प्रेमसे विह्वलचित्तहो भगवान के चरण कमलों को हृदय में

बलिरुवाच ॥ नमोऽनन्तायबृहतेनमःकृष्णायवेधसे । सांख्ययोगवितानायब्रह्मणे परमात्मने ॥ ३९ ॥ दर्शनंवांहिभूतानांदुष्प्रापंचाप्यदुर्लभम् । रजस्तमःस्वभावा- नांयन्नःप्राप्तोयदृच्छया ॥ ४० ॥ दैत्यदानवगन्धर्वाःसिद्धविद्याध्रचारणाः । यक्ष- रक्षःपिशाचाश्चभूतप्रमथनायकाः ॥ ४१ ॥ विशुद्धसत्त्वधाम्न्यद्धात्वयिशास्त्र- शरीरिणि । नित्यंनिबद्धवैरास्तेवयंचान्येचतादृशाः ॥ ४२ ॥ केचनोद्बद्धवैरेणभ- क्त्याकेचनकामतः । नतथासत्त्वसंरब्धाःसन्निकृष्टाःसुरादयः ॥ ४३ ॥ इदमित्थ- मितिप्रायस्तवयोगेश्वरेश्वर । नविदन्त्यपियोगेशायोगमायांकुतोवयम् ॥ ४४ ॥ तन्नःप्रसीद निरपेक्षविमृग्ययुष्मत्पादारविन्दधिषणान्यगृहान्धकूपात् । निष्क्रम्यवि श्वशरणांघ्र्युपलब्धवृत्तिःशान्तो यथैकउतसर्वसखैश्चरामि ॥ ४५ ॥ शाध्यस्मानी- शितव्येश निष्पापान्कुरुनः प्रभो । पुमान्यच्छ्रद्धया तिष्ठंश्चोदनाया विमुच्यते ॥ ४६ ॥ श्रीभगवानुवाच । आसन्मरीचेःषट्पुत्रा ऊर्णायांप्रथमेऽन्तरं । देवाःकंजहसुर्वीक्ष्य सुतांयभितुमुद्यतम् ॥ ४७ ॥ तेनासुरीमगन्योनिमधुनाऽवद्यकर्मणा । हिरण्यकशि- पोर्जाता नीतास्ते योगमायया ॥ ४८ ॥ देवक्याउदरे जाता राजन्कंसविहिंसिताः सातांशोचत्यात्मजान्स्वांस्त इमेऽध्यासतेऽन्तिके ॥ ४९ ॥ इतएतान्प्रणेष्यामो मातृ शोकापनुत्तये । ततःशापाद्विनिर्मुक्ता लोकंयास्यन्तिविज्वराः ॥ ५० ॥ स्मरोद्गीथः परिष्वङ्गः पतंगःक्षुद्रभृद्घृणी । षडिमेमत्प्रसादेन पुनर्यास्यन्तिसद्गतिम् ॥ ५१ ॥

धारण किया । उसका शरीर रोमांचित होगया, और नेत्रों से आनन्दाश्रु बहनेलगे ॥ ३८ ॥ उस ने गद्गद् वाक्यों से कहा कि–हेमहत् अनंत ! विधाताकृष्ण ! सांख्य और योगके विस्तृतकारण परमात्मा आप को नमस्कार है ॥ ३९ ॥ हेभगवान् ! आप दोनों पुरुषों के दर्शन प्राणियों को दुर्लभ और सुलभभीहैं; क्योंकि रज तम प्रकृतिवाले हमको आपके दर्शन यदृच्छा से हुएहैं ॥ ४० ॥ अहो! दैत्य, दानव, गधर्व, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत, प्रथम, नायक ॥ ४१ ॥ येसब साक्षात् विशुद्ध, सत्व के धाम, शास्त्र शरीर आप से शत्रुता रखते हैं; मैंभी उन्हीं के तुल्यहूं ॥ ४२ ॥ कोई २ दैत्य प्रचण्ड वैरभावसे और गोपियें काम के प्रभाव से जैसे आप को प्राप्त हुई हैं, शुद्ध सत्व देवता भी वैसे आपको नहीं प्राप्त होसकते ॥ ४३ ॥ हे योगेश्वरों के ईश्वर ! योग के जाननेवाले भी जब आपकी योगमाया के प्रभावको भली प्रकार से नहीं जानसकते तब हम कहांरहे ॥ ४४ ॥ अतएव आप हमारे ऊपर प्रसन्नहो। आपके चरणारविंद निष्काम मुनियों के परम आश्रय हैं, गृहादि दूसरे पदार्थ सबही अन्धकूप हैं । उस अन्धकूप से निकल, वृक्षके नीचे पड़ेहुए फलोंको खाय, शांतहो अकेले अथवा सब प्राणियों के मित्रबड़े मनुष्यों के साथ विचरण करूं ॥ ४५ ॥ हे सर्व प्राणियों के ईश्वर ! हमको शिक्षादो; हे प्रभो ! हमें निष्पापकरो; आपकी आज्ञाका आश्रयकर म- नुष्य नाना प्रकार के दुःखों से छूटजाता है ॥ ४६ ॥ भगवान ने कहाकि–प्रथम स्वायम्भुव म- न्वतरमें ऊर्णाके गर्भमें मरीचिके छहपुत्र उत्पन्न हुएथे। देव सदृश उन ऋषिपुत्रों ने ब्रह्माको अपनी पुत्रीपर मैथुनके निमित्त उद्युक्त हुआ देख उनका उपहास किया ॥ ४७ ॥ उसही पाप कर्मके कारण वे तत्कालही आसुरी योनिको प्राप्तहो हिरण्य कशिपु के वीर्य से उत्पन्न हुए । फिर वे योगमायासे देवकी के गर्भसे उत्पन्न हुए ॥ ४८ ॥ राजन् ! वेही कंसके हाथसे मारेगये । देवी देवकी उनको अपनापुत्र जानकर शोक करती है । इस समय वे तुम्हारे निकट हैं ॥ ४९ ॥ माताके शोक दूर करने के निमित्त इस स्थान से उनको लियेजाता हूं तदनंतर वे शापमुक्त और पाप रहितहो देव लोकको जावेंगे ॥ ५० ॥ फिर स्मर, उद्गीथ, परिष्वंग, पतंग, क्षुद्रभृत और घृणिये छहों ऋषि-

इत्युक्त्वातान्समादायद्दरुप्रसंगेन पूजितौ । पुनर्द्वारवतीमेत्य मातुः पुत्रानयच्छताम्
॥ ५२ ॥ तान्दृष्ट्वाबालकान्देवी पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी । परिष्वज्यांकमारोप्य मूर्ध्न्य-
जिघ्रदभीक्ष्णशः ॥ ५३ ॥ अपाययत्स्तनंप्रीता सुतस्पर्शपरिप्लुता । मोहितामाय-
या विष्णोर्यया सृष्टिःप्रवर्तते ॥ ५४ ॥ पीत्वाऽमृतंपयस्तस्याः पीतशेषं गदाभृतः ॥
नारायणांगसंस्पर्शप्रतिलब्धात्मदर्शनाः ॥ ५५ ॥ तेनमस्कृत्यगोविन्दं देवकींपित
रंबलम् । मिषतांसर्वभूतानां ययुर्धामदिवौकसाम् ॥ ५६ ॥ तंदृष्ट्वादेवकीदेवीमृ
तागमननिर्गमम् । मेनेसुविस्मितामायां कृष्णस्यरचितांनृप ॥ ५७ ॥ एवंविधान्य-
द्भुतानि कृष्णस्य परमात्मनः । वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य सन्त्यनन्तानिभारत ॥ ५८ ॥
सूतउवाच । यइदमनुशृणोतिश्रावयेद्वा मुरारेश्चरितममृतकीर्तेर्वर्णितं व्यासपुत्रैः ॥
जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्णपूरं भगवतिकृतचित्तो यातितत्क्षेमधाम ॥ ५९ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

राजोवाच ॥ ब्रह्मन्वेदितुमिच्छामः स्वसारंरामकृष्णयोः । यथोपयेमेविजयो
याममासीत्पितामही ॥ १॥ श्रीशुक उवाच ॥ अर्जुनस्तीर्थयात्रायांपर्यटन्नवनींप्रभुः
। गतः प्रभासमशृणोन्मातुलेयींसआत्मनः ॥ २ ॥ दुर्योधनायरामस्तांदास्यतीतिन
चापरे । तल्लिप्सुः सयतिर्भूत्वात्रिदण्डीद्वारकामगात् ॥ ३ ॥ तत्रैववार्षिकान्मासा
नवात्सीत्स्वार्थसाधकः । पौरैः सभाजितोऽभीक्ष्णरामेणाऽजानताचसः ॥ ४ ॥ ए
कदागृहमानीयआतिथ्येननिमन्त्र्यतम् । श्रद्धयोपहृतंभैक्ष्यंबलेनबुभुजेकिल ॥ ५ ॥

कुमार मेरीकृपा से मोक्षको पावेंगे ॥ ५१ ॥ यह कह श्रीकृष्णजी उनको ले और बलिसे पूजितहो फिर द्वारका में आये। वहां पुत्रोंको माताके अर्पण किया ॥ ५२ ॥ उन बालकोंको देख पुत्र स्नेह से देवकी के स्तनों से दूध झरनेलगा । वह पुत्रोंसे आलिंगनकर उनको गोदमें ले बारबार उनका मस्तक सूंघनेलगी॥५३॥ विश्वकी सृष्टिको प्रवृत्त करनेवाली भगवानकी मायासे मोहित पुत्रहो व स्पर्श के आनंद में प्रसन्नहो देवकीने उनको स्तनपान कराया ॥ ५४ ॥ श्रीकृष्णजी के पानकरने से जोशेष रहाथा उसअमृत दुग्धको पीकर और नारायण के अंगस्पर्श से उनको आत्मज्ञान प्राप्त हुआ ॥ ५५ ॥ वे श्रीकृष्णजी, देवकी, पिता और बलदेवजीको प्रणामकर देखने वालोंके सामने ही आकाश मार्गमें देव लोकको चलेगये ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! मरे पुत्रोंका आना और जाना देखकर देवकीको अत्यंत आश्चर्य हुआ और जानलिया कि यह सब भगवान की रचीहुई माया है ॥ ५७ ॥ हे भारत ! अनंत पराक्रम वाले श्रीकृष्णजी के ऐसे अनेकों पराक्रम के कार्य हैं ॥५८॥ सूतने कहाकि--पूजनीय व्यासजी के पुत्र से वर्णित जगत के पाप नाशक और भक्तों के कानों के आभूषण रूप अमृत कीर्ति श्रीकृष्णजी के इस अद्भुत कार्यको एकाग्र चित्तहो सुने व सुनावे वह भगवान में चित्तलगाय उनके मंगलमय धाम में जासकता है ॥ ५९ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेउ०सरलाभाषाटीकायांपंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

राजाने कहा कि—हे ब्रह्मन् ! जो मेरी दादी थी उस रामकृष्णकी बहिन सुभद्रासे जैसे अर्जुन ने विवाह किया उसके सुनने की मेरी इच्छा है ॥१॥ शुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! अर्जुनने तीर्थ यात्राके समय पृथिवी पर भ्रमण करते २ प्रभास में जाकर सुना कि अपने मामाकी पुत्रीको बलरामजी दुर्योधनको देंगे । अर्जुन उस कन्या के लेने की इच्छा से त्रिदंडी सन्यासीका रूप धर द्वारका में आये ॥ २—३ ॥ पुरवासी और बलदेवजी भी उनकोन पहिचान सके । अर्जुन उनसे पूजित हो कन्या पानेकी इच्छा से वर्षा के चार महीने वहां रहे ॥ ४ ॥ एक दिन बलदेवजी ने उनका निमंत्रण कर घरलाय श्रद्धा पूर्वक उनको भोजन कराया ॥ ५ ॥

सोऽपश्यत्तत्र महतीं कन्यां वीरमनोहराम् । प्रीत्युत्फुल्लेक्षणस्तस्यां भावक्षुब्धं मनो दधे
॥ ६ ॥ सापि तं चकमे वीक्ष्य नारीणां हृदयङ्गमम् । हसन्ती व्रीडितापाङ्गी तन्न्यस्तहृदये
क्षणा ॥ ७ ॥ तां परं समनुध्यायन्नन्तरं प्रेप्सुरर्जुनः । न लेभे शं भ्रमच्चित्तः कामेनाति
बलीयसा ॥ ८ ॥ महत्यां देवयात्रायां रथस्थां दुर्गनिर्गताम् ॥ जहारानुमतः पित्रोः
कृष्णस्य च महारथः ॥ ९ ॥ रथस्थो धनुरादाय शूरांश्चाऽऽरुन्धतो भटान् । विद्राव्य
क्रोशतां स्वानां स्वभागं मृगराडिव ॥ १० ॥ तच्छ्रुत्वा क्षुभितो रामः पर्वणीव महार्ण-
वः । गृहीतपादः कृष्णेन सुहृद्भिश्चान्वशाम्यत ॥ ११ ॥ प्राहिणोत्पारिबर्हाणि वर-
वध्वोर्मुदा बलः । महाधनोपस्करेभरथाश्वनरयोषितः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
कृष्णस्यासीद्द्विजश्रेष्ठः श्रुतदेव इति श्रुतः । कृष्णैकभक्त्या पूर्णार्थः शान्तः कविर-
लम्पटः ॥१३॥ स उवास विदेहेषु मिथिलायां गृहाश्रमी । अनीहयागताहार्यनिर्वर्ति
तनिजक्रियः ॥ १४ ॥ यात्रामात्रं त्वहरहर्दैवादुपनमत्युत । नाधिकं तावता तुष्टः क्रि-
याश्चक्रे यथोचिताः ॥ १५ ॥ तथा तद्राष्ट्रपालोऽङ्ग बहुलाश्व इति श्रुतः । मैथिलो नि-
रहंमान उभावप्यच्युतप्रियौ ॥ १६ ॥ तयोः प्रसन्नो भगवान्दारुकेणाहृतं रथम् । आ
रुह्य साकं मुनिभिर्विदेहान्प्रययौ प्रभुः ॥१७॥ नारदो वामदेवोऽत्रिः कृष्णो रामोऽसि
तोऽरुणिः । अहं बृहस्पतिः कण्वो मैत्रेयश्च्यवनादयः ॥ १८ ॥ तत्र तत्र तमायान्तं पौ-
रा जानपदा नृप । उपतस्थुः सार्घहस्ता ग्रहैः सूर्यमिवोदितम् ॥ १९ ॥ आनर्तधन्वकु-

---

उसी समय धीरपुरुषोंके मनके हरने वाली सुंदर मुख वाली सुभद्रा उनकी दृष्टिगोचर हुई उनके नेत्र आनंद से प्रफुल्लित होगये और रतिकी कामना से क्षुभित हुआ मन उसमें लग गया ॥ ६ ॥ वह कन्याकी स्त्रियों के मनको मोहने वाले अर्जुन को चाह मन २ में हसने और लज्जित भावसे तिरछा निहारनेलगी तथा उन्हींमें मन और हृदयको लगारक्खा ॥७॥ सुभद्राकी रात दिन चिंता कर कामसे अर्जुनका चित क्षीणहोनेलगा ; अतएव वह सुखी न रह सुभद्राके हरनेका अवसर ढूंढनेलगे ॥ ८ ॥ इतनेमें एकदिन सुभद्रा पिता, माता और श्रीकृष्णजीकी आज्ञापाय देवदर्शनके निमित्त रथपर बैठ दुर्गसे बाहर निकली, अर्जुनने धनुषले रक्षक वीर सैनिकोंका दमनकर शृगालों के बीचसे भागलेनेवाले सिंहकी समान कोलाहल करतेहुए सम्बन्धियोंके बीचमेंसे उसका हरण किया ॥ ९ । १० ॥ राम यह वृत्तान्त सुनकर पूर्नोंके दिनके महासागरकी समान क्षुभितहुए परन्तु श्रीकृष्णजी व दूसरे बंधुओंके पैरोंपर पड़नेसे शान्तहोगये ॥ ११ ॥ बलदेवजीने आनन्दित हो दूलह, दुलहनको महामूल्य की सामग्री, हाथी, रथ, घोड़े और दासदासी दहेजमें भेजे ॥१२॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–महाराज ! श्रुतदेव नामक एक विख्यात श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रीकृष्णजी का अनन्य भक्त था । श्रीकृष्ण जी की ऐकान्तिकी भक्तिसे उसके सब अभिप्राय पूर्ण होते थे वह शांत, पण्डित और लोभ रहित था ॥ १३ ॥ वह मिथिला पुरीमें रहता था दैवेच्छा से जोउसको प्राप्तहोता अनुदेव उसीसे अपने कार्यका निर्वाह करता ॥ १४ ॥ जिससे उसका कार्य पूराहोजावे उतना उसके निकट उपस्थित होजाता अधिक न प्राप्तहोता परन्तु वह उसीसे संतुष्ट रहकरअपना काम करलेता ॥ १५ ॥ हे राजन् ! मैथिल वंशमें उत्पन्न हुआ निरहंकारी बहुलाश्व उस समय वहांका राजा था । श्रुत देवकी समान वह भी श्रीकृष्णजीका अत्यंत भक्तथा ॥ १६॥ उन दोनों जनोंके ऊपर प्रसन्नहो प्रभुभगवान दारुक के लायेहुए रथपर बैठ मुनियों समेत विदेह देशको चले ॥ १७ ॥ नारद, वामदेव, अत्रि, वेदव्यासजी, परशुरामजी असित, अरुणि, बृहस्पति, कंठ, मैत्रेय और च्यवन आदि मुनि और हम उनके संगथे ॥ १८ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णजी जिस २ देशमें जानेलगे उस २ देशके पुरवासी और नगर वासी हाथ में अर्घ्य लेले ग्रहों समेत उदय हुए सूर्य

वर्त्ताणलकक्कुमत्स्यपाञ्चालकुन्तिमधुकेकयकोशलार्णाः । अन्ये च तन्मुखसरोजमु-
दारहासस्निग्धेक्षणं नृपपपुर्दृशिभिर्नृनार्यः ॥ २० ॥ तेभ्यः स्ववीक्षणविनष्टतमिस्रदृ-
ग्भ्यः क्षेमं त्रिलोकगुरुरर्थदृशं च यच्छन् । शृण्वन्दिगन्तधवलं स्वयशोऽशुभघ्नं गी-
तं सुरैर्नृभिरगाच्छनकैर्विदेहान् ॥ २१ ॥ तेऽच्युतं प्राप्तमाकर्ण्य पौरा जानपदा नृप ॥
अभीयुर्मुदितास्तस्मै गृहीतार्हणपाणयः ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा त उत्तमश्लोकं प्रीत्युत्फुल्ला-
ननाशयाः । कैर्धृताञ्जलिभिर्नेमुः श्रुतपूर्वांस्तथा मुनीन् ॥ २३ ॥ स्वानुग्रहाय संप्राप्तं
मन्वानौ तं जगद्गुरुम् । मैथिलः श्रुतदेवश्च पादयोः पेततुः प्रभोः ॥ २४ ॥ न्यमन्त्रये-
तां दाशार्हमातिथ्येन सह द्विजैः । मैथिलः श्रुतदेवश्च युगपत्संहताञ्जली ॥२५॥ भ-
गवांस्तदभिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्षया । उभयोराविशद्गेहमुभाभ्यां तदलक्षितः ॥
॥ २६ ॥ श्रोतुमप्यसतां दूरान् जनकः स्वगृहागतान् । आनीतेष्वासनाग्र्येषु सुखासी-
नान्महामनाः ॥ २७ ॥ प्रवृद्धभक्त्या उद्धर्षहृदयास्राविलेक्षणः । नत्वा तदङ्घ्रीन्प्रक्षा-
ल्य तदपो लोकपावनीः ॥ २८ ॥ सकुटुम्बो वहन्मूर्ध्ना पूजयांचक्र ईश्वरान् । गन्धमा-
ल्याम्बराकल्पधूपदीपार्घ्यगोवृषैः ॥ २९ ॥ वाचा मधुरया प्रीणन्निदमाहान्नतर्पितान् ।
पादावङ्कगतौ विष्णोः संस्पृशञ्छनकैर्मुदा ॥ ३० ॥ राजोवाच ॥ भवान्हि सर्वभूता-
नामात्मा साक्षी स्वदृग्विभो । अथ नस्त्वत्पदाम्भोजं स्मरतां दर्शनं गतः ॥३१॥ स्व

की समान उनके सम्मुख आनेलगे ॥ १९ ॥ हे नरपाल ! आनर्त्त, मरू, कुरु, जाङ्गल, कंक, म-
त्स्य, पांचाल, कुंति, मधु, केकय, कोशल और अर्णदेशके निवासी और दूसरे भी स्त्री पुरुष उदार
हास्य और सुंदर दृष्टिसे भगवान के मुख कमल का नेत्रों से पानकरते थे ॥ २० ॥ इन त्रिलोकी
गुरुको देखकर जिनकी अंधदृष्टि नष्टहोगईहै उन नरनारियोंको कृष्णजी अभय और तत्वज्ञान देते,
देवता और मनुष्योंसे अशुभ नाशक दिशाओंमें व्याप्त अपने यशको सुनते २ विदेह नगरमें पहुंचे
॥ २१ ॥ हे राजन् ! उस समय पुरवासी और ग्रामवासी भगवानका आया सुनकर आनंद
से पूजाकी सामग्री हाथ में ले उनकी पूजाकरने के निमित्त आगचढ़े ॥ २२ ॥ उन पवित्र
यशवाले भगवान का दर्शन कर उनका मुख और अंतःकरण प्रफुल्लित होउठा, उन्हों ने उनको
और पहिले जिनको सुनाथा उन सब ऋषियों को हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ २३ ॥
अनुग्रह करने के निमित्त जगद्गुरु आये हैं—यहजान मैथिलराज और श्रुतदेव भगवान के चरणों
में गिरे ॥ २४ ॥ और एकही साथ हाथ जोड़ अतिथि होने के निमित्त ब्राह्मणों समेत श्रीकृष्ण
जी का निमन्त्रण किया और बहुलाश्व और श्रुतदेव ने हाथ जोड़ ब्राह्मणों के साथ भगवानका स-
त्कार किया ॥ २५ ॥ भगवान उसे स्वीकारकर दोनों जनों के प्रिय करने के निमित्त ब्राह्मणों के
साथ दोरूप धारणकर दोनों के घर एकही समय में गये यह बात किसी ने नजानी ॥ २६ ॥
अनतर बहुलाश्व ने अगित और दूर से आयेहुए उनसब को श्रेष्ठआसनलाकर दिया ॥२७॥ राजा
ने सुखपूर्वक विराजमान उन मुनियों को नमस्कारकर उन के चरण धोये और उस लोकपावन
जलको कुटुम्बियों समेत मस्तकपर धारणकर गंध, माल्य, वस्त्र, भूषण, धूप, दीप, अर्घ्य, गौ और
बैल देकर उनकी पूजाकी । बढ़ीहुई भक्तिसे राजा का हृदय आनंदित होगया और आंखों में
आंसू भरआये ॥ २८—२९ ॥ अनतर उनको अन्न,जल और तांबूलादि से तृप्तकर जनकराजने
भगवान के दोनों चरणों को छाती में लगाय प्रीति से प्रफुल्लितमनहो मधुर २ वाक्यों से धीरे २
कहा ॥ ३० ॥ हे विभो!स्वयं प्रकाशमान आपही सब प्राणियों को चेतन देनवाले औरप्रकाशक
हो; इसही कारण आपके चरणकमल के स्मरण करनेवाले मुझ को आपने दर्शन दिया ॥ ३१ ॥

वचस्तदृतं कर्तुमस्मद्दृग्गोचरो भवान् । यदात्थैकान्तभक्तान्मे नानन्तः श्रीरजः
प्रियः ॥ ३२ ॥ को नु त्वच्चरणाम्भोजमेवंविद्विसृजेत्पुमान् । निष्किंचनानां शान्तानां मुनीनां यस्त्वमात्मदः ॥ ३३ ॥ योऽवतीर्य यदोर्वंशे नृणां संसरतामिह ।
यशो वितेने तच्छान्त्यै त्रैलोक्यवृजिनापहम् ॥ ३४ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णाया
कुण्ठमेधसे ॥ नारायणाय ऋषये सुशान्तं तप ईयुषे ॥ ३५ ॥ दिनानि कतिचि
द्भूमन्गृहान्नो निवस द्विजैः । समेतः पादरजसा पुनीहीदं निमेः कुलम् ॥ ३६ ॥
इत्युपामन्त्रितो राज्ञा भगवाँल्लोकभावनः । उवास कुर्वन्कल्याणं मिथिलानरयो
षिताम् ॥ ३७ ॥ श्रुतदेवोऽच्युतं प्राप्तं स्वगृहाञ्जनको यथा । नत्वा मुनीन्सुसं
ह्रष्टो धुन्वन्वासो ननर्त ह ॥ ३८ ॥ तृणपीठबृसीष्वेतानानीतेषूपवेश्य सः । स्वागतेना
भिनन्द्याङ्घ्रीन्सभार्योऽवनिजे मुदा ॥ ३९ ॥ तदम्भसा महाभाग आत्मानं सगृहा
न्वयम् । स्नापयाञ्चक्र उद्धर्षो लब्धसर्वमनोरथः ॥ ४० ॥ फलार्हणोशीरशिवामृता
म्भसा मृदा सुरभ्या तुलसीकुशाम्बुजैः । आराधयामास यथोपपन्नया सपर्यया सत्त्व
विवर्धनान्धसा ॥४१॥ स तर्कयामास कुतो ममान्वभूद्गृहान्धकूपे पतितस्य सङ्गमः ।
यः सर्वतीर्थास्पदपादरेणुभिः कृष्णेन चास्यात्मनिकेतभूसुरैः ॥ ४२ ॥ सूपविष्टान्कृ
तातिथ्याञ्छ्रुतदेव उपस्थितः । सभार्यस्वजनापत्य उवाचाङ्घ्र्यभिमर्शनः ॥ ४३ ॥ श्रु
तदेव उवाच ॥ नाद्य नो दर्शनं प्राप्तः परं परमपूरुषः । यर्हीदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टो
ह्यात्मसत्तया ॥ ४४ ॥ यथा शयानः पुरुषो मनसैवात्ममायया । सृष्ट्वा लोकं परं स्वाप्न

आपका जो कथन है कि 'एकांत भक्तकी अपेक्षा अनंत, लक्ष्मी और ब्रह्माभी मुझे प्रिय नहीं हैं' उसही वाक्य के सत्य करने के निमित्त आप मेरे दृष्टिगोचर हुएहो ॥ ३२ ॥ 'आप निष्किंचन शांत और सबके आत्माहो' यह जानकर कौन मनुष्य आपके चरण कमलको छोड़ सकता है ? आप इस पृथ्वी पर संसारी मनुष्यों के बीच यदुवंशियों में अवतीर्णहो संसार की शांतिके निमित्त त्रैलोक्यमें पाप नाशक यशका विस्तार करतेहो ॥ ३३—३४ ॥ आप अकुंठित बुद्धिवाले, शांत, तपस्यावलम्बी, नारायणऋषि भगवान श्रीकृष्णहो ; आपको नमस्कार है ॥ ३५ ॥ हे भूमन् ! इस समय ब्राह्मणों समेत कुछदिन हमारे घरमें वासकर अपनी चरण रजसे इस निमिवंशको पवित्र करो ॥ ३६ ॥ लोकभावन भगवान हरि राजासे इस प्रकार प्रार्थितहो मिथिला निवासियोंका कल्याण करते हुए कुछदिन वहींरहे ॥ ३७ ॥ राजन् ! जनककी समानश्रुत देवनेभी अपने घरमें भगवान और मुनियोंका देख उनको प्रणाम किया और आनंदितहो वस्त्रोंको घुमाय २ नाचनेलगा ॥ ३८ ॥ उसने कुशासन, पीढ़े और चटाइयां लाय उनसबको बिठाया और उनकी कुशल पूछ आदर से सत्कारकर स्त्री समेत उनके चरण धोये ॥ ३९ ॥ महाभाग विप्रने सब मनोरथों को प्राप्तहो प्रसन्न चित्त से उस जलद्वारा घर और वंश समेत अपने को स्नानकराया ॥ ४० ॥ फिर फल पूजाके पदार्थ, खशसे सुवासित सुंदर अमृत की समान जल, सुगंधित मिट्टी, तुलसी, कुश, कमल और सत्वगुण के बढ़ानेवाले अन्न आदि बनसकनेवाली पूजासे उनकी पूजाकर ॥ ४१ ॥ विचारने लगा कि-अहो ! मैं घर रूप अंधेकुए में गिराहुआहू मुझको इन श्रीकृष्णजी का दर्शन मुनियों समेत कि जिनकी चरणरज सब तीर्थों की आस्पद व जो आत्मा के निवासरूप हैं किस पुण्यसे प्राप्तहुआ ? ॥ ४२ ॥ हेमहाराज ! अनंतर श्रीकृष्णजी के सुखसे बैठनेपर श्रुतदेव स्त्री, स्वजन और पुत्रोंसमेत उनके निकटवर्त्तीहो चरण चापते २ कहने लगा ॥ ४३ ॥ श्रुतदेवने कहा कि—हे परमपुरुष ! आप जो मुझको आजही प्राप्तहुएहो ऐसा नहीं है जब शक्तियों से इस विश्वको उत्पन्नकर अपनी सत्तासे इसके भीतर प्रवेश किया तभीसे प्राप्त हुएहो ॥ ४४ ॥

मनुविशत्यात्मभाति ॥ ४५ ॥ शृण्वतां गदतां शश्वदर्चतां त्वाऽभिवन्दताम् । नृणां संवदतामन्तर्हृदि भास्यमलात्मनाम् ॥ ४६ ॥ हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः कर्मविक्षिप्तचेतसाम् । आत्मशक्तिभिरग्राह्योऽप्यन्त्युपेतगुणात्मनाम् ॥ ४७ ॥ नमोऽस्तु तेऽध्यात्मविदां परात्मने अनात्मने स्वात्मविभक्तमृत्यवे ॥ सकारणाकारणलिंगमीयुषे स्वमाययाऽसंवृतरुद्धदृष्टये ॥ ४८ ॥ स त्वं शाधि स्वभृत्यान्नः किं देव करवामहे । एतदन्तो नृणां क्लेशो यद्भवानक्षिगोचरः ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तदुक्तमित्युपाकर्ण्य भगवान्प्रणतार्तिहा । गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रहसंस्तमुवाच ह ॥ ५० ॥ श्रीभगवानुवाच । ब्रह्मंस्तेऽनुग्रहार्थाय संप्राप्तान्विद्ध्यमून्मुनीन् । संचरन्ति मया लोकान्पुनन्तः पादरेणुभिः ॥ ५१ ॥ देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शनार्चनैः । शनैः पुनन्ति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया ॥ ५२ ॥ ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान्सर्वेषां प्राणिनामिह । तपसा विद्यया तुष्ट्या किमु मत्कलया युतः ॥ ५३ ॥ न ब्राह्मणान्मे दयितं रूपमेतच्चतुर्भुजम् । सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो ह्यहम् ॥ ५४ ॥ दुष्प्रज्ञा अविदित्वैवमवजानन्त्यसूयवः । गुरुं मां विप्रमात्मानमर्चादाविज्यदृष्टयः ॥ ५५ ॥ चराचरमिदं विश्वं भावा ये चास्य हेतवः । मद्रूपाणीति चेतस्याधत्ते विप्रो मदीक्षया ॥ ५६ ॥ तस्माद्ब्रह्मऋषीनेतान्ब्रह्मन्मच्छ्रद्धयाऽर्चय । एवं चेदर्चितोऽस्म्यद्धा नान्यथा भूरिभूतिभिः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थं प्रभुणाऽऽदिष्टः सहकृष्णान्द्विजोत्तमान् । आराध्यैकात्मभा-

जैसे सोताहुआ मनुष्य अपनी अविद्यासे स्वप्न में मनहीसे दूसरे देहको रचकर उसमें प्रवेशहो ऐसा जानपडताहै वैसेही आपभी इस विश्वको सृजकर मानो उसमें प्रवेश हुएहो ऐसे प्रतीत होतेहो, ॥ ४५ ॥ जो मनुष्य निरन्तर आपकेही शुभ कर्मों को गाता व सुनताहै आपकी अर्चना और पूजा करताहै; आपकीही चरचा करता है आप उसके हृदय के भीतर प्रकाशित होतेरहते हो॥४६॥जिसमनुष्यका चित्त,कर्मसे विक्षिप्तहै आपहृदय में स्थित रहकरभी उससे दूर रहतेहो, और जो निरहंकार मनुष्य श्रवण कीर्तनादिद्वारा अन्तःकरणकी पवित्रता प्राप्त कराते हैं आप उनके निकट रहतेहो ॥ ४७ ॥ आप अध्यात्म वेत्ताओंके परमात्मा; और आपही अनात्माहो;आपअपनी मायासे दृष्टि को सवरण और आवरण कररखते हैं अतएव सकारण और अकारण उपाधि को ग्रहण करतेहो आपको नमस्कार है ॥४८॥हे देव! मैं आपका दासहूं ; आप आज्ञा करो मैं आपका कौनसा कार्य करूं । जबतक आप दृष्टिगोचर नहीं होते तबतकही मनुष्य को क्लेश रहता है ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! भक्तों के दुःख दूर करनेवाले भगवान् श्रुतदेवकी इन बातों को सुनकर उसकाहाथपकड़ हँसकर कहनेलगे कि—॥ ५० ॥ हेब्रह्मन् ! यहसब मुनि तुम पर अनुग्रह करने के निमित्त उपस्थित हुएहैं यहसब चरणरजद्वारा लोकों को पवित्र करतेहुए मेरे साथ भ्रमण कररहे हैं ॥ ५१ ॥ देवता, क्षेत्र, तीर्थ, येसब दर्शन, स्पर्शन और पूजनसे बहुत दिनों में पवित्र करते हैं, किंतु ब्राह्मण के चरण स्पर्श से बहुतही शीघ्र पवित्रता होती है ॥५२॥ ब्राह्मण इसलोक में जन्मद्वाराही सबप्राणियों में श्रेष्ठ हैं; उनमें से जो ब्राह्मण तपस्या, विद्या, तुष्टि और उपासनावाले हैं उनकी और क्याबातकहूं ? ॥ ५३ ॥ इस चतुर्भुज रूपकी अपेक्षा ब्राह्मणों की आराधना करनाही मुझे अत्यन्त प्रिय है । क्योंकि ब्राह्मण सर्ववेदमय और मैं सर्वदेवमयहूं ॥ ५४ ॥ अज्ञान मनुष्य इसप्रकार न जानकर गुरु, आत्मा और मुझरूप ब्राह्मण का तिरस्कारकरते हैं पूजाही में पूज्य दृष्टि रखने वाले इस दोष का आरोपण करतेहैं । चराचर जगत और इसके कारण महदादि भावमें मेरी सर्वत्रही दृष्टि है । इसही कारण ब्राह्मण उनसबको मेरा रूप जान मुझे मनमें धारण करते हैं । अतएव हेब्रह्मन् ! इनसब महर्षियों की श्रद्धासहित पूजाकरो । इन की पूजा करने से साक्षातमैं पूजित होताहूं; और दूसरी प्रकार बहुत सम्पत्तिसे भी मेरी पूजाकरने

येनमैथिलश्चापसद्गतिम् ॥ ५८ ॥ एवंस्वभक्तयोराजन्भगवान्भक्तभक्तिमान् । उ
षित्वाऽऽदिश्यसन्मार्गंपुनर्द्वारवतीमगात् ॥ ५९ ॥

इतिश्रीभा० म० द० उ० षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

परीक्षिदुवाच ॥ ब्रह्मन्ब्रह्मण्यनिर्देश्येनिर्गुणेगुणवृत्तयः । कथंचरन्तिश्रुतयःसा
क्षात्सदसतः परे ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बुद्धीन्द्रियमनः प्राणाञ्जनानामसृजत्प्र
भुः । मात्रार्थंचभवार्थंचआत्मनेऽकल्पनायच ॥२॥ सैषाह्युपनिषद्ब्राह्मीपूर्वेषांपूर्वजै
र्धृता । श्रद्धयाधारयेद्यस्तांक्षेमंगच्छेदकिञ्चनः ॥ ३ ॥ अत्रतेवर्णयिष्यामिगाथांना
रायणान्विताम् । नारदस्यचसंवादमृषेर्नारायणस्यच ॥ ४ ॥ एकदानारदोलोका
न्पर्यटन्भगवत्प्रियः । सनातनमृषिंद्रष्टुंययौनारायणाश्रमम् ॥ ५ ॥ योवैभारतवर्षेऽ
स्मिन्क्षेमायस्वस्तयेनृणाम् । धर्मज्ञानशमोपेतमाकल्पादास्थितस्तपः ॥ ६ ॥ तत्रोप
विष्टमृषिभिः कलापग्रामवासिभिः । परीतंप्रणतोऽपृच्छदिदमेवकुरूद्वह ॥ ७ ॥ त
स्मैह्यवोचद्भगवानृषीणांशृण्वतामिदम् । योब्रह्मवादःपूर्वेषांजनलोकनिवासिनाम्
॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स्वायम्भुवब्रह्मसत्रंजनलोकेऽभवत्पुरा । तत्रस्थानांमान
सानांमुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ९ ॥ श्वेतद्वीपंगतवतित्वयिद्रष्टुंतदीश्वरम् । ब्रह्मवादः
सुसंवृत्तःश्रुतयोयत्रशेरते । तत्रहाऽयमभूत्प्रश्नस्त्वमांयमनुपृच्छसि ॥ १० ॥ तुल्य
श्रुततपःशीलास्तुल्यस्वीयारिमध्यमाः । अपिचक्रुःप्रवचनमेकंशुश्रूषवोऽपरे ॥

पर में पूजित नहीं होता ॥ ५६—५७ ॥ शुकदेवजी ने कहा कि—वह मैथिलब्राह्मण—भगवान श्री
कृष्णजी की इस आज्ञाको पाय उनके साथ उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों की एकात्मभाव से पूजाकरसद्गति
को प्राप्तहुआ ॥ ५८ ॥ हेराजन् ! वह भक्तवत्सल भगवान् दोनों भक्तों को श्रुति समूह के ब्रह्म
परस्वरूप मुक्ति मार्ग का उपदेशकर द्वारका में आये ॥ ५९ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधे उ०सरलाभाषाटीकायांषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

राजा परीक्षितने पूँछा कि—हे ब्रह्मन् ! जिसका भली भांति से निश्चय नहीं किया जासकता, जो निर्गुण और कार्य कारण से परे हैं, सगुण श्रुतिन उन अगुण परब्रह्मका स्वरूप किसप्रकार वर्णन किया है सो हमसे कहो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! नारायण ने मनुष्यों के अर्थ, धर्म, काम और मुक्ति के निमित्त बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणको रचा है ॥ २ ॥ "[illegible]ब्रह्मपर" इस उपनिषद के वाक्य को पूर्वजों के पूर्वज आचार्यों ने भी धारण किया था । जो श्रद्धायुक्त इसको धारण करते हैं वे देहादि उपाधि में निवास कर परमानंद को प्राप्त कर सकते हैं ॥ ३ ॥ इस विषय में तुमसे एक इतिहास का वर्णन करता हूं उस इतिहास को नारायण ने नारदजी से कहा है ॥ ४ ॥ एकसमय भगवत् प्रिय नारदजी सब लोकों में भ्रमण करतेरसनातन ऋषि के दर्शन करने के निमित्त नारायणजी के आश्रम में आये ॥ ५ ॥ वे भारतवर्षीय मनुष्यों के कल्याण के निमित्त कल्प के आरंभ से धर्म ज्ञानयुक्त और शमसंयुक्त तपस्या करते हुए उस स्थान में कलाप ग्रामवासी ऋषियों से वेष्टित हो निवास करते हैं देवर्षि ने उनको नमस्कार कर उनसे यह पूँछा ॥ ६ । ७ ॥ तब भगवान नारायणनेभी सबके सामने नारदजीसे वही ब्रह्मवाद का विषय कहा—कि जो पहिले जन लोकके निवासी सनकादिकोंके बीचमें हुआ था ॥ ८ ॥ भगवान ने कहा कि—हे स्वयम्भू नदन ! पहिले जनलोकमें वहांके ऊर्ध्व रेता ऋषियोंने ब्रह्मसत्र नामसे एक यज्ञ किया था ॥ ९ ॥ उस समय तुम मेरेही विशेष अंश अनिरुद्ध मूर्त्तिके देखने के निमित्त श्वेत द्वीप में गये थे । इस समय तुमने जो मुझ से पूँछा है वहां ऋषियों में भी यही प्रश्न हुआ था ॥ १० ॥ सबही शास्त्र ज्ञान, तपस्या और स्वभावमें समान थे सबही शत्रु मित्रको समान जानते और उदासीन थे; तौभी—कौतुक से एक जनको कहने वाला कर और सब सुनने लगे ॥ ११ ॥

॥ ११ ॥ सनन्दन उवाच ॥ स्वसृष्टमिदमापीय शयानं सह शक्तिभिः । तदन्ते बोधयांचक्रुस्तल्लिङ्गैः श्रुतयः परम् ॥ १२॥ यथा शयानं सम्राजं वन्दिनस्तत्पराक्रमैः । प्रत्यूषेऽभ्येत्य सुश्लोकैर्बोधयन्त्यनुजीविनः ॥ १३ ॥ श्रुतय ऊचुः ॥ जयजय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः । अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते क्वचिदजयाऽऽत्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः ॥१४॥ बृहदुपलब्धमेतदवयन्त्यवशेषतया यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदि वाऽविकृतात् । अत ऋषयो दधुस्त्वयि मनोवचनाचरितं कथमयथा भवन्ति भुवि दत्तपदानि नृणाम् ॥१५॥ इति तव सूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोकमलक्षपणकथाऽमृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः। किमुत पुनः स्वधामविधुताशयकालगुणाः परम भजन्ति ये पदमजस्रसुखानुभवम् ॥ ॥१६॥ दृतय इव श्वसन्त्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा महदहमादयोऽण्डमसृजन्यदनुग्रह-

उनमें से सनन्दन ने कहा कि–आपने रचे हुए इसजगत् को अपनी शक्तियोंसे अपने स्वरूपमें लय

कर योगोंके कारण मानोनिद्रा लेते हों इसतरह ज्ञात होते सगुण ब्रह्मको सृष्टिके आरम्भमें उनके प्रथम निश्वास से प्रकट हुई श्रुतियां उनके प्रतिपादक वाक्यों से जगाने लगीं ॥ १२ ॥ जैसे अनुजीवी बंदीजन प्रातःकालहीमें आयकर सोते हुए चक्रवर्ती राजाको सुंदर कीर्ति और पराक्रम का वर्णन करके जगाते हैं उसही प्रकार अपने उत्पन्न किये हुए इस विश्वको संहार कर अपनी शक्तियां समेत योग निद्रा से निद्रित ईश्वरको श्रुतियें प्रलयके अंत में पलयांत प्रतिपादक वाक्यों से इस भांति जगाने लगीं ॥ १३ ॥ श्रुतियोंने कहा कि–हे जय जय अजित अच्युत ! हे प्रभु ! स्थावर जंगमात्मक जीवोंको अविद्याका नाशकरो क्योंकि उन सबके आपही स्वरूप, सब ऐश्वर्यों के अधिकारी हो और अविद्याभी प्राणियोंके मोह उत्पन्न करनेके निमित्तही गुणोंको ग्रहण करके स्थिति करती है; अतएव इस अज्ञान करनेवाली अविद्या को आपको नाशकरना चाहिए। हे प्रभो ! आप सर्वान्तर्यामी, सब प्राणियों की शक्तिके उत्पन्न करनेवालेहो आप के अतिरिक्तऔर कौन अविद्याको नाश करसकता है ? हे ठाकुर ! यहतत्व हमको (श्रुति) ज्ञात है। आपकी माया से मिलेहुए सृष्टयादि का लीनस्वरूप और सत्य ज्ञानानंद,अखण्ड, नित्यरूप वेदही प्रतिपादित है ॥ १४ ॥ इंद्र अग्नि प्राधान्य भी वेदसे प्रतिपादितहुए हैं किंतु वे सब वेद मन्त्र इंद्रादिको ...मानास्वरूप बिचारते हैं। जैसे घट की उत्पत्ति, लयमिट्टीही से होती है और मिट्टीही घट की शेषावस्था है इसकारण घट मिट्टी से अतिरिक्त नहीं जानाजाता। इसही प्रकार अविकारी ब्रह्म से भी अपने सब (इंद्र अग्नि आदिभी) की उत्पत्ति व लय होती है और वही आप सब की शेषावस्था है; अतएव इंद्रादिभी आपसे अतिरिक्त नहीं हैं। इसही कारण वेदमंत्र वा ऋषि गण आपमेंही वा मानमन्त्रों को स्थापन करते हैं। फल यहहै कि भूचर प्राणी पत्थर ईंट आदि जहां परही पैर रखाजावे वही पृथिवी है, जैसे यह सिद्धांत है, उसी प्रकार जो कोई कुछभी कहे वही आपका प्रतिपादक है ॥ १५ ॥ हे त्रिगुणेश्वर ! आपही परमार्थहो—यह विचारकर पण्डित जन सर्व लोकों के पापनाशक आप के कथामृतसागर में डुबकी मार पाप ताप से जब छूटजाते हैं तब हेपरम ! जो आत्मतत्वज्ञान से राग द्वेषादि अंतःकरण के धर्म और बुढ़पा जवानी आदि काल धर्म से छूटकर अखण्डानन्दानुभव स्वरूप आपके स्वरूप का भजन करते हैं उनके जो पाप ताप दूर होजावें उसका क्याकहना है ? ॥ १६ ॥ मनुष्य यदि आपके भक्त होवें तभी उन का जीवन सफल है; नहीं तो वे केवल वृथा श्वास लेतेरहते है । क्योंकि महत्तत्व और अहङ्कारादि जिनकी अनुग्रह से इसदेह को उत्पन्न करते हैं, जो अन्न मयादि–पञ्च कोश के साथ मिल कर अन्न मयादि पंचकोशवत् प्रतीयमान होता है, जो अन्नमयादि पञ्चकोश का मूल है, जो

तः । पुरुषविधोऽन्वयोऽत्रचरमोऽन्नमयादिषु यः सदसतः परंत्वमथयदेष्ववशेषमृ-
तम् ॥ १७ ॥ उदरमुपासते यऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दह
रम् । तत उदगादनन्ततवधाम शिरः परमं पुनरिह यत्समेत्य नपतन्ति कृतान्तमुखे ॥
॥ १८ ॥ स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन्निव हेतुतया तरतमतश्चकास्स्यनलवत्स्वकृता-
नुकृतिः । अथवितथास्वमूष्ववितथं तवधाम समं विरजधियोऽन्वयन्त्यभिविपण्यव
एकरसम् ॥१९। स्वकृतपुरेष्वमीष्वबहिरन्तरसंवरणं तवपुरुषं वदन्त्यखिलशक्तिधृतों
ऽशकृतम् । इतिनृगतिं विविच्य कवयो निगमावपनं भवत उपासतेऽङ्घ्रिमभवं भुविवि
श्वसिताः ॥ २० ॥ दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनोश्चरितमहामृताब्धि-
परिवर्तपरिश्रमणाः । नपरिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते चरणसरोजहंसकु-
लसङ्गविसृष्टगृहाः ॥ २१ ॥ त्वदनुपथं कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियवच्चरति त-
थोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च । नवत रमन्त्यहो असदुपासनयाऽऽत्महनो यद-
नुशया भ्रमन्त्युरुभये कुशरीरभृतः ॥ २२ ॥ निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृ
दि यन्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् । स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविष

स्थूल, सूक्ष्म इस पंचकोश से अतिरिक्त और उसके साक्षी स्वरूप हैं, जो इस पंचकोश की अ-
न्तिम सीमा और सत्य है वह आपही हैं अतएव जो देह अन्तःकरणादि में ओत प्रोत भावसे
स्थित हैं ऐसे आपका अभक्त होने से वे कामादि तुच्छ फलभी नहीं प्राप्तकरसकते ॥ १७ ॥ऋषि
संप्रदाय मार्ग में शार्कराक्षमण्डली मुनि पूरकस्थ ब्रह्मकी उपासना करते हैं; आरुणिसम्प्रदाय
बहुनाड़ीयुक्त हृदय में सूक्ष्म परमब्रह्मकी उपासना करते हैं । हेअनन्त ! आपकी प्राप्ति क्षेत्रज्यो-
तिर्मय श्रेष्ठ सुषुम्नानाड़ी हृदयसे मस्तक को उठाती है; उस नाड़ी के ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचने
पर फिर संसार में नहीं गिरनाहोता ॥ १८ ॥ हेभगवन् ! आप अपने रचेहुए नाना देहादिकों के
उपादान कारणहो इसकारण पूर्वसेही उन सबके साथ आपका सम्बन्ध है । अतएव आप के
प्राकृत प्रवेश की सम्भावना न होने पर भी प्रविष्टवत् प्रतीयमान होतेहो, अग्नि जैसे ईंधन के आ-
कारानुसार विशेष २ रूप से प्रकाशपाता है तैसही आपभी न्यूनाधिक भावमे प्रकाश पाते रहते
हो । निर्मल बुद्धिवाले इस लोक तथा परलोक में कर्म फल रहित मनुष्य मिथ्याभूत इन देहादि
कों में आपके स्वरूप को स्थितजान उसे सत्य, एकरस और सत्य जानते हैं ॥ १९ ॥ आपने
कर्म से पाई हुई वर्तमान इस मनुष्य देह में कार्य कारण के आवरण रहित पुरुषको पण्डित
अखिलशक्तिधारी आपके अंश की समान जानते हैं । पृथिवीपर रहनेवाले पण्डितों को इसप्रकार
मनुष्यतत्व को जान और विचारकर विश्वाससहित सब कर्मों के अर्पणस्थान संसार से निवृत्तहो
आप के चरणों की सेवा करनी चाहिए ॥ २० ॥ हे ईश्वर ! आप दुर्ज्ञेयहो आत्मतत्व के प्रकाश
करने के निमित्तही मनुष्यरूप से अवतार लेतेहो आपके पवित्र चरित्ररूप महामृतसागर में डुबकी
मारकर जो श्रमरहितहुए हैं और आप के चरण कमलों के सेवन करनेवाले भक्तों का संग पाय
जिनने घर छोड़दिया है वे मनुष्य कभी मुक्तिकीभी इच्छा नहीं करते ॥ २१॥ आपकी सेवायोग्य
इस शरीर मे आत्मा की समान, बन्धुकी समान और प्रियजनों की समान आचरण करते हैं ।
परन्तु आप अनुग्राहक, हितकारी, परम प्रिय आत्मा होकरभी देहादि उपासना में प्रमत्त मनुष्य
आप के संग प्रीति नहीं करते । हाय हाय ! निंदित प्राणी इस देह से मिथ्या पदार्थों के
सेवन में बद्धहोकर भी सदैव संसार चक्र में भ्रमण कियाकरते हैं ॥ २२ ॥ मुनिजन
प्राण, मन और इन्द्रिय संयमन से दृढ़योग सहित जिस तत्वका ध्यान करते हैं; आपके
स्मरण के प्रभाव से आपके शत्रुभी उसी तत्वको प्राप्तहुए हैं । सर्पराज के भोगकी समान भुज
दण्डसे काम देव में आसक्त चित्त परिच्छिन्न दृष्टिस्त्रियें और आपके चरण कमल सुधारस की प-

क्तधियोवयमपितेसमाःसमदृशोऽङ्घ्रिसरोजसुधाः ॥ २३ ॥ कइहनुवेद बतावरजन्म लयोऽग्रसरंयतउदगादृषिर्यमनुदेवगणाउभये। तर्हिनसन्नचासदुभयंनचकालजवः किमपिनतत्रशास्त्रमवकृष्यशयीतयदा ॥ २४ ॥ जनिमसतःसतोमृतिमुतात्मनिये चभिदांविपणमृतंस्मरन्त्युपदिशन्तितआरुपितैः। त्रिगुणमयःपुमानितिभिदायद बोधकृतात्वयि न ततः परत्रसभवेदवबोधरसे ॥ २५ ॥ सदिवमनस्त्रिवृत्त्वयिविभा त्यसदामनुजात्सदभिमृशन्त्यशेषमिदमात्मतयात्मविदः। नहिविकृतिंत्यजन्ति कनकस्यतदात्मतया स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयाऽवसितम् ॥ २६ ॥ तवपरिये चरन्त्यखिलसत्त्वनिकेततयातउत पदाऽऽक्रमन्त्यविगणय्यशिरोनिर्ऋतेः। परिवय सेपशूनिवगिराविबुधानपितांस्त्वयिकृतसौहृदाः खलुपुनन्तिनयेविमुखाः ॥ २७ ॥ त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधरस्तवबलिमुद्वहन्तिसमदन्त्यजयाऽनिमिषाः। वर्षभुजोऽखिलक्षितिपतेरिवविश्वसृजोविदधतियत्रये त्वधिकृता भवतश्चकिताः ॥२८॥ स्थिरचरजातयःस्युरजयोत्थनिमित्तयुजोविहरउदीक्षयायदिपरस्यवि

रायण समदर्शी हम—ये दोनों आपके निकट समान हैं ॥ २३ ॥ अहो ! इस विश्वमें जिनके पीछे उत्पत्ति और नाश होता है उनमें से कौन मनुष्य सृष्टिके पूर्ववर्त्ती आपको जानसकता है ? आदि ऋषि ब्रह्मा आपसे उत्पन्न हुए, आध्यात्मिक आधिदैविक दोनों प्रकार के देवता भी ब्रह्माके उपरांत आपसे उत्पन्न हुए। आप जब प्रलय कालमें त्रिलोकीका नाशकर शयन करतेहो तब स्थूल सूक्ष्म नहीं रहता, उस समय स्थूल सूक्ष्म दोनों प्रकार के शरीर, काल कृत विषमता, इन्द्रियादि और शास्त्र भी नहीं रहता ॥ २४ ॥ जोअसत् पदार्थ कोही जगत् की उत्पत्ति कहते हैं, जोमहत्व की उत्पत्ति का कीर्तन करते हैं जोशरीरमें विद्यमान २१ प्रकार के दुःख नाशकोही मुक्ति कहते हैं, जोआत्माको जगत से व परस्पर से भिन्नकरते हैं और जोकर्म फलकोही सत्य कहते हैं, उन वैशेषिक पातञ्जल, सांख्य, न्याय और मीमांसा के उपदेश कोंकोभी भ्रमहोरहा है। परमेश्वर की त्रिगुण मायाके भेदसे अपने स्वरूप के ज्ञानके अभाव से मनुष्य बधारहता है, किंतु परमेश्वरतो स्वयज्ञान घन और असंग हैं उनमें तो ज्ञानका अभाव नहीं है ॥ २५ ॥ मन मात्रसे प्रतीत होता यह त्रिगुणात्मक जडजीव प्रपंच यथार्थमें असत्य होनेपरभी आपके अधिष्ठान होनेपर सत्यप्रतीत होता है। आत्मतत्ववेत्तागण प्रपंच और आत्माको भिन्न नहीं जानतेआत्मस्वरूप सेही इसको सत्य जानते हैं, आत्मा जब आपने रचेहुए इस जगतमें कारण रूपसे प्रविष्टहै तब यहतो आत्म स्वरूप से अवधारित होसकता है, विचारोकि—सवर्णका चाहने वाला मनुष्य सुवर्ण विकार कुंडलादिको प्राप्त होकर सुवर्ण कहकर उसको त्याग नहीं करता ॥ २६ ॥ आप सब प्राणियों के निवास स्थानहो, यह विचारकर जोआपकी अर्चना करते हैं हे ईश्वर ! वे समय पाकर मृत्यु के भी मस्तक पर पदाघात करते हैं। और जोआपके अभक्त हैं पण्डित होकर भी उनको आपवाक प्रपंच से पशुकी समान बांधतेहो, क्योंकि जोआप से प्रेमकरते हैं, वेही आपको और दूसरेको पवित्र करते हैं,—दूसरा ऐसा नहीं करसकता ॥ २७ ॥ आपके इन्द्रिय नहीं हैं परन्तु आपसब इन्द्रियशक्ति के प्रवर्तक हो, क्योंकि दूसरे की अपेक्षा के अतिरिक्त आपही प्रकाश पातेरहतेहो। जैसे खंडपति राजालोग अपनी प्रजाके दियेहुए करको ले चक्रवर्त्ती राजाको करदेते हैं, जोमनुष्यों के दियेहुए हव्यगव्यका भोजन करते हैं, वेही अविद्याके समवाले इन्द्रादि देवतागण और ब्रह्मादि प्रजापति गणभी उसही प्रकार आपको भेटदेते रहते हैं और आपके भयसेही अपने २ कार्योंपर नियुक्तहो उनको पूराकरते हैं ॥ २८ ॥ हे नित्यमुक्त ! आप मायासे दूर वर्तमानहो किन्तु जब आप उस मायाके साथ किंचित दर्शन रूप से क्रीडा करतेहो तब स्थावर जंगमात्मक समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, आप—

मुक्ततत: । नहिपरमस्यकश्चिदपरोनपरश्च भवेद्वियतइवाऽपदस्यतवशून्यतुलांदध
त: ॥ २९ ॥ अपरिमिताध्रुवास्तनुभृतोयदिसर्वगतास्तर्हिनशास्यतेतिनियमोध्रुवने
तरथा । अजनिचयन्मयंतदविमुच्यनियन्तृभवेत्सममनुजानतांयदमतंमतदुष्टतया
॥ ३० नघटतउद्भव: प्रकृतिपूरुषयोरजयोरुभययुजाभवन्त्यसुभृतोजलबुद्बुदवत् ।
त्वयितइमे ततोविविधनामगुणै: परमेसरितइवार्णवेमधुनिलिल्युरशेषरसा: ॥ ३१ ॥
नृषुतवमाययाभ्रमममीष्ववगत्यभृशंत्वयिसुधियोऽभवेदधतिभावमनुप्रभवम् । क
थमनुवर्ततांभवभयंतवयद्भ्रुकुटि: सृजतिमुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषुभयम् ॥ ३२ ॥ वि
जितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरगं यइहयतन्तियन्तु मतिलोलमुपायखिद: । व्यस-
नशतान्विता: समवहायगुरोश्चरणं वणिजइवाज सन्त्यकृतकर्णधराजलधौ ॥ ३३ ॥
स्वजनसुतात्मदारधनधामधराऽसुरथैस्त्वयि सतिकिंनृणां श्रयतआत्मनिसर्वरसे ।

इसी प्रकार माया दर्शन से उत्पन्न कर्म अथवा लिंग शरीर से उन जीवोंमुक्त होतेहो । कर्म वा लिंग शरीरका आविर्भाव न होनेपर जीवसृष्टि से इस प्रकार की विषमता नहीं होती, क्योंकि आप परम दयालुहो, आकाश की नाईं सब के पक्षमें समान, निर्लेप, और वाक्य व मनसे अगोचरहो आप किसी के आत्मीय व अनात्मीय नहीं हो ॥ २९ ॥ हे नित्य ! यदि जीवात्मा गण वास्तवही में अनन्त और वह जीव स्वरूपही नित्य है तो ऐसा होने से सबही उनके समान है ; अतएव शास्य शासक भाव नहीं रह सकता इसकारण आपभी उनके नियन्ता नहीं होसकते । परन्तु ऐसा न होनेसे आप नियन्ता होसकते हो । क्यों कि जिससे जीवका जन्म है वही जीवके अपरित्याज्य कारण और वही जीवके नियंता हैं । ऐसा जो कहते हैं वह ठीक नहीं होसकता केवल इतना कहा जासकता है कि वह सर्वत्र विद्यमान हैं वह ज्ञानाभिमानी मनुष्यों से अज्ञात हैं । वह अज्ञान हैं इस विषय में कारणान्तर से ज्ञात वस्तु में कुछ। कुछ दोष रहता है; किंतु वह निर्दोष हैं ॥ ३० ॥ वास्तवमें प्रकृति वा पुरुषकी अथवा दोनोंकी जीवरूप से उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि श्रुति में प्रकृति और पुरुष अज (जन्म रहित) कहे गये हैं और दूसरे युक्ति भी है । तब फिर प्रकृति पुरुष के विशेष सम्बंधसेही प्राणादि जीवोंकी–उत्पत्ति होती है । इस विषयमें यह दृष्टांत है कि जैसे जल बुद्बुद; अर्थात् जैसे केवल जलसेही बुद्बुद की उत्पत्ति नं होती, या केवल वायुसेही नहीं होती, किंतु दोनों के योगसेही बुद्बुद् की उत्पत्ति होती है । जीव का वास्तविक जन्म न होकर नाना प्रकार के नाम और गुणों समेत आपमें जीवका लय होता है । हे परम ! फूलके रस चूसने वाली मधु माक्षिका के संचित किये हुए मधुमें कुसुम रसकी जैसे विशेष प्राप्ति नहीं होती, वैसेही सुषुप्ति और प्रलय काल मे तत्त्वज्ञान होने से आपमें जीवका लयहोता है वह समुद्रमें नदी के मिलने की समान है ॥ ३१ ॥ आपकी माया से भ्रमित संसार चक्र में यह समस्त जीव भ्रमण करते हैं—यह देखकर विवेकीजन संसार से निवृत्त करने वाले आपकीही अत्यंत सेवाकरते हैं । आपका भजन करने से फिरसंसार का भय नहीं रहता । क्योंकि आपकी संवत्सरात्मक भौंह आपके अभक्तों को निरंतर भयभीत किया करती है ॥ ३२ ॥ जिनका अतिचञ्चल चित्त तुरग–बहिरिंद्रिय और प्राणजय से भी वशीभूत नहीं हुआ उस जोपुरुष गुरुचरणों के आश्रय बिना वशमें करना चाहते हैं वे अनेक विघ्नोंसे दुःखितहो; उपायों में खेदित होतेहुए, बीच समुद्र में मल्लाह बिना जहाज पर बैठेहुए बनियों की समान बहुत विघ्नवाले संसार समुद्र में पडेरहते है ॥ ३३ ॥ आपके भक्तको सर्वानंदमय परमात्मा आपके होते हुए स्वजन, पुत्र, देह, स्त्री, धन, घर, पृथिवी, प्राण और सवारी आदि तुच्छ पदार्थों

इतिनदजानतां मिथुनतो रतयेचरतां सुखयतिको न्विहस्वविहते स्वनिरस्तभगे ॥ ॥ ३४ ॥ भुविपुरुपुण्यतीर्थसदनान्यृषयो विमदास्तउत भवत्पदाम्बुजहृदोऽघभि-दंघ्रिजलाः । दधतिसकृन्मनस्त्वयियआत्मनि नित्यसुखेनपुनरुपासते पुरुषसारह-रावसथान् ॥ ३५ ॥ सतइदमुत्थितं सदितिचेन्ननुतर्कहतं व्यभिचरतिक्वच क्वच मृषानतथोभययुक् । व्यवहृतये विकल्पइषितोऽन्धपरम्परया भ्रमयतिभारतीत उ-रुवृत्तिभिरुक्थजडान् ॥ ३६ ॥ नयदिदमग्रआसनभविष्यदतो निधनादनुमितम-न्तरात्वयि विभाति मृषैकरसे । अतउपमीयते द्रविणजातिविकल्पपथैर्वितथमनो-विलासमृतमित्यवयन्त्यबुधाः ॥ ३७ ॥ सयदजयात्वजामनुशयीत गुणांश्च जुषन्भ-जति सरूपतांतदनु मृत्युमपेतभगः । त्वमुतजहासितामहिरिव त्वचमात्तभगोमह-

से क्या प्रयोजन ? इस सत्य तत्वको न जानकी सगसुखमें प्रवृत्त मनुष्योंको स्वभाव सेही नाशवान तत्वरहित इस संसार में कोईभी सुखी नहीं करसकता ॥ ३४ ॥ जिनके हृदय में आपके चरण कमल सदा वर्तमान रहते हैं, जिनके चरणोंका जल पापोंका नाश करने वाला है वे निरहंकार ऋषिगण भी भगवद्भक्तों में अग्रणीय गुरुओं के आश्रम में सदैव उपस्थित रहते हैं, किन्तु पुरुषके विवेकादि नाश करनेवाले घरोंका सेवन नहीं करते । अधिक क्या नित्यानन्दमय परमात्मरूपी आप में जिन्हों ने एक बारभी चित्त अर्पण किया है वेभी उन पाप गृहों में आसक्त नहीं होते ॥३५॥ "यह जगत 'सत्' (ब्रह्म) से उत्पन्नहै अतएव यह भी 'सत्' है" ऐसा कहना तर्क विरुद्ध है, क्योंकि इससे ब्रह्म और जगतके कार्य कारण भाव प्रसंग में परस्पर भेद सिद्धिहो उठती है । यदि कोई कहेकि–इस अवस्थान (व्याप्ति) से अभेद सिद्धिका हमारा उद्देश्य नहीं है किन्तु कार्य और कारण मे जो भेद नहीं रहता, यही दिखाना चाहते हैं ऐसा होने परभी कहा जासकताहै कि— इस स्थल में व्यभिचार है–अतएव व्याप्ति रह नहीं सकती । पुत्र पिता से उत्पन्न होने. परभी पितासे भिन्न है; इस स्थान में भी व्यभिचार होता है । यदि कोई कहे कि "उत्पन्न" शब्दसे यही उपादान कारण प्रस्तुत है अर्थात् उपादान कारण सेही कार्य को भिन्न नहीं कहाजासकता, तौभी हमकहसकती हैं कि इस स्थल में भी बाध है । विचारको कि रज्जू (रस्सी) से सर्पका भ्रमहोता है; अतएव सर्प का उपादान, सत्, रज्जू है तौ फिर क्या सर्प में भी सत्यत्त्व है?ऐसा तो नहीं है । यदि कोई कहे कि–उस स्थान में सर्प का उपादान केवल रज्जु नहीं है किंतु अविद्यायुक्त रज्जू है, अतएव सत्यत्त्व क्योंकर होसकता है ? इसपर हम कहती हैं कि–विश्व का उपादान भी अविद्यायुक्त है; अतएव भ्रम सर्प की समान इस विश्व में भी मिथ्यत्व सिद्धहोता है तब अन्ध परम्परा के अनुसार प्रचलित व्यवहार निर्वाहक भ्रम जगत सम्बन्ध में मानना पड़ता है हेभगवन् ! आप वेदरूप वाक्यहो–शक्ति, लक्षणा आदि से कर्म मार्ग मे आसक्त मूर्खों को मोह उत्पन्न करातेहो । अर्थात् कर्म फल भी नित्य नहीं है, जब वेद से कर्म फल नित्यकहा जासकता है तब वहां लक्षणा स्वीकार कर उस श्रेष्ठ फलको इसीप्रकार समझा जाता है, कर्म फल में आसक्तहुए मनुष्य मोह से ऐसा नहीं समझते ॥३६॥ यह विश्व (द्वैत) सृष्टि के पहिले न था प्रलय काल के अनतर भी न रहेगा इसकारण स्थिर कियाजासकता है कि बीचसमयमें अद्वितीय आप से यह विश्व प्रकाशित हुआ इसका स्वरूप मिथ्याही है । इसही कारण मिट्टी स्वर्णादि के विकार घट कुण्डलादि के साथ इसकी उपमा श्रुति में दीहै अर्थात् केवल नामकीही घट कुण्डलादि की सत्ता है, ऐसेही केवल नामकी जगतकी भी सत्ता है। व्यर्थ और मनोमात्र विलसित इस असत्य विश्व को जो सत्य कहते हैं वे मूढ़ हैं ॥३७॥ जीव माया के प्रभावसे अविद्याका आलिंगनकर देह इन्द्रियादिक में आत्म स्वरूपज्ञान देहेंद्रियों की सारूप्यता को भजन करते हैं इससही वे स्वा-

स्त्रिमहीयसेऽखगुणितेऽपरिमेयभगाः ॥ ३८ ॥ यदि नसमुद्धरन्ति यतयो हृदिकामज
टाढुरधिगमोऽसतां हृदि गतोऽस्मृतकण्ठमणिः । असुतृपयोगिनामुभयतोऽप्यसु-
खं भगवन्ननपगतान्तकादनधिरूढपदाद्भवतः ॥ ३९ ॥ त्वदवगमी न वेत्ति भवदु-
त्थशुभाशुभयोर्गुणविगुणान्वयांस्तर्हि देहभृतां च गिरः । अनुयुगमन्वहं सगुणगी-
तपरम्परया श्रवणभृतो यतस्त्वमपवर्गगतिर्मनुजैः ॥ ४० ॥ द्युपतय एव ते न ययुरन्त-
मनन्ततया त्वमपि यदन्तराण्डनिचया ननु सावरणाः । ख इव रजांसि वान्ति वयसा
सह यच्छ्रुतयस्त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥ ४१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥
इत्येतद्ब्रह्मणः पुत्रा आश्रुत्यात्मानुशासनम् । सनन्दनमथानर्चुः सिद्धा ज्ञात्वाऽऽ
त्मनो गतिम् ॥ ४२ ॥ इत्यशेषसमाम्नायपुराणोपनिषद्रसः । समुद्धृतः पूर्वजातैर्व्यो-
मयानैर्महात्मभिः ॥ ४३ ॥ त्वं चैतद्ब्रह्मदायाद श्रद्धयात्मानुशासनम् ॥ धारयंश्चर
गां कामं कामानां भर्जनं नृणाम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच । एवं स ऋषिणादिष्टं गृहीत्वा
श्रद्धयात्मवान् । पूर्णः श्रुतधरो राजन्नाह वीरव्रतो मुनिः ॥ ४५ ॥ नारद उवाच । नम
स्तस्मै भगवते कृष्णायामलकीर्तये । यो धत्ते सर्वभूतानामभवायोशतीः कलाः ॥
॥ ४६ ॥ इत्याद्यमृषिमानम्य तच्छिष्यांश्च महात्मनः । ततोऽगादाश्रमं साक्षात्पितु-

मायिक आनंद रूपता में गिरकर संसार में भ्रमित रहते हैं। हे नित्यप्राप्त सर्वैश्वर्य ! सर्प जैसे अपनी देह में लगीहुई कैंचुली को भी अपना उपयोगी नहीं जानता वैसेही आपभी आत्मस्थित माया को भी आत्मगुण कहकर उसकी अपेक्षा नहीं करते। क्योंकि हे अपरिमितैश्वर्य ! अणिमादि अष्ट विभूतिगण ऐश्वर्यों के निरन्तर्मी आप पूजितहो ॥ ३८ ॥ हेभगवान् ! संयमी मनुष्य भी यदि हृदय स्थित वासना को दूर न करे तो मणि कण्ठ में रहतेहुए भी विस्मृत होजाने से जैसे अप्राप्तवत् होजाती है वैसेही आप हृदय में वर्तमान रहतेहुए भी उन कुयोगियों को दुर्लभ होजातेहो। उन इन्द्रियपरायण और योगाभ्यासी दोनो कोही दुःख प्राप्त होता है; धन उत्पन्न करने का क्लेश और भोग वैभवके प्रकाश की आशंका से इस लोक में दुःख और आपके स्वरूपकी प्राप्ति न होने से स्वधर्म त्यागके कारण आप के दण्डानुसार परलोक में नरक भोगना पड़ता है ॥ ३९ ॥ हेषडैश्वर्य गुण सम्पन्न ! जो आपको जानते हैं वे आपके उत्पन्न किये भी शुभाशुभ कर्मों के फल सुख दुःख के सम्बन्ध को नहीं जानते; देहाभिमानी मनुष्योंके विधि निषेध वाक्यों का भी अनुवर्तन नहीं करते क्योंकि सत् सम्प्रदाय के अनुसार आप मनुष्यों को जो आपकी कीर्तिको सुनते हैं उनको मोक्षदेतेहो। अतएव उनको भी विधि निषेधकी बाधा नहीं रहती॥४०॥ आप अनंतहो; ब्रह्मादि लोकपालभी आपके अन्तको नहीं पासके. यहांतक कि आपभी अपने अंतको नहीं पासके। हेदेव ! सात आवरण युक्त ब्रह्माण्ड समूह भी आकाशमें रज कणकी समान आपमें युगपत् (एकसाथ) भ्रमण करते हैं आपमेंही समाप्त श्रुतियें यह नहीं वह नहीं कर २ तात्पर्य के अनुसार आपकाही प्रतिपादन करती हैं ॥४१॥ भगवानने कहा कि इसप्रकारसे ब्रह्मपुत्रोंने ब्रह्मनिरूपण सुन आत्माकी गतिसे अवगतहो सनन्दनकी पूजाकी ॥ ४२ ॥ आकाशचारी पूर्व ऋषियोंनेभी इसीप्रकार अशेष श्रुति पुराणोंके रहस्यका अभिप्राय कहा है ॥४३॥ हेनारद ! तुम श्रद्धा युक्त यादवों के सर्व कामों के देनेवाले इस आत्मानुशासनको हृदय में धारण करके पृथिवीपर विचरण करो ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–हेराजन् ! वह नैष्ठिक व्रतचारी देवर्षि नारद गुरूकी इस आज्ञाको पाय श्रद्धायुक्त श्रुतिके अर्थोंको हृदयमें धारणकर कृतार्थभावसे कहने लगे, ॥४५॥ जो सब प्राणियोंको संसार पाशसे छुडानेके निमित्त अंश धारण करते हैं उननिर्मल यशवाले भगवान श्रीकृष्णजी को नमस्कार करता हूं ॥ ४६ ॥ देवर्षि आद्यऋषि नारद श्रीकृष्णजी

द्वैपायनस्याश्रमे ॥ ४७ ॥ सभाजितो भगवता कृतासनपरिग्रहः । तस्मै तद्वर्णयामास नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥ ४८ ॥ इत्येतद्वर्णितं राजन्यन्नः प्रश्नः कृतस्त्वया । यथा ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणेऽपि मनश्चरेत् ॥ ४९ ॥ योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरो यः सृष्ट्वेदमनुप्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः । यं संपद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलायं यथा तं कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं ध्यायेदजस्रं हरिम् ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

राजोवाच । देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवम् । प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥ १ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामः संदेहोऽत्र महान्हि नः । विरुद्धशीलयोः प्रभ्वोर्विरुद्धा भजतां गतिः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच । शिवः शक्तियुतः शश्वत्त्रिलिंगो गुणसंवृतः । वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ॥ ३ ॥ ततो विकारा अभवन्षोडशामीषु कंचन । उपधावन्विभूतीनां सर्वासामश्नुते गतिम् ॥ ४ ॥ हरिर्हि निर्गुणः साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः । स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन्निर्गुणो भवेत् ॥ ५ ॥ निवृत्तेष्वश्वमेधेषु राजा युष्मत्पितामहः । शृण्वन्भगवतो धर्मानपृच्छदिदमच्युतम् ॥ ६ ॥ स आह भगवांस्तस्मै प्रीतः शुश्रूषवे प्रभुः । नृणां निःश्रेयसार्थाय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच । यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः । त-

---

और उनके महात्मा शिष्यों को प्रणाम कर मेरे पिता व्यासजी के आश्रममें गए ॥ ४७ ॥ अनतर पिता से सन्मानितहो योग्य आसनपर बैठ समस्त कृष्ण चरित्र का वर्णन किया अनिर्देश्य निर्गुण परमब्रह्म मे मनको किस प्रकार लगाना चाहिये ॥ ४८ ॥ आपनें जो यह प्रश्न कियाथा उसका मैंने यथार्थ वर्णन किया जिस प्रकार अनिर्देश्य और निर्गुण ब्रह्ममें श्रुतियों की प्रवृत्ति होती है ॥ ४९ ॥ जो विश्वकी उत्पत्ति स्थिति और संहार के करनेवाले हैं जो इसको रचकर जीवरूपसे उसमें प्रवेश करतें हैं जो प्रकृति व पुरुष के कारण हैं जो भोगाय तन (भोगनें योग्य) निर्माण करके शासन करतें हैं प्राणी जिनके चरणकमल को प्राप्तहो माया को परित्याग करदेते हैं सोताहुआ मनुष्य जैसे इन्द्रियसे देखाहुआ जाकर अपनें को नहीं देखपाता उसही प्रकार जो सबहीको देखते है उन कैवल्य, आत्माराम अभय वर के देने वाले भगवान का निरंतर ध्यान करता हूं ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० सरल भाषाटीकायां सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

राजा ने कहाकि–हे ब्रह्मन् ! देवता, असुर और मनुष्यों में से जो भोगाभिलाष से वर्जित शिव की उपासना करते हैं प्रायः वेही धनी और भोगी होते हैं किन्तु जो सर्व भोगों की खान लक्ष्मी पतिकी उपासना करते हैं, वे इस प्रकार के नहीं होते ॥ १ ॥ इसका क्या कारण है ? इस विषय में मेरे मनमें संदेह उत्पन्न होता है । विरुद्ध चरित्रवाले दोनों प्रभुओं के भजन करने वालोंमें यह विरुद्धगति क्यों होती है ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे राजन् ! शिवनिरंतर शक्ति युक्त गुण संवृत और त्रिलिंग हैं । अहंकार तीनप्रकार का है वैकारिक, तैजस और तामस, इसही कारण महादेवको त्रिलिंग कहाजाता है ॥ ३ ॥ उसही से दशइन्द्रिय, पञ्चभूत और मन यह सोलह विकार उत्पन्न हुए हैं । उन सबमें से किंचित् विकारोपाधि का भजन करने सेही उपाधियों के अनुरूप विभूतियों का स्वरूप प्राप्तहोता है ॥ ४ ॥ हरिसाक्षात् निर्गुण, सबके साक्षी परम पुरुष सर्वदर्शी हैं उनका भजन करने से निर्गुणत्व प्राप्तहोता है ॥ ५ ॥ अश्वमेध यज्ञ होनेपर तुम्हारे पितामह राजा युधिष्ठिर ने अश्वमेध संबंधी इसी विषयको भगवान से पूछाथा ॥ ६ ॥ जो मनुष्योंकी मुक्तिके निमित्त यदुकुल में अवतीर्ण हुए थे उन प्रभु भगवान ने प्रसन्न होकर राजा से कहाथा ॥ ७ ॥ श्रीभगवन्

सोऽधनंत्यजन्त्यस्य स्वजनादुःखदुःखितम् ॥ ८ ॥ सयदावितथोद्योगो निर्विण्णः
स्याद्धनेहया । मत्परैः कृतमैत्रस्यकरिष्येमदनुग्रहम् ॥ ९ ॥ तद्ब्रह्मपरमंसूक्ष्मंचिन्मा
त्रंसदनन्तकम् । अतोमांसुदुराराध्यंहित्वाऽन्यान्भजतेजनः ॥ १० ॥ ततस्तआशुतो
षेभ्योलब्धराज्यश्रियोद्धताः । मत्ताःप्रमत्तावरदान्विस्मरन्त्यवजानते ॥ ११ ॥ श्री
शुक उवाच॥ शापप्रसादयोरीशाब्रह्मविष्णुशिवादयः । सद्यः शापप्रसादोऽङ्गशि
वोब्रह्मानचाच्युत ॥ १२ ॥ अत्रचोदाहरन्तीममितिहासंपुरातनम् । वृकासुरायगि
रिशोवरंदत्त्वाऽपसङ्कटम् ॥ १३ ॥ वृकोनामासुरः पुत्रः शकुनेः पथिनारदम् । दृष्ट्
वाऽऽशुतोषंपप्रच्छदेवेषुत्रिषुदुर्मतिः ॥ १४ ॥ सआहदेवंगिरिशमुपाधावाशुसिद्ध्
यसि । योऽल्पाभ्यांगुणदोषाभ्यामाशुतुष्यतिकुप्यति ॥ १५ ॥ दशास्यबाणयोस्तु
ष्टः स्तुवतोर्वन्दिनोरिव । ऐश्वर्यमतुलंदत्त्वाततआपसुसङ्कटम् ॥ १६ ॥ इत्यादिष्टस्त
मसुरउपाधावत्स्वगात्रतः । केदारआत्मक्रव्येणजुह्वानोऽग्निमुखंहरम् ॥ १७ ॥ दे
वोपलब्धिमप्राप्यनिर्वेदात्सप्तमेऽहनि । शिरोऽवृश्चत्सुधितिनातत्तीर्थक्लिन्नमूर्धज
म् ॥ १८ ॥ तदामहाकारुणिकःसधूर्जटिर्यथावयञ्चाग्निरिवोत्थितोऽनलात् । निगृ
ह्यदोर्भ्यांभुजयोर्न्यवारयत्तत्स्पर्शनाद्भूयउपस्कृताकृतिः ॥ १९ ॥ तमाहचाङ्गाऽलम
लंवृणीष्वमेयथाभिकामंवितरामितेवरम् । प्रीयेयतोयेननृणांप्रपद्यतामहोत्वयात्मा
भृशमर्द्यतेवृथा ॥ २० ॥ देवंसवव्रेपापीयान्वरंभूतभयावहम् । यस्य यस्य करंशी

बोलेकि-मैं जिसपर अनुग्रह करता हू धीरे २ उसका धन हरलेता हूं दु:ख के ऊपर दुःखित देखकर
उसके स्वजन आपही आप उसको छोड़देते हैं ॥ ८ ॥ इसके उपरांत वह जब धनकी चेष्टा से
विफलोद्यमहो साधुओं के साथ मित्रता करता है, तबही मैं उसके ऊपर अपना विशेष अनुग्रह प्र
काशकरता हूं ॥ ९ ॥ धीर मनुष्य उन परम सूक्ष्म, ज्ञानमात्र, सत, अनन्त ब्रह्मके आत्म स्वरूप
को जानकर संसारसे छूटजाते हैं । जोमनुष्य अत्यंत दुराराध्यमुझको छोड़कर दूसरे वरदेने वाले
देवताओं की उपासना करते हैं वे वरदेनवालों से राज्य श्री को प्राप्तहो मतवाले और प्रमत्त
होजाते हैं और अंतमें उन्हीं देवताओंको भूलकर उन्हींका तिरस्कार करते हैं ॥ १०-११ ॥ श्री
शुकदेवजी बोलेकि-हे राजन् ! ब्रह्मा, विष्णु और महेश सबही शाप और वरके अधीश्वर हैं उन
में ब्रह्मा और महादेवजी सदैवही शाप और वरदिया करते हैं, किंतु विष्णुजी उस प्रकार से नहीं हैं
॥ १२ ॥ प्राचीन पुरुष इस विषय में एक इतिहास कहते हैं,-कि महादेवजी वृकासुरको [illegible] कर
जैसे दुःखमें गिरेथे उसको सुनो ॥ १३ ॥ शकुनि के पुत्रदुष्ट असुर वृकने मार्गमें नारद जी [illegible] दे-
खकर पूछाकि ब्रह्मा, विष्णु और शिवमें से कौन देवता शीघ्र प्रसन्न होता है ॥ १४ ॥ नारदजी
ने कहाकि-महादेवजी की आराधनाकरो, शीघ्र सिद्ध होवोगे वह थोडेही गुण व दोषसे शीघ्रसंतुष्ट
व कुपित होजाते हैं ॥ १५ ॥ महादेवजी रावण और बाणासुर पर संतुष्टहो उनको अतुल ऐश्वर्य
देकर घोर सङ्कट में गिरेथे ॥ १६ ॥ देवर्षि नारद से इस प्रकार आज्ञापाय वृकासुर केदार तीर्थमें
गया और अग्नि में अपने शरीर के मांस की आहुति दे देकर महादेवजी की आराधना करने
लगा ॥ १७ ॥ सातदिन इसप्रकारसे आराधना करने परभी जब दैत्य को शंकर के दर्शन नहुए
तब वह खिन्न चित्तहो उस केदारतीर्थ के जल में भीगेहुए केशोंवाले अपने मस्तक को काटने
पर उद्यतहुआ ॥ १८ ॥ तैसेही परम दयालु महादेव जीने अग्नि से अग्निकी समान उठ दोनों
बाहों से दैत्य की दोनों बाहें पकड़कर उसको निवारण किया ॥ १९ ॥ उनके स्पर्श से वृकासुर
आनंद हो खिलगया । हेराजन् ! शिवजी ने उससे कहा कि—निवृत्तहो निवृत्तहो तेरी जो अभि
लाषा है मैं वह वर तुमको दूंगा, मैं शरणागत मनुष्यों पर सदैवही संतुष्ट रहताहूं । अहो ! तू
व्यर्थही आत्मा को क्लेश देनेपर उद्यत होता है ॥ २० ॥ यह सुनकर उस पापी असुर ने महादेव

ष्णिधास्ये स म्रियतामिति ॥ २१ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्रुद्रो दुर्मना इव भारत । ओमिति
प्रहसंस्तस्मै ददेऽहेरमृतं यथा ॥ २२ ॥ इत्युक्तः सोऽसुरो नूनं गौरीहरणलालसः । स
तद्वरपरीक्षार्थं शम्भोर्मूर्ध्नि किलासुरः स्वहस्तं धातुमारेभे सोऽबिभ्यत्स्वकृताच्छिवः
॥२३॥ तेनोपसृष्टः संत्रस्तः पराधावन्सवेपथुः । यावदन्तं दिवो भूमेः काष्ठानामुद
गादुदक् ॥ २४ ॥ अजानन्तः प्रतिविधिं तूष्णीमासन्सुरेश्वराः । ततो वैकुण्ठमगम
द्भास्वरं तमसः परम् ॥ २५ ॥ यत्र नारायणः साक्षान्न्यासिनां परमा गतिः । शान्ता
नां न्यस्तदण्डानां यतो नावर्तते गतः ॥ २६ ॥ तं तथा व्यसनं दृष्ट्वा भगवान्वृजिनार्दनः
दूरात्प्रत्युदियाद्भूत्वा बटुको योगमायया ॥२७॥ मेखलाजिनदण्डाक्षैस्तेजसाग्नि
रिव ज्वलन् । अभिवादयामास च तं कुशपाणिर्विनीतवत् ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच
शाकुनेय भवान्व्यक्तं श्रान्तः किं दूरमागतः । क्षणं विश्रम्यतां पुंस आत्माऽयं सर्वकाम
धुक् ॥२९॥ यदि नः श्रवणायालं युष्मद्व्यवसितं विभो । भण्यतां प्रायशः पुंभिर्धृतैः
स्वार्थान्समीहते ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता पृष्टो वचसाऽमृतवर्षिणा ।
गतक्लमोऽब्रवीत्तस्मै यथापूर्वमनुष्ठितम् ॥३१॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं चेत्तर्हि तद्वा
क्यं न वयं श्रद्दधीमहि । यो दक्षशापात्पैशाच्यं प्राप्तः प्रेतपिशाचराट् ॥३२॥ यदि वस्त
त्र विश्रम्भो दानवेन्द्र जगद्गुरौ । तर्ह्यङ्गाशु स्वशिरसि हस्तं न्यस्य प्रतीयताम् ॥३३॥
यद्यसत्यं वचः शम्भोः कथंचिद्दानवर्षभ तदैनं जह्यसद्वाचं न यद्वक्ताऽनृतं पुनः ॥३४॥

जो सबप्राणियों को भय देनेवाले इस बरको मांगा कि 'मैं जिसके मस्तकपर हाथ रक्खूं वही मरजावे ॥२१॥ हेभारत ! भगवान रुद्र यह सुनकर कुछएक विमनहुए, फिर सर्प को अमृत देने की समान उसे भी 'तथास्तु' कहकर वही वर दिया ॥ २२ ॥ इसप्रकार वह असुर पार्वतीजी के लेने की इच्छा से उस वरकी परीक्षा करने के निमित्त शम्भु के मस्तकपर अपना हाथ धरने को उद्यत हुआ; तब शंकर अपने कियेकार्य से भयभीतहुए ॥२३॥ और भयसे त्रसितहो कांपते कांपते उत्तरदिशाकी ओरहो स्वर्ग और भूमिकी अंतिम सीमातक शीघ्रतापूर्वक दौड़े और असुर ने उनका पीछा किया ॥ २४॥ इधर देवतागणभी उसका कुछ यत्न न देख चुपहोरहे फिर जहां शांतरूप सबका अभय देनेवाले, सन्यासियों के परमगति साक्षात् नारायण विराजते हैं, जहां से जीव जाकर फिर नहींलौटता भगवान महादेवजी उसी वैकुण्ठधाम में गये ॥ २५ । २६ ॥दुःखाक्रांत हो , भगवान हरिने महादेवजीको ऐसा विपद्ग्रस्त देख योगमायाके योग से बटुक (ब्राह्मण)का वेश धारणकिया॥२७॥मेखला,मृगचर्म,दण्ड व माला धारणकिये कुश लिये तेजसे मानों जाज्वल्यमान दानवके संनिकट आये । दानवने अत्यन्त विनीत भावसे उनको प्रणाम किया ॥२८॥ भगवानने कहा कि हे शकुनितनय! प्रगट देखाजाता है कि आप दूसरे मार्ग से चलकर आरहेहो;आप श्रमितहोरहेहो । यहांपर कुछेकदेर विश्रामकरो, मनुष्य आत्मासेही सब इच्छाओंको पूर्ण करता है अतएव तुम उसको कष्ट न दो ॥ २९ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! यदि तुम्हारा काम मेरे सुनने योग्यहो, तो कहो मैं उसको पूर्ण करूंगा क्योंकि दूसरेकी सहायता लेकर मनुष्य अपना कार्य सिद्ध कर सकता है ॥३०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! भगवानकी अमृतवर्षिणी बातोंसे उसअसुर का श्रम दूरहोगया और पहिले जो कियाथा उस सबका उसने वर्णन उनसे किया ॥ ३१ ॥ भगवानने कहा कि-यदि ऐसाही है तो मैं तो उस भूतनाथ की बातोंका विश्वास नहीं करता,क्यों कि दक्षके शापसे पिशाच वृत्तिको प्राप्तहो शंकर पिशाचोंका राजाहुआ है ॥ ३२ ॥ हे दानवेन्द्र! उसको जगद्गुरु कहकर यदि उसकी बातोंपर तुम्हारा विश्वास है तो अपनेही मस्तक में अपना हाथ रखकर परीक्षा क्यों नहीं करलेते ॥ ३३ ॥ यदि महादेवकी बात मिथ्याहोवे तो परीक्षा के उपरांत उस मिथ्यावादी को परास्त करना, कि जिससे वह फिर ऐसी मिथ्याबातें न कहे ॥३४॥

इत्थंभगवतश्चित्रैर्वचोभिः ससुपेशलैः । भिन्नधीर्विस्मृतः शीर्ष्णिस्वहस्तंकुमतिर्न्य
धात् ॥ ३५ ॥ अथापतद्भिन्नशिरावज्राहतइवक्षणात् । जयशब्दोनमः शब्दः साधु
शब्दोऽभवद्दिवि ॥ ३६ ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणिहतेपापेवृकासुरे । देवर्षिपितृगन्धर्वा
मोचितः संकटाच्छिवः ॥ ३७ ॥ मुक्तंगिरिशमभ्याहभगवान्पुरुषोत्तमः । अहोदेव
महादेवपापोऽयंस्वेनपाप्मना ॥ ३८ ॥ ॥ हतः कोनुमहत्स्वीश जन्तुर्वैकृतकिल्बिषः
क्षेमीस्यात्किमुविश्वेशेकृतागस्कोजगद्गुरौ ॥ ३९ ॥ यएवमव्याकृतशक्त्युदन्वतः
परस्यसाक्षात्परमात्मनो हरेः । गिरित्रमोक्षं कथयेच्छृणोतिवाविमुच्यतेसंसृतिभि
स्तथाऽरिभिः ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे उ० अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

श्रीशुकउवाच । सरस्वत्यास्तटे राजन्नृषयः सत्रमासत । वितर्कः समभूत्तेषां
त्रिष्वधीशेषु कोमहान् ॥ १ ॥ तस्य जिज्ञासयाते वै भृगुंब्रह्मसुतंनृप ॥ तज्ज्ञप्त्यैप्रेष
यामासुः सोऽभ्यगाद्ब्रह्मणः सभाम् ॥ २ ॥ नतस्मैप्रह्वणंस्तोत्रं चक्रेसत्त्वपरीक्षया ।
तस्मैचुक्रोध भगवान्प्रज्वलन्स्वेन तेजसा ॥ ३ ॥ सआत्मन्युत्थितं मन्युमात्मजाया
त्मनाप्रभुः । अशीशमद्यथावह्निं स्वयोन्यावारिणात्मभूः ॥ ४ ॥ ततः कैलासमग-
मत्सतं देवोमहेश्वरः । परिरब्धुंसमारेभे उत्थायभ्रातरंमुदा ॥ ५ ॥ नैच्छत्त्वमस्युत्प
थग इतिदेवश्चुकोपह । शूलमुद्यम्यतं हन्तुमारेभे तिग्मलोचनः ॥ ६ ॥ पतित्वापा-
दयोर्देवी सान्त्वयामास तंगिरा । अथोजगाम वैकुण्ठं यत्रदेवोजनार्दनः ॥ ७ ॥ शा

भगवानकी ऐसी कोमलबातोंसे हतबुद्धि और विस्मितहो उस दुर्बुद्धि असुरने अपने मस्तकपरहाथ
रक्खा ॥ ३५ ॥ हाथ रखतेही वह छिन्न शिरहो वज्रसे आहत होनेकी समान तत्कालही गिरगया।
स्वर्ग में जयशब्द, साधु और नमः शब्द होनेलगा ॥ ३६ ॥ पापी वृकासुरके मारेजानेपर देवता,
ऋषि, पितर और गन्धर्व फूल बरसानेलगे, महादेवजी भी दुःखसे छूटगये ॥ ३७ ॥ भगवान ने
महादेवजीके निकट आयकरकहा कि—अहो! यह पापी वृकासुर अपनेही पापोंसे नष्टहुआ, हेईश्वर!
बड़े मनुष्योंका अपराधकरके कौन मनुष्य कल्याण पासकताहै! आप जगद्गुरुहो जो दुष्ट आपका-
अपराधी होवे उसकी क्या बात कहीजावे ॥ ३८ । ३९ ॥ हे राजन्! जो वाक् मनसे अगो-
चर शक्तिके समुद्रस्वरूप साक्षात् परमात्मा परमेश्वर हरिके इसप्रकार की शिवमोचन कथाको कहे
वासुने वह संसारके पाश और शत्रुके हाथसे छूटकर हरिको प्राप्तहोवे ॥ ४० ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेउ०सरलाभाषाटीकायांअष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! सरस्वती के तीर में यज्ञ करते २ ऋषियों के मनमें यह
तर्क उपस्थितहुआ कि ब्रह्मा, विष्णु और महादेव इन तीन देवताओंमेंसे कौन देवता बड़ाहै?॥१॥
हे नृप! यह जानने की इच्छा से उन्होंने ब्रह्माके पुत्र भृगुको इसकी परीक्षाकरनेके अर्थ भेजा।
महात्मा भृगु उनके कहनेके अनुसार ब्रह्माकी सभामेंगए॥२॥और उनके सत्त्वकी परीक्षाके निमित्त
उनको प्रणाम व स्तुति आदि कुछनकी; इससे भगवान कमलयोनि अपने तेज से अत्यंत प्रज्व-
लितहो उनपर क्रोधितहुए ॥३॥ फिर उन्होंने पुत्रपर उठेहुए अपने क्रोधको जलसे अग्निबुझानेके
समान अपनेही द्वारा शांतकिया ॥४॥ अनंतर भृगु वहां से कैलासको गये। महादेवजी आनन्द
से उठ भाईसे मिलनेको उद्यतहुए।किंतु भृगुने उनको उन्मार्गगामी कहकर तिरस्कार किया, इससे
वह अत्यन्तही कुपितहुए और लालनेत्रकर शूल उठाय उनको मारने पर उद्यतहुए ॥ ५ ॥ ६ ॥
पार्वतीजीने पतिके दोनो चरणोंमें गिरकरमधुर वाक्यों से उनको शांतकिया फिर भृगुजी वहां भ-

शयानं श्रिय उत्संगे पदा वक्षस्यताडयत् । तत उत्थाय भगवान्सह लक्ष्म्या सतांगतिः ॥
॥ ८ ॥ स्वतल्पादवरुह्याथ ननाम शिरसा मुनिम् आह ते स्वागतं ब्रह्मन्निषीदात्रास-
ने क्षणम् । अजानतामागतान्वः क्षन्तुमर्हथ न प्रभो ॥९॥ अतीव कोमलौ तात चरणौ
ते महामुने । इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन्स्वेन पाणिना ॥ १० ॥ पुनीहि सह लोकं मां
लोकपालांश्च मद्गतान् । पादोदकेन भवतस्तीर्थानां तीर्थकारिणा ॥ ११ ॥ अद्याहं
भगवँल्लक्ष्म्या आसमेकान्तभाजनम् । वत्स्यत्युरसि मे भूतिर्भवत्पादहतांहसः ।१२।
श्रीशुक उवाच । एवं ब्रुवाणे वैकुण्ठे भृगुस्तन्मन्द्रया गिरा ॥ निर्वृतस्तर्पितस्तूष्णीं
भक्त्युत्कण्ठोऽश्रुलोचनः ॥ १३ ॥ पुनश्च सत्रमाव्रज्य मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् । स्वा-
नुभूतमशेषेण राजन्भृगुरवर्णयत् ॥ १४ ॥ तन्निशम्याथ मुनयो विस्मिता मुक्तसंश
याः । भूयांसं श्रद्दधुर्विष्णुं यतः शान्तिर्यतोऽभयम् ॥ १५॥ धर्मः साक्षाद्यतो ज्ञानं वै-
राग्यं च तदन्वितम् । ऐश्वर्यं चाष्टधा यस्माद्यशश्चात्ममलापहम् ॥ १६ ॥ मुनीनां न्य-
स्तदण्डानां शान्तानां समचेतसाम् । अकिञ्चनानां साधूनां यमाहुः परमां गतिम् ।१७।
सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्तिर्ब्राह्मणास्त्विष्टदेवताः । भजन्त्यनाशिषः शान्ता यं वा निपुण-
बुद्धयः ॥ १८ ॥ त्रिविधाकृतयस्तस्य राक्षसा असुराः सुराः । गुणिन्या मायया सृष्टाः
सत्त्वं तत्तीर्थसाधनम् ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच । एवं सारस्वता विप्रा नृणां संशयनुत्त
ये । पुरुषस्य पदाम्भोजसेवया तद्गतिं गताः ॥ २० ॥ सूत उवाच । इत्येतन्मुनितनया

गवान विराजे हैं ऐसे वैकुंठ में गए ॥ ७ ॥ वहां भगवान लक्ष्मीजी की गोदमें सोरहे थे । भृगुजी ने उनके निकट पहुंच उनके वक्षःस्थल में लातमारी । अनंतर साधुओं की गति भगवान हरिने लक्ष्मीजी के साथ अपनी शय्या से शीघ्रउठ मस्तक द्वारा मुनिको नमस्कार किया और मधुर वचनों से कहने लगे । हे ब्रह्मन् ! आप सुख से तो आयेहो ? कुछदेर इस आसन पर बैठो । आप का आना मैंने न जाना, हेप्रभो ! मुझे क्षमा करनी चाहिये ॥८-९॥ हे तात ! हे महामुने ! आप के चरणतो अतीव कोमल हैं, सो आपके चरणों में चोटलगी होगी ऐसा कहकर आप अपने हाथ से भृगुजी के पांव दाबनेलगे और बोलेकि ॥ १० ॥ हे भगवन् ! सब तीर्थों के पवित्र करके चरणोदक द्वारा सब लोको समेत मुझको और मेरे अनुयायी लोकपालोंको पवित्रकरो ॥ ११ ॥
आठ २ भगवन् ! आजमें शोभाका एक मात्र पात्रहुआ, आपके पाद प्रहार का चिह्न मेरे वक्षःस्थल में विभूति रूपसे अवस्थित करेगा ॥१२॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि-हे राजन् ! विष्णुजी के इस प्रकार कहनेपर भृगुजी उनकी गम्भीर बातों से तृप्त हो चुपचाप खड़ रहगये और भक्तिके कारण उनका चित्त चचल होउठा दोनों नेत्रों से आनदाश्रु बहनेलगे ॥ १३ ॥ हे राजन् उन्हों ने अपने यज्ञस्थल में आय ब्रह्मवेत्ता ऋषियों से अपनी परीक्षा के फलका वर्णन किया ॥ १४ ॥ तब सब मुनि उसको सुनकर विस्मय को त्याग संदेह रहित होगये । जिससे शांति और अभय प्रवर्तित होताहै उन्होंने उन्हीं विष्णुजी को सबसे बड़ा निश्चय करके कहाकि-जोसाक्षात धर्म स्वरूप हैं, जिनसे ज्ञान, चार प्रकार का वैराग्य, आठ प्रकारके ऐश्वर्य और आत्माका मल नाशक यश प्राप्त किया जासकता है । जोशांत, समदर्शी, अकिंचन, मुनियों के परमगति हैं, सत्व जिनकी प्यारी मूर्ति है और ब्राह्मण जिनके इष्ट देवता है, निष्काम, शांत, निपुण बुद्धि महात्मा जिनका भजन करते हैं ॥ १५-१८ ॥ गुणमय मायासे रचेहुए राक्षस असुर और देवता ये तीनोंतीन प्रकार के उन्हीं भगवान के स्वरूप हैं वे पुरुषार्थ के हेतु हैं ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि-हे राजन् ! सरस्वती तीरवासी मुनि मनुष्योंके संसार हरने के निमित्त इस प्रकारका निश्चयकर भगवान के चरण कमल की सेवाद्वारा उनकी गतिको प्राप्तहुए ॥ २० ॥ सूतजी ने कहाकि-श्रीशुकदेवजी के मुखकमल

स्यपद्मगन्धपीयूषं भवभयभिदं परस्य पुंसः ॥ सुश्लोकंश्रवणपुटैः पिबत्यभीक्ष्णं पा-
न्थोऽध्वभ्रमणपरिश्रमं जहाति ॥ २१ ॥ श्रीशुकउवाच । एकदाद्वारवत्यांतु विप्रप-
त्न्याःकुमारकः । जातमात्रोभुवंस्पृष्ट्वा ममारकिलभारत ॥ २२ ॥ विप्रोगृहीत्वामृ
तकं राजद्वार्युपधायसः । इदंप्रोवाच विलपन्नातुरो दीनमानसः ॥ २३ ॥ ब्रह्मद्विषः
शठधियो लुब्धस्य विषयात्मनः । क्षत्रबन्धोःकर्मदोषात्पंचत्वंमे गतोऽर्भकः ॥२४॥
हिंसाविहारंनृपतिं दुःशीलमजितेन्द्रियम् । प्रजाभजन्त्यःसीदन्ति दरिद्रानित्यदुः-
खिताः ॥ २५ ॥ एवंद्वितीयंविप्रर्षिस्तृतीयं त्वेवमेवच । विसृज्यसनृपद्वारितां गा-
थांसमगायत ॥ २६ ॥ तामर्जुनउपश्रुत्य कर्हिचित्केशवान्तिके ॥ परेतेनवमेबाले
ब्राह्मणंसमभाषत ॥ २७ ॥ किंस्विद्ब्रह्मंस्त्वन्निवासे इहनास्तिधनुर्धरः । राजन्य-
बन्धुरेतेवै ब्राह्मणाःसत्रमासते ॥ २८ ॥ धनदारात्मजापृक्ता यत्रशोचन्तिब्राह्मणाः
तेवैराजन्यवेषेण नटाजीवन्त्यसुंभराः ॥ २९ ॥ अहंप्रजांवांभगवन्रक्षिष्ये दीनयोरि
ह । अनिस्तीर्णप्रतिज्ञोऽग्निं प्रवेक्ष्येहतकल्मषः ॥ ३० ॥ ब्राह्मणउवाच । संकर्षणो
वासुदेवः प्रद्युम्नोधन्विनांवरः । अनिरुद्धोऽप्रतिरथोन त्रातुंशक्नुवन्तियत् ॥ ३१ ॥
तत्कथनुभवान्कर्म दुष्करंजगदीश्वरैः । चिकीर्षसित्वं बालिश्यात्तन्न श्रद्दध्महेवय
म् ॥ ३२ ॥ अर्जुन उवाच । नाहंसंकर्षणोब्रह्मन्न कृष्णःकार्ष्णिरेवच । अहंवाअर्जुनो
नाम गाण्डीवंयस्यवैधनुः ॥ ३३ ॥ माऽवमंस्थाममब्रह्मन्वीर्यं त्र्यम्बकतोषणम् ।

स प्रगट हुए, सुगन्धित अमृतकी समान, संसार के भयको मिटानेवाले व कहने योग्य इस भगवत् यशको संसार चक्रमें भ्रमता हुआ जोमनुष्य कानों के छिद्रद्वारा बारबार पानकरे, उसको संसार मार्गमें भ्रमण करनेको परिश्रम नहीं करना पड़ता ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि-हे भारत कुल-मणि ! द्वारका में एक ब्राह्मण की स्त्रीका पुत्र उत्पन्न होतेही मरगया ॥ २२ ॥ वह ब्राह्मण उस मृतपुत्रको ले राजद्वार में रखकरकातर और दुःखित मनसे विलाप करते२ कहने लगा कि ॥२३॥ ब्रह्मद्वेषी, शठबुद्धि, कामी, विषयासक्त, अधम क्षत्रियों के कर्मोंके दोषसे मेरापुत्र मरगया है ॥२४॥ हिंसा जिसका विहार, जिसका चरित्र दुष्ट और जिसकी इन्द्रिय अजित हैं प्रजा उस राजाकी सेवाकर दरिद्री और दुःखितहो दारुण कष्ट भोगती है ॥ २५ ॥ ब्राह्मण का दूसरा और तीसरा पुत्र भी इसी प्रकार मरगया उसने उनको भी राजद्वार में रख वही बातें कहीं ॥ २६ ॥ इस प्रकार नौ पुत्रों तक मरनेपर अर्जुन ने श्रीकृष्णजी के निकट बैठेहुए इन वाक्योंको सुनकर कहा कि ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे गोसहा आपके वासस्थानमें क्या कोई धनुषधारी नहीं है जो रक्षा करसके यह यह यादव तो यज्ञों में भोजनको इकट्ठे हुए ब्राह्मणसे मालूम होते हो ॥ २८ ॥ इसवार जो आपका पुत्र उत्पन्न होगा वह जिसमें ब्राह्मण हो यज्ञ संपादन करे मैं वही करूंगा । जिसराजाके जीवित रहते हुए ब्राह्मण धन स्त्री और पुत्र रहित हो शोक करते हैं वह प्राण पोषक नटकी समान क्षत्रिय वेश से जीवित रहता है ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! मैं आप दोनों दुःखित की पुत्रों के संतान की रक्षा करूंगा यदि मैं इस प्रतिज्ञा को पूरा न करसकूं तो प्रायश्चित्त के निमित्त अग्नि में प्रवेश करूंगा ॥ ३० ॥ ब्राह्मणने कहा कि-धनुर्द्धारियों में श्रेष्ठ बलराम, वासुदेव, प्रद्युम्न और अप्रतिरथ अनिरुद्ध इनके बीचमें तुम क्या हो ? यह जिसकी रक्षा करने में समर्थ नहीं होते तो तुम मूर्खता वश क्योंकर उसकी-रक्षाकर सकते हो मैं इस बातका विश्वास नहीं करता ॥ ३१ । ३२ ॥ अर्जुनने कहा कि-हेब्रह्मन् ! मैं बलदेव, कृष्ण या प्रद्युम्ननहीं हूं मैं गाण्डीव धनुषवाला अर्जुनहूं ॥३३॥ हे ब्रह्मन् ! मेरेपराक्रम का तिरस्कार नकर, मैंने महादेवजीकोभी तृप्त कियाहै । हे प्रभो ! मैं युद्धमें मृत्युकोभी जीतकर आपकापुत्र लाकर दूंगा॥३४॥

मृत्युंविजित्यप्रधने आनेष्येते प्रजांप्रभो । ॥ ३४ ॥ एवंविश्रम्भितोविप्रः फाल्गुनेनप
रन्तप । जगामस्वगृहंप्रीतः पार्थवीर्यं निशामयन् ॥ ३५ ॥ प्रसूतिकालआसन्ने भा-
र्याया द्विजसत्तमः । पाहि पाहिप्रजां मृत्योरित्याहार्जुनमातुरः ॥३६॥ सउपस्पृश्य
शुच्यम्भोनमस्कृत्य महेश्वरम् । दिव्यान्यस्त्राणिसंस्मृत्य सज्यंगाण्डीवमाददे ।३७।
न्यरुणत्सूतिकागारंशरैर्नानास्त्रयोजितैः । तिर्यगूर्ध्वमधः पार्थश्चकार शरपञ्जरम्
॥ ३८ ॥ ततः कुमारः संजातोविप्रपत्न्यारुदन्मुहुः । सद्योऽदर्शनमापेदेसशरीरोवि
हायसा ॥ ३९ ॥ तदाहविप्रोविजयंविनिन्दन्कृष्णसंनिधौ । मौढ्यंपश्यतमेयोऽहं
श्रद्दधेक्लीबकत्थनम् ॥ ४० ॥ नप्रद्युम्नोनानिरुद्धोनरामोनचकेशवः । यस्यशेकुः प
रित्रातुंकोऽन्यस्तदवितेश्वरः ॥ ४१ ॥ धिगर्जुनंमृषावादंधिगात्मश्लाघिनोधनुः । दै
वोपसृष्टंयोमौढ्यादानिनीषतिदुर्मतिः ॥ ४२ ॥ एवंशपतिविप्रर्षौविद्यामास्थायफा
ल्गुनः । ययौसंयमिनीमाशुयत्रास्तेभगवान्यमः ॥ ४३ ॥ विप्रापत्यमचक्षाणस्तत
ऐन्द्रीमगात्पुरीम् । आग्नेयींनैर्ऋतींसौम्यांवायव्यांवारुणीमथ । रसातलंनाकपृष्ठंधि
ष्ण्यान्यन्यान्युदायुधः ॥ ४४ ॥ ततोऽलब्धद्विजसुतोह्यनिस्तीर्णप्रतिश्रुतः । अग्निं
विविक्षुः कृष्णेनप्रत्युक्तःप्रतिषेधितः ॥ ४५ ॥ दर्शयेद्विजसूनूंस्तेमावज्ञात्मानमात्म
ना । येतेनःकीर्तिंविमलांमनुष्याः स्थापयन्तिनः ॥ ४६ ॥ इतिसंभाष्यभगवानर्जुने
नसहेश्वरः । दिव्यंस्वरथमास्थायप्रतीचींदिशमाविशत् ॥४७सप्तद्वीपान्सप्तसिन्धून्
सप्तसप्तगिरीनथ । लोकालोकंतथाऽतीत्यविवेशसुमहत्तमः ॥४८॥ तत्राश्वाः शैब्यसु

हे शत्रुतापन ! ब्राह्मण अर्जुन की बातों का विश्वासकर उनके पराक्रम का स्मरणकरते करते प्रसन्न चित्त से अपने घरको गया ॥ ३५ ॥ कुछ काल के उपरांत ब्राह्मणकी स्त्रीका फिर प्रसवकाल उपस्थितहुआ तब उस द्विजने कातरहो अर्जुनसे जाकरकहा कि—हेअर्जुन ! अपमृत्यु से पुत्रकी रक्षाकरो, रक्षाकरो ॥ ३६ ॥ तब उन अर्जुनने पवित्र जल से आचमनकर महादेवजी को नमस्कारकिया और दिव्य अस्त्रोंका स्मरणकर प्रत्यंचा समेत गाण्डीव को ग्रहणकिया ३७॥ अर्जुनने नाना अस्त्रों के संयोग से बाणोंद्वारा प्रसूतिका घरको ऊचे, नीचे और तिरछे बेधकर बाणों का पिंजर करदिया ॥ ३८ ॥ अनन्तर ब्राह्मणकी स्त्री का पुत्र उत्पन्न होकर बारम्बार रोनेलगा और तत्कालही शरीर समेत आकाशमार्गहो अलोप होगया ॥ ३९ ॥ तब ब्राह्मण श्रीकृष्णजी के समीपजाय अर्जुन की निंदाकर कहनेलगा कि—मेरी मूढ़ता तो देखो, मैंने जो बड़ाई मारनेवाले नपुंसककी बात पर बिश्वास कियाथा उसका यह फल पाया ॥ ४० ॥प्रद्युम्न अनिरुद्ध राम और श्रीकृष्ण जिसकीरक्षा नहीं करसके; और दूसरा मनुष्य उसकी रक्षा कैसे करसके ? ॥ ४१ ॥ मिथ्यावादी अर्जुन को धिक्कार है जो दुष्ट मूर्खतावश दैव के नाशकियेहुए पुत्रके लाने की इच्छा करताहै और उसके धनुषकोभी धिक्कारहै॥४२॥ब्राह्मणके इसप्रकारसे तिरस्कारकरनेपरअर्जुन विद्याके प्रभावसे संयमनी पुरी में यमके निकट गये ॥ ४३ ॥ वहां ब्राह्मण के पुत्रको न देख इन्द्र पुरी में गये । तदुपरान्त उन्होंने अग्नि, निर्ऋति, चन्द्र, वायु और वरुणकी पुरी में और रसातल स्वर्ग और दूसरे स्थानों में भी अस्त्र उठाकर खोज किया; परन्तु कहींपरभी ब्राह्मण के पुत्रको न देखा । अनन्तर प्रतिज्ञा को पूराहुआ न देख वह अग्नि में प्रवेश करने को उद्यतहुए । श्रीकृष्ण जीने उनको निवारण करके कहा कि—॥ ४४ । ४५ ॥ तुमको ब्राह्मण पुत्र दिखादूंगा, आप अपने का तिरस्कार मत करो; तुम्हारा निर्मल यश मनुष्यलोक में बिख्यात होगा ॥ ४६॥ भगवान श्रीकृष्णजी इस प्रकार कह अर्जुन के संग दिव्य घोड़ोंवाले रथ पर बैठ—पश्चिम दिशा को गये॥ ४७॥ अनन्तर समुद्र सहित सातद्वीप,सात पर्वत और लोकालोक को लांघकर अतिघने अंधकार

ग्रीवमेघपुष्पबलाहकाः । तमसिभ्रष्टगतयोबभूवुर्भरतर्षभ ॥ ४९ ॥ तान्दृष्ट्वाभग-
वान्कृष्णोमहायोगेश्वरेश्वरः । सहस्रादित्यसंकाशंस्वचक्रंप्राहिणोत्पुरः ॥ ५० ॥
तमःसुघोरंगहनंकृतंमहद्विदारयद्भूरितरेणरोचिषा । मनोजवंनिर्विविशेसुदर्शनंगु-
णच्युतोरामशरोयथाचमूः ॥ ५१ ॥ द्वारेणचक्रानुपथनतत्तमःपरंपरंज्योतिरनन्त
पारम् । समश्नुवानंप्रसमीक्ष्यफाल्गुनःप्रताडिताक्षोऽपिदधेऽक्षिणीउभे ॥ ५२ ॥
ततःप्रविष्टःसलिलंनभस्वताबलीयसैजदबृहदूर्मिभूषणम् । तत्राद्भुतंवैभवनंद्युमत्त
मंभ्राजन्मणिस्तम्भसहस्रशोभितम् ॥ ५३ ॥ तस्मिन्महाभीममनन्तमद्भुतंसहस्रमू-
र्धन्यफणामणिद्युभिः । विभ्राजमानंद्विगुणोल्बणेक्षणंसिताचलाभंशितिकण्ठजि-
ह्वम् ॥ ५४ ॥ ददर्शतद्भोगसुखासनंविभुंमहानुभावंपुरुषोत्तमोत्तमम् । सान्द्राम्बु-
दाभंसुपिशङ्गवाससंप्रसन्नवक्त्रंरुचिरायतेक्षणम् ॥ ५५ ॥ महामणिव्रातकिरीटकु-
ण्डलप्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुन्तलम् । प्रलम्बचार्वष्टभुजंसकौस्तुभं श्रीवत्सलक्ष्मं
वनमालयावृतम् ॥ ५६ ॥ सुनन्दनन्दप्रमुखैःस्वपार्षदैश्चक्रादिभिर्मूर्तिधरैर्निजायु
धैः । पुष्ट्याश्रियाकीर्त्यजयाऽखिलर्द्धिभिर्निषेव्यमाणंपरमेष्ठिनांपतिम् ॥ ५७ ॥ व-
वन्द आत्मानमनन्तमच्युतोजिष्णुश्चतद्दर्शनजातसाध्वसः । तावाहभूमापरमेष्ठिनां
प्रभुर्बद्धाञ्जलीसस्मितमूर्जयागिरा ॥५८ ॥ द्विजात्मजामेयुवयोर्दिदृक्षुणामयोपनी
ताभुविधर्मगुप्तये । कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्हत्वेहभूयस्त्वरयेतमन्तिमे॥ ५९ ॥
पूर्णकामावपियुवांनरनारायणावृषी । धर्ममाचरतांस्थित्यैऋषभौलोकसंग्रहम् ॥

में प्रवेशकिया ॥ ४८ ॥ हेभरत श्रेष्ठ ! बहाशैब्य, सुग्रीव मेघ पुष्प और बलाहक ये चलने के स-
मर्थ न हुए ॥ ४९ ॥ महायोगेश्वरों के ईश्वर श्रीकृष्णजी ने उनकी यह अवस्था देख सहस्र सूर्य
की समान प्रभावशाली अपने चक्रका घोर अन्धकार में प्रयोगकिया ॥ ५० ॥ जैसे प्रत्यंचा से
छूटाहुआ श्रीरामचन्द्रजीका बाणसेनाको विदारण करताहुआ प्रवेश करे वैसेही मनकी समान वेग
वाले सुदर्शनचक्रने अपने तेजसे प्रकृति के परिणामस्वरूप निबिड़ अति भयानक घोर अंधकार
का नाशकर उसके मध्यमें प्रवेशकिया ॥ ५१ ॥ चक्रके कियेहुए मार्ग से जाते २ उस अन्धकार
केपरश्रेष्ठ, अनत, अपार ज्योति को फैला हुआ देखकर अर्जुनके नेत्र चौंधियागये और उन्होंने
उनको बंद करलिया॥५२॥अनंतर उन्होंने आकाश मार्ग से उतर बड़ी२ तरंगों वाले जलमें आन्धी
वेगसे प्रवेश किया वहां देदीप्यमान सहस्र मणिमय स्तम्भोंसे शोभित एक भवन देखा ॥ ५३ ॥
उस भवनमें सहस्र मस्तकों के फणाओं में मणियों के प्रकाशसे प्रकाशित भयकर दो सहस्र नेत्र
वाले नीलकंठ नीलजिह्व बड़े शरीर वाले अद्भुत अनंतजीको देखा ॥ ५४ ॥ उन अनतके देहरूप
आसन में महत्तत्व, विभु, परमेष्ठिपति पुरुषोत्तम भगवान को विराजमान देखा । इन भगवान की
कांति निबिड़ घनकी समान है, सुंदर पीताम्बर धारण किये हैं; आंखें दीर्घ व मनोहर हैं ॥ ५५ ॥
सहस्र २ कुण्डल महा मणिकरखचित किरीट और कुण्डल के प्रकाश से सब दिशाएं प्रकाशित
होरही हैं आठों भुजाएं दीर्घ और सुंदर हैं गले में कौस्तुभमणि समेत वनमाला और वक्षमें श्री-
वत्स का चिह्न शोभायमान है ॥ ५६ ॥ सुनंद नंदआदि पार्षद मूर्तिमान चक्रआदि अस्त्र शस्त्र
और पुष्टि, कांति, आज्ञानिखिल, समृद्धि और श्रीभी उन भूमा भगवानकी सेवामें तत्पर हैं । उन
को देख श्रीकृष्ण और अर्जुनने सभय समेत प्रणाम किया । परमेष्ठियों के पति भूमा भगवानने
हाथ जोड़े खड़े हुए उन दोनों जनों को देख हंसकर कहा कि—॥ ५७ । ५८ ॥ हे नारायण !
मैंने तुम दोनों जनोंके देखनेकी इच्छा सेही ब्राह्मणके पुत्रोंका हरण किया है । धर्मरक्षाके निमित्त
भूमंडलमें तुम मेरे अंशसे अवतीर्ण हुए हो; पृथ्वीके भारभूत असुरों को मारकर फिर इस स्थान
में मेरे निकट शीघ्र आओ ॥ ५९ ॥ हे नर नारायण ! तुम पूर्ण काम होकरभी मर्यादा की रक्षा

॥ ६० ॥ इत्यादिष्टौभगवतातौकृष्णौपरमेष्ठिना । ओमित्यानम्यभूमानमादायद्विज
दारकान् ॥ ६१ ॥ न्यवर्ततांस्वकंधामसंप्रहृष्टौयथागतम् । विप्रायददतुःपुत्रान्य
थारूपंयथावयः ॥ ६२ निशाम्यवैष्णवंधामपार्थःपरमविस्मितः । यत्किंचित्पौरुषं
पुंसां मनेकृष्णानुकम्पितम् ॥ ६३ ॥ इतीदृशान्यनेकानिवीर्याणीहप्रदर्शयन् । बुभु
जेविषयान्ग्राम्यानीजेचात्यूर्जितैर्मखैः ॥ ६४ ॥ प्रववर्षाखिलान्कामान्प्रजासुब्राह्म
णादिषु । यथाकालंयथैवेन्द्रोभगवाञ्छ्रैष्ठ्यमास्थितः ॥ ६५ ॥ हत्वानृपानधर्मिष्ठा
न्घातयित्वाऽर्जुनादिभिः । अञ्जसावर्तयामासधर्मंधर्मसुतादिभिः ॥ ६६ ॥

इतिश्रीमा० म० द० उ० एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ सुखंस्वपुर्यांनिवसन्द्वारकायां श्रियःपतिः । सर्वसंपत्समृ-
द्धायांजुष्टायांवृष्णिपुङ्गवैः ॥ १ ॥ स्त्रीभिश्चोत्तमवेषाभिर्नवयौवनकान्तिभिः । क-
न्दुकादिभिर्हर्म्येषुक्रीडन्तीभिस्तडिद्द्युभिः ॥ २ ॥ नित्यंसंकुलमार्गायांमदच्युद्भि
र्मतङ्गजैः । स्वलंकृतैर्भटैरश्वैरथैश्चकनकोज्ज्वलैः ॥३॥ उद्यानोपवनाढ्यायांपुष्पितद्रु
मराजिषु । निर्विशद्भृङ्गविहगैर्नादितायांसमन्ततः ॥ ४ ॥ रेमेषोडशसाहस्रपत्नीना
मेकवल्लभः । तावद्विचित्ररूपोऽसौतद्गृहेषुमहर्धिषु ॥५॥ प्रोत्फुल्लोत्पलकह्लारकु
मुदाम्भोजरेणुभिः । वासितामलतोयेषुकूजद्द्विजकुलेषुच ॥६॥विजहारविगाह्या-
म्भोह्रदिनीषुमहोदयः । कुचकुंकुमलिप्ताङ्गः परिरब्धश्चयोषिताम् ॥ ७ ॥ उपगीय-
मानोगन्धर्वैर्मृदङ्गपणवानकान् । वादयद्भिर्मुदावीणांसूतमागधवन्दिभिः ॥ ८ ॥
सिच्यमानोऽच्युतस्ताभिर्हसन्तीभिःस्मरेचकैः । प्रतिसिञ्चन्विचिक्रीडेयक्षीभिर्य-

और लोकोंकी शिक्षाके निमित्त धर्मसे धर्मका आचरण करते हो ॥ ६० ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुन भूमा भगवान से इसप्रकारकी आज्ञापाय ' जोआज्ञा ' कह उनको नमस्कार किया और ब्राह्मण के पुत्रों कोले अति आनन्दितहो अपने घरको लौटआये । वहां आयकर उस ब्राह्मणको सब पुत्र दिये ॥ ६१—६२ ॥ अर्जुन ने विष्णुजी का स्थानदेख अत्यन्त विस्मित होकर कहाकि मनुष्योंमे जो कुछ पुरुषार्थ है वह सब श्रीकृष्णजीकेही अनुग्रह से है ॥ ६३ ॥ श्रीकृष्णजीने इसप्रकारके अनेक पराक्रमों को दिखाय सब ग्राम्य विषयों का भोगकिया और बड़े २ यज्ञों को भी किया ॥ ६४ ॥ भगवान ने श्रेष्ठताका अवलम्बनकर इन्द्रकी समान ब्राह्मणादि प्रजाओं की समय २ पर इच्छाएं पूर्णकीं ॥ ६५॥ अधर्मी राजाओंको मार और अर्जुनादि से मरवाय युधिष्ठिरादि द्वारा धर्म मार्गको प्रवृत्त किया ॥ ६६ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधे उ०सरलाभाषाटीकायांएकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन् ! द्वारका सम्पत्ति से भरीहुई थी । वृष्णि और यादव उस सुंदर पुरीमें सुखसे बास करते थे ॥ १ ॥ बिजली की समान प्रभावाली , नवीन यौवन से कांतिशालिनी, सुंदर वेशवाली स्त्रियें सुंदर मार्गमें आनंद से गेंद उछाल २ कर क्रीडा करतीं, मद झरते हुए हाथी, भलीप्रकार से अलंकृत योद्धा, रथ और घोडे उस मार्गमें निरंतर फिरा करते । वहां उपवन और उद्यान शोभायमानथे; चारों ओर फूलेहुए वृक्षोंमें बैठेहुए पक्षी और भौंरे शब्द कररहे थे । श्रीपति श्रीकृष्णजी उस पुरीमें सुखसे बास करतेहुए सोलह सहस्र स्त्रियों के प्यारेहो सोलह सहस्र मूर्त्ति धारण कर उनके घरमें विहार करते ॥ २—५ ॥ कभी वह फूलेहुए कमल, कल्हार, बघौला, और पद्मकी केसर सुगंधित सरोवरों के स्वच्छ जलमें पैठकर भौंरों की गुंजार सुनते २ उन सब स्त्रियों के साथ बिहार करते थे ॥ ६—७ ॥ किनारे के पेडों की डालियोंपर पक्षीगान करते । गंधर्व, मृदंग, पणव और ढक्काको बजाते और सूत, मागध तथा बंदीजन उनके गुणोंका गान करते थे ॥ ८ ॥ वे सब स्त्रियें हंसते २ पिचकारियों से श्रीकृष्णजीको भिगोतीं, वह

क्षराडिव ॥ ९ ॥ ताः क्लिन्नवस्त्रविवृतोरुकुचप्रदेशाः सिञ्चन्त्य उद्धृतबृहत्कबरप्रसूनाः । कान्तस्य रेचकजिहीरषयोपगुह्य जातस्मरोत्स्वलसद्वदना विरेजुः ॥ १० ॥ कृष्णस्तु तत्स्तनविषज्जितकुङ्कुमस्रक्क्रीडाभिषङ्गधुतकुन्तलवृन्दबन्धः । सिञ्चन्मुहुर्युवतिभिः प्रतिषिच्यमानो रेमे करेणुभिरिवेभपतिः परीतः ॥ ११ ॥ नटानां नर्तकीनां च गीतवाद्योपजीविनाम् । क्रीडालङ्कारवासांसि कृष्णोऽदात्तस्य च स्त्रियः ॥ १२ ॥ कृष्णस्यैवं विहरतो गत्यालापेक्षितस्मितैः । नर्मक्ष्वेलिपरिष्वङ्गैः स्त्रीणां किल हृता धियः ॥ १३ ॥ ऊचुर्मुकुन्दैकधियो गिर उन्मत्तवज्जडम् । चिन्तयन्त्योऽरविन्दाक्षं तानि मे गदतः शृणु ॥ १४ ॥ महिष्य ऊचुः ॥ कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः । वयमिव सखि कच्चिद्गाढनिर्भिन्नचेता नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ॥ १५ ॥ नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबन्धुस्त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि । दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां किं वा स्रजं स्पृहयसे कबरेण वोढुम् ॥ १६ ॥ भोभोः सदा निष्टनसे उदन्वन्नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागरः । किं वा मुकुन्दापहृतात्मलाञ्छनः प्राप्तां दशां त्वं च गतो दुरत्ययाम् ॥ १७ ॥ त्वं यक्ष्मणा बलवताऽसि गृहीत इन्दो क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षिणोषि । कच्चिन्मुकुन्दगदितानि यथा वयं त्वं विस्मृत्य भोः स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः ॥ १८ ॥ किं त्वाचरितमस्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम् । गोविन्दापाङ्गनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरम् ॥ १९ ॥ मेघ श्रीमंस्त्वमसि दयितो

भी उन सबको भिगोकर अप्सरियों समेत कुबेर की समान क्रीड़ा करते रहते ॥ ९ ॥ भीगते २ जब उनके वस्त्र भीगजाते तब उनके कुच प्रदेश प्रकाशित होजाते और उनके जूड़ों से फूल गिरने लगते, अपनी २ पिचकारी छीनने के निमित्त वे पतिसे लिपटजातीं, इससे काम उद्दीप्त होकर लज्जाके कारण उनका मुख प्रफुल्लित होजाता, इससे उनकी शोभा सौगुणी बढ़जाती ॥ १० ॥ श्रीकृष्णजी भी भिगोते २ स्वयं स्त्रियों से भीगकर हथिनियों से घिरेहुए हाथियों की समान क्रीड़ा करते रहते । उन सब स्त्रियों के स्तन लगने से उनकी फूलोंकी माला टूटजाती और क्रीड़ा के अभिनिवेश से उनके कुंडलों के बन्धन ढीले होकर कांपने लगते ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णजी और उनकी स्त्रियें नचैये और गवैयोंको क्रीड़ा के समय उचित अलंकार और वस्त्र देते । श्रीकृष्णजी ने गति, आलाप, हास्य, परिहास, दृष्टि, क्रीड़ा और आलिंगन से इसप्रकार बिहारकर उन स्त्रियोंका चित्त हरण कियाथा ॥ १२—१३ ॥ जिन्होंने केवल श्रीकृष्णजीही में चित्त लगा लियाथा, वे सब स्त्रियें भगवान का ध्यान करतीं हुई उन्मत्त की समान वाक्योंको कहतीं, मैं उन सब वाक्योंको कहता हूं सुनो ॥ १४ ॥ स्त्रियें कहतीं कि—हे सखि टिटिहरी ! इस समय रात्रिमें श्रीकृष्णजी गाढ़ीनिद्रा में सोरहे हैं मैं उनकी निद्रा भंगकरती हूं यह बिचारकर तू विलाप करती है ? तुझेनिद्रा नहीं है शयन क्यों नहीं करती ? हे सखि ! कमल लोचन के हास्ययुक्त उदार कटाक्ष विक्षेप द्वाराक्या तेराभी चित्तभकी प्रकार से बिद्ध होगया है ॥ १५ ॥ हे चकवि ! तू अपने स्वामी के दर्शन न पाय रात्रिमें दोनों नेत्रोंको नहीं मूंदती; करुणा कर २ के रोदन करती है ? अथवा तू क्यादासी भावको प्राप्त हमारी समान श्रीकृष्णजी की चरण सेवित मालाको जूड़ेमें धारण करने के निमित्त रोदन करती है ॥ १६ ॥ अरे जलनिधे ! तू सर्वदाही शब्द करता है तुझको निद्रा नहीं आती, इसही कारण जागता रहता है; अथवा भगवान के रत्न हरण करने से हमारी समान तूभी दुस्त्यज दशाको प्राप्त होरहा है ॥ १७ ॥ हे चन्द्र ! तुमकिस बलवान रोगसे आक्रांत होकरक्षीण होरहेहो किंवा अपनी किरणों से अंधकारको नाश नहीं करसकते ? हे शशधर ! श्रीकृष्णजी की बातोंको भूलकर तुम कैसेचुप होरहेहो ? हमतो तुमको इसी प्रकार देखतीं हैं ॥ १८ ॥ हे मलयानिल ! हमने तेराक्या अप्रिय कियाथा कि तू श्रीकृष्णजी के कटाक्षों से मग्नहुए हमारे हृदय में काम देवको

यादवेन्द्रस्यनूनंश्रीवत्साङ्कंवयमिवभवान्ध्यायतिप्रेमबद्धः । अत्युत्कण्ठः शबलहृदयोऽस्मद्विधोबाष्पधाराः स्मृत्वास्मृत्वाविसृजसिमुहुर्दुःखदस्तत्प्रसङ्गः॥२०॥प्रियरावपदानिभाषसे मृतसञ्जीविकयाऽनयागिरा।करवाणिकिमद्यते प्रियं वदमेवल्गितकण्ठकोकिल ॥२१॥ नचलसिनवदस्युदारबुद्धे क्षितिधरचिन्तयसेमहान्तमर्थम् अपिबतवसुदेवनन्दनाङ्घ्रि वयमिव कामयसेस्तनैर्विधर्तुम् ॥ २२ ॥ शुष्यद्ध्रदाःकरशितावतसिन्धुपत्न्याः संप्रत्यपास्तकमलश्रियइष्टभर्तुः । यद्वद्वयंमधुपतेः प्रणयावलोकमप्राप्य मुष्टहृदयाःपुरुकर्शिताःस्म ॥२३॥ हंसस्वागतमास्यतां पिबपयोब्रूह्यङ्ग शौरेःकथांदूतं त्वांनुविदामकच्चिदजितः स्वस्त्यास्तउक्तंपुरा। किंवानश्चलसौहृदःस्मरतितं कस्माद्भजामोवयं क्षौद्रालापयकामदं श्रियमृतेसैवैकनिष्ठास्त्रियाम् ॥ ॥ २४ ॥ इतीदृशेनभावेन कृष्णेयोगेश्वरेश्वरे । क्रियमाणेनमाधव्यो लेभिरेपरमांगतिम् ॥ २५ ॥ श्रुतमात्रोऽपियःस्त्रीणां प्रसह्याकर्षतेमनः । उरुगायोरुगीतोवा पश्यन्तीनांकुतः पुनः ॥ २६ ॥ याः संपर्यचरन्प्रेम्णापादसंवाहनादिभिः । जगद्गुरुंभर्तृबुद्ध्यातासांकिंवर्ण्यतेतपः ॥ २७ ॥ एवंवेदोदितंधर्ममनुतिष्ठन्सतांगतिः । गृहंधर्मार्थकामानांमुहुश्चादर्शयत्पदम् ॥ २८ ॥ आस्थितस्यपरंधर्मंकृष्णस्यगृहमेधिना

प्रेरित करता है ॥ १९ ॥ हे मेघ ! निश्चयही तुम यादवेन्द्र के प्रियहो, इसही कारण प्रेमसे बद्धहो हमारी समान श्रीवत्स चिह्नधारी की चिंताकरते हो और हमारी समान सरल हृदय से तुमभी उनके प्रसंग का स्मरण कर अत्यंत उत्कंठितहो अश्रुधारा बहातेहो ॥ २० ॥ हे कोकिल ! तू मृतक को भी जीवित करनेवाली इस मधुर वाणी से प्यारे श्रीकृष्णजी के वचनों की समान शब्द करती है । हे रमणीयकण्ठ ! मुझ से कह कि-हम तेरा क्या प्रियकार्य करें ? ॥ २१ ॥ हे भूधर ! तुम्हारी बुद्धि अत्यंत बड़ी है, इसही कारण तुम किसी भारी विषयकी चिंता करते हो; न तो तुम कुछ हिलते चलतेहो और न मुख से बोलतेहो । अथवा तुम क्या हमारी समान श्रीकृष्णजी के चरण कमलों को हृदयमें धारण करने की इच्छा करतेहो ? ॥ २२ ॥ हे समुद्र की स्त्रियों नदियों ! तुम्हारे सब गम्भीर प्रदेश सूखगए हैं इसकारणतुम अति दुर्बल और कमल की शोभा से रहित होगईहो । इस दारुण गरमी से प्रिय समुद्र तुम्हारे आनन्द को नहीं बढ़ाता । अहो ! हम जैसे स्वामी श्रीकृष्णजी की कृपा दृष्टि न पाकर शुष्क हृदय और अत्यन्त कृशहो रही हैं तैसही इस समय तुमभी कृश होरहीहो ॥ २३ ॥ हे हंस ! तुम सुखसे तो आयेहो ! बैठो दूध पियो, अहा!श्रीकृष्णजी का समाचार कहो ! जानता हूं कि तुम दूतहो; श्रीकृष्णजी तो सुख से हैं । हमसे पहले जो बातें कहीथीं क्षणिक स्नेह रखनेवाले भगवान क्या उस का कभी एक बारभी स्मरण करते हैं ? हम उनका किस प्रकार भजनकरें । हे क्षुद्रके दूत ! अकेले लक्ष्मीजी ही क्या उनका भजन करती हैं ? उन काम सुखार्थी भगवान को यहीं बुलाला‌ओ, हम सबों में से क्या लक्ष्मीही एक निष्ठ वाली हैं ? ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! योगेश्वर श्रीकृष्णजी की ऐसी आसक्तिद्वारा उन स्त्रियों ने वैष्णवी गति प्राप्त करली ॥ २५ ॥ गाने व सुनने सेही जो भगवान स्त्रियों के मनका हरण करलेते हैं उन भगवान के साक्षात् दर्शन से जो स्त्रियों का मन हरजावे उसमें संदेहही क्या है ? ॥ २६ ॥ जिन्होंने स्वामि बुद्धिसे चरण सेवादिद्वारा प्रेमयुक्त भगवान की पूजाकीथी उनकी तपस्या का और क्या वर्णन करूं ? ॥ २७ ॥ साधुओं की गति श्रीकृष्णजी ने वेदोक्त धर्मका इसप्रकार से अनुष्ठान कर धर्म, अर्थ और काम के मार्ग को बारम्बार दिखायाथा ॥ २८ ॥ भगवान गृहस्थाश्रम के धर्म का भली भांति से पालन करतेथे

म् । आसन्सषोडश साहस्रं महिष्योऽष्टशताधिकम् ॥ २९ ॥ तासांस्त्रीरत्नभूतानाम-
ष्टौयाः प्रागुदाहृताः । रुक्मिणीप्रमुखा राजंस्तत्पुत्राश्चानुपूर्वशः ॥३०॥ एकैकस्यां
दशदश कृष्णोऽजीजनदात्मजान् । यावंत्यआत्मनोभार्या अमोघगतिरीश्वरः ३१॥
तेषामुद्दामवीर्याणामष्टादश महारथाः । आसन्नुदारयशसस्तेषां नामानिमेशृणु ॥
॥ ३२ ॥ प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान्भानुरेवच । साम्बोमधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृ-
कोऽरुणः ॥ ३३ ॥ पुष्करोवेदबाहुश्च श्रुतदेवःसुनन्दनः । चित्रबाहुर्विरूपश्च कवि-
र्न्यग्रोधएवच ॥३४॥ एतेषामपिराजेन्द्र तनुजानांमधुद्विषः । प्रद्युम्नआसीत्प्रथमः
पितृवद्रुक्मिणीसुतः ॥ ३५ ॥ सरुक्मिणो दुहितरमुपयेमे महारथः । तस्मात्सुतोऽ-
निरुद्धोऽभून्नागायुतबलान्वितः ॥ ३६ ॥ सचापिरुक्मिणःपौत्रीं दौहित्रोजगृहेततः
वज्रस्तस्याभवद्यस्तु मौसलादवशेषितः॥३७॥प्रतिबाहुरभूत्तस्मात्सुबाहुस्तस्य चा
त्मजः । सुबाहोः शान्तसेनोऽभूच्छतसेनस्तु तत्सुतः ॥ ३८ ॥ नह्येतस्मिन्कुलेजा-
ता अधना अबहुप्रजाः । अल्पायुषोऽल्पवीर्याश्च अब्रह्मण्याश्च जज्ञिरे ॥ ३९ ॥ य-
दुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणाम् ।संख्यानशक्यते कर्तुमपिवर्षायुतैर्नृप॥४०॥
तिस्रः कोट्यःसहस्राणामष्टाशीतिशतानिच । आसन्यदुकुलाचार्याः कुमाराणामि-
तिश्रुतम् ॥४१॥ संख्यानंयादवानांकः करिष्यतिमहात्मनाम् । यत्रायुतानामयुतल-
क्षेणास्तेसआहुकः ॥ ४२ ॥ देवासुराहवहता दैतेयायेसुदारुणाः । तेचोत्पन्नामनु-
ष्येषु प्रजादृप्ताबबाधिरे ॥ ४३ ॥ तन्निग्रहायहरिणा प्रोक्तादेवायदोःकुले । अवती-
र्णाःकुलशतं तेषामेकाधिकंनृप ॥ ४४ ॥ तेषांप्रमाणं भगवान्प्रभुत्वेनाभवद्धरिः ॥

श्रीकृष्णजी के सोलहसहस्र एकसौ आठ स्त्रियेंथीं ॥ २९ ॥ उन सब स्त्रियों में से रुक्मिणी आदि
आठजन कि जिनका वर्णन प्रथमकियागया है प्रधानथीं । हेराजन् ! प्रथम उनका और उनके
पुत्रों का भी वर्णन कियागया है ॥ ३० ॥ अमोघगति ईश्वर श्रीकृष्णजी के जितनी स्त्रियांथीं
उनसब में उन्होंने प्रत्येक के दश २ पुत्र उत्पन्न किये ॥ ३१ ॥ बडे पराक्रमवाले उन सब पुत्रों
में से अठारह जन उदार यशवाले और महारथीथे मुझ से उनसबके नामसुनो;— ॥३२॥ प्रद्युम्न
अनिरुद्ध, दीप्तिमान, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, भानुवृन्द, वृक, अरुण, ॥ ३३ ॥ पुष्कर, वेद
बाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रबाहु, विरूप, कवि और न्यग्रोध ॥ ३४ ॥ हे राजेंद्र इन सब पुत्रोंसे
श्रेष्ठ रुक्मिणीनंदन प्रद्युम्न पिता की समान थे ॥ ३५ ॥ उस महारथी ने रुक्मी की पुत्रीसे बिवाह
कियाथा उस स्त्री के गर्भ से उनके दशसहस्र हाथियों के बलवाले अनिरुद्धने जन्म ग्रहण कियाथा
॥ ३६ ॥ अनिरुद्ध ने रुक्मी के दौहित्र होकर भी उसकी पौत्री से बिवाह किया । उससे वज्र
उत्पन्नहुआ–, मौसलयुद्ध के उपरांत केवल वज्रही शेषरहाथा ॥ ३७ ॥ उस के प्रतिबाहु और
प्रतिबाहुके सुबाहु हुआ । सुबाहु से शांतसेन और शांतसेनसे शतभद्रसेन उत्पन्नहुआ ॥ ३८ ॥ इस
कुलमें जिन्होंने जन्मग्रहण कियाथा वे धनहीन, सन्तानहीन, अल्पायु, अल्पपराक्रमी, व ब्राह्मणों के
अहितकारी नहींहुए॥३९॥ यदुवंशमें उत्पन्नहुए विख्यात यशवाले मनुष्योंकी संख्या सौवर्षतक नहीं
गिनी जासकती॥४०॥ सुनाहै कि उन असंख्य अपरिमित कुमारोंके पढ़ानेके निमित्त तीनकरोड़
आठहजार आठसौजन आचार्य नियतथे॥४१॥ महात्मायादवोंकी संख्या कौन करसकता है, जिस
कुलमें कईलाख यादवोंके संग उग्रसेनजी विराजमानथे॥४२॥ जिन दुष्ट दैत्योंने देवासुरके संग्राममें
प्राणत्याग कियेथे उन्होंने मनुष्योंमें जन्मले मदके गर्व से गर्वितहो प्रजाको पीड़ित किया ॥४३॥
उनके नाशकरनेके निमित्त भगवानकी आज्ञापाय देवता यदुकुलमें उत्पन्न हुए थे । हे राजन् !
उनके एकसौ एक कुलथे ॥४४॥ ये यादव श्रीकृष्णजीको अपना प्रभु जानते और उन्हींको प्रमाण

येऽनुवर्तिनस्तस्य ववृधुः सर्वयादवाः ॥ ४५ ॥ शय्यासनाटनालापक्रीडास्नाना-
दिकर्मसु । न विदुः सन्तमात्मानं वृष्णयः कृष्णचेतसः ॥ ४६ ॥ तीर्थं चक्रे नृपोनं यद-
जनि यदुषु स्वःसरित्पादशौचं विद्विट्स्निग्धाः स्वरूपं ययुरजितपरा श्रीर्यदर्थेऽन्य-
यत्नः । यन्नामाऽमङ्गलघ्नं श्रुतमथ गदितं यत्कृतो गोत्रधर्मः कृष्णस्यैतन्न चित्रं क्षितिभ
रहरणं कालचक्रायुधस्य ॥ ४७ ॥ जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो यदुवरपरि
षत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् । स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितश्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां व-
र्धयन्कामदेवम् ॥ ४८ ॥ इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयाऽऽत्तलीलातनोस्तदनुरूपवि
डम्बनानि । कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य श्रूयादमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन् ।
॥ ४९ ॥ मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुन्दश्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयैति । तद्धा
म दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं ग्रामाद्वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां दशम-
स्कन्धोत्तरार्द्धे श्रीकृष्णचरितानुवर्णनंनाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥
समाप्तोऽयं दशमस्कंधः ॥ १० ॥

मानते । सब यादवों ने श्रीकृष्णजीके अनुवर्त्तीहो वृद्धि पाई थी ॥ ४५ ॥ श्रीकृष्णजीमें निरंतर चित्तलगाने वाले यादव सोना, बैठना, भ्रमणकरना, आलाप, क्रीड़ा, स्नान और भोजनादि विषय में अपने आपेकोही भूलजाते ॥ ४६ ॥ हे महाराज ! श्रीकृष्णजीका जो कीर्त्तिरूप तीर्थ यदुकुल में उत्पन्नहुआ उसने उनके (भगवान) चरणोंके धोयेहुए जलरूप गंगातीर्थको न्यूनकर दिया यह विचित्र नहीं है । श्रीकृष्णजी के शत्रु और मित्र सब जब उनकी स्वरूपताको प्राप्त होते हैं तब इसमें आश्चर्यही क्या है ! जो आजतक किसीको न प्राप्तहुई, जिसके निमित्त दूसरेप्रयत्नकरते हैं वह पूर्ण लक्ष्मी श्रीकृष्णजीकीही होगईथी यहभी विचित्र नहीं है; क्योंकि उनका नाम सुनने और उच्चारण करने सेही अमंगलों का नाशकरता है । उन्होंने समस्त ऋषि कुलमें गोत्रधर्म प्रव [illegible] किया । उन श्रीकृष्णजी के भूभार हरणकानेक कार्योंमें कुछ आश्चर्य नहीं है; कालचक्र उन का अस्त्र है ॥ ४७ ॥ जो जीवोंके आश्रय, देवकी के गर्भ में जन्म ग्रहण कियाथा, यही केवल जिनका अपवाद है, श्रेष्ठ यादव जिनके सेवक हैं, जिन्होंने अपनी भुजाओंसे अधर्मका नाश किया जो स्थावर जगम के ससाररूप दुःखको हरते हैं और जिन्होंने सुन्दर हास्यसे शोभित श्रीमुख द्वारा ब्रजनारियों के कामको बढायाथा,—उनकी जयहोवे ॥ ४८ ॥ जो मनुष्य भगवत् चरणों के सेवाकी इच्छा रखता है उसको धर्म रक्षाके निमित्त देहधारी यदुत्तम श्रीकृष्णजी के कर्म नाशक चरित्रोंको सुनना चाहियें ॥ ४९ ॥ राजा भी जिनके निमित्त ग्रामको छोड़कर बनमें गयेथे उन श्रीकृष्णजी की सुंदर कथाका श्रवण व कीर्तन सहित ध्यानकरने से बढ़ीहुई भक्तिद्वारा मनुष्य दुरत कालको भी जीत उनके लोकको प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधे श्रीमदनन्यविद्वद्वरसारस्वतकुलोद्भव पण्डितजगन्नाथतनूज पं० कन्हैयालालशर्मानिर्मितायांसरलाभाषाटीकायांनवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥
दशमस्कन्ध समाप्तः ॥ १० ॥

भाषाटीकासहित

श्रीमद्भागवत.

मूल्य ३) रु०

मूल श्लोक तथा अन्वयमुख भाषाटीका सहित । सम्पूर्ण बारहों स्कन्ध । मूल्य डांकव्यय सहित ३, टाइपके सुन्दर अक्षरोंमें अत्युत्तम चिकने क़ागज पर शंकासमाधान व अत्यन्त सरल भाषाटीका सहित यह ग्रंथ छपाहै । बड़े अक्षरों में मूल और छोटे अक्षरों में भाषाटीका छापा है । भाषाटीका ऐसा है कि जिस के पठन पाठन से किसी प्रकार का सन्देह श्रीमद्भागवत में नहीं रहता कारण कि इस भाषाटीका में श्रीधरी, बालप्रबोधिनी, विजयध्वजी, तोषणी इत्यादि सबही सुन्दर संस्कृत टीकाओंका आशय लिखागया है । यह एकही पुस्तक संस्कृत और भाषा की पन्द्रह पुस्तकोंके बराबर काम देगी । प्रिय पाठकगण ! श्रीमद्भागवत की महिमा को कौन नहीं जानता ? इसके पठन पाठन से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह चारों पदार्थ प्राप्त होते हैं । इसही महापुराण के श्रवण करने से राजा खट्वांग ने ढाई घड़ी में और नरनाथ परीक्षित ने सात दिन में मुक्ति पाईथी । ऐसे ग्रन्थ का जितना प्रचारहो उतनाही अच्छा है । कथा बांचनवाले पण्डित, साधु, योगी, यती आदि सबही के सुभीते के लिये केवल ५०० ग्राहकों को यह बृहद् ग्रन्थ ३) रु० में दिया जायगा । फिर पीछे मूल्य बढ़ेगा । हिन्दी बंगवासी आदि समाचार पत्रों ने हमारे प्रकाशित इस ग्रंथ की अत्यन्त प्रशंसा की है ।

सावधान !

नक़ाल लोग फड़फड़ाए हैं । इस ग्रंथ की अधिक बिक्री ने तो त्यागियों को भी व्यौपारी बनादिया, फिर सबों के अनुकरणप्रियतो अवश्यही खड़पच लगावेंगे । जो लोग पं० वैद्यनाथ या पं० कन्हैयालाल तंत्रवैद्य या मेरेनाम पत्र भेजचुके हैं उनको अब पत्र भेजनेकी आवश्यकता नहीं।उनकेनाम पुस्तकें भेजीजारही हैं ।

दशमस्कन्ध !

श्रीमद्भागवत का यह दशमस्कन्ध अलगभी बिकता है मूल और भाषाटीका सहित है मूल्य १) रु० डाकव्यय ।=, ।

अद्भुतग्रंथ

महाविद्या (भाषा) स्वर्ग, नर्क और पाताल का वृत्तान्त मृतक आत्मा से बात चीत करनेका उपाय तथा और भी शतशः विषय हैं । मूल्य १।।, जगत्प्रभा उपन्यास १।, गायत्री तंत्र मू० भा० टी० ।।।=, मेघनाद कृत उड्डीस मू० भा० टी० १=, नरविद्रा नाटक ।, दयानंदमतविद्रावण (सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश का खण्डन) ।।, शंकावली दो भाग (स्वामी ईश्वरानन्दकृत) ।, कीमियां ।।।, प्रचण्डचण्डिका तंत्र ।।, शाक्तानंदतरंगिणी भाषा १, गुप्तसाधन तंत्र मू० भा० टी० १।, कामकुतूहल मू० भा० टी० इसमें आजमाएहुए प्रयोग हैं । मूल्य ।।।,

पता—मैनेजर तंत्रप्रभाकर प्रेस, मुरादाबाद. ।







श्रीमद्भागवत भाषाटीका सहित.

एकादश स्कन्ध.

अथैकादशस्कन्धप्रारम्भः॥ श्रीबादरायणिरुवाच ॥ कृत्वादैत्यवधंकृष्णः सरा
मोयदुभिर्वृतः । भुवोऽवतारयद्भारंजविष्ठंजनयन्कलिम् ॥ १ ॥ येकोपिताः सुबहु
पाण्डुसुताःसपत्नैर्दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिस्तान् । कृत्वानिमित्तमितरेतरतःस
मेतान्हत्वानृपान्निरहरत्क्षितिभारमीशः ॥ २ ॥ भूभारराजपृतनायदुभिर्निरस्यगुप्तैः
स्वबाहुभिरचिन्तयदप्रमेयःमन्येऽवनेर्ननुगतोऽप्यगतंहिभारंयद्यादवंकुलमहोअवि
षह्यमास्ते ॥ ३ ॥ नैवान्यतः परिभवोऽस्यभवेत्कथञ्चिन्मत्संश्रयस्यविभवोन्नहन
स्यनित्यम् । अन्तः कलिंयदुकुलस्यविधायवेणुस्तम्बस्यवह्निमिवशान्तिमुपैमि
धाम ॥ ४ ॥ एवंव्यवसितोराजन्सत्यसङ्कल्पईश्वरः । शापव्याजेनविप्राणांसंज
ह्रे स्वकुलंविभुः ॥ ५ ॥ स्वमूर्त्यालोकलावण्यनिर्मुक्त्यालोचनंनृणाम् । गीर्भिस्ताः
स्मरतांचित्तंपदैस्तानीक्षतांक्रियाः ॥ ६ ॥ आच्छिद्यकीर्तिंसुश्लोकांवितत्यह्यञ्जसा
नुकौ । तमोऽनयातरिष्यन्तीत्यगात्स्वंपदमीश्वरः ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मण्यानां
वदान्यानांनित्यंवृद्धोपसेविनाम् । विप्रशापः कथमभूद्वृष्णीनांकृष्णचेतसाम् ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—श्रीकृष्णजी ने राम और यदुवंशियों से घिरकर स्वयं दैत्यों को मार व कलह उत्पन्नकराय दैत्यों को मरवाय पृथ्वी का भार दूर किया ॥ १ ॥ बैरियों ने कपट द्यूत, तिरस्कार और द्रौपदी के केश आदि पकड़कर अनेकबार जो पाण्डुपुत्रों को कुपित कियाथा भगवान ने उनके पक्ष में होकर युद्ध में इकट्ठेहुए दोनों पक्ष के राजाओं का नाशकरके पृथ्वी का भार दूर किया ॥ २ ॥ इसप्रकार से पाण्डव और यादवोंद्वारा पृथ्वीके भारस्वरूपराजाओं का और उनकी सेना का नाशकर अप्रमेय भगवान ने विचारा कि—मैं देखताहूं पृथ्वी का भार दूरहोकरभी दूर नहीं हुआ क्योंकि असहनीय यादवकुल तो अबतक वर्तमान है ॥ ३ ॥ यह कुल मेरे आश्रय से रहता है और हाथी घोड़े आदि वैभवों से बढ़उठा है,अतएव दूसरा औरकोई किसी प्रकार से भी इसका पराभव नहीं करसकता। बांस की रगड़ से जैसे अग्नि उत्पन्न होकर उसको समूल नाश करती है मैं भी उसी प्रकार यदुवंशियों में कलह उत्पन्न कराय इनका नाश कर शांति को प्राप्तहो वैकुण्ठ को जाऊं। हेराजन्! सत्य संकल्प श्रीकृष्णजी ने इसप्रकार दृढ़ निश्चयकर ब्राह्मणों के शापके मिष से अपने वंश का नाश किया ॥ ४—५ ॥ जिसने लोकोंको लावण्यहीन किया, उसी अपनी मूर्ति से मनुष्यों के नेत्रों को और वाक्यद्वारा उन समस्त वाक्य स्मरण कारियों के हृदय खिंचकर और नाना स्थानों में अंकित पद चिह्नों से उन समस्तपद चिह्नों के देखनेवाले मनुष्य दूसरे स्थान में जाने आदि शरीर की चेष्टाओं को रोककर इसकेद्वारा निश्चयही क्लेशरहितहो अज्ञान से छूटसकें, इसही अभिप्रायसे पृथ्वी पर कवियों के भलीप्रकार से वर्णनीय कीर्ति का विस्तार कर भगवान अपने धाम को गये ॥ ७ ॥ राजा ने कहा कि-हेभगवन्! ब्राह्मणों के हितकारी, दानी, वृद्धों के नित्य सेवक, श्रीकृष्णजी के भक्त यादवों पर ब्रह्मशाप क्यों

यन्निमित्तः सवैशापोयादृशोद्विजसत्तम । कथमेकात्मनांभेदएतत्सर्वंवदस्वमे॥९॥
श्रीशुक उवाच ॥ बिभ्रद्वपुः सकलसुन्दरसन्निवेशंकर्माऽऽचरन्भुविसुमङ्गलमाप्त
कामः । आस्थायधामरममाणउदारकीर्तिःसंहर्तुमैच्छतकुलंस्थितकृत्यशेषः ॥१०॥
कर्माणिपुण्यनिवहानिसुमङ्गलानिगायज्जगत्कलिमलापहराणिकृत्वा । कालात्मना
निवसतायदुदेवगेहेपिण्डारकंसमगमन्मुनयोनिसृष्टाः ॥ ११ ॥ विश्वामित्रोऽसितः-
कण्वोदुर्वासाभृगुरङ्गिराः । कश्यपोवामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठोनारदादयः ॥ १२ ॥ क्री
डन्तस्तानुपव्रज्यकुमारायदुनन्दनाः । उपसंगृह्यपप्रच्छुरविनीताविनीतवत् ॥१३॥
तेवेषयित्वास्त्रीवेषैः साम्बंजाम्बवतीसुतम् । एषापृच्छतिवोविप्राअन्तर्वत्न्यसितेक्ष
णा ॥ १४ ॥ प्रष्टुंविलज्जतीसाक्षात्प्रब्रूतामोघदर्शनाः । प्रसोष्यन्तीपुत्रकामाकिंस्वि
त्संजनयिष्यति ॥ १५ ॥ एवंप्रलब्धामुनयस्तानूचुः कुपितानृप । जनयिष्यतिवोम
न्दामुसलंकुलनाशनम् ॥ १६ ॥ तच्छ्रुत्वातेऽतिसन्त्रस्ताविमुच्यसहसोदरम् । सा
म्बस्यददृशुस्तस्मिन्मुसलंखल्वयस्मयम् ॥ १७ ॥ किंकृतमन्दभाग्यैर्नःकिंवदिष्य
न्तिनोजनाः । इतिविह्वलितागेहानादायमुसलंययुः ॥ १८ ॥ तच्चोपनीयसदसिप
रिम्लानमुखश्रियः । राज्ञआवेदयाञ्चक्रुः सर्वयादवसन्निधौ ॥ १९ ॥ श्रुत्वाऽमोघं
विप्रशापंदृष्ट्वाचमुसलंनृप । विस्मिताभयसंत्रस्ताबभूवुर्द्वारकौकस. ॥ २० ॥ त
च्चूर्णयित्वामुसलंयदुराजःसआहुकः । समुद्रसलिलेप्रास्यल्लोहंचास्यावशेषि
तम् ॥ २१ ॥ कश्चिन्मत्स्योऽग्रसील्लोहंचूर्णानितरलैस्ततः । उह्यमानानिवेलायांल

कर हुआथा ॥ ८ ॥ हे द्विजवर ! वह शाप कैसा और क्योंकर दियागया ? एकात्मा यादवों में कलह किसप्रकार हुआ ? इस समस्त वृत्तांत को मुझ से कहो ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-पूर्णकाम, उदारकीर्ति, श्रीकृष्णजी ने समस्त पदार्थों के आधार स्वरूप, भुवन मोहन रूप धारण करके पृथ्वी पर मङ्गलमय कर्मोंका आचरण कियाथा; किंतु तौभी उनका कर्तव्य शेष रहगयाथा इसही कारण हरि ने घर का आश्रयकर क्रीडा करतेहुए कुल के नाश करने की इच्छा की ॥ १० ॥ उनके समस्तकर्म पुण्यदायी, अति सुख कर और कलि के पापनाशक हैं । वसुदेवके घर में अवतीर्ण होकर भगवान ने उन सब कार्यों को कियाथा ॥ ११ ॥ हेराजन् ! उस समय वि-श्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वशिष्ठ और नारदादिमुनि श्रीकृष्णजी से विदाले उनकी आज्ञानुसार द्वारकाके निकट पिण्डारक नामक तीर्थ में वास करतेथे ॥१२॥ एक समय वहां यदुवंशियों के पुत्र खेलते२ जाम्बवती के पुत्र साम्बको स्त्री वेश से सजाय उनके निकट पहुंचे और उनके चरणपकड़ विनीत की समान पूँछने लगे कि-हेअमोघ दर्शन विप्रों ! यहकृष्ण लोचना गर्भवती पुत्रकी कामना करती है; इसका प्रसवकाल निकटही है; मुख खोलकर आप से पूँछने में यह लज्जा करती है; इसही कारण हमसे यह आप से पुछवाती है आप कहो कि इसके पुत्र या कन्या क्या होगा ? ॥ १३—१५ ॥ हे नरपते ! मुनिगण इसप्रकार से ठगेजाने पर अ-त्यन्त कुपितहो उनसे कहने लगे कि-रेमदो ! यह स्त्री तुमसबका कुलनाशक मूषल प्रसव करेगी ॥ १६ ॥ वे यह सुनकर अत्यंत भयभीतहुए और सहसा उसव के कृत्रिम उदर को खोला तो उसमें सत्यही लोहमय मूसल देखा ॥ १७ ॥ तबसब " मंद भाग्यता से हमने क्याकिया मनुष्य हमें क्या कहेंगे ? " इस प्रकारकी चिंता से विह्वलहो मूषल को लेकर अपने घर में आये॥१८॥ और मलीन मुखहो उन कुमारोंने यादवों के समीप उस मूषल को रख राजा से उस सबवृत्तांत को कहा ॥ १९ ॥ हेराजन् ! अमोघ ब्रह्मशाप को सुनकर और मूषल को देखकर द्वारकावासी अत्यंत विस्मित और भय से व्याकुलहोगये ॥ २० ॥ यदुराज उग्रसेन ने उस मूषलका चूर्णकराय समुद्र में फिकवा दिया और इसकी बचीहुई छोटी कील को भी फिंकवादिया ॥ २१ ॥ कोईमत्स्य

न्नाग्याखण्डिकलेरकाः ॥ २२ ॥ मत्स्येनागृहीतांमत्स्यरूपैर्जालेनान्यैःसहार्णवे । तस्यो
दरगतंलोहंसशल्येलुब्धकोऽकरोत् ॥ २३ ॥ भगवाञ्ज्ञातसर्वार्थईश्वरोऽपितदन्य
था । कर्तुंनैच्छद्विप्रशापंकालरूप्यन्वमोदत ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकादशस्कन्धे विप्रशापो नामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ गोविन्दभुजगुप्तायांद्वारवत्यांकुरूद्वह । अवात्सीन्नारदोऽ
भीक्ष्णंकृष्णोपासनलालसः ॥ १ ॥ कोनुराजन्निन्द्रियवान्मुकुन्दचरणाम्बुजम् । न
भजेत्सर्वतोमृत्युरुपास्यममरोत्तमैः ॥ २ ॥ तमेकदातुदेवर्षिंवसुदेवोगृहागतम् । अ
र्चितंसुखमासीनमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ वसुदेव उवाच ॥ भगवन्भवतोयात्रा
स्वस्तयेसर्वदेहिनाम् । कृपणानांयथापित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनाम् ॥ ४ ॥ भूतानांदेव
चरितंदुःखायचसुखायच । सुखायैवहिसाधूनांत्वादृशामच्युतात्मनाम् ॥ ५ ॥ भ
जन्तियेयथादेवान्देवाअपितथैवतान् । छायेवकर्मसचिवाः साधवोदीनवत्सलाः
॥ ६ ॥ ब्रह्मंस्तथापि पृच्छामो धर्मान्भागवतांस्तव । याञ्छ्रुत्वाश्रद्धयामर्त्यो मुच्यते
सर्वतोभयात् ॥ ७ ॥ अहंकिलपुराऽनन्त प्रजार्थोभुविमुक्तिदम् । अपूजयनमोक्षा
य मोहितोदेवमायया ॥ ८ ॥ यथा विचित्रव्यसनाद्भवद्भिर्विश्वतोभयात् । मुच्य
महाञ्जसैवाद्धा तथानःशाधिसुव्रत ॥ ९ ॥ श्रीशुकउवाच । राजन्नेवंकृतप्रश्नो व-
सुदेवेन धीमता । प्रीतस्तमाहदेवर्षिर्हरेः संस्मारितोगुणैः ॥ १० ॥ नारदउवाच ॥

उस शेषरही लोहे की कील को निगलगया इधरवह चूर्ण समुद्र की लहरों से खिंचता २ तटपर आलगा ॥ २२ ॥ तदुपरांत एक धीमर ने समुद्र में जाल को डाला तो मत्स्यों समेत वहमत्स्य भी उस जाल में आगया अनतर एक व्याधे ने उस मत्स्य के पेट से निकलेहुए लोहखण्ड से अपने तीर की अनी बनाई ॥ २३ ॥ सर्व विषयों के जाननेवाले भगवान श्रीकृष्णजी ने समर्थ होकरभी उस ब्रह्मशाप से अन्यथा करने की इच्छा नकी किंतु कालरूपी होकर वैसे ही उसका अनुमोदन किया ॥ २४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कंधसरलाभाषाटीकायांप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे कुरूकुल तिलक ! देवर्षि नारदजी श्रीकृष्णजी के दर्शनोंकी इच्छा से गोविंद की भुजाओं से रक्षित द्वारका में सदैवही निवास करते थे ॥ १ ॥ हे राजन् ! इन्द्रिय युक्त कौन मरने वाला मनुष्य देवताओं के भी सेवित श्रीकृष्णजी के चरण कमलको न भजेगा ॥ २ ॥ एक समय देवर्षि नारद द्वारका पुरीमें पूजितहो सुखसे बैठेथे कि वसुदेवजी ने उनसे प्रणाम करके कहाकि—॥ ३ ॥ हे भगवन् ! पुत्रोंके पक्षमें पिता माता के आनेकी समान क्षुद्र मनुष्यों के निकट साधुओं के आनेकी समान भगवत्स्वरूप आपका आना सब प्राणियों के कल्याण के निमित्त है ॥ ४ ॥ देवताओं का चरित्र प्राणियों के पक्षमें दुःख और सुखके निमित्त होता है किन्तु आपकी समान अच्युतात्मा साधुओं के चरित्र केवल सुखकेही निमित्त होते हैं ॥ ५ ॥ जोजिस प्रकार से देवताओं की उपासना करते हैं भजन के अनुसार देवता छायाकी समान उनका उसी प्रकारका फलदेते हैं । किन्तु दीन वत्सल साधू सेवा बिनाही मनुष्यों के कल्याणका यत्न करते हैं ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपके आनेसेही हम कृतार्थ हुए तोभी आप भगवद्धर्मको कि जिसके श्रद्धायुक्त सुनने सेही मनुष्य सबभयों से छूटजाता है वर्णनकरें ॥ ७ ॥ मैंने निश्चयही देव माया से मोहितहो पृथिवीपर मुक्ति देनेवाले उन पुराण पुरुष की पुत्रप्राप्ति के निमित्त पूजाकी है मोक्षपाने के अभिप्राय से नहीं की ॥८॥ हे सुव्रत ! आपकी कृपासे मैं जिससे नाना व्यसनस्थान, भयसे भरेहुए संसार से अनायास मुक्ति पाजाऊं; वह शिक्षा आपदेवें ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि- हे राजन् ! बुद्धि-मान वसुदेवजी के इस प्रकार पूछनेपर देवर्षि आनंदित हुए और हरिके गुणोंसे हरिकी स्मृतिपाय

सम्यगेतद्व्यवसितं भवताभरतर्षभ। यत्पृच्छसे भागवतान्धर्मांस्त्वं विश्वभावना-
न् ॥ ११ ॥ श्रुतोऽनुपठितोध्यात आदृतोवाऽनुमोदितः। सद्यःपुनातिसद्धर्मो देव-
विश्वद्रुहोऽपिहि । ॥ १२ ॥ त्वयापरमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः। स्मारितोभग-
वानद्य देवो नारायणोमम ॥ १३ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । आर्ष-
भाणांचसंवादं विदेहस्यमहात्मनः ॥ १४॥ प्रियव्रतोनामसुतो मनोःस्वायम्भुवस्य
यः । तस्याग्नीध्रस्ततो नाभिरृषभस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १५ ॥ तमाहुर्वासुदेवांशं मो
क्षधर्मविवक्षया । अवतीर्णंसुतशतं तस्यासीद्वेदपारगम् ॥ १६ ॥ तेषां वैभरतोज्ये-
ष्ठो नारायणपरायणः । विख्यातं वर्षमेतद्यन्नाम्ना भारतमद्भुतम् ॥ १७ ॥ सभुक्तभो
गांत्यक्त्वेमां निर्गतस्तपसाहरिम् । उपासीनस्तत्पदवीं लेभेवैजन्मभिस्त्रिभिः
॥ १८ ॥ तेषां नवनवद्वीपपतयोऽस्य समन्ततः । कर्मतन्त्रप्रणेतार एकाशी
तिर्द्विजातयः ॥ १९ ॥ नवाभवन्महाभागा मुनयोह्यर्थशंसिनः । श्रमणावातर-
शना आत्मविद्याविशारदाः ॥ २० ॥ कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धःपिप्पलायनः ।
आविर्होत्रोऽथद्रुमिलश्चमसःकरभाजनः ॥ २१ ॥ एतेवैभगवद्रूपंविश्वंसदसदा
त्मकम् । आत्मनोऽव्यतिरेकेणपश्यन्तोव्यचरन्महीम् ॥ २२ ॥ अव्याहतेष्टग-
तयःसुरसिद्धसाध्यगन्धर्वयक्षसुरकिन्नरनागलोकान् । मुक्ताश्चरन्तिमुनिचारणभू
तनाथविद्याधरद्विजगवांभुवनानिकामम् ॥ २३ ॥ तएकदानिमेःसत्रमुपजग्मुर्यदृ-
च्छया । वितायमानमृषिभिरजनाभेमहात्मनः ॥ २४ ॥ तान्दृष्ट्वासूर्यसंकाशान्म-
हाभागवतान्नृप । यजमानोऽग्नयोविप्राःसर्वएवोपतस्थिरे ॥ २५ विदेहस्तानभि-

उनसे कहने लगेकि-॥ १० ॥ हे यादव श्रेष्ठ ! तुमने जोसर्व शोधक भागवत धर्मको पूँछा यह
तुम्हारा उद्योग है ॥ ११ ॥ हे वसुदेव ! भागवत धर्मके सुनने, पढने, ध्यान धरने, आदर करने
और अनुमोदन करने से विश्वद्रोही भी तत्काल पवित्र होसकता है ॥ १२ ॥ तुमने आज मुझको
परम कल्याणमय, पुण्यश्रवण, पुण्यकीर्त्तन, भगवानका स्मरण दिलाया । इस विषयमें ऋषभ देव
के पुत्रोंके और विदेह राजके एक प्राचीन इतिहासको कहता हू सोसुनो ॥१३–१४ ॥ स्वायम्भुव
मनुके प्रियव्रत नामक पुत्रके आग्नीध्रपुत्र हुआ आग्नीध्र के नाभि और नाभिके ऋषभ देवहुए
॥ १५ ॥ मनुष्य कहते हैं किवे मोक्षधर्मका उपदेश देनेके निमित्त भगवान के अंशसे अवतीर्ण
हुएथे । उनके एकसौ ब्रह्म विद्याके पारगामी पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १६ ॥ नारायण परायण भरत
उन सबमें जेठ थे; जिनके नामसे यह अद्भुतवर्ष 'भारत' के नामसे विख्यात हुआ है ॥१७॥ वह
भोगोंको भोग इस पृथ्वीको छोड़तीन जन्म तपस्या द्वारा हरिकी पूजाकर उनकी पदवीको प्राप्त
हुएथे ॥ १८ ॥ ऋषभ देवके पहिले पुत्रोंमें से नवजन भारत वर्षके अन्तर्गत ब्रह्मावर्त्त आदि नव
स्थानों के राजा और इक्यासी जन कर्म मार्गको प्रवृत्त करने वाले ब्राह्मण हुए ॥ १९ ॥ कवि,
हवि, अंतरीक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन ये नवजन परमार्थ
निरूपक, आत्माभ्यास में परिश्रमी, दिगंबर और ब्रह्मविद्यामें निपुण महाभाग मुनिहुए थे ॥२०–
२१ ॥ वेमुनि आत्म निर्विशेष से सदसत् स्वरूप विश्वको भगवत्स्वरूप देख पृथ्वीपर विचरते हैं
॥ २२ ॥ उनकी इच्छितगाति कहीं भी नहीं रुकसकती, ये मुक्तलोग देव, सिद्ध, साध्य, गन्धर्व,
यक्ष, किन्नर और नागलोक में तथा मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, द्विज, और गौओंके भुवन
में इच्छानुसार भ्रमण करते हैं ॥ २३ ॥ एक समय भारत वर्षमें ऋषिगण महात्मा निमिका यज्ञ
करते थे; वहांपर वेमुनि इच्छानुसार आये ॥ २४॥ हे राजन् ! उन सूर्यकी समान प्रकाशित महा
भागवत मुनियोंको देखकर यजमान, अग्नि और ब्राह्मण सबही उठखड़े हुए ॥ २५ ॥ विदेह उन

प्रेक्ष्यनारायणपरायणान् । प्रीतःसंपूजयांचक्रआसनस्थान्यथार्हतः ॥ २६ ॥ तान्रो-
चमानान्स्वरुचाब्रह्मपुत्रोपमान्नव । पप्रच्छपरमप्रीतःप्रश्रयावनतोनृपः ॥ २७ ॥ वि
देहउवाच ॥ मन्येभगवतःसाक्षात्पार्षदान्वोमधुद्विषः । विष्णोर्भूतानिलोकानांपा-
वनायचरन्तिहि ॥ २८ ॥ दुर्लभोमानुषोदेहोदेहिनांक्षणभङ्गुरः । तत्रापिदुर्लभं
मन्येवैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥ २९ ॥ अतआत्यन्तिकंक्षेमंपृच्छामोभवतोऽनघाः । सं-
सारेऽस्मिन्क्षणार्धोऽपिसत्सङ्गःशेवधिर्नृणाम् ॥ ३० ॥ धर्मान्भागवतान्ब्रूतयदिनःश्रु
तयेक्षमम् । यैःप्रसन्नःप्रपन्नायदास्यत्यात्मानमप्यजः ॥ ३१ ॥ नारदउवाच ॥ एवं
तेनिमिनापृष्टावसुदेवमहत्तमाः प्रतिपूज्याब्रुवन्प्रीत्याससदस्यर्त्विजंनृपम् ॥ ३२ ॥
कविरुवाच ॥ मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्यपादाम्बुजोपासनमत्रनित्यम् । उद्विग्न
बुद्धेरसदात्मभावाद्विश्वात्मनायत्रनिवर्ततेभीः ॥ ३३ ॥ येवैभगवताप्रोक्ताउपाया
ह्यात्मलब्धये । अञ्जः पुंसामविदुषांविद्धिभागवतान्हितान् ॥ ३४ ॥ यानास्थायनरो
राजन्नप्रमाद्येतकर्हिचित् । धावन्निमील्यवानेत्रेनस्खलेन्नपतेदिह ॥ ३५ ॥ कायेनवा
चामनसेन्द्रियैर्वाबुद्ध्यात्मनावानुसृतस्वभावात् । करोतियद्यत्सकलंपरस्मैनाराय
णायेतिसमर्पयेत्तत् ॥ ३६ ॥ भयंद्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्यविपर्ययोऽ
स्मृतिः । तन्माययाऽतोबुधआभजेत्तंभक्त्यैकयेशंगुरुदेवतात्मा ॥ ३७ ॥ अविद्यमानो
ऽप्यवभातिहिद्वयोर्ध्यातुर्धियास्वप्नमनोरथौयथा।तत्कर्मसंकल्पविकल्पकंमनोबुधो

को नारायण परायण जान अत्यंत आनंदित हुए और उनके आसनपर बैठने पर उनकी राजाने यथोचित पूजाकी ॥२६॥ फिर राजाने अपनी २ प्रभासे प्रकाशित ब्रह्मपुत्रकी समान उन नवजन मुनियोंसे विनीत होकरपूछा ॥२७॥ जानपड़ताहै कि आप साक्षात् भगवान मधुसूदन के पार्षदहो विष्णुभक्त प्राणियोंको पवित्र करतेहुए तुम सर्वत्र विचरा करते हैं ॥ २८ ॥ यह मनुष्य देह क्षण भंगुर होने परभी प्राणियोंको दुर्लभ है; जानताहूं कि उस देहसे भी भगवत् प्रिय मनुष्योंके दर्शन पाना कठिनहै॥२९॥ अतएव हे निष्पाप महात्माओं ! आपकी आत्यंतिक कुशलको पूछता हूं, इस संसार में आधेक्षणका साधुसंगभी मनुष्योंको निधिस्वरूपहै ॥३०॥ हरि जिस धर्मसे प्रसन्न होकर शरणागत मनुष्यको आत्म समर्पण करते हैं वही भागवत धर्म यदि मेरे सुनने योग्य होतो आप मुझसे कहो ॥ ३१ ॥ नारदजी ने कहा कि–हे वसुदेव ! राजा निमि के इसप्रकार पूछने पर वे महात्मा योगेश्वर प्रीति से सभासद; ऋत्विक् और राजा से कहनेलगे ॥ ३२ ॥ कवि ने कहा कि विचारताहूं कि इससंसारमें भगवान के चरणकमल का सेवनही सबप्रकारके भयों को दूर करने वाला है; मिथ्या देहादि से आत्म बुद्धि के वशहो निरंतर व्याकुल चित्त मनुष्यों के सबप्रकार के भय उससे निवृत्तहोजाते हैं ॥ ३३ ॥ भगवान ने मूर्खों को भी आत्मज्ञान पाने के निमित्त अति सहज जो समस्त उपाय अपने मुख से वर्णन किये हैं उन्हीं सबको भागवत धर्म जानो ॥ ३४ ॥ हेराजन् ! इनसब का अवलम्बन करने से मनुष्य विघ्नों से दुःखित नहीं होता और इनसबधर्मों से आंखमूंदकर दौड़ने परभी स्खलित वा पतित नहीं होता ॥ ३५ ॥ शरीर, वाक्य, मन, इंद्रिय बुद्धि और अहंकार के अनुगामी स्वभाववाला प्राणी जो कर्म करे उन सबकोही परमेश्वरमें अर्पण करना चाहिए ॥ ३६ ॥ परमेश्वर की माया सेही भय उत्पन्न होता है; ईश्वर से विमुख मनुष्यों के हृदय में उनकी माया के बलसेही स्वरूप का प्रकाश नहीं होसकता; उससेही 'यहही आत्मा है ' इसप्रकार की बुद्धि हुआकरती है । अतएव पण्डितको उचित है कि गुरुकोही ईश्वर और आत्मास्वरूपसे देख ऐकांतिकभक्तियुक्त उनभगवानकी भलीप्रकारसे पूजाकरे॥३७॥ द्वैत प्रपंच वास्तव में असत् होनेपर भी ध्यानकरनेवाले के मनसेही स्वप्न और मनोरथ की समान प्रकाशित होता है

निवृत्तपादभयंततः स्यात् ॥३८॥ शृण्वन्सुभद्राणिरथाङ्गपाणेर्जन्मानिकर्माणिचया निलोके। गीतानिनामानितदर्थकानिगायन्विलज्जोविचरेदसङ्गः ॥ ३९॥ एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्याजातानुरागोद्रुतचित्तउच्चैः। हसत्यथोरोदितिरौतिगायत्युन्मा दवन्नृत्यतिलोकबाह्यः ॥ ४० ॥ खंवायुमग्निंसलिलंमहींचज्योतींषिसत्त्वानिदिशो द्रुमादीन्। सरित्समुद्रांश्चहरेः शरीरंयत्किंचभूतंप्रणमेदनन्यः ॥ ४१ ॥ भक्तिः परे शानुभवोविरक्तिरन्यत्रचैषत्रिकएककालः। प्रपद्यमानस्ययथाऽश्नतः स्युस्तुष्टिः पु ष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥ ४२ ॥ इत्यच्युतांघ्रिंभजतोऽनुवृत्त्याभक्तिर्विरक्तिर्भगव त्प्रबोधः। भवन्तिवैभागवतस्यराजंस्ततः परांशान्तिमुपैतिसाक्षात् ॥ ४३ ॥ राजो वाच ॥ अथभागवतंब्रूतयद्धर्मोयादृशोनृणाम्। यथाऽऽचरतियद्ब्रूतेयैर्लिङ्गैर्भगव त्प्रियः ॥ ४४ ॥ हरिरुवाच ॥ सर्वभूतेषुयः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः। भूतानिभगव त्यात्मन्येषभागवतोत्तमः ॥ ४५ ॥ ईश्वरेतदधीनेषुबालिशेषुद्विषत्सुच। प्रेममैत्रीकृ पोपेक्षायःकरोतिसमध्यमः ॥ ४६ ॥ अर्चायामेवहरयेपूजांयः श्रद्धयेहते। नतद्भ क्तेषुचान्येषुसभक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥ ४७ ॥ गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान्योनद्वेष्टिनहृष्य ति। विष्णोर्मायामिदं पश्यन्सवैभागवतोत्तमः ॥ ४८ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोधियां- योजन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः। संसारधर्मैरविमुह्यमानःस्मृत्याहरेर्भागवतप्रधानः ॥ ॥ ४९ ॥ नकामकर्मबीजानांयस्यचेतसिसम्भवः। वासुदेवैकनिलयःसवैभागव-

अतएव कर्मों के सङ्कल्प विकल्प करनेवाले मनकोही दमन करना चाहिए; इसके उपरांत फिर भय नहीं रहता ॥ ३८ ॥ भगवान के सुन्दर जन्म और कर्मोंका वृत्तांत मनुष्यों में गायाजाता है उन सब जन्म और कर्मोंके चरित्रोंको सुन उनका निर्लज्ज भावसे गानकर निष्काम हृदय से विचरण करना चाहिये॥३९॥इस प्रकारसे करनेपर वह मनुष्य प्रियहरिके नामों से प्रेमी और कोमल हृदय (द्रवीभूत) हो बेवश उन्मत्त की समान उच्चहास्य करता है कभी रोदन, चीत्कार, गानकरता है और कभी नृत्य करता रहता है ॥ ४० ॥ वह आकाश, जल, अग्नि, वायु, पृथिवी, ज्योतिश्चक्र, प्राणिगण, दिशाएं, वृक्षादि, नदी और समुद्र यहांतक कि समस्त प्राणियों कोही भगवत्स्वरूप जानकर प्रणाम करता है ॥ ४१ ॥ जैसे भोजन करनेवाले मनुष्यको प्रतिग्रास मेंही सुखउदरपोषण और क्षुधा की निवृत्ति होती है तैसेही भगवद्भक्त के भक्ति, प्रभु के आश्रयरूप भगवानके स्वरूप की स्फूर्ति और विराग ये तीनों एक कालही में उत्पन्नहोते हैं ॥ ४२॥हेराजन्! जोभगवद्भक्त अविच्छिन्नतासे भगवान के चरणों की सेवा करते हैं उन के इसी प्रकार की भक्ति, विरक्ति और भगवत् स्वरूपकी स्फूर्ति होती है, तदनन्तर वे परमशांति को प्राप्त करते हैं ॥ ४३॥ राजानिमि ने कहा कि—इस समय मनुष्यों में से किस को भागवत कहाजासकता है ? उनका धर्म,स्वभाव आचरण, उक्ति और जिन चिह्नों से भगवान का प्रिय होवे उन सब का वर्णन करिये ॥ ४४ ॥ हरि योगश्वर ने कहा कि—जो स्वयं प्राणियों को भगवद्भाव से और भगवदात्मा में सब प्राणियों को देखता है वही उत्तम भागवत है ॥ ४५ ॥ जो ईश्वर से प्रेम, उस के भक्तों से मित्रता,मूर्खों पर कृपा, बैरियों पर उपेक्षा करता है भेददर्शनवाला वह वैष्णव मध्यम है ॥ ४६ ॥ जो श्रद्धा-युक्त प्रतिमा में हरि की पूजाकरता है और भक्त वा दूसरे किसी पदार्थकी पूजा नहीं करता वह प्राकृत वैष्णव है ॥ ४७ ॥ भगवान में मन लगाकर, जो इंद्रियोंद्वारा विषय भोगकर इस विश्व को विष्णुकीही मायाजान किसी से द्वेष नहीं करता और न आनन्दितही होता है वही उत्तम वैष्णव है ॥ ४८ ॥ भगवान का स्मरणरहने से जो शरीर, प्राण, मन, बुद्धि और इंद्रियों के यथा क्रम से सांसारिक धर्म, जन्म, मृत्यु, क्षुधा, भय, तृष्णा और श्रम से मोहित नहीं होता वहीश्रेष्ठ भागवत है ॥ ४९ ॥ जिसके चित्त में वासना नहीं है और भगवानही जिनका एक अवलम्बनहै

तोत्तमः ॥ ५० ॥ नयस्यजन्मकर्मभ्यांनवर्णाश्रमजातिभिः । सज्जतेऽस्मिन्नहंभा वोदेहेवैसहरेःप्रियः ॥ ५१ ॥ नयस्यस्वःपरइतिवित्तेष्वात्मनिवाभिदा । सर्वभूत समःशान्तःसवैभागवतोत्तमः ॥ ५२ ॥ त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृतिर- जितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् । नचलतिभगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्धमपियः सवैष्णवाग्र्यः ॥ ५३ ॥ भगवतउरुविक्रमांघ्रिशाखानखमणिचन्द्रिकयानिरस्त तापे । हृदिकथमुपसीदतांपुनःसप्रभवतिचन्द्रइवोदितेऽर्कतापः ॥ ५४ ॥ विसृजति हृदयंनयस्यसाक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः । प्रणयरशनयाधृतांघ्रिपद्मः सभवतिभागवतप्रधानउक्तः ॥ ५५ ॥

इतिश्रीमद्भा० म० ए० द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

राजोवाच ॥ परस्यविष्णोरीशस्य मायिनामपिमोहिनीम् । मायांवेदितुमि च्छामोभगवन्तोब्रुवन्तुनः ॥ १ ॥ नानुतृप्येजुषन्युष्मद्वचो हरिकथामृतम् । संसारतापनिस्तप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम् ॥ २ ॥ अन्तरिक्षउवाच ॥ एभिर्भूता निभूतात्मा महाभूतैर्महाभुज । ससर्जोच्चावचान्याद्यः स्वमात्रात्मप्रसिद्धये ॥३॥ एवंसृष्टानिभूतानि प्रविष्टः पञ्चधातुभिः । एकधादशधात्मानं विभजञ्जुषते गुणान् ॥४॥ गुणैर्गुणान्सभुञ्जान आत्मप्रद्योतितैःप्रभुः । मन्यमानइदं सृष्टमात्मान मिहसज्जते ॥ ५ ॥ कर्माणिकर्मभिः कुर्वन्सनिमित्तानिदेहभृत् । तत्तत्कर्मफलं

वही परम भागवत हैं ॥ ५० ॥ जन्म, कर्म, वर्ण, आश्रम और जाति की उत्तमता से जिसके इस देह में अहंता नहीं उत्पन्न होती वही भगवत् प्रिय है ॥ ५१ ॥ धन और देह विषय में जिन को अपने और पराए का भेद ज्ञान नहीं है; और जो शांत व सब प्राणियों को समान देखते हैं वेही वैष्णवों में उत्तम हैं । ५२ ॥ ब्रह्मादि देवतागण जिन भगवच्चरणों को रातदिन ध्यान व खोजने परभी नहीं पाते; उन्हीं हरि चरणों को सबतत्वों का तत्वज्ञान.चक्रवर्ती राज्य पाने के निमित्त भी आधा क्षण व आधा निमेष भी उससे चलायमान नहीं होते वेही श्रेष्ठ वैष्णव हैं ५३ ॥ जैसे चन्द्रमा के उदयहोने से तपन अपने प्रभावताप का विस्तार नहीं करसकती,वैसेही भगवान के परमपराक्रमी दोनों चरणों की उंगलियों के नखमणिकी स्निग्धकांति से भक्तों के हृदयका ताप नाश होने पर फिर वह ताप अपनी सामर्थ्य का प्रकाश नहीं करसकता ॥५४॥ विवश होकरभी जिसका नाम लेने से पाप दूरहोजाते हैं वेही हरि प्रेम पाशसे बंधकर जिसके हृदयमेंनिरंतर विराजमान रहते हैं वेही श्रेष्ठ वैष्णव हैं ॥ ५५ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्क०सरलाभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

राजा निमिने कहा कि—परमपुरुष परमेश्वर विष्णुकी माया मायावियोंकोभी मोह उत्पन्नकराती है । उस मायाके विषयमें जानने की इच्छा करता हूं । हे भगवत् मुझसे कहो ॥ १ ॥ हम मर्त्य संसारी तापोंसे अत्यंत संतप्त होरहे हैं; उस तापकी औषधि अमृतमय हरिचरित्र आपके वाक्यों का सेवन करके भी तृप्त नहीं होते ॥ २ ॥ अंतरीक्षने कहा कि—हे महाबाहो ! भूतात्मा आदि पुरुष है, अपने अंश प्राणियों के विषय भोग और मुक्ति के निमित्त भगवानने इन सब महाभूतों से उंच नीच प्राणियों की उत्पत्ति की है ॥ ३ ॥ इसही कारण पंचमहाभूतों से रचे हुए प्राणियों के मध्य में अंतर्यामी रूपसे प्रवेश कर मनद्वारा एक और इन्द्रियों द्वारा दश प्रकार से विषयोंके विभाग कर जीवोंको वे विषय भोग भुगवाते हैं ॥ ४ ॥ उन्ही प्रभु के आत्म परिचालित गुणों से विषयों का भोग करता हुआ प्राणी इस रचेहुए शरीरको आत्माजान उसमें आसक्त होजाता है ॥ ५ ॥ प्राणी इन्द्रियोंद्वारा विषय वासनाओंके कर्म करता हुआ दुःख मय कर्म फलके इस सं-

गृह्णन्भ्रमतीह सुखेतरम् ॥६॥ इत्थंकर्मगतीर्गच्छन्बह्वभद्रवहाःपुमान् । आभूतस-
म्प्लवात्सर्गप्रलयावश्नुतेऽवशः ॥ ७ ॥ धातूपप्लवआसन्ने व्यक्तं द्रव्यगुणा-
त्मकम् । अनादिनिधनःकालो ह्यव्यक्तायापकर्षति ॥ ८ ॥ शतवर्षाह्यनावृ-
ष्टिर्भविष्यत्युल्बणाभुवि । तत्कालोपचितोष्णार्को लोकांस्त्रीन्प्रतपिष्यति ॥ ९ ॥
पातालतलमारभ्य संकर्षणमुखानलः । दहन्नूर्ध्वशिखो विष्वग्वर्धते वायुनेरितः ॥
॥ १० ॥ सांवर्तकोमेघगणो वर्षतिस्मशतंसमाः । धाराभिर्हस्तिहस्ताभिर्लीयतेस-
लिले विराट् ॥ ११ ॥ ततोविराजमुत्सृज्य वैराजःपुरुषोनृप । अव्यक्तं विशतेसूक्ष्मं
निरिन्धनइवानलः ॥ १२ ॥ वायुनाहृतगन्धाभूःसलिलत्वायकल्पते । सलिलंतद्धृत
रसंज्योतिष्ट्वायोपकल्पते ॥ १३ ॥ हृतरूपंतुतमसावायौज्योतिःप्रलीयते ॥ हृतस्प
र्शोऽवकाशेन वायुर्नभसिलीयते ॥ १४ ॥ कालात्मना हृतगुणं नभआत्मनिलीयते ।
इन्द्रियाणिमनोबुद्धिः सहवैकारिकैर्नृप । प्रविशन्तिह्यहंकारं स्वगुणैरहमात्मनि ॥
॥ १५ ॥ एषामायाभगवतः सर्गस्थित्यन्तकारिणी । त्रिवर्णा वर्णिताऽस्माभिर्भूयः
किंश्रोतुमिच्छसि ॥ १६ ॥ राजोवाच । यथैतामैश्वरींमायां दुस्तरामकृतात्मभिः ।
तरन्त्यंजःस्थूलधियो महर्षइदमुच्यताम् ॥ १७ ॥ प्रबुद्ध उवाच ॥ कर्माण्यारभमा-
णानांदुःखहत्यैसुखायच । पश्येत्पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणांनृणाम्॥१८॥ नित्या
र्तिदेनवित्तेन दुर्लभेनात्ममृत्युना। गृहापत्याप्तपशुभिः काप्रीतिःसाधितैश्चलैः॥१९॥

सार मे विचरण करता है ॥६॥ यह पर तंत्रजीव इसप्रकार से अनेक दुःखदायी कर्मोंकी गतियों को पाताहुआ प्रलय काल तक जन्म मरण का भोग करता रहता है ॥ ७ ॥ महाभूतोंका नाश निकट वर्ती होनेपर अनादि अनत काल इस स्थूल सूक्ष्मात्मक जगत को ईश्वर की ओर खींचता है ॥ ८ ॥ जब प्रलय होगा तब पृथिवी पर सौवर्ष तक अत्यन्त भयानक अनावृष्टि होगी उस समय प्रचड सूर्य अत्यन्त प्रखर किरणोंसे तीनोंलोकको अत्यन्त सतप्त करेगा ॥ ९ ॥ अनंतर शेषनागके मुखसे उत्पन्नहुआ अग्नि ऊची शिखाका होउठेगा और वायुसे चालित हो दग्ध करता २ पातालही से सब दिशाओं में फैल जावेगा ॥ १० ॥ सांवर्तक नामक मेघगण हाथी के सुंडकी समान धाराओं से सौवर्ष तक बरसेगें; ब्रह्माण्ड जल में लीन होजायगा ॥ ११ ॥ हे राजन् ! इस के उपरांत वैराज पुरुष (विराट् पुरुष) ब्रह्माण्डको छोड़कर काष्ठ रहित अग्निके समान सूक्ष्म कारण (परमेश्वर) में प्रवेश करेगा ॥ १२ ॥ पृथिवी वायुमेंहरी जाकर जलरूप होजावेगी और जलभी वायुसे हराजाकर ज्योतिरूप धारण करेगा ॥ १३ ॥ ज्योति अधकारके प्रभाव से हृतरूप होकर वायुमें, वायु अपने कारणीभूत आकाश से स्पर्शगुण वर्जितहो आकाश में । और आकाश काल रूपी ईश्वर से हृतगुणहो तामस अहंकार में लीन होजावेगा। हे नरनाथ ! इन्द्रिय और बुद्धि राजसिक अहंकार में; वैकारिक देवताओं समेत मन सात्विक अहंकार में और अहंकार अपने गुणों समेत महत्तत्व में प्रविष्ट होगा ॥ १४–१५ ॥ महत्तत्व भी प्रकृति में लीन होजावेगा। मैंने इस समय भगवान की इस सृष्टि स्थिति संहार करने वाली त्रिगुण मायाका वर्णन किया, अब क्या सुनने की अभिलाषा करतेहो ॥ १६ ॥ राजा निमिने कहाकि—हे महर्षे ! जोअंतःकरण के वशकरने में समर्थ नहीं होते, वे स्थूल बुद्धि मनुष्य जिसप्रकार इस ईश्वरी मायासे अनायास पार होसकें कृपा करके उसका वर्णन करिये ॥ १७ ॥ प्रबुद्ध ने कहाकि—मनुष्य स्त्री पुरुष के सम्बन्ध से बद्ध होकर दुःख नाश और सुख के निमित्त कर्म करते रहते हैं, किंतु उससे विपरीत फल देखाजाता है ॥ १८ ॥ देखो, निरंतर पीड़ा देनेवाले दुर्लभ तथा मृत्युरूप धन, घर, पुत्र, बंधु और पशुआदि सबही चंचल हैं, अतएव अनर्थंकर अर्थादि प्राप्त करके भी क्या प्रीति होती है

एवंलोकंपरंविद्यान्नश्वरं कर्मनिर्मितम् । सतुल्यातिशयध्वंसं यथामण्डलवर्तिनाम् ।
॥ २० ॥ तस्माद्गुरुंप्रपद्येत जिज्ञासुःश्रेयउत्तमम् ॥ शाब्देपरेचनिष्णातं ब्रह्मण्युप-
शमाश्रयम् ॥ २१ ॥ तत्र भागवतान्धर्माञ्छिक्षेद्गुर्वात्मदैवतः । अमाययाऽनुवृत्त्या
यैस्तुष्येदात्मात्मदोहरिः ॥ २२ ॥ सर्वतोमनसोऽसंगमादौ संगंचसाधुषु । दयांमै
त्रींप्रश्रयंच भूतेष्वद्धा यथोचितम् ॥ २३ ॥ शौचंतपस्तितिक्षांच मौनं स्वाध्यायमा
र्जवम् । ब्रह्मचर्यमहिंसांच समत्वंद्वन्द्वसंज्ञयोः ॥ २४ ॥ सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कै-
वल्यमनिकेतताम् । विविक्तचीरवसनं सन्तोषंयेनकेनचित् ॥ २५ ॥ श्रद्धांभागवते
शास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापिहि । मनोवाक्कर्मदण्डंच सत्यंशमदमावपि ॥ २६ ॥ श्र
वणंकीर्तनंध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः । जन्मकर्मगुणानांच तदर्थेऽखिलचेष्टितम् ॥२७॥
इष्टंदत्तंतपोजप्तं वृत्तंयच्चात्मनःप्रियम् । दारान्सुतान्गृहान्प्राणान्यत्परस्मै निवेदन
म् ॥ २८ ॥ एवंकृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषुचसौहृदम् । परिचर्यांचोभयत्र महत्सुनृषु
साधुषु ॥ २९ ॥ परस्परानुकथनं पावनंभगवद्यशः । मिथोरतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्ति-
र्मिथ आत्मनः ॥ ३० ॥ स्मरन्तःस्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम् । भक्त्यासंजात
याभक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकांतनुम् ॥ ३१ ॥ क्वचिद्रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचिद्धस -
न्तिनन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः । नृत्यन्तिगायन्त्यनुशीलयन्त्यजं भवन्तितूष्णीं पर-
मेत्य निर्वृताः ॥ ३२ ॥ इतिभागवतान्धर्माञ्छिक्षन्भक्त्या तदुत्थया ॥ नारायणपरो

॥ १९ ॥ लोक इसी प्रकार से कर्म निर्मित्त और अत्यत नश्वर हैं यह जानना और यह भी जानना कि—मंडलाधिपति राजाओंको जैसे समानको समानसे डाह, प्रधानसे ईर्षा और नाशकी शकासे भयहोता है उसी प्रकार समस्त लोकोंमेंभी समानको समान से डाह, श्रेष्ठ से ईर्षा और नाशकी शका का भय वर्तमान है ॥ २० ॥ अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको शब्द ब्रह्मका पारगामी और परब्रह्म में निमग्न उपशमावलम्बी गुरूकी शरणलेना आवश्यक है ॥ २१ ॥ आ-त्मप्रद हरि जिनधर्मों से संतुष्ट होते हैं, गुरूकोही आत्मा और देवता जानकर निष्कपटहो उसकी सेवाकर वहां उसही धर्मको सीखे ॥ २२ ॥ पहिलेतो सब विषयों से मनकी निःसंगता, साधुओं के साथ संग, यथोचित रूपसे सब प्राणियों पर दया, मित्रता और विनय ॥ २३ ॥ शौच, स्व-धर्माचरण, क्षमा, वृथा बकवाद न करना, स्वाध्याय, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सुख दुःखादि द्वन्द्वोंमें समता॥२४॥सर्वत्र आत्मदृष्टि,ईश्वरमेंदृष्टि एकांत वास,शीलता,गृहादिपर अभिमान त्यागना, पवित्र वस्त्र पहिनना, सर्व विषयों में सन्तोष ॥ २५ ॥ भगवत् शास्त्रमें श्रद्धा, अन्य शास्त्रों की अनिंदा, मन वाक्य और कर्मका संयम, सत्य, शम और दम ॥ २६ ॥ अद्भुत कर्मा हरिके जन्म कर्म और गुणोंका कीर्तन, श्रवण और ध्यान, उनके उद्देश से समस्त कर्मोंका अनुष्ठान ॥२७॥ और यजन, दान, तपस्या, जप, आत्मप्रिय,सदाचार, और स्त्री, घर, पुत्र व प्राणये सब सेवकला से ईश्वर के अर्पण करने ॥ २८ ॥ इस रीतिसे श्रीकृष्णजी जिनके आत्मा और नाथ हैं उन सब के साथ मित्रता, स्थावर जंगम दोनों की और मनुष्यों की विशेषकर साधुओं की उनमें से भ-गवद्भक्तों की पूजा ॥ २९ ॥ परस्पर में भगवान के यशका गाना, परस्पर मे प्रीति, परस्पर में संतुष्टता और जिससे आत्माका दुःखदूरहोवे इनसब धर्मोंको गुरूके यहां सीखे ॥ ३० ॥ इसप्रकार पापों के नाश करने वाले हरिका परस्पर स्मरण करते और स्मरण कराते साधन भक्तिसे उत्पन्न हुई प्रेमभक्ति द्वारा भक्तोंका शरीर रोमांचित होजाता है ॥३१॥ ऐसे हरिके प्यारे भक्त कभीरोते कभीहंसते, कभीनाचते, कभीगाते, कभीआनंद प्रकाश करते, कभी अलौकिक बातें कहते, कभी भगवान की लीलाका अनुकरण करते हैं इस प्रकार से वे भगवानको प्राप्त होनेसे सुखीहो मौन भाव धारण करते हैं ॥ ३२ ॥ इस प्रकारसे वे भागवत धर्मोंकी शिक्षा करते हुए उससे उत्पन्न

मायामंजस्तरंति दुस्तराम् ॥ ३३॥ राजोवाच ॥ नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः परमा त्मनः । निष्ठामर्हथनोवक्तुं यूयंहिब्रह्मवित्तमाः ॥ ३४ ॥ पिप्पलायनउवाच॥ स्थित्यु द्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद्बहिश्च । देहेन्द्रियासुहृदयानिच रन्तियेन संजीवितानितदवेहिपरं नरेन्द्र ॥३५॥ नैतन्मनोविशतिवागुत चक्षुरात्मा प्राणेन्द्रियाणिच यथाऽनलमर्चिषःस्वाः। शब्दोपि बोधकनिषेधतयाऽऽत्ममूलमर्थो क्तमाह यदृतेननिषेधसिद्धिः ॥३६॥ सत्त्वंरजस्तमइति त्रिवृदेकमादौ सूत्रं महानह मितिप्रवदन्तिजीवम् । ज्ञानक्रियार्थफलरूपतयोरुशक्ति ब्रह्मैवभातिसदसच्चतयोः परंयत् ॥ ३७ ॥नात्माजजाननमरिष्यति नैधतेऽसौनक्षीयते सवनविद्व्यभिचारिणां हि । सर्वत्रशश्वदनपाय्युपलब्धिमात्रं प्राणोयथेन्द्रियबलेन विकल्पितंसत् ॥ ३८ ॥ अण्डेषुपेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु प्राणोहिजीवमुपधावतितत्रतत्र। सन्नेयदिन्द्रियग णेऽहमिच प्रसुप्तेकूटस्थ आशयमृतेतदनुस्मृतिर्नः ॥ ३९ ॥ यर्ह्यब्जनाभचरणैषण- योरुभक्त्या चेतोमलानिविधमेद्गुणकर्मजानि। तस्मिन्विशुद्धउपलभ्यत आत्मतत्त्वं साक्षाद्यथाऽमलदृशोः सवितृप्रकाशः ॥ ४० ॥ राजोवाच । कर्मयोगंवदतनः पुरु षोयेनसंस्कृतः । विधूयेहाशुकर्माणि नैष्कर्म्यंविन्दतेपरम् ॥ ४१ ॥ एवंप्रश्नमृषीन्पू

हुई भक्तिसे नारायण परायणहो दुस्तर माया से बलपूर्वक पार होजाते हैं ॥ ३३ ॥ राजा निमिने कहाकि—हे ऋषियो ! आप ब्रह्म वेत्ताओं में श्रेष्ठहो अतएव परब्रह्म परमात्मा में जिस प्रकार से निष्ठाहोवे वह मुझसे कहिये ॥ ३४ ॥ पिप्पलायन ने कहा कि—जोइस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण और स्वयं कारण से वर्जित हैं, जोस्वप्न, जागृत और सुषुप्ति दशामें तथा बाहर से समाधि आदिमें सद्रूप से वर्तमान हैं, देह, इन्द्रिय, प्राण और मन जिनके द्वारा चैतन्य हो अपने २ कार्यमें प्रवृत्त होते हैं हे नरनाथ ! उन्हींको परम तत्वजानो ॥ ३५ ॥ जैसे चिन- गारियें अग्निको प्रकाशित वा दग्धनहीं करसकतीं, तैसेही मन, वाक्य, नेत्र, बुद्धि, प्राण और इ- न्द्रियें इस तत्वका ग्रहण नहीं करसकतीं । जिसकी निषेध के अतिरिक्त समाप्ति नहीं है वेद उस को अर्थोक्त रूपसे 'यह नहीं वह नहीं' करके निरूपण करता है परन्तु उसका साक्षात् निरूपण नहीं करसकता । कार्य और कारण समस्तही उस ब्रह्मरूपमेंही प्रकाशपाते हैं क्योंकि विविधशक्ति शालीब्रह्म इनदोनों काही कारण है । सृष्टिके पहिले केवल एक ब्रह्मही प्रधान रूपसे कथित हुआ ॥३६॥ वही सत्व,रज,तमसे त्रिगुणात्मक,फिरवही क्रियाशक्तिसे सूत्र और ज्ञानशक्तिसे महत्नाम से प्रसिद्धहुआ । उसही को 'मैं' ऐसा जीवोपाधिक अहंकार कहाजाताहै । अतमें वही देवता,इंद्रिय,विषय औरसुखादि रूपसे प्रदर्शित हुआ; वही उरुशक्ति ब्रह्मही कार्य,कारण और कारणके भी कारण हैं ॥३७॥ परमात्माका जन्म, मरण, वृद्धि और क्षय कुछभी नहीं है; क्योंकि वे जन्म विनाश शाली सब पदार्थों की विशेष २ अवस्थाके साक्षी हैं सर्व देश और सर्व काल में अखण्डरीति से जो ज्ञानें चकागाता है आत्मा उसी का आश्रय है । जैसे प्राण इंद्रियबल द्वारा, कल्पित है, तैसेही ब्रह्म ज्ञान विधि रूप से कल्पितहुआ है ॥ ३८ ॥ जैसे प्राण विशेष २ रूपसे अण्डज, जरायुज,स्वेदज और उद्भिज्ज सब जीवों का अनुसरण करता है; उसी प्रकार सुषुप्ति दशामें इंद्रियों के और अहं तत्व के विलीन होनेपर विकारके कारण लिंग शरीर के आश्रयभाव से आत्मा का साक्षात्अनुभव होता है और सुषुप्ति से उठे पीछे अपने को स्मृति होती है ॥ ३९ ॥ तदनन्तर जब भगवान के चरणकमलों की इच्छा से उत्पन्न हुई बड़ी भक्तिद्वारा मनुष्य गुण कर्मों से उत्पन्नहुए चित्त के मलको नाशकरता है तभी वह दृष्टि निर्मल होनेपर सूर्य के प्रकाश की समान चित्त शुद्ध होनेपर साक्षात् आत्मतत्व को प्राप्त करता है ॥ ४० ॥ राजा निमिने कहा कि—जिसकर्म योगसे मनुष्य संस्कृतहो इस लोक में शीघ्रही कर्मों को छोड़कर निवृत्तिसे उत्पन्नहुए परमज्ञान को प्राप्तहोवे

र्वमपृच्छंपितुरन्तिके । नाब्रुवन्ब्रह्मणःपुत्रास्तत्र कारणमुच्यताम् ॥४२॥ आविर्हो-
त्र उवाच । कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादो न लौकिकः । वेदस्यचेश्वरात्मत्वात्तत्र मु-
ह्यन्तिसूरयः ॥ ४३ ॥ परोक्षवादोवेदोऽयं बालानामनुशासनम् । कर्ममोक्षायक-
र्माणिविधत्तेह्यगदंयथा ॥ ४४ ॥ नाचरेद्यस्तुवेदोक्तंस्वयमज्ञोऽजितेन्द्रियः । वि-
कर्मणाह्यधर्मेणमृत्योर्मृत्युमुपैतिसः ॥ ४५ ॥ वेदोक्तमेवकुर्वाणोनिःसङ्गोर्पितमी-
श्वरे । नैष्कर्म्यांलभतेसिद्धिंरोचनार्थाफलश्रुतिः ॥ ४६ ॥ यआशुहृदयग्रन्थिंनिर्जि-
हीर्षुःपरात्मनः । विधिनोपचरेद्देवंतन्त्रोक्तेनचकेशवम् ॥ ४७ ॥ लब्धानुग्रहआ-
चार्यात्तेनसंदर्शितागमः । महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयात्मनः ॥ ४८ ॥
शुचिःसंमुखमासीनः प्राणसंयमनादिभिः । पिण्डंविशोध्यसंन्यासकृतरक्षो-
ऽर्चयेद्धरिम् ॥ ४९ ॥ अर्चादौहृदयेचापियथालब्धोपचारकैः । द्रव्यक्षित्यात्म-
लिङ्गानिनिष्पाद्यप्रोक्ष्यचासनम् ॥ ५० ॥ पाद्यादीनुपकल्प्याथसन्निधाप्यस-
माहितः । हृदादिभिःकृतन्यासोमूलमन्त्रेणचार्चयेत् ॥ ५१ ॥ साङ्गोपाङ्गांसपार्षदां
तांतांमूर्तिंस्वमन्त्रतः । पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैःस्नानवासोविभूषणैः ॥ ५२ ॥ गन्ध-
माल्याक्षतस्रग्भिर्धूपदीपोपहारकैः । साङ्गंसंपूज्यविधिवत्स्तवैःस्तुत्वानमेद्धरिम् ॥
॥ ५३ ॥ आत्मानंतन्मयंध्यायन्मूर्तिंसंपूजयेद्धरेः । शेषामाधायशिरसास्वधाम्न्यु-
द्वास्यसत्कृतम् ॥ ५४ ॥ एवमग्न्यर्कतोयादावतिथौहृदयेचयः । यजतीश्वरमात्मा-
नमचिरान्मुच्यतेहिसः ॥ ५५ ॥ इतिश्रीमद्भागवते म० पु० तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

वह आप मुझ से कहिए ॥ ४१ ॥ मैंने पहिले पिता इक्ष्वाकु के सामने ब्रह्म सनकादिकों से इसही प्रश्नको पूँछाथा किंतु उन्होंने कुछ भी उत्तर न दिया उसका कारण कहिये ॥ ४२ ॥ आविर्होत्र ने कहा कि–कर्म, अकर्म और विकर्म येसब वेदवाक्य हैं,पुरुष वाक्य नहीं,वेद भी ईश्वरसेउत्पन्न हुये हैं पण्डितलोग इसही से मोहित होते रहते हैं ॥ ४३ ॥ जैसे बालकों को नानाप्रकार की प्रवृत्तियें देकर औषधि दीजाती है वैसेही परोक्षवाद यह वेदकर्मसेही मुक्ति के निमित्त कर्मों का उपदेशकरता है ॥ ४४ ॥ किंतु जो अजितेन्द्रिय मूर्ख मनुष्य स्वयं वेदोक्त कार्य नहीं करते वे वेदोक्त कर्म नहीं करने रूप अधर्म से वारम्वार जन्म मरणरूप मृत्युपाशसे बद्ध होतेरहते हैं ॥४५॥ मनुष्य निःसंग होकर ईश्वरमें अर्पण करतेहुए वेदोक्त कार्य करनेसेही ज्ञान सिद्धिको प्राप्त करसक्ताहै, वेदोंमें कहेहुए वाक्य " जो स्वर्गादिककी कामनाकर कर्म करनेसे स्वर्गादिक मिलताहै " आदि तो केवल प्ररोचनार्थ (रुचिके हेतु) है ॥ ४६ ॥ जिसको जीवात्माके अहंकार बन्धन के काटनेकी इच्छाहोवे उसको वैदिक विधिके साथही तन्त्रोक्त विधिसे श्रीकृष्णजीकी पूजा करनी चाहियें ॥ ४७ ॥ गुरुके अनुग्रह प्राप्तकरके उनकी दिखाईहुई पूजा प्रणालीके अनुसार अपनी इच्छित मूर्तिसे महापुरुषकी पूजा करनी चाहियें ॥ ४८ ॥ पवित्रभावसे प्रतिमाके सन्मुख बैठकर प्राणायाम और भूत शुद्धि आदि द्वारा देहको शुद्धकर भगवानकी पूजा करना चाहिये ॥४९॥ प्रतिमादिमें वा हृदय में पहिले पुष्पादि, मिट्टी, आत्मा और प्रतिमाको पूजितकर प्राप्तहुए उपचारों से पूजा करे फिर पाद्यादि पात्र बनाय एकाग्रभाव से हृदय में पूजीहुई मूर्तिका ध्यानकरे तदनन्तर हृदयादि न्यासकर मूलमन्त्रसे पूजाकरे ॥ ५० । ५१ ॥ अंग उपांग समेत सपरिवार उस मूर्ति की पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय, गन्ध, चावल, माला, धूप, दीप और नैवेद्य आदि से अपने २ मन्त्रोंसे पूजाकरे । विधिवत् पूजा और स्तुतिकर भगवानको प्रणामकरे ॥ ५२ । ५३ ॥ अपने को तन्मय विचार भगवानकी मूर्तिका पूजन करना चाहिये और निर्माल्यको मस्तकपर धारणकर पूजित मूर्तिको अपनेस्थानपर रख पूजासमाप्तकरे॥५४॥जो मनुष्य इसप्रकार तान्त्रिक कर्म योगके अनुसार अग्नि, सूर्य, जलादि, अतिथि वा अपनेहृदयमें आत्मभावसे ईश्वरकी पूजाकरे वह शीघ्रही मुक्तिकोपावेगा॥५५॥इतिश्रीमद्भा० महापुराणे एकादशस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांतृतीयोऽध्यायः॥३॥

राजोवाच ॥ यानियानीहकर्माणियैर्यैः स्वच्छन्दजन्मभिः । चक्रेकरोतिकर्ता वाहरिस्तानिब्रुवन्तुनः ॥ १ ॥ द्रुमिल उवाच ॥ योवाअनन्तस्यगुणाननन्तानानुक्रमिष्यन्सतुबालबुद्धिः । रजांसिभूमेर्गणयेत्कथञ्चित्कालेननैवाखिलशक्तिधाम्नः ॥२॥ भूतैर्यदापञ्चभिरात्मसृष्टैः पुरंविराजंविरचय्यतस्मिन् । स्वांशेनविष्टः पुरुषाभिधानमवापनारायणआदिदेवः ॥ ३ ॥ यत्कायएषभुवनत्रयसंनिवेशोयस्येन्द्रियैस्तनुभृतामुभयेन्द्रियाणि । ज्ञानंस्वतः श्वसनतोबलमोजईहासत्त्वादिभिः स्थितिलयोद्भवआदिकर्ता ॥ ४ ॥ आदावभूच्छतधृतीरजसाऽस्यसर्गेविष्णुःस्थितौक्रतुपतिर्द्विजधर्मसेतुः । रुद्रोऽप्ययायतमसापुरुषः सआद्यइत्युद्भवस्थितिलयाः सततंप्रजासु ॥ ५ ॥ धर्मस्यदक्षदुहितर्यजनिष्टमूर्त्यांनारायणोनरऋषिप्रवरः प्रशान्तः । नैष्कर्म्यलक्षणमुवाचचचारकर्मयोऽद्यापिचास्तऋषिवर्यनिषेविताङ्घ्रिः ॥ ३ ॥ इन्द्रोविशङ्क्यममधामजिघृक्षतीतिकामंन्ययुङ्क्तसगणंसबदर्युपाख्यम् । गत्वाऽप्सरोगणवसन्तसुमन्दवातैः स्त्रीप्रेक्षणेषुभिरविध्यदतन्महिज्ञः ॥७॥ विज्ञायशक्रकृतमक्रममादिदेवः प्राहप्रहस्यगतविस्मयएजमानान् । माभैष्टभोमदनमारुतदेववध्वोगृह्णीतनोबलिमशून्यमिमंकुरुध्वम् ॥ ८ ॥ इत्थंब्रुवत्यभयदेनरदेवदेवाः सव्रीडनम्रशिरसः सघृणंतमूचुः नैतद्विभोत्वयिपरेऽविकृतेविचित्रंस्वारामधीरनिकरानतपादपद्मे

राजाने कहा कि—हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्णजीने स्वाधीन रूपसे अवतार ले जिस २ जन्म में इस लोकमें जो२कर्म कियेथे वा करतेहैं वा करेंगे आप हमसे उन सबको कहिये॥१॥द्रुमिलने कहाकि जो मनुष्य भगवान के अनंत गुणोंके गिननेकी इच्छा करता है वह अत्यन्त अदूरदर्शी है । बहुत समयमें किसी प्रकारसे पृथ्वीके रजकण गिने जासकते हैं किंतु अखिल शक्तिके आधार भगवान के गुण कर्मों की गणना नहीं कीजासकती ॥ २ ॥ आत्म सृष्ट पंचभूत द्वारा ब्रह्माण्ड देह निर्माण कर जब अपने अंशसे उसमें प्रवेश हुए तब आदिदेव नारायणने पुरुषसंज्ञाप्राप्त की । यह त्रिभुवन उनका शरीर है ॥ ३ ॥ उनकी इन्द्रियों से प्राणियों के दोनों प्रकारकी इन्द्रियें; उनके निज-स्वरूप भूत सत्वसे ज्ञान और उनके प्राणसे देहशक्ति, इन्द्रियशक्ति और क्रिया शक्ति उत्पन्नहुई है । वह सत्वादि द्वारा सृष्टि, स्थिति और संहार कार्यके आदि कर्त्ता हैं ॥ ४ ॥ आदिसे जिसने रजोगुण द्वारा इसजगत के उत्पत्ति कार्यमें ब्रह्मा; सत्वद्वारा—पालन कार्यमें विष्णु और संहार कार्यमें रुद्र तत्पर हैं, जिनसे इन प्रजाओं की सर्वदा स्थिति, पालन और संहार होता रहता है वेही आदि पुरुष हैं, ॥ ५ ॥ दक्षकी पुत्री धर्मकी स्त्री मूर्त्ति के गर्भ से शांत ऋषिश्रेष्ठ नर नारायण ने जन्म ग्रहण किया । उन्होंने कर्मत्याग और धर्मका उपदेश किया और वैसाही आचरणभी किया था । अब भी प्रधान ऋषिगण उनके चरणों की सेवा करते हैं ॥ ६ ॥ उनकी उत्कट तपस्यासे शंकित होकर इन्द्रने विचारा कि इनने तपोबलसे मेरे स्थानके ग्रहण करनेकी इच्छा की है । इस शंकासे उसने सपरिवार कामदेवको उन ऋषिके निकट भेजा । कामदेवने उनके प्रभावको न जान बदरी नामक आश्रम में आय अप्सरा गण, वसंत, सुदर वायु और स्त्रियोंके कटाक्ष रूप बाणोंसे उनको विद्ध किया ॥ ७ ॥ गर्वरहित आदि देव इन्द्रके अपराधको जानकरभी, शापके भयसे कंपित शरीर—कामदेव आदि से गर्व शून्यहो हँसकर कहनेलगे कि—हे क्षमताशालीमदन ! हे वायु ! हे देवांगनाओं ! भय न करो; मेरे आतिथ्य सत्कारको ग्रहणकरो , इसआश्रमको शून्यकरके न जाना ॥ ८ ॥ हे राजन् अभय देनेवाले नारायणके इसप्रकारसे कहनेपर देवताओंने लज्जितहो नीचा शिरकर उनदयालु से कहा—हे विभो ! आप मायासे पर निर्विकारहो , आत्माराम सब मनुष्य आपके चरण कमलों को प्रणाम करते हैं; आपमें ऐसी दयालुता और जितेन्द्रियपनता

॥ ९ ॥ त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तरायाः स्वौको विलंघ्य परमं व्रजतां पदं ते ।
नान्यस्य बर्हिषि बलीन्ददतः स्वभागान्धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि ॥ १० ॥ क्षुत्तृ
ट्त्रिकालगुणमारुतजैह्व्यशैश्न्यानस्मानपारजलधीनतितीर्य केचित् । क्रोधस्य या
न्ति विफलस्य वशं पदे गोर्मज्जन्ति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजन्ति ॥ ११ ॥ इति प्रगृणतां ते
षां स्त्रियोऽत्यद्भुतदर्शनाः । दर्शयामास शुश्रूषां स्वर्चिताः कुर्वतीर्विभुः ॥ १२ ॥ ते
देवानुचरा दृष्ट्वा स्त्रियः श्रीरिव रूपिणीः । गन्धेन मुमुहुस्तासां रूपौदार्यहतश्रियः
॥ १३ ॥ तानाह देवदेवेशः प्रणतान्प्रहसन्निव । आसामेकतमां वृङ्ध्वं सवर्णां स्वर्ग
भूषणाम् ॥ १४ ॥ ओमित्यादेशमादाय नत्वा तं सुरवन्दिनः । उर्वशीमप्सरःश्रेष्ठां पुर
स्कृत्य दिवं ययुः ॥ १५ ॥ इन्द्रायानम्य सदसि शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् । ऊचुर्नाराय
णबलं शक्रस्तत्रास विस्मितः ॥ १६ ॥ हंसस्वरूप्यवददच्युत आत्मयोगं दत्तः कुमार
ऋषभो भगवान्पिता नः । विष्णुः शिवाय जगतां कलयावतीर्णस्तेनाहृता मधुभिदा
श्रुतयो हयास्ये ॥ १७ ॥ गुप्तोऽप्यये मनुरिलौषधयश्च मात्स्ये क्रौडे हतो दितिज उद्धर
ताम्भसः क्ष्माम् । कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतोन्मथने स्वपृष्ठे ग्राहात्प्रपन्नमिभराजममुञ्चदा
र्तम् ॥ १८ ॥ संस्तुन्वतोऽब्धिपतितान्श्रमणानृषींश्च शक्रं च वृत्रवधतस्तमसि प्रविष्ट
म् । देवस्त्रियोऽसुरगृहे पिहिता अनाथा जघ्नेऽसुरेन्द्रमभयाय सतां नृसिंहे ॥ १९ ॥

कुछ आश्चर्य की बात नहीं है ॥ ९ ॥ जो आपकी सेवा करते हैं उनके पक्ष में देवताओं के किये हुए अनेक विघ्न होते रहते हैं कारण कि वे देवधाम स्वर्गको लांघकर आपके परमधाम को जाते हैं। दूसरे को वे सब विघ्न नहीं होसकते। और जो देवताओं को निज २ भाग देते हैं देवता उनका भी विघ्न नहीं करते। किंतु आप जिसके रक्षक हैं निश्चयही विघ्न उसके मस्तकपर पदा घात करते हैं ॥ १० ॥ कोई २ अपार समुद्र रूप क्षुधा, तृष्णा, शीत, ग्रीष्म, वर्षा, वायु, रसास्वाद और इंद्रियों के विशेष २ भाग रूप अधीनता से पारहो निष्फल क्रोध के वशवर्तीहो गौ के खुरों डूबजाते हैं और कठिन तपस्याको वृथाही परित्याग करदेते हैं ॥ ११ ॥ उन देवताओं के इस प्रकार से कहने पर विभुनारायण ने उनके अहंकार नाश करने के निमित्त भलीप्रकार से सजी स्वरूपवती स्त्रियों को प्रगट करके दिखाया ॥ १२ ॥ वेसब देवानुचर, मूर्त्तिमती लक्ष्मी की समान स्त्रियों को देख उनके रूप और उदारता से श्रीभ्रष्टहो उनके शरीर की सुगंधिसेही मोहित होगए ॥ १३ ॥ तब देव देवेश्वर उन शरणागत देवताओं से हंसकर कहनेलगे कि इनमें से अपनी स्त्रियों से भी स्वरूपवती एक स्त्री को स्वर्गभूषणरूप से लेलो ॥ १४ ॥ 'जो आज्ञा' कह नारायण की आज्ञाले नमस्कारकर वे देवताओं के बंदीजन अप्सराओं में प्रधान उर्वशी को ले स्वर्ग में गये ॥ १५ ॥ और सभा में बैठेहुए देवताओं को प्रणामकर सबके सामनेही इंद्रसे नारायण के प्रभावका वर्णन किया। इंद्र इससे औरभी त्रासित हुआ ॥ १६ ॥ हंसस्वरूपी दत्तात्रेय, सनकादिकुमार हमारे पिता भगवान ऋषभदेव इन्होंने जगत्के कल्याणार्थ विष्णुके अंश से अवतारले योग का उपदेश किया मधुरिपु हयग्रीव ने अवतार धारण कर वेद संग्रह किए, ॥ १७ ॥ भगवान ने मत्स्यावतार धारणकरके मनु, पृथ्वी और ओषधियों की विपदसे रक्षाकीथी; वराह अवतार में जल से पृथ्वी उद्धार करने के समय हिरण्याक्ष को मारा, कूर्मावतार में अमृत मथन कालमें पीठ में पर्वत धारण किया और ग्राह के मुख से विपद्ग्रस्त कातर गजराज को छुड़ाया ॥ १८ ॥ नृसिंहावतार में गौके खुर में डूबेहुए स्तुतिकारक बालखिल्य ऋषियों की रक्षाकी; वृत्र के मारने के कारण ब्रह्महत्यारूप पातक में डूबेहुए इंद्र का उद्धार किया। असुर के घर में रोकीहुईअनाथ देवांगनाओं को विपद्से छुड़ाया और साधुओं के अभय के कारण असुरपति हिरण्यकशिपु को

देवासुरेयुधिचदैत्यपतीन्सुरार्थेहत्वाऽन्तरेषुभुवनान्यदधात्कलाभिः । भूत्वाऽथ वामनइमामहरद्बलेः क्ष्मांयाच्ञाछलेनसमदाददितेः सुतेभ्यः ॥ २० ॥ निःक्षत्रियामकृतगांचत्रिः सप्तकृत्वोरामस्तुहैहयकुलाऽप्ययभार्गवाग्निः । सोऽब्धिंबबन्धदशवक्त्रमहन्सलङ्कंसीतापतिर्जयतिलोकमलघ्नकीर्तिः ॥ २१ ॥ भूमेर्भरावतरणाययदुष्वजन्माजातः करिष्यतिसुरैरपिदुष्कराणि । वादैर्विमोहयतियज्ञकृतोऽतदर्हाञ्छूद्रान्कलौक्षितिभुजोन्यहनिष्यदन्ते ॥ २२ ॥ एवंविधानिकर्माणिजन्मानिचजगत्पतेः । भूरीणिभूरियशसो वर्णितानिमहाभुज ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

राजोवाच । भगवन्तंहरिंप्रायो न भजन्त्यात्मवित्तमाः । तेषामशान्तकामानां का निष्ठाऽविजितात्मनाम् ॥ १ ॥ चमसउवाच । मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह । चत्वारोजज्ञिरेवर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥ २ ॥ यएषांपुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम् । नभजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाःपतन्त्यधः ॥ ३ ॥ दूरेहरिकथाः केचिद्दूरेचाच्युतकीर्तनाः । स्त्रियःशूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्याभवादृशाम् ॥ ४॥ विप्रोराजन्यवैश्यौच हरेःप्राप्ताःपदान्तिकम् । श्रौतेनजन्मनाऽथापि मुह्यन्त्याम्नायवादिनः ॥ ५ ॥ कर्मण्यकोविदाःस्तब्धा मूर्खाःपण्डितमानिनः । वदन्तिचाटुकान्मूढा यथामाध्व्यागिरोत्सुकाः ॥ ६ ॥ रजसाघोरसङ्कल्पाः कामुकाअहिमन्यवः । दा

मारा ॥ १९ ॥ सब मन्वन्तरों में देवताओं के उपकारार्थ देवासुर संग्राम में अंशोंद्वारा दैत्यपतियों का नाशकर जगत का पालन किया । वामनहो मांगने के मिष से बलिसे पृथिवी का हरण कर देवताओं कोदी ॥ २० ॥ हैहय वंश के नाश करने को अवतीर्णहुए भार्गवाग्नि परशुरामजी ने इक्कीसबार पृथिवी को निःक्षत्रिया किया । अब रामावतार में समुद्र का पुलबांध लंका में रहेहुए रावण का नाश करेंगे; लोकों के पापों को हरनवाला कीर्तिशाली रामचन्द्रजी का अवतार सर्वश्रेष्ठ है ॥ २१ ॥ भगवान पृथिवी का भार दूर करने के निमित्त यदुकुल में अवतारले देवताओं केभी न करने योग्य कर्मों को करेंगे; यज्ञमें अनधिकारी यज्ञकरनेवाले दैत्यों को अहिंसावाद से बुद्धावतार धारण करके मोहित करेंगे, अन्त में कल्कि अवतार धारणकर कलियुग के शूद्र राजाओं को मारेंगे ॥ २२ ॥ हे महाबाहो ! बड़ी कीर्तिवाले नारायण के ऐसे ऐसे अनेकों जन्म और कर्म वर्णित हैं ॥ २३ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेएकादशस्कन्धे सरलाभाषाटीकायांचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

राजा निमिने कहाकि-हे आत्मवेत्ता ऋषियो ! प्रायः बहुत से मनुष्य भगवान हरिकी उपासना नहीं करते; वेसब अजितेन्द्रिय हैं अतएव अनिवृत्ति काम मनुष्यों की गति क्या होती है ? ॥ १ ॥ चमस ने कहाकि-गुणद्वारा ब्राह्मणादि चारवर्ण और पृथक् २ आश्रम उन आदि पुरुष के मुख, भुजा, उरु और पैरसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥ इनमें से जोसाक्षात् अपने २ उत्पन्न करने वाले ईश्वर की उपासना नहीं करते अथवा तिरस्कार करते हैं वे स्थानाच्च्युतहो नरक में गिरते हैं ॥ ३ ॥ जिनसे हरिकथा का कहना व सुनना दूर है ऐसे कितने एक मनुष्यों और स्त्रियें व शूद्रों पर आप सरीखे मनुष्योंको कृपा करके उनको सुधारना चाहिये ॥ ४ ॥ जन्म, उपनयन और अध्ययनादि द्वारा भगवान के चरणों की निकटता प्राप्त करके भी ब्राह्मण अथवा क्षत्री और वैश्यवेद के अर्थवाद से मोहित होते रहते हैं ॥ ५ ॥ कर्म में अपण्डित, विनीत, मूर्ख, और पण्डिताभिमानी लोगमीठे वाक्यों से मोहित होकर मीठी २ बातें केवल मूर्खता से करते हैं ॥ ६ ॥ रजोगुण होने से अभिचारादि घोर संकल्प करने वाले, कामी सांपकी समान क्रोधी, पाखण्डी,

भिमकामानिनः पापा विहसन्त्यच्युतप्रियान् ॥ ७ ॥ वदन्तितेऽन्योन्यमुपासितस्त्रियो गृहेषुमैथुन्यपरेषु चाशिषः । यजन्त्यसृष्टान्नविधानदक्षिणं वृत्त्यैपरंघ्नन्तिपशूनतद्विदः ॥ ८ ॥ श्रिया विभूत्याभिजनेन विद्ययात्यागेन रूपेणबलेनकर्मणा ॥ जातस्मयेनान्धधियः सहेश्वरान्सतोऽवमन्यन्ति हरिप्रियान्खलाः ॥ ९ ॥ सर्वेषुशश्वत्तनुभृत्स्ववस्थितं यथा खमात्मानमभीष्टमीश्वरम् । वेदोपगीतंच नशृण्वतेऽबुधा मनोरथानांप्रवदन्तिवार्तया ॥ १० ॥ लोकेव्यवायाऽऽमिषमद्यसेवा नित्याहतु जन्तोर्नहितत्रचोदना । व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥ ११ ॥ धनंचधर्मैकफलंयतो वै ज्ञानसविज्ञानमनुप्रशान्ति । गृहेषुयुंजन्तिकलेवरस्य मृत्युं नपश्यन्तिदुरन्तवीर्यम् ॥ १२ ॥ यद्घ्राणभक्षोविहितः सुरायास्तथा पशोरालभनंनहिंसा । एवंव्यवायःप्रजयानरत्या इदंविशुद्धंनविदुःस्वधर्मम् ॥ १३ ॥ येत्वनेवंविदोऽसन्तः स्तब्धाःसदभिमानिनः । पशून्द्रुह्यन्तिविस्रब्धाः प्रेत्यखादन्तितेचतान् । ॥ १४ ॥ द्विषन्तःपरकायेषु स्वात्मानंहरिमीश्वरम् । मृतके सानुबन्धेऽस्मिन्बद्धस्नेहाः पतन्त्यधः ॥ १५ ॥ येकैवल्यमसंप्राप्ताये चातीताश्चमूढताम् । त्रैवर्गिकाह्यक्षणिका आत्मानंघातयन्तिते ॥१६॥ एत आत्महनोऽशान्ता अज्ञानेज्ञानमानिनः । सीदन्त्यकृतकृत्यावै कालध्वस्तमनोरथाः ॥ १७ ॥ हित्वाऽत्यायासरचिता गृहापत्य-

अभिमानी पापी मनुष्य हरिभक्त साधुओंका उपहास करते हैं ॥ ७ ॥ स्त्रिय सेवक वे सब मनुष्य मैथुन सुखकोही प्रधानमान घरमें बसकर परस्पर कल्याण की बातें करते रहते हैं । दक्षिणा,अन्न दान वा दक्षिणा का विधान नकरयाग करते हैं और भली प्रकार अवगत न होकर केवल जीविका के निमित्तही पशुओं की हिंसा करते रहते हैं ॥ ८ ॥ दुष्टजन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य, उत्तमकुलमें जन्म, विद्या, दान, रूप, बल, और कर्मों से उत्पन्न हुए मदसे अधबुद्धिहो साधुओं और ईश्वर का तिरस्कार करते हैं ॥९ ॥ मूर्ख मनुष्य देहहीमें आकाश की समान निरतर स्थित अभीष्टदेव वर्णित ईश्वर आत्मा का श्रवण नहीं करते; क्योंकि वे मनोरथरूपी कल्पित विषयोंको के कथोपकथन करते रहते हैं। जगतमें स्त्रीसंग,मांस भक्षण और सुरापान करना यह सब प्राणियोंके इच्छाधीन है अतएव वेद प्रवृत्ति काही निरूपण करता है ॥ १० ॥ विवाह मे स्त्री ससर्ग, यज्ञमें पशुहत्या और सुराग्रह नामक कार्यमें मद्यपान करना, वेदमें यह व्यवस्थादी हुई है, किंतु इन सबों से निवृत्त होने परही परम मंगल है ॥ ११ ॥ जिस धर्मसे अपरोक्ष ज्ञान तदनतर निर्वाण रूप परमशांति उत्पन्न होवे वही धर्म धनका एक मात्रफल है मूर्खलोग ऐसे देहादि के कल्याणकारी धनसे धनी होकरभी अपार पराक्रम वाले मृत्युको नहीं देखते ॥ १२ ॥ वेदमें सुराका सूंघना आहार रूपसे कहागया है इसी प्रकार देवताही के निमित्त पशुवधकी भी आज्ञा है इस प्रकारका पशुवध हिंसा नहीं है, अपने मांस भक्षण करने की वेदमें आज्ञा नहीं है । इसी प्रकार सतान के निमित्तही स्त्री संग विहित हुआ है किन्तु रतिके निमित्त नहीं; अतएव मनोरथवादी मनुष्य इस शुद्धधर्मको नहीं जानते ॥ १३ ॥ इस प्रकार के धर्मोंको न जानने वाले जो मूर्ख, गर्वित, मदाभिमानी असाधु मनुष्य निःशंक भावसे पशुहिंसा करते हैं वेही सबपशु परलोक में उनका भक्षण करते रहते हैं ॥ १४ ॥ जो अभिचारादि से दूसरे के शरीर स्थित आत्मा हरिसे द्वेष करता है वह पुत्रादि समेत इस देहसे स्नेह बद्धहो नरक में गिरता है ॥ १५ ॥ जोअधबीच लटकने वाले (न अज्ञानी न तत्वज्ञानी) धर्म अर्थ, कामकोही प्रधान और देहादिकको नित्य जानते हैं अतएव तत्व ज्ञानको नहीं प्राप्त हुए । वह अपने सत् आत्माको असतही जानते हैं ॥ १६ ॥ ऐसे अशान्त, आत्मघाती और अज्ञान कोही ज्ञान जानने वाले मनुष्यों के कालसे मनोरथ निष्फल होजाते हैं तबवे अकृत कार्य होकर दुःखपाते हैं ॥ १७ ॥ भगवान वासुदेव से बहिर्मुख ऐसे मनुष्य

सुहृच्छ्रियः । तमो विशन्त्यनिच्छन्तो वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १८ ॥ राजोवाच । क
स्मिन्काले स भगवान्किंवर्णः कीदृशोनृभिः ॥ नाम्नावाकेनविधिना पूज्यतेतदिहो
च्यताम् ॥ १९ ॥ करभाजन उवाच । कृतंत्रेताद्वापरंच कलिरित्येषुकेशवः । नाना
वर्णाभिधाकारो नानैवविधिनेज्यते ॥२०॥ कृतेशुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलाम्बरः
कृष्णाजिनोपवीताक्षान्बिभ्रद्दण्डकमण्डलू ॥ २१॥ मनुष्यास्तुतदाशान्ता निर्वैराः ।
सुहृदःसमाः । यजन्तितपसादेवं शमेनचदमेनच ॥२२॥ हंसःसुपर्णोवैकुण्ठोधर्मो
योगेश्वरोमनुः । ईश्वरःपुरुषोऽव्यक्तः परमात्मेतिगीयते ॥ २३ ॥ त्रेतायांरक्तवर्णो
ऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः । हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः ॥ २४ ॥ तं
तदामनुजादेव सर्वदेवमयंहरिम् । यजन्तिविद्ययात्रय्या धर्मिष्ठाब्रह्मवादिनः ॥२५॥
विष्णुर्यज्ञःपृश्निगर्भः सर्वदेवउरुक्रमः । वृषाकपिर्जयन्तश्च उरुगायइतीर्यते ॥ २६ ॥
द्वापरेभगवाञ्छ्यामः पीतवासानिजायुधः । श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षि-
तः ॥ २७ ॥ तंतदापुरुषंमर्त्या महाराजोपलक्षणम् । यजन्तिवेदतन्त्राभ्यां परंजिज्ञा
सवोनृप ॥२८॥ नमस्तेवासुदेवाय नमःसंकर्षणायच । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं
भगवतेनमः ॥ २९ ॥ नारायणाय ऋषये पुरुषायमहात्मने । विश्वेश्वराय विश्वाय
सर्वभूतात्मनेनमः ॥ ३० ॥ इतिद्वापरउर्वीश स्तुवन्तिजगदीश्वरम् । नानातन्त्रवि-
धानेन कलावपियथाशृणु ॥ ३१॥ कृष्णवर्णंत्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् । य
ज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्तिहिसुमेधसः ॥ ३२ ॥ ध्येयंसदापरिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्था

इच्छा न करने परभी आत्म मायासे विरचित घर, पुत्र, सुहृद और लक्ष्मीको त्यागकर नरक में गिरते हैं ॥ १८ ॥ निमिराजाने कहा कि—वह भगवान किस समय में, कैसा आकार धारणकर कैसे वर्णके हो, किस नाम और किस प्रकार से मनुष्यों द्वारा पूजित होते हैं ? आपकृपा करके उनका वर्णन करिये ॥ १९ ॥ करभाजन ने कहा कि—हे राजन् ! सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चारों युगोंमें भगवान नानावर्ण, नानानाम, नाना प्रकार के आकार धारणकर नाना विधिसे पूजित होते रहते हैं ॥ २० ॥ सत्य युगमें भगवान श्वेतवर्ण, चतुर्भुज, जटाधारी, वल्कल वस्त्र पहिने और कृष्ण मृगचर्म, यज्ञोपवीत, माला, दंड, कमंडलु, धारणकिये विराजमान रहते हैं ॥ २१ ॥ तबशांत, वैर रहित, सुहृद, समदर्शी मनुष्य ध्यान, शम और दमसे उन देवकी पूजा करते हैं ॥ २२ ॥ इस युगमें भगवान हंस, सुपर्ण, वैकुंठ, धर्म, योगेश्वर, अमल, ईश्वर, पुरुष अव्यक्त और परमात्मा इनसब नामोंसे गायेजाते हैं ॥ २३ ॥ त्रेता युगमें यह रक्तवर्ण, चतुर्भुज, तीन मेखला धारणकिये, पीलेकेश, वेदमय और स्रुक स्रुवादि चिह्नोंसे चिह्नित रहते हैं ॥ २४ ॥ तब धार्मिष्ठ, ब्रह्मवादी मनुष्य सर्व देवमय उनदेव हरिकी वेदत्रयीमें कहेहुए कर्मोंद्वारा पूजाकरते हैं ॥ २५ ॥ इस युगमें भगवान विष्णु यज्ञ, पृश्निपुत्र, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयंत और उरुगाय इन सब नामोंसे गायेजाते हैं ॥ २६ ॥ द्वापर में भगवान श्यामवर्ण, पीताम्बर पहिने, अपने अस्त्र शस्त्र शंख चक्रादि धारी और श्रीवत्सादि चिह्नोंसे चिह्नित रहते हैं ॥ २७ ॥ उस समय मनुष्यगण ईश्वर के जानने की अभिलाषाकर महाराज चिह्नसे चिह्नित पुरुष की वेद और तन्त्र के अनुसार पूजाकरते हैं ॥ २८ ॥ वासुदेव, संकर्षण, आप भगवान प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ऋषि, पुरुष, महात्मा, विश्वेश्वर, विश्वरूपी सर्वभूतात्मा आप को नमस्कार है ॥ २९।३० ॥ हे महीपते ! द्वापर में मनुष्य यह कहकर भगवान की पूजा करते हैं । कलिमें भी नाना तंत्रों के अनुसार जिसप्रकार श्रीहरि पूजित होते हैं उसको सुनो ॥ ३१ ॥ उस समय विवेकीमनुष्य कृष्ण वर्ण, अंगउपांग, अस्त्र और पार्षदों समेत बहुत २ अर्चनाओं से पूजा करते हैं ॥ ३२ ॥ हे महा

ध्येय शिवविरिञ्च्यनुतं शरण्यम् । भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ ३३ ॥ त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठआर्यव चसायदगादरण्यम् । मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्वन्दे महापुरुषते चरणारविन्दम् ॥ ३४ ॥ एवंयुगानुरूपाभ्यां भगवान्युगवर्तिभिः । मनुजैरिज्यते राजञ्छ्रेयसामी श्वरोहरिः ॥ ३५ ॥ कलिंसभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाःसारभागिनः । यत्रसंकीर्तनेनैव सर्वःस्वार्थोऽभिलभ्यते ॥ ३६ ॥ नह्यतःपरमोलाभो देहिनांभ्राम्यतामिह । यतोवि न्देतपरमांशांतिं नश्यतिसंसृतिः ॥ ३७ ॥ कृतादिषुप्रजा राजन्कलाविच्छन्ति सं भवम् । कलौखलुभविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥ ३८ ॥ क्वचित्क्वचिन्महाराज द्रविडेषुचभूरिशः । ताम्रपर्णीनदीयत्र कृतमालापयस्विनी ॥ ३९ ॥ कावेरीचमहा पुण्या प्रतीचीचमहानदी । येपिबन्तिजलंतासां मनुजामनुजेश्वर । प्रायोभक्ताभ गवति वासुदेवेऽमलाशयाः ॥ ४० ॥ देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणांन किंकरोनायमृ णीचराजन् । सर्वात्मनायःशरणं शरण्यं गतोमुकुन्दंपरिहृत्यकर्तम् ॥ ४१ ॥ स्वपा दमूलंभजतःप्रियस्य त्यक्तान्यभावस्यहरिः परेशः । विकर्मयच्चोत्पतितंकथंचिद्धु नोति सर्वंहृदिसन्निविष्टः ॥ ४२ ॥ नारदउवाच ॥ धर्मान्भागवतानित्थं श्रुत्वाऽथ मिथिलेश्वरः । जायन्तेयान्मुनीन्प्रीतः सोपाध्यायोह्यपूजयत् ॥ ४३ ॥ ततोऽन्तर्दधि रे सिद्धाः सर्वलोकस्यपश्यतः । राजाधर्मानुपातिष्ठन्नवाप परमांगतिम् ॥ ४४ ॥ त्व मप्येतान्महाभाग धर्मान्भागवतांश्रुतान् । आस्थितःश्रद्धयायुक्तो निःसंगोयास्यसे

पुरुष आप सर्वदा ध्यान करने योग्य, सांसारिक दुःख के नाशक, मनोरथ के पूर्ण करनेवालेतीर्थों के आश्रय रूप ! शिव ब्रह्मासे स्तुति कियेजाते, शरणागत भक्तों के पीडानाशक, भक्तोंकेरक्षक भवसागर के नौकाहो आप के चरणों की वंदना करते हैं, ॥ ३३ ॥ हे महापुरुष आप अतिधर्मिष्ठ हो; क्योंकि पिता के केवल वचनों कोही मानकर आप दुस्त्यज राज्यलक्ष्मी को छोड़ बनों गयेथे, वहां प्यारी के इच्छित माया मृग का अनुसरण कियाथा; आप के चरणों को प्रणाम करते हैं ॥ ३४ ॥ हेराजन् ! कलियुग में उत्पन्नहुए मनुष्य इसप्रकार से नाम और मूर्तिद्वारा सब कल्याणों के ईश्वर मुक्तिदाता हरि की पूजाकरते रहते हैं ॥ ३५ ॥ गुण के जाननेवाले सारभागी श्रेष्ठमनुष्य कलिकाही सब युगों की अपेक्षा आदरकरते हैं, क्योंकि केवल कीर्त्तन द्वाराही इस युग में समस्त पुरुषार्थ प्राप्त होते रहते हैं ॥ ३६ ॥ इस संसारमें भ्रमणशील मनुष्यों का इसकी अपेक्षा परमलाभ और नहीं है । क्योंकि इससेही परमशांति प्राप्त होती है और इससेही संसार का बंधन दूरहोता है ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! सत्यादियुग के सब मनुष्य कलिमेंही जन्म की इच्छा करते हैं । हे महा राज ! कलि में किसी २ स्थान में मनुष्य भगवद्भक्त होवेंगे; ॥ ३८ ॥ जैसे ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी, कावेरी, महापुण्या, प्रचीती–और महानदी बहती हैं उसी द्रविड़ देश में बहुत से हरि- भक्त होवेंगे । हे लोकनाथ ! जो मनुष्य इन नदियों का जल पीते हैं वह प्रायः भगवान वासुदेव- परमभक्तियुक्त होते हैं और उनके अंतःकरण शुद्धि प्राप्त करते हैं ॥ ३९—४० ॥ हे राजन् ! जिसने काम छोड़कर काय, मन, वाक्य से शरणागत पालक भगवान के चरणों की शरणली है वह देवता, ऋषि, प्राणी, कुटुम्ब, मनुष्य और पितरों का किंकर (दास) या ऋणी नहीं है। भग- वत्चरण सेवी प्रियभक्त यदि कभी प्रमादवश निषिद्ध कर्म से पतित होवे तो भगवान हरि उसके हृदय में प्रवेश कर उन समस्त पापों का नाश करते हैं ॥ ४१—४२ ॥ नारदजी ने कहा कि– उस मैथिलराजने इसप्रकार के भागवत धर्म कोसुन प्रसन्नहो उपाध्यायों समेत उन ऋषियों की पूजाकी ॥ ४३ ॥ अनंतर सबमनुष्योंके सन्मुखही वे सिद्ध अंतर्ध्यान होगये । राजा ने उन सब धर्मों का अनुष्ठान कर परम गति प्राप्तकी ॥ ४४ ॥ हे महाभाग ! आप भी श्रद्धायुक्त और निः

परम् ॥ ४५ ॥ युवयोः खलु दम्पत्योर्यशसा पूरितं जगत् । पुत्रतामगमद्यद्वां भगवानीश्वरो हरिः ॥ ४६ ॥ दर्शनालिङ्गनालापैः शयनासनभोजनैः ॥ आत्मा वां पावितः कृष्णे पुत्रस्नेहं प्रकुर्वतोः ॥ ४७ ॥ वैरेण यं नृपतयः शिशुपालपौण्ड्रशाल्वादयो गतिविलासविलोकनाद्यैः । ध्यायन्त आकृतधियः शयनासनादौ तत्साम्यमापुरनुरक्तधियां पुनः किम् ॥ ४८ ॥ मापत्यबुद्धिमकृथाः कृष्णे सर्वात्मनीश्वरे । मायामनुष्यभावेन गूढैश्वर्ये परेऽव्यये ॥ ४९ ॥ भूभारासुरराजन्यहन्तवे गुप्तये सताम् । अवतीर्णस्य निर्वृत्यै यशो लोके वितन्यते ॥५०॥ श्रीशुकउवाच । एतच्छ्रुत्वा महाभागो वसुदेवोऽतिविस्मितः । देवकी च महाभागा जहतुर्मोहमात्मनः ॥ ५१ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं धारयेद्यः समाहितः । स विधूयेह शमलं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एका० पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथ ब्रह्मात्मजैर्देवैः प्रजेशैरावृतोऽभ्यगात् । भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः ॥ १ ॥ इन्द्रो मरुद्भिर्भगवानादित्या वसवोऽश्विनौ । ऋभवोऽङ्गिरसो रुद्रा विश्वे साध्याश्च देवताः ॥२॥ गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धचारणगुह्यकाः । ऋषयः पितरश्चैव सविद्याधरकिन्नराः ॥ ३ ॥ द्वारकामुपसञ्जग्मुः सर्वे कृष्णदिदृक्षवः । वपुषा येन भगवान् नरलोकमनोरमः ॥ यशो वितेने लोकेषु सर्वलोकमलापहम् ॥ ४ ॥ तस्यां विभ्राजमानायां समृद्धायां महर्द्धिभिः । व्यचक्षतावितृप्ताक्षाः कृष्णमद्भुतदर्शनम् ॥ ५ ॥ स्वर्गोद्यानोपगैर्माल्यैश्छादयन्तो यदूत्तमम् ।

संगहो इन समस्त शुभभागवत धर्मों का आचरण करो; इसही से परमपद प्राप्त करसकोगे ४५॥ आपका यश जगत में परिपूर्ण है क्योंकि भगवान ईश्वर हरि आप के पुत्ररूप से अवतीर्ण हुए हैं ॥ ४६ ॥ श्रीकृष्णजी पर पुत्रका स्नेह होने से आपका आत्मा उनके दर्शन, आलिंगन, स्पर्शन, शयन, भोजन और सगही बैठने आदि से निर्मल हुआ है ॥ ४७ ॥ जब शिशुपाल, पौण्ड्रक और शाल्वादि राजा शयन और भोजन काल में गति, विलास और दृष्टि आदिद्वारा उनकी आकृतिका ध्यानकर उनकी गति को प्राप्तहुएथे; तब जिनकामन सदैवही उनमें लगारहता है उनकी तोबात ही क्या कहूं ॥ ४८ ॥ सर्वात्मा ईश्वर श्रीकृष्णजी को पुत्र न जानो, माया के कारण मनुष्य‑से उनका ऐश्वर्य गुप्त है; वह अव्यय, पुरुष ॥ ४९ ॥ पृथिवी के भारभूत असुरावतार राजाओं के नाश और साधुओं की रक्षा करने के निमित्त अवतीर्ण हुए हैं । उनका यश मनुष्यों की मुक्ति के निमित्त संसार में विख्यात होरहा है ॥ ५० ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–महाभाग वसुदेवजी और महाभागा देवकी ने यहसुन अत्यन्त विस्मितहो आत्मा का मोह दूर किया ॥५१॥ जोमनुष्य एकाग्रचित्तहो इस पवित्र इतिहास को आदरपूर्वक धारण करता है वह सांसारिक मोह से छूटकर मोक्ष को प्राप्तहोता है ॥ ५२ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्क०सरलाभाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि–एक समय ब्रह्माजी अपने पुत्रों, देवताओं और लोकपालों से घिरकर सर्व मंगलमय महादेवजी भूतोंसे वेष्टित हो ॥ १ ॥ मरुद्गणों समेत इन्द्र; वसु, आदित्यगण, अश्विनीकुमार, अंगिरस, रुद्र, विश्वेदेवा ॥२॥ गन्धर्व अप्सराएं नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, ऋषि, पितर, विद्याधर और किन्नरादि सबही श्रीकृष्णजीके दर्शनोंके निमित्त द्वारकामें आये । जिन भगवान श्रीकृष्णजीने देह द्वारा मनुष्योंके मन रमण कराने वाले होकर जगतमें सब मनुष्यों के पाप नाशक यशका विस्तार किया था ब्रह्मादि को उन्हींके दर्शन की इच्छा थी ॥ ३ । ४ ॥ वे समृद्धि युक्त देदीप्यमान नगरी में विराजमान अद्भुत दर्शन श्रीकृष्णजी को अतृप्त नेत्रोंसे देखने

गीर्भिश्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥ ६ ॥ देवा ऊचुः ॥ नताः स्म ते नाथ पदा
रविन्दं बुद्धीन्द्रियप्राणमनोवचोभिः । यच्चिन्त्यतेऽन्तर्हृदि भावयुक्तैर्मुमुक्षुभिः क
र्ममयोरुपाशात् ॥ ७ ॥ त्वं मायया त्रिगुणयात्मनि दुर्विभाव्यं व्यक्तं सृजस्यवसि लु
म्पसि तद्गुणस्थः । नैतैर्भवानजित कर्मभिरज्यते वै यत्स्वे सुखेऽव्यवहितेऽभिरतोऽन
वद्यः ॥ ८ ॥ शुद्धिर्नृणां न तु तथेड्य दुराशयानां विद्याश्रुताध्ययनदानतपःक्रियाभिः ।
सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्धसच्छ्रद्धया श्रवणसंभृतया यथा स्यात् ॥ ९ ॥ स्या
न्नस्तवाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः क्षेमाय यो मुनिभिरार्द्रहृदोह्यमानः । यः सात्वतैः सम
विभूतय आत्मवद्भिर्व्यूहेऽर्चितः सवनशः स्वरतिक्रमाय ॥ १० ॥ यश्चिन्त्यते प्रयतपा
णिभिरध्वराग्नौ त्रय्या निरुक्तविधिनेश हविर्गृहीत्वा । अध्यात्मयोग उत योगिभिरा
त्ममायां जिज्ञासुभिः परमभागवतैः परीष्टः ॥ ११ ॥ पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं
संस्पर्धिनी भगवती प्रतिपत्निवच्छ्रीः । यः सुप्रणीतममुयाऽर्हणमाददन्नो भूयात्सदा
ङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः ॥ १२ ॥ केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको यस्ते भयाभयक
रोऽसुरदेवचम्वोः । स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन् पादः पुनातु भगवन्भजता
मघं नः ॥ १३ ॥ नस्योतगाव इव यस्य वशे भवन्ति ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्यमानाः ।
कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोः परस्य शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥ १४ ॥ अस्यासि

और स्वर्गीय फूलोंकी मालासे यदुश्रेष्ठ को आवृत कर मनोहर पद और अर्थयुक्त वाक्योंसे स्तुति करने लगे ॥ ५—६ ॥ देवताओं ने कहाकि—हे नाथ ! कर्ममय दृढ़ पाशसे छूटने की इच्छा कर ऋषिगण हृदय में जिनका ध्यान करते हैं, हम, बुद्धि इन्द्रिय, प्राण, मन, और वचनों द्वारा आपके उन्हीं चरण कमलोंको प्रणाम करते हैं ॥ ७ ॥ हे अजित ! आप मायागुण में स्थितिकर त्रिगुण मायासे इस अतर्कनीय विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं; परन्तु उन सब कर्मों में आप लिप्त नहीं होते, क्योंकि आप रागादि दोष रहित, आचरण रहित आत्म सुख निरतहो ॥८॥ हे पूज्य ! हे श्रेष्ठ ! आपके यशके सुनने से पुष्टहुई उत्तमश्रद्धा द्वारा साधुओंको जिस प्रकार की शुद्धिहोती है विद्या, श्रुत, अध्ययन, दान, तपस्या और कर्मों में आसक्त हुए मनुष्य वैसी शुद्धि नहीं प्राप्त करसकते ॥ ९ ॥ हे ईश्वर ! मुनिलोग मुक्तिके निमित्त प्रेमार्द्र हृदय से आपके जिन चरणोंकी उपासना करते हैं, भक्तलोग आपका सा ऐश्वर्य पानेके निमित्त जिनकी वासुदेवादि मूर्त्ति से पूजाकरते हैं और धीर मनुष्य स्वर्गका लोभ छोड़कर वैकुंठ के निमित्त जिनकी त्रिकाल पूजा करते हैं, यज्ञ करने वाले हाथजोड़ हविग्रहण कर वेदोक्त विधिसे जिनका ध्यान करते हैं, आत्म मायाके खोजने वाले योगीजन अध्यात्मयोग से जिनका भजन करते हैं, और परम भागवत जिन की सर्वत्र सर्वतोभाव से आराधना करते हैं वही चरण कमल हमारी विषय वासनाओंको निर्मूल करें ॥ १०—११ ॥ हे विभू ! लक्ष्मीजी सावती की समान इस पर्यूषिता वनमाला के साथ डाह करती रहती हैं तोभी वनमाला भक्तोंकी अर्पण की हुई है ऐसा विचार आप वनमाला से की हुई भक्तोंकी पूजाको भलीभांति अंगीकार करतेहो, उन्हीं आपके चरण हमारी विषय वासनाओं के नाश करने के निमित्त धूमकेतु होवें ॥ १२ ॥ हे भूमन् ! हे भगवन् ! आपका जो चरण कमल बलिराजा के बांधने के समय पराक्रम युक्त ध्वज स्वरूप हुआ था, तीन धारवाली गंगा जिसकी पताका स्वरूप हुई थीं, जोदेवता और असुरों की सेनाओंको अभय और भय देनेवाला है. और जो साधुओंको स्वर्ग स्वरूप व असाधुओंको नरक स्वरूप,है उसीका हम भजन करते हैं हमको पापों से शुद्धकरिये ॥ १३ ॥ आप प्रकृति पुरुष के पर, काल रूपीहो, परस्पर द्वेषादिक से पीड़ित हुए ब्रह्मादि सबही प्राणी नाकछिदे रस्सीसे बंधेहुए बैलकी समान आपके वशीभूत हैं, आपके चरण

हेतुरुदयस्थितिसंयमानामव्यक्तजीवमहतामपिकालमाहुः॥सोऽयंत्रिणाभिरखिला
पचयेप्रवृत्तः कालोगभीररयउत्तमपूरुषस्त्वम् ॥ १५ ॥ त्वत्तःपुमान्समधिगम्यय
यास्यवीर्यं धत्तेमहान्तमिवगर्भममोघवीर्यः । सोऽयंतयाऽनुगतआत्मनआण्डको
शं हैमंससर्जबहिरावरणैरुपेतम् ॥ १६ ॥ तत्तस्थुषश्चजगतश्चभवानधीशो यन्मा
ययोत्थगुणविक्रिययोपनीतान् । अर्थाञ्जुषन्नपिहृषीकपतेनलिप्तो येऽन्येस्वतःपरि
हृतादपिबिभ्यतिस्म ॥ १७ ॥ स्मायावलोकलवदर्शितभावहारि भ्रूमण्डलप्रहित
सौरतमन्त्रशौण्डैः । पत्न्यस्तुषोडशसहस्रमनङ्गबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुंकरणैर्न वि
भ्व्यः ॥ १८ ॥ विभ्व्यस्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः पादावनेजसरितःशमला
निहन्तुम् । आनुश्रवंश्रुतिभिरंघ्रिजमङ्गसंगैस्तीर्थद्वयंशुचिषदस्तउपस्पृशन्ति॥१९॥
बादरायणिरुवाच ॥ इत्यभिष्टूयविबुधैः सेशःशतधृतिर्हरिम् । अभ्यभाषतगोवि
न्दं प्रणम्याम्बरमाश्रितः ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भूमेर्भारावताराय पुराविज्ञापितः
प्रभो । त्वमस्माभिरशेषात्मस्तत्तथैवोपपादितम् ॥ २१ ॥ धर्मश्चस्थापितःसत्सु स
त्यसन्धेषुवैत्वया । कीर्तिश्चदिक्षुविक्षिप्ता सर्वलोकमलापहा ॥ २२॥ अवतीर्ययदो
र्वंशे बिभ्रद्रूपमनुत्तमम् । कर्माण्युद्दामवृत्तानि हितायजगतोऽकृथाः ॥ २३ ॥ यानि
तेचरितानीश मनुष्याःसाधवःकलौ । शृण्वन्तःकीर्तयन्तश्च तरिष्यन्त्यंजसातमः
॥ २४ ॥ यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतःपुरुषोत्तमः । शरच्छतंव्यतीयाय पंचविंशाधि
कंप्रभो ॥ २५ ॥ नाधुनातेऽखिलाधार देवकार्यावशेषितम् । कुलंचविप्रशापेननष्ट

हमारा मंगलकरें ॥ १४ ॥ आप इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशके कारणहो, आप प्रकृति, पुरुष और महत्तत्व के नियन्ताहो । आपही त्रिनाभि (तीनभाग) युक्त, सबके नाशमें प्रवृत्त, गम्भीर वेगशाली कालहो, अतएव आपही उत्तम पुरुषहो ॥ १५ ॥ जिस अमोघ पराक्रम पुरुष ने स्वयंही शक्ति प्राप्तकर, गर्भकी समान, मायाके साथ महत्तत्व धारण किया उसही पुरुष ने उस मायाके अनुसारीहो बाहरी आवरणों समेत हेमअण्डकोषरचा है ॥ १६ ॥ हे हृषीकेश ! आप स्थावर जंगमों के अधीश्वरहो क्योंकि मायासे प्रकाशित इन्द्रियों की वृत्तियों द्वारा प्राप्तहुए सब विषयोंको भोगकर भी आप उनमें लिप्त नहीं होते, किन्तु आपसे भिन्न और सबही स्वयं ... स्वरूप विषयों से भीतहोते रहते हैं ॥ १७ ॥ सोलह सहस्र स्त्रियें मंदहास्य युक्त कटाक्ष दृष्टिद्वारा सूचित कियेहुए अभिप्राय से मनोहर भौंहों से प्रेरित काम कलादिक साधनों सेभी आपके मनको मोहित न करसकीं ॥ १८ ॥ अतएव आपकी कथा रूप अमृत जल वाहिनी और चरण धोनेके जल रूप नदियां त्रिलोकी का पाप धोनेको समर्थ हैं, स्वस्व आश्रम धर्मावलंबी मनुष्य वेद विहित तीर्थों का श्रवणेन्द्रिय द्वारा और चरणों से उत्पन्न हुए तीर्थों का निःसंग संग द्वारा सेवन किया करते हैं ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि–महादेवजी और ब्रह्माजी ने देवताओं समेत आकाशका आश्रय ले भगवान की इस प्रकार से स्तुति व प्रणामकर कहा ॥ २० ॥ ब्रह्माजी ने कहाकि–हे सर्वात्मन् ! हे प्रभो ! प्रथम हमने पृथिवीका भार हरनेके निमित्त आपको जनायाथा, तब आपने अवतार धारणकर पृथिवीका भारदूर किया ॥ २१ ॥ आपने सत्य प्रतिज्ञ साधुओंका धर्म स्थापन किया है, सब मनुष्यों के पाप हरने वाली कीर्तिकाभी सब दिशाओं में विस्तार किया है, सर्वोत्तम रूप धारणकर यदुकुल में अवतीर्णहो जगतके कल्याण के निमित्त बड़े २ पराक्रमके कार्य किये हैं ॥ २२—२३ ॥ हे ईश्वर ! आपके उन सब चरित्रोंको सुनकर व गायकर कलियुग में साधुजन सहसा अज्ञान से पार होवेंगे ॥ २४ ॥ हे पुरुषोत्तम ! हे विभो ! आपको यदुवंश में अवतार लिये एकसौ पचीस वर्ष बीतगये । हे अखिलाश्रय ! इस समय अब आपका कोई देव कार्य शेष नहीं

प्रायमभूदिदम् ॥ २६ ॥ ततःस्वधामपरमंविशस्वयदिमन्यसे । सलोकाँल्लोकपा
लान्नः पाहिवैकुण्ठकिंकरान् ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अवधारितमेतन्मे य
दात्थविबुधेश्वर । कृतंवःकार्यमखिलं भूमेर्भारोऽवतारितः ॥ २८ ॥ तदिदंयादव
कुलं वीर्यशौर्यश्रियोद्धतम् । लोकंजिघृक्षद्रुद्धं मेवेलयेवमहार्णवः ॥ २९ ॥ यद्यसं
हृत्यदृप्तानां यदूनांविपुलंकुलम् । गन्तास्म्यनेनलोकोऽयमुद्वेलेनविनंक्ष्यति ॥३०॥
इदानींनाशआरब्धः कुलस्यद्विजशापतः । यास्यामिभवनंब्रह्मन्नेतदन्तेतवानघ३१॥
श्रीशुकउवाच ॥ इत्युक्तोलोकनाथेन स्वयम्भूःप्रणिपत्यतम् । सहदेवगणैर्देवः
स्वधामसमपद्यत ॥ ३२ ॥ अथतस्यांमहोत्पातान् द्वारवत्यांसमुत्थितान् । विलो
क्यभगवानाह यदुवृद्धान्समागतान् ॥ ३३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एतेवैसुमहोत्पा
ता व्युत्तिष्ठन्तीहसर्वतः । शापश्चनः कुलस्यासीद्ब्राह्मणेभ्यो दुरत्ययः ॥ ३४ ॥ न
वस्तव्यमिहास्माभिर्जिजीविषुभिरार्यकाः । प्रभासंसुमहत्पुण्यं यास्यामोऽद्यैव मा
चिरम् ॥ ३५ ॥ यत्रस्नात्वा दक्षशापाद्गृहीतो यक्ष्मणोडुराट् । विमुक्तः किल्बि-
षात्सद्यो भेजेभूयःकलोदयम् ॥ ३६ ॥ वयञ्चतस्मिन्नाप्लुत्य तर्पयित्वा पितॄन्सुरान्
। भोजयित्वोशिजो विप्रान्नानागुणवताऽन्धसा ॥ ६७ ॥ तेषुदानानिपात्रेषु श्रद्धयो
प्त्वा महान्तिवै । वृजिनानितरिष्यामो दानैर्नौभिरिवार्णवम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवा-
च । एवंभगवताऽऽदिष्टा यादवाःकुलनन्दन । गन्तुंकृतधियस्तीर्थं स्यन्दनान्सम-
यूयुजन् ॥ ३९ ॥ तन्निरीक्ष्योद्धवो राजञ्छ्रुत्वाभगवतोदितम् । दृष्ट्वाऽरिष्टानिघो-

---

रहा, और आपका वंश भी प्रायः नष्ट होसा होगया है ॥ २५—२६ ॥ अतएव यदि उचित स-
मझिये तो अपने वैकुंठ धाममें गमनकर वैकुंठके सेवक लोकपालोंकी हमारे समेत रक्षाकरो ॥२७॥
श्रीभगवान ने कहाकि-हे देवेश !आपने जोकहा वही मैंने भी निश्चय किया है, पृथिवी का भार
हरणकर आपके सब कार्य करादिये ॥ २८ ॥ ऐश्वर्य, पराक्रम और श्री से बढ़ा हुआ यादव वंश
लोकका नाशकर देनेपर उद्यत है; तट जैसे समुद्रको रोक रखता है मैंनभी उसीप्रकार इन्हेंरोक
रक्खा है ॥ २९ ॥ यदि अभिमानी यादवोंका वंश नाश न किया जावेगा तो यह बहुत बढ़कर
लोकका नाश करेंगे॥३०॥इससमय ब्रह्मशाप से वंशनाशका काल उपस्थित है,हे निष्पाप ब्रह्मन् !
इसकार्यके करनेके उपरांत तुम्हारे धाम में आऊंगा ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—ब्रह्माजी
श्रीकृष्णजी की इसबातको सुन उनको प्रणामकर देवताओं समेत अपने स्थानको गये॥३२॥अन
तर उस द्वारकापुरी में बडे२ उत्पात होनेलगे । उन उत्पातोंको देख भगवानने अपने निकट आये
हुए वृद्ध यादवों से कहा कि—॥ ३३ ॥ हे आर्यो ! इस नगरी में सबओरसे बड़े २ उत्पात
होरहे हैं ; हमारे वंशके ऊपर ब्राह्मणों का दुरत्यय शापभी हुआ है ॥ ३४ ॥ जीवन की इच्छा
करके हमारा इस स्थान में रहना अनुचित है, आजही अविलम्ब से परम पवित्र प्रभासतीर्थ में
चलना चाहिए ॥ ३५ ॥ दक्ष के शापसे यक्ष्मा रोग में ग्रस्तहुए चन्द्रमा ने जिसतीर्थ में स्नानकर
पाप से छूट फिर कलावृद्धि प्राप्त कीथी, ॥ ३६ ॥ हमभी उसी प्रभास में स्नानकर पितर और
देवताओं का तर्पण कर नाना गुणयुक्त अन्नोंसे उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन करावें ॥ ३७ ॥ और
उन सब ब्राह्मणों को श्रद्धापूर्वक दानदे, नावद्वारा जैसे सागर से पारहुआ जाता है वैसेही नाना
प्रकार के दानोंद्वारा पापोंसे पार होवें ॥ ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे कुरुनन्दन !इस
प्रकार यदुवंशी भगवान की आज्ञा से तीर्थ जाने को उत्सुकहुए और सब सवारियों को जोड़ने
लगे ॥ ३९ ॥ हेराजन् यह देख, भगवान की बातों को सुन और भयानक उत्पातों को देख श्री

राणि नित्य कृष्णमनुव्रतः ॥ ४० ॥ विविक्तउपसङ्गम्य जगतामीश्वरेश्वरम् । प्रणम्य शिरसापादौ प्रांजलिस्तमभाषत ॥ ४१ ॥ उद्धव उवाच । देवदेवेशयोगेश पुण्यश्रवणकीर्तन । संहृत्यैतत्कुलं नूनं लोकंसंत्यक्ष्यतेभवान् । विप्रशापंसमर्थोऽपि प्रत्यहन्नयदीश्वरः ॥ ४२ ॥ नाहंतवांघ्रिकमलं क्षणार्धमपिकेशव ॥ त्यक्तुंसमुत्सहेनाथ स्वधामनयमामपि ॥ ४३ ॥ तव विक्रीडितंकृष्ण नृणांपरममंगलम् । कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहांजनः ॥ ४४ ॥ शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाशनादिषु ॥ कथंत्वां प्रियमात्मानं वयंभक्तास्त्यजेमहि ॥ ४५ ॥ त्वयोपभुक्तस्रग्गन्धवासोलङ्कारचर्चिताः । उच्छिष्टभोजिनो दासास्तवमायांजयेमहि ॥ ४६ ॥ वाताशनायऋषयः श्रमणाऊर्ध्वमन्थिनः । ब्रह्माख्यंधामतेयान्ति शान्ताः संन्यासिनोऽमलाः ॥ ४७ ॥ वयंत्विह महायोगिन्भ्रमन्तः कर्मवर्त्मसु । त्वद्वार्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरंतमः । ॥ ४८ ॥ स्मरन्तःकीर्तयन्तस्ते कृतानिगदितानिच ॥ गत्युत्स्मितेक्षणक्ष्वेलि यन्नृलोकविडम्बनम् ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच । एवंविज्ञापितो राजन्भगवान्देवकीसुतः । एकान्तिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थमांमहाभागतच्चिकीर्षितमेवमे । ब्रह्माभवोलोकपालाःस्वर्वासंमेऽभिकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥ मयानिष्पादितंह्यत्रदेवकार्यमशेषतः । यदर्थमवतीर्णोऽहमंशेनब्रह्मणार्थितः ॥ २ ॥ कुलंवैशापनिर्दग्धंनङ्क्ष्यत्यन्योन्यवि

कृष्णजी के परम प्रियभक्त उद्धवजी एकांत में श्रीकृष्णजी के समीप बैठ उनके दोनों चरणों को मस्तक से प्रणामकर हाथ जोड़ कहने लगे कि—॥ ४०—४१ ॥ हे देव देवेश ! हे योगेश ! हे पुण्यश्रवण ! हेपुण्यकीर्तन ! निश्चयही आप इस वंश का नाशकर लोक को छाड़ोगे; क्योंकिआप ईश्वर समर्थ होकरभी ब्रह्मशाप का खण्डन करोगे ॥ ४२ ॥ हे केशव ! हेनाथ ! मैं आधेक्षण के निमित्त भी आप के चरण कमलों को नहीं त्यागसकता; इसलिये मुझ को भी अपने धामको लिये चलो ॥ ४३ ॥ हेकृष्णजी ! मनुष्यों के परम मंगलस्वरूप कानों से अमृत की समान आप की लीला चरित का स्वादले मनुष्य दूसरी कामनाओं को छाड़ देते हैं ॥ ४४॥ हमने भक्तहोकर शयन, आसन, चलना, खड़ारहना, स्नान, क्रीड़ा और भोजनादि समयों में आपकी सेवा की है, ऐसे परम प्रिय आत्मा आपको हम कैसे त्यागसकैं ? ॥ ४५ ॥ आप के भोगेहुए माला, चन्दन, वस्त्र, भूषण से चर्चितहो जूठनखानेवाले दास हमने आपकी माया को जय करलिया है ॥ ४६ ॥ हे महायोगिन् ! वायुका भक्षण कर २ रहनेवाले नग्न, ऊर्द्धरेता, तपके श्रमी, शांत, शुद्धसन्यासी ऋषि बड़ी कठिनतासे आपके ब्रह्मधाम को जाते हैं ॥ ४७ ॥ किंतु हे महायोगिन् ! हमतो ससार में कर्म मार्गों में भ्रमण करतेहुए भी आपके भक्तों के साथ आप के विषय (सम्बन्ध) का कथोप कथन करकेही दुस्तर ससार को तर जायँगे ॥ ४८ ॥ आपकी मनुष्य लीला का अनुकरण गति, हास्य, परिहास, कर्म और वचनों का स्मरण करके और स्मरण कराय के दुस्तर अहंकार से पार होजावेंगे ॥ ४९ ॥ शुकदेवजी बोले कि—हनरनाथ!जब उद्धवजी ने भगवान देवकीनन्दन से इसप्रकार कहा तब भगवान अपने एकांत भक्त उद्धव से इसप्रकार कहनेलगे ॥ ५० ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्क०सरलाभाषाटीकायांषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीभगवान बोले कि—हेमहाभाग ! तुमने जो अनुमान किया है वह सत्य है; मैंने यही करने की इच्छा की है । तथा ब्रह्मा, महादेव और सब लोकपालों ने भी मुझ से वैकुण्ठचलने की प्रार्थना की है ॥ १ ॥ ब्रह्माजी की प्रार्थना करने से मैं जिसकारण अंश के साथ अवतीर्ण हुआ हूं वे सब देवकार्य मैं भलीप्रकार से पूरे करचुका ॥ २ ॥ यह वंश शापसे दग्धहो परस्पर युद्ध

प्रहात्। समुद्रःसप्तमेऽह्येतांपुरींचप्लावयिष्यति ॥ ३ ॥ यर्ह्येवायंमयात्यक्तोलोको
ऽयंनष्टमङ्गलः। भविष्यत्यचिरात्साधोकलिनापिनिराकृतः ॥ ४ ॥ नवस्तव्यंत्वये
वेहमयात्यक्तेमहीतले। जनोऽधर्मरुचिर्भद्रभविष्यतिकलौयुगे ॥ ५ ॥ त्वंतुसर्वंप
रित्यज्यस्नेहंस्वजनबन्धुषु। मय्यावेश्यमनःसम्यक्समदृग्विचरस्वगाम्॥६॥यदि
दंमनसावाचाचक्षुर्भ्यांश्रवणादिभिः।नश्वरंगृह्यमाणंचविद्धिमायामनोमयम् ॥७॥
पुंसोऽयुक्तस्यनानार्थोभ्रमःसगुणदोषभाक्। कर्माकर्मविकर्मेतिगुणदोषधियोभि-
दा ॥ ८ ॥ तस्माद्युक्तेन्द्रियग्रामोयुक्तचित्तइदंजगत्। आत्मनीक्षस्वविततमात्मा-
नंमय्यधीश्वरे ॥९॥ ज्ञानविज्ञानसंयुक्तआत्मभूतःशरीरिणाम्। आत्मानुभवतुष्टात्मा
नान्तरायैर्विहन्यसे ॥ १० ॥ दोषबुद्ध्योभयातीतोनिषेधान्ननिवर्तते। गुणबुद्ध्या-
चविहितं नकरोतियथाऽर्भकः ॥ ११ ॥ सर्वभूतसुहृच्छान्तो ज्ञानविज्ञाननिश्च
यः। पश्यन्मदात्मकंविश्वंनविपद्येतवैपुनः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिष्टो
भगवतामहाभागवतोनृप। उद्धवः प्रणिपत्याहतत्त्वजिज्ञासुरच्युतम् ॥ १३ ॥ उ-
द्धव उवाच॥योगेशयोगविन्यासयोगात्मन्योगसम्भव।निःश्रेयसायमेप्रोक्तस्त्यागः
संन्यासलक्षणः ॥ १४ ॥ त्यागोऽयंदुष्करोभूमन्कामानांविषयात्मभिः। सुतरांत्व
यिसर्वात्मन्नभक्तैरितिमेमतिः ॥ १५ ॥ सोऽहंममाहमितिमूढमतिर्विगाढस्त्वन्मा-
ययाविरचितात्मनिसानुबन्धे। तत्त्वञ्जसानिगदितंभवतायथाहंसंसाधयामिभगव

कर नाश होजावेगा आजसे सातवें दिन समुद्र भी इस नगरी को डुबोदेगा ॥ ३ ॥ हेसाधो ! मैं जैसेही इस लोक को छोडूंगा वैसेही इनके सब कल्याण नाशहोजावेंगे, और कलियुग शीघ्रही इसं पर आक्रमण करेगा ॥ ४ ॥ मेरे पृथ्वी के परित्याग करने पर तुम इस स्थान में वास न करना हेभद्र ! कलियुग में मनुष्यों के धर्म की प्रवृत्ति नष्ट होजायगी ॥५॥ तुम स्वजन और बन्धुओं का स्नेह आदि सब छोड़कर मुझ में भली प्रकार से मनलगाय समदर्शीहो पृथ्वी पर भ्रमणकरो ॥६॥ जो मन, वाक्य, दोनोंनेत्रों और श्रवणादि द्वारा गृहीत होता है उसही जगतको मनोमय माया-मय और नश्वर जानो ॥ ७ ॥ विक्षिप्त चित्त मनुष्यका, भेदविषयक भ्रमही, गुणदोष का कारण है। गुणदोष बुद्धि वाले मनुष्यो को कर्म, अकर्म और विकर्म यही भ्रम होता है ॥ ८ ॥ अतएव इन्द्रियों को वशकर इस जगतको आत्मा को अधीश्वर में वितत (ब्रह्मरूप से) देखो ॥ ९ ॥ मुझको अधीश्वर, ज्ञान विज्ञानयुक्त, आत्मा के अनुभव से सन्तुष्ट, सब प्राणियों का आत्मस्व-रूपजानने से कोई विघ्नभी उपद्रव नहीं करसकता ॥ १० ॥ गुणदोष के विचार से रहितहुआ ज्ञानी भी बालक की समान 'दोष' यह विचारकरभी निषेध से निवृत्त नहीं होता 'गुण' यह विचारकर भी वेदोक्त कार्य में आसक्त नहीं होता ॥ ११ ॥ इसप्रकार के मनुष्य सब प्राणियों के सुहृद, शांत और ज्ञान विज्ञान युक्तहो विश्वको मेरेरूपसे देखते हैं; ऐसे मनुष्य आपत्ति में नहीं फँसते ॥ १२ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन् ! महाभागवत उद्धवजीने भगवानकी ऐसी आज्ञाको पाय तत्त्व जाननकी इच्छासे प्रणामकर भगवान से कहा कि—॥ १३ ॥ हे यज्ञेश्वर ! हे योग जाननेवालों के गुप्त निधिरूप ! हे योगात्मन् ! हे योग के उत्पत्तिस्थान, जो मुझको अपने मोक्षके निमित्त सन्यास रूपकर्म का त्याग उपदेश दिया है ॥ १४ ॥ हे भूमन् ! जिसका मन विषयों में आसक्त है उसको कामनाओं का छोड़ना अत्यन्तही कठिन है। विशेष करके जो मनुष्य आप सर्वात्मा के अभक्त हैं उनको तो और भी कठिन है यही मैं मानताहूं ॥ १५ ॥ मैं मूर्खबुद्धि आपकी माया से रचेहुए पुत्रादिकों समेत देह में अहंता ममतासे डूबाहुआहूं अतएव

मनुशाधिभृत्यम् ॥ १६ ॥ सत्यस्यतेस्वदृश आत्मनआत्मनोऽन्यंवक्तारमीशविबु-
धेष्वपिनानुचक्षे । सर्वेविमोहितधियस्तवमाययेमे ब्रह्मादयस्तनुभृतोबहिरर्थभा-
वाः ॥ १७ ॥ तस्माद्भवन्तमनवद्यमनन्तपारं सर्वज्ञमीश्वरमकुण्ठविकुण्ठधिष्ण्यम् ।
निर्विण्णधीरहमुहेवृजिनाभितप्तो नारायणंनरसखंशरणंप्रपद्ये ॥ १८ ॥ श्रीभगवानु
वाच । प्रायेणमनुजालोके लोकतत्त्वविचक्षणाः । समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवा-
शुभाशयात् ॥ १९ ॥ आत्मनोगुरुरात्मैव पुरुषस्यविशेषतः । यत्प्रत्यक्षानुमानाभ्यां
श्रेयोऽसावनुविन्दते ॥ २० ॥ पुरुषत्वेचमांधीराः सांख्ययोगविशारदाः । आविस्त
रांप्रपश्यन्ति सर्वशक्त्युपबृंहितम् ॥ २१ ॥ एकद्वित्रिचतुष्पादो बहुपादस्तथाऽपदः
बह्व्यःसन्तिपुरः सृष्टास्तासांमेपौरुषीप्रिया ॥ २२ ॥ अत्रमांमार्गयन्त्यद्धा युक्ताहे-
तुभिरीश्वरम् । गृह्यमाणैर्गुणैर्लिङ्गैरग्राह्यमनुमानतः ॥ २३ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममि
तिहास पुरातनम् । अवधूतस्यसंवाद यदोरमिततेजसः ॥ २४ ॥ अवधूतद्विजकं-
चिच्चरन्तमकुतोभयम् । कविंनिरीक्ष्यतरुणं यदुःपप्रच्छधर्मवित् ॥ २५ ॥ यदुरुवा
च । कुतोबुद्धिरियंब्रह्मन्नकर्तुः सुविशारदा । यामासाद्यभवाँल्लोकं विद्वांश्चरतिबा
लवत् ॥ २६ ॥ प्रायोधर्मार्थकामेषु विवित्सायांच मानवाः । हेतुनैवसमीहन्ते आ-
युषोयशसःश्रियः ॥ २७ ॥ त्वंतुकल्पःकविर्दक्षः सुभगोऽमृतभाषणः । नकर्ता ने
हसे किंचिज्जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ २८ ॥ जनेषुदह्यमानेषु कामलोभदवाग्निना ।

आपके कहेहुए उपदेश का जिससे शीघ्र साधन करसकूं, हे भगवन् ! दासको वैसीही धीरे २ शिक्षा दो ॥ १६ ॥ हे ईश्वर ! आप स्वप्रकाश, सत्य और आत्माहो, देवताओं मेंसे भी किसीको मैं नहीं देखता—कि आपके अतिरिक्त और कोई आत्मोपदेश की शिक्षा देसके । ब्रह्मादिक सब प्राणी भी आपकी माया से मोहित होकर विषयों को आप से भिन्न मानते हैं॥१७॥आपआनंदित अनंतपार, सर्वज्ञ, ईश्वर, अविनाशी वैकुण्ठवासी, मनुष्यों के मित्र नारायणहो अतएव मैं विषयों से खेदित और संतप्त होकर आपकी शरण में आयाहूं ॥ १८ ॥ श्रीभगवान ने कहा कि—भूमण्डल में लोकतत्त्व विचारक मनुष्य प्रायः आत्मा द्वाराही आत्माको विषय वासनाओं से उद्धार करते रहते हैं । गुरुके उपदेश की कुछभी अपेक्षा नहीं रखते॥१९॥पशुके आत्मा मेंभी आत्माही हित अहित विचारनेमें गुरुरूप होता है और विशेषकर मनुष्य के शरीर में तो होताही है क्योंकि यह आत्माही प्रत्यक्ष और अनुभव द्वारा—मुक्तिफल प्राप्त करता है ॥ २० ॥ सांख्ययोग में निपुण पण्डितजन मुझको सर्व शक्ति से बढ़ेहुए पुरुष रूपसेही भिन्न २ प्रकाश से देखते रहते हैं २१॥ एकपाद, द्विपाद, त्रिपाद, चतुष्पाद, बहुपाद और बिना पैर आदि के रचेहुए बहुत से शरीर हैं परन्तु उनमें से पुरुष शरीरही मुझ को प्रिय है ॥ २२ ॥ इस मनुष्यशरीर में मैं कि जो बुद्धिआदि दृश्य पदार्थों से भिन्नहूं उसको सावधान पुरुष गुणों और चिह्नों द्वारा भली प्रकार से खोज लेतेहैं ॥ २३॥इस विषय में पराक्रमी यदु और अवधूत का सम्वाद रूप प्राचीन इतिहास कहाजाताहै॥२४॥ धर्मज्ञ यदु ने निर्भय से भ्रमण करनेवाले किसीएक पण्डित युवाअवधूतको देखकर पूछा कि-२५॥हे ब्रह्मन्! हे अवधूत! किसकोपायतुम विद्वानहोकरभी अतिबालककी समान संसारमेंभ्रमणकरतेहो, अकर्त्ता आपकी ऐसी निर्मल बुद्धि कहांसे उत्पन्नहुई॥२६॥प्रायः मनुष्य आयु,यश और कल्याणकी कामना के निमित्तही धर्म, अर्थ, काम और आत्मविचार में चेष्टित रहता है ॥ २७ ॥ किन्तु आप समर्थ पण्डित, निपुण, सौभाग्यशाली और मधुर भाषी होकरभी जड़ उन्मत्त और पिशाच की समान निष्कर्म और निस्पृह (बेचाहना) हो ॥ २८ ॥ समस्त लोक काम, लोभरूप दावानल से दग्ध

नतप्यसेऽग्निनामुक्तो गंगाम्भःस्थइवद्विपः ॥ २९ ॥ त्वंहिनःपृच्छतांब्रह्मन्नात्मन्यानन्दकारणम् । ब्रूहिस्पर्शविहीनस्य भवतः केवलात्मनः ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच यदुनैवंमहाभागो ब्रह्मण्येनसुमेधसा ॥ पृष्टःसभाजितःप्राह प्रश्रयावनतं द्विजः ॥ ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण उवाच । सन्तिमेगुरवोराजन्बहवो बुद्ध्युपाश्रिताः । यतोबुद्धिमुपादाय मुक्तोऽटामीह ताञ्छृणु ॥३२॥ पृथिवीवायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमारविः। कपोतोऽजगरःसिन्धुः पतंगो मधुकृद्गजः ॥ ३३॥ मधुहाहरिणोमीनः पिंगलाकुररोऽर्भकः । कुमारीशरकृत्सर्प ऊर्णनाभिःसुपेशकृत् ॥ ३४ ॥ एतेमेगुरवोराजंश्चतुर्विंशतिराश्रिताः । शिक्षावृत्तिभिरेतेषा मन्वशिक्षमिहात्मनः ॥ ३५ ॥ यतोयदनुशिक्षामि यथावानाहुषात्मज । तत्तथापुरुषव्याघ्र निबोधकथयामिते ॥ ३६ ॥ भूतैराक्रम्यमाणोऽपि धीरोदैववशानुगैः । तद्विद्वान्नचलेन्मार्गा दन्वशिक्षंक्षितेर्व्रतम् । ॥ ३७ ॥ शश्वत्परार्थसर्वेहः परार्थैकान्तसम्भवः । साधुःशिक्षेतभूभृत्तो नगशिष्यःपरात्मताम् ॥३८॥ प्राणवृत्त्यैवसंतुष्येन् मुनिर्नैवेन्द्रियप्रियैः । ज्ञानंयथानानश्येत नावकीर्येतवाङ्मनः ॥ ३९ ॥ विषयेष्वाविशन्योगी नानाधर्मेषुसर्वतः । गुणदोषव्यपेतात्मा नविषज्जेतवायुवत्॥४०॥पार्थिवेष्विहदेहेषु प्रविष्टस्तद्गुणाश्रयः। गुणैर्नयुज्यतेयोगी गन्धैर्वायुरिवात्मदृक् ॥ ४१ ॥ अन्तर्हितश्चस्थिरजंगमेषु ब्रह्मात्मभावेनसमन्वयेन । व्याप्त्याऽव्यवच्छेद मसङ्गमात्मनो मुनिर्नभस्त्वंविततस्य

होते हैं किन्तु आप अग्नियुक्त होकरभी गंगाजलमें खड़े हुए हाथी की समान सतप्त नहीं होते । ऐसा आनंद आपको कहांसे प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप स्त्री पुत्रादिकों से रहित और विषयभोगों से वर्जित हो; आपके आत्मानंद का कारण पूछताहूं , मुझसे कहो ॥ ३० ॥ श्रीभगवानने कहा कि-उस महाभाग ब्राह्मणने, ब्राह्मणों के हितकारी बुद्धिमान यदुसे इसप्रकार पूजितहो उनके पूछने पर विनयवत राजासे कहा ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! मैंने अपने ही आप बहुत से गुरू किये हैं उन्होंने मुझ उपदेश नहीं किया, उन्हींसे मैं बुद्धि प्राप्त कर मुक्त भावसे विचरण करता हूं ॥ ३२ ॥ उनके नाम सुनो; पृथिवी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग, शहदकी मक्खी, हाथी ॥ ३३ ॥ शहद लेजानेवाला, हरिण, मछली, पिंगला (वेश्या) टिटिहरी, बालक, कुमारी, बाणबनाने वाला, सर्प, मकरी, और भौंरा ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! इन्हीं चौबीस गुरुओं का अवलंबन कर इन्हीं के आचरणोंसे मैंने अपने भले बुरे की शिक्षाली है ॥ ३५ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! जिससे जिस प्रकार जो शिक्षाली है वह तुमसे कहता हूं सुनो ॥ ३६ ॥ पीडा देनेवाले प्राणी दैवके वशवर्त्ती हैं यह जानकर पण्डित जनोंको अपने नियम से चलायमान न होना चाहिये, पृथ्वी से यही शिक्षाली है ॥ ३७ ॥ साधुओं को पर्वतके निकट से निरंतर परोकार के निमित्त समस्त चेष्टाए और एकांत उत्पत्ति की शिक्षा गृहण करनी चाहिये, इसही प्रकार वृक्षके निकट आत्माके पराधीनता की शिक्षा करनी चाहिये ॥ ३८ ॥ मुनियों का ज्ञान नष्ट न होवे इसकारण केवल प्राण वृत्ति के द्वाराही संतुष्ट रहना चाहिये, वाक्य और मन को विक्षिप्त न करना चाहिये । योगी को सर्वत्र नाना धर्म शील विषयों का सेवन करके भी गुण और दोषसे आत्माको पृथक् रख वायुकी समान निर्लिप्त रहना चाहिये । वायु जैसे सुगंधि दुर्गंधि वालीजान पड़ती है परंतु वास्तवमें उसमें सुगंधि दुर्गंधि नहीं होती एसेही आत्मा पृथिवी के विकार रूप देहादिक में रहने से जन्म मरणादिक वाला जान पड़ता है परतु वास्तवमें एसा नहीं है ॥ ३९—४१ ॥ जिस प्रकार आकाश सबमें व्याप्त है परंतु वह निःसंग है इसही प्रकार देह के भीतर रहनेपरभी योगीको उचितहै कि ब्रह्म स्वरूपता का बोधकर अपने आत्माको स्थावर जगम

भावयेत् ॥ ४२ ॥ तेजोऽबन्नमयैर्भावैर्मेघाद्यैर्वायुनेरितैः । नस्पृश्यते नभस्तद्वत्काल
सृष्टैर्गुणैः पुमान् ॥ ४३ ॥ स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम् । मुनिः पु
नात्यपां मित्र मीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ॥ ४४ ॥ तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः ।
सर्वभक्षोऽपि युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत् ॥ ४५ ॥ क्वचिच्छन्नः क्वचित्स्पष्ट उ
पास्यः श्रेय इच्छताम् । भुंक्ते सर्वत्र दातॄणां दहन्प्रागुत्तराशुभम् ॥ ४६ ॥ स्वमायया
सृष्टमिदं सदसल्लक्षणं विभुः । प्रविष्ट ईयते तत्तत्स्वरूपोऽग्निरिवैधसि ॥४७॥ विसर्गा
द्याः श्मशानान्ता भावा देहस्य नात्मनः । कलानामिव चन्द्रस्य कालेनाव्यक्तवर्त्मना ४८
कालेन ह्योघवेगेन भूतानां प्रभवाप्ययौ । नित्यावपि न दृश्येते आत्मनोऽग्नेर्यथार्चि
षाम् ॥ ४९ ॥ गुणैर्गुणानुपादत्ते यथाकालं विमुंचति । न तेषु युज्यते योगी गोभिर्गा
इव गोपतिः ॥ ५० ॥ बुध्यते स्वे न भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः । लक्ष्यते स्थूलमति
भिरात्मा चावस्थितोऽर्कवत् ॥ ५१ ॥ नातिस्नेहः प्रसंगो वा कर्त्तव्यः क्वापि केनचि
त् । कुर्वन्विन्देत संतापं कपोत इव दीनधीः ॥ ५२ ॥ कपोतः कश्चनारण्ये कृतनीडो
वनस्पतौ । कपोत्या भार्यया सार्धं मुवास कतिचित्समाः ॥ ५३ ॥ कपोतौ स्नेहगु
णित हृदयौ गृहधर्मिणौ । दृष्टिं दृष्ट्याऽङ्गमङ्गेन बुद्धिं बुद्ध्या बबन्धतुः ॥ ५४ ॥ शय्या
सनाटनस्थान वार्ताक्रीडाशनादिकम् । मिथुनीभूय विस्रब्धौ चेरतुर्वनराजिषु ५५॥

सबमें रहा हुआ जानकर उसको अपरिछिन्न और निःसंग विचारे ॥ ४२ ॥ आकाशका जैसे वायु चालित मेघादि से सम्बंध नहीं होता वैसेही पुरुषका तेज, जल और पृथिवीमय कालसे रचे हुए गुणों से सम्बंध नहीं होता ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! योगी को चाहिये कि—जलकी समान निर्मल, स्वभाव सेही स्निग्ध, मधुर और तीर्थ भूत हो दर्शन, स्पर्शन और कीर्त्तनद्वारा देखने वालोंको पवित्र करे ॥ ४४ ॥ तेजस्वी दीप्त, दुर्द्धर्ष, परिग्रहरहित, संयतात्मामुनि अग्नि की समान सर्व भोजी होनेपर मल (दोष) नहीं ग्रहण करता ॥ ४५ ॥ अग्निकी समान कभी गुप्त और कभी प्रगट होकर कल्याण चाहनेवालों का उपासितहो, भूत भविष्यत अशुभों का नाशकर दाताओं के निकट से सर्वत्र भोजन करते रहना चाहिये ॥ ४६ ॥ अग्नि जैसे काठ में रहने से उस काठ की समानही लम्बा चौड़ा आदि जानपड़ता है वैसेही माया से रचित इस विश्वमेंभी आत्माप्रवेश कर देहोंके अनुसार उच्च नीच प्रतीत होता है ॥४७ ॥ जन्म से लेकर श्मशान तक जोअवस्थायें होती हैं वह देह कीही होती हैं आत्मा की नहीं; जैसे अव्यक्त गति काल चन्द्रमाकी कलाओं को बढ़ाता घटाता रहता है, परन्तु उस से कुछ चन्द्रमा की घटती बढती नहीं होती ॥४८॥ जैसे लपटकाही उत्पत्ति और नाशदीखपड़ता है,—अग्नि का नहीं वैसेही जल के बहने की समान वेगशाली काल से प्राणियों का नित्य उत्पन्नहोना और नाश होना देखा जाता है, आत्मा का नहीं॥ ४९ ॥ जैसे सूर्य अपनी किरणों से जल को खींचकर समयानुसार उसे त्यागता है, वैसेही योगी को इंद्रियों द्वारा सब विषयों को ग्रहणकर समयानुसार मांगनेवालोंको देना चाहिए । परन्तु स्वयं उसके लाभालाभमें आसक्त न होवे ॥ ५०॥ जैसे एक सूर्य जल के पात्ररूप उपाधि भेद से भिन्न भिन्न रूप से प्रतीत होता है उसही प्रकार आत्मा अपने स्वरूप में भिन्न रूप नहीं है परन्तु शरीरादिकों में रहने से स्थूल बुद्धिवालों को ईश्वर होनेपरभी भिन्न २ रूप दीखता है ॥ ५१ ॥ किसीपर अति स्नेह व अत्यासक्ति न करना चाहिए, करने से दीन बुद्धि कपोत की समान दुःख भोगना पड़ता है ॥ ५२ ॥ किसी एक कबूतर ने जंगल में वृक्ष में घोंसलाबनाकर अपनी स्त्री कबूतरी समेत कई बरस निवास किया ॥ ५३ ॥ गृहस्थ कबूतर कबूतरी के स्नेह से बद्धचित्तहो दृष्टि से दृष्टि, अंग से अंग और बुद्धि से बुद्धिबांधी ॥५४॥ ये दोनों उस बन में एकत्रितहो निःशंकभाव से सोना, बैठना, घूमना, कथोपकथन, क्रीड़ा और भोजनादि करतेथे ॥५५॥ हेराजन् !

यंयंवाञ्छतिसाराजंस्तर्पयन्त्यनुकम्पिता । तंतंसमनयत्कामं कृच्छ्रेणाप्यजितेन्द्रि
यः ॥ ५६ ॥ कपोतीप्रथमंगर्भं गृह्णतीकालआगते । अण्डानिसुषुवेनीडे स्वपत्युः
सन्निधौसती ॥ ५७ ॥ तेषुकालेव्यजायन्त रचितावयवाहरेः । शक्तिभिर्दुर्विभा
व्याभिः कोमलांगतनूरुहाः ॥५८॥ प्रजाःपुपुषतुःप्रीतौ दम्पतीपुत्रवत्सलौ । शृण्व
न्तौकूजितंतासां निर्वृतौकलभाषितैः ॥ ५९ ॥ तासांपतत्रैःसुस्पर्शैः कूजितैर्मुग्ध
चेष्टितैः । प्रत्युद्गमैरदीनानां पितरौमुदमापतुः ॥ ६० ॥ स्नेहानुबद्धहृदया वन्यो
न्यंविष्णुमायया । विमोहितौदीनधियौ शिशून्पुपुषतुःप्रजाः ॥ ६१ ॥ एकदाजग्म
तुस्तासा मन्नार्थंतौकुटुम्बिनौ । परितःकाननेतस्मिन् नर्थिनौचेरतुश्चिरम् ॥ ६२ ॥
दृष्ट्वातांल्लुब्धकःकश्चिद्यदृच्छातोवनेचरः । जगृहेजालमातत्य चरतःस्वालया
न्तिके ॥ ६३ ॥ कपोतश्चकपोतीच प्रजापोषेसदोत्सुकौ । गतौपोषणमादाय स्वनी
डमुपजग्मतुः ॥ ६४ ॥ कपोतीस्वात्मजान्वीक्ष्य बालकाञ्जालसंवृतान् । तानभ्य
धावत्क्रोशन्तीक्रोशतोभृशदुःखिता ॥ ६५ ॥ साऽसकृत्स्नेहगुणिता दीनचित्ता
ऽजमायया । स्वयंचाबध्यतशिचा बद्धान्पश्यन्त्यपस्मृतिः ॥ ६६ ॥ कपोतश्चात्म
जान्बद्धानात्मनोऽप्यधिकान्प्रियान् । भार्यांचात्मसमांदीनो विललापातिदुःखितः
॥ ६७ ॥ अहोमेपश्यतापाय मल्पपुण्यस्यदुर्मतेः । अतृप्तस्याकृतार्थस्य गृहस्त्रैवर्गि
कोहतः ॥ ६८ ॥ अनुरूपानुकूलाच यस्यमेपतिदेवता । शून्येगृहेमांसंत्यज्यपुत्रैः
स्वर्यातिसाधुभिः ॥ ६९ ॥ सोऽहंशून्येगृहेदीनो मृतदारोमृतप्रजः । जिजीविषे
किमर्थंवा विधुरोदुःखजीवितः ॥ ७० ॥ तांस्तथैवावृताञ्शिग्भिर्मृत्युग्रस्तान्विचेष्ट

तृप्ति देनेवाली, प्रेमकी पात्री वह कबूतरी जिस २ पदार्थकी इच्छा करती, अजितेंद्रिय कपोत कष्ट पाकर भी उन सब पदार्थों को देता ॥ ५६ ॥ समय उपस्थित होनेपर कपोती ने पहिला गर्भ धारणकर अपने स्वामी के सन्मुख घोंसले में कई एक अंडे दिये ॥ ५७ ॥ उस में से नारायण की न जानने योग्य शक्तिसे रचेहुए कोमल अंग व लोमोंयुक्त कई एक पक्षी उत्पन्नहुए ॥ ५८ ॥ संतानों के मधुर शब्दों को सुनकर वे पुत्रवत्सल स्त्री पुरुष उनका पालन करने लगे ॥५९॥ पिता माता आनंदितथे; वे कपोत कपोती अपने २ बच्चों के कोमल २ पक्षों को छू और उनकी भोली भाली चेष्टा को देख अत्यन्त प्रसन्न होनेलगे ॥ ६० ॥ वे हरि की माया से परस्पर स्नेहबद्ध हृदय से दीनबुद्धि और मोहितहो सतानों का पालन करने लगे ॥ ६१ ॥ एक समय पिता माता उनके आहार लेनेके निमित्त बाहर जाय आहार को खोजतेहुए बहुत समय तक बनमें घूमे ॥ ६२ ॥ इतने में किसी एक बहेलिये ने यदृच्छासे उस बनमें घूमते २ उन कपोत के बच्चों को उस घोंसले के समीप उड़ता देख जाल फैलाकर उन्हे पकड़ लिया ॥ ६३ ॥ संतानपालन में उत्सुक कपोत कपोती आहार लेकर अपने घोंसले में आये ॥ ६४ ॥ कपोती अपने बच्चों को जाल में फँसा देख अत्यन्त दुःखित अंतःकरण से चिल्लाती २ उनके समीप जाने को दौड़ी ॥ ६५ ॥ स्नेह से बंधीहुई वह कातरहृदय कपोती बच्चों को फँसादेख स्मृति भ्रष्ट होने के कारण आपभी उस जाल में जाफँसी ॥ ६६ ॥ अपने प्राणों से भी प्रिय बच्चों को और आत्मसदृशी भार्याको जाल में फँसाहुआ देख कपोत अत्यन्त दुःखितहोकर विलाप करने लगा ॥ ६७ ॥ अहो ! मैं अत्यन्त अल्प पुण्य और मूर्खहूं, मेरी दुर्गति तो देखो ! गृहस्थाश्रम में तृप्त और कृतार्थ होते न होते मेरा त्रिवर्ग साधन घर नष्टहोगया ॥ ६८ ॥ मेरी प्यारी, मेरे अनुकूल रहनेवाली, पतिव्रतास्त्री अब मुझको सूने घर में छोड़कर पुत्रों समेत स्वर्ग में जाती है ॥ ६९ ॥ तब मैं दीन, स्त्रीरहित, पुत्ररहित, कातर और दुःखजीवी होकर क्योंकर सूने घर में जीवन धारण करूं! ॥ ७० ॥ मूर्ख

शः। स्वयंचकृपणःशिक्षु पश्यन्नप्यबुधोऽपतत् ॥ ७१ ॥ तंलब्ध्वालुब्धकःक्रूरः क
पोतंगृहमेधिनम्। कपोतकान्कपोतींच सिद्धार्थःप्रययौगृहम् ॥ ७२ ॥ एवंकुटु
म्ब्यशान्तात्मा द्वन्द्वारामःपतत्रिवत्। पुष्णन्कुटुम्बंकृपणः सानुबन्धोऽवसीदति।
॥ ७३ ॥ यःप्राप्यमानुषंलोकं मुक्तिद्वारमपावृतम्। गृहेषुखगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं
विदुः ॥ ७४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥ सुखमैन्द्रियकंराजन्स्वर्गेनरकएवच। देहिनांयद्यथादुःखं
तस्मान्नेच्छेततद्बुधः ॥ १ ॥ ग्रासंसुमृष्टंविरसं महान्तंस्तोकमेववा। यदृच्छयैवाप
तितंग्रसेदाजगरोऽक्रियः ॥ २ ॥ शयीताहानिभूरीणिनिराहारोऽनुपक्रमः। यदि
नोपनमेद्ग्रासोमहाहिरिवदिष्टभुक् ॥ ३ ॥ ओजःसहोबलयुतंबिभ्रद्देहमकर्मकम्।
शयानोवीतनिद्रश्चनेहेतेन्द्रियवानपि ॥ ४ ॥ मुनिःप्रसन्नगम्भीरोदुर्विगाह्योदुरत्य
यः। अनन्तपारोह्यक्षोभ्यः स्तिमितोदइवार्णवः ॥ ५ ॥ समृद्धकामोहीनोवानारा
यणपरोमुनिः। नोत्सर्पेतनशुष्येतसरिद्भिरिवसागरः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वास्त्रियंदेवमायां
तद्भावैरजितेन्द्रियः। प्रलोभितःपतत्यन्धेतमस्यग्नौपतङ्गवत् ॥ ७ ॥ योषिद्धिर-
ण्याभरणाम्बरादिद्रव्येषु मायारचितेषुमूढः। प्रलोभितात्माह्युपभोगबुद्ध्यापत-
ङ्गवन्नश्यतिनष्टदृष्टिः ॥ ८ ॥ स्तोकंस्तोकंग्रसेद्ग्रासंदेहोवर्तेतयावता। गृहान्नहिं-

और दुःखित कपोत उन स्त्री पुत्रों को जाल में फँसा और मृत्युग्रस्तहो छटपटाते देख आपभी उस जाल में गिरपड़ा ॥ ७१ ॥ वह क्रूर बहेलिया अपना काम होजाने पर उन कपोत, कपोती और बच्चों को ले अपने घर को गया ॥ ७२ ॥ जो अत्यन्त कुटुम्बी मनुष्य अशांत हृदय और गृहसेवीहो अत्यन्त आसक्ति वशकुटुम्ब का पोषण करता है वह इन्हीं कपोत पक्षियों की समान दुःखितहो निरंतर व्याकुल रहता है ॥ ७३ ॥ मुक्तिके खुलेद्वाररूप मनुष्य जन्म को पाय जोमनुष्य पक्षियों की समान घर में आसक्त होता है शास्त्र में वह मूर्ख 'चढ़कर गिराहुआ' इस प्रकार से कथित होता है ॥ ७४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

ब्राह्मण ने कहाकि–हे राजन्! स्वर्ग और नरक दोनों स्थानो मेंही प्राणियोंको इन्द्रियजनित सुख दुःख समानहैं; अतएव पण्डितोंको उसकी इच्छा नहीं करनी चाहिये ॥ १ ॥ खानेका पदार्थ चाहे सुरसहो चाहेविरस, अधिकहो चाहेथोड़ा, यदृच्छा से उपस्थित होनेपर उदासीनहो अजगर की समान उसको ग्रहण करना चाहिये ॥ २ ॥ यदि भोजन उपस्थित न होवेतो 'दैवही देनेवाला है' इस प्रकार से विचार धैर्य धारणकर अजगर की समान निराहार और निरुद्यमहो बहुत दिनोंतक शयन करते रहना चाहिये ॥ ३ ॥ इन्द्रियबल, मनोबल और देहबलको प्राप्तहो अकर्मकारी शरीर धारणकर निद्रारहितहो स्वार्थ में दृष्टिरख अजगर की समान शयन करते रहना चाहिये; इन्द्रिययुक्त होकर भी कोई चेष्टा न करनी चाहिये ॥ ४ ॥ मुनिको निश्चल समुद्र की समान प्रशांत, गंभीर, अगाध, अलंघनीय, अनंतपार और क्षोभ रहित होना चाहिये ॥५॥ समुद्र जैसे वर्षाऋतु में सब नदियों के जलको प्राप्तहोकर भी अपने तटको नहीं लांघता और ग्रीष्म कालमें सब नदियों के सूखने परभी वह स्वयं नहीं सूखता वैसेही नारायण परायण योगीको सब कामोंको भलीप्रकार पानेसे वा इन सबके रहित होनेसे आनंद में मत्त व दुःख में मलीन नहीं होनाचाहिये ॥ ६ ॥ अजितेन्द्रिय मनुष्य देवमाया रूपिणी स्त्रीको देखकर उसके भावोंसे लोभितहो, अग्निमें पतंगकी समान अंधनरक में गिरता है ॥ ७ ॥ माया कल्पित स्त्री, सुवर्ण, आभूषण और वस्त्र आदि पदार्थों में उपभोग बुद्धिसे ललचाकर वह मूढ़ मनुष्य अंधाहो पतंग की समान नष्ट होजाता है ॥ ८ ॥ जितने

स्थातिष्ठेद्वृत्तिमाधुकरींमुनिः ॥ ९ ॥ अणुभ्यश्चमहद्भ्यश्चशास्त्रेभ्यः कुशलोनरः । सर्वतःसारमादद्यात्पुष्पेभ्यइवषट्पदः ॥१०॥ सायन्तनंश्वस्तनंवानसंगृह्णीतभि क्षितम् ।पाणिपात्रोदरामत्रोमक्षिकेवनसंग्रही ॥११॥सायन्तनंश्वस्तनंवानसंगृह्णीत भिक्षुकः । मक्षिकाइवसंगृह्णन्सहतेनविनश्यति ॥ १२ ॥ पदापियुवतींभिक्षुर्नस्पृ शेद्दारवीमपि । स्पृशन्करीवबध्येतकरिण्याअङ्गसङ्गतः ॥ १३ ॥ नाधिगच्छेत्स्त्रियं प्राज्ञःकर्हिचिन्मृत्युमात्मनः । बलाधिकैःसहन्येतगजैरन्यैर्गजोयथा ॥ १४ ॥ नदेयं नोपभोग्यंचलुब्धैर्यद्दुःखसञ्चितम् । भुंक्तेतदपितच्चान्योमधुहेवार्थविन्मधु ॥ सुदुःखोपार्जितैर्वित्तैराशासानांगृहाशिषः । मधुहेवाग्रतोभुङ्क्तेयतिर्वैगृहमेधि- नाम् ॥ १६ ॥ ग्राम्यगीतंनशृणुयाद्यतिर्वनचरःक्वचित् । शिक्षेतहरिणाद्बद्धान्मृग- योर्गीतमोहितात् ॥ १७ ॥ नृत्यवादित्रगीतानिजुषन्ग्राम्याणियोषिताम् । आसां- क्रीडनकोवश्य ऋष्यशृंगोमृगीसुतः ॥ १८ ॥ जिह्वयाऽतिप्रमाथिन्या जनोरसवि मोहितः । मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मीनस्तु बडिशैर्यथा ॥ १९ ॥ इन्द्रियाणिजयन्त्या शु निराहारामनीषिणः । वर्जयित्वातुरसनं तन्निरन्नस्यवर्धते ॥ २० ॥ तावज्जिते न्द्रियोन स्याद्विजितान्येन्द्रियः पुमान् । नजयेद्रसनं यावज्जितंसर्वंजितेरसे २१॥ पिंगलानाम वेश्याऽऽसीद्विदेहनगरेपुरा । तस्यामे शिक्षितं किञ्चिन्निबोधनृपनन्द-

में देह रहसके उतना अन्न थोड़ा २ कर कईघरोंसे ले भोजन करना चाहिये, मुनिको इसप्रकार की भ्रमरवृत्तिका अवलंबन कर रहना योग्य है ॥ ९ ॥ भौंरा जैसे सबफूलों से सार ग्रहण करता है वैसेही पण्डित जनको सब शास्त्रों स थोडा, बहुत सार ग्रहण करना चाहिये ॥ १० ॥ खानेके द्रव्य सायंकाल व दूसरे दिनके निमित्त इकठ्ठ करके नहीं रखने चाहिये केवल हाथ को व पेटको ही पात्र करके रखने चाहिये, मधुमक्षिका की समान सग्रह न करे ॥ ११ ॥ भिक्षुक संध्या व दूसरे दिन के निमित्त संग्रह करने पर मक्षिका की समान उस संग्रह किये हुए द्रव्य समेत नष्ट होजाता है ॥ १२ ॥ योगी को पैरसेभी काठकी स्त्री का स्पर्श न करना चाहिये ; स्पर्श करने से हथिनीके अग संगके लालचसे हाथी की समान गड्ढे में गिरना होता है ॥ १३ ॥ बुद्धिमान मनुष्यको कभी भी अपने मृत्युरूपिणी स्त्रीका ग्रहण न करना चाहिये, करनेसे जैसे दूसरे हाथियों द्वारा और सब हाथी मारेजाते हैं उसीप्रकार उसकोभी बलवानोंसे निहतहोना पड़ता है ॥ १४ ॥ जैसे शहद लेजाने वाला मक्षिका के संचित किये हुए मधुको जानकर उसका हरण करता है, उसही प्रकार दूसरे अर्थ वेत्ताभी, कजूसों के दुःख से इकट्ठा किये हुए दान भोग वर्जित धनको हरण करते हैं ॥ १५ ॥ शहद लेजाने वाला जैसे सचयकारी मक्षिकाओं से पहिलेही शहद लेजा- कर उसको भोगता है वैसेही यती, नितांत दुःखसे उत्पन्न किये हुए धनको घरके कल्याण की इच्छा वाले गृहस्थों के पहिलेही भोगते हैं ॥ १६ ॥ बहेलियाके गीतसे मोहित हो बधे हुए मृगके निकट से यह शिक्षाकी कि—वन में भ्रमण करने वाले यतीको ग्राम्य गीत न सुनने चाहियें ॥१७॥ मृगी का पुत्र ऋष्य श्रृंग स्त्रियोंके ग्राम्य गीत, बाजे और नाचका उपभोगकर उनके वश में हो उनका खिलौना बनगया था ॥ १८ ॥ मूर्ख मनुष्य दुःखदायी जिह्वा द्वारा रसके स्वादसे मोहित हो बंशी द्वारा मछली की समान मृत्यु ग्रस्त होता है ॥ १९ ॥ पण्डित जन जिह्वा के अतिरिक्त और सब इन्द्रियों को शीघ्र जीतसकते हैं क्योंकि निराहार रहनेसे उसका लालच बढ़ताही रहता है ॥ २० ॥ पुरुष दूसरी इन्द्रियों को जीतकरभी जबतक जिह्वा को नहीं जीतसकता तबतक वह जितेन्द्रि नहीं होसकता; जिह्वा के जीतने सेही सब इन्द्रियें जीती जाती हैं ॥ २१ ॥ हे नृपनंदन ! प्राचीनसमयमें मिथिलानगरी में एक पिंगलानामक वेश्या रहती थी । उससे मैंने कुछ शिक्षा प्राप्त

न ॥ २२ ॥ स्वैरिण्येकदा कान्तं संकेतउपनेष्यती । अभूत्कालेबहिर्द्वारि बिभ्रती
रूपमुत्तमम् ॥ २३ ॥ मार्गआगच्छतोवीक्ष्य पुरुषान्पुरुषर्षभ । तान्शुल्कदान्वित्त-
वतःकान्तान्मेनेऽर्थकामुका ॥ २४ ॥ आगतेष्वपयातेषु सा संकेतोपजीविनी ॥ अ-
प्यन्योवित्तवान्कोऽपि मामुपैष्यतिभूरिदः ॥ २५ ॥ एवंदुराशया ध्वस्तनिद्राद्वार्य
वलम्बती । निर्गच्छन्तीप्रविशती निशीथंसमपद्यत ॥ २६ ॥ तस्या वित्ताशया शु
ष्यद्वक्त्राया दीनचेतसः । निर्वेदःपरमोजज्ञे चिन्ताहेतुः सुखावहः ॥ २७ ॥ तस्या
निर्विण्णचित्ताया गीतंशृणुयथामम । निर्वेदआशापाशानांपुरुषस्ययथाह्यसिः२८ ॥
नह्यङ्गाजातनिर्वेदो देहबन्धंजिहासति । यथाविज्ञानरहितो मनुजोममतांनृप २९ ॥
पिंगलोवाच । अहो मेमोहविततिं पश्यताऽविजितात्मनः ॥ याकान्तादसतः कामं
कामयेयेन बालिशा ॥ ३० ॥ सन्तंसमीपेरमणं रतिप्रदं वित्तप्रदं नित्यमिमंविहाय ।
अकामदंदुःखभयाधिशोकमोहप्रदं तुच्छमहंभजेऽज्ञा ॥ ३१ ॥ अहोमयात्मापरिता
पितो वृथा सांकेत्यवृत्त्याऽतिविगर्ह्यवार्तया । स्त्रैणान्नराद्याऽर्थतृषोऽनुशोच्यात्क्री-
तेन वित्तंरतिमात्मनेच्छती ॥ ३२ ॥ यदस्थिभिर्निर्मितवंशवंश्यस्थूण त्वचारोमनखैःपि
नद्धम् । क्षरन्नवद्वारमगारमेतद्विण्मूत्रपूर्णं मदुपैतिकाऽन्या ॥ ३३ ॥ विदेहानांपुरे
ह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः । याऽन्यमिच्छन्त्यसत्यस्मादात्मदात्काममच्युतात् ३४ ॥
सुहृत्प्रेष्ठतमोनाथ आत्माचायं शरीरिणाम् । तंविक्रीयात्मनैवाहं रमेऽनेनयथारमा

की है उसको सुनों ॥ २२ ॥ एक दिन यह वेश्या पुरुषको अपने रतिस्थान में लेजाने के निमित्त सोलह शृंगारों से सज्जित हो संध्याकाल के समय घरसे निकल कर बाहर आबैठी ॥ २३ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! वह धनके चाहने वाली मार्ग में पुरुषों को आते देख उन पुरुषोंमें से धनवान अपने को मूल्य देनेवाले नागर (मैथुन चाहने वाला) को विचारने लगी ॥ २४ ॥ किंतु उसके निकट आय फिरचले जानेपर उस संकेतवृत्तिसे जीवका करनेवाली वेश्याने विचाराकि—और कोई दूसरा धनी पुरुष मेरे निकट आय बहुतसाधन देवे ॥ २५ ॥ इसप्रकार की दुराशासे वह निद्रारहित हो उस द्वारपर खड़ीरही; कुछ देरके उपरांत भीतर गई परंतु फिर बाहर निकली;—इसप्रकार करते २ आधीरात आगई ॥ २६ ॥ धनकी आशा से उसका मुख सूख गया और अंतःकरण दुःखित होउठा । उसी अवस्था में धनचिंताके निमित्त परम सुख का देनेवाला निर्वेद उसको उत्पन्नहुआ ॥२७॥ अंतःकरणके खुलनेसे जो२कुछउसने कहा वह सबमैं तुमसे कहताहू सुनो ॥२८॥ वैराग्यही मनुष्योंकी आशापाशका खड्ग है, हेराजन् ! जिसको वैराग्यननहीं है उसके देहबंधन छेदनेका और कोई दूसरा उपाय नहीं है ॥ २९ ॥ पिंगलाने कहा कि—अहो ! मैं कैसी विचाररहित और अजितचित्ताहू मेरे मोहको तो देखो ! मैं अत्यन्त मूर्ख हूं ; क्योंकि मैं अति तुच्छकांत के निकट से काम्य पदार्थों की इच्छा करती हूं ॥ ३० ॥ मैं निरन्तर रमनेवाले, आनन्ददायक और धन देनेवाले इस नित्यसत्पदार्थ की उपासना छोड़कर मूर्खकी समान अकामद, दुःखदायी; भयशोक और पीड़ादायक पुरुषों की उपासना करतीहूं ॥ ३१ ॥ सांकेत वृत्ति अति निंदनीया वृत्ति है; अहो! उसकेद्वारा मैंने व्यर्थही अबतक आत्माको सन्तप्त किया ! उसमें लम्पट—अर्थ चाहनेवाले अनुशोचनीय पुरुषोंके निकटसे उनकी मोलली हुई देहसे धन और रतिकी इच्छा करती हू ॥ ३२ ॥ हड्डियोंसे जिसके वंश(आड़सल)वंश्य(पीड़ा) स्थूण (खम्भा) बनेहुएहैं, जो त्वक्, रोम और नख से घिराहुआ है और जिसमें कीड़े चलते हैं, ऐसे इस विष्ठामूत्र से भरेहुए घरकी मेरे अतिरिक्त और कौन स्त्री सेवाकर सकती है ? ॥ ३३ ॥ इस विदेह नगर में निश्चय अकेली मैंही मूर्ख हूं ; क्योंकि मैं आत्मप्रद भगवानके अतिरिक्त दूसरे से कामकी इच्छा करती हू ॥ ३४ ॥ भगवान प्राणियों

॥ ३५ ॥ कियत्प्रियंते व्यभजन्कामा ये कामदा नराः । आद्यन्तवन्तो भार्याया देवा वा कालविद्रुताः ॥ ३६ ॥ नूनंमे भगवान्प्रीतो विष्णुः केनापि कर्मणा । निर्वेदोऽयंदुराशाया यन्मे जातः सुखावहः ॥ ३७ ॥ मैवंस्युर्मन्दभाग्यायाः क्लेशा निर्वेदहेतवः । येनानुबन्धंनिर्हृत्य पुरुषः शममृच्छति ॥ ३८ ॥ तेनोपकृतमादाय शिरसा ग्राम्यसंगताः त्यक्त्वा दुराशाः शरणं व्रजामितमधीश्वरम् ॥३९॥ सन्तुष्टा श्रद्दधत्येतद्यथालाभेन जीवती । विहराम्यमुनैवाहमात्मना रमणेनवै ॥ ४० ॥ संसारकूपे पतितं विषयैर्मुषितेक्षणम् । ग्रस्तंकालाहिनात्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः ॥ ४१ ॥ आत्मैवह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येतयदाखिलात् । अप्रमत्तइदंपश्येद्ग्रस्तं कालाहिनाजगत् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण उवाच । एवं व्यवसितमतिर्दुराशां कान्ततर्षजाम् । छित्त्वोपशममास्थाय शय्यामुपविवेशसा ॥ ४३ ॥ आशाहिपरमंदुःखं नैराश्यंपरमंसुखम् । यथासञ्छिद्यकान्ताशां सुखंसुष्वापपिंगला ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥ परिग्रहोहिदुःखाय यद्यत्प्रियतमंनृणाम् । अनन्तंसुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिंचनः ॥१॥ सामिषंकुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः । तदामिषंपरित्यज्य ससुखंसमविन्दत ॥ २ ॥ नमेमानावमानौस्तो नचिन्तागेहपुत्रिणाम् । आत्मक्रीडआत्मरतिर्विचरामीह बालवत् ॥ ३ ॥ द्वावेवचिन्तयामुक्तौ परमानन्दआ-

---

के सुहृद, प्रियतम, नाथ और आत्मा हैं; मैं स्वयं अपने द्वारा इनको मोल लेकर लक्ष्मीकी समान इनके साथ विहार करूंगी ॥ ३५ ॥ विषय विषयों के देनेवाले पुरुष और देवताभी कि जो आदि अंतवाले और कालके कवलरूप हैं उन्होंने स्त्रियोंका क्या भलाकिया? ॥ ३६ ॥ मैं निराश हूं, मुझे जो यह सुखदायी निर्वेद उत्पन्न हुआ, इससे निश्चयही जानाजाता है कि भगवान विष्णु जी मेरे ऊपर संतुष्टहुए हैं ॥ ३७ ॥ मैं यदि मन्दभागहोती तो मुझे वैराग्यका हेतु भूत इतना क्लेश न होता, जिस वैराग्य से गृहादिका बन्धनछोड मनुष्य सुखको प्राप्त करता है ॥ ३८ ॥ उनके कियेहुए इस उपकारको मस्तक में ले दुष्ट निराशाओं को छोड उन्हीं भगवान की शरण लेती हू ॥ ३९ ॥ सन्तोषकर श्रद्धापूर्वक जो पाऊंगी उसीसे जीवन धारणकर प्रियआत्माके साथ विहारकरूंगी ॥ ४० ॥ संसाररूप कूपमें पडा, विषयोंसे अंधा, कालसर्पसे ग्रसित इस मेरे जीव का भगवान बिना और कौन उद्धारकर सकता है? ॥ ४१ ॥ मनुष्य जब कालरूप सर्प से इस जगत को ग्रसित देखता है और उस से सावधान होकर इस लोक और परलोक के भोगों से वैराग्य पाता है तब वह अपने आपही अपनी रक्षा करसकता है ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण ने कहा कि—पिंगला इसप्रकार निश्चयकर पुरुष पाने के निमित्त दुराशा को छोड़ शांति धारणकर अपनीशय्या में जा सोई ॥ ४३ ॥ आशाही परम दुःख और निराशाही परम सुख है क्योंकि कांतकी आशा छोड़कर पिंगला सुख से सोईथी ॥ ४४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांअष्टोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ब्राह्मणने कहा कि—मनुष्योंको जो २ वस्तु प्यारी है, उस२वस्तु के साथ आसक्तिही दुःख का कारण है अतएव जो अकिंचन मनुष्य यहजान आसक्ति रहित होते हैं वेही अनन्त सुखको प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥ मांस लियेहुए कुरर पक्षी को मांस रहित दूसरे कुरर मार डालते हैं। उस मांस के त्याग देने सेही वह सुखी होता है ॥ २ ॥ मुझे मान अपमान नहीं है; पुत्रवान और गृहस्थियोंकी समान कोई चिंता भी नहीं है; मैं अपने आपही क्रीड़ाकर और अपनेमेंही आसक्त हो बालकों की समान इस संसार में भ्रमण करताहूं ॥ ३ ॥ अज्ञानी उद्यम रहित बालक और

गुणो । योविमुग्धोजडोबालो योगुणेभ्यःपरंगतः ॥ ४ ॥ क्वचित्कुमारी त्वात्मानं वृणानान्गृहमागतान् । स्वयंतानर्हयामास क्वापियातेषुबन्धुषु ॥ ५ ॥ तेषामभ्यव हारार्थं शालीन्रहसिपार्थिव । अवघ्नन्त्याःप्रकोष्ठस्थाश्चक्रुः शंखाःस्वनंमहत् ॥ ६ ॥ सातज्जुगुप्सितंमत्वा महतीव्रीडितातत: । बभंजैकैकशःशंखान्द्वौद्वौपाण्योरशेष यत् ॥ ७ ॥ उभयोरप्यभूद्घोषो ह्यवघ्नन्त्याःस्मशंखयोः । तत्राप्येकं निरभिदवेकस्मा न्नाभवद्ध्वनिः ॥ ८ ॥ अन्वशिक्षमिमंतस्या उपदेशमरिन्दम । लोकाननुचरन्नेतान् लोकतत्त्वविवित्सया ॥ ९ ॥ वासेबहूनांकलहो भवेद्वार्ताद्वयोरपि । एकएव चरेत्त स्मात्कुमार्या इवकङ्कणः ॥ १० ॥ मनएकत्र संयुञ्ज्याज्जितश्वासो जितासनः । वैरा ग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतन्द्रितः ॥ ११ ॥ यस्मिन्मनोलब्धपदं यदेतच्छनैः शनै र्मुञ्चतिकर्मरेणून् । सत्त्वेनवृद्धेनरजस्तमश्च विधूयनिर्वाणमुपैत्यनिन्धनम् ॥ १२ ॥ तदैवमात्मन्यवरुद्धचित्तो नवेद किंचिद्बहिरन्तरंवा । यथेषुकारोनृपतिंव्रजन्तमिषौ गतात्मानददर्शपार्श्वे ॥ १३ ॥ एकचार्यनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः ॥ अलक्ष्य माण आचारैर्मुनिरेकोऽल्पभाषणः ॥ १४ ॥ गृहारम्भोतिदुःखाय विफलश्चाध्रुवात्म नः । सर्पःपरकृतं वेश्मप्रविश्यसुखमेधते ॥ १५ ॥ एकोनारायणो देवः पूर्वसृष्टंस्वमा यया । संहृत्यकालकलया कल्पान्तइदमीश्वरः ॥ १६ ॥ एक एवाद्वितीयोऽभूदा त्माधारोऽखिलाश्रयः । कालेनात्मानुभावेन साम्यंनीतासुशक्तिषु । सत्त्वादिष्वादि

जो प्रकृति के पर ईश्वर को प्राप्त हुए हैं वह दोनोंही चिंता से मुक्तहो परम आनन्दित रहते हैं ॥ ४ ॥ किसी एक समय में कुछ एक मनुष्य किसी एक कन्या के बरण करने के निमित्त उसके घर में आए; उस समय उस के बन्धुजन किसी स्थान में गयेथे, इसकारण उस कन्या ने स्वयही उनका सत्कार किया ॥ ५ ॥ हे महीपते ! कुमारी उनके भोजन के निमित्त धान कूटने में प्रवृत्त हुई, उस समय उस कन्या के हाथों की चूडियों से अति शब्द होनेलगा ॥६॥ उसने उनकोलज्जा उत्पन्न करनेवाली जानकर एक २ करके सब चूड़ियों को तोड़डाला, केवल दो २ चूडियें एक एक हाथ में रहनेदीं ॥ ७ ॥ तौभी धान कूटने के समय उन दोनों चूड़ियों से शब्द होनेलगा। इससे उसने एक २ और तोडडाली एक २ शेष रहने से फिर शब्द न हुआ ॥८॥ हे अरिंदम ! लोकतत्व जानने की इच्छा से इन सबलोकों में भ्रमण करते २ मैंने उस कुमारी से यह उपदेश पाया है कि—॥ ९ ॥ बहुत जनों का एक स्थान पर बास या दोजनोंका एकत्रबासभी कलहका कारण होता है, अतएव कन्या की चूड़ी की समान अकेलेही बासकरना चाहिये ॥ १०॥ आसन और श्वास को जीत आलस्य छोड बैराग्य और अभ्यास योगसे मनको एक विषयमें संयुक्तकर रखना चाहिए ॥ ११ ॥ यह मन जिससे स्थान प्राप्तकर धीरे२ कर्म बासनाओं को छोड़कर और उपशमात्मक सत्वगुणद्वारा रज,तम नाशकरके गुण और गुणकार्यों से रहित निर्वाण पदको प्राप्त होवे, इसको उसी से संयुक्त करके रखना चाहिए ॥ १२ ॥ जैसे बाण में चित्त लगाएहुए बाण बनानेवाले मनुष्य ने निकट से निकलगयेहुए राजा को नहीं जाना, इसीप्रकार चित्त को रोकने से बाहिरी और भीतरी कुछभी सुख दुःख का ज्ञान नहीं रहता ॥ १३ ॥ सर्प की समान मुनि को अकेला भ्रमण करनेवाला, गृहरहित, सावधान, गुफामें सोनेवाला, आचारों से अलक्ष्य' असहाय और कम बोलनेवाला होना चाहिए ॥ १४ ॥ घर का बनानाही इस नाशवान देह के दुःख का कारण है और निःष्फल है;सर्प दूसरेही के बनायेहुए घर में बास करके सुखी होता है ॥ १५ ॥ नारायण देव इस रचेहुए जगत को कल्पांत समय में काल शक्तिद्वारा संहार करके आत्माधार और अखिलाश्रय रूप से एक और अद्वितीय होरहत हैं । आत्मशक्ति, कालप्रभावसे सबशक्तियें और सत्तादि क्रम से अपने २ कारणों में लीन होनेपर आदि पुरुष भगवान ब्रह्मादि और दूसरे

पुरुषः प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ १७ ॥ परावराणांपरम आस्ते कैवल्यसंज्ञितः । केवला-
नुभवानन्दसन्दोहो निरुपाधिकः ॥ १८ ॥ केवलात्मानुभावेन स्वमायां त्रिगुणात्मि
काम् । संक्षोभयन्सृजत्यादौ तयासूत्रमरिन्दम ॥ १९ ॥ तामाहुस्त्रिगुणव्यक्तिं सृज
न्तीं विश्वतोमुखम् । यस्मिन्प्रोतमिदं विश्वं येनसंसरतेपुमान् ॥ २० ॥ यथोर्णनाभि
र्हृदयादूर्णां संतत्यवक्त्रतः । तयाविहृत्यभूयस्तां ग्रसत्येवंमहेश्वरः ॥ २१ ॥ यत्र
यत्रमनोदेही धारयेत्सकलंधिया । स्नेहाद्द्वेषाद्भयाद्वापि यातितत्तत्सरूपताम् ॥२२॥
कीटः पेशस्कृतं ध्यायन्कुड्यां तेनप्रवेशितः । यातितत्सात्मतां राजन्पूर्वरूपमसंत्य
जन् ॥ २३ ॥ एवंगुरुभ्यएतेभ्य एषामेशिक्षितामतिः । स्वात्मोपशिक्षितांबुद्धिं शृ-
णुमेवदतः प्रभो ॥ २४ ॥ देहोगुरुर्मम विरक्तिविवेकहेतुर्बिभ्रत्स्म सत्त्वनिधनं सत-
तार्त्युदर्कम् । तत्त्वान्यनेनविमृशामि यथातथापिपारक्यमित्यवसितो विचराम्यसं
गः ॥ २५ ॥ जायात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गान्पुष्णाति यत्प्रियचिकीर्षयावितन्वन् ।
स्वान्तेसकृच्छ्रमवरुद्धधनः सदेहः सृष्ट्वाऽस्यबीजमवसीदति वृक्षधर्मा ॥२६॥ जि
ह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हितर्षाशिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणंकुतश्चित् । घ्राणोऽन्यतश्च
पलदृक् क्वचकर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्यइव गेहपतिंलुनन्ति ॥ २७ ॥ सृष्ट्वापुराणि
विविधान्यजयात्मशक्त्या वृक्षान्सरीसृपपशून्खगदंशमत्स्यान् । तैस्तैरतुष्टहृदयः
पुरुषंविधाय ब्रह्मावलोकधिषणंमुदमापदेवः ॥२८॥ लब्ध्वासुदुर्लभमिदं बहुसंभ-

मुक्तजीवों को प्राप्तहो अवस्थिति करते हैं ॥ १६—१७ ॥ क्योंकि वह निरुपाधिक, निर्विषय, स्वप्रकाश और आनन्द संदोह हैं अतएव मोक्षशब्द के प्रतिपाद्य हैं ॥ १८ ॥ हेशत्रुदमन ! निरवच्छिन्न आत्मानुभवरूपभगवान ने काल से तीन गुणवाली अपनी माया को क्षोभित कर उसके द्वारा प्रथम महतत्त्व को उत्पन्न किया ॥ १९ ॥ अहंकार को विश्व का उत्पन्न करनेवाला कहते हैं अतएव विश्व तो मुख और त्रिगुणात्मकही उस मायाका सूत्रात्मा कहाजाता है ; इससेही यह विश्व ओतप्रोत भावसे गुन्थ रहा है और इससेही पुरुष संसार में प्रवृत्त होते रहते हैं २० ॥ जैसे मकरी मुखद्वारा अपने हृदयसे जाल को फैलायकर फिर उसको लीलजाती है उसहीप्रकार भगवान इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते रहते हैं ॥ २१ ॥ प्राणी; स्नेह द्वेष व भय के कारण जिस जिसमें मनलगाता है,मरणके उपरांत उसही उसकी स्वरूपता को प्राप्तहोता है ॥ २२ ॥ हेराजन् ! कीडाभ्रमरी से दीवारमें बंद होकर उसका ध्यान करते २ अपने पूर्व रूप को न छोड़कर उसकोही स्वरूपताको प्राप्त होता है, ॥ २३ ॥ इन सब गुरुओं से मैंने यही शिक्षाए प्राप्त की हैं । हेप्रभो ! अपने शरीर से जो बुद्धि प्राप्तकी है उसको सुनो ॥ २४ ॥ शरीर मेरा गुरु है; क्योंकि मनकी पीड़ा जिसका अंतिम फलहै वही उत्पत्ति विनाश इसका धर्महै, मैं इसकेद्वारा यथार्थ तत्वका अनुसंधानकरतारहताहू; अतएव यही मेरेविवेक का कारण है;तौभी इसको दूसरे (काक, कुत्ते) का भक्ष्य स्थिरकर संगहीन होकर विचरण करता फिरताहू २५॥ मनुष्य जिस देह के हितसाधन करने के निमित्त, स्त्री, पुत्र, धन, पशु, दास, घर और स्वजनों का विस्तारकर कष्ट से धन इकट्ठा कर उनका पोषण करता है, वृक्षधर्मी यह देह उसही पुरुष का कर्मरूप देहांतरबीज उत्पन्नकरके नष्टहोता रहता है ॥ २६॥ जैसे बहुतसी स्त्रियें घरकेस्वामी को जीर्ण करडालती हैं, उसही प्रकार जिह्वा इसको एक ओर, तृष्णा दूसरी ओर—;शिश्नअन्य ओर; त्वक् , उदर,कर्ण और नाक चंचलनेत्र तथा कर्म शक्ति अन्यान्य ओरको खींचतीहैं॥२७॥ भगवान ने आत्मशक्ति माया से वृक्ष, सरीसृप, पशु, पक्षी और हिंसक आदि नाना शरीरों को रच उनसे संतुष्टनहो ब्रह्मदर्शनके निमित्त बुद्धियुक्त पुरुष शरीर को रचकर परम संतोष प्राप्त

मान्तेमानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः। तूर्णंयतेतनपतेदनुमृत्यु यावन्निःश्रेयसाय वि
षयःखलुसर्वतः स्यात् ॥ २९ ॥ एवंसंजातवैराग्यो विज्ञानालोकआत्मनि । विचरा
मिमहीमेतां मुक्तसंगोऽनहंकृतिः ॥ ३० ॥ नह्येकस्माद्गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात्सुपु
ष्कलम् । ब्रह्मैतदद्वितीयंवैगीयतेबहुधर्षिभिः॥३१॥श्रीभगवानुवाच ॥ इत्युक्त्वा
सयदुंविप्रस्तमामन्त्र्यगभीरधीः। वन्दितोऽभ्यर्चितोराज्ञा ययौप्रीतोयथागतम् ३२
अवधूतवचःश्रुत्वा पूर्वेषांनःसपूर्वजः । सर्वसंगविनिर्मुक्तः समचित्तोबभूवह ३३॥

इतिश्री मद्भागवते महा० एकादशस्कंधे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषुमदाश्रयः । वर्णाश्रमकुलाचार
मकामात्मासमाचरेत्॥१॥अन्वीक्षेतविशुद्धात्मा देहिनांविषयात्मनाम् । गुणेषुतत्त्व
ध्यानेन सर्वारम्भविपर्ययम् ॥२॥ सुप्तस्यविषयालोको ध्यायतोवामनोरथः । नाना
त्मकत्वाद्विफलस्तथाभेदात्मधीर्गुणैः ॥३॥ निवृत्तंकर्मसेवेत प्रवृत्तंमत्परस्त्यजेत् ।
जिज्ञासायांसंप्रवृत्तो नाद्रियेत्कर्मचोदनाम्॥४॥यमानभीक्ष्णंसेवेत नियमान्मत्परः
क्वचित् । मदभिज्ञंगुरुंशान्त मुपासीतमदात्मकम्॥५॥अमान्यमत्सरोदक्षोनिर्ममो
दृढसौहृदः । असत्वरोर्थजिज्ञासु रनसूयुरमोघवाक् ॥६॥जायापत्यगृहक्षेत्र स्वजन
द्रविणादिषु । उदासीनःसमंपश्यन्सर्वेष्वर्थमिवात्मनः ॥७॥विलक्षणःस्थूलसूक्ष्मा

किया ॥ २८ ॥ इससंसार में बहुत जन्मोंके उपरांत, अनित्य होने पर भी पुरुषार्थ साधनमनुष्य जन्मप्राप्तकर इसके पतित न होते होते धीर मनुष्यको शीघ्रही मुक्तिके निमित्त यत्नकरनाचाहिए विषय भोग सब जन्मों मेंही होते रहते हैं ॥ २९ ॥ मैं इसप्रकार वैराग्ययुक्तहो विज्ञानरूपी दीपक के प्रभाव से अहंकार और संगको छोड़ आत्मनिष्ठहो पृथिवीपर घूमताहूं ॥ ३० ॥ निश्चयही एक गुरु से स्थिर और पुष्टज्ञान उत्पन्न न हुआ । क्योंकि ब्रह्म का निर्णय उसके अद्वितीय होने पर भी भिन्न २ ऋषियों ने भिन्न २ रूप से किया है ॥ ३१ ॥ भगवान ने कहा कि—वह अगाधबुद्धि वाला ब्राह्मण यह कथाकह चुपहोगया और राजा से वंदित व पूजितहो उनकी आज्ञाले जहांसे आयेथे वहां गये ॥ ३२ ॥ हमारे पूर्व पुरुषों के पूर्व उत्पन्नहुए वह यदु अवधूत के वचन सुन निःसंग और समदर्शी होगयेथे ॥ ३३ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्क०सरलाभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीभगवान बोले कि—मैंने जो समस्त निज २ धर्म कहे हैं, भगवद्भक्तों को सावधान होकर मनसे वासनाओं को त्याग वर्ण, आश्रम और कुलकी समान आचरण करना चाहिए ॥ १ ॥विषयासक्त प्राणी सब विषयों को यथार्थ जानकर जो २ कार्य करते हैं उन समस्तसेही विपरीतफल प्राप्त होता है;—शुद्ध चित्तहोकर इसको देखता रहे ॥ २ ॥ सोतेहुए मनुष्य के स्वप्नावस्था में देखेहुए विषय और विचारेहुए मनोरथ जैसे नानाप्रकार के होकरभी अर्थ शून्य रहते हैं ऐसेही इंद्रियों से जानेजातेहुए सब विषयभी अर्थरहित हैं कारण कि वे अनेकप्रकार के होते हैं ॥ ३ ॥ मेरे भक्तको निष्काम होकर नित्य नैमित्तिक कर्मों को करना चाहिए, वह काम्यकर्मों को छोड़ देवे; आत्म विचार में भलीप्रकारसे प्रवृत्तहो निवृत्तिके कर्म विधानमें भी आदरवान न होवे॥४॥ किंतु मत्परायणहो सब संयमों की नित्य सेवाकरे; कभी २ नियमों की भी सेवा करनी चाहिए,और जो मुझको भली प्रकार से जानते हैं.मेरे स्वरूप उनही शांतगुरु की आराधना करनी चाहिए५॥ अभिमान, मात्सर्य, आलस्य और ममताको छोड़देवे, गुरुसे भलीप्रकार सुहृदताका बन्धन बांधे; व्यग्र न होवे, तत्त्व जानेकी इच्छा करे और बड़ाई मारना व व्यर्थ बकवाद छोड़ देवे ॥ ६ ॥ अपने अभिप्रायको सर्वत्रही समान देख स्त्री, पुत्र, घर, क्षेत्र, स्वजन और धनादि से उदासीन हो। केवल गुरुकीही उपासना करनी चाहिये ॥ ७ ॥ जैसे दाहक और प्रकाशक अग्निदाह्य और

द्रष्टात्मेक्षितात्स्वदृक् । यथाग्निर्दारुणोदाह्याद्दाहकोऽन्यः प्रकाशकः ॥ ८ ॥ निरोधोत्पत्त्यणुबृहन्नानात्वंतत्कृतान्गुणान् । अन्तःप्रविष्टआधत्ते एवंदेहगुणान्परः ॥९॥ योऽसौगुणैर्विरचितो देहोऽयंपुरुषस्यहि । संसारस्तन्निबन्धोऽयं पुंसोविद्याच्छिदात्मनः ॥ १० ॥ तस्माज्जिज्ञासयात्मान मात्मस्थंकेवलंपरम् । संगम्यनिरसेदेतद्वस्तुबुद्धिंयथाक्रमम् ॥ ११ ॥ आचार्योऽरणिराद्यः स्यादन्तेवास्युत्तरारणिः । तत्संधानंप्रवचनं विद्यासन्धिःसुखावहः ॥ १२ ॥ वैशारदीसातिविशुद्धबुद्धिर्धुनोति मायांगुणसंप्रसूताम् । गुणांश्चसंदह्ययदात्ममेतत्स्वयंच शाम्यत्यसमिद्यथाग्निः ॥ १३ ॥ अथैषांकर्मकर्तॄणां भोक्तॄणांसुखदुःखयोः । नानात्वमथनित्यत्वं लोककालागमात्मनाम् ॥ १४ ॥ मन्यसेसर्वभावानांसंस्थाह्यौत्पत्तिकीयथा । तत्तदाकृतिभेदेन जायतेभिद्यतेचधीः ॥ १५ ॥ एवमप्यङ्गसर्वेषां देहिनांदेहयोगतः । कालावयवतःसन्ति भावाजन्मादयोऽसकृत् ॥ १६ ॥ अत्रापिकर्मणांकर्तुरस्वातन्त्र्यंच लक्ष्यते । भोक्तुश्चदुःखसुखयोः कोन्वर्थोविवशंभजेत् ॥ १७ ॥ न देहिनांसुखंकिञ्चिद्विद्यतेविदुषामपि । तथाचदुःखंमूढानां वृथाहंकरणंपरम् ॥ १८ ॥ यदिप्राप्तिंविघातंच जानन्तिसुखदुःखयोः । तेऽप्यद्धानविदुर्योगं मृत्युर्नप्रभवेद्यथा ॥१९॥ कोन्वर्थःसुखयत्येनं कामोवामृत्युरन्तिके । आघातंनीयमानस्य वध्यस्येवनतुष्टिदः ॥ २० ॥ श्रुतंचदृष्टवद्दुष्टं स्पर्धासूयात्ययव्ययैः । बह्वन्तरायकामत्वात् कृषिवच्चा

प्रकाश्य काष्ठसे भिन्न पदार्थ है उसही प्रकार दर्शक और स्वप्रकाश आत्मा स्थूल और सूक्ष्म देह से पृथक् है ॥ ८ ॥ ध्वंस, जन्म, सूक्ष्मत्व और नानात्व अग्निका गुण नहीं है; अग्निका काष्ठ के साथ मिले रहने से वह उसके गुणों का अवलम्बन करती है; इसही प्रकार आत्माभी देहके गुणोंको धारण करता रहता है ॥ ९ ॥ ईश्वरके गुणों द्वारा स्थूल देह रचा हुआ है उसके अध्यास के हेतुही जीवकी उत्पत्ति हुई है, वह आत्मज्ञान द्वाराही ससार से निवृत्त होता है ॥ ॥ १० ॥ अतएव कार्य कारण समूह मे अवस्थित, निष्फल परमात्मा को विचारद्वारा भलीप्रकार से जान धीरे २ इन देहादिक में रहीहुई वस्तु बुद्धि का त्याग करे ॥ ११ ॥ आचार्य नीचे के काठकी समान, शिष्य ऊपर के काठकी समान, उपदेश बीचवाले मंथन काष्ठकी समान, और विद्या उससे उत्पन्न हुई सुखदेनेवाली अग्नि के समान है ॥ १२ ॥ अति निपुण शिष्य से ग्रहण की हुई वह अति विशुद्ध बुद्धि गुणों से उत्पन्नहुई मायाको दूर करदेती है और इन संसारी गुणों को जलाय काष्ठरहित अग्निकी समान फिर स्वयं भी निवृत्त होजाती है ॥ १३ ॥ यदि कर्म कर्ता और सुख दुःख भोगी इन सब जीवात्मा के नानात्वको स्वीकारकरें; यदि स्वर्गादिलोक, काल धर्म बोधकशास्त्र और आत्माकी नित्यताको विचारें ॥ १४ ॥ यदि समस्त भोग्य पदार्थोंकी यथावत् स्थिति को धारणके रूपसे निश्चय कहकर स्वीकारकरें और यदि विचारें कि तत्त्व और आकृति के भेदसे बुद्धि उत्पन्न होती और फिर अनित्य होने के कारण नाशको प्राप्त होती है ॥ ॥ १५ ॥ तो ऐसा होने से देह संयोग और कालके अवयव हेतु समस्त प्राणियों की बारम्बार जन्मादि अवस्था होसकती है ॥ १६ ॥ और इस पक्षमें कर्म के करने वालोंकी और सुख दुःख के भोगने वालों की पराधीनता दिखाई देती है ॥ १७ ॥ अस्वाधीन को किस पुरुषार्थ के साधन के उद्देश से उपासना करना चाहिये ? पण्डितजनों कोभी किंचित सुख नहीं है; इसही प्रकार मूर्खों को कभी भी दुःख नहीं है; अतएव अहंकार करना व्यर्थही है ॥ १८ ॥ यदि सुख दुःख की प्राप्ति और नाश जाने तौभी वह मृत्युप्रभावके प्रतिबन्धक योग को नहीं जान सकता ॥ ॥ १९ ॥ जब वध्यस्थान में खड़ेहुए वध्यकी समान अत्यन्तही समीप मृत्यु वास करती है, तब कौन पुरुषार्थ व काम इसको सुखी कर सकता है ? ॥ २० ॥ जिस प्रकार से कि इस

पिनिष्फलम् ॥ २१ ॥ अन्तरायैरविहतो यदिधर्मःस्वनुष्ठितः। तेनापिनिर्जितंस्था
नं यथागच्छतितच्छृणु ॥ २२ ॥ इष्ट्वेहदेवतायज्ञैः स्वर्लोकंयातियाज्ञिकः। भुंजी
तदेववत्तत्र भोगान्दिव्यान्निजार्जितान् ॥ २३ ॥ स्वपुण्योपचितेशुभ्रे विमानउपगी
यते। गन्धर्वैर्विहरन्मध्ये देवीनांहृद्यवेषधृक् ॥ २४ ॥ स्त्रीभिःकामगयानेन किंकि
णीजालमालिना। क्रीडन्नवेदात्मपातं सुराक्रीडेषुनिर्वृतः ॥ २५ ॥ तावत्प्रमोदते
स्वर्गे यावत्पुण्यंसमाप्यते। क्षीणपुण्यःपतत्यर्वा गनिच्छन्कालचालितः ॥ २६ ॥
यद्यधर्मरतःसंगा दसतांवाऽजितेन्द्रियः। कामात्माकृपणोलुब्धः स्त्रैणोभूतविहिं
सकः ॥ २७ ॥ पशूनविधिनालभ्य प्रेतभूतगणान्यजन्। नरकानवशोजन्तुर्गत्वा
यात्युल्बणंतमः ॥ २८ ॥ कर्माणिदुःखोदर्काणि कुर्वन्देहेनतैःपुनः। देहमाभजते
तत्र किंसुखंमर्त्यधर्मिणः ॥ २९ ॥ लोकानांलोकपालानां मद्भयंकल्पजीविनाम्। ब्र
ह्मणोपिभयंमत्तो द्विपरार्धपरायुषः ॥ ३० ॥ गुणाःसृजन्तिकर्माणि गुणोऽनुसृजतेगु
णान्। जीवस्तुगुणसंयुक्तो भुंक्ते कर्मफलान्यसौ ॥ ३१ ॥ यावत्स्याद्गुणवैषम्यं
तावन्नानात्वमात्मनः। नानात्वमात्मनो यावत्पारतन्त्र्यं तदैवहि ॥३२॥ यावदस्या
ऽस्वतन्त्रत्व तावदीश्वरतोभयम्। यएतत्समुपासीरंस्ते मुह्यन्तिशुचार्पिताः ॥३३॥
कालआत्मागमोलोकः स्वभावोधर्मएवच। इतिमांबहुधा प्राहुर्गुणव्यतिकरे सति।

लोकों में सुख नहीं है वैसेही परलोक में भी नहीं है क्योंकि वहभी दूसरे के सुखकी असहन शीलता, पराये गुणों में दोष देखना, नाश और क्षय आदि के दोषों से दूषित है और जैसे कृषि के सफल होने में भी अनेकों बाधायें आ पडती हैं वैसेही यज्ञादि से प्राप्त होनवाले स्वर्गादिक की प्राप्तिमें भी अनेक विघ्न आजाते हैं ॥ २१ ॥ भली प्रकार से अनुष्ठित धर्म कर्मके विघ्न रहित होने से उसके द्वारा प्राप्तहुआ स्थान जिसप्रकारसे पाया जाता है उसको सुनो ॥ २२ ॥ याज्ञिक इसलोकमें यज्ञादि द्वारा देवताओं का आराधन कर स्वर्ग में जाते हैं; वहां वे देवताओंकी समान स्वयं उपार्जित किये हुए दिव्य भोगोंका भोग करते रहते हैं ॥ २३ ॥ मनोहर वेश धारण कर अपने पुण्यों द्वारा सर्व भोगों युक्त सुंदर विमानोंमें बैठ स्त्रियों के बीचमें विहार करते २ गन्धर्वों से प्रशंसित होते रहते हैं ॥ २४ ॥ देवताओं के क्रीडा स्थानमें घूंघरूओं के समूहसे शोभायमान इच्छाचारी विमानोंमें बैठ स्त्रियों समेत क्रीडा करते २ सुखि हो अपने अवश्य होनेवालेपतनको नहीं जान सकते ॥ २५ ॥ जबतक पुण्यकी समाप्ति नहीं होती तब तक वह स्वर्ग में आनंद का अनुभव करते रहते हैं; पुण्य के क्षय होतेही—कालसे प्रेरित हो अनिच्छा होते हुए भी अधः पतित होते हैं ॥ २६ ॥ और यदि जीव दुष्टजनों के संग हो अधर्म में तत्पर, अजितेन्द्रिय नीचाशय, लुब्ध, कामी और प्राणियों का हिंसक हो ॥ २७ ॥ अनरीत से पशुवधकर प्रेत और भूतों का याग करता है तो वह अंतमें नरकगामी हो अज्ञान में प्रवेश करता है ॥ २८ ॥ कर्ममें प्रवृत्त पुरुषको सुख नहीं मिलता देह द्वारा उन सब कर्मोंका अनुष्ठानकर उन्हीकेद्वारा फिर शरीर प्राप्त करता है; अतएव मर्त्य लोकमें रहे हुए प्राणियोंको सुख कहां है ॥ २९ ॥ लोक और कल्पजीवी लोकपालोंको मुझसे भय है; द्विपरार्द्ध सम्वत्सरकी जिसकी परमायु है उस ब्रह्माकोभी मुझसे भय है ॥ ३० ॥ गुणों द्वाराही इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती रहती है, यह जीव इन्द्रिय संयुक्त होकर सब कर्म फलोंका भोग करते रहते हैं ॥३१॥ जब तक गुणोंकी विषमता रहती है तबही तक आत्माका अनेकत्व और तबही तक पराधीनता रहती है ॥ ३२ ॥ जब तक इसकी पराधीनता है तभीतक कालका भय रहता है। जो भोग और कर्मका सेवन करते हैं वे शोकग्रस्त हो मूढ होते रहते हैं ॥ ३३ ॥ मायाका क्षोभ होने से मुझको काल, आत्मा, आगम, लोक, स्वभाव वाधर्म इसप्रकार

॥ ३४ ॥ उद्धव उवाच । गुणेषु वर्तमानोऽपि देहजेष्वनपावृतः । गुणैर्न बध्यते देही बध्यते वा कथं विभो ॥३५॥ कथं वर्तेत विहरेत्कैर्वा ज्ञायेत लक्षणैः । किं भुञ्जीतोत विसृजेच्छयीतासीत याति वा ॥ ३६ ॥ एतदच्युत मे ब्रूहि प्रश्नं प्रश्नविदां वर । नित्यबद्धो नित्यमुक्त एक एवेति मे भ्रमः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भा० महा०.एकाद० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीभगवानुवाच । बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः । गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम् ॥ १ ॥ शोकमोहौ सुखं दुःखं देहापत्तिश्च मायया । स्वप्नो यथात्मनः ख्यातिः संसृतिर्न तु वास्तवी ॥ २ ॥ विद्याविद्ये मम तनू विद्ध्युद्धव शरीरिणाम् । मोक्षबन्धकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते ॥ ३ ॥ एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते । बन्धोऽस्याविद्ययानादिर्विद्यया च तथेतरः ॥ ४ ॥ अथ बद्धस्य मुक्तस्य वैलक्षण्यं वदामि ते । विरुद्धधर्मिणोस्तात स्थितयोरेकधर्मिणि ॥ ५ ॥ सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे । एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नमन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान् ॥ ६ ॥ आत्मानमन्यं च स वेद विद्वानपिप्पलादो न तु पिप्पलादः । योऽविद्यया युक् स तु नित्यबद्धो विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः ॥ ७ ॥ देहस्थोऽपि न देहस्थो विद्वान्स्वप्नाद्यथोत्थितः । अदेहस्थोऽपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृग्यथा ॥ ८ ॥ इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु गुणैरपि गुणेषु च ॥ गृह्यमाणेष्वहंकुर्यान्न विद्वान्य-

---

नाना रूपसे वर्णन करते हैं ॥ ३४ ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे विभो ! गुणोंके साथ सम्बंध रहते हुए प्राणी देहसे उत्पन्न हुए कर्म और सुखादि में किस प्रकार से नहीं बंधता ॥ ३५ ॥ और सम्बंध न रहते हुए गुणों द्वाराही क्योंकर बद्ध होता है ? बद्ध और मुक्त व्यक्ति किस प्रकार व्यवहार करते हैं, किस प्रकार विहार करते हैं ? किन किन लक्षणों द्वारा दोनों को जाना जासकता है । किस प्रकार से भोजन करते है ? कहां शयन करते हैं ? क्या परित्याग करते हैं ? कहां बैठते हैं ? कैसे चलते हैं ॥ ३६ ॥ हे प्रश्नोत्तर देनेवालोंमें श्रेष्ठ ! यहमेरा प्रश्न है । तब क्या एक ही आत्मा नित्यबद्ध और नित्यमुक्त है ? इस मेरे भ्रमको आप दूरकरो ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादशस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीभगवान ने कहा कि— मेरे सत्वादि गुण रूप की उपाधिसे आत्मा बद्ध और मुक्त होता रहता है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है मैं इसही प्रकार का निर्णय करताहूं कि गुणके माया मूलक होने से वास्तविक में बद्ध मोक्ष नहीं है शोक, मोह, सुख, दुःख और देह की उत्पत्ति मायाहीके द्वारा होतीरहती है स्वप्नकी समान संसारभी बुद्धि कार्य और मिथ्याहैं॥२॥हे उद्धव निश्चय जानना कि प्राणियों के बद्ध और मोक्ष करनेवाली विद्या और अविद्या दोनों ही मेरी आद्याशक्ति हैं जो मेरी मायाद्वारा बनी हैं ॥ ३ ॥ हे महामते ! मेरे अंशस्वरूप इस अद्वितीय अनादि जीवका अविद्याद्वारा बन्ध और विद्याद्वारा मोक्ष होतारहता है ॥ ४ ॥ हेतात ! यह दोनों एक आश्रय में स्थित हैं इन विरुद्धधर्मवाले बध और मुक्ति का लक्षण तुमसे कहताहू सुनो ॥ ५ ॥ यह दोनोंही सुन्दर पक्ष वाले, समानसखा, इच्छानुसार वृक्षमें घोंसलाबनाकर रहे हैं । इन में से एकतो फलों (कर्मफल) को खाता है और दूसरा निराहार रहकरभी बलमें उससे अधिक है ॥ ६ ॥ जोभक्षण नहींकरता वह विद्वान, आत्माको और आत्माकी भिन्नता को जानता है जो भक्षण करता है वह इस प्रकार का नहीं है जो अविद्याके साथ संयुक्त है वह नित्यबद्ध है और जो विद्यामय है वह नित्यमुक्त है ॥ ७ ॥ स्वप्न से उठेहुए मनुष्य की समान, विद्वान देहस्थ होकरभी देहस्थ नहीं है; मूर्ख मनुष्य स्वप्नदर्शी के समान देहस्थ न होकरभी देहस्थ है ॥ ८ ॥ जो निर्विकार,विद्वान, इन्द्रियोंद्वाराविषय

स्वविक्रियः ॥ ९॥ दैवाधीने शरीरेऽस्मिन्गुणभाव्येन कर्मणा । वर्तमानोऽबुधस्तत्र कर्तास्मीति निबध्यते ॥ १० ॥ एवंविरक्तःशयन आसनाटनमज्जने । दर्शनस्पर्शनघ्राणभोजनश्रवणादिषु ॥ ११ ॥ नतथाबध्यते विद्वांस्तत्र तत्रादयन्गुणान् । प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथाखंसवितानिलः ॥ १२ ॥ वैशारद्येक्षयाऽसंगशितया छिन्नसंशयः । प्रतिबुद्ध इव स्वप्नान्नानात्वाद्विनिवर्तते ॥ १३ ॥ यस्यस्युर्वीतसंकल्पाः प्राणेन्द्रियमनोधियाम् । वृत्तयःसविनिर्मुक्तो देहस्थोपिहि तद्गुणैः ॥ १४ ॥ यस्यात्माहिंस्यते हिंस्रैर्येन किंचिद्यदृच्छया । अर्च्यते वाक्वचित्तत्र नव्यतिक्रियतेबुधः ॥ ॥ १५ ॥ नस्तुवीतननिन्देत कुर्वतःसाध्वसाधुवा । वदतोगुणदोषाभ्यां वर्जितःसमदृङ्मुनिः ॥१६॥ नकुर्यान्नवदेत्किंचिन्न ध्यायेत्साध्वसाधुवा । आत्मारामोऽनयावृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः ॥ १७ ॥ शब्दब्रह्मणिनिष्णातो ननिष्णायात्परे यदि । श्रमस्तस्यश्रमफलो ह्यधेनुमिवरक्षतः ॥ १८ ॥ गांदुग्धदोहामसतींच भार्यांदेहं पराधीनमसत्प्रजांच । वित्तंत्वतीर्थीकृतमंग वाचं हीनांमयारक्षति दुःखदुःखी ॥१९॥ यस्यांनमेपावनमंगकर्म स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य ॥ लीलावतारेप्सितजन्मवास्याद्वन्ध्यां गिरंतां बिभृयान्नधीरः ॥ २० ॥ एवंजिज्ञासयाऽपोह्य नानात्वभ्रममात्मनि । उपारमेतविरजं मनोमय्यर्प्यसर्वगे ॥ २१ ॥ यद्यनीशोधारयितुं मनोब्रह्मणिनिश्चलम् । मयिसर्वाणिकर्माणि निरपेक्षः समाचर ॥ २२ ॥ श्रद्धालुर्मेकथाः शृण्वन्सु

और गुणोंद्वारा गुणों को ग्रहण करता है परन्तु वह ऐसा नहीं विचारता कि ' मैंने ग्रहण किया है ॥ ९ ॥ मूर्ख मनुष्य गुणों से उत्पन्नहुए कर्मों द्वारा इस कर्माधीन शरीर में वासकर ' मैंकर्त्ताहूं ' ऐसा विचार करके उसी में लीन रहता है ॥ १० ॥ विद्वानमनुष्य इसप्रकार से विरक्तहो शयन, उपवेशन, पर्यटन, (गमनागमन), मज्जन, दर्शन, स्पर्शन, घ्राण (सूंघना)भोजन औरश्रवणादि विशेष २ विषयों में इंद्रियों को भोगकराता है कि उसमें बद्ध नहीं होता; वह प्रकृति में स्थिति करके भी आकाश सूर्य और अग्निकी समान निःसंगहो वैराग्य योग से बढ़ीहुई तीक्ष्ण व निपुण बुद्धि की दृष्टिद्वारा संशयों का नाशकरता है और स्वप्न से जाग्रतहुए मनुष्य की समान देहादि प्रपंचों से निवृत्त होतारहता है ॥ ११—१३ ॥ जिनके प्राण, इंद्रिय, मन, और बुद्धिके आचरण सबही संकल्प रहित हैं वह देहस्थ होकरभी गुणों से मुक्त हैं ॥ १४ ॥ जिसकी देह हिंसकों से हिंसित और कहीं पर किसी मनुष्य से इच्छानुसार कुछ पूजितहो और उसको विकार न होवे वही पण्डित है ॥ १५ ॥ समदर्शी गुणदोष से वर्जित मुनिजन प्रियकारी अथवा अप्रियकारी व प्रियवादी अथवा अप्रियवादी मनुष्यों की स्तुति व निन्दा नहीं करते ॥ १६ ॥ मुनिजन भलाबुरा कुछ नहीं करते, न कुछ कहें न किसी की चिंता करें । आत्मारामहो इसही वृत्ति का अवलम्बन कर जड़की समान विचरण किया करते हैं ॥ १७ ॥ शब्द ब्रह्म का पारगामी होकरभी यदि परब्रह्म में ध्यानादि योगनकरे तो बिना ब्याई गौ के, गो प्रतिपालक की समान परिश्रमही उसका श्रमफल है ॥ १८ ॥ हे उद्धव ! जो मनुष्य दुःखों से दुःखी है वही दुग्धदोह गौ को, असती स्त्री को, पराधीन देह, असत्पुत्र, पापदेने वाले धन और मेरी वर्णन रहित वाणी को रखता है ॥ ॥ १९ ॥ अहो ! जिससे इस विश्व के उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय स्वरूप मेरे पवित्रकर्म और लीलावतारों के इच्छितवर देनेवाले जन्मचरित न हुए वह वाक्य निष्फल है, पण्डित उसको धारण नहीं करते ॥ २० ॥ इसही प्रकार तत्त्व विचारद्वारा आत्माके अनेकत्व का भ्रम छोड़ विशुद्ध चित्तको मुझसर्वव्यापी में अर्पणकर तृप्तिको प्राप्त होना चाहिये ॥ २१ ॥ यदि ब्रह्म में निश्चल मन लगाने में असमर्थ होवे तो निष्कामहो मुझकोही समस्तकर्म अर्पणकरे ॥ २२ ॥ हे उद्धव !

श्रद्धालोकपावनीः । गायन्ननुस्मरन्कर्म जन्म चाभिनयन्मुहुः ॥ २३ ॥ मदर्थे धर्मका मार्थानाचरन्मदपाश्रयः । लभते निश्चलांभक्तिं मय्युद्धवसनातने ॥ २४ ॥ सत्संग लब्धयाभक्त्या मयिमांसमुपासिता । सवैमेदर्शितं सद्भिरंजसा विन्दतेपदम् २५॥ उद्धवउवाच ॥ साधुस्तवोत्तमश्लोक मतःकीदृग्विधःप्रभो । भक्तिस्त्वय्युपयुज्येत कीदृशीसद्भिरादृता ॥ २६ ॥ एतन्मेपुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्षजगत्प्रभो । प्रणतायानुरक्ताय प्रपन्नायचकथ्यताम् ॥ २७ ॥ त्वंब्रह्मपरमंव्योम पुरुषःप्रकृतेःपरः । अवतीर्णोसिभगवन् स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुःसर्वदेहिनाम् । सत्यसारोऽनवद्यात्मा समःसर्वोपकारकः ॥ २९ ॥ कामैरहतधीर्दान्तो मृदुःशुचिरकिंचनः । अनीहोमितभुक्शान्तः स्थिरोमच्छरणो मुनिः ॥ ३० ॥ अप्रमत्तोगभीरात्मा धृतिमांजितषड्गुणः । अमानीमानदःकल्पो मैत्रःकारुणिकःकविः ॥ ३१ ॥ आज्ञायैवंगुणान्दोषान् मयाऽऽदिष्टानपिस्वकान् । धर्मान्संत्यज्ययःसर्वान् मांभजेतसतुसत्तमः ॥ ३२ ॥ ज्ञात्वाऽज्ञात्वाथयेवैमां यावान्यश्चास्मियादृशः । भजन्त्यनन्यभावेन तेमेभक्ततमामताः ॥ ३३ ॥ मल्लिंगमद्भक्तजन दर्शनस्पर्शनार्चनम् । परिचर्यास्तुतिःप्रह्व गुणकर्मानुकीर्तनम् ॥ ३४ ॥ मत्कथाश्रवणेश्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव । सर्वलाभोपहरणं दास्येनात्मनिवेदनम् ॥३५॥ मज्जन्मकर्मकथनं ममपर्वानुमोदनम् । गीतताण्डववादित्र गोष्ठीभिर्मद्गृहोत्सवः

पुरुष श्रद्धायुक्तहो मेरी लोकपावनी सुन्दरकथाको. सुनना, गाना और स्मरण करना तथा बारम्बार मेरे जन्म और कर्मोंकी लीलाकरके वो मेरे निमित्त सब धर्मार्थ कार्यों का आचरणकरें मेरी निश्चलभक्ति प्राप्तकर सकते हैं ॥ २३—२४ ॥ वह सत्संग वश प्राप्त हुई मेरी भक्तिद्वारा मेराध्यान करके साधुओं के दिखायेहुए मेरे पदके सुखका भोग निश्चयही प्राप्तकरसकते हैं २५॥ उद्धवजीने कहाकि—हे उत्तम श्लोक ! हे प्रभो ! आपनी २ बुद्धि से बनेहुए साधु अनेक हैं, परन्तु आप कैसे लक्षणावालेको साधु मानते हो ? किसप्रकारकी भक्ति आपमें उपयोगी होती है? और सत्पुरुष कैसी भक्ति का आदर करते हैं ॥ २६ ॥ हे पुरुषाध्यक्ष ! हेलोकाध्यक्ष ! हेजगत प्रभो ! मैं आपका भक्त, अनुरक्त और शरणागतहूं आप मुझसे इन बातोंका वर्णन कीजिये२७॥ आप आकाश की समान निःसंग प्रकृति से परें, परमब्रह्महो; हेभगवन् ! इच्छानुसार देहधारण कर आप अवतीर्णहुएहो ॥ २८ ॥ श्रीभगवान ने कहा—हेउद्धव ! जो सब प्राणियों पर कृपालु अहिंसक और क्षमाशील हैं; सत्यही जिनका बल है; जो निर्दोष, समदर्शी और सर्वोपकारी हैं; ॥ २९ ॥ जिनका चित्त विषयों से क्षुभित नहीं होता; जो जितेन्द्रिय, कोमल चित्त, सदाचारी, निःसंग, निरीह, मितभोजी, जितचित्त, स्वधर्म में निरत, मेराही भजन करनेवाला और चिन्ताशील है ॥ ३० ॥ जो सावधान, निर्विकार चित्त, धैर्यशाली, षड्गुण विजयी, मान की इच्छा न रखने वाला दूसरोंको मान देनेवाला, दूसरे को ज्ञान देनेमें चतुर किसीको न ठगनेवाला, कारुणिकऔर भली प्रकार से ज्ञानी हैं; ॥ ३१ ॥ वही श्रेष्ठ साधू हैं । और जो गुण दोषों को जानकर वेदरूप से मेरे बनायेहुए कर्मों को छोड़कर मेरा भजन करता है वह भी श्रेष्ठसाधू है ॥ ३२ ॥ मैं जो हूं जैसाहूं जिसप्रकार काहूं, यह बारम्बार जानकर जो एकांतमन से मेरा भजन करते हैं वही मेरे श्रेष्ठ भक्त हैं ॥ ३३ ॥ हेउद्धव ! मेरे प्रतिमादि चिह्नों का देखना मेरे भक्तों का दर्शन करना, स्पर्शन, पूजा, परिचर्या, स्तुति और मनोहर गुण कर्मों का कथन, मेरी कथा सुनने में श्रद्धा; मेरा ध्यान; मुझ में समस्त पदार्थों का अर्पण करना; दास्यभावसे आत्म निवेदनकरना; ॥ ३४।३५ ॥ मेरे जन्म कर्मों का कथन मेरे पर्व आदि उत्सवों का अनुमोदनकरना; गाने, बजाने और सम्प्रदा

॥ ३६ ॥ यात्राबलिविधानंच सर्ववार्षिकपर्वसु । वैदिकीतान्त्रिकीदीक्षा मदीयव्र
तधारणम् ॥ ३७ ॥ ममार्चास्थापनेश्रद्धा स्वतःसंहृत्यचोद्यमः । उद्यानोपवनाक्री
ड पुरमन्दिरकर्मणि ॥ ३८ ॥ संमार्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डलवर्तनैः । गृहशुश्रू
षणंमह्यं दासवद्यदमायया ॥ ३९ ॥ अमानित्वमदम्भित्वं कृतस्यापरिकीर्तनम् । अ
पिदीपावलोकंमे नोपयुञ्ज्यान्निवेदितम् ॥ ४० ॥ यद्यदिष्टतमंलोके यच्चातिप्रिय
मात्मनः । तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानन्त्यायकल्पते ॥ ४१ ॥ सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणोगावो
वैष्णवःखंमरुज्जलम् । भूरात्मासर्वभूतानि भद्रपूजापदानिमे ॥४२॥ सूर्येतुविद्यया
त्रय्या हविषाग्नौयजेतमाम् । आतिथ्येनतुविप्राग्र्ये गोष्वंगयवसादिना ॥ ४३ ॥
वैष्णवेबन्धुसत्कृत्या हृदिखेध्याननिष्ठया । वायौमुख्यधियातोये द्रव्यैस्तोयपुर
स्कृतैः ॥ ४४ ॥ स्थण्डिलेमन्त्रहृदयैर्भोगैरात्मानमात्मनि । क्षेत्रज्ञंसर्वभूतेषु सम
त्वेनयजेतमाम् ॥ ४५ ॥ धिष्ण्येष्वेष्वितिमद्रूपं शंखचक्रगदाम्बुजैः । युक्तंचतुर्भुजं
शान्तं ध्यायन्नर्चेत्समाहितः ॥ ४६ ॥ इष्टापूर्तेनमामेवं योयजेतसमाहितः । लभते
मयिसद्भक्तिं मत्स्मृतिःसाधुसेवया ॥ ४७ ॥ प्रायेणभक्तियोगेन सत्संगेनविनोद्ध
व । नोपायोविद्यतेसध्र्यङ् प्रायणंहिसतामहम् ॥ ४८ ॥ अथैतत्परमंगुह्यं शृण्वतो
यदुनन्दन । सुगोप्यमपिवक्ष्यामि त्वंमेभृत्यःसुहृत्सखा ॥ ४९ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० एकाद० एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

यों द्वारा घर में उत्सवकरना ॥ ३६ ॥ सब वार्षिक पर्वों में यात्रा और पुष्प आदि देना, वैदिकी और तान्त्रिकी दीक्षा; मेरे व्रतों का धारण करना ॥ ३७ ॥ मेरे प्रतिमास्थापन में श्रद्धा; बाग, उपवन, क्रीड़ास्थान, पुर और मन्दिर आदि के बनाने में स्वतः अथवा दूसरों के साथ मिलकर उद्यम करना ॥ ३८ ॥ मेरे घरकी अकपटभाव से सेवा करना, झाड़ना, बुहारना, लीपना, पोतना आदि करना ॥ ३९ ॥ अभिमानत्याग; पाखण्ड को छोड़ना; और आचरित धर्म कर्मोंका कहना न करना; यहीसब भक्तिके लक्षण हैं । भक्ति के और भी लक्षण कहताहूं ;—मेरे अर्पण कियेहुए पदार्थ का अपना स्वयं उपभोगनकरना; अन्यपदार्थ तो दूर रहा दीपक का प्रकाशभी काम में न लाना ॥ ४० ॥ मनुष्यों को जो पदार्थ अत्यन्तही इच्छित और अपने को प्रियहो मेरे उद्देश से निवेदित होने पर वह अत्यंतही फल दायी होता है ॥ ४१ ॥ हेभद्र ! सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वैष्णव, हृदय, वायु, जल पृथिवी, आत्मा और समस्त प्राणी मेरी पूजाके आधार हैं ॥४२॥ अहो ! वेद विद्याद्वारा सूर्य में, घृतद्वारा अग्नि में, आतिथ्यद्वारा ब्राह्मण में, तृणादिद्वारा गौओं में, ॥ ४३ ॥ मित्रों की समान सन्मानद्वारा वैष्णवों में, ध्यानद्वारा हृदयाकाश में, प्राणदृष्टिद्वारा वायु में, जल आदि द्रव्यों द्वारा जल में ॥ ४४ ॥ और गोपनीय मंत्रन्यासद्वारा पृथिवी में मेरी पूजाकरे नाना प्रकार के भोगों द्वारा आत्मा में आत्मरूपी मेरी पूजाकरे, मैं सब प्राणियों में क्षेत्रज्ञरूपहूं, समताद्वारा मेरा यागकरे ॥ ४५ ॥ समाधियोग से मेरे शंख, चक्र, गदा, पद्म युक्त चतुर्भुजशांत रूप का ध्यान करे, इसही प्रकार इन्हीं समस्त आधारों से पूजाकरनी चाहिए ॥४६॥ जो समाधिस्थहो कुवां बावड़ी आदि बनवाय मेरा यागकरेंगे वे मुझ में उत्तम भक्तिमान होंगे । साधुसेवा द्वारा मेरा सम्बन्धी ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ४७ ॥ हे उद्धव ! सत्संग से उत्पन्नहुए भक्तियोगके अतिरिक्त संसार से तरने का और कोई उत्तमउपाय नहीं है; क्योंकि मैं साधुओं काही श्रेष्ठ आश्रयहूं ॥ ४८ ॥ हेयदुनन्दन ! तुमने परमगुप्त वार्त्ता को सुना, इसके उपरांत तुमसे औरभी अत्यंत गूढ़ विषय कहताहूं उसको सुनो क्योंकि तुम मेरे सेवक, भक्त और सखाहो ॥ ४९ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीभगवानुवाच। नरोधयतिमांयोगो नसांख्यंधर्मएवच। नस्वाध्यायस्तपस्त्या
गो नेष्टापूर्तनदक्षिणा ॥ १ ॥ व्रतानियज्ञश्छंदांसि तीर्थानिनियमायमाः। यथाव-
रुन्धेसत्संगः सर्वसंगापहोहिमाम् ॥ २ ॥ सत्संगेनहिदैतेयायातुधानामृगाःखगाः
गन्धर्वाप्सरसोनागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥ ३ ॥ विद्याधरामनुष्येषु वैश्याःशूद्रा
स्त्रियोऽन्त्यजाः। रजस्तमः प्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन्युगेऽनघ ॥ ४ ॥ बहवोमत्पदंप्रा
प्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः। वृषपर्वाबलिर्बाणो मयश्चाथविभीषणः ॥ ५ ॥ सुग्रीवो
हनुमानृक्षो गजोगृध्रोवणिक्पथः। व्याधःकुब्जाव्रजेगोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे॥६॥
तेनाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः। अव्रतातप्ततपसः सत्संगान्मामुपागताः ॥
॥ ७ ॥ केवलेनहिभावेन गोप्योगावो नगामृगाः। येऽन्येमूढधियोनागाः सिद्धामा
मीयुरंजसा ॥ ८ ॥ यंनयोगेनसांख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः ॥ व्याख्यास्वाध्यायस
न्यासैः प्राप्नुयाद्यत्नवानपि ॥ ९ ॥ रामेणसार्धंमथुरां प्रणीते श्वाफल्किना मय्यनुर-
क्तचित्ताः। विगाढभावेन नमे वियोगतीव्राधयोऽन्यं ददृशुःसुखाय ॥ १० ॥ ता-
स्ताःक्षपाः प्रेष्ठतमेननीता मयैववृन्दावनगोचरेण। क्षणार्धवत्ताःपुनरंगतासां ही
नामयाकल्पसमा बभूवुः ॥ ११ ॥ तानाविदन्मय्यनुषंगबद्धधियः स्वमात्मानमदस्त
थेदम्। यथासमाधौ मुनयोऽब्धितोये नद्यःप्रविष्टाइवनामरूपे ॥ १२ ॥ मत्कामार·

श्री भगवान ने कहा कि—हेसखे ! सर्वके संगका निवृत्त करनेवाला साधुसंग मुझको जैसा वशीभूतकरता है, योग, ज्ञान, धर्म, वेदाध्ययन, तपस्या, दान, कुवा, बावडी आदि का बनाना, दक्षिणा, व्रत, देवार्चना, गोपनीयमन्त्र, तीर्थों में भ्रमणकरना, नियम और यम इनमें से कोई भी मुझको वैसा वशनहीं करसकता ॥ १—२ ॥ हे उद्धव ! दैत्य, राक्षस, पक्षी, मृग, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, विद्याधर,—विशेष २ युगमें मनुष्यों में से रज और तमकी प्रकृति वाले वैश्य, शूद्र, स्त्री और अन्त्यज यह भी केवल सत्संग से मुझको प्राप्तहुए हैं ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ वृत्रासुर और प्रह्लादादि तथा वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मयदानव, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, जाम्बवान, गज, जटायुगीध, तुलाधार, वैश्य, व्याध, कुब्जा, व्रजगोपियें और यज्ञपत्नी, और भी अनकों ने सत्संग के कारण मेरे पदको प्राप्तकिया है ॥ ५—६ ॥ इन्होंने श्रुति का पाठ नहीं किया, बडे महात्माओं की उपासना भी नहीं की, व्रताचरण व तपस्याभी नहींकी, केवल साधुसंगरूप मेरेही संग वश मुझको प्राप्तकिया है ॥ ७ ॥ गोपियें, गौयें, यमलार्जुनादि, मृगगण, कालियादि नागगण, और दूसरे भी अनेक मूर्खों ने केवल प्रीति द्वाराही कृतार्थ होकर स्वच्छन्दता से मुझको प्राप्त किया है ॥ ८ ॥ जिस स्वरूपको यत्नवान होनेपरभी योग, ज्ञान, दान, व्रत, तपस्या, यज्ञ, व्याख्या, वेदाध्ययन, और सन्यास द्वारा मनुष्य मुझको नहीं पासकते। उस स्वरूप को सत्संगद्वारा यह पूर्वोक्त प्राणी प्राप्तहुए हैं ॥ ९ ॥ जब अक्रूर राम सहित मुझ को मथुरा ले गये तब दृढ प्रेमके बशसे मुझमें अनुरक्त हृदय, मेरे वियोग के दुःखसे अत्यन्त दुःखी गोपियोंको और कुछभी पदार्थ सुखदायी न जानपडा ॥ १० ॥ उन्होंने वृन्दावन में गौचरानेवाले मुझ प्यारे के साथ जिन २ रात्रियों को आधे क्षणकी समान बितायाथा; अहो ! मेरे विरह से उनको वही रात्रियें कल्पकी समान होगई ॥ ११ ॥ जैसे समाधि के समय मुनिजनोंको नाम और रूपका आभास नहीं रहता वैसेही आसक्ति के कारण मुझमें चित्त लगाये हुए उन गोपियों को भी निकटस्थ और दूरस्थ अपने देह का भान न रहा। किंतु जैसे समुद्र में नदियें मिलजाती हैं वैसेही मेरे स्वरूप में लीन होगई ॥ १२ ॥ इस प्रकार उनकी केवल मुझमें इच्छा

मणं जारमस्वरूपविदोऽबलाः । ब्रह्म मां परमं प्रापुः संगाच्छतसहस्रशः ॥ १३ ॥ त-
स्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम् । प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ।
॥ १४ ॥ मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम् । याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्य-
कुतोभयः ॥ १५ ॥ उद्धव उवाच । संशयः शृण्वतो वाचं तव योगेश्वरेश्वर । न निव-
र्तत आत्मस्थो येन भ्राम्यति मे मनः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच । स एष जीवो विवरप्र-
सूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः । मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थवि-
ष्ठः ॥ १७ ॥ यथाऽनलः खेऽनिलबन्धुरूष्मा बलेन दारुण्यधिमथ्यमानः । अणुः
प्रजातो हविषा समिध्यते तथैव मे व्यक्तिरियं हि वाणी ॥ १८ ॥ एवं गदिः कर्म गतिर्वि-
सर्गो घ्राणो रसो दृक् स्पर्शः श्रुतिश्च । संकल्पविज्ञानमथाभिमानः सूत्रं रजः सत्त्वतमो
विकारः ॥ १९ ॥ अयं हि जीवस्त्रिवृदब्जयोनिरव्यक्त एको वयसा स आद्यः । वि-
श्लिष्टशक्तिर्बहुधेव भाति बीजानि योनिं प्रतिपद्य यद्वत् ॥ २० ॥ यस्मिन्निदं प्रोतमशे-
षमोतं पटो यथा तन्तुवितानसंस्थः । य एष संसारतरुः पुराणः कर्मात्मकः पुष्पफले प्र-
सूते ॥ २१ ॥ द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः पञ्चस्कन्धः पञ्चरसप्रसूतिः ॥ दशैक-
शाखो द्विसुपर्णनीडस्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्कं प्रविष्टः ॥२२॥ अदन्ति चैकं फलमस्य गृध्रा
ग्रामेचरा एकमरण्यवासाः । हंसा य एकं बहुरूपमिज्यैर्मायामयं वेद स वेद वेदम् ॥

थी वे स्वरूप को नहीं जानती थीं, तौ भी इस प्रकार सहस्र सहस्र स्त्रियें साधुसंग के कारण, उपपातिकी बुद्धि होने परभी परब्रह्म स्वरूप मुझको प्राप्त हुईथीं ॥ १३ ॥ अतएव हे उद्धव ! श्रुति, स्मृति, निवृत्ति, और श्रोतव्य तथा श्रुत विषयों को छोड सब प्राणियों के आत्मरूप केवल मेरीही एकाग्रभक्ति से शरणले मेरे द्वाराही निडरहो ॥ १४—१५ ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे योगेश्वरों के ईश्वर ! जिन सन्देहों द्वारा मन अत्यन्त भ्रमित होरहा है वह मेरा आत्मा में स्थित हुआ सन्देह आपके वचन सुनकर इससमयभी नहीं दूरहुआ ॥ १६ ॥ श्रीभगवानने कहाकि—चक्र समुदाय के मध्यमें जिसका प्रकाश है वेही अपरोक्ष परमेश्वर नाद युक्त प्राणों समेत गुफामें प्रवेशकर सूक्ष्ममनोमय रूप को प्राप्तहो मात्रा, स्वर और वर्ण,—इस रूपसे अत्यन्त स्थूल होते रहते हैं ॥१७॥ जैसे आकाश में स्थित उष्मारूप अग्नि बलपूर्वक काष्ठ में मथन करनेसे पवनकी सहायता से छोटी चिनगारी रूप प्रगट होताहै फिर वही घृतके योग से बढजाताहै, इसहीप्रकार यह वाक्यभी मेरा प्रकाश है॥१८॥इसहीप्रकार वचन,कर्म,गति,विसर्जन,घ्राण,रसन,दर्शन,स्पर्शन, श्रवण,संकल्प,विज्ञान,अभिमान,सूत्र और सत्व,रज तथा तमोगुणका विकार मेरा प्रकाश है॥१९॥ यह परमेश्वर आदि में अव्यक्त व एकमात्र थे, बीज जैसे क्षेत्रको पाकर अनेक प्रकारका होजाता है वैसेही वह भी सब शक्तियों से विभक्त हो मानों अनेकों रूपसे प्रतीत होते हैं क्योंकि वह त्रिगुणके आश्रय पद्मयोनि हैं ॥ २० ॥ ॥ जैसे वस्त्र तन्तुओं में ओत प्रोतभाव से रहता है, और तन्तुओं से अलग नहीं है, ऐसेही यह जगत् ईश्वर में है, ईश्वर से भिन्न नहीं है । यह अनादि प्रवृत्ति स्वभाव वाला संसाररूपी वृक्षभोग और मुक्तिरूपदो फूल और फल उत्पन्न करता है ॥ २१ ॥ पुण्य और पाप इस वृक्षके दो बीज हैं, अपरिमित वासनायें इसकी जड हैं, तीनगुण इस के काण्ड; पंचभूत इसके स्कंध; और शब्द स्पर्शादि इसके पांचरस हैं ग्यारह इन्द्रियें इसकी शाखा, जीवात्मा और परमात्मारूप दो सुन्दर पक्षवाले पक्षी, इसमें घोसला बनाये हुए हैं; वात, पित्त और कफ इसके तीन वल्कल हैं, सुख दुःख दो पकेहुए फल हैं यह वृक्ष सूर्य मण्डलतक फैलाहुआ है ॥ २२ ॥ गृहस्थकामी इसका दुःखरूपफल और वनवासी योगी सुखरूप फलका भक्षण करते हैं । जो पूज्यगुरुकी सहायता से एकको मायामयहोने के कारण बहुतरूपसे जाने वही

॥ २३ ॥ एवंगुरूपासनयैकभक्त्या विद्याकुठारेणशितेनधीरः । विवृश्च्यजीवाशय मप्रमत्तः संपद्य चात्मानमथ त्यजास्त्रम् ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीभगवानुवाच । सत्त्वंरजस्तमइति गुणाबुद्धेर्नचात्मनः । सत्त्वेनान्यतमौ ह-न्यात्सत्त्वंसत्त्वेनचैवहि ॥ १ ॥ सत्त्वाद्धर्मोभवेद्वृद्धात्पुंसो मद्भक्तिलक्षणः । सात्त्वि कोपासयासत्त्वं ततोधर्मःप्रवर्तते ॥ २ ॥ धर्मोरजस्तमो हन्यात्सत्त्ववृद्धिरनुत्तमः । आशुनश्यतितन्मूलो ह्यधर्मउभयेहते ॥ ३ ॥ आगमोऽपःप्रजादेशः कालःकर्मचज-न्मच । ध्यानंमन्त्रोऽथसंस्कारो दशैतेगुणहेतवः ॥ ४ ॥ तत्तत्सात्त्विकमेवैषां यद्य द्वृद्धाःप्रचक्षते । निन्दन्तितामसं तत्तद्राजसंतदुपेक्षितम् ॥ ५ ॥ सात्त्विकान्येव-सेवेत पुमान्सत्त्वविवृद्धये । ततोधर्मस्ततोज्ञानं यावत्स्मृतिरपोहनम् ॥ ६ ॥ वेणुसं घर्षजोवह्निर्दग्ध्वा शाम्यतितद्वनम् । एवंगुणव्यत्ययजो देहः शाम्यति तत्क्रियः । ॥ ७ ॥ उद्धव उवाच । विदन्तिमर्त्याःप्रायेण विषयान्पदमापदाम् ॥ तथापिभुंजते कृष्ण तत्कथंश्वखराजवत् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच । अहमित्यन्यथाबुद्धिः प्रमत्त-स्ययथाहृदि । उत्सर्पतिरजोघोरं ततोवैकारिकंमनः ॥ ९ ॥ रजोयुक्तस्यमनसः संकल्पःसविकल्पकः । ततःकामोगुणध्यानाद्दुःसहः स्याद्धिदुर्मतेः ॥ १० ॥ क रोतिकामवशगः कर्माण्यविजितेन्द्रियः ॥ दुःखोदर्काणि संपश्यन्रजोवेगविमोहि-तः ॥ ११ ॥ रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान्विक्षिप्तधीःपुनः । अतन्द्रितोमनो युञ्जन्दो

तत्त्वार्थ का जानने वाला है ॥ २३ ॥ अतएव तुम इस प्रकार एकांत.भक्तिसे गुरुकी उपासना से उत्पन्नहुए.भक्तियोग द्वारा तीक्ष्णहुए विद्यारूपी कुल्हाडे से सावधानहो जीवोपाधिलिंग शरीर का छेदनकर परमात्मा में लीनहो सब साधनाओं को छोडदो ॥ २४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीभगवान बोले कि—सत्व,रज और तम यह समस्त गुण बुद्धिके हैं;—आत्माके नहीं । सत्व द्वारा अन्य दो गुणोंको और सत्वको सत्व मारना चाहिये ॥ १ ॥ बढे हुए सत्वसे मनुष्यको मेरा भक्तिरूप धर्म उत्पन्न होता है; सात्विक पदार्थों के सेवन से सत्वकी वृद्धि होती है; उससे फिर धर्म में प्रवृत्ति होती है ॥ २ ॥ सत्वसे बढे हुए सर्वोत्तम धर्म द्वारा रज और तमका नाश होता है उनके नाश होतेही उनकी जड अधर्मका शीघ्रही नाश होजाता है ॥ ३ ॥ शास्त्र, जल, जन, देश, काल, कर्म, जन्म, ध्यान, मंत्र और संस्कार ये दशों पदार्थ तीनो गुणोंकी वृद्धिके कारण हैं ॥ ४ ॥ इन पदार्थोंमें से वृद्ध पुरुष जिनकी प्रशंसा करते हैं वही सात्विक हैं जिनकी निंदा करते हैं वह तामस हैं, और जिनकी निंदा व प्रशंसा कुछकी नहीं करते वह राजस हैं ॥ ५ ॥.सत्वके बढाने के निमित्त मनुष्यको सात्विक शास्त्रादिकोंका सेवनकरना चाहिये.इससे धर्म होताहै और स्मृति के गुणोंके नाश पर्यंत ज्ञानकी उत्पत्ति होती है ॥ ६ ॥ बांससे उत्पन्न हुई अग्नि उस बनको नाश करके शान्ति होती है; ऐसेही गुणों से उत्पन्न हुआ देह निज से उत्पन्न हुई विद्या द्वारा गुणों को नाश करके आपभी शांत होजाता है ॥ ७ ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे कृष्ण ! मनुष्य अनेकों विषयों को आपत्ति का स्थान विचारते हैं; तौभी क्यों कुत्ते, गधे और बकरेकी समान उन सब विषयोंका उपभोग करते हैं ॥.८ ॥ भगवानने कहा कि—अविवेकी मनुष्यके हृदयमें जो 'मैं' यह मिथ्याज्ञान उत्पन्न होता है उससे सत्व प्रधान मनका दुःखात्मक रजोगुणसे सम्बंध होता है ॥ ९ ॥ रजो युक्त मनसे.संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं; इस विषय चिन्ता से उत्पन्न हुए दुःसह कामकी प्रवृत्ति होती है ॥ १० ॥.रजोगुण से मोहित कामके वशीभूत, अजितेन्द्रिय, दुर्बुद्धि मनुष्यकर्मोंको दुःखदायी समझकरभी उनको करतारहता है ॥ ११ ॥ रजोगुणसे और तमोगुणसे मूढ

पश्यन्नपि न सज्जते ॥ १२ ॥ अप्रमत्तोऽनुयुञ्जीत मनो मय्यर्पयञ्छनैः । अनिर्विण्णो यथाकालं
जितश्वासो जितासनः ॥ १३ ॥ एतावान्योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः सर्वतो
मन आकृष्य मय्यद्धाऽऽवेश्यते यथा ॥ १४ ॥ उद्धव उवाच ॥ यदा त्वं सनकादिभ्यो येन
रूपेण केशव । योगमादिष्टवानेतद्रूपमिच्छामि वेदितुम् ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पुत्रा
हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनकादयः । पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यैकान्तिकीं गति
म् ॥ १६ ॥ सनकादय ऊचुः ॥ गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो । कथम
न्योन्यसन्त्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं पृष्टो महादे
वः स्वयम्भूर्भूतभावनः । ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः ॥ १८ ॥ स माम
चिन्तयद्देवः प्रश्नपारतितीर्षया । तस्याहं हंसरूपेण सकाशमगमं तदा ॥ १९ ॥
दृष्ट्वा मां त उपव्रज्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् । ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा पप्रच्छुः को भवा
निति ॥ २० ॥ इत्यहं मुनिभिः पृष्टस्तत्त्वजिज्ञासुभिस्तदा । यदवोचमहं तेभ्यस्तदु
द्धव निबोध मे ॥ २१ ॥ वस्तुनो यद्यनानात्व आत्मनः प्रश्न ईदृशः । कथं घटेत वो विप्रा
वक्तुर्वा मे क आश्रयः ॥ २२ ॥ पञ्चात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः । को भवानि
ति वः प्रश्नो वाचारम्भो ह्यनर्थकः ॥ २३ ॥ मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रि
यैः । अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा ॥ २४ ॥ गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्च
तसि च प्रजाः । जीवस्य देह उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः ॥ २५ ॥ गुणेषु चाविशच्चि

बुद्धि होकरभी विद्वानमनुष्य उसमें दोष देख निरालस्य भावसे चित्तकी वृत्तिको रोककर उसमें लिप्त नहीं
होता ॥ १२ ॥ वह सावधान और आलस्य रहित होकर समयानुसार जितश्वास और जितासन
हो मुझ में चित्त लगाय धीरे २ समाधिस्थ होता है ॥ १३ ॥ मनके समस्त विषयों का नाशकर
साक्षात् मुझमेंही मनको लगादेवे, इसी मुख्य योग का मैंने अपने शिष्य सनकादिकों को उपदेश
किया है ॥ १४ ॥ उद्धव जीने कहा कि—हे केशव ! आपने जिस समय जिसरूप से इस योग
का सनकादिक ऋषियों से उपदेश कियाथा मैं उसी रूप और उसीसमयके जानने का अभिलाषी
हूं ॥ १५ ॥ श्रीभगवान ने कहा कि—ब्रह्माजी के मनसे उत्पन्नहुए सनकादिक ऋषियों ने एकसमय
पिता से योगसम्बन्धी दुर्ज्ञेय परमतत्त्व का पूछा ॥ १६ ॥ योगियों ने कहा,—हे प्रभो ! चित्त सब
विषयों में और विषय मनमें प्रवेश करते हैं। अब विषयों का त्यागनेवाला मुमुक्षु मनुष्य परस्पर
इन दोनों को किसप्रकार पृथक् करे ? ॥ १७ ॥ श्रीभगवान ने कहा कि—भूतभावन भगवान
ब्रह्माजी इसप्रकार जिज्ञासित हो विचारने लगे परन्तु उनकी बुद्धि दूसरे कामों में लगीथी इससे
विचार करने परभी इस प्रश्न के सार को न समझ सके ॥ १८ ॥ उन देव ने प्रश्नसे पार होनेके
अभिलाषीहो मेरा ध्यान किया; मैं उस समय हंस रूप से उनके निकटआया ॥ १९ ॥ वेसबमुझ
को देखकर उठ खड़ेहुए और ब्रह्माको आगेकर चरणों की वन्दना करके पूछनेलगे कि आप कौन
हो ? ॥ २० ॥ हे उद्धव ! जब तत्त्व जाननेवाले मुनियों ने मुझ से इसप्रकार पूछा तब जोकुछ मैंने
उनसे कहा था वह सुनो ॥ २१ ॥ हंसने कहा;—हे विप्रो ! तुम्हारी यह प्रश्न यदि आत्मा के
सम्बन्धी है, तो जब परमात्म-स्वरूप सत्पदार्थ का अनेकत्व नहीं है तब इसप्रकार का प्रश्नही
होना असम्भव है। मैं किसका आश्रय करके उत्तर दूं ॥ २२ ॥ और जो यदि पञ्चभूत संबन्धी
प्रश्न है तो जब पंचात्मक समस्त भूत वास्तव मेंही अभिन्न हैं, तब 'आप कौनहो,' तुम्हारा यह
प्रश्न सर्वथा निरर्थक है ॥ २३ ॥ मन, वाक्य, दृष्टि और अन्यान्य इन्द्रियों द्वाराभी जो २ संगृहीत
होता है वह सबही मैं हूं, मुझमें अन्य कुछ नहीं है, इसको तुम तत्त्व विचारसे समझ देखो ।
॥ २४ ॥ हे पुत्रो ! विषयोंमें प्रवेश करने वाला चित्त और चित्तमें प्रवेश करने वाले विषय यह
दोनोंही मेरे आत्मा जीव की उपाधि हैं ॥ २५ ॥ बारम्बार गुणों के सेवन करने से जो चित्त

त ममीक्ष्णं गुणसेवया । गुणाश्च चित्तप्रभवा मद्रूप उभयं त्यजेत् ॥ २६ ॥ जाग्रत्स्व
प्न सुषुप्तं च गुणतो बुद्धिवृत्तयः । तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन विनिश्चितः ॥ २७ ॥
यर्हि संसृतिबन्धोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः । मयि तुर्ये स्थितो जह्यात्त्यागस्तद्गुणचेत
साम् ॥ २८ ॥ अहंकारकृतं बन्धमात्मनोऽर्थविपर्ययम् ॥ विद्वान्निर्विद्य संसारचि
न्तां तुर्ये स्थितस्त्यजेत् ॥ २९ ॥ यावन्नानार्थधीः पुंसो न निवर्तेत युक्तिभिः । जाग-
र्त्यपि स्वपन्नज्ञः स्वप्ने जागरणं यथा ॥ ३० ॥ असत्त्वादात्मनोऽन्येषां भावानां तत्कृ-
ता भिदा । गतयो हेतवश्चास्य मृषा स्वप्नदृशो यथा ॥ ३१ ॥ यो जागरे बहिरनुक्षण
धर्मिणोऽर्थान्भुङ्क्ते समस्तकरणैर्हृदि तत्सदृक्षान् । स्वप्ने सुषुप्त उपसंहरते स एकः स्मृ
त्यन्वयात्त्रिगुणवृत्तिदृगिन्द्रियेशः ॥ ३२ ॥ एवं विमृश्य गुणतो मनसस्त्र्यवस्था म
न्मायया मयि कृता इति निश्चितार्थाः । संछिद्य हार्दमनुमानसदुक्तितीक्ष्णज्ञानासि
ना भजत माखिलसंशयाधिम् ॥ ३३ ॥ ईक्षेत विभ्रममिदं मनसो विलासं दृष्टं विन
ष्टमतिलोलमलातचक्रम् । विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति माया स्वप्नस्त्रिधा गुणविसर्ग
कृतो विकल्पः ॥ ३४ दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्णस्तूष्णीं भवेन्निजसुखानुभवो निरी
हः । संदृश्यते क्व च यदीदमवस्तुबुद्ध्या त्यक्तं भ्रमाय न भवेत्स्मृतिरानिपातात् ॥ ३५ ॥
देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् । दैवादपे

गुणों में प्रविष्ट होता है; और वासना रूप से चित्त में उत्पन्नहुए गुण इन दोनों को मत्स्वरूप हो त्याग करना चाहिए ॥ २६ ॥ जागरण स्वप्न और सुषुप्ति यह अवस्थायें बुद्धिकी वृत्तियें हैं और जो गुणों से उत्पन्न हुई हैं; जीव तो उन अवस्थाओं का साक्षी है इसमे वह अवस्थाओंसे रहित है ऐसा जानना ॥ २७ ॥ बुद्धि का बन्धनही आत्माकी वृत्ति का सञ्चालक है; अतएव तुरीय स्वरूप मुझ में अवस्थितहो इस बुद्धिके बंधन का त्याग करना चाहिए ॥ २८ ॥ जबऐसा होता है तभी गुण और चित्त परस्पर पृथक् होजाते हैं। अहंकार से उत्पन्नहुए बंधन को आत्मा के अनर्थ का मूल जान कर बुद्धिमानहो मुझ तुरीय स्वरूपमें अवस्थिति कर अहंज्ञानको त्याग देय ॥ २९ ॥ जबतक युक्तिद्वारा मनुष्यकी नानात्व बुद्धि दूर न होवे, तबतक स्वप्न जागरणकी समान भली प्रकार से दर्शन न होनेपर उस जागने को भी निद्राही जानो; ॥ ३० ॥ कोई पदार्थ आत्मासे भिन्न नहीं है, इसलिए पदार्थ समूह उसके भेद हैं जिसप्रकार स्वप्न सम्बन्ध देहादिकके कियेहुए भेद, फल और कर्म मिथ्याहैं एमही आत्माके जो गुण पूर्व कहेगये हैं वे सबमिथ्याहैं ॥ ३१ ॥ जो जागरण कालमें बाहरमार्गमें समस्त इन्द्रियोंद्वारा क्षणभंगुर विषयोंका भोगकरताहै जो स्वप्नावस्था में हृदयमें उसके अनुसार सब विषयोंका भोग करताहै और जो सुषुप्ति समयमें सब विषय भोगों से रहित रहताहै वह एकहै; स्मृतिका सम्बन्ध रहनसे वह तीनोंअवस्थाओं का दृष्टाहै ॥ ३२ ॥ मनकी यह तीन अवस्थायें मेरीमायाके गुणोंद्वारा मुझमेंही रचीहुई हैं,—इसप्रकारका विचार करते हुए तुम आत्मरूप अर्थका निश्चयकर तुम अनुमान और सदुक्तियोंसे तीक्ष्ण ज्ञान खड्ग द्वारा समस्त संशयों के आश्रय अहंकार का नाशकर हृदय में स्थित मेरा भजन करो ॥ ३३ ॥ मनद्वारा प्रकाशित, दृष्ट, नाशवान अलात—चक्र (बनेठी) की समान अत्यन्त चलायमान इस विश्व को विभ्रम स्वरूप से देखे; एक विज्ञानही बहुत रूप से प्रकाशित होता है; अतएव गुणों के परिणाम से उत्पन्नहुए तीनों प्रकारका संकल्पही माया मात्र है कि जैसे स्वप्न ॥ ३४ ॥ दीखते हुए विश्व से दृष्टि को खींचकर तृष्णा को त्याग चेष्टाको छोड़ अपने सुखानुभव में तत्पर होना चाहिए। यदि आहार आदि आवश्यक कार्यों में द्वैत देखने में आवे तोभी ' यह पदार्थ नहीं है ' यह विचार उसको पहिले सेही त्याग दिया तो भ्रम का कारण नहीं होसकता; शरीर के नाशहोने तक स्मृति रहती है ॥ ३५ ॥ जिसके द्वारा स्वरूप को जानसकते हैं वह नाशवान देह बैठाहो,

तमुतदैववशादुपेतं वासोयथापरिकृतंमदिरामदान्धः ॥ ३६ ॥ देहोऽपिदैववश
गःखलुकर्मयावत् स्वारम्भकंप्रतिसमीक्षतएवसासुः । तंसप्रपंचमधिरूढसमाधि
योगः स्वाप्नंपुनर्नभजतेप्रतिबुद्धवस्तुः ॥ ३७ ॥ मयैतदुक्तंवोविप्रा गुह्यंयत्सांख्य
योगयोः । जानीतमागतंयज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया ॥३८॥ अहंयोगस्यसांख्यस्य स
त्यस्यर्तस्यतेजसः । परायणंद्विजश्रेष्ठाः श्रियःकीर्तेर्दमस्यच ॥ ३९ ॥ मांभजन्ति
गुणाःसर्वे निर्गुणंनिरपेक्षकम् । सुहृदंप्रियमात्मानं साम्याऽसङ्गादयोगुणाः ॥४०॥
इतिमेछिन्न संदेहा मुनयःसनकादयः । सभाजयित्वापरया भक्त्यागृणतसंस्तवैः
॥ ४१ ॥ तैरहंपूजितःसम्यक् संस्तुतःपरमर्षिभिः । प्रत्येयायस्वकंधाम पश्यतः
परमेष्ठिनः ॥ ४२ ॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

उद्धवउवाच ॥ वदन्तिकृष्णश्रेयांसि बहूनिब्रह्मवादिनः । तेषांविकल्पप्राधा
न्यमुताहोएकमुख्यता ॥ १ ॥ भवतोदाहृतःस्वामिन् भक्तियोगोनपेक्षितः । निर
स्यसर्वतःसंगं येनत्वय्याविशेन्मनः ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कालेनष्टाप्रलये
वाणीयंवेदसंज्ञिता । मयादौब्रह्मणेप्रोक्ता धर्मोयस्यांमदात्मकः ॥ ३ ॥ तेनप्रोक्ता
स्वपुत्राय मनवेपूर्वजायसा । ततोभृग्वादयोऽगृह्णन् सप्तब्रह्ममहर्षयः ॥ ४ ॥ ते
भ्यःपितृभ्यस्तत्पुत्रा देवदानवगुह्यकाः । मनुष्याःसिद्धगन्धर्वाः सविद्याधरचार
णाः ॥ ५ ॥ किंदेवाःकिन्नरानागा रक्षःकिंपुरुषादयः । बह्वयस्तेषांप्रकृतयो रजः

सड़ाहो, दैवाधीन से स्थानें भ्रष्टहोहो,तथा स्थान से चाहे निवृत्तहोहो;परन्तु जैसे मदिरा के मदसे अन्धा मनुष्य अपने छूटेहुएवस्त्रों को भी नहीं देखपाता·उसी प्रकार सिद्धमनुष्य भी उसको (देह को) नहीं देखते ॥ ३६ ॥ शरीरभी दैव के वशवर्त्तीहो अपने प्रारब्ध कर्म के हेतु चलताहुआ प्राण इंद्रिययुक्तहो जीवित रहता है । जो समाधि योग को प्राप्त हुए हैं अतएव परमार्थ वस्तु को जानसकते हैं वह स्वप्न की समान प्रपंचवाली इस देह में आसक्त नहीं होते ॥ ३७॥हेविप्रो! सांख्ययोग का रहस्य विषय यही है, मैंने तुमसे कहा;मुझको विष्णुजानो तुमसे धर्म कहनेकोही मैं आयाहूं ॥ ३८ ॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! मैं योग, ज्ञान, धर्मप्रमाण, धर्मानुष्ठान, तेज, श्री, कीर्ति और दमकी परम गतिहूं ॥ ३९ ॥ मैं निर्गुण, अपेक्षा रहित, सबकाबन्धु, प्रिय और आत्मारूपईश्वर हूं मुझमें समता और असंगादि नित्यगुण हैं इससे मेरे वचनों में दृढ़ विश्वासरक्खो ॥ ४० ॥ मेरे द्वारा इसप्रकार से संदेह रहितहो सनकादि मुनियों ने परम भक्तिसे पूजाकर मेरी नानाप्रकारकी स्तुति कीथी ॥ ४१ ॥ मैं इन सब परम ऋषियों से भली प्रकार पूजित और सम्मानितहो ब्रह्माके देखते २ अपने धामको लौटगयाथा ॥ ४२ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांत्रयोदशोऽध्याय: ॥ १३ ॥

उद्धवजी ने कहा—हे कृष्ण ! ब्रह्मवादीलोग मुक्ति के साधन का निर्देश किया करते हैं उन में से क्या एकही साधन प्रधान है ॥ १ ॥ हे स्वामिन् ! आपने निष्काम भक्तियोग कहा है; इसही के द्वारा मन निःसंगहो आपमें प्रविष्ट होता है ॥ २ ॥ श्रीभगवान ने कहा—प्रलयकाल में नष्ट होने वाली मेरी वाणी कि जो वेद में पाई जाती है उसको मैंने पहिले ब्रह्माजी से कहाथा; जिसके द्वारामुझमें चितलगै वही धर्म इन सब में प्रधान है । वही धर्म ब्रह्माजीने अपने जेठे पुत्र मनुसे कहाथा; इनसे भृगुआदि सप्त ब्रह्मर्षियों ने ग्रहणकिया ॥ ३—४ ॥ उन सब प्रजापतियों के निकटसे उनके पुत्र देव, दानव, गुह्यक, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, किंदेव, किन्नर, नाग, राक्षस और किम्पुरुषादिकों को वह प्राप्त हुआ । रज, सत्व और तमोगुण से उत्पन्न

सत्त्वरजस्तमोभुवः ॥ ६ ॥ याभिर्भूतानि भिद्यन्ते भूतानांपतयस्तथा । यथाप्रकृतिसर्वे-
षां चित्रावाचःस्रवन्तिहि ॥ ७ ॥ एवंप्रकृतिवैचित्र्याद्भिद्यन्तेमतयोनृणाम् । पार
म्पर्येणकेषांचित् पाखण्डमतयोपरे ॥ ८ ॥ मन्मायामोहितधियः पुरुषाःपुरुषर्षभ ।
श्रेयोवदन्त्यनेकान्तं यथाकर्मयथारुचि ॥ ९ ॥ धर्ममेकेयशश्चान्ये कामंसत्यंदमं
शमम् । अन्येवदन्तिस्वार्थंवा ऐश्वर्यंत्यागभोजनम् ॥१०॥ केचिद्यज्ञतपोदानं व्रता
निनियमान्यमान् । आद्यन्तवन्तएवैषां लोकाःकर्मविनिर्मिताः । दुःखोदर्कास्तमोनि
ष्ठाः क्षुद्रानन्दाःशुचार्पिताः ॥ ११ ॥ मय्यर्पितात्मनःसभ्य निरपेक्षस्यसर्वतः । म
यात्मनासुखंयत्तत् कुतःस्याद्विषयात्मनाम् ॥ १२ ॥ अकिंचनस्यदान्तस्य शान्त
स्यसमचेतसः । मयासंतुष्टमनसः सर्वाःसुखमयादिशः ॥ १३ ॥ नपारमेष्ठ्यंनम
हेन्द्रधिष्ण्यं नसार्वभौमंनरसाधिपत्यम् । नयोगसिद्धीरपुनर्भवंवा मय्यर्पितात्मे
च्छतिमद्विनान्यत् ॥ १४ ॥ नतथामेप्रियतमआत्मयोनिर्नशंकरः । नचसंकर्षणोन
श्रीर्नैवात्माचयथाभवान् ॥ १५ ॥ निरपेक्षंमुनिंशान्तं निर्वैरंसमदर्शनम् । अनुव्र
जाम्यहंनित्यं पूयेयेत्यंघ्रिरेणुभिः ॥ १६ ॥ निष्किंचनामय्यनुरक्तचेतसः शान्ता
महान्तोऽखिलजीववत्सलाः । कामैरनालब्धधियोजुषन्ति यत्तन्नैरपेक्ष्यंनविदुः
सुखंमम ॥ १७ ॥ बाध्यमानोऽपिमद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः । प्रायःप्रगल्भया
भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥१८॥ यथाग्निःसुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसिभस्मसात् ।

हुई उनकी अनेकों वासनायें हैं ॥ ५—६ ॥ इन्हीं सबके द्वारा भूत और भूतपतिगण परस्पर बँटे हुए हैं वे सब प्रकृति के अनुसार से नाना वाक्योंद्वारा प्रयुक्त होते रहते हैं । प्रकृतिके ऐसे अनेकों प्रयुक्त होने से सब मनुष्योंकी बुद्धि भिन्न २ होती है ॥ ७ ॥ इस प्रकार कितने एक मनुष्यों की बुद्धि स्वभावकी विचित्रता के हेतु पृथक् होती है, तथा परस्पर एक दूसरे के उपदेश द्वारा कभी २ बुद्धि भेद होता है और पाखण्डबुद्धि उत्पन्न होती है ॥ ८ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! मेरी मायासे मोहितहुए मनुष्य कर्म और रुचिके अनुसार नानाप्रकार के कल्याणकारी साधनों को करते रहते हैं ॥ ९ ॥ कोई धर्मको, कोई यश, काम, सत्य, दम और शमको,—दूसरे कुछेक ऐश्वर्य, दान और भोजनको,—कोई २ यज्ञको कोई तपस्या, दान, व्रत, नियम और संयमकोही पुरुषार्थ कहते हैं ॥ १० ॥ इन सबलोगों को अपने २ कर्मानुसार लोकोंकफलस्वरूपता से मिलते हैं उनसब का ही परिणाम दुःख से भराहुआ, तुच्छ, मन्द, और शोकाकुल है ॥ ११ ॥ हेसभ्य ! जिन्होंने मुझमें आत्म समर्पण कियाहै और जोसबहीसे निष्काम हैं, आत्मस्वरूप मेरेद्वारा उनको जो सुख होता है विषयासक्त मनुष्योंको वह सुख कहां ? ॥ १२ ॥ जोअकिंचन, शांत,समदर्शी, जितेन्द्रिय और मेरे द्वारा सन्तुष्ट चित्त हैं उनको सबही दिशाएं सुखमय हैं ॥ १३ ॥ जिन्होंने मुझमें आत्म समर्पणकिया है वे मुझको छोडकर ब्रह्मपद, इन्द्रपद, चक्रवर्तिपद, पातालादि के आधिपत्य, योगसिद्ध वा मोक्ष,—इनमें से किसी की भी इच्छा नहीं करते ॥ १४ ॥ ब्रह्मा, शंकर, संकर्षण, लक्ष्मी और अपनी आत्माभी मुझे अपने भक्तों के समान प्रियनहीं है ॥ १५ ॥ मैं, चरणरज द्वारा पवित्रकरूं—इस इच्छासे निष्काम, शांत, वैरहीन, समदर्शीमुनियों के पीछे नित्य विचरण किया करता हूं ॥ १६ ॥ निष्किंचन, मुझमें अनुरक्त चित्त, शांत, निरभिमान, सब जीवोंके प्यारे, जिनके चित्तमें काम का स्पर्शभी नहीं हुआहै ऐसे मेरेभक्त जैसे सुखका भोग करते हैं, उसको वही जानते हैं दूसरा नहीं जान सकता; क्योंकि जो किसीकी अपेक्षा नहीं करते उन्हीं को वह प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ मेरे प्राकृत अजितेन्द्रियभक्त सब विषयों की ओर खिंचकर भी क्षमताशाली भक्ति के प्रभाव से प्रायः उन विषयों में लिप्त नहीं होते ॥ १८ ॥ हे उद्ध-

तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥ न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म
उद्धव । न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥ २१ ॥ भक्त्याऽहमेकया
ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् । भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात् ॥२२॥
धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता । मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक्प्रपुनाति
हि ॥२३॥ कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना । विनानन्दाश्रुकलया शुध्येद्भक्त्या
विनाऽऽशयः ॥ २४ ॥ वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ॥
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥२५॥ यथाऽग्निना हेम मलं
जहाति ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम् । आत्मा च कर्मानुशयं विधूय मद्भक्तियोगेन भ-
जत्यथो माम् ॥ २६ ॥ यथा यथात्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः ।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवाञ्जनसंप्रयुक्तम् ॥ २७ ॥ विषयान्ध्यायतश्चि
त्तं विषयेषु विषज्जते । मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥२८॥ तस्मादसद-
भिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथम् । हित्वा मयि समाधत्स्व मनो मद्भावभावितम् ॥२९॥
स्त्रीणां स्त्रीसंगिनां संगं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् । क्षेमे विविक्त आसीनश्चिन्तयेन्मामत-
न्द्रितः ॥३०॥ न तथाऽस्य भवेत्क्लेशो बन्धश्चान्यप्रसंगतः । योषित्संगाद्यथा पुंसो
यथा तत्संगिसंगतः ॥ ३१ ॥ उद्धव उवाच । यथा त्वामरविन्दाक्ष यादृशं वा यदात्म-
कम् । ध्यायेन्मुमुक्षुरेतन्मे ध्यानं त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच । सम आ-

---

प जैसे अत्यन्त प्रचण्ड अग्नि काठ समूहको जला डालती है तैसेही मेरी भक्तिभी समस्तपापोंको
जला डालती है ॥१९॥ हे उद्धव ! मुझ को मेरी भक्ति के अतिरिक्त याग, विज्ञान, वेदाध्ययन, तपस्या
और दानद्वारा कोई नहीं प्राप्त करसकता ॥२०॥ साधुओं का प्रिय आत्मा मैं श्रद्धायुक्त भक्ति द्वाराही
प्राप्त कियाजासकता हूं । मुझमें कीहुई भक्ति चाण्डालों को भी जातिदोषसे पवित्रकरती है ॥ २१ ॥
सत्य,—दयायुक्त धर्म वा तपायुक्त विद्या मेरी भक्ति रहित आत्मा को भलीप्रकार से पवित्रकरने
में असमर्थ है ॥ २२ ॥ रोमांच, मन की आर्द्रता और आनन्दाश्रु बिना किसप्रकार भक्ति जानीजाय
भक्ति बिना चित्त किसप्रकार शुद्ध होवे ? ॥ २३ ॥ जिसके वाक्य गद्गद और हृदय द्रवीभूतहो
जो बारम्बार रोवे, कभी हँसे, कभी निर्लज्जहो ऊंचेस्वरसे गावे और नृत्यकरे ऐसे मेरे भक्त त्रिलोक
को पवित्र करते हैं ॥ २४ ॥ जैसे सुवर्ण अग्नि से तपकर मैल को छोड़ फिर अपने रूपको प्राप्त
करता है तैसही आत्माभी मेरी भक्तियोग से कर्म वासनाओं को छोड़कर मेरी स्वरूपता को प्राप्त
करता है ॥ २५ ॥ अंजनलगाईहुई आंख की समान आत्मा मेरी पुण्यकथा को श्रवण औरकथन
द्वारा जिसप्रकारसे निर्मल होता है उसही प्रकार उसको सूक्ष्म पदार्थ देखने में आते हैं ॥ २६ ॥
जो विषयों की चिंता करते रहते हैं उनका चित्त विषयों मेंही आसक्त रहता है और जो मेरा
ध्यानकरते हैं विशेष कर उनका चित्त मुझमेंही लीन होता है ॥ २७ ॥ अतएव स्वप्न और मनो-
रथ की समान मिथ्या चिंताओं को छोड़ मेरे भजन से शुद्धहुए हुए चित्त को मुझमेंही स्थिरकरो
॥ २८ ॥ धीरहो स्त्रियों का और स्त्री संगी मनुष्यों का संग छोड़कर भय रहित निर्जनस्थान में
बैठ निरालस्य होकर मेरा ध्यानकरो ॥ २९ ॥ स्त्रियों के और स्त्री संगियों के संग से क्लेश होता
रहता है, दूसरे के साथ इसप्रकार का क्लेश नहीं होता इस निमित्त कामशास्त्र में कहेहुए मार्गों
को दूसरी ओर करदेना चाहिये ॥ ३० ॥ उद्धव ने कहा " हेकमल लोचन ! मुमुक्षु लोग जिस
प्रकार से आप का ध्यान करते हैं, सो मुझ से कहो ॥ ३१ ॥ भगवान ने कहा, कम्बलादिक का
समान आसन बनाय, शरीर को समानरख सुख सहित बैठ दोनों हाथों को उठायकर गोदी पर
धर, अपनी नासिका के अग्रभाग को देखता रहे ॥ ३२ ॥ फिर जितेन्द्रियहो पूरक, कुम्भक

सनमासीनः समकायो यथासुखम्। हस्तावुत्संगआधाय स्वनासाग्रकृतेक्षणः ३२॥
प्राणस्यशोधयन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः। विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः।
॥ ३३ ॥ हृद्यविच्छिन्नमोंकारं घण्टानादं बिसोर्णवत्। प्राणेनोदीर्यतत्राथ पुनःसंवे
शयेत्स्वरम् ॥ ३४ ॥ एवंप्रणवसंयुक्तं प्राणमेवसमभ्यसेत्। दशकृत्वस्त्रिषवणं मा
साद्र्वाग्जितानिलः ॥ ३५ ॥ हृत्पुण्डरीकमन्तस्थमूर्ध्वनालमधोमुखम्। ध्यात्वोर्ध्व
मुखमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥ ३६ ॥ कर्णिकायांन्यसेत् सूर्यसोमाग्नीनुत्तरोत्त-
रम्। वह्निमध्येस्मरेद्रूपं ममैतद्ध्यानमंगलम् ॥ ३७ ॥ ॥ समंप्रशान्तंसुमुखं दीर्घ-
चारुचतुर्भुजम्। सुचारुसुन्दरग्रीवं सुकपोलंशुचिस्मितम् ॥ ३८ ॥ समानकर्णवि
न्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डलम्। हेमाम्बरंघनश्यामं श्रीवत्सश्रीनिकेतनम् ॥ ३९ ॥ शं-
खचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम्। नूपुरैर्विलसत्पादं कौस्तुभप्रभयायुतम् ॥४०॥
द्युमत्किरीटकटककटिसूत्रांगदाऽऽयुतम्। सर्वांगसुन्दरंहृद्यं प्रसादसुमुखेक्षणम् ॥
॥४१॥ सुकुमारमभिध्यायेत् सर्वाङ्गेषु मनोदधत्। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसा
ऽऽकृष्यतन्मनः। बुद्ध्यासारथिनाधीरःप्रणयेन्मयिसर्वतः॥४२॥तत्सर्वव्यापकंचित्त
माकृष्यैकत्रधारयेत्। नान्यानि चिन्तयेद्भूयः सुस्मितंभावयेन्मुखम् ॥४३॥ तत्रलब्ध
पदं चित्तमाकृष्यव्योम्नि धारयेत्।तच्चत्यक्त्वामदारोहो नकिंचिदपिचिन्तयेत् ४४
एवंसमाहितमतिर्मामेवात्मानमात्मनि। विचष्टेमयि सर्वात्मन्ज्योतिर्ज्योतिषि संयु

और रेचकद्वारा प्राणपथका शोधन करे; फिर इन्द्रियोंको अपने२ विषयोंसे प्राणायामद्वारा खींचकर धीरे २ इसका अभ्यास करे ॥ ३३ ॥ अविच्छिन्न, घंटानाद की समान, हृदय में स्थित, कमल नाल के तंतु की समान ओंकार को प्राणवायु के द्वारा ऊपर को लेकर वहां उसका मस्तक में बिंदु संयोग करना चाहिये ॥ ३४ ॥ इसप्रकार ओंकार संयुक्त प्राणायाम तीनों संध्याओं में दश बार करे; ऐसा होनेसे एक मासमेंही प्राणवायु जयहोजावेगा ॥३५॥ जिसका नाल ऊपरको है और मुख नीचे को है उस हृदयस्थ हृत्कमल को ऊर्द्धमुख, विकशित, अष्टदल और कर्णिका सहित ध्यान कर, उस कर्णिका में सूर्य, चन्द्र और अग्नि का विचार करे। अग्निके बीच में मेरे वक्ष्य माण रूप का ध्यान करे; यही कल्याणकारी ध्यान है;—॥ ३६—३७ ॥ सुन्दर अवयवों युक्त, प्रशांत, सुमुख, दीर्घ मनोहर चारोंभुजाएं; अतिरम्य सुन्दर ग्रीवा, सुन्दर कपोल और मनोहर मुसकान सहित मुख है। दोनों कानों में मकराकृतकुण्डल, सुवर्ण कैसे रंगवाले वस्त्रों को पहिने घनश्यामवर्ण, श्रीवत्स और श्री चिह्नयुक्त हैं ॥३८—३९॥ शंख, चक्र, गदा, पद्म और वनमालासे अलंकृत व नूपुरद्वारा दोनोंचरण शोभायमानहैं और कौस्तुभमणि की प्रभा से शोभितहैं ॥ ४० ॥ कांतिशाली किरीट, कड़े, मेखला और भुजबन्ध धारण किये, सर्व अंगोंमें सुन्दर, मनोहर, प्रसन्नताके हेतु प्रफुल्लित मुख व सुन्दर नेत्र हैं ॥ ४१ ॥ इसप्रकार के अंगों का मनमें निश्चयकर इस सुकुमार रूप का ध्यान करे। धीर मनुष्य मनद्वारा इंद्रियों को इन्द्रियों के विषयोंसे खींच बुद्धिकीसहायता से उस मनको एकाग्रकर मुझमें लगावे ॥ ४२ ॥ उस सर्वव्यापक मनको खींचकर एक अंगमें लगावे और दूसरे अंगों का ध्यान छोड़ताजावे उसमें भी सबसे पीछे सुन्दर मन्दहास्ययुक्त मुख का ध्यानकरे ॥ ४३ ॥ जब मेरे मुख में चित्त भलीप्रकार से स्थिर होजाय तब उसको मुख में से खींच सर्वकारणस्वरूप आकाश में धारण करे, फिर उसको भी छोड़कर शुद्ध ब्रह्मस्वरूप मेरा अवलम्बनकर ध्याता और ध्येय के विभाग को भी त्यागदेवे ॥ ४४ ॥ चित्तके इसप्रकार स्थिर होने पर, जैसे ज्योति ज्योति में लीन होजाती है, उसही प्रकार आत्मा में मुझको और मुख में

तम् ॥ ४५ ॥ ध्यानेनेत्थंसुतीव्रेण युंजतोयोगिनोमनः । संयास्यत्याशु निर्वाणंद्रव्य ज्ञानक्रियाभ्रमः ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीभगवानुवाच । जितेन्द्रियस्ययुक्तस्य जितश्वासस्ययोगिनः । मयिधारय-तश्चेत उपतिष्ठन्तिसिद्धयः ॥ १ ॥ उद्धव उवाच । कयाधारणयाका स्वित्कथंवा सिद्धिरच्युत । कतिवासिद्धयोब्रूहि योगिनां सिद्धिदोभवान् ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवा च । सिद्धयोऽष्टादशप्रोक्ता धारणायोगपारगैः । तासामष्टौमत्प्रधाना दशैवगुणहे तवः ॥ ३ ॥ अणिमामहिमामूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः । प्राकाश्यंश्रुतदृष्टेषु शक्ति-प्रेरणमीशिता ॥ ४ ॥ गुणेष्वसंगोवशिता यत्कामस्तदवस्यति ॥ एतामेसिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मताः ॥ ५ ॥ अनूर्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन्दूरश्रवणदर्शनम् । म-नोजवःकामरूपं परकायप्रवेशनम् ॥६॥ स्वच्छन्दमृत्युर्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम् यथासंकल्पसंसिद्धिराज्ञाऽप्रतिहताऽऽगतिः ॥ ७ ॥ त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं परचित्ता-द्यभिज्ञता । अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टम्भोऽपराजयः ॥ ८ ॥ एताश्चोद्देशतःप्रो-क्ता योगधारणसिद्धयः । यथाधारणयायास्याद्यथावास्यान्निबोधमे ॥ ९ ॥ भूत-सूक्ष्मात्मनिमयि तन्मात्रंधारयेन्मनः । अणिमानमवाप्नोति तन्मात्रोपासकोमम ।१० महत्यात्मन्मयिपरे यथासंस्थंमनोदधत् । महिमानमवाप्नोति भूतानांचपृथक्पृथक्

आत्मा को देखे ॥ ४५ ॥ इसप्रकार तीक्ष्ण ध्यानद्वारा एकाग्रचित्त योगीका अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत रूप का द्रव्य, ज्ञान और क्रियाभ्रम शीघ्रही नष्टहोजाता है ॥ ४६ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांचतुर्दशोऽध्यायः १४ ॥

श्री भगवान ने कहा कि—जितेन्द्रिय, स्थिरचित्त, जित् प्राण, मुझमें धारण कियेहुए चित्त-वाले योगी के निकट समस्त सिद्धियें उपस्थित होती हैं ॥ १ ॥ उद्धवजी ने कहा, हे अच्युत ! किसधारणासे किसप्रकारकी कौनसी सिद्धि होती है, योगियोंकी कितनी सिद्धियें हैं, सो कहिये क्योंकि आप योगियों के सिद्धिदाता हो, ॥ २ ॥ श्रीभगवान ने कहा, योग वेत्ता ऋषियों ने सि द्धियें अठारह प्रकार की कही हैं, उनमें से आठ मेरे आश्रित हैं शेष दश सत्वगुणसे प्राप्त होने वाली हैं॥३॥देहकी सिद्धि तीनप्रकार की अणिमा महिमा और लघिमाहैं जो प्राप्तिनामकी सिद्धि है उसका सब प्राणियों की इन्द्रियों के और उनके अधिष्ठातृ देवताओं के साथ सम्बन्ध है । परलोकके तथा इसलोकके सब विषयों में भोग देखनेकी सामर्थ्यवाली सिद्धिका नाम प्रकाश्य है; ईश्वर में मायाकी और दूसरों में अंशो की प्रेरणाकी सामर्थवाली सिद्धिका नाम ईशिता है ॥४॥ विषयों के भोग में असंगवाली सिद्धि का नाम वशिताहै । और जिसकेद्वारा अभिलषित विषयोंकी सीमा प्राप्ति होती है, यह आठवीं (कामावसायिता) सिद्धि है । हे सौम्य ! यह आठ मेरी स्वाभाविक सिद्धियें हैं ॥५॥ इस देह में क्षुधा तृषादिकका नहीं होना, दूरसे सुनना, दूरसे देखना, जहां मनजाय वहां शरीरका पहुंचना, इच्छितरूपकी प्राप्ति, दूसरेके शरीरमें प्रवेशकरना॥६॥ स्वे-च्छामृत्यु, देवताओंके रूप से अप्सराओंके साथ क्रीड़ाकरना, संकल्पके अनुसार प्राप्ति और कि-सी स्थलमेंभी आज्ञा का भंग न होना;—यह दश सिद्धियें गुणसे उत्पन्न होती हैं ॥ ७॥ त्रिका-लज्ञता, द्वन्द्वसहिष्णुता, परचित्तज्ञान,अग्नि सूर्य जल और विष आदि का स्तंभितकररखना,और किसी स्थलमेंभी पराजित होना—योग धारणा की यह कई एक सिद्धियें हैं । जिस धारणा से जो सिद्धि होती है वह सुनो ॥ ८—९ ॥ जो मुझ सूक्ष्म भूतात्मक में सूक्ष्म भूता कामी चित्तकी धारणा करताहै, वह सूक्ष्म भूत का उपासक मेरी अणिमा सिद्धि को प्राप्तकरता है ॥१०॥ मुझ महत्त्वात्मकमें महत्त्वात्मकमन धारणकरताहै व वह उपासक महिमा सिद्धिको पाताहै । आकाशा-

॥ ११ ॥ परमाणुमये चित्तं भूतानां मयि रंजयन् । कालसूक्ष्मार्थतां योगी लघिमानम
वाप्नुयात् ॥ १२ ॥ धारयन्मय्यहंतत्वे मनोवैकारिकेऽखिलम् । सर्वेन्द्रियाणामात्म
त्वं प्राप्तिंप्राप्नोतिमन्मनाः ॥ १३ ॥ महत्यात्मनियः सूत्रेधारयेन्मयि मानसम् । प्राका
म्यंपारमेष्ठ्यं मे विन्दतेऽव्यक्तजन्मनः ॥ १४ ॥ विष्णौत्र्यधीश्वरेचित्तं धारयेत्का-
लविग्रहे । सईशित्वमवाप्नोति क्षेत्रक्षेत्रज्ञचोदनाम् ॥ १५ ॥ नारायणेतुरीयाख्ये
भगवच्छब्दशब्दिते । मनोमय्यादधद्योगी मद्धर्मावशितामियात् ॥ १६ ॥ निर्गु
णेब्रह्मणिमयि धारयन्विशदंमनः । परमानन्दमाप्नोति यत्रकामोऽवसीयते ॥१७॥
श्वेतद्वीपपतौचित्तं शुद्धेधर्ममयेमयि। धारयञ्छ्वेततांयाति षडूर्मिरहितोनरः१८॥
मय्याकाशात्मनिप्राणे मनसाघोषमुद्वहन् । तत्रोपलब्धाभूतानां हंसोवाचःशृणो
त्यसौ ॥ १९ ॥ चक्षुस्त्वष्टरिसंयोज्य त्वष्टारमपिचक्षुषि । मांतत्रमनसाध्यायन्
विश्वंपश्यतिसूक्ष्मदृक् ॥ २० ॥ मनोमयिसुसंयोज्य देहंतदनुवायुना । मद्धारणा
नुभावेन तत्रात्मायत्रवैमनः ॥ २१ ॥ यदामनउपादाय यद्यद्रूपंबुभूषति । तत्तद्भवे
न्मनोरूपं मद्योगबलमाश्रयः ॥ २२ ॥ परकायंविशन्सिद्ध आत्मानंतत्रभावयेत् ॥
पिण्डंहित्वाविशेत्प्राणो वायुभूतःषडंघ्रिवत् ॥ २३ ॥ पार्ष्ण्याऽऽपीड्यगुदंप्राण
हृदुरःकण्ठमूर्धसु । आरोप्यब्रह्मरन्ध्रेण ब्रह्मनीत्वोत्सृजेत्तनुम् ॥ २४ ॥ विहरि
ष्यन्सुराक्रीडे मत्स्थंसत्वंविभावयेत् । विमानेनोपतिष्ठन्ति सत्ववृत्तीःसुरस्त्रियः ।

दि भूत रूप उपाधिवाले मेरे स्वरूप में मनकी धारणाकर योगी उन भूतोंकी भिन्न २ महिमाको प्राप्तहोताहै ॥ ११ ॥ पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार भूतों के परमाणुरूप उपाधिवाले मेरे स्वरूपमें मनकी धारणा करनेवाला योगी लघिमा सिद्धिको प्राप्तहोताहै ॥१२॥ जो वैकारिक अहं-तत्वात्मक मेरेस्वरूपमें चित्तको लगाताहै वह योगी सब इन्द्रियोंकी अधिष्ठातृत्वरूप प्राप्ति सिद्धिको पाताहै॥१३॥सूत्रभूत महान् आत्म स्वरूप मुझ में जो मनकी धारणाकरता है, वह अव्यक्त जन्मा मेरी सर्वोत्कृष्ट प्राकाम्य सिद्धिको प्राप्तकरताहै॥१४॥ त्रिगुणामायाके अधीश्वर सृष्टिकर्त्ता विष्णुस्व-रूप मुझमें मनकी धारणाकरनेसे जीव और उसकी उपाधि सबकी प्रेरणरूपा ईशिता सिद्धिप्राप्त होती है॥१५॥ भगवान शब्दसे शब्दित तुरीय नारायण मुझमें मनकी धारणाकरनेवाला मद्धर्म-युक्त योगी वशिता सिद्धिको प्राप्तकरता है ॥१६॥ निर्गुण ब्रह्म मुझमें विशद मनके धारण करनेसे परमानन्द प्राप्त होताहै, उसहीसे समस्तइच्छाएं समाप्तहोतीहैं॥१७॥मानव सत्वात्मक, धर्ममय श्वेतद्वीपाधिपति स्वरूप मुझमें चित्तकी धारणा करने से क्षुधा, तृष्णा, शोक, मोह, जरा, मृत्यु वर्जितहो शुद्ध रूपता प्राप्त होती है ॥ १८ ॥ आकाशात्मा प्राणष्टिरूपी मुझमें मनद्वारा शब्द की भावना करने से जीव आकाश में लाता होकर प्राणियों की विचित्र वाणियों को सुनने रूप दूर श्रवण नाम सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ आंखों को सूर्य में और सूर्य को आंखों में मिलायं उन दोनों के सम्बन्ध में मन २ में मेरा ध्यानकरने से दूर दर्शन नामकी सिद्धि प्राप्त होती है ॥ २० ॥ मन और शरीर इन दोनों के अनुगामी वायुद्वारा मुझमें चित्त को लगानेसे मनजिसस्थान में जाता है—देहभी उसी स्थान में जाता है ॥ २१ ॥ मनको उपादान कारणकर जिसरूप के धारण करने की इच्छा होती है, योगी मनके उसी २ इच्छित रूप को धारण करसकता है; क्योंकि मेरा योगबल उनका आश्रय है ॥ २२ ॥ सिद्ध मनुष्य दूसरे के शरीर में प्रवेश करने की इच्छा करे तो उसको आत्मचिंता करनी चाहिए, फिर वह अपनी देह को छोड़ प्राणवायु के स्वरूप से भ्रमरकी समान इच्छित देह में प्रवेश करसकता है ॥ २३॥ एंडी से गुदाकोदबा प्राण रूप उपाधिवाले आत्मा को क्रमशः हृदय, वक्षस्थल, कण्ठ और मस्तक में चढ़ाकर ब्रह्मरन्ध्र रूप द्वारसे मनद्वारा पराई कायामें जाय अपने स्थूल देह का त्यागकरे ॥ २४ ॥ देवताओं की

॥ २५ ॥ यथासंकल्पसंकल्पाद्बुद्ध्या यदा वा मत्परः पुमान् । मयि सत्ये मनो युञ्जंस्तथा तत्समुपाश्नुते ॥ २६ ॥ यो वै मद्भावमापन्न ईशितुर्वशितुः पुमान् । कुतश्चिन्न विहन्येत तस्य चाज्ञा यथा मम ॥ २७ ॥ मद्भक्त्या शुद्धसत्त्वस्य योगिनो धारणाविदः । तस्य त्रैकालिकी बुद्धिर्जन्ममृत्यूपबृंहिता ॥ २८ ॥ अग्न्यादिभिर्न हन्येत मुनेर्योगमयं वपुः । मद्योगश्रान्तचित्तस्य यादसामुदकं यथा ॥ २९ ॥ मद्विभूतीरभिध्याय श्रीवत्सास्त्रविभूषिताः । ध्वजातपत्रव्यजनैः स भवेदपराजितः ॥ ३० ॥ उपासकस्य मामेवं योगधारणया मुनेः । सिद्धयः पूर्वकथिता उपतिष्ठन्त्यशेषतः ॥ ३१ ॥ जितेन्द्रियस्य दान्तस्य जितश्वासात्मनो मुनेः । मद्धारणां धारयतः का सा सिद्धिः सुदुर्लभा ॥ ३२ ॥ अन्तरायान्वदन्त्येता युञ्जतो योगमुत्तमम् । मया संपद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः ॥ ३३ ॥ जन्मौषधितपोमन्त्रैर्यावतीरिह सिद्धयः । योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यैर्योगगतिं व्रजेत् ॥ ३४ ॥ सर्वासामपि सिद्धीनां हेतुः पतिरहं प्रभुः । अहं योगस्य सांख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम् ॥ ३५ ॥ अहमात्मान्तरो बाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् । यथा भूतानि भूतेषु बहिरन्तः स्वयं तथा ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

उद्धव उवाच ॥ त्वं ब्रह्म परमं साक्षादनाद्यन्तमपावृतम् । सर्वेषामपि भावानां त्राणस्थित्यप्ययोद्भवः ॥ १ ॥ उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयमकृतात्मभिः । उपासते त्वां भगवन्याथातथ्येन ब्राह्मणाः ॥ २ ॥ येषु येषु च भावेषु भक्त्या त्वां परमर्षयः । उ

क्रीडा भूमिमें विहार करने की इच्छा होनेसे मेरी मूर्तिरूप शुद्ध सत्वकी चिंता करनी चाहिए; ऐसा होनेसे सत्वगुण के अंश स्वरूप देवांगनाएं विमानलेकर निकट आजाती हैं ॥ २५ ॥ मत्परायण पुरुष चित्त में जब जिसप्रकार का जो संकल्प करें सत्य संकल्प मुझ में मनके लगाने से उसी प्रकार का फल पाने रूप यथासंकल्प नाम सिद्धि को प्राप्त करसकेंगे ॥२६॥ मुझ सर्व नियंता और स्वतंत्र में मनकी धारणा करनेवाला योगी मेरे स्वभावको प्राप्त होताहै फिर वह पुरुष अप्रतिहताज्ञा सिद्धि को प्राप्त होना है ॥२७॥ त्रिकालज्ञ ईश्वर में मनको धारण करे तो मेरी भक्तिसे शुद्ध अन्तःकरण वाले योगीको तीनों कालकी वस्तुओं की तथा अपने जन्म मरण की जानने रूप त्रिकालज्ञ सिद्धि प्राप्त होती है परचित्ताद्यभिज्ञाता सिद्धिभी इसी धारणा से प्राप्त होती है ॥ २८ ॥ जैसे जल जलचरों को हानि नहीं पहुंचाता, उसही प्रकार मेरे योगद्वारा अभ्रांत चित्त योगी की देह अग्न्यादि द्वारा व्याहत नहीं होता ॥ २९ ॥ जो श्रीवत्स, अस्त्र, भूषण, ध्वज, छत्र और व्यजन सहित मेरे अवतारों का ध्यान करते हैं, वे कभी पराजित नहीं होते ॥ ३० ॥ मेरे उपासकों को ऐसे योग धारण द्वारा पहिले कही हुई सिद्धियें प्राप्त होती हैं ॥ ३१ ॥ जो जितेन्द्रिय, जितप्राण जितचित्त योगी मुझमें अपने मनको लगाते हैं उनको कोई भी सिद्धि दुर्लभ नहीं है ॥ ३२ ॥ यह सब सिद्धियें उत्तम योगचारी मत्परायण योगियों की विघ्नस्वरूप हैं; क्योंकि इनमें लगजाने से कालक्षेप होता है ॥ ३३ ॥ इसलोक में जन्म, औषधि, तपस्या, और मंत्र द्वारा जो सिद्धियें प्राप्त होती हैं योगी को योगही द्वारा वह प्राप्त होजाती हैं; योगकी गति दूसरे उपायोंद्वारा प्राप्त करे । मैं समस्त सिद्धि, मोक्ष, साधनज्ञान, धर्म और धर्मोपदेष्टा ब्रह्मवादियों का कारणहूं; मैंही पालनकर्ता और प्रभुहूं । मैंही आवरणरहित सब देहियोंका व्यापक, अंतर्यामी आत्माहूं जैसे सब भूतोंमें पंचभूत भीतर और बाहर स्थित हैं उसही प्रकार मैंभी सबके भीतर और बाहर स्थितहूं ॥३४।३६॥ इतिश्रीमद्भा०महा०एका०सरलाभाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः॥१५॥

उद्धवजीने कहा—आप साक्षात् परब्रह्म, अनादि, अनंत और स्वाधीनहो, अतएव सबपदार्थों का पालन, जीवन, नाश और उत्पत्ति आपसेही होती रहती है ॥ १ ॥ आप ऊंचे नीचे प्राणियों में वर्त्तमानहो परंतु अकृतपुण्य लोग आपको नहीं जानसकते । हे भगवन् ! ब्राह्मण आपकी यथार्थ

पासीना:प्रपद्यन्ते संसिद्धिंतद्वदस्वमे ॥ ३ ॥ गूढश्चरसिभूतात्मा भूतानांभूतभा वन । नत्वांपश्यन्तिभूतानि पश्यन्तंमोहितानिते ॥ ४ ॥ याःकाश्चभूमौदिवि वै रसायांविभूतयोदिक्षुमहाविभूते । तामह्यमाख्याह्यनुभावितास्ते नमामितेतीर्थप दांघ्रिपद्मम् ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवमेतदहंपृष्टः प्रश्नंप्रश्नविदांवर । युयु त्सुनाविनशने सपत्नैरर्जुनेनवै ॥ ६ ॥ ज्ञात्वाज्ञातिवधंगर्ह्यं मधर्मंराज्यहेतुकम् । ततोनिवृत्तोहन्ताऽहं हतोऽयमितिलौकिकः ॥ ७ ॥ सतदापुरुषव्याघ्रो युक्त्यामे प्रतिबोधितः । अभ्यभाषतमामेवं यथात्वंरणमूर्धनि ॥ ८ ॥ अहमात्मोद्धवामीषां भूतानांसुहृदीश्वरः । अहंसर्वाणिभूतानि तेषांस्थित्युद्भवाप्ययः ॥ ९ ॥ अहंगति र्गतिमतां कालःकलयतामहम् । गुणानांचाप्यहंसाम्यं गुणिन्यौत्पत्तिकोगुणः १०॥ गुणिनामप्यहंसूत्र महतांचमहानहम् । सूक्ष्माणामप्यहंजीवो दुर्जयानामहंमनः ॥ हिरण्यगर्भोवेदानां मन्त्राणांप्रणवस्त्रिवृत् । अक्षराणामकारोऽस्मि पदानिच्छन्दु सामहम् ॥ १२ ॥ इन्द्रोऽहंसर्वदेवानां वसूनामस्मिहव्यवाट् । आदित्यानामहंवि ष्णु रुद्राणांनीललोहितः ॥ १३ ॥ ब्रह्मर्षीणांभृगुरहं राजर्षीणामहंमनुः । देवर्षी णांनारदोऽहं हविर्धान्यस्मिधेनुषु ॥ १४ ॥ सिद्धेश्वराणांकपिलः सुपर्णोऽहंपत त्रिणाम् । प्रजापतीनांदक्षोऽहं पितॄणामहमर्यमा ॥ १५ ॥ मांविद्ध्युद्धवदैत्यानां प्र ह्लादमसुरेश्वरम् । सोमंनक्षत्रौषधीनां धनेशंयक्षरक्षसाम् ॥ १६ ॥ ऐरावतंगजे

प्रकारसे उपासना करते हैं ॥ २ ॥ अतएव परम ऋषियोंने जिन २ रीतियों से भक्ति सहित आप की उपासनाकर सिद्धि प्राप्तकी है वह मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ हे भूतभावन ! आप प्राणियोंके अन्तर्यामी, व्यक्त भावसे प्राणियों के बीचमें विचरा करते हो; आप सबको देखते हो किन्तु आप से मोहित प्राणी आपको नहीं देख सकते ॥ ४ ॥ हे महा विभूतिसम्पन्न ! स्वर्ग, मृत्यु, पाताल और दिशाओं में आपकी विशेष शक्ति से संयुक्त जो विभूतियां हों वे सब मुझसे कहो;—मैं तीर्थ के उत्पत्ति क्षेत्र आप के चरण कमलों को प्रणाम करता हू ॥ ५ ॥ श्रीभगवानने कहा, हे प्रश्न वेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! कुरु क्षेत्रमें जातिवालोंके साथ समर करनेमे प्रवृत्त हुए अर्जुनने मुझसे इस प्रश्न को किया था। यह तुह्मारा प्रश्न करके अवतार रूप अर्जुन के प्रश्न के सदस होनेसे अति उत्तम है ॥ ६ ॥ "मैं मारने वाला हू" और यह मारे जावेंगे, इसप्रकार लौकिक बुद्धि के वशमें होकर राज्य के निमित्त जाति वधको अधर्म और निंदित जान वह उससे निवृत्त हुआथा ॥ ७ ॥ हे पुरुष व्याघ्र ! तब मैंने उसको यत्न पूर्वक समझा दिया, फिर उसने रणस्थल में जो मुझसे प्रश्न किया था, आज तुमनेभी मुझसे वही पूछा है ॥ ८ ॥ हे उद्धव ! मैं सब भूतोंका आत्मा, सुहृद और ईश्वर हू। मैंही सर्वभूत और मैंही उनकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका कारण हू ॥ ९ ॥ गतिवालोंकी गति मैंहीहू वश करने वालोंका वशकर्त्ता; गुणोंकी प्रकृति और गुणोका गुणभी मैंही हू ॥ १० ॥ मैं गुणवाले पदार्थोंका प्रथम कारण और सब महत् का महत्तत्व हू । सूक्ष्म पदार्थों में जीव और दुर्जय पदार्थों में मन मेरा स्वरूप है ॥ ११ ॥ मैं वेदाध्यापक हिरण्यगर्भ और मंत्रों में अवयवत्रय युक्त ओंकार हू । मैंसब अक्षरों के बीचमें अकार और छन्दोंके बीचमें गायत्री हूं ॥ १२ ॥ मैं सब देवताओं के बीचमें इन्द्र; वसुओं के बीचमें अग्नि; अदिति के पुत्रोंके बीच में विष्णु और रुद्रों के बीचमें नीललोहित हूं ॥ १३ ॥ मैं महर्षियोंके बीचमें भृगु, राजर्षियोंके बीचमें मनु; देवर्षियोंके बीचमें नारद और सब धेनुओंके बीचमें कामधेनु हू ॥१४॥ मैं सिद्धेश्वरों के बीच में कपिल; पक्षियोंके बीचमें गरुड़, प्रजापतियोंके बीचमें दक्ष और पितरोंके बीचमें अर्यमाहू॥१५॥ हे उद्धव ! मुझको दैत्योंके बीचमें असुरराज प्रह्लाद, नक्षत्रोंके और औषधियोंके बीचमें चन्द्रमा यक्ष और राक्षसों के बीचमें कुवेर हूं ॥ १६ ॥ मैं गजराजोंके बीचमें ऐरावत, जलजंतुओंका प्रभु

न्द्राणां यादसांवरुणंप्रभुम् । तपतांद्युमतांसूर्यं मनुष्याणांचभूपतिम् ॥ १७ ॥ उ
च्चैःश्रवास्तुरंगाणां धातूनामस्मिकांचनम् । यमःसंयमतांचाहं सर्पाणामस्मिवा
सुकिः ॥ १८ ॥ नागेन्द्राणामनन्तोऽहं मृगेन्द्रःशृंगिदंष्ट्रिणाम् । आश्रमाणामहंतु
र्यो वर्णानांप्रथमोऽनघ ॥ १९ ॥ तीर्थानांस्रोतसांगङ्गा समुद्रःसरसामहम् । आयु
धानांधनुरहं त्रिपुरघ्नोधनुष्मताम् ॥ २० ॥ धिष्ण्यानामस्म्यहंमेरुर्गहनानांहिमा
लयः । वनस्पतीनामश्वत्थ ओषधीनामहंयवः ॥ २१ ॥ पुरोधसांवसिष्ठोऽहं ब्र
ह्मिष्ठानांबृहस्पतिः । स्कन्दोहंसर्वसेनान्या मग्रण्यांभगवानजः ॥ २२ ॥ यज्ञानां
ब्रह्मयज्ञोऽहं व्रतानामविहिंसनम् । वाय्वग्न्यर्काम्बुवागात्मा शुचीनामप्यहंशुचिः।
॥ २३ ॥ योगानामात्मसंरोधो मन्त्रोस्मिविजिगीषताम् । आन्वीक्षिकीकौशलानां
विकल्पःख्यातिवादिनाम् ॥ २४ ॥ स्त्रीणांतुशतरूपाऽहं पुंसांस्वायंभुवोमनुः ।
नारायणोमुनीनांच कुमारोब्रह्मचारिणाम् ॥ २५ ॥ धर्माणामस्मिसंन्यासः क्षेमा
णामबहिर्मतिः । गुह्यानांसूनृतंमौनं मिथुनानामजस्त्वहम् ॥ २६ ॥ संवत्सरोऽस्म्य
निमिषामृतूनांमधुमाधवौ । मासानांमार्गशीर्षोऽहं नक्षत्राणांतथाऽभिजित् ॥२७॥
अहंयुगानांचकृतं धीराणां देवलोऽसितः । द्वैपायनोऽस्मिव्यासानां कवीनांकाव्य
आत्मवान् ॥ २८ ॥ वासुदेवोभगवतां त्वंतुभागवतेष्वहम् । किंपूरुषाणांहनुमान्
विद्याध्राणांसुदर्शनः ॥२९॥ रत्नानांपद्मरागोऽस्मि पद्मकोशःसुपेशसाम् । कुशो
स्मिदर्भजातीनां गव्यमाज्यंहविष्वहम् ॥ ३० ॥ व्यवसायिनामहंलक्ष्मीः कितवा

वरुण, प्रतापशाली और दीप्तिशालियोंके बीचमें सूर्य और मनुष्योंके बीचमें राजा हूं ॥ १७ ॥ मैं घोड़ों के बीचमें उच्चैःश्रवा धातुओं के बीचमें सुवर्ण, दण्ड देने वालोंके बीचमें यम, सर्पों के बीचमें वासुकि हूं ॥ १८ ॥ मैं नागोंके बीचमें अनंत और हिंसक पशुओंके बीचमें सिंह हूं । हे अनघ ! मुझको आश्रमों के बीचमें चौथा आश्रम, और वर्णोंके बीचमें ब्राह्मण जानो ॥ १९ ॥ मैं नदियों के बीच में गंगा, स्थिर जलाशयों के बीच में समुद्र, अस्त्रों के बीच में धनुष और धनुषधारियों के बीच में त्रिपुरनाशी महादेव हूं ॥ २० ॥ मुझको निवासस्थानों के बीचमें मेरु, पहाड़ोंके बीच में हिमालय, वनस्पतियों के बीच में पीपल और औषधियों के बीच मे यवजानो ॥ ॥ २१ ॥ मैं पुरोहितों के बीच में वशिष्ठ, वेद जाननेवालों के बीच में बृहस्पति, सब सेनापतियों के बीच में कार्तिकेय और अग्रगण्यों के बीचमें भगवानब्रह्मा हूं ॥ २२ ॥ यज्ञों में ब्रह्मयज्ञ और व्रतों में अहिंसा मेरा स्वरूप है । मुझको शोधकों के बीच में शोधक वायु, अग्नि, सूर्य, जल, वाक्य और आत्मा ॥ २३ ॥ योगों के बीच में समाधि; विजयकी इच्छावालों की नीति; सब कौशलों के बीच मे आन्वीक्षिकी और ख्यातिवादियों के बीचमें विकल्पजानो ॥ २४ ॥ मैं स्त्रियोंके बीच में शतरूपा मनुपत्नी, पुरुषों के बीच में स्वायंभुव मनु, मुनियों के बीच में नारायण और ब्रह्मचारियों के बीच में सनत्कुमार हूं ॥ २५ ॥ मैं सब धर्मों के बीच में प्राणियों के प्रति अभयदान; सब मंगलस्थानों के बीचमें अन्तर्निष्ठा ; सब गुह्यों के बीच में प्रियभाषण, और मौन तथास्त्री पुरुष के जोड़ों के बीच में प्रजापतिहूं ॥ २६ ॥ मुझको अप्रमत्तों के बीच में सम्वत्सर ऋतुओं के बीच में वसंत, मासों के बीच में अग्रहायण और नक्षत्रोंके बीच में अभिजित जानों ॥ मैं युगों के मध्यमें सत्ययुग, धीर मनुष्यों के मध्यमें देवल और असित, वेदका विभाग करने वालों में व्यास और पण्डितों के मध्यमें आत्मवान् शुक्रहूं ॥ २८ ॥ और भगवानों के बीचमें वासुदेव; भक्तों के बीच में उद्धव, वानरोंके मध्य में हनुमान और विद्याधरोंके मध्यमें सुदर्शनहूं ॥ ॥ २९ ॥ मैं मणियों के मध्य में पद्मराग, सुन्दर पदार्थोंके मध्य में कमलकोष, दर्भजातियों के मध्यमें कुश, और घृतों के मध्य में गौका घृतहूं ॥ ३० ॥ मुझको व्यवसायियों की धनादि सम्प-

नांछलमहः । तितिक्षाऽस्मितितिक्षूणां सत्वंसत्ववतामहम् ॥ ३१ ॥ ओजःसहो बलवतां कर्माहंविद्धिसात्वताम् । सात्वतांनवमूर्तीनामादिमूर्तिरहंपरा ॥ ३२ ॥ विश्वावसुःपूर्वचित्तिर्गन्धर्वाप्सरसामहम् । भूधराणामहंस्थैर्यं गन्धमात्रमहंभुवः । ॥ ३३ ॥ अपांरसश्चपरमस्तेजिष्ठानांविभावसुः । प्रभासूर्येन्दुताराणां शब्दोऽहं नभसःपरः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मण्यानांबलिरहं वीराणामहमर्जुनः । भूतानां स्थितिरुत्पत्तिरहंवै प्रतिसंक्रमः ॥ ३५ ॥ गत्युक्त्युत्सर्गोपादानमानन्दस्पर्शलक्षणम् । आस्वाद श्रुत्यवघ्राणमहं सर्वेन्द्रियेन्द्रियम् ॥ ३६ ॥ पृथिवीवायुराकाश आपोज्योतिरहंमहान् । विकारःपुरुषोऽव्यक्तं रजःसत्वंतमःपरम् ॥ ३७ ॥ अहमेतत्प्रसंख्यानं ज्ञानंतत्वविनिश्चयः । मयेश्वरेणजीवेन गुणेनगुणिनाविना । सर्वात्मनाऽपिसर्वेण नभावो विद्यतेक्वचित् ॥ ३८ ॥ संख्यानंपरमाणूनां कालेनक्रियतेमया । नतथामेविभूतीनां सृजतोऽण्डानिकोटिशः ॥ ३९ ॥ तेजःश्रीःकीर्तिरैश्वर्यंह्रीस्त्यागः सौभगंभगः वीर्यंतितिक्षा विज्ञानं यत्रयत्रसमेऽशकः ॥ ४० ॥ एतास्तेकीर्तिताः सर्वाः संक्षेपेण-विभूतयः । मनोविकाराएवैते यथावाचाभिधीयते ॥ ४१ ॥ वाचंयच्छमनोयच्छ प्राणान्यच्छेन्द्रियाणिच । आत्मानमात्मनायच्छ नभूयःकल्पसेऽध्वने ॥ ४२ ॥ योवै वाङ्मनसीसम्यगसंयच्छन्धिया यतिः । स्यव्रतंतपोदानं स्रवत्यामघटाम्बुवत् ४३॥ तस्मान्मनोवचः प्राणान्नियच्छेन्मत्परायणः । मद्भक्तियुक्तया बुद्ध्या ततः परिसमाप्यते ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

त्ति, धूर्तोंका छल, क्षमाशील मनुष्योंकी क्षमा और सत्वशालियों का सत्वजानो ॥ ३१ ॥ मैं बलशालियों का इन्द्रियबल और देहबल, भक्तोंका भक्तिकृतकर्म और भक्तोंकी पूज्य नवमूर्तियों के मध्य में श्रेष्ठ आदि मूर्ति हूं ॥ ३२ ॥ मैं गन्धर्व और अप्सराओं के मध्यमें विश्वावसु और पूर्वचित्ति हूं । मैं पहाड़ों की स्थिरता, पृथ्वी की अविकृत गन्धमात्र हूं, ॥३३॥ मैं जलका मधुररस, तेजस्वियोंका विभावसु, सूर्य चन्द्र और ताराओ की प्रभा; तथा आकाश के मध्य में परनामक शब्दहूं ॥ ३४ ॥ मैं ब्राह्मणों के भक्तों में बलिराजा; वीरों के मध्य में अर्जुन, प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयहूं ॥ ३५ ॥ मैं गमन, वाक्य, उत्सर्ग, ग्रहण, आनन्द; और स्पर्श, दर्शन, आस्वादन, श्रवण और घ्राण—इन दश इन्द्रियों की इन्द्रियहूं ॥ ३६ ॥ मुझकोही पृथिवी, वायु, आकाश, जल, तेज, महत्तत्व, जीव, प्रकृति, सत्व, रज, तम और ब्रह्म जानो । इन तत्वों की गणना, उनके लक्षणों का ज्ञान और उनका निश्चय मैंही हूं ॥ ३७ ॥ मैं कि—जो जीव ईश्वररूप, गुण—गुणिरूप, क्षेत्र—क्षत्रज्ञरूप और सबका नियन्ता होने परभी सर्वरूप हूं । मेरे बिना कहीं भी कोई पदार्थ नहीं है ॥ ३८ ॥ काल मे मैंही परमाणुओंकी गणना करताहूं, किन्तु मेरी विभूति की गणनानहींकी जासकती; मैं करोडों ब्रह्मांडोंको रचतारहता हूं ॥३९॥ जिस जिसमें प्रभाव, सम्पत्ति, कीर्त्ति, ऐश्वर्य, सौभाग्य, भाग्य, बल, तितिक्षा और विज्ञान है वही २ मेरी विभूतियें हैं ॥ ४० ॥ तुमसे मैंने यह सब विभूतियें संक्षेप से कहीं । यह सब केवल मन के विकार और वाक्य से कथित होती हैं ॥ ४१ ॥ अतएव वाक्य, मन, प्राण और इन्द्री सबको संयतकर आत्माद्वारा आत्माको संयतकरो;—तो ससार मार्ग में प्रवर्त्तित न होगे ॥ ४२ ॥ जिस यति ने मनद्वारा वाक्य और मनको संयतकिया, कच्चे घडे में भरेहुए जलकी समान उनकाव्रत, तप, दान सब नष्टहोजाता है ॥ ४३ ॥ अतएव मत्परायण मनुष्यको वाक्य, मन और प्राण का संयतकरना चाहिये, तदनन्तर वह मेरी भक्ति युक्त विद्याद्वारा कृतार्थ होगा ॥ ४४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कंधेसरलभाषाटीकायांषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

उद्धवउवाच ॥ यस्त्वयाभिहितः पूर्वंधर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः।वर्णाश्रमाचारवतां
सर्वेषांद्विपदामपि ॥ १ ॥ यथाऽनुष्ठीयमानेन त्वयिभक्तिर्नृणांभवेत् । स्वधर्मेणार
विन्दाक्ष तत्समाख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥ पुराकिलमहाबाहोधर्मं परमकंप्रभो । यत्तेन-
हंसरूपेण ब्रह्मणेऽभ्यात्थमाधव ॥ ३ ॥ सइदानींसुमहता कालेनामित्रकर्शन । न-
प्रायोभविता मर्त्यलोकेप्रागनुशासितः॥४॥ वक्ताकर्ताऽवितानान्योधर्मस्याच्युतते-
भुवि । सभायामपिवैरिञ्च्यां यत्रमूर्तिधराःकलाः ॥५॥ कर्त्राऽवित्राप्रवक्त्राच भ-
वतामधुसूदन । त्यक्तेमहीतलेदेवविनष्टंकः प्रवक्ष्यति ॥ ६ ॥ तत्त्वंनः सर्वधर्मज्ञध-
र्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः । यथायस्यविधीयेत तथावर्णयमेप्रभो ॥ ७ ॥ श्रीशुकउवाच ।
इत्थंस्वभृत्यमुख्येनपृष्टः सभगवान्हरिः । प्रीतः क्षेमायमर्त्यानांधर्मानाह सना-
तनान् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच । धर्म्यएषतवप्रश्नो नैःश्रेयसकरोनृणाम् । वर्णाश्र-
माचारवतां तमुद्धवनिबोधमे ॥ ९ ॥ आदौकृतयुगे वर्णो नृणां हंसइतिस्मृतः । कृ
तकृत्याःप्रजाजात्या तस्मात्कृतयुगंविदुः ॥ १० ॥ वेदःप्रणवएवाग्रे धर्मोऽहंवृषरूप
धृक् । उपासतेतपोनिष्ठा हंसंमांमुक्तकिल्बिषाः ॥११॥ त्रेतामुखेमहाभाग प्राणान्मे
हृदयात्त्रयी । विद्याप्रादुरभूत्तस्या अहमासंत्रिवृन्मखः ॥ १२ ॥ विप्रक्षत्रियविट्शू
द्रा मुखबाहूरुपादजाः । वैराजात्पुरुषाज्जाताय आत्माचारलक्षणाः ॥ १३ ॥ गृहा-
श्रमोजघनतो ब्रह्मचर्यंहृदोमम । वक्षःस्थानाद्वनेवासो न्यासः शीर्षणिसंस्थितः ।
॥ १४ ॥ वर्णानामाश्रमाणांच जन्मभूम्यनुसारिणीः । आसन्प्रकृतयोनृणां नीचैर्नी

उद्धवजी ने कहा कि—हे प्रभो ! वर्णाश्रमचारी और वर्णाश्रम विहीन जिस धर्मद्वारा आप को प्राप्त करसकते हैं वह आपने पहिले कहा है ॥ १ ॥ हे कमल लोचन ! उस स्वधर्म के जिस प्रकार अनुष्ठित होने से आप पर मनुष्यों की भक्ति होवे वह आप मुझसे कहिए ॥ २ ॥ हे महाबाहो ! हेप्रभो ! हे माधव ! पहिले आपने हंसस्वरूप से परम सुखरूप जो धर्म कहाथा ॥ ३ ॥ हेशत्रुमर्दन ! इस समय बहुत काल बीत जाने से पृथ्वी पर प्रायः वह अब प्रचलित नहीं है ॥ ४ ॥ हेअच्युत ! पृथ्वी पर धर्म का वक्ता, कर्त्ता और रक्षिता दूसरा कोई नहीं है जहांपर वेद विद्या मूर्तिमतीहो अवस्थित है उस ब्रह्मसभा में भी आप के अतिरिक्त औरकोई कहनेवाला करनेवाला वा रक्षक न होगा ॥ ५ ॥ हेमधुसूदन ! हे देव ! कर्त्ता, रक्षिता और वक्ता आपके पृथिवी छोड़ देने पर कौन मनुष्य नष्टधर्म को कहेगा ? ॥ ६ ॥ अतएव हे सर्वधर्मज्ञ ! हे प्रभो ! आप पर भक्तिरूप धर्म मनुष्यों के बीचमें भी जिसको जिसप्रकार करना कर्तव्य है, मेरे निकट उस सबका वर्णन करिये ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! अपने सेवक के इसप्रकार से पूछने पर वे भगवान श्रीकृष्णजी प्रसन्नहुए और सृष्टि के हितसाधन के निमित्त सनातनधर्म कहने लगे ॥ ८ ॥ श्रीभगवान ने कहा कि—हेउद्धव ! तुम्हारा यह प्रश्न धर्मसंगत है क्योंकियहवर्णाश्रम चारी मनुष्यों के मुक्ति का साधन है । यह धर्म मुझ से सुनो ॥ ९ ॥ प्रथम सत्ययुग में मनुष्यों का केवल एक वर्ण हंसथा । मनुष्य उस युगमें केवल जन्म सेही कृतकृत्य होताथा;इसही निमित्त उसका नाम कृतयुग कहागया है ॥ १० ॥ पहिले ओंकारही वेद और वृषरूपधारी मैं धर्मथा;इस कारण तपोनिष्ठ पाप रहित मनुष्य मेरी उपासना करतेथे ॥ ११ ॥ हे महाभाग ! त्रेताके आरम्भ में मेरे हृदय से प्राण रूपकर ऋक्, यजु और साम उत्पन्नहुए; होता, अध्वर्यु, और उद्गाताद्वारा उससे मैं त्रिवृत्त यज्ञस्वरूपहुआ ॥१२॥ ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र विराट्पुरुष के मुख, बाहु उरू और चरणों से उत्पन्नहुए; अपने २ धर्मों और आचारोंसेही यह जाने जाते हैं ॥ १३ ॥ गृहस्थाश्रम मेरी जंघा, ब्रह्मचर्य मेरे हृदय से और वानप्रस्थ मेरे वक्षस्थल से उत्पन्न हुआ है; तथा संन्यास मेरे मस्तक में स्थित है ॥ १४ ॥ मनुष्यों के वर्ण और आश्रमों की प्रकृति जन्म

चोत्तमोत्तमाः ॥ १५ ॥ शमोदमस्तपःशौचं संतोषःक्षान्तिरार्जवम् । मद्भक्तिश्चद
यासत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १६ ॥ तेजोबलंधृतिःशौर्यं तितिक्षौदार्यमुद्यमः ॥
स्थैर्यंब्रह्मण्यतैश्वर्यं क्षत्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १७ ॥ आस्तिक्यंदाननिष्ठाच अदम्भो
ब्रह्मसेवनम् । अतुष्टिरर्थोपचयैर्वैश्यप्रकृतयस्त्विमाः॥१८॥शुश्रूषणं.द्विजगवांदेवानां
चाप्यमायया । तत्रलब्धेनसंतोषः शूद्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १९ ॥ अशौचमनृतंस्ते-
यं नास्तिक्यं शुष्कविग्रहः । कामःक्रोधश्चतर्षश्च स्वभावोऽन्त्यावसायिनाम् ॥ २० ॥
अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता । भूतप्रियहितेहाच धर्मोऽयंसार्ववर्णिकः
॥ २१ ॥ द्वितीयं प्राप्यानुपूर्व्याज्जन्मोपनयनं द्विजः । वसन्गुरुकुलेदान्तोब्रह्माधीयी
तचाऽऽहुतः ॥ २२ ॥ मेखलाजिनदण्डाक्षब्रह्मसूत्रकमण्डलून् । जटिलोऽधौतदद्वा
सोऽरक्तपीठःकुशान्दधत् ॥ २३ ॥ स्नानभोजनहोमेषु जपोच्चारेचवाग्यतः । नच्छि
न्द्यान्नखरोमाणि कक्षोपस्थगतान्यपि ॥ २४ ॥ रेतोनावकिरेज्जातु ब्रह्मव्रतधरःस्वय
म् । अवकीर्णेऽवगाह्याऽप्सु यतासुस्त्रिपदींजपेत् ॥ २५ ॥ अग्न्यर्काचार्यगोविप्रगु
रुवृद्धसुरान्शुचिः । समाहितउपासीत संध्येच यतवाग्जपन् ॥ २६ ॥ आचार्यंमां
विजानीयान्नावमन्येतकर्हिचित् । नमर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयोगुरुः ॥ २७ ॥
सायंप्रातरुपानीयभैक्ष्यं तस्मैनिवेदयेत् । यच्चान्यदप्यनुज्ञातमुपयुञ्जीत संयतः ॥
॥ २८ ॥ शुश्रूषमाणआचार्यं सदोपासीतनीचवत् । यानशय्यासनस्थानैर्नातिदूरे

स्थान के अनुसार हुईथी; उच्चस्थान में उत्पन्नहुए उच्च और नीचस्थान में उत्पन्नहुए नीचहुएथे ॥ १५ ॥ शम, दम, तप, शौच, संतोष, क्षमा, सरलता, मुझमें भक्ति, दया और सत्य यहसब ब्राह्मणों की प्रकृति है ॥ १६ ॥ प्रभाव, बल, धैर्य, धारता, तितिक्षा, उदारता, उद्यम, स्थैर्य, ब्राह्मणों की हितकारिता और ऐश्वर्य यहसब क्षत्रियों की प्रकृति हैं ॥ १७ ॥ आस्तिकता, दानमें निष्ठा, दम्भहीनता, ब्राह्मणसेवा और धनकी चाहे जितनी वृद्धिहो उस से सन्तुष्ट न होना यहसब वैश्यकी प्रकृति हैं ॥ १८ ॥ अकपट भावसे ब्राह्मण, गौ और देवताओं की सेवाकरना तथा उन से प्राप्तहुए पदार्थों से सन्तुष्टरहना यहसब शूद्रकी प्रकृति हैं ॥ १९ ॥ अपवित्रता, मिथ्या, चोरी नास्तिकता, व्यर्थलड़ाई, काम, क्रोध और लोभ यहसब श्वपच चाण्डालादिकों की प्रकृति हैं ॥ २० ॥ अहिंसा, सत्य, अचौर्य, काम, क्रोध लोभ त्याग और प्राणियों के हितकर प्रियसाधन में चेष्टा,—यह सब वर्णों का धर्म है ॥ २१ ॥ ब्राह्मण गर्भाधानादि संस्कार के उपरांत उपनयन नामक द्वितीय जन्म प्राप्तकर जितेंद्रिय हो गुरुकुल में वासकरे । और गुरुके द्वारा बुलाये जानेपर वेदाध्ययन और उसके अर्थ के विचार में प्रवृत्त होवे ॥ २२ ॥ उसको मेखला, मृगचर्म, दण्ड, जप करनेकी माला, यज्ञोपवीत और कमण्डलु तथा कुश धारण करना चाहिये;—केशों की जटाबनावे,—वस्त्र और दांतो कोन धोवे तथा आसन को न रंगे ॥ ॥ २३ ॥ उसको;—स्नान, भोजन, होम, जप और मलमूत्र त्यागने के समय मौनी रहना चाहिये । नखों को न कटवावे तथा कांख और उपस्थ के बाल न बनवावे ॥ २४ ॥ ब्रह्मव्रताचारी कभी वीर्य को न गिरावे; यदि स्वयं गिरजावे तो जल में स्नानकर प्राणायाम पूर्वक गायत्रीका जपकरे ॥ २५ ॥ शुद्धहो एकाग्रचित्त से मौन को धारणकर द्विसन्ध्या का जपकर तथा अग्नि, सूर्य, आचार्य, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, और देवताओंकी उपासनाकरे ॥ २६ ॥ गुरूको मेरा स्वरूपजाने,—कभी तिरस्कार न करै, और उसके गुणमें दोषका आरोप नहींकरना; क्योंकि गुरू सर्वदेवमय है ॥ २७ ॥ भिक्षाद्वारा जो प्राप्तहो अथवा और भी जो कुछ मिलजावे, वह प्रातःकाल और सायंकाल को लाय गुरूके अर्पणकरे । वह जो भोजन करने की आज्ञाकरैं, एकाग्रचित्तहो उसही का भोजनकरै ॥ २८ ॥ नीचकी समान हाथजोड़ निकटही निवासकर आचार्यकी शुश्रूषा

कृतांजलिः ॥ २९ ॥ एवंवृत्तोगुरुकुले वसेद्भोगविवर्जितः। विद्यासमाप्यते यावद्बि
भ्रद्व्रतमखण्डितम् ॥ ३० ॥ यद्यसौछन्दसां लोकमारोक्ष्यन्ब्रह्मविष्टपम्। गुरवेवि
न्यसेद्देहं स्वाध्यायार्थं बृहद्व्रतः ॥ ३१ ॥ अग्नौगुरावात्मनिच सर्वभूतेषुमां परम्।
अपृथग्धीरुपासीत ब्रह्मवर्चस्व्यकल्मषः ॥ ३२ ॥ स्त्रीणां निरीक्षणस्पर्शसंलापक्ष्वे
लनादिकम्। प्राणिनोमिथुनीभूता नगृहस्थोऽग्रतस्त्यजेत् ॥ ३३ ॥ शौचमाचमनं
स्नान संध्योपासनमार्जवम्। तीर्थसेवाजपोऽस्पृश्याऽभक्ष्याऽसंभाष्यवर्जनम्।३४।
सर्वाश्रमप्रयुक्तोऽयं नियमःकुलनन्दन। मद्भावःसर्वभूतेषु मनोवाक्कायसंयमः।३५
एवंबृहद्व्रतधरो ब्राह्मणोऽग्निरिव ज्वलन्। मद्भक्तस्तीव्रतपसा दग्धकर्माशयोऽ-
मलः ॥ ३६ ॥ अथानन्तरमावेक्ष्यन्यथाजिज्ञासितागमः। गुरवेदक्षिणांदत्वा स्ना-
याद्गुर्वनुमोदितः ॥ ३७ ॥ गृहंवनं वोपविशेत्प्रव्रजेद्वा द्विजोत्तमः। आश्रमादाश्र
मं गच्छेन्नान्यथामत्परश्चरेत् ॥ ३८ ॥ गृहार्थीसदृशीं भार्यामुद्वहेदजुगुप्सिताम्।
यवीयसीं तुवयसायांसवर्णामनुक्रमात् ॥३९॥ इज्याध्ययनदानानि सर्वेषांच द्विज
न्मनाम्। प्रतिग्रहोऽध्यापनंच ब्राह्मणस्यैवयाजनम् ॥ ४० ॥ प्रतिग्रहं मन्यमानस्त-
पस्तेजोयशोनुदम्। अन्याभ्यामेवजीवेत शिलैर्वा दोषदृक्तयोः ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणस्य
हिदेहोऽयं क्षुद्रकामायनेष्यते। कृच्छ्रायतपसेचेह प्रेत्यानन्तसुखायच ॥ ४२ ॥ शि

परायण हो गमन, शयन और उपवेशनद्वारा उनकी सेवा करे ॥ २९ ॥ जबतक विद्या समाप्त न होवे तबतक एकांत व्रतधारणकर इसही प्रकार अनुष्ठान करतेहुए भोग रहितहो गुरुकुल में वास करना चाहिये ॥ ३० ॥ यदि उसको इन वेदों के निवासस्थान ब्रह्मलोक में जानेकी इच्छा होवे तो बृहत्व्रत धारण कर अधिक अध्ययन के निमित्त तेजयुक्त और निष्पापहो भिन्नबुद्धिकोत्याग अग्नि, गुरु, आत्मा और सब प्राणियों में परमेश्वररूपी मेरी उपासना करनी चाहिये ॥ ३१—३२ ॥ अगृहस्थ मनुष्य को स्त्रियों का दर्शन, स्पर्शन, आलाप और परिहासादि त्याग देना चाहिये, और स्त्री पुरुष के प्रसंगको न देखे ॥ ३३ ॥ शौच, आचमन, स्नान, सन्ध्योपासन, सरलता, मेरी पूजा, तीर्थ सेवा, जप, अस्पृश्य, अभक्ष्य और अयोग्यभाषणका त्यागकर देवे ॥ ३४ ॥ सब प्राणियों में मेरा ध्यान करे और चित्तवाक्य तथा शरीरको संयमरक्खे। हे कुलनन्दन ! यह सब शौचादि नियम सबही आश्रमों के साधारण धर्म हैं ॥ ३५ ॥ इसप्रकारसे व्रतधारी, प्रज्वलित अग्निकी समान ब्राह्मणके निष्काम होनेपर उसके कठोर तपस्याद्वारा कर्माशय दग्ध होजाते हैं और वह मेराभक्त होजाता है ॥ ३६ ॥ यदि उसकी इच्छा द्वितीय आश्रम में प्रवेश करने की हो तो उसको उचित है कि वह भलीप्रकार से वेदार्थका विचारकर गुरूको दक्षिणादे गुरूकी आज्ञा के तदनंतर स्नान करे॥३७॥ मत्परायण द्विजवर ब्रह्मचारी यदि सकाम हो तो गृहस्थहोवे और यदि निष्कामहो तो वानप्रस्थाश्रमकरे; यदि शुद्ध चित्तहो तो सन्यासलेवे, अथवा एकआश्रम से दूसरे आश्रमको जावे। इससे विपरीत न करे अर्थात् आश्रम शून्यन रहे ॥ ३८ ॥ गृहस्थाश्रम के चाहने वालेको सवर्णा, अनंदिता, अपनी अवस्था से न्यूनस्त्रीसे विवाह करना चाहिये; कामके हेतु जो दूसरे वर्णका विवाह करना चाहेतो सवर्णा स्त्रीके व्याहकेउपरांत दूसरा व्याह करे॥३९॥ यज्ञ, अध्ययन और दान यहतीनों ब्राह्मण क्षत्री और वैश्योंके साधारण धर्म हैं। प्रतिग्रह, अध्ययन और यजन ये तीन केवल ब्राह्मण केही धर्म हैं ॥ ४० ॥ दान लेनेसे (प्रतिग्रह) तपस्या, तेज और यशका नाश होताजान अन्य दोनों वृत्तियों से जीवन को धारण करे; और यज्ञ कराने व वेद पढ़ानेमें भी दोष देखेतो क्षेत्र स्वामीके छोड़े हुए अन्नके दानोंको बीनकर अपनी जीविका का निर्वाह करे ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणका यह शरीर तुच्छ कामनाओंके भोगनेके निमित्त नहींहै किन्तु समस्त जीवन दुःखका सहनकर तपस्यामें चित्त लगाय मरनेके पीछे अंनत सुख भोगनेके निमित्त

लोञ्छवृत्त्या परितुष्टचित्तो धर्ममहान्तंविरजंजुषाणः। मय्यर्पितात्मा गृहएव तिष्ठन्ना
तिप्रसक्तः समुपैति शान्तिम् ॥ ४३ ॥ समुद्धरन्तिये विप्रं सीदन्तंमत्परायणम्। ता-
नुद्धरिष्येनचिरादापद्भ्यो नौरिवार्णवात् ॥ ४४ ॥ सर्वाःसमुद्धरेद्राजा पितेवव्यसना
त्प्रजाः। आत्मानमात्मनाधीरो यथा गजपतिर्गजान् ॥ ४५ ॥ एवंविधो नरपति-
र्विमानेनार्कवर्चसा। विधूयेहाशुभंकृत्स्नमिन्द्रेण सहमोदते ॥ ४६ ॥ सीदन्विप्रोव-
णिग्वृत्त्या पण्यैरेवापदंतरेत्। खड्गेनवाऽऽपदाक्रान्तो नश्ववृत्त्याकथंचन ॥ ४७ ॥
वैश्यवृत्त्यातुराजन्यो जीवेन्मृगययाऽऽपदि। चरेद्वा विप्ररूपेण नश्ववृत्त्याकथंचन
॥ ४८ ॥ शूद्रवृत्तिंभजेद्वैश्यः शूद्रः कारुकटक्रियाम्। कृच्छ्रान्मुक्तोनगर्ह्येण वृत्तिं लि
प्सेतकर्मणा ॥४९॥ वेदाध्यायस्वधास्वाहाबल्यन्नाद्यैर्यथोदयम्॥ देवर्षिपितृभूता-
नि मद्रूपाण्यन्वहंयजेत् ॥ ५० ॥ यदृच्छयोपपन्नेन शुक्लेनोपार्जितेनवा। धनेनाऽपी-
डयन्भृत्यान् न्यायेनैवाहरेत्क्रतून् ॥ ५१ ॥ कुटुम्बेषुनसज्जेत नप्रमाद्येत्कुटुम्ब्यपि।
विपश्चिन्नश्वरंपश्येददृष्टमपिदृष्टवत् ॥ ५२ ॥ पुत्रदाराप्तबन्धूनांसंगमःपान्थसंगमः
अनुदेहंवियन्त्येते स्वप्नोनिद्रानुगोयथा ॥ ५३ ॥ इत्थंपरिमृशन्मुक्तो गृहेष्वतिथि
वद्वसन्। नगृहैरनुबध्येत निर्ममोनिरहंकृतः ॥ ५४ ॥ कर्मभिर्गृहमेधीयैरिष्ट्वामा
मेवभक्तिमान्। तिष्ठेद्वनंवोपविशेत्प्रजावान्वापरिव्रजेत् ॥ ५५ ॥ यस्त्वासक्तमति

है ॥ ४२ ॥ शिलाञ्छ वृत्तिद्वारा संतुष्टचित्त हो निष्काम महद्धर्मका सेवनकर मुझमें आत्म सम-
र्पण करे और अनति आसक्त भावसे घरमें रहकर मोक्षका अधिकारी होवे ॥ ४३ ॥ जो कष्टभोगी
मेरे भक्त ब्राह्मण को दारिद्र्यासे उद्धार करते हैं, समुद्र में गिरेहुए मनुष्यको नौकाकी समान, मैं
भी उसको दु:खसे छुड़ाता हूं ॥ ४४ ॥ धीरराजा पिताकी समान सब प्रजाको और जैसे गजपति
हाथियोंका उद्धार करता है वैसेही आत्मा द्वारा आत्माके दुःखको दूर करना चाहिये ॥ ४५ ॥
जो राजा पिताकी समान सब प्रजाको दुःखसे छुड़ाताहै वह सब अशुभोंको दूरकर सूर्यके प्रकाश
की समान रथार बैठ स्वर्गमें जाय इन्द्रकेसाथ आमोद प्रमोद करता है ॥ ४६ ॥ ब्राह्मण दरिद्रता
के कारण अत्यन्त दु:खी होवे तो वणिक् वृत्तिका अवलम्बन कर विक्रय योग्य पदार्थोंद्वाराही अपने
दु:खसे उद्धार होवे यदि इससे भी दुःख दूर न होवे, तो क्षात्रिय वृत्तिका अवलम्बन कर खड्गद्वारा
दुःख से छूटे। परन्तु कभी कुत्तेकी वृत्ति अर्थात् नौकरी न करे ॥ ४७ ॥ आपत्ति कालमें क्षत्री
वैश्य वृत्ति तथा शिकार (मृगया) द्वारा जीवन धारण करे अथवा ब्राह्मणकी वृत्तियोंको स्वीकार
करे परन्तु कभी कुत्तेकी वृत्तिसे जीविका का निर्वाह न करे ॥ ४८ ॥ वैश्यके दु:खित होने पर
उसको शूद्रकी वृत्तिका अवलम्बन करना चाहिये और शूद्रको चटाई आदि बनानेकी क्रियाका अव-
लंबन करना चाहिये। आपत्ति कालसे उत्तीर्ण होनेपर कोई निंदित कर्म द्वारा जीविका के निर्वाह
करनेकी इच्छा न करे ॥ ४९ ॥ गृहस्थ मनुष्य को यथा शक्ति वेदाध्यन तथा स्वधा, स्वाहा,
बलि और अन्नादि द्वारा प्रतिदिन मेरे स्वरूप देव, ऋषि, पितर और प्राणियोंकी उपासना करनी
चाहिये ॥ ५० ॥ विना उद्योग से प्राप्त अथवा अपनी वृत्तिसे उपार्जित धन द्वारा पोष्य वर्ग को
पीडित न कर न्यायानुसार यज्ञों का अनुष्ठान करे ॥ ५१ ॥ कुटुम्ब में आसक्त न होवे; कुटुम्बी
होकरभी भगवद्भक्तिको न भूले; पण्डितजन दृष्ट पदार्थकी समान अदृष्ट भाग्यको भी क्षण भंगुर
जाने ॥ ५२ ॥ पुत्र, स्त्री, सुहृद और बंधुओंका समागम मार्गमें आते जाते यात्रियोंके समागमकी
समान है जिसप्रकार कि निद्राके चलेजाने से स्वप्न चला जाता है ऐसेही यह सबलोग देहके चले
जानेपर चलेजाते हैं ॥ ५३ ॥ योगी को इसप्रकार का विचारकर उदासीनकी समान ममताहीन
और अहंकार रहितहो घरमें रहकर घरमें आसक्त न होना चाहिये ॥ ५४ ॥ भक्तिमानहो गृह-
स्थके कर्तव्यकर्मद्वारा मेराही यजनकर गृहाश्रम मेही रहे, अथवा वानप्रस्थ होवे अथवा पुत्रवान

गेहे पुनर्विवशपनातुरः । कौणः कृपणधीर्मूढो ममाहमितिबध्यते ॥ ५६ ॥ अहो मे पितरौ वृद्धौ भार्या बालात्मजात्मजाः । अनाथा मामृते दीनाः कथं जीवन्ति दुःखिताः ॥ ५७ ॥ एवं गृहाशयाक्षिप्त हृदयो मूढधीरयम् । अतृप्तस्ताननुध्यायन् मृतो ऽन्धं विशते तमः ॥ ५८ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

श्रीभगवानुवाच । वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सहैव वा । वन एव वसेच्छान्तस्तृतीयं भागमायुषः ॥१॥ कन्दमूलफलैर्वन्यैर्मेध्यैर्वृत्तिं प्रकल्पयेत् । वसीत वल्कलं वासस्तृणपर्णाजिनानि च ॥ २ ॥ केशरोमनखश्मश्रुमलानि बिभृयाद्दतः । न धावेदप्सु मज्जेत त्रिकालं स्थण्डिलेशयः ॥३॥ ग्रीष्मे तप्येत पञ्चाग्नीन्वर्षास्वासारषाड्जले । आकण्ठमग्नः शिशिर एवं वृत्तस्तपश्चरेत् ॥ ४ ॥ अग्निपक्वं समश्नीयात्कालपक्वमथापि वा । उलूखलाश्मकुट्टो वा दन्तोलूखल एव वा ॥ ५ ॥ स्वयं सञ्चिनुयात्सर्वमात्मनो वृत्तिकारणम् । देशकालबलाभिज्ञो नाददीतान्यदाऽऽहृतम् ॥ ६ ॥ वन्यैश्चरुपुरोडाशैर्निर्वपेत्कालचोदितान् । न तु श्रौतेन पशुना मां यजेत वनाश्रमी ॥७॥ अग्निहोत्रं च दर्शश्च पूर्णमासश्च पूर्ववत् । चातुर्मास्यानि च मुनेराम्नातानि च नैगमैः ॥ ८॥ एवं चीर्णेन तपसा मुनिर्धमनिसन्ततः । मां तपोमयमाराध्य ऋषिलोकादुपैति माम् ॥ ९ ॥ यस्त्वेतत्कृच्छ्रतश्चीर्णं तपो निःश्रेयसं महत् । कामायाल्पीयसे युञ्ज्याद्बालिशः ।

होनेपर सन्मार्गको भारण करे ॥ ५५ ॥ जिसकी बुद्धि घरमें आसक्त है और जो पुत्र तथा धनकी चाहसे कातर है जो स्त्री में कमाट और कृपण बुद्धि है वह मूढ 'मैं' और 'मेरा' यह विचारकर बद्ध होता है ॥ ५६ ॥ अहा ! मेरे माता पिता बूढे हैं, स्त्री के बालक बच्चे हैं, विचारे बालक मेरे बिना अनाथ होकर किसप्रकार जीवेंगे ? ॥ ५७ ॥ इसप्रकार घरकीबासना में चारों ओर से बँधाहुआ मूढ बुद्धि गृहस्थ का अतृप्तभाव से ऐसा विचार करते करते अन्त में अति तामसी योनि को प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

श्री भगवान ने कहा कि हे उद्धव वन मे प्रवेश करने की इच्छा होने पर पुत्रोंके ऊपर पत्नी का भार दे अथवा उसके साथही शांत चित्तसे आयु का तृतीय भाग वनमें बितावे॥१॥और शुद्ध वनके पदार्थ कंद मूल और फलद्वारा जीविका निर्वाह करे और वल्कल वस्त्र तृण पर्ण वा मृग चर्म को पहिने॥२॥नह केश,लोम,नख,डाढी,मूछ में मैल भरा रहने देवे, दांतों को न धोवे तीनों संध्याओंमें जलसे स्नान करे पृथ्वी पर सोवे ॥३॥ ग्रीष्म कालमें पंचाग्नि के तापसे तप्त होवे वर्षा काल में जलधारा का सहन करे शीतकाल म जलमें गलेतक डूबा रहे इसप्रकार के आचरणों से तपस्याकरे ॥४॥ अग्निसे पकेहुए अथवा स्वयंही पके हुए फलादिका भोजन करे उखल में कूटकर अथवा पत्थरमे कूटकर खावे या दांतोंहीसे चबाले॥५॥अपने जीवनके योग्य सब द्रव्योंका स्वयंही संचयकरे देश काल और शक्ति से भली प्रकार ज्ञात हो नये पदार्थ के मिलने पर पुराने पदार्थ को त्याग देवे ॥ ६ ॥ वनमें उत्पन्न हुए पदार्थों से समयानुसार चरु और पुरोडाश द्वारा पितर और देवताओं के उद्देश से यज्ञकरे, वर्णाश्रमी मनुष्यको वेद विहित पशुद्वारा मेरा यज्ञ न करना चाहिये ॥ ७ ॥ वेदवेत्ताओं ने निर्णय किया है कि वानप्रस्थगी अग्निहोत्र, दर्श, पूर्णमास और चातुर्मास यज्ञ गृहस्थाश्रमकीसमान करे ॥ ८ ॥ जिसकी नसें देख पड़ती हैं मांस सूखगया है वह मुनि इसप्रकारकी अनुष्ठित तपस्याद्वारा मुझ तपोमयकी उपासना कर ऋषिलोक से मुझको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ कष्टभोगकर कियेहुए और परकल्याणकारी मोक्षके देनेवाले इ-

शः कोऽपरस्ततः ॥१०॥ यदाऽसौ नियमेऽकल्पो जरयाजातवेपथुः । आत्मन्यग्नीन्स मारोप्य मच्चित्तोऽग्निंसमाविशेत् ११ यदाकर्मविपाकेषुलोकेषुनिरयात्मसु । विरागो जायतेसम्यङ्न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत्ततः ॥१२॥ इष्ट्वायथोपदेशंमां दत्त्वासर्वस्वमृत्विजे । अग्नीन्स्वप्राणआवेश्य निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥१३॥ विप्रस्यवैसंन्यसतो देवादारादि रूपिणः । विघ्नान्कुर्वन्त्ययंह्यस्मानाक्रम्यसमियात्परम् ॥ १४ ॥ बिभृयाच्चेन्मुनि र्वासः कौपीनाच्छादनंपरम् । त्यक्तंनदण्डपात्राभ्या मन्यत्किञ्चिदनापदि ॥ १५ ॥ दृष्टिपूतंन्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् । सत्यपूतांवदेद्वाचं मनःपूतंसमाचरेत् १६ मौनाऽनीहानिलायामा दण्डावाग्देहचेतसाम् । नह्येतेयस्यसन्त्यंग वेणुभिर्नभवे द्यतिः ॥ १७ ॥ भिक्षांचतुर्षुवर्णेषु विगर्ह्यान्वर्जयंश्चरेत् । सप्तागारानसंक्लृप्तांस्तु ष्येल्लब्धेनतावता ॥ १८ ॥ बहिर्जलाशयंगत्वा तत्रोपस्पृश्यवाग्यतः । विभज्यपा वितंशेषं भुञ्जीताऽशेषमाहृतम् ॥ १९ ॥ एकश्चरेन्महीमेतां निःसङ्गः संयतेन्द्रियः । आत्मक्रीडआत्मरत आत्मवान्समदर्शनः ॥ २० ॥ विविक्तक्षेमशरणो मद्भावविम लाशयः । आत्मानंचिन्तयेदेक मभेदेनमयामुनिः ॥ २१ ॥ अन्वीक्षेतात्मनोबन्धं मोक्षंचज्ञाननिष्ठया । बन्धइन्द्रियविक्षेपो मोक्षएषांचसंयमः ॥ २२ ॥ तस्मान्निय म्यषड्वर्गं मद्भावेनचरेन्मुनिः । विरक्तःक्षुल्लकामेभ्यो लब्ध्वात्मनिसुखंमहत् २३

सतप का संसार के तुच्छ सुखके निमित्त जो उपयोग करता है उससे अधिक दूसरा और कौन मूर्ख ? ॥ १० ॥ जब आयुके तृतीयभाग से प्रथमही जरा अवस्थासे देह कपकँपाने लगे और वानप्रस्थका धर्म पालन न करसके तब अपने में अग्निका समारोपणकर मुझमें मनको लगाय अग्नि में प्रवशकरे ॥११॥ कर्म के फलरूप तथा परिणाममें नरककी समान दुःखरूप सर्व लोकोंमें पूर्ण वैराग्य उत्पन्न होजाय तो अग्निहोत्रका त्यागकर वानप्रस्थाश्रममेंसे सन्यास लेवे ॥ १२ ॥ सन्यास लेनेवाला शास्त्रकी रीत्यनुसार आठ श्राद्धकर प्राजापत्य नामक यज्ञ से मेराआराधन करे तदनन्तर अग्नियोंका अपने आत्मामें आरोपकर सब तृष्णाको त्यागकर सन्यास को लेवे ॥१३॥ यह हमारे स्थानों को उल्लंघकर परब्रह्मको प्राप्त होवेगा, यह विचार देवताओं आदि के रूपसे स्त्री सन्यास के अवलम्बन में तत्पर ब्राह्मण को विघ्न करते हैं ॥ १४ ॥ मुनिको यदि वस्त्र प-हिरने की इच्छा होवे तो जितने से कौपीन ढकजाय उतनाहीवस्त्र पहिने, आपत्काल के बिना द-ण्ड और पात्रके अतिरिक्त छोडाहुआ और कुछ न धारणकरे ॥ १५ ॥ पहिलेमार्ग देखलेवे तब पैर रक्खे; वस्त्र से छानकर जलको पीवे, सत्यबात कहे; जो मनमें उत्तम दीखे वह करे ॥१६॥ मौन, चेष्टाहीनता और प्राणायाम यथाक्रम से वाक्य, शरीर और मनका दण्ड है । हे उद्धव जिसके यह तीन दण्ड नहीं हैं वह केवल बांसकी लकडिया (दण्ड) लेकर दण्डी सन्यासी न-हींहोसकता ॥ १७ ॥ चार वर्णों में निंदनीयों को छोडकर प्रातःकाल कोही सातघर में भिक्षा मांगै, उसके द्वारा जो प्राप्त होवे उसी में सन्तुष्टरहे ॥ १८ ॥ ग्राम के बाहरजो जलाशयहो वहां जाय मौन भाव से स्नानकर भोजनको शुद्धकरके खावे, यदि भोजनके समय कोई आजावे तो उसको खिलाकर जो शेषरहे आपखावे ॥ १९ ॥ निःसंग, संयतेंद्रिय, आत्माराम, आत्मनिरत, धीर और समदर्शीहो अकेलाही इस पृथ्वी पर भ्रमण करै ॥ २० ॥ सन्यासी निर्जन और निर्भय स्थानमें बसकर मेरी भावना से हृदय को शुद्धकर मेरे साथ अभेद बुद्धिसे केवल आत्माका चिं-तवनकरे ॥ २१ ॥ ज्ञानमें निष्ठा रखकर अपने बन्ध और मोक्ष को विचारे कि इंद्रियों का विक्षेप यही बंध और इंद्रियों का निग्रह यही मोक्ष है ॥ २२ ॥ अतएव छःइंद्रियों को नियम में रखकर सन्यासी मेरी भावना करताहुआ भ्रमण करै, तुच्छ विषयों में वैराग्य रखने से मनमें अत्यन्त

पुरग्रामव्रजान्सार्थान् भिक्षार्थं प्रविशंश्चरेत् । पुण्यदेशसरिच्छैलवनाश्रमवतीं महीम् ॥ २४ ॥ वानप्रस्थाश्रमपदेष्व भीक्ष्णंभैक्ष्यमाचरेत् । संसिध्यत्याश्वसंमोहः शुद्धसत्त्वःशिलान्धसा ॥ २५ ॥ नैतद्वस्तुतयापश्येद् दृश्यमानं विनश्यति । असक्तचित्तोविरमेदिहामुत्रचिकीर्षितात् ॥ २६ ॥ यदेतदात्मनिजगन्मनोवाक्प्राणसंहतम् । सर्वंमायेतितर्केण स्वस्थस्त्यक्त्वानतत्स्मरेत् ॥ २७ ॥ ज्ञाननिष्ठोविरक्तोवा मद्भक्तोवाऽनपेक्षकः । सलिंगानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ॥ २८ ॥ बुधोबालकवत्क्रीडेत्कुशलोजडवच्चरेत् । वदेदुन्मत्तवद्विद्वान् गोचर्यांनैगमश्चरेत् ॥ २९ ॥ वेदवादरतोनस्यान्न पाखण्डीनहैतुकः । शुष्कवादविवादेन कंचित्पक्षं समाश्रयेत् ॥ ३० ॥ नोद्विजेतजनाद्धीरो जनंचोद्वेजयेन्नतु । अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येतकंचन । देहमुद्दिश्यपशुवद्वैरंकुर्यान्नकेनचित् ॥ ३१ ॥ एकएवपरोह्यात्मा भूतेष्वात्मन्यवस्थितः । यथेन्दुरुदपात्रेषु भूतान्येकात्मकानिच ॥ ३२ ॥ अलब्ध्वानविषीदेत कालेकालेऽशनंक्वचित् । लब्ध्वानहृष्येद्धृतिमानुभयंदैवतन्त्रितम् ॥ ३३ ॥ आहारार्थंसमीहेत युक्तंतत्प्राणधारणम् । तत्त्वंविमृश्यतेतेन तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥ ३४ ॥ यदृच्छयोपपन्नान्नमद्याच्छ्रेष्ठमुताऽपरम् । तथावासस्तथाशय्यां प्राप्तंप्राप्तंभजेन्मुनिः ॥ ३५ ॥ शौचमाचमनंस्नानं नतुचोदनयाचरेत् । अन्यांश्चनि

सुख की प्राप्ति होती है ॥ २३ ॥ भिक्षाके निमित्त नगर, गांव, व्रज और सार्थ में प्रवेश कर सदैव पवित्र देश नदियां, पर्वत, वन व आश्रमोंवाली पृथ्वी में अकेलाही भ्रमण करे ॥ २४ ॥ वानप्रस्थों के आश्रमों से बारम्बार भिक्षालावे क्योंकि शिलवृत्ति के द्वारा प्राप्तहुए अन्नके भोजनसे अंतःकरण शुद्धहो मोह की निवृत्ति होती है मोह की निवृत्ति से मोक्ष मिलती है ॥ २५ ॥ देख पड़नेवाली मिष्टान्नादिक वस्तु को वास्तविक नहीं समझना; क्योंकि यह नाशवान हैं,अतएव इस लोक और परलोक की आसक्ति को छोड़ उन लोगों के निमित्त जो काम किये जाते हैं उनसे निवृत्त रहना ॥ २६ ॥ चित्त, वाक्य और प्राण द्वारा आत्मा में विरचित इस जगत को; अहंकारास्पद शरीर को और इससे उत्पन्नहुए समस्त सुखों को " माया " विचार उनको त्याग कर आत्मनिष्ठ होवे और उनका स्मरण भी न करे ॥ २७ ॥ मुमुक्षु होकर जो ज्ञाननिष्ठ अथवा मुक्ति विषय में निरपेक्ष मेरे भक्त हैं वह चिह्नों समेत समस्त आश्रमों को छोड़देवें और जितना बनपड़े उतना आश्रम सम्बन्धी धर्मों का पालन करें ॥ २८ ॥ विवेकी होकर भी बालककीसमान क्रीड़ करे; निपुण होकरभी जड़की समान व्यवहार करे, पण्डित होकरभी उन्मत्तकी समान बात करे; वेदनिष्ठ होकरभी नियम शून्यभावसे बैल की भांति स्थिति में रहे ॥ २९ ॥ कर्मकाण्ड का व्याख्यान करे; श्रुति स्मृति के विरुद्ध कार्य भी न करे और केवल तर्कपरायण भी न होवे; प्रयोजन रहित विवाद में किसी पक्षकाभी अवलम्बन न करे ॥३०॥ किसी मनुष्य से उद्वेग नहींरक्खे धैर्य रखकर किसी को उद्वेग नहीं देवे । सब दुर्वाक्यों का सहनकरे, किसी का तिरस्कार न करे, इस देह के उद्देश से किसी के साथ शत्रुता न करे ॥ ३१ ॥ जिसप्रकार एक चन्द्रमा अनेकों जल पात्रों में अवस्थित रहता है उसही प्रकार केवल एक परमात्मासब प्राणियों में और अपनी देह में स्थित रहता है; समस्त प्राणी एकात्मक हैं ॥ ३२ ॥ उस प्राणी को समय २ में भोजन न मिलने पर कातर न होना चाहिये और पाने से प्रसन्न भी न होना चाहिए । दोनोंही दैवाधीन हैं ॥ ३३ ॥ आहार के निमित्त प्रयत्न करना, क्योंकि प्राणका धारण करना अवश्य है क्योंकि प्राण के धरण करनेसेही तत्त्व का विचार होता है, तत्त्वज्ञ होनेसे मोक्ष मिलती है ॥३४ ॥ मुनि को दैवेच्छासे प्राप्तहुए अन्नका चाहे वह ऊंचहो या नीच खाना चाहिए, इसी प्रकार वस्त्र और शय्या का भी कि जैसी प्राप्तहो वैसा व्यवहार करे ॥३५ ॥ ज्ञाननिष्ठ मनुष्य को वेदानुसारशौच

यमाऽज्ञानी यथाऽहंलीलयेश्वरः ॥ ३६ ॥ नहितस्यविकल्पाख्या याचमद्वीक्षया हता। आदेहान्तात्क्वचित्ख्यातिस्ततःसंपद्यतेमया ॥ ३७ ॥ दुःखोदर्केषुकामेषु जातनिर्वेदआत्मवान्। अजिज्ञासितमद्धर्मो गुरुंमुनिमुपाव्रजेत् ॥३८॥ तावत्परिचरेद्भक्तः श्रद्धावाननसूयकः। यावद्ब्रह्मविजानीयान्मामेवगुरुमादृतः ॥ ३९ ॥ यस्त्वसंयतषड्वर्गः प्रचण्डेन्द्रियसारथिः। ज्ञानवैराग्यरहितस्त्रिदण्डमुपजीवति ॥ ४० ॥ सुरानात्मानमात्मस्थं निह्नुतेमांचधर्महा। अविपक्वकषायोऽस्मादमुष्माच्चविहीयते ॥ ४१ ॥ भिक्षोर्धर्मःशमोऽहिंसातपईक्षावनौकसः। गृहिणोभूतरक्षेज्याद्विजस्याचार्यसेवनम् ॥ ४२ ॥ ब्रह्मचर्यंतपःशौचं संतोषोभूतसौहृदम्। गृहस्थस्याप्यृतौगन्तुः सर्वेषांमदुपासनम् ॥ ४३ ॥ इतिमांयःस्वधर्मेण भजन्नित्यमनन्यभाक्। सर्वभूतेषु मद्भावो मद्भक्तिंविन्दतेचिरात् ॥ ४४ ॥ भक्त्योद्धवानपायिन्या सर्वलोकमहेश्वरम्। सर्वोत्पत्त्यप्ययंब्रह्म कारणंमोपयातिसः ॥ ४५ इतिस्वधर्मनिर्णिक्त सत्त्वोनिर्ज्ञातमद्गतिः। ज्ञानविज्ञानसंपन्नो नचिरात्समुपैतिमाम् ॥ ४६ ॥ वर्णाश्रमवतांधर्म एषआचारलक्षणः। सएवमद्भक्तियुतो निःश्रेयसकरःपरः ॥ ४७ ॥ एतत्तेऽभिहितं साधो भवान्पृच्छतियच्चमाम्। यथास्वधर्मसंयुक्तो भक्तोमांसमियात्परम् ॥४८॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे ऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

आचरण, ज्ञान व दूसरे औरभी नियमों का आचरण न करना चाहिये मैं ईश्वर जिसप्रकार कार्यों का लीलापूर्वक अनुष्ठान करताहूं उनको भी वैसेही लीलापूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ३६ ॥ मुनियों को भेद ज्ञान नहीं होता और जो होता भी है वह ज्ञानद्वारा नाश होजाता है,—जबतक देह का अन्त नहीं होता तबतक कभी २ भेद प्रतीती देखने में आती है परन्तु देह पड़ने के पीछे उसको विदेह मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ३७ ॥ जिस पुरुष के परिणाम में दुःख देनेवाले विषयों में वैराग्य उत्पन्न होजाय और उसे मेरी प्राप्ति का साधन न जानने में आयाहो तो उसे उचित है कि धीरज धर किसी ब्रह्मवेत्ता गुरूकी शरण लेवे ॥ ३८ ॥ जबतक ब्रह्म को न जाने तबतक श्रद्धालु और असूया रहितहो भक्ति पूर्वक गुरू को मेरा रूप जान उसकी सेवाकरे ॥ ३९ ॥ जो अजितेन्द्रिय हैं,—प्रचण्ड इंद्रियें जिनकी सारथी हैं तथा ज्ञान वैराग्य नहीं है, और सन्यास का अवलम्बन करलिया है,—ऐसे धर्म विघाती मनुष्य देवताओं को, आत्माको और आत्मा में रहेहुए मुझको ठगते हैं वह असम्पूर्ण मनोरथहो इस लोक और परलोक से गिरते हैं ॥ ४०—४१ ॥ संन्यासीका धर्म शम और अहिंसा. वानप्रस्थ का धर्म तपश्चरण; गृहस्थी का धर्म प्राणियों का रक्षण और यजन ब्रह्मचारी का धर्म आचार्य की सेवाकरना है ॥ ४२ ॥ ब्रह्मचर्य, तपस्या, शौच संतोष, प्राणियोंपर दयाकरना; और ऋतुकालमें स्त्रीगमन यह गृहस्थीके धर्म हैं; और मेरी उपासना करना सभी का धर्म है ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य वर्णाश्रम के धर्म पालकर निरतर मेरा भजन करे दूसरे स्त्री पुत्रादिकों में प्रीति नरक्खै और सब प्राणियों में मेरी भावना रक्खै उस पुरुषको मेरी भक्ति प्राप्त होजाती है ॥ ४४ ॥ हे उद्धव ! अविनाशिनी भक्ति द्वारा वह सर्व लोकके महेश्वर सबकी उत्पत्ति नाशके प्रवर्त्तक, कारण रूपी वैकुण्ठवासी मुझको प्राप्त होते हैं ॥ ४५॥ इस प्रकार स्वधर्मद्वारा शुद्ध सत्व होने से मेरी गति जानीजासकती है और ज्ञान विज्ञानयुक्त तथा विरक्त होनेसे मैं प्राप्त होजाताहूं ॥ ४६ ॥ यह वर्ण तथा आश्रमवालों का आचार लक्षण धर्म उनको पितृलोक प्राप्तकरनेवाला है किंतु यदि यही धर्म मेरे अर्पण कियाजाय तो मुक्ति का साधन होजाता है ॥ ४७ ॥ हे साधो ! निजधर्म संयुक्त मेराभक्त जिसप्रकार परमेश्वर मुझको प्राप्त होसके इस विषय में जो तुमने पूछाथा,—वह मैंने तुमसे कहा ॥ ४८

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांअष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ योविद्याश्रुतसंपन्न आत्मवान्नानुमानिकः । मायामात्रमिदं ज्ञात्वाज्ञानंचमयिसंन्यसेत् ॥ १ ॥ ज्ञानिनस्त्वहमेवेष्टःस्वार्थोहेतुश्चसंमतः । स्वर्गश्चैवापवर्गश्चनान्योऽर्थोमदृतेप्रियः ॥ २ ॥ ज्ञानविज्ञानसंसिद्धाःपदंश्रेष्ठंविदुर्मम । ज्ञानीप्रियतमोऽतोमेज्ञानेनासौबिभर्तिमाम् ॥ ३ ॥ तपस्तीर्थंजपोदानंपवित्राणीतराणिच । नाऽलंकुर्वन्तितांसिद्धिंयाज्ञानकलयाकृता ॥ ४ ॥ तस्माज्ज्ञानेनसहितंज्ञात्वास्वात्मानमुद्धव । ज्ञानविज्ञानसंपन्नोभजमांभक्तिभावितः ॥ ५ ॥ ज्ञानविज्ञानयज्ञेन मामिष्ट्वात्मानमात्मनि । सर्वयज्ञपतिंमांवैसंसिद्धिंमुनयोऽगमन् ॥ ६ ॥ त्वय्युद्धवाश्रयतियस्त्रिविधोविकारोमायाऽन्तराऽऽपततिनाद्यपवर्गयोर्यत् । जन्मादयोऽस्य यदमीतवतस्य किंस्युराद्यन्तयोर्यदसतोऽस्तितदेवमध्ये ॥ ७ ॥ उद्धव उवाच ॥ ज्ञानंविशुद्धंविपुलंयथैतद्वैराग्यविज्ञानयुतंपुराणम् । आख्याहिविश्वेश्वर विश्वमूर्ते त्वद्भक्तियोगंचमहद्विमृग्यम् ॥ ८ ॥ तापत्रयेणाभिहतस्यघोरेसंतप्यमानस्यभवाध्वनीश । पश्यामिनान्यच्छरणंतवाङ्घ्रिद्वन्द्वातपत्रादमृताभिवर्षात् ॥ ९ ॥ दष्टंजनं संपतितंबिलेऽस्मिन्कालाहिनाक्षुद्रसुखोरुतर्षम् । समुद्धरैनंकृपयाऽऽपवर्ग्यैर्वचोभिरासिञ्चमहानुभाव ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्थमेतत्पुराराजाभीष्मंधर्मभृतांवरम् । अजातशत्रुःपप्रच्छसर्वेषांनोऽनुशृण्वताम् ॥ ११ ॥ निवृत्तेभारतेयुद्धे सुहृन्निधनविह्वलः । श्रुत्वाधर्मान्बहून्पश्चान्मोक्षधर्मानपृच्छत ॥ १२ ॥ तान्हतेऽ

श्रीभगवान बोले कि—जो मनुष्य अनुभव पर्यन्त शास्त्र सम्पन्न के कारण आत्मतत्त्व को प्राप्त होगया है,—परन्तु केवल परोक्ष ज्ञानशाली नहीं उस को द्वैतमात्र और उसके निवृत्ति साधनको मायामात्र जानकर ज्ञानको और ज्ञानसाधनको मुझ में समर्पणकरना चाहिये ॥ १ ॥ मैंही ज्ञानियोंका अभिमत अपेक्षित स्वार्थ, फल, हेतु, अभ्युदय और भक्तिहूं ; मेरेअतिरिक्त उन को और कुछ प्रियपदार्थ नहीं है ॥ २ ॥ ज्ञान विज्ञान युक्त मनुष्य सब मेरे श्रेष्ठपदको जानते हैं क्योंकि ज्ञानी ज्ञानद्वारा मुझको धारण करते हैं अतएव वही मेरे प्रियतम हैं ॥ ३ ॥ ज्ञान के लेशद्वारा जो शुद्धि उत्पन्न होती है वैसी शुद्धि तपस्या, तीर्थसेवा, जप, दान और अन्यान्य पवित्र पदार्थोंद्वारा नहीं उत्पन्न होती ॥ ४ ॥ अतएव हे उद्धव ! जहांतक ज्ञान रहताहै अपने आत्माको वहांतक जान ज्ञान विज्ञान युक्तहो भक्तिभाव से मेरा भजनकरो ॥ ५ ॥ मुनिलोग सर्व यज्ञपति आत्मा,—मुझको ज्ञान विनिमय यज्ञद्वारा आत्मयोगकर सिद्धि स्वरूप मुझको प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥ हे उद्धव ! तुममें जो आध्यात्मिकादि तीन प्रकार का विकार देखने में आता है वह माया है क्योंकि वह मध्यदशा में ही देखपडता है आदि अन्त में नहीं देख पडता ! अतएव इस विकाररूप देहादिक के जन्म आदि विकार होते हैं ; परन्तु तौभी तुम्हारा कुछ नहीं है वास्तव में असत् पदार्थ के आदि अन्त में जो होताहै वही मध्यमें अवस्थित रहताहै ॥७॥ उद्धवजी बोले कि—हे विश्वमूर्ते ! वैराग्य और विज्ञानसहित यह पुरातनशुद्धज्ञान जिसप्रकार से विस्तारहित होवे वह कहो, और अपना भक्तियोग कि जिसे ब्रह्मादिक महात्माभी देखाकरते हैं उसविषयको मैं जानना चाहताहूं, आप कहिये ॥ ८ ॥ हे ईश्वर ! घोर संसारमार्ग में तीनों तापों से व्यथित मनुष्य के पक्षमें चारोंओर से अमृतवर्षी आपके चरणयुगलरूप छत्र बिना दूसरा और कोई भी रक्षाकरनेवाला नहीं देखपड़ता ॥ ९ ॥ संसाररूपी कूपमें गिरे, काल सर्प से काटेहुए, क्षुद्रसुखों में अत्यन्त तृष्णायुक्त मेरे अत्यन्त तापों को शांतकरो । हे महानुभाव ! मोक्षबोधक वाक्यामृत से मेरे सर्वांगको सींचो ॥ १० ॥ श्रीभगवान ने कहाकि—राजा युधिष्ठिरने प्रथम धार्मिक श्रेष्ठ भीष्म से हम सबके सामनेही इसीप्रकार पूछाथा ॥ ११ ॥ महाभारतयुद्ध के अन्त होनेपर बन्धुओं के मरने से विह्वलहुए राजा युधिष्ठिरने बहुतसे धर्म सुनकर अन्तमें यही

निबोधत्वाम्भिदेवव्रतमुखाच्छ्रुताम्। ज्ञानवैराग्यविज्ञानश्रद्धाभक्त्युपबृंहितान्॥ १३॥ नवैकादशपञ्चत्रीन्भावान्भूतेषुयेनवै । ईक्षेताथैकमप्येषुतज्ज्ञानंममनिश्चितम् ॥ १४ ॥ एतदेवहिविज्ञानंनतथैकेनयेनयत्। स्थित्युत्पत्त्यप्ययान्पश्येद्भावानांत्रिगुणात्मनाम् ॥ १५ ॥ आदावन्तेचमध्येचसृज्यात्सृज्यंयदन्वियात् । पुनस्तत्प्रतिसंक्रामेयच्छिष्येततदेवसत् ॥ १६ ॥ श्रुतिःप्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानंचतुष्टयम् । प्रमाणेष्वनवस्थानाद्विकल्पात्सविरज्यते ॥ १७ ॥ कर्मणांपरिणामित्वादाविरिञ्चादमङ्गलम्। विपश्चिन्नश्वरंपश्येददृष्टमपिदृष्टवत् ॥ १८ ॥ भक्तियोगःपुरैवोक्तः प्रीयमाणायतेऽनघ । पुनश्चकथयिष्यामि मद्भक्तेःकारणंपरम् ॥ १९ ॥ श्रद्धाऽमृतकथायांमे शश्वन्मदनुकीर्तनम्। परिनिष्ठाचपूजायां स्तुतिभिःस्तवनंमम ॥ २० ॥ आदरःपरिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम्। मद्भक्तपूजाऽभ्यधिका सर्वभूतेषुमन्मतिः ॥ २१ ॥ मदर्थेष्वङ्गचेष्टाच वचसामद्गुणेरणम्। मय्यर्पणंचमनसः सर्वकामविवर्जनम् २२ मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्यचसुखस्यच । इष्टंदत्तंहुतंजप्त मदर्थंयद्व्रतंतपः २३॥ एवंधर्मैर्मनुष्याणा मुद्धवात्मनिवेदिनाम्। मयिसंजायतेभक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्याऽवशिष्यते ॥२४॥ यदात्मन्यर्पितंचित्तं शान्तंसत्त्वोपबृंहितम्। धर्मंज्ञानंसवैराग्य मैश्वर्यंचाभिपद्यते ॥ २५ ॥ यदर्पितंतद्विकल्पे इन्द्रियैःपरिधावति । रजस्वलंचा

मोक्षधर्म सम्बन्धी प्रश्न कियाथा ॥ १२ ॥ भीष्मके मुखसे सुनाहुआ ज्ञान, विज्ञान, वैराग्यश्रद्धा, और भक्तिद्वारा वर्द्धित उस सब धर्म को मैं तुमसे कहूंगा ॥ १३ ॥ जिस ज्ञानद्वारा ब्रह्मासे लेकर स्थावर पर्यंत सब प्राणियों में प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व, अहंकार और पञ्चतन्मात्रा,—यहनव, ग्यारह इन्द्रियें, पञ्चमहाभूत और सत्व,रज,तम यह तीन गुण सब समेत यह अट्ठाईस तत्त्वजाने जावें और जिसके द्वारा इन सबमें एक आत्मतत्त्व का अनुभव कियाजाय वही ज्ञान निश्चय मेरेही विषय का ज्ञान है ॥ १४ ॥ जिस ज्ञानद्वारा पहिले सबको एकके साथ अनुगतदेखाथा उसही के द्वारा जब उस प्रकार का न देखे तबही ज्ञान विज्ञान नाम से कहने में आता है फिर इसही विज्ञान से सब पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय देख पड़ेगी ॥१५॥ जिसके आदि अन्त और आगे कार्य से कार्यान्तर में अनुगतहोवे उसको फिर वहींपरलेजावे जोशेषरहै वही सत् है॥१६॥ वेद प्रत्यक्ष महाजन प्रसिद्ध और अनुमान यहचारप्रमाण हैं इनसमस्त प्रमाणों के साथ बोधहोनेपर विकल्पसे विरक्त होना चाहिये॥१७॥जैसे यहलोक विनाशी देखपड़ताहै ऐसेही इस लोकके कर्मोंके फलों से सिद्ध होनेवाले स्वर्गसे लेकर ब्रह्मलोक तक ऊपर के लोकोंका सुख भी दुःखरूप अर्थात् नाशवानहै ऐसा देखतेरहना॥१८॥हेअनघ! तुम अत्यन्तही प्रियपात्रहो ! पहिलेही तुमसे भक्तियोग कहाहै फिरभी मैं भक्तिके परमकारण उसभक्ति योग को तुमसे कहताहूं ॥१९॥ मेरी अमृत कथा में श्रद्धा; मेराकथन; मेरी पूजामें निष्ठा, स्तुति वचनोंद्वारा मेरीस्तुतिकरना ॥२०॥ मेरीसेवामें आदर सर्वांगद्वारा मेरा वंदन मेरे भक्तों की पूजा करना सर्व प्राणियों में मेरा अस्तित्व जानना ॥ २१ ॥ मेरेनिमित्त लौकिक कार्य ; वाक्योंद्वारा मेरा गुण कथन, मुझ में मनका अर्पण करना सबकामों का परित्यागकरना,॥२२॥ मेरेनिमित्त धन भोग व सुखका त्यागकरना, और जोकुछ याग,दान, होम, जप, तप, व्रत करे वह सब मेरे निमित्त करना ॥२३॥ हेउद्धव ! जो इसप्रकारके सत्व धर्मोंद्वारा आत्म निवेदक मनुष्यकी मुझ में भक्ति उत्पन्न होती है ; उस के कोई भी साध्य व साधनरूप अर्थ शेष नहीं रहता ॥ २४ ॥ जब शांत और सत्वगुणद्वारा परिपूर्णमन आत्मा में अर्पितहोता है तब धर्म ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ॥ २५ ॥ रजोगुण निष्ठ व असत् अभिनिवेशवाला मन जब देह घर आदि में लगादिया जावे तो वह इंद्रियों के द्वारा इधर

चाभिद्रुतं चित्तं विद्धि विपर्ययम् ॥ २६ ॥ धर्मो मद्भक्तिकृत्प्रोक्तो ज्ञानं चैकात्म्यदर्शनम् गुणेष्वसंगो वैराग्य मैश्वर्यं चाणिमादयः ॥ २७ ॥ उद्धव उवाच ॥ यमः कतिविधः प्रोक्तो नियमो वाऽरिकर्षण । कः शमः को दमः कृष्ण का तितिक्षा धृतिः प्रभो ॥ २८ ॥ किं दानं किं तपः शौर्यं किं सत्यमृतमुच्यते । कस्त्यागः किं धनं चेष्टं को यज्ञः का च दक्षिणा ॥ २९ ॥ पुंसः किंस्विद्बलं श्रीमन् भगो लाभश्च केशव । का विद्या ह्रीः परा का श्रीः किं सुखं दुःखमेव च ॥ ३० ॥ कः पण्डितः कश्च मूर्खः कः पन्था उत्पथश्च कः । कः स्वर्गो नरकः कः स्वित्को बन्धुरुत किं गृहम् ॥ ३१ ॥ क आढ्यः को दरिद्रो वा कृपणः कः क ईश्वरः । एतान्प्रश्नान्मम ब्रूहि विपरीतांश्च सत्पते ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहिंसा सत्यमस्तेय मसंगो ह्रीरसंचयः । आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाऽभयम् ३३॥ शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धाऽऽतिथ्यं मदर्चनम् । तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम् ॥ ३४ ॥ एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः । पुंसामुपासितास्तात यथा कामं दुहन्ति हि ॥ ३५ ॥ शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इन्द्रियसंयमः । तितिक्षा दुःखसम्मर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः ॥ ३६ ॥ दण्डन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् । स्वभावविजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ॥ ३७ ॥ ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्तिता । कर्मस्वसंगमः शौचं त्यागः संन्यास उच्यते ॥ ३८ ॥ धर्म इष्टं धनं नृणां यज्ञोऽहं भगवत्तमः । दक्षिणा ज्ञानसंदेशः प्राणायामः परं बलम् ॥ ३९ ॥ भगो म ऐश्व

उधर विषयों की ओर दौड़ता है और उस से अधर्म, अज्ञान, वैराग्य, और अनैश्वर्य प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ जिससे मेरी भक्ति उत्पन्न होवे वह धर्म है । एकात्म्य दर्शन वह ज्ञान है ; विषयोंमेंसे आसक्तिका छूटजाना वैराग्य है और अणिमादि सिद्धियों का होना ऐश्वर्य कहलाता है ॥ २७ ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हेशत्रुकर्षण ! यम कितने प्रकार का है ? नियम कौन २ हैं ? हेकृष्ण ! शम, दम, धैर्य और तितिक्षा किसे कहते हैं ? ॥ २८ ॥ दान क्या है ? तपस्या क्या है शौर्य क्या है ? सत्य और ऋत किसको कहते हैं ? त्याग क्या है ? इष्टधन किसप्रकारका है? यज्ञ क्या है? दक्षिणा क्या है ? ॥ २९ ॥ हेश्रीमन् ! पुरुष का बलक्या है ? हे केशव ! दया क्या है ? लाभ क्या है ? उत्कृष्ट विद्या, लज्जा और श्री क्या है ? सुख क्या है ! दुःख क्या है ? ॥ ३० ॥ पण्डित कौन है ? मूर्ख कौन है ? सुमार्ग क्या है? कुमार्ग क्या है?स्वर्ग व नरकक्या है ? बन्धु क्या है ? घर क्या है ? ॥ ३१ ॥ धनी व दरिद्र कौन है ? कृपण कौन है ? प्रभु कौन है? हे साधुपते !मेरे इन सब प्रश्नों की व्याख्या करो और इनसे उलटे जो हैं उन सबके अर्थ मुझसे प्रगट करो ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानने कहा कि अहिंसा, सत्य, अचौर्य असंग, लज्जा, असंचय, स्वधर्ममें स्थिर विश्वास, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थैर्य, क्षमा और अभय वह बारह यम हैं ॥ ३३ ॥ तथा बाहरी शौच, आंतरिकशौच, जप, तपस्या, होम, धर्म, आदर, आतिथ्य, मेरीपूजा, तीर्थभ्रमण, दूसरे के निमित्त चेष्टा करना, संतोष और आचार्य की सेवा करना ॥ ३४ ॥ प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गावलंबियोंके यह बारह नियम हैं । हे तात ! इनसब नियमों के पालित होनेसे मनुष्यको इच्छानुसार फल मिलता है ॥ ३५ ॥ मुझमें बुद्धिनिष्ठा—शम; इन्द्रिय संयम-दम, दुःख सहन—तितिक्षा, जिह्वा और उपस्थ का जीतना—धैर्य ॥ ३६ ॥ दण्ड परित्याग करना परमदान है । काम विसर्जन तपस्या, स्वभाव विजय—वीरता, समदर्शन—सत्य, पण्डितों के कहेहुए सत्य वाक्य और सत्यकर्म में अनासक्ति—शौच, और त्यागको कविलोग सन्यास कहते हैं ॥ ३७ । ३८ ॥ धर्म, मनुष्योंका इष्टधन है, परमेश्वर मैंही यज्ञ, ज्ञानोपदेश—दक्षिणा, प्राणायाम—उत्कृष्टबल ॥ ३९ ॥ मेरे ईश्वरपन

र्यभावो लाभोमद्भक्तिरुत्तमः । विद्यात्मनिभिदाबाधो जुगुप्साह्रीरकर्मसु ॥ ४० ॥ श्रीर्गुणानैरपेक्ष्याद्याः सुखंदुःखसुखात्ययः । दुःखंकामसुखापेक्षा पण्डितोबन्धमोक्षवित् ॥ ४१ ॥ मूर्खोदेहाद्यहंबुद्धिः पन्थामन्निगमःस्मृतः । उत्पथश्चित्तविक्षेपः स्वर्गःसत्त्वगुणोदयः ॥ ४२ ॥ नरकस्तमउन्नाहो बन्धुर्गुरुरहंसखे । गृहंशरीरंमानुष्यं गुणाढ्योह्याढ्यउच्यते ॥ ४३ ॥ दरिद्रोयस्त्वसन्तुष्टः कृपणोयोऽजितेन्द्रियः । गुणेष्वसक्तधीरीशो गुणसंगोविपर्ययः ॥ ४४ ॥ एतउद्धवतेप्रश्नाः सर्वेसाधुनिरूपिताः । किंवर्णितेनबहुना लक्षणगुणदोषयोः । गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

उद्धवउवाच । विधिश्चप्रतिषेधश्च निगमोहीश्वरस्यते । अवेक्षतेऽरविन्दाक्ष गुणंदोषंचकर्मणाम् ॥ १ ॥ वर्णाश्रमविकल्पंच प्रतिलोमानुलोमजम् । द्रव्यदेशवयःकालान्स्वर्गंनरकमेवच ॥ २ ॥ गुणदोषभिदादृष्टिमन्तरेणवचस्तव । निःश्रेयसंकथंनॄणां निषेधविधिलक्षणम् ॥ ३ ॥ पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुस्तवेश्वरः । श्रेयस्त्वनुपलब्धेऽर्थे साध्यसाधनयोरपि ॥ ४ ॥ गुणदोषभिदादृष्टिर्निगमात्तेन हि-स्वतः । निगमेनापवादश्च भिदायाइतिहभ्रमः ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच । योगास्त्रयोमयाप्रोक्ता नृणांश्रेयोविधित्सया । ज्ञानंकर्मचभक्तिश्च नोपायोऽन्योस्तिकुत्रचित् ॥ ६ ॥ निर्विण्णानांज्ञानयोगो न्यासिनामिहकर्मसु । तेष्वनिर्विण्णचित्तानां क-

---

के ऐश्वर्य आदिको भाग्य, मेरे प्रति भक्ति—उत्तम लाभ, आत्मामें अभेद ज्ञान—विद्या, अकर्म में हेयता दर्शन और लज्जा ॥ ४० ॥ अपेक्षा हीनतादि गुण—श्री, सुख दुःखका अति क्रम सुख, विषय भाग वासना—दुःख बंध मोक्षको जानने वाला पण्डित ॥ ४१ ॥ देहादिमें अहं ज्ञानयुक्त मनुष्य—मूर्ख है । जिसके द्वारा मैं प्राप्त होऊं वह सुमार्ग है । चित्तका विक्षेप कुमार्ग; सत्वगुण के उदय को स्वर्ग ॥ ४२ ॥ तमोगुणकी वृद्धिको नरक करते हैं । हे सखे ! गुरु बंधु है, मैंही वह गुरु हू । मनुष्य देहही घर है; गुण सम्पन्न धनवानहै ॥ ४३ ॥ असतुष्ट मनुष्य दरिद्र; अजितेन्द्रिय मनुष्य कृपण, जिसका चित्त विषय समूह में अनासक्त है, वही ईश्वर, गुणोंमें जिसकी अनासक्ति नहीं अनीश्वर है ॥ ४४ ॥ हे उद्धव ! तुम्हारे इन प्रश्नोंका मैंने भलीप्रकारसे उत्तर दिया । गुण और दोषको अधिकतासे क्या वर्णन करूं ? गुण दोषोंका देखना तो दोष, और दोनोंके देखने को त्यागदेना यही गुण है ॥ ४५ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांएकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

उद्धवजी ने कहा कि—हे कमललोचन ! आपकी आज्ञारूप वेदविधि निषेध मय है और वह विधि निषेधरूप वेद, विहित और निषिद्ध कर्मों के गुणदोषको प्रतिपादन करता है ॥ १ ॥ सववर्ण आश्रमों क भेद,—प्रतिलोमज अनुलोमज जाति, द्रव्य, देश, अवस्था, काल, तथा स्वर्ग और नरकको गुण दोष रूपही प्रतिपादन करता है । गुण दोष में भेद दृष्टि रखने के अतिरिक्त आप के विधिनिषेधरूप वाक्य किसप्रकार हो सकते हैं ? मनुष्यों की मुक्ति किसप्रकार होवे ॥ ॥ २—३ ॥ हे ईश्वर ! अनुपलब्ध अर्थ तथा साध्य व साधन से आप के वाक्यरूप वेद,—पितरों का देवताओं और मनुष्यों का श्रेष्ठ नेत्र है ॥ ४ ॥ गुणदोष में जो भेद दृष्टि है वह आपकी आज्ञा सेही है स्वयं नहीं मानी गई । और भेदका अपवाद भी आपकीही आज्ञा से है, अतएव मुझको इसमें भ्रम होता है ॥ ५ ॥ श्रीभगवान ने कहाकि—मनुष्योंके मंगलसाधनकी इच्छा से मैंने तीनप्रकारका ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग कहा है, इसके अतिरिक्त कल्याण साधन का और कोई दूसरा उपाय नहीं है ॥६॥ दुःख बोधकर जो संसारके कर्मों से विरक्त हैं उनकर्म

मेयोगस्तुकामिनाम् ॥ ७ ॥ यदृच्छयामत्कथादौ जातश्रद्धस्तुयःपुमान् । ननिर्वि-
ण्णोनातिसक्तोभक्तियोगोऽस्यसिद्धिदः ॥ ८ ॥ तावत्कर्माणिकुर्वीतननिर्विद्येत-
यावता । मत्कथाश्रवणादौवाश्रद्धायावन्नजायते ॥ ९ ॥ स्वधर्मस्थोयजन्यज्ञैरना-
शीःकामउद्धव । नयातिस्वर्गनरकौयद्यन्यन्नसमाचरेत् ॥ १० ॥ अस्मिँल्लोकेवर्त-
मानःस्वधर्मस्थोऽनघःशुचिः । ज्ञानंविशुद्धमाप्नोति मद्भक्तिंवायदृच्छया ॥ ११ ॥
स्वर्गिणोऽप्येतमिच्छन्ति लोकंनिरयिणस्तथा । साधकं ज्ञानभक्तिभ्यामुभयंतदसा-
धकम् ॥ १२ ॥ ननरःस्वर्गतिंकाङ्क्षेन्नारकींवा विचक्षणः । नेमंलोकंचकाङ्क्षेत देहा-
ऽऽवेशात्प्रमाद्यति ॥ १३ ॥ एतद्विद्वान्पुरामृत्यो रभवायघटेतसः । अप्रमत्तइदंज्ञा-
त्वामर्त्यमप्यर्थसिद्धिदम् ॥ १४ ॥ छिद्यमानंयमैरेतैः कृतनीडंवनस्पतिम् । खगः
स्वकेतमुत्सृज्य क्षेमंयातिह्यलम्पटः ॥१५॥ अहोरात्रैश्छिद्यमानं बुद्ध्वाऽऽयुर्भयवेपथुः
मुक्तसङ्गःपरंबुद्ध्वा निरीहउपशाम्यति ॥ १६ ॥ नृदेहमाद्यंसुलभंसुदुर्लभं प्लवंसु-
कल्पंगुरुकर्णधारम् । मयाऽनुकूलेननभस्वतेरितं पुमान्भवाब्धिंनतरेत्सआत्महा॥
॥ १७ ॥ यदारम्भेषुनिर्विण्णोविरक्तः संयतेन्द्रियः । अभ्यासेनात्मनोयोगी धार-
येदचलंमनः ॥ १८ ॥ धार्यमाणंमनोयर्हि भ्राम्यदाश्वनवस्थितम् । अतन्द्रितोऽनु-
रोधेन मार्गेणात्मवशंनयेत् ॥ १९ ॥ मनोगतिंन विसृजेज्जितप्राणो जितेन्द्रियः । स

परित्याग करियों को ज्ञानयोग सिद्धि का देनेवालाहै और जिनके चित्त में निर्वेद उत्पन्न नहीं हुआ है उन कर्मफलकी आसक्तिवाले मनुष्यों के निमित्त कर्मयोग कल्याणकारी है ॥ ७ ॥ और यदि किसी भाग्योदयसे जिस पुरुषको मेरी कथामें श्रद्धा उत्पन्न हुई है जो कर्मफल में अविरक्त और अनति आसक्त हैं उनको भक्तियोग सिद्धिका देनेवाला है॥८॥ जबतक कर्म फलोंसे विराग न होवे अथवा मेरी कथा सुनने में जबतक श्रद्धा न होवे, तबतक कर्मानुष्ठान में प्रवृत्त रहना चाहिये ॥ ९ ॥ हे उद्धव ! फलकी इच्छा न रखने वाला, यज्ञोंद्वारा मेरा आराधन करनेवाला स्वधर्म में रत मनुष्य यदि कोई निषिद्ध आचरण न करे तो वह न तो स्वर्ग को जाता है न नर्क को ॥ ॥ १० ॥ किन्तु इसीलोक में रहता अपने धर्म में स्थित होने से निष्पाप और पवित्र हो इस देह मेंही अवस्थित करके विशुद्ध ज्ञान अथवा मेरी भक्ति को प्राप्त करता है ॥ ११ ॥ नारकी मनुष्यों की समान स्वर्गवासीभी ज्ञान और भक्तिके साधन इस शरीरकी इच्छा करते हैं, दोनोंही दोनोंसाधनों के बाधक हैं॥१२॥ विवेकी मनुष्य नारकी गति की समान स्वर्ग गतिकी भी कामना नहीं करते, और वह इस शरीर की भी कामना नहीं करते, क्योंकि देहकी आसक्ति से वह मनुष्य अवधानशून्य होजाता है ॥ १३ ॥ यह जानकर तथा इस शरीर के अर्थ को सिद्धिदेनेवाला होने पर भी नाशवान जानकर सावधान हो मृत्यु के पहिलेही उसको मुक्तिके निमित्त यत्न करना चाहिये ॥१४॥ जिसमें अपना घोंसला बनायाहै अपनेआश्रयी उस पेड को यमकी समान निर्दयी मनुष्य जबकाटतेहैं तब अनासक्त पक्षी उसको छोड़कर निश्चयही मंगलप्राप्त करताहै इसीप्रकार जो मनुष्य यह विचारकर कि दिनरात आयु का क्षय कररहे हैं, भयसे कम्पित हो आसक्ति छोड परमेश्वरको जानताहै वही यथार्थ सुखी है ॥१५—१६॥ सब फलों की मूल, अति दुर्लभ अति दृढ इस मनुष्य देह रूप नौका को व गुरुरूप खेवैया (मल्लाह) तथा मुझरूप अनुकूल पवनकी प्रेरणाको पाकर जो मनुष्य इससंसाररूप समुद्रसे न उतरे उसे आत्मघातीसमझनाचाहियें॥१७॥ जब कर्मों में निर्वेद प्राप्त होजाय और उनमें दुःखज्ञान पड़ने से वैराग्य उत्पन्न होजाय तथा इन्द्रियें वशमें होजांय तब योगी को अभ्यास करके अपने मनको स्थिरकरना चाहिये ॥ १८ ॥ धारण करने के समय मन यदि शीघ्र भ्रमण में प्रवृत्त होकर चंचल होजावे तो सावधान रहकर कुछ उसकी अपेक्षा पूरण करने द्वारा उसको अपने वश में करे ॥ १९ ॥ प्राण और इंद्रियों के

स्त्वसंपन्नयाबुद्ध्या मन आत्मवशंनयेत् ॥२०॥ एषवैपरमोयोगो मनसः संग्रहःस्मृ-
तः । हृदयज्ञत्वमन्विच्छन्दम्यस्येवार्वतो मुहुः ॥ २१ ॥ सांख्येनसर्वभावानां प्र-
तिलोमानुलोमतः । भवाप्ययावनुध्यायेन्मनो यावत्प्रसीदति ॥ २२ ॥ निर्विण्णस्य
विरक्तस्य पुरुषस्योक्तवेदिनः। मनस्त्यजतिदौरात्म्यं चिन्तितस्यानुचिन्तया २३॥
यमादिभिर्योगपथैरान्वीक्षिक्याच विद्यया । ममार्चोपासनाभिर्वा नान्यैर्योग्यं स्म-
रेन्मनः ॥ २४ ॥ यदिकुर्यात्प्रमादेनयोगी कर्मविगर्हितम् । योगेनैवदहेदंहो नान्य-
त्तत्रकदाचन ॥ २५ ॥ स्वेस्वेऽधिकारेयानिष्ठा सगुणःपरिकीर्तितः । कर्मणांजात्य
शुद्धानामनेननियमः कृतः । गुणदोषविधानेन संगानांत्याजनेच्छया ॥ २६ ॥ जा-
तश्रद्धोमत्कथासुनिर्विण्णः सर्वकर्मसु । वेद दुःखात्मकान्कामान्परित्यागेऽप्यनी
श्वरः ॥ २७ ॥ ततोभजेतमां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः । जुषमाणश्च तान्कामान्दुः
खोदर्कांश्च गर्हयन् ॥ २८ ॥ प्रोक्तेनभक्तियोगेन भजतोमाऽसकृन्मुनेः । कामाहृद
य्यानश्यन्ति सर्वेमयिहृदिस्थिते ॥ २९ ॥ भिद्यतेहृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः
क्षीयन्तेचाऽस्यकर्माणि मयिदृष्टेऽखिलात्मनि ॥ ३० ॥ तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य यो-
गिनोवैमदात्मनः । नज्ञानंनचवैराग्यं प्रायः श्रेयोभवेदिह ॥ ३१ ॥ यत्कर्मभिर्यत्तप
सा ज्ञानवैराग्यतश्चयत् । योगेनदानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥ ३२ ॥ सर्वंमद्भक्ति

जीतन परभी मनको स्वाधीन नहीं छोड़ देना चाहिए किंतु जैसे बने वैसे सत्वगुणवाली बुद्धि से
उसको आधीनही रक्खे ॥ २० ॥ जैसे घोड़े का चढ़नेवाला दुष्टघोड़े के हृदयकी इच्छा जानन
को उसे कुछ दूर उसकीही चालपर जाने देता है फिर पीछे लगाम तानकरजाताहै उसहीप्रकार
अनुभूति मार्ग द्वारा मन को घोड़े की समान धीरे २ वश में करे ॥ २१ ॥ जबतक मन निश्चल
नहोवे तबतक तत्वविवेकद्वारा अनुलोम और प्रतिलोम से सब पदार्थों के उत्पत्ति और नाशकी
चिंता करे ॥ २२ ॥ अविवेक से प्राप्त संसार में जिस पुरुष को निर्वेदक प्राप्त होने के कारण
विराग होजाय उसको गुरुके उपदेश कियेहुए अर्थ का विचारकरना और उस विचारेहुएपदार्थ
का बारम्बार विचार करना चाहिए ऐसे विचार करतेहुए देहादि से अभिमान को परित्यागकरा॥
२३ ॥ यम आदि योगके मार्गों से, आत्म विचार रूप वेदांत विद्या से वा मेरी अर्चना तथा उ-
पासनासे परमात्मारूप मेरे में मनलगाना, किंतु इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा यत्न न करना
॥ २४ ॥ योगी यदि प्रमादवश निंदित कर्मों का अनुष्ठान करे तो ज्ञानाभ्यास और नाम संकीर्त-
नादि द्वाराही उस कर्म से उत्पन्नहुए पाप को नाशकरै; दूसरा प्रायश्चित्त न करै ॥ २५ ॥ निज
निज अधिकारोंकी निष्ठाही गुण कहकर कथित हुई है सबका संग छुड़ाने के अभिप्राय से इस
गुण दोष विधानद्वारा उत्पत्ति—अशुद्धकर्मों का सकोच कियागया है ॥ २६॥ मेरी कथामें जिस
की श्रद्धा उत्पन्न हुई है वह जानबूझकरभी यदि दुःखात्मक इच्छाओं को न छोड़ सके तो दृढ
निश्चय और श्रद्धा पूर्ण हृदय से उन सब कामनाओं का भोग करके भी दुःख उपजानेवालाजान
उनकी निंदाकरे और प्रसन्न चित्त से मेरे भजन में प्रवृत्त रहे। अतएव जोसब कर्मों से विरक्त
हुए हैं,—पहिले कहेहुए भक्ति योगद्वारा जो मुनि निरंतर मेरा भजन करते हैं उनके हृदय में मैं
सदैव विराजमान रहताहूं इससे उनके हृदय की समस्त कामनायें नष्ट होजाती हैं ॥ २७—२८
सर्वात्मभूत मेरा साक्षात्कार होनेसे उनके हृदय की ग्रन्थि छिन्न होजाती है;—समस्त संशयों का
नाशहो सबकर्म नष्ट होजाते हैं ॥ ३० ॥ अतएव मैं कहताहूं कि जो योगी मेरे में मनको लगा
कर मेरी भक्ति करता है उसको ज्ञान वैराग्य मुक्तिके साधन नहीं हैं किंतु भक्ति योगही कल्याण
कारी है ॥ ३१ ॥ जो कर्मकाण्ड और तपस्याद्वारा, जो ज्ञान और वैराग्यद्वारा, जो योग और
ज्ञानद्वारा तथा जो अन्यान्य मंगल अनुष्ठानोंद्वारा प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ वहसब मेरी भक्तिसे

योगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा । स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथंचिद्यदि वाञ्छति ॥ ३३ ॥ न
किंचित्साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम । वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम्
॥ ३४ ॥ नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम् । तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य
मे भवेत् ॥ ३५ ॥ न मय्येकान्तभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः । साधूनां समचित्तानां
बुद्धेः परमुपेयुषाम् ॥ ३६ ॥ एवमेतान्मया दिष्टाननुतिष्ठन्ति मे पथः । क्षेमं विन्दन्ति म-
त्स्थानं यद्ब्रह्म परमं विदुः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

श्रीभगवानुवाच । य एतान्मत्पथो हित्वा भक्तिज्ञानक्रियात्मकान् । क्षुद्रान्कामां-
श्चलैः प्राणैर्जुषन्तः संसरन्ति ते ॥ १ ॥ स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः ।
विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः ॥ २ ॥ शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि
वस्तुषु । द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ ॥ ३ ॥ धर्मार्थं व्यवहारार्थं
यात्रार्थमिति चानघ । दर्शितोऽयं मयाऽऽचारो धर्ममुद्वहतां धुरम् ॥ ४ ॥ भूम्यम्ब्व-
ग्न्यनिलाकाशा भूतानां पञ्च धातवः । आब्रह्मस्थावरादीनां शारीरा आत्मसंयुताः ॥
५ ॥ वेदेन नामरूपाणि विषमाणि समेष्वपि । धातुषूद्धव कल्प्यन्त एतेषां स्वार्थसि-
द्धये ॥ ६ ॥ देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम । गुणदोषौ विधीयेते नियमार्थं
हि कर्मणाम् ॥ ७ ॥ अकृष्णसारो देशानामब्रह्मण्योऽशुचिर्भवेत् । कृष्णसारोऽप्य-

---

अनायासही प्राप्त होजाता है और इच्छा करने से स्वर्ग, मुक्ति तथा वैकुण्ठभी प्राप्त होता है ॥
३३ ॥ जो धीर, साधु लोग मेरे एकांत भक्त हैं वे किसी फलकी इच्छा नहीं रखते, यद्यपिमैं उन
को कैवल्य मोक्ष देना चाहताहूं परन्तु वे उसकी भी चाहना नहीं करते ॥ ३४ ॥ कामनाकात्याग
करनाही श्रेष्ठ फल और साधन कहलाता है अतएव कामना रहित प्रार्थनाहीन मनुष्य कीही मुझ
पर भक्ति होती है ॥ ३५ ॥ जिन के रागादि दोष निवृत्त होकर अंतःकरण समभाव को प्राप्त
होगये हैं और उसी बुद्धिसे परमेश्वर को प्राप्त होगये हैं उनके गुण दोष से होनेवाले पुण्य
पापादिकों से कुछ भी विकार नहीं होता ॥ ३६ ॥ इसप्रकार मुझे प्राप्त करने के जिन जिन
उपदेशों को मैंने कहा है जो उन सब उपदेशों के अनुसार चलते हैं वे काल मायादि रहित मेरे
लोक को प्राप्त होते हैं और परब्रह्मको जानसकते हैं ॥ ३७ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

श्रीभगवान बोले कि—जो मनुष्य मुझको प्राप्त होने के निमित्त भक्ति, ज्ञान, क्रियात्मक इन
सब उपायोंको छोड़कर चञ्चल इंद्रियोंद्वारा क्षुद्र कामनाओं का सेवन करते हैं वही इस संसार में
नाना योनियों को प्राप्त होते रहते हैं ॥ १ ॥ अपने २ अधिकार में निष्ठा रखनाही गुण कहा
जाता है; इसके विपरीत दोष होता है, दोनों पक्ष में यही निर्णय है ॥ २ ॥ हेउद्धव ! यह योग्य
है या अयोग्य ? इसप्रकार के संशयद्वारा द्रव्यकी स्वाभाविक प्रवृत्तिके संकोच करने के निमित्त;
धर्म, व्यवहार व प्राणरक्षा के निमित्त एकसी वस्तुओं में शुद्धि, अशुद्धि; गुण, दोष; और मंगल
अमंगल का विधान कियागया है ॥ ३ ॥ इसप्रकार धर्म रूप भार ढोनेवाले मनुष्यों के निमित्त
मैंनेही मनुआदि रूप धारण करके इस आचार को दिखाया है ॥ ४ ॥ पृथिवी, जल, अग्नि,
वायु और आकाश यह पांचमहाभूत ब्रह्मासे सामान्य स्थावरपर्यंत प्राणियोंके शरीरके धातु व आ-
रंभक हैं ॥ ५ ॥ हे उद्धव ! इन समस्त प्राणियों के स्वार्थ सिद्धिके निमित्त यह एकही प्रकार के
शरीर वेदों द्वारा पृथक् २ नाम और रूपमें कल्पित हुए हैं ॥ ६ ॥ हे साधुश्रेष्ठ ! मैंने सबकर्मोंका
संकोच करने के निमित्त देश, कालआदि सब वस्तुओंमें गुण दोषका विधान किया है ॥ ७ ॥ सब

सौवीरःकीकटासंस्कृतेरिणम् ॥ ८ ॥ कर्मण्योगुणवान्कालो द्रव्यतःस्वतएववा । यतोनिवर्ततेकर्मसदोषोऽकर्मकःस्मृतः ॥ ९ ॥ द्रव्यस्यशुद्ध्यशुद्धीच द्रव्येणवचनेनच । संस्कारेणाथकालेन महत्वाल्पतयाऽथवा ॥ १० ॥ शक्त्याऽशक्त्याऽथवाबुद्ध्या समृद्ध्याचयदात्मने । अघंकुर्वन्तिहियथा देशावस्थानुसारतः ॥ ११ ॥ धान्यदार्वस्थितन्तूनां रसतैजसचर्मणाम् । कालवाय्वग्निमृत्तोयैः पार्थिवानांयुतायुतैः ॥ १२ ॥ अमेध्यलिप्तंयद्येन गन्धंलेपंव्यपोहति ॥ भजतेप्रकृतिंतस्य तच्छौचं तावदिष्यते ॥ १३ ॥ स्नानदानतपोऽवस्थावीर्यसंस्कारकर्मभिः । मत्स्मृत्याचात्मनः शौचंशुद्धःकर्माचरेद्द्विजः ॥ १४ ॥ मन्त्रस्यचपरिज्ञानं कर्मशुद्धिर्मदर्पणम् ॥ धर्मःसंपद्यते षड्भिरधर्मस्तु विपर्ययः ॥ १५ ॥ क्वचिद्गुणोपिदोषः स्याद्दोषोपि विधिनागुणः । गुणदोषार्थनियमस्तद्भिदामेव बाधते ॥ १६ ॥ समानकर्माचरणंपतितानां नपातकम् । औत्पत्तिकोगुणः संगो नशयानःपतत्यधः ॥ १७ ॥ यतोयतो निवर्तेत विमुच्येततस्ततः । एषधर्मोनृणांक्षेमः शोकमोहभयापहः ॥ १८ ॥ विषयेषुगुणाध्यासात्पुंसः संगस्ततोभवेत् । संगात्तत्रभवेत्कामः कामादेवकलिर्नृणाम् । कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्तते । तमसाग्रस्यते पुंसश्चेतना व्यापिनीद्रुतम् ॥२०॥ तयाविरहितःसाधो जन्तु शून्यायकल्पते ॥ ततोऽस्यस्वार्थविभ्रंशो मू-

देशों में कृष्णसारहीन और विप्रभक्त शून्यदेश अपवित्र हैं और जहां कृष्ण मृगभी होवें और सत्पुरुष न होवें वह देशभी अपवित्र गिनाजाताहै और कीकट (अंग देश) में देश सत्पुरुष तथा कृष्णसारके होने परभी अपवित्र माना जाता है ॥ ८ ॥ द्रव्य संगति द्वारा अथवा स्वाभावसेही कर्म योग्य काल गुणवान है । जिससे कर्मकी निवृत्ति होती है और जो कर्ममें अयोग्यके नामसे प्रसिद्ध है वही काल अशुद्ध है ॥ ९ ॥ द्रव्य, वाक्य, संस्कार कालमहत्व, अल्पत्व, शक्ति, अशक्ति, बुद्धि, वा समृद्धि, द्वारा द्रव्यकी शुद्धि व अशुद्धि होती है ॥ १० ॥ ये सब द्रव्यादि आत्माके सम्बंध से देश और अवस्था के अनुसार यथार्थ पापको उत्पन्न करते रहते हैं ॥ ११ ॥ धान्य, काष्ठ, अस्थि तंतु, रस, तैजस, चर्म और मृण्मय पदार्थ काल, वायु, अग्नि, मृत्तिका और जलके पृथक् होनेसे व प्रत्येक से शुद्ध होते हैं ॥ १२ ॥ जिस पदार्थ में अपवित्र वस्तु लिप्त होजाय तो उस वस्तुकी शुद्धि छीलने वा खटाई में डालने आदि से मानीजाती है कि उसकी गंध और लेप आदि दूर होजाय ॥ १३ ॥ स्नान, दान, तपस्या, अवस्था, शक्ति, संस्कार, कर्म और मेरे स्मरणद्वारा आत्मा का शौच होता है । द्विजको इसप्रकारसे शुद्धहो कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ १४ ॥ विशेष ज्ञान जाननेसे मंत्रकी शुद्धि, मुझमें अर्पण करनेसे कर्मकी शुद्धि कहाती है, देश, काल, द्रव्य, कर्त्ता, मंत्र और कर्म इन छहकी शुद्धिओसे धर्म होता है, इनकी अशुद्धतासे अधर्म होता है ॥ १५ ॥ विधिबल से दोषभी कभी गुण और गुणभी कभी दोष होतेहैं । इसप्रकारसे गुण दोषका नियामक शास्त्रही इन दोनोंके भेदका बाधक है ॥ १६ ॥ समान कर्मका अनुष्ठान पतित मनुष्योंको पातकका देनवाला नहीं है किंतु पूर्व स्वीकृत होने से दोषरूप नहीं गुण रूप है, पृथिवीपर सोया हुआ मनुष्य क्या फिर नीचे गिरता है ? अतएव जिस जिससे निवृत्त होता है उसही उसहीसे मुक्त होता है, यह धर्म मनुष्योंका शोक, मोह भयनाशक परम मंगलका कारण है ॥ १७ । १८ ॥ गुणका विचार करनेसे मनुष्योंको विषयासक्ति उत्पन्न होती है और आसक्ति से वे सबकामनायें उत्पन्न होती हैं; कामनासेही मनुष्यों को कलह ॥ १९ ॥ और कलह सेही दुर्विषह्य क्रोध उत्पन्नहोता है; अविवेक उसका अनुवर्त्ती है । अविवेक मनुष्य के अविनाशी चैतन्य को शीघ्रही ग्रस लेता है ॥ २० ॥ हे साधो ! जीव के चैतन्यहीन होने से वह असत् की सदृश होजाता है फिरउससे

च्छितस्य मृतस्य च ॥ २१ ॥ विषयाभिनिवेशेन नात्मानं वेद नापरम् । वृक्षजीविकया
जीवन्व्यर्थं भस्त्रेव यः श्वसन् ॥ २२ ॥ फलश्रुतिरियं नृणां न श्रेयो रोचनं परम् । श्रेयो
विवक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्यरोचनम् ॥ २३ ॥ उत्पत्त्यैव हि कामेषु प्राणेषु स्वजनेषु च
आसक्तमनसो मर्त्या आत्मनोऽनर्थहेतुषु ॥ २४ ॥ नतानविदुषः स्वार्थं भ्राम्यतो वृजि
नाध्वनि । कथं युञ्ज्यात्पुनस्तेषु तांस्तमो विशतो बुधः ॥ २५ ॥ एवं व्यवसितं केचि-
दविज्ञाय कुबुद्धयः । फलश्रुतिं कुसुमितां न वेदज्ञा वदन्ति हि ॥ २६ ॥ कामिनः कृप-
णा लुब्धाः पुष्पेषु फलबुद्धयः । अग्निमुग्धा धूमतान्ताः स्वं लोकं न विदन्ति ते २७ ॥
न ते मामङ्ग जानन्ति हृदिस्थं य इदं यतः । उक्थशस्त्रा ह्यसुतृपो यथा नीहारचक्षुषः २८ ॥
ते मे मतमविज्ञाय परोक्षं विषयात्मकाः । हिंसायां यदि रागः स्याद्यज्ञ एव न चोदना ॥
॥ २९ ॥ हिंसाविहारा ह्यालब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया । यजन्ते देवता यज्ञैः पितृ-
भूतपतीन्खलाः ॥ ३० ॥ स्वप्नोपमममुं लोकमसन्तं श्रवणप्रियम् । आशिषो हृदि सं-
कल्प्य त्यजन्त्यर्थान्यथा वणिक् ॥ ३१ ॥ रजःसत्त्वतमोनिष्ठा रजःसत्त्वतमोजुषः
उपासत इन्द्रमुख्यान् देवादीन्न तथैव माम् ॥ ३२ ॥ इष्ट्वेह देवता यज्ञैर्गत्वा रंस्यामहे-

पुरुषार्थ की हानि होती है पुरुषार्थहीन मनुष्य मूर्छित और मृतककी समान कहाजाता है॥ २१ ॥ जो मनुष्य विषयों के वशीभूतहो अपने को और परमात्मा को नहींजानता उसको जीवनकाधारण करना वृक्षकी समान वृथाहै वह धौंकनीकी समान वृथा श्वास प्रश्वासको लेता छोड़ता है ॥२२॥ स्वर्ग के सुख का श्रवण मनुष्यों का परम पुरुषार्थ रूप नहीं,—इसका अभिप्राय रुचि का उत्पन्न करना है औषधि में रुचि उत्पन्न कराने की समान मोक्ष कथन का अभिप्राय भी इसी प्रकार कथित हुआ है ॥ २३ ॥ इच्छित पदार्थ, प्राण और स्वजन यहसब अपने अर्थ के कारणीभूत होने से स्वभाव सेही इनमें मनुष्यों का मन आसक्त रहता है ॥ २४ ॥ अतएव वह परम सुख को नहीं जानसकते । इसकारण 'वेदज्ञो समझाता है वही मोक्ष है' इस प्रकार से दृढ़ विश्वास कर जो देवादि योनि में भ्रमण करते हैं, फिर वृक्षादि योनि में प्रवेश करने जाते हैं उनको वेद स्वयं क्याकरके उन समस्त कामों में प्रवर्तित करेगा ? ॥ २५ ॥ वेद के इसप्रकारके अभिप्राय को न जान कुबुद्धि लोग फूलकी समान स्वर्गादि सुख रूप सुनेहुए फलकोही मुख्य फल मान बैठते हैं; परन्तु वेदज्ञ ऐसा नहीं करते ॥ २६ ॥ कामी, कृपण मनुष्य लोभी होकर फूलकोहीफल जानता है,-वह अग्निसाध्य कर्मों के अभिनिवेश से विवेकहीन होजाता है; अन्त में उसका धूम मार्ग (दक्षिणायन मार्ग) ही रहता है, वह आपके लोक को नहीं जानते ॥ २७ ॥ अहो!कर्मही उस का शास्त्र है, इसकारण वह प्राण कोही संतुष्ट करता रहता है । यह जगत् जिससे उत्पन्न हुआ है उस अन्तर्यामी मुझको वह इसप्रकार नहीं जानसकता; जैसे अन्धकार से घिरे दृष्टिवाला मनुष्य अपने निकट के पदार्थ को नहीं देखपाता ॥ २८ ॥ ऐसे विषयात्मक मनुष्य मेरे इसगूढ़ मतको नहीं जानसकते वे देवताओं कीही पूजा करते रहते हैं । उनमें से जो हिंसक हैं वहयज्ञ के अनुष्ठान में प्रवृत्त होते हैं; किंतु यह विधि नहीं है केवल परिसंख्या है ॥ २९ ॥ वह हिंसक मनुष्य यज्ञ में बलिरूप से पशुहत्या द्वारा अपने सुखकी इच्छा से देवता, पितर और प्राणियों का याग करते हैं ॥ ३० ॥ स्वप्न की समान असत्, कर्णप्रिय परलोक को वह 'आखिलमङ्गलमय जान वणिक की समान सब अर्थों का परित्याग करता है (जब धनके लालच से वणिक विदेश को जाता है तो सबद्रव्य घर में छोड़जाता है) ॥ ३१ ॥ रज, सत्व और तमोनिष्ठावाले रज, सत्व और तमसेभी इन्द्रादि देवताओं की उपासना करते हैं,—मेरी यथार्थ पूजा नहीं करते ३२॥

द्विषि । तस्यान्तइहभूयास्म महाशाला महाकुलाः ॥३३॥ एवंपुष्पितया वाचा व्याक्षिप्तमनसांनृणाम् । मानिनांचातिस्तब्धानां मद्वार्ताऽपिनरोचते ॥३४॥ वेदाब्रह्मात्मविषयास्त्रिकाण्डविषयाइमे । परोक्षवादाऋषयः परोक्षंममचप्रियम् ॥३५॥ शब्दब्रह्मसुदुर्बोधं प्राणेन्द्रियमनोमयम् । अनन्तपारंगम्भीरं दुर्विगाह्यंसमुद्रवत्॥३६॥ मयोपबृंहितंभूम्ना ब्रह्मणानन्तशक्तिना । भूतेषुघोषरूपेण बिसेषूर्णेवलक्ष्यते ३७॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णामुद्वमतेमुखात् । आकाशाद्घोषवान्प्राणो मनसास्पर्शरूपिणा ॥ ३८ ॥ छन्दोमयोऽमृतमयः सहस्रपदवींप्रभुः । ओंकाराद्व्यञ्जितस्पर्शस्वरोष्मान्तःस्थभूषिताम् ॥ ३९ ॥ विचित्रभाषाविततां छन्दोभिश्चतुरुत्तरैः । अनन्तपारांबृहतीं सृजत्याक्षिपतेस्वयम् ॥ ४० ॥ गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्च बृहतीपंक्तिरेवच । त्रिष्टुब्जगत्यतिच्छन्दो ह्यत्यष्टयतिजगद्विराट् ॥ ४१ ॥ किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत् । इत्यस्याहृदयंलोके नान्योमद्वेदकश्चन ॥४२॥ मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यतेत्वहम् । एतावान्सर्ववेदार्थः शब्दआस्थायमां भिदाम् । मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिध्यप्रसीदति ॥ ४३ ॥

इति श्रीभाग० महा० एकाद० एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस लोक मे देवताओं की आराधना करके स्वर्ग में जाय सुख पूर्वक विहार करेंगे फिर स्वर्ग का सुख भोग पीछे यहां आकर जन्म लेवेंगे तो बड़े कुलवान और गृहस्थ होवेंगे' इसप्रकारकीकल्पना वह हृदय में करते रहते हैं ॥ ३३ ॥ इसप्रकार के कुसुमित वाक्योंद्वारा विचलित मनवाले, अभिमानी अतिलोभी मनुष्य मुझे प्रिय नहीं लगते ॥ ३४ ॥ त्रिकाण्डमय यह समस्त वेद ब्रह्मात्मपर और मममंत्र परोक्ष वादक हैं । परोक्षही मेरा प्रियशब्द ब्रह्म है जो अत्यन्त दुर्बोध और प्राणमय इंद्रियमय, मनोमय तथा समुद्र की समान अनन्तपार, गम्भीर और दुरवगाह हैं ॥ ३५—३६ ॥ भूमा अनन्त शक्ति ब्रह्म मेरे द्वारा वर्द्धितहो कमल नालके तन्तुओं की समान प्राणियों के नाद रूप से प्रतीत होता है ॥ ३७ ॥ जैसे मकड़ी हृदय से जाले को निकालती है ऐसेही यह वेद मूर्ति और अमृतमय सामर्थ नादवाला प्राण स्पर्श आदि वर्णों की भले प्रकार संकल्पकारी चित्त द्वारा हृदयाकाश से बैखरी नाम बाणी को आपही प्रगटकरता और फिर पीछे आपही संहारकरता है ॥ ३८ ॥ यह बैखरी नाम वाणी हृदयगत सूक्ष्म ओंकार से व्यंजितहुए स्पर्श वर्ण, स्वरवर्ण, ऊष्मवर्ण और अन्तस्थवर्ण से भूषित व चित्र विचित्र लौकिक और वैदिक भाषाओं से विस्तृत और उत्तरोत्तर चार २ अक्षर जिनमें अधिक हैं ऐसे छन्दों द्वारा चिह्नित है । इस वेदराशि में गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिच्छन्द, अत्यष्टि, अतिजगती और अतिविराट आदि छन्द वर्तमान हैं ॥ ३९—४१ ॥ यह वेदवाणी कर्म काण्ड में विधि वाक्योंसे क्या विधान करती है ? देवता काण्ड में मंत्रवाक्यों से क्या प्रकाश करती है ? और ज्ञानकांड में किसका आश्रय कर क्यातर्क वितर्क करती है, इसका तात्पर्य इस लोक में मेरे अतिरिक्तकोई नहीं जानसकता ॥ ४२ ॥ इससे यह यज्ञरूप में मेराही विधान करती है, देवता रूपमें मुझे प्रकाश करती है और मुझकोही वादी के अर्थरूप से कथितकर प्रतिवादी के कथित तर्कान्तरद्वारा निरस्त करती है । वेद परमात्म स्वरूप मेराही आश्रयकर ' सब भेद मायामात्रहै ' इसका प्रतिपादन करता है, फिर निषेध करके प्रसन्न होता है । यही समस्त वेद का अभिप्राय है ॥ ४३ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांएकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

उद्धव उवाच । कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातान्यृषिभिः प्रभो । नवैकादश पञ्चत्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम ॥१॥ केचित्षड्विंशतिं प्राहुरपरे पञ्चविंशतिम् । सप्तैके नव षट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे ॥ २ ॥ केचित्सप्तदश प्राहुः षोडशैके त्रयोदश । एतावत्त्वं हि संख्यानामृषयो यद्विवक्षया । गायन्ति पृथगायुष्मन्निदं नो वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥ श्रीभगवानुवाच । युक्तं च सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा । मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम् ॥४॥ नैतदेवं यथात्थ त्वं यदहं वच्मि तत्तथा । एवं विवदतां हेतुं शक्तयो मे दुरत्ययाः ॥ ५ ॥ यासां व्यतिकरादासीद्विकल्पो वदतां पदम् । प्राप्ते शमदमेऽप्येति वादस्तमनु शाम्यति ॥६॥ परस्परानुप्रवेशात्तत्त्वानां पुरुषर्षभ । पौर्वापर्यप्रसंख्यानं यथा वक्तुर्विवक्षितम् ॥ ७ ॥ एकस्मिन्नपि दृश्यन्ते प्रविष्टानीतराणि च । पूर्वस्मिन् वा परस्मिन्वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः ॥८॥ पौर्वापर्यमतोऽमीषां प्रसंख्यानमभीप्सताम् । यथा विविक्तं यद्वक्त्रं गृह्णीमो युक्तिसंभवात् ॥९॥ अनाद्यविद्यायुक्तस्य पुरुषस्यात्मवेदनम् । स्वतो न संभवादन्यस्तत्त्वज्ञो ज्ञानदो भवेत् ॥१०॥ पुरुषेश्वरयोरत्र न वैलक्षण्यमण्वपि । तदन्यकल्पनाऽपार्था ज्ञानं च प्रकृतेर्गुणः ॥११॥ प्रकृतिर्गुणसाम्यं वै प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः । सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ॥१२॥ सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म तमोऽज्ञानमिहोच्यते । गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च

उद्धवजी ने कहा—हे देवेश ! हे प्रभो ! ऋषियों ने कितने प्रकारकी तत्त्व संख्याकी है—आपने यह कहा । मैंने सुनाकि आपने २८ तत्त्व संख्याका निर्णय किया है ॥ १ ॥ परन्तु कोई २ छब्बीस, कोई पच्चीस कोई नव कोई सात कोई छह कोई दूसरे चार कोई ग्यारह ॥२॥ कोई सत्रह कोई सोलह और एक सम्प्रदाय तेरह तत्त्व कहता है । हे नित्यमूर्ते ! ऋषियों ने जिस जिस अभिप्राय से पृथक् २ संख्याका निरूपण किया है वह अयुक्त नहीं हैं क्योंकि समस्त भूतही अन्तर्भूत हैं और जो मेरी मायाको स्वीकारकर जो बातें बनावे उनकी बातोंमें किसी प्रकारकी दुर्घटना न समझनी ॥ ४ ॥ तुम जैसा कहते हो यह उस प्रकार नहीं है; मैं जिसप्रकार कहता हूं वह प्रकार है,—यह कारण ले इस प्रकार के विवादियों के पक्षमें मेरी सत्त्वादि शक्ति ही उस विवादका कारण है ॥ ५ जिन क्षोभोंसे वादियों के विवादास्पद विकल्प उत्पन्न होते हैं शम दम प्राप्त होनेपर विकल्पलयको प्राप्त होता है, उसके उपरांतही वादभी शांत होजाता है ॥ ॥ ६ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! तत्त्वों का एक दूसरे में अन्तर्भाव होजाता है, इससे कहनेवाले की जैसी इच्छा होती है उसही के अनुसार न्यून या अधिक संख्या होसकती है ॥ ७ ॥ कारण तत्त्व में वा कार्य तत्त्व में और सब तत्त्वों का प्रवेश देखाजाता है ॥ ८ ॥ इसकारण तत्त्वोंके कार्य कारणता के विषय में और न्यूनाधिक संख्या के विषयमें वाद करनेवालों में जैसी जिसकी इच्छा होती है उसकी वाणी उस अपनी इच्छा को पूर्ण करसकती है इसकारण इन सब युक्तियों की सम्भावना है ॥ ९ ॥ अनादि अविद्यायुक्त मनुष्यको स्वतः आत्मज्ञान होना असम्भव है; तत्त्वज्ञ दूसरे मनुष्यको उसका ज्ञानदाता होता है ॥ १० ॥ इस विषयमें पुरुष और ईश्वरकी अणुमात्र भी विलक्षणता नहीं है; अतएव उन दोनों में भेद कल्पना का अर्थ नहीं है और ज्ञान प्रकृति काही गुण है ॥ ११ ॥ तथा गुणों की समता यह प्रकृति स्वरूप है । स्थिति, सृष्टि और ध्वंस के कारणीभूत सत्त्व, रज और तमोगुण यह सब प्रकृति केही हैं आत्मा के नहीं ॥ १२ ॥ इस संसार में ज्ञान सत्त्व, के नाम से कर्म रज, के नाम से और अज्ञान तमके नामसे प्रसिद्ध है । इसकारण इनका प्रकृति में अन्तरभाव होने से, इनको पृथक तत्त्वरूप नहीं मानते, स्वभाव यह महत्तत्त्वका स्वरूप है इसलिये उसका प्रकृति में अन्तर भाव होता है और

॥१३॥ पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमहङ्कारो नभोऽनिलः। ज्योतिरापः क्षितिरिति तत्त्वान्युक्तानि मे नव ॥ १४ ॥ श्रोत्रं त्वग्दर्शनं घ्राणो जिह्वेति ज्ञानशक्तयः। वाक्पाण्युपस्थपाय्वङ्घ्रि कर्माण्यङ्गोभयं मनः ॥१५॥ शब्दः स्पर्शो रसो गन्धो रूपं चेत्यर्थजातयः। गत्युक्त्युत्सर्गशिल्पानि कर्मायतनसिद्धयः ॥ १६ ॥ सर्गादौ प्रकृतिर्ह्यस्य कार्यकारणरूपिणी। सत्त्वादिभिर्गुणैर्धत्ते पुरुषोऽव्यक्त ईक्षते ॥ १७ ॥ व्यक्तादयो विकुर्वाणा धातवः पुरुषेक्षया। लब्धवीर्याः सृजन्त्यण्डं संहताः प्रकृतेर्बलात् ॥ १८ ॥ सप्तैव धातव इति तत्रार्थाः पञ्च खादयः। ज्ञानमात्मोभयाधारस्ततो देहेन्द्रियासवः ॥ १९ ॥ षडित्यत्रापि भूतानि पञ्च षष्ठः परः पुमान्। तैर्युक्त आत्मसम्भूतैः सृष्ट्वेदं समुपाविशत् ॥ २० ॥ चत्वार्येवेति तत्रापि तेज आपोऽन्नमात्मनः। जातानि तैरिदं जातं जन्मावयविनः खलु ॥ २१ ॥ संख्याने सप्तदशके भूतमात्रेन्द्रियाणि च। पञ्च पञ्चैकमनसा आत्मा सप्तदशः स्मृतः ॥ २२ ॥ तद्वत्षोडशसंख्याने आत्मैव मन उच्यते। भूतेन्द्रियाणि पञ्चैव मन आत्मा त्रयोदश ॥ २३ ॥ एकादशत्व आत्माऽसौ महाभूतेन्द्रियाणि च। अष्टौ प्रकृतयश्चैव पुरुषश्च नवेत्यथ ॥ २४ ॥ इति नानाप्रसंख्यानं तत्त्वानामृषिभिः कृतम्। सर्वं न्याय्यं युक्तिमत्त्वाद्विदुषां किमशोभनम् ॥ २५ ॥ उद्धव उवाच ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ यद्यप्यात्मविलक्षणौ। अन्योन्यापाश्रयात्कृष्ण दृश्यते न भिदा

काल तो ईश्वर का स्वरूप हैही ॥ १३ ॥ हे उद्धव ! पुरुष प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, आकाश, वायु, ज्योति, जल, और पृथिवी यह नौ तत्व मेरे द्वारा कथित हुए हैं ॥ १४ ॥ कर्ण, त्वक्, नेत्र, नासिका, और रसना यह समस्त ज्ञानेन्द्रिय हैं। वाक्य, हस्त, उपस्थ, पायु और पाद यह समस्त कर्मेन्द्रिय और मन उभयात्मक है ॥ १५ ॥ शब्द, स्पर्श, रस, गंध, और रूप ये पांच विषय और तीन गुण ऐसे अट्ठाईस तत्व कहे, गति, भाषण, वीर्योत्सर्ग मलोत्सर्ग और शिल्पये पांच कर्मेन्द्रियोंके फल रूप हैं ॥ १६ ॥ प्रकृति, इस विश्व सृष्टि के आदिमें कार्य कारण रूपिणी हो सत्वादि गुणों द्वारा विशेष२ अवस्थाओं को धारण करती है और पुरुष तो अपरिणामी देखने वालाहै ॥१७॥ महत् आदि कारण तत्व विकृत होनेमें प्रवृत्तहो पुरुषोंकी दृष्टि वशसे लब्धवीर्य और मिलितहोने के उपरान्त प्रकृतिका आश्रयकर ब्रह्माण्डको उत्पन्न करते हैं ॥१८॥ कितनों के मतमें "सातही कारण तत्व हैं" वह इसप्रकारसे कहतेहैं कि आकाशादि पंचतत्व, जीव और इनसबका आश्रय परमात्मा यह साततत्व हैं; तथा देह इन्द्रिय और प्राण यह सब इनतत्वोंसे उत्पन्नहुए हैं ॥ १९ ॥ कितनों के मतमें छः तत्व हैं वह इसप्रकारसे हैं कि पञ्चभूत और परमपुरुष। ईश्वरत्व य उत्पन्नहुआ और इन सबके साथ मिलकर इस विश्वको उत्पन्नकरके इसमें प्रविष्टहुआहै ॥२०॥ चारतत्वोंके माननेवालोंके मतमें तेज, जल, पृथिवी और आत्मा यह चारतत्व हैं। इन चारतत्वों सेही और सबतत्वोंकी उत्पत्ति हुई है, इससे सर्वकार्यमात्रका उनमें अन्तर्भाव कियागयाहै ॥२१॥ सत्रहतत्वोंके माननेवाले पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, पंचइन्द्रिय, मन और आत्मा ऐसे सत्रहतत्वोंको मानते हैं ॥ २२ ॥ इसहीप्रकार सोलहतत्वोंके माननेवाले आत्माकोही मन कहते हैं। तेरहतत्व के माननेवाले पञ्चभूत, पञ्चइन्द्रिय, मन और जीव व परमात्माको मानते हैं ॥ २३ ॥ किसी के मतमें ग्यारहतत्व हैं, उनमें पांचमहाभूत, पांचइन्द्रियां और आत्मा यह ग्यारह गिनेजाते हैं, किसी मतमें नौहीतत्व हैं, तिनमें प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, पञ्चमहाभूत, और आत्मा यह नव गिनेजाते हैं ॥ २४ ॥ ऋषियोंने इसप्रकार अनेकभांति तत्वोंकी गणना की है, युक्ति युक्त होने से यह सबही ठीक हैं। पण्डितों की उक्ति कुछभी अयुक्त वा अघटित नहीं है।' २५ ॥ उद्धव जीने कहा हे कृष्ण ! प्रकृति और पुरुष यदि स्वभावसेही भिन्नहैं तो फिर परस्परका परित्यागकर

तयोः । प्रकृतौ लक्ष्यते ह्यात्मा प्रकृतिश्च तथात्मनि ॥२६॥ एवं मे पुण्डरीकाक्ष महान्तं संशयं हृदि । छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ वचोभिर्नयनैपुणैः ॥ २७ ॥ त्वत्तो ज्ञानं हि जीवानां प्रमोषस्तेऽत्र शक्तितः । त्वमेव ह्यात्ममायाया गतिं वेत्थ न चापरः ॥२८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चेति विकल्पः पुरुषर्षभ । एष वैकारिकः सर्गो गुणव्यतिकरात्मकः ॥ २९ ॥ ममाङ्ग माया गुणमय्यनेकधा विकल्पबुद्धीश्च गुणैर्विधत्ते । वैकारिकस्त्रिविधोऽध्यात्ममेकमथाधिदैवमधिभूतमन्यत् ॥ ३० ॥ दृग्रूपमार्कं वपुरत्र रन्ध्रे परस्परं सिध्यति यः स्वतः खे । आत्मा यदेषामपरो य आद्यः स्वयाऽनुभूत्याऽखिलसिद्धसिद्धिः एवं त्वगादि श्रवणादि चक्षुर्जिह्वादि नासादि च चित्तयुक्तम् ॥ ३१ ॥ योऽसौ गुणक्षोभकृतो विकारः प्रधानमूलान्महतः प्रसूतः । अहं त्रिवृन्मोहविकल्पहेतुर्वैकारिकस्तामस ऐन्द्रियश्च ॥ ३२ ॥ आत्मापरिज्ञानमयो विवादो ह्यस्तीति नास्तीति भिदाऽर्थनिष्ठः । व्यर्थोऽपि नैवोपरमेत पुंसां मत्तः परावृत्तधियां स्वलोकात् ॥ ३३ ॥ उद्धव उवाच । त्वत्तः परावृत्तधियः स्वकृतैः कर्मभिः प्रभो । उच्चावचान्यथा देहान्गृह्णन्ति विसृजन्ति च ॥ ३४ ॥ तन्ममाख्याहि गोविन्द दुर्विभाव्यमनात्मभिः । न ह्येतत्प्रायशो लोके विद्वांसः सन्ति वञ्चिताः ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच । मनः कर्ममयं नृणामिन्द्रियैः पञ्चभिर्युतम् । लोकाल्लोकं प्रयात्यन्य आत्मा तदनुवर्तते ॥३६॥ ध्या

नेमें उसकी प्रतीति क्यों नहीं होती ! आत्माकी प्रकृतिसे और प्रकृतिको आत्मासे प्रतीति होती है ॥ २६ ॥ हे कमलनेत्र ! हे सर्वज्ञ ! आपको मेरे हृदय स्थित इसे संदेहको अपने प्रवीण वचनोंसे दूरकरना चाहिये ॥ २७ ॥ जीवोंको ज्ञान निश्चय आपहीसे होताहै और आपकी मायाशक्तिके कारणही माया होती रहती है, अतएव आपही अपनी मायाकी गतिको जानतेहो,—दूसरा नहीं जानता ॥ २८ ॥ श्रीभगवानने कहा, हे पुरुष श्रेष्ठ उद्धव ! प्रकृति और पुरुष यह अत्यन्तही भिन्न हैं क्योंकि गुणोंके क्षोभसे उत्पन्नहुआ यह जगत विकारयुक्त है ॥ २९ ॥ अहो ! मेरी गुणमयी माया नाना प्रकार के गुणों द्वारा अनेकों भेदों को और भेद बुद्धि को उत्पन्न करती हैं । सृष्टि अनेकों विकारयुक्त होने परभी अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव इस भांति तीन प्रकारकी है ॥ ३० ॥ चक्षु, रूप और चक्षु के गोलक में गयाहुआ सूर्य का अंश यह परस्पर सापेक्ष भावसे प्रकाशित होते रहते हैं, आकाश में जो स्वयं सूर्य देव हैं वह स्वयंही प्रकाश पाते हैं । यहीसबका कारण, एक और अभिन्न है, इसही कारण इससे भिन्न यह आत्मा स्वत:प्रकाश द्वारा समस्त प्रकाशकों का प्रकाशक है अतएव उसका प्रकाश स्वतःसिद्ध है । चक्षु की समान त्वक्, स्पर्श और वायु; श्रवण, शब्द और दिशाएं; जिह्वा, रस और वरुण; नासिका, गन्ध और अश्विनीकुमार चित्त, चेतयितव्य और वासुदेव; तथा मन, मन्तव्य और मंत्र इत्यादि आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक हैं ॥ ३१ ॥ गुणक्षोभक परमेश्वर को निमित्तकर प्रकृतिमूलक महत्तत्त्व से जो विकार अहंकार उत्पन्न होता है वह वैकारिक, तामस और इंद्रिय इन तीनप्रकारका है और वही मोहमय विकार का कारण है । " है " " नहीं " इस प्रकारका भेद घटित विवादभी आत्माके अज्ञानके हेतुही प्रतीत हुआ है । भेद के निरर्थक होनेपर भी अपनी गति स्वरूप मुझसे जिसका मन विमुख है उसकी समझ में यह आना अत्यन्तही कठिन है, उसका संशय किसी प्रकार निवृत्त नहोगा ॥ ३४ ॥ उद्धव ने कहा हे प्रभो ! जिसका मन आपसे विमुख होरहा है वहअपने कियेहुए कर्मोंद्वारा, जिसप्रकार ऊंचे और नीचे शरीरों को ग्रहण करते व छोड़ते रहते हैं, हे गोविंद ! यह मुझसे कहिये । जिसकी आत्मा निकृष्ट है वह कुछ नहीं समझ सकता । निश्चयही इस लोक में कोई विद्वान् नहीं है; क्योंकि सबही माया से मोहित हैं ॥ ३५ ॥ भगवान् ने कहा कि—मनुष्यों का कर्ममय मन,—पांच इंद्रियों के साथ इस लोक से उस लोक में और फिर वहां

यन्मनोऽनुविषयान्दृष्टान्वाऽनुश्रुतानथ । उद्यत्सीदत्कर्मतन्त्रं स्मृतिस्तदनुशाम्यति ॥ ३७॥ विषयाभिनिवेशेन नात्मानंयत्स्मरेत् पुनः । जन्तोर्वै कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्यन्तविस्मृतिः ॥ ३८ ॥ जन्मत्वात्मतयापुंसः सर्वभावेनभूरिद । विषयस्वीकृतिंप्राहुर्यथा स्वप्नमनोरथः ॥ ३९ ॥ स्वप्नंमनोरथंचेत्थं प्राक्तनंनस्मरत्यसौ । तत्र पूर्वमिवात्मानमपूर्वं चानुपश्यति ॥ ४० ॥ इन्द्रियायनसृष्ट्येदं त्रैविध्यंभातिवस्तुनि । बहिरन्तर्भिदाहेतुर्जनोऽसज्जनकृद्यथा ॥४१ ॥ नित्यदाह्यङ्गभूतानि भवन्तिनभवन्ति च । कालेनालक्ष्यवेगेन सूक्ष्मत्वात्तन्नदृश्यते ॥४२ ॥ यथाऽर्चिषांस्रोतसांच फलानांवावनस्पतेः । तथैवसर्वभूतानां वयोऽवस्थादयःकृताः ॥ ४३ ॥ सोऽयंदीपोऽर्चिषां यद्वत्स्रोतसांतदिदंजलम् । सोऽयंपुमानितिनृणां मृषागीर्धीर्मृषायुषाम् ४४॥ मास्वस्यकर्मबीजेन जायतेसोऽप्ययंपुमान् । म्रियतेवाऽमरोभ्रान्त्या यथाऽग्निर्दारुसंयुतः ॥ ४५ ॥ निषेकगर्भजन्मानि बाल्यकौमारयौवनम् । वयोमध्यंजरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव ॥ ४६ ॥ एतामनोरथमयीर्ह्यन्यस्योच्चावचास्तनूः । गुणसंगादुपादत्ते क्वचित्कश्चिज्जहातिच ॥ ४७ ॥ आत्मनःपितृपुत्राभ्या मनुमेयौभवा

स दूसरे में जाता है; आत्मा उसका अनुसरण करता रहता हैं ॥ ३६ ॥ कर्माधीन मन, दीखते हुए व वेदोक्त विषयों की चिंता करते २ विषयों में प्रगट व लीन होजाता है; इसके उपरांत स्मृति का नाश होता है । सब विषयों के अभिनिवेश वश किसी कारण से मनको जो पूर्व शरीर का स्मरण न रहे तोवह अत्यन्त विस्मरणही प्राणी की मृत्यु कहलाती है ॥ ३७—३८ ॥ हेवदान्य ! अभेद क्रम से देह को जो आत्मस्वरूप से स्वीकार कियाजाय वही पुरुष का जन्म है । यहठीक स्वप्न और मनोरथ की समान है; कि जैसे वर्तमान स्वप्न और मनोरथ में लगजाने से पहिले स्वप्न और मनोरथके भूलजानें पर मनके अभ्यास के कारण आत्मा अपने को पूर्व सिद्ध होनेपर भी नयाही सा देखता है इसप्रकार मनके पूर्व देह का विस्मरण और दूसरे देह का स्मरणहोने पर उस मनके अभ्यास के हेतु आत्मा अपने को सिद्ध होनेपरभी नयाजन्म हुआ मानताहै ३९॥ ॥ ४० ॥ जिसप्रकार जीव स्वप्न में बहुत जीवों को देख बहुत रूप का होता है, इसही प्रकार मनकी जो उत्पत्ति है उसके द्वाराही यह प्रकारत्रय आत्मा में असत् रूप से प्रकाश पाता है; आत्मा बाहिरी और भीतरी भेद का कारण है । अहो ! अलक्ष्य वेगकाल, महाकाल, प्राणीनित्य ही जन्मते और नाश होते हैं; काल के सूक्ष्मत्व प्रयुक्तिको अविवेकी मनुष्य नहीं देखपाते ॥४१॥ ॥ ४२ ॥ काल जैसे परिणामद्वारा तेजकी, प्रवाह त्यागद्वारा स्रोतकी और पक्वता द्वारा वृक्षके फलोंकी अवस्थाको क्षण २ में बदलताहै वैसेही सब प्राणियों की वयस और अवस्थाआदिको भी बदलता है ॥ ४३ ॥ परन्तु तौभी जैसे तेज प्रगट होने से 'यह वही दीपक है' और स्रोत के आजाने से यह वही जल है;' इसही प्रकार प्राणियों का 'यह वही शरीर है' इसप्रकार से अविचारी मनुष्य वृथा अज्ञान होकर बका करते हैं ॥ ४४ ॥ अज और अमर होकरभी जो जीव अपने कर्मों द्वारा जन्म ग्रहण करता या मरता है,—यह नहीं है; किंतु भ्रान्तिद्वारा जन्मता रहता है और नाशपाता रहता है । जिस प्रकार महाभूत रूप अग्नि कल्पांत पर्यंत अवस्थित होकरभी केवल काठके संयोग और वियोग से जन्म मृत्यु को प्राप्त होता है उसही प्रकार आत्मा अजर और अमर होकरभी भ्रान्तिवश उत्पत्ति और नाश को प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ उदर में प्रवेश, उदर में वृद्धि, जन्म, बाल्य, कौमार, यौवन, मध्यवयस, जरा और मृत्यु शरीरकी यहनवअवस्था यें हैं ॥ ४६ ॥ स्वाभाविक अविवेक के कारण जीव दूसरे की इन सब मनोरथमयी ऊंची नीची अवस्थाओं को ग्रहण करता है; कभी किसी को छोड़तारहता है ॥ ४७ ॥ पिता और पुत्रद्वारा

पद्यौ । नभवाप्ययवस्तूनामभिज्ञोद्वयलक्षणः ॥ ४८ ॥ तरोर्बीजविपाकाभ्यां यो विद्वाञ्जन्मसंयमौ । तरोर्विलक्षणोद्रष्टा एवंद्रष्टातनोःपृथक् ॥ ४९ ॥ प्रकृतेरेवमात्मानमविविच्याबुधःपुमान् । तत्त्वेनस्पर्शसंमूढः संसारंप्रतिपद्यते ॥ ५० ॥ सत्त्वसंगादृषीन्देवान्रजसाऽसुरमानुषान् । तमसाभूततिर्यक्त्वं भ्रामितोयातिकर्मभिः ॥ ॥ ५१ ॥ नृत्यतोगायतःपश्यन् यथैवानुकरोतितान् । एवंबुद्धिगुणान्पश्यन्ननीहोऽप्यनुकार्यते ॥ ५२ ॥ यथाऽम्भसाप्रचलता तरवोऽपिचलाइव । चक्षुषाभ्राम्यमाणेन दृश्यतेभ्रमतीवभूः ॥ ५३ ॥ यथामनोरथधियो विषयानुभवोमृषा । स्वप्नदृष्टाश्चदाशार्ह तथासंसारआत्मनः ॥ ५४ अर्थेह्यविद्यमानेपि संसृतिर्ननिवर्तते । ध्यायतोविषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमोयथा ॥ ५५ ॥ तस्मादुद्धवमाभुङ्क्ष्व विषयानसदिन्द्रियैः । आत्माऽग्रहणनिर्भातं पश्यवैकल्पिकंभ्रमम् ॥ ५६ ॥ क्षिप्तोऽवमानितोऽसद्भिः प्रलब्धोऽसूयितोऽथवा । ताडितःसन्निबद्धोवा वृत्त्यावापरिहापितः ५७ निष्ठ्युतोमूत्रितोवाऽज्ञैर्बहुधैवंप्रकम्पितः । श्रेयस्कामःकृच्छ्रगत आत्मनात्मानमुद्धरेत् ॥ ५८ ॥ उद्धव उवाच ॥ यथैवमनुबुध्येयं वदनोवदतांवर । सुदुःसहमिमंमन्ये आत्मन्यसदतिक्रमम् ॥ ५९ ॥ विदुषामपिविश्वात्मन् प्रकृतिर्हिबलीयसी । ऋते त्वद्धर्मनिरतान्शान्तांस्तेचरणालयान् ॥ ॥ ६० ॥

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अपने नाश और उत्पत्ति का अनुमान नहीं कियाजाता; जब इसप्रकार है तब उत्पत्ति विनाशशाली देह सबकी द्रष्टा दोनों लक्षणों युक्त नहीं है ॥ ४८ ॥ जिस प्रकार बीज और विपाकसे वृक्ष का जन्म और नाश जानाजाता है वह जानाकरनेवाला द्रष्टा वृक्षसे भिन्न है, इसही प्रकार देहका भी द्रष्टा भिन्न है ॥ ४९ ॥ अविवेकी मनुष्य प्रकृति से आत्मा को भलीप्रकार न विचार देहाभिमानद्वारा मूढ़हो संसार को प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ सत्व संसर्ग के कारण ऋषि और देव;रजसंगसे असुर तथा नर और तमसंग से भूत तथा पशु पक्षी आदि योनियों में यह कर्मोंद्वाराभ्रमण करते फिरते हैं ॥ ५१ ॥ जैसे मनुष्य नर्तकों और गायकों को देख उनका अनुकरण करता है, उसही प्रकार अनीह जीव बुद्धि के गुणोंको देखकर उनका अनुकरण करता है ॥ ५२ ॥ जिस प्रकार के कांपने से किनारे के सब वृक्षभी मानों कांपते हुए जान पड़ते हैं; जैसे नेत्रों घूमने से मानोंपृथिवी भी घूमती हुई देख पड़ती है ॥ ५३ ॥ हे दाशार्ह ! जिसप्रकार कामनायुक्त चित्त मनुष्यके विषयानुभव तथा स्वप्नके देखेहुए विषय मिथ्या होते हैं,—उसही प्रकार आत्माकी जन्ममृत्यु है । यह मनुष्य विषयों की चिन्ता करता रहता है इसकारण सब विषयों के वर्तमान न रहते हुएभी, स्वप्न में धन प्राप्ति के समान उसके पक्ष में संसार में सुख नहीं प्राप्त होता; ॥ ५४—५५ ॥ अतएव हे उद्धव ! भ्रांत इंद्रियोंद्वारा सब विषयों का भोग न करना चाहिये, देखो, विकल्प सम्भवभीभ्रम आत्मअज्ञान के वशही प्रकाशित होता है ॥ ५६ ॥ नीच मनुष्य तिरस्कार करें, अपमान करें, हसें, ईर्षाकरें, ताड़नादें, बांधें, जीविका नष्ट करें, ॥ ५७ ॥ शिर पर थूकें वा मूत्र करें तथा और भी ऐसेही दूसरे उपायों से मझ निष्ठासे भ्रष्ट करना चाहें और उससे अपने को बहुत कष्ट होवे तौ भी कष्ट मंगलाकांक्षीको उचित है कि निष्ठायुक्तहो आत्माद्वारा आत्माका उद्धार करे ॥ ५८ ॥ उद्धव ने कहाकि—हेवाग्मिश्रेष्ठ ! आपका इस प्रकार का उपदेश अति दुर्जेय है । मैं सहज में जिससे इसको समझसकूं उसका फिर उपदेश करिये ॥ हे विश्वात्मन् ! आपके धर्मावलम्बी, आपके चरणाश्रित शांतचित्त साधुओं के अतिरिक्त, असत् मनुष्यों द्वारा आत्मा के इसप्रकारके तिरस्कारको पंडितजनभी अति दुःसह मानते हैं ॥ ६० ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

बादरायणिरुवाच ॥ स एवमाशंसित उद्धवेन भागवतमुख्येन दाशार्हमुख्यः ।
सभाजयन्भृत्यवचो मुकुन्दस्तमाबभाषे श्रवणीयवीर्यः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥
बार्हस्पत्य स वै नात्र साधुर्वै दुर्जनेरितैः । दुरुक्तैर्भिन्नमात्मानं यः समाधातुमीश्वरः ॥
२ ॥ न तथा तप्यते विद्धः पुमान्बाणैः सुमर्मगैः । यथा तुदन्ति मर्मस्था ह्यसतां परुषेष-
वः ॥ ३ ॥ कथयन्ति महत्पुण्यमितिहासमिहोद्धव । तमहं वर्णयिष्यामि निबोध सु
समाहितः ॥ ४ ॥ केनचिद्भिक्षुणा गीतं परिभूतेन दुर्जनैः । स्मरता धृतियुक्तेन विपा
कं निजकर्मणाम् ॥ ५ ॥ अवन्तिषु द्विजः कश्चिदासीदाढ्यतमः श्रिया । वार्तावृत्तिः
कदर्यस्तु कामी लुब्धोऽतिकोपनः ॥ ६ ॥ ज्ञातयोऽतिथयस्तस्य वाङ्मात्रेणापि ना
र्चिताः । शून्यावसथ आत्मापि काले कामैरनर्चितः ॥ ७ ॥ दुःशीलस्य कदर्यस्य
द्रुह्यन्ते पुत्रबान्धवाः । दारा दुहितरो भृत्या विषण्णा नाचरन्प्रियम् ॥ तस्यैवं यक्षवित्त
स्य च्युतस्योभयलोकतः । धर्मकामविहीनस्य चुक्रुधुः पञ्चभागिनः ॥ ९ ॥ तदव
ध्यानविस्रस्तपुण्यस्कन्धस्य भूरिद । अर्थोऽप्यगच्छन्निधनं बह्वायासपरिश्रमः ॥ १० ॥
ज्ञातयो जगृहुः किंचित् किंचिद्दस्यव उद्धव । दैवतः कालतः किंचिद् ब्रह्मबन्धोर्नृपा
र्थिवात् ॥ ११ ॥ स एवं द्रविणे नष्टे धर्मकामविवर्जितः । उपेक्षितश्च स्वजनैश्चिन्ता
माप दुरत्ययाम् ॥ १२ ॥ तस्यैवं ध्यायतो दीर्घं नष्टरायस्तपस्विनः । खिद्यतो बाष्पक
ण्ठस्य निर्वेदः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥ स चाहेदमहो कष्टं वृथात्मा मेऽनुतापितः । न

श्रीशुकदेवजी बोले कि—जिनके पराक्रम सुनने योग्य हैं वह दाशार्ह श्रेष्ठ श्रीकृष्णजी भग-
वत प्रधान उद्धव कर्तृक इस प्रकार से जिज्ञासितहो सेवकके वाक्यों में आदर प्रकाशकर उससे
कहने लगे; ॥ १ ॥ हे बृहस्पति के—शिष्य ! ऐसे साधु इस लोक में नहीं देखे जाते कि जो दुर्जनों
के कहेहुए कटुवचनोंद्वारा क्षुभितहुए मनको शांत करने में समर्थहों ॥ २ ॥ असाधुओं के
कटुवाक्य रूपी शर मर्म में बिंधकर जिसप्रकार से कष्ट देते हैं मर्म के छेदनेवाले बाणों द्वारा छिद
करभी मनुष्य को वैसा कष्ट नहीं होता ॥ ३ ॥ हे उद्धव ! इस विषय में एक बड़ा भारी इतिहास
कहाजाता है, मैं वह कहताहू , ध्यानलगाकर सुनो ॥ ४ ॥ किसी एक भिक्षुकने दुष्टजनों से तिर-
स्कृतहो धैर्य धारणकर अपने कर्मों के फलकी सुध करतेहुए बहुत अच्छा निश्चय किया है । उस
का चरित्र यों है; कि—॥ ५ ॥ पुराने समय में मालवा देश में कोई एक धनाढ्य ब्राह्मण वास
करताथा । वह अत्यन्तही कृपणथा उसने वाणिज्य व्यौपारआदि करके बहुतसा धन संचय किया
था । वह कामी, अतिलोभी और क्रोधीथा ॥ ६ ॥ वह जातिवालों और अतिथियों का वचनमात्रसे
भी सत्कार न करता धर्म कार्य रहित घर में रहकर उसका आत्मा भी यथासमय में भोगोंद्वारा
तृप्त न होता ॥ ७ ॥ उस दुःशील ब्राह्मण के पुत्र और बांधव आदिभी उससे द्रोहकरनेलगे स्त्री,
कन्या और सेवकभी उससे दुःखितहो उसकी इच्छानुसार कार्य न करते । इसप्रकार यक्षकी समान
धनका संचय करनेवाले, दोनों लोक से भ्रष्ट, धर्मकाम विहीन उस ब्राह्मण के ऊपर पञ्चयज्ञभागी
देवताभी कोपित होगये ॥ ९ ॥ हे उद्धव ! आत्मीय और देवताओं के अनादर से उसका धन
मिलने का जो पूर्व पुण्यथा वहभी नष्ट होगया इस कारण बहुत परिश्रम से प्राप्त कियाहुआ उस
का समस्त धन नष्ट होगया ॥ १० ॥ हे उद्धव ! उस धनको कुछकतो जाति वालों ने ग्रहण कि-
या, कुछ चोरों ने लिया कुछ अन्य मनुष्यों, राजा, दैव और काल से नाश होगया ॥ ११ ॥
इसप्रकार धनके नाश होजानेपर वह धर्म कामरहित ब्राह्मण अपने स्वजनों से फटकारा जाकर
घोर चिंता में निमग्नहुआ ॥ १२ ॥ धनके नाशहोने से संतप्त और गद्गद कण्ठहो खेद करता
हुआ बड़ी देरतक चिन्ता करते २ उसको अत्यन्त विराग उत्पन्न होगया ॥ १३ ॥ वह कहने
लगा अहो ! क्या कष्टहै ! मैंने व्यर्थही आत्मको सन्तापित किया, मेरा धन न तो धर्महो में व्य

धर्मायनकामाय यस्याऽर्थोयाऽन्वर्द्दशः ॥ १४ ॥ प्रायेणार्थाःकदर्याणां नसुखायकदा
चन । इहचात्मोपतापाय मृतस्यनरकायच ॥ १५ ॥ यशोयशस्विनांशुद्धं श्लाघ्या
येगुणिनांगुणाः । लोभःस्वल्पोऽपितान्हन्ति श्वित्रोरूपमिवेप्सितम् ॥ १६ ॥ अर्थ
स्यसाधनेसिद्धे उत्कर्षेरक्षणेव्यये । नाशोपभोगआयासस्त्रासश्चिन्ताभ्रमोनृणाम् ॥
॥ १७ ॥ स्तेयंहिंसाऽनृतंदम्भः कामःक्रोधःस्मयोमदः । भेदोवैरमविश्वासः संस्प
र्धाव्यसनानिच ॥ १८ ॥ एतेपंचदशानर्था ह्यर्थमूलामतानृणाम् । तस्मादनर्थमर्था
ख्यं श्रेयोऽर्थीदूरतस्त्यजेत् ॥ १९ ॥ भिद्यन्तेभ्रातरोदाराः पितरःसुहृदस्तथा । ए
कास्निग्धाःकाकिणिनासद्यःसर्वेऽरयःकृताः ॥ २० ॥ अर्थेनाल्पीयसाह्येते संरब्धा
दीप्तमन्यवः । त्यजन्त्याशुस्पृधोघ्नन्ति सहसोत्सृज्यसौहृदम् ॥२१॥ लब्ध्वा जन्मा
ऽमरप्रार्थ्यं मानुष्यंतद्द्विजाग्र्यताम् ॥ तदनादृत्ययेस्वार्थं घ्नन्तियान्त्यशुभांगतिम्
॥ २२ ॥ स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्यलोकमिमंपुमान् । द्रविणेकोनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थ-
स्यधामनि ॥ २३ ॥ देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन्बंधूंश्च भागिनः । असंविभज्यचात्मा
नं यक्षवित्तःपतत्यधः ॥ २४ ॥ व्यर्थयार्थेहयावित्तं प्रमत्तस्यवयोबलम् । कुशलायेन
सिध्यन्ति जरठःकिंनुसाधये ॥ २५ ॥ कस्मात्संक्लिश्यते विद्वान्व्यर्थयाऽर्थेहयाऽ
सकृत् । कस्यचिन्माययानूनं लोकोऽयंसुविमोहितः ॥ २६ ॥ किंधनैर्धनदैर्वा किं
कामैर्वाकामदैरुत । मृत्युनाग्रस्यमानस्य कर्मभिर्वोतजन्मदैः ॥ २७ ॥ नूनंमेभगवां

यहुआ न मैं स्वयंही उसको भोगसका । इतने दिनतक मैंने व्यर्थ धनके निमित्त इतना कष्ट स्वीकारकिया ॥ १४ ॥ कृपणजनों का धन इसलोक में आत्मा के सन्ताप का कारण और मरने पर नरक भोगने का कारण है कभीभी इससे सुख नहीं प्राप्त होता ॥ १५ ॥ कुष्ठ जैसे सुन्दर स्वरूपका नाश करदेता है वैसेही किंचित् लोभभी यशस्वियों के यश और गुणियों के गुणका नाश करता है ॥ १६ ॥ द्रव्य के प्राप्त करने और प्राप्त कियेहुये धनके बढ़ने, रक्षाकरने, व्यय, नाश और उपभोग मे मनुष्योंको सदाही त्रास, चिंता और भ्रम उत्पन्न होता रहता है ॥ १७ ॥ चौर्य, हिंसा, मिथ्या, शठता, काम, क्रोध, गर्व, मोह, भेद, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा और व्यसन आदि यह मनुष्योंके अनर्थ मूलक कहेगये हैं । अतएव मङ्गलाभिलाषी मनुष्यों को अर्थ नामक अनर्थ दूरसेही परित्यागकर देना चाहिये ॥ १८—१९ ॥ साधारण द्रव्यके निमित्त भाई, स्त्री, पिता, माता, और बन्धुओं से शत्रुता होजाती है और एक प्राण तथा अत्यन्त प्रिय मनुष्य से भी कलह उपस्थित होजाता है । साधारण द्रव्य के निमित्त यह क्षुभित और ज्वलित क्रोधहो एकसाथ सुहृदताको भूल परस्पर में उलझकर शीघ्र एक दूसरे का नाश करते रहते हैं ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ देवताभी जिसे चाहते हैं ऐसा मनुष्य जन्म उसपरभी ब्राह्मणत्व की श्रेष्ठता को पाय उसका अनादर कर जो अपना हित साधन नहीं करता वह अशुभगति को प्राप्त करता है ॥ ॥ २२ ॥ स्वर्ग और मोक्षके द्वार स्वरूप इसलोकको प्राप्तकर कौन मनुष्य अनर्थकारी धन में आसक्त होगा ? धन प्राप्त होनेपर भी जो मनुष्य विभाग योग्य देवता, ऋषि, पितृ, भूत, जातिवाले और बान्धवों को तथा अपने कोभी प्राप्तहुए पदार्थोंका विभाग न कर यक्ष वृत्तिका अवलम्बन करता है वह नर्क में गिरता है ॥ २३—२४ ॥ विवेकीजन जिसके द्वारा मुक्त होते हैं अनर्थकारी धनकी चेष्टाद्वारा प्रमत्त मनुष्य उस धन, वय, और बलको खो बैठते हैं । वृद्ध होनेपर और क्या साधन कियाजाय । जानकरभी मनुष्य किस कारण व्यर्थ धनकी चेष्टा से बारम्बार क्लेश पाता है ? निश्चय यह मनुष्य किसी की मायाद्वारा अत्यन्त मोहित है ॥ २५—२६ ॥ मृत्यु से नाश होनेवालेमनुष्य का, धनसे क्या होता है ? धन देनेवालेही कौन है ? सुख अथवा सुख देने वालोंसेही क्या अभिप्राय ? बारम्बार जन्म देनेवाले कर्मों सेही क्या प्रयोजन है ?—॥२७॥

स्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः । येननीतो दशामेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः ॥ २८ ॥ सोऽहं कालावशेषेण शोषयिष्येऽङ्गमात्मनः । अप्रमत्तोऽखिलस्वार्थे यदि स्यात्सिद्ध आत्मनि ॥ २९ ॥ तत्रमामनुमोदेरन्देवास्त्रिभुवनेश्वराः । मुहूर्तेनब्रह्मलोकं खट्वांगः समसाधयत् ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच । इत्यभिप्रेत्यमनसा ह्यावन्त्योद्विजसत्तमः उन्मुच्यहृदयग्रन्थीन्शान्तो भिक्षुरभून्मुनिः ॥ ३१ ॥ सचचारमहीमेतां संयतात्मेन्द्रियानिलः । भिक्षार्थं नगरग्रामानसङ्गोऽलक्षितोऽविशत् ॥ ३२ ॥ तंवैप्रवयसं भिक्षुमवधूतमसज्जनाः । दृष्ट्वापर्यभवन्भद्र बह्वीभिः परिभूतिभिः ॥ ३३ ॥ केचित्त्रिवेणुं जगृहुरेकेपात्रं कमण्डलुम् ॥ पीठंचैकेऽक्षसूत्रंच कन्थांचीराणि केचन ॥ ॥ ३४ ॥ प्रदायचपुनस्तानि दर्शितान्याददुर्मुनेः ॥ अन्नंचभैक्ष्यसंपन्नं भुंजानस्य सरित्तटे ॥ ३५ ॥ मूत्रयन्तिचपापिष्ठाः ष्ठीवन्त्यस्यचमूर्धनि । यतवाचंवाचयन्ति ताडयन्तिनवक्तिचेत् ॥ ३६ ॥ तर्जयन्त्यपरे वाग्भिः स्तेनोऽयमितिवादिनः । बध्नन्तिरज्ज्वातं केचिद्बध्यतांबध्यतामिति ॥ ३७ ॥ क्षिपन्त्येकेऽवजानन्त एषधर्मध्वजः शठः । क्षीणवित्तइमां वृत्तिमग्रहीत्स्वजनोज्झितः ॥ ३८ ॥ अहोएषमहासारोधृतिमान्गिरिराडिव । मौनेनसाधयत्यर्थं बकवद्दृढनिश्चयः ॥३९॥ इत्येके विहसन्त्येनमेकेदुर्वातयन्तिच । तंबबन्धुर्निरुरुधुर्यथा क्रीडनकं द्विजम् ॥ ४० ॥ एवंसभौ-

निश्चयही सर्वदेवमय भगवानहरि मुझपर सन्तुष्टहुएहैं उन्होंने मुझको इसदशापर पहुँचाकर आत्मा के भेदक स्वरूप वैराग्य को उत्पन्न करादिया है ॥ २८ ॥ अतएव यदि होगा तो आयुकाशेष भागमें अपने आत्मा सेहीसन्तुष्ट और समस्त धर्मादि के साधनों में अप्रमत्तहो अपने शरीर को सुखाऊंगा ॥ २९ ॥ इस विषय मे त्रिलोकी के स्वामी देवता मुझपर अनुग्रहकरें । खटवांग ने तो क्षणभर मेंही ब्रह्मलोक को प्राप्तकरलियाथा ॥ ३० ॥ भगवान ने कहा, कि उस मालव देशीय श्रेष्ठ ब्राह्मण ने इसप्रकार से मन २ में विचार सब हृदयकी ग्रंथियों का नाश किया तथा शांत और भिक्षुक मुनिवृत्ति का अवलम्बनकर ॥ ३१ ॥ आत्मा, इंद्रिय और प्राणोंको जीत वह भूमण्डल में भ्रमण करनेपर प्रवृत्तहुआ. । वह आसक्त रहित और अलक्षितहो भिक्षाके निमित्त नगर और गांवो में जाता; वहांपर दुष्ट मनुष्य उस वृद्ध भिक्षुक अवधूत का नानाप्रकार के तिरस्कृतवाक्यो द्वारा तिरस्कार करते, ॥ ३२—३३ ॥ कोई २ उसका त्रिदण्ड, कोई कमण्डलु, कोई भोजनपात्र, कितने एक बैठनेका आसन, कितनेएक जप करने की माला, कितने एक गूदड़ी और कितनेही उसके कौथड़े खींचे लेते,—॥ ३४ ॥ फिर दिखाकर लौटा देत और फिर छीन लेते । जब वह नदीके किनारे भिक्षासे प्राप्तहुए अन्नका भोजन करने बैठता तो उसको उस से कोई २ छीन लेता ॥ ३५ ॥ और दूसरे दुष्टजन उसके शरीर पर मूतते और मस्तकपर थूकते उसने मौनव्रत धारण किया था इससे उसको बुलाने का यत्न करते, यदि वह न बोलता तो उस को मारते ॥ ३६ ॥ औरभी उसे 'चोर चोर, कहकर नाना प्रकारके वाक्योंद्वारा उसका तिरस्कार करते । कोई २ 'बांधोबांधो' करके उसको रस्सियों से बांधते । कुछेक मनुष्य "मूर्खने सब धर्म के चिह्नों को धारण किया है, धनहीन और स्वजन वर्जितहो इस वृत्तिका अवलम्बन किया है" वह कहकर उसकी निंदा करते ॥ ३७—३८ ॥ अहो ! यह अत्यन्त बलिष्ठ और पर्वत राजकी समान धैर्यशाली है; दृढ़ता पूर्वक मौन व्रतका धारणकर बगुले की समान अपने कार्य का साधन कररहा है " ॥ ३९ ॥ यह कहकर कुछेक मनुष्य उसका उपहास करने लगे ।उसके ऊपर कोई कोई अधोवायु छोड़ते, कोई २ उसको खेलके पक्षी की समान बांधते और बंद करते ॥ ४० ॥

तिकं दुःखं दैविकं दैहिकं चयत् । भोक्तव्यमात्मनो दिष्टं प्राप्तंप्राप्तमबुध्यत ॥ ४१ ॥ परिभूतइमां गाथामगायत नराधमैः । पातयद्भिः स्वधर्मस्थो धृतिमास्थाय सात्त्विकीम् ॥४२॥ द्विजउवाच । नायंजनोमे सुखदुःखहेतुर्न देवताऽऽत्मा ग्रहकर्मकालाः मनःपरंकारणमामनन्ति संसारचक्रंपरिवर्तयेद्यत् ॥४३॥ मनोगुणान्वैसृजते बलीयस्ततश्चकर्माणि विलक्षणानि । शुक्लानिकृष्णान्यथ लोहितानि तेभ्यः सवर्णाः सृतयो भवन्ति ॥ ४४ ॥ अनीहआत्मामनसा समीहताहिरण्मयो मत्सखउद्विचष्टे । मनःस्वलिंगं परिगृह्य कामांजुषन्निबद्धो गुणसंगतोऽसौ ॥४५॥ दानस्वधर्मोनियमो यमश्च श्रुतानिकर्माणिचसद्व्रतानि । सर्वेमनो निग्रहलक्षणान्ताः परोहियोगोमनसः समाधिः ॥ ४६ ॥ समाहितं यस्यमनःप्रशान्तं दानादिभिः किंवदतस्यकृत्यम् । असंयतंयस्यमनो विनश्यद्दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः ॥ ४७ ॥ मनोवशेऽन्ये ह्यभवन्स्म देवामनश्च नान्यस्यवशंसमेति । भीष्मोहिदेवःसहसः सहीयान्युंज्याद्वशेतं सहिदेवदेवः ॥ ४८ ॥ तंदुर्जयं शत्रुमसह्यवेगमरुन्तुदं तन्नविजित्यकेचित् । कुर्वन्त्यसद्विग्रहमत्र मर्त्यैर्मित्राण्युदासीनरिपून्विमूढाः ॥ ४९ ॥ देहमनोमात्रमिमं गृहीत्वा ममाहमित्यन्धधियो मनुष्याः । एषोऽहमन्योऽयमितिभ्रमेण दुरन्तपारतमसिभ्रमन्ति ॥ ५० ॥ जनस्तुहेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनश्चात्र हिभौमयोस्तत् । जिह्वांक्वचित् संदशति स्वदद्भिस्तद्वेदनायां कतमायकुप्येत् ॥५१॥ दुःखस्यहे-

वह जितनाही आत्म भोग्य दैव से प्राप्तहुए ऐसे भौतिक, दैहिक और दैविक भोगों को भोगने लगा उस का ज्ञान उतनाही वृद्धिपानेलगा ॥ ४१ ॥ वह धर्म नाशक दुष्टों द्वारा तिरस्कृतहो सात्विक धैर्य धारणकर अपने धर्म में स्थित होरहाथा; क्यामनुष्य, क्या देवता, क्या आत्मा, क्या ग्रह, क्याकर्म, क्याकाल—कुछभी मेरे दुःख का कारण नहीं है; केवल मनही दुःख का कारण है । मनद्वाराही संसार चक्र घुमाकरता है ॥ ४२—४३ ॥ बलवान मनही सबगुणों को उत्पन्न करता है गुणों से सात्विक, राजस, और तामस ऐसे पृथक् ३ भांति के कर्म होते हैं औरकर्मों सेही सत्वगुणी रजोगुणी और तमोगुणी जन्म होते हैं ॥ ४४ ॥ आत्मा निरीह है;यह मनरूपीजीव का नियंता और विद्या शक्ति प्रधान है अतएव चेष्टासाधन चित्तद्वारा ऊंची चेष्टा करता है। किंतु यह स्वयं संसार प्रकाशक मनको आत्म स्वरूप से मानकर गुणों के संग के कारण सगरतविषयों का सेवन करताहुआ बंधारहता है ॥ ४५ ॥ दान, स्वधर्म, नियम, यम; वेदाध्ययन, कर्म और व्रतआदि का अंतिम फलही मनका संयम करना है; मनका दमन करनाही परम योग है । जिस पुरुष का मन शांत और वशीभूत है ॥ ४६ ॥ उसको दानादि से क्या अभिप्राय ? जिसकामन शांतनहो आलस्य आदि से घिराहुआ है उसका दानादि से क्या प्रयोजन सिद्धहोगा ? ॥ ४७ ॥ अन्यान्य देवता मनकेही वशीभूत हैं; मन दूसरे की आधीनता को स्वीकार नहीं करता । मन रूपी देव बलीहोकरभी अधिक बलवानहै, इस कारण योगियों को भी भय उपजानेवाला है,जिसने इसको वश करलिया वही देव देव है ॥ ४८ ॥ यही दु:सह वेगवाला मर्म पीडादायकशत्रु है। कुछेक मूढमनुष्य उसे न जीतकर संसार में व्यर्थही कलह में प्रवृत्त होते हैं और कितनोंही को मित्र,कितनोंहीको शत्रु और कितनोंही को उदासीन मानलेता है ॥४९॥ केवल मनसेही कल्पित कियेहुए इस शरीर का अवलम्बनकर ' मैं और मेरा ' ऐसा माननेवाले मूढ बुद्धि मनुष्य ' यह मैं ' ' यह दूसरा ' इस भ्रम से दुस्तर संसार में भ्रमण करते हैं ॥ ५० ॥ यदि मनुष्यही सुख और दुःख का कारण होवे तो उसमें आत्माको क्या ? कुछभी नहीं । सुख दुःख का भोक्तृत्व और सुख दु:ख का कर्तृत्व आत्मा में नहीं है, केवल भौतिक देह सेही उसका कर्तृत्व सम्भव है; अतएव सुख दुःखके होने से उस पर किसीको अनुराग व कोप न करना चाहिये॥ ५१ ॥क्यों

दुर्यदि देवतास्तु किमात्मनस्तत्रविकारयोस्तत्। यदंगमंगेननिहन्यते क्वचित् क्रुध्येत कस्मैपुरुषःस्वदेहे ॥ ५२ ॥ आत्मायदि स्यात्सुखदुःखहेतुः किमन्यतस्तत्र निजस्वभावः। नह्यात्मनोऽन्यद्यदि तन्मृषास्यात् क्रुध्येतकस्मान्न सुखंनदुःखम् ॥ ५३ ॥ ग्रहानिमित्तं सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनोऽजस्य जनस्यतेवै ॥ ग्रहैर्ग्रहस्यैववदन्ति पीडां क्रुध्येतकस्मैपुरुषस्ततोऽन्यः॥५४॥कर्मास्तुहेतुःसुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनस्तद्धि जडाजडत्वे। देहस्त्वचित्पुरुषोऽयं सुपर्णःक्रुध्येतकस्मै नहिकर्ममूलम्॥५५॥ कालस्तुहेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनस्तत्र तदात्मकोऽसौ। नाग्नेर्हितापोनहिमस्यतत्स्यात् क्रुध्येतकस्मै नपरस्यद्वन्द्वम् ॥ ५६ ॥ नकेनचित्क्वापि कथंचनास्य द्वन्द्वोपरागःपरतः परस्य। यथाऽहमः संसृतिरूपिणः स्यादेवंप्रबुद्धोन बिभेतिभूतैः ॥ ५७ ॥ एतांसआस्थायपरात्मनिष्ठामध्यासितांपूर्वतमैर्महर्षिभिः। अहंतरिष्यामिदुरन्तपारं तमोमुकुन्दाङ्घ्रिनिषेवयैव ॥ ५८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ निर्विद्य नष्टद्रविणोगतक्लमः प्रव्रज्यगांपर्यटमानइत्थम्। निराकृतोऽसद्भिरपिस्वधर्मादकम्पितोऽमूंमुनिराहगाथाम् ॥ ५९ ॥ सुखदुःखप्रदोनान्यः पुरुषस्यात्मविभ्रमः।

कि अपने दांतोसे जीभके काटने पर उससे दुःख उत्पन्नहोनेपर किसपर क्रोध किया जासकताहै ? यदि देवताओं कोही दु खका कारण कहाजाय तो फिर उसमेंभी औरोंको क्या!—एकने दूसरेको मारा अथवा काटखाया तो इस विकार से हाथके देवता इन्द्रका और मुखके देवता अग्निका कलह हुआ इससे आत्माको क्या ? निर्विकार और अहकाररहित आत्मामें कुछभी संभव नहीं देवताभी सब शरीर में अनेकानेक हैं इससे किसीपर क्रोध नहीं होसकता। अपने शरीर मेंही देवताओं के आश्रय एक अंग पर दूसरे अंगका प्रहार होवेतो वह किसपर क्रोध किया जाय ? आत्माही यदि सुख दुःख का कारण होवे, तो फिर इससे दूसरे को क्या हुआ—उसका स्वयही स्वभाव है; निश्चयही आत्मासे दूसरा नहीं है यदि है तो वह मिथ्या है, अतएव किस कारण कोप कियाजाय ? कारण यह कि—सुख दु खका निमित्त सुख वा दुःख कुछभी वास्तविक नहीं है ॥ ५२। ५३ ॥ ग्रहों कोही यदि सुख दु ख का कारण कहाजाय तो फिर आत्माहीको क्या ? वह जन्मता नहीं उत्पन्न शील देह कोही दुःख सुख का होना सम्भव है, देवज्ञगण ग्रहोंद्वाराही ग्रहपीड़ा करते हैं, अतएव मनुष्य किस २ पर क्रोध करे ? वह उससे भिन्न है ॥ ५४ ॥ यदि कर्मही सुख दुःख का कारण है तो फिर उससेही आत्माको क्या ? क्योंकि जड़ता और अजड़ता दोनोंकोही एक होने से कर्म का होना संभावित होसकता है, परन्तु शरीर जड़ और यह पुरुष शुद्ध ज्ञानमय है; अतएव सुख और दुःख की जड़ कर्महो नहीं है। किसके ऊपर कुपित होवे ? ॥ ५५ ॥ कालही यदि सुख और दुःख का कारण है तो उससेही आत्माको क्या ? क्योंकि काल स्वयही आत्मा का अंश है तो जैसे ज्वाला की गर्मी अग्नि को नहीं लगती और हिमकण का शीत हिम को नहीं लगता ऐसेही काल से होतेहुए सुख दुःख से आत्मा को किसी प्रकार का क्लेश नहीं होसकता ॥ ५६ ॥ अतएव किसके ऊपर कोप कियाजाय ? ससार प्रकाशकारी अहङ्कार से जैसा भय उत्पन्न होता है वैसा भय फिर बुद्धिमान होनेपर नहीं रहता; इसही प्रकार आत्माके अन्यत्र से किसी के भी द्वारा, कहीं किसी प्रकार से सुख दुःखादि नहीं होसकता ॥ ५७ ॥ अतएव मैं प्राचीनतम महर्षियों की सेवित इस ब्रह्मनिष्ठा का आश्रयके भगवान की चरण सेवा द्वारा इस दुस्तर ससार से पारहूंगा ॥ ५८ ॥ भगवान ने कहा कि—वह नष्टधन, गतश्रम, वैराग्ययुक्त मुनि दुष्टों के इसप्रकार तिरस्कृत करने परभी अपने स्वधर्म से न विचालितहुआ। उसने पृथ्वी पर भ्रमण करते २ इस गाथा को कहाथा ॥ ५९ ॥ मनुष्योंके सुख दुःख का देनेवाला दूसरा

मित्रोदासीनरिपवः संसारस्तमसः कृतः ॥ ६० ॥ तस्मात्सर्वात्मना तात निगृहाण
मनोधिया । मय्यावेशितया युक्त एतावान्योगसंग्रहः ॥ ६१ ॥ य एतां भिक्षुणा गी
तां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः । धारयञ्छ्रावयञ्छृण्वन् द्वन्द्वैर्नैवाभिभूयते ॥ ६२ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

श्रीभगवानुवाच । अथतेसंप्रवक्ष्यामि सांख्यंपूर्वैर्विनिश्चितम् । यद्विज्ञायपुमा-
न्सद्यो जह्याद्वैकल्पिकंभ्रमम् ॥ १ ॥ आसीज्ज्ञानमथो अर्थएकमेवाविकल्पितम् ।
यदाविवेकनिपुणाआदौकृतयुगेयुगे ॥ २ ॥ तन्मायाफलरूपेण केवलंनिर्विकल्पित-
म् । वाङ्मनोऽगोचरंसत्यं द्विधासमभवद्बृहत् ॥ ३ ॥ तयोरेकतरोह्यर्थःप्रकृतिः
सोभयात्मिका । ज्ञानंत्वन्यतमोभावः पुरुषःसोऽभिधीयते ॥ ४ ॥ तमोरजःसत्त्व-
मिति प्रकृतेरभवन्गुणाः । मयाप्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुषानुमतेनच ॥ ५ ॥ तेभ्यः
समभवत्सूत्रंमहान्सूत्रेणसंयुतः । ततोविकुर्वतोजातोयो ऽहङ्कारोविमोहनः ॥ ६ ॥
वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहंत्रिवृत् । तन्मात्रेन्द्रियमनसां कारणंचिदचिन्म-
यः ॥ ७ ॥ अर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे तामसादिन्द्रियाणिच । तैजसाद्देवताआसन्नेकाद-
शचवैकृतात् ॥ ८ ॥ मयासंचोदिताभावाः सर्वेसंहत्यकारिणः । अण्डमुत्पादयामा
सुर्ममायतनमुत्तमम् ॥ ९ ॥ तस्मिन्नहंसमभवमण्डे सलिलसंस्थितौ । ममनाभ्या-

नहीं है; मित्र, उदासीन, शत्रु और समस्त संसार भी अज्ञान के कारण अपने मनकी भ्रांति से उत्पन्न कियाहुआ है ॥ ६० ॥ अतएव हेवत्स ! मुझमें अपनी बुद्धि को लगाय सबप्रकार से मनको वशीभूतकर योगाभ्यास करो ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य इस भिक्षुक के गीतको ब्रह्म निष्ठा धारण करेगा अथवा सुनेगा और सुनावेगा, वह सुख दुःखादि द्वन्द्वों से संतप्त न होगा ॥ ६२ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

श्री भगवान बोले कि—हेउद्धव ! कपिलादि प्राचीन ऋषियों द्वारा भली प्रकार से निश्चित सांख्ययोग को अब तुमसे कहूंगा । उसको जानकर मनुष्य तत्कालही भेद निबन्धन सुख दुःखादि से मुक्त होते हैं ॥ १ ॥ पहिले प्रलय काल में ये समस्त दृश्यपदार्थ विकल्प रहित एक अद्वितीय परम ब्रह्मरूपथे, उसके उपरांत युगांतर में जब सबमनुष्य विवेकी और निपुणथे, तबभी भेदज्ञान न होने से सब ईश्वरही रूप जानजातेथे ॥ २ ॥ केवल भेद रहित और सत्य वह व्यापक ब्रह्मही अपनी माया के हेतु वाणीकी और मनकी प्रवृत्ति होवे ऐसे दृश्य और द्रष्टारूप से दो प्रकार का हुआ ॥ ३ ॥ इस दृश्य और द्रष्टा में जो दृश्यपदार्थ है वह कार्य कारणरूप प्रकृति है और दूसरा द्रष्टापदार्थ पुरुष कहाजाता है ॥ ४ ॥ मैंने जीवों के अदृश्यके निमित्त ईक्षणरूप द्वार से प्रकृति को क्षुभित किया तब उससे सत्व, रज और तम येतीन गुण उत्पन्नहुए ॥ ५ ॥ इनसे महत्तत्व और क्रियाशक्ति उत्पन्नहुई, उससे क्रियाशक्ति संयुक्त ज्ञानशक्ति, उस में विकार प्रवृत्त होने पर उससे अहंकार उत्पन्न हुआ; वह अहंकारही जीवों को भ्रम उत्पन्न कराता है ॥ ६ ॥ अहंकार के वैकारिक, तैजस और तामस यह तीन भेद हैं इनमें वैकारिक अहंकार से इंद्रियों के ग्यारह देवता और मन उत्पन्नहुआ, तैजस से ग्यारह इन्द्रियां उत्पन्नहुईं, तामस से शब्द स्पर्श, रूप, रस और गन्ध यह पांचतन्मात्रा उत्पन्नहुईं यह अहंकार चिदाभास से व्याप्त होनेके कारण जड और चैतन्यकी ग्रंथिरूप कहाता है, देवता और मनका प्रकाश स्वभाव है, इस निमित्त उनको वैकारिक सात्विक अहंकार माना है, इंद्रियों का प्रवृत्तिस्वभाव है, इस लिये उनको तैजस अहंकार का कार्य माना है, पंच महाभूतों का आवरण स्वभाव है इसकारण वे तामसअहंकार के कार्य मानेगये हैं ॥ ७—८ ॥ मेरी प्रेरणासे इनसब पदार्थों ने एकत्रित होकर मेरे उत्तम विश्राम स्थान अण्डको उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ जल में स्थित उस अण्डसे मैं उत्पन्नहुआ । मेरी नाभि से

मभूत्पद्मं विश्वाख्यंतत्रात्मभूः ॥ १० ॥ सोऽसृजत्तपसायुक्तो रजसामदनुग्रहात्
। लोकान्सपालान्विश्वात्मा भूर्भुवःस्वरितित्रिधा ॥ ११ ॥ देवानामोक आसीत्स्व-
र्भूतानां चभुवःपदम् । मर्त्यादीनांचभूर्लोकःसिद्धानांत्रितयात्परम् ॥ १२ ॥ अधोऽ
सुराणांनागानांभूमेरोकोसृजत्प्रभुः । त्रिलोक्यांगतयःसर्वाःकर्मणांत्रिगुणात्मनाम् ॥
१३ ॥ योगस्यतपसश्चैव न्यासस्यगतयोऽमलाः । महर्जनस्तपःसत्यंभक्तियोगस्य-
मद्गतिः ॥१४॥ मयाकालात्मनाधात्रा कर्मयुक्तमिदं जगत् । गुणप्रवाहएतस्मिन्नुन्म-
ज्जतिनिमज्जति १५ अणुर्बृहत्कृशःस्थूलोयोयोभावःप्रसिध्यति। सर्वोऽप्युभयसंयुक्तः
प्रकृत्यापुरुषेणच ॥ १६ ॥ यस्तुयस्यादिरन्तश्चसवैमध्यंचतस्यसन् । विकारोव्य-
वहारार्थो यथातैजसपार्थिवाः १७ ॥ यदुपादायपूर्वस्तु भावोविकुरुतेऽपरम् ।
आदिरन्तोयदायस्य तत्सत्यमभिधीयते ॥ १८ ॥ प्रकृतिर्ह्यस्योपादान माधारःपुरु
षःपरः । सतोऽभिव्यञ्जकःकालो ब्रह्मतत्त्रितयंत्वहम् ॥ १९ ॥ सर्गःप्रवर्ततेतावत्
पौर्वापर्येणनित्यशः । महान्गुणविसर्गार्थः स्थित्यन्तोयावदीक्षणम् ॥२०॥ विरा
ण्मयाऽऽसाद्यमानो लोककल्पविकल्पकः । पंचत्वायविशेषाय कल्पतेभुवनैःसह
॥ २१ ॥ अन्नेप्रलीयतेमर्त्यं मन्नंधानासुलीयते । धानाभूमौप्रलीयन्ते भूमिर्गन्धेप्र
लीयते ॥ २२ ॥ अप्सुप्रलीयतेगन्ध आपश्चस्वगुणेरसे । लीयतेज्योतिषिरसो
ज्योतीरूपेप्रलीयते ॥ २३ ॥ रूपंवायौसचस्पर्शे लीयतेसोऽपिचाम्बरे । अम्बरंश

विश्वनामकपद्म और उससे आत्मयोनि ब्रह्माजी उत्पन्नहुए ॥ १० ॥ उन विश्वात्मा ने तपस्या के प्रभाव और मेरे अनुग्रह से रज द्वारा लोक पालों सहित सब लोक तथा भूः, भुवः और स्वः—इन तीन लोकों को उत्पन्न किया ॥ ११ ॥ स्वर्लोक देवताओं का निवास स्थान हुआ, भुवर्लोक भूत आदिका, भूर्लोक मनुष्योंका तथा इन तीनों लोकों से महर्लोकादि सिद्ध गणों के निवास हुए ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी ने पृथ्वी के नीचे के भागमें असुर और नागोंका निवास स्थान बनाया । त्रिगुणात्मक कर्म करने से जो गतियां होती हैं वे सब त्रिलोकी के भीतर है ॥ १३ ॥ योग तपस्या और सन्यास की निर्मल गतियां महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक हैं और भक्तियोग की गति वैकुण्ठ है ॥ १४ ॥ मैं काल रूपी धाता हूं; मुझसेही कर्म सहित यह जगत इसही गुण प्रवाह से उठता है और मग्न होता है ॥ १५ ॥ छोटे, बड़े, सूक्ष्म, स्थूल जो २ प्रसिद्ध पदार्थ हैं वे सबही प्रकृति और पुरुष दोनोंसे संयुक्त हैं ॥ १६ ॥ जो पदार्थ जिसका कारण और लयस्थान है वही उसकी मध्यावस्था है, अतएव वही सत् है,—विकार तो केवल व्यवहारके कारण है, कंकण आदि तैजस पदार्थ और घट शरीरादि पार्थिव पदार्थ उसका दृष्टांत है ॥ १७ ॥ यदिकिसी पदार्थ के उपादान कारणका दूसरा उपादान कारणहो तो वह प्रथम उपादान कारणही यथार्थ में सत्य है । तो फिर जब जो जिसका उपादान स्वरूपहो तब वही उसकी अपेक्षा सत्य है ऐसा वेद में कहा है ॥ १८ ॥ कार्यकी उपदान प्रकृति; अधिष्ठाता—परम पुरुष; और कार्यों का प्रगट करने वाला काल यह तीनों मेरेही स्वरूप हैं ॥ १९ ॥ जीवको भोग देनेके निमित्त उत्पन्न हुई इस सृष्टि स्थिति का जब तक अंत आता है तब तक यह पिता और पुत्रादिक रूपसे अविच्छिन चला करती है और यह सृष्टि स्थिति जब तक परमेश्वर का ईक्षण होता है तब तक रहती है ॥ २० ॥ मेरे द्वारा व्याप्त ब्रह्माण्ड,—जगतकी अनेकों सृष्टि और प्रलयकी रचना भूमि होकरभी सब भुवनोंके साथ पंचत्वरूप से विभाग के योग्य है ॥ २१ ॥ शरीर अन्न में; अन्न अंकुरमें, अंकुर भूमि में, भूमि गन्धमें ॥ २२ ॥ गंध जलमें, जल अपने गुणरसमें, रस ज्योतिमें, ज्योतिरूप

ब्दतन्मात्र इन्द्रियाणिस्वयोनिषु ॥ २४ ॥ योनिर्वैकारिकेसौम्य लीयतेमनसीश्व
रे । शब्दोभूतादिमप्येति भूतादिर्महतिप्रभुः ॥ २५ ॥ सलीयतेमहान्स्वेषु गुणेषु
गुणवत्तमः । तेऽव्यक्तेसंप्रलीयन्ते तत्कालेलीयतेऽव्यये ॥ २६ ॥ कालोमायामये
जीवे जीवआत्मनिमय्यजे । आत्माकेवलआत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः ॥ २७ ॥
एवमन्वीक्षमाणस्य कथंवैकल्पिकोभ्रमः । मनसोहृदितिष्ठेत व्योम्नीवार्कोदयेतमः
॥ २८ ॥ एषसांख्यविधिःप्रोक्तः संशयग्रन्थिभेदनः । प्रतिलोमानुलोमाभ्यां परा
वरदृशामया ॥ २९ ॥ .

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ गुणानामसमिश्राणां पुमान्येनयथाभवेत् । तन्मेपुरुषवर्यै
द मुपधारयशंसतः ॥ १ ॥ शमोदमस्तितिक्षेक्षा तपःसत्यंदयास्मृतिः । तुष्टि
स्त्यागोऽस्पृहाश्रद्धा ह्रीर्दयादिःस्वनिर्वृतिः ॥ २ ॥ कामईहामदस्तृष्णा स्तम्भआ
शीर्भिदासुखम् । मदोत्साहोयशःप्रीतिर्हास्यंवीर्यंबलोद्यमः ॥ ३ ॥ क्रोधोलोभो
ऽनृतंहिंसा याच्ञादम्भःक्लमःकलिः । शोकमोहौविषादार्ती निद्राऽऽशाभीरनु
द्यमः ॥ ४ ॥ सत्वस्यरजसश्चैतास्तमसश्चानुपूर्वशः । वृत्तयोवर्णितप्रायः सन्नि
पातमथोशृणु ॥ ५ ॥ सन्निपातस्त्वहमिति ममेत्युद्धवयामतिः । व्यवहारःसन्नि

में रूप वायुमें और वायु स्पर्शमें लीन होजाता है । हे सौम्य । वहभी आकाश में आकाश शब्द तन्मात्र में, इन्द्रिय वर्ग अपने २ प्रवर्त्तक देवताओं में ॥ २३ । २४ ॥ सब देवता मनमें और मन वैकारिक अहङ्कार में लीन होजाता है । शब्द तन्मात्रा का लय तामसाहंकार में और मनका लय सात्विकाहंकारमें होता है । सब जगतको मोहित करने वाला अहंकार महत्तत्वमें लीन होता है ॥ २५ ॥ वह महत्तत्व अपने कारणी भूत गुणोंमें वह गुण प्रकृतिमें और प्रकृति अव्यय काल में लीन हो जाती है ॥ २६ ॥ काल, ज्ञानमय महापुरुष में और महापुरुष अज आत्मा मुझ में लीन होजाता है आत्मा विश्वकी उत्पत्ति और लय द्वारा स्थिति भूमि और सीमारूप से लक्षित होता रहता है; इसही कारण वह निरुपाधिक और आत्मरूप में अवस्थित है ॥ २७ ॥ जो इस प्रकार देखते हैं, सूर्योदय होने पर आकाश से जैसे अंधकार दूर होजाता है उसही प्रकार उनके मनसे भेद जनित भ्रम दूर होजाताहै ॥ २८ ॥ भूत भविष्यके ज्ञाता मैंने प्रतिलोम और अनुलोम क्रमसे इस संदेह ग्रन्थिनाशक सांख्य विधिका वर्णन किया ॥ २९ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कंधेनरकाभाषाटीकायांचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

श्रीभगवान ने कहा, कि हे उद्धव ! पृथक् २ सत्वादी गुणों में से जिसगुण द्वारा जिसप्रकार से पुरुष प्रकाशित होताहै, वह मैं कहताहूं, तुम सावधान मन होकर सुनो॥१॥शम, दम, तितिक्षा, विवेक, स्वधर्म, निष्ठा, सत्य, दया, पूर्व परका अनुसंधान, दैवेच्छा से प्राप्त हुए पदार्थ द्वारा संतोष, दान, वैराग्य आस्तिकता, अनुचितकर्मोंमें लज्जा, सरलता, विनयऔर आत्मरति इत्यादि समस्त सत्व गुण की वृत्तियें हैं ॥२॥ अभिलाष, चेष्टा, अहङ्कार, लाभहोने परभी असंतोष, गर्व, धनादि कामनाओंके निमित्त देवताओं से प्रार्थना करना, भेद बुद्धि, विषयभोग, मद से युद्धादिकका अभिनिवेश, अपनी प्रशंसा में प्रीति, उपहास, पराक्रम, प्रसिद्धकरना और बलसे उद्यम ये सब रजो गुणकीवृत्तिये हैं॥३॥क्रोध, लोभ, झूठ हिंसा, मांगना, दंभ, श्रम, कलह, शोक, मोह, दुःख, दीनता तन्द्रा (आलस्य) बड़ी २ आशायें, भय और जड़ता ये तमोगुण की वृत्तियें हैं ॥ ४ ॥ यह सत्व गुण, रजोगुण और तमोगुण की वृत्तियां बहुतसी तौ कहदी हैं और ऐसी जो औरभी होवें वे इसी के अनुसार जानलेनी अब उनके मिश्रित भाव की वृत्तियों का वर्णन करता हूं सोसुनो ॥ ५ ॥ हे

पातो मनोमात्रेन्द्रियासुभिः ॥ ६ ॥ धर्मेचार्थेचकामेच यदाऽसौपरिनिष्ठितः । गुणानांसन्निकर्षोऽयं श्रद्धारतिधनावहः ॥ ७ ॥ प्रवृत्तिलक्षणेनिष्ठा पुमान्यर्हिगृहाश्रमे । स्वधर्मेचानुतिष्ठेत गुणानांसमितिर्हिसा ॥ ८ ॥ पुरुषसत्वसंयुक्त मनुमीयाच्छमादिभिः । कामादिभीरजोयुक्तं क्रोधाद्यैस्तमसायुतम् ॥९॥ यदाभजतिमांभक्त्या निरपेक्षःस्वकर्मभिः । तंसत्त्वप्रकृतिं विद्यात् पुरुषंस्त्रियमेववा॥१०॥ यदाआशिषआशास्य मांभजेतस्वकर्मभिः । तंरजःप्रकृतिंविद्याद्धिंसामाशास्यतामसम्। ॥११॥सत्वंरजस्तमइति गुणाजीवस्यनैवमे । चित्तजायैस्तुभूतानां सज्जमानोनिबध्यते ॥१२॥ यदेतरौजयेत्सत्वं भास्वरंविशदं शिवम् । तदासुखेनयुज्येत धर्मज्ञानादिभिःपुमान् ॥ १३ ॥ यदाजयेत्तमःसत्त्व रजःसङ्गंभिदाचलम् । तदा दुःखेनयुज्येत कर्मणायशसाश्रिया ॥ १४ ॥ यदाजयेद्रजःसत्वं तमोमूढलयंजडम् । युज्येतशोकमोहाभ्यां निद्रयाहिंसयाऽऽशया ॥ १५ ॥ यदाचित्तंप्रसीदेत इन्द्रियाणांचनिर्वृतिः । देहेऽभयंमनोसङ्गं तत्सत्वंविद्धिमत्पदम् ॥१६॥ विकुर्वन्क्रियया चाऽऽधीरनिर्वृत्तिश्चचेतसाम् । गात्रास्वास्थ्यंमनो भ्रान्तं रजएतैर्निशामय। ॥ १७ ॥सीदच्चित्तंविलीयेत चेतसोग्रहणेऽक्षमम् । मनोनष्टंतमोग्लानिस्तमस्तदुपधारय ॥ १८ ॥ एधमानेगुणेसत्वे देवानांबलमेधते ॥ असुराणांचरजसि तमस्यु-

उद्धव ! मैं और मेरा' इस प्रकार की जो बुद्धि होती है वह तीनोंगुणों का सन्निपात अर्थात् इकट्ठापन है मन, शब्दादि विषय, इन्द्रियां और प्राण से जो व्यवहार होता है उसको तीनोंगुणों का सन्निपात जानना चाहियें ॥ ६ ॥ पुरुष का धर्म, अर्थ और काममें लगना तीनोंगुणों के सन्निपात का कार्य है इससे मनुष्य श्रद्धा आशक्ति और धनको उत्पन्न करता है ॥ ७ ॥ जब मनुष्य काम-धर्मोंमें लगता है, जब गृहाश्रम में आशक्त होता है और फिर जब अपने नित्यनैमित्तिक धर्म में प्रवृत्तहोताहै तब जानोंकि यह इसका वर्त्ताव तीनोगुणों के संयेग से हुआ है ॥ ८ ॥ शमादि द्वारा पुरुष सत्वयुक्त, कामादि द्वारा रजोयुक्त और क्रोधादि द्वारा तमोयुक्त होताहैं ॥ ९ ॥ जब स्त्री या पुरुष निरपेक्ष होकर अपने कर्मोंद्वारा भक्ति पूर्वक मेरी पूजा करता है तबही वह सत्व स्वभाव कहा जासकताहै॥१०॥जब अपने कुशलकी कामना करके अपने कर्मों द्वारा मेरी पूजाकरताहै तब वह रजो प्रकृति,और जब हिंसाकी कामनाकरके अपने कर्मोंद्वारा मेरी आराधनाकरताहै तब वहतामस प्रकृति कहाजाताहै ॥११॥सत्व,रज,तम यह सब जीवकेही गुण हैं मेरे नहीं क्योंकि यह सबचित्तसे उत्पन्न हुएहैं इनही गुणों से जीव पदार्थों में आशक्त होकर संसारके पाश मे बंध जाता है ॥ १२ ॥ प्रकाशक, स्वच्छ और शांत सत्वगुण जबरज और तमोगुण को जीतता है, तबही मनुष्य सुखी, धार्मिक और ज्ञानवान होताहै ॥१३॥ जबसंगव भेदका कारणरूप प्रवृत्ति स्वभाव रजोगुण, तम और सत्वगुण को जीतता है तब मनुष्य दुःख, कर्म, यश और श्री को प्राप्त करता है ॥ १४ ॥ जब विवेक भ्रंश कारक, आवरणात्मक और आलस्यात्मक तमोगुण रज और सत्वगुणको जीतता है तब मनुष्य शोक, मोह, निद्रा, हिंसा और आशायुक्त होताहै ॥१५॥ जब मन शांत होवे और सब इन्द्रियें अचंचलहोवें तथा देहमें अभय और मन निःसंगहोवे तब मेरीप्राप्ति के आश्रय सत्व-गुणकी वृद्धि हुई जाननी॥१६॥जब क्रिया विकारके प्राप्तहोनेपर मनुष्यका चित्त चारोंओरसे भ्रमित होताहै बुद्धि और इन्द्रियोंमें अनिर्वृति उत्पन्नहोती है कर्मेंद्रियों में अधिक विकार उपस्थितहोताहै मन भ्रमित होता है तब रजकी वृद्धिहुई जानना ॥ १७ ॥ जब अस्तहोताहुआ चित्त चिदाभास को ग्रहण करने में असमर्थ होकर लीन होजावे; और संकल्प रूप मनभी लीन होजावे तथा अज्ञान उत्पन्न होजाय और खेद होवे तब तमोगुणकी वृद्धि जाननी ॥ १८ ॥ हेउद्धव ! सत्व

सुरासुररक्षसाम् ॥ १९ ॥ सत्त्वाज्जागरणं विद्याद्रजसा स्वप्नमादिशेत्। प्रस्वापं तमसा
जन्तोस्तुरीयं त्रिषु संततम् ॥ २० ॥ उपर्युपरि गच्छन्ति सत्त्वेन ब्राह्मणा जनाः । तम-
साऽधोऽध आमुख्याद्रजसाऽन्तरचारिणः ॥ २१ ॥ सत्त्वे प्रलीनाः स्वर्यान्ति नरलो-
कं रजोलयाः । तमोलयास्तु निरयं यान्ति मामेव निर्गुणाः ॥ २२ ॥ मदर्पणं निष्फलं वा
सात्त्विकं निजकर्म तत् । राजसं फलसंकल्पं हिंसाप्रायादि तामसम् ॥ २३ ॥ कैवल्यं
सात्त्विकं ज्ञानं रजो वैकल्पिकं च यत् । प्राकृतं तामसं ज्ञानं मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम् ।२४।
वनं तु सात्त्विको वासो ग्रामो राजस उच्यते । तामसं द्यूतसदनं मन्निकेतं तु निर्गुणम्।
॥ २५ ॥ सात्त्विकः कारकोऽसंगी रागान्धो राजसः स्मृतः । तामसः स्मृतिविभ्रष्टो
निर्गुणो मदपाश्रयः ॥ २६ ॥ सात्त्विक्याध्यात्मिकी श्रद्धा कर्मश्रद्धा तु राजसी । ता-
मस्यधर्मे या श्रद्धा मत्सेवायां तु निर्गुणा ॥ २७ ॥ पथ्यं पूतमनायस्तमाहार्यं सात्त्वि-
कं स्मृतम् । राजसं चेन्द्रियप्रेष्ठं तामसं चार्तिदाऽशुचि ॥ २८ ॥ सात्त्विकं सुखमात्मो-
त्थं विषयोत्थं तु राजसम् । तामसं मोहदैन्योत्थं निर्गुणं मदपाश्रयम् ॥ २९ ॥ द्रव्यं
देशः फलं कालो ज्ञानं कर्म च कारकः । श्रद्धावस्थाकृतिर्निष्ठा त्रैगुण्यः सर्व एव हि ३०
सर्वे गुणमया भावाः पुरुषाव्यक्तधिष्ठिताः । दृष्टं श्रुतमनुध्यातं बुद्ध्या वा पुरुषर्षभ ॥
॥ ३१ ॥ एताः संसृतयः पुंसो गुणकर्मनिबन्धनाः । येनेमे निर्जिताः सौम्य गुणा जी-

गुण के बढ़ने पर देवताओं का, रजके बढने पर असुरों का और तमके बढने पर राक्षसों का
बल बढता है ॥ १९ ॥ सत्त्व से प्राणियों का जागरण, रजसे स्वप्न और तमसे सुषुप्ति जानना।
तुरीयअवस्था तीनों गुणों के ऊपर विस्तृत है ॥ २० ॥ मनुष्य सत्त्व द्वारा क्रमशः ऊपर के ब्रह्म-
लोक तक जाता है, तमोगुण से स्थावर पर्यंत नीची २ योनियों में जन्म लेता है और रजोगुण
से फिर मनुष्य शरीर को प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ जो सत्त्व में लीन होते हैं वे स्वर्ग में; जो रजो
गुण में लीन होते हैं वे नरलोक में और जो तमोगुण में लीन होते हैं वह नरक में जाते हैं। और
जो निर्गुण हैं वे मुझकोही प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ मेरी प्रीति के अभिप्राय से कियेहुए व केवल
दासभावसे कियेहुए कर्म सात्त्विक हैं, फल की कामना से कियेहुए कर्म राजस हैं और हिंसादि
के अभिप्राय से कियेहुए कर्म तामस हैं ॥ २३ ॥ आत्मा देहादिक से भिन्न है ऐसाज्ञान सात्त्विक
है, आत्मा देहादिक से भिन्न नहीं है ऐसा ज्ञान राजस है बालककी समान प्राकृतज्ञान तामस है
और मेरे विषय का ज्ञान निर्गुण ज्ञान है ॥ २४ ॥ वनमें रहना सात्त्विकवास है, ग्राममें रहना
राजसवास है; द्यूत आदि के स्थल में रहना तमोगुणी वास है और मेरे मंदिर आदि में रहनेको
निर्गुण निवास जानो ॥ २५ ॥ निःसंगहोकर जो कर्म करे वह सात्त्विक कर्त्ता है; अत्यन्त आस-
क्तिसे अंधे होकर, जो कर्म करे वह राजसकर्त्ता है; अनुसन्धान रहित होकर जो कर्म करे वह
तामस कर्त्ता है और जो मेरा आश्रय लेकर कर्म करे वह निर्गुण कर्त्ता है ॥ २६ ॥ आत्मा पर
श्रद्धा सात्त्विक; कर्मों पर श्रद्धा राजस, अधर्म में श्रद्धा तामस और मेरी सेवामें श्रद्धा निर्गुण, हित
कारी तथा श्रद्धा शुद्ध है ॥ २७ ॥ जो भोजन का पदार्थ अनायास से प्राप्त होजावे वह सात्त्विक;
इंद्रियों को प्रिय भोजन राजस; दुःख दायक और अशुद्ध भोजन तामस है ॥ २८ ॥ आत्मा से
उत्पन्नहुआ सुख सात्त्विक; विषयों से उत्पन्नहुआ सुख राजस; मोह और दीनता से उत्पन्न
हुआ सुखाभास तामस और मेरे विषय का सुख निर्गुण है ॥ २९ ॥ द्रव्य, देश, फल, ज्ञान, कर्म
कर्त्ता, श्रद्धा, अवस्था, आकृति और निष्ठा यह सबही त्रिगुणात्मक हैं ॥ ३० ॥ पुरुष और
प्रकृति में अवस्थित-देखे, सुने अथवा बुद्धिद्वारा विचारेहुए सबही पदार्थ गुणमय हैं ॥ ३१ ॥
हे सौम्य ! जीव के सब जन्म, गुण और कर्म अभिमान रूप कारणसेही होतेहैं । जो जीव चित्त

येन विचक्षणः ॥ ३२ ॥ भक्तियोगेन मन्निष्ठो मद्भावाय प्रपद्यते ॥ तस्माद्देहमिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसंभवम् ॥३३॥ गुणसंगविनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः । निःसंगो मां भजेद्विद्वानप्रमत्तो जितेन्द्रियः । रजस्तमश्चाभिजयेत्सत्त्वसंसेवया मुनिः ३४॥ सत्त्वंचाभिजयेद्युक्तो नैरपेक्ष्येणशान्तधीः । संपद्यतेगुणैर्मुक्तो जीवोजीवंविहाय माम् ॥ ३५ ॥ जीवोजीवविनिर्मुक्तो गुणैश्चाशयसंभवैः । मयैव ब्रह्मणापूर्णो न बहिर्नान्तरश्चरेत् ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ मल्लक्षणमिमंकाय लब्ध्वामद्धर्मआस्थितः । आनन्दंपरमात्मानमात्मस्थं समुपैतिमाम् ॥ १ ॥ गुणमय्याजीवयोन्या विमुक्तोज्ञाननिष्ठया । गुणेषु मायामात्रेषु दृश्यमानेष्ववस्तुतः । वर्तमानोऽपिन पुमान्युज्यते वस्तुभिर्गुणैः ॥२॥ संगंन कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपांक्वचित् । तस्यानुगस्तमस्यन्धे पतत्यन्धानुगाऽन्धवत् ॥ ३ ॥ ऐलः सम्राडिमां गाथामगायत बृहच्छ्रवाः । उर्वशीविरहान्मुह्यन्निर्विण्णः शोकसंयमे ॥ ४ ॥ त्यक्त्वात्मानं व्रजन्तीं तां नग्नउन्मत्तवन्नृपः । विलपन्नन्वगाज्जाये घोरेतिष्ठेतिविक्लवः ॥ ५ ॥ कामानतृप्तोऽनुजुषन्क्षुल्लकान्वर्षयामिनीः नवेदयान्तीर्नायान्तीरुर्वश्याऽऽकृष्टचेतनः ॥ ६ ॥ ऐल उवाच ॥ अहोमेमोहविस्तारः कामकश्मलचेतसः । देव्यागृहीतकण्ठस्य नायुःखण्डाइमेस्मृताः ॥ ७ ॥

से होतेहुए इन गुणों को जीतगया होवे, वह फिर भक्तियोग द्वारा मेरा भक्तहो मोक्ष पाने के योग्य होजाता है ॥ ३२ ॥ अतएव जिससे ज्ञान और विज्ञान की उत्पत्ति होती है वह शरीर प्राप्तकर चतुर मनुष्यको नि.संगहो मेरी सेवा करनी चाहिये ॥ ३३ ॥ विद्वान् मुनि को निःसंग और प्रमाद रहितहो इंद्रियों को जीत मेरा भजन करना चाहिए और सत्त्व गुण के सेवनद्वारा रज तथा तमको जीतना चाहिये ॥ ३४ ॥ शांत बुद्धि विद्वान् मनुष्य को उपशमात्मक सत्त्वद्वारा सत्त्व को जीतना चाहिए। जीव गुणों से छुटकारा पाकर लिंग देह को छोड़ मुझको प्राप्त करता है ॥ ३५ ॥ लिंग शरीर भी अतःकरण से उत्पन्नहुए गुणों से छुटकारापाकर जीव विषयभोग व विषयोंकी चिंता नहीं करता। मैंही ब्रह्म; मुझी से जीव परिपूर्ण होता है ॥ ३६ ॥

इतिश्रीमद्भा•महा•एकादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

श्रीभगवान ने कहा कि—जो मनुष्य जिससे मेरा स्वरूप जानने में आता है ऐसे नरदेहको प्राप्तकर मेरी भक्ति रूप धर्म में दृढरहता है वह परमानन्दआत्मस्वरूप मुझको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ ज्ञान निष्ठाद्वारा गुणमय जीवोपाधि से मुक्ति प्राप्तकर पुरुष गुण कि जो मायामात्र औरयथार्थ रीति से प्रतीत होरहे हैं उनमें रहने परभी इन अवास्तविक गुणों के संग को प्राप्त नहीं होता ॥ २ ॥ ज्ञानी पुरुष को उपस्थ और उदर के तृप्त करनेवाले मनुष्यों का संग कदापि न करना चाहिये।यदि उनमें से एकका भी अनुसरण कियाजाय तो अन्धे के पीछे चलेजाते अन्धेकीसमान वह मनुष्य घोर अन्धकार में गिरता है ॥ ३ ॥ चक्रवर्ती विपुलकीर्ति राजा पुरूरवा ने उर्वशी के विरह के कारण मोह में पतितहो उसको फिर पाने के निमित्त शोक के कारण वैराग्यको प्राप्तहो इस गाथा को गायाथा ॥ ४ ॥ वह उर्वशी जब उसको छोड़कर चलीगई तब राजाकातरहो शोक करते २ उन्मत्तकी समान नंगा और 'हे स्त्री ! हे घोरे ! ठहर २' इसप्रकार विलाप करताहुआ उसके पीछे २ दौड़ा ॥ ५ ॥ अतृप्त चित्त से तुच्छ काम की सेवाकरतेहुए बहुत वर्षों की रात्रियों के आरम्भ और अन्त को वह न समझसका,—उर्वशी ने उसकी बुद्धि को हर लियाथा ॥६॥ फिर पुरूरवा ने उर्वशी के लोक को पाकर अन्त में कहाथा कि अहो ! मेरे काम विमूढ चित्तमें कैसा मोह का विस्तार हुआ ! उर्वशी ने जो मेरे कण्ठ का आलिंगन किया इससे मेरी परमायु

नाहं वेदाभिनिर्मुक्तः सूर्यो वाऽभ्युदितोऽमुया । मुषितो वर्षपूगानां बताहानि गता
न्युत ॥ ८ ॥ अहो मे आत्मसंमोहो येनात्मा योषितां कृतः । क्रीडामृगश्चक्रवर्ती नर
देवशिखामणिः ॥ ९ ॥ सपरिच्छदमात्मानं हित्वा तृणमिवेश्वरम् । यान्तीं स्त्रियं चा
न्वगमं नग्न उन्मत्तवद्रुदन् ॥ १० ॥ कुतस्तस्यानुभावः स्यात्तेज ईशत्वमेव वा । यो
ऽन्वगच्छं स्त्रियं यान्तीं खरवत्पादताडितः ॥ ११ ॥ किं विद्यया किं तपसा किं त्यागे
न श्रुतेन वा । किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥ १२ ॥ स्वार्थस्याकोविदं
धिङ्मां मूर्खं पण्डितमानिनम् । योऽहमीश्वरतां प्राप्य स्त्रीभिर्गोखरवज्जितः ॥ १३ ॥
सेवतो वर्षपूगान्मे उर्वश्या अधरासवम् । न तृप्यत्यात्मभूः कामो वह्निराहुतिभिर्य
था ॥ १४ ॥ पुंश्चल्याऽपहृतं चित्तं को न्वन्यो मोचितुं प्रभुः । आत्मारामेश्वरमृते भग
वन्तमधोक्षजम् ॥ १५ ॥ बोधितस्यापि देव्या मे सूक्तवाक्येन दुर्मतेः । मनोगतो म
हामोहो नापयात्यजितात्मनः ॥ १६ ॥ किमेतया नोऽपकृतं रज्ज्वा वा सर्पचेतसः ।
रज्जुस्वरूपाविदुषो योऽहं यदजितेन्द्रियः ॥ १७ ॥ क्वायं मलीमसः कायो दौर्ग
न्ध्याद्यात्मकोऽशुचिः । क्व गुणाः सौमनस्याद्या ह्यध्यासोऽविद्यया कृतः ॥ १८ ॥
पित्रोः किं स्वं नु भार्यायाः स्वामिनोऽग्नेः श्वगृध्रयोः । किमात्मनः किं सुहृदामिति
यो नावसीयते ॥ १९ ॥ तस्मिन्कलेवरेऽमेध्ये तुच्छनिष्ठे विषज्जते । अहो सुभद्रं सु

का जितना समय बीतगया उसका मैंने स्मरण भी न किया ॥ ७ ॥ कैसा दुःख का विषय है ! मैं इसकेद्वारा ठगाजाकर—सूर्य के उदय अस्त को भी न जानसका, बीतेहुए वर्षों के दिनों का भी अनुभव न करसका ॥ ८ ॥ अहो मुझे कैसा आत्म भ्रम हुआ ! मैंने राजशिरोमणि-चक्रवर्ती राजा होकरभी अपने को स्त्रियों का क्रीडामृग किया ॥ ९ ॥ राज्यादि सामग्रियों समेत अपने चक्रवर्तित्व को तृणकी समान छोड़कर नग्नहो उन्मत्त की समान रोते २ स्त्री का पीछा किया ॥ १० ॥ जो मनुष्य गधे की समान मुँह पर लातेंखाता, छोडकर जातीहुई स्त्री के पीछेगया, उसके प्रभाव, बल और सामर्थ्य कहां से रहे ! ॥ ११ ॥ स्त्रियों ने जिसके मनका हरणकरलिया है, उसकी विद्या, तपस्या, सन्यास, शास्त्रज्ञान एकांत सेवा वाक्य संयम सबही वृथा हैं ॥ १२ ॥ मैं कि जो चक्रवर्ती राज्य को पाय बैल और गधे की समान स्त्रियों द्वारा पराजित हुआहूं उस अपने स्वार्थ को न जाननेवाले, अज्ञान, मूर्ख, पण्डिताभिमानी मुझको धिक्कार है ॥ १३ ॥ अनेकों वर्ष तक उर्वशी के अधरामृत का पान करके भी मुझे तृप्ति न हुई । परन्तु इसके विपरीत आहुति समूहद्वारा अग्नि की समान मनमें बारम्बार तृष्णा की वृद्धिही होती रही ॥ १४ ॥ आत्मा राम, अधोक्षज, भगवान ईश्वर के अतिरिक्त कुलटा स्त्रियोंसे हरण कियेहुए चित्तवाले मनुष्य को और कोई नहीं छुड़ासकता मैंनेतो कर्मों से देवताओं का आराधन करके दुःखही पाया इस कारण अबमैं परमेश्वरकीही आराधना करूंगा बिना भगवत् कृपाके दूसरोंकी शिक्षासे मोह नहीं दूर होसकता ॥ १५ ॥ क्यों कि मुझ कुमति और अजितेन्द्रियको उर्वशी ने यथार्थ वचनों से उप देशभी दिया तौभी मेरे मनमें रहाहुआ मोह किसी प्रकार से निवृत्त नहुआ ॥ १६ ॥ उर्वशी ने मेरा क्या अपराध किया है मुझको ही रस्सी से सर्प का भ्रमहुआ कि देखपड़ने वाले के स्वरूप को न समझ सका मैं अजितेन्द्रिय हूं ॥ १७ ॥ यह मलीन दुर्गंधित, अपवित्र देह कहां और फूल की स मान सुगंधित गुण कहां ! इस बीभत्सशरीरमें जो सुंदरता का प्रकाश है वह केवल अज्ञान क- ल्पित है ॥ १८ ॥ यह निश्चय नहीं होसकता कि देह माता, पिता, स्त्री, स्वामी, अग्नि, कुत्ता, गीध, स्वयं अपना व बांधवोंमें से किसका है ॥ १९ ॥ वह अहो स्त्री का मुख कैसा सुंदरहै उसकी नासिका कैसी भली है उसका हास्य कैसा मनोहर है ऐसा विचारकर नाशवान् तुच्छ पदार्थ अप

नसं सुस्मितंचमुखं स्त्रियः ॥ २० ॥ त्वङ्मांसरुधिरस्नायु मेदोमज्जास्थिसंहतौ ।
विण्मूत्रपूयेरमतांकृमीणां कियदन्तरम् ॥ २१ ॥ अथापिनोपसज्जेत स्त्रीषुस्त्रैणेषु
चार्थवित् । विषयेन्द्रियसंयोगात् मनःक्षुभ्यतिनान्यथा ॥ २२ ॥ अदृष्टादश्रु
ताद्भावान्न भावउपजायते । असंप्रयुञ्जतःप्राणाञ्शाम्यतिस्तिमितंमनः ॥ २३ ॥
तस्मात्सङ्गोनकर्त्तव्यः स्त्रीषुस्त्रैणेषुचेन्द्रियैः । विदुषांचाप्यविस्रब्धः षड्वर्गःकिमु
मादृशाम् ॥ २४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवंप्रगायन्नृपदेवदेवः सउर्वशीलोकमथो
विहाय । आत्मानमात्मन्यवगम्यमांवै उपारमज्ज्ञानविधूतमोहः ॥ २५ ॥ ततोदुःसं
गमुत्सृज्य सत्सुसज्जेतबुद्धिमान् । सन्तएवास्यछिन्दन्ति मनोव्यासंगमुक्तिभिः २६
सन्तोऽनपेक्षामच्चित्ताः प्रशान्ताःसमदर्शिनः । निर्ममानिरहंकारा निर्द्वन्द्वानिष्प
रिग्रहाः ॥ २७ ॥ तेषुनित्यंमहाभाग महाभागेषुमत्कथाः । संभवन्तिहितानृणांजु
षतांप्रपुनन्त्यघम् ॥ २८ ॥ तायेशृण्वन्तिगायन्ति ह्यनुमोदन्तिचादृताः । मत्पराः
श्रद्दधानाश्च भक्तिंविन्दन्तितेमयि ॥ २९ ॥ भक्तिंलब्धवतःसाधोः किमन्यदवशि
ष्यते । मय्यनन्तगुणेब्रह्मण्यानन्दानुभवात्मनि ॥ ३० ॥ यथोपश्रयमाणस्य भगव
न्तंविभावसुम् । शीतंभयंतमोऽप्येति साधून्संसेवतस्तथा ॥ ३१ ॥ निमज्ज्योन्म
ज्जतांघोरे भवाब्धौपरमायनम् । सन्तोब्रह्मविदःशान्ता नौर्दृढेवाप्सुमज्जताम् ३२
अन्नंहिप्राणिनांप्राण आर्तानांशरणंत्वहम् । धर्मोवित्तंनृणांप्रेत्य सन्तोऽर्वाग्बिभ्य

चित्र देह में भली प्रकार से आसक्त होजाता है ॥ २० ॥ यथार्थ में विचाराजाय तो त्वचा, मांस रक्त, नसें, मेद, मज्जा और अस्थिके समूह रूप देह में विलास करनेवाले और विष्ठा मूत्र व पूय में विहार करनेवाले कीड़ों में अंतर ही क्या है ॥ २१ ॥ विवेकी पुरुष यह विचार कर स्त्री और स्त्री संगियों में आसक्त नहींहोते । विषय और इन्द्रियों के साथ संयोग के कारणही मन क्षुभित होता है दूसरे कारण से नहीं होता ॥ २२ ॥ दर्शन और श्रवण के अतिरिक्त कभी भी मनमें क्षोभ नहीं उत्पन्न होता अतएव जो इन्द्रियों का संयम करते हैं उनका मन स्थिर होकर शांत हो जाता है ॥ २३ ॥ इसही कारण इन्द्रियों द्वारा स्त्रियों और स्त्री संगियोंका संसर्ग न करना चाहिये छःहों इन्द्रियों का पण्डित जनभी तो विश्वास नहीं करते अतएव मेरे समान मनुष्योंकी तो बातही क्या है ॥ २४ ॥ श्रीभगवानने कहा कि नरदेव शिरोमणि पुरूरवाने इसप्रकार कहकर उर्वशी लोक को स्वयंही त्यागदिया और उसने आत्मरूप से मुझको पहिचाना तथा ज्ञान द्वारा मोह का नाश कर उपरति को प्राप्त किया ॥ २५ ॥ इसही कारण बुद्धिमान मनुष्य को उचित है कि दुष्ट संगको छोड़ साधु संग करे साधु जन उत्तम २ उपदेशोंद्वारा उसके मनकी आशक्ति को नाशकर देते हैं । ॥ २६ ॥ जो अपेक्षा रहित मेरेमें चित्त रखने वाले, प्रशान्त, समदर्शी, ममता रहित, अहंकार वर्जित, द्वन्द्व रहित और परिग्रह शून्य हैं वही साधु हैं ॥ २७ ॥ हे महाभाग ! वह सर्वदाही अपने हितकारी मेरी कथाकी आलोचना किया करते हैं वे सब कथाएं सुनने वालोंका पाप नाश करती हैं । ॥ २८ ॥ जो आदर पूर्वक इन सब कथाओं को सुनते कहते वा अनुमोदन करते हैं वह मेरे भक्त और मुझमें श्रद्धावान् हो मेरी भक्तिको प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥ जो साधु कि अनंत गुण, आनंदानुभवात्मक मेरी भक्ति युक्त हैं उनको और क्या शेष रहा ॥ ३० ॥ जैसे भगवान् अग्निका आश्रय करनेपर मनुष्यों को शीत, भय और अन्धकार नहीं रहता उसही प्रकार साधुओंकी सेवा करनेपर समस्त पाप नष्ट होजाते हैं ॥ ३१ ॥ जैसे जो जलमें डूबजाता हो उसका नावही परम आश्रय है वैसेही घोर भवसागर में डूबते हुए पारजाने की इच्छा रखने वाले को ब्रह्मज्ञ साधुही परम अवलंबन हैं ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार अन्न प्राणियों का प्राण है जैसे मैं कातर जनों के लिये शरण

तोऽरणम् ॥ ३३ ॥ सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः । देवता बान्धवाः स
न्तः सन्त आत्माऽहमेव च ॥ वैतसेनस्ततोऽप्येवं मुर्वश्या लोकनिस्पृहः । मुक्तसं
गो महीमेतामात्मारामश्चचार ह ॥ ३५ ॥

इतिश्री भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

उद्धव उवाच॥क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो । यस्मात्त्वां ये यथार्चन्ति
सात्वताः सात्वतर्षभ॥१॥एतद्वदन्ति मुनयो मुहुर्निःश्रेयसं नृणाम् । नारदो भगवान्व्या
स आचार्योऽङ्गिरसः सुतः ॥ २ ॥ निःसृतं ते मुखाम्भोजाद्यदाह भगवानजः । पुत्रे-
भ्यो भृगुमुख्येभ्यो देव्यै च भगवान्भवः ॥ ३ ॥ एतद्वै सर्ववर्णानामाश्रमाणां च संमत-
म् । श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणां च मानद ॥ ४ ॥ एतत्कमलपत्राक्ष कर्मबन्धवि-
मोचनम् । भक्ताय चानुरक्ताय ब्रूहि विश्वेश्वरेश्वर ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नह्य
न्तोऽनन्तपारस्य कर्मकाण्डस्य चोद्धव । संक्षिप्तं वर्णयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥
६ ॥ वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः । त्रयाणामीप्सितेनैव विधिना मां
समर्चयेत् ॥ ७ ॥ यदा स्वनिगमेनोक्तं द्विजत्वं प्राप्य पूरुषः । यथा यजेत मां भक्त्या
श्रद्धया तन्निबोध मे ॥ ८ ॥ अर्चायां स्थण्डिलेऽग्नौ वा सूर्ये वाऽप्सु हृदि द्विजः । द्रव्येण
भक्तियुक्तोऽर्चेत्स्वगुरुं माममायया ॥ ९ ॥ पूर्वं स्नानं प्रकुर्वीत धौतदन्तोऽङ्गशुद्धये ।
उभयैरपि च स्नानं मन्त्रैर्मृद्ग्रहणादिना ॥ १० ॥ संध्योपास्त्यादिकर्माणि वेदेना

हू जैसे धर्म सबही मनुष्योंका धर्म है वैसेही साधु जन संसार में गिरने से भयभीत मनुष्यों को तार
ने वाले हैं ॥ ३३ ॥ साधु अनेक चक्षुओं को देते हैं और सूर्य तो भली प्रकार से उदय होनेपर
बाहिरी एक चक्षु इन्द्रिय कोही देता है साधुगणही देवता बांधव और साधुगणही आत्मा तथा
मद्रूप हैं ॥ ३४ ॥ हे उद्धव ! तदनंतर पुरूरवा इस प्रकार से उर्वशी के लोक को छोड निःसंगहुआ
और आत्मा राम हो इस पृथ्वीपर भ्रमण करने लगा ॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद सरला भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

उद्धवजी ने कहा कि—हे यादवोत्तम ! हे प्रभु ! जो भक्त आपकी आराधना करते हैं आप
उनकी आराधना रूप क्रिया योग का मुझसे उपदेश करियेगा ॥ १ ॥ नारदजी, भगवान व्यास-
जी और अंगिरा के पुत्र, आचार्य बृहस्पतिजी आदि मुनिगण इसको मनुष्य की मुक्तिका साधन
कहगये हैं ॥ २ आपके मुख कमल से निकलेहुए वचनों को भगवान ब्रह्माजीने भृगु आदि अपने
पुत्रों से और भगवान महादेवजी ने पार्वतीजी से कहाथा वह प्रकार मैं सुनना चाहताहूं ॥ ३ ॥
हेमानद ! यहसब वर्णों और आश्रमों को तथा स्त्रियों और शूद्रों को भी परम कल्याणकारक है।
यह मैं मानताहूं ॥ ४ ॥ इसकारण हेकमलदललोचन ! हे विश्वेश्वरों के ईश्वर ! मैं भक्त और अ-
नुरागी हूं। मुझसे कर्म बन्धनके छुटकारे का साधनकहो ॥ ५ ॥ श्रीभगवान ने कहा कि—हे
उद्धव ! असीम, अपार कर्म काण्ड का अन्त नहीं है अतएव अनुक्रम के अनुसार यथावत्संक्षेप
से वर्णन करूंगा ॥ ६ ॥ वैदिक, तान्त्रिक और मिश्रित ऐसे तीन प्रकार की मेरी पूजा होती है
तीनोंमेंसे जिसकी जो इच्छाहो उसके द्वारा वह मेरी पूजा करे ॥ ७ ॥ जिसका अपने वेद की
शाखा में कही हुई रीति से उपनयनसंस्कारहुआहोवे उसको श्रद्धा पूर्वक भक्तिसे जिसप्रकारपूजा
करनी चाहिये उसको मैं कहताहूं सो सुनो ॥ ८ ॥ द्विज निष्कपट भावसे प्रतिमा में बालुकामयी
वेदी में, अग्नि में अथवा सूर्य में, जल में और हृदय में गुरुस्वरूप मेरा द्रव्यद्वारा आराधन करे ॥
९ ॥ दातून करके शुद्धता के निमित्त पहिले स्नान करे, यह स्नान वैदिक और तान्त्रिक मंत्रों से
मिट्टी को ग्रहणकर उसके द्वारा स्नान करना चाहिये ॥ १० ॥ जिसका ईश्वर मेंही संकल्प है वह

ऽऽचोदितामिमे । पूजांतैःकल्पयेत् सम्यक्संकल्पःकर्मपावनीम् ॥११॥ शैलीदारु-
मयीलौही लेप्यालेख्याचसैकती । मनोमयीमणिमयीप्रतिमाऽष्टविधास्मृता ॥१२॥
चलाचलेतिद्विविधा प्रतिष्ठाजीवमन्दिरम्।उद्वासावाहनेनस्तः स्थिरायामुद्धवार्चने
॥१३॥अस्थिरायांविकल्पःस्यात् स्थण्डिलेतुभवेद्द्वयम्। स्नपनंत्वविलेप्यायामन्य
त्रपरिमार्जनम् ॥ १४ ॥ द्रव्यैःप्रसिद्धैर्मद्यागः प्रतिमादिष्वमायिनः। भक्तस्यचयथा
लब्धैर्हृदिभावेनचैवहि ॥ १५ ॥ स्नानालंकरणंप्रेष्ठमर्चायामेवतूद्धव । स्थण्डिलेत-
त्त्वविन्यासोवह्नावाज्यप्लुतंहविः ॥१६॥ सूर्येचाभ्यर्हणंप्रेष्ठं सलिलेसलिलादिभिः ।
श्रद्धयोपाहृतंप्रेष्ठंभक्तेनममवार्यपि॥१७॥भूर्यप्यभक्तोपहृतं नमेतोषायकल्पते। गन्धो
धूपःसुमनसोदीपोऽन्नाद्यंचकिंपुनः॥१८॥शुचिःसंभृतसंभारःप्राग्दर्भैःकल्पितासनः
आसीनःप्रागुदग्वार्चेदर्चायामथसंमुखः॥१९॥कृतन्यासःकृतन्यासां मदर्चांपाणि
नामृजेत् । कलशंप्रोक्षणीयंच यथावदुपसाधयेत् ॥२०॥ तदद्भिर्देवयजनं द्रव्या
ण्यात्मानमेवच । प्रोक्ष्यपात्राणित्रीण्यद्भिस्तैस्तैर्द्रव्यैश्चसाधयेत् ॥ २१ ॥ पाद्यार्घ्या
चमनीयार्थं त्रीणिपात्राणिदैशिकः । हृदाशीर्ष्णाऽथशिखया गायत्र्याचाभिम-
न्त्रयेत् ॥ २२ ॥ पिण्डेवाय्वग्निसंशुद्धे हृत्पद्मस्थांपरांमम । अण्वींजीवकलां ध्या-
येन्नादान्तेसिद्धभाविताम् ॥ २३ ॥ तयात्मभूतयापिण्डे व्याप्तेसंपूज्यतन्मयः ।

वेद विहित सन्ध्योपासनादि कर्मों सहित कर्म पावनी मेरी पूजाकरे ॥ ११ ॥ पत्थर, लकड़ी, लोह मिट्टी व चन्दन आदिकी, चित्रमयी, बालुकामयी, मनोमयी और मणिमयी यह मेरी आठप्रकारकी प्रतिमा हैं ॥ १२ ॥ वह औरभी दो प्रकारकी चला और अचला हैं । हेउद्धव ! जो अचला प्रतिमा की पूजा कीजाय तो उसका आवाहन विसर्जन नहीं कियाजाता ॥ १३ ॥ चला में होभी सकता है और नहीं भी होसकता.। बालुकामयी में दोनों होसकते हैं मृण्मयी और लेख्यमयी के अतिरिक्त और सब प्रतिमाओं को स्नान कराना चाहिये ॥ १४ ॥ निष्काम भक्तों को प्रतिमा में उत्तम पदार्थोंद्वारा मन २ में ध्यान करतेहुए मेरी पूजा करनी चाहिये ॥ १५॥ हे उद्धव! प्रतिमा में स्नान और प्यारे अलंकार का उपयोग करना चाहिये और बालुका की वेदी में विशेष २ मंत्रों द्वारा अंग के देवता और प्रधान २ देवताओं का स्थापन,—अग्नि में घीसे भीगेहुए होमीयपदार्थ सूर्य में नमस्कार और अर्घ्यादि द्वारा अर्चन और जल में जलादिद्वारा पूजनकरना मुझकोअत्यंत ही प्रिय है ॥ १६—१७ ॥ भक्तिद्वारा श्रद्धापूर्वक दियाहुआ जलभी मुझे प्यारा है; अश्रद्धाद्वारा दियेहुए बहुत से पदार्थों से भी मैं संतुष्ट नहीं होता; फिर गन्ध, धूप, पुष्प, दीप और अन्नादि की तो बातही क्या है ॥ १८ ॥ प्रथम पवित्रहो पूजायोग्य पदार्थों और कुशद्वारा आसन बनाय उस पर बैठ पूर्व या उत्तर की ओर मुखकर पूजाकरनी चाहिए ; जो प्रतिमा अचला है उस के सन्मुख बैठकर आराधना करनी चाहिये ॥ १९ ॥ फिर उपदेशानुसार सब न्यासों का सम्पादन कर अपने शरीर आदि को शुद्ध करे तदनन्तर मूल मंत्र के न्यास सहित मेरी पूजाकरे और जल से भरेहुए पूर्ण कुंभका व प्रोक्षण करनेके जलके पात्रका यथा रीति से संस्कार करे ॥ २० ॥ उसही जल द्वारा देव पूजाका स्थान सब पदार्थ,और अपने को प्रोक्षणकर जल और समस्त पदार्थों द्वारा दो पात्रोंका संस्कार करे पूजा के पाद्य अर्घ और आचमन के लिये तीन पात्रोंको हृदमंत्र, शिरो मंत्र, शिखा मंत्र और गायत्रीमंत्र द्वारा अभिमन्त्रित करे ॥ २१ ॥ २२ ॥ सिद्ध गण ओंकारके उपरांत जिसका ध्यान करते हैं;वायु और अग्नि द्वारा शोधित देह में हृत कमलमें अवस्थित उसही श्रेष्ठा सूक्ष्मा, नारायण की मूर्ति के ध्यान में प्रवृत्त होवे ॥ २३ ॥ अपने साथ एक

आवाह्यार्चादिषु स्थाप्य न्यस्ताङ्गं मां प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥ पाद्योपस्पर्शार्हणादीनुपचा-
रान्प्रकल्पयेत् । धर्मादिभिश्च नवभिः कल्पयित्वाऽऽसनं मम ॥२५॥ पद्ममष्टदलं तत्र
कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् । उभाभ्यां वेदतन्त्राभ्यां मह्यं तूभयसिद्धये ॥ २६ ॥ सुद-
र्शनं पाञ्चजन्यं गदासीषुधनुर्हलान् । मुसलं कौस्तुभं मालां श्रीवत्सं चानुपूजयेत् ॥
२७ ॥ नन्दं सुनन्दं गरुडं प्रचण्डं चण्डमेव च । महाबलं बलं चैव कुमुदं कुमुदेक्षणम् ॥
२८ ॥ दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून्सुरान् । स्वे स्वे स्थाने त्वभिमुखान्पूज-
येत्प्रोक्षणादिभिः ॥ २९ ॥ चन्दनोशीरकर्पूरकुङ्कुमागुरुवासितैः । सलिलैः स्नापये-
न्मन्त्रैर्नित्यदा विभवे सति ॥ ३० ॥ स्वर्णघर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया । पौरुषे-
णापि सूक्तेन सामभी राजनादिभिः ॥ ३१ ॥ वस्त्रोपवीताभरणपत्रस्रग्गन्धलेपनैः
अलङ्कुर्वीत सप्रेम मद्भक्तो मां यथोचितम् ॥ ३२ ॥ पाद्यमाचमनीयं च गन्धं सुमनसो-
ऽक्षतान् । धूपदीपोपहार्याणि दद्यान्मे श्रद्धयार्चकः ॥ ३३ ॥ गुडपायससर्पींषि श-
ष्कुल्यापूपमोदकान् । संयावदधिसूपांश्च नैवेद्यं सति कल्पयेत् ॥ ३४ ॥ अभ्यङ्गो-
न्मर्दनादर्शदन्तधावाभिषेचनम् । अन्नाद्यगीतनृत्यादि पर्वणि स्युरुतान्वहम् ॥ ३५ ॥
विधिना विहिते कुण्डे मेखलागर्तवेदिभिः । अग्निमाधाय परितः समूहेत्पाणिनोदि-
तम् ॥ ३६ ॥ परिस्तीर्याथ पर्युक्षेदन्वाधाय यथाविधि । प्रोक्षण्याऽऽसाद्य द्रव्याणि
प्रोक्ष्याग्नौ भावयेत माम् ॥ ३७ ॥ तप्तजाम्बूनदप्रख्यं शङ्खचक्रगदाम्बुजैः । लसच्चतु-

में मिलाय ध्यान की हुई उस मूर्ति शरीर में व्याप्त होनेपर पहिले उसमें ही मानसोपचार द्वारा पूजाकर तन्मय हो उसे प्रतिमादि में आवाहन और स्थापन मुद्रा द्वारा स्थापनकर अंगन्यास पूर्वक मेरी पूजाकरे ॥ २४ ॥ धर्मादि और नवशक्तियों द्वारा मेरा आसन और उसके बीचमें कर्णिका और केशर आदि द्वारा उज्ज्वल अष्टदलकमलकी कल्पना कर वेद और तंत्रो द्वारा भोग तथा मुक्तिकी सिद्धिके निमित्त मेरा पाद्य, आचमनीय और अर्घ्यादि उपचारों से पूजन करे ॥ २५ । २६ ॥ तदनतर सुदर्शन, पांचजन्यशंख, गदा, खड्ग, बाण, धनुष, हल, मूसल, कौस्तुभ, माला और श्रीवत्सकी अर्चना करे ॥ २७ ॥ सुनंद, नंद, प्रचण्ड, चण्ड, महाबल, बल, कुमुद, कुमुदेक्षण, गरुड, दुर्गा, विनायक, व्यास, विश्वक्सेन, गुरुगण और देवगण इन समस्त सहचारों की यथास्थान में प्रोक्षणादि पूर्वक पूजाकरे ॥ २८ । २९ ॥ यदि शक्ति होवे तो मन्त्रोच्चार पूर्वक सर्वदा खस, कपूर कुंकुम और अगुरुवासित जल द्वारा स्नान करावे ॥ ३० ॥ सुवर्ण, अर्घ्य, मन्त्र, महापुरुषविद्या, पुरुषसूक्त, नाम और नीराजन आदि द्वारा पूजनकरे ॥ ३१ ॥ वस्त्र, जनेऊ, अलंकार पत्रावली माल्य, चन्दन और लेपन द्वारा अलंकृत करे ॥ ३२ ॥ पूजक मुझको पाद्य, आचमनीय, चन्दन, फूल धूप, दीप इत्यादि श्रेष्ठ उपहारों को श्रद्धा समेत अर्पण करे ॥ ३३ ॥ यदि होसके तो गुड़, पूए, लपसी, हलवा, पूरी, लड्डू, दधि और पकवान आदिकी नैवेद्यका भोग लगावे॥ ३४ ॥एकादशी के दिन तलकगाना, उबटनमलना, दर्पण, दतून, पञ्चामृत आदि से स्नान, भक्ष्य, भोज्य, नाचना, गाना आदि भगवत् सेवा के सब साधन करे यदि होसके तो नित्यकरे नहीं तो उत्सव के दिन अवश्यही करे ॥ ३५ ॥ अपने २ अधिकारानुसार गृह्य सूत्र के अनुसार मेखला, कुश और वेदीद्वारा कुण्ड बनाव फिर उसके चारों ओर अग्नि स्थापन कर अपने हाथों से जलाय उसको चारों ओर से इकट्ठा करे ॥ ३६ ॥ तदनन्तर चारों ओर कुशों को फैलाय अथवा तिद्वारा यथाविधि से समिध के होमने आदि का अन्वाधान नामक कर्म कर; फिर अग्नि के उत्तर ओर होमोपयोगी पदार्थ रख, प्रोक्षणपात्र में रक्खेहुए जल से प्रोक्षणकर अग्नि में मुझको इसप्रकार से विचारे कि—॥ ३७ ॥ मेरा वर्ण तपेहुए सुवर्ण की कांति के समान है; चारो हाथों में शंख, चक्र, गदा

र्भुजं शान्तं पद्मकिञ्जल्कवाससम् ॥ ३८ ॥ स्फुरत्किरीटकटककटिसूत्रवराङ्गदम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ३९ ॥ ध्यायन्नभ्यर्च्य दारूणि हविषा
ऽभिघृतानि च । प्रास्याऽऽज्यभागावाघारौ दत्त्वा चाज्यप्लुतं हविः ॥ ४० ॥
जुहुयान्मूलमन्त्रेण षोडशर्चावदानतः । धर्मादिभ्यो यथान्यायं मन्त्रैः स्विष्टकृतं बुधः ॥
४१ ॥ अभ्यर्च्याथ नमस्कृत्य पार्षदेभ्यो बलिं हरेत् । मूलमन्त्रं जपेद्ब्रह्म स्मरन्नारायणा
त्मकम् ॥ ४२ ॥ दत्त्वाऽऽचमनमुच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत् । मुखवासं सुरभिमत्ताम्बूला
द्यमथार्हयेत् ॥ ४३ ॥ उपगायन्गृणन्नृत्यन्कर्माण्यभिनयन्मम । मत्कथाः श्रावयञ्छृ-
ण्वन्मुहूर्तं क्षणिको भवेत् ॥ ४४ ॥ स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैरपि । स्तु
त्वा प्रसीद भगवन्निति वन्देत दण्डवत् ॥ ४५ ॥ शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च
परस्परम् ॥ प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ॥ ४६ ॥ इति शेषां मया दत्तां
शिरस्याधाय सादरम् । उद्वासयेच्चेदुद्वास्यं ज्योतिर्ज्योतिषि तत्पुनः ॥ ४७ ॥ अ-
र्चादिषु यदा यत्र श्रद्धा मां तत्र चार्चयेत् । सर्वभूतेष्वात्मनि च सर्वात्माहमवस्थितः ।
॥ ४८ ॥ एवं क्रियायोगपथैः पुमान्वैदिकतान्त्रिकैः । अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो वि
न्दत्यभीप्सिताम् ॥ ४९ ॥ मदर्चां संप्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद्दृढम् । पुष्पोद्याना-
नि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाऽऽश्रितान् ॥ ५० ॥ पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्वस्वथा
न्वहम् । क्षेत्रापणपुरग्रामान् दत्त्वा मत्सार्ष्टितामियात् ॥ ५१ ॥ प्रतिष्ठया सार्वभौमं

और पद्म शोभायमान हैं; अर्थात, कमल केसर की समान पीतवस्त्र पहिनेहुए ॥ ३८ ॥ प्रकाशित
किरीट, बाजूबन्द, कटि मेखला और श्रेष्ठ कटक से देह अलंकृत; वक्षःस्थल में श्रीवत्स; सुन्दर
कौस्तुभमणि लसाये और वनमाला धारण कियेहुए ॥ ३९ ॥ ऐसे मेरे स्वरूप का ध्यान कर
पूजाकरे और घृतद्वारा भीगीहुई सूखी समिधा अग्नि में डालकर चारों ओर घृतडालने रूप दो
आघार और आज्यभाग देकर ॥ ४० ॥ मूलमन्त्र से वा पुरुष सूक्त से प्रति ऋचा एक एक
आहुति लेकर पूजाके क्रम से धर्मादिक के निमित्त घी में भीगीहुई हवि से नारायणात्मक होमकरे
फिर स्विष्टकृत नामक होम करके अग्नि के भीतर स्थित अन्तर्यामी की पूजा और नमस्कारकर
पार्षदों को बलिदान देवे । फिर पूजाके स्थान में भगवान के निकट बैठकर नारायणरूप परब्रह्म
का स्मरण करतेहुए यथाशक्ति मूलमंत्र का जप करे ॥ ४१—४२ ॥ फिर आचमनकराय बचा-
हुआ भोग पार्षदों को देवे; फिर स्वयं भोजन करे । फिर सुगन्ध युक्त ताम्बूलादि दे पुष्पांजलि
अर्पण करे ॥ ४३ ॥ मेरे विषय का गान, मेरे नाम कर्मादि का कथन, नृत्य, मेरे समस्त कर्मों
की लीलाकरना, मेरी कथा को सुनना सुनाना आदि कर्म व्यग्रता छोड़कर करे ॥ ४४ ॥ पुराण
के छोटे बड़े स्तोत्रों और प्राकृत भाषाकी छोटी बड़ी स्तुतियों से स्तुति करे तदनन्तर हेभगवन्!
प्रसन्नहो यह कहकर दण्डवत् प्रणामकर ॥ ४५ ॥ दाहिन और बाए हाथद्वारा मेरे दाहिने और
बाएं पैर को मस्तक में लगाय " हे ईश्वर ! मैं शरणागतहूं, मृत्यु और भवसागर से भयभीतहूं
मेरी रक्षाकरो " यह कहकर नमस्कार करे ॥ ४६ ॥ इसप्रकार प्रार्थनाकर मेरे दियेहुए निर्माल्य
को आदरपूर्वक मस्तक में धारण करे, मेरा विसर्जन करनाहो तो प्रतिमा में जिस ज्योति का आ-
वाहन कियाहो उस ज्योति का फिर हृदय कमलगत ज्योतिमेंही विसर्जन करना ॥ ४७ ॥ मूर्ति
आदि में जब जिसमें श्रद्धा होवे तब उसमें मेरी पूजाकरनी । मैं सबका आत्मा; सब प्राणियों
और आत्मा में स्थितहूं ॥ ४८ ॥ पुरुष इसप्रकार वैदिक और तांत्रिक क्रियाओंद्वारा पूजाकर मेरे
निकट से इच्छितवर को प्राप्त करता है ॥ ४९ ॥ मेरी प्रतिमा के स्थापित कराने को दृढ़मंदिर
बनवावे । मेले और पूजादि के निमित्त खेत, दुकानें, गांव, नगर आदि भगवान् के भेंट करे,
क्योंकि ऐसा करने से मनुष्य को मेरी समान ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ ५०—५१ ॥ प्रतिष्ठा से

दानेनभुवनत्रयम् । पूजादिनाब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात् ॥ ५२ ॥ मामेवनै
रपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति । भक्तियोगंसलभते एवंयःपूजयेतमाम् ॥ ५३ ॥ यः
स्वदत्तांपरैर्दत्तां हरेतसुरविप्रयोः । वृत्तिंसजायते विड्भुग्वर्षाणामयुतायुतम् ५४॥
कर्तुश्चसारथेर्हेतोरनुमोदितुरेवच । कर्मणांभागिनःप्रेत्य भूयोभूयसितत्फलम् ५५॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

श्रीभगवानुवाच । परस्वभावकर्माणि नप्रशंसेन्नगर्हयेत् । विश्वमेकात्मकं प-
श्यन्प्रकृत्या पुरुषेणच ॥ १ ॥ परस्वभावकर्माणि यःप्रशंसति निन्दति । सआशुभ्र
श्यते स्वार्थादसत्यभिनिवेशतः ॥ २ ॥ तैजसे निद्रयापन्ने पिण्डस्थो नष्टचेतनः ।
मायांप्राप्नोतिमृत्युंवा तद्वन्नानार्थदृक्पुमान् ॥ ३ ॥ किंभद्रंकिमभद्रंवा द्वैतस्यावस्तु
नःकियत् । वाचोदितंतदनृतं मनसाध्यातमेवच ॥ ४ ॥ छायाप्रत्याह्वयाभासाह्य
सन्तोऽप्यर्थकारिणः । एवंदेहादयोभावा यच्छन्त्यामृत्युतोभयम् ॥ ५ ॥ आत्मैव
तदिदंविश्वं सृज्यतेसृजतिप्रभुः । त्रायतेत्रातिविश्वात्मा ह्रियतेहरतीश्वरः ॥ ६ ॥
तस्मान्नह्यात्मनोऽन्यस्मादन्यो भावो निरूपितः । निरूपितेयंत्रिविधा निर्मूला भा-
तिरात्मनि । इदंगुणमयंविद्धि त्रिविधंमाययाकृतम् ॥ ७ ॥ एतद्विद्वान्मदुदितं ज्ञा-
नविज्ञाननैपुणम् । ननिन्दतिनचस्तौति लोकेचरतिसूर्यवत् ॥ ८ ॥ प्रत्यक्षेणानुमाने

चक्रवर्तीपद; मंदिर बनवाने से त्रिलोक; पूजादि से ब्रह्मलोक और इनतीनों से मेरी समता प्राप्त होती है ॥ ५२ ॥ निष्काम भक्तिद्वारा मैं प्राप्त होताहूं ; जो इसप्रकार पूजा करते हैं उन्हीं को भक्तियोग प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ जो मनुष्य अपनी दीहुई वा दूसरेकीदीहुई देववृत्ति वा ब्राह्मण वृत्ति को छीनता है वह कोटि वर्ष पर्यंत विष्ठाभक्षी कीड़ा होकर समय बिताता है ॥ ५४ ॥ ऐसे ऐसे सत्कर्म करने से जो फल होते हैं वही फल कर्त्ताको सहायता देनेवाले को, प्रेरणा करने वाले को और सम्मति देनेवाले को मिलते हैं; कारण यह है कि येसब कर्म के विभागी हैं । अधिक कर्म करने से फल भी अधिक मिलता है ॥ ५५ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादश०सरलाभाषाटीकायांसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

श्रीभगवान ने कहा कि,—दूसरे मनुष्यों के शांतस्वभाव की अथवा अच्छे कर्मों की प्रशंसा वा निंदा न करे; क्योंकि प्रकृति और पुरुष रूप से सबही जगत् एक रूप है ॥ १ ॥ जो मनुष्य दूसरे के स्वभाव और कर्म की निन्दा व प्रशंसा करता है वह व्यर्थही अभिनिवेशके वशहोशीघ्र ही अपने अभिप्राय से भ्रष्ट होजाता है ॥ २ ॥ राजस अहंकार के कार्य से इन्द्रियें निद्रा के वश से अभिभूत होजाती हैं तब देहस्थजीव स्वप्न रूप माया अथवा चेतना शून्यहो सुषुप्ति रूप से मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ इसही प्रकार द्वैत विषय में अभिनिवेशकारीमनुष्य विक्षेप और लयको प्राप्त होता है द्वैत वस्तु नहीं है इसमें निश्चयही क्या और संदेहही क्या जो वाक्य द्वारा कहाजाता है और मन द्वारा विचाराजाता है वह सब अवस्तु भूत है ॥ ४ ॥ प्रतिबिंब, प्रतिध्वनि, और भ्रम अवस्तु होकरभी वस्तु का ज्ञान कराते हैं इनही प्रकार सब देहादिक पदार्थ भी मरण पर्यंत भय उत्पन्न करते रहते हैं ॥ ५ ॥ यह प्रभु ईश्वर आत्माही विश्वरूपसे उत्पन्न होता और सृष्टि रूप से सबको उत्पन्न करताहै उसका पालन होता और वही पालताहै लय होता औरवही लय करता है ॥ ६ ॥ अतएव आत्मा जो सबसे पृथक् है उससे कोई भी अन्य पदार्थ निरूपित नहीं होता आत्मा सेही यह जो अध्यात्म अधिभूत और अधिदैव रूप जो प्रतीत होता है वहस-बही अमूलक है इन तीन प्रकार के गुण मय को माया कृत जानो ॥ ७ ॥ मेरे कहेहुए ज्ञान विज्ञान और निष्ठाको जो जानते हैं वह कभी किसी की स्तुति व निंदा नहीं करते सूर्य की समान सर्वत्र समभाव से संसार में विचरण करते रहते हैं ॥ ८ ॥ प्रत्यक्ष, अनुमान, निगम और अपने अनु-

न निगमेनात्मसंविदा। आद्यन्तवदसज्ज्ञात्वा निःसंगोविचरेदिह ॥ ९ ॥ उद्धवउ-
वाच । नैवात्मनोनदेहस्य संसृतिर्द्रष्टृदृश्ययोः । अनात्मस्वदृशोरीश कस्यस्यादुप
लभ्यते ॥ १० ॥ आत्माऽव्ययोऽगुणः शुद्धःस्वयंज्योतिरनावृतः । अग्निवद्दारुवद
चिद्देहःकस्येहसंसृतिः ॥ ११॥ श्रीभगवानुवाच । यावद्देहेन्द्रियप्राणैरात्मनःसंनि
कर्षणम् । संसारःफलवांस्तावदपार्थोऽप्यविवेकिनः ॥ १२ ॥ अर्थेह्यविद्यमानेऽपि
संसृतिर्ननिवर्तते । ध्यायतोविषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमोयथा ॥१३॥ यथाह्यप्रतिबु-
द्धस्य प्रस्वापोबह्वनर्थभृत् । सएवप्रतिबुद्धस्य नवैमोहायकल्पते ॥ १४ ॥
शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः।अहंकारस्यदृश्यन्तेजन्ममृत्युश्चनात्मनः १५॥
॥ देहेन्द्रियप्राणमनोभिमानोजीवोन्तरात्मागुणकर्ममूर्तिः । सूत्रंमहानित्युरुधेवगी-
तःसंसारआधावतिकालतन्त्रः ॥१६॥ अमूलमेतद्बहुरूपरूपितं मनोवचःप्राणशरी-
रकर्म । ज्ञानासिनोपासनयाशितेन च्छित्वामुनिर्गांविचरत्यतृष्णः ॥ १७ ॥ ज्ञानंवि-
वेकोनिगमस्तपश्च प्रत्यक्षमैतिह्यमथानुमानम्। आद्यन्तयोरस्ययदेवकेवलंकालश्च
हेतुश्चतदेवमध्ये ॥ १८ ॥ यथाहिरण्यंस्वकृतंपुरस्तात्पश्चाच्चसर्वस्यहिरण्मयस्य ।
तदेवमध्येव्यवहार्यमाणं नानाऽपदेशैरहमस्यतद्वत् ॥ १९ ॥ विज्ञानमेतत्त्रियवस्थ-
मङ्गगुणत्रयंकारणकार्यकर्तृ। समन्वयेनव्यतिरेकतश्च येनैवतुर्येणतदेवसत्यम् २० ॥

मन द्वारा आत्मभिन्न पदार्थ को आद्यन्तशाली और असत् विचार निःसंग होकर इस लोक में भ्रमण करे ॥ ९ ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे ईश्वर ! यह दृश्यमान संसार चेतन द्रष्टास्वरूप आत्माका अथवा अचेतन दृश्यरूप देह का भी नहीं है तो किसका है ॥ १० ॥ आत्मा, अव्यय निर्गुण, शुद्ध, ज्योतिःस्वरूप, आवरण रहित और अग्नि की समान है, तथा देह अचेतन काठ की समान है। तब फिर यह संसार किसका है, यह निश्चयकरके कहो ॥ ११ ॥ श्रीभगवान ने कहा कि—हेउद्धव ! जितने दिन शरीर, इंद्रिय और प्राणों के साथ आत्मा का सम्बन्ध रहता है उतनेही दिन संसार वास्तव में पदार्थ न होकरभी अविचारियों के नेत्रों में पदार्थवत् ज्ञातहोता है ॥ १२ ॥ जैसे स्वप्नावस्था में अनर्थ की प्राप्ति होती है, वैसेही वस्तु के न होनेपरभी विषय परायण पुरुष की संसार से निवृत्ति नहीं होती ॥ १३ ॥ जिसप्रकार स्वप्न सोतेहुएमनुष्य के पक्ष में नानाप्रकार के पदार्थों को उत्पन्नकरता है; और फिर वही स्वप्न जाग्रत मनुष्य को मोह नहीं उत्पन्न करासकता ॥ १४ ॥ शोक, हर्ष, भय, क्रोध लोभ, मोह, स्पृहा, जन्म और मृत्यु आदि सबही अहंकार के दृश्य हैं आत्मा के नहीं ॥ १५ ॥ देह, इन्द्रिय, प्राण और मन से उत्पन्न हुआ अभिमान शाली आत्माही अंतरस्थ जीव है अतएव गुण, कर्म, सूत्र, महत्तत्व और अहंकार शब्दो सेभी आत्मा कहाजाताहै इस कारणही वह 'प्रकृति' 'महान' आदि नाना प्रकारसे कीर्तित हो कालवश से संसार में प्राप्त हो मुक्त होतारहता है ॥ १६ ॥ मुनि को उचित है कि इस अमूलक तथापि बहुत रूप से प्रकाशित इस मन वाक्य प्राण देह और कर्म को गुरुकी उपासना से उत्पन्न हुए तीक्ष्ण ज्ञान खड्ग द्वारा छेदन कर पृथ्वीपर भ्रमण करे ॥ १७ ॥ इस विश्वके आदि में और अंत में जो कारण और प्रकाशक पदार्थ था औरहै मध्य मेंभी केवल वही है वेद स्वधर्म प्रत्यक्ष, उपदेश और तर्क द्वारा जो विवेक उत्पन्न होता है वही ज्ञान है ॥ १८ ॥ जैसे जो सुवर्ण समस्त सुवर्ण निर्मित पदार्थ में पहिलेथा और वही फिरभी रहेगा वही सुंदर रूप से गठित और अनेकों नामोंसे व्यवहृत होकरभी उसके स्वरूप में अवस्थित रहता है उसही प्रकार मैंभी इस विश्व का कारण भूत हूं और पहिले और पीछे समभाव में अवस्थित हू ॥ १९ ॥ अहो ! तीनो अवस्थाओं युक्त मन तीनोगुण और कारण, कार्य और कर्त्ता जो केवल निर्गुण ब्रह्म के साथ अ-

॥ नयत्पुरस्तादुतयन्नपश्चान्मध्येच तन्नव्यपदेशमात्रम् । भूतंप्रसिद्धंचपरेणयद्यत्तदेव तत्स्यादितिमेमनीषा ॥ २१ ॥ अविद्यमानोऽप्यवभासतेयोवैकारिकोराजससर्गएषः । ब्रह्मस्वयंज्योतिरतोविभाति ब्रह्मेन्द्रियार्थात्मविकारचित्रम् ॥ २२ ॥ एवंस्फुटंब्रह्मविवेकहेतुभिः परापवादेनविशारदेन । छित्त्वात्मसंदेहमुपारमेत स्वानन्दतुष्टोऽखिलकामुकेभ्य. ॥ २३॥ नात्मावपुःपार्थिवमिन्द्रियाणि देवाह्यसुर्वायुजलंहुताशः । मनोऽन्नमात्रंधिषणाच सत्वमहंकृतिःखंक्षितिरर्थसाम्यम् ॥ २४ ॥ समाहितैःकःकरणैर्गुणात्मभिर्गुणोभवेन्मत्सुविविक्तधाम्नः विक्षिप्यमाणैरुतकिन्नु दूषणंघनैरुपेतैर्विगतैरवेःकिम् ॥२५॥ यथानभोवाय्वनलाम्बुभूगुणैर्गतागतैर्वर्तुगुणैर्नसज्जते । तथाऽक्षरंसत्त्वरजस्तमोमलैरहंमतेःसंसृतिहेतुभिःपरम् ॥२६॥ तथापिसङ्गःपरिवर्जनीयोगुणेषुमायारचितेषुतावत् । मद्भक्तियोगेनदृढेनयावद्रजोनिरस्येतमनःकषायः ॥ २७ ॥ यथाऽऽमयोऽसाधुचिकित्सितोनृणांपुनःपुनःसंतुदतिप्ररोहन् । एवंमनोऽपक्वकषायकर्मकुयोगिनंविध्यतिसर्वसङ्गम् ॥२८॥ कुयोगिनांयेविहितान्तरायैर्मनुष्यभूतैस्त्रिदशोपसृष्टैः । तेप्राक्तनाभ्यासबलेनभूयोयुंजन्तियोगंनतुकर्मतन्त्रम् ॥ २९ ॥ करोतिकर्मक्रियतेचजन्तुः केनाप्यसौचोदितआनिपातात् ।

न्वय व्यतिरेक द्वारा सिद्ध होवे वही सत्यहै ॥ २० ॥ जो कार्य और प्रकाश्य पहिले न था फिरभी नरहेगा उसका मध्यभी नहीं है वह केवल नाममात्र है क्यों कि जो २ दूसरे के द्वारा उत्पन्न और प्रकाशित है वह वही होगा मेरा यह निश्चय है ॥ २१ ॥ यह जो विकार समूह इसके पहिले नथे ब्रह्म द्वारा रजोगुण से यह उत्पन्न और प्रकाशित हुआहै ब्रह्म स्वयं सिद्ध और प्रकाशक है अतएव ब्रह्मही इन्द्रिय, तन्मात्र, मन और पंचभूत इत्यादि नाना रूप से प्रकाश पातारहता है ॥ २२ ॥ ब्रह्मज्ञानसे उत्पन्नहुए उपायोंद्वारा और गुरुकी सहायता से देहकी आत्म बुद्धिको दूरकरना चाहिये इसप्रकार स्पष्टभाव से आत्म संदेह का नाशकर आत्मानन्द में सन्तुष्टहो कामियों के संग को छोड़ देवे ॥ २३ ॥ देहादिक अनात्म पदार्थों का परित्याग इसप्रकार करना चाहिये कि भौतिक शरीर आत्मा नहीं है; इंद्रिय वर्ग इन्द्रियों के देवता, प्राण, बुद्धि, चित्त, और अहंकार येभीआत्मा नहीं हैं; कारणयह है कि यहसब अन्नके आधार से रहते हैं इसीप्रकार पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, शब्दादि विषय और प्रकृति भी आत्मा नहीं है; क्योंकियह जड़ है ॥ २४ ॥ जिसके पक्ष में मेरा स्वरूप भलीभांति से प्रकाशित होगया है गुणात्मक इन्द्रियों के समाहित होनेसे उस का क्या गुण होता है चंचल होनेसे क्या दोष होता है ?—बादलों के आने जाने से सूर्य का क्या होता है ? ॥ २५ ॥ जैसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के गुणों के साथ अथवा आने जानेवाली ऋतुओं के गुणों के साथ आसक्त नहीं होते । तैसेही अहङ्कारातीत अक्षर आत्मा ससार के कारणभूत सत्व, रज और तमके मलों के साथ नहीं मिलता ॥ २६ ॥ तौभी जबतक मेरी दृढ भक्तियोगद्वारा मनके राग द्वेष न दूरहोवें, तबतक माया रचित गुणों का संग छोड़देना चाहिए ॥ २७ ॥ जैसे मनुष्यों का रोग भली प्रकार से जबतक दूर नहीं होता तबतक वह बार-म्बार उदय हो २ कर विशेष पीड़ा देता है इसही प्रकार जिस मनके रागादि द्वेष और उसके मूलरूप कर्म भस्म न होगयेहों वह मन बारम्बार पुत्रादिक में आसक्त होकर अपक्के ज्ञानीको भ्रष्ट करदेता है ॥ २८ ॥ जो योगी देवताओं की असहमताके कारण उनके और अपने मार्ग से विच्युत होते हैं वह जन्मांतर में अपने पूर्व योगाभ्यास के बलसे योगही को प्राप्त होते हैं,— कर्म विस्तार को नहीं प्राप्त करते ॥ २९ ॥ विद्वान् के अतिरिक्त यहमनुष्य किसी संस्कारद्वारा

नतत्रविद्वान्प्रकृतौस्थितोऽपिनिवृत्ततृष्णःस्वसुखानुभूत्या॥३०॥ तिष्ठन्तमासीनमु-
तव्रजन्तंशयानमुक्षन्तमदन्तमन्नम्। स्वभावमन्यत्किमपीहमानमात्मानमात्मस्थम-
तिर्न वेद ॥ ३१ ॥ यदिस्मपश्यत्यसदिन्द्रियार्थंनानानुमानेन विरुद्धमन्यत्।
नमन्यतेवस्तुतयामनीषी स्वाप्नंयथोत्थायतिरोदधानम् ॥३२॥ पूर्वंगृहीतंगुणकर्म
चित्रमज्ञानमात्मन्यविविक्तमङ्ग । निवर्ततेतत्पुनरीक्षयैव नगृह्यतेनापिविसृज्यआ-
त्मा ॥ ३३ ॥ यथाहिभानोरुदयोनृचक्षुषां तमोनिहन्यान्नतुसद्विधत्ते । एवं समी
क्षानिपुणासतीमे हन्यात्तमिस्रंपुरुषस्यबुद्धेः ॥ ३४ ॥ एषस्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो
महानुभूतिःसकलानुभूतिः । एकोऽद्वितीयोवचसांविरामे येनेषितावागसवश्चर
न्ति॥३५॥ एतावानात्मसंमोहो यद्विकल्पस्तुकेवले । आत्मन्नृतेस्वमात्मानमवल
म्बोनयस्यहि ॥ ३६ ॥ यन्नामाकृतिभिर्ग्राह्यं पञ्चवर्णमबाधितम् । व्यर्थेनाप्यर्थवा
दोऽयं द्वयंपण्डितमानिनाम् ॥ ३७ ॥ योगिनोऽपक्वयोगस्य युञ्जतःकायउत्थि
तैः । उपसर्गैर्विहन्येत तत्रायं विहितोविधिः ॥ ३८ ॥ योगधारणयाकांश्चिदासनै
र्धारणान्वितैः । तपोमन्त्रौषधैः कांश्चिदुपसर्गान्विनिर्दहेत् ॥ ३९ ॥ कांश्चिन्ममा
नुध्यानेन नामसंकीर्तनादिभिः । योगेश्वरानुवृत्त्यावा हन्यादशुभदाञ्छनैः ॥४०॥

प्रेरितहो मृत्यु-पर्यंत कर्मों को करता और विकार को पाता है; किंतु विद्वान् व्यक्ति शरीर में स्थितहोकरभी आत्मानन्द के संभोगद्वारा तृष्णारहितहो उसमें आसक्त नहीं होता ॥३०॥ जिस की बुद्धि आत्मा में स्थित है वहज्ञानी पुरुष बैठे, खड़े, चलते, सोते, पेशाब करते, अन्नखाते वा दूसरी कोई भी क्रियाकरतेहुए अपनी देह को कुछभी नहीं जानता ॥ ३१ ॥ ज्ञानी पुरुष यद्यपि बहिर्मुख इंद्रियों के विषय को देखे तोभी अनुमानद्वारा बाधित होनेसे आत्मा के अतिरिक्त और पदार्थों को वास्तविक नहीं मानता; जैसे निद्रित मनुष्य जागकर स्वप्न में देखेहुए विषयको सत्य नहीं मानता ॥ ३२ ॥ अहो ! वृद्धावस्था में गुणों से और कर्मों से विचित्र अज्ञानके कार्य रूप देहेन्द्रियादिक अध्यास से अपने स्वरूप में अविवेक के कारण मिलेहुए मानलिये गये हैं वेही देहेन्द्रियादिक मुक्तावस्था में ज्ञान से निवृत्त होजाते हैं, आत्मा किसी रूप से नतो ग्रहण किया जाता है न छोड़ा जाता है ॥ ३३ ॥ जैसे सूर्य का उदय मनुष्यों के दर्शनाच्छादक अन्धकारको दूर करता है, किंतु पदार्थ की उत्पत्ति नहीं करता, इसही प्रकार साध्वी, निपुण, आत्मविद्या-मनुष्य की बुद्धि के अन्धकार को नाश करदेती है ॥ ३४ ॥ यही आत्मा ज्योतिःस्वरूप, अज, अप्रमेय, और समस्त अनुभूतियों का स्वरूप है इसही कारण यह महाअनुभूत और एक तथा अद्वितीय वचनागोचरहैं; क्योंकि वाक्य और प्राण इसकेद्वारा परिचालितहोकर कार्यकरतेहैं ३५॥ अभिन्न आत्मा में विकल्पही मनका भ्रम है ; क्योंकि स्वयं आत्माके अतिरिक्त इसका अवलम्बन नहीं है॥३६॥नामरूपद्वारा उपलक्षित, पञ्चभूतात्मक द्वैतका बाधित नहीं है; । इस विषय मे ज्ञानी पण्डितोंका यही निश्चयहै कि द्वैत तो केवल नाममात्रहै,—वेदांत में जो कहाहै वही सत्यअर्थ है । तत्त्व वेत्ताओंको इस प्रकारका निश्चय नहीं होता क्यों कि अर्थ वास्तविक नहीं है ॥३७॥ योगका साधन करते २ जिसका योग न पकाहो, ऐसे योगीका शरीर जो बीचमें उत्पन्न हुए रागादिक विघ्नोंसे पराभव को प्राप्त होजावे तो उसके विषयमें यह उपाय कहता हूं ॥ ३८ ॥ कितने एक विघ्नोंको योगकी धारणा द्वारा, कितने एक को धारणा समेत आसनों द्वारा, और कितने एकको तपस्या, मन्त्र और औषधों द्वारा दूर करे ॥ ३९ ॥ कितनेही अमंगलदायी उपद्रवों को मेरे ध्यान और नाम संकीर्तनादि द्वारा कितनोंहीको योगेश्वरोंकी अनुवृत्तियों द्वारा धीरे२ नाशकरे ॥ ४० ॥

केचिद्देहमिमंधीराः सुकल्पंवयसिस्थिरम् । विधायविविधोपायै रथयुंजन्तिसि
द्धये ॥ ४१ ॥ नहितत्कुशलादृत्यं तदायासोह्यपार्थकः । अन्तवत्त्वाच्छरीरस्य फ
लस्येववनस्पतेः ॥ ४२ ॥ योगं निषेवतोनित्यं कायश्चेत्कल्पतामियात् । तच्छ्रद्द
ध्यान्नमतिमान्योगमुत्सृज्यमत्परः ॥ ४३ ॥ योगचर्यामिमांयोगी विचरन्मदपाश्र
यः । नान्तरायैर्विहन्येत निःस्पृहःस्वसुखानुभूः ॥ ४४ ॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

उद्धवउवाच ॥ सुदुस्तरामिमांमन्ये योगचर्यामनात्मनः । यथाऽञ्जसापुमान्
सिध्येत्तन्मेब्रूह्यञ्जसाऽच्युत ॥ १ ॥ प्रायशःपुण्डरीकाक्ष युञ्जन्तोयोगिनोमनः ।
विषीदन्त्यसमाधानान् मनोनिग्रहकर्शिताः ॥ २ ॥ अथातआनन्ददुघंपदाम्बुजं
हंसाःश्रयेरन्नरविन्दलोचन । सुखंनुविश्वेश्वरयोगकर्मभिस्त्वन्माययाऽमीविहता
नमानिनः ॥ ३ ॥ किंचित्रमच्युततवैतदशेषबन्धो दासेष्वनन्यशरणेषुयदात्मसा
त्त्वम् । योऽरोचयत्सहमृगैःस्वयमीश्वराणां श्रीमत्किरीटतटपीडितपादपीठः ॥४॥
तंत्वाऽखिलात्मदयितेश्वरमाश्रितानां सर्वार्थदंस्वकृतविद्विसृजेतकोनु । कोवाभ
जेत्किमपिविस्मृतयेऽनुभूत्यै किंवाभवेन्नतवपादरजोजुषांनः ॥ ५ ॥ नैवोपयन्त्य

कितनेही एक पण्डित नाना प्रकार के उपायों द्वारा इस शरीरको जरा रोगादि रहित और यौवन में स्थापित कर फिर सिद्धि के निमित्त योग करते रहते हैं ॥ ४१ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य उनकी इस बातसे प्रसन्न नहीं होते; क्योंकि वनस्पतिके फलकी समान देहका नाश अवश्य होवेगा ॥४२॥ नित्य योगाचरण करते २ योगी की देह यदि जरा रोगादि रहित होजावे तो फिर मेरे भक्त बुद्धिमान योगीको इस योगसिद्धिके ऊपर विश्वास स्थापित कर योगको न छोड़ना चाहिये ॥ ४३ ॥ जो योगी मेरी शरण ले इस प्रकार योगानुष्ठान करता है वह किन्हीं विघ्नोंसे पराजित नहीं होता, वह निष्कामहो केवल सुखोंका अनुभव करता रहता हैं ॥ ४४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांअष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

उद्धवजीने कहा कि—हे अच्युत ! जिसका चित्त वशमें नहीं हुआ, जान पड़ता है कि उसके पक्षमें इस प्रकार का योगाचरण तो अत्यंतही कठिन है; अतएव पुरुष जिससे अनायासही सिद्ध होसके वही मुझसे उपदेश करिये ॥ १ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! प्रायः मनोनिवेशन में उद्यत हुए योगीजन ध्येय वस्तुमें सदैव मनोयोग न होनेसे, चित्त निग्रहमें कातर हो दुःख भोगते रहते हैं ॥ २ ॥ हे कमल नलन ! हे विश्वेश्वर ! इसही कारण जो पुरुष तत्त्वके विचार में चतुर हैं, वह आपके चरण कमलोंको कि जो सब सुखके देने वाले हैं पूजा किया करते हैं। जोलोग योग और कर्मसे अभिमानी होकर आपके चरणों की सेवा नहीं करते वे लोग आपकी मायासे पराभव पाते हैं अतएव योग करनेमें गर्वित न होना चाहिये ॥ ३ ॥ हे अच्युत ! हे अशेष बन्धो ! जिन के आप बिना दूसरा शरण नहीं है ऐसे सेवकों के आप आधीन होकर रहो हो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । ब्रह्मादि ईश्वरों के किरीट के अग्रभाग आपके चरणोंमें लोटते हैं, तौभी आपने वानरोंके साथ मित्रता की थी ॥ ४ ॥ हे जगतके चेतन देनेवाले ईश्वर ! हे आश्रितोंके सर्वार्थ प्रद ! हे प्रियतम ! आप अपने भक्तों पर जो व्यवहार करते हैं, कहिये उसे जानकर कौन मनुष्य आपको छोड़ सकता है ? ऐश्वर्य और संसारकी विस्मृति के निमित्त आपके अतिरिक्त किस दूसरे देवताकी पूजा करें आपके चरण रजके सेवक हम लोगोंकोतो बिना किसी वाह्यिक साधन के जो चाहिये प्राप्त होजाता है फिर हम दूसरे साधनोंका अनुष्ठान क्यों करें ॥ ५ ॥

पश्चितिकयथस्तधेश ब्रह्मायुषापिकृतमृद्धमुदः स्मरन्तः । योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्वन्नाचार्यचैत्त्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धवेनात्यनुरक्तचेतसा पृष्टो जगत्क्रीडनकः स्वशक्तिभिः । गृहीतमूर्तित्रय ईश्वरेश्वरो जगाद सप्रेममनोहरस्मितः ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हन्त ते कथयिष्यामि मम धर्मान्सुमङ्गलान् । यान्श्रद्धयाचरन्मर्त्यो मृत्युं जयति दुर्जयम् ॥ ८ ॥ कुर्यात्सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन् । मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः ॥ ९ ॥ देशान्पुण्यानाश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् । देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च ॥ ॥ १० पृथक्सत्रेण वा मह्यं पर्वयात्रामहोत्सवान् । कारयेद्गीतनृत्याद्यैर्महाराजविभूतिभिः ॥ ११ ॥ मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम् । ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः ॥ १२ ॥ इति सर्वाणि भूतानि मद्भावेन महाद्युते । सभाजयन्मन्यमानो ज्ञानं केवलमाश्रितः ॥१३॥ ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिंगके । अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक्पण्डितो मतः ॥१४॥ नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात् । स्पर्धासूयातिरस्काराः साहंकारा वियन्ति हि ॥ १५ ॥ विसृज्य स्मयमानान्स्वान्दृशं व्रीडां च दैहिकीम् । प्रणमेद्दण्डवद्भूमावाश्वचाण्डालगोखरम् ॥ १६ ॥ यावत्सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते । तावदेवमुपासीत वाङ्मनःकायवृत्तिभिः ॥ १७॥

हे ईश्वर ! आप बाहरसे गुरु रूप से और भीतर से अंतर्यामी रूपसे प्राणियों की विषय वासना को दूरकर अपने स्वरूप का प्रकाश करते रहतेहो । अतएव जिनकी ब्रह्मा के समान परमायु है वे ब्रह्मवेत्ता गणभी आपके ऋण से उद्धार नहीं होसकते; आपके कियेहुए उपकारों का स्मरण करके वे आनन्दित होते रहते हैं ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि जो निजशक्तियों से सत्व, रज और तमद्वारा त्रिमूर्ति को ग्रहण करते हैं, और जगत् जिनका खिलौना है; वही ईश्वरों के ईश्वर भक्त उद्धव के इसप्रकार के बचनसुन मनोहर हास्य करके कहने लगे कि—॥ ७.॥ श्रीभगवान बोले–हेउद्धव ! मनुष्य श्रद्धा सहित जिसका अनुष्ठान करके दुर्जय संसार को जीतता है, उसही सुखमय अपने धर्म को तुमसे कहताहू सो सुनो ॥ ८ ॥ मुझमें मन और बुद्धि के समर्पणकरने ...र मेरे धर्म में आत्मा और मनकी आसक्ति होती है । इसप्रकारसे मेरा स्मरणकर मेरे निमित्त निरुद्वेगहो समस्त कर्मों का अनुष्ठान करे ॥ ९ ॥ जहां मेरे साधुभक्त रहतहों उन पवित्र देशों में रहना; देवता असुर और मनुष्यों में जो मेरे भक्तहुए हैं उनके कियेहुए कर्मो का अवलम्बनकरना चाहिये ॥ १० ॥ आप अकेले अथवा दूसरों को साथले मेरे प्रसन्न करने के अभिप्राय से नाचे, गावे । और छत्रवर्त्ती की विभूतियां छत्र चामर आदि मेरे अर्पण कर पर्व के दिन यात्रा और महोत्सव करे ॥ ११ ॥ निर्मलांतःकरणहो आकाश की समान पूर्ण आत्मस्वरूप मुझकोही सब प्राणियों में और अपने में देखे ॥ १२ ॥ हे अतिप्राज्ञ ! इसप्रकार केवल ज्ञानदृष्टि के आश्रय से जो सब प्राणियों को मेरा स्वरूप जानकर उनकी पूजाकरता है उसको मैं पण्डित जानताहूं ॥ ब्राह्मण में व चाण्डाल में, चोर व ब्राह्मणों के भक्तों, सूर्य में व चिनगारी में, शांत में व क्रूरमें जो मनुष्य समदृष्टि होकर मुझको देखता है वही पण्डित कहाता है ॥ १४ ॥ जो मनुष्य सब प्राणियों में स्थित मेरे स्वरूपकी नित्य भावना करता है निश्चयही उसका घमण्ड, असूया, तिरस्कार और अहंकार शीघ्रही नाश होजाता है ॥ १५ ॥ हँसतेहुए अपने मित्रों को, देहाभिमान से होतेहुए ऊंच नीचपन के विचारों को और उससे होतीहुई लज्जाको त्यागकर कुत्ते, चाण्डाल,बैल और गधे पर्यंत सब प्राणियों को पृथ्वी पर गिरकर प्रणाम करे ॥ १६ ॥ जबतक सब प्राणियों में मेरे स्वरूप का ज्ञान नहीं उत्पन्नहोता उतनेही दिन वाक्य, मन और शरीर की वृत्तियों द्वारा

सर्वंब्रह्मात्मकंतस्य विद्ययाऽऽत्ममनीषया । परिपश्यन्नुपरमेत् सर्वतोमुक्तसंशयः
॥ १८ ॥ अयंहिसर्वकल्पानां सध्रीचीनोमतोमम । मद्भावःसर्वभूतेषु मनोवाक्काय
वृत्तिभिः ॥ १९ ॥ नह्यङ्गोपक्रमेध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि । मयाव्यवसितःसम्य
क् निर्गुणत्वादनाशिषः ॥ २० ॥ योयोमयिपरेधर्मः कल्प्यतेनिष्फलायचेत् । त
दायासो निरर्थस्याद्भयादेरिवसत्तम ॥ २१ ॥ एषाबुद्धिमतांबुद्धिर्मनीषाचमन
नीषिणाम् । यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोतिमाऽमृतम् ॥ २२ ॥ एषतेऽभिहितः कृत्
स्नो ब्रह्मवादस्यसंग्रहः । समासव्यासविधिना देवानामपिदुर्गमः ॥ २३ ॥ अ
भीक्ष्णशस्ते गदितंज्ञानं विस्पष्टयुक्तिमत् ॥ एतद्विज्ञायमुच्येत पुरुषोनष्टसंशयः ॥
॥ २४ ॥ सुविविक्तंतवप्रश्नं मयैतदपिधारयेत् । सनातनंब्रह्मगुह्यं परंब्रह्माधिगच्छ
ति ॥ २५ ॥ यएतन्ममभक्तेषु संप्रदद्यात्सुपुष्कलम् । तस्याहंब्रह्मदायस्य ददाम्या
त्मानमात्मना ॥ २६ ॥ यएतत्समधीयीत पवित्रंपरमंशुचि । सपूयेताहरहर्मां ज्ञान-
दीपेनदर्शयन् ॥ २७ ॥ यएतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः शृणुयान्नरः । मयिभक्तिपरांकु-
र्वन्कर्मभिर्न सबध्यते ॥ २८ ॥ अप्युद्धवत्वयाब्रह्म सखेसमवधारितम् । अपितेविग
तो मोहःशोकश्चासो मनोभवः ॥ २९ ॥ नैतत्त्वयादाम्भिकाय नास्तिकायशठायच
अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीतायदीयताम् ॥ ३० ॥ एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्यायप्रि-
यायच । साधवेशुचयेब्रूयाद्भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम् ॥ ३१ ॥ नैतद्विज्ञाय जिज्ञा-

इसही प्रकार से उपासना करनी चाहिये ॥ १७ ॥ जब सर्वत्र ईश्वर स्वरूप देखेगा, तब उसके
दर्शन से उत्पन्नहुई विद्या के प्रभाव से उसके पक्षमें सब विद्यामय होजावेगा । अतएव सर्वत्रही
ब्रह्मको देखकर संशय से मुक्ति प्राप्तकरे और क्रियाओं मे उपरतहोतारहे । समस्त प्राणियों में
मेरे अस्तित्वका विचारकर मनवाक्य और देह की वृत्तियोंद्वारा जो आचरण करे, मैं उनकोही
सबसे श्रेष्ठमानताहूं ॥ १८—१९ ॥ हेउद्धव ! मेरे निष्काम धर्म में भूल चूक होजाने पर कुछभी
हानि नहीं होती क्योंकि निर्गुणपन के निमित्त यही धर्म श्रेष्ठ है ऐसा मैंने निश्चय कियाहै ॥२०॥
भय और शोकादि से होतेहुए क्लेशों की समान जो दूसरा भी लौकिक श्रम व्यर्थ होता है यदि
वह निष्काम होकर मुझमें अर्पण कियाजावे तो वहभी धर्म होजाता है ॥ २१ ॥ बुद्धिमान् मनुष्यों
की बुद्धिमानी और पण्डितों की चतुराई यही है कि इस असत्य नाशवान मनुष्य देहद्वारा इसी
जन्ममेंही सत्य और अविनाशी मुझको प्राप्त करे ॥ २२ ॥ हेउद्धव ! मैंने तुमसे संक्षेप और
विस्तार पूर्वक देवताओं को भी दुर्गम इस ब्रह्मवाद को भली प्रकार वर्णन किया ॥ २३ ॥ स्पष्ट
स्पष्ट युक्तियों समेत यहज्ञान मैंने तुमसे बारम्बार कहा; इसे जानकर मनुष्य संदेहों से निवृत्तहो-
कर मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ तुम्हारे इस सनातन, वेदों भी गुप्त परम प्रश्न का
उत्तर हुआ, जो इसप्रश्न का अनुसन्धान करेंगे, वह नित्य, सत्य, गुप्त परमब्रह्म को जानजावें
गे ॥ २५ ॥ जो इसको भली प्रकार मेरे भक्तों से कहेगा, मै उस ज्ञानोपदेशक को अपना
आत्मदान करूंगा ॥ २६ ॥ जो प्रातःकाल को परम पवित्र होकर इस को ऊंचे स्वर से
पढ़ेगा, वह ज्ञान दीपक के द्वारा मुझको देखकर शुद्ध होजावेगा ॥ २७ ॥ जो मनुष्य स्थिर
चित्त से श्रद्धा सहित इसको सुनेगा वह मुझमें भक्तिमान् होने के कारण कर्म के बंधनों से न
बंधेगा ॥ २८ ॥ हे सखे उद्धव ? तुम इस ब्रह्मज्ञान से भली प्रकार अवगतहुए इससे तुम्हारे
समस्त मोह और मनमें उत्पन्न हुए शोक दूर होगए ॥ २९ ॥ तुम इसे पाखण्डी नास्तिक और
मूर्खको अथवा जिसको सुननेकी इच्छा नहो उसको अभक्त तथा दुर्विनीत को कभी नदेना ३०॥
जिसमें यह कोई दोष नहो उनको और ब्राह्मणों के प्रिय करनेवाले तथा पवित्र साधुओं को देना
और भक्तिवान शूद्र और स्त्रियों कोभी देना ॥ ३१ ॥ इसके जानलेने पर जिज्ञासु मनुष्यको फिर

ज्ञातव्यमवशिष्यते । पीत्वा पीयूषममृतं पातव्यं नावशिष्यते ॥ ३२ ॥ ज्ञाने कर्म णि योगे च वार्तायां दण्डधारणे । यावानर्थो नृणां तात तावांस्तेऽहं चतुर्विधः ॥३३॥ मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे । तदाऽमृतत्वं प्रतिपद्य मानो मयात्मभूयाय च कल्पते वै ॥ ३४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवमादर्शितयोग मार्गस्तदोत्तमश्लोकवचो निशम्य । बद्धांजलिः प्रीत्युपरुद्धकण्ठो न किंचिदूचेऽश्रु परिप्लुताक्षः ॥३५॥ विष्टभ्य चित्तं प्रणयावघूर्णं धैर्येण राजन्बहु मन्यमानः । कृतां जलिः प्राह यदुप्रवीरं शीर्ष्णा स्पृशंस्तच्चरणारविन्दम् ॥ ३६ ॥ उद्धव उवाच । वि द्रावितो मोहमहान्धकारो य आश्रितो मे तव सन्निधानात् । विभावसोः किं नु समी पगस्य शीतं तमो भीः प्रभवन्त्यजाद्य ॥ ३७॥ प्रत्यर्पितो मे भवताऽनुकम्पिना भृत्या य विज्ञानमयः प्रदीपः । हित्वा कृतज्ञस्तव पादमूलं कोऽन्यात्समीयाच्छरणं त्वदीयम् ॥ ३८ ॥ वृक्णश्च मे सुदृढः स्नेहपाशो दाशार्हवृष्ण्यन्धकसात्वतेषु । प्रसारितः सृष्टि विवृद्धये त्वया स्वमायया ह्यात्मसुबोधहेतिना ॥ ३९ ॥ नमोऽस्तु ते महायोगिन्प्रप न्नमनुशाधि माम् । यथा त्वच्चरणाम्भोजे रतिः स्यादनपायिनी ॥ ४० ॥ श्रीभगवा नुवाच । गच्छोद्धव मयाऽऽदिष्टो बदर्याख्यं ममाश्रमम् । तत्र मत्पादतीर्थोदे स्नानोपस्प र्शनैः शुचिः ॥ ४१ ॥ ईक्षयाऽलकनन्दाया विधूताशेषकल्मषः । वसानो वल्कलान्यं ग वन्यभुक्सुखनिःस्पृहः ॥४२॥ तितिक्षुर्द्वन्द्वमात्राणां सुशीलः संयतेन्द्रियः । शा-

कुछ पूछनेकी आवश्यकता नहीं रहती अमृत के पान करनेपर फिर क्या और कुछ पीनेकी इच्छा रहती है ॥३२॥ ज्ञान, कर्म, योग वार्त्ता और दण्डधारण के विषय में मनुष्योंको जो चार प्रकार के अर्थ प्राप्त होते हैं तुम्हारे सम्बन्ध में वह सब मैंही हूं ॥ ३३ ॥ मनुष्य जब समस्त कर्मों को छोड़ मुझमें आत्मा को समर्पण कर मेरे कर्म करने का इच्छुक होता है तब निश्चयही अमृतताको प्राप्तकर मुझमें मिलने योग्य होजाता है ॥ ३४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकारसे योग मार्ग का उपदेश रूप भगवान के वाक्यों को सुनकर उद्धवजी के नेत्रों से आंसू बहने लगे कण्ठ रुकगया उन्होंनें भगवानकी स्तुति करने की इच्छा से हाथ जोड़े परन्तु वह कुछ कहनसके ॥ ३५ ॥ तदनन्तर प्रेम से क्षुभित हुए मनको धैर्य सहित रोक अपने आत्माको कृतार्थ मान म स्तक द्वारा भगवान के चरणकमलों का स्पर्शकर हाथ जोड़ उद्धवजी उनसे कहनेलगे ॥ ३६ ॥ हे अज ! हे आद्य ! मैंने जो मोहमय अधकार का आश्रय कियाथा वह आप के समागमसे दूर हो गया सूर्य के निकटवर्त्ती मनुष्य के पक्षमें क्या शीत और अंधकार के भयका प्रभाव प्रकाश कर सकता है ॥३७॥ तौभी आपने कृपा करके मुझ सेवक को विज्ञान प्रदीप प्रदान किया है जो आप के कियेहुए उपकारको जानते हैं उनमें से ऐसा कौन मनुष्य है जो आपके चरणकमलों को छोड़ दूसरे की शरण लेवे ॥ ३८ ॥ आपनें सृष्टिवृद्धि के निमित्त अपनी माया द्वारा दाशार्ह, वृष्णि, अंधक और सात्वत आदि कुलों के यादवों में स्नेह रूप का जो दृढपाश मेरे गले में डाल रक्खा था उसको आपनेंही आत्मज्ञान रूपी तीक्ष्ण शस्त्रसे काटडाला॥३९॥हे महायोगिन् ! आपको नमस्कार करता हूं शरणागत उद्धवको शिक्षा दीजिये जिससे आप के चरण कमलों में अचलारति उत्पन्न होवे ॥ ४० ॥ श्रीभगवान नें कहा हे उद्धव ! तुम मेरी आज्ञा से बदरिकाश्रम में जाओ उस स्था न पर मेरे चरण से निकली हुई अलकनन्दा नाम (गंगा) तीर्थ में स्नान व आचमन करके पवित्र होओ ॥ ४१ ॥ अलकनंदा के देखनेमात्र से तुम्हारे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजावेंगे वहां वल्कल वस्त्र पहिर वनके फल फूल खाय निर्वाह करना किसी प्रकार के सांसारिक सुखोंकी इच्छा नकरना४२॥

न्तः समाहितधिया ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥४३॥ मयोऽनुशिक्षितं यत्ते विविक्तमनुभावयन् । मय्यावेशितवाक्चित्तो मद्धर्मनिरतो भव ॥ अतिव्रज्य गतीस्तिस्रो मामेष्यसि ततः परम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच । स एवमुक्तो हरिमेधसोद्धवः प्रदक्षिणं तं परिसृत्य पादयोः । शिरो निधायाश्रुकलाभिरार्द्रधीर्न्यषिञ्चदद्वन्द्वपरोऽप्युपक्रमे ॥४५॥ सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरो न शक्नुवंस्तं परिहातुमातुरः। कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुनःपुनः ॥ ४६ ॥ ततस्तमन्तर्हृदि संनिवेश्य गतो महाभागवतो विशालाम् । यथोपदिष्टां जगदेकबन्धुना तपः समास्थाय हरेरगाद्गतिम् ४७॥ य एतदानन्दसमुद्रसंभृतं ज्ञानामृतं भागवताय भाषितम् । कृष्णेन योगेश्वरसेविताङ्घ्रिणा सच्छ्रद्धयाऽऽसेव्य जगद्विमुच्यते ॥ ४८ ॥ भवभयमपहन्तुं ज्ञानविज्ञानसारं निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद्वेदसारम् । अमृतमुदधितश्चापाययद्भृत्यवर्गान् पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

राजोवाच ॥ ततो महाभागवत उद्धवे निर्गते वनम् । द्वारवत्यां किमकरोद्भगवान्भूतभावनः ॥ १ ॥ ब्रह्मशापोपसंसृष्टे स्वकुले यादवर्षभः । प्रेयसीं सर्वनेत्राणां तनुं स कथमत्यजत् ॥ २ ॥ प्रत्याक्रष्टुं नयनमबला यत्र लग्नं न शेकुः कर्णाविष्टं न सरति ततो

और क्षुधा आदि सब विघ्नों का सहनकर स्वभाव में सरलता आदि रखना जितेन्द्रिय होकर शांत रहना तथा एकाग्र चित्त वाली बुद्धि से ज्ञान विज्ञान को धारण करना ॥ ४३ ॥ मैंने जो यह शिक्षा दी है उसका एकान्त में ध्यान करना वाक्य और मन मुझमेंही लगाये रखना इस प्रकार मेरे धर्म में तत्पर होना जो ऐसा करोगे तो त्रिगुणात्मक गतियों को उल्लघ कर परमगति स्वरूप मुझको प्राप्त होंगे ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि जिनका स्मरण करतेही ससार के पाश कटजाते हैं उन श्रीकृष्णजी से इस प्रकार का उपदेश पाय उद्धवजी ने उनकी प्रदक्षिणा की और उनके चरणों में मस्तक को धरकर सुख दुःख से मुक्तहोकरभी जाते समय आर्द्र चित्तहो आंसूबहाने लगे ॥ ४५ ॥ जिनपरका स्नेह नहीं छोड़ाजासकता उनका वियोग होनेसे कातरहो उनकोछोड़ने में असाधारण विह्वलतासे कष्ट भोगने लगे । अनन्तर उनने स्वामी की दीहुई खड़ाऊओं को मस्तक पर धारणकर बारम्बार नमस्कार करतेहुए अति कष्टपूर्वक वहां से प्रस्थान किया ॥४६॥ महाभागवत उद्धवजी उनको हृदय में स्थापितकर जगत के प्रधान गुरु ने जिसप्रकार आज्ञादी थी, उसकेही अनुसार बदरिकाश्रम को गये और तपस्या का अवलम्बनकर भगवानके स्वरूप को प्राप्तहुए ॥ ४७ ॥ योगेश्वर गण जिनके चरणों की सेवाकरते हैं ऐसे श्रीकृष्णजी ने आनंद के समुद्र रूप भक्तिमार्गके साथ ऐक्यता करके उद्धवजीको यह ज्ञानामृत पानकराया । जो श्रद्धा पूर्वक इसका कुछभी सेवन करेंगे वह मुक्त होजावेंगे, और उनके संसर्ग से जगतभी मुक्तहोजावेगा ॥ ४८ ॥ जिन्हें ससार और जरा रोगादि का भय नाश करने के निमित्त, भौंरा जैसे फूलों से मधु निकालता है, उसहीप्रकार सागर से ज्ञान विज्ञानमय श्रेष्ठ वेद सारामृत को निकाल भक्तों को उसका पान करायाथा, उन्हीं निगम कर्त्ता कृष्ण नामक आद्य पुरुषोत्तम को मैं नमस्कार करताहूं ॥ ४९ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांएकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

राजा ने कहा,-कि हे भगवन्! महाभागवत उद्धवके वनमेंचले जानेपर भूतभावन भगवानने द्वारकामें क्या किया॥१॥अपनेवंश को ब्रह्मशापसे ग्रस्त होनेपर यादव श्रेष्ठने सबके नेत्रोंको प्यारे अपने शरीरको किसप्रकार त्यागनकिया॥२॥जिनपर दृष्टि पड़तेही स्त्रियें नेत्रोंको फिरवहांसे नहीं

यत्स्वतामात्मलग्नम् । यच्छ्रीनिकेतनयतिरन्ति किंनु मानं भवानीदृष्ट्वाऽर्जुनायुधि रथगतं यच्च तत्साम्यमीयुः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच । दिवि भुव्यन्तरिक्षे च महोत्पातान् समुत्थितान् । दृष्ट्वासीनान्सुधर्मायां कृष्णः प्राह यदूनिदम् ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एते घोरा महोत्पाता द्वार्वत्यां यमकेतवः । मुहूर्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुङ्गवाः ॥ ५ ॥ स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च शङ्खोद्धारं व्रजन्त्वितः । वयं प्रभासं यास्यामो यत्र प्रत्यक्सरस्वती ॥ ६ ॥ तत्राभिषिच्य शुचय उपोष्य सुसमाहिताः । देवताः पूजयिष्यामः स्नपनालेपनार्हणैः ॥ ७ ॥ ब्राह्मणांस्तु महाभागान्कृतस्वस्त्ययना वयम् । गोभूहिरण्यवासोभिर्गजाश्वरथवेश्मभिः ॥ ८ ॥ विधिरेष ह्यरिष्टघ्नो मङ्गलायनमुत्तमम् । देवद्विजगवां पूजा भूतेषु परमो भवः ॥ ९ ॥ इति सर्वे समाकर्ण्य यदुवृद्धा मधुद्विषः । तथेति नौभिरुत्तीर्य प्रभासं प्रययू रथैः ॥ १० ॥ तस्मिन्भगवतादिष्टं यदुदेवेन यादवाः । चक्रुः परमया भक्त्या सर्वश्रेयोपबृंहितम् ॥ ११ ॥ ततस्तस्मिन्महापानं पपुर्मैरेयकं मधु । दिष्टविभ्रंशितधियो यद्द्रवैर्भ्रश्यते मतिः ॥ १२ ॥ महापानाभिमत्तानां वीराणां दृप्तचेतसाम् । कृष्णमायाविमूढानां संघर्षः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥ युयुधुः क्रोधसंरब्धा वेलायामाततायिनः । धनुर्भिरसिभिर्भल्लैर्गदाभिस्तोमरर्ष्टिभिः ॥ १४ ॥ पतत्पताकै रथकुञ्जरादिभिः खरोष्ट्रगोभिर्महिषैर्नरैरपि । मिथः समेत्याश्वतरैः सुदुर्मदा न्यहन्शरैर्दद्भिरिव द्विपा वने ॥ १५ ॥ प्रद्युम्नसाम्बौ युधि रूढमत्सरावक्रूरभोजावनिरुद्धसा-

---

खींच सकती थीं जिनका वृत्तांत सुनते हुए साधुओं का चित्त उसमें लगजाने से फिर विचलित नहीं होता जिन की शोभा का वर्णन होते रहने से कवि के वाक्य आनंद को उत्पन्न करते हैं और उस के ही द्वारा कवियों की कीर्ति का विस्तार होता है तथा जिनको अर्जुन के रथपर बैठा देखकर संग्राम में मरे हुए योद्धाओं ने उनके स्वरूप को प्राप्त किया था श्रीकृष्णजीने वह मूर्ति किसप्रकार से परित्याग की ३॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—स्वर्ग, पृथ्वी और आकाश मंडल में होते हुए महाउत्पातों को देखकर श्रीकृष्णजीने सुधर्मा सभा में बैठे हुए यादवोंसे कहा कि ॥४॥ हे यादवो द्वारका में यमके केतुस्वरूप ये सब महाभयानक उत्पात होने लगे अतएव इसस्थानमें हमें क्षणभरभी न रहना चाहिये॥५॥ स्त्री बालक और वृद्धगण इसस्थान से शंखोद्धार में जावें और हम सब प्रभासक्षेत्र में कि जहां पश्चिम वाहिनी सरस्वती हैं चलेंगे ॥ ६ ॥ वहां स्नान करके उपवास को धारणकर, पवित्रहो सावधानी के साथ स्नान, लेपन और अर्घ्यादिक से देवताओं का पूजन करेंगे ॥ ७ ॥ फिर ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करवाय उन्हें गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, वस्त्र, अश्व, हाथी, रथ और घर का दानदे उन महाभाग ब्राह्मणों का पूजन करेंगे ॥ ८ ॥ यह विधि अशुभनाशक और परम कल्याणदायी है; देवता, ब्राह्मणों और गौओं की पूजा प्राणियों का परम उदय करती है ॥ ९ ॥ सब यदुवंशी श्रीकृष्णजी की बात को स्वीकार कर नावों में बैठ समुद्र से पार उतर फिर रथों पर बैठकर प्रभास क्षेत्र में आये ॥ १० ॥ उस स्थान में यादवों ने परम भक्ति के साथ सब मङ्गल कार्यों सहित श्रीकृष्णजी की आज्ञा का पालन किया ॥ ११ ॥ अनन्तर दैव के प्रभाव से भ्रष्टबुद्धिहो वे सब बुद्धिनाशक मधुर रसवाली मदिरा का पान करने लगे ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णजीकी मायासे मोहितहो बहुत मदिरा के पीने से अत्यन्त गर्ववालेहो बुद्धि भ्रष्ट वीरों में घोर विवाद उत्पन्न होगया॥१३॥ तदनन्तर सब अत्यन्त क्रोध से बधार उद्यतहो धनुष, खड्ग, भाला, गदा, तोमर और ऋष्टियों द्वारा युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ पताका फहराते हुए रथ हाथी इत्यादिक से तथा गधे, ऊंट, बैल मनुष्य व खच्चरों से परस्पर जुटकर ये बुद्धिभ्रष्ट मतवाले यादव, जैसे हाथी बनमें दांतों से परस्पर प्रहार करें ऐसे बाणों से प्रहार करने लगे ॥ १५ ॥ युद्ध में प्रवृत्त होकर प्रद्युम्न और साम्ब,

त्यकी । सुभद्रसंग्रामजितौसुदारुणौ गदौसुमित्रसुरथौसमीयतुः ॥ १६ ॥ अन्येचयेवैनिशठोल्मुकादयः सहस्रजिच्छतजिद्भानुमुख्याः । अन्योऽन्यमासाद्य मदान्धकारिता जघ्नुर्मुकुन्देनविमोहिताभृशम् ॥ १७ ॥ दाशार्हवृष्ण्यन्धकभोजसात्वता मध्वर्बुदामाथुरशूरसेनाः । विसर्जनाःकुकुराःकुन्तयश्च मिथस्तुजघ्नुःसुविसृज्यसौहृदम् ॥ १८ ॥ पुत्राअयुध्यन्पितृभिर्भ्रातृभिश्च स्वस्रीयदौहित्रपितृव्यमातुलैः । मित्राणिमित्रैःसुहृदःसुहृद्भिर्ज्ञातींस्त्वहञ्ज्ञातयएवमूढाः ॥ १९ ॥ शार्ङ्गेषु हीयमानेषु भज्यमानेषुधन्वसु । शस्त्रेषुक्षीयमाणेषु मुष्टिभिर्जह्रुरेरकाः ॥ २० ॥ तावज्रकल्पाह्यभवन्परिघामुष्टिनाभृताः । जघ्नुर्द्विषस्तैःकृष्णेन वार्यमाणास्तुतंच ते ॥ २१ ॥ प्रत्यनीकंमन्यमाना बलभद्रंचमोहिताः । हन्तुंकृतधियोराजन्नापन्ना आततायिनः ॥ २२ ॥ अथतावपिसंक्रुद्धा वुद्यम्यकुरुनन्दन । एरकामुष्टिपरिघौ चरन्तौजघ्नतुर्युधि ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापोपसृष्टानां कृष्णमायावृतात्मनाम् । स्पर्धा क्रोधःक्षयंनिन्ये वैणवोऽग्निर्यथावनम् ॥२४॥ एवंनष्टेषुसर्वेषु कुलेषुस्वेषुकेशवः । अवतारितोभुवोभार इतिमेनेऽवशेषितः ॥ २५ ॥ रामःसमुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम् । तत्याजलोकंमानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मनि ॥ २६ ॥ रामनिर्याणमा लोक्य भगवान्देवकीसुतः । निषसादधरोपस्थे तूष्णीमासाद्यपिप्पलम् ॥ २७ ॥ बिभ्रच्चतुर्भुजंरूपं भ्राजिष्णुप्रभयास्वया । दिशोवितिमिराःकुर्वन् विधूमइवपाव कः ॥ २८ ॥ श्रीवत्साङ्कंघनश्यामं तप्तहाटकवर्चसम् । कौशेयाम्बरयुग्मेन परि

अक्रूर और भोज; अनिरुद्ध और सात्यकि; सुभद्र और संग्राम जित; सदारुण और गद तथा सुमित्र और सुरथ परस्पर द्वन्द्वयुद्धमें प्रवृत्तहुए ॥ १६ ॥ इसके अतिरिक्त निशठ; उल्मुक, सहस्रजित् और भानुआदि सबही यादव भगवान से मोहित और मदिरा द्वारा अंधेहो एक दूसरेको मारने लगे ॥ १७ ॥ दाशार्ह, भोज, अन्धक, वृष्णि, सात्वत, मधु, अर्बुद, माथुर, शूरसेन, विसर्जन, कुकुर और कुतिवंशीय सबही परस्पर की सुहृदता को त्याग एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ॥ १८ ॥ मोहितहोकर पुत्र पिताके साथ; भाई भाई के साथ; भांजे मामुओं के साथ; चचा भतीजों के साथ; मित्र मित्रों के साथ; और सुहृद सुहृदों के साथ परस्पर संग्राम करने लगे जाति जातिवालों से लड़ने लगे ॥ १९ ॥ जब सब बाणों का नाश होगया, धनुष टूटगए और दूसरे भी अस्त्र शस्त्र न रहे तब वह समुद्र के तटपरजाय वहां के पटेर को मुट्ठियों से उखाड़ने लगे ॥ २० ॥ मुट्ठियों से पकड़ाहुआ वह पटेर वज्रकी समान परिघरूप होगया । श्रीकृष्णजीके निवारण करने पर भी उसकेद्वारा शत्रुओं को और उनको भी मारने लगे ॥ २१ ॥ हेराजन् ! वे मोहित हुए यादव श्रीकृष्ण व बलरामजी को भी शत्रुजानकर उनके मारने के निमित्त दौड़े ॥ २२ ॥ हे कुरुनन्दन ! वे दोनों जनभी अत्यन्त क्रोधितहो मुट्ठियों में लियेहुए लोह दण्डकी समान पेरे से युद्ध में फिर २ कर यादवों का वध करने लगे ॥ २३ ॥ जैसे बांससे उत्पन्न हुई अग्नि वनको जलाती है उसहीप्रकार ब्राह्मणों के शापसे मोहित और भगवान की माया से घिरेहुए इनयादवों का स्पर्द्धाजनित क्रोध से नाश होगया ॥ २४ ॥ इसप्रकार से सब वंश के नाश होजानेपर भगवान ने विचारा कि ' हां अब पृथ्वी का भार' दूरहुआ, ॥ २५ ॥ फिर बलरामजी ने समुद्र के किनारे परम पुरुष के चिंतवन रूप योग का अवलम्बनकर आत्मा को आत्मा में मिलाय मनुष्य लोक को परित्याग किया ॥ २६ ॥ राम के निर्वाण को देख श्रीकृष्णजी शोक से चुपचापहो पीपल के वृक्ष के नीचे उपस्थितहुए और चतुर्भुज रूप धारणकर धुवां रहित अग्नि की समान अपनी प्रकाशितप्रभाद्वारा दिशाओं को प्रकाशितकर पृथ्वी पर बैठगये ॥ २७—२८ ॥ उनके

वीतं सुमङ्गलम् ॥ २९ ॥ सुन्दरस्मितवक्त्राब्जं नीलकुन्तलमण्डितम् । पुण्डरीकाभिरामाक्षं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३० ॥ कटिसूत्रब्रह्मसूत्र किरीटकटकाङ्गदैः ॥ हारनूपुरमुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितम् ॥ ३१ ॥ वनमालापरीताङ्गं मूर्तिमद्भिर्निजायुधैः । कृत्वोरौ दक्षिणे पाद मासीनं पङ्कजारुणम् ॥ ३२ ॥ मुषलावशेषायःखण्डकृतेषुर्लुब्धको जरा । मृगास्याकारं तच्चरणं विव्याध मृगशङ्कया ॥ ३३ ॥ चतुर्भुजं तं पुरुषं दृष्ट्वा स कृतकिल्बिषः । भीतः पपात शिरसा पादयोरसुरद्विषः ॥ ३४ ॥ अजानता कृतमिदं पापेन मधुसूदन । क्षन्तुमर्हसि पापस्य उत्तमश्लोक मेऽनघ ॥ ३५ ॥ यस्यानुस्मरणं नृणामज्ञानध्वान्तनाशनम् । वदन्ति तस्य ते विष्णो मयाऽसाधु कृतं प्रभो ॥ ३६ ॥ मामाशु जहि वैकुण्ठ पाप्मानं मृगलुब्धकम् । यथा पुनरहं त्वेवं न कुर्यां सदतिक्रमम् ॥ ३७ ॥ यस्याऽऽत्मयोगरचितं न विदुर्विरिञ्चो रुद्रादयोऽस्य तनयाः पतयो गिरां ये । त्वन्मायया पिहितदृष्टय एतदञ्जः किं तस्य ते वयमसद्गतयो गृणीमः ॥ ३८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा भैर्जरे त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे । याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम् ॥ ३९ ॥ इत्यादिष्टो भगवता कृष्णेनेच्छाशरीरिणा । त्रिः परिक्रम्य तं नत्वा विमानेन दिवं ययौ ॥ ४० ॥ दारुकः कृष्णपदवीमन्विच्छन्नधिगम्य ताम् । वायुं तुलसिकामोद माघ्रायाभिमुखं ययौ ॥ ४१ ॥ तं तत्र तिग्मद्युभिरायुधैर्वृतं ह्यश्वत्थमूले कृतकेतनं पतिम् । स्नेहप्लुतात्मा निपपात पादयो रथादवप्लुत्य

श्रीवत्स का चिह्न शोभा पारहाथा, मेघसा श्यामवर्ण, तप्तसुवर्ण कीसी कांति, और पीले मनोहरणकारी वस्त्र धारण कियेहुए थे ॥ २९ ॥ मन्दहास्यवाला मुखारविंद श्याम केशों से शोभित होरहाथा । कमल से सुन्दर नेत्र प्रकाशित होरहेथे कानों में मकराकृतकुण्डल झूम रहेथे ॥ ३० ॥ कटिमेखला, यज्ञोपवीत, किरीट, कड़ा, भुजबन्ध, हार, नूपुर, मुदरियां और कौस्तुभमणि प्रकाशित होरही थीं ॥ ३१ ॥ गले में बनमाला पहिने हुएथे, अपने मूर्तिमान अस्त्र निकट रक्खेथे और स्वयं अपनी दाहिनी साथलपर कमल सा अरुण चरण रखकर विराजमान होरहेथे ॥ ३२ ॥ जरानामक एक व्याधने कि जिसने मूषल से शेषरहे हुए लोह खण्ड से बाण बनायाथा, उस समय वहां आय उनके चरणको मृगके मुखकी समान देख मृगके भ्रमसे उसको बिद्ध किया ॥ ३३ ॥ किंतु थोड़ी ही दूरमें उस पुरुषको चतुर्भुज देख अत्यत भय सहित श्रीकृष्णजी के दोनो चरणों में मस्तक के बल गिरपड़ा और कहने लगा ॥ ३४ ॥ हे मधूसूदन ! मुझ महापापी ने बिनाजाने यह कर्म किया है । हे उत्तमश्लोक ! हे निष्पाप! मुझको क्षमाकरो ॥ ३५ ॥ जिसके स्मरण से मनुष्योंका अज्ञानांधकार नाशहोजाता है,—हे प्रभो! मैंने साक्षात् उन्हीं विष्णु स्वरूप आपका अमंगल किया है ॥ ३६ ॥ अतएव हे वैकुंठनाथ! इस पापाचारी मुझ बहेलियेका शीघ्रही नाशकरो जिससे फिरमैं इस प्रकारके साधुओं की गतिका उल्लंघन न करूं ॥ ३७ ॥ जिनकी स्वाधीनमायाके कौशलको ब्रह्मा और रुद्रादि तथा और भी दूसरे वेदके जाननेवाले नहीं जानते, उन आपका मैं क्या वर्णन करूं? हम लोगोंकी दृष्टि आपकी मायासे घिरीहुई है, हम यथार्थ में नीचजाति हैं ॥ ३८ ॥ श्रीभगवान ने कहा हे जरा ! तू डरमत; उठ खड़ाहो । यह मेरीही मायासे हुआ है अतएव तुममेरी आज्ञा से सुकृतिओं की गतिस्वर्ग में जाओ ॥ ३९ ॥ इच्छा शरीर भगवान श्रीकृष्णजी द्वारा इसप्रकार आज्ञापाय व्याधने उनकी तीनबार परिक्रमाकी और उनको नमस्कार कर वह विमान पर चढ़ स्वर्ग कोगया ॥ ४० ॥ हे महाराज ! दारुक श्रीकृष्णजी की खोज करते २ वहां आया और तुलसी की गंधसे सुगंधित हुई वायुको सूंघकर श्रीकृष्णजी के सामने की ओर चला ॥ ४१ ॥ वह स्वामी उस स्थान में प्रकाशित होते हुए अस्त्रों द्वारा वेष्टित पीपलकी जड़के नीचे बैठे हैं—

सचारुणलोचनः ॥ ४२ ॥ अपश्यतस्त्वच्चरणाम्बुजंप्रभो दृष्टिःप्रणष्टातमसिप्रविष्टा। दिशोनजानेनलभेचशान्तिं यथानिशायामुडुपेप्रनष्टे ॥ ४३ ॥ इतिब्रुवतिसूतेवै रथो गरुडलाञ्छनः। खमुत्पपातराजेन्द्र साश्वध्वजउदीक्षतः॥ ४४ ॥ तमन्वगच्छन्दिव्यानि विष्णुप्रहरणानिच। तेनातिविस्मितात्मानं सूतमाहजनार्दनः ॥ ४५ ॥ गच्छद्वारवतींसूत ज्ञातीनांनिधनंमिथः। संकर्षणस्यनिर्याणं बन्धुभ्योब्रूहिमद्दशाम् ॥ ४६ ॥ द्वारकायांचनस्थेयं भवद्भिश्चस्वबन्धुभिः। मयात्यक्तांयदुपुरीं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ ४७ ॥ स्वंस्वंपरिग्रहंसर्वे आदायपितरौचनः। अर्जुनेनाविताःसर्व इन्द्रप्रस्थंगमिष्यथ ॥४८॥ त्वंतुमद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठउपेक्षकः। मन्मायारचना मेतां विज्ञायोपशमंव्रज ॥ ४९ ॥ इत्युक्तस्तंपरिक्रम्य नमस्कृत्यपुनःपुनः। तत्पादौ शीर्ष्ण्युपाधाय दुर्मनाःप्रययौपुरीम् ॥ ५० ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० एकादशस्कन्धे यदुकुलसंक्षयो नामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

श्रीशुकउवाच ॥ अथतत्रागमद्ब्रह्मा भवान्याचसमंभवः। महेन्द्रप्रमुखादेवा मुनयःसप्रजेश्वराः ॥ १ ॥ पितरःसिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः। चारणायक्षरक्षांसि किन्नराप्सरसोद्विजाः ॥२॥ द्रष्टुकामाभगवतो निर्याणंपरमोत्सुकाः। गायन्तश्च गृणन्तश्च शौरेःकर्माणिजन्मच ॥ ३ ॥ ववृषुःपुष्पवर्षाणि विमानावलिभिर्नभः। कुर्वन्तःसंकुलंराजन्भक्त्यापरमयायुताः ॥ ४ ॥ भगवान्पितामहंवीक्ष्य विभूतीरात्मनोविभुः। संयोज्यात्मनिचात्मानं पद्मनेत्रेन्यमीलयत् ॥ ५ ॥ लोकाभिरामांस्वतनुं

यह देख दारुक अड्डाई चित्तहो रथसे कूद आंखों से आंसू गिराता हुआ उनके चरणोंमें गिरपड़ा और कहनेलगा ॥ ४२ ॥ हे प्रभो ! बिना आपके चरण कमल देखे मेरी दृष्टि अंधकार से ढकी हुई है। अतएव जैसे चन्द्रमा के अस्त होनेपर रात्रिमें दिशाएं स्थिर नहीं की जासकतीं उसही प्रकार मैं भी कुछ निर्णय नहीं करसकता और शांति भी नहीं पाता ॥ ४३ ॥ हे राजेन्द्र ! सारथी इस प्रकार से कह रहाथा कि इतने में गरुड़ चिह्नित रथ देखते २ घोड़ों और ध्वजा सहित आकाशको उड़गया और विष्णुजी के सब दिव्य शस्त्रों ने भी उस रथके पीछे २ गमन किया। इस से सूतका चित्त अत्यन्त आश्चर्यान्वितहुआ तब भगवान ने उससे कहा ॥ ४४-४५ ॥ हे सूत तुम द्वारकाको जाओ और ज्ञातिवालों का परस्पर माराजाना, बलदेवजी का अंतर्ध्यान होना और मेरी अवस्था बंधुओं से कहो ॥ ४६ ॥ तुम बंधुओं समेत द्वारका में न रहना, मुझसे छोड़ी हुईपुरी सागर में डूबजायगी ॥ ४७ ॥ सब अपने २ परिग्रह और मेरेपिता माताके साथ अर्जुन से रक्षितहो इन्द्रप्रस्थको जावें ॥ ४८ ॥ तुम मेरे धर्मका अवलंबनकर ज्ञाननिष्ठ और उपेक्षाकारी हो जगतको माया रचितजान शान्तताका अवलंबनकरो ॥ ४९ ॥ श्रीभगवान की इस कथाको सुनकर दारुक ने उनकी प्रदक्षिणा और नमस्कार किया और उनके दोनो चरण मस्तक में रख अनमने हो द्वारका नगरी की यात्रा की ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० सरला भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! अनन्तर ब्रह्माजी, पार्वती जी को संग लियेहुए महादेव जी, इंद्रादि देवता गण, मुनि, प्रजापति, पितर, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, महोरग, चारण, यक्ष किन्नर, अप्सरायें और ब्राह्मणगण भगवान का निर्याण देखने की इच्छा से अत्यन्त उत्सुकचित्तहो भगवान के जन्म और कर्मों का गान और वर्णन करते २ वहां आये और विमानोंद्वारा आकाश को ढककर भक्ति सहित उन पर फूलों की वर्षा करने लगे ॥ १—४ ॥ प्रभु भगवान ने ब्रह्माजी को और अपने विभूति रूप सब देवताओं को देख आत्मा में आत्मा का संयोजनकर

धारणाध्यानमङ्गलम् । योगधारणयाऽऽग्नेय्याऽदग्ध्वाधामाविशत्स्वकम् ॥ ६ ॥
दिविदुन्दुभयोनेदुः पेतुःसुमनसश्चखात् । सत्यंधर्मोधृतिर्भूमौ कीर्तिःश्रीश्चानुतंय-
युः ॥७॥ देवादयोब्रह्ममुख्या नविशन्तंस्वधामनि । अविज्ञातगतिंकृष्णं ददृशुश्चा
तिविस्मिताः ॥ ८ ॥ सौदामन्यायथाकाशे यान्त्याहित्वाऽभ्रमण्डलम् । गतिर्नल-
क्ष्यतेमर्त्यैस्तथा कृष्णस्यदैवतैः ॥ ९ ॥ ब्रह्मरुद्रादयस्तेतु दृष्ट्वायोगगतिंहरेः ।
विस्मितास्तांप्रशंसन्तः स्वंस्वंलोकंययुस्तदा ॥ १० ॥ राजन्परस्यतनुभृज्जनना
प्ययेहामायाविडम्बनमवेहियथानटस्य । सृष्ट्वात्मनेदमनुविश्यविहृत्यचान्ते संहृ-
त्य चात्ममहिनोपरतःसआस्ते ॥ ११ ॥ मर्त्येनयोगुरुसुतंयमलोकनीतं त्वांचानय
च्छरणदःपरमास्त्रदग्धम् ।जिग्येऽन्तकान्तकमपीशमसावनीशःकिंस्वावनेस्वरनय
न्मृगयुंसदेहम् ॥१२॥तथाऽप्यशेषस्थितिसम्भवाप्ययेष्वनन्यहेतुर्यदशेषशक्तिधृक् ।
नैच्छत्प्रणेतुंवपुरत्रशेषितमर्त्येनकिंस्वस्थगतिंप्रदर्शयन् ॥ १३ ॥ यएतांप्रातरुत्थाय
कृष्णस्यपदवींपराम् । प्रयतःकीर्तयेद्भक्त्यातामेवाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ १४ ॥ दारुको
द्वारकामेत्य वसुदेवोग्रसेनयोः । पतित्वाचरणावस्रैर्न्यषिञ्चत्कृष्णविच्युतः ॥१५॥
कथयामासनिधनंवृष्णीनांकृत्स्नशोनृप।तच्छ्रुत्वोद्विग्नहृदयाजना.शोकविमूर्छिताः
॥१६॥ तत्रस्मत्वरिताजग्मुः कृष्णविश्लेषविह्वलाः । व्यसवःशेरतेयत्र ज्ञातयोघ्नन्त
आननम् ॥ १७ ॥ देवकीरोहिणीचैव वसुदेवस्तथासुतौ । कृष्णरामावपश्यन्तः

दोनों कमल नेत्रों को बंद करलिया और आग्नेयी योगधारणाद्वारा अपनी देहको दग्ध न करके वे अपने धाम को पधारे ॥ ५—६ ॥ स्वर्ग में दुन्दुभी बजने लगीं और आकाश से फूल बरसने लगे । भूमण्डल से सत्य, धर्म, धैर्य, कीर्त्ति और लक्ष्मीजी ने उनके पीछे २ गमन किया ॥ ७॥ अविज्ञेय गति श्रीभगवान के अपने धाम म जाने के समय ब्रह्मा आदि देवताओं में से किसी २ ने देखा और किसी २ ने न देखपाया, इससे उन सब को बड़ा विस्मयहुआ ॥ ८ ॥ जैसेमनुष्य आकाश में मेघमण्डल को छोडकर जातीहुई तीव्र गतिवाली बिजली की गति को नहीं जान सकते वैसेही देवता श्रीकृष्णजी की गति को न जानसके ॥ ९ ॥ तब ब्रह्मा और रुद्रादिकों ने भगवान की योगगति का ध्यान किया और विस्मित भावसे उनकी प्रशंसा करतेहुए अपने अपने धामको गये ॥ १० ॥ हेराजन् ! नटकीसमान परमेश्वर के देह धारण को और यादवादि प्राणियों के मध्य में जन्म, मृत्यु और कार्य आदि करने की माया की विडम्बनाही जानना ।वह इस जगत् को उत्पन्नकर फिर इसमें प्रवेश करते हैं और अन्त में इसका संहारकर अपनी महिमा के कारण उपरतही रहते हैं ॥ ११ ॥ जो यमलोक में जाय गुरुपुत्र को मनुष्य शरीर सेही लेआयेथे जिन शरणागत रक्षक ने तुमको ब्रह्मास्त्र से जलतेहुए बचायाथा और जिन्होंने काल के काल महादेवजीकोभी जीताथा, जो व्याधको स्वर्ग लेगयेथे,—वह ईश्वर क्या अपनी रक्षा नहीं करसकतेथे ॥ १२ ॥ तौभी अशेष शक्तिधारी त्रिभुवन की सृष्टि, स्थिति, प्रलयके एक मात्र कारण भगवान् को इस मरने वाले शरीर से क्या प्रयोजनथा ?—आत्मनिष्ठ साधुओंको श्रेष्ठगति दिखाय उन्होंने इस स्थान पर शरीरके रखनेकी इच्छा न की ॥१३॥ जोमनुष्य प्रातःकाल उठतेही भक्तिसहित श्रीकृष्णजीके इनचरित्रोंको सुनेगा वह उन्हींको प्राप्तहोगा।जिससे श्रेष्ठ और कुछभी नहीं है॥१४॥ हे राजन् ! इधर दारुक श्रीकृष्णजी के विरह से दुःखित होता हुआ द्वारका में आय वसुदेव और उग्रसेन के चरणोंमें गिर उन्हें नेत्रों के जल द्वारा भिगोनेलगा ॥१५॥ तदनंतर उसने सब वृष्णि वंशियों के नाशकी वार्त्ताकही । उसके सुनतेही सब उद्विग्न हृदयहो मूर्छित होगये ॥ १६ ॥ जिस स्थान पर जातिवाले प्राण हीन होकर सोये पड़ेथे, वे सब कृष्णजी के विरहसे दुःखित होते हुए छाती पीटते २ उस स्थान पर आये ॥ १७ ॥ देवकी, रोहिणी और वसुदेव पुत्र राम और कृष्ण

शोकार्त्ताविजहुःस्मृतिम् ॥ १८ ॥ प्राणांश्चविजहुस्तत्र भगवद्विरहातुराः । उपगुह्य
पतींस्तात चितामारुरुहुःस्त्रियः ॥ १९ ॥ रामपत्न्यश्चतद्देहमुपगुह्याग्निमाविशन् ।
वसुदेवपत्न्यस्तद्गात्रं प्रद्युम्नादीन्हरेःस्नुषाः । कृष्णपत्न्योऽविशन्नग्निं रुक्मिण्या
द्यास्तदात्मिकाः ॥ २० ॥ अर्जुनःप्रेयसःसख्युः कृष्णस्यविरहातुरः । आत्मानंसान्त्व
यामास कृष्णगीतैःसदुक्तिभिः ॥ २१ ॥ बन्धूनांनष्टगोत्राणामर्जुनःसाम्परायिकम् ।
हतानांकारयामास यथावदनुपूर्वशः ॥ २२ ॥ द्वारकांहरिणात्यक्तां समुद्रोऽप्लावय
त्क्षणात् । वर्जयित्वामहाराज श्रीमद्भगवदालयम् ॥ २३ ॥ नित्यंसन्निहितस्तत्र भ-
गवान्मधुसूदनः । स्मृत्याऽशेषाऽशुभहरं सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥ २४ ॥ स्त्रीबालवृद्धा
नादायहतशेषान्धनञ्जयः । इन्द्रप्रस्थंसमावेश्य वज्रंतत्राऽभ्यषेचयत् ॥ २५ ॥
श्रुत्वासुहृद्वधं राजन्नर्जुनात्तेपितामहाः । त्वांतुवंशधरंकृत्वा जग्मुःसर्वेमहापथम्
॥ २६ ॥ यएतद्देवदेवस्य विष्णोःकर्माणिजन्मच । कीर्त्तयेच्छ्रद्धयामर्त्यः सर्वपापैः
प्रमुच्यते ॥ २७ ॥ इत्थंहरेर्भगवतोरुचिरावतारवीर्याणि बालचरितानिचशन्तमानि ।
अन्यत्रचेहचश्रुतानि गृणन्मनुष्योभक्तिंपरांपरमहंसगतौलभेत ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकादशस्कन्धे एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

समाप्तोऽयमेकादशस्कन्धः ॥ ११ ॥

को न देख शोक से कातरहो मूर्च्छित होगये और उन्हों ने भगवद्विरह से कातर हो प्राण त्याग
दिये। हे वत्स ! सब स्त्रियें अपने २ स्वामियों का आलिंगनकर चितापर चढगई ॥ १८–१९ ॥
बलरामजी की स्त्रियों ने भी उनका आलिंगनकर अग्निमें प्रवेश किया । सब वसुदेव की स्त्रियें
उनके शरीरको और हरिके पुत्रोंकी बहुयें प्रद्युम्न आदिका आलिंगन कर२अग्निमें प्रवेश करगई।
रुक्मिणी आदि कृष्णात्मिका भी अग्नि में जल गई ॥ २० ॥ प्यारे सखा श्रीकृष्णजी के विरह
से कातर अर्जुन ने यथार्थ वाक्यों करके कृष्णगीतिद्वारा अपने को सांत्वनाकी ॥ २१ ॥ फिर
जिनके कुल समूल नष्टहोगये हैं ऐसे मरेहुए अपने बांधवों की पिंडोदकादि मृतक क्रिया अर्जुन
ने शास्त्रानुसार करवाई ॥ २२ ॥ हेमहाराज ! समुद्र ने भगवान् के श्रीयुक्त मंदिर के अतिरिक्त
हरि से छोड़ीहुई द्वारकाको तत्कालही डुबा दिया ॥ २३ ॥ मंदिर बचाने का यह कारण है कि–
भगवान श्रीकृष्णजी वहां सदैव विराजमान रहते हैं । उस मंदिर का स्मरण करनेसेही सब अ-
मङ्गलों का नाश होजाता है ॥ २४ ॥ अर्जुन मरने से बचेहुए स्त्री, बालक और वृद्धजनों को ले
इन्द्रप्रस्थ को गये और वहां वज्रको राज्याभिषेक किया ॥ २५ ॥ हेराजन् ! तुम्हारे पितामहों
ने अर्जुन के मुख से सुहृदों के बधको सुन तुमको सिंहासनपर बैठाय महाप्रस्थान यात्रा की ॥
२६ ॥ जो मनुष्य देव देव श्रीकृष्णजी के जन्म और कर्मों को कहे और सुनावेगा वह पापों से
छुटकारा पाजावेगा ॥ २७ ॥ भगवान हरि के ऐसे परम मंगलमय मनोहर अवतारों की कथा,
वीर्य और बाल्यचरित्रोंका जो कीर्तन करेगा वह श्रीकृष्णजीकी परम भक्तिको प्राप्तकरेगा ॥२८॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादश०सारस्वतवंशोद्भव पं०जगन्नाथात्मज कन्हैयालाल उपाध्यायकृत
सरलाभाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

समाप्तोऽयमेकादशस्कन्धः ॥ ११ ॥

श्रीमद्भागवत भाषाटीका सहित.

द्वादश स्कन्ध.

श्रीकृष्णायनमः॥ राजोवाच॥ स्वधामानुगतेकृष्णे यदुवंशविभूषणे । कस्यवं
शोऽभवत्पृथ्व्यामेतदाचक्ष्वमेमुने ॥१॥ श्रीशुकउवाच॥ योऽन्त्यःपुरंजयोनामभवि
ष्योबारहद्रथः । तस्यामात्यस्तुशुनकोहत्वास्वामिनमात्मजम् ॥ २ ॥ प्रद्योतसंज्ञं
राजानं कर्तायत्पालकःसुतः । विशाखयूपस्तत्पुत्रो भविताराजकस्ततः ॥ ३ ॥
नन्दिवर्धनस्तत्पुत्रःपञ्चप्रद्योतनाइमे । अष्टत्रिंशोत्तरशतंभोक्ष्यन्तिपृथिवींनृपाः
॥ ४ ॥ शिशुनागस्ततोभाव्यः काकवर्णस्तुतत्सुतः । क्षेमधर्मातस्यसुतः क्षेत्रज्ञः
क्षेमधर्मजः ॥५॥ विधिसारःसुतस्तस्याजातशत्रुर्भविष्यति । दर्भकस्तत्सुतोभावी
दर्भकस्याजयःस्मृतः ॥ ६ ॥ नन्दिवर्धनआजेयो महानन्दिःसुतस्ततः । शिशुनागाद
शैवैते षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ ७ ॥ समाभोक्ष्यन्तिपृथिवीं कुरुश्रेष्ठकलौनृपाः । महान
न्दिसुतोराजञ्छूद्रागर्भोद्भवोबली ॥ ८ ॥ महापद्मपतिःकश्चिन्नन्दःक्षत्रविनाशकृत् ।
ततोनृपाभविष्यन्ति शूद्रप्रायास्त्वधार्मिकाः ॥ ९ ॥ सएकच्छत्रांपृथिवीमनुल्लंघित
शासनः । शासिष्यतिमहापद्मो द्वितीयइवभार्गवः ॥ १० ॥ तस्यचाष्टौभविष्यन्ति
सुमाल्यप्रमुखाःसुताः । यइमांभोक्ष्यन्तिमहीं राजानःस्मशतंसमाः ॥ ११ ॥ नवन
न्दान्द्विजः कश्चित्प्रपन्नानुद्धरिष्यति । तेषामभावेजगतींमौर्या भोक्ष्यन्तिवैकलौ

राजा परीक्षित ने कहा—हे मुने ! यदुवंश विभूषण श्रीकृष्णजी जब निजधाम पधारगये तब पृथ्वीपर किसका वंशरहा, यह मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! अंतिम बृहद्रथ के वंशमें पुरंजय नामक एक राजा जन्म ग्रहण करेगा। उसका मंत्री शुनक उसको मारकर प्रद्योत नामक अपने पुत्रको राज सिंहासन पर बिठावेगा प्रद्योत का पुत्र पालक होगा । उसका पुत्र विशाखयूप, उससे राजक उत्पन्न होगा ॥ २—३ ॥ राजक से नंदिवर्द्धन उत्पन्नहोगा । यह प्रद्योतवंशी पांचराजा एकसौ अड़तीस वर्ष पृथ्वी का राज्य करेंगे ॥ ४ ॥ फिर शिशुनाग नामक राजा होगा । उसका पुत्र काकवर्ण; उसकाक्षेमधर्मा; उसकाक्षेत्रज्ञ पुत्रहोगा ॥ ५ ॥ उस का विधिसार होगा । विधिसार का पुत्र अजातशत्रु होगा । अजातशत्रु का तनय दर्भक; दर्भक का पुत्र अजय नाम से प्रसिद्ध होगा ॥ ६ ॥ अजय के नंदिवर्द्धन और उसके महानन्दि होगा । हे कुरुसत्तम ! यह दश शैशुनाग राजा के पुत्र कलिकाल में ३६० वर्ष पृथ्वी का पालन करेंगे ॥ हे राजन् ! महानन्दिका पुत्र शूद्राके गर्भ से उत्पन्न होगा ॥ ७ । ८ ॥ बलवान क्षत्रियोंकानाश करनेवाला नन्दनामक एक राजा होगा उसका दूसरा नाम महापद्म होगा । उसके उपरांत प्रायः सब शूद्र और अधार्मिक राजा उत्पन्नहोंगे॥ ९ ॥नन्दराजाकी आज्ञा अनुल्लंघनीयहोगी । यहमहापद्म भूपति दूसरे परशुराम की समान पृथ्वी पर एकछत्र राज्य करेगा ॥ १० ॥ सुमाल्य आदि उसके आठपुत्र उत्पन्नहोंगे । वे पुत्र सौ वर्ष तक पृथ्वी का राज्य करेंगे ॥ ११ ॥ चाणक्यनामक कोई ब्राह्मण नंदराजा और उसके आठों पुत्रों का नाशकरेगा । उनके न रहने से मौर्य कलियुग में

॥ १२ ॥ सएवचन्द्रगुप्तंवै द्विजोराज्येऽभिषेक्ष्यति । तत्पुत्रोवारिसारस्तु ततश्चाशो-
कवर्द्धनः ॥१३॥ सुयशाभवितातस्य संगतःसुयशःसुतः । शालिशूकस्ततस्तस्य
सोमशर्माभविष्यति ॥ १४ ॥ शतधन्वाततस्तस्य भविताबृहद्रथः । मौर्याह्येतेदश
नृपाः सप्तत्रिंशच्छतोत्तरम् ॥ १५ ॥ समाभोक्ष्यन्तिपृथिवीं कलौकुरुकुलोद्वह ।
अग्निमित्रस्ततस्तस्मात्सुज्येष्ठोऽथभविष्यति ॥१६॥ वसुमित्रोभद्रकश्च पुलिन्दोभ
वितातततः । ततोघोषःसुतस्तस्माद्वज्रमित्रोभविष्यति ॥ १७ ॥ ततोभागवतस्तस्मा
द्देवभूतिरितिश्रुतः । शुङ्गादशैतेभोक्ष्यन्ति भूमिंवर्षशताधिकम् ॥ १८ ॥ ततःकण्वा
निय़ंभूमिर्यास्यत्यल्पगुणान्नृप । शुङ्गंहत्वादेवभूतिं कण्वोऽमात्यस्तुकामिनम् ॥१९॥
स्वयंकरिष्यतेराज्यं वसुदेवोमहामतिः । तस्यपुत्रस्तुभूमित्रस्तस्य नारायणःसुतः
॥ २० ॥ काण्वायनाइमेभूमिं चत्वारिंशच्चपञ्च च । शतानित्रीणिभोक्ष्यन्ति वर्षाणा
ञ्चकलौयुगे ॥२१॥ हत्वाकण्वंसुशर्माणं तद्भृत्योवृषलोबली।गांभोक्ष्यत्यन्ध्रजातीयः
कञ्चित्कालमसत्तमः ॥ २२ ॥ कृष्णनामाऽथ तद्भ्राताभवितापृथिवीपतिः । श्रीशान्त
कर्णस्तत्पुत्रः पौर्णमासस्तुतत्सुतः ॥ २३ ॥ लम्बोदरस्तुतत्पुत्रस्तस्माच्चिबिलको
नृपः । मेघस्वातिश्चिबिलकादटमानस्तुतस्यच ॥ २४ ॥ अनिष्टकर्माहालेयस्तलक
स्तस्यचात्मजः । पुरीषभीरुस्तत्पुत्रस्ततो राजासुनन्दनः ॥ २५ ॥ चकोरोबहवोयत्र
शिवस्वातिररिन्दमः । तस्यापिगोमतीपुत्रः पुरीमान्भवितातततः ॥ २६ ॥ मेदशिराः
शिवस्कन्दोयज्ञश्रीस्तत्सुतस्ततः । विजयस्तत्सुतोभाव्यश्चन्द्रविज्ञः सलोमधिः
॥ २७ ॥ एतेत्रिंशन्नृपतयश्चत्वार्यब्दशतानिच । षट्पञ्चाशच्चपृथिवीं भोक्ष्यन्तिकुरु
नन्दन ॥ २८ ॥ सप्ताभीराआवभृत्या दशगर्दभिनोनृपाः । कङ्काःषोडशभूपाला

पृथ्वी का पालन करेंगे ॥ १२ ॥ चाणक्यद्वारा चन्द्रगुप्त राजगद्दी पर बैठेगा । चन्द्रगुप्त का पुत्र
वारिसार, उसका अशोकवर्द्धन पुत्रहोगा ॥ १३ ॥ उसका सुयशा; सुयशाकापुत्र संगत; उसका
पुत्र शालिशूक; शालिशूक का सोमशर्मा होगा ॥ १४ ॥ उसका पुत्र शतधन्वा और उसकाबृहद्रथ
होगा हे कुरुसुत ! यह मौर्यवंशी दशराजा कलिकाल में १३७ वर्ष राज्य करेंगे । तदनन्तर बृहद्रथ
का सेनापति पुष्पमित्र अपने स्वामी को मारकर शुंगवंशियों में प्रथम राजा होगा। पुष्पमित्र का
पुत्र अग्निमित्र और उसका सुज्येष्ठ नामक पुत्र होगा ॥ १५ । १६ ॥ सुज्येष्ठ के तीनपुत्र वसु-
मित्र, भद्रक और पुलिंद होंगे । पुलिंद के घोष; उससे वज्रमित्र उत्पन्न होगा ॥ १७ ॥ उससे
भागवत और भागवत से देवभूति उत्पन्नहोगा । यह दशशुंगवंशी राजा एकसौ बारह वर्ष राज्य
करेंगे ॥ १८ ॥ हेराजन् ! तदनन्तर यह पृथ्वी अल्पगुणवाले कण्वों के हाथमें आयगी । शुंगवंशी
कामी देवभूति को मारकर उसका मंत्री कण्वराज्यपर अधिकार करेगा । कण्वकापुत्र महामति
वसुदेव, उसकापुत्र भूमित्र; उसका नारायण नामक पुत्रहोगा ॥ १९—२० ॥ नारायणकापुत्र
सुशर्मा होगा यह ३४५ वर्ष पृथ्वी का राज्य करेंगे ॥ २१ ॥ सुशर्मा को मारकर उसका सेवक
बलिनामकशूद्र कुछ काल पृथ्वी पर राज्य करेगा ॥ २२ ॥ फिर उसका भाई कृष्णनामक राजा
होगा । उसका पुत्र श्रीशांतकर्ण उसका पौर्णमास होगा ॥ २३ ॥ उसका लम्बोदर होगा, उससे
चिबिलक, चिबिलक से मेघस्वाति, मेघस्वाति के अटमानहोगा ॥२४॥ उसकापुत्र अनिष्टकर्मा ; उसका
हालेय; उसका तलकहोगा उस तलककापुत्र पुरीषभीरु; उसका सुनन्दनपुत्रहोगा ॥ २५ ॥ उस
का चकोर; उसकापुत्र बटक होगा । उसकापुत्र अरातिजयी शिवस्वाति; उसका गोमती और
गोमती से पुरीमान उत्पन्नहोगा ॥ २६ ॥ उसकापुत्र मेद; उसका शिरा; उसका शिरस्कन्ध और
उसकापुत्र यज्ञश्री होगा । उस यज्ञश्रीकापुत्र विजय; उसका चन्द्रविज्ञ; और उसका लोमधिहोगा
॥ २७ ॥ हेकुरुनन्दन ! ये तीसराजा ४५६ वर्ष राज्य करेंगे ॥ २८ ॥ तदनन्तर अवभूति नाम

भविष्यन्ति षोडश भूपाः ॥ २९ ॥ ततोऽष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दश तुरुष्ककाः । भूयो
दश गुरुण्डाश्च मौना एकादशैव तु ॥ ३० ॥ एते भोक्ष्यन्ति पृथिवीं दश वर्षशतानि च
नवाधिकां च नवतिं मौना एकादश क्षितिम् ॥ ३१ ॥ भोक्ष्यन्त्यब्दशतान्यङ्ग त्रीणि तैः
संस्थिते ततः । किलिकिलायां नृपतयो भूतनन्दोऽथ वङ्गिरिः ॥ ३२ ॥ शिशुनन्दिश्च
तद्भ्राता यशोनन्दिः प्रवीरकः । इत्येते वै वर्षशतं भविष्यन्त्यधिकानि षट् ॥ ३३ ॥
तेषां त्रयोदश सुता भवितारश्च बाह्लिकाः । पुष्पमित्रोऽथ राजन्यो दुर्मित्रोऽस्य तथैव
च ॥ ३४ ॥ एककाला इमे भूपाः सप्तान्ध्राः सप्त कौशलाः । विदूरपतयो भाव्या निषधास्त
त एव हि ॥ ३५ ॥ मागधानां तु भविता विश्वस्फूर्जिः पुरंजयः । करिष्यत्यपरो वर्णान्पु
लिन्दयदुमद्रकान् ॥ ३६ ॥ प्रजाश्चाब्रह्मभूयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः । वीर्यवा
न्क्षत्रमुत्साद्य पद्मवत्यां स वै पुरि । अनुगङ्गमाप्रयागं गुप्तां भोक्ष्यति मेदिनीम् ॥ ३७ ॥
सौराष्ट्रावन्त्याभीराश्च शूरा अर्बुदमालवाः । व्रात्या द्विजा भविष्यन्ति शूद्रप्राया जना
धिपाः ॥ ३८ ॥ सिन्धोस्तटं चन्द्रभागां कौन्तीं काश्मीरमण्डलम् । भोक्ष्यन्ति शूद्रा
व्रात्याद्या म्लेच्छाश्चाब्रह्मवर्चसः ॥ ३९ ॥ तुल्यकाला इमे राजन्म्लेच्छप्रायाश्च भू-
भृतः । एतेऽधर्मानृतपराः फल्गुदास्तीव्रमन्यवः ॥ ४० ॥ स्त्रीबालगोद्विजघ्नाश्च पर
दारधनादृताः । उदितास्तमितप्राया अल्पसत्त्वाल्पकायुषः ॥ ४१ ॥ असंस्कृताः
क्रियाहीना रजसा तमसावृताः । प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरूपिणः ॥ ४२ ॥
तन्नाथास्ते जनपदास्तच्छीलाचारवादिनः । अन्योन्यतो राजभिश्च क्षयं यास्यन्ति
पीडिताः ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० द्वादशस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

नगरी में सात आभीर; दश गर्दभी और सोलह कंक नाम अति लोभी राजा होवेंगे ॥२९॥ तदनन्तर आठ यवन; चौदह तुरुष्क (तुरक) दश गुरुंड और ग्यारह मौन राजा होवेंगे ॥३०॥ ये आभीर से लेकर गुरूंड तक पैंसठ राजा १०९९ वर्ष पृथ्वीका पालन करेंगे । ग्यारह मौन राजा तीनसौ वर्षतक पृथ्वीका पालन करेंगे । उनके राज्य कालके उपरांत किलकिला नाम नगरी में वक्ष्यमाण राजा होंगे । पहिले भूतनन्द फिर वंगिरि फिर उसका भाई शिशुनंदि फिर उसके अनंतर यशोनंदि फिर प्रवीरक राजा होगा । ये राजा १०६वर्ष पृथ्वीका भोगकरेंगे ॥३१–३३॥ उन भूतनंद आदि पांचराजाओं के १३ पुत्र उत्पन्न होंगे वेसबहीत पुत्रबाह्लिक नाम से विख्यात होंगे फिरएक [illegible]त्र नाम राजाहोगा उसका दुर्मित्र नाम पुत्रहोगा ॥३४॥ अनंतर उस बाह्लिक वंशसे सात [illegible] और सात कौशल यह चौदह राजा और विदूरपति नैषधाधिपहो एकसमयमेंही राजा होंगे ॥ ३५ ॥ मागध वंशि[illegible] विश्वस्फूर्जि नाम राजाहोगा । यह पूर्वोक्त पुरंजय की समान अति प्रख्यात होगा । वह नीचपुलिन्द, यदु; और [illegible] आदि ब्राह्मणोंको म्लेच्छकरेगा ॥ ३६ ॥ बलवान मंदमति विश्वस्फूर्जि क्षत्रियोंको दूर करके पद्मावती[illegible] में अधिकांश तीनों वरणों के अतिरिक्त प्रजाको रक्खेगा । वह गंगाके द्वार (हरद्वार) से लेकर [illegible] पृथ्वीका राज्य करेगा ॥ ३७ ॥ सुराष्ट्र, अवन्ती, आभीर, शूर, अर्बुद और मालवदेशीय विप्रगण और [illegible] संस्कार रहित होकर प्रायःशूद्र होजावेंगे ॥ ३८ ॥ वेदाचार रहित व शूद्र, तथा संस्कार रहित म्लेच्छ सिन्धुतीर, चन्द्रभागा, कौन्ति और कश्मीर में राज्य करेंगे ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! प्रायः यह सबम्लेच्छ राजा एकही समयमें पृथ्वीका पालनकरेंगे । यह अधार्मिक; मिथ्या परायण; अल्पदाता; तीव्रकोपन, स्त्री, बालक, गो, द्विज, वधमें शंकारहित, परस्त्री और परधन में अभिलाषी होंगे । यह शीघ्र २ उदय और अस्त पातेहुए, अल्पायु, अल्प बलवाले, संस्कार रहित और क्रियाशून्य होंगे । इनको रज और तमोगुण अधिक होगा । यह राजरूपी म्लेच्छ प्रजाओंको दुःख देवेंगे । इनको वशवर्त्तीप्रजा परस्पर राजाओं द्वारा पीड़ित होकर नाशको प्राप्तहोंगी ॥

इति श्री मद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे सरलाभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया । कालेन बलिना राजन्नङ्क्ष्यत्यायुर्बलं स्मृतिः ॥ १ ॥ वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः । धर्मन्याय व्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ॥ २ ॥ दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके । स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि ॥ ३ ॥ लिङ्गमेवाश्रमख्यातावन्योऽन्यापत्तिकारणम् । अवृत्त्या न्यायदौर्बल्यं पाण्डित्ये चापलं वचः ॥ ४ ॥ अनाढ्यतैवासाधुत्वे साधुत्वे दम्भ एव तु । स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम् ॥ ५ ॥ दूरे वार्ययनं तीर्थं लावण्यं केशधारणम् । उदरंभरता स्वार्थः सत्यत्वे धार्ष्ट्यमेव हि ॥ ६ ॥ दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशोऽर्थे धर्मसेवनम् । एवं प्रजाभिर्दुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमण्डले ॥ ७ ॥ ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः । प्रजा हि लुब्धै राजन्यैर्निर्घृणैर्दस्युधर्मभिः ॥ ८ ॥ आच्छिन्नदारद्रविणा यास्यन्ति गिरिकाननम् । शाकमूलामिषक्षौद्रफलपुष्पाष्टिभोजनाः ॥ ९ ॥ अनावृष्ट्या विनङ्क्ष्यन्ति दुर्भिक्षकरपीडिताः । शीतवातातपप्रावृड्हिमैरन्योन्यतः प्रजाः ॥ १० ॥ क्षुत्तृड्भ्यां व्याधिभिश्चैव संतप्स्यन्ते च चिन्तया । त्रिंशद्विंशति वर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ॥ ११ ॥ क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलिदोषतः । वर्णाश्रमवतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् ॥ १२ ॥ पाषण्डप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु । चौर्यानृतवृथाहिंसानानावृत्तिषु वै नृषु ॥ १३ ॥ शूद्रप्रायेषु वर्णेषु च्छागप्रायासु धेनुषु । गृहप्रायेष्वाश्रमेषु यौनप्रायेषु बन्धुषु ॥ १४ ॥ अणुप्रायासु

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! तदनंतर बलवान काल के वश से धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, आयु, बल और स्मृतिका नाश होताजायगा ॥ १ ॥ कलिमें जो धनवान होगा वही कुलवान, आचारी और गुणवान कहाजायगा और बलवानही धर्मी और न्यायी माना जायगा ॥ २ ॥ स्त्री पुरुष के सम्बंध में कुल गोत्रका विचार न रहेगा, किंतु परस्पर का प्रेमही कारण रूपहोगा, लेन देनमें छल रहेगा, स्त्री और पुरुष की उत्तमता रतिकरने की कुशलता सेही मानी जायगी । ब्राह्मण पनमें केवल जनेऊही रहजायगा ॥ ३ ॥ आश्रम के पहिचानने में दण्ड और मृगचर्म आदि चिह्नही कारणरूप होवेंगे, निर्धनमनुष्य न्यायालयमें पराजितहोगा । बहुत बकवादी ही पण्डित कहा जायगा ॥ ४ ॥ निर्धनअसाधु, घमंडी साधू कहा जायगा, केवल स्वीकार क[illegible] ही विवाह का कारण होगा ; स्नानही अलङ्कार गिना जायगा ॥ ५ ॥ दूरका जलाशयही [illegible] सुन्दर केश रखनाही शोभा और पेट भरनाही पुरुषार्थ गिना जायगा । लुच्चाही सच्चा मानाजायगा ॥ ६ ॥ कुटुंबका पोषण चतुरता दिखाने के निमित्त और धर्म [illegible] यशकी प्राप्तिके निमित्त होगा । जब पृथ्वी इस प्रकार के दुष्टोंसे भर [illegible] ॥ तब ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्री और शूद्रों में जो बलवान होगा वही रा[illegible] लोभी, निर्दयी, चोरोंकी समान आचारण करने वाले राजा स्त्री [illegible] करेंगे । इस कारण प्रजा जंगल पहाडों में जाछिपेगी । वह कंदमूल फलमांस [illegible] आदि से प्राण धारण करेंगे ॥ ८ । ९ ॥ वर्षा न होवेगी इसप्रकार अकाल से पीड़ित हो बहुत मनुष्योंका नाश होजावेगा । ठंड, वायु, धूप, वर्षा, बर्फ और परस्पर के कलह से ॥ १० ॥ तथा भूख प्यास रोग और चिंता से सब पीडित होंगे, मनुष्योंकी परमायु केवल २० या ३० वर्षकी गिनी जायगी ॥ ११ ॥ प्राणियों के शरीर छोटे होने लगेंगे, मनुष्योंमें वर्णाश्रम शालियों का वेद मार्ग नाशहोजावेगा ॥ १२ ॥ धर्मके स्थान पर केवल पाखण्ड रह जायगा, राजा चोरकी समान होंगे, मनुष्योंके व्यवहार चोरी मिथ्या और वृथा हिंसा आदि नाना प्रकारके होंगे ॥ १३ ॥ सब वर्ण शूद्रकी समान होजांयगे, सब गायें बकरी की समान होवेंगी ; सब आश्रम घरके से रह जायगे विवाह सम्बंध से सम्बंधी ही आत्म बंधु होंगे ॥ १४ ॥ सब औषधियें क्षीण गुण रह

स्त्रोप्वोषु धामीप्रायेषुस्थास्नुषु । विद्युत्प्रायेषुमेघेषु शून्यप्रायेषुसद्मसु ॥ १५ ॥
इत्थंकलौगतप्रायेजनेतुखरधर्मणि । धर्मत्राणायसत्त्वेन भगवानवतरिष्यति ॥ १६ ॥
चराचरगुरोर्विष्णोरीश्वरस्याखिलात्मनः । धर्मत्राणायसाधूनां जन्मकर्मापवृत्तये
॥१७॥ शम्भलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्यमहात्मनः । भवनेविष्णुयशसः कल्किःप्रा
दुर्भविष्यति ॥ १८ ॥ अश्वमाशुगमारुह्य देवदत्तंजगत्पतिः । असिनासाधुदमनम-
ष्टैश्वर्यगुणान्वितः ॥ १९ ॥ विचरन्नाशुनाक्षोण्यां हयेनाप्रतिमद्युतिः । नृपलिङ्गच्छ-
दोदस्यून्कोटिशोनिहनिष्यति ॥ २० ॥ अथतेषांभविष्यन्ति मनांसिविशदानिवै ।
वासुदेवाङ्गरागातिपुण्यगन्धानिलस्पृशाम् ॥ २१ ॥ पौरजानपदानांवैहतेष्वखिलद-
स्युषु । तेषांप्रजाविसर्गश्च स्थविष्ठःसंभविष्यति । वासुदेवेभगवतिसत्त्वमूर्तौहृदि
स्थिते ॥ २२ ॥ यदाऽवतीर्णोभगवान्कल्किर्धर्मपतिर्हरिः । कृतंभविष्यति तदा प्र
जासूतिश्चसात्त्विकी ॥ २३ ॥ यदाचन्द्रश्चसूर्यश्चतथा तिष्यबृहस्पती । एकराशौ
समेष्यन्तितदाभवतितत्कृतम् ॥ २४ ॥ येऽतीतावर्तमानाये भविष्यन्तिचपार्थिवाः ।
तेतउद्देशतःप्रोक्ता वंशीयाःसोमसूर्ययोः ॥ २५ ॥ आरभ्यभवतोजन्म यावन्नन्दाऽ
भिषेचनम् । एतद्वर्षसहस्रंतुशतंपञ्चदशोत्तरम् ॥ २६ ॥ सप्तर्षीणांतुयौपूर्वौदृश्येते
उदितौदिवि । तयोस्तुमध्येनक्षत्रं दृश्यतेयत्समंनिशि ॥ २७ ॥ तेनैतऋषयोयुक्ता
स्तिष्ठन्त्यब्दशतंनृणाम् । तेत्वदीयेद्विजाःकाल अधुनाचाश्रितामघाः ॥ २८ ॥
विष्णोर्भगवतोभानुः कृष्णाख्योऽसौदिवंगतः । तदाऽविशत्कलिर्लोकं पापेयद्रम-
तेजनः ॥ २९ ॥ यावत्सपादपद्माभ्यां स्पृशन्नास्तेरमापतिः । तावत्कलिर्वैपृथिवीं
पराक्रान्तुंनचाशकत् ॥ ३० ॥ यदादेवर्षयःसप्त मघासुविचरन्तिहि । तदाप्रवृत्त-

---

जायगो, बादलोंमें बिजली बहुत चमकने लगेगी, इसप्रकार से जब कलियुग का अंत समय आ-
वेगा और मनुष्य गधे की समान आचरण करेंगे, तब धर्मके उद्धारार्थ भगवान सत्त्व गुणका
अवलंबन कर अवतीर्ण होंगे ॥ १५ । १६ ॥ चराचर के गुरु अंतर्यामी प्रभु विष्णु भगवान का
अवतार सत्पुरुषोंके धर्म की रक्षा और उनकी मुक्ति के निमित्त है ॥ १७ ॥ यह विष्णु भगवान
का कल्कि अवतार संभल ग्राममें द्विजवर विष्णुयशाके घरमें होगा ॥१८॥ अष्टऐश्वर्य गुणशाली
असाधुशासन, अपार ज्योतिवाले जगत्पति शीघ्रगामी देवदत्त घोड़ेपर चढ़कर पृथ्वीपर विचरण
करेंगे और राज चिह्न धारी कोटि २ दस्युओं को मारेंगे ॥ १९ । २० ॥ इस प्रकार से दस्युओं
के मारे जानेपर भगवानके श्रीअंग में लगाये हुए चन्दन आदिकी पवित्र सुगंध वाली पवन का
स्पर्श होतेही सब मनुष्योंके मन निर्मल होजायगे ॥ २१ ॥ सत्त्व मूर्त्ति भगवान वासुदेव के
हृदय में रहने से फिर उनके सतानोंकी वृद्धि होने लगेगी ॥ २२ ॥ धर्मराज भगवान कल्कि के
अवतार लेनेसे सत्ययुगका आरम्भ होगा उस समयकी प्रजा सात्त्विक होजावेगी ॥ २३ ॥ जब
सोम, सूर्य और बृहस्पति पुष्यनक्षत्र पर कर्क राशि में मिलेंगे उसी समय सत्ययुग का आ-
रम्भ होगा ॥ २४ ॥ चन्द्र और सूर्य सूर्यवंशीय भूत, वर्त्तमान और भविष्यत [illegible] हमसे
वर्णन किया ॥ २५ ॥ तुम्हारे जन्म से नन्दके राजगद्दीपर बैठने तक १११५ वर्ष बीतेंगे ॥ २६ ॥
आकाश में सप्तर्षियों का उदय होता है उनमें प्रथम उदयहुए दो ताराओं के बीच में दक्षिण
दिशा में समप्रदेश में रहाहुआ जो प्रत्येक अश्विनी आदि नक्षत्र रात्रि को देखने में आता है,
उन प्रत्येक नक्षत्रों से युक्त होकर लगभग मनुष्यों के १०० वर्ष तक ये सप्तर्षि रहते हैं ॥२७॥
॥ २८ ॥ तुम्हारे जन्म समय में यह सप्तर्षि मघानक्षत्र मे थे। भगवान श्रीकृष्णजीकी देह जबसे
स्वर्ग में गई है उसही समयसे कलियुगका आरम्भहुआहै । तभी से मनुष्य पापी होनेलगेहैं २९॥
जबतक भगवान के चरण कमल पृथ्वी पर रहे तबतक कलियुग पृथ्वी पर अपना पराक्रम नहीं

स्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ॥ ३१ ॥ यदा मघाभ्यो यास्यन्ति पूर्वाषाढां महर्षयः तदा नन्दात्प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥ ३२ ॥ यस्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाऽहनि । प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ॥ ३३ ॥ दिव्याब्दानां सहस्रान्ते चतुर्थे तु पुनः कृतम् । भविष्यति यदा नृणां मन आत्मप्रकाशकम् ॥ ३४ ॥ इत्येष मानवो वंशो यथा संख्यायते भुवि । तथा विट्शूद्रविप्राणां तास्ता ज्ञेया युगे युगे ॥ ३५ ॥ एतेषां नाममात्राणां पुरुषाणां महात्मनाम् । कथामात्रावशिष्टानां कीर्तिरेव स्थिता भुवि ॥ ३६ ॥ देवापिःशान्तनोर्भ्राता मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः । कलापग्राम आसाते महा योगबलान्वितौ ॥ ३७ ॥ ताविहैत्य कलेरन्ते वासुदेवानुशिक्षितौ । वर्णाश्रमयुतं धर्मं पूर्ववत्प्रथयिष्यतः ॥ ३८ ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् । अनेन क्रमयोगेन भुवि प्राणिषु वर्तते ॥ ३९ ॥ राजन्नेते मया प्रोक्ता नरदेवास्तथाऽपरे ॥ भूमौ ममत्वं कृत्वान्ते हित्वेमां निधनं गताः ॥ ४० ॥ कृमिविड्भस्मसंज्ञाऽन्ते राजनाम्नोऽपि यस्य च । भूतध्रुक्तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ ४१ ॥ कथं सेयमखण्डा भूः पूर्वैर्मे पुरुषैर्धृता । मत्पुत्रस्य च पौत्रस्य मत्पूर्वा वंशजस्य वा ॥ ४२ ॥ तेजोऽबन्नमयं कायं गृहीत्वात्मतयाऽबुधाः । महीं ममतया चोभौ हित्वाऽन्तेऽदर्शनं गताः ॥ ४३ ॥ येये भूपतयो राजन्भुञ्जन्ति भुवमोजसा । कालेन ते कृताः सर्वे कथामात्राः कथासु च ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द्वादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

प्रकाश करसका ॥ ३० ॥ जबसे सप्तर्षि मघानक्षत्र को भोगने लगे हैं तभी से देवताओं के १२०० वर्षवाले कलियुग का आरम्भ होचुका है ॥ ३१ ॥ जब महर्षिगण मघासे पूर्वाषाढ़ में आवेंगे उस समय नंद राजा होगा और उसही समयसे कलियुग का पराक्रमबढ़ने लगेगा ॥ ३२ ॥ जिस दिन से श्रीकृष्णजी स्वर्ग को गये हैं उसही दिन से कालियुग दिखाई दिया है; ऐसा भूत-काल के जाननेवाले विद्वान कहते हैं ॥ ३३ ॥ देवताओं के १२०० वर्ष के बीतने पर कलियुग बीतेगा और फिरसत्ययुग आवेगा । उस समय मनुष्योंके मन आत्म प्रकाशहोवेंगे ॥ ३४ ॥ जैसे पृथ्वी में मनु वंश के क्षत्रियों की स्थितियों का फेरफार कहागया उसही प्रकार युग २ में पृथ्वी पर वैश्य, शूद्र और ब्राह्मणों की उस २ अवस्था में उसी प्रकार से फेरफार होगा ॥ ३५ ॥ इस समय केवल महापुरुषों के नामही वार्त्ता मात्र में शेष रहगए हैं, इनकी केवल कीर्तिही पृथ्वीपर शेष है ॥ ३६ ॥ हेराजन् ! शांतनु का भाई देवापि और इक्ष्वाकु वंशीय राजा मरु महायोग के बलसे बलवानहो कलापग्राम में वास करते हैं ॥ ३७ ॥ यह दोनोंही भगवान् [illegible] उपदेश पाय पूर्ववत् वर्णाश्रम समन्वित धर्म का विस्तार करेंगे ॥ ३८ ॥ [illegible] त्रेता, द्वापर और कलियुग यह क्रमानुसार प्राणियों में प्रवर्तित होते हैं [illegible] ॥ हेराजन् ! मैंने जो चारों वर्णवालों का वर्णन किया वे तथा दूसरे [illegible] ममता को बांध अन्त में इसको छोड़कर नाशको प्राप्तहुए हैं [illegible] हैं अन्त में उनको भी कीड़े, विष्ठा और भस्म का नाम ग्रहण [illegible] । इस देह के निमित्त जो प्राणियों के हिंसक हैं वह अपने स्वार्थ को नहीं जानते ॥ ४१ ॥ प्राणियों की हिंसा करनेसेही नरक प्राप्त होता है । " मेरे पूर्व पुरुषों ने जिसका भोग कियाथा, इससमय मैं उसका भोग करताहूं ॥ ४२ ॥ मेरी इस भोगीहुई वस्तु को मेरे पुत्र प्रपौत्र किस प्रकार से भोगेंगे ! " राजा लोग इसप्रकार से पृथ्वी में ममता बांधते हैं । अन्न जलमयदेह को आत्म स्वरूप और पृथ्वी को अपना कहकर अन्त में अज्ञान लोग दोनों को छोड़ नाशकोप्राप्त हुए हैं ॥ ४३ ॥ हेराजन् ! जिन२राजाओं ने पराक्रम सहित पृथ्वी का भोग कियाथा-अन्तमेंकाल ने उन सबकी कथाही रखछोड़ी ॥ ४४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०द्वादश०सरलभाषाटीकायांद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच। दृष्ट्वात्मनि जये व्यग्रान्नृपान्हसति भूरियम् । अहो मा विजिगीषन्ति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ॥ १ ॥ काम एष नरेन्द्राणां मोघः स्याद्विदुषामपि । येन फेनोपमे पिण्डे येऽतिविश्रम्भिता नृपाः ॥ २ ॥ पूर्वं निर्जित्य षड्वर्गं जेष्यामो राजमन्त्रिणः । ततः सचिवपौरासकरीन्द्रानस्य कण्टकान् ॥ ३ ॥ एवं क्रमेण जेष्यामः पृथ्वीं सागरमेखलाम् । इत्याशाबद्धहृदया न पश्यन्त्यन्तिकेऽन्तकम् ॥ ४ ॥ समुद्रावरणां जित्वा मां विशन्त्यब्धिमोजसा । कियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम् ॥ ५ ॥ यां विसृज्यैव मनवस्तत्सुताश्च कुरूद्वह । गता यथागतं युद्धे तां मां जेष्यन्त्यबुद्धयः ॥ ६ ॥ मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातॄणां चापि विग्रहः । जायते ह्यसतां राज्ये ममताबद्धचेतसाम् ॥ ७ ॥ ममैवेयं मही कृत्स्ना न ते मूढेति वादिनः । स्पर्धमाना मिथो घ्नन्ति म्रियन्ते मत्कृते नृपाः ॥ ८ ॥ पृथुः पुरूरवा गाधिर्नहुषो भरतोऽर्जुनः । मान्धाता सगरो रामः खट्वाङ्गो धुन्धुहा रघुः ॥ ९ ॥ तृणबिन्दुर्ययातिश्च शर्यातिः शन्तनुर्गयः । भगीरथः कुवलयाश्वः ककुत्स्थो नैषधो नृगः ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपुर्वृत्रो रावणो लोकरावणः । नमुचिः शम्बरो भौमो हिरण्याक्षोऽथ तारकः ॥ ११ ॥ अन्ये च बहवो दैत्या राजानो ये महेश्वराः । सर्वे सर्वविदः शूराः सर्वे सर्वजितोऽजिताः ॥ १२ ॥ ममतां मय्यवर्तन्त कृत्वोच्चैर्मर्त्यधर्मिणः । कथावशेषाः कालेन ह्यकृतार्थाः कृता विभो ॥ १३ ॥ कथा इमास्ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषाम् । विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम् ॥ १४ ॥ यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः संगीयतेऽभीक्ष्ण

श्रीशुकदेवजी बोले कि—यह पृथ्वी अपने शरीर के ऊपर रहेहुए राजाओं को जयलोलुप देख यह कहकर हास्य करती है,—अहो ! यमराज की क्रीड़ा पुतली राजा लोग मुझे जीतना चाहते हैं ॥ १ ॥ जो राजा और पण्डित इसफेन की समान देह में विशेष विश्वास स्थापन करते हैं, उन्हीं की कामना व्यर्थ होती है ॥ २ ॥ उनकी यही आशा रहती है कि पहिले कामादि शत्रुओं को जीतकर राजमंत्री आदि को वश करेंगे तदनन्तर अमात्य, पुरवासी, आत्मीय, हस्ती, फिर शत्रुओं को जीतेंगे ॥ ३ ॥ इसप्रकार समुद्ररूप मेखलावाली पृथ्वीको जीतलेंगे ।" वे अपने निकट रहेहुए काल को नहीं देखपाते ॥ ४ ॥ कितनोंही ने पराक्रम से सागर सहित मुझको जीतकर समुद्र में प्रवेश किया; किंतु आत्मजय के पक्ष में यह कुछभी नहीं है आत्मजय का फल मुक्तिही है ॥५॥ मनु और उसके पुत्रभी मुझको छोड़कर परमधामको चलेगये फिर मूढ़बुद्धि मनुष्य मुझे युद्धमें जीतने की इच्छा करते हैं ॥ ६ ॥ मेरी ममताद्वारा राज्य में बद्धचित्त असाधु पितापुत्र में और भाई २ में कलह उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥ मेरेही निमित्त समस्त मूढ़ राजा 'मेरी है तेरीनहीं' यह कहते हुए परस्पर लड़कर नाश होगये और नाश होतेरहते हैं ॥ ८ ॥ पृथु, पुरूरवा, गाधि, भरत, नहुष, अर्जुन, मांधाता, सगर, राम, खट्वांग, धुंधुहा, रघु ॥ ९ ॥ तृणबिंदु, ययाति, शर्याति, शांतनु, गय, भगीरथ, कुवलयाश्व, ककुत्स्थ, नल, नृग ॥ १० ॥ और हिरण्यकशिपु वृत्र, मनुष्योंको भयदेने वाला रावण, नमुचि, शम्बर, भौम, हिरण्याक्ष, तारक ॥ ११ ॥ और दूसरे भी अनेक राजा और दैत्य जोमेरे स्वामीथे वे सबही सर्वज्ञ वीर, और सर्वजेता थे ॥ १२ ॥ तोभी मुझमें दृढ ममता बांधकर अंतमें मृत्युको प्राप्तहुए, जिनकी इच्छाएं पूर्ण नहीं हुईं ऐसे इन लोगोंको काल ने केवल कहने मात्रमें रखदिया है ॥ १३ ॥ हे राजन् ! मरेहुए त्रिलोक यशस्वी महत मनुष्यों की कथा मैंने कही । यह केवल विज्ञान और वैराग्य की प्रतिपादक और वाणी की विलास रूपा है पारमार्थ की नहीं हैं ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णजीके भक्ति पूर्वक अमंगल हारक गुणानुवादोंका बारंबार

मंगलम्नः । तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः ॥ १५ ॥ राजोवाच । केनोपायेन भगवन्कलेर्दोषान्कलौ जनाः । विधमिष्यन्त्युपचितांस्तन्मे ब्रूहि यथामुने ॥ १६ ॥ युगानियुगधर्मांश्च मानप्रलयकल्पयोः । कालस्येश्वररूपस्य गतिं विष्णोर्महात्मनः ॥१७॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः । सत्यंदयातपो दानमिति पादाविभोर्नृप ॥ १८ ॥ संतुष्टाःकरुणामैत्राः शान्तादान्तास्तितिक्षवः । आत्मारामाःसमदृशः प्रायशःश्रमणाजनाः ॥ १९ ॥ त्रेतायांधर्मपादानां तुर्यांशोहीयतेशनैः । अधर्मपादैरनृतहिंसाऽसंतोषविग्रहैः ॥ २० ॥ तदा क्रियातपोनिष्ठा नातिहिंस्रानलम्पटाः । त्रैवर्गिकास्त्रयीवृद्धावर्णाब्रह्मोत्तरानृप॥२१॥ तपःसत्यदयादानेष्वर्धं ह्रस्वतिद्वापरे । हिंसातुष्ट्यनृतद्वेषैर्धर्मस्याधर्मलक्षणैः॥२२॥ यशस्विनोमहाशीलाः स्वाध्यायाध्ययनेरताः । आढ्याःकुटुम्बिनोहृष्टा वर्णाः क्षत्रद्विजोत्तराः ॥ २३ ॥ कलौतुधर्महेतूनां तुर्यांशोऽधर्महेतुभिः । एधमानैःक्षीयमाणो ह्यन्तेसोपि विनङ्क्ष्यति ॥ २४ ॥ तस्मिन्लुब्धादुराचारा निर्दयाः शुष्कवैरिणः । दुर्भगाभूरितर्षाश्च शूद्रदासोत्तराःप्रजाः ॥ २५ ॥ सत्त्वंरजस्तमइति दृश्यन्तेपुरुषेगुणाः । कालसंचोदितास्तेवै परिवर्तन्तआत्मनि ॥ २६ ॥ प्रभवन्तियदासत्त्वे मनोबुद्धीन्द्रियाणिच । तदाकृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसियद्रुचिः ॥२७॥ यदाधर्मार्थकामेषु भक्तिर्भवतिदेहिनाम् । तदात्रेतारजोवृत्तिरिति जानीहिबुद्धिमन् ॥ २८ ॥ यदा लोभस्त्वसंतोषो मानोदम्भोऽथमत्सरः । कर्मणांचापिकाम्यानां द्वापरंतद्रजस्तमः

कहना और सुननाही पारमार्थिक कथा है ॥ १५ ॥ राजाने कहा—हे भगवान् ! मनुष्योंको कलिके बढ़ेहुए पापोंका किसप्रकार नाश करना चाहिये, यह मुझसे भलीप्रकार कहियेगा ॥ १६ ॥ युग और युगधर्म, संहार काल और स्थिति कालका परिमाण, तथा ईश्वर रूपी काल व महात्मा विष्णुजीकी गति कहिये ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि सत्ययुग, सत्य, दया, तपस्या और अभय दान इन चतुष्पाद धर्मों से अनुष्ठित होता रहता है सत्ययुग के मनुष्य प्रायः सन्तुष्ट, दयावान, मैत्रीयुक्त, शांत, पाखण्ड रहित, क्षमावान, आत्माराम, समदर्शी और आत्माभ्यासयुक्त होते हैं ॥ १८-१९ ॥ त्रेतामें एक पदक्षीण होता है उस समय मनुष्य मिथ्या, हिंसा और कलह में रत होते हैं ॥ २० ॥ उस समय मनुष्योंकी क्रिया कलापमें और तप जपमें आसक्ति होती है । उस समय हिंसा और लम्पटता का परिमाण कमहोता है,—अर्थ, धर्म, काम में रत और वेद वेत्ता ब्राह्मणों की संख्याही अधिक होती है ॥ २१ ॥ द्वापर में अधर्म के पाद मिथ्या, हिंसा, असंतोष और कलह द्वारा, धर्मके पाद तपस्या, सत्य, दया और अभय दानके बीचमें आधे२ न्यून होजाते हैं ॥ २२ ॥ उस समय ब्राह्मण और क्षत्री प्रधान मानेजाते हैं । यह तपोनिष्ठ, महत् चारित्र वाले, वेद पाठमें रत धनाढ्य, कुटुंबी और आनंदितहोते हैं ॥ २३ ॥ कलिमें धर्मके चरणोंका चौथाभाग शेषरहता है । अधर्म के कारण वृद्धि पाकर उसके द्वारा क्षीणहोता हुआ अंतमें उसका भी नाश होजाता है ॥ २४ ॥ उस समय शूद्र और दास उत्तम मानेजाते हैं । यह लोभी, दुराचारी, दया रहित, अनर्थ, बकेड़िये, हतभाग्य और अत्यंत ईर्षा रखने वाले होते हैं ॥ २५ ॥ पुरुष में सत्व, रज और तमये तीनगुण दिखाई देते हैं किजो समस्त कालसे प्रेरितहो आत्मा में प्रवर्तित होते रहते हैं ॥ २६ ॥ मन, बुद्धि और इन्द्रियों के सत्वगुण में अधिकतर प्रवृत्त रहने पर सत्ययुग जानना चाहिये । इसही से ज्ञान और तपस्या में रुचिहोती है ॥२७॥ काम्य कर्मोंमें प्राणियों की भक्ति उत्पन्न होवेतो रजोवृत्ति प्रधान त्रेतायुग जानना चाहिये ॥ २८ ॥ जिस समय लोभ, असंतोष, अभिमान, दंभ, मात्सर्य और काम्यकर्म सबही में भक्तिरहे उस समय रजस्तम प्रधान

॥ २९ ॥ यदामायानृतंतन्द्रा निद्राहिंसा विषादनम् । शोकोमोहोभयंदैन्यं सकलि स्तामसःस्मृतः ॥ ३० ॥ यस्मात्क्षुद्रदृशोमर्त्याः क्षुद्रभाग्यामहाशनाः ॥ कामिनो वित्तहीनाश्च स्वैरिण्यश्च स्त्रियोऽसतीः ॥ ३१ ॥ दस्यूत्कृष्टाजनपदा वेदाःपाषण्ड दूषिताः । राजानश्चप्रजाभक्षाः शिश्नोदरपरा द्विजाः ॥ ३२ ॥ अव्रतावटवोऽशौचा भिक्षवश्चकुटुम्बिनः । तपस्विनोग्रामवासा न्यासिनोत्यर्थलोलुपाः ॥ ३३ ॥ ह्रस्वका यामहाहारा भूर्यपत्यागतह्रियः । शश्वत्कटुकभाषिण्यश्चौर्यमायोरुसाहसाः ॥ ३४ ॥ पणयिष्यन्तिवैक्षुद्राः किराटाःकूटकारिणः । अनापद्यपिमंस्यन्ते वार्तांसाधु जुगुप्सिताम् ॥ ३५ ॥ पतिंत्यक्ष्यन्तिनिर्द्रव्यं भृत्या अप्यखिलोत्तमम् । भृत्यं विपन्नंपतयः कौलं गाश्चापयस्विनीः ॥ ३६ ॥ पितृभ्रातृसुहृज्ज्ञातीन्हित्वा सौरतसौहृदाः । ननान्दृश्यालसंवादाः दीनाः स्त्रैणाःकलौनराः ॥ ३७ ॥ शूद्राःप्रतिग्रहीष्यन्ति तपोवेषोपजीविनः । धर्मंवक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ॥ ३८ ॥ नित्यमुद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकर्शिताः । निरन्नेभूतले राजन्नानावृष्टिभयातुराः ॥ ३९ ॥ वासोऽन्नपानशयनव्यवायस्नानभूषणैः ॥ हीनाःपिशाचसंदर्शा भविष्यन्तिकलौ प्रजाः ॥ ॥ ४० ॥ कलौकाकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्यत्यक्तसौहृदाः ॥ त्यक्ष्यन्तिच प्रियान्प्राणान्हनिष्यन्ति स्वकानपि ॥ ४१ ॥ नरक्षिष्यन्तिमनुजाः स्थविरौपितरावपि । पुत्रान्सर्वार्थकुशलान्क्षुद्राः शिश्नोदरंभराः ॥ ४२ ॥ कलौनराजंजगतांपरंगुरुं त्रैलोक्यनाथानतपादपङ्कजम् । प्रायेणमर्त्या भगवन्तमच्युतं यक्ष्यन्ति पाषण्डविभिन्नचेतसः ।

द्वापरयुग जानना चाहिये ॥ २९ ॥ जब छल, मिथ्या, आलस्य, निद्रा, हिंसा, दुःख, शोक, मोह, भय और दीनता देखपड़े तब समझना चाहिये कि यह तमः प्रधान कलि है ॥ ३० ॥ उसके प्रभाव से मनुष्य नीचदृष्टि, मंदभागी, अधिक भोजन करने वाले, कामी और निर्धन होंगे तथा स्त्रियें व्यभिचारिणी होवेंगी ॥ ३१ ॥ सब नगर डाकुओं से परिपूर्ण और पाखण्डों से कलङ्कित होंगे ; राजा प्रजा का रक्त चूसें गे ; ब्राह्मण उपस्थ तथा उदर केही काममें तत्पर रहेंगे ॥ ३२ ॥ ब्रह्मचारी शौचरहित होवेंगे ; सब कुटुम्बी भिखारी होजांयगे सबही तपस्वी गांववासी और सन्यासी धनके लोभी होवेंगे ॥ ३३ ॥ स्त्रियें शरीर में छोटी होंगी—अधिकभोजन लेवाली तथा अधिक संतान उत्पन्न करनेवाली होंगी—कडवी बातें कहेंगी चोरी के काम और [illegible]में अधिक साहसवती होंगी लज्जा न रहेगी ॥ ३४ ॥ नीचाशय और ठग बनिये लेन देन करेंगे सब लोग विपत्ति कालके विनाभी निंदित जीविकाको उत्तम मानेंगे ॥ ३५ ॥ सर्वोत्तमहोने परभी स्वामीके निर्द्धन होनेपर सेवक उसको छोडदेवेंगे । ऐसेही स्वामी नौकर को उसपर आपदा आपडनेसे उसके पुराने परम्परासे होनेपरभी छोडदेंगे तथा दुग्धरहित गायकोभी त्यागदेंगे ॥ ३६ ॥ कलिमें मनुष्यों की स्त्रियें लोलुपता और दीनता बढेगी और उनका सौहार्द सुरत मूलक होगा । जोकुछ सम्मति लेनीहोगी वह स्त्री और साले सालियों से लीजायगी ॥ ३७ ॥ शूद्र तपस्वियों का वेष बनाकर दान लेवेंगे । धर्मके न जानने वाले मनुष्य उत्तम मनुष्योंका आसन ग्रहणकर धर्म कथा कहेंगे ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! कलिमें अन्न रहित प्रजाओंका मन अत्यंत उद्विग्न रहेगा । वे दुर्भिक्ष से कष्ट पावेंगे; सबही अनावृष्टि के भयसे कातर होंगे ॥ ३९ ॥ वस्त्र, अन्न, पान, शय्या, व्यवहार, स्नान और आभूषण रहितहो वह पिशाचों का रूप धारण करेंगे ॥ ४० ॥ केवल कौसकौड़ी के निमित्त झगडाकर सुहृदताको छोड़ प्यारे प्राण आत्मीय जनोका नाश करेंगे ॥ ४१ ॥ मनुष्य नीच प्रवृत्ति और शिश्नोदर परायणहो वृद्ध पिता, माता, पुत्र और सत्कुल में उत्पन्न हुई स्त्री काभीभरण पोषण न करेंगे ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! त्रिलोकीके अधिपति भी जिनके चरण कमलको प्रणाम करते है,-कलिमें अधिक मनुष्य पाखण्ड द्वारा विकल चित्तहो सब जगतके परमगुरु उन

॥ ४३ ॥ यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः पतन्स्खलन्वा विवशो गृणन्पुमान् । विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ॥ ४४ ॥ पुंसां कलिकृतान्दोषान्द्रव्यदेशात्मसंभवान् । सर्वान्हरति चित्तस्थो भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ ४५ ॥ श्रुतः संकीर्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोपि वा । नृणां धुनोति भगवान्हृत्स्थो जन्मायुताशुभम् ॥ ४६ ॥ यथा हेम्नि स्थितो वह्निर्दुर्वर्णं हन्ति धातुजम् । एवमात्मगतो विष्णुर्योगिनामशुभाशयम् ॥४७॥ विद्यातपःप्राणनिरोधमैत्रीतीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः । नात्यन्तशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते ॥ ४८ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्हृदिस्थं कुरु केशवम् । म्रियमाणो ह्यवहितस्ततो यासि परां गतिम् ॥ ४९ ॥ म्रियमाणैरभिध्येयो भगवान्परमेश्वरः । आत्मभावं नयत्यङ्ग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः ॥ ५० ॥ कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः । कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥ ५१ ॥ कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः । द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ कालस्ते परमाण्वादिर्द्विपरार्धावधिर्नृप । कथितो युगमानं च शृणु कल्पलयावपि ॥ १ ॥ चतुर्युगसहस्रं च ब्रह्मणो दिनमुच्यते । स कल्पो यत्र मनवश्चतुर्दश विशांपते ॥ २ ॥ तदन्ते प्रलयस्तावान्ब्राह्मी रात्रिरुदाहृता । त्रयो

भगवान की पूजा न करेंगे ॥ ४३ ॥ मरता हुआ, आर्त्त, पतित, स्खलित व विवश होकर केवल जिनके नामही लेने से कर्मरूप बंधन से छुटकारा पाकर मनुष्य उत्तमगति प्राप्त करते हैं कलियुग में मनुष्य उनकी पूजा न करेंगे ॥ ४४ ॥ जब भगवान पुरुषोत्तम में चित्तलगता है तबही मनुष्यों के कलि तथा द्रव्य, देश और आत्मा से उत्पन्न हुए समस्त दोष दूरहोते हैं ॥ ४५ ॥ हृदयमें स्थित श्रीभगवानका श्रवण,कीर्त्तन,ध्यान,पूजन और आदर करनेसे मनुष्योंके दश हजार वर्षके पाप नष्ट होजाते हैं ॥ ४६ ॥ जैसे अग्निधातु सम्बन्धी सुवर्ण की मलीनताको नाश करता है वैसेही चित्त स्थित भगवान विष्णुजी योगियों की अशुभ वासनाओंको दूर करते हैं ॥ ४७ ॥ श्रीभगवान के हृदय में प्राप्त होने से अन्तःकरण जिसप्रकार की शुद्धिको प्राप्त करता है,—देवताओं की उपासना, तपस्या, प्राणायाम, मित्रता, तीर्थस्नान, तप, दान, और जपद्वारा भी उस प्रकार की शुद्धि नहीं प्राप्त होती ॥ ४८ ॥ अतएव हे राजन् ! काय मनोवाक्य से हरिको हृदय में धारणकरो; उनको हृदय में धारण करने से मुक्ति चाहने से वाला मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! जिसकी मृत्यु निकट आजाय उसको सर्वात्मा, सर्वप्रिय भगवान का ध्यान करना चाहिये, क्योंकि भगवान का ध्यान करने हरि उसको अपना स्वरूप देते हैं ॥ ५० ॥ यद्यपि कलियुग दोषों की खान है तौभी उसमें एक महागुण यह है कि मनुष्य केवल भगवान के नामोच्चारण सेही मुक्त बंधनहो भगवानको प्राप्त करता है ॥ ५१ ॥ सत्ययुग में भगवान के ध्यान से, त्रेतामें यज्ञों द्वारा पूजन से, द्वापरमें पूजन करने से और कलिमें नामोच्चारण सेही मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ५२ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेद्वादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हेमहाराज ! तुम्हारे पूछनेके अनुसार परमाणु आदिकरके द्विपरार्द्ध पर्यंत काल और युगके परिमाणको तुमसे कहा अबकल्प और लयके विषयको सुनो ॥ १ ॥ चार सहस्र युगमें ब्रह्माका एक दिनहोता है जिसमें चौदह मनुक्रम २ से उत्पन्न होते रहते हैं, इसी ब्रह्माके दिनको कल्प कहते हैं ॥ २ ॥ इस दिनके अंतमें चार सहस्र युगके परिमाण वाली ब्रह्माजी की

त्रैलोक्याह्मेतत्र कल्पान्तेप्रलयायहि ॥ ३ ॥ एषनैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयोयत्रविश्वसृक् । शेतेऽनन्तासनो विश्वमात्मसात्कृत्य चात्मभूः ॥ ४ ॥ द्विपरार्द्धेत्वतिक्रान्ते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । तदाप्रकृतयःसप्तकल्पन्तेप्रलयायवै ॥ ५ ॥ एषप्राकृतिकोराजन्प्रलयो यत्रलीयते । आण्डकोशस्तुसंघातो विघातउपसादिते ॥ ६ ॥ पर्जन्यःशतवर्षाणि भूमौराजन्नवर्षति । तदानिरन्नेह्यन्योन्यं भक्षमाणा क्षुधार्दिताः ॥ ७ ॥ क्षययास्यन्तिशनकैः कालेनोपद्रुताःप्रजाः । सामुद्रंदैहिकंभौमं रसंसांवर्तकोरविः ॥ ८ ॥ रश्मिभिःपिबतेघोरैः सर्वंनैवविमुञ्चति । ततःसंवर्तकोवह्निः संकर्षणमुखोत्थितः ॥ ९ ॥ दहत्यनिलवेगोत्थः शून्यान्भूविवरानथ । उपर्यधःसमन्ताच्च शिखाभिर्वह्निसूर्ययोः ॥ १० ॥ दह्यमानंविभात्यण्डं दग्धगोमयपिण्डवत् । ततःप्रचण्डपवनो वर्षाणामधिकंशतम् ॥ ११ ॥ परःसांवर्तकोवाति धूम्रंखंरजसावृतम् । ततोमेघकुलान्यङ्गचित्रवर्णान्यनेकशः ॥ १२ ॥ शतंवर्षाणिवर्षन्तिनदन्तिरभसस्वनैः । ततएकोदकंविश्वंब्रह्माण्डविवरान्तरम् ॥ १३ ॥ तदाभूमेर्गन्धगुणं ग्रसन्त्यापउदप्लवे । ग्रस्तगन्धातुपृथिवीप्रलयत्वायकल्पते ॥१४॥अपांरसमथोतेजस्ता लीयन्तेथनीरसाः । ग्रसतेतेजसोरूपंवायुस्तद्रहितंतदा ॥ १५ ॥ लीयतेचानिलेतेजो वायोःखंग्रसते गुणम् । सवैविशतिखंराजंस्ततश्चनभसोगुणम् ॥१६॥ शब्दंग्रसति भूतादिर्नभस्तमनुलीयते । तैजसश्चेन्द्रियाण्यङ्ग देवान्वैकारिकोगुणैः ॥ १७ ॥ महान्ग्रसत्यहंकारंगुणाः सत्त्वादयश्चतम् । ग्रसतेऽव्याकृतं राजन्गुणान्कालेनचोदितम् ॥ १८ ॥

रात्रिहोती है जिसे प्रलय कहते हैं उसही प्रलय में त्रिलोकी लीनहोती है ॥३॥ इस प्रलयको नैमित्तिक प्रलय कहते हैं । इसमें विश्वकर्त्ता भगवान त्रिलोकी में अपनेको लीनकर शेष नागपर शयनकरते हैं ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी की आयुके दोनों परार्द्ध बीतनेपर सातों प्रकृतियें लीन होजाती है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! यह प्राकृतिक प्रलयहै । इसमें विघातका कारण उपस्थित होने से महदादि का कार्यभूत ब्रह्माण्ड भी लयपाता है ॥ ६ ॥ हे राजन् ! जब यह प्रलय होगा तब पृथ्वीपर सौ वर्षतक पानी न वरसेगा । उससमय कालसे उपद्रव ग्रस्तप्रजा अन्नहीन पृथ्वीपर क्षुधासे कातर हो एक दूसरेको भक्षणकर धीरे २ क्षयपाती रहेगी । प्रलय कालका सूर्य अपनी किरणों द्वारा समुद्र का देहके और पृथ्वीके समस्त रसको खींचलेगा फिरपीछेन छोडेगा । तदनंतर शेषभगवान के मुखसे निकला हुआ प्रलय कालका अग्नि वायुके वेगसे पृथ्वीके सब विवरोंको जलादेगा । ब्रह्माण्ड ऊपर और नीचेचारों ओर सूर्य और अग्निकी ज्वालासे जलकर जलेहुए कण्डेकी समान प्रतीतहोगा तदनंतर प्रलय कालकी प्रचण्डवायु सौवर्षमे कुछअधिक समयतक चलेगी ॥ ७—११॥ फिर आकाश धूलसे ढककर धूम्र वर्णका होजायगा । हे राजन् ! तदनंतर नानारंग और नाना प्रकार के बादल एकसौ वर्षतक घोर गर्जन करके बरसते रहेंगे ॥ १२ ॥ फिर ब्रह्माण्ड के भीतर में प्रविष्ट हुआ विश्व एकार्णवी भूत सागर के जलमें डूबजायगा ॥ १३ ॥ जलके द्वारा प्लावित होनेपर जलमें पृथ्वीका गुणगंध लीन होजावेगा । गंधके नाश होनेपर पृथ्वी प्रलय के योग्यहोगी ॥ १४ ॥ तदनंतर तेजमें जलकारस लीनहोगा तब वह रसहीन होकर लय पावेगा । अनंतर तेज के रूपको वायु निगल जायगी तब रूपरहित तेज वायुमें लीनहोगा । हेराजन् ! आकाशमें वायुका गुण लीनहोने से वह वायु आकाश में प्रविष्ट होगी ॥ १५—१६ ॥ तदुपरांत तामस अहंकार में आकाशका गुण शब्दलय पावेगा; तत्पश्चात आकाश विलीन होगा । हे कुरुश्रेष्ठ ! तैजस अहंकार इन्द्रियोंको और वैकारिक अहंकार शक्तियों समेत देवताओं का ग्रास करेगा ॥ १७ ॥ महत्तत्व द्वारा अहंकार और सत्वादि गुणोंद्वारा महत्तत्व ग्रस्तहोगा । हे राजन् ! प्रकृति, काल द्वारा प्रेरित

नतस्यकालावयवैः परिणामादयोगुणाः । अनाद्यनन्तमव्यक्तं नित्यंकारणमव्ययम्
॥ १९ ॥ नयत्रवाचोनमनोनसत्त्वं तमोरजोवामहदादयोऽमी । नप्राणबुद्धीन्द्रियदे
वतावा नसन्निवेशःखलुलोककल्पः ॥ २० ॥नस्वप्नजाग्रन्नचतत्सुषुप्तं नखंजलंभूर-
निलोऽग्निरर्कः । संसुप्तवच्छून्यवदप्रतर्क्यं तन्मूलभूतंपदमामनन्ति ॥२१॥ लयः
प्राकृतिको ह्येषपुरुषाव्यक्तयोर्यदा । शक्तयःसंप्रलीयन्ते विवशाःकालविद्रुताः
॥ २२ ॥ बुद्धीन्द्रियार्थरूपेण ज्ञानंभातितदाश्रयम् । दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्यामाद्यन्त
वदवस्तुयत् ॥२३॥ दीपश्चक्षुश्चरूपंच ज्योतिषोनपृथग्भवेत् । एवंधीःखानिमात्राश्च
नस्युरन्यतमादृतात् ॥ २४ ॥ बुद्धेर्जागरणंस्वप्नः सुषुप्तिरितिचोच्यते । मायामात्र
मिदंराजन्नानात्वंप्रत्यगात्मनि ॥ २५ ॥ यथाजलधराव्योम्नि भवन्तिनभवन्तिच ।
ब्रह्मणीदंतथाविश्वमवयव्युदयाप्ययात् ॥ २६ ॥ सत्यंह्यवयवःप्रोक्तः सर्वावयवि-
नामिह । विनार्थेनप्रतीयेरन्पटस्येवाङ्गतन्तवः ॥ २७॥ यत्सामान्यविशेषाभ्यामुपल
भ्येतसभ्रमः।अन्योन्यापाश्रयात्सर्वमाद्यन्तवदवस्तुयत्॥२८॥विकारःख्यायमानोपि
प्रत्यगात्मानमन्तरा । ननिरूप्योऽस्त्यणुरपि स्याच्चेच्चित्समआत्मवत् ॥ २९ ॥
नहिसत्यस्यनानात्वमविद्वान्यदिमन्यते । नानात्वंछिद्रयोर्यद्वज्ज्योतिषोर्वातयोरिव
॥ ३० ॥ यथाहिरण्यंबहुधासमीयते नृभिःक्रियाभिर्व्यवहारवर्त्मसु । एवंवचोभिर्भ
गवानधोक्षजो व्याख्यायतेलौकिकवैदिकैर्जनैः ॥ ३१ ॥ यथाघनोऽर्कप्रभवोऽर्कद-

हो सब गुणोंका ग्रासकरेगी । इसप्रकृतिका लय नहींहोता॥१८॥कालके अवयवोंसे उसमें कुछभी विकार नहींहोता, वह सबकी कारणरूपहै इसहीसे वह अनादि,अनत,अस्तित्वके विकारोंसे रहित, सर्वदाही एकरूप और अपक्षय शून्यहै ॥१९॥ उसमें वाक्य,मन,सत्व,तम,रज,महत्तत्वादि,प्राण, बुद्धि, इन्द्रियोंके देवता कुछभी नहीं है ॥ २० ॥ जगत् रूप रचना,स्वप्न,जागरण,सुषुप्ति,आकाश, जल, पृथ्वी,वायु, अग्नि, सूर्य कुछभी नहीं है;—वह मानो घोर निद्रित, मानो शून्य;–अप्रतर्क्यहै वही सर्वजगत की मूल रूप तत्व कहलाती है ॥२१॥ यह माया अन्तमें रहने रूप प्राकृतिक प्रलय कहागया इसही प्रलय में प्रकृति और पुरुष की शक्तियें कालद्वारा विद्रावित होकर बिलीन होती हैं ॥ २२ ॥ बुद्धि, इन्द्रिय और पदार्थ का आश्रयज्ञान ब्रह्मकेही आकार से प्रकाशपाता है।जिसका आदि अन्त है वह पदार्थ दृश्य और कारण से भिन्न नहीं कहाजासकता ॥ २३ ॥ दीपक चक्षु से और रूप तेजसे भिन्न नहीं है; इसही प्रकार बुद्धि, आकाश और सब तन्मात्र अपने कारण भूत ब्रह्म से पृथक् नहीं है ॥ २४ ॥ जागरण, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीनों अवस्थाएं बुद्धिकीही हैं । हेराजन् ! प्रत्यगात्मा में यह बहुरूपता केवल मायाही है ॥ २५ ॥ जैसे सब मेघ आकाश में रहते हैं और नहीं भी रहते; तैसेही अवयवों का सृष्टि विनाशक कारण सब विश्व आत्मा में प्रकाशपाता है ॥ २६ ॥ हेराजन् ! अवयवी पदार्थों का कारणभूत जो अवयव है वही यथार्थ है वस्त्र के डोरे जैसे पृथक् २ जानपड़ते हैं उसही प्रकार अवयवी और अवयव की प्रतीति होती है ॥ २७ ॥ कार्य कारण रूप से परस्पर जो जानने में आता है वही भ्रमहै; जिसका कुछ आदि अन्त है वह सब अमूलक है ॥ २८ ॥ प्रकाश पाने परभी प्रत्यगात्मा के प्रकाश के अतिरिक्त कुछभी निरूपित नहीं होता; यदि कुछ प्रकाशितभी होतो वहभी आत्म सदृश है आत्माहीके साथ एक होगा ॥ २९ ॥ सत्य की अनेकता नहीं है । मूर्ख लोग यदि अनेकता मानें तो फिर घटाकाश केवल गृहाकाश की समान है । घटकी सरोवरस्थ जल में सूर्य की समान और बाह्यस्थ वायु की समान केवल भ्रांति है ॥ ३० ॥ जैसे सुवर्ण व्यवहार के अनुसारसे मनुष्योंद्वारा विशेषव बनावों से नानाप्रकार का प्रतीत होता है वैसेही अधोक्षज भगवान मनुष्योंद्वारा लौकिक और वैदिक व्यवहार से नाना भांति पर व्याख्यात होते रहते हैं ॥ ३१ ॥ जैसे सूर्य से उत्पन्न और

यांतो ह्यर्कांशभूतस्यचचक्षुषस्तमः । एवंत्वहंब्रह्मगुणस्तदीक्षितो ब्रह्मांशकस्या त्मनआत्मबन्धनः ॥३२॥ घनोयदाऽर्कप्रभवोविदीर्यते चक्षुःस्वरूपंरविमीक्षतेतदा । यदाह्यहंकारउपाधिरात्मनो जिज्ञासयानश्यतितर्ह्यनुस्मरेत्॥३३॥यदैवमेतेनविवेक हेतिनामायामयाहंकरणात्मबन्धनम् । छित्वाऽच्युतात्मानुभवोऽवतिष्ठतेतमाहुरात्य न्तिकमङ्गसंप्लवम्॥३४॥नित्यदासर्वभूतानां ब्रह्मादीनांपरंतप । उत्पत्तिप्रलयावेकेसू- क्ष्मज्ञाःसंप्रचक्षते ॥३५॥ कालस्रोतोजवेनाशु ह्रियमाणस्यनित्यदा । परिणामिनाम वस्थास्ता जन्मप्रलयहेतवः ॥ ३६ ॥ अनाद्यन्तवताऽनेन कालेनेश्वरमूर्तिना । अ- वस्थानैवदृश्यन्ते वियतिज्योतिषामिव ॥ ३७॥ नित्योनैमित्तिकश्चैवतथा प्राकृतिको लयः । आत्यन्तिकश्चकथितः कालस्यगतिरीदृशी ॥ ३८ ॥ एताःकुरुश्रेष्ठजगद्विधा तुर्नारायणस्याखिलसत्वधाम्नः । लीलाकथास्तेकथिताः समासतःकार्त्स्न्येननाजो ऽप्यभिधातुमीशः ॥ ३९ ॥ संसारसिंधुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षोर्नान्यःप्लवोभगवतः पुरुषोत्तमस्य । लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण पुंसोभवेद्विविधदुःखदवार्दितस्य ॥ ४० ॥ पुराणसंहितामेतामृषिर्नारायणोऽव्ययः । नारदायपुरामाह कृष्णद्वैपायनमा यसः ॥ ४१ ॥ सवैमह्यंमहाराज भगवान्बादरायणः । इमांभागवतींप्रीतः संहिता वेदसंमिताम् ॥४२॥ एतांवक्ष्यत्यसौ सूतऋषिभ्योनैमिषालये । दीर्घसत्रेकुरुश्रेष्ठ संपृष्टःशौनकादिभिः ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सूर्य से प्रकाशित मेघ सूर्य कोही ढकता है; उसही प्रकार ब्रह्म से उत्पन्न और ब्रह्मसेही प्रकाशित अहंकार ब्रह्मके वशीभूत जीव को ब्रह्मका ज्ञान होने से रोकता है ॥ ३२ ॥ जब सूर्य से उत्पन्न हुआ बादल नष्टहोजाता है तब चक्षुस्वरूप सूर्य को देखाजासका है । इसही प्रकार जब ब्रह्मज्ञान द्वारा आत्मा के उपाधिभूत अहंकार का नाशहोता है तभी जीव आत्मा का स्मरण करसकता है ॥ ३३ ॥ जब इसप्रकार विवेक के अस्त्र की सहायता से मायामय अहंकार रूप आत्मबंधन का छेदन कर भगवान् का अनुभव कियाजाता है हेराजन् ! तबही आत्यंतिक प्रलय (मोक्ष) हुआ कहलाता है ॥ ३४ ॥ हे अरिंदम ! कुछेक सूक्ष्मवेत्ता पण्डित कहते हैं कि ब्रह्मादिसे लेकर स्थावर पर्यंत सब प्राणियों की नित्य २ प्रलय और उत्पत्ति होती रहती है ॥ ३५ ॥ काल के प्रवाह वेगद्वारा शीघ्र २ खिंचकर-प्राणियों की विशेष अवस्थाही देह के जन्म और नाशकाकारण है ॥ ३६ ॥ यह काल अनादि और अनन्त है । इसही कारण आकाश में फिरतेहुए नक्षत्रों की गति के समान क्षण क्षण में बदलतीहुई अवस्थाएं नहीं देखने में आतीं ॥ ३७ ॥ नित्य, नैमि- त्तिक, प्राकृतिक और आत्यंतिक प्रलय का वर्णन किया । काल की गति इसही प्रकार की है ॥ ३८ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! अखिलभूत, जगत श्रेष्ठ नारायण की इन सब लीलाओं का संक्षेप से तुमसे वर्णन किया, स्वयं ब्रह्माजी भी उनकी सम्पूर्ण कथा को नहीं कहसकते ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य नाना दुःख रूप दावाग्नि से दग्धहो दुस्तर संसार सागर से पार होने की इच्छा रखताहै उसको केवल भगवान के चरित्रामृतकाही सेवन करना चाहिये ॥ ४० ॥ पहिले भगवान नारायण ऋषि ने नारदजी से इस पुराणसंहिता को कहाथा । भगवान कृष्णद्वैपायन व्यासजी ने उनसे सुना ॥ ४१ ॥ उन भगवान वेदव्यासजी ने प्रसन्नहोकर इस वेदसंमित भागवती संहिता को मुझसे कहा था ॥ ४२ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! यह आपने समीप बैठाहुआ सूत नैमिषारण्य के दीर्घ काल सम्बन्धी यज्ञमें शौनकादि से जिज्ञासितहो इससंहिता को उन ऋषियों से कहेगा ॥ ४३ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०द्वादश०सरलाभाषाटीकायांचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ अत्रानुवर्ण्यतेऽभीक्ष्णं विश्वात्माभगवान्हरिः । यस्यप्रसादजो
ब्रह्मा रुद्रःक्रोधसमुद्भवः ॥ १ ॥ त्वंतुराजन्मरिष्येति पशुबुद्धिमिमांजहि । नजातः
प्रागभूतोऽद्यदेहवत्त्वंननङ्क्ष्यसि ॥ २ ॥ नभविष्यसिभूत्वा त्वंपुत्रपौत्रादिरूपवान् ।
बीजांकुरवद्देहादेर्व्यतिरिक्तो यथाऽनलः ॥ ३ ॥ स्वप्नेयथाशिरश्छेदं पञ्चत्वाद्यात्म-
नःस्वयम् । यस्मात्पश्यतिदेहस्य ततआत्माह्यजोऽमरः ॥ ४ ॥ घटेभिन्नेयथाऽका-
श आकाशःस्याद्यथापुरा । एवंदेहेमृतेजीवो ब्रह्मसंपद्यतेपुनः ॥ ५ ॥ मनःसृजतिवै
देहान्गुणान्कर्माणिचात्मनः । तन्मनःसृजतेमाया ततोजीवस्यसंसृतिः ॥ ६ ॥ स्ने-
हाधिष्ठानवर्त्यग्निसंयोगो यावदीयते । ततोदीपस्यदीपत्वमेवंदेहकृतोभवः । रजः
सत्वतमोवृत्त्या जायतेऽथविनश्यति ॥ ७ ॥ नतत्रात्मास्वयंज्योतिर्यो व्यक्ताव्यक्त
योःपरः । आकाशइवचाधारोध्रुवोऽनन्तोपमस्ततः ॥ ८ ॥ एवमात्मानमात्मस्थमा-
त्मनैवामृशप्रभो । बुद्ध्यानुमानगर्भिण्या वासुदेवानुचिंतया ॥ ९ ॥ चोदितोविप्र-
वाक्येननत्वांधक्ष्यतितक्षकः । मृत्यवोनोपधक्ष्यन्ति मृत्यूनांमृत्युमीश्वरम् ॥ १० ॥ अहं
ब्रह्मपरंधाम ब्रह्माहंपरमंपदम् । एवंसमीक्षन्नात्मानमात्मन्याधायनिष्कले ॥ ११ ॥
दशन्तंतक्षकंपादे लेलिहानंविषाननैः । नद्रक्ष्यसिशरीरंच विश्वंचपृथगात्मनः
॥ १२ ॥ एतत्तेकथितंतात यथात्मापृष्टवान्नृप । हरेर्विश्वात्मनश्चेष्टांकिं भूयः
श्रोतुमिच्छसि ॥ १३ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द्वादशस्कन्धे प्रमाणलक्षणंनामपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—जिन भगवान के अनुग्रहसे ब्रह्माजी और क्रोध से रुद्रदेव उत्पन्न
हुएहैं, उन्हीं भगवान हरि के स्वरूप को इस समय विशेष रूपसे वर्णन करता हूं ॥ १ ॥ हे
राजन् ! तुम 'मैं मरजाऊँगा' इस पशु बुद्धि को त्यागदो यह देह पहिले नहींथा, अबहै अतएव
नष्ट होगा देहादिक से पृथक् तुम उस प्रकार नहींहो तुम तिसकी समान नष्ट नहीं होगे ॥ २ ॥
तुम बीजांकुरकी भांति पुत्र पौत्रादि रूप होकरभी वर्तमान नहीं रहोगे जैसे काष्ठसे अग्नि भिन्नहै
इसी प्रकार देह से तुम पृथक्हो ॥ ३ ॥ जीव स्वप्नमें अपनेआपको शिरश्छेद और जाग्रदवस्था
में देहादिका पञ्चत्व देखता है इसही कारण देहके व्यतिरिक्त आत्मा अज और अमर है ॥ ४ ॥
घटके फूट जानेपर भी घटके बीच में रहाहुआ आकाश पहिलेकी समान आकाशही रहता है ऐसे
ही तत्व ज्ञान से देह नष्ट होनेपर जीव ब्रह्म में लीन होता है ॥ ५ ॥ मन, सत्व, रज और तमो-
गुण को तथा देह और कर्मों को उत्पन्न करता है । माया उस मनको उत्पन्न करतीहै । उसही
से जीव का संसार है ॥ ६ ॥ जबतक तेल सकोरा बत्ती और अग्नि का संयोग रहता है तबही
तक वह दीपक कहलाता है इसही प्रकार देहादि के संयोग से जीव का जन्म है जीव तीनों गुणों
से जन्म और मरण को पाता है ॥ ७ ॥ ज्योतिःस्वरूप आत्मा नहीं जन्मता वह स्थूल सूक्ष्म देह
के व्यतिरिक्त है वह आकाश की समान देहादि का आधार, निर्विकार अन्तहीन और उपमारहि-
त है ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! तुम अनुभव वाली बुद्धि द्वारा श्रीभगवान वासुदेव का ध्यानकर अपने
आत्मा में रहेहुए आत्मा का विचारकरो ॥ ९ ॥ तो ब्राह्मण के वाक्य से प्रेरित तक्षक तुमको भस्म
न करसकेगा क्योंकि मृत्युओंकेभी मृत्युरूप परमात्मा में कोईभी मृत्युका कारण समर्थ नहींहोसकता
॥ १० ॥ "मैंही परम धाम ब्रह्म और परम पद ब्रह्मही मैं हूं" इसप्रकार का विचार निराकार ब्रह्म में
आत्मा को योजनाकरो ॥ ११ ॥ तो देखोगे कि विषैले मुखों से पैरमें डसता हुआ तक्षक नाग,
देहादिक विश्व आत्मासे पृथक् नहीं हैं ॥ १२ ॥ हे वत्स ! तुमने जो आत्माकी कथा पूछीथी वह मैंने
तुमसे कही अब विश्वात्मा हरिकी औरभी कुछ कथा सुननेकी इच्छा है क्या ? ॥ १३ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द्वा० सरल भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

सूतउवाच ॥ एतन्निशम्यमुनिनाभिहितं परीक्षिद्व्यासात्मजेननिखिलात्मदृशा समेन । तत्पादमूलमुपसृत्य नतेनमूर्ध्ना बद्धाञ्जलिस्तमिदमाहसविष्णुरातः ॥ १ ॥ राजोवाच । सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवताकरुणात्मना । श्रावितोयच्चमे सा क्षादनादिनिधनो हरिः ॥ २ ॥ नात्यद्भुतमहंमन्ये महतामच्युतात्मनाम् । अज्ञेषुताप तप्तेषु भूतेषु यदनुग्रहः ॥ ३ ॥ पुराणसंहितामेतामश्रौष्मभवतोवयम् । यस्यां खलूत्तमश्लोको भगवाननुवर्ण्यते ॥ ४ ॥ भगवंस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्योन बिभेम्यहम् । प्रविष्टोब्रह्मनिर्वाण मभयं दर्शितं त्वया ॥ ५ ॥ अनुजानीहिमां ब्रह्मन्वाचं यच्छाम्यधोक्षजे । मुक्तकामाशयंचेतः प्रवेश्यविसृजाम्यसून् ॥ ६ ॥ अज्ञानंचनिरस्तंमे ज्ञानविज्ञाननिष्ठया । भवतादर्शितंक्षेमं परंभगवतःपदम् ॥ ७ ॥ सूतउवाच ॥ इत्युक्तस्तमनुज्ञाप्य भगवान्बादरायणिः । जगामभिक्षुभिःसाकं नरदेवेनपूजितः ॥ ८ ॥ परीक्षिदपिराजर्षिरात्मन्यात्मानमात्मना । समाधायपरं दध्यावस्पन्दासुर्यथातरुः ॥ ९ ॥ प्राक्कूलेबर्हिष्यासीनो गङ्गाकूलउदङ्मुखः । ब्रह्मभूतोमहायोगी निःसङ्गश्छिन्नसंशयः ॥ १० ॥ तक्षकःप्रहितोविप्राः क्रुद्धेन द्विजसूनुना । हन्तुकामोनृपंगच्छन्ददर्शपथिकश्यपम् ॥ ११ ॥ तंतर्पयित्वाद्रविणैर्निवर्त्यविषहारिणम् । द्विजरूपप्रतिच्छन्नःकामरूपोऽदशन्नृपम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मभू-

---

सूतजी बोले कि—उन विष्णुजी के दियेहुए राजा परीक्षित ने, भगवद्दर्शी, समज्ञानी व्यास नन्दन शुकदेवजी द्वारा कहेहुए इनसब विषयों को सुन उनके चरणों पर मस्तक रखदिया और हाथ जोड़कर उनसे कहा ॥ १ ॥ राजा बोले कि हे प्रभो ! मैं कृतार्थ हुआ, अनुग्रहीत हुआ । आपने करुण चित्त से मुझको अनादि, असीम साक्षात् हरि की कथा सुनाई ॥ २ ॥ संसार के तापों से संतप्त अज्ञानी जीवों पर जो अच्युतात्मा आप लोगों का अनुग्रह होता है उसमें विचित्रताही क्या है ? ॥ ३ ॥ जिसमें उत्तम श्लोक भगवान की कथाका वर्णन है उस भागवतपुराण संहिता को मैंने आपसे सुना ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! मैं तक्षकादि मृत्यु के कारणोंसे अब भय नहीं करता । मैंने आपकेद्वारा कहेहुए अभय ब्रह्ममें प्रवेश प्राप्त किया है ॥ ५ ॥ हे ब्रह्मन् ! आज्ञा कीजिये, श्रीकृष्णजी में मैं वाक्य सयत करूं,—मुक्ति के देनेवाले सब वासनाओं के आश्रय उन श्रीकृष्णजी में मैं चित्त समर्पण करताहूं ॥ ६ ॥ विज्ञान की निष्ठासे मेरा अज्ञान और उससे उत्पन्नहुए संस्कार दूर होगये हैं । आपनेही मंगलरूप भगवान का परम पद मुझको दियाहै ॥७॥ सूतजी बोले कि, जब राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से इसप्रकार कहा तब श्रीशुकदेवजी राजा को आज्ञादे और परम पूजाको पाय सन्यासियों समेत वहां से चलेगए ॥ ८ ॥ अनन्तर राजर्षि परीक्षित भी बुद्धिद्वारा मनको प्रत्यक् आत्मा में योजनकर वायु से कम्पायमान वृक्षकी समान निस्पंदहो परमात्मा का ध्यान करते २ परमधाम को गये ॥ ९ ॥ गंगा के किनारे पूर्व दिशा की ओर अग्रवाले कुशों पर उत्तर की ओर मुख करके बैठेहुए महायोगी राजा परीक्षित निःशब्द और निःसंदेहहो परमात्माके ध्यान में निमग्नहुए ॥ १० ॥ हे ब्राह्मणों ! क्रोधित ब्राह्मण के पुत्र से प्रेरित तक्षक ने राजा का नाश करने के निमित्त जाते २ मार्ग में कश्यप को देखा ॥ ११ ॥ यह ब्राह्मण विषकी चिकित्सा से परीक्षित की रक्षा करके द्रव्यपाने की इच्छासे आरहा था इसकी परीक्षा करने के निमित्त तक्षक नें एक वड़के वृक्षको जीभ से चाटकर जलादिया तब उस ब्राह्मण नें उसे सजीवन करदिया उस समय तक्षक नें जाना कि यह मेरी महिमा का नाश करता है इस कारण उसने उस ब्राह्मण को जितना द्रव्य चाहिये था उतना द्रव्य देकर उसे लौटा दिया और आप ब्राह्मण के वेषसे गुप्त रहकर राजा के निकट आय उसको काटखाया ॥ १२ ॥

तस्यराजर्षेर्देहोऽहिगरलाग्निना । बभूवभस्मसात्सद्यःपश्यतांसर्वदेहिनाम् ॥१३॥ हाहाकारोमहानासीद्भुवि खेदिक्षुसर्वतः । विस्मिताह्यभवन्सर्वे देवासुरनरादयः ॥१४॥ देवदुन्दुभयोनेदुर्गन्धर्वाप्सरसोजगुः । ववृषुःपुष्पवर्षाणि विबुधाःसाधुवादिनः ॥ १५ ॥ जनमेजयःस्वपितरं श्रुत्वातक्षकभक्षितम् । यथाजुहावसंक्रुद्धो नागान्सत्रेसहद्विजैः ॥ १६ ॥ सर्पसत्रेसमिद्धाग्नौ दह्यमानान्महोरगान् । दृष्ट्वेन्द्रं भयसंविग्नस्तक्षकःशरणंययौ ॥ १७ ॥ अपश्यंस्तक्षकंतत्र राजापारीक्षितोद्विजान् । उवाचतक्षकःकस्मान्नदह्येतोरगाधमः ॥ १८ ॥ तंगोपायतिराजेन्द्र शक्रःशरणमागतम् । तेनसंस्तम्भितः सर्पस्तस्मान्नाग्नौपतत्यसौ ॥१९॥पारीक्षितइतिश्रुत्वा प्राहर्त्विजउदारधीः । सहेन्द्रस्तक्षकोविप्रा नाग्नौकिमितिपात्यते ॥२०॥ तच्छ्रुत्वाजुहुवुर्विप्राःसहेन्द्रंतक्षकंमखे । तक्षकाशुपतस्वेह सहेन्द्रेणमरुत्वता ॥ २१ ॥ इति ब्रह्मोदिताक्षेपैःस्थानादिन्द्रःप्रचालितः । बभूवसम्भ्रान्तमतिः सविमानःसतक्षकः ॥ २२ ॥ तंपतन्तंविमानेनसहतक्षकमम्बरात् । विलोक्याङ्गिरसःप्राह राजानंतंबृहस्पतिः ॥ २३ ॥ नैषत्वयामनुष्येन्द्र वधमर्हतिसर्पराट् । अनेनपीतममृतमथवाअजरामरः ॥ २४ ॥ जीवितमरणंजन्तोर्गतिः स्वेनैवकर्मणा । राजंस्ततोऽन्योनान्यस्य प्रदातासुखदुःखयोः ॥ २५ ॥ सर्पचौराग्निविद्युद्भ्यः क्षुत्तृड्व्याध्यादिभिर्नृप । पञ्चत्वमृच्छतेजन्तुर्भुङ्क्त आरब्धकर्मतत् ॥ २६ ॥ तस्मात्सत्रमिदंराजन् संस्थीयेताभिचारकम् । सर्पाअनागसोदग्धा जनैर्दिष्टंहिभुज्यते ॥२७॥ सूतउवाच ॥ इत्युक्तः

तब राजर्षि का सर्पगत शरीर सब देखनवालोंके सामने तत्कालही विषाग्नि से भस्महोगया ॥१३॥ उस समय पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग में सबओर हाहाकार शब्द होनें लगा ऐसा देखकर देवता असुर और नरादि सबही विस्मित हुए ॥ १४ ॥ देवता दुन्दुभी बजानेलगे गन्धर्व और अप्सरायें, गान गाने लगीं सब देवता धन्यवाद कर २ के फूल बरसानें लगे ॥ १५ ॥ अपनें पिताको तक्षक द्वारा डसा सुन जनमेजय क्रोध से अधीर होगया और ब्राह्मणों सहित यथा विधान से यज्ञमें सर्पों की आहुति देनेलगा ॥ १६ ॥ सर्प यज्ञकी जलती हुई अग्नि में सांपों का कुल जलनें लगा यह देखकर तक्षक भय से उत्कंठितहो इन्द्रकी शरण में गया ॥ १७ ॥ राजा जनमेजय नें वहां तक्षक को नआया देख ब्राह्मणों से कहा कि सर्पों में दुष्ट तक्षकको क्यों नहीं जलाते ॥ १८ ॥ ब्राह्मणोंने कहा हे राजेन्द्र ! वह इन्द्र की शरणागत हुआ है इन्द्र उसकी रक्षा करता है इन्द्र ने सर्प को रोक रक्खा है इसही कारण वह अग्नि में नहीं गिरता ॥ १९ ॥ अकपट चित्त राजा जनमेजय नें यह सुनकर ऋत्विजों से कहा कि हे विप्रो ! इन्द्र समेत तक्षक को अग्निमें क्यों नहीं गिराते ॥२०॥ यह सुनकर ब्राह्मणों नें हे तक्षक ! मरुद्गणयुक्त इन्द्रसहित इस अग्नि में पतितहो इसप्रकार इन्द्र सहित तक्षक का आह्वानकिया ॥ २१ ॥ ब्राह्मणों के ऐसे मन्त्रों द्वारा इन्द्रकी बुद्धि विचलितहोगई वह विमान और तक्षक सहित अपनें स्थानसे विचलितहुआ ॥२२॥ तक्षक सहित इन्द्रको विमानसे चालित आकाशसे गिरते देख अंगिराके पुत्र बृहस्पतिने राजासे कहा ॥२३॥ हेराजन् ! तुम इससर्पराजको नहीं मारसकते । इसनें अमृत पानकियाहै । यह इन्द्रभी अजर और अमर है ॥ २४ ॥ अपनेही कर्मोंके वशसे मनुष्योंका जीवन मरण और परलोक होतारहताहै हे राजन् ! सुख और दुःख का देनेवाला और कोई दूसरा नहीं है ॥ २५ ॥ हे राजेन्द्र ! जीवको जो सर्प, चोर, अग्नि जल, क्षुधा, तृष्णा और रोगादि से मृत्यु प्राप्त होती है वह केवल प्रारब्ध केही कर्मोंका फल है । ॥ २६ ॥ हे राजन् ! इस यज्ञको समाप्त करो इसका फल हिंसा है सबही निर्दोष सर्प जले हैं सब प्राणी पूर्व कर्मों का फल भोगते हैं ॥ २७ ॥ सूतजीनें कहा कि यह सुनकर वह राजा जनमेजय-

सतथेत्याह महर्षेर्मानयन्वचः सर्पसत्रादुपरतः पूजयामासवाक्पतिम्॥२८॥ सैषा विष्णोर्महामायाऽबाध्ययाऽलक्षणायया। मुह्यन्त्यस्यैवात्मभूता भूतेषुगुणवृत्तिभिः ॥ २९ ॥ नयत्रदम्भीत्यभयाविराजिता मायात्मवादेऽसकृदात्मवादिभिः । नयद्विवादोविविधस्तदाश्रयो मनश्चसंकल्पविकल्पवृत्तियत् ॥ ३० ॥ नयत्रसृज्यंसृजतोभयोःपरं श्रेयश्चजीवस्त्रिभिरन्वितस्त्वहम् । तदेतदुत्सादितबाध्यबाधकं निषिध्यचोर्मीन्विरमेत्स्वयंमुनिः ॥ ३१ ॥ परंपदंवैष्णवमामनन्ति तद्यन्नेतिनेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः । विसृज्यदौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्यावसितंसमाहितैः ॥३२॥ तएतदधिगच्छन्तिविष्णोर्यत्परमंपदम् । अहंममेतिदौर्जन्यं नयेषांदेहगेहजम् ॥ ३३ ॥ अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येतकंचन ॥ नचेमंदेहमाश्रित्य वैरंकुर्वीतकेनचित् ॥ ॥ ३४ ॥ नमोभगवतेतस्मै कृष्णायाकुण्ठमेधसे । यत्पादाम्बुरुहध्यानात्संहितामध्यगामिमाम् ॥३५॥ शौनक उवाच । पैलादिभिर्व्यासशिष्यैर्वेदाचार्यैर्महात्मभिः। वेदाश्चकथिताव्यस्ता एतत्सौम्याभिधेहिनः ॥ ३६ ॥ सूतउवाच । समाहितात्मनो ब्रह्मन्ब्रह्मणःपरमेष्ठिनः । हृद्याकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद्विभाव्यते ॥ ३७ ॥ यदुपासनयाब्रह्मन्योगिनो मलमात्मनः । द्रव्यक्रियाकारकाख्यं धूत्वायान्त्यपुनर्भवम् ॥ ३८ ॥ ततोऽभूत्त्रिवृदोङ्कारो योऽव्यक्तप्रभवःस्वराट् । यत्तल्लिङ्गंभगवतोब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ३९ ॥ शृणोतियइमंस्फोटं सुप्तश्रोत्रेचशून्यदृक् । येनवाग्व्य-

महर्षि के वाक्यका सन्मान कर सर्प यज्ञसे निवृत्तहुआ और उसने बृहस्पतिजी की पूजाकी॥२८॥ यही उन विष्णुजी की अप्रतर्क्य महामाया है इसही से विष्णु भगवान के अंश रूप जीव दूसरेजीवों पर क्रोधआदि वृत्तियों के कारण मोहित होजाते हैं ॥ २९ ॥ आत्मवेत्ता पण्डितों द्वारा आत्म तत्वके विचारे जानेपर उस पाखण्डिनी मायाका कुछभी भय नहीं रहसकता। उस आत्म विचार में मायाके आश्रय वाला अनेक प्रकार का वाद और संकल्प तथा विकल्प रूप वृत्तिवाला मनभी नहीं रहता ॥ ३० ॥ अहंकारादिका निषेध करके जिसमें इन्द्रियां, कर्म और इन दोनोंका होने वाला फल तथा इन तीनों से सम्बंध रखनेवाला अहंकारात्मक जीवपनभी नहीं रहता, जिसमें सब बाध्य और बाधकोंका निराश होजाता है विवेकी मनुष्यको उसी आत्म स्वरूपमें अपनी इच्छापूर्वक रमण करना चाहिये ॥ ३१ ॥ जोयोगी है वह 'नेति नेति' इस प्रकारका निषेधकर अन्य पदार्थों के परित्याग में शक्तिमानहो, देहादि से अहंज्ञानको त्याग दूसरे के वचनहो समाधियोग से हृदयस्थ आत्म स्वरूपको आलिंगन करताहै और इस आत्म स्वरूपकोही विष्णुका परमपद कहते हैं ॥ ३२ ॥ जिनको देह और घरसे उत्पन्न हुए 'मैं' और 'मेरा' इस प्रकार का भाव नहीं है वेही विष्णुके इस परम स्वरूपको जानते हैं ॥ ३३ ॥ दूसरे के कठोर वाक्योंका सहन करना चाहिये, किसी कोभी अपमानित न करना चाहिये, इस देहमें अभिमान रखकर किसी से वैर नहीं करना चाहिये ॥ ३४ ॥ जिन अकुंठित बुद्धिवाले भगवान व्यास देवके चरण कमलोंका ध्यानकर मैं इस संहिताको प्राप्त हुआहूं उनको नमस्कार करता हू ॥ ३५ ॥ शौनक ने कहा हे सौम्य ! वेदाचार्य महात्मा पैलादि, व्यास के शिष्यों ने वेदको कै भागों में विभक्त कियाथा, वह भी हमसे कहिये ॥ ३६ ॥ सूतजी ने कहा,—हे ब्रह्मन् ! समाधि सम्पन्न परमेष्ठी ब्रह्माके हृदयाकाश से शब्द उत्पन्न हुआ। जोदान कानको अंगुली आदि से रोकनेपर कुछ अपने अनुभव में आता है ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मन् ! योगीजन इसही की उपासना के बलसे आत्मा के आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक मलोंका नाश करके मुक्तिपाते हैं ॥३८॥ तदनंतर इस शब्द से त्रिमात्रा युक्त 'ओंकार' उत्पन्न हुआ। यह स्वयंही प्रकाशमान, भगवान परमात्मा ब्रह्माका ज्ञापक है ॥ ३९ ॥ विधानादि

उपलेयस्य व्यक्तिराकाशआत्मनः ॥ ४० ॥ स्वधाम्नो ब्रह्मणः साक्षाद्वाचकः परमा-
त्मनः । स सर्वमन्त्रोपनिषद्वेदबीजं सनातनम् ॥ ४१ ॥ तस्य ह्यासंस्त्रयो वर्णा अका-
राद्या भृगूद्वह । धार्यन्ते यैस्त्रयो भावा गुणनामार्थवृत्तयः ॥ ४२ ॥ ततोऽक्षरसमा-
म्नायमसृजद्भगवानजः । अन्तःस्थोष्मस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादिलक्षणम् ॥ ४३ ॥ ते-
नासौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैर्विभुः । सव्याहृतिकान्सोङ्कारांश्चातुर्होत्रविवक्षया
॥ ४४ ॥ पुत्रानध्यापयत्तांस्तु ब्रह्मर्षीन्ब्रह्मकोविदान् । तेतुधर्मोपदेष्टारः स्वपुत्रेभ्यः
समादिशन् ॥ ४५ ॥ तेपरम्परया प्राप्तास्तत्तच्छिष्यैर्धृतव्रतैः । चतुर्युगेष्वथव्यस्ता
द्वापरादौमहर्षिभिः ॥ ४६ ॥ क्षीणायुषःक्षीणसत्त्वान्दुर्मेधान्वीक्ष्य कालतः । वेदा
न्ब्रह्मर्षयो व्यस्यन्हृदिस्थाच्युतचोदिताः ॥४७॥ अस्मिन्नप्यन्तरे ब्रह्मन्भगवाँल्लोक
भावनः । ब्रह्मेशाद्यैर्लोकपालैर्याचितोधर्मगुप्तये ॥४८॥पराशरात्सत्यवत्यामंशांशक
लया विभुः । अवतीर्णोमहाभाग वेदंचक्रेचतुर्विधम् ॥ ४९ ॥ ऋगथर्वयजुःसाम्नां
राशीनुद्धृत्य वर्गशः । चतस्रः संहिताश्चक्रे मन्त्रैर्मणिगणाइव ॥५०॥ तासांसचतुरः
शिष्यानुपाहूय महामतिः । एकैकांसंहितां ब्रह्मन्नेकैकस्मै ददौविभुः ॥५१॥पैलाय
संहितामाद्यां बह्वृचाख्यमुवाचह। वैशंपायनसंज्ञाय निगदाख्यंयजुर्गणम्॥५२॥
साम्नांजैमिनयेप्राह तथाछन्दोगसंहिताम्। अथर्वाङ्गिरसींनामस्वशिष्यायसुमन्तवे
॥५३॥ पैलःस्वसंहितामूच इन्द्रप्रमितयेमुनिः । बाष्कलायच सोप्याहशिष्येभ्यः

द्वारा इन्द्रिय वृत्तिका रोधहोने से इस स्फुट स्वरूप अव्यक्त ओंकारको सुनाजाता है, वही परमात्मा है । जिसके द्वारा वाक्य अभिव्यक्त होता है और हृदयाकाश आत्मा से जो प्रकाशित होता है वही स्फुट रूप ओंकारहै ॥ ४० ॥ यह स्वप्रकाश परमात्मा साक्षात् ब्रह्मका वाचक है ; यह सब मन्त्र, उपनिषद् और वेदका निश्चयबीज है ॥ ४१ ॥ हे भृगुनंदन ! इससे अकार उकार, मकार यह तीन वर्ण हुयेथे । उन्हीं तीनों वर्णों ने सत्व, रज, और तमोगुण, नाम, अर्थ और वृत्तिआदि धारणकी ॥ ४२ ॥ उन सबसे ब्रह्मा द्वारा अन्तस्थ, ऊष्म, स्वर, स्पर्श, ह्रस्व और दीर्घादि रूप अक्षर उत्पन्नहुए ॥ ४३ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा ने चातुर्होत्र के कार्य साधनके अभिप्राय से इस व्याहृति और ओंकार के साथ चारमुखों से चार वेदों को उत्पन्नकिया ॥४४॥ और वेदोच्चारण में निपुण महर्षि पुत्रों को वह सब वेद पढ़ाये फिर धर्म का उपदेश करनेवाले इन महर्षियों ने अपने २ पुत्रों को वह वेद पढ़ाये ॥ ४५ ॥ उन नियमधारी शिष्य प्रशिष्यों की परंपरा से वह वेद चारों युगों में चले आते थे सो द्वापर के आदि में महर्षियों द्वारा इनके विभाग हुए ॥ ४६ ॥ ऋषियों ने प्राणियों को कालक्रम से अल्पायु, अल्पबुद्धि और मूर्ख देख हृदय-स्थित भगवान की आज्ञानुसार सब वेदों के विभाग किये ॥ ४७ ॥ हेब्रह्मन् ! हेमहाभाग ! इस मन्वन्तर में धर्म की रक्षाके निमित्त ब्रह्मादि लोकपालों की प्रार्थना से लोकभावनभगवान ने सत्य के अंशद्वारा पराशर के वीर्य से सत्यवती के गर्भ में जन्म ग्रहण कर वेद को चार भागों में विभक्त किया ॥ ४८—४९ ॥ जैसे मणियों के ढेर में से नानाप्रकारकी मणियें पृथक् कीजाती हैं उसहीप्रकार वेदव्यास ने ऋक्, अथर्व, यजु और सामके मंत्रों को पृथक्२ करके चारसंहिता बनाई ॥ ५० ॥ हेब्रह्मन् ! महामति व्यासदेव ने चार शिष्यों को बुलाकर प्रत्येक को एक एक संहितादी ॥ ५१ ॥ बह्वृच नामक पहिली ऋग्वेद की संहिता पैलने पाई । निगम नामक यजु समूह वैशम्पायन को, छान्दोग्य नामक सामवेद संहिता जैमिनिको और आंगिरसी नामक अथर्व संहिता अपने शिष्य सुमंत कोदी ॥ ५२—५३ ॥ पैल मुनि ने अपनी संहिता इन्द्र-प्रमति और

संहितां स्वकाम् ॥५४॥ चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव। पराशरायाग्निमित्र इन्द्रप्रमितिरात्मवान्॥५५॥ अध्यापयत्संहितां स्वां माण्डूकेयमृषिं कविम्। तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान् ॥ ५६ ॥ शाकल्यस्तत्सुतः स्वां तु पञ्चधा व्यस्य संहिताम्। वात्स्यमुद्गलशालीयगोखल्यशिशिरेष्वधात् ॥ ५७ ॥ जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः सनिरुक्तां स्वसंहिताम्। बलाकपैलजाबालविरजेभ्यो ददौ मुनिः ॥ ५८ ॥ बाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यो वालखिल्याख्यसंहिताम्। चक्रे वालायनिर्भज्य कासारश्चैव तां दधुः ॥ ५९ ॥ बह्वृचाः संहिता ह्येता एभिर्ब्रह्मर्षिभिर्धृताः। श्रुत्वैतच्छन्दसां व्यासं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६०॥ वैशम्पायनशिष्या वै चरकाध्वर्यवोऽभवन्। यच्चेरुर्ब्रह्महत्यांहः क्षपणं स्वगुरोर्व्रतम् ॥ ६१ ॥ याज्ञवल्क्यश्च तच्छिष्य आहाहो भगवन्कियत्। चरितेनाल्पसाराणां चरिष्येऽहं सुदुश्चरम् ॥ ६२ ॥ इत्युक्तो गुरुरप्याह कुपितो याह्यलं त्वया। विप्रावमन्त्रा शिष्येण मदधीतं त्यजाश्विति ॥ ६३ ॥ देवरातसुतः सोऽपि छर्दित्वा यजुषां गणम्। ततो गतोऽथ मुनयो ददृशुस्तान्यजुर्गणान् ॥६४॥ यजूंषि तित्तिरा भूत्वा तल्लोलुपतयाऽऽददुः। तैत्तिरीया इति यजुःशाखा आसन्सुपेशलाः ॥ ६५ ॥ याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मंश्छन्दांस्यधिगवेषयन् ॥ गुरोरविद्यमानानि सूपतस्थेऽर्कमीश्वरम् ॥ ६६ ॥ याज्ञवल्क्य उवाच। ॐ नमो भगवते आदित्यायाखिलजगतामात्मस्वरूपेण कालस्वरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां ब्रह्मादिस्तम्बपर्य-

---

बाष्कल को पढ़ाई; हे भार्गव ! उन बाष्कल ने भी अपनी संहिता को चार भागों में विभक्त कर अपने शिष्य बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर और अग्निमित्र को पढ़ाया ॥ ५४—५५ ॥ इन्द्रप्रमति ने पण्डितमाण्डूकेय ऋषि को अपनी संहिता पढ़ाई । माण्डूकेय के शिष्य देवमित्र सौभर्यादि ने भी उसी संहिता का उपदेश पाया ॥ ५६ ॥ माण्डूकेय के पुत्र शाकल्य ने अपनी संहिताको पांच भागों में विभक्त कर वात्स्य, मुद्गल, शालीय, गोखल्य और शिशिर को पढ़ाया ॥ ५७ ॥ शाक्य के शिष्य जातूकर्ण मुनि ने निरुक्तसहित अपनी संहिता को बलाक, पैल, जाबाल और विरजको पढ़ाया ॥ ५८ ॥ बाष्कल के पुत्रने समस्त शाखाओं से वालखिल्य नामक संहिता बनाई । वालायनि, भर्ज्य और कासार नामक कई एक दैत्यों ने इसको पढ़ा ॥ ५९ ॥ इसप्रकार यह बह्वृचों की संहिता इन महर्षियोंद्वारा धारण कीगई । वेद के इन विभागों के सुनने से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ ६० ॥ वैशम्पायन के शिष्य यज्ञमें अध्वर्यु की पदवी को प्राप्तहुए । उन्होंने गुरु के आदरणीय ब्रह्महत्या के पापनाशक व्रतका आचरण कियाथा इसकारण वह चरक के नाम से प्रसिद्धहुए ॥ ६१ ॥ उन वैशम्पायन के शिष्य याज्ञवल्क्यने उनसे कहाथा कि " अहो भगवन् ! इन सब अल्पशक्तिवाले शिष्यों के व्रताचरणद्वारा क्याफल होगा ? मैंही अकेला इस कठिन व्रत का अनुष्ठान कर आपके पापों का नाश करूंगा ॥ ६२ ॥ इस बात के सुनतेही गुरू ने अत्यन्त क्रोधित होकरकहा " जा, तुझसे अब मेरा प्रयोजन नहीं है , मेरा शिष्य होकर तूने ब्राह्मणों का अपमान किया, मेरे निकट जो पढ़ा है उसको त्यागकर शीघ्रही यहां से चलाजा ॥ ६३ ॥ देवरातका पुत्र याज्ञवल्क्य भी इस बातको सुन सबयजुःका वमनकर वहां से चलागया । तदनन्तर दूसरे मुनियों ने इन यजुर्वेद के मन्त्रोंको देखा ॥ ६४ ॥ उन्होंने उन मन्त्रों के लेनेकी इच्छाकर तीतरका रूपधर सब यजुमन्त्रोंको ग्रहण किया उससे सुंदर तैत्तिरीय शाखा उत्पन्न हुई ॥ ६५ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसके उपरान्त गुरुमें न रहेहुए मन्त्रोंकी खोज करते हुए याज्ञवल्क्य मुनिने सब वेदोंके अधीश्वर सूर्य भगवानकी इस प्रकार स्तुति की ॥ ६६ ॥ याज्ञवल्क्य ने कहा—हे भगवान् हे आदित्य ! मैं आपको प्रणाम करता हूं । आप अकेले होकर

तानामन्तर्हृदयेषु बहिरपि चाकाश इवोपाधिनाऽव्यवधीयमानो भवानेक एव क्षणलवनिमेषावयवोपचितसंवत्सरगणेनापामादानविसर्गाभ्यामिमां लोकयात्रामनुवहति ॥ ६७ ॥ यदु ह वाव विबुधर्षभ सवितरदस्तपत्यनुसवनमहरहराम्नायविधिनोपतिष्ठमानानामखिलदुरितवृजिनबीजावभर्जन भगवतः समभिधीमहि तपनमण्डलम् ॥ ६८ ॥ य इह वाव स्थिरचरनिकराणां निजनिकेतनानां मनइन्द्रियासुगणाननात्मनः स्वयमात्मान्तर्यामी प्रचोदयति ॥ ६९ ॥ य एवेमं लोकमतिकरालवदनान्धकारसंज्ञाजगरग्रह गिलितं मृतकमिव विचेतनमवलोक्यानुकम्पया परमकारुणिकईक्षयैवोत्थाप्याहरहरनुसवनं श्रेयसि स्वधर्माख्यात्मावस्थाने.प्रवर्तयत्यवनिपतिरिवासाधूनां भयमुदीरयन्नटति ॥ ७० ॥ परित आशापालैस्तत्रतत्र कमलकोशाञ्जलिभिरुपहृतार्हणः ॥ ७१ ॥ अथह भगवंस्तव चरणनलिनयुगलं त्रिभुवनगुरुभिर्वन्दितमहमयातयामयजुःकाम उपसरामीति ॥ ७२ ॥ सूत उवाच । एवं स्तुतःस भगवान्वाजिरूपधरो रविः । यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात्प्रसादितः॥७३॥ यजुर्भिरकरोच्छाखा दशपंचशतैर्विभुः । जगृहुर्वाजसन्यस्ताः काण्वमाध्यंदिनादयः ॥ ७४ ॥ जैमिनेः सामगस्यासीत्सुमन्तुस्तनयो मुनिः । सुत्वांस्तु तत्सुतस्ताभ्यामेकैकां प्राहसंहिताम् ॥ ७५ ॥ सुकर्मा चापि तच्छिष्यः सामवेदतरोर्महान् । सहस्रसंहिताभेदं चक्रे साम्नां ततो द्विजः ॥ ७६ ॥ हिरण्यनाभ कौशल्यः पौष्यञ्जि-

भी आत्म रूप और काल रूपसे ब्रह्मा से लेकर घासआदि उद्भिज पदार्थों तक चार प्रकार के प्राणियों ने निकेतन स्थान समस्त जगत् के भीतर और बाहर आकाश की समान उपाधि द्वारा अनावृतहोकर विराजमानहो । तथा क्षण, लव और निमेष रूप अनेक अवयव वाले वत्सर(वर्ष) समूहद्वारा जल को खींचकर फिर बरसा करतेहुए जगत् का निर्वाह करतेहो ॥ ६७ ॥ हे देव श्रेष्ठ ! हे सवितः ! आप नित्य त्रिसन्ध्या में वेदविधिद्वारा स्तुति करनेवाले भक्तों के सब पाप, दुःख और अज्ञान को भस्म करतेहो । हेतपन् ! आप के इस प्रति दिवस तपनेवाले मण्डलका मैं ध्यान करताहूं ॥ ६८ ॥ आप इस ससार में अपने स्थानरूप स्थावर जंगम अनेक प्राणियों के अचेतन रूप मन, इंद्रिय और प्राणको अन्तर्यामी आत्मारूप से प्रेरित करतेहो ॥६९॥ हेकृपालु! आप इस सब लोक को अन्धकार नामक करालमुख अजगर द्वारा ग्रसित और उसी से मृतक समान हुआ देख अपने परम करुणाहृदयसे कृपादृष्टि द्वाराही उठाकर प्रतिदिन समय २ पर उस को कल्याणरूप स्वधर्मनामक आत्मनिष्ठा में प्रवृत्त करतेहो तथा राजा की समान दुष्टों को भय दिखातेहुए चारों ओर भ्रमण करतेहो ॥ ७० ॥ आप जिस २ ओर जातेहो उसी २ओर के सब दिक्पाल कमल कोशवाली अञ्जलियों से आपकी अर्चना करते हैं ॥७१॥ हेभगवन् ! मैं आपके निकट से ऐसे यजुः की प्रार्थना करताहूं कि जिसको दूसरा न जानताहो । इसही कारण त्रिभुवन के गुरुओं द्वारा पूजित आपके चरण कमलों की सेवाकरताहूं ॥ ७२ ॥ सूतजीने कहा,कि—याज्ञवल्क्य के इस प्रकार स्तुति करनेपर उन भगवान सूर्यने प्रसन्नहो घोड़ेका रूप धारण कर दूसरे के न जानेहुए सब यजुःमन्त्रोंको मुनिसे कहा ॥ ७३ ॥ याज्ञवल्क्यने इनमन्त्रोंमें से पन्द्रह शाखायें कीं । कण्व और मध्यन्दिनादि ऋषियों ने उस अश्वकी 'वाजस' अर्थात केश से निकली हुई शाखाओंको ग्रहणकिया ॥ ७४ ॥ वाजस से निकलने के कारण उनका नाम वाजसनेयी हुआ। सामवेदी जैमिनि मुनिके पुत्रका नाम सुमंत और सुमंत के पुत्रका नाम सुत्वान था जैमिनिने उस पुत्र और पौत्रको अपनी सहिता पढ़ाई ॥ ७५ ॥ हे द्विज ! उन जैमिनिके अति बुद्धिमान शिष्य सुकर्माने सामवेद रूप वृक्षके मन्त्रों से सहस्र संहिताएं बनाईं ॥ ७६ ॥ कौशल देशमें उत्पन्न हुए

अनुक्रमेण । शिष्योऽजगृहत्तुर्श्चान्य आवन्त्यो ब्रह्मवित्तमः ॥ ७७ ॥ उदीच्याः सामगाः शिष्या आसन्पञ्चशतानि च । पौष्यञ्ज्यावन्त्ययोश्चापि तांश्च प्राच्यान्प्रचक्षते ॥ ७८ ॥ लौगाक्षिर्मांगलिः कुल्यः कुशीदः कुक्षिरेव च । पौष्यञ्जिशिष्या जगृहुः संहितास्ते शतंशतम् ॥ ७९ ॥ कृतो हिरण्यनाभस्य चतुर्विंशतिसंहिताः । शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा आवन्त्य आत्मवान् ॥ ८० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द्वादशा० षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सूत उवाच । अथर्ववित्सुमन्तुश्च शिष्यमध्यापयत्स्वकाम् । संहितां सोऽपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान् ॥ १ ॥ शौक्लायनिर्ब्रह्मबलिर्मोदोषः पिप्पलायनिः । वेददर्शस्य शिष्यास्ते पथ्यशिष्यानथो शृणु । कुमुदः शुनको ब्रह्मन् जाजलिश्चाप्यथर्ववित् ॥ २ ॥ बभ्रुः शिष्योऽथाङ्गिरसः सैन्धवायन एव च । अधीयेतां संहिते द्वे सावर्ण्याद्यास्तथाऽपरे ॥ ३ ॥ नक्षत्रकल्पः शान्तिश्च कश्यपाङ्गिरसादयः । एते आथर्वणाचार्याः शृणु पौराणिकान्मुने ॥ ४ ॥ त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रणः । वैशम्पायनहारीतौ षड्वै पौराणिका इमे ॥ ५ ॥ अधीयन्त व्यासशिष्यात्संहितां मत्पितुर्मुखात् । एकैकामहमेतेषां शिष्यः सर्वाः समध्यगाम् ॥ ६ ॥ कश्यपोऽहं च सावर्णी रामशिष्योऽकृतव्रणः । अधीमहि व्यासशिष्याच्चत्वारो मूलसंहिताः ॥ ७ ॥ पुराणलक्षणं ब्रह्मन्ब्रह्मर्षिभिर्निरूपितम् । शृणुष्व बुद्धिमाश्रित्य वेदशास्त्रानुसारतः ॥ ८ ॥ सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्तिरक्षान्तराणि च । वंशो वंश्यानुचरितं संस्था हेतु

हिरण्य नाभ और पौष्यञ्जि नामक सुकर्मा के दो शिष्यों ने तथा तीसरे आवन्त्य ने इन संहिताओं को पढ़ा ॥ ७७ ॥ पौष्यञ्जि, आवन्त्य, और हिरण्य नाभके उत्तर देश निवासी पांचसौ शिष्यों ने इन संहिताओंको पढ़ाथा; वे उदीच्य के नाम से प्रसिद्ध हुए, उनमें से किसी २ को प्राच्य भी कहाजाता है ॥ ७८ ॥ लौगाक्षि, मांगलि, कुल्य, कुशीद और कुक्षि नामक पौष्यञ्जि क शिष्यों ने इस शाखा की सौ २ संहिताओंको ग्रहण किया ॥ ७९ ॥ कृत नामक हिरण्य नाभके शिष्यने अपने शिष्योंको चौबीस संहिताओं का उपदेश दियाथा और २ जो शाखायें थीं उन सबको आत्मज्ञानी आवन्त्य ने अपने शिष्योंको पढ़ाया था ॥ ८० ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेद्वादशस्कंधेसरलभाषाटीकायांषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सूतजी बोले कि,—अथर्व वेदके जाननेवाले सुमत ने अपने शिष्य कबन्धको अपनी संहिता पढ़ाई। कबन्धने पथ्य और वेद दर्शको शिक्षादी ॥ १ ॥ शौक्लायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष और पिप्पलायनि, यह वेद दर्शके शिष्यथे । पथ्यने अपनी संहिता के तीन विभागकर कुमुद, शुनक और जाजलिको पढ़ाया ॥२॥ शुनकके शिष्य बभ्रु और सैन्धवायनने दो संहिता पढीं। सावर्ण आदि और भी कई एक जन सैन्धवायन के शिष्यथे ॥ ३ ॥ नक्षत्र कल्प, शांतिकल्प, कश्यप और आंगिरसादि यह अथर्व वेदके आचार्य हुए। हे मुने । अब पौराणिकों के नाम सुनो ॥ ४ ॥ त्र्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशम्पायन और हारीत इन छः पौराणिकों ने व्यास के शिष्य मेरे पिताके मुखसे एक २ पुराण संहिताका अध्ययन किया । मैं इन छहों जनोंका शिष्य हूं इस कारण मैंने सबही पुराण संहिताओंका अध्ययन किया है ॥ ५–६ ॥ कश्यप, सावर्णि, परशुरामजीका शिष्य अकृतव्रण और मैं ये चारजन व्यासजी के शिष्यों से पढ़े हैं ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् । वेदकी शास्त्राके अनुसार ब्रह्मर्षियों ने पुराण के लक्षणका निरूपण किया । उसको बुद्धि लगाकर तुमसुनो ॥ ८ ॥ सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, अंतर, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु और अपाश्रय ये दश विषय जिस

रणाश्रयः ॥ ९ ॥ दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणंतद्विदोविदुः । केचित्पञ्चविधंब्रह्मन्म-हदल्पव्यवस्था ॥ १० ॥ अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः । भूतसूक्ष्मेन्द्रियार्थानां संभवःसर्गउच्यते॥११॥ पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः । विसर्गोऽयंसमाहारो बीजाद्बीजंचराचरम् ॥ १२ ॥ वृत्तिर्भूतानिभूतानां चराणामचराणिच । कृतास्वेननृणांतत्र कामाच्चोदनयापिवा ॥ १३ ॥ रक्षाऽच्युतावतारेहा विश्वस्यानुयुगेयुगे । तिर्यङ्मर्त्यर्षिदेवेषु हन्यन्तेयैस्त्रयीद्विषः ॥ १४ ॥ मन्वन्तरंमनुर्देवामनुपुत्राःसुरेश्वराः । ऋषयोंऽशावताराश्च हरेःषड्विधमुच्यते ॥ १५ ॥ राज्ञांब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः । वंश्यानुचरितंतेषां वृत्तंवंशधराश्चये ॥ १६ ॥ नैमित्तिकःप्राकृतिकोनित्यआत्यन्तिकोलयः । संस्थेतिकविभिःप्रोक्ताचतुर्धाऽस्यस्वभावतः ॥ १७ ॥ हेतुर्जीवोऽस्यसर्गादेरविद्याकर्मकारकः । यंचानुशायिनंप्राहुरव्याकृतमुतापरे ॥ १८ ॥ व्यतिरेकान्वयोयस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु । मायामयेषुतद्ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः ॥ १९ ॥ पदार्थेषुयथाद्रव्यं सन्मात्रंरूपनामसु ॥ बीजादिपंचतान्तासु ह्यवस्थासुयुतायुतम् ॥ २० ॥ विरमेतयदाचित्तं हित्वावृत्तित्रयंस्वयम् । योगेनवातदात्मानं वेदेहायानिवर्तते ॥ २१ ॥ एवं लक्षणलक्ष्याणि पुराणानिपुराविदः । मुनयोऽष्टादशप्राहुः क्षुल्लकानि महान्तिच ॥ २२ ॥ ब्राह्मंपा-

में होवें विद्वानलोग उसको पुराण कहते हैं । हे ब्रह्मन् ! अधिक और अल्प व्यवस्था के अनुसार कोई २ जिसमें पांचही विषयहों उसे पुराण कहते हैं ॥ ९—१० ॥ प्रकृति के गुणोंका क्षोभहोने पर महत्, महत् से अहंकार, अहंकार से देवता, इन्द्रियां और पांच तत्वोंकी उत्पत्ति होती है । इसे सर्ग कहते हैं ॥ ११ ॥ जीवके पूर्वकर्मों की इच्छा से उत्पन्न हुए, परमेश्वर द्वारा अनुगृहीत, यह सबजो बीजसे बीजकी समान चराचर रूप से समाहार होता रहता है इसको विसर्ग कहा जाते है ॥ १२ ॥ इस संसारमें चर प्राणियों की आजीविका चर और अचर पदार्थ हैं सो उनमें मनुष्यों के स्वाभव, काम व प्रेरणा के निमित्त जो जीविका हुई उसका नाम 'वृत्ति' है ॥ १३ ॥ युग २ में पशु, पक्षी, मनुष्य, ऋषि और देवताओं केबीचमें श्रीभगवान अवतार धारण करके लीला करते हैं उसको विश्वकीरक्षा कहते हैं ॥ १४ ॥ मनु, सब देवता, मनुके पुत्र इन्द्रादि ऋषि और हरिके अंशावतार ये सब जिससे अपने २ अधिकार में वर्तमान रहते हैं, वही 'मन्वंतर' के नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ १५ ॥ राजाओं की भूत, भविष्य और वर्तमान काल की संततिको 'वंश' कहते हैं और उन राजाओं के तथा उनके वंशजों के चरित्रको 'वंशानुचरित' कहते हैं ॥ १६ ॥ इस विश्व के स्वभाव के कारण वा ईश्वरकी मायाके वश जो नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यंतिक यह जो चार प्रकार की लय होती है इसको 'संस्था' कहते हैं ॥ १७ ॥ अविद्याके हेतु कर्म करनेवाला जीव इस विश्व की सृष्टि आदि का हेतु है, इसको हेतु कहते हैं । यही अनुशायी और किसी २ के मतसे अव्याकृत है ॥ १८ ॥ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति यह कई अवस्थाएं जिसके जीवनरूप में वर्तमान रहती हैं, उसही मायामय के साक्षी स्वरूपमें जिसका सम्बन्ध और समाधि आदि से जिसका सम्बन्धमात्र है वही ब्रह्म है; उसही को " अपाश्रय " कहाजाता है ॥ १९ ॥ घटादिक पदार्थों में जैसे मिट्टी आदि पदार्थ मिलेहुए हैं और पृथक् भी हैं तैसही गर्भाधान से मरण पर्यंत की देह सम्बन्धी अवस्थाओं में अधिष्ठानपन से ब्रह्म मिलाहुआ है और इनसे पृथक् भी है सब नाम और रूपों में सत्पन से यह ब्रह्मही वर्तमान है ॥ २० ॥ जब चित्त स्वयं अथवा योगद्वारा तीनों वृत्तियों को त्यागकर शांत होता है तब आत्माको जान सकता है तथा अविद्या के नाश होनेसे चेष्टाकी निवृत्ति होती है ॥ २१ ॥ पुराणवेत्ता मुनियों ने इनसब लक्षणोंद्वारा देखकर छोटे बड़े अठारह पुराणों की गणना की है ॥ २२ ॥ ब्रह्म, पद्म, विष्णु,

शैवैष्णवंच शैवं लैंगंसगारुडम् । नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कान्दसंज्ञितम् २३ ॥ भविष्यंब्रह्मवैवर्त्तं मार्कण्डेयंसवामनम् । वाराहंमात्स्यंकौर्म्मंच ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट् ॥ २४ ॥ ब्रह्मन्निदंसमाख्यातं शाखाप्रणयनंमुनेः । शिष्यशिष्यप्रशिष्याणां ब्रह्मतेजोविवर्धनम् ॥ २५ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द्वादशा० सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

शौनक उवाच । सूतजीवचिरंसाधो वदनोवदतांवर । तमस्यपारे भ्रमतांनृणां त्वम्पारदर्शनः ॥ १ ॥ आहुश्चिरायुषमृषिं मृकण्डुतनयंजनाः । यःकल्पान्ते उर्वरितो येनग्रस्तमिदंजगत् ॥ २ ॥ सवा अस्मत्कुलोत्पन्नः कल्पेऽस्मिन्भार्गवर्षभः ॥ नैवाऽधुनापिभूतानां संप्लवःकोऽपिजायते ॥ ३ ॥ एकएवार्णवे भ्राम्यन् ददर्श पुरुषं किल । वटपत्रपुटे ताकं शयानंत्वेकमद्भुतम् ॥ ४ ॥ एषनःसंशयो भूयान्सूत कौतूहलंयतः । तंनश्छिन्धि महायोगिन्पुराणेष्वपि संमतः ॥ ५ ॥ सूत उवाच । प्रश्नस्त्वयामहर्षेऽयं कृतोलोकभ्रमापहः । नारायणकथायत्र गीताकलिमलापहा ॥ ६ ॥ प्राप्तद्विजातिसंस्कारो मार्कण्डेयःपितुःक्रमात् । छन्दांस्यधीत्य धर्मेण तपःस्वाध्यायसंयुतः ॥ ७ ॥ बृहद्व्रतधरःशान्तो जटिलावल्कलाम्बरः । बिभ्रत्कमण्डलुं दण्डमुपवीतंसमेखलम् ॥ ८ ॥ कृष्णाजिनंसाक्षसूत्रं कुशांश्चनियमर्द्धये । अग्न्यर्कगुरुविप्रात्मस्वर्चयन्संध्ययोर्हरिम् ॥९॥ सायंप्रातःसगुरवे भैक्ष्यमाहृत्य वाग्यतः । बु-

शिवलिंग, गरुड, नारद, भागवत, अग्नि, स्कन्द, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, वामन, वाराह मत्स्य, कूर्म और ब्रह्माण्ड ये अठारह पुराण हैं ॥ २३ । २४ ॥ हेब्रह्मन् ! व्यास ऋषिके शिष्यों के शिष्य और प्रशिष्यों द्वारा कीहुई शाखाओंका विस्तार मैंने आपसे कहसुनाया। इसके सुनने और सुनानेवाले दोनों काही ब्रह्मतेज बढ़ता है ॥ २५ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०द्वादश०सरलाभाषाटीकायांसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

शौनकजी बोले, हेसाधो सूत ! चिरञ्जीवहो । हे वाग्मिश्रेष्ठ ! अपार संसार में भ्रमण करने मनुष्योंके तुम मार्ग दिखानेवालेहो ॥ १ ॥ मनुष्य कहते हैं कि मृकण्डके पुत्र मार्कण्डेयऋषि चिरञ्जीव हैं । कहाजाता है कि वह कल्पान्त में भी शेष रहेथे । किंतु उस समय जबकि समस्त जगत का नाश होगयाथा तब वह किसप्रकार बचे ? ॥ २ ॥ भृगुवंशी श्रेष्ठ मार्कण्डेय मुनि इस कल्प में हमारे वंश में उत्पन्नहुए हैं, और भृगुकुल की प्रवृत्तिहुए पीछे आजतक प्राणियों का प्राकृतिक वा नैमित्तिक कोई भी प्रलय नहीं हुआ तो फिर इनका प्रलय में होना कैसे सम्भव हो सकता है ? ॥ ३ ॥ फिर उन्होंने अकेले जल में भ्रमण करते २ बरगद के पेड़ में सोयेहुए एक अद्भुत बालक को देखाथा ॥ ४ ॥ यहभी हमें बड़ाभारी सन्देह है । इसही विषय के जानने को हमें कौतूहल होरहा है । आप हमारे संदेह को दूर करो, आप महायोगी हो और पुराणों में महामान्य मानेजातेहो ॥ ५ ॥ सूतजी बोले, कि—हे महर्षे ! आपने जो यह प्रश्न किया, इससे मनुष्यों का भ्रम नष्टहोगा । इसमें नारायण की कलिकलुष नाशिनी अनेकों कथायें हैं ॥ ६ ॥ गर्भाधानादि संस्कारों के क्रम से पिताकेद्वारा द्विजाति संस्कार को पाय वेदों को पढ मार्कंडेय मुनि धर्मसहित तपस्या और वेदपाठ में नियुक्तहुए ॥ ७ ॥ उन्होंने महाव्रत को धारण किया, तथा शांतहो जटाओं को धारणकर वल्कल वस्त्र पहिने ; कमण्डलु, दण्ड, जनेऊ, मेखला, कालामृगचर्म, यज्ञसूत्र और कुश को धारण किया और धर्म वृद्धि के निमित्त अग्नि, सूर्य गुरु, ब्राह्मण और अपने शरीर में दोनों सन्ध्याओं में वह भगवान की पूजाकरने लगे ॥ ८ । ९ ॥

भुक्ते गुर्वनुज्ञातः सकृन्नो चेदुपोषितः ॥ १० ॥ एवंतपःस्वाध्यायपरो वर्षाणामयुता
युतम् । आराधयन्हृषीकेशं जिग्येमृत्युंसुदुर्जयम् ॥ ११ ॥ ब्रह्माभृगुर्भवोदक्षो ब्रह्म
पुत्राश्चयेपरे । नृदेवपितृभूतानि तेनासन्नति विस्मिताः ॥ १२ ॥ इत्थंबृहद्व्रतधर-
स्तपः स्वाध्यायसंयमैः । दध्यावधोक्षजं योगी ध्वस्तक्लेशान्तरात्मना ॥ १३ ॥ त-
स्यैवंयुंजतश्चित्तं महायोगेनयोगिनः । व्यतीयायमहान्कालो मन्वन्तरषडात्मकः ।
॥ १४ ॥ एतत्पुरंदरोज्ञात्वा सप्तमेऽस्मिन्किलान्तरे । तपोविशङ्कितो ब्रह्मन्नारेभे त-
द्विघातनम् ॥ १५ ॥ गन्धर्वाप्सरसः कामं वसन्तमलयानिलौ । मुनयेप्रेषयामास
रजस्तोकमदौतथा ॥ १६ ॥ तेवैतदाश्रमं जग्मुर्हिमाद्रेः पार्श्वउत्तरे । पुष्पभद्रानदी
यत्र चित्राख्याच शिलाविभो ॥ १७ ॥ तदाश्रमपदंपुण्यं पुण्यद्रुमलताञ्चितम् । पु-
ण्यद्विजकुलाकीर्णं पुण्यामलजलाशयम् ॥ १८ ॥ मत्तभ्रमरसंगीतं मत्तकोकिल-
कूजितम् । मत्तबर्हिनटाटोपं मत्तद्विजकुलाकुलम् ॥ १९ ॥ वायुः प्रविष्ट आदायहि
मनिर्झरशीकरान् । सुमनोभिःपरिष्वक्तो ववावुत्तम्भयन्स्मरम् ॥ २० ॥ उद्यच्चन्द्र
निशावक्त्रः प्रवालस्तबकालिभिः । गोपद्रुमलताजालैस्तत्रासीत्कुसुमाकरः १२॥
अन्वीयमानो गन्धर्वैर्गीतवादित्रयूथकैः । अदृश्यतात्तचापेषुःस्वःस्त्रीयूथपतिःस्मरः
॥२२॥हुत्वाग्निंसमुपासीनं ददृशुःशक्रकिंकराः । मीलिताक्षंदुराधर्षं मूर्तिमन्तमिवा
नलम् २३॥ननृतुस्तस्यपुरतःस्त्रियोऽथोगायकाजगुः॥मृदङ्गवीणापणवैर्वाद्यंचक्रुर्मनो
रमम्॥२४॥संदधेऽस्त्रंस्वधनुषिकामःपञ्चमुखंतदा । मधुर्मनोरजस्तोक इन्द्रभृत्या

वह शांतभावसे संध्या और प्रातःकालमें भिक्षा लाकर गुरूके अर्पण करते और गुरुकी आज्ञापाने
पर भोजन करते, यदि गुरू आज्ञा न देते तो उपवास सेही समय काटते ॥ १० ॥ इस प्रकार
तपस्या और वेद पाठमें नियुक्तहो उन्होंने १० करोड़ वर्ष तक भगवानकी पूजा कर अजेय मृत्यु
कोभी जीत लिया ॥ ११ ॥ ब्रह्मा, शिव, भृगु, दक्ष, औरभी दूसरे ब्रह्मपुत्र और देवता, पितर
तथा औरभी प्राणी यह देखकर अत्यत विस्मित हुए ॥१२॥ मार्कण्डेय ऋषि तप और वेदाध्ययन
योगसे इसप्रकार महा व्रतका अनुष्ठान कर राग और क्लेशादि वर्जितहो परमात्मा परम पुरुष का
ध्यान करने लगे ॥ १३ ॥ महा योगसे चित्त को इसप्रकार अधिष्ठित कर योगियोंके छैः मन्वन्तर
रूप कालको काटा ॥१४॥ हे ब्रह्मन् ! सातवें मन्वन्तरमें इन्द्र इस विषयको सुनकर अत्यंत भय-
भीत हुए और उनके तप में विघ्न करनेलगे ॥ १५ ॥ उसने मुनिका तप भ्रष्ट करनेके निमित्त
गन्धर्व, अप्सरा, कामदेव, बसंत, मलयानिल, लोभ और मद को पठाया ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! वे
भी हिमालय के उत्तर भागमें मुनिके आश्रममें गये । तहां पुष्पभद्रा नदी और चित्रानामक शिला
विराजमान है ॥ १७ ॥ यह आश्रम पवित्र वृक्ष और लताओंसे शोभायमानहो रहाथा, पवित्र
जलाशय और पवित्र ब्राह्मणोंके कुल यहां शोभा देरहेथे ॥ १८ ॥ मदमत्तभौंरे गूंजते कोयलें कु-
हकतीं, मयूर नटकीसमान नाच रहेथे तथा औरभी दूसरे पक्षियोंसे वह आश्रम भररहाथा॥१९॥
वहां झरनोंकी ठंढी२ बूंदोंको लेकर पुष्पोंकी महकसे सुवासित कामदेवको बढ़ाती हुई वायु चलने
लगी ॥ २० ॥ प्रदोष काल का चन्द्रमा उदय हुआ और कोमल पत्ते तथा गुच्छे वाले परस्पर
मिड़े हुए सघन वृक्ष तथा लताओंके समूहवाली सुंदर बसत ऋतु प्रगटहुई । तहां गन्धर्वोंको किये
गातीबजाती हुई अप्सरायें तथा कामदेव हाथमें धनुष बाण लिये दिखाई दिया ॥ २१ । २२ ॥
इन्द्रके सेवकोंने देखा कि मुनि अग्नि कुंडमें होमसे निबटकर ध्यान से आंखें बंद किये मूर्त्ति मान
दुर्दमनीय अग्नि की समान बैठे हैं ॥ २३ ॥ उनके सामने स्त्रियें नृत्य करने, गवैये गाने और
सुंदर मृदंग वीणा तथा पणवादि मनोहर बाजे बजाने लगे ॥ २४॥ तिस समय कामदेवने अपने

त्यषेधयन् ॥ २५ ॥ क्रीडन्त्याः पुञ्जिकस्थल्याः कन्दुकैः स्तनगौरवात्। भृशमुद्विग्नमध्यायाः केशविस्रंसितस्रजः ॥ २६ ॥ इतस्ततो भ्रमद्दृष्टेश्चलन्त्या अनुकन्दुकम्। वायुर्जहार तद्वासः सूक्ष्मं त्रुटितमेखलम् ॥ २७ ॥ विससर्ज तदा बाणं मत्वा तेऽजितं स्मरः। सर्वं तत्राभवन्मोघमनीशस्य यथोद्यमः ॥ २८ ॥ त इत्थमपकुर्वन्तो मुनेस्तत्तेजसा मुने। दह्यमाना निववृतुः प्रबोध्याहिमिवार्भकाः ॥ २९ ॥ इतीन्द्रानुचरैर्ब्रह्मन्धर्षितोऽपि महामुनिः। यन्नागादहमो भावं न तच्चित्रं महत्सु हि ॥ ३० ॥ दृष्ट्वा निस्तेजसं कामं सगणं भगवान्स्वराट्। श्रुत्वानुभावं ब्रह्मर्षेर्विस्मयं समगात्परम् ॥ ३१ ॥ तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं तपःस्वाध्यायसंयमैः। अनुग्रहायाविरासीन्नरनारायणो हरिः ॥ ३२ ॥ तौ शुक्लकृष्णौ नवकञ्जलोचनौ चतुर्भुजौ रौरववल्कलाम्बरौ। पवित्रपाणी उपवीतकं त्रिवृत्कमण्डलुं दण्डमृजुं च वैणवम् ॥ ३३ ॥ पद्माक्षमालामुत जन्तुमार्जनं वेदं च साक्षात्तप एव रूपिणौ। तपत्तडिद्वर्णपिशङ्गरोचिषा प्रांशू दधानौ विबुधर्षभार्चितौ ॥ ३४ ॥ ते वै भगवतो रूपे नरनारायणावृषी। दृष्ट्वोत्थायादरेणोच्चैर्ननामाङ्गेन दण्डवत् ॥ ३५ ॥ स तत्सन्दर्शनानन्दनिर्वृतात्मेन्द्रियाशयः। हृष्टरोमाश्रुपूर्णाक्षो न सेहे तावुदीक्षितुम् ॥ ३६ ॥ उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व औत्सुक्यादाश्लिषन्निव। नमो नम इतीशानौ बभाषे गद्गदाक्षरः ॥ ३७ ॥ तयोरासनमादाय पादयोरवनिज्य च। अर्हणेनानुलेपेन धूपमाल्यैरपूजयत् ॥ ३८ ॥ सुखमासनमासीनौ प्रसा-

धनुषमें शरको चढाया । उस समय इन्द्रके सेवक बसंत, मद, लोभने मुनि को भली प्रकार से विचलित करने की चेष्टाकी ॥ २५ ॥ पुंजिक स्थली नामक अप्सरा गेंदसे क्रीड़ा करतीथी, दोनों स्तनों के भारसे उसका कटिमंडल हिलरहाथा, उसके बालों के जूड़ेसे फूल बिखर रहेथे, गेंदकी ओर देखती हुई आंखें चारोंओर को घूमरहीं थीं, उस समय पवनने उसका कटिबंधन ढीलाकर, उसका सूक्ष्म वस्त्र हरलिया ॥ २६-२७ ॥ कामने भी समझा कि मुनिवशीभूत हुए हैं, यह विचार कर उसने शरसंधाना । किंतु निर्बल मनुष्य के उद्यम की समान सब व्यर्थ हुआ ॥ २८ ॥ हे मुने ! वह मुनिका अपकार करने गयाथा परन्तु उनके तेजसे वह स्वयंही दग्ध हुआ जैसे बालक सर्पको निद्रासे उठाया भयभीत होकर भागते हैं, वैसेही वे इन्द्रके सेवक भी मुनिको छोड़कर भागे ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मन् ! इन्द्रके सेवकों के इस प्रकार आक्रमण करने परभी मुनि अहंकार के विकार से ग्रसित न हुए; बड़े मनुष्यों के पक्षमें यह कुछ विचित्र नहीं है ॥ ३० ॥ इन्द्र अनुचरों समेत कामदेवको तेज रहित देख और महर्षि के तेजकी कथा सुन अत्यंत विस्मित हुए ॥ ३१ ॥ तपस्या और विद्याध्ययन पूर्वक चित्तको इसप्रकार सयत कररखने से मुनि पर अनुग्रह करने के निमित्त नरनारायण हरि प्रगटहुए ॥ ३२ ॥ वे श्वेत और श्यामवर्ण, नवीन कमल के से नेत्रवाले चतुर्भुज रूप धारण किये, मृगचर्म और वल्कल वस्त्र पहिरे और हाथ में कुश लिये प्रगटहुए । वे नवगुण-यज्ञोपवीत धारण कियेथे । उनके हाथ में कमण्डलु बांसकादण्ड, पद्म, अक्षमाला और कुश शोभायमानथे । उन दीप्तिशाली, बिजली की समान गौर कांतिवाले साक्षात् मूर्तिमान, तपस्यास्वरूप, बड़े २ देवताओं से पूजित, भगवान के अवतार उन दोनों नरनारायण ऋषि को देखतेही मुनिने खड़ेहो आदर सहित साष्टांग दण्डवत्कर नमस्कार किया ॥ ३३-३५ ॥ उनके देखतेही मुनि का चित्त, आत्मा और इंद्रिय शांति को प्राप्त हुई, उनका समस्त देह रोमांचित होआया, नेत्रों से आनन्द के आसू बहने लगे । इसप्रकार की अवस्था से वह उन दोनों को न देखसके ॥ ३६ ॥ तदनन्तर मुनि ने खड़ेहो, हाथ जोड़ नम्रता पूर्वक उत्सुकता सहित आलिंगन सा करतेहुए गद्गद कण्ठ से केवल ' नमस्कार नमस्कार ' इतनाही दोनों ईश्वरों से कहा ॥ ३७ ॥ फिर उन दोनो जनों को आसनदे उनके पैरधो अर्घ्य, चन्दन, धूप और मालाद्वारा उनकीपूजाकी

दाभिमुखौमुनी । पुनरानम्यपादाभ्यां गरिष्ठाविदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ किंवर्णयेतवविभोयदुदीरितोऽसुःसंस्पन्दते तमनुवाङ्मनइन्द्रियाणि स्पन्दन्तिवैतनुभृतामजशर्वयोश्च स्वस्याप्यथापिभजतामसिभावबन्धुः ॥ ४० ॥ मूर्तीइमेभगवतोभगवंस्त्रिलोक्याः क्षेमायतापविरमायचमृत्युजित्यै । नानाबिभर्ष्यवितुमन्यतनूर्यथेदं सृष्ट्वा पुनर्ग्रससिसर्वमिवोर्णनाभिः ॥ ४१ ॥ तस्यावितुःस्थिरचरेशितुरंघ्रिमूलंयत्स्थंनकर्मगुणकालरजःस्पृशन्ति । यद्वैस्तुवन्तिनिनमन्तियजन्त्यभीक्ष्णंध्यायन्तिवेदहृदया मुनयस्तदाप्त्यै ॥ ४२ ॥ नान्यंतवाङ्घ्र्युपनयादपवर्गमूर्तेः क्षेमंजनस्यपरितोभियईशविद्मः । ब्रह्माबिभेत्यलमतोद्विपरार्धधिष्ण्यः । कालस्यतेकिमुतनत्कृतभौतिकानाम् ॥ ४३ ॥ तद्वैभजाम्यृतधियस्तवपादमूलंहित्वेदमात्मच्छदिचात्मगुरोःपरस्य । देहाद्यपार्थमसदन्त्यमभिज्ञमात्रं विन्देततेतर्हिसर्वमनीषितार्थम् ॥ ४४ ॥ सत्त्वंरजस्तमइतीशतवात्मबन्धो मायामयाःस्थितिलयोदयहेतवोऽस्य । लीलाधृतायदपिसत्त्वमयीप्रशान्त्यै नान्येनृणांव्यसनमोहभियश्चयाभ्याम् ॥४५॥ तस्मात्तवेहभगवन्नथतावकानां शुक्लांतनुंस्वदयितांकुशलांभजन्ति । यत्सात्वताःपुरुषरूपमुशन्तिसत्त्वं लोकोयतोऽभयमुतात्मसुखंनचा

॥ ३८ ॥ अनुग्रहाभिमुखी न होकर उन बहुपूजनीय दोनों जनोंके आसन पै बैठजाने पर मार्कंडेय मुनि ने फिर उनके चरणों को प्रणाम करके कहा ॥ ३९ ॥ हे विभो ! आपकी किसप्रकार से मैं बड़ाई करू ? यह तो प्रसिद्धही है कि प्राणियों के, ब्रह्मा के, शिव के व मेरेभी प्राण आपकीही प्रेरणासे प्रवर्तित होते हैं और प्राण के पीछे वाणी, मन, और इंद्रियांभी आपही की प्रेरणा से प्रवृत्त होती हैं ।यद्यपि ऐसा होने से कोई स्वतंत्र नहीं है तौभी आप के प्रवृत्त कियेहुए प्राणआदि से जोआपका भजन करते हैं आप उनपर अत्यंत कृपा करते हो, हे प्रभु ! आप ही आत्मा के बंधुहो ॥ ४० ॥ हे भगवान ! आपकी यह दोनों मूर्त्तियें त्रिलोकी की कल्याण कारक, संताप नाशक और मुक्तिका कारणहैं । आपही इस जगत कीरक्षा करनेके निमित्त मत्स्यादि नाना देह धारण करतेहो । आपही मकड़ी के जालेकी समान इस संसारको उत्पन्न करके फिर अपने में लीन करलेतेहो ॥ ४१ ॥ आपही पालनकर्त्ता तथा चर अचर प्राणियों के ईश्वरहो; आपके चरणोंका मैं भजन करता हूं । जोआपके चरणोंका आश्रय करते हैं उनको कर्म गुण, काल, पाप और पहिले कहेहुए तापादि नहीं छूहसकते । वेद जिनके हृदय में विराजमान है वेसब मुनिइन्हीं चरणों की प्राप्तिके निमित्त आपकी वारंवार स्तुति नमस्कार और पूजाकरते हैं ॥ ४२ ॥ हे ईश्वर ! मनुष्यको सर्वत्रही भय विद्यमान है; उसका उपाय मुक्ति देनेवाले आपके पद प्राप्तिके अतिरिक्त और कुछ नहीं है । ब्रह्माजी द्विपरार्द्ध कालतक निवास करते हैं; किंतु वे ब्रह्माजी भी काल स्वरूप आपसे अत्यंत भयभीत रहते हैं,—फिर उनके उत्पन्न कियेहुए प्राणियों कीतो बातही क्या है ? ॥ ४३ ॥ आत्मा के आवरक, निष्फल, अनित्य, अकिंचित्कर, और अवस्तुभूत होनेसे स्वरूप से पृथक् नहीं दीखने वाले इस देह आदिके भजनको छोड़कर सत्य स्वरूप, जीवके नियंता, आपके इन चरण मूलको मैं भजता हूं । मनुष्य इनका भजन करकेही समस्त इच्छित पदार्थोंको प्राप्त करता है ॥ ४४ ॥ हे ईश्वर ! हे आत्मबंधु ! आपके सत्व, रज और तमोगुण इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण हैं । आप माया मय और लीलामयहो,—आपकी सत्वमयी लीलाही मनुष्योंको मुक्तिदेती है, और रज तमोगुण से दुःख, मोह और भय उत्पन्न होता है ॥ ४५ ॥ हे भगवन् ! पण्डितजन आपकी और आपके भक्तोंकी नारायण नाम रूपसे पूजाकरते हैं । भक्तजन

ऽन्यत् ॥ ४६ ॥ तस्मैनमोभगवतेपुरुषायभूम्ने विश्वायविश्वगुरवेपरदैवताय । नारायणायऋषयेचनरोत्तमाय हंसायसंयतगिरेनिगमेश्वराय ॥ ४७ ॥ यंवैनवेद वितथाक्षपथैर्भ्रमद्धीः सन्तंस्वखेष्वसुषुहृद्यपिदृक्पथेषु । तन्मायया ऽऽवृतमतिः स उएवसाक्षादाद्यस्तवाऽखिलगुरोरुपसाद्यवेदम् ॥ ४८ ॥ यद्दर्शनंनिगमआत्मरहःप्रकाशं मुह्यन्तियत्रकवयोऽजपरायतन्तः । तंसर्ववादविषयप्रतिरूपशीलं वन्देम हापुरुषमात्मनिगूढबोधम् ॥ ४९ ॥

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

सूत उवाच ॥ संस्तुतोभगवानित्थं मार्कण्डेयेनधीमता । नारायणोनरसखः प्रीतआहभृगूद्वहम् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भोभोब्रह्मर्षिवर्योऽसि सिद्धआत्मसमाधिना । मयिभक्त्यानपायिन्या तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ २ ॥ वयंतेपरितुष्टाः स्मत्वद्बृहद्व्रतचर्यया । वरंप्रतीच्छभद्रंते वरदेशादभीप्सितम् ॥३॥ ऋषिरुवाच॥ जितंते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराच्युत । वरेणैतावताऽलंनो यद्भवान्समदृश्यत ॥४॥ गृहीत्वाऽजादयोयस्य श्रीमत्पादाब्जदर्शनम् । मनसायोगपक्वेन सभवान्मेऽक्षगोचरः ॥ ५ ॥ अथाप्यम्बुजपत्राक्ष पुण्यश्लोकशिखामणे । द्रक्ष्येमायांययालोकः सपालोवेदसद्भिदाम् ॥ ६ ॥ सूतउवाच ॥ इतीडितोऽर्चितःकाम मृषिणाभगवान्मुने । तथेतिसस्मयन्प्रागाद्बदर्याश्रममीश्वरः ॥ ७ ॥ तमेवचिन्तयन्नर्थं मृषिःस्वा

सत्व कोही पुरुष स्वरूप मानते हैं,-दूसरेको नहीं। सत्व से मनुष्य अभय और आत्म सुखपाते हैं ॥ ४६ ॥ ऐसे अन्तर्यामी, भूमा, विष्णुरूपी, विश्वगुरू, परमदेव, नरोत्तमऋषि, शुद्धरूप नारायण, वाणीको नियम में रखने वाले, वेदके नियंता श्रीभगवान आपकोमैं नमस्कार करता हू ॥ ४७ ॥ बुद्धि आपकी मायासे लिप्त है इस कारण कपट इन्द्रिय मार्गसे विक्षिप्त चित्तहो मनुष्य आपको नहीं जानसकता। हेप्रभु! आदि पुरुष ब्रह्माजीकोभी सबके गुरू आपने वरदिया तब उनको आपका ज्ञान हुआ। आपका ज्ञान देहादि संघात द्वारा गुप्त है ॥ ४८ ॥ सांख्यादि समस्त विवादोंका जो भिन्न २ विषय है, आपका स्वभाव उन सबकेही अनुरूप है; इसही कारण ब्रह्मा आदि पण्डितगण विशेष चेष्टा करके भी आपको नहीं जानसकते; जो जैसा आपका निरूपण करता है वैसाही हो-सकता है;-मैं आपको नमस्कार करता हू ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भ० महा० द्वाद० सरला भाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

सूतजी ने कहा कि, बुद्धिमान मार्कण्डेय मुनिने जब इस प्रकार स्तुति की तब नरके संगी नारायण ने संतुष्ट होकर मार्कंडेय जीसे कहा ॥ १ ॥ हे ब्रह्मर्षिवर! तुमने तपस्या वेदाध्ययन और नियम से मेरी अचला भक्ति और मन की एकाग्रता द्वारा सिद्धि प्राप्तकी है ॥ २ ॥ तुम्हारे सुन्दर व्रताचरणका देखकर मैं तुम्हारे ऊपर सन्तुष्ट हुआ हू। तुम्हारा कल्याणहो तुम इच्छितवर मांगो, तुमको मैं वरदूंगा ॥३॥ ऋषिने कहा, हे देव देवेश्वर! हे शरणागतजनों के क्लेश हारक! हे अच्युत! आपने यह परम मार्ग दिखाया। मैं जब आपके चरण कमलोंका दर्शन पागया तब फिर और वरस क्या प्रयोजन है ॥ ४ ॥ ब्रह्मादि देवता जिन आपके लक्ष्मीवाले चरण कमलोंको योग के द्वारा पकेहुए मनसे प्राप्त होकर कृतार्थ होते हैं सोही आप मेरे सन्मुख विराजमानहो ॥ ५ ॥ तौभी हे कमल लोचन! हे पवित्र कीर्तिवालों के शिरोमणि! आपकी माया देखने की मेरीइच्छा है; कि जिससे लोकपाल और मनुष्य वस्तुमें भेद दर्शन करते रहते हैं ॥ ६ ॥ सूतजी बोले कि-जब ऋषि ने इसप्रकार कह भगवानकी पूजाकी तब भगवान 'तथास्तु' कहकर मुसकरातेहुए बद्रिकाश्रम को चलेगए ॥ ७ ॥ वह ऋषि वहीं विचार करते २ अपने आश्रम में रह अग्नि, सूर्य,

श्रमपश्चसः । यसत्वग्न्यर्कसोमाम्बु भूवायुवियदात्मसु ॥ ८ ॥ ध्यायन्सर्वत्र च हरिं भावद्रव्यैरपूजयत् । क्वचित्पूजांविसस्मार प्रेमप्रसरसंप्लुतः ॥९॥ तस्यैकदाभृगुश्रेष्ठ पुष्पभद्रातटेमुनेः । उपासीनस्यसंध्यायां ब्रह्मन्वायुरभून्महान् ॥१०॥ तंचण्डशब्दंसमुदीरयन्तं बलाहकाअन्वभवन्करालाः । अक्षस्थविष्ठामुमुचुस्तडिद्भिः स्वनन्तउच्चैरभिवर्षधाराः ॥ ११ ॥ ततोव्यदृश्यन्तचतुःसमुद्राः समन्ततः क्ष्मातलमाग्रसन्तः । समीरवेगोर्मिभिरुग्रनक्र महाभयावर्तगभीरघोषाः ॥ १२ ॥ अन्तर्बहिश्चाद्भिरतिद्युभिःखरैः शतह्रदाभीरुपतापितंजगत् । चतुर्विधंवीक्ष्यसहात्मनामुनिर्जलाप्लुतांक्ष्मांविमनाःसमत्रसत् ॥ १३ ॥ तस्यैवमुद्वीक्षतऊर्मिभीषणः प्रभञ्जनाघूर्णितवार्महार्णवः । आपूर्यमाणोवरषद्भिरम्बुदैः क्ष्मामप्यधाद्द्वीपवर्षाद्रिभिःसमम् ॥ १४ ॥ सक्ष्मान्तरिक्षंसदिवंसभागणं त्रैलोक्यमासीत्सहदिग्भिराप्लुतम् । सएकएवोर्वरितोमहामुनिर्बभ्राम विक्षिप्यजटाजडान्धवत् ॥ १५ ॥ क्षुत्तृट्परीतोमकरैस्तिमिङ्गिलै रुपद्रुतोवीचिनभस्वताहतः । तमस्यपारेपतितोभ्रमन्दिशो नवेदखंगांचपरिश्रमेषितः ॥ १६ ॥ क्वचिद्गतोमहावर्ते तरलैस्ताडितःक्वचित् । यादोभिर्भक्ष्यतेक्वापि स्वयमन्योऽन्यघातिभिः ॥ १७ ॥ क्वचिच्छोकं क्वचिन्मोहं क्वचिद्दुःखंसुखंभयम् । क्वचिन्मृत्युमवाप्नोति व्याध्यादिभिरुतार्दितः ॥ १८ ॥ अयुतायुतवर्षाणां सहस्राणिशतानिच । व्यतीयुर्भ्रमतस्तस्मिन् विष्णुमायावृतात्मनः ॥ १९ ॥ सकदाचिद्भ्रमंस्तस्मिन् पृथिव्याःककुदि द्विजः । न्य

चन्द्र, जल, पृथिवी, वायु, आकाश और आत्मा आदि सर्वत्र मे भगवान का ध्यान करने और सुन्दर पदार्थों द्वारा उनकी पूजा करने लगे । कभी प्रेमभाव से विचलितहो पूजाही को भूलजाते ॥ ८ । ९ ॥ हेमहान् ! हेभृगुश्रेष्ठ ! एक दिन वह मुनि संध्याकालमें पुष्पभद्रानदी के तटपर बैठेथे कि उसही समय में प्रचण्ड वायु चलने लगा ॥ १० ॥ वह वायु भयानक शब्द करनेलगा, तदनंतर भयानक घटा दिखाईदी और बिजली के साथ मिल बड़ी विकराल गर्जना गर्जतीहुई चारों ओर से रथकी धुरा के समान मूसलाधार वृष्टि की धारा वर्षाने लगी ॥ ११ ॥ फिर थोड़ीही देर के उपरांत प्रचण्ड मगर आदि जीव जन्तुओं से परिपूर्ण, भयंकर भँवर और भयंकर शब्दवाले चारोंओर के चारसमुद्र वायु के वेग से लहरातेहुए पृथ्वी को डुबाने लगे ॥ १२ ॥ मुनि अपने समेत चारों प्रकार के जीवों को भीतर और बाहर से जल, प्रबलवायु और बिजली द्वारा भली प्रकार दुःखित और पृथ्वी को जल में डूबती हुई देख व्याकुल चित्तसे अत्यन्त त्रसित होगये ॥ १३ ॥ बड़ी २ लहरोंवाला भयानक वायु से टकराताहुआ जलशाली महासमुद्र उनके सन्मुख इसप्रकार का दिखाई देनेलगा, किउसने धीरे २ मेघ की वर्षा से बढकर द्वीप, वर्ष और पर्वत आदि समस्त पृथ्वी को ढक लिया ॥ १४ ॥ पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, तारागण और दिशाओंसमेत समस्त त्रिलोकी जल में डूबगई । केवल वही महामुनि शेष रहगये वह अपनी जटाओंको बिखेर कर जड और अन्धकी समान विचरण करने लगे ॥ १५ ॥ भूख प्यास से व्याकुल; मगर और तिमिंगिलों के उपद्रवसे व्यथितहुए; लहरों और वायु से घबड़ायेहुए; परिश्रम से दुःखित और अपार अन्धकार में पतितहोकर भ्रमणकारी ऋषि दिशाए, आकाश और पृथ्वी को न जानसके ॥ १६ ॥ कहीं तो वह महासागरमें डूबते, कभी लहरों से टकराते, कभी भक्षण करने के निमित्त परस्पर लड़तेहुए मगर आदि जल जन्तुओं से भक्षित होते ॥ १७ ॥ कभी शोक, कभी मोह, कभी दुःख कभी सुख, कभी भय, और व्याधियों से पीड़ितहोकर मृत्यु को पातेथे ॥ १८ ॥ विष्णुजी की मायासे आवृतहो उस सागर में भ्रमण करते २ महर्षि मार्कंडेय को शतसहस्रअयुत वर्ष बीतगए ॥ १९ ॥ इन मुनि ने एक दिन भ्रमण करते २ उस सागर के मध्य में पृथ्वी के

ग्रोधपोतं ददर्श फलपल्लवशोभितम् ॥ २० ॥ प्रागुत्तरस्यांशाखायां तस्यापिदद्द
शेशिशुम् । शयानंपर्णपुटके ग्रसन्तंप्रभयातमः ॥ २१ ॥ महामरकतश्यामं श्रीम
द्वदनपङ्कजम् । कम्बुग्रीवंमहोरस्कं सुनासंसुन्दरभ्रुवम् ॥ २२ ॥ श्वासैजदलका
भातं कम्बुश्रीकर्णदाडिमम् । विद्रुमाधरभासेषच्छोणायितसुधास्मितम् ॥ २३ ॥
पद्मगर्भारुणापाङ्गं हृद्यहासावलोकनम् । श्वासैजद्वलिसंविग्न निम्ननाभिदलोदर
म् ॥ २४ ॥ चार्वंगुलिभ्यांपाणिभ्या मुन्नीयचरणाम्बुजम् । मुखेनिधाय विप्रेन्द्रोध
यन्तं वीक्ष्यविस्मितः ॥२५॥ तद्दर्शनाद्वीतपरिश्रमो मुदाप्रोत्फुल्लहृत्पद्मविलोचना
म्बुजः। प्रहृष्टरोमाद्भुतभावशङ्कितः प्रष्टुंपुरस्तंप्रससारबालकम्॥२६॥तावच्छिशोर्वै
श्वसितेनभार्गवः सोऽन्तःशरीरंमशकोयथाऽविशत्। तत्राप्यदोन्यस्तमचष्टकृत्स्न
शोयथापुराऽमुह्यदतीवविस्मितः॥२७॥ खंरोदसीभगणानद्रिसागरान्द्वीपान्सवर्षा
न्ककुभःसुरासुरान्।वनानिदेशान्सरितःपुराकरान्खेटान्व्रजानाश्रमवर्णवृत्तयः२८॥
महान्तिभूतान्यथभौतिकान्यसौ कालंचनानायुगकल्पकल्पनम्। यत्किंचिदन्यद्व्य
वहारकारणं ददर्शविश्वंसदिवावभासितम् ॥२९॥ हिमालयंपुष्पवहांच तांनदीं
निजाश्रमं तत्रऋषीनपश्यत्।विश्वंविपश्यन्श्वसिताच्छिशोर्वै बहिर्निरस्तोन्यपतल्ल
याब्धौ ॥ ३० ॥ तस्मिन्पृथिव्याः ककुदिप्ररूढंवटंच तत्पर्णपुटेशयानम् ॥ तोकंच
तत्प्रेमसुधास्मितेन निरीक्षितोऽपांगनिरीक्षणेन ॥ ३१ ॥ अथतबालकंवीक्ष्य नेत्रा-

ऊंचे भागपर फल फूलों द्वारा शोभित एक छोटे बरगदके वृक्ष को देखा ॥ २० ॥ और उस वृक्ष के ईशान ओर की डाली में पत्ते के दोने पर एक बालक को सोयाहुआ देखा कि जो अपनी प्रभा से अन्धकार का नाश कररहाथा ॥ २१ ॥ उस शिशु का वर्ण महा मरकतमणीकीसमान श्याम, मुख कमलकी समान, ग्रीवा शंखकी समान, वक्षःस्थल चौडा, नासिका और भौंह अति सुन्दर हैं ॥ २२ ॥ श्वाससे कांपतेहुए बालोंद्वारा उसकी शोभा होरही है । दोनोंकानोंमें भीतरसे शंख की समान दाडिम के फूल लगेहुए हैं। सुंदर हास्य विद्रुम (मूगा) के से अरुण होंठकी प्रभा से कुछेक अरुण प्रतीतहोरहा है ॥ २३ ॥ कटाक्ष कमल के गर्भ की समान अरुण है म-नोहर देखना है । पीपलके पत्ते की समान पेट में गम्भीर नाभि और श्वास लेने से कम्पायमान होतीहुई पेटकी वलीरेखाए शोभायमान हैं ॥ २४ ॥ हे विप्रेन्द्र ! बालक मनोहर अंगुलियोंयुक्त दोनों हाथों से चरण कमल को खींच उसे मुख में देकर चूसरहाथा । मुनि उस बालकको देख कर बड़े विस्मितहुए ॥ २५ ॥ बालक के देखने से जो आनन्द उत्पन्नहुआ उससे उनका परिश्रम दूरहोगया,—नेत्र कमल और हृदय कमल विकशित होउठे,—रोमांच होआया,—तौभी उससे पूछने के निमित्त उसके निकटगए ॥ २६ ॥ कि इतनेही में वह मार्कंडेय मुनि बालक की श्वासकेसाथही मच्छड़ की समान, उसके शरीर के भीतर घुसगये । वहांभी प्रलय के पूर्व की समान समस्त विश्वको वर्तमान देखा, उसको देखतेही वह अत्यन्त विस्मितहो मुग्ध होगये ॥ २७ ॥ आकाश, अन्तरिक्ष,तारागण,पर्वत,समुद्र, द्वीप,वर्ष, दिशायें, देवता, दैत्य,वन, देश,नदी,नगर,खान,गोकुल, आश्रम,वर्ण, इन दोनों की वृत्तियां, महाभूत, भौतिक पदार्थ, अनेक युग तथा कल्पों की क-ल्पना करानेवाला काल और जो कुछभी व्यवहार का कारण है वह समस्तही सत्य पदार्थ की समान प्रकाशित होतेहुए देखे ॥ २८ । २९ ॥ इन ऋषि ने वहां हिमालय, वही पुष्पवहा नदी और जहां नरनारायण के दर्शनहुए थे अपने उस आश्रम को भी देखा । ऋषि विश्व को देखरहे थे किउसी समय बालक की श्वास से बाहर निकल प्रलय सागर में गिरपड़े । ३० ॥ पृथ्वी के ऊंचे भागमें स्थित उस वट वृक्षको और उसके पत्ते पर सोतेहुए बालक को देखा तथा बालक

भ्यांधिष्ठितं हृदि । अभ्ययादतिसंक्लिष्टः परिष्वक्तुमधोक्षजम् ॥ ३२ ॥ तावत्स भगवान्साक्षाद्योगाधीशो गुहाशयः । अन्तर्दध ऋषेः सद्यो यथेहानीशनिर्मिता ॥ ३३ ॥ तमन्वथ वटो ब्रह्मन्सलिलं लोकसंप्लवः । तिरोधायि क्षणादस्य स्वाश्रमे पूर्ववत्स्थितः ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द्वादश० नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

सूत उवाच । स एवमनुभूयेदं नारायणविनिर्मितम् । वैभवं योगमायायास्तमेव शरणं ययौ ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ प्रपन्नोऽस्म्यंघ्रिमूलंते प्रपन्नाभयदं हरे ॥ यन्माययाऽपि विबुधा मुह्यन्ति ज्ञानकाशया ॥ २ ॥ सूत उवाच । तमेवं निभृतात्मानं वृषेण दिवि पर्यटन् । रुद्राण्या भगवान्रुद्रो ददर्श स्वगणैर्वृतः ॥ ३ ॥ अथोमा तमृषिं वीक्ष्य गिरिशं समभाषत । पश्येमं भगवन्विप्रं निभृतात्मेन्द्रियाशयम् ॥ ४ ॥ निभृतोदझषव्रातो वाताऽपाये यथार्णवः । कुर्वस्य तपसः साक्षात्संसिद्धिं सिद्धिदो भवान् ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच । नैवेच्छत्याशिषः क्वापि ब्रह्मर्षिर्मोक्षमप्युत । भक्तिं परां भगवति लब्धवान्पुरुषेऽव्यये ॥ ६ ॥ अथाऽपि संवदिष्यामो भवान्येतेन साधुना । अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागमः ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तमुपेयाय भगवान्सतां गतिः । ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वदेहिनाम् ॥ ८ ॥ तयोरागमनं साक्षादीशयोर्जगदात्मनोः । न वेद रुद्धधीवृत्तिरात्मानं विश्वमेव च ॥ ॥ ९ ॥ भगवांस्तदभिज्ञाय गिरीशो योगमायया । आविशत्तद्गुहाकाशं वायुश्छि

ने प्रेम के कारण अमृत की सदृश सुन्दर हास्ययुक्त कटाक्षों से मुनि की ओर देखा, मुनि भी अत्यन्त सन्तुष्टहो दोनों नत्रों द्वारा हृदय में प्रतिष्ठित उस अधोक्षज बालक का आलिंगन करने के निमित्त उसके निकट गये ॥ ३१ । ३२ ॥ परन्तु निकट जातेही योग के अधीश्वर, शरीरधारी वह साक्षात् भगवान अभागे मनुष्य के उद्यम की समान ऋषि के निकट से अन्तर्ध्यान होगए ॥ ३३ ॥ हेब्रह्मन् ! इसके उपरांत बटका वृक्ष, जल, सृष्टि, का प्रलय क्षणभर में दूरहोगया । ऋषि पहिले की समान फिर अपने आश्रम में वासकरने लगे ॥ ३४ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेद्वादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

सूतजीने कहा कि–महर्षि मार्कण्डेयने इस विश्वको नारायणकी मायासे रचा हुआ जान और योग मायाके प्रभावका समझ उन्हीं विष्णुजीकी शरण ली ॥ १ ॥ मार्कण्डेयने कहा "हे हरे आपके आर्त्तजनोंके अभयप्रद चरण मूलकी शरणको मैं प्राप्त हुआ हूं । आपकी जिस ज्ञानवत् प्रकाशमान मायासे पण्डित जनभी मोहित होते हैं उसके प्रभावका मैं क्या वर्णन करूं ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि वह इस प्रकारसे एकाग्र चित्तहो समय काट रहेथे कि एक दिन बैलपर विराजे हुए, पार्वती के साथ आकाशमें विचरते और गणोंसे घिरे हुए महादेवजीने इन्हें देखा ॥ ३ ॥ पार्वतीजीने उस ऋषि को देखकर महादेवजी से कहा–हे भगवन् ! देखो, जिस प्रकार वायुके न होनेसे समुद्रका जल और मत्स्यादि निश्चल रहते हैं, उसही प्रकार इस ऋषिने भी आत्मा इन्द्रिय और मनको निश्चल किया है । आप फलदाता हो, इन्हें तपस्या का फल दीजिये ॥ ४ । ५ ॥ महादेवजीने कहा–कि, इस ब्रह्मर्षिने अव्यय पुरुष भगवानकी भक्ति प्राप्तकी है, यह कुछ फलया मुक्ति नहीं चाहते ॥ ६ ॥ तोभी हे भवानि ! इनके साथ बात चीत करूंगा, यह साधु संगही मनुष्योंको परम लाभ है ॥ ७ ॥ सूतजी बोले सब विद्याओं के नियामक, सब प्राणियोंके ईश्वर, साधुओं की गतिवे भगवान महादेवजी इस प्रकार कहकर ऋषिके निकटगये ॥ ८ ॥ ऋषिकी सब अंतःकरण की वृत्तियें रुकगई थीं इस कारण वह जगतके आत्मा महादेवजी व पार्वतीजीका आना न जानसके ॥ ९ ॥ भगवान महादेवजी ने यह जानकर वायु जैसे छिद्रमें प्रवेश करता है

द्रमिवेश्वरः ॥ १० ॥ आत्मन्यपिशिवं प्राप्तं तडित्पिङ्गजटाधरम् । त्र्यक्षं दशभुजंप्रां-
शुमुद्यन्तमिव भास्करम् ॥ ११ ॥ व्याघ्रचर्माम्बरं शूलधनुरिष्वसिचर्मभिः । अक्ष-
मालाडमरुककपालपरशुं सह ॥ १२ ॥ बिभ्राणंसहसाभातं विचक्ष्यहृदि विस्मितः
किमिदंकुतएवेति समाधेर्विरतो मुनिः ॥ १३ ॥ नेत्रेउन्मील्यददृशे सगणंसोमयाऽ-
ऽगतम् । रुद्रं त्रिलोकैकगुरुं ननामशिरसामुनिः ॥ १४ ॥ तस्मैसपर्यां व्यदधात्स-
गणाय सहोमया । स्वागतासनपाद्यार्घगन्धस्रग्धूपदीपकैः ॥ १५ ॥ आहत्वात्मानु-
भावेन पूर्णकामस्यतेविभो । करवामकिमीशान येनेदंनिर्वृतंजगत् ॥ १६ ॥ नमः-
शिवायशान्ताय सत्त्वायप्रमृडायच । रजोजुषेऽथघोराय नमस्तुभ्यंतमोजुषे१७॥
सूत उवाच । एवंस्तुतःस भगवानादिदेवःसतांगतिः । परितुष्टःप्रसन्नात्मा प्रहसं-
स्तमभाषत ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच । वरंवृणीष्वनःकामं वरदेशावयंत्रयः । अ-
मोघंदर्शनंयेषां मर्त्योयद्विन्दतेऽमृतम् ॥ १९ ॥ ब्राह्मणाःसाधवः शान्ता निःसङ्गा
भूतवत्सलाः । एकांतभक्ताअस्मासु निर्वैराःसमदर्शिनः ॥ २० ॥ सलोका लोकपा
लास्तान्वन्दन्त्यर्चन्त्युपासते । अहंचभगवान्ब्रह्मा स्वयंचहरिरीश्वरः ॥ २१ ॥ न
तेमय्यच्युतेऽजेच भिदामण्वपिचक्षते । नात्मनश्चजनस्यापि तद्युष्मान्वयमीमहि
॥ २२ ॥ नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवाश्चेतनोज्झिताः ॥ तेपुनन्त्युरुकालेन यूयंदर्श-
नमात्रतः ॥ २३ ॥ ब्राह्मणेभ्योनमस्यामो येऽस्मद्रूपंत्रयीमयम् । बिभ्रत्यात्मसमाधा-

वैसेही योगमाया के बलसे उनके हृदयाकाश में प्रवेश किया ॥ १० ॥ बिजली की समान पिंगल, जटाधारी, तीननेत्र, दश भुजवाले, उदय होतेहुए सूर्यकी समान तेजस्वी, बाघंबर, त्रिशूल, धनुष, बाण, खड्ग, ढाल, रुद्राक्षकी माला, डमरू, कपाल और परशुको धारण कियेहुए शिवजीको शरीर और हृदय के मध्यमें हठात् प्रकाशित हुआ देख मुनि "यह क्या कहांसे हुआ ?" ऐसा विचार कर समाधिसे निवृत्तहुए ॥ ११—१३ ॥ फिर उन्होंने आंख खोलीतो महादेवजीको पार्वतीजी व रुद्रगणों समेत अपने सामने विराजमान देखा । महादेवजीको देखतेही मुनिने उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥ १४ ॥ तदनन्तर कुशलप्रश्न आसन, पाद्य, अर्घ्य, चन्दन, माला, धूप और दीप द्वारा अनुचरों और उमा समेत उनकी पूजाकी और कहा ॥ १५ ॥ हे विभु! आप अपने प्रभाव सेही पूर्णकाम और जगत के परमसुख कारीहो, हे ईश! मैं आपका क्या कार्यकरूं ॥ १६ ॥ आप निर्गुण शांत, सत्वगुण के अधिष्ठाता, परम सुखदाता, और रज तम गुणके धारण करने वाले तथा अघोरहो; आपको नमस्कार है ॥ १७ ॥ सूतजी बोले कि साधुओं की गति उन भगवान महादेवजी की इसप्रकार स्तुति करने पर वे मार्कंडेय ऋषि पर अत्यन्त संतुष्ट और प्रसन्नहोकर बोले ॥ १८ ॥ मेरे निकट से तुम इच्छितवर को ग्रहण करो, हम तीनों वर देनेवालों के स्वामी हैं, हमारा दर्शन निष्फल नहीं होता, मनुष्य हमारे निकट से मुक्ति प्राप्त करते हैं ॥ १९ ॥ जो ब्राह्मण सदाचारयुक्त, गर्व रहित निष्काम, प्राणियों पर दयालु, हमारे एकांतभक्त, शत्रुता रहित और समदर्शी हैं; समस्त मनुष्य और लोकपाल उनकी बंदना, भजन और उपासना करते हैं ॥ इतनाही नहीं किंतु मैं, भगवान ब्रह्मा, और स्वयं ईश्वर हरिभी उनकी सेवा करते हैं ॥ २०।२१ ॥ वे मुझमें, हरि में, ब्रह्मामें, आत्मा में और अन्यजनों में कुछभी भेद नहीं देखते। इसही कारण हम तुमलोगों की अर्चना करते हैं ॥ २२ ॥ जलमय नदी नदादि तीर्थ नहीं हैं; शिलामय शाल-ग्रामादि देवता नहीं हैं,—होनेपर भी वह बहुत काल में पवित्र करते हैं; किंतु आपलोग तो केवल दर्शनों सेही पवित्र करतेहो ॥ २३ ॥ ब्राह्मण कि जो चित्तकी एकाग्रता, तप, स्वाध्याय, और

नतपः स्वाध्यायसंयमैः ॥ २४ ॥ श्रवणाद्दर्शनाद्वापि महापातकिनोपिवः । शुध्येर
न्नन्त्यजाश्चापि किमुसंभाषणादिभिः ॥ २५ ॥ सूत उवाच ॥ इतिचन्द्रललामस्य
धर्मगह्योपबृंहितम् । वचोऽमृतायनमृषिर्नातृप्यत्कर्णयोः पिबन् ॥ २६ ॥ सचिरंमा
यया विष्णोर्भ्रामितः कर्शितोभृशम् । शिववागमृतध्वस्तक्लेशपुंजस्तमब्रवीत् ॥२७॥
ऋषिरुवाच । अहोईश्वरचर्येयं दुर्विभाव्या शरीरिणाम् । यन्नमन्तीशितव्यानि स्तु
वन्ति जगदीश्वराः ॥ २८ ॥ धर्मग्राहयितुंप्रायः प्रवक्तारश्च देहिनाम् । आचरन्त्य
नुमोदन्ते क्रियमाणं स्तुवन्तिच ॥ २९ ॥ नैतावताभगवतः स्वमायामयवृत्तिभिः॥
न दुष्येतानुभावस्तैर्मायिनः कुहकंयथा ॥ ३० ॥ सृष्ट्वेदं मनसा विश्वमात्मनानुप्र
विश्ययः । गुणैःकुर्वद्भिराभाति कर्तेवस्वप्नदृग्यथा ॥ ३१ ॥ तस्मैनमोभगवते त्रि
गुणायगुणात्मने । केवलायाद्वितीयाय गुरवेब्रह्ममूर्तये ॥३२॥ कंवृणेनुपरंभूमन्वरं
त्वद्वरदर्शनात् । यद्दर्शनात्पूर्णकामः सत्यकामः पुमान्भवेत ॥ ३३ ॥ वरमेकंवृणेऽ
थापि पूर्णात्कामाभिवर्षणात् । भगवत्यच्युतांभक्तिं तत्परेषुतथा त्वयि ॥ ३४ ॥
सूत उवाच ॥ इत्यर्चितोऽभिष्टुतश्च मुनिना सूक्तयागिरा । तमाहभगवाञ्शर्वः श
र्वयाचाभिनन्दितः ॥ ३५ ॥ कामस्तेयंमहर्षेऽस्तु भक्तिर्वांस्त्वमधोक्षजे । आक
ल्पान्ताद्यशःपुण्य मजरामरतातथा ॥ ३६ ॥ ज्ञानत्रैकालिकंब्रह्मन् विज्ञानंच विर

वाक्यादि संयम द्वारा हमारे वेदमय रूप को धारण करते हैं उनको हम प्रणाम करते हैं ॥२४॥ आपके नामादि सुनने व आप लोगों के दर्शन करने से महापातकी चाण्डालभी शुद्ध होते फिर सम्भाषणादि द्वारा जो फल होवे उसका तो कहनाही क्या है ? ॥ २५ ॥ सूतजी बोले कि इसप्रकार धर्म के रहस्यसे परिपूर्ण और कानों के निमित्त अमृतरूप चन्द्रशेखर श्रीशिवके वाक्य सुनकरभी मार्कण्डेय मुनि तृप्तनहुए ॥ २६ ॥ विष्णुजी की माया अनेक दिनों से उन्हें भ्रमण कराहीथी और कष्ट देरहीथी; इससमय शिवजी के वाक्यामृतद्वारा उनके सबक्लेश दूरहोगये फिर उन्होंने शिवजी से कहा कि—॥ २७ ॥ " अहो ! यह ईश्वरी लीला प्राणियों के समझ में आनी अति कठिन है कि जिस लीलासे आप स्वयं सृष्टि के ईश्वरहोकर अपने अधिकार में रहे हुए प्राणियों को प्रणाम करते और उनकी बड़ाई करतेहो ॥ २८ ॥ मुझे तो ऐसा जानपड़ताहै कि—मनुष्योंको धर्मशिक्षा देने के निमित्त धर्म के वक्ता आप स्वयं धर्म का आचरण, अनुमोदन और धर्म करनेवाले की स्तुति तथा प्रशंसा करतेहो ॥ २८ ॥ अपनी मायाकी वृत्तियों को लेकर आप दूसरे प्राणियों को प्रणामआदि करते हो इससे आप के ऐश्वर्य में कुछ हानि नहीं पहुँचती क्योंकि जैसे नट अपना स्वरूप बदलकर अपने सेवक आदि को प्रणाम करे तो उससे उसनटका प्रभाव न्यून नहीं होजाता इसी प्रकार आपको कुछ हानि नहीं पहुँचती ॥ ३० ॥ आप मनद्वारा इस विश्वको उत्पन्नकर आत्मरूप से इसके भीतर प्रवेशकर स्वप्नदर्शी मनुष्य की समान, कार्यकारी गुणोंद्वारा कर्त्ता की समान प्रतीत होतेहो ॥ ३१ ॥ उन त्रिगुण, गुणनियंता, एकमात्र, अद्वितीय, गुरु, ब्रह्ममूर्त्ति, भगवान आपको नमस्कार है ॥ ३२ ॥ हे भूमन् ! आप का दर्शनही वर है अतएव दूसरे और वरकी क्या प्रार्थना करूं ! आपके दर्शन सेही मनुष्योंकी इच्छाएंपूर्ण होजाती हैं ॥ ३३ ॥ तौभी मैं आप से एक वरकी प्रार्थना करताहूं कि, भगवान आप में और आप के भक्तों में मेरी अचला भक्ति रहे ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले कि मुनिद्वारा इसप्रकार से पूजित और देववाक्यद्वारा इसप्रकार स्तुतहो देवी द्वारा अभिनंदित भगवान महादेवजी ने उनसे कहा ॥ ३५ ॥ " हे महर्षे ! हेब्रह्मन् ! अधोक्षज भगवान में तुम्हारी भक्ति है अतएव तुम्हारी सब इच्छाएं पूरी होंगी, तुमकल्पतक अजर और अमर रहोगे, और तुम्हारी अत्यन्त पवित्र कीर्त्ति

क्तिमत् । ब्रह्मवर्चस्विनोभूयात्पुराणाचार्यताऽस्तुते ॥ ३७ ॥ सूत उवाच ॥ एवं
वरान्समुनयेदत्वाऽगात्त्र्यक्षईश्वरः । देव्यैतत्कर्मकथयन्ननुभूतंपुरामुनेः ॥३८॥ सो
ऽप्यवाप्तमहायोगमहिमाभार्गवोत्तमः । विचरत्यधुनाप्यद्धा हरावेकान्ततांगतः ॥
३९ ॥ अनुवर्णितमेतत्ते मार्कण्डेयस्यधीमतः । अनुभूतंभगवतोमाया वैभवमद्भु
तम् ॥ ४० ॥ एतत्केचिदविद्वांसो मायासंसृतिमात्मनः । अनाद्यावर्तितंनृणां कादा
चित्कंप्रचक्षते ॥ ४१ ॥ यएवमेतद्भृगुवर्यवर्णितं रथाङ्गपाणेरनुभावभावितम् ।
संश्रावयेत्संशृणुयादुतावुभौ तयोर्नकर्माशयसंसृतिर्भवेत् ॥ ४२ ॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

शौनकउवाच ॥ अथेममर्थंपृच्छामो भवन्तंबहुवित्तमम् । समस्ततन्त्रराद्धा
न्ते भवान्भागवततत्त्ववित् ॥ १ ॥ तान्त्रिकाःपरिचर्यायां केवलस्यश्रियःपतेः ।
अङ्गोपाङ्गायुधाकल्पं कल्पयन्तियथाचयैः ॥ २ ॥ तन्नोवर्णयभद्रंते क्रियायोगंबुभु
त्सताम् । येनक्रियानैपुणेन मर्त्योयायादमर्त्यताम् ॥ ३ ॥ सूतउवाच । नमस्कृत्यगु-
रून्वक्ष्ये विभूतीर्वैष्णवीरपि । याःप्रोक्तावेदतन्त्राभ्यामाचार्यैःपद्मजादिभिः ॥ ४ ॥
मायाद्यैर्नवभिस्तत्त्वैःसविकारमयोविराट् । निर्मितोदृश्यतेयत्र सचित्केभुवनत्रयम्
॥ ५ ॥ एतद्वैपौरुषंरूपं भूःपादौद्यौःशिरोनभः । नाभिःसूर्योऽक्षिणीनासे वायुःकर्णौ

होगी ॥ ३६ ॥ तुम ब्रह्मतेजवालेहो, तुमको भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालका ज्ञान, वैराग्य सहित विज्ञान होगा । तुम पुराण में आचार्य होगे ॥ ३७ ॥ सूतजी बोले कि—वह त्रिलोकी के ईश्वर मुनि को इसप्रकार से वरदानदे उनके कार्य और इससे पहिले जो अनुभव कियाथा वह सब पार्वतीजी से कहते २ वहां से चलेगए ॥ ३८ ॥ वह मुनि भी महा योगकी महिमाकोप्राप्त हो भगवद्भक्तों में प्रधानहुए, साक्षात् हरि में ऐकांतिक भक्तिको प्राप्त कर वह इस समय भी विचरते हैं ॥ ३९ ॥ बुद्धिमान मार्कण्डेयमुनि की अनुभव कीहुई भगवान की अद्भुत माया को मैंने तुमसे कहा ॥ ४० ॥ जो मनुष्यों की सृष्टि और प्रलयस्वरूप भगवान की मायाको नहीं जानते वह कहते हैं कि मार्कंडेय मुनि के देखने में आया हुआ प्रलय सातबर हुआ नैमित्तिक प्रलय है (क्योंकि मार्कंडेयमुनि बालक की श्वास से सात बेर बाहर निकले और भीतरगए) और जो जानते हैं वह कहते हैं कियह आकस्मिक है ॥ ४१ ॥ हे भृगुश्रेष्ठ ! भगवान के प्रभावद्वारा हुए इस उपाख्यान को जो सुनता व सुनाता है उन दोनों पुरुषों को कर्म वासनाओं से होता हुआ जन्म मरण नहीं प्राप्त होता ॥ ४२ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेद्वादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

शौनकजी बोले कि—हे भगवद्भक्त सूत ! तुम समस्त तंत्र सिद्धांतोंके तत्त्वको जाननेवाले और बहुवेत्ता हो । इस समय तुमसे एक विषय पूछता हूं ॥ १ ॥ कि भगवान तो केवल चैतन्य घन हैं किंतु तांत्रिक उपासक उपासना कालों उनके हाथ पैर आदि अंग गरुड़ आदि उपांग, सुदर्शनादि अस्त्र और कौस्तुभादि आभरणों की किस २ प्रकारसे और किस २ मन्त्रसे कल्पना करते हैं ? सो मुझसे कहो । क्रियायोग के जाननेकी मैं इच्छा करता हूं कि जिस क्रिया की निपुणताद्वारा मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करते हैं अतएव आप उसको भी कहिये ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि ब्रह्मादि आचार्यों द्वारा वेद और मन्त्रमें विष्णुजीकी जो विभूति कहीगईहै गुरुदेवको प्रणाम करके उसीका मैं वर्णन करता हूं ॥४॥ पहिले तो प्रकृति, सूत्र, महत्, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र इन नव तत्त्वों द्वारा तथा एकादश इन्द्रिय और पंचमहाभूत इन सोलह विकारों द्वारा विराट् मूर्त्ति उत्पन्न हुई है । उसही चैतनाधिष्ठित विराट् मूर्त्तिसे तीनों भुवन दिखाई देते हैं ॥ ५ ॥ यही विराट् पुरुषका रूप है । पृथ्वी इसके दोनों चरण, स्वर्गलोक मस्तक, आकाशनाभि,

दिशः प्रभोः ॥ ६ ॥ प्रजापतिःप्रजननमपानो मृत्युरीशितुः । तद्बाहवोलोकपाला
मनश्चन्द्रोभ्रुवौयमः ॥ ७ ॥ लज्जोत्तरोऽधरोलोभोदन्ता ज्योत्स्नास्मयोभ्रमः । रो-
माणिभूरुहाभूम्नोमेघाः पुरुषमूर्धजाः ॥ ८ ॥ यावानयंवैपुरुषो यावत्यासंस्थया
मितः । तावानसावपिमहापुरुषो लोकसंस्थया ॥ ९ ॥ कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्म
ज्योतिर्बिभर्त्यजः । तत्प्रभाव्यापिनी साक्षाच्छ्रीवत्समुरसाविभुः ॥ १० ॥ स्वमायां
वनमालाख्यां नानागुणमयींदधत् । वासश्छन्दोमयंपीतं ब्रह्मसूत्रंत्रिवृत्स्वरम् ११ ॥
बिभर्तिसांख्यंयोगंच देवोमकरकुण्डले । मौलिंपदंपारमेष्ठ्यं सर्वलोकाभयंकर
म् ॥ १२ ॥ अव्याकृतमनन्ताख्यमासनं यदधिष्ठितः । धर्मज्ञानादिभिर्युक्तं सत्त्वंप-
द्ममिहोच्यते ॥ १३ ॥ ओजःसहोबलयुतं मुख्यतत्त्वंगदांदधत् । अपांतत्त्वंदरवरंते-
जस्तत्त्वंसुदर्शनम् ॥ १४ ॥ नभोनिभंनभस्तत्त्वमसिंचर्मतमोमयम् । कालरूपंधनुः
शार्ङ्गंतथाकर्ममयेषुधिम् ॥ १५ ॥ इन्द्रियाणिशरानाहुराकूतीरस्यस्यन्दनम् । त
न्मात्राण्यस्याभिव्यक्तिंमुद्रयार्थक्रियात्मताम् ॥ १६ ॥ मण्डलंदेवयजनं दीक्षासं
स्कारआत्मनः । परिचर्याभगवतआत्मनोदुरितक्षयः ॥ १७ ॥ भगवान्भगशब्दार्थं
लीलाकमलमुद्वहन् । धर्मंयशश्चभगवांश्चामरव्यजनेऽभजत् ॥ १८ ॥ आतपत्रंतुवै
कुण्ठंद्विजाधामाकुतोभयम् । त्रिवृद्वेदःसुपर्णाख्योयज्ञंवहतिपूरुषम् ॥ १९ ॥ अनपा
यिनीभगवतीश्रीःसाक्षादात्मनोहरेः । विष्वक्सेनस्तन्त्रमूर्तिर्विदितःपार्षदाधिपः ॥

सूर्यनेत्र, वायु नाक, और दिशाएं कान हैं ॥ ६ ॥ प्रजापति उपस्थ, काल अपानवायु, लोक पाल भुजाएं, चंद्रमा मन, यम भौंहहैं ॥७॥ लज्जा और लोभ दोनों होंठ, चंद्रिका दांत, भ्रमहास्य, सब वृक्ष इसके रोम और मेघ इसके केश हैं ॥ ८ ॥ इस ब्रह्माण्डरूप देहकी भूप दीप आदि से पूजा और ध्यान नहीं होसकता इस कारण जैसा मनुष्य की देहका प्रमाण है वही प्रमाण भगवान् की छोटी देहमे भी मानने में आता है ॥ ९ ॥ मूर्तिमें जो कौस्तुममणि है वह शुद्ध चैतन्य धारण किया हुआ मानने में आता है और वक्ष.स्थल में जो श्रीवत्सका चिह्न है वह साक्षात् शुद्ध चैतन्य की व्यापक प्रभासे उत्पन्न हुआ जीव है ॥ १० ॥ वे वनमाला रूपिणी अनेकों गुणमयी अपनी मायाको, तथा वेदमय पीताम्बर और यज्ञोपवीत रूप त्रिमात्र प्रणव (अकार, उकार, मकार) को धारण करते हैं ॥ ११ ॥ मकर कुंडल रूप सांख्ययोग, और मुकुट रूप सर्वलोक नमस्कृत ब्रह्मपद धारण किये हैं ॥ १२ ॥ प्रधान अनंत नामक आसन है जिसमें बैठे हुए हैं, वह आसनभूत कमल ज्ञानादि युक्त सत्वगुण है ॥ १३ ॥ तेज, मनोबल और बलयुक्त प्राण तत्वरूप गदा, जल तत्वरूप शङ्ख, तेजस्तत्व रूप सुदर्शन, शरीर में रहाहुआ आकाश रूप आकाशतत्व खड्ग, तमोमय ढाल, कालरूप धनुषबाण और कर्ममय तरकस धारण किये हैं ॥ १४—१५ ॥ इन्द्रियें बाण, क्रियाशक्ति युक्तमन रथ, पञ्च तन्मात्र इसका रूप है । भगवान मुद्राद्वारा वरद और अभयदादि रूप धारण करते हैं ॥ १६ ॥ सूर्यमंडल इन भगवान की पूजाकी भूमि है और दीक्षा आत्माका संस्कार है । भगवान की जोपूजा करने में आती है वह अपने पापोंके नाश करने के निमित्त है ॥ १७ ॥ हे द्विज! ऐश्वर्यादि छैःगुण भगवान के हस्तस्थ लीला—कमल और धर्म तथा यश इनके चामर और व्यजन हैं ॥ १८ ॥ वैकुंठ धामछत्र और जोमंदिर है वह निर्भय मोक्षरूप है, वेदत्रय भगवान के गरुड़ रूप वाहन, और स्वयं भगवानही यज्ञ स्वरूप हैं ॥ १९ ॥ भगवान के निकट जोलक्ष्मीजी विराजमान हैं वे भगवान की साक्षात् अविचल शक्ति हैं । तंत्रशास्त्रका स्वरूप इनके पार्षदोंका अधिपति विष्वक्सेन है; मंदिरके द्वारपर जो नंदआदि आठपार्षद हैं वे अणिमादि अष्ट सिद्धियां हैं ॥ २० ॥ हे ब्रह्मन्! वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध यह चार पुरुष मूर्त्ति

२० ॥ नन्दादयोऽष्टौद्वास्थाश्च तेऽणिमाद्याहरेर्गुणाः। वासुदेवःसंकर्षणःप्रद्युम्नःपु-
रुषःस्वयम । अनिरुद्धइतिब्रह्मन्मूर्तिव्यूहोभिधीयते ॥ २१ ॥ सविश्वस्तैजस.प्राज्ञ
स्तुरीयइतिवृत्तिभिः । अर्थेन्द्रियाशयज्ञानैर्भगवान्परिभाव्यते ॥ २२ ॥ अङ्गोपाङ्गायु
धाकल्पैर्भगवांस्तच्चतुष्टयम् । बिभर्तिस्मचतुर्मूर्तिर्भगवान्हरिरीश्वरः ॥ २३ ॥
द्विजऋषभसएषब्रह्मयोनिःस्वयंदृक्स्वमहिमपरिपूर्णो मायया चस्वयैतत्। सृजति
हरतिपातीत्याख्ययाऽनावृताक्षोविवृतइवनिरुक्तस्तत्परैरात्मलभ्यः ॥ २४ ॥ श्री
कृष्णकृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य।गोविंदगोपवनिता
व्रजभृत्यगीततीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलपाहिभृत्यान्॥२५॥यइदंकल्यउत्थाय महापुरु-
षलक्षणम् । तच्चित्तःप्रयतोजप्त्वा ब्रह्मवेदगुहाशयम् ॥ २६ ॥ शौनकउवाच ॥
शुकोयदाहभगवान्विष्णुरातायशृण्वते । सौरोगणोमासिमासिनानावसतिसप्त-
कः ॥ २७ ॥ तेषांनामानिकर्माणि संयुक्तानामधीश्वरैः । ब्रूहिनःश्रद्दधानानां व्यूहं
सूर्यात्मनोहरेः ॥ २८ ॥ सूतउवाच । अनाद्यविद्यया विष्णोरात्मनःसर्वदेहिनाम् ।
निर्मितोलोकतन्त्रोयंलोकेषुपरिवर्त्तते ॥ २९ ॥ एकएवहिलोकानांसूर्यआत्मादिकृ-
द्धरिः । सर्ववेदक्रियामूलमृषिभिर्बहुधोदितः ॥ ३० ॥ कालोदेशःक्रिया कर्ताकर
णंकार्यमागमः । द्रव्यंफलमितिब्रह्मन्नवधोक्तोऽजयाहरिः ॥ ३१ मध्वादिषुद्वादश
सु भगवान्कालरूपधृक् । लोकतन्त्रायचरति पृथग्द्वादशभिर्गणैः ॥ ३२ ॥ धाता

इनको चार मूर्तिव्यूह हैं ॥ २१ ॥ हे भगवन्! वे विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय रूप मानीजाती हैं, जिनमें प्रथम जाग्रत अवस्था रूप विषयों में से, दूसरी स्वप्नावस्था रूपमन परसे, तीसरी सुषुप्ति रूपसे और चौथी तुरीया इन तीनों के साक्षीपनसे भावना कीजाती है ॥ २२ ॥ अंग, उपांग, शस्त्र और आभरणो से शोभित चार भुजवाले भगवान अपनी मूर्त्तिमें विषय, इन्द्रियां, गोलक, और देवताओं को अर्थात् समस्त ब्रह्माण्डको धारणकिये हैं ॥ २३ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! वेदोंके कारण रूप स्वप्रकाश, अपनी महिमा से पूर्ण, अपनी मायाके कारण उत्पत्ति, स्थिति, और प्रलय करने के निमित्त ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन नामों से भिन्न २ कहेजाते हुए ये परमात्मा यद्यपि एक स्वरूप हैं तौभी शास्त्रों ने उन्हें ऐसे कहा है कि मानों वे पृथक् हैं अतएव भक्तिवान विद्वान् पुरुष उनको आत्मा रूपसेही प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥ हे कृष्ण ! हे अर्जुन के मित्र ! हे वृष्णि वंशियों में श्रेष्ठ ! आपने पृथ्वी के विघ्न कारक क्षत्रियोंका नाश किया । हे अक्षीण पराक्रम ! हे गोविंद ! गोपियें और नारदादि आपके निर्मल यशका सर्वत्र गानकरते हैं; आपका नाम सुनतेही कल्याण होता है; आप हमभक्तों की रक्षाकरो ॥ २५ ॥ जोमनुष्य प्रात.काल उठकर एकाग्र चित्तहो इन भगवान के लक्षण स्वरूपका ध्यान करता है वह ब्रह्मको जानसकता है ॥ २६ ॥ शौनकजी बोले कि विष्णुरात परीक्षित के पूछनेपर शुकदेवजी ने जोकहाथा,-कि महीने २ में पृथक् २ सूर्यकी अनेकों मूर्त्तिव्यूह सप्तसंख्या में उदित होती हैं, अधीश्वर द्वारा नियुक्त सूर्यात्मा हरिके उनसब मूर्त्तिव्यूहों के नाम और कर्म मुझसे प्रकाशित करके कहो ॥ २७—२८ ॥ सूतजी ने कहा कि,-सब प्राणियों के आत्मा विष्णुजी की अनादि अविद्या से उत्पन्न लोक परतंत्र यह सूर्य भगवान लोको में भ्रमण करते हैं ॥ २९ ॥ जगदात्मा आदिकर्त्ता नारायण सूर्य एक होकर भी लोकों के समस्त वेदोक्त क्रियाके मूलरूप से ऋषियों द्वारा उपाधिवश अनेकों रूपसे कीर्तित होते रहते हैं ॥ ३० ॥ वही नारायण सूर्य,—मायाद्वारा काल, देश क्रिया, कर्त्ता, कारण, कार्य, मन्त्र, द्रव्य और फल रूप से कीर्तित होते हैं ॥ ३१ ॥ काल रूपधारी भगवान आदित्य, लोक यात्राके निर्वाहक निमित्त चैत्र आदि बारह महीनों में पृथक् २ बारह गणोंके साथ विचरते हैं ॥ ३२ ॥ सूर्य, अप्सरा, राक्षस,

कृतस्थलीहेति वासुकीरथकृन्मुने । पुलस्त्यस्तुम्बुरुरिति मधुमासंनयन्त्यमी ॥ ३३ ॥ अर्यमापुलहोऽथौजाः प्रहेतिःपुञ्जिकस्थली । नारदःकच्छनीरश्च नयन्त्येतेस्मभाधवम् ॥ ३४ ॥ मित्रोऽत्रिःपौरुषेयोऽथतक्षकोमेनकाहहाः । रथस्वनइतिह्येते शुक्रमासंनयन्त्यमी ॥ ३५ ॥ वसिष्ठोवरुणोरम्भा सहजन्यस्तथाहुहूः । शुक्रश्चित्रस्वनश्चैवशुचिमासंनयन्त्यमी ॥ ३६ ॥ इन्द्रोविश्वावसुः श्रोताएलापत्रस्तथाङ्गिराः प्रम्लोचाराक्षसोवर्यो नभोमासंनयन्त्यमी ॥ ३७ ॥ विवस्वानुग्रसेनश्चव्याघ्रआसारणोभृगुः । अनुम्लोचाशंखपालो नभस्याख्यंनयन्त्यमी ॥ ३८ ॥ पूषाधनंजयोवातःसुषेणःसुरुचिस्तथा । घृताचीगौतमश्चेति तपोमासंनयन्त्यमी ॥३९॥ ऋतुर्वर्चाभरद्वाजः पर्जन्यःसेनजित्तथा । विश्वऐरावतश्चैव तपस्याख्यंनयन्त्यमी ॥४०॥ अथांशुःकश्यपस्तार्क्ष्य ऋतसेनस्तथोर्वशी । विद्युच्छत्रुर्महाशंखः सहोमासंनयन्त्यमी ॥ ४१ ॥ भगःस्फूर्जोऽरिष्टनेमिरूर्णआयुश्चपञ्चमः । कर्कोटकःपूर्वचित्तिः पुष्यमासंनयन्त्यमी ॥ ४२ ॥ त्वष्टाऋचीकतनयः कम्बलश्चतिलोत्तमा । ब्रह्मापेतोथशतजिद्धृतराष्ट्रइषम्भराः ॥ ४३ ॥ विष्णुरश्वतरोरम्भा सूर्यवर्चाश्चसत्यजित् ॥ विश्वामित्रोमखापेत ऊर्जमासंनयन्त्यमी ॥ ४४ ॥ एताभगवतोविष्णो रादित्यस्यविभूतयः । स्मरतांसंध्ययोर्नॄणां हरन्त्यंहोदिनेदिने ॥ ४५ ॥ द्वादशस्वपिमासेषु देवोऽसौषड्भिरस्यवै । चरन्समन्तात्तनुते परत्रेहचसन्मतिम् ॥ ४६ ॥ सामर्ग्यजुर्भिस्तल्लिंगैर्ऋषयःसंस्तुवन्त्यमुम् । गन्धर्वास्तंप्रगायन्तिनृत्यन्त्यप्सरसोऽग्रतः ॥ ४७ ॥ उन्नह्यन्तिरथंनागाग्रामण्योरथयोजकाः । चोदयंतिरथंपृष्ठे नैर्ऋताबलशालिनः ॥ ४८ ॥ वालखिल्याःसहस्राणिषष्टिर्ब्रह्मर्षयोऽमलाः । पुरतोभिमुखंयान्ति

वासुकि, यक्ष, पुलस्त्य, तुम्बुरु, यह सातगण चैत्रमास में विचरते हैं ॥ ३३ ॥ अर्यमा, पुलह, यक्ष, राक्षस, नारद, गन्धर्व और नाग यह वैशाख मासमें भ्रमण करते हैं ॥ ३४ ॥ सूर्य, अत्रि, राक्षस, तक्षक, मनका, गन्धर्व और यक्ष यह ज्येष्ठ मासमें विचरते हैं ॥ ३५ ॥ वसिष्ठ, सूर्य, रम्भा, राक्षस, गन्धर्व, नाग, और यक्ष यह आषाढ मे घूमते हैं ॥ ३६ ॥ सूर्य, गन्धर्व, अंगिरा, यक्ष, नाग, प्रम्लोचा और राक्षस यह श्रावण में विचरते हैं ॥ ३७ ॥ सूर्य, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, भृगु, अनुम्लोचा और नाग यह भादोंमें घूमते हैं ॥ ३८ ॥ सूर्य, नाग, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, घृताची और गौतम यह माघमें विचरण करते हैं ॥ ३९ ॥ यक्ष, राक्षस, भरद्वाज, सूर्य, अप्सरा, गन्धर्व और नाग यह फागुन मासमें विचरते हैं ॥ ४० ॥ सूर्य, यक्ष गन्धर्व, राक्षस, नाग, उर्वशी और कश्यप यह अगहन में भ्रमण करते हैं ॥ ४१ ॥ सूर्य, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, ऋषि, नाग और पूर्व चित्ति यह पौष में घूमते हैं ॥ ४२ ॥ विश्वकर्मा, यमदग्नि, नाग, राक्षस, तिलोत्तमा, यक्ष, और गन्धर्व यह आश्विनमास में भ्रमण करते हैं ॥ ४३ ॥ आदित्य, नाग, गन्धर्व, रम्भा, यक्ष, विश्वामित्र और राक्षस यह कार्तिक मास में विचरण करते हैं ॥ ४४ ॥ जो दोनों सन्ध्याओं में भगवान सूर्यनारायण की इन विभूतियों का स्मरण करता है, दिन २ उसके पाप नष्टहोतेजाते हैं ॥ ४५ ॥ सूर्यदेव इसप्रकार गन्धर्वादि सगेत बारहमहीनों में इस विश्व के चारों ओर फिरकर मनुष्यों को शुभ बुद्धि देते हैं ॥ ४६ ॥ ऋषिगण साम, ऋक्, यजुर्मन्त्रद्वारा इनकीस्तुति करते हैं, गंधर्व इनके गुणों को गाते हैं और इनके आगे अप्सराएं नाचती हैं ॥ ४७ ॥ नाग इनके रथ में दृढबन्धन करते हैं यक्ष इनके रथको चलाते हैं और बलवान राक्षस इनके रथके पीछे २ धकेलते हैं ॥ ४८ ॥ साठहज़ार निष्पाप महर्षि बालखिल्य ऋषिगण सामनेहो इनके रथके आगे २ स्तुति

स्तुवन्तिस्तुतिभिर्विभुम् ॥ ४९ ॥ एवंह्यनादिनिधनोभगवान्हरिरीश्वरः।कल्पेकल्पे
स्वमात्मानंव्यूह्यलोकानवत्यजः ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द्वादश० एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

सूतउवाच ॥ नमोधर्मायमहते नमःकृष्णायवेधसे । ब्राह्मणेभ्योनमस्कृत्य ध
र्मान्वक्ष्येसनातनान् ॥ १ ॥ एतद्वःकथितंविप्रा विष्णोश्चरितमद्भुतम् । भवद्भिर्यदहं
पृष्टो नराणांपुरुषोचितम् ॥ २ ॥ अत्रसंकीर्तितःसाक्षात् सर्वपापहरोहरिः । नारा
यणोहृषीकेशो भगवान्सात्वतांपतिः ॥ ३ ॥ अत्रब्रह्मपरंगुह्यं जगतःप्रभवाप्यय
म् । ज्ञानंचतदुपाख्यानं प्रोक्तंविज्ञानसंयुतम् ॥ ४ ॥ भक्तियोगःसमाख्यातो वैरा
ग्यंचतदाश्रयम् । पारीक्षितमुपाख्यानं नारदाख्यानमेवच ॥ ५ ॥ प्रायोपवेशोराज
र्षेर्विप्रशापात्परीक्षितः । शुकस्यचब्रह्मर्षेः संवादश्चपरीक्षितः ॥ ६ ॥ योगधार
णयोत्क्रान्तिः संवादोनारदाजयोः । अवतारानुगीतंच सर्गःप्राधानिकोऽग्रतः॥७॥
विदुरोद्धवसंवादः क्षत्तृमैत्रेययोस्ततः । पुराणसंहिताप्रश्नो महापुरुषसंस्थितिः॥
॥ ८ ॥ ततःप्राकृतिकःसर्गः सप्तवैकृतिकाश्चये । ततोब्रह्माण्डसंभूतिर्वैराजःपुरुषो
यतः ॥ ९ ॥ कालस्यस्थूलसूक्ष्मस्य गतिःपद्मसमुद्भवः । भुवउद्धरणेऽम्भोधेर्हिर
ण्याक्षवधो यथा ॥ १० ॥ ऊर्ध्वतिर्यगवाक्सर्गो रुद्रसर्गस्तथैवच । अर्धनारीनर
स्याथ यतःस्वायम्भुवोमनुः ॥ ११ ॥ शतरूपाचयास्त्रीणा माद्याप्रकृतिरुत्तमा ॥
संतानोधर्मपत्नीनां कर्दमस्यप्रजापतेः ॥ १२ ॥ अवतारोभगवतः कपिलस्यमहा

करतेहुए चलते हैं ॥ ४९ ॥ अनादि अनन्त, हरि भगवान ईश्वर इसप्रकार कल्प २ में अपने आत्मा का विभाग करके सब मनुष्यों का प्रतिपालन करते हैं ॥ ५० ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०द्वादश०सरलाभाषाटीकायाएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

सूतजी बोले कि—महत्धर्म को, विधाता श्रीकृष्णजी को और ब्राह्मणों को नमस्कार करके सनातनधर्म के कहने का आरम्भ करताहूं । मनुष्योंके सुनने योग्य जिनसमस्त विषयों को आपने मुझसे पूंछाथा, हे विप्रो ! भगवान विष्णुजी के उन्हीं अद्भुतचरित्रों को मैंने आप लोगों से कहा ॥ २ ॥ भगवान हृषीकेश भक्तपति नारायण के सर्व पाप हरनेवाले स्वरूप का भी मैंने आपसे इसपुराण में वर्णन किया ॥ ३ ॥ इसमें जगत् की उत्पत्ति, स्थिति प्रलय कर्त्ता गुप्त परब्रह्मका स्वरूप और ज्ञान विज्ञानयुक्त उनका आख्यान भी वर्णन किया है ॥ ४ ॥ भक्तियोग औरउसके आश्रय वैराग्य काभी वर्णन हुआ तहां प्रथम अध्याय में परीक्षित राजा का उपाख्यान, नारद का उपाख्यान, ॥ ५ ॥ ब्राह्मण के शापसे परीक्षित राजा का कियाहुआ अन्न जल का त्याग और ब्रह्मोत्तम शुकदेवजी तथा राजा परीक्षित का सम्वाद इतने विषय हैं ॥ ६ ॥ द्वितीयस्कन्ध में योगधारण से ऊपर के लोकों में गति, ब्रह्मनारद सम्वाद, अवतारों का वर्णन, और महत्तत्त्व आदि के क्रम से विराट् की उत्पत्ति कहीगई ॥ ७ ॥ तृतीयस्कन्ध में विदुर उद्धव आदि का कथोपकथन विदुर मैत्रेयसम्वाद, पुराण संहिता के प्रश्नोत्तर, प्रलय में परमात्मा की स्थिति कही गई है ॥ ८ ॥ तदनन्तर प्राकृतिक सर्ग, महदादि सप्तसर्ग विकारसर्ग, फिर ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और ब्रह्माण्ड में विराट्पुरुष के स्वरूप का वर्णन किया है ॥ ९ ॥ स्थूल सूक्ष्म कालकी गति, नाभिपद्मसे ब्रह्माकी उत्पत्ति, समुद्रसे पृथ्वी का उद्धार और हिरण्याक्षवध वर्णित हुआ है॥१०॥ वृक्ष, पशु, पक्षी और मनुष्यों की सृष्टि; रुद्रकी सृष्टि, स्वायम्भुवमनुकी सृष्टि; शतरूपा और आद्या प्रकृति का वर्णन किया है । कर्दम प्रजापति का और धर्म पत्नियों की संतानका वर्णन ॥ ११ ॥

त्मनः । देवहूत्याश्चसंवादः कपिलेनचधीमता ॥ १३ ॥ नवब्रह्मसमुत्पत्तिर्दक्षयज्ञ
विनाशनम् । ध्रुवस्यचरितंपश्चात् पृथोःप्राचीनबर्हिषः ॥ १४ ॥ नारदस्यचसंवाद
स्ततःप्रैयव्रतंद्विजाः । नाभेस्ततोऽनुचरितं ऋषभस्यभरतस्यच ॥ १५ ॥ द्वीप
वर्षसमुद्राणांगिरिनद्युपवर्णनम् । ज्योतिश्चक्रस्यसंस्थानं पातालनरकस्थितिः १६॥
दक्षजन्मप्रचेतोभ्यस्तत्पुत्रीणांचसंततिः । यतोदेवासुरनरास्तिर्यङ्नगखगादयः ॥
॥ १७ ॥ त्वाष्ट्रस्यजन्मनिधनं पुत्रयोश्चदितेर्द्विजाः । दैत्येश्वरस्यचरितं प्रह्लादस्य
महात्मनः ॥ १८ ॥ मन्वन्तरानुचरितं गजेन्द्रस्यविमोक्षणम् । मन्वन्तरावताराश्च
विष्णोर्हयशिरादयः ॥ १९ ॥ कौर्मंधान्वतरंमात्स्यं वामनंचजगत्पतेः । क्षीरोदम
थनंतद्वत् मृतार्थेदिवौकसाम् ॥ २० ॥ देवासुरंमहायुद्धं राजवंशानुकीर्तनम् ।
इक्ष्वाकुजन्मतद्वंशः सुद्युम्नस्यमहात्मनः ॥ २१ ॥ इलोपाख्यानमत्रोक्तं तारोपाख्या
नमेवच । सूर्यवंशानुकथनं शशादाद्यानृगादयः ॥ २२ ॥ सौकन्यंचाथशर्यातेः
ककुत्स्थस्यचधीमतः । खट्वाङ्गस्यचमांधातुः सौभरेःसगरस्यच ॥ २३ ॥ राम
स्यकोशलेन्द्रस्य चरितंकिल्बिषापहम् । निमेरङ्गपरित्यागो जनकानांचसंभवः २४॥
रामस्यभार्गवेन्द्रस्य निःक्षत्रकरणंभुवः । ऐलस्यसोमवंशस्य ययातेर्नहुषस्यच २५॥
दौष्यन्तेर्भरतस्यापि शंतनोस्तत्सुतस्यच । ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशोनुकीर्तितः
॥ २६ ॥ यत्रावतीर्णोभगवान् कृष्णाख्योजगदीश्वरः । वसुदेवगृहेजन्म ततोवृद्धि
श्चगोकुले ॥२७॥ तस्यकर्माण्यपाराणि कीर्तितान्यसुरद्विषः । पूतनाऽसुपयःपानं

॥ १२ ॥ महामुनि भगवान कपिल का अवतार और उनके साथ देवहूती का कथोपकथन इतने विषय कहेगये हैं ॥ १३ ॥ चतुर्थस्कन्ध में मरीचिआदि नवब्राह्मणों की उत्पत्ति, दक्ष के यज्ञ का विनाश, ध्रुवचरित्र, और प्राचीन बर्हि तथा पृथुका चरित्र ॥ १४ ॥ और नारदजी का सवाद इतने विषय कहे हैं हे विप्रो! पांचवें स्कन्धमे प्रियव्रत चरित्र, नाभि राजाका चरित्र और भरत चरित्र वर्णन किया है ॥ १५ ॥ द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदियें आदिकों का वर्णन, ज्योतिश्चक्र का संस्थान और पाताल नरक का स्थान वर्णन किया है ॥ १६ ॥ षष्ठस्कन्ध में प्रचेताओं से दक्ष का जन्म और दक्ष कन्याओंकी सन्तानोत्पत्ति, और उनसे देव, असुर, नर, तिर्यक् , नाग और पक्षि आदिकों की उत्पत्ति का वर्णन ॥ १७ ॥ वृत्रासुर की उत्पत्ति व नाश इतनें विषय कहे हैं। दिति के पुत्रो का वर्णन; दैत्यराज के चरित्र और प्रह्लाद के चरित्र सातमें स्कन्धमें वर्णित हुए हैं ॥ १८ ॥ आठमें स्कन्धमें मन्वंतर, गजेंद्र विमोक्षण, विष्णु के हयग्रीवादि अवतार तथा मत्स्य, कूर्म, नरसिंह और वामनादि अवतार और देवताओं का अमृत प्राप्ति के निमित्त क्षीर सागर का मथन और सुर असुरों का युद्ध. इतने विषय कहेगये हैं ॥ १९—२० ॥ नवमस्कन्ध में राजवंश कथन, इक्ष्वाकु का जन्म और वंश कथन महात्मा सुद्युम्न का वृत्तांत ॥ २१ ॥ इला का उपाख्यान, ताराका उपाख्यान, सूर्यवंश, शशादादि राजाओं का वंश विस्तार कथन ॥ २२ ॥ सुकन्या का वृत्तांत, तथा शर्याति, धीमान् ककुत्स्थ, खट्वाग, मांधाता, सौभरि, और सगर राजा का चरित्र ॥ २३ ॥ तथा रामचन्द्रजी के पापनाशक चरित्रों का वर्णन, निमिका अंग परित्याग जनक आदि की उत्पत्ति, ॥ २४ ॥ परशुरामका निःक्षत्रिय करण का वर्णन कियाहै । ऐल, सोम वंश, ययाति, नहुष, दुष्यंत, भरत, शंतनु, और उनके पुत्रों का चरित्र, तथा ययाति के बड़ेपुत्र यदु के वंश का वर्णन, यदुवंश में भगवान श्रीकृष्णजी के उत्पन्न होने का कारण । दशमस्कन्ध में वसुदेवजी के घर में श्रीकृष्णजी का जन्म तथा गोकुल की वृद्धि ॥ २५ । २७ ॥ उन असुर-

शकटोच्चाटनंशिशोः ॥ २८ ॥ तृणावर्तस्यनिष्पेषस्तथैववकवत्सयोः। धेनुकस्य सहभ्रातुःप्रलम्बस्यचसंक्षयः ॥ २९॥ गोपानांचपरित्राणंदावाग्नेःपरिसर्पतः।दमनं कालियस्याहेर्महाऽहेर्नन्दमोक्षणम् ॥ ३० ॥ व्रतचर्यानुकन्यानांयत्रतुष्टोऽच्युतो व्रतैः। प्रसादोयज्ञपत्नीभ्योविप्राणांचानुतापनं ॥ ३१ ॥ गोवर्द्धनोद्धारणंचशक्र-स्यसुरभेरथ। यज्ञाभिषेकःकृष्णस्यस्त्रीभिःक्रीडाचरात्रिषु ॥ ३२ ॥ शंखचूडस्य दुर्बुद्धेर्वधोऽरिष्टस्यकेशिनः। अक्रूरागमनंपश्चात्प्रस्थानंरामकृष्णयोः ॥३३॥ व्रज-स्त्रीणांविलापश्चमथुरालोकनंततः। गजमुष्टिकचाणूरकंसादीनांचयोवधः ॥ ३४ ॥ मृतस्यानयनंसूनोःपुनःसान्दीपनेर्गुरोः। मथुरायांनिवसतायदुचक्रस्ययत्प्रियम् ॥ ३५ ॥ कृतमुद्धवरामाभ्यांयुतेनहरिणाद्विजाः। जरासन्धसमानीतसैन्यस्यबहुशो वधः। घातनंयवनेन्द्रस्यकुशस्थल्यानिवेशनम् ॥ ३६ ॥ आदानपारिजातस्यसु-धर्मायाःसुरालयात्। रुक्मिण्याहरणंयुद्धेप्रमथ्यद्विषतोहरेः ॥ ३७ ॥ हरस्यजृम्भ-णंयुद्धेबाणस्यभुजकृन्तनम्। प्राग्ज्योतिषपतिंहत्वाकन्यानांहरणंचयत् ॥ ३८ ॥ चैद्यपौण्ड्रकशाल्वानांदन्तवक्रस्यदुर्मतेः। शम्बरोद्विविदःपीठोमुरःपञ्चजनादयः ॥ ३९ ॥ माहात्म्यंचवधस्तेषांवाराणस्याश्चदाहनम्। भारावतरणंभूमेर्निमित्ती कृत्यपाण्डवान् ॥ ४० ॥ विप्रशापापदेशेनसंहारःस्वकुलस्यच। उद्धवस्यचसं-वादोवासुदेवस्यचाद्भुतः ॥ ४१ ॥ यत्रात्मविद्याह्यखिलाप्रोक्ताधर्मविनिर्णयः। ततो मर्त्यपरित्यागआत्मयोगानुभावतः ॥ ४२ ॥ युगलक्षणवृत्तिश्चकलौनृणामुपप्लवः। चतुर्विधश्चप्रलयउत्पत्तिस्त्रिविधातथा ॥ ४३ ॥ देहत्यागश्चराजर्षेर्विष्णुरातस्य

यानी श्रीकृष्णजी के बहुत से कर्म,—बालकपन में पूतना के प्राण सहित स्तनों का पानी, और लातमारकर गाड़े का उलटाना ॥ २८ ॥ तथा तृणावर्त व बक, वत्सका मारा जाना धेनुका-सुरका तथा उसके मित्रों का वध, प्रलम्बासुर का वध, ॥ २९ ॥ दावाग्नि से गौओं व गोपालों का बचाना, कालियदमन, अजगर से नन्दमोक्षण ॥ ३० ॥ कन्याओं का व्रत धारण करना, यज्ञस्त्रियोंपर कृपा और ब्राह्मणोंके पश्चात्ताप का वर्णन किया है ॥ ३१ ॥ गोवर्द्धनोद्धार, इन्द्र और कामधेनु द्वारा की हुई श्रीकृष्णजी की पूजा तथा अभिषेक, रात्रि में स्त्रियों के साथ क्रीडा ॥ ३२ ॥ दुष्ट शंख चूड, अरिष्ट, केशीका माराजाना, अक्रूर का आगमन, रामकृष्णका प्रस्थान ॥ ३३ ॥ व्रजस्त्री विलाप, मथुरा दर्शन, गजमुष्टिक चाणूर और कंसादि का वध ॥ ३४ ॥ सान्दीपन गुरुके मृत पुत्रों का लाना हे द्विजों ! मथुरा में हरिका रहना राम और उद्धव का कियाहुआ यादवों का प्रिय, जरासंध द्वारा अनेकों बार लाईहुई सेना का वध, कालयमन वध, द्वारका में वास करना ॥ ३५ । ३६ ॥ और स्वर्ग में से पारिजात तथा सुधर्मा सभा के लाने का वर्णन किया है युद्ध में प्रमत्त शत्रुओं में से रुक्मिणी का हरण ॥ ३७ ॥ युद्ध में महादेवजी का पराजय बाण की भुजाकाटना प्राग्ज्योतिष पति को मार उसकी कन्याओं का हरण करना ॥ ३८ ॥ शिशुपाल, पौंड्रक, शाल्व, दन्तवक्र, शम्बर, द्विविद, पीठ और मुर तथा पंचजन आदि का वध । ३९ ॥ वैर्यों के प्रभावका वर्णन काशीदाह, पाण्डवों के निमित्त भूमिभारावतारण ॥ ४० ॥ विप्र शाप के छलसे अपने कुल का संहार उद्धव और श्रीकृष्णजीका अद्भुत सम्वाद ॥ ४१ ॥ जिसमें आत्मज्ञान कथन कर्म निर्णय वर्णित है और योग के प्रभाव से मर्त्य लोक के परित्याग का वर्णन कियाहै ॥ ४२ ॥ युग लक्षण, कलि में मनुष्यों की अवस्था, चारप्रकार के प्रलय, तीनप्रकार की उत्पत्ति ॥ ४३ ॥ बुद्धिमान् राजा परीक्षितकी देह त्याग, वेदशाखा प्रणयन, मार्कण्डेयजी की पवित्र कथा

धीमतः । शाखाप्रणयनमृषेर्मार्कण्डेयस्य चरितकथा ॥ ४४ ॥ महापुरुषविन्यासः
सूर्यस्य जगदात्मनः । इतिचोक्तं द्विजश्रेष्ठा यत्पृष्टोऽहमिहास्मि वः ॥ लीलावतारक-
र्माणि कीर्तितानीह सर्वशः ॥ ४५ ॥ पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो गृणन् ।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥ ४६ ॥ संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः श्रुतानु-
भावो व्यसनं हि पुंसाम् । प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवाऽति
वातः ॥ ४७ ॥ मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा न कथ्यते यद्भगवानधोक्षजः । तदेव
सत्यं तदु हैव मंगलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥ ४८ ॥ तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् । तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां यदुत्तमश्लोकयशोऽनु
गीयते ॥ ४९ ॥ न तद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् । तद्ध्वा-
ङ्क्षतीर्थं न तु हंससेवितं यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः ॥ ५० ॥ स वाग्विसर्गो
जनताघसंप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि । नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि य-
च्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥ ५१ ॥ नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते
ज्ञानमलं निरञ्जनम् । कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यनुत्तमम् ॥ ५२ ॥
यशः श्रियामेव परिश्रमः परो वर्णाश्रमाचारतपःश्रुतादिषु । अविस्मृतिः श्रीधरपाद
पद्मयोर्गुणानुवादश्रवणादिभिर्हरेः ॥ ५३ ॥ अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः क्षिणो-
त्यभद्राणि शमं तनोति च । सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम् ५४
यूयं द्विजाग्र्या बत भूरिभागा यच्छश्वदात्मन्यखिलात्मभूतम् । नारायणं देवमदेवमी-

महापुरुष का विन्यास और जगदात्मा सूर्य भगवान के देहव्यूह का कीर्तन किया है ॥ ४४ ॥ हे श्रेष्ठ द्विजों ! आपने जो मुझ से पूंछाथा वह सबही मैंनें आपसे कहा यहांपर ईश्वर के लीलावतार और कर्मादि काभी कीर्तन किया है ॥ ४५ ॥ पतित, स्खलित, पीड़ित और भूँख से पीड़ित कोई मनुष्य यदि ऊचे स्वर से हरयेनमः यह शब्द उच्चारण करे तो वह सब पापों से छूटजाता है ४६॥ जोमनुष्य प्रभावको सुनता और नाम तथा कर्मादि का कीर्तन करता है भगवान अनत उसके चित्तमें प्रवेशकर विघ्नोंको ऐसे नाशकरतेहैं कि जैसे अंधेरेको सूर्य और मेघोंको वायु नाशकरताहै ॥ ४७ ॥ जिस कथामें भगवान अधोक्षजका प्रसंग नहीं है वह सब कथा असत् और मिथ्या है और जिसमें भगवान के गुणोंका प्रसंग है वही सत्य, वही मंगल और पुण्यजनक है ॥ ४८ ॥ जिसमें उत्तम श्लोक श्रीकृष्णजीका यशोगान विस्तृत होता है वही रमणीय और बारंबार नया, वही महोत्सव, वही मनुष्योंका शोकार्णव शोषक है ॥ ४९ ॥ जोवचन विचित्र पदवाला होनेपर भी जगतको पवित्र करने वाले भगवान की कीर्तिका वर्णन नहीं करता वह कौवेकी समान मनुष्य का रतिस्थान है, ज्ञानीजन उसका सेवन नहीं करते ॥ ५० ॥ श्रेष्ठगुण न होनेपर भी प्रत्येक श्लोक की जिस वाणीमें भगवान की कीर्तिमे अलकृत अनत भगवान के नामोंका उच्चारण आवे उसही वाणीका प्रयोग मनुष्यों के अनेकों पापोंका नाश करता है। क्योंकि भक्तलोग भगवान के यशको सुनते और गाया करते हैं ॥ ५१ ॥ निष्काम और ब्रह्म प्रकाशक ज्ञानभी भगवद्भक्ति रहित होनेसे शोभा नहीं पाता । फिर भला असत् ज्ञानकी क्यावात कहैं ? सर्वोत्तम कर्म भी ईश्वरमें अर्पित न होनेसे दुःखात्मक हैं ॥ ५२ ॥ वर्णाश्रमाचार, तपस्या, और शास्त्र श्रवणादिक में जोपरिश्रम करने में आता है वह केवल यश युक्त कीर्तिके निमित्त है, परन्तु भगवान के गुणोंका वर्णन और श्रवण आदि करने से तो भगवान के चरण कमलोंका अविस्मरण होता है ॥ ५३ ॥ श्रीकृष्णजी के चरण कमलोंका अविस्मरण अशुभ नाशक और कल्याण कारक है तथा सत्त्वशुद्धि, परमात्मभक्ति और वैराग्य ज्ञान विज्ञानयुक्त ज्ञानका विस्तारक है ॥ ५४ ॥ हेविप्रो ! आपवडे भाग्यशालीहो क्योंकि

धामबद्धभावा भजताधिवेश्य ॥ ५५ ॥ अहंचसंस्मारितआत्मतत्त्वं श्रुतंपुरामेपर मर्षिवक्त्रात् । प्रायोपवेशेनृपतेःपरीक्षितः सदस्यृषीणांमहतांचशृण्वताम् ॥५६॥ एतेद्वःकथितंविप्राः कथनीयोरुकर्मणः । माहात्म्यंवासुदेवस्य सर्वाशुभविनाशन म् ॥ ५७ ॥ यएवंश्रावयेन्नित्यं यामंक्षणमनन्यधीः । श्रद्धावान्योऽनुशृणुयात्पुना त्यात्मानमेवसः ॥ ५८ ॥ द्वादश्यामेकादश्यांवाशृण्वन्नायुष्यवान्भवेत् । पठत्यन श्नन्प्रयतस्ततोभवत्यपातकी ॥ ५९ ॥ पुष्करेमथुरायांच द्वारवत्यांयतात्मवान् । उ पोष्यसंहितामेतां पठित्वामुच्यतेभयात् ॥ ६० ॥ देवतामुनयःसिद्धाः पितरोमनवो नृपाः । यच्छन्तिकामान्गृणतः शृण्वतोयस्यकीर्तनात् ॥ ६१ ॥ ऋचोयजूंषिसामा नि द्विजोधीत्यानुविन्दते । मधुकुल्याघृतकुल्याः पयःकुल्याश्चतत्फलम् ॥ ६२ ॥ पुराणसंहितामेता मधीत्यप्रयतोद्विजः । प्रोक्तंभगवतायत्तु तत्पदंपरमंव्रजेत्॥६३॥ विप्रोऽधीत्याऽऽप्नयात्प्रज्ञां राजन्योदधिमेखलाम् । वैश्योनिधिपतित्वंच शूद्रःशुध्ये तपातकात् ॥ ६४ ॥ कलिमलसंहतिकालनोऽखिलेशो हरिरितरत्रनगीयतेह्यभीक्ष्णं म् । इहतुपुनर्भगवानशेषमूर्तिः परिपठितोऽनुपदंकथाप्रसंगैः ॥ ६५ ॥ तमहमजम नन्तमात्मतत्त्वं जगदुदयस्थितिसंयमात्मशक्तिम् । द्युपति भिरजशक्रशंकराद्यैर्दु रवसितस्तवमच्युतंनतोऽस्मि ॥ ६६ ॥ उपचितनवशक्तिभिःस्वआत्मन्युपरचित स्थिरजंगमालयाय । भगवतउपलब्धिमात्रधाम्ने सुरऋषभायनमःसनातनाय ६७॥

आप सर्वान्तर्यामी, सबकी उपासना योग्य और सर्वश्रेष्ठ नारायण देवका निरंतर भजन करते रहतेहो ॥ ५५ ॥ जोमैंने पहिले तपस्वी के वेषमें ऋषियों समेत बैठेहुए राजा परीक्षित की सभामें ऋषिके मुखसे सुनाथा उस आत्मतत्त्वका आप लोगों ने मुझेस्मरण कराया यह मुझपर आपनें बडीकृपा की ॥ ५६ ॥ हे विप्रों ! सब अशुभों के नाश करनेवाले इस महात्म्यका मैंने आपलोगों से वर्णन किया ॥ ५७ ॥ जोमनुष्य एक प्रहर व क्षणभरभी एकाग्रचित्तहो इसको सुनाताहै और जोमनुष्य श्रद्धावानहो इसका एक श्लोक या आधा श्लोक अथवा चौथाई या चौथाई सेभी आधा सुनता है उनकी आत्मा पवित्र होती रहती है ॥ ५८ ॥ द्वादशी में वा एकादशी में इसका श्रवण करने से आयुकी वृद्धिहोती है । उपवासकर यत्न सहित पाठ करने से सब पापों से छुटकारा होता है ॥ ५९ ॥ पुष्कर तीर्थमें, मथुरा या द्वारकामें उपवास करके यत्न सहित इस संहिताका पाठ करने से सबपापों से छुटकारा होता है ॥ ६० ॥ जो इस संहिताको पढ़ते या सुनते हैं उनके मनोरथोंको देवता, मुनि, सिद्ध, पितर, मनुष्य, और राजा पूर्णकरते हैं ॥ ६१ ॥ ब्राह्मणोंको इसके पढ़नेसे ऋक्, यजु और सामके पाठका फल प्राप्तहोताहै । हे द्विजो ! शहदकी नदियें, दूध की नदियें, घृतकी नदियों के प्राप्तहोने से जोफल मिलता है सो यत्नवानहो इस पुराण संहिताके पढ़ने सेही वह फल तथा भगवान द्वारा कथित जोपरमपद है वहभी प्राप्तहोता है ॥ ६२–६३ ॥ ब्राह्मण इसको पढ़ैतो ज्ञान, क्षत्री पढ़ैतो समुद्र से घिरीहुई पृथ्वी, वैश्य पढ़ैतो द्रव्यप्राप्तहो तथा शूद्र पढ़ैतो पापों से छूटजावैं ॥ ६४ ॥ दूसरे शास्त्रोंमें कलिकलुष नाशक भगवान हरिका नाम प्रति- पदमें नहीं उच्चारित हुआ, किंतु इस पुराण संहिताकी प्रत्येक कथाके प्रसंग में तथा प्रत्येक पदमें भगवान का नाम कहागया है ॥ ६५ ॥ स्वर्ग पतिब्रह्मा, इन्द्र और शंकर आदि देवता द्वारा जिन की भली प्रकार से स्तुति नहीं होती उन्हीं अज, अनंत, अच्युत, जगत के सृष्टि स्थिति प्रलया- त्मक शक्ति शाली भगवानको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ६६ ॥ बढ़ीहुई प्रकृति आदि नवशक्तियों से जिसने अपने स्वरूप मेंही स्थावर जंगम की सृष्टिकी है और जिनका स्वरूप केवल ज्ञानमात्र है

स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावोऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम् ।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि ॥ ६८ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द्वादश० निरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सूत उवाच ॥ यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः । ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ १ ॥ पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयनान्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पान्तु वः । यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद्वेलानिभेनाम्भसां यातायातमतन्द्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति ॥ २ ॥ पुराणसंख्यासंभूतिमस्य वाच्यप्रयोजने । दानं दानस्य माहात्म्यं पाठादेश्च निबोधत ॥ ३ ॥ ब्राह्मं दशसहस्राणि पाद्मं पञ्चोनषष्टि च । श्रीवैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विंशति शैवकम् ॥ ४ ॥ दशाष्टौ श्रीभागवतं नारदं पञ्चविंशतिः । मार्कण्डं नव वाह्नं च दशपञ्च चतुःशतम् ॥५॥ चतुर्दश भविष्यं स्यात्तथा पञ्चशतानि च । दशाष्टौ ब्रह्मवैवर्तं लिंगमेकादशैव तु ॥ ६ ॥ चतुर्विंशति वाराहमेकाशीतिसहस्रकम् । स्कान्दं शतं तथा चैकं वामनं दश कीर्तितम् ॥ ७ ॥ कौर्मं सप्तदशाख्यातं मात्स्यं तत्तु चतुर्दश । एकोनविंशत्सौपर्णं ब्रह्माण्डं द्वादशैव तु ॥ ८ ॥ एवं पुराणसंदोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः ।

उन सर्व व्यापक, आदि नारायणको मैं प्रणाम करता हूं, ॥ ६७ ॥ अपनेही सुखसे पूर्ण चित्तवाले और उसी से दूसरे पदार्थों में रति न देखने वाले, भगवान नारायण की मनोहर लीलाने जिनके धैर्यको खींचलिया है, जिन्होंने इस परमार्थ प्रकाशक पुराण संहिताको प्रगट किया है उन अखिल पाप नाशक व्यासपुत्र भगवान श्रीशुकदेवजीको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ६९ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द्वाद० सरला भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सूतजी बोले कि ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, मरुत् और रुद्र आदि देवगण दिव्य स्तुतियों द्वारा जि[illegible] की स्तुति करते हैं सामवेदी अंग, पद, क्रम और उपनिषद् के साथ वेद द्वारा जिनके स्वरूप[illegible] गान करते रहते हैं ध्यानावस्था में तद्गत चित्तहो योगीगण जिनको हृदयमें देखते हैं और देवतागण जिनका अंत नहीं पाते उस देवता को मैं प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥ पीठपर घूमतेहुए मोटे मंदराचल के पत्थरों के अग्रभाग द्वारा गात्र घिसने के कारण जिन्हें निद्रा आरहीथी उन कच्छप भगवानकी श्वास के वायुकी कि जिसके संस्कार के लेशमात्रकी केवल अनुवृत्ति रहजानेके कारण अबतक समुद्रके जलका नियमित रीति से आना जाना बंद नहीं होता वही भगवान तुम्हारा पालनकरें ॥ २ ॥ अब पुराणों की संख्या, उनका समाहार तथा भगवान का विषय प्रयोजन दान व पाठ आदि के माहात्म्य को कहता हू सो सुनो ॥ ३ ॥ ब्रह्मपुराण की श्लोक संख्या दश सहस्र पद्मपुराण की पचपन सहस्र विष्णुपुराण की तेईस सहस्र शिवपुराण की चौबीस सहस्रहै ॥ ४ ॥ श्रीभागवतकी अठारह सहस्र नारदपुराण की पचीस सहस्र मार्कण्डेय पुराण की नौसहस्र अग्निपुराणकी पन्द्रह सहस्र चारसौहै ॥५॥ भविष्यपुराणकी चौदह सहस्र पांचसौ ब्रह्मवैवर्त की अठारह सहस्र लिंगपुराण की ग्यारह सहस्र हैं ॥ ६ ॥ वराहपुराणकी चौबीस सहस्र स्कंदपुराणकी इक्यासी सहस्र एकसौ वामन पुराण की दश सहस्रहै ॥७॥ कूर्मपुराण की सत्रह सहस्र मत्स्यपुराणकी चौदह सहस्र गरुड़पुराण की उन्नीस सहस्र और ब्रह्माण्डपुराण की बारह सहस्र श्लोक संख्या है

तत्राष्टादशसाहस्रंश्रीभागवतमिष्यते ॥ ९ ॥ इदंभगवतापूर्वंब्रह्मणेनाभिपङ्कजे ।
स्थितायभवभीतायकारुण्यात्संप्रकाशितम् ॥ १० ॥ आदिमध्यावसानेषुवैराग्या-
ख्यानसंयुतम् । हरिलीलाकथाव्रातामृतानन्दितसत्सुरम् ॥ ११ ॥ सर्ववेदान्तसारं
यद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् । वस्त्वद्वितीयंतन्निष्ठंकैवल्यैकप्रयोजनम् ॥ १२ ॥ प्रौष्ठ
पद्यांपौर्णमास्यांहेमसिंहसमन्वितम् । ददातियोभागवतंसयातिपरमांगतिम् ॥१३॥
राजन्तेतावदन्यानिपुराणानिसतांगणे । यावद्भागवतंनैवश्रूयतेऽमृतसागरम् ॥ १४॥
सर्ववेदान्तसारंहिश्रीभागवतमिष्यते । तद्रसामृततृप्तस्यनान्यत्रस्याद्रतिःक्वचित्
॥ १५ ॥ निम्नगानांयथागङ्गादेवानामच्युतोयथा । वैष्णवानांयथाशम्भुःपुराणाना-
मिदंतथा ॥ १६ ॥ क्षेत्राणांचैवसर्वेषांयथाकाशीह्यनुत्तमा । तथापुराणव्रातानां
श्रीमद्भागवतंद्विजाः ॥ १७ ॥ श्रीमद्भागवतंपुराणममलंयद्वैष्णवानांप्रियंयस्मिन्पा-
रमहंस्यमेकममलंज्ञानंपरंगीयते । तत्रज्ञानविरागभक्तिसहितंनैष्कर्म्यमाविष्कृतंत-
च्छृण्वन्विपठन्विचारणपरोभक्त्याविमुच्येन्नरः ॥ १८ ॥ कस्मैयेनविभासितोऽयम
तुलोज्ञानप्रदीपःपुरा तद्रूपेणचनारदायमुनयेकृष्णायतद्रूपिणा । योगीन्द्रायतदात्म
नाऽथभगवद्रातायकारुण्यतस्तच्छुद्धंविमलंविशोकममृतंसत्यंपरंधीमहि ॥ १९ ॥
नमस्तस्मैभगवतेवासुदेवायसाक्षिणे । यइदंकृपयाकस्मैव्याचचक्षेमुमुक्षवे ॥२०॥
योगीन्द्रायनमस्तस्मैशुकायब्रह्मरूपिणे । संसारसर्पदष्टंयोविष्णुरातममूमुचत् ॥
॥ २१ ॥ भवेभवेयथाभक्तिःपादयोस्तवजायते । तथाकुरुष्वदेवेशनाथस्त्वंनोयतः

इस प्रकार समस्त पुराणोंमें चार लाख श्लोक हैं उनमें से श्रीमद्भागवतके अठारह सहस्र श्लोक कहे हैं ॥ ९ ॥ पहिले भगवान नारायण ने नाभिकमल में बैठेहुए भयभीत ब्रह्माको दयाकर इस भागवतको दियाथा ॥ १० ॥ इसके आदि मध्य और अंत में वैराग्य वर्णन सहित हरिलीला के कथामृतका विस्तार है यह पुराण देवताओंको भी आनंद देनेवाला है ॥ ११ ॥ सर्व वेदान्तोंका सार जो आत्मैकत्व स्वरूप अद्वितीय वस्तु है वही इसका मुख्य अभिप्राय कैवल्य (मोक्ष) है ॥१२॥ जो मनुष्य भादों के महीने में पूर्णिमा तिथिको सुवर्ण के सिंहासन सहित श्रीमद्भागवत का दान करता है वह परमगति को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ जबतक अमृत की समुद्र रूप यह भागवत न सुनें में आवे तभीतक साधुओं की समाज में अन्यान्य पुराण शोभापाते हैं ॥ १४ ॥ यह श्रीमद्भागवत सब वेदांतो का सार है जो मनुष्य इसके रसामृत से तृप्त है उसकी फिर कभी अन्यत्र प्रवृत्ति नहीं होती ॥ १५ ॥ नदियों में जैसे गंगा देवताओं में जैसे विष्णु भक्तों में जैसे महादेवजी श्रेष्ठ हैं उसही प्रकार पुराणों में यह भागवत श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥ सम्पूर्ण क्षेत्रों में जैसे काशी क्षेत्र सर्वोत्तम है ऐसेही हे ब्राह्मणों ! सम्पूर्ण पुराणोंमें श्रीमद्भागवत ग्रन्थ सर्वोत्तम है ॥ १७ ॥ यह निर्मल भागवत पुराण वैष्णवोंको अत्यंत प्रिय है । इसमें परमहंसो के प्राप्त होने योग्य निर्मल, अद्वितीय परमज्ञान कथित है और ज्ञान, वैराग्य, भक्तिके साथ सब कर्मोंका उपराम प्रगट किया गया है । इसको भक्ति सहित सुनने, पढने, विचार करने से मनुष्य मुक्तिको प्राप्त करता है ॥१८॥ जिसने पहिले इस अतुल ज्ञानको ब्रह्माके निकट प्रकाश किया, फिर नारद मुनिको, व्यासजीको तथा योगीन्द्र शुकदेवजीको, और विष्णुरात परीक्षितको कृपा करके उपदेश किया, उन्हीं शुद्ध, निर्मल, शोक रहित, सत्य और मोक्षरूप भगवानका हम ध्यान करते हैं ॥ १९ ॥ जिनने कृपाकर इसको मुमुक्षु ब्रह्माके निकट प्रकाशित किया,—उन सर्वसाक्षी भगवान वासुदेवको नमस्कार करता हूं ॥ २० ॥ और जिनने सर्पसे डसेहुए विष्णुरात परीक्षितको संसारके तापोंसे छुडाया उन ब्रह्मरूपी योगीन्द्र मुनि श्रीशुकदेवजीको भी नमस्कार करता हूं ॥ २१ ॥ हे प्रभो ! हे योगेश जिस

प्रभो ॥ २२ ॥ नामसंकीर्तनंयस्यसर्वपापप्रणाशनम् । प्रणामोदुःखशमनस्तंनमामिहरिंपरम् ॥ २३ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेद्वादशस्कन्धेत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

सम्पूर्णोऽयं ग्रन्थः ॥

रीतिसे जन्म २ में आपके चरणों में प्रीति उत्पन्नहो हे नाथ ! वैसा आप हमारेलिये करें क्योंकि आपही हमारे नाथ हैं ॥ २२ ॥ जिनके नामका कीर्तन सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवालाहै उन दुःखके दूरकरनेवाले हरि भगवान्को हम बारम्बार प्रणाम करते हैं ॥ २३ ॥

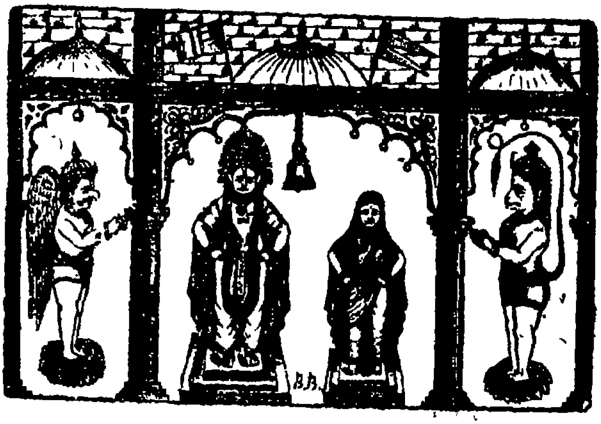
इतिश्री मद्भागवते महा० द्वादशस्कन्धे सारस्वतवंशोद्भव पण्डित जगन्नाथात्मज पं०कन्हैयालाल उपाध्यायकृत सरलाभाषाटीकायांत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

समाप्तोयं द्वादशस्कन्धः ॥ १२ ॥

प्रसादाद्देवानांगुरुविनय भूत्यातिविषमम् पुराणंपूर्णाङ्गंशुकवदनपद्मोद्भवामितम् ।
सितेशुक्लेमासेवसुशरनवैकाङ्करचिते शिवेब्देवैपूर्तिंहरितिथियुतेसौम्यदिवसे॥१ ॥



श्रीराघवेन्द्रायनमः



(१४) महाकविका जीवन वृत्तांत । महाकवि कालिदास की ग्रन्थावली में क्यानहीं है ! काव्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य, अलङ्कार, छन्द, इतिहास, उपन्यास, पुराण, शृंगार, प्रेमगाथा, रहस्य आदि अधिकता से हैं महाकवि कालिदास की ग्रन्थावली में जो चाहोगे वही पाओगे। यथार्थ में कालिदास की ग्रंथावली प्रेम कल्पवृक्ष है रस रत्नाकर और काव्य सुमेरु है । हमने अनेक प्राचीन ग्रन्थों से मिलाकर इस को अत्युत्तम चिकने कागज पर बम्बई के टाइप में मुद्रित किया है । यह ग्रन्थ हिंदूमात्र के घर में विराजितहो इस कारण इन सबका मूल्य भी अतिसुलभ है । मूल्य डाकव्यय सहित ४) रु०

गुप्तज्ञान संहिता·

मैडम ब्लावस्टकी के ग्रंथका हिन्दी अनुवाद आजहम पाठकों की भेंटकरते हैं।उक्त स्वर्गवासिनीको ऐसी सिद्धि ब्रह्म विद्याके द्वारा प्राप्त होगई थी कि एक समय भारत वर्षके गवर्नर उथमरेले भी शिमला पहाड़पर उनके सिद्ध प्रयोगों देख चकित होगए थे । एकदिन वही मेम साहब कई अंगरेजों के साथ शिमले के जंगलोंमें घूमती फिरती थीं। भ्रमण करते २ संध्याकाल होगया। जंगल मेंही चाह बनकर तइयार हुई। अब पीनेवालेतो तेरह थे और प्याले केवल बारही वर्त्तमान थे। सबलोग बड़ी झंझटमें पड़े उसही समय मैडम ब्लावस्टकी ने एक खानशामाको पासबुलाकर कहा कि इस वृक्षके नीचे प्राचीन कालके कुछ बर्तन गड़े हैं उनको निकालकर काम में लाओ । खानशामा ने खोदातो वहांपर कईएक पीतल कांसी के कटोरे निकले । उक्त महोदया की यह विज्ञान शक्ति देखकर सबही चमत्कृत हुए । इसके उपरान्त बहुत से अंगरेजों ने उक्त मेम साहिबाको आकाश में उड़ते देखा है । पानी में वह इस प्रकार चलती थीं कि जैसे कोई स्थलपर भ्रमण करताहो । एकदिन शिमलेपर लाटपत्नी की सुवर्ण की अंगूठी खोगई । इनसे पूछागया इन्हों ने तत्काल ध्यान धरकर उस अंगूठी को बतला दिया अंगूठी वहीं पर मिली थी कि जहां इन्हों ने बतलाया था । पाठकगण ! अब आप विचार कीजिये कि इनकी बनाई पुस्तक कैसी अपूर्व होगी । इस पुस्तक में उन महात्माओं का पूरावर्णन कियागया है कि जोहिमालय पर्वत की गुफामें रहते हुए नारायण जीकी उपासना करतेहैं। यदि कोई घरही बैठकर त्रेतायुग सम्बन्धीय राम रावण के युद्धका वृत्तान्त, द्वापरयुग के श्रीकृष्ण भगवानका सखा कुंजविहार, रास, महारास, चक्र.स बधादिको प्रत्यक्ष देखकर उनके आध्यात्मिक भाव और प्रयोग सिद्धि की कुंजीको ग्रहण करना चाहता है तो इस पुस्तकको पढ़कर वह अपनी मनोकामना पूर्णकरे । पुस्तक बड़े बड़े २६४ पृष्ठमें पूर्ण होकर छपरही है । इस समय जोकार्ड भेजकर ग्राहक श्रेणीमें नाम लिखवावेंगे उनको डाकव्यय सहित १।) रु०में दीजायगी और पीछे मंगानेवालों से २) रु० नियत कियेगए हैं । प्रथम से ग्राहक होनेवालों के नाम पुस्तक के अंतमें छाप दियेजायंगे ।

पता--पण्डित कन्हैयालाल तंत्रवैद्य
"तंत्रप्रभाकर" प्रेस मुरादाबाद.